महर्षि-कृष्णद्वैपायन व्यास-प्रणीत

श्री शिव महापुराण

भाषा-टीका

टीकाकार- आचार्य पण्डित शिवदत्त मिश्र शास्त्री

(प्रथम खण्ड)



ठाकुर प्रसाद बुकसेलर

चौक-वाराणसी-1

नवमोऽध्यायः

(ब्रह्मा-विष्णु द्वारा शिवपूजन को ही शिवरात्रि कथन एवं स्वयं को महत्त्व प्रदान)

नन्दिकेश्वर उवाच

तत्रान्तरे तौ च नाथं प्रणम्य विधिमाधवौ । बद्धाञ्जलिपुटौ तूष्णीं तस्थतुर्दक्षवामगौ ॥ १ ॥
तत्र संस्थाप्य तौ देवं सकुटुम्बं वरासने । पूजयामासतुः पूज्यं पुण्यैः पुरुषवस्तुभिः ॥ २ ॥
पौरुषं प्राकृतं वस्तु ज्ञेयं दीर्घाल्पकालिकम् । हार-नूपुर-केयूर-किरीटमणि-कुण्डलैः ॥ ३ ॥
यज्ञसूत्रोत्तरीय-स्रक्-क्षौम-माल्याङ्गुलीयकैः । पुष्प-ताम्बूल-कर्पूर-चन्दना-ऽगुरुलेपनैः ॥ ४ ॥
धूप-दीप-सितच्छत्र-व्यजन-ध्वज-चामरैः । अन्यैर्दिव्योपहारैश्च वाङ्मनोतीत-वैभवैः ॥ ५ ॥
पतियोग्यैः पशवलभ्यैस्तौ समर्चयतां पतिम् । यद्यच्छ्रेष्ठतमं वस्तु पतियोग्यं हि तद्ध्रुवम् ॥ ६ ॥
तद्वस्त्वखिलमीशोऽपि पारम्पर्यचिकीर्षया । सभ्यानां प्रददौ हृष्टः पृथक् तत्र यथाक्रमम् ॥ ७ ॥
कोलाहलो महानासीत्तत्र तद्वस्तु गृह्णताम् । तत्रैव ब्रह्मविष्णुभ्यां चार्चितः शङ्करः पुरा ॥ ८ ॥
प्रसन्नः प्राह तौ नम्रौ सस्मितं भक्तिवर्धनः ।

ईश्वर उवाच

तुष्टोऽहमद्य वां वत्सौ पूजयाऽस्मिन् महादिने ॥ ९ ॥
दिनमेतत् ततः पुण्यं भविष्यति महत्तरम् । शिवरात्रिरिति ख्याता तिथिरेषा मम प्रिया ॥ १० ॥
एतत् काले तु यः कुर्यात् पूजां मल्लिङ्गबेरयोः । कुर्यात् स जगतः कृत्यं स्थितिसर्गादिकं पुमान् ॥ ११ ॥
शिवरात्रावहोरात्रं निराहारी जितेन्द्रियः । अर्चयेद् वा यथान्यायं यथाबलमवञ्चकः ॥ १२ ॥
यत्फलं मम पूजायां वर्षमेकं निरन्तरम् । तत्फलं लभते सद्यः शिवरात्रौ मदर्चनात् ॥ १३ ॥

नन्दिकेश्वर बोले—तदनन्तर ब्रह्मा तथा विष्णु, प्रणाम कर हाथ जोड़ मौन हो उनके अगल-बगल खड़े हो गये ॥ १ ॥ वहाँ बड़े सुन्दर आसन पर सकुटुम्ब शिव जी को बैठा कर परम पावन पुरुषोचित वस्तुओं से सदाशिव की पूजा की ॥ २ ॥ पौरुष वस्तु उसे कहते हैं, जो थोड़े या बहुत दिनों में अपने आप प्रकृति से उत्पन्न होती हो। इसी प्रकार हार, नूपुर, केयूर, किरीट मणि निर्मित कुण्डल, ॥ ३ ॥ यज्ञसूत्र, उत्तरीय, माला, रेशमी वस्त्र, अँगूठी, पुष्पों की माला, ताम्बूल, कपूर, चन्दन, अगर, इत्यादि लेपन, ॥ ४ ॥ धूप, दीप, श्वेत छत्र, व्यजन, ध्वजा, चमर और भी दिव्य उपहार, जो वाणी तथा मन से परे हैं ऐसे अनेक वस्तु, जो जीव-जगत् में अलभ्य हैं, उन वस्तुओं से उन दोनों ने शंकर की पूजा की। हे सनत्कुमार ! इसका कारण यह है कि, जो जगत् में सर्वश्रेष्ठ वस्तु है वह शंकर के लिए है ॥ ५-६ ॥ इस परम्परा को स्थिर रखने के लिए श्री महादेव जी ने भी उन वस्तुओं को यथायोग्य अपने सभासदों में बाँट दी ॥ ७ ॥ उस समय उन वस्तुओं को लेते समय सभ्यों का महान् कोलाहल होने लगा। इस प्रकार ब्रह्मा तथा विष्णु के द्वारा पूजित हुए, भक्तिवर्धन शङ्कर जी प्रसन्न हो नम्र हुए ब्रह्मा तथा विष्णु से बोले —

शिवजी बोले—हे वत्स ! आज के इस महत्त्वशाली दिन में तुम लोगों की पूजा से मैं परम सन्तुष्ट हूँ ॥ ८-९ ॥ इसलिए आज का यह दिन सबसे श्रेष्ठ तथा पुण्यदायक होगा। संसार में आज का यह यह दिन शिवरात्रि नाम से प्रसिद्ध होगा। और यह तिथि मुझे बहुत प्रिय होगी ॥ १० ॥ आज के दिन जो मेरे लिङ्ग (पिण्डी) तथा बेर (मेरी मूर्ति) की [illegible] कोई पूजा करेगा वह इस सृष्टि के उत्पत्ति, लय तथा पालन करने वाले ब्रह्मदेव के पद को प्राप्त कर सकेगा ॥ ११ ॥ जो इस शिवरात्रि [illegible] निराहार, जितेन्द्रिय तथा निष्कपट भाव से अपनी शक्ति के अनुसार विधान पूर्वक शक्ति से मेरी पूजा [illegible] ॥ १२ ॥ उससे उतना फल उसको प्राप्त होगा, जो निरन्तर एक व[illegible] मेरी पूजा करने से प्राप्त

मद्धर्मवृद्धिकालोऽयं चन्द्रकाल इवाम्बुधेः । प्रतिष्ठाद्युत्सवो यत्र मामको मङ्गलायनः ॥१४॥
यत्पुनः स्तम्भरूपेण स्वाविरासमहं पुरा । स कालो मार्गशीर्षे तु स्यादार्द्राऋक्षमर्भकौ ॥१५॥
आर्द्रायां मार्गशीर्षे तु यः पश्येन् मामुमासखम् । मद्वेरमपि वा लिङ्गं स गुहादपि मे प्रियः ॥१६॥
अलं दर्शनमात्रेण फलं तस्मिन् दिने शुभे । अभ्यर्चनं चेदधिकं फलं वाचामगोचरम् ॥१७॥
रणरङ्गतलेऽमुष्मिन् यदहं लिङ्गवर्ष्मणा । जृम्भितो लिङ्गवत्तस्माल्लिङ्गस्थानमिदं भवेत् ॥१८॥
अनाद्यन्तमिदं स्तम्भमणुमात्रं भविष्यति । दर्शनार्थं हि जगतां पूजनार्थं हि पुत्रकौ ॥१९॥
भोगावहमिदं लिङ्गं भुक्ति-मुक्त्येकसाधनम् । दर्शन-स्पर्शन-ध्यानाज्जन्तूनां जन्ममोचनम् ॥२०॥
अनलाचलसङ्काशं यदिदं लिङ्गमुत्थितम् । अरुणाचलमित्येव तदिदं ख्यातिमेष्यति ॥२१॥
अत्र तीर्थं च बहुधा भविष्यति महत्तरम् । मुक्तिरप्यत्र जन्तूनां वासेन मरणेन च ॥२२॥
रथोत्सवादिकल्याणं जनावासं तु सर्वतः । अत्र दत्तं हुतं जप्तं सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥२३॥
मत्क्षेत्रादपि सर्वस्मात् क्षेत्रमेतन् महत्तरम् । अत्र संस्मृतिमात्रेण मुक्तिर्भवति देहिनाम् ॥२४॥
तस्मान्महत्तरमिदं क्षेत्रमत्यन्तशोभनम् । सर्वकल्याणसम्पूर्णं सर्वमुक्तिकरं शुभम् ॥२५॥
अर्चयित्वाऽत्र मामेव लिङ्गे लिङ्गिनमीश्वरम् । सालोक्यं चैव सामीप्यं सारूप्यं सार्ष्टिरेव च ॥२६॥
सायुज्यमिति पञ्चैते क्रियादीनां फलं मतम् । सर्वेऽपि यूयं सकलं प्राप्स्यथाशु मनोरथम् ॥२७॥

होता है ॥१३॥ जिस प्रकार चन्द्र दर्शन से समुद्र उमड़ता है, उसी प्रकार शिवरात्रि में मेरे पूजन से भक्ति तथा धर्म की अभिवृद्धि होती है। यह शिवरात्रि का दिन मेरे प्रतिष्ठा, उत्सव तथा मङ्गल का दिन है ॥१४॥

मैं पूर्वकाल में जिस दिन इस महान् स्तम्भ ज्योति के रूप में आविर्भूत हुआ हूँ। वह मार्गशीर्ष मास में आर्द्रा नक्षत्र का दिन था ॥ १५ ॥ अतः मार्गशीर्ष महीने में आर्द्रा नक्षत्र के दिन जो लोग पार्वती सहित मेरा दर्शन करते हैं या मेरे लिङ्ग का अथवा मेरी प्रतिमा शरीर का दर्शन करते हैं, वे कार्तिकेय से भी अधिक मुझे प्रिय हैं ॥ १६ ॥ उस शुभ दिन में मेरे दर्शन से ही महाफल प्राप्त होता है और जो उस दिन पूजन करते हैं, उसका फल तो वाणी से कहा नहीं जा सकता ॥१७॥ इस रणभूमि में मैं लिङ्ग-शरीर धारण कर उत्पन्न हुआ हूँ, इससे इसका नाम लिङ्ग स्थान होगा ॥१८॥ हे पुत्रो ! यह आदि, अन्त से रहित मेरा ज्योतिःस्तम्भरूप लिङ्ग मनुष्यों के दर्शन तथा पूजन के सौकर्य के लिए अणु मात्र (अत्यन्त छोटा) हो जायेगा ॥ १९ ॥ यह लिङ्ग भुक्ति तथा मुक्ति का एक मात्र साधन होगा। इसके दर्शन, स्पर्श तथा ध्यान से जन्तुओं के जन्म-मरण का चक्कर दूर हो जायेगा ॥ २० ॥ यहाँ पर अग्नि के पहाड़ के समान मेरा लिङ्ग उत्पन्न हुआ है, इस लिए यह स्थान अरुणाचल नाम से जगत् में प्रसिद्ध होगा ॥ २१ ॥ यहाँ पर बहुत बड़े-बड़े तीर्थ होंगे। यहाँ पर रहने से तथा मरने से मनुष्यों को मुक्ति प्राप्त होगी ॥ २२ ॥ यह स्थान परम माङ्गलिक, रथयात्रा के उत्सव योग्य एवं मनुष्य के निवास के लिए भी उत्तम होगा। इस स्थान में दान, जप, तप एवं हवन सभी करोड़ गुने फल देने वाले होंगे ॥२३॥ यह स्थान हमारे सभी क्षेत्रों से श्रेष्ठ होगा। यहाँ मेरा स्मरण करते ही मुक्ति हो जायेगी ॥ २४ ॥ इसलिए यह क्षेत्र महा माहात्म्य-शाली तथा सुन्दर होगा। सम्पूर्ण कल्याणकारक गुणों से परिपूर्ण तथा सभी जीवों के लिए मुक्तिदायक होगा ॥ २५ ॥ जो कोई इस लिङ्ग में मुझ परमेश्वर लिङ्गी की पूजा करेंगे, उन्हें सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि ॥ २६ ॥ तथा सायुज्य आदि पाँचों प्रकार की मुक्तियाँ उस क्रिया के फलस्वरूप होंगी। और आप सब भी बहुत शीघ्र अपने मनोरथ को प्राप्त कर लेंगे ॥ २७ ॥

नन्दिकेश्वर उवाच

इत्यनुगृह्य भगवान् विनीतौ विधिमाधवौ । यत्पूर्वं प्रहतं युद्धे तयोः सैन्यं परस्परम् ॥२८॥
तदुत्थापयदत्यर्थं स्वशक्त्याऽमृतधारया । तयोर्मौढ्यं च वैरं च व्यपनेतुमुवाच तौ ॥२९॥
सकलं निष्कलं चेति स्वरूपद्वयमस्ति मे । नाऽन्यस्य कस्यचित्तस्मादन्यः सर्वोऽप्यनीश्वरः ॥३०॥
पुरस्तात् स्तम्भरूपेण पश्चाद् रूपेण चार्भकौ । ब्रह्मत्वं निष्कलं प्रोक्तमीशत्वं सकलं तथा ॥३१॥
द्वयं ममैव संसिद्धं न मदन्यस्य कस्यचित् । तस्मादीशत्वमन्येषां युवयोरपि न क्वचित् ॥३२॥
तदज्ञानेन वां वृत्तमीशमानं महाद्भुतम् । तन्निराकर्तुमत्रैवमुत्थितोऽहं रणक्षितौ ॥३३॥
त्यजतं मानमात्मीयं मयीशे कुरुतं मतिम् । मत्प्रसादेन लोकेषु सर्वोऽप्यर्थः प्रकाशते ॥३४॥
गुरूक्तिर्व्यञ्जकं तत्र प्रमाणं वा पुनः पुनः । ब्रह्मतत्त्वमिदं गूढं भवत्प्रीत्या भणाम्यहम् ॥३५॥
अहमेव परं ब्रह्म मत्स्वरूपं कलाकलम् । ब्रह्मत्वादीश्वरश्चाऽहं कृत्यं मेऽनुग्रहादिकम् ॥३६॥
बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाच्च ब्रह्माऽहं ब्रह्मकेशवौ । समत्वाद् व्यापकत्वाच्च तथैवात्माहमर्भकौ ॥३७॥
अनात्मानः परे सर्वे जीवा एव न संशयः । अनुग्रहाद्यं सर्गान्तं जगत्कृत्यं च पञ्चकम् ॥३८॥
ईशत्वादेव मे नित्यं न मदन्यस्य कस्यचित् । आदौ ब्रह्मत्वबुद्ध्यर्थं निष्कलं लिङ्गमुत्थितम् ॥३९॥
तस्मादज्ञातमीशत्वं व्यक्तं द्योतयितुं हि वाम् । सकलोऽहमतो जातः साक्षादीशस्तु तत्क्षणात् ॥४०॥
सकलत्वमतो ज्ञेयमीशत्वं मयि सत्वरम् । यदिदं निष्कलं स्तम्भं मम ब्रह्मत्वबोधकम् ॥४१॥
लिङ्गलक्षणयुक्तत्वान् मम लिङ्गं भवेदिदम् । तदिदं नित्यमभ्यर्च्यं युवाभ्यामत्र पुत्रकौ ॥४२॥

नन्दिकेश्वर बोले—इस प्रकार श्री सदाशिव ने ब्रह्मा तथा विष्णु पर अनुग्रह कर उस युद्ध में एक-दूसरे के द्वारा नष्ट की गई सेना को ॥ २८ ॥ अपनी अमृतमयी शक्ति से जीवित कर दिया । फिर उन दोनों के अज्ञान तथा परस्पर द्वेष को नष्ट करने के लिए बोले—॥ २९ ॥ मेरे सकल तथा निष्कल भेद से दो स्वरूप हैं, और किसी के ये दो स्वरूप नहीं हैं, इसलिए अन्य कोई परमेश्वर नहीं हो सकता ॥ ३० ॥ हे पुत्रो ! मैंने प्रथम लिङ्ग शरीर धारण किया, पश्चात् मूर्तिमान् रूप धारण किया। इसमें लिङ्गरूप निष्कल है और ईश्वररूप सगुण तथा सकल है ॥ ३१ ॥ ये मेरे दो रूप सिद्ध हैं, जो अन्य किसी के नहीं हो सकते । इसलिए अन्य को तथा तुम दोनों को ईश्वरता नहीं प्राप्त हो सकती ॥ ३२ ॥ अज्ञान के कारण ही तुम दोनों ने अपने को ईश्वर मान लिया था, जो बहुत बड़ा आश्चर्य था, इसी को दूर करने के लिए हमने इस समराङ्गण में इस प्रकार का रूप धारण किया ॥ ३३ ॥ तुम लोग अपना अहङ्कार दूर करो और मुझ ईश्वर में अपनी बुद्धि समर्पित करो। क्योंकि, मेरी प्रसन्नता से ही लोक के सारे पदार्थ प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ३४ ॥ मुझ गुरुदेव के वाक्य ही बारम्बार प्रमाण हैं। मैं तुम लोगों पर प्रसन्न होने के कारण ही इस ब्रह्मतत्त्व का उपदेश कर रहा हूँ ॥ ३५ ॥

मैं ही परब्रह्म हूँ और मेरा ही सकल, निष्कल दो स्वरूप हैं, ब्रह्म होने के कारण मैं ईश्वर हूँ और अनुग्रह करना ही मेरा कार्य है ॥ ३६ ॥ बृहत् होने के कारण तथा संसार का संवर्धन करने के कारण मैं ही ब्रह्म हूँ। हे ब्रह्मदेव ! तथा हे केशव ! समत्व तथा व्यापकत्व गुण विशिष्ट होने के कारण मैं परमात्मा हूँ ॥ ३७ ॥ सब जीव परमात्मा नहीं हैं, इसमें सन्देह नहीं। अनुग्रह से लेकर सर्गान्त पर्यन्त पाँचों कृत्य मुझ ईश्वर के ही हैं और किसी के नहीं हैं। इसलिए ब्रह्मतत्त्व का ज्ञान कराने के लिए मेरे इस निष्कल लिङ्ग का आविर्भाव हुआ है ॥ ३८-३९ ॥ निष्कल होने से मैं अज्ञात हूँ किन्तु तुम लोगों को अपनी ईश्वरता दिखाने के लिए तथा प्रगट रूप से तुम्हें दर्शन देने हेतु मैं इस सकल साकार रूप से अवतरित हुआ हूँ ॥४०॥ मेरे ईशत्वरूप कला से परिपूर्ण है, यह जो स्तम्भ रूप है वह मेरा ब्रह्मत्व का बोधक है और निष्कल है ॥ ४१ ॥ मेरा लिङ्ग (चिह्न) लक्षण होने के कारण इसे लिङ्ग कहते हैं, जो निर्गुण का बोधक

मदात्मकमिदं नित्यं मम सान्निध्यकारणम् । महत्पूज्यमिदं नित्यमभेदाल्लिङ्गलिङ्गिनोः ॥४३॥
यत्र प्रतिष्ठितं येन मदीयं लिङ्गमीदृशम् । तत्र प्रतिष्ठितः सोऽहमप्रतिष्ठोऽपि वत्सकौ ॥४४॥
मत्साम्यमेकलिङ्गस्य स्थापने फलमीरितम् । द्वितीये स्थापिते लिङ्गे मदैक्यं फलमेव हि ॥४५॥
लिङ्गं प्राधान्यतः स्थाप्यं तथा बेरं तु गौणकम् । लिङ्गाभावेन तत्क्षेत्रं सबेरमपि सर्वतः ॥४६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

(शिव द्वारा विष्णु-ब्रह्मा को पञ्चकृत्य वर्णन एवं ओङ्कार का उपदेश)

ब्रह्मविष्णू ऊचतुः

सर्गादिपञ्चकृत्यस्य लक्षणं ब्रूहि नौ प्रभो ! ।

शिव उवाच

मत्कृत्यबोधनं गुह्यं कृपया प्रब्रवीमि वाम् ॥ १ ॥
सृष्टिः स्थितिश्च संहारस्तिरोभावोऽप्यनुग्रहः । पञ्चैव मे जगत्कृत्यं नित्यसिद्धमजाच्युतौ ॥ २ ॥
सर्गः संसारसंरम्भस्तत्प्रतिष्ठा स्थितिर्मता । संहारो मर्दनं तस्य तिरोभावस्तदुत्क्रमः ॥ ३ ॥
तन्मोक्षोऽनुग्रहस्तन्मे कृत्यमेवं हि पञ्चकम् । कृत्यमेतद् वहत्यन्यस्तूर्णीं गोपुरबिम्बवत् ॥ ४ ॥
सर्गादि यच्चतुष्कृत्यं संसारपरिजृम्भणम् । पञ्चमं मुक्तिहेतुर्वै नित्यं मयि च सुस्थिरम् ॥ ५ ॥
तदिदं पञ्चभूतेषु दृश्यते मामकैर्जनैः । सृष्टिर्भूमौ स्थितिस्तोये संहारः पावके तथा ॥ ६ ॥
तिरोभावोऽनिले तद्वदनुग्रह इहाम्बरे । सृज्यते धरया सर्वमद्भिः सर्वं प्रवर्द्धते ॥ ७ ॥

है, इसलिए हे पुत्रो ! इसका नित्य पूजन करते रहना ॥ ४२ ॥ यह लिङ्ग साक्षात् मेरा स्वरूप है तथा पूजन से मेरा सान्निध्य प्राप्त कराने वाला है । लिङ्ग और लिङ्गी का अभेद-सम्बन्ध है, इसलिए यह महान् तथा पूज्य है ॥ ४३ ॥ हे पुत्रो ! जहाँ-कहीं किसी ने मेरे इस प्रकार के लिङ्ग की प्रतिष्ठा की है, वहाँ मैं अप्रतिष्ठित (निराकार) होकर भी प्रतिष्ठित हो जाता हूँ ॥ ४४ ॥ एक लिङ्ग की स्थापना का फल, मेरे समान रूप फल की प्राप्ति कही गई है, दो लिङ्ग स्थापना का फल तो मुझमें मिलकर एक हो जाना कहा गया है ॥ ४५ ॥ मेरा लिङ्ग रूप प्रधान है, दूसरा वेर स्वरूप तो गौण है, लिङ्ग के अभाव में, प्रतिमायुक्त भी स्थान क्षेत्र नहीं कहा जाता है ॥ ४६ ॥

इस प्रकार 'शिवरत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के विद्येश्वरसंहिता में ब्रह्म-विष्णु ज्ञान-दान नामक नवम अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥

*

श्रीब्रह्मा तथा विष्णु बोले—हे प्रभो ! सर्गादि पञ्च कृत्यों के लक्षण कहिए ?

शिव जी बोले—हमारे कृत्य का ज्ञान यद्यपि परम गोपनीय है, फिर भी कृपा पूर्वक तुम दोनों से कहता हूँ ॥ १ ॥ हे अज ! हे अच्युत ! १. सृष्टि, २. स्थिति, ३. संहार, ४. तिरोभाव, ५. अनुग्रह ये जगत् के पाँच कृत्य मुझमें नित्य सिद्ध हैं ॥ २ ॥ संसार के आरम्भ का नाम सर्ग, उसकी वृद्धि का नाम स्थिति, उसे नष्ट करने का नाम संहार, उसके उलट-फेर (परिवर्तन) कर देने का नाम तिरोभाव तथा संसार-सागर से सर्वथा मुक्त कर देने का नाम अनुग्रह है । यह सब मेरे पाँच कृत्य हैं । अन्य मेरे इस कृत्य को गोपुर के बिम्ब के समान चुपचाप धारण करते हैं ॥ ३-४ ॥ सर्गादि चारों कृत्य तो संसार के प्रस्फुरण (विकसित) करने वाले हैं किन्तु मेरा पाँचवाँ अनुग्रह नाम का कृत्य संसार से मुक्त करने वाला है, जो केवल मुझमें ही स्थित रहता है ॥ ५ ॥ मेरे पञ्चकृत्य को पृथ्वी आदि पाँचों भूतों में मेरे भक्त लोग (योग से) देख सकते हैं । पृथ्वी में सृष्टि, जल में स्थिति, पावक में संहार, ॥ ६ ॥ पवन में तिरोभाव तथा आकाश में अनुग्रह, पृथ्वी उत्पन्न करती है, जल पोषण

अर्द्यते तेजसा सर्वं वायुना चापनीयते । व्योम्नाऽनुगृह्यते सर्वं ज्ञेयमेवं हि सूरिभिः ॥ ८ ॥
पञ्चकृत्यमिदं वोढुं ममाऽस्ति मुखपञ्चकम् । चतुर्दिक्षु चतुर्वक्त्रं तन्मध्ये पञ्चमं मुखम् ॥ ९ ॥
युवाभ्यां तपसा लब्धमेतत् कृत्यद्वयं सुतौ । सृष्टि-स्थित्यभिधं भाग्यं मत्तः प्रीतादतिप्रियम् ॥१०॥
तथा रुद्रमहेशाभ्यामन्यत् कृत्यद्वयं परम् । अनुग्रहाख्यं केनापि लब्धुं नैव हि शक्यते ॥११॥
तत्सर्वं पौर्विकं कर्म युवाभ्यां कालविस्मृतम् । न तद्रुद्रमहेशाभ्यां विस्मृतं कर्म तादृशम् ॥१२॥
रूपे वेषे च कृत्ये च वाहने चासने तथा । आयुधादौ च मत्साम्यमस्माभिस्तत्कृते कृतम् ॥१३॥
मद्ध्यान-विरहाद् वत्सौ मौढ्यं वामेवमागतम् । मज्ज्ञाने सति नैवं स्यान्मानं रूपं महेशवत् ॥१४॥
तस्मान्मज्ज्ञानसिद्ध्यर्थं मन्त्रमोङ्कारनामकम् । इतः परं प्रजपतं मामकं मानभञ्जनम् ॥१५॥
उपादिशं निजं मन्त्रमोङ्कारमुरुमङ्गलम् । ओङ्कारो मन्मुखाज्जज्ञे प्रथमं मत्प्रबोधकः ॥१६॥
वाचकोऽयमहं वाच्यो मन्त्रोऽयं हि मदात्मकः । तदनुस्मरणं नित्यं ममाऽनुस्मरणं भवेत् ॥१७॥
अकार उत्तरात् पूर्वमुकारः पश्चिमाननात् । मकारो दक्षिणमुखाद् विन्दुः प्राङ्मुखतस्तथा ॥१८॥
नादो मध्यमुखादेवं पञ्चधाऽसौ विजृम्भितः । एकीभूतः पुनस्तद्वदोमित्येकाक्षरोऽभवत् ॥१९॥
नामरूपात्मकं सर्वं वेद भूतकुलद्वयम् । व्याप्तमेतेन मन्त्रेण शिवशक्त्योश्च बोधकः ॥२०॥
अस्मात् पञ्चाक्षरं जज्ञे बोधकं सकलस्य तत् । अकारादिक्रमेणैव नकारादि यथाक्रमम् ॥२१॥
अस्मात् पञ्चाक्षराज्जाता मातृकाः पञ्चभेदतः । तस्माच्छिरश्चतुर्वक्त्रात् त्रिपाद् गायत्रिरेव हि ॥२२॥

द्वारा स्थिति करता है ॥ ७ ॥ अग्नि रूप तेज भस्म करता है, वायु से सब इधर-उधर ले जाये जाते हैं तथा आकाश से अनुग्रह होता है । इस प्रकार यह सभी बातें विद्वानों को जाननी चाहिए ॥८॥ इन पाँच कृत्यों को धारण करने के लिए ही मेरे पाँच मुख हैं, चार दिशाओं में चार मुख तथा उन चार मुखों के बीच में पाँचवाँ मुख है ॥९॥ हे पुत्रो ! तुम दोनों ने तपस्या के बल पर सर्ग तथा स्थिति नाम वाले दो कर्म प्राप्त किया है ॥१०॥ इसी प्रकार रुद्र तथा महेश ने भी संहार तथा तिरोभाव नामक दो कृत्य पाया है किन्तु अनुग्रह नामक पाँचवाँ कृत्य तो कोई पा ही नहीं सकता ॥ ११ ॥ तुम दोनों ने काल-क्रम से अपने दोनों पूर्व के कर्म (सृष्टि, स्थिति) को विस्तृत कर दिया, किन्तु रुद्र और महेश ने अपने दोनों कर्म (संहार तथा तिरोभाव) को विस्तृत नहीं किया ॥ १२ ॥ हमने इस सृष्टि का सर्ग तथा स्थिति करने के लिए तुम दोनों को रूप, वेश, कृत्य, वाहन तथा आयुधादि में अपने समान ही बनाया ॥ १३ ॥ किन्तु हे वत्सो ! मेरे ध्यान छोड़ देने के कारण तुम लोगों में मूढ़ता आ गयी । यदि तुम लोगों को मेरा ज्ञान रहता, तो ऐसा अहङ्कार नहीं होता, जैसा कि महेश में मेरा ज्ञान तथा रूप रहता है ॥ १४ ॥ इसलिए अब तुम लोग मेरा ज्ञान प्राप्त करने के लिए ॐकार नामक मेरे मन्त्र का जप करो। ऐसा करने से तुम लोगों का अहङ्कार नष्ट हो जायेगा ॥१५॥ परम मङ्गलदायक ॐकार रूप अपने मन्त्र का उपदेश मैंने तुम लोगों को पूर्व में किया था। मेरा बोध कराने वाला यह ॐकार रूप महामन्त्र सर्व-प्रथम मेरे मुख से ही उत्पन्न हुआ है ॥१६॥ यह मन्त्र मेरी आत्मा है, यह वाचक है और मैं वाच्य हूँ । उस ॐकार का नित्य स्मरण करते रहना मेरा ही स्मरण है ॥१७॥ उत्तर के मुख से अकार, पश्चिम मुख से उकार, दक्षिण मुख से मकार तथा पूर्व मुख से बिन्दु और मध्य मुख से नाद का प्रादुर्भाव हुआ है। इस प्रकार यह मेरे पाँचों मुखों से उत्पन्न हुआ पाँच रूप में विकसित हुआ है। फिर जब मिलकर एक हो गया तो यह 'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म' का स्वरूप हो गया। १८-१९ ॥

वेद से उत्पन्न हुआ यह नाम रूपात्मक दो वर्गों का जगत् इस ॐकार से व्याप्त है, तथा यही शिव-शक्ति उभय का बोधक भी है ॥ २० ॥ इसी ॐकार से पञ्चाक्षर मन्त्र उत्पन्न हुआ है, जो सबका बोधक है । अकार से 'नकार', उकार से 'मकार', मकार से 'शि', विन्दु से 'वा', नाद से 'य' यथा क्रम प्रगट हुआ ॥२१॥ इसी पञ्चाक्षर के पाँच भेद से पाँच मातृकाएँ (अ, ई, उ, ऋ, ऌ) उत्पन्न हुईं । उन्हीं मातृकाओं से प्रधान

वेदः सर्वस्ततो जज्ञे ततो वै मन्त्रकोटयः । तत्तन्मन्त्रेण तत्सिद्धिः सर्वसिद्धिरितो भवेत् ॥२३॥
अनेन मन्त्रकन्देन भोगो मोक्षश्च सिद्ध्यति । सकला मन्त्रराजानः साक्षाद् भोगप्रदाः शुभाः॥२४॥

नन्दिकेश्वर उवाच

पुनस्तयोस्तत्र तिरः पटं गुरुः प्रकल्प्य मन्त्रं च समादिशत् परम् ।
निधाय तच्छीर्ष्णि कराम्बुजं शनैरुदङ्मुखं संस्थितयोः सहाम्बिकः ॥२५॥
त्रिरुच्चार्यग्रहीन्मन्त्रं यन्त्र-तन्त्रोक्तिपूर्वकम् । शिष्यौ च तौ दक्षिणायामात्मानं च समर्पयत् ॥२६॥
प्रबद्धहस्तौ किल तौ तदन्तिके तमेव देवं जगतुर्जगद्गुरुम् ॥२७॥

ब्रह्माऽच्युतावूचतुः

नमो निष्कलरूपाय नमो निष्कलतेजसे । नमः सकलनाथाय नमस्ते सकलात्मने ॥२८॥
नमः प्रणववाच्याय नमः प्रणवलिङ्गिने । नमः सृष्ट्यादिकर्त्रे च नमः पञ्चमुखाय ते ॥२९॥
पञ्चब्रह्मस्वरूपाय पञ्चकृत्याय ते नमः । आत्मने ब्रह्मणे तुभ्यमनन्तगुणशक्तये ॥३०॥
सकलाकलरूपाय शम्भवे गुरवे नमः । इति स्तुत्वा गुरुं पद्यैर्ब्रह्म विष्णुश्च नेमतुः ॥३१॥

ईश्वर उवाच

वत्सकौ सर्वतत्त्वं च कथितं दर्शितं च वाम् । जपतं प्रणवं मन्त्रं देवीदिष्टं मदात्मकम् ॥३२॥
ज्ञानं च सुस्थिरं भाग्यं सर्वं भवति शाश्वतम् । आर्द्रायां च चतुर्दश्यां तज्जाप्यं त्वक्षयं भवेत् ॥३३॥
सूर्यगत्या महार्द्रायामेकं कोटिगुणं भवेत् । मृगशीर्षान्तिमो भागः पुनर्वस्वादिमस्तथा ॥३४॥
आर्द्रासमं सदा ज्ञेयं पूजा-होमादि-तर्पणे । दर्शनं तु प्रभाते च प्रातःसङ्गवकालयोः ॥३५॥

उत्पन्न हुआ, उस प्रधान से चार मुख वाले ब्रह्मा तथा ब्रह्मा से गायत्री। उस गायत्री से सभी वेद। उस वेद से करोड़ों मन्त्र एवं उन मन्त्रों के देवताओं से सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, किन्तु प्रणव सबका मूल होने से उससे सभी प्रकार की सिद्धियाँ होती हैं ॥ २२-२३ ॥ इन मन्त्रों के कन्द (मूल) भूत ॐकार से भोग तथा मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं। कला से युक्त मन्त्रों में कहे गये देवता तो प्रत्यक्ष रूप से केवल उत्तम भोग देने वाले हैं ॥ २४ ॥

नन्दिकेश्वर बोले—इस प्रकार कहने के अनन्तर ब्रह्मा, विष्णु के गुरु भगवान् सदाशिव ने उनके शिर को वस्त्र से ढँक कर और शिर पर अपने कमल के सदृश हाथ रख कर उत्तराभिमुख स्थित हुए उन दोनों को अम्बिका सहित स्वयं मन्त्र का उपदेश किया ॥ २५ ॥ यन्त्र-तन्त्र शास्त्र में कहे गये वचनों के अनुसार तीन वार उनसे उस मन्त्र का उच्चारण कराया। शिष्यों ने दीक्षा ग्रहण कर उसकी दक्षिणा में अपनी आत्मा निवेदन कर दी ॥ २६ ॥ और हाथ जोड़ कर अपने गुरु से कहने लगे ॥ २७ ॥

ब्रह्मा तथा विष्णु बोले—निष्कल रूप वाले, निष्कल तेज वाले, आप को नमस्कार है, सबके स्वामी, सबकी आत्मा, आप को नमस्कार है ॥ २८ ॥ प्रणव से वाच्य (अर्थ) आप को नमस्कार है, प्रणव रूप लिङ्ग वाले आप को नमस्कार है। सृष्टि के आदि कर्त्ता आप को नमस्कार है। पाँच मुख वाले, आप को नमस्कार है ॥२९॥ पञ्च ब्रह्म स्वरूप तथा पञ्चकृत्य युक्त आप को नमस्कार है। अनन्त शक्ति से युक्त, आत्म स्वरूप, ब्रह्म स्वरूप, आप को नमस्कार है ॥३०॥ सकल-अकल रूप वाले आप शम्भु को नमस्कार है, आप गुरु को नमस्कार है। इस प्रकार ब्रह्मा तथा विष्णु शिव की स्तुति कर उनके चरणों में गिर गये ॥ ३१ ॥

तब सदाशिव बोले—हे पुत्रो ! मैंने सारा तत्त्व कह दिया और दिखा भी दिया, इस दिव्य पवित्र मन्त्र का जप करो, यह सम्पूर्ण देवशक्ति से परिपूर्ण तथा मेरी आत्मा है ॥ ३२ ॥ इसके जप करने वाले का ज्ञान स्थिर रहता है और निरन्तर भाग्य का उदय होता है। चतुर्दशी के दिन आर्द्रा नक्षत्र में इसका जप करने से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है ॥ ३३ ॥ आर्द्रा के सूर्य में जप करने से एक-एक बार का जप करोड़ों गुना फल देता है। मृगशिरा का अन्त भाग तथा पुनर्वसु का आदि भाग, पूजा, होम तथा तर्पणादि कार्यों में आर्द्रा के समान ही फल देने वाला होता है ॥ ३४ ॥ इन कालों में प्रभात, सन्ध्या समय मेरा

चतुर्दशी तथा ग्राह्या निशीथव्यापिनी भवेत् । प्रदोषव्यापिनी चैव परयुक्ता प्रशस्यते ॥३६॥
लिङ्गं बेरं च मे तुल्यं यजतां लिङ्गमुत्तमम् । तस्माल्लिङ्गं परं पूज्यं बेरादपि मुमुक्षुभिः ॥३७॥
लिङ्गमोङ्कारमन्त्रेण बेरं पञ्चाक्षरेण तु । स्वयमेव हि सद्द्रव्यैः प्रतिष्ठाप्यं परैरपि ॥३८॥
पूजयेदुपचारैश्च मत्पदं सुलभं भवेत् । इति शास्य तदा शिष्यौ तत्रैवाऽन्तर्हितः शिवः॥३९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

(शिवलिङ्गस्थापन एवं पूजन का वर्णन और ओङ्कार-जप का विधान)

ऋषय ऊचुः

कथं लिङ्गं प्रतिष्ठाप्यं कथं वा तस्य लक्षणम् । कथं वा तत्समभ्यर्च्यं देशे काले च केन हि ॥ १ ॥

सूत उवाच

युष्मदर्थं प्रवक्ष्यामि बुद्ध्यन्तामवधानतः । अनुकूले शुभे काले पुण्ये तीर्थे तटे तथा ॥ २ ॥
यथेष्टं लिङ्गमारोप्यं यत्र स्यान्नित्यमर्चनम् । पार्थिवेन तथाऽप्येन तैजसेन यथारुचि ॥ ३ ॥
कल्पलक्षणसंयुक्तं लिङ्गं पूजाफलं लभेत् । सर्वलक्षणसंयुक्तं सद्यः पूजाफलप्रदम् ॥ ४ ॥
चरे विशिष्यते सूक्ष्मं स्थावरे स्थूलमेव हि । सलक्षणं सपीठं च स्थापयेच्छिवनिर्मितम् ॥ ५ ॥
मण्डलं चतुरस्रं वा त्रिकोणमथवा तथा । खट्वाङ्गवन्मध्यसूक्ष्मं लिङ्गपीठं महाफलम् ॥ ६ ॥

दर्शन उक्त फलदायक होता है ॥ ३५ ॥ निशीथ व्यापिनी, प्रदोषव्यापिनी तथा पर-व्यापिनी चतुर्दशी भी जप कार्य में उत्तम फलदायक है ॥ ३६ ॥ यद्यपि लिङ्ग और वेर (विग्रह) तुल्य ही हैं किन्तु यजन करने वाले को लिङ्ग का ही पूजन करना चाहिए, क्योंकि, उसका फल अधिक है, इसलिए मुमुक्षु जनों को वेर (विग्रह) की अपेक्षा लिङ्ग का ही पूजन करना चाहिए ॥ ३७ ॥ लिङ्ग की प्रतिष्ठा ॐकार मन्त्र से तथा वेर की प्रतिष्ठा पञ्चाक्षर मन्त्र से करना उचित है। स्वयं उत्तम द्रव्यों से तथा दूसरों के द्वारा भी प्रतिष्ठा करानी चाहिए ॥ ३८ ॥ अनेक उपचारों से उनकी पूजा करे, जिससे मेरा पद सुलभ हो जावे। भगवान् सदाशिव अपने शिष्यों को इस प्रकार का उपदेश प्रदान कर स्वयं अन्तर्धान हो गये ॥ ३९ ॥

इस प्रकार 'शिवतत्त्व' भावार्थ सहित शिवमहापुराण के विद्येश्वरसंहिता में शिवोपदेश नामक दशम अध्याय समाप्त ॥ १० ॥

*

ऋषियों ने पूछा—हे सूत जी ! किस स्थान पर, किस समय तथा किस लिङ्ग की प्रतिष्ठा किस प्रकार करनी चाहिए और लिङ्ग किन लक्षणों से युक्त होने चाहिए, एवं उसकी पूजा की विधि क्या है ? ॥ १ ॥

सूत जी बोले—हे ऋषियो ! मैं आप लोगों से कहता हूँ, सावधान होकर सुनिए। शुभ और अनुकूल काल में, किसी पुण्य तीर्थ में अथवा जलाशय के तट पर, जहाँ नित्य पूजा की व्यवस्था हो, ऐसे स्थान पर विधिपूर्वक लिङ्ग की प्रतिष्ठा करनी चाहिए। पृथ्वी से, जल से अथवा तैजस् पदार्थों से, जिसमें रुचि हो, शिव-शास्त्रों में कहे गये कल्पों के अनुसार लिङ्ग का निर्माण करावे, ऐसे लिङ्ग की प्रतिष्ठा करने से उसके पूजन का फल प्राप्त होता है। इस प्रकार यदि लिङ्ग सर्व-लक्षण युक्त हुआ तो उसकी पूजा का फल भी तत्क्षण प्राप्त होता है ॥ २-४ ॥

यदि चर मूर्त्ति स्थापित करनी हो, तो उसका आकार छोटा एवं स्थावर मूर्ति स्थापित करनी हो, तो स्थूल आकार के लिङ्ग का निर्माण कराना चाहिए ॥ ५ ॥ लक्षण युक्त पीठ (सिंहासन पर) लक्षण युक्त शिव लिङ्ग की प्रतिष्ठा करानी चाहिए। लिङ्ग के बैठाने का सिंहासन मण्डलाकार (गोल), त्रिकोण

प्रथमं मृच्छिलादिभ्यो लिङ्गं लोहादिभिः कृतम् । येन लिङ्गं तेन पीठं स्थावरे हि विशिष्यते ॥ ७ ॥
लिङ्गं पीठं चरे त्वेकं लिङ्गं बाणकृतं विना । लिङ्गप्रमाणं कर्तॄणां द्वादशाङ्गुलमुत्तमम् ॥ ८ ॥
न्यूनं चेत् फलमल्पं स्यादधिकं नैव दूष्यते । कर्तुरेकाङ्गुलन्यूनं चरेऽपि च तथैव हि ॥ ९ ॥
आदौ विमानं शिल्पेन कार्यं देवगणैर्युतम् । तत्र गर्भगृहे रम्ये दृढे दर्पणसन्निभे ॥१०॥
भूषिते नवरत्नैश्च दिग्द्वारे च प्रधानकैः । नीलं रक्तं च वैदूर्यं श्यामं मारकतं तथा ॥११॥
मुक्ता-प्रवाल-गोमेद-वज्राणि नवरत्नकम् । मध्ये लिङ्गं महद् द्रव्यं निःक्षिपेत् सहवेदिके ॥१२॥
सम्पूज्य लिङ्गं सद्याद्यैः पञ्चस्थाने यथाक्रमम् । अग्नौ च हुत्वा बहुधा हविषा सकलं च माम् ॥१३॥
अभ्यर्च्य गुरुमाचार्यमर्थैः कामैश्च बान्धवम् । दद्यादैश्वर्यमर्थिभ्यो जडमप्यजडं तथा ॥१४॥
स्थावरं जङ्गमं जीवं सर्वं सन्तोष्य यत्नतः । सुवर्णपूरिते श्वभ्रे नवरत्नैश्च पूरिते ॥१५॥
सद्यादि ब्रह्म चोच्चार्य ध्यात्वा देवं परं शुभम् । उदीर्य च महामन्त्रमोङ्कारं नादघोषितम् ॥१६॥
लिङ्गं तत्र प्रतिष्ठाप्य लिङ्गं पीठेन योजयेत् । लिङ्गं सपीठं निक्षिप्य नित्यलेपेन बन्धयेत् ॥१७॥
एवं बेरं च संस्थाप्य तत्रैव परमं शुभम् । पञ्चाक्षरेण बेरं तु उत्सवार्थं बहिस्तथा ॥१८॥
बेरं गुरुभ्यो गृह्णीयात् साधुभिः पूजितं तु वा । एवं लिङ्गे च बेरे च पूजा शिवपदप्रदा ॥१९॥
पुनश्च द्विविधं प्रोक्तं स्थावरं जङ्गमं तथा । स्थावरं लिङ्गमित्याहुस्तरु-गुल्मादिकं तथा ॥२०॥

(तिकोना) अथवा चौकोर खट्वाङ्ग (पाँवदार) हो अथवा स्थापित करने से जैसा अच्छा लगे, उस प्रकार के पीठ में स्थापित करने पर लिङ्ग महा फलदायक होता है ॥ ६ ॥ सर्व-प्रथम मिट्टी, पत्थर अथवा लोहादि धातुओं से लिङ्ग का निर्माण करे, फिर जिस धातु के द्वारा लिङ्ग निर्मित हो, उसी धातु का उसका सिंहासन भी निर्माण करावे, स्थावर लिङ्ग की यही विशेषता है ॥७॥ चर लिङ्ग में लिङ्ग और पीठ दोनों मिले हुए ही रहने चाहिए, किन्तु बाणलिङ्ग को छोड़कर। यह चर लिङ्ग स्थापित करनेवाले कर्त्ता के बारह अङ्गुल का हो, तो उत्तम कहा जाता है ॥ ८ ॥ यदि उससे अल्प प्रमाण का लिङ्ग होगा तो उसका फल भी अल्प ही होगा, अधिक अङ्गुल का होने में कोई दोष नहीं ॥ ९ ॥

सर्व-प्रथम शिल्पी के द्वारा देवगण से युक्त विमान का निर्माण करवावे। उसके भीतर गर्भगृह को अत्यन्त दृढ़, सुन्दर तथा शीशे के समान प्रकाशित ॥ १० ॥ एवं नवरत्नों से भूषित करे। उसका पूर्व तथा पश्चिम को मुख्य द्वार बनवावे। नील रत्न, वैडूर्य मणि, श्याम, मरकत मणि, ॥ ११ ॥ मोती, मूँगा, गोमेद, हीरा ये नवरत्न, जहाँ लिङ्ग की स्थापना करनी हो, तो उसके मध्य देश में स्थापन करे ॥ १२ ॥ फिर लिङ्ग के पाँच स्थानों पर (चारों दिशाओं में तथा ऊपर) 'सद्योजातादि' पाँच मन्त्रों से पूजन कर अग्नि में अनेक प्रकार की वेद-मन्त्रों से आहुति देवे ॥ १३ ॥ पुनः परिवार सहित मेरा पूजन करे। इसी प्रकार गुरु तथा आचार्य का भी पूजन करे। तदनन्तर ऐश्वर्य एवं धन से बन्धु-जनों का सत्कार करे। और अर्थी के निमित्त जड़ वस्तु वाटिका तथा अजड़ वस्तु गोदानादि भी देवे ॥ १४ ॥ फिर यत्नपूर्वक स्थावर, जङ्गम आदि सब जीवों को सन्तुष्ट कर सुवर्ण तथा नवरत्न से पूरित ॥ १५ ॥ उस गर्त्त में 'सद्योजातादि' पाँच मन्त्रों का उच्चारण कर परात्पर परम कल्याणकारी शिव का ध्यान करते हुए ॐकार नाद से परिपूर्ण महामन्त्रों का उच्चारण कर ॥ १६ ॥ लिङ्ग की स्थापना करे। स्वयं लिङ्ग तथा पीठ को जोड़े फिर शिल्पी के द्वारा दृढ़ जोड़नेवाले द्रव्यों से उसे अच्छी तरह जोड़वा दे ॥ १७ ॥ इसी प्रकार बेर लिङ्ग की भी स्थापना पंचाक्षर मन्त्र से करनी चाहिए। उत्सव के लिए बाहर उसका जुलूस भी निकाले ॥ १८ ॥ जहाँ तक हो सके बेर (प्रतिमा) गुरु से अथवा साधुओं से ग्रहण करनी चाहिए। इस प्रकार से स्थापित किये गये लिङ्ग अथवा बेर की पूजा फल देनेवाली होती है ॥ १९ ॥ यह लिङ्ग पुनः स्थावर, जङ्गम भेद से दो प्रकार का है। स्थावर लिङ्ग-तरु, गुल्म एवं लतादि हैं ॥ २० ॥

जङ्गमं लिङ्गमित्याहुः कृमि-कीटादिकं तथा। स्थावरस्य च शुश्रूषा जङ्गमस्य च तर्पणम् ॥२१॥
तत्तत्सुखानुरागेण शिवपूजां विदुर्बुधाः। पीठमम्बामयं सर्वं शिवलिङ्गं च चिन्मयम् ॥२२॥
यथा देवीमुमामङ्के धृत्वा तिष्ठति शङ्करः। तथा लिङ्गमिदं पीठं धृत्वा तिष्ठति सन्ततम् ॥२३॥
एवं स्थाप्य महालिङ्गं पूजयेदुपचारकैः। नित्यपूजा यथाशक्ति-ध्वजादिकरणं तथा ॥२४॥
इति संस्थापयेल्लिङ्गं साक्षाच्छिवपदप्रदम्। अथवा चरलिङ्गं तु षोडशैरुपचारकैः ॥२५॥
पूजयेच्च यथान्यायं क्रमाच्छिवपदप्रदम्। आवाहनं चासनं च अर्घ्यं पाद्यं तथैव च ॥२६॥
तदङ्गाचमनं चैव स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम्। वस्त्रं गन्धं तथा पुष्पं धूपं दीपं निवेदनम् ॥२७॥
नीराजनं च ताम्बूलं नमस्कारो विसर्जनम्। अथवाऽर्घ्यादिकं कृत्वा नैवेद्यान्तं यथाविधि ॥२८॥
अथाऽभिषेकं नैवेद्यं नमस्कारं च तर्पणम्। यथाशक्ति सदा कुर्यात् क्रमाच्छिवपदप्रदम् ॥२९॥
अथवा मानुषे लिङ्गेऽप्यार्षे दैवे स्वयंभुवि। स्थापितेऽपूर्वके लिङ्गे सोपचारं यथा तथा ॥३०॥
पूजोपकरणे दत्ते यत्किञ्चित् फलमश्नुते। प्रदक्षिणा-नमस्कारैः क्रमाच्छिवपदप्रदम् ॥३१॥
लिङ्गदर्शनमात्रं वा नियमेन शिवप्रदम्। मृत्पिष्ट-गोशकृत्-पुष्पैः करवीरेण वा फलैः ॥३२॥
गुडेन नवनीतेन भस्मनाऽन्नैर्यथारुचि। लिङ्गं यत्नेन कृत्वाऽन्ते यजेत्तदनुसारतः ॥३३॥
अङ्गुष्ठादावपि तथा पूजामिच्छन्ति केचन। लिङ्गकर्मणि सर्वत्र निषेधोऽस्ति न कर्हिचित् ॥३४॥
सर्वत्र फलदाता हि प्रयासानुगुणं शिवः। अथवा लिङ्गदानं वा लिङ्गमौल्यमथापि वा ॥३५॥
श्रद्धया शिवभक्ताय दत्तं शिवपदप्रदम्। अथवा प्रणवं नित्यं जपेद्दशसहस्रकम् ॥३६॥

और जङ्गम लिङ्ग कृमि, कीट आदि हैं। स्थावर लिङ्ग की (जल सिञ्चन आदि के द्वारा) सेवा तथा जङ्गम लिङ्ग का तर्पण (भोजनादि दान द्वारा) करना उचित है ॥ २१ ॥ स्थावर, तरु, गुल्मादि में एवं जङ्गम, कृमि, कीट आदि को सुखपूर्वक रखना तथा उससे अनुराग करना ही शिवपूजा है, ऐसा विद्वानों ने कहा है। पीठ शक्ति स्वरूप है तथा लिङ्ग चिन्मय (ज्ञान) स्वरूप है ॥ २२ ॥ जिस प्रकार भगवान् सदाशिव भगवती पार्वती को गोद में बिठाकर स्थिर रहते हैं, वैसे ही लिङ्ग भी इस पीठ को पकड़कर स्थित रहता है ॥ २३ ॥ इस प्रकार से महालिङ्ग की स्थापना कर नाना प्रकार के उपचारों से उसका पूजन करे। यथाशक्ति नित्य पूजा तथा ध्वजारोपण करे ॥ २४ ॥

इस प्रकार से प्रतिष्ठा तथा पूजन करने से शिवपद की प्राप्ति होती है। अथवा चर लिङ्ग की षोडश-उपचारों से विधानपूर्वक पूजन करे तो भी शिवपद की प्राप्ति हो जाती है ॥ २५ ॥ यथा न्याय-क्रम से शिवपद को देनेवाले आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, अभ्यङ्ग (उबटन आदि) पूर्वक स्नान, वस्त्र-उपवस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, प्रदक्षिणा, नमस्कार तथा आरती करके विसर्जन करे। अथवा अर्घ्य से लेकर नैवेद्य दान पर्यन्त यथोपचारों से सविधि पूजन करे ॥ २६-२८ ॥ अथवा केवल अभिषेक, नैवेद्य, नमस्कार तथा तर्पण यथाशक्ति करने से भी शिवपद की प्राप्ति हो जाती है ॥ २९ ॥ मनुष्य स्थापित लिङ्ग में, ऋषि स्थापित लिङ्ग में, देव स्थापित लिङ्ग में, स्वयम्भू (अपने-आप उत्पन्न हुए) लिङ्ग में तथा अपूर्व लिङ्ग में उपचारपूर्वक अथवा जिस-किसी प्रकार पूजन करे ॥ ३० ॥ पूजा की सम्पूर्ण सामग्री निवेदन करने से जिस शिवपद दायक फल की प्राप्ति होती है, वह फल केवल शिव के प्रदक्षिणा तथा नमस्कार मात्र से प्राप्त हो जाता है ॥ ३१ ॥ नियमपूर्वक शिवलिङ्ग का दर्शन करने से भी शिवलोक की प्राप्ति हो जाती है। मृत्तिका, गोमय, पुष्प, करवीर (कनेर) फल, गुड़, नवनीत, भस्म, अन्न अथवा जैसी इच्छा हो वैसा लिङ्ग यत्नपूर्वक निर्माण करे शिव का पूजन करे ॥ ३२-३३ ॥ कोई-कोई विद्वान् अँगूठे में ही शिवपूजन करते हैं। लिङ्ग का निर्माण सभी जगह कर सकते हैं, कोई निषेध नहीं है ॥ ३४ ॥ भगवान् सदाशिव, जो जैसा प्रयास करता है, उसके अनुसार उसे फल प्रदान करते हैं। लिङ्ग दान और लिङ्ग का मूल्य श्रद्धापूर्वक शिवभक्त को देने से शिवपद प्राप्त हो जाता है।

सन्ध्ययोश्च सहस्रं वा ज्ञेयं शिवपदप्रदम् । जपकाले मकारान्तं मनःशुद्धिकरं भवेत् ॥३७॥
समाधौ मानसं प्रोक्तमुपांशु सार्वकालिकम् । समानप्रणवं चेमं विन्दुनादयुतं विदुः ॥३८॥
अथ पञ्चाक्षरं नित्यं जपेदयुतमादरात् । सन्ध्ययोश्च सहस्रं वा ज्ञेयं शिवपदप्रदम् ॥३९॥
प्रणवेनादिसंयुक्तं ब्राह्मणानां विशिष्यते । दीक्षायुक्तं गुरोर्ग्राह्यं मन्त्रं ह्यथ फलाप्तये ॥४०॥
कुम्भस्नानं मन्त्रदीक्षां मातृकान्यासमेव च । ब्राह्मणः सत्यपूतात्मा गुरुर्ज्ञानी विशिष्यते॥४१॥
द्विजानां च नमःपूर्वमन्येषां च नमोऽन्तकम् । स्त्रीणां च क्वचिदिच्छन्ति नमोऽन्तं च यथाविधि॥४२॥
विप्रस्त्रीणां नमःपूर्वमिदमिच्छन्ति केचन । पञ्चकोटिजपं कृत्वा सदा शिवसमो भवेत् ॥४३॥
एक-द्वि-त्रि-चतुः-कोट्या ब्रह्मादीनां पदं व्रजेत् । जपेदक्षरलक्षं वा अक्षराणां पृथक् पृथक् ॥४४॥
अथवाऽक्षरलक्षं वा ज्ञेयं शिवपदप्रदम् । सहस्रं तु सहस्राणां सहस्रेण दिनेन हि ॥४५॥
जपेन्मन्त्रादिष्टसिद्धिर्नित्यं ब्राह्मणभोजनात् । अष्टोत्तरसहस्रं वै गायत्रीं प्रातरेव हि ॥४६॥
ब्राह्मणस्तु जपेन्नित्यं क्रमाच्छिवपदप्रदाम् । वेदमन्त्रांस्तु सूक्तानि जपेन्नियममास्थितः ॥४७॥
एकं दशार्णं मन्त्रं च शतोनं च तदूर्ध्वकम् । अयुतं च सहस्रं च शतमेकं विना भवेत् ॥४८॥
वेदपारायणं चैव ज्ञेयं शिवपदप्रदम् । अन्यान् बहुतरान् मन्त्राञ्जपेदक्षरलक्षतः ॥४९॥
एकाक्षरांस्तथा मन्त्रान् जपेदक्षरकोटितः । ततः परं जपेच्चैव सहस्रं भक्तिपूर्वकम् ॥५०॥

अथवा नित्य दस हजार प्रणव का जप या दोनों सन्ध्या में एक-एक हजार जप करे तो भी शिवपद की प्राप्ति हो जाती है। जपकाल में इस मकारान्त (ॐम्) का चिन्तन मन को शुद्ध करनेवाला है ॥ ३५-३७ ॥ समाधिकाल में प्रणव का मानसिक जप करे, सर्वत्र सभी काल में उपांशु जप करे। तथा विन्दुनाद युक्त प्रणव का वाचिक भी जप करना चाहिए ॥ ३८ ॥ अथवा प्रतिदिन प्रेमपूर्वक दस हजार पञ्चाक्षर मन्त्र का जप करे अथवा दोनों सन्ध्या में एक-एक हजार पञ्चाक्षर का जप करने से शिवपद की प्राप्ति होती है ॥ ३९ ॥

ब्राह्मणों को पञ्चाक्षर मन्त्र का जप करते समय आदि में प्रणव लगाकर जप करना चाहिए। तथा फल की प्राप्ति के निमित्त गुरु से दीक्षापूर्वक मन्त्र ग्रहण करना चाहिए ॥ ४० ॥ घट-स्नान, मन्त्र-दीक्षा, मातृकान्यास से युक्त, सत्य, पवित्रात्मा और ज्ञानी गुरु जो जाति से ब्राह्मण हो, वह दीक्षा के लिए सर्वश्रेष्ठ कहा गया है ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण पञ्चाक्षर मन्त्र का जप करते समय 'नमः' शब्द का प्रयोग आदि में (ॐ नमः शिवाय) करे। और वर्ण पञ्चाक्षर जप में नमः शब्द का प्रयोग (ॐ शिवाय नमः) अन्त में करें। कुछ लोगों का मत है कि स्त्रियाँ भी यथाविधि अन्त में 'नमः' शब्द लगाकर ही जप करें ॥ ४२ ॥ कोई कहते हैं कि, ब्राह्मण की स्त्रियाँ पञ्चाक्षर के प्रथम 'नमः' शब्द लगाकर जप करें। इस पञ्चाक्षर का पाँच करोड़ जप करने से मनुष्य सदाशिव के समान हो जाता है ॥ ४३ ॥ अथवा मन्त्र में आये हुए प्रत्येक अक्षरों की गणना के अनुसार जितने अक्षर हों, उतने लाख मन्त्र का जप करे। इस प्रकार प्रत्येक अक्षर के लाख बार जप हो जाने से शिवपद की प्राप्ति हो जाती है ॥ ४४ ॥ अथवा एक हजार दिन में प्रतिदिन एक हजार के क्रम से जप करने पर दस लाख मन्त्र जप करे तो इष्ट की सिद्धि हो जाती है। और ब्राह्मण को नित्य भोजन कराता रहे। यदि ब्राह्मण प्रतिदिन प्रातःकाल एक हजार आठ गायत्री का जप नियमपूर्वक करे तो भी शिवपद की प्राप्ति हो जाती है। इसी प्रकार वैदिक मन्त्र तथा सूक्त का भी जप नियमपूर्वक करना चाहिए ॥ ४५-४७ ॥ एक से लेकर दश अक्षरवाले मन्त्र को सौ तथा उससे अधिक दस हजार अथवा ग्यारह सौ की संख्या में जप करे, इससे न्यून जप कदापि न करे ॥ ४८ ॥ वेद का पारायण भी शिवपद प्रदान करनेवाला है। इसी प्रकार अन्य भी वहुत से मन्त्र हैं, उनका भी जप मन्त्र में जितने अक्षर हों उतने लक्ष करना चाहिए ॥ ४९ ॥ एकाक्षरवाले मन्त्र का जप एक करोड़

एवं कुर्याद्यथाशक्ति क्रमाच्छिवपदं लभेत् । नित्यं रुचिकरं त्वेकं मन्त्रमामरणान्तिकम् ॥५१॥
जपेत् सहस्रमोमिति सर्वाभीष्टं शिवाज्ञया । पुष्पारामादिकं वाऽपि तथा सम्मार्जनादिकम् ॥५२॥
शिवाय शिवकार्यार्थे कृत्वा शिवपदं लभेत् । शिवक्षेत्रे तथा वासं नित्यं कुर्याच्च भक्तितः ॥५३॥
जडानामजडानां च सर्वेषां भुक्ति-मुक्तिदम् । तस्माद् वासं शिवक्षेत्रे कुर्यादामरणं बुधः ॥५४॥
लिङ्गाद्धस्तशतं पुण्यं क्षेत्रे मानुषके विदुः । सहस्रारत्निमात्रं तु पुण्यक्षेत्रे तथार्षके ॥५५॥
दैवलिङ्गे तथा ज्ञेयं सहस्रारत्निमानतः । धनुष्प्रमाणसाहस्रं पुण्यं क्षेत्रे स्वयं भुवि ॥५६॥
पुण्यक्षेत्रे स्थिता वापी कूपाद्यं पुष्कराणि च । शिवगङ्गेति विज्ञेयं शिवस्य वचनं यथा ॥५७॥
तत्र स्नात्वा तथा दत्त्वा जपित्वा हि शिवं व्रजेत् । शिवक्षेत्रं समाश्रित्य वसेदामरणं तथा ॥५८॥
दाहं दशाहं मास्यं वा सपिण्डीकरणं तु वा । आब्दिकं वा शिवक्षेत्रे क्षेत्रे पिण्डमथापि वा ॥५९॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सद्यः शिवपदं लभेत् । अथवा सप्तरात्रं वा वसेद् वा पञ्चरात्रकम् ॥६०॥
त्रिरात्रमेकरात्रं वा क्रमाच्छिवपदं लभेत् । स्ववर्णानुगुणं लोके स्वाचारात् प्राप्नुते नरः ॥६१॥
वर्णोद्धारेण भक्त्या च तत्फलातिशयं नरः । सर्वं कृतं कामनया सद्यः फलमवाप्नुयात् ॥६२॥
सर्वं कृतमकामेन साक्षाच्छिवपदप्रदम् । प्रात-र्मध्याह्न-सायाह्नमहस्त्रिष्वेकतः क्रमात् ॥६३॥
प्रातर्विधिकरं ज्ञेयं मध्याह्नं कामिकं तथा । सायाह्नं शान्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि तथैव हि ॥६४॥

करे। किन्तु एकाक्षर से बड़े मन्त्रों को प्रतिदिन भक्तिपूर्वक एक-एक हजार जपे ॥ ५० ॥ इस प्रकार शक्ति के अनुसार प्रतिदिन जप करने से शिवपद की प्राप्ति हो जाती है। जो भी मन्त्र अपने को रुचिकर प्रतीत हो उस मन्त्र का जप मरणपर्यन्त प्रतिदिन एक हजार की संख्या में करता रहे। 'ॐ' यह मन्त्र शिवजी की आज्ञा से सम्पूर्ण अभीष्ट प्रदान करता है। शिवजी के लिए अथवा कल्याणकारी कार्यों के लिए पुष्प, वाटिका तथा सम्मार्जन आदि की व्यवस्था करने से भी मनुष्य को शिवपद की प्राप्ति हो जाती है। शिव के क्षेत्र में भक्तिपूर्वक निवास करने से भी शिवपद की प्राप्ति होती है ॥ ५१-५३ ॥

शिवक्षेत्र का निवास जड़ तथा चेतन सभी को भुक्ति एवं मुक्ति प्रदान करता है। इसलिए बुद्धिमान् को चाहिए कि वे आमरण शिवक्षेत्र में निवास करे ॥ ५४ ॥ मनुष्य के द्वारा स्थापित किये गये लिङ्ग से चारों ओर सौ हाथ तक शिवक्षेत्र कहा गया है। जहाँ ऋषियों ने लिङ्ग की स्थापना की हो, वहाँ से चारों ओर हजार अरत्नि मात्र शिवक्षेत्र कहा गया है ॥ ५५ ॥ देवताओं के द्वारा प्रतिष्ठापित लिङ्ग के चारों ओर इतने ही प्रमाण का शिव-क्षेत्र कहा गया है। पृथ्वी से स्वयं प्रगट हुए लिङ्ग के चारों ओर एक हजार धनुष प्रमाण शिवक्षेत्र कहा गया है ॥ ५६ ॥ भगवान् शिव का ऐसा वचन है कि पुण्यदायक शिव-क्षेत्र में स्थित बावली, कूँआ तथा तडाग आदि को शिवगङ्गा ही समझना चाहिए ॥ ५७ ॥ उस शिवगङ्गा में स्नान, दान तथा जप से मनुष्य शिव को प्राप्त कर लेता है। इसलिए शिवक्षेत्र का आश्रय लेकर आमरण वहाँ निवास करे ॥ ५८ ॥

दाहकर्म, दशाह, मासिक, सपिण्डीकरण एवं वार्षिक पिण्डदान आदि कार्य पुण्य शिवक्षेत्र में करने से मनुष्य सभी पापों से छुटकारा प्राप्त कर लेता है और उसे सद्यः शिवलोक की प्राप्ति हो जाती है। अपने-अपने वर्ण के अनुसार अथवा अपने-अपने आचार के अनुसार तत्तद्-वर्णों को क्रम से शिवक्षेत्र में सात रात, पाँच रात, तीन रात अथवा एक रात भी निवास करने से शिवपद की प्राप्ति हो जाती है ॥ ५९-६१ ॥ अपने वर्णधर्म के अनुसार तथा भक्ति के अनुसार शिवक्षेत्र का निवास अतिशय फल देता है। शिवक्षेत्र में कामना से किये गये कर्म का फल भी तत्क्षण प्राप्त हो जाता है ॥ ६२ ॥ और शिवक्षेत्र में किया गया निष्काम कर्म तत्क्षण शिवपद को देनेवाला होता है। प्रातःकाल, मध्याह्न तथा सायङ्काल इन तीनों में एक-एक काल शिवपूजन करे। प्रातःकाल का पूजन विधि कहा जाता है, मध्याह्न का पूजन काम्य तथा सायाह्न एवं रात्रिकाल में किया गया शिवपूजन शान्तिप्रदायक कहा गया है ॥ ६३-६४ ॥

काले निशीथो वै प्रोक्तो मध्ययामद्वयं निशि । शिवपूजा विशेषेण तत्कालेऽभीष्टसिद्धिदा ॥६५॥
एवं ज्ञात्वा नरः कुर्वन् यथोक्तफलभाग् भवेत् । कलौ युगे विशेषेण फलसिद्धिस्तु कर्मणा ॥६६॥
उक्तेन केनचिद् वापि अधिकार विभेदतः । सद्वृत्तिः पापभीरुश्चेत् तत्तत्फलमवाप्नुयात् ॥६७॥

ऋषय ऊचुः

अथ क्षेत्राणि पुण्यानि समासात् कथयस्व नः । सर्वाः स्त्रियश्च पुरुषा यान्याश्रित्य पदं लभेत् ॥६८॥
सूत योगिवरश्रेष्ठ शिवक्षेत्रागमांस्तथा ।

सूत उवाच

शृणुत श्रद्धया सर्वक्षेत्राणि च तदागमान् ॥६९॥

इति शिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां शिवलिङ्गपूजन-दानप्रकारवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

(शिवक्षेत्र-वर्णन)

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयः प्राज्ञाः शिवक्षेत्रं विमुक्तदम् । तदागमांस्ततो वक्ष्ये लोकरक्षार्थमेव हि ॥ १ ॥
पञ्चाशत्कोटिविस्तीर्णा सशैलवनकानना । शिवाज्ञया हि पृथिवी लोकं धृत्वा च तिष्ठति ॥ २ ॥
तत्र तत्र शिवक्षेत्रं तत्र तत्र निवासिनाम् । मोक्षार्थं कृपया देवः क्षेत्रं कल्पितवान् प्रभुः ॥ ३ ॥
परिग्रहादृषीणां च देवानां परिग्रहात् । स्वयंभूतान्यथान्यानि लोकरक्षार्थमेव हि ॥ ४ ॥
तीर्थे क्षेत्रे सदा कार्यं स्नान-दान-जपादिकम् । अन्यथा रोग-दारिद्र्य-मूकत्वाद्याप्नुयान्नरः ॥ ५ ॥

मध्य रात्रि में दो पहर का समय निशीथ कहा जाता है, उस समय किया गया शिवपूजन विशेष रूप से अभीष्ट सिद्धि देनेवाला है ॥ ६५ ॥ इस प्रकार जान लेने पर मनुष्य तत्तत्काल में शिवपूजन करने से तत्तत्फलों को प्राप्त करता है। विशेषकर इस कलियुग में कर्म के अनुसार ही फल की सिद्धि कही गयी है ॥ ६६ ॥ ऊपर कहे गये सभी विधियों के अनुसार सदाचारी और पाप से डरनेवाला मनुष्य अपने अधिकार भेद से तत्तत्फल को प्राप्त कर लेता है ॥ ६७ ॥

ऋषिगण बोले—हे सूत ! सभी स्त्री एवं पुरुष जिन पुण्यक्षेत्र तथा तीर्थों का आश्रय प्राप्त कर शिवपद को प्राप्त करते हैं, आप उन सभी पुण्य क्षेत्रों को संक्षेप में कहने की कृपा कीजिए ॥ ६८ ॥ और हे योगिवर श्रेष्ठ ! उन-उन क्षेत्रों के आगम (उत्पत्ति) का वर्णन कीजिए ?

सूत जी बोले—हे महर्षियो ! अब आप सब श्रद्धा से उन-उन क्षेत्रों को एवं उनके आगम (उत्पत्ति) को सुनिए ॥ ६९ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के विद्येश्वरसंहिता में शिवलिङ्ग-पूजन एवं दानप्रकार वर्णन नामक एकादश अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥

*

सूत जी बोले—हे महाप्राज्ञ ऋषिगण ! मुक्ति प्रदान करनेवाले शिवक्षेत्रों को तथा उनके आगमों को, जो लोकरक्षा के निमित्त बनाये गये हैं, अब मैं उनका वर्णन करूँगा, आपलोग सुनिए ॥ १ ॥ पर्वत, वन तथा घनघोर जङ्गलोंवाली इस पृथ्वी का विस्तार पचास करोड़ योजन है। ऐसी यह पृथ्वी भगवान् श्री शिव की आज्ञा से सारे लोकों को धारण कर ठहरी हुई है ॥ २ ॥ भगवान् सदाशिव ने तत्तत्स्थान के रहनेवाले मनुष्यों की मुक्ति के लिए तत्तत्स्थानों में शिव-क्षेत्रों का निर्माण किया है ॥ ३ ॥ इस पृथ्वी पर ऋषियों के तथा देवताओं के निवास करने से कुछ तीर्थ उत्पन्न हो गये हैं और कुछ लोक-रक्षा के लिए स्वयं पैदा हुए हैं ॥ ४ ॥ तीर्थ तथा क्षेत्र में सदा ही स्नान, दान तथा जप आदि कर्म करते रहना चाहिए। ऐसा न करने से रोग, दरिद्रता तथा गूँगापन आदि विकार मनुष्य को होते हैं ॥ ५ ॥

अथाऽस्मिन् भारते वर्षे प्राप्नोति मरणं नरः । स्वयम्भूस्थानवासेन पुनर्मानुष्यमाप्नुयात् ॥ ६ ॥
क्षेत्रे पापस्य करणं दृढं भवति भूसुराः । पुण्यक्षेत्रे निवासे हि पापमण्वपि नाचरेत् ॥ ७ ॥
येन केनाऽप्युपायेन पुण्यक्षेत्रे वसेन्नरः । सिन्धोः शतनदीतीरे सन्ति क्षेत्राण्यनेकशः ॥ ८ ॥
सरस्वती नदी पुण्या प्रोक्ता षष्टिमुखा तथा । तत्तीरे वसेत् प्राज्ञः क्रमाद् ब्रह्मपदं लभेत् ॥ ९ ॥
हिमवद् गिरिजा गङ्गा पुण्या शतमुखा नदी । तत्तीरे चैव काश्यादि पुण्यक्षेत्राण्यनेकशः ॥१०॥
तत्र तीरं प्रशस्तं हि मृगे मृगबृहस्पतौ । शोणभद्रो दशमुखः पुण्योऽभीष्टफलप्रदः ॥११॥
तत्र स्नानोपवासेन पदं वैनायकं लभेत् । चतुर्विंशमुखा पुण्या नर्मदा च महानदी ॥१२॥
तस्यां स्नानेन वासेन पदं वैष्णवमाप्नुयात् । तमसा द्वादशमुखा रेवा दशमुखा नदी ॥१३॥
गोदावरी महापुण्या ब्रह्मगोवधनाशिनी । एकविंशमुखा प्रोक्ता रुद्रलोकप्रदायिनी ॥१४॥
कृष्णवेणी पुण्यनदी सर्वपापक्षयावहा । साष्टादशमुखा प्रोक्ता विष्णुलोकप्रदायिनी ॥१५॥
तुङ्गभद्रा दशमुखा ब्रह्मलोकप्रदायिनी । सुवर्णमुखरी पुण्या प्रोक्ता नवमुखा तथा ॥१६॥
तत्रैव सुप्रजायन्ते ब्रह्मलोकच्युतास्तथा । सरस्वती च पम्पा च कन्या श्वेतनदी शुभा ॥१७॥
एतासां तीरवासेन इन्द्रलोकमवाप्नुयात् । सह्याद्रिजा महापुण्या कावेरीति महानदी ॥१८॥
सप्तविंशमुखा प्रोक्ता सर्वाभीष्टप्रदायिनी । तत्तीराः स्वर्गदाश्चैव ब्रह्मविष्णुपदप्रदाः ॥१९॥
शिवलोकप्रदाः शैवास्तथाऽभीष्टफलप्रदाः । नैमिषे बदरे स्नायान् मेषगे च गुरौ रवौ ॥२०॥

इस पुण्य भारतवर्ष में, जो मनुष्य मरता है, वह ब्रह्मलोक में निवास करने के अनन्तर पुनः मनुष्य लोक को प्राप्त करता है ॥ ६ ॥ हे महर्षियो ! क्षेत्र में किया गया पाप बड़ा दृढ़ हो जाता है, इसलिए पुण्यक्षेत्र में निवास करनेवाला मनुष्य अणु मात्र भी पाप का आचरण न करे ॥ ७ ॥ जैसे-तैसे जिस-किसी भी प्रकार मनुष्य को पुण्य क्षेत्र में निवास करना चाहिए। सिन्धु तथा शतनदी (गङ्गा) के किनारे अनेक क्षेत्र हैं ॥ ८ ॥ पवित्र सरस्वती नदी, जो साठ मुखोंवाली कही जाती है, उसके निकट निवास करने से मनुष्यों को ब्रह्म पद की प्राप्ति होती है ॥ ९ ॥ हिमालय पर्वत से निकलनेवाली गङ्गा, जो शतमुखी कही जाती है, और जिसके किनारे काशी-जैसे अनेक पुण्य क्षेत्र हैं, उनमें निवास करे ॥१०॥ मकर का सूर्य तथा मकर के बृहस्पति होने पर गङ्गा का तट अत्यन्त प्रशस्त हो जाता है। दशमुख वाला शोणभद्र नद भी महान् अभीष्ट देनेवाला कहा गया है ॥११॥ वहाँ पर स्नान तथा उपवास करने से विनायक पद की प्राप्ति होती है। चौबीस मुखवाली नर्मदा नदी महापवित्र है ॥ १२ ॥ उसमें स्नान तथा निवास करने से वैष्णव पद की प्राप्ति होती है। द्वादश मुखवाली तमसा, दश मुखवाली रेवा नदी तथा महा पवित्र गोदावरी नदी ब्रह्महत्या तथा गोवध-जैसे पापों को नष्ट करनेवाली है। यह गोदावरी इक्कीस मुखवाली है, जो रुद्र-लोक प्रदान करनेवाली है ॥ १३-१४ ॥

कृष्णा, वेणी नदी महा पवित्र तथा सभी पापों को दूर करनेवाली है। यह अट्ठारह मुखी है तथा विष्णुलोक को देनेवाली है ॥ १५ ॥ तुङ्गभद्रा दशमुखी है और ब्रह्मलोक देनेवाली है। सुवर्णमुखरी महा पवित्र तथा नवमुखी कही गयी है ॥ १६ ॥ ब्रह्मलोक से च्युत प्राणी इन्हीं स्थानों में जन्म लेते हैं। सरस्वती, पम्पा कन्या श्वेत नदी महान् कल्याण करनेवाली है ॥ १७ ॥ इनके तट पर निवास करने से इन्द्रलोक की प्राप्ति होती है। सह्य पर्वत से निकलनेवाली कावेरी नामक महानदी महापवित्र है ॥ १८ ॥ यह सत्ताईस मुखवाली कही गयी है, जो सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करनेवाली है। कावेरी नदी के तट स्वर्ग देनेवाले तथा ब्रह्मा एवं विष्णु के पद देनेवाले हैं ॥ १९ ॥ ये सभी शिवक्षेत्र शिवलोक को देनेवाले तथा मनोरथ को पूर्ण करनेवाले हैं। मेष के बृहस्पति और मेष के सूर्य में नैमिषारण्य और बदरिकाश्रम में स्नान करना चाहिए ॥ २० ॥

ब्रह्मलोकप्रदं विद्यात्ततः पूजादिकं तथा । सिन्धुनद्यां तथा स्नानं सिंहे कर्कटगे रवौ ॥२१॥
केदारोदकपानं च स्नानं च ज्ञानदं विदुः । गोदावर्यां सिंहमासे स्नायात् सिंहबृहस्पतौ ॥२२॥
शिवलोकप्रदमिति शिवेनोक्तं तथा पुरा । यमुनाशोणयोः स्नायाद् गुरौ कन्यागते रवौ ॥२३॥
धर्मलोके दन्तिलोके महाभोगप्रदं विदुः । कावेर्यां च तथा स्नायात् तुलागे तु रवौ गुरौ ॥२४॥
विष्णोर्वचनमाहात्म्यात् सर्वाभीष्टप्रदं विदुः । वृश्चिके मासि सम्प्राप्ते तथाऽर्के गुरुवृश्चिके ॥२५॥
नर्मदायां नदीस्नानाद् विष्णुलोकमवाप्नुयात् । सुवर्णमुखरीस्नानं चापगे च गुरौ रवौ ॥२६॥
शिवलोकप्रदमिति ब्रह्मणो वचनं यथा । मृगमासि तथा स्नायाज्जाह्नव्यां मृगगे गुरौ ॥२७॥
शिवलोकप्रदमिति ब्रह्मणो वचनं यथा । ब्रह्मविष्ण्वोः पदे भुक्त्वा तदन्ते ज्ञानमाप्नुयात् ॥२८॥
गङ्गायां माघमासे तु तथा कुम्भगते रवौ । श्राद्धं वा पिण्डदानं वा तिलोदकमथापि वा ॥२९॥
वंशद्वयपितॄणां च कुलकोट्युद्धरं विदुः । कृष्णवेण्यां प्रशंसन्ति मीनगे च गुरौ रवौ ॥३०॥
तत्तत्तीर्थे च तन्मासि स्नानमिन्द्रपदप्रदम् । गङ्गां वा सह्यजां वाऽपि समाश्रित्य वसेद् बुधः ॥३१॥
तत्कालकृतपापस्य क्षयो भवति निश्चितम् । रुद्रलोकप्रदान्येव सन्ति क्षेत्राण्यनेकशः ॥३२॥
ताम्रपर्णी वेगवती ब्रह्मलोकफलप्रदे । तयोस्तीरे हि सन्त्येव क्षेत्राणि स्वर्गदानि च ॥३३॥
सन्ति क्षेत्राणि तन्मध्ये पुण्यदानि च भूरिशः । तत्र तत्र वसन् प्राज्ञस्तादृशं च फलं लभेत् ॥३४॥
सदाचारेण सद्वृत्त्या सदा भावनयाऽपि च । वसेद् दयालुः प्राज्ञो वै नान्यथा तत्फलं लभेत् ॥३५॥
पुण्यक्षेत्रे कृतं पुण्यं बहुधा ऋद्धिमृच्छति । पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं महदण्वपि जायते ॥३६॥

सिंह तथा वृश्चिक के सूर्य में सिन्धु नदी में स्नान, जप तथा पूजन करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है ॥ २१ ॥ केदार क्षेत्र का जलपान और स्नान ज्ञान प्रदान करनेवाला है। सिंह के सूर्य एवं सिंह के बृहस्पति होने पर गोदावरी में अवश्य स्नान करे ॥ २२ ॥ इससे शिवलोक की प्राप्ति होती है, ऐसा शिवजी ने स्वयं पूर्वकाल में कहा है। कन्या के सूर्य तथा कन्या के बृहस्पति में यमुना तथा शोणभद्र में स्नान करना चाहिए ॥ २३ ॥ ऐसा करने से धर्म (यम) लोक में तथा गणेश लोक में महाभोग की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार तुला के गुरु एवं सूर्य में कावेरी नदी में स्नान करना चाहिए। ऐसा करने से विष्णु के वचन के अनुसार सम्पूर्ण मनोरथों की प्राप्ति हो जाती है। वृश्चिक के गुरु तथा सूर्य में नर्मदा नदी में स्नान करने से विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। धनु राशि के सूर्य तथा बृहस्पति में सुवर्णमुखरी का स्नान प्रशस्त कहा गया है ॥२४-२६॥ सुवर्णमुखरी का यह स्नान शिवलोक देनेवाला है ऐसा ब्रह्मा का वचन है। मकर के सूर्य तथा मकर के बृहस्पति होने पर माघ मास में स्नान करने से शिवलोक की प्राप्ति होती है ऐसा ब्रह्मा का वचन है। तदनन्तर ब्रह्मा एवं विष्णु के पद का उपभोग प्राप्त होता है। तथा ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है ॥२७-२८॥ माघ मास में तथा कुम्भ के सूर्य में गङ्गा में पितरों के निमित्त श्राद्ध, पिण्डदान तथा तिलोदक करने से अपने दोनों कुलों का उद्धार तथा पितरों के करोड़ों कुलों का उद्धार हो जाता है। मीन राशि के सूर्य तथा वृहस्पति होने पर कृष्णवेणी का स्नान परम प्रशस्त कहा गया है॥२९-३०॥ उन-उन महीनों में उन-उन तीर्थों में स्नान करने से इन्द्रपद की प्राप्ति होती है। बुद्धिमान् को चाहिए कि वे गङ्गा अथवा कावेरी के तट पर निवास करें ॥ ३१ ॥ ऐसा करने से तत्तत्काल में किया गया सम्पूर्ण पाप निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त रुद्रलोक को देनेवाले अनेक क्षेत्र हैं ॥ ३२ ॥ ताम्रपर्णी तथा वेगवती ब्रह्मलोक का फल देनेवाली हैं। क्योंकि इन दोनों के तट पर अनेक स्वर्गदायक क्षेत्र हैं ॥ ३३ ॥ इन दो नदियों के मध्यभाग में भी अनेक पुण्यदायक क्षेत्र हैं। उन-उन क्षेत्रों में निवास करने से बुद्धिमान् पुरुष उन-उन क्षेत्रों के अनुसार फल प्राप्त करते हैं ॥ ३४ ॥ बुद्धिमान् पुरुष इन शिवक्षेत्रों में सदाचार, सद्वृत्ति, सद्भावना तथा प्राणियों पर दया करते हुए निवास करे। अन्यथा फलों से वञ्चित हो जाता है ॥ ३५ ॥ पुण्य क्षेत्र में किये गये पुण्य अनेक प्रकार से बढ़ते रहते हैं और ऋद्धि प्रदान करते हैं। इसी प्रकार

तत्कालं जीवनार्थश्चेत् पुण्येन क्षयमेष्यति । पुण्यमैश्वर्यदं प्राहुः कायिकं वाचिकं तथा ॥३७॥
मानसं च तथा पापं तादृशं नाशयेद् द्विजाः । मानसं वज्रलेपं तु कल्पं कल्पानुगं तथा ॥३८॥
ध्यानादेव हि तन्नश्येन्नान्यथा नाशमृच्छति । वाचिकं जपजालेन कायिकं कायशोषणात् ॥३९॥
दानाद्धनकृतं नश्येन्नाऽन्यथा कल्पकोटिभिः । क्वचित् पापेन पुण्यं च वृद्धिपूर्वेण नश्यति ॥४०॥
बीजांशश्चैव वृद्ध्यंशो भोगांशः पुण्यपापयोः । ज्ञाननाश्यो हि बीजांशो वृद्धिरुक्तप्रकारतः ॥४१॥
भोगांशो भोगनाश्यस्तु नान्यथा पुण्यकोटिभिः । बीजप्ररोहे नष्टे तु शेषो भोगाय कल्पते ॥४२॥
देवानां पूजया चैव ब्राह्मणानां च दानतः । तपोऽधिक्याच्च कालेन भोगः सह्यो भवेन्नृणाम् ॥
तस्मात् पापमकृत्वैव वस्तव्यं सुखमिच्छता ॥४३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां शिवक्षेत्रवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

(सदाचार वर्णन)

ऋषय ऊचुः

सदाचारं श्रावयाशु येन लोकाञ्जयेद् बुधः । धर्माऽधर्ममयान् ब्रूहि स्वर्गनारकदांस्तथा ॥ १ ॥

सूत उवाच

सदाचारयुतो विद्वान् ब्राह्मणो नाम नामतः । वेदाचारयुतो विप्रो ह्येतैरेकैकवान् द्विजः ॥ २ ॥

पुण्य क्षेत्र में किया गया अणुमात्र भी पाप महान् हो जाता है ॥ ३६ ॥ अतः यदि मनुष्य अपना जीवन चाहे तो उन पापों के निमित्त उतने काल तक पुण्य करता हुआ उसका प्रायश्चित्त करे । कायिक, वाचिक तथा मानसिक पुण्य ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, उसी प्रकार कायिक, वाचिक तथा मानसिक पाप ऐश्वर्य का विनाश भी करते हैं। जिसमें मानसिक पाप तो वज्रलेप के समान हो जाता है और कल्प-कल्पान्त तक पुरुष का पीछा नहीं छोड़ता ॥ ३७-३८ ॥ ऐसे मानसिक पाप, भगवान् के ध्यान से ही नष्ट होते हैं, अन्यथा उनका नाश नहीं होता । वाचिक पाप बहुत जप करने से तथा कायिक पाप काय-शोषण से नष्ट होते हैं ॥ ३९ ॥

धन के द्वारा किया गया पाप धन के दान करने से ही नष्ट होता है । अन्यथा करोड़ों कल्पों तक उसका नाश नहीं होता । कभी-कभी बढ़ते हुए पाप के कारण सम्पूर्ण पुण्य नष्ट हो जाते हैं ॥ ४० ॥ पुण्य तथा पाप में बीजांश, वृद्ध्यंश और भोगांश ये तीन अंश रहते हैं। पुण्य के बीजांश से ज्ञान तथा पाप के बीजांश से ज्ञान का विनाश, पुण्य के वृद्ध्यंश से पुण्य की वृद्धि तथा पाप के वृद्ध्यंश से पाप की वृद्धि होती है ॥ ४१ ॥ इसी प्रकार पुण्य के भोगांश से उत्तम भोग तथा पाप के भोगांश से उत्तम भोग का नाश होता है । पुण्य तथा पाप के भोगांश का नाश पुण्य-पाप के फल भोग द्वारा ही होता है, अन्यथा करोड़ों पुण्यों से भी उसका नाश नहीं होता । बीज के अङ्कुर के नाश होने पर, जो शेष रहता है, वही भोगांश कहा जाता है ॥ ४२ ॥ देवताओं की पूजा से, ब्राह्मणों के दान से, अधिक तप से समयानुसार मनुष्य भोग प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है । इसलिए सुख की इच्छा करनेवालों को पापरहित होकर शिव-क्षेत्र में निवास करना चाहिए ॥ ४३ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत विद्येश्वरसंहिता में शिवक्षेत्र वर्णन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥

*

ऋषियों ने कहा—हे महर्षे ! बुद्धिमान् लोग जिसके आचरण करने से उत्तम लोक प्राप्त करते हैं, उस सदाचार को आप हमें सुनाइए । तथा स्वर्ग एवं नरक प्रदान करनेवाले धर्म एवं अधर्म की भी व्याख्या कीजिए ॥ १ ॥

सूत जी बोले—सदाचार से युक्त विद्वान् को नामतः ब्राह्मण कहा जाता है, वेद और आचार से युक्त विद्वान् को विप्र कहते हैं। इनमें से केवल एक-एक गुण से युक्त पुरुष को द्विज कहते हैं ॥ २ ॥

अल्पाचारोऽल्पवेदश्च क्षत्रियो राजसेवकः । किञ्चिदाचारवान् वैश्यः कृषिवाणिज्यकृत्तथा ॥ ३ ॥
शूद्रब्राह्मण इत्युक्तः स्वयमेव हि कर्षकः । असूयालुः परद्रोही चण्डालद्विज उच्यते ॥ ४ ॥
पृथिवीपालको राजा इतरे क्षत्रिया मताः । धान्यादिक्रयवान् वैश्य इतरो वणिगुच्यते ॥ ५ ॥
ब्रह्म-क्षत्रिय-वैश्यानां शुश्रूषुः शूद्र उच्यते । कर्षको वृषलो ज्ञेय इतरे चैव दस्यवः ॥ ६ ॥
सर्वो बुधः प्राचीमुखश्चिन्तयेद् देवपूर्वकान् । धर्मानर्थांश्च तत्क्लेशानायं च व्ययमेव च ॥ ७ ॥
आयुर्द्वेषश्च मरणं पापं भाग्यं तथैव च । व्याधिः पुष्टिस्तथा शक्तिः प्रातरुत्थानदिक्फलम् ॥ ८ ॥
निशान्त्यायामोषा ज्ञेया यामार्धं सन्धिरुच्यते । तत्काले तु समुत्थाय विण्मूत्रे विसृजेद् द्विजः ॥ ९ ॥
गृहाद् दूरं ततो गत्वा बाह्यतः प्रावृतस्तथा । उदङ्मुखः समाविश्य प्रतिबन्धेऽन्यदिङ्मुखः ॥१०॥
जलाग्निब्राह्मणादीनां देवानां नाभिमुख्यतः । लिङ्गं पिधाय वामेन मुखमन्येन पाणिना ॥११॥
मलमुत्सृज्य चोत्थाय न पश्येच्चैव तन्मलम् । उद्धृतेन जलेनैव शौचं कुर्याज्जलाद् बहिः ॥१२॥
अथवा देवपित्रर्षि-तीर्थावतरणं विना । सप्त वा पञ्च वा तिस्रो गुदं संशोधयेन् मृदा ॥१३॥
लिङ्गे कर्कोटमात्रं तु गुदे प्रसृतिरिष्यते । तत उत्थाय पद्धस्तशौचं गण्डूषमष्टकम् ॥१४॥
येन केन च पात्रेण काष्ठेन च जलाद् बहिः । कार्यं सन्तर्जनीं त्यज्य दन्तधावनमीरितम् ॥१५॥

जो स्वल्प आचरणवाला तथा वेद का स्वल्प ज्ञाता हो, ऐसे राजसेवक ब्राह्मण को क्षत्रिय ब्राह्मण कहते हैं। खेती तथा वाणिज्य वृत्ति से निर्वाह करनेवाला तथा स्वल्प आचारवान् ब्राह्मण वैश्य ब्राह्मण कहा जाता है ॥ ३ ॥ जो स्वयं हल चलाकर जीविका चलाता है, उसे शूद्र ब्राह्मण कहते हैं। जो निन्दक तथा परद्रोह-रत है, ऐसे ब्राह्मण को चाण्डाल ब्राह्मण कहते हैं ॥ ४ ॥ जो पृथ्वी का पालन करे, वह राजा एवं उसके अतिरिक्त अन्य को क्षत्रिय कहते हैं। धान्यादि का क्रय-विक्रय करनेवाला वैश्य तथा इतर वस्तुओं का क्रय-विक्रय करनेवाला वणिक् कहा जाता है ॥ ५ ॥ इन ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों की सेवा करनेवाले को शूद्र कहते हैं। शूद्रों में भी जो खेती करता है, वह वृषल तथा खेती न करनेवाले को दस्यु कहते हैं ॥ ६ ॥

सभी वर्णों को उचित है कि वे सूर्योदय से पहले उषःकाल में उठकर पूर्वाभिमुख हो सर्वप्रथम अपने इष्ट देवताओं का चिन्तन करें। फिर धर्म तथा अर्थ की प्राप्ति हेतु किये जानेवाले प्रयत्न तथा आय-व्यय का विचार करें ॥ ७ ॥ पूर्वाभिमुख उठने से आयु, अग्निकोण की ओर मुख कर उठने से द्वेष, दक्षिण मुख होकर उठने से मरण के समान क्लेश, नैर्ऋत्य कोण में मुख कर उठने से पाप, पश्चिमाभिमुख उठने से उत्तम भाग्य, वायव्य की ओर मुख कर उठने से व्याधि, उत्तराभिमुख उठने से पुष्टि तथा ईशानाभिमुख उठने से शक्ति की प्राप्ति होती है। यह प्रातःकाल आठ दिशाओं में मुख कर उठने का फल कहा गया है ॥८॥ रात्रि के अन्तिम प्रहर को ऊषा कहते हैं। जब रात आधी पहर शेष रह जावे तो उसे सन्धिकाल कहते हैं। ब्राह्मण को चाहिए कि ऊषाकाल में उठकर मल-मूत्र का विसर्जन करे ॥ ९ ॥ घर से दूर जाकर बाहरी स्थान में शिर को वस्त्र से ढँककर उत्तराभिमुख हो, मल-मूत्र का त्याग करे। यदि उत्तराभिमुख बैठने में कोई प्रतिबन्ध हो, तो अन्य दिशाओं की ओर मुख कर मल-मूत्र का विसर्जन करे ॥ १० ॥ जल, अग्नि, ब्राह्मण और देवताओं के सम्मुख बैठकर मल-मूत्र का विसर्जन कदापि न करे। बायें हाथ से लिङ्ग तथा दाहिने हाथ से मुख ढँककर मलमूत्र का विसर्जन करे ॥ ११ ॥ मल त्याग कर उठने के पश्चात् मल की ओर न देखे। फिर वहाँ से उठकर पृथक् स्थान में रखे हुए जलपात्र से जल लेकर शौच करे ॥ १२ ॥ अथवा देव, पितृ एवं ऋषि तीर्थों के अतिरिक्त अन्य प्रकार की मिट्टी द्वारा सात, पाँच तथा तीन बार गुदा स्थान का प्रक्षालन करे ॥ १३ ॥

लिङ्ग प्रक्षालन के लिए कर्कोटक फल मात्र मिट्टी तथा गुदा प्रक्षालन के लिए एक पसर (आधी अँजुली) मिट्टी का उपयोग करे। इस प्रकार लिङ्ग तथा गुदा की शुद्धि कर वहाँ से उठने के पश्चात् हाथ-पैर का प्रक्षालन करे। और आठ कुल्ला करे ॥ १४ ॥ जिस-किसी वृक्ष के पत्ते से अथवा जिस-किसी वृक्ष

जलदेवान् नमस्कृत्य मन्त्रेण स्नानमाचरेत् । अशक्तः कण्ठदघ्नं वा कटिदघ्नमथापि वा ॥१६॥
आजानुजलमाविश्य मन्त्रस्नानं समाचरेत् । देवादींस्तर्पयेद् विद्वांस्तत्र तीर्थजलेन च ॥१७॥
धौतवस्त्रं समादाय पञ्चकच्छेन धारयेत् । उत्तरीयं च किं चैव धार्यं सर्वेषु कर्मसु ॥१८॥
नद्यादितीर्थस्नाने तु स्नानवस्त्रं न शोधयेत् । वापी-कूप-गृहादौ तु स्नानादूर्ध्वं नयेद् बुधः ॥१९॥
शिलादार्वादिके वाऽपि जले वाऽपि स्थलेऽपि वा । संशोध्य पीडयेद् वस्त्रं पितॄणां तृप्तये द्विजाः ॥२०॥
जाबालकोक्तमन्त्रेण भस्मना च त्रिपुण्ड्रकम् । अन्यथा चेज्जले पातस्ततो नरकमृच्छति ॥२१॥
आपो हिष्ठेति शिरसि प्रोक्षयेत् पापशान्तये । यस्येति मन्त्रं पादे तु सन्धिप्रोक्षणमुच्यते ॥२२॥
पादे मूर्ध्नि हृदि चैव मूर्ध्नि हृत्पाद एव च । हृत्पादमूर्ध्नि सम्प्रोक्ष्य मन्त्रस्नानं विदुर्बुधाः ॥२३॥
ईषत्स्पर्शे च दौःस्वास्थ्ये राजराष्ट्रभयेऽपि च । अगत्या गतिकाले च मन्त्रस्नानं समाचरेत् ॥२४॥
प्रातः सूर्यानुवाकेन सायमग्न्यनुवाकतः । अपः पीत्वा तथा मध्ये पुनः प्रोक्षणमाचरेत् ॥२५॥
गायत्र्या जपमन्त्रान्ते त्रिरूर्ध्वं प्राग्विनिक्षिपेत् । मन्त्रेण सह चैकं वै मध्येऽर्घ्यं तु रवेर्द्विजाः ॥२६॥
अथ जाते च सायाह्ने भुवि पश्चिमदिङ्मुखः । उद्धृत्य दद्यात् प्रातस्तु मध्याह्नेऽङ्गुलिभिस्तथा ॥२७॥
अङ्गुलीनां च रन्ध्रेण लम्बं पश्येद् दिवाकरम् । आत्मप्रदक्षिणं कृत्वा शुद्धाचमनमाचरेत् ॥२८॥
सायं मुहूर्तादर्वाक् तु कृता सन्ध्या वृथा भवेत् । अकालात् काल इत्युक्तो दिनेऽतीते यथाक्रमम् ॥२९॥

की शाखा से जल के बाहर दतुअन करना चाहिए। किन्तु दन्तधावन में तर्जनी अंगुली का प्रयोग नहीं करना चाहिए ॥ १५ ॥ फिर जल के देवताओं को नमस्कार कर, मन्त्र पढ़ते हुए स्नान करना चाहिए। यदि कण्ठ मात्र जल में स्नान करने की शक्ति न हो तो कटिमात्र जल में ही स्नान करे। यदि इतने में भी अशक्त हो, तो जानु (घुटने) पर्यन्त जल में मन्त्र का पाठ करते हुए स्नान करना चाहिए। फिर विद्वान् पुरुष को उचित है कि उसी तीर्थ के जल से देवादिकों का तर्पण करे ॥ १६-१७ ॥ फिर धोती को लेकर पंचकच्छ (आगे दो, बायें और दाहिने दो तथा एक पीठ की ओर लपेट कर) के द्वारा उसे धारण करे। फिर उत्तरीय धारण करे। क्योंकि सभी प्रशस्त कार्यों में उत्तरीय धारण आवश्यक कहा गया है ॥ १८ ॥ नदी आदि तीर्थों में स्नान कर उसमें वस्त्र शुद्धि न करे। किन्तु वापी, कूप तथा तडागादि में स्नान कर उसमें वस्त्र शुद्धि कर लेवे ॥ १९ ॥

हे ब्राह्मणो ! पत्थर की चट्टान पर, लकड़ी के पटरों पर, जल में अथवा स्थल में पितरों के तृप्ति के निमित्त वस्त्र को निचोड़ कर उसका जल अवश्य गिरा देवे ॥ २० ॥ फिर स्नान करने के बाद भस्म से जाबालोक्त मन्त्र (अग्निरिति भस्म, जलमिति भस्म) आदि द्वारा त्रिपुण्ड्र-तिलक (ऊख के समान बेड़ी) धारण करे। बिना मन्त्र पढ़े हुए ही जो जल में भस्म मिलाता है, वह नरकगामी होता है ॥२१॥ तदनन्तर पाप शान्ति के लिए 'आपो हिष्ठा मयो भुवः' आदि मन्त्रों को पढ़ते हुए शिर पर जल से प्रोक्षण करे। फिर नव ऋचावाले इसी मन्त्र से पैर, शिर, हृदय, शिर, हृदय और पैर तथा हृदय, पैर और शिर पर एक-एक ऋचाओं के क्रम से जल छिड़क कर मन्त्र-स्नान करे, इसी को सन्धि प्रोक्षण एवं मन्त्र-स्नान भी कहा गया है ॥२२-२३॥ शरीर के रोगग्रस्त होने पर, राजा तथा राष्ट्र के भयकाल में, अत्यन्त शीघ्रता से चलने के कारण, अपवित्र वस्तु से ईषत्स्पर्श होने पर केवल मन्त्र स्नान ही करे ॥२४॥ प्रातःकाल सूर्यानुवाक (सूर्यश्च मा मन्युश्च०) से सायङ्काल अग्नि अनुवाक (अग्निश्च मा मन्युश्च०) से तथा मध्याह्न में (आपः पुनन्तु) इस मन्त्र से जल द्वारा आचमन कर पुनः प्रोक्षण करे ॥ २५ ॥ गायत्री के मन्त्र को पढ़कर तीन बार सूर्य के लिए ऊपर जल फेंके। मध्याह्न-सन्ध्याकाल में एक वार और कुल चार वार गायत्री मन्त्र पढ़कर सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे ॥ २६ ॥ सायङ्काल की सन्ध्या सम्पादन के लिए पश्चिमाभिमुख बैठकर सन्ध्योपासन करे। प्रातः तथा मध्याह्नकाल में अङ्गुलियों (देवतीर्थ) से जल लेकर सूर्य को जल देवे ॥ २७ ॥

अस्त होते हुए सूर्य का अङ्गुलियों के छिद्र से दर्शन करे। फिर स्वयं प्रदक्षिणा कर शुद्ध आचमन करे ॥ २८ ॥ सायङ्काल होने के पहले एक मुहूर्त्त (दो घड़ी) पूर्व में ही जो सन्ध्या की जाती है, उसका

दिवाऽतीते च गायत्रीं शतं नित्ये क्रमाज्जपेत् । आदशाहात् पराऽतीते गायत्रीं लक्षमभ्यसेत् ॥३०॥
मासातीते तु नित्ये हि पुनश्चोपनयं चरेत् । ईशो गौरी गुहो विष्णुर्ब्रह्मा चन्द्रश्च वै यमः॥३१॥
एवंरूपांश्च वै देवांस्तर्पयेदर्थसिद्धये । ब्रह्मार्पणं ततः कृत्वा शुद्धाचमनमाचरेत् ॥३२॥
तीर्थदक्षिणतः शस्ते मठे मन्त्रालये बुधैः । तत्र देवालये वाऽपि गृहे वा नियतस्थले ॥३३॥
सर्वान् देवान् नमस्कृत्य स्थिरबुद्धिः स्थिरासनः । प्रणवं पूर्वमभ्यस्य गायत्रीमभ्यसेत् ततः ॥३४॥
जीवब्रह्मैक्यविषयं बुद्ध्वा प्रणवमभ्यसेत् । त्रैलोक्यसृष्टिकर्त्तारं स्थितिकर्तारमच्युतम् ॥३५॥
संहर्तारं तथा रुद्रं स्वप्रकाशमुपास्महे । ज्ञानकर्मेन्द्रियाणां च मनोवृत्तीर्धियस्तथा ॥३६॥
भोगमोक्षप्रदे धर्मे ज्ञाने च प्रेरयेत् सदा । इत्थमर्थधिया ध्यायन् ब्रह्म प्राप्नोति निश्चयः ॥३७॥
केवलं वा जपेन्नित्यं ब्राह्मण्यस्य च पूर्तये । सहस्रमभ्यसेन्नित्यं प्रातर्ब्राह्मणपुङ्गवः ॥३८॥
अन्येषां च यथाशक्ति मध्याह्ने च शतं जपेत् । सायं द्विदशकं ज्ञेयं शिखाष्टक-समन्वितम् ॥३९॥
मूलाधारं समारभ्य द्वादशान्तस्थितांस्तथा । विद्येश-ब्रह्म-विष्ण्वीश-जीवात्म-परमेश्वरान् ॥४०॥
ब्रह्मबुद्ध्या तदैक्यं च सोऽहंभावनया जपेत् । तानेव ब्रह्मरन्ध्रादौ कायाद् बाह्ये च भावयेत् ॥४१॥
महत्तत्त्वं समारभ्य शरीरं तु सहस्रकम् । एकैकस्माज्जपादेकमतिक्रम्य शनैः शनैः ॥४२॥
परस्मिन् योजयेज्जीवं जपतत्त्वमुदाहृतम् । शतद्विदशकं देहं शिखाष्टकसमन्वितम् ॥४३॥

कोई फल नहीं होता। वह सन्ध्या वृथा हो जाती है। अकाल की अपेक्षा काल में की गयी सन्ध्या फलप्रद होती है। दिन बीत जाने पर यदि सन्ध्या न करे तो उसका शास्त्रीय रीति के अनुसार प्रायश्चित्त करना चाहिए ॥ २९ ॥ दिन में सन्ध्या न करने का प्रायश्चित्त यह है कि उस दिन दैनिक जप की अपेक्षा सौ गायत्री का जप अधिक करे। यदि सन्ध्या के विना दश दिन बीत जावे तो दस लाख गायत्री का जप कर उसका प्रायश्चित्त करे ॥ ३० ॥ यदि एक मास बीत जाये, तो पुनः उपनयन संस्कार कराकर, शिव, पार्वती, स्कन्द, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र और यम तथा इसी प्रकार अन्य देवों का अर्थसिद्धि के निमित्त तर्पण करे। पुनः 'ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर आचमन करे ॥ ३१-३२ ॥ तीर्थ के दाहिनी ओर, प्रशस्त मठ में, मन्त्र गृह में, देवालय में, गृह में अथवा नियत स्थान में सभी देवताओं को नमस्कार कर स्थिर बुद्धि तथा स्थिर आसन से प्रणवपूर्वक गायत्री का जप करे ॥ ३३-३४ ॥

तदनन्तर प्रणव को जीव तथा ब्रह्म की एकता का विषय समझकर उसका अभ्यास करे। प्रणवयुक्त गायत्री में त्रैलोक्य की सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा, स्थितिकर्त्ता विष्णु तथा संहारकर्त्ता रुद्र, जो स्वयं प्रकाशित हैं, उनकी मैं उपासना करता हूँ। ऐसी भावना रखे। यह प्रणवयुक्त गायत्री देवता मेरे ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, मन की वृत्तियों तथा बुद्धि को भोग और मोक्ष देनेवाले धर्म कार्य में सदा प्रेरित करें। इस प्रकार से सप्रणव गायत्री के अर्थ का बुद्धि से ध्यान कर जप करे तो वह निश्चय ही ब्रह्म को प्राप्त करता है ॥ ३५-३७ ॥ श्रेष्ठ ब्राह्मण ब्राह्मणत्व की प्राप्ति के लिए केवल अर्थज्ञान के बिना भी प्रातःकाल उठकर सहस्र बार इसका जप करे ॥ ३८ ॥ और दूसरे क्षत्रिय, वैश्य आदि यथाशक्ति मध्याह्न में गायत्री का जप करें। अथवा सौ बार अथवा एक हजार आठ बार अथवा कम-से-कम बीस बार सन्ध्याकाल में जप करें ॥ ३९ ॥ मूलाधार चक्र से प्रारम्भ कर ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त बारह चक्रों में स्थित विघ्नेश, ब्रह्मा, विष्णु, ईश्वर, जीवात्मा तथा परमात्मा को ब्रह्मबुद्धि से ब्रह्म-भिन्न जानकर 'सोऽहं' की भावना से गायत्री मन्त्र का जप करे। और ब्रह्मरन्ध्र तथा शरीर के बाहर उन्हीं का ध्यान करे ॥ ४०-४१ ॥ महत्तत्त्व से आरम्भ कर प्राप्त हुए हजारों शरीरों को एक-एक जप से शनैः-शनैः अतिक्रमण कर शरीराध्यास छोड़ते हुए जीव को परतत्त्व में लगावे। यही जपतत्त्व कहा जाता है। ऐसा जप दो हजार प्रतिदिन करना चाहिए एवं उससे आठ अधिक करने का विधान है ॥ ४२-४३ ॥

मन्त्राणां जप एवं हि जपमादिक्रमाद् विदुः । सहस्रं ब्रह्मदं विद्याच्छतमैन्द्रप्रदं विदुः ॥४४॥
इतरत्त्वात्मरक्षार्थं ब्रह्मयोनिषु जायते । दिवाकरमुपस्थाय नित्यमित्थं समाचरेत् ॥४५॥
लक्षद्वादशयुक्तस्तु पूर्णब्राह्मण ईरितः । गायत्र्या लक्षहीनं तु वेदकार्ये न योजयेत् ॥४६॥
आसप्ततेस्तु नियमं पश्चात् प्रव्राजनं चरेत् । प्रातर्द्वादशसाहस्रं प्रव्राजी प्रणवं जपेत् ॥४७॥
दिने दिने त्वतिक्रान्ते नित्यमेवं क्रमाज्जपेत् । मासादौ क्रमशोऽतीते सार्धलक्षजपेन हि ॥४८॥
अत ऊर्ध्वमतिक्रान्ते पुनः प्रैषं समाचरेत् । एवं कृत्वा दोषशान्तिरन्यथा रौरवं व्रजेत् ॥४९॥
धर्मोऽर्थयोस्ततो यत्नं कुर्यात् कामी न चेतरः । ब्राह्मणो मुक्तिकामः स्याद् ब्रह्मज्ञानं सदाऽभ्यसेत् ॥५०॥
धर्मादर्थोऽर्थतो भोगो भोगाद् वैराग्यसम्भवः । धर्मार्जितार्थभोगेन वैराग्यमुपजायते ॥५१॥
विपरीतार्थभोगेन राग एव प्रजायते । धर्मश्च द्विविधः प्रोक्तो द्रव्यदेहद्वयेन च ॥५२॥
द्रव्यमिज्यादिरूपं स्यात् तीर्थस्नानादिदैहिकम् । धनेन धनमाप्नोति तपसा दिव्यरूपताम् ॥५३॥
निष्कामः शुद्धिमाप्नोति शुद्ध्या ज्ञानं न संशयः । कृतादौ हि तपःश्लाघ्यं द्रव्यधर्मः कलौ युगे ॥५४॥
कृते ध्यानाज्ज्ञानसिद्धिस्त्रेतायां तपसा तथा । द्वापरे यजनाज्ज्ञानं प्रतिमापूजया कलौ ॥५५॥
यादृशं पुण्यपापं वा तादृशं फलमेव हि । द्रव्यदेहाङ्गभेदेन न्यूनवृद्धिक्षयादिकम् ॥५६॥
अधर्मो हिंसिकारूपो धर्मस्तु सुखरूपकः । अधर्माद् दुःखमाप्नोति धर्माद् वै सुखमेधते ॥५७॥
विद्याद् दुर्वृत्तितो दुःखं सुखं विद्यात् सुवृत्तितः । धर्मार्जनमतः कुर्याद् भोग-मोक्षप्रसिद्धये ॥५८॥

मन्त्रों के जप का आदि क्रम इसी प्रकार है। नित्य सहस्र बार जप करने से ब्रह्मपद की प्राप्ति तथा नित्य सौ बार जप करने से इन्द्र पद की प्राप्ति होती है ॥ ४४ ॥ इससे न्यून जप करने से आत्मरक्षा तथा ब्राह्मण कुल में जन्म होता है। सूर्योपस्थान करने के पश्चात् नित्य जप करे ॥ ४५ ॥ बारह लाख जप करने से पूर्ण ब्राह्मण हो जाता है, जिसने एक लाख गायत्री का जप न किया हो, उसे वेद कार्य में न लगावें ॥ ४६ ॥ सत्तर वर्ष पर्यन्त नियम से रहे। तदनन्तर संन्यास ग्रहण करे। संन्यासी होने पर नित्य बारह हजार प्रणव का जप करे ॥ ४७ ॥ इस प्रकार नियमपूर्वक प्रतिदिन जप करता रहे। एक महीने बीत जाने पर अथवा उससे पहले ही डेढ़ लाख जप अवश्य करे ॥ ४८ ॥ डेढ़ लाख जप करने के उपरान्त पुनः जप का आरम्भ करे, ऐसा करने से दोष की शान्ति हो जाती है। अन्यथा रौरव नरक में जाना पड़ता है ॥ ४९ ॥ गृहस्थ ही धर्म तथा अर्थप्राप्ति के निमित्त प्रयत्न करे। किन्तु संन्यासी न करे। जहाँ तक हो सके, ब्राह्मण संन्यासी मुक्ति की इच्छा करे, और सदैव ब्रह्मज्ञान का अभ्यास करे ॥ ५० ॥

धर्म से अर्थ, अर्थ से भोग तथा भोग से वैराग्य उत्पन्न होता है। धर्मपूर्वक अर्जित किये गये धन के उपभोग से वैराग्य उत्पन्न होता है ॥५१॥ किन्तु धर्महीन अर्जित अर्थ से भोग में राग (मोह) पैदा होता है। धर्म दो प्रकार का कहा गया है—प्रथम द्रव्य धर्म, दूसरा देह धर्म ॥ ५२ ॥ यज्ञादि कर्म को द्रव्य धर्म तथा तीर्थ में स्नान आदि को देह धर्म कहते हैं। धन के धर्म से धन ही प्राप्त होता है। तपस्या से उत्तम सुरूपता प्राप्त होती है ॥५३॥ निष्काम कर्म करने से अन्तःकरण की शुद्धि होती है, तदनन्तर अन्तःकरण के शुद्ध होने से ज्ञान का उदय होता है। इसमें सन्देह नहीं। सतयुग आदि में तप की ही प्रशंसा थी, किन्तु कलियुग में द्रव्य धर्म की विशेषता बतलाई गयी है ॥५४॥ सतयुग में ध्यान से ज्ञान की प्राप्ति, त्रेता में तपस्या से ज्ञान की प्राप्ति तथा द्वापर में यज्ञ से ज्ञान उत्पन्न होता है। किन्तु कलियुग में प्रतिमा पूजन से ज्ञान उत्पन्न होता है ॥५५॥ मनुष्य का जैसा पुण्य-पाप होता है, उसे उसी प्रकार के फल की प्राप्ति होती है। द्रव्य तथा देह से किये गये धर्माधर्म के फल में न्यूनता, वृद्धि तथा क्षयादिक होते हैं ॥५६॥ विधिहीन हिंसा को अधर्म तथा परिणाम में सुखदायी विधियुक्त कार्य को धर्म कहते हैं। अधर्म से दुःख तथा धर्म से सुख प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ इसे दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि, दुराचार से दुःख तथा सदाचार से सुख होता हैं। इसलिए भोग तथा मोक्ष प्राप्ति के लिए धर्म से ही धन का अर्जन करना चाहिए ॥ ५८ ॥

सकुटुम्बस्य विप्रस्य चतुर्जनयुतस्य च । शतवर्षस्य वृत्तिं तु दद्यात् तद् ब्रह्मलोकदम् ॥५९॥
चान्द्रायणसहस्रं तु ब्रह्मलोकप्रदं विदुः । सहस्रस्य कुटुम्बस्य प्रतिष्ठां क्षत्रियश्चरेत् ॥६०॥
इन्द्रलोकप्रदं विद्यादयुतं ब्रह्मलोकदम् । यां देवतां पुरस्कृत्य दानमाचरते नरः ॥६१॥
तत्तल्लोकमवाप्नोति इति वेदविदो विदुः । अर्थहीनः सदा कुर्यात् तपसा मार्जनं तथा ॥६२॥
तीर्थाच्च तपसा प्राप्यं सुखमक्षय्यमश्नुते । अर्थार्जनमथो वक्ष्ये न्यायतः सुसमाहितः ॥६३॥
कृतात् प्रतिग्रहाच्चैव याजनाच्च विशुद्धितः । अदैन्यादनतिक्लेशाद् ब्राह्मणो धनमर्जयेत् ॥६४॥
क्षत्रियो बाहुवीर्येण कृषिगोरक्षणाद् विशः । न्यायार्जितस्य वित्तस्य दानात् सिद्धिं समश्नुते ॥६५॥
ज्ञानसिद्ध्या मोक्षसिद्धिः सर्वेषां गुर्वनुग्रहात् । मोक्षात् स्वरूपसिद्धिः स्यात् परानन्दं समश्नुते ॥६६॥
सत्सङ्गात् सर्वमेतद् वै नराणां जायते द्विजाः । धन-धान्यादिकं सर्वं देयं वै गृहमेधिना ॥६७॥
यद्यत् काले वस्तुजातं फलं वा धान्यमेव च । तत्तत्सर्वं ब्राह्मणेभ्यो देयं वै हि तमिच्छता ॥६८॥
जलं चैव सदा देयमन्नं क्षुद्-व्याधिशान्तये । क्षेत्रं धान्यं तथाऽऽमान्नमन्नमेवं चतुर्विधम् ॥६९॥
यावत्कालं यदन्नं वै भुक्त्वा श्रवणमेधते । तावत् कृतस्य पुण्यस्य त्वर्धं दातुर्न संशयः ॥७०॥
ग्रहीता हि गृहीतस्य दानाद् वै तपसा तथा । पापसंशोधनं कुर्यादन्यथा रौरवं व्रजेत् ॥७१॥
आत्मवित्तं त्रिधा कुर्याद् धर्मवृद्ध्यात्मभोगतः । नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कर्म कुर्यात्तु धर्मतः ॥७२॥

सौ वर्ष की अवस्थावाले कुटुम्बी ब्राह्मण को, जिसके परिवार में चार व्यक्ति हों, उसे जीविका प्रदान करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है ॥ ५९ ॥ एक हजार चान्द्रायण व्रत करने से ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। क्षत्रिय को चाहिए कि वह एक हजार कुटुम्बी ब्राह्मणों को (धन, मकान, भूमि आदि के दान द्वारा) प्रतिष्ठापित करे ॥ ६० ॥ ऐसा करने से क्षत्रिय को इन्द्रलोक प्राप्त होता है। इसी प्रकार दस हजार कुटुम्बी ब्राह्मणों को धन, भूमि तथा मकान आदि द्वारा प्रतिष्ठापित करनेवाले क्षत्रिय को ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। मनुष्य जिस-जिस देवता के उद्देश्य से दान का आचरण करता है ॥ ६१ ॥ वह उन-उन देवलोकों को प्राप्त करता है, ऐसा वेदवादियों का कहना है। अर्थहीन पुरुष सर्वदा तपस्या द्वारा पाप का प्रक्षालन करता रहे ॥ ६२ ॥ तीर्थ में स्नान तथा तपस्या के द्वारा अक्षय सुख की प्राप्ति होती है। सूतजी कहते हैं कि, हे ऋषियो ! अब मैं न्यायपूर्वक अर्थ-प्राप्ति की विधि बताता हूँ। आपलोग सावधानी से सुनें ॥ ६३ ॥ ब्राह्मण को चाहिए कि वह शुद्ध प्रतिग्रह और शुद्ध यज्ञ-यागादिक द्वारा बिना दीन बने हुए तथा क्लेशरहित वृत्ति द्वारा अर्थार्जन करे ॥ ६४ ॥ क्षत्रिय अपने पराक्रम से तथा वैश्य कृषि एवं गोरक्षण से धनार्जन करे। क्योंकि, न्यायपूर्वक प्राप्त हुए धन के दान से ही दान के फल की प्राप्ति होती है ॥ ६५ ॥

ज्ञान की सिद्धि से मोक्ष की प्राप्ति होती है। गुरु के अनुग्रह होने पर तो सभी को मोक्ष प्राप्त हो जाता है। मोक्ष होने पर मनुष्य को स्व-स्वरूप का ज्ञान तथा परानन्द का अनुभव होता है ॥ ६६ ॥ हे ब्राह्मणो ! यह सब कुछ सत्सङ्ग से भी प्राप्त होता है। गृहस्थ को चाहिए कि, वह धन-धान्य आदि नाना प्रकार के पदार्थों का दान करता रहे ॥ ६७ ॥ जिस काल में जिस वस्तु, फल तथा धान्य उत्पन्न होते हों, कल्याण चाहनेवाले गृहस्थ को उस समय उन वस्तुओं का दान करते रहना चाहिए ॥ ६८ ॥ क्षुधा, भूख तथा व्याधि की शान्ति के लिए अन्न तथा जल का दान करते रहना चाहिए। क्षेत्र, धान्य, आमान्न तथा चतुर्विध अन्न (लेह्य, भक्ष्य, भोज्य, पेय) आदि का दान प्रशस्त कहा गया है ॥ ६९ ॥ जिसका अन्न खाकर जो जितने काल तक श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन द्वारा आत्मज्ञान का अभ्यास करता है, उसके पुण्य का आधा फल दाता को प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७० ॥ प्रतिग्रह लेनेवाले को उचित है कि वह तपस्या द्वारा ग्रहण किये हुए दान के पाप का मार्जन करे। अन्यथा उसे रौरव नरक की प्राप्ति होती है ॥ ७१ ॥ अपना कल्याण चाहनेवाले गृहस्थ को अपने द्वारा अर्जित धन को धर्म के निमित्त, वृद्धि के निमित्त तथा भोग के निमित्त इन तीन भागों में विभक्त करना चाहिए। धर्म के

वित्त य वर्धनं कुर्याद् वृद्ध्यंशेन हि साधकः । हितेन मितमेध्येन भोगं भोगांशतश्चरेत् ॥७३॥
कृष्यर्जिते दशांशं हि देयं पापस्य शुद्धये । शेषेण कुर्याद्धर्मादि अन्यथा रौरवं व्रजेत् ॥७४॥
अथवा पापबुद्धिः स्यात् क्षयं वा सत्यमेष्यति । वृद्धिवाणिज्यके देयः षडंशो हि विचक्षणैः ॥७५॥
शुद्धप्रतिग्रहे देयश्चतुर्थांशो द्विजोत्तमैः । अकस्मादुत्थितेऽर्थे हि देयमर्धं द्विजोत्तमैः ॥७६॥
असत्प्रतिग्रहे सर्वं दुर्दानं सागरे क्षिपेत् । आहूय दानं कर्तव्यमात्मभोगसमृद्धये ॥७७॥
पृष्टं सर्वं सदा देयमात्मशक्त्यनुसारतः । जन्मान्तरे ऋणी हि स्याददत्ते पृष्टवस्तुनि ॥७८॥
परेषां च तथा दोषं न प्रशंसेद् विचक्षणः । विशेषेण तथा ब्रह्मञ्छ्रुतं दृष्टं च नो वदेत् ॥७९॥
न वदेत् सर्वजन्तूनां हृदि रोषकरं बुधः । सन्ध्ययोरग्निकार्यं च कुर्यादैश्वर्यसिद्धये ॥८०॥
अशक्तस्त्वेककाले वा सूर्याग्नी च यथाविधि । तण्डुलं धान्यमाज्यं वा फलं कन्दं हविस्तथा ॥८१॥
स्थालीपाकं तथा कुर्याद् यथाकालं यथाविधि । प्रधानहोममात्रं वा हव्याभावे समाचरेत् ॥८२॥
नित्यसन्धानमित्युक्तं तमजस्रं विदुर्बुधाः । अथवा जपमात्रं वा सूर्यवन्दनमेव च ॥८३॥
एवमात्मार्थिनः कुर्युरर्थार्थी च यथाविधि । ब्रह्मयज्ञरता नित्यं देवपूजारतास्तथा ॥८४॥
अग्निपूजापरा नित्यं गुरुपूजारतास्तथा । ब्राह्मणानां तृप्तिकराः सर्वे स्वर्गस्य भागिनः ॥८५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां सदाचारवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

लिए प्रविभक्त धन से नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य कर्म का सम्पादन करना चाहिए ॥ ७२ ॥ और वृद्धि के निमित्तवाले धन से धन को बढ़ाते रहना चाहिए। और भोगांशवाले धन से हितकारक स्वल्प तथा पवित्रतापूर्वक धन का भोग करे ॥ ७३ ॥

कृषि के द्वारा उत्पन्न किये गये धन का दशांश दान करना चाहिए। ऐसा करने से कृषि से उत्पन्न हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। शेष द्रव्य से धर्मादि कार्य करे। अन्यथा रौरव नरक प्राप्त होता है ॥ ७४ ॥ अथवा कृषि का दशांश दान न करने से पाप-वृद्धि होती है। अथवा खेती का विनाश होता है, यह बात सत्य है। बुद्धिमान् को चाहिए कि धन के छठे भाग का उपयोग वृद्धि तथा वाणिज्य के लिए करे ॥ ७५ ॥ ब्राह्मण को चाहिए कि वह शुद्ध प्रतिग्रह से प्राप्त धन का चतुर्थांश दान कर देवे। तथा यदि अकस्मात् कहीं से धन की प्राप्ति हो जावे, तो भी उसके आधे भाग का दान करना चाहिए ॥ ७६ ॥ यदि असत्प्रतिग्रह से कहीं दुर्दान मिल जावे, तो उसे सागर में डाल देना चाहिए। यदि मनुष्य अपने भोग की समृद्धि चाहता हो, तो वह ब्राह्मण को बुलाकर दान देवे ॥ ७७ ॥ याचना करनेवाले को अपनी शक्ति के अनुसार सदैव दान करना चाहिए। नहीं, कभी न करे। माँगने पर न देने से जन्मान्तर में ऋणी बनना पड़ता है ॥ ७८ ॥ बुद्धिमान् को चाहिए कि दूसरों का दोष दूसरों से न कहे। विशेषकर अपने द्वारा देखा गया तथा सुना दोष भी दूसरों से न कहे ॥७९॥ बुद्धिमान् पुरुष दूसरों के मर्म की पीड़ा पहुँचानेवाली बात भी न कहे। प्रातःकालीन तथा सायंकालीन सन्ध्या-काल में अपनी ऐश्वर्य वृद्धि के निमित्त नित्य अग्निहोत्र का अनुष्ठान करे ॥ ८० ॥ यदि दोनों काल अग्निहोत्र करने में असमर्थ हो तो एक काल अवश्य ही अग्निहोत्र सम्पादन करे। सूर्य एवं अग्नि की उपासना चावल, धान्य, घी, फल, कन्द तथा हविष्य द्रव्यों द्वारा स्थाली-पाक (चरु) निर्माण कर शास्त्र रीति के अनुसार विधिपूर्वक करे। यदि हवि पदार्थ का सर्वथा अभाव हो तो केवल मात्र प्रधान होम ही कर देवे ॥८१-८२॥ नित्य स्थापित न बुझनेवाली अग्नि को पण्डित लोग अजस्र कहते हैं। यदि अग्निहोत्र में असमर्थ हो तो जप मात्र करे। यदि उसमें भी असमर्थ हो तो केवल सूर्य को नमस्कार मात्र करे ॥८३॥ इस प्रकार का आचरण आत्म-कल्याण के लिए अथवा अर्थप्राप्ति के लिए गृहस्थ को नित्य करना चाहिए। ब्रह्मयज्ञ (वेदों का स्वाध्याय) करनेवाले, देवपूजा करनेवाले, ॥८४॥ अग्निपूजा करनेवाले तथा गुरुपूजा करनेवाले एवं ब्राह्मणों को तृप्त करनेवाले ये सभी स्वर्ग के भागी होते हैं ॥ ८५ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' हिन्दीटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत विद्येश्वरसंहिता में सदाचार वर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥

*

चतुर्दशोऽध्यायः

(अग्नि-यज्ञ आदि का वर्णन)

ऋषय ऊचुः

अग्नियज्ञं देवयज्ञं ब्रह्मयज्ञं तथैव च । गुरुपूजां ब्रह्मतृप्तिं क्रमेण ब्रूहि नः प्रभो ! ॥ १ ॥

सूत उवाच

अग्नौ जुहोति यद् द्रव्यमग्नियज्ञः स उच्यते । ब्रह्मचर्याश्रमस्थानां समिदाधानमेव हि ॥ २ ॥
समिदग्नौ व्रताद्यं च विशेषयजनादिकम् । प्रथमाश्रमिणामेवं यावदौपासनं द्विजाः ॥ ३ ॥
आत्मन्यारोपिताग्नीनां वनिनां यतिनां द्विजाः । हितं च मितमेध्यान्नं स्वकाले भोजनं हुतिः ॥ ४ ॥
औपासनाग्निसन्धानं समारभ्य सुरक्षितम् । कुण्डे वाऽप्यथ भाण्डे वा तदजस्रं समीरितम् ॥ ५ ॥
अग्निमात्मन्यरण्यां वा राजदैववशाद् ध्रुवम् । अग्नित्यागभयादुक्तं समारोपितमुच्यते ॥ ६ ॥
सम्पत्करी तथा ज्ञेया सायमग्न्याहुतिर्द्विजाः । आयुष्करीति विज्ञेया प्रातः सूर्याहुतिस्तथा ॥ ७ ॥
अग्नियज्ञो ह्ययं प्रोक्तो दिवा सूर्यनिवेशनात् । इन्द्रादीन् सकलान् देवानुद्दिश्या नौ जुहोति यत् ॥ ८ ॥
देवयज्ञं हि तं विद्यात् स्थालीपाकादिकान् क्रतून् । चौलादिकं तथा ज्ञेयं लौकिकाग्नौ प्रतिष्ठितम् ॥ ९ ॥
ब्रह्मयज्ञं द्विजः कुर्याद् देवानां तृप्तये सकृत् । ब्रह्मयज्ञ इति प्रोक्तो वेदस्याऽध्ययनं भवेत् ॥ १० ॥
नित्यानन्तरमासोऽयं ततस्तु न विधीयते । अनग्नौ देवयजनं शृणुत श्रद्धयाऽऽदरात् ॥ ११ ॥
आदिसृष्टौ महादेवः सर्वज्ञः करुणाकरः । सर्वलोकोपकारार्थं वारान् कल्पितवान् प्रभुः ॥ १२ ॥

ऋषियों ने कहा—हे प्रभो हे सूत ! अग्नियज्ञ, देवयज्ञ, गुरुपूजा तथा ब्रह्मतृप्ति यह सब क्रम से आप कहिए ॥ १ ॥

सूत जी बोले—द्रव्य के द्वारा अग्नि में जो आहुति दी जाती है, उसे अग्नि-यज्ञ कहते हैं। ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित पुरुषों को समिदाधान पूर्वक अग्निहोत्र करना चाहिए ॥ २ ॥ जब तक ब्रह्मचर्य आश्रम में रहे, तब तक ब्रह्मचारी को समिधा द्वारा अग्नि में हवन करते रहना चाहिए, इसे ब्रह्मचर्याग्नि कहते हैं। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन तथा विशेष रूप से यजन तब तक करना चाहिए जब तक विवाह न हो, विवाह होने पर दोनों सन्ध्या में अग्निहोत्र करते रहना चाहिए, उसे गार्हस्थ्याग्नि (ऊपासनाग्नि) कहते हैं ॥ ३ ॥ अपनी आत्मा में ही अग्नि का आरोपण करने वाले वाणप्रस्थ तथा संन्यासियों का स्वल्प, पवित्र तथा नियतकाल में भोजन करना ही उनका अग्निहोत्र कहा गया है ॥ ४ ॥ 'यन्मुखं तदाहवनीयम्' इस श्रुति से उनके मुख ही आहवनीयाग्नि है। उपासनाग्नि (वैवाहिकाग्नि) को कुण्ड तथा भाण्ड में निरन्तर सुरक्षित रखना चाहिए। इसे अजस्राग्नि कहते हैं ॥ ५ ॥ यदि राजा तथा दैव का भय उपस्थित हो जावे तो उस अग्नि को आत्मा में तथा अरणी में आरोपित कर लेना चाहिए, किन्तु अग्नि का त्याग करना उचित नहीं है। इस प्रकार की अग्नि को आरोपित अग्नि कहते हैं ॥ ६ ॥

हे ब्राह्मणो ! सायङ्काल में जो आहुति दी जाती है, उससे सम्पत्ति की वृद्धि होती है। प्रातःकाल में दी जाने वाली आहुति सूर्याहुति कही जाती है, उससे आयु की वृद्धि होती है ॥७॥ दिन में अग्नि के सूर्य में प्रवेश के कारण उसे अग्नियज्ञ कहते हैं। इन्द्रादि सम्पूर्ण देवताओं के उद्देश्य से जो अग्नि में हवन किया जाता है, उसे देवयज्ञ कहते हैं। स्थालीपाकादि यज्ञ एवं चौलादि संस्कार में दी जाने वाली आहुति लौकिक अग्नि में प्रतिष्ठित होती है ॥८-९॥ देवताओं की निरन्तर तृप्ति हेतु ब्राह्मण को ब्रह्मयज्ञ करना चाहिए। वेद का स्वाध्याय करते रहना ही ब्रह्मयज्ञ कहा गया है ॥१०॥ नित्यकर्म के अनन्तर सायङ्काल सूर्यास्त के पहले वेदों का स्वाध्याय विहित है। इसके अनन्तर रात्रि में वेदों का स्वाध्याय निषिद्ध कहा गया है ॥ ११ ॥

सूत जी ने कहा—हे ब्राह्मणो ! अब जिस प्रकार बिना अग्नि के ही देवयज्ञ होता है, उसे सुनो। सर्वज्ञ करुणाकर महादेवजी ने सृष्टि के आदि में सभी संसार के कल्याण के लिए वारों की कल्पना

संसारवैद्यः सर्वज्ञः सर्वभेषजभेषजम् । आदावारोग्यदं वारं स्ववारं कृतवान् प्रभुः ॥१३॥
सम्पत्करं स्वमायाया वारं च कृतवांस्ततः । जनने दुर्गतिक्रान्ते कुमारस्य ततः परम् ॥१४॥
आलस्यदुरितक्रान्त्यै वारं कल्पितवान् प्रभुः । रक्षकस्य तथा विष्णोर्लोकानां हितकाम्यया ॥१५॥
पुष्टयर्थं चैव रक्षार्थं वारं कल्पितवान् प्रभुः । आयुष्करं ततो वारमायुषां कर्तुरेव हि ॥१६॥
त्रैलोक्यसृष्टिकर्तुर्हि ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । जगदायुष्यसिद्धयर्थं वारं कल्पितवान् प्रभुः ॥१७॥
आदौ त्रैलोक्यवृद्धयर्थं पुण्यपापे प्रकल्पिते । तयोः कर्त्रोस्ततो वारमिन्द्रस्य च यमस्य च ॥१८॥
भोगप्रदं मृत्युहरं लोकानां च प्रकल्पितम् । आदित्यादीन् स्व-स्वरूपान् सुख-दुःखस्य सूचकान् ॥१९॥
वारेशान् कल्पयित्वाऽऽदौ ज्योतिश्चक्रे प्रतिष्ठितान् । स्व-स्ववारे तु तेषां तु पूजा स्व-स्वफलप्रदा ॥२०॥
आरोग्यं सम्पदश्चैव व्याधीनां शान्तिरेव च । पुष्टिरायुस्तथा भोगो मृतेर्हानिर्यथाक्रमम् ॥२१॥
वारक्रमफलं प्राहुर्देवप्रीतिपुरःसरम् । अन्येषामपि देवानां पूजायाः फलदः शिवः ॥२२॥
देवानां प्रीतये पूजा पञ्चधैव प्रकल्पिता । तत्तन्मन्त्रजपो होमो दानं चैव तपस्तथा ॥२३॥
स्थण्डिले प्रतिमायां च ह्यग्नौ ब्राह्मणविग्रहे । समाराधनमित्येवं षोडशैरुपचारकैः ॥२४॥
उत्तरोत्तरवैशिष्टयात् पूर्वाभावे तथोत्तरम् । नेत्रयोः शिरसो रोगे तथा कुष्ठस्य शान्तये ॥२५॥
आदित्यं पूजयित्वा तु ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः । दिनं मासं तथा वर्षं वर्षत्रयमथवाऽपि वा ॥२६॥

की है ॥ १२ ॥ संसार के वैद्य सर्वज्ञ परमात्मा ने सम्पूर्ण औषधियों के औषधिस्वरूप आरोग्य देने वाले (अपने वार) आदित्य वार का निर्माण किया ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त सम्पत्ति कारक अपनी माया का वार सोमवार को निर्मित किया । इसके बाद कुमार (कार्त्तिकेय) का जन्म होने के कारण तथा दुर्गति (अकल्याण नाशक) भौम वार का निर्माण किया ॥ १४ ॥ आलस्य तथा पाप के नाश के लिए जो वार निर्माण किया, जिसे रक्षा करने वाले परमात्मा विष्णु का दिन कहते हैं, जो लोक का कल्याण करने वाला है ॥१५॥ (सौम्य बुधवार दिन कहा जाता है) पुष्टि तथा रक्षा के लिए जिस वार का निर्माण किया, जो आयुष्मानों को आयु देने वाला है ॥ १६ ॥ उस बृहस्पति वार का निर्माण किया । त्रैलोक्य की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा के दिन को (शुक्रवार) कहते हैं । तदनन्तर सारे संसार के आयु के लिए परमात्मा ने पुनः वार शनिवार का निर्माण किया ॥ १७ ॥ सृष्टिकर्त्ता प्रभु ने सर्वप्रथम त्रिलोकी के वृद्धि के निमित्त पुण्य-पाप की कल्पना की । फिर उस पुण्य तथा पाप करने वालों के लिए इन्द्र तथा यम के वारों का निर्माण किया ॥ १८ ॥ आदित्यादि वार अपने स्वरूप के अनुसार सुख-दुःख के सूचक हैं । आदित्य वार के शिव, चन्द्रवार के दुर्गा, मंगल के स्कन्द, बुध के विष्णु, बृहस्पति के यम, शुक्र के ब्रह्मा तथा शनि के इन्द्र स्वामी हैं एवं मनुष्यों को भोग देने वाले हैं और मृत्यु से विनाश करने वाले हैं ॥१९॥ परमात्मा ने वार निर्माण करने के पश्चात् उनके अधिष्ठाता स्वामी का निर्माण किया । पुनः उन्हें ज्योतिष्चक्र में प्रतिष्ठित किया । ये वार देवता अपने-अपने वारों में पूजित होने पर क्रमशः आरोग्य, सम्पत्ति, व्याधि की शान्ति, पुष्टि एवं आयुष्य, भोग तथा मृत्यु से हानि रूप उस-उस प्रकार के फलप्रदान करने वाले हैं ॥ २०-२१ ॥ देवताओं की प्रीति के अनुसार इस प्रकार वारों का फल कहा गया है । अन्य भी देवताओं के पूजा का फल भगवान् सदाशिव ही देते हैं ॥ २२ ॥

देवताओं को प्रसन्न करने के लिए शास्त्रों में पाँच प्रकार की पूजा बतायी गयी है । उन-उन देवताओं के मन्त्रों का जप, होम, दान, तपस्या तथा स्थण्डिल में प्रतिमा स्थापित कर षोडशोपचार से उनका पूजन यही पाँच प्रकार हैं ॥ २३-२४ ॥ पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर पूजा का विशेष फल है । पूर्व के अभाव में उत्तर पूजा का आश्रय लेना चाहिए । नेत्ररोग, शिरोरोग और कुष्ठरोग की शान्ति के लिए आदित्य की पूजा करे । तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजन करावे । इस प्रकार दिन, महीना, वर्ष तथा तीन वर्ष पर्यन्त यथा साध्य

प्रारब्धं प्रबलं चेत् स्यान् नश्येद्रोगजरादिकम् । जपाद्यमिष्टदेवस्य वारादीनां फलं विदुः ॥२७॥
पापशान्तिर्विशेषेण ह्यादिवारे निवेदयेत् । आदित्यस्यैव देवानां ब्राह्मणानां विशिष्टदम् ॥२८॥
सोमवारे च लक्ष्म्यादीन् सम्पदर्थं यजेद् बुधः । आज्यान्नेन तथा विप्रान् सपत्नीकांश्च भोजयेत् ॥२९॥
काल्यादीन् भौमवारे तु यजेद्रोगप्रशान्तये । माषमुद्गाढकान्नेन ब्राह्मणांश्चैव भोजयेत् ॥३०॥
सौम्यवारे तथा विष्णुं दध्यन्नेन यजेद् बुधः । पुत्र-मित्र-कलत्रादि-पुष्टिर्भवति सर्वदा ॥३१॥
आयुष्कामो गुरोर्वारे देवानां पुष्टिसिद्धये । उपवीतेन वस्त्रेण क्षीराज्येन यजेद् बुधः ॥३२॥
भोगार्थं भृगुवारे तु यजेद् देवान् समाहितः । षड्रसोपेतमन्नं च दद्याद् ब्राह्मणतृप्तये ॥३३॥
स्त्रीणां च तृप्तये तद्वद् देयं वस्त्रादिकं शुभम् । अपमृत्युहरे मन्दे रुद्रादींश्च यजेद् बुधः ॥३४॥
तिलहोमेन दानेन तिलान्नेन च भोजयेत् । इत्थं यजेच्च विबुधानारोग्यादिफलं लभेत् ॥३५॥
देवानां नित्ययजने विशेषयजनेऽपि च । स्नाने दाने जपे होमे ब्राह्मणानां च तर्पणे ॥३६॥
तिथि-नक्षत्र-योगे च तत्तद्देवप्रपूजने । आदिवारादिवारेषु सर्वज्ञो जगदीश्वरः ॥३७॥
तत्तद्रूपेण सर्वेषामारोग्यादिफलप्रदः । देशकालानुसारेण तथा पात्रानुसारतः ॥३८॥
द्रव्यश्रद्धानुसारेण तथा लोकानुसारतः । तारतम्यक्रमाद् देवास्त्वारोग्यादीन् प्रयच्छति ॥३९॥
शुभादावशुभान्ते च जन्मर्क्षेषु गृहे गृही । आरोग्यादिसमृद्ध्यर्थमादित्यादीन् ग्रहान् यजेत् ॥४०॥
तस्माद् वै देवयजनं सर्वाभीष्टफलप्रदम् । समन्त्रकं ब्राह्मणानामन्येषां चैव तान्त्रिकम् ॥४१॥
यथाशक्त्यनुरूपेण कर्तव्यं सर्वदा नरैः । सप्तस्वपि च वारेषु नरैः शुभफलेप्सुभिः ॥४२॥

रविवार की पूजा करे ॥ २५-२६ ॥ ऐसा करने से यदि प्रारब्ध प्रबल होगा तो रोग तथा जरावस्था भी नष्ट हो जायेगी। तत्तद् वारों में इष्ट देवता का जप भी वार के अनुसार फल देने वाला होता है ॥ २७ ॥ पाप-शान्ति के लिए आदित्यवार को विशेष रूप से पूजन करे। क्योंकि सभी देवताओं में आदित्य देवता ब्राह्मणों को विशिष्ट फल देते हैं ॥२८॥ बुद्धिमान् व्यक्ति सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए सोमवार के दिन लक्ष्मी का पूजन करे और सपत्नीक ब्राह्मण को घृत तथा अन्नादि का भोजन करावे ॥ २९ ॥ रोग की शान्ति के लिए भौमवार को महाकाली का पूजन करे। उर्द, मूंग तथा आढक (अरहर) का ब्राह्मण को भोजन करावे ॥ ३० ॥ बुधवार को बुद्धिमान् व्यक्ति श्रीविष्णु का दधियुक्त अन्न से पूजन करे तो सर्वदा पुत्र, मित्र, कलत्रादि की पुष्टि होती है ॥ ३१ ॥ आयु की इच्छा करने वाला पुरुष अपनी पुष्टि के लिए देवताओं को गुरुवार के दिन उपवीत, वस्त्र, दूध तथा घी से यजन करे ॥ ३२ ॥ भोग की इच्छा हो तो शुक्रवार के दिन देवताओं का यजन करे और षड्रस युक्त भोजन से ब्राह्मणों को तृप्त करे ॥ ३३ ॥ एवं उत्तम-उत्तम वस्त्रों से स्त्रियोंको सन्तुष्ट करे। इसी प्रकार अपमृत्यु दूर करने हेतु शनिवार को रुद्रदेव का आराधन करे। तिल का होम, तिल का दान तथा ब्राह्मणों को तिल का भोजन करावे। इस प्रकार तत्तद् दिनों में तत्तद् देवताओं के पूजन से आरोग्यादि फलों की प्राप्ति होती है ॥३४-३५॥ देवताओं के नित्य यजन में, विशेष प्रकार के यज्ञ में, स्नान में, दान में, जप में, होम में, ब्राह्मणों के तर्पण में तथा तिथि, नक्षत्र के योग में, उन-उन देवताओं के पूजन में एवं आदित्यवारों में एक सर्वज्ञ आरोग्यादि फलों के दाता, एक जगदीश्वर ही, देश-काल तथा पात्र के अनुसार द्रव्य, श्रद्धा तथा लोक के अनुसार एवं तारतम्यादि क्रमों से उन-उन रूपो में आविर्भूत होकर आरोग्य आदि फल प्रदान करते हैं ॥ ३६-३९ ॥ गृहस्थ को चाहिए कि वह कल्याणकारक फल की प्राप्ति के लिए तथा अशुभ अकल्याण के विनाश के लिए अपने जन्म, नक्षत्र के आने पर आरोग्य तथा समृद्धि हेतु आदित्यादि ग्रहों की पूजा करे ॥ ४० ॥ इसलिएँ यह देवयज्ञ सम्पूर्ण मनोरथ को पूर्ण करने वाला है। ब्राह्मण इस देवयज्ञ को मन्त्र सहित तथा इतर शूद्रादि तन्त्रोक्त रीति से अवश्य देव-यज्ञ करें ॥ ४१ ॥ सभी मनुष्यों को इन सातों वारों में शुभ फल की इच्छा से यथाशक्ति सदैव

दरिद्रस्तपसा देवान् यजेदाढ्यो धनेन हि। पुनश्चैवंविधं धर्मं कुरुते श्रद्धया सह ॥४३॥
पुनश्च भोगान् विविधान् भुक्त्वा भूमौ प्रजायते। छायां जलाशयं ब्रह्मप्रतिष्ठां धर्मसञ्चयम् ॥४४॥
सर्वं च वित्तवान् कुर्यात् सदा भोगप्रसिद्धये। कालाच्च पुण्यपाकेन ज्ञानसिद्धिः प्रजायते ॥४५॥
य इमं शृणुतेऽध्यायं पठते वा नरो द्विजाः। श्रवणस्योपकर्त्ता च देवयज्ञफलं लभेत् ॥४६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायामग्नि-यज्ञादिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

(यज्ञ में देश-काल-पात्र का निरूपण)

ऋषय ऊचुः

देशादीन् क्रमशो ब्रूहि सूत सर्वार्थवित्तम!।

सूत उवाच

शुद्धं गृहं समफलं देवयज्ञादिकर्मसु ॥ १ ॥
ततो दशगुणं गोष्ठं जलतीरं ततो दश। ततो दशगुणं बिल्व-तुलस्यश्वत्थ-मूलकम् ॥ २ ॥
ततो देवालयं विद्यात्तीर्थतीरं ततो दश। ततो दशगुणं नद्यास्तीर्थनद्यास्ततो दश ॥ ३ ॥
सप्तगङ्गानदीतीरं तस्या दशगुणं भवेत्। गङ्गा गोदावरी चैव कावेरी ताम्रपर्णिका ॥ ४ ॥
सिन्धुश्च सरयू रेवा सप्त गङ्गाः प्रकीर्तिताः। ततोऽब्धितीरं दश च पर्वताग्रे ततो दश ॥ ५ ॥
सर्वस्मादधिकं ज्ञेयं यत्र वा रोचते मनः। कृते पूर्णफलं ज्ञेयं यज्ञदानादिकं तथा ॥ ६ ॥
त्रेतायुगे त्रिपादं च द्वापरेऽर्धं सदा स्मृतम्। कलौ पादं तु विज्ञेयं तत्पादोनं ततोऽर्द्धके ॥ ७ ॥

देवपूजन करते रहना चाहिए ॥ ४२ ॥ दरिद्र को चाहिए कि वह तपस्या से तथा धनी को चाहिए कि वह धन से देवपूजन करें। इस प्रकार जो श्रद्धा से धर्म करता है, वह स्वर्ग में अनेक भोग भोगकर इस मृत्युलोक में जन्म लेता है। धनवान् पुरुष को चाहिए कि वह अपने धन से वृक्षारोपण, जलाशय, पाठशाला एवं धर्मशाला आदि का निर्माण कर उभय लोक में प्रतिष्ठा का भागी बने। इस प्रकार जब पुण्य का परिपाक हो जाता है, तो समय आने पर ज्ञान की प्राप्ति भी हो जाती है ॥ ४३-४५ ॥

सूत जी कहते हैं—हे ब्राह्मणो! जो इस अध्याय को पढ़ते, सुनते अथवा दूसरों को सुनाते हैं वे भी इस देवयज्ञ के फल को प्राप्त करते हैं ॥ ४६ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्त' हिन्दीटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत विद्येश्वरसंहिता में अग्नि-यज्ञादि वर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥

*

ऋषिगण बोले—हे सर्वज्ञ सूत! अब आप पूजा के योग्य देश तथा काल का वर्णन कीजिए।

सूत जी बोले—देव-यज्ञादि कर्म में अपना घर शास्त्र में कहे गये मात्र फलों को देता है, उससे अधिक नहीं ॥ १ ॥ गोओं के स्थान (गोशाले) में देवयज दशगुना, उसका दशगुना जल के निकट, उसका दशगुना बेल, तुलसी तथा अश्वत्थ के मूल में करने से प्राप्त होता है ॥ २ ॥ उससे दशगुना देवालय में, उससे दशगुना तीर्थतट में, उससे दशगुना नदी पर तथा उसका दशगुना तीर्थ नदी के तट पर देवयज्ञ करने से फल की प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥ सप्तगङ्गा नदी के किनारे उसका दशगुना फल होता है। गङ्गा, गोदावरी, कावेरी, ताम्रपर्णी, सिन्धु तथा सरयू ये नदियाँ सप्तगङ्गा कही जाती हैं। उसका भी दशगुना फल समुद्र के किनारे यज्ञ करने से तथा उसका भी दशगुना फल पर्वत के अग्रभाग पर करने से होता है ॥ ४-५ ॥ जहाँ पर मन स्वभाव से ही प्रसन्न हो वहाँ सबसे अधिक पूजा का फल होता है। सत्युग में किये गये यज्ञ तथा दान का पूर्णरूपेण फल प्राप्त होता है ॥६॥ त्रेतायुग में तिहाई, द्वापर में आधा और कलियुग में चौथाई

शुद्धात्मनः शुद्धदिनं पुण्यं समफलं विदुः । तस्माद् दशगुणं ज्ञेयं रविसङ्क्रमणे बुधाः ॥ ८ ॥
विषुवे तद्दशगुणमयने तद्दश स्मृतम् । तद्दशमृगसङ्क्रान्तौ तच्चन्द्रग्रहणे दश ॥ ९ ॥
ततश्च सूर्यग्रहणे पूर्णकालोत्तमे विदुः । जगद्रूपस्य सूर्यस्य विषयोगाच्च रोगदम् ॥ १० ॥
अतस्तद्-विषशान्त्यर्थं स्नान-दान-जपांश्चरेत् । विषशान्त्यर्थकालत्वात् स कालः पुण्यदः स्मृतः ॥ ११ ॥
जन्मर्क्षे च व्रतान्ते च सूर्यरागोपमं विदुः । महतां सङ्गकालश्च कोट्यर्कग्रहणं विदुः ॥ १२ ॥
तपोनिष्ठा ज्ञाननिष्ठा योगिनो यतयस्तथा । पूजायाः पात्रमेते हि पापसंक्षयकारणम् ॥ १३ ॥
चतुर्विंशतिलक्षं वा गायत्र्या जपसंयुतः । ब्राह्मणस्तु भवेत् पात्रं सम्पूर्णफलभोगदम् ॥ १४ ॥
पतनात् त्रायत इति पात्रं शास्त्रे प्रयुज्यते । दातुश्च पातकात् त्राणात् पात्रमित्यभिधीयते ॥ १५ ॥
गायकं त्रायते पाताद् गायत्रीत्युच्यते हि सा । यथाऽर्थहीनो लोकेऽस्मिन् परस्यार्थं न यच्छति ॥ १६ ॥
अर्थवानिह यो लोके परस्यार्थं प्रयच्छति । स्वयं शुद्धो हि पूतात्मा नरान् संत्रातुमर्हति ॥ १७ ॥
गायत्रीजपशुद्धो हि शुद्धब्राह्मण उच्यते । तस्माद् दाने जपे होमे पूजायां सर्वकर्मणि ॥ १८ ॥
दानं कर्तुं तथा त्रातुं पात्रं तु ब्राह्मणोऽर्हति । अन्नस्य क्षुधितं पात्रं नारीनरमयात्मकम् ॥ १९ ॥
ब्राह्मणं श्रेष्ठमाहूय यत्काले सुसमाहितम् । तदर्थं शब्दमर्थं वा सद्बोधकमभीष्टदम् ॥ २० ॥
इच्छावतः प्रदानं च सम्पूर्णफलदं विदुः । यत् प्रश्नानन्तरं दत्तं तदर्धं फलदं विदुः ॥ २१ ॥
यत्सेवकाय दत्तं स्यात् तत्पादफलदं विदुः । जातिमात्रस्य विप्रस्य दीनवृत्तेर्द्विजर्षभाः ॥ २२ ॥

और आधा तथा अधिक कलियुग बीतने पर, उससे भी न्यून फल होता है ॥ ७ ॥ शुद्धात्मा के द्वारा पवित्र दिन में किया गया देवयज्ञ समान ही पुण्य देने वाला होता है। उससे दशगुना फल रवि संक्रान्ति के दिन देवयज्ञ करने से होता है ॥ ८ ॥ तुला तथा मेष की संक्रान्ति में उसका दशगुना, अयन में उसका दशगुना तथा चन्द्रग्रहण में करने से उसका भी दशगुना फल प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ सूर्यग्रहण में उसका दशगुना फल होता है। यहाँ तक सर्वोत्तम पुण्य काल तथा देश का वर्णन किया गया। जगद्रूप सूर्य जब अन्धकार से युक्त हो जाता है तो उससे रोग उत्पन्न होता है ॥ १० ॥ इस कारण इस विषशान्ति के लिए मनुष्य को सदैव स्नान, दान एवं जप करते रहना चाहिए। विष शान्ति करने के कारण वह समय महान् पुण्यदायक है ॥ ११ ॥ जन्म नक्षत्र के दिन तथा व्रत के अन्त में किये गये स्नान, जप तथा दान का फल सूर्यग्रहण के तुल्य ही होता है। सत्पुरुषों की संगति का फल तो करोड़ों सूर्यग्रहण के तुल्य कहा गया है ॥ १२ ॥ तपोनिष्ठ एवं ज्ञान-निष्ठ योगी एवं यति ये पूजा के पात्र हैं। इनके पूजा से पापों का विनाश होता है ॥ १३ ॥

जिस ब्राह्मण ने चौबीस लाख गायत्री का जप किया है, वह ब्राह्मण पूजा का पात्र है, उसके पूजन मात्र से सम्पूर्ण भोग के फल प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥ शास्त्रकारों ने पतन से रक्षा करने वाले को पात्र कहा है। अथवा देने वाले को पापों से रक्षा करने के कारण उसे पात्र कहते हैं ॥ १५ ॥ अपने गान करने वाले की जो पाप से रक्षा करे, उसे गायत्री कहते हैं। जिस प्रकार दरिद्र पुरुष इस लोक में किसी को धन नहीं दे सकता। किन्तु अर्थवान् ही धन देने में समर्थ होता है। इसी प्रकार जो स्वयं शुद्ध एवं पवित्र है वही दूसरों की रक्षा करने में समर्थ हो सकता है ॥ १६-१७ ॥ गायत्री जप से शुद्ध ब्राह्मण ही शुद्ध ब्राह्मण है। दान, जप, होम तथा पूजा के कार्यों में शुद्ध ब्राह्मण को ही नियुक्त करना चाहिए ॥ १८ ॥ दान के लिए तथा पापों से बचाने के लिए ब्राह्मण सर्वोत्तम पात्र कहा गया है। अन्नदान के सभी भूखे चाहे वे स्त्री हों अथवा पुरुष हों, सभी नारीनरात्मक जगत् पात्र हैं ॥ १९ ॥ समय आने पर श्रेष्ठ ब्राह्मण को बुलाकर जो दान दिया जाता है वह दान सर्वोत्तम है। उस दान का शब्द तथा अर्थ के द्वारा अभीष्ट सिद्धि प्रदान करने वाला यह 'सत्' शब्द कहा गया है। इच्छा वाले को दान करने से सम्पूर्ण फल की प्राप्ति होती है। किन्तु जो माँगने के अनन्तर दान दिया जाता है उसका आधा फल कहा गया है ॥ २०-२१ ॥ सेवा करने वाले को जो दान दिया जाता है उसका चतुर्थांश फल प्राप्त होता है और हे ब्राह्मणो ! जिसमें विद्या तथा तप से

दत्तमर्थं हि भोगाय भूर्लोके दशवार्षिकम् । वेदयुक्तस्य विप्रस्य स्वर्गे हि दशवार्षिकम् ॥२३॥
गायत्रीजपयुक्तस्य सत्ये हि दशवार्षिकम् । विष्णुभक्तस्य विप्रस्य दत्तं वैकुण्ठदं विदुः ॥२४॥
शिवभक्तस्य विप्रस्य दत्तं कैलासदं विदुः । तत्तल्लोकोपभोगार्थं सर्वेषां दानमिष्यते ॥२५॥
दशाङ्गमन्नं विप्रस्य भानुवारे ददन्नरः । परजन्मनि चारोग्यं दशवर्षं समश्नुते ॥२६॥
बहुमानमथाह्वानमभ्यङ्गं पादसेवनम् । वासो गन्धाद्यर्चनं च घृतापूपरसोत्तरम् ॥२७॥
षड्रसं व्यञ्जनं चैव ताम्बूलं दक्षिणोत्तरम् । नमश्चानुगमश्चैव स्वन्नदानं दशाङ्गकम् ॥२८॥
दशाङ्गमन्नं विप्रेभ्यो दशभ्यो वै ददन्नरः । अर्कवारे तथाऽऽरोग्यं शतवर्षं समश्नुते ॥२९॥
सोमवारादिवारेषु तत्तद् वारगुणं फलम् । अन्नदानस्य विज्ञेयं भूर्लोके परजन्मनि ॥३०॥
सप्तस्वपि च वारेषु दशभ्यश्च दशाङ्गकम् । अन्नं दत्त्वा शतं सर्वमारोग्यादिकमश्नुते ॥३१॥
एवं शतेभ्यो विप्रेभ्यो भानुवारे ददन्नरः । सहस्रवर्षमारोग्यं सर्वलोके समश्नुते ॥३२॥
सहस्रेभ्यस्तथा दत्त्वाऽयुतवर्षं समश्नुते । एवं सोमादिवारेषु विज्ञेयं हि विपश्चिता ॥३३॥
भानुवारे सहस्राणां गायत्रीपूतचेतसाम् । अन्नं दत्त्वा सत्यलोके ह्यारोग्यादि समश्नुते ॥३४॥
अयुतानां तथा दत्त्वा विष्णुलोके समश्नुते । अन्नं दत्त्वा तु लक्षाणां रुद्रलोके समश्नुते ॥३५॥
बालानां ब्रह्मबुद्धया हि देयं विद्यार्थिभिर्नरैः । यूनां च विष्णुबुद्धया हि पुत्रकामार्थिभिर्नरैः ॥३६॥

---

[1]पात्रता नहीं है, जो केवल जाति मात्र से ब्राह्मण है किन्तु वृत्ति के अभाव से दुःखी है, ऐसे ब्राह्मण को दान देने से दशवर्ष पर्यन्त इस भूलोक में भोग की प्राप्ति होती है। वेदयुक्त ब्राह्मण को दान देने से उसका फल स्वर्ग में दश वर्ष पर्यन्त प्राप्त होता है ॥२२-२३॥ गायत्री जप से युक्त ब्राह्मण को दान देने से सत्यलोक में उसका फल दश वर्ष पर्यन्त प्राप्त होता रहता है। विष्णु भक्त ब्राह्मण को दान देने से वैकुण्ठ लोक की प्राप्ति होती है ॥ २४ ॥ शिवभक्त को दान देने से कैलास की प्राप्ति होती है। सभी प्रकार के दानों का तत्तल्लोक की प्राप्ति कहा गया है ॥२५॥ जो ब्राह्मण को रविवार के दिन दशाङ्ग अन्न का दान करता है, उसे दूसरे जन्म में दशवर्ष पर्यन्त आरोग्य की प्राप्ति होती है ॥ २६ ॥

१. सम्मान पूर्वक बुलाना, २. अच्छी तरह से मल-मल कर पैर का धोना, ३. वस्त्र तथा ४. गन्ध का दान पूर्वक पूजा करना, ५. घृतयुक्त अपूप आदि सरस पदार्थों का ६. षड्रस युक्त भोजन, ७. ताम्बूल एवं ८. दक्षिणा देना, ९. नमस्कार करना, १०. आठ पैर तक अनुगमन करना ये अन्नदान के दश अङ्ग हैं ॥२७-२८॥ जो दशाङ्ग युक्त अन्न को दश ब्राह्मण के लिए रविवार को दान करता है, वह शतवर्ष पर्यन्त नीरोग होकर जीवन लाभ करता है ॥ २९ ॥ सोमवार आदि वारों में इसी प्रकार दश ब्राह्मणों को दशाङ्ग अन्न का दान अपने-अपने वारों के अनुसार, इस लोक में तथा दूसरे जन्मों में तत्तत् फल देता है ॥ ३० ॥ सातों वारों में इसी प्रकार दश ब्राह्मणों को दशाङ्ग अन्न का दान, सौ वर्ष पर्यन्त आरोग्य तथा आयु प्रदान करता है ॥ ३१ ॥ सौ ब्राह्मणों को रविवार के दिन दशाङ्ग अन्न का दान करने से सहस्र वर्ष पर्यन्त शिवलोक में आरोग्यता प्रदान करने वाला है। हजार ब्राह्मणों को दशाङ्ग दान करने से दश हजार वर्ष सुख की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार सोमवार आदि वारों का फल जानना चाहिये ॥ ३२-३३ ॥

रविवार के दिन गायत्री जप से पवित्र अन्तःकरण वाले सहस्र ब्राह्मणों को अन्न दान देने से सत्यलोक तथा आरोग्य की प्राप्ति होती है ॥ ३४ ॥ इसी प्रकार दश सहस्र ब्राह्मणों को देने से विष्णुलोक तथा लक्ष ब्राह्मणों को देने से शिवलोक की प्राप्ति होती है ॥ ३५ ॥ विद्या चाहने वाले मनुष्यों को ब्रह्मबुद्धि से बालकों को दान करना चाहिए। पुत्र की इच्छा वालों को विष्णुबुद्धि से युवकों को दान

---

१. तपः श्रुतं च योनिश्च त्रयो ब्राह्मणहेतवः ।
तपःश्रुताभ्यां यो हीनः जातिब्राह्मण उच्यते ॥ मनु स्मृते ।

वृद्धानां रुद्रबुद्ध्या हि देयं ज्ञानार्थिभिर्नरैः । बालस्त्री भारतीबुद्ध्या बुद्धिकामैर्नरोत्तमैः ॥३७॥
लक्ष्मीबुद्ध्या युवस्त्रीषु भोगकामैर्नरोत्तमैः । वृद्धासु पार्वतीबुद्ध्या देयमात्मार्थिभिर्जनैः ॥३८॥
शिलवृत्त्योञ्छवृत्त्या च गुरुदक्षिणयार्जितम् । शुद्धद्रव्यमिति प्राहुस्तत्पूर्णफलदं विदुः ॥३९॥
शुक्लप्रतिग्रहाद्दत्तं मध्यमं द्रव्यमुच्यते । कृषि-वाणिज्यकोपेतमधमं द्रव्यमुच्यते ॥४०॥
क्षत्रियाणां विशां चैव शौर्यवाणिज्यकार्जितम् । उत्तमं द्रव्यमित्याहुः शूद्राणां भृतकार्जितम् ॥४१॥
स्त्रीणां धर्मार्थिनां द्रव्यं पैतृकं भर्तृकं तथा । गवादीनां द्वादशीनां चैत्रादिषु यथाक्रमम् ॥४२॥
सम्भूय वा पुण्यकाले दद्यादिष्टसमृद्धये । गो-भू-तिल-हिरण्याज्य-वासो-धान्य-गुडानि च ॥४३॥
रौप्यं लवण-कूष्माण्डे कन्याद्वादशकं तथा । गोदानाद् द्गव्येन गोमयेनोपकारिणा ॥४४॥
धनधान्याद्याश्रितानां दुरितानां निवारणम् । जलस्नेहाद्याश्रितानां दुरितानां तु गोजलैः ॥४५॥
कायिकादित्रयाणां तु क्षीरदध्याज्यकैस्तथा । तथा तेषां च पुष्टिश्च विज्ञेया हि विपश्चिता ॥४६॥
भूदानं तु प्रतिष्ठार्थमिह चाऽमुत्र च द्विजाः । तिलदानं बलार्थं हि सदा मृत्युजयं विदुः ॥४७॥
हिरण्यं जाठराग्नेस्तु वृद्धिदं वीर्यदं तथा । आज्यं पुष्टिकरं विद्याद् वस्त्रमायुष्करं विदुः ॥४८॥
धान्यमन्नं समृद्ध्यर्थं मधुराहारदं गुडम् । रौप्यं रेतोऽभिवृद्ध्यर्थं षड्रसार्थं तु लावणम् ॥४९॥
सर्वं सर्वसमृद्ध्यर्थं कूष्माण्डं पुष्टिदं विदुः । प्राप्तिदं सर्वभोगानामिह चाऽमुत्र च द्विजाः ॥५०॥
यावज्जीवनमुक्तं हि कन्यादानं तु भोगदम् । पनसाम्रकपित्थानां वृक्षाणां फलमेव च ॥५१॥

करना चाहिए ॥ ३६ ॥ ज्ञान की इच्छा वालों को शिवबुद्धि से वृद्धों को दान करना चाहिए। और बुद्धि चाहने वाले मनुष्यों को सरस्वतीबुद्धि से कन्याओं को दान करना चाहिए ॥ ३७ ॥ भोग चाहने वाले मनुष्यों को लक्ष्मीबुद्धि से युवतिजनों के निमित्त दान देना चाहिए। और आत्मज्ञान चाहने वाले मनुष्यों को पार्वतीबुद्धि से वृद्धा स्त्रियों को दान करना चाहिए ॥ ३८ ॥ कण चुनकर एकत्रित किया गया द्रव्य तथा गुरु दक्षिणा में प्राप्त द्रव्य शुद्ध है और वह उत्तम फल प्रदान करता है ॥ ३९ ॥ शुद्ध प्रतिग्रह से प्राप्त हुआ द्रव्य मध्यम द्रव्य कहा जाता है। कृषि, वाणिज्य से प्राप्त हुआ द्रव्य अधम द्रव्य है ॥ ४० ॥ क्षत्रियों का स्वबाहु बल से अर्जित द्रव्य तथा वैश्य के द्वारा कृषि वाणिज्य से अर्जित धन उत्तम द्रव्य कहा जाता है, किन्तु शूद्र का सेवा के द्वारा अर्जित धन एवं धर्म करने वाली स्त्रियों का पिता तथा पति के द्वारा दिया गया धन शुद्ध द्रव्य कहा जाता है। अपना मनोरथ पूर्ण करने वाले पुरुषों को चाहिए कि वे १. गौ, २. भूमि, ३. तिल, ४. सुवर्ण, ५. घृत, ६. वस्त्र, ७. धान्य, ८. गुड़, ९. चाँदी, १०. नमक, ११. कूष्माण्ड तथा १२. कन्या आदि बारह पदार्थों का दान क्रमशः चैत्रादि मासों में तथा पुण्य काल में दान करें ॥४१-४२॥ धन-धान्य में रहने वाले पापों का नाश गोदान से, सर्व उपकारक गव्य (गोमय, गोमूत्र, गोघृत, गोदधि, गोदुग्ध) दान से हो जाता है। जलादि स्नेह पदार्थों का पाप गोदान तथा जलदान से नष्ट होता ॥४३-४५॥ कायिक, वाचिक तथा मानसिक ये तीनों पाप क्रमशः क्षीर, दधि तथा घृत के दान से नष्ट हो जाते हैं तथा इनके दान से शारीरिक पुष्टि भी प्राप्त होती है ॥ ४६ ॥

सूत जी ने कहा—हे ऋषियो! भूदान से दोनों लोकों में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। तिल का दान बल देने वाला तथा मृत्यु पर विजय देने वाला है ॥ ४७ ॥ सुवर्णदान से मन्दाग्नि का नाश होकर जाठराग्नि बढ़ती है और वीर्य वृद्धि होती है। आज्य से पुष्टि तथा वस्त्रदान से आयुष्य की अभिवृद्धि होती है ॥ ४८ ॥ धान्य का दान अन्न की समृद्धि तथा गुड़ का दान मधुर आहार देने वाला है। रौप्यदान वीर्य बढ़ाता है, लवण का दान षड्रस प्रदान करता है ॥ ४९ ॥ कूष्माण्ड का दान सभी वस्तुओं की सब प्रकार से समृद्धि तथा पुष्टि देने वाला है। इतना ही नहीं, कूष्माण्ड का दान इस लोक में तथा परलोक में सभी भोगों की प्राप्ति कराता है ॥ ५० ॥ कन्यादान से जीवनपर्यन्त भोग की प्राप्ति होती है। पनस,

कदल्याद्यौषधीनां च फलं गुल्मोद्भवं तथा । माषादीनां च मुद्गानां फलं शाकादिकं तथा ॥५२॥
मरीचिसर्षपाद्यानां शाकोपकरणं तथा । यद्दतौ यत्फलं सिद्धं तद्देयं हि विपश्चिता ॥५३॥
श्रोत्रादीन्द्रियतत्त्वांश्च सदा देया विपश्चिता । शब्दादि-दशभोगार्थं दिगादीनां च तुष्टिदा ॥५४॥
वेदशास्त्रं समादाय बुद्ध्वा गुरुमुखात् स्वयम् । कर्मणां फलमस्तीति बुद्धिरास्तिक्यमुच्यते ॥५५॥
बन्धुराजभयाद् बुद्धिः श्रद्धा सा च कनीयसी । सर्वाभावे दरिद्रस्तु वाचा वा कर्मणा यजेत् ॥५६॥
वाचिकं यजनं विद्यान् मन्त्रस्तोत्रजपादिकम् । तीर्थयात्राव्रताद्यं हि कायिकं यजनं विदुः ॥५७॥
येन केनाऽप्युपायेन ह्यल्पं वा यदि वा बहु । देवतार्पणबुद्ध्या च कृतं भोगाय कल्पते ॥५८॥
तपश्चर्या च दानं च कर्तव्यमुभयं सदा । प्रतिश्रयं प्रदातव्यं स्ववर्णगुणशोभितम् ॥५९॥
देवानां तृप्तयेऽत्यर्थं सर्वभोगप्रदं बुधैः । इहाऽमुत्रोत्तमं जन्म सदा भोगं लभेद् बुधः ॥
ईश्वरार्पणबुद्ध्या हि कृत्वा मोक्षफलं लभेत् ॥६०॥
य इमं पठतेऽध्यायं यः शृणोति सदा नरः । तस्य वै धर्मबुद्धिश्च ज्ञानसिद्धिः प्रजायते ॥६१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां देव-यज्ञादिषु देश-काल-पात्रादि-
वर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

आम तथा कैथ का फल, कदलीफल, औषधि आदि तथा लता एवं गुल्म का फल, उर्द, मूँग अन्य प्रकार के फल तथा शाकादि, काली मिर्च, सरसों तथा शाक की सामग्री और ऋतुओं में उत्पन्न होनेवाले फलों का दान कल्याण बुद्धि से करते रहना चाहिए ॥ ५१-५३ ॥

इसी प्रकार बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिए कि श्रोत्र आदि इन्द्रियों के तृप्तिकारक तत्तत्पदार्थों का दान करे । श्रोत्रादि इन्द्रियों के तृप्तिकारक तत्तद्विषयों के दान करने से दशों दिशाओं में तुष्टि प्राप्त होती है ॥ ५४ ॥ वेदशास्त्रों के द्वारा पढ़कर एवं गुरु के मुख से जानकर कर्म का फल होता है । इस प्रकार की बुद्धि को आस्तिकता कहते हैं ॥ ५५ ॥ भाइयों तथा राजा के भय से कर्म के फल में विश्वास करना यह कनिष्ठ श्रद्धा कही जाती है। दरिद्र को चाहिए कि वह सभी वस्तुओं के अभाव में वाणी तथा कर्म से ईश्वर का यजन करे ॥ ५६ ॥ मन्त्रों का जप, देवताओं की स्तुति, यह सब वाचिक यज्ञ कहा गया है । तीर्थ-यात्रा एवं व्रतादि शारीरिक यज्ञ कहा जाता है ॥ ५७ ॥ जिस-किसी उपाय से ईश्वरार्पण बुद्धि से अधिक अथवा न्यून कर्म करते रहने से सभी भोगों की प्राप्ति होती है ॥ ५८ ॥

मनुष्य को चाहिए कि वह तपश्चर्या तथा दान इन दोनों कर्मों को सदैव करता रहे और वर्णानुसार अपने-अपने गुणों से शोभित कर गृहादि प्रतिश्रय का दान भी करता रहे ॥ ५९ ॥ प्रतिश्रय का दान देवताओं को तृप्त करता है और सभी प्रकार के भोगों को प्रदान करता है । इससे लोक में तथा परलोक में उत्तम कुल में जन्म तथा भोग की प्राप्ति होती है । ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करते रहने से मोक्षरूप फल प्राप्त होता है ॥ ६० ॥ जो मनुष्य इस अध्याय को पढ़ता है, अथवा सुनता है उसे धर्म कार्यों में बुद्धि तथा ज्ञान की सिद्धि होती है ॥ ६१ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' हिन्दीटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत
विद्येश्वरसंहिता में पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥

*

षोडशोऽध्यायः

(अनुक समय में अमुक फल प्राप्ति रूप पार्थिव पूजन का निरूपण)

ऋषय ऊचुः

पार्थिवप्रतिमापूजाविधानं ब्रूहि सत्तम ! । येन पूजाविधानेन सर्वाभीष्टमवाप्यते ॥ १ ॥

सूत उवाच

सुसाधु पृष्टं युष्माभिः सदा सर्वार्थदायकम् । सद्यो दुःखस्य शमनं शृणुत प्रब्रवीमि वः ॥ २ ॥
अपमृत्युहरं कालमृत्योश्चापि विनाशनम् । सद्यः कलत्र-पुत्रादि-धनधान्यप्रदं द्विजाः ॥ ३ ॥
अन्नादिभोज्यं वस्त्रादि सर्वमुत्पद्यते यतः । ततो मृदादि-प्रतिमा-पूजाभीष्टप्रदा भुवि ॥ ४ ॥
पुरुषाणां च नारीणामधिकारोऽत्र निश्चितम् । नद्यां तडागे कूपे वा जलान्तर्मृदमाहरेत् ॥ ५ ॥
संशोध्य गन्धचूर्णेन पेषयित्वा सुमण्डपे । हस्तेन प्रतिमां कुर्यात् क्षीरेण च सुसंस्कृताम् ॥ ६ ॥
अङ्गप्रत्यङ्गकोपेतामायुधैश्च समन्विताम् । पद्मासनस्थितां कृत्वा पूजयेदादरेण हि ॥ ७ ॥
विघ्नेशादित्यविष्णूनामम्बायाश्च शिवस्य च । शिवस्य शिवलिङ्गं च सर्वदा पूजयेद् द्विजः ॥ ८ ॥
षोडशैरुपचारैश्च कुर्यात् तत्फलसिद्धये । पुष्पेण प्रोक्षणं कुर्यादभिषेकं समन्त्रकम् ॥ ९ ॥
शाल्यन्नेनैव नैवेद्यं सर्वं कुडवमानतः । गृहे तु कुडवं ज्ञेयं मानुषे प्रस्थमिष्यते ॥१०॥
दैवे प्रस्थत्रयं योग्यं स्वयम्भोः प्रस्थपञ्चकम् । एवं पूर्णफलं विद्यादधिकं वै द्वयं त्रयम् ॥११॥
सहस्रपूजया सत्यं सत्यलोकं लभेद् द्विजः । द्वादशाङ्गुलमायामं द्विगुणं च ततोऽधिकम् ॥१२॥
प्रमाणमङ्गुलस्यैकं तदूर्ध्वं पञ्चकत्रयम् । अयोदारुकृतं पात्रं शिवमित्युच्यते बुधैः ॥१३॥

ऋषिगण बोले—हे सूत जी ! अब आप हमसे पार्थिव प्रतिमा के पूजन का विधान कहिए । जिससे सभी प्रकार के इष्ट वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है ॥ १ ॥

सूत जी बोले—आपलोगों ने उत्तम बात पूछी, यह पार्थिव-पूजा सभी अभीष्ट वस्तुओं को प्रदान करती है और तत्क्षण सभी दुःखों को नष्ट कर देती है । मैं पार्थिव पूजा का विधान कहता हूँ ॥ २ ॥ हे ब्राह्मणो ! शिवजी की यह पार्थिव पूजा अकाल में होनेवाली अपमृत्यु का नाश तो करती ही है । समय पर होनेवाली मृत्यु को भी रोक देती है ॥ ३ ॥ और तत्क्षण कलत्र, पुत्रादि तथा धन-धान्य को देनेवाली है । जिस मृत्तिका से अन्नादि भोजन एवं वस्त्रादि सभी कुछ प्राप्त होते हैं उस मृत्तिका के द्वारा निर्मित शिव-प्रतिमा अवश्य ही इस लोक में सम्पूर्ण मनोरथों को देनेवाली है ॥ ४ ॥ इस पार्थिव पूजा में स्त्री तथा पुरुष दोनों का अधिकार है । पार्थिव पूजन करनेवाले को चाहिए कि वह तडाग, कूप तथा किसी जलाशय की मिट्टी ग्रहण करे ॥ ५ ॥ फिर उसे उत्तम गुलाब आदि के चूर्ण से सुवासित कर मण्डप के भीतर मर्दित करे । दूध डालकर हाथ से प्रतिमा का निर्माण शिव की यह प्रतिमा अङ्ग-प्रत्यङ्ग युक्त एवं त्रिशूल आदि आयुधों से युक्त पद्मासन पर बिठाकर आदर से उस प्रतिमा का पूजन करे ॥ ६-७ ॥

हे ब्राह्मणो ! मनुष्यों को चाहिए कि वे गणेश, सूर्य, विष्णु, अम्बा (देवी), श्री शिव (बेर प्रतिमा अथवा शिवलिंग) की सदा पूजा करे ॥ ८ ॥ और पूजा के फल की प्राप्ति के लिए षोडशोपचार से पूजा करे, पुष्प से प्रोक्षण और मन्त्रपूर्वक अभिषेक करे ॥ ९ ॥ सभी को एक कुडव (पाव) प्रमाण से शाली (साठी) अन्न का नैवेद्य लगाना चाहिए । घर में यदि पूजा हो, तो उस शिवलिंग को पाव भर नैवेद्य और यदि मनुष्य स्थापित लिङ्ग हो, तो एकप्रस्थ (एक सेर) नैवेद्य लगाकर पूजा करे ॥ १० ॥ देवता के द्वारा स्थापित शिवलिंग को तीन प्रस्थ (सेर) और स्वयं उत्पन्न हुए लिंग को पाँच प्रस्थ (सेर) अन्न का भोग लगावे । इससे भी अधिक छह या सात प्रस्थ का नैवेद्य लगाने से पूर्ण फल की प्राप्ति होती है ॥ ११ ॥, सहस्र प्रस्थ नैवेद्य द्वारा पूजा करने से ब्राह्मण को सत्यलोक की प्राप्ति होती है । यह बात सत्य है । बारह अङ्गुल चौड़ा और पचीस अङ्गुल लम्बा लोहे की प्रतिमा को तथा बारह अङ्गुल लम्बे,

तदष्टभागः प्रस्थः स्यात् तच्चतुष्कुडवं मतम् । दशप्रस्थं शतप्रस्थं सहस्रप्रस्थमेव च ॥१४॥
जल-तैलादि-गन्धानां यथायोग्यं च मानतः । मानुषार्ष-स्वयम्भूनां महापूजेति कथ्यते ॥१५॥
अभिषेकादात्मशुद्धिर्गन्धात् पुण्यमवाप्यते । आयुस्तृप्तिश्च नैवेद्याद् धूपादर्थमवाप्यते ॥१६॥
दीपाज्ज्ञानमवाप्नोति ताम्बूलाद् भोगमाप्नुयात् । तस्मात् स्नानादिकं षट्कं प्रयत्नेन प्रसाधयेत् ॥१७॥
नमस्कारो जपश्चैव सर्वाभीष्टप्रदावुभौ । पूजान्ते च सदा कार्यौ भोगमोक्षार्थिभिर्नरैः ॥१८॥
सम्पूज्य मनसा पूर्वं कुर्यात् तत्तत् सदा नरैः । देवानां पूजया चैव तत्तल्लोकमवाप्नुयात् ॥१९॥
तदवान्तरलोके च यथेष्टं भोग्यमाप्यते । तद्-विशेषान् प्रवक्ष्यामि शृणुत श्रद्धया द्विजाः ॥२०॥
विघ्नेशपूजया सम्यग् भूर्लोकेऽभीष्टमाप्नुयात् । शुक्रवारे चतुर्थ्यां च सिते श्रावणभाद्रके ॥२१॥
भिषगृक्षे धनुर्मासे विघ्नेशं विधिवद् यजेत् । शतं पूजा सहस्रं वा तत्सङ्ख्याकदिनैर्यजेत् ॥२२॥
देवाऽग्निश्रद्धया नित्यं पुत्रदं चेष्टदं नृणाम् । सर्वपापप्रशमनं तत्तद् दुरितनाशनम् ॥२३॥
वारपूजां शिवादीनामात्मशुद्धिप्रदां विदुः । तिथि-नक्षत्र-योगानामाधारं सार्वकामिकम् ॥२४॥
तथा वृद्धिक्षयाभावात् पूर्णब्रह्मात्मकं विदुः । उदयादुदयं वारो ब्रह्मप्रभृति कर्मणाम् ॥२५॥
तिथ्यादौ देवपूजा हि पूर्णभोगप्रदा नृणाम् । पूर्वभागः पितॄणां तु निशियुक्तः प्रशस्यते ॥२६॥

चालीस अङ्गुल चौड़े काष्ठ प्रतिमा को बुद्धिमान् लोग शिव कहते हैं ॥ १२-१३ ॥ उसका आठवाँ भाग प्रस्थ और चौथाई भाग कुडव कहा जाता है। मनुष्य स्थापित शिवलिङ्ग को दशप्रस्थ जल तथा सुगन्धित तेल, ऋषि स्थापित लिङ्ग को सौ प्रस्थ जल तथा सुगन्धित तेल एवं स्वयं उत्पन्न लिङ्ग को एक हजार प्रस्थ जल तथा सुगन्धित तेल से पूजा करे तो उसे महापूजा कहते हैं ॥ १४-१५ ॥

शिव पर अभिषेक करने से आत्मशुद्धि और गन्ध दान से पुण्यफल की प्राप्ति होती है। नैवेद्य लगाने से आयु की वृद्धि तथा परम तृप्ति होती है। धूप देने से अर्थ की प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥ दीपदान से ज्ञान एवं ताम्बूल दान से भोग की प्राप्ति होती है। इसलिए स्नान से लेकर गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य एवं ताम्बूल इन छह वस्तुओं से शिवपूजन यत्नपूर्वक करे ॥ १७ ॥ शिव को नमस्कार और जप यह दोनों सम्पूर्ण अभीष्ट सिद्धि देने वाले हैं। अतः भोग और मोक्ष चाहनेवाले मनुष्यों को पूजा के अन्त में जप और नमस्कार अवश्य करना चाहिए ॥ १८ ॥ मानसिक पूजन भी इन्हीं उपचारों से करना चाहिए और देवताओं की इन उपचारों से पूजा करने से तत्-तत् लोकों की प्राप्ति होती है ॥ १९ ॥ अवान्तर लोक में भी इस पूजा के फल से भोग प्राप्त होते रहते हैं।

सूत जी ने कहा—हे ब्राह्मणो ! अब मैं इन पूजनों की विशेषताओं का वर्णन करता हूँ। आप लोग श्रद्धा से सुनें ॥ २० ॥ गणेश की पूजा से इस भूलोक में सम्पूर्ण मनोरथ की सिद्धि होती है। अतः श्रावण और भाद्रपदमास के शुक्लपक्ष की चतुर्थी और शुक्रवार को एवं शतभिषा नक्षत्र आने पर तथा धन राशि के सूर्य में गणेश की विधिपूर्वक पूजा करे। इस प्रकार शत वार अथवा सहस्र वार पूजा करने से उतनी संख्या युक्त दिनों तक गणेश लोक की प्राप्ति होती है ॥२१-२२॥ श्रद्धापूर्वक देवता और अग्नि के पूजन से मनुष्य को मनोरथ की सिद्धि और पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है और सभी पाप नष्ट होते हैं। तथा दुःखों से छुटकारा हो जाता है ॥ २३ ॥ तत्तद् वारों में शिवादि देवताओं की पूजा करने से आत्मशुद्धि होती है। तिथि, नक्षत्र और योगों के प्राप्त होने पर शिवपूजन से सभी कामनाओं की प्राप्ति होती है ॥ २४ ॥ यदि तिथियों की वृद्धि और क्षय न हो, तो उसमें शिवपूजा करने से ब्रह्मप्राप्ति के समान पूर्णफल प्राप्त होता है। कर्म के लिए सूर्योदय से होने वाले वार की गणना ब्राह्म मुहूर्त से ही करनी चाहिए ॥ २५ ॥ इसी प्रकार देवपूजा में भी तिथि की गणना ब्राह्म मुहूर्त से करनी चाहिए। ऐसा करने से मनुष्यों को पूर्ण भोग की प्राप्ति होती है। तिथिप्रयुक्त कार्यों के लिए जिस तिथि से युक्त रात्रि हो, उस रात्रि से पूर्व दिन

परभागस्तु देवानां दिवायुक्तः प्रशस्यते । उदयव्यापिनी ग्राह्या मध्याह्ने यदि सा तिथिः ॥२७॥
देवकार्ये तथा ग्राह्याऽतिथिऋक्षादिकाः शुभाः । सम्यग् विचार्य वारादीन् कुर्यात् पूजा-जपादिकम् ॥२८॥
पूर्जायते ह्यनेनेति वेदेष्वर्थस्य योजना । पूर्णभोगफलसिद्धिश्च जायते तेन कर्मणा ॥२९॥
मनोभावांस्तथा ज्ञानमिष्टभोगार्थयोजनात् । पूजाशब्दार्थ एवं हि विश्रुतो लोकवेदयोः ॥३०॥
नित्य-नैमित्तिकं कालात् सद्यः काम्ये स्वनुष्ठिते । नित्यं मासं च पक्षं च वर्षं चैव यथाक्रमम् ॥३१॥
तत्तत्कर्मफलप्राप्तिस्तादृक्पापक्षयः क्रमात् । महागणपतेः पूजा चतुर्थ्यां कृष्णपक्षके ॥३२॥
पक्षपापक्षयकरी पक्षभोगफलप्रदा । चैत्रे चतुर्थ्यां पूजा च कृता मासफलप्रदा ॥३३॥
वर्षभोगप्रदा ज्ञेया कृता वै सिंहभाद्रके । श्रावणादित्यवारे च सप्तम्यां हस्तभे दिने ॥३४॥
माघशुक्ले च सप्तम्यामादित्ययजनं चरेत् । ज्येष्ठभाद्रकसौम्ये च द्वादश्यां श्रवणर्क्षके ॥३५॥
द्वादश्यां विष्णुयजनमिष्टं सम्पत्करं विदुः । श्रावणे विष्णुयजनमिष्टारोग्यप्रदं भवेत् ॥३६॥
गवादीन् द्वादशानर्थान् साङ्गान् दत्वा तु यत्फलम् । तत्फलं समवाप्नोति द्वादश्यां विष्णुतर्पणात् ॥३७॥
द्वादश्यां द्वादशान् विप्रान् विष्णोर्द्वादशनामतः । षोडशैरुपचारैश्च यजेत् तत्प्रीतिमाप्नुयात् ॥३८॥
एवं च सर्वदेवानां तत्तद् द्वादशनामकैः । द्वादशब्रह्मयजनं तत्तत्प्रीतिकरं भवेत् ॥३९॥
कर्कटे सोमवारे च नवम्यां मृगशीर्षके । अम्बां यजेद् भूतिकामः सर्वभोगफलप्रदाम् ॥४०॥

(अपराह्न काल) में पितृकार्य करे। किन्तु देवकार्य के लिए उस तिथि को किया जाने वाला कर्म उस रात्रि से दूसरे दिन पूर्वाह्न में करना उचित है। क्योंकि, देवकार्य के लिए दूसरे दिन मध्याह्न पर्यन्त रहने वाली तिथि उदयव्यापिनी ही ग्राह्य होती है। 'पूर्वाह्नो देवानामपराह्नो पितृणाम्' यह श्रुति भी इसमें प्रमाण है। इसका भाव यह है कि देवकार्य पूर्वाह्न में एवं पितृकार्य अपराह्न में करे॥ २६-२७॥ देवकार्य के लिए शुभ नक्षत्र एवं शुभ तिथि ग्रहण करना चाहिए। इसी प्रकार पूजा एवं जपादि कार्य भी अच्छे वार से प्रारम्भ करे॥ २८॥

वेदों में पूजा शब्द का अर्थ 'पूर्जायतेऽनेनेति पूजा' अर्थात् जिस क्रिया के द्वारा सर्वाभीष्ट की प्राप्ति हो उसे पूजा कहा गया है। इस पूजा से पूर्ण भोग रूप फल की सिद्धि होती है॥२९॥ मनोऽभिलषित पदार्थ, ज्ञान एवं अभीष्ट भोग जिस कर्म से प्राप्त हो उसे पूजा कहते हैं। पूजा शब्द का यही अर्थ लोक और वेद में प्रसिद्ध है॥३०॥ नित्य-नैमित्तिक कर्म कालान्तर में फल देते हैं, किन्तु काम्य कर्म, अनुष्ठान करते ही फल देते हैं। नित्य कर्म, मास, पक्ष एवं वर्ष में क्रमशः तत्तत्फल की प्राप्ति कराते हैं। एवं धीरे-धीरे पापों का क्षय करते हैं। (अब नैमित्तिक कर्म का वर्णन करते हैं)। कृष्णपक्ष की चतुर्थी को महागणपति की पूजा एक पक्ष में पापों को क्षय करती है तथा पक्ष मात्र के लिए सम्पूर्ण भोगों को प्रदान करती है। चैत्र में चतुर्थी के दिन की गयी महागणपति की पूजा एक मास पर्यन्त फल प्रदान करती है॥ ३१-३३॥ सिंह राशि के सूर्य एवं भाद्रमास में की गयी महागणपति की पूजा एक वर्ष के लिए भोगप्रदायिनी है। श्रावण के आदित्यवार को एवं हस्त नक्षत्र युक्त सप्तमी के दिन, माघ शुक्ला सप्तमी के दिन, आदित्यवार के दिन, ज्येष्ठ और भाद्र में बुधवार के दिन, श्रवणयुक्त द्वादशी में भगवान् विष्णु का यजन सम्पूर्ण सम्पत्ति को देने वाला है। इसी प्रकार सम्पूर्ण श्रावण मास में विष्णु का पूजन इष्ट वस्तु की प्राप्ति कारक एवं आरोग्य देनेवाला है॥ ३४-३६॥ ऊपर कहे गये गौ आदि द्वादश पदार्थों के साङ्गदान से जो फल प्राप्त होता है, वह फल द्वादशी को विष्णुपूजन से प्राप्त होता है॥३७॥ जो द्वादशी को विष्णु के बारह नामों से उनकी षोडशोपचार द्वारा पूजा करने के उपरान्त, द्वादश ब्राह्मणों को भोजन कराता है वह उनकी प्रीति का पात्र होता है॥३८॥ इसी प्रकार तत्तद् देवताओं के द्वादश नाम से तत्तद् देवताओं का पूजन कर जो बारह ब्राह्मणों को भोजन कराता है वह भी उन-उन देवताओं के प्रीति का पात्र होता है॥ ३९॥ कर्क राशि के सूर्य में सोमवार के दिन, मृगशिरा नक्षत्र युक्त नवमी में ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला पुरुष भगवती पार्वती का

आश्वयुक्शुक्लनवमी सर्वाभीष्टफलप्रदा । आदिवारे चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे विशेषतः ॥४१॥
आर्द्रायां च महार्द्रायां शिवपूजा विशिष्यते । माघकृष्णचतुर्दश्यां सर्वाभीष्टफलप्रदा ॥४२॥
आयुष्करी मृत्युहरा सर्वसिद्धिकरी नृणाम् । ज्येष्ठमासे महार्द्रायां चतुर्दशीदिनेऽपि च ॥४३॥
मार्गशीर्षार्द्रकायां वा षोडशैरुपचारकैः । तत्तन्मूर्तिशिवं पूज्य तस्य वै पाददर्शनम् ॥४४॥
शिवस्य यजनं ज्ञेयं भोगमोक्षप्रदं नृणाम् । वारादिदेवयजनं कार्तिके हि विशिष्यते ॥४५॥
कार्तिके मासि सम्प्राप्ते सर्वान् देवान् यजेद् बुधः । दानेन तपसा होमैर्जपेन नियमेन च ॥४६॥
षोडशैरुपचारैश्च प्रतिमा विप्रमन्त्रकैः । ब्राह्मणानां भोजनेन निष्कामार्तिकरो भवेत् ॥४७॥
कार्तिके देवयजनं सर्वभोगप्रदं भवेत् । व्याधीनां हरणं चैव भवेद् भूतग्रहक्षयः ॥४८॥
कार्तिकादित्यवारेषु नृणामादित्यपूजनात् । तैल-कार्पासदानात्तु भवेत् कुष्ठादिसंक्षयः ॥४९॥
हरीतकी मरीचीनां वस्त्र-क्षीरादि-दानतः । ब्रह्मप्रतिष्ठया चैव क्षयरोगक्षयो भवेत् ॥५०॥
दीप-सर्षपदानाच्च अपस्मारक्षयो भवेत् । कृत्तिकासोमवारेषु शिवस्य यजनं नृणाम् ॥५१॥
महादारिद्र्यशमनं सर्वसम्पत्करं भवेत् । गृहक्षेत्रादिदानाच्च गृहोपकरणादिना ॥५२॥
कृत्तिकाभौमवारेषु स्कन्दस्य यजनान् नृणाम् । दीपघण्टादिदानाद् वै वाक्सिद्धिरचिराद् भवेत् ॥५३॥
कृत्तिकासौम्यवारेषु विष्णोर्वै यजनं नृणाम् । दध्योदनस्य दानं च सत्सन्तानकरं भवेत् ॥५४॥

पूजन करे तो उसे सम्पूर्ण भोगों की प्राप्ति होती है ॥ ४० ॥ आश्विन शुक्ल नवमी में देवी की पूजा करने से सम्पूर्ण मनोऽभिलषित प्राप्त होता है। अथवा कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को रविवार के दिन जब शिव को आर्द्र करने वाली आर्द्रा नक्षत्र पड़े तो उसमें शिवपूजा विशेष फलदायक है। माघ कृष्ण चतुर्दशी में तो की गयी शिवपूजा सभी मनोरथों को पूर्ण करती है ॥ ४१-४२ ॥ ज्येष्ठ मास की चतुर्दशी को आर्द्रा नक्षत्र में शिव की पूजा आयु प्रदान करने वाली तथा मृत्यु का विनाश करने वाली तथा सर्वसिद्धिकरी कही गयी है ॥४३॥ अथवा मार्गशीर्ष मास के आर्द्रा नक्षत्र में उन-उन मूर्त्तियों वाले शिव (बेर, लिङ्ग, बाणलिङ्ग एवं पार्थिव लिङ्ग) की षोडशोपचार से पूजा करनेवाले पुरुष के पैर के दर्शन मात्र से शिव की पूजा का फल प्राप्त होता है। जो भोग एवं मोक्ष को देने वाला है। कार्त्तिक मास में तत्तद् वारों के दिन देवताओं की पूजा विशेष फलदायिनी होती है ॥ ४४-४५ ॥ बुद्धिमानों को उचित है कि, कार्त्तिक मास में दान, तप, होम, जप से तथा नियमपूर्वक रहकर सभी देवताओं का यजन करे ॥ ४६ ॥ प्रतिमा पूजन के लिए ब्राह्मणों के द्वारा कहे गये वेदमन्त्रों द्वारा षोडशोपचार से पूजन एवं ब्राह्मणों को भोजन करावे और निष्काम भाव से आरती करे ॥ ४७ ॥ इस प्रकार देवपूजन से सभी भोगों की प्राप्ति होती है। व्याधियों का विनाश होता है एवं भूतबाधा तथा ग्रहबाधा विनष्ट होती है ॥ ४८ ॥

कार्त्तिक महीने के आदित्यवार को भगवान् आदित्य के पूजन से एवं उस दिन तिल तैल तथा कपास के दान से कुष्ठरोग का विनाश होता है ॥ ४९ ॥ हरीतकी (हर्रे), मिर्च (काली), वस्त्र एवं क्षीरादि के दान और ब्रह्म प्रतिष्ठा से क्षयरोग का विनाश होता है ॥ ५० ॥ दीप तथा सरसों के दान से अपस्मार (मृगी) रोग नष्ट हो जाता है। सोमवार के दिन कृत्तिका नक्षत्र में शिव का यजन करने से एवं गृह, क्षेत्र तथा गृह की सामग्री के दान से महादारिद्र्य दूर हो जाता है एवं सभी प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त होती है ॥५१-५२॥ कृत्तिका युक्त भौमवार के दिन स्कन्द का पूजन करने से एवं उस दिन दीप, घण्टादिक के दान से थोड़े ही काल में मनुष्यों को वाक्सिद्धि प्राप्त होती है ॥५३॥ कृत्तिका नक्षत्र युक्त बुधवार के दिन विष्णु का पूजन करने से और दही तथा चावल का दान करने से मनुष्य को उत्तम सन्तान की प्राप्ति होती है ॥५४॥

कृत्तिकागुरुवारेषु ब्रह्मणो यजनाद् धनैः । मधुस्वर्णाज्यदानेन भोगवृद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥५५॥
कृत्तिकाशुक्रवारेषु गजकोमेडयाजनात् । गन्धपुष्पान्नदानेन भोग्यवृद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥५६॥
वन्ध्या सुपुत्रं लभते स्वर्णरौप्यादि दानतः । कृत्तिकाशनिवारेषु दिक्पालानां च वन्दनम् ॥५७॥
दिग्गजानां च नागानां सेतुपानां च पूजनम् । त्र्यम्बकस्य च रुद्रस्य विष्णोः पापहरस्य च ॥५८॥
ज्ञानदं ब्रह्मणश्चैव धन्वन्तर्यश्विनोस्तथा । रोगापमृत्युहरणं तत्कालव्याधिशान्तिदम् ॥५९॥
लवणायसतैलानां माषादीनां च दानतः । त्रिकटुफलगन्धानां जलादीनां च दानतः ॥६०॥
द्रवाणां कठिनानां च प्रस्थेन पलमानतः । स्वर्गप्राप्तिर्धनुर्मासे ह्युषःकाले च पूजनम् ॥६१॥
शिवादीनां च सर्वेषां क्रमाद् वै सर्वसिद्धये । शाल्यन्नस्य हविष्यस्य नैवेद्यं शस्तमुच्यते ॥६२॥
विविधान्नस्य नैवेद्यं धनुर्मासे विशिष्यते । मार्गशीर्षेऽन्नदस्यैव सर्वमिष्टफलं भवेत् ॥६३॥
पापक्षयं चेष्टसिद्धिं चारोग्यं धर्ममेव च । सम्यग् वेदपरिज्ञानं सदनुष्ठानमेव च ॥६४॥
इहाऽमुत्र महाभोगानन्ते योगं च शाश्वतम् । वेदान्तज्ञानसिद्धिं च मार्गशीर्षान्नदो लभेत् ॥६५॥
मार्गशीर्षे ह्युषःकाले दिनत्र्यमथापि वा । यजेद् देवान् भोगकामो नाधनुर्मासिको भवेत् ॥६६॥
यावत् सङ्गवकालं तु धनुर्मासो विधीयते । धनुर्मासे निराहारो मासमात्रं जितेन्द्रियः ॥६७॥
आमध्याह्नं जपेद् विप्रो गायत्रीं वेदमातरम् । पञ्चाक्षरादिकान् मन्त्रान् पश्चादासप्तिकं जपेत् ॥६८॥
ज्ञानं लब्ध्वा च देहान्ते विप्रो मुक्तिमवाप्नुयात् । अन्येषां नरनारीणां त्रिःस्नानेन जपेन च ॥६९॥

जो लोग कृत्तिका नक्षत्रयुक्त गुरुवार के दिन धन द्वारा ब्रह्मदेव का पूजन करते हैं एवं मधु, स्वर्ण, घृत का दान करते हैं, उनको भोग की अभिवृद्धि होती है ॥ ५५ ॥ कृत्तिका नक्षत्रयुक्त शुक्रवार को गणेश-पूजन करने से तथा उस दिन गन्ध, पुष्पादि का दान करने से मनुष्य को भोग्य वस्तुओं की वृद्धि होती है ॥ ५६ ॥ सुवर्ण तथा चाँदी का दान करने से बन्ध्या स्त्री भी पुत्र प्राप्त करती है। कृत्तिकानक्षत्रयुक्त शनिवार के दिन दिक्पालों की वन्दना करनी चाहिए ॥ ५७ ॥ दिग्गजों का, नागों का एवं मर्यादा पालक राम आदि राजाओं का, त्र्यम्बक तथा पापहारी महाविष्णु का पूजन ज्ञान देनेवाला है। ब्रह्मा, धन्वन्तरी एवं अश्विनी कुमारों का पूजन रोग तथा अपमृत्यु का नाश कर तत्काल उत्पन्न हुई व्याधि को भी शान्ति प्रदान करता है ॥ ५८-५९ ॥ नमक, लोहा, तेल, उर्द, त्रिकटु, (सोंठ, मिर्च, पीपर), फल, गन्ध, जल तथा द्रवपदार्थ (दुग्ध आदि) एवं कठिन पदार्थ (सुवर्ण आदि) का एक प्रस्थ (सेर) से लेकर एक पल (तोला) मात्र पर्यन्त प्रमाण के अनुसार दान करने से स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है। धन की संक्रान्ति में उषाकाल के समय सूर्यादि देवताओं का पूजन सभी अभीष्ट को पूर्ण करता है। शालि अन्न एवं हविष्य अन्न का नैवेद्य प्रशस्त कहा गया है ॥ ६०-६२ ॥

धन की संक्रान्ति में अनेक प्रकार के अन्न का भोग लगाने से विशेष फल प्राप्त होता है। जो मार्गशीर्ष मास में अन्न का दान करता है उसे सभी अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति होती है ॥ ६३ ॥ मार्गशीर्ष मास में अन्न दान से पापों का क्षय, इष्टसिद्धि, आरोग्य, धर्म, वेद का सम्यक् परिज्ञान, सदनुष्ठान इस लोक तथा परलोक में उत्तम भोग और अन्त में शाश्वत योग तथा वेदान्त ज्ञान की सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ६४-६५ ॥ यदि बहुत न हो सके, तो मार्गशीर्ष मास में कम-से-कम तीन दिन भोग की इच्छा रखने-वाले पुरुष को देवताओं का पूजन अवश्य करना चाहिए। कभी भी धन की संक्रान्ति व्यर्थ न जाने देना चाहिए ॥६६॥ जब तक धन की संक्रान्ति से युक्त धनुष मास रहे तबतक संगवकाल (अपराह्न दो बजे तक) पर्यन्त अथवा मध्याह्न पर्यन्त ब्राह्मण को वेदमाता गायत्री का जप करना चाहिए। फिर शयन पर्यन्त पञ्चाक्षरादि मन्त्रों का अभ्यास करना चाहिये ॥ ६७-६८ ॥ ऐसा करनेवाला ब्राह्मण शरीर छोड़ने के बाद

सदा पञ्चाक्षरस्यैव विशुद्धं ज्ञानमाप्यते । इष्टमन्त्रान् सदा जप्त्वा महापापक्षयं लभेत् ॥७०॥
धनुर्मासे विशेषेण महानैवेद्यमाचरेत् । शालितण्डुलभारेण मरीचप्रस्थकेन च ॥७१॥
गणनाद् द्वादशं सर्वं मध्वाज्यकुडवेन हि । द्रोणयुक्तेन मुद्गेन द्वादशव्यञ्जनेन च ॥७२॥
घृतपक्वैरपूपैश्च मोदकैः शालिकादिभिः । द्वादशैश्च दधि-क्षीरैर्द्वादशप्रस्थकेन च ॥७३॥
नारिकेलफलादीनां तथा गणनया सह । द्वादशक्रमुकैर्युक्तं षट्त्रिंशत्पत्रकैर्युतम् ॥७४॥
कर्पूरखुरचूर्णेन पञ्चसौगन्धिकैर्युतम् । ताम्बूलयुक्तं तु यदा महानैवेद्यलक्षणम् ॥७५॥
महानैवेद्यमेतद् वै देवतार्पणपूर्वकम् । वर्णानुक्रमपूर्वेण तद्भक्तेभ्यः प्रदापयेत् ॥७६॥
एवं चौदननैवेद्याद् भूमौ राष्ट्रपतिर्भवेत् । महानैवेद्यदानेन नरः स्वर्गमवाप्नुयात् ॥७७॥
महानैवेद्यदानेन सहस्रेण द्विजर्षभाः । सत्यलोके च तल्लोके पूर्णमायुरवाप्नुयात् ॥७८॥
सहस्राणां च त्रिंशत्या महानैवेद्यदानतः । तदूर्ध्वलोकमाप्यैव न पुनर्जन्मभाग् भवेत् ॥७९॥
सहस्राणां च षट्त्रिंशज्जन्मनैवेद्यमीरितम् । तावन्नैवेद्यदानं तु महापूर्णं तदुच्यते ॥८०॥
महापूर्णस्य नैवेद्यं जन्मनैवेद्यमिष्यते । जन्मनैवेद्यदानेन पुनर्जन्म न विद्यते ॥८१॥
ऊर्जे मासि दिने पुण्ये जन्मनैवेद्यमाचरेत् । सङ्क्रान्तिपातजन्मर्क्ष-पौर्णमास्यादि-संयुते ॥८२॥
अब्दजन्मदिने कुर्याज्जन्मनैवेद्यमुत्तमम् । मासान्तरेषु जन्मर्क्षपूर्णयोगदिनेऽपि च ॥८३॥
मेलने च शनैर्वाऽपि तावत् साहस्रमाचरेत् । जन्मनैवेद्यदानेन जन्मार्पणफलं लभेत् ॥८४॥
जन्मार्पणाच्छिवः प्रीतः स्वसायुज्यं ददाति हि । इदं तज्जन्मनैवेद्यं शिवस्यैव प्रदापयेत् ॥८५॥

ज्ञान प्राप्त कर मुक्त हो जाता है। अन्य स्त्री तथा पुरुषों का मार्गशीर्ष मास में तीन काल तक स्नान करने से अथवा सर्वदा पञ्चाक्षर का जप करने से अथवा अपने इष्ट देवता का जप करने से महापापों का क्षय होता है एवं ज्ञान की प्राप्ति होती है ॥ ६९-७० ॥ धनु मास की संक्रान्ति में विशेषकर महा नैवेद्य का भोग लगाते एक भार (सवा मन) शाली का चावल प्रस्थ (सेर) मात्र काली मिर्च आदि बारह पदार्थों को बारह गुनी संख्या में भोग लगाना चाहिए। शहद और घी कुडव (पाव भर) मात्र, मूंग एक द्रोण (१६ सेर) बारह व्यञ्जन घी में पकाये हुए बारह अपूप, बारह मोदक, शाली आदि बारह अन्न, दही तथा दूध बारह सेर, नारियल बारह, सुपारी छत्तीस एवं छत्तीस पान जिसमें कपूर, खैर, चूना, पाँचों सुगन्ध द्रव्य (इलायची, कंकोल, लवंग, पुष्प, जायफल) आदि मिले हों, इस प्रकार के ताम्बूल का बीड़ा ये सभी समुदित सामग्री महा नैवेद्य कहे गये हैं ॥ ७१-७५ ॥ इस महानैवेद्य का देवता को अर्पण कर, अपने-अपने वर्ण के अनुसार उन-उन देवताओं के भक्तों को प्रसाद के रूप में बाँटना चाहिए ॥ ७६ ॥ भात का नैवेद्य लगाने से मनुष्य पृथ्वी का राष्ट्रपति होता है। और महानैवेद्य का भोग लगाने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥ ७७ ॥ सहस्र वार इस प्रकार के महानैवेद्य के अर्पण से सत्यलोक में निवास एवं पूर्ण आयु की प्राप्ति होती है ॥ ७८ ॥ तीस सहस्र बार नैवेद्य के दान से सत्यलोक से ऊपरवाले लोक की प्राप्ति होती है तथा इस लोक में पुनः जन्म नहीं प्राप्त होता ॥ ७९ ॥

छत्तीस सहस्र नैवेद्य को जन्म नैवेद्य कहते हैं। उतने नैवेद्य के दान को महापूर्ण कहते हैं ॥ ८० ॥ महापूर्ण के नैवेद्य को जन्मनैवेद्य कहते हैं। जन्मनैवेद्य के दान से पुनः जन्म नहीं होता ॥ ८१ ॥ कार्त्तिक महीने में जब उत्तम दिन पड़े तब जन्म नैवेद्य का विधान करे। इसके अतिरिक्त संक्रान्ति लगने पर, जन्म नक्षत्र में, पौर्णमासी के दिन अथवा वर्धापन दिवस पर इस उत्तम नैवेद्य को अर्पण करे। अन्य मासों में भी जब जन्म का नक्षत्र अथवा पूर्णमासी का दिन हो अथवा शनि की महादशा में उतने महानैवेद्य का विधान है। शिव को जन्म नैवेद्य के दान से जन्मार्पण का फल प्राप्त होता है ॥ ८२-८४ ॥ जन्मार्पण से शिवजी प्रसन्न हो जाते हैं। और सायुज्य मुक्ति प्रदान करते हैं। यह जन्म नैवेद्य एकमात्र शिव को ही करना

योनिलिङ्गस्वरूपेण शिवो जन्मनिरूपकः । तस्माज्जन्मनिवृत्त्यर्थं जन्मपूजा शिवस्य हि ॥८६॥
विन्दुनादात्मकं सर्वं जगत्-स्थावर-जङ्गमम् । विन्दुः शक्तिः शिवो नादः शिवशक्त्यात्मकं जगत् ॥८७॥
नादाधारमिदं विन्दुर्विन्द्वाधारमिदं जगत् । जगदाधारभूतौ हि विन्दुनादौ व्यवस्थितौ ॥८८॥
विन्दुनादयुतं सर्वं सकलीकरणं भवेत् । सकलीकरणाज्जन्म जगत्प्राप्नोत्यसंशयः ॥८९॥
विन्दुनादात्मकं लिङ्गं जगत्कारणमुच्यते । विन्दुर्देवी शिवो नादः शिवलिङ्गं तु कथ्यते ॥९०॥
तस्माज्जन्मनिवृत्त्यर्थं शिवलिङ्गं प्रपूजयेत् । माता देवी बिन्दुरूपा नादरूपः शिवः पिता ॥९१॥
पूजिताभ्यां पितृभ्यां तु परमानन्द एव हि । परमानन्दलाभार्थं शिवलिङ्गं प्रपूजयेत् ॥९२॥
सा देवी जगतां माता स शिवो जगतः पिता । पित्रोः शुश्रूषके नित्यं कृपाधिक्यं हि वर्धते ॥९३॥
कृपयान्तर्गतैश्वर्यं पूजकस्य ददाति हि । तस्मादन्तर्गतानन्दलाभार्थं मुनिपुङ्गवाः ॥९४॥
पितृमातृस्वरूपेण शिवलिङ्गं प्रपूजयेत् । भर्गः पुरुषरूपो हि भर्गा प्रकृतिरुच्यते ॥९५॥
अव्यक्तान्तरधिष्ठानं गर्भः पुरुष उच्यते । सुव्यक्तान्तरधिष्ठानं गर्भः प्रकृतिरुच्यते ॥९६॥
पुरुषास्त्वादिगर्भो हि गर्भवाञ्जनको यतः । पुरुषात् प्रकृतौ युक्तं प्रथमं जन्म कथ्यते ॥९७॥
प्रकृतेर्व्यक्ततां यातं द्वितीयं जन्म कथ्यते । जन्मजन्तुर्मृत्युजन्म पुरुषात् प्रतिपद्यते ॥९८॥
अन्यतो भाव्यतेऽवश्यं मायया जन्म कथ्यते । जीर्यते जन्मकालाद्यत् तस्माज्जीव इति स्मृतः ॥९९॥
जन्यते तन्यते पाशैर्जीवशब्दार्थ एव हि । जन्मपाशनिवृत्त्यर्थं जन्मलिङ्गं प्रपूजयेत् ॥१००॥
भं वृद्धिं गच्छतीत्यर्थाद् भगः प्रकृतिरुच्यते । प्राकृतैः शब्दमात्राद्यैः प्राकृतेन्द्रियभोजनात् ॥१०१॥

चाहिए ॥ ८५ ॥ यह अजन्मा शिवयोनि और लिङ्ग के रूप से जीव को जन्म देते हैं। इसलिए जन्म निवृत्ति के लिये यह जन्म नैवेद्य शिव को ही समर्पित करे, जिससे प्रसन्न होकर वे पुनः जन्म देवें ॥ ८६ ॥ यह सारा स्थावर-जङ्गमात्मक जगत् विन्दुनादात्मक है। विन्दु शक्ति है और शिव नाद रूप हैं। अतः यह जगत् शिवशक्त्यात्मक है ॥ ८७ ॥ विन्दु का आश्रय नाद है और जगत् का आधार विन्दु है। इसलिए विन्दु और नाद व्यवस्थित रूप से इस जगत् के आधार हैं ॥ ८८ ॥ सभी जीव विन्दु और नाद से युक्त होने पर कलायुक्त हो जाते हैं। तथा कलायुक्त हो जाने पर इस जीवजगत् का जन्म हो जाता है। इसमें संशय नहीं ॥ ८९ । विन्दु नादात्मक लिङ्ग ही इस जगत् की उत्पत्ति में कारण है, विन्दु देवी हैं, तो शिव नाद हैं। इसी को शिवलिङ्ग कहते हैं ॥ ९० ॥ इस कारण जन्म-निवृत्ति के लिए शिवलिङ्ग की पूजा करनी चाहिए। विन्दु रूप देवी माता और नादरूप शिव पिता हैं ॥ ९१ ॥ इन माता-पिता की पूजा से परमानन्द की प्राप्ति होती है। अतः परमानन्द की प्राप्ति के लिए शिवलिङ्ग का पूजन करना चाहिए ॥ ९२ ॥ यह देवी ही जगत् की माता तथा महादेव शिव ही इस जगत् के पिता हैं। जो माता-पिता की सेवा करता है उस सेवा करने वाले पुत्र में माता-पिता की कृपा अधिक होती है ॥ ९३ ॥ माता-पिता जब दया करते हैं तो अपने पुत्र को समस्त ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। इसलिए हे मुनियो ! आत्मानन्द की प्राप्ति के लिए, पितृ-मातृ स्वरूप शिवलिङ्ग की पूजा करनी चाहिए। भर्ग पुरुष और भर्गा प्रकृति कहलाती है ॥९४-९५॥ अव्यक्त के भीतर का अधिष्ठान भूत गर्भ पुरुष तथा व्यक्त के भीतर अधिष्ठान भूत गर्भ को प्रकृति कहते हैं ॥९६॥ आदि गर्भ होने के कारण पुरुष गर्भ का धाता तथा जनक कहा जाता है। पुरुष जब प्रकृति से युक्त हो जाता है तब जीव का प्रथम जन्म होता है ॥ ९७ ॥ प्रकृति में होकर जब जीव प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होता है, तो उसका दूसरा जन्म होता है। यह जन्म लेने वाला जीव पुरुष से ही जन्म और मृत्यु को प्राप्त करता है। जन्म समय से ही काल के द्वारा जीर्ण होने के कारण इसे जीव कहते हैं ॥ ९८-९९ ॥ जो पाश में बँधा हुआ जन्म लेता है और पाश में बँधा हुआ बढ़ता है, उसे भी जीव कहते हैं। इसलिए जन्म रूप फाँसी से निवृत्ति के लिए जन्मलिङ्ग की पूजा करनी चाहिए। जो निरन्तर बढ़ता रहे, उसे भग या प्रकृति कहते

भगस्येदं भोगमिति शब्दार्थो मुख्यतः श्रुतः । मुख्यो भगस्तु प्रकृतिर्भगवाञ्छिव उच्यते ॥१०२॥
भगवान् भोगदाता हि नाऽन्यो भोगप्रदायकः । भगस्वामी च भगवान् भर्ग इत्युच्यते बुधैः ॥१०३॥
भगेन सहितं लिङ्गं भगं लिङ्गेन संयुतम् । इहाऽमुत्र च भोगार्थं नित्यभोगार्थमेव च ॥१०४॥
भगवन्तं महादेवं शिवलिङ्गं प्रपूजयेत् । लोकप्रसविता सूर्यस्तच्चिह्नं प्रसवाद् भवेत् ॥१०५॥
लिङ्गे प्रसूतिकर्तारं लिङ्गिनं पुरुषो यजेत् । लिङ्गार्थगमकं चिह्नं लिङ्गमित्यभिधीयते ॥१०६॥
लिङ्गमर्थं हि पुरुषं शिवं गमयतीत्यदः । शिवशक्त्योश्च चिह्नस्य मेलनं लिङ्गमुच्यते ॥१०७॥
स्वचिह्नपूजनात् प्रीतश्चिह्नकार्यं न वीयते । चिह्नकार्यं तु जन्मादि जन्माद् यं विनिवर्तते ॥१०८॥
प्राकृतैः पुरुषैश्चापि बाह्याभ्यन्तर-सम्भवैः । षोडशैरुपचारैश्च शिवलिङ्गे प्रपूजयेत् ॥१०९॥
एवमादित्यवारे हि पूजा जन्मनिवर्तिका । आदिवारे महालिङ्गं प्रणवेनैव पूजयेत् ॥११०॥
आदिवारे पञ्चगव्यैरभिषेको विशिष्यते । गोमयं गोजलं क्षीरं दध्याज्यं पञ्चगव्यकम् ॥१११॥
क्षीराद् यं च पृथक् चैव मधुना चेक्षुसारकैः । गव्यक्षीरान्ननैवेद्यं प्रणवेनैव कारयेत् ॥११२॥
प्रणवं ध्वनिलिङ्गं तु नादलिङ्गंस्वयम्भुवः । बिन्दुलिङ्गं तु यन्त्रं स्यान्मकारं तु प्रतिष्ठितम् ॥११३॥
उकारं चरलिङ्गं स्यादकारं गुरुविग्रहम् । षड्लिङ्गं पूजया नित्यं जीवन्मुक्तो न संशयः ॥११४॥
शिवस्य भक्त्या पूजा हि जन्ममुक्तिकरी नृणाम् । रुद्राक्षधारणात् पादमर्धं वै भूतिधारणात् ॥११५॥

हैं। जो प्राकृत शब्दादि तन्मात्रों के द्वारा प्राकृत इन्द्रियों का भोजन हो उसे भग कहते हैं, उस भग से जिसका सम्बन्ध हो उसे भोग कहते हैं। यही भग तथा भोग शब्द का मुख्य अर्थ सुना जाता है। मुख्य रूप से भग प्रकृति को कहते हैं। वह भग रूप प्रकृति जिसमें नित्य निवास करे इसलिए शिव भगवान् कहे जाते हैं॥ १००-१०२॥

भगवान् शिव ही भोग को देने वाले हैं और कोई भोग देने में असमर्थ हैं। अतः भग के स्वामी होने से वे बुद्धिमानों द्वारा भगवान् और भर्ग कहे जाते हैं॥१०३॥ इसलिए भग से युक्त लिङ्ग तथा लिङ्ग से युक्त भग इनका आपस में नित्य सम्बन्ध है। इस लोक तथा परलोक में भोग प्राप्ति के लिए अथवा नित्य शाश्वत् भोग प्राप्ति के लिए भगवान् महादेव, जो शिवलिङ्ग रूप से अवस्थित हैं, उनका पूजन करे। लोक को उत्पन्न करने के कारण लोकप्रसविता सूर्य शिवलिङ्ग के चिह्न हैं॥ १०४-१०५॥ शिव के लिङ्गभूत सूर्य में लिङ्गवान् पुरुष का पूजन अवश्य करे। लिङ्ग के गमक अर्थ को जो स्पष्ट रूप से प्रगट करे, उसे लिङ्ग कहते हैं॥ १०६॥ जो पदार्थ को शिवरूप पुरुष में पहुँचा देवे उसे लिङ्ग कहते हैं। अथवा शिवशक्ति चिह्न को मिलाने वाले का नाम लिङ्ग है॥ १०७॥ शिवजी अपने चिह्न के पूजन से प्रसन्न हो जाते हैं। इससे चिह्न कार्य को प्राप्त नहीं होता किन्तु जन्म देने वाले इस चिह्न के पूजन से मनुष्य सदैव जन्मादि से छुटकारा पा जाता है॥ १०८॥ प्राकृत पुरुष भी बाह्य के षोडशोपचारों से तथा अन्तर (मानस) के षोडशोपचारों से शिवलिङ्ग का पूजन करना चाहिए॥ १०९॥ आदित्य वार को शिवलिङ्ग की पूजा से पुनः जन्म नहीं होता। आदित्यवार के दिन महालिङ्ग का पूजन प्रणव मन्त्र से करे॥ ११०॥ आदित्यवार को शिव के ऊपर पञ्चगव्य से स्नान कराने से विशेष फल की प्राप्ति होती है। गोमय, गोमूत्र, गोदुग्ध, गोदधि तथा गौ के घृत को पञ्चगव्य कहते हैं॥ १११॥ गोदुग्ध आदि से पृथक्-पृथक् स्नान करावे। मधु, ऊख का रस, गोदुग्ध तथा अन्न (चावल) के मिले हुए पायस का ॐकार के मन्त्र के साथ नैवेद्य लगावे॥ ११२॥ प्रणव ध्वनि लिङ्ग है, स्वयंभू परमात्मा का लिङ्ग नाद है। विन्दु यन्त्र लिङ्ग है जिसमें मकार प्रतिष्ठित है॥ ११३॥ उकार चर लिङ्ग है, अकार अचर होने से महान् विग्रह वाला है। षड्लिङ्ग में शिव की पूजा से पुरुष जीवन्मुक्त हो जाता है।॥ ११४॥ भक्तिपूर्वक की गयी

त्रिपादं मन्त्रजाप्याच्च पूजया पूर्णभक्तिमान् । शिवलिङ्गं च भक्तं च पूज्य मोक्षं लभेन्नरः ॥११६॥
य इमं पठतेऽध्यायं श्रृणुयाद् वा समाहितः । तस्यैव शिवभक्तिश्च वर्धते सुदृढा द्विजाः ॥११७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां पार्थिवपूजनप्रकारफलवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

(प्रणव-पञ्चाक्षर मन्त्र के माहात्म्य का वर्णन)

ऋषय ऊचुः

प्रणवस्य च माहात्म्यं षड्लिङ्गस्य महामुने । शिवभक्तस्य पूजां च क्रमशो ब्रूहि नः प्रभो ! ॥ १ ॥

सूत उवाच

तपोधनैर्भवद्भिश्च सम्यक्प्रश्नस्त्वयं कृतः । अस्योत्तरं महादेवो जानाति स्म न चाऽपरः ॥ २ ॥
अथाऽपि वक्ष्ये तमहं शिवस्य कृपयैव हि । शिवोऽस्माकं च युष्माकं रक्षां गृह्णातु भूरिशः ॥ ३ ॥
प्रो हि प्रकृतिजातस्य संसारस्य महोदधेः । नवं नावान्तरमिति प्रणवं वै विदुर्बुधाः ॥ ४ ॥
प्रः प्रपञ्चो न नास्ति वो युष्माकं प्रणवं विदुः । प्रकर्षेण नयेद् यस्माद् मोक्षं वः प्रणवं विदुः ॥ ५ ॥
स्वजापकानां योगिनां स्वमन्त्रपूजकस्य च । सर्वकर्मक्षयं कृत्वा दिव्यज्ञानं तु नूतनम् ॥ ६ ॥
तमेव मायारहितं नूतनं परिचक्षते । प्रकर्षेण महात्मानं नवं शुद्धस्वरूपकम् ॥ ७ ॥
नूतनं वै करोतीति प्रणवं तं विदुर्बुधाः । प्रणवं द्विविधं प्रोक्तं सूक्ष्म-स्थूलविभेदतः ॥ ८ ॥
सूक्ष्ममेकाक्षरं विद्यात् स्थूलं पञ्चाक्षरं विदुः । सूक्ष्ममव्यक्तपञ्चार्णं सुव्यक्तार्णं तथेतरत् ॥ ९ ॥

शिवपूजा से मनुष्य जन्म-मरण के चक्र से छूट जाता है। रुद्राक्ष धारण से एक पाद, विभूति धारण से आधा, मन्त्र जप से तीन चौथाई तथा पूजा से पूर्ण भक्तिमान् कहा जाता है। शिवलिङ्ग तथा शिव की पूजाकर मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ ११५-११६ ॥

सूत जी बोले—हे ब्राह्मणो ! जो इस अध्याय का पाठ करता है अथवा सावधानी से सुनता है, उस पुरुष की शिव में भक्ति दृढ़ होकर निरन्तर बढ़ती है ॥ ११७ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत विद्येश्वरसंहिता में पार्थिवपूजन प्रकार फल वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥

*

ऋषिगण बोले—हे महाप्रभो सूत ! प्रवण का माहात्म्य शिवलिङ्ग का माहात्म्य एवं शिवभक्तों की पूजा की विधि क्रम से आप कहिए ॥ १ ॥

सूतजी बोले—आप सभी महात्मा तपस्वियों ने यह बहुत अच्छा प्रश्न किया है। इस प्रश्न का उत्तर तो केवल महादेवजी ही जानते हैं। और कोई नहीं जानता ॥ २ ॥ फिर भी मैं शिवजी की कृपा से इसका उत्तर दूँगा। भगवान् सदाशिव हमारी तथा आप की रक्षा सब प्रकार से करें॥ ३ ॥ प्र प्रकृति से उत्पन्न इस जगत् का नवम् अर्थात् नाव स्वरूप से जो वर्तमान हो उसे पण्डित लोग प्रणव कहते हैं ॥ ४ ॥ अथवा प्र (प्रपञ्च) (न) नहीं है (व) तुममें अर्थात् आत्मा में कुछ प्रपञ्च नहीं है, यह प्रणव शब्द का अर्थ है। अथवा (प्र) प्रकृष्टता से (न), मोक्ष की ओर ले जाने वाले को प्रणव कहते हैं ॥ ५ ॥ अथवा प्रकृष्टता से अपने जप करने वाले को योगिजनों एवं अपनी पूजा करने वाले के सभी कर्म का क्षय कर जो नूतन दिव्य ज्ञान प्रदान करे, उसे प्रणव कहते हैं ॥ ६ ॥ माया रहित होने से प्रणव को नूतन कहते हैं। इसलिए जो महात्मा तथा नवीन शुद्धस्वरूप प्रदान करे उसे प्रणव कहते हैं ॥७॥ नूतन करने के कारण पण्डित लोग इसे प्रणव कहते हैं। यह प्रणव स्थूल तथा सूक्ष्म भेद से दो प्रकार का कहा गया है ॥ ८ ॥ एकाक्षर को सूक्ष्म तथा पञ्चाक्षर को स्थूल कहते हैं। प्रवण का सूक्ष्म रूप अव्यक्त है, और

जीवन्मुक्तस्य सूक्ष्मं हि सर्वसारं हि तस्य हि । मन्त्रेणार्थानुसन्धानं स्वदेहविलयावधि ॥१०॥
स्वदेहे गलिते पूर्णं शिवं प्राप्नोति निश्चयः । केवलं मन्त्रजापी तु योगं प्राप्नोति निश्चयः ॥११॥
षट्त्रिंशत्कोटिजापी तु निश्चयं योगमाप्नुयात् । सूक्ष्मं च द्विविधं ज्ञेयं ह्रस्व-दीर्घविभेदतः ॥१२॥
अकारश्च उकारश्च मकारश्च ततः परम् । बिन्दुनादयुतं तद्धि शब्दकालकलान्वितम् ॥१३॥
दीर्घप्रणवमेवं हि योगिनामेव हृद्गतम् । मकारं तन्त्रितत्त्वं हि ह्रस्वप्रणव उच्यते ॥१४॥
शिवः शक्तिस्तयोरैक्यं मकारं तु त्रिकात्मकम् । ह्रस्वमेवं हि जाप्यं स्यात् सर्वपापक्षयैषिणाम् ॥१५॥
भूवायुकनकार्णोद्यौः शब्दाद्याश्च तथा दश । आशान्वये दश पुनः प्रवृत्ता इति कथ्यते ॥१६॥
ह्रस्वमेव प्रवृत्तानां निवृत्तानां तु दीर्घकम् । व्याहृत्यादौ च मन्त्रादौ कामं शब्दकलायुतम् ॥१७॥
वेदादौ च प्रयोज्यं स्याद् वन्दने सन्ध्ययोरपि । नवकोटिजपाञ्जप्त्वा संशुद्धः पुरुषो भवेत् ॥१८॥
पुनश्च नवकोट्या तु पृथिवीजयमाप्नुयात् । पुनश्च नवकोट्या तु ह्यपां जयमवाप्नुयात् ॥१९॥
पुनश्च नवकोट्या तु तेजसां जयमाप्नुयात् । पुनश्च नवकोटया तु वायोर्जयमवाप्नुयात् ॥
आकाशजयमाप्नोति नवकोटिजपेन वै ॥२०॥
गन्धादीनां क्रमेणैव नवकोटिजपेन वै । अहङ्कारस्य च पुनर्नवकोटिजपेन वै ॥२१॥
सहस्रमन्त्रजप्तेन नित्यशुद्धो भवेत् पुमान् । ततः परं स्वसिद्ध्यर्थं जपो भवति हि द्विजाः ॥२२॥
एवमष्टोत्तरशतकोटिजप्तेन वै पुनः । प्रणवेन प्रबुद्धस्तु शुद्धयोगमवाप्नुयात् ॥२३॥

दूसरा स्थूल पञ्चाक्षर सुव्यक्त है ॥ ९ ॥ जीवन्मुक्त के लिए सबका सार सूक्ष्म मन्त्र है क्योंकि उसका हित उसी से होता है। मन्त्र के द्वारा अर्थ का अनुसन्धान तब तक करते रहना जब तक देह का लय उसमें नहीं हो जाता, इसी का नाम सूक्ष्म उपासना है ॥ १० ॥ सूक्ष्म उपासक पुरुष देह के लय हो जाने पर निश्चित रूप से स्वयं शिवस्वरूप हो जाता है। अर्थ की भावना से केवल जप करने वाल पुरुष शिव में युक्त हो जाता है, यह निश्चित है ॥ ११ ॥ जो छत्तीस करोड़ जप करता है वह निश्चित रूप से शिव में युक्त हो जाता है। यह सूक्ष्म भी ह्रस्व तथा दीर्घ भेद से दो प्रकार का होता है ॥ १२ ॥ अकार, उकार,मकार तदनन्तर विन्दुनाद सहित शब्द काल की कला युक्त तीन अक्षर मात्र ॐशब्द दीर्घ प्रणव कहा जाता है, जो योगियों के हृदय में भासता है। मकारान्त मात्र अर्थात् अ, उ, म्, यह तीन अक्षर मात्र ह्रस्व प्रणव कहा जाता है ॥ १३-१४ ॥

शिवशक्ति तथा शिवशक्ति का ऐक्यभूत मकार यह त्रिकात्मक कहा जाता है। अतः जिसे अपने समस्त पापों को क्षय करने की इच्छा हो वह इस ह्रस्व प्रणव का जप करे ॥१५॥ पृथ्वी, वायु, तेज, जल, आकाश तथा शब्दादि (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द) पञ्चतन्मात्रा इन दश का सम्बन्ध दशों दिशाओं से होने के कारण पुरुष जब इनमें प्रवृत्त होता है, तो उसे प्रवृत्त कहते हैं। ऐसे शब्द-स्पर्शादि विषयों में प्रवृत्त प्राणी पुनः-पुनः संसार-सागर में प्रवृत्त होते हैं, इससे भिन्न निवृत्त कहे जाते हैं ॥१६॥ अतः जिनकी संसार में प्रवृत्ति है, उन्हें ह्रस्व ॐकार का जप करना चाहिए। निवृत्ति की इच्छा वालों को दीर्घ प्रणव का जप करना चाहिए। इस प्रणव का प्रयोग व्याहृति (भूर्भुवः स्वः) के आदि में, मन्त्र के आदि में, संकल्प के आदि में, शब्दकला स्वरूप अध्ययन में, वेद की आदि एवं दोनों सन्ध्यावन्दन में, सर्वप्रथम प्रणव का प्रयोग करना चाहिए। इस ॐकार का नव करोड़ जप करने से पुरुष की शुद्धि हो जाती है ॥१७-१८॥ अनन्तर पुनः नव करोड़ जप करने से पृथ्वीतत्त्व पर, पुनः नव करोड़ जप करने पर जलतत्त्व पर, पुनः नव करोड़ जप करने पर तेजतत्त्व पर, फिर नव करोड़ जप करने पर वायुतत्त्व पर, पुनः नव करोड़ जप करने पर आकाशतत्त्व पर, इस प्रकार क्रमशः नव करोड़ जप करते-करते गन्ध, रस, रूप, स्पर्श तथा शब्दादि पाँच विषयों पर पुनः अहङ्कार पर विजय प्राप्त हो जता है ॥ १९-२१ ॥ नित्य सहस्र मन्त्र जपने से पुरुष नित्य शुद्ध हो जाता है। इसके बाद हे ब्राह्मणो ! अपनी आत्मज्ञान की सिद्धि के लिए जप करते रहना चाहिए ॥ २२ ॥ इस प्रकार एक सौ आठ करोड़ प्रणव का जप करने पर पुरुष को ज्ञान प्राप्त होता है और वह शिव में

शुद्धयोगेन संयुक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः । सदा जपन् सदा ध्यायञ्छिवं प्रणवरूपिणम् ॥२४॥
समाधिस्थो महायोगी शिव एव न संशयः । ऋषिच्छन्दो देवतादि न्यस्य देहे पुनर्जपेत् ॥२५॥
प्रणवं मातृकायुक्तं देहे न्यस्य ऋषिर्भवेत् । दशमातृषडध्वादि सर्वं न्यासफलं लभेत् ॥२६॥
प्रवृत्तानां च मिश्राणां स्थूलप्रणवमिष्यते । क्रियातपोजपैर्युक्तास्त्रिविधाः शिवयोगिनः ॥२७॥
धनादिविभवैश्चैव कराद्यङ्गैर्नमादिभिः । क्रियया पूजया युक्तः क्रियायोगीति कथ्यते ॥२८॥
पूजायुक्तश्च मितभुग् बाह्येन्द्रियजयान्वितः । परद्रोहादिरहितस्तपोयोगीति कथ्यते ॥२९॥
एतैर्युक्तः सदा शुद्धः सर्वकामादिवर्जितः । सदा जपपरः शान्तो जपयोगीति तं विदुः ॥३०॥
उपचारैः षोडशभिः पूजया शिवयोगिनाम् । सालोक्यादिक्रमेणैव शुद्धो मुक्तिं लभेन्नरः ॥३१॥
जपयोगमथो वक्ष्ये गदतः शृणुत द्विजाः । तपः कर्तुर्जपः प्रोक्तो यज्जपन् परिमार्जते ॥३२॥
शिवनाम नमःपूर्वं चतुर्थ्यां पञ्चतत्त्वकम् । स्थूलप्रणवरूपं हि शिवपञ्चाक्षरं द्विजाः ॥३३॥
पञ्चाक्षरजपेनैव सर्वसिद्धिं लभेन्नरः । प्रणवेनादिसंयुक्तं सदा पञ्चाक्षरं जपेत् ॥३४॥
गुरूपदेशं सङ्गम्य सुखवासे सुभूतले । पूर्वपक्षे समारभ्य कृष्णभूतावधि द्विजाः ॥३५॥
माघं भाद्रं विशिष्टं तु सर्वकालोत्तमोत्तमम् । एकवारं मिताशी तु वाग्यतो नियतेन्द्रियः ॥३६॥
स्वस्य राजपितॄणां च शुश्रूषणं च नित्यशः । सहस्रजपमात्रेण भवेच्छुद्धोऽन्यथा ऋणी ॥३७॥

युक्त हो जाता है ॥ २३ ॥ जो शिव में युक्त हो जाता है वही जीवन्मुक्त है । इसमें सन्देह नहीं । प्रणव रूप सदाशिव को निरन्तर जपते-जपते तथा उनका निरन्तर ध्यान करते-करते योगी समाधिस्थ हो शिव-स्वरूप हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं । प्रथम प्रणव मन्त्र के ऋषि, छन्द, देवता का उच्चारण करे, फिर न्यास करे, तब प्रणव का जप प्रारम्भ करे ॥ २४-२५ ॥

'देहे न्यस्य मातृकायुक्तं प्रणवं' ऋषि है । 'दश मातृकाओं एवं षडध्वादि' से सम्पूर्ण देह का न्यास करे ॥ २६ ॥ प्रवृत्तमार्ग वालों को अथवा प्रवृत्त-निवृत्त दोनों मार्ग वालों के लिए स्थूल प्रणव का जप करना चाहिए । क्रियायोगी, तपोयोगी एवं जपयोगी इस भेद से शिवयोगी तीन प्रकार के होते हैं ॥ २७ ॥ पुरुष धनादि विभव के दान से करादि अङ्गों द्वारा शिव को नमस्कार करने से, क्रिया द्वारा पूजा करने से क्रियायोगी होता है ॥ २८ ॥ जो शिव की पूजा में निरत, स्वल्प भोजन करने वाला एवं बाह्येन्द्रिय को अपने वश में रखने वाला, परद्रोह रहित हो, उसे तपोयोगी कहते हैं ॥ २९ ॥ इन उपर्युक्त गुणों से युक्त क्रोधरहित, सभी प्रकार की कामना से रहित, सर्वथा शान्त एवं जपपरायण पुरुष को जपयोगी कहते हैं ॥ ३० ॥ षोडशोपचारों से जो इन शिवयोगियों की पूजा करता है वह क्रम से सालोक्य आदि मुक्ति को प्राप्त करता है । अर्थात् कियायोगी की पूजा से सालोक्य, तपोयोगी की पूजा से सामीप्य एवं जपयोगी की पूजा से सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है ॥ ३१ ॥

हे ब्राह्मणो ! अब जपयोग कहते हैं, उसे सुनो । तप करने वालों को ही जप का विधान है, जो जमढ से परिमार्जित करे उसे जप कहते हैं ॥ ३२ ॥ सर्वप्रथम पञ्चतत्त्व युक्त 'शिवाय नमः' इस मन्त्र का जप करे । ! हे ब्राह्मणो यह पञ्चाक्षर मन्त्र प्रणव का स्थूल रूप कहा गया है ॥ ३३ ॥ मनुष्य इस पञ्चाक्षर मन्त्र के जप से सभी प्रकार की सिद्धि प्राप्त करता है । इसलिए आदि में प्रणव लगाकर पञ्चाक्षर मन्त्र का जप करना चाहिए ॥ ३४ ॥ सर्वप्रथम गुरु से इसकी दीक्षा ले । तदनन्तर सुख से बैठने योग्य उत्तम भूमि में शुक्लपक्ष के चतुर्दशी से आरम्भ कर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तक जप करे ॥ ३५ ॥ हे ब्राह्मणो ! माघ और भादो मास इस कार्य के प्रारम्भ के लिए सर्वोत्तम काल कहा गया है । जपकर्त्ता एक वार स्वल्प और हितकारी भोजन करे । वाणी तथा इन्द्रियों को अपने वश में रखे ॥ ३६ ॥ और अपने पालन करने वाले राजा तथा पितरों की नित्य सेवा करे । इस प्रकार सहस्र जप करने से मनुष्य की शुद्धि होती है अन्यथा वह ऋणी होता है ॥ ३७ ॥

पञ्चाक्षरं पञ्चलक्षं जपेच्छिवमनुस्मरन् । पद्मासनस्थं शिवदं गङ्गाचन्द्रकलान्वितम् ॥३८॥
वामोरुस्थितशक्त्या च विराजन्तं महागणैः । मृगटङ्कधरं देवं वरदाभयपाणिकम् ॥३९॥
सदानुग्रहकर्त्तारं सदाशिवमनुस्मरन् । सम्पूज्य मनसा पूर्वं हृदि वा सूर्यमण्डले ॥४०॥
जपेत् पञ्चाक्षरीं विद्यां प्राङ्मुखः शुद्धकर्मकृत् । प्रातः कृष्णचतुर्दश्यां नित्यकर्म समाप्य च ॥४१॥
मनोरमे शुचौ देशे नियतः शुद्धमानसः । पञ्चाक्षरस्य मन्त्रस्य सहस्रं द्वादशं जपेत् ॥४२॥
वरयेच्च सपत्नीकाञ्छैवान् वै ब्राह्मणोत्तमान् । एकं गुरुवरं शिष्टं वरयेत् साम्बमूर्तिकम् ॥४३॥
ईशानं चाऽथ पुरुषमघोरं वाममेव च । सद्योजातं च पञ्चैव शिवभक्तान् द्विजोत्तमान् ॥४४॥
पूजाद्रव्याणि सम्पाद्य शिवपूजां समारभेत् । शिवपूजां च विधिवत् कृत्वा होमं समारभेत् ॥४५॥
मुखान्तं च स्वसूत्रेण कृत्वा होमं समारभेत् । दशैकं वा शतैकं वा सहस्रैकमथापि वा ॥४६॥
कापिलेन घृतेनैव जुहुयात् स्वयमेव हि । कारयेच्छिवभक्तैर्वाऽप्यष्टोत्तरशतं बुधः ॥४७॥
होमान्ते दक्षिणा देया गुरोर्गोमिथुनं तथा । ईशानादि-स्वरूपांस्तान् गुरुं साम्बं विभाव्य च ॥४८॥
तेषां पत्सिक्ततोयेन स्वशिरःस्नानमाचरेत् । षट्त्रिंशत्कोटितीर्थेषु सद्यः स्नानफलं लभेत् ॥४९॥
दशाङ्गमन्नं तेषां वै दद्याद् वै भक्तिपूर्वकम् । पराबुद्ध्या गुरोः पत्नीमीशानादिक्रमेण तु ॥५०॥
परमान्नेन सम्पूज्य यथाविभवविस्तरम् । रुद्राक्षवस्त्रपूर्वं च वटकापूपकैर्युतम् ॥५१॥
बलिदानं ततः कृत्वा भूरि भोजनमाचरेत् । ततः सम्प्रार्थ्य देवेशं जपं तावत् समापयेत् ॥५२॥
पुरश्चरणमेवं तु कृत्वा मन्त्री भवेन्नरः । पुनश्च पञ्चलक्षेण सर्वपापक्षयो भवेत् ॥५३॥
अतलादि समारभ्य सत्यलोकावधि क्रमात् । पञ्चलक्षजपात् तत्तल्लोकैश्वर्यमवाप्नुयात् ॥५४॥

भगवान् शिव का स्मरण करते हुए पञ्चाक्षर मन्त्र का पाँच लाख जप करे। पद्मासन पर बैठे हुए भालस्थल पर चन्द्रमा एवं गङ्गा को धारण किये हुए, वाम ऊरु पर शक्ति को धारण किये हुए, भृङ्गी आदि महागणों से युक्त, व्याघ्राम्बर धारण किये हुए वर तथा अभयमुद्रा से विराजमान सर्वदा अनुग्रह करनेवाले सदाशिव का स्मरण करे। हृदय में अथवा सूर्यमण्डल में ध्यान कर उनका षोडशोपचार से पूजन करे॥ ३८-४०॥ इस प्रकार शुद्ध कर्म करनेवाला पुरुष पूर्वाभिमुख हो पञ्चाक्षरी विद्या का जप करे। कृष्ण चतुर्दशी को प्रातःकाल का नित्य कर्म समाप्त कर मनोहर और पवित्र स्थान में शुद्ध मन, वाणी और इन्द्रियों को वश में करते हुए पञ्चाक्षर मन्त्र का बारह हजार जप करे॥४१-४२॥ तथा पत्नी सहित उत्तमोत्तम शिवभक्त ब्राह्मणों का वरण करे। उनमें अम्बा सहित सदाशिव स्वरूप एक विशिष्ट गुरु का भी वरण करे॥ ४३॥ ईशान, पुरुष, अघोर, वाम तथा सद्योजात के उपासक पाँच उत्तम ब्राह्मण शिवभक्तों का वरण करे॥ ४४॥ पुनः पूजा के सामग्रियों को एकत्रित कर शिवपूजा प्रारम्भ करे। विधान से शिवपूजा करने के अनन्तर होम का आरम्भ करे॥ ४५॥ अपने शाखा, सूत्र के अनुसार 'अग्नये स्वाहा' यावत् आहुति देने के पश्चात् होमारम्भ करे। स्वयं कपिला गौ के घृत से ग्यारह, एक सौ एक अथवा एक हजार आहुति प्रदान करे। इसी प्रकार उन शिवभक्तों से भी एक सौ आठ आहुति दिलवावे॥ ४६-४७॥ होम के अन्त में गुरु को दक्षिणा देवे अथवा एक गाय एवं एक बैल का जोड़ा प्रदान करे। तदनन्तर ईशानादि स्वरूप उन ब्राह्मणों की अच्छी तरह पूजा करे॥ ४८॥ उनके चरणों को धोकर उनका चरणामृत शिर पर रखे। ऐसा करने से छत्तीस करोड़ तीर्थों में स्नान करने का अनायास फल प्राप्त हो जाता है॥ ४९॥ फिर उन्हें भक्तिपूर्वक कथित दशाङ्ग अन्न का दान करे। परमात्मा की पराशक्ति समझकर उन गुरुपत्नियों का भी तथा ईशानादि क्रम से उन ब्राह्मणों का यथाविभव विस्तार पूर्वक पूजन करे। रुद्राक्ष की माला, वस्त्रपूर्वक वटक तथा अपूप समर्पित करे। फिर बलिदान करके बहुत से लोगों को भोजन करावे। अनन्तर भगवान् सदाशिव की प्रार्थना करते हुए जप की समाप्ति करे॥ ५०-५२॥

इस प्रकार पुरश्चरण करने से पुरुष को मन्त्र की सिद्धि होती है। तथा पुनः पाँच लाख जप करने से सभी प्रकार के पापों का क्षय हो जाता है॥५३॥ तथा पुनः पाँच लाख जप करने से अतल लोक से प्रारम्भ

मध्ये मृतश्चेद् भोगान्ते भूमौ तज्जापको भवेत्। पुनश्च पञ्चलक्षेण ब्रह्मसामीप्यमाप्नुयात् ॥५५॥
पुनश्च पञ्चलक्षेण सारूप्यैश्वर्यमाप्नुयात्। आहत्य शतलक्षेण साक्षाद् ब्रह्मसमो भवेत् ॥५६॥
कार्यब्रह्मण एवं हि सायुज्यं प्रतिपद्य वै। यथेष्टं भोगमाप्नोति तद्ब्रह्म प्रलयावधि ॥५७॥
पुनः कल्पान्तरे वृत्ते ब्रह्मपुत्रः स जायते। पुनश्च तपसा दीप्तः क्रमान् मुक्तो भविष्यति ॥५८॥
पृथ्व्यादिकार्यभूतेभ्यो लोका वै निर्मिताः क्रमात्। पातालादि च सत्यान्तं ब्रह्मलोकाश्चतुर्दश ॥५९॥
सत्यादूर्ध्वं क्षमान्तं वै विष्णुलोकाश्चतुर्दश। क्षमालोके कार्यविष्णुर्वैकुण्ठे वरपत्तने ॥६०॥
कार्यलक्ष्म्या महाभोगिरक्षां कृत्वाऽधितिष्ठति। तदूर्ध्वगाश्च शुच्यन्तां लोकाष्टाविंशतिः स्थिताः॥६१॥
शुचौ लोके तु कैलासे रुद्रो वै भूतहृत्स्थितः। षडुत्तराश्च पञ्चाशदहिंसान्तास्तदूर्ध्वगाः ॥६२॥
अहिंसालोकमास्थाय ज्ञानकैलासके पुरे। कार्येश्वरस्तिरोभावं सर्वान् कृत्वाऽधितिष्ठति ॥६३॥
तदन्ते कालचक्रं हि कालातीतस्ततः परम्। शिवेनाधिष्ठितस्तत्र कालश्चक्रेश्वराह्वयः ॥६४॥
माहिषं धर्ममास्थाय सर्वान् कालेन युञ्जति। असत्यश्चाशुचिश्चैव हिंसा चैवाथ निर्घृणा ॥६५॥
असत्यादि-चतुष्पादः सर्वांशः कामरूपधृक्। नास्तिक्यलक्ष्मीर्दुःसङ्गो वेदबाह्यध्वनिः सदा ॥६६॥
क्रोधसङ्गः कृष्णवर्णो महामहिषवेषवान्। तावान् महेश्वरः प्रोक्तस्तिरोधास्तावदेव हि ॥६७॥
तदर्वाक् कर्मभोगो हि तदूर्ध्वं ज्ञानभोगकम्। तदर्वाक् कर्ममाया हि ज्ञानमाया तदूर्ध्वकम् ॥६८॥
मा लक्ष्मीः कर्मभोगो वै याति मायेति कथ्यते। मा लक्ष्मीर्ज्ञानभोगो वै याति मायेति कथ्यते ॥६९॥
तदूर्ध्वं नित्यभोगो हि तदर्वाङ् नश्वरं विदुः। तदर्वाक् च तिरोधानं तदूर्ध्वं न तिरोधनम् ॥७०॥

कर सत्यलोक पर्यन्त तत्तल्लोक के ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ॥५४॥ यदि इन पुरश्चरण के मध्य में ही मृत्यु हो जावे तो जप के पुण्यफल भोगने के पश्चात् पुनः पृथ्वी में जन्म लेकर वह पुनः मन्त्रानुष्ठान में प्रवृत्त हो जाता है। पुनः पाँच लाख जप करने से ब्रह्मदेव की समीपता प्राप्त होती है ॥५५॥ फिर पाँच लाख जप करने से सारूप्य ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। इस प्रकार एक करोड़ जप करने से वह साक्षात् ब्रह्मतुल्य हो जाता है।॥५६॥ और कार्य ब्रह्म का सायुज्य प्राप्त कर ब्रह्मदेव के प्रलयपर्यन्त यथेष्ट भोग प्राप्त करता है ॥५७॥ दूसरे कल्प में वह ब्रह्मदेव का पुत्र होता है। फिर तपस्या से दीप्तिमान् हो मुक्ति को प्राप्त हो जाता है ॥ ५८ ॥

इस लोक की सृष्टि क्रमशः पृथ्व्यादि कार्यभूतों से हुई है। पाताल से लेकर सत्यलोक पर्यन्त चौदह लोक परिगणित हैं ॥ ५९ ॥ फिर सत्यलोक से ऊपर वैकुण्ठ लोकपर्यन्त चौदह विष्णुलोक हैं। क्षमालोक में जहाँ वैकुण्ठ नामक नगर है, वहाँ कार्य-विष्णु का निवास है ॥ ६० ॥ वहाँ शेष पर स्थित होकर वे लक्ष्मी के साथ इन लोकों की रक्षा करते रहते हैं। उसके ऊपर शुचि लोकपर्यन्त अट्ठाईस लोक हैं ॥ ६१ ॥ उस शुचिलोक में जहाँ कैलास पर्वत है, प्राणियों का संहार करनेवाले रुद्र स्थित हैं, उसके ऊपर अहिंसा-लोकपर्यन्त छप्पन लोक स्थित हैं ॥ ६२ ॥ उस अहिंसालोक में जहाँ ज्ञान कैलासपुर है, वहाँ कार्येश्वर शिव सबका तिरोभाव कर स्थित हैं ॥ ६३ ॥ उसके बाद कालचक्र तथा उसके बाद कालातीत है। वहाँ पर श्रीशिवजी ने कालचक्रेश्वर को अधिष्ठित किया है ॥ ६४ ॥ वे कालचक्रेश्वर महिष के समान रूप धारण कर सभी को कालधर्म से युक्त करते हैं। असत्य, अशुचि, हिंसा और निर्दय ये उस महिष कालचक्रेश्वर के चार पाद हैं, जो कामरूपधारी शिव के अंश हैं। वहाँ नास्तिक्य रूपधारिणी महालक्ष्मी, दुःसंग के साथ निवास करती हैं एवं बाह्य ध्वनि हुआ करती है। क्रोध के साथ कृष्ण रूपवाले महामहिष का रूप धारण कर कालचक्रेश्वर स्थित रहते हैं। इनके अधिपति महेश्वर हैं और वही सबका तिरोधान करनेवाले हैं ॥ ६५-६७ ॥ यहीं तक कर्मभोग चलता है, इसके ऊपर ज्ञानभोग लोक है, इसके आगे कर्ममाया, उसके आगे ज्ञानमाया का निवास है ॥ ६८ ॥

मा लक्ष्मी जहाँ कर्म भोग रूप से प्राणियों को प्राप्त होती हैं, उसे माया कहते हैं। अथवा मा लक्ष्मी जहाँ ज्ञानभोग रूप से प्राणियों को प्राप्त होती हैं, उसे भी माया कहते हैं ॥ ६९ ॥ उसके ऊपर नित्यभोग

तदर्वाक् पाशबन्धो हि तदूर्ध्वं न हि बन्धनम् । तदर्वाक्परिवर्तन्ते काम्यकर्मानुसारिणः ॥७१॥
निष्कामकर्मभोगस्तु तदूर्ध्वं परिकीर्तितः । तदर्वाक् परिवर्तन्ते विन्दुपूजापरायणाः ॥७२॥
तदूर्ध्वं हि व्रजन्त्येव निष्कामा लिङ्गपूजकाः । तदर्वाक्परिवर्तन्ते शिवान्यसुरपूजकाः ॥७३॥
शिवैकनिरता ये च तदूर्ध्वं संप्रयान्ति ते । तदूर्वाग् जीवकोटिः स्यात्तदूर्ध्वं परकोटिका ॥७४॥
सांसारिकास्तदर्वाक् च मुक्ताः खलु तदूर्ध्वगाः । तदर्वाक् परिवर्तन्ते प्राकृतद्रव्यपूजकाः ॥७५॥
तदूर्ध्वं हि व्रजन्त्येते पौरुषद्रव्यपूजकाः । तदर्वाक्छक्तिलिङ्गं तु शिवलिङ्गं तदूर्ध्वकम् ॥७६॥
तदर्वागावृतं लिङ्गं तदूर्ध्वं हि निरावृति । तदर्वाक् कल्पितं लिङ्गं तदूर्ध्वं वै न कल्पितम् ॥७७॥
तदर्वाग् बाह्यलिङ्गस्यादन्तरङ्गं तदूर्ध्वकम् । तदर्वाक्छक्तिलोका हि शतं वै द्वादशाधिकम् ॥७८॥
तदर्वाग् बिन्दुरूपं हि नादरूपं तदुत्तरम् । तदर्वाक् कर्मलोकस्तु तदूर्ध्वं ज्ञानलोककः ॥७९॥
नमस्कारस्तदूर्ध्वं हि महाहङ्कारनाशनः । जनिजं वै तिरोधानं नानिषिद्धयायते इति ॥८०॥
ज्ञानशब्दार्थ एवं हि तिरोधाननिवारणात् । तदर्वाक्परिवर्तन्ते ह्याधिभौतिकपूजकाः ॥८१॥
आध्यात्मिकार्चका एव तदूर्ध्वं संप्रयान्ति वै । तावद् वै वेदिभागं तन्महालोकात्मलिङ्गके ॥८२॥
प्रकृत्याद्यष्टबन्धोऽपि वेद्यन्ते संप्रतिष्ठितः । एवमेतादृशं ज्ञेयं सर्वं लौकिक-वैदिकम् ॥८३॥
अधर्ममहिषारूढं कालचक्रं तरन्ति ते । सत्यादिधर्मयुक्ता ये शिवपूजापराश्च ये ॥८४॥
तदूर्ध्वं वृषभो धर्मो ब्रह्मचर्यस्वरूपधृक् । सत्यादिपादयुक्तस्तु शिवलोकाग्रतः स्थितः ॥८५॥

नामक लोक है, उसके पहले के सभी लोक नश्वर हैं, जहाँ प्राणियों का तिरोधान होता रहता है। इसके बाद तिरोधान नहीं होता ॥ ७० ॥ यहीं तक प्राणियों का पाशबन्ध होता है, उसके आगे पाशबन्ध नहीं होता। यहाँ तक काम्यकर्म वाले प्राणी जन्म-मरण का चक्कर काटते रहते हैं ॥ ७१ ॥ उसके ऊपर निष्काम करने वालों का लोक है। उसके बाद विन्दुपूजा करने वाले लोग लौटकर पुनः आते हैं ॥ ७२ ॥ जो निष्काम होकर शिवलिङ्ग का पूजन करते हैं, वे उससे भी ऊपर वाले लोक में जाते हैं। उसके बाद शिव के अतिरिक्त अन्य देवताओं का पूजन करने वाले जन्म-मरण का चक्कर काटते रहते हैं ॥ ७३ ॥ जो केवल शिव की अनन्य मन से पूजा करते हैं, वे उससे भी ऊपर के लोक में जाते हैं। पहले जीवकोटि है अनन्तर ईश्वर कोटि है ॥ ७४ ॥ यहाँ तक सांसारिक लोक है। उसके ऊपर मुक्त लोगों का निवास है। उसके बाद प्राकृत द्रव्य की पूजा करने वाले सुख-दुःख के चक्कर में पड़े रहते है ॥७५॥ उसके ऊपर पौरुष द्रव्य के पूजक जाते हैं। इसके बाद शक्ति लिङ्ग है, पश्चात् शिवलिङ्ग है ॥ ७६ ॥ उसके बाद लिङ्ग माया के आवरण से आवृत्त है, उसके ऊपर माया के आवरण से हीन निराकार शिवलिङ्ग का निवास है। उसके बाद सगुण लिङ्ग तथा अनन्तर निर्गुण लिङ्ग है ॥ ७७ ॥ उस लिङ्ग के बाद बाह्य आधिभौतिक लिङ्ग तदनन्तर अन्तरङ्ग आध्यात्मिक लिङ्ग है। उसके बाद एक सौ बारह शक्ति लोक है ॥ ७८ ॥ पुनः बिन्दुरूप, उसके ऊपर नादरूप है। उसके बाद कर्मलोक एवं ज्ञानलोक है ॥ ७९ ॥ उसके ऊपर नमस्कार लोक है, जो मद एवं अहङ्कार का नाशक है। जो जन्मजात अन्धकार को रोककर फैलता है, अर्थात् अन्धकार का निवारण करता है, वही ज्ञानशब्द का अर्थ है। उसके बाद आधिभौतिक पूजक जाकर लौटते रहते है ॥८०-८१॥ आध्यात्मिक पूजा वाले उसके ऊपर जाते हैं, उस महालोकात्मक लिङ्ग पर्यन्त वेदी (यज्ञ) का भाग कहा गया है ॥ ८२ ॥ प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार तथा पञ्चतन्मात्रा ये आठ बन्ध, उस वेदी के अन्त तक संप्रतिष्ठित हैं। इस प्रकार से लौकिक एवं वैदिक लिङ्ग को जानना चाहिए ॥ ८३ ॥

जो सत्य, अहिंसा आदि धर्म का आचरण करते हैं एवं शिव की पूजा करते हैं, वे अधर्मरूपी महिष पर चढ़े हुए कालचक्र के पार चले जाते हैं ॥ ८४ ॥ इसके ऊपर वृषभरूपी धर्म का लोक है। जो ब्रह्मचर्य धारण कर ब्रह्मचारी के रूप में स्थित है। इसके सत्य, धर्म, अहिंसा तथा दया ये चार पैर हैं और यह शिवलोक के आगे स्थित है ॥ ८५ ॥ इस धर्मरूपी वृषभ का क्षमा सींग है, शम श्रोत्र है और यह वेदध्वनि

क्षमाशृङ्गः शमश्रोत्रो वेदध्वनिविभूषितः । आस्तिक्यचक्षु-र्निश्वास-गुरुबुद्धिमना वृषः ॥८६॥
क्रियादिवृषभा ज्ञेयाः कारणादिषु सर्वदा । तं क्रियावृषभं धर्मं कालातीतोऽधितिष्ठति ॥८७॥
ब्रह्म-विष्णु-महेशानां स्वस्वायुर्दिनमुच्यते । तदूर्ध्वं न दिनं रात्रिर्न जन्म-मरणादिकम् ॥८८॥
पुनः कारणसत्यान्ता कारणब्रह्मणस्तथा । गन्धादिभ्यस्तु भूतेभ्यस्तदूर्ध्वं निर्मिताः सदा ॥८९॥
सूक्ष्मगन्धस्वरूपा हि स्थिता लोकाश्चतुर्दश । पुनः कारणविष्णोर्वै स्थिता लोकाश्चतुर्दश ॥९०॥
पुनः कारणरुद्रस्य लोकाष्टाविंशका मताः । पुनश्च कारणेशस्य षट्पञ्चाशत्तदूर्ध्वगाः ॥९१॥
ततः परं ब्रह्मचर्यलोकाख्यं शिवसम्मतम् । तत्रैव ज्ञानकैलासे पञ्चावरणसंयुते ॥९२॥
पञ्चमण्डलसंयुक्तं पञ्चब्रह्मकलान्वितम् । आदिशक्तिसमायुक्तमादिलिङ्गं तु तत्र वै ॥९३॥
शिवालयमिदं प्रोक्तं शिवस्य परमात्मनः । परशक्त्या समायुक्तस्तत्रैव परमेश्वरः ॥९४॥
सृष्टिः स्थितिश्च संहारस्तिरोभावोऽप्यनुग्रहः । पञ्चकृत्यप्रवीणोऽसौ सच्चिदानन्दविग्रहः ॥९५॥
ध्यानधर्मः सदा यस्य सदानुग्रहतत्परः । समाध्यासनमासीनः स्वात्मारामो विराजते ॥९६॥
तस्य संदर्शनं साध्यं कर्मध्यानादिभिः क्रमात् । नित्यादिकर्मयजनाच्छिवकर्ममतिर्भवेत् ॥९७॥
क्रियादिशिवकर्मभ्यः शिवज्ञानं प्रसाधयेत् । तद्दर्शनगताः सर्वे मुक्ता एव न संशयः ॥९८॥
मुक्तिरात्मस्वरूपेण स्वात्मारामत्वमेव हि । क्रिया-तपो-जप-ज्ञान-ध्यान-धर्मेषु सुस्थितः ॥९९॥
शिवस्य दर्शनं लब्ध्वा स्वात्मारामत्वमेव हि । यथा रविः स्वकिरणादशुद्धिमपनेष्यति ॥१००॥
कृपाविचक्षणः शम्भुरज्ञानमपनेष्यति । अज्ञानविनिवृत्तौ तु शिवज्ञानं प्रवर्तते ॥१०१॥
शिवज्ञानात् स्व-स्वरूपमात्मारामत्वमेष्यति । आत्मारामत्वसंसिद्धौ कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥१०२॥

से विभूषित आस्तिक्य रूपी आँख से देखता है, गुरुभक्ति रूप निःश्वास लेता रहता है ॥ ८६ ॥ धर्म का आचरण ही उसकी क्रिया है, जो सभी कारणों में धर्म रूप से स्थित है। उस क्रिया वृषभरूपी धर्म पर कालातीत परमात्मा बैठा हुआ है ॥ ८७ ॥ ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश की जितनी आयु है, उतना ही इस कालातीत परमात्मा का एक दिन है। उसके बाद न दिन है न रात्रि है, न जन्म है और न तो मरण ही है ॥ ८८ ॥ पुनः कारण ब्रह्म का कारण सत्य पर्यन्त लोक है, जो गन्धादि पञ्चमहाभूतों से ऊपर निर्मित है ॥ ८९ ॥ जहाँ सूक्ष्म गन्ध रूप से चौदह लोक स्थित हैं। इसके बाद कारण विष्णु का चौदह लोक है ॥९०॥ फिर कारण रुद्र के अट्ठाईस लोक हैं। फिर उसके ऊपर कारण ईश के छप्पन लोक हैं ॥९१॥ उसके आगे शिवसम्मत ब्रह्मचर्य लोक है। वहीं पर पञ्चावरण संयुक्त ज्ञान कैलास पर पञ्चमण्डल संयुक्त पञ्चब्रह्म कला सहित आदि शक्ति से युक्त आदि लिङ्ग विराजता है ॥ ९२-९३ ॥ यही परमात्मा शिव का शिवालय है। यहाँ ही पराशक्ति के सहित परमेश्वर स्थिर है ॥ ९४ ॥ भगवान् सदाशिव सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव तथा अनुग्रह कार्य में महापटु हैं। ये ही सच्चिदानन्द स्वरूप हैं ॥९५॥ जो लोग निरन्तर उनके ध्यान रूपी धर्म में लगे रहते हैं उनके ऊपर वे सदैव अनुग्रह करते हैं। वे समाधि की आसन पर बैठे हुए तथा आत्मरमण करने वाले हैं ॥ ९६ ॥ क्रमशः कर्म करते हुए एवं ध्यान करने से ही उनका दर्शन साध्य है। नित्यकर्म तथा नित्य यजन करने से शिवविषयक कर्म करने की बुद्धि होती है ॥ ९७ ॥ क्रियादि शिव कर्मों से शिवविषयक ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। शिव के दर्शन मात्र से ही मुक्ति हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ९८ ॥ आत्मस्वरूप से आत्मा में रमण करने का नाम मुक्ति है। वह मुक्ति क्रिया, तप, जप, ज्ञान, ध्यान तथा धर्म में प्रतिष्ठित है ॥ ९९ ॥ शिव के दर्शन मात्र से ही पुरुष स्वात्माराम बन जाता है। जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से अशुद्धि दूर करते हैं ॥ १०० ॥ उसी प्रकार कृपा-विचक्षण सदाशिव अज्ञान को भी दूर करते हैं। जब अज्ञान की निवृत्ति हो जाती है तभी शिवविषयक ज्ञान प्राप्त होता है ॥ १०१ ॥ शिवविषयक ज्ञान प्राप्त होने पर स्व-स्वरूप आत्माराम प्राप्त

पुनश्च शतलक्षेण ब्रह्मणः पदमाप्नुयात् । पुनश्च शतलक्षेण विष्णोः पदमवाप्नुयात् ॥१०३॥
पुनश्च शतलक्षेण रुद्रस्य पदमाप्नुयात् । पुनश्च शतलक्षेण ऐश्वर्यं पदमाप्नुयात् ॥१०४॥
पुनश्चैवंविधेनैव जपेन सुसमाहितः । शिवलोकादिभूतं हि कालचक्रमवाप्नुयात् ॥१०५॥
कालचक्रं पञ्चचक्रमेकैकेन क्रमोत्तरे । सृष्टिमोहौ ब्रह्मचक्रं भोगमोहौ तु वैष्णवम् ॥१०६॥
कोपमोहौ रौद्रचक्रं भ्रमणं चैश्वरं विदुः । शिवचक्रं ज्ञानमोहौ पञ्चचक्रं विदुर्बुधाः ॥१०७॥
पुनश्च दशकोटया हि कारणब्रह्मणः पदम् । पुनश्च दशकोटया हि तत्पदैश्वर्यमाप्नुयात् ॥१०८॥
एवं क्रमेण विष्ण्वादेः पदं लब्ध्वा महौजसः । क्रमेण तत्पदैश्वर्यं लब्ध्वा चैव महात्मनः ॥१०९॥
शतकोटिमनुं जप्त्वा पञ्चोत्तरमतन्द्रितः । शिवलोकमवाप्नोति पञ्चमावरणाद् बहिः ॥११०॥
राजसं मण्डपं तत्र नन्दीसंस्थानमुत्तमम् । तपोरूपश्च वृषभस्तत्रैव परिदृश्यते ॥१११॥
सद्योजातस्य तत्स्थानं पञ्चमावरणं वरम् । वामदेवस्य च स्थानं चतुर्थावरणं पुनः ॥११२॥
अघोरनिलयं पश्चात्तृतीयावरणं परम् । पुरुषस्यैव साम्बस्य द्वितीयावरणं शुभम् ॥११३॥
ईशानस्य परस्यैव प्रथमावरणं ततः । ध्यानधर्मस्य च स्थानं पञ्चमं मण्डपं ततः ॥११४॥
बलिनाथस्य संस्थानं तत्र पूर्णामृतप्रदम् । चतुर्थं मण्डपं पश्चाच्चन्द्रशेखरमूर्तिमत् ॥११५॥
सोमस्कन्दस्य च स्थानं तृतीयं मण्डपं परम् । द्वितीयं मण्डपं नृत्यमण्डपं प्राहुरास्तिकाः ॥११६॥
प्रथमं मूलमायायाः स्थानं तत्रैव शोभनम् । ततः परं गर्भगृहं लिङ्गस्थानं परं शुभम् ॥११७॥
नन्दिसंस्थानतः पश्चान्न विदुः शिववैभवम् । नन्दीश्वरो बहिस्तिष्ठन् पञ्चाक्षरमुपासते ॥११८॥
एवं गुरुक्रमाल्लब्धं नन्दीशाच्च मया पुनः । ततः परं स्वसंवेद्यं शिवेनैवानुभावितम् ॥११९॥

हो जाता है। जब पुरुष आत्माराम को प्राप्त करता है तो कृतकृत्य हो जाता है॥ १०२॥ सौ लाख जपने से ब्रह्मपद तथा पुनः सौ लाख जपने से विष्णुपद प्राप्त होता है॥ १०३॥ फिर सौ लाख जप करने से रुद्रपद की प्राप्ति होती है। पुनः सौ लक्ष जप से ऐश्वर्यपद प्राप्त होता है॥ १०४॥ इसी प्रकार सावधानी से सौ लाख जप करने से शिवलोक के आदिभूत कालचक्र को प्राप्त करता है॥ १०५॥ यह कालचक्र पाँच चक्रोंवाला है, जो क्रमशः एक-एक के बाद में स्थित है। सृष्टि और मोहवाला ब्रह्मचक्र है। भोग एवं मोह से युक्त विष्णुचक्र है॥ १०६॥ कोप-मोह से युक्त रौद्रचक्र है, भ्रमण से युक्त ईश्वरचक्र है, ज्ञान, मोह से युक्त शिवचक्र है, इन पाँच चक्रों को बुद्धिमान् लोग कहते हैं॥ १०७॥ दश करोड़ जप करने के कारण ब्रह्म की प्राप्ति होती है। पुनः दश करोड़ जप से ऐश्वर्य युक्त तत्पद की प्राप्ति होती है॥ १०८॥

इस प्रकार क्रम से शक्तिशाली महाविष्णु का पद प्राप्त कर पुनः महात्माओं के ऐश्वर्य को प्राप्त करता है॥ १०९॥ सावधानी से एक सौ पाँच करोड़ मन्त्र का जप करने के पश्चात् पाँच आवरण से बाहर शिवलोक को प्राप्त करता है॥ ११०॥ उस शिवलोक में राजसमण्डप है, जहाँ नन्दीश्वर का निवास है। तप रूप वृषभ वहीं पर दिखाई पड़ता है॥ १११॥ वहीं पर पाँच आवरणों से परे सद्योजात शिव का स्थान है। चौथे आवरण में वामदेव का स्थान है॥ ११२॥ तीसरे आवरण से परे अघोर का स्थान है। साम्ब सदाशिव का स्थान दूसरे आवरण से परे है॥११३॥ प्रथमावरण से परे ईशान शिव का स्थान है। फिर पाँचवाँ मण्डप है, जहाँ ध्यान और धर्म का निवास है॥११४॥ इसके बाद चतुर्थ मण्डप में बलिनाथ का स्थान है, जो पूर्णामृत प्रदान करते हैं, और चन्द्रशेखर की मूर्ति से युक्त हैं॥ ११५॥ तृतीय मण्डप में सोम तथा स्कन्द का निवास है। अनन्तर द्वितीय मण्डप है, जिसे आस्तिक लोग नृत्यमण्डप कहते हैं॥ ११६॥

प्रथम मण्डप में मूल माया का अत्यन्त शोभनीय स्थान है। उसके परे गर्भगृह है, जिसमें शिवजी लिङ्गरूप से स्थित हैं॥ ११७॥ नन्दी स्थान के बाद शिव के वैभव को कोई नहीं जानता। नन्दीश्वर गर्भगृह के बाहर स्थित होकर शिव के पञ्चाक्षर मन्त्र की उपासना करते हैं॥ ११८॥ इस प्रकार नन्दीश्वर

शिवस्य कृपया साक्षाच्छिवलोकस्य वैभवम् । विज्ञातुं शक्यते सर्वैर्नान्यथेत्याहुरास्तिकाः ॥१२०॥
एवं क्रमेण मुक्ताः स्युर्ब्राह्मणा वै जितेन्द्रियाः । अन्येषां च क्रमं वक्ष्ये. गदतः शृणुतादरात् ॥१२१॥
गुरूपदेशाज्जाप्यं वै ब्राह्मणानां नमोऽन्तिकम् । पञ्चाक्षरं पञ्चलक्षमायुष्यं प्रजपेद् विधिः ॥१२२॥
स्त्रीत्वापनयनार्थं तु पञ्चलक्षं जपेत् पुनः । मन्त्रेण पुरुषो भूत्वा क्रमान् मुक्तो भवेद् बुधः ॥१२३॥
क्षत्रियः पञ्चलक्षेण क्षत्रत्वमपनेष्यति । पुनश्च पञ्चलक्षेण क्षत्रियो ब्राह्मणो भवेत् ॥१२४॥
मन्त्रसिद्धिर्जपाच्चैव क्रमान् मुक्तो भवेन्नरः । वैश्यस्तु पञ्चलक्षेण वैश्यत्वमपनेष्यति ॥१२५॥
पुनश्च पञ्चलक्षेण मन्त्रक्षत्रिय उच्यते । पुनश्च पञ्चलक्षेण क्षत्रत्वमपनेष्यति ॥१२६॥
पुनश्च पञ्चलक्षेण मन्त्रब्राह्मण उच्यते । शूद्रश्चैव नमोऽन्तेन पञ्चविंशतिलक्षतः ॥१२७॥
मन्त्रविप्रत्वमापद्य पश्चाच्छुद्धो भवेद् द्विजः । नारी वाऽथ नरो वाऽथ ब्राह्मणो वाऽन्य एव वा ॥१२८॥
नमोऽन्तं वा नमः पूर्वमातुरः सर्वदा जपेत् । ततः स्त्रीणां तथैवोह्य गुरुर्निर्देशयेत् क्रमात् ॥१२९॥
साधकः पञ्चलक्षान्ते शिवप्रीत्यर्थमेव हि । महाभिषेकनैवेद्यं कृत्वा भक्तांश्च पूजयेत् ॥१३०॥
पूजया शिवभक्तस्य शिवः प्रीततरो भवेत् । शिवस्य शिवभक्तस्य भेदो नास्ति शिवो हि सः ॥१३१॥
शिवस्वरूपमन्त्रस्य धारणाच्छिव एव हि । शिवभक्तशरीरे हि शिवे तत्परमो भवेत् ॥१३२॥
शिवभक्ताः क्रियाः सर्वा वेदसर्वक्रियां विदुः । यावद्यावच्छिवं मन्त्रं येन जप्तं भवेत् क्रमात् ॥१३३॥
तावद् वै शिवसान्निध्यं तस्मिन् देहे न संशयः । देवीलिङ्गं भवेद्रूपं शिवभक्तस्त्रियास्तथा ॥१३४॥

और सनत्कुमार के संवाद को मैंने अपनी गुरुपरम्परा से स्वयं जाना है ॥ ११९ ॥ इसके बाद का रहस्य स्वसंवेद्य है, जिसे स्वयं शिवजी ही अनुभव करते हैं ॥१२०॥ आस्तिक लोग कहते हैं कि, जिस पर शिवजी की कृपा हो वही शिव के अनन्त ऐश्वर्य का साक्षात्कार कर सकता है। अन्यथा शिव का ऐश्वर्य अचिन्त्य है ॥ १२० ॥ इस प्रकार जान लेने पर जितेन्द्रिय ब्राह्मण मुक्त हो जाते हैं। अब आपलोग दूसरे क्षत्रियादिकों के क्रम को मुझसे आदरपूर्वक सुनिए ॥ १२१ ॥

ब्राह्मण को गुरु के द्वारा उपदेश लेकर आयु की कामना हो, तो इस पञ्चाक्षर मन्त्र का पाँच लाख विधानपूर्वक जप करे ॥ १२२ ॥ यदि स्त्री, स्त्रीत्व के नाश के लिए पाँच लाख जप करे तो वह क्रमशः बुद्धिमान् पुरुष का जन्म ग्रहण कर अनन्तर मुक्त हो जाती है ॥ १२३ ॥ क्षत्रिय पाँच लाख जप कर क्षत्रियत्व को दूर करता है तथा पुनः पाँच लाख जप करने से ब्राह्मण कुल में जन्म लेता है ॥ १२४ ॥ पुनः उतने जप से मन्त्रसिद्धि एवं पुनः पाँच लाख जप करने से मुक्त हो जाता है। वैश्य पाँच लाख जप कर वैश्यत्व को छोड़ देता है ॥ १२५ ॥ फिर पाँच लाख जप करने से मन्त्रक्षत्रिय, फिर पाँच लाख जप करने से वह क्षत्रियत्व से छूट जाता है ॥ १२६ ॥ फिर पाँच लाख जप करने से वह मन्त्रब्राह्मण कहलाता है। इसी प्रकार शूद्र भी अन्त में 'नमः' लगाकर मन्त्र का जप करे तो मन्त्र ब्राह्मणता को प्राप्त कर शुद्ध हो जाता है। चाहे स्त्री हो या पुरुष, ब्राह्मण हो अथवा अन्य कोई ही क्यों न हो, पञ्चाक्षर मन्त्र का जप करने से सभी शुद्ध हो जाते हैं ॥ १२७-१२८ ॥

आतुर को चाहिए कि वह 'नमः' को आदि में अथवा अन्त में लगाकर सर्वदा जप करे। गुरु को चाहिए कि वह स्त्री तथा शूद्र को जैसा मन्त्र का स्वरूप हो उसी प्रकार का उपदेश देवे। किन्तु उसमें प्रणव न लगावे ॥ १२९ ॥ साधक पाँच लाख जप करने के पश्चात् शिवजी की प्रीति के निमित्त महा अभिषेक तथा महानैवेद्य लगावे। तदनन्तर शिवभक्तों का पूजन करे ॥ १३० ॥ शिवभक्तों की पूजा से शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं। क्योंकि, शिव और शिवभक्तों में कोई भेद नहीं है ॥ १३१ ॥ शिव के स्वरूप तथा शिवमन्त्र के धारण से शिवभक्त शिव ही है। शिवभक्त के शरीर में शिव का निवास होता है ॥ १३२ ॥ शिवभक्त वेदों में कही गई सारी क्रियाओं को जानते हैं। जो पुरुष जिस-जिस क्रम से जितने-जितने शिवमन्त्र का जप करता है, उसके शरीर में उतना-उतना शिव का सन्निधान बढ़ता जाता है। यदि स्त्री शिव का भक्त बनकर शिवमन्त्र का जप करे, तो वह देवी लिङ्ग बन जाती है ॥ १३३-१३४ ॥

यावन्मन्त्रं जपेद् देव्यास्तावत् सान्निध्यमस्ति हि ।
शिवं सम्पूजयेद् धीमान् स्वयं वै शब्दरूपभाक् ॥१३५॥
स्वयं चैव शिवो भूत्वा परां शक्तिं प्रपूजयेत् । शक्तिं बेरं च लिङ्गं च ह्यालेख्या मायया यजेत् ॥१३६॥
शिवलिङ्गं शिवं मत्वा स्वात्मानं शक्तिरूपकम् । शक्तिलिङ्गं च देवीं च मत्वा स्वं शिवरूपकम् ॥१३७॥
शिवलिङ्गं नादरूपं बिन्दुरूपं तु शक्तिकम् । उपप्रधानभावेन अन्योन्यासक्तलिङ्गकम् ॥१३८॥
पूजयेच्च शिवं शक्तिं स शिवो मूलभावनात् । शिवभक्ताञ्छिवमन्त्ररूपकाञ्छिवरूपकान् ॥१३९॥
षोडशैरुपचारैश्च पूजयेदिष्टमाप्नुयात् । येन शुश्रूषणाद्यैश्च शिवभक्तस्य लिङ्गिनः ॥१४०॥
आनन्दं जनयेद् विद्वाञ्छिवः प्रीततरो भवेत् । शिवभक्तान् सपत्नीकान् पत्न्या सह सदैव तंत् ॥१४१॥
पूजयेद् भोजनाद्यैश्च पञ्च वा दश वा शतम् । धने देहे च मन्त्रे च भावनायामवञ्चकः ॥१४२॥
शिवशक्तिस्वरूपेण न पुनर्जायते भुवि । नाभेरधो ब्रह्मभागमाकण्ठं विष्णुभागकम् ॥१४३॥
मुखं लिङ्गमिति प्रोक्तं शिवभक्तशरीरकम् । मृतान् दाहादियुक्तान् वा दाहादिरहितान् मृतान् ॥१४४॥
उद्दिश्य पूजयेदादिपितरं शिवमेव हि । पूजां कृत्वाऽऽदिमातुश्च शिवभक्तांश्च पूजयेत् ॥१४५॥
पितृलोकं समासाद्य क्रमान् मुक्तो भवेन् मृतः । क्रियायुक्तदशेभ्यश्च तपोयुक्तो विशिष्यते ॥१४६॥
तपोयुक्तशतेभ्यश्च जपयुक्तो विशिष्यते । जपयुक्तसहस्रेभ्यः शिवज्ञानी विशिष्यते ॥१४७॥
शिवज्ञानिषु लक्षेषु ध्यानयुक्तो विशिष्यते । ध्यानयुक्तेषु कोटिभ्यः समाधिस्थो विशिष्यते ॥१४८॥
उत्तरोत्तरवैशिष्ट्यात् पूजायामुत्तरोत्तरम् । फलं वैशिष्ट्यरूपं च दुर्विज्ञेयं मनीषिभिः ॥१४९॥

और वे जितना ही मन्त्र का जप करती हैं, उनके शरीर में उतने-उतने देवी का सान्निध्य होता जाता है। जो बुद्धिमान् शिव के मन्त्र का जप करते हैं। वे शब्द रूप परमात्मा का भजन करने के कारण शिवरूप धारण कर पुनः पराशक्ति का पूजन करें। पश्चात् महाशक्ति, अनन्तर शिवप्रतिमा तथा शिवलिङ्ग की मूर्ति बनाकर माया के मन्त्रों से यजन करें ॥ १३५-१३६ ॥

शिवलिङ्ग को शिव समझे और अपने को शक्ति का स्वरूप समझे अथवा देवी को शक्तिलिङ्ग और अपने को शिव समझकर पूजन करे ॥ १३७ ॥ अथवा शिवलिङ्ग को नाद का रूप, शक्ति को बिन्दुरूप मानकर पूजन करे। दोनों को अन्योन्यासक्त लिङ्ग रूप जानकर एक को प्रधान दूसरे को तदाश्रित मानकर पूजन करे ॥ १३८ ॥ शिव की ही मूल रूप से भावना करते हुए शिवशक्ति का पूजन करे। शिवमन्त्र स्वरूप, शिवशरीर स्वरूप शिवभक्तों की षोडशोपचार के पूजन द्वारा इष्ट फल की प्राप्ति होती है। शिव का स्वरूप धारण करनेवाले शिवभक्तों की शुश्रूषा से विद्वान् को आनन्द की प्राप्ति तथा शिव की प्रसन्नता प्राप्त होती है ॥१३९-१४१॥ पाँच, दश अथवा सौ संख्या में सपत्नीक शिवभक्तों की सदैव भोजनादि से पूजा करे। शिवभक्तों को धन देने में, उनके शरीर में तथा शिवमन्त्र में कभी भी वञ्चना न करे ॥ १४२ ॥ तब वह शिवशक्ति स्वरूप होकर पुनः पृथ्वी में जन्म नहीं लेता। शिवभक्त के नाभि के नीचे का भाग ब्रह्मा, नाभि से ऊपर का कण्ठपर्यन्त भाग विष्णु तथा शिवभक्त का मुख शिवलिङ्ग स्वरूप है। इस प्रकार का विचार रखे। मर जाने के अनन्तर जिनका दाह संस्कार हुआ हो अथवा जो मृत होकर दाहरहित हों उन पितरों के उद्देश्य से शिवजी को आदि पितर का स्वरूप समझकर उनकी पूजा करे। फिर शिवशक्ति को आदि माता समझकर उनका पूजन करे। अनन्तर शिवभक्तों का पूजन करे ॥ १४३-१४५ ॥ ऐसा पुरुष मर जाने पर पितृलोक को प्राप्त कर फिर मुक्त हो जाता है। दश क्रियायुक्त योगियों की अपेक्षा एक तपोयुक्त श्रेष्ठ है ॥ १४६ ॥ सौ तपोयुक्त से एक जपयुक्त श्रेष्ठ है और सहस्र जपयुक्त से एक शिवज्ञानी श्रेष्ठ है ॥ १४७ ॥ लाख शिवज्ञानियों की अपेक्षा एक ध्यानी श्रेष्ठ है और करोड़ ध्यानियों से एक समाधिस्थ श्रेष्ठ है ॥ १४८ ॥ इस प्रकार उत्तरोत्तर विशिष्ट होने से पूजा-फल में भी विशिष्टता होती है। जिसे

तस्माद् वै शिवभक्तस्य महिमानं वेत्ति को नरः। शिवशक्त्योः पूजनं च शिवभक्तस्य पूजनम् ॥१५०॥
कुरुते यो नरो भक्त्या स शिवः शिवमेधते। य इमं पठतेऽध्यायमर्थवद् वेदसम्मतम् ॥१५१॥
शिवज्ञानी भवेद् विप्रः शिवेन सह मोदते। श्रावयेच्छिभक्तांश्च विशेषज्ञो मुनीश्वराः ॥१५२॥
शिवप्रसादसिद्धिः स्याच्छिव्स्य कृपया बुधाः ॥१५३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां प्रणवपञ्चाक्षरमन्त्रमाहात्म्य-वर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

(बन्ध-मोक्ष रूप शिवलिङ्ग के माहात्म्य का वर्णन)

ऋषय ऊचुः

बन्धमोक्षस्वरूपं हि ब्रूहि सर्वार्थवित्तम ! ॥

सूत उवाच

बन्धमोक्षं तथोपायं वक्ष्येऽहं शृणुतादरात् ॥ १ ॥
प्रकृत्याद्यष्टबन्धेन बद्धो जीवः स उच्यते। प्रकृत्याद्यष्टबन्धेन निर्मुक्तो मुक्त उच्यते ॥ २ ॥
प्रकृत्यादिवशीकारो मोक्ष इत्युच्यते स्वतः। बद्धजीवस्तु निर्मुक्तो मुक्तजीवः स कथ्यते ॥ ३ ॥
प्रकृत्यग्रे ततो बुद्धिरहङ्कारो गुणात्मकः। पञ्चतन्मात्रमित्येतत् प्रकृत्याद्यष्टकं विदुः ॥ ४ ॥
प्रकृत्याद्यष्टजो देहो देहजं कर्म उच्यते। पुनश्च कर्मजो देहो जन्मकर्म पुनः पुनः ॥ ५ ॥

विद्वान् भी नहीं जान सकते ॥ १४९ ॥ इस कारण शिवभक्त की महिमा को जानने में कौन मनुष्य समर्थ हो सकता है। जो भक्तिपूर्वक शिवशक्ति का पूजन करते हैं अथवा शिवभक्त का पूजन करते हैं ॥ १५० ॥ वह शिवस्वरूप होकर सदैव कल्याण प्राप्त करता है। इस वेदसम्मत अध्याय को जो ब्राह्मण अर्थ सहित पढ़ता है वह शिवज्ञानी होकर शिव के साथ आनन्द प्राप्त करता है। हे मुनीश्वरो ! विद्वान् पुरुष यह अध्याय शिवभक्तों को अवश्य सुनावें ॥१५१-१५२॥ ब्राह्मणो ! ऐसा करने से शिवभक्तों की कृपा से शिव की प्रसन्नता हो जाती है ॥ १५३ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत प्रथमा विद्येश्वरसंहिता में प्रणवपञ्चाक्षरमन्त्र-माहात्म्य वर्णन नामक सतरहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥

*

ऋषिगण बोले—हे सम्पूर्ण अर्थों को जाननेवाले सूत जी ! आप हमसे बन्ध और मोक्ष का स्वरूप कहिए।

सूत जी बोले—बन्ध और मोक्ष के लक्षण तथा मुक्ति के उपाय को मैं आपलोगों से कहता हूँ, आदरपूर्वक श्रवण करें ॥ १ ॥ प्रकृति, अहङ्कार, महत्तत्त्व और पञ्चतन्मात्राएँ इन आठों बन्धनों से बँधे रहने के कारण आत्मा की जीव संज्ञा होती है। तथा इन प्रकृति आदि आठ बन्धनों से छूट जाने का नाम मोक्ष है ॥ २ ॥ दूसरे शब्दों में, प्रकृति आदि आठ तत्त्वों को अपने वश में करने का नाम मोक्ष है। बँधा हुआ जीव जब मुक्त हो जाता है तो वह मुक्त जीव कहा जाता है ॥ ३ ॥ प्रकृति, बुद्धि (महत्तत्त्व), गुणयुक्त अहङ्कार और पञ्चतन्मात्राएँ इन्हीं को प्रकृत्यादि अष्टक कहते हैं ॥ ४ ॥ इन्हीं प्रकृति आदि आठ समूहों से देह की उत्पत्ति होती है। तथा देह से उत्पन्न होने का नाम कर्म है। पुनः कर्म से देह का जन्म तथा देह से पुनः कर्म बारम्बार होते हैं ॥ ५ ॥

शरीरं त्रिविधं ज्ञेयं स्थूलं सूक्ष्मं च कारणम् । स्थूलं व्यापारदं प्रोक्तं सूक्ष्ममिन्द्रियभोगदम् ॥ ६ ॥
कारणं त्वात्मभोगार्थं जीवकर्मानुरूपतः । सुखं दुःखं पुण्यपापैः कर्मभिः फलमश्नुते ॥ ७ ॥
तस्माद्धि कर्मरज्ज्वा हि बद्धो जीवः पुनः पुनः । शरीरत्रयकर्मभ्यां चक्रवद् भ्राम्यते सदा ॥ ८ ॥
चक्रभ्रमनिवृत्त्यर्थं चक्रकर्तारमीडयेत् । प्रकृत्यादि महाचक्रं प्रकृतेः परतः शिवः ॥ ९ ॥
चक्रकर्ता महेशो हि प्रकृतेः परतो यतः । पिबति वाऽथ वमति जीवन् बालो जलं यथा ॥ १० ॥
शिवस्तथा प्रकृत्यादि वशीकृत्याधितिष्ठति । सर्वं वशीकृतं यस्मात् तस्माच्छिव इति स्मृतः ॥
शिव एव हि सर्वज्ञः परिपूर्णश्च निःस्पृहः ॥ ११ ॥
सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः ।
अनन्तशक्तिश्च महेश्वरस्य यन्मानसैश्वर्यमवैति वेदः ॥ १२ ॥
अतः शिवप्रसादेन प्रकृत्यादि वशं भवेत् । शिवप्रसादलाभार्थं शिवमेव प्रपूजयेत् ॥ १३ ॥
निःस्पृहस्य च पूर्णस्य तस्य पूजा कथं भवेत् । शिवोद्देशकृतं कर्म प्रसादजनकं भवेत् ॥ १४ ॥
लिङ्गे वेरे भक्तजने शिवमुद्दिश्य पूजयेत् । कायेन मनसा वाचा धनेनापि प्रपूजयेत् ॥ १५ ॥
पूजया तु महेशो हि प्रकृतेः परमः शिवः । प्रसादं कुरुते सत्यं पूजकस्य विशेषतः ॥ १६ ॥
शिवप्रसादात् कर्माद्यं क्रमेण स्ववशं भवेत् । कर्मारभ्य प्रकृत्यन्तं यदा सर्वं वशं भवेत् ॥ १७ ॥
तदा मुक्त इति प्रोक्तः स्वात्मारामो विराजते । प्रसादात् परमेशस्य कर्मदेहो यदा वशः ॥ १८ ॥
तदा वै शिवलोके तु वासः सालोक्य मुच्यते । सामीप्यं याति साम्बस्य तन्मात्रे च वशं गते ॥ १९ ॥

यह शरीर भी स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण भेद से तीन प्रकार का कहा गया है। स्थूल शरीर क्रिया करनेवाला, सूक्ष्म शरीर इन्द्रियों का भोग देनेवाला ॥ ६ ॥ और कारण शरीर जीव के किये गये कर्म के अनुसार आत्मा के भोग का निमित्त है। पुण्य पापात्मक किये गये कर्म से सुख तथा दुःख की प्राप्ति होती रहती है ॥ ७ ॥ इस कारण कर्म-रज्जु से बँधा हुआ जीव, तीनों शरीर तथा कर्म के द्वारा बारम्बार इस जगत् में चक्र के समान भ्रमण करता रहता है ॥ ८ ॥ अतः पुरुष को चाहिए कि वह इस चक्र से छूटने के लिए चक्रकर्त्ता परमात्मा सदाशिव की स्तुति एवं पूजन करे। प्रकृति आदि आठ महाचक्र हैं। और इस चक्र के कर्त्ता सदाशिव इन प्रकृतियों से परे हैं ॥ ९ ॥ क्योंकि, चक्रकर्त्ता महेश हैं, वे ही इन प्रकृतियों को पी जाते हैं और इच्छानुसार उसे पुनः वमन कर देते हैं। जिस प्रकार बालक जल को पीता तथा उसका वमन भी करता रहता है ॥ १० ॥ इसी प्रकार शिव भी प्रकृति आदि अष्टक समुदाय को वश में करके स्थित रहते हैं और सबको वश में करने के कारण उन्हें शिव कहा जाता है। एक शिव ही सर्वज्ञ, पूर्ण तथा स्पृहा से सर्वथा परे हैं ॥ ११ ॥

सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादिज्ञान, स्वतन्त्रता, कभी शक्ति का लोप न होना, अनन्त शक्ति ये सभी महेश्वर में निवास करते हैं। जिसके मानस ऐश्वर्य को मात्र वेद ही जानते हैं ॥ १२ ॥ इस कारण शिव की प्रसन्नता से ही प्रकृत्यादि अष्टक समुदाय वश में होते हैं। अतः शिव की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए शिव की ही पूजा करनी चाहिए ॥ १३ ॥ कोई उस पूर्णतम, निःस्पृह की पूजा ही कैसे कर सकता है। फिर भी उसके उद्देश्य से किया गया कर्म उसकी प्रसन्नता का कारण बन जाता है ॥ १४ ॥ शिवलिङ्ग में, शिवप्रतिमा में तथा शिवभक्त में शिव के उद्देश्य से शरीर, मन, वाणी तथा धनादि द्वारा पूजा करनी चाहिए ॥ १५ ॥ पूजा करने से प्रकृति से परे वे महेश परम शिवपूजा करने वाले के ऊपर अवश्य प्रसन्न होते हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ १६ ॥ शिव के प्रसन्न हो जाने पर क्रमशः कर्मादिक स्वयं वश में हो जाते हैं। जब कर्म से लेकर प्रकृति पर्यन्त सभी अपने वश में हो जायें तो उसी समय वह मुक्त तथा आत्माराम हो जाता है। जब परमेश्वर के प्रसाद से कर्मदेह अपने वश में हो जाता है, उसी समय शिवलोक में वास होता है और सालोक्य की प्राप्ति हो जाती है। जब तन्मात्राएँ (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द) वश में हो जाती हैं तो साम्बसदाशिव का सामीप्य प्राप्त होता है ॥ १७-१९ ॥

तदा तु शिवसायुज्यमायुधाद्यैः क्रियादिभिः । महाप्रसादलाभे च बुद्धिश्चाऽपि वशा भवेत् ॥२०॥
बुद्धिस्तु कार्यं प्रकृतेस्तत्सार्ष्टिरिति कथ्यते । पुनर्महाप्रसादेन प्रकृतिर्वशमेष्यति ॥२१॥
शिवस्य मानसैश्वर्यं तदाऽयत्नं भविष्यति । सार्वज्ञाद्यं शिवैश्वर्यं लब्ध्वा स्वात्मनि राजते ॥२२॥
तत्सायुज्यमिति प्राहुर्वेदागमपरायणाः । एवं क्रमेण मुक्तिः स्याल्लिङ्गादौ पूजया स्वतः ॥२३॥
अतः शिवप्रसादार्थं क्रियाद्यैः पूजयेच्छिवम् । शिवक्रिया शिवतपः शिवमन्त्रजपः सदा ॥२४॥
शिवज्ञानं शिवध्यानमुत्तरोत्तरमभ्यसेत् । आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद् वै शिवचिन्तया ॥२५॥
सद्यादिभिश्च कुसुमैरर्चयेच्छिवमेष्यति ।

ऋषय ऊचुः

लिङ्गादौ शिवपूजाया विधानं ब्रूहि सर्वतः ॥२६॥

सूत उवाच

लिङ्गानां च क्रमं वक्ष्ये यथावच्छृणुत द्विजाः । तदेव लिङ्गं प्रथमं प्रणवं सार्वकामिकम् ॥२७॥
सूक्ष्मप्रणवरूपं हि सूक्ष्मरूपं तु निष्कलम् । स्थूललिङ्गं हि सकलं तत्पञ्चाक्षरमुच्यते ॥२८॥
तयोः पूजा तपः प्रोक्तं साक्षान् मोक्षप्रदे उभे । पौरुषप्रकृतिभूतानि लिङ्गानि सुबहूनि च ॥२९॥
तानि विस्तरतो वक्तुं शिवो वेत्ति न चाऽपरः । भूविकाराणि लिङ्गानि ज्ञातानि प्रब्रवीमि वः ॥३०॥
स्वयम्भूलिङ्गं प्रथमं बिन्दुलिङ्गं द्वितीयकम् । प्रतिष्ठितं चरं चैव गुरुलिङ्गं तु पञ्चमम् ॥३१॥
देवर्षितपसा तुष्टः सान्निध्यार्थं तु तत्र वै । पृथिव्यन्तर्गतः शर्वो बीजं वै नादरूपतः ॥३२॥

इस प्रकार आयुध (त्रिशूलादि धारण) तथा कियाओं से सामीप्य प्राप्ति के अनन्तर वह शिव-सायुज्य प्राप्त कर लेता है। शिव के महाप्रसाद प्राप्त कर लेने पर बुद्धि भी अपने वश में हो जाती है ॥ २० ॥ प्रकृति का कार्य बुद्धि है, उसी को सार्ष्टि भी कहते हैं। पुनः शिवप्रसाद के प्राप्त हो जाने पर जब प्रकृति भी वश में हो जाती है तब शिव का मानस ऐश्वर्य अनायास प्राप्त हो जाता है। सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादि बोध आदि ऊपर कहे गये शिवलक्षण के ऐश्वर्य प्राप्त हो जाने पर पुरुष स्वात्माराम होकर शोभित होने लगता है ॥ २१-२२ ॥ वेद तथा शास्त्रों के ज्ञाता इसी को सायुज्य मुक्ति कहते हैं। इसी प्रकार लिङ्गादि पूजा करने वालों की स्वयं मुक्ति हो जाती है ॥ २३ ॥ शिव की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए शिवक्रिया, शिवतप तथा शिवमन्त्र जपादि द्वारा शिव का पूजन करना चाहिए ॥ २४ ॥ फिर शिवज्ञान तथा शिव के ध्यान का उत्तरोत्तर अभ्यास करना चाहिए। प्रतिदिन प्रातःकाल से शयन पर्यन्त शिव का ध्यान करते हुए मरण पर्यन्त आयु को बिताना चाहिए ॥ २५ ॥ अथवा 'सद्योजातं' इस मन्त्र से पुष्पार्पण कर शिवजी की पूजा करते हुए आयु व्यतीत करे।

ऋषिगण बोले—हे सूत ! लिङ्गादि में शिवपूजा का विधान आप हमसे कहिए ॥ २६ ॥

सूत जी बोले—हम लिङ्गादि का क्रम से पूजा-विधान कहते हैं। सर्वप्रथम कामनाओं को पूर्ण करने वाला प्रणवलिङ्ग है ॥ २७ ॥ यह सूक्ष्म प्रणव लिङ्ग, महासूक्ष्म तथा निष्कल है। स्थूल लिङ्ग कला से युक्त है, जिसे पञ्चाक्षर भी कहते हैं ॥ २८ ॥ उस सूक्ष्म तथा स्थूल लिङ्ग (ॐ नमः शिवाय) की पूजा को तप कहते हैं, इन दोनों की पूजा साक्षात् मोक्ष प्रदान करने वाली है, वैसे तो पुरुष तथा प्रकृतिजन्य अनेक लिङ्ग हैं ॥ २९ ॥ उनका विस्तार से वर्णन तो शिव जी ही कर सकते हैं, अन्य में इतनी सामर्थ्य कहाँ ? मैं अब पृथ्वी के विकार से उत्पन्न लिङ्ग, जिन्हें मैं जानता हूँ, आप लोगों से कहता हूँ ॥ ३० ॥

स्वयम्भू लिङ्ग १, बिन्दुलिङ्ग २, प्रतिष्ठा किये गये लिङ्ग ३, चरलिङ्ग ४, गुरुलिङ्ग ५ ये लिङ्ग के भेद हैं ॥ ३१ ॥ देवता तथा ऋषियों की तपस्या से सन्तुष्ट हुए शिव उनके सान्निध्य के लिए पृथ्वी के अन्तर्गत नाद तथा बीज रूप से स्थित हो पृथ्वी को भेदकर प्रगट होते हैं। जिस प्रकार स्थावर वृक्षादि

स्थावराङ्कुरवद् भूमिमुद्भिद्य व्यक्त एव सः । स्वयं भूतं जातमिति स्वयम्भूरिति तं विदुः ॥३३॥
तल्लिङ्गपूजया ज्ञानं स्वयमेव प्रवर्द्धते । सुवर्णरजतादौ वा पृथिव्यां स्थण्डिलेऽपि वा ॥३४॥
स्वहस्ताल्लिखितं लिङ्गं शुद्धप्रणवमन्त्रकम् । यन्त्रलिङ्गं समालिख्य प्रतिष्ठाऽऽवाहनं चरेत् ॥३५॥
बिन्दुनादमयं लिङ्गं स्थावरं जङ्गमं च यत् । भावनामयमेतद्धि शिवदृष्टं न संशयः ॥३६॥
यत्र विश्वस्यते शम्भुस्तत्र तस्मै फलप्रदः । स्वहस्ताल्लिखिते यन्त्रे स्थावरादावकृत्रिमे ॥३७॥
आवाह्य पूजयेच्छम्भुं षोडशैरुपचारकैः । स्वयमैश्वर्यमाप्नोति ज्ञानमभ्यासतो भवेत् ॥३८॥
देवैश्च ऋषिभिश्चाऽपि स्वात्मसिद्ध्यर्थमेव हि । समन्त्रेणाऽऽत्महस्तेन कृतं यच्छुद्धमण्डले ॥३९॥
शुद्धभावनया चैव स्थापितं लिङ्गमुत्तमम् । तल्लिङ्गं पौरुषं प्राहुस्तत्प्रतिष्ठितमुच्यते ॥४०॥
तल्लिङ्गं पूजया नित्यं पौरुषैश्वर्यमाप्नुयात् । महद्भिर्ब्राह्मणैश्चापि राजभिश्च महाधनैः ॥४१॥
शिल्पिना कल्पितं लिङ्गं मन्त्रेण स्थापितं च यत् । प्रतिष्ठितं प्राकृतं हि प्राकृतैश्वर्यभोगदम् ॥४२॥
यदूर्जितं च नित्यं च तद्धि पौरुषमुच्यते । यद् दुर्बलमनित्यं च तद्धि प्राकृतमुच्यते ॥४३॥

लिङ्गं नाभिस्तथा जिह्वा नासाग्रं च शिखा क्रमात् ।
कट्यादिषु त्रिलोकेषु लिङ्गमाध्यात्मिकं चरम् ॥४४॥

पर्वतं पौरुषं प्रोक्तं भूतलं प्राकृतं विदुः । वृक्षादि पौरुषं ज्ञेयं गुल्मादि प्राकृतं विदुः ॥४५॥
षाष्टिकं प्राकृतं ज्ञेयं शालि-गोधूम-पौरुषम् । ऐश्वर्यं पौरुषं विद्यादणिमाद्यष्टसिद्धिदम् ॥४६॥
सुस्त्रीधनादिविषयं प्राकृतं प्राहुरास्तिकाः । प्रथमं चरलिङ्गेषु रसलिङ्गं प्रकथ्यते ॥४७॥

पृथ्वी को भेदकर प्रकट होते हैं, उसे स्वयम्भूलिङ्ग कहा जाता है। ऐसे लिङ्ग स्वयं प्रगट होने के कारण स्वयम्भू लिङ्ग कहे जाते हैं ॥ ३२-३३ ॥ उस लिङ्ग की पूजा करने से स्वयं ज्ञान की वृद्धि होती है। सुवर्ण अथवा चाँदी इत्यादि में, पृथ्वी में, वेदी में अथवा अपने द्वारा लिखे गये, शुद्ध प्रणव में अथवा किसी यन्त्र लिङ्ग में शिव की प्रतिष्ठा तथा आवाहन करे ॥ ३४-३५ ॥ इस प्रकार जो स्थावर तथा जङ्गम लिङ्ग हैं, उन्हें बिन्दुनादमय लिङ्ग कहा जाता है। शिवजी का जिसमें दर्शन होता है उसे भावनामय लिङ्ग कहते हैं। क्योंकि, जहाँ शिवविषयक विश्वास हो उसी विश्वास के अनुसार सदाशिव फल देते हैं। अपने हाथ से लिखे हुए यन्त्र में अथवा स्वभावतः उत्पन्न हुए स्थावरादि पदार्थों में आवाहन कर षोडशोपचार से पूजा करनी चाहिए। ऐसा करने से ऐश्वर्य की प्राप्ति तथा निरन्तर पूजा के अभ्यास से ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ ३६-३८ ॥

देवताओं तथा ऋषियों ने अपने मनोरथ सिद्धि के लिए अपने हाथ से, शुद्ध भावना द्वारा स्वयं मन्त्र पूर्वक शुद्ध क्षेत्र में लिङ्ग की स्थापना की है, वह उत्तम लिङ्ग है। उस प्रतिष्ठित लिङ्ग को 'पौरुषलिङ्ग' कहते हैं ॥ ३९-४० ॥ ऐसे लिङ्ग की पूजा से पौरुष तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। महात्माओं, ब्राह्मणों, राजाओं एवं महाधनिकों ने जिसे शिल्पी द्वारा बनवाकर मन्त्रपूर्वक स्थापित किया हो, उसे प्राकृत लिङ्ग कहते हैं, ऐसे लिङ्ग की पूजा से ऐश्वर्य तथा भोग की प्राप्ति होती है ॥४१-४२॥ जो तेजस्वी तथा नित्य हो उसे 'पौरुषलिङ्ग' तथा जो दुर्बल एवं अनित्य हो उसे 'प्राकृतलिङ्ग' कहते हैं ॥ ४३ ॥ लिङ्ग, नाभि, जिह्वा, नासाग्र, शिखा के क्रम से कटचादि में तथा तीनों लोकों में आध्यात्मिक चरलिङ्ग जानना चाहिए ॥ ४४ ॥ पर्वत पौरुष लिङ्ग, भूतल प्राकृत लिङ्ग हैं इसी प्रकार वृक्षादि पौरुष लिङ्ग एवं गुल्मादि प्राकृत लिङ्ग हैं ॥४५॥ षष्ठी (साठी) धान प्राकृत लिङ्ग है, शालि एवं गेहूँ प्राकृत लिङ्ग हैं। जो ऐश्वर्य युक्त हो उसे पौरुष कहते हैं, वह अणिमादि अष्टसिद्धियों को देने वाला है ॥ ४६ ॥ उत्तम स्त्री तथा धनादि प्रदान करने वाला प्राकृत लिङ्ग है। ऐसा आस्तिक जनों का कहना है। अब चर लिङ्गों में रसलिङ्ग कहता हूँ ॥ ४७ ॥

रसलिङ्गं ब्राह्मणानां सर्वाभीष्टप्रदं भवेत् । बाणलिङ्गं क्षत्रियाणां महाराज्यप्रदं शुभम् ॥४८॥
स्वर्णलिङ्गं तु वैश्यानां महाधनपतित्वदम् । शिलालिङ्गं तु शूद्राणां महाशुद्धिकरं शुभम् ॥४९॥
स्फाटिकं बाणलिङ्गं च सर्वेषां सर्वकामदम् । स्वीयाभावेऽन्यदीयं तु पूजायां न निषिद्धयते ॥५०॥
स्त्रीणां तु पार्थिवं लिङ्गं सभर्तॄणां विशेषतः । विधवानां प्रवृत्तानां स्फाटिकं परिकीर्तितम् ॥५१॥
विधवानां निवृत्तानां रसलिङ्गं विशिष्यते । बाल्ये वा यौवने वाऽपि वार्द्धके वाऽपि सुव्रताः ॥५२॥
शुद्धस्फटिकलिङ्गं तु स्त्रीणां तत्सर्वभोगदम् । प्रवृत्तानां पीठपूजा सर्वाभीष्टप्रदा भुवि ॥५३॥
पात्रेणैव प्रवृत्तस्तु सर्वपूजां समाचरेत् । अभिषेकान्ते च नैवेद्यं शाल्यन्नेन समाचरेत् ॥५४॥
पूजान्ते स्थापयेल्लिङ्गं सम्पुटेषु पृथग् गृहे । करपूजानिवृत्तानां स्वभोज्यं तु निवेदयेत् ॥५५॥
निवृत्तानां परं सूक्ष्मं लिङ्गमेव विशिष्यते । विभूत्यभ्यर्चनं कुर्याद् विभूतिं च निवेदयेत् ॥५६॥
पूजां कृत्वाऽथ तल्लिङ्गं शिरसा धारयेत् सदा । विभूतिस्त्रिविधा प्रोक्ता लोकवेदशिवाग्निभिः ॥५७॥
लोकाग्निजमथो भस्म द्रव्यशुद्ध्यर्थमावहेत् । मृद्-दारु-लोहरूपाणां धान्यानां च तथैव च ॥५८॥
तिलादीनां च द्रव्याणां वस्त्रादीनां तथैव च । तथा पर्युषितानां च भस्मना शुद्धिरिष्यते ॥५९॥
श्वादिभिर्दूषितानां च भस्मना शुद्धिरिष्यते । सजलं निर्जलं भस्म यथायोग्यं तु योजयेत् ॥६०॥
वेदाग्निजं तथा भस्म तत्कर्मान्तेषु धारयेत् । मन्त्रेण क्रियया जन्यं कर्माग्नौ भस्मरूपधृक् ॥६१॥
तद्भस्मधारणात् कर्म स्वात्मन्यारोपितं भवेत् । अघोरेणात्ममन्त्रेण बिल्वकाष्ठं प्रदाहयेत् ॥६२॥
शिवाग्निरिति सम्प्रोक्तस्तेन दग्धं शिवाग्निजम् । कपिलागोमयं पूर्वं केवलं गव्यमेव वा ॥६३॥

रसलिङ्ग ब्राह्मणों के सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाला है। क्षत्रियों को बाणलिङ्ग अत्यन्त शुभ तथा महाराज्य पद को देनेवाला है ॥ ४८ ॥ स्वर्णलिङ्ग वैश्यों को महाधनपतित्व प्रदान करता है और शिलालिङ्ग शूद्रों को अत्यन्त पवित्र करने वाला तथा शुभ है ॥ ४९ ॥ स्फाटिक तथा बाणलिङ्ग सभी की कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। पूजा के लिए यदि अपने-अपने वर्ण के अनुसार लिङ्ग की प्राप्ति न हो तो दूसरे वर्ण के लिङ्गों की पूजा की जा सकती है, इसमें कोई निषेध वचन नहीं है ॥ ५० ॥ स्त्रियों को विशेषकर सधवा स्त्रियों को पार्थिवलिङ्ग का पूजन करना चाहिए। प्रवृत्ति मार्ग में लगी रहने वाली विधवाओं के लिए स्फाटिक लिङ्ग की पूजा से उत्तम भोग की प्राप्ति होती है ॥ ५१ ॥ निवृत्त मार्ग में निरत विधवाओं को रस लिङ्ग की पूजा का विधान है। हे ब्राह्मणो ! स्त्रियों को बाल्यावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्था में स्फाटिक लिङ्ग की पूजा से सभी भोगों की प्राप्ति होती है। संसार-भोग की इच्छा वाली स्त्रियों को पीठपूजा सदा मङ्गल देने वाला है ॥ ५२-५३ ॥ योग्य पात्र से उपदेश लेकर अभिषेक से आरम्भ कर शाल्यन्न के नैवेद्य पूर्वक सभी प्रकार से शिवपूजा करे ॥ ५४ ॥ पूजा के उपरान्त शिवलिङ्ग को किसी डिबिये में बन्द कर घर के एकान्त भाग में रख देवे। संन्यासी आदि जो हाथ से शिवपूजा नहीं करते उन्हें भोजन प्रदान करे ॥ ५५ ॥ निवृत्त मार्ग में रहने वालों को सूक्ष्म लिङ्ग की उपासना का विधान है। वे विभूति से शिवार्चन करें तथा उन्हें विभूति ही निवेदन करें ॥ ५६ ॥ पूजा करने के अनन्तर उस शिवलिङ्ग को सदैव शिर पर धारण करना चाहिए। लौकिकाग्नि, वैदिकाग्नि तथा शिवाग्नि के भेद से विभूति के तीन भेद हैं ॥ ५७ ॥

लौकिक अग्नि की विभूति द्रव्यशुद्धि के लिए ग्रहण करे। मृत्तिका, काष्ठ तथा लोहे की बनी हुई वस्तुएँ, तिलादि धान्य एवं वस्त्रादि तथा पर्युषित द्रव्यों की शुद्धि इस लौकिकाग्नि से होती है ॥५८-५९॥ कुत्ते आदि से दूषित पदार्थों की शुद्धि भस्म से की जाती है। जल युक्त अथवा केवल बिना जल के जहाँ—जैसी आवश्यकता हो उस प्रकार के भस्म का उपयोग करे ॥ ६० ॥ अग्निहोत्र में उत्पन्न हुआ भस्म वेदाग्निज भस्म है, उसे मस्तक में धारण करे। गार्हपत्याग्नि में मन्त्र एवं क्रिया से उत्पन्न भस्म वेदाग्निज भस्म कहा जाता है ॥ ६१ ॥ उस भस्म के धारण करने से कर्म को अपनी आत्मा में आरोपित किया जाता है। 'अघोरेण' इत्यादि मन्त्रों से बेल की लकड़ी जलावे ॥ ६२ ॥ शिव अग्नि का नामान्तर है, अतः उसे जलाये

शम्यश्वत्थपलाशान् वा वटारग्वधबिल्वकान्। शिवाग्निना दहेच्छुद्धं तद् वै भस्म शिवाग्निजम्॥६४॥
दर्भाग्नौ वा दहेत् काष्ठं शिवमन्त्रं समुच्चरन्। सम्यक् संशोध्य वस्त्रेण नवकुम्भे निधापयेत्॥६५॥
दीप्त्यर्थं तत्तु संग्राह्यं मन्यते पूज्यतेऽपि च। भस्मशब्दार्थ एवं हि शिवः पूर्वं तथाऽकरोत्॥६६॥
यथा स्वविषये राजा सारं गृह्णाति यत्करम्। यथा मनुष्याः सस्यादीन् दग्ध्वा सारं भजन्ति वै॥६७॥
यथा हि जाठराग्निश्च भक्ष्यादीन् विविधान् बहून्। दग्ध्वा सारतरं सारात् स्वदेहं परिपुष्यति॥६८॥
तथा प्रपञ्चकर्ताऽपि स शिवः परमेश्वरः। स्वाधिष्ठेयप्रपञ्चस्य दग्ध्वा सारं गृहीतवान्॥६९॥
दग्ध्वा प्रपञ्चं तद्भस्म स्वात्मन्यारोपयच्छिवः। उद्धूलनेन व्याजेन जगत्सारं गृहीतवान्॥७०॥
स्वरत्नं स्थापयामास स्वकीये हि शरीरके। केशमाकाशसारेण वायुसारेण वै मुखम्॥७१॥
हृदयं चाग्निसारेण त्वपां सारेण वै कटिम्। जानु चावनिसारेण तद्वत् सर्वं तदङ्गकम्॥७२॥
ब्रह्मविष्ण्वोश्च रुद्राणां सारं चैव त्रिपुण्ड्रकम्। तथा तिलकरूपेण ललाटान्ते महेश्वरः॥७३॥
भवृद्ध्या सर्वमेतद्धि मन्यते स्वयमित्यसौ। प्रपञ्चसारसर्वस्वमनेनैव वशीकृतम्॥७४॥
तस्मादस्य वशीकर्ता नास्तीति स शिवः स्मृतः। यथा सर्वमृगाणां च हिंसको मृगहिंसकः॥७५॥
अस्य हिंसामृगो नास्ति तस्मात् सिंह इतीरितः। शं नित्यं सुखमानन्दमिकारः पुरुषः स्मृतः॥७६॥
वकारः शक्तिरमृतं मेलनं शिव उच्यते। तस्मादेवं स्वमात्मानं शिवं कृत्वाऽर्चयेच्छिवम्॥७७॥

गये भस्म को शिवाग्निज भस्म कहते हैं। कपिला गौ का गोबर अथवा केवल किसी गौ का गोबर, शमी, अश्वत्थ, पलाश, वट, अमलतास, वेल इनको शिवाग्नि से जलाये जाने के कारण शिवाग्निज भस्म कहते हैं॥ ६३-६४॥

इस प्रकार निर्मित भस्म परम पवित्र भस्म है। अथवा शिवपरक मन्त्रों का उच्चारण करते हुए दर्भाग्नि द्वारा काठ को जलाकर किये गये भस्म को वस्त्र से छान कर किसी घड़े में रखे॥ ६५॥ इस प्रकार के भस्म को शरीर की दीप्ति के लिए धारण करे तो वह मान्य तथा पूज्य होता है। पूर्वकाल में सदाशिव ने भस्म का अर्थ इस प्रकार किया है॥ ६६॥ जिस प्रकार राजा अपने राज्य में कर रूप सार को ग्रहण करता है अथवा जिस प्रकार मनुष्य धान्यादिकों को जलाकर उसका सार ग्रहण करते हैं॥६७॥ अथवा जिस प्रकार जाठराग्नि नाना प्रकार के भक्ष्य-भोज्यादि पदार्थों को जलाकर उसके सार से सार भाग को ग्रहण कर देह की पुष्टि करता है॥६८॥ उसी प्रकार प्रपञ्चकर्त्ता परमेश्वर भी अपने अधिष्ठान भूत प्रपञ्च को जला कर उसका सार ग्रहण किया है॥ ६९॥ प्रपञ्च को भस्म कर उस भस्म को शिवजी अपनी आत्मा में आरोपित करते हैं, विभूति के उद्धूलन के बहाने ही उन्होंने उस प्रपञ्च के सार को ग्रहण किया॥ ७०॥ उन्होंने अपने शरीर में ही अपना रत्न स्थापित किया है। आकाश के सार से केश, वायु के सार से मुख, अग्नि के सार से हृदय, जल के सार से कटि, पृथ्वी के सार से जानु, इसी प्रकार उनके सभी अङ्ग हैं॥ ७१-७२॥ उनका यह त्रिपुण्ड्र ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र का सार है। एवं ललाट के अन्त में तिलक रूप से महेश्वर हैं॥ ७३॥ जो स्वयं इस प्रपञ्च को बढ़ाते रहने से वे भव हैं। सारे प्रपञ्च सार को इन्होंने वश में कर लिया है किन्तु इनको किसी ने वश में नहीं किया इसलिए वे शिव हैं। जिस प्रकार सभी वन्य पशुओं का हिंसा करने वाला मृग हिंसक कहा जाता है किन्तु उस मृग हिंसक का कोई भी हिंसक नहीं है, इसलिए उसे सिंह कहते हैं। उसी प्रकार (शं) नित्य सुख, (इ) पुरुष, (व) शक्ति एवं अमृत स्वरूप इन तीनों अर्थों को बताने के कारण वे शिव कहे जाते हैं। अर्थात् नित्यानन्द, शक्तिमान् अमृतमय पुरुष को शिव कहते हैं। इसी प्रकार की भावना अपने में करते हुए शिव की पूजा करनी चाहिए॥७४-७७॥

तस्मादुद्धूलनं पूर्वं त्रिपुण्ड्रं धारयेत् परम् । पूजाकाले हि सजलं शुद्ध्यर्थं निर्जलं भवेत् ॥७८॥
दिवा वा यदि वा रात्रौ नारी वाऽथ नरोऽपि वा । पूजार्थं सजलं भस्म त्रिपुण्ड्रेणैव धारयेत् ॥७९॥
त्रिपुण्ड्रं सजलं भस्म धृत्वा पूजां करोति यः । शिवपूजा फलं साङ्गं तस्यैव हि सुनिश्चितम् ॥८०॥
भस्म वै शिवमन्त्रेण धृत्वा ह्यत्याश्रमी भवेत् । शिवाश्रमीति सम्प्रोक्तः शिवैकपरमो यतः ॥८१॥
शिवव्रतैकनिष्ठस्य नाशौचं न च सूतकम् । ललाटेऽग्रे सितं भस्म तिलकं धारयेन् मृदा ॥८२॥
स्वहस्ताद् गुरुहस्ताद् वा शिवभक्तस्य लक्षणम् । गुणान् रुन्ध इति प्रोक्तो गुरुशब्दस्य विग्रहः ॥८३॥
सविकारान् राजसादीन् गुणान् रुन्धे व्यपोहति । गुणातीतः परशिवो गुरुरूपं समाश्रितः ॥८४॥
गुणत्रयं व्यपोह्याग्रे शिवं बोधयतीति सः । विश्वस्तानां तु शिष्याणां गुरुरित्यभिधीयते ॥८५॥
तस्माद् गुरुशरीरं तु गुरुलिङ्गं भवेद् बुधः । गुरुलिङ्गस्य पूजा तु गुरुशुश्रूषणं भवेत् ॥८६॥
श्रुतं करोति शुश्रूषा कायेन मनसा गिरा । उक्तं यद् गुरुणा पूर्वं शक्यं वाऽशक्यमेव वा ॥८७॥
करोत्येव हि पूतात्मा प्राणैरपि धनैरपि । तस्माद् वै शासने योग्यः शिष्य इत्यभिधीयते ॥८८॥
शरीराद्यर्थकं सर्वं गुरोर्दत्त्वा सुशिष्यकः । अग्रपाकं निवेद्याऽग्रे भुञ्जीयाद् गुर्वनुज्ञया ॥८९॥
शिष्यः पुत्र इति प्रोक्तः सदा शिष्यत्वयोगतः । जिह्वालिङ्गान् मन्त्रशुक्रं कर्णयोनौ निषिच्य वै ॥९०॥
जातः पुत्रो मन्त्रपुत्रः पितरं पूजयेद् गुरुम् । निमज्जयति पुत्रं वै संसारे जनकः पिता ॥९१॥
सन्तारयति संसाराद् गुरुर्वै बोधकः पिता । उभयोरन्तरं ज्ञात्वा पितरं गुरुमर्चयेत् ॥९२॥

सर्वप्रथम भस्म से उद्धूलन कर तदनन्तर त्रिपुण्ड्र धारण करे। पूजाकाल में जलयुक्त भस्म लगावे, किन्तु शुद्धि के लिए जलरहित मात्र भस्म का उद्धूलन करे ॥ ७८ ॥ दिन में, रात्रि में स्त्री वा पुरुष कोई हो पूजा के समय जल युक्त भस्म को त्रिपुण्ड्र रूप से धारण करे ॥ ७९ ॥ जो सजल भस्म से त्रिपुण्ड्र धारण कर शिव की पूजा करता है, उसे निश्चय ही साङ्ग शिवपूजा का फल प्राप्त होता है ॥ ८० ॥ शिवमन्त्र से भस्म धारण करने वाला सभी आश्रमियों से श्रेष्ठ है। उसे शिवाश्रमी कहते हैं, क्योंकि वह मात्र शिव में ही परायण होता है ॥ ८१ ॥

एक शिवव्रत-परायण पुरुष को अशौच अथवा सूतक नहीं लगता। ललाटी के अग्र भाग में गुरु के हाथ अथवा अपने हाथ से बैठ भस्म अथवा मृत्तिका का तिलक लगावे ॥८२॥ यही शिवभक्त का लक्षण है। जो गुणों को शिष्य में आरोपित करे, उसी को गुरु कहते हैं ॥ ८३ ॥ जो विकार युक्त राजसादि गुणों को रोक कर उसे दूर करता है, वह गुणातीत पुरुष परम शिवस्वरूप से गुरु कहा जाता है ॥ ८४ ॥ अथवा जो विश्वस्त शिष्यों के हृदय से तीनों गुणों (माया) को दूर कर शिवत्व का आरोपण करता है, उसे गुरु कहते हैं ॥ ८५ ॥ इसलिए ज्ञानयुक्त गुरु का शरीर गुरु लिङ्ग होने से पूज्य है। उस गुरु लिङ्ग की पूजा गुरुशुश्रूषा से होती है ॥ ८६ ॥ मन, वचन, कर्म द्वारा गुरु की कही गयी शक्य अथवा अशक्य आज्ञा का पालन प्राण और धन द्वारा करना ही गुरु की शुश्रूषा है। इसीलिए शासन योग्य होने के कारण उसे शिष्य भी कहते हैं ॥ ८७-८८ ॥ सुशिष्य को उचित है कि वह अपना शरीरादि प्रिय पदार्थ भी गुरु को अर्पण कर दे। और सर्वप्रथम पाक में बनी हुई समस्त भोजन सामग्री उन्हें निवेदन कर पश्चात् भोजन करे ॥ ८९ ॥ सदा शासन योग्य होने के कारण शिष्य पुत्र ही है। जिह्वा रूपी लिङ्ग से मन्त्र रूपी वीर्य, कर्ण रूप योनि में प्रवेश करने से वह उत्पन्न होता है, इसी कारण शिष्य मन्त्रपुत्र कहा जाता है। इसलिए उसे चाहिए कि वह गुरु रूप पिता का सदैव पूजन करे। जन्म देनेवाला पिता पुत्र को संसार में डालता है। किन्तु ज्ञानदाता गुरु रूप पिता उसे संसार से तार देता है। इस प्रकार दोनों का अन्तर जानना चाहिए एवं गुरु रूप पिता का जन्मदायी पिता की अपेक्षा विशेष रूप से पूजन करना चाहिए ॥ ९०-९२ ॥

अङ्गशुश्रूषया चापि धनाद्यैः स्वार्जितैर्गुरुम् । पादादिकेशपर्यन्तं लिङ्गान्यङ्गानि यद् गुरोः ॥९३॥
धनरूपैः पादुकाद्यैः पादसङ्ग्रहणादिभिः । स्नानाभिषेक-नैवेद्यैर्भोजनैश्च प्रपूजयेत् ॥९४॥
गुरुपूजैव पूजा स्याच्छिवस्य परमात्मनः । गुरुशेषं तु यत्सर्वमात्मशुद्धिकरं भवेत् ॥९५॥
गुरोः शेषः शिवोच्छिष्ट-जलमन्नादिनिर्मितम् । शिष्याणां शिवभक्तानां ग्राह्यं भोज्यं भवेद् द्विजाः ॥९६॥
गुर्वनुज्ञाविरहितं चोरवत्सकलं भवेत् । गुरोरपि विशेषज्ञं यत्नाद् गृह्णीत वै गुरुम् ॥९७॥
अज्ञानमोचनं साध्यं विशेषज्ञो हि मोचकः । आदौ च विघ्नशमनं कर्तव्यं कर्मपूर्तये ॥९८॥
निर्विघ्नेन कृतं साङ्गं कर्म वै सफलं भवेत् । तस्मात् सकलकर्मादौ विघ्नेशं पूजयेद् बुधः ॥९९॥
सर्वबाधानिवृत्त्यर्थं सर्वान् देवान् यजेद् बुधः । ज्वरादिग्रन्थिरोगाश्च बाधा ह्याध्यात्मिकी मता ॥१००॥
पिशाचजम्बुकादीनां वल्मीकाद्युद्भवे तथा । अकस्मादेव गोधादिजन्तूनां पतनेऽपि च ॥१०१॥
गृहे कच्छप-सर्प-स्त्री-दुर्जनादर्शनेऽपि च । वृक्ष-नारी-गवादीनां प्रसूतिविपयेऽपि च ॥१०२॥
भावि दुःखं समायाति तस्मात्ते भौतिका मताः । अमेध्याशनिपातश्च महामारी तथैव च ॥१०३॥
ज्वरमारी विषूचिश्च गोमारी च मसूरिका । जन्मर्क्ष-ग्रह-सङ्क्रान्ति-ग्रहयोगाः स्वराशिके ॥१०४॥
दुःस्वप्नदर्शनाद्याश्च मता वै ह्यधिदैविकाः । शव-चाण्डाल-पतित-स्पर्शादन्तर्गृहे गते ॥१०५॥
एतादृशे समुत्पन्ने भाविदुःखस्य सूचके । शान्तियज्ञं तु मतिमान् कुर्यात्तद्दोषशान्तये ॥१०६॥

उनके अंग की सेवा अथवा अपने उत्पन्न किये गये धनादि से पैर से लेकर केश पर्यन्त गुरु के शरीर में शिवलिङ्ग की भावना करे ॥ ९३ ॥ और धन देकर पादुका ले आकर, पैर दवाकर, स्नान, अभिषेक तथा भोजन आदि नाना प्रकार के नैवेद्यों से गुरु की पूजा करनी चाहिए ॥ ९४ ॥

गुरु के पूजन से परमात्मा सदाशिव की पूजा हो जाती है। गुरु के समर्पण से शेष द्रव्य आत्मशुद्धिकारक है ॥ ९५ ॥ जल एवं अन्नादि से निर्मित पदार्थों को गुरु के लिए समर्पित करे, जो शेष बचे उसे शिवोच्छिष्ट समझना चाहिए। हे ब्राह्मणो ! गुरूच्छिष्ट द्रव्य ही शिष्यों तथा शिवभक्तों को ग्रहण करना चाहिए। और उसी का भोजन करना चाहिए ॥ ९६ ॥ गुरु की आज्ञा के बिना अथवा उनके समर्पण के बिना जो द्रव्य ग्रहण किया जाता है, वह चोरी के समान है। गुरु में रहने वाले विशेष गुणों को यत्नपूर्वक ग्रहण करना चाहिए। और समझ-बूझ कर गुरु बनाना चाहिए ॥ ९७ ॥ शिष्य के अज्ञान को दूर करना यह गुरु का कर्त्तव्य है। अतः अज्ञान दूर करने वाले गुरु को विशेष जानकारी होनी चाहिए। कर्मपूर्ति के लिए गुरु को चाहिए कि वह शिष्य के विघ्न को शमन करे ॥ ९८ ॥ निर्विघ्न एवं पूर्ण साङ्गता से किया गया कर्म सफल कहा जाता है। इसलिए बुद्धिमान् पुरुष को उचित है कि कर्म के आदि में विघ्नेश्वर श्री गणेश का पूजन करे ॥ ९९ ॥ सभी प्रकार की बाधाओं की निवृत्ति के लिए सभी देवताओं का पूजन करना चाहिए। ज्वरादिक, गठिया, वात आदिरोग आध्यात्मिक बाधा कहे जाते हैं ॥ १०० ॥ पिशाच, जम्बूकादि का दर्शन, वल्मीक की उत्पत्ति, अकस्मात् गोधादि जन्तुओं का गिरना, ॥ १०१ ॥ घर में कछुआ, सर्प, स्त्री एवं दुर्जनों का बारम्बार दर्शन होते रहने से भविष्य में वृक्ष, गौ एवं स्त्रियों के पुरुष में बाधा होने की आशङ्का होती है, इसलिए इसे भविष्य में होने के कारण इसे भौतिक बाधा कही जाती है। अपवित्र वस्तुओं का तथा वज्र का पात, महामारी, ज्वरमारी, विषूचिका, गोमारी (जिससे गायें मर जाती हैं), मसूरिका (गर्मी) आदि, जन्म नक्षत्र पर ग्रहों का आना, संक्रान्ति काल में अथवा अपनी राशि पर दुष्ट ग्रहों का योग, एवं दुःस्वप्न का दर्शन, आधिदैविक बाधाएँ कही जाती हैं। शव, चाण्डाल एवं पतितों का स्पर्श अथवा इन सब का घर में प्रवेश, आगे आने वाले दुःख की सूचना देते हैं। अतः बुद्धिमान् मनुष्य को इन दोषों की शान्ति के निमित्त शान्ति-यज्ञ करनी चाहिए ॥ १०२-१०६ ॥

देवालयेऽथ गोष्ठे वा चैत्ये वाऽपि गृहाङ्गणे । प्रादेशोन्नतधिष्ण्ये वै द्विहस्ते च स्वलङ्कृते ॥१०७॥
भारमात्रं व्रीहिधान्यं प्रस्थाप्य परिसृत्य च । मध्ये विलिख्य कमलं तथा दिक्षु विलिख्य वै॥१०८॥
तन्तुना वेष्टितं कुम्भं नवगुग्गुलधूपितम् । मध्ये स्थाप्य महाकुम्भं तथा-दिक्ष्वपि विन्यसेत् ॥१०९॥
सनालाम्रक-कूर्चादीन् कलशांश्च तथाऽष्टसु । पूरयेत् मन्त्रपूतेन पञ्चद्रव्ययुतेन हि ॥११०॥
प्रक्षिपेन्नव रत्नानि नीलादीन् क्रमशस्तथा । कर्मज्ञं च सपत्नीकमाचार्यं वरयेद् बुधः ॥१११॥
सुवर्णप्रतिमां विष्णोरिन्द्रादीनां च निक्षिपेत् । सशिरस्के मध्यकुम्भे विष्णुमावाह्य पूजयेत् ॥११२॥
प्रागादिषु यथामन्त्रमिन्द्रादीन् क्रमशो यजेत् । तत्तन्नाम्ना चतुर्थ्या च नमोऽन्तेन यथाक्रमम्॥११३॥
आवाहनादिकं सर्वमाचार्येणैव कारयेत् । आचार्यं ऋत्विजा सार्धं तन्मन्त्रान् प्रजपेच्छतम्॥११४॥
कुम्भस्य पश्चिमे भागे जपान्ते होममाचरेत् । कोटिं लक्षं सहस्रं वा शतमष्टोत्तरं बुधः ॥११५॥
एकाहं वा नवाहं वा तथा मण्डलमेव वा । यथायोग्यं प्रकुर्वीत कालदेशानुसारतः ॥११६॥
शमीहोमश्च शान्त्यर्थे वृत्त्यर्थे च पलाशकम् । समिदन्नाज्यकैर्द्रव्यैर्नाम्ना मन्त्रेण वा हुनेत् ॥११७॥
प्रारम्भे यत्कृतं द्रव्यं तत्क्रियान्तं समाचरेत् । पुण्याहं वाचयित्वाऽन्ते दिने संप्रोक्षयेज्जलैः ॥११८॥
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चाद्यावदाहुतिसङ्ख्यया । आचार्यश्च हविष्याशी ऋत्विजश्च भवेद् बुधः॥११९॥
आदित्यादीन् ग्रहानिष्ट्वा सर्वहोमान्त एव हि । ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यान्नवरत्नं यथाक्रमम्॥१२०॥
दश दानं ततः कुर्याद् भूरिदानं ततः परम् । बालानामुपनीतानां गृहिणां वनिनां धनम् ॥१२१॥
कन्यानां च सभर्तॄणां विधवानां ततः परम् । तन्त्रोपकरणं सर्वमाचार्याय निवेदयेत् ॥१२२॥

देवालय, गोशाला, यज्ञशाला, घर के आँगन में, दो हाथ परिमाण की वेदी बनाकर उसे अलङ्कृत करे, भार मात्र व्रीहि(धान्य)स्थापन कर उसे फैला देवे, बीच में अष्टदल कमल बनावे । इसी प्रकार दिशाओं में भी कमल बनावे ॥१०७-१०८॥ सूत से लपेटे घड़े को गुग्गुल, धूप से धूपित कर उस महाकुम्भ को वेदी के मध्य में स्थापित करे एवं उसके चारों दिशाओं में भी घट स्थापित करे ॥ १०९ ॥ उन आठों कुम्भों में नाल सहित आम की कूँची, एवं पञ्च द्रव्य (लौंग, कंकोल, अगर, जायफल, कपूर और द्रव्य) युक्त कर मन्त्र पढ़ते हुए कलश में जल छोड़े । और नीलादि नवरत्नों को भी उस कलश में छोड़ें । और शान्तिकर्म के जाननेवाले आचार्य का सपत्नीक वरण करे । उस घड़े में ऊपर विष्णु की एवं इन्द्रादि की सुवर्ण-प्रतिमा स्थापित करे । तदनन्तर सर्वप्रथम मध्य कुम्भ में विष्णु का आवाहन कर पूजन करे ॥११०-११२॥

पूर्वादि दिशाओं में मन्त्रपूर्वक इन्द्रादि देवताओं का क्रम से पूजन करे । उन-उन दिग्पालों के नाम के अन्त में चतुर्थी विभक्ति लगाकर अनन्तर 'नमः' शब्द का प्रयोग कर आवाहन-पूजन करे ॥ ११३ ॥ यह आवाहनादि सारा कार्य आचार्य से ही कराना चाहिए । एवं आचार्य भी ऋत्विजों के साथ विष्णु आदि देवताओं के मन्त्र सौ-सौ बार जप करें ॥ ११४ ॥ जप के अन्त में कुम्भ के पश्चिम दिशा में हवन करे । करोड़, लाख, एक हजार अथवा सौ आहुति प्रदान करे ॥ ११५ ॥ एक दिन, नौ दिन अथवा मण्डल ४० दिन दिन तक देश और काल के अनुसार यथायोग्य हवन करे ॥ ११६ ॥ शान्ति के निमित्त शमी की लकड़ी एवं वृत्ति के निमित्त पलाश की लकड़ी, अन्न तथा घृतादि द्रव्यों द्वारा मन्त्रपूर्वक अथवा तत्तद् देवताओं के नाम से हवन करे ॥ ११७ ॥ यज्ञ में जो द्रव्य प्रारम्भ में ग्रहण किया गया हो, उसी द्रव्य से यज्ञान्त भी करे । अन्त में पुण्याहवाचन कराकर कलशों के जल से मार्जन करावे ॥ ११८ ॥ पुनः जितनी आहुति हुई हो, उसी संख्या के अनुसार ब्राह्मण भोजन करावे । और आचार्य एवं ऋत्विज हविष्य अन्न का भोजन करें ॥ ११९ ॥ होमान्त आदित्यादि ग्रहों की आहुति तथा पूजा कर ऋत्विजों को यथाक्रम नवरत्नादि दक्षिणा देवे ॥ १२० ॥ दशविध दान करे या भूमिदान करे । तत्पश्चात् उपनीत ब्राह्मणों, ब्रह्मचारियों, गृहस्थों, वाणप्रस्थों, कन्याओं तथा सौभाग्यवती स्त्रियों को तथा विधवाओं को दान देवे । पूजा की समस्त सामग्री आचार्य को देवे ॥ १२१-१२२ ॥

उत्पातानां च मारीणां दुःखस्वामी यमः स्मृतः । तस्माद्यमस्य प्रीत्यर्थं कालदानं प्रदापयेत् ॥१२३॥
शतनिष्केण वा कुर्याद् दशनिष्केण वा पुनः । पाशाङ्कुशधरं कालं कुर्यात् पुरुषरूपिणम् ॥१२४॥
तत्स्वर्णप्रतिमादानं कुर्याद् दक्षिणया सह । तिलदानं ततः कुर्यात् पूर्णायुष्यप्रसिद्धये ॥१२५॥
आज्यावेक्षणदानं च कुर्याद् व्याधिनिवृत्तये । सहस्रं भोजयेद् विप्रान् दरिद्रः शतमेव वा॥१२६॥
वित्ताभावे दरिद्रस्तु यथाशक्ति समाचरेत् । भैरवस्य महापूजां कुर्याद् भूतादि-शान्तये॥१२७॥
महाभिषेकं नैवेद्यं शिवस्यान्ते तु कारयेत् । ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चाद् भूरिभोजनरूपतः॥१२८॥
एवं कृतेन यज्ञेन दोषशान्तिमवाप्नुयात् । शान्तियज्ञमिमं कुर्याद् वर्षे वर्षे तु फाल्गुने ॥१२९॥
दुर्दर्शनादौ सद्यो वै मासमात्रे समाचरेत् । महापापादिसम्प्राप्तौ कुर्याद् भैरवपूजनम् ॥१३०॥
महाव्याधिसमुत्पत्तौ सङ्कल्पं पुनराचरेत् । सर्वाभावे दरिद्रस्तु दीपदानमथाचरेत् ॥१३१॥
तदप्यशक्तः स्नात्वा वै यत् किञ्चिद् दानमाचरेत् । दिवाकरं नमस्कुर्यान् मन्त्रेणाऽष्टोत्तरं शतम्॥१३२॥
सहस्रमयुतं लक्षं कोटिं वा कारयेद् बुधः । नमस्कारात्मयज्ञेन तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥१३३॥
त्वत्स्वरूपेऽर्पिता बुद्धिर्न तेऽशून्ये च रोचति । या चास्त्यस्मदहन्तेति त्वयि दृष्टे विवर्जिता ॥१३४॥
नम्रोऽहं हि स्वदेहेन भो महांस्त्वमसि प्रभो । न शून्यो मत्स्वरूपो वै तव दासोऽस्मि साम्प्रतम् ॥१३५॥
यथायोग्यं स्वात्मयज्ञं नमस्कारं प्रकल्पयेत् । अथाऽत्र शिवनैवेद्यं दत्त्वा ताम्बूलमाहरेत् १३६॥
शिवप्रदक्षिणं कुर्यात् स्वयमष्टोत्तरं शतम् । सहस्रमयुतं लक्षं कोटिमन्येन कारयेत् ॥१३७॥

उत्पात, मारी एवं दुःख के स्वामी यमराज हैं, इस कारण इन दुःखों से छुटकारा पाने के लिए यमराज की प्रीति के निमित्त कालप्रतिमा का दान करे ॥ १२३ ॥ सौ निष्क अथवा दश निष्क (अस्सी चोटली का एक कर्ष, १०८ कर्ष का एक निष्क) की पाश, अङ्कुशधारी पुरुष के रूप में काल की प्रतिमा का निर्माण करे ॥ १२४ ॥ और दक्षिणा सहित उस प्रतिमा का दान करे । पूर्णायुष्य प्राप्त करने के लिए तिलदान भी करना चाहिए ॥ १२५ ॥ घृतपात्र में अपनी छाया देखकर उस घृतपात्र का छाया दान ब्राह्मण को देवे । हजार ब्राह्मण को भोजन करावे । यदि दरिद्र हो, तो सौ ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥ १२६ ॥ सर्वथा दरिद्र हो तो जैसी शक्ति हो उतना ही करे । भूतादि की शान्ति के निमित्त भैरव की महापूजा करे ॥ १२७ ॥ यज्ञान्त में शिव को महाभिषेक तथा नैवेद्य समर्पित करे । पीछे अनेक प्रकार के व्यंजनों से ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥ १२८ ॥ ऐसा करने से दोष शान्त हो जाता है । यह शान्ति-यज्ञ प्रतिवर्ष फाल्गुन मास में कराना उचित है ॥ १२९ ॥ किन्तु यदि दुर्दर्शन आदि निमित्त हो, तो सद्यः उसकी शान्ति करा देनी चाहिए, अथवा मास मात्र में ही करानी चाहिए । महापापादि हो जाने पर भैरव की पूजा करे ॥ १३० ॥ महाव्याधि हो जाने पर संकल्पपूर्वक पुनः शान्तियज्ञ का अनुष्ठान करे । दरिद्र के पास यदि कुछ न हो, तो उसे मात्र दीप दान करना चाहिए ॥ १३१ ॥ इसमें भी असमर्थ हो, तो स्नान के पश्चात् कुछ दान कर देवे । और एक सौ आठ बार सूर्य के मन्त्रों को पढ़कर उन्हें नमस्कार करे ॥ १३२ ॥ हो सके तो एक हजार बार, दस हजार बार, लाख बार अथवा एक करोड़ बार सूर्य को नमस्कार करे । क्योंकि नमस्कारात्मक यज्ञ करने से सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं ॥ १३३ ॥ नमस्कार करते हुए उस सूर्य में शिवजी से प्रार्थना करे कि, हे प्रभो ! मैंने अत्यन्त दीप्यमान आप में अपनी बुद्धि समर्पित कर दी है, आपसे शून्य कोई भी स्थान नहीं है, जो कुछ भी हमारा है वह मुझ सहित आपका है, आपके दृष्टि से किसी की बुद्धि बाहर नहीं है ॥ १३४ ॥ मैं अपनी देह से नम्र हूँ आप महान् हैं । आपके होने से मेरा स्वरूप शून्य नहीं है । मैं आपका दास हूँ ॥ १३५ ॥ ऐसा कहकर नमस्कारपूर्वक आत्मयज्ञ करे । फिर शिव को नैवेद्य अर्पित कर, उन्हें ताम्बूल प्रदान करे ॥ १३६ ॥ स्वयं शिवजी की एक सौ आठ प्रदक्षिणा करे । अथवा एक हजार, दश हजार, लाख एवं करोड़ प्रदक्षिणा करे । अपने असमर्थ होने पर दूसरे से प्रदक्षिणा करवावे ॥ १३७ ॥

शिवप्रदक्षिणात् सर्वं पातकं नश्यति क्षणात् । दुःखस्य मूलं व्याधिर्हि व्याधेर्मूलं हि पातकम् ॥१३८॥
धर्मेणैव हि पापानामपनोदनमीरितम् । शिवोद्देशकृतो धर्मः क्षमः पापविनोदने ॥१३९॥
अध्यक्षं शिवधर्मेषु प्रदक्षिणमितीरितम् । क्रियया जपरूपं हि प्रणवं तु प्रदक्षिणम् ॥१४०॥
जननं मरणं द्वन्द्वं मायाचक्रमितीरितम् । शिवस्य मायाचक्रं हि बलिपीठं तदुच्यते ॥१४१॥
बलिपीठं समारभ्य प्रादक्षिण्यक्रमेण वै । पदे पदान्तरं गत्वा बलिपीठं समाविशेत् ॥१४२॥
नमस्कारं ततः कुर्यात् प्रदक्षिणमितीरितम् । निर्गमाज्जननं प्राप्तं नमस्त्वात्मसमर्पणम् ॥१४३॥
जननं मरणं द्वन्द्वं शिवमाया-समर्पितम् । शिवमायार्पितद्वन्द्वो न पुनस्त्वात्मभाग् भवेत् ॥१४४॥
यावद् देहं क्रियाधीनः स जीवो बद्ध उच्यते । देहत्रयवशीकारे मोक्ष इत्युच्यते बुधैः ॥१४५॥
मायाचक्रप्रणेता हि शिवः परमकारणम् । शिवमायार्पितद्वन्द्वं शिवस्तु परिमार्जति ॥१४६॥
शिवेन कल्पितं द्वन्द्वं तस्मिन्नेव समर्पयेत् । शिवस्यातिप्रियं विद्यात् प्रदक्षिणं नमो बुधाः ॥१४७॥
प्रदक्षिण-नमस्काराः शिवस्य परमात्मनः । षोडशैरुपचारैश्च कृतपूजा फलप्रदा ॥१४८॥
प्रदक्षिणाविनाश्यं हि पातकं नास्ति भूतले । तस्मात् प्रदक्षिणेनैव सर्वपापं विनाशयेत् ॥१४९॥
शिवपूजापरो मौनी सत्यादिगुणसंयुतः । क्रियातपो-जप-ज्ञान-ध्यानेष्वेकैकमाचरेत् ॥१५०॥
ऐश्वर्यं दिव्यदेहश्च ज्ञानमज्ञानसंक्षयः । शिवसान्निध्यमित्येते क्रियादीनां फलं भवेत् ॥१५१॥
करणेन फलं याति तमसः परिहापनात् । जन्मनः परिमार्जित्वाज्ज्ञबुद्धया जनितानि च ॥१५२॥
यथादेशं यथाकालं यथादेहं यथाधनम् । यथायोग्यं प्रकुर्वीत क्रियादीञ्छिवभक्तिमान् ॥१५३॥

भगवान् शिव की प्रदक्षिणा से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। दुःख का मूल व्याधि तथा व्याधि का मूल पाप है, ऐसा समझे ॥ १३८ ॥ धर्म से ही पाप दूर होता है, ऐसा धर्मशास्त्रकारों का कहना है। शिव के उद्देश्य से जो धर्म किया जाता है, वही पाप नष्ट करने में समर्थ होता है ॥ १३९ ॥ शिव के लिए किये जानेवाले धर्मों में प्रदक्षिणा सर्वोत्तम धर्म है, यह प्रदक्षिणा की क्रिया प्रणव का जप करते हुए करनी चाहिए ॥ १४० ॥ जन्म तथा मरण मायाचक्र कहा गया है। शिव के माया-चक्र को बलिपीठ कहते हैं ॥ १४१ ॥ बलिपीठ से आरम्भ कर दाहिनी ओर चले, फिर दो पग चलकर बलिपीठ के निकट जाकर बैठ जावे और शिव को नमस्कार करे, इसी का नाम प्रदक्षिणा है। प्रदक्षिणा करने से जन्म तथा नमस्कार करने से आत्म-समर्पण होता है ॥ १४२-१४३ ॥

जन्म-मरण इन द्वन्द्वों को शिव की माया में समर्पण करे। शिवमाया में समर्पित द्वन्द्व, फिर आत्मा को नहीं प्राप्त होते ॥ १४४ ॥ देह धारण पर्यन्त कर्म के अधीन रहनेवाला जीव बद्धजीव कहा जाता है। किन्तु वही जीव स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर को जब अपने वश में कर लेता है, तो उसे मुक्त जीव कहते हैं ॥ १४५ ॥ जीव को बद्ध तथा मुक्त करने में मायाचक्र के प्रणेता शिव ही परम कारण हैं। शिवमाया को समर्पित किये गये द्वन्द्व को शिव ही दूर करते हैं ॥ १४६ ॥ शिव के द्वारा कल्पित जन्म-मरण शिव को ही समर्पित करना चाहिए।

हे ब्राह्मणो ! शिव को प्रदक्षिणा तथा नमस्कार ये दोनों ही अत्यन्त प्रिय हैं ॥ १४७ ॥ शिव परमात्मा के निमित्त किये गये प्रदक्षिणा तथा नमस्कार से षोडशोपचार के पूजन का महाफल प्राप्त होता है ॥ १४८ ॥ जगत् में ऐसा कोई पाप नहीं है, जो प्रदक्षिणा से नष्ट न हो, इसलिए प्रदक्षिणा द्वारा ही सम्पूर्ण पापों को नष्ट करना चाहिए ॥ १४९ ॥ शिवपूजा करनेवाला पुरुष, मौन तथा सत्यादि गुणों से युक्त हो क्रमशः क्रिया, तप, जप, ज्ञान और ध्यान का अभ्यास करे। क्रिया से ऐश्वर्य, तप से दिव्य देह, जप से ज्ञान, ज्ञान से अज्ञान का नाश तथा ध्यान से शिवसान्निध्य रूप फल प्राप्त होता है ॥१५०-१५१॥ इन क्रियाओं के करने से तमोगुण छूट जाता है और ब्रह्म द्वारा बुद्धि की प्रेरणा होने से जन्मार्जित पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १५२ ॥ देश, काल, शरीर, धन एवं अपनी योग्यता के अनुसार शिवभक्त को क्रिया एवं जप,

न्यायार्जितसुवित्तेन वसेत् प्राज्ञः शिवस्थले । जीवहिंसादि-रहितमतिक्लेश-विवर्जितम् ॥१५४॥
पञ्चाक्षरेण जप्तं च तोयमन्नं विदुः सुखम् । अथवाऽऽहुर्दरिद्रस्य भिक्षान्नं ज्ञानदं भवेद् ॥१५५॥
शिवभक्तस्य भिक्षान्नं शिवभक्तिविवर्धनम् । शम्भुसत्रमिति प्राहुर्भिक्षान्नं शिवयोगिनः ॥१५६॥
येन केनाप्युपायेन यत्र कुत्रापि भूतले । शुद्धान्नभुक् सदा मौनी रहस्यं न प्रकाशयेत् ॥१५७॥
प्रकाशयेत्तु भक्तानां शिवमाहात्म्यमेव हि । रहस्यं शिवमन्त्रस्य शिवो जानाति नाऽपरः ॥१५८॥
शिवभक्तो वसेन्नित्यं शिवलिङ्गं समाश्रितः । स्थाणुलिङ्गाश्रयेणैव स्थाणुर्भवति भूसुराः ॥१५९॥
पूजया चरलिङ्गस्य क्रमान् मुक्तो भवेद् ध्रुवम् । सर्वमुक्तं समासेन साध्य-साधनमुत्तमम् ॥१६०॥
व्यासेन यत् पुरा प्रोक्तं यच्छ्रुतं हि मया पुरा । भद्रमस्तु हि वोऽस्माकं शिवभक्तिर्दृढाऽस्तु सा ॥१६१॥
य इमं पठतेऽध्यायं यः शृणोति नरः सदा । शिवज्ञानं स लभते शिवस्य कृपया बुधाः ॥१६२॥

इति शिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्य-साधनखण्डे बन्धमोक्षस्वरूपं शिवलिङ्गमाहात्म्यवर्णनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

(पार्थिव शिवलिङ्गपूजन माहात्म्य और भस्म के प्रकार का कथन)

ऋषय ऊचुः

सूत सूत ! चिरं जीव धन्यस्त्वं शिवभक्तिमान् । सम्यगुक्तस्त्वया लिङ्गमहिमा सत्फलप्रदः ॥ १ ॥
यत्र पार्थिवमाहेशलिङ्गस्ये महिमाऽधुना । सर्वोत्कृष्टश्च कथितो व्यासतो ब्रूहि तं पुनः ॥ २ ॥

ज्ञान तथा ध्यानादि का अभ्यास करना चाहिए ॥ १५३ ॥ बुद्धिमान् को उचित है कि वह शिव-क्षेत्र में न्यायपूर्वक धन का अर्जन करते हुए निवास करे। जीवहिंसा से रहित, अत्यन्त क्लेश न करते हुए प्राप्त अन्न एवं जल का सुखोपभोग करे और पञ्चाक्षर मन्त्र का जप करते हुए निवास करे। अथवा दरिद्र को भिक्षान्न से ही ज्ञान प्राप्त होता है ॥ १५४-१५५ ॥ शिवभक्त को भिक्षा से प्राप्त हुआ अन्न शिवभक्ति को बढ़ानेवाला है। शिवयोगियों ने भिक्षान्न को शिवसत्र के समान परम पवित्र माना है ॥ १५६ ॥ जिस-किसी उपाय से जहाँ-कहीं भी पृथ्वी में निवास करे और शुद्ध अन्न का भक्षण एवं मौन व्रत धारण करे। किन्तु शिव का रहस्य कभी भी प्रगट न करे ॥१५७॥ यदि प्रकट भी करे तो शिवभक्तों के सामने ही प्रकट करे। ऐसे तो शिवमन्त्र का रहस्य शिव के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता ॥ १५८ ॥ शिवभक्त सर्वदा शिवलिङ्ग के समीप वास करे। हे ब्राह्मणो ! स्थाणुलिङ्ग के आश्रय से शिवभक्त स्थाणु के समान अविचल समाधिस्थ हो जाता है ॥ १५९ ॥ चरलिङ्ग की पूजा करने से विद्वान् क्रम से मुक्त हो जाता है। मैंने शिवपद-प्राप्ति रूप साध्य तथा उसके साधनों को संक्षेप में इस अध्याय में उत्तम रीति से वर्णन किया ॥ १६० ॥ यह सब साध्य-साधन मैंने कुछ काल पूर्व व्यासजी के मुख से सुना है। आपका और हमारा कल्याण हो, हम सभी की शिव में दृढ़ भक्ति हो ॥ १६१ ॥ जो मनुष्य सदा इस अध्याय को पढ़ते और सुनते हैं, हे महात्माओ ! वे शिवजी की कृपा से शिवविषयक ज्ञान प्राप्त करते हैं ॥ १६२ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत प्रथमा विद्येश्वरसंहिता में साध्य-साधन-खण्डस्थित बन्ध-मोक्ष-स्वरूप एवं शिवलिङ्ग-माहात्म्य वर्णन नामक अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥

*

ऋषिगण बोले—हे सूत ! चिर काल तक जिओ। आप धन्य एवं शिव-भक्त हैं। आपने शिव-लिङ्ग की महिमा एवं उसके पूजन का फल अच्छी प्रकार कहा ॥ १ ॥ आपने क्रम पार्थिव शिवलिङ्ग की महिमा सर्वोत्कृष्ट कही है तथा जिसका वर्णन व्यासजी ने आपसे कहा है, हमलोग उसे सुनना चाहते हैं ॥२॥

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे सद्भक्त्यादरतोऽखिलाः । शिवपार्थिवलिङ्गस्य महिमा प्रोच्यते मया ॥ ३ ॥
उक्तेष्वेतेषु लिङ्गेषु पार्थिवं लिङ्गमुत्तमम् । तस्य पूजनतो विप्रा बहवः सिद्धिमागताः ॥ ४ ॥
हरिर्ब्रह्मा च ऋषयः सप्रजापतयस्तथा । सम्पूज्य पार्थिवं लिङ्गं प्रापुः सर्वेप्सितं द्विजाः ॥ ५ ॥
देवा-ऽसुर-मनुष्याश्च गन्धर्वोरगराक्षसाः । अन्येऽपि बहवस्तं सम्पूज्य सिद्धिं गताः परम् ॥ ६ ॥
कृते रत्नमयं लिङ्गं त्रेतायां हेमसम्भवम् । द्वापरे पारदं श्रेष्ठं पार्थिवं तु कलौ युगे ॥ ७ ॥
अष्टमूर्तिषु सर्वासु मूर्तिर्वै पार्थिवी वरा । अनन्यपूजिता विप्रास्ततस्तस्मान् महत्फलम् ॥ ८ ॥
यथा सर्वेषु देवेषु ज्येष्ठः श्रेष्ठो महेश्वरः । एवं सर्वेषु लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते ॥ ९ ॥
यथा नदीषु सर्वासु ज्येष्ठा श्रेष्ठा सुरापगा । तथा सर्वेषु लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते ॥१०॥
यथा सर्वेषु मन्त्रेषु प्रणवो हि महान् स्मृतः । तथेदं पार्थिवं श्रेष्ठमाराध्यं पूज्यमेव हि ॥११॥
यथा सर्वेषु वर्णेषु ब्राह्मणः श्रेष्ठ उच्यते । तथा सर्वेषु लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते ॥१२॥
यथा पुरीषु सर्वासु काशी श्रेष्ठतमा स्मृता । तथा सर्वेषु लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते ॥१३॥
यथा व्रतेषु सर्वेषु शिवरात्रिव्रतं परम् । तथा सर्वेषु लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते ॥१४॥
यथा देवीषु सर्वासु शैवी शक्तिः परा स्मृता । तथा सर्वेषु लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते ॥१५॥
प्रकृत्य पार्थिवं लिङ्गं योऽन्यदेवं प्रपूजयेत् । वृथा भवति सा पूजा स्नानदानादिकं वृथा ॥१६॥
पार्थिवाराधनं पुण्यं धन्यमायुर्विवर्धनम् । तुष्टिदं पुष्टिदं श्रीदं कार्यं साधकसत्तमैः ॥१७॥
यथालब्धोपचारैश्च भक्ति-श्रद्धासमन्वितः । पूजयेत् पार्थिवं लिङ्गं सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥१८॥

सूतजी बोले—हे ऋषिगणो ! अब आप सभी सुनें। मैं आपलोगों की भक्ति तथा आदर से प्रसन्न होकर शिवजी के पार्थिवलिङ्ग की महिमा कहता हूँ ॥ ३ ॥ उक्त प्रकार के कहे हुए सभी लिङ्गों में पार्थिवलिङ्ग सर्वश्रेष्ठ है। पार्थिव लिङ्ग के पूजन से बहुत लोगों को सिद्धि प्राप्त हुई है ॥ ४ ॥ हे ब्राह्मणो ! विष्णु, प्रजापति ब्रह्मा एवं ऋषिगण भी पार्थिव लिङ्ग का पूजन कर अपना मनोरथ पूर्ण किये हैं ॥ ५ ॥ देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, उरग, राक्षस आदि भी पार्थिव शिवलिङ्ग के पूजन के प्रभाव से सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। सत्ययुग में रत्नलिङ्ग, त्रेता में सुवर्ण लिङ्ग, द्वापर में पारे का लिङ्ग और कलियुग में पार्थिवलिङ्ग श्रेष्ठ कहा गया है ॥६-७॥ शिव की आठ मूर्त्तियों में पार्थिव मूर्त्ति सर्वश्रेष्ठ है। यह पार्थिव लिङ्ग स्वयं अपने द्वारा निर्मित कर पूजी जाती है, इसलिए अनन्य पूजित होने से यह उत्तम तप है और इसके पूजन से महान् फल प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

जिस प्रकार सभी देवताओं में महेश्वर ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हैं, इसी प्रकार सभी लिङ्गों में पार्थिव-लिङ्ग श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥ जिस प्रकार सभी नदियों में गङ्गा सर्वश्रेष्ठ हैं, इसी प्रकार सभी लिङ्गों में पार्थिव-लिङ्ग सर्वश्रेष्ठ है ॥ १० ॥ जैसे, सभी मन्त्रों में ॐकार श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सभी लिङ्गों में पार्थिव-लिङ्ग सर्वश्रेष्ठ है ॥ ११ ॥ जैसे, सब वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है, इसी प्रकार सब लिङ्गों में पार्थिव लिङ्ग सर्वश्रेष्ठ है ॥ १२ ॥ जैसे सब पुरियों में काशी श्रेष्ठ है, इसी प्रकार सभी लिङ्गों में पार्थिव लिङ्ग सर्व-श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥ जिस प्रकार व्रतों में शिवरात्रिव्रत श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सभी लिङ्गों में पार्थिव लिङ्ग सर्वश्रेष्ठ है ॥ १४ जिस प्रकार सभी शक्तियों में शैवी पराशक्ति श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सभी लिङ्गों में पार्थिव लिङ्ग सर्वश्रेष्ठ है ॥ १५ ॥ जो पार्थिव लिङ्ग की पूजाकर पुनः किसी अन्य देवता का पूजन करता है, उसकी वह पूजा एवं स्नान-दानादिक कृत्य व्यर्थ है ॥ १६ ॥ पार्थिव शिवलिङ्ग का आराधन महापुण्यदायक, धन तथा आयु को बढ़ाने वाला है। तुष्टि, पुष्टि और लक्ष्मी को देने वाला और कार्य को सिद्ध करने वाला है ॥ १७ ॥ भक्ति तथा श्रद्धा से युक्त हो यथालब्धोपचारों से पार्थिव शिवलिङ्ग की

यः कृत्वा पार्थिवं लिङ्गं पूजयेच्छुभवेदिकम् । इहैव धनवाञ्छ्रीमानन्ते रुद्रोऽभिजायते ॥१९॥
त्रिसन्ध्यं योऽर्चयेल्लिङ्गं कृत्वा बिल्वेन पार्थिवम् । दशैकादशकं यावत्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२०॥
अनेनैव स्वदेहेन रुद्रलोके महीयते । पापहं सर्वमर्त्यानां दर्शनात् स्पर्शनादपि ॥२१॥
जीवन्मुक्तः स वै ज्ञानी शिव एव न संशयः । तस्य दर्शनमात्रेण भुक्तिर्मुक्तिश्च जायते ॥२२॥
शिवं यः पूजयेन्नित्यं कृत्वा लिङ्गं तु पार्थिवम् । यावज्जीवनपर्यन्तं स याति शिवमन्दिरम् ॥२३॥
मृडेनाप्रमितान् वर्षाञ्छिवलोके हि तिष्ठति । सकामः पुनरागत्य राजेन्द्रो भारते भवेत् ॥२४॥
निष्कामः पूजयेन्नित्यं पार्थिवं लिङ्गमुत्तमम् । शिवलोके सदा तिष्ठेत् ततः सायुज्यमाप्नुयात् ॥२५॥
पार्थिवं शिवलिङ्गं च विप्रो यदि न पूजयेत् । स याति नरकं घोरं शूलप्रोतं सुदारुणम् ॥२६॥
यथाकथञ्चिद् विधिना रम्यं लिङ्गं प्रकारयेत् । पञ्चसूत्रविधानं च पार्थिवे न विचारयेत् ॥२७॥
अखण्डं तद्धि कर्तव्यं न विखण्डं प्रकारयेत् । विखण्डं तु प्रकुर्वाणो नैव पूजाफलं लभेत् ॥२८॥
रत्नजं हेमजं लिङ्गं पारदं स्फाटिकं तथा । पार्थिवं पुष्परागोत्थमखण्डं तु प्रकारयेत् ॥२९॥
अखण्डं तु चरं लिङ्गं द्विखण्डमचरं स्मृतम् । खण्डाऽखण्डविचारोऽयं सचराऽचरयोः स्मृतः॥३०॥
वेदिका तु महाविद्या लिङ्गं देवो महेश्वरः । अतो हि स्थावरे लिङ्गे स्मृता श्रेष्ठा द्विखण्डिता॥३१॥
द्विखण्डं स्थावरं लिङ्गं कर्तव्यं हि विधानतः । अखण्डं जङ्गमं प्रोक्तं शैवसिद्धान्तवेदिभिः ॥३२॥
द्विखण्डं तु चरं लिङ्गं कुर्वन्त्यज्ञानमोहिताः । नैव सिद्धान्तवेत्तारो मुनयः शास्त्रकोविदाः ॥३३॥
अखण्डं स्थावरं लिङ्गं द्विखण्डं चरमेव च । ये कुर्वन्ति नरा मूढा न पूजाफलभागिनः ॥३४॥
तस्माच्छास्त्रोक्तविधिना अखण्डं चरसंज्ञकम् । द्विखण्डं स्थावरं लिङ्गं कर्तव्यं परया मुदा ॥३५॥

पूजा सभी प्रकार की कामनाओं को देने वाली है ॥ १८ ॥ जो शुद्ध वेदी पर पार्थिव लिङ्ग बना कर पूजा करता है, वह इस लोक में धनवान्, श्रीमान् होकर अन्त में रुद्र को प्राप्त करता है ॥ १९ ॥ जो तीनों सन्ध्याओं में शिवलिङ्ग का निर्माण कर बिल्वपत्र से दस अथवा ग्यारह बार उसकी पूजा करता है, उसका पुण्य फल सुनो ॥ २० ॥ वह पुरुष इसी देह से रुद्रलोक को प्राप्त करता है और उसके दर्शन एवं स्पर्श मात्र से सभी मनुष्यों के पाप दूर हो जाते हैं ॥ २१ ॥ वह ज्ञानी तथा जीवन्मुक्त साक्षात् शिव ही है, इसमें सन्देह नहीं । उसके दर्शन मात्र से भोग तथा मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है, इसमें संशय नहीं ॥ २२ ॥ जो पार्थिव लिङ्ग बनाकर नित्य सकाम भावना से उसका पूजन करता है वह जीवन पर्यन्त शिवलोक में जाता है ॥ २३ ॥ वह सुखपूर्वक अनन्तकाल तक शिवलोक में वास करता है, फिर इस लोक में आकर भरतखण्ड का राजा होता है ॥ २४॥

जो कामना रहित हो शिवलिङ्ग का पूजन करता है, वह सदा सायुज्य प्राप्त कर शिवलोक में निवास करता है ॥ २५ ॥ यदि ब्राह्मण होकर पार्थिव लिङ्ग का पूजन न करे तो वह दारुण घोर शूल नामक नरक को जाता है ॥ २६ ॥ जिस-किसी विधि से मनोहर शिवलिङ्ग का निर्माण करे। पञ्चसूत्र का विधान पार्थिवलिङ्ग में न करे ॥ २७ ॥ अखण्ड शिवलिङ्ग बनाना चाहिए। खण्ड-खण्ड उसका निर्माण न करे। दो खण्ड करने से पूजा के फल की प्राप्ति नहीं होती ॥ २८ ॥ रत्न, सुवर्ण, पारद, स्फाटिक, पार्थिव एवं पुष्पराग से अखण्ड शिवलिङ्ग का निर्माण करे ॥ २९ ॥ चरलिङ्ग अखण्ड और अचर लिङ्ग द्विखण्ड कहा जाता है। इस प्रकार खण्ड तथा अखण्ड का विचार चर और अचर लिङ्ग में करना चाहिए ॥ ३० ॥ वेदी महाविद्या है, महेश्वर देव शिवलिङ्ग हैं, इस कारण स्थावर लिङ्ग में द्विखण्डता कही है ॥ ३१ ॥ स्थावर लिङ्ग दो खण्डों में विधानपूर्वक बनाना चाहिए। शिवसिद्धान्त के जानने वालों ने जङ्गम लिङ्ग को अखण्ड कहा है ॥ ३२ ॥ जो लोग चर लिङ्ग को अज्ञान से मोहित हो दो खण्डों में करते हैं वे मुनि लोग शिवसिद्धान्त के ज्ञाता एवं शास्त्रों के ज्ञानकार नहीं हैं ॥ ३३ ॥ स्थावर लिङ्ग को अखण्ड तथा चरलिङ्ग को जो द्विखण्ड कहते हैं, वे विधि का उल्लङ्घन करते हैं, उन्हें पूजा का फल प्राप्त नहीं होता ॥ ३४ ॥ इस कारण शास्त्रोक्त विधान से चरसंज्ञक लिङ्ग अखण्ड

अखण्डे तु चरे पूजा सम्पूर्णफलदायिनी । द्विखण्डे तु चरे पूजा महाहानिप्रदा स्मृता ॥३६॥
अखण्डे स्थावरे पूजा न कामफलदायिनी । प्रत्यवायकरी नित्यमित्युक्तं शास्त्रवेदिभिः ॥३७॥

इति शिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे पार्थिवशिवलिङ्ग-पूजनमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः

(वैदिक एवं पुराणोक्त विधि से पार्थिव-पूजन का विधान)

सूत उवाच

अथ वैदिकभक्तानां पार्थिवार्चा निगद्यते । वैदिकेनैव मार्गेण भुक्ति-मुक्तिप्रदायिनी ॥ १ ॥
सूत्रोक्तविधिना स्नात्वा सन्ध्यां कृत्वा यथाविधि । ब्रह्मयज्ञं विधायादौ ततस्तर्पणमाचरेत् ॥ २ ॥
नैत्यिकं सकलं कामं विधायाऽनन्तरं पुमान् । शिवस्मरणपूर्वं हि भस्मरुद्राक्षधारकः ॥ ३ ॥
वेदोक्तविधिना सम्यक् सम्पूर्णफलसिद्धये । पूजयेत् परया भक्त्या पार्थिवं लिङ्गमुत्तमम् ॥ ४ ॥
नदीतीरे तडागे च पर्वते काननेऽपि च । शिवालये शुचौ देशे पार्थिवार्चा विधीयते ॥ ५ ॥
शुद्धप्रदेशसम्भूतां मृदमाहृत्य यत्नतः । शिवलिङ्गं प्रकल्पेत सावधानतया द्विजाः ॥ ६ ॥
विप्रे गौरा स्मृता शोणा बाहुजे पीतवर्णका । वैश्ये कृष्णा पादजाते ह्यथवा यत्र या भवेत् ॥ ७ ॥
संगृह्य मृत्तिकां लिङ्गनिर्माणार्थं प्रयत्नतः । अतीव शुभदेशे च स्थापयेत्तां मृदं शुभाम् ॥ ८ ॥
संशोध्य च जलेनापि पिण्डीकृत्य शनैः शनैः । विधीयेत शुभं लिङ्गं पार्थिवं वेदमार्गतः ॥ ९ ॥

एवं स्थावर लिङ्ग को दो खण्डों में प्रसन्नतापूर्वक निर्माण करना चाहिए ॥ ३५ ॥ अखण्ड चरलिङ्ग में की गयी पूजा सम्पूर्ण फल देनेवाली है। और दो खण्डों में चरपूजा महाहानिप्रद है ॥ ३६ ॥ अखण्ड स्थावर में की गयी पूजा कामना तथा पूर्ण फल नहीं देती। किन्तु उससे प्रायश्चित्त ही होता है। ऐसा शास्त्रकारों का मत है ॥ ३७ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत प्रथमा विद्येश्वरसंहिता में साध्यसाधन-खण्ड-स्थित पार्थिव शिवलिङ्ग-पूजन माहात्म्यवर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥

*

सूतजी बोले—हे ऋषियो ! अब मैं वैदिक शिवभक्तों के लिए शिवपूजा की विधि कहता हूँ। वैदिकमार्ग से की जानेवाली यह पूजा भोग तथा मोक्ष को प्रदान करती है ॥ १ ॥ अपने वैदिक शाखा सूत्र के अनुसार मनुष्य स्नान कर यथाविधि सन्ध्योपासन करे। तदनन्तर ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय) कर देवताओं, पितरों तथा ऋषियों का तर्पण करे ॥ २ ॥ इस प्रकार सभी नैत्यिक क्रिया पूर्ण कर शिव का स्मरण करे। भस्म तथा रुद्राक्ष का धारण स्नान के अनन्तर नित्यकर्म करने से पूर्व ही कर लेवे ॥३॥ फिर पूर्ण फल प्राप्ति के हेतु वेदोक्त विधान से अत्यन्त भक्तिपूर्वक पार्थिव शिवलिङ्ग का पूजन करे ॥ ४ ॥ नदी तट पर, तालाब पर, पर्वत पर, कानन में तथा शिवालय में एवं पुण्यस्थान में पार्थिव शिवपूजा का विधान है ॥ ५ ॥ सर्वप्रथम शुद्ध प्रदेश से पार्थिवपूजा के लिए यत्नपूर्वक मृत्तिका ग्रहण करे। हे ब्राह्मणो ! फिर सावधानी से उस मृत्तिका द्वारा शिवलिङ्ग का निर्माण करे ॥ ६ ॥ ब्राह्मण को श्वेत मृत्तिका, क्षत्रिय को रक्त, वैश्य को पीत और शूद्र को काली मृत्तिका का शिवलिङ्ग निर्माण करना चाहिए ॥ ७ ॥ इस प्रकार सर्वप्रथम लिङ्ग-निर्माण के लिए मृत्तिका ग्रहण करनी चाहिए। और उसे पवित्र स्थान पर रखनी चाहिए ॥ ८ ॥ अनन्तर उसमें जल डालकर धीरे-धीरे उससे पिण्ड निर्माण कर

ततः सम्पूजयेद् भक्त्या भुक्तिमुक्तिफलाप्तये । तत्प्रकारमहं वच्मि शृणुध्वं संविधानतः ॥१०॥
नमः शिवाय मन्त्रेणाऽर्चनद्रव्यं च प्रोक्षयेत् । भूरसीति च मन्त्रेण क्षेत्रसिद्धिं प्रकारयेत् ॥११॥
आपोऽस्मानिति मन्त्रेण जलसंस्कारमाचरेत् । नमस्ते रुद्रमन्त्रेण फाटिकाबन्धमुच्यते ॥१२॥
शम्भवायेति मन्त्रेण क्षेत्रशुद्धिं प्रकारयेत् । नमः पूर्वेण कुर्यात् पञ्चामृतस्यापि प्रोक्षणम् ॥१३॥
नीलग्रीवाय मन्त्रेण नमःपूर्वेण भक्तिमान् । चरेच्छङ्करलिङ्गस्य प्रतिष्ठापनमुत्तमम् ॥१४॥
भक्तितस्तत एतत्ते रुद्रायेति च मन्त्रतः । आसनं रमणीयं वै दद्याद् वैदिकमार्गकृत् ॥१५॥
मा नो महान्तमिति च मन्त्रेणावाहनं चरेत् । या ते रुद्रेण मन्त्रेण सञ्चरेदुपवेशनम् ॥१६॥
मन्त्रेण यामिषुमिति न्यासं कुर्याच्छिवस्य च । अध्यवोचदिति प्रेम्णाऽधिवासं मनुनाऽऽचरेत् ॥१७॥
मनुनाऽसौ जीव इति देवतान्यासमाचरेत् । असौ योऽवसर्पतीति चाचरेदुपसर्पणम् ॥१८॥
नमोऽस्तु नीलग्रीवायेति पाद्यं मनुनाऽऽहरेत् । अर्घ्यं च रुद्रगायत्र्याऽऽचमनं त्र्यम्बकेण च ॥१९॥
पयः पृथिव्यामिति च पयसा स्नानमाचरेत् । दधिक्राव्णेति मन्त्रेण दधिस्नानं च कारयेत् ॥२०॥
घृतं स्नानं खलु घृतं घृतं यावेति मन्त्रतः । मधुवाता मधुनक्तं मधुमान्न इति त्र्यृचा ॥२१॥
मधुखण्डस्नपनं प्रोक्तमिति पञ्चामृतं स्मृतम् । अथवा पाद्यमन्त्रेण स्नानं पञ्चामृतेन च ॥२२॥
मा नस्तोके इति प्रेम्णा मन्त्रेण कटिबन्धनम् । नमो धृष्णवे इति वा उत्तरीयं च धापयेत् ॥२३॥
या ते हेतिरिति प्रेम्णा ऋक्चतुष्केण वैदिकः । शिवाय विधिना भक्तश्चरेद् वस्त्रसमर्पणम् ॥२४॥
नमः श्वभ्य इति प्रेम्णा गन्धं दद्यादृचा सुधीः । नमस्तक्षभ्य इति चाऽक्षतान् मन्त्रेण चाऽर्पयेत् ॥२५॥
नमः पार्याय इति वा पुष्पं मन्त्रेण चाऽर्पयेत् । नमः पर्णाय इति वा बिल्वपत्रसमर्पणम् ॥२६॥

वेद मार्ग के अनुसार अत्यन्त मनोहर शिवलिङ्ग निर्माण करे ॥ ९ ॥ फिर भोग तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिए उस लिङ्ग का पूजन करे।

सूत जी बोले—हे महर्षियो ! अब मैं उसके पूजन के प्रकार को कहता हूँ, आप लोग सुनें ॥ १० ॥ 'नमः शिवाय' मन्त्र पढ़कर पूजन-सामग्री पर जल छोड़े। 'भूरसि' इत्यादि मन्त्र पढ़कर क्षेत्र (लिङ्गस्थान) की सिद्धि करे ॥११॥ 'आपोऽस्मान्' इस मन्त्र को पढ़कर जल को सुसंस्कृत करे। 'नमस्ते रुद्र' इस मन्त्र से फट् कहकर दिग्बन्धन करे ॥ १२ ॥ 'नमः शम्भवाय' इस मन्त्र से क्षेत्र (शरीर) शुद्धि करे। 'नमः पूर्वेण' इस मन्त्र से पञ्चामृत पर जल छिड़के ॥ १३ ॥ फिर शिवभक्त पुरुष 'नीलग्रीवाय' और 'नमः पूर्वेण' इन दो मन्त्रों को पढ़ते हुए भली प्रकार पार्थिव शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा करे ॥ १४ ॥ फिर भक्तिपूर्वक वेदज्ञाता पुरुष 'एतत्ते रुद्राय' इस मन्त्र को पढ़ते हुए रमणीय आसन प्रदान करे ॥ १५ ॥ 'मा नो महान्तम्' इत्यादि मन्त्र से आवाहन करे। 'या ते रुद्र' इस मन्त्र को पढ़कर शिवजी को बैठावे ॥ १६ ॥ 'यामिषुं' इस मन्त्र को पढ़कर शिव का न्यास करे। 'अध्यवोचद' इस मन्त्र को पढ़कर प्रेम से शिव का अधिवासन करे ॥ १७ ॥ 'असौ जीव' इस मन्त्र से देवतान्यास करे। 'असौ योऽवसर्पति' इस मन्त्र को पढ़कर (भूतादि का) अवसर्पण करे ॥ १८ ॥ 'नमोऽस्तु नीलग्रीवाय' इस मन्त्र को पढ़कर पाद्य समर्पित करे। रुद्र गायत्री पढ़कर अर्घ्य प्रदान करे एवं 'त्र्यम्बकं' मन्त्र से आचमन करावे ॥ १९ ॥ 'पयः पृथिव्याम्' इस मन्त्र से दुग्ध स्नान, 'दधि क्राव्णो' इस मन्त्र से दधि स्नान, 'घृतं याव' इस मन्त्र से घृतस्नान, 'मधुव्वाता, मधुनक्तं, मधुमान्' इन मन्त्रों को पढ़ते हुए मधु एवं खांड़ से स्नान कराकर पञ्चामृत स्नान की समाप्ति करे। अथवा पाद्यवाले मन्त्र से पञ्चामृत से स्नान करावे ॥ २०-२२ ॥ 'मा नस्तोके' इस मन्त्र से कटिबन्ध (करधनी) प्रदान करे। 'नमो धृष्णवे' इस मन्त्र को पढ़कर उत्तरीय वस्त्र धारण करावे ॥ २३ ॥ फिर वेदज्ञ पुरुष 'या ते हेति' इन चार मन्त्रों से प्रेम और भक्तिपूर्वक वस्त्र समर्पित करे ॥ २४ ॥ फिर बुद्धिमान् वैदिक 'नमः श्वभ्यः' इस मन्त्र से प्रेमपूर्वक गन्ध प्रदान करे। 'नमस्तक्षभ्यः' इस मन्त्र को पढ़कर अक्षत समर्पण करे ॥ २५ ॥ 'नमः पार्याय' इस मन्त्र से पुष्प और 'नमः पर्णाय' इस मन्त्र से बिल्वपत्र समर्पित करे ॥२६॥

नमः कपर्दिने चेति धूपं दद्याद्यथाविधि । दीपं दद्याद्यथोक्तं तु नम आशव इत्यृचा ॥२७॥
नमो ज्येष्ठाय मन्त्रेण दद्यान्नैवेद्यमुत्तमम् । मनुना त्र्यम्बकमिति पुनराचमनं स्मृतम् ॥२८॥
इमा रुद्रायेति ऋचा कुर्यात् फलसमर्पणम् । नमो व्रज्यायेति ऋचा सकलं शम्भवेऽर्पयेत् ॥२९॥
मा नो महान्तमिति च मा नस्तोके इति ततः । मन्त्रद्वयेनैकादशाक्षतै रुद्रान् प्रपूजयेत् ॥३०॥
हिरण्यगर्भ इति त्र्यृचा दक्षिणां हि समर्पयेत् । देवस्य त्वेति मन्त्रेण ह्यभिषेकं चरेद् बुधः ॥३१॥
दीपमन्त्रेण वा शम्भोर्नीराजनविधिं चरेत् । पुष्पाञ्जलिं चरेद् भक्त्या इमा रुद्राय च त्र्यृचा ॥३२॥
मा नो महान्तमिति च चरेत् प्राज्ञः प्रदक्षिणाम् । मा नस्तोकेति मन्त्रेण साष्टाङ्गं प्रणमेत् सुधीः ॥३३॥
एष ते इति मन्त्रेण शिवमुद्रां प्रदर्शयेत् । यतो यत इत्यभयां ज्ञानाख्यां त्र्यम्बकेण च ॥३४॥
नमः सेनेति मन्त्रेण महामुद्रां प्रदर्शयेत् । दर्शयेद् धेनुमुद्रां च नमो गोभ्य ऋचाऽनया ॥३५॥
पञ्च मुद्राः प्रदर्श्याथ शिवमन्त्रजपं चरेत् । शतरुद्रियमन्त्रेण जपेद् वेदविचक्षणः ॥३६॥
ततः पञ्चाङ्गपाठं च कुर्याद् वेदविचक्षणः । देवा गात्विति मन्त्रेण कुर्याच्छम्भोर्विसर्जनम् ॥३७॥
इत्युक्तः शिवपूजाया व्यासतो वैदिको विधिः । समासतश्च शृणुत वैदिकं विधिमुत्तमम् ॥३८॥
ऋचा सद्यो जातमिति मृदाहरणमाचरेत् । वामदेवाय इति जलप्रक्षेपमाचरेत् ॥३९॥
अघोरेण च मन्त्रेण लिङ्गनिर्माणमाचरेत् । तत्पुरुषाय मन्त्रेणाह्वानं कुर्याद्यथाविधि ॥४०॥
संयोजयेद् वेदिकायामीशानमनुना हरम् । अन्यत् सर्वं विधानं च कुर्यात् संक्षेपतः सुधीः ॥४१॥
पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण गुरुदत्तेन वा तथा । कुर्यात् पूजां षोडशोपचारेण विधिवत् सुधीः ॥४२॥
भवाय भवनाशाय महादेवाय धीमहि । उग्राय उग्रनाशाय शर्वाय शशिमौलिने ॥४३॥

'नमः कपर्दिने' इस मन्त्र को पढ़कर विधानपूर्वक धूप और 'नम आशवे' इस मन्त्र को पढ़कर दीप प्रदान करे ॥ २७ ॥ 'नमो ज्येष्ठाय' इस मन्त्र को पढ़कर नैवेद्य और 'त्र्यम्बकं यजामहे' इस मन्त्र को पढ़कर आचमन करावे ॥ २८ ॥ 'इमा रुद्राय' इस मन्त्र से फल तथा 'नमो व्रज्याय' इस मन्त्र से अपना सब कुछ शिव को समर्पित करे ॥ २९ ॥ 'मा नो महान्तम्', 'मा नस्तोके तनये' इन दो मन्त्रों को पढ़कर एकादश अक्षत रुद्र पर चढ़ावे ॥ ३० ॥ 'हिरण्यगर्भः' इस मन्त्र को पढ़कर दक्षिणा दे और 'देवस्य त्वा' इस मन्त्र से अभिषेक करे ॥ ३१ ॥ ऊपर कहे गये दीपदान के मन्त्र से शिवजी की आरती करे। 'इमा रुद्राय' इस मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित करे ॥ ३२ ॥ 'मा नो महान्तं' इस मन्त्र से प्रदक्षिणा करे और 'मा नस्तोके' इस मन्त्र को पढ़कर साष्टाङ्ग प्रणाम करे ॥ ३३ ॥ 'एष ते' इस मन्त्र को पढ़कर शिवमुद्रा प्रदर्शित करे। 'यतो यतः' इस मन्त्र से अभयमुद्रा तथा 'त्र्यम्बकम्' इस मन्त्र को पढ़कर ज्ञानमुद्रा प्रदर्शित करे ॥ ३४ ॥ 'नमः सेनाभ्यः' इस मन्त्र को पढ़कर महामुद्रा तथा 'नमो गोभ्यः' इस मन्त्र को पढ़कर धेनुमुद्रा प्रदर्शित करे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार पाँच मुद्राएँ प्रदर्शित कर शिवमन्त्र का जप करे। वेद विचक्षण पुरुष को शतरुद्रिय मन्त्र का जप करना चाहिए ॥३६॥ फिर वेदज्ञाता पुरुष पञ्चाङ्ग का पाठ करे और 'देवा गातु' इस मन्त्र को पढ़कर शिव का विसर्जन करे ॥३७॥ यहाँ तक हमने विस्तार के साथ शिवपूजा की वैदिक विधि कही है। अब जिस प्रकार संक्षेप में वैदिक विधि द्वारा शिव की पूजा होती है, उसे आपलोग सुनें ॥ ३८ ॥

'सद्योजातं प्रपद्यामि' मन्त्र से मृत्तिका ग्रहण करे। 'वामदेवाय' इस मन्त्र को पढ़कर उसमें जल छोड़े ॥ ३९ ॥ 'अघोरेण' इस मन्त्र को पढ़कर लिङ्ग निर्माण करे। और 'तत्पुरुषाय विद्महे' इस मन्त्र को पढ़कर विधिपूर्वक आवाहन करे ॥ ४० ॥ 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' इस मन्त्र को पढ़कर वेदिका में शिवलिङ्ग को स्थापित करे। फिर शेष विधान (स्नान-वस्त्रादि से पूजन) संक्षेप से करे ॥४१॥ पञ्चाक्षर मन्त्र से अथवा गुरु-प्रदत्त मन्त्र से बुद्धिमान् व्यक्ति विधिपूर्वक षोडशोपचार से पूजन करे ॥ ४२ ॥ अथवा 'भवाय भवनाशाय महादेवाय धीमहि। उग्राय उग्रनाशाय शर्वाय शशिमौलिने' ॥ इस मन्त्र को पढ़कर शिवजी की पूजा करे ॥ ४३ ॥

अनेन मनुना वाऽपि पूजयेच्छङ्करं सुधीः । सुभक्त्या च भ्रमं त्यक्त्वा भक्त्यैव फलदः शिवः ॥४४॥
इत्यपि प्रोक्तमादृत्य वैदिकक्रमपूजनम् । प्रोच्यतेऽन्यविधिः सम्यक् साधारणतया द्विजाः ॥४५॥
पूजा पार्थिवलिङ्गस्य सम्प्रोक्ता शिवनामभिः । तां शृणुध्वं मुनिश्रेष्ठाः सर्वकामप्रदायिनीम् ॥४६॥
हरो महेश्वरः शम्भुः शूलपाणिः पिनाकधृक् । शिवः पशुपतिश्चैव महादेव इति क्रमात् ॥४७॥
मृदाहरण-सङ्घट्ट-प्रतिष्ठाह्वानमेव च । स्नपनं पूजनं चैव क्षमस्वेति विसर्जनम् ॥४८॥
ॐकारादि-चतुर्थ्यन्तैर्नमोऽन्तैर्नामभिः क्रमात् । कर्तव्याश्च क्रियाः सर्वा भक्त्या परमया मुदा ॥४९॥
कृत्वा न्यासविधिं सम्यक् षडङ्गं करयोस्तथा । षडक्षरेण मन्त्रेण ततो ध्यानं समाचरेत् ॥५०॥

कैलासपीठासनमध्यसंस्थं भक्तैः सनन्दादिभिरर्च्यमानम् ।
भक्तार्तिदावानलमप्रमेयं ध्यायेदुमालिङ्गितविश्वभूषणम् ॥५१॥

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ।
पद्मासीनं समन्तात् स्थितममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥५२॥

इति ध्यात्वा च सम्पूज्य पार्थिवं लिङ्गमुत्तमम् । जपेत् पञ्चाक्षरं मन्त्रं गुरुदत्तं यथाविधि ॥५३॥
स्तुतिभिश्चैव देवेशं स्तुवीत प्रणमन् सुधीः । नानाविधाभिर्विप्रेन्द्राः पठेद् वै शतरुद्रियम् ॥५४॥
ततः साक्षत-पुष्पाणि गृहीत्वाऽञ्जलिना मुदा । प्रार्थयेच्छङ्करं भक्त्या मन्त्रैरेभिः सुभक्तितः ॥५५॥

शिवजी में विश्वास करते हुए अत्यन्त भक्ति के साथ शिवपूजन करे। क्योंकि शिवजी भक्ति से ही फल प्रदान करते हैं ॥ ४४ ॥ ऊपर कही गयी यह भी विधि आदर के साथ वैदिक क्रम पूजन में कही गयी है। हे ब्राह्मणो ! अब हम दूसरी साधारण शिवपूजा की विधि का वर्णन करते हैं, आपलोग सुनें ॥ ४५ ॥ शिव के नामों द्वारा पार्थिव पूजा की विधि कही गयी है। सम्पूर्ण कामनाओं को देनेवाली शिव के नामों से की जानेवाली उस विधि को सुनो ॥ ४६ ॥ उसका क्रम हर, महेश्वर, शूलपाणि तथा पिनाकधृक्, शिव, पशुपति एवं महादेव यह शिव के नाम हैं ॥ ४७ ॥ 'ॐ हरये नमः' इस नाम से मिट्टी ग्रहण करे। 'ॐ महेश्वराय नमः' कहकर जल से मिट्टी को साने, 'ॐ शूलपाणये नमः' कहकर शिव को प्रतिष्ठापित करे। 'ॐ पिनाकधृषे नमः' कहकर उसमें शिव का आवाहन करे। 'ॐ शिवाय नमः' कहकर स्नान तथा 'ॐ पशुपतये नमः' कहकर पूजन एवं 'महादेवाय नमः' कहकर विसर्जन करे ॥ ४८ ॥ इस प्रकार प्रत्येक नामों के आदि में ॐकार तथा अन्त में नमः लगाकर पार्थिव शिवलिङ्ग का भक्तिपूर्वक पूजन करे ॥ ४९ ॥ अथवा सम्यक् षडङ्ग मन्त्र से करन्यास एवं हृदयादि न्यास कर शिव का ध्यान करे ॥ ५० ॥

ध्यान के मन्त्र का अर्थ—कैलास पर्वत पर स्थित हुए, उमा से आलिङ्गित विश्वभूषण सदाशिव का ध्यान करना चाहिए, जो सनन्दादि देवताओं से पूजित हैं, भक्तों के कष्ट को दूर करने के लिए जो दावानल के समान हैं एवं अप्रमेय हैं ॥५१॥ पाँच मुखवाले एवं तीन नेत्रवाले महेश्वर का ध्यान करना चाहिए, जो चाँदी के पर्वत के समान शुभ्र वर्णवाले हैं, सुन्दर चन्द्रमा मस्तक पर धारण किये हैं एवं जिनके श्रीअङ्गों की शोभा रत्नों के समान जगमगा रही है, हाथ में परशु, मृगीमुद्रा, वरमुद्रा एवं अभयमुद्रा धारण किये हुए हैं, जो प्रसन्न एवं पद्मासन लगाकर बैठे हुए हैं, चारों ओर से देवतागण जिनकी स्तुति करते हैं, जो व्याघ्राम्बर धारण किये हुए हैं और जो विश्व के आदि, विश्व के कारण और समस्त प्राणियों के दुःख को दूर करने वाले हैं ॥ ५२ ॥ इस प्रकार सदाशिव का ध्यान कर पार्थिव शिवलिङ्ग का पूजन करे और तदनन्तर गुरु द्वारा दिये गये पञ्चाक्षर मन्त्र का विधिपूर्वक जप करे ॥ ५३ ॥ बुद्धिमान् व्यक्ति अनेक प्रकार से देवेश सदाशिव की स्तुति और प्रणाम करे एवं शतरुद्रिय का पाठ करे ॥ ५४ ॥ तदनन्तर हाथ में अक्षत एवं पुष्प लेकर भक्ति से प्रसन्नता पूर्वक इन मन्त्रों से सदाशिव की प्रार्थना करे ॥ ५५ ॥

तावकस्त्वद्गुणप्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड । कृपानिध इति ज्ञात्वा भूतनाथप्रसीद मे ॥५६॥
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया । कृतं तदस्तु सफलं कृपया तव शङ्कर ! ॥५७॥
अहं पापी महानद्य पावनश्च भवान् महान् । इति विज्ञाय गौरीश ! यदिच्छसि तथा कुरु ॥५८॥
वेदैः पुराणैः सिद्धान्तैर्ऋषिभिर्विविधैरपि । न ज्ञातोऽसि महादेव कुतोऽहं त्वं सदाशिव ! ॥५९॥
यथा तथा त्वदीयोऽस्मि सर्वभावैर्महेश्वर ! । रक्षणीयस्त्वयाऽहं वै प्रसीद परमेश्वर ! ॥६०॥
इत्येवं चाक्षतान् पुष्पानारोप्य च शिवोपरि । प्रणमेद् भक्तितः शम्भुं साष्टाङ्गं विधिवन् मुने ! ॥६१॥
ततः प्रदक्षिणां कुर्याद्यथोक्तविधिना सुधीः । पुनः स्तुवीत देवेशं स्तुतिभिः श्रद्धयान्वितः ॥६२॥
ततो गलरवं कृत्वा प्रणमेच्छुचिनम्रधीः । कुर्याद् विज्ञप्तिमाहत्य विसर्जनमथाचरेत् ॥६३॥
इत्युक्ता मुनिशार्दूलाः पार्थिवार्चा विधानतः । भुक्तिदा मुक्तिदा चैव शिवभक्तिविवर्धिनी ॥६४॥
इत्यध्यायं सुचित्तेन यः पठेच्छृणुयादपि । सर्वपापविशुद्धात्मा सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥६५॥
आयुरारोग्यदं चैव यशस्यं स्वर्ग्यमेव च । पुत्र-पौत्रादि-सुखदमाख्यानमिदमुत्तमम् ॥६६॥

इति शिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे
पार्थिवलिङ्गपूजाविधिवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

हे सुखदेने वाले सदाशिव ! मैं तुम्हारा दास हूँ, तुम्हारे गुणों का वर्णन करने में मेरे मन एवं प्राण लगे हुए हैं। हे कृपानिधे, हे भूतनाथ ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥५६॥ हे प्रभो ! ज्ञान से अथवा अज्ञान से हमने आपकी जो जप एवं पूजा की है वह आपकी कृपा से सफल हो ॥ ५७ ॥ हे गौरीश ! मैं महान् पापी हूँ और आप महान् पतित पावन हैं, ऐसा विचार कर जैसी आप की इच्छा हो वैसा कीजिए ॥५८॥ वेद, पुराण, सिद्धान्त एवं अनेक प्रकार के ऋषियों द्वारा भी आप नहीं जाने जाते फिर मैं किस प्रकार आपको जान सकता हूँ । ५९ ॥ हे महेश्वर ! मैं चाहे जैसा-कैसा हूँ किन्तु सर्वभाव से तुम्हारा ही हूँ । अतः आप मेरी रक्षा करें और मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ६० ॥ इस प्रकार प्रार्थना करते हुए सदाशिव के ऊपर हाथ में लिये हुए अक्षत तथा पुष्पों को सदाशिव के मूर्ति पर छोड़ देवे, और विधिपूर्वक सदाशिव को साष्टाङ्ग प्रणाम करे ॥ ६१ ॥ फिर विधिपूर्वक प्रदक्षिणा करे और श्रद्धापूर्वक देवदेवेश्वर की स्तुति करे ॥ ६२॥ फिर गले से शब्द करता हुआ नम्रता से सदाशिव को प्रणाम करे और अपना मनोरथ शिव के सामने प्रकट कर शिव का विसर्जन करे ॥ ६३ ॥

सूत जी बोले—हे मुनीश्वरो ! इस प्रकार पार्थिव-पूजन का विधान हमने आपलोगों से कहा, जो भोग, मोक्ष एवं शिवभक्ति को बढ़ाने वाला है ॥ ६४ ॥ इस अध्याय को समाहित चित्त हो जो भी पुरुष पढ़ता है अथवा सुनता है वह सभी पापों से मुक्त होकर शुद्ध हो जाता है एवं उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ॥ ६५ ॥ यह उत्तम आख्यान आयु, आरोग्य, यश तथा स्वर्ग को देने वाला है एवं पुत्र तथा पौत्रादि सुख को बढ़ाने वाला है ॥ ६६ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवपुराण के अन्तर्गत विद्येश्वरसंहिता में साध्यसाधनखण्ड स्थित पार्थिव शिवलिङ्गपूजा-विधि वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २० ॥

*

एकविंशोऽध्यायः

(कामना के अनुरोध से शिवलिङ्ग संख्या का वर्णन)

ऋषय ऊचुः

सूत सूतं महाभाग व्यासशिष्य ! नमोऽस्तु ते । सम्यगुक्तं त्वया तात ! पार्थिवार्चाविधानकम्॥ १ ॥
कामनाभेदमाश्रित्य सङ्ख्यां ब्रूहि विधानतः । शिवपार्थिवलिङ्गानां कृपया दीनवत्सल ! ॥ २ ॥

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे पार्थिवार्चाविधानकम् । यस्याऽनुष्ठानमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ ३ ॥
अकृत्वा पार्थिवं लिङ्गं योऽन्यदेवं प्रपूजयेत् । वृथा भवति सा पूजा दमदानादिकं वृथा ॥ ४ ॥
सङ्ख्या पार्थिवलिङ्गानां यथाकामं निगद्यते । सङ्ख्या सद्यो मुनिश्रेष्ठ ! निश्चयेन फलप्रदा ॥ ५ ॥
प्रथमावाहनं तत्र प्रतिष्ठा पूजनं पृथक् । लिङ्गाकारं समं तत्र सर्वं ज्ञेयं पृथक् पृथक् ॥ ६ ॥
विद्यार्थी पुरुषः प्रीत्या सहस्रमितपार्थिवम् । पूजयेच्छिवलिङ्गं हि निश्चयात् तत्फलप्रदम् ॥ ७ ॥
नरः पार्थिवलिङ्गानां धनार्थी च तदर्द्धकम् । पुत्रार्थी सार्द्धसाहस्रं वस्त्रार्थी शतपञ्चकम् ॥ ८ ॥
मोक्षार्थी कोटिगुणितं भूकामश्च सहस्रकम् । दयार्थी च त्रिसाहस्रं तीर्थार्थी द्विसहस्रकम् ॥ ९ ॥
सुहृत्कामी त्रिसाहस्रं वश्यार्थी शतमष्टकम् । मारणार्थी सप्तशतं मोहनार्थी शताष्टकम् ॥१०॥
उच्चाटनपरश्चैव सहस्रं च यथोक्ततः । स्तम्भनार्थी सहस्रं तु द्वेषणार्थी तदर्द्धकम् ॥११॥
निगडान् मुक्तिकामस्तु सहस्रं सार्द्धमुत्तमम् । महाराजभये पञ्चशतं ज्ञेयं विचक्षणैः ॥१२॥
चौरादिसङ्कटे ज्ञेयं पार्थिवानां शतद्वयम् । डाकिन्यादिभये पञ्चशतमुक्तं जपार्थिवम् ॥१३॥

ऋषिगण बोले—हे महाभाग ! हे व्यासशिष्य सूत ! आप को बारम्बार नमस्कार है, आपने पार्थिव-पूजा का विधान उत्तम प्रकार से वर्णन किया ॥ १ ॥ हे दीनवत्सल ! अब आप कामनाभेद के अनुसार किये जाने वाली पार्थिव शिवलिङ्ग की संख्या का कृपापूर्वक वर्णन कीजिए ॥ २ ॥

सूत जी बोले—हे ऋषियो ! अब आप लोग कामना के अनुसार पार्थिव शिवलिङ्ग-पूजा का विधान सुनिए । जिसके करने से प्राणी कृतकृत्य हो जाता है ॥ ३ ॥ बिना पार्थिव लिङ्ग की पूजा किये ही जो अन्य देवताओं की पूजा करता है, उसकी सारी पूजा निष्फल हो जाती है और उसका किया गया दम तथा दानादिक धर्म कार्य भी व्यर्थ हो जाता है ॥४॥ अब मैं आपलोगों से कामना के अनुसार पार्थिव शिवलिङ्ग की संख्या का वर्णन करता हूँ । हे मुनिश्रेष्ठो ! यह संख्या निश्चय ही तत्क्षण फल प्रदान करने वाली है ॥ ५ ॥ सर्वप्रथम लिङ्ग में पृथक् आवाहन तथा पृथक्-पृथक् प्रतिष्ठा एवं पूजन करे । सब लिङ्ग समान आकार का बनावे किन्तु और सब कार्य पृथक्-पृथक् समझे ॥ ६ ॥ विद्यार्थी पुरुष प्रीतिपूर्वक सहस्र पार्थिव शिवलिङ्ग का पूजन करे तो वह निश्चय ही फल देने वाला होता है ॥ ७ ॥ धन को चाहने वाला पुरुष पाँच सौ और पुत्र चाहने वाल डेढ़ हजार तथा वस्त्र चाहने वाला पाँच सौ पार्थिव शिवलिङ्ग बनाकर पूजा करे ॥ ८ ॥ मोक्ष को चाहने वाला एक करोड़, भूमि चाहने वाला एक सहस्र, शिवकृपा चाहने वाला तीन सहस्र तथा तीर्थ की इच्छा वाला दो सहस्र शिवलिङ्ग का पूजन करे ॥ ९ ॥ मित्र की कामना वाला तीन सहस्र, वशीकरण की इच्छा वाला आठ सौ, मारण की इच्छा वाला सात सौ तथा मोहन की इच्छा वाला आठ सौ पार्थिव शिवलिङ्ग का पूजन करे ॥ १० ॥ उच्चाटन करने वाला एक सहस्र, इसी प्रकार स्तम्भन करने वाला एक हजार तथा शत्रुओं में परस्पर द्वेष कराने वाला पाँच सौ पार्थिव शिवलिङ्ग का पूजन करे ॥ ११ ॥ बन्धन से छुटकारा पाने की इच्छा वाला डेढ़ सहस्र तथा महान् राष्ट्र के विप्लव उपस्थित होने पर उससे बचने के लिए पाँच सौ पार्थिव शिवलिङ्ग की पूजा करनी चाहिए । ऐसा विद्वानों को जानना चाहिए ॥ १२ ॥ चौरादि द्वारा सङ्कट

दारिद्र्ये पञ्चसाहस्रमयुतं सर्वकामदम् । अथ नित्यविधिं वक्ष्ये शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ॥१४॥
एकं पापहरं प्रोक्तं द्विलिङ्गं चार्थसिद्धिदम् । त्रिलिङ्गं सर्वकामानां कारणं परमीरितम् ॥१५॥
उत्तरोत्तरमेवं स्यात् पूर्वोक्तगणनाविधि । मतान्तरमथो वक्ष्ये सङ्ख्यायां मुनिभेदतः ॥१६॥
लिङ्गानामयुतं कृत्वा पार्थिवानां सुबुद्धिमान् । निर्भयो हि भवेन्नूनं महाराजभयं हरेत् ॥१७॥
कारागृहादिमुक्त्यर्थमयुतं कारयेद् बुधः । डाकिन्यादिभये सप्तसहस्रं कारयेत् तथा ॥१८॥
सहस्राणि पञ्चपञ्चाशदपुत्रस्तत् प्रकारयेत् । लिङ्गानामयुतेनैव कन्यकासन्ततिं लभेत् ॥१९॥
लिङ्गानामयुतेनैव विष्ण्वाद्यैश्वर्यमाप्नुयात् । लिङ्गानां प्रयुतेनैव ह्यतुलां श्रियमाप्नुयात् ॥२०॥
कोटिमेकां तु लिङ्गानां यः करोति नरो भुवि । शिव एव भवेत् सोऽपि नाऽत्र कार्या विचारणा ॥२१॥
अर्चा पार्थिवलिङ्गानां कोटियज्ञफलप्रदा । भुक्तिदा मुक्तिदा नित्यं ततः कामार्थिनां नृणाम् ॥२२॥
विना लिङ्गार्चनं यस्य कालो गच्छति नित्यशः । महाहानिर्भवेत् तस्य दुर्वृत्तस्य दुरात्मनः ॥२३॥
एकतः सर्वदानानि व्रतानि विविधानि च । तीर्थानि नियमा यज्ञा लिङ्गार्चा चैकतः स्मृता ॥२४॥
कलौ लिङ्गार्चनं श्रेष्ठं तथा लोके प्रदृश्यते । तथा नास्तीति शास्त्राणामेष सिद्धान्तनिश्चयः ॥२५॥
भुक्ति-मुक्तिप्रदं लिङ्गं विविधापन्निवारणम् । पूजयित्वा नरो नित्यं शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥२६॥
शिवनाममयं लिङ्गं नित्यं पूज्यं महर्षिभिः । यतश्च सर्वलिङ्गेषु तस्मात् पूज्यं विधानतः ॥२७॥

उपस्थित होने पर दो सौ पार्थिव शिवलिङ्गों का पूजन कहा गया है ॥ १३ ॥ दरिद्रता दूर करने के लिए पाँच सौ एवं दस हजार पार्थिव शिवलिङ्ग का पूजन समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। हे मुनिश्रेष्ठो ! अब मैं नित्य शिव पार्थिवपूजा की विधि कहता हूँ, आप सब सुनें ॥ १४ ॥ एक पार्थिव शिवलिङ्ग के पूजन से पापों का क्षय, दो शिवलिङ्ग पूजन से अर्थसिद्धि और तीन शिवलिङ्ग का पूजन सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है ॥ १५ ॥ इसी प्रकार उत्तरोत्तर पार्थिव शिवलिङ्ग की पूजा का फल पूर्व में कही गयी पार्थिवपूजा के अनुसार जानना चाहिए। अब मैं मुनियों के भेद से कामना के अनुसार की जाने वाली पार्थिव शिवलिङ्ग की पूजा की संख्या का पुनः वर्णन करता हूँ ॥ १६ ॥ बुद्धिमान् पुरुष दस सहस्र पार्थिव लिङ्ग का पूजन करने से राष्ट्र में उत्पन्न होने वाली बाधाओं से मुक्त होकर निर्भय विचरण करता है ॥ १७ ॥ कारागृह से छूटने के निमित्त दश सहस्र शिवलिङ्ग का पूजन करे। डाकिनी आदि के द्वारा भय उपस्थित होने पर सात सहस्र शिवलिङ्ग का पूजन करे ॥ १८ ॥ अपुत्र पुरुष पचपन हजार पार्थिव लिङ्ग का पूजन करे। कन्या को सन्तान न हो तो दश हजार शिवलिङ्ग-पूजन से उसे सन्तान की प्राप्ति होती है ॥ १९ ॥ दश सहस्र शिवलिङ्ग के पूजन से विष्णु के समान ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। तथा इतने ही लिङ्ग के पूजन से अतुल ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ॥ २० ॥ जो पुरुष इस पृथ्वी में एक करोड़ शिवलिङ्ग का पूजन करता है, वह साक्षात् शिव ही है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए ॥२१॥ पार्थिव शिवलिङ्ग की पूजा कोटि यज्ञ के फल को प्रदान करती है। उसके पूजन से कामार्थी पुरुष भोग तथा मोक्ष प्राप्त करता है ॥ २२ ॥ जिस पुरुष का दिन बिना नित्य लिङ्गार्चन के बीत जाता है उस दुरात्मा दुर्वृत्त पुरुष की महान् हानि होती है ॥ २३ ॥ एक ओर सभी दान, विविध व्रत, तीर्थ, नियम और यज्ञ हों फिर भी वने पार्थिव लिङ्गार्चन के फल से न्यून ही होते हैं ॥ २४ ॥

कलियुग में लिङ्गार्चन सर्वश्रेष्ठ कहा गया है और ऐसा लोक में भी देखा जाता है। पार्थिव-पूजन के समान और कोई दूसरा धर्म नहीं है ऐसा शास्त्रकारों का मत है ॥ २५ ॥ भुक्ति-मुक्ति देने वाला शिवलिङ्ग सभी आपत्तियों का निवारण करता है। मनुष्य नित्य पूजन कर शिव का सायुज्य प्राप्त करता है ॥ २६ ॥ शिवनाम मय लिङ्ग की पूजा महर्षियों को नित्य करनी चाहिए। शिवनाम मय लिङ्ग से सभी लिङ्गों की पूजा की जाती है, इसलिए उसका भी पूजन में विधान है ॥ २७ ॥

उत्तमं मध्यमं नीचं त्रिविधं लिङ्गमीरितम् । मानतो मुनिशार्दूलास्तच्छृणुध्वं वदाम्यहम् ॥२८॥
चतुरङ्गुलमुच्छ्रायं . रम्यं वेदिकया युतम् । उत्तमं लिङ्गमाख्यातं मुनिभिः शास्त्रकोविदैः ॥२९॥
तदर्द्धं मध्यमं प्रोक्तं तदर्द्धमधमं स्मृतम् । इत्थं त्रिविधमाख्यातमुत्तरोत्तरतः परम् ॥३०॥
अनेकलिङ्गं यो नित्यं भक्ति-श्रद्धा-समन्वितः । पूजयेत् स लभेत् कामान् मनसा मानसेऽप्सितान् ॥३१॥
न लिङ्गाराधनादन्यत् पुण्यं वेदचतुष्टये । विद्यते सर्वशास्त्राणामेष एव विनिश्चयः ॥३२॥
सर्वमेतत् परित्यज्य कर्मजालमशेषतः । भक्त्या परमया विद्वाँल्लिङ्गमेकं प्रपूजयेत् ॥३३॥
लिङ्गेऽर्चितेऽर्चितं सर्वं जगत्-स्थावर-जङ्गमम् । संसाराम्बुधिमग्नानां नाऽन्यत्तारणसाधनम् ॥३४॥
अज्ञानतिमिरान्धानां विषयासक्तचेतसाम् । प्लवो नाऽन्योऽस्ति जगति लिङ्गाराधनमन्तरा ॥३५॥
हरिब्रह्मादयो देवा मुनयो यक्ष-राक्षसाः । गन्धर्वाश्चारणाः सिद्धा दैतेया दानवास्तथा ॥३६॥
नागाः शेषप्रभृतयो गरुडाद्याः खगास्तथा । सप्रजापतयश्चाऽन्ये मनवः किन्नरा नराः ॥३७॥

पूजयित्वा महाभक्त्या लिङ्गं सर्वार्थसिद्धिदम् ।
प्राप्ताः कामानभीष्टांश्च तांस्तान् सर्वान् हृदि स्थितान् ॥३८॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा प्रतिलोमजः । पूजयेत् सततं लिङ्गं तत्तन्मन्त्रेण सादरम् ॥३९॥
किं बहूक्तेन मुनयः स्त्रीणामपि तथाऽन्यतः । अधिकारोऽस्ति सर्वेषां शिवलिङ्गार्चने द्विजाः ॥४०॥
द्विजानां वैदिकेनापि मार्गेणाराधनं वरम् । अन्येषामपि जन्तूनां वैदिकेन न सम्मतम् ॥४१॥
वैदिकानां द्विजानां च पूजा वैदिकमार्गतः । कर्तव्या नाऽन्यमार्गेण इत्याह भगवाञ्छिवः ॥४२॥
दधीचि-गौतमादीनां शापेनादग्धचेतसाम् । द्विजानां जायते श्रद्धा नैव वैदिककर्मणि ॥४३॥

हे मुनियो ! प्रमाण के अनुसार उत्तम, मध्यम और नीच तीन प्रकार का लिङ्ग कहा गया है । उसे मैं कहता हूँ, आप सब श्रवण करें ॥२८॥ चार अङ्गुल ऊँचा और मनोहर वेदी से युक्त पार्थिव शिवलिङ्ग को शास्त्रज्ञों ने उत्तम लिङ्ग कहा है ॥२९॥ उसका आधा मध्यम तथा उसका भी आधा निकृष्ट लिङ्ग कहा गया है । इस प्रकार तीन प्रकार का शिवलिङ्ग कहा गया है ॥ ३० ॥ जो भक्ति-श्रद्धा से युक्त होकर अनेक शिवलिङ्गों का पूजन करता है, उसकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ॥ ३१ ॥ चारों वेदों में लिङ्गाराधन से बढ़कर कोई पुण्य नहीं कहा गया है और यही सभी शास्त्रों का निश्चय है ॥ ३२ ॥ अतः विद्वान् पुरुष इन समस्त कर्मजालों के बन्धन को तोड़कर भक्ति तथा प्रेम पूर्वक शिवलिङ्ग का आराधन करें ॥ ३३ ॥ लिङ्ग की पूजा करने से यह सारा स्थावर-जङ्गमात्मक जगत् पूजित हो जाता है । संसार-सागर में डूबते हुए पुरुषों को पार होने के लिए लिङ्गाराधन से बढ़कर और कोई दूसरा साधन नहीं है ॥ ३४ ॥ अज्ञानान्धकार से अन्धे हुए विषयासक्त पुरुष को संसार-सागर से पार करने हेतु लिङ्गाराधन के अतिरिक्त और कोई दूसरी नौका नहीं है ॥ ३५ ॥

विष्णु, ब्रह्मादिक देवता, मुनिगण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, चारण, सिद्ध, दैत्य-दानव, शेषादि नाग, गरुडादि पक्षी, प्रजापति, मनु, किन्नर और नर ये सभी महाभक्ति से सर्वार्थ साधक लिङ्ग की पूजा कर अपने-अपने हृदय में उपस्थित समस्त कामनाओं को प्राप्त करते हैं ॥ ३६-३८ ॥ इसलिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य प्रतिलोमज वर्णों को भी आदर तथा भक्ति के साथ तत्तन्मन्त्रों से सर्वदा शिवलिङ्ग का पूजन करना चाहिए ॥ ३९ ॥ हे महर्षियो ! बहुत कहना व्यर्थ है, इस शिवलिङ्ग के पूजन में स्त्रियों तथा अन्य सभी का शिवपूजन में अधिकार है ॥ ४० ॥ ब्राह्मणों को वैदिक मन्त्रों द्वारा ही शिवलिङ्ग पूजन नरना चाहिए, किन्तु अन्य वर्णों को वैदिक मन्त्र से शिवपूजन का निषेध है ॥ ४१ ॥ वैदिक ब्राह्मणों को वैदिक मार्ग से ही पूजा करना उचित है । उन्हें अन्य दूसरे मार्ग से पूजा नहीं करनी चाहिए ऐसा भगवान् शिव ने कहा है ॥ ४२ ॥ दधीचि एवं गौतमादि के शाप से जिनकी चित्तवृत्ति अच्छी प्रकार

यो वैदिकमनादृत्य कर्म स्मार्तमथापि वा । अन्यत् समाचरेन् मर्त्यो न सङ्कल्पफलं लभेत् ॥४४॥
इत्थं कृत्वाऽर्चनं शम्भोर्नैवेद्यान्तं विधानतः । पूजयेदष्टमूर्तीश्च तत्रैव त्रिजगन्मयीः ॥४५॥
क्षितिरापोऽनलो वायुराकाशः सूर्यसोमकौ । यजमान इति त्वष्टौ मूर्तयः परिकीर्तिताः ॥४६॥
शर्वो भवश्च रुद्रश्च उग्रो भीम इतीश्वरः । महादेवः पशुपतिरेतान् मूर्तिभिरर्चयेत् ॥४७॥
पूजयेत् परिवारं च ततः शम्भोः सुभक्तितः । ईशानादिक्रमात् तत्र चन्दनाक्षतपत्रकैः ॥४८॥
ईशानं नन्दिनं चण्डं महाकालं च भृङ्गिणम् । वृषं स्कन्दं कपर्दीशं सोमं शुक्रं च तत्क्रमात् ॥४९॥
अग्रतो वीरभद्रं च पृष्ठे कीर्तिमुखं तथा । तत एकादशान् रुद्रान् पूजयेद् विधिना ततः ॥५०॥
ततः पञ्चाक्षरं जप्त्वा शतरुद्रियमेव च । स्तुतीर्नानाविधाः कृत्वा पञ्चाङ्गपठनं तथा ॥५१॥
ततः प्रदक्षिणां कृत्वा नत्वा लिङ्गं विसर्जयेत् । इति प्रोक्तमशेषं च शिवपूजनमादरात् ॥५२॥
रात्रावुदङ्मुखः कुर्याद् देवकार्यं सदैव हि । शिवार्चनं सदाप्येवं शुचिः कुर्यादुदङ्मुखः ॥५३॥
न प्राचीमग्रतः शम्भोर्नोदीचीं शक्तिसंहिताम् । न प्रतीचीं यतः पृष्ठमतो ग्राह्यं समाश्रयेत् ॥५४॥
विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया । बिल्वपत्रं विना नैव पूजयेच्छङ्करं बुधः ॥५५॥
भस्माप्राप्तौ मुनिश्रेष्ठाः प्रवृत्ते शिवपूजने । तस्मान् मृदापि कर्तव्यं ललाटे च त्रिपुण्ड्रकम् ॥५६॥

इति शिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे
पार्थिवपूजनवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

दग्ध हो गयी है, उन ब्राह्मणों की वैदिक मार्ग में श्रद्धा नहीं होती ॥ ४३ ॥ जो वैदिक मार्ग अथवा स्मार्त्त मार्ग का अनादर कर अन्य मार्ग का आश्रय लेता है, उसे अपने संकल्प कर्म का फल प्राप्त नहीं होता ॥ ४४ ॥ इस प्रकार शिव जी की विधिपूर्वक नैवेद्य पर्यन्त अर्चन कर त्रिजगत्स्वरूपिणी शम्भु की पृथ्वी आदि आठ मूर्तियों का भी पूजन करना चाहिए ॥ ४५ ॥ पृथ्वी, जल, अनल, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र तथा यजमान रूप से शिव की ये आठ मूर्तियाँ कही गयी हैं ॥ ४६ ॥

शिव की इन आठ मूर्त्तियों के द्वारा क्रमशः १. शर्व, २. भव, ३. रुद्र, ४. उग्र, ५. भीम, ६. ईश्वर, ७. महादेव तथा ८. पशुपति की अर्चना करे ॥ ४७ ॥ फिर भक्ति से शिव के परिवार की चन्दन, अक्षत तथा पुष्पों द्वारा ईशानादि क्रम से पूजा करनी चाहिए। ईशान में ईशान की, पूर्व में नन्दी की, अग्निकोण में चण्ड की, दक्षिण में महाकाल की, नैर्ऋत्य में भृङ्गी की, पश्चिम में वृष की, वायव्य में स्कन्द की, उत्तर में कपर्दीश्वर की, पूर्व तथा ईशान के बीच सोम की तथा पश्चिम एवं वायव्य के बीच शुक्र की पूजा करे ॥ ४८-४९ ॥ आगे वीरभद्र की तथा पीछे कीर्त्तिमुख की पूजा करे। तदनन्तर एकादश रुद्रों की विधानपूर्वक पूजा करनी चाहिए ॥ ५० ॥ पुनः पञ्चाक्षर का जप कर शतरुद्रिय का पाठ करे। अनेक प्रकार की स्तुति कर पञ्चाङ्ग का पाठ करे ॥ ५१ ॥ फिर प्रदक्षिणा कर लिङ्ग को प्रणाम कर विसर्जन करे। मैंने इस प्रकार से आदरपूर्वक शिव के पूजन का विधान कहा ॥ ५२ ॥ रात्रि में देवकार्य सदैव उत्तराभिमुख होकर करे। इसीप्रकार शिव का पूजन भी पवित्र होकर उत्तराभिमुख करे ॥ ५३ ॥ शम्भु सदाशिव के आगे होने से पूर्व दिशा में न बैठे। उत्तर ओर उनकी शक्ति है इसलिए मूर्त्ति से उत्तर भी न बैठें, पश्चिम दिशा पीछे पड़ जाती है इसलिए उधर भी न बैठे, अतः उत्तराभिमुख हो पूजा के लिए बैठे ॥ ५४ ॥ भस्म, त्रिपुण्ड्र, रुद्राक्ष की माला तथा बिल्वपत्र के बिना शिवजी की पूजा न करे ॥ ५५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! यदि पूजन में भस्म न मिले तो मृत्तिका द्वारा ही त्रिपुण्ड्र मस्तक में धारण करे ॥ ५६ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत विद्येश्वरसंहिता में
साध्यसाधनखण्ड स्थित पार्थिवपूजन वर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥

*

द्वाविंशोऽध्यायः

(शिवनैवेद्य भक्षण निर्णय एवं बिल्वपत्र का माहात्म्य)

ऋषय ऊचुः

अग्राह्यं शिवनैवेद्यमिति पूर्वं श्रुतं वचः । ब्रूहि तन्निर्णयं बिल्वमाहात्म्यमपि सन्मुने ! ॥ १ ॥

सूत उवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्वे सावधानतयाऽधुना । सर्वं वदामि संप्रीत्या धन्या यूयं शिवव्रताः ॥ २ ॥
शिवभक्तः शुचिः शुद्धः सद्व्रती दृढनिश्चयः । भक्षयेच्छिवनैवेद्यं त्यजेदग्राह्यभावनाम् ॥ ३ ॥
दृष्ट्वाऽपि शिवनैवेद्यं यान्ति पापानि दूरतः । भुक्ते तु शिवनैवेद्ये पुण्यान्यायान्ति कोटिशः ॥ ४ ॥
अलं यागसहस्रेणाऽलं यागार्बुदैरपि । भक्षिते शिवनैवेद्ये शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ५ ॥
यद्-गृहे शिवनैवेद्यप्रचारोऽपि प्रजायते । तद्गृहं पावनं सर्वमन्यपावनकारणम् ॥ ६ ॥
आगतं शिवनैवेद्यं गृहीत्वा शिरसा मुदा । भक्षणीयं प्रयत्नेन शिवस्मरणपूर्वकम् ॥ ७ ॥
आगतं शिवनैवेद्यमन्यदा ग्राह्यमित्यपि । विलम्बे पापसम्बन्धो भवत्येव हि मानवे ॥ ८ ॥
न यस्य शिवनैवेद्यग्रहणेच्छा प्रजायते । स पापिष्ठो गरिष्ठः स्यान्नरकं यात्यपि ध्रुवम् ॥ ९ ॥
हृदये चन्द्रकान्ते च स्वर्णरूप्यादिनिर्मिते । शिवदीक्षावता भक्तेनेदं भक्ष्यमितीर्यते ॥ १० ॥
शिवदीक्षान्वितो भक्तो महाप्रसादसंज्ञकम् । सर्वेषामपि लिङ्गानां नैवेद्यं भक्षयेच्छुभम् ॥ ११ ॥
अन्यदीक्षायुजां नृणां शिवभक्तिरतात्मनाम् । शृणुध्वं निर्णयं प्रीत्या शिवनैवेद्यभक्षणे ॥ १२ ॥
शालग्रामोद्भवे लिङ्गे रसलिङ्गे तथा द्विजाः । पाषाणे राजते स्वर्णे सुरसिद्धप्रतिष्ठिते ॥ १३ ॥
काश्मीरे स्फाटिके रात्ने ज्योतिर्लिङ्गेषु सर्वशः । चान्द्रायणसमं प्रोक्तं शम्भोर्नैवेद्यभक्षणम् ॥ १४ ॥

ऋषिगणों ने कहा—हमने सुना है कि शिवनैवेद्य अग्राह्य है। अतः हे मुने ! उस नैवेद्य के विषय में निर्णय तथा बिल्व-माहात्म्य के विषय में आप हमें कुछ बताइए ॥ १ ॥

सूत जी बोले—हे मुनिगण ! आप सावधानी से सुनें। मैं प्रसन्नता से उस विषय में कहता हूँ। व्रत-धारण करनेवाले आपलोग धन्य हैं ॥ २ ॥ शिव-भक्त सर्वदा पवित्र, शुद्ध, सद्व्रती एवं दृढ निश्चय कर शिव-नैवेद्य भक्षण करें और उसके अग्राह्य की भावना को त्याग देवें ॥ ३ ॥ शिव-नैवेद्य के दर्शनमात्र से ही समस्त पाप दूर भाग जाते हैं और उसके भक्षण करने से करोड़ों पुण्यों का उदय होता है ॥४॥ सहस्रों यज्ञ तथा अर्बुद (दश करोड़) यज्ञ, जो फल देने में सर्वथा असमर्थ हैं, वह शिवासायुज्य फल शिवनैवेद्य के भक्षण से प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ जिस घर में शिवनैवेद्य पहुँच जाता है, वह घर भी महापवित्र है और वह दूसरे घर को भी पवित्र करने में समर्थ होता है ॥ ६ ॥ शिव के नैवेद्य को आया देखकर उसे शिर से धारण करना चाहिए। तथा परम प्रसन्नता से शिव का स्मरण करते हुए प्रयत्नपूर्वक उसे भक्षण करे ॥ ७ ॥ शिव-नैवेद्य को आया देखकर 'दूसरे समय में इसे ग्रहण करूँगा' ऐसी भावना कदापि न करे। क्योंकि आये हुए शिवनैवेद्य के भक्षण में विलम्ब करने से पाप लगता है ॥ ८ ॥ जिसे शिव-नैवेद्य के ग्रहण की इच्छा नहीं होती, वह घोर पापी है तथा निश्चय ही वह नरक में पड़ेगा ॥ ९ ॥ हृदय में, चन्द्रकान्त निर्मित शिवलिङ्ग में अथवा स्वर्णादि निर्मित शिवलिङ्ग में लगा हुआ नैवेद्य, दीक्षाग्रहण किये हुए शिवभक्त को अवश्य ग्रहण करना चाहिए ऐसा कहा गया है ॥ १० ॥ शिव-दीक्षा से युक्त भक्त सभी लिङ्गों का शुभ नैवेद्य महाप्रसाद समझकर भक्षण करे ॥ ११ ॥ जिन लोगों ने अन्य देवताओं की दीक्षा ली है किन्तु वे शिवभक्त हैं, तो उन मनुष्यों के शिव-नैवेद्य भक्षण में निर्णय सुनें ॥ १२ ॥

हे ब्राह्मणो ! शालग्राम में उत्पन्न लिङ्ग, रसलिङ्ग, पाषाणलिङ्ग, रजत एवं सुवर्णलिङ्ग, देवताओं तथा सिद्धों के द्वारा प्रतिष्ठित शिवलिङ्ग, काश्मीर में बने हुए लिङ्ग, स्फटिकलिङ्ग, रत्न-लिङ्ग तथा ज्योतिर्लिङ्ग आदि सभी लिङ्गों का नैवेद्य भक्षण चान्द्रायण व्रत के समान फल देनेवाला

ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत् । भक्षयित्वा द्रुतं तस्य सर्वपापं प्रणश्यति ॥१५॥
चण्डाधिकारो यत्रास्ति तद्भोक्तव्यं न मानवैः । चण्डाधिकारो नो यत्र भोक्तव्यं तच्च भक्तितः ॥१६॥
बाणलिङ्गे च लौहे च सिद्धलिङ्गे स्वयंभुवि । प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत् ॥१७॥
स्नापयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्नपनोदकम् । त्रिः पिबेत् त्रिविधं पापं तस्येहाशु विनश्यति ॥१८॥
अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् । शालग्रामशिलासङ्गात् सर्वं याति पवित्रताम् ॥१९॥
लिङ्गोपरि च यद् द्रव्यं तदग्राह्यं मुनीश्वराः । सुपवित्रं च तज्ज्ञेयं यल्लिङ्गस्पर्शबाह्यतः ॥२०॥
नैवेद्यनिर्णयः प्रोक्त इत्थं वो मुनिसत्तमाः । शृणुध्वं बिल्वमाहात्म्यं सावधानतयाऽऽदरात् ॥२१॥
महादेवस्वरूपोऽयं बिल्वो देवैरपि स्तुतः । यथाकथञ्चिदेतस्य महिमा ज्ञायते कथम् ॥२२॥
पुण्यतीर्थानि यावन्ति लोकेषु प्रथितान्यपि । तानि सर्वाणि तीर्थानि बिल्वमूले वसन्ति हि ॥२३॥
बिल्वमूले महादेवं लिङ्गरूपिणमव्ययम् । यः पूजयति पुण्यात्मा स शिवं प्राप्नुयाद् ध्रुवम् ॥२४॥
बिल्वमूले जलैर्यस्तु मूर्द्धानमभिषिञ्चति । स सर्वतीर्थस्नातः स्यात् स एव भुवि पावनः ॥२५॥
एतस्य बिल्वमूलस्याथालवालमनुत्तमम् । जलाकुलं महादेवो दृष्ट्वा तुष्टो भवत्यलम् ॥२६॥
पूजयेद् बिल्वमूलं यो गन्धपुष्पादिभिर्नरः । शिवलोकमवाप्नोति सन्ततिर्वर्द्धते सुखम् ॥२७॥
बिल्वमूले दीपमालां यः कल्पयति सादरम् । स तत्त्वज्ञानसम्पन्नो महेशान्तर्गतो भवेत् ॥२८॥
बिल्वशाखां समादाय हस्तेन नवपल्लवम् । गृहीत्वा पूजयेद् बिल्वं स च पापैः प्रमुच्यते ॥२९॥
बिल्वमूले शिवरतं भोजयेद् यस्तु भक्तितः । एकं वा कोटिगुणितं तस्य पुण्यं प्रजायते ॥३०॥

है ॥ १३-१४ ॥ जो ब्रह्महत्यारा पवित्र होकर शिव-निर्माल्य को धारण करता है और शिव-नैवेद्य को भक्षण करता है उसका पाप नष्ट हो जाता है ॥ १५ ॥ जहाँ चण्डाधिकार है, उस नैवेद्य को भक्षण करना मनुष्य के लिए उचित नहीं है। किन्तु जहाँ चण्डाधिकार नहीं है उस नैवेद्य को भक्तिपूर्वक ग्रहण करना चाहिए ॥ १६ ॥ बाणलिङ्ग, लौहलिङ्ग, सिद्धलिङ्ग तथा स्वयम्भू लिङ्ग में तथा सम्पूर्ण प्रतिमा में चण्ड का अधिकार नहीं है ॥ १७ ॥ जो विधानपूर्वक स्नान कराकर लिङ्ग के स्नान-जल को तीन बार पीते हैं, उनके तीनों प्रकार के पाप नष्ट होते हैं ॥ १८ ॥ शिव का अग्राह्य नैवेद्य भी, पत्र, पुष्प तथा फल शालग्राम शिला के सम्बन्ध से पवित्र हो जाता है ॥ १९ ॥ हे मुनीश्वरो ! शिव के ऊपर चढ़ाया गया द्रव्य अग्राह्य है और जो शिवलिङ्ग के स्पर्श से बाहर है उसे सर्वदा पवित्र जानना चाहिए ॥ २० ॥ हे श्रेष्ठ मुनियो ! शिव-नैवेद्य के ग्राह्याग्राह्य के विषय में निर्णय हमने आपको सुना दिया। अब आप सभी सावधान होकर बिल्व-का माहात्म्य श्रवण करें ॥ २१ ॥ यह बिल्व महादेव का स्वरूप है, देवगण भी इसकी स्तुति करते हैं। भला जिस-किसी प्रकार इसकी महिमा किस प्रकार जानी जा सकती है ॥ २२ ॥ लोक में जितने भी पवित्र तीर्थ हैं वे सभी तीर्थ बिल्व के मूल में निवास करते हैं ॥ २३ ॥ इस बिल्व के मूल में लिङ्ग रूपधारी अव्यय शिव की जो पुण्यात्मा पूजा करते हैं, वह निश्चय ही कल्याण के भागी होते हैं ॥ २४ ॥ बिल्ववृक्ष के मूल में स्थित जल से जो अपने शिर पर अभिषेक करता है वह सभी तीर्थों में स्नान का फल प्राप्त कर लेता है और पृथ्वी में सबको पवित्र करता है ॥२५॥ इस बिल्व के आलबाल (थाले) में चारों ओर से भरे हुए जल को देखकर महादेव अत्यन्त सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥२६॥ जो मनुष्य बिल्व के मूल का गन्ध-पुष्पादि द्वारा पूजन करता है वह शिवलोक को प्राप्त करता है। उसे सन्तान की वृद्धि तथा सुख की प्राप्ति होती है ॥२७॥

जो आदरपूर्वक बिल्वमूल में दीपदान करता है वह तत्त्वज्ञान से सम्पन्न होकर महादेव के समान हो जाता है ॥ २८ ॥ बिल्व की शाखा को पकड़कर जो हाथ से नवीन बिल्वपत्र लेकर उसे पल्लव से बिल्ववृक्ष का पूजन करता है, वह सभी पापों से छूट जाता है ॥ २९ ॥ जो पुरुष बिल्व के मूल में भक्ति से एक शिवभक्त को भोजन कराता है उसे करोड़ों मनुष्यों के भोजन का फल प्राप्त होता

बिल्वमूले क्षीरयुक्तमन्नमाज्येन संयुतम् । यो दद्याच्छिवभक्ताय स दरिद्रो न जायते ॥३१॥
साङ्गोपाङ्गमिति प्रोक्तं शिवलिङ्गप्रपूजनम् । प्रवृत्तानां निवृत्तानां भेदतो द्विविधं द्विजाः ॥३२॥
प्रवृत्तानां पीठपूजां सर्वपूजां समाचरेत् ॥३३॥
अभिषेकान्ते नैवेद्यं शाल्यन्नेन समाचरेत् । पूजान्ते स्थापयेल्लिङ्गं पुटे शुद्धे पृथग् गृहे ॥३४॥
करपूजानिवृत्तानां स्वभोज्यं तु निवेदयेत् । निवृत्तानां परं सूक्ष्मं लिङ्गमेव विशिष्यते ॥३५॥
विभूत्यभ्यर्चनं कुर्याद् विभूतिं च निवेदयेत् । पूजां कृत्वा तथा लिङ्गं शिरसा धारयेत् सदा ॥३६॥

इति शिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधन-
खण्डे शिवनैवेद्यवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

(रुद्राक्ष एवं शिवनाम के माहात्म्य का वर्णन)

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग व्यासशिष्य ! नमोऽस्तु ते । तदेव व्यासतो ब्रूहि भस्ममाहात्म्यमुत्तमम् ॥ १ ॥
तथा रुद्राक्षमाहात्म्यं नाममाहात्म्यमुत्तमम् । त्रितयं ब्रूहि सुप्रीत्या ममानन्दय चेतसम् ॥ २ ॥

सूत उवाच

साधु पृष्टं भवद्भिश्च लोकानां हितकारकम् । भवन्तो वै महाधन्याः पवित्राः कुलभूषणाः ॥ ३ ॥
येषां चैव शिवः साक्षाद् दैवतं परमं शुभम् । सदाशिवकथा लोके वल्लभा भवतां सदा ॥ ४ ॥
ते धन्याश्च कृतार्थाश्च सफलं देहधारणम् । उद्धृतं च कुलं तेषां ये शिवं समुपासते ॥ ५ ॥

है ॥ ३० ॥ जो मनुष्य बिल्व के मूल में दुग्ध एवं घृत से पूर्ण अन्न शिवभक्तों को प्रदान करता है वह दरिद्र नहीं होता ॥ ३१ ॥

सूत जी कहते हैं—हे ब्राह्मणो ! यहाँ तक हमने शिवपूजा का साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया । प्रवृत्त-वालों की पूजा तथा निवृत्तवालों की पूजा इस क्रम से इसके दो भेद हैं ॥ ३२ ॥ प्रवृत्तवाले पीठपूजा अथवा सर्वपूजा करें ॥ ३३ ॥ उन्हें अभिषेक से आरम्भकर शाल्यन्न का नैवेद्य लगाकर शिवपूजा करनी चाहिए । पूजा करने के उपरान्त उस लिङ्ग को किसी सम्पुट (डिब्बे) में रख देना चाहिए । अथवा पृथक् किसी गृह में स्थापित करे ॥ ३४ ॥ जो लोग हाथ से पूजा नहीं करते ऐसे लोगों (संन्यासियों) को भोजन देने चाहिए । निवृत्त मार्ग वाले लोग परात्पर सूक्ष्म लिङ्ग की पूजा करें ॥ ३५ ॥ वे विभूति से अर्चन करें तथा उन्हें विभूति ही निवेदन करें । पूजा के अनन्तर शिवलिङ्ग को सर्वदा अपने शिर पर धारण करें ॥ ३६ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत विद्येश्वरसंहिता में साध्य-साधन-
खण्ड स्थित शिवनैवेद्य तथा बिल्वमाहात्म्य-निरूपण नामक बाइसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥

*

ऋषिगण बोले—हे महाभाग सूत ! हे व्यासशिष्य ! आपको नमस्कार है । अब आप हमें भस्म-माहात्म्य, रुद्राक्ष-माहात्म्य एवं नाम-माहात्म्य का विस्तार के साथ वर्णन कीजिए और इन तीनों का माहात्म्य हमें समझाकर चित्त को आनन्दित कीजिए ॥ १-२ ॥

सूतजी बोले—आप लोगों ने लोकोपकार के लिए उत्तम बात पूछी । आप सब धन्य, पवित्र तथा कुल के भूषण हो ॥३॥ जिन लोगों के कल्याणकारी शिव देवता हैं, उन आप लोगों को लोक में यह शिव-कथा अत्यन्त प्रिय है ॥ ४ ॥ वे लोग धन्य हैं, वे ही कृतार्थ हैं, उन्हीं का जन्म सफल है तथा उन्हीं लोगों

शिवनाम मुखे यस्य सदा शिव शिवेति च। पापानि न स्पृशन्त्येव खदिराङ्गारकं यथा ॥ ६ ॥
श्रीशिवाय नमस्तुभ्यं मुखं व्याहरते यदा। तन्मुखं पावनं तीर्थं सर्वपापविनाशनम् ॥ ७ ॥
तन्मुखं च तथा यो वै पश्यति प्रीतिमान् नरः। तीर्थजन्यं फलं तस्य भवतीति सुनिश्चितम् ॥ ८ ॥
यत्र त्रयं सदा तिष्ठेदेतच्छुभतरं द्विजाः। तस्य दर्शनमात्रेण वेणीस्नानफलं लभेत् ॥ ९ ॥
शिवनामविभूतिश्च तथा रुद्राक्ष एव च। एतत् त्रयं महापुण्यं त्रिवेणीसदृशं स्मृतम् ॥१०॥
एतत् त्रयं शरीरे च यस्य तिष्ठति नित्यशः। तस्यैव दर्शनं लोके दुर्लभं पापहारकम् ॥११॥
तद्दर्शनं यथा वेणी नोभयोरन्तरं मनाक्। एवं यो न विजानाति स पापिष्ठो न संशयः ॥१२॥
विभूतिर्यस्य नो भाले नाऽङ्गे रुद्राक्षधारणम्। नास्ये शिवमयी वाणी तं त्यजेदधमं यथा ॥१३॥
शैवं नाम यथा गङ्गा विभूतिर्यमुना मता। रुद्राक्षं विधिना प्रोक्ता सर्वपापविनाशिनी ॥१४॥
शरीरे च त्रयं यस्य तत्फलं चैकतः स्थितम्। एकतो वेणिकायाश्च स्नानजं तु फलं बुधैः ॥१५॥
तदेवं तुलितं पूर्वं ब्रह्मणा हितकारिणा। समानं चैव तज्जातं तस्माद्धार्यं सदा बुधैः ॥१६॥
तद्दिनं हि समारभ्य ब्रह्मविष्ण्वादिभिः सुरैः। धार्यते त्रितयं तच्च दर्शनात् पापहारकम् ॥१७॥

ऋषय ऊचुः

ईदृशं हि फलं प्रोक्तं नामादि-त्रितयोद्भवम्। तन्माहात्म्यं विशेषेण वक्तुमर्हसि सुव्रत ! ॥१८॥

सूत उवाच

ऋषयो हि महाप्राज्ञाः सच्छैवा ज्ञानिनां वराः। तन्माहात्म्यं हि सद्भक्त्या शृणुतादरतो द्विजाः॥१९॥
सु गूढमपि शास्त्रेषु पुराणेषु श्रुतिष्वपि। भवत्स्नेहान् मया विप्राः प्रकाशः क्रियतेऽधुना ॥२०॥

ने अपने कुल का उद्धार कर लिया है, जो सदाशिव की उपासना करते हैं ॥ ५ ॥ जिनके मुख में 'शिव-शिव' इस प्रकार शिव का नाम है, उन्हें पाप स्पर्श भी नहीं कर सकते ? जैसे, कोई खैर के अङ्गारे को नहीं स्पर्श कर सकता ॥६॥ जो कोई अपने मुख से 'श्रीशिवाय नमस्तुभ्यं' (शिव को नमस्कार है) इस मन्त्र को कहता है उसका मुख उसी समय सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाले तीर्थ के समान हो जाता है ॥ ७ ॥ जो कोई प्रीति युक्त हो उस पुरुष के मुख का अवलोकन करते हैं उन्हें तीर्थ का फल प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मणो ! जहाँ-कहीं भी वह पुरुष स्थित रहता है, उसके दर्शन मात्र से त्रिवेणी-स्नान का फल प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ शिवनाम, विभूति एवं रुद्राक्ष यह तीनों महा पवित्र तथा त्रिवेणी के समान फल देने वाले हैं ॥ १० ॥ जिनके शरीर में भस्म, रुद्राक्ष तथा विभूति इन तीनों का निवास है ऐसे लोगों का दर्शन सर्वथा दुर्लभ एवं पापनाशक होता है ॥ ११ ॥ उनका दर्शन त्रिवेणी के समान है। त्रिवेणी में तथा उस पुरुष में कोई अन्तर नहीं है। जो इस बात को नहीं जानता वह महा पापी है, इसमें संशय नहीं ॥ १२ ॥ जिसके मस्तक पर विभूति, गले में रुद्राक्ष की माला एवं मुख में शिवनाम नहीं है उसको अधम समझ कर त्याग देना चाहिए ॥ १३ ॥ शिवनाम गङ्गा है, विभूति यमुना है तथा रुद्राक्ष पापनाशिनी सरस्वती है ॥ १४ ॥ जिनके शरीर में ये तीनों हैं, उनके फल को एक पलड़े पर तथा त्रिवेणीजन्य स्नान के फल को ब्रह्मा ने दूसरे पलड़े पर रखकर तुलना किया तो दोनों ही बराबर हुए। इसलिए बुद्धिमान् पुरुष को इन तीनों को सदा धारण करना चाहिए ॥१५-१६॥ उसी दिन से ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं ने रुद्राक्ष, विभूति एवं शिवनाम धारण का नियम बना लिया। अतः इनके दर्शन मात्र से पाप दूर हो जाते हैं ॥ १७ ॥

ऋषिगण बोले—हे सुव्रत ! जब इन तीनों के धारण का इतना माहात्म्य है तो विशेष रूप से इसका माहात्म्य हमें सुनाइए ॥ १८ ॥

सूतजी बोले—हे महाप्राज्ञ ! हे शिवभक्तों में श्रेष्ठ महर्षियो ! आपलोग इन तीनों का माहात्म्य भक्ति तथा आदर पूर्वक श्रवण कीजिए ॥ १९ ॥ इसका माहात्म्य शास्त्र, पुराण तथा श्रुतियों में गुप्त

कस्तत् त्रितयमाहात्म्यं संजानाति द्विजोत्तमाः । महेश्वरं विना सर्वं ब्रह्माण्डे सदसत्परम् ॥२१॥
वच्म्यहं नाममाहात्म्यं यथाभक्ति समासतः । शृणुत प्रीतितो विप्राः सर्वपापहरं परम् ॥२२॥
शिवेति नामदावाग्नेर्महापातकपर्वताः । भस्मीभवन्त्यनायासात् सत्यं सत्यं न संशयः॥२३॥
पापमूलानि दुःखानि विविधान्यपि शौनक ! । शिवनामैकनश्यानि नान्यनश्यानि सर्वथा ॥२४॥
स वैदिकः स पुण्यात्मा स धन्य स बुधो मतः । शिवनामजपासक्तो यो नित्यं भुवि मानवः ॥२५॥
भवन्ति विविधा धर्मास्तेषां सद्यः फलोन्मुखाः । येषां भवति विश्वासः शिवनामजपे मुने ! ॥२६॥
पातकानि विनश्यन्ति यावन्ति शिवनामतः । भुवि तावन्ति पापानि क्रियन्ते न नरैर्मुने ॥२७॥
ब्रह्महत्यादि-पापानां राशीनप्रमितान् मुने । शिवनाम द्रुतं प्रोक्तं नाशयत्यखिलान् नरैः॥२८॥
शिवनामतरीं प्राप्य संसाराब्धिं तरन्ति ये । संसारमूलपापानि तानि नश्यन्त्यसंशयम् ॥२९॥
संसारमूलभूतानां पातकानां महामुने ! । शिवनामकुठारेण विनाशो जायते ध्रुवम् ॥३०॥
शिवनामामृतं पेयं पापदावानलार्दितैः । पापदावाग्नितप्तानां शान्तिस्तेन विना न हि ॥३१॥
शिवेति नामपीयूष-वर्षधारा-परिप्लुताः । संसारदवमध्येऽपि न शोचन्ति कदाचन ॥३२॥
शिवनाम्नि महद्भक्तिर्जाता येषां महात्मनाम् । तद्विधानां तु सहसा मुक्तिर्भवति सर्वथा ॥३३॥
अनेकजन्मभिर्येन तपस्तप्तं मुनीश्वर ! । शिवनाम्नि भवेद् भक्तिः सर्वपापापहारिणी॥३४॥

रूप से कहा गया है किन्तु हे ब्राह्मणो ! मैं तुम लोगों के स्नेह से इसे प्रकट रूप से कहता हूँ ॥ २० ॥ हे ब्राह्मणो ! इन तीनों के माहात्म्य को सम्पूर्ण रूप से जानने में कौन समर्थ है । इस ब्रह्माण्ड में सदसत् से परे शिव के अतिरिक्त और कोई भी इस माहात्म्य को नहीं जानता ॥ २१ ॥ मैं यथाशक्ति संक्षेप में भक्तिपूर्वक नाम के माहात्म्य को कह रहा हूँ । हे ब्राह्मणो ! प्रीतिपूर्वक आप सव सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाले शिवनाम माहात्म्य को श्रवण कीजिए ॥ २२ ॥ शिवनाम रूपी दावाग्नि से पापों के महापर्वत जल जाते हैं । सभी पाप नाम लेते ही अनायास जल जाते हैं । यह सत्य है, यह सत्य है इसमें संशय नहीं करना चाहिए ॥ २३ ॥ हे शौनक ! पाप से उत्पन्न होने वाले अनेक दुःख हैं, वे सभी शिव के नाम ग्रहण से नष्ट हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ २४ ॥ वही वैदिक है, वही पुण्यात्मा है, वही धन्य एवं बुद्धिमान् है, जो निरन्तर इस जगत् में शिवनाम का जप करता रहता है ॥ २५ ॥

हे मुने ! जिनका शिवनाम जप में विश्वास है, उन्हें सभी प्रकार के धर्म फल देने के लिए उन्मुख रहते हैं ॥२६॥ शिवनाम से जितने पाप नष्ट होते हैं, कदाचित् उतने पाप पुरुष कर भी नहीं सकते ॥२७॥ हे महामुने ! ब्रह्महत्या-जैसे अनेक पापों के ढेर शिव का नाम ग्रहण करते ही नष्ट हो जाते हैं ॥ २८ ॥ जो शिवनाम की नाव को प्राप्त कर लेते हैं वे ससार-सागर को अवश्य पार कर जाते हैं । निश्चय ही शिवनाम ग्रहण से संसार के मूल भूत पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ २९ ॥ हे महामुने ! यह शिव का नाम संसार के मूल रूप पापों को नष्ट करने के लिए कुठार के समान है ॥ ३० ॥ पापरूपी दावाग्नि से जलते हुए मनुष्यों को शिवनाम रूपी अमृत का पान करना चाहिए । क्योंकि, शिवनामामृत के विना पापरूपी दावाग्नि से जलने वालों को शान्ति नहीं प्राप्त होती ॥ ३१ ॥ शिवनामरूपी अमृतधारा से परिपूर्ण जन कभी भी संसाराग्नि के मध्य में जलते रहने का शोक नहीं करते । क्योंकि, शिवनामामृत से उनका शरीर सरावोर रहता है ॥३२॥ जिन महात्मा जनों को शिवनाम ग्रहण में उत्कट भक्ति है ऐसे लोग तत्काल मुक्त हो जाते हैं ॥ ३३ ॥ हे मुनीश्वरो ! जिन लोगों ने अनेक जन्म पर्यन्त तप किया है, उन्हीं की सर्वथा पापहारिणी भक्ति शिवनाम में होती है ॥ ३४ ॥

यस्यासाधारणं शम्भुनाम्नि भक्तिरखण्डिता । तस्यैव मोक्षः सुलभो नाऽन्यस्येति मतिर्मम ॥३५॥
कृत्वाऽप्यनेकपापानि शिवनामजपादरः । सर्वपापविनिर्मुक्तो भवत्येव न संशयः ॥३६॥
भवन्ति भस्मसाद् वृक्षा दवदग्धा यथा वने । तथा तावन्ति दग्धानि पापानि शिवनामतः ॥३७॥
यो नित्यं भस्मपूताङ्गः शिवनामजपादरः । स तरत्येव संसारं सघोरमपि शौनक ! ॥३८॥
ब्रह्मस्वहरणं कृत्वा हत्वाऽपि ब्राह्मणान् बहून् । न लिप्यते नरः पापैः शिवनामजपादरः ॥३९॥
विलोक्य वेदानखिलाञ्छिवनामजपः परः । संसारतारणोपाय इति पूर्वैर्विनिश्चितः ॥४०॥
किं बहूक्त्या मुनिश्रेष्ठाः श्लोकेनैकेन वच्म्यहम् । शिवनाम्नो महिमानं सर्वपापापहारिणम् ॥४१॥
पापानां हरणे शम्भोर्नाम्नः शक्तिर्हि पावनी । शक्नोति पातकं तावत् कर्तुं नापि नरः क्वचित् ॥४२॥
शिवनामप्रभावेण लेभे सद्गतिमुत्तमाम् । इन्द्रद्युम्ननृपः पूर्वं महापापः पुरा मुने ! ॥४३॥
तथा काचिद् द्विजा योषाऽसौ मुने बहुपापिनी । शिवनामप्रभावेण लेभे सद्गतिमुत्तमाम् ॥४४॥
इत्युक्तं वो द्विजश्रेष्ठा नाममाहात्म्यमुत्तमम् । शृणुध्वं भस्ममाहात्म्यं सर्वपावनपावनम् ॥४५॥

इति शिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे
शिवनाममाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

सूत जी कहते हैं—हे महर्षियो ! मेरा तो ऐसा मत है कि शिवनाम ग्रहण में जिनकी भक्ति निर्बाध रूप से होती है, उन्हीं को मुक्ति सुलभता से प्राप्त होती है ॥ ३५ ॥ अनेक प्रकार के पापों को कर के जो शिवनाम को आदरपूर्वक जपता है, वह शीघ्र ही सभी प्रकार के पापों से छूट जाता है, इसमें संशय नहीं ॥३६॥ जिस प्रकार दावाग्नि से बन के वृक्ष भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार शिवनाम से भी अनेक पाप छूट जाते हैं ॥ ३७ ॥ जो नित्य भस्म धारण कर आदर से शिव के नाम का जप करता है, हे शौनक ! वह अवश्य ही इस घोर संसार से पार हो जाता है ॥३८॥ ब्राह्मणों का धन अपहरण करने वाला तथा अनेक ब्राह्मणों का हत्यारा पुरुष भी भक्ति से शिवनाम का जप कर उन पापों से लिप्त नहीं होता ॥ ३९ ॥

सम्पूर्ण वेदों को देखकर पूर्वजों ने यही निश्चय किया कि शिवनाम ही सर्वोत्कृष्ट जप है तथा संसार के तारने का यही एक उपाय है ॥ ४० ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! बहुत कहना व्यर्थ है, केवल एक ही श्लोक में शिव के नाम की सर्वपापहारिणी महिमा मैं कहता हूँ कि, शिवनाम में पापों को नष्ट करने की जितनी शक्ति है कदाचित् पापी आदमी उतना पाप कर भी नहीं सकता ॥ ४१-४२ ॥ पूर्वकाल में शिवनाम के प्रभाव से महापापी इन्द्रद्युम्न राजा ॥ ४३ ॥ तथा एक महापापिनी ब्राह्मण की स्त्री शिवनाम के प्रभाव से दोनों की उत्तम गति हो गयी । हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार हमने आप लोगों से उत्तम शिव के नाम का माहात्म्य वर्णन किया । अब आप सभी पापों को दूर करने वाले भस्म के पावन माहात्म्य को श्रवण करें ॥ ४४-४५ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत विद्येश्वरसंहिता में साध्य-साधन-खण्ड स्थित शिवनाम-माहात्म्य वर्णन नामक तेइसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥

*

चतुर्विंशोऽध्यायः

(भस्म के माहात्म्य का निरूपण)

सूत उवाच

द्विविधं भस्म सम्प्रोक्तं सर्वमङ्गलदं परम् । तत्प्रकारमहं वक्ष्ये सावधानतया शृणु ॥ १ ॥
एकं ज्ञेयं महाभस्म द्वितीयं स्वल्पसंज्ञकम् । महाभस्म इति प्रोक्तं भस्म नानाविधं परम् ॥ २ ॥
तद्भस्म त्रिविधं प्रोक्तं श्रौतं स्मार्तं च लौकिकम् । भस्मैव स्वल्पसंज्ञं हि बहुधा परिकीर्तितम् ॥ ३ ॥
श्रौतं भस्म तथा स्मार्तं द्विजानामेव कीर्तितम् । अन्येषामपि सर्वेषामपरं भस्म लौकिकम् ॥ ४ ॥
धारणं मन्त्रतः प्रोक्तं द्विजानां मुनिपुङ्गवैः । केवलं धारणं ज्ञेयमन्येषां मन्त्रवर्जितम् ॥ ५ ॥
आग्नेयमुच्यते भस्म दग्धगोमयसम्भवम् । तदपि द्रव्यमित्युक्तं त्रिपुण्ड्रस्य महामुने ! ॥ ६ ॥
अग्निहोत्रोत्थितं भस्म सङ्ग्राह्यं वा मनीषिभिः । अन्ययज्ञोत्थितं वाऽपि त्रिपुण्ड्रस्य च धारणे ॥ ७ ॥
अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैर्जाबालोपनिषद्-गतैः । सप्तभिर्धूलनं कार्यं भस्मना सजलेन च ॥ ८ ॥
वर्णानामाश्रमाणां च मन्त्रतोऽमन्त्रतोऽपि च । त्रिपुण्ड्रोद्धूलनं प्रोक्तं जाबालैरादरेण च ॥ ९ ॥
भस्मनोद्धूलनं चैव यथा तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम् । प्रमादादपि मोक्षार्थी न त्यजेदिति विश्रुतिः ॥१०॥
शिवेन विष्णुना चैव तथा तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम् । उमा देवी च लक्ष्मीश्च वाचान्याभिश्च नित्यशः ॥११॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरपि च सङ्करैः । अपभ्रंशैर्धृतं भस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनात्मना ॥१२॥
उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये । तेषां नास्ति समाचारो वर्णाश्रमसमन्वितः ॥१३॥
उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये । तेषां नास्ति विनिर्मुक्तिः संसाराज्जन्मकोटिभिः ॥१४॥
उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये । तेषां नास्ति शिवज्ञानं कल्पकोटिशतैरपि ॥१५॥

सूत जी बोले—सम्पूर्ण मङ्गलों के देनेवाले भस्म के दो भेद हैं। हे शौनक ! उसे मैं कहता हूँ, तुम सावधानी से सुनो ॥ १ ॥ प्रथम महाभस्म है तथा दूसरा स्वल्प भस्म है। जिसे महाभस्म कहते हैं, उसके भी अनेक प्रकार के भेद हैं ॥ २ ॥ किन्तु प्राधान्येन वह भस्म भी श्रौत, स्मार्त्त तथा लौकिक भेद से तीन प्रकार का कहा गया है। इसी प्रकार स्वल्प संज्ञक भस्म भी बहुत प्रकार का कहा गया है ॥ ३ ॥ मात्र ब्राह्मणों के लिए ही श्रौत तथा स्मार्त्त भस्म का विधान है और सभी लोगों के लिए लौकिक भस्म धारण का विधान कहा गया है ॥ ४ ॥ ब्राह्मणों को मन्त्र से भस्म धारण करने की विधि है, दूसरों को बिना मन्त्र ही भस्म धारण करने का विधान है ॥ ५ ॥ जलाये कण्डे के द्वारा जो भस्म बनाया जाता है उसे आग्नेय भस्म कहते हैं। वह भी त्रिपुण्ड्र धारण का द्रव्य है ॥ ६ ॥ किन्तु विद्वानों को अग्निहोत्र के भस्म से त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिए। अन्य यज्ञों से उत्पन्न भस्म द्वारा भी त्रिपुण्ड्र धारण किया जा सकता है ॥ ७ ॥ जाबालोपनिषद् में कहे गये 'अग्निरिति भस्म' इत्यादि सात मन्त्रों से जल मिश्रित भस्म का उद्धूलन (शरीर में भस्म लगाना) करना चाहिए ॥ ८ ॥

ब्राह्मणादि वर्णों को एवं ब्रह्मचर्यादि आश्रमियों को मन्त्रपूर्वक अथवा बिना मन्त्र के ही आदरपूर्वक जाबालि ने त्रिपुण्ड्र का धारण तथा भस्मोद्धूलन कहा है ॥ ९ ॥ भस्म से उद्धूलन तथा तिरछे त्रिपुण्ड्र का धारण इन दोनों का मोक्षार्थी कभी प्रमादवश भी त्याग न करे। ऐसा सुना जाता है ॥ १० ॥ शिव, विष्णु, उमा देवी, महालक्ष्मी और सरस्वती तथा अन्य स्त्रियों ने भी तिरछे त्रिपुण्ड्र धारण किया है ॥ ११ ॥ इसलिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, सङ्कर तथा जातिच्युत लोगों ने भी त्रिपुण्ड्र धारण तथा भस्मोद्धूलन किया है ॥ १२ ॥ जो लोग श्रद्धा से भस्म का त्रिपुण्ड्र तथा भस्मोद्धूलन नहीं करते उनमें वर्णाश्रमोचित सदाचार का अभाव जानना चाहिए ॥ १३ ॥ जो लोग त्रिपुण्ड्र धारण एवं भस्मोद्धूलन श्रद्धा से नहीं करते उनका करोड़ों जन्मों तक संसार-सागर से छुटकारा नहीं होता ॥ १४ ॥ जो श्रद्धा से त्रिपुण्ड्र धारण एवं भस्मोद्धूलन नहीं करते, उन्हें सौ करोड़ कल्पों में भी ज्ञान की प्राप्ति नहीं

उद्‌धूलनं त्रिपुण्ड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये। ते महापातकैर्युक्ता इति शास्त्रीयनिर्णयः ॥१६॥
उद्‌धूलनं त्रिपुण्ड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये। तेषामाचरितं सर्वं विपरीतफलाय हि ॥१७॥
महापातकयुक्तानां जन्तूनां सर्वविद्विषाम्। त्रिपुण्ड्रोद्‌धूलनद्वेषो जायते सुदृढं मुने ! ॥१८॥
शिवाग्निकार्यं यः कृत्वा कुर्यात् त्रियायुषात्मवित्। मुच्यते सर्वपापैस्तु स्पृष्टेन भस्मना नरः ॥१९॥
सितेन भस्मना कुर्यात् त्रिसन्ध्यं यस्त्रिपुण्ड्रकम्। सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवेन सह मोदते ॥२०॥
सितेन भस्मना कुर्याल्ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम्। योऽसावनादिभूतान् हि लोकानाप्नो मृतो भवेत् ॥२१॥
अकृत्वा भस्मना स्नानं न जपेद् वै षडक्षरम्। त्रिपुण्ड्रं च रचित्वा तु विधिना भस्मना जपेत् ॥२२॥
अदयो वाऽधमो वाऽपि सर्वपापान्वितोऽपि वा।
उपःपापान्वितो वाऽपि मूर्खो वा पतितोऽपि वा ॥२३॥
यस्मिन् देशे वसेन्नित्यं भूतिशासनसंयुतः। सर्वतीर्थैश्च क्रतुभिः सान्निध्यं क्रियते सदा ॥२४॥
त्रिपुण्ड्रसहितो जीवः पूज्यः सर्वैः सुराऽसुरैः। पापान्वितोऽपि शुद्धात्मा किं पुनः श्रद्धया युतः ॥२५॥
यस्मिन् देशे शिवज्ञानी भूतिशासनसंयुतः। गतो यदृच्छयाऽद्यापि तस्मिंस्तीर्थाः समागताः ॥२६॥
बहुनाऽत्र किमुक्तेन धार्यं भस्म सदा बुधैः। लिङ्गार्चनं सदा कार्यं जप्यो मन्त्रः षडक्षरः ॥२७॥
ब्रह्मणा विष्णुना वाऽपि रुद्रेण मुनिभिः सुरैः। भस्मधारणमाहात्म्यं न शक्यं परिभाषितुम् ॥२८॥
इति वर्णाश्रमाचारो लुप्तवर्णक्रियोऽपि च। पापात् सकृत् त्रिपुण्ड्रस्य धारणात् सोऽपि मुच्यते ॥२९॥

होती है ॥ १५ ॥ जो श्रद्धा से त्रिपुण्ड्रधारण एवं भस्मोद्‌धूलन नहीं करते वे महापातकी होते हैं ऐसा शास्त्रकारों का निर्णय है ॥ १६ ॥ जो भस्मोद्‌धूलन एवं त्रिपुण्ड्र धारण श्रद्धा से नहीं करते, उनका किया गया सारा कर्म विपरीत फल देनेवाला होता है ॥ १७ ॥

हे महर्षिगणो ! जो महापातकों से युक्त हैं तथा शिव से द्वेष करनेवाले हैं, उन्हीं को त्रिपुण्ड्र धारण तथा भस्मोद्‌धूलन से दृढ़तर द्वेष होता है ॥ १८ ॥ जो आत्मज्ञानी, अग्निहोत्र के अनन्तर 'त्र्यायुषं जमदग्नेः' इस मन्त्र से भस्म लेकर लगाता है वह उस भस्म के स्पर्शमात्र से ही सभी पापों से छुटकारा पा जाता है ॥ १९ ॥ जो तीनों काल की सन्ध्या में श्वेत भस्म द्वारा त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर शिव के साथ आनन्दित होता है ॥ २० ॥ जो श्वेत भस्म से ललाट में त्रिपुण्ड्र धारण करता है वह अनादिभूत लोकों को प्राप्त कर अमर हो जाता है ॥ २१ ॥ विना भस्म लगाये षडक्षर (ॐ नमः शिवाय) इस मन्त्र का जप न करे। किन्तु भस्म से त्रिपुण्ड्र धारण करने के पश्चात् ही जप करना चाहिए ॥ २२ ॥ निर्दयी, अधम, महापापी, ईषत्पापी, महामूर्ख अथवा पतित चाहे जैसा-कैसा भी हो भस्म धारण कर जिस देश में निवास करता है, वहाँ सभी तीर्थों एवं यज्ञों का निवास है ॥ २३-२४ ॥ त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाला प्राणी चाहे वह पापी भी क्यों न हो, देवताओं एवं राक्षसों से नमस्कार के योग्य है, फिर जो पुण्यात्मा श्रद्धा से त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं उनका तो कहना ही क्या ? ॥ २५ ॥ जिस प्रदेश में विभूति धारण करनेवाला शिवभक्त निवास करता है अथवा यदृच्छा से गमन करता है वहीं सभी तीर्थों का निवास है ॥ २६ ॥ इस विषय में बहुत क्या कहें. विद्वानों को सदा भस्म धारण करना चाहिए। लिङ्गार्चन तथा षडक्षर मन्त्र का जप भी करना चाहिए ॥ २७ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा अन्य मुनि एवं देवता भी भस्म धारण का माहात्म्य नहीं कह सकते हैं ॥ २८ ॥ जिसका वर्ण-धर्म एवं आश्रम-धर्म नष्ट हो गया है अथवा जिसकी वर्णोचित अपनी क्रिया नष्ट हो गयी है, ऐसा पुरुष भी त्रिपुण्ड्र धारण करने से अपने सभी प्रकार के पापों से छुटकारा पा जाता है ॥ २९ ॥

ये भस्मधारिणं त्यक्त्वा कर्म कुर्वन्ति मानवाः । तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः ॥३०॥
तेनाऽधीतं गुरोः सर्वं तेन सर्वमनुष्ठितम् । येन विप्रेण शिरसि त्रिपुण्ड्रं भस्मना कृतम् ॥३१॥
ये भस्मधारिणं दृष्ट्वा नराः कुर्वन्ति ताडनम् । तेषां चण्डालतो जन्म ब्रह्मन्नूह्यं विपश्चिता ॥३२॥
मा नस्तोकेन मन्त्रेण मन्त्रितं भस्म धारयेत् । ब्राह्मणः क्षत्रियश्चैव प्रोक्तेष्वङ्गेषु भक्तिमान् ॥३३॥
वैश्यस्त्रियम्बकेनैव शूद्रः पञ्चाक्षरेण तु । अन्यासां विधवास्त्रीणां विधिः प्रोक्तश्च शूद्रवत् ॥३४॥
पञ्चब्रह्मादिमनुभिर्गृहस्थस्य विधीयते । त्रियम्बकेन मनुना विधिर्वै ब्रह्मचारिणः ॥३५॥
अघोरेणाऽथ मनुना विपिनस्थविधिः स्मृतः । यतिस्तु प्रणवेनैव त्रिपुण्ड्रादीनि कारयेत् ॥३६॥
अतिवर्णाश्रमी नित्यं शिवोऽहं भावनात् परात् । शिवयोगी च नियतमीशानेनापि धारयेत् ॥३७॥
न त्याज्यं सर्ववर्णैश्च भस्मधारणमुत्तमम् । अन्यैरपि यथा जीवैः सदेति शिवशासनम् ॥३८॥
भस्मस्नानेन यावन्तः कणाः स्वाङ्गे प्रतिष्ठिताः । तावन्ति शिवलिङ्गानि तनौ धत्ते हि धारकः ॥३९॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चापि च सङ्कराः । स्त्रियोऽथ विधवा बालाः प्राप्ताः पाखण्डिकास्तथा ॥४०॥
ब्रह्मचारी गृही वन्यः संन्यासी वा व्रती तथा । नार्यो भस्म त्रिपुण्ड्राङ्का मुक्ता एव न संशयः ॥४१॥
ज्ञानाऽज्ञानधृतो वाऽपि वह्निदाहसमो यथा । ज्ञानाऽज्ञानधृतं भस्म पावयेत् सकलं नरम् ॥४२॥

नाश्नीयाज्जलमन्नमल्पमपि वा भस्माक्षधृत्या विना
भुक्त्वा वाऽथ गृही वनीपतियतिर्वर्णी तथा सङ्करः ।
एनोभुङ् नरकं प्रयाति स तदा गायत्रिजापेन तद्
वर्णीनां तु यतेस्तु मुख्यप्रणवाजापेन मुक्तिर्भवेत् ॥४३॥

जो मनुष्य भस्म धारण किये बिना ही वैदिक कर्म करते हैं वे करोड़ों जन्म लेकर भी संसार-सागर से मुक्त नहीं होते ॥ ३० ॥ जिस ब्राह्मण ने शिर में भस्म का त्रिपुण्ड्र धारण करना जान लिया, उसने गुरु से सब कुछ पढ़ लिया और अपना सारा कार्य पूरा कर लिया ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य भस्म धारण करने पर भी उस पुरुष का ताड़न करते हैं उनका जन्म चाण्डाल से हुआ है ऐसा विद्वानों को तर्क द्वारा जान लेना चाहिए ॥ ३२ ॥ ब्राह्मण एवं क्षत्रिय शास्त्र के अनुसार कहे गये अङ्गों में 'मा नस्तोके तनये' इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर भक्तिपूर्वक भस्म को अपने शरीर में लगावें ॥३३॥ वैश्य 'त्र्यम्बकं यजामहे' इस मन्त्र से तथा शूद्र पञ्चाक्षर मन्त्र से अभिमन्त्रित कर भस्म धारण करे। अन्य दूसरी विधवा स्त्रियाँ भी पञ्चाक्षर मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित कर भस्म धारण करें ॥३४॥ गृहस्थ को पञ्च ब्रह्म मन्त्रों से, ब्रह्मचारी को 'त्र्यम्बकं यजामहे' इस मन्त्र से, बाणप्रस्थ को 'अघोरेभ्योऽथ' इत्यादि मन्त्रों से किन्तु यति प्रणव के मन्त्र से ही त्रिपुण्ड्र धारण करे यही विधि है ॥ ३५-३६ ॥ वर्ण तथा आश्रम धर्म से ऊपर रहनेवाला पुरुष 'शिवोऽहं' इस भावना को करता हुआ त्रिपुण्ड्र धारण करे। इसी प्रकार शिवयोगी भी 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' इत्यादि मन्त्रों से नित्य नियमपूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करे ॥३७॥ किसी भी वर्ण को भस्म धारण का त्याग उचित नहीं है। और भी जीवों के लिए भस्म धारण परम कल्याणकारी है ऐसा शिवजी महाराज का आदेश है ॥३८॥

भस्म-स्नान से जितने कण शरीर में प्रविष्ट होते हैं, भस्म धारण करनेवाला पुरुष उतने ही शिव-लिङ्गों को अपने शरीर में धारण करता है ॥ ३९ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं सङ्कर जाति, स्त्री, विधवा, बालक एवं पाखण्डी, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वाणप्रस्थी, संन्यासी, व्रती एवं स्त्रियाँ सभी भस्म धारण के प्रभाव से मुक्त हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ४०-४१ ॥ जिस प्रकार ज्ञातरूप से अथवा अज्ञात रूप से धारण की गयी अग्नि दोनों को समान रूप से जलाती है, उसी प्रकार ज्ञान अथवा अज्ञान से धारण किया गया भस्म भी सबको पवित्र करता है ॥ ४२ ॥ जो भस्म तथा रुद्राक्ष धारण नहीं करते उनका अन्न और जल सर्वथा निषिद्ध है, उसे कदापि धारण न करे। यदि कदाचित् गृहस्थ, प्राणप्रस्थ, संन्यासी एवं ब्रह्मचारी तथा सङ्कर जाति ऐसे के यहाँ खा लें तो उसका पाप खाते हैं। उसका प्रायश्चित्त यह है कि ब्राह्मणादि

त्रिपुण्ड्रं ये विनिन्दन्ति निन्दन्ति शिवमेव ते । धारयन्ति च ये भक्त्या धारयन्ति तमेव ते ॥४४॥
धिग् भस्मरहितं भालं धिग् ग्राममशिवालयम् । धिगनीशार्चनंजन्म धिग् विद्यामशिवाश्रयाम्॥४५॥

ये निन्दन्ति महेश्वरं त्रिजगतामाधारभूतं हरं
ये निन्दन्ति त्रिपुण्ड्रधारणकरं दोषस्तु तद्दर्शने ।
ते वै सङ्कर-सूकरा-ऽसुर-खर-श्व-क्रोष्टु-कीटोपमा
जाता एव भवन्ति पापपरमास्ते नारकाः केवलम् ॥४६॥

ते दृष्ट्वा शशिभास्करौ निशि दिने स्वप्नेऽपि नो केवलं
पश्यन्तु श्रुति-रुद्रसूक्त-जपतो मुच्येत तेनादृताः ।
सत्सम्भाषणतो भवेद्धि नरकं निस्तारवानास्थितं
ये भस्मादिविधारणं हि पुरुषं निन्दन्ति मन्दा हि ते ॥४७॥

न तान्त्रिकस्त्वधिकृतो नोर्द्ध्वपुण्ड्रधरो मुने । सन्तप्तचक्रचिह्नोऽत्र शिवयज्ञे बहिष्कृतः ॥४८॥
तत्रैते बहवो लोका बृहज्जाबालचोदिताः । ते विचार्याः प्रयत्नेन ततो भस्मरतो भवेत् ॥४९॥

यच्चन्दनैश्चन्दनकेऽपि मिश्रं धार्यं हि भस्मैव त्रिपुण्ड्रभस्मना ।
विभूतिभालोपरि किञ्चनापि धार्यं सदा नो यदि सन्ति बुद्धयः ॥५०॥

स्त्रीभिस्त्रिपुण्ड्रमलकाविधि धारणीयं भस्म द्विजादिभिरथो विधवाभिरेवम् ।
तद्वत् सदाश्रमवतां विशदा विभूतिर्धार्यापवर्गफलदा सकलाघहन्त्री ॥५१॥
त्रिपुण्ड्रं कुरुते यस्तु भस्मना विधिपूर्वकम् । महापातकसङ्घातैर्मुच्यते चोपपातकैः ॥५२॥

त्रिवर्ण गायत्री जप से उस पाप से शुद्ध होते हैं और यति प्रणव जप कर शुद्ध होता है ॥ ४३ ॥ जो त्रिपुण्ड्र की निन्दा करते हैं वे शिव की निन्दा करते हैं और जो त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं वे शिव को धारण करते हैं ॥ ४४ ॥ भस्म रहित मस्तक एवं शिवालय रहित ग्राम को धिक्कार है । शिव के अर्चन से रहित जन्म एवं शिवोपासना के बिना विद्या को भी धिक्कार है ॥ ४५ ॥ तीनों जगत् के आधार स्वरूप शिव की जो निन्दा करते हैं, और जो त्रिपुण्ड्र धारण करने वाले की निन्दा करते हैं, उनके दर्शन से पाप लगता है । वे निश्चय ही वर्णसंकर, शूकर, असुर, खर, श्वान, गीदड़ तथा कीट के समान हैं, वे नारकी मानो पाप करने के लिए ही जन्म धारण किये हुए हैं ॥ ४६ ॥

शिव-निन्दक एवं त्रिपुण्ड्र धारण करने वाले के निन्दक यदि इन दोनों को रात्रि में देखे तो चन्द्रदर्शन तथा दिन में देखे तो सूर्यदर्शन से शुद्धि होती है । स्वप्न में यदि देख ले तो श्रुति में कहे गये रुद्रसूक्त का आदर से जप करे । तभी पाप से मुक्ति हो सकती है, उनसे संभाषण में भी नरक होता है । उन पापियों के निस्तार की स्थिति नहीं है, अतः जो भस्मधारक पुरुष एवं शिव की निन्दा करते हैं वे महामतिमन्द हैं ॥ ४७ ॥ शिवयज्ञ में तान्त्रिक, अधिकृत उर्द्ध्वपुण्ड्रधारी तथा चक्रमुद्रा को धारण करने वाले का अधिकार नहीं है, वे शिवयज्ञ से बहिष्कृत हैं ॥ ४८ ॥ उस यज्ञ में बृहज्जाबालोपनिषद् में कहे गये पुरुष ही अधिकारी हैं । उनको प्रयत्नपूर्वक यज्ञ में सम्मिलित करना चाहिए, इसलिए भस्म अवश्य धारण करना चाहिए ॥ ४९ ॥ विभूति को चन्दन से मिलावे अथवा चन्दन में विभूति मिलावे । इस प्रकार चन्दन मिश्रित विभूति अथवा विभूति मिश्रित चन्दन का त्रिपुण्ड्र अवश्य धारण करे । चाहे जो भी हो, प्रथम विभूति को मस्तक पर अवश्य लगावे, फिर कुछ भी धारण करे । यदि ज्ञान न भी हो तो इतना अवश्य करे ॥ ५० ॥ स्त्रियों, ब्राह्मण तथा विधवाओं को केश पर्यन्त भस्म धारण करना चाहिए । इसी प्रकार आश्रम धर्मवालों को भी स्वच्छ विभूति धारण करनी चाहिए । क्योंकि, विभूति मोक्ष देने वाली एवं पापों का विनाश करने वाली कही गयी है ॥ ५१ ॥ जो विधि पूर्वक

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवा यतिः । ब्रह्मक्षत्राश्च विट्शूद्रास्तथाऽन्ये पतिताधमाः ॥५३॥
उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च धृत्वा शुद्धा भवन्ति च । भस्मनो विधिना सम्यक् पापराशिं विहाय च ॥५४॥
भस्मधारी विशेषेण स्त्रीगोहत्यादिपातकैः । वीरहत्याऽश्वहत्याभ्यां मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥५५॥
परद्रव्यापहरणं परदाराभिमर्शनम् । परनिन्दा परक्षेत्रहरणं परपीडनम् ॥५६॥
सस्यारामादिहरणं गृहदाहादिकर्म च । गो-हिरण्य-महिष्यादि-तिल-कम्बल-वाससाम् ॥५७॥
अन्न-धान्य-जलादीनां नीचेभ्यश्च परिग्रहः । दाशवेश्यामतङ्गीषु वृषलीषु नटीषु च ॥५८॥
रजस्वलासु कन्यासु विधवासु च मैथुनम् । मांसचर्मरसादीनां लवणस्य च विक्रयः ॥५९॥
पैशुन्यं कूटवादश्च साक्षिमिथ्याभिलाषिणाम् । एवमादीन्यसङ्ख्यानि पापानि विविधानि च ।
सद्य एव विनश्यन्ति त्रिपुण्ड्रस्य च धारणात् ॥६०॥
शिवद्रव्यापहरणं शिवनिन्दा च कुत्रचित् । निन्दा च शिवभक्तानां प्रायश्चित्तैर्न शुद्ध्यति ॥६१॥
रुद्राक्षं यस्य गात्रेषु ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम् । स चाण्डालोऽपि सम्पूज्यः सर्ववर्णोत्तमोत्तमः ॥६२॥
यानि तीर्थानि लोकेऽस्मिन् गङ्गाद्याः सरितश्च याः । स्नातो भवति सर्वत्र ललाटे यस्त्रिपुण्ड्रकम् ॥६३॥
सप्तकोटि महामन्त्राः पञ्चाक्षरपुरस्सराः । तथाऽन्ये कोटिशो मन्त्राः शैवकैवल्यहेतवः ॥६४॥
अन्ये मन्त्राश्च देवानां सर्वसौख्यकरा मुने ! । ते सर्वे तस्य वश्याः स्युर्यो बिभर्ति त्रिपुण्ड्रकम् ॥६५॥
सहस्रं पूर्वजातानां सहस्रं जनयिष्यताम् । स्ववंशजानां ज्ञातीनामुद्धरेद्यस्त्रिपुण्ड्रकृत् ॥६६॥
इह भुक्त्वाऽखिलान् भोगान् दीर्घायुर्व्याधिवर्जितः । जीवितान्ते च मरणं सुखेनैव प्रपद्यते ॥६७॥
अष्टैश्वर्यगुणोपेतं प्राप्य दिव्यवपुः शिवम् । दिव्यं विमानमारुह्य दिव्यत्रिदशसेवितम् ॥६८॥

भस्म से त्रिपुण्ड्र धारण करता है वह महापातक एवं उपपातकों से भी छूट जाता है ॥ ५२ ॥ ब्रह्मचारी, गृहस्थ, प्राणप्रस्थी एवं संन्यासी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य भी पतित तथा अधम भस्मोद्धूलन एवं भस्म का त्रिपुण्ड्र धारण कर शुद्ध हो जाते हैं। और वे भस्म के धारण करने से तत्क्षण पापराशि से छुटकारा पा जाते हैं ॥ ५३-५४ ॥ भस्म धारण करने वाला विशेष रूप से स्त्रीवध, गोवध, वीरवध, अश्ववध आदि पापो से छूट जाते हैं, इसमें संशय नहीं ॥ ५५ ॥ दूसरे के द्रव्य का अपहरण, दूसरे की स्त्रियों का घर्षण, पराई निन्दा, परपीडन, परक्षेत्रापहरण, सस्य तथा वाटिकादि का अपहरण, गृहदाहादि कर्म, नीच के द्वारा गाय, सुवर्ण, महिषी आदि एवं तिल, कम्बल, वस्त्र, अन्न, धान्य तथा जलादि का परिग्रह (दान), दशवेश्या, चाण्डाली, शूद्री, नटी, रजस्वला कन्या एवं विधवाओं से मैथुन, मांस, चर्म, रस तथा लवण का विक्रय, पराई चुगली, झूठी गवाही, झूठ वोलना इस प्रकार के अनेक और असंख्य पाप त्रिपुण्ड्र के धारण करने से तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं ॥ ५६-६० ॥

शिव के द्रव्य का अपहरण, जहाँ-कहीं भी शिव की निन्दा करने वाला एवं शिवभक्तों की निन्दा करने वाला ये सभी पापी किसी भी प्रायश्चित्त से शुद्ध नहीं होते ॥ ६१ ॥ जिसके शरीर में रुद्राक्ष तथा माथे पर त्रिपुण्ड्र है वह चाण्डाल होते हुए भी पूजनीय एवं सभी वर्णों में उत्तम है ॥ ६२ ॥ जो ललाट में त्रिपुण्ड्र धारण करता है वह इस लोक के सभी तीर्थों में, गङ्गा आदि श्रेष्ठ नदियों में तथा सभी श्रेष्ठ स्थानों में स्नान कर चुका ॥ ६३ ॥ पञ्चाक्षर से लेकर सात करोड़ मन्त्र तथा और भी करोड़ों मन्त्र शिव-कैवल्य को देने वाले हैं ॥ ६४ ॥ हे मुने ! शौनक और देवताओं के मन्त्र तो केवल सुख मात्र प्रदान करते हैं, किन्तु वे सभी सौख्य तो त्रिपुण्ड्र धारण करने वाले के वश में हैं ॥ ६५ ॥ जो त्रिपुण्ड्र धारण करता है वह अपने वंश में जन्म लेने वाले सहस्र पूर्वजों को तथा आगे जन्म लेने वाले सहस्रों सन्ततियों का उद्धार कर देता है ॥ ६६ ॥ जो त्रिपुण्ड्र धारण करता है वह सम्पूर्ण भोगों का भोग तथा दीर्घायुष्य प्राप्त करता है, रोगरहित रहता है और जीने के बाद शरीर का त्याग भी सुख से करता है ॥ ६७ ॥ मरने के अनन्तर अष्ट ऐश्वर्य एवं सभी गुणों से युक्त दिव्य शरीर प्राप्त कर देवताओं से सेवित दिव्य

विद्याधराणां सर्वेषां गन्धर्वाणां महौजसाम् । इन्द्रादिलोकपालानां लोकेषु च यथाक्रमम् ॥६९॥
भुक्त्वा भोगान् सुविपुलान् प्रजेशानां पदेषु च । ब्रह्मणः पदमासाद्य तत्र कन्याशतं रमेत् ॥७०॥
तत्र ब्रह्मायुषो मानं भुक्त्वा भोगाननेकशः । विष्णोर्लोके लभेद् भोगं यावद् ब्रह्मशतात्ययः ॥७१॥
शिवलोकं ततः प्राप्य लब्धेष्टं काममक्षयम् । शिवसायुज्यमाप्नोति संशयो नाऽत्र जायते ॥७२॥
सर्वोपनिषदां सारं समालोक्य मुहुर्मुहुः । इदमेव हि निर्णीतं परं श्रेयस्त्रिपुण्ड्रकम् ॥७३॥
विभूतिं निन्दते यो वै ब्राह्मणः सोऽन्यजातकः । प्रयाति नरके घोरे यावद् ब्रह्मा चतुर्मुखः ॥७४॥
श्राद्धे यज्ञे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने । धृतत्रिपुण्ड्रः पूतात्मा मृत्युं जयति मानवः ॥७५॥
जलस्नानं मलत्यागे भस्मस्नानं सदा शुचि । मन्त्रस्नानं हरेत् पापं ज्ञानस्नाने परं पदम् ॥७६॥
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् । तत्फलं समवाप्नोति भस्मस्नानकरो नरः ॥७७॥
भस्मस्नानं परं तीर्थं गङ्गास्नानं दिने दिने । भस्मरूपी शिवः साक्षाद् भस्म त्रैलोक्यपावनम् ॥७८॥
न तद्दानं न तद्ध्यानं न तद्दानं जपो न सः । त्रिपुण्ड्रेण विना येन विप्रेण यदनुष्ठितम् ॥७९॥
वानप्रस्थस्य कन्यानां दीक्षाहीननृणां तथा । मध्याह्नात् प्राग्जलैर्युक्तं परतो जलवर्जितम् ॥८०॥
एवं त्रिपुण्ड्रं यः कुर्यान्नित्यं नियतमानसः । शिवभक्तः स विज्ञेयो भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥८१॥
यस्याङ्गे नैव रुद्राक्ष एकोऽपि बहुपुण्यदः । तस्य जन्म निरर्थं स्यात् त्रिपुण्ड्ररहितो यदि ॥८२॥
एवं त्रिपुण्ड्रमाहात्म्यं समासात् कथितं मया । रहस्यं सर्वजन्तूनां गोपनीयमिदं त्वया ॥८३॥
तिस्रो रेखा भवन्त्येव स्थानेषु मुनिपुङ्गवाः । ललाटादिषु सर्वेषु यथोक्तेषु बुधैर्मुने ॥८४॥

विमान पर आरूढ़ होकर विद्याधरों, सभी पराक्रमी गन्धर्वों, इन्द्रादि लोकपालों के लोक में जाकर अनेक प्रकार के बहुत दिव्य भोगों को भोगकर प्रजेशपतियों के पदपर तथा ब्रह्मा के पद को प्राप्त कर ब्रह्मा के आयु पर्यन्त सैकड़ों कन्याओं से रमण करता हुआ अनेक भोगों को प्राप्त कर विष्णुलोक में ब्रह्मा के सौ वर्ष पर्यन्त निवास करता है। पुनः शिवलोक को प्राप्त हो इच्छानुसार अक्षय कामनाओं को प्राप्त कर शिवसायुज्य को प्राप्त करता है, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है ॥ ६८-७२ ॥

सूत जी कहते हैं कि, हे ऋषियो ! सभी उपनिषदों के सार को बारम्बार देख कर और विचार कर यही निर्णय किया गया है कि त्रिपुण्ड्र धारण करना सबसे उत्तम है ॥ ७३ ॥ जो विभूति की निन्दा करता है वह ब्राह्मण नहीं है बल्कि अन्य जाति से उत्पन्न हुआ है। वह विभूति-निन्दा के पाप से चतुर्मुख ब्रह्मा की आयुपर्यन्त नरक में निवास करता है ॥ ७४ ॥ श्राद्ध, यज्ञ, जप, होम, बलिवैश्वदेव एवं सभी देवताओं के अर्चन में त्रिपुण्ड्र धारण करने वाला मृत्यु को जीत लेता है ॥ ७५ ॥ मलादित्याग करने पर जलादि स्नान द्वारा शुद्धि कही गयी है किन्तु भस्मस्नान सदा पवित्र है, मन्त्रस्नान पाप को दूर करता है तथा ज्ञान-स्नान से परमपद की प्राप्ति होती है ॥ ७६ ॥ सभी तीर्थों में स्नान के पुण्यफल को भस्मस्नान करने वाला मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥ ७७ ॥ भस्मस्नान सर्वोत्कृष्ट तीर्थ है, जो प्रतिदिन के गङ्गा-स्नान के फल के समान है। भस्म को शरीर में धारण करने वाला पुरुष साक्षात् शिव है, और भस्म तो प्रत्यक्ष रूप से स्वयं त्रिलोकी को पवित्र करने वाला है ॥ ७८ ॥

विना त्रिपुण्ड्र धारण किये ही जिस ब्राह्मण ने स्नान, दान, ध्यान तथा जप का अनुष्ठान किया वह स्नान, दान, ध्यान तथा जप अपूर्ण है ॥ ७९ ॥ वाणप्रस्थ, कन्या एवं दीक्षा रहित मनुष्यों को मध्याह्न से पहले जल युक्त त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिए, किन्तु मध्याह्न के अनन्तर जलरहित मात्र भस्म से ही त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिए ॥८०॥ जो इस प्रकार श्रद्धापूर्वक नित्य त्रिपुण्ड्र धारण करता है उसे ही सच्चा शिवभक्त समझना चाहिए। और वही भोग तथा मुक्ति को प्राप्त करता है ॥ ८१ ॥ जिसके शरीर में बहुत पुण्य प्रदान करने वाला एक भी रुद्राक्ष नहीं है तथा जो त्रिपुण्ड्र से रहित है उसका जन्म निरर्थक है ॥८२॥

सूत जी बोले—हे शौनक ! हमने संक्षेप में यह त्रिपुण्ड्र-माहात्म्य कहा। यह सभी प्राणियों का रहस्य है, इसे तुम गुप्त रखना ॥ ८३ ॥ हे मुनिपुङ्गवो ! ललाटादि सभी स्थानों में, जहाँ त्रिपुण्ड्र धारण

भ्रुवोर्मध्यं समारभ्य यावदन्तो भवेद् भ्रुवोः । तावत् प्रमाणं सन्धार्यं ललाटे च त्रिपुण्ड्रकम् ॥८५॥
मध्यमाऽनामिकाङ्गुल्या मध्ये तु प्रतिलोमतः । अङ्गुष्ठेन कृता रेखा त्रिपुण्ड्राख्याऽभिधीयते ॥८६॥
मध्येऽङ्गुलिभिरादाय तिसृभिर्भस्म यत्नतः । त्रिपुण्ड्रं धारयेद् भक्त्या भुक्तिमुक्तिप्रदं परम् ॥८७॥
तिसृणामपि रेखानां प्रत्येकं नवदेवताः । सर्वत्राङ्गेषु ता वक्ष्ये सावधानतया शृणु ॥८८॥
अकारो गार्हपत्याग्निर्भूर्धर्मश्च रजोगुणः । ऋग्वेदश्च क्रियाशक्तिः प्रातःसवनमेव च ॥८९॥
महादेवश्च रेखायाः प्रथमायाश्च देवता । विज्ञेया मुनिशार्दूलाः शिवदीक्षापरायणैः ॥९०॥
उकारो दक्षिणाग्निश्च नभस्तत्त्वं यजुस्तथा । मध्यन्दिनं च सवनमिच्छाशक्त्यन्तरात्मकौ ॥९१॥
महेश्वरश्च रेखाया द्वितीयायाश्च देवता । विज्ञेया मुनिशार्दूल शिवदीक्षापरायणैः ॥९२॥
मकाराहवनीयौ च परमात्मा तमोदिवौ । ज्ञानशक्तिः सामवेदस्तृतीयं सवनं तथा ॥९३॥
शिवश्चैव च रेखायास्तृतीयायाश्च देवता । विज्ञेया मुनिशार्दूल ! शिवदीक्षापरायणैः ॥९४॥
एवं नित्यं नमस्कृत्य सद्भक्त्या स्थानदेवताः । त्रिपुण्ड्रं धारयेच्छुद्धो भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥९५॥
इत्युक्ताः स्थानदेवाश्च सर्वाङ्गेषु मुनीश्वरः । तेषां सम्बन्धिनो भक्त्या स्थानानि शृणु साम्प्रतम् ॥९६॥
द्वात्रिंशत्स्थानके वार्द्धषोडशस्थानकेऽपि च । अष्टस्थाने तथा चैव पञ्चस्थानेऽपि ता न्यसेत् ॥९७॥
उत्तमाङ्गे ललाटे च कर्णयोर्नेत्रयोस्तथा । नासावक्त्रगलेष्वेवं हस्तद्वय अतः परम् ॥९८॥
कूर्परे मणिबन्धे च हृदये पार्श्वयोर्द्वयोः । नाभौ मुष्कद्वये चैवमूर्वोर्गुल्फे च जानुनि ॥९९॥
जङ्घाद्वये पदद्वन्द्वे द्वात्रिंशत्स्थानमुत्तमम् । अग्न्यम्भूवायुदिग्देश-दिक्पालान् व[illegible]भिः सह ॥१००॥
धरा ध्रुवश्च सोमश्च अपश्चैवानिलोऽनलः । प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टप्रकीर्तिताः ॥१०१॥

की विधि है, उन-उन स्थानों में त्रिपुण्ड्र धारण के लिए तीन रेखा करनी चाहिए ॥८४॥ दोनों भ्रुवों के मध्य से आरम्भ कर जब तक दोनों भ्रुवों का अन्त न हो उतने दूर पर्यन्त ललाट में त्रिपुण्ड्र धारण करे ॥ ८५ ॥ यह त्रिपुण्ड्र मध्यमा और अनामिका अँगुली से धारण करे, किन्तु मध्य में प्रतिलोम से अंगुष्ठ द्वारा की गयी रेखा को त्रिपुण्ड्र कहते हैं ॥ ८६ ॥ अंगुलियों के मध्य से भस्म ले कर तीन रेखा बनावे । इस प्रकार का त्रिपुण्ड्र मुक्ति तथा भुक्ति देने वाला है ॥८७॥ इस त्रिपुड्र के तीन रेखाओं के क्रम से नवदेवता सभी अङ्गों में हैं उन्हें मैं कहता हूँ, सावधानी पूर्वक आप लोग सुनें ॥८८॥

अकार गार्हपत्याग्नि है, भू रजोगुण है, ऋग्वेद क्रियाशक्ति और प्रातः सवन है ॥८९॥ प्रथम रेखा के महादेव देवता हैं। हे मुनिश्रेष्ठ ! शिवदीक्षा में परायणों को यह जानना उचित है ॥ ९० ॥ उकार दक्षिणाग्नि है, आकाश सत्त्वगुण है, यजुर्वेद है, मध्यन्दिन सवन तथा जो इच्छाशक्ति और अन्तरात्मा है ॥ ९१ ॥ दूसरी रेखा के महेश्वर देवता हैं । हे मुनिश्रेष्ठ ! शिवदीक्षा वालों को इसे जानना चाहिए ॥ ९२ ॥ मकार आहवनीयाग्नि, परमात्मा देवता, तमोगुण स्वर्गस्वरूप, ज्ञानशक्ति, सामवेद स्वरूप तथा तृतीय सवन है ॥ ९३ ॥ तीसरी रेखा के शिव देवता हैं, हे मुनिश्रेष्ठो ! शिवदीक्षा वालों को इसे जानना चाहिए ॥ ९४ ॥ इस प्रकार त्रिपुण्ड्र के स्थान देवताओं को नमस्कार कर भक्तिपूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिए । ऐसा करने से भोग तथा मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं ॥ ९५ ॥ हे मुनीश्वर ! इस प्रकार अङ्ग के स्थानदेवता भी कह दिये गये । अब उनसे सम्बन्ध रखने वाले स्थानों को भी सुनो ॥ ९६ ॥

मनुष्य को चाहिए कि बत्तीस स्थानों में उनके आधे सोलह स्थानों में अथवा मात्र आठ स्थानों में या पाँच स्थानों में त्रिपुण्ड्र का न्यास करे ॥ ९७ ॥ शिर, मस्तक, ललाट, दोनों कान, दोनों नेत्र, दोनों नासिका, मुख, गला, दोनों हाथ, दोनों कूर्पर, दोनों मणिबन्ध, हृदय, दोनों पार्श्व, नाभि, मुष्क (अण्डकोश), दोनों ऊरु, दोनों गुल्फ, दोनों जानु, दोनों जङ्घा, दोनों पैर यह उत्तम बत्तीस स्थान हैं, जहाँ न्यास करना चाहिए । अग्नि, जल, भू, वायु, दशो दिशाएँ और दश दिग्पाल एवं आठ वसुएँ ये बत्तीस देवता हैं । धरा, ध्रुव, सोम, अप, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास ये आठ वसु कहे गये हैं ॥९८-१०१॥

एतेषां नाममात्रेण त्रिपुण्ड्रं धारयेद् बुधः । कुर्याद् वा षोडशस्थाने त्रिपुण्ड्रं तु समाहितः ॥१०२॥
शीर्षके च ललाटे च कण्ठे चांसद्वये भुजे । कूर्परे मणिबन्धे च हृदये नाभिपार्श्वके ॥१०३॥
पृष्ठे चैवं प्रतिष्ठाय यजेत्तत्राश्विदैवते । शिवशक्तिं तथा रुद्रमीशं नारदमेव च ॥१०४॥
वामादिनवशक्तीश्च एताः षोडश देवताः । नासत्यौ दस्रकश्चैव अश्विनौ द्वौ प्रकीर्तितौ ॥१०५॥
अथवा मूर्ध्नि केशे च कर्णयोर्वदने तथा । बाहुद्वये च हृदये नाभ्यामूरुयुगे तथा ॥१०६॥
जानुद्वये च पदयोः पृष्ठभागे च षोडश । शिवश्चन्द्रश्च रुद्रः को विघ्नेशो विष्णुरेव वा ॥१०७॥
श्रीश्चैव हृदये शम्भुस्तथा नाभौ प्रजापतिः । नागश्च नागकन्याश्च उभयोर्ऋषिकन्यकाः ॥१०८॥
पादयोश्च समुद्राश्च तीर्थाः पृष्ठे विशालतः । इत्येवं षोडशस्थानमष्टस्थानमथोच्यते ॥१०९॥
गुह्यस्थानं ललाटश्च कर्णद्वयमनुत्तमम् । अंसयुग्मं च हृदयं नाभिरित्येवमष्टकम् ॥११०॥
ब्रह्मा च ऋषयः सप्त देवताश्च प्रकीर्तिताः । इत्येवं तु समुद्दिष्टं भस्मविद्भिर्मुनीश्वराः ॥१११॥
अथवा मस्तकं बाहू हृदयं नाभिरेव च । पञ्चस्थानान्यमून्याहुर्धारणे भस्मविज्ञनाः ॥११२॥
यथासम्भवनं कुर्याद् देशकालाद्यपेक्षया । उद्धूलनेऽप्यशक्तश्चेत् त्रिपुण्ड्रादीनि कारयेत् ॥११३॥
त्रिनेत्रं त्रिगुणाधारं त्रिदेवजनकं शिवम् । स्मरन्नमः शिवायेति ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम् ॥११४॥
ईशाभ्यां नम इत्युक्त्वा पार्श्वयोश्च त्रिपुण्ड्रकम् । बीजाभ्यां नम इत्युक्त्वा धारयेत्तु प्रकोष्ठयोः ॥११५॥
कुर्यादधः पितृभ्यां च उमेशाभ्यां तथोपरि । भीमायेति ततः पृष्ठे शिरसः पश्चिमे तथा ॥११६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां भस्मधारणवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि इनका नाम ले कर त्रिपुण्ड्र धारण करे। अथवा सोलह स्थानों में त्रिपुण्ड्र धारण करे ॥ १०२ ॥ ये सोलह स्थान इस प्रकार हैं—शिर, ललाट, कण्ठ, दोनों कन्धे, दोनों भुजा, दोनों कूर्पर, दोनों मणिबन्ध, हृदय, नाभि, दोनों पार्श्व और पीठ इनमें क्रमशः दोनों अश्विनीकुमार, शिव, शक्ति, रुद्र, ईश, नारद, वामादि नवशक्तियाँ इन षोडश देवताओं से न्यास करे। नासत्य तथा दस्र ये दोनों ही अश्विनीकुमार कहे जाते हैं ॥ १०३-१०५ ॥ अथवा शिर, केश, दोनों कान, मुख, दोनों बाहु, हृदय, नाभि, दोनों ऊरु, दोनों जानु, दोनों पैर और पृष्ठ भाग इन षोडश स्थानों में शिव, चन्द्र, रुद्र, ब्रह्मा, गणेश, विष्णु, श्री एवं हृदय में शिव, नाभि में प्रजापति, नाग, नागकन्याएँ, दोनों पैर में ऋषि कन्याएँ, समुद्र तथा पृष्ठ के सभी तीर्थ ये सोलह देवता हैं। इन-इन स्थानों में इन देवताओं के नाम से न्यास करे ॥ १०६-१०९ ॥

गुह्यस्थान, ललाट, दोनों कान, दोनों कन्धे, हृदय और नाभि ये आठ स्थान हैं ॥ ११० ॥ ब्रह्मा तथा सप्त ऋषि इनके देवता हैं, अतः इन देवताओं के नाम से उक्त स्थानों में न्यास करे। इस प्रकार हे मुनीश्वरो! भस्म के रहस्य को जानने वालों ने ऐसा विधान कहा है ॥ १११ ॥ अथवा शिर, दोनों बाहु, हृदय, नाभि ये पाँच स्थान भस्म के रहस्यज्ञों ने भस्म धारण के लिए उपयुक्त कहा है ॥ ११२ ॥ देश-काल के अनुसार यथासम्भव कार्य करे। यदि उद्धूलन में असमर्थ हो, तो त्रिपुण्ड्र आदिक ही धारण करे ॥११३॥ 'त्रिनेत्रं त्रिगुणाधारं त्रिदेवजनकं शिवं', 'नमः शिवाय' इस मन्त्र को पढ़कर ललाट में तथा 'ईशानाभ्यां नमः' पढ़ कर दोनों पार्श्व में, 'बीजाभ्यां नमः' इस मन्त्र को पढ़ कर दोनों प्रकोष्ठ में भस्म लगाना चाहिए ॥ ११४-११५ ॥ 'पितृभ्यां नमः' कह कर नीचे तथा 'उमेशाभ्यां नमः' इस मन्त्र से ऊपर, 'भीमाय नमः' इस मन्त्र से पीठ में एवं शिर के पिछले भाग में भस्म लगावे ॥ ११६ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत विद्येश्वरसंहिता में भस्मधारणविधि वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥

*

पञ्चविंशोऽध्यायः

(रुद्राक्ष की महिमा का वर्णन)

सूत उवाच

शौनकर्षे महाप्राज्ञ शिवरूप महामते ! । शृणु रुद्राक्षमाहात्म्यं समासात् कथयाम्यहम् ॥ १ ॥

शिवप्रियतमो ज्ञेयो रुद्राक्षः परपावनः । दर्शनात् स्पर्शनाज्जाप्यात् सर्वपापहरः स्मृतः ॥ २ ॥

पुरा रुद्राक्षमहिमा देव्यग्रे कथितो मुने । लोकोपकरणार्थाय शिवेन परमात्मना ॥ ३ ॥

शिव उवाच

शृणु देवि महेशानि रुद्राक्षमहिमा शिवे । कथयामि तव प्रीत्या भक्तानां हितकाम्यया ॥ ४ ॥

दिव्यवर्षसहस्राणि महेशानि पुनः पुरा । तपः प्रकुर्वतस्त्रस्तं मनः संयम्य वै मम ॥ ५ ॥

स्वतन्त्रेण परेशेन लोकोपकृतिकारिणा । लीलया परमेशानि चक्षुरुन्मीलितं मया ॥ ६ ॥

पुटाभ्यां चारुचक्षुर्भ्यां पतिता जलबिन्दवः । तत्राऽश्रुबिन्दवो जाता वृक्षा रुद्राक्षसंज्ञकाः ॥ ७ ॥

स्थावरत्वमनुप्राप्य भक्तानुग्रहकारणात् । ते दत्ता विष्णुभक्तेभ्यश्चतुर्वर्णेभ्य एव च ॥ ८ ॥

भूमौ गौडोद्भवांश्चक्रे रुद्राक्षाञ्छिववल्लभान् । मथुरायामयोध्यायां लङ्कायां मलये तथा ॥ ९ ॥

सह्याद्रौ च तथा काश्यां देशेष्वन्येषु वा तथा । परानसह्य-पापौघ-भेदनाञ्छ्रुतिनोदनान् ॥ १० ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा जाता ममाऽऽज्ञया ।
रुद्राक्षास्ते पृथिव्यां तु तज्जातीयाः शुभाक्षकाः ॥ ११ ॥

श्वेतरक्ताः पीतकृष्णा वर्णा ज्ञेयाः क्रमाद् बुधैः । स्वजातीयं नृभिर्धार्यं रुद्राक्षं वर्णतः क्रमात् ॥ १२ ॥

सूत जी बोले—हे महाभाग, हे कुलपते, हे शिवरूप, हे महाप्राज्ञ, हे ऋषि शौनक ! अब रुद्राक्ष का माहात्म्य श्रवण करें, मैं संक्षेप में कहता हूँ ॥ १ ॥ यह रुद्राक्ष शिव को अत्यन्त प्रिय है, परम पवित्र है । इसके दर्शन एवं स्पर्श से तथा इस पर जप करने से सभी पापों का विनाश हो जाता है ॥२॥ हे महामुने ! पूर्व काल में परमात्मा शिव ने रुद्राक्ष की महिमा लोकोपकार के निमित्त कही थी ॥ ३ ॥

शिवजी बोले—हे देवि ! हे महेशानि ! रुद्राक्ष की महिमा सुनो । तुम्हारी प्रीति के कारण तथा भक्तों के हित करने की इच्छा से मैं यह महिमा कहता हूँ ॥ ४ ॥ हे महेशानि ! पूर्वकाल में दिव्य सहस्र वर्ष पर्यन्त तप करते हुए मेरा एकाग्र मन सहसा क्षुब्ध हो उठा ॥ ५ ॥ फिर स्वतन्त्र एवं परमेश्वर होते हुए भी मैंने लोकोपकार की इच्छा से लीला में ही अपने नेत्र खोल दिये ॥ ६ ॥ इस प्रकार नेत्र खोलते ही मेरे दोनों नेत्रों से जल के बिन्दु गिर पड़े । उसी अश्रु-बिन्दुओं से रुद्राक्ष के वृक्ष उत्पन्न हो गये ॥ ७ ॥ भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने के लिए ही वे स्थावर रूप से प्रगट हुए । वे विष्णुभक्तों तथा चारों वर्णों को दे दिये गये । शिव के परम प्रिय ये रुद्राक्ष गौड़ देश की भूमि में उत्पन्न हुए । ये रुद्राक्ष मथुरा, अयोध्या, लङ्का तथा मलयाचल में, सह्याद्रि तथा काशी में एवं अन्य देशों में अत्यन्त गुरुतर एवं प्रायश्चित्त से परे पापों के विनाश के लिए श्रुतियों की आज्ञा से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र रूप में मेरी आज्ञा से उत्पन्न हुए हैं । पृथिवी में तत्तज्जातीय भद्राक्ष, श्वेत, रक्त, पीत तथा कृष्ण वर्ण के समझना चाहिए । तत्तज्जातीय मनुष्यों को क्रमशः अपने-अपने जातीय वर्ण के अनुसार रुद्राक्ष को धारण करना चाहिए ॥ ८-१२ ॥

वर्णैस्तु तत्फलं धार्यं भुक्ति-मुक्तिफलेप्सुभिः । शिवभक्तैर्विशेषेण शिवयोः प्रीतये सदा ॥१३॥
धात्रीफलप्रमाणं यच्छ्रेष्ठमेतदुदाहृतम् । बदरीफलमात्रं तु मध्यमं सम्प्रकीर्तितम् ॥१४॥
अधमं चणमात्रं स्यात् प्रक्रियैषा परोच्यते । शृणु पार्वति सुप्रीत्यां भक्तानां हितकाम्यया ॥१५॥
बदरीफलमात्रं च यत् स्यात् किल महेश्वरि ! । तथापि फलदं लोके सुखसौभाग्यवर्द्धनम् ॥१६॥
धात्रीफलसमं यत् स्यात् सर्वारिष्टविनाशनम् । गुञ्जया सदृशं यत् स्यात् सर्वार्थफलसाधनम् ॥१७॥
यथा यथा लघुः स्याद् वै तथाधिकफलप्रदम् । एकैकतः फलं प्रोक्तं दशांशैरधिकं बुधैः ॥१८॥
रुद्राक्षधारणं प्रोक्तं पापनाशनहेतवे । तस्माच्च धारणीयो वै सर्वार्थसाधनो ध्रुवम् ॥१९॥
यथा च दृश्यते लोके रुद्राक्षः फलदः शुभः । न तथा दृश्यतेऽन्या च मालिका परमेश्वरि ! ॥२०॥

समाः स्निग्धा दृढाः स्थूलाः कण्टकैः संयुताः शुभाः ।
रुद्राक्षाः कामदा देवि ! भुक्ति-मुक्तिप्रदाः सदा ॥२१॥

कृमिदुष्टं छिन्नभिन्नं कण्टकैर्हीनमेव च । व्रणयुक्तमवृत्तं च रुद्राक्षान् षड् विवर्जयेत् ॥२२॥
स्वयमेव कृतद्वारं रुद्राक्षं स्यादिहोत्तमम् । यत्तु पौरुषयत्नेन कृतं तन्मध्यमं भवेत् ॥२३॥
रुद्राक्षधारणं प्रोक्तं महापातकनाशनम् । रुद्रसङ्ख्याशतं धृत्वा रुद्ररूपो भवेन्नरः ॥२४॥
एकादश शतानीह धृत्वा यत्फलमाप्यते । तत्फलं शक्यते नैव वक्तुं वर्षशतैरपि ॥२५॥
शतार्द्धेन युतैः पञ्च शतैर्वै मुकुटं मतम् । रुद्राक्षैर्विरचेत् सम्यग् भक्तिमान् पुरुषो वरः ॥२६॥
त्रिभिः शतैः षष्टियुक्तैस्त्रिरावृत्त्या तथा पुनः । रुद्राक्षैरुपवीतं च निर्मीयाद् भक्तितत्परः ॥२७॥

भोग और मुक्ति की कामना वाले शिवभक्तों को शिव-शिवा की प्रीति के लिए तत्तद्वर्ण वालों को रुद्राक्ष धारण का फल भी जान लेना चाहिए ॥ १३ ॥ धात्री फल के समान रुद्राक्ष श्रेष्ठ है। बदरी फल के समान रुद्राक्ष मध्यम है ॥ १४ ॥ और चने के प्रमाण का रुद्राक्ष अधम (कनिष्ठ) है। अब इनकी उत्कृष्ट प्रक्रिया का वर्णन भक्तों के हित की कामना से करता हूँ, हे पार्वती ! सुनो ॥ १५ ॥ हे महेश्वरी ! बेर फल के समान भी रुद्राक्ष लोक में फलदायक है तथा सुख-सौभाग्य को बढ़ाने वाला है ॥ १६ ॥ जो धात्री फल के समान रुद्राक्ष होता है वह सभी बाधाओं को नष्ट करता है। जो गुञ्जाफल के समान रुद्राक्ष है, वह सर्वार्थसाधक है ॥ १७ ॥ रुद्राक्ष जितना ही छोटा होता है उतना ही अधिक फल देने वाला है। बुद्धिमानों ने छोटा रुद्राक्ष फल देने में बड़े रुद्राक्षों की अपेक्षा दशांश अधिक कहा है ॥ १८ ॥ पाप विनाश के लिए रुद्राक्ष का धारण कहा गया है। इसलिए उसे अवश्य धारण करना चाहिए। क्योंकि, वह सम्पूर्ण मनोरथों का साधक है ॥ १९ ॥

हे परमेश्वरी ! जिस प्रकार रुद्राक्ष की माला फल प्रदान करने वाली है, वैसी अन्य माला फलदायिनी नहीं होती ॥२०॥ सम, स्निग्ध, दृढ़, स्थूल एवं कण्टकों से युक्त रुद्राक्ष शुभ तथा सभी कामनाओं को देने वाले हैं। और भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले हैं ॥२१॥ कृमि से खाये हुए, छिन्न-भिन्न, कण्टक रहित, व्रण युक्त एवं गोलाई से रहित इन छह दोषों से युक्त रुद्राक्ष का धारण निषिद्ध है, अतः इन दोषों से युक्त रुद्राक्ष कभी भी धारण न करे ॥ २२ ॥ जिसमें स्वयं छिद्र हो, ऐसा रुद्राक्ष उत्तम है और पुरुष द्वारा किये गये छेद वाला रुद्राक्ष मध्यम है ॥ २३ ॥ रुद्राक्ष के धारण से ब्रह्महत्यादि जैसे महापातक नष्ट हो जाते हैं। सौ रुद्राक्ष धारण करने वाला पुरुष स्वयं रुद्र स्वरूप हो जाता है ॥ २४ ॥ इग्यारह सौ रुद्राक्ष धारण करने से जो फल प्राप्त होता है, उसे सैकड़ों वर्षों में नहीं कहा जा सकता ॥ २५ ॥

जो साढ़े पाँच सौ रुद्राक्षों का भक्ति पूर्वक मुकुट बनाकर धारण करता है वह भक्तिमान् पुरुष सर्वश्रेष्ठ होता है ॥ २६ ॥ जो भक्त तीन सौ साठ रुद्राक्षों की तीन लड़ी का यज्ञोपवीत बनाकर धारण

शिखायां च त्रयं प्रोक्तं रुद्राक्षाणां महेश्वरि ! । कर्णयोः षट् च षट् चैव वामदक्षिणयोस्तथा ॥२८॥
शतमेकोत्तरं कण्ठे बाह्वोर्वै रुद्रसङ्ख्यया । कूर्परद्वारयोस्तत्र मणिबन्धे तथा पुनः ॥२९॥
उपवीते त्रयं धार्यं शिवभक्तिरतैर्नरैः । शेषानुर्वरितान् पञ्च सम्मितान् धारयेत् कटौ ॥३०॥
एतत् सङ्ख्या धृता येन रुद्राक्षाः परमेश्वरि ! । तद्रूपं तु प्रणम्यं हि स्तुत्यं सर्वैर्महेशवत् ॥३१॥
एवम्भूतं स्थितं ध्याने यदा कृत्वाऽऽसने जनम् । शिवेति व्याहरंश्चैव दृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते ॥३२॥
शताधिकसहस्रस्य विधिरेष प्रकीर्त्तितः । तदभावे प्रकारोऽन्यः शुभः सम्प्रोच्यते मया ॥३३॥
शिखायामेकरुद्राक्षं शिरसा त्रिंशतं वहेत् । पञ्चाशच्च गले दध्याद् बाह्वोः षोडश षोडश ॥३४॥
मणिबन्धे द्वादश द्विस्कन्धे पञ्चशतं वहेत् । अष्टोत्तरशतैर्माल्यमुपवीतं प्रकल्पयेत् ॥३५॥
एवं सहस्ररुद्राक्षान् धारयेद्यो दृढव्रतः । तं नमन्ति सुराः सर्वे यथा रुद्रस्तथैव सः ॥३६॥
एकं शिखायां रुद्राक्षं चत्वारिंशत्तु मस्तके । द्वात्रिंशत् कण्ठदेशे तु वक्षस्यष्टोत्तरं शतम् ॥३७॥
एकैकं कर्णयोः षट् षट् बाह्वोः षोडश षोडश । करयोरविमानेन द्विगुणेन मुनीश्वर ! ॥३८॥
सङ्ख्या प्रीतिर्धृता येन सोऽपि शैवजनः परः । शिववत् पूजनीयो हि वन्द्यः सर्वैरभीक्ष्णशः ॥३९॥
शिरसीशानमन्त्रेण कर्णे तत् पुरुषेण च । अघोरेण गले धार्यं तेनैव हृदयेऽपि च ॥४०॥
अघोरबीजमन्त्रेण करयोर्धारयेत् सुधीः । पञ्चदशाक्षग्रथितां वामदेवेन चोदरे ॥४१॥
पञ्च ब्रह्मभिरङ्गैश्च त्रिमालां पञ्च सप्त च । अथवा मूलमन्त्रेण सर्वानक्षांस्तु धारयेत् ॥४२॥
मद्यं मांसं तु लशुनं पलाण्डुं शिग्रुमेव च । श्लेष्मान्तकं विड्वराहं भक्षणे वर्जयेत् ततः ॥४३॥

करता है वे शिव के समान स्तुति के योग्य होते हैं। हे महेश्वरि ! जो शिखा में तीन, प्रत्येक बायें तथा दाहिने कानों में छ-छ, कण्ठ में एक सौ एक, दोनों भुजाओं में इग्यारह-इग्यारह, इसी प्रकार दोनों कूर्पर तथा दोनों मणिबन्ध में इग्यारह-इग्यारह और उपवीत में तीन, तथा कटि में गुप्त रूप से पाँच रुद्राक्ष शिव-भक्तों को धारण करना चाहिए। हे परमेश्वरि ! जिन्होंने इतनी संख्या में रुद्राक्ष को धारण किया हो, उनका स्वरूप महेश के समान प्रणम्य एवं स्तुति के योग्य है ॥ २७-३१ ॥ ऐसा मनुष्य आसन पर स्थित हो ध्यानपूर्वक जब शिवनाम का उच्चारण करता है तो उसके दर्शन मात्र से पाप दूर भाग जाते हैं ॥ ३२ ॥ इस प्रकार इग्यारह सौ रुद्राक्ष धारण की विधि हमने कही। इसके अभाव में एक दूसरा भी प्रकार है, जिसे मैं कहता हूँ ॥ ३३ ॥ शिखा में एक, शिर में तीस, गले में पचास, दोनों भुजाओं में सोलह रुद्राक्ष धारण करे ॥ ३४ ॥ दोनों मणिवन्ध में वारह, दोनों कन्धों में पाँच सौ और एक सौ आठ रुद्राक्ष की माला बना कर यज्ञोपवीत के समान धारण करे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार जो दृढ़व्रत सहस्र रुद्राक्ष धारण करता है वह रुद्र के समान है और सभी देवता उसे नमस्कार करते हैं ॥३६॥ शिखा में एक रुद्राक्ष, मस्तक में चालीस, कण्ठ में वत्तीस, हृदय में एक सौ आठ, कानों में एक-एक, भुजाओं में छह-छह, हाथ में सोलह-सोलह, बारह-बारह अथवा चौबीस, जिसने प्रीति से इतनी संख्या में रुद्राक्षों को धारण किया है वह भी शिवभक्त है और शिव के समान पूजनीय तथा बारम्बार वन्दनीय है ॥ ३७-३९ ॥

रुद्राक्ष को 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' इस मन्त्र से शिर में तथा 'तत्पुरुष' मन्त्र से कान में 'अघोर' मन्त्र से गले और हृदय में धारण करना चाहिए ॥४०॥ बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि अघोर-बीज मन्त्र से हाथ में और पन्द्रह रुद्राक्ष से ग्रथित माला 'वामदेव' इस मन्त्र से उदर में धारण करे ॥४१॥ शिर में पाँच तथा अङ्गों में रुद्राक्ष की तीन माला, पाँच माला अथवा सात माला, मूल मन्त्र से धारण करे या सभी रुद्राक्षों को मूल मन्त्र से धारण करे ॥ ४२ ॥ रुद्राक्ष धारण करने वाले पुरुष को मद्य, माँस, लहसुन, सैजन, प्याज,

वलक्षं रुद्राक्षं द्विजतनुभिरेवेह विहितं, सुरक्तं क्षत्राणां प्रमुदितउमे पीतमसकृत् ।
ततो वैश्यैर्धार्यं प्रतिदिवसमावश्यकमहो, तथा कृष्णं शूद्रैः श्रुतिगदितमार्गोऽयमगजे ॥४४॥

वर्णी वनी गृहयतिर्नियमेन दध्यादेतद्रहस्यपरमो न हि जातु तिष्ठेत् ।
रुद्राक्षधारणमिदं सुकृतैश्च लभ्यं त्यक्त्वेदमेतदखिलान् नरकान् प्रयान्ति ॥४५॥

आदावामलकात् स्वतो लघुतरा रुग्णास्ततः कण्टकैः, संदष्टाः कृमिभिस्तनूपकरणच्छिद्रेण हीनास्तथा ।
धार्या नैव शुभेप्सुभिश्चणकवद्रुद्राक्षमप्यन्ततो, रुद्राक्षो मम लिङ्गमङ्गलमुमे सूक्ष्मं प्रशस्तं सदा ॥४६॥

सर्वाश्रमाणां वर्णानां स्त्रीशूद्राणां शिवाज्ञया । धार्याः सदैव रुद्राक्षा यतीनां प्रणवेन हि ॥४७॥
दिवा बिभ्रद्रात्रिकृतै रात्रौ बिभ्रद्दिवाकृतैः । प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने मुच्यते सर्वपातकैः ॥४८॥
ये त्रिपुण्ड्रधरा लोके जटाधारिण एव ये । ये रुद्राक्षधरास्ते वै यमलोकं प्रयान्ति न ॥४९॥

रुद्राक्षमेकं शिरसा बिभर्ति तथा त्रिपुण्ड्रं च ललाटमध्ये ।
पञ्चाक्षरं ये हि जपन्ति मन्त्रं पूज्या भवद्भिः खलु ते हि साधवः ॥५०॥

यस्याङ्गे नास्ति रुद्राक्षस्त्रिपुण्ड्रं भालपट्टके । मुखे पञ्चाक्षरं नास्ति तमानय यमालयम् ॥५१॥
ज्ञात्वा ज्ञात्वा तत्प्रभावं भस्मरुद्राक्षधारिणः । ते पूज्याः सर्वदाऽस्माकं नो नेतव्याः कदाचन ॥५२॥
एवमाज्ञापयामास कालोऽपि निजकिङ्करान् । तथेति मत्वा ते सर्वे तूष्णीमासन् सुविस्मिताः ॥५३॥

श्लेष्मान्तक (लिसोड़ा), विड्वराह को नहीं खाना चाहिए ॥ ४३ ॥ श्वेत रुद्राक्ष ब्राह्मणों को तथा रक्त रुद्राक्ष क्षत्रियों को, वैश्यों को पीत तथा शूद्रों को कृष्ण वर्ण का रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। हे उमे ! हे अगजे ! यही वेदमार्ग में रुद्राक्ष धारण की विधि कही गयी है ॥ ४४ ॥ ब्रह्मचारी, बाणप्रस्थी, गृही तथा संन्यासी नियमपूर्वक रुद्राक्ष धारण करें। यह परम रहस्य है। रुद्राक्ष धारण के बिना एक क्षण भी नहीं रहना चाहिए। इस रुद्राक्ष को धारण करने का अवसर बड़े पुण्य से प्राप्त होता है। इसके त्यागने से नरक की प्राप्ति होती है ॥ ४५ ॥ आमलकी प्रमाण अथवा अत्यन्त छोटे रुद्राक्ष भी यदि रुग्ण, कण्टक रहित, कृमि, दष्ट, छिद्र हीन अथवा इन दोषों से युक्त चणक (चना) के तुल्य हों तो भी उन्हें मङ्गल चाहने वालों को नहीं धारण करना चाहिए। शिवजी कहते हैं कि, हे पार्वति ! रुद्राक्ष तो मेरा चिह्न एवं लोक का मङ्गल करने वाला है। रुद्राक्ष जितना भी छोटा हो उसका उतना ही महत्त्व है ॥४६॥ सभी आश्रमियों, सभी वर्णवालों एवं स्त्रियों को तथा शूद्रों को रुद्राक्ष धारण करना चाहिए, ऐसी शिवजी की आज्ञा है। यति को प्रणव से रुद्राक्ष धारण करना चाहिए ॥ ४७ ॥ पुरुष दिन में रुद्राक्ष धारण करने से रात्रि का, रात्रि में धारण करने से दिनका एवं प्रभात, मध्याह्न तथा सायाह्न (सायङ्काल) में धारण करने से सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ४८ ॥

इस लोक में त्रिपुण्ड्र धारण करने से, जटाधारण करने से एवं रुद्राक्ष धारण करने से पुरुष यमलोक नहीं जाता ॥ ४९ ॥ जो शिर में एक भी रुद्राक्ष धारण करते हैं, ललाट में त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं एवं पञ्चाक्षर मन्त्र का जप करते हैं वे ही साधु हैं। हे महर्षियो ! आप लोग उनकी पूजा करें ॥५०॥ जिसके शरीर में रुद्राक्ष नहीं है, जिसके भाल में त्रिपुण्ड्र नहीं है एवं जिसके मुख में पञ्चाक्षर मन्त्र नहीं है उसे मेरे यमलोक में लाओ ॥ ५१ ॥ जो लोग भस्म एवं रुद्राक्ष को उसका प्रभाव जाने अथवा अनजाने धारण करते हैं, हम लोगों को उनकी पूजा करनी चाहिए। 'हे दूतो ! रुद्राक्ष एवं भस्म धारण करने वालों को मेरे लोक में मत लाओ' ॥ ५२ ॥ यमराज ने भी अपने दूतों को इस प्रकार की आज्ञा दे रखी है, ऐसा सुन कर

अत एव महादेवि ! रुद्राक्षोऽप्यघनाशनः । तद्धरो मत्प्रियः शुद्धोऽत्यघवानपि पार्वति ! ॥५४॥
हस्ते बाहौ तथा मूर्ध्नि रुद्राक्षं धारयेत्तु यः । अवध्यः सर्वभूतानां रुद्ररूपी चरेद् भुवि ॥५५॥
सुराऽसुराणां सर्वेषां वन्दनीयः सदा स वै । पूजनीयो हि दृष्टस्य पापहा च यथा शिवः ॥५६॥
ध्यानज्ञानावमुक्तोऽपि रुद्राक्षं धारयेत्तु यः । सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ॥५७॥
रुद्राक्षेण जपन् मन्त्रं पुण्यं कोटिगुणं भवेत् । दशकोटिगुणं पुण्यं धारणाल्लभते नरः ॥५८॥
यावत् कालं हि जीवस्य शरीरस्थो भवेत् स वै । तावत् कालं स्वल्पमृत्युर्न तं देवि विबाधते ॥५९॥
त्रिपुण्ड्रेण च संयुक्तं रुद्राक्षाविलसाङ्गकम् । मृत्युञ्जयं जपं तं च दृष्ट्वा रुद्रफलं लभेत् ॥६०॥
पञ्चदेवप्रियश्चैव सर्वदेवप्रियस्तथा । सर्वमन्त्रान् जपेद् भक्तो रुद्राक्षमालया प्रिये ! ॥६१॥
विष्णवादिदेवभक्ताश्च धारयेयुर्न संशयः । रुद्रभक्तो विशेषेण रुद्राक्षान् धारयेत् सदा ॥६२॥
रुद्राक्षा विविधाः प्रोक्तास्तेषां भेदान् वदाम्यहम् । शृणु पार्वति ! सद्भक्त्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदान् ॥६३॥
एकवक्त्रः शिवः साक्षाद् भुक्तिमुक्तिफलप्रदः । तस्य दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥६४॥
यत्र सम्पूजितस्तत्र लक्ष्मीर्दूरतरा न हि । नश्यन्त्युपद्रवाः सर्वे सर्वकामा भवन्ति हि ॥६५॥
द्विवक्त्रो देवदेवेशः सर्वकामफलप्रदः । विशेषतः स रुद्राक्षो गोवधं नाशयेद् द्रुतम् ॥६६॥
त्रिवक्त्रो यो हि रुद्राक्षः साक्षात् साधनदः सदा । तत्प्रभावाद् भवेयुर्वै विद्याः सर्वाः प्रतिष्ठिताः ॥६७॥

यमदूत के दूत 'तथास्तु' कह कर आश्चर्यान्वित हो मौन हो गये ॥ ५३ ॥ अतएव हे महादेवि ! रुद्राक्ष महापापों को नाश करने वाला है, हे पार्वती ! उसे धारण करने वाला पापी भी मेरा प्रिय तथा शुद्ध है ॥ ५४ ॥ हाथ, बाहु तथा शिर में जो रुद्राक्ष धारण करता है वह सभी प्राणियों से अवध्य है और रुद्र का स्वरूप धारण कर पृथ्वी पर विचरता है ॥ ५५ ॥ वह देवता, असुरों एवं सभी लोगों के वन्दना करने योग्य है, सबका पूजनीय है, और उसके दर्शन मात्र से शिव के समान सभी का पाप नष्ट करने वाला है ॥ ५६ ॥

ध्यान, ज्ञान से हीन भी जो पुरुष रुद्राक्ष को धारण करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर परम गति को प्राप्त करता है ॥ ५७ ॥ रुद्राक्ष द्वारा मन्त्र का जप करने से कोटि गुणा पुण्य होता है, और रुद्राक्ष के धारण करने से दश-गुणा पुण्य होता है ॥ ५८ ॥ यह रुद्राक्ष जितने काल पर्यन्त प्राणी के शरीर में रहता है, उतने समय तक उसे स्वल्प मृत्यु बाधा नहीं पहुँचाती ॥ ५९ ॥ त्रिपुण्ड्र युक्त रुद्राक्ष से सुशोभित शरीर वाले पुरुष को जो मृत्युञ्जय का जप करता हो, उसके दर्शन से शिव-दर्शन जैसा पुण्य प्राप्त होता है ॥ ६० ॥ हे प्रिये ! पञ्चदेवप्रिय (स्मार्त्त-वैष्णव) अथवा सर्वदेवप्रिय कोई भी क्यों न हो, सभी लोग रुद्राक्ष की माला से सभी देवताओं के मन्त्र का जप कर सकते हैं ॥ ६१ ॥ विष्णु आदि देवताओं के भक्त भी इसको संशय रहित हो कर धारण करें। विशेष कर शिवभक्तों को तो इसे अवश्य धारण करना चाहिए ॥ ६२ ॥

रुद्राक्ष बहुत प्रकार के कहे गये हैं, उनका भेद मैं कहता हूँ। हे पार्वती ! सद्भक्ति से भुक्ति-मुक्ति देने वाले इन रुद्राक्षों को सुनो ॥६३॥ एकमुखी रुद्राक्ष सदाशिव स्वरूप है और भोग तथा मोक्ष देने वाला है। उसके दर्शन मात्र से ब्रह्महत्या जैसे पाप दूर हो जाते हैं ॥६४॥ जहाँ उसकी पूजा होती है, महालक्ष्मी वहाँ से कभी नहीं जातीं। सभी उपद्रव नष्ट हो जाते हैं तथा उसके धारण से सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ॥६५॥ दो मुखी रुद्राक्ष देवदेवेश है और सम्पूर्ण कामनाओं का फल प्रदान करता है, विशेष कर यह रुद्राक्ष गोवध-जैसे पाप को तत्क्षण नाश करता हैं ॥ ६६ ॥ तीन मुख वाला रुद्राक्ष साक्षात् सभी साधनों को प्रदान

चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति । दर्शनात् स्पर्शनात् सद्यश्चतुर्वर्गफलप्रदः ॥६८॥
पञ्चवक्त्रः स्वयं रुद्रः कालाग्निर्नामतः प्रभुः । सर्वमुक्तिप्रदश्चैव सर्वकामफलप्रदः ॥६९॥
अगम्यागमनं पापमभक्ष्यस्य च भक्षणम् । इत्यादिसर्वपापानि पञ्चवक्त्रो व्यपोहति ॥७०॥
षड्वक्त्रः कार्तिकेयस्तु धारणाद् दक्षिणे भुजे । ब्रह्महत्यादिकैः पापैर्मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥७१॥
सप्तवक्त्रो महेशानि ! ह्यनङ्गो नाम नामतः । धारणात्तस्य देवेशि ! दरिद्रोऽपीश्वरो भवेत् ॥७२॥
रुद्राक्षश्चाऽष्टवक्त्रश्च वसुमूर्तिश्च भैरवः । धारणात्तस्य पूर्णायुर्मृतो भवति शूलभृत् ॥७३॥
भैरवो नववक्त्रश्च कपिलश्च मुनिः स्मृतः । दुर्गा वा तदधिष्ठात्री नवरूपा महेश्वरी ॥७४॥
तं धारयेद् वामहस्ते रुद्राक्षं भक्तितत्परः । सर्वेश्वरो भवेन्नूनं मम तुल्यो न संशयः ॥७५॥
दशवक्त्रो महेशानि ! स्वयं देवो जनार्दनः । धारणात्तस्य देवेशि ! सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥७६॥
एकादशमुखो यस्तु रुद्राक्षः परमेश्वरि ! । स रुद्रो धारणात्तस्य सर्वत्र विजयी भवेत् ॥७७॥
द्वादशास्यं तु रुद्राक्षं धारयेत् केशदेशके । आदित्याश्चैव ते सर्वे द्वादशैव स्थितास्तथा ॥७८॥
त्रयोदशमुखो विश्वेदेवस्तद्धारणान्नरः । सर्वान् कामानवाप्नोति सौभाग्यं मङ्गलं लभेत् ॥७९॥
चतुर्दशमुखो यो हि रुद्राक्षः परमः शिवः । धारयेन्मूर्ध्नि तं भक्त्या सर्वपापं प्रणश्यति ॥८०॥
इति रुद्राक्षभेदा हि प्रोक्ता वै मुखभेदतः । तत्तन्मन्त्राञ्छृणु प्रीत्या क्रमाच्छैलेश्वरात्मजे ॥८१॥

करता है, उसके प्रभाव से सभी विद्याएँ प्रतिष्ठित होती हैं ॥ ६७ ॥ चार मुख वाला रुद्राक्ष स्वयं ब्रह्मा है, वह नरहत्या को दूर करता है । उसके दर्शन एवं स्पर्श करने से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है ॥ ६८ ॥ पाँच मुख वाला रुद्राक्ष स्वयं रुद्रस्वरूप है । वह नाम से कालाग्नि है तथा सब-कुछ करने में समर्थ है, सभी प्रकार की मुक्ति तथा सभी प्रकार के फलों को प्रदान करता है ॥ ६९ ॥ यह पञ्चमुखी रुद्राक्ष अगम्या गमन तथा पापान्नभक्षण जैसे महापापों को दूर करता है ॥ ७० ॥ छह मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् कार्तिकेय है, उसे दाहिनी भुजा में धारण करने से ब्रह्महत्या-जैसे पाप दूर हो जाते हैं । इसमें संशय नहीं ॥ ७१ ॥

हे महेशानि ! सात मुख वाला रुद्राक्ष नाम से अनङ्ग है, उसके धारण करने से दरिद्र पुरुष भी ऐश्वर्यवान् हो जाता है ॥ ७२ ॥ आठ मुख वाला रुद्राक्ष अष्टमूर्ति भैरव है, उसके धारण करने से पूर्णायु की प्राप्ति होती है, और मरने के उपरान्त वह साक्षात् शिव हो जाता है ॥ ७३ ॥ नव मुख वाला रुद्राक्ष भैरव और कपिलमुनि भी कहा जाता है । और नवरूप वाली महेश्वरी दुर्गा उसकी अधिष्ठात्री देवी हैं ॥ ७४ ॥ उसे भक्तियुक्त हो बायें हाथ में धारण करना चाहिए । वह मेरे समान सर्वेश्वर है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७५ ॥ हे महेशानि ! दशमुख वाला रुद्राक्ष स्वयं जनार्दन है । हे देवेशि ! उसके धारण करने से सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि होती है ॥ ७६ ॥

हे परमेश्वरि ! एकादश मुख वाला रुद्राक्ष रुद्र कहा जाता है । उसके धारण करने से सर्वत्र विजय प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ द्वादश मुख वाले रुद्राक्ष को केश पर धारण करना चाहिए । उसमें सम्पूर्ण द्वादशादित्यों का निवास रहता है ॥ ७८ ॥ तेरह मुख का रुद्राक्ष धारण करने से मनुष्य विश्वेदेव के तुल्य होता है । वह सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त करता है तथा नित्य सौभाग्य और मङ्गल को प्राप्त करता है ॥ ७९ ॥ चौदह मुखवाला रुद्राक्ष परम शिव स्वरूप है । भक्तिपूर्वक उसे सिर पर धारण करने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं ॥८०॥ मुख के भेद से हमने इस प्रकार रुद्राक्ष के भेद कह दिये । हे पर्वतराजपुत्रि ! अब तुम उनके मन्त्रों को भी सुनो ॥ ८१ ॥

ॐ ह्रीं नमः १, ॐ नमः २, ॐ क्लीं नमः ३, ॐ ह्रीं नमः ४, ॐ ह्रीं नमः ५, ॐ ह्रीं हुं नमः ६, ॐ हुं नमः ७, ॐ हुं नमः ८, ॐ ह्रीं हुं नमः ९, ॐ ह्रीं नमः १०, ॐ ह्रीं हुं नमः ११, ॐ क्रौं क्षौं रौं नमः १२, ॐ ह्रीं नमः १३, ॐ नमः १४।

भक्ति-श्रद्धायुतश्चैव सर्वकामार्थसिद्धये। रुद्राक्षान् धारयेन् मन्त्रैर्देवनालस्यवर्जितः ॥८२॥
विना मन्त्रेण यो धत्ते रुद्राक्षं भुवि मानवः। स याति नरकं घोरं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥८३॥
रुद्राक्षमालिनं दृष्ट्वा भूत-प्रेत-पिशाचकाः। डाकिनी शाकिनी चैव ये चाऽन्ये द्रोहकारकाः ॥८४॥
कृत्रिमं चैव यत् किञ्चिदभिचारादिकं च यत्। तत्सर्वं दूरतो याति दृष्ट्वा शङ्कितविग्रहम् ॥८५॥
रुद्राक्षमालिनं दृष्ट्वा शिवो विष्णुः प्रसीदति। देवी गणपतिः सूर्यः सुराश्चान्येऽपि पार्वति! ॥८६॥
एवं ज्ञात्वा तु माहात्म्यं रुद्राक्षस्य महेश्वरि!। सम्यग् धार्याः समन्त्राश्च भक्त्या धर्मविवृद्धये ॥८७॥
इत्युक्तं गिरिजाग्रे हि शिवेन परमात्मना। भस्मरुद्राक्षमाहात्म्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥८८॥
शिवस्यातिप्रियौ ज्ञेयौ भस्मरुद्राक्षधारिणौ। तद्धारणप्रभावाद्धि भुक्तिर्मुक्तिर्न संशयः ॥८९॥
भस्मरुद्राक्षधारी यः शिवभक्तः स उच्यते। पञ्चाक्षरजपासक्तः परिपूर्णश्च सन्मुखे ॥९०॥
विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया। पूजितोऽपि महादेवो नाऽभीष्टफलदायकः ॥९१॥
तत्सर्वं च समाख्यातं यत्पृष्टं हि मुनीश्वर!। भस्मरुद्राक्षमाहात्म्यं सर्वकामसमृद्धिदम् ॥९२॥
एतद् यः शृणुयान्नित्यं माहात्म्यं परमं शुभम्। रुद्राक्षभस्मनोर्भक्त्या सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥९३॥

'१. ॐ ह्रीं नमः। २. ॐ नमः। ३. ॐ क्लीं नमः। ४. ॐ ह्रीं नमः। ५. ॐ ह्रीं नमः। ६. ॐ ह्रीं हुं नमः। ७. ॐ हुं नमः। ८. ॐ हुं नमः। ९. ॐ ह्रीं हुं नमः। १०. ॐ ह्रीं नमः। ११. ॐ ह्रीं हुं नमः। १२. ॐ क्रों क्षौं रौं नमः। १३. ॐ ह्रीं नमः। १४. ॐ नमः। भक्तिश्रद्धा से युक्त होकर सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्धि के लिए इन मन्त्रों से रुद्राक्ष धारण करे। जूआ को वर्जित रखे और आलस्य का त्याग करे ॥ ८२ ॥ इस लोक में जो मनुष्य बिना मन्त्र के रुद्राक्ष धारण करता है, वह चौदह इन्द्र पर्यन्त घोर नरक में जाता है ॥ ८३ ॥ रुद्राक्षमाला धारण करने वाले पुरुष को देखकर भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी, द्रोह करने वाले शत्रु और मनुष्यों के द्वारा किये गये अभिचार संत्रस्त होकर दूर भाग जाते हैं। ॥ ८४-८५ ॥ हे पार्वती! रुद्राक्षमाला धारण किये हुए पुरुष को देखकर शिव, विष्णु, देवी, गणपति, सूर्य तथा अन्य देवगण प्रसन्न होते हैं ॥ ८६ ॥ हे महेश्वरि! इस प्रकार रुद्राक्ष के माहात्म्य को जानकर धर्म की वृद्धि के लिए भक्ति से मन्त्रपूर्वक रुद्राक्ष को धारण करना चाहिए ॥ ८७ ॥ परमात्मा शिव ने श्री गिरिजा भगवती से भुक्ति तथा मुक्ति को देने वाले रुद्राक्ष के माहात्म्य को इस प्रकार वर्णन किया है ॥ ८८ ॥ भस्म तथा रुद्राक्ष धारण करने वाले पुरुष शिवजी को अत्यन्त प्रिय हैं। उसके धारण करने मात्र से ही मुक्ति तथा भुक्ति दोनों प्राप्त होती हैं, इसमें संशय नहीं ॥ ८९ ॥ भस्म तथा रुद्राक्ष धारण करने वाला शिवभक्त कहा जाता है। और जो भस्म एवं रुद्राक्ष धारण कर मुख से पञ्चाक्षर मन्त्र का जप करता है वह परिपूर्ण भक्त कहा जाता है ॥ ९० ॥ विना भस्म धारण किये, विना रुद्राक्ष माला के ही जो महादेव का पूजन करता है, उसे महादेव अभीष्ट फल नहीं प्रदान करते ॥ ९१ ॥

सूत जी बोले—हे मुनीश्वर शौनक! आपने जो पूछा था, मैंने उसका वर्णन कर दिया। भस्म और रुद्राक्ष का माहात्म्य सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है ॥ ९२ ॥ जो इस रुद्राक्ष तथा भस्म-माहात्म्य

इह सर्वसुखं भुक्त्वा पुत्रपौत्रादिसंयुतः । लभेत् परत्र सन्मोक्षं शिवस्यातिप्रियो भवेत् ॥९४॥
विद्येश्वरसंहितेयं कथिता वो मुनीश्वराः । सर्वसिद्धिप्रदा नित्यं मुक्तिदा शिवशासनात् ॥९५॥

इति शिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे रुद्राक्षमाहात्म्य-
वर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

*

को नित्य श्रद्धापूर्वक सुनता है, उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं ॥ ९३ ॥ वह सभी प्रकार के सुखों का उपभोग कर पुत्र-पौत्रादि से संयुक्त हो परलोक में मोक्ष प्राप्त करता है और शिव का अतिशय प्रिय होता है ॥ ९४ ॥

शौनक जी बोले—हे मुनीश्वरो ! मैंने यह विद्येश्वरसंहिता आप लोगों से कही है । यह संहिता शिवजी की आज्ञा से नित्य ही सभी प्रकार की सिद्धियों को देनेवाली है ॥ ९५ ॥

इस प्रकार आचार्य पण्डित श्रीशिवदत्तमिश्र शास्त्री कृत 'शिवदत्ती' भाषा-टीका सहित शिवमहापुराण के
अन्तर्गत प्रथमा विद्येश्वरसंहिता-साध्य-साधनखण्ड में रुद्राक्ष-माहात्म्य
वर्णन नामक पचीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥

इति प्रथमा विद्येश्वरसंहिता समाप्त ।

*

*॥ ॐ नमः शिवाय *

श्रीशिवमहापुराणम्

आचार्य-पण्डित-श्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रिकृत-

'शिवदत्ती'भाषाटीकासहितम्

२. रुद्रसंहिता (सृष्टिखण्डः १)

प्रथमोऽध्यायः

(शौनकादि ऋषियों द्वारा शिव की निर्गुण शक्ति-सम्बन्ध के प्रश्न में सूत जी का ब्रह्म-नारद संवाद रूप कथन)

विश्वोद्भव-स्थिति-लयादिषु हेतुमेकं गौरीपतिं विदिततत्त्वमनन्तकीर्तिम् ।
मायाश्रयं विगतमायमचिन्त्यरूपं बोधस्वरूपममलं हि शिवं नमामि ॥ १ ॥
वन्दे शिवं तं प्रकृतेरनादिं प्रशान्तमेकं पुरुषोत्तमं हि ।
स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः ॥ २ ॥
वन्देऽन्तरस्थं निजगूढरूपं शिवं स्वतः स्रष्टुमिदं विचष्टे ।
जगन्ति नित्यं परितो भ्रमन्ति यत्सन्निधौ चुम्बकलोहवत्तम् ॥ ३ ॥

व्यास उवाच

जगतः पितरं शम्भुं जगतो मातरं शिवाम् । तत्पुत्रं च गणाधीशं न त्वैतद् वर्णयामहे ॥ ४ ॥
एकदा मुनयः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः । पप्रच्छुर्वरया भक्त्या सूतं ते शौनकादयः ॥ ५ ॥

ऋषय ऊचुः

विद्येश्वरसंहितायाः श्रुता सा सत्कथा शुभा । साध्य-साधनखण्डाख्या रम्याद्या भक्तवत्सला ॥ ६ ॥
सूत सूत महाभाग ! चिरञ्जीव ! सुखी भव । यच्छ्रावयसि नस्तात शाङ्करीं परमां कथाम् ॥ ७ ॥
पिबन्तस्त्वन्मुखाम्भोजच्युतं ज्ञानामृतं वयम् । अवितृप्ताः पुनः किञ्चित् प्रष्टुमिच्छामहेऽनघ ! ॥ ८ ॥

इस संसार की उत्पत्ति, पालन एवं प्रलय के एक मात्र हेतु, अनन्तकीर्त्ति, सर्वतत्त्ववेत्ता, माया के आश्रय किन्तु स्वयं मायारहित, अचिन्त्यरूप एवं सर्वथा ज्ञानस्वरूप गौरीपति सदाशिव को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ प्रकृति से परे, अनादि अद्वितीय जो पुरुषोत्तम इस जगत् की सृष्टि कर इसके भीतर तथा बाहर आकाश के समान स्थित हैं ऐसे प्रशान्त सदाशिव को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥ सबके अन्तरात्मा में गुप्तरूप से निवास करने वाले, जो सदाशिव स्वयं विना किसी उपकरण के इस जगत् की सृष्टि करते हैं और जिनके सान्निध्य से यह सारा जगत् चुम्बक के सन्निधान में रहने वाले लोहे की तरह घूमता रहता है ऐसे सदाशिव की मैं वन्दना करता हूँ ॥ ३ ॥

व्यास जी बोले—जगत् के पिता सदाशिव एवं जगत्माता पार्वती तथा उनके पुत्र गणपति को प्रणाम कर इस शिवपुराण की रुद्रसंहिता का वर्णन करता हूँ ॥ ४ ॥ एक समय नैमिषारण्य निवासी शौनकादि मुनियों ने अत्यन्त भक्ति से सूत जी से पूछा—॥ ५ ॥

ऋषियों ने कहा—हे सूत ! विद्येश्वरसंहिता की मनोहर कथा, जिसका नाम साध्यसाधन खण्ड भी है और जो भक्तों को अत्यन्त प्रिय है वह हम लोगों ने सुन ली ॥ ६ ॥ हे महाभाग ! हे तात ! तुम हम लोगों को सदाशिव की उत्तम कथा सुना रहे हो, अतः चिरञ्जीवी तथा सुखी रहो ॥ ७ ॥ आप के मुख

व्यासप्रसादात् सर्वज्ञ प्राप्तोऽसि कृतकृत्यताम्। नाज्ञातं विद्यते किञ्चिद् भूतं भव्यं भवच्च यत् ॥ ९ ॥
गुरोर्व्यासस्य सद्भक्त्या समासाद्य कृपां पराम् । सर्वं ज्ञातं विशेषेण सर्वं सार्थं कृतं जनुः ॥१०॥
इदानीं कथय प्राज्ञ ! शिवरूपमनुत्तमम् । दिव्यानि वै चरित्राणि शिवयोरप्यशेषतः ॥११॥
अगुणो गुणतां याति कथं लोके महेश्वरः । शिवतत्त्वं वयं सर्वे न जानीमो विचारतः ॥१२॥
सृष्टेः पूर्वं कथं शम्भुः स्वरूपेणाऽवतिष्ठते । सृष्टिमध्ये स हि कथं क्रीडन् संवर्त्तते प्रभुः ॥१३॥
तदन्ते च कथं देवः स तिष्ठति महेश्वरः । कथं प्रसन्नतां याति शङ्करो लोकशङ्करः ॥१४॥
स प्रसन्नो महेशानः किं प्रयच्छति सत्फलम् । स्वभक्तेभ्यः परेभ्यश्च तत्सर्वं कथयस्व नः ॥१५॥
सद्यः प्रसन्नो भगवान् भवतीत्यनुशुश्रुम । भक्तप्रयासं स महान् न पश्यति दयापरः ॥१६॥
ब्रह्मा विष्णुर्महेशश्च त्रयो देवाः शिवाङ्गजाः । महेशस्तत्र पूर्णांशः स्वयमेव शिवोऽपरः ॥१७॥
तस्याविर्भावमाख्याहि चरितानि विशेषतः । उमाविर्भावमाख्याहि तद् विवाहं तथा प्रभो ! ॥१८॥
तद् गार्हस्थ्यं विशेषेण तथा लीलाः परा अपि। एतत् सर्वं तदन्यच्च कथनीयं त्वयाऽनघ ! ॥१९॥

व्यास उवाच

इति पृष्टस्तदा तैस्तु सूतो हर्षसमन्वितः । स्मृत्वा शम्भुपदाम्भोजं प्रत्युवाच मुनीश्वरान् ॥२०॥

सूत उवाच

सम्यक् पृष्टं भवद्भिश्च धन्या यूयं मुनीश्वराः । सदाशिवकथायां वो यज्जाता नैष्ठिकी मतिः ॥२१॥
सदाशिवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन् पुनाति हि । वक्तारं पृच्छकं श्रोतॄन् जाह्नवीसलिलं यथा ॥२२॥

से निकले हुए ज्ञानामृत का पान करते हुए हम लोग तृप्त नहीं हो रहे हैं, अतः हे अनघ ! हम लोग कुछ और भी पूछना चाहते हैं ॥ ८ ॥ क्योंकि, आप व्यास जी की कृपा से सर्वज्ञ एवं कृतकृत्य हैं। इस जगत् का भूत, भविष्य एवं वर्त्तमान कुछ भी आप से अविदित नहीं है ॥ ९ ॥ आप अपने गुरु वेदव्यास में भक्ति करने से उनकी कृपा को प्राप्त कर सब कुछ जानने वाले हैं। और अपना सारा जन्म भी आपने उनकी कृपा से सफल बना लिया है ॥१०॥ हे प्राज्ञ ! अब आप शिवजी का उत्तम स्वरूप कहिए और शिव-शिवा के उत्तम चरित्र का भी वर्णन कीजिए ॥ ११ ॥ गुणरहित भी महेश्वर किस प्रकार इस लोक में सगुण रूप धारण करते हैं। बहुत विचार करने पर भी हम लोग शिवतत्त्व अब तक नहीं जान सके हैं ॥ १२ ॥ सृष्टि के पहले सदाशिव किस स्वरूप से स्थित रहते हैं। और वह प्रभु सृष्टि हो जाने पर किस प्रकार अपनी सृष्टि से क्रीड़ा करते हुए निवास करते हैं ॥ १३ ॥ और वे महेश्वर सृष्टि के अन्त में किस प्रकार निवास करते हैं। लोक का कल्याण करने वाले सदाशिव किस प्रकार प्रसन्न होते हैं ॥ १४ ॥ एवं प्रसन्न होने पर वे अपने भक्तों को तथा अन्य लोगों को कौन-कौन-सा फल प्रदान करते हैं, यह सभी बातें आप हमसे कहिए ॥ १५ ॥ हमने ऐसा सुना है कि भगवान् सदाशिव शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। और इतने महान् तथा दयालु हैं कि वे भक्तों का सङ्कट देख नहीं सकते ॥१६॥ ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर ये तीनों देव शिव से ही उत्पन्न हुए हैं, किन्तु इनमें महेश्वर शिव के परिपूर्ण अंश है तथा शिव के दूसरे साक्षात् स्वरूप हैं ॥ १७ ॥ उनका आविर्भाव तथा चरित्र विशेष रूप से कहिए। हे प्रभो ! उमा का विवाह तथा चरित्र भी कहिए ॥ १८ ॥ हे अनघ ! विशेष कर शिवजी के गृहस्थाश्रम का वर्णन तथा उनकी और लीलाएँ यह सब इसके अतिरिक्त भी उनके चरित्र का वर्णन कीजिए ॥ १९ ॥

व्यास जी बोले—मुनियों के द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर सूत जी बहुत प्रसन्न हुए और भगवान् शिव के चरण-कमलों का स्मरण कर मुनीश्वरों से बोले— ॥ २० ॥

सूत जी बोले—हे मुनीश्वरो ! आप लोगों ने यह उत्तम प्रश्न किया। भगवान् सदाशिव के कथा-श्रवण में आप लोगों का दृढ़ अनुराग है अतः आप लोग धन्य हैं ॥ २१ ॥ सदाशिव के कथा-विषय का प्रश्न,

शम्भोर्गुणानुवादात् को विरज्येत पुमान् द्विजाः । विना पशुघ्नं त्रिविधजनानन्दकरात् सदा ॥२३॥
गीयमानो वितृष्णैश्च भवरोगौषधोऽपि हि । मनःश्रोत्राभिरामश्च यतः सर्वार्थदः स वै ॥२४॥
कथयामि यथाबुद्धि भवत्प्रश्नानुसारतः । शिवलीलां प्रयत्नेन द्विजास्तां शृणुतादरात् ॥२५॥
भवद्भिः पृच्छ्यते यद्वत्तथा नारदेन वै । पृष्टं पित्रे प्रेरितेन हरिणा शिवरूपिणा ॥२६॥
ब्रह्मा श्रुत्वा सुतवचः शिवभक्तः प्रसन्नधीः । जगौ शिवयशः प्रीत्या हर्षयन् मुनिसत्तमम् ॥२७॥

व्यास उवाच

सूतोक्तमिति तद् वाक्यमाकर्ण्य द्विजसत्तमाः । पप्रच्छुस्तत्सुसंवादं कुतूहलसमन्विताः ॥२८॥

ऋषय ऊचुः

सूत सूत ! महाभाग ! शैवोत्तम ! महामते ! । श्रुत्वा तव वचो रम्यं चेतो नः सकुतूहलम् ॥२९॥
कदा बभूव सुखकृद्विधिनारदयोर्महान् । संवादो यत्र गिरिशसुलीला भवमोचिनी ॥३०॥
विधिनारदसंवादपूर्वकं शाङ्करं यशः । ब्रूहि नस्तात ! तत्प्रीत्या तत्तत्प्रश्नानुसारतः ॥३१॥
इत्याकर्ण्य वचस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् । सूतः प्रोवाच सुप्रीतस्तत्संवादानुसारतः ॥३२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने
मुनिप्रश्नवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

कहने वाले, पूछनेवाले एवं सुननेवाले इन तीनों कों ही गङ्गाजल के समान पवित्र करता है ॥ २२ ॥ हे ब्राह्मणो ! पशुघ्न (जीवहत्यारा) के विना उपर्युक्त तीन प्रकार के पुरुषों को पवित्र करने वाले इस शिव के चरित्र को कहने में किस पुरुष को श्रद्धा न होगी ॥ २३ ॥ यह शिवकथा तृष्णारहित परमहंसों के द्वारा निरन्तर गान की जाती है एवं संसाररूपी रोग की महौषधि है। मन तथा कानों को परमानन्ददायक तथा सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाली है ॥२४॥ अब मैं आप लोगों के प्रश्न के अनुसार एवं अपनी बुद्धि के अनुसार प्रयत्नपूर्वक शिवलीला का वर्णन करता हूँ। आप लोग उसे ध्यान से सुनिए ॥ २५ ॥ जिस प्रकार आप लोगों ने यह प्रश्न मुझसे किया है, उसी प्रकार का प्रश्न शिवरूपी विष्णु की प्रेरणा से देवर्षि नारद ने अपने पिता से पूछा था ॥ २६ ॥ शिवभक्त ब्रह्मा इस प्रकार देवर्षि नारद के प्रश्न को सुनकर प्रसन्न हो गये और उन देवर्षि नारद को प्रसन्न करते हुए इस प्रकार शिव-चरित्र का गान करने लगे ॥२७॥

व्यास जी बोले—सूत जी के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर सभी ब्राह्मण आश्चर्य-चकित हो उस संवाद के विषय में सूत जी से कहने लगे ॥ २८ ॥

ऋषियों ने कहा—हे शिवभक्तों में श्रेष्ठ, हे महाभाग सूत ! हे महामते ! आपकी मनोहर वाणी को सुनकर हम लोगों के हृदय में बड़ा कुतूहल हो रहा है ॥ २९ ॥ यह ब्रह्मदेव एवं देवर्षि नारद का सुखकारक संवाद, जिसमें मुक्तिदायक शिव की कथा का वर्णन है, कब हुआ ॥ ३० ॥ हे तात ! अब आप शंकर की प्रीति के लिए नारद के प्रश्नों के अनुसार जिस प्रकार विधि नारद के संवाद में शङ्कर का चरित्र कहा गया है उसे कृपा कर हम लोगों को सुनाइए ॥ ३१ ॥ इस प्रकार आत्मज्ञानी उन महर्षियों की बात सुनकर प्रसन्न हुए श्रीसूत जी विधि नारद के संवाद के अनुरूप में वर्णित शिव-कथा कहने लगे ॥ ३२ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीया रुद्रसंहिता के प्रथमखण्डात्मक सृष्टिखण्ड में मुनिप्रश्नवर्णन नामक प्रथम अध्याय समाप्त ॥

*

द्वितीयोऽध्यायः

(हिमालय पर नारद की तपस्या भंग करने हेतु इन्द्र द्वारा प्रेषित कामदेव का शिव के प्रभाव से पराजय)

सूत उवाच

एकस्मिन् समये विप्रा नारदो मुनिसत्तमः। ब्रह्मपुत्रो विनीतात्मा तपोऽर्थं मन आदधे ॥ १ ॥
हिमशैलगुहा काचिदेका परमशोभना। यत्समीपे सुरनदी सदा वहति वेगतः ॥ २ ॥
तत्राश्रमो महादिव्यो नानाशोभासमन्वितः। तपोऽर्थं स ययौ तत्र नारदो दिव्यदर्शनः ॥ ३ ॥
तं दृष्ट्वा मुनिशार्दूलस्तेपे स सुचिरं तपः। बद्ध्वासनं दृढं मौनी प्राणानायम्य शुद्धधीः ॥ ४ ॥
चक्रे मुनिः समाधिं तमहं ब्रह्मेति यत्र ह। विज्ञानं भवति ब्रह्मसाक्षात्कारकरं द्विजाः ॥ ५ ॥
इत्थं तपति तस्मिन् वै नारदे मुनिसत्तमे। चकम्पेऽथ शुनासीरो मनःसन्तापविह्वलः ॥ ६ ॥
मनसीति विचिन्त्याऽसौ मुनिर्मे राज्यमिच्छति। तद्विघ्नकरणार्थं हि हरिर्यत्नमियेष सः ॥ ७ ॥
सस्मार स स्मरं शक्रश्चेतसा देवनायकः। आजगाम द्रुतं कामः समधीर्महिषीसुतः ॥ ८ ॥
अथागतं स्मरं दृष्ट्वा सम्बोध्य सुरराट् प्रभुः। उवाच तं प्रपश्याशु स्वार्थे कुटिलशेमुषिः ॥ ९ ॥

इन्द्र उवाच

मित्रवर्य्य ! महावीर ! सर्वदा हितकारक !। शृणु प्रीत्या वचो मे त्वं कुरु साहाय्यमात्मना ॥ १० ॥
त्वद्बलान् मे बहूनां च तपोगर्वो विनाशितः। मद्राज्यस्थिरता मित्र ! त्वदनुग्रहतः सदा ॥ ११ ॥
हिमशैलगुहायां हि मुनिस्तपति नारदः। मनसोद्दिश्य विश्वेशं महासंयमवान् दृढः ॥ १२ ॥
याचेन्न विधितो राज्यं स ममेति विशङ्कितः। अद्यैव गच्छ तत्र त्वं तत्तपोविघ्नमाचर ॥ १३ ॥

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो ! किसी समय ब्रह्मा के पुत्र विनयशील मुनिश्रेष्ठ नारदजी ने तपस्या करने का विचार किया ॥ १ ॥ हिमालय पर्वत में, जहाँ एक मनोहर गुफा है, जिसके सन्निकट देवनदी गङ्गाजी वेग से बहती रहती हैं ॥ २ ॥ वहीं पर अनेक शोभा से परिपूर्ण महान् दिव्य एक आश्रम है। दिव्यदर्शन देवर्षि नारद तपस्या के लिए उसी आश्रम पर गये ॥ ३ ॥ वे श्री नारदजी उस परम मनोहर आश्रम को देख कर बहुत काल पर्यन्त तपस्या करने लगे। उन्होंने शुद्धता से दृढ़ आसन पर बैठ कर मौन हो प्राणायाम करते हुए समाधि लगा ली। जिस समाधि में ब्रह्म का साक्षात्कार कराने वाला 'अहं ब्रह्म' का विज्ञान हो जाता है ॥ ४-५ ॥ इस प्रकार समाधियुक्त तपस्या में लीन देवर्षि नारद को देखकर इन्द्र मन में व्याकुल होकर कम्पित हो गया ॥ ६ ॥ उस ने विचार किया कि अवश्य ही यह नारद मेरा राज्य चाहता है ऐसा सोच कर उसने देवर्षि नारद के तप में विघ्न करने का विचार किया ॥ ७ ॥ तदनन्तर देवनायक इन्द्र ने मन से कामदेव का स्मरण किया। स्मरण करते ही समान बुद्धिवाला महिषी-पुत्र (लक्ष्मीपुत्र) कामदेव उपस्थित हो गया ॥ ८ ॥ कामदेव को देख कर कपटबुद्धि वाले देवराज इन्द्र ने स्वार्थ से प्रेरित हो उसे सम्बोधित करते हुए कहा ॥ ९ ॥

इन्द्र बोले—हे मित्रवर्य, हे महावीर ! तुम सर्वदा हमारा हित करने वाले हो। तुम प्रीति से मेरी बात सुनो तथा स्वयं मेरी सहायता करो ॥ १० ॥ हे मित्रवर्य ! तुम्हारे बल से मैंने बहुतों की तपस्या का घमण्ड नष्ट कर दिया है। हे मित्र ! हम बहुत क्या कहें, तुम्हारी कृपा के कारण ही मेरा राज्य आजतक स्थिर रूप से चला आ रहा है ॥ ११ ॥ हिमालय की कन्दरा में देवर्षि नारद महान् संयम धारण कर दृढ़ता के साथ विश्वेश्वर का स्मरण करते हुए तपस्या कर रहे हैं ॥ १२ ॥ मुझे सन्देह हो रहा है कि कहीं यह ब्रह्मा से मेरा राज्य न माँग लें। अतः तुम शीघ्रता से जाकर उनकी तपस्या में विघ्न करो ॥ १३ ॥

इत्याज्ञप्तो महेन्द्रेण स कामः समधुप्रियः । जगाम तत्स्थलं गर्वादुपायं स्वं चकार ह ॥१४॥
रचयामास तत्राशु स्वकलाः सकला अपि । वसन्तोऽपि स्वप्रभावं चकार विविधं मदात् ॥१५॥
न बभूव मुनेश्चेतो विकृतं मुनिसत्तमाः । भ्रष्टो बभूव तद्गर्वो महेशानुग्रहेण ह ॥१६॥
शृणुतादरतस्तत्र कारणं शौनकादयः । ईश्वरानुग्रहेणात्र न प्रभावः स्मरस्य हि ॥१७॥
अत्रैव शम्भुनाऽकारि सुतपश्च स्मरारिणा । अत्रैव दग्धस्तेनाशु कामो मुनितपोपहः ॥१८॥
कामजीवनहेतोर्हि रत्या सम्प्रार्थितैः सुरैः । सम्प्रार्थित उवाचेदं शङ्करो लोकशङ्करः ॥१९॥
कञ्चित् समयमासाद्य जीविष्यति सुराः स्मरः । परंत्विह स्मरोपायश्चलिष्यति न कश्चन ॥२०॥
इह यावद् दृश्यते भूर्जनैः स्थित्वाऽमराः सदा । कामबाणप्रभावोऽत्र न चलिष्यत्यसंशयम् ॥२१॥
इति शम्भूक्तितः कामो मिथ्यात्मगतिकस्तदा । नारदे स जगामाशु शिवमिन्द्रसमीपतः ॥२२॥
आचख्यौ सर्ववृत्तान्तं प्रभावं च मुनेः स्मरः । तदाज्ञया ययौ स्थानं स्वकीयं स मधुप्रियः ॥२३॥
विस्मितोऽभूत् सुराधीशः प्रशशंसाथ नारदम् । तद्वृत्तान्तानभिज्ञो हि मोहितः शिवमायया ॥२४॥
दुर्ज्ञेया शाम्भवी माया सर्वेषां प्राणिनामिह । भक्तं विनार्पितात्मानं तया सम्मोह्यते जगत् ॥२५॥
नारदोऽपि चिरं तस्थौ तत्रेशानुग्रहेण ह । पूर्णं मत्वा तपस्तत्स्वं विरराम ततो मुनिः ॥२६॥
कामाजयं निजं मत्वा गर्वितोऽभून् मुनीश्वरः । वृथैव विगतज्ञानः शिवमायाविमोहितः ॥२७॥

इन्द्र की इस प्रकार की आज्ञा पाकर मधुप्रिय कामदेव उस स्थान पर गया, जहाँ देवर्षि नारद तपस्या कर रहे थे। जाते ही वह बड़े गर्व में भर कर तपस्या में विघ्न करने का उपाय सोचने लगा ॥ १४ ॥ उसने वहाँ पर अपनी सम्पूर्ण कला दिखायी। काममित्र वसन्त ने भी गर्व में भरकर अपना सम्पूर्ण प्रभाव (बल) प्रगट किया ॥ १५ ॥

सूतजी ने कहा—हे ऋषियों ! इतना करने पर भी महर्षि के चित्त में किसी प्रकार की कामादि विकार उत्पन्न नहीं हुआ। क्योंकि नारद के ऊपर भगवान् सदाशिव की कृपा थी। इस प्रकार काम का सारा गर्व नष्ट हो गया ॥ १६ ॥ हे शौनकादि महर्षियो ! इसका कारण यही था कि भगवान् सदाशिव की कृपा देवर्षि नारद पर थी, जिससे कामदेव का कुछ भी प्रभाव न पड़ा ॥ १७ ॥ यह वही स्थान था जहाँ कामारि सदाशिव ने अत्यन्त कठिन तप किया था। और मुनियों के तप में विघ्न करने वाले काम को इसी स्थान पर जलाया था ॥ १८ ॥ इसी स्थान पर कामदेव के भस्म हो जाने पर देवताओं के साथ रति ने आकर कामदेव को पुनः जीवित करने के लिए प्रार्थना की थी। उस समय शङ्कर ने कहा था कि, हे देवताओ ! कुछ समय के बाद कामदेव जीवित हो जायेगा। और आज से इस स्थान पर कामदेव का कोई भी प्रभाव न चलेगा ॥ १९-२० ॥

शङ्करजी बोले—हे देवताओ ! यहाँ पर स्थित होने पर जितनी भूमि दिखाई पड़ रही है, वहाँ कामदेव का कोई वश न चल सकेगा। इसमें सन्देह नहीं ॥ २१ ॥ श्रीशङ्करजी ने उस स्थान को काम के प्रभाव से रहित कहा था, इसलिए नारद पर जब काम का कोई प्रभाव न पड़ा तो वह लज्जित मन हो देवर्षि नारद के स्थान को छोड़कर इन्द्रलोक स्वर्ग में गया ॥ २२ ॥ वहाँ जाकर उसने अपना सारा वृत्तान्त और देवर्षि नारद का प्रभाव इन्द्र को सुनाया। तदनन्तर उनकी आज्ञा ले वसन्त सहित अपने स्थान को चला गया ॥ २३ ॥ इससे इन्द्र को महान् आश्चर्य हुआ और उन्होंने देवर्षि नारद की भूरि-भूरि प्रशंसा की। देवर्षि नारद शिवमाया से मोहित थे, उन्हें इस वृत्तान्त का कोई ज्ञान ही नहीं हुआ ॥ २४ ॥ सभी प्राणियों के लिए शिवजी की माया दुर्ज्ञेय है। शिव की इस माया से सारा संसार मोहित है, किन्तु जो अपना सर्वस्व शिव को समर्पित कर देता है, उस भक्त को वह मोहित नहीं करती ॥ २५ ॥ इधर देवर्षि नारद शिवजी के अनुग्रह से बहुत काल पर्यन्त उस आश्रम पर रहे। फिर अपनी तपस्या पूर्ण समझ कर उससे विरत हो गये ॥ २६ ॥ 'मैंने काम को जीत लिया' ऐसा समझ कर मुनिराज के मन में

धन्या धन्या महामाया शाम्भवी मुनिसत्तमाः। तद्गतिं न हि पश्यन्ति विष्णुब्रह्मादयोऽपि हि ॥२८॥
तया सम्मोहितोऽतीव नारदो मुनिसत्तमः। कैलासं प्रययौ शीघ्रं स्ववृत्तं गदितुं मदी ॥२९॥
रुद्रं नत्वाऽब्रवीत् सर्वं स्ववृत्तं गर्ववान् मुनिः। मत्वाऽऽत्मानं महात्मानं प्रभुं च स्मरं जयम् ॥३०॥
तच्छ्रुत्वा शङ्करः प्राह नारदं भक्तवत्सलः। स्वमायामोहितं हेत्वनभिज्ञं भ्रष्टचेतसम् ॥३१॥

रुद्र उवाच

हे तात नारद प्राज्ञ! धन्यस्त्वं शृणु मद्वचः। वाच्यमेवं न कुत्राऽपि हरेरग्रे विशेषतः ॥३२॥
पृच्छमानोऽपि न ब्रूयाः स्ववृत्तं मे यदुक्तवान्। गोप्यं गोप्यं सर्वथा हि नैव वाच्यं कदाचन ॥३३॥
शास्म्यहं त्वां विशेषेण मम प्रियतमो भवान्। विष्णुभक्तो यतस्त्वं हि तद्भक्तोऽतीव मेऽनुगः॥३४॥
शास्ति स्मेत्थं च बहुशो रुद्रः सूतिकरः प्रभुः। नारदो न हितं मेने शिवमायाविमोहितः ॥३५॥
प्रबला भाविनी कर्मगतिर्ज्ञेया विचक्षणैः। न निवार्या जनैः कैश्चिदपीच्छा सैव शाङ्करी ॥३६॥
ततः स मुनिवर्यो हि ब्रह्मलोकं जगाम ह। विधिं नत्वाऽब्रवीत् कामजयं स्वस्य तपोबलात् ॥३७॥
तदाकर्ण्य विधिः सोऽथ स्मृत्वा शम्भुपदाम्बुजम्। ज्ञात्वा सर्वं कारणं तन्निषिषेध सुतं तदा ॥३८॥
मेने हितं न विध्युक्तं नारदो ज्ञानिसत्तमः। शिवमायामोहितश्च रूढचित्तमदाङ्कुरः ॥३९॥

बहुत बड़ा अहङ्कार पैदा हो गया। और शिव की माया से मोहित होने के कारण उनका सारा ज्ञान नष्ट हो गया॥ २७॥

सूत जी ने ऋषियों से कहा—हे महर्षियो! सदाशिव की यह शाम्भवी माया धन्य है, धन्य है। विष्णु एवं ब्रह्मादि देवता भी उस माया की गति नहीं जान सकते॥ २८॥ मुनिसत्तम देवर्षि नारद माया से इतने मोहित हो गये कि वे अहङ्कार से परिपूर्ण हो इस वृत्तान्त को शिवजी को सुनाने हेतु कैलास पर गये॥ २९॥ वहाँ जाकर उन्होंने शिव को प्रणाम कर गर्व से अपने काम-विजय का सारा वृत्तान्त शिवजी को सुनाया। वे काम पर हुए अपने इस विजय से अपने को सर्वाधिक महात्मा मानने लगे॥ ३०॥ भक्तवत्सल भगवान् शिव ने नारद का सारा वृत्तान्त सुनकर यह समझ लिया कि नारद मेरी माया से मोहित हो रहे हैं, इनकी बुद्धि नष्ट हो गयी है। जो काम के विजय का कारण क्या है? इसे नहीं जान पा रहे हैं॥ ३१॥

तब शिवजी बोले—हे महाप्राज्ञ, हे तात, हे नारद! तुम धन्य हो, किन्तु मेरी एक बात सुनो। जैसे तुमने अपने काम-विजय का यह समाचार मुझे सुनाया है, वैसा और किसी से मत कहना, विशेषकर विष्णु के सामने तो अवश्य ही प्रगट मत करना॥ ३२॥ तुम ने जिस प्रकार अपना काम-विजय का समाचार मुझ से कहा है यह समाचार विष्णु के बारम्बार पूछने पर भी मत कहना। इसे सर्वदा गोपनीय रखना। कभी किसी के सामने प्रगट मत करना॥ ३३॥ तुम मेरे परम प्रिय हो, इसलिए विशेष रूप से मैं तुम्हें शिक्षा दे रहा हूँ। तुम विष्णुभक्त हो और विष्णुभक्त मेरे अनुगामी होते हैं॥ ३४॥ नारदजी शिवमाया से मोहित थे, उन्हें शिवजी की यह शिक्षा अपने अनुकूल प्रतीत नहीं हुई। क्योंकि भगवान् रुद्र ही सबके बुद्धि में अनुप्रविष्ट रहते हैं॥ ३५॥ भवितव्यता बड़ी प्रबल होती है। कर्म की गति विलक्षण है, विचक्षण लोग ही उसको जान सकते हैं। शङ्कर की इच्छा का अतिक्रमण करने में कोई भी जन समर्थ नहीं हो सकता॥ ३६॥ अनन्तर मुनिवर नारद ब्रह्मलोकको गये। उन्होंने ब्रह्मदेव को प्रणाम किया और उनसे भी अपने तपोवल द्वारा काम के विजय का वर्णन किया॥ ३७॥ इस वात को सुन कर ब्रह्माजी ने शिव को प्रणाम किया। और सब कारण जानकर अपने पुत्र देवर्षि नारद को मना किया॥ ३८॥ किन्तु ज्ञानियों में श्रेष्ठ नारदजी ने ब्रह्मा से कही हुई बात को हितकारक न समझा। क्योंकि शिवकी माया से मोहित होने के कारण उनके चित्त में अहंकार का अंकुर उत्पन्न हो गया

शिवेच्छा यादृशी लोके भवत्येव हि सा तदा । तदधीनं जगत्सर्वं वचस्तन्त्यां स्थितं यतः ॥४०॥
नारदोऽथ ययौ शीघ्रं विष्णुलोकं विनष्टधीः । मदाङ्कुरमना वृत्तं गदितुं स्वं तदग्रतः ॥४१॥
आगच्छन्तं मुनिं दृष्ट्वा नारदं विष्णुरादरात् । उत्थित्वाऽग्रे गतोऽरं तं शिश्लेष ज्ञातहेतुकः ॥४२॥
स्वासने समुपावेश्य स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् । हरिः प्राह वचस्तथ्यं नारदं मदनाशनम् ॥४३॥

विष्णुरुवाच

कुत आगम्यते तात ! किमर्थमिह चागतः । धन्यस्त्वं मुनिशार्दूल ! तीर्थोऽहं तु तवागमात् ॥४४॥
विष्णुवाक्यमिति श्रुत्वा नारदो गर्वितो मुनिः । स्ववृत्तं सर्वमाचष्ट समदं मदमोहितः ॥४५॥
श्रुत्वा मुनिवचो विष्णुः समदं कारणं ततः । ज्ञातवानखिलं स्मृत्वा शिवपादाम्बुजं हृदि ॥४६॥
तुष्टाव गिरिशं भक्त्या शिवात्मा शैवराड् हरिः । साञ्जलिर्विसुधीर्नम्रमस्तकः परमेश्वरम् ॥४७॥

विष्णुरुवाच

देवदेव ! महादेव ! प्रसीद परमेश्वर ! । धन्यस्त्वं शिव धन्या ते माया सर्वविमोहिनी ॥४८॥
इत्यादि स स्तुतिं कृत्वा शिवस्य परमात्मनः । निमील्य नयने ध्यात्वा विरराम पदाम्बुजम् ॥४९॥
यत्कर्तव्यं शङ्करस्य स ज्ञात्वा विश्वपालकः । शिवशासनतः प्राह हृदाऽथ मुनिसत्तमम् ॥५०॥

विष्णुरुवाच

धन्यस्त्वं मुनिशार्दूल ! तपोनिधिरुदारधीः । भक्तित्रिकं न यस्यास्ति काममोहादयो मुने ॥५१॥

था ॥ ३९ ॥ इस लोक में शिवेच्छा बड़ी प्रवल होती है। उनकी इच्छा से जो होना होता है वही होता है, यह सारा जगत् उनकी इच्छा के अधीन है ॥४०॥ अहङ्कार से नारद की बुद्धि नष्ट हो गयी थी। वे विष्णु-लोक में अपने काम के विजयजन्य अहङ्कार के अंकुर को मन में धारण करते हुए इस समाचार को सुनाने के लिए वहीं गये ॥ ४१ ॥ नारदजी को आया देख कर विष्णु ने बड़ी शीघ्रता से उठ कर उनका स्वागत-सत्कार किया। और सब कुछ जानते हुए भी नारद से गले लगाकर मिले ॥ ४२ ॥ विष्णु ने नारद को अपने आसन पर बैठाया। फिर शिव का स्मरण करते हुए काम पर विजय करने वाले नारद से बड़े विनय के साथ उन्होंने कहा ॥ ४३ ॥

विष्णु बोले—हे तात ! तुम कहाँ से आ रहे हो ? यहाँ आने का तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? हे मुनिशार्दूल ! तुम धन्य हो, तुम्हारे आने से मैं पवित्र हो गया ॥ ४४ ॥ विष्णु के वचन सुनते ही नारद गर्व से फूल उठे। उन्होंने बड़े अहङ्कार के साथ अपनी सारी घटना सुनायी ॥ ४५ ॥ मुनि की बात सुनते ही विष्णु शिव के चरण-कमलों का ध्यान कर उनके अहङ्कार का सारा कारण समझ गये ॥ ४६ ॥ तदनन्तर शिवात्मा परम शिवभक्त सुबुद्धिमान् विष्णु सिर झुका कर और हाथ जोड़ कर परमेश्वर सदा-शिव की स्तुति करने लगे ॥ ४७ ॥

विष्णु बोले—हे देवदेव ! हे महादेव ! हे परमेश्वर ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों। आप धन्य हैं और सर्वजगन्मोहिनी यह आप की माया भी धन्य है ॥ ४८ ॥ इत्यादि अनेक प्रकार से परमात्मा शिव की स्तुति कर शिव के चरण-कमलों का ध्यान कर और नेत्र बन्द करके मौन हो गये ॥ ४९ ॥ तदनन्तर विश्वपालक विष्णु ने, शिवजी जो करना चाहते हैं उसे जान लिया। फिर शिव की आज्ञा से वे मुनि-सत्तम नारद जी से बोले ॥ ५० ॥

भगवान् विष्णु बोले—हे मुनिशार्दूल ! हे उदारबुद्धे ! हे महातपस्वी मुनिराज ! आप धन्य हो। जिसमें कायिक, वाचिक, मानसिक भक्ति नहीं है उसी को कामादिक विकार सर्वदा सताते रहते हैं। आप

विकारास्तस्य सद्यो वै भवन्त्यखिलदुःखदाः । नैष्ठिको ब्रह्मचारी त्वं ज्ञानवैराग्यवान् सदा ॥५२॥
कथं कामविकारी स्या.जन्मना विकृतः सुधीः । इत्याद्युक्तं वचो भूरि श्रुत्वा स मुनिसत्तमः ॥५३॥
विजहास हृदा नत्वा प्रत्युवाच वचो हरिम् ।

नारद उवाच

किं प्रभावः स्मरः स्वामिन् ! कृपा यद्यस्ति ते मयि ॥५४॥
इत्युक्त्वा हरिमानम्य ययौ यादृच्छिको मुनिः ॥५५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने नारदतपोवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

(लक्ष्मी-स्वयंवर में वानर रूप से नारद का गमन और शिव गणों को शाप)

ऋषय ऊचुः

सूत सूत ! महाभाग ! व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते । अद्भुतेयं कथा तात ! वर्णिता कृपया हि नः ॥ १ ॥
मुनौ गते हरिस्तात किं चकार ततः परम् । नारदोऽपि गतः कुत्र तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां सूतः पौराणिकोत्तमः । प्रत्युवाच शिवं स्मृत्वा नानासूक्तिकरं बुधः ॥ ३ ॥

सूत उवाच

मुनौ यदृच्छया विष्णुर्गते तस्मिन् हि नारदे । शिवेच्छया चकाराशु मायां मायाविशारदः ॥ ४ ॥
मुनिमार्गस्य मध्ये तु विरेचे नगरं महत् । शतयोजनविस्तारमद्भुतं सुमनोहरम् ॥ ५ ॥
स्वलोकादधिकं रम्यं नानावस्तुविराजितम् । नरनारीविहाराढ्यं चतुर्वर्णाकुलं परम् ॥ ६ ॥

तो ज्ञान-वैराग्य से युक्त नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो ॥ ५१-५२ ॥ भला आप-जैसे ब्रह्मचारी को, जिसमें जन्म से आरम्भ कर आज तक कोई विकार उत्पन्न ही नहीं हुआ, उसे कामादिक विकार किस प्रकार उत्पन्न हो सकते हैं। इत्यादि अनेक प्रकार के प्रशंसा परक वचनों को कहा, जिसे सुनकर नारदजी परम प्रसन्न हो हँसने लगे । फिर उन्हें प्रणाम कर बोले ॥ ५३ ॥

नारद ने कहा—हे स्वामिन् ! यदि आप की कृपा मेरे ऊपर है तो यह क्षुद्र कामदेव मेरा क्या बिगाड़ सकता है ॥ ५४ ॥ ऐसा कहकर पुनः विष्णु को प्रणाम कर अपने यथेष्ट स्थान को चले गये ॥५५॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती'भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीया रुद्रसंहिता के प्रथमखण्ड-स्थित सृष्ट्युपाख्यान में नारदतपोवर्णन नामक द्वितीय अध्याय समाप्त ॥ २ ॥

*

ऋषि गणों ने कहा—हे सूतजी ! हे महाभाग ! हे व्यासशिष्य ! आप को प्रणाम है, जो आपने कृपा कर इस अद्भुत कथा का वर्णन किया ॥ १ ॥ हे तात ! मुनि के चले जाने पर फिर भगवान् ने क्या किया और देवर्षि नारद कहाँ गये, इन सभी बातों को आप हमसे कहिए ॥ २ ॥

व्यास जी बोले—उन ऋषियों की बात सुनकर पौराणिकोत्तम महाबुद्धिमान् सूतजी नाना प्रकार के सूक्त वचनों से शिव का स्मरण कर बोले ॥ ३ ॥

सूतजी ने कहा—इस प्रकार जब नारद जी अपने यथेच्छ स्थान को चले गये, तो माया-विशारद विष्णु ने शिव की इच्छा से माया की रचना की ॥ ४ ॥ उन्होंने जिस मार्ग से नारद जा रहे थे, उसी मार्ग के मध्य में एक परम सुन्दर नगर की रचना की, वह नगर सौ योजन के परिमाण का होने से अत्यन्त विशाल तथा अद्भुत था ॥५॥ वह नगर स्वर्ग लोक से भी अधिक रमणीय एवं नाना वस्तुओं से परिपूर्ण था । चारों

तत्र राजा शीलनिधिर्नामैश्वर्यसमन्वितः । सुतास्वयम्वरोद्युक्तो महोत्सवसमन्वितः ॥ ७ ॥
चतुर्दिग्भ्यः समायातैः संयुतं नृपनन्दनैः । नानावेषैः सुशोभैश्च तत्कन्यावरणोत्सुकैः ॥ ८ ॥
एतादृशं पुरं दृष्ट्वा मोहं प्राप्तोऽथ नारदः । कौतुकी तन्नृपद्वारं जगाम मदनैधितः ॥ ९ ॥
आगतं मुनिवर्यं तं दृष्ट्वा शीलनिधिर्नृपः । उपवेश्यार्चयाञ्चक्रे रत्नसिंहासने वरे ॥१०॥
अथ राजा स्वतनयां नामतः श्रीमतीं वराम् । समानीय नारदस्य पादयोः समपातयत् ॥११॥
तत्कन्यां प्रेक्ष्य स मुनिर्नारदः प्राह विस्मितः । केयं राजन् महाभागा कन्या सुरसुतोपमा ॥१२॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा प्राह कृताञ्जलिः । दुहितेयं मम मुने ! श्रीमती नाम नामतः ॥१३॥
प्रदानसमयं प्राप्ता वरमन्वेषती शुभम् । सा स्वयम्वरसम्प्राप्ता सर्वलक्षणलक्षिता ॥१४॥
अस्या भाग्यं वद मुने ! सर्वं जातकमादरात् । कीदृशं तनयेयं मे वरमाप्स्यति तद्वद ! ॥१५॥
इत्युक्तो मुनिशार्दूलस्तामिच्छुः कामविह्वलः । समाभाष्य स राजानं नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥१६॥
सुतेयं तव भूपाल ! सर्वलक्षणलक्षिता । महाभाग्यवती धन्या लक्ष्मीरिव गुणालया ॥१७॥
सर्वेश्वरोऽजितो वीरो गिरीशसदृशो विभुः । अस्याः पतिर्ध्रुवं भावी कामजित् सत्तमः ॥१८॥
इत्युक्त्वा नृपमामन्त्र्य ययौ यादृच्छिको मुनिः । बभूव कामविवशः शिवमायाविमोहितः ॥१९॥
चित्ते विचिन्त्य स मुनिराप्नुयां कथमेनकाम् । स्वयम्वरे नृपाणामेकं मां वृणुयात् कथम् ॥२०॥
सौन्दर्यं सर्वनारीणां प्रियं भवति सर्वथा । तद् दृष्ट्वैव प्रसन्ना सा स्ववशा नाऽत्र संशयः॥२१॥
विधायेत्थं विष्णुरूपं ग्रहीतुं मुनिसत्तमः । विष्णुलोकं जगामाशु नारदः स्मर विह्वलः ॥२२॥

वर्णों से युक्त एवं पुरुष तथा स्त्रियों के विहार करने योग्य था ॥ ६ ॥ उस नगर का राजा शीलनिधि था, जो परम ऐश्वर्यवान् था । जिसने उस समय अपनी कन्या के स्वयम्वर के लिए उस नगर में महान् उत्सव का आयोजन किया था ॥ ७ ॥ उस स्वयम्वर में कन्या के वरण की इच्छा से नाना देश तथा दिशाओं से अनेक वेशों में सुसज्जित अनेक राजा आये हुए थे ॥ ८ ॥ ऐसे नगर को देखते ही देवर्षि नारद मोहित हो गये । वे कामदेव से पीडित हो कौतुक देखने की इच्छा से राजा के पास गये ॥ ९ ॥ देवर्षि नारद को आया देख महाराज शीलनिधि ने उन्हें रत्नसिंहासन पर बैठा कर भली प्रकार से उनकी पूजा की ॥१०॥ तदनन्तर श्रीमती नाम की अपनी कन्या को बुलाकर देवर्षि नारद के चरणों में डाल दिया ॥ ११ ॥ उस कन्या को देखते ही देवर्षि नारद आश्चर्यचकित हो गये । फिर बोले—हे राजन् ! देवताओं के समान लावण्ययुक्त महाभाग्यशालिनी यह किसकी कन्या है ॥ १२ ॥

नारद की बात सुनकर शीलनिधि ने हाथ जोड़कर देवर्षि से कहा—हे मुने ! यह मेरी कन्या है, इसका नाम श्रीमती है ॥ १३ ॥ अब इसके विवाह का समय उपस्थित हुआ है, अतः सर्वलक्षणलक्षित यह कन्या अपने लिए वर ढूंढना चाहती है एतदर्थ यह स्वयम्वर रचा गया है ॥ १४ ॥ हे मुने ! इसके भाग्य को तथा जन्मस्थ जातक ग्रहों को आप कृपा पूर्वक कहिए । यह किस प्रकार के वर को प्राप्त करेगी ? इसे भी कहिए ॥ १५ ॥ शीलनिधि की बात सुनते ही काम से व्याकुल हुए नारद जी उसे प्राप्त करने की इच्छा से राजा से इस प्रकार कहने लगे—॥ १६ ॥ हे राजन् ! यह तुम्हारी कन्या सम्पूर्ण लक्षणों से परिपूर्ण महाभाग्यशालिनी, गुणालया लक्ष्मी के समान है ॥ १७ ॥ इसका पति सर्वेश्वर तथा महावीर एवं विजयी होगा । और काम को जीतने वाले देवताओं में श्रेष्ठ सदाशिव के समान होगा ॥ १८ ॥ ऐसा कहकर राजा से आज्ञा ले अपने स्थान को जाने के लिए उद्यत हो गये । किन्तु शिव की माया से मोहित होने के कारण काम के वशीभूत हो चित्त में विचार करने लगे कि मैं इस कन्या को किस प्रकार प्राप्त करूँ । इस स्वयम्वर में आये हुए राजाओं के मध्य यह अकेले केवल मुझे किस प्रकार वरण करेगी ॥ १९-२० ॥ स्त्रियों को प्रायः सुन्दरता बड़ी प्रिय होती है, मैं कौन सा ऐसा उपाय करूँ जिससे यह मुझे देखते ही प्रसन्न होकर मेरे वशीभूत हो मेरा वरण करे ॥२१॥ फिर तो काम के वशीभूत हो मुनिसत्तम नारदजी विष्णु का

प्रणिपत्य हृषीकेशं वाक्यमेतदुवाच ह । रहसि त्वां प्रवक्ष्यामि स्ववृत्तान्तमशेषतः ॥२३॥
तथेत्युक्ते तथाभूते शिवेच्छाकार्यकर्तरि । ब्रूहीत्युक्तवति श्रीशे मुनिराह च केशवम् ॥२४॥

नारद उवाच

त्वदीयो भूपतिः शीलनिधिः स वृषतत्परः । तस्य कन्या विशालाक्षी श्रीमती वरवर्णिनी ॥२५॥
जगन्मोहिन्यभिख्याता त्रैलोक्येऽप्यतिसुन्दरी । परिणेतुमहं विष्णो तामिच्छाम्यद्य मा चिरम् ॥२६॥
स्वयम्वरं चकाराऽसौ भूपतिस्तनयेच्छया । चतुर्दिग्भ्यः समायाता राजपुत्राः सहस्रशः ॥२७॥
यदि दास्यसि रूपं मे तदा तां प्राप्नुयां ध्रुवम् । त्वद्रूपं सा विना कण्ठे जयमालां न धास्यति ॥२८॥
स्वरूपं देहि मे नाथ ! सेवकोऽहं प्रियस्तव । वृणुयान्मां यथा सा वै श्रीमती क्षितिपात्मजा ॥२९॥

सूत उवाच

वचः श्रुत्वा मुनेरित्थं विहस्य मधुसूदनः । शाङ्करीं प्रभुतां बुद्ध्वा प्रत्युवाच दयापरः ॥३०॥

विष्णुरुवाच

स्वेष्टदेशं मुने ! गच्छ करिष्यामि हितं तव । भिषग्वरो यथार्त्तस्य यतः प्रियतरोऽसि मे ॥३१॥
इत्युक्त्वा मुनये तस्मै ददौ विष्णुर्मुखं हरेः । स्वरूपमनुगृह्याऽस्य तिरोधानं जगाम सः ॥३२॥
एवमुक्तो मुनिर्हृष्टः स्वरूपं प्राप्य वै हरेः । मेने कृतार्थमात्मानं तद्यत्नं न बुबोध सः ॥३३॥
अथ तत्र गतः शीघ्रं नारदो मुनिसत्तमः । चक्रे स्वयम्वरं यत्र राजपुत्रैः समाकुलम् ॥३४॥
स्वयम्वरसभा दिव्या राजपुत्रसमावृता । शुशुभेऽतीव विप्रेन्द्रा यथा शक्रसभाऽपरा ॥३५॥

रूप ग्रहण करने के लिए शीघ्र ही विष्णुलोक चले गये ॥२२॥ और भगवान् हृषीकेश को प्रणाम कर ऐसा कहने लगे—हे नाथ ! मैं एकान्त में आप से अपना सारा वृत्तान्त कहना चाहता हूँ ॥ २३ ॥ फिर विष्णु ने 'तथास्तु' कहा और सर्वथा एकान्त में ले जाकर शिवेच्छा से कार्य करने के लिए देवर्षि नारद से कहा—अब आप जो कहना चाहते हैं उसे कहिए। तब मुनि ने विष्णु से कहा ॥ २४ ॥

नारदजी बोले—शीलनिधि राजा आप का परमभक्त एवं महाधार्मिक है। उसकी कन्या विशालाक्षी जिसका नाम श्रीमती है, इस समय स्वयम्वर में वरवरण करना चाहती है ॥ २५ ॥ वह इस त्रिलोकी में सर्वातिशय सौन्दर्य युक्त एवं जगत् को मोहने में समर्थ है। हे विष्णो ! मैं आज शीघ्र ही उसके वरण करने की इच्छा से आप के पास आया हूँ ॥२६॥ वह राजा अपनी कन्या के इच्छानुसार स्वयम्वर कर रहा है, जिसमें चारों दिशाओं से हजारों राजपुत्र आये हुए हैं ॥२७॥ यदि आप मुझे अपना रूप दे दें तो मैं उसे अवश्य प्राप्त कर लूँगा। आप के रूप को पाये विना वह मेरे कण्ठ में जयमाला न पहनायेगी ॥ २८ ॥ अतः हे नाथ ! आप मुझे अपना स्वरूप दीजिए। क्योंकि मैं आप का सेवक हूँ, आप का स्वरूप प्राप्त हो जाने पर अवश्य ही राजकुमारी श्रीमती मेरा वरण करेगी ॥ २९ ॥

सूत जी बोले—नारद जी की बात सुनकर शङ्कर की माया का प्रभाव जान कर दया करते हुए हँस कर श्री नारायण बोले ॥ ३० ॥

विष्णु बोले—हे मुनिराज ! अब आप अपने गन्तव्य स्थान को जाइए, जिस प्रकार श्रेष्ठ चिकित्सक रोगी का हित करता है उसी प्रकार मैं भी तुम्हारी भलाई करूँगा। क्योंकि तुम मेरे परम प्रिय भक्त हो ॥ ३१ ॥ ऐसा कह कर विष्णु ने नारद को बन्दर का मुख दे दिया। और स्वयं अपना स्वरूप धारण कर नारद के दृष्टि से अन्तर्धान हो गये ॥ ३२ ॥ विष्णु के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर देवर्षि नारद बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने विष्णु के रूप की प्राप्ति से अपने को कृतार्थ समझा। किन्तु विष्णु के प्रयत्न (चालाकी) को वे समझ न सके ॥ ३३ ॥ फिर तो देवर्षि नारद अनेक राजपुत्रों से युक्त उस स्वयम्वर भूमि में बड़ी शीघ्रता से पहुँच गये ॥ ३४ ॥ उस समय नाना देशों से आये हुए राजपुत्रों के कारण वह

तस्यां नृपसभायां वै नारदः समुपाविशत् । स्थित्वा तत्र विचिन्त्येति प्रीतियुक्तेन चेतसा ॥३६॥
मां वरिष्यति नाऽन्यं सा विष्णुरूपधरं ध्रुवम् । आननस्य कुरूपत्वं न वेद मुनिसत्तमः ॥३७॥
पूर्वरूपं मुनिं सर्वे ददृशुस्तत्र मानवाः । तद्भेदं बुबुधुस्ते न राजपुत्रादयो द्विजाः ॥३८॥
तत्र रुद्रगणौ द्वौ तद्रक्षणार्थं समागतौ । विप्ररूपधरौ गूढौ तद्भेदं जज्ञतुः परम् ॥३९॥
मूढं मत्वा मुनिं तौ तन्निकटं जग्मतुर्गणौ । कुरुतस्तत्प्रहासं वै भाषमाणौ परस्परम् ॥४०॥
पश्य नारद ! रूपं हि विष्णोरिव महोत्तमम् । मुखं तु वानरस्येव विकटं च भयङ्करम् ॥४१॥
इच्छत्ययं नृपसुतां वृथैव स्मरमोहितः । इत्युक्त्वा सच्छलं वाक्यमुपहासं प्रचक्रतुः ॥४२॥
न शुश्राव यथार्थं तु तद्वाक्यं स्मरविह्वलः । पर्यैक्षच्छ्रीमतीं तां वै तल्लिप्सुर्मोहितो मुनिः ॥४३॥
एतस्मिन्नन्तरे भूपकन्या चान्तःपुरात्तु सा । स्त्रीभिः समावृता तत्राजगाम वरवर्णिनी ॥४४॥
मालां हिरण्मयीं रम्यामादाय शुभलक्षणा । तत्र स्वयम्वरे रेजे स्थिता मध्ये रमेव सा ॥४५॥
बभ्राम सा सभां सर्वां मालामादाय सुव्रता । वरमन्वेषती तत्र स्वात्माभीष्टं नृपात्मजा ॥४६॥
वानरास्यं विष्णुतनुं मुनिं दृष्ट्वा चुकोप सा । दृष्टिं निवार्य च ततः प्रस्थिता प्रीतमानसा ॥४७॥
न दृष्ट्वा स्ववरं तत्र त्रस्तासीन्मनसेप्सितम् । अन्तःसभा स्थिता कस्मिन्नर्पयामास न स्रजम् ॥४८॥
एतस्मिन्नन्तरे विष्णुराजगाम नृपाकृतिः । न दृष्टः कैश्चिदपरैः केवलं सा ददर्श हि ॥४९॥

स्वयम्वर सभा इन्द्र की दूसरी सभा के समान जान पड़ती थी ॥ ३५ ॥ निश्चय ही वह राजकुमारी विष्णु रूपधारी मुझे अवश्य वरण करेगी। ऐसा विचार करते हुए देवर्षि नारद बड़ी प्रसन्नता के साथ उस राजसभा में जाकर बैठ गये, किन्तु उन्हें अपनी कुरूपता का ज्ञान नहीं रहा ॥ ३६-३७ ॥ सभी मनुष्य उन्हें नारद के रूप में ही जान रहे थे। राजपुत्रों को भी इस बात का ज्ञान नहीं था ॥ ३८ ॥ किन्तु दो रुद्र गण जो इस भेद को जानते थे, वे गुप्त रूप से ब्राह्मण का वेष बना कर नारद की रक्षा के लिए उस सभा में गये हुए थे ॥ ३९ ॥ वे मुनि को मूढ समझ कर उनके निकट बैठ कर आपस में बात-चीत करते हुए नारद का परिहास करने लगे ॥ ४० ॥

एक रुद्र गण ने दूसरे से कहा—अरे भाई ! नारद के रूप को देखो, ये विष्णु के समान कैसे सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं, किंतु इनका मुख तो वानर के समान विकट तथा महाभयङ्कर है ॥ ४१ ॥ ये तो व्यर्थ ही काम से मोहित हो राजपुत्री की अभिलाषा कर रहे हैं। भला राजकुमारी इनका वरण किस प्रकार करेगी। इस प्रकार छलयुक्त बातें करते हुए दोनों रुद्रगण नारद की हँसी करने लगे ॥ ४२ ॥ उस समय नारद मुनि उनकी यथार्थ बात पर ध्यान नहीं दे रहे थे, क्योंकि वे काम के बाणों से मोहित हो रहे थे। और मोह से व्याकुल हो केवल राजपुत्री श्रीमती की ओर बारम्बार देख रहे थे ॥ ४३ ॥ इसी समय अनेक स्त्रियों के साथ राजकुमारी श्रीमती वर-वरण के लिए अन्तःपुर से निकली ॥ ४४ ॥ वह सुन्दर लक्षणों से युक्त थी और हाथ में सोने की जयमाला धारण किये हुए थी। स्वयम्वर के मध्य में स्थित हुई वह महालक्ष्मी के समान शोभा पा रही थी ॥ ४५ ॥ वह राजकन्या हाथ में जयमाला लिये हुए अपने अनुरूप वर को खोजती हुई सभा के मध्य में घूमने लगी ॥ ४६ ॥ उसे विष्णुरूप कपिमुख नारद को देखते ही बड़ा क्रोध उत्पन्न हो रहा था, इस लिए भूल से भी उधर न देख कर वह प्रसन्नता से दूसरी ओर चली गयी ॥ ४७ ॥ जब उस स्वयम्वर में उसे अपने अनुकूल कोई वर नहीं दिखाई पड़ा तब वह भयभीत हो उठी। उसने सभा में बैठे हुए किसी भी पुरुष के गले में जयमाला नहीं डाली ॥ ४८ ॥ उसी समय

अथ सा तं समालोक्य प्रसन्नवदनाम्बुजा । अर्पयामास तत्कण्ठे तां मालां वरवर्णिनी ॥५०॥
तामादाय ततो विष्णू राजरूपधरः प्रभुः । अन्तर्धानमगात् सद्यः स्वस्थानं प्रययौ किल ॥५१॥
सर्वे राजकुमाराश्च निराशाः श्रीमतीं प्रति । मुनिस्तु विह्वलोऽतीव बभूव मदनातुरः ॥५२॥
तदा तावूचतुः सद्यो नारदं स्मरविह्वलम् । विप्ररूपधरौ रुद्रगणौ ज्ञानविशारदौ ॥५३॥

गणावूचतुः

हे नारद मुने ! त्वं हि वृथा मदनमोहितः । तल्लिप्सुः स्वमुखं पश्य वानरस्येव गर्हितम् ॥५४॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य तयोर्वाक्यं नारदो विस्मितोऽभवत् । मुखं ददर्श मुकुरे शिवमायाविमोहितः ॥५५॥
स्वमुखं वानरस्येव दृष्ट्वा चुक्रोध सत्वरम् । शापं ददौ तयोस्तत्र गणयोर्मोहितो मुनिः ॥५६॥
युवां ममोपहासं वै चक्रतुर्ब्राह्मणस्य हि । भवेतां राक्षसौ विप्रवीर्यजौ वै तदाकृती ॥५७॥
श्रुत्वा हरगणावित्थं स्वशापं ज्ञानिसत्तमौ । न किञ्चिदूचतुस्तौ हि मुनिमाज्ञाय मोहितम् ॥५८॥
स्वस्थानं जग्मतुर्विप्रा उदासीनौ शिवस्तुतिम् । चक्रतुर्मन्यमानौ वै शिवेच्छा सकलां सदा ॥५९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्टयुपाख्याने
नारदमोहवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

विष्णु राजा का रूप धारण कर वहाँ पहुँच गये। उन्हें उस रूप में राजकन्या के अतिरिक्त और किसी ने नहीं देखा ॥ ४९ ॥ उन्हें देखते ही राजकुमारी के मुखकमल खिल उठे। और अपनी जयमाला उनके कण्ठ में डाल दी ॥ ५० ॥ राजा का रूप धारण करने वाले महाप्रभु विष्णु भी उस कन्या को लेकर तत्क्षण अन्तर्धान होकर अपने स्थान को चले आये ॥५१॥ फिर तो सभी राजकुमार राजकुमारी की प्राप्ति के प्रति हताश हो गये। और नारदजी अत्यन्त कामातुर हो व्याकुल हो उठे ॥ ५२ ॥ उसी समय ब्राह्मण रूपधारी ज्ञान-विशारद दोनों रुद्रगण कामातुर हुए नारद जी से कहने लगे ॥ ५३ ॥

रुद्रगण बोले—देवर्षि नारद ! आप व्यर्थ हीं काम से मोहित होकर राजकुमारी को प्राप्त करने की इच्छा कर रहे हैं। भला आप अपने वानर के समान परम निन्दनीय मुख की ओर तो देखिए ॥५४॥

सूतजी बोले—रुद्रगणों की बात सुनते ही नारद को बड़ा आश्चर्य हुआ। शिवमाया से मोहित हुए उन्होंने तत्काल ही दर्पण में जाकर अपना मुख देखा ॥ ५५ ॥ वानर के समान अपना मुख देख कर उन्हें बड़ा क्रोध हुआ। फिर तो मोहवश उन्होंने उन गणों को शाप दिया ॥ ५६ ॥ तुम दोनों ने मुझ ब्राह्मण का बहुत उपहास किया। अतः ब्राह्मण के वीर्य से उत्पन्न होकर भी तुम लोग राक्षस रूप धारण करो ॥५७॥

ज्ञानियों में श्रेष्ठ रुद्रगण मोहित हुए मुनि के शाप को सुनकर कुछ भी न बोले। और उनसे आज्ञा लेकर अपने स्थान को लौट आये। उन्होंने यह सब शिवजी की इच्छा है, यही समझा। फिर वे उदासीन हो निर्लिप्त भाव से शिव की स्तुति करने लगे ॥ ५८-५९ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीया रुद्रसंहिता के प्रथम खण्डात्मक सृष्टिखण्ड में नारदमोहवर्णन नामक तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

*

चतुर्थोऽध्यायः

(नारद का वैकुण्ठ गमन एवं विष्णु को शाप प्रदान 'यह सब कृत्य शङ्कर का ही है' इस प्रकार कहकर विष्णु का अन्तर्धान होना)

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाप्राज्ञ ! वर्णिता ह्यद्भुता कथा । धन्या तु शाम्भवी माया तदधीनं चराऽचरम् ॥ १ ॥
गतयोर्गणयोः शम्भोः स्वयमात्मेच्छया विभोः । किं चकार मुनिः क्रुद्धो नारदः स्मरविह्वलः ॥ २ ॥

सूत उवाच

विमोहितो मुनिर्दत्त्वा तयोः शापं यथोचितम् । जले मुखं निरीक्ष्याऽथ स्वरूपं गिरिशेच्छया ॥ ३ ॥
शिवेच्छया न प्रबुद्धः स्मृत्वा हरिकृतच्छलम् । क्रोधं दुर्विषहं कृत्वा विष्णुलोकं जगाम ह ॥ ४ ॥
उवाच वचनं क्रुद्धः समिद्ध इव पावकः । दुरुक्तिगर्भितं व्यङ्गं नष्टज्ञानः शिवेच्छया ॥ ५ ॥

नारद उवाच

हे हरे ! त्वं महादुष्टः कपटी विश्वमोहनः । परोत्साहं न सहसे मायावी मलिनाशयः ॥ ६ ॥
मोहनीरूपमादाय कपटं कृतवान् पुरा । असुरेभ्योऽपाययस्त्वं वारुणीममृतं न हि ॥ ७ ॥
चेत् पिबेन्न विषं रुद्रो दयां कृत्वा महेश्वरः । भवेन्नष्टाऽखिला माया तव व्याजरते हरे ॥ ८ ॥
गतिः सकपटा तेऽतिप्रिया विष्णो विशेषतः । साधुस्वभावो न भवान् स्वतन्त्रः प्रभुणा कृतः ॥ ९ ॥
कृतं समुचितं नैव शिवेन परमात्मना । तत्प्रभावबलं ध्यात्वा स्वतन्त्रकृतिकारकः ॥१०॥
त्वद्गतिं सुसमाज्ञाय पश्चात्तापमवाप सः । विप्रं सर्वोपरि प्राह स्वोक्तवेदप्रमाणकृत् ॥११॥
तज्ज्ञात्वाऽहं हरे त्वाद्य शिक्षयिष्यामि तद्बलात् । यथा न कुर्याः कुत्रापीदृशं कर्म कदाचन ॥१२॥

ऋषि गण बोले—हे महाप्राज्ञ, हे सूत जी ! आपने अत्यन्त अद्भुत कथा का वर्णन किया है, यह शिव की माया धन्य है जिसके वश में चराचर जगत् है ॥ १ ॥ अब आप मुझे बताइए कि भगवान् शङ्कर के वे दोनों गण जब अपनी इच्छा से अन्यत्र चले गये तब काम-विह्वल और क्रुद्ध हुए देवर्षि नारद ने क्या किया ॥ २ ॥

सूत जी बोले—मोहित मुनि शिव जी की इच्छा से उन दोनों रुद्रगणों को यथोचित शाप देने के उपरान्त जब अपना मुख तथा पूर्ण स्वरूप जल में देखा ॥ ३ ॥ तब भी उन्हें शिवेच्छा से ज्ञान नहीं हुआ, उन्होंने यही समझा कि विष्णु ने हमारे साथ छल किया है, ऐसा जानकर वे असह्य क्रोध किये हुए तत्क्षण विष्णुलोक को चले गये ॥ ४ ॥ और जलती हुई अग्नि के समान विष्णु से अत्यन्त अप्रिय तीखे शब्दों से कहने लगे । उस समय उनका सारा ज्ञान शिवेच्छा से नष्ट हो चुका था ॥ ५ ॥

नारद बोले—हे विष्णो ! तुम महाकपटी एवं दुष्ट हो, तुम मीठी-मीठी बातें बनाकर संसार को ठगा करते हो । तुम्हारा अन्तःकरण महामलीन है, तुम माया करने में बड़े चतुर हो, दूसरे का उत्कर्ष तुम्हें सहन नहीं होता ॥ ६ ॥ तुमने पहले भी मोहिनी रूप धारण कर असुरों को अमृत न देकर उन्हें वारुणी ही पिलाया ॥ ७ ॥ यदि भगवान् शंकर दया कर विषपान न करते तो निरन्तर कपट में लगे रहने वाली तुम्हारी सारी माया उसी समय नष्ट हो जाती ॥८॥ हे विष्णो ! तुम्हें यह कपटभरी चाल अत्यन्त प्रिय है । तुम्हारा स्वभाव अच्छा नहीं है, तुम्हें सर्वथा स्वतन्त्र बना कर भगवान् सदाशिव ने अच्छा नहीं किया ॥९॥ अब तुम्हें स्वतन्त्र बना कर वे परमात्मा सदाशिव तुम्हारे प्रभाव तथा बल एवं चाल को सोच-सोच कर पछता रहे हैं । उन्होंने स्वनिर्मित वेद के प्रमाण के आधार पर ब्राह्मण को सर्वोपरि कहा है ॥१०-११॥ आज मैं यही सोचकर उस ब्राह्मणत्व के बल से तुम्हें उचित शिक्षा दूँगा । जिससे तुम कहीं पर भी ऐसा

अद्यापि निर्भयस्त्वं हि सङ्गं नाप्तस्तरस्विना । इदानीं लप्स्यसे विष्णो ! फलं स्वकृतकर्मणः ॥१३॥
इत्थमुक्त्वा हरिं सोऽथ मुनिर्मायाविमोहितः । शशाप क्रोधनिर्विण्णो ब्रह्मतेजः प्रदर्शयन् ॥१४॥
स्त्रीकृते व्याकुलं विष्णो मामकार्षीर्विमोहकः । अन्वकार्षीः स्वरूपेण येन कापट्यकार्यकृत् ॥१५॥
तद्रूपेण मनुष्यस्त्वं भव तद्-दुःखभुग्घरे । यन्मुखं कृतवान् मे त्वं ते भवन्तु सहायिनः ॥१६॥
त्वं स्त्रीवियोगजं दुःखं लभस्व परदुःखदः । मनुष्यगतिकः प्रायो भवाज्ञानविमोहितः ॥१७॥
इति शप्त्वा हरिं मोहान् नारदोऽज्ञानमोहितः । विष्णुर्जग्राह तं शापं प्रशंसन् शाम्भवीमजाम् ॥१८॥
अथ शम्भुर्महालीलो निश्चकर्ष विमोहिनीम् । स्वमायां मोहितो ज्ञानी नारदोऽप्यसवद्यया ॥१९॥
अन्तर्हितायां मायायां पूर्ववन्मतिमानभूत् । नारदो विस्मितमनाः प्राप्तबोधो निराकुलः ॥२०॥
पश्चात्तापमवाप्याति निनिन्द स्वं मुहुर्मुहुः । प्रशशंस तदा मायां शाम्भवीं ज्ञानिमोहिनीम् ॥२१॥
अथ ज्ञात्वा मुनिः सर्वं मायाविभ्रममात्मनः । अपतत् पादयोर्विष्णोर्नारदो वैष्णवोत्तमः ॥२२॥
हर्य्युपस्थापितः प्राह वचनं नष्टदुर्मतिः । मया दुरुक्तयः प्रोक्ता मोहितेन कुबुद्धिना ॥२३॥
दत्तः शापोऽपि ते नाथ वितथं कुरु तं प्रभो ! । महत्पापमकार्षं हि यास्यामि निरयं ध्रुवम् ॥२४॥
कमुपायं हरे कुर्यां दासोऽहं ते तमादिश । येन पापकुलं नश्येन् निरयो न भवेन्मम ॥२५॥
इत्युक्त्वा स पुनर्विष्णोः पादयोर्मुनिसत्तमः । पपात सुमतिर्भक्त्या पाश्चात्तापमुपागतः ॥२६॥
अथ विष्णुस्तमुत्थाप्य बभाषे सूनृतं वचः ।

विष्णुरुवाच

न खेदं कुरु मे भक्त ! वरस्त्वं नाऽत्र संशयः ॥२७॥

कोई कार्य पुनः न करो ॥ १२ ॥ तुम्हारा किसी तेजस्वी से आज तक पाला नहीं पड़ा है, जिससे अब तक निर्भय विचर रहे हो किन्तु अब तुम्हें अपने किये हुए कार्य का फल प्राप्त होगा ॥ १३ ॥

इस प्रकार माया से मोहित हुए मुनि ने विष्णु से ऐसा कह कर अपना ब्रह्मतेज प्रकट करते हुए आपे से बाहर हो कर विष्णु को शाप दिया ॥ १४ ॥ हे विष्णो ! तुमने हमें स्त्री के लिए व्याकुल तथा मोहित किया है, एवं कपट से जिस मनुष्य का रूप धारण कर मुझे स्वरूप-वंचित किया है ॥ १५ ॥ हे विष्णो ! तुम उसी मनुष्य का स्वरूप धारण कर दुःख भोगो । और तुमने जैसा मेरा मुख किया है, उसी मुखवाले तुम्हारी सहायता करेंगे ॥ १६ ॥ स्त्री के लिए दूसरों को दुःख देनेवाले तुम विष्णु भी मनुष्य रूप धारण कर स्त्री से अलग रह कर स्त्रीवियोग का दुःख सहन करो । और अज्ञान से मोहित हो तुम भी मनुष्य जैसी चेष्टा का आचरण करो ॥१७॥ जब अज्ञान से मोहित देवर्षि नारद ने इस प्रकार विष्णु को शाप दिया । तब विष्णु ने भी शिवमाया की प्रशंसा करते हुए उस शाप को शिर से स्वीकार कर लिया ॥ १८ ॥ तदनन्तर जिस माया से ज्ञानी नारद मोहित हो गये थे, उस विश्वमोहिनी अपनी माया को महान् लीला करने वाले शिव जी ने नारद के ऊपर से खींच लिया ॥ १९ ॥ शिव की माया के हट जाने पर नारद जी पहले की तरह धैर्यवान् तथा ज्ञानी एवं बुद्धिमान हो गये । और उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ २० ॥ वे अब पश्चात्ताप करते हुए अपनी वारम्बार निन्दा करने लगे । और ज्ञानियों के चित्त को मोहने वाली शिव-माया की प्रशंसा करने लगे ॥ २१ ॥ फिर तो यह सब माया का प्रभाव जान कर वैष्णवाग्रणी देवर्षि नारद विष्णु भगवान् के चरणों में गिर पड़े ॥ २२ ॥ भगवान् ने उन्हें अपने चरणों पर से उठा लिया ।

नारद बोले—हे विष्णो ! मेरी बुद्धि नष्ट हो गयी थी, मैंने मोहवश बुद्धि के नष्ट हो जाने से आप को बहुत दुर्वचन कहा ॥ २३ ॥ हे नाथ ! क्रोध से जो शाप मैंने आपको दिया है, उसे आप मिथ्या कर दीजिए । हे प्रभो ! मैंने महान् पाप किया है, जिससे निश्चय ही नरक जाऊँगा ॥ २४ ॥ हे प्रभो ! मैं तो आप का दास हूँ, आप ही बताइए, इस पाप से बचने के लिए मैं कौन-सा उपाय करूँ ? ॥२५॥ ऐसा कह कर वे श्रेष्ठ मुनि पुनः विष्णु के चरणों में गिर पड़े । वे महाज्ञानी नारद उस समय अत्यन्त पश्चात्ताप कर रहे थे ॥ २६ ॥ तदनन्तर विष्णु नारद को अपने चरणों से उठा कर सुन्दर एवं सत्य वचन बोले ।

शृणु तात ! प्रवक्ष्यामि सुहितं तव निश्चयात् । निरयस्ते न भविता शिवः शं ते विधास्यति ॥२८॥
यदकार्षीः शिववचो वितथं मदमोहितः । स दत्तवानीदृशं ते फलं कर्मफलप्रदः ॥२९॥
शिवेच्छयाऽखिलं जातं कुर्वित्थं निश्चितां मतिम् । गर्वापहर्ता स स्वामी शङ्करः परमेश्वरः ॥३०॥
परं ब्रह्म परात्मा स सच्चिदानन्दबोधनः । निर्गुणो निर्विकारो च रजः सत्त्वतमः परः ॥३१॥
स एवमादाय मायां स्वां त्रिधा भवति रूपतः । ब्रह्म-विष्णु-महेशात्मा निर्गुणोऽनिर्गुणोऽपि सः ॥३२॥
निर्गुणत्वे शिवाह्वो हि परमात्मा महेश्वरः । परं ब्रह्माव्ययोऽनन्तो महादेवेति गीयते ॥३३॥
तत्सेवया विधिः स्रष्टा पालको जगतामहम् । स्वयं सर्वस्य संहारी रुद्ररूपेण सर्वदा ॥३४॥
साक्षी शिवरूपेण मायाभिन्नः स निर्गुणः । स्वेच्छाचारी संविहारी भक्तानुग्रहकारकः ॥३५॥
शृणु त्वं नारद मुने ! सदुपायं सुखप्रदम् । सर्वपापापहर्त्तारं भुक्तिमुक्तिप्रदं सदा ॥३६॥
त्यक्त्वा स्वसंशयं सर्वं गायन् शङ्करसद्यशः । शतनामशिवस्तोत्रं सदाऽनन्यमतिर्जप ॥३७॥
यज्जपित्वा द्रुतं सर्वं तव पापं विनश्यति । इत्युक्त्वा नारदं विष्णुः पुनः प्राह दयान्वितः ॥३८॥
मुने ! न कुरु शोकं त्वं त्वया किञ्चित् कृतं न हि । स्वेच्छया कृतवान् शम्भुरिदं सर्वं न संशयः ॥३९॥
अहार्षीत् त्वन्मतिं दिव्यां कामक्लेशमदात् स ते । त्वन्मुखाद् दापयाञ्चक्रे शापं मे स महेश्वरः ॥४०॥
इत्थं स्वचरितं लोके प्रकटीकृतवान् स्वयम् । मृत्युञ्जयः कालकालो भक्तोद्धारपरायणः ॥४१॥
न मे शिवसमानोऽस्ति प्रियः स्वामी सुखप्रदः । सर्वशक्तिप्रदो मेऽस्ति स एव परमेश्वरः ॥४२॥

भगवान् विष्णु बोले—हे नारद ! तुम खेद मत करो। तुम मेरे श्रेष्ठ भक्त हो, इसमें सन्देह नहीं ॥ २७ ॥ हे तात ! सुनो, मैं निश्चित रूप से तुम्हारे हित की बात कहता हूँ। तुम्हें नरक नहीं होगा। भगवान् शिव निश्चय ही तुम्हारा कल्याण करेंगे ॥ २८ ॥ तुमने अहंकार से मोहित होने के कारण उस समय शिवजी की बात नहीं मानी, इसी कारण कर्म का फल देनेवाले शिव जी ने तुमको ऐसा फल दिया है ॥ २९ ॥ यह सब कुछ शिव जी की इच्छा से ही हुआ है। वही परमेश्वर सदाशिव सबके गर्व को हरण करने वाले हैं ऐसा निश्चित रूप से समझ लो ॥ ३० ॥ वे ही परब्रह्म परमात्मा तथा सच्चिदानन्द हैं, निर्गुण तथा निर्विकार हैं और सत्त्व, रज एवं तमोगुण से परे हैं ॥३१॥ वे अपनी माया के कारण रूप-भेद से ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रस्वरूप धारण करते हैं। वे निर्गुण तथा सगुण दोनों रूपवाले हैं ॥ ३२ ॥ निर्गुण होने पर उन्हीं को शिव, परमात्मा, महेश्वर, परब्रह्म, अव्यय, अनन्त एवं महादेव कहा जाता है ॥ ३३ ॥ उनकी सेवा के कारण ब्रह्मा इस जगत् के स्रष्टा तथा मैं विश्व का पालक हूँ। किं बहुना, रुद्र भी उन्हीं की सेवा से सबका संहार करते हैं ॥ ३४ ॥ वे शिव रूप से सबके साक्षी, माया से भिन्न एवं निर्गुण हैं। वे अपनी इच्छा से चलने वाले, स्वतन्त्र रूप से विहार करने वाले एवं भक्तों पर अनुग्रह करने वाले हैं ॥ ३५ ॥ हे नारद ! अब तुम परम सुखदायी एवं श्रेष्ठ उपाय सुनो। यह उपाय सभी पापों को नष्ट करने वाला तथा भोग एवं मोक्ष को देने वाला है ॥ ३६ ॥ अपने सभी संशयों को छोड़ कर शिव जी के श्रेष्ठ यश का गान करो। और एक मन से समाहित चित्त होकर 'शिवशतनाम स्तोत्र' का जप करो ॥ ३७ ॥ इस शिवशतनाम स्तोत्र का जप करने से तुम्हारे सभी पाप नष्ट हो जायेंगे। इस प्रकार कहने के बाद दयालु विष्णु पुनः नारद से दयायुक्त हो कहने लगे ॥ ३८ ॥

हे मुने ! तुम शोक मत करो, तुमने कुछ भी नहीं किया है, यह सब कुछ शिवजी ने अपनी इच्छा से किया है, इसमें संशय नहीं ॥ ३९ ॥ उन्होंने ही तुम्हारी दिव्य मति का अपहरण कर तुम्हें कामक्लेश दिया है, और उन्होंने ही तुम्हारे मुख से इस प्रकार का शाप मुझे दिलाया है ॥ ४० ॥ इस तरह लोक में उन्होंने अपना स्वयं चरित्र प्रकट किया है, वे तो मृत्यु को जीतने वाले, काल के भी काल एवं भक्तों के ऊपर कृपा करने वाले हैं ॥ ४१ ॥ शिव के समान सुख देने वाला मेरा कोई अन्य स्वामी नहीं है। वे मुझे

तस्योपास्यां कुरु मुने ! तमेव सततं भज । तद्यशः शृणु गाय त्वं कुरु नित्यं तदर्चनम् ॥४३॥
कायेन मनसा वाचा यः शङ्करमुपैति भोः । स पण्डित इति ज्ञेयः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥४४॥
शिवेति नामदावाग्नेर्महापातकपर्वताः । भस्मीभवन्त्यनायासात् सत्यं सत्यं न संशयः ॥४५॥
पापमूलानि दुःखानि विविधान्यपि तान्यतः । शिवार्चनैकनश्यानि नाऽन्यनश्यानि सर्वथा॥४६॥
स वैदिकः स पुण्यात्मा स धन्यः स बुधो मुने ! । यः सदा काय-वाक्-चित्तैः शरणं याति शङ्करम्॥४७॥
भवन्ति विविधा धर्मा येषां सद्यः फलोन्मुखाः । तेषां भवति विश्वासस्त्रिपुरान्तकपूजने ॥४८॥
पातकानि विनश्यन्ति यावन्ति शिवपूजया । भुवि तावन्ति पापानि न सन्त्येव महामुने ! ॥४९॥
ब्रह्महत्यादिपापानां राशयोऽप्यमिता मुने ! । शिवस्मृत्या विनश्यन्ति सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥५०॥
शिवनामतरीं प्राप्य संसाराब्धिं तरन्ति ते । संसारमूलपापानि तस्य नश्यन्त्यसंशयम् ॥५१॥
संसारमूलभूतानां पातकानां महामुने ! । शिवनामकुठारेण विनाशो जायते ध्रुवम् ॥५२॥
शिवनामामृतं पेयं पापदावानलार्दितैः । पापदावाग्नितप्तानां शान्तिस्तेन विना न हि ॥५३॥
शिवेति नामपीयूष-वर्षधारा-परिप्लुताः । संसारदवमध्येऽपि न शोचन्ति न संशयः ॥५४॥
न भक्तिः शङ्करे पुंसां रागद्वेषरतात्मनाम् । तद्विधानां हि सहसा मुक्तिर्भवति सर्वथा ॥५५॥
अनन्तजन्मभिर्येन तपस्तप्तं भविष्यति । तस्यैव भक्तिर्भवति भवानीप्राणवल्लभे ॥५६॥

अत्यन्त प्रिय हैं, वही परमेश्वर मुझे सारी शक्ति प्रदान करते हैं ॥ ४२ ॥ हे मुने ! तुम उन्हीं की उपासना करो, निरन्तर उन्हीं का भजन करो, उन्हीं का यश सुनो तथा निरन्तर गान करो एवं नित्य उन्हीं की अर्चना करो ॥ ४३ ॥

जो शरीर, मन एवं वाणी से शिव को प्राप्त करता है वही पण्डित है तथा उसी को जीवन्मुक्त समझना चाहिए ॥ ४४ ॥ शिवरूप दावाग्नि से पर्वत के समान महान् से भी महान् पाप नष्ट हो जाते हैं, यह बात सत्य है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४५ ॥ इस जगत् में पाप के मूल जितने भी विविध प्रकार के दुःख हैं वे सभी निःसन्देह शिवपूजन से नष्ट हो जाते हैं, अन्य उपायों से नहीं ॥ ४६ ॥ जो सर्वदा मन, वचन एवं कर्म से शिवजी के शरण में रहता है वही वैदिक है, वही पुण्यात्मा है और वही धन्य है ॥ ४७ ॥ जिनका शिवजी के पूजन में विश्वास है, उन्हीं को नाना प्रकार के धर्म फल देने के लिए उतावले रहते हैं ॥ ४८ ॥ शिवजी की पूजा से जितने पाप दूर होते हैं, हे महामुने ! कदाचित् उतने पाप इस पृथ्वी तल पर है ही नहीं ॥ ४९ ॥ हे मुने ! ब्रह्महत्या–जैसे महा पापों की असंख्य राशि भी शिवजी के नाम-स्मरण से नष्ट हो जाती है, यह मैं सत्य कहता हूँ ॥ ५० ॥ जिनके संसार के मूलभूत पाप नष्ट हो गये हैं, वे ही शिवनाम रूप नौका का आश्रय लेकर संसार-सागर को पार कर जाते हैं, यह मैं सत्य कहता हूँ ॥ ५१ ॥ हे महामुने ! शिवनाम रूप कुठार से संसार के मूलभूत सभी पाप निश्चित रूप से नष्ट हो जाते हैं ॥ ५२ ॥ जो पापरूपी दावाग्नि से पीड़ित हैं, उन्हें शिवनाम रूपी अमृत का पान अवश्य करना चाहिए, पाप रूप दावाग्नि से सन्तप्त लोगों को शिवनामामृत के बिना शान्ति नहीं प्राप्त होती ॥ ५३ ॥

जो शिवनामरूप अमृतधारा से निरन्तर स्नान करने वाले हैं, वे संसाररूप दावाग्नि से जलते रहने का शोक नहीं करते ॥ ५४ ॥ निरन्तर राग-द्वेष में लगे रहने वाले पुरुषों की भक्ति श्रेयस्कर नहीं होती किन्तु शिव में भक्ति रखने वालों की तो अवश्य मुक्ति प्राप्त हो जाती है ॥ ५५ ॥ जिसने असंख्य जन्म पर्यन्त तप किया होगा, उसी की भक्ति भवानी प्राणवल्लभ सदाशिव में होती है ॥ ५६ ॥

जाताऽपि शङ्करे भक्तिरन्यसाधारणी वृथा। परन्त्वव्यभिचारेण शिवभक्तिरपेक्षिता ॥५७॥
यस्यासाधारणी शम्भौ भक्तिरव्यभिचारिणी। तस्यैव मोक्षः सुलभो नाऽन्यस्येति मतिर्मम ॥५८॥
कृत्वाऽप्यनन्तपापानि यदि भक्तिर्महेश्वरे। सर्वपापविनिर्मुक्तो भवत्येव न संशयः ॥५९॥
भवन्ति भस्मसाद् वृक्षा दवदग्धा यथा वने। तथा भवन्ति दग्धानि शाङ्कराणामघान्यपि ॥६०॥
यो नित्यं भस्मपूताङ्गो शिवपूजोन्मुखो भवेत्। स तरत्येव संसारमपारमतिदारुणम् ॥६१॥
ब्रह्मस्वहरणं कृत्वा हत्वाऽपि ब्राह्मणान् बहून्। न लिप्यते नरः पापैर्विरूपाक्षस्य सेवकः ॥६२॥
विलोक्य वेदानखिलाञ्छिवस्यैवार्चनं परम्। संसारनाशनोपाय इति पूर्वैर्विनिश्चितम् ॥६३॥
अद्यप्रभृति यत्नेन सावधानो यथाविधि। साम्बं सदाशिवं भक्त्या भज नित्यं महेश्वरम् ॥६४॥
आपादमस्तकं सम्यग् भस्मनोद्धूल्य सादरम्। सर्वश्रुतिश्रुतं शैवं मन्त्रं जप षडक्षरम् ॥६५॥
सर्वाङ्गेषु प्रयत्नेन रुद्राक्षाञ्छिववल्लभान्। धारयस्वातिसद्भक्त्या समन्त्रं विधिपूर्वकम् ॥६६॥
शृणु शैवीं कथां नित्यं वद शैवीं कथां सदा। पूजयस्वातियत्नेन शिवभक्तान् पुनः पुनः ॥६७॥
अप्रमादेन सततं शिवैकशरणो भव। शिवार्चनेन सततमानन्दः प्राप्यते यतः ॥६८॥
उरस्याधाय विशदे शिवस्य चरणाम्बुजौ। शिवतीर्थानि विचर प्रथमं मुनिसत्तम ! ॥६९॥
पश्यन् माहात्म्यमतुलं शङ्करस्य परात्मनः। गच्छानन्दवनं पश्चाच्छम्भुप्रियतमं मुने ! ॥७०॥
तत्र विश्वेश्वरं दृष्ट्वा पूजनं कुरु भक्तितः। नत्वा स्तुत्वा विशेषेण निर्विकल्पो भविष्यसि ॥७१॥
ततश्च भवता नूनं विधेयं गमनं मुने ! । ब्रह्मलोके स्वकामार्थं शासनान् मम भक्तितः ॥७२॥

शिवजी में अन्य साधारण भी भक्ति व्यर्थ ही है शिव में तो अव्यभिचारिणी भक्ति होनी चाहिए ॥ ५७ ॥ जिसकी शिव में अव्यभिचारिणी एवं अनन्य भक्ति है उसी को मोक्ष सुलभ है, अन्य को नहीं, ऐसा मेरा विश्वास है ॥ ५८ ॥

अनन्त पाप करने के बाद भी यदि महेश्वर सदाशिव में अनन्य भक्ति हो जाय तो वह सभी पापों से छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं ॥५९॥ जिस प्रकार वन में दावाग्नि के लग जाने से वृक्ष नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार शङ्करभक्तों के भी असंख्य पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ६० ॥ जो नित्य ही भस्म द्वारा अपने शरीर को पवित्र कर शिवपूजन में तत्पर रहता है वह अत्यन्त दुस्तर संसार-सागर को पार कर जाता है ॥६१॥ ब्रह्म-स्वहरण करने वाला एवं अनेक ब्राह्मणों का हत्यारा भी शिव का सेवक उन पापों से लिप्त नहीं होता ॥६२॥ सम्पूर्ण वेदों के अध्ययन से यही निष्कर्ष निकलता है कि शिवजी का पूजन सर्वश्रेष्ठ है। पूर्वजों ने संसार के नाश का यही एक शिवपूजन रूप उपाय निश्चित किया है ॥ ६३ ॥ अतः हे महामुने ! आज से ही यत्नपूर्वक सावधान होकर यथाविधि अम्बिका सहित सदाशिव महेश्वर का भक्तिसहित नित्य पूजन करो और उनका भजन करो ॥ ६४ ॥ और पैर से लेकर शिर पर्यन्त भस्म का उद्धूलन कर आदर से श्रुतियों में प्रसिद्ध 'ॐ नमः शिवाय' इस षडक्षर शिवमन्त्र का जप करो ॥ ६५ ॥ और शिवप्रिय रुद्राक्षों को यत्नपूर्वक सभी अंगों में मन्त्रसहित भक्तिपूर्वक धारण करो ॥ ६६ ॥ सदाशिव की कथा नित्य श्रवण करो। सदाशिव की कथा नित्य कहो, और शिवभक्तों की अच्छी तरह बारम्बार पूजा भी करो ॥ ६७ ॥ आलस्यरहित होकर सदाशिव की शरण में रहो। क्योंकि, शिव की पूजा से ही निरन्तर आनन्द की प्राप्ति होती है ॥ ६८ ॥

हे मुनिसत्तम ! शिव के सर्वथा विस्तृत चरणों को अपने हृदय में धारण कर सर्वप्रथम शिवतीर्थों में भ्रमण करो ॥ ६९ ॥ परमात्मा शिव के निर्मल माहात्म्य को जान कर शिव के परमप्रिय आनन्द वन में जाओ ॥ ७० ॥ वहाँ विश्वेश्वर का दर्शन कर भक्ति से उनका पूजन करो। उनका नमन एवं स्मरण करो, ऐसा करने से मन निर्विषय होकर निर्विकल्प समाधि में लग जायेगा ॥७१॥ हे ! मुने तदनन्तर मेरी

नत्वा स्तुत्वा विशेषेण विधिं स्वजनकं मुने ! । प्रष्टव्यं शिवमाहात्म्यं बहुशः प्रीतचेतसा ॥७३॥
स शैवप्रवरो ब्रह्मा माहात्म्यं शङ्करस्य ते । श्रावयिष्यति सुप्रीत्या शतनामस्तवं च हि ॥७४॥
अद्यतस्त्वं भव मुने ! शैवः शिवपरायणः । मुक्तिभागी विशेषेण शिवस्ते शं विधास्यति ॥७५॥
इत्थं विष्णुर्मुनिं प्रीत्या ह्युपदिश्य प्रसन्नधीः । स्मृत्वा नुत्वा शिवं स्तुत्वा ततस्त्वन्तरधीयत ॥७६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने नारदस्य विष्णूपदेशवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

(शिवक्षेत्र दर्शनार्थं नारद का काशी गमन)

सूत उवाच

अन्तर्हिते हरौ विप्रा नारदो मुनिसत्तमः । विचचार महीं पश्यञ्छिवलिङ्गानि भक्तितः ॥ १ ॥
पृथिव्या अटनं कृत्वा शिवरूपाण्यनेकशः । ददर्श प्रीतितो विप्रा भुक्ति-मुक्तिप्रदानि सः ॥ २ ॥
अथ तं विचरन्तं कौ नारदं दिव्यदर्शनम् । ज्ञात्वा शम्भुगणौ तौ तु सुचित्तमुपजग्मतुः ॥ ३ ॥
शिरसा सुप्रणम्याशु गणावूचतुरादरात् । गृहीत्वा चरणौ तस्य शापोद्धारेच्छया च तौ ॥ ४ ॥

शिवगणावूचतुः

ब्रह्मपुत्र सुरर्षे ! हि शृणु प्रीत्याऽऽवयोर्वचः । तवापराधकर्तारावावां विप्रौ न वस्तुतः ॥ ५ ॥
आवां हरगणौ विप्र ! तवागस्कारिणौ मुने ! । स्वयम्बरे राजपुत्र्या मायामोहितचेतसा ॥ ६ ॥
त्वया दत्तश्च नौ शापः परेशप्रेरितेन ह । ज्ञात्वा कुसमयं तत्र मौनमेव हि जीवनम् ॥ ७ ॥

आज्ञा से एवं अपनी इच्छा से तुम ब्रह्मलोक को चले जाना ॥ ७२ ॥ उस ब्रह्मलोक में जाकर अपने पिता ब्रह्मा को विशेष रूप से नमस्कार कर उनकी स्तुति कर प्रसन्न चित्त से शिवजी का माहात्म्य पूछना ॥७३॥ शिवभक्तों में श्रेष्ठ ब्रह्मा प्रीतिपूर्वक तुम्हारे लिए शंकर जी का माहात्म्य एवं शिवशतनाम स्तोत्र भी तुम्हें बतायेंगे ॥ ७४ ॥ हे मुनि ! तुम आज से ही शिव के भक्त एवं शिवपरायण हो जाओ, ऐसा करने से शिवजी तुम्हारा कल्याण करेंगे। और तुम मुक्ति के भागी बन जाओगे ॥ ७५ ॥ इस प्रकार प्रसन्नात्मा श्रीविष्णु ने मुनि को उपदेश दिया। तदनन्तर शिवजी की स्वयं स्तुति एवं स्मरण कर अन्तर्धान हो गये ॥ ७६ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीया रुद्रसंहिता के सृष्टिखण्ड में विष्णु-उपदेश वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

*

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो ! जब ऐसा कह कर भगवान् विष्णु अन्तर्ध्यान हो गये तब मुनिश्रेष्ठ नारदजी भक्तिपूर्वक शिवलिङ्गों का दर्शन करते हुए पृथ्वी पर विचरने लगे ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए नारदजी ने भोग तथा मोक्ष देने वाले अनेक प्रकार के शिवलिङ्गों का प्रेम से दर्शन किया ॥ २ ॥ तत्पश्चात् दिव्यदर्शन देवर्षि नारद को पृथ्वी में भ्रमण करते हुए जान कर और उनका क्रोध शान्त हुआ देखकर रुद्र के गण उनके समीप गये ॥ ३ ॥ उन्होंने अच्छी प्रकार से देवर्षि नारद को प्रणाम किया। फिर शापोद्धार की इच्छा करते हुए, उनके चरणों में गिर कर इस प्रकार कहने लगे ॥४॥

रुद्रगण बोले—हे सुरर्षे ब्रह्मपुत्र ! आप प्रीतिपूर्वक हमारी बात सुनें। उस समय आप का अपराध करने वाले हम लोग वास्तव में ब्राह्मण नहीं हैं ॥ ५ ॥ किन्तु आप का अपराध करने वाले हम दोनों महादेव जी के गण हैं। जब तक राजकुमारी श्रीमती के स्वयम्वर में आपने माया से मोहित होने के कारण तथा साम्बसदाशिव से प्रेरित होने के कारण हम दोनों को शाप दे दिया। उस समय कुसमय

स्वकर्मणः फलं प्राप्तं कस्यापि न हि दूषणम्। सुप्रसन्नो भव विभो! कुर्वनुग्रहमद्य नौ ॥८॥

सूत उवाच

वच आकर्ण्य गणयोरिति भक्त्युक्तमादरात्। प्रत्युवाच मुनिः प्रीत्या पश्चात्तापमवाप्य सः॥९॥

नारद उवाच

श्रृणुतं मे महादेवगणौ मान्यतमौ सताम्। वचनं सुखदं मोहनिर्मुक्तं च यथार्थकम् ॥१०॥
पुरा मम मतिर्भ्रष्टाऽऽसीच्छिवेच्छावशाद् ध्रुवम्। सर्वथा मोहमापन्नः शप्तवान् वां कुशेमुषिः ॥११॥
यदुक्तं तत्तथा भावि तथापि श्रृणुतां गणौ। शापोद्धारमहं वच्मि क्षमेथामघमद्य मे ॥१२॥
वीर्यान् मुनिवरस्याप्त्वा राक्षसेशत्वमादिशत्। स्यातां विभवसंयुक्तौ बलिनौ सुप्रतापिनौ ॥१३॥
सर्वब्रह्माण्डराजानौ शिवभक्तौ जितेन्द्रियौ। शिवापरतनोर्मृत्युं प्राप्य स्वं पदमाप्स्यथः ॥१४॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य मुनेर्वाक्यं नारदस्य महात्मनः। उभौ हरगणौ प्रीतौ स्वं पदं जग्मतुर्मुदा ॥१५॥
नारदोऽपि परं प्रीतो ध्यायञ्छिवमनन्यधीः। विचचार महीं पश्यञ्छिवतीर्थान्यभीक्ष्णशः ॥१६॥
काशीं प्राप्याऽथ स मुनिः सर्वोपरि विराजिताम्। शिवप्रियां शम्भुसुखप्रदां शम्भुस्वरूपिणीम् ॥१७॥
दृष्ट्वा काशीं कृतार्थोऽभूत् काशीनाथं ददर्श ह। आनर्च परमप्रीत्या परमानन्दसंयुतः ॥१८॥
समुदः सेव्यतां काशीं कृतार्थो मुनिसत्तमः। नमन् संवर्णयन् भक्त्या संस्मरन् प्रेमविह्वलः ॥१९॥
ब्रह्मलोकं जगामाथ शिवस्मरणसन्मतिः। शिवतत्त्वं विशेषेण ज्ञातुमिच्छुः स नारदः ॥२०॥
नत्वा तत्र विधिं भक्त्या स्तुत्वा च विविधैस्तवैः। पप्रच्छ शिवसत्तत्त्वं शिवसंयुक्तमानसः ॥२१॥

जान कर हम लोगों ने मौन ही रहना उचित समझा ॥ ६-७ ॥ अस्तु, यह तो अपने किये गये कर्मों का फल था, इसमें किसी का दोष नहीं। किन्तु अब आप प्रसन्न हो जाइए और हम दोनों पर अनुग्रह-दृष्टि कीजिए ॥ ८ ॥

सूतजी बोले—उन गणों के द्वारा भक्ति तथा आदर युक्त कहे गये वचनों को सुनकर पश्चात्ताप करते हुए देवर्षि नारद प्रेम से बोले ॥ ९ ॥

नारदजी बोले—सत्पुरुषों में माननीय हे महादेव के गणो! तुम लोग मेरे सुखदायी, मोहरहित एवं यथार्थ वचनों को सुनो ॥१०॥ निश्चय ही पहले शिव की इच्छा से मेरी बुद्धि नष्ट हो गयी थी, जिससे मोहग्रस्त हो मैंने दुर्बुद्धि से तुम दोनों को शाप दे दिया ॥ ११ ॥ मैंने जो कुछ भी कहा, उसे तो होना ही था तो भी हे गणो! मेरी बात सुनो। और मेरा अपराध क्षमा करो। मैं तुम लोगों को शाप से उद्धार का उपाय कहता हूँ ॥ १२ ॥ तुम लोग श्रेष्ठ-मुनि के वीर्य से जन्म लेकर महाबलवान्, प्रतापी एवं ऐश्वर्यवान् राक्षसाधिपति होओगे ॥ १३ ॥ तुम लोग जितेन्द्रिय, शिवभक्त तथा इस समस्त ब्रह्माण्ड के राजा बनोगे। और शिवजी के दूसरे शरीर (महाविष्णु) से मृत्यु को प्राप्त कर पुनः अपने पद को प्राप्त करोगे ॥१४॥

सूतजी बोले—महात्मा नारद जी के इस प्रकार के वाक्य को सुनकर वे दोनों महादेवजी के गण परम प्रसन्न हो अपने स्थान को चले गये ॥ १५ ॥ इधर नारदजी भी परम प्रसन्न हो अनन्यबुद्धि से सदाशिव का ध्यान करते हुए और बारम्बार शिवतीर्थों का दर्शन करते हुए पृथ्वी में विचरण करने लगे ॥ १६ ॥ फिर वे सर्वोपरि विराजमान शिवप्रिया, शिवस्वरूप एवं शिवसुखदायिनी काशी में आये ॥ १७ ॥ काशीनाथ तथा काशी के दर्शन से वे कृतार्थ हो गये। उन्होंने आनन्द से परिपूर्ण हो प्रेम के साथ काशीनाथ का पूजन किया ॥ १८ ॥ वे मुनिश्रेष्ठ काशी का सेवन करते हुए अपने को कृतकृत्य मानने लगे। और काशीपति की महिमा का स्मरण कर उन्हें नमस्कार कर उनकी महिमा का वर्णन करते हुए प्रेम से विह्वल हो उठे ॥ १९ ॥ फिर विशेषरूप से शिवतत्त्व की जिज्ञासा से शिव का स्मरण करते हुए ब्रह्मलोक को चले गये ॥ २० ॥ वहाँ जाकर उन्होंने ब्रह्मदेव को प्रणाम कर अनेक प्रकार के स्तोत्रों से उनकी स्तुति कर और शिव का ध्यान करते हुए ब्रह्मदेव से शिवतत्त्व के विषय में पूछा ॥२१॥

नारद उवाच

ब्रह्मन् ब्रह्मस्वरूपज्ञ ! पितामह जगत्प्रभो ! । त्वत्प्रसादान् मया सर्वं विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥२२॥
भक्तिमार्गं ज्ञानमार्गं तपोमार्गं सुदुस्तरम् । दानमार्गं च तीर्थानां मार्गं च श्रुतवाहनम् ॥२३॥
न ज्ञातं शिवतत्त्वं च पूजाविधिमतः क्रमात् । चरित्रं विविधं तस्य निवेदय मम प्रभो ! ॥२४॥
निर्गुणोऽपि शिवस्तात सगुणः शङ्करः कथम् । शिवतत्त्वं न जानामि मोहितः शिवमायया ॥२५॥
सृष्टेः पूर्वं कथं शम्भुः स्वरूपेण प्रतिष्ठितः । सृष्टिमध्ये स हि कथं क्रीडन् संवर्तते प्रभुः ॥२६॥
तदन्ते च कथं देवः स तिष्ठति महेश्वरः । कथं प्रसन्नतां याति शङ्करो लोकशङ्करः ॥२७॥
सन्तुष्टश्च स्वभक्तेभ्यः परेभ्यश्च महेश्वरः । किं फलं यच्छति विधे ! तत्सर्वं कथयस्व मे ॥२८॥
सद्यः प्रसन्नो भगवान् भवतीत्यनुसंश्रुतम् । भक्तप्रयासं स महान् न पश्यति दयापरः ॥२९॥
ब्रह्मा विष्णुर्महेशश्च त्रयो देवाः शिवांशजाः । महेशस्तत्र पूर्णांशः स्वयमेव शिवः परः ॥३०॥
तस्याऽऽविर्भावमाख्याहि चरितानि विशेषतः । उमाविर्भावमाख्याहि तद् विवाहं तथा विभो !॥३१॥
तद्गार्हस्थ्यं विशेषेण तथा लीलाः परा अपि । एतत्सर्वं तथाऽन्यच्च कथनीयं त्वयाऽनघ ! ॥३२॥
तदुत्पत्तिं विवाहं च शिवायास्तु विशेषतः । प्रब्रूहि मे प्रजानाथ ! गुहजन्म तथैव च ॥३३॥
बहुभ्यश्च श्रुतं पूर्वं न तृप्तोऽस्मि जगत् प्रभो ! । अतस्त्वां शरणं प्राप्तः कृपां कुरु ममोपरि ॥३४॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य नारदस्याङ्गजस्य हि । उवाच वचनं तत्र ब्रह्मा लोकपितामहः ॥३५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने
नारदप्रश्नवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

नारदजी बोले—हे ब्रह्म के स्वरूप को जानने वाले, जगत्प्रभो ! हे पितामह, हे ब्रह्मन् ! आप की कृपा से मैंने विष्णु का माहात्म्य, भक्तिमार्ग, ज्ञानमार्ग, अत्यन्त दुस्तर तपोमार्ग, दानमार्ग एवं तीर्थों का माहात्म्य सुना ॥ २२-२३ ॥ किन्तु मैंने अब तक क्रमशः शिवतत्त्व एवं शिव-पूजा का मार्ग नहीं जाना। इसलिए हे प्रभो ! मुझे शिवजी के अनेक चरित्रों का वर्णन कीजिए ॥ २४ ॥

निर्गुण स्वरूप शिवजी किस प्रकार सगुण होते हैं। क्योंकि मैं शिवमाया से मोहित हूँ, इसलिए शिव-तत्त्व की जानकारी मुझे नहीं है ॥२५॥ इस सृष्टि से पूर्व वे किस स्वरूप से प्रतिष्ठित रहते हैं। इस सृष्टि के मध्य में किस प्रकार क्रीडा करते हुए स्थित रहते हैं ॥२६॥ और उसके अन्त में वे महेश्वरदेव किस प्रकार से निवास करते हैं। समस्त लोक का कल्याण करने वाले सदाशिव किस प्रकार प्रसन्न होते हैं ॥ २७ ॥ और हे ब्रह्मदेव ! मुझे यह भी बताइए कि वे सन्तुष्ट होने पर अपने भक्तों तथा तदितर लोगों को क्या-क्या फल प्रदान करते हैं ॥ २८ ॥ मैंने सुना है कि, भगवान् सदाशिव आशुतोष होने के कारण शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। वे इतने महान् दयालु हैं कि भक्तों के कष्टों को नहीं सहन करते ॥ २९ ॥ ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश ये तीनों देव शिव के अंश हैं। जिनमें महेश्वर परिपूर्ण अंश हैं और वे ही साक्षात् पर शिव हैं ॥३०॥ इसलिए आप उन महेश्वर का आविर्भाव एवं विशेषरूप से उनके चरित्र कहिए। इसके अतिरिक्त पार्वतीजी का आविर्भाव एवं उनके विवाह का भी वर्णन कीजिए ॥ ३१ ॥ उनके गार्हस्थ्य आश्रम तथा उस गार्हस्थ्य आश्रम की उत्कृष्ट लीलाओं का भी हे अनघ ! वर्णन कीजिए ॥ ३२ ॥ यह मेरा विशेष आग्रह है कि पार्वतीजी की उत्पत्ति तथा उनके विवाह को विशेष रूप से वर्णन कीजिए। हे प्रजानाथ ! इसी प्रकार स्कन्द का जन्म भी कहिए ॥ ३३ ॥ हे जगत्प्रभो ! यद्यपि मैंने पहले भी बहुत लोगों से यह सब सुना है किन्तु मेरी तृप्ति नहीं हुई इसलिए आपकी शरण में आया हूँ, आप मेरे ऊपर कृपा कीजिए ॥ ३४ ॥ इस प्रकार अपने पुत्र नारदजी का वचन सुनकर लोकपितामह ब्रह्माजी देवर्षि नारद से कहने लगे ॥ ३५ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीया रुद्रसंहिता के प्रथम-सृष्टिखण्ड में नारदप्रश्न-वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥

*

षष्ठोऽध्यायः

(महाप्रलय के स्वरूप का वर्णन और विष्णु की उत्पत्ति)

ब्रह्मोवाच

भो ब्रह्मन् साधु पृष्टोऽहं त्वया विबुधसत्तम ! । लोकोपकारिणा नित्यं लोकानां हितकाम्यया ॥ १ ॥
यच्छ्रुत्वा सर्वलोकानां सर्वपापक्षयो भवेत् । तदहं ते प्रवक्ष्यामि शिवतत्त्वमनामयम् ॥ २ ॥
शिवतत्त्वं मया नैव विष्णुनाऽपि यथार्थतः । ज्ञातं च परमं रूपमद्भुतं च परेण न ॥ ३ ॥
महाप्रलयकाले च नष्टे स्थावरजङ्गमे । आसीत्तमोमयं सर्वमनर्कग्रहतारकम् ॥ ४ ॥
अचन्द्रमनहोरात्रमनग्न्यनिलभूजलम् । अप्रधानं वियच्छून्यमन्यतेजोविवर्जितम् ॥ ५ ॥
अदृष्टत्वादिरहितं शब्दस्पर्शसमुज्झितम् । अव्यक्तगन्धरूपं च रसत्यक्तमदिङ्मुखम् ॥ ६ ॥
इत्थं सत्यन्धतमसे सूचीभेद्ये निरन्तरे । तत्सद् ब्रह्मेति यच्छ्रुत्वा सदेकं प्रतिपद्यते ॥ ७ ॥
इतीदृशं यदा नासीद्यत्तत्सदसदात्मकम् । योगिनोऽन्तर्हिताकाशे यत् पश्यन्ति निरन्तरम् ॥ ८ ॥
अमनोगोचरं वाचां विषयं न कदाचन । अनामरूपवर्णं च न च स्थूलं न यत्कृशम् ॥ ९ ॥
अह्रस्व-दीर्घमलघु-गुरुत्व-परिवर्जितम् । न यत्रोपचयः कश्चित् तथा नापचयोऽपि च ॥१०॥
अभिधत्ते सचकितं यदस्तीति श्रुतिः पुनः । सत्यं ज्ञानमनन्तं च परानन्दं परं महः ॥११॥
अप्रमेयमनाधारमविकारमनाकृति । निर्गुणं योगिगम्यं च सर्वव्याप्येककारकम् ॥१२॥
निर्विकल्पं निरारम्भं निर्मायं निरुपद्रवम् । अद्वितीयमनाद्यन्तमविकाशं चिदात्मकम् ॥१३॥
यस्येत्थं संविकल्पन्ते संज्ञासंज्ञोक्तितः स्म वै । कियता चैव कालेन द्वितीयेच्छाऽभवत् किल ॥१४॥
अमूर्तेन स्वमूर्तिश्च तेनाकल्पि स्वलीलया । सर्वैश्वर्यगुणोपेता सर्वज्ञानमयी शुभा ॥१५॥

ब्रह्माजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! हे विबुधोत्तम नारद ! तुमने लोक के हित की कामना से अत्यन्त उत्तम प्रश्न मुझसे किया है, इसलिए तुम लोक-उपकार करने वाले हो ॥१॥ जिस विशुद्ध शिवतत्त्व के सुनने से सारे संसार का पाप नष्ट हो जाता है, वह शिवतत्त्व मैं तुमसे कहता हूँ ॥२॥ वस्तुतः शिवतत्त्व एवं शिव के अद्भुत रूप को यथार्थरूप से न तो मैं जानता हूँ और न विष्णु ही जानते हैं, फिर दूसरा कोई किस प्रकार जान सकता है ॥३॥ महाप्रलय काल में जब सभी स्थावर, जङ्गम नष्ट हो गये थे, उस समय सूर्य ग्रह एवं तारागणों से रहित होने के कारण यह सब तमोमय था ॥ ४ ॥ उस समय चन्द्र, दिन-रात, अग्नि, वायु, पृथ्वी, जलादि तत्त्व, कुछ भी नहीं थे। प्रधान (ब्रह्मा) एवं आकाशादि तथा अन्य तेजों से रहित होने के कारण यह सारा जगत् शून्यमय था ॥ ५ ॥ यह सारा लोक अदृष्ट (कर्मफल) से शून्य, शब्द, स्पर्श, गन्ध, रूप, रस आदि तन्मात्राओं से रहित एवं दिशाओं से भी शून्य था ॥ ६ ॥ इस प्रकार सूची-भेद्य घोर अन्धकार में केवल एक ब्रह्म की सत्ता थी, जिसे श्रुति में एक अद्वितीय सत् कहा गया है ॥ ७ ॥ उस समय सदसत् से परे केवल एक अनिर्वचनीय ब्रह्म ही था, जिसे योगी लोग अपने हृदयाकाश में ध्यान से देखते हैं ॥ ८ ॥ जो मन, वाणी एवं इन्द्रियों के द्वारा कभी भी दृष्टिगोचर नहीं होता। जो नाम, रूप तथा वर्ण से रहित है, जो स्थूल तथा सूक्ष्म भी नहीं है ॥ ९ ॥ ह्रस्व, दीर्घ, गुरु एवं लघु से रहित है, जिसमें उपचय (वृद्धि) तथा अपचय (विनाश) आदि नहीं होते ॥ १० ॥ जिसे बारम्बार चकित हो कर श्रुति 'अस्ति' पद से स्तुति करती हैं, जिसे विज्ञ लोग, सत्य, अनन्त, ज्ञान, परानन्द, परम्मह, अप्रमेय, अनाधार, अविकारी, अनाकृति, निर्गुण, योगिगम्य, व्यापक, अद्वितीय, निर्विकल्प, निरारम्भ, निरञ्जन, निरुपद्रव, अद्वितीय, अनाद्यन्त, अविकाश एवं चिदात्मा आदि संज्ञाओं से संज्ञारहित होने पर भी विकल्प रूप से कहा करते हैं, उस अद्वितीय परमात्मा को कुछ काल के अनन्तर द्वितीय की इच्छा हुई ॥ ११-१४ ॥ फिर उस अमूर्त्त ने अपनी लीला से मूर्त्ति की कल्पना की। वह कल्याणी मूर्त्ति सर्वैश्वर्य-सम्पन्न सर्वगुणो-

सर्वगा सर्वरूपा च सर्वदृक्सर्वकारिणी । सर्वैकवन्द्या सर्वाद्या सर्वदा सर्वसंस्कृतिः ॥१६॥
परिकल्प्येति तां मूर्तिमैश्वरीं शुद्धरूपिणीम् । अद्वितीयमनाद्यन्तं सर्वाभासं चिदात्मकम् ॥
अन्तर्दधे पराख्यं यद् ब्रह्म सर्वगमव्ययम् ॥१७॥
अमूर्तं यत्पराख्यं वै तस्य मूर्तिः सदाशिवः । अर्वाचीनाः पराचीना ईश्वरं तं जगुर्बुधाः ॥१८॥
शक्तिस्तदैकलेनापि स्वैरं विहरता तनुः । स्वविग्रहात् स्वयं सृष्टा स्वशरीरानपायिनी ॥१९॥
प्रधानं प्रकृतिं तां च मायां गुणवतीं पराम् । बुद्धितत्त्वस्य जननीमाहुर्विकृतिवर्जिताम् ॥२०॥
सा शक्तिरम्बिका प्रोक्ता प्रकृतिः सकलेश्वरी । त्रिदेवजननी नित्या मूलकारणमित्युत ॥२१॥
अस्या अष्टौ भुजाश्चासन् विचित्रवदना शुभा । राकाचन्द्रसहस्रस्य वदने भाश्च नित्यशः ॥२२॥
नानाभरणसंयुक्ता नानागतिसमन्विता । नानायुधधरा देवी फुल्लपङ्कजलोचना ॥२३॥
अचिन्त्यतेजसा युक्ता सर्वयोनिः समुद्यता । एकाकिनी यदा माया संयोगाच्चाप्यनेकिका ॥२४॥
परः पुमानीश्वरः स शिवः शम्भुरनीश्वरः । शीर्षे मन्दाकिनीधारी भालचन्द्रस्त्रिलोचनः ॥२५॥
पञ्चवक्त्रः प्रसन्नात्मा दशबाहुस्त्रिशूलधृक् । कर्पूरगौरसुसितो भस्मोद्धूलितविग्रहः ॥२६॥
युगपच्च तया शक्त्या साकं कालस्वरूपिणा । शिवलोकाभिधं क्षेत्रं निर्मितं तेन ब्रह्मणा ॥२७॥
तदेव काशिकेत्येतत् प्रोच्यते क्षेत्रमुत्तमम् । परं निर्वाणसङ्ख्यानं सर्वोपरि विराजितम् ॥२८॥
ताभ्यां च रमणाभ्यां च तस्मिन् क्षेत्रे मनोरमे । परमानन्दरूपाभ्यां परमानन्दरूपिणी ॥२९॥
मुने ! प्रलयकालेऽपि न तत्क्षेत्रं कदाचन । विमुक्तं हिं शिवाभ्यां यदविमुक्तं ततो विदुः ॥३०॥

पेत सर्वज्ञानमयी, सभी में निवास करने वाली, सभी स्वरूपों को धारण करने वाली, सबको देखने वाली, सब कार्य सम्पादन करने वाली, सर्ववन्द्या, सर्वाद्या और सबका संस्कार करने वाली थी ॥१५-१६॥

इस प्रकार शुद्धस्वरूपा एवं सर्वैश्वर्यसम्पन्न मूर्ति का निर्माण कर वह अद्वितीय, आद्यन्त से रहित, सर्वावभासक, चिदात्मक, परात्पर, सर्वग एवं अव्यय स्वरूप ब्रह्म अन्तर्धान हो गया ॥ १७ ॥ उस अमूर्त्त (सर्वव्यापक) में परतत्त्व की मूर्त्ति सप्तशिव हैं, उन्हीं को आधुनिक तथा प्राचीन विद्वान् ईश्वर कहते हैं ॥ १८ ॥ फिर स्वच्छन्द विचरण करने वाले उस एक शिव ने अपने शरीर से स्वयं शरीरधारिणी, नित्यस्वरूपा शक्ति की सृष्टि की ॥ १९ ॥ विकार से रहित होने के कारण उसी को लोग प्रधान, प्रकृति, माया, परा, त्रिगुणा, बुद्धितत्त्व की जननी आदि कहा करते हैं ॥ २० ॥ वह शिव की शक्ति ही प्रकृति, सकलेश्वरी, अम्बिका, त्रिदेवजननी, नित्या और मूल कारण कही जाती है ॥ २१ ॥ उसकी आठ भुजाएँ हैं और विचित्र मुखवाली है। उस कल्याणी के मुख की कान्ति पूर्णमासी के सहस्र चन्द्रमा के समान परमोज्ज्वल एवं आह्लाद देने वाली है ॥ २२ ॥ वह देवी नानाप्रकार के आभूषण तथा नाना प्रकार की गतियों से युक्त है, उसके नेत्र फूले हुए कमल के समान अत्यन्त विशद एवं मनोहर हैं। और वह देवी अनेक प्रकार के अस्त्रों को धारण करने वाली है ॥ २३ ॥ वह अचिन्त्य, तेजोयुक्त, सर्वकारण एवं अकेली है और माया का संयोग होने के कारण वह अनेक हो जाती है ॥ २४ ॥

जो शिवतत्त्व पुरुष रूप है वह शिव, शम्भु एवं ईश्वर कहा जाता है। उसका कोई भी ईश्वर नहीं है। वे शिर पर गङ्गा, भाल पर चन्द्रमा धारण करने वाले तथा त्रिलोचन हैं ॥ २५ ॥ उनके पाँच मुख, दश भुजाएँ हैं, वे त्रिशूल धारण करते हैं, कपूर के समान गौर वर्ण, शरीर में भस्म का लेप किये और प्रसन्नचित्त हैं ॥ २६ ॥ उस कालस्वरूपी परब्रह्म ने अपनी शक्ति को साथ लेकर शिवलोक नामक क्षेत्र का निर्माण किया ॥ २७ ॥ उसी शिवक्षेत्र को लोग सबके ऊपर विराजमान होने के कारण 'काशी' नाम से पुकारते हैं। वह मोक्षक्षेत्र भी कहा जाता है ॥ २८ ॥ उस मनोरम क्षेत्र में परमानन्दस्वरूप शिव तथा शक्ति दोनों नित्य रमण करते हैं, और प्रलयकाल में भी उस क्षेत्र का त्याग नहीं करते, इसी से उसे अविमुक्त भी कहा जाता है ॥ २९-३० ॥

अस्यानन्दवनं नाम पुराकारि पिनाकिना। क्षेत्रस्यानन्दहेतुत्वादविमुक्तमनन्तरम् ॥३१॥
अथाऽऽनन्दवने तस्मिञ्छिवयो रममाणयोः। इच्छेत्यभूत् सुरर्षे हि सृज्यः कोऽप्यपरः किल ॥३२॥
यस्मिन् न्यस्य महाभारमावां स्वस्वैरचारिणौ। निर्वाणधारणं कुर्वः केवलं काशिशायिनौ ॥३३॥
स एव सर्वं कुरुतां स एव परिपातु च। स एव संवृणोत्वंते मदनुग्रहतः सदा ॥३४॥
चेतः समुद्रमाकुञ्च्य चिन्ताकल्लोल-लोलितम्। सत्त्वरत्नं तमोग्राहं रजोविद्रुमवल्लितम् ॥३५॥
यस्य प्रसादात्तिष्ठावः सुखमानन्दकानने। परिक्षिप्तमनोवृत्तौ बहिश्चिन्तातुरे सुखम् ॥३६॥
सम्प्रधार्येति स विभुस्तया शक्त्या परेश्वरः। सव्ये व्यापारयाञ्चक्रे दशमेऽङ्गे सुधासवम् ॥३७॥
ततः पुमानाविरासीदेकस्त्रैलोक्यसुन्दरः। शान्तः सत्त्वगुणोद्रिक्तो गाम्भीर्यामितसागरः॥३८॥
तथा च क्षमया युक्तो मुनेऽलब्धोपमोऽभवत्। इन्द्रनीलद्युतिः श्रीमान् पुण्डरीकोत्तमेक्षणः ॥३९॥
सुवर्णकृतिभृच्छ्रेष्ठदुकूलयुगलावृतः। लसत् प्रचण्ड-दोर्दण्ड-युगलो ह्यपराजितः ॥४०॥
ततः स पुरुषः शम्भुं प्रणम्य परमेश्वरम्। नामानि कुरु मे स्वामिन्! वद कर्म जगाविति॥४१॥
तच्छ्रुत्वा वचनं प्राह शङ्करः प्रहसन् प्रभुः। पुरुषं तं महेशानो वाचा मेघगभीरया ॥४२॥

शिव उवाच

विष्णिवति व्यापकत्वात्ते नाम ख्यातं भविष्यति। बहून्यन्यानि नामानि भक्तसौख्यकराणि ह ॥४३॥
तपः कुरु दृढो भूत्वा परमं कार्यसाधनम्। इत्युक्त्वा श्वासमार्गेण ददौ च निगमं ततः ॥४४॥
ततोऽच्युतः शिवं नत्वा चकार विपुलं तपः। अन्तर्द्धानं गतः शक्त्या सलोकः परमेश्वरः ॥४५॥
दिव्यं द्वादशसाहस्रं वर्षं तप्त्वाऽपि चाऽच्युतः। न प्राप स्वाभिलषितं सर्वदं शम्भुदर्शनम् ॥४६॥

पिनाक धारण करने वाले भगवान् सदाशिव ने सर्वप्रथम अपने इस विहारस्थल को आनन्दवन के नाम से कहा था, बाद में यही क्षेत्र 'अविमुक्त' नाम से कहा गया ॥ ३१ ॥ हे नारद ! उस आनन्दवन में शिव-शिवा को रमण करते हुए एक दूसरे पुरुष के निर्माण की इच्छा हुई ॥ ३२ ॥ शिव एवं शिवा ने सोचा कि चिन्तारूपी तरङ्ग से आन्दोलित, सत्त्वरूपी रत्न, तमोगुण रूपी ग्राह एवं रजोगुण रूपी विद्रुम से युक्त इस चित्त समुद्र को आकुञ्चित कर कोई ऐसा पुरुष निर्माण करना चाहिए, जिसके ऊपर इस सृष्टि का समस्त भार देकर शान्ति से हम लोग मात्र इस काशी में स्वच्छन्द रूप से विहार करें और इस काशी का परित्याग कभी न करें ॥ ३३ ॥ वही पुरुष मेरे अनुग्रह को प्राप्त कर सृष्टि का निर्माण, पालन एवं संहार करे ॥ ३४-३५ ॥ जिसके प्रसाद से हम लोग सुख से इस आनन्द-कानन में निवास करें। और बाहरी चिन्ता से मुक्त इस मनोवृत्ति को उसी में आरोपित कर सुख से शान्ति को प्राप्त करें ॥ ३६ ॥ उस शक्ति के साथ ऐसा विचार कर सर्वव्यापक परमात्मा सदाशिव ने उस पराशक्ति के दाहिनी दशवें अङ्ग में सुधासव का निर्माण किया ॥ ३७ ॥ तदनन्तर उस शक्ति से एक त्रैलोक्य-सुन्दर पुरुष उत्पन्न हुआ। जो शान्त, सत्त्वगुण-सम्पन्न एवं गम्भीरता में सागर के समान था ॥ ३८ ॥ क्षमा करने में तो उसकी उपमा किसी अन्य से नहीं की जा सकती। उसके शरीर का वर्ण इन्द्रनीलमणि के समान था एवं नेत्र कमल के समान विशाल था ॥ ३९ ॥ वह दमकते हुए सुवर्ण के समान पीतवर्ण के उत्तरीय तथा पीताम्बर दो वस्त्रों से शोभा पा रहा था। विशाल भुजाओं से युक्त तथा अजेय था ॥ ४० ॥ उस पुरुष ने परमेश्वर को प्रणाम किया और बोला—हे स्वामिन् ! मेरा नामकरण करो एवं मेरे लिए कर्त्तव्य कर्म का भी निर्देश करो ॥४१॥ इस बात को सुनकर शङ्कर ने हँसते हुए मेघ के समान गम्भीर वाणी में उस पुरुष से कहा ॥ ४२ ॥

शिवजी बोले—सर्वत्र व्याप्त होने के कारण तुम इस जगत् में विष्णु नाम से प्रसिद्ध होओगे। भक्तों को सुख देने के कारण तुम्हारे अन्य भी बहुत से नाम होंगे ॥ ४३ ॥ तुम इस परम कार्य के सिद्ध करने के लिए सर्वप्रथम तप करो। ऐसा कह कर शङ्कर ने उस पुरुष को श्वांस के मार्ग से वेदों को दिया ॥ ४४ ॥ फिर भगवान् अच्युत शिव को नमस्कार कर महान् तप करने लगे। इधर शिव भी अपनी शक्ति के साथ अन्तर्ध्यान हो गये ॥ ४५ ॥ विष्णु ने बारह सहस्र वर्ष पर्यन्त तप किया। किन्तु उन्हें अपने अभीष्ट भगवान्

तत्तत् संशयमापन्नश्चिन्तितं हृदि सादरम् । मयाऽद्य किं प्रकर्त्तव्यमिति विष्णुः शिवं स्मरन् ॥४७॥
एतस्मिन्नन्तरे वाणी समुत्पन्ना शिवाच्छुभा । तपः पुनः प्रकर्त्तव्यं संशयस्यापनुत्तये ॥४८॥
ततस्तेन च तच्छ्रुत्वा तपस्तप्तं सुदारुणम् । बहुकालं तदा ब्रह्मध्यानमार्गपरेण हि ॥४९॥
ततः स पुरुषो विष्णुः प्रबुद्धो ध्यानमार्गतः । सुप्रीतो विस्मयं प्राप्तः किं यत्तत्त्वमहो इति ॥५०॥
परिश्रमवतस्तस्य विष्णोः स्वाङ्गेभ्य एव च । जलधारा हि संयाता विविधाः शिवमायया ॥५१॥
अभिव्याप्तं च सकलं शून्यं यत्तन्महामुने ! । ब्रह्मरूपं जलमभूत् स्पर्शनात् पापनाशनम् ॥५२॥
तदा श्रान्तश्च पुरुषो विष्णुस्तस्मिन् जले स्वयम् । सुष्वाप परमप्रीतो बहुकालं विमोहितः ॥५३॥
नारायणेति नामाऽपि तस्यासीच्छ्रुतिसम्मतम् । नांऽन्यत् किञ्चित्तदा ह्यासीत् प्राकृतं पुरुषं विना ॥५४॥
एतस्मिन्नन्तरे काले तत्त्वान्यासन् महात्मनः । तत्प्रकारं शृणु प्राज्ञ ! गदतो मे महामते ! ॥५५॥
प्रकृतेश्च महानासीन् महतश्च गुणास्त्रयः । अहङ्कारस्ततो जातस्त्रिविधो गुणभेदतः ॥५६॥
तन्मात्राश्च ततो जाताः पञ्चभूतानि वै ततः । तदैव तानीन्द्रियाणि ज्ञानकर्ममयानि च ॥५७॥
तत्त्वानामिति सङ्ख्यानमुक्तं ते ऋषिसत्तम ! । जडात्मकं च तत्सर्वं प्रकृतेः पुरुषं विना ॥५८॥
तत्तदैकीकृतं तत्त्वं चतुर्विंशतिसङ्ख्यकम् । शिवेच्छया गृहीत्वा स सुष्वाप ब्रह्मरूपके ॥५९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्टिव्याख्याने
विष्णूत्पत्तिवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

शम्भु के दर्शन प्राप्त नहीं हुए ॥ ४६ ॥ तब उन्हें बड़ा सन्देह हुआ और हृदय में शिव का स्मरण करते हुए विचार करने लगे कि अब मुझे क्या करना चाहिए ॥ ४७ ॥ इसी अवस्था में शिवजी ने आकाशवाणी में विष्णु से कहा—'हे विष्णो ! तुम अपने संशय को दूर करने के लिए पुनः तप करो' ॥ ४८ ॥ उस आकाश वाणी को सुन कर विष्णु ने पुनः कठिन तप करना प्रारम्भ किया। इस प्रकार ब्रह्मध्यानपरायण महाविष्णु का बहुत काल व्यतीत हो गया ॥ ४९ ॥ फिर ध्यान-मार्ग से ही विष्णु प्रबुद्ध होकर विस्मय से विचार करने लगे कि, यह महान् तत्त्व क्या है ॥ ५० ॥ उसी समय परिश्रम के कारण शिव-माया की प्रेरणा से विष्णु के शरीर से जल की धारा निकलने लगी ॥ ५१ ॥ हे महामुने ! वह जल की धारा समस्त शून्य में व्याप्त होकर ब्रह्मरूप में परिणत हो गयी। जिसके स्पर्श मात्र से पाप का नाश हो जाता है ॥ ५२ ॥ फिर तपस्या से क्लान्त हुए विष्णु मोहित होकर प्रसन्नता से उसी जल में सो गये ॥ ५३ ॥ उस जल में सोने के कारण ही उनका श्रुति-सम्मत (नारं जलं तदेव अयनं यस्य स नारायणः) नारायण यह नाम हुआ। उस समय उस प्राकृत पुरुष के अतिरिक्त इस जगत् में और कुछ नहीं था ॥ ५४ ॥ तदनन्तर उन महात्मा विष्णु से तत्त्वों का प्रादुर्भाव हुआ। हे महामते ! उन तत्त्वों की उत्पत्ति का प्रकार मैं आप लोगों से कहता हूँ, श्रवण कीजिए ॥ ५५ ॥ सर्वप्रथम उत्पन्न हुई प्रकृति, उस प्रकृति से महान्, उस महान् से तीनों गुण फिर उन तीनों गुणों के भेद से तीन प्रकार का अहङ्कार उत्पन्न हुआ। उस अहङ्कार से तन्मात्राएँ (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श एवं शब्द), उन तन्मात्राओं से पञ्चमहाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) प्रगट हुए, और उसी अहङ्कार से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ (नेत्र, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वचा, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, वाणी, हाथ, पैर, गुदा एवं उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ) उत्पन्न हुईं ॥ ५६-५७ ॥ सूत जी कहते हैं—हे ऋषिसत्तम ! इस प्रकार हमने तत्त्वों की उत्पत्तिपूर्वक संख्या का वर्णन किया। पुरुष के बिना ये सभी प्रकृति के जड़ रूप कार्य हैं ॥ ५८ ॥ इस प्रकार शिव की इच्छा से इन चौबीस तत्त्वों का एकीकरण कर विष्णु ब्रह्मरूप उस जल में सो गये ॥ ५९ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत रुद्रसंहिता के प्रथम-सृष्टिखण्ड में विष्णु-उत्पत्तिवर्णन नामक छठाँ अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

*

सप्तमोऽध्यायः

(विष्णु की नाभि से कमल की उत्पत्ति एवं शिव के दक्षिणांग से ब्रह्मा की उत्पत्तिवर्णन तथा शिवलिंग का आविर्भाव)

ब्रह्मोवाच

सुप्ते नारायणे देवो नाभौ पङ्कजमुत्तमम् । आविर्बभूव सहसा बृहद्वै शङ्करेच्छया ॥ १ ॥
अनन्तयष्टिकायुक्तं कर्णिकारसमप्रभम् । अनन्तयोजनायाममनन्तोच्छ्रायसंयुतम् ॥ २ ॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशं सुन्दरं तत्त्वसंयुतम् । अत्यद्भुतं महारम्यं दर्शनीयमनुत्तमम् ॥ ३ ॥
कृत्वा यत्नं पूर्ववत् स शङ्करः परमेश्वरः । दक्षिणाङ्गान्निजान्मां वै साम्बः शम्भुरजीजनत् ॥ ४ ॥
स मायामोहितं कृत्वा मां महेशो द्रुतं मुने ! । तन्नाभिपङ्कजादाविर्भावयामास लीलया ॥ ५ ॥
एवं पद्मात्ततो जज्ञे पुत्रोऽहं हेमगर्भकः । चतुर्मुखो रक्तवर्णस्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकः ॥ ६ ॥
तन्मायामोहितश्चाऽहं नाविदं कमलं विना । स्वदेहजनकं तात ! पितरं ज्ञानदुर्बलः ॥ ७ ॥
कोऽहं वा कुत आयातः किं कार्यं तु मदीयकम् । कस्य पुत्रोऽहमुत्पन्नः केनैव निर्मितोऽधुना ॥ ८ ॥
इति संशयमापन्नं बुद्धिर्मां समपद्यत । किमर्थं मोहमायामि तज्ज्ञानं सुकरं खलु ॥ ९ ॥
एतत्कमलपुष्पस्य पत्रारोहस्थलं ह्यधः । मत्कर्ता च स वै तत्र भविष्यति न संशयः ॥१०॥
इति बुद्धिं समास्थाय कमलादवरोहयन् । नाले नाले गतस्तत्र वर्षाणां शतकं मुने ! ॥११॥
न लब्धं तु मया तत्र कमलास्थानमुत्तमम् । संशयं च पुनः प्राप्तः कमले गन्तुमुत्सुकः ॥१२॥
आरुरोहाऽथ कमलं नालमार्गेण वै मुने ! । कुड्मलं कमलस्याथ लब्धवान्न विमोहितः ॥१३॥

ब्रह्मा जी बोले—श्री नारायणदेव के शयन करने पर शिव की इच्छा से उनके नाभि से एक बहुत बड़ा उत्तम कमल सहसा प्रगट हुआ ॥ १ ॥ उस कमल में अनन्त नालदण्ड थे। वह कमल कर्णिकार के समान कान्तिवाला था, उसका विस्तार एवं उसकी ऊँचाई अनन्त योजन पर्यन्त थी ॥ २ ॥ वह कमल कोटिसूर्य के समान कान्तिवाला, मनोहर, तत्त्वों से युक्त, अत्यद्भुत, महान् एवं दर्शन के योग्य था ॥ ३ ॥ ब्रह्मा ने कहा—हे नारद मुने, जिन साम्ब सदाशिव परमेश्वर शङ्कर ने पूर्व में मुझे अपने दक्षिण अङ्ग से उत्पन्न किया था ॥ ४ ॥ उन्होंने ही पुनः मुझे माया से मोहित कर उस विष्णु के नाभिकमल से मुझे उत्पन्न किया ॥५॥ इस प्रकार उस नाभिकमल से मैं हिरण्यगर्भ चारमुख युक्त, मस्तक पर त्रिपुण्ड्र धारण किये हुए मैं विष्णु का पुत्र बनकर उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥ शिव की माया से मोहित होने के कारण मुझे कमल के अतिरिक्त और किसी भी वस्तु का ज्ञान नहीं था। उस समय मैं इतना ज्ञानहीन था कि मुझे अपने देह को उत्पन्न करने वाले पिता का भी ज्ञान नहीं था ॥ ७ ॥ इस प्रकार के संशय से ग्रस्त था कि मैं कौन हूँ ? मुझे किसने बनाया है, मैं कहाँ से आया हूँ और मेरा क्या कार्य है ? मैं किसका पुत्र हूँ ? ॥ ८ ॥

इस प्रकार के संशय में पड़े हुए मुझे बुद्धि उत्पन्न हुई कि मैं किस लिए मोह में पड़ा हूँ, इसका ज्ञान तो सुलभ है ॥ ९ ॥ इस कमल के पत्र तथा पुष्प को उत्पन्न करने वाला कमल का मूल तो नीचे ही है, अतः मुझे उत्पन्न करने वाला भी इस कमल के मूलभाग में अवश्य स्थित होगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ १० ॥ ऐसा विचारकर मैं कमल के एक-एक नाल पकड़े हुए नीचे उतरने लगा। इस प्रकार मुझे सौ वर्ष व्यतीत हो गये ॥११॥ किन्तु तब भी मुझे कहीं उस कमलनाल के मूल का पता नहीं लगा। तब मैं पुनः सन्देह में पड़कर उस कमलनाल से ऊपर लौटने का विचार करने लगा ॥ १२ ॥ हे नारद मुने ! मैं पुनः उसी नाल के सहारे ऊपर की ओर आने लगा किन्तु मोहित होने के कारण मैं कमलकुड्मल को भी प्राप्त न कर सका ॥ १३ ॥

नालमार्गेण भ्रमतो गतं वर्षशतं पुनः । क्षणमात्रं तदा तत्र ततस्तिष्ठन् विमोहितः ॥१४॥
तदा वाणी समुत्पन्ना तपेति परमा शुभा । शिवेच्छयाऽपरा व्योम्नो मोहविध्वंसिनी मुने ! ॥१५॥
तच्छ्रुत्वा व्योमवचनं द्वादशाब्दं प्रयत्नतः । पुनस्तप्तं तपो घोरं द्रष्टुं स्वजनकं तदा ॥१६॥
तदा हि भगवान् विष्णुश्चतुर्बाहुः सुलोचनः । मय्येवानुग्रहं कर्तुं द्रुतमाविर्बभूव ह ॥१७॥
शङ्खचक्रायुधकरो गदापद्मधरः परः । घनश्यामलसर्वाङ्गः पीताम्बरधरः परः ॥१८॥
मुकुटादिमहाभूषः प्रसन्नमुखपङ्कजः । कोटिकन्दर्पसङ्काशः सन्दृष्टो मोहितेन सः ॥१९॥
तद् दृष्ट्वा सुन्दरं रूपं विस्मयं परमं गतः । कालाभं काञ्चनाभं च सर्वात्मानं चतुर्भुजम् ॥२०॥
तथाभूतमहं दृष्ट्वा सदसन्मयमात्मना । नारायणं महाबाहुं हर्षितो ह्यभवं तदा ॥२१॥
मायया मोहितः शम्भोस्तदा लीलात्मनः प्रभोः । अविज्ञाय स्वजनकं तमवोचं प्रहर्षितः ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

कस्त्वं वदेति हस्तेन समुत्थाप्य सनातनम् । तदा हस्तप्रहारेण तीव्रेण सुदृढेन तु ॥२३॥
प्रबुद्धयोत्थाय शयनात् समासीनः क्षणं वशी । ददर्श निद्राविक्लिन्ननीरजामललोचनः ॥२४॥
मामत्र संस्थितं भासाऽभ्यासितो भगवान् हरिः । आह चोत्थाय ब्रह्माणं हसन्मां मधुरं सकृत् ॥२५॥

विष्णुरुवाच

स्वागतं स्वागतं वत्स ! पितामह महाद्युते ! । निर्भयो भव दास्येऽहं सर्वान् कामान् न संशयः ॥२६॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स्मितपूर्वं सुरर्षभः । रजसा बद्धवैरश्च तमवोचं जनार्दनम् ॥२७॥

इस प्रकार नालमार्ग से भ्रमण करते हुए मुझे पुनः सौ वर्ष व्यतीत हो गये। तब मैं मोहित होकर एक क्षण के लिए वहीं स्थित हो गया ॥ १४॥ उस समय परमकल्याणकारिणी आकाशवाणी हुई कि 'हे ब्रह्मन् ! तुम तप करो ।' हे महामुने ! उस आकाशवाणी को सुनकर मेरा मोह नष्ट हो गया ॥ १५ ॥ तदनन्तर उस आकाशवाणी को सुनकर पिता के दर्शन की लालसा से मैंने बारह वर्ष पर्यन्त घोर तप किया ॥ १६ ॥ उसी समय भगवान् विष्णु चार-भुजाओं से एवं मनोहर नेत्रों से युक्त हो मेरे ऊपर अनुग्रह करने की इच्छा से शीघ्र ही प्रगट हो गये ॥ १७ ॥ वे अपने हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये हुए थे। उनके शरीर का वर्ण मेघ के समान श्यामवर्ण था, वे पीताम्बर पहने हुए थे ॥१८॥ वे मुकुट आदि महान् आभूषणों से युक्त एवं प्रसन्नचित्त थे, करोड़ों कामदेव के समान कमनीय कान्तिवाले उस विष्णु को मैंने मोहित होकर देखा ॥ १९ ॥ उस सुन्दर रूप को देखते ही मैं आश्चर्य-चकित हो गया। वे भगवान् शरीर की आभा से काले तथा पीताम्बर की शोभा से काञ्चनवर्ण के दिखाई पड़ रहे थे। चार भुजाओं से युक्त सर्वात्मा सदसन्मय महाबाहु नारायण स्वरूप उन विष्णु का दर्शन कर मैं परम प्रहर्ष को प्राप्त हो गया ॥ २०-२१ ॥ तब लीलात्मा उन सदाशिव की माया से मोहित होने के कारण मैं उन विष्णु को अपना पिता न जान कर हर्षित हो उनसे कहने लगा—॥ २२ ॥

ब्रह्मा जी बोले—अपने तीव्र एवं दृढ़ हाथ के प्रहार से तुम कौन हो ? ऐसा कहकर मैंने उस सनातन पुरुष को जगाया। तदनन्तर वे जितेन्द्रिय विष्णु क्षणमात्र में शयन से जागकर उठ बैठे। और उन्होंने निद्रा-रहित हो अपने कमल-सदृश नेत्रों से वहाँ स्थित हुए मुझे देखा। फिर उठकर हँसते हुए मधुर वाणी में मुझसे कहने लगे ॥ २३-२५ ॥

भगवान् विष्णु बोले—हे वत्स ! तुम्हारा स्वागत है, महाकान्तिमान् ब्रह्मन् ! तुम्हारा स्वागत है। तुम निर्भय होकर निवास करो, मैं तुम्हारी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करूँगा, इसमें संशय नहीं है ॥ २६ ॥ मन्द-मन्द हँसते हुए विष्णु के वचन को सुनकर रजोगुण से वैर मानता हुआ मैं उन जनार्दन से कहने लगा ॥ २७ ॥

ब्रह्मोवाच

भाषसे वत्स! वत्सेति सर्वसंहारकारणम्। मामिहाति स्मितं कृत्वा गुरुशिष्यमिवानघ! ॥२८॥
कर्तारं जगतां साक्षात् प्रकृतेश्च प्रवर्तकम्। सनातनमजं विष्णुं विरिञ्चिं विष्णुसम्भवम् ॥२९॥
विश्वात्मानं विधातारं धातारं पङ्कजेक्षणम्। किमर्थं भाषसे मोहाद् वक्तुमर्हसि सत्वरम् ॥३०॥
वेदो मां वक्ति नियमात् स्वयम्भुवमजं विभुम्। पितामहं स्वराजं च परमेष्ठिनमुत्तमम् ॥३१॥
इत्याकर्ण्य हरिर्वाक्यं मम क्रुद्धो रमापतिः। सोऽपि मामाह जाने त्वां कर्तारमिति लोकतः॥३२॥

विष्णुरुवाच

कर्तुं धर्तुं भवानङ्गादवतीर्णो ममाऽव्ययात्। विस्मृतोऽसि जगन्नाथं नारायणमनामयम् ॥३३॥
पुरुषं परमात्मानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम्। विष्णुमच्युतमीशानं विश्वस्य प्रभवोद्भवम् ॥३४॥
नारायणं महाबाहुं सर्वव्यापकमीश्वरम्। मन्नाभिपद्मतस्त्वं हि प्रसूतो नाऽत्र संशयः ॥३५॥
तवापराधो नाऽस्त्यत्र त्वयि मायाकृतं मम। शृणु सत्यं चतुर्वक्त्र! सर्वदेवेश्वरो ह्यहम् ॥३६॥
कर्ता हर्ता च भर्ता च न मयाऽस्ति समो विभुः। अहमेव परं ब्रह्म परं तत्त्वं पितामह! ॥३७॥
अहमेव परं ज्योतिः परमात्मा त्वहं विभुः। अद्य दृष्टं श्रुतं सर्वं जगत्यस्मिन् चराऽचरम् ॥३८॥
तत्तद् विद्धि चतुर्वक्त्र! सर्वं मन्मयमित्यथ। मया सृष्टं पुरा व्यक्तं चतुर्विंशतितत्त्वकम् ॥३९॥
नित्यं तेष्वणवो बद्धाः सृष्टक्रोधभयादयः। प्रभावाच्च भवानङ्गान्यनेकानीह लीलया ॥४०॥
सृष्टा बुद्धिर्मया तस्यामहङ्कारस्त्रिधा ततः। तन्मात्रं पञ्चकं तस्मान् मनोदेहेन्द्रियाणि च ॥४१॥
आकाशादीनि भूतानि भौतिकानि च लीलया। इति बुद्ध्वा प्रजानाथ! शरणं व्रज मे विधे! ॥४२॥

ब्रह्मा जी बोले--हे निष्पाप विष्णो! सभी का संहार करने वाला तो मैं हूँ। फिर तुम हँसकर मुझे इस प्रकार वत्स! वत्स! किस प्रकार कहते हो। यह तुम्हारा शासन तो मुझे उसी प्रकार ज्ञात हो रहा है जैसे कोई शिष्य अपने गुरु को ही वत्स-वत्स कह रहा हो ॥ २८ ॥ क्या तुम नहीं जानते कि मैं ही इस जगत् का साक्षात् कर्त्ता और प्रकृति का संचालन करने वाला हूँ। मैं ही सनातन, अज, विष्णु, ब्रह्मा एवं विष्णु को उत्पन्न करने वाला हूँ ॥ २९ ॥ मैं ही विश्वात्मा, विधाता, धाता एवं पुण्डरीकाक्ष हूँ। फिर तुम मुझे वत्स किस प्रकार कहते हो, इसका कारण शीघ्र बताओ ॥ ३० ॥ मुझे वेद भी नियमतः स्वयम्भू, अज, विभु, पितामह, स्वराट्, सर्वोत्तम एवं परमेष्ठी कहते हैं ॥ ३१ ॥ मेरी बातों को सुनते ही भगवान् रमापति मेरे ऊपर क्रुद्ध होकर कहने लगे कि, मैं लोगों के द्वारा तुम कर्त्ता हो, ऐसा जानता हूँ ॥ ३२ ॥

विष्णु भगवान् बोले--हे ब्रह्मन्! तुम इस जगत् की सृष्टि एवं पालन के लिए मुझ निराकार एवं अव्यय से उत्पन्न हुए हो, फिर मुझ मायारहित जगन्नाथ, नारायण, पुरुष, परमात्मा, पुरुहूत, पुरुष्टुत, विष्णु, अच्युत, ईशान एवं विश्व की उत्पत्ति करने वाले, पालन करने वाले, महाबाहु, नारायण, सर्वव्यापक, ईश्वर को तुम भूल गये। हे ब्रह्मन्! तुम तो मुझ ईश्वर के नाभिकमल से उत्पन्न हो, इसमें संशय नहीं ॥३३-३५॥ अस्तु, इसमें तुम्हारा अपराध नहीं है। यह सारी रचना तो मेरे माया की है। हे चतुर्मुख! तुम मेरी बात सुनो। मैं ही सभी देवों का ईश्वर हूँ, यह मेरा वचन सत्य है ॥ ३६ ॥ मैं सभी का कर्त्ता, हर्त्ता एवं भर्त्ता हूँ। मेरे समान और कोई विभु नहीं है। हे पितामह! मैं ही परब्रह्म एवं परतत्त्व हूँ ॥ ३७ ॥ मैं ही परंज्योति, परमात्मा हूँ। यह दिखाई देने वाला तथा सुनाई पड़ने वाला सारा चराचर जगत् मुझ में ही स्थित है ॥ ३८ ॥

हे चतुर्वक्त्र! यह जो कुछ भी है सब मैं ही हूँ। मैंने ही अव्यक्त से लेकर चौबीस तत्त्वों की रचना की है ॥ ३९ ॥ निश्चय ही उन तत्त्वों को अणु ही एक में मिलाते हैं और उन्हीं के द्वारा क्रोध, भयादिक की सृष्टि हुई है, मेरे प्रभाव एवं मेरी लीला से आप अनेक अङ्ग वाले हो ॥ ४० ॥ मैंने बुद्धितत्त्व की रचना की, पुनः उस बुद्धि में तीन प्रकार का अहङ्कार उत्पन्न किया। उस अहङ्कार से पञ्च-तन्मात्राएँ, मन, देह, इन्द्रियाँ, आकाशादि पञ्चमहाभूत एवं सभी भौतिक पदार्थ लीला से ही निर्माण किये।

अहं त्वां सर्वदुःखेभ्यो रक्षिष्यामि न संशयः ।

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मा क्रोधसमन्वितः । को वा त्वमिति संभर्त्स्याब्रुवं मायाविमोहितः ॥४३॥
किमर्थं भाषसे भूरि बह्वनर्थकरं वचः । नेश्वरस्त्वं परब्रह्म कश्चित् कर्ता भवेत्तव ॥४४॥
मायया मोहितश्चाऽहं युद्धं चक्रे सुदारुणम् । हरिणा तेन वै सार्द्धं शङ्करस्य महाप्रभोः ॥४५॥
एवं मम हरेश्चाऽऽसीत् सङ्गरो रोमहर्षणः । प्रलयार्णवमध्ये तु रजसा बद्धवैरयोः ॥४६॥
एतस्मिन्नन्तरे लिङ्गमभवच्चावयोः पुरः । विवादशमनार्थं हि प्रबोधार्थं तथाऽऽवयोः ॥४७॥
ज्वालामालासहस्राढ्यं कालानलशतोपमम् । क्षयवृद्धि-विनिर्मुक्तमादि-मध्यान्त-वर्जितम् ॥४८॥
अनौपम्यमनिर्देश्यमव्यक्तं विश्वसम्भवम् । तस्य ज्वालासहस्रेण मोहितो भगवान् हरिः ॥४९॥
मोहितं चाह मामत्र किमर्थं स्पर्द्धसेऽधुना । आगतस्तु तृतीयोऽत्र तिष्ठतां युद्धमावयोः ॥५०॥
कुत एवाऽत्र सम्भूतः परीक्षावोऽग्निसम्भवम् । अधो गमिष्याम्यनलस्तम्भस्याऽनुपमस्य च ॥५१॥
परीक्षार्थं प्रजानाथ ! तस्य वै वायुवेगतः । भवानूर्ध्वं प्रयत्नेन गन्तुमर्हन्ति सत्वरम् ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

एवं व्याहृत्य विश्वात्मा स्वरूपमकरोत्तदा । वाराहमहमप्याशु हंसत्वं प्राप्तवान् मुने ! ॥५३॥
तदा प्रभृति मामाहुर्हंसहंसो विराडिति । हंसहंसेति यो ब्रूयात् स हंसोऽथ भविष्यति ॥५४॥
सुश्वेतो ह्यनलप्रख्यो विश्वतः पक्षसंयुतः । मनोऽनिलजवो भूत्वा गत्वोर्ध्वं चोर्ध्वतः पुरा ॥५५॥

हे प्रजापते ! हे ब्रह्मा ! ऐसा समझकर तुम मेरी शरण में निवास करो। मैं तुम्हारी सभी प्रकार के दुःखों से रक्षा करूँगा। इसमें सन्देह नहीं। तब ब्रह्मा नारद से कहने लगे ॥ ४१-४२ ॥

ब्रह्मा बोले—हे नारद ! तब मुझ ब्रह्मा को बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ। फिर माया से मोहित होकर मैं उन विष्णु को ललकारता हुआ कहने लगा—बताओ कि तुम कौन हो ? ॥ ४३ ॥ तुम इतना व्यर्थ का बकवाद क्यों करते हो ? तुम परब्रह्म, ईश्वर आदि कुछ नहीं हो। तुम्हारा अवश्य कोई कर्त्ता होगा ॥ ४४ ॥ फिर क्या था ? शङ्कर की माया से मोहित होने के कारण मैंने उन महाप्रभु विष्णु से घोर युद्ध ठान लिया ॥४५॥ तदनन्तर उस प्रलय महापर्व में रजोगुण से परस्पर शत्रुता रखने वाले मुझ ब्रह्मा एवं नारायण के बीच रोमाञ्चित करने वाला घनघोर युद्ध होने लगा ॥ ४६ ॥ इसी अवसर में उस विवाद को शान्त करने के लिए तथा हम दोनों को ज्ञान देने के लिए दोनों के बीच में एक लिङ्ग प्रकट हो गया ॥ ४७ ॥ वह लिङ्ग हजारों ज्वाला-समूहों से व्याप्त था, सैकड़ों कालाग्नि के समान देदीप्यमान एवं आदि-मध्यान्त से वर्जित तथा क्षय-वृद्धि से रहित नित्य था ॥ ४८ ॥ वह उपमा रहित, अनिर्देश्य, अविनाशी, अव्यक्त तथा विश्व को उत्पन्न करने वाला था। ऐसे सहस्र ज्वाला-मालाओं से युक्त उस लिङ्ग को देखते ही भगवान् विष्णु मोहित हो गये ॥ ४९ ॥ फिर वे मुझसे कहने लगे-तुम इस समय मुझसे इस प्रकार की स्पर्द्धा क्यों करते हो ? देखो, हम दोनों के बीच यह तीसरा पदार्थ प्रगट हो गया है अतः युद्ध बन्द करो ॥ ५० ॥ आओ, हम दोनों परीक्षा करें कि यह अग्नि के समान तेजस्वी लिङ्ग कहाँ से प्रगट हुआ है। हे प्रजानाथ ! मैं अग्निस्तम्भ के समान इस अनुपम लिङ्ग का पता लगाने के लिए नीचे की ओर जाता हूँ ॥ ५१ ॥ आप शीघ्रता से इसका पता लगाने के लिए वायु-वेग से ऊपर की ओर जाइए ॥ ५२ ॥

ब्रह्मा जी बोले—इस प्रकार कहने के उपरान्त विश्वात्मा विष्णु ने अपना वाराह स्वरूप प्रगट किया। और हे महर्षि नारद ! मैंने भी उस लिङ्ग का पता लगाने के लिए हंसरूप धारण किया ॥५३॥ उसी समय से मुझे लोग 'हंस-हंस' और विराट् कहते हैं। इसलिए जो मेरे इस 'हंस-हंस' इस नाम का जप करते हैं वे हंस स्वरूप हो जाते हैं ॥ ५४ ॥ मैं श्वेत एवं अनल नाम के दो पङ्खों को धारण कर वायु तथा मन के

नारायणोऽपि विश्वात्मा सुश्वेतो ह्यभवत्तदा । दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ॥५६॥
मेरुपर्वतवर्ष्माणं गौरतीक्ष्णोग्रदंष्ट्रिणम् । कालादित्यसमाभासं दीर्घघोणं महास्वनम् ॥५७॥
ह्रस्वपादं विचित्राङ्गं जैत्रं दृढमनौपमम् । वाराहाकारमास्थाय गतवांस्तदधो जवात् ॥५८॥
एवं वर्षसहस्रं च चरन् विष्णुरधो गतः । तदाप्रभृति लोकेषु श्वेतवाराहसंज्ञकः ॥५९॥
कल्पो बभूव देवर्षे नराणां कालसंज्ञकः । बभ्राम बहुधा विष्णुः प्रभविष्णुरधोगतः ॥६०॥
नापश्यदल्पमप्यस्य मूलं लिङ्गस्य सूकरः । तावत्कालं गतश्चोर्ध्वमहमप्यरिसूदन ! ॥६१॥
सत्वरं सर्वयत्नेन तस्याऽन्तं ज्ञातुमिच्छया । श्रान्तो न दृष्ट्वा तस्यान्तमहं कालादधोगतः ॥६२॥
तथैव भगवान् विष्णुश्चान्तं कमललोचनः । सर्वदेवनिभस्तूर्णमुत्थितः स महावपुः ॥६३॥
समागतो मया सार्द्धं प्रणिपत्य भवं मुहुः । मायया मोहितः शम्भोस्तस्थौ संविग्नमानसः ॥६४॥
पृष्ठतः पार्श्वतश्चैव ह्यग्रतः परमेश्वरम् । प्रणिपत्य मया सार्द्धं सस्मार किमिदं त्विति ॥६५॥
अनिर्देश्यं च तद्रूपमनाम कर्मवर्जितम् । अलिङ्गं लिङ्गतां प्राप्तं ध्यानमार्गेऽप्यगोचरम् ॥६६॥
स्वस्थं चित्तं तदा कृत्वा नमस्कारपरायणौ । बभूवतुरुभावावामहं हरिरपि ध्रुवम् ॥६७॥
जानीवो न हि ते रूपं योऽसि योऽसि महाप्रभो ! । नमोऽस्तु ते महेशान ! रूपं दर्शय नौ त्वरन् ॥६८॥
एवं शरच्छतान्यासन् नमस्कारं प्रकुर्वतोः । आवयोर्मुनिशार्दूल ! मदमास्थितयोस्तदा ॥६९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे विष्णुब्रह्मविवादवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

समान वेग से उड़ता हुआ लिङ्ग का पता लगाने के लिए ऊपर चला गया ॥५५॥ इधर विश्वात्मा नारायण भी दश योजन चौड़े, सौ योजन लम्बे ॥ ५६ ॥ मेरु पर्वत के समान ऊँचे, बृहदाकार, गौर तथा महातीक्ष्ण दाँतों से युक्त काले आदित्य के समान कान्ति वाली नासिका से युक्त घर्र-घर्र शब्द से गरजते हुए ॥ ५७ ॥ छोटे-छोटे पैर, चित्र-विचित्र अङ्गों से युक्त और सब पर विजय प्राप्त करने वाले अनुपम वाराह रूप धारण कर बड़े वेग से नीचे की ओर गये ॥ ५८ ॥

इस प्रकार भगवान् विष्णु वाराह रूप धारण कर लिङ्ग का पता लगाते हुए हजार वर्षों तक नीचे की ओर चलते रहे। उसी दिन से लोक में मनुष्यों की कालगणना के लिए श्वेत वाराह संज्ञक कल्प का आविर्भाव हुआ। इसी प्रकार महासामर्थ्यशाली विष्णु नीचे जाकर बहुत काल पर्यन्त भ्रमण करते रहे ॥ ५९-६० ॥ किन्तु इतना बड़ा वाराह रूप धारण करने पर भी विष्णु को कहीं उस लिङ्ग का स्वल्प मात्र भी मूल दिखाई न पड़ा। इधर मैं भी उतने ही काल पर्यन्त उस लिङ्ग के अन्त का पता लगाने के लिए ऊपर निरन्तर प्रयत्न पूर्वक शीघ्रता के साथ चलता रहा ॥ ६१ ॥ मैं थक गया किन्तु उस लिङ्ग के अन्त का पता न चला। तब कुछ काल के बाद मैं नीचे की ओर आने लगा ॥ ६२ ॥ उसी प्रकार सर्वदेवस्वरूप, कमललोचन भगवान् विष्णु भी उस लिङ्ग का अन्त न पा शीघ्र ही ऊपर को लौटे ॥ ६३ ॥ फिर हम दोनों साथ-साथ एक स्थान पर मिल गये और शिव की माया से मोहित एवं संविग्न चित्त होने के कारण शिव को बारम्बार प्रणाम किया ॥ ६४ ॥ विष्णु के आगे-पीछे एवं पार्श्व में स्थित उन परमात्मा शिव को मेरे साथ प्रणाम कर विचार किया कि यह सब क्या है ? ॥६५॥ जिसका रूप अनिर्देश्य है, जो नाम एवं कर्म से रहित है, जो ध्यानमार्ग से भी अगम्य है वह अलिङ्ग परमात्मा लिङ्ग रूप को कैसे प्राप्त हुआ ॥ ६६ ॥ फिर हम और विष्णु दोनों ही अपने चित्त को स्थिर कर बारम्बार शिव जी को प्रणाम कर कहने लगे—हे महाप्रभो ! हम दोनों आपके रूप को नहीं जानते। अतः आप चाहे जैसे भी हों आप को नमस्कार करते हैं। हे महेशान ! आप शीघ्र ही हमें अपने रूप का दर्शन दीजिए। हे मुनिश्रेष्ठ ! इस मोह को प्राप्त हुए हम दोनों को प्रणाम करते-करते सैकड़ों वर्ष बीत गये ॥ ६७-६९ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के प्रथम-सृष्टिखण्ड में विष्णु-ब्रह्मविवाद वर्णन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥

*

अष्टमोऽध्यायः

(प्रणव-ॐकार से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एवं ब्रह्मा और विष्णु के अभिमानरूप गर्व का नाश)

ब्रह्मोवाच

एवं तयोर्मुनिश्रेष्ठ ! दर्शनं कांक्षमाणयोः । विगर्वयोश्च सुरयोः सदा नौ स्थितयोर्मुने ! ॥ १ ॥
दयालुरभवच्छम्भुर्दीनानां प्रतिपालकः । गर्विणां गर्वहर्ता च सर्वेषां प्रभुरव्ययः ॥ २ ॥
तदा समभवत्तत्र नादो वै शब्दलक्षणः । ओमोमिति सुरश्रेष्ठात् सुव्यक्तः प्लुतलक्षणः ॥ ३ ॥
किमिदं त्विति सञ्चिन्त्य मया तिष्ठन् महास्वनः । विष्णुः सर्वसुराराध्यो निर्वैरस्तुष्टचेतसा ॥ ४ ॥
लिङ्गस्य दक्षिणे भागे तथाऽपश्यत् सनातनम् । आद्यं वर्णमकाराख्यमुकारं चोत्तरं ततः ॥ ५ ॥
मकारं मध्यतश्चैव नादमन्तेऽस्य चोमिति । सूर्यमण्डलवद् दृष्ट्वा वर्णमाद्यं तु दक्षिणे ॥ ६ ॥
उत्तरे पावकप्रख्यमुकारमृषिसत्तम ! । शीतांशुमण्डलप्रख्यं मकारं तस्य मध्यतः ॥ ७ ॥
तस्योपरि तदाऽपश्यच्छुद्धस्फटिकसुप्रभम् । तुरीयातीतममलं निष्कलं निरुपद्रवम् ॥ ८ ॥
निर्द्वन्द्वं केवलं शून्यं बाह्याभ्यन्तरवर्जितम् । स बाह्याभ्यन्तरे चैव बाह्याभ्यन्तरसंस्थितम् ॥ ९ ॥
आदि-मध्यान्त-रहितमानन्दस्यादि कारणम् । सत्यमानन्दममृतं परं ब्रह्म परायणम् ॥ १० ॥
कुत एवाऽत्र सम्भूतः परीक्षावोऽग्निसम्भवम् । अधो गमिष्याम्यनलस्तम्भस्यानुपमस्य च ॥ ११ ॥
वेदशब्दोभयावेशं विश्वात्मानं व्यचिन्तयत् । तदाऽभवदृषिस्तत्र ऋषेः सारतमं स्मृतम् ॥ १२ ॥
तेनैव ऋषिणा विष्णुर्ज्ञातवान् परमेश्वरम् । महादेवं परं ब्रह्म शब्दब्रह्मतनुं परम् ॥ १३ ॥
चिन्तया रहितो रुद्रो वाचो यन्मनसा सह । अप्राप्य तन्निवर्तन्ते वाच्यस्त्वेकाक्षरेण सः ॥ १४ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार दर्शन की इच्छा करने वाले हम दोनों देवताओं को प्रणाम करते-करते जब गर्व दूर हो गया ॥ १ ॥ तब दोनों के पालन करने वाले, घमण्डियों का घमण्ड दूर करने वाले, अव्यय श्री शिवजी दयालु हुए ॥ २ ॥ उन श्रेष्ठ महादेव जी ने बड़े सुस्पष्ट शब्दों से प्लुतमात्रा में शब्द-लक्षण से लक्षित ॐकार का उच्चारण किया ॥ ३ ॥ उसी समय मेरे साथ स्थित हुए सुराराध्य विष्णु 'यह महाशब्द कहाँ से आया ?' यह सोचते हुए निर्वैर हो सन्तुष्ट चित्त हो गये ॥ ४ ॥ उन्होंने लिङ्ग के दक्षिणभाग में सनातन आद्यवर्ण अकार और उसके उत्तर में उकार को देखा ॥ ५ ॥ मकार को मध्य में और अन्त में नाद ॐकार को देखा। उन्होंने लिङ्ग के दक्षिण भाग में स्थित आद्य अकार वर्ण को सूर्यमण्डल के समान देखा ॥ ६ ॥ हे नारद ! उत्तर भाग में स्थित उकार को पावक के समान एवं मध्य में स्थित मकार को चन्द्रमण्डल के समान देखा ॥ ७ ॥ फिर उसके ऊपर शुद्ध स्फटिक के समान आभावाले तुरीय से परे निर्मल, निराकार, उपद्रव से रहित, ॥ ८ ॥ निर्द्वन्द्व, बाहर तथा भीतर से रहित केवल शून्य, जो बाह्याभ्यन्तर में सर्वत्र व्याप्त, आदि, मध्य एवं अन्त से रहित, सबके आनन्द का कारण सत्य, आनन्द, अमृत स्वरूप परब्रह्म को देखा ॥ ९-१० ॥

विष्णु ने सोचा कि, इस अग्निसम्भव इस प्रणव की हमलोग परीक्षा करें कि यह कहाँ से प्रगट हुआ ? अतः इस स्तम्भ को नीचे से जाकर इसका पता लगाना चाहिए ॥ ११ ॥ फिर वेदशब्द से शब्दब्रह्म एवं परब्रह्म इन उभयावेश वाले परमात्मा को स्मरण किया। उसी समय वहाँ एक ऋषि हुआ, जो समस्त ऋषियों का अत्यन्त सूक्ष्मतत्त्व है ॥ १२ ॥ उन ऋषि के द्वारा ही विष्णु ने महादेव, परंब्रह्म, पर शरीर से शब्दब्रह्म का रूप धारण करने वाले उन्हें परमेश्वर समझा ॥ १३ ॥ यह रुद्र हैं, जो ध्यान से परे हैं, जहाँ मन के साथ वाणी जाकर भी उसे प्राप्त किये विना ही लौट आती है। वह 'ॐ' इस एकाक्षर से वाच्य

एकाक्षरेण तद्वाक्यमृतं परमकारणम् । सत्यमानन्दममृतं परं ब्रह्म परात्परम् ॥१५॥
एकाक्षरादकाराख्याद् भगवान् बीजकोऽण्डजः । एकाक्षरादुकाराख्याद्धरिः परमकारणम् ॥१६॥
एकाक्षरान् मकाराख्याद् भगवान् नीललोहितः । सर्गकर्त्ता त्वकाराख्यो ह्युकाराख्यस्तु मोहकः॥१७॥
मकाराख्यस्तु यो नित्यमनुग्रहकरोऽभवत् । मकाराख्यो विभुर्बीजी ह्यकारो बीज उच्यते ॥१८॥
उकाराख्यो हरिर्योनिः प्रधानपुरुषेश्वरः । बीजी च बीजं तद्योनिर्नादाख्यश्च महेश्वरः ॥१९॥
बीजी विभज्य चात्मानं स्वेच्छया तु व्यवस्थितः । अस्य लिङ्गादभूद् बीजमकारो बीजिनः प्रभोः ॥२०॥
उकारयोनौ निःक्षिप्तमवर्द्धत समन्ततः । सौवर्णमभवच्चाण्डमावेद्यं तदलक्षणम् ॥२१॥
अनेकाब्दं तथा चाऽप्सु दिव्यमण्डं व्यवस्थितम् । ततो वर्षसहस्रान्ते द्विधा कृतमजोद्भवम् ॥२२॥
अण्डमप्सु स्थितं साक्षाद् व्याघातेनेश्वरेण तु । तथाऽस्य सुशुभं हैमं कपालं चोर्ध्वसंस्थितम् ॥२३॥
जज्ञे सा द्यौस्तदपरं पृथिवी पञ्चलक्षणा । तस्मादण्डाद् भवो जज्ञे ककाराख्यश्चतुर्मुखः ॥२४॥
स स्रष्टा सर्वलोकानां स एव त्रिविधः प्रभुः । एवमोमोमिति प्रोक्तमित्याहुर्यजुषां वराः ॥२५॥
यजुषां वचनं श्रुत्वा ऋचः सामानि सादरम् । एवमेव हरे ब्रह्मन्नित्याहुश्चावयोस्तदा ॥२६॥
ततो विज्ञाय देवेशं यथावच्छक्तिसम्भवैः । मन्त्रैं महेश्वरं देवं तुष्टाव सुमहोदयम् ॥२७॥
एतस्मिन्नन्तरेऽन्यच्च रूपमद्भुतसुन्दरम् । ददर्श च मया सार्द्धं भगवान् विश्वपालकः ॥२८॥
पञ्चवक्त्रं दशभुजं गौरकर्पूरवन् मुने ! । नानाकान्तिसमायुक्तं नानाभूषणभूषितम् ॥२९॥
महोदारं महावीर्यं महापुरुषलक्षणम् । तं दृष्ट्वा परमं रूपं कृतार्थोऽभून् मया हरिः ॥३०॥

है ॥ १४ ॥ एकाक्षर के होने के कारण ही उसका वाक्य सत्य एवं सभी कारणों का कारण है। वे ही सत्य, आनन्द, अमृत परं ब्रह्म और पर से परे हैं ॥ १५ ॥ उसी अकार रूप से एकाक्षर-बीजस्वरूप अण्डोत्पन्न ब्रह्मा हैं। एकाक्षर उकार से हरि (विष्णु) सबके परम कारण हैं ॥ १६ ॥ एकाक्षर मकार से भगवान् नीललोहित हैं। अकार सृष्टिकर्त्ता है, उकार मोहने वाला है ॥ १७ ॥ यह मकार नित्य ही अनुग्रह करने वाला है। मकार ही विभु और बीजी है। एवं अकार बीज कहा जाता है ॥ १८ ॥ उकाररूप प्रधान पुरुष ईश्वर तथा विष्णु की योनि (कारण) है। बीजी, बीज उसकी योनि जिसे नाद कहते हैं, वही महेश्वर है ॥ १९ ॥ यह बीजी अपने को विभक्त कर स्वेच्छा से स्थित हुआ है। इसी प्रभु बीजी के लिङ्ग से अकार रूप बीज उत्पन्न हुआ है। वह अकार रूप बीज ही उकार रूप योनि में पड़ कर सब ओर से बढ़ने लगा। वही बढ़ कर सुवर्णमय अण्ड के रूप में परिवर्त्तित हुआ। वह अण्ड आवेद्य एवं अलक्षण था ॥२०-२१॥ इस प्रकार वह दिव्य अण्ड अनेक वर्षों तक जल में स्थित रहा। फिर हजार वर्ष के बाद भगवान् ने इसके दो भाग कर दिये ॥ २२ ॥ इस प्रकार जल में स्थित हुए उस अण्ड को जब परमेश्वर ने व्याघात किया, तो उसका एक कपाल जो सुवर्णमय था, वह ऊपर जाकर स्थित हो गया ॥ २३ ॥ वही द्युलोक हुआ। और नीचे के कपाल से पञ्चतत्त्वात्मिका पृथ्वी हुई। फिर उसी अण्ड से भव तथा ककार नाम वाले चतुर्मुख प्रगट हुए ॥ २४ ॥ वह ब्रह्मा ही इस लोक के स्रष्टा तथा तीन रूप धारण करने वाले हैं। इसी से यजुर्वेदी उन्हें ॐ इस नाम से पुकारते हैं ॥ २५ ॥

यजुः के वचन को सुन कर ऋक् एवं साम आदर से हम दोनों को 'हे हरे ! हे ब्रह्मन् !' ऐसा कहते हैं ॥ २६ ॥ इस प्रकार देवेश को जान कर यथायोग्य अपनी शक्ति से सम्भव मन्त्रों द्वारा महेश्वरदेव की स्तुति करने लगे ॥ २७ ॥ इसी समय जगतपालक विष्णु ने मेरे साथ एक बहुत सुन्दर तथा अद्भुत रूप को देखा ॥ २८ ॥ हे मुने ! वह रूप पाँचमुख, दशभुजा से युक्त तथा कपूर के समान अत्यन्त शुभवर्ण का था। उस रूप से अनेक प्रकार की कान्ति निकल रही थी एवं वह अनेक प्रकार से आभूषणों से भूषित तथा महान् उदार, महावीर्य, महापुरुष के लक्षण से लक्षित उस मनोहर ॥ २९ ॥ रूप को देखते ही मेरे

अथ प्रसन्नो भगवान् महेशः परमेश्वरः । दिव्यं शब्दमयं रूपमाख्याय प्रहसन् स्थितः ॥३१॥
अकारस्तस्य मूर्द्धा हि ललाटो दीर्घ उच्यते । इकारो दक्षिणं नेत्रमीकारो वामलोचनम् ॥३२॥
उकारो दक्षिणं श्रोत्रमूकारो वाम उच्यते । ऋकारो दक्षिणं तस्य कपोलं परमेष्ठिनः ॥३३॥
वामं कपोलमृकारो ऌ ॡ नासापुटे उभे । एकारश्चोष्ठ ऊर्ध्वश्च ह्यैकारस्त्वधरो विभोः ॥३४॥
ओकारश्च तथौकारो दन्तपङ्क्तिद्वयं क्रमात् । अमस्तु तालुनी तस्य देवदेवस्य शूलिनः ॥३५॥
कादि-पञ्चाक्षराण्यस्य पञ्च हस्ताश्च दक्षिणे । चादि-पञ्चाक्षराण्येवं पञ्च हस्तास्तु वामतः ॥३६॥
टादि-पञ्चाक्षरं पादास्तादि-पञ्चाक्षरं तथा । पकार उदरं तस्य फकारः पार्श्व उच्यते ॥३७॥
बकारो वामपार्श्वस्तु भकारः स्कन्ध उच्यते । मकारो हृदयं शम्भोर्महादेवस्य योगिनः ॥३८॥
यकारादि-सकारान्ता विभोर्वै सप्तधातवः । हकारो नाभिरूपो हि क्षकारो घ्राण उच्यते ॥३९॥
एवं शब्दमयं रूपमगुणस्य गुणात्मनः । दृष्ट्वा तमुमया सार्द्धं कृतार्थोऽभून् मया हरिः॥४०॥
एवं दृष्ट्वा महेशानं शब्दब्रह्मतनुं शिवम् । प्रणम्य च मया विष्णुः पुनश्चाऽपश्यदूर्ध्वतः॥४१॥
ॐकारप्रभवं मन्त्रं कलापञ्चकसंयुतम् । शुद्धस्फटिकसङ्काशं शुभाष्टत्रिंशदक्षरम् ॥४२॥
मेधाकारमभूद् भूयः सर्वधर्मार्थसाधकम् । गायत्रीप्रभवं मन्त्रं सहितं वश्यकारकम् ॥४३॥
चतुर्विंशतिवर्णाढ्यं चतुष्कालमनुत्तमम् । अथ पञ्चसितं मन्त्रं कलाष्टकसमायुतम् ॥४४॥
आभिचारिकमत्यर्थं प्रायस्त्रिंशच्छुभाक्षरम् । यजुर्वेदसमायुक्तं पञ्चविंशच्छुभाक्षरम् ॥४५॥
कलाष्टकसमायुक्तं सुश्वेतं शान्तिकं तथा । त्रयोदशकलायुक्तं बालाद्यैः सह लोहितम् ॥४६॥

साथ भगवान् विष्णु कृतार्थ हो गये ॥ ३० ॥ तब परमेश्वर भगवान् महेश्वर प्रसन्न होकर दिव्य शब्दमय रूप से स्थित हो गये ॥ ३१ ॥ उन शब्दमय परमेश्वर का शिर अकार एवं दीर्घ आकार, उनका ललाट, इकार दक्षिण नेत्र एवं दीर्घ ईकार वाम नेत्र है ॥ ३२ ॥ उकार दाहिना श्रोत्र, दीर्घ ऊकार बायाँ श्रोत्र, ऋकार उस परमेष्ठी का दाहिना कपोल है ॥ ३३ ॥ एवं दीर्घ ॠकार बायाँ कपोल, इसी प्रकार ऌ, ॡ उनके दोनों नासापुट, एकार ऊपर का ओठ और ऐकार नीचे का ओठ है ॥ ३४ ॥ ओकार तथा औकार उनकी दोनों ओर की दाँतों की पङ्क्तियाँ हैं। अं अः ये दोनों उस परमेश्वर की तालु हैं। क ख ग घ ङ ये पाँच दाहिने हाथ और च छ ज झ ञ उनके बायें हाथ हैं ॥३५-३६॥ ट ठ ड ढ ण ये पाँच अक्षर उनके दाहिने पैर तथा त थ द ध न ये पाँच अक्षर उनके बायें चरण हैं। पकार उदर भाग तथा फकार पार्श्वभाग कहा जाता है ॥ ३७ ॥ बकार वाम पार्श्व, भकार स्कन्ध कहा जाता है। महादेव महेश्वर का हृदय मकार है ॥ ३८ ॥ यकार से सकार पर्यन्त उस विभु की सात धातुएँ हैं। हकार नाभि एवं क्षकार प्राण है ॥३९॥

इस प्रकार उस गुणहीन गुणात्मक के शब्दमय रूप को देख कर मेरे साथ भगवान् विष्णु कृतार्थ हो गये ॥ ४० ॥ फिर मेरे साथ विष्णु ने महेश्वर के इस शब्दब्रह्ममय रूप को देख कर प्रणाम किया और ऊपर की ओर देखने लगे ॥४१॥ वहाँ ॐकार से प्रकट हुआ पाँच कला से युक्त शुद्ध स्फटिकमणि के समान सुन्दर और स्वच्छ अड़तीस अक्षरों से युक्त मन्त्र को देखा। फिर वही मन्त्र सभी धर्म, अर्थ का साधक होकर पुनः बुद्धि के रूप में प्रगट हो गया। वह मन्त्र गायत्री से प्रगट हुआ। उसमें चौबीस वर्ण हैं तथा सबको वश में करने वाला है। (मन्त्र का स्वरूप–'तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि, तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।' अथवा 'तत्सवितुर्वरेण्यं' इत्यादि बुद्धि का प्रेरक मन्त्र है।) यह मन्त्र अत्यन्त श्रेष्ठ तथा चार कलाओं से युक्त है और पंचसित मन्त्र 'ॐ नमः शिवाय' है। जो आठ कलाओं से युक्त है। अभिचार कार्य के लिए प्रयोग में लाये जाने वाला मन्त्र प्रायः तीस अक्षरों से सम्पन्न है। यजुर्वेद से युक्त मन्त्र पचीस सुन्दर अक्षरों से युक्त है। यह आठ कलाओं से सम्पन्न सुश्वेत वर्ण का है, जिसका प्रयोग शान्तिकार्य के

बभूवुरस्य चोत्पत्तिवृद्धिसंहारकारणम् । वर्णा एकाधिकाः षष्टिरस्य मन्त्रवरस्य तु ॥४७॥
पुनर्मृत्युञ्जयं मन्त्रं पञ्चाक्षरमतः परम् । चिन्तामणिं तथा मन्त्रं दक्षिणामूर्तिसंज्ञकम् ॥४८॥
ततस्तत्त्वमसीत्युक्तं महावाक्यं हरस्य च । पञ्चमन्त्रांस्तथा लब्ध्वा जजाप भगवान् हरिः ॥४९॥
अथ दृष्ट्वा कलावर्णमृग्यजुःसामरूपिणम् । ईशानमीशमुकुटं पुरुषाख्यं पुरातनम् ॥५०॥
अघोरहृदयं हृद्यं सर्वगुह्यं सदाशिवम् । वामपादं महादेवं महाभोगीन्द्रभूषणम् ॥५१॥
विश्वतः पादवन्तं तं विश्वतोऽक्षिकरं शिवम् । ब्रह्मणोऽधिपतिं सर्ग-स्थिति-संहारकारणम् ॥५२॥
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः साम्बं वरदमीश्वरम् । मया च सहितो विष्णुर्भगवांस्तुष्टचेतसा ॥५३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्टयुपाख्याने शब्दब्रह्मतनुवर्णनं नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

(पञ्चमुखी शिव से ब्रह्मा और विष्णु का चारों वेद पठन तथा उन्हें शिव द्वारा वर प्रदान)

ब्रह्मोवाच

अथाकर्ण्य नुतिं विष्णुकृतां स्वस्य महेश्वरः । प्रादुर्बभूव सुप्रीतः सवामं करुणानिधिः ॥ १ ॥
पञ्चवक्त्रस्त्रिनयनो भालचन्द्रो जटाधरः । गौरवर्णो विशालाक्षो भस्मोद्धूलितविग्रहः ॥ २ ॥
दशबाहुर्नीलगलः सर्वाभरणभूषितः । सर्वाङ्गसुन्दरो भस्मत्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकः ॥ ३ ॥
तं दृष्ट्वा तादृशं देवं सवामं परमेश्वरम् । तुष्टाव पुनरिष्टाभिर्वाग्भिर्विष्णुर्मया सह ॥ ४ ॥
निगमं श्वासरूपेण ददौ तस्मै ततो हरः । विष्णवे च प्रसन्नात्मा महेशः करुणाकरः ॥ ५ ॥

लिए किया जाता है । जो तेरह कला से युक्त, वालादि के सहित, लेहित, उत्पत्ति, पालन तथा संहार का कारण है, वह मन्त्र इकसठ वर्णों का है । इसके बाद मृत्युञ्जय मन्त्र है ('ॐ हौं जू सः' अथवा 'त्र्यम्बकं यजामहे' इत्यादि) । इसके बाद पाँच अक्षरों वाला 'नमः शिवाय' मन्त्र फिर 'क्ष्म्यौं' यह चिन्तामणि मन्त्र यथा—(अग्निः संवर्त्तकादित्यावनिलौ षष्ठविन्दुमत् । चिन्तामणिरिति ख्यातमित्यादि) और (ॐ नमो भगवते दक्षिणामूर्त्तये मह्यं मेधां प्रयच्छ स्वाहा) दक्षिणामूर्ति मन्त्र के रूप में शब्दमय शिव का दर्शन किया । फिर वे विष्णु 'तत्त्वमसि' इस महावाक्य का जप करने लगे ॥ ४२-४९ ॥

ऋक्, यजुः, सामरूपी, कलावर्ण से युक्त, ईशान, ईशमुकुट, पुरातन पुरुष, अघोरहृदय, मनोहर सबके अन्तर्यामी सदाशिव, भोगीन्द्र भूषण, वामपाद, चारों ओर चरणवाले, सभी ओर नेत्र वाले, ब्रह्मा के अधिपति, सृष्टि, स्थिति एवं संहार में कारण वरदायक, साम्बसदाशिव महादेव को देखकर स्तुतिकारक वचनों से मुझ सहित महाविष्णु सन्तुष्ट चित्त से उनकी स्तुति करने लगे ॥ ५०-५३ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' हिन्दीटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत रुद्रसंहिता के प्रथम-सृष्टिखण्ड में शब्द-ब्रह्मतनु वर्णन नामक आठवां अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—विष्णु के द्वारा की गयी अपनी स्तुति सुनकर करुणानिधि महेश्वर प्रसन्न होकर पार्वती सहित प्रगट हो गये ॥ १ ॥ उस समय पञ्चवक्त्र, त्रिनयन, भालचन्द्र, जटाधर, गौरवर्ण, विशाल नेत्रों से युक्त, शरीर में भस्म का उद्धूलन करने वाले, दश भुजा वाले, नीलकण्ठ, सर्वभरणभूषित, सर्वाङ्गसुन्दर एवं मस्तक पर त्रिपुण्ड्र लगाये हुए, पार्वती सहित उन परमेश्वर को देखकर मेरे साथ सुन्दर वाणियों में विष्णु ने उनकी स्तुति की । तदनन्तर करुणाकर महेश्वर ने प्रसन्नचित्त हो विष्णु को श्वास

ततो ज्ञानमदात्तस्मै हरये परमात्मने । परमात्मा पुनर्मह्यं दत्तवान् कृपया मुने ! ॥ ६ ॥
सम्प्राप्य निगमं विष्णुः पप्रच्छ पुनरेव तम् । कृतार्थः साञ्जलिर्नत्वा मया सह महेश्वरम् ॥ ७ ॥

विष्णुरुवाच

कथं च तुष्यसे देव ! मया पूज्यः कथं प्रभो ! । कथं ध्यानं प्रकर्तव्यं कथं व्रजसि वश्यताम् ॥ ८ ॥
किं कर्तव्यं महादेव ! ह्यावाभ्यां तव शासनात् । सदा सदाज्ञापय नौ प्रीत्यर्थं कुरु शङ्कर ! ॥ ९ ॥
एतत् सर्वं महाराज ! कृपां कृत्वाऽऽवयोः प्रभो ! । कथनीयं तथाऽन्यच्च विज्ञाय स्वानुगौ शिव ! ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

इत्येतद् वचनं श्रुत्वा प्रसन्नो भगवान् हरः । उवाच वचनं प्रीत्या सुप्रसन्नः कृपानिधिः ॥११॥

श्रीशिव उवाच

भक्त्या च भवतोर्नूनं प्रीतोऽहं सुरसत्तमौ । पश्यन्तं मां महादेवं भयं सर्वं विमुञ्चताम् ॥१२॥
मम लिङ्गं सदा पूज्यं ध्येयं चैतादृशं मम । इदानीं दृश्यते यद्वत्तथा कार्यं प्रयत्नतः ॥१३॥
पूजितो लिङ्गरूपेण प्रसन्नो विविधं फलम् । दास्यामि सर्वलोकेभ्यो मनोऽभीष्टान्यनेकशः॥१४॥
यदा दुःखं भवेत्तत्र युवयोः सुरसत्तमौ । पूजिते मम लिङ्गे च तदा स्याद् दुःखनाशनम्॥१५॥
युवां प्रसूतौ प्रकृतेर्मदीयाया महाबलौ । गात्राभ्यां सव्य-सव्याभ्यां मम सर्वेश्वरस्य हि ॥१६॥
अयं मे दक्षिणात् पार्श्वाद् ब्रह्मा लोकपितामहः । वामपार्श्वाच्च विष्णुस्त्वं समुत्पन्नः परात्मनः ॥१७॥
प्रीतोऽहं युवयोः सम्यग् वरं दद्यां यथेप्सितम् । मयि भक्तिर्दृढा भूयाद्युवयोरभ्यनुज्ञया ॥१८॥
पार्थिवीं चैव मन्मूर्तिं विधाय कुरु तं युवाम् । सेवां च विविधां प्राज्ञौ कृत्वा सुखमवाप्स्यथः॥१९॥

रूप में वेदों को दिया ॥ २-५ ॥ फिर उन परमात्मा सदाशिव ने प्रथम विष्णु को तथा तदनन्तर मुझे ज्ञान का उपदेश किया ॥ ६ ॥ इस प्रकार वेद को प्राप्त कर लेने के पश्चात् विष्णु ने मेरे साथ ही हाथ जोड़कर सदाशिव से पूछा ॥ ७ ॥

विष्णु बोले—हे देव ! आप किस प्रकार से सन्तुष्ट होते हैं ? हे प्रभो ! मैं आप की किस प्रकार पूजा करूँ । आपके ध्यान का प्रकार क्या है ? और आप किस विधि से वशीभूत होते हैं ?॥८॥ हे महादेव ! आपकी आज्ञा से हमलोगों का क्या कर्त्तव्य है ? कौन अच्छा कार्य है ? और कौन बुरा कार्य है । हे शङ्कर ! हम लोगों पर कृपा कर इसे बताइए ? ॥९॥ हे प्रभो, हे सदाशिव ! इन सब बातों को तथा अन्य भी बातों को आप अपना अनुचर समझ कर कृपा करते हुए हम दोनों से कहिए ॥ १० ॥

ब्रह्मा जी बोले—इस बात को सुनकर भगवान् कृपानिधि शङ्कर प्रसन्न होकर कहने लगे ॥ ११ ॥

शिवजी बोले—हे सुरसत्तम ! मैं तुम दोनों की भक्ति से अत्यन्त प्रसन्न हूँ । मुझ महादेव का दर्शन कर तुम दोनों भय का त्याग करो ॥ १२ ॥ तुम दोनों मेरे लिङ्ग का सदैव पूजन करो । और मेरे इस रूप का सर्वदा ध्यान करो । इस समय मेरा जैसा लिङ्ग रूप दिखाई पड़ रहा है वैसे ही लिङ्ग का निर्माण कर तुम लोग उसकी पूजा करो । ऐसा करने से सभी लोगों को अनेक अभीष्ट फलों की प्राप्ति होगी ॥ १३-१४ ॥ हे सुरसत्तम गण ! जब किसी प्रकार का दुःख उपस्थित हो, तो मेरे इस लिङ्ग के पूजन से समस्त दुःख दूर हो जायेंगे ॥ १५ ॥ तुम दोनों मेरी प्रकृति से एवं मुझे सर्वेश्वर के दाहिने-बायें अङ्ग से प्रगट हुए महाबलवान् देवता हो ॥ १६ ॥ मेरे दाहिने भाग से ये लोकपितामह ब्रह्मा तथा बायें भाग से तुम (विष्णु) उत्पन्न हुए हो ॥१७॥ मैं तुम दोनों पर बहुत प्रसन्न हूँ । तुम लोगों के लिए मैं यह वर देता हूँ कि मेरी इच्छा से तुम लोगों की दृढ़ भक्ति मुझमें हो ॥ १८ ॥ तुम दोनों ही महाबुद्धिमान् हो, अतः मेरी पार्थिव मूर्ति बना कर अनेक प्रकार से उसकी पूजा करो । ऐसा करते रहने से तुम लोग सुख

ब्रह्मन् ! सृष्टिं कुरु त्वं हि मदाज्ञापरिपालकः । वत्स वत्स ! हरे ! त्वं च पालयैवं चराऽचरम् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा नौ प्रभुस्ताभ्यां पूजाविधिमदाच्छुभाम् । येनैव पूजितः शम्भुः फलं यच्छत्यनेकशः ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचः शम्भोर्मया च सहितो हरिः । प्रत्युवाच महेशानं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥२२॥

विष्णुरुवाच

यदि प्रीतिः समुत्पन्ना यदि देयो वरश्च नौ । भक्तिर्भवतु नौ नित्यं त्वयि चाव्यभिचारिणी ॥२३॥
त्वमप्यवतरस्वाद्य लीलया निर्गुणोऽपि हि । सहायं कुरु नौ तात ! त्वं परः परमेश्वरः ॥२४॥
आवयोर्देवदेवेश विवादमपि शोभनम् । इहागतो भवान् यस्माद् विवादशमनाय नौ ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्राह हरो हरिम् । प्रणिपत्य स्थितं मूर्ध्ना कृताञ्जलिपुटः स्वयम् ॥२६॥

श्रीमहेश उवाच

प्रलय-स्थिति-सर्गाणां कर्ताऽहं स गुणोऽगुणः । परब्रह्म निर्विकारी सच्चिदानन्दलक्षणः ॥२७॥
त्रिधाभिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्म-विष्णु-हराख्यया । सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलोऽहं सदा हरे ! ॥२८॥
स्तुतोऽहं यत्त्वया विष्णो ! ब्रह्मणा मेऽवतारणे । प्रार्थनां तां करिष्यामि सत्यां यद्भक्तवत्सलः ॥२९॥
मद्रूपं परमं ब्रह्मन्नीदृशं भवदङ्गतः । प्रकटीभविता लोके नाम्ना रुद्रः प्रकीर्तितः ॥३०॥
मदंशात् तस्य सामर्थ्यं न्यूनं नैव भविष्यति । योऽहं सोऽहं न भेदोऽस्ति पूजाविधिविधानतः ॥३१॥
यथा च ज्योतिषः सङ्गाज्जलादेः स्पर्शता न वै । तथा ममागुणस्यापि संयोगाद् बन्धनं न हि ॥३२॥

प्राप्त करोगे ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम सृष्टि करो तथा मेरी आज्ञा का पालन करो । और हे वत्स विष्णो ! तुम इस चराचर जगत् का पालन करो ॥ २० ॥

ब्रह्मा जी बोले—ऐसा कहने के उपरान्त सदाशिव ने हम लोगों को लिङ्गपूजा का विधान बताया । जिस विधि से पूजा करने पर वे सदाशिव अनेक प्रकार का फल प्रदान करते हैं ॥२१॥

पुनः ब्रह्मा जी बोले—शिव के इस वचन को सुन कर विष्णु ने मेरे साथ ही शिव को प्रणाम किया, तदनन्तर कहने लगे ॥ २२ ॥

विष्णु बोले—हे देव ! यदि आप हम दोनों पर प्रसन्न हैं एवं वर देना चाहते हैं तो हम दोनों की निश्चल भक्ति आप में बनी रहे ॥ २३ ॥ यद्यपि आप निर्गुण हैं फिर भी लीला से आप अवतार धारण कर परात्पर परमेश्वर होकर भी हम लोगों की सहायता करते रहें ॥२४॥ हे देवदेवेश ! हम लोगों का यह विवाद भी शुभदायक हुआ, जिससे आपने इस विवाद की शान्ति के लिए स्वयं प्रगट होकर दर्शन दिया ॥ २५ ॥

ब्रह्मा जी बोले—प्रणाम कर सिर झुकाये हुए विष्णु की बात सुन कर महेश्वर बोले ॥ २६ ॥

महेश्वर ने कहा—हे देवो ! मैं निर्गुण होता हुआ भी सगुण रूप धारण कर इस जगत् के प्रलय, पालन तथा सृष्टि का कर्ता हूँ, मैं परब्रह्म, विकार रहित एवं सच्चिदानन्द रूप लक्षणवाला हूँ ॥ २७ ॥ हे हरे ! मैं निष्कल (निराकार) रूप होकर सृष्टि, पालन एवं प्रलय रूप गुणों से युक्त होकर ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रनामों से तीन प्रकार के रूपों से स्थित हूँ ॥ २८ ॥ हे विष्णो ! जो तुम दोनों ने मुझे अवतार लेने की प्रार्थना की है, उसे मैं अवश्य सत्य करूँगा, क्योंकि मैं भक्तवत्सल हूँ ॥ २९ ॥ हे ब्रह्मन् ! मेरा यह जो परम रूप है, वही आगे चलकर तुम्हारे शरीर से उत्पन्न होगा । और लोक में रुद्र नाम से प्रसिद्ध होगा ॥ ३० ॥ उस रुद्ररूप में मेरा अंश होने के कारण उसके सामर्थ्य में न्यूनता न होगी । जो मैं हूँ वही वह भी होगा । पूजा विधि-विधान की दृष्टि से हम दोनों में भेद न होगा ॥ ३१ ॥ जैसे, ज्योति का संग होने पर भी जल में प्रकाशादि ज्योतिगुण सन्निविष्ट नहीं होते, उसी प्रकार मुझ निर्गुण में भी प्रकृति

शिवरूपं ममैतं च रुद्रोऽपि शिववत्तदा। न तत्र परभेदो वै कर्तव्यश्च महामुने ! ॥३३॥
वस्तुतो ह्येकरूपं हि द्विधा भिन्नं जगत्युत। अतो न भेदो विज्ञेयः शिवे रुद्रे कदाचन ॥३४॥
सुवर्णस्य तथैकस्य वस्तुत्वं नैव गच्छति। अलङ्कृतिकृते देव ! नामभेदो न वस्तुतः ॥३५॥
तथैकस्यामृदो भेदो नानापात्रे न वस्तुतः। कारणस्यैव कार्ये च सन्निधानं निदर्शनम्॥३६॥
ज्ञातव्यं बुधवर्यैश्च निर्मलज्ञानिभिः सुरैः। एवं ज्ञात्वा भवद्भ्यां तु न दृश्यं भेदकारणम् ॥३७॥
वस्तुवत् सर्वदृश्यं च शिवरूपं मतं मम। अहं भवानजश्चैव रुद्रो योऽयं भविष्यति ॥३८॥
एकरूपा न भेदस्तु भेदे वै बन्धनं भवेत्। तथापि च मदीयं हि शिवरूपं सनातनम् ॥३९॥
मूलीभूतं सदोक्तं च सत्यज्ञानमनन्तकम्। एवं ज्ञात्वा सदा ध्येयं मनसा चैव तत्त्वतः ॥४०॥
श्रूयतां चैव भो ब्रह्मन् ! यद्गोप्यं कथ्यते मया। भवन्तौ प्रकृतेर्जातौ नायं वै प्रकृतेः पुनः ॥४१॥
मदाज्ञा जायते तत्र ब्रह्मणो भ्रुकुटेरहम्। गुणेष्वपि यथा प्रोक्तस्तामसः प्रकृतो हरः ॥४२॥
वैकारिकश्च विज्ञेयो योऽहङ्कार उदाहृतः। नामतो वस्तुतो नैव तामसः परिचक्ष्यते ॥४३॥
एतस्मात् कारणाद् ब्रह्मन् ! करणीयमिदं त्वया। सृष्टिकर्ता भव ब्रह्मन् ! सृष्टेश्च पालको हरिः ॥४४॥
मदीयश्च तथांऽशो यो लयकर्ता भविष्यति। इयं या प्रकृतिर्देवी ह्युमाख्या परमेश्वरी ॥४५॥
तस्यास्तु शक्तिर्वाग्देवी ब्रह्माणं सा भजिष्यति। अन्या शक्तिः पुनस्तत्र प्रकृतेः सम्भविष्यति ॥४६॥
समाश्रयिष्यति विष्णुं लक्ष्मीरूपेण सा तदा। पुनश्च काली नाम्ना सा मदंशं प्राप्स्यति ध्रुवम् ॥४७॥
ज्योतीरूपेण सा तत्र कार्यार्थे सम्भविष्यति। एवं देव्यास्तथा प्रोक्ताः शक्तयः परमाः शुभाः॥४८॥

आदि के संयोग से बन्धन नहीं होता ॥ ३२ ॥ शिव का रूप धारण करने वाले ये रुद्र भी शिव के समान ही हैं। हे महामुने ! इस रूप में पर-पूर्व का भेद भी नहीं करना चाहिए ॥ ३३ ॥ वस्तुतः जगत् में दो रूप से दिखाई पड़ने वाले हम लोग एक ही हैं, इसलिए शिव और रुद्र में भेद-बुद्धि नहीं रखनी चाहिए ॥३४॥

हे देव ! जिस प्रकार सुवर्ण-निर्मित्त आभूषण में नाम रूप का भेद होने पर भी उसमें एक ही सुवर्ण-तत्त्व अनुस्यूत है ॥ ३५ ॥ जिस प्रकार एक मिट्टी से वने हुए शराव, उदञ्चन आदि पात्रों में रूप तथा नाम का भेद होने पर भी वास्तव में एक मृत्तिका ही उसमें अनुस्यूत रहती है। इसी प्रकार कारण-कार्य में अनुस्यूत रहता है, यही उदाहरण है ॥ ३६ ॥ हे देवो ! निर्मल ज्ञान वाले पण्डितों को यह वात अवश्य जाननी चाहिए। ऐसा समझ कर आप लोग भी भेद-बुद्धि न रखें ॥ ३७ ॥ मेरे मत में यह सारा दृश्य रूप ही वस्तुतः शिवस्वरूप है। मैं, आप, ब्रह्मा तथा आगे होने वाले यह रुद्र ॥ ३८ ॥ ये सभी एकरूप ही हैं, इनमें भेद नहीं है, किन्तु जो इनमें भेदबुद्धि रखेंगे वे बन्धन में पड़ेंगे। यह मेरा सनातन शिवरूप सभी का मूल है, मेरा यही रूप सत्य, ज्ञान तथा अनन्त है। ऐसा समझ कर मेरे इसी रूप का ध्यान करना चाहिए ॥ ३९-४० ॥ अब हे ब्रह्मन् ! जो सबसे गुप्त रहस्य है वह मैं तुमसे कहता हूँ, उसे सुनो। आप दोनों प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं पर ये रुद्र ऐसे नहीं हैं ॥ ४१ ॥ मैं अपनी इच्छा द्वारा रुद्र के रूप में ही ब्रह्मा की भृकुटी से उत्पन्न हुआ हूँ। और गुण की दृष्टि से जो यह कहा जाता है कि रुद्र प्रकृति से तमोगुण हैं, उसे वैकारिक जानना। यह वैकारिक गुण अहङ्कार कहा जाता है, जो नाम मात्र के लिए है, वस्तुतः वे रुद्र तमोगुण से युक्त नहीं हैं क्योंकि निष्कल तथा निराकार हैं ॥ ४२-४३ ॥ इसलिए हे ब्रह्मन् ! तुम्हारा यह कर्त्तव्य है कि तुम इस सृष्टि के कर्त्ता बनो तथा ये नारायण सृष्टि का पालन करें ॥ ४४ ॥ और मेरे अंश से उत्पन्न हुआ यह रुद्र सृष्टि का लय करने वाला होवे। और यह मेरी जो प्रकृति उमा नामक परमेश्वरी देवी है, इसी की शक्ति वाग्देवी ब्रह्मा की अर्द्धाङ्गिनी होगी। एक और शक्ति उस प्रकृति से उत्पन्न होगी, वह लक्ष्मीस्वरूपा होकर विष्णु का आश्रय लेगी। और फिर उस प्रकृति से जो काली नाम की शक्ति उत्पन्न होगी वह निश्चय ही मेरे अंशभूत रुद्र को प्राप्त करेगी ॥ ४५-४७ ॥ वह महाकाली नामक शक्ति कार्य के लिए समय-समय पर ज्योति रूप से प्रगट होगी। ब्रह्मा ने नारद से

सृष्टि-स्थिति-लयानां हि कार्यं तासां क्रमाद् ध्रुवम् । एतस्याः प्रकृतेरंशा मत्प्रियायाः सुरोत्तम ! ॥४९॥
त्वं च लक्ष्मीमुपाश्रित्य कार्यं कर्तुमिहार्हसि । ब्रह्मंस्त्वं च गिरां देवीं प्रकृत्यंशामवाप्य च ॥५०॥
सृष्टिकार्यं हृदा कर्तुं मन्निदेशादिहार्हसि । अहं कालीं समाश्रित्य मत्प्रियांशां परात्पराम् ॥५१॥
रुद्ररूपेण प्रलयं करिष्ये कार्यमुत्तमम् । चतुर्वर्णमयं लोकं तत्सर्वैराश्रमैर्ध्रुवम् ॥५२॥
तदन्यैर्विविधैः कार्यैः कृत्वा सुखमवाप्स्यथः । ज्ञानविज्ञानसंयुक्तो लोकानां हितकारकः ॥५३॥
मुक्तिदोऽत्र भवानद्य भव लोके मदाज्ञया । मद्दर्शने फलं यद्वत् तदेव तव दर्शने ॥५४॥
इति दत्तो वरस्तेऽद्य सत्यं सत्यं न संशयः । ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये ह्यहम् ॥५५॥
उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतो मम । वामाङ्गजो मम हरिर्दक्षिणाङ्गोद्भवो विधिः ॥५६॥
महाप्रलयकृद्रुद्रो विश्वात्मा हृदयोद्भवः । त्रिधाभिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुभवाख्यया ॥५७॥
सर्गरक्षालयकरस्त्रिगुणै रज-आदिभिः । गुणभिन्नः शिवः साक्षात् प्रकृतेः पुरुषात् परः ॥५८॥
परं ब्रह्माद्वयो नित्योऽनन्तः पूर्णो निरञ्जनः । अन्तस्तमो बहिः सत्त्वस्त्रिजगत्पालको हरिः ॥५९॥
अन्तः सत्त्वस्तमोबाह्यस्त्रिजगल्लयकृद्धरः ॥६०॥
अन्तर्बहिरजश्चैव त्रिजगत्सृष्टिकृद्विधिः । एवं गुणास्त्रिदेवेषु गुणभिन्नः शिवः स्मृतः ॥६१॥
विष्णो सृष्टिकरं प्रीत्या पालयैनं पितामहम् । सम्पूज्यस्त्रिषु लोकेषु भविष्यसि मदाज्ञया ॥६२॥

कहा—इस प्रकार प्रकृति की शक्तियों का भी वर्णन किया। ये शक्तियाँ जगत् की अत्यन्त कल्याण करने वाली हैं ॥ ४८ ॥ तुम लोगों की यही शक्तियाँ क्रम से इस जगत् की सृष्टि, पालन तथा लय का कार्य करेंगी। जो मेरी परम प्रिया इस प्रकृति के अंश से उत्पन्न होगी ॥ ४९ ॥

हे विष्णो ! तुम लक्ष्मी का आश्रय लेकर अपना कार्य करो, और हे ब्रह्मन् ! तुम भी मेरी प्रकृति की अंशभूता वाग्देवी का आश्रय लेकर मेरी आज्ञा से हृदय से इस जगत् की सृष्टि का कार्य करो। और मैं रुद्ररूप से परात्पर इस प्रकृति की अंशभूता महाकाली का आश्रय लेकर सृष्टि का प्रलय रूप कार्य करूँगा। हे विष्णो ! सभी आश्रमों के साथ एवं अन्य विविध कार्यों के साथ चारों वर्णों की रचना कर सुख प्राप्त करो। इस प्रकार ज्ञान-विज्ञान से संयुक्त हो लोक का कल्याण करो ॥ ५०-५३ ॥ हे विष्णो ! तुम आज से इस लोक में मेरी आज्ञा से मुक्तिदाता बनो। और जो मेरे दर्शन का फल है वही तुम्हारे दर्शन का भी फल होवे ॥ ५४ ॥ मैंने तुम्हें जो यह वरदान दिया है वह अवश्य ही सत्य होगा। इसमें संशय नहीं। मेरे हृदय में विष्णु तथा विष्णु के हृदय में मैं हूँ ॥ ५५ ॥ जो हम दोनों में अन्तर नहीं जानता वही मेरा भक्त है। मेरे बायें अङ्ग से विष्णु तथा दाहिने अङ्ग से ब्रह्मा उत्पन्न हैं ॥ ५६ ॥ महा-प्रलय करने वाले विश्वात्मा रुद्र मेरे हृदय से उत्पन्न हैं। हे विष्णो ! मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इन भिन्न-भिन्न तीन नामों से तीन प्रकार का हूँ ॥ ५७ ॥ और तीन गुणों से युक्त होकर इस सृष्टि की उत्पत्ति, पालन तथा प्रलय करता हूँ। और साक्षात् शिव, गुणों से भिन्न तथा प्रकृति एवं पुरुष से परे हैं, वे परं ब्रह्म, अद्वय, नित्य, अनन्त, पूर्ण तथा निरञ्जन हैं। तीनों जगत् के पालनकर्त्ता विष्णु अन्तःकरण से तमोगुणी एवं बाहर से सत्त्वगुण वाले हैं ॥ ५८-५९ ॥ भीतर से सत्त्वगुण सम्पन्न एवं बाहर से तमोगुण से सम्पन्न लोकों को लय करने वाले महादेव हैं ॥ ६० ॥ और तीनों लोकों की सृष्टि करने वाले ये ब्रह्मदेव बाहर तथा भीतर से रजोगुण से युक्त हैं। इस प्रकार तीनों देवों में गुणों की सत्ता विद्यमान रहती है, किन्तु सदाशिव सर्वथा गुणों से परे हैं ॥६१॥ हे विष्णो ! तुम इस सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा का प्रेम से पालन करो,

तव सेव्यो विधेश्चापि रुद्र एव भविष्यति । शिवपूर्णावतारो हि त्रिजगल्लयकारकः ॥६३॥
पाद्मे भविष्यति सुतः कल्पे तव पितामहः । तदा द्रक्ष्यसि मां चैव सोऽपि द्रक्ष्यति पद्मजः॥६४॥
एवमुक्त्वा महेशानः कृपां कृत्वाऽतुलां हरः । पुनः प्रोवाच सुप्रीत्या विष्णुं सर्वेश्वरः प्रभुः॥६५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने शिवतत्त्ववर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

(ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र के आयुष्य का वर्णन और लिङ्गस्वरूप कथन)

परमेश्वर उवाच

अन्यच्छृणु हरे विष्णो शासनं मम सुव्रत ! । सदा सर्वेषु लोकेषु मान्यः पूज्यो भविष्यसि ॥ १ ॥
ब्रह्मणा निर्मिते लोके यदा दुःखं प्रजायते । तदा त्वं सर्वदुःखानां नाशाय तत्परो भव ॥ २ ॥
सहायं ते करिष्यामि सर्वकार्ये च दुःसहे । तव शत्रून् हनिष्यामि दुःसाध्यान् परमोत्कटान्॥ ३ ॥
विविधा नवतारांश्च गृहीत्वा कीर्तिमुत्तमाम् । विस्तारय हरे लोके तारणाय परो भव ॥ ४ ॥
गुणरूपो ह्ययं रुद्रो ह्यनेन वपुषा सदा । कार्यं करिष्ये लोकानां तवाशक्यं न संशयः॥ ५ ॥
रुद्रध्येयो भवांश्चैव भवद्ध्येयो हरस्तथा । युवयोरन्तरं नैव तव रुद्रस्य किञ्चन ॥ ६ ॥
वस्तुतश्चापि चैकत्वं वरतोऽपि तथैव च । लीलयाऽपि महाविष्णो सत्यं सत्यं न संशयः॥ ७ ॥
रुद्रभक्तो नरो यस्तु तव निन्दां करिष्यति । तस्य पुण्यं च निखिलं द्रुतं भस्म भविष्यति ॥ ८ ॥
नरके पतनं तस्य त्वद् द्वेषात् पुरुषोत्तम ! । मदाज्ञया भवेद् विष्णो सत्यं सत्यं न संशयः॥ ९ ॥
लोकेऽस्मिन् मुक्तिदो नॄणां भुक्तिदश्च विशेषतः । ध्येयः पूज्यश्च भक्तानां निग्रहानुग्रहौ कुरु ॥१०॥

तुम मेरी आज्ञा से इस त्रिलोकी में पूजा प्राप्त करोगे ॥६२॥ और ये रुद्र, तुम्हारे तथा ब्रह्मा के द्वारा सेव्य होंगे । क्योंकि तीनों जगत् के लय कर्त्ता ये रुद्र शिव के पूर्णावतार हैं ॥६३॥ और हे पितामह ! पद्मकल्प में यही रुद्र तुम्हारे पुत्र होंगे । तव हे विष्णो ! तुम तथा पितामह दोनों ही मेरा दर्शन प्राप्त करोगे । इस प्रकार महेश्वर सर्वेश्वर प्रभु सदाशिव कहकर पुनः अतुलनीय कृपा कर विष्णु से कहने लगे ॥ ६४-६५ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के प्रथम-सृष्टिखण्ड में शिवतत्त्ववर्णन नामक नवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥

*

परमेश्वर बोले—हे हरे ! हे विष्णो ! और भी मेरी आज्ञा सुनो । हे सुव्रत, तुम सदा सभी लोकों में मान्य तथा पूज्य होओगे ॥ १ ॥ इन ब्रह्मा द्वारा निर्मित लोक में जब-जब संकट उपस्थित हो तब-तब तुम अवतार लेकर उस दुःख का नाश करो ॥ २ ॥ असह्य संकट उपस्थित होने पर तुम्हारी सहायता मैं करता रहूँगा । और तुम्हारे परम दुर्दान्त तथा दुःसाध्य शत्रुओं का विनाश करूँगा ॥ ३ ॥ हे विष्णो ! तुम भी नाना प्रकार के अवतार को धारण कर संसार के जीवों का उद्धार करने के लिए अपनी कीर्त्ति का विस्तार करो ॥ ४ ॥ और जो कार्य तुम से अशक्य होगा, उसे गुणयुक्त इस रुद्र रूप शरीर के द्वारा मैं अवश्य सम्पन्न करूँगा, इसमें संशय नहीं ॥ ५ ॥ आप रुद्र के द्वारा ध्येय होंगे तथा ये रुद्र आप के द्वारा ध्येय होंगे । आप तथा रुद्र इन दोनों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है ॥६॥ हे महाविष्णो ! लीला से भेद होने पर भी वस्तुतः तुम और रुद्र एक ही तत्त्व हो, यह सत्य है, यह सत्य है ॥ ७ ॥

जो रुद्र का भक्त तुम्हारी निन्दा करेगा, उसका सम्पूर्ण पुण्य तत्काल भस्म हो जायेगा ॥ ८ ॥ हे पुरुषोत्तम ! तुम से द्वेष करने वाला पुरुष, मेरी आज्ञा से नरकगामी होगा । इसमें सन्देह नहीं ॥९॥ इस लोक में तुम मनुष्यों को मुक्ति तथा विशेष रूप से भोग प्रदान करोगे । तुम भक्तों के ध्येय तथा लोक का

इत्युक्त्वा मां च धातारं हस्ते धृत्वा स्वयं हरिम् । कथयामास दुःखेषु सहायो भव सर्वदा ।।११।।
सर्वाध्यक्षश्च सर्वेषु भुक्ति-मुक्तिप्रदायकः । भव त्वं सर्वथा श्रेष्ठः सर्वकामप्रसाधकः ।।१२।।
सर्वेषां प्राणरूपश्च भव त्वं च ममाज्ञया । सङ्कटे भजनीयो हि स रुद्रो मत्तनुर्हरे ! ।।१३।।
त्वां यः समाश्रितो नूनं मामेव स समाश्रितः । अन्तरं यश्च जानाति निरये पतति ध्रुवम् ।।१४।।
आयुर्बलं शृणुष्वाद्य त्रिदेवानां विशेषतः । सन्देहोऽत्र न कर्त्तव्यो ब्रह्म-विष्णु-हरात्मनाम् ।।१५।।
चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते । रात्रिश्च तावती तस्य मानमेतत् क्रमेण ह ।।१६।।
तेषां त्रिंशद्दिनैर्मासो द्वादशैस्तैश्च वत्सरः । शतवर्षप्रमाणेन ब्रह्माऽऽयुः परिकीर्तितम् ।।१७।।
ब्रह्मणो वर्षमात्रेण दिनं वैष्णवमुच्यते । सोऽपि वर्षशतं यावदात्ममानेन जीवति ।।१८।।
वैष्णवेन तु वर्षेण दिनं रौद्रं भवेद् ध्रुवम् । हरो वर्षशते याते नररूपेण संस्थितः ।।१९।।
यावदुच्छ्वसितं वक्त्रे सदाशिवसमुद्भवम् । पश्चाच्छक्तिं समभ्येति यावन्निश्वसितं भवेत् ।।२०।।
निःश्वासोच्छ्वसितानां च सर्वेषामेव देहिनाम् । ब्रह्म-विष्णु-हराणां च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।।२१।।
एकविंशसहस्राणि शतैः षड्भिः शतानि च । अहोरात्राणि चोक्तानि प्रमाणं सुरसत्तमौ ।।२२।।
षड्भिच्छ्वासनिश्वासैः पलमेकं प्रवर्तितम् । घटी षष्टिपलाः प्रोक्ता सा षष्ट्या च दिनं निशा ।।२३।।
निश्वासोच्छ्वासितानां च परिसङ्ख्या न विद्यते । सदाशिवसमुत्थानमेतस्मात् सोऽक्षयः स्मृतः ।।२४।।
इत्थं रूपं त्वया तावद्रक्षणीयं ममाज्ञया । तावत् सृष्टेश्च कार्यं वै कर्तव्यं विविधैर्गुणैः ।।२५।।

निग्रह तथा अनुग्रह करो ।। १० ।। ऐसा कह कर मुझ ब्रह्मा को हाथ से पकड़ कर स्वयं सदाशिव ने, विष्णु से कहा—हे विष्णो ! तुम दुःख में सदैव इन ब्रह्मा की सहायता करना ।। ११ ।। तुम सबके स्वामी भोग तथा मोक्ष को देने वाले, सभी कार्यों के साधक तथा सबमें श्रेष्ठ होगे ।। १२ ।। तुम मेरी आज्ञा से सबके प्राणरूप बनो । और हे विष्णो ! संकटकाल उपस्थित होने पर रुद्र शरीरधारी मेरा भजन करो ।। १३ ।। जिसने तुम्हारा आश्रय लिया, निश्चय ही वह मेरा आश्रित है । जो मुझ में तथा तुम्हारे में अन्तर समझेगा, वह अवश्य नरकगामी होगा ।। १४ ।। अब आप तीनों देवताओं का आयु बल सुनो । ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की एकता में किसी को किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिए ।। १५ ।।

चारों युग जब एक सहस्र बार बीत जाता है तब ब्रह्मा का एक दिन होता है, इसी प्रकार जब चारों युग एक हजार बार बीत जाता है तब ब्रह्मा की एक रात्रि होती है । यह ब्रह्मा के एक दिन तथा रात्रि का परिमाण है ।। १६ ।। इस प्रकार तीस दिन बीतने पर ब्रह्मा का एक महीना तथा बारह महीना बीतने पर ब्रह्मा का एक वर्ष एवं सौ वर्ष वीत जाने पर ब्रह्मा की आयु पूर्ण हो जाती है ।। १७ ।। ब्रह्मा के एक वर्ष की आयु बीत जाने पर विष्णु का एक दिन होता है, इसी प्रकार के मान से विष्णु भी सौ वर्ष तक जीते हैं ।। १८ ।। विष्णु के एक वर्ष बीत जाने पर रुद्र का एक दिन होता है । तथा नर रूप में स्थित रुद्र के जब सौ वर्ष बीत जाते हैं तब सदाशिव के मुख से एक श्वास निकलता है । यह श्वास जब तक निकलता है तब तक शक्ति को प्राप्त करता है, जब तक निःश्वास नहीं लेता तब तक ब्रह्मा, विष्णु, हर, गन्धर्व, उरग, राक्षस आदि सभी देहधारियों के प्रश्वास एवं निःश्वास की संख्या दिन-रात में इक्कीस हजार का सौ गुना एवं छह सौ कही गयी है ।। १९-२२ ।। छह निःश्वास तथा उच्छ्वास का एक पल होता है । इस प्रकार साठ पल का एक घड़ी एवं साठ घड़ी का एक दिन-रात होता है ।। २३ ।। शिव के निःश्वास एवं उच्छ्वास की कोई गणना नही कर सकता । इसलिए शिवजी सदैव प्रबुद्ध रहते हैं और अक्षय हैं ।। २४ ।। अतः मेरी आज्ञा से तुम्हें अपने गुणों के द्वारा सृष्टि की रक्षा का कार्य करते रहना चाहिए ।। २५ ।।

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचः शम्भोर्मया च भगवान् हरिः । प्रणिपत्य च विश्वेशं प्राह मन्दतरं वशी ॥२६॥

विष्णुरुवाच

शङ्कर ! श्रूयतामेतत् कृपासिन्धो जगत्पते ! । सर्वमेतत् करिष्यामि भवदाज्ञावशानुगः ॥२७॥

मम ध्येयः सदा त्वं च भविष्यसि न चान्यथा । भक्तः सर्वसामर्थ्यं लब्धं चैव पुरा मया ॥२८॥

क्षणमात्रमपि स्वामिंस्तव ध्यानं परं मम । चेतसो दूरतो नैव निर्गच्छतु कदाचन ॥२९॥

मम भक्तश्च यः स्वामिंस्तव निन्दां करिष्यति । तस्य वै निरये वासं प्रयच्छ नियतं ध्रुवम् ॥३०॥

त्वद्भक्तो यो भवेत् स्वामिन् मम प्रियतरो हि सः । एवं वै यो विजानाति तस्य मुक्तिर्न दुर्लभा ॥३१॥

महिमा च मदीयोऽद्य वर्द्धितो भवता ध्रुवम् । कदाचिदगुणश्चैव जायते क्षम्यतामिति ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

तदा शम्भुस्तदीयं हि श्रुत्वा वचनमुत्तमम् । उवाच विष्णुं सुप्रीत्या क्षम्या तेऽगुणता मया ॥३३॥

एवमुक्त्वा हरिं नौ स कराभ्यां परमेश्वरः । पस्पर्श सकलाङ्गेषु कृपया तु कृपानिधिः ॥३४॥

आदिश्य विविधान् धर्मान् सर्वदुःखहरो हरः । ददौ वराननेकांश्चावयोर्हितचिकीर्षया ॥३५॥

ततः स भगवाञ्छम्भुः कृपया भक्तवत्सलः । दृष्ट्वा सम्पश्यतोः शीघ्रं तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥३६॥

तदा प्रभृति लोकेऽस्मिंल्लिङ्गपूजाविधिः स्मृतः । लिङ्गे प्रतिष्ठितः शम्भुर्भुक्ति-मुक्तिप्रदायकः ॥३७॥

लिङ्गवेदिर्महादेवी लिङ्गं साक्षान् महेश्वरः । लयनाल्लिङ्गमित्युक्तं तत्रैव निखिलं जगत् ॥३८॥

तब ब्रह्माजी बोले—शिवजी के इस प्रकार के वचनों को सुनकर जितेन्द्रिय भगवान् विष्णु ने मेरे साथ ही विश्वेश्वर को प्रणाम कर पुनः मधुर वाणी में उनसे कहा ॥ २६ ॥

विष्णु बोले—हे कृपासागर, हे जगत्पते, हे शङ्कर ! सुनो, मैं आप का वशवर्ती होकर आप की आज्ञा का पालन करूँगा ॥ २७ ॥ आप मेरे सदैव ध्येय रहेंगे । इसमें सन्देह नहीं । मैंने पूर्वकाल में भी आप के द्वारा समस्त शक्ति प्राप्त की थी ॥ २८ ॥ हे स्वामिन् ! आपका यह ध्यान क्षणमात्र भी मेरे चित्त से विस्मृत न हो, यही मैं चाहता हूँ ॥ २९ ॥ हे स्वामिन् ! जो कोई मेरा भक्त आपकी निन्दा करेगा, उसे आप नरक में निवास के लिए स्थान देवें ॥ ३० ॥ हे स्वामिन् ! जो आपका भक्त होगा वह मुझे भी अत्यन्त प्रिय होगा । ऐसा जो जानता है उसके लिए मुक्ति कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥ ३१ ॥ आप ने निश्चय ही मेरी महिमा बढ़ायी है । यदि कदाचित् मुझ में कोई अवगुण हो तो आप उसे क्षमा करें ॥ ३२ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार विष्णु के वचन को सुन कर शिवजी प्रसन्न होकर बोले—हे विष्णो ! मैंने तुम्हारे सभी अवगुणों को क्षमा किया ॥ ३३ ॥ विष्णु से ऐसा कहने के पश्चात् कृपानिधि सदाशिव ने अपने दोनों हाथों से हम लोगों के शरीर का स्पर्श किया ॥ ३४ ॥ फिर सर्व-दुःख को हरण करने वाले भगवान् महादेव ने अनेक प्रकार के धर्मों का उपदेश किया । और हम लोगों का हित करने की इच्छा से अनेक प्रकार के वरदान दिया ॥ ३५ ॥ इस प्रकार भक्तवत्सल भगवान् सदाशिव हम लोगों को कृपादृष्टि से देखते हुए अन्तर्द्धान हो गये ॥ ३६ ॥ उसी समय से इस लोक में लिङ्गपूजा की विधि प्रचलित हुई । लिङ्ग में प्रतिष्ठित सदाशिव भुक्ति तथा मुक्ति को देने वाले हैं ॥ ३७ ॥ लिङ्ग की वेदी महादेवी हैं एवं लिङ्ग साक्षात् महेश्वर हैं । यह सारा जगत् जिसमें लीन होता है, उसी को लिङ्ग कहते

यस्तु लैङ्गं पठेन्नित्यमाख्यानं लिङ्गसन्निधौ । षण्मासाच्छिवरूपो वै नाऽत्र कार्या विचारणा ॥३९॥
यस्तु लिङ्गसमीपे तु कार्यं किञ्चित् करोति च । तस्य पुण्यफलं वक्तुं न शक्नोमि महामुने ! ॥४०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्टयुपाख्याने परमशिवतत्त्ववर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

(शिवपूजन-विधि का निरूपण एवं उसका फल कथन)

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग व्यासशिष्य ! नमोऽस्तु ते । श्राविताद्याऽद्भुता शैवकथा परमपावनी ॥ १ ॥
तत्राऽद्भुता महादिव्या लिङ्गोत्पत्तिः श्रुता शुभा । श्रुत्वा यस्याः प्रभावं च दुःखनाशो भवेदिह ॥ २ ॥
ब्रह्मनारदसंवादमनुसृत्य दयानिधे ! । शिवार्चनविधिं ब्रूहि येन तुष्टो भवेच्छिवः ॥ ३ ॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैर्वा पूज्यते शिवः । कथं कार्यं च तद् ब्रूहि यथा व्यासमुखाच्छ्रुतम् ॥ ४ ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां शर्मदं श्रुतिसम्मतम् । उवाच सकलं प्रीत्या मुनिप्रश्नानुसारतः ॥ ५ ॥

सूत उवाच

साधु पृष्टं भवद्भिश्च तद्रहस्यं मुनीश्वरः । तदहं कथयाम्यद्य यथाबुद्धि यथाश्रुतम् ॥ ६ ॥
भवद्भिः पृच्छयते यद्वत्तथा व्यासेन वै पुरा । पृष्टं सनत्कुमाराय तच्छ्रुतं ह्युपमन्युना ॥ ७ ॥
ततो व्यासेन वै श्रुत्वा शिवपूजादिकं च यत् । मह्यं च पाठितं तेन लोकानां हितकाम्यया ॥ ८ ॥
तच्छ्रुतं चैव कृष्णेन ह्युपमन्योर्महात्मनः । तदहं कथयिष्यामि यथा ब्रह्माऽवदत् पुरा ॥ ९ ॥

हैं ॥ ३८ ॥ जो शिवलिङ्ग के समीप इस लिङ्गाख्यान को पढ़ता है, वह छह महीने में शिवरूप हो जाता है, इसमें विचार की आवश्यकता नहीं है ॥३९॥ जो कोई लिङ्ग के समीप दानोपदान आदि कोई भी कार्य करता है उसका पुण्य-फल कहने की सामर्थ्य मुझ में नहीं है ॥ ४० ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के प्रथम-सृष्टिखण्ड में परमशिवतत्त्व वर्णन नामक दसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १० ॥

*

ऋषिगण बोले—हे महाभाग सूतजी, हे व्यासशिष्य ! आप को नमस्कार है। आपने परम पवित्र एवं अद्भुत शिवकथा हम लोगों को सुनायी ॥ १ ॥ इस कथा में परम अद्भुत लिङ्ग की उत्पत्ति, जिसके सुनने से दुःख का नाश होता है, उसे हम लोगों ने सुना ॥ २ ॥ अब हे दयानिधे ! ब्रह्मा तथा नारद का संवाद स्मरण कर आप शिवार्चन-विधि कहिए, जिस शिवार्चन से भगवान् सदाशिव सर्वदा सन्तुष्ट होते हैं ॥ ३ ॥ वैसे तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र चारों वर्ण शिव का पूजन करते हैं किन्तु शिव का पूजन किस प्रकार करना चाहिए, जैसा आप व्यास के मुख से सुने हों, उसे आप हमसे कहिए ॥४॥ ऋषियों के श्रुति-सम्मत एवं कल्याणकारक वचन सुन कर सूतजी मुनियों के प्रश्न के अनुसार कहने लगे ॥ ५ ॥

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो ! आपने यह रहस्य बहुत अच्छा पूछा है, मैं आज इस रहस्य को अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा सुना हूँ वैसा कहता हूँ ॥ ६ ॥ जिस प्रकार आप लोगों ने मुझसे पूछा है वही प्रश्न व्यासजी ने सनत्कुमार से पूछा था, जिसे उपमन्यु ने सुना ॥ ७ ॥ फिर उन वेदव्यास ने सनत्कुमार से शिवपूजा की सारी विधि सुन कर लोक के हित की कामना से मुझको पढ़ाया ॥ ८ ॥ और उपमन्यु ने उसी शिवार्चन-विधि का उपदेश श्रीकृष्ण को किया, जैसा कि पूर्वकाल में ब्रह्मा ने नारद को उपदेश किया था, वह सब मैं आप लोगों से कहता हूँ ॥ ९ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु नारद ! वक्ष्यामि संक्षेपाल्लिङ्गपूजनम् । वक्तुं वर्षशतेनापि न शक्यं विस्तरान्मुने ! ॥१०॥
एवं तु शाङ्करं रूपं सुखं स्वच्छं सनातनम् । पूजयेत् परया भक्त्या सर्वकामफलाप्तये ॥११॥
दारिद्र्यं रोगदुःखं च पीडनं शत्रुसम्भवम् । पापं चतुर्विधं तावद्यावन्नार्चयते शिवम् ॥१२॥
सम्पूजिते शिवे देवे सर्वदुःखं विलीयते । सम्पद्यते सुखं सर्वं पश्चान् मुक्तिरवाप्यते ॥१३॥
ये वै मानुष्यमाश्रित्य मुख्यं सन्तानतः सुखम् । तेन पूज्यो महादेवः सर्वकार्यार्थसाधकः ॥१४॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च विधिवत् क्रमात् । शङ्करार्चां प्रकुर्वन्तु सर्वकामार्थसिद्धये ॥१५॥
प्रातःकाले समुत्थाय मुहूर्ते ब्रह्मसंज्ञके । गुरोश्च स्मरणं कृत्वा शम्भोश्चैव तथा पुनः ॥१६॥
तीर्थानां स्मरणं कृत्वा ध्यानं चैव हरेरपि । ममाऽपि निर्जराणां वै मुन्यादीनां तथा मुने ! ॥१७॥
ततः स्तोत्रं शुभं नाम गृह्णीयाद् विधिपूर्वकम् । तथोत्थाय मलोत्सर्गं दक्षिणस्यां चरेद् दिशि ॥१८॥
एकान्ते तु विधिं कुर्यान् मलोत्सर्गस्य यच्छ्रुतम् । तदेव कथयाम्यद्य शृण्वाधाय मनो मुने ! ॥१९॥
शुद्धां मृदं द्विजो लिप्यात् पञ्चवारं विशुद्धये । क्षत्रियश्च चतुर्वारं वैश्यो वारत्रयं तथा ॥२०॥
शूद्रो द्विवारं च मृदं गृह्णीयाद् विधिशुद्धये । गुदे वाऽथ सकृल्लिङ्गे वारमेकं प्रयत्नतः ॥२१॥
दशवारं वामहस्ते सप्तवारं द्वयोस्तथा । प्रत्येकं पादयोस्तात ! त्रिवारं करयोः पुनः ॥२२॥
स्त्रीभिश्च शूद्रवत् कार्यं मृदाग्रहणमुत्तमम् । हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य पूर्ववन्मृदमाहरेत् ॥२३॥
दन्तकाष्ठं ततः कुर्यात् स्ववर्णक्रमतो नरः ॥२४॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारदजी ! मैं संक्षेप में लिङ्गपूजा की विधि कहता हूँ, तुम उसे सुनो, क्योंकि विस्तार से लिङ्गपूजा का विधान कोई सौ वर्षों में भी नही कह सकता ॥ १० ॥ शिवजी का स्वच्छ एवं सनातन रूप परम सुखदायक है, अतः सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि के लिए परम भक्ति के साथ शिव का पूजन करना चाहिए ॥ ११ ॥ दारिद्र्य, रोग, दुःख, शत्रुजन्य पीडा एवं कायिक, वाचिक, मानसिक तथा सांसर्गिक चार प्रकार के पाप तभी तक रहते हैं जब तक शिव की पूजा नहीं की जाती ॥१२॥ सदाशिव के पूजन करते ही ये सारे दुःख विनष्ट हो जाते हैं। फिर सभी प्रकार का सुख एवं मुक्ति प्राप्त होती है ॥१३॥ जो मनुष्ययोनि प्राप्त कर सर्वोत्तम सन्तान-सुख चाहते हों, उन्हें सभी प्रकार के अभीष्ट को देने वाले शिवजी की अर्चना करनी चाहिए ॥ १४ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र सभी को अपनी अभीष्ट सिद्धि के निमित्त शिव की पूजा करनी चाहिए ॥ १५ ॥ सर्वप्रथम ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर गुरुदेव तथा सदाशिव का स्मरण करना चाहिए ॥१६॥ तीर्थों का स्मरण करे, फिर हे मुने नारद ! श्रीहरि का ध्यान कर मेरा, देवताओं का और मुनियों का ध्यान करना चाहिए ॥१७॥ फिर शिव के नाम वाले स्तोत्र का विधिवत् पाठ करे। तदनन्तर शय्या से उठ कर दक्षिण दिशा में जाकर मलोत्सर्ग करना चाहिए ॥ १८ ॥ इस प्रकार सर्वथा एकान्त में जाकर शास्त्र-विधि के अनुसार मलोत्सर्ग क्रिया करे। हे मुने ! इस मलोत्सर्ग की विधि जिस प्रकार शास्त्रों में बतायी गयी है उसे मैं आज तुम्हारे लिए कहता हूँ। तुम समाहित मन से उसे सुनो ॥ १९ ॥ ब्राह्मण शुद्धि के लिए पाँच वार, क्षत्रिय चार बार, वैश्य तीन बार तथा शूद्र दो बार अथवा एक बार गुदा में शुद्ध मृत्तिका का लेप करे। और लिङ्ग में एक बार प्रयत्नपूर्वक मृत्तिका का लेप करे ॥ २०-२१ ॥ दश बार बायें हाथ में, प्रत्येक दोनों पैरों में सात बार एवं तीन बार दोनों हाथों में मृत्तिका का लेप करे ॥२२॥ स्त्री के लिए शूद्र के समान ही शौचाचार की विधि कही गयी है। इस प्रकार शुद्ध मिट्टी का लेप कर हाथ-पैर को अच्छी प्रकार से प्रक्षालन करना चाहिए ॥ २३ ॥ पुनः वर्ण-धर्म के अनुसार मनुष्य को दातौन करना चाहिए ॥ २४ ॥

विप्रः कुर्याद्दन्तकाष्ठं द्वादशाङ्गुलमानतः । एकादशाङ्गुलं राजा वैश्यः कुर्याद्दशाङ्गुलम् ॥२५॥
शूद्रो नवाङ्गुलं कुर्यादिति मानमिदं स्मृतम् । कालदोषं विचार्यैव मनुदृष्टं विवर्जयेत् ॥२६॥
षष्ठ्याद्यामाश्च नवमी व्रतमस्तं रवेर्दिनम् । तथा श्राद्धदिनं तात ! निषिद्धं रदधावने ॥२७॥
स्नानं तु विधिवत् कार्यं तीर्थादिषु क्रमेण तु । देशकालविशेषेण स्नानं कार्यं समन्त्रकम् ॥२८॥
आचम्य प्रथमं तत्र धौतवस्त्रेण चाधरेत् । एकान्ते सुस्थले स्थित्वा सन्ध्याविधिमथाचरेत् ॥२९॥
यथायोग्यं विधिं कृत्वा पूजाविधिमथारभेत् । मनस्तु सुस्थिरं कृत्वा पूजागारं प्रविश्य च ॥३०॥
पूजाविधिं समादाय स्वासने ह्युपविश्य वै । न्यासादिकं विधायाऽऽदौ पूजयेत् क्रमशो हरम् ॥३१॥
प्रथमं च गणाधीशं द्वारपालांस्तथैव च । दिक्पालांश्च सुसम्पूज्य पश्चात् पीठं प्रकल्पयेत् ॥३२॥
अथवाऽष्टदलं कृत्वा पूजाद्रव्यं समीपतः । उपविश्य ततस्तत्र चोपवेश्य शिवं प्रभुम् ॥३३॥
आचमनत्रयं कृत्वा प्रक्षाल्य च पुनः करौ । प्राणायामत्रयं कृत्वा मध्ये ध्यायेच्च त्र्यम्बकम् ॥३४॥
पञ्चवक्त्रं दशभुजं शुद्धस्फटिकसन्निभम् । सर्वाभरणसंयुक्तं व्याघ्रचर्मोत्तरीयकम् ॥३५॥
तस्य सारूप्यतां स्मृत्वा दहेत् पापं नरः सदा । शिवं ततः समुत्थाप्य पूजयेत् परमेश्वरम् ॥३६॥
देहशुद्धिं ततः कृत्वा मूलमन्त्रं न्यसेत् क्रमात् । सर्वत्र प्रणवेनैव षडङ्गन्यासमाचरेत् ॥३७॥
कृत्वा हृदि प्रयोगं च ततः पूजां समारभेत् । पाद्यार्घाचमनार्थं च पात्राणि च प्रकल्पयेत् ॥३८॥
स्थापयेद् विविधान् कुम्भान्नव धीमान् यथाविधि । दर्भैराच्छाद्य तैरेव संस्थाप्याभ्युक्ष्य वारिणा ॥३९॥
तेषु तेषु च सर्वेषु क्षिपेत्तोयं सुशीतलम् । प्रणवेन क्षिपेत्तेषु द्रव्याण्यालोक्य बुद्धिमान् ॥४०॥

ब्राह्मण बारह अंगुल का, क्षत्रिय ग्यारह अंगुल का एवं वैश्य दश अंगुल का दातौन करे ॥ २५ ॥ शूद्र नौ अंगुल का दातौन करे। वर्णक्रम के अनुसार दातौन का यह मान कहा गया है। मनु ने जिन कालों में दातौन का निषेध किया है, उन निषिद्ध कालों में दातौन कभी भी न करे ॥ २६ ॥ षष्ठी, अमावास्या, नवमी, व्रत के दिन, सूर्यास्त काल में, रविवार के दिन एवं श्राद्ध के दिन दातौन के लिए निषिद्ध कहा गया है ॥ २७ ॥ तीर्थादिकों में विशेष देश-काल का स्मरण कर संकल्पपूर्वक मन्त्र पढ़ते हुए सविधि स्नान करना चाहिए ॥ २८ ॥ फिर धौतवस्त्र धारण करने के पश्चात् आचमन करे और एकान्त तथा अच्छे स्थल में बैठ कर सन्ध्योपासन करे ॥ २९ ॥ यथायोग्य सन्ध्याविधि की क्रिया कर पूजा प्रारम्भ करे। सर्वप्रथम पूजागृह में प्रवेश कर मन को समाहित करे ॥ ३० ॥ समस्त पूजा की सामग्री एकत्रित कर आसन पर बैठे। पहले न्यास आदि का विधान कर तदनन्तर शिव का पूजन करे ॥ ३१ ॥

सर्वप्रथम गणेश का अनन्तर द्वारपालों दिक्पालों का एवं पूजन कर शिवजी की पूजा के लिए पूजा-सामग्री के समीप ही अष्टदल कमल का आसन निर्माण करे। फिर स्वयं बैठकर उस अष्टदल कमल के आसन पर शिवजी को स्थापित करे ॥ ३२-३३ ॥ तीन बार आचमन कर हाथ धोवे, पुनः तीन प्राणायाम कर तीन नेत्र एवं पञ्चमुख, दशभुजा वाले शुद्ध स्फटिक के समान शुभ्र वर्ण वाले, सर्वाभरण भूषित व्याघ्रचर्म का उत्तरीय धारण किये हुए शिव के स्वरूप का ध्यान करे। जिससे सभी प्रकार का पाप नष्ट हो जावे। परमेश्वर शिव को आसन से उठाकर उनका पूजन करे ॥ ३४-३६ ॥ अनन्तर देह-शुद्धि कर मूल मन्त्र से न्यास करे। शिवपूजन में सर्वत्र प्रणव द्वारा ही षडङ्गन्यास एवं हृदयादिन्यास कर शिव की पूजा प्रारम्भ करे। सर्वप्रथम पाद्य, अर्घ्य एवं आचमन के लिए पात्र स्थापित करे ॥ ३७-३८ ॥ बुद्धिमान् पुरुष शास्त्र-विधि के अनुसार नव घड़ों को स्थापित करे। घटस्थापन की विधि इस प्रकार है—सर्वप्रथम घड़ों को अच्छी प्रकार से प्रक्षालन करे। तथा उत्तम सुशीतल जल से उसे पूर्ण कर कुशा से आच्छादित करे। बुद्धिमान् पुरुष द्रव्यों को देखकर ॐकार पूर्वक तत्तद्द्रव्यों का निक्षेप उस

उशीरं चन्दनं चैव पाद्ये तु परिकल्पयेत् । जातीकं कोल-कर्पूर-वटमूल-तमालकम् ॥४१॥
चूर्णयित्वा यथान्यायं क्षिपेदाचमनीयके । एतत् सर्वेषु पात्रेषु दापयेच्चन्दनान्वितम् ॥४२॥
पार्श्वयोर्देवदेवस्य नन्दीशं तु समर्चयेत् । गन्धैर्धूपैस्तथा दीपैर्विविधैः पूजयेच्छिवम् ॥४३॥
लिङ्गशुद्धिं ततः कृत्वा मुदायुक्तो नरस्तदा । यथोचितं तु मन्त्रौघैः प्रणवादिर्नमोऽन्तकैः ॥४४॥
कल्पयेदासनं स्वस्ति-पद्मादि प्रणवेन तु । तस्मात् पूर्वदिशं साक्षादणिमामयमक्षरम् ॥४५॥
लघिमा दक्षिणं चैव महिमा पश्चिमं तथा । प्राप्तिश्चैवोत्तरं पत्रं प्राकाम्यं पावकस्य च ॥४६॥
ईशित्वं नैर्ऋतं पत्रं वशित्वं वायुगोचरे । सर्वज्ञत्वं तथैशान्यं कर्णिका सोम उच्यते ॥४७॥
सोमस्याधस्तथा सूर्यस्तस्याऽधः पावकस्त्वयम् । धर्मादीनपि तस्याधो भवतः कल्पयेत् क्रमात् ॥४८॥
अव्यक्तादि चतुर्दिक्षु सोमस्यान्ते गुणत्रयम् । सद्योजातं प्रवक्ष्यामीत्यावाह्य परमेश्वरम् ॥४९॥
वामदेवेन मन्त्रेण तिष्ठेच्चैवासनोपरि । सान्निध्यं रुद्रगायत्र्या अघोरेण निरोधयेत् ॥५०॥
ईशानं सर्वविद्यानामिति मन्त्रेण पूजयेत् । पाद्यमाचनीयं च विधायाऽर्घ्यं प्रदापयेत् ॥५१॥
स्थापयेद् विधिना रुद्रं गन्धचन्दनवारिणा । पञ्चगव्यविधानेन गृह्य पात्रेऽभिमन्त्र्य च ॥५२॥
प्रणवेनैव गव्येन स्नापयेत् पयसा च तम् । दध्ना च मधुना चैव तथा चेक्षुरसेन तु ॥५३॥
घृतेन तु यथा पूज्यः सर्वकामहितावहम् । पुण्यैर्द्रव्यैर्महादेवं प्रणवेनाभिषेचयेत् ॥५४॥
पवित्रजलभाण्डेषु मन्त्रैस्तोयं क्षिपेत्ततः । शुद्धीकृत्य यथान्यायं सितवस्त्रेण साधकः ॥५५॥
तावद् दूरं न कर्तव्यं न यावच्चन्दनं क्षिपेत् । तन्दुलैः सुन्दरैस्तत्र पूजयेच्छङ्करं मुदा ॥५६॥
कुशा-ऽपामार्ग-कर्पूर-जाति-चम्पक-पाटलैः । करवीरैः सितैश्चैव मल्लिकाकमलोत्पलैः ॥५७॥

घड़े में करे ॥ ३९-४० ॥ पाद्य के लिए जल में उशीर एवं चन्दन दे । और आचमन में जायफल, कङ्कोल, कपूर, वटमूल तथा तमालपत्र का चूर्ण मिला कर देवे । चन्दनादि पदार्थ सभी पात्रों में छोड़ देवे ॥४१-४२॥ देवदेव महादेव के पार्श्वभाग में नन्दीश्वर की पूजा करे। फिर विविध प्रकार के गन्ध, धूप एवं दीप से शिव की पूजा करे ॥ ४३ ॥

सर्वप्रथम प्रसन्नचित्त हो, 'ॐ नमः शिवाय' आदि मन्त्रों से शिवलिङ्ग की शुद्धि करे। पुनः ॐकार-पूर्वक स्वस्तिक तथा पद्म आदि आसनों का निर्माण करे। उससे पूर्व दिशा की ओर अणिमामय अक्षर की, दक्षिण की ओर लघिमा की, पश्चिम की ओर महिमा की, उत्तर की ओर प्राप्ति की, अग्निकोण में प्राकाम्य, नैर्ऋत्य में ईशित्व, वायव्य में वशित्व एवं ईशानकोण में सर्वज्ञत्व की कर्णिका में सोम की, सोम के नीचे सूर्य की, उसके नीचे पावक की एवं उसके नीचे धर्मादिकों की स्थापना करे ॥ ४४-४८ ॥ अव्यक्त आदि को चारों दिशाओं में एवं सोम के अन्त में तीनों गुणों की कल्पना करे। फिर 'सद्योजातं प्रपद्यामि' इस मन्त्र से परमेश्वर का आवाहन करे ॥ ४९ ॥ 'वामदेव' इस मन्त्र से आसन पर स्थापित करे, रुद्रगायत्री से शिव का सान्निध्य तथा 'अघोरेभ्योऽथ' इस मन्त्र से लिङ्ग में शिव का निरोध करे ॥५०॥ 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' इस मन्त्र से शिव को पाद्य, आचमनीय, अर्घ्य प्रदान कर सविधि उनका पूजन करे ॥ ५१ ॥ पञ्चगव्य की विधि के अनुसार रुद्र को एकपात्र में रख कर गन्ध युक्त चन्दनमिश्रित जल से स्नान करावे। पुनः प्रणवमन्त्र के द्वारा सम्पूर्ण कामनाओं को प्रदान करनेवाले शिव को दूध, दही, मधु, इक्षुरस, घृत के द्वारा अलग-अलग स्नान कराकर पञ्चगव्य से शिवलिङ्ग को स्नान करावे। फिर प्रणवमन्त्र के द्वारा पुण्य द्रव्यों से महादेव का पूजन कर अभिषेक करे ॥ ५२-५४ ॥ अभिषेक की विधि इस प्रकार है—किसी पवित्र जलपात्र में साधक श्वेत वस्त्र से जल को छान कर मन्त्र पढ़ते हुए जल छोड़े ॥ ५५ ॥ उस पात्र को अभिषेक के लिए तब तक दूर न करे जब तक उसमें चन्दन न डाले। पुनः अखण्ड सुन्दर चावलों से प्रसन्नता पूर्वक भगवान् शिव का पूजन करे ॥ ५६ ॥ कुशा, अपामार्ग, कपूर, जाती, चम्पक, पाटल, कनेर,

अपूर्वपुष्पैर्विविधैश्चन्दनाद्यैस्तथैव च । जलेन जलधारां च कल्पयेत् परमेश्वरे ॥५८॥
पात्रैश्च विविधैर्देवं स्नापयेच्च महेश्वरम् । मन्त्रपूर्वं प्रकर्तव्या पूजा सर्वफलप्रदा ॥५९॥
मन्त्रांश्च तुभ्यं तांस्तात ! सर्वकामार्थसिद्धये । प्रवक्ष्यामि समासेन सावधानतया शृणु ॥६०॥
पाठ्यमानेन मन्त्रेण तथा वाङ्मयकेन च । रुद्रेण नीलरुद्रेण सुशुक्लेन शुभेन च ॥६१॥
होतारेण तथा शीर्ष्णा शुभेनाथर्वणेन च । शान्त्या वाऽथ पुनः शान्त्या मारुणेनारुणेन च ॥६२॥
अर्थाभीष्टेन साम्ना च तथा देवव्रतेन च ॥६३॥
रथान्तरेण पुष्पेण सूक्तेन युक्तेन च । मृत्युंञ्जयेन मन्त्रेण तथा पञ्चाक्षरेण च ॥६४॥
जलधाराः सहस्रेण शतेनैकोत्तरेण वा । कर्तव्या वेदमार्गेण नामभिर्वाथ वा पुनः ॥६५॥
ततश्चन्दनपुष्पादि रोपणीयं शिवोपरि । दापयेत् प्रणवेनैव मुखवासादिकं तथा ॥६६॥
ततः स्फटिकसङ्काशं देवं निष्कलमक्षयम् । कारणं सर्वलोकानां सर्वलोकमयं परम् ॥६७॥
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रविष्ण्वाद्यैरपि देवैरगोचरम् । वेदविद्भिर्हि वेदान्ते त्वगोचरमिति स्मृतम् ॥६८॥
आदिमध्यान्तरहितं भेषजं सर्वरोगिणाम् । शिवतत्त्वमिति ख्यातं शिवलिङ्गं व्यवस्थितम् ॥६९॥
प्रणवेनैव मन्त्रेण पूजयेल्लिङ्गमूर्द्धनि । धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैस्ताम्बूलैः सुन्दरैस्तथा ॥७०॥
नीराजनेन रम्येण यथोक्तविधिना ततः । नमस्कारैः स्तवैश्चाऽन्यैर्मन्त्रैर्नानाविधैरपि ॥७१॥
अर्घ्यं दत्त्वा तु पुष्पाणि पादयोः सुविकीर्य च । प्रणिपत्य च देवेशमात्मनाऽऽराधयेच्छिवम् ॥७२॥
हस्ते गृहीत्वा पुष्पाणि समुत्थाय कृताञ्जलिः । प्रार्थयेत् पुनरीशानं मन्त्रेणाऽनेन शङ्करम् ॥७३॥

मल्लिका, कमल तथा अनेक दूसरे अपूर्व फूल तथा चन्दनादि से पूजन कर शिव के ऊपर अभिषेक करने के लिए जलधारा छोड़नी चाहिए ॥ ५७-५८ ॥ अनेक प्रकार के पात्रों में जल भर कर शिव का अभिषेक तथा पूजन करना चाहिए । मन्त्रपूर्वक पूजा करने से सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं तथा सभी प्रकार के फलों की प्राप्ति होती है ॥ ५९ ॥

हे तात ! मनोरथ को सिद्ध करने वाले उन मन्त्रों को मैं संक्षेप में कहता हूँ तुम सावधान होकर सुनो ॥ ६० ॥ पढ़ाये हुए मन्त्र, कण्ठस्थ मन्त्र, रुद्रसूक्त, नीलसूक्त, शुक्ल अजुर्वेद के मन्त्र, 'होतारं' यजुर्वेद के मन्त्र, अथर्वशीर्ष के मन्त्र, शान्ति के मन्त्र तथा अन्य शान्ति के मन्त्र, मारुण मन्त्र एवं आरुण मन्त्र अथवा जिससे अभीष्ट सिद्धि हो उस मन्त्र से, साममन्त्रों से, देवव्रत मन्त्र एवं रथान्तर मन्त्र अथवा पुरुष-सूक्त के मन्त्र, मृत्युञ्जय मन्त्र तथा पञ्चाक्षर मन्त्र के द्वारा सहस्र जलधारा अथवा एक सौ एक जलधारा द्वारा अभिषेक करना चाहिए। वेदमार्ग से अथवा शिव के नाम द्वारा भी शिव पर अभिषेक की धारा देनी चाहिए ॥ ६१-६५ ॥ इस प्रकार अभिषेक करने के अनन्तर पुनः शिवजी के ऊपर चन्दन, पुष्पादि एवं मुखवासार्थ ताम्बूलादि प्रणव के मन्त्रों से चढ़ाना चाहिए ॥ ६६ ॥

पुनः स्फटिकमणि के समान, निराकार, अक्षय, सभी लोकों के कारणभूत, सर्वलोकमय, ब्रह्मा, इन्द्र, उपेन्द्र, विष्ण्वादि तथा अन्य देवताओं से अगोचर, वेदान्तियों के द्वारा वेदान्त में अगोचर आदि मध्य एवं अन्त से रहित, सभी रोगों के औषधिस्वरूप शिवतत्त्व, जो शिवलिङ्ग के रूप में व्यवस्थित है, उस शिवलिङ्ग के ऊपर प्रणव मन्त्र से सुन्दर धूप, दीप, नैवेद्य तथा ताम्बूल चढ़ावे ॥ ६७-७० ॥ फिर शास्त्रविधि के अनुसार नीराजन एवं नमस्कार करते हुए स्तुति एवं नाना प्रकार के मन्त्र पढ़े ॥ ७१ ॥ तदनन्तर अर्घ्य प्रदान कर शिव के चरणों में पुष्प समर्पित कर देवदेवेश को प्रणाम कर उनकी आराधना करे ॥ ७२ ॥ फिर खड़े होकर हाथ में पुष्प लेकर दोनों हाथों को जोड़े हुए ईशानदेव से इस प्रकार के

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाजपपूजादिकं मया । कृतं तदस्तु सफलं कृपया तव शङ्कर ! ॥७४॥
पठित्वैवं च पुष्पाणि शिवोपरि मुदा न्यसेत् । स्वस्त्ययनं ततः कृत्वा ह्याशिषो विविधास्तथा ॥७५॥
मार्जनं तु ततः कार्यं शिवस्योपरि वै पुनः । नमस्कारं ततः क्षान्तिं पुनराचमनाय च ॥७६॥
अघोच्चारणमुच्चार्य नमस्कारं प्रकल्पयेत् । प्रार्थयेच्च पुनस्तत्र सर्वभावसमन्वितः ॥७७॥
शिवे भक्तिः शिवे भक्तिः शिवे भक्तिर्भवे भवे । अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम ॥७८॥
इति सम्प्रार्थ्य देवेशं सर्वसिद्धिप्रदायकम् । पूजयेत् परया भक्त्या गलनादैर्विशेषतः ॥७९॥
नमस्कारं ततः कृत्वा परिवारगणैः सह । प्रहर्षमतुलं लब्ध्वा कार्यं कुर्याद्यथासुखम् ॥८०॥
एवं यः पूजयेन्नित्यं शिवभक्तिपरायणः । तस्य वै सकला सिद्धिर्जायते तु पदे पदे ॥८१॥
वाग्मी स जायते तस्य मनोऽभीष्टफलं ध्रुवम् । रोगं दुःखं च शोकं च ह्युद्वेगं कृत्रिमं तथा ॥८२॥
कौटिल्यं च गरं चैव यद्यद् दुःखमुपस्थितम् । तद्-दुःखं नाशयत्येव शिवः शिवकरः परः ॥८३॥
कल्याणं जायते तस्य शुक्लपक्षे यथा शशी । वर्द्धते सद्गुणस्तत्र ध्रुवं शङ्करपूजनात् ॥८४॥
इति पूजाविधिः शम्भोः प्रोक्तस्ते मुनिसत्तम ! । अतः परं च शुश्रूषुः किं प्रष्टासि च नारद ! ॥८५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने
शिवपूजाविधिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

मन्त्रों से प्रार्थना करे ॥ ७३ ॥ हे शङ्कर ! मैंने ज्ञान से अथवा अज्ञान से जो पूजा की है, वह आपकी कृपा से सफल हो ॥ ७४ ॥ इस प्रकार के मन्त्र को पढ़कर शिवजी को पुष्पाञ्जलि समर्पित करे। फिर स्वस्तिवाचन कर आशीर्वाद ग्रहण करे ॥ ७५ ॥ शिव के ऊपर मार्जन तथा नमस्कार कर अपराध क्षमापन करावे ॥ ७६ ॥ 'अघोर' मन्त्र का उच्चारण कर नमस्कार करते हुए सर्वभाव से भगवान् शङ्कर की प्रार्थना करे ॥ ७७ ॥ हे देवदेव शिव ! मेरी भक्ति जन्म-जन्मान्तर में आप में निरन्तर बनी रहे। हे नाथ ! मुझे तुम्हारे अतिरिक्त और कोई शरण देने वाला नहीं है, आप ही मुझे शरण देने वाले हैं ॥ ७८ ॥ इस प्रकार सम्पूर्ण सिद्धियों को देने वाले सदाशिव की प्रार्थना करे। भक्तियुक्त हो विशेषरूप से गले के शब्दों से सदाशिव को प्रसन्न करे ॥ ७९ ॥ फिर परिवार गणों के सहित शिव को नमस्कार कर यथोचित गृहकार्य करे ॥ ८० ॥ शिवभक्ति में परायण होकर जो लोग इस प्रकार से शिवपूजन करते हैं, उन्हें प्रतिपद सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ८१ ॥ वह महावक्ता होता है, उसकी सभी मनोकामनाएँ सिद्ध होती हैं। उसे रोग, दुःख, शोक, उद्वेगादि एवं अपने कर्त्तव्य से प्राप्त दुःख, कुटिलता तथा विष-प्रयोगादि जो भी दुःख उपस्थित होते हैं उन्हें कल्याणकारी परम कृपालु शिव नष्ट कर देते हैं ॥ ८२-८३ ॥ उसका कल्याण होता है, वह शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त करता है। और निश्चित रूप से शङ्कर के पूजन के प्रभाव से उसके गुणों की वृद्धि होती है। ब्रह्माजी देवर्षि नारद से कहते हैं कि, हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार मैंने समस्त पूजा की विधि तुमसे कह दिया। हे नारद ! इसके उपरान्त अब क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ८४-८५ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के
प्रथम सृष्टिखण्ड में पूजाविधिवर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥

*

द्वादशोऽध्यायः

(लिंगार्चन-ज्ञान की इच्छा से देवताओं के साथ ब्रह्मा का क्षीरनिधितीर गमन एवं लिंगपूजन विधान)

नारद उवाच

ब्रह्मन् प्रजापते ! तात ! धन्यस्त्वं शिवसक्तधीः । एतदेव पुनः सम्यग् ब्रूहि मे विस्तराद् विधे ! ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

एकस्मिन् समये तात ऋषीनाहूय सर्वतः । निर्जरांश्चाऽवदं प्रीत्या सुवचः पद्मसम्भवः ॥ २ ॥
यदि नित्यसुखे श्रद्धा यदि सिद्धेश्च कामुकाः । आगन्तव्यं मया सार्द्धं तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥ ३ ॥
इत्येतद् वचनं श्रुत्वा गतास्ते हि मया सह । यत्रास्ते भगवान् विष्णुः सर्वेषां हितकारकः ॥ ४ ॥
तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं जनार्दनम् । उपतस्थुः सुरा नत्वा सुकृताञ्जलयो मुने ! ॥ ५ ॥
तान् दृष्ट्वा च तदा विष्णुर्ब्रह्माद्यानमरान् स्थितान् । स्मरञ्छिवपदाम्भोजमब्रवीत् परमं वचः ॥ ६ ॥

विष्णुरुवाच

किमर्थमागता यूयं ब्रह्माद्याश्च सुरर्षयः । सर्वं वदत तत्प्रीत्या किं कार्यं विद्यतेऽधुना ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच

इति पृष्टास्तदा तेन विष्णुना च मया सुराः । पुनः प्रणम्य तं प्रीत्या किं कार्यं विद्यतेऽधुना ॥
विनिवेदयितुं कार्यं ह्यब्रुवन् वचनं शुभम् ॥ ८ ॥

देवा ऊचुः

नित्यं सेवा तु कस्यैव कार्या दुःखापहारिणी ॥ ९ ॥

इत्येतद् वचनं श्रुत्वा भगवान् भक्तवत्सलः । सामरस्य मम प्रीत्या कृपया वाक्यमब्रवीत् ॥१०॥

नारद जी बोले—हे तात, हे ब्रह्मन्, हे प्रजापते ! आप धन्य हैं, जो इस प्रकार आपकी बुद्धि शिव में निरत है। हे ब्रह्मदेव ! यही बात पुनः विस्तार पूर्वक आप हमसे कहिए ॥ १ ॥

ब्रह्मा जी बोले—हे पुत्र ! एक समय मैं सभी ऋषियों तथा देवताओं को बुलाकर प्रीतिपूर्वक उनसे कहने लगा ॥ २ ॥ हे देवगणो ! यदि तुम लोग नित्य सुख चाहते हो अथवा नित्य मनोरथ की सिद्धि चाहते हो, तो मेरे साथ क्षीरसमुद्र के तट पर आओ ॥ ३ ॥ मेरी इस बात को सुन कर सभी देवता क्षीर-सागर में, जहाँ भगवान् विष्णु का निवास है, वहाँ मेरे साथ गये ॥४॥ सभी देवगण वहाँ जाकर देवाधिदेव जगन्नाथ की स्तुति कर हाथ जोड़े वहाँ स्थित हुए ॥ ५ ॥ तब भगवान् विष्णु देवताओं के सहित ब्रह्मदेव को उपस्थित देख कर शिव के चरण-कमलों का ध्यान करते हुए उनसे बोले– ॥ ६ ॥

विष्णु ने कहा—हे देवताओ ! हे ब्रह्मादि ऋषियो ! तुम लोग यहाँ किस कारण से आये हो ? आप लोग प्रसन्नता पूर्वक कहिए कि यहाँ आप लोगों के आगमन का क्या प्रयोजन है ? ॥ ७ ॥

ब्रह्मा ने कहा—हे नारद ! तब विष्णु भगवान् से इस प्रकार पूछे जाने पर मैंने उन्हें प्रणाम किया और देवताओं से कहा—हे देवताओ ! आपलोगों का कौन-सा कार्य है ? ऐसा कह कर मैंने उनसे अपना कार्य निवेदन करने के लिए कहा ॥ ८ ॥

देवगण बोले—हे विष्णो ! सभी दुःखों को दूर करने वाली किसकी सेवा है, जिसे हम लोगों को करनी चाहिए ॥ ९ ॥ भक्तवत्सल भगवान् देवताओं के द्वारा कहे गये इस वचन को सुन कर मेरे एवं देवताओं के ऊपर कृपा करते हुए बोले ॥ १० ॥

श्रीभगवानुवाच

ब्रह्मञ्छृणु सुरैः सम्यक् श्रुतं च भवता पुरा । तथापि कथ्यते तुभ्यं देवेभ्यश्च तथा पुनः ॥११॥
दृष्टं च दृश्यतेऽद्यैव किं पुनः पृच्छ्यतेऽधुना । ब्रह्मन् ! देवैः समस्तैश्च बहुधा कार्यतत्परैः ॥१२॥
सेव्यः सेव्यः सदा देवः शङ्करः सर्वदुःखहा । ममापि कथितं तेन ब्रह्मणोऽपि विशेषतः ॥१३॥
प्रस्तुतं चैव दृष्टं वः सर्वं दृष्टान्तमद्भुतम् । त्याज्यं तदर्चनं नैव कदापि सुखमीप्सुभिः ॥१४॥
सन्त्यज्य देवदेवेशं लिङ्गमूर्तिं महेश्वरम् । तारपुत्रास्तथैवैते नष्टास्तेऽपि स-बान्धवाः ॥१५॥
मया च मोहितास्ते वै मायया दूरतः कृताः । सर्वे विनष्टाः प्रध्वस्ताः शिवेन रहिता यदा ॥१६॥
तस्मात् सदा पूजनीयो लिङ्गमूर्तिधरो हरः । सेवनीयो विशेषेण श्रद्धया देवसत्तमः ॥१७॥
शर्वलिङ्गार्चनादेव देवा दैत्याश्च सत्तमाः । अहं त्वं च तथा ब्रह्मन् ! कथं तद् विस्मृतं त्वया ॥१८॥
तल्लिङ्गमर्चयेन्नित्यं येन केनापि हेतुना । तस्माद् ब्रह्मन् ! सुरः शर्वः सर्वकामफलेप्सया ॥१९॥
सा हानिस्तन्महाछिद्रं सान्धता सा च मुग्धता । यन्मुहूर्त्तं क्षणं वाऽपि शिवं नैव समर्चयेत् ॥२०॥
भवभक्तिपरा ये च भवप्रणतचेतसः । भवसंस्मरणा ये च न ते दुःखस्य भाजनाः ॥२१॥
भवनानि मनोज्ञानि मनोज्ञाभरणाः स्त्रियः । धनं च तुष्टिपर्यन्तं पुत्र-पौत्रादि-सन्ततिः ॥२२॥
आरोग्यं च शरीरं च प्रतिष्ठां चाप्यलौकिकीम् । ये वाञ्छन्ति महाभागाः सुखं वा त्रिदशालयम् ॥२३॥
अन्ते मुक्तिफलं चैव भक्तिं वा परमेशितुः । पूर्वपुण्यातिरेकेण तेऽर्चयन्ति सदाशिवम् ॥२४॥
योऽर्चयेच्छिवलिङ्गं वै नित्यं भक्तिपरायणः । तस्य वै सफला सिद्धिर्न स पापैः प्रयुज्यते ॥२५॥

श्री भगवान् बोले—देवताओं के सहित हे ब्रह्मदेव ! यद्यपि आपने इस बात को पहले सुना है फिर भी मैं आपके तथा देवताओं के हित के लिए उसी बात को पुनः कहता हूँ ॥ ११ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप सभी देवगण अपने-अपने कार्यों में तत्पर होकर नित्य जो देखे हैं, और जिसे इस समय भी आप लोग देख रहे हैं, उस विषय में आप लोग बारम्बार क्यों पूछते हैं । एक भगवान् शङ्कर ही सारे दुःखों को दूर करने वाले हैं, अत एव उनकी सेवा बारम्बार सदैव करनी चाहिए । यह बात उन्होंने मुझसे तथा ब्रह्मा से विशेष रूप से कही है । आप लोगों ने सामने वर्तमान समय में भी प्रत्यक्ष रूप से यह दृष्टान्त देखा है । सुख की इच्छा करने वालों को परमेश्वर सदाशिव की पूजा का त्याग कभी नहीं करना चाहिए ॥१२-१४॥

लिङ्गमूर्ति महेश्वर देवाधिदेव शङ्कर की पूजा का त्याग करने के कारण तारक के पुत्र बान्धवों सहित नष्ट हो गये ॥ १५ ॥ जब वे शिव का त्याग कर चुके तो मैंने उन्हें माया से मोहित कर दूर कर दिया जिससे वे विनष्ट हो गये ॥ १६ ॥ इसलिए मनुष्यों को लिङ्गमूर्ति वाले महेश्वर की श्रद्धा से सर्वदा पूजा एवं सेवा करनी चाहिए ॥ १७ ॥ शिवलिङ्ग के अर्चन के प्रभाव से देवता, दैत्य, हम एवं तुम सभी ने श्रेष्ठता को प्राप्त किया है फिर हे ब्रह्मन् ! तुम उन्हें कैसे भूल गये ॥ १८ ॥ इन लिङ्गमूर्ति महेश्वर की जिस-किसी भी कारण से नित्य अर्चन करना चाहिए । सम्पूर्ण कामनाओं एवं फलप्राप्ति के लिए तो अवश्य ही शिवार्चन करना चाहिए ॥ १९ ॥ यह तो बहुत बड़ी हानि, महाच्छिद्र, अन्धापन तथा महा मूर्खता है कि मनुष्य अपना एक क्षण अथवा मुहूर्त्त मात्र समय भी बिना शिवपूजन के खो देता है ॥ २० ॥ जो शिव की भक्ति करते हैं, जिनका मन शिव की भक्ति में प्रणत है एवं जो नित्य शिव के स्मरण में परायण हैं, उनको कभी दुःख नहीं होता ॥ २१ ॥ जो लोग उत्तम भवन, मनोहर आभरण से युक्त स्त्रियाँ, इच्छानुसार धन, पुत्र-पौत्रादि अविच्छिन्न सन्तति परम्परा, आरोग्य युक्त शरीर एवं अलौकिक प्रतिष्ठा तथा वैकुण्ठ का सुख चाहते हैं ॥ २२-२३ ॥ अथवा जो लोग अन्त में मुक्ति तथा सदाशिव में भक्ति चाहते हैं वे ही पूर्वजन्म के पुण्य के प्रभाव से सदाशिव की पूजा में निरत रहते हैं ॥ २४ ॥ जो भक्तिपरायण होकर शिवलिङ्ग की पूजा करता है, उसे सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । वह कभी भी पाप से लिप्त नहीं होता ॥ २५ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वाथ तदा देवाः प्रणिपत्य हरिं स्वयम् । लिङ्गानि प्रार्थयामासुः सर्वकामाप्तये नृणाम् ॥२६॥
तच्छ्रुत्वा च तदा विष्णुर्विश्वकर्माणमब्रवीत् । अहं च मुनिशार्दूल ! जीवोद्धारपरायणः ॥२७॥
विश्वकर्मन् यथा शम्भोः कल्पयित्वा शुभानि च । लिङ्गानि सर्वदेवेभ्यो देयानि वचनान्मम ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

लिङ्गानि कल्पयित्वैवमधिकारानुरूपतः । विश्वकर्मा ददौ तेभ्यो नियोगान्मम वा हरेः ॥२९॥
तदेव कथयाम्यद्य श्रूयतामृषिसत्तम ! । पद्मरागमयं शक्रो हैमं विश्रवसः सुतः ॥३०॥
पीतं मणिमयं धर्मो वरुणः श्यामलं शिवम् । इन्द्रनीलमयं विष्णुर्ब्रह्मा हेममयं तथा ॥३१॥
विश्वेदेवास्तथा रौप्यं वसवश्च तथैव च । आरकूटमयं वापि पार्थिवं ह्यश्विनौ मुने ! ॥३२॥
लक्ष्मीश्च स्फाटिकं देवी ह्यादित्यास्ताम्रनिर्मितम् । मौक्तिकं सोमराजो वै वज्रलिङ्गं विभावसुः ॥३३॥
मृण्मयं चैव विप्रेन्द्रा विप्रपत्न्यस्तथैव च । चान्दनं च मयो नागाः प्रवालमयमादरात् ॥३४॥
नवनीतमयं देवी योगी भस्ममयं तथा । यक्षा दधिमयं लिङ्गं छाया पिष्टमयं तथा ॥३५॥
शिवलिङ्गं च ब्रह्माणी रत्नं पूजयति ध्रुवम् । पारदं पार्थिवं बाणः समर्चति परेऽपि वा ॥३६॥
एवंविधानि लिङ्गानि दत्तानि विश्वकर्मणा । ते पूजयन्ति सर्वे वै देवा ऋषिगणास्तथा ॥३७॥
विष्णुर्दत्त्वा च लिङ्गानि देवेभ्यो हितकाम्यया । पूजाविधिं समाचष्ट ब्रह्मणे मे पिनाकिनः ॥३८॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य ब्रह्माऽहं देवसत्तमैः । आगच्छं च स्वकं धाम हर्षनिर्भरमानसः ॥३९॥
तत्राऽऽगत्य ऋषीन् सर्वान् देवांश्चाऽहं तथा मुने ! । शिवपूजाविधिं सम्यगब्रुवं सकलेष्टदम् ॥४०॥

ब्रह्माजी बोले—विष्णु के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर देवताओं ने श्रीहरि को प्रणाम किया। पुनः उन्होंने मनुष्यों की कामना-प्राप्ति के लिए भगवान् नारायण से प्रार्थना की ॥ २६ ॥ देवताओं की प्रार्थना सुनकर भगवान् ने विश्वकर्मा से कहा—हे विश्वकर्मन् ! मैं इन महामुनियों के जीवन का उद्धार करना चाहता हूँ ॥ २७ ॥ अतः तुम मेरी आज्ञा से सर्वोत्तम शिवलिङ्ग का निर्माण कर इन देवताओं को प्रदान करो ॥ २८ ॥

ब्रह्माजी ने कहा—विश्वकर्मा ने अधिकार के अनुसार लिङ्गों का निर्माण कर मेरी तथा विष्णु की आज्ञा से सभी देवताओं को प्रदान किया हे ऋषिसत्तम, जो जिस लिङ्ग को प्राप्त किया एवं उसकी पूजा की ॥ २९ ॥ वही बात मैं तुमसे कहता हूँ, उसे सुनो। इन्द्र पद्मरागमणि के लिङ्ग की, विश्रवापुत्र कुवेर सुवर्ण लिङ्ग की, धर्म पीतवर्ण के लिङ्ग की, वरुण श्यामवर्ण के लिङ्ग की, विष्णु इन्द्रनीलमणि के लिङ्ग की, ब्रह्मा सुवर्णमय लिङ्ग की, विश्वेदेव रौप्य लिङ्ग की, वसुगण पीतल के लिङ्ग की, अश्विनीकुमार पार्थिवलिङ्ग की, महालक्ष्मी देवी स्फटिकमणि की, आदित्यगण ताम्रलिङ्ग की, सोमराज चन्द्रमा मुक्तालिङ्ग की, अग्निदेव वज्रलिङ्गमणि के लिङ्ग की, ब्राह्मण एवं ब्राह्मणी मिट्टी के वने हुए शिवलिङ्ग की, मय-राक्षस चन्दन-निर्मित शिवलिङ्ग की, नागगण मूंगे के लिङ्ग की, देवी दुर्गा नवनीत-निर्मित लिङ्ग की, योगी भस्मलिङ्ग की, यक्षगण दधि-निर्मित शिवलिङ्ग की, छाया पीठी के लिङ्ग की और ब्रह्माणी रत्ननिर्मित शिवलिङ्ग की पूजा निश्चित रूप से करती हैं। बाण पारे के लिङ्ग की तथा अन्य लोग पार्थिवलिङ्ग की पूजा करते हैं ॥ ३०-३६ ॥

इस प्रकार विश्वकर्मा के द्वारा दिये गये लिङ्ग की देवता तथा ऋषिगण पूजा करते हैं ॥ ३७ ॥ देवताओं की भलाई के लिए विष्णु ने मुझ ब्रह्मा को शिवलिङ्ग देते हुए लिङ्ग की पूजाविधि का भी विधान मुझसे कहा ॥ ३८ ॥ उस लिङ्ग की पूजाविधि को सुनकर मैं देवताओं के साथ प्रसन्नता पूर्वक अपने स्थान पर लौट आया ॥ ३९ ॥ और अपने स्थान पर आकर सभी ऋषियों एवं देवताओं से अभीष्ट देनेवाली शिवपूजा की विधि कही ॥ ४० ॥

ब्रह्मोवाच

श्रूयतामृषयः सर्वे सामगः प्रेमतत्पराः । शिवपूजाविधिं प्रीत्या कथये भुक्तिमुक्तिदम् ॥४१॥
मानुषं जन्म सम्प्राप्य दुर्लभं सर्वजन्तुषु । तत्रापि सत्कुले देवा दुष्प्राप्यं च मुनीश्वराः ॥४२॥
अव्यङ्गं चैव विप्रेषु साचारेषु सुपुण्यतः । शिवसन्तोषहेतोश्च कर्म स्वोक्तं समाचरेत् ॥४३॥
यद्यज्जातिसमुद्दिष्टं तत्तत्कर्म न लङ्घयेत् । यावद् दानस्य सम्पत्तिस्तावत् कर्म समावहेत् ॥४४॥
कर्मयज्ञसहस्रेभ्यस्तपोयज्ञो विशिष्यते । तपोयज्ञसहस्रेभ्यो जपयज्ञो विशिष्यते ॥४५॥
ध्यानयज्ञात् परं नास्ति ध्यानं ज्ञानस्य साधनम् । यतः समरसं स्वेष्टं योगी ध्यानेन पश्यति ॥४६॥
ध्यानयज्ञरतस्यास्य सदा सन्निहितः शिवः । नास्ति विज्ञानिनां किञ्चित् प्रायश्चित्तादिशोधनम् ॥४७॥
विशुद्धा विद्यया ये च ब्रह्मन् ब्रह्मविदो जनाः । नास्ति क्रिया च तेषां वै सुखं दुःखं विचारतः ॥४८॥
धर्माऽधर्मौ जपो होमो ध्यानं ध्यानविधिस्तथा । सर्वदा निर्विकारास्ते विद्यया च तयाऽमराः ॥४९॥
परानन्दकरं लिङ्गं विशुद्धं शिवमक्षरम् । निष्कलं सर्वगं ज्ञेयं योगिनां हृदि संस्थितम् ॥५०॥
लिङ्गं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं द्विजाः । बाह्यं स्थूलं समुद्दिष्टं सूक्ष्ममाभ्यन्तरं मतम् ॥५१॥
कर्मयज्ञरता ये च स्थूललिङ्गार्चने रताः । असतां भावनार्थाय सूक्ष्मेण स्थूलविग्रहाः ॥५२॥
आध्यात्मिकं तु यल्लिङ्गं प्रत्यक्षं यस्य नो भवेत् । स तल्लिङ्गे तथा स्थूले कल्पयेच्च न चाऽन्यथा ॥५३॥
ज्ञानिनां सूक्ष्मममलं भावात् प्रत्यक्षमव्ययम् । यथा स्थूलमयुक्तानामुत्कृष्टादौ प्रकल्पितम् ॥५४॥
अहो विचारतो नास्ति ह्यन्यत्तत्त्वार्थवादिनः । निष्कलं सकलं चित्ते सर्वं शिवमयं जगत् ॥५५॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवताओ एवं ऋषियो ! मैं तुम लोगों से भुक्ति तथा मुक्ति देने वाली शिव की पूजा-विधि कहता हूँ, तुम लोग प्रेम से श्रवण करो ॥ ४१ ॥ सभी योनियों में मनुष्य जन्म बड़ा दुर्लभ है। हे देवताओ ! तथा मुनियो ! उसमें भी सत्कुल में जन्म लेना तो बड़ा ही दुर्लभ है ॥ ४२ ॥ उसमें भी सदाचारी ब्राह्मणों के कुल में जन्म होना तो बड़े भाग्य से होता है। इसलिए यदि सत्कुल ब्राह्मणों में जन्म हो गया तो मनुष्य को चाहिए कि वह सदाशिव की प्रसन्नता के लिए अपना कर्म करता रहे ॥ ४३ ॥ जिस जाति के लिए जो कर्म शास्त्रों में निर्दिष्ट किया गया है, उस जाति में जन्म लेकर तज्जातीयक कर्म का उल्लङ्घन कदापि न करे। दान के लिए जितनी सम्पत्ति हो उतने से ही कर्म करता रहे ॥ ४४ ॥ सहस्र कर्मयज्ञों की अपेक्षा तपोयज्ञ श्रेष्ठ है, सहस्र-तपोयज्ञ की अपेक्षा ध्यान यज्ञ श्रेष्ठ है ॥ ४५ ॥ ध्यानयज्ञ से परे और कोई साधन श्रेष्ठ नहीं है। क्योंकि ध्यान ही ज्ञान का साधन है। योगी लोग ध्यान के प्रभाव से अपने इष्ट को प्राप्त करते हैं ॥ ४६ ॥ जो ध्यानयज्ञ करता है, उसके समीप सदाशिव का निवास है। ज्ञानवालों को किसी भी प्रायश्चित्त की आवश्यकता नहीं है ॥ ४७ ॥

हे ब्रह्मन् ! जो लोग विशुद्ध ब्रह्मविद्या के द्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेते हैं उनको कर्म, सुख-दुःख, धर्म, अधर्म, जप, होम-ध्यान विधि की आवश्यकता नहीं है। उस ब्रह्मविद्या के प्रभाव से वे सर्वदा विकार रहित रहते हैं ॥४८-४९॥ योगियों के हृदय में रहने वाला शिवलिङ्ग, आनन्दस्वरूप, विशुद्ध, अक्षर, निष्कल, सर्वव्यापी तथा विशुद्धरूप से सर्वदा स्थित रहता है ॥ ५० ॥ हे ब्राह्मणो ! बाह्य तथा आभ्यन्तर भेद से लिङ्ग दो प्रकार का कहा गया है। स्थूल लिङ्ग, बाह्य लिङ्ग कहा जाता है तथा आभ्यन्तर लिङ्ग सूक्ष्म लिङ्ग कहा जाता है ॥ ५१ ॥ कर्मयज्ञ में प्रीति रखने वाले स्थूल लिङ्ग की अर्चना करते हैं। जिन्हें सूक्ष्म लिङ्ग की भावना अशक्य है ऐसे अज्ञानियों के लिए ही शिव का यह स्थूल विग्रह कहा गया है ॥५२॥ जिसे आध्यात्मिक लिङ्ग का प्रत्यक्ष सम्भव नहीं है वही इस स्थूल लिङ्ग में परमेश्वर के रूप की कल्पना करे, उसके लिए और कोई दूसरा उपाय नहीं है ॥५३॥ जिस प्रकार प्रथम अज्ञानियों के लिए स्थूललिङ्ग की उत्कृष्टता बतायी गयी है। उसीप्रकार सूक्ष्म लिङ्ग ज्ञानियों को भाव से प्रत्यक्ष होता है, जो सर्वदा निर्मल और अव्यय है। वस्तुतः ज्ञानियों की दृष्टि से यह सारा जगत् शिवमय एवं निष्कल है, शिव के अतिरिक्त

एवं ज्ञानविमुक्तानां नास्ति दोषविकल्पना । विधिश्चैव तथा नास्ति विहिताऽविहिते तथा ॥५६॥
यथा जलेषु कमलं सलिलैर्नावलिप्यते । तथा ज्ञानी गृहे तिष्ठन् कर्मणा नात्र बध्यते ॥५७॥
इति ज्ञानं समुत्पन्नं यावन्नैव नरस्य वै । तावच्च कर्मणा देवं शिवमाराधयेन्नरः ॥५८॥
प्रत्ययार्थं च जगतामेकस्थोऽपि दिवाकरः । एकोऽपि बहुधा दृष्टो जलाधारादिवस्तुषु ॥५९॥
दृश्यते श्रूयते लोके यद्यत् सदसदात्मकम् । तत्तत्सर्वं सुरा वित्त परं ब्रह्म शिवात्मकम् ॥६०॥
भेदो जलानां लोकेऽस्मिन् प्रतिभावे विचारतः । एवमाहुस्तथा चाऽन्ये सर्वे वेदार्थतत्त्वगाः ॥६१॥
हृदि संसारिणः साक्षात् सकलः परमेश्वरः । इति विज्ञानयुक्तस्य किं तस्य प्रतिमादिभिः ॥६२॥
इति विज्ञानहीनस्य प्रतिमाकल्पना शुभा । पदमुच्चैः समारोढुं पुंसो ह्यालम्बनं स्मृतम् ॥६३॥
आलम्बनं विना तस्य पदमुच्चैः सुदुष्करम् । निर्गुणप्राप्तये नॄणां प्रतिमालम्बनं स्मृतम् ॥६४॥
सगुणान्निर्गुणप्राप्तिर्भवतीति सुनिश्चितम् । एवं च सर्वदेवानां प्रतिमा प्रत्ययावहा ॥६५॥
देवश्चायं महीयान् वै तस्यार्थे पूजनं त्विदम् । गन्ध-चन्दन-पुष्पादि किमर्थं प्रतिमां विना ॥६६॥
तावच्च प्रतिमा पूज्या यावद् विज्ञानसम्भवः । ज्ञानाभावे न पूज्येत पतनं तस्य निश्चितम् ॥६७॥
एतस्मात् कारणाद् विप्राः श्रूयतां परमार्थतः । स्वजात्युक्तं तु यत्कर्म कर्तव्यं तत्प्रयत्नतः ॥६८॥
यत्र यत्र यथा भक्तिः कर्तव्यं पूजनादिकम् । विना पूजनदानादि पातकं न च दूरतः ॥६९॥

अन्य कुछ भी नहीं है ॥५४-५५॥ इस प्रकार का ज्ञान रखने वाले विमुक्त पुरुषों के लिए संसार में कोई भी पाप नहीं रहता। उनके लिए विधि-निषेध, विहित-अविहित कुछ भी नहीं है ॥ ५६ ॥ जिस प्रकार जल के भीतर रहने वाला कमल जल के गुणों से लिप्त नहीं रहता उसी प्रकार ज्ञानी अपने घर में रहता हुआ भी कर्मों के बन्धन में नहीं पड़ता ॥ ५७ ॥ इस प्रकार चराचरात्मक शिवरूप का ज्ञान जब तक पुरुष को उत्पन्न नहीं होता तब तक कर्म द्वारा उसे सदाशिव की आराधना करते रहना चाहिए ॥ ५८ ॥ जिस प्रकार संसार में एक ही रूप से दिखाई देने वाला सूर्य जलधारादि नाना वस्तुओं में प्रतिबिम्बित होने के कारण अनेक रूप में दिखाई पड़ता है ॥ ५९ ॥ उसी प्रकार हे देवो ! यह सारा सदसदात्मक विश्व-प्रपञ्च भी शिवात्मक परब्रह्म रूप समझो ॥ ६० ॥ जिस प्रकार भाव के अनुसार भिन्न-भिन्न वस्तुओं में रहने के कारण जल भिन्न-भिन्न होते हुए भी विचार से एक ही है, उसी प्रकार यह सारा जगत् भेदमय प्रतीत होते हुए भी एक ही है ऐसा तत्त्वचिन्तक कहते हैं ॥ ६१ ॥ संसारियों के हृदय में सकल लिङ्गस्वरूप परमेश्वर का वास है। जिसे इस प्रकार का ज्ञान हो गया है वह यदि प्रतिमा में पूजन न करे तो भी कोई दोष नहीं ॥ ६२ ॥ जिसे इस प्रकार का ज्ञान नहीं है उसी के लिए ही प्रतिमा की कल्पना की गयी है। ऊँचे पर चढ़ने वाले पुरुष को जिस प्रकार नीचे के आलम्बन की आवश्यकता होती है ॥ ६३ ॥ क्योंकि नीचे के अवलम्बन के बिना ऊपर चढ़ना सर्वथा असम्भव है, उसी प्रकार निर्गुण पद-प्राप्ति हेतु मनुष्यों को प्रतिमा का अवलम्बन सर्वथा आवश्यक है ॥ ६४ ॥ सगुण से ही निर्गुण की प्राप्ति सम्भव कही गयी है। इसी प्रकार सभी देवताओं की प्रतिमाएँ विश्वास उत्पन्न करने के लिए हैं ॥ ६५ ॥

यह देवता जिन्हें महादेव कहा जाता है, महान् देव होने के कारण ही महादेव हैं। उन्हीं को प्रसन्न करने हेतु यह सारी पूजा-विधि है। यदि प्रतिमा न हो, तो गन्ध, चन्दन, पुष्पादि सभी व्यर्थ हैं ॥ ६६ ॥ प्रतिमा का पूजन तब तक करना चाहिए, जब तक ज्ञान का उदय न हो, किन्तु जो बिना ज्ञान उत्पन्न हुए ही प्रतिमा-पूजन त्याग देता है उसका पतन अवश्यम्भावी है ॥ ६७ ॥ इस कारण हे ब्राह्मणो ! परमार्थ दृष्टि से तुम लोग हमारी बात सुनो। अपनी जाति के लिए कहे गये कर्म को प्रयत्नपूर्वक करते रहना चाहिए ॥ ६८ ॥ हृदय में अथवा शिवलिङ्ग में जहाँ-जैसी भक्ति हो वहाँ-वहाँ उसी प्रकार से पूजन

यावच्च पातकं देहे तावत् सिद्धिर्न जायते । गते च पातके तस्य सर्वं च सफलं भवेत् ॥७०॥
तथा च मलिने वस्त्रे रङ्गः शुभतरो न हि । क्षालने हि कृते शुद्धे सर्वो रङ्गः प्रसज्जते ॥७१॥
तथा च निर्मले देहे देवानां सम्यगर्चया । ज्ञानरङ्गः प्रजायेत तदा विज्ञानसम्भवः ॥७२॥
विज्ञानस्य च सन्मूलं भक्तिरव्यभिचारिणी । ज्ञानस्यापि च सन्मूलं भक्तिरेवाऽभिधीयते ॥७३॥
भक्तेर्मूलं तु सत्कर्म स्वेष्टदेवादिपूजनम् । तन्मूलं सद्गुरुः प्रोक्तस्तन्मूलं सङ्गतिः सताम् ॥७४॥
सङ्गत्या गुरुराप्येत गुरोर्मन्त्रादिपूजनम् । पूजनाज्जायते भक्तिर्भक्त्या ज्ञानं प्रजायते ॥७५॥
विज्ञानं जायते ज्ञानात् परब्रह्मप्रकाशकम् । विज्ञानं च यदा जातं तदा भेदो निवर्तते ॥७६॥
भेदे निवृत्ते सकले द्वन्द्वदुःखविहीनता । द्वन्द्वदुःखविहीनस्तु शिवरूपो भवत्यसौ ॥७७॥
द्वन्द्वाप्राप्तौ न जायेतां सुखदुःखे विजानतः । विहिताऽविहिते तस्य न स्यातां च सुरर्षयः ॥७८॥
ईदृशो विरलो लोके गृहाश्रमविवर्जितः । यदि लोके भवत्यस्मिन् दर्शनात् पापहारकः ॥७९॥
तीर्थानि श्लाघयन्तीह तादृशं ज्ञानवित्तमम् । देवाश्च मुनयः सर्वे परब्रह्मात्मकं शिवम् ॥८०॥
तादृशानि न तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः । ते पुनन्त्युरुकालेन विज्ञानी दर्शनादपि ॥८१॥
यावद् गृहाश्रमे तिष्ठेत्तावदाकारपूजनम् । कुर्याच्छ्रेष्ठस्य सुप्रीत्या सुरेषु खलु पञ्चसु ॥८२॥
अथवा च शिवः पूज्यो मूलमेकं विशिष्यते । मूले सिक्ते तथा शाखास्तृप्ताः सत्यखिलाः सुपाः ॥८३॥

करना चाहिए । क्योंकि पूजा एवं दान के बिना पाप दूर नहीं होता ॥ ६९ ॥ और जब तक शरीर में पाप रहता है तब तक सिद्धि नहीं प्राप्त होती । पाप दूर हो जाने पर ही सफलता प्राप्त होती है ॥ ७० ॥ जिस प्रकार मलिन वस्त्र पर रङ्ग अच्छी प्रकार नहीं चढ़ता, किन्तु वस्त्र को अच्छी तरह धोकर उसकी मलिनता दूर हो जाने से रङ्ग चढ़ जाता है ॥ ७१ ॥ उसी प्रकार निष्पाप शरीर द्वारा सम्यग् देवार्चन करने से ज्ञान-रङ्ग खिल जाता है । ज्ञान-रङ्ग के खिल जाने पर ब्रह्म-विज्ञान उत्पन्न होता है ॥ ७२ ॥ जिस प्रकार विज्ञान का मूल अनन्य भक्ति है, उसी प्रकार ज्ञान का भी मूल भक्ति ही कही गयी है ॥ ७३ ॥ भक्ति का मूल सत्कर्म एवं स्वेष्ट देवतादि पूजन कहा गया है । सत्कर्म का मूल सद्गुरु तथा उसका भी मूल सत्सङ्गति कही गयी है ॥ ७४ ॥ सत्सङ्गति से उत्तम गुरु तथा उत्तम गुरु द्वारा मन्त्र और उत्तम मन्त्र प्राप्त होने पर पूजन होता है । पुनः पूजन से भक्ति तथा भक्ति से ज्ञान होता है ॥ ७५ ॥

ज्ञान से विज्ञान (ब्रह्मतत्त्व का साक्षात्कार) और विज्ञान से ब्रह्मसत्ता का प्रकाश ज्ञात होता है । विज्ञान के उदय होते ही भेदबुद्धि मिट जाती है ॥ ७६ ॥ जब भेदबुद्धि मिट जाती है, तब समस्त द्वन्द्व-दुःख मिट जाते हैं । इस प्रकार द्वन्द्व-विहीन अद्वैतभाव को प्राप्त हुआ प्राणी शिवस्वरूप हो जाता है ॥ ७७ ॥ हे ऋषियो ! द्वन्द्व की निवृत्ति हो जाने पर सुख-दुःख भाव मिट जाते हैं । और हे देवताओ ! ऐसे ज्ञानी के लिए विधि-निषेध कुछ भी नहीं रहता ॥ ७८ ॥ इस लोक में ऐसे गृहाश्रम विवर्जित ज्ञानी विरले ही हैं । यदि कोई कदाचित् इस प्रकार का हो तो उसके दर्शनमात्र से सारे पाप मिट जाते हैं ॥७९॥ ऐसे परब्रह्मात्मक शिवस्वरूप महाज्ञानी की तीर्थ, देवता तथा मुनिगण भी प्रशंसा करते रहते हैं ॥ ८० ॥ ऐसे पवित्र तीर्थ भी नहीं देवता तो मिट्टी एवं पत्थर के ही होते हैं । फिर वे उस विज्ञानी की समता किस प्रकार कर सकते हैं । तीर्थ अवगाहन से तथा प्रतिमा-पूजन से दीर्घकाल में पुरुष को पवित्र करते हैं, किन्तु ब्रह्मवेत्ता तो अपने दर्शनमात्र से ही पुरुष को पवित्र कर देता है ॥ ८१ ॥

जब तक पुरुष गृहस्थाश्रम में रहे तब तक उसे प्रतिमा में शिव की प्रसन्नता के लिए पञ्चदेवों की उपासना करनी चाहिए ॥ ८२ ॥ अथवा प्रतिमा में मात्र केवल शिव की ही पूजा करे क्योंकि मूल की पूजा सर्वोत्तम है । मूल के सींचने पर समस्त शाखाएँ अपने आप सिञ्चित हो जाती हैं । यतः एक शिवपूजन

शाखासु च सुतृप्तासु मूलं तृप्तं न कर्हिचित् । एवं सर्वेषु तृप्तेषु सुरेषु मुनिसत्तमाः ॥८४॥
सर्वथा शिवतृप्तिर्नो विज्ञेया सूक्ष्मबुद्धिभिः । शिवे च पूजिते देवाः पूजिताः सर्व एव हि ॥८५॥
तस्माच्च पूजयेद्देवं शङ्करं लोकशङ्करम् । सर्वकामफलावाप्त्यै सर्वभूतहिते रतः ॥८६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने पूजाविधि-वर्णनं साराऽसारविचारवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

(लिङ्ग-पूजन में स्नान-आसनादि विधि कथन, लिङ्ग-प्रतिष्ठा, भूतशुद्धि वर्णन एवं लिङ्ग-विसर्जन)

ब्रह्मोवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि पूजाविधिमनुत्तमम् । श्रूयतामृषयो देवाः सर्वकामसुखावहम् ॥ १ ॥
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय संस्मरेत् साम्बकं शिवम् । कुर्यात् तत्प्रार्थनां भक्त्या साञ्जलिर्नतमस्तकः ॥ २ ॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ देवेश ! उत्तिष्ठ हृदयेशय । उत्तिष्ठ त्वमुमास्वामिन् ब्रह्माण्डे मङ्गलं कुरु ॥ ३ ॥
जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः ।
त्वया महादेव ! हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥ ४ ॥
इत्युक्त्वा वचनं भक्त्या स्मृत्वा च गुरुपादके । बहिर्गच्छेद् दक्षिणाशां त्यागार्थं मलमूत्रयोः ॥ ५ ॥
देहशुद्धिं ततः कृत्वा समृज्जलविशोधनैः । हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य दन्तधावनमाचरेत् ॥ ६ ॥
दिवानाथे त्वनुदिते कृत्वा वै दन्तधावनम् । मुखं षोडशवारं तु प्रक्षाल्याञ्जलिभिस्तथा ॥ ७ ॥

से समस्त देवता पूजित हो जाते हैं ॥ ८३ ॥ भला, कहीं शाखा के सींचने से मूल की तृप्ति हो सकती है। उसी प्रकार हे सुरश्रेष्ठो ! सब देवताओं के तृप्त होने पर भी शिवजी तृप्त नहीं होते। यह बात सूक्ष्म बुद्धि वाले लोग जानते हैं। किन्तु शिवपूजन से सभी देवता तृप्त हो जाते हैं ॥८४-८५॥ इसलिए सम्पूर्ण प्राणियों की भलाई में रत होकर अभीष्ट सिद्धि के लिए लोक का कल्याण करने वाले देवदेव शङ्कर की पूजा सर्वदा करनी चाहिए ॥ ८६ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती'भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के प्रथम-सृष्टिखण्ड में पूजाविधिवर्णन एवं सारासारविचार कथन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥

*

ब्रह्मा जी बोले—हे ऋषिगण ! अब मैं इसके उपरान्त श्रेष्ठ पूजा-विधि कहता हूँ। यह सम्पूर्ण मनोरथों तथा सुख को प्रदान करने वाली है ॥ १ ॥ ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर शिव और पार्वती का स्मरण करे। तथा हाथ जोड़ कर विनम्र हो भक्ति के साथ साम्बसदाशिव की प्रार्थना करे ॥ २ ॥ हे देवेश ! हे हृदय में शयन करने वाले प्रभो ! आप उठिए। हे उमावल्लभ ! आप उठिए एवं ब्रह्माण्ड का मङ्गल कीजिए ॥ ३ ॥ हे नाथ ! मैं धर्म जानता हूँ किन्तु उसमें मेरी प्रवृत्ति नहीं होती। मैं पाप जानता हूँ किन्तु उससे मेरी निवृत्ति नहीं होती। हे महादेव ! आप मेरे हृदय में स्थित होकर जैसी प्रेरणा करते हैं मैं वैसा ही करता हूँ ॥ ४ ॥ इस प्रकार प्रार्थना का स्मरण कर गुरु दत्तात्रेय की पादुका का स्मरण करे। तदनन्तर मल-मूत्र का त्याग करने के लिए ग्राम से बाहर दक्षिण दिशा में जाना चाहिए ॥ ५ ॥ मल-मूत्र का त्याग करने के पश्चात् मृत्तिका एवं जल से हाथ-पैर धोकर देहशुद्धि करने के पश्चात् दन्तधावन करे ॥६॥ दिन निकलने के पहले दन्तधावन क्रिया करने के पश्चात् अञ्जुलि से सोलह बार मुख का प्राक्षालन करे ॥७॥

षष्ठ्याद्यमाश्च तिथयो नवम्यर्कदिने तथा। वर्ज्याः सुरर्षयो यत्नाद् भक्तेन रदधावने ॥८॥
यथावकाशं सुस्नायान्नद्यादिष्वथवा गृहे। देशकालविरुद्धं न स्नानं कार्यं नरेण च ॥९॥
रवेर्दिने तथा श्राद्धे सङ्क्रान्तौ ग्रहणे तथा। महादाने तथा तीर्थे ह्युपवासदिने तथा ॥१०॥
अशौचेऽप्यथवा प्राप्ते स्नायादुष्णवारिणा। यथा साभिमुखं स्नायात् तीर्थादौ भक्तिमान्नरः ॥११॥
तैलाभ्यङ्गं च कुर्वीत वारान् दृष्ट्वा क्रमेण च। नित्यमभ्यङ्गके चैव वासितं वा न दूषितम् ॥१२॥
श्राद्धे च ग्रहणे चैवोपवासे प्रतिपद्दिने। अथवा सार्षपं तैलं न दुष्येद् ग्रहणं विना ॥१३॥
देशं कालं विचार्यैवं स्नानं कुर्याद्यथाविधि। उत्तराभिमुखश्चैव प्राङ्मुखोऽप्यथवा पुनः ॥१४॥
उच्छिष्टेनैव वस्त्रेण न स्नायात् स कदाचन। शुद्धवस्त्रेण स स्नायात्तद्देव स्मरणपूर्वकम् ॥१५॥
परधार्य्यं च नोच्छिष्टं रात्रौ च विधृतं च यत्। तेन स्नानं तथा कार्यं क्षालितं च परित्यजेत् ॥१६॥
तर्पणं च ततः कार्यं देवर्षिपितृतृप्तिदम्। धौतवस्त्रं ततो धार्यं पुनराचमनं चरेत् ॥१७॥
शुचौ देशे ततो गत्वा गोमयाद्युपमार्जिते। आसनं च शुभं तत्र रचनीयं द्विजोत्तमाः ॥१८॥
शुद्धकाष्ठसमुत्पन्नं पूर्णं स्तरितमेव वा। चित्रासनं तथा कुर्यात् सर्वकामफलप्रदम् ॥१९॥
यथायोग्यं पुनर्ग्राह्यं मृगचर्मादिकं च यत्। तत्रोपविश्य कुर्वीत त्रिपुण्ड्रं भस्मना सुधीः ॥२०॥
जपस्तपस्तथा दानं त्रिपुण्ड्रात् सफलं भवेत्। अभावे भस्मनस्तत्र जलस्यादि प्रकीर्तितम् ॥२१॥
एवं कृत्वा त्रिपुण्ड्रं च रुद्राक्षान् धारयेन्नरः। सम्पाद्य च स्वकं कर्म पुनराराधयेच्छिवम् ॥२२॥
पुनराचमनं कृत्वा त्रिवारं मन्त्रपूर्वकम्। एकं वाऽथ प्रकुर्याच्च गङ्गाबिन्दुरिति ब्रुवन् ॥२३॥
अन्नोदकं तथा तत्र शिवपूजार्थमाहरेत्। अन्यद् वस्तु च यत् किञ्चिद्यथाशक्तिसमीपगम् ॥२४॥

षष्ठी, प्रतिपदा, अमावास्या, नवमी तिथि, रविवार के दिन दन्तधावन न करे ॥ ८ ॥ समय एवं सुविधा के अनुसार नदी आदि में अथवा घर में ही जहाँ देश-काल का विरोध न हो वहाँ स्नान कर लेवे ॥ ९ ॥

रविवार के दिन, श्राद्ध के दिन, संक्रान्ति काल में, ग्रहण के दिन, महादान देने के दिन, तीर्थ में उपवास के दिन अथवा अशौच प्राप्त होने पर उष्ण जल से स्नान न करे। भक्तिमान् पुरुष तीर्थ के सामने होकर स्नान करे ॥१०-११॥ वारों को देख कर उसके क्रम के अनुसार तेल का प्रयोग करे। किन्तु नित्य लगाने वाले को एवं सुगन्ध तेल लगाने वाले के लिए वार का विचार नहीं करना चाहिए ॥ १२ ॥ श्राद्ध, ग्रहण, उपवास एवं प्रतिपदा के दिन तेल का प्रयोग नहीं करना चाहिए। सरसों के तेल के लिए वार का विचार नहीं है किन्तु ग्रहण में सरसों का भी तेल नहीं लगाना चाहिए ॥१३॥ देश-काल का विचार करते हुए शास्त्र की रीति के अनुसार स्नान करे। हो सके तो उत्तराभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख हो स्नान करे ॥१४॥ अपवित्र वस्त्र से कभी भी जल में स्नान न करे। तीर्थ देवता का स्मरण करते हुए शुद्ध वस्त्र से स्नान करे ॥ १५ ॥

दूसरे का वस्त्र उच्छिष्ट है, किन्तु अपना धारण किया हुआ रात्रि का वस्त्र उच्छिष्ट नहीं कहा जाता, अतः शुद्ध वस्त्र से स्नान करना चाहिए। धोबी के द्वारा धोये गये वस्त्र को न पहने ॥ १६ ॥ स्नानोपरान्त देवता तथा ऋषियों की तृप्ति के लिए तर्पण अवश्य करे। तर्पण के उपरान्त शुद्ध वस्त्र धारण कर आचमन क्रिया करे ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मणो ! गोबर के द्वारा लीपे गये शुद्ध स्थान में जाकर भली-भाँति उत्तम आसन लगावे ॥ १८ ॥ बैठने के लिए भरपूर उत्तम काष्ठ निर्मित चित्रासन सम्पूर्ण कामनाओं को देने वाला है, फिर उस पर यथायोग्य मृगचर्मादि बिछा देवे। बुद्धिमान् पुरुष उस पर बैठ कर भस्म से मस्तक में त्रिपुण्ड लगावे ॥१९-२०॥ क्योंकि जप, तप तथा दान त्रिपुण्ड लगाने से ही सफल होते हैं। यदि भस्म न मिले तो जल से ही त्रिपुण्ड लगावे ॥ २१ ॥ इस प्रकार त्रिपुण्ड लगा कर रुद्राक्ष धारण करे। सन्ध्योपासनादि आवश्यक कर्म कर शिव की आराधना प्रारम्भ करे ॥ २२ ॥

सर्वप्रथम 'गङ्गाबिन्दु' इस मन्त्र का स्मरण करते हुए एक, दो अथवा तीन आचमन करना चाहिए ॥ २३ ॥ शिवपूजा के लिए लाये गये अन्न, जल अथवा अन्य सभी वस्तुएँ यथाशक्ति

कृत्वा स्थैर्यं च तत्रैव धैर्यमास्थाय वै पुनः । अर्घपात्रं तथा चैकं जलगन्धाक्षतैर्युतम् ॥२५॥
दक्षिणांसे तथा स्थाप्यमुपचारस्य क्लृप्तये । गुरोश्च स्मरणं कृत्वा तदनुज्ञामवाप्य च ॥२६॥
सङ्कल्पं विधिवत् कृत्वा कामनां च नियुज्य वै । पूजयेत् परया भक्त्या शिवं सपरिवारकम् ॥२७॥
मुद्रामेकां प्रदर्श्यैव पूजयेद् विघ्नहारकम् । सिन्दुरादिपदार्थैश्च सिद्धिबुद्धिसमन्वितम् ॥२८॥
लक्षलाभयुतं तत्र पूजयित्वा नमेत् पुनः । चतुर्थ्यन्तैर्नामपदैर्नमोऽन्तैः प्रणवादिभिः ॥२९॥
क्षमाप्यैनं तदा देवं भ्रात्रा चैव समन्वितम् । पूजयेत् परया भक्त्या नमस्कुर्यात् पुनः पुनः ॥३०॥
द्वारपालं सदा द्वारि तिष्ठन्तं च महोदरम् । पूजयित्वा ततः पश्चात् पूजयेद् गिरिजां सतीम् ॥३१॥
चन्दनैः कुङ्कुमैश्चैव धूपैर्दीपैरनेकशः । नैवेद्यैर्विविधैश्चैव पूजयित्वा ततः शिवम् ॥३२॥
नमस्कृत्य पुनस्तत्र गच्छेच्च शिवसन्निधौ । यदि गेहे पार्थिवीं वा हैमीं वा राजतीं तथा ॥३३॥
धातुजन्यां तथैवान्यां पारदां वा प्रकल्पयेत् । नमस्कृत्य पुनस्तां च पूजयेद् भक्तितत्परः ॥३४॥
तस्यां तु पूजितायां वै सर्वे स्युः पूजितास्तदा । स्थापयेच्च मृदा लिङ्गं विधाय विधिपूर्वकम् ॥३५॥
कर्तव्यं सर्वथा तत्र नियमाः स्वगृहे स्थितैः । प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत भूतशुद्धिं विधाय च ॥३६॥
दिक्पालान् पूजयेत्तत्र स्थापयित्वा शिवालये । गृहे शिवः सदा पूज्यो मूलमन्त्राभियोगतः ॥३७॥
तत्र तु द्वारपालानां नियमो नास्ति सर्वथा । गृहे लिङ्गं च यत्पूज्यं तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥३८॥
पूजाकाले च साङ्गं वै परिवारेण संयुतम् । आवाह्य पूजयेद् देवं नियमोऽत्र न विद्यते ॥३९॥
शिवस्य सन्निधिं कृत्वा स्वासनं परिकल्पयेत् । उदङ्मुखस्तदा स्थित्वा पुनराचमनं चरेत् ॥४०॥
प्रक्षाल्य हस्तौ पश्चाद् वै प्राणायामं प्रकल्पयेत् । मूलमन्त्रेण तत्रैव दशावर्तं नयेन्नरः ॥४१॥

समीप में ही स्थापित कर लेवे ॥ २४ ॥ एकाग्रचित्त से शिवपूजा के लिए आसन पर बैठे । जल, गन्ध एवं अक्षत से युक्त एक अर्घ्यपात्र लेकर पूजा के लिए अपने दक्षिणभाग में स्थापित कर गुरु का स्मरण करे और उनकी आज्ञा लेकर जिस कामना से शिवपूजा करनी हो उसका संकल्प लेवे । सपरिवार शिव का पराभक्ति से युक्त होकर पूजन करे ॥ २५-२७ ॥ एक मुद्रा दिखा कर सिद्धि-बुद्धि सहित श्रीगणेश जी का सिन्दूरादि पदार्थों द्वारा पूजन करे ॥ २८ ॥ सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले गणेश की पूजा कर 'ॐ श्रीगणेशाय नमः' इस प्रकार से चतुर्थ्यन्त नामोच्चारण कर नमस्कार करे ॥ २९ ॥

पुनः स्कन्द की परम भक्ति से पूजा कर बारम्बार कार्त्तिकेय सहित श्रीगणेश जी से क्षमा माँगे ॥ ३० ॥ पुनः शिव के द्वार पर स्थित हुए महोदर नामक द्वारपाल की पूजा करे । अनन्तर सती गिरिजा देवी का चन्दन, कुंकुम, धूप, दीप एवं अनेक प्रकार के नैवेद्यों से पूजन कर शिव की पूजा के लिए शिव-सन्निधान में जाये ॥ ३१-३२ ॥ यदि घर में मिट्टी, सुवर्ण, चाँदी अथवा अन्य धातु तथा पारे की मूर्ति हो, तो उसे नमस्कार कर पूजन प्रारम्भ करे ॥ ३३-३४ ॥ क्योंकि एक शिव की पूजा कर लेने पर सभी देवता पूजित हो जाते हैं । पार्थिवलिङ्ग को विधिपूर्वक निर्माण कर उसको स्थापित करना चाहिए ॥३५॥ अपने घर पर रहते हुए पूजा के समस्त नियमों का पालन करना चाहिए । सर्व-प्रथम भूतशुद्धि करके प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिए ॥ ३६ ॥ उसे शिवालय में स्थापित लिङ्ग की पूजा में सर्वप्रथम दिक्पालों का पूजन करे । घर पर मूल मन्त्र 'ॐ नमः शिवाय' से शिव का पूजन करे ॥ ३७ ॥ घर पर शिवलिङ्ग-पूजा में द्वारपालों के पूजा का नियम नहीं है । क्योंकि घर पर जिस लिङ्ग की पूजा की जाती है, उस लिङ्ग में सभी देवता प्रतिष्ठित रहते हैं ॥ ३८ ॥ घर पर पूजाकाल में साङ्ग सपरिवार शिव का आवाहन कर उनकी पूजा करे ऐसा कोई नियम नहीं है ॥ ३९ ॥ शिव के सन्निधान में आसन लगावे । तदनन्तर उत्तराभिमुख हो आचमन करे ॥ ४० ॥ और हाथ धोकर प्राणायाम करे । यह प्राणायाम

पञ्चमुद्राः प्रकर्तव्याः पूजाऽवश्यं करेप्सिताः । एता मुद्राः प्रदर्श्यैव चरेत् पूजाविधिं नरः ॥४२॥
दीपं कृत्वा तदा तत्र नमस्कारं गुरोरथ । बद्ध्वा पद्मासनं तत्र भद्रासनमथापि वा ॥४३॥
उत्तानासनकं कृत्वा पर्यङ्कासनकं तथा । यथासुखं तथा स्थित्वा प्रयोगं पुनरेव च ॥४४॥
कृत्वा पूजां पुरा जातां वह्निकेनैव तारयेत् । यदि वा स्वयमेवेह गृहे न नियमोऽस्ति च ॥४५॥
पश्चाच्चैवार्घपात्रेण क्षालयेल्लिङ्गमुत्तमम् । अनन्यमानसो भूत्वा पूजाद्रव्यं निधाय च ॥४६॥
पश्चाच्चावाहयेद् देवं मन्त्रेणाऽनेन वै नरः । कैलासशिखरस्थं च पार्वतीपतिमुत्तमम् ॥४७॥
यथोक्तरूपिणं शम्भुं निर्गुणं गुणरूपिणम् । पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रं वृषभध्वजम् ॥४८॥
कर्पूरगौरं दिव्याङ्गं चन्द्रमौलिं कपर्दिनम् । व्याघ्रचर्मोत्तरीयं च गजचर्माम्बरं शुभम् ॥४९॥
वासुक्यादि-परीताङ्गं पिनाकाद्यायुधान्वितम् । सिद्धयोऽष्टौ च यस्याऽग्रे नृत्यन्तीह निरन्तरम् ॥५०॥
जयजयेति शब्दैश्च सेवितं भक्तपुञ्जकैः । तेजसा दुःसहेनैव दुर्लक्ष्यं देवसेवितम् ॥५१॥
शरण्यं सर्वसत्त्वानां प्रसन्नमुखपङ्कजम् । वेदैः शास्त्रैर्यथा गीतं विष्णुब्रह्मनुतं सदा ॥५२॥
भक्तवत्सलमानन्दं शिवमावाहयाम्यहम् । एवं ध्यात्वा शिवं साम्बमासनं परिकल्पयेत् ॥५३॥
चतुर्थ्यन्तपदेनैव सर्वं कुर्याद्यथाक्रमम् । ततः पाद्यं प्रदद्याद् वै ततोऽर्घ्यं शङ्कराय च ॥५४॥
ततश्चाचमनं कृत्वा शम्भवे परमात्मने । पश्चाच्च पञ्चभिर्द्रव्यैः स्नापयेच्छङ्करं मुदा ॥५५॥
वेदमन्त्रैर्यथायोग्यं नामभिर्वा समन्त्रकैः । चतुर्थ्यन्तपदैर्भक्त्या द्रव्याण्येवार्पयेत्तदा ॥५६॥
तथाभिलषितं द्रव्यमर्पयेच्छङ्करोपरि । ततश्च वारुणं स्नानं करणीयं शिवाय वै ॥५७॥
सुगन्धं चन्दनं दद्यादन्यलेपानि यत्नतः । स-सुगन्धजलेनैव जलधारां प्रकल्पयेत् ॥५८॥

मूलमन्त्र से दश आवृत्ति करे ॥ ४१ ॥ पूजा के लिए अवश्य करणीय हाथ से पाँच मुद्रा प्रदर्शित करे। इन मुद्राओं को दिखाने के पश्चात् ही पूजा आरम्भ करे। शिव के समीप दीप जलाकर तदनन्तर गुरु को नमस्कार करे। पद्मासन, भद्रासन, उत्तमासन, पर्यङ्कासन अथवा जिस आसन से बैठकर पूजा करने में सुविधा हो, उस आसन से बैठकर शिवपूजा का प्रयोग करे ॥ ४२-४४ ॥

पुनः एकचित्त होकर अर्घ्यपात्र से शिवलिङ्ग को अच्छी प्रकार स्नान करावे। समीप में पूजा-सामग्री रख कर शिवलिङ्ग में इस मन्त्र से शिव का आवाहन करे। कैलास के शिखर पर आसीन निर्गुण होकर भी पञ्चमुख, दशभुजा वाले, त्रिनेत्र, वृषभध्वज, कर्पूर के समान गौर वर्ण, माथे पर चन्द्रमा को धारण किये हुए, जटाजूट से शोभित, व्याघ्रचर्म का उत्तरीय धारण करने वाले, गजचर्म कटि में धारण करनेवाले, वासुकि आदि नागों से घिरे हुए, पिनाकादि आयुधों से युक्त होकर सगुणरूप धारण करने वाले पार्वतीपति शिव का हम आवाहन करते हैं, जिनके आगे आठों सिद्धियाँ निरन्तर नाचती रहती हैं ॥४५५०॥ जिन्हें भक्तजन जय-जयकार करते हुए सेवा करते रहते हैं, जो अपने दुःसह तेज के कारण दुर्लक्ष्य हैं, देवताओं से सेवित हैं ॥५१॥ समस्त प्राणियों को जो शरण देने वाले हैं एवं जिनका मुखपङ्कज सर्वदा प्रसन्न रहता है और वेद शास्त्रों में जिनकी महिमा का वर्णन है, जो विष्णु एवं ब्रह्मदेव के बन्दनीय हैं, ऐसे भक्तवत्सल आनन्दस्वरूप भगवान् शिव का मैं आवाहन करता हूँ। इस प्रकार शिव का ध्यान करते हुए उन्हें आसन रखे ॥ ५२-५३ ॥

'ॐ नमः शिवाय' इस चतुर्थ्यन्त पद से ही शिव की पूजा करनी चाहिए। सर्वप्रथम पाद्य अनन्तर शङ्कर के लिए अर्घ्य प्रदान करे ॥ ५४ ॥ पुनः परमात्मा सदाशिव को आचमन कराकर पञ्चद्रव्यों (घी, दूध, दही, शर्करा, मधु) द्वारा वेदमन्त्रों को पढ़ते हुए अथवा नाममन्त्रों के द्वारा या चतुर्थ्यन्त पद युक्त 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्र से स्नान कराते हुए नानाप्रकार के द्रव्य शिव को समर्पित करे ॥ ५५-५६ ॥ और भी 'जो अभिलषित वस्तु हो उसे शिव को समर्पित करे। जलधारा से उनको स्नान करावे।

वेदमन्त्रैः षडङ्गैर्वा नामभी रुद्रसङ्ख्यया। यथावकाशं तां दत्वा वस्त्रेण मार्जयेत् ततः ॥५९॥
पश्चादाचमनं दद्यात्ततो वस्त्रं समर्पयेत्। तिलाश्चैव जवा वापि गोधूमा मुद्गमापकाः ॥६०॥
अर्पणीयाः शिवायैवं मन्त्रैर्नानाविधैरपि। ततः पुष्पाणि देयानि पञ्चास्याय महात्मने ॥६१॥
प्रतिवक्त्रं यथाध्यानं यथायोग्याभिलाषतः। कमलैः शतपत्रैश्च शङ्खपुष्पैः परैस्तथा ॥६२॥
कुशपुष्पैश्च धत्तूरैर्मन्दारैर्द्रोणसम्भवैः। तथा च तुलसीपत्रैर्बिल्वपत्रैर्विशेषतः ॥६३॥
पूजयेत् परया भक्त्या शङ्करं भक्तवत्सलम्। सर्वाभावे बिल्वपत्रमर्पणीयं शिवाय वै ॥६४॥
बिल्वपत्रार्पणे नैव सर्वपूजा प्रसिध्यति। ततः सुगन्धचूर्णं वै वासितं तैलमुत्तमम् ॥६५॥
अर्पणीयं च विविधं शिवाय परया मुदा। ततो धूपः प्रकर्तव्यो गुग्गुला गुरुभिर्मुदा ॥६६॥
दीपो देयस्ततस्तस्मै शङ्कराय घृतप्लुतः। अर्घं दद्यात् पुनस्तस्मै मन्त्रेणानेन भक्तितः ॥६७॥
कारयेद् भावतो भक्त्या वस्त्रेण मुखमार्जनम्। रूपं देहि यशो देहि भोगं देहि च शङ्कर! ॥६८॥
भुक्ति-मुक्तिफलं देहि गृहीत्वाऽर्घं नमोऽस्तु ते। ततो देयं शिवायैव नैवेद्यं विविधं शुभम् ॥६९॥
तत आचमनं प्रीत्या कारयेद्वा विलम्बतः। ततः शिवाय ताम्बूलं साङ्गोपाङ्गं विधाय च ॥७०॥
कुर्यादारातिकं पञ्चवर्तिकामनुसङ्ख्यया। पादयोश्च चतुर्वारं द्विःकृत्वो नाभिमण्डले ॥७१॥
एककृत्वे मुखे सप्तकृत्वः सर्वाङ्ग एव हि। ततो ध्यानं यथोक्तं वै कृत्वा मन्त्रमुदीरयेत् ॥७२॥
यथासङ्ख्यं यथाज्ञानं कुर्यान्मन्त्रविधिं नरः। गुरूपदिष्टमार्गेण कृत्वा मन्त्रजपं सुधीः ॥७३॥
गुरूपदिष्टमार्गेण कृत्वा मन्त्रमुदीरयेत्। यथासङ्ख्यं यथाज्ञानं कुर्यान्मन्त्रविधिं नरः ॥७४॥

सुगन्ध युक्त चन्दन एवं अन्य इत्रादि अनुलेपन पदार्थ लगावे। सुगन्धित जल की धारा से वेदमन्त्रों, नाममन्त्रों से ग्यारह बार स्नान कराकर वस्त्र से मार्जन करे ॥ ५७-५९ ॥ आचमन कराकर शिवजी को वस्त्र समर्पित करे। तिल, यव, गोधूम, मुद्ग एवं उर्द आदि अन्नों को नानाप्रकार के मन्त्र पढ़ते हुए समर्पित करे। और पाँचमुख वाले महात्मा सदाशिव के ऊपर पुष्प समर्पित करे ॥ ६०-६१ ॥

पाँच मुख वाले शिव के प्रत्येक मुखों पर ध्यान एवं अभिलाषा के अनुसार कमल, शतपत्र, शंखपुष्पी एवं अन्य प्रकार के पुष्प, कुश, धतूरा, मदार, द्रोण, तुलसीपत्र विशेष कर बिल्वपत्र चढ़ाकर भक्तवत्सल सदाशिव का परमभक्ति से पूजन करे। यदि कोई और वस्तु न मिले तो मात्र बिल्वपत्र ही शिव को समर्पित करे ॥ ६२-६४ ॥ क्योंकि बिल्वपत्र के अर्पण मात्र से पूजा की सारी विधि सम्पन्न हो जाती है। पुनः उत्तम सुगन्ध चूर्ण से वासित सुगन्ध तैल शिव को परमभक्ति से समर्पित करे। गुग्गुल एवं अगर, धूप भी समर्पित करे ॥ ६५-६६ ॥ घृतपूर्ण दीप शङ्कर के निमित्त प्रदान करे। आगे कहे जाने वाले मन्त्र से भक्तिपूर्वक पुनः अर्घ्य प्रदान करे ॥ ६७ ॥ तदनन्तर वस्त्र द्वारा मुखमार्जन एवं प्रार्थनापूर्वक अर्घ्य प्रदान करे ॥ ६८ ॥ और कहे कि, हे शङ्कर ! मुझे रूप, यश और भोग दीजिए। हे भगवन् ! आपको प्रणाम है, हे प्रभो ! आप इस अर्घ्य को ग्रहण कर मुझे भोग, मोक्ष तथा सभी प्रकार के फल प्रदान कीजिए। हे नाथ ! आपको नमस्कार है। इस प्रकार अर्घ्य समर्पित करने के उपरान्त शिवजी के निमित्त नाना प्रकार के सुन्दर नैवेद्य प्रदान करे ॥ ६९ ॥ थोड़ा विलम्ब कर प्रीति से शिव को आचमन करावे। शिव के आगे साङ्गोपाङ्ग ताम्बूल रखकर पञ्चवर्त्ती से उनकी आरती करे। पैर की चार बार, नाभिमण्डल की दो बार, मुख की एक बार तथा सर्वाङ्ग की सात बार आरती कर उपर्युक्त कहे गये 'पञ्चवक्त्रं' इत्यादि स्वरूप का ध्यान करे। 'रूपं देहि' इत्यादि मन्त्र को पढ़े। अथवा अपने ज्ञान के अनुसार जितनी भी

स्तोत्रैर्नानाविधैः प्रीत्या स्तुवीत वृषभध्वजम् । ततः प्रदक्षिणां कुर्याच्छिवस्य च शनैः शनैः ॥७५॥
नमस्कारांस्ततः कुर्यात् साष्टाङ्गं विधिवत् पुमान् । ततः पुष्पाञ्जलिर्देयो मन्त्रेणाऽनेन भक्तितः ॥७६॥
शङ्कराय परेशाय शिवसन्तोषहेतवे । अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाद्यद्यत् पूजादिकं मया ॥७७॥
कृतं तदस्तु सफलं कृपया तव शङ्कर ! । तावकस्त्वद्गत-प्राण-त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड ! ॥७८॥
इति विज्ञाय गौरीश भूतनाथ ! प्रसीद मे । भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवाऽवलम्बनम् ॥७९॥
त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं प्रभो ! । इत्यादि बहुविज्ञप्तिं कृत्वा सम्यग् विधानतः ॥८०॥
पुष्पाञ्जलिं समर्प्यैव पुनः कुर्यान्नतिं मुहुः । स्वस्थानं गच्छ देवेश ! परिवारयुतः प्रभो ! ॥८१॥
पूजाकाले पुनर्नाथ ! त्वयाऽऽगन्तव्यमादरात् । इति सम्प्रार्थ्य बहुशः शङ्करं भक्तवत्सलम् ॥८२॥
विसर्जयेत् स्वहृदये तदपो मूर्ध्नि विन्यसेत् । इति प्रोक्तमशेषेण मुनयः शिवपूजनम् ॥
भुक्ति-मुक्तिप्रदं चैव किमन्यच्छ्रोतुमर्हथ ॥८३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने
शिवपूजनवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

संख्या में हो सके, मन्त्र का विधिपूर्वक जप करे ॥ ७०-७४ ॥ नानाप्रकार के स्तोत्रों से प्रसन्नतापूर्वक शिव की स्तुति करे। पश्चात् शनैः-शनैः शिव की प्रदक्षिणा करे ॥ ७५ ॥

प्रदक्षिणा के पश्चात् विधिपूर्वक साष्टाङ्ग नमस्कार करे और नीचे लिखे मन्त्र से भक्तिपूर्वक शिव को पुष्पाञ्जलि समर्पित करे ॥ ७६ ॥ हे शङ्कर ! मैंने लोककल्याण करनेवाले आप परमेश्वर सदाशिव को सन्तुष्ट करने के लिए ज्ञान अथवा अज्ञान से जो कुछ भी पूजा की है, वह आपकी कृपा से सफल हो। मैं आपका हूँ, मेरे प्राण आप में ही निवास करते हैं। हे मृड ! मेरा चित्त भी तुम्हीं में संलग्न है। हे गौरीनाथ ! हे भूतेश ! ऐसा समझ कर मेरे ऊपर प्रसन्न होइए। जिनके पैर पृथ्वी में फिसलते हैं, उन्हें पृथ्वी ही शरण देने वाली होती है ॥ ७७-७९ ॥ हे प्रभो ! मैंने जो भी अपराध आपके विषय में किया है, उसके लिए हे नाथ ! आप ही शरण देने वाले हैं। इत्यादि अनेक प्रकार की विज्ञप्ति विधानपूर्वक करके पुष्पाञ्जलि समर्पित करते हुए बारम्बार शिव को नमस्कार करे। हे प्रभो ! अब आप परिवार के साथ अपने स्थान को जाइए ॥ ८०-८१ ॥ हे नाथ ! पूजा के समय फिर इसी प्रकार आदर के साथ पधारिएगा। भक्तवत्सल भगवान् सदाशिव की अनेक प्रकार से प्रार्थना करते हुए विसर्जन करे और उनका जल शिर पर तथा हृदय पर धारण करे। हे मुनियो ! यह शिवजी का पूजन हमने आप लोगों से विस्तारपूर्वक कहा। यह भोग तथा मोक्ष को देनेवाला है। अब आप लोगों की आगे क्या सुनने की इच्छा है ? ॥ ८२-८३ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' हिन्दीटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के
प्रथम-सृष्टिखण्ड में शिवपूजन वर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥

*

चतुर्दशोऽध्यायः

(पुष्प-बिल्व से लिंगपूजन में फल-विशेष का वर्णन और जलधारा द्वारा पूजन के फल कथन)

ऋषय ऊचुः

व्यासशिष्य महाभाग ! कथय त्वं प्रमाणतः । कैः पुष्पैः पूजितः शम्भुः किं किं यच्छति वै फलम् ।। १ ।।

सूत उवाच

शौनकाद्याश्च ऋषयः शृणुतादरतोऽखिलम् । कथयाम्यद्य सुप्रीत्या पुष्पार्पणविनिर्णयम् ।। २ ।।
एष एव विधिः पृष्टो नारदेन महर्षिणा । प्रोवाच परमप्रीत्या पुष्पार्पणविनिर्णयम् ।। ३ ।।

ब्रह्मोवाच

कमलैर्बिल्वपत्रैश्च शतपत्रैस्तथा पुनः । शङ्खपुष्पैस्तथा देवं लक्ष्मीकामोऽर्चयेच्छिवम् ।। ४ ।।
एतैश्च लक्षसङ्ख्याकैः पूजितश्चेद् भवेच्छिवः । पापहानिस्तथा विप्र ! लक्ष्मीः स्यान्नात्र संशयः ।। ५ ।।
विंशतिः कमलानां तु प्रस्थमेकमुदाहृतम् । बिल्वो दलसहस्रेण प्रस्थार्द्धं परिभाषितम् ।। ६ ।।
शतपत्रसहस्रेण प्रस्थार्द्धं परिभाषितम् । पलैः षोडशभिः प्रस्थः पलं टङ्कदश स्मृतः ।। ७ ।।
अनेनैव तु मानेन तुलामारोपयेद्यदा । सर्वान् कामानवाप्नोति निष्कामश्चेच्छिवो भवेत् ।। ८ ।।
राज्यस्य कामुको यो वै पार्थिवानां च पूजया । तोषयेच्छङ्करं देवं दशकोट्या मुनीश्वराः ।। ९ ।।
लिङ्गं शिवं तथा पुष्पमखण्डं तन्दुलं तथा । चर्चितं चन्दनेनैव जलधारां तथा पुनः ।।१०।।
प्रतिरूपं तथा मन्त्रं बिल्वीदलमनुत्तमम् । अथवा शतपत्रं च कमलं वा तथा पुनः ।।११।।
शङ्खपुष्पैस्तथा प्रोक्तं विशेषेण पुरातनैः । सर्वकामफलं दिव्यं परत्रेहापि सर्वथा ।।१२।।
धूपं दीपं च नैवेद्यमर्घं चारार्तिकं तथा । प्रदक्षिणां नमस्कारं क्षमापनविसर्जने ।।१३।।

ऋषिगण बोले—हे व्यासशिष्य, हे महाभाग ! आप हमें यह बताइए कि किन-किन फूलों से पूजा करने पर महादेव जी क्या-क्या फल प्रदान करते हैं ? ।। १ ।।

सूतजी बोले—हे शौनकादि महर्षियो ! आप लोगों के प्रीत्यर्थ पुष्पार्पण का फल कहता हूँ । आदर से आप लोग सुनिए ।।२।। यही बात देवर्षि नारद ने ब्रह्माजी से पूछी थी । तब ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर उनसे शिव को पुष्पार्पण की विधि सुनायी थी ।। ३ ।।

ब्रह्मा जी बोले—कमल, बिल्वपत्र, शतपत्र एवं शङ्खपुष्पी के पुष्प द्वारा शिव-पूजा करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।। ४ ।। यदि एक लाख फूलों से शिवार्चन करे, तो हे ब्राह्मणो ! मनुष्य का पाप नष्ट हो जाता है एवं निश्चय ही लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।। ५ ।। बीस कमल का एक प्रस्थ होता है । सहस्र बिल्वपत्रों का आधा प्रस्थ होता है ।। ६ ।। इसी प्रकार सहस्र शतपत्र का भी आधा प्रस्थ होता है । सोलह पल का एक प्रस्थ और दश टंक का एक पल होता है ।। ७ ।। तुलनात्मक दृष्टि से इन पुष्पों का यही प्रमाण कहा गया है । अतः इन मानों से उक्त पुष्पों द्वारा शिव का पूजन करने से सभी कामनाएँ सद्यः सिद्ध होती हैं । निष्काम भाव से यदि उक्त पुष्पों द्वारा पूजा करे, तो वह शिवतुल्य हो जाता है ।।८।। हे मुनीश्वरो ! जिसे राज्य की कामना हो वह दस करोड़ पार्थिवपूजा से भगवान् सदाशिव को सन्तुष्ट करे ।। ९ ।। तथा पूजा की संख्या के अनुसार प्रतिरूप पर अलग-अलग मन्त्रों से शिवलिङ्ग पर पुष्प, अखण्ड अक्षत, सुगन्ध युक्त चन्दन, अखण्ड जलधारा, बेलपत्र, शतपत्र, कमल चढ़ावे, विशेष कर प्राचीनों के कथनानुसार शङ्खपुष्पी का फूल चढ़ावे तो इस लोक में तथा परलोक में सभी कामनाओं का दिव्य फल प्राप्त होता है ।। १०-१२ ।। धूप, दीप, नैवेद्य, अर्घ्य, आरती, प्रदक्षिणा, नमस्कार, क्षमापन एवं साङ्ग-

कृत्वा साङ्गं तथा भोज्यं कृतं येन भवेदिह । तस्य वै सर्वथा राज्यं शङ्करः प्रददाति च ॥१४॥
प्राधान्यकामुको यो वै तदर्द्धेनाऽर्चयेत् पुमान् । कारागृहगतो यो वै लक्षेनैवार्चयेद्धरम् ॥१५॥
रोगग्रस्तो यदा स्याद् वै तदर्द्धेनाऽर्चयेच्छिवम् । कन्याकामो भवेद्यो वै तदर्द्धेन शिवं पुनः ॥१६॥
विद्याकामस्तथा यः स्यात्तदर्द्धेनाऽर्चयेच्छिवम् । वाणीकामो भवेद्यो वै घृतेनैवाऽर्चयेच्छिवम् ॥१७॥
उच्चाटनार्थं शत्रूणां तन्मितेनैव पूजनम् । मारणे वै तु लक्षेण मोहने तु तदर्धतः ॥१८॥
सामन्तानां जये चैव कोटिपूजा प्रशस्यते । राज्ञामयुतसङ्ख्यं च वशीकरणकर्मणि ॥१९॥
यशसे च तथा सङ्ख्या वाहनाद्यैः सहस्रिका । मुक्तिकामोऽर्चयेच्छम्भुं पञ्चकोट्या सुभक्तितः॥२०॥
ज्ञानार्थी पूजयेत् कोट्या शङ्करं लोकशङ्करम् । शिवदर्शनकामो वै तदर्द्धेन प्रपूजयेत् ॥२१॥
तथा मृत्युञ्जयो जाप्यः कामनाफलरूपतः । पञ्चलक्षा जपा यर्हि प्रत्यक्षं तु भवेच्छिवः ॥२२॥
लक्षेण भजते कश्चिद् द्वितीये जातिसम्भवः । तृतीये कामनालाभश्चतुर्थे तं प्रपश्यति ॥२३॥
पञ्चमं च यदा लक्षं फलं यच्छत्यसंशयम् । अनेनैव तु मन्त्रेण दशलक्षे फलं भवेत् ॥२४॥
मुक्तिकामो भवेद्यो वै दर्भैश्च पूजनं चरेत् । लक्षसङ्ख्या तु सर्वत्र ज्ञातव्या ऋषिसत्तम ! ॥२५॥
आयुःकामो भवेद्यो वै दूर्वाभिः पूजनं चरेत् । पुत्रकामो भवेद्यो वै धत्तूरकुसुमैश्चरेत् ॥२६॥
रक्तदण्डश्च धत्तूरः पूजने शुभदः स्मृतः । अगस्त्यकुसुमैश्चैव पूजकस्य महद्यशः ॥२७॥

षड्रस युक्त नैवेद्य का समर्पण कर जो भगवान् शिव का विसर्जन करता है, उसे अवश्य ही वे राज्य प्रदान करते हैं ॥ १३-१४ ॥

जो सर्वश्रेष्ठ बनना चाहता हो वह उपर्युक्त विधि के आधे पचास हजार कमलों से पार्थिव शिवलिङ्ग का पूजन करे। कारागार से मुक्त होने की इच्छा वाला पुरुष एक लाख कमलों से पार्थिव शिवलिङ्ग का पूजन करे ॥ १५ ॥ रोगग्रस्त पुरुष रोग से छुटकारा पाने के लिए पचास हजार कमलों से, कन्या चाहने वाला पचीस हजार कमलपुष्पों से शिव का पूजन करे ॥ १६ ॥ विद्या की कामनावाला इससे आधा तथा वाणी की कामनावाला घी से शङ्कर की पूजा करे ॥ १७ ॥ शत्रुओं के उच्चाटन के लिए भी उतने ही संख्या से शिव का पूजन करे। मारण के लिए एक लक्ष एवं मोहन के लिए पचास सहस्र कमलों द्वारा पूजन कहा गया है ॥ १८ ॥ सामन्तों पर विजय पाने के लिए एक करोड़ कमल-पुष्पों से पूजा करनी चाहिए। राजाओं के वशीकरण के लिए दशलाख की पूजा का विधान है ॥ १९ ॥ यश तथा वाहनादि की प्राप्ति के लिए एक सहस्र कमलों द्वारा पूजा करनी चाहिए और मुक्ति चाहनेवाला पाँच करोड़ कमलों से शिव का पूजन करे ॥२०॥ ज्ञान की प्राप्ति चाहनेवाला एक करोड़ पुष्पों से लोककल्याणकारी शिव का पूजन करे। शिवदर्शन की कामना से इससे आधे पुष्पों द्वारा पूजन करे ॥ २१ ॥ कामनाओं की प्राप्ति हेतु मृत्युञ्जय का जप भी करना चाहिए। महामृत्युञ्जय का पाँच लाख जप करने से शिव जी प्रत्यक्ष हो जाते हैं ॥२२॥ कोई एक लाख से पूजन करते हैं। दो लाख के जप से उत्तम कुल में जन्म होता है, तीन लाख जप से मनोरथ-प्राप्ति तथा चार लाख जप से शिव का दर्शन होता है ॥२३॥ पाँच लाख जप हो जाने पर तो शिव अवश्य मनोरथ पूर्ण करते हैं। इस महामृत्युञ्जय का दश लाख जप करने से मनुष्य सभी प्रकार के फल को प्राप्त कर लेता है ॥२४॥ जिसे मुक्ति की कामना हो वह कुशाओं से शिव का पूजन करे। हे ऋषियो ! पूजा में सर्वत्र लक्षसंख्या ही जाननी चाहिए ॥ २५ ॥ आयु की कामनावाला लक्ष दूर्वा से और पुत्र की कामनावाला एक लाख धतूरे से शिव का पूजन करे। धतूर के पुष्पों में लाल डण्ठलवाला धतूरा श्रेष्ठ कहा गया है। एक लाख अगस्त्यपुष्पों से शिवपूजन करने पर महान् यश की प्राप्ति होती है ॥ २६-२७ ॥

भुक्तिमुक्तिफलं तस्य तुलस्या पूजयेद् यदि । अर्कपुष्पैः प्रतापश्च कुब्जकह्लारकैस्तथा ।।२८।।
जपाकुसुमपूजा तु शत्रूणां मृत्युदा स्मृता । रोगोच्चाटनकानीह करवीराणि वै क्रमात् ।।२९।।
बन्धुकैर्भूषणावाप्तिर्जात्या वाहान्न संशयः । अतसीपुष्पकैर्देवं विष्णुवल्लभतामियात् ।।३०।।
शमीपत्रैस्तथा मुक्तिः प्राप्यते पुरुषेण च । मल्लिकाकुसुमैर्दत्तैः स्त्रियं शुभतरां शिवः ।।३१।।
यूथिकाकुसुमैः शस्यैर्गृहं नैव विमुच्यते । कर्णिकारैस्तथा वस्त्रसम्पत्तिर्जायते नृणाम् ।।३२।।
निर्गुण्डी कुसुमैर्लोके मनो निर्मलतां व्रजेत् । बिल्वपत्रैस्तथा लक्षैः सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।।३३।।
शृङ्गारहारपुष्पैस्तु वर्द्धते सुखसम्पदा । ऋतुजातानि पुष्पाणि मुक्तिदानि न संशयः ।।३४।।
राजिकाकुसुमानीह शत्रूणां मृत्युदानि च । एषां लक्षं शिवे दद्याद् दद्याच्च विपुलं फलम् ।।३५।।
विद्यते कुसुमं तन्न यन्नैव शिववल्लभम् । चम्पकं केतकं हित्वा त्वन्यत् सर्वं समर्पयेत् ।।३६।।
अतः परं च धान्यानां पूजने शङ्करस्य च । प्रमाणं च फलं सर्वं प्रीत्या शृणु च सत्तम ! ।।३७।।
तन्दुलारोपणे नृणां लक्ष्मीवृद्धिः प्रजायते । अखण्डितविधौ विप्र सम्यग् भक्त्या शिवोपरि ।।३८।।
षट्केनैव तु प्रस्थानां तदर्द्धेन तथा पुनः । पलद्वयं तथा लक्षमानेन समुदाहृतम् ।।३९।।
पूजां रुद्रप्रधानेन कृत्वा वस्त्रं सुसुन्दरम् । शिवोपरि न्यसेत्तत्र तन्दुलार्पणमुत्तमम् ।।४०।।
उपरि श्रीफलं त्वेकं गन्धपुष्पादिभिस्तथा । रोपयित्वा च धूपादि कृत्वा पूजाफलं भवेत् ।।४१।।
प्राजापत्यद्वयं रौप्यमासङ्ख्या च दक्षिणा । देया तदुपदेष्ट्रे हि शक्त्या वा दक्षिणा मता ।।४२।।
आदित्यसङ्ख्यया तत्र ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः । लक्षपूजा तथा जाता साङ्गं च मन्त्रपूर्वकम् ।।४३।।

तुलसीपत्र से पूजन करने पर भोग एवं मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं। कुब्ज, कल्हार एवं आक के पुष्प से पूजा करने पर प्रताप बढ़ता है ।। २८ ।। जपाकुसुम से पूजा करने पर शत्रुओं का विनाश होता है। रोगनाश तथा शत्रुओं के उच्चाटन के लिए करबीर (कनेर) पुष्प कहा गया है ।। २९ ।। बन्धूक पुष्प से शिव की पूजा करने पर भूषण की प्राप्ति एवं जाती (चमेली) के पुष्प से पूजा करने पर वाहन की प्राप्ति, अतसी पुष्प से पूजा करने पर विष्णु का प्रियत्व प्राप्त होता है ।। ३० ।। शमीपत्र द्वारा पूजन करने से पुरुष को मुक्ति प्राप्त होती है। मल्लिका पुष्पों द्वारा पूजन से शिव उत्तम स्त्रियाँ प्रदान करते हैं ।। ३१ ।। यूथिका के फूलों से पूजन करने पर घर धन-धान्य से पूर्ण रहता है। कर्णिकार के पुष्पों द्वारा पूजन करने पर वस्त्र तथा सम्पत्ति प्राप्त होती है ।। ३२ ।। निर्गुण्डी द्वारा पूजन करने से मन निर्मल होता है, लाख बिल्वपत्रों से पूजन करने पर सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं ।। ३३ ।।

हरसिङ्गार के फूलों द्वारा पूजन करने से सुख-सम्पदा बढ़ती है। ऋतु में उत्पन्न हुए फूलों द्वारा पूजन करने से मुक्ति प्राप्त होती है, इसमें संशय नहीं ।। ३४ ।। राजिका (राई) के पुष्पों द्वारा पूजन से शत्रुओं की मृत्यु होती है। इन पुष्पों को एक लाख चढ़ाने से महान् पुण्य होता है ।। ३५ ।। चम्पा एवं केतकी के पुष्पों को छोड़ कर ऐसा कोई पुष्प नहीं है, जो शिवजी को प्यारा न हो ।। ३६ ।। अब हे मुनिसत्तम शौनक ! इसके बाद धान्य द्वारा शङ्कर के पूजन का फल एवं धान्य की संख्या श्रवण करो ।। ३७ ।। शिवजी पर भक्तिपूर्वक अखण्ड अक्षत चढ़ाने से मनुष्यों को लक्ष्मी की अभिवृद्धि होती है ।। ३८ ।। साढ़े छह प्रस्थ एवं दो पल चावल की संख्या में एक लाख हो जाते हैं ।। ३९ ।। 'रुद्र का प्रधान भक्त बहुत सुन्दर वस्त्र में तण्डुल को रख कर शिव जी के ऊपर चढ़ावे। यह चावल चढ़ाने की उत्तम विधि है ।। ४० ।। उसके ऊपर एक श्रीफल रख कर चन्दन एवं पुष्पार्पण करे। तदनन्तर धूप एवं दीप प्रदान करे, ऐसा करने से उत्तम पूजा का फल प्राप्त होता है ।। ४१ ।। प्रजापति देवता-वाले दो चाँदी के रुपये से लेकर जितनी दक्षिणा सम्भव हो उतनी दक्षिणा शिवजी पर चढ़ावे और उपदेष्टा को भी शक्ति के अनुसार दक्षिणा प्रदान करे ।। ४२ ।। तत्पश्चात् बारह ब्राह्मणों को भोजन

शतमष्टोत्तरं तत्र मन्त्रे विधिरुदाहृतः । तिलानां च पलं लक्षं महापातकनाशनम् ॥४४॥
एकादशपलैरेव लक्षमानमुदाहृतम् । पूर्ववत् पूजनं तत्र कर्तव्यं हितकाम्यया ॥४५॥
भोज्या वै ब्राह्मणास्तस्मादत्र कार्या नरेण हि । महापातकजं दुःखं तत्क्षणान् नश्यति ध्रुवम् ॥४६॥
यवपूजा तथा प्रोक्ता लक्षेण परमा शिवे । प्रस्थानामष्टकं चैव तथा प्रस्थार्द्धकं पुनः ॥४७॥
पलद्वययुतं तत्र मानमेतत् पुरातनम् । यवपूजा च मुनिभिः स्वर्गसौख्यविवर्द्धिनी ॥४८॥
प्राजापत्यं ब्राह्मणानां कर्तव्यं च फलेप्सुभिः । गोधूमान्नैस्तथा पूजा प्रशस्ता शङ्करस्य वै ॥४९॥
सन्ततिर्वर्द्धते तस्य यदि लक्षावधिः कृता । द्रोणार्द्धेन भवेल्लक्षं विधानं विधिपूर्वकम् ॥५०॥
मुद्गानां पूजने देवः शिवो यच्छति वै सुखम् । प्रस्थानां सप्तकेनैव प्रस्थार्द्धेनाऽथवा पुनः ॥५१॥
पलद्वययुतेनैव लक्षमुक्तं पुरातनैः । ब्राह्मणाश्च तथा भोज्या रुद्रसङ्ख्याप्रमाणतः॥५२॥
प्रियङ्गुपूजनादेव धर्माध्यक्षे परात्मनि । धर्मार्थकामा वर्द्धन्ते पूजा सर्वसुखावहा ॥५३॥
प्रस्थैकेन च तस्योक्तं लक्षमेकं पुरातनैः । ब्रह्मभोजं तथा प्रोक्तमर्कसङ्ख्याप्रमाणतः ॥५४॥
राजिकापूजनं शम्भोः शत्रोर्मृत्युकरं स्मृतम् । सार्षपानां तथा लक्षं पलैर्विंशतिसङ्ख्यया ॥५५॥
तेषां च पूजनादेव शत्रोर्मृत्युरुदाहृतः । आढकीनां दलैश्चैव शोभयित्वाऽर्चयेच्छिवम् ॥५६॥
वृता गौश्च प्रदातव्या बलीवर्दस्तथैव च । मरीचिसम्भवा पूजा शत्रोर्नाशकरी स्मृता ॥५७॥
आढकीनां दलैश्चैव रञ्जयित्वाऽर्चयेच्छिवम् । नानासुखकरी ह्येषा पूजा सर्वफलप्रदा ॥५८॥

करावे। यदि मन्त्रपूर्वक एक लाख पूजा की संख्या हो जावे तो एक सौ आठ ब्राह्मणों को भोजन करावे। यह लक्षपूजन की विधि है। लाख पल तिल चढ़ाने से ब्रह्महत्या इत्यादि—जैसे घोर महापाप नष्ट हो जाते हैं॥ ४३-४४॥ ग्यारह पल (६४ मासे) तिल की एक लाख संख्या होती है। अपने कल्याण की कामना से तिल द्वारा पूजन पूर्ववत् करना चाहिए॥ ४५॥ तिल द्वारा पूजन करने पर ब्राह्मणों को भक्तिपूर्वक भोजन कराना चाहिए, ऐसा करने से महापातकजन्य सभी पाप तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं॥ ४६॥

इसी प्रकार एक लाख यव भी शिव पर चढ़ाने से उत्तम फल प्राप्त होता है। साढ़े आठ प्रस्थ तथा दो पल यव का परिमाण एक लाख कहा गया है। मुनियों ने यव द्वारा शिव का पूजन करने से स्वर्ग के समान सौख्य बढ़ाने वाला कहा गया है॥ ४७-४८॥ यव से पूजा करने के अनन्तर फल की इच्छा रखनेवालों को ब्राह्मणों के लिए प्रजापति देवताक द्रव्य भी देना चाहिए। शङ्कर की पूजा गेहूँ से करने पर भी उत्तम फल प्राप्त होता है॥ ४९॥ एक लाख गेहूँ शिर पर चढ़ाने से सन्तति की वृद्धि होती है, आधे द्रोण (८ सेर) गेहूँ की एक लाख संख्या होती है॥ ५०॥ मूँग के द्वारा पूजा करने से शिव जी उत्तम सुख प्रदान करते हैं। साढ़े सात प्रस्थ—दो पल मूँग की एक लाख संख्या पूरी होती है ऐसा पुरातनों ने कहा है। मूँग के द्वारा शिवपूजन करने पर ग्यारह ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए॥ ५१-५२॥

धर्माध्यक्ष परमात्मा सदाशिव की प्रियंगु द्वारा पूजा करे तो धर्म, अर्थ काम की वृद्धि होती है तथा वह पूजा सभी सुखों को देने वाली है॥ ५३॥ एक प्रस्थ में एक लाख प्रियंगु (ककुनी) होती है। ऐसा पुरातन पुरुषों ने कहा है। प्रियंगु से पूजा करने पर बारह ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए॥ ५४॥ राई द्वारा शिव का पूजन करने से शत्रुओं की मृत्यु होती है, बीस पल (१६० तोले) में एक लाख राई होती है॥ ५५॥ सरसों से पूजन करने पर शत्रु की मृत्यु होती है। आढ़की (अरहर या शमी) के पत्तों से सुशोभित कर शिव की पूजा करे॥ ५६॥ राई से पूजा करने पर एक गौ तथा एक बैल का दान करना चाहिए। मरीच से शिव की पूजा करने पर शत्रु का नाश होता है॥ ५७॥ अरहर अथवा शमी के पत्रों से सुशोभित कर शिव की पूजा करे तो वह पूजा अनेक प्रकार का सुख देने वाली तथा सभी प्रकार के फलों को देने वाली होती है॥ ५८॥

धान्यमानमिति प्रोक्तं मया ते मुनिसत्तम ! । लक्षमानं तु पुष्पाणां शृणु प्रीत्या मुनीश्वर ! ।।५९।।
प्रस्थानां च तथा चैकं शङ्खपुष्पसमुद्भवम् । प्रोक्तं व्यासेन लक्षं हि सूक्ष्ममानप्रदर्शिना ।।६०।।
प्रस्थैरेकादशैर्जातिलक्षमानं प्रकीर्तितम् । यूथिकायास्तथा मानं राजिकायास्तदर्द्धकम् ।।६१।।
प्रस्थैर्विंशतिकैश्चैव मल्लिकामानमुत्तमम् । तिलपुष्पैस्तथा मानं प्रस्थान्न्यूनं तथैव च ।।६२।।
ततश्च द्विगुणं मानं करवीरभवे स्मृतम् । निर्गुण्डीकुसुमे मानं तथैव कथितं बुधैः ।।६३।।
कर्णिकारे तथा मानं शिरीषकुसुमे पुनः । बन्धुजीवे तथा मानं प्रस्थानं दशकेन च ।।६४।।
इत्याद्यैर्विविधैर्मानं दृष्ट्वा कुर्याच्छिवार्चनम् । सर्वकामसमृध्यर्थं मुक्त्यर्थं कामनोज्झितः ।।६५।।
अतः परं प्रवक्ष्यामि धारापूजाफलं महत् । यस्य श्रवणमात्रेण कल्याणं जायते नृणाम् ।।६६।।
विधानपूर्वकं पूजां कृत्वा भक्त्या शिवस्य वै । पश्चाच्च जलधारा हि कर्तव्या भक्तितत्परैः ।।६७।।
ज्वरप्रलापशान्त्यर्थं जलधारा शुभावहा । शतरुद्रियमन्त्रेण रुद्रस्यैकादशेन तु ।।६८।।
रुद्रजाप्येन वा तत्र सूक्तेन पौरुषेण वा । षडङ्गेनाथ वा तत्र महामृत्युञ्जयेन च ।।६९।।
गायत्र्या वा नमोऽन्तैश्च नामभिः प्रणवादिभिः । मन्त्रैर्वाथागमोक्तैश्च जलधारादिकं तथा ।।७०।।
सुखसन्तानवृद्धयर्थं धारापूजनमुत्तमम् । नानाद्रव्यैः शुभैर्दिव्यैः प्रीत्या सद्भस्मधारिणा ।।७१।।
घृतधारा शिवे कार्या यावन्मन्त्रसहस्रकम् । तदा वंशस्य विस्तारो जायते नाऽत्र संशयः ।।७२।।
एवं मदुक्तमन्त्रेण कार्यं वै शिवपूजनम् । ब्रह्मभोज्यं तथा प्रोक्तं प्राजापत्यं मुनीश्वरैः ।।७३।।

हे मुनिसत्तम ! मैंने धान्यों का परिमाण जो शिवजी के पूजा के लिए किया जाता है, उसे कहा, अब एक लाख पुष्पों का परिमाण सुनो ।। ५९ ।। सूक्ष्म मान के जाननेवाले व्यास जी ने शङ्खपुष्पी के एक प्रस्थ पुष्प की लाख संख्या बतायी है ।। ६० ।। इग्यारह प्रस्थ चमेली के पुष्पों की संख्या एक लाख होती है । यही मान यूथिका के पुष्प के लिए भी कहा गया है । उसके आधे प्रस्थ में राजिका (राई) की एक लाख संख्या होती है ।। ६१ ।। बीस प्रस्थ मल्लिका का तौल एक लाख होता है । एक सेर से कुछ कम तिल-पुष्प एक लाख होते हैं ।। ६२ ।। कनेर के फूल दो सेर तौलने पर एक लाख हो जाते हैं, यही मान निर्गुण्डी के लिए भी पण्डितों ने निर्धारित किया है ।।६३।। कर्णिकार, शिरीष एवं बन्धुजीवक (दुपहरिया) के पुष्प दश सेर तौलने पर एक लाख हो जाते हैं ।। ६४ ।। इस प्रकार के अनेक प्रमाणों को जान कर शिवजी की लक्षपूजा करनी चाहिए । शिवजी की पूजा सम्पूर्ण कामनाओं की समृद्धि और मुक्ति के लिए तथा निष्काम भाव से करनी चाहिए ।। ६५ ।।

अब मैं धारापूजा (जलधरी) का महान् फल कहता हूँ, जिसके श्रवणमात्र से मनुष्यों का कल्याण होता है ।। ६६ ।। भक्तिपूर्वक सविधि शिवजी की पूजा करने के पश्चात् शिवभक्तों को शिव के ऊपर जलधारा करनी चाहिए ।। ६७ ।। ज्वर-प्रलाप की शान्ति के लिए शिव के ऊपर जलधारा देने से महान् कल्याण होता है । यह जलधारा यजुर्वेद में कहे गये शतरुद्रिय मन्त्र की एकादशनी मन्त्र द्वारा देनी चाहिए ।। ६८ ।। रुद्रजाप्य, पुरुषसूक्त, षडङ्ग एवं महामृत्युञ्जय, गायत्री मन्त्र अथवा नाम के आगे चतुर्थी विभक्ति लगाकर नमः शब्द का प्रयोग करते हुए (ॐ शिवाय नमः) प्रणव से, आगम (मन्त्र शास्त्र) में कहे गये मन्त्रों से देनी चाहिए ।। ६९-७० ।। सुख तथा सन्तानवृद्धि हेतु जलधारा का प्रयोग बड़ा कल्याणकारी है । यह जलधारा भस्म धारण कर प्रीति से नाना प्रकार के द्रव्यों एवं दिव्य मन्त्रों से पूजा के उपरान्त देनी चाहिए ।। ७१ ।। सहस्र बार मन्त्रों को पढ़ते हुए शिव के ऊपर घृत की धारा देने से वंश की वृद्धि होती है, इसमें सन्देह नहीं ।। ७२ ।। इस प्रकार मेरे द्वारा जो मन्त्र कहे गये हैं उन्हीं मन्त्रों से शिव का पूजन करना चाहिए । मुनीश्वरों ने इस विषय में प्रजापति देवताक बारह ब्राह्मणों को

केवलं दुग्धधारा च तदा कार्या विशेषतः । शर्करामिश्रिता तत्र यदा बुद्धिजडो भवेत् ॥७४॥
तस्य सञ्जायते जीवसदृशी बुद्धिरुत्तमा । यावन्मन्त्रायुतं न स्यात्तावद्धाराप्रपूजनम् ॥७५॥
यदा चोच्चाटनं देहे जायते कारणं विना । यत्र कुत्रापि वा प्रेम दुःखं च परिवर्द्धितम् ॥७६॥
स्वगृहे कलहो नित्यं यदा चैव प्रजायते । तद्धारायां कृतायां वै सर्वं दुःखं विलीयते ॥७७॥
शत्रूणां तापनार्थं वै तैलधारा शिवोपरि । कर्तव्या सुप्रयत्नेन कार्यसिद्धिर्ध्रुवं भवेत् ॥७८॥
वासितेनैव तैलेन भोगवृद्धिः प्रजायते । सार्षपेनैव तैलेन शत्रुनाशो भवेद् ध्रुवम् ॥७९॥
मधुना यक्षराजो वै गच्छेच्च शिवपूजनात् । धारा चेक्षुरसस्यापि सर्वानन्दकरी शिवे ॥८०॥
धारा गङ्गाजलस्यैव भुक्तिमुक्तिफलप्रदा । एताः सर्वाश्च याः प्रोक्ता मृत्युञ्जयसमुद्भवाः ॥८१॥
तत्राऽयुतप्रमाणं हि कर्तव्यं तद् विधानतः । कर्तव्यं ब्राह्मणानां च भोज्यं वै रुद्रसङ्ख्यया ॥८२॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं मुनीश्वर ! । एतद् वै सफलं लोके सर्वकामहितावहम् ॥८३॥
स्कन्दोमासहितं शम्भुं सम्पूज्य विधिना सह । यत्फलं लभते भक्त्या तद् वदामि यथाश्रुतम् ॥८४॥
अत्र भुक्त्वाऽखिलं सौख्यं पुत्रपौत्रादिभिः शुभम् । ततो याति महेशस्य लोकं सर्वसुखावहम् ॥८५॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सर्वकामगैः । रुद्रकन्यासमाकीर्णैर्गेयवाद्यसमन्वितैः ॥८६॥
क्रीडते शिवभूतश्च यावदाभूतसंप्लवम् । ततो मोक्षमवाप्नोति विज्ञानं प्राप्य चाव्ययम् ॥८७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने
शिवपूजाविधानवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

भोजन कराने को भी बताया है ॥७३॥ यदि किसी की बुद्धि जड़ हो तो शिवजी के ऊपर शर्करामिश्रित दूध की धारा देनी चाहिए ॥७४॥ तब उसकी बुद्धि बृहस्पति के समान श्रेष्ठ हो जाती है। जब तक दसहजार मन्त्र न हो जाय तब तक धारा से पूजन करते रहना चाहिए ॥ ७५ ॥ और जब बिना कारण ही देह में उच्चाटन हो जाय, जहाँ कहीं भी अकस्मात् प्रेम अथवा दुःख बढ़ जावे एवं अपने घर में नित्य ही कलह बढ़ जावे तो जलधारा के प्रयोग से सब दुःख अपने आप दूर हो जाते हैं ॥ ७६-७७ ॥

शत्रुओं को ताप देने के लिए शिव के ऊपर प्रयत्नपूर्वक तेल की धारा का प्रयोग करे ऐसा करने से निश्चित ही कार्य की सिद्धि होती है ॥ ७८ ॥ सुगन्ध युक्त तेल-धारा के प्रयोग से भोग की वृद्धि होती है। सरसों के तेल की जलधारा देने से शत्रुओं का नाश हो जाता है ॥ ७९ ॥ मधु के द्वारा शिव-पूजन से पुरुष कुबेर हो जाता है। शिव के ऊपर इक्षुरस की धारा सभी प्रकार के आनन्द को देने वाली होती है ॥ ८० ॥ गङ्गाजल की धारा भोग तथा मोक्ष प्रदान करती है। यह सब जितनी भी जलधारा कही गयी हैं, वे सभी मृत्युञ्जय से उत्पन्न कही गयी हैं ॥ ८१ ॥ विधान से उसे दस हजार संख्या में करना चाहिए। जलधारा के पश्चात् इग्यारह ब्राह्मणों को भोजन अवश्य करावे ॥ ८२ ॥ हे मुनीश्वर ! जो आपने पूछा वह सब मैंने तुम्हें सुना दिया, यही लोक में सफल एवं सबका कल्याण करने वाला है ॥ ८३ ॥ स्कन्द-पार्वती सहित शिव के भक्तिपूर्वक पूजा का जो फल होता है उसे कहता हूँ, जैसा मैंने सुना है ॥ ८४ ॥ यहाँ पुत्र-पौत्रादि सभी सुखों को प्राप्त कर अन्त में वे शिवभक्त शिव के सुखदायक लोक को प्राप्त करते हैं ॥ ८५ ॥ शिव की पूजा करनेवाले कोटिसूर्य के समान प्रकाशित सर्वकामना पूर्ण करनेवाले विमानों पर बैठ कर गाजे-बाजे एवं रुद्र-कन्याओं से सेवित हो शिव के रूप में प्रलय पर्यन्त क्रीड़ा करते हैं। तदनन्तर अविनाशी ज्ञान प्राप्त कर निर्विकार हो मुक्त हो जाते हैं ॥ ८६-८७ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के प्रथम-सृष्टिखण्ड में शिवपूजनविधानवर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥

*

पञ्चदशोऽध्यायः

(विष्णु-ब्रह्मा का वाराह रूप धारण एवं कैलास, वैकुण्ठ लोक की उत्पत्ति, रुद्रादि गण तथा शिव-सृष्टि वर्णन)

नारद उवाच

विधे विधे ! महाभाग धन्यस्त्वं सुरसत्तम ! । श्राविताद्याऽद्भुता शैवकथा परमपावनी ॥ १ ॥
तत्राऽद्भुता महादिव्या लिङ्गोत्पत्तिः श्रुता शुभा । श्रुत्वा यस्याः प्रभावं च दुःखनाशो भवेदिह ॥ २ ॥
अनन्तरं च यज्जातं माहात्म्यं चरितं तथा । सृष्टेश्चैव प्रकारं च कथय त्वं विशेषतः ! ॥ ३ ॥

ब्रह्मोवाच

सम्यक् पृष्टं च भवता यज्जातं तदनन्तरम् । कथयिष्यामि संक्षेपाद्यथा पूर्वं श्रुतं मया ॥ ४ ॥
अन्तर्हिते तदा देवे शिवरूपे सनातने । अहं विष्णुश्च विप्रेन्द्र ! अधिकं सुखमाप्तवान् ॥ ५ ॥
मया च विष्णुना रूपं हंसवाराहयोस्तदा । संवृतं तु ततस्ताभ्यां लोकसर्गावनेच्छया ॥ ६ ॥

नारद उवाच

विधे ब्रह्मन् महाप्राज्ञ ! संशयो हृदि मे महान् । कृपां कृत्वाऽतुलां शीघ्रं तं नाशयितुमर्हसि ॥ ७ ॥
हंसवाराहयो रूपं युवाभ्यां च धृतं कथम् । अन्यद्रूपं विहायैव किमत्र वद कारणम् ॥ ८ ॥

सूत उवाच

इत्येतद् वचनं श्रुत्वा नारदस्य महात्मनः । स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं ब्रह्मा सादरमब्रवीत् ॥ ९ ॥

ब्रह्मोवाच

हंसस्य चोर्द्ध्वगमने गतिर्भवति निश्चला । तत्त्वाऽतत्त्वविवेकोऽस्ति जलदुग्धविभागवत् ॥१०॥
अज्ञान-ज्ञानयोस्तत्त्वं विवेचयति हंसकः । हंसरूपं धृतं तेन ब्रह्मणा सृष्टिकारिणा ॥११॥

नारद जी बोले—हे देवताओं में श्रेष्ठ महाभाग ब्रह्माजी ! हे देव ! आप धन्य हो, जो परम-पावनी यह शिवकथा हमको सुनायी ॥ १ ॥ उसमें अद्भुत प्रकार से कल्याणकारी महादिव्य लिङ्ग की उत्पत्ति भी आपके मुख से सुनी, जिस लिङ्ग-पूजा के प्रभाव से निश्चय ही दुःख का नाश हो जाता है ॥ २ ॥ लिङ्गोत्पत्ति के पश्चात् फिर जिस प्रकार सृष्टि हुई, उस सृष्टि के माहात्म्य तथा चरित्र का भी विशेष रूप से आप वर्णन कीजिए ॥ ३ ॥

ब्रह्माजी बोले—आपने यह अच्छी बात पूछी । इसके बाद जो हुआ और जैसा मैंने सुना है, उसे संक्षेप में कहता हूँ ॥ ४ ॥ जब सनातन देव शिव अपने रूप से अन्तर्धान हो गये तब हे नारद ! हमको तथा विष्णु को महान् सुख हुआ ॥ ५ ॥ मैंने तथा विष्णु ने सृष्टि तथा पालन करने की इच्छा से अपना-अपना हंस तथा वाराह रूप छोड़ दिया ॥ ६ ॥

नारद जी बोले—हे विधे ! हे ब्रह्मन् ! हे महाप्राज्ञ ! मेरे हृदय में एक महान् सन्देह है, उसे आप मेरे ऊपर महती कृपा कर शीघ्र दूर कीजिए ॥ ७ ॥ आपने हंस तथा विष्णु ने वाराह का रूप क्यों धारण किया ? । आप लोगों ने अन्य रूपों को छोड़कर इसी रूप को क्यों धारण किया, इसका क्या कारण है ? ॥ ८ ॥

सूत जी बोले—महात्मा नारद के इस वचन को सुनकर शिव के चरण-कमलों का ध्यान करते हुए ब्रह्मदेव आदरपूर्वक बोले ॥ ९ ॥

ब्रह्मा बोले—हंस ऊपर की ओर अबाध गति से उड़ता है, उसे जल, दुग्ध के विभाग के समान तत्त्व एवं अतत्त्व का बोध रहता है ॥ १० ॥ एक हंस ही ऐसा प्राणी है, जो ज्ञान एवं अज्ञान के निर्णय में सर्वथा

विवेको नैव लब्धश्च यतो हंसो न्यलीयत । शिवस्वरूपतत्त्वस्य ज्योतिरूपस्य नारद ! ॥१२॥
सृष्टिप्रवृत्तिकामस्य कथं ज्ञानं प्रजायते । यतो लब्धो विवेकोऽपि न मया हंसरूपिणा ॥१३॥
गमनेऽधो वराहस्य गतिर्भवति निश्चला । धृतं वाराहरूपं हि विष्णुना वनचारिणा ॥१४॥
अथवा भवकल्पार्थं तद्रूपं हि प्रकल्पितम् । विष्णुना च वराहस्य भुवनावनकारिणा ॥१५॥
यद्दिनं हि समारभ्य तद्रूपं धृतवान् हरिः । तद्दिनं प्रति कल्पोऽसौ कल्पो वाराहसंज्ञकः ॥१६॥
तदिच्छा वा यदा जाता ताभ्यां रूपं हि धारणे । तद्दिनं प्रति कल्पोऽसौ कल्पो वाराहसंज्ञकः ॥१७॥
इति प्रश्नोत्तरं दत्तं प्रस्तुतं शृणु नारद ! । स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं वक्ष्ये सृष्टिविधिं मुने ! ॥१८॥
अन्तर्हिते महादेवे त्वहं लोकपितामहः । तदीयं वचनं कर्तुमध्यायन् ध्यानतत्परः ॥१९॥
नमस्कृत्य तदा शम्भुं ज्ञानं प्राप्य हरेस्तदा । आनन्दं परमं गत्वा सृष्टिं कर्तुं मनो दधे ॥२०॥
विष्णुश्चापि तदा तत्र प्रणिपत्य सदाशिवम् । उपदिश्य च मां तात ! ह्यन्तर्धानमुपागतः ॥२१॥
ब्रह्माण्डाच्च बहिर्गत्वा प्राप्य शम्भोरनुग्रहम् । वैकुण्ठनगरं गत्वा तत्रोवास हरिः सदा ॥२२॥
अहं स्मृत्वा शिवं तत्र विष्णुं वै सृष्टिकाम्यया । पूर्वं सृष्टं जलं यच्च तत्राञ्जलिमुदाक्षिपम् ॥२३॥
अतोऽण्डमभवत्तत्र चतुर्विंशतिसंज्ञकम् । विराड्रूपमभूद् विप्र ! जलरूपमपश्यतः ॥२४॥
ततः संशयमापन्नस्तपस्तेपे सुदारुणम् । द्वादशाब्दमहं तत्र विष्णुध्यानपरायणः ॥२५॥
तस्मिंश्च समये तात ! प्रादुर्भूतो हरिः स्वयम् । मामुवाच महाप्रीत्या मदङ्गं संस्पृशन् मुदा ॥२६॥

समर्थ है, इस कारण सृष्टिकारी ब्रह्मा ने हंस का रूप धारण किया ॥ ११ ॥ हे नारद ! ज्योतिः-स्वरूप उस शिवतत्त्व का हंस को ज्ञान नहीं हुआ, इसलिए उसे हंस रूप छोड़ देना पड़ा ॥ १२ ॥ इतना ही नहीं, सृष्टि में प्रवृत्ति के लिए कैसा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ? हंसरूप धारण करने पर भी जब मुझे वह ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ तब मैंने हंस रूप का त्याग कर दिया ॥ १३ ॥ नीचे जाने में वाराह की गति अबाध होती है, इस कारण विष्णु ने वनचारी वाराह का रूप धारण किया ॥ १४ ॥ अथवा वराहकल्प को उत्पन्न करने के लिए लोकपालन कर्त्ता विष्णु ने वाराह रूप धारण किया ॥ १५ ॥ क्योंकि जिस दिन विष्णु ने वाराह रूप धारण किया उसी दिन से वाराह संज्ञक कल्प का उदय हुआ ॥ १६ ॥ अथवा महेश्वर की इस प्रकार की इच्छा हुई कि ब्रह्मा हंस का तथा विष्णु बाराह का रूप धारण करें। जिस दिन महेश्वर की ऐसी इच्छा उत्पन्न हुई, उसी दिन से यह वाराहकल्प कहा गया ॥ १७ ॥

हे नारद ! मैंने तुम्हारे प्रश्नों का इस प्रकार समाधान किया। अब प्रस्तुत प्रसङ्ग सुनो। हे मुने ! शिव के चरण-कमलों का ध्यान कर अब मैं सृष्टि-प्रक्रिया का वर्णन करता हूँ ॥ १८ ॥ महादेव जी के अन्तर्धान हो जाने पर मैं लोकपितामह ब्रह्मा, उनका आदेश पालन करने के लिए ध्यान में तत्पर होकर ध्यान करने लगा ॥ १९ ॥ मैंने शिव को प्रणाम किया। विष्णु से ज्ञान प्राप्त कर प्रसन्नचित्त से सृष्टि करने में अपने मन को समाहित किया ॥ २० ॥ इधर विष्णु भी सदाशिव को प्रणाम कर और मुझे ज्ञान का उपदेश कर अन्तर्धान हो गये ॥ २१ ॥ वे इस ब्रह्माण्ड से बाहर जाकर शम्भु का अनुग्रह प्राप्त कर वैकुण्ठ नगर में जाकर निवास करने लगे ॥ २२ ॥ मैं भी सृष्टि करने की इच्छा से शिव तथा विष्णु का स्मरण करता हुआ पूर्व निर्मित जल में एक अञ्जुलि जल उठाकर फेंक दिया ॥ २३ ॥ जिससे चौबीस तत्त्वों का एक अण्ड उत्पन्न हुआ। जो उस जल में मेरे बिना देखे परोक्ष रूप से विराट् रूप में परिणत हो गया ॥ २४ ॥ मैं सन्देहयुक्त होकर विष्णु का ध्यान करते हुए बारह वर्ष पर्यन्त कठिन तप करता रहा ॥ २५ ॥ उसी समय सहसा भगवान् विष्णु स्वयं प्रकट हो गये। उन्होंने प्रसन्नता से मेरे शरीर का आलिङ्गन करते हुए मुझसे कहा ॥ २६ ॥

विष्णुरुवाच

वरं ब्रूहि प्रसन्नोऽस्मि नादेयो विद्यते तव । ब्रह्मञ्छम्भुप्रसादेन सर्वं दातुं समर्थकः ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

युक्तमेतन्महाभाग दत्तोऽहं शम्भुना च ते । तदुक्तं याचते मेऽद्य देहि विष्णो! नमोऽस्तु ते ॥२८॥
विराड्रूपमिदं ह्यण्डं चतुर्विंशतिसंज्ञकम् । न चैतन्यं भवत्यादौ जडीभूतं प्रदृश्यते ॥२९॥
प्रादुर्भूतो भवानद्य शिवानुग्रहतो हरे । प्राप्तं शङ्करसम्भूत्या ह्यण्डं चैतन्यमावह ॥३०॥
इत्युक्ते च महाविष्णुः शम्भोराज्ञापरायणः । अनन्तरूपमास्थाय प्रविवेश तदण्डकम् ॥३१॥
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिं सर्वतः स्पृत्वा तदण्डं व्याप्तवानिति ॥३२॥
प्रविष्टे विष्णुना तस्मिन्नण्डे सम्यक् स्तुतेन मे । सचेतनमभूदण्डं चतुर्विंशतिसंज्ञकम् ॥३३॥
पातालादि समारभ्य सप्तलोकाधिपः स्वयम् । राजते स्म हरिस्तत्र वैराजः पुरुषः प्रभुः ॥३४॥
कैलासनगरं रम्यं सर्वोपरि विराजितम् । निवासार्थं निजस्यैव पञ्चवक्त्रश्चकार ह ॥३५॥
ब्रह्माण्डस्य तथा नाशे वैकुण्ठस्य च तस्य च । कदाचिदेव देवर्षे! नाशो नास्ति तयोरिह ॥३६॥
सत्यं पदमुपाश्रित्य स्थितोऽहं मुनिसत्तम! । सृष्टिकामोऽभवं तात! महादेवाज्ञया ह्यहम् ॥३७॥
सिसृक्षोरथ मे प्रादुरभवत् पापसर्गकः । अविद्यापञ्चकस्तात बुद्धिपूर्वस्तमोपमः ॥३८॥
ततः प्रसन्नचित्तोऽहमसृजं स्थावराभिधम् । मुख्यसर्गं च निःसङ्गमध्यायं शम्भुशासनात् ॥३९॥
तं दृष्ट्वा मे सिसृक्षोश्च ज्ञात्वासाधकमात्मनः । सर्गोऽवर्तत दुःखाढ्यस्तिर्यक् स्रोता न साधकः ॥४०॥
तं चासाधकमाज्ञाय पुनश्चिन्तयतश्च मे । अभवत् सात्त्विकः सर्ग ऊर्ध्वस्रोता इति द्रुतम् ॥४१॥

विष्णु बोले—हे ब्रह्मन्! तुम मुझसे वर माँगो, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। मुझे तुम्हारे लिए कोई भी वस्तु अदेय नहीं है। मैं शिव जी की प्रसन्नता से तुम्हें सब कुछ देने में समर्थ हूँ ॥ २७ ॥

ब्रह्मा बोले—हे महाभाग! आप यह तो उचित ही कह रहे हैं, क्योंकि सदाशिव ने मुझे आप को सौंप दिया है, मैं उन्हीं के कथनानुसार वर माँगता हूँ, आप दीजिए। आप को प्रणाम है ॥२८॥ हे विष्णो! चौबीस तत्त्वों का बना हुआ यह विराट्रूप अण्ड जड़रूप में पड़ा हुआ है, यह चैतन्य नहीं हो रहा है ॥ २९ ॥ आप शिव के अनुग्रह से प्रकट हुए हैं। अतः शङ्कर की कृपा से इस अण्ड को चेतनायुक्त कीजिए ॥३०॥ ब्रह्मा के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर शिवाज्ञापालक महाविष्णु उस अण्ड में अनन्त रूप से प्रविष्ट हो गये ॥ ३१ ॥ वे सहस्रशीर्ष, सहस्र नेत्र और सहस्रपाद हो कर चारों ओर से भूमि को आक्रान्त कर उस अण्ड में व्याप्त हो गये ॥ ३२ ॥ इस प्रकार मेरी प्रार्थना के अनन्तर जब विष्णु उस अण्ड में प्रवेश कर गये तो वह चौबीस तत्त्वों का अण्ड सचेतन हो उठा ॥ ३३ ॥ पाताल से प्रारम्भ कर सात लोक पर्यन्त के अधिपति स्वयं भगवान् विष्णु उस अण्ड में विराट् रूप से प्रकट हो गये ॥ ३४ ॥ उस अण्ड में कैलास नामक नगर सब के ऊपर सुशोभित हुआ, जिसे स्वयं पञ्चवक्त्र शंकर ने अपने निवास के लिए ग्रहण किया ॥ ३५ ॥

हे देवर्षे! प्रलयकाल में ब्रह्माण्ड के नाश होने पर भी उस कैलास का तथा वैकुण्ठ का नाश नहीं होता ॥ ३६ ॥ हे मुनिसत्तम! मैं महादेव की आज्ञा से सत्यपद में स्थित हो गया। और सृष्टि की इच्छा करने लगा ॥ ३७ ॥ इस प्रकार जब मैं सृष्टि करने लगा तो सर्वप्रथम अविद्या-पञ्चक से युक्त बुद्धि पूर्वक तम प्रधान पापसर्ग की सृष्टि होने लगी ॥ ३८ ॥ मैं प्रसन्न होकर स्थावर पदार्थों की रचना करने लगा। मुख्य सर्ग के निमित्त शिवजी की आज्ञा से ध्यान करने लगा ॥ ३९ ॥ किन्तु उस अपनी सृष्टि को असाधक जान मैंनें तिर्यक्-स्रोत (तिरछे उड़ने) वाले पक्षि आदिकों की सृष्टि की ॥ ४० ॥ किन्तु उसे भी असाधक जानकर मैं पुनः चिन्ता करने लगा। तव ऊर्ध्वस्रोता सात्त्विक सृष्टि

देवसर्गः प्रतिख्यातः सत्योऽतीव सुखावहः । तमप्यसाधकं मत्वाऽचिन्तयं प्रभुमात्मनः ॥४२॥
प्रादुरासीत्ततः सर्गो राजसः शङ्कराज्ञया । अवाक् स्रोता इति ख्यातो मानुषः परसाधकः॥४३॥
महादेवाज्ञया सर्गस्ततो भूतादिकोऽभवत् । इति पञ्चविधा सृष्टिः प्रवृत्ता वै कृता मया ॥४४॥
त्रयः सर्गाः प्रकृत्याश्च ब्रह्मणः परिकीर्तिताः । तत्राद्यो महतः सर्गो द्वितीयः सूक्ष्मभौतिकः ॥४५॥
वैकारिकस्तृतीयश्च इत्येते प्रकृतास्त्रयः । एवं चाऽष्टविधाः सर्गा प्रकृतेर्वैकृतैः सह ॥४६॥
कौमारो नवमः प्रोक्तः प्राकृतो वैकृतश्च सः । एषामवान्तरो भेदो मया वक्तुं न शक्यते ॥४७॥
अल्पत्वादुपयोगस्य वच्मि सर्गं द्विजात्मकम् । कौमारः सनकादीनां यत्र सर्गो महानभूत ॥४८॥
सनकाद्याः सुता मे हि मानसा ब्रह्मसम्मिताः । महावैराग्यसम्पन्ना अभवन् पञ्च सुव्रताः ॥४९॥
मयाज्ञप्ता अपि च ते संसारविमुखा बुधाः । शिवध्यानैकमनसो न सृष्टौ चक्रिरे मतिम् ॥५०॥
प्रत्युत्तरं च तैर्दत्तं श्रुत्वाऽहं मुनिसत्तम ! । अकार्षं क्रोधमत्युग्रं मोहमाप्तश्च नारद ! ॥५१॥
क्रुद्धस्य मोहितस्याथ विह्वलस्य मुने ! मम । क्रोधेन खलु नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः ॥५२॥
तस्मिन्नवसरे तत्र स्मृतेन मनसा मया । प्रबोधितोऽहं त्वरितमागतेन हि विष्णुना ॥५३॥
तपः कुरु शिवस्येति हरिणा शिक्षितोऽप्यहम् । तपोऽकारि महद्घोरं परमं मुनिसत्तम ! ॥५४॥
तपस्यतश्च सृष्ट्यर्थं भ्रुवोर्घ्राणस्य मध्यतः । अविमुक्ताभिधाद्देशात् स्वकीयान्मे विशेषतः ॥५५॥
त्रिमूर्तीनां महेशस्य प्रादुरासीद् घृणानिधिः । अर्द्धनारीश्वरो भूत्वा पूर्णांशः सकलेश्वरः ॥५६॥
तमजं शङ्करं साक्षात्तेजोराशिमुमापतिम् । सर्वज्ञं सर्वकर्तारं नीललोहितसंज्ञकम् ॥५७॥
दृष्ट्वा नत्वा महाभक्त्या स्तुत्वाऽहं तु प्रहर्षितः । अवोचं देवदेवेशं सृज त्वं विविधाः प्रजाः ॥५८॥

प्रकट हो गयी ॥ ४१ ॥ उसे देवसर्ग कहते हैं, जो अत्यन्त सत्य किन्तु सुख चाहनेवाला है। उसे भी असाधक जानकर अपने प्रभु का ध्यान करने लगा ॥ ४२ ॥ तब शङ्कर की आज्ञा से राजससर्ग प्रगट हो गया। उसे अर्वाक्स्रोत कहते हैं, वह सर्ग परसाधक हुआ ॥ ४३ ॥ महादेव की आज्ञा से भूतादिसर्ग उत्पन्न हुए। इस प्रकार से मेरी की हुई सृष्टि पाँच प्रकार की हुई ॥ ४४ ॥ जिसमें तीन सर्ग ब्रह्मदेव की प्रकृति से हुए, जिसमें पहला महत्तत्त्व, दूसरा सूक्ष्म भौतिकसर्ग और तीसरा वैकारिक सर्ग ये तीन प्राकृत सर्ग हैं। इस प्रकार तीन सर्ग प्राकृतिक और पाँच वैकृत कुल आठ सर्गों की सृष्टि हुई ॥ ४५-४६ ॥ कौमार नामक नौवाँ सर्ग है, वह प्राकृत और वैकृत दोनों है। इनके अवान्तर भेदों को कहना मेरे लिए बड़ा कठिन है ॥ ४७ ॥ उपयोग की अल्पता के कारण अब मैं द्विजात्मक सृष्टि कहता हूँ, जिसमें महान् सनकादिकों का सर्ग हुआ है ॥ ४८ ॥ ये सनकादि मेरे मानसपुत्र हैं, जो ब्रह्मज्ञानी हैं। ये पाँचों सुव्रत एवं महावैराग्य सम्पन्न हैं ॥ ४९ ॥ ये पाँचों कुमार मेरी आज्ञा से संसार-विमुख रहते हैं, और सर्वदा शिव के ध्यान में मग्न रहते हैं किन्तु इन्हें सृष्टि करने की इच्छा कभी नहीं होती ॥ ५० ॥

हे मुनिसत्तम ! जब मैंने उन कुमारों से सृष्टि के लिए कहा और उन लोगों ने मेरी आज्ञा का उल्लङ्घन किया तो मुझे मोह के कारण बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ ५१ ॥ विह्वल, मोहित तथा क्रुद्ध हुए मुझ ब्रह्मा के द्वारा क्रोध से नेत्रों द्वारा जल की बूँदें गिरने लगीं ॥ ५२ ॥ उसी समय मन से स्मरण करते ही विष्णु ने प्रगट होकर मुझे समझाया ॥ ५३ ॥ हे ब्रह्मन् ! अभी तुम शिव की घोर तपस्या करो। भगवान् विष्णु के द्वारा इस प्रकार शिक्षा पाकर मैं घोर तप में प्रवृत्त हो गया ॥ ५४ ॥ इस प्रकार सृष्टि के लिए तप करते हुए भ्रू एवं घ्राण के मध्य से, जिसे अविमुक्त कहते हैं, उस मेरे स्थान से त्रिमूर्त्तियों में महेश के अंश से परम कृपालु सर्वेश्वर पूर्णांश अर्धनारीश्वर प्रगट हो गये ॥ ५५-५६ ॥ उन अजन्मा, तेजोराशि, सर्वज्ञ, सर्वकर्त्ता उमापति शंकर को जिन्हें नीललोहित कहते हैं, ॥ ५७ ॥ देख कर मैंने भक्ति से

श्रुत्वा मम वचः सोऽथ देवदेवो महेश्वरः । ससर्ज स्वात्मनस्तुल्यान्रुद्रो रुद्रगणान् बहून् ॥५९॥
अवोचं पुनरेवेशं महारुद्रं महेश्वरम् । जन्ममृत्युभयाविष्टाः सृज देव ! प्रजा इति ॥६०॥
एवं श्रुत्वा महादेवो मद्वचः करुणानिधिः । प्रहस्योवाच मां सद्यः प्रहस्य मुनिसत्तम ! ॥६१॥

महादेव उवाच

जन्ममृत्युभयाविष्टा नाऽहं स्रक्ष्ये प्रजा विधे ! । अशोभनाः कर्मवशा विमग्ना दुःखवारिधौ ॥६२॥
अहं दुःखोदधौ मग्ना उद्धरिष्यामि च प्रजाः । सम्यग् ज्ञानप्रदानेन गुरुमूर्तिपरिग्रहः ॥६३॥
त्वमेव सृज दुःखाढ्याः प्रजाः सर्वाः प्रजापते ! । मदाज्ञया न बद्धस्त्वं मायया सम्भविष्यसि ॥६४॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा मां च भगवान् सुश्रीमान् नीललोहितः । सगणः पश्यतो मे हि द्रुतमन्तर्दधे हरः ॥६५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां प्रथमखण्डे सृष्टचुपक्रमे रुद्रावतारविर्भाववर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

(शिव-सती विवाह-वर्णन)

ब्रह्मोवाच

शब्दादीनि च भूतानि पञ्चीकृत्वाऽहमात्मना । तेभ्यः स्थूलं नभो वायुं वह्निं चैव जलं महीम् ॥ १ ॥
पर्वतांश्च समुद्रांश्च वृक्षादीनपि नारद ! । कलादियुगपर्यन्तान् कालानन्यानवासृजम् ॥ २ ॥
सृष्टयन्तानपरांश्चापि नाऽहं तुष्टोऽभवं मुने ! । ततो ध्यात्वा शिवं साम्बं साधकानसृजं मुने ! ॥ ३ ॥
मरीचिं च स्वनेत्राभ्यां हृदयाद् भृगुमेव च । शिरसोऽङ्गिरसं व्यानात् पुलहं मुनिसत्तमम् ॥ ४ ॥

प्रणाम किया और प्रसन्नता से उनकी स्तुति की। तदनन्तर उन देवदेव से मैंने कहा—हे महेश्वर ! आप अनेक प्रकार की सृष्टि कीजिए ॥५८॥ तब देवदेव महेश्वर मेरी बात सुनकर अपने समान बहुत से रुद्रों की सृष्टि करने लगे ॥ ५९ ॥ तब उन महारुद्र महेश्वर से मैंने कहा—हे देव ! आप जन्म, मृत्यु और भययुक्त प्रजाओं की सृष्टि कीजिए ॥ ६० ॥ करुणानिधि महादेवजी इस प्रकार के मेरे वचन सुन कर हँसते हुए मुझसे कहने लगे ॥ ६१ ॥

महादेवजी बोले—हे ब्रह्मन् ! मैं जन्म, मृत्यु तथा भययुक्त प्रजा की सृष्टि नहीं करूँगा, जो अशोभन, कर्म-परतन्त्र एवं दुःख-सागर में मग्न हो ॥ ६२ ॥ मैं तो दुःख-सागर में डूबी हुई प्रजा का गुरु मूर्ति धारण कर उन्हें ज्ञान देकर उद्धार करता हूँ ॥ ६३ ॥ हे प्रजापते ! तुम्हीं दुःख से व्याकुल रहने-वाली प्रजा की सृष्टि करो। तुम मेरी आज्ञा से माया में आबद्ध नहीं रहोगे ॥ ६४ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार वे नीललोहित भगवान् मुझ से कहकर मेरे देखते-देखते गणों के सहित अन्तर्धान हो गये ॥ ६५ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती'भापाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के प्रथम-सृष्टिखण्ड में सृष्टि का उपक्रम एवं रुद्रावतारविर्भाव वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! मैंने स्वयं शब्दादि पञ्चभूतों द्वारा पञ्चीकरण कर के उनसे स्थूल, आकाश, वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, वृक्षादि, कलादि एवं युगपर्यन्त कालों की रचना की ॥ १-२ ॥ हे मुने ! इसी प्रकार से और भी सृष्टि-पदार्थों की रचना की, किन्तु तब भी मेरा मन सन्तुष्ट नहीं हुआ। तथा मैंने साम्बसदाशिव का ध्यान कर सृष्टि के साधकतत्त्वों का निर्माण किये ॥ ३ ॥ मैंने अपने नेत्रों से मरीचि को, हृदय से भृगु को, शिर से अङ्गिरा को, व्यान से ऋषिश्रेष्ठ

उदानाच्च पुलस्त्यं हि वसिष्ठं च समानतः । क्रतुं त्वपानाच्छ्रोत्राभ्यामत्रिं दक्षं च प्राणतः ॥ ५ ॥
असृजं त्वां तदोत्सङ्गाच्छायायाः कर्दमं मुनिम् । सङ्कल्पादसृजं धर्मं सर्वसाधनसाधनम् ॥ ६ ॥
एवमेतानहं सृष्ट्वा कृतार्थः साधकोत्तमान् । अभवं मुनिशार्दूल ! महादेवप्रसादतः ॥ ७ ॥
ततो मदाज्ञया तात ! धर्मः सङ्कल्पसम्भवः । मानवं रूपमापन्नः साधकैस्तु प्रवर्तितः ॥ ८ ॥
ततोऽसृजं स्वगात्रेभ्यो विविधेभ्योऽमितान् सुतान् । सुराऽसुरादिकांस्तेभ्यो दत्त्वा तां तां तनुं मुने ! ॥ ९ ॥
ततोऽहं शङ्करेणाथ प्रेरितोऽन्तर्गतेन हि । द्विधा कृत्वात्मनो देहं द्विरूपश्चाभवं मुने ! ॥ १० ॥
अर्द्धेन नारी पुरुषश्चार्द्धेन सन्ततो मुने ! । स तस्यामसृजद् द्वन्द्वं सर्वसाधनमुत्तमम् ॥ ११ ॥
स्वायम्भुवो मनुस्तत्र पुरुषः परसाधनम् । शतरूपाभिधा नारी योगिनी सा तपस्विनी ॥ १२ ॥
सा पुनर्मनुना तेन गृहीतातीव शोभना । विवाहविधिना ताताऽसृजत् सर्गं समैथुनम् ॥ १३ ॥
तस्यां तेन समुत्पन्नस्तनयश्च प्रियव्रतः । तथैवोत्तानपादश्च तथा कन्यात्रयं पुनः ॥ १४ ॥
आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुताः । आकूतिं रुचये प्रादात् कर्दमाय तु मध्यमाम् ॥ १५ ॥
ददौ प्रसूतिं दक्षायोत्तानपादानुजां सुताम् । तासां प्रसूतिप्रसवैः सर्वं व्याप्तं चराऽचरम् ॥ १६ ॥
आकूत्यां च रुचेश्चाऽभूद् द्वन्द्वं यज्ञश्च दक्षिणा । यज्ञस्य जज्ञिरे पुत्रा दक्षिणायां च द्वादश ॥ १७ ॥
देवहूत्यां कर्दमाच्च बह्वयो जाताः सुता मुने ! । दक्षाज्जाताश्चतस्रश्च तथा पुत्र्यश्च विंशतिः ॥ १८ ॥
धर्माय दत्ता दक्षेण श्रद्धाद्यास्तु त्रयोदश । शृणु तासां च नामानि धर्मस्त्रीणां मुनीश्वर ! ॥ १९ ॥
श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा तथा क्रिया । बुद्धिर्लज्जा वसुः शान्तिः सिद्धिः कीर्तिस्त्रयोदश ॥ २० ॥

पुलह का निर्माण किया ॥ ४ ॥ उदान से पुलस्त्य का, समान से वसिष्ठ का, अपान से क्रतु का, श्रोत्र से अत्रि का तथा प्राण से दक्ष का निर्माण किया ॥ ५ ॥ अपने अङ्ग से हे नारद ! तुम्हारा तथा छाया से कर्दम मुनि का निर्माण किया। इसी प्रकार सभी साधनों का साधनभूत धर्म का निर्माण अपने सङ्कल्प से किया ॥ ६ ॥ शिवकी प्रसन्नता से सृष्टि के साधनभूत इन ऋषियों का निर्माण कर मैं कृतार्थ हो गया ॥ ७ ॥ हे तात ! इस प्रकार की सृष्टि कर लेने पर मेरे सङ्कल्प से उत्पन्न हुए धर्म मानव रूप में प्रगट हुए, जिन्हें साधकों ने इस जगत् के कल्याण के लिए प्रवृत्त किया ॥ ८ ॥ मैंने अनेक शरीर धारण कर अनेक प्रकार के देवता, राक्षस आदि सन्तानों की वैसे-वैसे रूप दे कर सृष्टि की ॥ ९ ॥

तदनन्तर अन्तर्यामी शिव की प्रेरणा से मैंने स्वयं को दो भागों में विभक्त कर दिया ॥ १० ॥ हे मुने ! मैं आधे से नारी तथा आधे से पुरुष रूप में प्रगट हुआ। मैंने अपने उस शरीर को द्वन्द्व रूप में परिणत किया, जो परमोत्तम एक मिथुन के रूप में बन गया ॥ ११ ॥ इस शरीर से जो पुरुष उत्पन्न हुआ वह स्वायम्भुव मनु हुआ। और जो स्त्री थी वह शतरूपा नाम की महायोगिनी हुई ॥ १२ ॥ वह शतरूपा अत्यन्त सुन्दर थी, जिसे मनु ने विवाह-विधि से ग्रहण किया। और उससे मैथुनी सृष्टि की ॥ १३ ॥ मनु ने उस शतरूपा में प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र तथा तीन कन्याएँ उत्पन्न कीं ॥ १४ ॥ जिनका नाम आकूति, देवहूति तथा प्रसूति था, उन्होंने रुचि को आकूति और कर्दम को देवहूति नामक कन्या प्रदान की ॥ १५ ॥ उत्तानपाद से छोटी प्रसूति नाम की कन्या को उन्होंने दक्षप्रजापति को प्रदान किया। इसी प्रसूति के सन्तान द्वारा यह सारा चराचर जगत् व्याप्त है ॥ १६ ॥ रुचि के द्वारा आकूति में यज्ञ और दक्षिणा उत्पन्न हुए। इन्हीं यज्ञ से दक्षिणा में बारह पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १७ ॥ कर्दम के द्वारा देवहूति में बहुत-सी पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। दक्ष से प्रसूति में चौबीस कन्याएँ उत्पन्न हुईं ॥ १८ ॥ जिसमें दक्ष ने श्रद्धा आदि तेरह कन्याओं को धर्म के लिए दियीं। हे मुनीश्वर ! धर्म की पत्नियों के नाम सुनो ॥ १९ ॥ १. श्रद्धा, २. लक्ष्मी, ३. धृति, ४. तुष्टि, ५. पुष्टि, ६. मेधा, ७. क्रिया, ८. बुद्धि,

ताभ्यां शिष्टा यवीयस्या एकादश सुलोचनाः । ख्यातिः सत्पथसम्भूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा ॥२१॥
सन्नतिश्चाऽनुरूपा च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा । भृगुर्भवो मरीचिश्च तथा चैवाङ्गिरा मुनिः ॥२२॥
पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुश्चर्षिवरस्तथा । अत्रिर्वसिष्ठो वह्निश्च पितरश्च यथाक्रमम् ॥२३॥
ख्यातास्ता जगृहुः कन्या भृग्वाद्याः साधका वराः । ततः सम्पूरितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराऽचरम् ॥२४॥
एवं कर्मानुरूपेण प्राणिनामम्बिकापतेः । आज्ञया बहवो जाता असङ्ख्याता द्विजर्षभाः ॥२५॥
कल्पभेदेन दक्षस्य षष्टिः कन्याः प्रकीर्तिताः । तासां दश च धर्माय शशिने सप्तविंशतिम् ॥२६॥
विधिना दत्तवान् दक्ष ! कश्यपाय त्रयोदश । चतस्रः पररूपाय ददौ तार्क्ष्याय नारद ! ॥२७॥
भृग्वङ्गिरः कृशाश्वेभ्यो द्वे द्वे कन्ये च दत्तवान् । ताभ्यस्तेभ्यस्तु सञ्जाता बह्वी सृष्टिश्चराऽचरा ॥२८॥
त्रयोदशमितास्तस्मै कश्यपाय महात्मने । दत्ता दक्षेण याः कन्या विधिवन्मुनिसत्तम ! ॥२९॥
तासां प्रसूतिभिर्व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् । स्थावरं जङ्गमं चैव शून्यं नैव तु किञ्चन ॥ ३०॥
देवाश्च ऋषयश्चैव दैत्याश्चैव प्रजज्ञिरे । वृक्षाश्च पक्षिणश्चैव सर्वे पर्वतवीरुधः ॥३१॥
दक्षकन्याप्रसूतैश्च व्याप्तमेवं चराचरम् । पातालतलमारभ्य सत्यलोकावधि ध्रुवम् ॥३२॥
ब्रह्माण्डं सकलं व्याप्तं शून्यं नैव कदाचन । एवं सृष्टिः कृता सम्यग् ब्रह्मणा शम्भुशासनात् ॥३३॥
सती नाम त्रिशूलाग्रे सदा रुद्रेण रक्षिता । तपोऽर्थं निर्मिता पूर्वं शम्भुना सर्वविष्णुना ॥३४॥
सैव दक्षात् समुद्भूता लोककार्यार्थमेव च । लीलां चकार बहुशो भक्तोद्धरणहेतवे ॥३५॥
वामाङ्गो यस्य वैकुण्ठो दक्षिणाङ्गोऽहमेव च । रुद्रो हृदयजो यस्य त्रिविधस्तु शिवः स्मृतः ॥३६॥
अहं विष्णुश्च रुद्रश्च गुणास्त्रय उदाहृताः । स्वयं सदा निर्गुणश्च परब्रह्माव्ययः शिवः ॥३७॥

---

९. लज्जा, १०. वसु ११. शान्ति, १२. सिद्धि तथा १३. तेरहवीं कन्या का नाम कीर्त्ति था ॥ २० ॥ उनसे छोटी जो दक्ष की शेष ग्यारह कन्याएँ थीं, उनका नाम इस प्रकार है—१. ख्याति, २. सत्पथा, ३. सम्भूति, ४. स्मृति, ५. प्रीति, ६. क्षमा, ७. सन्नति, ८. अनुरूपा, ९. ऊर्जा, १०. स्वाहा और ११. स्वधा जिन्हें क्रम से भृगु, भव, मरीचि, अङ्गिरामुनि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ, वह्नि एवं पितरों ने ग्रहण किया। जो इस सृष्टि के चलानेवाले हैं; और जिनकी सन्तान-परम्परा से यह चराचर सारा जगत् पूर्ण है ॥ २१-२४ ॥

इस प्रकार भवानीपति सदाशिव की आज्ञा से प्राणियों के क्रमानुसार अनेक ब्राह्मणश्रेष्ठ उत्पन्न हुए ॥ २५ ॥ कल्पभेद से किसी कल्प में दक्ष की साठ कन्याएँ भी कही गयी हैं, उस कल्प में भी दश धर्म को, सत्ताइस चन्द्रमा को तथा तेरह महर्षि कश्यप को ब्याही गयी थीं, चार पररूप तार्क्ष्य को तथा भृगु, अङ्गिरा एवं कृशाश्व को दो-दो कन्याएँ ब्याही गयी थीं। उन महर्षियों के द्वारा उन कन्याओं में बहुत सी चराचर जगत् की सृष्टि हुई ॥ २६-२८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ नारद ! दक्षप्रजापति ने जो कश्यप महर्षि को तेरह कन्याएँ दीं, उनकी सन्तानों से यह सारी चराचर त्रिलोकी व्याप्त हो गयी। सर्वत्र स्थावर तथा जङ्गम सृष्टि दिखाई पड़ने लगी, कहीं कोई भी स्थान शून्य नहीं रहा ॥ २९-३० ॥ उन्हीं से देवता, ऋषि, दैत्य, वृक्ष, पक्षी, पर्वत एवं वीरुध उत्पन्न हुए ॥ ३१ ॥ इस प्रकार दक्ष की कन्याओं की सन्तानों से पाताल से सत्यलोक पर्यन्त सारा ब्रह्माण्ड परिपूर्ण हो गया। कोई भी स्थान शून्य न रहा। शिव जी की आज्ञा से ब्रह्मा ने इस प्रकार सृष्टि-रचना की ॥ ३२-३३ ॥ पूर्वकाल में सदाशिव शम्भु ने जिस सती को तपस्या के लिए स्वयं निर्मित किया था, उसे उन्होंने त्रिशूल के अग्रभाग से रक्षित रखा ॥ ३४ ॥ वह सती भी लोक-कल्याण के लिए दक्षप्रजापति की कन्या के रूप में प्रकट हुई। जिन शिव ने भक्तों के उद्धार के लिए अनेक प्रकार की लीलाएँ कीं, उन शिव के वामभाग में भगवान् वैकुण्ठ हैं, दक्षिण भाग में मैं हूँ और रुद्र उनके हृदय हैं। इस प्रकार शिवजी भी तीन प्रकार के कहे गये हैं ॥ ३५-३६ ॥ हम, विष्णु तथा रुद्र तीनों गुणों

विष्णुः सत्त्वं रजोऽहं च तमो रुद्र उदाहृतः । लोकाचारत इत्येवं नामतो वस्तुतोऽन्यथा ॥३८॥
अन्तस्तमो बहिः सत्त्वो विष्णू रुद्रस्तथा मतः । अन्तः सत्त्वस्तमो बाह्यो रजोऽहं सर्वथा मुने ! ॥३९॥
राजसी च सुरा देवी सत्त्वरूपात् तु सा सती । लक्ष्मीस्तमोमयी ज्ञेया त्रिरूपा च शिवा परा॥४०॥
एवं शिवा सती भूत्वा शङ्करेण विवाहिता । पितुर्यज्ञे तनुं त्यक्त्वा नादात्तां स्वपदं ययौ ॥४१॥
पुनश्च पार्वती जाता देवप्रार्थनया शिवा । तपः कृत्वा सुविपुलं पुनः शिवमुपागता ॥४२॥
तस्या नामान्यनेकानि जातानि च मुनीश्वर ! । कालिका चण्डिका भद्रा चामुण्डा विजया जया॥४३॥
जयन्ती भद्रकाली च दुर्गा भगवतीति च । कामाख्या कामदा ह्यम्बा मृडानी सर्वमङ्गला॥४४॥
नामधेयान्यनेकानि भुक्तिमुक्तिप्रदानि च । गुणकर्मानुरूपाणि प्रायशस्तत्र पार्वती ॥४५॥
गुणमय्यस्तथा देव्यो देवा गुणमयास्त्रयः । मिलित्वा विविधं सृष्टेश्चक्रुस्ते कार्यमुत्तमम् ॥४६॥
एवं सृष्टिप्रकारस्ते वर्णितो मुनिसत्तम ! । शिवाज्ञया विरचितो ब्रह्माण्डस्य मयाऽखिलः ॥४७॥
परं ब्रह्म शिवः प्रोक्तस्तस्य रूपास्त्रयः सुराः । अहं विष्णुश्च रुद्रश्च गुणभेदानुरूपतः ॥४८॥
शिवया रमते स्वैरं शिवलोके मनोरमे । स्वतन्त्रः परमात्मा हि निर्गुणः सगुणोऽपि वै ॥४९॥
तस्य पूर्णावतारो हि रुद्रः साक्षाच्छिवः स्मृतः । कैलासे भवनं रम्यं पञ्चवक्त्रश्चकार ह ॥
ब्रह्माण्डस्य तथा नाशे तस्य नाशोऽस्ति वै न हि ॥५०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्टयुपाख्याने ब्रह्मनारदसम्वादे सृष्टिवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

से युक्त हैं, किन्तु परमात्मा परब्रह्म सदाशिव सर्वदा निर्गुण एवं निराकार हैं ॥ ३७ ॥ विष्णु सत्त्व के प्रतीक, रजोगुण का प्रतीक मैं तथा तमोगुण के प्रतीक रुद्र हैं। लोकाचार से ऐसा व्यवहार किया जाता है, किन्तु नाम के कारण वस्तुतत्त्व इससे सर्वथा भिन्न है ॥ ३८ ॥ विष्णु भीतर से तमोयुक्त और बाहर से रजोगुण से युक्त हैं। रुद्र भीतर से सत्त्वगुण एवं बाहर से तमोगुण युक्त हैं। किन्तु हे मुने ! मैं तो भीतर और बाहर दानों से रजोगुण युक्त हूँ ॥३९॥ इसी प्रकार देवियों में भी रजोगुण युक्त सुरा देवी हैं, सत्त्वस्वरूपा सती देवी हैं। और लक्ष्मी तमोगुण से युक्त हैं। इस प्रकार पराम्बिका के भी तीन स्वरूप कहे गये हैं ॥ ४० ॥ जब शिवा सती के रूप में दक्ष के यहाँ उत्पन्न हुईं तो भगवान् शङ्कर के साथ ब्याही गयीं, क्योंकि पिता दक्ष ने अपने यज्ञ में शिव का भाग नहीं दिया, इसलिए सती ने क्रोध से उस यज्ञ में अपना शरीर त्याग कर दिया ॥४१॥ फिर उन्हीं सती में देवताओं के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर हिमालय के यहाँ पार्वती रूप से जन्म ग्रहण किया। और घोर तपस्या करने के बाद शिवजी को पुनः प्राप्त किया ॥ ४२ ॥

हे मुनीश्वर ! उन देवी के कालिका, चण्डिका, भद्रा, चामुण्डा, विजया, जया, जयन्ती, भद्रकाली, दुर्गा, भगवती, कामाख्या, कामदा, अम्बा, मृडानी एवं सर्वमङ्गला आदि अनेक नाम उनके गुण-कर्म के अनुसार हुए, जो भोग और मोक्ष को देनेवाले हैं ॥ ४३-४५ ॥ इस प्रकार गुणमयी तीनों देवियों तथा गुणमय तीनों देव मिलकर सृष्टि के उत्तम कार्य का संचालन करते हैं ॥ ४६ ॥ हे मुनिसत्तम ! जैसा कि शिवजी की आज्ञा से मैंने इस ब्रह्माण्ड की रचना की। मैंने तुमसे सृष्टि के उस उत्तम प्रकार का वर्णन किया ॥ ४७ ॥ ये शिव परंब्रह्म कहे जाते हैं, और ये तीनों देवता ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र उन्हीं के गुण-भेद के अनुसार तीन रूप हैं ॥ ४८ ॥ ये सर्वथा स्वतन्त्र निर्गुण परमात्मा सगुण होकर मनोरम शिवलोक में शिवा के साथ रमण करते हैं ॥ ४९ ॥ उनके पूर्णावतार रुद्र साक्षात् शिवस्वरूप हैं, उन्हीं पञ्चवक्त्र सदाशिव ने अपने रमण के लिए कैलास में अपना दिव्य भवन बनवाया है। ब्रह्माण्ड के नाश होने पर भी कभी जिसका नाश नहीं होता ॥ ५० ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के प्रथम-सृष्टिखण्ड में ब्रह्म-नारदसंवाद में सृष्टिवर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥

*

सप्तदशोऽध्यायः

(शिव का कैलास गमन, कुबेर से मित्रता तथा गुणनिधि-चरित्र वर्णन)

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य ब्रह्मणः स तु नारदः । पुनः पप्रच्छ तं नत्वा विनयेन मुनीश्वराः ॥ १ ॥

नारद उवाच

कदा गतो हि कैलासं शङ्करो भक्तवत्सलः । क वा सखित्वं तस्यासीत् कुबेरेण महात्मना ॥ २ ॥
किं चकार हरस्तत्र परिपूर्णः शिवाकृतिः । एतत्सर्वं समाचक्ष्व परं कौतूहलं मम ॥ ३ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु नारद ! वक्ष्यामि चरितं शशिमौलिनः । यथा जगाम कैलासं सखित्वं धनदस्य च ॥ ४ ॥
आसीत् काम्पिल्यनगरे सोमयाजिकुलोद्भवः । दीक्षितो यज्ञदत्ताख्यो यज्ञविद्याविशारदः ॥ ५ ॥
वेदवेदाङ्गवित् प्राज्ञो वेदान्तादिषु दक्षिणः । राजमान्योऽथ बहुधा वदान्यः कीर्तिभाजनः॥ ६ ॥
अग्निशुश्रूषणरतो वेदाध्ययनतत्परः । सुन्दरो रमणीयाङ्गश्चन्द्रबिम्बसमाकृतिः ॥ ७ ॥
आसीद् गुणनिधिर्नाम दीक्षितस्यास्य वै सुतः । कृतोपनयनः सोऽष्टौ विद्या जग्राह भूरिशः ॥
अथ पित्रानभिज्ञातो द्यूतकर्मरतोऽभवत् ॥ ८ ॥
आदायादाय बहुशो धनं मातुः सकाशतः । समदाद् द्यूतकारेभ्यो मैत्रीं तैश्च चकार सः ॥ ९ ॥
सन्त्यक्तब्राह्मणाचारः सन्ध्यास्नानपराङ्मुखः । निन्दको वेदशास्त्राणां देवब्राह्मणनिन्दकः ॥१०॥
स्मृत्याचारविहीनस्तु गीतवाद्यविनोदभाक् । नटपाखण्डभाण्डैस्तु बद्धप्रेमपरस्परः ॥११॥
प्रेरितोऽपि जनन्या स न ययौ पितुरन्तिकम् । गृहकार्यान्तरव्याप्तो दीक्षितो दीक्षितायिनीम्॥१२॥

सूतजी बोले—हे महर्षियो ! ब्रह्मा के द्वारा इस प्रकार सृष्टिवर्णन सुन लेने पर देवर्षि नारद ने उन्हें प्रणाम किया और स-विनय उनसे पूछने लगे ॥ १ ॥

नारद बोले—भक्तवत्सल भगवान् शङ्कर कैलास पर किस समय गये और उन महात्मा की कुबेर के साथ मित्रता कहाँ हुई ? ॥ २ ॥ परिपूर्ण शिवाकृति श्री महादेवजी ने वहाँ पर क्या किया ? हे ब्रह्मन् ! यह सब मुझसे कहिए, मुझे बड़ा कुतूहल हो रहा है ॥ ३ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! शङ्कर का चरित्र मैं वर्णन करता हूँ, तुम सुनो । वे जिस प्रकार कैलास गये और जिस प्रकार कुबेर से उनकी मित्रता हुई ॥ ४ ॥ काम्पिल्य नगर में सोमयाजियों के कुल में यज्ञविद्याविशारद यज्ञदत्त नाम का एक दीक्षित ब्राह्मण था ॥ ५ ॥ वह ब्राह्मण वेद-वेदाङ्ग का ज्ञाता, महाबुद्धिमान्, वेदान्तादि-शास्त्रों में महानिपुण, बहुत से राजाओं द्वारा मान्यता, पूजा को प्राप्त करने वाला, परम उदार तथा कीर्त्तिशाली था ॥ ६ ॥ वह नित्य अग्नि की परिचर्या (अग्निहोत्र) तथा वेदों के स्वाध्याय में लगा रहता था। चन्द्रबिम्ब के समान उसके अङ्ग रमणीय थे इसलिए वह सुन्दर भी था ॥ ७ ॥ इसी में यज्ञदत्त दीक्षित का गुणनिधि नामक एक पुत्र था। यज्ञदत्त ने आठ वर्ष की अवस्था में उसका उपनयन-संस्कार करने के पश्चात् उसको अनेक प्रकार की विद्याओं को पढ़ाया। किन्तु दैवदुर्योग से वह पिता के अनजान में द्यूतकर्म में प्रवृत्त हो गया ॥ ८ ॥ वह माता के पास से बहुत-सा धन लेकर जुआड़ियों को देने लगा। और उन्हीं से मित्रता भी कर लिया ॥ ९ ॥ वह उस द्यूतकर्म से इतना बिगड़ गया कि उसने ब्राह्मणोचित आचार-विचार का त्याग कर दिया। और सन्ध्या तथा स्नानादि नित्यकर्म से भी पराङ्मुख रहने लगा। वेदशास्त्र, देवता तथा ब्राह्मणों की निन्दा करने लगा ॥ १० ॥ वह स्मृतियों में कहे गये ब्राह्मणोचित आचार से परिभ्रष्ट होकर गाने-बजाने में अपना विनोद करने लगा। इतना ही नहीं, उसने नटों, पाखण्डियों तथा भाण्डों के साथ अपनी मैत्री भी कर ली ॥ ११ ॥ वह माता के द्वारा

यदा यदैव तां पृच्छेदये गुणनिधिः सुतः । न दृश्यते मया गेहे कल्याणि! विदधाति किम् ॥१३॥
तदा तदेति सा ब्रूयादिदानीं स बहिर्गतः । स्नात्वा समर्च्य वै देवानेतावन्तमनेहसम् ॥१४॥
अधीत्याऽध्ययनार्थं स द्वित्रैर्मित्रैः समं ययौ । एकपुत्रेति तन्माता प्रतारयति दीक्षितम् ॥१५॥
न तत्कर्म च तद्वृत्तं किञ्चिद् वेत्ति स दीक्षितः । सर्वं केशान्तकर्मास्य चक्रे वर्षेऽथ षोडशे ॥१६॥
अथो स दीक्षितो यज्ञदत्तः पुत्रस्य तस्य च । गृह्योक्तेन विधानेन पाणिग्राहमकारयत् ॥१७॥
प्रत्यहं तस्य जननी सुतं गुणनिधिं मृदु । शास्ति स्नेहार्द्रहृदया ह्युपवेश्य स्म नारद! ॥१८॥
क्रोधनस्तेऽस्ति तनयः स महात्मा पितेत्यलम् । यदि ज्ञास्यति ते वृत्तं त्वां च मां ताडयिष्यति ॥१९॥
आच्छादयामि ते नित्यं पितुरग्रे कुचेष्टितम् । लोकमान्योऽस्ति ते तातः सदाचारैर्नवैर्धनैः ॥२०॥
ब्राह्मणानां धनं तात! सद्विद्या साधुसङ्गमः । किमर्थं न करोषि त्वं सुरुचिं प्रीतमानसः ॥२१॥
सच्छोत्रियास्तेऽनूचाना दीक्षिताः सोमयाजिनः । इति रूढिमिह प्राप्तास्तव पूर्वपितामहाः ॥२२॥
त्यक्त्वा दुर्वृत्तसंसर्गं साधुसङ्गरतो भव । सद्विद्यासु मनो धेहि ब्राह्मणाचारमाचर ॥२३॥
तातानुरूपो रूपेण यशसा कुलशीलतः । ततो न त्रपसे किन्नस्त्यज दुर्वृत्ततां स्वकाम् ॥२४॥
ऊनविंशतिकोऽसि त्वमेषा षोडशवार्षिकी । एतां संवृणु सद्वृत्तां पितृभक्तियुतो भव ॥२५॥
श्वशुरोऽपि हि ते मान्यः सर्वत्र गुणशीलतः । ततो न त्रपसे किन्नस्त्यज दुर्वृत्ततां सुत! ॥२६॥

कहे जाने पर भी कभी अपने पिता के पास नहीं जाता था। घर के अन्य कार्यों में व्यस्त हुआ वह दीक्षित ब्राह्मण जब-जब अपनी स्त्री से पूछता कि हे दीक्षितायनि! हमारा गुणनिधि पुत्र घर में बहुत दिनों से दिखाई नहीं पड़ता, हे कल्याणि! बता वह कहाँ रहता है? और क्या करता है? तब-तब वह ब्राह्मणी उसे प्रतारित करते हुए कहती–अभी-अभी बाहर गया है, इतने समय तक तो वह घर पर ही स्नान कर देवतार्चन करता रहा है ॥१२-१४॥ कभी कहती, अभी गुणनिधि घर पर अध्ययन कर रहा था, किन्तु दो-तीन मित्रों के साथ अध्ययन करने के लिए बाहर गया है। माता को एक ही पुत्र था, इसलिए स्नेहवश वह ऐसा कहती हुई दीक्षित ब्राह्मण को बहुधा इसी प्रकार प्रतारण करती थी ॥ १५ ॥ इसी कारण दीक्षित को उसके कर्म तथा आचरण के विषय में कुछ भी थाह न चला। उसने सोलहवें वर्ष में उसका केशान्त-संस्कार भी कर दिया। तदनन्तर दीक्षित ने गृह्योक्त विधान से अपने उस पुत्र का विवाह संस्कार भी कर दिया ॥ १६-१७ ॥

हे नारद! गुणनिधि की माता प्रतिदिन अपने पुत्र को एकान्त में बैठा कर मृदु वचनों द्वारा स्नेह से पुचकारते हुए उसे समझाती कि, हे पुत्र! देखो, तुम्हारे पिता बहुत बड़े विद्वान् हैं किन्तु बड़े क्रोधी हैं, यदि कहीं से उन्हें तुम्हारे दुराचार का पता लग गया तो वे तुम्हें तथा मुझे भी मारेंगे ॥ १८-१९ ॥ हे पुत्र! मैं तुम्हारी सारी बुराइयों को तुम्हारे पिता से छिपाये रखती हूँ। तुम्हारे पिता की इस लोक में प्रतिष्ठा सदाचार के कारण है और वे सदाचार के ही कारण लोकमान्य हैं धन से नहीं ॥ २० ॥ हे तात! ब्राह्मणों का धन सद्विद्या तथा सत्सङ्गति है, अतः हे प्रियपुत्र! तुम अपना मन प्रसन्नता से अच्छे कार्यों में क्यों नहीं लगाते? ॥२१॥ तुम्हारे पूर्वज पितामह आदि उत्तम श्रोत्रिय, वेदविद्या के पारङ्गत विद्वान्, दीक्षित तथा सोमयज्ञ के माने हुए विद्वान् होने के कारण बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं ॥ २२ ॥ अतः तुम दुर्जनों का साथ छोड़ कर सज्जनों के साथ मैत्री करो, उत्तम विद्या में मन लगाओ। ब्राह्मणोचित सदाचार का पालन करो ॥ २३ ॥ तुम रूप से तो अपने पिता के तुल्य हो फिर यश, कुल तथा शील से भी उनकी बराबरी क्यों नहीं करते। इतने बड़े कुल में ऐसे प्रतिष्ठित पिता के पुत्र होकर भी तुम्हें इस प्रकार के घृणित कार्य करने में लज्जा नहीं आती। हे पुत्र! तू अपनी बुरी आदतों को छोड़ दे ॥ २४ ॥ तू उन्नीस वर्ष का है, और यह तेरी बहू सोलह वर्ष की है, यह कितनी कुलीन तथा सदाचारिणी पतिव्रता है, इसका अनुकरण करो और पिता की सेवा करो ॥ २५ ॥ गुण तथा शील की दृष्टि से तुम्हारे श्वशुर

मातुलास्तेऽतुलाः पुत्र ! विद्या-शील-कुलादिभिः । तेभ्योऽपि न बिभेषि त्वं शुद्धोऽस्युभयवंशतः ॥२७॥

पश्यैतान् प्रतिवेशमस्थान् ब्राह्मणानां कुमारकान् ।
गृहेऽपि शिष्यान् पश्यैतान् पितुस्ते विनयोचितान् ॥२८॥

राजाऽपि श्रोष्यति यदा तव दुश्चेष्टितं सुत ! । श्रद्धां विहाय ते ताते वृत्तिलोपं करिष्यति ॥२९॥
बालचेष्टितमेवैतद् वदन्त्यद्यापि ते जनाः । अनन्तरं हरिष्यन्ति युक्तां दीक्षिततामिह ॥३०॥
सर्वेऽप्याक्षारयिष्यन्ति तव तातं च मामपि । मातुश्चरित्रं तनयो धत्ते दुर्भाषणैरिति ॥३१॥
पिताऽपि ते न पापीयाञ्छ्रुतिस्मृतिपथानुगः । तदङ्घ्रिलीनमनसो मम साक्षी महेश्वरः ॥३२॥
न चर्तुस्नातयापीह मुखं दुष्टस्य वीक्षितम् । अहो बलीयान् स विधिर्येन जातो भवानिति ॥३३॥
प्रतिक्षणं जनन्येति शिक्ष्यमाणोऽतिदुर्मतिः । न तत्याज च तद्धर्मं दुर्बोधो व्यसनी यतः ॥३४॥
मृगया-मद्य-पैशुन्या-ऽनृत-चौर्य-दुरोदरैः । स वारदारैर्व्यसनैरेभिः कोऽत्र न खण्डितः ॥३५॥
यद्यन्मध्यगृहे पश्येत् तत्तन्नीत्वा सुदुर्मतिः । अर्पयेद् द्यूतकाराणां सकुप्यं वसनादिकम् ॥३६॥
न्यस्तां रत्नमयीं गेहे करस्य पितुरूर्मिकाम् । चोरयित्वैकदाऽऽदाय दुरोदरकरेऽर्पयत् ॥३७॥
दीक्षितेन परिज्ञातो दैवाद् द्यूतकृतः करे । उवाच दीक्षितस्तं च कुतो लब्धा त्वयोर्मिका ॥३८॥
पृष्टस्तेनाथ निर्बन्धादसकृत्तमुवाच सः । मामाक्षिपसि विप्रोच्चैः किं मया चौर्यकर्मणा ॥३९॥
लब्धा मुद्रा त्वदीयेन पुत्रेणैव समर्पिता । मम मातुर्हि पूर्वेद्युर्जित्वा नीतो हि शाटकः ॥४०॥

भी प्रतिष्ठित पुरुष हैं, फिर भी तुझे लज्जा नहीं आती । अतः हे पुत्र ! तुम अपनी बुराई छोड़ो ॥ २६ ॥ तुम्हारे मामा भी विद्या, शील एवं कुल में अपनी सानी नहीं रखते हैं । अतः तेरा तो मातृकुल तथा पितृकुल दोनों ही प्रशस्त हैं फिर भी तुम नहीं डरते ॥ २७ ॥ और तो बात दूर जाने दो तुम इन पड़ोसी ब्राह्मण-कुमारों को देख । तथा अपने घर में विद्या-विनयपरायण अपने पिता के इन शिष्यों की ओर देख ॥ २८ ॥ हे पुत्र ! यदि तुम्हारे बुराइयों का पता राजा को लग गया तो वह तुम्हारे पिता से अपनी श्रद्धा हटाकर तुम्हारे पिता को दी जानेवाली वृत्ति बन्द कर देगा ॥ २९ ॥ अभी तो लोग तुम्हारा लड़कपन समझकर ध्यान नहीं देते किन्तु बाद में तुम्हारे पिता की दीक्षित पदवी का भी अपहरण कर देंगे ॥ ३० ॥ सभी लोग दुष्ट वाक्यों से तुम्हारे पिता तथा मुझ माता को धिक्कारेंगे और कहेंगे कि इसकी माता दुश्चरित्रा है जिसके प्रभाव से यह लड़का भी दुश्चरित्र हो गया है ॥ ३१ ॥ ऐसे तुम्हारे पिता में भी किसी प्रकार का पाप नहीं है, क्योंकि वे श्रुति तथा स्मृति-सम्मत सन्मार्ग का अनुसरण करते हैं और मैं भी सदैव उनके चरणों में मन लगानेवाली पतिव्रता पत्नी हूँ, इसके साक्षी महेश्वर हैं ॥३२॥ मैं यह सत्य कहती हूँ कि मैंने चतुर्थ-दिन ऋतुस्नान के समय किसी भी दुष्ट का मुखावलोकन नहीं किया । किन्तु हाय ! विधाता की गति बड़ी बलवती है, जिसने तुम्हारे-जैसा दुष्ट पुत्र मुझे दिया ॥ ३३ ॥

इस प्रकार माता उसे प्रतिक्षण शिक्षा देती रहती किन्तु उस दुष्ट ने अपने दुष्ट कर्म का त्याग नहीं किया । क्योंकि, व्यसन के कारण माता की शिक्षा से उसे प्रबोध नहीं होता था ॥ ३४ ॥ मृगया, मद्य, चुगली, असत्य भाषण, चोरी, द्यूत और वेश्यागमन आदि व्यसनों में पड़ जाने पर किसका मन बुराई से खण्डित नहीं होता ॥ ३५ ॥ वह दुष्ट घर में जो-जो सामान वस्त्र, पेटी आदि देखता था वह सब ज्वारियों को दे देता था ॥ ३६ ॥ एक समय गुणनिधि ने अपने पिता की रत्नजटित हाथ की अँगूठी, जो कहीं घर में रखी थी उसे चुराकर किसी जुआरी के हाथ बेंच दी ॥ ३७ ॥ संयोगवश जब दीक्षित ने अपनी अँगूठी ज्वारी के हाथ देखी तो उससे पूछा कि यह अँगूठी तुम्हें कैसे प्राप्त हुई ॥ ३८ ॥ इस प्रकार जब दीक्षित ने उससे बारम्बार आग्रहपूर्वक पूछा तो उसने कहा—हे ब्राह्मण ! तुम मुझ से बारम्बार इस प्रकार क्यों पूछते हो, क्या मैंने तुम्हारी यह अँगूठी चोरी की है ॥ ३९ ॥ मैंने तुम्हारे पुत्र को रुपया देकर

न केवलं ममैवैतदङ्गुलीयं समर्पितम् । अन्येषां द्यूतकर्तॄणां भूरि तेनार्पितं वसु ॥४१॥
रत्नकुप्यदुकूलानि भृङ्गारप्रभृतीनि च । भाजनानि विचित्राणि कांस्यताम्रमयानि च ॥४२॥
नग्नीकृत्य प्रतिदिनं बध्यते द्यूतकारिभिः । न तेन सदृशः कश्चिदाक्षिको भूमिमण्डले ॥४३॥
अद्यावधि त्वया विप्र ! दुरोदरशिरोमणिः । कथं नाज्ञायि तनयोऽविनयानयकोविदः ॥४४॥
इति श्रुत्वा त्रपाभारविनम्रतरकन्धरः । प्रावृत्य वाससा मौलिं प्राविशन्निजमन्दिरम् ॥४५॥
महापतिव्रतामस्य पत्नी प्रोवाच तामथ । स दीक्षितो यज्ञदत्तः श्रौतकर्मपरायणः ॥४६॥

यज्ञदत्त उवाच

दीक्षितायनि ! कुत्राऽस्ति धूर्ते ! गुणनिधिः सुतः । अथ तिष्ठतु किं तेन क्व सा मम शुभोर्मिका ॥४७॥
अङ्गोद्वर्तनकाले या त्वया मेऽङ्गुलितो हृता । सा त्वं रत्नमयीं शीघ्रं तामानीय प्रयच्छ मे ॥४८॥
इति श्रुत्वाऽथ तद्वाक्यं भीता सा दीक्षितायनी । प्रोवाच स्नानमध्याह्नीं क्रियां निष्पादयन्त्यथ ॥४९॥
व्यग्राऽस्मि देवपूजार्थमुपहारादिकर्मणि । समयोऽयमतिक्रामेदतिथीनां प्रियातिथे ! ॥५०॥
इदानीमेव पक्वान्नकारणव्यग्रया मया । स्थापिता भाजने क्वाऽपि विस्मृतेति न वेद्म्यहम् ॥५१॥

दीक्षित उवाच

हं हेऽसत्पुत्रजननि नित्यं सत्यप्रभाषिणि । यदा यदा त्वां संपृच्छे तनयः क्व गतस्त्विति ॥५२॥
तदा तदेति त्वं ब्रूया ह्यधेदानीं स निर्गतः । अधीत्याध्ययनार्थं च द्वित्रैर्मित्रैः सशुग्बहिः ॥५३॥
कुतस्ते शाटकः पत्नि ! माञ्जिष्ठो यो मयाऽर्पितः । लम्बते योऽनिशं धाम्नि तथ्यं ब्रूहि भयं त्यज ॥५४॥
साम्प्रतं नेक्ष्यते सोऽपि भृङ्गारो मणिमण्डितः । पट्टसूत्रमयी साऽपि त्रिपटी या मयाऽर्पिता ॥५५॥

इसे खरीदा है। अभी उसी दिन उसने अपनी माता की साड़ी चुरा कर मुझे बेंची थी ॥ ४० ॥ उसने मुझे ही केवल यह अँगूठी नहीं दी, किन्तु और जुआरियों को भी उसने बहुत सा धन, जैसे रत्न की पेटी, बहुमूल्य वस्त्र, कमण्डलु एवं काँसे तथा ताँबे के बने हुए बहुत से बर्त्तन भी दिये हैं ॥ ४१-४२ ॥ जुआरी उसे नित्य नङ्गा कर तथा बाँध कर उसकी दुर्गति करते रहते हैं। इस पृथ्वीतल पर ऐसा कोई जुआरी नहीं है जैसा वह है ॥ ४३ ॥ हे दीक्षित ! क्या आज तक तुम नहीं जानते कि तुम्हारा लड़का जुआरियों में शिरोमणि तथा अविनय एवं अनीति में महान् चतुर है ॥ ४४ ॥ इस बात को सुनते ही दीक्षित का सिर लज्जा से नीचे झुक गया। वे वस्त्र से अपना मुँह ढँक कर अपने घर चले आये ॥ ४५ ॥ तब श्रौत-स्मार्त्त-कर्मपरायण यज्ञदत्त दीक्षित अपनी महा पतिव्रता पत्नी से कहने लगे ॥ ४६ ॥

यज्ञदत्त दीक्षित ने कहा—हे दीक्षितायनि, हे धूर्ते ! बता वह तुम्हारा गुणनिधि पुत्र कहाँ है ? अच्छा वह जहाँ-कहीं भी हो यह बात तो अभी दूर की है तू पहले बता मेरी वह अँगूठी कहाँ है ॥४७॥ जिसे तेल की मालिश करते समय, तुमने मेरे हाथों से निकालकर रख ली थी। वह रत्नमयी मेरी अँगूठी तू लाकर शीघ्र मुझे दे ॥ ४८ ॥ इस बात को सुनते ही दीक्षितायनि कुछ डर सी गयी और बोली—मध्याह्नकाल उपस्थित हो गया है, मैं स्नान तथा मध्याह्न की क्रिया में व्यग्र हूँ ॥ ४९ ॥ अभी मुझे देवता की पूजा के के लिए सभी सामग्री एकत्रित करना है, हे प्रियातिथे ! कहीं ऐसा न हो कि समय बीत जाने के कारण अतिथि बिना भोजन किये ही घर से निराश होकर लौट जावें। मैं इस समय पक्वान्न बनाने में व्यग्र हूँ, आपकी अँगूठी किसी पात्र में रख कर भूल गयी हूँ, अभी मुझे उसका याद नहीं हो रहा है ॥ ५०-५१ ॥

दीक्षित ने कहा—हे दुष्ट पुत्र को उत्पन्न करने वाली, सर्वदा सत्य बोलने वाली ! मैंने जब-जब तुमसे पूछा कि पुत्र कहाँ गया है, तब-तब तुम यही कहती थी कि वह अभी पढ़ रहा था, किन्तु अध्ययन के लिए इस समय अपने दो-तीन मित्रों के साथ बाहर गया है ॥ ५२-५३ ॥ हे पत्नि ! बता वह मजीठे के रंग वाली साड़ी, जिसे मैंने तुम्हें दी थी वह कहाँ है ? वह तो इस घर में बराबर टँकी रहती थी, तू भय छोड़ कर सत्य-सत्य बता ॥ ५४ ॥ इस समय मणिजटित वह झारी भी दिखाई नहीं पड़ती। वह रेशमी त्रिपटी (वस्त्र-विशेष), जो मैंने तुझे दी थी, वह कहाँ है ? ॥ ५५ ॥

क्व दाक्षिणात्यं तत्कांस्यं गौडी ताम्रघटी क्व सा। नागदन्तमयी सा क्व सुखकौतुकमञ्चिका ॥५६॥
क्व सा पर्वतदेशीया चन्द्रकान्तिरिवाऽद्भुता। दीपकव्यग्रहस्ताग्रालङ्कृता शालभञ्जिका ॥५७॥
किं बहूक्तेन कुलजे तुभ्यं कुप्याम्यहं वृथा। तदाम्यवहरिष्येऽहमुपयंस्याम्यहं यदा ॥५८॥
अनपत्योऽस्मि तेनाऽहं दुष्टेन कुलदूषिणा। उत्तिष्ठानय पाथस्त्वं तस्मै दद्यास्तिलाञ्जलिम् ॥५९॥
अपुत्रत्वं वरं नृणां कुपुत्रात् कुलपांसनात्। त्यजेदेकं कुलस्यार्थे नीतिरेषा सनातनी ॥६०॥
स्नात्वा नित्यविधिं कृत्वा तस्मिन्नेवाह्नि कस्यचित्। श्रोत्रियस्य सुतां प्राप्य पाणिं जग्राह दीक्षितः ॥६१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्टयुपाख्याने
गुणनिधिचरित्रवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

(यमदूतों से शिवगणों का संवाद और गुणनिधि का कैलास गमन)

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा तथा स वृत्तान्तं प्राक्तनं स्वं विनिन्द्य च। काञ्चिद् दिशं समालोक्य निर्ययौ दीक्षिताङ्गजः ॥ १ ॥
कियच्चिरं ततो गत्वा यज्ञदत्तात्मजः स हि। दुष्टो गुणनिधिस्तस्थौ गतोत्साहो विसर्जितः ॥ २ ॥
चिन्तामवाप महतीं क्व यामि करवाणि किम्। नाहमभ्यस्तविद्योऽस्मि न चैवातिधनोऽस्म्यहम् ॥ ३ ॥
देशान्तरे यस्य धनं स सद्यः सुखमेधते। भयमस्ति धने चौरात् स विघ्नः सर्वतोभवः ॥ ४ ॥
याजकस्य कुले जन्म कथं मे व्यसनं महत्। अहो! बलीयान् हि विधिर्भाविकर्मानुसन्धयेत् ॥ ५ ॥

हे दीक्षितायनि! दक्षिण देश में बनने वाला वह काँसे का पात्र तथा गौड देश-निर्मित वह ताम्रघटी कहाँ है? और हाथीदाँत की बनी हुई सुख-कौतुक-मञ्चिका (झूलनदार पलङ्ग) कहाँ है? ॥ ५६ ॥ और पर्वतीय देश में बनी हुई चन्द्रकान्तमणि के समान दीपक हाथ में लिये शृङ्गारयुक्त पुतलियाँ कहाँ है? ॥ ५७ ॥ हे कुलजे! बहुत कहने से क्या लाभ? अब तुम्हारे ऊपर मेरा क्रोध करना व्यर्थ है। अब मैं तुम्हारे हाथ का भोजन नहीं करूँगा, भोजन तो तभी करूँगा जब दूसरा विवाह कर लूँगा ॥ ५८ ॥ कुल को दूषित करनेवाले ऐसी दुष्ट सन्तान से तो मेरा सन्तान रहित होना ही अच्छा था। अच्छा, उठ कर पिण्डदान की सामग्री ला, में उसे तिलाञ्जलि दूँ ॥ ५९ ॥ कुल में कलङ्क लगाने वाले दुष्ट पुत्र की अपेक्षा तो मनुष्य का सन्तान रहित रहना ही अच्छा है। अस्तु, कुल की भलाई के लिए एक का त्याग कर देना ही सनातन रीति है ॥ ६० ॥ फिर तो उस दीक्षित ने ऐसा कह कर स्नान किया और नित्य विधि करने के पश्चात् किसी श्रोत्रिय कन्या का पाणिग्रहण कर लिया ॥ ६१ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के प्रथम-सृष्टिखण्ड में
गुणनिधि-चरित्र वर्णन नामक सतरहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—इस वृत्तान्त को सुनकर गुणनिधि ने अपने तथा अपने भाग्य की घोर निन्दा की। पुनः वह दीक्षित का लड़का किसी की ओर बिना देखे ही घर से बाहर चल दिया ॥ १ ॥ कुछ काल तक कुछ दूर चले जाने पर यज्ञदत्त का लड़का वह गुणनिधि एकाएक किसी स्थान पर रुक गया। घर से त्याग दिये जाने के कारण उसका उत्साह नष्ट हो चुका था ॥ २ ॥ वह सोचने लगा कि, हाय! अब मैं कहाँ जाऊँ? और क्या करूँ? मैंने विद्या का अभ्यास नहीं किया, और न तो मेरे पास प्रचुर धन ही है ॥ ३ ॥ देशान्तर में तो वही सुख पाता है जिसके पास कोई धन हो, धन में चोर का भय अवश्य रहता है किन्तु ऐसे विघ्न तो सर्वत्र होते ही रहते हैं ॥ ४ ॥ हाय! याजक के कुल में जन्म लेकर भी मुझे इस प्रकार का व्यसन क्यों लग गया। अहो! विधि बड़ा बलवान् है, जो भविष्य में होनेवाले कर्म के साथ

भिक्षितुं नाधिगच्छामि न मे परिचितः कश्चिन् । न च पार्श्वे धनं किञ्चित् किमत्र शरणं भवेत् ॥ ६ ॥
सदाऽनभ्युदिते भानौ प्रसूर्मे मिष्टभोजनम् । दद्यादद्यात्र कं याचे न चेह जननी मम ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच

इति चिन्तयतस्तस्य बहुशस्तत्र नारद ! । अतिदीनं तरोर्मूले भानुरस्ताचलं गतः ॥ ८ ॥
एतस्मिन्नेव समये कश्चिन्माहेश्वरो नरः । सहोपहारानादाय नगराद् बहिरभ्यगात् ॥ ९ ॥
नानाविधान् महादिव्यान् स्वजनैः परिवारितः । समभ्यर्चितुमीशानं शिवरात्रावुपोषितः ॥ १० ॥
शिवालयं प्रविश्याथ स भक्तः शिवसक्तधीः । यथोचितं सुचित्तेन पूजयामास शङ्करम् ॥ ११ ॥
पक्वान्नगन्धमाघ्राय यज्ञदत्तात्मजो द्विजः । पितृत्यक्तो मातृहीनः क्षुधितः स तमन्वगात् ॥ १२ ॥
इदमन्नं मया ग्राह्यं शिवायोपकृतं निशि । सुप्ते शैवजने दैवात् सर्वस्मिन् विविधं महत् ॥ १३ ॥
इत्याशामवलम्ब्याऽथ द्वारि शम्भोरुपाविशत् । ददर्श च महापूजां तेन भक्तेन निर्मिताम् ॥ १४ ॥
विधाय नृत्यगीतादि भक्ताः सुप्ताः क्षणे यदा । नैवेद्यं स तदाऽऽदातुं भर्गागारं विवेश ह ॥ १५ ॥
दीपं मन्दप्रभं दृष्ट्वा पक्वान्नवीक्षणाय सः । निजचैलाञ्चलाद् वर्तिं कृत्वा दीपं प्रकाश्य च ॥ १६ ॥
यज्ञदत्तात्मजः सोऽथ शिवनैवेद्यमादरात् । जग्राह सहसा प्रीत्या पक्वान्नं बहुशस्ततः ॥ १७ ॥
ततः पक्वान्नमादाय त्वरितं गच्छतो बहिः । तस्य पादतलाघातात् प्रसुप्तः कोऽप्यबुध्यत ॥ १८ ॥
कोऽयं कोऽयं त्वरापन्नो गृह्यतां गृह्यतामसौ । इति चुक्रोश स जनो गिरा भयमहोच्चया ॥ १९ ॥

पुरुष का योग करता रहता है ॥५॥ मैं भिक्षा मांगना भी नहीं जानता । और न तो यहाँ मेरे जान-पहचान का कोई है । मेरे पास कुछ धन भी नहीं है, अब मैं किसकी शरण जाऊँ । मेरी रक्षा कौन करेगा ॥ ६ ॥ मेरी माता सूर्योदय के पहले मुझे मिष्ठान्न दिया करती थी, अब किससे यहाँ माँगूँ, मेरी माता तो यहाँ नहीं है ॥ ७ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! इस प्रकार की अनेक चिन्ता करते हुए वृक्ष के नीचे बैठा हुआ वह ब्राह्मण कुमार बड़ा दुःखी हो गया । इधर सूर्य अस्ताचल को प्राप्त हो गये ॥ ८ ॥ इसी समय कोई शिव का भक्त शिव की पूजा करने के निमित्त पूजन की सामग्री लिये हुए नगर के बाहर उसी स्थान पर आया ॥ ९ ॥ उस दिन शिवरात्रि का व्रत किये हुए वह शिवभक्त नाना प्रकार के महादिव्य शिव-पूजन की सामग्री लेकर स्वजनों से युक्त हो शिव के पूजन के निमित्त वहाँ पहुँचा था ॥ १० ॥ शिवालय में प्रवेश कर उस शिव के अनन्य भक्त ने अत्यन्त प्रेमभक्ति से शिव की पूजा की ॥ ११ ॥ इधर पिता से परित्यक्त मातृहीन वह यज्ञदत्त का लड़का गुणनिधि दिनभर की भूख से छटपटा कर व्याकुल हो रहा था, पक्वान्न का गन्ध सूँघकर वह भी वहीं पहुँच गया ॥ १२ ॥ उसने विचार किया कि जब ये सभी शिवभक्त सो जायेंगे तो मैं शिवजी के ऊपर चढ़े हुए सारे पक्वान्न के नैवेद्य ले लूँगा ॥ १३ ॥ इसी प्रकार की आशा लगाकर वह शिवमन्दिर के द्वार पर बैठ गया । और उन शिवभक्तों के द्वारा की जानेवाली पूजा को देखने लगा ॥ १४ ॥ जब उस शिवरात्रि के दिन समस्त भक्तगण नृत्य-गीतादि महोत्सव समाप्त कर सो गये तब वह ब्राह्मण कुमार नैवेद्य लेने के लिए मन्दिर के भीतर घुस गया ॥ १५ ॥ सर्वप्रथम उसने दीपक के प्रकाश को मन्द देखकर पक्वान्न देखने के लिए अपने वस्त्र को फाड़कर उसकी बत्ती बना दीपक को अच्छी तरह जलाया ॥ १६ ॥

यज्ञदत्त का लड़का गुणनिधि शिव के लिए आदरपूर्वक प्रीति से चढ़ाये गये बहुत पक्वान्न युक्त नैवेद्य को सहसा ग्रहण कर लिया ॥ १७ ॥ फिर ज्यों ही पक्वान्न लिये हुए वह मन्दिर के बाहर शीघ्रता से जा रहा था कि उसके पैर की आहट से उसी समय कोई पुरुष जाग उठा ॥ १८॥ 'यह कौन है, यह कौन है, इसे पकड़ो, इसे पकड़ो' इस प्रकार के शब्द से वह भयभीत हो जोर-जोर से चिल्लाने लगा ॥१९॥ उसी

यावद् भयात् समागत्य तावत् स पुररक्षकैः । पलायमानो निहतः क्षणादन्धत्वमागतः ॥२०॥
अभक्षयच्च नैवेद्यं यज्ञदत्तात्मजो मुने ! । शिवानुग्रहतो नूनं भाविपुण्यबलाच्च सः ॥२१॥
अथ बद्धुः समागत्य पाशमुद्गरपाणिभिः । निनीषुभिः संयमनीं याम्यैः स विकटैर्भटैः ॥२२॥
तावत् पारिषदाः प्राप्ताः किङ्किणीजालमालिनः । दिव्यं विमानमादाय तं नेतुं शूलपाणयः ॥२३॥

शिवगणा ऊचु:

मुञ्चतैनं द्विजं याम्या गणाः परमधार्मिकम् । दण्डयोग्यो न विप्रोऽसौ दग्धसर्वाघसञ्चयः ॥२४॥
इत्याकर्ण्य वचस्ते हि यमराजगणास्ततः । महादेवगणानाहुर्बभूवुश्चकिता भृशम् ॥२५॥
शम्भोर्गणानथालोक्य भीतैस्तैर्यमकिङ्करैः । अवादि प्रणतैरित्थं दुर्वृत्तोऽयं गणा द्विजः ॥२६॥

यमगणा ऊचु:

कुलाचारं प्रतीर्य्यैष पित्रोर्वाक्यपराङ्मुखः । सत्य-शौच-परिभ्रष्टः सन्ध्या-स्नानविवर्जितः॥२७॥
आस्तां दूरेऽस्य कर्मान्यच्छिवनिर्माल्यलङ्घकः । प्रत्यक्षतोऽत्र वीक्षध्वमस्पृश्योऽयं भवादृशाम्॥२८॥
शिवनिर्माल्यभोक्तारः शिवनिर्माल्यलङ्घकाः । शिवनिर्माल्यदातारः स्पर्शस्तेषां ह्यपुण्यकृत्॥२९॥
विषमालोक्य वा पेयं श्रेयो वा स्पर्शनं परम् । सेवितव्यं शिवस्वं न प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥३०॥
यूयं प्रमाणं धर्मेषु यथा न च तथा वयम् । अस्ति चेद्धर्मलेशोऽस्य गणास्तं शृणु भो वयम्॥३१॥
इत्थं तद्वाक्यमाकर्ण्य याम्यानां शिवकिङ्कराः । स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं प्रोचुः पारिषदास्तु तान्॥३२॥

समय वह डरकर भाग रहा था कि पुररक्षकों ने उसे पकड़ लिया और इतना मारा कि वह तत्क्षण अन्धा हो कर मर गया ॥ २० ॥ हे मुने ! यज्ञदत्त के पुत्र उस गुणनिधि ने तव तक नैवेद्य भक्षण नहीं किया था, यह उसके भावी पुण्य का फल था और शिव का अनुग्रह था ॥२१॥ इतने में ही पाश, मुद्गर हाथ में लिये संयमनीपुरी के विकट यमदूत उसे लेने के लिए आये ॥ २२ ॥ और इधर किङ्कड़ीजालमण्डित दिव्य विमान लेकर हाथ में त्रिशूल धारण किये शिव के पार्षद भी वहाँ आ पहुँचे ॥ २३ ॥

शिवगणों ने कहा—हे यमराज के गणो ! इस धर्मात्मा को छोड़ दो, यह ब्राह्मण तुम्हारे दण्ड के योग्य नहीं है, क्योंकि इसके सभी पाप नष्ट हो चुके हैं ॥ २४ ॥ शिवगणों की बात सुनकर यमराज के दूत आश्चर्य में पड़कर महादेव के गणों से बोले- ॥२५॥ उस समय शिव के गणों को देख कर यमदूत भयभीत हो उन्हें प्रणाम करते हुए इस प्रकार कहने लगे—हे गणो ! यह ब्राह्मण तो बड़ा ही दुर्वृत्त है ॥ २६ ॥

यमगणों ने कहा—इस ब्राह्मण ने कुलाचार का सर्वदा उल्लङ्घन किया है, इसने कभी भी अपने माता तथा पिता की आज्ञा नहीं मानी है, यह सत्यशौच से हीन तथा स्नान-सन्ध्यादि नित्यकर्मों से वर्जित रहा है ॥२७॥ इसके और कर्मों का विचार छोड़ भी दिया जाये तो भी इसने शिव-निर्माल्य की चोरी की है। आप लोग इसके कर्म को प्रत्यक्ष देख भी रहे हैं। बहुत क्या कहें, यह आप सरीखों के स्पर्श के योग्य भी नहीं है ॥ २८ ॥ शिवनिर्माल्य को खानेवाले एवं उसका उल्लङ्घन करनेवाले तथा शिव-निर्माल्य को देने वालों का स्पर्श भी पापजनक है ॥ २९ ॥ विष को जान-बूझकर पी लेना अच्छा है, अस्पर्श का स्पर्श भी श्रेयस्कर है किन्तु कण्ठगत प्राण होने पर भी शिवनिर्माल्य का सेवन अच्छा नहीं है ॥ ३० ॥ ऐसे तो धर्म में जिस प्रकार आपलोग प्रमाण हैं वैसे हम लोगों की प्रामाणिकता नहीं है। अतः हे गणो ! यदि इस व्यक्ति में धर्म का लेशमात्र भी हो तो हम लोग उसे आप के द्वारा सुनना चाहते हैं ॥ ३१ ॥ शिव के गण यमदूतों की बात को सुनकर शिवजी के चरण-कमलों का स्मरण करते हुए उनसे बोले ॥ ३२ ॥

शिवकिङ्करा ऊचुः

किङ्कराः शिवधर्मा ये सूक्ष्मास्ते तु भवादृशैः। स्थूललक्ष्यैः कथं लक्ष्या लक्ष्या ये सूक्ष्मदृष्टिभिः ॥३३॥
अनेनाऽनेन सा कर्म यत्कृतं श्रृणुतेह तत्। यज्ञदत्तात्मजेनाथ सावधानतया गणाः ॥३४॥
पतन्ती लिङ्गशिरसि दीपच्छाया निवारिता। स्वचैलाञ्चलतोऽनेन दत्त्वा दीपदशां निशि ॥३५॥
अपरोऽपि परो धर्मो जातस्तत्राऽस्य किङ्कराः। श्रृण्वतः शिवनामानि प्रसङ्गादपि गृह्णताम् ॥३६॥
भक्तेन विधिना पूजा क्रियमाणा निरीक्षिता। उपोषितेन भूतायामनेन स्थितचेतसा ॥३७॥
शिवलोकमयं ह्यद्य गन्तास्माभिः सहैव तु। कञ्चित्कालं महाभोगान् करिष्यति शिवानुगः॥३८॥
कलिङ्गराजो भविता ततो निर्धूतकल्मषः। एष द्विजवरो नूनं शिवप्रियतरो यतः ॥३९॥
अन्यत् किञ्चिन्न वक्तव्यं यूयं यात यथागतम्। यमदूताः स्वलोकं तु सुप्रसन्नेन चेतसा ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां यमदूता मुनीश्वर!। यथागतं ययुः सर्वे यमलोकं पराङ्मुखाः ॥४१॥
सर्वं निवेदयामासुः शमनाय गणा मुने!। तद्वृत्तमादितः प्रोक्तं शम्भुदूतैश्च धर्मतः ॥४२॥

धर्मराज उवाच

सर्वे श्रृणुत मद्वाक्यं सावधानतया गणाः। तदेव प्रीत्या कुरुत मच्छासनपुरःसरम् ॥४३॥
ये त्रिपुण्ड्रधरा लोके विभूत्या सितया गणाः। ते सर्वे परिहर्तव्या नानेतव्याः कदाचन ॥४४॥
उद्धूलनकरा ये हि विभूत्या सितया गणाः। ते सर्वे परिहर्तव्या नानेतव्याः कदाचन ॥४५॥
शिववेषतया लोके येन केनापि हेतुना। ते सर्वे परिहर्तव्या नानेतव्या कदाचन ॥४६॥
ये रुद्राक्षधरा लोके जटाधारिण एव ये। ते सर्वे परिहर्तव्या नानेतव्याः कदाचन ॥४७॥

शिवजी के गण बोले—हे यमकिङ्करो! सूक्ष्म गति वाले शिवधर्म को आप जैसे स्थूल लक्ष्यवाले यमदूत किस प्रकार जान सकते हैं, उसे तो सूक्ष्म दृष्टिवाले लोग ही जान सकते हैं ॥ ३३ ॥ हे गणो! इस यज्ञदत्त के पुत्र गुणनिधि ने जो-जो पुण्य कर्म किये हैं उन्हें सावधानी से सुनो ॥ ३४ ॥ इसने शिवलिङ्ग पर पड़ने वाली दीपच्छाया को दूर किया। अपने वस्त्र के द्वारा बत्ती बनाकर रात्रि में दीपक जलाकर उस शिवलिङ्ग पर प्रकाश किया ॥ ३५ ॥ यह उसका दूसरा पुण्य हुआ। इसने शिवपूजा के बहाने शिवनाम ग्रहण करनेवालों के मुख से शिवनाम का श्रवण किया ॥ ३६ ॥ शिवभक्तों के द्वारा की जानेवाली पूजा को उपवास करते हुए स्थिर-चित्त से देखा ॥३७॥ इन पुण्यों के प्रभाव से अब यह ब्राह्मण कुमार हमलोगों के साथ शिवलोक को जायेगा। वहाँ जाकर शिव-का अनुगामी हो कुछ काल तक उत्तम भोग प्राप्त करेगा ॥ ३८ ॥ फिर पापरहित हो यह कलिङ्ग देश का राजा होगा। अवश्य ही यह ब्राह्मण कुमार शिव का प्यारा बन गया है ॥ ३९ ॥ अब तुमलोग मुझसे कुछ मत कहो, जहाँ से आये हो वहीं चले जाओ। तब यम के दूत प्रसन्नचित्त हो अपने लोक को चले गये ॥ ४० ॥

ब्रह्मा ने कहा—हे नारद! शिवगणों की बात सुनकर यमराज के दूत पराङ्मुख हो कर जहाँ से आये थे उसी अपने यमलोक में चले गये ॥ ४१ ॥ उन्होंने जाकर सारा वृत्तान्त यमराज से निवेदन किया। इधर शिवदूतों ने भी जाकर आदि से सारा वृत्तान्त शिव से कह दिया ॥ ४२ ॥

धर्मराज ने कहा—हे गणो! सावधानी से तुमलोग मेरी बात सुनो और मैं जैसा कह रहा हूँ, प्रेमपूर्वक वैसा करना यही मेरी आज्ञा है ॥ ४३ ॥ हे गणो! इस संसार में जो श्वेत विभूति से त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, तुमलोग उन्हें छोड़ देना, उन्हें हमारे पास कभी मत लाना ॥४४॥ हे गणो! जो श्वेत विभूति से उद्धूलन (सूखी विभूति से अङ्ग में लेप) करते हैं, उन्हें छोड़ देना, मेरे लोक में उन्हें कभी मत लाना ॥४५॥ चाहे जिस-किसी भी कारण से जो शिव का वेष धारण करनेवाले हैं, उन्हें छोड़ देना, उनको कभी हमारे पास मत लाना ॥४६॥ हे गणो! जो रुद्राक्ष धारण करते हैं अथवा जटामण्डल धारण करते हैं, उन्हें छोड़

उपजीवनहेतोश्च शिववेषधरा हि ये। ते सर्वे परिहर्तव्या नानेतव्याः कदाचन ॥४८॥
दम्भेनापि छलेनापि शिववेषधरा हि ये। ते सर्वे परिहर्तव्या नानेतव्याः कदाचन ॥४९॥
एवमाज्ञापयामास स यमो निजकिङ्करान्। तथेति मत्वा ते सर्वे तूष्णीमासच्छुचिस्मिताः ॥५०॥

ब्रह्मोवाच

पार्षदैर्यमदूतेभ्यो मोचितस्त्विति स द्विजः। शिवलोकं जगामाशु तैर्गणैः शुचिमानसः ॥५१॥
तत्र भुक्त्वाऽखिलान् भोगान् संसेव्य च शिवाशिवौ। अरिन्दमस्य तनयः कलिङ्गाधिपतेरभूत् ॥५२॥
दम इत्यभिधानोऽभूच्छिन्नसेवापरायणः। बालोऽपि शिशुभिः सार्कं शिवभक्तिं चकार सः ॥५३॥
क्रमाद्राज्यमवापाऽथ पितर्य्युपरते युवा। प्रीत्या प्रवर्तयामास शिवधर्मांश्च सर्वशः ॥५४॥
नाऽन्यं धर्मं स जानाति दुर्दमो भूपतिर्दमः। शिवालयेषु सर्वेषु दीपदानादृते द्विजः ॥५५॥
ग्रामाधीशान् समाहूय सर्वान् स विषयस्थितान्। इत्थमाज्ञापयामास दीपा देयाः शिवालये ॥५६॥
अन्यथा सत्यमेवेदं स मे दण्ड्यो भविष्यति। दीपदानाच्छिवस्तुष्टो भवतीति श्रुतीरितम् ॥५७॥
यस्य यस्याभितो ग्रामं यावन्तश्च शिवालयाः। तत्र तत्र सदा दीपो द्योतनीयोऽविचारितम् ॥५८॥
ममाज्ञाभङ्गदोषेण शिरश्छेत्स्याम्यसंशयम्। इति तद्भयतो दीपा दीप्ताः प्रतिशिवालयम् ॥५९॥
अनेनैव स धर्मेण यावज्जीवं दमो नृपः। धर्मर्द्धिं महतीं प्राप्य कालधर्मवशं गतः ॥६०॥
स दीपवासनायोगाद् बहून् दीपान् प्रदीप्य वै। अलकायाः पतिरभूद्रत्नदीपशिखाश्रयः ॥६१॥
एवं फलति कालेन शिवेऽल्पमपि यत्कृतम्। इति ज्ञात्वा शिवे कार्यं भजनं सुसुखार्थिभिः ॥६२॥

(देना मेरे पास कदापि मत लाना ॥ ४७ ॥ जो जीविका के निमित्त भी शिव-वेष धारण करने वाले हैं उनको भी छोड़ देना मेरे पास मत ले आना ॥ ४८ ॥ जो दम्भ अथवा छल से भी शिव-वेष धारण करने वाले हैं, उन्हें भी छोड़ देना मेरे पास न लाना ॥ ४९ ॥ इस प्रकार यम ने अपने दूतों को समझाया, वे लोग भी 'तथास्तु' कहकर मन्द-मन्द हँसते हुए चुप हो गये ॥ ५० ॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार शिव के पार्षदों ने उस ब्राह्मण को यमदूतों से छुड़ा लिया। वह ब्राह्मण प्रसन्नचित्त हो उन शिवगणों के साथ शिवलोक चला गया ॥ ५१ ॥ वहाँ अनेक प्रकार के भोगों को भोग कर और शिव-पार्वती की सेवाकर कलिङ्ग देश के राजा अरिन्दम का पुत्र हुआ ॥ ५२ ॥ उसका नाम दम हुआ और वह शिव की आराधना में तत्पर रहने लगा। वह बाल्यावस्था में ही लड़कों के साथ शिव की भक्ति करने लगा ॥ ५३ ॥ पिता के उपरत हो जाने के उपरान्त उसने युवावस्था में राज्य प्राप्त किया। और उसने बड़े उत्साह के साथ चारों ओर शिवधर्म का प्रचार तथा प्रसार किया ॥ ५४ ॥ शत्रुओं से अजेय वह दम शिवधर्म को छोड़कर और धर्म नहीं जानता था ॥ ५५ ॥ उसने जिन-जिन शिवालयों को दीपदान से रिक्त देखा वहाँ-वहाँ के ग्रामाधीशों को बुलाकर आज्ञा दी कि तुमलोग शिवालय में दीपदान करो ॥५६॥ मैं यह सत्य कहता हूँ, जो ऐसा नहीं करेगा उसे मैं अवश्य दण्ड दूँगा। वेदों में कहा गया है कि दीपदान से भगवान् शिव अत्यधिक सन्तुष्ट होते हैं ॥५७॥ जिस-जिस गाँव के चारों ओर जितने भी शिवालय हैं वहाँ विना बिचारे दीपदान अवश्य करना चाहिए ॥ ५८ ॥ जो कोई मेरी इस आज्ञा का उल्लङ्घन करेगा मैं उसका शिरश्छेदन करूँगा। इस प्रकार उस राजा के भय से सभी शिवालयों में दीपदान होने लगा ॥ ५९ ॥ इस धर्म के राजा दम महान् समृद्धि को प्राप्तकर पश्चात् कालधर्म से युक्त हो गया ॥ ६० ॥ वह इन्हीं दीप-वासना से युक्त होकर अनेक दीपों को शिवालय में जलाने के कारण रत्नों के दीपों की शिखा का आश्रय करनेवाला अलकापुरी का पति कुबेर हुआ ॥ ६१ ॥ इस प्रकार शिव के उद्देश्य से किया गया थोड़ा भी धर्म समय पाकर बहुत फलवान् होता है, अतः सुख की इच्छा करनेवालों

क स दीक्षितदायादः सर्वधर्मारतिः सदा । शिवालये दैवयोगाद्यातश्चोरयितुं वसु ॥
स्वार्थदीप-दशोद्योत-लिङ्गमौलि-तमोहरः ॥६३॥
कलिङ्गविषये राज्यं प्राप्तो धर्मरतिं सदा । शिवालये समुद्दीप्य दीपान् प्राग्वासनोदयात् ॥६४॥
क्वैषा दिक्पालपदवी मुनीश्वर ! विलोकय । मनुष्यधर्मिणाऽनेन साम्प्रतं येह भुज्यते ॥६५॥
इति प्रोक्तं गुणनिधेर्यज्ञदत्तात्मजस्य हि । चरितं शिवसन्तोषं शृण्वतां सर्वकामदम् ॥६६॥
सर्वदैव शिवेनाऽसौ सखित्वं च यथेयिवान् । तदप्येकमना भूत्वा शृणु तात ! ब्रवीमि ते ॥६७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्टयुपाख्याने कैलाशगमनोपाख्याने गुणनिधिसद्गतिवर्णनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

(कुबेर को यक्षपति होना एवं समस्त ऐश्वर्य-प्राप्ति वर्णन)

ब्रह्मोवाच

पाद्मे कल्पे मम पुरा ब्रह्मणो मानसात् सुतात् । पुलस्त्याद् विश्रवा जज्ञे तस्य वैश्रवणः सुतः ॥ १ ॥
तेनेयमलका भुक्ता पुरी विश्वकृता कृता । आराध्य त्र्यम्बकं देवमत्युग्रतपसा पुरा ॥ २ ॥
व्यतीते तत्र कल्पे वै प्रवृत्ते मेघवाहने । याज्ञदत्तिरसौ श्रीदस्तपस्तेपे सुदुःसहम् ॥ ३ ॥
भक्तिप्रभावं विज्ञाय शम्भोस्तद्दीपमात्रतः । पुरा पुरारेः सम्प्राप्य काशिकां चित्प्रकाशिकाम् ॥ ४ ॥
शिवैकादशमुद्बोध्य चित्तरत्नप्रदीपकैः । अनन्यभक्तिस्नेहाढ्यस्तन्मयो ध्याननिश्चलः ॥ ५ ॥
शिवैक्यं सुमहापात्रं तपोऽग्निपरिबृंहितम् । काम-क्रोधमहाविघ्न-पतङ्गाघात-वर्जितम् ॥ ६ ॥

को शिव की सेवा अवश्य करनी चाहिए ॥ ६२ ॥ हे मुनीश्वर ! देखिए, सर्वधर्म से रहित यज्ञदत्त का पुत्र, जो दैवयोग से धन चुराने के लिए गया था, वह कहाँ और स्वार्थ-सिद्धि के लिए बत्ती का प्रकाश कर शिव के मस्तक का अन्धकार दूर करने वाला उसका पुण्य कहाँ, जिसके प्रभाव से कलिङ्गदेश का राजा बन कर शिवधर्म से उसके प्रेम करने की बात कहाँ और मनुष्य जन्म में जन्म लेकर शिवदीप की वासना से वासितान्तःकरण होने के कारण शिवालयों में दीप जलाकर उसे प्राप्त हुई कुबेर–जैसे दिक्पाल की पदवी कहाँ ? जिसे आज भी वह अलकापुरी का राज्य करते हुए भोग रहा है ॥ ६३-६५ ॥ हे नारद ! मैंने यज्ञदत्त के पुत्र गुणनिधि का शिव-सन्तोषकारक सारा चरित्र सुना दिया। जिसके सुनने मात्र से मनुष्य की सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं ॥ ६६ ॥ यही गुणनिधि कुबेर बनने के पश्चात् जिस प्रकार से शिव की मित्रता को प्राप्त हुआ उसे अब मैं कहता हूँ, हे तात ! सुनो ॥ ६७ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के प्रथम-सृष्टिखण्ड में गुणनिधिसद्गतिवर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥

*

ब्रह्मा बोले—हे नारद ! पद्मकल्प में मेरे मानस पुत्र पुलस्त्य से विश्रवा का जन्म हुआ, उसी विश्रवा से उसे वैश्रवण नामक पुत्र का जन्म हुआ ॥ १ ॥ जिन्होंने विश्वकर्मा द्वारा निर्मित अलकापुरी का उपभोग किया। और अपनी महती तपस्या से शिव को सन्तुष्ट किया ॥ २ ॥ पद्मकल्प के बीत जाने पर जब मेघवाहन कल्प का प्रारम्भ हुआ तब यज्ञदत्त के पुत्र गुणनिधि ने, जो आगे चलकर कुबेर बना, बहुत बड़ा तप किया ॥३॥ केवल दीपदान मात्र से शिवजी की भक्ति का प्रभाव जानकर वह चित्शक्ति को प्रकाशित करने वाली भगवान् सदाशिव की नगरी काशी को प्राप्त किया। तथा चित्तरूपी रत्नदीप से एकादश शिव को प्रकाशित कर अनन्यभक्ति तथा स्नेह से तन्मय होकर वह शिव का ध्यान करने लगा ॥ ४-५ ॥ उस चित्तरत्नप्रदीप का शिवाशिव की अभिन्नता ही महापाप था। वह रत्नप्रदीप तपरूपी

प्राणसंरोधनिर्वातं निर्मलं निर्मलेक्षणात् । संस्थाप्य शाम्भवं लिङ्गं सद्भावकुसुमार्चितम् ॥ ७ ॥
तावत्तताप स तपस्त्वगस्थि-परिशेषितम् । यावद् बभूव तद्वर्ष्म वर्षाणामयुतं शतम् ॥ ८ ॥
ततः सह विशालाक्ष्या देवो विश्वेश्वरः स्वयम् । अलकापतिमालोक्य प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ ९ ॥
लिङ्गे मनः समाधाय स्थितं स्थाणुस्वरूपिणम् । उवाच वरदोऽस्मीति तदाचक्ष्वालकापते ! ॥१०॥
उन्मील्य नयने यावत् स पश्यति तपोधनः । तावदुद्यत्-सहस्रांशु-सहस्राधिक-तेजसम् ॥११॥
पुरो ददर्श श्रीकण्ठं चन्द्रचूडमुमाधवम् । तत्तेजः परिभूताक्षितेजाः सम्मील्य लोचने ॥१२॥
उवाच देवदेवेशं मनोरथपदातिगम् । निजाङ्घ्रिदर्शने नाथ ! दृक्सामर्थ्यं प्रयच्छ मे ॥१३॥
अयमेव वरो नाथ ! यत्त्वं साक्षान्निरीक्ष्यसे । किमन्येन वरेणेश ! नमस्ते शशिशेखर ! ॥१४॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा देवदेव उमापतिः । ददौ दर्शनसामर्थ्यं स्पृष्ट्वा पाणितलेन तम् ॥१५॥
प्रसार्य नयने पूर्वमुमामेव व्यलोकयत् । ततोऽसौ याज्ञदत्तिस्तु तत्सामर्थ्यमवाप्य च ॥१६॥
शम्भोः समीपे का योषिदेषा सर्वाङ्गसुन्दरी । अनया किं तपस्तप्तं ममाऽपि तपसोऽधिकम् ॥१७॥
अहो रूपमहो प्रेम सौभाग्यं श्रीरहो भृशम् । इत्यवादीदसौ पुत्रो मुहुर्मुहुरतीव हि ॥१८॥
क्रूरदृग्वीक्षते यावत् पुनः पुनरिदं वदन् । तावत् पुस्फोट तन्नेत्रं वामं वामाविलोकनात् ॥१९॥
अथ देव्यब्रवीद् देवं किमसौ दुष्टतापसः । असकृद् वीक्ष्य मां वक्ति कुरु त्वं मे तपःप्रभाम् ॥२०॥
असकृद् दक्षिणेनाक्ष्णा पुनर्मामेव पश्यति । असूयमानो मे रूपप्रेमसौभाग्यसम्पदः ॥२१॥
इति देवीगिरं श्रुत्वा प्रहस्य प्राह तां प्रभुः । उमे ! त्वदीयः पुत्रोऽयं न च क्रूरेण चक्षुषा ॥२२॥
संपश्यति तपोलक्ष्मीं तव किं त्वधिवर्णयेत् । इति देवीं समाभाष्य तमीशः पुनरब्रवीत् ॥२३॥

अग्नि से निरन्तर जल रहा था । काम-क्रोधरूपी महाविघ्नों के पतङ्ग से वर्जित था, प्राणों के संरोध के कारण वह निर्वात था और निर्मल ज्ञान के प्रकाश से वह सर्वथा प्रकाशित हो रहा था । कुबेर ने शिवजी के लिङ्ग की स्थापना कर सद्भावरूपी पुष्पों से उसका पूजन किया ॥ ६-७ ॥ फिर दस हजार वर्ष तक इतनी घोर-तपस्या की कि उसका शरीर त्वग् एवं अस्थिमात्र शेष रह गया ॥ ८ ॥

तपस्या से प्रसन्न हुए सदाशिव भगवती विशालाक्षी के साथ शिवलिङ्ग में समाहित मन्त्र से स्थाणु की तरह सर्वथा निश्चल अलकापति को देखकर उनके सामने प्रगट हो कर बोले—हे अलकाधिपते ! मैं वर देने के लिए आया हूँ, तुम मुझसे वर माँगो ॥९-१०॥ ज्यों ही उस महातपस्वी ने नेत्र खोलकर देखा तो सामने उदय होते हुए सहस्रों सूर्य के समान महातेजस्वी चन्द्रचूड श्रीकण्ठ उमापति महादेव दिखाई पड़े । उनके तेज से तिरस्कृत होने के कारण उस अलकापति की आँखें चकाचौंध में पड़ गयीं ॥११-१२॥ उन्होंने मन से अगोचर देवदेवेश सदाशिव से कहा—हे नाथ ! आपके चरण-कमलों के दर्शन का सामर्थ्य मुझे प्राप्त हो ॥१३॥ हे शशिशेखर ! मुझे अन्य वर की अपेक्षा नहीं है, आपको मेरा नमस्कार है ॥१४॥ अलकापति के वचनों को सुनकर देवदेव उमापति ने उसे अपने पाणितल से स्पर्श किया तथा अपने दर्शन का सामर्थ्य प्रदान किया ॥ १५ ॥ इस प्रकार उस यज्ञदत्त के पुत्र गुणनिधि ने दर्शन का सामर्थ्य प्राप्तकर सर्व-प्रथम आँख फैलाकर भगवती पार्वती का दर्शन किया ॥१६॥ उन्हें देखते ही वह विचार करने लगा कि यह सर्वाङ्ग-सुन्दरी कौन सी देवी है, जो शिव के समीप में निवास करती है । इसने कौन सा तप किया है, क्या इसने मुझसे भी विशेष तप किया है ॥१७॥ अहो ! इसका रूप, प्रेम-सौभाग्य तथा अपूर्व आश्चर्यकारी लावण्य धन्य है । वह पुत्र की दृष्टि से बारम्बार आश्चर्य में पड़कर इस प्रकार कहने लगा ॥ १८ ॥ ऐसा कहते हुए उसने ईर्ष्या के वशीभूत होकर क्रूर दृष्टि से ज्यों ही भगवती पार्वती को बारम्बार देखना प्रारम्भ किया कि उन्हें देखते ही उसका बाँयाँ नेत्र फूट गया ॥१९॥ तब देवी ने शङ्कर से कहा—यह दुष्ट कौन तपस्वी है, जो मुझे देखकर बारम्बार कहता है कि तुम मेरी तपस्या को और उद्भासित करो ॥२०॥ यह अपने दाहिने नेत्र से मेरी ओर बारम्बार देखता है और मेरे रूप, प्रेम तथा सौभाग्य-सम्पत्ति से ईर्ष्या करता है ॥ २१ ॥

देवी के वचन सुनकर शिवजी हँसते हुए कहने लगे—हे उमे ! यह तुम्हारा पुत्र है, तुम्हें क्रूर दृष्टि से नहीं देखता ॥ २२ ॥ किन्तु तुम्हारी तपोलक्ष्मी को निहार रहा है, जिसका वर्णन करना इसके लिए

वरान् ददामि ते वत्स ! तपसाऽनेन तोषितः । निधीनामथ नाथस्त्वं गुह्यकानां भवेश्वरः ॥२४॥
यक्षाणां किन्नराणां च राज्ञां राजा च सुव्रतः । पतिः पुण्यजनानां च सर्वेषां धनदो भव ॥२५॥
मया सख्यं च ते नित्यं वत्स्यामि च तवान्तिके । अलकां निकषा मित्र ! तव प्रीतिविवृद्धये ॥२६॥
आगच्छ पादयोरस्याः पत ते जननी त्वियम् । यज्ञदत्ते महाभक्त ! सुप्रसन्नेन चेतसा ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

इति दत्त्वा वरान् देवः पुनराह शिवां शिवः । प्रसादं कुरु देवेशि ! तपस्विन्यङ्गजेऽत्र वै ॥२८॥
इत्याकर्ण्य वचः शम्भोः पार्वती जगदम्बिका । अब्रवीद्यज्ञदत्तं सुप्रसन्नेन चेतसा ॥२९॥

देव्युवाच

वत्स ! ते निर्मला भक्तिर्भवे भवतु सर्वदा । भवैकपिङ्गो नेत्रेण वामेन स्फुटितेन ह ॥३०॥
देवेन दत्ता ये तुभ्यं वराः सन्तु तथैव ते । कुबेरो भव नाम्ना त्वं मम रूपेर्ष्यया सुत ! ॥३१॥
इति दत्त्वा वरान् देवो देव्या सह महेश्वरः । धनदायाविवेशाथ धाम वैश्वेश्वराभिधम् ॥३२॥
इत्थं सखित्वं श्रीशम्भोः प्रापैष धनदः पुरम् । अलकानिकषा चासीत् कैलासः शङ्करालयः ॥३३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे कैलासगमनोपाख्याने कुबेरस्य शिवमित्रत्ववर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः

(कुबेर का कैलासगमन एवं शिव के साथ मित्रता)

ब्रह्मोवाच

नारद ! त्वं शृणु मुने ! शिवागमनमुत्तमम् । कैलासे पर्वतश्रेष्ठे कुबेरस्य तपोबलात् ॥ १ ॥
निधिपत्ववरं दत्त्वा गत्वा स्वस्थानमुत्तमम् । विचिन्त्य हृदि विश्वेशः कुबेरवरदायकः ॥ २ ॥
विध्यङ्गजः स्वरूपो मे पूर्णः प्रलयकार्यकृत् । तद्रूपेण गमिष्यामि कैलासगुह्यकालयम् ॥ ३ ॥

सर्वथा असम्भव है। इस प्रकार देवी से कहकर शङ्कर उस तपस्वी से कहने लगे ॥ २३ ॥ हे वत्स ! तुम्हारी इस तपस्या से प्रसन्न होकर तुम्हें यह वर देता हूँ कि निधियों के नाथ तथा गुह्यकों के अधिपति होगे ॥ २४ ॥ इतना ही नहीं, तुम 'यक्ष, किन्नर एवं राजाओं के भी राजा होओगे। तुम सभी पुण्यजनों के पति तथा सबको धन देने वाले रहोगे ॥ २५ ॥ मैं तुमसे मित्रता कर सदैव तुम्हारे पास निवास करूँगा। और हे मित्र ! तुम्हारी प्रीति के निमित्त सदैव मैं इस अलकापुरी के पास ही रहूँगा ॥ २६ ॥ हे यज्ञदत्त के पुत्र ! यहाँ आओ, यह तेरी माता है, हे महाभक्त ! तू इनके चरणों में प्रणाम कर' ॥ २७ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार उसे वरदान देकर शिव जी पार्वती से बोले—हे देवेशि ! तुम अपने इस पुत्र पर प्रसन्न हो ॥ २८ ॥ शिव जी का वचन सुनकर भगवती पार्वती प्रसन्नचित्त से उस यज्ञदत्त के पुत्र से बोलीं ॥ २९ ॥

देवी बोलीं—हे वत्स ! सदाशिव में तुम्हारी निर्मल भक्ति हो। बायें नेत्र के फूट जाने से तुम एकपिङ्ग नाम के यक्षेश्वर कहे जाओगे ॥३०॥ देवदेव महेश्वर ने जो वर तुम्हें दिये हैं वे वर ठीक उसी प्रकार रहेंगे। हे पुत्र ! मेरा रूप देखकर जो तुमने ईर्ष्या की है, उससे तुम्हारा नाम कुबेर होगा ॥३१॥ इस प्रकार देवदेव महेश्वर देवी के साथ कुबेर को वरदान देकर अपने काशीधाम को चले गये ॥ ३२ ॥ इस प्रकार कुबेर की शङ्कर से मित्रता हुई। और अलकापुरी के निकट ही शङ्कर का कैलास नामक स्थान हुआ ॥३३॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के प्रथम-सृष्टिखण्ड में कैलासगमनोपाख्यान में कुबेर-शिव की मित्रतावर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! अब तुम जिस प्रकार कुबेर के तपोबन से भगवान् शङ्कर पर्वत-श्रेष्ठ कैलास पर निवास करने के लिए गये, उस वृत्तान्त को सुनो ॥ १ ॥ कुबेर के वरदाता भगवान् शङ्कर उन्हें निधियों के रक्षा का वरदान देकर अपने श्रेष्ठ स्थान में जाकर विचार करने लगे ॥ २ ॥ ब्रह्मा के नेत्रबिन्दु से उत्पन्न हुआ यह मेरा रुद्रात्मक शरीर पूर्णरूपेण प्रलय कार्य करनेवाला है, अतः मैं उसी

रुद्रो हृदयजो मे हि पूर्णांशो ब्रह्मनिष्फलः । हरिब्रह्मादिभिः सेव्यो मदभिन्नो निरञ्जनः ॥ ४ ॥
तत्स्वरूपेण तत्रैव सुहृन् भूत्वा विलास्यहम् । कुबेरस्य च वत्स्यामि करिष्यामि तपो महत् ॥ ५ ॥
इति सञ्चिन्त्य रुद्रोऽसौ शिवेच्छां गन्तुमुत्सुकः । ननाद तत्र ढक्काः स्वां सुगतिं नादरूपिणीम् ॥ ६ ॥
त्रैलोक्यामानसे तस्या ध्वनिरुत्साहकारकः । आह्वानगतिसंयुक्तो विचित्रः सान्द्रशब्दकः ॥ ७ ॥
तच्छ्रुत्वा विष्णुब्रह्माद्याः सुराश्च मुनयस्तथा । आगमा निगमा मूर्ताः सिद्धा जग्मुश्च तत्र वै ॥ ८ ॥
सुराऽसुराद्याः सकलास्तत्र जग्मुश्च सोत्सवाः । सर्वेऽपि प्रमथा जग्मुर्यत्र कुत्रापि संस्थिताः ॥ ९ ॥
गणपाश्च महाभागाः सर्वलोकनमस्कृताः । तेषां सङ्ख्यामहं वच्मि सावधानतया शृणु ॥१०॥
अभ्ययाच्छङ्कर्णश्च गणकोटया गणेश्वरः । दशभिः केकराक्षश्च विकृतोऽष्टाभिरेव च ॥११॥
चतुःषष्ट्या विशाखश्च नवभिः पारियात्रकः । षड्भिः सर्वान्तकः श्रीमान् दुन्दुभोऽष्टाभिरेव च ॥१२॥
जालङ्को हि द्वादशभिः कोटिभिर्गणपुङ्गवः । सप्तभिः समदः श्रीमांस्तथैव विकृताननः ॥१३॥
पञ्चभिश्च कपाली हि षड्भिः सन्दारकः शुभः । कोटिकोटिभिरेवेह कण्डुकः कुण्डकस्तथा ॥१४॥
विष्टम्भोऽष्टाभिरगमदष्टभिश्चन्द्रतापनः ॥१५॥
महाकेशः सहस्रेण कोटीनां गणपो वृतः ॥१६॥
कुण्डी द्वादशभिर्वाहस्तथा पर्वतकः शुभः । कालश्च कालकश्चैव महाकालः शतेन वै ॥१७॥
अग्निकः शतकोटया वै कोटयाभिमुख एव च । आदित्यमूर्द्धा कोटया च तथा चैव धनावहः ॥१८॥
सन्नाहश्च शतेनैव कुमुदः कोटिभिस्तथा । अमोघः कोकिलश्चैव कोटिकोटया सुमन्त्रकः ॥१९॥

रुद्र रूप से गुह्यकों के निवासभूत कैलास को जाऊँगा ॥ ३ ॥ ये पूर्णांश रुद्र मेरे हृदय से प्रकट हुए हैं, जो सर्वथा निष्फल एवं निरञ्जन मुझसे अभिन्न हैं। एवं ब्रह्मा तथा विष्णु से सर्वथा सेवनीय हैं ॥ ४ ॥ अतः मैं उसी रूप से कुबेर का मित्र बनकर कैलास पर निवास करता हुआ महान् तप करूँगा ॥ ५ ॥ सदाशिव की इस प्रकार की इच्छा जानकर वह रुद्र वहाँ जाने की उत्कण्ठा से मोक्ष प्रदान करनेवाली नादरूपिणी अपनी ढक्का (डमरू) को बजाने लगे ॥ ६ ॥ उस डमरू के उत्साहकारक ध्वनि से सारा त्रैलोक्य व्याप्त हो उठा। उस डमरू का वह शब्द ललकारने वाला तथा महान् गम्भीर था ॥ ७ ॥ इस शब्द को सुनते ही ब्रह्मा, विष्णु, देवता, मुनि तथा मूर्ति धारण किये हुए समस्त आगम (मन्त्रशास्त्र), निगम (वेद) एवं सिद्ध उस स्थान पर एकत्रित हो गये ॥ ८ ॥ सभी देवता, राक्षस बड़े हर्ष के साथ वहाँ गये, जहाँ-कहीं प्रमथगण निवास करते थे। वे सभी महान् ऐश्वर्यशाली एवं सर्वलोक-नमस्कृत सभी गणेश्वर भी उसी स्थान पर जाने को उद्यत हो गये। हे नारद ! उनकी संख्या मैं कहता हूँ, तुम सावधानी से सुनो ॥९-१०॥

शङ्कुकर्ण नाम का गणेश्वर एक करोड़ गणों के साथ, केकराक्ष दश करोड़ गणों के साथ एवं विकृत नाम का गणेश्वर आठ करोड़ गणों को लेकर एकत्रित हुआ ॥ ११ ॥ विशाख नाम का गणेश्वर चौंसठ करोड़ गणों के साथ तथा पारियात्रक नव करोड़ गणों के साथ, सर्वान्तक छह करोड़ गणों के साथ, दुन्दुभ नाम का गणेश्वर अपने आठ करोड़ गणों के साथ वहाँ आया ॥ १२ ॥ जालङ्क नामक गणेश्वर बारह करोड़ गणों के साथ, इसी प्रकार समद तथा विकृतानन नाम का गणेश्वर सात-सात करोड़ गणों के साथ वहाँ जाने को उद्यत हुए ॥१३॥ कपाली गणेश्वर अपने पाँच करोड़ गणों के साथ तथा सन्दारक छह करोड़ गणों के साथ, कण्डुक तथा कुण्डक करोड़-करोड़ गणों के साथ जाने को एकत्रित हुए ॥ १४ ॥ विष्टम्भ तथा चन्द्रतापन नाम के गणेश्वर आठ-आठ करोड़ गणों के साथ जाने को उद्यत हुए ॥ १५ ॥ महाकेश सहस्र कोटि गणों के साथ वहाँ आया ॥ १६ ॥ कुण्डी, वाह, श्रेष्ठ पर्वतक, काल, कालक तथा महाकाल सौ करोड़ गणों के साथ कैलास जाने के लिए आया ॥ १७ ॥ अग्निक सौ करोड़, अभिमुख एक करोड़ इसी प्रकार आदित्य, मूर्धा तथा धनावह एक-एक करोड़ गणों के साथ कैलास जाने के लिए वहाँ आये ॥ १८ ॥ सन्नाह सौ करोड़, कुमुद करोड़ गणों के साथ अमोघ, कोकिल तथा सुमन्त्र एक-एक करोड़

काकपादोऽपरः षष्ट्या षष्ट्या सन्तानकः प्रभुः । महाबलश्च नवभिर्मधुपिङ्गश्च पिङ्गलः ॥२०॥
नीलो नवत्या देवेशं पूर्णभद्रस्तथैव च । कोटीनां चैव सप्तानां चतुर्वक्त्रो महाबलः ॥२१॥
कोटिकोटिसहस्राणां शतैर्विंशतिभिर्वृतः । तत्राऽऽजगाम सर्वेशः कैलासगमनाय वै ॥२२॥
काष्ठागूढश्चतुःषष्ट्या सुकेशो वृषभस्तथा । कोटिभिः सप्तभिश्चैत्रो नकुलीशः स्वयं प्रभुः ॥२३॥
लोकान्तकश्च दीप्तात्मा तथा दैत्यान्तकः प्रभुः । देवो भृङ्गी रिटिः श्रीमान् देवदेवप्रियस्तथा ॥२४॥
अशनिर्भानुकश्चैव चतुःषष्ट्या सनातनः । नन्दीश्वरो गणाधीशः शतकोट्या महाबलः ॥२५॥
एते चाऽन्ये च गणपा असङ्ख्याता महाबलाः । सर्वे सहस्रहस्ताश्च जटामुकुटधारिणः ॥२६॥
सर्वे चन्द्रावतंसाश्च नीलकण्ठास्त्रिलोचनाः । हार-कुण्डल-केयूर-मुकुटाद्यैरलङ्कृताः ॥२७॥
ब्रह्मेन्द्रविष्णुसङ्काशा अणिमादिगणैर्वृताः । सूर्यकोटिप्रतीकाशास्तत्राजग्मुर्गणेश्वराः ॥२८॥
एते गणाधिपाश्चाऽन्ये महात्मानोऽमलप्रभाः । जग्मुस्तत्र महाप्रीत्या शिवदर्शनलालसाः ॥२९॥
गत्वा तत्र शिवं दृष्ट्वा नत्वा चक्रुः परां नुतिम् । सर्वे साञ्जलयो विष्णुप्रमुखा नतमस्तकाः ॥३०॥
इति विष्ण्वादिभिः सार्द्धं महेशः परमेश्वरः । कैलासमगमत् प्रीत्या कुबेरस्य महात्मनः ॥३१॥
कुबेरोऽप्यागतं शम्भुं पूजयामास सादरम् । भक्त्या नानोपहारैश्च परिवारसमन्वितः ॥३२॥
ततो विष्ण्वादिकान् देवान् गणांश्चान्यानपि ध्रुवम् । शिवानुगान् समानर्च शिवतोषणहेतवे ॥३३॥
अथ शम्भुः समालिङ्ग्य कुबेरं प्रीतमानसः । मूर्ध्नि चाघ्राय सन्तस्थावलकां निकषाऽखिलैः ॥३४॥

गणों के साथ जाने के लिए एकत्रित हुए ॥ १९ ॥ एक दूसरा काकपाद साठ करोड़ गणों के साथ तथा सन्तानक गणेश्वर साठ करोड़ गणों के साथ, महाबल नव करोड़ गणों के साथ, मधु, पिङ्ग तथा पिङ्गल एवं नील नब्बे करोड़ गणों के साथ, पूर्णभद्र भी उतने ही गणों के साथ, महाबलवान् चतुर्वक्त्र सात करोड़ गणों के साथ कैलास जाने के लिए आये ॥ २०–२१ ॥

सर्वेश नाम का गणेश्वर एक सौ बीस सहस्र गणों के साथ कैलास जाने के लिए आया ॥ २२ ॥ काष्ठागूढ़, सुकेश तथा वृषभ नाम के गण चौंसठ करोड़ गणों के साथ, नकुलीश एवं चैत्र नाम के गणेश्वर सात करोड़ गणों के साथ कैलास जाने के लिए आये ॥ २३ ॥ लोकान्तक, दीप्तात्मा, दैत्यान्तक श्रीशिव का अत्यन्त प्रिय गण, भृंगी, रिटि, अशनि तथा भानुक और सनातन चौंसठ करोड़ गणों के साथ एवं नन्दीश्वर नाम के गणाधीश सौ करोड़ गणों को लेकर वहाँ एकत्रित हुए ॥ २४–२५ ॥ इस प्रकार के महाबलवान् असंख्य-असंख्य गणेश्वर, जिनमें प्रत्येक के सहस्र-सहस्र हाथ थे तथा जो जटा एवं मुकुट धारण किये हुए थे । सभी के मस्तक पर चन्द्रमा सुशोभित हो रहा था । सभी के कण्ठ नीलवर्ण के तथा सभी के तीन-तीन नेत्र, सभी गणेश्वर हार, कुण्डल, केयूर तथा मुकुट धारण किये हुए थे ॥ २६–२७ ॥ सभी ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र की समानता करने वाले थे और अणिमादि अष्ट महासिद्धियों से युक्त थे । इस प्रकार करोड़ों सूर्य के समान कान्तिमान् गणेश्वर वहाँ एकत्रित हो गये ॥ २८ ॥ ऊपर कहे गये सभी गणेश्वर तथा इनके अतिरिक्त और भी महातेजस्वी गणेश्वर अत्यन्त हर्ष के साथ शिवदर्शन की लालसा से वहाँ एकत्रित हुए ॥ २९ ॥ विष्णु-प्रमुख सभी देवता एवं सभी गणेश्वर सदाशिव का दर्शन कर विनम्र हो हाथ जोड़े हुए शिव की स्तुति करने लगे ॥ ३० ॥

इस प्रकार विष्ण्वादि देवताओं एवं गणेश्वरों के साथ परमेश्वर महेश बड़े प्रेम से महात्मा कुबेर के कैलास स्थान पर गये ॥ ३१ ॥ भगवान् सदाशिव को कैलास पर आया देखकर परिवार सहित कुबेर ने अत्यन्त भक्ति के साथ अनेक उपचारों से आदरपूर्वक शिव की पूजा की ॥ ३२ ॥ उसने शिव को सन्तुष्ट करने के लिए सभी शिव के अनुसार गणाधीशों की तथा विष्णु आदि सभी देवताओं की पूजा की ॥ ३३ ॥ सदाशिव प्रसन्न हो कुबेर को कण्ठ से लगाकर एवं उनका सिर सूँघकर उस अलका के

शशास विश्वकर्माणं निर्माणार्थं गिरौ प्रभुः। नानाभक्तैर्निवासाय स्वपरेषां यथोचितम् ॥३५॥
विश्वकर्मा ततो गत्वा तत्र नानाविधां मुने!। रचनां रचयामास द्रुतं शम्भोरनुज्ञया ॥३६॥
अथ शम्भुः प्रमुदितो हरिप्रार्थनया तदा ॥३७॥
कुबेरानुग्रहं कृत्वा ययौ कैलासपर्वतम्। सुमुहूर्ते प्रविश्याऽसौ स्वस्थानं परमेश्वरः ॥३८॥
अकरोदखिलान् प्रीत्या सनाथान् भक्तवत्सलः। अथ सर्वे प्रमुदिता विष्णुप्रभृतयः सुराः॥
मुनयश्चापरे सिद्धा अभ्यषिञ्चन्मुदा शिवम् ॥३९॥
समानर्चुः क्रमात् सर्वे नानोपायनपाणयः। नीराजनं समाकार्षुर्महोत्सवपुरःसरम् ॥४०॥
तदाऽऽसीत् सुमनोवृष्टिर्मङ्गलायतना मुने!। सुप्रीता ननृतुस्तत्राऽप्सरसो गानतत्पराः ॥४१॥
जयशब्दो नमःशब्दस्तत्राऽऽसीत् सर्वसंस्कृतः। तदोत्साहो महानासीत् सर्वेषां सुखवर्धनः ॥४२॥
स्थित्वा सिंहासने शम्भुर्विरराजाधिकं तदा। सर्वैः संसेवितोऽभीक्ष्णं विष्ण्वाद्यैश्च यथोचितम् ॥४३॥
अथ सर्वे सुराद्याश्च तुष्टुवुस्तं पृथक् पृथक्। अर्थ्याभिर्वाग्भिरिष्टाभिः शङ्करं लोकशङ्करम् ॥४४॥
प्रसन्नात्मा स्तुतिं श्रुत्वा तेषां कामान् ददौ शिवः। मनोऽभिलषितान् प्रीत्या वरान् सर्वेश्वरः प्रभुः ॥४५॥
शिवाज्ञयाऽथ ते सर्वे स्वं स्वं धाम ययुर्मुने!। प्राप्तकामाः प्रमुदिता अहं च विष्णुना सह ॥४६॥
उपवेश्यासने विष्णुं मां च शम्भुरुवाच ह। बहु सम्बोध्य सुप्रीत्याऽनुगृह्य परमेश्वरः ॥४७॥

शिव उवाच

हे हरे! हे विधे! तातौ युवां प्रियतरौ मम। सुरोत्तमौ त्रिजगतोऽवनसर्गकरौ सदा ॥४८॥
गच्छतं निर्भयं नित्यं स्वस्थानं च मदाज्ञया। सुखप्रदाताऽहं वै वां विशेषात् प्रेक्षकः सदा ॥४९॥

सन्निकट कैलास पर अपने गणों के साथ निवास करने लगे ॥ ३४ ॥ साम्बसदाशिव प्रभु ने विश्वकर्मा को बुलाकर सभी देवताओं, सभी गणेश्वरों तथा सभी भक्तों के निवास योग्य स्थान बनाने की आज्ञा दी ॥३५॥ हे मुने! सदाशिव की आज्ञा पाकर विश्वकर्मा ने वहाँ जाकर बड़ी शीघ्रता के साथ रहने के लिए सुन्दर स्थान का निर्माण किया ॥ ३६ ॥ उसी समय विष्णु की स्तुति से शिवजी बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३७ ॥ इस प्रकार कुबेर पर अनुग्रह करते हुए भगवान् सदाशिव कैलास पर्वत पर गये। और वहाँ जाकर उन परमेश्वर ने शुभ मुहूर्त्त में अपने भवन में प्रवेश किया ॥ ३८ ॥

भगवान् भक्तवत्सल सदाशिव ने इस प्रकार अपने सभी भक्तों को कृतार्थ किया। तदनन्तर विष्णु प्रभृति सभी देवता, सभी मुनिगण एवं सिद्धगणों ने प्रसन्नता के साथ शिव का अभिषेक किया ॥ ३९ ॥ सभी ने नाना प्रकार के उपहारों से शिव का पूजन, आरती तथा नाना प्रकार के उत्सव किये ॥ ४० ॥ उस समय आकाश से महामङ्गलदायिनी फूलों की वर्षा होने लगी। अप्सराएँ प्रसन्नता से नाच तथा गान करने लगीं ॥ ४१ ॥ जय शब्द तथा नमःशब्दों के द्वारा दिशाएँ व्याप्त हो गयीं। सभी का उत्साह बढ़ाने वाला महान् उत्सव होने लगा ॥ ४२ ॥ सिंहासन पर बैठे हुए विष्ण्वादि देवताओं एवं गणों से सेवित सदाशिव उस समय अत्यन्त सुशोभित हुए ॥ ४३ ॥ सभी देवता पृथक्-पृथक् अनेक अर्थों से युक्त मधुर वाणियों से लोकशंकर शिव की स्तुति करने लगे ॥ ४४ ॥ सर्वेश्वर प्रभु सदाशिव ने स्तुति से प्रसन्न होकर सभी को मनोऽभिलषित वर दिया ॥४५॥ हे मुने नारद! तदनन्तर सभी प्रसन्नतापूर्वक शिव की आज्ञा लेकर अपने-अपने स्थान पर लौट आये। सभी प्रसन्न तथा अपनी-अपनी कामनाओं से पूर्ण थे। शिवजी ने मुझे तथा विष्णु को आसन पर बैठाकर प्रीति तथा अनुग्रह से सम्बोधित करते हुए कहा ॥ ४६-४७ ॥

शिवजी बोले—हे विष्णो! हे ब्रह्मन्! तुम दोनों सुरोत्तम तीनों लोकों की सृष्टि तथा उसके संरक्षण में परायण हो, अतः मेरे अत्यन्त प्रिय हो ॥ ४८ ॥ अब तुम लोग निर्भय होकर अपने-अपने स्थानों को जाओ। मैं सर्वदा तुम लोगों को सुख प्रदान करता रहूँगा और विशेष रूप से निरीक्षण

इत्याकर्ण्य वचः शम्भोः सुप्रणम्य तदाज्ञया । अहं हरिश्च स्वं धामागमावप्रीतमानसौ ॥५०॥
तदानीमेव सुप्रीतः शङ्करो निधिपं मुदा । उपवेश्य गृहीत्वा तं कर आह शुभं वचः ॥५१॥

शिव उवाच

तव प्रेम्णा वशीभूतो मित्रतागमनं सखे ! । स्वस्थानं गच्छ विभयः सहायोऽहं सदानघ ! ॥५२॥
इत्याकर्ण्य वचः शम्भोः कुवेरः प्रीतमानसः । तदाज्ञया स्वकं धाम जगाम प्रमुदान्वितः ॥५३॥
स उवास गिरौ शम्भुः कैलासे पर्वतोत्तमे । सगणो योगनिरतः स्वच्छन्दो ध्यानतत्परः ॥५४॥
क्वचिद् दध्यौ स्वमात्मानं क्वचिद्योगरतोऽभवत् । इतिहासगणान् प्रीत्याऽवादीत् स्वच्छन्दमानसः॥५५॥
क्वचित् कैलासकुधरसुस्थानेषु महेश्वरः । विजहार गणैः प्रीत्या विविधेषु विहारवित् ॥५६॥
इत्थं रुद्रस्वरूपोऽसौ शङ्करः परमेश्वरः । अकार्षीत् स्वगिरौ लीला नानायोगिवरोऽपि यः ॥५७॥
नीत्वा कालं कियन्तं सोऽपत्नीकः परमेश्वरः । पश्चादवाप स्वां पत्नीं दक्षपत्नीसमुद्भवाम् ॥५८॥
विजहार तया सत्या दक्षपुत्र्या महेश्वरः । सुखी बभूव देवर्षे ! लोकाचारपरायणः ॥५९॥
इत्थं रुद्रावतारस्ते वर्णितोऽयं मुनीश्वर ! । कैलासागमनं चास्य सखित्वं निधिपस्य हि ॥६०॥
तदन्तर्गतलीलाऽपि वर्णिता ज्ञानवर्धिनी । इहाऽमुत्र च या नित्यं सर्वकामफलप्रदा ॥६१॥
इमां कथां पठेद्यस्तु शृणुयाद् वा समाहितः । इह भुक्तिं समासाद्य लभेन् मुक्तिं परत्र सः ॥६२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे कैलासोपाख्याने
शिवस्य कैलासगमनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

समाप्तोऽयं रुद्रसंहितायाः प्रथमः सृष्टिखण्डः ।

करता रहूँगा ॥ ४९ ॥ शिवजी के ऐसे वचन सुनकर हम लोगों ने उन्हें प्रेम के साथ प्रणाम किया। उनकी आज्ञा ग्रहण कर अपने-अपने स्थान को चले आये ॥ ५० ॥ उसी समय प्रसन्न हुए सदाशिव ने हाथ पकड़कर कुवेर को आसन पर बैठाया। और उनसे कल्याणकारी वचन कहने लगे ॥ ५१ ॥

शिवजी बोले—हे मित्र ! मैं तुम्हारे प्रेम से वशीभूत होकर तुम्हारा मित्र हूँ। हे अनघ ! अब तुम अपने स्थान पर निर्भय होकर जाओ। हे मित्र ! मैं सदैव तुम्हारा सहायक रहूँगा ॥ ५२ ॥

सदाशिव के द्वारा इस प्रकार आज्ञा प्राप्त कर लेने पर कुबेर बड़ी प्रसन्नता से अपने स्थान पर लौट आये ॥ ५३ ॥ इधर शिवजी श्रेष्ठ कैलास पर्वत पर गणों के सहित निवास करने लगे। कभी योग में निरत रहते तो कभी स्वच्छन्दता से ध्यान करते ॥ ५४ ॥ कभी गणों को प्रसन्नता से इतिहास सुनाते। कभी आत्मचिन्तन करते ॥ ५५ ॥ कभी वे महेश्वर अपने गणों के साथ कैलास पर्वत के रमणीय स्थानों में प्रीतिपूर्वक विहार करते ॥ ५६ ॥ इस प्रकार परमेश्वर भगवान् शङ्कर अपने रुद्र रूप से उस कैलास पर्वत पर नाना प्रकार की लीला करते। जो योगियों के लिए भी अगम्य है ॥ ५७ ॥ इस प्रकार बिना पत्नी के ही रहकर उन परमेश्वर ने बहुत समय व्यतीत किया। फिर दक्ष की कन्या सती के साथ विवाह कर उनके साथ लोकाचार में परायण रहकर रमण करने लगे ॥५८-५९॥ इस प्रकार हे नारदजी ! मैंने तुमसे रुद्र के अवतार का वर्णन किया। वे जिस प्रकार कैलास से आये तथा उनकी कुबेर से मित्रता हुई ॥६०॥ इतना ही नहीं, उसके अन्तर्गत ज्ञान को बढ़ाने वाली शिव की लीला भी कह दी। जो लीला इस लोक तथा परलोक में सर्वत्र सुख देने वाली है ॥ ६१ ॥ जो इस कथा को पढ़ता है अथवा एकाग्रमन से सुनता है वह इस लोक में नाना प्रकार के भोग तथा परलोक में मुक्ति को प्राप्त करता है ॥ ६२ ॥

इस प्रकार आचार्य पण्डित श्रीशिवदत्तमिश्र शास्त्रीकृत 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत रुद्र-संहिता के प्रथमसृष्टिखण्ड में कैलासोपाख्यान में शिव का कैलास में आगमन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २० ॥

इस प्रकार द्वितीय रुद्रसंहिता में सृष्टि-खण्ड समाप्त ।

*

* ॐ नमः शिवाय *

श्रीशिवमहापुराणम्

आचार्य-पण्डित-श्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रिकृत-

'शिवदत्ती'भाषाटीकासहितम्

२. रुद्रसंहिता (सतीखण्डः २)

प्रथमोऽध्यायः

(रुद्ररहित दक्षयज्ञ का आरम्भ, उसमें रुद्र भाग न देखकर सती का कोप और ज्वालामुखी की उत्पत्ति)

नारद उवाच

विधे ! सर्वं विजानासि कृपया शङ्करस्य च। त्वयाऽद्भुता हि कथिताः कथा मे शिवयोः शुभाः॥ १॥
त्वन्मुखाम्भोजसंवृत्तां श्रुत्वा शिवकथां पराम्। अतृप्तो हि पुनस्तां वै श्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो!॥ २॥
पूर्णांशः शङ्करस्यैव यो रुद्रो वर्णितः पुरा। विधे! त्वया महेशानः कैलासनिलयो वशी॥ ३॥
स योगी सर्वविष्ण्वादिसुरसेव्यः सतां गतिः। निर्द्वन्द्वः क्रीडति सदा निर्विकारो महाप्रभुः॥ ४॥
सोऽभूत् पुनर्गृहस्थश्च विवाह्य परमां स्त्रियम्। हरिप्रार्थनया प्रीत्या मङ्गलां स्वतपस्विनीम्॥ ५॥
प्रथमं दक्षपुत्री सा पश्चात् सा पर्वतात्मजा। कथमेकशरीरेण द्वयोरप्यात्मजा मता॥ ६॥
कथं सती पार्वती सा पुनः शिवमुपागता। एतत् सर्वं तथाऽन्यच्च ब्रह्मन्! गदितुमर्हसि॥ ७॥

सूत उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरर्षेः शङ्करात्मनः। प्रसन्नमानसो भूत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत्॥ ८॥

ब्रह्मोवाच

शृणु तात! मुनिश्रेष्ठ! कथयामि कथां शुभाम्। यां श्रुत्वा सफलं जन्म भविष्यति न संशयः॥ ९॥

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! आप शङ्कर की कृपा से सर्वज्ञ हैं। आपने शिव एवं पार्वती का अद्‌भुत कल्याणकारी चरित्र वर्णन किया॥ १॥ किन्तु आपके मुख-कमल से निकली हुई इस सर्वोत्तम कथा को सुनकर मेरा मन तृप्त नहीं हो रहा है, अतः हे प्रभो! मैं पुनः शिव-शिवा के चरित्र को सुनना चाहता हूँ॥ २॥ आपने पूर्व में वर्णन किया है कि रुद्र शिव के पूर्णांशावतार हैं और वे ही महेश्वर जितेन्द्रिय रूप से कैलास पर निवास करते हैं॥ ३॥ वे योगीश्वर ब्रह्मा, विष्णु तथा सभी देवताओं के द्वारा सेवा के योग्य, सज्जनों की एकमात्र गति, निर्द्वन्द्व, निर्विकार रहकर कैलास में विहार करते हैं॥ ४॥ वे ही भगवान् रुद्र विष्णु द्वारा प्रार्थना किये जाने पर अपनी महातपस्विनी एवं महापतिव्रता सर्वमङ्गला से विवाह कर गृहस्थ हो गये॥ ५॥ आपने कहा कि वे सर्वमङ्गला दक्ष की पुत्री और पर्वतात्मजा पार्वती हैं, अतः कृपाकर बताइए कि वे एक शरीर से दोनों की कन्या किस प्रकार कही जाती हैं॥ ६॥ सती एवं पार्वती किस प्रकार से महादेवजी को पुनः प्राप्त कीं। हे ब्रह्मन्! आप इन सब कथाओं को तथा अन्य कथाओं को कहिए॥ ७॥

सूतजी बोले—सुरर्षि शिवभक्त नारद के इस प्रकार वचन सुनकर ब्रह्मा प्रसन्न होकर बोले॥ ८॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! अब मैं शिव की कल्याणकारिणी कथा कहता हूँ, सुनो। इस कथा को सुनने से मनुष्य का जन्म सफल हो जाता है, इसमें संशय नहीं॥ ९॥

पुराऽहं स्वसुतां दृष्ट्वा सन्ध्याह्वां तनयैः सह । अभवं विकृतस्तात ! कामबाणप्रपीडितः ॥१०॥
धर्मः स्मृतस्तदा रुद्रो महायोगी परः प्रभुः । धिक्कृत्य मां सुतैस्तात ! स्वस्थानं गतवानयम् ॥११॥
यन्मायामोहितश्चाऽहं वेदवक्ता च मूढधीः । तेनाकार्षं महाकार्यं परमेशेन शम्भुना ॥१२॥
तदीर्ष्याऽहमाकार्षं बहूपायान् सुतैः सह । कर्तुं तन्मोहनं मूढः शिवमायाविमोहितः ॥१३॥
अभवंस्तेऽथ वै सर्वे तस्मिन् शम्भौ परप्रभौ । उपाया निष्फलास्तेषां मम चापि मुनीश्वर ! ॥१४॥
तदाऽस्मरं रमेशानं व्यर्थोपायः सुतैः सह । अबोधयत् स आगत्य शिवभक्तिरतः सुधीः ॥१५॥
प्रबोधितो रमेशेन शिवतत्त्वप्रदर्शिना । तदीर्षामत्यजं सोऽहं तं हठं न विमोहितः ॥१६॥
शक्तिं संसेव्य तत्प्रीत्योत्पादयामास तां तदा । दक्षादशिक्न्यां वीरिण्यां स्वपुत्राद्धरमोहने ॥१७॥
सोमा भूत्वा दक्षसुता तपः कृत्वा तु दुःसहम् । रुद्रपत्न्यभवद् भक्त्या स्वभक्तहितकारिणी ॥१८॥
सोमो रुद्रो गृही भूत्वाऽकार्षील्लीलां परां प्रभुः । मोहयित्वाऽथ मां तत्र स्वविवाहेऽविकारधीः ॥१९॥
विवाह्य तां स आगत्य स्वगिरौ सूतिकृत्तया । रेमे बहुविमोहो हि स्वतन्त्रः स्वात्तविग्रहः ॥२०॥
तया विहरतस्तस्य व्यतीयाय महान् मुने ! । कालः सुखकरः शम्भोर्निर्विकारस्य सद्व्रतेः ॥२१॥
ततो रुद्रस्य दक्षेण स्पर्द्धा जाता निजेच्छया । महामूढस्य तन्मायामोहितस्य सुगर्विणः ॥२२॥
तत्प्रभावाद्धरं दक्षो महागर्वी विमूढधीः । महाशान्तं निर्विकारं निनिन्द बहुमोहितः ॥२३॥
ततो दक्षः स्वयं यज्ञं कृतवान् गर्वितोऽहरम् । सर्वानाहूय देवादीन् विष्णुं मां चाखिलाधिपः ॥२४॥

पूर्वकाल में मैं अपनी पुत्री सन्ध्या को देखकर अपने पुत्रों के सहित काम-बाण से मोहित हो गया ॥ १० ॥ तब उन महायोगी परमेश्वर रुद्र ने धर्म का स्मरण किया। पुत्रों के साथ मुझे धिक्कारते हुए अपने निवासभूत कैलास को चले गये ॥ ११ ॥ यह शिव की माया का प्रभाव ही है कि मैंने वेदवक्ता होकर भी उनकी माया से मोहित होकर मूर्खतावश उस परमेश्वर शम्भु के देखते-देखते इतना बड़ा अकार्य कर डाला ॥ १२ ॥ ईर्षावश शिवमाया से मोहित होकर मैंने भी अपने पुत्रों के साथ उनको मोहित करने के लिए नाना प्रकार के उपाय भी किये ॥ १३ ॥ किन्तु हे मुनीश्वर ! मेरे तथा मेरे पुत्रों के द्वारा किये गये सारे उपाय निष्फल हो गये ॥ १४ ॥

जब पुत्रों के सहित मेरे द्वारा शिव को मोहित करने के लिए किये गये सारे उपाय निष्फल हो गये तो मैंने विष्णु का स्मरण किया। शिव के भक्त विष्णु ने मुझे अनेकों प्रकार से ॥ १५ ॥ शिवतत्त्व को प्रदर्शित करते हुए यद्यपि बहुत समझाया किन्तु शिवमाया से मोहित होने के कारण मैंने उन शिव से ईर्षा तथा उन्हें मोहित करने का हठ न छोड़ा ॥ १६ ॥ इसलिए मैंने निरन्तर शक्ति की सेवा कर उन्हें प्रसन्न किया। तथा उनकी कृपा से शिव को मोहित करने के लिए अपने पुत्र दक्ष द्वारा वीरण कन्या असिक्नी में शक्ति के अंश से एक कन्या उत्पन्न करवाया ॥ १७ ॥ उस कन्या का नाम अपने भक्तों का कल्याण करनेवाली सोमा रखा। जो अत्यन्त कठिन तप कर रुद्र में भक्ति रखने के कारण उनकी पत्नी हुई ॥ १८ ॥ इस प्रकार उस सोमा से विवाह कर रुद्र गृहस्थ बनकर अनेक प्रकार की उत्तम लीला करने लगे ॥ १९ ॥ और सोमा से विवाह करने के अनन्तर सन्तान की इच्छा से वे कैलास पर्वत पर निवास करते हुए स्त्री में आसक्त होकर रमण करने लगे ॥ २० ॥ हे मुने ! इस प्रकार निर्विकार शिव का सोमा के साथ रमण करते हुए सुखपूर्वक बहुत-सा दिन व्यतीत हो गया ॥ २१ ॥ शिव की अपनी इच्छा से अत्यन्त गर्वित माया से मोहित तथा महामूढ़ उस दक्षप्रजापति का किसी कारणवश शिव से विरोध हो गया ॥ २२ ॥ मोह के प्रभाव से अत्यन्त मूर्ख, अहङ्कारी दक्ष, महाशान्त और निर्विकार शिव की निन्दा करने लगा। तदनन्तर प्रजापति बन जाने पर अहङ्कारी उस दक्ष ने सभी देवताओं को मुझ ब्रह्मा को एवं विष्णु को बुलाकर शिव के बिना ही

नाजुहाव तथाभूतो रुद्रं रोपसमाकुलः । तथा तत्र सतीं नाम्ना स्वपुत्रीं विधिमोहितः ॥२५॥
यदा नाकारिता पित्रा मायामोहितचेतसा । लीलां चकार सुज्ञाना महासाध्वी शिवा तदा ॥२६॥
अथागता सती तत्र शिवाज्ञामधिगम्य सा । अनाहूताऽपि दक्षेण गर्विणा स्वपितुर्गृहम् ॥२७॥
विलोक्य रुद्रभागं नो प्राप्यावज्ञां च तात्ततः । विनिन्द्य तत्र तान् सर्वान् देहत्यागमथाकरोत् ॥२८॥
तच्छ्रुत्वा देवदेवेशः क्रोधं कृत्वा तु दुःसहम् । जटामुत्कृत्य महतीं वीरभद्रमजीनत् ॥२९॥
सगणं तं समुत्पाद्य किं कुर्यामिति वादिनम् । सर्वापमानपूर्वं हि यज्ञध्वंसं दिदेश ह ॥३०॥
तदाज्ञां प्राप्य स गणाधीशो बहुबलान्वितः । गतोऽरं तत्र सहसा महाबलपराक्रमः ॥३१॥
महोपद्रवमाचेरुर्गणास्तत्र तदाज्ञया । सर्वान् स दण्डयामास न कश्चिदवशेषितः ॥३२॥
विष्णुं संजित्य यत्नेन सामरं गणसत्तमः । चक्रे दक्षशिरश्छेदं तच्छिरोऽग्नौ जुहाव च ॥३३॥
यज्ञध्वंसं चकाराशु महोपद्रवमाचरन् । ततो जगाम स्वगिरिं प्रणनाम प्रभुं शिवम् ॥३४॥
यज्ञध्वंसोऽभवच्चेत्थं देवलोके हि पश्यति । रुद्रस्यानुचरैस्तत्र वीरभद्रादिभिः कृतः ॥३५॥
मुने ! नीतिरियं ज्ञेया श्रुतिस्मृतिषु सम्मता । रुद्रे रुष्टे कथं लोके सुखं भवति सुप्रभौ ॥३६॥
ततो रुद्रः प्रसन्नोऽभूत् स्तुतिमाकर्ण्य तां पराम् । विज्ञप्तिं सफलां चक्रे सर्वेषां दीनवत्सलः ॥३७॥
पूर्ववच्च कृतं तेन कृपालुत्वं महात्मना । शङ्करेण महेशेन नानालीलाविहारिणा ॥३८॥
जीवितस्तेन दक्षो हि तत्र सर्वे हि सत्कृताः । पुनः स कारितो यज्ञः शङ्करेण कृपालुना ॥३९॥

यज्ञ करना प्रारम्भ किया। रुद्र से वह प्रथम ही चिढ़ा हुआ था इसलिए उनको नहीं बुलाया, दुर्भाग्य से मोहित होने के कारण उसने अपनी कन्या, जिसका नाम सती था, उसे भी नहीं बुलाया ॥ २३–२५ ॥

जब माया से मोहित चित्त होने के कारण दक्ष ने महासाध्वी शिवा को अपने यज्ञ में नहीं बुलाया तो ज्ञानस्वरूपा उस देवी ने अपनी लीला प्रगट की ॥ २६ ॥ वह शिव की आज्ञा लेकर बिना बुलाये ही अपने गर्वीले पिता के घर पहुँच गयी ॥ २७ ॥ उसने जब यज्ञ में रुद्र का भाग नहीं देखा, तब इस अपमान से दुःखी होकर वह सभी देवताओं की निन्दा करती हुई योगाग्नि से अपने शरीर का त्यागकर दिया ॥ २८ ॥ सती के देह-त्याग का समाचार सुनते ही रुद्र ने महाभयानक क्रोध से अपनी जटा उखाड़ कर वीरभद्र को उत्पन्न किया ॥ २९ ॥ गणों के सहित उत्पन्न हुए उस वीरभद्र ने शिव से पूछा कि मुझे क्या आज्ञा है ? तब शिव ने उसे आज्ञा दी कि हे वीरभद्र ! तुम दक्ष के यज्ञ में प्राप्त हुए सभी देवताओं का अपमान करते हुए उसके यज्ञ को विध्वंस करो ॥ ३० ॥ शिव की इस आज्ञा को पाकर गणाधीश महाबलवान् वीरभद्र अपनी बहुत-सी सेना लेकर यज्ञ विध्वंस के लिए गये ॥ ३१ ॥ शिव की आज्ञा से उन गणों ने बहुत बड़ा उपद्रव प्रारम्भ किया। उस यज्ञ में कोई ऐसा न था जिसे शिवगणों ने दण्ड न दिया हो ॥ ३२ ॥ वीरभद्र ने देवताओं के सहित विष्णु को जीत लिया और दक्ष का सिर काटकर उसे अग्नि में हवन कर दिया ॥ ३३ ॥ इस प्रकार वीरभद्र ने महान् उपद्रव कर यज्ञ को विनष्ट कर दिया। पुनः वे कैलास पर्वत पर जाकर महादेवजी को प्रणाम किये ॥ ३४ ॥ देवताओं के देखते-देखते रुद्रानुचर वीरभद्रादिकों ने दक्ष के सारे यज्ञों को विनष्ट कर दिया ॥ ३५ ॥ हे महर्षि नारद ! इससे यह नीति जान लेनी चाहिए कि प्रभु रुद्र के रुष्ट हो जाने पर कोई भी पुरुष सुख से नहीं रह सकता। यह बात श्रुतियों तथा स्मृतियों में भी स्पष्ट की गयी है ॥ ३६ ॥

तदनन्तर सभी देवताओं ने यज्ञ की पूर्णता के हेतु रुद्र की स्तुति की, जिसे सुनकर दीनवत्सल रुद्र ने उस यज्ञ को सफल बना दिया ॥ ३७ ॥ नाना प्रकार की लीला करनेवाले महाकृपालु सदाशिव ने दक्षप्रजापति को पूर्ववत् जीवित कर दिया ॥ ३८ ॥ जीवित हो जाने पर दक्ष ने सबका सत्कार किया।

रुद्रश्च पूजितस्तत्र सर्वैर्देवैर्विशेषतः । यज्ञे विश्वादिभिर्भक्त्या सुप्रसन्नात्ममिर्मुने ! ॥४०॥
सतीदेहसमुत्पन्ना ज्वाला लोकसुखावहा । पतिता पर्वते तत्र पूजिता सुखदायिनी ॥४१॥
ज्वालामुखीति विख्याता सर्वकामफलप्रदा । बभूव परमा देवी दर्शनात् पापहारिणी ॥४२॥
इदानीं पूज्यते लोके सर्वकामफलाप्तये । संविधाभिरनेकाभि-र्महोत्सव-परस्परम् ॥४३॥
ततश्च सा सती देवी हिमालयसुताऽभवत् । तस्याश्च पार्वती नाम प्रसिद्धमभवत्तदा ॥४४॥
सा पुनश्च समाराध्य तपसा कठिनेन वै । तमेव परमेशानं भर्त्तारं समुपाश्रिता ॥४५॥
एतत्सर्वं समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं मुनीश्वर ! । यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नाऽत्र संशयः॥४६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे
सतीसंक्षेपचरित्रवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

(ब्रह्मा द्वारा सुर-असुर एवं प्रजापति की उत्पत्ति, सम्मोहिनी सन्ध्या तथा कामदेव की उत्पत्ति)

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य नैमिषारण्यवासिनः । पप्रच्छ च मुनिश्रेष्ठः कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ १ ॥

नारद उवाच

विधे विधे महाभाग ! कथां शम्भोः शुभावहाम् । शृण्वन् भवन्मुखाम्भोजान्न तृप्तोऽस्मि महाप्रभो ! ॥ २॥
अतः कथय तत्सर्वं शिवस्य चरितं शुभम् । सतीकीर्त्यन्वितं दिव्यं श्रोतुमिच्छामि विश्वकृत् ॥ ३ ॥
सती हि कथमुत्पन्ना दक्षदारेषु शोभना । कथं हरो मनश्चक्रे दाराहरणकर्मणि ॥ ४ ॥

तब कृपालु शङ्कर ने उस दक्ष से पुनः यज्ञ करवाया ॥ ३९ ॥ उस यज्ञ में सभी देवताओं ने तथा विश्वेदेवों ने बड़ी प्रसन्नता के साथ रुद्र का विशेष रूप से पूजन किया ॥ ४० ॥ सती के देह से उत्पन्न हुई ज्वाला जाकर पर्वत पर गिरी, जो ज्वाला देवी के नाम से सारे संसार को सुख प्रदान करती है ॥४१॥ यह ज्वालामुखी के नाम से प्रसिद्ध हुई देवी सारे कामनाओं को पूर्ण करनेवाली तथा दर्शन से समस्त पापों को नष्ट करने वाली है ॥ ४२ ॥ यह ज्वालामुखी देवी आज भी सम्पूर्ण कामनाओं के फल-प्राप्ति हेतु संसार से अनेक उपचारों द्वारा तथा अनेक प्रकारों द्वारा पूजित होती हैं ॥ ४३ ॥ वह सती देवी हिमालय के यहाँ जन्म लेकर पार्वती के नाम से प्रसिद्ध हुईं ॥ ४४ ॥ उन्होंने पुनः कठिन तपस्या से सदाशिव की आराधना कर, उन्हीं परमेश्वर सदाशिव को पति के रूप में प्राप्त किया ॥ ४५ ॥ हे मुनीश्वर ! जैसा तुमने मुझसे पूछा था वह सब मैंने तुमसे कह दिया । जिसके सुनने से मनुष्य सभी पापों से छुटकारा हो जाता है ॥ ४६ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में सतीसंक्षेपचरित्र वर्णन नामक प्रथम अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥

*

सूत जी बोले—हे नैमिषारण्य निवासी मुनियो ! ब्रह्मा के द्वारा कहे गये वचन को सुनकर नारद ने पुनः उनसे पापों को नष्ट करनेवाली कथा पूछी ॥ १ ॥

नारद जी बोले—हे सर्वज्ञ ! हे विधाता ! हे महाप्रभो ! आपके मुख-कमल से कही जानेवाली शिव-कथा को सुनकर मेरा मन तृप्त नहीं हो रहा है ॥ २ ॥ हे विश्वस्रष्टा ! सती की दिव्य कीर्ति से युक्त शिवचरित्र मैं पुनः विस्तार से सुनना चाहता हूँ, अतः आप उसे कहिए ॥ ३ ॥ आप मुझे बताइए कि दक्ष की बहुत सी पत्नियों में सती किस प्रकार उत्पन्न हुईं । और महेश्वर ने किस प्रकार स्त्री से विवाह

कथं वा दक्षकोपेन त्यक्तदेहा सती पुरा । हिमवत्तनया जाता भूयो वाऽऽकाशमागता ॥ ५ ॥
पार्वत्याश्च तपोऽत्युग्रं विवाहश्च कथं त्वभूत् । कथमर्द्धशरीरस्था बभूव स्मरनाशिनः ॥ ६ ॥
एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण महामते ! ॥ नान्योऽस्ति संशयच्छेत्ता त्वत्समो न भविष्यति ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु त्वं च मुने ! सर्वं सतीशिवयशः शुभम् । पावनं परमं दिव्यं गुह्याद् गुह्यतमं परम् ॥ ८ ॥
एतच्छम्भुः पुरोवाच भक्तवर्याय विष्णवे । पृष्टस्तेन महाभक्त्या परोपकृतये मुने ! ॥ ९ ॥
ततः सोऽपि मया पृष्टो विष्णुः शैववरः सुधीः । प्रीत्या मह्यं समाचख्यौ विस्तरान् मुनिसत्तम ! ॥ १० ॥
अहं तत्कथयिष्यामि कथामेतां पुरातनीम् । शिवाशिवयशोयुक्तां सर्वकामफलप्रदाम् ॥ ११ ॥
पुरा यदा शिवो देवो निर्गुणो निर्विकल्पकः । अरूपः शक्तिरहितश्चिन्मात्रः सदसत्परः ॥ १२ ॥
अभवत् सगुणः सोऽपि द्विरूपः शक्तिमान् प्रभुः । सोमो दिव्याकृतिर्विप्र निर्विकारी परात्परः ॥ १३ ॥
तस्य वामाङ्गजो विष्णुर्ब्रह्माऽहं दक्षिणाङ्गजः । रुद्रो हृदयतो जातोऽभवच्च मुनिसत्तम ! ॥ १४ ॥
सृष्टिकर्ताऽभवं ब्रह्मा विष्णुः पालनकारकः । लयकर्ता स्वयं रुद्रस्त्रिधाभूतः सदाशिवः ॥ १५ ॥
तमेवाऽहं समाराध्य ब्रह्मा लोकपितामहः । प्रजाः ससर्ज सर्वास्ताः सुराऽसुरनरादिकाः ॥ १६ ॥
सृष्ट्वा प्रजापतीन् दक्षप्रमुखान् सुरसत्तमान् । अमन्यं सुप्रसन्नोऽहं निजं सर्वमहोन्नतम् ॥ १७ ॥
मरीचिमत्रिं पुलहं पुलस्त्याङ्गिरसौ क्रतुम् । वसिष्ठं नारदं दक्षं भृगुं चेति महाप्रभून् ॥ १८ ॥
ब्रह्माऽहं मानसान् पुत्रानसर्जं च यदा मुने ! । तदा मन्मनसो जाता चारुरूपा वराङ्गना ॥ १९ ॥
नाम्ना सन्ध्या दिवःक्षान्ता सायंसन्ध्या जपन्तिका । अतीव सुन्दरी सुभ्रूर्मुनिचेतोविमोहिनी ॥ २० ॥

कर गृहस्थ बनने की इच्छा की ॥ ४ ॥ पार्वती ने दक्ष के क्रोध से किस प्रकार अपने शरीर का त्याग किया । सती शरीर त्याग करने के उपरान्त वे किस प्रकार हिमालय की कन्या पार्वती हुईं एवं किस प्रकार वे (नन्दगोप की कन्या बनकर) आकाशगामिनी हुईं ॥ ५ ॥ पार्वती का उग्र तप तथा उनका विवाह किस प्रकार हुआ । फिर वे कामनाशन शिव की अर्द्धाङ्गिनी किस प्रकार हुईं ॥ ६ ॥ हे महामते ! इन सब बातों को आप विस्तार के साथ कहिए । क्योंकि आप के समान मेरे संशयों को दूर करनेवाला और कोई दूसरा नहीं है ॥ ७ ॥

ब्रह्मा जी बोले—हे मुने ! परमपावन दिव्यातिदिव्य एवं गुह्यातिगुह्य तथा परम कल्याणकारी शिव तथा सती के चरित्र को सुनो ॥ ८ ॥ यह कथा परोपकार करनेवाले अपने परम भक्त विष्णु-द्वारा महान् भक्ति से पूछे जाने पर शिवजी ने स्वयं उनसे कही थी ॥ ९ ॥ वही कथा मेरे द्वारा पूछे जाने पर महान् शिवभक्त विष्णु ने बड़ी प्रीति के साथ विस्तारपूर्वक मुझसे कही थी ॥ १० ॥ सभी कामनाओं को सफल बनानेवाली एवं शिवाशिव के यश से युक्त उस पुरानी कथा को मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ११ ॥ पूर्व काल में जब निर्गुण, निर्विकल्प, रूप एवं शक्ति से रहित, चिन्मात्र एवं सदसत् से परे, परात्पर महादेव जब सगुण होकर शक्ति के साथ दो रूपों में प्रकट हुए ॥ १२-१३ ॥ तब हे मुनिसत्तम ! उनके वामाङ्ग से विष्णु तथा दक्षिण अङ्ग से मैं ब्रह्मा तथा हृदय से रुद्र की उत्पत्ति हुई ॥ १४ ॥ मैं ब्रह्मा, सृष्टि करने-वाला, विष्णु पालन करनेवाला तथा लय करनेवाले स्वयं रुद्र हुए । इस प्रकार शिव के तीन रूप हुए ॥ १५ ॥ लोकपितामह मैं ब्रह्मा, उन्हीं सदाशिव की आराधना कर देव, दैत्य, मनुष्यादिकों की सृष्टि की ॥ १६ ॥ मैं, दक्ष प्रमुख प्रजापतियों की तथा आङ्गिरस आदि देवश्रेष्ठों की रचना कर बड़ा प्रसन्न हुआ । तथा अपने को सबसे तेजस्वी मानने लगा ॥ १७ ॥ जिस समय मैंने मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, अङ्गिरा, क्रतु, वसिष्ठ, नारद, दक्ष एवं भृगु आदि प्रजापतियों की सृष्टि मन से की, उसी समय मेरे मन से एक परम सुन्दरी कन्या भी उत्पन्न हुई ॥ १८-१९ ॥ वह सन्ध्या के नाम से कही जाती

न तादृशी देवलोके न मर्त्ये न रसातले । कालत्रयेऽपि वै नारी सम्पूर्णगुणशालिनी ॥२१॥
दृष्ट्वाऽहं तां समुत्थाय चिन्तयन् हृदि हृद्गतम् । दक्षादयश्च स्रष्टारो मरीच्याद्याश्च मत्सुताः ॥२२॥
एवं चिन्तयतो मे हि ब्रह्मणो मुनिसत्तम ! । मानसः पुरुषो मञ्जुराविर्भूतो महाद्भुतः ॥२३॥
काञ्चनीकृतजाताभः पीनोरस्कः सुनासिकः । सुवृत्तोरुकटीजङ्घो नीलवेलितकेशरः ॥२४॥
लग्नभ्रूयुगलो लोलः पूर्णचन्द्रनिभाननः । कपाटायतसद्वक्षो रोमराजीवराजितः ॥२५॥
अभ्रमातङ्गकाकारः पीनो नीलसुवासकः । आरक्त-पाणिनयन-मुखपाद-करोद्भवः ॥२६॥
क्षीणमध्यश्चारुदन्तः प्रमत्तगजगन्धनः । प्रफुल्लपद्मपत्राक्षः केशरघ्राणतर्पणः ॥२७॥
कम्बुग्रीवो मीनकेतुः प्रांशुर्मकरवाहनः । पञ्चपुष्पायुधो वेगी पुष्पकोदण्डमण्डितः ॥२८॥
कान्तः कटाक्षपातेन भ्रामयन् नयनद्वयम् । सुगन्धिमारुतो तांत ! शृङ्गाररससेवितः ॥२९॥
तं वीक्ष्य पुरुषं सर्वे दक्षाद्या मत्सुताश्च ते । औत्सुक्यं परमं जग्मुर्विस्मयाविष्टमानसाः ॥३०॥
अभवद् विकृतं तेषां मत्सुतानां मनो द्रुतम् । धैर्यं नैवालभत्तात ! कामाकुलितचेतसाम् ॥३१॥
मां सोऽपि वेधसं वीक्ष्य स्रष्टारं जगतां पतिम् । प्रणम्य पुरुषः प्राह विनयानतकन्धरः ॥३२॥

पुरुष उवाच

किं करिष्याम्यहं कर्म ब्रह्मंस्तत्र नियोजय । मान्योऽद्य पुरुषो यस्मादुचितः शोभितो विधे ! ॥३३॥

है। जो स्वर्गलोक में निवास करनेवाली है। वह अत्यन्त सुन्दरी, सुन्दर भ्रूवाली तथा मुनियों के मन को मोहित करने वाली थी ॥ २० ॥ ऐसी स्त्री देवलोक में, मृत्युलोक में अथवा पाताललोक में, तीनों काल में न हुई है, न होनेवाली है और न भविष्य में होगी। वह सम्पूर्ण गुणों से परिपूर्ण थी ॥ २१ ॥ उसे देखते ही मैंने उठा लिया, मेरे हृदय में काम की वासना जाग उठी। यह सारा चरित्र मेरे पुत्र दक्षादि तथा मरीच्यादि जो लोक के स्रष्टा हैं, देख रहे थे। हे मुनिसत्तम ! मैं ब्रह्मा, अभी इस प्रकार सोच ही रहा था कि उसी समय महान् अद्‌भुत एवं मनोहर एक पुरुष उत्पन्न हो गया ॥ २२–२३ ॥

वह पुरुष तप्त सुवर्ण के समान कान्तिमान् था, उसका वक्षस्थल महान्, पुष्ट तथा उसकी नासिका अत्यन्त सुन्दर थी। उसके उरू, कटी तथा जंघा गोलाकार थे और उसके केश काले तथा घुँघराले थे ॥२४॥ उसके दोनों भ्रू-प्रदेश आपस में मिले हुए एवं तिरछे थे। उसका मुख पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान अत्यन्त मनोहर था, उसका वक्षःस्थल कपाट के समान विस्तीर्ण था और वह रोमराजी से शोभा पा रहा था। वह बादल पर्यन्त ऊँचे गजराज के समान, महास्थूल तथा नीलवर्ण का वस्त्र धारण किये हुए था। उसके हाथ, नेत्र, मुख तथा पैर रक्तवर्ण के थे, कटि का भाग अत्यन्त क्षीण तथा दाँत अत्यन्त मनोहर थे। मतवाले गज के शरीर के गन्ध के समान उसके शरीर की गन्ध थी। उसके नेत्र फूले हुए कमल के समान विशाल थे। तथा बालों से अत्यन्त सुगन्धि आ रही थी ॥ २५–२७ ॥ उसकी ग्रीवा शंख के समान ऊँची थी। उसकी ऊँची ध्वजा में मीन के चिह्न थे, वह मकर के वाहन पर बैठा हुआ था। पञ्चपुष्प के बने हुए उसके पन्चशर थे। वह महा वेगवान् तथा पुष्पधनुष से सुशोभित हो रहा था। अपने नेत्रों को घुमाते हुए अपने कटाक्षपात से वह बड़ा मनोहर प्रतीत हो रहा था। उसके श्वास की सुन्दर सुगन्ध चारों ओर फैल रही थी और शृङ्गाररस उसकी सेवा करता था ॥ २८–२९ ॥ उस पुरुष को देखते ही मेरे दक्षादि पुत्रगण आश्चर्ययुक्त होकर उसकी ओर उत्सुकता से देखने लगे ॥ ३० ॥ उन सभी का हृदय काम से व्याकुल हो उठा, उनका धैर्य छूट जाने से सभी अत्यन्त विकार को प्राप्त हो गये ॥ ३१ ॥ वह पुरुष, जगत्स्रष्टा तथा जगत्पति मुझे देखकर प्रणाम करने के उपरान्त विनम्र होकर बोला ॥ ३२ ॥

पुरुष बोला—हे ब्रह्मन् ! मुझे जो कर्म करणीय हो, उस कर्म में मुझे नियुक्त कीजिए। हे विधे ! आप मेरे मान्य पुरुष हैं, मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँ यही उचित है तथा इसी से मेरी शोभा भी

अभिमानं च योग्यं च स्थानं पत्नी च या मम । तन्मे वद त्रिलोकेश ! त्वं स्रष्टा जगतां पतिः॥३४॥

ब्रह्मोवाच

एवं तस्य वचः श्रुत्वा पुरुषस्य महात्मनः । क्षणं न किञ्चित् प्रावोचत् स स्रष्टा चातिविस्मितः॥३५॥
अतो मनः सुसंयम्य सम्यगुत्सृज्य विस्मयम् । अवोचत् पुरुषं ब्रह्मा तत्कामं च समावहन् ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

अनेन त्वं स्वरूपेण पुष्पबाणैश्च पञ्चभिः । मोहयन् पुरुषान् स्त्रीश्च कुरु सृष्टिं सनातनीम्॥३७॥
अस्मिन् जीवाश्च देवाद्यास्त्रैलोक्ये सचराचरे । एते सर्वे भविष्यन्ति न क्षमास्त्यवलम्बने ॥३८॥
अहं वा वासुदेवो वा स्थाणुर्वा पुरुषोत्तमः । भविष्यामस्तव वशे किमन्ये प्राणधारकाः ॥३९॥
प्रच्छन्नरूपो जन्तूनां प्रविशन् हृदयं सदा । सुखहेतुः स्वयं भूत्वा सृष्टिं कुरु सनातनीम्॥४०॥
त्वत्पुष्पबाणस्य सदा सुखलक्ष्यं मनोऽद्भुतम् । सर्वेषां प्राणिनां नित्यं सदा मदकरो भवान्॥४१॥
इति ते कर्म कथितं सृष्टिप्रावर्तकं पुनः । नामान्येते वदिष्यन्ति सुता मे तव तत्त्वतः॥४२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वाऽहं सुरश्रेष्ठ ! स्वसुतानां मुखानि च । आलोक्य स्वासने पाद्मे प्रोपविष्टोऽभवं क्षणम्॥४३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे कामप्रादुर्भावो
नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

होगी ॥ ३३ ॥ मैं किस कार्य का अभिमानी देवता बनूँ । मेरे लिए उचित तथा योग्य स्थान तथा जो मेरी पत्नी हो उसे आप प्रदान कीजिए। आप इस जगत् के स्रष्टा तथा पति हैं ॥ ३४ ॥

ब्रह्माजी बोले—महात्मा काम के इस वचन को सुनकर मैं ब्रह्मा, आश्चर्य से चकित हो गया । और थोड़ी देर तक कुछ न बोला ॥ ३५ ॥ फिर मन को सावधान कर आश्चर्य का परित्याग करते हुए उस काम को सम्बोधित करते हुए मैंने कहा ॥ ३६ ॥

ब्रह्माजी बोले—तुम अपने इस स्वरूप से पुष्पों के पाँच बाण धारण करते हुए स्त्री तथा पुरुषों को मोहित कर सनातन सृष्टि की रचना करो ॥ ३७ ॥ तुम्हारे इस पुष्पबाण के सामने इस चराचर त्रिलोकी में देवता आदि कोई भी जीव ठहर नहीं सकेंगे ॥ ३८ ॥ हम भगवान् वासुदेव तथा स्थाणु पुरुष शङ्कर भी तुम्हारे वशवर्त्ती बनकर रहेंगे । और प्राणधारियों की तो बात ही क्या है ? ॥ ३९ ॥ तुम गुप्तरूप से प्राणियों के हृदय में प्रविष्ट होकर सबके सुख के हेतु बनो और सनातन सृष्टि करो ॥ ४० ॥ तुम्हारे बाणों के द्वारा समस्त प्राणियों का यह परम विचित्र मन सुख से बाँधा जा सकेगा । और तुम सभी को उन्मत्त करनेवाले होगे ॥ ४१ ॥ सृष्टि में प्रवृत्त करनेवाला यह कर्म मैंने तुम्हारे लिए उपदेश कर दिया । अब मेरे ये पुत्र तुम्हारा वास्तविक नाम बतायेंगे ॥ ४२ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे सुरश्रेष्ठ देवर्षि नारद ! इतना कहकर मैं अपने पुत्रों का मुख देखते हुए अपने कमलासन पर बैठ गया ॥ ४३ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के
द्वितीय-सतीखण्ड में कामप्रादुर्भाव नामक द्वितीय अध्याय समाप्त ॥ २ ॥

*

तृतीयोऽध्यायः

(ब्रह्मा द्वारा कामदेव को शाप और उसकी मुक्ति का वर्णन)

ब्रह्मोवाच

ततस्ते मुनयः सर्वे तदभिप्रायवेदिनः । चक्रुस्तदुचितं नाम मरीचिप्रमुखाः सुताः ॥ १ ॥
मुखावलोकनादेव ज्ञात्वा वृत्तान्तमन्यतः । दक्षादयश्च स्रष्टारः स्थानं पत्नीं च ते ददुः ॥ २ ॥
ततो निश्चित्य नामानि मरीचिप्रमुखा द्विजाः । ऊचुः सङ्गतमेतस्मै पुरुषाय ममात्मजाः ॥ ३ ॥

ऋषय ऊचुः

यस्मात् प्रमथसे तत्त्वं जातोऽस्माकं यथा विधेः । तस्मान् मन्मथनामा त्वं लोके ख्यातो भविष्यसि॥४॥
जगत्सु कामरूपस्त्वं त्वत्समो न हि विद्यते । अतस्त्वं कामनामापि ख्यातो भव मनो भव॥ ५ ॥
मदनान् मदनाख्यस्त्वं जातो दर्पात् सदर्पकः । तस्मात् कन्दर्पनामापि लोके ख्यातो भविष्यसि॥ ६ ॥
त्वत्समं सर्वदेवानां यद्वीर्यं न भविष्यति । ततः स्थानानि सर्वाणि सर्वव्यापी भवांस्ततः॥ ७ ॥
दक्षोऽयं भवते पत्नीं स्वयं दास्यति कामिनीम् । आद्यः प्रजापतिर्यो हि यथेष्टं पुरुषोत्तमः ॥ ८ ॥
एषा च कन्यका चारुरूपा ब्रह्ममनोभवा । सन्ध्या नाम्नेति विख्याता सर्वलोके भविष्यति॥ ९ ॥

ब्रह्मणो ध्यायतो यस्मात् सम्यग् जाता वराङ्गना ।
अतः सन्ध्येति विख्याता क्रान्ताभा तुल्यमल्लिका ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

कौसुमानि तथास्त्राणि पञ्चादाय मनोभवः । प्रच्छन्नरूपी तत्रैव चिन्तयामास निश्चयम् ॥११॥
हर्षणं रोचनाख्यं च मोहनं शोषणं तथा । मारणं चेति प्रोक्तानि मुनेर्मोहकराण्यपि ॥१२॥
ब्रह्मणा मम यत्कर्म समुद्दिष्टं सनातनम् । तदिहैव करिष्यामि मुनीनां सन्निधौ विधेः ॥१३॥

ब्रह्मा जी बोले—तब मेरे अभिप्राय को जाननेवाले मेरे पुत्र मरीचि आदि मुनिगण उस कामदेव का उचित नामकरण किये ॥ १ ॥ सृष्टिकर्त्ता दक्षादिकों ने उसका मुख देखते ही तथा उसकी अन्य चेष्टाओं से उसका सारा वृत्तान्त जानकर उसे स्थान तथा पत्नी भी दिये ॥ २ ॥ मेरे पुत्र मरीच्यादि ऋषियों ने एकत्रित होकर उस पुरुष के नाम का निश्चय कर उसका नामकरण किया ॥ ३ ॥

ऋषियों ने कहा—तुमने उत्पन्न होते ही हम लोगों के तथा ब्रह्मदेव के मन को मथ डाला, इसलिए तुम लोक में मन्मथ नाम से प्रसिद्ध होगे ॥ ४ ॥ इस जगत् में तुम्हारे समान कोई भी सुन्दर नहीं है इसलिए तुम काम नाम से विख्यात होओगे । मन से उत्पन्न होने के कारण तुम मनोमय कहे जाओगे ॥ ५ ॥ तुम सबको मदोन्मत्त करोगे इस कारण मदन कहे जाओगे । अहङ्कार करने के कारण तुम कन्दर्प कहे जाओगे ॥ ६ ॥ तुम्हारे समान किसी भी देवता का पराक्रम न होगा इसलिए तुम्हारे लिए सभी स्थान हैं और तुम सर्वव्यापी कहे जाओगे ॥ ७ ॥ ये पुरुषोत्तम दक्ष, जो आद्य प्रजापति हैं वे तुम्हारे अनुरूप उत्तम कामिनी प्रदान करेंगे ॥ ८ ॥ और यह ब्रह्मदेव के मन से उत्पन्न हुई परम सुन्दरी कन्या सन्ध्या के नाम से जगत् में विख्यात होगी ॥ ९ ॥ अच्छी प्रकार से ध्यान में लगे हुए ब्रह्माजी के हृदय से उत्पन्न होने के कारण सर्वाङ्गसुन्दरी यह कन्या संसार में सन्ध्या नाम से विख्यात होगी ॥ १० ॥

ब्रह्माजी बोले— इस प्रकार कामदेव अपने पुष्प के आयुधों को लेकर वहीं प्रच्छन्न रूप से स्थित हो सोचने लगा ॥ ११ ॥ हर्षण, रोचन, मोहन, शोषण तथा मारण नाम के ये मेरे पाँच अस्त्र हैं, जो मुनियों को भी मोहित करने वाले हैं ॥१२॥ ब्रह्मा ने मुझे जिस सनातन रूप सृष्टिकर्म के लिए आदेश दिया

तिष्ठन्ति मुनयश्चाऽत्र स्वयं चापि प्रजापतिः । एतेषां साक्षिभूतं मे भविष्यन्त्यद्य निश्चयम् ॥१४॥
सन्ध्याऽपि ब्रह्मणा प्रोक्ता चेदानीं प्रेषयेद् वचः । इह कर्म परीक्ष्यैव प्रयोगान् मोहयाम्यहम् ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

इति सञ्चिन्त्य मनसा निश्चित्य च मनोभवः । पुष्पजं पुष्पजातस्य योजयामास मार्गणैः ॥१६॥
आलीढस्थानमासाद्य धनुराकृष्य यत्नतः । चकार वलयाकारं कामो धन्विवरस्तदा ॥१७॥
संहिते तेन कोदण्डे मारुताश्च सुगन्धयः । ववुस्तत्र मुनिश्रेष्ठ ! सम्यगाह्लादकारिणः ॥१८॥
ततस्तानपि धात्रादीन् सर्वानेव च मानसान् । पृथक् पुष्पशरैस्तीक्ष्णैर्मोहयामास मोहनः ॥१९॥
ततस्ते मुनयः सर्वे मोहिताश्चाऽप्यहं मुने ! । संहितो मनसा किञ्चिद् विकारं प्रापुरादितः ॥२०॥
सन्ध्यां सर्वे निरीक्षन्तः सविकारं मुहुर्मुहुः । आसन् प्रवृद्धमदनाः स्त्री यस्मान्मदनैधिनी ॥२१॥
ततः सर्वान् स मदनो मोहयित्वा पुनः पुनः । यथेन्द्रियविकारं ते प्रापुस्तानकरोत्तथा ॥२२॥
उदीरितेन्द्रियो धाता वीक्ष्याऽहं स यदा च ताम् । तदैव चोनपञ्चाशद्भावा जाताः शरीरतः ॥२३॥
साऽपि तैर्वीक्ष्यमाणाथ कन्दर्पशरपातनात् । चक्रे मुहुर्मुहुर्भावान् कटाक्षावरणादिकान् ॥२४॥
निसर्गसुन्दरी सन्ध्या तान् भावान् मानसोद्भवान् । कुर्वन्त्यतितरां रेजे स्वर्णदीव तनूर्मिभिः ॥२५॥
अथ भावयुतां सन्ध्यां वीक्ष्याकार्षं प्रजापतिः । धर्माभिपूरित-तनुरभिलाषमहं मुने ! ॥२६॥
ततस्ते मुनयः सर्वे मरीच्यत्रिमुखा अपि । दक्षाद्याश्च द्विजश्रेष्ठ ! प्रापुर्वैकारिकेन्द्रियम् ॥२७॥
दृष्ट्वा तथाविधा दक्ष-मरीचि-प्रमुखाश्च माम् । सन्ध्यां च कर्मणि निजे श्रद्दधे मदनस्तदा ॥२८॥
यदिदं ब्रह्मणा कर्म ममोद्दिष्टं मयाऽपि तत् । कर्तुं शक्यमिति ह्यद्धा भावितं स्वभुवा तदा ॥२९॥

है, उस कर्म को मैं यहीं मुनियों तथा ब्रह्मा के सन्निकट क्यों न करूँ ॥ १३ ॥ यहाँ पर बहुत से मुनिगण तथा स्वयं प्रजापति ब्रह्मा विद्यमान हैं, इनकी साक्षिता में ही मेरे कर्म की सत्यता का श्रीगणेश भी हो जायेगा ॥ १४ ॥ यह ब्रह्मा से उत्पन्न हुई सन्ध्या भी मेरे वचन का समर्थन करेगी । मैं सर्वप्रथम इसी स्थान पर अपने कर्म की परीक्षा करूँगा । पश्चात् प्रयोग द्वारा जगत् को मोहित करूँगा ॥ १५ ॥

पुनः ब्रह्मा बोले—कामदेव इस प्रकार विचार करने के अनन्तर निश्चय कर अपने पुष्प धनुष पर पुष्प बाणों को सन्धान करने लगा ॥ १६ ॥ श्रेष्ठ धन्वी कामदेव धनुष खींचने की मुद्रा में होकर यत्न-पूर्वक धनुष चढ़ाकर मण्डलाकार किया ॥ १७ ॥ जब इस प्रकार के धनुष पर उसने अपना वाण चढ़ाया, उसी समय सुगन्धित मन को आह्लादित करनेवाला वायु बहने लगा ॥१८॥ फिर तो उसने अलग-अलग वाण चला कर समस्त मुनियों को तथा मुझ धाता को भी मोह लिया ॥१९॥ इस प्रकार मैं और सभी मुनि नाना विकारों से मोहित हो गये ॥ २० ॥ और विकारयुक्त होने के कारण हम सभी सन्ध्या की ओर बारम्बार देखने लगे । सभी के मन में काम का उद्रेक बढ़ गया । क्योंकि स्त्री काम को वढ़ानेवाली है ॥ २१ ॥ उस कामदेव ने सभी को ऐसा मोहित किया कि सभी की इन्द्रियाँ काम के विकार से युक्त हो गयीं ॥२२॥ जब मैं ब्रह्मा उस सन्ध्यारूपी स्त्री की ओर देखने लगा तो उस समय मेरे शरीर से उनचास भाव उत्पन्न हो गये ॥ २३ ॥ इधर कन्दर्प के वाण छूटते ही उन ऋषियों ने भी सन्ध्या की ओर देखना प्रारम्भ किया । उस समय वह सन्ध्या भी अपने कटाक्षों के आवरण से नानाप्रकार के भाव प्रकट करने लगी ॥ २४ ॥ एक तो सन्ध्या स्वभाव से सुन्दरी थी ही फिर जब वह नानाप्रकार के मानस भावों द्वारा अपने काम-विकारों को प्रकट करने लगी तो वह छोटे-छोटे लहरों से युक्त गङ्गा की तरह शोभित होने लगी ॥ २५ ॥ तब मैं इस प्रकार के भावों से युक्त सन्ध्या को देखकर कामधर्म (वासना) से परिपूर्ण होकर उसमें अभिलाषा करने लगा ॥ २६ ॥

हे नारद ! काम जब मरीचि, अत्रि तथा दक्षादि ऋषिगणों तथा मुझे और सन्ध्या को भी काम के विकार से युक्त देखा तो उसे अपने पर विश्वास हो गया ॥ २७-२८ ॥ कामदेव के मन में यह विश्वास

इत्थं पापगतिं वीक्ष्य भ्रातृणां च पितुस्तथा । धर्मः सस्मार शम्भुं वै तदा धर्मावनं प्रभुम् ॥३०॥
संस्मरन् मनसा धर्मं शङ्करं धर्मपालकम् । तुष्टाव विविधैर्वाक्यैर्दीनो भूत्वाजसम्भवः ॥३१॥

धर्म उवाच

देवदेव ! महादेव ! धर्मपाल ! नमोऽस्तु ते । सृष्टि-स्थिति-विनाशानां कर्ता शम्भो ! त्वमेव हि॥३२॥
सृष्टौ ब्रह्मा स्थितौ विष्णुः प्रलये हररूपधृक् । रजः-सत्त्व-तमोभिश्च त्रिगुणैरगुणः प्रभो ! ॥३३॥
निस्त्रैगुण्यः शिवः साक्षात्तुर्यश्च प्रकृतेः परः । निर्गुणो निर्विकारी त्वं नानालीलाविशारदः ॥३४॥
रक्ष रक्ष महादेव ! पापान् मां दुस्तरादितः । मत् पिताऽयं तथा चेमे भ्रातरः पापबुद्धयः ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

इति स्तुतो महेशानो धर्मेणैव परः प्रभुः । तत्राऽऽजगाम शीघ्रं वै रक्षितुं धर्ममात्मभूः ॥३६॥
जातो वियद् गतः शम्भुर्विधिं दृष्ट्वा तथाविधम् । मां दक्षाद्यांश्च मनसा जहासोपजहास च ॥३७॥
स साधुवादं तान् सर्वान् विहस्य च पुनः पुनः । उवाचेदं मुनिश्रेष्ठ ! लज्जयन् वृषभध्वजः ॥३८॥

शिव उवाच

अहो ! ब्रह्मंस्तव कथं कामभावः समुद्गतः । दृष्ट्वा च तनयां नैव योग्यं वेदानुसारिणाम् ॥३९॥
यथा माता च भगिनी भ्रातृपत्नी तथा सुता । एताः कुदृष्ट्या द्रष्टव्या न कदापि विपश्चिता ॥४०॥
एष वै वेदमार्गस्य निश्चयस्त्वन्मुखे स्थितः । कथं तु काममात्रेण स ते विस्मारितो विधे ! ॥४१॥
धैर्यं जागरितं ब्रह्मन् ! मनस्ते चतुरानन ! । कथं क्षुद्रेण कामेन रन्तुं विघटितं विधे ! ॥४२॥
एकान्तयोगिनस्तस्मात् सर्वदादित्यदर्शिनः । कथं दक्षमरीच्याद्या लोलुपाः स्त्रीषु मानसाः ॥४३॥

हो गया कि ब्रह्मा ने मुझे जिस कार्य के लिए आदेश दिया है मैं वह कार्य करने में पूर्ण रूप से सक्षम हूँ ॥ २९ ॥ ब्रह्मा के पुत्रधर्म ने जब अपने पिता तथा भाइयों की ऐसी दशा देखी तो उसने धर्म की रक्षा के लिए भगवान् सदाशिव का स्मरण किया ॥ ३० ॥ धर्म ने धर्मपालक शिव का मन से स्मरण कर दीन-भावना से नाना प्रकार के वाक्यों से सदाशिव की इस प्रकार स्तुति की ॥ ३१ ॥

धर्म बोला—हे देवदेव ! हे महादेव ! हे धर्मपाल ! आपको नमस्कार है, हे नाथ ! इस सृष्टि की स्थिति, पालन तथा विनाश करनेवाले तुम्हीं हो ॥३२॥ हे प्रभो ! आपने निर्गुण होकर भी सत्त्व, रज तथा तमोगुण से सृष्टि कार्य के लिए ब्रह्मा को, पालन के लिए विष्णु को तथा प्रलय के लिए शिवस्वरूप धारण किया है ॥ ३३ ॥ हे प्रभो ! आप प्रकृति से परे, गुणों से रहित एवं तुरीयावस्था में स्थित शिवस्वरूप हो । आप निर्गुण, निर्विकार तथा नानाप्रकार की लीलाओं में विशारद हो ॥ ३४ ॥ हे प्रभो ! इस दुस्तर पाप से मेरी रक्षा करो। इस समय मेरे पिता की तथा मेरे इन भाइयों की पापबुद्धि हो रही है ॥ ३५ ॥

ब्रह्मा ने कहा—धर्म के द्वारा परमात्मा महेश्वर प्रभु जब इस प्रकार स्तुति किये गये तो वे धर्म की रक्षा के लिए वहीं प्रकट हो गये ॥ ३६ ॥ वे वृषभध्वज आकाश में स्थित होकर ब्रह्मा को तथा दक्षादि प्रजापतियों को इस प्रकार काम से मोहित देखकर मन में हँसने लगे ॥ ३७ ॥ और वारम्बार साधुवाद देते हुए हँसकर मुझे लज्जित करते हुए बोले—॥ ३८ ॥

शिवजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! तुम तो वेदमार्ग का अनुसरण करनेवाले हो फिर भी अपनी कन्या को देखकर तुम्हारे मन में इस प्रकार के कामभाव की उत्पत्ति तो उचित नहीं है ॥ ३९ ॥ बुद्धिमान् को चाहिए कि माता, भगिनी, भ्रातृपत्नी तथा कन्या को समान भाव से देखे । उन्हें कदापि कुदृष्टि से न देखे ॥ ४० ॥ यह वेदमार्ग का सिद्धान्त तो तुम्हारे मुख में भी स्थित है । आपने काम के उत्पन्न होते ही उस धर्ममार्ग को किस प्रका विस्मृत कर दिया ॥ ४१ ॥ हे चतुरानन ! तुम्हारे मन में सदैव धैर्य जागरूक रहना चाहिए । आश्चर्य है कि तुमने इस क्षुद्र काम के वशीभूत हो कन्या से रमण करने के लिए इस प्रकार अपने धैर्य को नष्ट कर दिया ॥ ४२ ॥ आदित्य के समान तेजस्वी तुम्हारे मानस पुत्र कहे जानेवाले ये

कथं कामोऽपि मन्दात्मा प्राबल्यात् सोऽधुनैव हि। विकृतान् बाणैः कृतवानकालज्ञोऽल्पचेतनः ॥४४॥
धिक् तं श्रुतं सदा तस्य यस्य कान्तां मनोऽहरत्। धैर्यादाकृष्य लौल्येषु मज्जयत्यपि मानसम् ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा लोके सोऽहं शिवस्य च। व्रीडया द्विगुणीभूतः स्वेदार्द्रस्त्वभवं क्षणात् ॥४६॥
ततो निगृह्येन्द्रियकं विकारं चात्यजं मुने!। जिघृक्षुरपि तद् भीत्या तां सन्ध्यां कामरूपिणीम् ॥४७॥
मच्छरीरात्तु धर्माम्भो यत्पपात द्विजोत्तम!। अग्निष्वात्ताः पितृगणा जाताः पितृगणास्ततः ॥४८॥
भिन्नाञ्जननिभाः सर्वे फुल्लराजीव-लोचनाः। नितान्तयतयः पुण्याः संसारविमुखाः परे ॥४९॥
सहस्राणां चतुःषष्टिरग्निष्वात्ताः प्रकीर्तिताः। षडशीतिसहस्राणि तथा बर्हिषदो मुने! ॥५०॥
घर्माम्भः पतितं भूमौ तदा दक्षशरीरतः। समस्तगुणसम्पन्ना तस्माज्जाता वराङ्गना ॥५१॥
तन्वङ्गी सममध्या च तनुरोमावली श्रुता। मृदङ्गी चारुदशना नवकाञ्चनसुप्रभा ॥५२॥
सर्वावयवरम्या च पूर्णचन्द्राननाम्बुजा। नाम्ना रतिरिति ख्याता मुनीनामपि मोहिनी ॥५३॥
मरीचिप्रमुखाः षड् वै निगृहीतेन्द्रियक्रियाः। ऋते क्रतुं वसिष्ठं च पुलस्त्याङ्गिरसौ तथा ॥५४॥
क्रत्वादीनां चतुर्णां च बीजं भूमौ पपात च। तेभ्यः पितृगणा जाता अपरे मुनिसत्तम! ॥५५॥
सोमपा आज्यपा नाम्ना तथैवाऽन्ये सुकालिनः। हविष्मन्तः सुताः सर्वे कव्यवाहाः प्रकीर्तिताः ॥५६॥

क्रतोस्तु सोमपाः पुत्रा वसिष्ठात् कालिनस्तथा।
आज्यपाख्याः पुलस्त्यस्य हविष्मन्तोऽङ्गिरः सुताः ॥५७॥

दक्षादि महर्षिगण, जो एकान्तयोगी कहे जाते हैं वे किस प्रकार स्त्री को देखते ही उसमें लोलुप हो गये ॥४३॥ और अल्पबुद्धिवाला मन्दात्मा यह काम भी बिना अवसर के इसी समय अपना बल प्रकट करने के लिए आप लोगों को क्यों विकारयुक्त बना दिया ॥ ४४ ॥ ये स्त्रियाँ, जिसके मन के धैर्य को छुड़ाकर इन्द्रियों की लोलुपता में डुबो देती हैं, उन स्त्रियों के वशीभूत रहनेवाले पुरुष के श्रुत को धिक्कार है ॥४५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार सदाशिव के वचन को सुनकर मैं दूनी लज्जा में पड़ गया, उस समय मेरा शरीर पानी-पानी हो उठा ॥ ४६ ॥ और कामरूपिणी उस सन्ध्या को पकड़ने की इच्छा करते हुए भी मैंने धैर्य से समस्त काम-विकारों को दूर कर दिया ॥ ४७ ॥ मेरे शरीर से लज्जा के कारण जो धर्मविन्दु (स्वेद) पृथ्वी पर गिरे, उसी से अग्निष्वात्त इत्यादि पितृगणों की उत्पत्ति हुई ॥ ४८ ॥ जिनके शरीर की कान्ति काले-काले अञ्जन पर्वत के समान कृष्णवर्ण हैं और उन पितृगणों के नेत्र फूले हुए कमल के समान विशाल हैं, वे पितर पुण्यशील, महायोगी तथा संसार से विमुख रहनेवाले हैं ॥ ४९ ॥

हे मुने! इन पितृगणों में अग्निष्वात्त नामक पितरों की संख्या चौंसठ हजार तथा बर्हिषद पितरों की संख्या छियासी हजार है ॥ ५० ॥ उसी समय दक्ष के शरीर से भी स्वेद निकलकर पृथ्वी पर गिरा, उससे समस्त गुण-सम्पन्न एक परम मनोहर स्त्री उत्पन्न हुई ॥ ५१ ॥ उसका शरीर सूक्ष्म था, कटिप्रदेश सम था तथा शरीर की रोमावली अत्यन्त सूक्ष्म थी। उसका शरीर पर मृदु तथा दाँत परम सुन्दर थे। वह तपे हुए सोने के ससान कान्ति से देदीप्यमान हो रही थी ॥ ५२ ॥ वह अपने शरीर के समस्त अवयवों से बड़ी मनोहर प्रतीत हो रही थी तथा मुखकमल चन्द्रमा के समान रमणीय प्रतीत हो रहा था। उसका नाम रति था, जो मुनियों के भी मन को मोहित करनेवाली थी ॥ ५३ ॥ मरीचि आदि छह ऋषियों ने तो अपने इन्द्रियों का धैर्य से निग्रह कर लिया, किन्तु क्रतु, वसिष्ठ, पुलस्त्य तथा अङ्गिरा अपने इन्द्रियों का निग्रह करने में असमर्थ रहे। इस प्रकार इन चार ऋषियों का जो वीज पृथ्वी पर गिरा उससे और पितृगणों की उत्पत्ति हुई ॥ ५४-५५ ॥ इन पितरों के सोमपा, आज्यपा, सुकालिन् तथा हविष्मान् हैं। ये सभी पितरों के कव्य को धारण करनेवाले कहे गये हैं ॥ ५६ ॥ क्रतु से सोमप नाम के पितर, वसिष्ठ से सुकालिन् नाम के पितर, पुलस्त्य के आज्यप तथा अङ्गिरा के हविष्मान् नामक

जातेषु तेषु विप्रेन्द्र ! अग्निष्वात्तादिकेष्वथ । लोकानां पितृवर्गेषु कव्यवाट् स समन्ततः ॥५८॥
सन्ध्या पितृप्रसूर्भूत्वा तदुद्देशयुताऽभवत् । निर्दोषा शम्भुसंदृष्टा धर्मकर्मपरायणा ॥५९॥
एतस्मिन्नन्तरे शम्भुरनुगृह्याऽखिलान् द्विजान् । धर्मं संरक्ष्य विधिवदन्तर्धानं गतो द्रुतम् ॥६०॥
अथ शङ्करवाक्येन लज्जितोऽहं पितामहः । कन्दर्पायाकोपितं हि भ्रुकुटीकुटिलाननः ॥६१॥
दृष्ट्वा मुखमभिप्रायं विदित्वा सोऽपि मन्मथः । स्वबाणान् सञ्जहाराशु भीतः पशुपतेर्मुने ! ॥६२॥
ततः कोपसमायुक्तः पद्मयोनिरहं मुने ! । अज्वलं चातिबलवान् दिधक्षुरिव पावकः ॥६३॥
भवनेत्राग्निनिर्दग्धः कन्दर्पो दर्पमोहितः । भविष्यति महादेवे कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥६४॥
इति वेधास्त्वहं काममक्षयं द्विजसत्तम ! । समक्षं पितृसङ्घस्य मुनीनां च यतात्मनाम् ॥६५॥
इति भीतो रतिपतिस्तत्क्षणात्त्यक्तमार्गणः । प्रादुर्बभूव प्रत्यक्षं शापं श्रुत्वातिदारुणम् ॥६६॥
ब्रह्माणं मामुवाचेदं सदक्षादिसुतं मुने ! । शृण्वतां पितृसङ्घानां सन्ध्यायाश्च विगर्वधीः ॥६७॥

काम उवाच

किमर्थं भवता ब्रह्मन् ! शप्तोऽहमिति दारुणम् । अनागास्तव लोकेश ! न्याय्यमार्गानुसारिणः ॥६८॥
त्वया चोक्तं नु मत्कर्म यत्तद् ब्रह्मन् ! कृतं मया । तत्र योग्यो न शापो मे यतो नाऽन्यत् कृतं मया ॥६९॥
अहं विष्णुस्तथा शम्भुः सर्वे त्वच्छरगोचराः । इति यद्भवता प्रोक्तं तन्मयाऽपि परिक्षितम् ॥७०॥
नापराधो ममाप्यत्र ब्रह्मन् ! मयि निरागसि । दारुणः समयश्चैव शापो देव जगत्पते ! ॥७१॥

पितर उत्पन्न हुए ॥ ५७ ॥ इस प्रकार कव्यवाट् आदि पितरों के उत्पन्न हो जाने पर वे सभी कव्य वहन करनेवाले कव्यवाट् हुए ॥ ५८ ॥ सन्ध्या पितरों को उत्पन्न करने के कारण पितृप्रसू कही गयी। यह शिव के द्वारा देख लिये जाने के कारण दोषों से रहित तथा धर्म-कर्म के योग्य हुई ॥ ५९ ॥ इसी बीच सदाशिव समस्त महर्षियों पर अनुग्रह तथा धर्म की रक्षा कर शीघ्र ही अन्तर्धान हो गये ॥ ६० ॥ तदनन्तर शम्भु सदाशिव के वाक्यों से मुझे बहुत लज्जा हुई। मैंने अपनी भृकुटी चढ़ा ली, उस समय मुझे काम पर बहुत बड़ा क्रोध हुआ ॥ ६१ ॥ इधर कामदेव भी मेरे मुख को देखकर मेरा अभिप्राय समझ गया। उसने भयभीत होकर शीघ्रता से अपना बाण उतार लिया। जिस प्रकार रुद्र से कोई भयभीत हो जाता है, उसी प्रकार वह भी भयभीत हो उठा ॥ ६२ ॥ हे नारद ! मैं क्रोध से इस प्रकार जलने लगा, जिस प्रकार बलवान् अग्नि प्रज्वलित हो उठती है ॥ ६३ ॥ मैंने क्रोध में भर कर उसे शाप दिया कि घमण्ड से मोहित हुआ यह कन्दर्प जब शिव में इसी प्रकार का दुस्तर कार्य करेगा तो शिव की नेत्राग्नि से भस्म हो जायेगा ॥ ६४ ॥ इस प्रकार पितृ-समूहों के तथा जितेन्द्रिय मुनियों के सामने ही उस काम को मैंने यह अक्षय शाप दिया ॥ ६५ ॥ फिर तो मेरे शाप से भयभीत हुए काम ने उसी क्षण अपने बाणों को उतार लिया और मेरे अत्यन्त कठिन शाप को सुनकर सबके सामने प्रत्यक्ष प्रगट हो गया ॥ ६६ ॥ उसका सारा गर्व नष्ट हो गया, तब वह दक्षादि पुत्रों, अग्निष्वात्तादि पितरों, सन्ध्या एवं मुझ ब्रह्मा के सामने ही सबको सुनाते हुए इस प्रकार का वचन कहने लगा ॥ ६७ ॥

काम बोला--हे ब्रह्मन् ! आप तो न्यायमार्ग का अनुसरण करनेवाले हैं फिर मुझ निरपराध को आपने इस प्रकार दारुण शाप क्यों दिया ॥ ६८ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपने जैसा कहा था, मैंने तो वही कर्त्तव्य किया, अतः आपकी आज्ञा पाने पर ही जिस कार्य को मैंने किया उसके लिए आपको शाप देना ठीक नहीं। क्योंकि, मैंने आपकी आज्ञा के विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं किया ॥ ६९ ॥ "आपने कहा था कि मैं, विष्णु तथा रुद्र भी तुम्हारे बाणों के वशीभूत होकर रहेंगे, उस कहने के अनुसार ही मैंने यह परीक्षा ली थी ॥ ७० ॥ अतः हे ब्रह्मन् ! इसमें मेरा रंचमात्र भी अपराध नहीं फिर आपने मुझ निरपराध को इस प्रकार का दारुण शाप क्यों दिया ? । हे जगत्पते ! आपका यह शाप भी नितान्त दारुण है ॥ ७१ ॥

ब्रह्मोवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्माऽहं जगतां पतिः । प्रत्यवोचं यतात्मानं मदनं दमयन्मुहुः ॥७२॥
आत्मजा मम सन्ध्येयं यस्मादेतत् स कामतः । लक्ष्यीकृतोऽहं भवता ततः शापो मया कृतः॥७३॥
अधुना शान्तरोषोऽहं त्वां वदामि मनोभव । शृणुष्व गतसन्देहः सुखी भव भयं त्यज ॥७४॥
त्वं भस्म भूत्वा मदन ! भर्गलोचनवह्निना । तथैवाशु समं पश्चाच्छरीरं प्रापयिष्यसि ॥७५॥
यदा करिष्यति हरोऽञ्जसा दारपरिग्रहम् । तदा स एव भवतः शरीरं प्रापयिष्यति ॥७६॥
एवमुक्त्वाऽथ मदनमहं लोकपितामहः । अन्तर्गतो मुनीन्द्राणां मानसानां प्रपश्यताम्॥७७॥
इत्येवं मे वचः श्रुत्वा मदनस्तेऽपि मानसाः । सम्बभूवुः सुताः सर्वे सुखिनोऽरं गृहं गताः ॥७८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे
कामशापानुग्रहवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

(दक्षकन्या रति के साथ कामदेव का विवाह और योग्यवरप्राप्तिजन्य आनन्द का वर्णन)

नारद उवाच

विष्णुशिष्य महाप्राज्ञ विधे लोककर प्रभो ! । अद्भुतेयं कथा प्रोक्ता शिवलीलामृतान्विता ॥ १ ॥
ततः किमभवत्तात ! चरितं तद् वदाऽधुना । अहं श्रद्धान्वितः श्रोतुं यदि शम्भुकथाश्रयम् ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

शम्भौ गते निजस्थाने वेधस्यन्तर्हिते मयि । दक्षः प्राहाथ कन्दर्पं संस्मरन् मम तद्वचः ॥ ३ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! तब जगत्पति मैं ब्रह्मा इस बात को सुनकर काम को बारम्बार डाँटता हुआ इस प्रकार बोला- ॥ ७२ ॥ हे काम ! यद्यपि यह सन्ध्या हमारी कन्या है, तुमने इसी को उद्देश्य कर मुझे अपने काम का लक्ष्य बनाया। इसलिए मैंने तुम्हें शाप दिया ॥ ७३ ॥ हे काम ! अब मेरा क्रोध शान्त हो गया है, मैं जो कहता हूँ उसे सुनो, सन्देह मत करो, सुख से रहो और भय छोड़ो ॥ ७४ ॥ तुम महादेवजी के नेत्राग्नि से भस्म हो जाओगे। उसी के बाद तुम शीघ्र ही शरीर धारण करोगे ॥ ७५ ॥ जब शङ्करजी अनायास विवाह करेंगे, तब वही तुम्हें शरीर भी प्रदान करेंगे ॥ ७६ ॥ हे नारद ! काम से इतना कहकर मैं लोकपितामह अपने मानसपुत्रों के देखते-देखते अन्तर्द्धान हो गया ॥ ७७ ॥ इस प्रकार मेरे वचन को सुनकर वे सभी मेरे मानसपुत्र तथा कामदेव सुखी होकर शीघ्रता से अपने-अपने घरों को चले गये ॥ ७८ ॥

इसप्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में काम को शाप तथा उस पर अनुग्रह वर्णन नामक तृतीय अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

*

नारदजी बोले—हे विष्णुशिष्य, हे विधे, हे महाप्राज्ञ, हे विश्वस्रष्टा, हे प्रभो ! आपने शिवलीला रूपी अमृत से युक्त यह अद्भुत कथा कही ॥ १ ॥ इसलिए आप यदि मुझे शम्भु की कथा का एकमात्र आश्रय करनेवाला तथा शम्भु की कथा में श्रद्धा रखने वाला समझते हैं तो आगे क्या हुआ ? सो सब कहिए ॥ २ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार जब शिव अपने स्थान को चले गये तथा मैं ब्रह्मा अन्तर्धान हो गया तब दक्षप्रजापति मेरी बात को स्मरण करते हुए कामदेव से कहने लगे ॥ ३ ॥

दक्ष उवाच

मद्देहजेयं कन्दर्प ! सद्रूपगुणसंयुता । एनां गृह्णीष्व भार्यार्थं भवतः सदृशीं गुणैः ॥ ४ ॥
एषा तव महातेजाः सर्वदा सहचारिणी । भविष्यति यथाकामं धर्मतो वशवर्तिनी ॥ ५ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै देहस्वेदाम्बुसम्भवाम् । कन्दर्पायाग्रतः कृत्वा नाम कृत्वा रतीति ताम् ॥ ६ ॥
विवाह्य तां स्मरः सोऽपि मुमोदातीव नारद ! । दक्षजां तनयां रम्यां मुनीनामपि मोहिनीम् ॥ ७ ॥
अथ तां वीक्ष्य मदनो रत्याख्यां स्वस्त्रियं शुभाम् । आत्मागुणेन विद्धोऽसौ मुमोह रतिरञ्जितः ॥ ८ ॥
क्षणप्रदाऽभवत् कान्ता गौरी मृगदृशी मुदा । लोलापाङ्ग्यथ तस्यैव भार्या च सदृशी रतौ ॥ ९ ॥
तस्या भ्रूयुगलं वीक्ष्य संशयं मदनोऽकरोत् । उत्सादनं मत्कोदण्डं विधात्राऽस्यां निवेशितम् ॥१०॥
कटाक्षाणामाशु गतिं दृष्ट्वा तस्या द्विजोत्तम ! । आशु गन्तुं निजास्त्राणां श्रद्दधे न च चारुताम् ॥११॥
तस्याः स्वभावसुरभिधीरश्वासानिलं तथा । आघ्राय मदनः श्रद्धां त्यक्तवान् मलयानिले ॥१२॥
पूर्णेन्दुसदृशं वक्त्रं दृष्ट्वा लक्ष्मसुलक्षितम् । न निश्चिकाय मदनो भेदं तन्मुखचन्द्रयोः ॥१३॥
सुवर्णपद्मकलिकातुल्यं तस्याः कुचद्वयम् । रेजे चूचुकयुग्मेन भ्रमरेणेव वेष्टितम् ॥१४॥
दृढपीनोन्नतं तस्याः स्तनमध्यं विलम्बिनीम् । आनाभिप्रतलं मालां तन्वीं चन्द्रायितां शुभाम् ॥१५॥
ज्यां पुष्पधनुषः कामः षट्पदावलिसम्भ्रमाम् । विसस्मार च यस्मात्तां विसृज्यैनां निरीक्षते ॥१६॥
गम्भीरनाभिरन्ध्रान्तश्चतुःपार्श्वत्वगावृतम् । आननाञ्जेऽक्षणी-द्वन्द्वमारक्तकफलं यथा ॥१७॥
क्षीणमध्येन वपुषा निसर्गाष्टापदप्रभा । रुक्मवेदीव ददृशे कामेन रमणी हि सा ॥१८॥

दक्ष बोले—हे काम ! यह सुन्दर रूप एवं सुन्दर गुणों से युक्त तुम्हारे ही समान सुन्दरी कन्या मेरे शरीर से उत्पन्न हुई है, अतः तुम अपनी स्त्री बनाने के लिए इसे ग्रहण करो ॥ ४ ॥ यह महा तेजस्विनी कन्या सर्वदा तुम्हारे साथ रहेगी और धर्मतः इच्छानुसार तुम्हारी आज्ञा का पालन करती हुई तुम्हारे वश में रहेगी ॥ ५ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! ऐसा कहकर दक्ष ने अपने स्वेद से उत्पन्न हुई उस कन्या का रति नामकरण कर और उसे अपने आगे रखकर कामदेव को दे दिया ॥६॥ हे नारद ! कामदेव भी मुनियों को मोहित करनेवाली परम सुन्दरी दक्षकन्या से विवाह कर बड़ा प्रसन्न हुआ ॥७॥ कामदेव भी परम कल्याणकारिणी रति नामक अपनी स्त्री के गुणों से आकृष्ट होकर उस पर अत्यन्त मोहित हो गया ॥ ८ ॥ गौरवर्णवाली हरिणाक्षी तथा चञ्चलापाङ्गी वह रति भी काम के सदृश होने के कारण उसे परम आह्लाद प्रदान करने लगी ॥ ९ ॥ उसे चञ्चल भौंहों को देखकर कामदेव संशय में पड़ जाता कि विधाता ने सबको वश में करनेवाले मेरे बाणों को इसके नेत्रों में सन्निविष्ट कर दिया है क्या ? ॥१०॥ उस रति के शीघ्रता से चलनेवाले तिरछे कटाक्षों को देखकर वह अपने अस्त्रों की चारुता तथा आशुगामिता को तुच्छ समझने लगा ॥११॥ उसके स्वाभाविक रूप से धीरे-धीरे चलनेवाले सुगन्ध युक्त श्वासों को सूँघकर वह मलयानिल की सुगन्धि तथा चारुता को तुच्छ समझने लगा ॥ १२ ॥ सुन्दर लक्षण से युक्त, पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान उसके मुखमण्डल को देखकर वह मुख तथा चन्द्रमा का भेद करने में असमर्थ हो गया ॥ १३ ॥ सुवर्ण-कमल की कली के समान उसके कुचद्वन्द्वों पर विराजमान दोनों चूचुक कमल पर बैठे हुए भ्रमर के समान सुशोभित हो रहे थे ॥ १४ ॥ कठोर, स्थूल एवं उन्नत स्तनों के बीच में नाभिपर्यन्त लटकने वाली चन्द्रमा के समान स्वच्छ माला धारण किये हुए उस कृशोदरी को देखकर वह काम भ्रमर के पंक्ति के समान अपने पुष्पधनुष की मौर्वी को भी भूल गया । वह उस पुष्पधनुष की मौर्वी को भूलकर बारम्बार उसी की ओर एकटक देख रहा था ॥ १५-१६ ॥ चारों ओर त्वक् से परिवेष्टित उसकी नाभि का रन्ध्र अत्यन्त गम्भीर था । उसके दोनों नेत्र-कमल तथा मुखकमल लाल फल के समान प्रतीत हो रहे थे ॥ १७ ॥ उस कामदेव ने उस कृश कटि तटवाली रमणी को सुवर्णवेदी के समास देखा, जो कोमल लता के समान प्रतीत हो रहे थे ॥ १८ ॥

रम्भास्तम्भायतं स्निग्धं यदूरुयुगलं मृदु । निजशक्तिसमं कामो वीक्षाञ्चक्रे मनोहरम् ॥१९॥
आरक्तपार्ष्णिपादाग्रप्रान्तभागं पदद्वयम् । अनुरागमिवाऽनेन मित्रं तस्या मनोभवः ॥२०॥
तस्याः करयुगं रक्तं नखरैः किंशुकोपमैः । वृत्ताभिरङ्गुलीभिश्च सूक्ष्माग्राभिर्मनोहरम् ॥२१॥
तद्बाहुयुगलं कान्तं मृणालयुगलायतम् । मृदु स्निग्धं चिरं राजत्कान्तिलोहप्रवालवत् ॥२२॥
नीलनीरदसङ्काशः केशपाशो मनोहरः । चमरीबालभरवद् विभाति स्म स्मरप्रिया ॥२३॥
एतादृशीं रतिं नाम्ना प्रालेयाद्रिसमुद्भवाम् । गङ्गामिव महादेवो जग्राहोत्फुल्ललोचनः ॥२४॥
चक्रपद्मां चारुबाहुं मृणालशकलान्विताम् । भ्रूयुग्म-विभ्रमव्रात-तनूर्मि-परिराजिताम् ॥२५॥
कटाक्षपाततुङ्गौघां स्वीयनेत्रोत्पलान्विताम् । तनुलोमाम्बुशैवालां मनोद्रुमविलासिनीम् ॥२६॥
निम्ननाभिह्रदां क्षामां सर्वाङ्गरमणीयिकाम् । सर्वलावण्यसदनां शोभमानां रमामिव ॥२७॥
द्वादशाभरणैर्युक्तां शृङ्गारैः षोडशैर्युताम् । मोहिनीं सर्वलोकानां भासयन्तीं दिशो दश ॥२८॥
इति तां मदनो वीक्ष्य रतिं जग्राह सोत्सुकः । रागादुपस्थितां लक्ष्मीं हृषीकेशः इवोत्तमाम् ॥२९॥
नोवाच च तदा दक्षं कामो मोदभवाचतः । विस्मृत्य दारुणं शापं विधिदत्तं विमोहितः ॥३०॥
तदा महोत्सवस्तात ! बभूव सुखवर्द्धनः । दक्षः प्रीततरश्चासीन् मुमुदे तनया मम ॥३१॥
कामोऽतीव सुखं प्राप्य सर्वदुःखक्षयं गतः । दक्षजाऽपि रतिः कामं प्राप्य चापि जहर्ष ह ॥३२॥

उसके दोनों ऊरुयुगल कदली स्तम्भ के सदृश स्निग्ध तथा मृदु थे। इस प्रकार इस मनोहर लावण्यमयी रति को कामदेव ने अपने शक्ति के समान देखा ॥ १९ ॥ उसके पैर के पार्श्व भाग तथा अग्रभाग रक्त-वर्ण के थे। कामदेव ने अनुराग को उसका मित्र समझ लिया। पलाशपुष्प के समान नखों से युक्त उसके दोनों पैर रक्त वर्ण के थे। जो अग्रभाग में सूक्ष्म, गोलाकार अँगुलियों से युक्त होने के कारण अत्यन्त मनोहर प्रतीत हो रहे थे। उसकी दोनों भुजाएँ मृणाल (कमलतन्तु) के समान लम्बी, कोमल तथा चिकनी और रक्तवर्ण के मूँगे के समान शोभित हो रही थीं। उसका मनोहर केशपाश काले-काले बादलों के समान शोभा पा रहा था। और बाल चमरी के वाल के समान घुँघराले प्रतीत हो रहे थे। इस प्रकार परम सौन्दर्य युक्त उस रति को कामदेव ने इस प्रकार ग्रहण किया, जिस प्रकार हिमालय से उत्पन्न गङ्गा को महादेवजी ने ग्रहण किया था ॥ २०-२४ ॥ चक्र तथा पद्म के चिह्नों से युक्त मृणालखण्ड लिये हुए मनोहर हाथों से युक्त वह रति गङ्गा नदी के समान प्रतीत हो रही थी। वह रति के दोनों भौंहों के विलास समूह नदी के सूक्ष्म लहर के समान प्रतीत हो रहे थे ॥ २५ ॥ उसके कटाक्षपात ही नदी की बेगवती धारा थी और विशाल नेत्र कमल के समान प्रतीत हो रहे थे। सूक्ष्म रोमराजी शैवाल थी, वह अपने मनरूपी वृक्षों से विलास कर रही थी ॥ २६ ॥ उसकी गम्भीर नाभि ह्रद के समान शोभा पा रही थी। वह कृशगात्रा रति अपनी सर्वाङ्ग की रमणीयता तथा सर्व-लावण्यमय शोभा से बारह आभूषणों से युक्त, षोडश शृङ्गार से शोभायमान सम्पूर्ण लोकों को मोहनेवाली, अपनी कान्ति से दशों दिशाओं को देदीप्यमान करती हुई महालक्ष्मी-जैसी प्रतीत हो रही थी ॥ २७-२८ ॥

इस प्रकार की महा सुन्दरी रति को देखते ही कामदेव ने बड़ी प्रसन्नता से उसे ग्रहण कर लिया। जिस प्रकार स्वयं राग से उपस्थित हुई महालक्ष्मी को भगवान् नारायण ने ग्रहण किया था ॥ २९ ॥ उस समय वह काम आनन्द के उद्वेग से ब्रह्मा के द्वारा दिये गये शाप को भूल गया। और दक्ष से कुछ न बोला ॥ ३० ॥ उस समय सबके सुख को बढ़ानेवाला महान् महोत्सव हुआ। दक्ष प्रजापति तो अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। और मेरी कन्या वह रति भी परम प्रसन्न हुई ॥ ३१ ॥ काम का सारा दुःख नष्ट हो गया, वह अत्यन्त सुखी हो गया। इधर दक्षतनया रति भी काम को पति रूप में प्राप्त कर महान् हर्षित

रराज तनयासार्द्धं भिन्नश्चारुवचः स्मरः । जीमूत इव सन्ध्यायां सौदामन्या मनोज्ञया ॥३३॥
इति रतिपतिरुच्चैर्मोहयुक्तो रतिं तां, हृदुपरि जगृहे वै योगदर्शीव विद्याम् ।
रतिरपि पतिमग्र्यं प्राप्य सा चापि रेजे, हरिमिव कमला वै पूर्णचन्द्रोपमास्या ॥३४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे
कामविवाहवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

(सन्ध्या के तप से प्रसन्न होकर शिव द्वारा उसे अनेक वर-प्राप्ति)

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य ब्रह्मणो मुनिसत्तमः । स मुदोवाच संस्मृत्य शङ्करं प्रीतमानसः ॥ १ ॥

नारद उवाच

ब्रह्मन् विधे महाभाग विष्णुशिष्य महामते ! । अद्भुता कथिता लीला त्वया च शशिमौलिनः ॥ २ ॥
गृहीतदारे मदने हृष्टे हि स्वगृहं गते । दक्षे च स्वगृहं याते तथा हि त्वयि कर्त्तरि ॥ ३ ॥
मानसेषु च पुत्रेषु गतेषु स्वस्वधामसु । सन्ध्या कुत्र गता सा च ब्रह्मपुत्री पितृप्रसूः ॥ ४ ॥
किं चकार च केनैव पुरुषेण विवाहिता । एतत्सर्वं विशेषेण सन्ध्यायाश्चरितं वद ॥ ५ ॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य ब्रह्मपुत्रस्य धीमतः । संस्मृत्य शङ्करं भक्त्या ब्रह्मा प्रोवाच तत्त्ववित् ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु त्वं च मुने ! सर्वं सन्ध्यायाश्चरितं शुभम् । यच्छ्रुत्वा सर्वकामिन्यः साध्व्यः स्युः सर्वदा मुने ! ॥ ७ ॥
सा च सन्ध्या सुता मे हि मनोजाता पुराऽभवत् । तपस्तप्त्वा तनुं त्यक्त्वा सैव जाता त्वरुन्धती ॥ ८ ॥

हुई ॥ ३२ ॥ रति से मोहित हुआ, मधुरभाषी वह काम सायङ्काल में मनोहर बिजली से युक्त मेघ के समान दक्षकन्या रति के साथ शोभा पाने लगा ॥ ३३ ॥ इस प्रकार रतिपति काम मोहित होकर उस रति को इस प्रकार ग्रहण किया जिस प्रकार योगी ब्रह्म-विद्या को प्राप्त करते हैं। और पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मनोहर मुखवाली वह रति भी काम को प्राप्त कर इस प्रकार प्रसन्न हुई जिस प्रकार पूर्ण चन्द्रमुखी महालक्ष्मी विष्णु को पति प्राप्त कर प्रसन्न हुई थीं ॥ ३४ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती'भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में काम-विवाहवर्णन नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

*

सूतजी बोले—हे महर्षियो ! ब्रह्मा के इस प्रकार के वचनों को सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारद बड़े प्रसन्न हुए और शङ्करजी का स्मरण करते हुए बोले ॥ १ ॥

नारदजी ने कहा—हे महाभाग ! हे ब्रह्मन् ! हे महामति विष्णुशिष्य ! आपने यह शिवजी की अद्‌भुत कथा कही ॥ २ ॥ जब कामदेव रति को प्राप्त कर बड़ी प्रसन्नता से अपने घर चला आया। इसी प्रकार दक्ष प्रजापति, ब्रह्मा तथा ब्रह्मा के मानसपुत्रों के भी अपने-अपने स्थान चले जाने पर पितरों के जन्मदात्री वह ब्रह्मपुत्री सन्ध्या कहाँ गयी ? ॥ ३-४ ॥ उसने क्या किया ? उसका विवाह किस पुरुष के साथ हुआ। इसी प्रकार और भी विशेष उस सन्ध्या के चरित्र को कहिए ॥ ५ ॥

सूतजी बोले—तत्त्वज्ञ ब्रह्मदेव, इस प्रकार परम बुद्धिमान् देवर्षि नारद के वचन को सुनकर शङ्कर का स्मरण करते हुए बोले ॥ ६ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! तुम सन्ध्या के सम्पूर्ण शुभ चरित्रों को सुनो, जिसके सुनने से स्त्रियाँ पतिव्रता होती हैं ॥ ७ ॥ वह सन्ध्या, जो पूर्वकाल में मेरे मन से उत्पन्न हुई थी, वही तपस्या कर शरीर

मेधातिथेः सुता भूत्वा मुनिश्रेष्ठस्य धीमती । ब्रह्म-विष्णु-महेशान-वचनाच्चरितव्रता ॥९॥
वव्रे पतिं महात्मानं वसिष्ठं शंसितव्रतम् । पतिव्रता च मुख्याऽभूद् वन्द्या पूज्या त्वभीषणा॥१०॥

नारद उवाच

कथं तया तपस्तप्तं किमर्थं कुत्र सन्ध्यया । कथं शरीरं सा त्यक्त्वाऽभवन्मेधातिथेः सुता॥११॥
कथं वा विहितं देवै-र्ब्रह्म-विष्णु-शिवैः पतिम् । वसिष्ठं तु महात्मानं संवव्रे शंसितव्रतम् ॥१२॥
एतन्मे श्रोष्यमाणाय विस्तरेण पितामह ! । कौतूहलमरुन्धत्याश्चरितं ब्रूहि तत्त्वतः ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

अहं स्वतनयां सन्ध्यां दृष्ट्वा पूर्वमथात्मनः । कामायाशु मनोऽकार्षं त्यक्त्वा शिवभयाच्च सा॥१४॥
सन्ध्यायाश्चलितं चित्तं कामबाणविलोडितम् । ऋषीणामपि संरुद्धमानसानां महात्मनाम् ॥१५॥
भर्गस्य वचनं श्रुत्वा सोपहासं च मां प्रति । आत्मनश्चलितत्वं वै ह्यमर्यादमृषीन् प्रति ॥१६॥
कामस्य तादृशं भावं मुनिमोहकरं मुहुः । दृष्ट्वा सन्ध्या स्वयं तत्रोपयमायातिदुःखिता ॥१७॥
ततस्तु ब्रह्मणा शप्ते मदने च मया मुने ! । अन्तर्भूते मयि शिवे गते चापि निजास्पदे ॥१८॥
आमर्षवशमापन्ना सा सन्ध्या मुनिसत्तम ! । मम पुत्री विचार्यैवं तदा ध्यानपराऽभवत् ॥१९॥
ध्यायन्ती क्षणमेवाशु पूर्वं वृत्तं मनस्विनी । इदं विममृशे सन्ध्या तस्मिन् काले यथोचितम् ॥२०॥

सन्ध्योवाच

उत्पन्नमात्रां मां दृष्ट्वा युवतीं मदनेरितः । अकार्षीत् सानुरागोऽयमभिलाषं पिता मम ॥२१॥
पश्यतां मानसानां च मुनीनां भावितात्मनाम् । दृष्ट्वैव मामममर्यादं सकाममभवन्मनः ॥२२॥

छोड़ने के बाद अरुन्धती हुई ॥ ८ ॥ उस महाबुद्धिमती सन्ध्या ने मुनिश्रेष्ठ मेधातिथि की कन्या के रूप में जन्म लेकर विशुद्ध आचरण कर ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर के वचनों के अनुसार महात्मा वसिष्ठ को अपना पति वरण किया । जो पतिव्रताओं में श्रेष्ठ जगद्वन्द्य तथा दया की मूर्ति कही जाती है ॥ ९-१० ॥

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन् ! उस सन्ध्या ने क्यों, कहाँ, किस उद्देश्य से तप किया ? और किस प्रकार वह अपना शरीर त्याग कर मेधातिथि की कन्या हुई ? ॥११॥ उसने किस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के कथनानुसार वसिष्ठ को अपना पति स्वीकार किया ? ॥ १२ ॥ हे पितामह ! मुझे अरुन्धती के चरित्र को सुनने के लिए महान् कौतूहल उत्पन्न हो रहा है। अतः ठीक-ठीक अरुन्धती के चरित्र का वर्णन कीजिए ॥ १३ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! पूर्वकाल में अपने शरीर से उत्पन्न हुई उस सन्ध्या को देखकर मेरा मन काम से आकृष्ट हो गया । किन्तु शिव के भय से मैंने उसे छोड़ दिया ॥ १४ ॥ उस सन्ध्या के स्वरूप-सौन्दर्य को देख कर बड़े-बड़े जितेन्द्रिय मुनियों का चित्त भी कामबाण से चलायमान हो जाया करता था ॥ १५ ॥ शिवजी ने उस समय मुझे जो उपहास युक्त वचन कहे, उससे तथा अपने चित्त की इस प्रकार की चञ्चलता से ऋषियों में मेरी बहुत अप्रतिष्ठा हुई ॥ १६ ॥ मुनियों को मोहित करनेवाले काम के इस भाव को बारम्बार देखकर सन्ध्या भी अत्यन्त दुःखी हुई ॥ १७ ॥ पुनः क्रुद्ध हो कामदेव को शाप देकर जब मैं अन्तर्धान हो गया एवं शिवजी जब कैलास चले गये तब हे मुनिसत्तम ! वह मेरी पुत्री सन्ध्या संक्षुब्ध होकर कुछ क्षण विचार करती हुई ध्यानमग्न हो गयी ॥ १८-१९ ॥ बुद्धिमती वह सन्ध्या कुछ देर तक अपने पूर्ववृत्त का स्मरण करती हुई यथोचित विचार करने लगी ॥ २० ॥

सन्ध्या बोली—मेरे पिता ने उत्पन्न होते ही मेरे युवावस्था के सौन्दर्य को देख कर काम से प्रेरित हो मुझसे अनुरागपूर्वक कामाभिलाष की चेष्टा की ॥ २१ ॥ इसी प्रकार आत्मतत्त्वज्ञ ब्रह्मदेव के मानस-पुत्रों ने भी मुझे देख कर अपना मन मर्यादा से रहित कर कामाभिलाष से युक्त कर लिया ॥ २२ ॥

ममापि मथितं चित्तं मदनेन दुरात्मना। येन दृष्ट्वा मुनीन् सर्वांश्चलितं मन्मनो भृशम् ॥२३॥
फलमेतस्य पापस्य मदनः स्वयमाप्तवान्। यस्तं शशाप कुपितः शम्भोरग्रे पितामहः ॥२४॥
प्राप्नुयां फलमेतस्य पापस्य त्वघकारिणी। तच्छोधनफलमहमाशु चेच्छामि साधनम् ॥२५॥
यन्मां पिता भ्रातरश्च सकाममपरोक्षतः। दृष्ट्वा चक्रुः स्पृहां तस्मान्न मत्तः पापकृत्परा ॥२६॥
ममापि कामभावोऽभूदमर्यादं समीक्ष्य तान्। पत्या इव स्वके ताते सर्वेषु सहजेष्वपि ॥२७॥
करिष्याम्यस्य पापस्य प्रायश्चित्तमहं स्वयम्। आत्मानमग्नौ होष्यामि वेदमार्गानुसारतः ॥२८॥
किं त्वेकां स्थापयिष्यामि मर्यादामिह भूतले। उत्पन्नमात्रा न यथा सकामाः स्युः शरीरिणः ॥२९॥
एतदर्थमहं कृत्वा तपः परमदारुणम्। मर्यादां स्थापयिष्यामि पश्चात् त्यक्षामि जीवितम् ॥३०॥
यस्मिञ्छरीरे पित्रा मे ह्यभिलाषः स्वयं कृतः। भ्रातृभिस्तेन कायेन किञ्चिन्नास्ति प्रयोजनम् ॥३१॥
मया येन शरीरेण तातेषु सहजेषु च। उद्भावितः कामभावो न तत्सुकृतसाधनम् ॥३२॥
इति सञ्चिन्त्य मनसा सन्ध्या शैलवरं ततः। जगाम चन्द्रभागाख्यं चन्द्रभागापगा यतः ॥३३॥
अथ तत्र गतां ज्ञात्वा सन्ध्यां गिरिवरं प्रति। तपसे नियतात्मानं ब्रह्मावोचमहं सुतम् ॥३४॥
वसिष्ठं संयतात्मानं सर्वज्ञं ज्ञानयोगिनम्। समीपे स्वे समासीनं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

वसिष्ठ पुत्र! गच्छ त्वं सन्ध्यां जातां मनस्विनीम्। तपसे धृतकामां च दीक्षस्वैनां यथाविधि ॥३६॥
मन्दाक्षमभवत्तस्याः पुरा दृष्ट्वैव कामुकान्। युष्मान्मां च तथात्मानं सकामं मुनिसत्तम! ॥३७॥
अभूतपूर्वं तत्कर्म पूर्वमृत्युं विमृश्य सा। युष्माकमात्मनश्चापि प्राणान् सन्त्यक्तुमिच्छति ॥३८॥

इतना ही नहीं, इस दुरात्मा काम ने उन मुनियों को देखते ही मेरे मन को भी चञ्चल तथा चलायमान कर दिया ॥ २३ ॥ इस दुष्कर्म का फल उस पापी कामदेव को तत्क्षण प्राप्त हो गया, जो उसे शङ्कर जी के सामने कुपित हुए ब्रह्मा ने शाप दिया ॥ २४ ॥ मैंने भी जैसा पाप किया है, उस पाप का फल मुझे भी प्राप्त होगा। अतः उस पाप से शुद्ध होने के लिए मैं भी किसी साधन-फल की शीघ्रता से अपेक्षा करूँ ॥ २५ ॥ क्योंकि मुझे देख कर मेरे पिता तथा भाई प्रत्यक्ष रूप से काम मोहित हो गये, अतः मुझसे बढ़कर और कोई पापिन नहीं है ॥ २६ ॥ मैंने भी अपने पिता तथा अपने सहोदर भाइयों को देख कर उनमें कामभाव से पीड़ित होकर पति के समान मर्यादाहीन कामाभिलाष किया है ॥ २७ ॥ इस पाप का प्रायश्चित्त मैं वेदमार्ग के अनुसार अपने शरीर को अग्नि में हवन करूँगी ॥ २८ ॥ ऐसा करने के उपरान्त मैं इस भूतल पर ऐसी मर्यादा स्थापित करूँगी कि जिससे सभी शरीरधारी इस प्रकार अपने भाई एवं पति को देखकर पुनः कामभावापन्न न हों ॥ २९ ॥ इस मर्यादा-स्थापन के लिए मैं परम दुष्कर तप करूँगी। तथा मर्यादा स्थापित कर अपना शरीर छोड़ूंगी ॥ ३० ॥ भला मेरे जिस शरीर को देखकर मेरे जन्मदाता पिता एवं सहोदर भाइयों ने कामाभिलाष किया, उस शरीर को धारण करना मुझे व्यर्थ प्रतीत हो रहा है ॥ ३१ ॥ मैंने भी जिस शरीर से अपने पिता तथा भाइयों में कामाभिलाष उत्पन्न किया, वह भी मेरे अच्छे काम के योग्य नहीं है ॥ ३२ ॥ वह सन्ध्या अपने में ऐसा विचार कर चन्द्रभाग नामक परम रम्य पर्वत पर गयी, जहाँ चन्द्रभागा नामक नदी बहती है ॥ ३३ ॥ इस प्रकार सन्ध्या को तपस्या के लिए गयी हुई देख मैंने ब्रह्मा, समीप में बैठे हुए जितेन्द्रिय, वेदवेदाङ्ग के पारदर्शी, परमज्ञानी एवं आत्मद्रष्टा अपने पुत्र वसिष्ठ जी से कहा ॥ ३४-३५ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे पुत्र वसिष्ठ! तपस्या के विचार से गयी हुई उस मनस्विनी सन्ध्या को तुम जाकर अच्छी प्रकार से विधिपूर्वक दीक्षा दो ॥ ३६ ॥ हे मुनिसत्तम! प्रथम यह तुम लोगों को, मुझको तथा अपने को कामाभिलाष से युक्त देख रही थी किन्तु अब इसके नेत्रों की चपलता दूर हो गयी है ॥ ३७ ॥ यह हमारे-तुम्हारे तथा अपने अभूतपूर्व दुष्कर्म को समझ कर 'मृत्यु ही अच्छा है' ऐसा विचार कर प्राण

समर्यादेषु मर्यादां तपसा स्थापयिष्यति । तपः कर्तुं गता साध्वी चन्द्रभागाख्यभूधरे ॥३९॥
न भावं तपसस्तात ! सानुजानाति कश्चन । तस्माद्यथोपदेशात् सा प्राप्नोत्विष्टं तथा कुरु ॥४०॥
इदं रूपं परित्यज्य निजं रूपान्तरं मुने ! । परिगृह्यान्तिके तस्यास्तपश्चर्यां निदर्शयन् ॥४१॥
इदं स्वरूपं भवतो दृष्ट्वा पूर्वं यथाऽत्र वाम् । नाप्नुयात् साऽथ किञ्चिद् वै ततो रूपान्तरं कुरु ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

नारदेत्थं वसिष्ठो मे समाज्ञप्तो दयावता । यथाऽस्त्विति च मां प्रोच्य ययौ सन्ध्यान्तिकं मुनिः॥४३॥
तत्र देवसरः पूर्णं गुणैर्मानससम्मितम् । ददर्श स वसिष्ठोऽथ सन्ध्यां तत्तीरगामपि ॥४४॥
तीरस्थया तया रेजे तत्सरः कमलोज्ज्वलम् । उद्यदिन्दुसुनक्षत्रं प्रदोषे गगनं यथा ॥४५॥
मुनिर्दृष्ट्वाऽथ तां तत्र सुसम्भावां स कौतुकी । वीक्षाञ्चक्रे सरस्तत्र बृहल्लोहितसंज्ञकम् ॥४६॥
चन्द्रभागा नदी तस्मात् प्राकाराद् दक्षिणाम्बुधिम् । यान्ती सा चैव ददृशे तेन सानुगिरेर्महत् ॥४७॥
निर्भिद्य पश्चिमं सा तु चन्द्रभागस्य सा नदी । यथा हिमवतो गङ्गा तथा गच्छति सागरम् ॥४८॥
तस्मिन् गिरौ चन्दभागे बृहल्लोहिततीरगाम् । सन्ध्यां दृष्ट्वाऽथ पप्रच्छ वसिष्ठः सादरं तदा ॥४९॥

वसिष्ठ उवाच

किमर्थमागता भद्रे ! निर्जनं त्वं महीधरम् । कस्य वा तनया किं वा भवत्यापि चिकीर्षितम् ॥५०॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं वद गुह्यं न चेद् भवेत् । वदनं पूर्णचन्द्राभं निश्चेष्टं वा कथं तव ॥५१॥

छोड़ने की इच्छा करती है ॥ ३८ ॥ किन्तु अब यह तपस्या के द्वारा मर्यादावालों में मर्यादा स्थापित करेगी । इसलिए तपस्या करने के हेतु यह चन्द्रभाग नामक पर्वत पर गयी है ॥३९॥ हे तात ! यह तपस्या के किसी भी भाव (क्रिया) को नहीं जानती है । जिस प्रकार के उपदेश से यह अपने अभीष्ट को प्राप्त करे वैसा उपाय करो ॥ ४० ॥ हे मुने ! तुम अपने इस रूप को छोड़ दो और दूसरा शरीर धारण कर इसके समीप में स्थित होकर तपश्चर्या के क्रियाओं को प्रदर्शित करो ॥ ४१ ॥ उसने यहाँ पर मेरे तथा तुम्हारे रूप को देख लिया है, अतः उस रूप द्वारा उपदेश करने से यह कुछ भी ग्रहण न करेगी, इसलिए दूसरा रूप धारण करो ॥ ४२ ॥

पुनः ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! इस प्रकार परम दयालु वसिष्ठ जी मेरी आज्ञा को 'तथास्तु' कह कर सन्ध्या के समीप गये ॥ ४३ ॥ उन्होंने वहाँ जाकर मानस गुणों से परिपूर्ण उस देवसर को तथा उसके तट पर गयी हुई उस सन्ध्या को देखा ॥ ४४ ॥ उज्ज्वल कमलों से युक्त वह देवसर समीपस्थ सन्ध्या के द्वारा इस प्रकार शोभित हो रहा था, जिस प्रकार नक्षत्र एवं इन्दुमण्डल से युक्त आकाश रात्रि में सुशोभित हो रहा हो ॥ ४५ ॥ आश्चर्यान्वित हुए वसिष्ठ जी उस सन्ध्या को देखकर वृहल्लोहित संज्ञक उस तालाब की ओर देखने लगे ॥ ४६ ॥ जिसके एक भाग से चन्द्रभागा नदी निकल कर दक्षिण समुद्र की ओर जाती है । उन्होंने वहीं पर उस पर्वत के ऊँचे-ऊँचे शृङ्गों को देखा ॥ ४७ ॥ जिसे पश्चिम से तोड़कर चन्द्रभागा नदी समुद्र की ओर जाती है, जिस प्रकार हिमालय को तोड़कर श्री गङ्गाजी समुद्र में जाती हैं ॥ ४८ ॥ उस चन्द्रभाग पर्वत पर बृहल्लोहित सर के तट पर स्थित सन्ध्या को देख कर वसिष्ठ ने उससे आदरपूर्वक पूछा ॥ ४९ ॥

वसिष्ठ जी बोले—हे भद्रे ! इस सर्वथा निर्जन पर्वत पर तुम किस लिए आई हो ? तुम किसकी कन्या हो और यहाँ आने का तुम्हारा उद्देश्य क्या है ? ॥ ५० ॥ पूर्णचन्द्र के समान मनोहर तुम्हारा मुख मलीन क्यों दिखाई पड़ रहा है ? यदि कोई गोपनीय न हो तो हमें इन बातों को बताओ । मेरी सुनने की इच्छा है ॥ ५१ ॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य वसिष्ठस्य महात्मनः। दृष्ट्वा च तं महात्मानं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥५२॥
शरीरधृग्ब्रह्मचर्यं विलसन्तं जटाधरम्। सादरं प्रणिपत्याऽथं सन्ध्योवाच तपोधनम् ॥५३॥

सन्ध्योवाच

यदर्थमागता शैलं सिद्धं तन्मे निबोध ह। तव दर्शनमात्रेण यन्मे सेत्स्यति वा विभो ॥५४॥
तपश्चर्तुमहं ब्रह्मन्! निर्जनं शैलमागता। ब्रह्मणोऽहं सुता जाता नाम्ना सन्ध्येति विश्रुता ॥५५॥
यदि ते युज्यते सह्यं मां त्वं समुपदेशय। एतच्चिकीर्षितं गुह्यं नाऽन्यैः किञ्चन विद्यते ॥५६॥
अज्ञात्वा तपसो भावं तपोवनमुपाश्रिता। चिन्तया परिशुष्येऽहं वेपते हि मनो मम ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

आकर्ण्य तस्या वचनं वसिष्ठो ब्रह्मवित्तमः। स्वयं च सर्वकृत्यज्ञो नाऽन्यत् किञ्चन पृष्टवान् ॥५८॥
अथ तां नियतात्मानं तपसेति धृतोद्यमाम्। प्रोवाच मनसा स्मृत्वा शङ्करं भक्तवत्सलम् ॥५९॥

वसिष्ठ उवाच

परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः। परमः परमाराध्यः शम्भुर्मनसि धार्यताम् ॥६०॥
धर्मार्थ-काम-मोक्षाणां य एकस्त्वादिकारणम्। तमेकं जगतामाद्यं भजस्व पुरुषोत्तमम् ॥६१॥
मन्त्रेणाऽनेन देवेशं शम्भुं भज शुभानने!। तेन ते सकलावाप्तिर्भविष्यति न संशयः ॥६२॥
ॐ नमः शङ्करायेति ओमित्यन्तेन सन्ततम्। मौनं तपस्याप्रारम्भं तन्मे निगदतः शृणु ॥६३॥
स्नानं मौनेन कर्तव्यं मौनेन हरपूजनम्। द्वयोः पूर्णजलाहारं प्रथमं षष्ठकालयोः ॥६४॥

ब्रह्माजी बोले—उन महात्मा वसिष्ठ को प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी देख कर और उनके वचनों को सुनकर वह सन्ध्या जटाधारी, ब्रह्मचारी एवं तपोधन वसिष्ठ से आदरपूर्वक प्रणाम कर बोली ॥ ५२-५३ ॥

सन्ध्या बोली—हे विभो! मैं जिस उद्देश्य से इस सिद्ध पर्वत पर आई हूँ वह उद्देश्य तो आपके दर्शनमात्र से ही पूर्ण हो जायेगा ॥ ५४ ॥ हे ब्रह्मन्! मैं ब्रह्मा की कन्या हूँ, मेरा नाम सन्ध्या है, मैं तप के उद्देश्य से इस निर्जन पर्वत पर आयी हूँ ॥ ५५ ॥ यदि आपको अनुचित न जान पड़े तो मुझे उपदेश कीजिए। यही मेरा अत्यन्त गोपनीय मनोरथ है। और किसी से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है ॥ ५६ ॥ मैं तपस्या की कोई विधि नहीं जानती। किन्तु तप करने के लिए इस तपोवन में आ गयी हूँ। इसी चिन्ता से मैं दीन हो रही हूँ तथा हृदय मेरा काँप रहा है ॥ ५७ ॥

ब्रह्माजी बोले—ब्रह्मज्ञानी वसिष्ठ जी ने उसकी बात सुनकर पुनः उससे कुछ नहीं पूछा, क्योंकि वे सभी बातें जानते थे ॥ ५८ ॥ वे भक्तवत्सल शङ्कर का स्मरण कर तपस्या के लिए आयी हुई नियतात्मा सन्ध्या से बोले—॥ ५९ ॥

वसिष्ठजी बोले—हे देवि! जो महान् तेजःस्वरूप, महान् तपःस्वरूप तथा सबका सर्वतोभावेन आराध्य है, उस परमेश्वर भगवान् सदाशिव का मन में ध्यान करो ॥ ६० ॥ जो धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का आदिकारण तथा अद्वैतस्वरूप है। जो इस जगत् का आदिकारण तथा पुरुषोत्तम है, उसी का भजन भी करो ॥ ६१ ॥ हे सुमुखि! तुम मेरे बताये जानेवाले इस मन्त्र से सदाशिव का भजन करो। इसी से तुम्हारी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो जायेंगी, इसमें सन्देह मत करो ॥ ६२ ॥ 'ॐ नमः शङ्कराय ॐ' इस मन्त्र से मौन होकर इस प्रकार तपस्या का प्रारम्भ करो, जैसा मैं तुमको बता रहा हूँ ॥ ६३ ॥ मौन होकर स्नान तथा मौन होकर सदाशिव का पूजन करना चाहिए। [1]षष्ठकाल में (तीसरे दिन

---

1. 'सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं देवनिर्मितम्' इस मनुवाक्य के अनुसार दिन तथा रात्रि में मिलाकर दो बार भोजन की विधि कही गयी है, इसलिए षष्ठकाल तीसरे दिन के सायंकाल को कहा जाता है।

तृतीये षष्ठकाले तु ह्युपवासपरा भवेत् । एवं तपः समाप्तौ वा षष्ठे काले क्रिया भवेत् ॥६५॥
एवं मौनतपस्याख्या ब्रह्मचर्यफलप्रदा । सर्वाभीष्टप्रदा देवि ! सत्यं सत्यं न संशयः ॥६६॥
एवं चित्ते समुद्दिश्य कामं चिन्तय शङ्करम् । स ते प्रसन्न इष्टार्थमचिरादेव दास्यति ॥६७॥

ब्रह्मोवाच

उपविश्य वसिष्ठोऽथ सन्ध्यायै तपसः क्रियाम् । तामाभाष्य यथान्यायं तत्रैवाऽन्तर्दधे मुनिः ॥६८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सन्ध्याचरित्रवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

(शिव द्वारा वर प्राप्त होने पर सन्ध्याकृत स्तोत्रवर्णन)

ब्रह्मोवाच

सुतवर्य महाप्राज्ञ ! शृणु सन्ध्यातपो महत् । यच्छ्रुत्वा नश्यते पापसमूहस्तत्क्षणाद् ध्रुवम् ॥ १ ॥
उपविश्य तपोभावं वसिष्ठे स्वगृहं गते । सन्ध्याऽपि तपसो भावं ज्ञात्वा मोदमवाप ह ॥ २ ॥
ततः सानन्दमनसो वेषं कृत्वा तु यादृशम् । तपश्चर्तुं समारेभे बृहल्लोहिततीरगा ॥ ३ ॥
यथोक्तं तु वसिष्ठेन मन्त्रं तपसि साधनम् । मन्त्रेण तेन सद्भक्त्या पूजयामास शङ्करम् ॥ ४॥
एकान्तमनसस्तस्याः कुर्वन्त्याः सुमहत्तपः । शम्भो विन्यस्तचित्ताया गतमेकं चतुर्युगम् ॥ ५ ॥
प्रसन्नोऽभूत्तदा शम्भुस्तपसा तेन तोषितः । अन्तर्बहिस्तथाकाशे दर्शयित्वा निजं वपुः ॥ ६ ॥
यद्रूपं चिन्तयन्ती सा तेन प्रत्यक्षतां गतः ॥ ७ ॥

सायं जल का) भोजन करे ॥ ६४ ॥ इस प्रकार प्रथम दो षष्ठ जल का आहार कर तीसरे षष्ठकाल में उपवास करे। इस प्रकार की षष्ठकालिक क्रिया तपःसमाप्ति पर्यन्त करते रहना चाहिए ॥ ६५ ॥ हे देवि ! इस प्रकार ब्रह्मचर्य से मौन धारण कर तपस्या करते रहने से सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि हो जाती है। यह सत्य है, यह सत्य है इसमें संशय नहीं ॥ ६६ ॥ हे देवि ! इस प्रकार से मेरे उपदेश के अनुसार तुम सदाशिव का चिन्तन करो, ऐसा करने से वे तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होकर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगे ॥६७॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार वसिष्ठ जी वहाँ स्थित हो, सन्ध्या को तपस्या की सारी विधि बता कर और उससे यथोचित सम्भावित कर अन्तर्धान हो गये ॥ ६८ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में सन्ध्याचरित्रवर्णन नामक पंचम अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—हे बुद्धिमान् ! हे पुत्रवर ! अब सन्ध्या के द्वारा किये महान् तप को सुनो। जिसके सुनने से पाप-समूह निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥ वसिष्ठ जी जब इस प्रकार सन्ध्या को तपस्या का उपदेश कर अपने घर चले गये तो सन्ध्या भी तपस्या की विधि सुनकर अत्यन्त हर्षित हो गयी ॥ २ ॥ उसने बृहल्लोहितसर के सन्निकट परम प्रसन्नता से तपस्या के अनुकूल वेषधारण किया और तपस्या करने लगी ॥ ३ ॥ उसने वसिष्ठजी के द्वारा कहे गये तपस्या के साधनभूत मन्त्रों से सदाशिव का पूजन प्रारम्भ किया ॥ ४ ॥ इस प्रकार सदाशिव में चित्त लगाकर तपस्या करती हुई उस सन्ध्या को एक चतुर्युग बीत गया ॥ ५ ॥ तदनन्तर भगवान् सदाशिव उसकी तपस्या से परम सन्तुष्ट हो गये। और उन्होंने बाहर-भीतर तथा आकाश में उसे अपना शरीर दिखाया ॥ ६ ॥ फिर वह शिवजी के जिस रूप

अथ सा पुरतो दृष्ट्वा मनसा चिन्तितं प्रभुम् । प्रसन्नवदनं शान्तं मुमोदातीव शङ्करम् ॥ ८ ॥
ससाध्वसमहं वक्ष्ये किं कथं स्तौमि वा हरम् । इति चिन्तापरा भूत्वा न्यमीलयत चक्षुषी ॥ ९ ॥
निमीलिताक्ष्यास्तस्यास्तु प्रविश्य हृदयं हरः । दिव्यं ज्ञानं ददौ तस्यै वाचं दिव्ये च चक्षुषी ॥१०॥
दिव्यज्ञानं दिव्यचक्षुर्दिव्यां वाचमवाप सा । प्रत्यक्षं वीक्ष्य दुर्गेशं तुष्टाव जगतां पतिम् ॥११॥

सन्ध्योवाच

निराकारं ज्ञानगम्यं परं यन्नैव स्थूलं नापि सूक्ष्मं न चोच्चम् ।
अन्तश्चिन्त्यं योगिभिस्तस्य रूपं तस्मै तुभ्यं लोककर्त्रे नमोऽस्तु ते ॥१२॥

सर्वं शान्तं निर्मलं निर्विकारं ज्ञानागम्यं स्वप्रकाशेऽविकारम् ।
खाभ्रप्रख्यं ध्वान्तमार्गात् परस्ताद्रूपं यस्य त्वां नमामि प्रसन्नम् ॥१३॥

एकं शुद्धं दीप्यमानं तथाऽजं चिदानन्दं सहजं चाविकारि ।
नित्यानन्दं सत्यभूतिप्रसन्नं यस्य श्रीदं रूपमस्मै नमस्ते ॥१४॥

विद्याकारोद्भावनीयं प्रभिन्नं सत्त्वच्छन्दं ध्येयमात्मस्वरूपम् ।
सारं पारं पावनानां पवित्रं तस्मै रूपं यस्य चैवं नमस्ते ॥१५॥

यत्त्वाकारं शुद्धरूपं मनोज्ञं रत्नाकल्पं स्वच्छकर्पूरगौरम् ।
इष्टाभीती शूलमुण्डं दधानं हस्तैर्नमो योगयुक्ताय तुभ्यम् ॥१६॥

गगनं भूर्दिशश्चैव सलिलं ज्योतिरेव च । पुनः कालश्च रूपाणि यस्य तुभ्यं नमोऽस्तु ते ॥१७॥
प्रधानपुरुषौ यस्य कायत्वेन विनिर्गतौ । तस्मादव्यक्तरूपाय शङ्कराय नमो नमः ॥१८॥

का ध्यान करती थी उसी रूप से वे उसके सामने प्रगट हो गये ॥ ७ ॥ सन्ध्या ने अपने मन के अनुसार चिन्तित, प्रसन्नमुख तथा शान्त स्वरूप में जब शिव को देखा, तो वह बड़ी प्रसन्न हुई ॥ ८ ॥ मैं इन शिवजी से क्या कहूँ तथा किस प्रकार इनकी स्तुति करूँ। इस प्रकार चित्त में मग्न हो सन्ध्या ने भयभीत होकर अपने नेत्र बन्द कर लिये ॥ ९ ॥ उसे इस प्रकार नेत्र बन्द किये देखकर शङ्कर जी ने उसके हृदय में प्रविष्ट हो, उसे दिव्य ज्ञान, दिव्य वाणी तथा दिव्य चक्षु प्रदान किया ॥ १० ॥ तब वह दिव्यज्ञान, दिव्य चक्षु तथा दिव्य वाणी प्राप्त कर जगत्पति भवानीपति सदाशिव को अपने सामने प्रत्यक्ष खड़ा देख उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगी—॥ ११ ॥

सन्ध्या बोली—जो निराकार ज्ञानगम्य हैं, जो न स्थूल, न सूक्ष्म, न उच्च हैं तथा जो योगियों के द्वारा अन्तःकरण से चिन्त्य हैं ऐसे लोककर्त्ता आप सदाशिव को नमस्कार है ॥ १२ ॥ जो सर्वस्वरूप, शान्त, निर्मल, निर्विकार, ज्ञान से अगम्य, स्वप्रकाशस्वरूप, अविकारी, आकाशस्वरूप एवं ध्वान्तमार्ग से परे रूप वाले, सर्वथा प्रसन्न रहनेवाले हैं उस आप के लिए नमस्कार है ॥ १३ ॥ एक शुद्ध, प्रकाशमान, अज, चिदानन्द, सहस्रविकार रहित, नित्यानन्दस्वरूप, सत्य तथा विभूति से प्रसन्न रहनेवाले तथा जिनका रूप समस्त श्री को प्रदान करनेवाला है, उस आपको मैं नमस्कार करती हूँ ॥ १४ ॥ जिनका रूप महाविद्या के द्वारा ध्यान करने योग्य है, जो सबसे सर्वथा भिन्न हैं, जिनका स्वरूप परम सात्त्विक हैं, जो सबके ध्येय तथा आत्मतत्त्व स्वरूप हैं, जो इस जगत् के सार हैं तथा इस जगत् से पार करनेवाले हैं और पवित्र में भी पवित्र रूप वाले हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १५ ॥ जो इस जगत् की आसमन्तात् सृष्टि करनेवाले हैं, शुद्ध रूप तथा मनोज्ञ हैं, रत्न के समान देदीप्यमान तथा स्वच्छ कर्पूर के समान गौरवर्णवाले है, हाथों में वर तथा अभयमुद्रा, शूल एवं मुण्ड को धारण करनेवाले हैं, ऐसे योगयुक्त आप सदाशिव को नमस्कार है ॥ १६ ॥ आकाश, पृथ्वी, दिशाएँ, जल, ज्योति और काल जिसके स्वरूप हैं, ऐसे आप सदाशिव को नमस्कार है ॥ १७ ॥ जिनके शरीर से प्रधान एवं पुरुष की उत्पत्ति हुई है, उस अव्यक्त

यो ब्रह्मा कुरुते सृष्टिं यो विष्णुः कुरुते स्थितिम् । संहरिष्यति यो रुद्रस्तस्मै तुभ्यं नमो नमः ॥१९॥

नमो नमः कारणकारणाय दिव्यामृतज्ञानविभूतिदाय ।
समस्तलोकान्तरभूतिदाय प्रकाशरूपाय परात्पराय ॥२०॥
यस्याऽपरं नो जगदुच्यते पदात् क्षितिर्दिशः सूर्य इन्दुर्मनोजः ।
बहिर्मुखा नाभितश्चान्तरिक्षं तस्मै तुभ्यं शम्भवे मे नमोऽस्तु ॥२१॥

त्वं परः परमात्मा च त्वं विद्या विविधा हरः । सद्ब्रह्म च परं ब्रह्म विचारणपरायणः ॥२२॥
यस्य नादिर्न मध्यं च नान्तमस्ति जगद्यतः । कथं स्तोष्यामि तं देवं वाङ्मनोगोचरं हरम् ॥२३॥
यस्य ब्रह्मादयो देवा मुनयश्च तपोधनाः । न विप्रण्वन्ति रूपाणि वर्णनीयः कथं स मे ॥२४॥
स्त्रिया मया ते किं ज्ञेया निर्गुणस्य गुणाः प्रभो ! । नैव जानन्ति यद्रूपं सेन्द्रा अपि सुराऽसुराः ॥२५॥
नमस्तुभ्यं महेशान ! नमस्तुभ्यं तमोमय ! । प्रसीद शम्भो देवेश ! भूयो भूयो नमोऽस्तु ते॥२६॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः संस्तुतः परमेश्वरः । सुप्रसन्नतरश्चाऽभूच्छङ्करो भक्तवत्सलः ॥२७॥
अथ तस्याः शरीरं तु वल्कलाजिनसंयुतम् । परिच्छन्नं जटाव्रातैः पवित्रे मूर्ध्नि राजितैः ॥२८॥
हिमानी तर्जिताम्भोजसदृशं वदनं तदा । निरीक्ष्य कृपयाविष्टो हरः प्रोवाच तामिदम् ॥२९॥

स्वरूप शङ्कर को नमस्कार है। पुनः-पुनः नमस्कार है ॥१८॥ जो ब्रह्मस्वरूप से इस जगत् की सृष्टि करते हैं, विष्णुस्वरूप से पालन करते हैं तथा रुद्रस्वरूप से संहार करते हैं, उस त्रितयरूपयुक्त आप सदाशिवको नमस्कार है ॥ १९ ॥

जो सभी कारणों के कारण हैं; दिव्य अमृतस्वरूप ज्ञान तथा अनन्त ऐश्वर्य के प्रदाता हैं तथा इस लोक के भीतर रहनेवाले, समस्त ऐश्वर्य को देनेवाले हैं ऐसे प्रकाशस्वरूप परात्पर परमात्मा शङ्कर को नमस्कार है ॥ २० ॥ जिससे अतिरिक्त यह जगत् और कुछ नहीं है, जिसके पैर से पृथ्वी, दिशाएँ, सूर्य, चन्द्रमा, काम तथा बहिर्मुख, नाभि से अन्तरिक्ष उत्पन्न हुआ है, उस आप शम्भु के लिए नमस्कार है ॥ २१ ॥ हे हर ! आप ही परब्रह्म परमात्मा हो, आप ही विविध विद्या हो, आप ही सद्ब्रह्म, परब्रह्म तथा ज्ञानविचक्षण हो ॥ २२ ॥ जिसका आदि, मध्य तथा अन्त नहीं है, जिससे यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ है। उस वाणी, मन से अगोचर सदाशिव को किस प्रकार स्तुति करूँ ॥ २३ ॥ हे देव ! जिसके रूप को ब्रह्मादि देवगण तथा तपोधन महर्षि भी नहीं जान पाते हैं, उसके रूप को भला मैं स्त्री किस प्रकार वर्णन कर सकती हूँ ॥ २४ ॥ हे प्रभो ! इन्द्रादि सहित समस्त देवगण तथा समस्त असुरगण भी जब आप के रूप को नहीं जानते, तो आप-जैसे निर्गुण के गुण को मेरे-जैसी स्त्री किस प्रकार जान सकती है ॥ २५ ॥ हे महेशान ! आपको नमस्कार है, हे तमोगुणात्मक प्रभो ! आप को नमस्कार है, हे नाथ ! आपको वारम्बार नमस्कार है, आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइए ॥ २६ ॥

ब्रह्मा बोले—सन्ध्या के द्वारा स्तुत भक्तवत्सल परमेश्वर सदाशिव उसके वचनों को सुनकर परम प्रसन्न हो गये ॥ २७ ॥ फिर वे वल्कल तथा कृष्णमृगचर्म युक्त उसके शरीर को, जटा से आच्छन्न पवित्री धारण किये हुए उसके शिर को तथा तुषारपात से मुरझाये हुए कमल के समान उसके मुख को देखकर कृपापूर्वक इस प्रकार बोले ॥ २८-२९ ॥

महेश्वर उवाच

प्रीतोऽस्मि तपसा भद्रे ! भवत्याः परमेण वै । स्तवेन च शुभप्राज्ञे वरं वरय साम्प्रतम् ॥३०॥
येन ते विद्यते कार्यं वरेणाऽस्मिन् मनोगतम् । तत्करिष्ये च भद्रं ते प्रसन्नोऽहं तव व्रतैः ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा महेशस्य प्रसन्नमनसस्तदा । सन्ध्योवाच सुप्रसन्ना प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ॥३२॥

सन्ध्योवाच

यदि देयो वरः प्रीत्या वरयोग्याऽस्म्यहं यदि । यदि शुद्धाऽस्म्यहं जाता तस्मात् पापान् महेश्वर ! ॥३३॥
यदि देव ! प्रसन्नोऽसि तपसा मम साम्प्रतम् । वृतस्तदाऽयं प्रथमो वरो मम विधीयताम् ॥३४॥
उत्पन्नमात्रा देवेश ! प्राणिनोऽस्मिन् नभःस्थले । न भवन्तु समेनैव सकामाः सम्भवन्तु वै ॥३५॥
यदि वृत्ताऽहं लोकेषु त्रिष्वपि प्रथिता यथा । भविष्यामि तथा नाऽन्या वर एको वृतो मया ॥३६॥
सकामा मम सृष्टिस्तु कुत्रचिन्न पतिष्यति । यो मे पतिर्भवेन्नाथ ! सोऽपि मेऽतिसुहृच्च वै ॥३७॥
यो द्रक्ष्यति सकामो मां पुरुषस्तस्य पौरुषम् । नाशं गमिष्यति तदा स च क्लीवो भविष्यति ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्याः शङ्करो भक्तवत्सलः । उवाच सुप्रसन्नात्मा निष्पापायास्तयेरिते ॥३९॥

महेश्वर उवाच

शृणु देवि ! च सन्ध्ये त्वं त्वत्पापं भस्मतां गतम् । त्वयि त्यक्तो मया क्रोधः शुद्धा जाता तपःकरात् ॥४०॥
यद्यद् वृतं त्वया भद्रे दत्तं तदखिलं मया । सुप्रसन्नेन तपसा तव सन्ध्ये ! वरेण हि ॥४१॥
प्रथमं शैशवो भावः कौमाराख्यो द्वितीयकः । तृतीयो यौवनो भावश्चतुर्थो वार्द्धकस्तथा ॥४२॥

महेश्वर ने कहा—हे भद्रे ! तुम्हारी इस उत्कृष्ट तपस्या से तथा हे शुभप्राज्ञे ! तुम्हारी इस स्तुति से मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम जो चाहो मुझसे वर माँगो ॥ ३० ॥ जो तुम्हारा अभीष्ट हो तथा जिससे तुम्हारा कार्य हो वह सब मैं करूँगा । हे भद्रे ! तुम्हारी इस तपस्या से मैं परम प्रसन्न हूँ ॥ ३१ ॥

ब्रह्मा बोले—महेश्वर के द्वारा कहे गये वचनों को सुनकर सन्ध्या बड़ी प्रसन्न हुई । और वह उन्हें बारम्बार प्रणाम कर इस प्रकार कहने लगी—॥ ३२ ॥

सन्ध्या बोली—हे प्रभो ! यदि आप प्रसन्नता से वर देना चाहते हैं और यदि मैं आपके वर देने योग्य हूँ तथा यदि मैं उस पाप से सर्वथा विशुद्ध हो गयी हूँ ॥ ३३ ॥ तो हे देव महेश्वर ! आप मुझको सर्वप्रथम यह वर दीजिए ॥ ३४ ॥ हे देवेश ! इस आकाश तथा पृथ्वी में उत्पन्न होते ही कोई भी प्राणी सद्यः सकाम न हो ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! मैं अपने आचरण से तीनों लोकों में इस प्रकार के प्रशंसा का पात्र बनूँ जैसी और कोई दूसरी स्त्री न हो । यह वरदान दीजिए ॥ ३६ ॥ मेरे द्वारा उत्पन्न की गयी कोई भी सन्तति सकाम होकर पतित न होवे । और जो मेरा पति हो वह भी मेरा अत्यन्त सुहृत् बना रहे ॥ ३७ ॥ पति के अतिरिक्त जो कोई भी पुरुष मुझे सकाम दृष्टि से देखे, उसका पौरुष नष्ट हो जावे और वह नपुंसक हो जावे ॥ ३८ ॥

ब्रह्मा बोले—निष्पाप सन्ध्या के द्वारा कहे गये वचनों को सुनकर भक्तवत्सल भगवान् शङ्कर प्रसन्न होकर सन्ध्या से बोले ॥ ३९ ॥

महेश्वर ने कहा—हे देवि सन्ध्ये ! मेरी बात सुनो । तुम्हारा पाप नष्ट हो गया । अब मेरा क्रोध तुम्हारे ऊपर नहीं है और तुम अब तपस्या से शुद्ध हो चुकी ॥ ४० ॥ हे भद्रे ! तुमने जो-जो वरदान मागें वह सब मैंने तुझे प्रदान किया । हे सन्ध्ये ! मैं तुम्हारी तपस्या तथा वरदान से परम सन्तुष्ट हूँ ॥ ४१ ॥ अब प्राणियों का प्रथम शैशव भाव, दूसरा कौमारभाव, तीसरा यौवन तथा चौथा वार्द्धक्य

तृतीये त्वथ संप्राप्ते वयोभागे शरीरिणः । सकामाः स्युर्द्वितीयान्ते भविष्यति क्वचित् क्वचित् ॥४३॥
तपसा तव मर्यादा जगति स्थापिता मया । उत्पन्नमात्रा न यथा सकामाः स्युः शरीरिणः ॥४४॥
त्वं च लोके सतीभावं तादृशं समवाप्नुहि । त्रिषु लोकेषु नान्यस्या यादृशं सम्भविष्यति ॥४५॥
यः पश्यति सकामस्त्वां पाणिग्राहमृते तव । स सद्यः क्लीवतां प्राप्य दुर्बलत्वं गमिष्यति ॥४६॥
पतिस्तव महाभागस्तपोरूपसमन्वितः । सप्तकल्पान्तजीवी च भविष्यति सह त्वया ॥४७॥
इति ते ये वरा मत्तः प्रार्थितास्ते कृता मया । अन्यच्च ते वदिष्यामि पूर्वजन्मनि संस्थितम् ॥४८॥
अग्नौ शरीरत्यागस्ते पूर्वमेव प्रतिश्रुतः । तदुपायं वदामि त्वां तत्कुरुष्व न संशयः ॥४९॥
स च मेधातिथिर्यज्ञे मुने ! द्वादशवार्षिके । कृत्स्नप्रज्वलिते वह्नावचिरात् क्रियतां त्वया ॥५०॥
एतच्छैलोपत्यकायां चन्द्रभागानदीतटे । मेधातिथिर्महायज्ञं कुरुते तापसाश्रमे ॥५१॥
तत्र गत्वा स्वयं छन्दं मुनिभिर्नोपलक्षिता । मत्प्रसादाद् वह्निजाता तस्य पुत्री भविष्यति ॥५२॥
यस्ते वरो वाञ्छनीयः स्वामी मनसि कश्चन । तं निधाय निजस्वान्ते त्यज वह्नौ वपुः स्वकम् ॥५३॥
यदा त्वं दारुणं सन्ध्ये तपश्चरसि पर्वते । यावच्चतुर्युगं तस्य व्यतीते तु कृते युगे ॥५४॥
त्रेतायाः प्रथमे भागे जाता दक्षस्य कन्यकाः । यास्ताः शीलसंमापन्ना यथायोग्यं विवाहिताः ॥५५॥
तन्मध्ये स ददौ कन्या विधवे सप्तविंशतिः । चन्द्रोऽन्याः सम्परित्यज्य रोहिण्यां प्रीतिमानभूत् ॥५६॥
तद्धेतोर्हि यदा चन्द्रः शप्तो दक्षेण कोपिना । तदा भवत्या निकटे सर्वे देवाः समागताः ॥५७॥
न दृष्टाश्च त्वया सन्ध्ये ते देवा ब्रह्मणा सह । मयि विन्यस्तमनसा खं च दृष्ट्वा लभेत् पुनः ॥५८॥

भाव होगा ॥ ४२ ॥ जब शरीरधारी अपनी तीसरी अवस्था जवानी को प्राप्त होंगे और कोई-कोई प्राणी द्वितीय कौमार अवस्था के अन्त तक सकाम होंगे ॥ ४३ ॥ मैंने तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न होकर आज से जगत् में यह मर्यादा स्थापित की, कि कोई भी शरीरधारी उत्पन्न होते ही सकाम न होवे ॥ ४४ ॥ अब तुम इस लोक में ऐसी पतिव्रता धर्म का पालन करोगी जिसकी समानता कोई दूसरी स्त्री न कर पायेगी ॥ ४५ ॥ जो तुम्हारे पाणिग्रहण करनेवाले पति के अतिरिक्त तुम्हें सकाम दृष्टि से देखेगा, वह तत्काल दुर्बल तथा क्लीवता को प्राप्त करेगा ॥ ४६ ॥ हे महाभागे ! तुम्हारा पति परम तपस्वी होगा। और वह तुम्हारे साथ-साथ सातकल्प तक जीवित रहेगा ॥ ४७ ॥ इस प्रकार तुमने मुझसे जो-जो वर माँगे वे सभी वर मैंने तुझे दिये। अब मैं तुम्हारे पूर्वजन्म की कुछ बातें कहता हूँ ॥ ४८ ॥

तुम अग्नि में अपने शरीर का त्याग करोगी, यह बात पहले से ही निश्चित है। अतः उसके लिए मैं जो उपाय तुम्हें बताता हूँ, उसे निश्चित रूप से करो ॥ ४९ ॥ तुम्हारे शरीर-त्याग का उपाय यही है कि तुम महर्षि मेधातिथि के द्वादश-वार्षिक यज्ञ की प्रचण्ड रूप से जलती हुई अग्नि में शीघ्रता से प्रवेश करो ॥ ५० ॥ इस समय वे महर्षि मेधातिथि इसी पर्वत की उपत्यका (पार्श्व-भूमि) में चन्द्रभागा नदी के तट पर तपसाश्रम में यज्ञ कर रहे हैं ॥ ५१ ॥ वहाँ तुम स्वेच्छा से जाकर मुनियों से अलक्षित हो अग्नि में प्रवेश कर जाओ। फिर तुम उसी यज्ञाग्नि से प्रकट होकर महर्षि मेधातिथि की पुत्री बनोगी ॥ ५२ ॥ तुम्हें जो अभीष्ट पति वर रूप में प्राप्त करना हो उसका स्मरण कर अग्नि में शरीर छोड़ना ॥ ५३ ॥ और हे सन्ध्ये ! तुम इस पर्वत पर चार युग से घोर तपस्या कर रही हो। कृतयुग के बीत जाने पर त्रेतायुग में जब दक्ष की कन्याएँ उत्पन्न हुईं। और वे शीलसम्पन्न कन्याएँ यथायोग्य विवाहित हुईं जिनमें सत्ताइस कन्याएँ चन्द्रमा को विवाह-विधि द्वारा दी गयीं किन्तु चन्द्रमा उन सभी को छोड़ कर रोहिणी में प्रीति करने लगा ॥ ५४-५६ ॥ तब दक्ष ने क्रोध से चन्द्रमा को शाप दिया। उस समय सभी देवता तुम्हारे पास आये थे ॥ ५७ ॥ और हे सन्ध्ये ! तुम मेरा ध्यान कर रही थी इसलिए वे देवगण, जो ब्रह्मा के साथ आये हुए थे, तुमने उनकी ओर देखा नहीं क्योंकि तुम आकाश देख रही थी, अब तुमने मेरा दर्शन प्राप्त कर लिया है ? ॥ ५८ ॥

चन्द्रस्य शापमोक्षार्थं जाता चन्द्रनदी तदा। सृष्टा धात्रा तदैवाऽत्र मेधातिथिरुपस्थितः ॥५९॥
तपसा तत्समो नास्ति न भूतो न भविष्यति। येन यज्ञः समारब्धो ज्योतिष्टोमो महाविधिः॥६०॥
तत्र प्रज्वलितो वह्निस्तस्मिन् त्यज वपुः स्वकम्। सुपवित्रा त्वमिदानीं सम्पूर्णोऽस्तु पणस्तव ॥६१॥
एतन्मया स्थापितं ते कार्यार्थं भो तपस्विनि!। तत्कुरुष्व महाभागे याहि यज्ञे महामुनेः॥
तस्या हितं च देवेशस्तत्रैवान्तरधीयत ॥६२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सन्ध्याचरित्रवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सप्तमोऽध्यायः

(मेधातिथि के यज्ञ में सन्ध्या का गमन एवं अपना शरीर त्यागकर सूर्यलोक में जाना और अपना अरुन्धति नामकरण तथा वसिष्ठ के साथ विवाह एवं शक्त्यादि पुत्रोत्पत्ति वर्णन)

ब्रह्मोवाच

वरं दत्त्वा मुने तस्मिन् शम्भावन्तर्हिते तदा। सन्ध्याप्यगच्छत्तत्रैव यत्र मेधातिथिर्मुनिः ॥ १ ॥
तत्र शम्भोः प्रसादेन न केनाप्युपलक्षिता। सस्मार वर्णिनं तं वै स्वोपदेशकरं तपः ॥ २ ॥
वसिष्ठेन पुरा सा तु वर्णी भूत्वा महामुने। उपदिष्टा तपश्चर्तुं वचनात् परमेष्ठिनः ॥ ३ ॥
तमेव कृत्वा मनसा तपश्चर्योपदेशकम्। पतित्वेन तदा सन्ध्या ब्राह्मणं ब्रह्मचारिणम् ॥ ४ ॥
समिद्धेऽग्नौ महायज्ञे मुनिभिर्नोपलक्षिता। दृष्टा शम्भुप्रसादेन सा विवेश विधेः सुता॥ ५ ॥
तस्याः पुरोडाशमयं शरीरं तत्क्षणात्ततः। दग्धं पुरोडाशगन्धं तस्तार यदलक्षितम् ॥ ६ ॥
वह्निस्तस्याः शरीरं तु दग्ध्वा सूर्यस्य मण्डलम्। शुद्धं प्रवेशयामास शम्भोरेवाज्ञया पुनः ॥ ७ ॥

ब्रह्मदेव ने चन्द्रमा के शाप को दूर करने के लिए इस चन्द्रभागा नदी का निर्माण किया है, जहाँ इस समय मेधातिथि निवास कर रहे हैं ॥ ५९ ॥ इस समय उन महर्षि मेधातिथि के समान तपस्या में न तो कोई है, न कोई होनेवाला है और न कोई हुआ है। उन्होंने ही इस चन्द्रभागा नदी के तट पर विधि-पूर्वक ज्योतिष्टोम यज्ञ का आरम्भ किया है ॥ ६० ॥ तुम वहीं जाकर यज्ञ की प्रज्वलित अग्नि में अपना शरीर छोड़ो। तुम्हारा शरीर तप से अत्यन्त पवित्र हो गया है। उस यज्ञाग्नि में शरीर छोड़ने से तुम्हारी सारी प्रतिज्ञाएँ पूर्ण हो जायेंगी ॥ ६१ ॥ हे तपस्विनि! मैंने भविष्य के कार्य के लिए तुम्हारा यह सारा विधान बता दिया। अतः हे महाभागे! तुम उस यज्ञ में जाओ और अपना कार्यसिद्ध करो। इस प्रकार भगवान् शङ्कर सन्ध्या से कह कर वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ६२ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में सन्ध्याचरित्रवर्णन नामक षष्ठ अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

*

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार भगवान् सदाशिव जब सन्ध्या को वर देकर अन्तर्धान हो गये तब वह महर्षि मेधातिथि के समीप गयी ॥ १ ॥ वहाँ पर भगवान् सदाशिव की कृपा से उसे किसी ने नहीं देखा। उसने उस समय तपस्या के विषय में उपदेश करनेवाले उस ब्रह्मचारी का स्मरण किया ॥ २ ॥ वे ब्रह्मचारी वसिष्ठ ही थे, जो ब्रह्मदेव की आज्ञा से ब्रह्मचारी का रूप धारण कर उसे तपोपदेश करने आये थे ॥ ३ ॥ सन्ध्या ने तपश्चर्या का उपदेश करनेवाले उसी ब्रह्मचारी ब्राह्मण वसिष्ठ का पतिरूप से स्मरण किया ॥४॥ वह ब्रह्मकन्या सन्ध्या सदाशिव की आज्ञा से मुनियों द्वारा अलक्षित हो उस यज्ञाग्नि में प्रवेश कर गयी ॥ ५ ॥ उसका सारा शरीर पुरोडाश के समान तत्क्षण भस्म हो गया। जिससे अलक्षित रूप से पुरोडाश का गन्ध चारों ओर फैल गया ॥ ६ ॥ पुनः सदाशिव की आज्ञा से अग्नि ने उसके शरीर

सूर्यो द्व्यर्धं विभज्याऽथ तच्छरीरं तदा रथे । स्वके संस्थापयामास प्रीतये पितृदेवयोः ॥ ८ ॥
तदूर्ध्वभागस्तस्यास्तु शरीरस्य मुनीश्वर ! । प्रातः सन्ध्याभवत् सा तु अहोरात्रादिमध्यगा ॥ ९ ॥
तच्छेषभागस्तस्यास्तु अहोरात्रान्तमध्यगा । सा सायमभवत् सन्ध्या पितृप्रीतिप्रदा तदा ॥ १० ॥
सूर्योदयात्तु प्रथमं यदा स्यादरुणोदयः । प्रातःसन्ध्या तदोदेति देवानां प्रीतिकारिणी ॥ ११ ॥
अस्तङ्गते ततः सूर्ये शोणपद्मनिभे सदा । उदेति सायंसन्ध्यापि पितॄणां मोदकारिणी ॥ १२ ॥
तस्याः प्राणास्तु मनसा शम्भुनाऽथ दयालुना । दिव्येन तु शरीरेण चक्रिरे हि शरीरिणः ॥ १३ ॥
मुनेर्यज्ञावसाने तु सम्प्राप्ते मुनिना तु सा । प्राप्ता पुत्री वह्निमध्ये तप्तकाञ्चनसुप्रभा ॥ १४ ॥
तां जग्राह तदा पुत्रीं मुनिरामोदसंयुतः । यज्ञार्थं तां तु संस्नाप्य निजक्रोडे दधौ मुने ! ॥ १५ ॥
अरुन्धती तु तस्यास्तु नाम चक्रे महामुनिः । शिष्यैः परिवृतस्तत्र महामोदमवाप ह ॥ १६ ॥
निरुणद्धि यतो धर्मं सा कस्मादपि कारणात् । अतस्त्रिलोके विदितं नाम सम्प्राप तत्स्वयम् ॥ १७ ॥

यज्ञं समाप्य स मुनिः कृतकृत्यभावमासाद्य सम्पदयुतस्तनयाप्रलम्भात् ।
तस्मिन्निजाश्रमपदे सह शिष्यवर्गैस्तामेव सन्ततमसौ दयिते सुरर्षे ॥ १८ ॥

अथ सा ववृधे देवी तस्मिन् मुनिवराश्रमे । चन्द्रभागानदीतीरे तापसारण्यसंज्ञके ॥ १९ ॥
सम्प्राप्ते पञ्चमे वर्षे चन्द्रभागां तदा गुणैः । तापसारण्यमपि सा पवित्रमकरोत् सती ॥ २० ॥
विवाहं कारयामासुस्तस्या ब्रह्मसुतेन वै । वसिष्ठेन ह्यरुन्धत्या ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः ॥ २१ ॥
तद्-विवाहे महोत्साहो बभूव सुखवर्द्धनः । सर्वे सुराश्च मुनयः सुखमापुः परं मुने ! ॥ २२ ॥

को भस्म कर सूर्यमण्डल में प्रवेश करा दिया ॥ ७ ॥ सूर्य ने इस प्रकार भस्म हुए उसके शरीर को रथ में विभक्त कर पितरों एवं देवताओं की प्रीति के लिए उसे अपने में स्थापित किया ॥ ८ ॥ उसके शरीर का जो ऊर्ध्वभाग था वह रात्रि तथा दिन के बीच में होनेवाली प्रातःसन्ध्या हुई ॥ ९ ॥ जो उसके शरीर का शेष भाग था वही दिन तथा रात्रि के बीच में होनेवाली सायंसन्ध्या हुई, जो सदैव ही पितरों के प्रसन्नता का कारण हुई ॥ १० ॥

सूर्योदय के पहले जब अरुणोदय होता है वही काल देवताओं को प्रसन्न करनेवाला प्रातःसन्ध्या-काल कहा जाता है ॥ ११ ॥ जब लाल कमल के समान सूर्य अस्त हो जाता है तब सायंसन्ध्या का उदय होता है, जिससे पितरों को अत्यन्त प्रसन्नता होती है ॥ १२ ॥ उसके मन सहित प्राण को परम दयालु शङ्कर जी ने शरीरधारियों के दिव्य शरीर से निर्मित किया था ॥ १३ ॥ जब मेधातिथि का यज्ञ समाप्त हो रहा था, तब उन्हें वह देदीप्यमान सुवर्ण के समान कान्तिवाली कन्या यज्ञ-कुण्ड के अग्नि में प्राप्त हुई ॥ १४ ॥ महामुनि ने यज्ञ से प्राप्त हुई उस कन्या को बड़ी प्रसन्नता से ग्रहण किया। और उसे स्नान कराकर अपनी गोदी में बैठाया ॥ १५ ॥ उन्होंने उस कन्या का नामकरण अरुन्धती किया। उस कन्या को प्राप्त कर वे शिष्यों सहित अत्यन्त हर्षित हुए ॥ १६ ॥ उसने किसी भी कारण के उपस्थित होने पर अपने पातिव्रत्य धर्म का त्याग नहीं किया, इसलिए इस त्रिलोकी में उसने स्वयं अरुन्धती नाम धारण किया ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे सुरर्षे नारद ! यज्ञ समाप्त करने के उपरान्त वे मुनि कन्या रूप सम्पत्ति की प्राप्ति से अपने शिष्यों सहित अत्यन्त कृतकृत्य हो उठे। और वे अपने उस आश्रम में उस कन्या का लालन-पालन करने लगे ॥ १८ ॥

तदनन्तर वह कन्या चन्द्रभागा नदी के तट पर तापसारण्य नामक उस महर्षि मेधातिथि के आश्रम में बढ़ने लगी ॥ १९ ॥ वह सती पाँच वर्ष की अवस्था में अपने गुणों से चन्द्रभागा नदी तथा तापसारण्य संज्ञक उस आश्रम को पवित्र करने लगी ॥ २० ॥ ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर ने उसका विवाह ब्रह्मपुत्र वसिष्ठ के साथ करवाया ॥ २१ ॥ हे मुने ! उस कन्या के विवाह में सुखदायक महान् उत्सव

ब्रह्म-विष्णु-महेशानां करनिःसृततोयतः । सप्तनद्यः समुत्पन्नाः शिप्राद्याः सुपवित्रकाः ॥२३॥
अरुन्धती महासाध्वी साध्वीनां प्रवरोत्तमा । वसिष्ठं प्राप्य संरेजे मेधातिथिसुता मुने ! ॥२४॥
यस्याः पुत्राः समुत्पन्नाः श्रेष्ठाः शक्त्यादयः शुभाः । वसिष्ठं प्राप्य तं कान्तं संरेजे मुनिसत्तम ! ॥२५॥
एवं सन्ध्याचरित्रं ते कथितं मुनिसत्तम ! । पवित्रं पावनं दिव्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥२६॥
य इदं शृणुयान्नारी पुरुषो वा शुभव्रतः । सर्वान् कामानवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥२७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

(काम और रति का वसन्त के साथ कैलास में गमन)

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य ब्रह्मणो हि प्रजापतेः । प्रसन्नमानसो भूत्वा तं प्रोवाच स नारदः ॥ १ ॥

नारद उवाच

ब्रह्मन् ! विधे महाभाग विष्णुशिष्य महामते ! । धन्यस्त्वं शिवभक्तो हि परतत्त्वप्रदर्शकः ॥ २ ॥
श्राविता सुकथा दिव्या शिवभक्तिविवर्द्धिनी । अरुन्धत्यास्तथा तस्याः स्वरूपायाः परे भवे ॥ ३ ॥
इदानीं ब्रूहि धर्मज्ञ ! पवित्रं चरितं परम् । शिवस्य परपापघ्नं मङ्गलप्रदमुत्तमम् ॥ ४ ॥
गृहीतदारे कामे च हृष्टे तेषु गतेषु च । सन्ध्यायां किं तपस्तप्तुं गतायामभवत्ततः ॥ ५ ॥

हुआ। जिससे सभी देवता तथा मुनिगण अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥ उस विवाह में ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर के हाथ से जो जल गिरा, उससे क्षिप्रादि सात पवित्र नदियाँ उत्पन्न हुईं ॥ २३ ॥ साध्वी स्त्रियों में सर्वश्रेष्ठ महासाध्वी मेधातिथि की कन्या अरुन्धती वसिष्ठ को पति प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्न हुई ॥२४॥ और उसने शक्त्यादि श्रेष्ठ पुत्रों को जन्म दिया। मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ को पति प्राप्त कर दाम्पत्य सुख में प्रवृत्त हुई॥ २५ ॥ ब्रह्माजी बोले—हे मुनिसत्तम, देवर्षि नारद ! इस प्रकार सन्ध्या का चरित्र मैंने तुमसे कहा, जो अत्यन्त पवित्र, पावन, दिव्य तथा सम्पूर्ण कामनाओं को देने वाला है ॥ २६ ॥ जो पुण्यशील स्त्री तथा पुरुष इस चरित्र को सुनेगा, उसका सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ २७ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के
द्वितीय-सतीखण्ड में सप्तम अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥

*

सूत जी बोले—इस प्रकार प्रजापति ब्रह्मा का वचन सुन कर प्रसन्न हुए नारदजी पुनः उनसे बोले ॥ १ ॥

नारद ने कहा—हे ब्रह्मन् ! हे विधे ! हे महाभाग ! हे विष्णुशिष्य ! हे महामते ! परतत्त्व के प्रकाशक आप शिवभक्त धन्य हो ॥ २ ॥ अरुन्धती की परशिव में होनेवाली भक्ति की कथा, जो दिव्य एवं शिवभक्ति को बढ़ाने वाली है, उसे मुझे पुनः सुनाइए ॥ ३ ॥ हे धर्मज्ञ शिव का परम चरित्र जो सम्पूर्ण पापों का विनाशक है तथा मङ्गलों को प्रदान करने वाला है, उसे सुनाइए ॥ ४ ॥ जब काम ने रति को प्राप्त कर लिया और सभी ब्रह्मा तथा उनके मानसपुत्र चले गये। तथा सन्ध्या जब विरक्त होकर तप करने चली गयी तब क्या हुआ ॥ ५ ॥

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य ऋषेर्वै भावितात्मनः । सुप्रसन्नतरो भूत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु नारद विप्रेन्द्र ! तदेव चरितं शुभम् । शिवलीलान्वितं भक्त्या धन्यस्त्वं शिवसेवकः ॥ ७ ॥
अहं विमोहितस्तात ! यदैवान्तर्हितः पुरा । अचिन्तयं तदाऽहं तच्छम्भुवाक्यविषार्दितः ॥ ८ ॥
चिन्तयित्वा चिरं चित्ते शिवमायाविमोहितः । शिवे चेर्ष्यामकार्यं हि तच्छृणुष्व वदामि ते ॥ ९ ॥
अथाऽहमगमं तत्र यत्र दक्षादयः स्थिताः । सरतिं मदनं दृष्ट्वा समदोऽहं हि किञ्चन ॥ १० ॥
दक्षमाभाष्य सुप्रीत्या परान् पुत्रांश्च नारद ! । अवोचं वचनं सोऽहं शिवमायाविमोहितः ॥ ११ ॥

ब्रह्मोवाच

हे दक्ष हे मरीच्याद्याः सुताः शृणुत मद्वचः । श्रुत्वोपायं विधेयं हि मम कष्टापनुत्तये ॥ १२ ॥
कान्ताभिलाषमात्रं मे दृष्ट्वा शम्भुरगर्हयत् । मां च युष्मान् महायोगी धिक्कारं कृतवान् बहु ॥ १३ ॥
तेन दुःखार्पितश्चोऽहं लभेऽहं शर्म न क्वचित् । यथा गृह्णातु कान्तां स स यत्नः कार्य एव हि ॥ १४ ॥
यथा गृह्णातु कान्तां स सुखी स्यां दुःखवर्जितः । दुर्लभः स तु कामो मे परं मन्ये विचारतः ॥ १५ ॥
कान्ताभिलाषमात्रं मे दृष्ट्वा शम्भुरगर्हयत् । मुनीनां पुरतः कस्मात् स कान्तां सङ्ग्रहीष्यति ॥ १६ ॥
का वा नारी त्रिलोकेऽस्मिन् या भवेत्तन्मनःस्थिता । योगमार्गमवज्ञाप्य तस्य मोहं करिष्यति ॥ १७ ॥
मन्मथोऽपि समर्थो नो भविष्यत्यस्य मोहने । नितान्तयोगी रामाणां नामापि सहते न सः ॥ १८ ॥
अगृहीतेषु ना चैव हरेण कथयादिना । मध्यमा च भवेत् सृष्टिस्तद्वाचा नाऽन्यवारिता ॥ १९ ॥

सूत० जी बोले—इस प्रकार आत्मतत्त्वज्ञ देवर्षि नारद के वचन को सुन कर प्रसन्न हो ब्रह्माजी बोले ॥ ६ ॥

ब्रह्मा जी बोले—हे विप्रेन्द्र नारद ! शिवलीला से परिपूर्ण अब उसी महान् कल्याणदायक शिव के चरित्र को सुनो। तुम धन्य हो जो शिव में तुम्हारी भक्ति है ॥ ७ ॥ हे तात ! जब मैं शिव की माया से मोहित हो अन्तर्धान हो गया। तब शिव के विषयुक्त वचनों से दुःखी हो अपने मन में विचार करने लगा ॥ ८ ॥ शिवमाया से मोहित हुआ मैं बहुत देर तक चित्त में विचार करता हुआ उनसे जिस प्रकार ईर्ष्या करने लगा उसे हे नारद ! सुनो ॥ ९ ॥ मैं मदन तथा कामदेव को देखकर अहङ्कार में भरा हुआ दक्षादि के पास आया ॥ १० ॥ दक्ष से तथा अपने अन्य मानसपुत्रों से प्रीतिपूर्वक कुशल-प्रश्नादि के अनन्तर शिवमाया से मोहित हुआ मैं इस प्रकार उनसे कहने लगा ॥ ११ ॥

ब्रह्मा बोले—हे दक्ष ! तथा हे मरीच्यादि पुत्रो ! मेरी बात सुनो। और उसे सुनकर मेरे कष्ट को दूर करने का उपाय करो ॥ १२ ॥ महायोगी शिवने हमें तथा तुम लोगों को स्त्रीसंग की अभिलाषा देख कर धिक्कार करते हुए बहुत बड़ी निन्दा की ॥ १३ ॥ उस धिक्कार के कारण दुःखी हुए मुझे चैन नहीं मिलता, अतः जिस प्रकार भी हो सके ऐसा यत्न करो कि महादेवजी स्त्री ग्रहण करें ॥ १४ ॥ जब वे दारपरिग्रह करेंगे तभी हमारा वह दुःख दूर होगा। किन्तु विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह कार्य बड़ा दुष्कर है ॥ १५ ॥ जब उन्होंने मुनियों के समक्ष ही मेरे कान्ता-परिग्रह की अभिलाषा मात्र से मुझे धिक्कारा तो भला वे स्वयं किस प्रकार स्त्री ग्रहण करेंगे ॥ १६ ॥ इस त्रिलोक में कौन सी ऐसी स्त्री है, जो शिव का सर्वथा तन्मय हो ध्यान करती है एवं जो उनको योगमार्ग से हटाकर उनको मोह में डाल सकती है ॥ १७ ॥ इन्हें मोह उत्पन्न करने में कामिनी समर्थ नहीं है, क्योंकि वे निरन्तर महायोगी हैं, स्त्रियों के नाम को भी नहीं सहन कर सकते ॥ १८ ॥ जो कथादि प्रसङ्ग के द्वारा भी स्त्री का नाम नहीं सहन कर सकता भला वह वाणी से स्त्री ग्रहण कर किस

भुवि केचिद् भविष्यन्ति मायाबद्धा महासुराः । बद्धाः केचिद्धरेर्नूनं केचिच्छम्भोरुपायतः ॥२०॥
संसारविमुखे शम्भौ तथैकान्तविरागिणि । अस्मादृते न कर्मान्यत् करिष्यति न संशयः ॥२१॥
इत्युक्त्वा तनयांश्चाऽहं दक्षादीन् सुनिरीक्ष्य च । सरतिं मदनं तत्र सानन्दमगदं ततः ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

मत्पुत्रवर कामं त्वं सर्वथा सुखदायकः । मद्वचः शृणु सुप्रीत्या स्वपत्न्या पितृवत्सल ! ॥२३॥
अनया सहचारिण्या राजसे त्वं मनोभव ! । एषा च भवता पत्या युक्ता संशोभते भृशम् ॥२४॥
यथा स्त्रिया हृषीकेशो हरिणा सा यथा रमा । क्षणदा विधुना युक्ता तथा युक्तो यथा विधुः ॥२५॥
तथैव युवयोः शोभा दाम्पत्यं च पुरस्कृतम् । अतस्त्वं जगतः केतुर्विश्वकेतुर्भविष्यसि ॥२६॥
जगद्धिताय वत्स ! त्वं मोहयस्व पिनाकिनम् । यथाऽऽशु सुमनः शम्भुः कुर्याद् दारप्रतिग्रहम् ॥२७॥
विजने स्निग्धदेशे तु पर्वतेषु सरःसु च । यत्र यत्र प्रयातीशस्तत्र तत्राऽनया सह ॥२८॥
मोहय त्वं यतात्मानं वनिताविमुखं हरम् । त्वदृते विद्यते नाऽन्यः कश्चिदस्य विमोहकः ॥२९॥
भूते हरे सानुरागे भवतोऽपि मनोभवः । शापोपशान्तिर्भविता तस्मादात्महितं कुरु ॥३०॥
सानुरागो वरारोहां यदीच्छति महेश्वरः । तदा भवोऽपि योग्यार्यस्त्वां च सन्तारयिष्यति ॥३१॥
तस्माज्जायाद्वितीयस्त्वं यतस्व हरमोहने । विश्वस्य भव केतुस्त्वं मोहयित्वा महेश्वरम् ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचो मे हि जनकस्य जगत्प्रभोः । उवाच मन्मथस्तथ्यं तदा मां जगतां पतिम् ॥३३॥

प्रकार सृष्टिकर्म में प्रवृत्त हो सकता है ॥ १९ ॥ इस पृथ्वी में बड़े-बड़े देवता भी माया के बन्धन में पड़े हुए हैं, जो इससे वचे हैं वे विष्णु के बन्धन में बँधे हुए हैं, और कुछ शम्भु के उपायों से आवद्ध हैं ॥२०॥ सर्वथा विरक्त संसार से विमुख सदाशिल के अतिरिक्त और कौन है, जो एसा दुष्कर कार्य कर सके ॥२१॥ इस प्रकार दक्षादि अपने पुत्रों की ओर देखते हुए मैंने ऐसा कहा पुनः रतियुक्त कामदेव को देख आनन्द से भर कर उनसे कहा ॥ २२ ॥

ब्रह्मा वोले—सर्वथा सबको सुख देनेवाले मेरे श्रेष्ठपुत्र हे पितृवत्सल काम ! तुम अपनी पत्नी रति के सहित प्रसन्नता से मेरी वात सुनो ॥ २३ ॥ हे मनोभव ! तुम अपनी इस सहचारिणी स्त्री के साथ जिस प्रकार शोभा पा रहे हो, उसी प्रकार यह भी तुम्हें पति प्राप्त कर शोभा पा रही है ॥ २४ ॥

जिस प्रकार महालक्ष्मी से भगवान् विष्णु तथा विष्णु से महालक्ष्मी एवं जिस प्रकार रात्रि से चन्द्रमा तथा चन्द्रमा से रात्रि की शोभा होती है ॥ २५ ॥ उसी प्रकार तुम लोगों का भी दाम्पत्य एक दूसरे से शोभित हो रहा है। इसलिए तुम इस जगत् के जीतनेवाले विश्वकेतु होगे ॥ २६ ॥ हे वत्स ! तुम संसार के हित की इच्छा से महादेव को मोहित करो। जिससे प्रसन्न होकर शङ्कर विवाह करें ॥ २७ ॥ निर्जन स्थान में अथवा उत्तम प्रदेश में, पर्वत में अथवा तालाब में जहाँ-कहीं भी शिव जी जावें वहाँ तुम इस अपनी पत्नी के साथ जाकर इन जितेन्द्रिय स्त्री-सुख से रहित शङ्कर को मोहित करो। इस जगत् में तुम्हें छोड़ कर और कोई दूसरा इनको मोह में डालने वाला नहीं है ॥ २८-२९ ॥ हे मनोभव ! जब शङ्कर जी स्त्री में सानुराग हो जावेंगे तो तुम्हारे भी शाप की शान्ति हो जायेगी। अतः तुम इस कार्य से आत्मकल्याण समझो ॥ ३० ॥ जब महेश्वर काम के वशीभूत हो सानुराग स्त्री की अभिलाषा करेंगे तो वे आर्य तुम्हें भी [illegible]र देंगे ॥ ३१ ॥ इसलिए तुम अपनी स्त्री को साथ लेकर शङ्कर को मोहित करने का प्रयत्न करो। तुम महेश्वर को मोहित करने से सारे विश्व में श्रेष्ठता प्राप्त करोगे ॥ ३२ ॥

ब्रह्मा बोले—संसार के प्रभु एवं अपने पिता मुझ ब्रह्मा की बात सुन कर वह कामदेव मुझसे कहने लगा ॥ ३३ ॥

मन्मथ उवाच

करिष्येऽहं तव विभो ! वचनाच्छम्भुमोहनम् । किं तु योषिन्महास्त्रं मे तत्कान्तां भगवन् ! सृज ॥३४॥
मया सम्मोहिते शम्भौ यया तस्यानुमोहनम् । कर्तव्यमधुना धातस्तत्रोपायं परं कुरु ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

एवंवादिनि कन्दर्पे धाताऽहं स प्रजापतिः । कया सम्मोहिनी योऽसाविति चिन्तामयामहम् ॥३६॥
चिन्ताविष्टस्य मे तस्य निःश्वासो यो विनिःसृतः । तस्माद् वसन्तः सञ्जातः पुष्पव्रातविभूषितः ॥३७॥
शोणराजीवसङ्काशः फुल्लतामरसेक्षणः । सन्ध्योदिताखण्डशशिप्रतिमास्यः सुनासिकः ॥३८॥
शार्ङ्गवचरणावर्त्तः श्यामकुञ्चितमूर्द्धजः । सन्ध्यांशुमालिसदृशः कुण्डलद्वयमण्डितः ॥३९॥
प्रमत्तेभगतिः पीनायतदोरुन्नतांसकः । कम्बुग्रीवः सुविस्तीर्णहृदयः पीनसम्मुखः ॥४०॥
सर्वाङ्गसुन्दरः श्यामः सम्पूर्णः सर्वलक्षणैः । दर्शनीयतमः सर्वमोहनः कामवर्द्धनः ॥४१॥
एतादृशे समुत्पन्ने वसन्ते कुसुमाकरे । ववौ वायुः सुसुरभिः पादपा अपि पुष्पिताः ॥४२॥
पिका विनेदुः शतशः पञ्चमं मधुरस्वनाः । प्रफुल्लपद्मा अभवन् सरस्यः स्वच्छपुष्करा ॥४३॥
तमुत्पन्नमहं वीक्ष्य तदा तादृशमुत्तमम् । हिरण्यगर्भो . मदनमगदं मधुरं वचः ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

एवं स मन्मथनिभः सदा सहचरोऽभवत् । आनुकूल्यं तव कृतं सर्वं देव करिष्यति ॥४५॥
यथाऽग्नेः पवनो मित्रं सर्वत्रोपकरिष्यति । तथाऽयं भवतो मित्रं सदा त्वामनुयास्यति ॥४६॥
वसतेरन्तहेतुत्वाद् वसन्ताख्यो भवत्वयम् । तवानुगमनं कर्म तथा लोकानुरञ्जनम् ॥४७॥

कामदेव ने कहा—हे प्रभो ! मैं आप की आज्ञानुसार शिव को मोहित करूँगा। किन्तु हे प्रभो ! स्त्री ही मेरा मुख्य अस्त्र है, अतः शङ्कर के योग्य स्त्री का निर्माण कीजिए ॥ ३४ ॥ हे धातः ! शिव को मोहित करने के लिए जिस स्त्री से उनको मोह हो उसे शीघ्र ही आप उत्पन्न करने का यत्न कीजिए ॥३५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कामदेव की बातें सुन कर मैं ब्रह्मा तथा प्रजापति दक्ष अपने मन में विचार करने लगे कि किस प्रकार की स्त्री से शिव को मोहित किया जाय ॥ ३६ ॥ इस प्रकार चिन्ता में निमग्न हुए मेरे द्वारा जो श्वास निकला, उसी से पुष्प-समूहों से विभूषित वसन्त उत्पन्न हुआ ॥ ३७ ॥ उस वसन्त के शरीर की कान्ति लाल कमल के समान थी, और उसकी आँखें भी लाल कमल के समान थीं। उसका मुख सन्ध्याकालीन उदय होते हुए पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान मनोहर था, उसकी नासिका भी बहुत सुन्दर थी ॥ ३८ ॥ उसके चरण के आवर्त्त शार्ङ्ग के समान तथा बाल घुंघराले एवं काले थे। सन्ध्याकालीन सूर्य के समान दो कुण्डलों से वह शोभा पा रहा था ॥ ३९ ॥ मतवाले हाथी के समान उसकी चाल थी। उसकी दोनों भुजाएँ अत्यन्त लम्बी तथा मोटी थीं तथा कन्धा अत्यन्त उन्नत था। ग्रीवा शंख के समान मनोहर, हृदय अत्यन्त चौड़ा तथा विशाल था ॥ ४० ॥ वह श्याम वर्ण तथा सम्पूर्ण लक्षणों से लक्षित होने के कारण सर्वाङ्गसुन्दर प्रतीत हो रहा था। वह सबको मोहित करनेवाला, काम को बढ़ानेवाला तथा अत्यन्त दर्शनीय था ॥ ४१ ॥ इस प्रकार पुष्पगुच्छों से सुशोभित हुए वसन्त के उत्पन्न होते ही सुगन्धित वायु चलने लगा और वृक्ष फूलों से लद गये ॥४२॥ सैकड़ों कोयल मधुर तथा पञ्चम स्वर में बोलने लगे ॥ ४३ ॥ इस प्रकार लावण्य-सम्पन्न कामदेव को देख कर मैं ब्रह्मा उससे मधुर शब्दों में कहा ॥४४॥

ब्रह्मा बोले—हे मन्मथ ! यह वसन्त अब तुम्हारे अनुकूल मित्र उत्पन्न हो गया। अब यह तुम्हारी सब प्रकार से सहायता करेगा ॥ ४५ ॥ जिस प्रकार अग्नि का मित्र बनकर पवन सदैव उसका उपकार करता रहता है, उसी प्रकार यह वसन्त भी मित्र बनकर तुम्हारे साथ निवास करेगा ॥ ४६ ॥ रमण में हेतु होने के कारण यह तुम्हारे साथ निवास करेगा इसलिए इसका नाम वसन्त होगा। लोक का

असौ वसन्तश्रृङ्गारो वासन्तो मलयानिलः । भवेत्तु सुहृदो भावः सदा त्वद्वशवर्त्तिनः ॥४८॥
विव्वोकाद्यास्तथा हावाश्चतुष्षष्टिकलास्तथा । रत्याः कुर्वन्तु सौहृद्यं सुहृदस्ते यथा तव ॥४९॥
एभिः सहचरैः कामं वसन्तप्रमुखैर्भवान् । मोहयस्व महादेवं रत्या सह महोद्यतः ॥५०॥
अहं तां कामिनीं तात ! भावयिष्यामि यत्नतः । मनसा सुविचार्यैव या हरं मोहयिष्यति ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तो मया कामः सुरज्येष्ठेन हर्षितः । ननाम चरणौ मेऽपि स पत्नीसहितस्तदा ॥५२॥
दक्षं प्रणम्य तान् सर्वान् मानसानभिवाद्य च । यत्रात्मा गतवाञ्शम्भुस्तत्स्थानं मन्मथो ययौ॥५३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयस्यां रुद्रसंहितायां सतीचरित्रे द्वितीये सतीखण्डे वसन्तस्वरूपवर्णनं नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

(वसन्त आदि के सहायक होने पर भी शिव को मोहने में असमर्थता तथा कामदेव का अपने लोक में जाना)

ब्रह्मोवाच

तस्मिन् गते सानुचरे शिवस्थानं च मन्मथे । चरित्रमभवच्चित्रं तच्छृणुष्व मुनीश्वर ! ॥ १ ॥
गत्वा तत्र महावीरो मन्मथो मोहकारकः । स्वप्रभावं ततानाशु मोहयामास प्राणिनः ॥ २ ॥
वसन्तोऽपि प्रभावं स्वं चकार हरमोहनम् । सर्वे वृक्षा एकदैव प्रफुल्ला अभवन्मुने ॥ ३ ॥
विविधान् कृतवान् यत्नान् रत्या सह मनोभवः । जीवाः सर्वे वशं याताः सगणेशः शिवो न हि ॥ ४ ॥

अनुरञ्जन तथा तुम्हारा अनुगमन ही इसके कार्य हैं ॥ ४७ ॥ वसन्तकालीन यह मलयानिल इस वसन्त का शृङ्गार बन कर इसके मित्ररूप से बना रहेगा । जो सदैव तुम्हारे आधीन रहेगा ॥ ४८ ॥ जिस प्रकार तुम्हारे मित्र रहते हैं उसी प्रकार ये विव्वोक आदि हाव तथा चौंसठ कलाएँ रति के साथ मैत्रीभाव से रहें ॥ ४९ ॥ अब हे काम ! तुम अपने इन प्रमुखसहचरों के तथा रति के साथ उद्यत हो महादेवजी को मोहित करो ॥ ५० ॥ और हे तात ! अब मैं यत्नपूर्वक मन से अच्छी तरह सोच-विचार कर उस कामिनी को उत्पन्न करूँगा, जो शङ्कर को मोहित करने में समर्थ हो ॥ ५१ ॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार मेरे कहे जाने के अनन्तर पत्नी सहित उस काम ने मेरे चरणों में प्रणाम किया ॥ ५२ ॥ पुनः दक्ष एवं मेरे मानसपुत्रों को प्रणाम कर जिस स्थान में स्वयं शङ्कर जी गये थे, उसी स्थान पर चला गया ॥ ५३ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में सतीचरित्र वर्णन के आख्यान में वसन्तस्वरूप वर्णन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥

*

ब्रह्मा बोले—हे मुनीश्वर नारद ! अनुचरों के साथ उस काम के शिव स्थान में पहुँच जाने पर जो विचित्र चरित्र हुआ, उसे सुनो ॥ १ ॥ सबको मोहित करनेवाले उस महावीर काम ने शिव के स्थान पर पहुँचते ही अपने प्रभाव का विस्तार कर सभी प्राणियों को मोहित कर लिया ॥ २ ॥ वसन्त ने भी महादेवजी को मोहित करने के लिए अपना सारा प्रभाव लगा दिया । जिससे समस्त वृक्ष एक साथ ही फूलों से लद गये ॥ ३ ॥ उस समय काम ने रति के साथ शिव को मोहित करने के लिए अनेक यत्न किये, जिससे सभी जीव उसके वश में हो गये । किन्तु गणेश तथा शिवजी उसके वश में नहीं हुए ॥ ४ ॥

समधोर्मदनस्यासन् प्रयासा निष्फला मुने ! । जगाम स निजस्थानं निवृत्त्य विमदस्तदा ॥ ५ ॥
कृत्वा प्रणामं विधये मह्यं गद्‌गदया गिरा । उवाच मदनो मां चोदासीनो विमदो मुने ! ॥ ६ ॥

काम उवाच

ब्रह्मन् ! शम्भुर्मोहनीयो न वै योगपरायणः । न शक्तिर्मम नाऽन्यस्य तस्य शम्भोर्हि मोहने ॥ ७ ॥
समित्रेण मया ब्रह्मन्नुपाया विविधाः कृताः । रत्या सहाखिलास्ते च निष्फला अभवञ्छिवे ॥ ८ ॥
शृणु ब्रह्मन् ! यथाऽस्माभिः कृता हि हरमोहने । प्रयासान् विविधास्तात ! गदतस्तान् मुने मम ॥ ९ ॥
यदा समाधिमाश्रित्य स्थितः शम्भुर्नियन्त्रितः । तदा सुगन्धिवातेन शीतलेनाऽतिवेगिना ॥ १० ॥
उद्वीजयामि रुद्रं स्म नित्यं मोहनकारिणा । प्रयत्नतो महादेवं समाधिस्थं त्रिलोचनम् ॥ ११ ॥
स्वसायकांस्तथा पञ्च समादाय शरासनम् । तस्याभितो भ्रमन्तस्तु मोहयंस्तद्‌गणानहम् ॥ १२ ॥
मम प्रवेशमात्रेण सुवश्याः सर्वजन्तवः । अभवद् विकृतो नैव शङ्करः सगणः प्रभुः ॥ १३ ॥
यदा हिमवतः प्रस्थं स गतः प्रमथाधिपः । तत्रागतस्तदैवाऽहं सरतिः समधुर्विधे ! ॥ १४ ॥
यदा मेरुं गतो रुद्रो यदा वा नागकेशरम् । कैलासं वा यदा यातस्तत्राऽहं गतवांस्तदा ॥ १५ ॥
यदा त्यक्तसमाधिस्तु हरस्तस्थौ कदाचन । तदा तस्य पुरश्चक्रयुगं रचितवानहम् ॥ १६ ॥
तच्च भ्रूयुगलं ब्रह्मन् ! हावभावयुतं मुहुः । नानाभावानकार्षीच्च दाम्पत्यक्रममुत्तमम् ॥ १७ ॥
नीलकण्ठं महादेवं सगणं तत्पुरःस्थिताः । अकार्षुर्मोहितं भावं मृगाश्च पक्षिणस्तथा ॥ १८ ॥
मयूरमिथुनं तत्राकार्षीद्भावं रसोत्सुकम् । विविधां गतिमाश्रित्य पार्श्वे तस्य पुरस्तथा ॥ १९ ॥
नाऽलभद् विवरं तस्मिन् कदाचिदपि मच्छरः । सत्यं ब्रवीमि लोकेश ! मम शक्तिर्न मोहने ॥ २० ॥

इस प्रकार चेष्टा करते हुए जब वसन्त सहित उस काम के सारे प्रयत्न निष्फल हो गये तब उसका सारा अहङ्कार नष्ट हो गया और वह लौट कर मेरे स्थान पर पुनः आया। मुझ ब्रह्मा को प्रणाम कर वह उदासीन तथा उत्साहरहित हो कर गद्‌गद वाणी से कहने लगा ॥ ५-६ ॥

काम ने कहा—हे ब्रह्मन् ! शिव को मोह उत्पन्न करना मेरे बूते के बाहर है, क्योंकि वे योगपरायण हैं। जब मैं ही उन्हें मोहित नहीं कर सकता तो और की बात ही क्या है ॥ ७ ॥ मैंने अपने मित्रों तथा रति के साथ उन्हें मोहित करने के अनेक उपाय किये किन्तु सभी निष्फल हो गये ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैंने शिव को मोहित करने के लिए जिन अनेकों उपायों का आश्रय लिया, उन्हें आप सुनिए ॥ ९ ॥ जब शिवजी सभी इन्द्रिय-द्वारों को रोक कर समाधि में बैठे हुए थे तब मैं सुगन्ध युक्त शीतल वायु से जो मोह को उद्दीपित करता है उससे प्रयत्नपूर्वक पंखा करने लगा ॥ १०-११ ॥ मैंने अपने धनुष तथा पाँच पुष्प के बाणों को लेकर उनके चारों ओर से छोड़ता हुआ उनके गणों को मोहित कर लिया ॥ १२ ॥ उस प्रदेश में मेरे प्रवेश करते ही आश्रम के समस्त प्राणी मोहित हो गये। किन्तु गणेश के सहित सदाशिव के मन में कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ ॥ १३ ॥

जब वे प्रमथाधिपति हिमवान् पर्वत पर गये तो हे ब्रह्मन् ! मैं भी वसन्त और रति को साथ लेकर उन्हें मोहित करने के लिये वहाँ गया ॥ १४ ॥ इसी प्रकार जब वे मेरु पर्वत पर और नागकेशर पर्वत पर गये तो मैं वहाँ भी गया। जब वे कैलास पर गये तो मैं भी कैलास पर्वत पर गया ॥ १५ ॥ जब वे किसी प्रकार समाधि से मुक्त हो गये तो मैंने उनके सामने दो चक्र और चलाये ॥ १६ ॥ वे दोनों चक्र स्त्री के हाव-भाव युक्त दोनों कटाक्ष थे, मैंने दाम्पत्यभाव का अनुकरण करते हुए उन नीलकण्ठ महादेव के सामने नाना प्रकार के भाव उत्पन्न किये ॥ १७ ॥ उन भावों से शिव के समीपस्थ सभी मृग तथा पक्षी मोहित हो गये ॥ १८ ॥ उनके आगे ही रसोत्सुक हुए मयूर के जोड़े ने अनेक प्रकार की गतियों का सहारा लेकर विविध प्रकार के भाव प्रदर्शित किये (किन्तु कोई परिणाम न हुआ)। हे लोकेश ! बहुत क्या कहूँ, शङ्कर को मोहित करने के लिए मेरे बाणों को कोई अवकाश नहीं मिला, मैं यह सत्य कहता

मधुरप्यकरोत् कर्म युक्तं यत्तस्य मोहने। तच्छृणुष्व महाभाग! सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥२१॥

चम्पकान् केशरान् बालान् कारणान् पाटलांस्तथा।
नागकेशर-पुन्नागान् किंशुकान् केतकान् करान्॥२२॥

मागन्धिमल्लिकापर्णभरान् कुरवकांस्तथा। उत्फुल्लयन्ति तत्र स्म यत्र तिष्ठति वै हरः॥२३॥

सरांस्युत्फुल्लपद्मानि वीजयन् मलयानिलैः। यत्नात् सुगन्धीन्यकरोदतीव गिरिशाश्रमे॥२४॥

लताः सर्वाः सुमनसो धत्तूराङ्कुरसञ्चयाः। वृक्षाङ्कं चिरभावेन वेष्टयन्ति द्रुम तत्र च॥२५॥

तान् वृक्षांश्च सुपुष्पौघान् तैः सुगन्धिसमीरणैः। दृष्ट्वा कामवशं याता मुनयोऽपि परे किमु॥२६॥

एवं सत्यपि शम्भोर्न दृष्टं मोहस्य कारणम्। भावमात्रमकार्षीन्नो कोपो मय्यपि शङ्करः॥२७॥

इति सर्वमहं दृष्ट्वा ज्ञात्वा तस्य च भावनाम्। विमुखोऽहं शम्भुमोहान्नियतं ते वदाम्यहम्॥२८॥

तस्य त्यक्तसमाधेस्तु क्षणं नो दृष्टिगोचरे। शक्नुयामो वयं स्थातुं रुद्रं को विमोहयेत्॥२९॥

ज्वलदग्निप्रकाशाक्षं जटाराशिकरालिनम्। शृङ्गिणं वीक्ष्य कः स्थातुं ब्रह्मन्! शक्नोति तत्पुरः॥३०॥

ब्रह्मोवाच

मनोभववचश्चेत्थं श्रुत्वाऽहं चतुराननः। विवक्षुरपि नावोचं चिन्ताविष्टोऽभवं तदा॥३१॥

मोहनेऽहं समर्थो न हरस्येति मनोभवः। वचः श्रुत्वा महादुःखान्निरश्वसमहं मुने!॥३२॥

निःश्वाससारुता मे हि नानारूपमहाबलाः। जाता गता लोलजिह्वा लोलाश्चातिभयङ्कराः॥३३॥

अवादयन्त ते सर्वे नानावाद्यानसङ्ख्यकान्। पटहादिगणास्तांस्तान् विकरालान् महारवान्॥३४॥

हूँ, अतः शिव को मोहित करने की शक्ति मुझमें नहीं है॥ १९-२०॥ इस वसन्त ने भी उन्हें मोहित करने के लिए जो-जो उचित उपाय किये है हे महाभाग! उन्हें आप भी सुनें, मैं सत्य-सत्य कहता हूँ॥२१॥ इस वसन्त ने चम्पक, केशर, कटहल, गुलाब, नागकेसर, पुन्नाग, किंशुक, केतकी, कर, मागन्धि, मल्लिका, पर्ण-भर एवं कुरवक आदि पुष्पों को, जहाँ शिवजी बैठे थे प्रफुल्लित कर दिया॥ २२-२३॥

इस वसन्त ने मलयानिल की हवा चलाकर शिव के आश्रम में तालाव के सभी फूले हुए कमलों को अत्यन्त सुगन्धित कर दिया॥ २४॥ सभी लताएँ फूल से युक्त और अंकुरसमूह से साथ सन्निकट के वृक्षों में बड़े प्रेम से लिपट गयीं॥ २५॥ सुगन्ध युक्त पवनों से खिले हुए वृक्षों के फूलों को देख कर मुनियों का भी मन काम के वशीभूत हो जाता था। फिर औरों की तो वात ही क्या॥ २६॥ इस प्रकार के उपाय किये जाने पर भी मैंने शङ्कर को मोह करनेवाला कोई कारण नहीं देखा। न तो उन्हें कोई काम का भाव ही उत्पन्न हुआ। इतना सब कुछ करने पर भी शङ्कर ने मेरे ऊपर रञ्च मात्र क्रोध नहीं किया॥ २७॥ इस प्रकार सब कुछ देख कर तथा उनकी भावना को ध्यान में रख मैं शिव को मोहित करने के प्रयास से विरत हो आप से निवेदन कर रहा हूँ॥ २८॥ समाधि छोड़ देने पर मैं उनके दृष्टि के सामने क्षणमात्र भी टिक नहीं सकता। भला रुद्र को मोहित करने की सामर्थ्य किसमें है॥ २९॥ हे ब्रह्मन्! देदीप्यमान अग्नि के समान जाज्वल्यमान नेत्रोंवाले तथा जटाधारण करने से महाविकराल उस कैलास पर्वत निवासी शिव के सामने स्थित होने की सामर्थ्य किसमें हैं॥ ३०॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार काम के वचन सुन मैं चतुर्मुख ब्रह्मा चिन्ता-मग्न होकर कुछ बोलने की इच्छा करने पर भी कुछ बोल न सका॥ ३१॥ 'मैं शिव को मोहित करने में सर्वथा असमर्थ हूँ' इस प्रकार काम के वचन को सुनकर मैं बड़े दुःख के साथ उष्ण श्वास लेने लगा॥ ३२॥ उस समय मेरे उष्ण निःश्वास से जो चञ्चल एवं महाबलवान् वायु निकले वे ही लपलपाती जीभ वाले नाना रूप धारी अत्यन्त भयङ्कर गण हुए॥ ३३॥ उन गणों ने पटह (भेरी, मृदङ्ग) आदि नाना प्रकार के असंख्य

अथ ते मम निःश्वाससम्भवाश्च महागणाः । मारयच्छेदयेत्यूचुर्ब्रह्मणो मे पुरः स्थिताः ॥३५॥
तेषां तु वदतां तत्र मारयच्छेदयेति माम् । वचः श्रुत्वा विधिं कामः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥३६॥
मुनेऽथ मां समाभाष्य तान् दृष्ट्वा मदनो गणान् । उवाच वारयन् ब्रह्मन् ! गणानामग्रतः स्मरः ॥३७॥

कांम उवाच

हे ब्रह्मन् हे प्रजानाथ सर्वसृष्टिप्रवर्तक ! । उत्पन्नाः क इमे वीरा विकराला भयङ्कराः ॥३८॥
किं कर्म ते करिष्यन्ति कुत्र स्थास्यन्ति वा विधे ! । किं नामधेया एते तद्वद तत्र नियोजय ॥३९॥
नियोज्य तान्निजे कृत्ये स्थानं दत्त्वा च नाम च । ममाज्ञापय देवेश ! कृपां कृत्वा यथोचिताम् ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य मुनेऽहं लोककारकः । तमवोचं ह मदनं तेषां कर्मादिकं दिशन् ॥४१॥
एत उत्पन्नमात्रा हि मारयेत्यवदन् वचः । मुहुर्मुहुरतोऽमीषां नाम मारेति जायताम् ॥४२॥
सदैव विघ्नं जन्तूनां करिष्यन्ति गणा इमे । विना निजार्चनं काम नानाकामरतात्मनाम् ॥४३॥
तवानुगमनं कर्म मुख्यमेषां मनोभव । सहायिनो भविष्यन्ति सदा तव न संशयः ॥४४॥
यत्र यत्र भवान् याता स्वकर्मार्थं यदा यदा । गन्तारस्तत्र तत्रैते सहायार्थं तदा तदा ॥४५॥
चित्तभ्रान्तिं करिष्यन्ति त्वदस्त्रवशवर्तिनाम् । ज्ञानिनां ज्ञानमार्गं च विघ्नयिष्यन्ति सर्वथा ॥४६॥

विकराल महाभयङ्कर बाजे बजाना प्रारम्भ किया ॥ ३४ ॥ वे मेरे निःश्वास से उत्पन्न महागण मुझ ब्रह्मा के सामने ही 'मारो काटो' आदि शब्द करने लगे ॥ ३५ ॥ उन गणों के द्वारा 'मारो-मारो, काटो-काटो' आदि शब्दों को सुन कर काम ने ब्रह्मा से कहना प्रारम्भ किया ॥ ३६ ॥ हे मुने नारद ! इस प्रकार उस काम ने मेरी आज्ञा लेकर उन सभी गणों को ऐसा करने से रोका। उसने उन गणों के सामने ही मुझसे कहना प्रारम्भ किया ॥ ३७ ॥

काम ने कहा—हे ब्रह्मन् ! हे प्रजानाथ ! हे सृष्टि के प्रवर्त्तक ! ये महाविकराल एवं भयङ्कर वीर, जो आप से उत्पन्न हुए हैं वे कौन हैं ॥ ३८ ॥ हे विधे ! ये कौन सा कार्य करेंगे ? तथा कहाँ निवास करेंगे ? और इनका नाम क्या होगा ? उन्हें आप मुझे बताइए तथा इन्हें उन कार्यों में नियुक्त कीजिए ॥ ३९ ॥ हे देवेश ! इन्हें उचित कार्यों में नियुक्त कर तथा इनके लिए योग्य नामों तथा स्थानों को कृपापूर्वक देकर जो उचित हो वह मुझे आज्ञा दीजिए ॥ ४० ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने ! लोककर्त्ता मैंने उस काम की बात सुन कर उनके कार्यों का निर्देश करता हुआ काम से कहा ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी बोले—हे काम ! ये उत्पन्न होते ही वारम्वार 'मारय मारय' इस प्रकार का शब्द कर रहे हैं इसलिए इनका नाम मार होना चाहिए ॥ ४२ ॥ ये गण सदैव प्राणियों के कार्य में विघ्न डालें। जब तक नाना प्रकार के कार्यों को करनेवाले प्राणी इनकी पूजा न करेंगे तब तक ये उनके कार्यों में विघ्न किया करें ॥ ४३ ॥ हे काम ! तुम्हारे अनुकूल रहना ही इनका मुख्य कार्य होगा। ये तुम्हारी सहायता में सदा तत्पर रहेंगे। इसमें संशय नहीं ॥ ४४ ॥ जब-जब जहाँ-जहाँ आप अपने कार्य के लिए जायेंगे तब-तब वहाँ ये गण तुम्हारी सहायता करेंगे ॥ ४५ ॥ ये तुम्हारे अस्त्रों से वशवर्ती प्राणियों के चित्त में सदैव भ्रान्ति उत्पन्न करेंगे। और ज्ञानियों के ज्ञानमार्ग में सदैव विघ्न डालेंगे ॥ ४६ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचो मे हि सरतिः स महानुगः। किञ्चित् प्रसन्नवदनो बभूव मुनिसत्तम ! ॥४७॥
श्रुत्वा तेऽपि गणाः सर्वे मदनं मां च सर्वतः। परिवार्य यथाकामं तस्थुस्तत्र निजाकृतिम् ॥४८॥
अथ ब्रह्मा स्मरं प्रीत्याऽगदं मे कुरु शासनम्। एभिः सहैव गच्छ त्वं पुनश्च हरमोहने ॥४९॥
मन आधाय यत्नानि कुरु मारगणैः सह। मोहो भवेद्यथा शम्भोर्दारग्रहणहेतवे ॥५०॥
इत्याकर्ण्य वचः कामः प्रोवाच वचनं पुनः। देवर्षे! गौरवं मत्वा प्रणम्य विनयेन माम् ॥५१॥

काम उवाच

मया सम्यक् कृतं कर्म मोहने तस्य यत्नतः। तन्मोहो नाऽभवत्तात! न भविष्यति नाधुना ॥५२॥
तव वाग्गौरवं मत्वा दृष्ट्वा मारगणानपि। गमिष्यामि पुनस्तत्र समारोहं त्वदाज्ञया ॥५३॥
मनो निश्चितमेतद्धि तन्मोहो न भविष्यति। भस्म कुर्यान्न मे देहमिति शङ्कास्ति मे विधे! ॥५४॥
इत्युक्त्वा समधुः कामः सरतिः सभयस्तदा। ययौ मारगणैः सार्द्धं शिवस्थानं मुनीश्वर! ॥५५॥
पूर्ववत् स्वप्रभावं च चक्रे मनसिजस्तदा। बहूपायं स हि मधुर्विविधां बुद्धिमावहन् ॥५६॥
उपायं स चकाराति तत्र मारगणोऽपि च। मोहोऽभवन्न वै शम्भोरपि कश्चित्परात्मनः ॥५७॥
निवृत्य पुनरायातो मम स्थानं स्मरस्तदा। आसीन् मारगणोऽगर्वोऽहर्षो मेऽपि पुरःस्थितः॥५८॥
कामः प्रोवाच मां तात! प्रणम्य च निरुत्सवः। स्थित्वा मम पुरोऽगर्वो मारैश्च मधुना तदा ॥५९॥
कृतं पूर्वादधिकतः कर्म तन्मोहने विधे!। नाऽभवत्तस्य मोहोऽपि कश्चिद् ध्यानरतात्मनः॥६०॥
न दग्धा मे तनुश्चैव तत्र तेन दयालुना। कारणं पूर्वपुण्यं च निर्विकारः स वै प्रभुः ॥६१॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिसत्तम! मेरे इन वचनों को सुन कर रति तथा वसन्त सहित वह काम कुछ प्रसन्न हुए ॥ ४७ ॥ मेरी बात को सुन कर वे सभी गण अपने-अपने स्वरूप से मुझे तथा कामदेव को घेर कर चारों ओर बैठ गये ॥ ४८ ॥ तब पुनः ब्रह्मा ने काम से कहा—हे मदन! अब तुम इन गणों को साथ ले कर शिव को मोहित करने के लिए पुनः जाओ ॥ ४९ ॥ अब तुम इन गणों को साथ लेकर मन लगा शिव को मोहित करने का प्रयत्न करो। जिससे महादेवजी स्त्री ग्रहण करने के लिए तैयार हो जायें ॥ ५० ॥ हे नारद! मेरी इस बात को सुन कर काम ने मेरे गौरव का ध्यान रख कर मुझे प्रणाम किया और विनय-पूर्वक मुझसे कहने लगा ॥ ५१ ॥

काम बोला—हे तात! मैंने शिव को मोहित करने के लिए युक्तिपूर्वक बहुत उपाय किये किन्तु उनको मोह नहीं हुआ न आगे होनेवाला है और अब वर्त्तमान में भी वे मोहित नहीं है ॥ ५२ ॥ किन्तु आप के वाणी का गौरव मान कर इन मार गणों की सामर्थ्य देखने के लिए मैं रति के साथ पुनः जाऊँगा ॥ ५३ ॥ हे ब्रह्मन्! मैंने यह निश्चय कर लिया है कि शङ्कर को कदापि मोह न उत्पन्न होगा। हे विधे! मुझे इस बात का सन्देह हो रहा है कि शङ्कर इस बार कहीं मुझे सशरीर भस्म न कर दें ॥५४॥ हे मुनीश्वर नारद! ऐसा कह कर वह काम रति तथा वसन्त को साथ लेकर मार गणों के सहित शिव के स्थान पर गया ॥ ५५ ॥ वहाँ जाकर उसने पहले के समान अनेक प्रकार के प्रभाव प्रदर्शित किये। तथा वसन्त ने एवं मारगणों ने भी अपनी विविध बुद्धि लगाकर शिव को मोहित करने के लिए नाना प्रकार के यत्न किये किन्तु परमात्मा शङ्कर को किञ्चिन्मात्र भी मोह न हुआ ॥ ५६-५७ ॥ तब वह कामदेव लौट कर मेरे पास आया। उस समय वह काम तथा समस्त मारगण उदास भाव से मेरे सामने खड़े हो गये ॥ ५८ ॥ उदास हुए उस काम ने मारगणों तथा वसन्त के साथ आकर प्रणाम किया फिर काम ने झेंपते हुए मुझसे कहा ॥ ५९ ॥ कि मैंने शिव जी को मोहित करने के लिए पहले से अधिक प्रयत्न किये, किन्तु समाधि में तल्लीन उस शिव को रञ्चमात्र भी मोह नहीं हुआ ॥ ६० ॥ उस दयालु ने सब

चेद्धरस्ते हरो भार्यां गृह्णीयादिति पद्मजः । परोपायं कुरु तदा विगर्व इति मे मतिः ॥६२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा सपरीवारो ययौ कामः स्वमाश्रमम् । प्रणम्य मां स्मरन् शम्भुं गर्वदं दीनवत्सलम् ॥६३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सत्युपाख्याने कामप्रभावमारगणोत्पत्तिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

(शक्ति के उत्पन्न होने पर दक्ष द्वारा शिवविवाह के उपाय का वर्णन)

नारद उवाच

ब्रह्मन् विधे महाभाग ! धन्यस्त्वं शिवसक्तधीः । कथितं सुचरित्रं ते शङ्करस्य परात्मनः ॥ १ ॥
निजाश्रमे गते कामे सगणे सरतौ ततः । किमासीत् किमकार्षीस्त्वं तच्चरित्रं वदाऽधुना ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु नारद ! सुप्रीत्या चरित्रं शशिमौलिनः । यस्य श्रवणमात्रेण निर्विकारो भवेन्नरः ॥ ३ ॥
निजाश्रमं गते कामे परिवारसमन्विते । यद् बभूव तदा जातं तच्चरित्रं निबोध मे ॥ ४ ॥
नष्टोऽभून्नारद ! मदो विस्मयोऽभूच्च मे हृदि । निरानन्दस्य च मुनेऽपूर्णे निजमनोरथे ॥ ५ ॥
अशोचं बहुधा चित्ते गृह्णीयात् स कथं स्त्रियम् । निर्विकारो जितात्मा स शङ्करो योगतत्परः ॥ ६ ॥
इत्थं विचार्य बहुधा तदाऽहं विमदो मुने ! । हरिं तं सोऽस्मरं भक्त्या शिवात्मानं स्वदेहदम् ॥ ७ ॥

से बड़ी मेरे ऊपर यही कृपा की कि उन्होंने मेरा शरीर नहीं जलाया ॥ ६१ ॥ इसका कारण यह है कि मेरे पूर्व जन्म का पुण्य है तथा वे प्रभु सर्वथा विचार रहित है। हे ब्रह्मन् ! यदि आप की ऐसी इच्छा है कि महादेवजी दारपरिग्रह करें तो आप गर्व रहित हो कोई दूसरा उपाय कीजिए ॥ ६२ ॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कह कर वह काम गर्व का हरण करने वाले दीनवत्सल सदाशिव का स्मरण कर और मुझको प्रणाम कर सपरिवार अपने आश्रम को चला गया ॥ ६३ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ता' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में कामप्रभाव एवं मारगणोत्पत्ति नामक नवम अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥

*

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन् ! हे विधे ! हे महाभाग ! आप धन्य हैं, जो आप की बुद्धि शिवचरित्र में आसक्त है। आप ने महात्मा शङ्कर के सुन्दर चरित्र का आख्यान किया ॥ १ ॥ अपने गणों तथा अपनी भार्या रति के साथ जब काम अपने स्थान को चला गया तब आपने क्या किया, उस चरित्र को आप मुझसे कहिए ॥ २ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! प्रसन्नतापूर्वक तुम महादेव के चरित्र को सुनो। जिसके सुनने मात्र से मनुष्य काम के विकार से मुक्त हो जाता है ॥ ३ ॥ काम के सपरिवार अपने आश्रम में चले जाने पर जो हुआ उस चरित्र को सुनो ॥ ४ ॥ हे मुने ! हे नारद ! शिवजी में अपने मनोरथ को अफल होता हुआ न देख मेरा घमण्ड चूर-चूर हो गया। मेरा मन उदास हो गया तथा हृदय में विस्मय और घोर निराशा हुई ॥ ५ ॥ मैंने अनेक प्रकार से विचार किया कि वे निर्विकार निजात्म लाभ से सन्तुष्ट योगीश्वर किस प्रकार से स्त्री का ग्रहण करेंगे ॥ ६ ॥ इस प्रकार से अनेक विचार करने पर जब मेरा अहङ्कार दूर हो

अस्तवं च शुभस्तोत्रैर्दीनवाक्यसमन्वितैः । तच्छ्रुत्वा भगवानाशु बभूवाविर्हि मे पुरा ॥८॥
चतुर्भुजोऽरविन्दाक्षः शङ्खवाजगदाधरः । लसत्पीतपटः श्यामतनुर्भक्तप्रियो हरिः ॥९॥
तं दृष्ट्वा तादृशमहं सुशरण्यं मुहुर्मुहुः । अस्तवं च पुनः प्रेम्णा बाष्पगद्गदया गिरा ॥१०॥
हरिराकर्ण्य तत्स्तोत्रं सुप्रसन्न उवाच माम् । दुःखहा निजभक्तानां ब्रह्माणं शरणं गतम् ॥११॥

हरिरुवाच

विधे ब्रह्मन्! महाप्राज्ञ! धन्यस्त्वं लोककारक! । किमर्थं स्मरणं मेऽद्य कृतं च क्रियते नुतिः ॥१२॥
किं जातं ते महद्दुःखं मदग्रे तद् वदाऽधुना । शमयिष्यामि तत्सर्वं नाऽत्र कार्या विचारणा॥१३॥

ब्रह्मोवाच

इति विष्णोर्वचः श्रुत्वा किञ्चिदुच्छ्वसिताननः । अवोचं वचनं विष्णुं प्रणम्य सुकृताञ्जलिः ॥१४॥
देवदेव ! रमानाथ ! मद्वार्तां शृणु मानद ! । श्रुत्वा च करुणां कृत्वा हरदुःखं शमावह ॥१५॥
रुद्रसम्मोहनार्थं हि कामं प्रेषितवानहम् । परिवारयुतं विष्णो ! समारमधुबान्धवम् ॥१६॥
चक्रुस्ते विविधोपायान् निष्फला अभवंश्च ते । नाऽभवत्तस्य सम्मोहो योगिनः समदर्शिनः ॥१७॥
इत्याकर्ण्य वचो मे स हरिर्मां प्राह विस्मितः । विज्ञाताखिलदो ज्ञानी शिवतत्त्वविशारदः ॥१८॥

विष्णुरुवाच

कस्माद्धेतोरिति मतिस्तव जाता पितामह! । सर्वं विचार्य सुधिया ब्रह्मन्! सत्यं हि तद् वद ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

शृणु तात! चरित्रं तत् तव माया विमोहिनी । तदधीनं जगत्सर्वं सुखदुःखादितत्परम् ॥२०॥
ययैव प्रेषितश्चाऽहं पापं कर्तुं समुद्यतः । आसं तच्छृणु देवेश! वदामि तव शासनात् ॥२१॥

गया तो मैंने अपने जन्मदाता शिवस्वरूप भगवान् विष्णु का भक्तिपूर्वक स्मरण किया ॥ ७ ॥ और दीनता पूर्ण वाक्यों से युक्त कल्याणकारी स्तोत्रों से उनकी स्तुति करने लगा। जिसे सुन कर भक्तप्रिय चतुर्भुज, कमलनयन, शंख, पद्म, गदाधारी श्यामवर्ण के वे विष्णु पीताम्बर पहने हुए मेरे सम्मुख प्रगट हो गये ॥ ८-९ ॥ शरणागतवत्सल उन भगवान् को बारम्बार देख कर मैंने पुनः प्रेम से गद्गद वाणी में उनकी स्तुति की ॥ १० ॥ अपने भक्तों के दुःख को दूर करनेवाले भगवान् मुझ ब्रह्मा को अपने शरण में आया देख मेरी स्तुति से प्रसन्न होकर बोले ॥ ११ ॥

विष्णु बोले—हे विधे! हे ब्रह्मन्! हे महाप्राज्ञ! हे लोककर्त्ता! तुम धन्य हो। अच्छा, बताओ तुम किस लिए मेरा स्मरण कर मेरी स्तुति करते हो ॥ १२ ॥ तुम्हें कौन-सा दुःख उपस्थित हो गया है, उसे शीघ्र ही निवेदन करो, उसे मैं नाश करूँगा, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥ १३ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! विष्णु के इस प्रकार वचन सुनकर मैंने दीर्घ निःश्वास ली। और हाथ जोड़ कर उन्हें प्रणाम कर इस प्रकार कहा ॥ १४ ॥ ब्रह्मा बोले—हे देवाधिदेव, हे रमानाथ! हे सबको मान देने वाले प्रभो! मेरी बात सुन कर मेरा दुःख दूर कर मुझे सुखी कीजिए ॥ १५ ॥ मैंने रुद्र के सम्मोहनार्थ सपरिवार मारगण, वसन्त तथा रति के साथ काम को भेजा था ॥ १६ ॥ उन्होंने शिव को मोहित करने के लिए नानाप्रकार के उपाय किये, किन्तु सभी निष्फल हो गये। समदर्शी महायोगी उन सदाशिव को मोह नहीं हुआ ॥ १७ ॥ शिवतत्त्व के साक्षात्कार महाज्ञानी सर्वज्ञ विष्णु मेरी बात सुन कर आश्चर्य में पड़ गये ॥ १८ ॥

विष्णु बोले—हे पितामह! तुम्हारी इस प्रकार की बुद्धि क्यों हुई? हे ब्रह्मन्! अपनी सुबुद्धि से विचार कर मुझसे सत्य-सत्य कहो ॥ १९ ॥

ब्रह्मा बोले—हे तात! अब उस चरित्र को सुनिए। यह तुम्हारी माया जगत् को मोहनेवाली है, उसी के आधीन यह सारा जगत् सुख-दुःखादि से ग्रस्त है ॥ २० ॥ उसी माया ने मुझे इस प्रकार का पाप

सृष्टिप्रारम्भसमये दश पुत्रा हि जज्ञिरे। दक्षाद्यास्तनया चैका वाग्भवाप्यतिसुन्दरी ॥२२॥
धर्मो वक्षःस्थलात् कामो मनसोऽन्योऽपि देहतः। जातास्तत्र सुतां दृष्ट्वा मम मोहोऽभवद्धरे ! ॥२३॥
कुदृष्ट्या तां समद्राक्षं तव मायाविमोहितः। तत्क्षणाद्धर आगत्य मामनिन्दत् सुतानपि ॥२४॥
धिक्कारं कृतवान् सर्वान् निजं मत्वा परप्रभुम्। ज्ञानिनं योगिनं नाथ भोगिनं विजितेन्द्रियम्॥२५॥
पुत्रो भूत्वा मम हरेऽनिन्दन्मां च समक्षतः। इति दुःखं महन्मे हि तदुक्तं तव सन्निधौ ॥२६॥
गृह्णीयाद्यदि पत्नीं स स्यां सुखी नष्टदुःखधीः। एतदर्थं समायातुः शरणं तव केशव ! ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचो मे हि ब्रह्मणो मधुसूदनः। विहस्य मां द्रुतं प्राह हर्षयन् भवकारकम् ॥२८॥

विष्णुरुवाच

विधे ! श्रृणु हि मद्वाक्यं सर्वं भ्रमनिवारणम्। सर्वं वेदागमादीनां सम्मतं परमार्थतः ॥२९॥
महामूढमतिश्चाद्य सञ्जातोऽसि कथं विधे !। वेदवक्तापि निखिललोककर्त्ता हि दुर्मतिः ॥३०॥
जडतां त्यज मन्दात्मन्! कुरु त्वं नेदृशीं मतिम्। किं ब्रुवन्त्यखिला वेदाः स्तुत्या तत्स्मर सद्धिया॥३१॥
रुद्रं जानासि दुर्बुद्धे स्वसुतं परमेश्वरम्। वेदवक्तापि विज्ञानं विस्मृतं तेऽखिलं विधे ! ॥३२॥
शङ्करं सुरसामान्यं मत्वा द्रोहं करोषि हि। सुबुद्धिर्विगता तेऽद्याविर्भूता कुमतिस्तथा ॥३३॥
तत्त्वसिद्धान्तमाख्यातं श्रृणु सद्बुद्धिमावह। यथार्थं निगमाख्यातं निर्णीय भवकारकम् ॥३४॥
शिवः सर्वस्वकर्ता हि भर्ता हर्ता परात्परः। परब्रह्म परेशश्च निर्गुणो नित्य एव च ॥३५॥

करने के लिए प्रेरित किया है। हे देवेश ! अब आप की आज्ञा से जो हुआ उसे कहता हूँ आप सुनिए ॥२१॥ सृष्टि के प्रारम्भ काल में मेरे दक्ष आदि दश पुत्र उत्पन्न हुए और वाणी के द्वारा एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या भी उत्पन्न हुई ॥ २२ ॥ जिसमें धर्म मेरे वक्षस्थल से, काम मन से तथा अन्य पुत्र मेरे शरीर से उत्पन्न हुए। किन्तु हे हरे ! जब मेरे शरीर से सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई तो उसे देखकर मुझे मोह उत्पन्न हो गया ॥ २३ ॥ मैंने आप की माया से मोहित होकर जब उसे कुदृष्टि से देखा, तब उसी समय महादेव जी ने आकर मुझे तथा मेरे पुत्रों को बहुत धिक्कारा ॥ २४ ॥ उन्होंने लोकप्रभु, ज्ञानी, योगी, अजितेन्द्रिय, भोगरहित मुझ ब्रह्मा को तथा मेरे पुत्रों को अपना समझ कर दण्ड तो नहीं दिया किन्तु बहुत धिक्कारा ॥ २५ ॥ हे हरे ! मेरे पुत्र होकर शिव ने सबके सामने ही मेरी निन्दा की, इसका मुझे बहुत दुःख है, इसे मैंने आप से कहा ॥ २६ ॥ यदि वे पत्नी ग्रहण कर लें तो मेरा दुःख दूर हो जायेगा। मैं सुखी हो जाऊँगा। हे केशव ! इसीलिए मैं आप की शरण आया हूँ ॥ २७ ॥

ब्रह्मा बोले—मुझ ब्रह्मा के इस प्रकार के वचन सुनकर विष्णु ने संसार को उत्पन्न करनेवाले मुझ ब्रह्मा को हर्षित करते हुए शीघ्र ही कहा ॥ २८ ॥

विष्णु बोले—हे विधे ! सम्पूर्ण भ्रम को निवारण करने वाले वेद एवं आगमसम्मत परमार्थयुक्त मेरे वचन को सुनो ॥ २९ ॥ हे विधे ! वेद के वक्ता तथा समस्त लोक के कर्त्ता होकर भी आप इस प्रकार महामूर्ख तथा दुर्बुद्धियुक्त किस प्रकार हो गये ॥ ३० ॥ हे मन्दात्मन् ! तुम अपनी जड़ता त्याग करो और इस प्रकार की बुद्धि मत करो। देखो, सम्पूर्ण वेद स्तुति द्वारा उन्हें क्या कहते हैं, अच्छी बुद्धि से उसका स्मरण करो ॥ ३१ ॥ हे दुर्बुद्धे ! तुम उस परमेश्वर रुद्र को अपना पुत्र समझते हो। हे विधे ! वेद के वक्ता होकर भी तुम्हारा सारा ज्ञान इस प्रकार लुप्त क्यों हो गया ॥ ३२ ॥ ऐसा ज्ञात होता है कि तुम्हारी सुबुद्धि नष्ट हो गयी, तुम्हें कुमति उत्पन्न हो गयी है, जो तुम शङ्कर को सामान्य देवता समझ कर उनसे द्रोह कर रहे हो ॥ ३३ ॥ हे ब्रह्मन् ! प्राणियों के जन्म देने वाले, वेदनिर्णीत तत्त्व सिद्धान्त सुनो और सद्बुद्धि से रहो ॥ ३४ ॥ शिव ही इस सारे सृष्टि के कर्त्ता, भर्त्ता, हर्त्ता तथा परात्पर हैं, वे ही पर ब्रह्म,

अनिर्देश्यो निर्विकारः परमात्माऽद्वयोऽच्युतः । अनन्तोऽन्तकरः स्वामी व्यापकः परमेश्वरः ॥३६॥
सृष्टि-स्थिति-विनाशानां कर्ता त्रिगुणभाग् विभुः । ब्रह्म-विष्णु-महेशाख्यो रजः सत्त्वतमः परः॥३७॥
मायाभिन्नो निरीहश्च मायो मायाविशारदः । सगुणोऽपि स्वतन्त्रश्च निजानन्दोऽविकल्पकः॥३८॥
आत्मारामो हि निर्द्वन्द्वो भक्ताधीनः सुविग्रहः । योगी योगरतो नित्यं योगमार्गप्रदर्शकः ॥३९॥
गर्वापहारी लोकेशः सर्वदा दीनवत्सलः । एतादृशो हि यः स्वामी स्वपुत्रं मन्यसे हि तम् ॥४०॥
ईदृशं त्यज कुज्ञानं शरणं व्रज तस्य वै । भज सर्वात्मना शम्भुं सन्तुष्टः शं विधास्यति॥४१॥
गृह्णीयाच्छङ्करः पत्नीं विचारो हृदि चेत्तव । शिवामुद्दिश्य सुतपः कुरु ब्रह्मन्! शिवं स्मरन् ॥४२॥
कुरु ध्यानं शिवायास्त्वं काममुद्दिश्य तं हृदि । सा चेत् प्रसन्ना देवेशी सर्वं कार्यं विधास्यति॥४३॥
कृत्वावतारं सगुणा यदि स्यान् मानुषी शिवा । कस्यचित्तनया लोके सा तत्पत्नी भवेद् ध्रुवम्॥४४॥
दक्षमाज्ञापय ब्रह्मन् तपः कुर्यात् प्रयत्नतः । तामुत्पादयितुं पत्नीं शिवार्थं भक्तितः स्वतः ॥४५॥
भक्ताधीनौ च तौ तात ! सुविज्ञेयौ शिवाशिवौ । स्वेच्छया सगुणौ जातौ परब्रह्मस्वरूपिणौ ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा तत्क्षणं मेशः शिवं सस्मार स्वप्रभुम् । कृपया तस्य सम्प्राप्य ज्ञानमूचे च मां ततः ॥४७॥

विष्णुरुवाच

विधे ! स्मर पुरोक्तं यद् वचनं शङ्करेण च । प्रार्थितेन यदावाभ्यामुत्पन्नाभ्यां तदिच्छया॥४८॥
विस्मृतं तव तत्सर्वं धन्या या शाम्भवी परा । तया सम्मोहितं सर्वं दुर्विज्ञेया शिवं विना ॥४९॥

परमात्मा, निर्गुण, नित्य ब्रह्मन् ॥ ३५ ॥ अनिर्देश्य, निर्विकार, परमात्मा, अद्वय, अच्युत, अनन्त, सबके अन्त करने वाले स्वामी, व्यापक, परमेश्वर, इस सृष्टि के उत्पन्न करने वाले, पालन करने वाले, विनाश करने वाले, सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणों से युक्त, रज, सत्त्व तथा तम रूप से ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर नाम धारण करने वाले, माया से भिन्न, इच्छा रहित, मायापति तथा माया विशारद हैं। वे सगुण, सर्वथा स्वतन्त्र, निजानन्द, निर्विकल्प, आत्माराम, द्वन्द्व से रहित, भक्तों के आधीन, उत्तम शरीर धारण करने वाले, योगी, योग में निरत, योगमार्ग के प्रदर्शक, गर्व को दूर करने वाले, लोकेश तथा सर्वदा दीनानुकम्पी हैं। भला, जो स्वामी इस प्रकार का है, उसे तुम अपना पुत्र कैसे मानते हो ? ॥ ३६-४० ॥

हे ब्रह्मन् ! 'शिव हमारे पुत्र हैं' इस प्रकार के अज्ञान को छोड़ दो, तुम उन्हीं की शरण जाओ और सब प्रकार से मनसा, वाचा, कर्मणा उन्हीं शिव का भजन करो। वे ही तुम्हारा कल्याण करेंगे ॥४१॥ यदि तुम्हारा इस प्रकार का आग्रह है कि शिव अवश्य दारपरिग्रहण करें तो शिव का स्मरण करते हुए तुम शिवा की प्राप्ति के उद्देश्य से तप करो ॥ ४२ ॥ तुम अपनी इच्छा को हृदय में धारण कर भगवती शिवा का ध्यान करो। यदि वह देवेशी प्रसन्न हो गयी तो तुम्हारा सब कार्य पूर्ण करेगी ॥ ४३ ॥ यदि वह शिवा सगुण रूप से अवतार लेकर किसी मनुष्य की कन्या बने तो निश्चय ही वह शिवपत्नी बन सकती है ॥ ४४ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम इस कार्य के लिए दक्ष को आज्ञा दो, वह स्वयं भक्तितत्पर हो कर शिवपत्नी पार्वती को उत्पन्न करने के लिए प्रयत्नपूर्वक तप करें ॥ ४५ ॥ हे तात ! तुम इसे भली-प्रकार समझ लो कि वे शिवा शिवभक्तों के आधीन हैं, और परब्रह्म का स्वरूप होकर भी भक्तों के लिए सगुणरूप धारण कर लेते हैं ॥ ४६ ॥

ब्रह्मा बोले—लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु ने इस प्रकार कह कर तत्क्षण शिव का स्मरण किया। तदनन्तर उनकी कृपा से ज्ञान प्राप्त कर मुझसे बोले ॥ ४७ ॥

विष्णु ने कहा—हे ब्रह्मन् ! जब शिव की इच्छा से उत्पन्न हुए हम दोनों ने उनकी प्रार्थना की थी तो उन्होंने जो-जो वचन कहे उसका स्मरण करो ॥ ४८ ॥ अवश्य ही तुम उनके वचनों को भूल गये हो, शिव की यह पराशक्ति धन्य है, जिसने इस सारे जगत् को मोहित कर रखा है, उसे शिव के अतिरिक्त

यदा हि सगुणो जातः स्वेच्छया निर्गुणः शिवः । मामुत्पाद्य ततस्त्वां च स्वशक्त्या सुविहारकृत् ॥५०॥
उपादिदेश त्वां शम्भुः सृष्टिकार्यं तदा प्रभुः । तत्पालनं च मां ब्रह्मन्! सोमः ह्यतिकरोऽव्ययः ॥५१॥
तदा वां वेश्म सम्प्राप्तौ साञ्जली नतमस्तकौ । भव त्वमपि सर्वेशोऽवतारी गुणरूपधृक् ॥५२॥
इत्युक्तः प्राह स स्वामी विहस्य करुणान्वितः । दिवमुद्वीक्ष्य सुप्रीत्या नानालीलाविशारदः ॥५३॥
मद्रूपं परमं विष्णो! ईदृशं ह्यङ्गतो विधेः । प्रकटोभविता लोके नाम्ना रुद्रः प्रकीर्तितः ॥५४॥
पूर्णरूपः स मे पूज्यः सदा वां सर्वकामकृत् । लयकर्त्ता गुणाध्यक्षो निर्विशेषः सुयोगकृत् ॥५५॥
त्रिदेवा अपि मे रूपं हरः पूर्णो विशेषतः । उमाया अपि रूपाणि भविष्यन्ति त्रिधा सुताः ॥५६॥
लक्ष्मीर्नाम हरेः पत्नी ब्रह्मपत्नी सरस्वती । पूर्णरूपा सती नाम रुद्रपत्नी भविष्यति ॥५७॥

विष्णुरुवाच

इत्युक्त्वाऽन्तर्हितो जातः कृपां कृत्वा महेश्वरः । अभूतां सुखिनावावां स्व-स्वकार्यपरायणौ ॥५८॥
समयं प्राप्य सस्त्रीकावावां ब्रह्मन्! न शङ्करः । अवतीर्णः स्वयं रुद्रनामा कैलाससंश्रयः ॥५९॥
अवतीर्णा शिवा स्यात् सा सतीनाम प्रजेश्वर । तदुत्पादनहेतोर्हि यत्नोऽतः कार्य एव वै ॥६०॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विष्णुः कृत्वा स करुणां पराम् । प्राप्नुवं प्रमुदं चाऽथ ह्यधिकं गतमत्सरः ॥६१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे
ब्रह्मविष्णुसंवादो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

और दूसरा जानने में कैसे समर्थ हो सकता है ॥ ४९ ॥ आत्मरमण करनेवाले निर्गुण शिव जब सगुण रूप धारण कर अव्यय, सृष्टि के जनक सोमस्वरूप शिव अपनी शक्ति से हम दोनों को उत्पन्न कर, तुम्हें सृष्टि के उत्पन्न करने का उपदेश किया, और मुझे उसके पालन का उपदेश किया ॥ ५०-५१ ॥ तदनन्तर हम लोगों ने हाथ जोड़ कर विनम्रता से निवेदन किया कि आप सर्वेश होकर भी सगुण रूप धारण कर अवतार लीजिए; तब वे करुणाकर, नाना लीला-विशारद शिवजी आकाश की ओर देख कर हँसते हुए प्रसन्न होकर कहने लगे ॥ ५२-५३ ॥ हे विष्णो ! तुम तथा यह ब्रह्मा मेरे स्वरूप हो और जो आगे इस लोक में जो रुद्र-रूप से मेरा रूप प्रगट होनेवाला है वही मेरा पूर्ण तथा पूजनीय रूप होगा। वह तुम दोनों के सारे कार्य को पूरा करेगा, वही इस जगत् का लयकर्त्ता, सभी गुणों का अधिष्ठाता निर्विशेष तथा योगी होगा ॥ ५४-५५ ॥ यद्यपि त्रिदेव मेरे स्वरूप हैं किन्तु हर मेरे पूर्ण रूप होंगे। इसी प्रकार हे पुत्रो ! उमा के भी तीन रूप होंगे ॥ ५६ ॥ लक्ष्मी विष्णुपत्नी रूप से, सरस्वती ब्रह्मपत्नी रूप से किन्तु उमा की पूर्ण रूपा सती शिवपत्नी होंगी ॥ ५७ ॥

विष्णु बोले—भगवान् महेश्वर ऐसा कहकर हम दोनों पर कृपा करते हुए अन्तर्धान हो गये ॥५८॥ हे ब्रह्मन् ! समय पा कर हम दोनों सस्त्रीक हो गये किन्तु शङ्कर जो कैलास पर्वत पर रुद्र नाम से अवतीर्ण हुए हैं वे अभी तक सपत्नीक नहीं हुए हैं ॥ ५९ ॥ इसलिए हे प्रजापते ब्रह्मन् ! यदि वह उमा सती रूप से जन्म लें तो शिवजी सपत्नीक बनें। अतः उसे उत्पन्न होने के लिए हम दोनों को यत्न करना चाहिए ॥ ६० ॥ विष्णु करुणापूर्वक इस प्रकार का वचन मुझसे कहकर अन्तर्धान हो गये। तब मैंने शिव से अपनी ईर्ष्या छोड़ दी और तत्क्षण सुखी हो गया ॥ ६१ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में
ब्रह्म-विष्णुसंवाद नामक दशम अध्याय समाप्त ॥ १० ॥

*

एकादशोऽध्यायः

(ब्रह्मा द्वारा विष्णु की स्तुति करने पर दक्ष से शिवा की उत्पत्ति एवं 'मैं रुद्र को मोहित करूँगा' इस प्रकार ब्रह्मा को वरदान)

नारद उवाच

ब्रह्मन् ! तात महाप्राज्ञ ! वद नो वदतां वर । गते विष्णौ किमभवदकार्षीत् किं विधे ! भवान् ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

विप्रनन्दनवर्य ! त्वं सावधानतया शृणु । विष्णौ गते भगवति यदकार्षमहं खलु ॥ २ ॥
विद्याविद्यात्मिकां शुद्धां परब्रह्मस्वरूपिणीम् । स्तौमि देवीं जगद्धात्रीं दुर्गां शम्भुप्रियां सदा ॥ ३ ॥
सर्वत्र व्यापिनीं नित्यां निरालम्बां निराकुलाम् । त्रिदेवजननीं वन्दे स्थूलस्थूलामरूपिणीम् ॥ ४ ॥
त्वं चितिः परमानन्दा परमात्मस्वरूपिणी । प्रसन्ना भव देवेशि ! मत्कार्यं कुरु ते नमः ॥ ५ ॥

ब्रह्मोवाच

एवं संस्तूयमाना सा योगनिद्रा मया मुने ! । आविर्बभूव प्रत्यक्षं देवर्षे ! चण्डिका मम ॥ ६ ॥
स्निग्धाञ्जनद्युतिश्चारुरूपा दिव्यचतुर्भुजा । सिंहस्था वरहस्ता च मुक्तामणिकचोत्कटा ॥ ७ ॥
शरदिन्द्वानना शुभ्रचन्द्रभाला त्रिलोचना । सर्वावयवरम्या च कमलाङ्घ्रिनखद्युतिः ॥ ८ ॥
समक्षं तामुमां वीक्ष्य मुने ! शक्तिं शिवस्य हि । भक्त्या विनततुङ्गांशः प्रास्तवं सुप्रणम्य वै ॥ ९ ॥

ब्रह्मोवाच

नमो नमस्ते जगतः प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपे स्थितिसर्गरूपे ।
चराऽचराणां भवती सुशक्तिः सनातनी सर्वविमोहनीति ॥१०॥
या श्रीः सदा केशवमूर्तिमाला विश्वम्भरा या सकलं बिभर्ति ।
या त्वं पुरा सृष्टिकरी महेशी हर्त्री त्रिलोकस्य परा गुणेभ्यः ॥११॥

नारद जी बोले—हे ब्रह्मन् ! हे महाप्राज्ञ ! हे तात ! इस प्रकार कह कर विष्णु के अन्तर्धान हो जाने पर क्या हुआ ? आपने क्या किया ? हे वक्ताओं में श्रेष्ठ ! आप मुझसे कहिए ॥ १ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे ब्रह्मपुत्र ! विष्णु के चले जाने पर मैंने जो कार्य किया उसे सावधानी से सुनो ॥२॥ तब मैं विद्या-अविद्यास्वरूपा, शुद्ध परब्रह्म स्वरूपिणी शम्भुप्रिया जगद्धात्री देवी दुर्गा की स्तुति करने लगा ॥ ३ ॥ सर्वत्र व्यापिका, नित्य, निराश्रय, निराकुल, त्रिदेवों को उत्पन्न करनेवाली, स्थूल से भी स्थूल रूप धारण करनेवाली, निराकार दुर्गा की मैं वन्दना करता हूँ ॥ ४ ॥ तुम चित्स्वरूपा, परमानन्दा तथा परमात्मस्वरूपिणी हो। हे देवि ! मेरे ऊपर तुम प्रसन्न होओ और मेरा कार्य करो, तुम्हें नमस्कार है ॥५॥

ब्रह्माजी बोले—मेरे द्वारा इस प्रकार स्तुति करने पर योगनिद्रा भगवती चण्डिका मेरे सामने प्रगट हो गयीं ॥ ६ ॥ वे भगवती दुर्गा महान् लावण्य से युक्त, चिकने अञ्जन के समान, शरीर की कान्ति से शोभा पा रही थीं, उनकी चार भुजाएँ थीं, सिंह पर सवार हुई वह हाथ में वरमुद्रा धारण किये हुए थीं, बालों में मोती तथा मणिगुम्फित थे ॥ ७ ॥ उनका मुख शरत्कालीन पूर्णिमा के समान था, उनके मस्तक में चन्द्रमा तथा वे तीन नेत्रों से युक्त थीं। उनके समस्त शरीर के अवयव परम मनोहर तथा नखकान्ति की शोभा कमल के समान रक्तवर्ण की थीं ॥ ८ ॥ इस प्रकार अपने सामने शिव की शक्ति भगवती उमा को प्रगट देखकर विनम्र हो मैंने उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर इस प्रकार स्तुति की ॥ ९ ॥

पुनः ब्रह्मा ने कहा—इस जगत् की प्रवृत्ति एवं निवृत्ति स्वरूप तथा सर्ग एवं स्थिति रूप हे सनातनी भगवति ! आप इस चराचर की शक्ति तथा सर्वमोहिनी हो ॥ १० ॥ जो महालक्ष्मी केशव की मूर्त्ति की माला, विश्व का भरण करनेवाली तथा सबका पोषण करनेवाली हैं। जो महेश्वरी इस जगत् की

या योगिनां वै महिता मनोज्ञा सा त्वं नमस्ते परमाणुसारे।
यमादिपूते हृदि योगिनां या या योगिनां ध्यानपथे प्रतीता ॥१२॥
प्रकाशशुद्ध्यादियुता विरागा सा त्वं हि विद्या विविधावलम्बा।
कूटस्थमव्यक्तमनन्तरूपं त्वं बिभ्रती कालमयी जगन्ति ॥१३॥
विकारबीजं प्रकरोषि नित्यं गुणान्विता सर्वजनेषु नूनम्।
त्वं वै गुणानां च शिवे त्रयाणां निदानभूता च ततः पराऽसि ॥१४॥
सत्त्वं रजस्तामस इत्यमीषां विकारहीना समुवस्तितीर्या।
सा त्वं गुणानां जगदेकहेतुं ब्रह्मान्तरारम्भसि चात्सि पासि ॥१५॥
अशेषजगतां बीजे ज्ञेयज्ञानस्वरूपिणि। जगद्धिताय सततं शिवपत्नि! नमोऽस्तु ते ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचः सा मे काली लोकविभाविनी। प्रीत्या मां जगतामूचे स्रष्टारं जनशब्दवत् ॥१७॥

देव्युवाच

ब्रह्मन्! किमर्थं भवता स्तुताऽहमवधारय। उच्यतां यदि धृष्योऽसि तच्छीघ्रं पुरतो मम ॥१८॥
प्रत्यक्षमपि जातायां सिद्धिः कार्यस्य निश्चिता। तस्मात्त्वं वाञ्छितं ब्रूहि या करिष्यामि भाविता॥१९॥

ब्रह्मोवाच

श्रृणु देवि महेशानि! कृपां कृत्वा ममोपरि। मनोरथस्थं सर्वज्ञे प्रवदामि त्वदाज्ञया ॥२०॥
यः पतिस्तव देवेशि! ललाटान्मेऽभवत् पुरा। शिवो रुद्राख्यया योगी स वै कैलासमास्थितः॥२१॥

सृष्टिकर्त्री, हर्त्री तथा गुणों से सर्वथा परे हैं ॥ ११ ॥ जो मनोज्ञरूपधारिणी, योगियों के लिए पूज्य एवं परमाणुओं का परम तत्त्व हैं, उन्हें नमस्कार है। जो ब्रह्मचर्य तथा सन्तोषादि यम-नियमों से पवित्र हुए योगियों के हृदय में निवास करनेवाली, योगियों के द्वारा ध्यानगम्य हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १२ ॥ जो प्रकाशस्वरूप एवं शुद्धि आदि गुणों से युक्त, मोहरहित एवं इस जगत् को नाना प्रकार से अवलम्ब देने वाली महाविद्या हैं, जो कूटस्थ, अव्यक्त एवं अनन्तरूपा हैं। हे भगवती! तुम कालरूप से इस जगत् को धारण करती हो ॥ १३ ॥ हे भगवति! तुम गुण से युक्त होकर सभी प्राणियों में विकाररूप वीज उत्पन्न करती हो। हे भगवती! तुम इस त्रिगुण जगत् की निदानभूता तथा इससे परे भी हो ॥१४॥ हे देवि, तुम सत्त्व, रज तथा तम इन तीनों गुणों के विकार से रहित हो। तुम इस जगत् की तथा गुणों की हेतुभूता हो। तुम जल में ही इस जगत् की प्रलयकर्त्री तथा पालनकर्त्री हो ॥ १५ ॥ हे सम्पूर्ण जगत् की कारणभूते! हे ज्ञान तथा ज्ञेयस्वरूपिणि! तुम सर्वदा जगत् के हितसाधन में तत्पर रहने वाली हो, अतः हे शिवपत्नि! हम तुम्हें सर्वदा नमस्कार करते हैं ॥ १६ ॥

ब्रह्मा वोले—मेरी स्तुति को सुन कर वह लोक में व्याप्त हुई महाकाली जगत्स्रष्टा मुझ ब्रह्मा से सामान्य मनुष्य के समान बोली ॥ १७ ॥

देवी बोलीं—हे ब्रह्मन्! तुमने मेरी स्तुति किसलिए की है, यदि ठीक तरह से कहने योग्य हो, तो उसे शीघ्र ही मेरे सामने निवेदन करो ॥ १८ ॥ जब मैं तुम्हारे समक्ष प्रत्यक्ष रूप से प्रगट हो गयी हूँ तो निश्चित रूप से अपनी कार्य-सिद्धि समझो। अब तुम अपना मनोभिलषित कहो, जिसे निश्चित रूप से मैं पूरा करूँ ॥ १९ ॥

पुनः ब्रह्मा जी बोले—हे भगवति महेश्वरि! मेरे ऊपर कृपा कर मेरी बात सुनो। आप की आज्ञा से मैं अपने मनोरथ की बात कहता हूँ ॥ २० ॥ हे देवेशी! पूर्वकाल में मेरे ललाट प्रदेश से उत्पन्न हुआ तुम्हारा पति, जो रुद्र नाम से प्रसिद्ध है वह इस समय योगी होकर कैलास पर्वत पर निवास कर

तपश्चरति भूतेश एक एवाविकल्पकः । अपत्नीको निर्विकारो न द्वितीयां समीहते ॥२२॥
तं मोहय यथा चान्यां द्वितीयां सति वीक्षते । त्वदृते तस्य नो काचिद् भविष्यति मनोहरा ॥२३॥
तस्मात्त्वमेव रूपेण भवस्व हरमोहिनी । सुता भूत्वा च दक्षस्य रुद्रपत्नी शिवे भव ॥२४॥
यथा धृतशरीरा त्वं लक्ष्मीरूपेण केशवम् । आमोदयसि विश्वस्य हितायैतं तथा कुरु ॥२५॥
कान्ताभिलाषमात्रं मे दृष्ट्वाऽनिन्दद् वृषध्वजः । स कथं वनितां देवी स्वेच्छया सङ्ग्रहीष्यति ॥२६॥
हरे गृहीतकान्ते तु कथं सृष्टिः शुभावहा । आद्यन्तमध्ये चैतस्य हेतौ तस्मिन् विरागिणि ॥२७॥
इति चिन्तापरो नाऽहं त्वदन्यं शरणं हितम् । कृच्छ्रवांस्तेन विश्वस्य हितायैतत् कुरुष्व मे ॥२८॥
न विष्णुस्तस्य मोहाय न लक्ष्मीर्न मनोभवः । न चाप्यहं जगन्मातर्नान्यस्त्वां कोऽपि वै विना॥२९॥
तस्मात्त्वं दक्षजा भूत्वा दिव्यरूपा महेश्वरी । तत्पत्नी भव मद्भक्त्या योगिनं मोहयेश्वरम्॥३०॥
दक्षस्तपति देवेशि ! क्षीरोदोत्तरतीरगः । त्वामुद्दिश्य समाधाय मनस्त्वयि दृढव्रतः ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचः सा मे चिन्तामाप शिवा तदा । उवाच च स्वमनसि विस्मिता जगदम्बिका ॥३२॥

देव्युवाच

अहो ! सुमहदाश्चर्यं वेदवक्ताऽपि विश्वकृत् । महाज्ञानपरो भूत्वा विधाता किं वदत्ययम् ॥३३॥
विधेश्चेतसि सञ्जातो महामोहोऽसुखावहः । यद्वरं निर्विकारं तं सम्मोहयितुमिच्छति ॥३४॥
हरमोहवरं मत्तः समिच्छति विधिस्त्वयम् । को लाभोऽस्यात्र स विभुर्निर्मोहो निर्विकल्पकः॥३५॥

रहा है ॥ २१ ॥ वह भूतों का मालिक इस समय अकेले निर्विकल्प समाधि में लीन होकर तप कर रहा है। वह निर्विकार होने के कारण पत्नी से रहित है। वह अपने अतिरिक्त और किसी पत्नी आदि की अपेक्षा नहीं करते ॥ २२ ॥ हे सति ! तुम उसी को मोहित करो, जिससे वह पत्नी द्वितीय बने। तुम्हीं उसके मन को मोहने में समर्थ हो, और कोई स्त्री उसके मन को मोहने में सर्वथा असमर्थ है ॥२३॥ इसलिए हे शिवे ! तुम्हीं दक्ष की कन्या बन कर अपने रूप से शिव को मोहित कर रुद्रपत्नी बनो ॥ २४ ॥ जिस प्रकार तुम लक्ष्मी का रूप धारण कर विष्णु को प्रसन्न करती हो, उसी प्रकार संसार के हित के लिए तुम इस कार्य को भी वैसे ही करो ॥ २५ ॥ हे देवि ! जब उन शिव ने स्त्रीविषयक अभिलाषा मात्र से मेरी निन्दा की तो भला वे स्वेच्छा से किस प्रकार दारपरिग्रह कर सकते हैं ॥ २६ ॥ यदि वे कथमपि स्त्री का परिग्रह कर भी लेवें तो वे तो इस सृष्टि के आदि, मध्य तथा अन्त में सर्वदैव विरक्त रहते हैं, उनसे उत्तम सृष्टि किस प्रकार होगी ॥२७॥ हे देवि ! इस प्रकार चिन्तापरायण हुए मेरे लिए आपके अतिरिक्त और कोई शरणप्रद नहीं है। इसलिए विश्वकल्याण के निमित्त तुम मेरे इस कार्य को करो ॥ २८ ॥ शिव को मोहित करने में न तो विष्णु, न लक्ष्मी, न काम और न तो मैं ही समर्थ हूँ, हे जगन्मातः ! उन्हें मोहित करने में तुम्हीं समर्थ हो ॥ २९ ॥ एतदर्थं तुम दिव्यरूपा दक्षपुत्री के रूप में जन्म लेकर महायोगी शिव को मोहित करो और उनकी पत्नी महेश्वरी बनो ॥ ३० ॥ हे देवि ! इस समय दक्षप्रजापति क्षीरसमुद्र के उत्तर तट पर तुम्हें प्राप्त करने के उद्देश्य से तुम्हारा ध्यान करते हुए दृढ़व्रत होकर तपस्या कर रहे हैं ॥ ३१ ॥

पुनः ब्रह्माजी बोले—मेरे वचन को सुन कर वह शिवा कुछ क्षण के लिए चिन्तित हो उठी, वह जगदम्बा मन में विस्मित हुई सोचने लगी ॥ ३२ ॥

देवी बोलीं—वेदवक्ता और जगत्कर्त्ता यह विधाता महान् अज्ञान से युक्त होकर कैसी बात कर रहे हैं ? अहो ! यह महान् आश्चर्य है ॥ ३३ ॥ यह ब्रह्मा के चित्त में ऐसा महामोह उत्पन्न हो गया है कि वे निर्विकार परमात्मा सदाशिव को भी मोहित करना चाहते हैं। इसका परिणाम सुखदायी प्रतीत नहीं होता ॥ ३४ ॥ यह ब्रह्मा अब मुझसे शिव को मोहित करवाना चाहते हैं, भला निर्विकल्प, निर्मोह उन

परब्रह्माख्यो यः शम्भुर्निर्गुणो निर्विकारवान् । तस्याऽहं सर्वदा दासी तदाज्ञावशगा सदा ॥३६॥
स एव पूर्णरूपेण रुद्रनामाभवच्छिवः । भक्तोद्धारणहेतोर्हि स्वतन्त्रः परमेश्वरः ॥३७॥
हरेर्विधेश्च स स्वामी शिवान्यूनो न कर्हिचित् । योगादरो ह्यमायस्थो मायेशः परतः परः ॥३८॥
मत्वा तमात्मजं ब्रह्मा सामान्यसुरसन्निभम् । इच्छत्ययं मोहयितुमतोऽज्ञानविमोहितः ॥३९॥
न दद्याचेद् वरं वेदनीतिर्भ्रष्टा भवेदिति । किं कुर्यां येन न विभुः क्रुद्धः स्यान्मे महेश्वरः ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

विचार्येत्थं महेशं तं सस्मार मनसा शिवा । प्राप्यानुज्ञां शिवस्याथोवाच दुर्गा च मां तदा ॥४१॥

दुर्गोवाच

यदुक्तं भवता ब्रह्मन् ! समस्तं सत्यमेव तत् । मदृते मोहयित्रीह शङ्करस्य न विद्यते ॥४२॥
हरेऽगृहीतदारे तु सृष्टिर्नैषा सनातनी । भविष्यतीति तत्सत्यं भवता प्रतिपादितम् ॥४३॥
ममापि मोहने यत्नो विद्यतेऽस्य महाप्रभोः । त्वद्वाक्याद् द्विगुणो मेऽद्य प्रयत्नोऽभूत् स निर्भरः ॥४४॥
अहं तथा यतिष्यामि यथा दारपरिग्रहम् । हरः करिष्यति विधे ! स्वयमेव विमोहितः ॥४५॥
सतीमूर्तिमहं धृत्वा तस्यैव वशवर्तिनी । भविष्यामि महाभागा लक्ष्मीर्विष्णोर्यथा प्रिया ॥४६॥
यथा सोऽपि मयैवेह वशवर्ती सदा भवेत् । तथा यत्नं करिष्यामि तस्यैव कृपया विधे ! ॥४७॥
उत्पन्ना दक्षजायायां सतीरूपेण शङ्करम् । अहं सभाजयिष्यामि लीलया तं पितामह ! ॥४८॥
यथान्यजन्तुरवनौ वर्तते वनितावशे । मद्भक्त्या स हरो वामावशवर्ती भविष्यति ॥४९॥

शिव को मोहित कर इन्हें क्या लाभ होगा ॥ ३५ ॥ मैं तो उस निर्विकार, निर्गुण तथा परब्रह्म सदाशिव की आज्ञा में रहनेवाली दासी हूँ ॥ ३६ ॥ वह स्वतन्त्र परमेश्वर शिवभक्तों के उद्धार हेतु अपने पूर्णरूप से रुद्र नाम से अवतीर्ण हैं ॥ ३७ ॥ वे रुद्र, ब्रह्मा तथा विष्णु के स्वामी हैं और किसी भी प्रकार शिव से कम नहीं हैं। वे योगी, माया से रहित, मायापति तथा पर से भी परे हैं ॥ ३८ ॥ उन्हें यह अज्ञान से मोहित ब्रह्मा अपना आतमज तथा सामान्य देवता समझ कर मोहित करना चाहते हैं ॥ ३९ ॥ यदि इन ब्रह्मा को वरदान न दूं तो वेद की नीति भ्रष्ट होती है। अब मुझे कौन से उपाय का अवलम्बन करना चाहिए जिससे प्रभु महेश्वर मेरे ऊपर क्रुद्ध न हों ॥ ४० ॥

ब्रह्मा जी बोले—शिवा ने इस प्रकार बहुत विचार कर महादेव जी का स्मरण किया। अनन्तर उनकी आज्ञा पाकर मुझ ब्रह्मा से कहा— ॥ ४१ ॥

दुर्गा बोलीं—हे ब्रह्मन् ! जैसा आप कह रहे हो वे सभी बातें सत्य हैं, मुझे छोड़ कर शंकर को मोहित करने वाली और कोई दूसरी नहीं है ॥४२॥ और आप ने जो कहा कि जब तक शंकर दारपरिग्रह नहीं करेंगे तब तक सनातनी सृष्टि नहीं होगी, यह बात भी सत्य होगी ॥४३॥ मुझे भी इन महाप्रभु को मोहित करने की सामर्थ्य नहीं है, किन्तु अब तुम्हारे कहने से मैं द्विगुण उत्साह से युक्त होकर पूर्ण प्रयत्न करूँगी ॥ ४४ ॥ हे विधे ! अब मैं वह उपाय करूँगी, जिससे शङ्कर मोहित होकर स्वयं स्त्री ग्रहण करेंगे ॥ ४५ ॥ जिस प्रकार महाभागा लक्ष्मी विष्णुप्रिया हैं, उसी प्रकार से मैं भी सतीरूप धारण कर उनकी वशवर्तिनी प्रिया पत्नी बनूंगी ॥ ४६ ॥ और वे भी जिस प्रकार मेरे वशवर्ती बने रहें, मैं भी वही यत्न उनकी कृपा से करूँगी ॥ ४७ ॥ हे पितामह ! मैं दक्ष की स्त्री में जन्म लेकर सती रूप से अपनी लीला के द्वारा शिव को प्राप्त करूँगी ॥ ४८ ॥ जिस प्रकार अन्य प्राणी स्त्री के वशवर्ती होते हैं, उसी प्रकार से महादेव जी भी स्त्री के वशवर्त्ती बन कर रहेंगे ॥ ४९ ॥

ब्रह्मोवाच

मह्यमित्थं समाभाष्य शिवा सा जगदम्बिका । वीक्ष्यमाणा मया तात ! तत्रैवान्तर्दधे ततः ॥५०॥
तस्यामन्तर्हितायां तु सोऽहं लोकपितामहः । अगमं यत्र स्वसुतास्तेभ्यः सर्वमवर्णयम् ॥५१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे दुर्गास्तुति-र्ब्रह्मवर-प्राप्तिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

(दक्ष को शक्ति का दर्शन और उससे रुद्रमोहन की प्रार्थना)

नारद उवाच

ब्रह्मन् ! शम्भुवर प्राज्ञ सम्यगुक्तं त्वयाऽनघ ! । शिवाशिवचरित्रं च पावितं जन्म मे हितम् ॥ १ ॥
इदानीं वद दक्षस्तु तपः कृत्वा दृढव्रतः । कं वरं प्राप देव्यास्तु कथं सा दक्षजाऽभवत् ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु नारद ! धन्यस्त्वं मुनिभिर्भक्तितोऽखिलैः । यथा तेपे तपो दक्षो वरं प्राप च सुव्रतः ॥ ३ ॥
मदाज्ञप्तः सुधीर्दक्षः समाधाय महाधिपः । अपाधष्टुं च तां देवीं तत्कामो जगदम्बिकाम् ॥ ४ ॥
क्षीरोदोत्तरतीरस्थां तां कृत्वा हृदयस्थिताम् । तपस्तप्तुं समारेभे द्रष्टुं प्रत्यक्षतोऽम्बिकाम् ॥ ५ ॥
दिव्यवर्षेण दक्षस्तु सहस्राणां त्रयं समाः । तपश्चचार नियतः संयतात्मा दृढव्रतः ॥ ६ ॥
मारुताशी निराहारो जलाहारी च पर्णभुक् । एवं निनाय तं कालं चिन्तयन्तां जगन्मयीम् ॥ ७ ॥
दुर्गाध्यानसमासक्तश्चिरं कालं तपोरतः । नियमैर्बहुभिर्देवीमाराधयति सुव्रतः ॥ ८ ॥
ततो यमादियुक्तस्य दक्षस्य मुनिसत्तम ! । जगदम्बां पूजयतः प्रत्यक्षमभवच्छिवा ॥ ९ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात नारद ! मुझसे इस प्रकार कह कर वह जगदम्बा मेरे देखते-देखते अन्तर्धान हो गयीं ॥ ५० ॥ उन शिवा के अन्तर्धान हो जाने पर मैं लोकपितामह ब्रह्मा अपने पुत्रों के पास आकर सारा आख्यान कह सुनाया ॥ ५१ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में दुर्गा-स्तुति तथा ब्रह्मवरप्राप्ति नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥

*

नारद बोले—हे शम्भुचरित्र के जाननेवाले, हे ब्रह्मन्, हे निष्पाप ! आपने शिवाशिव चरित्र का वर्णन कर मेरे जन्म को सर्वथा पवित्र कर मेरा कल्याण किया ॥ १ ॥ अब आप हमें यह बताइए कि व्रत में दृढ़ता रखनेवाले दक्ष ने अपनी तपस्या से किस वर को प्राप्त किया । तथा वह शिवा किस प्रकार दक्षकन्या के रूप में उत्पन्न हुईं ॥ २ ॥

ब्रह्मा बोले—हे नारद ! तुम इन मुनियों के साथ शिव में भक्ति रखने के कारण अत्यन्त धन्य हो । जिस प्रकार दक्ष ने तपस्या की तथा उन्होंने वर प्राप्त किया, उस आख्यान को सुनो ॥ ३ ॥ मेरी आज्ञा पाकर वह बुद्धिमान् दक्षप्रजापति चित्त को समाहित कर क्षीरसागर के उत्तर तट पर रहनेवाली उस जगदम्बिका को, जो सबके हृदयप्रदेश में रहनेवाली हैं; प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिए घर से दूर जा कर तपस्या में प्रवृत्त हो गये ॥ ४-५ ॥ इन्द्रियों को अपने वश में रख कर दृढ़व्रत उस दक्ष ने देवताओं के तीन हजार वर्ष पर्यन्त नियम से घोर तप किया ॥ ६ ॥ जगन्मयी उस शिवा का ध्यान करते हुए दक्ष ने कुछ दिन पत्ते खाकर, कुछ दिन जल पीकर, कुछ दिन वायु पीकर तथा कुछ दिन तक निराहार रहकर घोर तप किया ॥ ७ ॥

इस प्रकार दुर्गा के ध्यान में संलग्न होकर नाना प्रकार के ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सन्तोष आदि यम-नियमों से युक्त होकर दृढव्रत उस दक्ष को शिवा की आराधना करते हुए जब बहुत दिन बीत गये तो

ततः प्रत्यक्षतो दृष्ट्वा जगदम्बां जगन्मयीम् । कृतकृत्यमथात्मानं मेने दक्षः प्रजापतिः ॥१०॥
सिंहस्थां कालिकां कृष्णां चारुवक्त्रां चतुर्भुजाम् । वरदाभय-नीलाब्ज-खड्गहस्तां मनोहराम् ॥११॥
आरक्तनयनां चारुमुक्तकेशीं जगत्प्रसूम् । तुष्टाव वाग्भिश्चित्राभिः सुप्रणम्याथ सुप्रभाम् ॥१२॥

दक्ष उवाच

जगदम्ब महामाये जगदीशे महेश्वरि ! । कृपां कृत्वा नमस्तेऽस्तु दर्शितं स्ववपुर्मम ॥१३॥
प्रसीद भगवत्याद्ये प्रसीद शिवरूपिणि । प्रसीद भक्तवरदे जगन्माये नमोऽस्तु ते ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

इति स्तुता महेशानी दक्षेण प्रयतात्मना । उवाच दक्षं ज्ञात्वाऽपि स्वयं तस्येप्सितं मुने ! ॥१५॥

देव्युवाच

तुष्टाऽहं दक्ष ! भवतः सद्भक्त्या ह्यनया भृशम् । वरं वृणीष्व स्वाभीष्टं नादेयं विद्यते तव ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

जगदम्बावचः श्रुत्वा ततो दक्षः प्रजापतिः । सुप्रहृष्टतरः प्राह नामं नामं च तां शिवाम् ॥१७॥

दक्ष उवाच

जगदम्ब महामाये ! यदि त्वं वरदा मम । मद्वचः शृणु, सुप्रीत्या मम कामं प्रपूरय ॥१८॥
मम स्वामी शिवो यो हि स जातो ब्रह्मणः सुतः । रुद्रनामा पूर्णरूपावतारः परमात्मनः ॥१९॥
तवावतारो नो जातः का तत्पत्नी भवेदतः । तं मोहय महेशानमवतीर्य क्षितौ शिवे ! ॥२०॥
त्वदृते तस्य मोहाय न शक्तान्या कदाचन । तस्मान्मम सुता भूत्वा हरजाया भवाऽधुना ॥२१॥
इत्थं कृत्वा सुलीलां च भव त्वं हर मोहिनी । ममैवैष वरो देवि ! सत्यमुक्तं तवाग्रतः ॥२२॥

भगवती उनके सामने प्रत्यक्ष हुईं ॥ ८-९ ॥ दक्ष प्रजापति ने उस जगन्मयी जगदम्बा को अपने सामने प्रत्यक्ष देखकर अपने जन्म को कृतकृत्य माना ॥ १० ॥ वे सिंह पर सवार हुईं, मनोहर मुखवाली, चतुर्भुजा, कृष्ण वर्णवाली कालिका, अपने हाथों में वर, अभय, नील कमल तथा खड्ग धारण किये हुए परम मनोहर प्रतीत हो रही थीं ॥ ११ ॥ लाल नेत्रवाली, बिखरे हुए बालों से युक्त, जगत् की जन्मदात्री, मनोहर कान्तिवाली उस शिवा को प्रणाम कर दक्ष अपनी विचित्र वाणी से उनकी स्तुति करने लगे ॥१२॥

दक्ष बोले—हे जगदम्ब ! हे महामाये ! हे जगदीश्वरि ! हे महेश्वरि ! आप को नमस्कार है। हे मात: ! यह आप की बहुत बड़ी कृपा हुई, जो आपने प्रत्यक्ष होकर मुझे दर्शन दिया ॥ १३ ॥ हे आद्ये ! मुझ पर प्रसन्न हो, हे शिवस्वरूपिणि ! प्रसन्न हो, हे भक्तवरदे ! मुझ पर प्रसन्न हो, हे जगन्माये ! तुम्हें मेरा नमस्कार है ॥ १४ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने ! जब संयमशील दक्ष ने इस प्रकार स्तुति की तब शिवा उनके मनोरथ को जानती हुई भी उनसे बोलीं ॥ १५ ॥

देवी बोलीं—हे दक्ष ! मैं तुम्हारी इस भक्ति से बहुत प्रसन्न हूँ, मुझे तुम्हारे लिए कोई भी वस्तु अदेय नहीं है, अतः अभीष्ट वर माँगो ॥ १६ ॥

ब्रह्मा ने कहा—जगन्माता के वचन सुनकर दक्षप्रजापति अत्यन्त प्रसन्न हो शिवाको बारम्बार प्रणाम करते हुए बोले ॥ १७ ॥

दक्ष बोले—हे जगदम्ब ! हे महामाये ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो सुनिए और प्रसन्नता से मेरा अभीष्ट मनोरथ पूर्ण कीजिए ॥ १८ ॥ मेरे स्वामी शिव परमात्मा के पूर्णावतार रुद्रनाम से ब्रह्मा के पुत्ररूप में अवतरित हुए हैं ॥ १९ ॥ परन्तु अभी तक तुम्हारा अवतार नहीं हुआ, शिवपत्नी तुम्हारे अतिरिक्त और कौन हो सकती है, अतः हे शिवे ! तुम पृथ्वी पर अवतरित होकर उन्हें मोहित करो ॥२०॥ हे देवि ! तुम्हारे अतिरिक्त और कोई स्त्री उन्हें मोहित नहीं कर सकती। इसलिए तुम मेरी कन्या के रूप में जन्म लेकर शिवपत्नी बनो ॥ २१ ॥ इस प्रकार की अपनी लीला द्वारा तुम शिव को मोह में

केवलं स्वार्थमिति च सर्वेषां जगतामपि। ब्रह्म-विष्णु-शिवानां च ब्रह्मणा प्रेरितो ह्यहम् ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य प्रजेशस्य वचनं जगदम्बिका। प्रत्युवाच विहस्येति स्मृत्वा तं मनसा शिवम् ॥२४॥

देव्युवाच

तात प्रजापते! दक्ष शृणु मे परमं वचः। सत्यं ब्रवीमि त्वद्भक्त्या सुप्रसन्नाऽखिलप्रदा ॥२५॥
अहं तव सुता दक्ष! त्वज्जायायां महेश्वरी। भविष्यामि न सन्देहस्त्वद्भक्तिवशवर्तिनी ॥२६॥
तथा यत्नं करिष्यामि तपः कृत्वा सुदुःसहम्। हरजाया भविष्यामि तद् वरं प्राप्य चाऽनघ! ॥२७॥
नान्यथा कार्यसिद्धिर्हि निर्विकारी च स प्रभुः। विधेर्विष्णोश्च संसेव्यः पूर्ण एव सदाशिवः ॥२८॥
अहं तस्य सदा दासी प्रिया जन्मनि जन्मनि। मम स्वामी स वै शम्भुर्नानारूपधरोऽपि ह ॥२९॥
वरप्रभावाद् भ्रुकुटेरवतीर्णो विधेः स च। अहं तद्वरतोऽपीहावतरिष्ये तदाज्ञया ॥३०॥
गच्छ स्वभवनं तात! मया ज्ञाता तु दूतिका। हरजाया भविष्यामि भूत्वा ते तनयाचिरात् ॥३१॥
इत्युक्त्वा सद्वचो दक्षं शिवाज्ञां प्राप्य चेतसि। पुनः प्रोवाच सा देवी स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥३२॥
परन्तु प्रण आधेयो मनसा ते प्रजापते। श्रावयिष्यामि ते तं वै सत्यं जानीहि नो मृषा ॥३३॥
यदा भवान् मयि पुनर्भवेन्मन्दादरस्तदा। देहं त्यक्ष्ये निजं सत्यं स्वात्मन्यस्म्यथ वेतराम् ॥३४॥
एष दत्तस्तव वरः प्रतिसर्गं प्रजापते!। अहं तव सुता भूत्वा भविष्यामि हरप्रिया ॥३५॥

डालो, हे देवि! मैं सत्य कहता हूँ, मैं यही वरदान चाहता हूँ ॥ २२ ॥ मैं अपने स्वार्थ के लिए ऐसा वरदान माँगता हूँ ऐसी बात नहीं है; इसमें सारे जगत् का और ब्रह्मा, विष्णु और शिव का भी स्वार्थ सन्निहित है, इसलिए ऐसा करने के लिए ब्रह्मा ने मुझे प्रेरित किया है ॥ २३ ॥

ब्रह्मा जी बोले—इस प्रकार प्रजापति दक्ष के वचन सुनकर जगदम्बा मन में शिव का स्मरण कर हँसती हुई बोलीं ॥ २४ ॥

देवी बोलीं—हे तात प्रजापते दक्ष! मेरी बात सुनिए। मैं तुम्हारी इस भक्ति से प्रसन्न हो सब कुछ देने में समर्थ हूँ। अतः सत्य कहती हूँ ॥ २५ ॥ मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होकर तुम्हारी स्त्री से पुत्री के रूप में जन्म लेकर महेश्वर की पत्नी बनूँगी, इसमें सन्देह नहीं ॥ २६ ॥ हे तात! मैं दुस्सह तप कर ऐसा प्रयत्न करूँगी, जिससे शिव के वर को प्राप्त कर उनकी पत्नी बन जाऊँ ॥ २७ ॥ वे सदाशिव ब्रह्मा, विष्णु के सेव्य तथा सर्वथा विकाररहित हैं; अतः बिना तप के इस प्रकार की कार्य-सिद्धि असम्भव है ॥ २८ ॥ मैं तो प्रत्येक जन्म में उनकी प्रिय दासी हूँ। और नाना प्रकार के रूप धारण करने वाले सदाशिव मेरे प्रति जन्म के स्वामी हैं ॥ २९ ॥ वे ब्रह्मा जी को वरदान देने के कारण उनकी भ्रकुटी से रुद्र रूप में अवतीर्ण हुए हैं। और मैं भी शिव का वरदान प्राप्त कर उनकी आज्ञा से अवतार धारण करूँगी ॥ ३० ॥ हे तात! अब तुम अपने घर जाओ, मैंने अपनी दूती से सारी बात जान ली है। मैं कुछ ही दिनों में तुम्हारी कन्या बन कर शीघ्र ही शिव की पत्नी बनूँगी ॥ ३१ ॥ इस प्रकार शिव की आज्ञा पाकर दक्षप्रजापति से कहने के बाद वे शिव के चरण-कमलों का ध्यान करती हुई पुनः बोली– ॥ ३२ ॥ हे प्रजापते! परन्तु मेरी एक प्रतिज्ञा है, उसे अपने मन में सदैव ध्यान रखना। मैं उस प्रतिज्ञा को सत्य-सत्य तुम से सुना देती हूँ, झूठ न समझना ॥ ३३ ॥ यदि तुमने मेरा किञ्चित् भी अनादर किया तो याद रखना मैं अपना शरीर छोड़ दूँगी। मैं सर्वथा स्वतन्त्र हूँ। और दूसरा शरीर धारण करूँगी ॥ ३४ ॥ हे दक्ष! मैं प्रत्येक सर्ग में तुम्हारी कन्या बनकर शिव की पत्नी बनूँगी। यह वरदान तुम्हें दिया ॥ ३५ ॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा महेशानी दक्षं मुख्यप्रजापतिम् । अन्तर्दधे द्रुतं तत्र सम्यग् दक्षस्य पश्यतः ॥३६॥
अन्तर्हितायां दुर्गायां स दक्षोऽपि निजाश्रमम् । जगाम च मुदं लेभे भविष्यति सुतेति सा ॥३७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे
दक्षवरप्राप्तिवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

(ब्रह्मा की आज्ञा से असिक्नी से दक्ष का विवाह एवं दक्ष को नारद का शाप)

नारद उवाच

ब्रह्मन् ! विधे महाप्राज्ञ ! वदनो वदतां वर । दक्षे गृहं गते प्रीत्या किमभूत्तदनन्तरम् ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

दक्षः प्रजापतिर्गत्वा स्वाश्रमं हृष्टमानसः । सर्गं चकार बहुधा मानसं मम चाज्ञया ॥ २ ॥
तमबृंहितमालोक्य प्रजासर्गं प्रजापतिः । दक्षो निवेदयामास ब्रह्मणे जनका इमे ॥ ३ ॥

दक्ष उवाच

ब्रह्मंस्तात प्रजानाथ वर्द्धन्ते न प्रजाः प्रभो । मया विरचिताः सर्वास्तावत्यो हि स्थिताः खलु ॥ ४ ॥
किं करोमि प्रजानाथ ! वर्द्धेयुः कथमात्मना । तदुपायं समाचक्ष्व प्रजाः कुर्यां न संशयः ॥ ५ ॥

ब्रह्मोवाच

दक्ष प्रजापते तात ! शृणु मे परमं वचः । तत्कुरुष्व सुरश्रेष्ठ ! शिवस्ते शं करिष्यति ॥ ६ ॥
या च पञ्चजनस्याङ्गसुता रम्या प्रजापतेः । असिक्नी नाम पत्नीत्वे प्रजेश ! प्रतिगृह्यताम् ॥ ७ ॥
वामव्यवायधर्मस्त्वं प्रजासर्गमिमं पुनः । तद् विधायां च कामिन्यां भूरिशो भावयिष्यसि ॥ ८ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार दक्षप्रजापति से कहकर देवी उनके देखते-देखते अन्तर्धान हो गयीं ॥३६॥ देवी के अन्तर्धान होते ही दक्ष अपने घर चले गये। और यह विचार कर परम प्रसन्न हो गये कि देवी हमारी कन्या बनकर अवतार लेंगी ॥ ३७ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के
द्वितीय-सतीखण्ड में दक्षवरप्राप्तिवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥

*

नारद जी बोले—हे ब्रह्मन् ! महाप्राज्ञ ! हे वक्ताओं में श्रेष्ठ ! दक्ष के घर जाने के अनन्तर फिर क्या हुआ ? यह सब प्रीतिपूर्वक कहिए ॥ १ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! दक्षप्रजापति ने अपने आश्रम में जाकर प्रसन्नचित्त हो मेरी आज्ञा से बहुत सी मानसी सृष्टि पैदा की ॥२॥ किन्तु उस सृष्टि को बढ़ती हुई न देख कर दक्ष ने मुझ ब्रह्मा से कहा ॥३॥

दक्ष बोले—हे तात ! हे ब्रह्मन् ! हे प्रजानाथ ! मेरी बनायी हुई यह प्रजा बढ़ती नहीं है। मैंने भली प्रकार विचार कर देख लिया है कि मैंने जितनी सृष्टि की है, उतनी ही है ॥४॥ हे प्रजानाथ ! मैं क्या करूँ, यह मेरी प्रजा किस प्रकार बढ़ेगी, अब आप कोई ऐसा उपाय बताइए जिससे प्रजाओं की सृष्टि-क्रम का विस्तार हो ॥ ५ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे प्रजापते ! हे तात ! हे दक्ष ! अब तुम मेरी बात सुनो, वैसा करने से भगवान् शङ्कर तुम्हारा अवश्य कल्याण करेंगे ॥६॥ हे प्रजेश ! तुम इस सृष्टि के संवर्द्धन हेतु पञ्चजन कन्या, जिसका नाम असिक्नी है, उसे अपनी पत्नी बनाओ ॥ ७ ॥ इस प्रकार की पत्नी में तुम मैथुन धर्म से प्रवृत्त होकर जब सृष्टि करोगे तब तुम्हारी प्रजा-सृष्टि बढ़ेगी ॥ ८ ॥

ब्रह्मोवाच

ततः समुत्पादयितुं प्रजा मैथुनधर्मतः । उपयेमे वीरणस्य निदेशान्मे सुतां ततः ॥ ९ ॥
अथ तस्यां स्वपत्न्यां च वीरिण्यां स प्रजापतिः । हर्यश्वसंज्ञानयुतं दक्षः पुत्रानजीजनत् ॥१०॥
अपृथग्धर्मशीलास्ते सर्व आसन् सुता मुने ! । पितृभक्तिरता नित्यं वेदमार्गपरायणाः ॥११॥
पितृप्रोक्ताः प्रजासर्गकरणार्थं ययुर्दिशम् । प्रतीचीं तपसे तात ! सर्वे दाक्षायणाः सुताः॥१२॥
तत्र नारायणसरस्तीर्थं परमपावनम् । सङ्गमो यत्र सञ्जातो दिव्यसिन्धुसमुद्रयोः ॥१३॥
तदुपस्पर्शनादेव प्रोत्पन्नमतयोऽभवन् । धर्मे पारमहंसे च विनिर्धूतमलाशयाः ॥१४॥
प्रजाविवृद्धये ते वै तेपिरे तत्र सत्तमाः । दाक्षायणा दृढात्मानः पित्रादेशसुयन्त्रिताः ॥१५॥
त्वं च तान् नारद ! ज्ञात्वा तपसः सृष्टिहेतवे । अगमस्तत्र भूरीणि हार्दमाज्ञाय मापतेः ॥१६॥
अदृष्ट्वा तं भुवः सृष्टिं कथं कर्तुं समुद्यताः । हर्यश्वा दक्षतनया इत्यवोचंस्तमादरात् ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

तं निशम्याऽथ हर्यश्वास्ते त्वदुक्तमतन्द्रिताः । औत्पत्तिकधियः सर्वे स्वयं विममृशुर्भृशम् ॥१८॥
सुशास्त्रजनकादेशं यो न वेद निवर्तकम् । स कथं गुणविश्रम्भी कर्तुं सर्गमुपक्रमेत् ॥१९॥
इति निश्चित्य ते पुत्राः सुधियश्चैकचेतसः । प्रणम्य तं परिक्रम्याऽगुर्मार्गमनिवर्तकम् ॥२०॥
नारद ! त्वं मनः शम्भोर्लोकानन्यचरो मुने ! । निर्विकारो महेशानमनोवृत्तिकरस्तदा ॥२१॥
काले गते बहुतरे मम पुत्रः प्रजापतिः । नाशं निशम्य पुत्राणां नारदादन्वतप्यत ॥२२॥
मुहुर्मुहुरुवाचेति सुप्रजात्वं शुचां पदम् । शुशोच बहुशो दक्षः शिवमायाविमोहितः ॥२३॥
अहमागत्य सुप्रीत्या सान्त्वयं दक्षमात्मजम् । शान्तिभावं प्रदर्श्यैव दैवं प्रबलमित्युत ॥२४॥

पुनः ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! तब दक्षप्रजापति ने मैथुन धर्म से प्रजा-सृष्टि करने के लिए मेरी आज्ञा से वीरण की कन्या के साथ विवाह किया ॥ ९ ॥ प्रजापति दक्ष ने अपनी पत्नी उस वीरिणी के गर्भ से हर्यश्व नामक दस हजार पुत्रों को उत्पन्न किया ॥ १० ॥ हे मुने ! वे सभी हर्यश्व पिता के समान धर्माचरण करनेवाले पिता की भक्ति में तत्पर होकर वेदमार्ग का अनुसरण करने लगे ॥ ११ ॥ वे दक्षपुत्र अपने पिता की आज्ञा पाकर सृष्टि के उद्देश्य से पश्चिम दिशा में तपस्या हेतु चले गये ॥ १२ ॥ जहाँ पर परम पवित्र नारायणसर नाम का तीर्थ है, जहाँ पर नदी तथा समुद्र का संगम हुआ है ॥ १३ ॥ उस तीर्थ के स्पर्शमात्र से ही दक्षपुत्रों की बुद्धि अत्यन्त निर्मल हो गयी । और पाप के छूटते ही वे सभी परम हंस धर्म में स्थित हो गये ॥ १४ ॥ और पिता की आज्ञानुसार प्रजावृद्धि के लिए दृढ़ता से उत्तम तप करने लगे ॥ १५ ॥ हे नारद ! तब तुम सृष्टिसंवर्द्धन हेतु उन्हें घोर तप करते देख विष्णु का मनोगत अभिप्राय जानकर उनके पास गये ॥ १६ ॥ और आदरपूर्वक तुमने उनसे कहा—हे दक्षपुत्र हर्यश्व ! तुम लोग पृथ्वी का विस्तार न जान कर सृष्टि कर्म में किस प्रकार प्रवृत्त हुए हो ॥ १७ ॥

पुनः ब्रह्मा जी बोले—वे हर्यश्व गण तुम्हारी बात सुन कर सृष्टि के विषय में सावधान होकर मन में विचार करने लगे ॥ १८ ॥ जो शास्त्ररूपी पिता के निवृत्तपरक वचनों को नहीं जानता भला वह गुणविश्रम्भी सृष्टि का उपक्रम किस प्रकार कर सकता है ? ॥ १९ ॥ वे परम बुद्धिमान् दक्षपुत्र एक बुद्धि से ऐसा विचार कर देवर्षि नारद की परिक्रमा एवं उन्हें प्रणाम कर निवृत्तिमार्ग में परायण हो गये ॥ २० ॥ हे नारद ! तुम शिव के मन हो, और लोक में पर्यटन करते रहते हो तथा निर्विकार रह कर शिव की आज्ञा का पालन करते हो ॥ २१ ॥ बहुत काल बीतने के पश्चात् प्रजापति ने यह सुनकर कि मेरे जो पुत्र सृष्टि के लिए गये थे नारद ने उन्हें नष्ट कर दिया । तुम्हारे ऊपर परम क्रुद्ध हो गये ॥ २२ ॥ वे दक्ष शिव की माया से मोहित हो बारम्बार शोक कर, कहने लगे—अहो ! अच्छी सन्तान भी शोक का कारण है ॥ २३ ॥ तदनन्तर मैंने दक्ष के पास आकर उन्हें शान्तिभाव का

अथ दक्षः पञ्चजन्यां मया स परिसान्त्वितः । सबलाश्वाभिधान् पुत्रान् सहस्रं चाप्यजीजनत् ॥२५॥
तेऽपि जग्मुस्तत्र सुताः पित्रादिष्टा दृढव्रताः । प्रजासर्गे यत्र सिद्धाः स्वपूर्वभ्रातरो ययुः ॥२६॥
तदुपस्पर्शनादेव नष्टाघा विमलाशयाः । तेपुर्महत्तपस्तत्र जपन्तो ब्रह्म सुव्रताः ॥२७॥
प्रजासर्गोद्यतांस्तान् वै ज्ञात्वा गत्वेति नारद ! । पूर्ववचागदो वाक्यं संस्मरन्नैश्वरीं गतिम् ॥२८॥
भ्रातृपन्थानमादिश्य त्वं मुने ! मोघदर्शनः । अयांश्चोदूर्ध्वगतिं तेऽपि भ्रातृमार्गं ययुः सुताः ॥२९॥
उत्पातान् बहुशोऽपश्यत्तदैव स प्रजापतिः । विस्मितोऽभूत् स मे पुत्रो दक्षो मनसि दुःखितः ॥३०॥
पूर्ववत्त्वत्कृतं दक्षः शुश्राव चकितो भृशम् । पुत्रनाशं शुशोचाति पुत्रशोकविमूर्च्छितः ॥३१॥
चुक्रोध तुभ्यं दक्षोऽसौ दुष्टोऽयमिति चाऽब्रवीत् । आगतस्तत्र दैवात्त्वमनुग्रहकरस्तदा ॥३२॥
शोकाविष्टः स दक्षो हि रोषविस्फुरिताधरः । उपलभ्य तमाहत्य धिग् धिक् प्रोच्य विगर्हयन् ॥३३॥

दक्ष उवाच

किं कृतं तेऽधमश्रेष्ठ ! साधूनां साधुलिङ्गतः । भिक्षोर्मार्गोऽर्भकानां वै दर्शितः साधुकारि नः ॥३४॥
ऋणैस्त्रिभिरमुक्तानां लोकयोरुभयोः कृतः । विघातः श्रेयसोऽमीषां निर्दयेन शठेन ते ॥३५॥
ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य यो गृहात् प्रव्रजेत् पुमान् । मातरं पितरं त्यक्त्वा मोक्षमिच्छन् व्रजत्यधः ॥३६॥
निर्दयस्त्वं सुनिर्लज्जः शिशुधीभिद्यशोऽपहा । हरेः पार्षदमध्ये हि वृथा चरसि मूढधीः ॥३७॥

उपदेश कर सान्त्वना देते हुए कहा कि दक्ष ! शोक मत करो, दैव बड़ा प्रबल है ॥ २४ ॥ दक्ष प्रजापति ने मेरे द्वारा धीरज बँधाये जाने पर पुनः पञ्चजन की कन्या असिक्नी में सबलाश्व नामक हजार पुत्रों को उत्पन्न किया ॥ २५ ॥ वे सबलाश्व भी पिता की आज्ञा से सृष्टिसंवर्द्धन हेतु दृढ हो वहाँ गये, जहाँ उनके पहले के सभी भाई जा कर सिद्ध हो गये थे ॥ २६ ॥ फिर वे भी उस तीर्थ के स्पर्शमात्र से सर्वथा निष्पाप तथा शुद्ध अन्तःकरणवाले हो गये । और व्रतपरायण होकर गायत्री का जप करते हुए कठिन तप करने लगे ॥ २७ ॥ हे नारद ! तुमने सृष्टि करने के लिए तपस्या में उन्हें भी उद्यत देखकर उनके पास जाकर ईश्वर गति का स्मरण करते हुए वही उपदेश किया जो पूर्व में उनके भाइयों को किया था ॥२८॥ हे मुने ! तुम्हारा दर्शन निष्फल नहीं होता । इसलिए तुमने उनको भी पूर्वके भाइयों के मार्ग का उपदेश किया, जिससे वे भी अपने भाइयों के मार्ग का अनुसरण करते हुए उसी मार्ग पर चले गये ॥ २९ ॥ उसी समय दक्ष प्रजापति को अनेक उत्पात दिखाई पड़ने लगे, वे अपने पुत्रों को आया न देख आश्चर्यचकित हो मन में दुःखी हो गये ॥ ३० ॥ उन्होंने तुम्हारे द्वारा प्रथम पुत्रों के नाश के समान ही इन पुत्रों के भी नाश का समाचार जब सुना तो वे आश्चर्य में भर कर पुत्रशोक से मूर्च्छित हो अत्यन्त सन्तप्त हो उठे ॥ ३१ ॥ क्रोध में भर कर दक्ष ने तुम्हें कहा कि यह नारद बड़ा दुष्ट है, उसी समय दैवयोग से उनके पुत्रों पर अनुग्रह करनेवाले तुम भी दक्ष के पास आ गये ॥ ३२ ॥ तब वे प्रजापति दक्ष क्रोध में भर कर होठों को फड़फड़ाते हुए अपने समीप आये तुम्हें धिक्कारते हुए निन्दापूर्वक कहने लगे ॥ ३३ ॥

दक्ष बोले—हे अधमाति-अधम ! तुम ने साधु का वेष बना कर मेरे सत्पुत्रों को यह कैसा उपदेश किया ? तुमने मेरे इन पुत्रों को इस प्रकार भिक्षुमार्ग का उपदेश क्यों किया । जो उनके लिए कल्याणकारी नहीं था ॥ ३४ ॥ तुम्हारे-जैसे निर्दयी शठ ने दैव, ऋषि तथा पितृऋण से मुक्त हुए बिना ही मेरे इन पुत्रों को ऐसा उपदेश कर उनका ऐहलौकिक तथा पारलौकिक कल्याण नष्ट कर दिया ॥ ३५ ॥ क्योंकि जो बिना तीनों ऋणों से मुक्त हुए ही माता-पिता को छोड़ कर मोक्ष की इच्छा से निवृत्त मार्ग में प्रवृत्त होता है, वह नरक जाता है ॥ ३६ ॥ तुम निर्दयी एवं अत्यन्त निर्लज्ज हो, लड़कों को बहकानेवाले तथा यश को नष्ट करनेवाले हो । हे मूर्ख ! तुम हरि के पार्षदों के बीच में व्यर्थ ही घूमा करते हो ॥३७॥

मुहुर्मुहुरभद्रं त्वमचरो मेऽधमाऽधम ! । विभवेद् भ्रमतस्तेऽतः पदं लोकेषु न स्थिरम् ॥३८॥
शशापेति शुचा दक्षस्त्वां तदा साधुसम्मतम् । बुबोध नेश्वरेच्छां स शिवमायाविमोहितः ॥३९॥
शापं प्रत्यग्रहीच्च त्वं स मुने ! निर्विकारधीः । एष एव ब्रह्मसाधो सहते सोऽपि च स्वयम् ॥४०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे दक्षसृष्टौ नारदशापवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

(दक्ष द्वारा साठ कन्याओं के विवाह एवं शिवशक्ति प्रादुर्भाव महोत्सव वर्णन)

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे देवमुने ! लोकपितामह ! । तत्रागममहं प्रीत्या ज्ञात्वा तच्चरितं द्रुतम् ॥ १ ॥
असान्त्वयमहं दक्षं पूर्ववत् सुविचक्षणः । अकार्षं तेन सुस्नेहं तव सुप्रीतिमावहन् ॥ २ ॥
स्वात्मजं मुनिवर्यं त्वां सुप्रीत्या देववल्लभम् । समाश्वास्य समादाय प्रत्यपद्ये स्वधाम ह ॥ ३ ॥
ततः प्रजापतिर्दक्षोऽनुनीतो मे निजस्त्रियाम् । जनयामास दुहितॄः सुभगाः षष्टिसम्मिताः ॥ ४ ॥
तासां विवाहं कृतवान् धर्मादिभिरतन्द्रितः । तदेव शृणु सुप्रीत्या प्रवदामि मुनीश्वर ! ॥ ५ ॥
ददौ दश सुता दक्षो धर्माय विधिवन्मुने । त्रयोदश कश्यपाय मुनये त्रिनवेन्दवे ॥ ६ ॥
भूताङ्गिरः कृशाश्वेभ्यो द्वे द्वे पुत्रीः प्रदत्तवान् । तार्क्ष्याय चाऽपराः कन्याः प्रसूतिप्रसवैर्यतः ॥ ७ ॥
त्रिलोकाः पूरितास्तन्नो वर्ण्यते व्यासतो भयात् ॥ ८ ॥
केचिद् वदन्ति तां ज्येष्ठां मध्यमां चापरे शिवाम् । सर्वानन्तरजां केचित् कल्पभेदात् त्रयं च सत् ॥ ९ ॥
अनन्तरं सुतोत्पत्तेः सपत्नीकः प्रजापतिः । दक्षो दधौ सुप्रीत्या तां मनसा जगदम्बिकाम् ॥१०॥

हे अधमाधम ! तुमने बारम्बार मेरी बुराई की है इसलिए तुम इसी प्रकार लोक में भ्रमण करते रहो, कहीं भी तुम्हारा पैर स्थिर न रहे ॥ ३८ ॥ इस प्रकार शिव की माया से मोहित हुए दक्ष ने ईश्वर की इच्छा को बिना जाने ही तुम जैसे श्रेष्ठ भक्त को शाप दिया ॥ ३९ ॥ और हे मुने ! तुमने भी दक्ष के इस शाप को निर्विकार होकर ग्रहण किया । क्योंकि साधु का स्वभाव स्वयं सहनशील होता है ॥ ४० ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती'भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में सृष्टि-नारद-शाप वर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—इसी समय हे देवमुने ! मैं लोकपितामह ब्रह्मा भी इस चरित्र को जान कर बड़ी शीघ्रता से वहाँ पहुँचा ॥ १ ॥ मैंने पहले की तरह ही उस दक्ष को धीरज बँधाया । जिससे वह प्रसन्न हो तुम्हारे ऊपर पूर्ववत् स्नेह करने लगा ॥ २ ॥ हे मुनिवर्य ! मैंने देवताओं के प्रिय अपने आत्मज-भूत तुम्हें भी बहुत समझाया । और धीरज देकर तुम्हें अपने साथ ले आश्रम को लौट आया ॥ ३ ॥ फिर दक्ष ने मेरी आज्ञा से अपनी स्त्री में साठ सौभाग्यवती कन्याओं को उत्पन्न किया ॥ ४ ॥ उस दक्ष ने उन कन्याओं का विवाह धर्मादिकों के साथ जिस प्रकार किया, उसे सावधानी से सुनो । हे मुनीश्वर ! उसे मैं कहता हूँ ॥ ५ ॥ हे मुने ! उस दक्ष ने दश कन्याएँ धर्म को विधिपूर्वक दीं । और तेरह कश्यप ऋषि को, सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमा को, ॥ ६ ॥ दो-दो कन्याएँ भूत, अङ्गिरा तथा कृशाश्व को, शेष चार कन्याएँ तार्क्ष्य को दीं । जिनकी प्रसुति-परम्परा से यह सारा जगत् व्याप्त है । विस्तार के भय से मैं उन सन्ततियों का वर्णन यहाँ नहीं करता ॥ ७-८ ॥

शिवा को कोई इन कन्याओं से ज्येष्ठ कहते हैं, कोई मध्यम कहते हैं और कोई उन्हें सबसे छोटी कहते हैं ! किन्तु कल्पभेद से ये तीनों ही सत्य हैं ॥ ९ ॥ जब इस प्रकार कन्याएँ उत्पन्न हो गयीं तो

अतः प्रेम्णा च तुष्टाव गिरा गद्गदया हि सः । भूयो भूयो नमस्कृत्य साञ्जलिर्विनयान्वितः॥११॥
सन्तुष्टा सा तदा देवी विचारं मनसीति च । चक्रेऽवतारं वीरिण्यां कुर्यां पणविपूर्तये ॥१२॥
अथ सोवास मनसि दक्षस्य जगदम्बिका । विललास तदातीव स दक्षमुनिसत्तम ! ॥१३॥
सुमुहूर्तेनाथ दक्षोऽपि स्वपत्न्यां निदधे मुदा । दक्षपत्न्यास्तदा चित्ते शिवोवास दयान्विता ॥१४॥
आविर्बभूवुश्चिह्नानि दोहदस्याखिलानि वै ॥१५॥
विरेजे वीरिणी तात हृष्टचित्ताधिका च सा । शिवावासप्रभावात्तु महामङ्गलरूपिणी ॥१६॥
कुलस्य सम्पदश्चैव श्रुतेश्चित्तसमुन्नतेः । व्यधत्त सुक्रिया दक्षः प्रीत्या पुंसवनादिकाः॥१७॥
उत्सवोऽतीव सञ्जातस्तदा तेषु च कर्मसु । वित्तं ददौ द्विजातिभ्यो यथाकामं प्रजापतिः ॥१८॥
अथ तस्मिन्नवसरे सर्वे हर्यादयः सुराः । ज्ञात्वा गर्भगतां देवीं वीरिण्यां ते मुदं ययुः॥१९॥
तत्रागत्य च सर्वे ते तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम् । लोकोपकारकरिणीं प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ॥२०॥
कृत्वा ततस्ते बहुधा प्रशंसां हृष्टमानसाः । दक्षप्रजापतेश्चैव वीरिण्याः स्वगृहं ययुः ॥२१॥
गतेषु नवमासेषु कारयित्वा च लौकिकीम् । गतिं शिवा च पूर्णे सा दशमे मासि नारद ! ॥२२॥
आविर्बभूव पुरतो मातुः सद्यस्तदा मुने ! । मुहूर्ते सुखदे चन्द्रग्रहतारानुकूलके ॥२३॥
तस्यां तु जातमात्रायां सुप्रीतोऽसौ प्रजापतिः । शैवदेवीति तां मेने दृष्ट्वा तां तेजसोल्बणाम् ॥२४॥
तदाऽभूत् पुष्पसद्वृष्टिर्मेघाश्च ववृषुर्जलम् । दिशः शान्ता द्रुतं तस्यां जातायां च मुनीश्वर ! ॥२५॥
अवादयन्त त्रिदशाः शुभवाद्यानि खे गताः । जज्वलुश्चाग्नयःशान्ताः सर्वमासीत् सुमङ्गलम् ॥२६॥

प्रजापति दक्ष ने मन में प्रेम से जगदम्बा का ध्यान किया ॥ १० ॥ वह गदगद स्वर से प्रेमपूर्वक स्तुति करता हुआ हाथ जोड़कर विनय से जगदम्बा को नमस्कार करने लगा ॥ ११ ॥ जिससे वह देवी सन्तुष्ट होकर विचार करने लगी कि, मुझे अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए वीरिणी में अवतार लेना चाहिए ॥ १२ ॥ पुनः उस जगदम्बा ने दक्ष के मन में निवास किया । हे मुनिसत्तम ! वह दक्ष अत्यन्त शोभित होने लगा ॥ १३ ॥ उसने उत्तम मुहूर्त्त में अपनी स्त्री से रमण कर शिवा को अपनी पत्नी के गर्भ में स्थापित किया । इस प्रकार वह शिवा दक्षपत्नी के चित्त में गर्भरूप से निवास करने लगी ॥१४॥ दक्ष की स्त्री में समस्त गर्भ के चिह्न प्रगट होने लगे ॥१५॥ गर्भ में शिवा के निवास के प्रभाव से वह दक्ष-पत्नी महामङ्गलस्वरूपा और पहले की अपेक्षा अधिक शोभासम्पन्न हो गयी ॥ १६ ॥ दक्ष ने कुल, सम्पदा, श्रुति तथा चित्त की समुन्नति के लिए प्रसन्नतापूर्वक सभी पुंसवनादि संस्कार किये । उन-उन कर्मों में प्रजापति ने महान् उत्सव किया । उन्होंने ब्राह्मणों को उस समय यथेष्ट धन दिये ॥ १७-१८ ॥ उस समय विष्णु आदि सभी देवगण देवी को गर्भ में आये हुए जान कर प्रसन्नता से वहाँ गये ॥१९॥ और वहाँ जाकर उन लोगों ने लोकोपकारिणी उन जगदम्बा की महान् स्तुति की तथा वारम्वार उन्हें प्रणाम किया ॥ २० ॥ वे उस वीरिणी तथा दक्षप्रजापति की प्रेम से प्रशंसा करते हुए अपने घर चले आये ॥ २१ ॥

हे नारद ! इस प्रकार नव मास पूर्ण हो जाने पर समस्त लौकिक क्रिया कर लेने के वाद जब दशमास पूर्ण हो गया तब शिवा सुखदायक उत्तम मुहूर्त्त में चन्द्र, ग्रह तथा तारा के अनुकूल होने पर शीघ्र ही माता के समीप प्रगट हो गयी ॥ २२-२३ ॥ उसके उत्पन्न होते ही प्रजापति दक्ष ने वड़े प्रसन्न हुए तथा उसके प्रकृष्ट तेज को देख कर उन्होंने उसे वही शिवा देवी समझा ॥ २४ ॥ उस देवी के उत्पन्न होते ही आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी तथा मेघों ने जल की वर्षा प्रारम्भ कर दी । हे मुनीश्वर ! उसके उत्पन्न होते ही सारी दिशाएँ शान्त हो गयीं ॥ २५ ॥ देवताओं ने आकाश में शुभ बाजे बजाये । शान्त अग्नि देदीप्यमान हो गयी । इस प्रकार सब ओर मङ्गल-ही-मङ्गल दिखाई पड़ने लगा ॥ २६ ॥

वीरिणीसम्भवां दृष्ट्वा दक्षस्तां जगदम्बिकाम् । नमस्कृत्य करौ बद्ध्वा बहु तुष्टाव भक्तितः ॥२७॥

दक्ष उवाच

महेशानि ! नमस्तुभ्यं जगदम्बे सनातनि ! । कृपां कुरु महादेवि ! सत्ये सत्यस्वरूपिणि ॥२८॥
शिवा शान्ता महामाया योगनिद्रा जगन्मयी । या प्रोच्यते वेदविद्भिर्नमामि त्वां हितावहाम् ॥२९॥
यया धाता जगत्सृष्टौ नियुक्तस्तां पुराऽकरोत् । तां त्वां नमामि परमां जगद्धात्रीं महेश्वरीम् ॥३०॥
यया विष्णुर्जगत्स्थित्यै नियुक्तस्तां सदाऽकरोत् । तां त्वां नमामि परमां जगद्धात्रीं महेश्वरीम् ॥३१॥
यया रुद्रो जगन्नाशे नियुक्तस्तां सदाकरोत् । तां त्वां नमामि परमां जगद्धात्रीं महेश्वरीम् ॥३२॥
रजःसत्त्वतमोरूपां सर्वकार्यकरीं सदा । त्रिदेवजननीं देवीं त्वां नमामि च तां शिवाम् ॥३३॥

यस्त्वां विचिन्तयेद् देवि ! विद्याविद्यात्मिकां पराम् ।
तस्य भुक्तिश्च मुक्तिश्च सदा करतले स्थिता ॥३४॥

यस्त्वां प्रत्यक्षतो देवि ! शिवां पश्यति पावनीम् । तस्यावश्यं भवेन्मुक्तिर्विद्याविद्याप्रकाशिका ॥३५॥
ये स्तुवन्ति जगन्मातर्भवानीमम्बिकेति च । जगन्मयीति दुर्गेति सर्वं तेषां भविष्यति ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

इति स्तुता जगन्माता शिवा दक्षेण धीमता । तथोवाच तदा दक्षं यथा माता शृणोति न ॥३७॥
सर्वं सुमोह तथ्यं च तथा दक्षः शृणोतु तत् । नान्यस्तथा शिवा प्राह नानोतिः परमेश्वरी ॥३८॥

देव्युवाच

अहमाराधिता पूर्वं सुतार्थं ते प्रजापते ! । ईप्सितं तव सिद्धं तु तपो धारय सम्प्रति ॥३९॥

दक्ष ने वीरिणी में उत्पन्न हुई उस जगदम्बा को देख कर भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार करते हुए उनकी स्तुति प्रारम्भ की ॥ २७ ॥

दक्ष बोले—हे महेशानि ! हे सनातनि ! हे जगदम्बे ! तुम्हें नमस्कार है । हे सत्ये ! हे सत्यस्वरूपिणि ! हे महादेवि ! मेरे ऊपर कृपा करो ॥ २८ ॥ वेदज्ञ लोग जिन्हें शिवा, शान्ता, महामाया, योगनिद्रा तथा जगन्मयी कहते हैं, उस संसार की हितकारिणी देवी को नमस्कार है ॥ २९ ॥ जिन्होंने पूर्व में ब्रह्मा को उत्पन्न कर इस जगत् की सृष्टि के कार्य में नियुक्त किया है । उस परमा जगन्माता महेश्वरी को नमस्कार है ॥ ३० ॥ जिन्होंने संसार के पालन के लिए विष्णु को नियुक्त किया है, उस परमा जगद्धात्री महेश्वरी को नमस्कार है ॥ ३१ ॥ जिसने संसार के नाश के लिए रुद्र को नियुक्त किया है, उप परमा जगन्माता महेश्वरी को नमस्कार है ॥ ३२ ॥ जो देवी सत्त्व, रज तथा तम रूपोंवाली हैं तथा सर्वदा सबके कार्यों को साधनेवाली हैं, उन त्रिदेवजननी, आप शिवा को नमस्कार है ॥ ३३ ॥

हे देवी ! जो तुम्हें विद्या-अविद्या इन दोनों रूपों से स्मरण करते हैं, उनके हाथ में भोग तथा मोक्ष दोनों वर्त्तमान हो जाते हैं ॥ ३४ ॥ हे देवि ! जो परमपावनी शिवास्वरूपा आपका प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं, उन्हें विद्या तथा अविद्या को प्रकाशित करनेवाली मुक्ति अपने-आप मिल जाती है ॥ ३५ ॥ हे माता ! जो तुम्हें जगन्माता, भवानी, अम्बिका, जगन्मयी एवं दुर्गा आदि नामों से सर्वदा स्तवन करते हैं, उनके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं ! ॥ ३६ ॥

ब्रह्मा जी बोले—जब इस प्रकार जगन्माता शिवा की स्तुति दक्ष ने की तब वे दक्ष से इस प्रकार कहने लगी, जिसमें माता न सुन सके ॥ ३७ ॥ नाना प्रकार के रूपों को धारण करनेवाली उस परमेश्वरी के वचन को केवल दक्ष ही सुन पा रहे थे और नहीं, क्योंकि उस समय सभी मोह-निद्रा में निमग्न थे ॥३८॥

देवी बोली—हे प्रजापते ! तुमने मुझे पुत्रीरूप से प्राप्त करने के लिए पहले मेरी आराधना की थी वह तुम्हारा अभीष्ट पूरा हुआ, अब तुम तपस्या को समाप्त करो ॥ ३९ ॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदा देवी दक्षं च निजमायया । आस्थाय शैशवं भावं जनन्यन्ते रुरोद सा ॥४०॥
अथ तद्रोदनं श्रुत्वा स्त्रियो वाक्यं ससम्भ्रमाः । आगतास्तत्र सुप्रीत्या दास्योऽपि च ससम्भ्रमाः॥४१॥
दृष्ट्वाऽसिक्नी सुतारूपं ननन्दुः सर्वयोषितः । सर्वे पौरजनाश्चापि चक्रुर्जयरवं तदा ॥४२॥
उत्सवश्च महानासीद् गानवाद्यपुरःसरम् । दक्षोऽसिक्नी मुदं लेभे शुभं दृष्ट्वा सुताननम् ॥४३॥
दक्षः श्रुतिकुलाचारं चक्रे च विधिवत्तदा । दानं ददौ द्विजातिभ्योऽन्येभ्यश्च द्रविणं तथा ॥४४॥
बभूव सर्वतो गानं नर्तनं च यथोचितम् । नेदुर्वाद्यानि बहुशः सुमङ्गलपुरःसरम् ॥४५॥
अथ हर्यादयो देवाः सर्वे सानुचरास्तदा । मुनिवृन्दैः समागत्योत्सवं चक्रुर्यथाविधि ॥४६॥
दृष्ट्वा दक्षसुतामम्बां जगतः परमेश्वरीम् । नेमुः सविनयाः सर्वे तुष्टुवुश्च शुभैस्तवैः ॥४७॥
ऊचुः सर्वे प्रमुदिता गिरं जयजयात्मिकाम् । प्रशशंसुर्मुदा दक्षं वीरिणीं च विशेषतः ॥४८॥
तदोमेति नाम चक्रे तस्या दक्षस्तदाज्ञया । प्रशस्तायाः सर्वगुणसत्त्वादपि मुदान्वितः ॥४९॥
नामान्यन्यानि तस्यास्तु पश्चाज्जातानि लोकतः । महामङ्गलदान्येव दुःखघ्नानि विशेषतः ॥५०॥
दक्षस्तदा हरिं नत्वा मां सर्वानमरानपि । मुनीनापि करौ बद्ध्वा स्तुत्वा चानर्च भक्तितः॥५१॥
अथ विष्ण्वादयः सर्वे सुप्रशस्याजनन्दनम् । प्रीत्या ययुः स्वधामानि संस्मरन् सशिवं शिवम्॥५२॥
अतस्तां च सुतां माता सुसंस्कृत्य यथोचितम् । शिशुपानेन विधिना तस्यै स्तन्यादिकं ददौ ॥५३॥
पालिता साऽथ वीरिण्या दक्षेण च महात्मना । ववृधे शुक्लपक्षस्य तथा शशिकलाऽन्वहम् ॥५४॥
तस्यां तु सद्गुणाः सर्वे विविशुर्द्विजसत्तम ! । शैशवेऽपि तथा चन्द्रे कलाः सर्वा मनोहराः ॥५५॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार दक्ष से कहकर वह देवी अपनी माया से शिशु का रूप धारण कर माता के पास रोने लगी ॥ ४० ॥ उस रोदन को सुन कर उसे स्त्री का शब्द जान कर स्त्रियाँ तथा समस्त दासीगण आश्चर्य में पड़कर प्रीतिपूर्वक वहाँ गयीं ॥ ४१ ॥ और उस देवी को सुता के रूप में देख कर परम प्रसन्न हुईं । उस समय समस्त नगरनिवासियों ने देवी के जय-जयकार के नारे लगा दिये ॥ ४२ ॥ नगर में चारों ओर गाने तथा बजाने के साथ-साथ महान् उत्सव होने लगा । पुत्री का मुख देख कर असिक्नी तथा दक्ष परम प्रसन्न हुए ॥ ४३ ॥ दक्ष ने विधिपूर्वक वेदोक्त कुलाचार कर ब्राह्मणों को तथा दीन-दुःखियों को बहुत साधन दिया ॥ ४४ ॥ मङ्गलाचारपूर्वक नाना प्रकार के गाने, नृत्य तथा बाजे बजने लगे ॥ ४५ ॥ शिवा के जन्म-समय में विष्णु आदि सभी देवगण अपने-अपने अनुचरों तथा मुनियों के साथ आकर यथाविधि अनेक उत्सव करने लगे ॥ ४६ ॥

दक्षकन्या के रूप में अवतरित हुईं उन परमेश्वरी जगदम्बा को देख कर देवताओं ने बड़ी नम्रता के साथ उन्हें प्रणाम किया । और नाना प्रकार के शुभ स्तोत्रों से उनकी स्तुति की ॥ ४७ ॥ सभी देवता जय-जयकार के शब्दों से दक्ष तथा दक्षपत्नी वीरिणी की प्रशंसा करने लगे ॥ ४८ ॥ दक्ष ने प्रसन्नता से विष्णु आदि देवताओं की आज्ञा से सभी गुणों से सम्पन्न होने के कारण उस प्रशस्त अम्बिका का 'उमा' ऐसा नामकरण किया ॥ ४९ ॥ अनन्तर लोक में मंगल करनेवाले तथा लोगों के दुःख दूर करनेवाले उस देवी के अनेक नाम हुए ॥ ५० ॥ दक्षप्रजापति ने विष्णु, मुझ ब्रह्मा, सम्पूर्ण मुनियों तथा देवताओं को हाथ जोड़कर प्रणाम किया और विधिपूर्वक सबका पूजन किया ॥ ५१ ॥ तदनन्तर विष्णु आदि सभी देवगण दक्ष की प्रशंसा एवं शिव का स्मरण करते हुए अपने स्थानों को चले गये ॥ ५२ ॥ इधर माता ने भी यथोचित रूप से उस कन्या का संस्कार कर बालकों के स्तन पीने के विधान से उसे अपना दूध पिलाया ॥ ५३ ॥ प्रजापति दक्ष तथा वीरिणी ने बड़ी सावधानी के साथ उस कन्याका पालन किया, जिससे वह शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की कलां के समान प्रतिदिन बढ़ने लगी ॥ ५४ ॥ उस कन्या में सभी सद्गुण स्वयं आकर निवास करने लगे । जैसे चन्द्रमा के उदय होते ही उसमें सभी मनोहर कलाएँ

आचरन् निजभावेन सखीमध्यगता यदा । तदा लिलेख भर्गस्य प्रतिमामन्वहं मुहुः ॥५६॥
यदा जगौ सुगीतानि शिवा बाल्योचितानि सा । तदा स्थाणुं हरं रुद्रं सस्मार स्मरशासनम् ॥५७॥
ववृधेऽतीव दम्पत्योः प्रत्यहं करुणाऽतुला । तस्या बाल्येऽपि भक्तायास्तयोर्नित्यं मुहुर्मुहुः॥५८॥
सर्वबालगुणक्रान्तां सदा स्वालयकारिणीम् । तोषयामास पितरौ नित्यं नित्यं मुहुर्मुहुः ॥५९॥

इति श्रीशिवपुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सतीजन्म-बाललीलावर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

(सती द्वारा बारह मास तक शिवव्रताचरण एवं अपनी पत्नी के साथ ब्रह्मा और विष्णु का शिवलोक गमन और शिवस्तुति)

ब्रह्मोवाच

अथैकदा पितुः पार्श्वे तिष्ठन्तीं तां सतीमहम् । त्वया सह मुनेऽद्राक्षं सारभूतां त्रिलोकके ॥ १ ॥
पित्रा नमस्कृतं वीक्ष्य सत्कृतं त्वां च मां सती । प्रणनाम मुदा भक्त्या लोकलीलानुसारिणी ॥ २ ॥
प्रणामान्ते सतीं वीक्ष्य दक्षदत्तशुभासने । स्थितोऽहं नारद ! त्वं च विनतामहमागदम् ॥ ३ ॥
त्वामेव यः कामयते यं तु कामयसे सति । तमाप्नुहि पतिं देवं सर्वज्ञं जगदीश्वरम् ॥ ४ ॥
यो नाऽन्यां जगृहे नापि गृह्णाति न ग्रहीष्यति । जायां स ते पतिर्भूयादनन्यसदृशः शुभे ! ॥ ५ ॥
इत्युक्त्वा सुचिरं तां वै स्थित्वा दक्षालये पुनः । विसृष्टौ तेन संयातौ स्वस्थानं तौ च नारद ! ॥ ६ ॥
दक्षोऽभवच्च सुप्रीतस्तदाकर्ण्य गतज्वरः । आददे तनयां स्वां तां मत्वा हि परमेश्वरीम् ॥ ७ ॥
इत्थं विहारै रुचिरैः कौमारैर्भक्तवत्सला । जहाववस्थां कौमारीं स्वेच्छाधृतनराकृतिः ॥ ८ ॥

अपने-आप आ जाती हैं ॥ ५५ ॥ जब वह सखियों के मध्य में जाकर अपनी चित्रकारी का प्रदर्शन करती तो प्रतिदिन शङ्कर की प्रतिमा का निर्माण करती थी ॥ ५६ ॥ जब वह शिवा बाल्योचित गाने गाती तो वह काम पर शासन करनेवाले हर, रुद्र तथा स्थाणु का गाने के बहाने से स्मरण करती थी ॥ ५७ ॥ दक्ष प्रजापति तथा वीरिणी का स्नेह दिन-प्रतिदिन उस कन्या पर बढ़ता जाता था । यद्यपि वह बालिका थी फिर भी वह अपने माता तथा पिता में बड़ी भक्ति रखती थी ॥ ५८ ॥ सभी बाल्योचित गुणों से परिपूर्ण वह उमा देवी अपने घर के सभी कार्यों को निपुणता से सम्पन्न कर दिन-प्रतिदिन अपने माता तथा पिता को सन्तुष्ट करने लगी ॥ ५९ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती'भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में सतीजन्म तथा बाललीलावर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥

*

ब्रह्मा जी बोले—एक समय त्रिलोक की सर्वस्वभूता शिवा जब अपनी माता-पिता की गोद में बैठी थी तब मैंने तुम्हारे साथ जा कर उसका दर्शन किया ॥ १ ॥ पिता के द्वारा नमस्कृत तथा सत्कृत होते हुए हम दोनों को देख कर उस सतीने भी लोकलीला का अनुसरण करते हुए तुम्हें तथा मुझे प्रणाम किया ॥ २ ॥ प्रणाम के अनन्तर दक्ष के द्वारा दिये गये आसन पर हम दोनों सती को देखते हुए बैठ गये और विनम्र हुई उस उमा से मैंने कहा ॥ ३ ॥ हे सती ! जो तुम्हें चाहता है तथा जिसे तुम चाहती हो उस सर्वज्ञ जगदीश्वर को तुम पतिरूप में प्राप्त करोगी ॥ ४ ॥ जिसने पूर्वकाल में तुम्हारे अतिरिक्त और किसी का पाणिग्रहण नहीं किया है । वर्त्तमान में भी जो तुम्हारे अतिरिक्त और किसी का पाणिग्रहण नहीं करता है, जो भविष्य में भी तुम्हारे अतिरिक्त अन्य का पाणिग्रहण नहीं करेगा, तथा हे शुभे ! जिसकी समता कोई और करनेवाला नहीं है वही इस समय तुम्हारा पति होवे ॥ ५ ॥ ऐसा कह कर कुछ दिन दक्ष के घर निवास कर हम दोनों उनसे विदा हो अपने- अपने स्थान पर चले आये ॥ ६ ॥मेरी बात सुनक

बाल्यं व्यतीत्य सा प्राप किञ्चिद्यौवनतां सती। अतीव तपसाङ्गेन सर्वाङ्गेषु मनोहरा ॥ ९ ॥
दक्षस्तां वीक्ष्य लोकेशः प्रोद्भिन्नान्तर्वयःस्थिताम्। चिन्तयामास भर्गाय कथं दास्य इमां सुताम् ॥१०॥
अथ साऽपि स्वयं भर्गं प्राप्तुमैच्छत्तदान्वहम्। पितुर्मनोगतिं ज्ञात्वा मातुर्निकटमागमत् ॥११॥
पप्रच्छाज्ञां तपोहेतोः शङ्करस्य विशालधीः। मातुः शिवाय वीरिण्याः सा सखी परमेश्वरी ॥१२॥
ततः सती महेशानं पतिं प्राप्तुं दृढव्रता। सा तमाराधयामास गृहे मातुरनुज्ञया ॥१३॥
आश्विने मासि नन्दायां तिथावानर्च भक्तितः। गुडौदनैः सलवणैर्हरं नत्वा निनाय तम् ॥१४॥
कार्तिकस्य चतुर्दश्यामपूपैः पायसैरपि। समाकीर्णैः समाराध्य सस्मार परमेश्वरम् ॥१५॥
मार्गशीर्षेऽसिताष्टम्यां सतिलैः सयवौदनैः। पूजयित्वा हरं कीलैर्निनाय दिवसान् सती ॥१६॥
पौषे तु शुक्लसप्तम्यां कृत्वा जागरणं निशि। अपूजयच्छिवं प्रातः कृशरान्नेन सा सती ॥१७॥
माघे तु पौर्णमास्यां सा कृत्वा जागरणं निशि। आर्द्रवस्त्रा नदीतीरेऽकरोच्छङ्करपूजनम् ॥१८॥
तपस्यासितभूतायां कृत्वा जागरणं निशि। विशेषतः समानर्च शैलूषैः सर्वयामसु ॥१९॥
चैत्रे शुक्लचतुर्दश्यां पलाशैर्दमनैः शिवम्। अपूजयद् दिवारात्रौ संस्मरन् सा निनाय तम् ॥२०॥
राधशुक्लतृतीयायां तिलाहारयवौदनैः। पूजयित्वा सती रुद्रं गव्यैर्मासं निनाय तम् ॥२१॥
ज्येष्ठस्य पूर्णिमायां वै रात्रौ सम्पूज्य शङ्करम्। वसनैर्बृहतीपुष्पैर्निराहारा निनाय तम् ॥२२॥
आषाढस्य चतुर्दश्यां शुक्लायां कृष्णवाससा। बृहतीकुसुमैः पूजा रुद्रस्याकारि वै तथा ॥२३॥

दक्ष परम प्रसन्न हो चिन्तारहित हो गये। और अपनी कन्या को साक्षात् परमेश्वरी जानकर, उसका बड़ा सत्कार करने लगे ॥ ७ ॥ अपनी इच्छा से मनुष्यशरीर धारण करनेवाली भक्तवत्सला देवी में अपने मनोहर कौमारोचित बिहार के साथ अपनी कौमार्यावस्था समाप्त की ॥ ८ ॥ अपनी तपस्या के प्रभाव से सर्वाङ्गमनोहरा उस सती ने धीरे-धीरे बाल्यावस्था समाप्त कर युवावस्था में प्रवेश किया ॥ ९ ॥ लोकेश दक्ष प्रजापति उस कन्या में युवावस्था के लक्षण देख विचार करने लगे कि किस प्रकार अपनी इस पुत्री को शिव के लिए प्रदान करें ॥ १० ॥ इधर इस कन्या ने भी शिव को प्राप्त करने का निरन्तर सङ्कल्प कर लिया। पिता के मन की बात जान कर वह अपनी माता के सन्निकट आयी ॥ ११ ॥ उस परमेश्वरी ने बड़े विनय के साथ शङ्कर को प्राप्त करने की इच्छा से तप करने के लिए अपनी माता की सखी से कहकर आज्ञा चाही। फिर तो वह सती माता की आज्ञा प्राप्त कर महेश्वर को अपना पति बनाने के लिए घर पर ही तपस्या करने लगी ॥ १२-१३ ॥

उसने आश्विन मास की प्रत्येक नन्दा तिथि में गुड़, चावल तथा लवण से हर का पूजन कर उस मास को विता दिया ॥ १४ ॥ कार्त्तिक मास की चतुर्दशी को खीर तथा अपूप (पूआ) द्वारा शिवाराधन कर परमेश्वर का स्मरण करने लगी ॥ १५ ॥ अगहन के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को यव, तिल एवं चावलों से शिव का पूजन कर दिन बिताने लगी ॥ १६ ॥ पौष मास की शुक्ल पक्ष की सप्तमी को रात्रि में जागरण कर प्रातःकाल खिचड़ी से शिव का पूजन करने लगी ॥ १७ ॥ माघ की पूर्णमासी को रात्रि में जागरण कर प्रातःकाल भींगे कपड़े पहन कर नदी के किनारे शिव का पूजन करने लगी ॥ १८ ॥ फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को रात्रि में जागरण कर चारों प्रहर विल्वपत्र तथा विल्वफल से शिव की विशेष पूजा करने लगी ॥ १९ ॥ चैत्र शुक्ल चतुर्दशी को दिन-रात वह सती शिव का स्मरण करती हुई पलाशपुष्प तथा दवनों से शिव की पूजा करने लगी ॥ २० ॥ वैशाख शुक्ल तृतीया को नव्य तिलाहार, यव एवं चावलों से शिव का पूजन कर उस मास को व्यतीत करने लगी ॥ २१ ॥ ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा को वस्त्र एवं मालती के फूलों से शिव का पूजन करती हुई उस मास को व्यतीत करने लगी ॥ २२ ॥ आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी को काले वस्त्र, कस्तूरी एवं मालती के पुष्पों से शिव की पूजा करती हुई उस मास को

श्रावणस्य सिताष्टम्यां चतुर्दश्यां च सा शिवम् । यज्ञोपवीतैर्वासोभिः पवित्रैरप्यपूजयत् ॥२४॥
भाद्रे कृष्णत्रयोदश्यां पुष्पैर्नानाविधैः फलैः । सम्पूज्य च चतुर्दश्यां चकार जलभोजनम् ॥२५॥
नानाविधैः फलैः पुष्पैः सस्यैस्तत्कालसम्भवैः । चक्रे सुनियताहारा जपन्मासे शिवार्चनम् ॥२६॥
सर्वमासे सर्वदिने शिवार्चनरता सती । दृढव्रताऽभवद् देवी स्वेच्छाधृतनराकृतिः ॥२७॥
इत्थं नन्दाव्रतं कृत्स्नं समाप्य सुसमाहिता । दध्यौ शिवं सती प्रेम्णा निश्चलाऽभूदनन्यधीः ॥२८॥
एतस्मिनन्तरे देवा मुनयश्चाखिला मुने ! । विष्णुं मां च पुरस्कृत्य ययुर्द्रष्टुं सतीतपः ॥२९॥
दृष्ट्वाऽऽगत्य सती देवैर्मूर्ता सिद्धिरिवापरा । शिवध्यानमहामग्ना सिद्धावस्थां गता तदा ॥३०॥
चक्रुः सर्वे सुरां सत्यै मुदा साञ्जलयो नतिम् । मुनयश्च नतस्कन्धा विष्ण्वाद्याः प्रीतमानसाः ॥३१॥
अथ सर्वे सुप्रसन्ना विष्ण्वाद्याश्च सुरर्षयः । प्रशशंसुस्तपस्तस्याः सत्यास्तस्मात् सविस्मयाः ॥३२॥
ततः प्रणम्य तां देवीं पुनस्ते मुनयः सुराः । जग्मुर्गिरिवरं सद्यः कैलासं शिववल्लभम् ॥३३॥
सावित्रीसहितश्चाऽहं सह लक्ष्म्या मुदान्वितः । वासुदेवोऽपि भगवाञ्जगामाथ हरान्तिकम् ॥३४॥
गत्वा तत्र प्रभुं दृष्ट्वा सुप्रणम्य ससंभ्रमाः । तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः करौ बद्ध्वा विनम्रकाः ॥३५॥

देवा ऊचुः

नमो भगवते तुभ्यं यत एतच्चराऽचरम् । पुरुषाय महेशाय परेशाय महात्मने ॥३६॥
आदिबीजाय सर्वेषां चिद्रूपाय पराय च । ब्रह्मणे निर्विकाराय प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥३७॥
य इदं प्रतिपच्येदं येनेदं विचकास्ति हि । यस्मादिदं यतश्चेदं यस्येदं त्वं च यत्नतः ॥३८॥

व्यतीत करने लगी ॥ २३ ॥ श्रावण शुक्ल अष्टमी तथा चतुर्दशी को पवित्र यज्ञोपवीत तथा वस्त्रों से शिव का पूजन करती हुई उसको व्यतीत करने लगी ॥ २४ ॥ भाद्रकृष्ण तेरस तथा चतुर्दशी को नाना पुष्पों और फलों से शिव का पूजन कर मात्र जल पीकर उस मास को भी बिताने लगी ॥ २५ ॥

इस प्रकार तत्-तत् कालों में उत्पन्न होने वाले नाना प्रकार के फल, पुष्प तथा शस्यों द्वारा शिवार्चन कर नियमित आहार करती हुई उस शिवा ने उन-उन मासों को व्यतीत किया ॥ २६ ॥ अपनी इच्छा से मनुष्य शरीर धारण करनेवाली उस सती ने बड़ी दृढता के साथ सभी मासों तथा सभी दिनों में शिवार्चन किया ॥ २७ ॥ इस प्रकार विधिपूर्वक सम्पूर्ण नन्दाव्रत को समाप्त कर शिव में अनन्यबुद्धि रखती हुई वह शिवा प्रेमपूर्वक शिव का ध्यान करती हुई निश्चल समाधि में लीन हो गयी ॥ २८ ॥ उसी समय सम्पूर्ण देवता एवं मुनि मुझको तथा विष्णु को आगे कर सती की तपस्या देखने के निमित्त वहाँ पहुँच गये ॥ २९ ॥ उन देवताओं ने आते ही शिवध्यान में निमग्न सिद्धावस्था में प्राप्त हुई उस सती को मूर्त्तिमती दूसरी सिद्धि के समान देखा ॥ ३० ॥ विष्ण्वादि सभी देवगण एवं मुनियों ने बड़े प्रेम के साथ हाथ जोड़ कर उस सती को विनयपूर्वक प्रणाम किया ॥ ३१ ॥ वे सभी विष्णु आदि देवगण तथा महर्षिगण उसकी तपस्या से आश्चर्यचकित होते हुए सती के तप की प्रशंसा करने लगे ॥ ३२ ॥ इस प्रकार सती को प्रणाम करने के अनन्तर वे सभी देव एवं मुनिगण शिव के परमप्रिय कैलास पर्वत पर गये ॥ ३३ ॥ सावित्री के सहित मैं तथा लक्ष्मी के सहित विष्णु भी प्रसन्नता के साथ शिव के पास गये ॥ ३४ ॥ वहाँ जाने पर आश्चर्यचकित हुए उन देवताओं तथा ऋषियों ने शिव का दर्शन कर उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर विविध स्तोत्रों से उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३५ ॥

देवताओं ने कहा—हम लोग परम पुरुष, महेश्वर परमेश्वर और महान् आत्मावाले उस भगवान् को नमस्कार करते हैं, जिससे यह सारा चराचरात्मक जगत् उत्पन्न हुआ है ॥ ३६ ॥ सभी प्राणियों के आदि बीज चेतनस्वरूप, परमात्मा, प्रकृति तथा पुरुष से परे उस निर्विकार ब्रह्म को हम नमस्कार करते हैं ॥ ३७ ॥ जो प्रपञ्चरूप से स्वयं सृष्टिस्वरूप है तथा जिसकी सत्ता से यह सब भासित हो रहा है,

योऽस्मात्परस्माच्च परो निर्विकारी महाप्रभुः । ईक्षते यः स्वात्मनीदं तं नताः स्म स्वयम्भुवम् ॥३९॥
अविद्धदृक् परः साक्षी सर्वात्माऽनेकरूपधृक् । आत्मभूतः परब्रह्म तपन्तं शरणं गताः ॥४०॥
न यस्य देवा ऋषयः सिद्धाश्च न विदुः पदम् । कः पुनर्जन्तुरपरो ज्ञातुमर्हति वेदितुम् ॥४१॥
दिदृक्षवो यस्य पदं मुक्तसङ्गाः सुसाधवः । चरितं सुगतिर्नस्त्वं सलोकव्रतमव्रणम् ॥४२॥
त्वज्जन्मादिविकारा नो विद्यन्ते केऽपि दुःखदाः । तथापि मायया त्वं हि गृह्णासि कृपया च तान् ॥४३॥
तस्मै नमः परेशाय तुभ्यमाश्चर्यकर्मणे । नमो गिरां विदूराय ब्रह्मणे परमात्मने ॥४४॥
अरूपायोरुरूपाय परायानन्तशक्तये । त्रिलोकपतये सर्वसाक्षिणे सर्वगाय च ॥४५॥
नम आत्मप्रदीपाय निर्वाणसुखसम्पदे । ज्ञानात्मने नमस्तेऽस्तु व्यापकायेश्वराय च ॥४६॥
नैष्कर्म्येण सुलभ्याय कैवल्यपतये नमः । पुरुषाय परेशाय नमस्ते सर्वदाय च ॥४७॥
क्षेत्रज्ञायात्मरूपाय सर्वप्रत्ययहेतवे ॥४८॥
सर्वाध्यक्षाय महते मूलप्रकृतये नमः । पुरुषाय परेशाय नमस्ते सर्वदाय च ॥४९॥
त्रिनेत्रायेषुवक्त्राय सदाभापाय ते नमः । सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे निष्कारण नमोऽस्तु ते ॥५०॥
त्रिलोककारणायाथापवर्गाय नमो नमः । अपवर्गप्रदायाशु शरणागततारिणे ॥५१॥
सर्वाम्नायागमानां चोदधये परमेष्ठिने । परायणाय भक्तानां गुणानां च नमोऽस्तु ते ॥५२॥
नमो गुणारणिच्छन्नचिदूष्माय महेश्वर । मूढदुष्प्रापरूपाय ज्ञानिहृद्वासिने सदा ॥५३॥

जिससे यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ है, जिसका यह सारा विश्व है, जिसका 'इदं त्वं' यह सब है ॥ ३८ ॥ जो इस जगत् के बाहर तथा भीतर व्याप्त है, जो निर्विकार तथा महाप्रभु है, जो अपनी आत्मा में ही इस सारे विश्व को देखता है, उस स्वयम्भु परमात्मा को हम नमस्कार करते हैं ॥ ३९ ॥

जो इस जगत् में रह कर भी निर्लिप्त रहता है। जो सबका द्रष्टा तथा साक्षी है, जो सर्वात्मा तथा अनेक रूपों को धारण करने वाला है, आत्मस्वरूप तथा परब्रह्म है, हम लोग उस परमात्मा की शरण में आये हैं ॥४०॥ जिस पद को देवता, ऋषि तथा सिद्ध नहीं जानते हैं फिर और प्राणी उसे जान ही कैसे सकता है। जिसको देखने के लिए अच्छे लोग मुक्त सङ्ग हो जाते हैं ॥ ४१ ॥ जिसका चरित्र संसार के मनुष्यों से गेय तथा निष्फल है, वे परमात्मा ही हमारी गति हैं ॥ ४२ ॥ हे प्रभो ! जगत् के दुःखदायी जन्मादि षड्विकार आपमें नहीं होते। फिर भी माया के वशीभूत हो आप उस पर कृपा कर उन जन्मादि षड्विकारों को ग्रहण करते हैं ॥ ४३ ॥ आश्चर्य कर्म करने वाले आप परमात्मा को नमस्कार है, वाणी से सर्वथा परे आप परमात्मा परब्रह्म को नमस्कार है ॥ ४४ ॥ आप नीरूप होते हुए भी बहुरूप हैं, आप अनन्तशक्ति युक्त परमेश्वर हैं, आप त्रिलोकपति सर्वसाक्षी तथा सर्वत्र व्याप्त हैं, अतः आप को नमस्कार है ॥ ४५ ॥ आप स्वयं प्रकाश, निर्वाण सुख तथा सम्पत्ति स्वरूप हैं, ज्ञानात्मा, व्यापक तथा ईश्वर हैं, अतः आप को नमस्कार है ॥ ४६ ॥ आप निष्कर्म (सर्वसमर्पण तथा काम्य कर्म के न्यास) से प्राप्त होने वाले तथा मुक्ति के देने वाले हैं, आप पुरुष तथा परमेश्वर हैं, अतः सब कुछ देने वाले आप प्रभु को नमस्कार है ॥ ४७ ॥ आप सबके शरीर में निवास करने वाले, आत्मस्वरूप तथा सभी को जानने वाले ज्ञानस्वरूप हैं ॥ ४८ ॥

आप सबके पति, महान् तथा मूलप्रकृति हैं। ऐसे पुरुष परेश तथा सब कुछ देने वाले आप परमात्मा को नमस्कार है ॥ ४९ ॥ तीन नेत्र, पाँच मुख तथा ज्योतिःस्वरूप आप को नमस्कार है, सभी इन्द्रियों के विषयों के भोक्ता आप निष्कारण परमात्मा को नमस्कार है ॥ ५० ॥ आप त्रिलोक के कारण तथा मुक्ति प्रदान करने वाले हैं तथा शीघ्र ही शरणागत को तारनेवाले हैं, अतः आप को नमस्कार है ॥ ५१ ॥ आप आम्नाय (वेद) तथा आगम शास्त्र के समुद्र तथा परमेष्ठी हैं। भक्तों के उद्धार में लगे रहने वाले सर्वगुण सम्पन्न आप प्रभु को नमस्कार है ॥ ५२ ॥ आप गुणरूपी अरणी से आच्छन्न हैं, चित्स्वरूप तथा ऊष्मा

पशुपाशविमोक्षाय भक्तसन्मुक्तिदाय च । स्वप्रकाशाय नित्यायाऽव्ययायाऽजस्रसंविदे ॥५४॥
प्रत्यग्द्रष्ट्रेऽविकाराय परमैश्वर्यधारिणे । यं भजन्ति चतुर्वर्गे कामयन्तीष्टसद्गतिम् ॥
सोऽभूदकरुणस्त्वं नः प्रसन्नो भव ते नमः ॥५५॥
एकान्तिनः कञ्चनार्थं भक्ता वाञ्छन्ति यस्य न । केवलं चरितं ते ते गायन्ति परमङ्गलम् ॥५६॥
अक्षरं परमं ब्रह्म तमव्यक्ताकृतिं विभुम् । अध्यात्मयोगगम्यं त्वां परिपूर्णं स्तुमो वयम् ॥५७॥
अतीन्द्रियमनाधारं सर्वाधारमहेतुकम् । अनन्तमाद्यं सूक्ष्मं त्वां प्रणमामोऽखिलेश्वरम् ॥५८॥
हर्यादयोऽखिला देवास्तथा लोकाश्चराऽचराः । नामरूपविभेदेन फल्ग्व्या च कलया कृताः ॥५९॥
यथाऽर्चिषोऽग्नेः सवितुर्यान्ति निर्यान्ति वाऽसकृत् । गभस्तयस्तथाऽयं वै प्रवाहो गौण उच्यते ॥६०॥
न त्वं देवोऽसुरो मर्त्यो न तिर्यङ् न द्विजः प्रभो । न स्त्री न षण्ढो न पुमान् सदसन्न च किञ्चन ॥६१॥
निषेधशेषः सर्वं त्वं विश्वकृद्विश्वपालकः । विश्वलयकृद्विश्वात्मा प्रणताः स्मस्तमीश्वरम् ॥६२॥
योगरन्धितकर्माणो यं प्रपश्यन्ति योगिनः । योगसम्भाविते चित्ते योगेशं त्वां नता वयम् ॥६३॥
नमोऽस्तु तेऽसह्यवेग शक्तित्रय त्रयीमय । नमः प्रसन्नपालाय नमस्ते भूरिशक्तये ॥६४॥
कदिन्द्रियाणां दुर्गेशानवाप्य परवर्त्मने । भक्तोद्धाररतायाथ नमस्ते गूढवर्चसे ॥६५॥

रूप महेश्वर हैं। आप मूर्खों से न प्राप्त होने योग्य तथा ज्ञानियों के हृदय में निवास करने वाले हैं, अतः आप को नमस्कार है ॥ ५३ ॥ आप संसारी जीवों के पाश को काटने वाले तथा भक्तों को मुक्ति देने वाले हैं, स्वप्रकाश, नित्य, अव्यय तथा नित्य ज्ञानस्वरूप हैं ॥ ५४ ॥ सबके अन्तर्यामी, अविकारी तथा सर्वैश्वर्य सम्पन्न हैं, धर्मादि चतुर्वर्ग जिनकी सेवा करते हैं तथा सब लोग जिनसे अपनी सद्गति चाहते हैं, ऐसे हे प्रभो ! आप के लिए नमस्कार है। आप हम लोगों पर प्रसन्न हों तथा करुणा करें ॥ ५५ ॥ आप के अनन्य भक्त आप से किसी अन्य अर्थ की अपेक्षा नहीं करते किन्तु केवल मङ्गलस्वरूप आप के चरित्र का गान ही करते हैं ॥ ५६ ॥ आप अविनाशी, अव्यक्त तथा व्यापक हैं, अध्यात्म तथा योग से गम्य हैं, परिपूर्ण हैं, इस प्रकार के आप की हम लोग स्तुति करते हैं ॥ ५७ ॥ आप इन्द्रियों से परे, स्वयं आधाररहित किन्तु सबके आश्रय, हेतुरहित, अनन्त, आद्य तथा सूक्ष्म हैं, अतः अखिलेश्वर आप को हम सभी प्रणाम करते हैं ॥ ५८ ॥ आपने अपनी तुच्छ कला मात्र से नाम रूप के द्वारा विष्णु आदि सभी देवों की तथा इस चराचर जगत् की पृथक्-पृथक् सृष्टि की है, अतः आप को नमस्कार है ॥ ५९ ॥ जैसे सूर्य की किरणें सूर्य से ही उत्पन्न होती हैं तथा पुनः उसी में लीन हो जाती हैं, उसी प्रकार इस सृष्टि का सारा गुण प्रवाह (आत्मा, इन्द्रिय तथा विषय) आप में ही उत्पन्न होता है तथा लीन होता है ॥ ६० ॥

हे प्रभो ! आप देवता, असुर, मनुष्य, तिर्यक् तथा (पशु-पक्षी) स्त्री, पुरुष, षण्ढ (नपुंसक) आदि कुछ नहीं हैं, न सत्, असत् हैं, अतः आप अनिर्वचनीय हैं। श्रुतियों के निषेध से जो बच जाता है (अर्थात् श्रुति में इति न 'इति न' कहकर आपको नेति कहा है) वही निषेध स्वरूप आप हैं। आप विश्वस्वरूप तथा विश्व के पालक हैं, विश्व के लय करने वाले विश्वात्मा भी आप ही हैं, अतः उस ईश्वर को हम प्रणाम करते हैं ॥ ६१-६२ ॥ कर्मयोग से चित्त को समाहित करने वाले योगिजन अपने योगयुक्त चित्त में जिन्हें देखते हैं उन योगेश्वर भगवान् को हम लोग नमस्कार करते हैं ॥ ६३ ॥ हे अपनी सत्त्व, रज तथा तमोगुणात्मक शक्तियों से असह्य वेग वाले प्रभो ! हे त्रयीमय ! आपको नमस्कार है, आप अनन्त शक्तिसम्पन्न हैं, आप शरणागतों की रक्षा करने वाले हैं, अतः आपको नमस्कार है ॥ ६४ ॥ हे दुर्गेश ! अपनी इन्द्रियों को वश में न रखने वाले जनों से आप सर्वथा दुष्प्राप्य हैं, क्योंकि आपको प्राप्त करने का

यच्छक्त्याऽहं धियात्मानं हन्त वेद न मूढधीः। तं दुरत्ययमाहात्म्यं त्वां नताः स्मो महाप्रभुम्॥६६॥

ब्रह्मोवाच

इति स्तुत्वा महादेवं सर्वे विष्ण्वादिकाः सुराः। तूष्णीमासन् प्रभोरग्रे सद्भक्तिनतकन्धराः ॥६७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे नन्दाव्रतविधान-शिवस्तुति-वर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

(ब्रह्मा एवं विष्णु के आग्रह पर शिव द्वारा विवाह की स्वीकृति)

ब्रह्मोवाच

इति स्तुतिं च हर्यादिकृतामाकर्ण्य शङ्करः। बभूवाऽतिप्रसन्नो हि विजहास च सृतिकृत् ॥ १ ॥

ब्रह्मविष्णू तु दृष्ट्वा तौ सस्त्रीकौ सङ्गतौ हरः। यथोचितं समाभाष्य पप्रच्छागमनं तयोः ॥ २ ॥

रुद्र उवाच

हे हरे! हे विधे! देवा मुनयश्चाऽद्य निर्भयाः। निजागमनहेतुं हि कथयस्व सुतत्त्वतः ॥ ३ ॥

किमर्थमागता यूयं किं कार्यं चेह विद्यते। तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि भवत्स्तुत्या प्रसन्नधीः॥ ४ ॥

ब्रह्मोवाच

इति पृष्टे हरेणाऽहं सर्वलोकपितामहः। मुनेऽवोचं महादेवं विष्णुना परिचोदितः ॥ ५ ॥

देवदेव महादेव! करुणासागर प्रभो!। यदर्थमागतावावां तच्छृणु त्वं सुरर्षिभिः ॥ ६ ॥

विशेषतस्तवैवार्थमागता वृषभध्वज!। सहार्थिनः सदायोग्यमन्यथा न जगद्भवेत् ॥ ७ ॥

केचिद् भविष्यन्त्यसुरा मम वध्या महेश्वर!। हरेर्वध्यास्तथा केचिद् भवतश्चापि केचन ॥ ८ ॥

मार्ग ही दूसरा है, आप भक्तों के उद्धार में निरत रहने वाले हैं, आपका तेज गुप्त है, जिसकी शक्ति ने हमें मूर्ख बना दिया है तथा जिसकी मायाशक्ति से मोहित हुआ पुरुष अपने को नहीं जानता ऐसे दुरधिगम्य माहात्म्य वाले आप महाप्रभु को हम नमस्कार करते हैं ॥ ६५-६६ ॥

ब्रह्मा बोले—सभी विष्णु आदि देव इस प्रकार महादेव की स्तुति कर भक्ति से विनम्र हो चुप हो गये ॥ ६७ ॥

इस प्रकार 'शिवसती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में नन्दाव्रत-विधान तथा शिवस्तुति वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—विष्णु आदि देवताओं के द्वारा की गयी इस प्रकार की स्तुति को सुनकर सृष्टिकर्त्ता शिवजी हँसे ॥ १ ॥ वे स्त्री सहित ब्रह्मा तथा विष्णु को आया देख यथोचित रूप से उनका कुशल-प्रश्न पूछ कर उनके आने का कारण पूछने लगे ॥ २ ॥

रुद्र बोले—हे विष्णो! हे ब्रह्मन्! हे देवो तथा मुनियो! आप लोगों के यहाँ आने का क्या कारण है? आप लोग निर्भय होकर अपने आगमन का कारण कहिए ॥ ३ ॥ आप लोगों की इस स्तुति से मैं प्रसन्न हूँ। आप लोगों के यहाँ आने का क्या निमित्त है, तथा मुझसे क्या कार्य है? मैं उसे सुनना चाहता हूँ ॥ ४ ॥

ब्रह्माजी बोले—जब महादेव जी ने इस प्रकार पूछा, तो विष्णु के द्वारा प्रेरित हुआ मैं सर्वलोक पितामह उनसे बोला ॥ ५ ॥ हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! हम दोनों इन देवताओं तथा मुनियों के साथ जिस कारण से आये हैं उसे सुनिए ॥ ६ ॥ हे वृषभध्वज! विशेष रूप से हम लोग आपके ही पास आये हैं। क्योंकि आप ही हम लोगों के सहायक हैं। आपको मेरी सहायता करना उचित ही है अन्यथा इस संसार की स्थिति न रहेगी ॥ ७ ॥ हे महेश्वर! कोई असुर तो मेरा वध्य है, कोई हरि

केचिच्त्वद्वीर्यजातस्य तनयस्य महाप्रभो ! । मायावध्याः प्रभो केचिद् भविष्यन्त्यसुराः सदा ॥ ९ ॥
तवैव कृपया शम्भोः सुराणां सुखमुत्तमम् । नाशयित्वाऽसुरान् घोराञ्जगत्स्वास्थ्यं सदाभयम् ॥ १० ॥
योगयुक्ते त्वयि सदा रागद्वेषविवर्जिते । दयामात्रैकनिरते न वध्या ह्यथवा तव ॥ ११ ॥
अपराधितेषु तेष्वीश ! कथं सृष्टिस्तथा स्थितिः । अतश्च भविता युक्तं नित्यं नित्यं वृषध्वज ! ॥ १२ ॥
सृष्टिस्थित्यन्तकर्माणि न कार्याणि यदा तदा । शरीरभेदमस्माकं मायायाश्च न युज्यते ॥ १३ ॥
एकस्वरूपा हि वयं भिन्नाः कार्यस्य भेदतः । कार्यभेदो न सिद्धश्चेद्रूपभेदोऽप्रयोजनः ॥ १४ ॥
एक एव त्रिधा भिन्नः परमात्मा महेश्वरः । मायास्वाकारणादेव स्वतन्त्रो लीलया प्रभुः ॥ १५ ॥
वामाङ्गजो हरिस्तस्य दक्षिणाङ्गभवो ह्यहम् । शिवस्य हृदयाज्जातस्त्वं हि पूर्णतनुः शिवः ॥ १६ ॥
इत्थं वयं त्रिधाभूताः प्रभो भिन्नस्वरूपिणः । शिवाशिवसुतास्तत्त्वं हृदा विद्धि सनातन ॥ १७ ॥
अहं विष्णुश्च सस्त्रीकौ सञ्जातौ कार्यहेतुतः । लोककार्यकरौ प्रीत्या तव शासनतः प्रभो ! ॥ १८ ॥
तस्माद् विश्वहितार्थाय सुराणां सुखहेतवे । परिगृह्णीष्व भार्यार्थे रामामेकां सुशोभनाम् ॥ १९ ॥
अन्यच्छृणु महेशान पूर्ववृत्तं स्मृतं मया । यन्नः पुरः पुरा प्रोक्तं त्वयैव शिवरूपिणा ॥ २० ॥
मद्रूपं परमं ब्रह्मन्नीदृशं भवदङ्गतः । प्रकटी भविता लोके नाम्ना रुद्रः प्रकीर्तितः ॥ २१ ॥
सृष्टिकर्ताऽभवद् ब्रह्मा हरिः पालनकारकः । लयकारी भविष्यामि रुद्ररूपो गुणाकृतिः ॥ २२ ॥
स्त्रियं विवाह्य लोकस्य करिष्ये कार्यमुत्तमम् । इति संस्मृत्य स्वप्रोक्तं पूर्णं कुरु निजं पणम् ॥ २३ ॥

का तथा कोई आपका वध्य होगा ॥ ८ ॥ कोई आपके वीर्य से उत्पन्न पुत्र द्वारा वध्य होगा । और कुछ असुर तो आपकी मायाशक्ति के द्वारा वध्य होंगे ॥ ९ ॥ आप सदाशिव की कृपा से देवताओं को उत्तम सुख प्राप्त होगा । आप ही संसार में असुरों का वध कर इस जगत् को स्वस्थ तथा निर्भय करते हैं ॥ १० ॥ आप राग-द्वेष रहित, योगयुक्त एवं सर्वथा दयालु हैं, इसलिए यदि सृष्टि में असुरों का वध न करें तो इस सृष्टि की स्थिति किस प्रकार रहेगी । इसलिए हे वृषध्वज ! उचित यही है कि आप इस सृष्टि की स्थिति के लिए सदैव असुरों का वध करते रहें ॥ ११-१२ ॥ यदि जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा संहार का कार्य न किया जायेगा तो माया के द्वारा हम लोगों का ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र रूप से पृथक्-पृथक् धारण किया गया शरीर व्यर्थ हो जायेगा ॥ १३ ॥ हम लोग एक हैं किन्तु कार्यभेद से भिन्न-भिन्न शरीर धारण करते हैं । यदि कार्य की भिन्नता न हो, तो पृथक्-पृथक् शरीर धारण का कोई प्रयोजन नहीं है ॥ १४ ॥ आप परमात्मा महेश्वर स्वतन्त्र होते हुए भी अपनी लीला से माया के द्वारा तीन प्रकार के पृथक्-पृथक् शरीर धारण करते हैं ॥ १५ ॥ आप महेश्वर के बायें अङ्ग से विष्णु तथा दाहिने अङ्ग से मैं ब्रह्मा उत्पन्न हुआ हूँ । हे रुद्र ! आप उनके हृदय से उत्पन्न हुए उनके पूर्ण शरीर हैं ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! इस प्रकार से हम लोग उस शिव से भिन्न स्वरूप में होकर तीन प्रकार से उत्पन्न हुए हैं । जो उन शिवाशिव के पुत्र ही हैं, हे सनातन ! तुम तो शिवशङ्कर के हृदय से ही उत्पन्न हो ॥ १७ ॥ कार्य के कारण हम और विष्णु तो स्त्रीसहित हो चुके हैं और हे प्रभो ! आपकी आज्ञा से प्रीतिपूर्वक लोक के कार्य का संचालन करते हैं ॥ १८ ॥ इसलिए आप से भी प्रार्थना है कि आप इस विश्व के हित के लिए तथा देवताओं के सुख देने के लिए भार्या रूप से कोई भी उत्तम स्त्री ग्रहण करें ॥ १९ ॥ हे महेश्वर ! मुझे एक और पुरानी बात का स्मरण है, जिसे आप ने शिवरूप से पहले हम दोनों से कहा था ॥ २० ॥ आप ने मुझ ब्रह्मा से कहा था कि हे ब्रह्मन् ! मेरा एक परम ब्रह्मस्वरूप शरीर तुम्हारे अङ्ग से उत्पन्न होगा, जो लोक में रुद्र नाम से प्रसिद्ध होगा ॥ २१ ॥

जिस प्रकार सृष्टि करने वाले ब्रह्मा हैं तथा सृष्टि के पालन कर्त्ता विष्णु हैं उसी प्रकार मैं भी माया से शरीर धारण कर रुद्र रूप से सृष्टि का लय करूँगा ॥ २२ ॥ और एक स्त्री से विवाह कर लोक

निदेशस्तव च स्वामिन्नहं सृष्टिकरो हरिः । पालको लयहेतुस्त्वमाविर्भूतः स्वयं शिवः ॥२४॥
त्वां विना न समर्थौ हि आवां च स्वस्वकर्मणि । लोककार्यरतां तस्मादेकां गृह्णीष्व कामिनीम् ॥२५॥
यथा पद्मालया विष्णोः सावित्री च यथा मम । तथा सहचरीं शम्भो ! कान्तां गृह्णीष्व सम्प्रति ॥२६॥
इति श्रुत्वा वचो मे हि ब्रह्मणः पुरतो हरेः । स मां जगाद लोकेशः स्मेराननमुखो हरः ॥२७॥

ईश्वर उवाच

हे ब्रह्मन् ! हे हरे ! मे हि युवां प्रियतरौ सदा । दृष्ट्वा वां च ममानन्दो भवत्यतितरां खलु ॥२८॥
युवां सुरविशिष्टौ हि त्रिभवस्वामिनौ किल । कथनं वा गरिष्ठेति भवकार्यरतात्मनोः ॥२९॥
उचितं न सुरश्रेष्ठौ विवाहकरणं मम । तपोरतविरक्तस्य सदा विदितयोगिनः ॥३०॥
यो निवृत्तिसुमार्गस्थः स्वात्मारामो निरञ्जनः । अवधूततनुर्ज्ञानी स्वद्रष्टा कामवर्जितः ॥३१॥
अविकारी ह्यभोगी च सदाऽशुचिरमङ्गलः । तस्य प्रयोजनं लोके कामिन्या किं वदाऽधुना ॥३२॥
केवलं योगलग्नस्य ममानन्दः सदाऽस्ति वै । ज्ञानहीनस्तु पुरुषो मनुते बहुकामकम् ॥३३॥
विवाहकरणं लोके विज्ञेयं परबन्धनम् । तस्मात्तस्य रुचिर्नो मे सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥३४॥
न स्वार्थं मे प्रवृत्तिर्हि सम्यक्स्वार्थविचिन्तनात् । तथापि तत्करिष्यामि भवदुक्तं जगद्धितम् ॥३५॥
मत्वा वचो गरिष्ठं वा नियोक्तिपरिपूर्त्तये । करिष्यामि विवाहं वै भक्तवश्यः सदा ह्यहम् ॥३६॥
परन्तु यादृशीं कान्तां ग्रहीष्यामि तथापणम् । तच्छृणुष्व हरे ब्रह्मन् ! युक्तमेव वचो मम ॥३७॥
या मे तेजः समर्था हि ग्रहीतुं स्याद्विभागशः । तां निदेशय भार्यार्थे योगिनीं कामरूपिणीम् ॥३८॥

का उत्तम कार्य करूँगा । हे स्वामिन् ! अतः आप अपने इस कथन को स्मरण कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करें ॥ २३ ॥ हे स्वामिन् ! आपकी आज्ञा से मैं सृष्टिकर्त्ता, विष्णु पालनकर्त्ता और आदिभूत स्वयं आप शिव इसके प्रलयकर्त्ता हैं ॥ २४ ॥ आपके बिना हम अपना कार्य करने में समर्थ नहीं हैं । इसलिए आप भी लोककार्य करने के लिए एक सुन्दर स्त्री ग्रहण करें ॥ २५ ॥ जिस प्रकार विष्णु की पत्नी लक्ष्मी, मेरी पत्नी सावित्री हैं उसी प्रकार हे शम्भो ! आप भी कोई मनोहर स्त्री ग्रहण कीजिए ॥ २६ ॥

ब्रह्माजी बोले—मेरी इस बात को सुनकर लोकेश शङ्कर जी हँसते हुए विष्णु के सामने ही मुझसे कहने लगे ॥ २७ ॥

ईश्वर बोले—हे ब्रह्मन् ! हे विष्णो ! आप दोनों ही मेरे सदा प्रिय हैं, आप लोगों को देख मुझे निश्चय ही महान् आनन्द होता है ॥ २८ ॥ आप लोग इस त्रिलोकी के स्वामी हैं तथा सभी देवताओं से विशिष्ट हैं, संसार के कार्य में निरत रहने वाले आप दोनों का कथन भी आदरणीय है ॥ २९ ॥ हे सुरश्रेष्ठो ! मैं तपस्या में निरत तथा विरक्त हूँ और योगसाधन करता हूँ । भला जो निवृत्ति मार्ग में निरत, स्वात्माराम, मायारहित, अवधूत शरीर धारण करने वाला, ज्ञानी, आत्मज्ञान से परिपूर्ण, कामरहित, अविकारी, भोग न चाहने वाला, सदा अशुचि तथा अमङ्गल है, उसे आप ही लोग बताइए कि स्त्री का क्या प्रयोजन है ? मुझे सर्वदा योग में ही आनन्द प्राप्त होता है, जो ज्ञानी नहीं है वही पुरुष काम की इच्छा करता है । संसार में विवाह करना दूसरे के अधीन होना है । इस लिए मेरा विवाह करना तथा विवाह की इच्छा करना उचित नहीं है, यह मैं आप लोगों से सत्य-सत्य कहता हूँ, मैं आत्मरमण करने वाला हूँ, अच्छी तरह विचार करने पर यह मैं अच्छी तरह समझ लिया हूँ कि मेरा विवाह में कोई स्वार्थ नहीं है इसलिए उसमें मेरी प्रवृत्ति भी नहीं है । किन्तु आप लोगों के कथन की गरिमा का ध्यान रख कर आपलोगों का आदेश पालन करने के लिए तथा जगत् की भलाई के लिए मैं विवाह करूँगा । क्योंकि मैं अपने भक्तों के अधीन हूँ ॥ ३०-३६ ॥ हे हरे ! हे ब्रह्मा ! स्त्री ग्रहण करने में मेरी एक प्रतिज्ञा है, जो युक्त तथा तथ्य है, उसे आप सब सुनिए ॥ ३७ ॥ जो मुझसे पृथक् हुए तेज को धारण करने में समर्थ हो एवं जो योगिनी तथा इच्छानुकूल रूप धारण करने में समर्थ हो ऐसी स्त्री का आप लोग

योगयुक्ते मयि तथा योगिन्येव भविष्यति । कामासक्ते मयि तथा कामिन्येव भविष्यति ॥३९॥
यमक्षरं वेदविदो निगदन्ति मनीषिणः । ज्योतीरूपं शिवं ते च चिन्तयिष्ये सनातनम् ॥४०॥
तच्चिन्तायां यदासक्तो ब्रह्मन् ! गच्छामि भाविनीम् । तत्र या विघ्नजननी न भवित्री हताऽस्तु मे ॥४१॥
त्वं वा विष्णुरहं वापि शिवस्य ब्रह्मरूपिणः । अंशभूता महाभागा योग्यं तदनुचिन्तनम् ॥४२॥
तच्चिन्तया विनोद्वाहं स्थास्यामि कमलासन ! । तस्माज्जायां प्रादिश त्वं मत्कर्मानुगतां सदा ॥४३॥
तत्राप्येकं पणं मे त्वं शृणु ब्रह्मंश्च मां प्रति । अविश्वासो मदुक्ते चेन्मया त्यक्ता भविष्यति ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वाऽहं स विष्णुर्हरस्य च । सस्मितं मोदितमनोऽवोचं चेति विनम्रकः ॥४५॥
शृणु नाथ महेशान ! मार्गिता यादृशी त्वया । निवेदयामि सुप्रीत्या तां स्त्रियं तादृशीं प्रभो ! ॥४६॥
उमा सा भिन्नरूपेण सञ्जाता कार्यसाधिनी । सरस्वती तथा लक्ष्मीर्द्विधा रूपा पुरा प्रभो ! ॥४७॥
पद्म कान्ताऽभवद्विष्णोस्तथा मम सरस्वती । तृतीयरूपा सा नोऽभूल्लोककार्यहितैषिणी ॥४८॥
दक्षस्य तनया याऽभूत् सती नाम्ना तु सा विभोः । सैवेदृशी भवेद् भार्या भवेद्धि हितकारिणी ॥४९॥
सा तपस्यति देवेश ! त्वदर्थं हि दृढव्रता । त्वां पतिं प्राप्तुकामा वै महातेजोवती सती ॥५०॥
दातुं गच्छ वरं तस्यै कृपां कुरु महेश्वर ! । तां विवाहय सुप्रीत्या वरं दत्त्वा च तादृशम् ॥५१॥
हरेर्मम च देवानामियं वाञ्छाऽस्ति शङ्कर ! । परिपूरय सद्दृष्ट्या पश्यामोत्सवमादरात् ॥५२॥
मङ्गलं परमं भूयात् त्रिलोकेषु सुखावहम् । सर्वज्वरो विनश्येद्धै सर्वेषां नात्र संशयः ॥५३॥

निर्देश करें ॥ ३८ ॥ यह उचित ही है कि जब मैं योगयुक्त हो जाऊँ तो वह योगिनी हो जाय । जब मैं कामासक्त हो जाऊँ तो वह उत्तम कामिनी बने ॥ ३९ ॥ वेदवेत्ता विद्वान् जिसे ज्योतीरूप सनातन शिव कहते हैं, जब मैं उस पर ब्रह्म का चिन्तन करूँ तो वह भी ब्रह्मचिन्ता में लीन रहे, मैं ऐसी स्त्री चाहता हूँ । किन्तु मेरे इस कार्य में जो विघ्न करेगी वह मेरी पत्नी न होगी ॥ ४०-४१ ॥ तुम ब्रह्मा, ये विष्णु तथा मैं रुद्र उस परमात्मा रुद्र के अंश से उत्पन्न हुआ हूँ, अतः हमलोगों को उनका चिन्तन उचित ही है ॥ ४२ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैं उन शिव के चिन्तन में निरत होकर बिना विवाह के भी रह सकता हूँ । अतः यदि आपलोग विवाह चाहते हैं तो मेरे अनुकूल चलने वाली स्त्री का पता लगावें ॥ ४३ ॥ और हे ब्रह्मन् ! विवाह में मेरी एक प्रतिज्ञा और है, उसे सुनिए । यदि उस स्त्री का मेरे वाक्य से विश्वास उठ जायेगा तो मैं उसका तत्क्षण त्याग कर दूँगा ॥ ४४ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार शिवजी द्वारा कहे गये वचन को सुनकर हम तथा विष्णु दोनों प्रसन्न हो गये । फिर मैंने हँसकर नम्रता से उन रुद्र से कहा—॥ ४५ ॥ हे महेश्वर ! हे ईश ! हे नाथ ! आप जैसी स्त्री खोज रहे हैं उस प्रकार की स्त्री को मैं प्रसन्नता से निवेदन करता हूँ ॥ ४६ ॥ आपकी महा-शक्ति उमा आपसे पृथक् होकर कार्य-साधन के लिए इस पृथ्वी पर अवतरित हुई है । उसके लक्ष्मी और सरस्वती दो रूप तो पहले से ही अवतरित हुए हैं ॥ ४७ ॥ जिसमें महालक्ष्मी तो विष्णु की कान्ता तथा सरस्वती मेरी कान्ता हुई हैं । उस भगवती का लोककल्याण के लिए तीसरा कोई रूप अब तक नहीं था ॥ ४८ ॥ जो हे विभो ! इस समय दक्षकन्या होकर सती नाम से अवतरित हुई है । वही आप की भार्या होगी, जिससे लोक का परम कल्याण होगा ॥ ४९ ॥ हे देवेश ! वह महा तेजस्विनी सती आपको पति रूप में प्राप्त करने की इच्छा से दृढव्रत हो आप के लिए तप करती है ॥ ५० ॥ हे महेश्वर ! उस सती के ऊपर आप कृपा कीजिए तथा उसे वरदान दीजिए, इस प्रकार उसे वर देकर प्रीतिपूर्वक विवाह कीजिए ॥ ५१ ॥ हे शङ्कर ! विष्णु की, मुझ ब्रह्मा की तथा सभी देवताओं की यही इच्छा है उसे पूरी कीजिए । जिससे हम लोग इस उत्सव को आदरपूर्वक देखें ॥ ५२ ॥ ऐसा करने से तीनों लोकों को सुख देने वाला महान् मङ्गल होगा । और सभी का शोक-क्लेश आदि ज्वर मिट जायेगा । इसमें सन्देह

अथवाऽस्मद्वचः शेषे वदन्तं मधुसूदनः। लीलाजाकृतिमीशानं भक्तवत्सलमच्युतः ॥५४॥

विष्णुरुवाच

देवदेव महादेव करुणाकर शङ्कर ! । यदुक्तं ब्रह्मणा सर्वं मदुक्तं तन्न संशयः ॥५५॥
तत्कुरुष्व महेशान ! कृपां कृत्वा ममोपरि । सनाथं कुरु सद् दृष्ट्या त्रिलोकं सुविवा_ताम्॥५६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुस्तूष्णीमास मुने सुधीः। तथा स्तुतिं विहस्याह स प्रभुर्भक्तवत्सलः ॥५७॥
ततस्त्वावां च सम्प्राप्य चाज्ञां स मुनिभिः सुरैः। अगच्छाव स्वेष्टदेशं सस्त्रीकौ परहर्षितौ ॥५८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे विष्णुब्रह्मकृतशिवप्रार्थनावर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

(नन्दाव्रत की समाप्ति पर दक्षकन्या को शिव द्वारा मनवाञ्छित फलप्राप्ति एवं शिव का दक्षगृह गमन)

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ता सर्वदेवैश्च कृता शम्भोर्नुतिः परा। शिवाच सा वरं प्राप्ता शृणु ह्यादरतो मुने ! ॥ १ ॥
अथो सती पुनः शुक्लपक्षेऽष्टम्यामुपोषिता। आश्विने मासि सर्वेशं पूजयामास भक्तितः ॥ २ ॥
इति नन्दाव्रते पूर्णे नवम्यां दिनभागतः। तस्यास्तु ध्यानमग्नायाः प्रत्यक्षमभवद्धरः ॥ ३ ॥
सर्वाङ्गसुन्दरो गौरः पञ्चवक्त्रस्त्रिलोचनः। चन्द्रभालः प्रसन्नात्मा शितिकण्ठश्चतुर्भुजः ॥ ४ ॥
त्रिशूलब्रह्मकवरा-भयधृग्भस्म-भास्वरः । स्वर्धुन्या विलसच्छीर्षः सकलाङ्गमनोहरः ॥ ५ ॥

नहीं ॥ ५३ ॥ अथवा हे मधुसूदन ! हे अच्युत ! मेरे कहने में जो त्रुटि रह गयी हो उसे अपनी लीला से रुद्ररूप धारण करने वाले इन महेश्वर से कहिए ॥ ५४ ॥

विष्णु बोले—हे देवाधिदेव, हे करुणाकर, हे महादेव ! हे शम्भो ! ब्रह्माजी ने जो कुछ कहा है, उसे मेरा ही कहना समझिए। इसमें संशय नहीं ॥ ५५ ॥ हे महेश्वर ! हमारे ऊपर कृपा कर विवाह कीजिए। और उस उमा से विवाह कर इस त्रिलोकी को अपनी दृष्टि से कृतकृत्य करें ॥ ५६ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवर्षि नारद ! ऐसा कह कर भगवान् विष्णु चुप हो गये। तब भक्तवत्सल भगवान् शिव ने हँस कर 'तथास्तु' कहा ॥ ५७ ॥ तदनन्तर हम लोग अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ शिव की आज्ञा पाकर देवताओं के सहित अपने-अपने स्थान को चले आये ॥ ५८ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में ब्रह्मा-विष्णु के द्वारा की गयी शिवप्रार्थना नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥

*

ब्रह्मा जी बोले—इस प्रकार सभी देवतागण शिव की प्रार्थना कर अपने-अपने स्थान को चले आये। अब शिवजी के द्वारा जिस प्रकार उमा ने वर प्राप्त किया उस कथा को हे नारद ! तुम मुझ से सुनो ॥१॥ इसके बाद वह सती आश्विन मास को शुक्लपक्ष की अष्टमी को उपवास कर भक्ति से शिव का पूजन करने लगी ॥ २ ॥ इस प्रकार नन्दाव्रत के पूर्ण हो जाने पर जब नवमी का कुछ दिन भाग शेष था, उस समय शिव के ध्यान में निमग्न हुई उन सती के सम्मुख शङ्कर जी प्रत्यक्ष रूप से प्रगट हुए ॥ ३ ॥ वे शिव सर्वाङ्ग सुन्दर, गौरवर्ण, पाँच मुख, तीन नेत्र, चन्द्रभाल, प्रसन्नात्मा नीलकण्ठ तथा चतुर्भुज रूप धारण किये हुए थे ॥ ४ ॥ त्रिशूल धारण करनेवाले, ब्रह्मादि देवताओं को अभय तथा

महालावण्यधामा च कोटिचन्द्रसमाननः । कोटिस्मरसमाकान्तिः सर्वथा स्त्रीप्रियाकृतिः ॥ ६ ॥
प्रत्यक्षतो हरं वीक्ष्य सती सेदृग्विधं प्रभुम् । ववन्दे चरणौ तस्य सुलज्जावनतानना ॥ ७ ॥
अथ प्राह महादेवः सतीं सद्व्रतधारिणीम् । तामिच्छन्नपि भार्यार्थे तपश्चर्याफलप्रदः ॥ ८ ॥

महादेव उवाच

दक्षनन्दिनि प्रीतोऽस्मि व्रतेनानेन सुव्रते ! । वरं वरय संदास्ये यत्र वाऽभिमतं भवेत् ॥ ९ ॥

ब्रह्मोवाच

जानन्नपीह तद्भावं महादेवो जगत्पतिः । जगौ वरं वृणीष्वेति तद्वाक्यश्रवणेच्छया ॥१०॥
सापि त्रपावशा युक्ता वक्तुं नो हृदि यत् स्थितम् । शशाक सा त्वभीष्टं यत्तल्लज्जाच्छादितं पुनः ॥११॥
प्रेममग्नाऽभवत्साति श्रुत्वा शिववचः प्रियम् । तज्ज्ञात्वा सुप्रसन्नोऽभूच्छङ्करो भक्तवत्सलः ॥१२॥
वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि प्राहेति स पुनर्द्रुतम् । सतीभक्तिवशः शम्भुरन्तर्यामी सतांगतिः ॥१३॥
अथ त्रपां स्वां सन्धाय यदा प्राह हरं सती । यथेष्टं देहि वरद ! वरमित्यनिवारकम् ॥१४॥
तदा वाक्यस्यावसानमनवेक्ष्य वृषध्वजः । भव त्वं मम भार्येति प्राह तां भक्तवत्सलः ॥१५॥
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य साभीष्टफलभावनम् । तूष्णीं तस्थौ प्रमुदिता वरं प्राप्य मनोगतम् ॥१६॥
सकामस्य हरस्याग्रे स्थिता सा चारुहासिनी । अकरोन्निजभावांश्च हावान् कामविवर्द्धनान् ॥१७॥
ततो भावान् समादाय शृङ्गाराख्यो रसस्तदा । तयोश्चित्ते विवेशाशु कला हावा यथोदितम् ॥१८॥
तत्प्रवेशात्तु देवर्षे ! लोकलीलानुसारिणीः । काऽप्यभिख्या तयोरासीच्चित्राचन्द्रमसोर्यथा ॥१९॥
रेजे सती हरं प्राप्य स्निग्धभिन्नाञ्जनप्रभा । चन्द्राभ्यासेऽभ्रलेखेव स्फटिकोज्ज्वलवर्ष्मणः ॥२०॥

वर देने वाले वे शिव भस्म से देदीप्यमान थे। उनके मस्तक पर गंगा जी विराज रही थीं तथा सम्पूर्ण अङ्ग से वे परम सुन्दर थे ॥ ५ ॥ उनका मुख करोड़ों चन्द्रमा के समान सुन्दर होने से वे करोड़ों कामदेव के समान कमनीय थे, उनका रूप स्त्रियों को मोहित करने वाला था ॥ ६ ॥ इस प्रकार का रूप धारण करने वाले मनोहर शिव को देख कर सती का शिर लज्जा से झुक गया। उन्होंने विनम्र हो उनके चरणों में प्रणाम किया ॥ ७ ॥ तपस्या के फल देने वाले शिव जी उनसे विवाह की इच्छा करते हुए भी नन्दा-व्रत के अनुष्ठान में तत्पर हुई उस सती से बोले ॥ ८ ॥

महादेवजी बोले—हे दक्षकन्ये ! हे सुन्दर व्रत का अनुष्ठान करनेवाली देवि ! मैं तुम्हारे इस व्रत से परम प्रसन्न हूँ। जो तुम्हारी इच्छा हो उस वर को माँगो। मैं देने के लिए उद्यत हूँ ॥ ९ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! यद्यपि जगत्पति शिवजी सती के अभिप्राय को जानते थे, फिर भी सम्भाषण की इच्छा से सती का वाक्य सुनने के लिए उन्होंने ऐसा कहा ॥ १० ॥ किन्तु सती लज्जा से युक्त होने के कारण अपना मनोगत अभिप्राय वाणी से कहने में समर्थ न हुईं। उन्होंने अपना अभीष्ट लज्जा से आच्छादित कर लिया ॥ ११ ॥ शिव के अतिशय प्रिय वचन सुनकर वे प्रेम में विभोर हो गयीं। भक्तवत्सल शङ्कर यह देखकर परम प्रसन्न हो गये ॥ १२ ॥ सज्जनों के शरण देने वाले अन्तर्यामी शिव सती के भक्ति के अधीन होकर 'वर माँगो, वर माँगो' ऐसा बारम्बार कहने लगे ॥ १३ ॥ लज्जा को धारण कर सती ने शिव से कहा—हे वरद ! आप की जो इच्छा हो वही वर दीजिए। आप का वर अमोघ है ॥ १४ ॥ अभी सती पूरा वाक्य कह भी न पाई थी कि भक्तवत्सल शिव ने कहा—तुम हमारी स्त्री बनो ॥ १५ ॥ शिव के द्वारा दिये गये अपने अभीष्ट मनोगत वरदान को प्राप्त कर शिवा प्रसन्न हो वहीं चुपचाप स्थित रहीं ॥ १६ ॥ और सकाम शिव के आगे मन्द-मन्द हँसती हुई सती काम को उद्दीपित करने वाले अनेक हाव-भाव प्रगट करने लगी ॥ १७ ॥ सती के उस हाव-भाव को स्वीकार कर शृङ्गार रस ने उन दोनों के चित्त में बड़ी शीघ्रता से प्रवेश किया ॥ १८ ॥ हे देवर्षे ! शृङ्गाररस के प्रवेश करते ही लोकलीलानुसारी शिव तथा सती के मन की चित्रा से युक्त चन्द्रमा के समान एक विचित्र अवस्था हो गयी ॥ १९ ॥ काले तथा चिकने अञ्जन के समान कान्तिवाली सती स्फटिकमणि के समान कान्ति वाले

अथ सा तमुवाचेदं हरं दाक्षायणी मुहुः । सुप्रसन्ना करौ बद्ध्वाऽऽनतका भक्तवत्सलम् ॥२१॥

सत्युवाच

देवदेव ! महादेव ! विवाहविधिना प्रभो ! । पितुर्मे गोचरीकृत्य मां गृहाण जगत्पते ! ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

एवं सतीवचः श्रुत्वा महेशो भक्तवत्सलः । तथाऽस्त्विति वचः प्राह निरीक्ष्य प्रेमतश्च ताम् ॥२३॥
दाक्षायण्यपि तं नत्वा शम्भुं विज्ञाप्य भक्तितः । प्राप्ताज्ञा मातुरभ्याशमगान्मोहमुदान्विता ॥२४॥
हरोऽपि हिमवत्प्रस्थं प्रविश्य च निजाश्रमम् । दाक्षायणीवियोगाद् वै कृच्छ्रध्यानपरोऽभवत् ॥२५॥
समाधाय मनः शम्भुर्लौकिकीं गतिमाश्रितः । चिन्तयामास देवर्षे ! मनसा मां वृषध्वजः ॥२६॥
ततः सञ्चिन्त्यमानोऽहं महेशेन त्रिशूलिना । पुरस्तात् प्राविशत् तूर्णं हरसिद्धिप्रचोदितः ॥२७॥
यत्रासौ हिमवत्प्रस्थे तद् वियोगी हरः स्थितः । सरस्वतीयुतस्तात ! तत्रैव समुपस्थितः ॥२८॥
सरस्वतीयुतं मां च देवर्षे ! वीक्ष्य स प्रभुः । उत्सुकः प्रेमबद्धश्च सत्या शम्भुरुवाच ह ॥२९॥

शम्भुरुवाच

अहं ब्रह्मन् स्वार्थपरः परिग्रहकृतौ च यत् । तदा स्वत्वमिव स्वार्थे प्रतिभाति ममाधुना ॥३०॥
अहमाराधितः सत्यादाक्षायण्याथ भक्तितः । तस्यै वरो मया दत्तो नन्दाव्रतप्रभावतः ॥३१॥
भर्ता भवेति च तया मत्तो ब्रह्मन् ! वरो वृतः । मम भार्या भवेत्युक्तं मया तुष्टेन सर्वथा ॥३२॥
अथावदत्तदा मां सा सती दाक्षायणी त्विति । पितुर्मे गोचरीकृत्य मां गृहाण जगत्पते ! ॥३३॥
तदप्यङ्गीकृतं ब्रह्मन् मया तद्भक्तितुष्टितः । सा गता भवनं मातुरहमत्रागतो विधे ! ॥३४॥
तस्मात्त्वं गच्छ भवनं दक्षस्य मम शासनात् । तां दक्षोऽपि यथा कन्यां दद्यान्मेऽरं तथा वद ॥३५॥

उन शिव को प्राप्त कर इस प्रकार शोभित हुई जैसे काले-काले बादल चन्द्रमा को प्राप्त कर शोभित होते हैं ॥ २० ॥ फिर दक्षकन्या सती ने हाथ जोड़कर विनम्र हो भक्तवत्सल भगवान् शिव से कहा ॥ २१ ॥

सती बोली—हे देवाधिदेव, हे महादेव ! हे जगत्पते ! आप मेरे पिता से सारा समाचार कह कर उनके सामने पाणिग्रहण संस्कार की विधि से मुझे स्वीकार कीजिए ॥ २२ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार सती के द्वारा प्रेमपूर्वक निवेदन करने के पश्चात् भक्तवत्सल भगवान् सदाशिव ने उसकी ओर देखते हुए 'तथास्तु' कहा ॥ २३ ॥ तदनन्तर दक्षपुत्री सती शिव को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर उनकी आज्ञा ले प्रसन्न हो अपनी माता के पास चली गयी ॥ २४ ॥ शिवजी भी अपने आश्रम में हिमालय पर्वत पर चले आये और वियोग से दुःखी हो सती का ध्यान करने लगे ॥ २५ ॥ मन को समाहित कर वृषध्वज शम्भु ने लौकिक गति को स्वीकार करते हुए मुझ ब्रह्मा का स्मरण किया ॥ २६ ॥ उन त्रिशूलधारी शिव के स्मरण करते ही शिव की सिद्धि की प्रेरणा से मैं शीघ्र ही उनके निकट वहाँ पहुँच गया ॥ २७ ॥ जहाँ हिमालय पर्वत पर सती-वियोग में दुःखी हो शिवजी बैठे थे, मैं वहीं सरस्वती के साथ पहुँच गया ॥ २८ ॥ तदनन्तर हे देवर्षे ! सरस्वती सहित मुझे देख कर शिवजी सती को प्राप्त करने के लिए उत्सुक तथा उनके प्रेम में बँध कर मुझ से बोले ॥ २९ ॥

शिवजी बोले—हे ब्रह्मन् ! मैं बड़ा ही स्वार्थी हूँ, जो विवाह करने के लिए आप को कष्ट दिया ॥ ३० ॥ दक्षपुत्री सती ने भक्तिपूर्वक मेरी आराधना की है। मैंने नन्दाव्रत के प्रभाव से सन्तुष्ट होकर उसे वरदान दिया है ॥ ३१ ॥ उस सती ने मुझ से वरदान माँगा कि आप सदाशिव ही मेरे पति हों, मैंने भी सन्तुष्ट होकर उससे कहा कि तुम मेरी भार्या बनो ॥ ३२ ॥ फिर दक्षकन्या सती ने मुझसे कहा कि, आप मेरे पिता के सम्मुख मुझे विवाह-विधि से स्वीकार करें ॥ ३३ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैंने उसकी भक्ति से सन्तुष्ट हो इसे भी स्वीकार कर लिया है। ऐसा वरदान प्राप्त कर वह तो अपनी माता के पास चली गयी और मैं उसे वरदान देकर यहाँ चला आया ॥ ३४ ॥ इसलिए हे ब्रह्मन् ! आप मेरी आज्ञा

सतीवियोगभङ्गः स्याद्यथा मे त्वं तथा कुरु । समाश्वासय तं दक्षं सर्वविद्याविशारदः ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युदीर्य महादेवः सकाशे मे प्रजापतेः । सरस्वतीं विलोक्याशु वियोगवशगोऽभवत् ॥३७॥
तेनाहमपि चाज्ञप्तः कृतकृत्यो मुदान्वितः । प्रावोचं चेति जगतां नाथं तं भक्तवत्सलम् ॥३८॥
यदात्थ भगवञ्शम्भो तद्विचार्य सुनिश्चितम् । देवानां मुख्यः स्वार्थो हि ममापि वृषभध्वज ! ॥३९॥
दक्षस्तुभ्यं सुतां स्वां च स्वयमेव प्रदास्यति । अहं चापि वदिष्यामि त्वद्वाक्यं तत्समक्षतः ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युदीर्य्य महादेवमहं सर्वेश्वरं प्रभुम् । अगमं दक्षनिलयं स्यन्दनेनातिवेगिना ॥४१॥

नारद उवाच

विधे प्राज्ञ महाभाग ! वद नो वदतां वर । सत्यै गृहागतायै स दक्षः किमकरोत्ततः ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

तपस्तप्त्वा वरं प्राप्य मनोऽभिलषितं सती । गृहं गत्वा पितुर्मातुः प्रणाममकरोत्तदा ॥४३॥
मात्रे पित्रेऽथ तत्सर्वं समाचख्यौ महेश्वरात् । वरप्राप्तिः स्वसख्या वै सत्यास्तुष्टात्तु भक्तितः ॥४४॥
माता पिता च वृत्तान्तं सर्वं श्रुत्वा सखीमुखात् । आनन्दं परमं लेभे चक्रे च परमोत्सवम् ॥४५॥
द्रव्यं ददौ द्विजातिभ्यो यथाभीष्टमुदारधीः । अन्येभ्यश्चान्धदीनेभ्यो वीरिणी च महामनाः ॥४६॥
वीरिणी तां समालिङ्ग्य स्वसुतां प्रीतिवर्द्धिनीम् । मूर्ध्न्युपाघ्राय मुदिता प्रशशंस मुहुर्मुहुः ॥४७॥
अथ दक्षः कियत्काले व्यतीते धर्मवित्तमः । चिन्तयामास देयेयं स्वसुता शम्भवे कथम् ॥४८॥

से दक्ष के पास शीघ्रता से जा कर ऐसी बात कहिए कि जिससे वे मुझे अपनी कन्या देना स्वीकार करें ॥ ३५ ॥ आप कोई ऐसा उपाय करें जिससे सती मुझे प्राप्त हो जावे । आप सभी विद्याओं में विशारद हैं, अतः इस बात के लिए आप दक्ष को अनुकूल कीजिए ॥ ३६ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार मुझे दक्ष के पास जाने की आज्ञा देकर वे शिवजी मेरे पास सरस्वती को देख कर सती के वियोग से आतुर हो उठे ॥ ३७ ॥ उनकी आज्ञा पाकर कृतकृत्य तथा प्रसन्न हुआ मैं (ब्रह्मा) उन भक्तवत्सल जगत्पति सदाशिव से कहने लगा ॥३८॥ हे भगवान् शम्भु ! आप जैसा कहते हैं वैसा मैंने भी विचार कर निश्चित कर लिया है । हे वृषध्वज ! इसमें देवताओं का तथा मेरा भी मुख्य हित है ॥ ३९ ॥ वह दक्ष अपनी कन्या स्वयमेव आप को प्रदान करेंगे । और मैं भी आप का यह सन्देश दक्ष से जाकर कहूँगा ॥ ४० ॥

पुनः ब्रह्माजी बोले–हे नारद ! इस प्रकार मैं सर्वेश्वर महादेव शम्भु से निवेदन कर अत्यन्त वेग युक्त रथ पर सवार हो दक्ष के घर गया ॥ ४१ ॥

तब नारद जी बोले—हे विधे ! हे वक्ताओं में श्रेष्ठ महाप्राज्ञ ! ब्रह्मन् ! जब सती तपस्या के उपरान्त अपने घर लौट आयी तो दक्ष ने फिर उसका क्या किया ? ॥ ४२ ॥

ब्रह्माजी बोले—सती तपस्या के अनन्तर मनोऽभिलषित वर प्राप्त कर घर चली गयी । उसने अपने माता-पिता को प्रणाम किया ॥ ४३ ॥ फिर सती ने भक्ति से शिव को प्रसन्न कर जिस प्रकार तपस्या से महादेवजी के द्वारा वर प्राप्त किया वह सब समाचार सखियों से अपने माता-पिता के पास कहला दिया ॥ ४४ ॥ सती के माता-पिता ने जब उसकी सखियों से यह समाचार सुना तो वे परम प्रसन्न हुए । और आनन्द में निमग्न हो बहुत बड़ा उत्सव किया ॥ ४५ ॥ महामनस्विनी उस वीरिणी ने भी बड़ी उदारतापूर्वक ब्राह्मणों को तथा अन्धे एवं दीनों को भी उनकी रुचि के अनुसार यथेष्ट धन दिया ॥ ४६ ॥ वीरिणी ने प्रीति को बढ़ाने वाली अपनी पुत्री का आलिङ्गन किया । उसका मस्तक सूँघ कर वारम्वार उसकी प्रशंसा करने लगी ॥ ४७ ॥ धर्मात्मा दक्ष कुछ काल बीतने के पश्चात् विचार

आगतोऽपि महादेवः प्रसन्नः स जगाम ह। पुनरेव कथं सोऽपि सुतार्थेऽत्रागमिष्यति ॥४९॥
प्रस्थाप्योऽथ मया कश्चिच्छम्भोर्निकटमञ्जसा। नैतद्योग्यं न गृह्णीयाद्यद्येवं विफलार्दना ॥५०॥
अथवा पूजयिष्यामि तमेव वृषभध्वजम्। मदीयतनयाभक्त्या स्वयमेव यथा भवेत् ॥५१॥
तयैव पूजितः सोऽपि वाञ्छत्यार्यप्रयत्नतः। शम्भुर्भवतु मद्भर्तेत्येवं दत्तवरेण तत् ॥५२॥
इति चिन्तयतस्तस्य दक्षस्य पुरतोऽन्वहम्। उपस्थितोऽहं सहसा सरस्वत्यन्वितस्तदा ॥५३॥
मां दृष्ट्वा पितरं दक्षः प्रणम्यावनतः स्थितः। आसनं च ददौ मह्यं स्वभवाय यथोचितम् ॥५४॥
ततो मां सर्वलोकेशं तत्रागमनकारणम्। दक्षः पप्रच्छ स क्षिप्रं चिन्ताविष्टोऽपि हर्षितः ॥५५॥

दक्ष उवाच

तवात्रागमने हेतुः कः प्रवेशे स सृष्टिकृत्। ममोपरि सुप्रसादं कृत्वाऽऽचक्ष्व जगद्गुरो ! ॥५६॥
पुत्रस्नेहात् कार्यवशादथवा लोककारक !। ममाश्रमं समायातो हृष्टस्य तव दर्शनात् ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

इति पृष्टः स्वपुत्रेण दक्षेण मुनिसत्तम !। विहसन्नब्रुवं वाक्यं मोदयंस्तं प्रजापतिम् ॥५८॥

ब्रह्मोवाच

शृणु दक्ष ! यदर्थं त्वत्समीपमहमागतः। त्वत्तो कस्य हितं मेऽपि भवतोऽपि तदीप्सितम् ॥५९॥
तव पुत्री समाराध्य महादेवं जगत्पतिम्। यो वरः प्रार्थितस्तस्य समयोऽयमुपागतः ॥६०॥
शम्भुना तव पुत्र्यर्थं त्वत्सकाशमहं ध्रुवम्। प्रस्थापितोऽस्मि यत्कृत्यं श्रेयस्तदवधारय ॥६१॥

करने लगे कि, किस प्रकार इस कन्या को शिवजी को प्रदान करें ॥ ४८ ॥ जब महादेव जी प्रसन्न होकर इस कन्या को वरदान देकर चले गये तो फिर वे इस कन्या को लेने के लिए किस प्रकार यहाँ आवेंगे ॥४९॥ यदि मैं किसी प्रकार इस कन्या को किसी के द्वारा शिव के सन्निकट भेजूँ और यदि वे स्वीकार न करें तो मेरा भेजना निष्फल होगा। और मेरे लिए ऐसा करना उचित भी नहीं है ॥ ५० ॥ अथवा मैं स्वयं उन सदाशिव का पूजन करूँ, जिससे वे मेरी कन्या की भक्ति से प्रसन्न हो स्वयं इसे ग्रहण कर इसके पति बनें ॥५१॥ क्योंकि जब उसने स्वयं शिव को पति प्राप्त करने की इच्छा से उनका पूजन किया और उन्होंने इस प्रकार का वरदान भी इसे दिया है ॥ ५२ ॥ इस प्रकार जब दक्ष अपने मनमें विचार कर रहे थे तभी मैं सरस्वती के साथ जाकर सहसा उनके आगे उपस्थित हो गया ॥ ५३ ॥ दक्ष ने मुझ अपने पिता को वहाँ आया देख कर प्रणाम किया और नम्र होकर खड़े हो गये। तदनन्तर स्वभाव से मुझे बैठने के लिए यथोचित आसन दिया ॥ ५४ ॥ चिन्ता से व्याकुल होने पर भी हर्षित हुए उन दक्ष ने सर्वलोकेश्वर मुझ ब्रह्मा के आने का कारण पूछा ॥ ५५ ॥

दक्ष बोले—हे जगद्गुरो ! आप तो सृष्टि करने वाले हैं। मेरे ऊपर प्रसन्न होकर आप किस निमित्त पधारे ? आप अपने आगमन का प्रयोजन मुझ से कहिए ॥ ५६ ॥ हे लोककारक ! आप मुझ पुत्र के स्नेह वश यहाँ पधारे हैं ? अथवा किसी कार्यवश पधारे हैं। इस आश्रम में आप के आने का क्या कारण है। आज आप के दर्शन से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ५७ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिसत्तम ! अपने पुत्र दक्ष द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर उन्हें प्रसन्न करता हुआ मैं हँस कर कहने लगा ॥ ५८ ॥

पुनः ब्रह्माजी बोले—हे दक्ष ! मैं जिस लिए तुम्हारे पास आया हूँ वह सुनो। जिसके करने से तुम्हारा तथा मेरा दोनों का अभीष्ट सिद्ध होगा ॥ ५९ ॥ तुम्हारी पुत्री ने जगत्पति महादेव की आराधना कर जो वर माँगा है, उसके लिए अब निश्चित समय उपस्थित हो चुका है ॥ ६० ॥ शम्भु ने तुम्हारी पुत्री को प्राप्त करने के लिए मुझे तुम्हारे पास भेजा है, अब तुम्हारे लिए जो कल्याणकारी कर्त्तव्य है उस

वरं दत्त्वा गतो रुद्रस्तावत् प्रभृति शङ्करः। त्वत्सुताया वियोगेन न शर्म लभतेऽञ्जसा ॥६२॥
अलब्धच्छिद्रमदनो जिगाय गिरिशं न यम्। सर्वैः पुष्पमयैर्बाणैर्यत्नं कृत्वाऽपि भूरिशः ॥६३॥
स कामबाणविद्धोऽपि परित्यज्यात्मचिन्तनम्। सतीं विचिन्तयन्नास्ते व्याकुलः प्राकृतो यथा ॥६४॥
विस्मृत्य प्रश्रुतां वाणीं गणाग्रे विप्रयोगतः। क्व सतीत्येवममितो भाषते निकृतावपि ॥६५॥
मया यद्वाञ्छितं पूर्वं त्वया च मदनेन च। मरीच्याद्यैर्मुनिवरैस्तत्सिद्धमधुना सुत ! ॥६६॥
त्वत्पुत्र्याराधितः शम्भुः सोऽपि तस्या विचिन्तनात्। अनुशोधयितुं प्रेप्सुर्वर्त्तते हिमवद्गिरौ ॥६७॥
यथा नानाविधैर्भावैः सत्त्वात्तेन व्रतेन च। शम्भुराराधितस्तेन तथैवाराध्यते सती ॥६८॥
तस्मात्तु दक्षतनयां शम्भ्वर्थं परिकल्पिताम्। तस्मै देह्यविलम्बेन कृता ते कृतकृत्यता ॥६९॥
अहं तमानयिष्यामि नारदेन त्वदालयम्। तस्मै त्वमेनां संयच्छ तदर्थे परिकल्पिताम् ॥७०॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा मम वचश्चेति स मे पुत्रोऽतिहर्षितः। एवमेवेति मां दक्ष उवाच परिहर्षितः ॥७१॥
ततः सोऽहं मुने ! तत्रागममत्यन्तहर्षितः। उत्सुको लोकनिरतो गिरिशो यत्र संस्थितः ॥७२॥
गते नारद दक्षोऽपि सदारतनयो ह्यपि। अभवत् पूर्णकामस्तु पीयूषैरिव पूरितः ॥७३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सतीवरलाभ-
वर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

पर विचार करो ॥ ६१ ॥ जब से शङ्कर जी तुम्हारी पुत्री को वर देकर गये हैं, तब से उन्हें तुम्हारी पुत्री के वियोग के कारण चैन नहीं मिलता ॥ ६२ ॥ जिन्हें कामदेव अपने पुष्प के बाणों से अनेक यत्न कर के भी जीत न सका और जिनका कोई भेद न प्राप्त कर सका ॥ ६३ ॥ वे शिव अब कामबाण से विद्ध होकर अपना आत्मचिन्तन त्याग कर चुके हैं। और सती की चिन्ता करते-करते प्राकृत मनुष्य के समान व्याकुल हो रहे हैं ॥ ६४ ॥ वे सुनी हुई वाणी को भी भूल जाते हैं तथा गणों के आगे ही 'हाय सती कहाँ हो ?' इस प्रकार की वाणी निर्लज्जता से कहते हैं ॥६५॥ मैंने, तुमने, काम ने तथा मरीच्यादि ऋषियों ने पहले जो चाहा था, वह कार्य इस समय सिद्ध हो गया ॥ ६६ ॥ तुम्हारी पुत्री ने जो शिवाराधन किया इससे वे भी उसी की चिन्ता करते हुए, उसे प्राप्त करने के लिए हिमालय पर्वत पर स्थित हैं ॥ ६७ ॥ जिस प्रकार सती ने नाना द्रव्यों से तथा नन्दाव्रत से सत्त्वगुण सम्पन्न हो शिव की आराधना की थी उसी प्रकार इस समय शिव भी सती की आराधना कर रहे हैं ॥ ६८ ॥ इसलिए हे दक्ष ! तुम अपनी कन्या को, जो शिव के लिए ही अवतरित हुई है, उसे अविलम्ब शिव को प्रदान करो, ऐसा करने से ही तुम्हारा जन्म सफल होगा ॥ ६९ ॥ मैं उन्हें नारद के साथ तुम्हारे घर पर लाऊँगा। और उनके लिए ही आविर्भूत इस कन्या को तुम इन्हें प्रदान करो ॥७०॥

पुनः ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार के मेरे वचन सुन कर दक्ष प्रसन्न हो मुझसे बोले—ठीक है, मैं वैसा ही करूँगा ॥ ७१ ॥ तदनन्तर हे मुने ! मैं अत्यन्त हर्ष के साथ वहाँ आया, जहाँ लोकक्रिया में रत शिव जी निवास करते थे ॥ ७२ ॥ हे नारद ! मेरे चले जाने के पीछे सकुटुम्ब दक्ष भी पूर्णकाम हो गये, जिस प्रकार लोग अमृत प्राप्त कर पूर्णकाम हो जाते हैं ॥ ७३ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय सतीखण्ड में सतीवरलाभवर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥

*

अष्टादशोऽध्यायः

(मरीच्यादि ऋषि एवं विष्णु आदि देवों के साथ सतीवरण निमित्त
शिव का दक्षगृह गमन एवं सतीविवाह वर्णन)

नारद उवाच

रुद्रपार्श्वे त्वयि गते किमभूच्चरितं ततः । का वार्ता ह्यभवत्तात ! किं चकार हरः स्वयम् ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

अथाऽहं शिवमानेतुं प्रसन्नः परमेश्वरम् । आसदं हि महादेवं हिमवद्गिरिसंस्थितम् ॥ २ ॥
मां वीक्ष्य लोकस्रष्टारमायान्तं वृषभध्वजः । मनसा संशयं चक्रे सतीप्राप्तौ मुहुर्मुहुः ॥ ३ ॥
अथ प्रीत्या हरो लोके गतिमाश्रित्य लीलया । सत्या भक्त्या च मां क्षिप्रमुवाच प्राकृतो यथा ॥ ४ ॥

ईश्वर उवाच

किमकार्षीत् सुरज्येष्ठ ! सत्यर्थे त्वत्सुतः स माम् । कथयस्व यथा स्वान्तं न दीर्येन्मन्मथेन हि ॥ ५ ॥
धावमानो विप्रयोगोमामेव च सतीं प्रति । अभिहन्ति सुरज्येष्ठ ! त्यक्त्वाऽन्यां प्राणधारिणीम् ॥ ६ ॥
सतीति सततं ब्रह्मन् ! वद कार्यं करोम्यहम् । अभेदान्मम सा प्राप्या तद्विधे क्रियतां तथा ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच

इति रुद्रोक्तवचनं लोकाचारसुगर्भितम् । श्रुत्वाऽहं नारदमुने ! सान्त्वयन्नगदं शिवम् ॥ ८ ॥

ब्रह्मोवाच

सत्यर्थं यन्मम सुतो वदति स्म वृषध्वज ! । तच्छृणुष्व निजासाध्यं सिद्धमित्यवधारय ॥ ९ ॥
देया तस्मै मया पुत्री तदर्थं परिकल्पिता । ममाऽभीष्टमिदं कार्यं त्वद्वाक्यादधिकं पुनः ॥१०॥
मत्पुत्र्याऽऽराधितः शम्भुरेतदर्थं स्वयं पुनः । सोऽप्यन्विष्यति मां यस्मात्तदा देया मया हरे ! ॥११॥

नारद जी बोले—हे ब्रह्मन् ! रुद्र के पास आप के चले जाने पर फिर क्या चरित्र तथा क्या बात हुई । हे तात ! फिर शिवजी ने क्या किया ? इसे कहिए ॥ १ ॥

ब्रह्माजी बोले—इसके अनन्तर मैं प्रसन्नता से शिव को लाने के लिए हिमालय पर्वत पर गया ॥२॥ वृषभध्वज शिव जी मुझ लोककर्त्ता ब्रह्मा को आते हुए देख कर अपने मन में सती की प्राप्ति के विषय में बारम्वार संशय करने लगे ॥ ३ ॥ शिवजी लीला से तथा सती की भक्ति से लोकगति का आश्रय लेकर प्राकृत मनुष्य के समान मुझसे कहने लगे ॥ ४ ॥

ईश्वर बोले—हे सुरज्येष्ठ ! तुम्हारे पुत्र दक्ष ने सती को मुझे देने के विषय में क्या किया ? आप उनसे कहिए जिससे कामदेव मेरा हृदय विदीर्ण न करे ॥५॥ हे सुरज्येष्ठ ! सतीविषयक यह विप्रयोग अन्य प्राणधारियों को छोड़ कर दौड़ता हुआ मुझे ही मारना चाहता है ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! उस सती से जाकर मेरी बात कहो । वह सती मुझसे अभिन्न है, अतः उसकी प्राप्ति के लिए तुम यत्न करो । अथवा मुझे वह जिस प्रयत्न से प्राप्त हो उस उपाय को बताओ, जिससे मैं उसे शीघ्र करूँ ॥ ७ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! लोकाचार से परिपूर्ण रुद्र के वचन को सुन कर मैंने उन्हें बहुत समझाया और फिर उनसे कहने लगा ॥ ८ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे वृषध्वज ! सती के विषय में मेरा पुत्र जो कहता है उसे सुनिए । उस अपने असाध्य कार्य को भी आप सिद्ध हुआ ही समझिए ॥९॥ उस दक्ष ने कहा कि, हे ब्रह्मन् ! मैंने इस पुत्री को शङ्कर को देने का सङ्कल्प कर लिया है, अतः मैं उन्हें इसे अवश्य दूंगा । यह तो मेरा अभीष्ट था, उसमें भी अब आप की आज्ञा हो चुकी अतः विशेष रूप से दूंगा ॥ १० ॥ मेरी पुत्री ने इसीलिए उनकी आराधना की है, और वे भी इसे प्राप्त करने के लिए मुझसे कहला रहे हैं । इसलिए मैं शिव को अवश्य

शुभे लग्ने सुमुहूर्ते समागच्छतु सोऽन्तिकम् । तदा दास्यामि तनयां भिक्षार्थं शम्भवे विधे!॥१२॥
इत्युवाच स मां दक्षस्तस्मात्त्वं वृषभध्वज ! । शुभे मुहूर्ते तद्वेश्म गच्छ तामानयस्व च ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा मम वचो लौकिकीं गतिमाश्रितः । उवाच विहसन्रुद्रो मुने मां भक्तवत्सलः ॥१४॥

रुद्र उवाच

गमिष्ये भवता सार्द्धं नारदेन च तद्गृहम् । अहमेव जगत्स्रष्टस्तस्मात्त्वं नारदं स्मर ॥१५॥
मरीच्यादीन् स्वपुत्रांश्च मानसानपि संस्मर । तैः सार्द्धं दक्षनिलयं गमिष्ये सगणो विधे ! ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

इत्याज्ञप्तोऽहमीशेन लोकाचारपरेण ह । संस्मरं नारदं त्वां च मरीच्यादीन् सुतांस्तथा ॥१७॥
ततः समागताः सर्वे मानसास्तनयास्त्वया । मम स्मरणमात्रेण हृष्टास्ते द्रुतमादरात् ॥१८॥
विष्णुः समागतस्तूर्णं स्मृतो रुद्रेण शैवराट् । सस्वसैन्यः कमलया गरुडारूढ एव च ॥१९॥
अथ चैत्रासिते पक्षे नक्षत्रे भगदैवते । त्रयोदश्यां दिने भानौ निर्गच्छत्स महेश्वरः ॥२०॥
सर्वैः सुरगणैः सार्द्धं ब्रह्मविष्णुपुरःसरैः । तथा तैर्मुनिभिर्गच्छन् स बभौ पथि शङ्करः ॥२१॥
मार्गे समुत्सवो जातो देवादीनां च गच्छताम् । तथा हरगणानां च सानन्दमनसामति ॥२२॥
गज-गो-व्याघ्र-सर्पाश्च जटा-चन्द्रकला तथा । जग्मुः सर्वे भूषणत्वं यथायोग्यं शिवेच्छया ॥२३॥
ततः क्षणेन बलिना बलीवर्देन वेगिना । सविष्णुप्रमुखः प्रीत्या प्राप दक्षालयं हरः ॥२४॥
ततो दक्षो विनीतात्मा संप्रहृष्टतनूरुहः । प्रययौ सम्मुखं तस्य संयुक्तः सकलैर्निजैः ॥२५॥
सर्वे सुरगणास्तत्र स्वयं दक्षेण सत्कृताः । पार्श्वे श्रेष्ठं च मुनिभिरुपविष्टा यथाक्रमम् ॥२६॥

प्रदान करूँगा ॥ ११ ॥ हे विधे ! अब तो शुभ लग्न तथा शुभ मुहूर्त्त में मेरे पास आवें जिससे मैं उन्हें भिक्षा रूप में अपनी कन्या उन्हें प्रदान करूँ ॥ १२ ॥ हे वृषभध्वज ! दक्ष ने मुझसे यही कहा है, अतः आप शुभ मुहूर्त्त में दक्ष के घर जाइए और उनकी कन्या लाइए ॥ १३ ॥

पुनः ब्रह्मा बोले—हे मुने ! मेरे इन वचनों को सुन कर भक्तवत्सल रुद्र लौकिकगति का आश्रय ले हँसकर मुझसे बोले—॥ १४ ॥

रुद्र बोले—हे ब्रह्मन् ! मैं तुम्हारे तथा नारद के साथ दक्ष के घर चलूँगा। इसलिए हे जगत्स्रष्टा ब्रह्मा ! तुम नारद का स्मरण करो ॥ १५ ॥ और अपने मानसपुत्र मरीचि आदि का भी स्मरण करो, मैं अपने गणों के सहित उन मानसपुत्रों के साथ दक्ष के घर चलूँगा ॥ १६ ॥

ब्रह्माजी बोले—जब लोकाचारपरायण शिव ने मुझे इस प्रकार आज्ञा दी तो मैंने तत्क्षण नारद तथा अपने मानसपुत्र मरीचि आदि का स्मरण किया ॥ १७ ॥ फिर मेरे स्मरण करते ही वे सभी मानस-पुत्र तुम नारद के साथ बड़ी प्रसन्नता से शीघ्रतापूर्वक सादर उपस्थित हो गये ॥ १८ ॥ इधर रुद्र ने महा शैव विष्णु का स्मरण किया, जिससे लक्ष्मी के साथ गरुडासन पर आरूढ़ हो वे विष्णु शीघ्र ही ससैन्य वहाँ आ पहुँचे ॥ १९ ॥ चैत्र शुक्ल पक्ष त्रयोदशी रविवार पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में शिवजी ने यात्रा की ॥ २० ॥ ब्रह्मा, विष्णु आदि सम्पूर्ण देवों तथा मुनियों के साथ मार्ग में जाते हुए शिव जी अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥२१॥ जिस समय शिवगण तथा महर्षिगण आनन्दपूर्वक यात्रा कर रहे थे, उस समय मार्ग में नाना प्रकार के उत्सव होने लगे ॥२२॥ शिवजी की इच्छा से हाथी, गौ, व्याघ्र, सर्प, जटा एवं चन्द्रकलाएँ यथायोग्य आभूषण के रूप में हो गये ॥ २३ ॥ इस प्रकार उत्सव करते हुए वेगवान् बलीवर्द पर सवार हुए शिवजी विष्णु आदि देवताओं के सहित दक्ष के घर पहुँच गये ॥ २४ ॥ इधर विनीतात्मा दक्ष ने भी बड़ी प्रसन्नता के साथ अपने सहचरों सहित रुद्र का स्वागत किया ॥ २५ ॥ दक्ष ने सभी देवताओं का

परिवार्याखिलान् देवान् गणांश्च मुनिभिर्यथा । दक्षः समानयामास गृहाभ्यन्तरतः शिवम् ॥२७॥
अथ दक्षः प्रसन्नात्मा स्वयं सर्वेश्वरं हरम् । समानर्च विधानेन दत्त्वाऽऽसनमनुत्तमम् ॥२८॥
ततो विष्णुं च मां विप्रान् सुरान् सर्वान् गणांस्तथा । पूजयामास सद्भक्त्या यथोचितविधानतः ॥२९॥
कृत्वा यथोचितां पूजां तेषां पूज्यादिभिस्तथा । चकार संविदं दक्षो मुनिभिर्मानसैः पुनः ॥३०॥
ततो मां पितरं प्राह दक्षः प्रीत्या हि मत्सुतः । प्रणिपत्य त्वया कर्म कार्यं वैवाहिकं विभो ! ॥३१॥
बाढमित्यहमप्युक्त्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना । समुत्थाय ततोऽकार्यं तत्कार्यमखिलं तथा ॥३२॥
ततः शुभे मुहूर्ते हि लग्ने ग्रहबलान्विते । सतीं निजसुतां दक्षो ददौ हर्षेण शम्भवे ॥३३॥
उद्वाहविधिना सोऽपि पाणिं जग्राह हर्षितः । दाक्षायण्या वरतनोस्तदानीं वृषभध्वजः ॥३४॥
अहं हरिस्त्वदाद्या वै मुनयश्च सुरा गणाः । नेमुः सर्वे संस्तुतिभिस्तोषयामासुरीश्वरम् ॥३५॥
समुत्सवो महानासीन् नृत्यगानपुरःसरः । आनन्दं परमं जग्मुः सर्वे मुनिगणाः सुराः ॥३६॥
कन्यां दत्त्वा कृतार्थोऽभूत्तदा दक्षो हि मत्सुतः । शिवाशिवौ प्रसन्नौ च निखिलं मङ्गलालयम् ॥३७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे
कन्यादानवर्णनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

यथोचित सत्कार किया और वे मुनियों के साथ यथाक्रम शिवजी के पास बैठ गये ॥ २६ ॥ मुनियों के साथ सभी देवताओं से घिरे हुए शिवजी को दक्ष अपने घर के भीतर ले गये ॥ २७ ॥ प्रसन्न हुए दक्ष ने स्वयं सर्वेश्वर शिव को आसन पर बैठा कर विधान से उनकी पूजा की ॥ २८ ॥ उन्होंने विष्णु की, मेरी, तदनन्तर सभी देवताओं की भक्तिपूर्वक यथोचित विधान से पूजा की ॥ २९ ॥

इस प्रकार पूजा के योग्य वस्तुओं से सभी देवताओं की यथोचित पूजा करने के अनन्तर मानस मुनियों के साथ मन्त्रणा करने लगे ॥ ३० ॥ मेरे पुत्र दक्ष ने प्रसन्नतापूर्वक अपने पिता मुझ ब्रह्मा को प्रणाम कर कहा—हे प्रभो ! आप ही वैवाहिक कार्यक्रम कीजिए ॥ ३१ ॥ फिर तो मैं बहुत प्रसन्नता से 'अच्छा ऐसा ही हो' ऐसा कह कर उठा और विवाह का सारा कृत्य करने में तत्पर हो गया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर शुभ मुहूर्त्त में और उत्तम ग्रह के बल से युक्त लग्न में दक्ष ने बड़ी प्रसन्नता से अपनी कन्या सती का विवाह शिवजी के साथ कर दिया ॥ ३३ ॥ शिवजी ने भी परमसुन्दरी दक्षकन्या सती का विवाह-विधि से पाणिग्रहण किया ॥ ३४ ॥ उस समय मैंने, विष्णु ने, मुनियों तथा देवताओं ने उन्हें नमस्कार कर अनेक प्रकार की स्तुतियों से उन महादेवजी को सन्तुष्ट किया ॥ ३५ ॥ शिवजी के विवाह में नाचने-गाने के साथ अनेक प्रकार के महान् उत्सव हुए। और सम्पूर्ण देवता तथा मुनिगण परमानन्दित हुए ॥ ३६ ॥ मेरे पुत्र दक्ष इस प्रकार शिवजी को कन्यादान देकर परम कृतकृत्य हुए। शिवा और शिव परम प्रसन्न हो गये, जिससे सब-कुछ मङ्गलमय हो गये ॥ ३७ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में
कन्यादानवर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥

*

एकोनविंशोऽध्यायः

(सती-शिव के विवाह में सती को देखकर ब्रह्मा का मोहित होना एवं शिव को ब्रह्मा के वध में प्रवृत्ति तथा विष्णु के कहने पर निवृत्ति)

ब्रह्मोवाच

कृत्वा दक्षः सुतादानं यौतुकं विविधं ददौ । हराय सुप्रसन्नश्च द्विजेभ्यो विविधं धनम् ॥ १ ॥
अथ शम्भुमुपागत्य समुत्थाय कृताञ्जलिः । सार्द्धं कमलया चेदमुवाच गरुडध्वजः ॥ २ ॥

विष्णुरुवाच

देवदेव महादेव ! करुणासागर प्रभो ! । त्वं पिता जगतां तात सती माताखिलस्य च ॥ ३ ॥
युवां लीलावतारौ वै सतां क्षेमाय सर्वदा । खलानां निग्रहार्थाय श्रुतिरेषा सनातनी ॥ ४ ॥
स्निग्ध-नीलाञ्जनश्याम-शोभया शोभसे हर ! । दाक्षायण्या यथा चाऽहं प्रतिलोमेन पद्मया ॥ ५ ॥
देवानां वा नृणां रक्षां कुरु सत्याऽनया सताम् । संसारसारिणां शम्भो मङ्गलं सर्वदा तथा ॥ ६ ॥
य एनां साभिलाषो वै दृष्ट्वा श्रुत्वाऽथवा भवेत् । तं हन्याः सर्वभूतेश ! विज्ञप्तिरिति मे प्रभो ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचो विष्णोर्विहस्य परमेश्वरः । एवमस्त्विति सर्वज्ञः प्रोवाच मधुसूदनम् ॥ ८ ॥
स्वस्थानं हरिरागत्य स्थित आसीन्मुनीश्वर ! । उत्सवं कारयामास जुगोप चरितं च तत् ॥ ९ ॥
अहं देवीं समागत्य गृह्योक्तविधिनाऽखिलम् । अग्निकार्यं यथोद्दिष्टमकार्षं च सुविस्तरम् ॥१०॥
ततः शिवा शिवश्चैव यथाविधि प्रहृष्टवत् । अग्नेः प्रदक्षिणं चक्रे मदाचार्यद्विजाज्ञया ॥११॥
तदा महोत्सवस्तत्राऽद्भुतोऽभूद् द्विजसत्तम ! । सर्वेषां सुखदं वाद्यं गीतनृत्यपुरःसरम् ॥१२॥
तदानीमद्भुतं तत्र चरितं समभूदति । सुविस्मयकरं तात ! तच्छृणु त्वं वदामि ते ॥१३॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! इस प्रकार दक्ष ने प्रसन्नतापूर्वक कन्यादान देकर महादेवजी को नाना प्रकार के यौतुक (दहेज) तथा ब्राह्मणों को बहुत से धन का दान किया ॥ १ ॥ लक्ष्मीसहित विष्णु स्वयं हाथ जोड़कर शिव के समीप आकर बोले ॥ २ ॥

विष्णु बोले—हे देवों के देव ! हे महादेव ! हे करुणासागर प्रभो ! आप इस संसार के पिता तथा यह सती अखिल संसार की माता हैं ॥ ३ ॥ आप दोनों ही सज्जनों के कल्याण के लिए तथा दुष्टों के निग्रह निमित्त अपनी लीला से अवतार धारण करते हैं, यह सनातन श्रुति है ॥ ४ ॥ हे हर ! आप चिकने तथा नीले अञ्जन के समान शोभावाली इस कन्या से इस प्रकार शोभित हो रहे हैं, जिस प्रकार गौरी लक्ष्मी से युक्त काले वर्णवाला मैं शोभित हो रहा हूँ ॥ ५ ॥ आप इस सती के साथ रहकर देवताओं तथा सज्जन मनुष्यों की रक्षा करें। जिससे संसारी जनों का सर्वदा कल्याण होता रहे ॥ ६ ॥ हे सर्वभूतेश ! हे प्रभो ! मेरी एक विज्ञप्ति है कि जो इन सती की ओर साभिलाष देखे तथा सुने उसका वध कीजिए ॥ ७ ॥

ब्रह्माजी बोले—परमेश्वर सर्वज्ञ शिवजी ने इस प्रकार विष्णु के वचन सुनकर हँसते हुए 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) ऐसा कहा ॥ ८ ॥ हे मुनीश्वर ! विष्णु अपने स्थान पर आकर स्थित हो गये। उन्होंने विविध उत्सव किये किन्तु शिवचरित्र को गुप्त ही रखा ॥ ९ ॥ इधर मैं भी देवी के पास आकर गृह्यसूत्रों में कही गयी विधि के अनुसार विस्तारपूर्वक अग्निकार्य करने लगा ॥ १० ॥ उसके पीछे मुझ ब्राह्मण आचार्य की आज्ञा से शिवा और शिव ने प्रसन्नतापूर्वक यथाविधि अग्नि की प्रदक्षिणा की ॥ ११ ॥ हे द्विजसत्तम नारद ! उस समय सभी को सुख देनेवाले बाजे, गाने तथा नृत्य से युक्त महान् उत्सव होने लगे ॥ १२ ॥ हे तात ! उस समय सबको विस्मित करनेवाला एक अद्भुत चरित्र हुआ। उसे मैं कहता हूँ, तुम सुनो ॥ १३ ॥

दुर्ज्ञेया शाम्भवी माया तया सम्मोहितं जगत् । सचराचरमत्यन्तं सदेवासुरमानुषम् ॥१४॥
योऽहं शम्भुं मोहयितुं पुरेच्छं कपटेन ह । मां च तं शङ्करस्तात मोहयामास लीलया ॥१५॥
इच्छेत् परापकारं यः स तस्यैव भवेद् ध्रुवम् । इति मत्वाऽपकारं नो कुर्यादन्यस्य पूरुषः ॥१६॥
प्रदक्षिणां प्रकुर्वन्त्या वह्नेः सत्याः पदद्वयम् । आविर्बभूव वसनात्तदद्राक्षमहं मुने ! ॥१७॥
मदनाविष्टचेताश्च भूत्वाङ्गानि व्यलोकयम् । अहं सत्या द्विजश्रेष्ठ ! शिवमायाविमोहितः ॥१८॥
यथा यथाऽहं रम्याणि व्यैक्षमङ्गानि कौतुकात् । सत्या बभूव संहृष्टः कामार्तो हि तथा तथा ॥१९॥
अहमेवं तथा दृष्ट्वा दक्षजां च पतिव्रताम् । स्मराविष्टमना वक्त्रं द्रष्टुकामोऽभवं मुने ! ॥२०॥
न शम्भोर्लज्जया वक्त्रं प्रत्यक्षं च विलोकितम् । न च सा लज्जयाविष्टा करोति प्रकटं मुखम् ॥२१॥
ततस्तद्दर्शनार्थाय सदुपायं विचारयन् । धूम्रघोरेण कामार्तोऽकार्षं तच्च ततः परम् ॥२२॥
आर्द्रेन्धनानि भूरीणि क्षिप्त्वा तत्र विभावसौ । स्वल्पाज्याहुतिविन्यासादार्द्रद्रव्योद्भवस्तथा ॥२३॥
प्रादुर्भूतस्ततो धूमो भूयांस्तत्र समन्ततः । तादृग् येन तमोभूतं वेदीभूमिविनिर्मितम् ॥२४॥
ततो धूमाकुले नेत्रे महेशः परमेश्वरः । हस्ताभ्यां छादयामास बहुलीलाकरः प्रभुः ॥२५॥
ततो वस्त्रं समुत्क्षिप्य सतीवक्त्रमहं मुने ! । अवैक्षं किल कामार्तः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥२६॥
मुहुर्मुहुरहं तात ! पश्यामि स्म सतीमुखम् । अथेन्द्रियविकारं च प्राप्तवानस्मि सोऽवशः ॥२७॥
मम रेतः प्रचस्कन्द ततस्तद्वीक्षणाद् द्रुतम् । चतुर्बिन्दुमितं भूमौ तुषारचयसन्निभम् ॥२८॥
ततोऽहं शङ्कितो मौनी तत्क्षणं विस्मितो मुने ! । आच्छादये स्म तद्रेतो यथा कश्चिद् बुबोध न ॥२९॥

भगवान् शम्भु की माया दुर्ज्ञेय है, उसी ने देव, असुर तथा मनुष्यों से युक्त इस चराचर जगत् को मोहित कर रखा है ॥ १४ ॥ पूर्वकाल में मैंने जिस शिव को कपटपूर्वक मोह में डालना चाहा था, उन्हीं शिव ने मुझको लीला से ही मोहित कर लिया ॥ १५ ॥ जो दूसरे का अपकार करना चाहता है निश्चय ही पहले उसी का अपकार होता है। ऐसा समझकर कोई भी पुरुष किसी अन्य पुरुष का अपकार न करे ॥ १६ ॥ हे मुने ! जब सती प्रदक्षिणा कर रही थीं तो वस्त्र से बाहर हो जाने के कारण मैंने उनके दोनों चरणों को देख लिया ॥ १७ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! शिव की माया से मोहित होकर मैं कामाविष्ट हो सती के अन्य अङ्गों का अवलोकन करने लगा ॥ १८ ॥ मैं कौतुक से जैसे-जैसे सती के मनोहर अङ्गों का अवलोकन करता जाता था, वैसे-वैसे कामाविष्ट हो कामार्त्त हो रहा था ॥ १९ ॥ हे मुने ! इस प्रकार पतिव्रता सती को देखता हुआ कामाविष्ट हो मैं सती के मुख-मण्डल को देखना चाहा ॥ २० ॥ किन्तु शिवजी के सामने लज्जा के कारण मैं प्रत्यक्ष रूप से सती का मुख नहीं देख सका। और न लज्जा के कारण सती ने ही अपना मुख प्रकट किया ॥ २१ ॥ मैंने सती का मुख देखने के लिए एक अत्यन्त सुन्दर उपाय ढूँढ़ लिया। कामार्त्त होकर मैंने अग्नि में बहुत-सी गीली लड़की छोड़कर घोर धुँआ उत्पन्न किया ॥ २२ ॥ और उसमें धीरे-धीरे थोड़ी-थोड़ी आहुति देने लगा। फिर क्या था, आर्द्रेन्धन के संयोग से चारों ओर धूआँ-ही-धूआँ दिखाई पड़ने लगा ॥ २३ ॥ इस प्रकार धूमाधिक्य हो जाने के कारण वेदी के चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार हो गया ॥ २४ ॥ नाना प्रकार की लीला में समर्थ प्रभु महेश्वर के नेत्र भी धूम से व्याकुल हो उठे, उन्होंने अपने दोनों हाथों से अपने नेत्र बन्द कर लिया ॥ २५ ॥ कामार्त्त मैं बड़ी प्रसन्नता से सती के मुख का वस्त्र हटा उसके मुख को देख लिया ॥ २६ ॥

हे पुत्र ! जब मैं इस प्रकार सती के मुख का घूँघट उठाकर बारम्बार उसे देखने लगा तब मेरी इन्द्रियों में विकार उत्पन्न हो गया ॥ २७ ॥ फिर तो मुख के बारम्बार देखने के कारण मेरा चार बिन्दु वीर्य पृथ्वी पर ओले के समान गिर पड़ा ॥ २८ ॥ मैं सशङ्कित हो तत्क्षण आश्चर्य से चकित और मौन हो गया। और उस वीर्य को छिपाने की चेष्टा करने लगा, जिससे कोई जान न पावे ॥ २९ ॥

अथ तद्भगवाञ्छम्भुर्ज्ञात्वा दिव्येन चक्षुषा । रेतोऽवस्कन्दनाचस्य कोपादेतदुवाच ह ॥३०॥

रुद्र उवाच

किमेतद् विहितं पाप त्वया कर्म विगर्हितम् । विवाहे मम कान्ताया वक्त्रं दृष्टं न रागतः ॥३१॥
त्वं वेत्सि शङ्करेणैतत् कर्म ज्ञातं न किञ्चन । त्रैलोक्येऽपि न मेऽज्ञातं गूढं तस्मात् कथं विधे ! ॥३२॥
यत् किञ्चित् त्रिषु लोकेषु जङ्गमं स्थावरं तथा । तस्याऽहं मध्यगो मूढ तैलं यद्वत् तिलान्तिकम् ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा प्रियविष्णुर्मो तदा विष्णुवचः स्मरन् । इयेष हन्तुं ब्रह्माणं शूलमुद्यम्य शङ्करः ॥३४॥
शम्भुनोद्यमिते शूले मां च हन्तुं द्विजोत्तम ! । मरीचिप्रमुखास्ते वै हाहाकारं च चक्रिरे ॥३५॥
ततो देवगणाः सर्वे मुनयश्चाऽखिलास्तथा । तुष्टुवुः शङ्करं तत्र प्रज्वलन्तं भयातुराः ॥३६॥

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव ! शरणागतवत्सल ! । ब्रह्माणं रक्ष रक्षेश कृपां कुरु महेश्वर ! ॥३७॥
जगत्पिता महेश ! त्वं जगन्माता सती मता । हरि-ब्रह्मादयः सर्वे तव दासाः सुरप्रभो ! ॥३८॥
अद्भुताकृतिलीलस्त्वं तव मायाऽद्भुता प्रभो ! । तया विमोहितं सर्वं विना त्वद्भक्तिमीश्वर ! ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं बहुतरं दीना निर्जरा मुनयश्च ते । तुष्टुवुर्देवदेवेशं क्रोधाविष्टं महेश्वरम् ॥४०॥
दक्षो मैवं मैवमिति पाणिमुद्यम्य शङ्कितः । वारयामास भूतेशं क्षिप्रमेत्य पुरोगतः ॥४१॥
अथाग्रेशं गतं वीक्ष्य तदा दक्षं महेश्वरः । प्रत्युवाचाप्रियमिदं संस्मरन् प्रार्थनां हरेः ॥४२॥

किन्तु भगवान् शिव ने अपनी दिव्य दृष्टि से इसे जान लिया। उस विवाह में मेरे वीर्य-स्खलन से शिव को बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और वे क्रुद्ध होकर बोले ॥ ३० ॥

रुद्र बोले—हे पाप ! हे ब्रह्मन् ! तुमने मेरे इस विवाह में ऐसा कुत्सित कर्म क्यों किया। क्या तुमने कामार्त्त हो मेरी स्त्री का मुखावलोकन नहीं किया ? ॥ ३१ ॥ क्या तुम जानते हो कि शङ्कर तुम्हारे इस कुत्सित कर्म को नहीं जानते। हे विधे ! मुझसे इस त्रिलोकी में होने वाली कोई बात छिपी नहीं रह सकती। मैं त्रिलोकी की सारी बातें जानता हूँ ॥ ३२ ॥ जैसे तिल के समस्त अवयव में तेल रहता है, उसी प्रकार स्थावरात्मक तथा जङ्गमात्मक इस संसार के सभी पदार्थों में मैं विद्यमान हूँ ॥ ३३ ॥

ब्रह्मा बोले—विष्णु को प्यार करनेवाले शङ्करजी ने ऐसा कहकर विष्णु की बात स्मरण करते हुए शूल लेकर मुझ ब्रह्मा को मारना चाहा ॥ ३४ ॥ हे द्विजोत्तम देवर्षि नारद ! इस प्रकार मुझे मारने के लिए ज्योंही उन्होंने त्रिशूल उठाया था कि मरीचि आदि प्रमुख मेरे मानसपुत्रों ने हाहाकार किया ॥ ३५ ॥ उस समय समस्त देवता तथा मुनि भयभीत हो क्रोधित हुए, उन शिव की स्तुति करने लगे ॥ ३६ ॥

देवगण बोले—हे देवदेव ! हे महादेव ! हे शरणागतवत्सल महेश्वर ! आप इन ब्रह्मा के ऊपर कृपा कीजिए तथा हे ईश ! इनकी रक्षा कीजिए ॥ ३७ ॥ आप इस संसार के पिता तथा यह सती जगन्माता हैं। हे सुरप्रभो ! ये विष्णु तथा ब्रह्मा आदि सभी देवगण आपके दास हैं ॥ ३८ ॥ आपकी लीला तथा आकृति अद्‌भुत है। हे प्रभो ! आपकी माया भी अद्‌भुत है। हे ईश्वर ! उस माया ने आपकी भक्ति के अतिरिक्त और सभी को मोहित कर लिया है ॥ ३९ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार दीन हुए देवताओं तथा मुनियों ने, क्रुद्ध हुए उन देवदेवेश महेश्वर की स्तुति की ॥ ४० ॥ दक्ष को भी सन्देह होने लगा कि कहीं शिवजी ब्रह्मा का वध न कर दें, इसलिए उन्होंने हाथ उठाकर कहा—हे प्रभो ! ऐसा मत कीजिए, ऐसा मत कीजिए। वे स्वयं देवदेवेश शङ्कर के आगे आकर शिवजी को ऐसा करने से रोका ॥ ४१ ॥ शिवजी ने अपने आगे दक्ष को देखकर विष्णु की प्रार्थना स्मरण करते हुए इस प्रकार का अप्रिय वचन कहा ॥ ४२ ॥

महेश्वर उवाच

विष्णुना मेऽतिभक्तेन यदिदानीमुदीरितम् । मयाप्यङ्गीकृतं कर्तुं तदिहैव प्रजापते ! ॥४३॥
सतीं यस्याऽभिलाषः सन् वीक्षेत वधतं प्रभो ! । इति विष्णुवचः सत्यं विधिं हत्वा करोम्यहम् ॥४४॥
साभिलाषः कथं ब्रह्मा सतीं समवलोकयत् । अभवत्त्यक्तरेतास्तु ततो हन्मि कृतागसम् ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तवति देवेशे महेशे क्रोधसङ्कुले । चकम्पिरे जनाः सर्वे सदेवमुनिमानुषाः ॥४६॥
हाहाकारो महानासीदौदासीन्यं च सर्वशः । अभूवं विकलोऽतीव तदाऽहं तद्विमोहकः ॥४७॥
अथ विष्णुर्महेशातिप्रियः कार्यविचक्षणः । तमेवंवादिनं रुद्रं तुष्टाव प्रणतः सुधीः ॥४८॥
स्तुत्वा च विविधैः स्तोत्रैः शङ्करं भक्तवत्सलम् । इदमूचे वारयंस्तं क्षिप्रं भूत्वा पुरःसरः ॥४९॥

विष्णुरुवाच

विधिं न जहि भूतेश ! स्रष्टारं जगतां प्रभुम् । अयं शरणगस्तेऽद्य शरणागतवत्सलः ॥५०॥
अहं तेऽतिप्रियो भक्तो भक्तराज इतीरितः । विज्ञप्तिं हृदि मे मत्वा कृपां कुरु ममोपरि ॥५१॥
अन्यच्च शृणु मे नाथ ! वचनं हेतुगर्भितम् । तन्मनुष्व महेशान ! कृपां कृत्वा ममोपरि ॥५२॥
प्रजाः स्रष्टुमयं शम्भो प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः । अस्मिन् हते प्रजास्रष्टा नास्त्यन्यः प्राकृतोऽधुना ॥५३॥
सृष्टिस्थित्यन्तकर्माणि करिष्यामः पुनः पुनः । त्रयो देवा वयं नाथ ! शिवरूप त्वदाज्ञया ॥५४॥
एतस्मिन् निहते शम्भो ! कस्त्वत्कर्म करिष्यति । तस्मान्न वध्यो भवता सृष्टिकृल्लयकृद्विभो ॥५५॥
अनेनैव सती कन्या दक्षस्य च शिवा विभो । सदुपायेन वै भार्या भवदर्थे प्रकल्पिता ॥५६॥

महेश्वर बोले—हे प्रजापते ! मेरे परमप्रिय भक्त विष्णु ने इस समय जैसा कहा था, मैंने वही करना स्वीकार भी किया था ॥ ४३ ॥ उन्होंने कहा था कि, हे प्रभो ! जो इस सती को देखकर इसमें कामाभिलाष करे, उसका वध कीजिए । अब मैं इस ब्रह्मा का वध कर विष्णु की बात सत्य करना चाहता हूँ ॥ ४४ ॥ इन ब्रह्मा ने सती को क्यों कामाभिलाष की दृष्टि से देखा । और देखकर, वीर्यपात भी किया इससे अपराधी ब्रह्मा का मैं अवश्य वध करूँगा ॥ ४५ ॥

ब्रह्माजी बोले—जब क्रोधाविष्ट हो महेश्वर इस प्रकार कह रहे थे, तब देवता, मुनि तथा मनुष्य थर-थर काँपने लगे ॥ ४६ ॥ चारों ओर हाहाकार मच गया और उदासी छा गयी । मैं, जो शिव को प्रथम मोहित करना चाहता था, अत्यन्त विकल हो उठा ॥ ४७ ॥ कार्य-विशारद महा बुद्धिमान् महेशप्रिय विष्णु ने ऐसा कहते हुए शिव की स्तुति की ॥ ४८ ॥ उन्होंने नानाप्रकार के स्तोत्रों से भक्तवत्सल शिव की स्तुति कर उन्हें ब्रह्मा के वध से रोकते हुए आगे आकर ऐसा कहा ॥ ४९ ॥

विष्णु बोले—हे भूतेश ! आप जगत्स्रष्टा इस ब्रह्मा का वध न करें । ये आपकी शरण में आये हैं और आप शरणागतवत्सल हैं ॥ ५० ॥ मैं तो आपका बड़ा प्रिय हूँ । इसीलिए आप भी मुझे भक्तराज कहते हैं, मेरा निवेदन अपने हृदय में धारण कीजिए और मेरे ऊपर कृपा करें ॥ ५१ ॥ इसके अतिरिक्त हे सदाशिव ! मेरे ऊपर कृपाकर हेतु युक्त मेरी दूसरी भी प्रार्थना सुनिए और हे महेश्वर ! मेरी उन बातों को सुनकर कृपाकर उसे मानिए ॥ ५२ ॥ हे शम्भो ! प्रजा की सृष्टि करने के लिए ही ये चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं । इनके मारे जाने पर और कोई दूसरा ऐसा नहीं है, जो प्रजा की सृष्टि करने में समर्थ हो ॥ ५३ ॥ हे शिवरूप ! आपकी आज्ञा से हम तीनों देवता इस जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा अन्त करते रहते हैं ॥ ५४ ॥ जब आप इन्हें मार डालेंगे तो आपका यह सृष्टि-कर्म कौन करेगा ? इसलिए इस सृष्टि के लय करनेवाले हे प्रभो ! आप इन सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा का वध न करें ॥ ५५ ॥ इन्होंने ही आपकी भार्या के लिए शिवा को दक्षकन्या सती के रूप में यत्नपूर्वक अवतरित किया है ॥ ५६ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य महेशस्तु विज्ञप्तिं विष्णुना कृताम् । प्रत्युवाचाऽखिलांस्तांश्च श्रावयंश्च दृढव्रतः ॥५७॥

महेश उवाच

देवदेव रमेशान विष्णो मत्प्राणवल्लभ ! । न निवारय मां तात ! वधादस्य खलस्त्वयम् ॥५८॥
पूरयिष्यामि विज्ञप्तिं पूर्वान्तेऽङ्गीकृतां मया । महापापकरं दुष्टं हन्म्येनं चतुराननम् ॥५९॥
अहमेव प्रजाः स्रक्ष्ये सर्वाः स्थिरचरा अपि । अन्यं स्रक्ष्ये सृष्टिकरमथवाऽहं स्वतेजसा ॥६०॥
हत्वैनं विधिमेवाहं स्वपणं पूरयन् कृतम् । स्रष्टारमेकं स्रक्ष्यामि न निवारय मेश माम् ॥६१॥

ब्रह्मोवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा गिरीशस्याह चाऽच्युतः । स्मितप्रभिन्नहृदयः पुनर्मैवमितीरयन् ॥६२॥

अच्युत उवाच

प्रतिज्ञापूरणं योग्यं परस्मिन् पुरुषेऽस्ति वै । विचारयस्व वध्येश ! भवत्यात्मनि न प्रभो ! ॥६३॥
त्रयो देवा वयं शम्भो त्वदात्मानः परा न हि । एकरूपा न भिन्नाश्च तत्त्वतः सुविचारय ॥६४॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा विष्णोः स्वातिप्रियस्य सः । शम्भुरूचे पुनस्तं वै ख्यापयन्नात्मनो गतिम् ॥६५॥

शम्भुरुवाच

हे विष्णो ! सर्वभक्तेश ! कथमात्मा विधिर्मम । लक्ष्यते भिन्न एवायं प्रत्यक्षेणाग्रतः स्थितः ॥६६॥

ब्रह्मोवाच

इत्याज्ञप्तो महेशेन सर्वेषां पुरतस्तदा । इदमूचे महादेवं तोषयन् गरुडध्वजः ॥६७॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार विष्णु का निवेदन सुनकर दृढव्रत शङ्कर जी सभी लोगों को सुनाते हुए विष्णु से बोले ॥ ५७ ॥

महेश्वर ने कहा—हे देवदेव ! हे रमापति ! हे प्राणप्रिय विष्णो ! मुझे इस ब्रह्मा के वध से मत रोकिए, क्योंकि यह बड़ा दुष्ट है ॥ ५८ ॥ आप की पूर्व में की गयी लोकसृष्टि आदि की विज्ञप्ति को मैं स्वयं पूर्ण करूँगा । किन्तु महापाप करने वाले इस चतुर्मुख ब्रह्मा का वध अवश्य करूँगा ॥ ५९ ॥ मैं स्वयं चराचर प्रजा की सृष्टि करूँगा । अथवा अपने तेज से किसी दूसरे सृष्टिकर्त्ता को उत्पन्न करूँगा ॥ ६० ॥ किन्तु मैं इस ब्रह्मा को मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करूँगा । और एक दूसरे जगत्-स्रष्टा का निर्माण करूँगा । मुझे इस ब्रह्मा के वध से मत रोकिए ॥ ६१ ॥

ब्रह्मा बोले—शिव के इस वचन को सुन कर मन्द-मन्द हँसते हुए विष्णु ने ब्रह्मवध से रोकते हुए उनसे फिर कहा ॥ ६२ ॥

विष्णु बोले—हे प्रभो ! प्रतिज्ञा की पूर्त्ति तो दूसरे पुरुष में की जाती है । आप स्वयं विचार करें कि अपनी ही आत्मा का इस प्रकार वध करना क्या उचित होगा ? ॥ ६३ ॥ हे सदाशिव ! हम तीनों ही देवता आप की आत्मा हैं, हम लोग दूसरे नहीं हैं, हम सभी एकरूप हैं, भिन्न नहीं हैं । इस बात को तत्त्वतः आप स्वयं विचार कीजिए ॥ ६४ ॥ अपने अत्यन्त प्रिय विष्णु के इस वचन को सुनकर रुद्र ने पुनः अपना अभिप्राय प्रकट करते हुए विष्णु से कहा— ॥ ६५ ॥

शिवजी बोले—हे विष्णो ! हे सम्पूर्ण भक्तों के ईश ! यह ब्रह्मा किस प्रकार मेरी आत्मा है । यह तो प्रत्यक्ष रूप से आगे बैठे हुए भिन्न दिखलाई पड़ते हैं ॥ ६६ ॥

ब्रह्माजी बोले—जब सब के आगे खड़े होकर महेश्वर ने ऐसा कहा तब उन्हें सन्तुष्ट करते हुए विष्णु बोले— ॥ ६७ ॥

विष्णुरुवाच

न ब्रह्मा भवतो भिन्नो न त्वं तस्मात् सदाशिव । न वाऽहं भवतो भिन्नो न मत्त्वं परमेश्वर ! ॥६८॥
सर्वं जानासि सर्वज्ञ परमेश सदाशिव ! । मन्मुखादखिलान् सर्वं संश्रावयितुमिच्छसि ॥६९॥
त्वदाज्ञया वदामीश ! शृण्वन्तु निखिलाः सुराः । मुनयश्चाऽपरे शैवं तत्त्वं सन्धार्य स्वं मनः ॥७०॥
प्रधानस्याऽप्रधानस्य भागाभागस्य रूपिणः । ज्योतिर्मयस्य भागास्ते वयं देवाः प्रभोस्त्रयः ॥७१॥
कस्त्वं कोऽहं च को ब्रह्मा तवैव परमात्मनः । अंशत्रयमिदं भिन्नं सृष्टिस्थित्यन्तकारणम् ॥७२॥
चिन्तयस्वात्मनात्मानं स्वलीलाधृतविग्रहः । एकस्त्वं ब्रह्म सगुणो ह्यंशभूता वयं त्रयः ॥७३॥
शिरोग्रीवादिभेदेन यथैकस्यैव वर्ष्मणः । अङ्गानि ते तथेशस्य तस्य भागत्रयं हर ! ॥७४॥

यज्ज्योतिरभ्रं स्वपुरं पुराणं कूटस्थमव्यक्तमनन्तरूपम् ।
नित्यं च दीर्घादि-विशेषणाद्यैर्हीनं शिवस्त्वं तत एव सर्वम् ॥७५॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य महादेवो मुनीश्वर ! । बभूव सुप्रसन्नश्च न जघान स मां ततः ॥७६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सतीविवाह-
शिवलीलावर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विष्णु ने कहा—हे सदाशिव ! ब्रह्मा आप से भिन्न नहीं हैं और न तो आप ही उनसे भिन्न हैं । न तो मैं आप से भिन्न हूँ । और हे परमेश्वर ! न तो आप ही मुझसे भिन्न हैं ॥ ६८ ॥ हे परमेश ! हे सदाशिव ! हे सर्वज्ञ ! आप सब कुछ जानते हैं किन्तु आप मेरे द्वारा यह बात सभी को सुनाना चाहते हैं ॥ ६९ ॥ एतदर्थं हे ईश ! मैं आप की आज्ञा से इस बात को कह रहा हूँ, सभी देवता तथा मुनिगण आप लोग अपने मन में शिवतत्त्व को धारण कर मेरी बात सुनें ॥ ७० ॥ प्रधान-अप्रधान रूप से, अंशी अंशरूप से हम तीनों ही देवता ज्योतिःस्वरूप आप परमेश्वर के अंश हैं ॥ ७१ ॥ तुम कौन हो, मैं कौन हूँ और ये ब्रह्मा कौन हैं ? आप परमात्मा के हम तीनों ही अंश हैं, जो इस सृष्टि, स्थिति तथा प्रलयरूप कार्य के कारण होने से भिन्न-भिन्न हैं ॥ ७२ ॥ आप अपनी आत्मा से अपने को स्वयं विचारिए । अपनी लीला द्वारा आपने अनेक रूपों को धारण किया है । वस्तुतः आप एक ही ब्रह्म हैं, गुणयुक्त हम तीनों आप के अंशभूत हैं ॥ ७३ ॥ जैसे एक ही शरीर के शिर, ग्रीवा आदि नाना भेद होते हैं, उसी प्रकार हम तीनों आप अङ्गी परमात्मा के हम तीन भाग हैं ॥ ७४ ॥ जो ज्योति अभ्र, शरीररूपी पुर में रहनेवाला पुराणपुरुष, कूटस्थ, अव्यक्त, अनन्त, नित्य तथा दीर्घादिविशेषण से रहित है, ऐसे एकरस अनादि निर्विकार सर्वरूप शिव आप ही हैं और उन्हीं आप से यह सब कुछ है ॥ ७५ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर ! विष्णु की इस बात को सुन कर महादेव अत्यन्त प्रसन्न हो गये । और उन्होंने मेरा वध नहीं किया ॥ ७६ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सती खण्ड में सतीविवाह एव शिव-लीला वर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥

*

विंशोऽध्यायः

(सती-शिवविवाह में ब्रह्मा की विरूपता का वर्णन, पुनः मृत्युलोक में ब्रह्मा की पूज्यता-प्राप्ति रूप वर प्रदान)

नारद उवाच

ब्रह्मन् विधे महाभाग शिवभक्तवर प्रभो ! । श्रावितं चरितं शम्भोरद्भुतं मङ्गलायनम् ॥ १ ॥
ततः किमभवत्तात कथ्यतां शशिमौलिनः । सत्याश्च चरितं दिव्यं सर्वाघौघविनाशनम् ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

निवृत्ते शङ्करे चास्मद्वधाद् भक्तानुकम्पिनि । अभवन्निर्भयाः सर्वे सुखिनः सुप्रसन्नकाः ॥ ३ ॥
नतस्कन्धाः साञ्जलयः प्रणेमुर्निखिलाश्च ते । तुष्टुवुः शङ्करं भक्त्या चक्रुर्जयरवं मुदा ॥ ४ ॥
एतस्मिन्नेव कालेऽहं प्रसन्नो निर्भयो मुने ! । अस्तवं शङ्करं भक्त्या विविधैश्च शुभस्तवैः ॥ ५ ॥
ततस्तुष्टमनाः शम्भुर्बहुलीलाकरः प्रभुः । मुने ! मां समुवाचेदं सर्वेषां शृण्वतां तदा ॥ ६ ॥

रुद्र उवाच

ब्रह्मन् तात ! प्रसन्नोऽहं निर्भयस्त्वं भवाऽधुना । स्वशीर्षं स्पृश हस्तेन मदाज्ञां कुर्वसंशयम् ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचः शम्भोर्बहुलीलाकृतः प्रभोः । स्पृशन् स्वं कं तथा भूत्वा प्रणामं वृषभध्वजम् ॥ ८ ॥
यावदेवमहं स्वं कं स्पृशामि निजपाणिना । तावत्तत्र स्थितं सद्यस्तद्रूपवृषवाहनम् ॥ ९ ॥
ततो लज्जापरीताङ्गः स्थितश्चाऽहमधोमुखः । इन्द्राद्यैरमरैः सर्वैः सुदृष्टः सर्वतः स्थितैः ॥१०॥
अथाऽहं लज्जयाऽऽविष्टः प्रणिपत्य महेश्वरम् । प्रावोचं संस्तुतिं कृत्वा क्षम्यतां क्षम्यतामिति ॥११॥
अस्य पापस्य शुध्यर्थं प्रायश्चित्तं वद प्रभो ! । निग्रहं च तथा न्यायं येन पापं प्रयातु मे ॥१२॥

नारद जी बोले—हे ब्रह्मन् ! हे महाभाग ! हे शिवभक्तवर प्रभो ! हे विधे ! आपने परम मङ्गल का स्थान अद्भुत शिवचरित्र हमें सुनाया ॥ १ ॥ इसके बाद हे तात ! शशिमौलि शिवजी तथा सती ने क्या किया । आप हमें सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाले शिवशिवा के चरित्र का वर्णन सुनाइए ॥ २ ॥

ब्रह्मा ने कहा—भक्तानुग्रहकारक शिवजी जब मुझ ब्रह्मा का वध करने से रुक गये तब सभी देवता सुखी तथा प्रसन्न हो निर्भय हो गये ॥ ३ ॥ सभी लोगोंने हाथ जोड़ कर नतमस्तक हो उन्हें प्रणाम किया और भक्तिपूर्वक शङ्कर की स्तुति कर जय-जयकार करने लगे ॥ ४ ॥ हे नारद ! जब शिवजी ने मेरा वध नहीं किया तब मैं सर्वथा निर्भय तथा प्रसन्न होकर नाना प्रकार के उत्तम स्तोत्रों द्वारा भक्तिपूर्वक उन रुद्र की स्तुति करने लगा ॥ ५ ॥ तब नाना प्रकार की लीला करनेवाले प्रभु मुझ पर प्रसन्न हो गये । और हे मुने ! सभी के सामने ही मुझसे इस प्रकार कहने लगे ॥ ६ ॥

रुद्र बोले—हे तात ! हे ब्रह्मन् ! मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ । अब तुम निर्भय रहो । तुम अपने हाथ से अपने शिर का स्पर्श करो, और मेरी आज्ञा का पालन करते रहो ॥ ७ ॥

ब्रह्मा बोले—अनेक लीला करने वाले शिव की इस बात को सुन कर मैंने अपने शिर का स्पर्श करते हुए शिव को प्रणाम किया ॥ ८ ॥ अभी मैंने ज्यों ही अपने हाथ से अपने शिर का स्पर्श ही किया था कि वहाँ तत्क्षण वृषभध्वज के रूप में स्थित शिव दिखाई पड़ने लगे ॥ ९ ॥ और इन्द्रादि देवताओं के देखते-देखते मैं लज्जावनत हो अधोमुख स्थित हो गया ॥ १० ॥ तदनन्तर लज्जायुक्त हो महेश्वर को मैंने प्रमाण किया और 'क्षमा कीजिए' ऐसा कह कर उन्हें प्रणाम कर कहने लगा ॥ ११ ॥ हे प्रभो ! मैंने जो

इत्युक्तस्तु मया शम्भुरुवाच प्रणतं हि तम् । सुप्रसन्नतरो भूत्वा सर्वेशो भक्तवत्सलः ॥१३॥

शम्भुरुवाच

अनेनैव स्वरूपेण मदधिष्ठितकेन हि । तपः कुरु प्रसन्नात्मा मदाराधनतत्परः ॥१४॥
ख्यातिं यास्यसि सर्वत्र नाम्ना रुद्रशिरः क्षितौ । साधकः सर्वकृत्यानां तेजोभाजां द्विजन्मनाम् ॥१५॥
मनुष्याणामिदं कृत्यं यस्माद्वीर्य्यं त्वयाऽधुना । तस्मात्त्वं मानुषो भूत्वा विचरिष्यसि भूतले ॥१६॥
यस्त्वां चाऽनेन रूपेण दृष्ट्वा कौ विचरिष्यति । किमेतद् ब्रह्मणो मूर्ध्नि वदन्निति पुरान्तकः ॥१७॥
ततस्ते चेष्टितं सर्वं कौतुकाच्छ्रोष्यतीति यः । परदारकृतात्त्यागान् मुक्तिं सद्यः स यास्यति ॥१८॥
यथा यथा जनश्चैतत् कृत्यन्ते कीर्तयिष्यति । तथा तथा विशुद्धिस्ते पापस्यास्य भविष्यति ॥१९॥
एतदेव हि ते ब्रह्मन् ! प्रायश्चित्तं मयेरितम् । जनहास्यकरं लोके तव गर्हाकरं परम् ॥२०॥
एतच्च तव वीर्य्यं हि पतितं वेदिमध्यगम् । कामार्तस्य मया दृष्टं नैतद्धार्यं भविष्यति ॥२१॥
चतुर्बिन्दुमितं रेतः पतितं यत् क्षितौ तव । तन्मितास्तोयदा व्योम्नि भवेयुः प्रलयङ्कराः ॥२२॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र देवर्षीणां पुरो द्रुतम् । तद्रेतसः समभवंस्तन्मिताश्च बलाहकाः ॥२३॥
संवर्तकस्तथाऽऽवर्त्तः पुष्करो द्रोण एव च । एते चतुर्विधास्तात ! महामेघा लयङ्कराः ॥२४॥
गर्जन्तश्चाथ मुञ्चन्तस्तोयानीषच्छिवेच्छया । फेलुर्व्योम्नि मुनिश्रेष्ठ ! तोयदास्ते कदारवाः ॥२५॥
तैस्तु सञ्छादिते व्योम्नि सुगर्जद्भिश्च शङ्करः । प्रशान् दाक्षायणी देवी भृशं शान्तोऽभवद् द्रुतम् ॥२६॥
अथ चाऽहं वीतभयः शङ्करस्याज्ञया तदा । शेषं वैवाहिकं कर्म समाप्तिमनयं मुने ! ॥२७॥
पपात पुष्पवृष्टिश्च शिवाशिवशिरस्कयोः । सर्वत्र च मुनिश्रेष्ठ ! मुदा देवगणोज्झिता ॥२८॥

आपके विवाह में पाप किया है, उस पाप का प्रायश्चित्त बताइए जिससे मेरा पाप दूर हो ॥ १२ ॥ इस प्रकार मेरे कहने पर भक्तवत्सल सर्वेश्वर प्रभु मेरे ऊपर प्रसन्न हो बोले ॥ १३ ॥

शिवजी बोले—हे ब्रह्मन् ! मेरे द्वारा आक्रान्त किये गये इसी रूप से तुम प्रसन्नतापूर्वक मेरी आराधना करते हुए तप करो ॥ १४ ॥ जिससे इस पृथ्वी में सर्वत्र रुद्रशिर नाम से तुम्हारी प्रसिद्धि होगी । ऐसा करने से तुम सभी कार्यों के सिद्ध करने वाले तथा ब्राह्मणों में तेजस्वी होगे ॥ १५ ॥ तुम ने जिस प्रकार से कामासक्त हो वीर्यपात किया है, यह मनुष्यों का कृत्य है, इसलिए तुम मनुष्य होकर इस पृथ्वी में विचरण करो ॥ १६ ॥ पृथ्वी में विचरण करने वाले तुम्हें जो इस रूप में देख कर पूछेंगे कि यह ब्रह्मा के मस्तक पर कौन खड़ा है ? शिवजी हैं ! ऐसा क्यों है ? इस प्रकार के कुतूहल से वे जब तुम्हारा सारा चरित्र सुनेंगे तब दूसरों की स्त्री का त्याग कर वे मुक्ति के भागी बनेंगे ॥ १७–१८ ॥ लोग जैसे-जैसे तुम्हारे इस कुकृत्य का वर्णन करेंगे वैसे-वैसे तुम्हारी भी पापों से शुद्धि होगी ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! मनुष्यों के द्वारा तुम्हारा उपहास कराने वाला तथा तुम्हारी निन्दा कराने वाला यह प्रायश्चित्त मैंने तुम्हें सुनाया ॥ २० ॥ कामार्त्त होने के कारण तुम्हारा यह वीर्य बेदी के मध्य में गिरा हुआ मैंने देख लिया है, यह किसी के भी धारण करने योग्य न होगा ॥ २१ ॥ यह तुम्हारा चार विन्दु वीर्य जो पृथ्वी पर गिरा है, वही आकाश में जाकर चार बादल होंगे। जिनसे सृष्टि का प्रलय होगा ॥ २२ ॥ हे नारद ! उसी समय देवर्षियों के देखते-देखते वे चारों विन्दु वीर्य चार मेघ हो गये ॥२३॥ उनके संवर्त्तक, आवर्त्त, पुष्कर तथा द्रोण ये चार नाम हैं, जो प्रलय करने वाले महामेघ कहे जाते हैं ॥ २४ ॥ हे मुनि-श्रेष्ठ ! यही मेघ सदाशिव की इच्छानुसार जल की वर्षा करते तथा भयङ्कर शब्द करते हुए आकाश में फैल गये हैं ॥ २५ ॥ उस समय ब्रह्मवीर्योत्पन्न उन चार मेघों ने जब गर्जना करते हुए आकाश को आच्छादित कर लिया तब शङ्कर तथा दक्षकन्या अत्यन्त शान्त हो गयीं ॥ २६ ॥ हे नारद ! तदनन्तर मैंने निर्भय होकर शङ्कर के विवाह के सभी कृत्यों को समाप्त किया ॥ २७ ॥ उस समय शिवाशिव के

वाद्यमानेषु वाद्येषु गायमानेषु तेषु च । पठत्सु विप्रवर्येषु वादान् भक्त्यान्वितेषु च ॥२९॥
रम्भादिषु पुरन्ध्रीषु नृत्यमानासु सादरम् । महोत्सवो महानासीद् देवपत्नीषु नारद ! ॥३०॥
अथ कर्मवितानेशः प्रसन्नः परमेश्वरः । प्राह मां प्राञ्जलिं प्रीत्या लौकिकीं गतिमाश्रितः ॥३१॥

ईश्वर उवाच

हे ब्रह्मन् ! सुकृतं कर्म सर्वं वैवाहिकं च यत् । प्रसन्नोऽस्मि त्वमाचार्यो दद्यां ते दक्षिणां च काम् ॥३२॥
याचस्व तां सुरज्येष्ठ ! यद्यपि स्यात् सुदुर्लभा । ब्रूहि शीघ्रं महाभाग नादेयं विद्यते मम ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचः सोऽहं शङ्करस्य कृताञ्जलिः । मुनेऽवोचं विनीतात्मा प्रणम्येशं मुहुर्मुहुः ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

यदि प्रसन्नो देवेश ! वरयोग्योऽस्म्यहं यदि । तत्कुरु त्वं महेशान ! सुप्रीत्या यद् वदाम्यहम् ॥३५॥
अनेनैव तु रूपेण वेद्यामस्यां महेश्वर ! । त्वया स्थेयं सदैवात्र नृणां पापविशुद्धये ॥३६॥
येनास्य सन्निधौ कृत्वा स्वाश्रमं शशिशेखर ! । तपः कुर्यां विनाशाय स्वपापस्यास्य शङ्कर ! ॥३७॥
चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां नक्षत्रे भगदैवते । सूर्यवारे च यो भक्त्या वीक्षेत भुवि मानवः ॥३८॥
तदैव तस्य पापानि प्रयान्तु हर संक्षयम् । वर्द्धते विपुलं पुण्यं रोगा नश्यन्तु सर्वशः ॥३९॥
या नारी दुर्भगा वन्ध्या काणा रूपविवर्जिता । साऽपि त्वद्दर्शनादेव निर्दोषा सम्भवेद् ध्रुवम् ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचो मे हि स्वात्मसर्वसुखावहम् । तथाऽस्त्विति शिवः प्राह सुप्रसन्नेन चेतसा ॥४१॥

ऊपर आकाश से देवगणों के द्वारा पुष्पवृष्टि होने लगी ॥ २८ ॥ बाजे बजने लगे, अप्सराएँ नाचने तथा गाने लगीं । और विप्रगण भक्तियुक्त हो वेदपाठ करने लगे ॥ २९ ॥ रम्भादि अप्सराएँ नाचने लगीं, उस समय देवताओं की स्त्रियों में महान् उत्सव होने लगा ॥ ३० ॥ इसके बाद यज्ञकर्म के फलदाता परमेश्वर सदाशिव प्रसन्न होकर संसारी गति का आश्रय लेकर हाथ जोड़े हुए मुझे देखकर बोले ॥ ३१ ॥

ईश्वर बोले–हे ब्रह्मन् ! तुमने जो उत्तम रीति से वैवाहिक कार्य सम्पन्न किया है, उससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ । आप इस वैवाहिक कृत्य के आचार्य हैं, अतः आप को कौन सी दक्षिणा प्रदान करूँ ॥ ३२ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! आप मुझसे माँगिए, चाहे वह दुर्लभ ही क्यों न हो आप शीघ्र कहिए, मुझे कोई भी वस्तु अदेय नही है ॥ ३३ ॥

ब्रह्माजी बोले–हे मुने ! भगवान् शम्भु के इन वचनों को सुन करबद्ध हो मैंने देवेश को बारम्बार प्रणाम कर कहा–॥३४॥ हे देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं और यदि मैं आप के द्वारा वरदान प्राप्त करने योग्य हूँ तो हे महादेव ! जो मैं कहूँ उसे प्रसन्नतापूर्वक कीजिए ॥ ३५ ॥ हे महेश्वर ! आप मनुष्यों के पापशुद्धि के लिए सदैव इसी रूप से निवास कीजिए ॥ ३६ ॥ जिससे हे शशिशेखर ! इसी के समीप में अपने पाप का प्रायश्चित्त करने हेतु आश्रम बनाकर तप करूँ ॥ ३७ ॥ चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र युक्त रविवार के दिन जो भक्तिपूर्वक आप का दर्शन करेंगे ॥ ३८ ॥ हे हर ! उसी समय उनके पापों का नाश हो, उनके पुण्य की अभिवृद्धि होगी तथा उनका रोग नष्ट हो जायेगा ॥ ३९ ॥ जो स्त्री दुर्भगा, वन्ध्या, कानी तथा कुरूप हो वह भी उस दिन के आपके दर्शन के प्रभाव से निश्चित रूप से निर्दोष हो जावे ॥ ४० ॥

ब्रह्माजी बोले–अपने तथा सम्पूर्ण लोगों के सुख देनेवाले मुझ ब्रह्मा के इस वचन को सुन कर प्रसन्न हुए भगवान् शिव ने 'तथास्तु' कहा ॥ ४१ ॥

शिव उवाच

हिताय सर्वलोकस्य वेद्यां तस्यां व्यवस्थितः ।
स्थास्यामि सहितः पत्न्या सत्या त्वद् वचनाद् विधे ! ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा भगवांस्तत्र सभार्यो वृषभध्वजः । उवाच वेदिमध्यस्थो मूर्तिं कृत्वांशरूपिणीम् ॥४३॥
ततो दक्षं समामन्त्र्य शङ्करः परमेश्वरः । पत्न्या सत्या गन्तुमना अभूत् स्वजनवत्सलः ॥४४॥
एतस्मिन्नन्तरे दक्षो विनयावनतः सुधीः । साञ्जलिर्नतकः प्रीत्या तुष्टाव वृषभध्वजम् ॥४५॥
विष्ण्वादयः सुराः सर्वे मुनयश्च गणास्तदा । नत्वा संस्तूय विविधं चक्रुर्जयरवं मुदा ॥४६॥
आरोप्य वृषभे शम्भुः सतीं दक्षाज्ञया मुदा । जगाम हिमवत्प्रस्थं वृषभस्थः स्वयं प्रभुः ॥४७॥
अथ सा शङ्कराभ्यासे सुदती चारुहासिनी । विरेजे वृषभस्था वै चन्द्रान्ते कालिका यथा ॥४८॥
विष्ण्वादयः सुराः सर्वे मरीच्याद्यास्तथर्षयः । दक्षोऽपि मोहितश्चासीत्तथाऽन्ये निश्चला जनाः ॥४९॥
केचिद् वाद्यान् वादयन्तो गायन्तः सुस्वरं परे । शिवं शिवयशः शुद्धमनुजग्मुः शिवं मुदा ॥५०॥
मध्यमार्गाद्विसृष्टो हि दक्षः प्रीत्याऽथ शम्भुना । स्वधाम प्राप सगणः शम्भुः प्रेमसमाकुलः ॥५१॥
विसृष्टा अपि विष्ण्वाद्याः शम्भुना पुनरेव ते । अनुजग्मुः शिवं भक्त्या सुराः परमया मुदा ॥५२॥
तैः सर्वैः सगणैः शम्भुः सत्या च स्वस्त्रिया युतः । प्राप स्वं धाम संहृष्टो हिमवद्गिरिशोभितम् ॥५३॥
तत्र गत्वाऽखिलान् देवान् मुनीनपि परांस्तथा । मुदा विसर्जयामास बहु सम्मान्य सादरम् ॥५४॥
शम्भुमाभाष्य ते सर्वे विष्ण्वाद्या मुदिताननाः । स्वं स्वं धाम ययुर्नत्वा स्तुत्वा च मुनयः सुराः ॥५५॥
शिवोऽपि मुदितोऽत्यर्थं स्वपत्न्या दक्षकन्यया । हिमवत्प्रस्थसंस्थो हि विजहार भवानुगः ॥५६॥

शिवजी बोले—हे ब्रह्मन् ! मैं सारे संसार के हित के लिए तुम्हारे कथनानुसार वेदी के निकट अपनी पत्नी के साथ स्थित रहूँगा ॥ ४२ ॥

ब्रह्मा बोले—ऐसा कह कर भगवान् सदाशिव वेदी के मध्य में अपनी आंशिक मूर्त्ति वना कर निवास करने लगे ॥ ४३ ॥ इस प्रकार विवाह सम्पन्न हो जाने पर भक्तवत्सल सदाशिव दक्ष की आज्ञा लेकर सपत्नीक जाने को उद्यत हुए ॥ ४४ ॥ उस समय दक्ष हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रीति से युक्त हो शिव की स्तुति करने लगे ॥ ४५ ॥ विष्ण्वादि सम्पूर्ण देवताओं ने तथा मुनियों ने स्तुतिपूर्वक नमस्कार करते हुए शिवजी का जय-जयकार किया ॥ ४६ ॥ फिर दक्ष की आज्ञा लेकर प्रसन्नता से महादेवजी ने सती सहित स्वयं वृषभ पर सवार हो हिमालय की ओर गमन किया ॥ ४७ ॥ मन्द-मन्द मुसुकान करनेवाली तथा सुन्दर दाँतों वाली सती शंकर के साथ वृषभ पर वैठी हुई चन्द्रमा के कालिमा की तरह शोभा पा रही थीं ॥ ४८ ॥ विष्णु आदि सम्पूर्ण देवता और मरीच्यादि सम्पूर्ण ऋषि एवं दक्ष भी मोहित हो गये तथा अन्य सभी लोग चित्रलिखित से रह गये ॥ ४९ ॥ कोई बाजे बजाने लगे, कोई सुस्वर से शिव के शुद्ध यश का गान करने लगे तथा कुछ लोग शिव का अनुगमन करने लगे ॥५०॥ कुछ दूर चले जाने के बाद शिव ने दक्ष को आधे मार्ग से फेर दिया । फिर सदाशिव प्रेम से अपने स्थान को चले आये ॥ ५१ ॥

शिवजी ने विष्णु आदि सभी देवताओं को विदा भी कर दिया । तो भी वे सभी लोग परम भक्ति तथा प्रेम से शिवजी के साथ-साथ कैलास तक चले गये ॥ ५२ ॥ उन सबों के साथ स्त्रीयुक्त सगण शम्भु हिमवान् पर्वत पर अपने धाम में पहुँच गये ॥ ५३ ॥ वहाँ जाकर सम्पूर्ण देवता एवं मुनियों को प्रसन्नतापूर्वक विदा किया ॥ ५४ ॥ तदनन्तर विष्णु आदि देवता एवं समस्त मुनिगण प्रसन्नता से शिव की स्तुति कर उनकी आज्ञा ले अपने-अपने स्थान को चले गये ॥ ५५ ॥ शिव भी प्रसन्न मन से अपनी स्त्री

ततः स शङ्करः सत्या सगणः स्तिकृन्मुने । प्राप स्वं धाम संहृष्टः कैलासं पर्वतोत्तमम् ॥५७॥
एतद्वः सर्वमाख्यातं यथा तस्य पुराऽभवत् । विवाहो वृषयानस्य मनुस्वायम्भुवान्तरे ॥५८॥
विवाहसमये यज्ञे प्रारम्भे वा श्रृणोति यः । एतदाख्यानमव्यग्रः सम्पूज्य वृषभध्वजम् ॥५९॥
तस्याऽविघ्नं भवेत् सर्वं कर्म वैवाहिकं च यत् । शुभाख्यमपरं कर्म निर्विघ्नं सर्वदा भवेत् ॥६०॥
कन्या च सुख-सौभाग्य-शीलाचार-गुणान्विता ।
साध्वी स्यात् पुत्रिणी प्रीत्या श्रुत्वाऽऽख्यानमिदं शुभम् ॥६१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सतीविवाहवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

(सती-शिव का कैलास गमन एवं लौकिक चेष्टा से दोनों का बिहार)

नारद उवाच

समीचीनं वचस्तात ! सर्वज्ञस्य तवाऽनघ । महाद्भुतं श्रुतं नो वै चरितं शिवयोः शुभम् ॥ १ ॥
विवाहश्च श्रुतः सम्यक् सर्वमोहापहारकः । परमज्ञानसम्पन्नो मङ्गलालय उत्तमः ॥ २ ॥
भूय एव विवित्सा मे चरितं शिवयोः शुभम् । तद् वर्णय महाप्राज्ञ ! कृपां कृत्वाऽतुलामरम् ॥ ३ ॥

ब्रह्मोवाच

सम्यक् कारुणिकस्यैव मुने ! ते विचिकित्सितम् । यदहं नोदितः सौम्य शिवलीलानुवर्णने ॥ ४ ॥
विवाह्य दक्षजां देवीं सतीं त्रैलोक्यमातरम् । गत्वा स्वधाम सुप्रीत्या यदकार्षीन्निबोध मे ॥ ५ ॥
ततो हरः स स्वगणः स्वस्थानं प्राप्य मोदनम् । देवर्षे ! तत्र वृषभादवातरदतिप्रियात् ॥ ६ ॥

दक्षकन्या के साथ हिमालय पर्वत पर स्थित हो विहार करने लगे ॥ ५६ ॥ इस प्रकार गणों से युक्त सती सहित प्रसन्नता पूर्वक पर्वतोत्तम अपने स्थान कैलास को चले गये ॥ ५७ ॥ हे मुने ! पूर्व में स्वायम्भुव मनु के समय में होने वाले महादेवजी का विवाह का वर्णन इस प्रकार मैंने किया ॥ ५८ ॥ हे मुने ! जो विवाह के समय में अथवा यज्ञारम्भ काल में शिवजी का पूजन कर इस कथा को सुनते हैं ॥ ५९ ॥ उनके सम्पूर्ण वैवाहिक कर्म तथा सम्पूर्ण माङ्गलिक कर्म अथवा अन्य सभी कर्म निर्विघ्न पूर्ण हो जाते हैं ॥ ६० ॥ इस उत्तम कथा को सुनने से कन्या उत्तम सुख-सौभाग्य एवं उत्तम शील सद्गुण तथा सदाचार युक्त हो पतिव्रता तथा पुत्रवती होती है ॥ ६१ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती'भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में सती-विवाहर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २० ॥

*

नारद वोले—हे अनघ । आप सर्वज्ञ के द्वारा महान् अद्भुत एवं परम कल्याणकारी शिवाशिव का चरित्र मैंने सुना ॥ १ ॥ तथा उन शिवाशिव के परम ज्ञानसम्पन्न, मङ्गलायन विवाह का वर्णन भी अच्छी प्रकार से सुना ॥ २ ॥ हे प्रहाप्राज्ञ ! फिर भी शिव के उत्तम चरित्र को सुनने की मेरी इच्छा है। इसलिए आप मुझ पर कृपाकर पुनः शिव-चरित्र का वर्णन कीजिए ॥ ३ ॥

ब्रह्माजी वोले—हे मुने ! तुम्हारी इच्छा परम कारुणिक शिव की लीला सुनने में लगी हुई है। अतः हे सौम्य ! जो तुम मुझे शिव-लीला वर्णन के लिए बारम्बार प्रेरित कर रहे हो, यह बहुत ही सौभाग्य की बात है ॥ ४ ॥ हे नारद ! शिवजी ने दक्षकन्या एवं जगन्माता सती देवी को विवाहित कर और उन्हें अपने स्थान पर ले जाकर जो किया, अब उसे सुनो ॥ ५ ॥ दक्ष से विदा होने के अनन्तर महादेव जी अपने गणों के सहित अपने स्थान में जाकर बड़ी प्रसन्नता के साथ परम प्रिय नन्दीश्वर से उतरे ॥ ६ ॥

यथायोग्यं निजस्थानं प्रविश्य स सतीसखः। मुमुदेऽतीव देवर्षे! भवाचारकरः शिवः ॥ ७॥
ततो विरूपाक्ष इमां प्राप्य दाक्षायणीं गणान्। स्वीयान् निर्यापयामास नद्यादीन् गिरिकन्दरात्॥ ८॥
उवाच चैतांस्तान् सर्वान् नद्यादीनतिसूनृतम्। लौकिकीं रीतिमाश्रित्य करुणासागरः प्रभुः॥ ९॥

महेश उवाच

यदाऽहं च स्मराम्यत्र स्मरणादरमानसाः। समागमिष्यथ तदा मत्पार्श्वं मे गणा द्रुतम् ॥१०॥
इत्युक्ते वामदेवेन नन्द्याद्याः स्वगणाश्च ते। महावेगा महावीरा नानास्थानेषु संययुः ॥११॥
ईश्वरोऽपि तया सार्द्धं तेषु यातेषु विभ्रमी। दाक्षायण्या समं रेमे रहस्ये मुदितो भृशम् ॥१२॥
कदाचिद् वन्यपुष्पाणि समाहृत्य मनोहराम्। मालां विधाय सत्यास्तु हारस्थाने स योजयत् ॥१३॥
कदाचिद् दर्पणे चैव वीक्षन्तीमात्मनः सतीम्। अनुगम्य हरो वक्त्रं स्वीयमप्यवलोकयत् ॥१४॥
कदाचित् कुण्डलं तस्या उल्लास्योल्लास्य सङ्गतः। बध्नाति मोचयत्येव सा स्वयं मार्जयत्यपि ॥१५॥
सरागौ चरणावस्याः पावकेनोज्ज्वलेन च। निसर्गरक्तौ कुरुते पूर्णरागौ वृषध्वजः ॥१६॥
उच्चैरपि यदाख्येयमन्येषां पुरतो बहु। तत् कर्णे कथयत्यस्या हरो द्रष्टुं तदाननम् ॥१७॥
न दूरमपि गन्ताऽसौ समागत्य प्रयत्नतः। अनुबध्नाति नामाक्षी पृष्ठदेशेऽन्यमानसाम् ॥१८॥
अन्तर्हितस्तु तत्रैव मायया वृषभध्वजः। तामालिलिङ्ग भीत्या स्वं चकिता व्याकुलाऽभवत् ॥१९॥
सौवर्णपद्मकलिकातुल्ये तस्या कुचद्वये। चकार भ्रमराकारं मृगनाभिविशेषकम् ॥२०॥
हारमस्याः कुचयुगाद् वियोज्य सहसा हरः। न्ययोजयच्च तत्रैव स्वकरस्पर्शनं मुहुः ॥२१॥
अङ्गदान् वलयानूर्मीन् विश्लेष्य च पुनः पुनः। तत्स्थानात् पुनरेवासौ तत्स्थाने प्रत्ययोजयत् ॥२२॥

हे देवर्षे! इस प्रकार संसार-लीला करने वाले, सतीभर्त्ता सदाशिव यथायोग्य अपने स्थान में प्रवेश कर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥७॥ उन महादेव ने सती को प्राप्त कर लेने के बाद अपने नन्दी आदि समस्त गणों को गिरि-कन्दरा से बाहर चले जाने की आज्ञा दी ॥ ८ ॥ विदा करते समय उन नन्दीश्वरादि समस्त गणों से करुणासागर शिवजी लौकिक रीति का अनुसरण करते हुए मधुर वचन बोले ॥ ९ ॥

महेश्वर बोले—हे गणो! जब आप लोगों का स्मरण करूँ तब आपलोग मेरे स्मरण का आदर करते हुए मेरे पास आवें ॥ १० ॥ शिवजी के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर महावेगवान् तथा महावीर नन्दी आदि गण अपने-अपने स्थानों को चले गये ॥११॥ उन लोगों के चले जाने पर परम कौतुकी शिवजी बड़ी प्रसन्नता के साथ एकान्त में सती के साथ रमण करने लगे ॥ १२ ॥ वे शिवजी कभी वन के फूलों को तोड़कर उसकी मनोहर माला बना सती के हृदय में पहनाते थे ॥ १३ ॥ कदाचित् दर्पण में अपना मुख देखती हुई सती के पीछे जाकर वे अपना भी मुखावलोकन करने लगते थे ॥ १४ ॥ कभी सती जब अपने कुण्डलों का मार्जन करने लगती तब स्वयं शङ्करजी उन कुण्डलों को बारम्बार उद्दीप्त कर उसे सती के कानों में बाँधते तथा खोलने लगते थे ॥ १५ ॥ कभी वह भगवान् शङ्कर स्वभाव से रक्तवर्ण वाले सती के चरणों को देदीप्यमान लाक्षारस के द्वारा रंग कर उसे अत्यधिक रागयुक्त करते थे ॥१६॥ जो बात अच्छी तरह से दूसरों के सामने कही जा सकती थी, उस बात को भी उसका मुँह देखने की इच्छा से वे उसके कान में कहते थे ॥ १७ ॥ वे कभी भी घर से दूर न जाते और यदि दूर जाने भी लगते तो शीघ्रता से लौटकर किसी अन्य बात को सोचती हुई सती के पीछे से जाकर उसे अपने भुजाओं में बाँध लेते थे ॥ १८ ॥ कभी वे शिवमाया से वहीं छिपकर जब सती का आलिङ्गन करते तो वह भयभीत होकर अत्यन्त चकित हो व्याकुल हो जाती थीं ॥ १९ ॥ वे कभी कदाचित् सुवर्ण की कली के समान उसके कठिन दोनों स्तनों पर भ्रमर के आकार की चित्रकारी करते थे ॥ २० ॥ कभी वे बड़ी शीघ्रता से सती के स्तनों के स्पर्श की इच्छा से उसका हार दोनों स्तनों से निकाल लेते। और फिर उसे वहीं पर सन्निविष्ट भी कर देते थे ॥ २१ ॥ कभी वे सती के अङ्ग से बाजूबन्द, कङ्कण तथा अँगूठी बारम्बार निकाल कर उसे पुनः उसी

कालिकेति समायाति सवर्णा ते सखी त्विमाम् । यास्यत्वस्यास्तथेक्षन्त्याः प्रोत्तुङ्गौ साहसं कुचौ ॥२३॥
कदाचिन्मदनोन्मादचेतनः प्रमथाधिपः । चकार नर्म शर्माणि तथाकृत् प्रियया मुदा ॥२४॥
आहृत्य पद्मपुष्पाणि रम्यपुष्पाणि शङ्करः । सर्वाङ्गेषु करोति स्म पुष्पाभरणमादरात् ॥२५॥
गिरिकुञ्जेषु रम्येषु सत्या सह महेश्वरः । विजहार समस्तेषु प्रियया भक्तवत्सलः ॥२६॥
तया विना स्म नो याति नास्थितो न स्म चेष्टते । तया विना क्षणमपि शर्म लेभे न शङ्करः ॥२७॥
विहृत्य सुचिरं कालं कैलासगिरिकुञ्जरे । अगमद्धिमवत्प्रस्थं सस्मार स्वेच्छया स्मरन् ॥२८॥
तस्मिन् प्रविष्टे कामे तु वसन्तः शङ्करान्तिके । वितस्तार निजं भावं हार्दं विज्ञाय यत्प्रभोः ॥२९॥
सर्वे च पुष्पिता वृक्षा लताश्चान्याश्च पुष्पिताः । अम्भांसि फुल्लपद्मानि पद्माः सभ्रमरास्तथा ॥३०॥
प्रविष्टे तत्र सद्दतौ ववौ स मलयो मरुत् । सुगन्धिगन्धपुष्पेण मोदकश्च सुगन्धियुक् ॥३१॥
सन्ध्यार्द्रचन्द्रसङ्काशाः पलाशाश्च विरेजिरे । कामास्त्रवत् सुमनसः प्रमोदात् पादपाधरः ॥३२॥
बभुः पङ्कजपुष्पाणि सरःसु सकुलाञ्जनान् । सन्मोहयितुमुद्युक्ता सुमुखी वायुदेवता ॥३३॥
नागकेशरवृक्षाश्च स्वर्णवर्णैः प्रसूनकैः । बभुर्मदनकेत्वाभा मनोज्ञाः शङ्करान्तिके ॥३४॥
लवङ्ग-वल्ली सुरभि-गन्धेनोद्वास्य मारुतम् । मोहयामास चेतांसि भृशं कामिजने पुरा ॥३५॥
चारुपावकचर्चित्सु सुस्वराश्चूतशालिनः । बभुर्मदनबाणौघ-पर्यङ्कमदनावृताः ॥३६॥
अम्भांसि मलहीनानि रेजुः फुल्लकुशाशयाः । मुनीनामिव चेतांसि प्रव्यक्तज्योतिरुद्गमम् ॥३७॥
तुषाराः सूर्यरश्मीनां सङ्गमादगमन् बहिः । प्रमत्तानीक्ष्यतेक्षाश्च सलिलीहृदयास्तदा ॥३८॥

स्थान पर पहना दिया करते थे ॥ २२ ॥ यह तुम्हारे ही समान वर्णवाली तुम्हारी कालिका नाम की सखी आ रही है, ऐसा कहने पर जब वह उसे देखने के लिए चलती तो शिवजी उसके समुन्नत कुचों का स्पर्श करने लगते ॥ २३ ॥ कभी वे प्रमथाधिपति काम के उन्माद से व्यग्रचित्त हो अपनी प्रिया के साथ नर्म परिहास करने लगते ॥ २४ ॥ कभी वे शङ्कर कमल के तथा अन्य पुष्पों को लाकर बड़े प्रेम से उसका आभरण बनाकर सती के अङ्गों में पहनाने लगते ॥ २५ ॥ इस प्रकार वे भक्तवत्सल महेश्वर समस्त रमणीय वनकुंजों में सती के साथ विहार करने लगे ॥ २६ ॥

शिवजी सती के विना एक क्षण भी न कहीं जाते, न बैठते और न कोई चेष्टा ही करते थे। सती के विना उन्हें क्षणभर भी चैन न पड़ता था ॥ २७ ॥ इस प्रकार कैलास पर्वत के प्रत्येक कुंजों में बहुत दिनों तक विहार करने के उपरान्त वे पुनः हिमालय पर्वत पर आ गये और वहाँ अपनी इच्छा से उन्होंने काम का स्मरण किया ॥ २८ ॥ जब काम शिव के आश्रम में प्रविष्ट हो गया तो उसके साथ वसन्त ने भी शङ्कर का अभिप्राय जानकर वहाँ अपना व्यापार प्रकट करने लगा ॥ २९ ॥ सभी वृक्ष तथा लताएँ पुष्प से समन्वित हो उठीं। जल में कमलों से युक्त तथा कमल भ्रमरों से युक्त हो गये ॥ ३० ॥ उस उत्तम वसन्त के प्रवेश करते ही सुगन्ध पुष्पों के गन्ध लिये हुए अत्यन्त सुन्दर मलयानिल बहने लगा ॥ ३१ ॥ सन्ध्याकाल के अरुण चन्द्रमा के समान पलाश शोभित होने लगे। सभी वृक्ष कामास्त्र के समान सुन्दर पुष्प से अलङ्कृत हो गये ॥ ३२ ॥ तडागों में कमल-पुष्प शोभित हो रहे थे। इस प्रकार सुन्दर मुखवाली वायु की अधिष्ठात्री देवी सारे संसार के मनुष्यों को मोहित करने के लिए उद्यत दिखाई पड़ने लगी ॥३३॥ उन शंकर के समीप नागकेशर के वृक्ष अपने सुवर्ण सदृश पुष्पों से कामदेव के मनोहर ध्वजा जैसे प्रतीत होने लगे ॥ ३४ ॥ लवङ्ग की सुगन्धित लता अपने गन्ध से वायु को सुवासित कर कामिजनों के चित्त को बारम्बार मोहित करने लगी ॥ ३५ ॥ मनोहर मञ्जरी से युक्त देदीप्यमान अग्नि के समान आम के वृक्षों पर तरह-तरह के पक्षिगण शब्द कर रहे थे। जो कामदेव के बाणों के समान तथा काम से व्याप्त मदन के पर्यङ्क जैसे प्रतीत हो रहे थे ॥ ३६ ॥ ज्ञान के उदय से प्रसन्न हुए मुनियों के मन के समान फूले हुए कमलों से युक्त, निर्मल जल शोभा पा रहे थे ॥ ३७ ॥ सूर्य के किरणों के सम्पर्क से तुषार का गिरना

प्रसन्नाः सह चन्द्रेण न निषारास्तदाऽभवन् । विभावर्यः प्रियेणैवं कामिन्यः सुमनोहराः ॥३९॥
तस्मिन् काले महादेवः सह सत्या धरोत्तमे । रेमे स सुचिरं छन्दं निकुञ्जेषु नदीषु च ॥४०॥
तथा तेन समं रेजे तदा दाक्षायिणी मुने ! । यथा हरः क्षणमपि शान्तिमाप तया विना ॥४१॥
सम्भोगविषये देवी सती तस्य मनःप्रिया । विशतीव हरस्याङ्गे पाययन्निव तद्रसम् ॥४२॥
तस्याः कुसुममालाभिर्भूषयन् सकलां तनुम् । स्वहस्तरचिताभिस्तु नवशर्माकरोच सः ॥४३॥
आलापैर्वीक्षितैर्हास्यैस्तथा सम्भाषणैर्हरः । तस्यादिदेश गिरिजां सपतीवात्मसंविदम् ॥४४॥
तद्वक्त्र-चन्द्रपीयूष-पानस्थिर-तनुर्हरः । नानावैशेषिकीं तन्वीमवस्थां स कदाचन ॥४५॥
तद्वक्त्राम्बुजवासेन तत्सौन्दर्य्यैश्च नर्मभिः । गुणैरिव महादन्ती बद्धो नान्यविचेष्टितः ॥४६॥

इति हिमगिरिकुञ्जप्रस्थभागे दरीषु प्रतिदिनमभिरेमे दक्षपुत्र्या महेशः ।
क्रतुभुजपरिमाणैः क्रीडतस्तस्य जाता दश दश च सुरर्षे ! वत्सराः पञ्च चान्ये ॥४७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सतीशिवक्रीडा-
वर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

कन्द हो चुका था । तथा जल ही जिनका हृदय है ऐसे कमल स्पष्ट रूप से जल में दिखाई पड़ते थे ॥३८॥ रात्रि में तुषारपात नहीं होता था, अतएव तुषार से रहित रात्रियाँ चन्द्रमा से युक्त होने के कारण अपने प्रियतम के साथ सुशोभित होनेवाली स्त्रियों के जैसे प्रतीत हो रही थीं ॥ ३९ ॥

उस वसन्तकाल में महादेव उस पर्वत के निकुञ्ज तथा नदियों में सती के साथ वहुत काल पर्यन्त स्वच्छन्दता से रमण करने लगे ॥ ४० ॥ और हे मुने ! उस समय दक्षपुत्री सती भी महादेवजी के साथ शोभा को प्राप्त हुईं । शिवजी को सती के बिना क्षणभर भी शान्ति नहीं मिलती थी ॥ ४१ ॥ शिव की मनःकान्ता सती भी सम्भोग काल में शिव के अङ्ग में लीन होकर उन्हें संभोग के रस का पान कराती हुई-सी जान पड़ती थीं ॥ ४२ ॥ शंकरजी भी नवीन-नवीन पुष्पों की माला अपने हाथों से बनाकर उससे सती के अङ्ग को शोभित करते हुए नवीन-नवीन मङ्गल कर रहे थे ॥ ४३ ॥ शिवजी वार्त्तालाप काल में उसकी ओर अपने वीक्षण तथा हास्य से सुन्दर पति के समान अपने ज्ञान का परिचय सती को देते रहते थे ॥ ४४ ॥ सती के चन्द्रमुख के अमृतपान से शिवजी का शरीर आनन्द से निमग्न हो जाता था । उन्हें सती के प्रेम में अपनी विशेष अवस्था का कभी स्मरण भी नहीं होता था ॥ ४५ ॥ वे शिव सती के मुख-कमल के आसव उसकी सुन्दरता तथा उसकी काम-केलि में ऐसे बँध गये जैसे कोई बँधा हुआ हाथी अन्य प्रकार की चेष्टा करने में असमर्थ हो गया हो ॥ ४६ ॥ इस प्रकार से महेश्वर हिमालय के कुञ्जों में, उसके सानुओं पर तथा गुफाओं में सती के साथ रमण करने लगे । ऐसा करते हुए उनके देवताओं के वर्ष परिमाण के अनुसार एक सौ पाँच वर्ष व्यतीत हो गये ॥ ४७ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में सती-शिवक्रीडा वर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥

*

द्वाविंशोऽध्यायः

(वर्षाकाल में मेघों की गति का अभाव और हिमालय में सती-शिव के क्रीडा का वर्णन)

ब्रह्मोवाच

कदाचिदथ दक्षस्य तनया जलदागमे। कैलासक्ष्माभृतः प्राह प्रस्थस्थं वृषभध्वजम्॥ १॥

सत्युवाच

देवदेव महादेव! शम्भो मत्प्राणवल्लभ! । शृणु मे वचनं नाथ श्रुत्वा तत्कुरु मानद! ॥ २॥
घनागमोऽयं सम्प्राप्तः कालः परमदुःसहः। अनेकवर्णमेघौघाः सञ्छीताम्बरदिक्चयाः ॥ ३॥
विवान्ति वाता हृदयं हारयन्तीति वेगिमः। कदम्बरजसा धौताः पाथोबिन्दुविकर्षणाः ॥ ४॥
मेघानां गर्जितैरुच्चैर्धारासारं विमुञ्चताम्। विद्युत्पताकिनां तीव्रैः क्षुब्धं स्यात् कस्य नो मनः॥ ५॥
न सूर्यो दृश्यते नापि मेघच्छन्नो निशापतिः। दिवापि रात्रिवद् भाति विरहिव्यसनाकरः ॥ ६॥
मेघा नैकत्र तिष्ठन्तो ध्वनन्तः पवनेरिताः। पतन्त इव लोकानां दृश्यन्ते मूर्ध्नि शङ्कर! ॥ ७॥
वाताहता महावृक्षा नर्तन्त इव चाम्बरे। दृश्यन्ते हर भीरूणां त्रासदाः कामुकेप्सिताः॥ ८॥
स्निग्धनीलाञ्जनस्याशु सदिवौघस्य पृष्ठतः। बलाकराजी वात्युच्चैर्यमुनापृष्ठफेनवत् ॥ ९॥
क्षपाक्षयेषु वलयं दृश्यते कालिकागता। अम्बुधाविव संदीप्तपावको वडवामुखः ॥१०॥
प्ररोहन्तीह सस्यानि मन्दिरं प्राङ्गणेष्वपि। किमन्यत्र विरूपाक्ष! सस्योद्भूतिं वदाम्यहम्॥११॥
श्यामलै राजतै रक्तैर्विशदोऽयं हिमाचलः। मन्दराश्रयमेघौघः पत्रैर्दुग्धाम्बुधिर्यथा ॥१२॥
असमश्रीश्च कुटिलं भेजे यस्याथ किंशुकान्। उच्चावचान् कलौ लक्ष्मीर्गन्ता सन्त्यज्य सज्जनान् ॥१३॥

ब्रह्माजी बोले—एक समय वर्षाऋतु में जब श्री महादेवजी कैलास पर्वत के शिखर पर बैठे थे तब सती ने शिव से कहा ॥ १ ॥

सती बोलीं—हे देवाधिदेव! हे महादेव! हे मेरे प्राणवल्लभ! सदाशिव! मेरे वचनों को सुनिए। और हे मानद! वैसा कीजिए ॥२॥ हे नाथ! यह परम दुःसह वर्षाकाल आकर उपस्थित हो गया है। नाना वर्ण के मेघों की गर्जना से आकाश तथा दिशाएँ व्याप्त हो गई हैं ॥ ३ ॥ हृदय को हरण करनेवाला वायु वेग से बह रहा है। कदम्ब के पराग से धुले हुए वायु के चलने से जल के फुहारे पृथ्वी पर गिर रहे हैं ॥ ४ ॥ इस वर्षाकाल में धाराओं से जल-समूह की वृष्टि करते हुए तथा चमकते हुए बिजली की पताका वाले इन मेघों की गर्जना से किसका मन क्षुब्ध नहीं हो जाता ॥ ५ ॥ विरहियों को महान् दुःख देनेवाला यह वर्षा काल महाभयानक है, इस काल में मेघाच्छन्न होने के कारण दिन में न तो सूर्य का दर्शन हो पाता है न रात्रि में चन्द्रमा का दर्शन हो पाता है। इस काल में दिन भी रात्रि के समान प्रतीत हो रहा है ॥ ६ ॥ प्रचण्ड वायु के झोंके के कारण मेघ शब्द करते हुए आसमान में एक जगह कहीं स्थिर नहीं हो पाते। हे शङ्कर! ये लोगों के सिर पर गिरते जैसे प्रतीत हो रहे हैं ॥ ७ ॥ हे शङ्कर! वायु के झोंके से ये बड़े-बड़े वृक्ष आसमान में नाचते जैसे दिखाई दे रहे हैं, जो कामिजनों के लिए सुखदायक तथा भीरुजनों को भय उत्पन्न कर रहे हैं ॥ ८ ॥ काले तथा चिकने बादल वाले आसमान के ऊपर उड़ती हुई वक-पंक्ति, काली यमुना नदी के ऊपर बहते हुए फेन जैसा प्रतीत हो रही है ॥ ९ ॥ काली रात्रि में बादलों से छिपा हुआ यह चन्द्र-मण्डल समुद्र में प्रदीप्त हुए वड़वाग्नि के समान प्रतीत हो रहा है ॥ १० ॥ हे विरूपाक्ष! इस मन्दराचल पर्वत के प्राङ्गण में भी वर्षाकाल के कारण छोटे-छोटे घास उग आये हैं फिर जगह की चर्चा ही क्या है? ॥ ११ ॥ मन्दर पर्वत पर आश्रय लेने वाले काले, श्वेत तथा रक्त वर्णों के मेघों से यह विशद हिमालय ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे पत्तों से पूर्ण दुग्ध का समुद्र हो ॥ १२ ॥ श्री (शोभा) सभी वृक्षों को त्यागकर केवल विषमता से किंशुक वृक्षों को शोभित कर रही है, जिस प्रकार महालक्ष्मी कलि में सज्जनों का त्यागकर नीचे-ऊँचे सभी पुरुषों को प्राप्त होती है ॥ १३ ॥

मन्दारस्तनपीलूनां शब्देन हर्षिता मुहुः। केकायन्ते प्रतिवने सततं पृष्ठसूचकम् ॥१४॥
मेघोत्सुकानां मधुरश्चातकानां मनोहरः। धारासारशरैस्तापं पेतुः प्रतिपथोद्गतम् ॥१५॥
मेघानां पश्य मद्गेहे दुर्नयं करकोत्करैः। ये छादयन्त्यनुगते मयूरांश्चातकांस्तथा ॥१६॥
शिखिसारङ्गयोर्दृष्ट्वा मित्रादपि पराभवम्। हर्षं गच्छन्ति गिरिशं विदूरमपि मानसम् ॥१७॥
एतस्मिन् विषमे काले नीडं काकाश्चकोरकाः। कुर्वन्ति त्वां विना गेहान् कथं शान्तिमवाप्स्यसि॥१८॥
महतीवाद्य नो भीतिर्मा मेघोत्था पिनाकधृक्। यतस्व यस्माद्वासाय माचिरं वचनान्मम ॥१९॥
कैलासे वा हिमाद्रौ वा महाकाश्यामथ क्षितौ। तत्रोपयोग्यं संवासं कुरु त्वं वृषभध्वज! ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तस्तया शम्भुर्दाक्षायण्या तथाऽसकृत्। सञ्जहास च शीर्षस्थ-चन्द्ररश्मि-स्मितालयम् ॥२१॥
अथोवाच सतीं देवीं स्मितभिन्नौष्ठसम्पुटः। महात्मा सर्वतत्त्वज्ञस्तोषयन् परमेश्वरः ॥२२॥

ईश्वर उवाच

यत्र प्रीत्यै मया कार्यो वासस्तव मनोहरे। मेघास्तत्र न गन्तारः कदाचिदपि मत्प्रिये ॥२३॥
मेघा नितम्बपर्यन्तं सञ्चरन्ति महीभृतः। सदा प्रालेयसानोस्तु वर्षास्वपि मनोहरे ॥२४॥
कैलासस्य तथा देवि! पादगाः प्रायशो घनाः। सञ्चरन्ति न गच्छन्ति तत ऊर्ध्वं कदाचन ॥२५॥
सुमेरोर्वा गिरेरूर्ध्वं न गच्छन्ति बलाहकाः। जम्बूमूलं समासाद्य पुष्करावर्तकादयः ॥२६॥
इत्युक्तेषु गिरीन्द्रेषु यस्योपरि भवेद्धि ते। मनोरुचिर्निवासाय तमाचक्ष्व द्रुतं हि मे ॥२७॥
स्वेच्छाविहारैस्तव कौतुकानि सुवर्णपक्षानिलवृन्दवृन्दैः।
शब्दोत्तरङ्गैर्मधुरस्वनैस्तैर्मुदोपगेयानि गिरौ हिमोत्थे ॥२८॥

मन्दराचल पर्वत के ऊपर रहने वाले बादलों के शब्द से हर्षित हुए मोर वन में अपनी पीठ दिखाकर नाच रहे हैं ॥ १४ ॥ मेघों के लिए उत्सुक हुए इन चातकों की मधुर ध्वनि इस वर्षाकाल में सुनाई पड़ रही है और पथिक गण जल-वर्षा से रास्ते में होनेवाली थकावट को दूर कर रहे हैं ॥ १५ ॥ और हे शङ्कर! मेरे इस घर में मेघों के ओले गिराये जाने से उत्पन्न हुई इस दुर्नीति को देखिए जो अपने अनुगामी मोर तथा चातकों पर भी उपल वर्षा कर उन्हें ओलों से आच्छादित कर दे रहे हैं ॥ १६ ॥ मोर तथा सारङ्ग पक्षी का मित्र (सूर्य) द्वारा पराभव देखकर हंस बहुत दूर पर्वत पर मानसरोवर को जा रहे हैं ॥ १७ ॥ हे सदाशिव! इस विषम काल में तुम्हें छोड़कर कौआ तथा चकोर पक्षी भी घोंसला बना रहे हैं। तब भला आप ही बताओ, बिना घर के आप किस प्रकार शान्ति प्राप्त करोगे ॥ १८ ॥ हे पिनाकधारिन्! मुझे इन मेघों से महान् भय उपस्थित हो गया है, इस कारण मेरे कहने से कहीं घर का प्रबन्ध करो ॥ १९ ॥ हे वृषभध्वज! कैलास पर, हिमालय पर, महाकाशी में अथवा पृथ्वी में जहाँ कहीं भी उचित हो घर का प्रबन्ध करो ॥ २० ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! इस प्रकार दक्ष-कन्या के द्वारा बारम्बार कहे जाने पर शिवजी अपने शीर्षस्थ चन्द्रमा के रश्मि के समान उज्ज्वल मुख से हँसने लगे ॥ २१ ॥ तदनन्तर सर्वतत्त्वज्ञ महात्मा परमेश्वर महादेव सती को प्रसन्न करते हुए बोले ॥ २२ ॥

ईश्वर ने कहा—हे मनोहारिणि प्रिये! मैं तुम्हारे रहने के लिए जहाँ स्थान बनाऊँगा, वहाँ मेघ नहीं जा पावेंगे ॥ २३ ॥ हे मनोहरे! वर्षाकाल में भी ये मेघ हिमालय के शिखर के नीचे-ही-नीचे भ्रमण करते हैं ॥ २४ ॥ उसी प्रकार हे देवि! ये मेघ इस कैलास के नीचे-ही-नीचे घूमते हैं, ऊपर नहीं जाते ॥ २५ ॥ पुष्करावर्त्तक आदि मेघ भी जम्बू के मूल तक ही रह जाते हैं, वे जम्बू के ऊपर रहने वाले सुमेरु के शिखर पर नहीं जाते ॥ २६ ॥ हे प्रिये! ऊपर कहे गये पर्वतों में जिस पर्वत पर तुम्हारी निवास करने की इच्छा हो, उस पर्वत को शीघ्र बताओ ॥ २७ ॥ इस हिमालय पर्वत पर निवास करने से स्वच्छन्द विहार

सिद्धाङ्गनास्ते रचितासना भुवमिच्छन्ति चैवोपहृतं सकौतुकम् ।
स्वेच्छाविहारे मणिकुट्टिमे गिरौ कुर्वन्ति चेष्यन्ति फलादिदानकैः ॥२९॥

फणीन्द्रकन्या गिरिकन्यकाश्च या नागकन्याश्च तुरङ्गमुख्यः ।
सर्वास्तु तास्ते सततं सहायतां समाचरिष्यन्त्यनुमोदविभ्रमैः ॥३०॥

रूपं तदेवमतुलं वदनं सुचारु दृष्ट्वाङ्गना निजवपुर्निजकान्तिसद्म ।
हेला निजे वपुषि रूपगणेषु नित्यं कर्तार इत्यनिमिषेक्षणचारुरूपाः ॥३१॥

या मेनका पर्वतराजजाया रूपैर्गुणैः ख्यातवती त्रिलोके ।
सा चापि ते तत्र मनोऽनुमोदं नित्यं करिष्यत्यनुनाथनाद्यैः ॥३२॥

पुरं हि वर्गैर्गिरिराजवन्द्यैः प्रीतिं विचिन्वद्भिरुदाररूपा ।
शिक्षा सदा ते खलु शोचितापि कार्याऽन्वहं प्रीतियुता गुणाद्यैः ॥३३॥

विचित्रैः कोकिलालापामोदैः कुञ्जगणावृतम् । सदा वसन्तप्रभवं गन्तुमिच्छसि किं प्रिये ! ॥३४॥
नानाबहुजलापूर्णसरः शीतसमावृतम् । पद्मिनीशतशोयुक्तमचलेन्द्रं हिमालयम् ॥३५॥
सर्वकामप्रदैर्वृक्षैः शाद्वलैः कल्पसंज्ञकैः । सक्षणं पश्य कुसुमान् यथाश्वकरिगोव्रजे ॥३६॥
प्रशान्तश्वापदगणं मुनिभिर्यतिभिर्वृतम् । देवालये महामाये नानामृगगणैर्युतम् ॥३७॥
स्फटिक-स्वर्ण-वप्राद्यै राजतैश्च विराजितम् । मानसादिसरोरङ्गैरभितः परिशोभितम् ॥३८॥
हिरण्मये रत्ननालैः पङ्कजैर्मुकुलैर्वृतम् । शिशुमारैस्तथाऽसङ्ख्यैः कच्छपैर्मकरैः करैः ॥३९॥

करने वाले, सुवर्ण के समान पंख वाले ये अनिल नामक पक्षिसमूह ऊँचे-ऊँचे मधुर शब्दों से तुम्हारे कौतुक (केलिक्रीड़ा) का गान करेंगे ॥ २८ ॥ सिद्धों की स्त्रियाँ मणियों के द्वारा कूटकर बनायी गयी। इस हिमालय के भूमि पर तुम्हारे स्वेच्छा-विहार काल में कौतुक से तुम्हारे बैठने के लिए आसन का निर्माण कर स्वच्छ पृथ्वी को तुम्हें अर्पण करेंगी। और नाना प्रकार के फल आदि लाकर देने की इच्छा करेंगी ॥ २९ ॥

नागकन्या, पर्वतकन्या एवं तुरङ्गमुखी किन्नरियाँ ये सभी अपने मनमोहक हाव-भावों से सदैव तुम्हारी सहायता करेंगी ॥ ३० ॥ तुम्हारा यह अतुलनीय रूप तथा मनोरम मुख देखकर वहाँ की स्त्रियाँ अपने पति के लिए मनोहर लगने वाले अपने शरीर, अपने रूप तथा अपने गुण को धिक्कार करेंगी। तथा तुम्हारी ओर टकटकी लगाकर देखेंगी ॥ ३१ ॥ पर्वतराज हिमालय की स्त्री मेना, जो अपने रूप तथा गुण से त्रिलोक में विख्यात हैं, वे भी तुम्हारे मन के अनुकूल ऐश्वर्य, आशीर्वाद तथा प्रार्थना से तुम्हें प्रसन्न करना चाहेंगी ॥ ३२ ॥ गिरिराज से वन्दना के योग्य समस्त पुरन्ध्री वर्ग तुम्हें प्रसन्न करने का सदैव यत्न करेगा। और यदि अत्यन्त उदाररूपा तुमको कभी कुछ शोक होगा, तो वे लोग तुम्हें शिक्षा देंगे तथा अपने गुणों से प्रसन्न रखेंगे ॥ ३३ ॥ हे प्रिये ! कोकिलाओं के विचित्र आलापों से पूर्ण कुंजसमूहों से आवृत स्थान में जहाँ वसन्त के उत्पत्ति का स्थान है, क्या तुम उस स्थान में रहना पसन्द करती हो ॥ ३४ ॥ जहाँ विविध प्रकार के अनेक तालाब, सैकड़ों कमलिनियों से पूर्ण शीतजल से आवृत हैं। ऐसे हिमालय पर जहाँ अश्व, हाथी तथा गौओं का निवास है, हे देवि ! वहाँ सभी कामनाओं को प्रदान करने वाले हरे वर्ण के कल्प संज्ञक वृक्षों से गिरे हुए मनोहर पुष्पों को चावभरी दृष्टि से देखना। हे महाभागे ! उस हिमालय पर हिंस्र जन्तुगण भी शान्ति से निवास करते हैं, वह अपने प्रकार के मृगगणों से युक्त है, वहाँ के देवालयों में मुनि तथा पतियों का निवास है ॥ ३५-३७ ॥ उसके शिखर स्फटिक, सुवर्ण एवं चाँदी से व्याप्त हैं। वहाँ के मानसादि सरोवरों में सुवर्ण एवं रत्नों की डण्डी वाले कमल खिले हुए हैं।

निषेवितं मञ्जुलैश्च तथा नीलोत्पलादिभिः । देवेशि ! तस्मान्मुक्तैश्च सर्वगन्धैश्च कुङ्कुमैः ॥४०॥
लसद्गन्धजलैः शुभ्रैरापूर्णैः स्वच्छकान्तिभिः । शाद्वलैस्तरुणैस्तुङ्गैस्तीरस्थैरुपशोभितम् ॥४१॥
नृत्यद्भिरिव शाखोटैर्वर्जयन्तं स्वसम्भवम् । कामदेवैः सारसैश्च मत्तचक्राङ्गशोभितैः ॥४२॥
मधुराराविभिर्मोदकारिभिर्भ्रमरादिभिः । शब्दायमानं च मुदा कामोद्दीपनकारकम् ॥४३॥
वासवस्य कुबेरस्य यमस्य वरुणस्य च । अग्नेः कोणपराजस्य मारुतस्य परस्य च ॥४४॥
पुरीभिः शोभिशिखरं मेरोरुच्चैः सुरालयम् । रम्भा-शची-मेनकादि-रम्भोरुगण-सेवितम् ॥४५॥
किं त्वमिच्छसि सर्वेषां पर्वतानां हि भूभृताम् । सारभूते महारम्ये संविहर्तुं महागिरौ ॥४६॥
तत्र देवी सखियुता साप्सरोगणमण्डिता । नित्यं करिष्यति शची तव योग्यां सहायताम् ॥४७॥
अथवा मम कैलासे पर्वतेन्द्रे सदाश्रये । स्थानमिच्छसि वित्तेशपुरीपरिविराजिते ॥४८॥
गङ्गाजलौघप्रयते पूर्णचन्द्रसमप्रभे । दरीषु सानुषु सदा ब्रह्मकन्याभ्युदीरिते ॥४९॥
नानामृगगणैर्युक्ते पद्माकरशतावृते । सर्वैर्गुणैश्च सद्वस्तु सुमेरोरपि सुन्दरि ॥५०॥
स्थानेष्वेतेषु यत्रापि तवान्तःकरणे स्पृहा । तं द्रुतं मे समाचक्ष्व वासकर्ताऽस्मि तत्र ते ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

इतीरिते शङ्करेण तदा दाक्षायणी शनैः । इदमाह महादेवं लक्षणं स्वप्रकाशनम् ॥५२॥

सत्युवाच

हिमाद्रावेव वसितुमहमिच्छे त्वया सह । न चिरात्कुरु संवासं तस्मिन्नेव महागिरौ ॥५३॥

शिशुमार एवं असंख्य कच्छप तथा मकरों से वह मानसरोवर परिपूर्ण है ॥ ३८-३९ ॥ वह मानसरोवर कोमल नीलोत्पलों से सेवित है। हे देवेशि ! इसी कारण से वहाँ पर आनेवाले कुंकुमादि के गन्धों से पूर्ण स्वच्छ कान्ति वाले जलों से वह मानसरोवर पूर्ण है। उस मानसरोवर के तट हरे-भरे, ऊँचे एवं तरुण वृक्षों से शोभित है। यहाँ के शाखोट के वृक्ष तो अपनी शाखा हिलाकर नृत्य करने के समान प्रतीत होते हैं। इच्छानुसार रूप धारण करने वाले देवताओं, सारसों तथा मतवाले चक्रवाकों से वह मानसरोवर शोभित है ॥ ४०-४२ ॥ परमानन्द देने वाले भौंरों के मधुर शब्दों से शब्दायमान वह मानसरोवर महाकामोद्दीपक है ॥ ४३ ॥ मेरु के उच्च शिखर पर इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, अग्नि, निर्ऋत वायु की पुरियाँ हैं, जहाँ देवताओं का निवास हैं। रम्भा, शची एवं मेनकादि अप्सराओं से वह मेरु सुशोभित है ॥ ४४-४५ ॥ हे देवि ! क्या तुम इन समस्त पर्वतों के राजा पृथ्वी के सारभूत महारमणीय सुमेरु पर्वत पर निवास करना चाहती हो ॥ ४६ ॥ वहाँ निवास करने से सखियों एवं अप्सराओं के सहित शची देवी तुम्हारी नित्य सहायता करेंगी ॥ ४७ ॥ अथवा नित्य मेरे आश्रयभूत पर्वतेन्द्र कैलासपुरी में ही तुम निवास करना चाहती हो, जहाँ पर कुबेर की अलकापुरी है ॥ ४८ ॥ जहाँ गङ्गा की जलधारा बह रही है, जो स्वयं पूर्णचन्द्र के समान सर्वथा उज्ज्वल है। जिस कैलास की गुफाओं तथा शिखरों पर ब्रह्म-कन्याएँ सुन्दर गान करती हैं ॥ ४९ ॥ यह कैलास, अनेक मृगगणों से युक्त, सैकड़ों कमलों से व्याप्त एवं सुमेरु की अपेक्षा वह सभी गुणों से सुन्दर है ॥ ५० ॥ हे देवि ! इन स्थानों में जहाँ कहीं भी रहने की तुम्हारी इच्छा हो, उसे शीघ्र ही मुझे बताओ। वहाँ पर तुम्हारे लिए निवासस्थान निर्माण करूँ ॥ ५१ ॥

ब्रह्माजी बोले—जब शङ्कर जी ने ऐसा कहा, तब सती ने अपने निवासभूत स्थान का लक्षण इस प्रकार कहा ॥ ५२ ॥

सती बोली—हे देव ! मैं इस हिमालय पर ही तुम्हारे साथ निवास करना चाहती हूँ। क्या इसी पर्वत पर आप निवास के लिए शीघ्रता से स्थान का निर्माण नहीं करेंगे ? ॥ ५३ ॥

अथ तद्वाक्यमाकर्ण्य हरः परममोहितः । हिमाद्रिशिखरं तुङ्गं दाक्षायण्या समं ययौ ॥५४॥
सिद्धाङ्गनागणयुतमगम्यं चैव पक्षिभिः । अगमच्छिखरं रम्यं सरसीवनराजितम् ॥५५॥
विचित्ररूपैः कमलैः शिखरं रत्नकर्बुरम् । बालार्कसदृशं शम्भुराससाद सतीसखः ॥५६॥
स्फटिकाभ्रमये तस्मिन् शाद्वलद्रुमराजिते । विचित्रपुष्पावलिभिः सरसीभिश्च संयुते ॥५७॥
प्रफुल्लतरुशाखाग्रं गुञ्जद्भ्रमरसेवितम् । पङ्केरुहैः प्रफुल्लैश्च नीलोत्पलचयैस्तथा ॥५८॥
शोभितं चक्रवाकाद्यैः कादम्बैर्हंसशङ्कुभिः । प्रमत्तसारसैः क्रौञ्चैर्नीलकन्धैश्च शब्दितैः ॥५९॥
पुंस्कोकिलानां निनदैर्मधुरैर्गणसेवितैः । तुरङ्गवदनैः सिद्धैरप्सरोभिश्च गुह्यकैः ॥६०॥
विद्याधरीभिर्देवीभिः किन्नरीभिर्विहारितम् । पुरन्ध्रीभिः पार्वतीभिः कन्याभिरभिसङ्गतम् ॥६१॥
विपञ्ची-तान्त्रिकामत्त-मृदङ्ग-पटहस्वनैः । नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च कौतुकोत्थैश्च शोभितम् ॥६२॥
देविकाभिर्दीर्घिकाभिर्गन्धिभिः सुसमावृतम् । प्रफुल्लकुसुमैर्नित्यं सकुञ्जैरुपशोभितम् ॥६३॥
शैलराजपुराभ्यर्णे शिखरे वृषभध्वजः । सह सत्या चिरं रेमे एवंभूतेषु शोभनम् ॥६४॥
तस्मिन् स्वर्गसमे स्थाने दिव्यमानेन शङ्करः । दशवर्षसहस्राणि रेमे सत्या समं मुदा ॥६५॥
स कदाचित्ततः स्थानादन्यथाति स्थलं हरः । कदाचिन्मेरुशिखरं देवीदेवावृतं सदा ॥६६॥
द्वीपान्नाना तथोद्यानवनानि वसुधातलम् । गत्वा गत्वा पुनस्तत्राभ्येत्य रेमे सतीसुखम् ॥६७॥
न यज्ञे स दिवारात्रौ न ब्रह्मणि तपः समम् । सत्यां हि मनसा शम्भुः प्रीतिमेव चकार ह ॥६८॥

पुनः ब्रह्मा ने कहा—सती के इस वचन को सुन कर शिव जी अत्यन्त मोहित हो गये। वे सती के साथ हिमालय के ऊँचे शिखर पर चले गये ॥ ५४ ॥ जहाँ केवल सिद्धाङ्गनाएँ निवास करती हैं, जो पक्षियों के लिए सर्वथा अगम्य है। जिस हिमालय के शिखर पर अनेक छोटी-छोटी बावलियाँ तथा मनोहर वन विद्यमान हैं ॥ ५५ ॥ विचित्र कमलों से चित्रित प्रभातकालीन सूर्य के समान शोभित उस शिखर पर शिव जी सती के साथ चले गये ॥ ५६ ॥ स्फटिकमणि के समान स्वच्छ, हरे-भरे वृक्षों से परिपूर्ण, विचित्र पुष्पों वाली बावलियों से युक्त ॥ ५७ ॥ उस शिखर के वृक्षों की शाखाओं का अग्रभाग फूलों से लदा हुआ था, भौंरे गुञ्जार कर रहे थे, नील एवं अनेक वर्ण के कमलों से वह परिपूर्ण था ॥ ५८ ॥ चक्रवाक, कादम्ब, हंस, शंकु, मतवाले सारस और नीली गर्दन वाले क्रौञ्च पक्षियों के शब्दों से वह शिखर शब्दायमान हो रहा था ॥ ५९ ॥ पुंस्कोकिल मनोहर शब्द कर रहे थे, अनेक प्रकार के गणों, किन्नरियों, सिद्धों, अप्सराओं तथा गुह्यकों से सेवित था ॥ ६० ॥ विद्याधरियाँ, देवियाँ तथा किन्नरियाँ विहार कर रही थीं, पर्वतीय स्त्रियाँ तथा पर्वतीय कन्याओं से वह युक्त था ॥ ६१ ॥ वीणा, सितार, मृदङ्ग एवं पटह के बाजों पर नाचती एवं कौतुक करती हुई अप्सराओं के समूह से वह शिखर व्याप्त था ॥ ६२ ॥ देवनिर्मित बावलियों से तथा फूले हुए कुसुमों के गन्ध से तथा निकुञ्जों से वह शोभायमान था ॥ ६३ ॥

इस प्रकार शोभा से युक्त शैलराज के शिखर पर शंकरजी सती के साथ बहुत काल तक रमण करते रहे ॥ ६४ ॥ उस स्वर्गोपम स्थान में महादेवजी सती के साथ देवताओं के वर्ष की गणनानुसार दश सहस्र वर्ष तक विहार करते रहे ॥ ६५ ॥ कभी वे उस स्थान को छोड़कर सती के साथ अन्यत्र चले जाते। कभी देवी-देवताओं से व्याप्त मेरु शिखर पर चले जाते ॥ ६६ ॥ इस पृथ्वीतल के नाना प्रकार के द्वीपों, उद्यानों एवं वनों में जाकर पुनः वहाँ आकर सती के साथ रमण करने लगते थे ॥ ६७ ॥ शिवजी ने यज्ञ, ब्रह्मध्यान तथा तपस्या आदि को छोड़ दिया और दिन-रात सती के प्रेम में ही अपना

एवं महादेवमुखं सत्यपश्यत् स्म सर्वदा । महादेवोऽपि सर्वत्र सदाऽद्राक्षीत् सतीमुखम् ॥६९॥
एवमन्योन्यसंसर्गादनुरागमहीरुहम् । वर्द्धयामासतुः कालीशिवौ भावाम्बुसेचनैः ॥७०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे शिवाशिवविहार-
वर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

(सती के प्रति सभेद स्वरूप भक्तिभाव कथन एवं मोक्ष वर्णन)

ब्रह्मोवाच

एवं कृत्वा विहारं वै शङ्करेण च सा सती । सन्तुष्टा साऽभवच्चाति विरागा समजायत ॥ १ ॥
एकस्मिन् दिवसे देवी सती रहसि सङ्गता । शिवं प्रणम्य सद्भक्त्या न्यस्योच्चैः सुकृताञ्जलिः ॥ २ ॥
सुप्रसन्नं प्रभुं नत्वा सा दक्षतनया सती । उवाच साञ्जलिर्भक्त्या विनयावनता ततः ॥ ३ ॥

सत्युवाच

देवदेव महादेव ! करुणासागर प्रभो ! । दीनोद्धर महायोगिन् ! कृपां कुरु ममोपरि ॥ ४ ॥
त्वं परः पुरुषः स्वामी रजः सत्त्वतमः परः । निर्गुणः सगुणः साक्षी निर्विकारी महाप्रभुः ॥ ५ ॥
धन्याऽहं ते प्रिया जाता कामिनी सुविहारिणी । जातस्त्वं मे पतिः स्वामिन् भक्तिवात्सल्यतो हर ॥६॥
कृत्वा बहुसमा नाथ ! विहारः परमस्त्वया । सन्तुष्टाऽहं महेशान ! निवृत्तं मे मनस्ततः ॥ ७ ॥
ज्ञातुमिच्छामि देवेश ! परं तत्त्वं सुखावहम् । यं न संसारदुःखाद् वै तरेज्जीवोऽञ्जसा हर ॥ ८ ॥
यत्कृत्वा विषयी जीवः स लभेत् परमं पदम् । संसारी न भवेन्नाथ ! तत्त्वं वद कृपां कुरु ॥ ९ ॥

मन लगाया ॥ ६८ ॥ इसी प्रकार सती भी निरन्तर महादेव का मुख निहारती रहती थीं और महादेव जी भी सती का मुख देखते रहते ॥ ६९ ॥ इस प्रकार परस्पर स्नेहरूपी जल से सींच कर अनुरागरूपी वृक्ष को उन शिव तथा सती ने बढ़ाया ॥ ७० ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में शिवा-शिवविहार वर्णन नामक बाइसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार शङ्कर के साथ विहार करती हुई सती काम से सन्तुष्ट चित्त हो गयी । उसके मन में वैराग्य का उदय होने लगा ॥ १ ॥ एक दिन एकान्त में सुख से बैठी हुई सती भक्तिपूर्वक शिव को प्रणाम कर हाथ जोड़े हुए विनयावनत हो कहने लगी ॥ २-३ ॥

सती बोली—हे देवदेव ! हे महादेव, हे करुणासागर, हे प्रभो, हे दीनों का उद्धार करने वाले, हे महायोगिन् ! मेरे ऊपर आप कृपा करें ॥ ४ ॥ आप परमात्मा पुरुष, इस जगत् के स्वामी, सत्त्व, रज एवं तम से परे, निर्गुण, सगुण, साक्षी, निर्विकारी तथा महाप्रभु हो ॥ ५ ॥ यह मेरा परम अहोभाग्य है, जो मैं आप की विहारशीलप्रिया हूँ । और आप भक्तवत्सल होने के कारण मेरे स्वामी हुए हो ॥ ६ ॥ हे नाथ ! आप ने मेरे साथ बहुत दिनों तक विहार किया । मैं कामभोग से सन्तुष्ट हो गयी हूँ । अब मेरा मन विषयों से निवृत्त हो गया है ॥ ७ ॥ हे देवेश ! अब नित्य सुख प्रदान करने वाले उस परमतत्त्व को जानना चाहती हूँ । जिस तत्त्व के जान लेने पर जगत् के समस्त जीव अनायास संसार के दुःखों से मुक्त हो जाते हैं ॥ ८ ॥ जिस परम तत्त्व का आचरण करने से विषयी जीव परमपद को प्राप्त कर लेता है । और वह फिर संसार में नहीं लौटता । हे नाथ ! उस परमतत्त्व का उपदेश आप मुझे कीजिए ॥ ९ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्यपृच्छत् स्म सद्भक्त्या शङ्करं सा सती मुने ! । आदिशक्तिर्महेशानी जीवोद्धाराय केवलम् ॥१०॥
आकर्ण्य तच्छिवः स्वामी स्वेच्छयोपात्तविग्रहः । अवोचत् परमप्रीतः सतीं योगविरक्तधीः ॥११॥

शिव उवाच

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि दाक्षायणि महेश्वरि ! । परं तत्त्वं तदेवानुशयी मुक्तो भवेद्यतः ॥१२॥
परतत्त्वं विजानीहि विज्ञानं परमेश्वरि ! । द्वितीयं स्मरणं यत्र नाऽहं ब्रह्मेति शुद्धधीः ॥१३॥
तद् दुर्लभं त्रिलोकेऽस्मिंस्तज्ज्ञाता विरलः प्रिये ! । यादृशो यः स दासोऽहं ब्रह्म साक्षात् परात् परः॥१४॥
तन्माता मम भक्तिश्च भुक्ति-मुक्तिफलप्रदा । सुलभा मत्प्रसादाद्धि नवधा सा प्रकीर्तिता ॥१५॥
भक्तौ ज्ञानेन भेदो हि तत्कर्तुः सर्वदा सुखम् । विज्ञानं न भवत्येव सति भक्तिविरोधिनः ॥१६॥
भक्त्या हीनः सदाऽहं वै तत्प्रभावाद् गृहेष्वपि । नीचानां जातिहीनानां यामि देवि ! न संशयः॥१७॥
सा भक्तिर्द्विविधा देवि ! सगुणा निर्गुणा मता । वैधी स्वाभाविकी या या वरा सा त्ववरा स्मृता॥१८॥
नैष्ठिक्यनैष्ठिकीभेदाद् द्विविधे द्विविधे हि ते । षड्विधा नैष्ठिकी ज्ञेया द्वितीयैकविधा स्मृता॥१९॥
विहिताऽविहिताभेदात्तामनेकां विदुर्बुधाः । तयोर्बहुविधत्वाच्च तत्त्वं त्वन्यत्र वर्णितम् ॥२०॥
ते नवाङ्गे उभे ज्ञेये वर्णिते मुनिभिः प्रिये ! । वर्णयामि नवाङ्गानि प्रेमतः शृणु दक्षजे ! ॥२१॥
श्रवणं कीर्तनं चैव स्मरणं सेवनं तथा । दास्यं तथाऽर्चनं देवि ! वन्दनं मम सर्वदा ॥२२॥
सख्यमात्मार्पणं चेति नवाङ्गानि विदुर्बुधाः । उपाङ्गानि शिवे ! तस्या बहूनि कथितानि वै ॥२३॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने ! उस आदिशक्ति महेश्वरी सती ने केवल जीवों के उद्धार के निमित्त भक्ति-पूर्वक भगवान् शङ्कर से ऐसी जिज्ञासा प्रगट की ॥ १० ॥ इस बात को सुन कर स्वेच्छया शरीर धारण करनेवाले, योग से विरक्त बुद्धि वाले सदाशिव प्रेम के साथ सती से बोले ॥ ११ ॥

शिवजी बोले—हे दाक्षायणि ! हे महेश्वरि ! उस परम-तत्त्व को सुनो, जिससे वासना युक्त जीव मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥ १२ ॥ हे सति ! उस परमतत्त्व को समझो जिससे परमेश्वर का ज्ञान हो जावे । जहाँ और कुछ दूसरा नहीं रहता । केवल 'अहं ब्रह्म' यही विशुद्ध बुद्धि रह जाती है ॥ १३ ॥ 'सोऽहं ब्रह्म' इस प्रकार की बुद्धि रखने वाला पुरुष परात्परब्रह्म का साक्षात्कार कर लेता है । हे प्रिये ! इस त्रिलोक में इस तत्त्व का ज्ञाता कोई विरला ही होता है, यह ज्ञान अत्यन्त दुर्लभ है ॥ १४ ॥ इस प्रकार के विज्ञान की माता केवल मेरी भक्ति ही है, जो भुक्ति तथा मुक्ति दोनों प्रकार का फल देने वाली है । यह भक्ति नव प्रकार की है, जो मेरी कृपा से ही सुलभ होती है ॥ १५ ॥ भक्ति और ज्ञान में कोई भेद नहीं है, भक्ति करनेवाला सदा सुख प्राप्त करता है । भक्ति का विरोध करनेवालों को कभी विज्ञान की प्राप्ति नहीं होती ॥ १६ ॥

हे देवि ! मैं सदैव भक्ति के आधीन हूँ । इस भक्ति के प्रभाव से मैं जातिहीन नीच पुरुषों के घर में जाता हूँ, इसमें संशय नहीं ॥ १७ ॥ हे देवि ! सगुण तथा निर्गुण भेद से वह भक्ति दो प्रकार की कही गयी है । प्रथम भक्ति वैधी तथा दूसरी भक्ति स्वाभाविकी कही जाती है । इसमें वैधी भक्ति, श्रेष्ठ कही गयी है, और स्वाभाविकी भक्ति उससे अवर (तुच्छ) है ॥ १८ ॥ ये दोनों प्रकार की भक्ति नैष्ठिकी, अनैष्ठिकी भेद से दो-दो प्रकार की होती हैं, जिसमें नैष्ठिकी भक्ति छ प्रकार की तथा अनैष्ठिकी भक्ति एक ही प्रकार की है ॥ १९ ॥ वह भक्ति विहित-अविहित भेद से दो प्रकार की होती है । इस प्रकार बुध-जन भक्ति के अनेक भेद बताते हैं । उसका प्रकार अनेक होने से उसका तत्त्व अन्यत्र वर्णन किया गया है ॥ २० ॥ हे प्रिये ! मुनियों ने उन दोनों प्रकार की भक्तियों को नव-नव प्रकार का वर्णन किया है । हे देवि ! भक्ति के नौ प्रकारों का नाम, लक्षण पृथक्-पृथक् कहता हूँ, उसे सावधान होकर प्रेम से सुनो ॥२१॥

१. श्रवण, २. कीर्त्तन, ३. स्मरण, ४. पादसेवा, ५. दास्य, ६. अर्चन, ७. वन्दन, ८. सख्य, ९. आत्मसमर्पण (शरणागति) ये नव भेद भक्ति के कहे गये हैं। हे शिवे ! इसके अतिरिक्त

शृणु देवि ! नवाङ्गानां लक्षणानि पृथक् पृथक् । मम भक्तैर्मनो दत्त्वा भुक्ति-मुक्तिप्रदानि हि ॥२४॥
कथादेर्नित्यसम्मानं कुर्वन् देहादिभिर्मुदा । स्थिरासनेन तत्पानं यत्तच्छ्रवणमुच्यते ॥२५॥
हृदाकाशेन सम्पश्यन् जन्मकर्माणि वै मम । प्रीत्या चोच्चारणं तेषामेतत् कीर्तनमुच्यते ॥२६॥
व्यापकं देवि ! मां दृष्ट्वा नित्यं सर्वत्र सर्वदा । निर्भयत्वं सदा लोके स्मरणं तदुदाहृतम् ॥२७॥
अरुणोदयमारभ्य सेवाकालेऽञ्चिता हृदा । वाक्पाणिपादैस्तस्यार्चासेवनं तदुदाहृतम् ॥२८॥
सदा सेव्यानुकूल्येन सेवनं तद्धि गोगणैः । हृदयामृतभोगेन प्रियं दास्यमुदाहृतम् ॥२९॥
सदा भृत्यानुकूल्येन विधिना मे परात्मने । अर्पणं षोडशानां वै पाद्यादीनां तदर्चनम् ॥३०॥
मन्त्रोच्चारण-ध्यानाभ्यां मनसा वचसा क्रमात् । यदष्टाङ्गेन भूस्पर्शं तद्वै वन्दनमुच्यते ॥३१॥
मङ्गलामङ्गलं यद्यत् करोतीतीश्वरो हि मे । सर्वं तन्मङ्गलायेति विश्वासः सख्यलक्षणम् ॥३२॥
कृत्वा देहादिकं तस्य प्रीत्यै सर्वं तदर्पणम् । निर्वाहाय च शून्यत्वं यत्तदात्मसमर्पणम् ॥३३॥
नवाङ्गानीति मद्भक्तेर्भुक्ति-मुक्तिप्रदानि च । मम प्रियाणि चातीव ज्ञानोत्पत्तिकराणि च ॥३४॥
उपाङ्गानि च मद्भक्तेर्बहूनि कथितानि वै । बिल्वादिसेवनादीनि समूह्यानि विचारतः ॥३५॥
इत्थं साङ्गोपाङ्गभक्तिर्मम सर्वोत्तमा प्रिये ! । ज्ञानवैराग्यजननी मुक्तिदासी विराजते ॥३६॥
सर्वकर्मफलोत्पत्तिः सर्वदा त्वत्समप्रिया । यच्चित्ते सा स्थिता नित्यं सर्वदा सोऽति मत्प्रियः ॥३७॥
त्रैलोक्ये भक्तिसदृशः पन्था नास्ति सुखावहः । चतुर्युगेषु देवेशि ! कलौ तु सुविशेषतः ॥३८॥

उस भक्ति के अन्य भी छोटे-छोटे भेद बहुत प्रकार के कहे गये हैं ॥ २२-२३ ॥ हे देवि ! अब उस भक्ति के नवों भेदों का लक्षण पृथक्-पृथक् कहता हूँ। उसे मन लगा कर सुनो। ये भक्ति के नवों भेद मनुष्यों को भोग तथा मोक्ष दोनों प्रदान करते हैं ॥ २४ ॥ मेरी कथा का नित्य अपने शरीर आदि से सम्मान करे तथा एकासन से स्थिरचित्त हो प्रेम से उसका श्रवणेन्द्रिय से पान करे उसे 'श्रवण' भक्ति कहते हैं ॥ २५ ॥ मेरे जन्म एवं चरित्र का हृदयाकाश में दर्शन करते हुए उस का वाणी द्वारा उच्चारण करना 'कीर्त्तन' कहा जाता है ॥ २६ ॥ मुझ परमात्मा को सर्वत्र नित्य व्यापक समझ कर सर्वदा निर्भय रहकर स्मरण करना यह 'स्मरणरूपा' भक्ति कही गयी है ॥ २७ ॥ अरुणोदय काल से लेकर शयन काल पर्यन्त हृदय से मेरी सेवा की चिन्ता करते रहना और लोक में निर्भय होकर विचरण करना, इसी का नाम 'पादसेवन' है ॥ २८ ॥ भगवान् ही हमारे स्वामी होने से सेव्य हैं ऐसा विचार कर सभी इन्द्रियों से उनका सेवन करते रहना, और उनके द्वारा दिये गये भोगों को अमृत समझ कर उसका भोग करते रहना 'दास्य-भक्ति' का लक्षण है ॥ २९ ॥ मुझ परमात्मा के लिए सेवकोचित सत्कार की विधि से पाद्यादि षोडशोपचारों का अर्पण करना यह 'अर्चन' भक्ति है ॥ ३० ॥ वाणी से मन्त्रोच्चारण और मन से मेरा ध्यान करते हुए अपने आठों अङ्गों से पृथ्वी पर डण्डे के समान गिर कर मुझे प्रणाम करना 'वन्दन' भक्ति है ॥ ३१ ॥ ईश्वर मेरा मङ्गल या अमङ्गल जो कुछ करता है, वह मेरे कल्याण के लिए ही, इस प्रकार का विश्वास 'सख्य' भक्ति का लक्षण है ॥ ३२ ॥ परमात्मा की प्रीति के लिए अपना देहादि सब कुछ उसे निछावर कर निर्वाह के लिए कुछ न रखना, उसी पर आश्रित रहना 'आत्मसमर्पण' भक्ति है ॥ ३३ ॥ ये भक्ति के नव अङ्ग हैं, जो भोग तथा मोक्ष के देनेवाले हैं। ये भक्ति के नवों अङ्ग ज्ञान उत्पन्न करने के कारण मुझे अतीव प्रिय हैं ॥ ३४ ॥ मैंने पहले कह दिया है कि इस भक्ति के बिल्वादि सेवन आदि अनेक उपाङ्ग हैं, उन्हें अपने विचार से जानना चाहिए ॥ ३५ ॥

हे प्रिये ! इस प्रकार साङ्गोपाङ्ग मेरी भक्ति सर्वोत्तम है, जो ज्ञान तथा वैराग्य को उत्पन्न करने वाली है, मुक्ति इसकी दासी है, इसलिए यह सर्वश्रेष्ठ है ॥ ३६ ॥ हे देवि ! भक्ति सर्वदा सभी कर्मों के फलों को देने वाली है इसलिए यह मुझे तुम्हारे ही समान अतिशय प्रिय है। ऐसी भक्ति जिसके चित्त में निवास करती है वह पुरुष भी मुझे अत्यन्त प्रिय है ॥ ३७ ॥ हे देवि ! सारे त्रैलोक्य में तथा चारों युगों

कलौ तु ज्ञानवैराग्यौ वृद्धरूपौ निरुत्सवौ । ग्राहकाभावतो देवि ! जातौ जर्जरतामति ॥३९॥
कलौ प्रत्यक्षफलदा भक्तिः सर्वयुगेष्वपि । तत्प्रभावादहं नित्यं तद्वशो नाऽत्र संशयः ॥४०॥
यो भक्तिमान् पुमांल्लोके सदाऽहं तत्सहायकृत् । विघ्नहर्ता रिपुस्तस्य दण्ड्यो नात्र च संशयः ॥४१॥
भक्तहेतोरहं देवि ! कालं क्रोधपरिप्लुतः । अदहं वह्निना नेत्रभवेन निजरक्षकः ॥४२॥
भक्तहेतोरहं देवि ! रव्युपर्यभवं किल । अतिक्रोधान्वितः शूलं गृहीत्वाऽन्वजयं पुरा ॥४३॥
भक्तहेतोरहं देवि ! रावणं सगणं क्रुधा । त्यजति स्म कृतो नैव पक्षपातो हि तस्य वै ॥४४॥
भक्तहेतोरहं देवि ! व्यासं हि कुमतिग्रहम् । काश्या न्यसारयं क्रोधाद् दण्डयित्वा च नन्दिना ॥४५॥
किं बहूक्तेन देवेशि ! भक्ताधीनः सदा ह्यहम् । तत्कर्तुः पुरुषस्यातिवशगो नात्र संशयः ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

इत्थमाकर्ण्य भक्तेस्तु महत्त्वं दक्षजा सती । जहर्षातीव मनसि प्रणनाम शिवं मुदा ॥४७॥
पुनः पप्रच्छ सद्भक्त्या तत्काण्डविषयं मुने ! । शास्त्रं सुखकरं लोके जीवोद्धारपरायणम् ॥४८॥
सयन्त्रमन्त्रशास्त्रं च तन्माहात्म्यं विशेषतः । अन्यानि धर्मवस्तूनि जीवोद्धारकराणि हि ॥४९॥
शङ्करोऽपि तदाकर्ण्य सतीप्रश्नं प्रहृष्टधीः । वर्णयामास सुप्रीत्या जीवोद्धाराय कृत्स्नशः ॥५०॥
तत्र शास्त्रं सयन्त्रं हि सपञ्चाङ्गं महेश्वरः । बभाषे महिमानं च तत्तद्देववरस्य वै ॥५१॥
सेतिहासकथं तेषां भक्तमाहात्म्यमेव च । सवर्णाश्रमधर्मांश्च नृपधर्मान् मुनीश्वर ! ॥५२॥
सुतस्त्रीधर्ममाहात्म्यं वर्णाश्रममनश्वरम् । वैद्यशास्त्रं तथा ज्योतिःशास्त्रं जीवसुखावहम् ॥५३॥

में भक्ति के समान सुखदायी और कोई मार्ग नहीं है। कलिकाल में तो यह विशेष रूप से आचरण करने योग्य है ॥ ३८ ॥ क्योंकि, कलि में ज्ञान और वैराग्य दोनों वृद्ध हो जाते हैं तथा बेकार हैं। इनका कलि में कोई गाहक नहीं है इसलिए वे जर्जर हो जाते हैं ॥ ३९ ॥ ऐसे तो भक्ति चारों युगों में फल देने वाली है किन्तु कलि में तो यह विशेष रूप से फल देती है। मैं इस भक्ति के प्रभाव से सदैव इसके वश में रहता हूँ ॥ ४० ॥ जो पुरुष इस लोक में मेरी भक्ति करता है, मैं सदैव उसकी सहायता करता हूँ। मैं अपनी भक्ति करने वाले पुरुष के विघ्नों को दूर करता हूँ, तथा जो उसका शत्रु है, उसे दण्ड भी देता हूँ इसमें सन्देह नहीं ॥ ४१ ॥ हे देवि ! मैं भक्तों का कल्याण करने के लिए, क्रोध से परिपूर्ण हो अपने नेत्रों की अग्नि से काल को भी नष्ट कर दिया था और उस भक्त की रक्षा की थी ॥ ४२ ॥ हे देवि ! मैंने ही भक्तों के लिए अपना त्रिशूल लेकर क्रोध से सूर्य को जीत लिया था ॥ ४३ ॥ हे देवि ! भक्त के निमित्त ही मैंने क्रुद्ध हो समस्त बन्धु-बान्धवों सहित रावण का त्याग कर दिया। उसके पक्ष में नहीं रहा ॥ ४४ ॥ हे देवि ! भक्तों के निमित्त ही मैंने कुमति से गृहीत व्यास को नन्दी द्वारा दण्ड दिला कर उन्हें काशी के बाहर खदेड़वा दिया ॥ ४५ ॥ हे देवेशि ! बहुत मैं क्या कहूँ, मैं सदैव अपने भक्तों के अधीन हूँ। इसमें संशय नहीं ॥ ४६ ॥

ब्रह्माजी बोले—दक्षकन्या सती इस प्रकार भक्ति का माहात्म्य सुन कर बहुत प्रसन्न हुईं। उन्होंने बड़े प्रेम से शिव को प्रणाम किया ॥ ४७ ॥ हे मुने ! फिर उन्होंने भक्तिकाण्ड के रहस्य पूछा। जो भक्ति-शास्त्र जीवों का उद्धार कर उन्हें सदैव सुख पहुँचाता है ॥ ४८ ॥ तदनन्तर हे मुने ! उन्होंने यन्त्रशास्त्र, मन्त्रशास्त्र तथा विशेष रूप से उसका माहात्म्य एवं जीवों के उद्धार करने वाली अनेक धर्मवस्तुओं को पूछा ॥ ४९ ॥ शङ्कर जी ने भी सती के प्रश्नों को सुन कर बड़ी प्रसन्नता प्रगट की और जीवों के उद्धार हेतु प्रीतिपूर्वक उन सभी रहस्यों का वर्णन किया ॥५०॥ उस कैलास पर उन्होंने शोषण, तापन, मारण आदि पञ्चाङ्ग सहित यन्त्रशास्त्र का वर्णन किया। तथा उन यन्त्रों के देवता का महत्त्व भी वर्णन किया ॥ ५१ ॥ उन्होंने इतिहास युक्त कथाओं के साथ भक्ति का माहात्म्य, राजधर्म, पुत्रधर्म, स्त्रीधर्म, वर्णाश्रम धर्म, सनातन धर्म, वैद्यक शास्त्र, ज्योतिःशास्त्र आदि जीवों को सुख देने वाले नाना प्रकार के शास्त्रों

साम्रुद्रिकं परं शास्त्रमन्यच्छास्त्राणि भूरिशः । कृपां कृत्वा महेशानो वर्णयामास तत्त्वतः ॥५४॥
इत्थं त्रिलोकसुखदौ सर्वज्ञौ च सतीशिवौ । लोकोपकारकरण-धृतसद्गुणविग्रहौ ॥५५॥
चिक्रीडाते बहुविधं कैलासे हिमवद्गिरौ । अन्यस्थलेषु च तदा परब्रह्मस्वरूपिणौ ॥५६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे भक्तिप्रभाव-
वर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

(सती का राम परीक्षण वर्णन)

नारद उवाच

ब्रह्मन् विधे ! प्रजानाथ ! महाप्राज्ञ कृपाकर ! । श्रावितं शङ्करयशः सतीशङ्करयोः शुभम् ॥ १ ॥
इदानीं ब्रूहि सत्प्रीत्या परं तद्यश उत्तमम् । किमकार्ष्टां हि तत्स्थौ वै चरितं दम्पती शिवौ ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

सतीशिवचरित्रं च शृणु मे प्रेमतो मुने ! । लौकिकीं गतिमाश्रित्य चिक्रीडाते सदान्वहम् ॥ ३ ॥
ततः सती महादेवी वियोगमलभन्मुने ! । स्वपतेः शङ्करस्येति वदन्त्येके सुबुद्धयः ॥ ४ ॥
वागर्थाविव सम्पृक्तौ शक्तीशौ सर्वदा चितौ । कथं घटेत च तयोर्वियोगस्तत्त्वतो मुने ! ॥ ५ ॥
लीलारुचित्वादथवा सङ्घटेताऽखिलं च तत् । कुरुते यद्यदीशश्च सती च भवरीतिगौ ॥ ६ ॥
सा त्यक्ता दक्षजा दृष्ट्वा पतिना जनकाध्वरे । शम्भोरनादरात्तत्र देहं तत्याज सङ्गता ॥ ७ ॥
पुनर्हिमालये सैवाविर्भूता नामतः सती । पार्वतीति शिवं प्राप तप्त्वा भूरि विवाहतः ॥ ८ ॥

का तथा सामुद्रिक शास्त्र का एवं अन्य भी तत्त्व के सहित दूसरे-दूसरे शास्त्रों का कृपा कर वर्णन किया ॥ ५२-५४ ॥ इस प्रकार त्रिलोकी के सुख देने वाले परब्रह्मस्वरूप सर्वज्ञ सती तथा शिवजी ने भक्तों के हेतु शरीर धारण कर शास्त्रों की चर्चा करते हुए हिमालय पर्वत पर तथा अन्य स्थलों पर विहार किये ॥ ५५-५६ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में भक्तिप्रभाव वर्णन नामक तेइसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥

*

नारद जी बोले—हे ब्रह्मन् ! हे विधे ! हे महाभाग ! हे प्रजानाथ ! हे महापण्डित ! हे कृपासागर ! आपने शिवाशिव के परम कल्याणकारी यश को सुनाया ॥ १ ॥ अब पुनः उनके उत्तम यश को कहिए। उस कैलास पर्वत पर निवास करते हुए दम्पती उन शिवा ने कौन सा चरित्र किया ॥ २ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने ! सती-शिव के चरित्र को प्रेम से सुनो। जब लौकिकी गति का आश्रय लेकर इस प्रकार वे दोनों कैलास पर्वत पर क्रीडा में आसक्त हो गये ॥ ३ ॥ तदनन्तर हे महामुने ! कोई-कोई कहते हैं कि, महादेवी सती ने शङ्कर के वियोग का अनुभव किया ॥ ४ ॥ यथार्थ में तो वाणी और अर्थ के समान सदाशिव और शिवा एक में मिले हुए हैं, तत्त्वतः उनका वियोग असम्भव है ॥ ५ ॥ अथवा लोकलीला का अनुसरण करने वाले उन सती तथा शिव ने लीला के लिए जो-जो काम किये वे सभी उनमें घट सकते हैं ॥ ६ ॥ पति के द्वारा परित्याग कर दिये जाने पर सती ने अपने पिता के यज्ञ में शिव का अनादर देख कर अपने शरीर का ही त्याग कर दिया ॥ ७ ॥ फिर वह सती हिमालय के घर में जन्म लेकर पार्वती नाम से प्रसिद्ध हुईं। और तपस्या कर पुनः विवाह द्वारा शङ्कर को प्राप्त कीं ॥ ८ ॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य ब्रह्मणः स तु नारदः । पप्रच्छ च विधातारं शिवाशिवमहद्यशः ॥ ९ ॥

नारद उवाच

विष्णुशिष्य महाभाग ! विधे ! मे वद विस्तरात् । शिवाशिवचरित्रं तद्भवाचारपरानुगम् ॥ १० ॥
किमर्थं शङ्करो जायां तत्याज प्राणतः प्रियाम् । तस्मादाचक्ष्व मे तात ! विचित्रमिति मन्महे ॥ ११ ॥
कुतोऽध्वरजः पुत्रस्यानादरोऽभूच्छिवस्य ते । कथं तत्याज सा देहं गत्वा तत्र पितृक्रतौ ॥ १२ ॥
ततः किमभवत्तत्र किमकार्षीन्महेश्वरः । तत्सर्वं मे समाचक्ष्व श्रद्धायुक् तच्छ्रुतावहम् ॥ १३ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु तात ! परप्रीत्या मुनिभिः सह नारद ! । सुतवर्य महाप्राज्ञ ! चरितं शशिमौलिनः ॥ १४ ॥
नमस्कृत्य महेशानं हर्यादिसुरसेवितम् । परब्रह्म प्रवक्ष्यामि तच्चरित्रं महाद्भुतम् ॥ १५ ॥
सर्वेयं शिवलीला हि बहुलीलाकरः प्रभुः । स्वतन्त्रो निर्विकारी च सती सापि हि तद्विधा ॥ १६ ॥
अन्यथा कः समर्थो हि तत्कर्मकरणे मुने ! । परमात्मा परब्रह्म स एव परमेश्वरः ॥ १७ ॥
यं सदा भजते श्रीशोऽहं चापि सकलाः सुराः । मुनयश्च महात्मानः सिद्धाश्च सनकादयः ॥ १८ ॥
शेषः सदा यशो यस्य मुदा गायति नित्यशः । पारं न लभते तात ! स प्रभुः शङ्करः शिवः ॥ १९ ॥
तस्यैव लीलया सर्वोऽयमिति तत्त्वविभ्रमः । तत्र दोषो न कस्यापि सर्वव्यापी स प्रेरकः ॥ २० ॥
एकस्मिन् समये रुद्रः सत्या त्रिभुवने भवः । वृषमारुह्य पर्याटद्रसां लीलाविशारदः ॥ २१ ॥
आगत्य दण्डकारण्यं पर्यटन् सागराम्बराम् । दर्शयन् तत्र गां शोभां सत्यै सत्यपणः प्रभुः ॥ २२ ॥

सूतजी बोले—देवर्षि नारद ब्रह्मा के इस वचन को सुनकर पुनः उन विधाता से शिवाशिव का चरित्र पूछने लगे ॥ ९ ॥

नारद ने कहा—हे महाभाग ! विष्णुशिष्य हे विधे ! आप विस्तार के साथ लोकलीलापरायण शिवाशिव का चरित्र कहिए ॥ १० ॥ शङ्कर ने प्राणों से भी प्यारी अपनी स्त्री सती का परित्याग क्यों किया । हे तात ! मुझे तो यह बात परम विचित्र मालूम पड़ती है । अतः अवश्य ही इस वृत्तान्त का वर्णन कीजिए ॥ ११ ॥ तुम्हारे पुत्र ने अध्वर में शिव का अनादर क्यों किया ? और उस सती ने अपने पिता के यज्ञ में जाकर क्यों अपने शरीर का त्याग किया ? ॥ १२ ॥ पुनः इसके पश्चात् क्या हुआ ? महेश्वर ने क्या किया ? मैं इस वृत्तान्त को श्रद्धा के साथ सुनना चाहता हूँ । आप मुझसे इन बातों को कहिए ॥ १३ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! हे श्रेष्ठपुत्र ! हे महाप्राज्ञ ! तुम इन मुनियों के साथ प्रीति से शङ्कर का चरित्र सुनो ॥ १४ ॥ विष्णु आदि समस्त देवगणों से सेवित परब्रह्म महेश्वर को नमस्कार कर उनका परम अद्भुत चरित्र मैं वर्णन करता हूँ ॥ १५ ॥ जिस प्रकार स्वतन्त्र निर्विकारी शिव नाना प्रकार की लीला करते हैं, उसी प्रकार उनकी माया सती भी लीला करती रहती हैं ॥ १६ ॥ अन्यथा हे मुने ! ऐसा कर्म करने में कौन समर्थ हो सकता है । वही परमात्मा परब्रह्म परमेश्वर ही सब कुछ करने में समर्थ हैं ॥ १७ ॥ जिसका भजन सदा श्रीपति विष्णु, मैं ब्रह्मा, अन्य समस्त देवगण, महात्मा, मुनि, सिद्ध तथा सनकादि सदैव करते रहते हैं ॥ १८ ॥ शेष जी, जिनके यश का निरन्तर गान करते हैं किन्तु कभी भी उसका थाह नहीं पाते । वही शङ्कर सबके प्रभु तथा ईश्वर हैं ॥ १९ ॥ यह सब कुछ उसकी लीला का विलास ही है, जो उसकी लीला से हो रहा है । इसमें किसी का दोष नहीं है । क्योंकि सर्वव्यापी तथा सर्व-प्रेरक तत्त्व वही है ॥ २० ॥ किसी समय लीलाविशारद शङ्कर जी सती के साथ बैल पर बैठकर त्रिभुवन में विचरण करते लगे ॥ २१ ॥ इस प्रकार समुद्र सहित पृथ्वी का विचरण करते हुए वे दण्डकारण्य में आये, और वहाँ पर सत्यप्रतिज्ञ शिवजी दण्डकारण्य की शोभा जब सती को दिखाने लगे ॥ २२ ॥ तो

तत्र रामं ददर्शाऽसौ लक्ष्मणेनान्वितं हरः । अन्विष्यन्तं प्रियां सीतां रावणेन हृतां छलात् ॥२३॥
हा सीतेति प्रोच्चरन्तं विरहाविष्टमानसम् । यतस्ततश्च पश्यन्तं रुदन्तं हि मुहुर्मुहुः ॥२४॥
समिच्छन्तं च तत्प्राप्तिं पृच्छन्तं तद्गतिं हृदा । कुजादिभ्यो नष्टधियमत्रपं शोकविह्वलम् ॥२५॥
सूर्यवंशोद्भवं वीरं भूपं दशरथात्मजम् । भरताग्रजमानन्दरहितं विगतप्रभम् ॥२६॥
पूर्णकामो वराधीनं प्राणमत् स्म मुदा हरः । रामं भ्रमन्तं विपिने सलक्ष्मणमुदारधीः ॥२७॥
जयेत्युक्त्वाऽन्यतो गच्छन्नदात् तस्मै स्वदर्शनम् । रामाय विपिने तस्मिन् शङ्करो भक्तवत्सलः ॥२८॥
इतीदृशीं सतीं दृष्ट्वा शिवलीलां विमोहनीम् । सुविस्मिता शिवं प्राह शिवमायाविमोहिता ॥२९॥

सत्युवाच

देवदेव परब्रह्म ! सर्वेश परमेश्वर ! । सेवन्ते त्वां सदा सर्वे हरिब्रह्मादयः सुराः ॥३०॥
त्वं प्रणम्यो हि सर्वेषां सेव्यो ध्येयश्च सर्वदा । वेदान्तवेद्यो यत्नेन निर्विकारी परप्रभुः ॥३१॥
काविमौ पुरुषौ नाथ ! विरहव्याकुलाकृती । विचरन्तौ वने क्लिष्टौ दीनौ वीरौ धनुर्धरौ ॥३२॥
तयोर्ज्येष्ठं कञ्जश्यामं दृष्ट्वा वै केन हेतुना । मुदितः सुप्रसन्नात्माऽभवो भक्त इवाऽधुना ॥३३॥
इति मे संशयं स्वामिन् ! शङ्कर छेत्तुमर्हसि । सेव्यस्य सेवकेनैव घटते प्रणतिः प्रभो ! ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

आदिशक्तिः सती देवी शिवा सा परमेश्वरी । शिवमायावशीभूत्वा पप्रच्छेत्थं शिवं प्रभुम् ॥३५॥
तदाकर्ण्य वचः सत्याः शङ्करः परमेश्वरः । तदा विहस्य स प्राह सतीं लीलाविशारदः ॥३६॥

वहीं पर उन्होंने रावण के द्वारा कपटपूर्वक हरी गयी सीता को खोजते हुए राम और लक्ष्मण को देखा ॥ २३ ॥ उस समय रामचन्द्र जी 'हा सीते !' ऐसा कह कर विरह से व्याकुल हो रहे थे तथा उन्हें इधर-उधर खोजते हुए रो रहे थे ॥ २४ ॥ शोक से विह्वल होने के कारण उनका सारा विवेक नष्ट हो चुका था । उस समय वे सीता की प्राप्ति के लिए तथा सीता की हालत जानने के लिए लज्जा का त्याग कर वृक्षादिकों से भी पूछ रहे थे ॥ २५ ॥

सूर्यवंश में उत्पन्न, महावीर, दशरथात्मज राजा राम उस समय उदास तथा आनन्द रहित थे ॥२६॥ इस प्रकार वन में लक्ष्मण के सहित राम को भटकते देख पूर्णकाम शिवजी ने प्रसन्नता से उनके सन्निकट जाकर उन्हें प्रणाम किया ॥२७॥ फिर भक्तवत्सल शिव ने 'राम की जय हो' ऐसा उच्चारण किया । और अन्यत्र चले गये किन्तु उस दण्डकारण्य में राम को दर्शन नहीं दिया ॥ २८ ॥ तदनन्तर मोह उत्पन्न करने वाली शिव की इस लीला को देख कर, सती आश्चर्य में पड़ गयीं और शिवमाया से मोहित हो शिव से बोलीं ॥ २९ ॥

सती बोलीं—हे देवदेव ! हे परब्रह्म ! हे सर्वेश्वर ! हे परमेश्वर, विष्णु, ब्रह्मा आदि सभी देवगण आप की सेवा करते हैं ॥ ३० ॥ आप लोगों के द्वारा प्रणम्य, सभी के सेव्य तथा सभी से ध्येय हैं । आप ही वेदान्तवेद्य निर्विकारी परब्रह्म हैं ॥ ३१ ॥ हे नाथ ! वन में विचरण करने वाले धनुर्धारी वीर जो इस समय विरह से व्याकुल होकर दीनतापूर्ण शब्दों से विलाप करते हुए दुःखी हो रहे हैं, ये कौन हैं ? ॥३२॥ इन दोनों में जेठे इस श्यामकमल की आकृतिवाले पुरुष को देख कर प्रसन्न हो भक्त के समान आप ने इन्हें प्रणाम क्यों किया ॥ ३३ ॥ हे शङ्कर ! हे नाथ ! आप मेरे इस संशय को दूर कीजिए । हे प्रभो ! सब के स्वामी होकर आप को सेवक के समान यह प्रणाम करना उचित नहीं प्रतीत होता ॥ ३४ ॥

ब्रह्मा जी बोले—यह सती देवी साक्षात् शिव की आदि शक्ति तथा परमेश्वरी हैं, शिवमाया से मोहित हो उन्होंने परमेश्वर सदाशिव से ऐसा पूछा ॥ ३५ ॥ सती के यह वचन सुन कर लीलाविशारद परमेश्वर सदाशिव हँस कर सती से बोले— ॥ ३६ ॥

परमेश्वर उवाच

शृणु देवि! सति प्रीत्या यथार्थं वच्मि नच्छलम्। वरदानप्रभावात्तु प्रणामं चैवमादरात् ॥३७॥
रामलक्ष्मणनामानौ भ्रातरौ वीरसम्मतौ। सूर्यवंशोद्भवौ देवि! प्राज्ञौ दशरथात्मजौ ॥३८॥
गौरवर्णो लघुर्बन्धुः शेषेशो लक्ष्मणाभिधः। ज्येष्ठो रामाभिधो विष्णुः पूर्णांशो निरुपद्रवः ॥३९॥
अवतीर्णः क्षितौ साधुरक्षणाय भवाय नः। इत्युक्त्वा विररामाऽसौ शम्भुः सृतिकरः प्रभुः ॥४०॥
श्रुत्वाऽपीत्थं वचः शम्भोर्न विशश्वास तन्मनः। शिवमाया बलवती सैव त्रैलोक्यमोहिनी ॥४१॥
अविश्वस्तं मनो ज्ञात्वा तस्याः शम्भुः सनातनः। अवोचद् वचनं चेति प्रभुर्लीलाविशारदः ॥४२॥

शिव उवाच

शृणु मद्वचनं देवि! न विश्वसिति चेन्मनः। तव रामपरीक्षां हि कुरु तत्र स्वया धिया ॥४३॥
विनश्यति यथा मोहस्तत्कुरु त्वं सति प्रिये!। गत्वा तत्र स्थितस्तावद्वटे भव परीक्षिका ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

शिवाज्ञया सती तत्र गत्वाऽचिन्तयदीश्वरी। कुर्यां परीक्षां च कथं रामस्य वनचारिणः ॥४५॥
सीतारूपमहं धृत्वा गच्छेयं रामसन्निधौ। यदि रामो हरिः सर्वं विज्ञास्यति न चान्यथा ॥४६॥
इत्थं विचार्य सीता सा भूत्वा रामसमीपतः। अगमत् तत्परीक्षार्थं सती मोहपरायणा ॥४७॥
सीतारूपां सतीं दृष्ट्वा जपन्नाम शिवेति च। विहस्य तत्प्रविज्ञाय नत्वाऽवोचद् रघूद्वहः ॥४८॥

राम उवाच

प्रेमतस्त्वं सति ब्रूहि क्व शम्भुस्ते नमो गतः। एका हि विपिने कस्मादागता पतिना विना ॥४९॥

परमेश्वर बोले—हे देवि सती! मैं यथार्थ कहता हूँ, इसमें कोई छल नहीं है, मैंने इन्हें अपने द्वारा दिये गये वरदान के कारण आदरपूर्वक प्रणाम किया है ॥ ३७ ॥ ये दोनों, वीरों में सर्वश्रेष्ठ हैं, इनका नाम राम और लक्ष्मण है। ये सूर्य वंश में उत्पन्न हुए हैं तथा दशरथ के पुत्र हैं ॥३८॥ गोरे वर्णवाला यह श्री राम का छोटा भाई है, जो शेष के अंश से अवतरित हुआ है, इसका नाम लक्ष्मण है और जो जेठे हैं इनका नाम राम है। यह पूर्णावतार हैं और विष्णुस्वरूप हैं ॥ ३९ ॥ ये सज्जनों की रक्षा करने तथा उन्हें अभयदान देने के लिए इस पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं ऐसा कह कर जगत्कर्त्ता सदाशिव चुप हो गये ॥ ४० ॥ शिव की इस बात को सुन कर सती का मन विश्वस्त नहीं हुआ। शिव की माया बड़ी बलवती और सब लोकों को मोहित करने वाली है ॥ ४१ ॥ सनातन सदाशिव ने जान लिया कि सती के मन में मेरे कहने पर भी विश्वास नहीं हो रहा है, तब लीलाविशारद प्रभु कहने लगे ॥ ४२ ॥

शिव जी बोले—हे देवि! मेरी बात सुनो, यदि मेरे कहने पर भी तुम्हारे मन में विश्वास नहीं हो रहा है तो तुम स्वयं जाकर अपनी बुद्धि से राम की परीक्षा करो ॥ ४३ ॥ हे प्रिये! जिस उपाय से तुम्हारा मोह नष्ट हो वही उपाय करो। मैं इस वृक्ष के नीचे बैठ कर तुम्हारी प्रतीक्षा करता हूँ, तब तक तुम जाकर इनकी परीक्षा करो ॥ ४४ ॥

ब्रह्मा जी बोले—इस प्रकार शिव की आज्ञा पाकर परमेश्वरी सती राम के पास जाकर विचार करने लगीं कि मैं इन वनचारी राम की परीक्षा किस प्रकार करूँ ॥ ४५ ॥ मैं सीता का रूप धारण कर रामचन्द्र के समीप जाऊँ। यदि राम सचमुच विष्णु के पूर्णावतार होंगे तो वे मेरी सारी बात जान जायेंगे। यदि विष्णु न होंगे तो मुझे न जान पावेंगे ॥ ४६ ॥ अपने मन में इस प्रकार विचार कर मोहित हुई सती राम की परीक्षा के लिए सीता का रूप धारण कर राम के समीप गयीं ॥ ४७ ॥ रघुकुलोत्पन्न श्रीरामचन्द्र जी ने सती को सीता रूप धारण किये देखकर शिव के नाम का उच्चारण करते हुए सब कुछ जान लिया। और फिर हँसते हुए उन्हें नमस्कार कर बोले ॥ ४८ ॥

श्रीरामचन्द्र जी बोले—हे देवि! तुम्हें मेरा नमस्कार है। तुम प्रेम से मुझे यह बताओ कि इस समय शम्भु कहाँ हैं? तुम सती होकर भी इस वन में पति के बिना अकेली क्यों आई हो ॥ ४९ ॥

त्यक्त्वा स्वरूपं कस्मात्ते धृतं रूपमिदं सति । ब्रूहि तत्कारणं देवि! कृपां कृत्वा ममोपरि ॥५०॥

ब्रह्मोवाच

इति रामवचः श्रुत्वा चकिताऽऽसीत् सती तदा । स्मृत्वा शिवोक्तं मत्वा चावितथं लज्जिता भृशम् ॥५१॥
रामं विज्ञाय विष्णुं तं स्वरूपं संविधाय च । स्मृत्वा शिवपदं चित्ते सत्युवाच प्रसन्नधीः ॥५२॥
शिवो मया गणैश्चैव पर्यटन् वसुधां प्रभुः । इहागच्छच्च विपिने स्वतन्त्रः परमेश्वरः ॥५३॥
अपश्यदत्र स त्वां हि सीतान्वेषणतत्परम् । सलक्ष्मणं विरहिणं सीतया क्लिष्टमानसम् ॥५४॥
नत्वा त्वां स गतो मूले वटस्य स्थित एव हि । प्रशंसन् महिमानं ते वैष्णवं परमं मुदा ॥५५॥
चतुर्भुजं हरिं त्वां नो दृष्ट्वैवं मुदितोऽभवत् । यथेदं रूपममलं पश्यन्नानन्दमाप्तवान् ॥५६॥
तच्छ्रुत्वा वचनं शम्भोर्भ्रममानीय चेतसि । तदाज्ञया परीक्षां ते कृतवत्यस्मि राघव ! ॥५७॥
ज्ञातं मे राम! विष्णुस्त्वं दृष्टा ते प्रभुताऽखिला । निःसंशया तदापि तच्छृणु त्वं च महामते! ॥५८॥
कथं प्रणम्यस्त्वं तस्य सत्यं ब्रूहि ममाग्रतः । कुरु निःसंशयां त्वं मां शमलं प्राप्नुहि द्रुतम् ॥५९॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्या रामश्चोत्फुल्ललोचनः । अस्मरत् स्वं प्रभुं शम्भुं प्रेमाभूद्धृदि चाधिकम् ॥६०॥
सत्या विनाज्ञया शम्भुसमीपं नागमन्मुने ! । संवर्ण्य महिमानं च प्रावोचद्राघवः सतीम् ॥६१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे रामपरीक्षा-
वर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

हे सती ! तुम ने अपना शरीर छोड़ कर सीता के रूप को क्यों धारण किया है ? हे देवि ! मुझ पर कृपा कर इसका कारण बताओ ? ॥ ५० ॥

ब्रह्मा जी बोले—श्रीरामचन्द्रजी की इस बात को सुनते ही सती आश्चर्यचकित हो गयीं। शिव के वचन को स्मरण कर उसे सर्वथा सत्य समझ वह बहुत लज्जित हुई ॥ ५१ ॥ उसने श्रीरामचन्द्रजी को साक्षात् विष्णु ही समझ लिया। और अपना सती रूप धारण कर शिव के चरणकमलों का ध्यान कर प्रसन्न हो श्रीराम से कहने लगी ॥ ५२ ॥ सर्वथा स्वतन्त्र परमेश्वर सदाशिव प्रभु गणों के साथ मेरे सहित पृथ्वी का परिभ्रमण करते हुए इस दण्डकारण्य में आये हुए हैं ॥ ५३ ॥ यहाँ उन्होंने सीता के विरह से दुःखी आप को लक्ष्मण के साथ सीता का खोज करते हुए देखा ॥५४॥ वे आप को प्रणाम कर आप के वैष्णवी महिमा की प्रशंसा करते हुए इसी वटवृक्ष के नीचे बैठे हुए हैं ॥ ५५ ॥ चतुर्भुज विष्णु स्वरूप के बिना ही आप के इस निर्मल रूप को देख कर प्रसन्न हो आनन्दित हो रहे हैं ॥ ५६ ॥ शिवजी के इन वचनों से मेरे मन में भ्रम उत्पन्न हो गया। इसलिए हे राघव ! मैंने उनकी आज्ञा लेकर तुम्हारी परीक्षा की ॥ ५७ ॥ हे राम ! मैंने समझ लिया कि आप साक्षात् विष्णु हैं, आप की प्रभुता भी प्रगट रूप से देख ली। अब मेरा सन्देह दूर हो गया। फिर भी हे महामते राम ! मैं तुमसे जो पूछना चाहती हूँ उसे सुनो ॥ ५८ ॥ आप मुझसे सत्य कहें कि शिवजी द्वारा आप किस प्रकार प्रणम्य हैं। मेरे इस संशय को आप शीघ्रता से दूर कीजिए। आप का कल्याण हो ॥ ५९ ॥

ब्रह्माजी बोले—सती के वचन सुन कर रामचन्द्र के नेत्र प्रेम से प्रफुल्लित हो उठे। उन्होंने अपने हृदय में अत्यन्त प्रेम से सदाशिव का स्मरण किया ॥ ६० ॥ हे मुने ! वे सती की आज्ञा के बिना शिव के समीप नहीं गये। फिर उनकी महिमा का वर्णन करते हुए सती से कहने लगे ॥ ६१ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में रामपरीक्षावर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥

*

पञ्चविंशोऽध्यायः

(शिव-सती वियोग कारण-वर्णन)

राम उवाच

एकदा हि पुरा देवि ! शम्भुः परमद्युतिकृत् । विश्वकर्माणमाहूय स्वलोके परतः परे ॥ १ ॥
स्वधेनुशालायां रम्यं कारयामास तेन च । भवनं विस्तृतं सम्यक् तत्र सिंहासनं वरम् ॥ २ ॥
तत्र छत्रं महादिव्यं सर्वदाऽद्भुतमुत्तमम् । कारयामास विघ्नार्थं शङ्करो विश्वकर्मणा ॥ ३ ॥
शक्रादीनां जुहावाशु समस्तान् देवतागणान् । सिद्ध-गन्धर्व-नागादीनुपदेशांश्च कृत्स्नशः ॥ ४ ॥
देवान् सर्वानागमांश्च विधिं पुत्रैर्मुनीनपि । देवीः सर्वा अप्सरोभिर्नानावस्तुसमन्विताः ॥ ५ ॥
देवानां च तथर्षीणां सिद्धानां फणिनामपि । आनयन् मङ्गलकराः कन्याः षोडश षोडश ॥ ६ ॥
वीणा-मृदङ्ग-प्रमुख-वाद्यान्नानाविधान् मुने ! । उत्सवं कारयामास वादयित्वा सुगायनैः ॥ ७ ॥
राजाभिषेकयोग्यानि द्रव्याणि सकलौषधैः । प्रत्यक्षतीर्थपाथोभिः पञ्चकुम्भांश्च पूरितान् ॥ ८ ॥
तथान्याः संविधा दिव्या आनयत् स्वगणैस्तदा । ब्रह्मघोषं महारावं कारयामास शङ्करः ॥ ९ ॥
अथो हरिं समाहूय वैकुण्ठात् प्रीतमानसः । तद्भक्त्या पूर्णया देवि ! मोदति स्म महेश्वरः ॥१०॥
सुमुहूर्ते महादेवस्तत्र सिंहासने वरे । उपवेश्य हरिं प्रीत्या भूषयामास सर्वशः ॥११॥
आबद्धरम्यमुकुटं कृतकौतुकमङ्गलम् । अभ्यषिञ्चन्महेशस्तु स्वयं ब्रह्माण्डमण्डपे ॥१२॥
ददावाखिलैश्वर्यं यन्नैजं नान्यगामि यत् । ततस्तुष्टाव तं शम्भुः स्वतन्त्रो भक्तवत्सलः ॥१३॥
ब्रह्माणं लोककर्तारमवोचद् वचनं त्विदम् । व्यापयन् स्वं वराधीनं स्वतन्त्रं भक्तवत्सलः ॥१४॥

श्री रामचन्द्रजी बोले—हे देवि ! सारे सृष्टि के कर्त्ता शङ्कर ने एक समय परे से भी परे अपने लोक में विश्वकर्मा को बुलाया ॥ १ ॥ और उन विश्वकर्मा से अपनी गोशाला में एक बहुत मनोहर विस्तृत घर बनवा कर उसमें एक मनोहर सिंहासन भी बनवाया ॥२॥ उस सिंहासन पर परम अद्भुत तथा दिव्य छत्र भी विश्वकर्मा से बनवाया ॥३॥ उन्होंने समस्त देवता, इन्द्र, सिद्ध, गन्धर्व, नाग, समस्त आगम, ब्रह्मपुत्रों के सहित समस्त मुनियों और अप्सराओं के सहित समस्त देवगणों को बुलाया। वे सभी अनेक प्रकार की वस्तुओं को लेकर शिव के समीप पहुँचे ॥ ४-५ ॥ देवलोक, ऋषिलोक, सिद्धलोक तथा नागलोक से सोलह-सोलह कन्याएँ हाथ में माङ्गलिक वस्तु लेकर उपस्थित हुईं ॥ ६ ॥ उस समय वीणा, मृदङ्ग आदि नाना प्रकार के प्रमुख बाजे बजने लगे। और अनेक प्रकार के बाजों के साथ गायकों के द्वारा महान् उत्सव कराया गया ॥ ७ ॥

शिवजी ने अपने गणों के द्वारा राज्याभिषेक के योग्य अनेक द्रव्य, सम्पूर्ण औषधि, तीर्थों के जल से भरे हुए पाँच सुवर्ण कलश एवं अन्य प्रकार के दिव्य सम्भार यत्र-तत्र से मँगवाये। शङ्कर जी की आज्ञा से ब्रह्मघोष का महान् शब्द होने लगा ॥ ८-९ ॥ तब हे देवि ! शङ्कर जी ने वैकुण्ठ से श्रीहरि को बुला कर बड़ी प्रसन्नता प्रगट की। और विष्णु की भक्ति को देख कर वे बहुत हर्षित हो गये ॥ १० ॥ महादेव ने शुभ मुहूर्त्त में उस श्रेष्ठ सिंहासन पर विष्णु को बैठा कर नाना प्रकार के आभूषणों से उन्हें सजाया ॥११॥ उनका कौतुक मङ्गल कर उनके सिर पर मुकुट बाँध कर शिवजी ने उस ब्रह्माण्ड मण्डप में स्वयं विष्णु का अभिषेक किया ॥ १२ ॥ और अपना समस्त ऐश्वर्य, जो कभी दूसरों के पास नहीं जाते, विष्णु को समर्पित किया। फिर वे भक्तवत्सल सर्वतन्त्र स्वतन्त्र महेश्वर विष्णु की स्तुति करने लगे ॥ १३ ॥ और स्तुति करने के अनन्तर भक्तवत्सल शङ्करजी ने अपनी भक्तपराधीनता को व्याप्त करते हुए मुझ ब्रह्मा से कहा ॥ १४ ॥

महेश उवाच

अतः प्रभृति लोकेश ! मन्निदेशादयं हरिः । मम वन्द्यः स्वयं विष्णुर्जातः सर्वः शृणोति हि ॥१५॥
सर्वैर्देवादिभिस्तात ! प्रणम त्वममुं हरिम् । वर्णयन्तु हरिं वेदा ममैते मामिवाज्ञया ॥१६॥

राम उवाच

इत्युक्त्वाऽथ स्वयं रुद्रोऽनमद् वै गरुडध्वजम् । विष्णुभक्तिप्रसन्नात्मा वरदो भक्तवत्सलः ॥१७॥
ततो ब्रह्मादिभिर्देवैः सर्वरूपसुरैस्तथा । मुनिसिद्धादिभिश्चैव वन्दितोऽभूद्धरिस्तदा ॥१८॥
ततो महेशो हरयेऽशंसद् दिविषदां तदा । महावरान् सुप्रसन्नो धृतवान् भक्तवत्सलः ॥१९॥

महेश उवाच

त्वं कर्ता सर्वलोकानां भर्ता हर्ता मदाज्ञया । दाता धर्मार्थकामानां शास्ता दुर्नयकारिणाम् ॥२०॥
जगदीशो जगत्पूज्यो महाबलपराक्रमः । अजेयस्त्वं रणे क्वाऽपि ममापि हि भविष्यसि ॥२१॥
शक्तित्रयं गृहाण त्वमिच्छादिप्रापितं मया । नानालीलाप्रभावत्वं स्वतन्त्रत्वं भवत्रये ॥२२॥
त्वद् द्वेष्टारो हरे नूनं मया शास्याः प्रयत्नतः । त्वद्भक्तानां मया विष्णो ! देयं निर्वाणमुत्तमम् ॥२३॥
मायां चापि गृहाणेमां दुष्प्रणोद्यां सुरादिभिः । यया सम्मोहितं विश्वमचिद्रूपं भविष्यति ॥२४॥
मम बाहुर्मदीयस्त्वं दक्षिणोऽसौ विधिर्हरे ! । अस्यापि हि विधेः पाता जनितापि भविष्यसि ॥२५॥
हृदयं मम यो रुद्रः स एवाऽहं न संशयः । पूज्यस्तव सदा सोऽपि ब्रह्मादीनामपि ध्रुवम् ॥२६॥
अत्र स्थित्वा जगत्सर्वं पालय त्वं विशेषतः । नानावतारभेदैश्च सदा नानोतिकर्तृभिः ॥२७॥
मम लोके तवेदं वै स्थानं च परमर्द्धिमत् । गोलोक इति विख्यातं भविष्यति महोज्ज्वलम् ॥२८॥

महेश्वर ने कहा—हे लोकेश ! आप लोग सुनें । आज से ये विष्णु हमारे तथा और लोगों के वन्दनीय हैं, ऐसी मेरी आज्ञा है ॥ १५ ॥ हे तात ब्रह्मा ! तुम देवताओं के सहित इन विष्णु को प्रणाम करो । और ये वेद भी जिस प्रकार मेरा गुण गान करते हैं उसी प्रकार मेरी आज्ञानुसार इन विष्णु के यश का गान करें ॥ १६ ॥

रामचन्द्र बोले—भगवान् सदाशिव ब्रह्मा से ऐसा कह कर स्वयं विष्णु को प्रणाम किया । इस प्रकार विष्णु की भक्ति से प्रसन्न हुए परमात्मा सदाशिव ने उन्हें वरदान के द्वारा अपना प्रणम्य बनाया ॥ १७ ॥ उसी दिन से ब्रह्मादि समस्त देवगण सर्वरूप धारण करने वाले अन्य देव, मुनि एवं सिद्ध गणों के द्वारा विष्णु की वन्दना की जाने लगी ॥ १८ ॥ देवताओं के सामने ही महेश्वर ने विष्णु की बहुत प्रशंसा की । और प्रसन्न हो विष्णु को अनेक वरदान दिये ॥ १९ ॥

महेश्वर बोले—हे विष्णु ! तुम मेरी आज्ञा से सभी लोकों के कर्त्ता, भर्त्ता तथा हर्त्ता होगे । तुम धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष आदि चतुर्वर्ग के देने वाले एवं अधर्मियों के शासक होगे ॥ २० ॥ तुम जगदीश, जगत्पूज्य एवं महाबलपराक्रमी तथा युद्ध में अजेय रहोगे । एवं कभी किसी समय तुम मुझे भी जीतने में समर्थ होगे ॥ २१ ॥ हे विष्णो ! तुम मेरे द्वारा दी गयी ज्ञान, कर्म तथा इच्छाशक्ति को ग्रहण करो, तुम तीनों लोकों में नाना प्रकार के लीला का सामर्थ्य तथा स्वतन्त्रता ग्रहण करो ॥ २२ ॥ हे विष्णो ! जो तुम से द्वेष करेंगे मैं स्वयं उनका वध करूँगा । और तुम्हारी भक्ति करने वालों को मैं स्वयं निर्वाण पद प्रदान करूँगा ॥ २३ ॥ देवताओं के द्वारा सर्वथा अजेय इस मेरी माया को भी तुम ग्रहण करो जिससे मोहित हुआ यह सारा संसार ज्ञान से रहित हो जायेगा ॥ २४ ॥ हे हरे ! तुम मेरे बाहु तथा साक्षात् मेरे स्वरूप हो और यह विधाता मेरी दक्षिण भुजा हैं । तुम इन विधाता के उत्पादक तथा रक्षक रूप से रहोगे ॥ २५ ॥ मेरा हृदय यह रुद्र भी साक्षात् मेरा स्वरूप है । ये रुद्र तुम्हारे तथा इन देवताओं के भी पूज्य होंगे, इसमें सन्देह नहीं ॥ २६ ॥ तुम इस लोक में स्थित होकर सारे जगत् का पालन करो और नाना प्रकार के अवतार धारण कर अनेक लीला करो ॥ २७ ॥ मेरे लोक में यह तुम्हारा स्थान सर्वाधिक

भविष्यन्ति हरे ये तेऽवतारा भुवि रक्षकाः । मद्भक्तास्तान् ध्रुवं द्रक्ष्ये प्रीतानथ निजाद्वरात् ॥२९॥

राम उवाच

अखण्डैश्वर्यमासाद्य हरेरित्थं हरः स्वयम् । कैलासे स्वगणैस्तस्मिन् स्वैरं क्रीडत्युमापतिः ॥३०॥
तदाप्रभृति लक्ष्मीशो गोपवेषोऽभवत्तथा । अयासीत्तत्र सुप्रीत्या गोपगोपीगवां पतिः ॥३१॥
सोऽपि विष्णुः प्रसन्नात्मा जुगोप निखिलं जगत् । नानावतारः सन्धर्ताऽवनकर्ता शिवाज्ञया ॥३२॥
इदानीं स चतुर्द्धात्रावातरच्छङ्कराज्ञया । रामोऽहं तत्र भरतो लक्ष्मणः शत्रुहेति च ॥३३॥
अथ पित्राज्ञया देवि ! ससीतालक्ष्मणः सति । आगतोऽहं वने चाऽद्य दुःखितो दैवतोऽभवम् ॥३४॥
निशाचरेण मे जाया हृता सीतेति केनचित् । अन्वेष्यामि प्रियां चाऽत्र विरही बन्धुना वने ॥३५॥
दर्शनं ते यदि प्राप्तं सर्वथा कुशलं मम । भविष्यति न सन्देहो मातस्ते कृपया सति ॥३६॥
सीताप्राप्तिवरो देवि ! भविष्यति न संशयः । तं हत्वा दुःखदं पापं राक्षसं त्वदनुग्रहात् ॥३७॥
महद्भाग्यं मम ह्यैव यद्यकार्ष्टां कृपां युवाम् । यस्मिन् सकरुणौ स्यातां स धन्यः पुरुषो वरः ॥३८॥
इत्थमाभाष्य बहुधा सुप्रणम्य सतीं शिवाम् । तदाज्ञया वने तस्मिन् विचचार रघूद्वहः ॥३९॥
अथाकर्ण्य सती वाक्यं रामस्य प्रयतात्मनः । हृष्टाऽभूत् सा प्रशंसन्ती शिवभक्तिरतं हृदि ॥४०॥
स्मृत्वा स्वकर्ममनसाऽकार्षीच्छोकं सुविस्तरम् । प्रत्यागच्छदुदासीना विवर्णा शिवसन्निधौ ॥४१॥
अचिन्तत् पथि सा देवी सञ्चलन्ती पुनः पुनः । नाङ्गीकृतं शिवोक्तं मे रामं प्रति कुधीः कृता ॥४२॥
किमुत्तरमहं दास्ये गत्वा शङ्करसन्निधौ । इति सञ्चिन्त्य बहुधा पश्चात्तापोऽभवत्तदा ॥४३॥

समृद्धियों से पूर्ण रहेगा और परम उज्ज्वल गोलोक के नाम से विख्यात होगा ॥ २८ ॥ हे विष्णु ! इस पृथ्वी का भार उतारने के लिए रक्षकरूप से जो-जो अवतार होंगे मैं स्वयं उन अवतारों में आप का दर्शन करूँगा । और तुम्हें वरदान देकर प्रसन्न करूँगा ॥ २९ ॥

रामचन्द्र बोले—इस प्रकार विष्णु ने शङ्कर के द्वारा अखण्ड ऐश्वर्य प्राप्त किया । तदनन्तर कैलास में शङ्कर जी अपने गणों के साथ विहार करने लगे ॥ ३० ॥ उसी समय से लक्ष्मीपति ने गोपवेष धारण किया । और गोप गोपी तथा गौओं के रक्षक होकर गोलोक में निवास करने लगे ॥ ३१ ॥ तभी से विष्णु इस जगत् का पालन करने लगे । एवं शिवाज्ञा से अवतार धारण कर पृथ्वी की रक्षा करने लगे ॥ ३२ ॥ इस समय उन विष्णु ने शङ्कर की आज्ञा से राम, भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न रूप से चार प्रकार का अवतार धारण किया है, जिसमें मैं राम हूँ ॥ ३३ ॥ हे देवि ! मैं पिता की आज्ञा से लक्ष्मण तथा सीता के सहित इस वन में आया हूँ एवं दैववश दुःखी हूँ ॥ ३४ ॥ किसी निशाचर ने मेरी सीता नामक भार्या का अपहरण किया है, अतः मैं विरही बनकर अपने भाई इस लक्ष्मण के साथ उसे खोजते हुए वन-वन भटक रहा हूँ ॥ ३५ ॥ हे माता सती ! अब आप का दर्शन मुझे प्राप्त हुआ है इसलिए मेरा कल्याण होगा ॥ ३६ ॥ आप की कृपा हो गयी तो मैं अवश्य ही उस पापी राक्षस को मार कर सीता को प्राप्त करूँगा ॥ ३७ ॥ आज यह मेरा परम सौभाग्य है कि मैंने आप दोनों का दर्शन प्राप्त किया । वह पुरुष धन्य है जिसके ऊपर आप दोनों की कृपा हो ॥ ३८ ॥

इस प्रकार कह कर श्रीरामचन्द्र जी नें सती को बारम्बार प्रणाम किया और उनकी आज्ञा से वन में विचरने लगे ॥ ३९ ॥ आत्मतत्त्वज्ञ श्री राम की बात सुन कर सती उन्हें शिवभक्त जान परम प्रसन्न हो गयी, और हृदय से उनकी प्रशंसा करने लगी ॥ ४० ॥ उस समय सती को अपना कर्म स्मरण कर महान् शोक हुआ । उनका मुख उतर गया, वे उदास हो शिव की ओर लौट पड़ीं ॥ ४१ ॥ देवी सती रास्ते में चलते समय बारम्बार विचार करने लगीं, मैंने शिव की बात नहीं मानी, जो राम के प्रति इस प्रकार दुर्बुद्धि की ॥ ४२ ॥ हाय ! अब मैं शिव के पास जाकर कौन उत्तर दूँगी । इस बात का

गत्वा शम्भुसमीपं च प्रणनाम शिवं हृदा । विषण्णवदना शोकव्याकुला विगतप्रभा ॥४४॥
अथ तां दुःखितां दृष्ट्वा पप्रच्छ कुशलं हरः । प्रोवाच वचनं प्रीत्या तत्परीक्षा कृता कथम् ॥४५॥
श्रुत्वा शिववचो नाऽहं किमपि प्रणताननना । सती शोकविषण्णा सा तस्थौ तत्र समीपतः ॥४६॥
अथ ध्यात्वा महेशस्तु बुबोध चरितं हृदा । दक्षजाया महायोगी नानालीलाविशारदः ॥४७॥
सस्मार स्वपणं पूर्वं यत्कृतं हरिकोपतः । तत्प्रार्थितोऽथ रुद्रोऽसौ मर्यादाप्रतिपालकः ॥४८॥
विषादोऽभूत् प्रभोस्तत्र मनस्येवमुवाच ह । धर्मवक्ता धर्मकर्ता धर्मावनकरः सदा ॥४९॥

शिव उवाच

कुर्यां चेद् दक्षजायां हि स्नेहं पूर्वं यथा महान् । नश्येन् मम पणः शुद्धो लोकलीलानुसारिणः ॥५०॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं विचार्य बहुधा हृदा तामत्यजत् सतीम् । पणं न नाशयामास वेदधर्मप्रपालकः ॥५१॥
ततो विहाय मनसा सतीं तां परमेश्वरः । जगाम स्वगिरिं भेदं जगावद्धा स हि प्रभुः ॥५२॥
चलन्तं पथि तं व्योमवाण्युवाच महेश्वरम् । सर्वान् संश्रावयन् तत्र दक्षजां च विशेषतः ॥५३॥

व्योमवाण्युवाच

धन्यस्त्वं परमेशान ! त्वत्समोऽद्य तथा पणः । न कोऽप्यन्यस्त्रिलोकेऽस्मिन् महायोगी महाप्रभुः॥५४॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा व्योमवचो देवी शिवं पप्रच्छ विप्रभा । कं पणं कृतवान्नाथ ! ब्रूहि मे परमेश्वर ! ॥५५॥
इति पृष्टोऽपि गिरिशः सत्या हितकरः प्रभुः । न चाऽहं स्वं पणं तस्यै यद्धर्यग्रेऽकरोत् पुरा ॥५६॥

विचार करते हुए उन्हें पश्चात्ताप होने लगा ॥ ४३ ॥ सती ने शिव के समीप जाकर उन्हें हृदय से प्रणाम किया। उनका मुख दुःख से उतरा हुआ था, वे व्याकुल हो रही थीं तथा उनके शरीर की कान्ति नष्ट हो चुकी थी ॥ ४४ ॥ उन्हें इस प्रकार दुःखी देख शिव ने उनसे कुशल-समाचार पूछा और प्रेम से कहने लगे—हे सती, बताओ तुमने किस प्रकार से राम की परीक्षा ली ॥ ४५ ॥ शिव का वचन सुन कर सती ने अपना मुँह नीचे कर लिया और कहने लगी, मैंने कोई परीक्षा नहीं ली। इतना कह कर वे शोक से दुःखी हो शिव के समीप खड़ी हो गयी ॥ ४६ ॥ तदनन्तर हृदय में ध्यान करने पर नानालीला-विशारद महायोगी महेश्वर ने सती का सारा चरित्र जान लिया ॥ ४७ ॥ उन्हें अपनी उस प्रतिज्ञा का स्मरण हो आया। मर्यादा-प्रतिपालक महारुद्र ने विवाह के लिए देवताओं के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर जो प्रतिज्ञा पूर्व में की थी ॥ ४८ ॥ उन महाप्रभु के मन में विषाद उत्पन्न हुआ। तब धर्मवक्ता, धर्मकर्त्ता, धर्मरक्षक प्रभु ने अपने मन में कहा ॥ ४९ ॥

शिवजी बोले—यदि मैं सती से अब पूर्ववत् स्नेह करूँ तो लोकलीला का अनुसरण करने वाले मुझ शिव की प्रतिज्ञा नष्ट हो जायेगी ॥ ५० ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार का अनेक विचार कर वेदधर्म प्रतिपालक शङ्कर ने अपनी प्रतिज्ञा झूठी नहीं की। किन्तु हृदय से सती का त्याग कर दिया ॥ ५१ ॥ इस प्रकार परमेश्वर शिव मन से सती को त्याग कर कैलास की ओर चल पड़े। उस प्रभु ने अपने निश्चय को किसी के सामने प्रगट नहीं किया ॥ ५२ ॥ मार्ग में जाते हुए सदाशिव को देखकर सब को सुनाते हुए विशेष कर सती को सुनाते हुए आकाशवाणी हुई ॥ ५३ ॥

आकाशवाणी बोली—हे परमेश्वर, हे महायोगिन्, हे महाप्रभो ! आप धन्य हो। इस त्रिलोकी में आपके समान किसी ने आज तक ऐसी प्रतिज्ञा नहीं की ॥ ५४ ॥

ब्रह्माजी बोले—आकाशवाणी सुन कर सती शिवजी से पूछने लगी, हे नाथ! हे परमेश्वर ! आप ने कौन सी प्रतिज्ञा की है, मुझसे कहिए ॥ ५५ ॥ सबका हित चाहनेवाले भगवान् सदाशिव ने सती के द्वारा

तदा सती शिवं ध्यात्वा स्वपतिं प्राणवल्लभम् । सर्वं बुबोध हेतुं तं प्रियत्यागमयं मुने ! ॥५७॥
ततोऽतीव शुशोचाशु बुध्वा सा त्यागमात्मनः । शम्भुना दक्षजा तस्मान्निःश्वसन्ती मुहुर्मुहुः॥५८॥
शिवस्तस्याः समाज्ञाय गुप्तं चक्रे मनोभवम् । सत्ये पणं स्वकीयं हि कथा बह्वीर्वदन् प्रभुः ॥५९॥
सत्या प्राप स कैलासं कथयन् विविधाः कथाः । वरे स्थित्वा निजं रूपं दधौ योगी समाधिभृत् ॥६०॥
तत्र तस्थौ सती धाम्नि महाविषण्णमानसा । न बुबोध चरित्रं तत्कश्चिच्च शिवयोर्मुने ! ॥६१॥
महान् कालो व्यतीयाय तयोरित्थं महामुने ! । स्वोपात्तदेहयोः प्रभ्वोर्लोकलीलानुसारिणोः ॥६२॥
ध्यानं तत्याज गिरिशस्ततः स परमार्तिकृत् । तज्ज्ञात्वा जगदम्बा हि सती तत्राजगाम सा ॥६३॥
ननामाथ शिवं देवी हृदयेन विदूयता । आसनं दत्तवाञ्शम्भुः स्वसम्मुख उदारधीः ॥६४॥
कथयामास सुप्रीत्या कथा बह्वीर्मनोरमाः । निःशोकां कृतवान् सद्यो लीलां कृत्वा च तादृशीम् ॥६५॥
पूर्ववत् सा सुखं लेभे तत्याज स्वपणं न सः । नेत्याश्चर्यं शिवे तात ! मन्तव्यं परमेश्वरे ॥६६॥
इत्थं शिवाशिवकथां वदन्ति मुनयो मुने ! । किल केचिदविद्वांसो वियोगश्च कथं तयोः ॥६७॥
शिवाशिवचरित्रं को जानाति परमार्थतः । स्वेच्छया क्रीडतस्तौ हि चरितं कुरुतः सदा ॥६८॥
वागर्थाविव सम्पृक्तौ सदा खलु सतीशिवौ । तयोर्वियोगः सम्भाव्यः सम्भवेदिच्छया तयोः॥६९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सतीवियोग-
वर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

बारम्बार पूछे जाने पर भी ब्रह्मा तथा विष्णु के आगे की हुई अपनी प्रतिज्ञा को न कहा ॥ ५६ ॥ तब सती ने अपने प्राणवल्लभ शिव का ध्यान कर पति द्वारा त्यागे जाने का सारा कारण जान लिया ॥ ५७ ॥ शिव के द्वारा अपना त्याग जान कर दक्षकन्या सती बारम्बार उच्छ्वास लेती हुई शोक करने लगी ॥५८॥ 'सती ने मेरी सारी बात जान ली है' इस बात को जान कर भी अनेक प्रकार की कथाएँ कहते हुए शिव ने अपनी प्रतिज्ञा सती के समक्ष प्रगट नहीं की ॥ ५९ ॥ वे अनेक कथा कहते हुए सती के साथ कैलास पर आये । और वहाँ स्थित हो समाधि लगा आत्मस्वरूप का ध्यान करने लगे ॥ ६० ॥ शिव को समाधि में लीन जानकर सती अत्यन्त दुःखी हो कैलास पर निवास करने लगी । हे मुने ! शिवाशिव के इस चरित्र को किसी ने नहीं जाना ॥ ६१ ॥ लीला का अनुसरण करने के लिए, विग्रह धारण किये हुए उन शिवा का इस प्रकार महान् काल व्यतीत हो गया ॥ ६२ ॥ तब लोक की आर्त्ति का हरण करनेवाले शिव ने अपनी समाधि का त्याग किया । जब जगदम्बा सती उनके समीप गयीं ॥ ६३ ॥ देवी ने दुःखी होकर शिव को प्रणाम किया । उदार बुद्धि वाले शिव ने सती को बैठने के लिए अपने सम्मुख आसन दिया ॥ ६४ ॥ और अनेक प्रकार की मनोहर कथा सती से कहने लगे । और अपनी लीला से सती के दुःख को दूर कर दिया ॥ ६५ ॥ सती पूर्ववत् सुखी हो गयीं । किन्तु शङ्कर ने अपनी प्रतिज्ञा का त्याग नहीं किया । हे तात ! नारद ! परमेश्वर सदाशिव के लिए यह कोई बात आश्चर्य की नहीं है ॥ ६६ ॥

हे मुने इस प्रकार मुनिगण शिवाशिव के चरित्र का वर्णन करते हैं किन्तु कुछ अविद्वान् लोग उनका वियोग भी मानते हैं । इसमें कौन बात सत्य है, इसे कौन बतावे ॥ ६७ ॥ क्योंकि, परमार्थ दृष्टि से शिवाशिव के चरित्र को कोई नहीं जानता । वे अपनी इच्छा से क्रीडा करते हुए नाना प्रकार के चरित्र करते हैं ॥ ६८ ॥ वे शिवा-शिव वाणी तथा अर्थ के समान एक-दूसरे में मिले हुए हैं । उनके वियोग की कोई सम्भावना नहीं है, यदि वियोग की सम्भावना होवे भी तो इसमें उनकी इच्छा ही कारण है ॥ ६९ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती'भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में
सतीवियोगवर्णन नामक पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥

षड्‌विंशोऽध्याय:

(राम के मोहित न होने पर सती का पश्चात्ताप एवं यज्ञ में दक्ष-शिव के विरोध का कारण)

ब्रह्मोवाच

पुराऽभवच्च सर्वेषामध्वरो विधिना महान् । प्रयागे समवेतानां मुनीनां च महात्मनाम् ॥ १ ॥
तत्र सिद्धाः समायाताः सनकाद्याः सुरर्षयः । सप्रजापतयो देवा ज्ञानिनो ब्रह्मदर्शिनः ॥ २ ॥
अहं समागतस्तत्र परिवारसमन्वितः । निगमैरागमैर्युक्तो मूर्तिमद्भिर्महाप्रभैः ॥ ३ ॥
समाजोऽभूद् विचित्रो हि तेषामुत्सवसंयुतः । ज्ञानवादोऽभवत्तत्र नानाशास्त्रसमुद्भवः ॥ ४ ॥
तस्मिन्नवसरे रुद्रः सभवानीगणः प्रभुः । त्रिलोकहितकृत्-स्वामी तत्रागात् सूक्तिकृन्मुने ! ॥ ५ ॥
दृष्ट्वा शिवं सुराः सर्वे सिद्धाश्च मुनयस्तथा । अनमंस्तं प्रभुं भक्त्या तुष्टुवुश्च तथा ह्यहम् ॥ ६ ॥
तस्थुः शिवाज्ञया सर्वे यथास्थानं मुदान्विताः । प्रभुदर्शनसन्तुष्टाः वर्णयन्तो निजं विधिम् ॥ ७ ॥
तस्मिन्नवसरे दक्षः प्रजापतिपतिः प्रभुः । आगमत्तत्र सुप्रीतः सुवर्चस्वी यदृच्छया ॥ ८ ॥
मां प्रणम्य स दक्षो हि न्युष्टस्तत्र मदाज्ञया । ब्रह्माण्डाधिपतिर्मान्यो मानी तत्त्वबहिर्मुखः ॥ ९ ॥
स्तुतिभिः प्रणिपातैश्च दक्षः सर्वैः सुरर्षिभिः । पूजितो वरतेजस्वी करौ बध्वा विनम्रकैः ॥१०॥
नानाविहारकृन्नाथः स्वतन्त्रः परमोऽतिकृत् । नाऽनमत् तं तदा दक्षं स्वासनस्थो महेश्वरः ॥११॥
दृष्ट्वाऽनतं हरं तत्र स मे पुत्रोऽप्रसन्नधीः । अकुप्यत् सहसा रुद्रे तदा दक्षः प्रजापतिः ॥१२॥
क्रूरदृष्ट्या महागर्वो दृष्ट्वा रुद्रं महाप्रभुम् । सर्वान् संश्रावयन्नुच्चैरवोचज्ज्ञानवर्जितः ॥१३॥

दक्ष उवाच

एते हि सर्वे च सुराऽसुरा भृशं नमन्ति मां विप्रवरास्तथर्षयः ।
कथं ह्यसौ दुर्जनवन्महामनास्त्वभूत्तु यः प्रेतपिशाचसंवृतः ॥१४॥

ब्रह्माजी बोले—एक समय प्रयाग में एकत्रित हुए सभी मुनियों एवं महात्माओं ने विधि के साथ एक महान् यज्ञ किया ॥ १ ॥ उस यज्ञ में सिद्ध-सनकादि देवता, मुनि, प्रजापति तथा ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी आदि सभी आये ॥ २ ॥ मैं भी शरीर धारण किये हुए महातेजस्वी निगम (वेद) एवं आगम (मन्त्रशास्त्र) तथा परिवार जनों से युक्त हो उस यज्ञ में गया ॥ ३ ॥ अनेक प्रकार के उत्सवों से युक्त उस विचित्र समाज में शास्त्रों में प्रतिपादित नाना प्रकार के ज्ञान की चर्चा हुई ॥ ४ ॥ उसी समय भवानी को साथ लिये हुए, त्रिलोकी के हितकर्त्ता भगवान् रुद्र अपने गणों को लेकर उस समाज में गये ॥ ५ ॥ उन शिव को वहाँ आया देख कर सभी देवताओं, मुनियों तथा मैंने उठकर प्रणाम किया । एवं उनकी भक्ति से स्तुति की ॥ ६ ॥ शिव के संदर्शन से सन्तुष्ट सभी लोग अपने भाग्य की प्रशंसा करते हुए शिव की आज्ञा से अपने-अपने स्थानों पर बैठ गये ॥ ७ ॥ उस समय प्रजापतियों के अधिपति, महातेजस्वी दक्ष सहर्ष अपनी इच्छा से वहाँ आये और ब्रह्माण्ड के अधिपति, सबके मान्य, अज्ञानी और अभिमानी दक्ष केवल मुझे ही प्रणाम कर मेरी आज्ञा से अपने स्थान पर बैठ गये ॥ ८-९ ॥ सभी देवगणों ने महातेजस्वी उन दक्ष को, हाथ जोड़कर विनम्र हो प्रणाम किया तथा स्तुति से उनकी प्रतिष्ठा करते हुए पूजा की ॥ १० ॥ किन्तु नाना प्रकार की लीलाओं से विहार करने वाले परम स्वतन्त्र महेश्वर अपने आसन पर बैठे रहे, उन्होंने दक्ष को प्रणाम नहीं किया ॥ ११ ॥ शिव को प्रणाम किये बिना अपने आसन पर बैठे देखकर मेरे पुत्र दक्ष बहुत क्रुद्ध हो गये ॥ १२ ॥ महा अहङ्कारी वे दक्ष क्रूर दृष्टि से महाप्रभु रुद्र की ओर देखते हुए सभी को सुनाते हुए कड़े एवं गम्भीर शब्दों में रुद्र की निन्दा करते हुए बोले-॥ १३ ॥

दक्ष बोले—इन सभी देवताओं, ऋषियों, ब्राह्मणों तथा राक्षसों ने मुझे आया देखकर प्रणाम किया । परन्तु प्रेत-पिशाचों से युक्त इस महामनस्वी शिव ने मेरे साथ इस प्रकार दुर्जन के समान आचरण कैसे

श्मशानवासी निरपत्रपो ह्ययं कथं प्रणामं न करोति मेऽधुना।
लुप्तक्रियो भूतपिशाचसेवितो मत्तोऽविधो नीतिविदूषकः सदा ॥१५॥
पाखण्डिनो दुर्जनपापशीला दृष्ट्वा द्विजं प्रोद्धतनिन्दकाश्च।
बध्वां सदासक्तरतिप्रवीणस्तस्मादमुं शप्तुमहं प्रवृत्तः ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवमुक्त्वा स महाखलस्तदा रुषान्वितो रुद्रमिदं ह्यवोचत्।
शृण्वन्त्वमी विप्रवरास्तथा सुरा वध्यं हि मे चार्हथ कर्तुमेतम् ॥१७॥

दक्ष उवाच

रुद्रो ह्ययं यज्ञबहिष्कृतो मे वर्णेष्वतीतोऽथ विवर्णरूपः।
देवैर्न भागं लभतां सहैव श्मशानवासी कुलजन्महीनः ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

इति दक्षोक्तमाकर्ण्य भृग्वाद्या बहवो जनाः। अगर्हयन् दुष्टसत्त्वं रुद्रं मत्वाऽमरैः समम् ॥१९॥
नन्दी निशम्य तद्वाक्यं लोलाक्षोऽतिरुषान्वितः। अब्रवीत् त्वरितं दक्षं शापं दातुमना गणः ॥२०॥

नन्दीश्वर उवाच

रे रे शठ महामूढ! दक्ष दुष्टमते त्वया। यज्ञबाह्यो हि मे स्वामी महेशो हि कृतः कथम् ॥२१॥
यस्य स्मरणमात्रेण भवन्ति सफला मखाः। तीर्थानि च पवित्राणि सोऽयं शप्तो हरः कथम् ॥२२॥
वृथा ते ब्रह्मचापल्याच्छप्तोऽयं दक्ष दुर्मते!। वृथोपहसितश्चैवादुष्टो रुद्रो महाप्रभुः ॥२३॥
येनेदं पाल्यते विश्वं सृष्टमन्ते विनाशितम्। शप्तोऽयं स कथं रुद्रो महेशो ब्राह्मणाधम! ॥२४॥
एवं निर्भर्त्सितस्तेन नन्दिना हि प्रजापतिः। नन्दिनं च शशापाथ दक्षो रोषसमन्वितः ॥२५॥

किया ॥ १४ ॥ श्मशानवासी, निर्लज्ज, क्रियाहीन, भूत-पिशाचों से सेवित, उन्मत्त और नीतिपथ को दूषित करने वाले इस शिव ने मुझे प्रणाम क्यों नहीं किया ॥ १५ ॥ पाखण्डी, दुर्जन, पापशील, ब्राह्मणों को देखकर उनकी निन्दा करने वाले उच्छृङ्खल, स्त्री में आसक्त तथा व्यभिचारी ये शाप के योग्य हैं, इसलिए मैं इस पापी रुद्र को शाप दे रहा हूँ ॥ १६ ॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहने के अनन्तर उस महाखल दक्ष ने क्रोध से रुद्र के प्रति कहना प्रारम्भ किया। हे ब्राह्मणो एवं देवताओ, सुनो—यह रुद्र मेरे तथा आप सभी के द्वारा वध्य करने योग्य हैं ॥ १७ ॥

दक्ष बोले—आज से मैंने इस रुद्र को यज्ञ से बाहर किया। इसका कोई भी चातुर्वर्ण्य में स्थान न रहेगा, विवर्ण रूप होने के कारण देवताओं के साथ इसे यज्ञ का भाग नहीं प्राप्त होगा और कुल-जन्म से हीन यह निरन्तर श्मसान में निवास करेगा ॥ १८ ॥

ब्रह्माजी बोले—तदनन्तर भृग्वादि बहुत से ऋषि सामान्य देवताओं के समान रुद्र को समझते हुए 'यह बड़ा दुष्ट है' ऐसा कहकर उनकी निन्दा करने लगे ॥ १९ ॥ इधर नन्दी प्रजापति दक्ष की बात सुनकर क्रोध में भरे हुए नेत्रों को लालकर दक्ष को शाप देने की इच्छा से बोले ॥ २० ॥

नन्दीश्वर बोले—अरे शठ! अरे मूर्ख, दुष्टमति दक्ष! मेरे स्वामी महेश्वर को तुमने यज्ञ से बाहर क्यों किया। इन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ॥ २१ ॥ अरे मूर्ख! जिनके स्मरणमात्र से यज्ञ सफल होते हैं और तीर्थ पवित्र हो जाते हैं ऐसे शङ्कर को तुमने शाप क्यों दिया ॥ २२ ॥ हे दुष्ट दक्ष! ब्राह्मणोचित चपलता से इन सरलमति रुद्र का तुमने व्यर्थ ही उपहास कर इनको शाप दिया ॥ २३ ॥ अरे ब्राह्मणाधम! जो इस जगत् की सृष्टि, पालन तथा संहार करते हैं ऐसे सर्वसमर्थ रुद्र को तुमने क्यों शाप दिया ॥ २४ ॥ इस प्रकार जब नन्दी ने क्रोध में भरकर दक्ष की निर्भर्त्सना की तब क्रुद्ध हुए दक्ष ने नन्दी को भी शाप दिया ॥ २५ ॥

दक्ष उवाच

यूयं सर्वे रुद्रगणा वेदबाह्या भवन्तु वै । वेदमार्गपरित्यक्तास्तथा त्यक्ता महर्षिभिः ॥२६॥
पाखण्डवादनिरताः शिष्टाचारबहिष्कृताः । मदिरापाननिरता जटा-भस्मा-ऽस्थिधारिणः ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

इति शप्तास्तथा तेन दक्षेण शिवकिङ्कराः । तच्छ्रुत्वाऽतिरुषाविष्टोऽभवन्नन्दी शिवप्रियः ॥२८॥
प्रत्युवाच द्रुतं दक्षं गर्वितं तं महाखलम् । शिलादतनयो नन्दी तेजस्वी शिववल्लभः ॥२९॥

नन्दीश्वर उवाच

रे दक्ष शठ दुर्बुद्धे ! वृथैव शिवकिङ्कराः । शप्तास्ते ब्रह्मचापल्याच्छिवतत्त्वमजानता ॥३०॥
भृग्वाद्यैर्दुष्टचित्तैश्च मूढैः स उपहासितः । महाप्रभुर्महेशानो ब्राह्मणत्वादहंमते ॥३१॥
ये रुद्रविमुखाश्चात्र ब्राह्मणास्त्वादृशाः खलाः । रुद्रतेजः प्रभावत्वात्तेषां शापं ददाम्यहम् ॥३२॥
वेदवादरता यूयं वेदतत्त्वबहिर्मुखाः । भवन्तु सततं विप्रा नाऽन्यदस्तीति वादिनः ॥३३॥
कामात्मानः स्वर्गपराः क्रोधलोभमदान्विताः । भवन्तु सततं विप्रा भिक्षुका निरपत्रपाः ॥३४॥
वेदमार्गं पुरस्कृत्य ब्राह्मणाः शूद्रयाजिनः । दरिद्रा वै भविष्यन्ति प्रतिग्रहरताः सदा ॥३५॥
असत्प्रतिग्रहाश्चैव सर्वे निरयगामिनः । भविष्यन्ति सदा दक्ष केचिद्वै ब्रह्मराक्षसाः ॥३६॥
यः शिवं सुरसामान्यमुद्दिश्य परमेश्वरम् । द्रुह्यत्यजो दुष्टमतिस्तत्त्वतो विमुखो भवेत् ॥३७॥
कूटधर्मेषु गेहेषु सदा ग्राम्यसुखेच्छया । कर्मतन्त्रं वितनुतां वेदवादं च शाश्वतम् ॥३८॥
विनष्टानन्दकमुखो विस्मृतात्मगतिः पशुः । भ्रष्टकर्मानयरतो दक्षो बस्तमुखोऽचिरात् ॥३९॥

दक्ष बोले—तुम सभी रुद्रगण वेदबाह्य रहो। और इस वेदमार्ग से बहिष्कृत हुए तुमलोग महर्षियों के द्वारा भी त्यागे जाओगे ॥ २६ ॥ तुम सभी पाखण्डवाद में निरत, शिष्टाचार से हीन, मद्यपान में आसक्त तथा जटा, भस्म एवं अस्थि (कपाल) धारण करने वाले होगे ॥ २७ ॥

ब्रह्माजी बोले—जब दक्ष ने शिवगणों एवं शिव को इस प्रकार शाप दिया तब शिवप्रिय नन्दी यह सुनकर क्रोध में भर गये ॥२८॥ तब महातेजस्वी शिवप्रिय शिलादपुत्र नन्दी ने शीघ्रता से उस महाघमण्डी दुष्ट दक्ष से कहा ॥ २९ ॥

नन्दीश्वर बोले—अरे शठ दुर्बुद्धि दक्ष ! तुमने शिवतत्त्व को न जानकर ब्राह्मणोचित चपलतावश व्यर्थ ही शिवगणों को शाप दिया ॥ ३० ॥ तुमने ब्राह्मणत्व के अहङ्कार से महाप्रभु महेश्वर का इन महामूर्ख भृगु आदि महर्षियों द्वारा व्यर्थ ही उपहास कराया ॥ ३१ ॥ अब इस सभा में जो तुम्हारे समान रुद्र के विरोधी खल ब्राह्मण हैं, मैं उन्हें रुद्र के तेज के प्रभाव से शाप देता हूँ ॥ ३२ ॥ निरन्तर वेद के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ऐसा कहते हुए वेदवाद में निरत होकर भी तुमलोग वेदतत्त्व से बहिर्मुख रहोगे ॥ ३३ ॥ तुमलोग क्रोध, लोभ तथा अहङ्कार से युक्त रहकर स्वर्गपरक सकाम धर्मों का अनुष्ठान करोगे। और निर्लज्ज होकर भिक्षा माँगते हुए पृथ्वी में निवास करोगे ॥ ३४ ॥ तुम सभी ब्राह्मण वेदमार्ग का अवलम्बन कर शूद्रों का भी यज्ञ करवाओगे और प्रतिग्रह लेकर सर्वदा दरिद्री रहोगे ॥ ३५ ॥ तथा असत्प्रतिग्रह लेकर नरकगामी होगे। इतना ही नहीं, हे दक्ष ! इन ब्राह्मणों में कोई-कोई तो ब्रह्मराक्षस भी होंगे ॥ ३६ ॥ जो इन महेश्वर शिवजी को सामान्य देवता समझकर दुष्टता से द्वेष करेगा उसे तत्त्वज्ञान न होगा ॥ ३७ ॥ ये शिवद्रोही ब्राह्मण घर में ही रहकर ग्राम्य (कामादि) सुख की इच्छा से कूटधर्म में तत्पर होकर कर्मतन्त्र वाले वेदमार्ग का अनुष्ठान (प्रचार) करेंगे ॥ ३८ ॥ इनका आनन्द नष्ट हो जायेगा। आत्मज्ञान न होने से प्रायः ये पशु के समान आचरण करेंगे। हे दक्ष ! अनीति में निरत तथा भ्रष्टकर्म होने के कारण तुम्हारा मुख बकरे जैसा हो जायेगा ॥३९॥

शप्तास्ते कोपिना तत्र नन्दिना ब्राह्मणा यदा। हाहाकारो महानासीच्छप्तो दक्षेण चेश्वरः ॥४०॥
तदाकर्ण्यामहत्यन्तमनिन्दं तं मुहुर्मुहुः। भृग्वादीनपि विप्रांश्च वेदसृट् शिवतत्त्ववित् ॥४१॥
ईश्वरोऽपि वचः श्रुत्वा नन्दिनः प्रहसन्निव। उवाच मधुरं वाक्यं बोधयंस्तं सदाशिवः ॥४२॥

सदाशिव उवाच

शृणु नन्दिन् महाप्राज्ञ! न कर्तुं क्रोधमर्हसि। वृथा शप्तो ब्रह्मकुलो मत्वा शप्तं च मां भ्रमात् ॥४३॥
वेदो मन्त्राक्षरमयः साक्षात् सूक्तमयो भृशम्। सूक्ते प्रतिष्ठितो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ॥४४॥
तस्मादात्मविदो नित्यं त्वं मा शप रुषान्वितः। शप्या न वेदाः केनापि दुर्धियाऽपि कदाचन ॥४५॥
अहं शप्तो न चेदानीं तत्त्वतो बोद्धुमर्हसि। शान्तो भव महाधीमन्! सनकादिविबोधकः ॥४६॥
यज्ञोऽहं यज्ञकर्माऽहं यज्ञाङ्गानि च सर्वशः। यज्ञात्मा यज्ञनिरतो यज्ञबाह्योऽहमेव वै ॥४७॥
कोऽयं कस्त्वमिमे के हि सर्वोऽहमपि तत्त्वतः। इति बुद्ध्या हि विमृश वृथा शप्तास्त्वया द्विजाः ॥४८॥
तत्त्वज्ञानेन निर्हृत्य प्रपञ्चरचनो भव। बुधः स्वस्थो महाबुद्धे नन्दिन्! क्रोधादिवर्जितः ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

एवं प्रबोधितस्तेन शम्भुना नन्दिकेश्वरः। विवेकपरमो भूत्वा शान्तोऽभूत् क्रोधवर्जितः ॥५०॥
शिवोऽपि तं प्रबोध्याशु स्वगणं प्राणवल्लभम्। सगणः स ययौ तस्मात् स्वस्थानं प्रमुदान्वितः ॥५१॥
दक्षोऽपि स रुषाविष्टस्तैर्द्विजैः परिवारितः। स्वस्थानं च ययौ चित्ते शिवद्रोहपरायणः ॥५२॥

पूर्व में दक्ष ने शिव को शाप दिया था किन्तु जिस समय नन्दीश्वर ने क्रोध में भरकर ब्राह्मणों को शाप दिया, उस समय हाहाकार मच गया ॥ ४० ॥ जिसे सुनकर वेदज्ञ तथा शिवतत्त्ववेत्ता मैंने भी दक्ष की तथा उनके पक्ष में रहने वाले भृग्वादि महर्षियों की निन्दा की ॥ ४१ ॥ सदाशिव भगवान् शङ्कर भी नन्दीश्वर के वचन सुन प्रसन्न हो उनको समझाते हुए मधुर वचन बोले ॥ ४२ ॥

शङ्करजी बोले--हे महाप्राज्ञ नन्दीश्वर! सुनो, तुम्हें इस प्रकार क्रोध करना उचित नहीं। तुमने भ्रमवश मुझ शप्त समझकर व्यर्थ ही इन ब्राह्मणकुलों को शाप दिया ॥ ४३ ॥ वेद मन्त्राक्षरमय तथा साक्षात् सूक्तस्वरूप है और वेदसूक्तों में सभी देहधारियों की आत्मा प्रतिष्ठित है ॥ ४४ ॥ इसलिए मन्त्र-सूक्त तत्त्वज्ञ ये ब्राह्मण आत्मवेत्ता हैं, इन आत्मज्ञानी ब्राह्मणों को तुम शाप मत दो। कोई भद्रपुरुष दुर्बुद्धि से भी इन वेदवेत्ताओं को ऐसा शाप नहीं देता ॥ ४५ ॥ हे नन्दीश्वर! तुम इस बात को यथार्थ जानो कि मुझे दक्ष का शाप नहीं लगा है। हे धीमन्! तुम तो सनकादि महर्षियों के भी ज्ञानदाता हो, अतः शान्त हो जाओ ॥ ४६ ॥ मैं ही यज्ञ एवं यज्ञकर्म (मन्त्र, द्रव्य, दक्षिणा व यजमान, ऋत्विगादि हूँ) और यज्ञाङ्ग (यूप, चषाल आदि) हूँ। मैं ही यज्ञात्मा, यज्ञपरायण तथा यज्ञबाह्य हूँ ॥ ४७ ॥ तुम कौन हो, ये कौन हैं, तत्त्वतः तो मैं ही सब कुछ हूँ। ऐसी बुद्धि से तत्त्व का विचार करो। तुमने व्यर्थ ही इन ब्राह्मणों को शाप दिया ॥ ४८ ॥ हे महाबुद्धे नन्दिन्! तुम क्रोधरहित होकर तत्त्वज्ञान से शान्त एवं स्वस्थ हो जाओ। तथा इस सारे प्रपञ्च को छोड़ दो ॥ ४९ ॥

ब्रह्माजी बोले—शिवजी के द्वारा इस प्रकार समझाये जाने पर नन्दिकेश्वर को विवेक हो गया। वे क्रोध छोड़कर शान्त हो गये ॥ ५० ॥ शिवजी भी नन्दिकेश्वर सहित समस्तगणों को समझाकर उन्हें साथ ले प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थान को चले गये ॥ ५१ ॥ इधर क्रुद्ध हुए दक्ष भी उन ब्राह्मणों के साथ

रुद्रं तदानीं परिशप्यमानं संस्मृत्य दक्षः परया रुषान्वितः ।
श्रद्धां विहायैव स मूढबुद्धिर्निन्दापरोऽभूच्छिवपूजकानाम् ॥५३॥
इत्युक्तो दक्षदुर्बुद्धिः शम्भुना परमात्मना । परां दुर्धिषणां तस्य शृणु तात ! वदाम्यहम् ॥५४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीयखण्डे सत्युपाख्याने
शिवेन दक्षविरोधो नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

(दक्ष प्रजापति के यज्ञ में देवता आदि का आगमन तथा यज्ञों में रुद्र को न देखकर
दधीचि का बहिर्गमन और शिवविरोधि ब्राह्मणों द्वारा यज्ञ में प्रवृत्ति)

ब्रह्मोवाच

एकदा तु मुने ! तेन यज्ञः प्रारम्भितो महान् । तत्राहूतास्तदा सर्वे दीक्षितेन सुरर्षयः ॥ १ ॥
महर्षयोऽखिलास्तत्र निर्जराश्च समागताः । यद्यज्ञकरणार्थं हि शिवमायाविमोहिताः ॥ २ ॥
अगस्त्यः कश्यपोऽत्रिश्च वामदेवस्तथा भृगुः । दधीचिर्भगवान् व्यासो भारद्वाजोऽथ गौतमः ॥ ३ ॥
पैलः पराशरो गर्गो भार्गवः ककुपः सितः । सुमन्तु-त्रिक-कङ्काश्च वैशम्पायन एव च ॥ ४ ॥
एते चाऽन्ये च बहवो मुनयो हर्षिता ययुः । मम पुत्रस्य दक्षस्य सदाराः ससुता मखम् ॥ ५ ॥
तथा सर्वे सुरगणा लोकपाला महोदयाः । तथोपनिर्जराः सर्वे स्वोपकारबलान्विताः ॥ ६ ॥
सत्यलोकात् समानीतो नुतोऽहं विश्वकारकः । ससुतः सपरीवारो मूर्तवेदापि संयुतः ॥ ७ ॥
वैकुण्ठाच्च तथा विष्णुः संप्रार्थ्य विविधादरात् । सपार्षदपरीवारः समानीतो मखं प्रति ॥ ८ ॥
एवमन्ये समायाता दक्षयज्ञं विमोहिताः । सत्कृतास्तेन दक्षेण सर्वे ते हि दुरात्मना ॥ ९ ॥

चित्त में शिव से द्वेष करते हुए अपने स्थान को चले गये ॥ ५२ ॥ और रुद्र को शाप देने पर भी उन्हीं का स्मरण करते हुए क्रोध से आग बबूला हो गये । उनकी श्रद्धा शिव से हट गयी । अनन्तर वे मूर्खतावश शिवभक्तों की निन्दा करने लगे ॥५३॥ हे तात ! दुर्बुद्धि दक्ष ने परमात्मा सदाशिव से जिस प्रकार विरोध किया उस कथा को मैंने तुमसे वर्णन कर दिया । अब जिस प्रकार शिव ने उसका अपमान किया उस वृत्तान्त का वर्णन करता हूँ, तुम सुनो ॥ ५४ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती'भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में
शिव द्वारा दक्षविरोध वर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! एक समय दक्ष ने एक महान् यज्ञ प्रारम्भ किया । और दीक्षा लेकर सारे महर्षियों को बुलाया ॥१॥ उस यज्ञ को कराने के लिए शिवमाया से विमोहित हुए समस्त महर्षिगण तथा देवता लोग आये ॥ २ ॥ अगस्त्य, कश्यप, अत्रि, वामदेव, भृगु, दधीचि, भगवान् व्यास, भरद्वाज, गौतम, पैल, पराशर, गर्ग, भार्गव, ककुप्, सित, सुमन्तु, त्रिक, कङ्क और वैशम्पायन एवं अन्य मुनिगण अपने पुत्र तथा स्त्री आदि परिवारों को लेकर बड़ी प्रसन्नता के साथ मेरे पुत्र दक्ष के यज्ञ में गये ॥ ३-५ ॥ इसी प्रकार सभी देवगण एवं प्रतापी लोकपाल गण, तथा गन्धर्वादि उपदेव गण भी उपायन की सामग्री लेकर सेनाओं के साथ यज्ञ में गये ॥६॥ दक्ष ने बड़े विनय के साथ स्तुति कर मुझे भी सत्यलोक से बुलाया । मैं भी अपने पुत्र, परिवार तथा मूर्तिमान् वेदों के साथ उस यज्ञ में सम्मिलित हुआ ॥ ७ ॥ दक्ष ने वैकुण्ठलोक से प्रार्थनापूर्वक बड़े आदर के साथ विष्णु को बुलाया । वे उस यज्ञ में अपने पार्षदों एवं परिवार के साथ यज्ञ में गये ॥ ८ ॥ इसी प्रकार अन्य देवगण भी मोह में पड़कर दक्ष-यज्ञ में पहुँचे । दुरात्मा दक्ष ने सभी

भवनानि महार्हाणि सुप्रभाणि महान्ति च । त्वष्ट्रा कृतानि दिव्यानि तेभ्यो दत्तानि तेन वै ॥१०॥
तेषु सर्वेषु धिष्ण्येषु यथायोग्यं च संस्थिताः । सम्मानिता अराजंस्ते सकला विष्णुना मया ॥११॥
वर्त्तमाने महायज्ञे तीर्थे कनखले तदा । ऋत्विजश्च कृतास्तेन भृग्वाद्याश्च तपोधनाः ॥१२॥
अधिष्ठाता स्वयं विष्णुः सह सर्वमरुद्गणैः । अहं तत्राऽभवं ब्रह्मा त्रयीविधिनिदर्शकः ॥१३॥
तथैव सर्वदिक्पाला द्वारपालाश्च रक्षकाः । सायुधाः सपरीवाराः कुतूहलकराः सदा ॥१४॥
उपतस्थे स्वयं यज्ञः सुरूपस्तस्य चाध्वरे । सर्वे महामुनिश्रेष्ठाः स्वयं वेदधराऽभवन् ॥१५॥
तनूनपादपि निजं चक्रे रूपं सहस्रशः । हविषां ग्रहणायाशु तस्मिन् यज्ञे महोत्सवे ॥१६॥
अष्टाशीतिसहस्राणि जुह्वति सह ऋत्विजः । उद्गातारश्चतुःषष्टिसहस्राणि सुरर्षयः ॥१७॥
अध्वर्यवोऽथ होतारस्तावन्तो नारदादयः । सप्तर्षयः समा गाथाः कुर्वन्ति स्म पृथक् पृथक् ॥१८॥

गन्धर्व-विद्याधर-सिद्धसङ्घानादित्यसङ्घान् सगणान् सयज्ञान् ।
सङ्घ्यावरान् नागचरान् समस्तान् वव्रे स दक्षो हि महाध्वरे स्वे ॥१९॥
द्विजर्षि-राजर्षि-सुरर्षिसङ्घा नृपाः समित्राः सचिवाः स-सैन्याः ।
वसुप्रमुख्या गणदेवताश्च सर्वे वृतास्तेन मखोपवेत्राः ॥२०॥

दीक्षायुक्तस्तदा दक्षः कृतकौतुकमङ्गलः । भार्यया सहितो रेजे कृतस्वस्त्ययनो भृशम् ॥२१॥
तस्मिन् यज्ञे वृतः शम्भुर्न दक्षेण दुरात्मना । कपालीति विनिश्चित्य तस्य यज्ञार्हता न हि ॥२२॥
कपालिभार्येति सती दयिता स्वसुताऽपि च । नाहूता यज्ञविषये दक्षेणागुणदर्शिना ॥२३॥

का सत्कार किया ॥ ९ ॥ दक्ष ने विश्वकर्मा के द्वारा बनाये गये बड़े-बड़े दिव्य एवं प्रकाशयुक्त भवन, जो बहुमूल्य सामग्री से सुसज्जित थे, उन देवताओं के निवास के लिए दिये ॥ १० ॥ उन भवनों में मेरे तथा विष्णु के साथ सभी देव, महर्षिगण दक्ष से यथायोग्य सम्मानित हो अपने-अपने स्थानों पर शोभित होने लगे ॥ ११ ॥

वह यज्ञ कनखल नामक महातीर्थ में प्रारम्भ हुआ। दक्ष ने महातपस्वी भृग्वादि महर्षियों को यज्ञ का ऋत्विज बनाया ॥ १२ ॥ सभी देवगणों के साथ विष्णु उस यज्ञ के अधिष्ठाता तथा वेदविधि को जाननेवाला मैं स्वयं उस यज्ञ का द्रष्टा बना ॥ १३ ॥ इसी प्रकार सभी दिक्पाल अपने-अपने आयुधों तथा परिवारों को लेकर कौतुक करते हुए उस यज्ञ के द्वारपाल हुए ॥ १४ ॥ दक्ष के यज्ञ में स्वयं यज्ञदेव अपना मूर्त्तिमान स्वरूप धारण कर स्थित हुए तथा बड़े-बड़े महर्षिगण वेदपाठी बने ॥ १५ ॥ उस यज्ञ-महोत्सव में हविष्य ग्रहण करने के लिए स्वयं अग्निदेव सहस्रों रूप से उपस्थित हुए ॥१६॥ अट्ठासी हजार ऋषि ऋत्विज बनकर उस यज्ञ में आहुति देते थे। और चौंसठ हजार महर्षि मन्त्र बोलते थे ॥१७॥ उस यज्ञ में उतनी ही संख्या में नारदादि महर्षि अध्वर्यु तथा होता थे। और सप्तर्षिगण पृथक्-पृथक् गाथा करते थे ॥ १८ ॥ उस महायज्ञ में स्वयं दक्ष ने गन्धर्व, विद्याधर, सिद्धसमूह एवं गण तथा यज्ञों से युक्त आदित्य समूह तथा समस्त नागों का वरण किया ॥ १९ ॥ यज्ञ की विधि जानने वाले दक्ष ने अपने यज्ञ में द्विजर्षि, राजर्षि एवं सुरर्षि समूहों को तथा मित्र, सचिव एवं सेना सहित आये हुए राजाओं को तथा वसु आदि समस्त गण देवताओं को भी वरण किया ॥ २० ॥ तदनन्तर कौतुक मङ्गल करने के उपरान्त दक्ष ने यज्ञ की दीक्षा ली फिर भार्या सहित स्वस्तिवाचन के उपरान्त वह अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ इतना सब कुछ करने पर भी दुरात्मा दक्ष ने उस यज्ञ में शिव कपाली हैं एवं यज्ञ में पूजा के योग्य नहीं हैं ऐसा समझकर शिवजी को नहीं बुलाया ॥ २२ ॥ दोषदर्शी उस दक्ष ने अपनी प्रियपुत्री सती को भी कपालधारी

एवं प्रवर्तमाने हि दक्षयज्ञे महोत्सवे । स्वकार्यलग्नास्तत्रासन् सर्वे तेऽध्वरसम्मताः ॥२४॥
एतस्मिन्नन्तरेऽदृष्ट्वा तत्र वै शङ्करप्रभुम् । प्रोद्विग्नमानसः शैवो दधीचो वाक्यमब्रवीत् ॥२५॥

दधीच उवाच

सर्वे शृणुत मद्वाक्यं देवर्षिप्रमुखा मुदा । कस्मान्नैवागतः शम्भुरस्मिन् यज्ञे महोत्सवे ॥२६॥

एते सुरेशा मुनयो महत्तराः सलोकपालाश्च समागता हि ।
तथापि यज्ञस्तु न शोभते भृशं पिनाकिना तेन महात्मना विना ॥२७॥
येनैव सर्वाण्यपि मङ्गलानि भवन्ति शंसन्ति महाविपश्चितः ।
सोऽसौ न दृष्टोऽत्र पुमान् पुराणो वृषध्वजो नीलगलः परेशः ॥२८॥
अमङ्गलान्येव च मङ्गलानि भवन्ति येनाधिगतानि दक्षः ।
त्रिपञ्चकेनाप्यथ मङ्गलानि भवन्ति सद्यः परतः पुराणि ॥२९॥

तस्मात्त्वयैव कर्तव्यमाह्वानं परमेशितुः । त्वरितं ब्रह्मणा वाऽपि विष्णुना प्रभुविष्णुना ॥३०॥
इन्द्रेण लोकपालैश्च द्विजैः सिद्धैः सहाधुना । सर्वथाऽऽनयनीयोऽसौ शङ्करो यज्ञपूर्तये ॥३१॥
सर्वैर्भवद्भिर्गन्तव्यं यत्र देवो महेश्वरः । दाक्षायण्या समं शम्भुमानयध्वं त्वरान्विताः ॥३२॥
तेन सर्वं पवित्रं स्याच्छम्भुना परमात्मना । अत्रागतेन देवेशाः साम्बेन परमात्मना ॥३३॥
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या समग्रं सुकृतं भवेत् । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ह्यानेतव्यो वृषध्वजः ॥३४॥
समागते शङ्करेऽत्र पावनो हि भवेन्मखः । भविष्यत्यन्यथाऽपूर्णः सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम् ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दक्षो रोषसमन्वितः । उवाच त्वरितं मूढः प्रहसन्निव दुष्टधीः ॥३६॥
मूलं विष्णुर्देवतानां यत्र धर्मः सनातनः । समानीतो मया सम्यक् किमूनं यज्ञकर्मणि ॥३७॥

शिव की भार्या होने से यज्ञ में नहीं बुलाया ॥ २३ ॥ इस प्रकार जब दक्ष के यज्ञ का महोत्सव प्रारम्भ हुआ । यज्ञ में वृत्त हुए समस्त होता तथा ऋत्विज अपने-अपने कामों में लग गये ॥ २४ ॥ इसी बीच शिवभक्त दधीच ऋषि वहाँ भगवान् शङ्कर को न देखकर उद्विग्न चित्त होकर बोले ॥ २५ ॥

दधीच बोले—हे देवर्षियो ! मेरी बात सुनो, बतलाओ कि इस महायज्ञ में भगवान् शिव क्यों नहीं आये ? ॥ २६ ॥ यद्यपि इस यज्ञ में सभी बड़े-बड़े देवराज, लोकपाल एवं मुनिगण पधारे हुए हैं किन्तु शङ्कर के बिना यह यज्ञ शोभित नहीं होता ॥ २७ ॥ बड़े-बड़े विद्वान् लोग बताते हैं कि समस्त मङ्गल शिवकृपा से ही होते हैं, वे पुराणपुरुष, नीलकण्ठ परमात्मा वृषभध्वज यहाँ दिखाई नहीं पड़ते ॥ २८ ॥ हे दक्ष, अमङ्गल भी जिन्हें प्राप्त कर मङ्गल हो जाते हैं तथा जिन त्रिनेत्र एवं पञ्चमुख शिव के प्राप्त होने से आगे-पीछे सर्वत्र मङ्गल-ही-मङ्गल दिखाई पड़ते हैं वे शिव इस यज्ञ में दिखाई नहीं पड़ते हैं ॥२९॥ इसलिए तुम्हें इन ब्रह्मदेव तथा विष्णु को भेजकर शिवजी को बुला लेना चाहिए ॥ ३० ॥ अथवा इन्द्र, लोकपाल, ब्राह्मणों तथा इन सिद्धगणों के साथ इस यज्ञ की पूर्त्ति के लिए तुम्हें स्वयं जाकर शिव को बुलाना चाहिए ॥ ३१ ॥ मेरा अनुरोध है कि आप सभी लोगों को भगवान् शिव के पास जाकर शीघ्रता से देवी के साथ उनको लिवा लाना चाहिए ॥३२॥ हे देवेश्वरो ! जगदम्बा श्री सती के साथ भगवान् शिव के आते ही यह सम्पूर्ण यज्ञ पवित्र हो जायेगा ॥३३॥ जिनके स्मरण तथा नामोच्चारण मात्र से समस्त पुण्य उपस्थित हो जाते हैं, उन भगवान् शिव को प्रयत्नपूर्वक अवश्य बुलाना चाहिए ॥ ३४ ॥ भगवान् शङ्कर के आने से ही यज्ञ की पूर्णता होगी । अन्यथा मैं यह सच कहता हूँ कि यह यज्ञ अपूर्ण ही रह जायेगा ॥ ३५ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! दधीच की बात सुनते ही दक्ष को क्रोध उत्पन्न हो गया फिर वह दुष्टात्मा दक्ष हँसते हुए की तरह शीघ्रता से बोला ॥ ३६ ॥ सभी देवताओं के मूल विष्णु भगवान् हैं,

यस्मिन् वेदाश्च यज्ञाश्च कर्माणि विविधानि च। प्रतिष्ठितानि सर्वाणि सोऽसौ विष्णुरिहागतः ॥३८॥
सत्यलोकात् समायातो ब्रह्मा लोकपितामहः। वेदैः सोपनिषद्भिश्च विविधैरागमैः सह ॥३९॥
तथा सुरगणैः साकमागतः सुरराट् स्वयम्। तथा यूयं समायाता ऋषयो वीतकल्मषाः ॥४०॥
ये ये यज्ञोचिताः शान्ताः पात्रभूताः समागताः। वेदवेदार्थतत्त्वज्ञाः सर्वे यूयं दृढव्रताः ॥४१॥
अत्रैव च किमस्माकं रुद्रेणापि प्रयोजनम्। कन्या दत्ता मया विप्र! ब्रह्मणा नोदितेन हि ॥४२॥
हरोऽकुलीनोऽसौ विप्र! पितृमातृविवर्जितः। भूत-प्रेत-पिशाचानां पतिरेको दुरत्ययः ॥४३॥
आत्मसम्भावितो मूढः स्तब्धो मौनी समत्सरः। कर्मण्यस्मिन्न योग्योऽसौ नानीतो हि मयाऽधुना ॥४४॥
तस्मात्त्वमीदृशं वाक्यं पुनर्वाच्यं न हि क्वचित्। सर्वैर्भवद्भिः कर्तव्यो यज्ञो मे सफलो महान् ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य दधीचो वाक्यमब्रवीत्। सर्वेषां शृण्वतां देवमुनीनां सारसंयुतम् ॥४६॥

दधीच उवाच

अयज्ञोऽयं महाजातो विना तेन शिवेन हि। विनाशोऽपि विशेषेण ह्यत्र ते हि भविष्यति ॥४७॥
एवमुक्त्वा दधीचोऽसावेक एव विनिर्गतः। यज्ञवाटाच्च दक्षस्य त्वरितः स्वाश्रमं ययौ ॥४८॥
ततोऽन्ये शाङ्करा ये च मुख्याः शिवमतानुगाः। निर्ययुः स्वाश्रमान् सद्यः शापं दत्त्वा तथैव च ॥४९॥
मुनौ विनिर्गते तस्मिन् मखादन्येषु दुष्टधीः। शिवद्रोही मुनीन् दक्षः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥५०॥

जिनमें सनातन धर्म का निवास है। जब मैंने उन्हें बुला लिया है, तो अब इस यज्ञ में कौन-सी कमी रह गयी ? ॥ ३७ ॥ जिन विष्णु में वेद, यज्ञ तथा नाना प्रकार के कर्म प्रतिष्ठित हैं वे विष्णु भगवान् यहाँ पर आये हुए हैं ॥३८॥ इतना ही नहीं, सत्यलोक से पितामह ब्रह्मा, वेद, उपनिषद् एवं आगमों (मन्त्रशास्त्र) के साथ यहाँ आये हैं ॥ ३९ ॥ देवराज इन्द्र भी समस्त देवताओं के साथ एवं आप जैसे निष्पाप महर्षि भी आ गये हैं ॥ ४० ॥ इस प्रकार जब यज्ञ के लिए उचित समस्त वेदज्ञ, तत्त्वज्ञ, दृढ़व्रत तथा शान्त पात्र आ गये हैं, तो मुझे शिव के बुलाने की कौन-सी आवश्यकता है ? मैंने जो उन्हें अपनी कन्या दी, वह तो ब्रह्मा के कहने से दे दी ॥ ४१-४२ ॥ हे ब्राह्मण दधीच ! शिव के कुल का पता नहीं है और न तो उनके माता तथा पिता का नाम ही ज्ञात है ? वह तो भूत-प्रेत एवं पिशाचों से घिरे रहते हैं अथवा अकेले श्मशान में निवास करते हैं, उनकी गति जानी नहीं जाती ॥ ४३ ॥ वे बड़े आत्माभिमानी, मूर्ख, जड़, मौनी तथा मत्सर से युक्त हैं। और इस यज्ञकर्म के अनर्ह हैं, इसलिए मैंने उन्हें नहीं बुलाया ॥४४॥ हे महर्षे ! अब तुम इस यज्ञ में कभी किसी समय भी शिव की चर्चा मत करना। आप सभी मिलकर इस यज्ञ को सफल बनावें, यही मेरा अनुरोध है ॥ ४५ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार दक्ष की बात सुनकर दधीच ऋषि सभी देवताओं एवं मुनियों को सुनाते हुए सारयुक्त वाक्य बोले ॥ ४६ ॥

दधीच बोले—हे दक्ष ! शिव के बिना यह यज्ञ महान् होते हुए भी निष्फल है। निश्चय ही इस यज्ञ से तुम्हारा विनाश होगा ॥ ४७ ॥ इतना कहकर दधीच ऋषि अकेले उस यज्ञमण्डप से उठकर शीघ्रता से अपने आश्रम को चले गये ॥ ४८ ॥ इसके अतिरिक्त और भी जो शिवमतानुयायी शङ्करभक्त थे वे भी दक्ष को शाप देकर बड़ी शीघ्रता से अपने-अपने आश्रमों को चले गये ॥ ४९ ॥ इस प्रकार दधीच तथा अन्य मुनियों के यज्ञ से चले जाने पर दुरात्मा शिवद्रोही दक्ष हँसता हुआ बोला ॥ ५० ॥

दक्ष उवाच

गतः शिवप्रियो विप्रो दधीचो नाम नामतः । अन्ये तथाविधा ये च गतास्ते मम चाध्वरात् ॥५१॥
एतच्छुभतरं जातं सम्मतं मे हि सर्वथा । सत्यं ब्रवीमि देवेश ! सुराश्च मुनयस्तथा ॥५२॥
विनष्टचित्ता मन्दाश्च मिथ्यावादरताः खलाः । वेदबाह्या दुराचारास्त्याज्यास्ते मखकर्मणि ॥५३॥
वेदवादरता यूयं सर्वे विष्णुपुरोगमाः । यज्ञं मे सफलं विप्राः सुराः कुर्वन्तु माऽचिरम् ॥५४॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य शिवमायाविमोहिताः । यन्मखे देवयजनं चक्रुः सर्वे सुरर्षयः ॥५५॥
इति तन्मखशापो हि वर्णितो मे मुनीश्वर ! । यज्ञविध्वंसयोगोऽपि प्रोच्यते शृणु सादरम् ॥५६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे
यज्ञप्रारम्भवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टविंशोऽध्यायः

(सती का रोहिणी के साथ चन्द्र की यज्ञ में प्रवृत्ति देखकर स्वयं जाने के हेतु
शिव की आज्ञा माँगना)

ब्रह्मोवाच

यदा ययुर्दक्षमखमुत्सवेन सुरर्षयः । तस्मिन्नेवान्तरे देवी पर्वते गन्धमादने ॥ १ ॥
धारागृहे वितानेन सखीभिः परिवारिता । दाक्षायणी महाक्रीडाश्चकार विविधाः सती ॥ २ ॥
क्रीडासक्ता तदा देवी ददर्शाथ मुदा सती । यक्षयज्ञे प्रयान्तं च रोहिण्यापृच्छय सत्वरम् ॥ ३ ॥
दृष्ट्वा सीमन्तया भूतां विजयां प्राह सा सती । स्वसखीं प्रवरां प्राणप्रियां सा हि हितावहाम् ॥ ४ ॥

दक्ष बोले—शिवभक्त दधीच नामक ब्राह्मण तथा अन्य शिवभक्त मुनि मेरे यज्ञ से उठकर चले गये ॥ ५१ ॥ यह बहुत अच्छा हुआ । हे देवेश, देवताओं एवं मुनियो ! मैं भी यही चाहता था, मैं सत्य-सत्य कहता हूँ ॥ ५२ ॥ बुद्धिहीन, मन्द, मिथ्या विवाद करने वाले, दुष्ट, वेदवहिष्कृत तथा दुराचारियों को यज्ञ-कार्य में त्याग देना चाहिए ॥ ५३ ॥ विष्णु आदि समस्त देवगण वेद-कार्य में निरत रहने वाले इस यज्ञ में उपस्थित हैं, अतः हे ब्राह्मणो ! आप सब मिलकर इस यज्ञ को सफल बनावें ॥ ५४ ॥

ब्रह्माजी बोले—दक्ष के वचन को सुनकर शिवमाया से मोहित हुए समस्त देवताओं तथा मुनियों ने देवपूजा कराकर यज्ञ प्रारम्भ किया ॥ ५५ ॥ हे मुनीश्वर नारद ! इस प्रकार यज्ञ करनेवाले उस दक्ष को मुनियों का शाप मिला, उसे मैंने तुम्हें सुनाया । जिस प्रकार दक्ष-यज्ञ के विध्वंस का योग उपस्थित हुआ उसे कहता हूँ, आदरपूर्वक तुम सुनो ॥ ५६ ॥

इस प्रकार शिवदत्त 'भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-
सती-खण्ड में यज्ञ प्रारम्भ वर्णन नामक सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—जब दक्ष के यज्ञ में समस्त देवता तथा मुनिगण बड़े सज-धज के साथ जा रहे थे, उस समय गन्धमादन पर्वत पर धारागृह में सखियों के साथ निवास करती हुई सती देवी नाना प्रकार की क्रीड़ा कर रही थीं ॥ १-२ ॥ क्रीडा करती हुई सती ने आकाशमार्ग से सजी हुई रोहिणी के साथ जाते हुए चन्द्रमा को देखा ॥ ३ ॥ उसे इस प्रकार अलंकृत हुई चन्द्रमा के साथ जाते देखकर सती ने प्राणों के समान प्रिय हितैषिणी अपनी श्रेष्ठ विजया नामक सखी को बुलाकर पूछा ॥ ४ ॥

सत्युवाच

हे सखीप्रवरे प्राणप्रिये ! त्वं विजये मम । क्व गमिष्यति चन्द्रोऽयं रोहिण्यापृच्छय सत्वरम् ॥ ५ ॥

ब्रह्मोवाच

तथोक्ता विजया सत्या गत्वा तत्सन्निधौ द्रुतम् । क्व गच्छसीति पप्रच्छ शशिनं तं यथोचितम् ॥ ६ ॥
विजयोक्तमथाकर्ण्य स्वयात्रां पूर्वमादरात् । कथितं तेन तत्सर्वं यक्षयज्ञोत्सवादिकम् ॥ ७ ॥
तच्छ्रुत्वा विजया देवीं त्वरिता जातसम्भ्रमा । कथयामास तत्सर्वं यदुक्तं शशिना सतीम् ॥ ८ ॥
तच्छ्रुत्वा कालिका देवी विस्मिताऽभूत् सती तदा । विमृश्य कारणं तत्राऽज्ञात्वा चेतस्यचिन्तयत् ॥ ९ ॥
दक्षः पिता मे माता च वीरिणी नौ कुतः सती । आह्वानं न करोति स्म विस्मृता मां प्रियां सुताम् ॥१०॥
पृच्छेयं शङ्करं तत्र कारणं सर्वमादरात् । चिन्तयित्वेति सासीद्वै तत्र गन्तुं सुनिश्चया ॥११॥
अथ दाक्षायणी देवी विजयां प्रवरां सखीम् । स्थापयित्वा द्रुतं तत्र समगच्छच्छिवान्तिकम् ॥१२॥
ददर्श तं सभामध्ये संस्थितं बहुभिर्गणैः । नन्द्यादिभिर्महावीरैः प्रवरैर्यूथयूथपैः ॥१३॥
दृष्ट्वा तं प्रभुमीशानं स्वपतिं साऽथ दक्षजा । प्रष्टुं तत्कारणं शीघ्रं प्राप शङ्करसन्निधिम् ॥१४॥
शिवेन स्थापिता स्वाङ्के प्रीतियुक्तेन स्वप्रिया । प्रमोदिता वचोभिः सा बहुमानपुरःसरम् ॥१५॥
अथ शम्भुर्महालीलः सर्वेशः सुखदः सताम् । सतीमुवाच त्वरितं गणमध्यस्थ आदरात् ॥१६॥

शम्भुरुवाच

किमर्थमागताऽत्र त्वं सभामध्ये सविस्मया । कारणं तस्य सुप्रीत्या शीघ्रं वद सुमध्यमे ! ॥१७॥

सती बोली—हे सखियों में श्रेष्ठ प्राणप्रिये विजये ! तुम पता लगाओ कि रोहिणी के साथ यह चन्द्रमा कहाँ जाता है ? ॥ ५ ॥

ब्रह्माजी बोले—सती के वचन सुनते ही विजया शीघ्र ही चन्द्रमा के समीप गयी और उनसे 'आप कहाँ जा रहे हैं ?' इस प्रकार यथोचित प्रश्न पूछा ॥ ६ ॥ तदनन्तर विजया की बात सुनकर चन्द्रमा ने दक्षयज्ञ के महोत्सव में जाने का अपना सारा वृत्तान्त आदरपूर्वक कह सुनाया ॥ ७ ॥ उस बात को सुनकर विजया को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सती के पास लौटकर चन्द्रमा के द्वारा कहा गया सारा वृत्तान्त सती को सुना दिया ॥ ८ ॥ इसे सुनकर सती देवी भी विस्मित हुईं। किन्तु अपने यहाँ दक्ष के निमन्त्रण न भेजने का जब उन्हें कोई कारण न मिला तब वे मन में विचार करने लगीं ॥ ९ ॥ दक्ष ही मेरे पिता हैं और वीरिणी मेरी माता हैं, और मैं उनकी परमप्रिया कन्या हूँ। किन्तु उन्होंने यज्ञ में मुझे कैसे भुला दिया। और क्यों निमन्त्रण नहीं भेजा ॥ १० ॥ अस्तु, इसका कारण चलकर शङ्कर जी से ही मैं पूछूंगी ऐसा विचार कर सती ने शङ्कर के पास जाने का निश्चय किया ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर दक्षपुत्री सती अपनी प्रिय सखी विजया को वहाँ खड़ी कर शिव के समीप पहुँचीं ॥ १२ ॥ उन्होंने जाकर देखा कि नन्दी आदि महावीर यूथ, यूथपति गणों से घिरे हुए शङ्करजी सभा के मध्य में शोभित हो रहे हैं ॥ १३ ॥ वे अपने पति सदाशिव ईशान को देखकर निमन्त्रण न आने का कारण पूछने के लिए उनके पास पहुँच गयीं ॥ १४ ॥ शिव ने बड़े प्रेम से अपनी प्रिया सती को सन्निकट बैठाया और अनेक प्रकार के मान-पुरःसर वचन कहते हुए उन्हें प्रसन्न किया ॥ १५ ॥ अनन्तर महालीला करनेवाले, सज्जनों को सुख देनेवाले भगवान् शङ्कर गणों के मध्य में उपस्थित सती से आदरपूर्वक बोले ॥ १६ ॥

शिवजी बोले—हे सती, तुम इस सभा के मध्य में आश्चर्यान्वित होकर क्यों आई हो ? हे सुन्दर कटिवाली, तुम इसका कारण शीघ्रता से कहो ? ॥ १७ ॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदा तेन महेशेन मुनीश्वर ! । साञ्जलिः सुप्रणम्याशु सत्युवाच प्रभुं शिवा ॥१८॥

सत्युवाच

पितुर्मम महान् यज्ञो भवतीति मया श्रुतम् । तत्रोत्सवो महानस्ति समवेताः सुरर्षयः ॥१९॥
पितुर्मम महायज्ञे कस्मात्तव न रोचते । गमनं देवदेवेश ! तत्सर्वं कथय प्रभो ! ॥२०॥
सुहृदामेष वै धर्मः सुहृद्भिः सम सङ्गतिः । कुर्वन्ति यन्महादेव सुहृदः प्रीतिवर्द्धिनीम् ॥२१॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मयाऽऽगच्छ सह प्रभो ! यज्ञवाटं पितुर्मेऽद्य स्वामिन् प्रार्थनया मम ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सत्या देवो महेश्वरः । दक्षवाग्विषुहृद्-विद्धो बभाषे सूनृतं वचः ॥२३॥

महेश्वर उवाच

दक्षस्तव पिता देवी मम द्रोही विशेषतः ॥२४ ॥

यस्य ये मानिनः सर्वे ससुरर्षिमुखाः परे । ते मूढा यजनं प्राप्ताः पितुस्ते ज्ञानवर्जिताः ॥२५॥
अनाहूताश्च ये देवि ! गच्छन्ति परमन्दिरम् । अवमानं प्राप्नुवन्ति मरणादधिकं तथा ॥२६॥
परालयं गतोऽपीन्द्रो लघुर्भवति तद्विधः । का कथा च परेषां वै रीढा यात्रा हि तद्विधा ॥२७॥
तस्मात्त्वया मया चापि दक्षस्य यजनं प्रति । न गन्तव्यं विशेषेण सत्यमुक्तं मया प्रिये ! ॥२८॥
तथाऽरिभिर्न व्यथते ह्यर्दितोऽपि शरैर्जनः । स्वानां दुरुक्तिभिर्मर्म ताडितः स यथा मतः ॥२९॥
विद्यादिभिर्गुणैः षड्भिरसदन्यैः सतां स्मृतौ । हतायां भूयसां धाम न पश्यन्ति खलाः प्रिये ! ॥३०॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर ! शिवजी ने जब इस प्रकार सती से कहा तो वे हाथ जोड़कर प्रणाम करती हुई शिव से बोलीं ॥ १८ ॥

सती बोलीं—हे शिवजी, मैंने सुना है कि, मेरे पिता के घर में एक महायज्ञ हो रहा है, उस महोत्सव में समस्त देवता तथा ऋषि एकत्र हुए हैं ॥ १९ ॥ फिर हे देवदेवेश ! आपको उस मेरे पिता के यज्ञ में जाना क्यों नहीं अच्छा लगता ? हे प्रभो ! मुझे इसका कारण शीघ्र बताइए ? ॥ २० ॥ हे महादेव ! सम्बन्धियों का यह एक परम धर्म है कि वे अपने सम्बन्धियों के प्रेम बढ़ाने लिए उनसे जाकर मिलते हैं ॥ २१ ॥ इसलिए हे प्रभो ! मेरी प्रार्थना है कि आप सभी प्रयत्न कर मेरे साथ मेरे पिता के यज्ञ-मण्डप में पधारें ॥ २२ ॥

ब्रह्माजी बोले—सती के इस प्रकार के वचन सुनकर पूर्व में दक्ष के वाणीरूप वाणों से हृदय में विद्ध होकर भी शिवजी मधुर वाणी में बोले ॥ २३ ॥

शिवजी बोले—हे देवि ! तुम्हारे पिता दक्ष मुझसे विशेष रूप से द्वेष करते हैं ॥ २४ ॥ इस यज्ञ में जो-जो देवता एवं ऋषि दक्ष का सम्मान करते हैं वे ही मूर्ख इस यज्ञ में भाग ले रहे हैं ॥ २५ ॥ हे देवि ! जो बिना बुलाये ही दूसरों के घर जाते हैं, वे मरण से भी अधिक अपमान प्राप्त करते हैं ॥ २६ ॥ चाहे इन्द्र ही क्यों न हों, बिना बुलाये दूसरे के घर जाने पर लघुता प्राप्त करता है फिर औरों की तो बात ही क्या ? ऐसी अनाहूत दूसरे के घर जाने वाली यात्रा अनर्थ का कारण बन जाती है ॥ २७ ॥ इसलिए हे प्रिये ! हमें तथा तुम्हें बिना बुलाये दक्ष के यज्ञ में नहीं जाना चाहिए। मैं यह सत्य कहता हूँ ॥ २८ ॥ मनुष्य अपने शत्रुओं के बाणों से घायल होकर उतना व्यथित नहीं होता, जितना सम्बन्धियों के द्वारा आक्षेप एवं निन्दायुक्त वचनों से दुःखी होता है ॥ २९ ॥ हे प्रिये ! असज्जनों में रहने वाले विद्या, वित्त, तप, वपु, वय एवं कुल ये छह सज्जनों के गुण जब दुष्ट मनुष्यों में आ जाते हैं, तो उनकी स्मृति नष्ट हो जाती है और वे मानी होकर तेजस्वियों की ओर नहीं देखते ॥ ३० ॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्ता सती तेन महेशेन महात्मना । उवाच रोषसंयुक्ता शिवं वाक्यविदां वरम् ॥३१॥

सत्युवाच

यज्ञः स्यात् सफलो येन स त्वं शम्भोऽखिलेश्वर ! । अनाहूतोऽसि तेनाद्य पित्रा मे दुष्टकारिणा ॥३२॥

तत्सर्वं ज्ञातुमिच्छामि भव भावं दुरात्मनः । सुरर्षीणां च सर्वेषामागतानां दुरात्मनाम् ॥३३॥

तस्माच्चाद्यैव गच्छामि स्वपितुर्यजनं प्रभो ! । अनुज्ञां देहि मे नाथ ! तत्र गन्तुं महेश्वर ! ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तो भगवान् रुद्रस्तया देव्या शिवः स्वयम् । विज्ञाताऽखिलदृक् द्रष्टा सतीं सृतिकरोऽब्रवीत् ॥३५॥

शिव उवाच

यद्येवं ते रुचिर्देवि ! तत्र गन्तुमवश्यकम् । सुव्रते ! वचनान्मे त्वं गच्छ शीघ्रं पितुर्मखम् ॥३६॥

एतं नन्दिनमारुह्य वृषभं सज्जमादरात् । महाराजोपचाराणि कृत्वा बहुगुणान्विता ॥३७॥

भूषितं वृषमारोहेत्युक्ता रुद्रेण सा सती । सुभूषिता सती युक्ता ह्यगमत् पितृमन्दिरम् ॥३८॥

महाराजोपचाराणि दत्तानि परमात्मना । सुच्छत्रचामरादीनि सद्वस्त्राभरणानि च ॥३९॥

गणाः षष्टिसहस्राणि रौद्रा जग्मुः शिवाज्ञया । कुतूहलयुताः प्रीता महोत्सवसमन्विताः ॥४०॥

तदोत्सवो महानासीद्यजने तत्र सर्वतः । सत्याः शिवप्रियायास्तु वामदेवगणैः कृतः ॥४१॥

कुतूहलं गणाश्चक्रुः शिवयोर्यश उज्जगुः । बालान्तः पुप्लुवुः प्रीत्या महावीराः शिवप्रियाः ॥४२॥

सर्वथाऽऽसीन्महाशोभा गमने जगदम्बिके । सुखारावः सम्बभूव पूरितं भुवनत्रयम् ॥४३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे
सतीयात्रावर्णनं नामाऽष्टविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

ब्रह्मा जी बोले—जब इस प्रकार महात्मा शङ्कर ने सती से कहा तब सती को महाक्रोध हो गया। और वे वक्ताओं में श्रेष्ठ भगवान् शङ्कर से बोलीं ॥ ३१ ॥

सती बोलीं—हे शम्भो ! आप वह सर्वेश्वर हैं, जिनसे यज्ञ सफल होता है, किन्तु दुष्ट कार्य करने वाले मेरे पिता ने आपको आमन्त्रित नहीं किया ॥ ३२ ॥ हे भव ! मैं अपने दुरात्मा पिता का तथा उस यज्ञ में गये हुए उन दुरात्मा देवता तथा ऋषियों का अभिप्राय जानना चाहती हूँ ॥ ३३ ॥ हे प्रभो ! हे नाथ ! इसलिए मैं अपने पिता के यज्ञ में जाऊँगी । आप मुझे जाने की आज्ञा दीजिए ॥ ३४ ॥

ब्रह्माजी बोले—जब सती ने स्वयं ही इस प्रकार भगवान् शङ्कर से कहा तब सब कुछ जाननेवाले सृष्टिकर्त्ता भगवान् शङ्कर बोले- ॥ ३५ ॥

शिवजी बोले—हे देवि ! यदि वहाँ जाने के लिए तुम्हारी अत्यन्त इच्छा है तो हे सुव्रते ! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, तुम अपने पिता के यज्ञ में शीघ्र जाओ ॥ ३६ ॥ इस नन्दीश्वर नामक बैल को अच्छी तरह से सजाकर महाराजाओं के योग्य सभी आभूषणों से सुसज्जित हो ठाट-बाट से शोभा-सम्पन्न होकर पिता के यज्ञ में जाओ ॥ ३७ ॥ शिवजी के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर वह सती सम्पूर्ण वस्त्र तथा आभूषण पहनकर अपने पिता के घर जाने को उद्यत हो गयीं ॥ ३८ ॥ परमात्मा शिव ने स्वयं ही उनके लिए महाराजोचित सुन्दर छत्र, चामर, सद्वस्त्र तथा आभूषणादि वस्तुएँ दीं ॥ ३९ ॥ शिव जी की आज्ञा से कुतूहल पूर्वक महोत्सव करते हुए साठ हजार रुद्रगण भी सती के साथ चले ॥ ४० ॥ शिवप्रिया सती के उस यात्राकाल में शिवगणों ने महान् उत्सव किया ॥४१॥ शिव के गण अत्यधिक हर्षध्वनि करते हुए शिवाशिव का यश गान करने लगे । महावीर शिव के प्रियगण बालकों की तरह कूदते हुए सती के साथ चले ॥४२॥ जगदम्बा की उस यात्रा में सभी प्रकार की शोभा हुई । उनके मुख के बजाने से जो शब्द हुआ उससे त्रिलोकी व्याप्त हो गयी ॥ ४३ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के
द्वितीय-सतीखण्ड में सतीयात्रावर्णन नामक अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

(दक्षयज्ञ में सती का अपमान और सती द्वारा शिव-माहात्म्य वर्णण)

ब्रह्मोवाच

दाक्षायणी गता तत्र यत्र यज्ञो महाप्रभः । सुरा-ऽसुर-मुनीन्द्रादि-कुतूहलसमन्वितः ॥ १ ॥
स्वपितुर्भवनं तत्र नानाश्चर्यसमन्वितम् । ददर्श सुप्रभं चारु सुरर्षिगणसंयुतम् ॥ २ ॥
द्वारि स्थिता तदा देवी ह्यवरुह्य निजासनात् । नन्दिनोऽभ्यन्तरं शीघ्रमेकैवागच्छदध्वरम् ॥ ३ ॥
आगतां च सतीं दृष्ट्वाऽसिक्नी माता यशस्विनी । अकरोदादरं तस्या भगिन्यश्च यथोचितम् ॥ ४ ॥
नाकरोदादरं दक्षो दृष्ट्वा तामपि किञ्चन । नान्योऽपि तद्भयात्तत्र शिवमायाविमोहितः ॥ ५ ॥
अथ सा मातरं देवी पितरं च सती मुने ! । अनमद् विस्मिताऽत्यन्तं सर्वलोकपराऽभवत् ॥ ६ ॥
भागानपश्यद् देवानां हर्यादीनां तदध्वरे । न शम्भुभागमकरोत् क्रोधं दुर्विषहं सती ॥ ७ ॥
तदा दक्षं दहन्तीव रुषा पूर्णा सती भृशम् । क्रूरदृष्ट्या विलोक्यैव सर्वानप्यपमानिता ॥ ८ ॥

सत्युवाच

अनाहूतस्त्वया कस्माच्छम्भुः परमशोभनः । येन पूतमिदं विश्वं समग्रं सचराचरम् ॥ ९ ॥
यज्ञो यज्ञविदां श्रेष्ठो यज्ञाङ्गो यज्ञदक्षिणः । यज्ञकर्ता च यः शम्भुस्तं विना च कथं मखः ॥१०॥
यस्य स्मरणमात्रेण सर्वं पूतं भवत्यहो । विना तेन कृतं सर्वमपवित्रं भविष्यति ॥११॥
द्रव्यमन्त्रादिकं सर्वं हव्यं कव्यं च यन्मयम् । शम्भुना हि विना तेन कथं यज्ञः प्रवर्तितः ॥१२॥
किं शिवं सुरसामान्यं मत्वाऽकार्षीरनादरम् । भ्रष्टबुद्धिर्भवानद्य जातोऽसि जनकाधम ! ॥१३॥

ब्रह्मा जी बोले—इस प्रकार महासती जहाँ वह विशाल महायज्ञ हो रहा था वहाँ पहुँची । वहाँ देवता, असुर, मुनीन्द्र आदि सभी प्रसन्न हो रहे थे ॥ १ ॥ वहाँ पर सती ने अनेक आश्चर्य युक्त दृश्यों से पूर्ण, देवता तथा ऋषियों से व्याप्त, अत्यन्त रमणीय एवं देदीप्यमान अपने पिता के भवन को देखा ॥ २ ॥ वे उस समय नन्दीश्वर से उतर गयीं । कुछ देर तक द्वार पर ही खड़ी रहीं । तत्पश्चात् अकेले ही वे यज्ञभूमि के भीतर प्रवेश कीं ॥ ३ ॥ उन सती को आये देखकर माता असिक्नी तथा भगिनियों ने उनका यथोचित सम्मान एवं स्वागत किया ॥ ४ ॥ शिव की माया से मोहित हुए उस दक्ष ने सती को देखकर उनका किञ्चित्मात्र भी स्वागत-सम्मान न किया और न अन्य लोगों ने ही दक्ष के भय से कोई सम्मान किया ॥५॥ इस प्रकार बन्धुजनों तथा अन्य लोगों के द्वारा किये गये अपमान से सती बहुत दुःखी हो विस्मित हो गयीं । फिर उन्होंने अपने माता-पिता को प्रणाम किया ॥ ६ ॥ उन्होंने उस यज्ञ में दक्ष के द्वारा दिये गये विष्णु आदि समस्त देवताओं के पृथक्-पृथक् भागों को देखा । किन्तु शिव का भाग न देखकर उन्हें असह्य क्रोध उत्पन्न हो गया ॥ ७ ॥ तब अपने क्रोध से दक्ष को भस्म करने के समान अपमानित हुई सती वहाँ उपस्थित हुए सभी को क्रूर दृष्टि से देखकर बोलीं- ॥ ८ ॥

सती बोलीं—पिताजी ! जिसने यह सारा चराचर जगत् पवित्र किया है, उन परम शोभायमान शिव को आपने अपने यज्ञ में क्यों नहीं बुलाया ? ॥ ९ ॥ यज्ञस्वरूप, यज्ञवेत्ताओं में श्रेष्ठ, यज्ञो के अङ्ग, यज्ञों के दक्षिणास्वरूप एवं यज्ञकर्त्ता, सबका कल्याण करनेवाले शिव के बिना आपने यज्ञ का प्रारम्भ कैसे किया ? ॥ १० ॥ जिनके स्मरण मात्र से सब कुछ पवित्र हो जाते हैं, आश्चर्य है कि उन शिव के बिना आपका सारा यज्ञ अपवित्र हो जायेगा ॥ ११ ॥ द्रव्य, मन्त्र, हव्य, कव्य एवं सब कुछ शिवमय ही है, फिर भी, उन शिव को आमन्त्रित किये बिना आपने यज्ञ का प्रारम्भ कैसे किया ॥ १२ ॥ क्या आपने शिव को सामान्य देवता जैसा समझकर उनका अपमान किया है । हे नीच पिता ! अवश्य ही तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट

विष्णुब्रह्मादयो देवा यं संसेव्य महेश्वरम् । प्राप्ताः स्वपदवीं सर्वे तं न जानासि रे हरम् ॥१४॥
एते कथं समायाता विष्णुब्रह्मादयः सुराः । तव यज्ञे विना शम्भुं स्वप्रभुं मुनयस्तथा ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा परमेशानी विष्ण्वादीन् सकलान् प्रति । पृथक् पृथगवोचत् सा भर्त्सयन्ती भवात्मिका ॥१६॥

सत्युवाच

हे विष्णो! त्वं महादेवं किं न जानासि तत्त्वतः । सगुणं निर्गुणं चापि श्रुतयो यं वदन्ति ह ॥१७॥
यद्यपि त्वां करं दत्त्वा बहुवारं महेश्वरः । अशिक्षयत् पुरा शाल्वप्रमुखाकृतिभिर्हरे ! ॥१८॥
तदपि ज्ञानमायातं न ते चेतसि दुर्मते ! । भागार्थी दक्षयज्ञेऽस्मिन् शिवं स्वस्वामिनं विना ॥१९॥
पुरा पञ्चमुखो भूत्वा गर्वितोऽसि सदाशिवम् । कृतश्चतुर्मुखस्तेन विस्मृतोऽसि तदद्भुतम् ॥२०॥
इन्द्र ! त्वं किं न जानासि महादेवस्य विक्रमम् । भस्मीकृतः पविस्ते हि हरेण क्रूरकर्मणा ॥२१॥
हे सुराः ! किन्न जानीथ महादेवस्य विक्रमम् । अत्रे वसिष्ठ मुनयो युष्माभिः किं कृतं त्विह ॥२२॥
भिक्षाटनं च कृतवान् पुरा दारुवने विभुः । शप्तो यद् भिक्षुको रुद्रो भवद्भिर्मुनिभिस्तदा ॥२३॥
शप्तेनापि च रुद्रेण यत्कृतं विस्मृतं कथम् । तल्लिङ्गेनाऽखिलं दग्धं भुवनं सचराऽचरम् ॥२४॥
सर्वे मूढाश्च सञ्जाता विष्णुब्रह्मदयः सुराः । मुनयोऽन्ये विना शम्भुमागता यदिहाध्वरे ॥२५॥
सर्वे वेदाश्च सम्भूताः साङ्गाः शास्त्राणि वाग्यतः । योऽसौ वेदान्तगः शम्भुः कैश्चिज्ज्ञातुं न पार्यते॥२६॥

हो गयी है ॥ १३ ॥ ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता जिनकी सेवा से अपनी पदवी पर अधिष्ठित हैं, निश्चय ही आपने अभी तक उन शिव को नहीं पहचाना ॥१४॥ ये ब्रह्मा, विष्णु तथा अन्य देवगण बिना अपने स्वामी शिव के किस प्रकार तुम्हारे यज्ञ में चले आये ॥ १५ ॥

ब्रह्माजी बोले—परमेश्वरी शिवा इस प्रकार विष्णु आदि सम्पूर्ण देवताओं से कहकर पृथक्-पृथक् सभी देवताओं को धमकाती हुई बोलीं– ॥ १६ ॥

सती बोलीं—हे विष्णो ! श्रुतियाँ जिन्हें सगुण एवं निर्गुण रूप से प्रतिपादन करती हैं, क्या तुम उन शिव को नहीं जानते ? ॥ १७ ॥ हे विष्णो ! यद्यपि शिव ने शाल्वादि आकृति को धारणकर तुम्हारे शिर पर हाथ धर कर तुम्हें कई बार शिक्षा दी है, फिर भी, हे दुर्मते ! तुम्हारे हृदय में ज्ञान नहीं हुआ, जो तुमने अपने स्वामी शङ्कर के बिना ही इस यज्ञ में भाग लिया ॥ १८-१९ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुमने जब पाँच मुख से गर्वित होकर शिवद्रोह किया था, तब तुम्हें चार मुख का बनाकर जिन्होंने तुम्हारे गर्व का हरण किया, क्या तुम आज उन्हें भूल गये ॥२०॥ हे इन्द्र ! क्या तुम भगवान् शङ्कर के पराक्रम को नहीं जानते, जब क्रूर कर्म करने वाले शङ्कर ने तुम्हारा वज्र भस्म कर दिया था ॥ २१ ॥ हे देवताओ ! क्या तुम लोग महादेव का पराक्रम नहीं जानते । हे अत्रे ! हे वसिष्ठादि मुनियो ! तुम लोगों ने यह क्या किया ? ॥२२॥ जब शिव जी दारुवन में भिक्षाटन के लिए गये थे और जब आप सभी मुनियों ने उन्हें भिक्षुक समझ कर शाप दिया था ॥ २३ ॥ पश्चात् शापित होकर भी उन्होंने जो अपने लिङ्ग से सारे चराचर को जला दिया था, उसे कैसे भूल गये ? ॥२४॥ ज्ञात होता है कि आज ब्रह्मा, विष्णु आदि समस्त देवता तथा मुनीश्वर अज्ञानी हो गये हैं, जो बिना शिव के ही इस यज्ञ में आये ॥ २५ ॥ निश्चय ही सम्पूर्ण साङ्गवेद, शास्त्र एवं समस्त वाणी जिनसे उत्पन्न हुए हैं, उन वेदान्तवेद्य भगवान् शङ्कर को जान लेना सब के वश की बात नहीं है ॥ २६ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्यनेकविधा वाणीरगदज्जगदम्बिका । कोपान्विता सती तत्र हृदयेन विदूयता ॥२७॥
विष्ण्वादयोऽखिला देवा मुनयो ये च तद्वचः । मौनीभूतास्तदाकर्ण्य भयव्याकुलमानसाः ॥२८॥
अथ दक्षः समाकर्ण्य स्वपुत्र्यास्तादृशं वचः । विलोक्य क्रूरदृष्ट्या तां सतीं क्रुद्धोऽब्रवीद् वचः॥२९॥

दक्ष उवाच

तव किं बहुनोक्तेन कार्यं नास्तीह साम्प्रतम् । गच्छ वा तिष्ठ वा भद्रे ! कस्मात्त्वं हि समागता॥३०॥
अमङ्गलस्तु ते भर्ता शिवोऽसौ गम्यते बुधैः । अकुलीनो वेदबाह्यो भूत-प्रेत-पिशाचराट् ॥३१॥
तस्मान्नाह्वायितो रुद्रो यज्ञार्थं सुकुवेषभृत् । देवर्षिसंसदि मया ज्ञात्वा पुत्रि ! विपश्चिता ॥३२॥
विधिना प्रेरितेन त्वं दत्ता मन्देन पापिना । रुद्रायाविदितार्थाय चोद्धताय दुरात्मने ॥३३॥
तस्मात् कोपं परित्यज्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ! ।यद्यागतासि यज्ञेऽस्मिन् दायं गृह्णीष्व चात्मना ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

दक्षेणोक्तेति सा पुत्री सती त्रैलोक्यपूजिता । निन्दायुक्तं स्वपितरं दृष्ट्वाऽऽसीद्रुपिता भृशम् ॥३५॥
अचिन्तयत्तदा सेति कथं यास्यामि शङ्करम् । शङ्करं द्रष्टुकामाऽहं पृष्टा वक्ष्ये किमुत्तरम् ॥३६॥
अथ प्रोवाच पितरं दक्षं तं दुष्टमानसम् । निःश्वसन्ती रुषाविष्टा सा सती त्रिजगत्प्रसूः ॥३७॥

सत्युवाच

यो निन्दति महादेवं निन्द्यमानं शृणोति वा । तावुभौ नरकं यातौ यावचन्द्रदिवाकरौ ॥३८॥
तस्मात्त्यक्ष्याम्यहं देहं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् । किं जीवितेन मे तात ! शृण्वन्त्यानादरं प्रभोः ॥३९॥
यदि शक्तः स्वयं शम्भोर्निन्दकस्य विशेषतः । छिन्द्यात् प्रसह्य रसनां तदा शुद्धयेन्न संशयः ॥४०॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार क्रोध से भरी हुईं दुःखी सती ने अनेकों बातें कहीं। उस समय विष्णु आदि सभी देवगण सती की बात सुन कर व्यग्र हो चुप हो गये ॥ २७-२८ ॥ तब दक्ष अपने पुत्री के इस प्रकार के वचन को सुनकर क्रोध में भरकर क्रूर दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए बोले— ॥ २९ ॥

दक्ष बोले—हे भद्रे ! तुम्हारे बहुत कहने से क्या लाभ ? तुम्हारा यहाँ कौन सा काम है ? तुम यहाँ क्यों चली आई ? तुम चाहे रहो अथवा जा भी सकती हो। हमें तुमसे कोई प्रयोजन नहीं ॥ ३० ॥ बुद्धिमान् लोग तेरे पति शिव को मङ्गलरहित, कुलहीन, वेदबहिष्कृत तथा भूत-प्रेत-पिशाचों का राजा बताते हैं ॥ ३१ ॥ इसलिए कुवेषधारी रुद्र को मैंने इस यज्ञ में आमन्त्रित नहीं किया। हे पुत्रि ! मैंने अपनी बुद्धि से विचार कर यह निश्चय किया कि देवताओं की सभा में रुद्र आने के योग्य नहीं हैं ॥ ३२ ॥ मैंने पहले नहीं जाना था कि रुद्र इस प्रकार का उच्छृङ्खल एवं दुरात्मा है, इसलिए पापी एवं मन्दबुद्धिवाले ब्रह्मा के कहने से मैंने उसे तुम्हें दे दिया ॥ ३३ ॥ इस कारण हे शुचिस्मिते ! तू अपना क्रोध त्यागकर प्रकृतिस्थ हो जाओ। अब तू जब यज्ञ में आ ही गयी हो, तो अपना भाग ग्रहण करो ॥ ३४ ॥

ब्रह्मा जी बोले—दक्ष के द्वारा इस प्रकार कहने पर त्रैलोक्यपूजिता सती ने शिवनिन्दा करने वाले अपने पिता की ओर क्रोधदृष्टि से देखा और अत्यन्त रुष्ट हो गयीं ॥ ३५ ॥ वे अपने मन में विचार करने लगीं कि अब मैं शङ्कर के दर्शन की इच्छा करके भी किस प्रकार जाकर उनका दर्शन करूँ और जब वे पूछेंगे तो उन्हें क्या उत्तर दूंगी ॥ ३६ ॥ फिर त्रैलोक्य को उत्पन्न करनेवाली जगदम्बा सती क्रोध से उच्छ्वास लेती हुई अपने दुष्ट पिता से बोलीं ॥ ३७ ॥

सती बोलीं—हे पिता, जो शिव की निन्दा करता है अथवा शिव की निन्दा को सुनता है वे दोनों ही यावच्चन्द्र दिवाकर नरक में निवास करते हैं ॥ ३८ ॥ हे पिता जी, अपने स्वामी का इस प्रकार अपमान सुनकर अब मुझे जीना नहीं चाहिए, अतः मैं अग्नि में प्रवेशकर अपने शरीर का त्याग करूंगी ॥३९॥ यदि मनुष्य में कुछ शक्ति हो, तो शिव की निन्दा सुनते ही आक्रमणकर उस शिवनिन्दक की जीभ काट लेवे,

यद्यशक्तो जनस्तत्र निरयात् सुपिधाय वै । कर्णौ धीमान् ततः शुद्धयेद् वदन्तीदं बुधान् वरान् ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा धर्मनीतिं पश्चात्तापमवाप सा । अस्मरच्छाङ्करं वाक्यं दूयमानेन चेतसा ॥४२॥

ततः सङ्क्रुद्धय सा दक्षं निःशङ्कं प्राह तानपि । सर्वान् विष्णवादिकान् देवान् मुनीनपि सती ध्रुवम् ॥४३॥

सत्युवाच

तात ! त्वं निन्दकः शम्भोः पश्चात्तापं गमिष्यसि । इह भुक्त्वा महादुःखमन्ते यास्यसि यातनाम् ॥४४॥

यस्य लोकेऽप्रियो नास्ति प्रियश्चैव परात्मनः । तस्मिन्नवैरे शर्वेऽस्मिन् त्वां विना कः प्रतीपकः ॥४५॥

महद्विनिन्दा नाश्चर्यं सर्वदाऽसत्सु सेर्ष्यकम् । महदङ्घ्रिरजोध्वस्ततमःसु सैव शोभना ॥४६॥

शिवेति द्व्यक्षरं यस्य नृणां नाम गिरेरितम् । सकृत्प्रसङ्गात् सकलमघमाशु निहन्ति तत् ॥४७॥

पवित्रकीर्तितमलं भवान् द्वेष्टि शिवेतरः । अलङ्घ्यशासनं शम्भुमहो सर्वेश्वरं खलः ॥४८॥

यत्पादपद्मं महतां मनोऽलिसुनिषेवितम् । सर्वार्थदं ब्रह्मरसैः सर्वार्थिभिरथादरात् ॥४९॥

यद्वर्षत्यर्थिनः शीघ्रं लोकस्य शिव आदरात् । भवान् द्रुह्यति मूर्खत्वात्तस्मै चाऽशेषबन्धवे ॥५०॥

किं वा शिवाख्यमशिवं त्वदन्ये न विदुर्बुधाः । ब्रह्मादयस्तं मुनयः सनकाद्यास्तथाऽपरे ॥५१॥

अवकीर्य जटाभूतैः श्मशाने स कपालधृक् । तन्माल्यभस्म वा ज्ञात्वा प्रीत्यावसदुदारधीः ॥५२॥

ये मूर्द्धभिर्दधति तच्चरणोत्सृष्टमादरात् । निर्माल्यं मुनयो देवाः स शिवः परमेश्वरः ॥५३॥

इस प्रकार के प्रायश्चित्त से उसकी शुद्धि होती है। किन्तु यदि ऐसा करने में असमर्थ हो तो कानों को मूंद-कर वहाँ से अन्यत्र चला जावे तब शिवनिन्दा का प्रायश्चित्त होता है। श्रेष्ठ बुद्धिमानों को वेद ऐसा उपदेश करते हैं ॥ ४०-४१ ॥

ब्रह्माजी बोले--इस प्रकार धर्म एवं नीति की बात कहकर सती पश्चात्ताप करने लगीं। और दुःखी हो शिवजी के वाक्यों को स्मरण करने लगीं ॥ ४२ ॥ तदनन्तर पुनः क्रुद्ध हो निःशङ्कभाव से दक्ष तथा विष्णवादि देवता और मुनियों से बोलीं-- ॥ ४३ ॥

सती ने कहा--हे तात ! तुम शिवनिन्दक हो, अतः पछताओगे। इस लोक में भी तुम्हें दुःख प्राप्त होगा और मरने के पश्चात् भी तुम नरक जाओगे ॥ ४४ ॥ जिन परमात्मा शिव का कोई अप्रिय नहीं है और न कोई प्रिय ही है, एसे राग-द्वेषरहित प्रभु शङ्कर से तुम्हारे अतिरिक्त और कौन वैर नहीं कर सकता है ॥ ४५ ॥ असत्पुरुषों के द्वारा ईर्ष्यापूर्वक सज्जनों की निन्दा की जावे, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि दुष्टों के द्वारा की गयी उस निन्दा से परमात्मा के चरणरज के धारण करने से अपने पापों को नष्ट करने वाले सज्जनों की उससे शोभा ही बढ़ती है ॥ ४६ ॥ प्रसङ्ग वश भी जिनके 'शिव' इस दो अक्षर वाले नामोच्चारणमात्र से मनुष्यों के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ४७ ॥ जिनकी कीर्त्ति पवित्र करने वाली है तथा जिनकी आज्ञा अप्रतिहत है ऐसे परमात्मा शिव से शिवेतर तुम द्वेष रखते हो। वह दुष्ट ही है, जो ऐसे सर्वेश्वर प्रभु से द्वेष करे ॥ ४८ ॥ जिनके चरणकमलों में सज्जनों के मनरूपी भ्रमर सदैव लगे रहते हैं एवं जो सम्पूर्ण अर्थियों को ब्रह्मरस से पूर्ण कर उनकी सारी कामनाएँ पूरी करते रहते हैं ॥ ४९ ॥ जो शिव याचकों पर आदरपूर्वक शीघ्रता से कामनाओं की वर्षा करते हैं, उन समस्त लोकबन्धु भगवान् शिव से आप मूर्खतावश द्वेष रखते हो ॥ ५० ॥

हे पिता ! क्या तुम्हारे अतिरिक्त ब्रह्मादि देवगण तथा ये सनकादि महर्षिगण इन अशिव को शिव नहीं समझते ॥ ५१ ॥ उदारबुद्धि वाले जो शिवकपाल धारण करते हैं, एवं अपनी जटाओं को खोल कर भूतगणों के साथ श्मशान में मृतकों की माला तथा उनके शरीर का चिता-भस्म जान-बूझ कर प्रेम से धारण करते हैं ॥ ५२ ॥ देवता तथा मुनिगण उन्हीं शिव के चरणों की धूलि तथा निर्माल्य को आदर

प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म चोदितम्। वेदे विविच्य वृत्तं च तद्विचार्य मनीषिभिः ॥५४॥
विरोधियौगपद्यैककर्तृके च तथा द्वयम्। परब्रह्मणि शम्भौ तु कर्मर्च्छन्ति न किञ्चन ॥५५॥
मा वः पदव्यः स्म पितर्या अस्मदास्थिताः सदा। यज्ञशालासु वो धूम्रवर्त्मभुक्तोज्झिताः परम् ॥५६॥
नोऽव्यक्तलिङ्गः सततमत्रधूतसुसेवितः। अभिमानमतो न त्वं कुरु तात! कुबुद्धिधृक् ॥५७॥
किं बहूक्तेन वचसा दुष्टस्त्वं सर्वथा कुधीः। त्वदुद्भवेन देहेन न मे किञ्चित् प्रयोजनम् ॥५८॥
तज्जन्म धिग् यो महतां सर्वथावद्यकृत्खलः। परित्याज्यो विशेषेण तत्सम्बन्धो विपश्चिता ॥५९॥
गोत्रं त्वदीयं भगवान् यदाह वृषभध्वजः। दाक्षायणीति सहसाऽहं भवामि सुदुर्मनाः ॥६०॥
तस्मात्त्वदङ्गजं देहं कुणपं गर्हितं सदा। व्युत्सृज्य नूनमधुना भविष्यामि सुखावहा ॥६१॥
हे सुरा मुनयः सर्वे यूयं शृणुत मद्वचः। सर्वथाऽनुचितं कर्म युष्माकं दुष्टचेतसाम् ॥६२॥
सर्वे यूयं विमूढा हि शिवनिन्दाः कलिप्रियाः। प्राप्स्यन्ति दण्डं नियतमखिलं च हराद् ध्रुवम् ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

दक्षमुक्त्वाऽध्वरे तांश्च व्यरमत् सा सती तदा। अनूद्य चेतसा शम्भुमस्मरत् प्राणवल्लभम् ॥६४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे
सतीवाक्यवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

पूर्वक शिर पर धारण करते हैं वही भगवान् शिव हैं ॥ ५३ ॥ वेदों में प्रवृत्त एवं निवृत्त दो प्रकार के कर्मों का विधान है। बुद्धिमान् पुरुष को उन दोनों प्रकार के कर्मों की विवेचना कर उस पर विचार करना चाहिए ॥ ५४ ॥ उन दोनों प्रकार के परस्परविरोधी कर्मों का एक कर्ता नहीं हो सकता किन्तु परब्रह्म परमात्मा शम्भु इन दोनों प्रकार के कर्मों से रहित हैं। वे स्वयं अकाम तथा कर्मरहित हैं ॥ ५५ ॥ अब इस यज्ञशाला में आपका ऐश्वर्य धूम्रमार्ग से मुक्त होकर त्यागा जा चुका है ऐसा आपका वह ऐश्वर्य हमलोगों के ऐश्वर्य के समान कदापि नहीं हो सकता। हमलोगों का ऐश्वर्य अनन्त है तथा वह महात्माओं के द्वारा ही सेवित होता है। हे तात! दुर्बुद्धिवश अभिमान मत करो ॥ ५६-५७ ॥

अब मुझे वाणी द्वारा बहुत कहने से कोई लाभ नहीं है, तुम दुष्ट तथा दुर्बुद्धि हो। बहुत क्या कहें, यह शरीर भी जो तुमसे उत्पन्न है, मुझे इसकी भी आवश्यकता नहीं है ॥ ५८ ॥ उस जन्म को धिक्कार है, जिससे महापुरुषों की निन्दा हो, बुद्धिमान् को चाहिए कि उस जन्म से सम्बन्ध रखने वाले तुम्हारे जैसे खल का विशेष रूप से परित्याग कर देवे ॥ ५९ ॥ तुम्हारे द्वारा जन्म दिये जाने के कारण एवं तुम्हारे अपत्य-सम्बन्ध से शङ्करजी मुझे दाक्षायणी (दक्षस्यापत्यं स्त्री दाक्षायणी) इस नाम से पुकारते हैं। अतः मैं तुम्हारे सम्बन्ध वाले इस नाम से भी दुःखी हूँ ॥ ६० ॥ इसलिए मैं इस शरीर को, जो तुम्हारे, सम्बन्ध होने से अत्यन्त गर्हित हो गया है, उसे छोड़ देने पर ही सुख प्राप्त करूँगी ॥ ६१ ॥ हे सभी देवताओ एवं मुनियो! दुष्ट चित्त वाले तुम लोगों ने यह सर्वथा अनुचित कर्म किया है इस मेरी बात को सुन लो ॥ ६२ ॥ तुम सभी शिवनिन्दक, कलहप्रिय एवं मूर्ख हो। तुम लोग अवश्य ही थोड़े काल में शिव के द्वारा दण्ड प्राप्त करोगे ॥ ६३ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार उस यज्ञ में दक्ष से कहकर सती ने मौन धारण कर लिया। और दुःखी चित्त से अपने प्राणवल्लभ सदाशिव का स्मरण करने लगीं ॥ ६४ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के
द्वितीय-सतीखण्ड में सतीवाक्यवर्णन नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २९ ॥

*

त्रिंशोऽध्यायः

(सती का देह परित्याग, शिवगणों द्वारा भृगु ऋषि का पराजय एवं देवताओं का भयभीत होना)

नारद उवाच

मौनीभूता यदा साऽऽसीत् सती शङ्करवल्लभा । चरित्रं किमभूत्तत्र विधे ! तद्वद चादरात् ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

मौनीभूता सती देवी स्मृत्वा स्वपतिमादरात् । क्षितावुदीच्यां सहसा निषसाद प्रशान्तधीः ॥ २ ॥
जलमाचम्य विधिवत् संवृता वाससा शुचिः । दृङ्निमील्य पतिं स्मृत्वा योगमार्गं समाविशत् ॥ ३ ॥
कृत्वा समानावनिलौ प्राणापानौ सितानना । उत्थाप्योदानमथ च यत्नात् सा नाभिचक्रतः ॥ ४ ॥
हृदि स्थाप्योरसि धिया स्थितं कण्ठाद् भ्रुवोः सती । अनिन्दिताऽनयन्मध्यं शङ्करप्राणवल्लभा ॥ ५ ॥
एवं स्वदेहं सहसा दक्षकोपाज्जिहासती । दग्धे गात्रे वायुशुचिर्धारणं योगमार्गतः ॥ ६ ॥
ततः स्वभर्तुश्चरणं चिन्तयन्ती न चापरम् । अपश्यत् सा सती तत्र योगमार्गनिविष्टधीः ॥ ७ ॥
हतकल्मषतद्देहः प्रापतच्च तदग्निना । भस्मसादभवत् सद्यो मुनिश्रेष्ठ ! तदिच्छया ॥ ८ ॥
तत्पश्यतां च खे भूमौ वादोऽभूत् सुमहांस्तदा । हाहेति सोऽद्भुतश्चित्रः सुरादीनां भयावहः ॥ ९ ॥
हन्त प्रिया परा शम्भोर्देवी दैवतमस्य हि । अहादसून् सती केन सुदुष्टेन प्रकोपिता ॥१०॥
अहो त्वनात्म्यं सुमहदस्य दक्षस्य पश्यत । चराऽचरं प्रजा यस्य यत्पुत्रस्य प्रजापतेः ॥११॥
अहोऽद्य विमनाऽभूत् सा सती देवी मनस्विनी । वृषध्वजप्रियाऽभीक्ष्णं मानयोग्या सतां सदा ॥१२॥
सोऽयं दुर्मर्षहृदयो ब्रह्मध्रुक् स प्रजापतिः । महतीमपकीर्तिं हि प्राप्स्यति त्वखिले भवे ॥१३॥
यत्स्वाङ्गजां सुतां शम्भुद्विट् न्यषेधत् समुद्यताम् । महानरकभोगी स मृतये नोऽपराधतः ॥१४॥

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन् ! जब दक्ष को सम्बोधित कर शिवप्रिया सती मौन धारण कर लीं तब क्या हुआ ? आदरपूर्वक मुझसे कहें ॥ १ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर जब सती मौन हो गयीं तब अपने पति का आदर से स्मरण करती हुई उत्तर की ओर मुख कर शान्तभाव से पृथ्वी पर बैठ गयीं ॥ २ ॥ उन्होंने विधिपूर्वक आचमन कर शुद्ध हो वस्त्र से अपने को ढँक लिया। और नेत्रों को बन्द कर शिव का ध्यान करती हुईं योगमार्ग में तत्पर हो गयीं ॥ ३ ॥ उन्होंने प्राण और अपान वायु को समान स्थिति में स्थापित कर नाभिचक्र से उदान वायु को यत्नपूर्वक ऊपर उठाया ॥ ४ ॥ फिर शंकरप्राणवल्लभा, अनिन्दिता सती ने बुद्धिपूर्वक उसे हृदय में स्थापन कर कण्ठ से दोनों भ्रुवों के मध्यभाग में स्थापित किया ॥ ५ ॥ कोप से उनका शरीर तो प्रथम ही दग्ध हो चुका था किन्तु उसे पुनः जलाने के लिए उन्होंने योगमार्ग से अपने शरीर में वायु को धारण किया ॥ ६ ॥ योगमार्ग में धारण करने के कारण सती को और कुछ दिखलाई नहीं पड़ता था, वे ध्यान में केवल अपने पति के चरणों को ही देख रही थीं ॥ ७ ॥ उनका शरीर तो निष्पाप था, हे मुनिश्रेष्ठ ! उनकी इच्छा से वह शरीर योगाग्नि से भस्म होकर पृथ्वी पर तत्क्षण गिर गया ॥ ८ ॥ सती के शरीर को इस प्रकार नष्ट हुए देख आकाश में रहनेवाले देवगणों तथा मुनिगणों ने डराने वाला महा विचित्र अद्भुत हाहाकार किया ॥ ९ ॥ वे कहने लगे—हाय ! यह महान् अनर्थ हो गया, शम्भु की परदेवता प्रिया सती को किस दुष्ट ने क्रोध उत्पन्न करवाया, जिससे उन्होंने अपने प्राण ही छोड़ दिये ॥१०॥ जिस ब्रह्मपुत्र प्रजापति की यह सारी चराचरात्मक सृष्टि प्रजा है, उस दक्ष की इस महान् दुष्टता को देखो ॥ ११ ॥ सज्जनों की माननीया शङ्कर की प्राणप्रिया इस मनस्विनी सती देवी ने, जिसकी दुष्टता से दुःखी होकर अपने प्राण त्याग कर दिये ॥ १२ ॥ अब वही अभिमानी प्रजापति आज से ब्रह्मद्रोही हो गया। समस्त संसार में इसकी महती अपकीर्ति होगी ॥ १३ ॥ जिसने शिव से द्रोह कर अपने अङ्ग से

वदत्येवं जने सत्या दृष्ट्वाऽसुत्यागमद्भुतम् । द्रुतं तत्पार्षदाः क्रोधादुदतिष्ठन्नुदायुधाः ॥१५॥
द्वारि स्थिता गणाः सर्वे रसायुतमिता रुषा । शङ्करस्य प्रभोस्ते वाऽक्रुध्यन्नतिमहाबलाः ॥१६॥
हाहाकारमकुर्वंस्ते धिक् धिग् न इति वादिनः । उच्चैः सर्वेऽसकृद्वीरः शङ्करस्य गणाधिपाः ॥१७॥
हाहाकारेण महता व्याप्तमासीद् दिगन्तरम् । सर्वे प्रापन् भयं देवा मुनयोऽन्येऽपि ते स्थिताः ॥१८॥
गणाः सम्मन्त्र्य ते सर्वेऽभूवन् क्रुद्धा उदायुधाः । कुर्वन्तः प्रलयं वाद्यशस्त्रैर्व्याप्तं दिगन्तरम् ॥१९॥
शस्त्रैरघ्नन्निजाङ्गानि केचित्तत्र शुचाकुलाः । शिरोमुखानि देवर्षे ! सुतीक्ष्णैः प्राणनाशिभिः ॥२०॥
इत्थं ते विलयं प्राप्ता दाक्षायण्या समं तदा । गणायुते द्वे च तदा तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥२१॥
गणा नाशाऽवशिष्टा ये शङ्करस्य महात्मनः । दक्षं तं क्रोधितं हन्तुमुदतिष्ठन्नुदायुधाः ॥२२॥
तेषामापततां वेगं निशम्य भगवान् भृगुः । यज्ञघ्नघ्नेन यजुषा दक्षिणाग्नौ जुहोन्मुने ! ॥२३॥
हूयमाने च भृगुणा समुत्पेतुर्महासुराः । ऋभवो नाम प्रबला वीरास्तत्र सहस्रशः ॥२४॥
तैरलातायुधैस्तत्र प्रमथानां मुनीश्वर ! । अभूद्युद्धं सुविकटं शृण्वतां रोमहर्षणम् ॥२५॥
ऋभुभिस्तैर्महावीरैर्हन्यमानाः समन्ततः । अयत्नयानाः प्रमथा उशद्भिर्ब्रह्मतेजसा ॥२६॥
एवं शिवगणास्ते वै हता विद्राविता द्रुतम् । शिवेच्छया महाशक्त्या तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥२७॥
तद् दृष्ट्वा ऋषयो देवाः शक्राद्याः समरुद्गणाः । विश्वेऽश्विनौ लोकपालास्तूष्णींभूतास्तदाऽभवन् ॥२८॥
केचिद्विष्णुं प्रभुं तत्र प्रार्थयन्तः समन्ततः । उद्विग्ना मन्त्रयन्तश्च विघ्नाभावं मुहुर्मुहुः ॥२९॥

उत्पन्न हुई पुत्री का अपमान किया तथा उसे मरण के लिए उद्यत देखकर भी नहीं रोका। इस अपराध से इसे महा नरक का भोग प्राप्त होगा ॥ १४ ॥ जब सब लोग आपस में ऐसा कह रहे थे, उसी समय शिव के पार्षदगण इस प्रकार अद्भुत रूप से सती का प्राणत्याग देखकर हाथों में शस्त्र धारण कर क्रोध से आग-बबूला हो शीघ्रता से अपने स्थानों से उठ खड़े हो गये ॥ १५ ॥ क्रुद्ध हुए भगवान् शङ्कर के साठ हजार गण, जो यज्ञशाला के द्वार पर पहले से खड़े थे ॥ १६ ॥ उन सभी महावीर रुद्रगणों ने ऊँचे स्वर से हाहाकार मचा कर कहना प्रारम्भ किया, 'हमें धिक्कार है, हमें धिक्कार है' ॥ १७ ॥

शिवगणों के उस हाहाकार से सारी दिशाएँ व्याप्त हो गयीं। सभी देवता तथा मुनिगण, जो वहाँ उपस्थित थे भयभीत हो उठे ॥ १८ ॥ क्रुद्ध हुए उन समस्त रुद्रगणों ने आपस में मन्त्रणा कर लड़ने के लिए अपने-अपने शस्त्र उठा लिये। तदनन्तर बाजे तथा शस्त्रों की खनखनाहट के शब्दों से दिशाओं में प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया ॥ १९ ॥ हे देवर्षे नारद ! कोई-कोई गण शोक से व्याकुल होकर प्राणों को नष्ट करने वाले अपने तीक्ष्ण शस्त्रों से अपने ही अङ्गभूत शिर एवं मुख पर प्रहार करने लगे ॥ २० ॥ इस प्रकार सती जी के शरीर छोड़ते ही बीस हजार गणों ने अपने शरीर को नष्ट कर दिया। हे नारद ! यह बहुत विचित्र बात हुई ॥ २१ ॥ तत्पश्चात् मरने से अवशिष्ट भगवान् शङ्कर के गण क्रोध से अपने-अपने शस्त्रों को उठा दक्ष को मारने के लिए चल पड़े ॥ २२ ॥

हे नारद ! इस प्रकार आक्रमण करनेवाले रुद्र के गणों को देखकर महर्षि भृगु ने यज्ञ के विघ्नों को दूर करने वाले यजुर्वेद के मन्त्रों से अग्नि में हवन करना प्रारम्भ किया ॥ २३ ॥ भृगु जी के हवन करते ही उस यज्ञकुण्ड से हजारों महाबलशाली ऋभु नामक असुर उत्पन्न हुए ॥ २४ ॥ हे महामुनीश्वर नारद ! चक्रायुधधारी उन वीरों के साथ शङ्कर के गणों का सुनने मात्र से रोंगटे खड़ा कर देने वाला महान् भयानक युद्ध प्रारम्भ हुआ ॥ २५ ॥ उन महावीर ऋभुओं के द्वारा ब्रह्म तेज से पराहत हुए शिवजी के गण चारों ओर नष्ट होने लगे ॥ २६ ॥ शिव की इच्छारूप महाशक्ति के कारण उनके कुछ गण वहीं मर गये और कुछ भाग गये, यह एक अद्भुत घटना हुई ॥ २७ ॥ उस समय यह देख मरुद्गणों के सहित समस्त इन्द्रादि देवगण, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार तथा समस्त लोकपाल मौन हो गये ॥ २८ ॥ कुछ लोग यज्ञ में विघ्न न हो ऐसा सोचते हुए भयभीत होकर चारों ओर विष्णु की प्रार्थना

सुविचार्योदर्कफलं महोद्विग्नाः सुबुद्धयः । सुरविष्ण्वादयोऽभूवन् तन्नाशाद्रावणान् मुहुः ॥३०॥
एवंभूतस्तदा यज्ञो विघ्ना जातो दुरात्मनः । ब्रह्मबन्धोश्च दक्षस्य शङ्करद्रोहिणो मुने ! ॥३१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सत्युपाख्याने सतीदेहत्यागोपद्रववर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

(आकाशवाणी द्वारा दक्ष का तिरस्कार और उनका भविष्य कथन)

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र नभोवाणी मुनीश्वर ! अवोचच्छृण्वतां दक्षसुरादीनां यथार्थतः ॥१॥

व्योमवाण्युवाच

रे रे दक्ष दुराचार ! दम्भाचारपरायण ! । किं कृतं ते महामूढ ! कर्म चानर्थकारकम् ॥ २ ॥
न कृतं शैवराजस्य दधीचेर्वचनस्य हि । प्रमाणं तत्कृते मूढ ! सर्वानन्दकरं शुभम् ॥ ३ ॥
निर्गतस्ते मखाद् विप्रः शापं दत्त्वा सुदुःसहम् । ततोऽपि बुद्धं किञ्चिन्नो त्वया मूढेन चेतसि ॥ ४ ॥
ततः कृतः कथं चैव स्वपुत्र्यास्त्वयाऽऽदरः परः । समागतायाः सत्याश्च मङ्गलाया गृहं स्वतः ॥ ५ ॥
सतीभवौ नार्चितौ हि किमिदं ज्ञानदुर्बल ! । ब्रह्मपुत्र इति वृथा गर्वितोऽसि विमोहितः ॥ ६ ॥
सा सत्येव सदाराध्या सर्वपापफलप्रदा । त्रिलोकमाता कल्याणी शङ्करार्द्धाङ्गभागिनी ॥ ७ ॥
सा सत्येवार्चिता नित्यं सर्वसौभाग्यदायिनी । माहेश्वरी स्वभक्तानां सर्वमङ्गलदायिनी ॥ ८ ॥
सा सत्येवार्चिता नित्यं संसारभयनाशिनी । मनोऽभीष्टप्रदा देवी सर्वोपद्रवहारिणी ॥ ९ ॥
सा सत्येवार्चिता नित्यं कीर्तिसम्पत्प्रदायिनी । परमा परमेशानी भुक्ति-मुक्तिप्रदायिनी ॥१०॥

करने लगे । तथा कुछ लोग व्यग्र हो यज्ञ में विघ्नाभाव के लिए आपस में मन्त्रणा करने लगे ॥ २९ ॥ जो बुद्धिमान् विष्णु आदि देवता थे, वे यज्ञ के नाश को देखकर तथा उसके विघ्न को दूर करने में अपने को असमर्थ पाकर और उसके भविष्यफल को सोच कर अत्यन्त उद्विग्न हो उठ ॥ ३० ॥ हे नारद ! इस प्रकार ब्रह्मबन्धु, शिवद्रोही उस दुरात्मा दक्ष के यज्ञ में महान् विघ्न उपस्थित हो गया ॥ ३१ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ता'भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में सती-उपाख्यान में सतीदेहत्याग-उपद्रव वर्णन नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥

*

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर नारद ! उस समय दक्ष एवं देवतागणों के सुनते हुए आकाशवाणी हुई ॥ १ ॥

आकाशवाणी बोली—अरे दम्भाचारपरायण दुरात्मा दक्ष ! अरे महामूर्ख ! यह तुमने कैसा अनर्थ कर्म किया ? ॥ २ ॥ हे मूढ़ ! तुमने अपने कल्याणकारक तथा सबको आनन्द देने वाले महाशैव दधीच का वचन नहीं माना ॥ ३ ॥ वह ब्राह्मण तुम्हें जब घोर शाप देकर इस यज्ञशाला से चला गया तो भी, तुम्हारे-जैसे मूर्ख के चित्त में ज्ञान नहीं हुआ ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर भी तुमने अपनी कन्या का आदर नहीं किया । मङ्गलस्वरूपा जो सती तुम्हारा कल्याण करने के निमित्त स्वयं घर पर आयी थी ॥ ५ ॥ अरे अज्ञानी ! तुमने सती एवं शिव का अर्चन तक नहीं किया और 'मैं ब्रह्मपुत्र हूँ' इस गर्व में फूला रहा ॥ ६ ॥ त्रिलोकमाता कल्याणी, शङ्करार्द्धभागिनी सती की यदि अर्चना नहीं की जाती तो वे उस पाप का फल प्रदान करती हैं, किन्तु अर्चना करने पर तो वे सभी सौभाग्यों को देती हैं । वह महेश्वरी प्रसन्न होने पर सबका मनोरथ पूर्ण करती हैं, एवं सभी बाधाओं को शान्त करती हैं ॥ ७-९ ॥ वह परमेश्वरी नित्य पूजित होने से भोग, मोक्ष, कीर्ति तथा सभी प्रकार की सम्पत्ति प्रदान करती हैं ॥ १० ॥

सा सत्येव जगद्धात्री जगद्रक्षणकारिणी । अनादिशक्तिः कल्पान्ते जगत्संहारकारिणी ॥११॥
सा सत्येव जगन्माता विष्णुमाता विलासिनी । ब्रह्मेन्द्र-चन्द्र-वह्न्यर्क-देवादिजननी स्मृता ॥१२॥
सा सत्येव तपोधर्मदानादिफलदायिनी । शम्भुशक्तिर्महादेवी दुष्टहन्त्री परात्परा ॥१३॥
ईदृग्विधा सती देवी यस्य पत्नी सदा प्रिया । तस्मै भागो न दत्तस्ते मूढेन कुविचारिणा ॥१४॥
शम्भुर्हि परमेशानः सर्वस्वामी परात्परः । विष्णुब्रह्मादिसंसेव्यः सर्वकल्याणकारकः ॥१५॥
तप्यते हि तपः सिद्धैरेतद्दर्शनकांक्षिभिः । युज्यते योगिभिर्योगैरेतद्दर्शनकांक्षिभिः ॥१६॥
अनन्तधनधान्यानां यागादीनां तथैव च । दर्शनं शङ्करस्यैव महत्फलमुदाहृतम् ॥१७॥
शिव एव जगद्धाता सर्वविद्यापतिः प्रभुः । आदिविद्याधरस्वामी सर्वमङ्गलमङ्गलः ॥१८॥
तच्छक्तेर्न कृतो यस्मात् सत्कारोऽध त्वया खल ! । अत एवाऽध्वरस्यास्य विनाशो हि भविष्यति ॥१९॥
अमङ्गलं भवत्येव पूजार्हाणामपूजया । पूज्यमाना च नासौ हि यतः पूज्यतमा शिवा ॥२०॥
सहस्रेणापि शिरसां शेषो यत्पादजं रजः । वहत्यहरहः प्रीत्या तस्य शक्तिः शिवा सती ॥२१॥
यत्पादपद्ममनिशं ध्यात्वा सम्पूज्य सादरम् । विष्णुर्विष्णुत्वमापन्नस्तस्य शम्भोः प्रिया सती ॥२२॥
यत्पादपद्ममनिशं ध्यात्वा सम्पूज्य सादरम् । ब्रह्मा ब्रह्मत्वमापन्नस्तस्य शम्भोः प्रिया सती ॥२३॥
यत्पादपद्ममनिशं ध्यात्वा सम्पूज्य सादरम् । इन्द्रादयो लोकपालाः प्रापुः स्वं स्वं परं पदम् ॥२४॥
जगत्पिता शिवः शक्तिर्जगन्माता च सा सती । सत्कृतौ न त्वया मूढ ! कथं श्रेयो भविष्यति ॥२५॥
दौर्भाग्यं त्वयि सङ्क्रान्तं सङ्क्रान्तास्त्वयि चापदः । यौ चानाराधितौ भक्त्या भवानीशङ्करौ च तौ ॥२६॥

वह सती ही इस जगत् को धारण करती हैं, रक्षा करती हैं, वही अनादिशक्ति कल्पान्त होने पर इस जगत् का संहार भी करती हैं ॥११॥ वह सती ही जगन्माता, विष्णुमाता, विलासिनी तथा ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, अग्नि एवं सूर्यादि देवताओं को जन्म देने के कारण उनकी भी जननी हैं ॥ १२ ॥ वह सती ही तपस्या, दान एवं अन्य समस्त धर्म के फलों को देने वाली हैं । शम्भुशक्ति, महादेवी, दुष्टहन्त्री एवं परात्परा हैं ॥ १३ ॥

इस प्रकार अनन्तकल्याण गुणगणसम्पन्न सती देवी जिसकी पत्नी हैं, उन भगवान् शिव को तेरे जैसे कुविचारी मूर्ख ने यज्ञ में भाग नहीं दिया ॥ १४ ॥ शिव ही परमेशान सबके स्वामी परात्पर एवं ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों से सेवित तथा सबके कल्याणकर्त्ता हैं ॥ १५ ॥ इनके दर्शन की इच्छा से ही सिद्ध लोग तप करते हैं तथा योगिजन योग करते हैं ॥ १६ ॥ अनन्त धन-धान्यों का तथा समस्त यज्ञों का फल शास्त्रों ने शङ्कर का दर्शन कहा है ॥ १७ ॥ शिव ही इस जगत् के धारण करने वाले तथा समस्त विद्याओं के अधिपति हैं, वही आदि विद्या के श्रेष्ठ स्वामी तथा सम्पूर्ण मङ्गलों के मङ्गल हैं ॥ १८ ॥ अरे खल ! इस प्रकार के सदाशिव की शक्ति का तुमने सत्कार नहीं किया, इस कारण इस यज्ञ का नाश अवश्यम्भावी है ॥ १९ ॥ जहाँ पूजा के योग्यजनों की पूजा नहीं होती वहाँ निश्चय ही अमङ्गल होता है, क्या पूज्यों में सर्वश्रेष्ठ वह शिवा तुम्हारे पूजा के योग्य नहीं थीं ॥ २० ॥ जिनके चरणों के रज को स्वयं शेष जी अपने सहस्र शिरों से प्रतिदिन प्रेमपूर्वक धारण करते हैं, उसी शिव की प्रिया सती हैं ॥ २१ ॥ जिनके चरण-कमलों की अहर्निश आदरपूर्वक पूजा कर विष्णु, विष्णु बन गये, उन्हीं शिव की प्रिया सती हैं ॥ २२ ॥ जिनके चरण-कमलों का ध्यान एवं पूजन कर ब्रह्मा ब्रह्मत्व को प्राप्त हो गये, उन शिव की प्रिया सती हैं ॥ २३ ॥ जिनके चरण-कमलों का ध्यान एवं पूजन कर इन्द्रादि देवता तथा लोकपालों ने अपना-अपना पद प्राप्त किया है, उस शिव की प्रिया सती हैं ॥ २४ ॥ शिव एवं सती इस जगत् के माता-पिता हैं । हे मूढ़ ! तुमने उनका सत्कार नहीं किया, अतः किस प्रकार तुम्हारा कल्याण होगा ॥ २५ ॥ तुमने जब से भक्तिपूर्वक भवानी एवं शङ्कर की आराधना छोड़ दी तभी से समस्त दुर्भाग्य तथा समस्त आपत्तियों ने तुम्हें घेर लिया है ॥ २६ ॥

अनभ्यर्च्य शिवं शम्भुं कल्याणं प्राप्नुयामिति । किमस्ति गर्वो दुर्वारः स गर्वोऽद्य विनश्यति ॥२७॥
सर्वेशविमुखो भूत्वा देवेष्वेतेषु कस्तव । करिष्यति सहायं तं न ते पश्यामि सर्वथा ॥२८॥
यदि देवाः करिष्यन्ति साहाय्यमधुना तव । तदा नाशं समाप्स्यन्ति शलभा इव वह्निना ॥२९॥
ज्वलत्वद्य मुखं ते वै यज्ञध्वंसो भवत्वति । सहायास्तव यावन्तस्ते ज्वलन्त्वद्य सत्वरम् ॥३०॥
अमराणां च सर्वेषां शपथोऽमङ्गलाय ते । करिष्यन्त्यद्य साहाय्यं यदेतस्य दुरात्मनः ॥३१॥
निर्गच्छन्त्वमराः स्वोकमेतदध्वरमण्डपात् । अन्यथा भवतां नाशो भविष्यत्यद्य सर्वथा ॥३२॥
निर्गच्छन्त्वपरे सर्वे मुनिनागादयो मखात् । अन्यथा भवतां नाशो भविष्यत्यद्य सर्वथा ॥३३॥
निर्गच्छ त्वं हरे शीघ्रमेतध्वरमण्डपात् । अन्यथा भवतो नाशो भविष्यत्यद्य सर्वथा ॥३४॥
निर्गच्छ त्वं विधे ! शीघ्रमेतदध्वरमण्डपात् । अन्यथा भवतो नाशो भविष्यत्यद्य सर्वथा ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वाऽध्वरशालायामखिलायां सुसंस्थितान् । व्यरमत् सा नभोवाणी सर्वकल्याणकारिणी ॥३६॥
तच्छ्रुत्वा व्योमवचनं सर्वे हर्यादयः सुराः । अकार्षुर्विस्मयं तात मुनयश्च तथाऽपरे ॥३७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे
सत्युपाख्याने नभोवाणीवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

शङ्कर एवं शिवा के अर्चन बिना मैं अपना समस्त कल्याण कर लूँगा ? ऐसा सोचकर तुम्हें अनिवार्य गर्व हो गया है, अवश्य ही आज तुम्हारा इस प्रकार का गर्व विनष्ट हो जायेगा ॥२७॥ सर्वेश शंकर से इस प्रकार विमुख रहने वाले, तुम्हारी सहायता देवताओं में कोई करेगा, ऐसा तो मैं नहीं देखता ॥२८॥ यदि इस समय किसी भी देवता ने तुम्हारी सहायता की तो वह अग्नि में शलभ (फतिंगे) के समान नष्ट हो जायेगा ॥२९॥ अवश्य ही सती के इस अपमान से तेरा मुख जल जावे, यज्ञ नष्ट हो जावे तथा ये सभी तुम्हारे सहायक देवता भी शीघ्र जलकर नष्ट हो जावें ॥३०॥ तुम्हारे अमङ्गल के लिए इन देवताओं को शपथ है कि यदि वे इस दुरात्मा दक्ष की सहायता करें ॥३१॥ देवता लोग शीघ्र ही इस यज्ञमण्डप से बाहर हो जावें अन्यथा इनका अवश्य विनाश हो जायेगा ॥३२॥ और भी इस यज्ञ में आये हुए मुनि एवं नागगण शीघ्र ही यज्ञ से बाहर हो जावें, अन्यथा इनका सर्वथा विनाश हो जायेगा ॥ ३३ ॥ हे विष्णो ! तुम भी इस यज्ञमण्डप से बाहर चले जाओ, अन्यथा तुम्हारा भी विनाश हो जायेगा ॥ ३४ ॥ हे विधाता, तुम शीघ्र इस स्थान से बाहर हो जाओ, अन्यथा तुम्हारा सर्वथा नाश हो जायेगा ॥ ३५ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार सबका कल्याण करने वाली वह आकाशवाणी यज्ञमण्डप में आये हुए सभी लोगों को सुनाते हुए मौन हो गयी ॥ ३६ ॥ आकाशवाणी को सुनते ही विष्ण्वादि देवगण तथा समस्त मुनिगण आश्चर्य से स्तम्भित हो गये ॥ ३७ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती'भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-
सतीखण्ड में सती-उपाख्यान में नभोवाणीवर्णन नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३१ ॥

*

द्वात्रिंशोऽध्यायः

(सती के मृत्यु का समाचार सुनकर शिव की जटा से वीरभद्र, महाकाली और ज्वरादि की उत्पत्ति तथा उन्हें दक्ष पक्ष के लोगों को मारने की आज्ञा प्रदान)

नारद उवाच

श्रुत्वा व्योमगिरं दक्षः किमकार्षीत्तदाऽबुधः । अन्ये च कृतवन्तः किं ततश्च किमभूद् वद ॥ १ ॥
पराजिताः शिवगणा भृगुमन्त्रबलेन वै । किमकार्षुः कुत्र गतास्तत्त्वं वद महामते ! ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा व्योमगिरं सर्वे विस्मिताश्च सुरादयः । नाऽवोचन् किञ्चिदपि ते तिष्ठन्तस्तु विमोहिताः॥ ३ ॥
पलायमाना ये वीरा भृगुमन्त्रबलेन ते । अवशिष्टाः शिवगणाः शिवं शरणमाययुः ॥ ४ ॥
सर्वे निवेदयामासु रुद्रायामिततेजसे । चरित्रं च तथाभूतं सुप्रणम्यादराच्च ते ॥ ५ ॥

गणा ऊचुः

देवदेव महादेव ! पाहि नः शरणागतान् । संशृण्वादरतो नाथ ! सतीवार्तां च विस्तरात् ॥ ६ ॥
गर्वितेन महेशान ! दक्षेण सुदुरात्मना । अवमानः कृतः सत्याऽनादरो निर्जरैस्तथा ॥ ७ ॥
तुभ्यं भागमदान्नः स देवेभ्यश्च प्रदत्तवान् । दुर्वचांस्यवदत् प्रोच्चैर्दुष्टो दक्षः सुगर्वितः ॥ ८ ॥
ततो दृष्ट्वा न ते भागं यज्ञेऽकुप्यत् सती प्रभो ! । विनिन्द्य बहुशस्तातमधाक्षीत् स्वतनुं तदा ॥ ९ ॥
गणास्त्वयुतसङ्ख्याका मृतास्तत्र विलज्जया । स्वाङ्गान्याच्छिद्य शस्त्रैश्च क्रुध्याम ह्यपरे वयम् ॥१०॥
तद्यज्ञं ध्वंसितुं वेगात् सन्नद्धास्तु भयावहाः । तिरस्कृता हि भृगुणा स्वप्रभावाद् विरोधिना ॥११॥
ते वयं शरणं प्राप्तास्तव विश्वम्भर प्रभो ! । निर्भयान् कुरु नस्तस्माद् दयमान भवाद्भयात्॥१२॥
अपमानं विशेषेण तस्मिन् यज्ञे महाप्रभो ! । दक्षाद्यास्तेऽखिला दुष्टा अकुर्वन् गर्विता अति ॥१३॥

नारद जी बोले—हे ब्रह्मन् ! आकाशवाणी को सुनकर मन्दमति दक्ष ने तथा अन्यों ने क्या किया । उसके बाद में क्या हुआ ॥ १ ॥ हे महामते ब्रह्मन् ! भृगु के मन्त्रबल से पराजित हुए शिवजी के गणों ने क्या किया ? तथा वे कहाँ चले गये । यह सब मुझे सुनाइए ॥ २ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! आकाशवाणी सुनकर सम्पूर्ण देवता और मुनीश्वर आश्चर्य में पड़ गये । शिव की माया से मोहित हुए वे चित्रलिखित से जहाँ-तहाँ खड़े हो गये । और कुछ भी न बोल सके ॥ ३ ॥ उधर भृगु के मन्त्रबल से पराजित शिवगण भागते हुए शिव की शरण में गये ॥ ४ ॥ उन्होंने महातेजस्वी शिव को प्रणाम किया । और आदरपूर्वक जो हुआ था वह सब चरित्र सुनाने लगे ॥ ५ ॥

गणों ने कहा—हे देवदेव ! हे महादेव ! शरण में आये हुए हमलोगों की रक्षा कीजिए । और हे नाथ ! विस्तार से आदरपूर्वक सतीजी का चरित्र सुनिए ॥ ६ ॥ हे महेशान ! उस दुरात्मा दक्ष ने तथा देवताओं ने महागर्व से सती का अपमान तथा अनादर किया ॥ ७ ॥ उसने अपने यज्ञ में समस्त देवताओं को भाग दिया, केवल आपको भाग नहीं दिया । इतना ही नहीं, उसने गर्व में भरकर आपको बहुत दुर्वचन भी कहा ॥ ८ ॥ तदनन्तर यज्ञ में आपका भाग न देखकर सतीजी को महान् क्रोध हुआ । और उन्होंने अपने पिता की बहुत निन्दा कर अपने शरीर को भस्म कर दिया ॥ ९ ॥ तब हजारों गण लज्जा से अपने ही शस्त्रों से अपने अङ्गों को काटकर वहीं मर गये । और बचे हुए हमलोगों को महान् क्रोध उत्पन्न हो गया ॥१०॥ हमलोगों ने भयानक रूप धारण कर उस यज्ञ को नष्ट करना प्रारम्भ किया । इतने में आपके विरोधी भृगु ने अपने मन्त्रबल के प्रभाव से हमें पराजित किया ॥ ११ ॥ हे विश्वम्भर ! हे प्रभो ! भयभीत हुए हमलोग आप की शरण में आये हैं । हमारे ऊपर दया कर आप इस भय से हमें निर्भय करें ॥ १२ ॥ हे महाप्रभो ! उस यज्ञ में दक्षादि दुष्टों ने गर्व में भरकर हमलोगों का एवं विशेष कर

इत्युक्तं निखिलं वृत्तं स्वेषां सत्याश्च नारद ! । तेषां च मूढबुद्धीनां यथेच्छसि तथा कुरु ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य स्वगणानां वचः प्रभुः । सस्मार नारदं सर्वं ज्ञातुं तच्चरितं लघु ॥१५॥

आगतस्त्वं द्रुतं तत्र देवर्षे ! दिव्यदर्शनः । प्रणम्य शङ्करं भक्त्या साञ्जलिस्तत्र तस्थिवान् ॥१६॥

त्वां प्रशस्याथ स स्वामी सत्या वार्त्तां च पृष्टवान् । दक्षयज्ञगताया वै परं च चरितं तथा ॥१७॥

पृष्टेन शम्भुना तात ! त्वयाऽऽश्वेव शिवात्मना । तत्सर्वं कथितं वृत्तं जातं दक्षाध्वरे हि यत् ॥१८॥

तदाकर्ण्येश्वरो वाक्यं मुने ! तत्त्वन्मुखोदितम् । चुकोपातिद्रुतं रुद्रो महारौद्रपराक्रमः ॥१९॥

उत्पाट्यैकां जटां रुद्रो लोकसंहारकारकः । आस्फालयामास रुषा पर्वतस्य तदोपरि ॥२०॥

तोदनाच्च द्विधा भूता सा जटा च मुने प्रभोः । सम्बभूव महारावो महाप्रलयभीषणः ॥२१॥

तज्जटायाः समुद्भूतो वीरभद्रो महाबलः । पूर्वभागेन देवर्षे ! महाभीमो गणाग्रणीः ॥२२॥

स भूमिं विश्वतो वृत्य चातिष्ठद्दशाङ्गुलम् । प्रलयानलसङ्काशः प्रोन्नतो दोःसहस्रवान् ॥२३॥

कोपनिःश्वासतस्तत्र महारुद्रस्य चेशितुः । जातं ज्वराणां शतकं सन्निपातास्त्रयोदश ॥२४॥

महाकाली समुत्पन्ना तज्जटापरभागतः । महाभयङ्करा तात ! भूतकोटिभिरावृता ॥२५॥

सर्वे मूर्तिधराः क्रूराः ज्वरा लोकभयङ्कराः । स्वतेजसा प्रज्वलन्तो दहन्त इव सर्वतः ॥२६॥

अथ वीरो वीरभद्रः प्रणम्य परमेश्वरम् । कृताञ्जलिपुटः प्राह वाक्यं वाक्यविशारदः ॥२७॥

आपका अपमान किया है ॥ १३ ॥ यह हमने अपना, सती जी का तथा उन मूर्खों का सारा वृत्तान्त आपको सुना दिया। अब आपकी जैसी इच्छा हो वैसा कीजिए ॥ १४ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार अपने गणों के मुख से सारा वृत्तान्त सुनकर महाप्रभु शङ्कर ने और चरित्र जानने के लिए शीघ्रता से नारद का स्मरण किया ॥ १५ ॥ हे देवर्षे ! उस समय तुम भी मनोहर रूप धारण कर वहाँ शीघ्रता से पहुँच गये। और भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर शिव को प्रणाम कर वहीं बैठ गये ॥ १६ ॥ तदनन्तर शङ्करजी ने तुम्हारी बहुत प्रशंसा की और वे दक्षयज्ञ में गयी हुई सती का समाचार तथा उनका सारा चरित्र तुमसे पूछने लगे ॥ १७ ॥ हे नारद ! शिवजी के इस प्रकार पूछने पर शिवस्वरूप तुमने भी शीघ्र ही दक्ष के यज्ञ में जो हुआ था, वह सारा वृत्तान्त सुना दिया ॥ १८ ॥ हे महामुने ! तब तुम्हारे कहे हुए वचनों को सुनकर महारौद्र पराक्रमी भगवान् शङ्कर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये ॥ १९ ॥ लोकसंहारकारी रुद्र ने उसी समय एक जटा उखाड़ ली और महाक्रोध से उसे पर्वत के ऊपर पटक दिया ॥ २० ॥ हे नारद ! शङ्कर के द्वारा पर्वत पर जटा के पटकते ही उसके दो खण्ड हो गये। और उससे महाप्रलय करने वाला एक भयानक शब्द उत्पन्न हुआ ॥ २१ ॥ हे देवर्षे ! उस जटा के पूर्व भाग से महाभयङ्कर महाबलशाली सभी गणों का मुखिया वीरभद्र उत्पन्न हुआ ॥ २२ ॥ वह चारों ओर से पृथ्वी में व्याप्त हो कर दश अंगुल पर्यन्त पृथ्वी से ऊपर आकाश में स्थित हो गया। प्रलयाग्नि के समान तेजस्वी और अत्यन्त उन्नत उस वीरभद्र की हजार भुजाएँ थीं ॥ २३ ॥ उन महारुद्र महेश्वर भगवान् के क्रोध के निःश्वास से सौ प्रकार के ज्वर तथा तेरह सन्निपात उत्पन्न हुए ॥ २४ ॥ हे नारद जी ! उस जटा के दूसरे भाग से महाभयङ्कर एवं करोड़ों भूतों से घिरी हुई महाकाली उत्पन्न हुई ॥ २५ ॥ संसार को सन्त्रस्त करने वाले वे सभी ज्वर महाक्रूर मूर्त्ति धारण किये हुए थे। वे अपने तेज से ऐसे प्रज्वलित हो रहे थे, मानो सारे संसार को जला देंगे ॥ २६ ॥ तब वाक्यविशारद महावीर वीरभद्र शिवजी को प्रणाम कर हाथ जोड़कर बोले ॥ २७ ॥

वीरभद्र उवाच

महारुद्र महारौद्र सोमसूर्याग्निलोचन ! । किं कर्तव्यं मया कार्यं शीघ्रमाज्ञापय प्रभो ! ॥२८॥
शोषणीयाः किमीशान क्षणार्द्धेनैव सिन्धवः । पेषणीयाः किमीशान क्षणार्द्धेनैव पर्वताः ॥२९॥
क्षणेन भस्मसात् कुर्यां ब्रह्माण्डमुत किं हर ! । क्षणेन भस्मसात् कुर्यां सुरान् वा किं मुनीश्वरान् ॥३०॥
व्याश्वासः सर्वलोकानां किमुकार्यो हि शङ्कर ! । कर्तव्यं किमुतेशान सर्वप्राणिविहिंसनम् ॥३१॥
ममाऽशक्यं न कुत्रापि त्वत्प्रसादान् महेश्वर ! । पराक्रमेण मत्तुल्यो न भूतो न भविष्यति ॥३२॥
यत्र यत्कार्यमुद्दिश्य प्रेषयिष्यसि मां प्रभो ! । तत्कार्यं साधयाम्येव सत्वरं त्वत्प्रसादतः ॥३३॥
क्षुद्रास्तरन्ति लोकाब्धिं शासनाच्छङ्करस्य ते । हरास्तोऽहं न किं ततुं महापत्सागरं क्षमः ॥३४॥
त्वत्प्रेषिततृणेनापि महत्कार्यमयत्नतः । क्षणेन शक्यते कर्तुं शङ्करात्र न संशयः ॥३५॥
लीलामात्रेण ते शम्भो कार्यं यद्यपि सिद्धयति । तथाप्यहं प्रेषणीयो तवैवानुग्रहो ह्ययम् ॥३६॥
शक्तिरेतादृशी शम्भो ममापि त्वदनुग्रहात् । विना शक्तिर्न कस्यापि शङ्कर! त्वदनुग्रहात् ॥३७॥
त्वदाज्ञया विना कोऽपि तृणादीनपि वस्तुतः । नैव चालयितुं शक्तः सत्यमेतन्न संशयः ॥३८॥
शम्भो नियम्याः सर्वेऽपि देवाद्यास्ते महेश्वर ! । तथैवाऽहं नियम्यस्ते नियन्तुः सर्वदेहिनाम् ॥३९॥
प्रणतोऽस्मि महादेव ! भूयोऽपि प्रणतोऽस्म्यहम् । प्रेषय स्वेष्टसिद्धयर्थं मामद्य हर ! सत्वरम् ॥४०॥
स्पन्दोऽपि जायते शम्भो सव्याङ्गानां मुहुर्मुहुः । भविष्यत्यद्य विजयो मामतः प्रेषय प्रभो ॥४१॥
हर्षोत्साहविशेषोऽपि जायते मम कश्चन । शम्भो त्वत्पादकमले संसक्तं च मनो मम ॥४२॥
भविष्यति प्रतिपदं शुभसन्तानसन्ततिः ॥४३॥

वीरभद्र बोले—हे महारुद्र ! हे महारौद्र ! हे सूर्य, सोम तथा अग्नि नेत्रवाले हे प्रभो ! मैं कौन सा कार्य करूँ ? मुझे शीघ्र आज्ञा दीजिए ॥ २८ ॥ क्या एक क्षण में ही सारे समुद्रों को सूखा कर दूँ अथवा क्षणभर में समस्त पर्वतों को चूर-चूर कर दूँ ॥ २९ ॥ अथवा हे शिव ! क्या क्षणमात्र में सारे ब्रह्माण्ड को अथवा देवता एवं मुनीश्वरों को भस्म कर डालूँ ॥ ३० ॥ अथवा हे शङ्कर ! क्या सारे लोकों को उलट कर तहस-नहस कर डालूँ । या समस्त प्राणियों को इसी क्षण मार डालूँ ॥ ३१ ॥ हे महेश्वर ! आप की कृपा से मुझे कोई भी कार्य अशक्य नहीं है । पराक्रम में मेरे समान न तो कोई हुआ है और न तो आगे होगा ॥ ३२ ॥ हे प्रभो ! मुझे आप जहाँ-कहीं जिस कार्य के लिए भेजेगें, मैं आप की कृपा से उस कार्य का सम्पादन शीघ्र ही करूँगा ॥ ३३ ॥ हे शङ्कर ! आप की कृपा से क्षुद्र जन भी संसार-सागर से पार हो जाते हैं, फिर हे प्रभो ! क्या मैं आप की कृपा से महा आपत्ति के समुद्र तरने में समर्थ नहीं हो सकता ? ॥३४॥ आप की कृपा से तृण भी क्षणमात्र में बिना प्रयत्न के बहुत बड़ा कार्य कर सकता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३५ ॥ हे शम्भो ! यद्यपि सारा कार्य आप की लीलामात्र से सिद्ध हो सकता है, फिर भी आप की यह बहुत बड़ी कृपा होगी, जो आप मुझे किसी कार्य के लिए नियुक्त करें ॥ ३६ ॥

हे शम्भो ! आपकी कृपा से मुझ में जितनी शक्ति है, अन्य में आपकी कृपा न होने से उतनी शक्ति सम्भव नहीं है ॥ ३७ ॥ यह बात मैं सत्य-सत्य कहता हूँ कि आप की कृपा के बिना कोई एक तृण को भी हिला नहीं सकता ॥ ३८ ॥ हे महेश्वर ! जिस प्रकार समस्त देवगण आप के नियन्त्रण में हैं, उसी प्रकार मैं भी आप के नियन्त्रण में हूँ । क्योंकि आप सारे प्राणियों के नियामक हैं ॥ ३९ ॥ हे महादेव ! आपको प्रणाम है, बारम्बार प्रणाम है । हे हर ! आज मुझे अपनी इष्ट-सिद्धि के लिए भेजिए ॥ ४० ॥ हे शम्भो ! मेरा दाहिना अङ्ग इस समय फड़क रहा है, अतः आप मुझे जहाँ भी भेजेंगे वहाँ मेरी निश्चित रूप से विजय होगी ॥ ४१ ॥ हे शङ्कर ! इस समय मुझे विशेष रूप से अनिर्वचनीय हर्ष तथा उत्साह उत्पन्न हो रहा है, और मेरा मन अनायास ही आपके चरण-कमलों में लग रहा है ॥ ४२ ॥ अवश्य ही

तस्यैव विजयो नित्यं तस्यैव शुभमन्वहम् । यस्य शम्भौ दृढा भक्तिस्त्वयि शोभनसंश्रये ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तं तद्वचः श्रुत्वा सन्तुष्टो मङ्गलापतिः । वीरभद्र ! जयेति त्वं प्रोक्ताशीः प्राह तं पुनः ॥४५॥

महेश्वर उवाच

शृणु मद्वचनं तात वीरभद्र ! सुचेतसा । करणीयं प्रयत्नेन तद् द्रुतं मे प्रतोपकम् ॥४६॥

यागं कर्तुं समुद्युक्तो दक्षो विधिसुतः खलः । मद्विरोधी विशेषेण महागर्वोऽबुधोऽधुना ॥४७॥

तन्मखं भस्मसान् कृत्वा सयागपरिवारकम् । पुनरायाहि मत्स्थानं सत्वरं गणसत्तम ! ॥४८॥

सुरा भवन्तु गन्धर्वा यक्षा वाऽन्ये च केचन । तानप्यद्यैव सहसा भस्मसात् कुरु सत्वरम् ॥४९॥

तत्रास्तु विष्णुर्ब्रह्मा वा शचीशो वा यमोऽपि वा । अपि चाद्यैव तान् सर्वान् पातयस्व प्रयत्नतः ॥५०॥

सुरा भवन्तु गन्धर्वा यक्षा वाऽन्ये च केचन । तानप्यद्यैव सहसा भस्मसात् कुरु सत्वरम् ॥५१॥

दधीचिकृतमुल्लङ्घ्य शपथं मयि तत्र ये । तिष्ठन्ति ते प्रयत्नेन ज्वालनीयास्त्वया ध्रुवम् ॥५२॥

प्रमथाश्चागमिष्यन्ति यदि विष्ण्वादयो भ्रमात् । नानाकर्षणमन्त्रेण ज्वालयाऽऽनीय सत्वरम् ॥५३॥

ये तत्रोल्लङ्घ्य शपथं मदीयं गर्विताः स्थिताः । ते हि मद्द्रोहिणोऽतस्तान् ज्वालयानलमालया॥५४॥

सपत्नीकान् ससारांश्च दक्षयागस्थलस्थितान् । प्रज्वाल्य भस्मसात् कृत्वा पुनरायाहि सत्वरम् ॥५५॥

तत्र त्वयि गते देवा विश्वाद्या अपि सादरम् ! स्तोष्यन्ति त्वां तदाप्याशु ज्वालया ज्वालयैव तान् ॥५६॥

देवानपि कृतद्रोहान् ज्वालामालासमाकुलैः । ज्वालय ज्वलनैः शीघ्रं माध्यायाध्यायपालकम् ॥५७॥

पग-पग पर मुझे अपनी कल्याणपरम्परा दिखाई पड़ रही है ॥ ४३ ॥ समस्त कल्याणस्वरूप आप सदा शिव में जिसकी दृढ़ भक्ति है, उसी की नित्य विजय तथा उसी का नित्य कल्याण होता है ॥ ४४ ॥

ब्रह्माजी बोले—वीरभद्र की बात सुनकर मङ्गलापति भगवान् सदाशिव अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये । और हे वीरभद्र ! तुम्हारा कल्याण हो, इस प्रकार का आशीर्वाद देते हुए बोले—॥ ४५ ॥

शिवजी बोले—हे तात वीरभद्र ! सावधानी से मेरी बात सुनो ! और उसे शीघ्र ही प्रयत्न पूर्वक करो, जिससे मुझे सन्तोष प्राप्त हो ॥ ४६ ॥ इस समय ब्रह्मा का पुत्र दुष्ट दक्ष यज्ञ कर रहा है, वह मूर्ख एवं अभिमानी है और मुझसे विशेष रूप से विरोध रखता है ॥ ४७ ॥ हे गण ! तुम यज्ञ के सहित दक्ष के सारे परिवार को नष्ट कर शीघ्र ही मेरे पास चले आओ ॥ ४८ ॥ देवता, गन्धर्व अथवा अन्य कोई भी वहाँ क्यों न हो, उसे जाकर शीघ्रता से भस्म कर दो ॥ ४९ ॥ यदि वहाँ ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, यम आदि में से कोई भी क्यों न हो, तुम उन्हें भी अवश्य भस्म कर देना ॥५०॥ जो लोग मेरे विषय में दधीच के द्वारा दिये गये शपथ का उल्लङ्घन कर वहाँ ठहरे हुए हैं, उन्हें प्रयत्नपूर्वक निश्चित रूप से अवश्य भस्म कर देना ॥५१॥ यदि भ्रमवश विष्णु आदि देवगण प्रमथों के साथ लड़ने के लिए आवें तो शीघ्र ही अनेकों आकर्षण मन्त्रों से खींचकर भस्म कर देना ॥ ५२ ॥ जो मेरे विषय में दिये गये शपथ का उल्लङ्घन कर गर्वीले हो मेरी आज्ञा न मानकर वहाँ उपस्थित हों, उन्हें भी मेरा शत्रु समझकर, उन्हें अग्निसमूह से शीघ्र भस्म कर देना ॥ ५३ ॥ और जो भी दक्ष के उस यज्ञ में स्त्री एवं धनादि के साथ उपस्थित हों, उन्हें भी भस्म कर शीघ्रता से मेरे पास चले आओ ॥ ५४ ॥ तुम्हें वहाँ पहुँचते ही विश्वेदेवा आदि देवगण तुम्हारी स्तुति करेंगे । परन्तु तुम उन्हें भी शीघ्र भस्म कर मेरे पास चले आना ॥ ५५ ॥ इस भाँति जो-जो देवता मुझसे द्रोह कर वहाँ उपस्थित हो रहे हैं, उन्हें शीघ्र ही अग्नि की लपटों में जला कर मेरे पास चले आना । मन्त्रपालक समझकर उनकी उपेक्षा कदापि मत करना ॥ ५६-५७ ॥ हे वीरपत्नी, बन्धुओं के सहित

दक्षादीन् सकलांस्तत्र सपत्नीकान् सबान्धवान् । प्रज्वाल्य वीर दक्षं नु सलीलं सलिलं पिब ॥५८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तो रोषताम्राक्षो वेदमर्यादपालकः । विरराम महावीरं कालारिः सकलेश्वरः ॥५९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे
वीरभद्रोत्पत्ति-शिवोपदेशवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

(शिवाज्ञा से दक्षयज्ञ नष्ट करने के निमित्त काली और वीरभद्र की सेना का वर्णन)

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तं श्रीमहेशस्य श्रुत्वा वचनमादरात् । वीरभद्रोऽतिसन्तुष्टः प्रणनाम महेश्वरम् ॥ १ ॥
शासनं शिरसा धृत्वा देवदेवस्य शूलिनः । प्रचचाल ततः शीघ्रं वीरभद्रो मखं प्रति ॥ २ ॥
शिवोऽथ प्रेषयामास शोभार्थं कोटिशो गणान् । तेन सार्द्धं महावीरान् प्रलयानलसन्निभान् ॥ ३ ॥
अथ ते वीरभद्रस्य पुरतः प्रबला गणाः । पश्चादपि ययुर्वीराः कुतूहलकरा गणाः ॥ ४ ॥
वीरभद्रसमेता ये गणाः शतसहस्रशः । पार्षदाः कालकालस्य सर्वे रुद्रस्वरूपिणः ॥ ५ ॥

गणैः समेतः किल तैर्महात्मा स वीरभद्रो हरवेषभूषणः ।
सहस्रबाहुर्भुजगाधिपाढ्यो ययौ रथस्थः प्रबलोऽतिभीकरः ॥ ६ ॥

नल्वानां च सहस्रे द्वे प्रमाणं स्यन्दनस्य हि । अयुतेनैव सिंहानां वाहनानां प्रयत्नतः ॥ ७ ॥
तथैव प्रबलाः सिंहा बहवः पार्श्वरक्षकाः । शार्दूला मकरा मत्स्या गजास्तत्र सहस्रशः ॥ ८ ॥
वीरभद्रे प्रचलिते दक्षनाशाय सत्वरम् । कल्पवृक्षसमुत्सृष्टा पुष्पवृष्टिरभूत्तदा ॥ ९ ॥

वहाँ उपस्थित हुए उन सभी दक्षादि देवगणों को लीलापूर्वक जला कर ही जल पीना ॥ ५८ ॥

ब्रह्माजी बोले—वेदमर्यादा पालक, काल के भी काल, सर्वेश्वर शिवजी क्रोध से आँखें लाल कर महावीर वीरभद्र से इतना कह कर मौन धारण कर लिया ॥ ५९ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में
वीरभद्रोत्पत्ति एवं शिवोपदेश वर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार भगवान् शङ्कर के आदरपूर्वक वचन को सुनकर वीरभद्र ने सन्तुष्ट हो भगवान् शङ्कर को प्रणाम किया ॥ १ ॥ तदनन्तर उन्होंने देवाधिदेव त्रिशूली भगवान् शिव के शासन को शिर पर धारण कर दक्ष के यज्ञस्थल की ओर प्रस्थान किया ॥ २ ॥ शिवजी ने शोभा के लिए प्रलयानल को अग्नि के समान महातेजस्वी एवं महावीर और करोड़ों गणों को वीरभद्र के साथ भेज दिया ॥ ३ ॥ वे महावीरगण वीरभद्र के आगे तथा पीछे परम कुतूहल करते हुए चलने लगे ॥ ४ ॥ काल के भी काल भगवान् शङ्कर के वीरभद्र सहित हजारों पार्षद, जो युद्ध में जा रहे थे सभी रुद्रस्वरूप थे ॥ ५ ॥ गणों के सहित वह महात्मा वीरभद्र हजारों भुजाओं से युक्त हो सर्पराज के आभूषणों से वेष्टित हो शिवजी के समान वेश धारण कर शत्रुओं को भय देने वाले रथ पर सवार हो दक्ष के यज्ञ की ओर चला ॥ ६ ॥ उसके रथ का प्रमाण दो सहस्र नल्व (चार सौ हाथ) का था, और बड़े प्रयत्न के साथ दस हजार सिंह उस रथ को वहन कर रहे थे ॥ ७ ॥ और सहस्रों बलवान् सिंह, शार्दूल, मकर, मत्स्य और हाथी आदि उसके पार्श्वरक्षक थे ॥ ८ ॥ इस प्रकार जब दक्षयज्ञ के विनाश के लिए वीरभद्र ने प्रस्थान किया, तो

तुष्टुवुश्च गणा वीरं शिपिविष्टे प्रचेष्टितम् । चक्रुः कुतूहलं सर्वे तस्मिंश्च गमनोत्सवैः ॥१०॥
काली कात्यायिनीशानी चामुण्डा मुण्डमर्दिनी । भद्रकाली तथा भद्रा त्वरिता वैष्णवी तथा ॥११॥
एताभिर्नवदुर्गाभिर्महाकाली समन्विता । ययौ दक्षविनाशाय सर्वभूतगणैः सह ॥१२॥
डाकिनी शाकिनी चैव भूतप्रमथगुह्यकाः । कूष्माण्डाः पर्पटाश्चैव चटका ब्रह्मराक्षसाः ॥१३॥
भैरवाः क्षेत्रपालाश्च दक्षयज्ञविनाशकाः । निर्ययुस्त्वरितं वीराः शिवाज्ञाप्रतिपालकाः ॥१४॥
तथैव योगिनीचक्रं चतुःषष्टिगणान्वितम् । निर्ययौ सहसा क्रुद्धं दक्षयज्ञं विनाशितुम् ॥१५॥
तेषां गणानां सर्वेषां सङ्ख्यानं शृणु नारद ! । महाबलवतां सङ्घो मुख्यानां धैर्यशालिनाम् ॥१६॥
अभ्ययाच्छङ्कुकर्णश्च दशकोट्या गणेश्वरः । दशभिः केकराक्षश्च विकृतोऽष्टाभिरेव च ॥१७॥
चतुःषष्ट्या विशाखश्च नवभिः पारियात्रिकः । षड्भिः सर्वाङ्कको वीरस्तथैव विकृताननः ॥१८॥
ज्वालकेशो द्वादशभिः कोटिभिर्गणपुङ्गवः । सप्तभिः समदद्धीमान् दुद्रभोऽष्टभिरेव च ॥१९॥
पञ्चभिश्च कपालीशः षड्भिः सन्दारको गणः । कोटिकोटिभिरेवेह कोटिकुण्डस्तथैव च ॥२०॥
विष्टम्भोऽष्टाष्टभिर्वीरैः कोटिभिर्गणसत्तमः । सहस्रकोटिभिस्तात सन्नादः पिप्पलस्तथा ॥२१॥
आवेशनस्तथाऽष्टाभिरष्टाभिश्चन्द्रतापनः । महावेशः सहस्रेण कोटिना गणपो वृतः ॥२२॥
कुण्डी द्वादशकोटीभिस्तथा पर्वतको मुने ! । विनाशितुं दक्षयज्ञं निर्ययौ गणसत्तमः ॥२३॥
कालश्च कालकश्चैव महाकालस्तथैव च । कोटीनां शतकेनैव दक्षयज्ञं ययौ प्रति ॥२४॥
अग्निकृच्छतकोट्या च कोट्याग्निमुख एव च । आदित्यमूर्द्धा कोट्या च तथा चैव घनावहः ॥२५॥
सन्नाहः शतकोट्या च कोटया च कुमुदो गणः । अमोघः कोकिलश्चैव कोटिकोटया गणाधिपः ॥२६॥

उस समय कल्पवृक्षों ने पुष्पवृष्टि की ॥ ९ ॥ गणों ने शिवजी के कार्य के लिए प्रस्थान करने वाले वीरभद्र की स्तुति की और वे नानाप्रकार के यात्रोचित उत्सव तथा मङ्गल करने लगे ॥ १० ॥ उसी समय काली, कात्यानी, ईशानी, चामुण्डा, मुण्डमर्दिनी, भद्रकाली, भद्रा, त्वरिता एवं वैष्णवी इन नौ दुर्गाओं को साथ लेकर भगवती महाकाली भूतगणों के साथ दक्ष-यज्ञ का नाश करने के लिए चलीं ॥ ११-१२ ॥ डाकिनी, शाकिनी, भूत, प्रमथ, गुह्यक, कूष्माण्ड, पर्पट, चटक, ब्रह्मराक्षस, भैरव, क्षेत्रपाल ये सभी शिवजी की आज्ञा से दक्षयज्ञ के विनाश के लिए चले ॥ १३-१४ ॥

इसी प्रकार चौंसठ योगिनियों का समूह भी अपने-अपने गणों को साथ लेकर दक्ष के यज्ञ का विनाश करने के लिए चला ॥ १५ ॥ हे नारद ! महाधैर्यशाली एवं महावीर उन गणों में जो मुखिया थे, उन गणों के नाम तथा उनकी संख्या सुनो ॥ १६ ॥ शङ्कुकर्ण नामक गणेश्वर दश करोड़ गणों के साथ, केकराक्ष भी इतने ही गणों के साथ तथा विकृत नामक गणेश्वर आठ करोड़ गणों को लेकर चला ॥ १७ ॥ विशाख चौंसठ करोड़, पारियात्र नौ करोड़, सर्वाङ्कक एवं वीर विकृतानन भी छः-छः करोड़ गणों को लेकर चले ॥ १८ ॥ गणश्रेष्ठ ज्वालकेष बारह करोड़ गणों के साथ, समद एवं धीमान् सात करोड़ गणों के सहित तथा दद्रुभ आठ करोड़ गणों को साथ लेकर चले ॥ १९ ॥ कपालीश पाँच करोड़, सन्दारक छह करोड़ तथा कोटि एवं कुण्ड एक-एक करोड़ गणों को लेकर चले ॥ २० ॥ गणों में उत्तम विष्टम्भवीर चौसठ करोड़, सन्नाद तथा पिप्पल एक सहस्र करोड़ ॥ २१ ॥ आवेशन तथा चन्द्रतापन आठ-आठ करोड़ महावेश नामक गणपति सहस्र करोड़, कुण्डी और पर्वतक बारह-बारह करोड़ सेना लेकर दक्ष का यज्ञ विध्वंस करने के लिए चले ॥२२-२३॥ काल, कालक और महाकालक ये सब सौ-सौ करोड़ गणों को साथ लेकर दक्ष का यज्ञ-विध्वंस करने चले ॥ २४ ॥ अग्निकृत सौ करोड़, अग्निमुख एक करोड़, आदित्यमूर्धा तथा घनावह एक-एक करोड़ गणों को साथ लेकर चले ॥ २५ ॥ सन्नाह सौ करोड़, कुमुद एक करोड़,

काष्ठागुढश्चतुःषष्टया सुकेशी वृषभस्तथा। सुमन्त्रको गणाधीशस्तथा तात सुनिर्ययौ ॥२७॥
काकपादोदरः षष्टिकोटिभिर्गणसत्तमः। तथा सन्तानकः षष्टिकोटिभिर्गणपुङ्गवः ॥२८॥
महाबलश्च नवभिः कोटिभिः पुङ्गवस्तथा ॥२९॥
मधुपिङ्गस्तथा तात गणाधीशो हि निर्ययौ। नीलो नवत्या कोटीनां पूर्णभद्रस्तथैव च ॥३०॥
निर्ययो शततोटीभिश्चतुर्वक्त्रो गणाधिपः। काष्ठागूढश्चतुःषष्टया सुकेशो वृषभस्तथा ॥३१॥
विरूपाक्षश्च कोटीनां चतुःषष्टया गणेश्वरः। तालकेतुः षडास्यश्च पञ्चास्यश्च गणाधिपः ॥३२॥
संवर्तकस्तथा चैव कुलीशश्च स्वयं प्रभुः। लोकान्तकश्च दीप्तात्मा तथा दैत्यान्तको मुने! ॥३३॥
गणो भृङ्गीरिटिः श्रीमान् देवदेवप्रियस्तथा। अशनिर्भालकश्चैव चतुःषष्टया सहस्रकः ॥३४॥
कोटिकोटिसहस्राणां शतैर्विंशतिभिर्वृतः। वीरेशो ह्यभ्ययाद्वीरः वीरभद्रो शिवाज्ञया ॥३५॥
भूतकोटिसहस्रैस्तु प्रययौ कोटिभिस्त्रिभिः। रोमजैः श्वगणैश्चैव तथा वीरो ययौ द्रुतम् ॥३६॥
तदा भेरीमहानादः शङ्खाश्च विविधस्वनाः। जटाहरो मुखाश्चैव शृङ्गाणि विविधानि च ॥३७॥
ते तानि विततान्येव बन्धनानि सुखानि च.। वादित्राणि विनेदुश्च विविधानि महोत्सवे ॥३८॥
वीरभद्रस्य यात्रायां सबलस्य महामुने!। शकुनान्यभवंस्तत्र भूरीणि सुखदानि च ॥३९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे
वीरभद्रयात्रावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

गणराज अमोघ तथा कोकिल एक-एक करोड़ गणों को लेकर चले ॥ २६ ॥ इसी प्रकार हे नारद जी, काष्ठागूढ़, सुकेशी, वृषभ, सुमन्त्रक आदि गणाधीश चौंसठ-चौंसठ करोड़ गणों को साथ लेकर चले ॥२७॥ गणश्रेष्ठ काकपादोदर तथा सन्तानक नामक गण साठ-साठ करोड़, महावल तथा पुङ्गव नौ-नौ करोड़ गणों को साथ लेकर चले ॥२८-२९॥ इसी प्रकार हे नारदजी! गणाधीश, मधुपिङ्ग नौ करोड़, नील तथा पूर्णभद्र नब्बे करोड़ गणों को साथ लेकर चले ॥ ३० ॥ गणराज चतुर्वक्त्र सौ करोड़, काष्ठागूढ़, सुकेश एवं वृषभ चौंसठ-चौंसठ करोड़ गणों के साथ चले ॥ ३१ ॥ हे मुने! गणेश्वर, विरूपाक्ष चौंसठ करोड़, तालकेतु, षण्मुख तथा गणेश्वर पंचमुख, संवर्त्तक, स्वयंप्रभु, कुलिश, लोकान्तक, दीप्तात्मा तथा दैत्यान्तक एवं भगवान् शङ्कर के परमप्रिय भृङ्गीरिटि, अशनि और भालकगण चौंसठ सहस्र करोड़ सेना लेकर दक्षयज्ञ का विनाश करने के लिए चले ॥ ३२-३४ ॥ इसी प्रकार महावीर वीरभद्र भी शिवजी की आज्ञा से बीस करोड़, बीस सहस्र, बीस सौ गणों से युक्त होकर दक्षयज्ञ विध्वंस करने के हेतु चले ॥ ३५ ॥ और पाँच करोड़ सहस्र तथा तीन करोड़ रोम देश में उत्पन्न हुए कुत्तों को भी लेकर वीरभद्र चला ॥ ३६ ॥ उस समय भेरी, शंख, जटाहर, मुखों तथा शृङ्गों के अनेक प्रकार के शब्द होने लगे ॥ ३७ ॥ उस महोत्सव में चित को आकृष्ट करने एवं सुख उत्पन्न करने वाले बाजों के शब्द चारों ओर विस्तृत होकर सुनाई पड़ने लगे ॥ ३८ ॥ हे महामुने! महाबली वीरभद्र की उस युद्धयात्रा में अनेक प्रकार के सुखदायक शकुन होने लगे ॥ ३९ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-
सतीखण्ड में वीरभद्रयात्रावर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३३ ॥

*

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

(दक्ष विनाश के लिए निकले हुए वीरभद्र को देखकर देवताओं के मन में भयोत्पत्ति)

ब्रह्मोवाच

एवं प्रचलिते चाऽस्मिन् वीरभद्रे गणान्विते । दुष्टचिह्नानि दक्षेण दृष्टानि विबुधैरपि ॥ १ ॥
उत्पाता विविधाश्चासन् वीरभद्रे गणान्विते । त्रिविधा अपि देवर्षे ! यज्ञविध्वंससूचकाः ॥ २ ॥
दक्षवामाक्षिबाहूरुविस्पन्दः समजायत । नानाकष्टप्रदस्तात सर्वथाऽशुभसूचकः ॥ ३ ॥
भूकम्पः समभूत्तत्र दक्षयागस्थले तदा । दक्षोऽपश्यच्च मध्याह्ने नक्षत्राण्यद्भुतानि च ॥ ४ ॥
दिशश्चासन् सुमलिनाः कर्बुरोऽभूद्दिवाकरः । परिवेषसहस्रेण सङ्क्रान्तश्च भयङ्करः ॥ ५ ॥
नक्षत्राणि पतन्ति स्म विद्युदग्निप्रभाणि च । नक्षत्राणामभूद्वक्रागतिश्चाधोमुखी तदा ॥ ६ ॥
गृध्रा दक्षशिरः स्पृष्ट्वा समुद्भूताः सहस्रशः । आसीद् गृध्रपक्षच्छायैः सच्छायो यागमण्डपः ॥ ७ ॥
ववाशिरे यागभूमौ क्रोष्टारो नेत्रकस्तदा । उल्कावृष्टिरभूत्तत्र श्वेतवृश्चिकसम्भवा ॥ ८ ॥
खरा वाता ववुस्तत्र पांशुवृष्टिसमन्विताः । शलभाश्च समुद्भूता विवर्तानिलकम्पिताः ॥ ९ ॥
रीतैश्च पवनैरुदूर्ध्वं स दक्षाध्वरमण्डपः । देवान्वितेन दक्षेण यः कृतो नूतनोऽद्भुतः ॥ १० ॥
वेमुर्दक्षादयः सर्वे तदा शोणितमद्भुतम् । वेमुश्च मांसखण्डानि सशल्यानि मुहुर्मुहुः ॥ ११ ॥
सकम्पाश्च बभूवुस्ते दीपा वातहता इव । दुःखिताश्चाऽभवन् सर्वे शस्त्रधाराहता इव ॥ १२ ॥
तदा निनादजातानि बाष्पवर्षाणि तत्क्षणे । प्रातस्तुषारवर्षीणि पद्मानीव वनान्तरे ॥ १३ ॥
दक्षाद्यक्षीणि जातानि ह्यकस्माद् विशदान्यपि । निशायां कमलानीव कुमुदानीव सङ्कुचे ॥ १४ ॥
असृग्ववर्ष देवश्च तिमिरेणावृता दिशः । दिग्दाहोऽभूद् विशेषेण त्रासयन् सकलान् जनान् ॥ १५ ॥

ब्रह्माजी बोले—जब इस प्रकार गणों को साथ लेकर वीरभद्र प्रस्थान करने लगे, उस समय दक्ष तथा देवताओं को नाना प्रकार के अपशकुन दिखाई पड़ने लगे ॥ १ ॥ गणों से युक्त वीरभद्र की यात्रा के समय दक्ष को यज्ञविध्वंश की सूचना देने वाले तीनों प्रकार के महान् उत्पात होने लगे ॥ २ ॥ दक्ष की बायीं आँख, बाहु तथा जंघा फड़कने लगे, जो नाना प्रकार के कष्टों तथा सर्वथा अकल्याण का सूचक था ॥ ३ ॥ दक्ष के यज्ञस्थल में ही भूकम्प होने लगा। स्वयं दक्ष को मध्याह्न काल में ही अनेक अद्भुत नक्षत्र आकाश में दिखाई पड़ने लगे ॥ ४ ॥ दिशाएँ मलीन हो गयीं तथा सूर्य काले-काले धब्बों से कर्बुर के आकार का दिखाई पड़ने लगा। एवं वह सूर्य हजारों परिवेष से युक्त होकर महाभयङ्कर रूप में दृष्टि-गोचर होने लगे ॥ ५ ॥ आकाशमण्डल से पृथ्वी पर बिजली तथा अग्नि के समान नक्षत्र गिरने लगे। नक्षत्रों की गति टेढ़ी तथा अधोमुख हो गयी ॥ ६ ॥ अनायास हजारों गृध्र उत्पन्न होकर दक्ष के शिर पर मँड़राने लगे। और उन गृध्रों के पङ्खों की छाया से समस्त यज्ञमण्डप ढँक गया ॥ ७ ॥ यज्ञभूमि में सियार तथा नेत्रक पक्षी शब्द करने लगे। आकाशमण्डल से श्वेत वृश्चिकों की उल्का वृष्टि होने लगी ॥ ८ ॥ धूलि की वर्षा करते हुए वायु बड़े तीक्ष्ण गति से चलने लगे। टिड्डियाँ सर्वत्र उड़ने लगीं। तथा सारा संसार वायु के झोंके से प्रकम्पित होने लगा ॥ ९ ॥ जिस नवीन यज्ञमण्डप को देवताओं ने तथा स्वयं दक्ष ने अद्भुत कला-कौशल के साथ निर्माण किया था, वह यज्ञमण्डप पवन के वेग से ऊपर-ही-ऊपर उड़ गया ॥ १० ॥ दक्षादि सभी देवगण रुधिर का और हड्डी युक्त मांसखण्ड का वमन करने लगे ॥ ११ ॥ समस्त दीपक इस प्रकार काँप उठे मानो वायु के वेग से कम्पित हो रहे हों। चराचर जगत् के सभी जीव शस्त्रों से घायल हुए के समान दुःखी हो गये ॥ १२ ॥ जिस प्रकार वन में प्रभातकाल होने पर कमलों पर तुषार की वर्षा हुई हो उसी प्रकार शब्द करते हुए वाष्प की वर्षा होने लगी ॥ १३ ॥ दक्षादि देवताओं के विशाल नेत्र भी अकस्मात् बन्द हो गये, जिस प्रकार रात्रि में कमल तथा दिन में कुमुद बन्द हो जाते हैं ॥ १४ ॥ आकाश से रुधिर की वर्षा होने लगी, दिशाएँ अन्धकार से ढँक गयीं। और सभी मनुष्यों को भय उत्पन्न करने वाला दिग्दाह होने लगा ॥ १५ ॥

एवंविधान्यरिष्टानि ददृशुर्विबुधादयः । भयमापेदिरेऽत्यन्तं मुने ! विष्ण्वादिकास्तदा ॥१६॥
भुवि ते मूर्च्छिताः पेतुर्हा हताः स्म इतीरयन् । तरवस्तीरसञ्जाता नदीवेगहता इव ॥१७॥
पतित्वा ते स्थिता भूमौ क्रूराः सर्पा हता इव । कन्दुका इव ते भूयः पतिताः पुनरुत्थिताः ॥१८॥
ततस्ते तापसन्तप्ता रुरुदुः कुररी इव । रोदनध्वनि-सङ्क्रान्तोरुक्ति-प्रत्युक्तिका इव ॥१९॥
सवैकुण्ठास्ततः सर्वे तदा कुण्ठितशक्तयः । स्वस्वोपकण्ठमाकण्ठं लुलुठुः कमठा इव ॥२०॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सञ्जाता चाशरीरवाक् । श्रावयत्यखिलान् देवान् दक्षं चैव विशेषतः ॥२१॥

आकाशवाण्युवाच

धिग् जन्म तव दक्षाद्य महामूढोऽसि पापधीः । भविष्यति महद्दुःखमनिवार्यं हरोद्भवम् ॥२२॥
हाहापि नोऽत्र ये मूढास्तव देवादयः स्थिताः । तेषामपि महादुःखं भविष्यति न संशयः ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वाऽऽकाशवचनं दृष्ट्वाऽरिष्टानि तानि च । दक्षः प्रापद्भयं चाति परे देवादयोऽपि ह ॥२४॥
वेपमानस्तदा दक्षो विकलश्चाति चेतसि । अगच्छच्छरणं विष्णोः स्वप्रभोरिन्दिरापतेः ॥२५॥
सुप्रणम्य भयाविष्टः संस्तूय च विचेतनः । अवोचद् देवदेवं तं विष्णुं स्वजनवत्सलम् ॥२६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे
दुःशकुनदर्शनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

जब विष्णु आदि देवताओं ने इस प्रकार का अरिष्ट देखा तो वे महाभयभीत हो उठे ॥ १६ ॥ हा, अब हम मरे ऐसा कहते हुए वे सभी पृथ्वी पर गिर पड़े, जैसे नदी के वेग से किनारे के वृक्ष गिर जाते हैं ॥ १७ ॥ पृथ्वी पर गिर कर वे काटे हुए सर्प के समान अचेत हो जाते थे । और कभी गेंद के समान पृथ्वी पर गिर कर पुनः उठ जाते थे ॥ १८ ॥ वे ताप से सन्तप्त हो कुररी पक्षी के समान विलाप करने लगते थे । एवं उक्ति तथा प्रत्युक्ति का शब्द करते हुए रोने लगते थे ॥ १९ ॥ उस समय विष्णु के सहित समस्त देवताओं की शक्तियाँ कुण्ठित हो गयीं । और वे आपस में एक सरे के समीप कण्ठ पर्यन्त कछुए के समान लौटने लगे ॥ २० ॥ उसी समय उन समस्त देवताओं को विशेष कर दक्ष को सुनाते हुए वहाँ आकाशवाणी हुई ॥ २१ ॥

आकाशवाणी बोली—हे दक्ष ! तू महामूर्ख एवं पापी है । तेरे जन्म को धिक्कार है, अब तुम्हें शिवजी के द्वारा घोर संकट पड़ने वाला है, जिसका निवारण करने वाला कोई नहीं है ॥ २२ ॥ हा ! खेद है कि इस यज्ञ में जो देवता आये हुए हैं, उन्हें भी महादारुण दुःख प्राप्त होगा, इसमें संशय नहीं ॥ २३ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार की आकाशवाणी को सुनकर तथा अपने सामने होते हुए अपशकुनों को देखकर दक्ष तथा देवगण अत्यन्त दुःखी हुए ॥ २४ ॥ और चित्त में व्यग्र होकर काँपता हुआ दक्ष लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु की शरण में गया ॥ २५ ॥ वह अचेत तथा भयभीत होकर विष्णु को प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगा । और भक्तवत्सल भगवान् विष्णु से बोला—॥ २६ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के
द्वितीय-सतीखण्ड में अपशकुनदर्शन नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३४ ॥

*

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

(दक्ष की विष्णु से प्रार्थना एवं शिवनिन्दक की रक्षा में सभी देवगणों की असमर्थता का विष्णु द्वारा समर्थन)

दक्ष उवाच

देवदेव हरे विष्णो दीनबन्धो कृपानिधे ! । मम रक्षा विधातव्या भवता साध्वरस्य च ॥ १ ॥
रक्षकस्त्वं मखस्यैव मखकर्मा मखात्मकः । कृपा विधेया यज्ञस्य भङ्गो भवतु न प्रभो ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं बहुविधां दक्षः कृत्वा विज्ञप्तिमादरात् । पपात पादयोस्तस्य भयव्याकुलमानसः ॥ ३ ॥
उत्थाप्य तं ततो विष्णुर्दक्षं विक्लिन्नमानसम् । श्रुत्वा च तस्य तद्वाक्यं कुमतेरस्मरच्छिवम् ॥ ४ ॥
स्मृत्वा शिवं महेशानं स्वप्रभुं परमेश्वरम् । अवदच्छिवतत्त्वज्ञो दक्षं सम्बोधयन् हरिः ॥ ५ ॥

हरिरुवाच

शृणु दक्ष ! प्रवक्ष्यामि तत्त्वतः शृणु मे वचः । सर्वथा ते हितकरं महामन्त्रसुखप्रदम् ॥ ६ ॥
अवज्ञा हि कृता दक्ष ! त्वया तत्त्वमजानता । सकलाधीश्वरस्यैव शङ्करस्य परात्मनः ॥ ७ ॥
ईश्वरावज्ञया सर्वं कार्यं भवति सर्वथा । विफलं केवलं नैव विपत्तिश्च पदे पदे ॥ ८ ॥
अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूजनीयो न पूज्यते । त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दारिद्र्यं मरणं भयम् ॥ ९ ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन माननीयो वृषध्वजः । अमानितान् महेशाच्च महद्भयमुपस्थितम् ॥ १० ॥
अद्यापि न वयं सर्वे प्रभवः प्रभवामहे । भवतो दुर्नयेनैव मया सत्यमुदीर्य्यते ॥ ११ ॥

ब्रह्मोवाच

विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा दक्षश्चिन्तापरोऽभवत् । विवर्णवदनो भूत्वा तूष्णीमासीद् भुवि स्थितः ॥ १२ ॥
एतस्मिन्नन्तरे वीरभद्रः सैन्यसमन्वितः । अगच्छदध्वरं रुद्रप्रेरितो गणनायकः ॥ १३ ॥

दक्ष बोले—हे देवदेव, हे हरे, हे विष्णो, हे दीनबन्धो, हे कृपासागर ! आप मेरी तथा इस यज्ञ की रक्षा कीजिए ॥ १ ॥ आप ही यज्ञ के रक्षक, यज्ञकर्म तथा यज्ञ के स्वरूप हैं, अतः अब आप ऐसी कृपा करें जिससे मेरे यज्ञ में विघ्न न हो ॥ २ ॥

ब्रह्माजी बोले—भय से व्याकुल हुए दक्ष ने आदरपूर्वक अनेक प्रकार की प्रार्थना की । और विष्णु के चरणों में गिर गया ॥ ३ ॥ विष्णु ने विकल हुए उस कुमति दक्ष की बातों को सुनकर उसे उठाया एवं शिव का स्मरण करते हुए बोले ॥ ४ ॥ अपने स्वामी महेश्वर, परमेश्वर, भगवान् शिव का स्मरण कर शिवतत्त्ववेत्ता भगवान् विष्णु दक्ष को समझाते हुए इस प्रकार बोले ॥ ५ ॥

भगवान् विष्णु बोले—हे दक्ष ! मैं तुम्हें सर्वथा हितकारी, सुखदायक तथा महामन्त्र के समान जो वचन कहता हूँ उस यथार्थ वचन को सुनो ॥ ६ ॥ हे दक्ष ! तुमने सर्वेश्वर परमात्मा शङ्कर के तत्त्व को न जानकर उनकी अवहेलना की है ॥ ७ ॥ उन सर्वेश्वर ईश्वर की अवज्ञा करने से समस्त कार्य केवल विफल ही नहीं होते बल्कि पदपद पर विपत्तियाँ भी घेरती हैं ॥ ८ ॥ जहाँ पर अपूज्य पूजे जाते हैं तथा पूजा के योग्य जनों का अपमान होता है वहाँ दारिद्र्य, मरण तथा भय ये तीनों ही उपस्थित हो जाते हैं ॥ ९ ॥ इसीलिए सभी प्रकार के प्रयत्नों से शिव जी की पूजा करनी चाहिए । यह इतना बड़ा महान् भय शिवजी के तिरस्कार से ही उपस्थित हुआ है ॥ १० ॥ हम यह सत्य कहते हैं कि तुम्हारी इस दुर्नीति का ही परिणाम है कि हम लोग समर्थ होकर भी असमर्थ-जैसे हो गये ॥ ११ ॥

ब्रह्माजी बोले—विष्णु भगवान् की बात सुन कर दक्ष चिन्तित हो उठा । उसके मुख की कान्ति फीकी पड़ गई और वह चुपचाप पृथ्वी पर बैठ गया ॥ १२ ॥ इसी बीच शिव जी का भेजा हुआ गणेश्वर

पृष्ठे केचित् समायाता गगने केचिदागताः । दिशश्च विदिशः सर्वे समावृत्य तथाऽपरे ॥१४॥
शर्वाज्ञया गणाः शूरा निर्भया रुद्रविक्रमाः । असङ्ख्याः सिंहनादान् वै कुर्वन्तो वीरसत्तमाः ॥१५॥
तेन नादेन महता नादितं भुवनत्रयम् । रजसा चावृतं व्योम तमसा चावृता दिशः ॥१६॥
सप्तद्वीपान्विता पृथ्वी चचालातिभयाकुला । सशैलकानना तत्र चक्षुभुः सकलाब्धयः ॥१७॥
एवम्भूतं च तत्सैन्यं लोकक्षयकरं महत् । दृष्ट्वा च विस्मिताः सर्वे बभूवुरमरादयः ॥१८॥
सैन्योद्योगमथालोक्य दक्षश्चासृङ्मुखाकुलः । दण्डवत् पतितो विष्णुं सकलत्रोऽभ्यभाषत ॥१९॥

दक्ष उवाच

भवद्बलेनैव मया यज्ञः प्रारम्भितो महान् । सत्कर्मसिद्धये विष्णो प्रमाणं त्वं महाप्रभो ! ॥२०॥
विष्णवे ! त्वं कर्मणां साक्षी यज्ञानां प्रतिपालकः । धर्मस्य वेदगर्भस्य ब्रह्मणस्त्वं महाप्रभो ! ॥२१॥
तस्माद्रक्षा विधातव्या यज्ञस्यास्य मम प्रभो ! । त्वदन्यः कः समर्थोऽस्ति यतस्त्वं सकलप्रभुः ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

दक्षस्य वचनं श्रुत्वा विष्णुर्दीनतरं तदा । अवोचद् बोधयंस्तं वै शिवतत्त्वपराङ्मुखम् ॥२३॥

विष्णुरुवाच

मया रक्षा विधातव्या तव यज्ञस्य दक्ष वै । ख्यातो मम पणः सत्यो धर्मस्य परिपालनम् ॥२४॥
तत्सत्यं तु त्वयोक्तं हि किं तत्तस्य व्यतिक्रमः । शृणु त्वं वच्म्यहं दक्ष ! क्रूरबुद्धिं त्यजाऽधुना ॥२५॥
नैमिषे निमिषक्षेत्रे यज्जातं वृत्तमद्भुतम् । तत् किं न स्मर्यते दक्ष ! विस्मृतं किं कुबुद्धिना ॥२६॥
रुद्रकोपाच्च को ह्यत्र समर्थो रक्षणे तव । न यस्याभिमतं दक्ष ! यस्त्वां रक्षति दुर्मतिः ॥२७॥

वीरभद्र अपनी सेना लेकर उस यज्ञ में आ पहुँचा ॥ १३ ॥ कुछ गण उसके पीछे, कुछ गण आकाशमार्ग से तथा कुछ दिशाओं एवं विदिशाओं से आकर यज्ञभूमि को घेर उपस्थित हो गये ॥ १४ ॥ शिवजी की आज्ञा से आये हुए वे असंख्य गण रुद्र के समान पराक्रमी, शूरवीर थे, उन्होंने निर्भय होकर सिंहनाद करना प्रारम्भ किया ॥ १५ ॥ उन गणों के महान् शब्दों से सारा त्रैलोक्य शब्दायमान हो उठा । आकाश धूलि से ढँक गया तथा दिशाओं में अन्धकार छा गया ॥ १६ ॥ सात द्वीपवाली पृथ्वी पर्वत तथा वनों के सहित काँप उठी । और समस्त समुद्र संक्षुब्ध हो उठे ॥ १७ ॥ लड़ाई के लिए उद्यत हुई इतनी बड़ी सेना देखते ही दक्ष के मुख से खून की धारा बहने लगी और वह स्त्रीसहित विष्णु के चरणों में दण्ड के समान गिर कर कहने लगा ॥ १८-१९ ॥

दक्ष बोला—हे विष्णो ! मैंने तो तुम्हारे ही बल पर इस महान् यज्ञ का आयोजन किया था, क्योंकि हे महाप्रभो ! समस्त उत्तम कर्मों की सिद्धि के लिए आपको ही प्रमाण-साक्ष्य माना जाता है ॥ २० ॥ हे विष्णो ! तुम्हीं कर्मों के साक्षी तथा धर्म, वेदगर्भ, ब्रह्मा तथा यज्ञ के प्रतिपालक हो ॥ २१ ॥ हे प्रभो ! इसलिए मेरे इस यज्ञ की रक्षा आप ही कीजिए । इस कार्य में और कोई समर्थ नहीं है, क्योंकि आप सबके स्वामी हैं ॥ २२ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार दक्ष के दीनताभरे वचनों को सुन भगवान् विष्णु शिवतत्त्व से पराङ्मुख उस दक्ष को समझाते हुए कहने लगे ॥ २३ ॥

विष्णु बोले—हे दक्ष ! मैं तुम्हारे इस यज्ञ की अवश्य रक्षा करूँगा । क्योंकि धर्मपालन करने की मेरी सत्य प्रतिज्ञा है ॥ २४ ॥ तुम ने जो कहा है वह सत्य कहा है, भला उसमें उलट-फेर किस प्रकार से सम्भव है । किन्तु मैं जो कहता हूँ उसे सुनो, अपनी बुद्धि की कुटिलता छोड़ दो ॥ २५ ॥ हे दक्ष ! देवताओं के क्षेत्र नैमिषारण्य में, जो अद्भुत चरित्र हुआ वह क्या तुम्हें स्मरण नहीं है? क्या तुम दुर्बुद्धि से उस चरित्र को भूल गये ॥ २६ ॥ भला इस यज्ञभूमि में रुद्र के कोप से तुम्हें कौन बचा सकता है, जिसे अपना जीवन अभीष्ट न होगा वही दुष्ट इस शिवकोप से तुम्हारी रक्षा की बात सोच सकता है ॥ २७ ॥

किं कर्म किमकर्मेति तन्न पश्यति दुर्मते ! । समर्थं केवलं कर्म न भविष्यति सर्वदा ॥२८॥
स्वकर्म विद्धि तद्येन समर्थत्वेन जायते । न त्वन्यः कर्मणो दाता शं भवेदीश्वरं विना ॥२९॥
ईश्वरस्य च यो भक्त्या शान्तस्तद्गतमानसः । कर्मणो हि फलं तस्य प्रयच्छति तदा शिवः ॥३०॥
केवलं ज्ञानमाश्रित्य निरीश्वरपरा नराः । निरयं ते च गच्छन्ति कल्पकोटिशतानि च ॥३१॥
पुनः कर्ममयैः पाशैर्बद्ध्वा जन्मनि जन्मनि । निरयेषु प्रपच्यन्ते केवलं कर्मरूपिणः ॥३२॥
अयं रुद्रगणाधीशो वीरभद्रोऽरिमर्दनः । रुद्रकोपाग्निसम्भूतः समायातोऽध्वराङ्गणे ॥३३॥
अयमस्मद्विनाशार्थमागतोऽस्ति न संशयः । अशक्यमस्य नास्त्येव किमप्यस्तु तु वस्तुतः ॥३४॥
प्रज्वाल्याऽस्मानयं सर्वान् ध्रुवमेव महाप्रभुः । ततः प्रशान्तहृदयो भविष्यति न संशयः ॥३५॥
श्रीमहादेवशपथं समुल्लङ्घ्य भ्रमान् मया । यतः स्थितं ततः प्राप्यं मया दुःखं त्वया सह ॥३६॥
शक्तिर्मम तु नास्त्येव दक्षाद्यैतन्निवारणे । शपथोल्लङ्घनादेव शिवद्रोही यतोऽस्म्यहम् ॥३७॥
कालत्रयेऽपि न यतो महेशद्रोहिणां सुखम् । ततोऽवश्यं मया प्राप्तं दुःखमद्य त्वया सह ॥३८॥
सुदर्शनाभिधं चक्रमेतस्मिन्न लगिष्यति । शैवचक्रमिदं यस्मादशैवलयकारणम् ॥३९॥
विनापि वीरभद्रेण नामैतच्चक्रमैश्वरम् । हत्वा गमिष्यत्यधुना सत्वरं हरसन्निधौ ॥४०॥
शैवं शपथमुल्लङ्घ्य स्थितं मां चक्रमीदृशम् । असंहत्यैव सहसा कृपयैव स्थिरं परम् ॥४१॥
अतः परमिदं चक्रमपि न स्थास्यति ध्रुवम् । गमिष्यत्यधुना शीघ्रं ज्वालामालासमाकुलम् ॥४२॥
वीरभद्रः पूजितोऽपि शीघ्रमस्माभिरादरात् । महाक्रोधसमाक्रान्तो नास्मान् संरक्षयिष्यति ॥४३॥

हे दुष्ट दक्ष ! तुममें कर्म तथा अकर्म का ज्ञान नहीं है। केवल कर्म ही फल देने में समर्थ नहीं होता ॥२८॥ कर्म तो उसी को समझो जिसकी कृपा से कर्म में फल देने की शक्ति आती है। कर्म में इस प्रकार का सामर्थ्य देने वाला परमात्मा शम्भु के सिवा और कौन हो सकता है ? ॥ २९ ॥

जो सदाशिव की भक्ति करता हुआ उन्हीं में अपने चित्त को लगा कर शान्त रहता है भगवान् शङ्कर उन्हीं को कर्मों का फल देते हैं ॥ ३० ॥ जो ईश्वर को नहीं मानते केवल ज्ञानमार्ग का ही आश्रय लेते हैं ऐसे लोग करोड़ों कल्पों तक नरकों में पड़े रहते हैं ॥ ३१ ॥ इसी प्रकार जो लोग कर्म का ही आश्रय लेते हैं, ऐसे लोगों को यमराज के दूत कर्ममय पाशों से बाँधकर उन्हें नरक में नाना प्रकार की यातना देते रहते हैं ॥ ३२ ॥ हे दक्ष ! देखो, रुद्र के कोपाग्नि से उत्पन्न हुआ शत्रुनाशक यह गणाधीश्वर वीरभद्र यज्ञ के प्रांगण में पहुँच गया ॥ ३३ ॥ निश्चय ही यह हम लोगों के विनाश के लिए यहाँ आया है, चाहे जो भी हो, इसके लिए कुछ भी अशक्य नहीं है ॥ ३४ ॥ निश्चय ही यह महाशक्तिशाली है, अतः हम सबको बिना भस्म किये इसका चित्त शान्त न होगा। इसमें सन्देह नहीं ॥ ३५ ॥ मैंने भगवान् शङ्कर के शपथ का उल्लङ्घन कर तुम्हारे यज्ञ में जिस कारण से भाग लिया है इस कारण तुम्हारे साथ मुझे भी घोर दुःख भोगना पड़ेगा ॥ ३६ ॥ हे दक्ष ! आज इसको रोकने की शक्ति मुझमें नहीं रह गयी। क्योंकि शपथ का उल्लङ्घन कर मैं शिवद्रोही हो गया ॥ ३७ ॥

शिवद्रोहियों को त्रिकाल में भी सुख नहीं प्राप्त होता। अतः आज तुम्हारे साथ मुझे भी यह दुःख प्राप्त हुआ ॥३८॥ मेरा यह सुदर्शन चक्र भी इस पर प्रहार करने में समर्थ नहीं है; क्योंकि वह शिवद्रोहियों पर ही प्रहार करने में सक्षम है ॥ ३९ ॥ वीरभद्र पर छोड़ते ही यह सुदर्शन चक्र उस पर बिना प्रहार किये ही शिव के समीप चला जायेगा ॥ ४० ॥ शिव के द्वारा प्रदत्त यह शैवचक्र शिव के शपथ का उल्लङ्घन करने वाले मेरे पास मुझे बिना प्रहार किये अब तक जो स्थित है, यही उन शिव की महती कृपा है ॥४१॥ अब यह निश्चित है कि यह चक्र आगे मेरे पास नहीं रहेगा और क्रुद्ध होकर ज्वालामाला से व्याप्त होकर शिव के पास चला जायेगा ॥ ४२ ॥ यदि यहाँ हम आदरपूर्वक इस वीरभद्र का पूजन

अकाण्डप्रलयोऽस्माकमागतोऽद्य हि हा हहा । हा हा बत तवेदानीं नाशोऽस्माकमुपस्थितः ॥४४॥
शरण्योऽस्माकमधुना नास्त्येव हि जगत्त्रये । शङ्करद्रोहिणो लोके कः शरण्यो भविष्यति ॥४५॥
तनुनाशेऽपि सम्प्राप्यास्तैश्चापि यमयातनाः । ता नैव शक्यते सोढुं वहुदुःखप्रदायिनीः ॥४६॥
शिवद्रोहिणमालोक्य दष्टदन्तो यमः स्वयम् । तप्ततैलकटाहेषु पातयत्येव नान्यथा ॥४७॥
गन्तुमेवाहमुद्युक्तं सर्वथा शपथोत्तरम् । तथापि न गतः शीघ्रं दुष्टसंसर्गपापतः ॥४८॥
यदद्य क्रियतेऽस्माभिः पलायनमितस्तदा । शार्वो ना कर्षकः शस्त्रैरस्मानाकर्षयिष्यति ॥४९॥
स्वर्गे वा भुवि पाताले यत्र कुत्रापि वा यतः । श्रीवीरभद्रशस्त्राणां गमनं न हि दुर्लभम् ॥५०॥
यावन्तश्च गणाः सन्ति श्रीरुद्रस्य त्रिशूलिनः । तावतामपि सर्वेषां शक्तिरेतादृशी ध्रुवम् ॥५१॥
श्रीकालभैरवः काश्यां नखाग्रेणैव लीलया । पुरा शिरश्च चिच्छेद पञ्चमं ब्रह्मणो ध्रुवम् ॥५२॥
एतदुक्त्वा स्थितो विष्णुरतित्रस्तमुखाम्बुजः । वीरभद्रोऽपि सम्प्राप तदैवाऽध्वरमण्डपम् ॥५३॥
एवं ब्रुवति गोविन्द आगतं सैन्यसागरम् । वीरभद्रेण सहितं ददृशुश्च सुरादयः ॥५४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे
सत्युपाख्याने विष्णुवाक्यवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

भी करें तो भी शङ्कर के क्रोध से भरा हुआ यह हमारी रक्षा नहीं करेगा ॥ ४३ ॥ हाय ! यह शोक है कि हमारा तथा तुम्हारा नाश एक साथ ही उपस्थित हो गया । ओह ! अनवसर में ही यह प्रलयकाल उपस्थित हुआ ॥ ४४ ॥ अब इस त्रिलोकी में हमारा कोई रक्षक नहीं, भला शंकरद्रोहियों की रक्षा भी कोई किस प्रकार कर सकता है ? ॥ ४५ ॥ इस शरीर के नाश हो जाने पर शिवद्रोह के कारण नाना प्रकार के दुःख देनेवाली यम की जो यातना हमें प्राप्त होगी, वह हमसे नहीं सही जायेगी ॥ ४६ ॥ यह झूठ नहीं है कि यमराज शिवद्रोहियों के देखते ही कटकटाकर दाँत पीसते हुए सन्तप्त तैलपूर्ण कड़ाहों में हमें छोड़ देगा ॥ ४७ ॥ शपथ के अनन्तर मैं तो जाने के लिए तैयार भी था किन्तु दुष्ट के संसर्ग रूप पाप से मैं शीघ्र नहीं गया ॥ ४८ ॥ यदि मैं इस समय यहाँ से भाग निकलूँ तो भी यह शिवभक्त वीरभद्र अपने आकर्षणों से हमें खींच लेगा ॥ ४९ ॥ स्वर्ग, पाताल, पृथ्वी में कहीं भी वीरभद्र के शस्त्रों की गति रुकने वाली नहीं है ॥ ५० ॥ त्रिशूली इन महारुद्र के जितने भी गण यहाँ आये हुए हैं, निश्चय ही उन लोगों को भी उतनी ही शक्ति है जितनी वीरभद्र में ॥ ५१ ॥ पूर्वकाल में कालभैरव ने अपने नख के अग्रभाग से काशी में ब्रह्मा के पञ्चममुख को नष्ट कर दिया था ॥ ५२ ॥ इतना कहकर भगवान् विष्णु अत्यन्त भयभीत हो चुपचाप बैठ गये । तभी वीरभद्र यज्ञमण्डप में आ पहुँचे ॥ ५३ ॥ इस प्रकार भगवान् विष्णु के कहते ही देवताओं ने वीरभद्र के साथ आये हुए गणों के सैन्य-सागर को देखा ॥ ५४ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड तथा सती-उपाख्यान में विष्णु-वाक्यवर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३५ ॥

*

षट्त्रिंशोऽध्यायः

(वीरभद्र द्वारा युद्ध में लोकपालों का पराजय)

ब्रह्मोवाच

इन्द्रोऽपि प्रहसन् विष्णुमात्मवादरतं तदा। वज्रपाणिः सुरैः सार्द्धं योद्धुकामोऽभवत्तदा ॥ १ ॥
तदेन्द्रो गजमारूढो बस्तारूढोऽनलस्तथा। यमो महिषमारूढो निर्ऋतिः प्रेतमेव च ॥ २ ॥
पाशी च मकरारूढ मृगारूढोः सदागतिः। कुबेरः पुष्पकारूढः सन्नद्धोऽभूतदतन्द्रितः ॥ ३ ॥
तथाऽन्ये सुरसङ्घाश्च यक्षचारणगुह्यकाः। आरुह्य वाहनान्येव स्वानि स्वानि प्रतापिनः ॥ ४ ॥
तेषामुद्योगमालोक्य दक्षश्चाऽसृङ्मुखस्तथा। तदन्तिकं समागत्य सकलत्रोऽभ्यभाषत ॥ ५ ॥

दक्ष उवाच

युष्मद्-बलेनैव मया यज्ञः प्रारम्भितो महान्। सत्कर्मसिद्धये यूयं प्रमाणाः स्युर्महाप्रभाः ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा दक्षवचनं सर्वे देवाः सवासवाः। निर्ययुस्त्वरितं तत्र युद्धं कर्तुं समुद्यताः ॥ ७ ॥
अथ देवगणाः सर्वे युयुधुस्ते बलान्विताः। शक्रादयो लोकपाला मोहिताः शिवमायया ॥ ८ ॥
देवानां च गणानां च तदाऽऽसीत् समरो महान्। तीक्ष्णतोमरनाराचैर्युयुधुस्ते परस्परम् ॥ ९ ॥
नेदुः शङ्खाश्च भेर्य्यश्च तस्मिन् रणमहोत्सवे। महादुन्दुभयो नेदुः पटहा डिण्डिमादयः ॥१०॥
तेन शब्देन महता श्लाघ्यमानास्तदा सुराः। लोकपालैश्च सहिता जघ्नुस्तांञ्छिवकिङ्करान् ॥११॥
इन्द्राद्यैर्लोकपालैश्च गणाः शम्भोः पराङ्मुखाः। कृताश्च मुनिशार्दूल भृगोर्मन्त्रबलेन च ॥१२॥
उच्चाटनं कृतं तेषां भृगुणा यज्वना तदा। यजनार्थं च देवानां तुष्ट्यर्थं दीक्षितस्य च ॥१३॥
पराजितान् स्वकान् दृष्ट्वा वीरभद्रो रुषान्वितः। भूत-प्रेत-पिशाचांश्च कृत्वा तानेव पृष्ठतः ॥१४॥

ब्रह्मा जी बोले—शिवतत्त्व रूप आत्मवाद करते हुए विष्णु को देख इन्द्र हँसने लगा। फिर वह हाथ में गदा लेकर देवताओं के साथ वीरभद्र से युद्ध करने के लिए रणभूमि में आया ॥ १ ॥ उस समय इन्द्र हाथी पर, अग्नि भेंड़े पर, यम भैंसे पर, निर्ऋति प्रेत पर, ॥ २ ॥ वरुण मकर पर, वायु मृग पर एवं कुबेर पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर बड़ा सावधानी से चले ॥ ३ ॥ इसी प्रकार और भी प्रतापी देवगणों का समूह यक्ष, चारण तथा गुह्यक भी अपने-अपने वाहनों पर सवार हो युद्ध के लिए अग्रसर हुए ॥ ४ ॥ रुधिर से आर्द्रमुख वाले दक्ष ने देवताओं के इस सैन्य-समूह को जब युद्ध के लिए उद्यत देखा तब वह अपनी स्त्री सहित उनके पास आकर बोला– ॥ ५ ॥

दक्ष बोला—हे देवगणो ! मैंने आप लोगों के ही भरोसे यह यज्ञ प्रारम्भ किया है। क्योंकि आप सभी महातेजस्वी देवगण सत्कर्म के फलदाता हैं ॥ ६ ॥

ब्रह्माजी बोले—दक्ष के इस वचन को सुनकर इन्द्रादिक समस्त देवगण युद्ध के लिए तैयार होकर चल पड़े ॥ ७ ॥ तदनन्तर समस्त देवगण तथा इन्द्रादि समस्त लोकपाल अपनी-अपनी सेनाओं के साथ शिव की माया से मोहित हो युद्ध करने लगे ॥ ८ ॥ उस समय देवताओं तथा शिवगणों का युद्ध होने लगा। वे परस्पर तीक्ष्ण तोमर तथा बाण आदि नाना प्रकार के शस्त्रों से लड़ने लगे ॥ ९ ॥ उस युद्ध-महोत्सव में शंख, भेरी, बड़े-बड़े दुन्दुभि और पटह का घनघोर शब्द होने लगा ॥१०॥ उन बाजों के शब्द से उत्साह में भरे हुए देवगणों ने लोकपालों को लेकर उन शिवगणों को मारने लगे ॥ ११ ॥ इन्द्रादि देवगणों तथा लोकपालों ने भृगु के मन्त्रबल के प्रभाव से शिवजी के गणों को छिन्न-भिन्न कर डाला ॥ १२ ॥ उन याज्ञिक भृगु ने दीक्षा लिये हुए अपने यजमान दक्ष के सन्तोषार्थ निर्विघ्न यज्ञ-समाप्ति के लिए उन शिवगणों का उच्चाटन कर दिया ॥ १३ ॥ इस प्रकार भूत, प्रेत एवं पिशाचों को पराजित देख वीरभद्र ने उन सभी

वृषभस्थान् पुरस्कृत्य स्वयं चैव महाबलः । महात्रिशूलमादाय पातयामास निर्जरान् ॥१५॥
देवान् यक्षान् साध्यगणान् गुह्यकान् चारणानपि । शूलघातैश्च ते सर्वे गणा वेगात् प्रजघ्निरे ॥१६॥
केचिद् द्विधा कृताः खड्गैर्मुद्गरैश्च विपोथिताः । अन्यैः शस्त्रैरपि सुरा गणैर्भिन्नास्तदाऽभवन् ॥१७॥
एवं पराजिताः सर्वे पलायनपरायणाः । परस्परं परित्यज्य गता देवास्त्रिविष्टपम् ॥१८॥
केवलं लोकपालास्ते शक्राद्यास्तस्थुरुत्सुकाः । सङ्ग्रामे दारुणे तस्मिन् धृत्वा धैर्यं महाबलाः ॥१९॥
सर्वे मिलित्वा शक्राद्या देवास्तत्र रणाजिरे । बृहस्पतिं च पप्रच्छुर्विनयावनतास्तदा ॥२०॥

लोकपाला ऊचुः

गुरो बृहस्पते तात महाप्राज्ञ दयानिधे ! । शीघ्रं वद पृच्छतो नः कुतोऽस्माकं जयो भवेत् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां स्मृत्वा शम्भुं प्रयत्नवान् । बृहस्पतिरुवाचेदं महेन्द्रं ज्ञानदुर्बलम् ॥२२॥

बृहस्पतिरुवाच

यदुक्तं विष्णुना पूर्वं तत्सर्वं जातमद्य वै । तदेव विवृणोमीन्द्र ! सावधानतया शृणु ॥२३॥
अस्ति यक्षेश्वरः कश्चित् फलदः सर्वकर्मणाम् । कर्तारं भजते सोऽपि न स्वकर्त्तुः प्रभुर्हि सः ॥२४॥
अमन्त्रौषधयः सर्वे नाभिचारा न लौकिकाः । न कर्माणि न वेदाश्च न मीमांसाद्वयं तथा ॥२५॥
अन्यान्यपि च शास्त्राणि नानावेदयुतानि च । ज्ञातुं नेशं सम्भवन्ति वदन्त्येवं पुरातनाः ॥२६॥
न स्वज्ञेयो महेशानः सर्ववेदायुतेन सः । भक्तैरनन्यशरणैर्नान्यथेति महाश्रुतिः ॥२७॥

को पीछे हटा दिया और स्वयं युद्ध करने के लिए रणभूमि में आगे आया ॥ १४ ॥ उस महाबली ने वृषभ पर बैठे हुए अपने समस्त गणों को आगे किया तथा स्वयं त्रिशूल लेकर देवताओं को गिराने लगा ॥ १५ ॥ उन गणों ने भी अपने त्रिशूल से देवता, यक्ष, साध्य, गुह्यक तथा चारणगणों को मारकर घायल कर दिया ॥ १६ ॥ किन्हीं को खड्ग से दो टुकड़े कर दिये, किन्हीं पर मुद्गर से प्रहार कर धराशायी कर दिया। इस प्रकार उन गणों ने अन्य प्रकार के शस्त्रों से देवताओं को छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ १७ ॥ देवता लोग पराजित हो युद्ध से भागने लगे। वे एक दूसरे को छोड़कर स्वर्ग चले गये ॥ १८ ॥ उस महाभयानक संग्राम में महाबलशाली केवल इन्द्रादि लोकपाल ही धैर्य धारणकर युद्ध करने की इच्छा से उत्साहित हो खड़े रहे ॥ १९ ॥ तब समस्त इन्द्रादि देवता आपस में मिलकर बड़े विनय के साथ उस युद्धस्थल में बृहस्पति से पूछने लगे ॥ २० ॥

लोकपाल बोले—हे गुरो, हे तात, हे महाप्राज्ञ, हे दयानिधे, हे बृहस्पते ! हम आपसे पूछना चाहते हैं कि हमलोगों की विजय किस प्रकार होगी। आप शीघ्र बताइए ? ॥ २१ ॥

ब्रह्माजी बोले—युद्ध में विजय के लिए प्रयत्नशील बृहस्पति उन लोकपालों की बात सुनकर भगवान् शंकर का स्मरण कर ज्ञानरहित इन्द्र से बोले ॥ २२ ॥

बृहस्पति बोले—हे इन्द्र ! भगवान् विष्णु ने जो कहा था, वह होकर रहा। अब मैं उसी को स्पष्ट रूप से व्याख्या करता हूँ सावधानी से सुनो ॥ २३ ॥ परमात्मा सदाशिव ही सभी कर्मों के फल को देने वाले हैं, वह कर्मफल देने वाला ईश्वर ही कर्म के करने वाले को उसका फल देता है। कर्म स्वयं स्वतन्त्र नहीं है, जो अपने कर्त्ता को फल दे सके ॥ २४ ॥ मन्त्र, औषधि, लौकिक अभिचार, कर्म, वेद, पूर्व मीमांसा तथा उत्तर मीमांसा ये सभी शिवजी को जानने में असमर्थ हैं ॥ २५ ॥ इसी प्रकार अनेकों वेदों से युक्त अन्यान्य शास्त्र भी शिव को जानने में समर्थ नहीं हैं, ऐसा पुराणज्ञ लोग कहते हैं ॥ २६ ॥ सम्पूर्ण वेदों का ज्ञाता भी शिव को नहीं जान सकता। उसकी शरण में रहने वाले उसके भक्त ही उसे जान सकते हैं। अन्यथा वह किसी प्रकार जाना नहीं जा सकता, ऐसी श्रुति कहती है ॥ २७ ॥

शान्त्या च परया दृष्ट्या सर्वथा निर्विकारया । तदनुग्रहतो नूनं ज्ञातव्यो हि सदाशिवः ॥२८॥
परं तु संवदिष्यामि कार्याऽकार्यविवक्षितौ । सिध्यंशं च सुरेशान तं शृणु त्वं हिताय वै ॥२९॥
त्वमिन्द्र बालिशो भूत्वा लोकपालैः सहाऽद्य वै । आगतो दक्षयज्ञं हि किं करिष्यसि विक्रमम् ॥३०॥
एते रुद्रसहायाश्च गणाः परमकोपनाः । आगता यज्ञविघ्नार्थं तं करिष्यन्त्यसंशयम् ॥३१॥
सर्वथा न ह्युपायोऽत्र केषाञ्चिदपि तत्त्वतः । यज्ञविघ्नविनाशार्थं सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

एवं बृहस्पतेर्वाक्यं श्रुत्वा ते हि दिवौकसः । चिन्तामापेदिरे सर्वे लोकपालाः सवासवाः ॥३३॥
ततोऽब्रवीद् वीरभद्रो महावीरगणैर्वृतः । इन्द्रादीन् लोकपालांस्तान् स्मृत्वा मनसि शङ्करम् ॥३४॥

वीरभद्र उवाच

सर्वे यूयं बालिशत्वादवदानार्थमागताः । अवदानं प्रयच्छामि आगच्छत ममान्तिकम् ॥३५॥
हे शक्र हे शुचे भानो हे शशिन् हे धनाधिप ! । हे पाशपाणे हे वायो निर्ऋते यम शेष हे ! ॥३६॥
हे सुराऽसुरसङ्घाश्च हीहैत च विचक्षणाः । अवदानानि दास्यामि आतृप्त्याद्यासतां वराः ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा सितैर्बाणैर्जघानाथ रुषान्वितः । निखिलांस्तान् सुरान् सद्यो वीरभद्रो गणाग्रणीः ॥
तैर्बाणैर्निहताः सर्वे वासवाद्याः सुरेश्वराः ॥३८॥
पलायनपरा भूत्वा जग्मुस्ते च दिशो दश । गतेषु लोकपालेषु विद्रुतेषु सुरेषु च ॥
यज्ञवाटोपकण्ठं हि वीरभद्रोऽगमद् गणैः ॥३९॥
तदा ते ऋषयः सर्वे सुभीता हि रमेश्वरम् । विज्ञप्तुकामाः सहसा शीघ्रमूचुर्नता भृशम् ॥४०॥

शान्त एवं सर्वथा निर्विकार दृष्टि से, उनकी कृपा प्राप्त होने पर वे सदाशिव जाने जा सकते हैं ॥२८॥ हे इन्द्र ! अब कार्याकार्य का विषय उपस्थित होने पर जिससे कार्य में सिद्धि हो उस अंश को मैं तुमसे कहता हूँ। सावधानी से अपने हित की बात सुनो ॥ २९ ॥ हे इन्द्र, तुम मूर्खतावश ही इन लोकपालों के साथ इस यज्ञस्थल में आये हो और अपना पराक्रम प्रकट कर रहे हो ॥ ३० ॥ ये परम क्रोधी रुद्रगण, जो यज्ञ में विघ्न करने के लिए आये हैं, वे निश्चित रूप से यज्ञ में विघ्न करेंगे ॥ ३१ ॥ हे इन्द्र ! सुनो, मैं सत्य कहता हूँ कि इस यज्ञ में विघ्न-विनाश के लिए कोई भी उपाय नहीं है ॥ ३२ ॥

ब्रह्माजी बोले—बृहस्पति की बात सुनकर इन्द्रादि लोकपालों सहित समस्त देवगण बहुत विषाद करने लगे ॥ ३३ ॥ तब महावीर गणों से युक्त वीरभद्र मन में शंकरजी का स्मरण कर इन्द्रादि देवताओं से बोले ॥ ३४ ॥

वीरभद्र बोले—तुम सब अपनी मूर्खता से इस यज्ञ में अपना-अपना भाग लेने के लिए आये हो। अतः मेरे पास आओ, मैं तुम लोगों के तृप्त्यर्थ यज्ञ का फल दूंगा ॥ ३५ ॥ हे शक्र, हे अग्ने, हे सूर्य, हे चन्द्र, कुबेर, वरुण, वायु, निर्ऋति, यम, शेष एवं विचक्षण ! हे देव तथा राक्षसों के समूह ! मैं आप लोगों को परपेट भोजन दूंगा। आप लोग भली प्रकार से स्थित होकर इसका फल भोगिए ॥ ३६-३७ ॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर महावीर सेनाग्रगण्य उस वीरभद्र ने क्रोध में भरकर तीक्ष्ण बाणों से देवताओं पर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया। उन बाणों से व्यथित हुए इन्द्रादि देवगण दशों दिशाओं की ओर भागने लगे ॥ ३८ ॥ तब लोकपाल तथा देवगण तितर-बितर हो गये तथा वीरभद्र अपने गणों के सहित यज्ञ के सन्निकट पहुँच गये ॥ ३९ ॥ वे समस्त ऋषि एवं मुनिगण भयभीत होकर रमापति विष्णु के पास जाकर विनय के साथ बोले—॥ ४० ॥

ऋषय ऊचुः

देवदेव रमानाथ सर्वेश्वर महाप्रभो ! । रक्ष यज्ञं हि दक्षस्य यज्ञोऽसि त्वं न संशयः ॥४१॥
यज्ञकर्मा यज्ञरूपो यज्ञाङ्गो यज्ञरक्षकः । रक्ष यज्ञमतो रक्ष त्वत्तोऽन्यो न हि रक्षकः ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषामृषीणां वचनं हरिः । योद्धुकामो भयाद् विष्णुर्वीरभद्रेण तेन वै ॥४३॥
चतुर्भुजः सुसन्नद्धो चक्रायुधधरः करैः । महाबलोऽमरगणैर्यज्ञवाटात् स निर्ययौ ॥४४॥
वीरभद्रः शूलपाणिर्नानागणसमन्वितः । ददर्श विष्णुं सन्नद्धं योद्धुकामं महाप्रभुम् ॥४५॥
तं दृष्ट्वा वीरभद्रोऽभूद् भ्रुकुटीकुटिलाननः । कृतान्त इव पापिष्ठं मृगेन्द्र इव वारणम् ॥४६॥
तथाविधं हरिं दृष्ट्वा वीरभद्रोऽरिमर्दनः । अवदत् त्वरितः क्रुद्धो गणैर्वीरैः समावृतः ॥४७॥

वीरभद्र उवाच

रे रे हरे महादेव ! शपथोल्लङ्घनं त्वया । कथमद्य कृतं चित्ते गर्वः किमभवत्तव ॥४८॥
तव श्रीरुद्रशपथोल्लङ्घने शक्तिरस्ति किम् । को वा त्वमसि को वा ते रक्षकोऽस्ति जगत्त्रये ॥४९॥
अत्र त्वमागतः कस्माद् वयं तन्नैव विद्महे । दक्षस्य यज्ञपाता त्वं कथं जातोऽसि तद् वद ॥५०॥
दाक्षायण्या कृतं यच्च तन्न दृष्टं किमु त्वया । प्रोक्तं यच्च दधीचेन श्रुतं तन्न किमु त्वया ॥५१॥
त्वञ्चापि दक्षयज्ञेऽस्मिन्नवदानार्थमागतः । अवदानं प्रयच्छामि तव चापि महाभुज ! ॥५२॥
वक्षो विदारयिष्यामि त्रिशूलेन हरे तव । कस्तवास्ति समायातो रक्षकोऽद्य ममान्तिकम् ॥५३॥

ऋषियों ने कहा—हे देवाधिदेव, हे रमानाथ, हे सर्वेश्वर महाप्रभो ! आप स्वयं यज्ञस्वरूप हैं, अतः इस दक्षयज्ञ की रक्षा कीजिए ॥ ४१ ॥ आप ही यज्ञकर्त्ता, यज्ञरूप, यज्ञाङ्ग एवं यज्ञरक्षक हैं, आपके अतिरिक्त और कोई यज्ञ का रक्षक नहीं है। इसलिए हे प्रभो ! इस यज्ञ की रक्षा करो, इस यज्ञ की रक्षा करो ॥ ४२ ॥

ब्रह्माजी बोले—भयभीत हुए ऋषियों के वचन सुनकर वीरभद्र के साथ युद्ध करने के लिए भगवान् विष्णु तैयार हो गये ॥ ४३ ॥ चतुर्भुज भगवान् विष्णु ने कवच धारणकर हाथ में चक्र सुदर्शन ले लिया। और वे युद्ध करने के लिए यज्ञमण्डप से बाहर निकले ॥ ४४ ॥ तब गणों के सहित वीरभद्र ने अपने हाथ में त्रिशूल लेकर कवचधारी विष्णु को युद्ध के लिए आये हुए देखा ॥ ४५ ॥ विष्णु को देखते ही वीरभद्र की भृकुटी टेढ़ी हो गयी। और वे विष्णु की ओर इस प्रकार देखने लगे जैसे यमराज पापियों को अथवा सिंह मतवाले हाथी की ओर देखता है ॥ ४६ ॥ महावीर गणों से युक्त अरिमर्दन उस वीरभद्र ने युद्ध के लिए समुद्यत हुए विष्णु को देखकर क्रोध से शीघ्रतापूर्वक कहा—॥ ४७ ॥

वीरभद्र कहने लगे—हे हरे, हे महादेव ! आपने शिवजी के शपथ की अवहेलना क्यों की ? और आप के चित्त में इतना गर्व क्यों हुआ ? ॥ ४८ ॥ भला आप ही सोचें कि क्या आपमें शिव के शपथ को उल्लङ्घन करने की शक्ति है ? मैं क्या और कोई भी हो इस बात को आप नहीं समझते। आप ही सोचिए कि शिव के क्रोध से आपकी रक्षा करने की सामर्थ्य इस तीनों लोक में किसके पास है ॥ ४९ ॥ आप किस निमित्त से यहाँ पर आये हुए हैं यह तो मैं नहीं जानता, किन्तु आप ही सोचिए कि क्या आपमें इस यज्ञ को नष्ट होने से बचाने की सामर्थ्य है ? ॥ ५० ॥ इस यज्ञ में सती ने जो किया, क्या आपने उसे नहीं देखा ? अथवा दधीच ने जो कहा, क्या आपने उसे नहीं सुना ॥ ५१ ॥ निश्चय ही आप इस यज्ञ में

पातयिष्यामि भूपृष्ठे ज्वालयिष्यामि वह्निना । दग्धं भवन्तमधुना पेषयिष्यामि सत्वरम् ॥५४॥
रे रे हरे दुराचार महेश विमुखाधम ! । श्रीमहारुद्रमाहात्म्यं किन्न जानासि पावनम् ॥५५॥
तथापि त्वं महाबाहो ! योद्धुकामोऽग्रतः स्थितः । नेष्यामि पुनरावृत्तिं यदि तिष्ठेस्त्वमात्मना ॥५६॥

ब्रह्मोवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वीरभद्रस्य बुद्धिमान् । उवाच विहसन् प्रीत्या विष्णुस्तत्र सुरेश्वरः ॥५७॥

विष्णुरुवाच

शृणु त्वं वीरभद्राद्य प्रवक्ष्यामि त्वदग्रतः । न रुद्रविमुखं मां त्वं वद शङ्करसेवकम् ॥५८॥
अनेन प्रार्थितः पूर्वं यज्ञार्थं च पुनः पुनः । दक्षेणाविदितार्थेन कर्मनिष्ठेन मौढ्यतः ॥५९॥
अहं भक्तपराधीनस्तथा सोऽपि महेश्वरः । दक्षो भक्तो हि मे तात ! तस्मादत्रागतो मखे ॥६०॥
शृणु प्रतिज्ञां मे वीर रुद्रकोपसमुद्भव । रुद्रतेजःस्वरूपो हि सुप्रतापालय प्रभो ॥६१॥
अहं निवारयामि त्वां त्वं च मां विनिवारय । तद्भविष्यति यद्भावि करिष्येऽहं पराक्रमम् ॥६२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तवति गोविन्दे प्रहस्य स महाभुजः । अवदत् सुप्रसन्नोऽस्मि त्वां ज्ञात्वाऽस्मत् प्रभोः प्रियम् ॥६३॥
ततो विहस्य सुप्रीतो वीरभद्रो गणाग्रणीः । प्रश्रयावनतोऽवादीद् विष्णुं देवं हि तत्त्वतः ॥६४॥

वीरभद्र उवाच

तव भावपरीक्षार्थमित्युक्तं मे महाप्रभो । इदानीं तत्त्वतो वच्मि शृणु त्वं सावधानतः॥ ६५॥

अवदान के लिए आये हुए हैं। अतः मैं आपको इसका फल शीघ्र ही दूँगा ॥ ५२ ॥ हे विष्णो ! मैं इस त्रिशूल से तुम्हारा वक्षःस्थल अभी विदीर्ण करूँगा। अब आपका जो रक्षक हो वह मेरे सामने आवे ॥५३॥ शिव के शपथोल्लङ्घन से दग्ध हुए आपको मैं अभी पृथ्वी पर धराशायी करूँगा। अथवा अग्नि से भस्म कर दूँगा। अथवा चूर्ण-चूर्ण कर पीस डालूँगा ॥ ५४ ॥ हे महेशविमुख, दुराचारी, अधम विष्णो ! क्या तुम भगवान् रुद्र के परम पावन माहात्म्य को नहीं जानते ॥ ५५ ॥ जो मुझसे युद्ध करने के लिए अग्रसर हुए हो। अस्तु, यदि आप इस युद्ध मैदान से नहीं भागे तो मैं तुम्हें ऐसे स्थान पर भेज दूँगा जहाँ जाकर पुनः लौटना न पड़े ॥ ५६ ॥

ब्रह्मा ने कहा—सुरेश्वर महाबुद्धिमान् विष्णु वीरभद्र की बात सुनकर प्रीतिपूर्वक हँसते हुए बोले-॥ ५७ ॥

विष्णु बोले—हे वीरभद्र ! तुम मेरी बात सुनो, जिसे मैं तुम्हारे आगे अभी कहता हूँ। मुझे शंकर से विमुख मत समझो, मैं भी उन्हीं का सेवक हूँ ॥ ५८ ॥ शिवतत्त्व से अनभिज्ञ केवल कर्म में विश्वास करने वाले इस दक्ष ने मूर्खतावश मुझसे यज्ञ में पधारने के लिए बारम्बार प्रार्थना की थी ॥ ५९ ॥ मैं अपने भक्त के पराधीन हूँ, जिस प्रकार भगवान् शंकर अपने भक्त के अधीन रहते हैं। दक्ष मेरा भक्त है, इसलिए मैं उसके यज्ञ में आया हूँ ॥६०॥ हे रुद्र के कोप से उत्पन्न होने वाले वीरभद्र ! मैं जानता हूँ कि तुम रुद्रतेज स्वरूप तथा रुद्र के प्रताप के मूर्तिमान रूप हो। तुम मेरी प्रतिज्ञा सुनो ॥ ६१ ॥ मैं इस यज्ञ की रक्षा के लिए तुमसे युद्ध करूँगा और तुम भी मुझसे दिल खोलकर युद्ध करो। चाहे युद्ध का परिणाम जो हो, मैं अपना पराक्रम अवश्य प्रकट करूँगा ॥ ६२ ॥

ब्रह्माजी बोले—विष्णु की बात सुनकर महाबलशाली वीरभद्र हँसते हुए बोले। हे विष्णो ! मैं तुम्हें अपने प्रभु शिव का भक्त जान कर परम प्रसन्न हूँ ॥ ६३ ॥ तदनन्तर गणों के सेनापति वीरभद्र हँसकर प्रसन्न हो बड़े विनय के साथ भगवान् विष्णु से बोले-॥ ६४॥

यथा शिवस्तथा त्वं हि यथा त्वं च तथा शिवः । इति वेदा वर्णयन्ति शिवशासनतो हरे ॥६६॥
शिवाज्ञया वयं सर्वे सेवकाः शङ्करस्य वै । तथापि च रमानाथ ! प्रवादोचितमादरात् ॥६७॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य वीरभद्रस्य सोऽच्युतः । प्रहस्य चेदं प्रोवाच वीरभद्रमिदं वचः ॥६८॥

विष्णुरुवाच

युद्धं कुरु महावीर ! मया सार्द्धमशङ्कितः । तवाऽस्त्रैः पूर्यमाणोऽहं गमिष्यामि स्वमाश्रमम् ॥६९॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा हि विरम्यासौ सन्नद्धोऽभूद्रणाय च । स्वगणैर्वीरभद्रोऽपि सन्नद्धोऽथ महाबलः ॥७०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे विष्णुवीरभद्र-
संवादवर्णनं नाम षड्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

(विष्णु आदि देवों द्वारा शिवगण-वीरभद्र के भयङ्कर संग्राम का वर्णन एवं दक्ष का मरण)

ब्रह्मोवाच

वीरभद्रोऽथ युद्धे वै विष्णुना स महाबलः । संस्मृत्य शङ्करं चित्ते सर्वापद्विनिवारणम् ॥ १ ॥
आरुह्य स्यन्दनं दिव्यं सर्वं वैरिविमर्दनः । गृहीत्वा परमास्त्राणि सिंहनादं जगर्ज ह ॥ २ ॥
विष्णुश्चापि महाघोषं पाञ्चजन्याभिधं निजम् । दध्मौ बली महाशङ्खं स्वकीयान् हर्षयन्निव ॥ ३ ॥
तच्छ्रुत्वा शङ्खनिर्ह्रादं देवा ये च पलायिताः । रणं हित्वा गताः पूर्वं ते द्रुतं पुनराययुः ॥ ४ ॥

वीरभद्र बोले—हे महाप्रभो ! मैंने आपके भावों की परीक्षा के लिए ही ऐसे वचन कहे थे। अतः मैं यथार्थ रूप से अब जो कहता हूँ उसे सुनो ॥ ६५ ॥ जो शिव हैं वही आप हैं और जो आप हैं वही शिव हैं। शिव के अनुशासन से वेद भी ऐसा ही वर्णन करते हैं ॥ ६६ ॥ हे विष्णो ! हम लोग तो शिव के सेवक हैं। इसलिए हे रमानाथ ! उनके आदर के लिए उनकी आज्ञा से ही आपके साथ इस प्रकार का वाद-विवाद किया हूँ ॥ ६७ ॥

ब्रह्मा बोले—भगवान् विष्णु वीरभद्र की बात सुनकर वीरभद्र के लिए हितकारी वचन बोले ॥६८॥

विष्णु ने कहा—हे महावीर ! तुम निःशङ्क भाव से मेरे साथ युद्ध करो। जब मुझे अपने अस्त्रों से घायल कर दोगे तो मैं अपने आश्रम को चला जाऊँगा ॥ ६९ ॥

ब्रह्माजी बोले—इतना कह कर भगवान् विष्णु चुप हो गये। और युद्ध करने के लिए तैयार हो गये। इधर वीरभद्र भी अपने गणों के साथ युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गये ॥ ७० ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय सतीखण्ड में विष्णु-वीरभद्र-संवादवर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३६ ॥

*

ब्रह्मा बोले—महाबलवान् वीरभद्र ने विष्णु के साथ युद्ध में सर्वापत्ति को निवारण करने वाले शङ्कर को अपने चित्त में स्मरण किया ॥ १ ॥ शत्रुमर्दन वीरभद्र दिव्य रथ पर सवार होकर और बड़े-बड़े भयानक अस्त्रों को लेकर युद्धभूमि में गरजने लगे ॥ २ ॥ इधर विष्णु ने भी अपने पक्ष के योद्धाओं को हर्षित करते हुए महान् शब्द करने वाले अपने पाञ्चजन्य शंख को बजाया ॥ ३ ॥ उस पाञ्चजन्य के शब्द को सुनकर जो देवता युद्ध का मैदान छोड़कर भाग गये थे वे सभी शीघ्र ही लौट

वीरभद्रगणैस्तेषां लोकपालाः सवासवाः । युद्धं चक्रुस्तथा सिंहनादं कृत्वा बलान्विताः ॥ ५ ॥
गणानां लोकपालानां द्वन्द्वयुद्धं भयावहम् । अभवत्तत्र तुमुलं गर्जतां सिंहनादतः ॥ ६ ॥
नन्दिना युयुधे शक्रोऽनलो वै वैष्णवास्तथा । कुबेरोऽपि हि कूष्माण्डपतिश्च युयुधे बली ॥ ७ ॥
तदेन्द्रेण हतो नन्दी वज्रेण शतपर्वणा ॥ ८ ॥
नन्दिना च हतः शक्रस्त्रिशूलेन स्तनान्तरे ॥ ९ ॥
बलिनौ द्वावपि प्रीत्या युयुधाते परस्परम् । नानाघातांश्च कुर्वन्तो नन्दिशक्रौ जिगीषया ॥१०॥
शक्त्या जघान चाश्मानं शुचिः परमकोपनः । सोऽपि शूलेन तं वेगाच्छितधारेण पावकम् ॥११॥
यमेन सह सङ्ग्रामं महालोको गणाग्रणीः । चकार तुमुलं वीरो महादेवं स्मरन् मुदा ॥१२॥
नैर्ऋतेन समागम्य चण्डश्च बलवत्तरः । युयुधे परमास्त्रैश्च नैर्ऋतिं निविडं नयन् ॥१३॥
वरुणेन समं वीरो मुण्डश्चैव महाबलः । युयुधे परया शक्त्या त्रिलोकीं विस्मयन्निव ॥१४॥
वायुना च हतो भृङ्गी स्वास्त्रेण परमोजसा । भृङ्गिणा च हतो वायुस्त्रिशूलेन प्रतापिना ॥१५॥
कुबेरेणैव सङ्गम्य कूष्माण्डपतिरादरात् । युयुधे बलवान् वीरो ध्यात्वा हृदि महेश्वरम् ॥१६॥
योगिनीचक्रसंयुक्तो भैरवीनायको महान् । विदीर्य्य देवानखिलान् पपौ शोणितमद्भुतम् ॥१७॥
क्षेत्रपालास्तथा तत्र बुभुक्षुः सुरपुङ्गवान् । काली चापि विदार्यैव तान् पपौ रुधिरं बहु ॥१८॥
अथ विष्णुर्महातेजा युयुधे तैश्च शत्रुहा । चक्रं चिक्षेप वेगेन दहन्निव दिशो दश ॥१९॥
क्षेत्रपालः समायान्तं चक्रमालोक्य वेगतः । तत्रा गत्यागतो वीरश्चाग्रसत् सहसा बली ॥२०॥
चक्रं ग्रसितमालोक्य विष्णुः परपुरञ्जयः । मुखं तस्य परामृज्य तमुद्गालितवानरिम् ॥२१॥

आये ॥ ४ ॥ तब सेनासहित समस्त इन्द्रादि लोकपाल वीरभद्र के गणों के साथ सिंहनाद कर युद्ध करने लगे ॥ ५ ॥ उस समय सिंहनाद की गर्जना करते हुए गणों एवं लोकपालों में महाभयङ्कर घनघोर द्वन्द्व युद्ध छिड़ गया ॥ ६ ॥ नन्दी से इन्द्र का, अनल से वैष्णवों का और कूष्माण्डपतियों का महाबलि कुबेर के साथ युद्ध होने लगा ॥ ७ ॥ तब इन्द्र ने अपने शतपर्व नामक वज्र से नन्दीश्वर पर प्रहार किया ॥ ८ ॥ और नन्दी ने भी इन्द्र की छाती में त्रिशूल से मारा ॥ ९ ॥ दोनों बलवान् अपने-अपने विजय की इच्छा से एक-दूसरे पर प्रहार करते हुए परस्पर प्रीतिपूर्वक लड़ने लगे ॥ १० ॥ परम क्रोधी अग्नि ने अपनी शक्ति से अश्मा को मारा। उसने भी बड़े वेग से तीक्ष्णधार वाले अपने त्रिशूल से अग्नि पर प्रहार किया ॥ ११ ॥ गणों के यूथपति महालोक ने भी प्रसन्नता से शिव का स्मरण करते हुए यमराज के साथ घनघोर युद्ध प्रारम्भ किया ॥ १२ ॥

बलवान् चण्ड ने निर्ऋति के साथ युद्ध करना प्रारम्भ किया। उसने बड़े-बड़े अस्त्रों से छलपूर्वक निर्ऋति पर प्रहार किया ॥ १३ ॥ महाबली मुण्ड ने भी वरुण के साथ युद्ध करते हुए अपनी श्रेष्ठ शक्ति से वरुण पर प्रहार किया। जिससे त्रिलोकी में आश्चर्य छा गया ॥ १४ ॥ वायु ने अपने अस्त्र से भृङ्गी पर प्रहार किया। महाप्रतापी भृङ्गी ने भी त्रिशूल से वायु पर प्रहार किया ॥ १५ ॥ कूष्माण्डपति ने महेश्वर का स्मरण करते हुए वेग के साथ कुबेर से युद्ध करना प्रारम्भ किया ॥ १६ ॥ भैरवीपति योगिनियों के समूह के साथ समस्त देवताओं को विदीर्ण कर उनका रक्तपान करना प्रारम्भ कर दिया। यह एक विचित्र घटना हुई ॥ १७ ॥ क्षेत्रपाल भी इसी प्रकार देवताओं का भक्षण करने लगे। और काली भी देवताओं को विदीर्ण कर उनका रक्तपान करने लगी ॥ १८ ॥ शत्रुमर्दन महातेजस्वी विष्णु भी गणों के साथ युद्ध करने लगे। उन्होंने क्रोध से दशो दिशाओं को जलाते हुए अपने चक्र से प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया ॥ १९ ॥

वेग से आते हुए उस चक्र को देखकर महाबलवान् क्षेत्रपाल वहाँ सहसा पहुँच गया। उसने उस चक्र को ग्रस लिया ॥ २० ॥ शत्रुमर्दन विष्णु ने अपने चक्र को ग्रसित हुआ देख अपने उस शत्रु का मुख

स्वचक्रमादाय महानुभावश्चुकोप चातीव भवैकभर्त्ता।
महाबली तैर्युयुधे प्रवीरैः संक्रुद्धनानायुधधारकोऽस्त्रैः ॥२२॥
चक्रे महारणं विष्णुस्तैः सार्द्धं युयुधे क्षुदा। नानायुधानि संक्षिप्य तुमुलं भीमविक्रमम् ॥२३॥
अथ ते भैरवाद्याश्च युयुधुस्तेन भूरिशः। नानास्त्राणि विमुञ्चन्तः सङ्क्रुद्धाः परमोजसा ॥२४॥
इत्थं तेषां रणं दृष्ट्वा हरिणाऽतुलतेजसा। विनिवृत्य समागम्य तान् स्वयं युयुधे बली ॥२५॥
अथ विष्णुर्महातेजाश्चक्रमुद्यम्य मूर्च्छितः। युयुधे भगवांस्तेन वीरभद्रेण माधवः ॥२६॥
तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम्। महावीराब्धिपत्योऽस्तु नानास्त्रधरयोर्मुने ! ॥२७॥
विष्णोर्योगबलात्तस्य देवदेव ! सुदारुणाः। शङ्ख-चक्र-गदाहस्ता असङ्ख्याताश्च जज्ञिरे ॥२८॥
ते चापि युयुधुस्तेन वीरभद्रेण भाषता। विष्णुवद् बलवन्तो हि नानायुधधरागणाः ॥२९॥
तान् सर्वानपि वीरोऽसौ नारायणसमप्रभान्। भस्मीचकार शूलेन हत्वा स्मृत्वा शिवं प्रभुम् ॥३०॥
ततश्चोरसि तं विष्णुं लीलयैव रणाजिरे। जघान वीरभद्रो हि त्रिशूलेन महाबली ॥३१॥
तेन घातेन सहसा विहतः पुरुषोत्तमः। पपात च तदा भूमौ विसंज्ञोऽभून् मुने हरिः ॥३२॥
ततो यज्ञोऽद्भुतं तेजः प्रलयानलसन्निभम्। त्रैलोक्यदाहकं तीव्रं वीराणामपि भीकरम् ॥३३॥
क्रोधरक्तेक्षणः श्रीमान् पुनरुत्थाय स प्रभुः। प्रहर्तुं चक्रमुद्यम्य ह्यतिष्ठत् पुरुषर्षभः ॥३४॥
तस्य चक्रं महारौद्रं कालादित्यसमप्रभम्। व्यष्टम्भयददीनात्मा वीरभद्रः शिवः प्रभुः ॥३५॥
मुने शम्भोः प्रभावात्तु मायेशस्य महाप्रभोः। न चचाल हरेश्चक्रं करस्थं स्तम्भितं ध्रुवम् ॥३६॥
अथ विष्णुर्गणेशेन वीरभद्रेण भाषता। अतिष्ठत् स्तम्भितस्तेन शृङ्गवानिव निश्चलः ॥३७॥
ततो विष्णुः स्तम्भितो हि वीरभद्रेण नारद !। यज्वोपमन्त्रणमनो नीरस्तम्भनकारकम् ॥३८॥

पकड़ लिया। और उससे चक्र उगलवा लिया ॥ २१ ॥ इस प्रकार अपना चक्र प्राप्त कर जगत्कर्त्ता महाबलवान् विष्णु क्रोध में भरकर उन गणों के साथ नाना प्रकार के अस्त्रों को लेकर भयङ्कर युद्ध करने लगे ॥ २२-२३ ॥ शिव के भैरवादि गण भी क्रोध में भरकर अनेक प्रकार के शस्त्रों को छोड़ते हुए विष्णु के साथ युद्ध करने लगे ॥ २४ ॥ इस प्रकार उन गणों का महाभयानक युद्ध देखकर विष्णु कभी पीछे हटकर तथा कभी आगे बढ़कर उन गणों के साथ युद्ध करने लगे ॥ २५ ॥ तदनन्तर महातेजस्वी भगवान् विष्णु ने अपना चक्र लेकर वीरभद्र के साथ युद्ध करना प्रारम्भ किया ॥ २६ ॥ हे मुने ! उस समय अनेक अस्त्रों को धारण करने वाले उन दोनों वीरभद्र एवं विष्णु में परस्पर रोंगटे खड़े कर देने वाला घनघोर युद्ध होने लगा ॥ २७ ॥ विष्णु भगवान् के शरीर से उनके योगबल द्वारा शंख, चक्र तथा गदा धारण करने वाले असंख्य वीर प्रकट हो गये ॥ २८ ॥ वे सभी वीर विष्णु के समान बलवान् तथा नाना प्रकार के शस्त्र धारण किये हुए थे। उन्होंने वीरभद्र के साथ युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया ॥ २९ ॥ तब वीरभद्र ने भगवान् शंकर का स्मरण कर विष्णु के समान तेजस्वी उन सभी वीरों को त्रिशूल से मारकर भस्म कर दिया ॥ ३० ॥ उस महाबली वीरभद्र ने रण-प्राङ्गण में ही लीलापूर्वक विष्णु के वक्षःस्थल पर त्रिशूल से प्रहार किया ॥ ३१ ॥ हे मुने ! उस प्रहार से विष्णु भगवान् घायल होकर मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े ॥३२॥ और महाभयानक प्रलयाग्नि के समान देवताओं को भयभीत करने वाला एक अद्भुत तेज प्रकट हुआ ॥ ३३ ॥ तदनन्तर विष्णु भगवान् उठकर नेत्रों को लाल किये हुए अपना चक्र उठाकर वीरभद्र को मारने के लिए उद्यत हो गये ॥ ३४ ॥ शिवावतार वीरभद्र ने निःशङ्क होकर प्रलयकालीन आदित्य के समान महातेजस्वी उस चक्र को वहीं पर रोक दिया ॥ ३५ ॥ हे मुने ! मायेश भगवान् शंकर के प्रभाव से विष्णु के हाथ में स्थित उस चक्र की गति रुक गयी और वह वहीं पर स्तम्भित हो गया ॥ ३६ ॥ इस प्रकार गणेश्वर वीरभद्र के द्वारा भगवान् विष्णु शिखर युक्त पर्वत के समान जहाँ-के-तहाँ स्तम्भित रह गये ॥ ३७ ॥

ततः स्तम्भननिर्मुक्तः शार्ङ्गधन्वा रमेश्वरः। शार्ङ्गं जग्राह स क्रुद्धः स्वधनुः सशरं मुने! ॥३९॥
त्रिभिश्च घर्षितो बाणैस्तेन शार्ङ्गं धनुर्हरेः। वीरभद्रेण तत्तात! त्रिधाऽभूत्तत्क्षणान्मुने! ॥४०॥
अथ विष्णुर्मया वाण्या बोधितस्तं महागणम्। असह्यवर्चसं ज्ञात्वा ह्यन्तर्धातुं मनो दधे ॥४१॥
ज्ञात्वा च तत्सर्वमिदं भविष्यं सतीकृतं दुष्प्रसहं परेषाम्।
गताः स्वलोकं स्वगणान्वितास्तु स्मृत्वा शिवं सर्वपतिं स्वतन्त्रम् ॥४२॥
सत्यलोकगतश्चाऽहं पुत्रशोकेन पीडितः। अचिन्तयं सुदुःखार्तो मया किं कार्यमद्य वै ॥४३॥
विष्णौ मयि गते चैव देवाश्च मुनिभिः सह। विनिर्जिता गणैः सर्वे ये ते यज्ञोपजीविनः ॥४४॥
समुपद्रवमालक्ष्य विध्वस्तं च महामखम्। मृगस्वरूपो यज्ञो हि महाभीतोऽपि दुद्रुवे ॥४५॥
तं तदा मृगरूपेण धावन्तं गगनं प्रति। वीरभद्रः समादाय विशिरस्कमथाकरोत् ॥४६॥
ततः प्रजापतिं धर्मं कश्यपं च प्रगृह्य सः। अरिष्टनेमिनं वीरो बहुपुत्रमुनीश्वरम् ॥४७॥
मुनिमङ्गिरसं चैव कृशाश्वं च महागणः। जघान मूर्ध्नि पादेन दत्तं च मुनिपुङ्गवम् ॥४८॥
सरस्वत्याश्च नासाग्रं देवमातुस्तथैव च। चिच्छेद करजाग्रेण वीरभद्रः प्रतापवान् ॥४९॥
ततोऽन्यानपि देवादीन् विदार्य पृथिवीतले। पातयामास सोऽयं वै क्रोधाक्रान्तातिलोचनः ॥५०॥
वीरभद्रो विदार्य्यापि देवान्मुख्यान्मुनीनपि। नाऽभूच्छान्तो द्रुतक्रोधः फणिराडिव मण्डितः ॥५१॥
वीरभद्रोद्धृताराति: केसरीव वनद्विपान्। दिशो विलोकयामास कः पुत्रास्तीत्यनुक्षणम् ॥५२॥
व्यपोथयद् भृगुं यावन्मणिभद्रः प्रतापवान्। पदाक्रम्योरसि तदाऽकार्षीत्तच्छ्मश्रुलुञ्चनम् ॥५३॥
चण्डश्चोत्पाटयामास पूष्णो दन्तान् प्रवेगतः। शप्यमाने हरे पूर्वं योऽहसद्दर्शयन्दतः ॥५४॥

हे नारद! वीरभद्र के द्वारा विष्णु को इस प्रकार स्तम्भित देख याज्ञिकों ने अपने यज्ञ के मन्त्रों से उन्हें स्तम्भन से रहित कर दिया ॥ ३८ ॥ इस प्रकार स्तम्भन से मुक्त हुए विष्णु ने क्रुद्ध होकर अपने शार्ङ्गधन्वा नामक धनुष पर बाण चढ़ाया ॥ ३९ ॥ हे मुने! हे तात! उसी समय वीरभद्र ने तीन बाण चलाये, जिससे उस धनुष के तीन टुकड़े होकर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥४०॥ तब सरस्वती वाणी के साथ जाकर वारम्बार उन्हें समझाया। विष्णु ने उस वीरभद्र को महातेजस्वी समझकर अन्तर्धान होने की इच्छा की ॥ ४१ ॥ उन्होंने सती के द्वारा उत्पन्न हुए यज्ञ के समस्त भविष्य को समझ लिया। और वे अपने समस्त परिकरों के साथ सर्वपति स्वतन्त्र पमेश्वर का स्मरण करते हुए अपने लोक को चले गये ॥ ४२ ॥ इधर मैं भी दक्ष-यज्ञ के विनाश से शोक करता हुआ सत्यलोक को चला आया। और दुःखी हो विचार करने लगा कि अब मुझे क्या करना चाहिए ॥ ४३ ॥ तदनन्तर मेरे तथा विष्णु के चले आने पर समस्त यज्ञोपजीवी देवगण मुनियों के साथ वीरभद्र के द्वारा जीत लिये गये ॥ ४४ ॥ यह महान् उपद्रव तथा यज्ञ का विध्वंस देखकर स्वयं भगवान् यज्ञ भी मृग का रूप धारण कर वहाँ से भाग आये ॥ ४५ ॥ यज्ञस्थल से मृग रूप धारण कर भागते हुए उस यज्ञ को वीरभद्र ने पकड़ लिया और उनका सिर काटकर उन्हें बिना सिर का कर दिया ॥ ४६ ॥ अनन्तर प्रजापति, धर्म, कश्यप, अरिष्टनेमि, बहुपुत्र मुनि अङ्गिरा, कृशाश्व तथा महामुनि दत्त को पकड़कर वीरभद्र ने उनके शिर पर लात मारी ॥ ४७-४८ ॥ प्रतापी वीरभद्र ने सरस्वती की तथा देवमाता अदिति की नाक नखों कें अग्रभाग से काट डाली ॥ ४९ ॥ क्रोध से भरे हुए उस वीरभद्र ने नेत्रों को लाल-लाल कर अन्यान्य देवताओं को भी विदीर्ण कर उन्हें पृथ्वी पर पटक दिया ॥ ५० ॥

इस प्रकार मुख्य-मुख्य देवताओं तथा मुनियों को विदीर्ण कर देने पर भी क्रुद्ध हुए सर्प के समान वीरभद्र का क्रोध शान्त न हुआ ॥ ५१ ॥ जिस प्रकार सिंह वन के हाथियों की ओर देखता है उसी प्रकार शत्रुओं को मारकर भी वह वीरभद्र कौन शत्रु कहाँ है? इस इच्छा से दिशाओं की ओर देखने लगे ॥ ५२ ॥ प्रतापी मणिभद्र ने भृगु को दबोच कर उन्हें पृथ्वी पर पटक दिया। और उनके छाती पर पैर रखकर उनकी दाढ़ी उखाड़ ली ॥ ५३ ॥ दक्ष के द्वारा शिवजी को शाप दिये जाते देखकर

नन्दी भगस्य नेत्रे हि पातितस्य रुषा भुवि । उज्जहार स दक्षोऽक्ष्णा यः शपन्तमसूसुचत् ॥५५॥
विडम्बिता स्वधा तत्र सा स्वाहा दक्षिणा तथा । मन्त्रास्तन्त्रास्तथा चाऽन्ये तत्रस्था गणनायकैः ॥५६॥
ववृषुस्ते पुरीषाणि वितानाऽग्नौ रुषा गणाः । अनिर्वाच्यं तदा चक्रुर्गणा वीरास्तमध्वरम् ॥५७॥
अन्तर्वेद्यन्तरगतं निलीनं तद्भयाद् बलात् । आनिनाय समाज्ञाय वीरभद्रः स्वभूसुतम् ॥५८॥
कपोलेऽस्य गृहीत्वा तु खड्गेनोपहतं शिरः । अभेद्यमभवत्तस्य तच्च योगप्रभावतः ॥५९॥
अभेद्यं तच्छिरो मत्वा शस्त्रास्त्रैश्च तु सर्वशः । करेण त्रोटयामास पद्भ्यामाक्रम्य चोरसि ॥६०॥
तच्छिरस्तस्य दुष्टस्य दक्षस्य हरवैरिणः । अग्निकुण्डे प्रचिक्षेप वीरभद्रो गणाग्रणीः ॥६१॥
रेजे तदा वीरभद्रस्त्रिशूलं भ्रामयन् करे । क्रुद्धा गणाश्च संवर्ताः प्रज्वाल्य पर्वतोपमाः ॥६२॥
अनायासेन हत्वैतान् वीरभद्रस्ततोऽग्निना । ज्वालयामास सक्रोधो दीप्ताग्निः शलभानिव ॥६३॥
वीरभद्रस्ततो दग्धान् दृष्ट्वा दक्षपुरोगमान् । अट्टाट्टहासमकरोत् पूरयंश्च जगत्-त्रयम् ॥६४॥
वीरश्रिया वृतस्तत्र ततो नन्दमसम्भवा । पुष्पवृष्टिरभूद् दिव्या वीरभद्रे गणान्विते ॥६५॥
ववुर्गन्धवहाः शीताः सुगन्धाः सुखदाः शनैः । देवदुन्दुभयो नेदुः सममेव ततः परम् ॥६६॥
कैलासं स ययौ वीरः कृतकार्यस्ततः परम् । विनाशितद्दढध्वान्तो भानुमानिव सत्वरम् ॥६७॥
कृतकार्यं वीरभद्रं दृष्ट्वा सन्तुष्टमानसः । शम्भुर्वीरगणाध्यक्षं चकार परमेश्वरः ॥६८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे
यज्ञविध्वंसवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

जो पूषा अपना दाँत दिखा कर हँस रहा था, उस पूषा के दाँतों को गणेश्वर चण्ड ने बड़े वेग से उखाड़ लिया ॥ ५४ ॥ नन्दीश्वर ने भग देवता को पृथ्वी पर पटक दिया और क्रोध से उसके दोनों नेत्र उखाड़ लिये, जिसने अपनी आँखों से शाप देते हुए दक्ष को शिव की ओर संकेत किया था ॥ ५५ ॥ गणेश्वरों ने वहाँ रहने वाले स्वाहा, स्वधा, दक्षिणा मन्त्र एवं तन्त्रों को भी तहस-नहस कर दिया ॥ ५६ ॥ गणेश्वरों ने क्रोध में भरकर उस यज्ञाग्नि में विष्टा आदि की वर्षाकर यज्ञ की ऐसी दुर्गति कर दी जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ५७ ॥ भय से अन्तर्वेदी में छिपे हुए दक्ष को वीरभद्र ने देख लिया और उसे वहाँ से पकड़ लिया ॥ ५८ ॥ उसने दक्ष का मुँह पकड़कर उसके शिर पर खड्ग से प्रहार किया । किन्तु योग के प्रभाव से उसका शिर नहीं कटा ॥ ५९ ॥ जब उसने सभी शस्त्रास्त्रों से दक्ष के सिर को कटना असम्भव समझ लिया । तब उसे पटक कर उसकी छाती अपने पैरों से दबाकर अपने हाथ से ही उसका शिर तोड़ दिया ॥ ६० ॥ और उस शिवद्रोही दुष्ट दक्ष के सिर को तोड़कर अग्निकुण्ड में फेंक दिया ॥ ६१ ॥ फिर वह वीरभद्र अपने हाथ से त्रिशूल घुमाता हुआ इस प्रकार शोभित हुआ, मानो पर्वत के समान संवर्त्ताग्नि सारे त्रिलोकी को जलाकर क्रोध में भरे हुए खड़े हों ॥ ६२ ॥

जिस प्रकार प्रचण्ड अग्नि पतङ्गों को जलाती है, उसी प्रकार उस वीरभद्र ने भी विना परिश्रम के ही उन सभी देवताओं को मारकर अपनी क्रोधाग्नि से उन्हें जला दिया ॥६३॥ इस प्रकार प्रदीप्त अग्नि द्वारा दक्षादि समस्त शत्रुओं को जलाकर वीरभद्र ने भयानक अट्टहास किया, जो समस्त त्रिलोक में व्याप्त हो गया ॥ ६४ ॥ उस समय विजयलक्ष्मी से शोभित हुए उस वीरभद्र पर नन्दनवन के दिव्य पुष्पों की वर्षा हुई ॥ ६५ ॥ शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु धीरे-धीरे बहने लगे । और उसी के साथ ही आकाश में देवताओं ने नगाड़े बजाये ॥ ६६ ॥ इस प्रकार अपना सारा कार्य सम्पादन कर वह वीरभद्र कैलास पर्वत की ओर चल पड़ा । जिस प्रकार सूर्य अन्धकार का नाश कर आकाश में आगे बढ़ता है ॥ ६७ ॥ वीरभद्र को कार्य में सफल देख भगवान् शङ्कर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और उन्होंने वीरभद्र को समस्त गणों का अध्यक्ष बना दिया ॥ ६८ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में यज्ञविध्वंसवर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

(मृत्युञ्जय के प्रभाव से दधीच को अमरत्व-प्राप्ति और राजा क्षुव द्वारा विष्णु की आराधना)

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य विधेरमितधीमतः । पप्रच्छ नारदः प्रीत्या विस्मितस्तं द्विजोत्तमः ॥ १ ॥

नारद उवाच

शिवं विहाय दक्षस्य सुरैर्यज्ञं हरिर्गतः । हेतुना केन तद् ब्रूहि यत्रावज्ञाऽभवत्ततः ॥ २ ॥
जानाति किं स शम्भुं नो हरिः प्रलयविक्रमम् । रणं कथं च कृतवान् तद्गणैरबुधो यथा ॥ ३ ॥
एष मे संशयो भूयांस्तं छिन्धि करुणानिधे ! । चरितं ब्रूहि शम्भोस्तु चित्तोत्साहकरं प्रभो ! ॥ ४ ॥

ब्रह्मोवाच

द्विजवर्य ! शृणु प्रीत्या चरितं शशिमौलिनः । यत्पृच्छते कुर्वतश्च सर्वसंशयहारकम् ॥ ५ ॥
दधीचस्य मुनेः शापाद् भ्रष्टज्ञानो हरिः पुरा । सामरो दक्षयज्ञं वै गतः क्षुवसहायकृत् ॥ ६ ॥

नारद उवाच

किमर्थं शप्तवान् विष्णुं दधीचो मुनिसत्तमः । कोपाकारः कृतस्तस्य हरिणा तत्सहायिना ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच

समुत्पन्नो महातेजा राजा क्षुव इति स्मृतः । अभून्मित्रं दधीचस्य मुनीन्द्रस्य महाप्रभोः ॥ ८ ॥
चिरात्तपःप्रसङ्गाद् वै वादः क्षुवदधीचयोः । महानर्थकरः ख्यातस्त्रिलोकेष्वभवत् पुरा ॥ ९ ॥
तत्र त्रिवर्णतः श्रेष्ठो विप्र एव न संशयः । इति प्राह दधीचो हि शिवभक्तस्तु वेदवित् ॥१०॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य दधीचस्य महामुनेः । क्षुवः प्राहेति नृपतिः श्रीमदेन विमोहितः ॥११॥

सूतजी बोले—अत्यन्त बुद्धिमान् ब्रह्मदेव के इस प्रकार के वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारदजी आश्चर्यान्वित हो पुनः प्रेम से पूछने लगे ॥ १ ॥

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन् ! शिवजी को छोड़कर देवताओं के साथ भगवान् विष्णु दक्ष के यज्ञ में क्यों चले गये । जिससे उनका तिरस्कार हुआ । आप इसका कारण कहिए ॥ २ ॥ क्या वे विष्णु प्रलय करने वाले शिव को नहीं जानते थे, उन्होंने अज्ञानियों के समान शिवगणों से युद्ध क्यों किया ? ॥ ३ ॥ हे करुणानिधे ! मेरे मन में उत्पन्न हुए इस महान् सन्देह को आप दूर कीजिए । और चित्त में उत्साह भरने वाला शिवचरित्र हमें सुनाइए ॥ ४ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे द्विजवर्य ! तुम प्रेम से शिवचरित्र का श्रवण करो । जो पूछने वालों के तथा कहने वालों के सन्देह को दूर करने वाला है ॥ ५ ॥ पूर्वकाल में महर्षि दधीच के शाप से विष्णु का ज्ञान नष्ट हो गया था । इसीलिए क्षुव राजा की सहायता करने वाले वे विष्णु देवताओं के साथ दक्ष के यज्ञ में चले गये ॥ ६ ॥

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन् ! मुनियों में श्रेष्ठ कहे जाने वाले दधीच ने विष्णु को क्यों शाप दिया । दधीच की सहायता करने वाले विष्णु ने उनका क्या अपकार किया, जिससे दधीच ने उन्हें शाप दिया ॥ ७ ॥

ब्रह्माजी बोले—पूर्वकाल में क्षुव नाम से प्रसिद्ध एक राजा उत्पन्न हुआ था । वह महाप्रभु दधीच मुनि का परम मित्र था ॥ ८ ॥ कुछ समय बीतने के पश्चात् तपस्या के प्रसङ्ग से महर्षि दधीच एवं क्षुव राजा में महान् अनर्थकारी विवाद हुआ, जो संसार भर में प्रसिद्ध है ॥ ९ ॥ वेदज्ञ शिवभक्त महर्षि दधीच का पक्ष था कि तीनों वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है, इसमें सन्देह नहीं ॥ १० ॥ महामुनि दधीच के वचन को सुनकर लक्ष्मी के मद से मोहित हुआ राजा क्षुव बोला—॥ ११ ॥

क्षुव उवाच

अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः । तस्मान्नृपो वरिष्ठो हि वर्णाश्रमपतिः प्रभुः ॥१२॥
सर्वदेवमयो राजा श्रुतिः ग्राहेति तत्परा । महती देवता या सा सोऽहमेव ततो मुने ! ॥१३॥
तस्माद् विप्राद् वरो राजा च्यवनेन विचार्यताम् । नावमन्तव्य एवाऽतः पूज्योऽहं सर्वथा त्वया ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा तथा मतं तस्य क्षुवस्य मुनिसत्तमः । श्रुतिस्मृतिविरुद्धं तं चुकोपातीव भार्गवः ॥१५॥
अथ क्रुद्धो महातेजा गौरवाच्चात्मनो मुने । अताडयत् क्षुवं मूर्ध्नि दधीचो वाममुष्टितः ॥१६॥
वज्रेण तं च चिच्छेद दधीचं ताडितः क्षुवः । जगर्जातीव सङ्क्रुद्धो ब्रह्माण्डाधिपतिः कुधीः ॥१७॥
पपात भूमौ निहतो तेन वज्रेण भार्गवः । शुक्रं सस्मार क्षुवकृद्भार्गवस्य कुलन्धरः ॥१८॥
शुक्रोऽथ सन्धयामास ताडितं च क्षुवेन तु । योगी दधीचस्य तदा देहमागत्य स द्रुतम् ॥१९॥
सन्धाय पूर्ववद्देहं दधीचस्याह भार्गवः । शिवभक्ताग्रणीर्मृत्युञ्जयविद्याप्रवर्तकः ॥२०॥

शुक्र उवाच

दधीच तात सम्पूज्य शिवं सर्वेश्वरं प्रभुम् । महामृत्युञ्जयं मन्त्रं श्रौतमग्र्यं वदामि ते ॥२१॥
त्र्यम्बकं यजामहे च त्रैलोक्यं पितरं प्रभुम् । त्रिमण्डलस्य पितरं त्रिगुणस्य महेश्वरम् ॥२२॥
त्रितत्त्वस्य त्रिवह्नेश्च त्रिधाभूतस्य सर्वतः । त्रिदिवस्य त्रिबाहोश्च त्रिधाभूतस्य सर्वतः ॥२३॥
त्रिदेवस्य महादेवः सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् । सर्वभूतेषु सर्वत्र त्रिगुणेषु कृतौ यथा ॥२४॥
इन्द्रियेषु तथाऽन्येषु देवेषु च गणेषु च । पुष्पे सुगन्धिवत् शूरः सुगन्धिममरेश्वरः ॥२५॥

क्षुव बोला—राजा अष्टलोकपालों के तेज से शरीर धारण करता है, वही सभी वर्णों एवं आश्रमों की रक्षा करता है, और लोक का प्रभु है॥१२॥ श्रुति भी 'सर्वदेवमयो नृपः' ऐसा कहकर उसका देवतात्व प्रतिपादन करती है। इसलिए हे मुने! राजा होने के कारण मैं तुम से श्रेष्ठ हूँ ॥ १३ ॥ हे च्यवनपुत्र दधीच! राजा ब्राह्मण से भी श्रेष्ठ है ऐसा विचारो, अतः राजा का अपमान कभी नहीं करना चाहिए, मैं तुम्हारा सर्वथा पूज्य हूँ ॥ १४ ॥

ब्रह्माजी बोले—भृगुकुलोत्पन्न महर्षि दधीच राजा क्षुव के इस प्रकार श्रुति-स्मृति विरुद्ध मत को सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध हो गय ॥ १५ ॥ हे महामुने नारद! महामुनि दधीच ने तब बड़े क्रोध के साथ अपने गौरव से उसके शिर में बायें घूँसे से प्रहार किया ॥ १६ ॥ ब्रह्माण्डाधिपतिं दुष्ट क्षुव ने आहत हो जाने से बड़ा क्रोध किया। और महर्षि दधीच पर वज्र से प्रहार कर बड़े जोर से गर्जना की ॥ १७ ॥ वज्र से आहत हुए महर्षि दधीच पृथ्वी पर गिर पड़े। तदनन्तर उन्होंने क्षुव को राजा बनाने वाले भार्गव-वंशभूषण शुक्र का स्मरण किया ॥ १८ ॥ शुक्राचार्य ने आते ही क्षुव के वज्र-प्रहार से टुकड़े हुए दधीच के शरीर को ठीक कर दिया ॥ १९ ॥ मृत्युञ्जयविद्या के प्रवर्त्तक शिवभक्ताग्रगण्य शुक्राचार्य ने दधीच के शरीर को पूर्ववत् ठीक कर उनसे कहने लगे ॥ २० ॥

शुक्र बोले—हे तात दधीच! मैं सर्वेश्वर प्रभु शंकर का पूजन कर श्रुति में कहे गये सभी मन्त्रों में श्रेष्ठ इस महामृत्युञ्जय मन्त्र का उपदेश तुम्हें करता हूँ ॥२१॥ (मन्त्रार्थ) मैं त्रिलोकी के पिता तीन नेत्र वाले शङ्कर का यजन करता हूँ। जो इस त्रिमण्डल (त्रिलोक) के पिता तथा सत्त्व, रज, तम आदि तीनों गुणों के परमेश्वर हैं ॥ २२ ॥ जो त्रितत्त्व, त्रिवह्नि एवं त्रिधास्वरूप के महादेव हैं, एवं जो त्रिदिव, त्रिबाहु तथा सर्वत्र तीनों रूपों से महादेव होकर स्थित हैं ॥ २३ ॥ जो त्रिदेवों के महादेव हैं एवं सुगन्धि तथा पुष्टि को बढ़ाने वाले हैं, जो समस्त प्राणियों में, तीनों गुणों में अपने कृतियों के समान व्याप्त हैं ॥२४॥ जो सब इन्द्रियों में, सब देवों में, सब गणों में, फूलों में रहने वाले सुगन्धि के समान व्याप्त हैं तथा सभी देवों के स्वामी हैं ॥ २५ ॥

पुष्टिश्च प्रकृतेर्यस्मात् पुरुषाद्वै द्विजोत्तम ! । महदादिविशेषान्त-विकल्पश्चापि सुव्रत ! ॥२६॥
विष्णोः पितामहस्यापि मुनीनां च महामुने ! । इन्द्रियस्य च देवानां तस्माद्वै पुष्टिवर्द्धनः ॥२७॥
तं देवममृतं रुद्रं कर्मणा तपसाऽपि वा । स्वाध्यायेन च योगेन ध्यानेन च प्रजापते ॥२८॥
सत्येनाऽन्येन सूक्ष्माग्रान् मृत्युपाशाद्भवः स्वयम् । बन्धमोक्षकरो यस्मादुर्वारुकमिव प्रभुः ॥२९॥
मृतसञ्जीवनीमन्त्रो मम सर्वोत्तमः स्मृतः । एवं जपपरः प्रीत्या नियमेन शिवं स्मरन् ॥३०॥
जप्त्वा हुत्वाऽभिमन्त्र्यैवं जलं पिब दिवानिशम् । शिवस्य सन्निधौ ध्यात्वा नास्ति मृत्युभयं क्वचित् ॥३१॥
कृत्वा न्यासादिकं सर्वं सम्पूज्य विधिवच्छिवम् । संविधायेदं निर्व्यग्रः शङ्करं भक्तवत्सलम् ॥३२॥
ध्यानमस्य प्रवक्ष्यामि यथा ध्यात्वा जपेन्मनुम् । सिद्धमन्त्रो भवेद्धीमान् यावच्छम्भुप्रभावतः ॥३३॥
हस्ताम्भोजयुगस्थ-कुम्भयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के सकुम्भौ करौ ।
अक्षस्रङ्-मृगहस्तमम्बुजगतं मूर्द्धस्थचन्द्रस्रवत् पीयूषार्द्रतनुं भजे सगिरिजं त्र्यक्षं च मृत्युञ्जयम् ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

उपदिश्येति शुक्रः स्वं दधीचिं मुनिसत्तमम् । स्वस्थानमगमत्तात संस्मरन् शङ्करं प्रभुम् ॥३५॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दधीचो हि महामुनिः । वनं जगाम तपसे महाप्रीत्या शिवं स्मरन् ॥३६॥
तत्र गत्वा विधानेन महामृत्युञ्जयाभिधम् । तं मनुं प्रजपन् प्रीत्या तपस्तेपे शिवं स्मरन् ॥३७॥
तन्मनुं सुचिरं जप्त्वा तपसाराध्य शङ्करम् । शिवं सन्तोषयामास महामृत्युञ्जयं हि सः ॥३८॥
अथ शम्भुः प्रसन्नात्मा तज्जपाद् भक्तवत्सलः । आविर्बभूव पुरतस्तस्य प्रीत्या महामुने ! ॥३९॥

हे द्विजोत्तम ! जिन महापुरुष से प्रकृति की पुष्टि होती है । हे सुव्रत ! महत्तत्त्व से विशेष पर्यन्त विकल्प के जो स्वरूप हैं ॥२६॥ हे महामुने ! जो विष्णु, पितामह, मुनिगण एवं समस्त देवगणों में इन्द्रिय-स्वरूप हैं और उनकी पुष्टि को वढ़ाते रहते हैं ॥ २७ ॥ लोग उस अमृत स्वरूप रुद्र देव को कर्म, तपस्या, स्वाध्याय, योग एवं ध्यान से प्राप्त करते हैं ॥ २८ ॥ जिस प्रकार कर्कटी का फल अपने बन्धन को छोड़ देता है, उसी प्रकार जो प्रभु सदाशिव अपने सत्य से जगत् के समस्त प्राणियों को मृत्यु के पाशरूप बन्धन से छुड़ा देते हैं ॥ २९ ॥ यह मेरा मृत्युसंजीवनी मन्त्र सर्वोत्तम मन्त्र कहा जाता है । हे दधीच ! तुम मेरे द्वारा दिये गये इस मन्त्र को शिवध्यान-परायण होकर जप करो ॥ ३० ॥ रात-दिन इसका जप करो तथा इसी मन्त्र से हवन भी करो । और इसी मन्त्र से अभिमन्त्रित कर तुम जल पीओ । शिव के सन्निधान में इस प्रकार शिव का ध्यान करने से मृत्यु का भय नहीं रहता ॥ ३१ ॥ शंकर का पूजन कर जप के पहले ही न्यास करे । तदनन्तर अव्यग्रचित्त हो भक्तवत्सल सदाशिव का ध्यान करे ॥ ३२ ॥ अब मैं ध्यान की विधि बताता हूँ । जिस ध्यान के अनन्तर बुद्धिमान् पुरुष मन्त्र का जपकर शिव की कृपा से मन्त्र को सिद्ध कर लेता है ॥३३॥ (मन्त्रार्थ इस प्रकार है) जो अपने दोनों हस्त-कमलों से घड़े को उठाकर शिर पर जल छोड़ते हुए और दो हाथों से अपनी गोदी में दो कुम्भ लिये हुए इसी प्रकार अपने अन्य हाथों में अक्षमाला, मृग-चर्म तथा कमल हाथ में लिये हुए हैं । एवं शिरस्थ चन्द्रमा के द्वारा निकलते हुए, अमृतकण से जिनका शरीर भींगा हुआ है ऐसे तीन नेत्र वाले पार्वती सहित महामृत्युञ्जय भगवान् का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ३४ ॥

ब्रह्माजी वोले—हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार दधीच मुनि को उपदेश कर शुक्राचार्य शिव का स्मरण करते हुए अपने स्थान को चले गये ॥ ३५ ॥ महामुनि दधीच, उनके इस वचन को सुनकर सन्तुष्टचित्त हो शंकर का स्मरण करते हुए तपहेतु वन को चले गये ॥ ३६ ॥ वन में जाकर उन्होंने शिव का स्मरण करते विधिपूर्वक महामृत्युञ्जय का जप करते हुए अत्यन्त निष्ठा के साथ तप करने लगे ॥ ३७ ॥ इस प्रकार उन्होंने वहुत दिनों तक महामृत्युञ्जय मन्त्र का जप करते हुए अपनी तपस्या से शंकर जी को सन्तुष्ट कर लिया ॥ ३८ ॥ उनके जप से प्रसन्न हुए भक्तवत्सल भगवान् सदाशिव उनके आगे साक्षात्

तं दृष्ट्वा स्वप्रभुं शम्भुं स मुमोद मुनीश्वरः । प्रणम्य विधिवद्भक्त्या तुष्टाव सुकृताञ्जलिः ॥४०॥
अथ प्रीत्या शिवस्तात प्रसन्नश्च्यावनिं मुने ! । वरं ब्रूहीति स प्राह सुप्रसन्नेन चेतसा ॥४१॥
तच्छ्रुत्वा शम्भुवचनं दधीचो भक्तसत्तमः । साञ्जलिर्नतकः प्राह शङ्करं भक्तवत्सलम् ॥४२॥

दधीच उवाच

देवदेव महादेव! मह्यं देहि वरत्रयम् । वज्रास्थित्वादवध्यत्वमदीनत्वं हि सर्वतः ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

तदुक्तवचनं श्रुत्वा प्रसन्नः परमेश्वरः । वरत्रयं ददौ तस्मै दधीचाय तथाऽस्त्विति ॥४४॥
वरत्रयं शिवात् प्राप्य सानन्दश्च महामुनिः । क्षुवस्थानं जगामाशु वेदमार्गे प्रतिष्ठितः ॥४५॥
प्राप्यावध्यत्वमुग्रात् स वज्रास्थित्वमदीनताम् । अताडयच्च राजेन्द्रं पादमूलेन मूर्द्धनि ॥४६॥
क्षुवो दधीचं वज्रेण जघानोरस्यथो नृपः । क्रोधं कृत्वा विशेषेण विष्णुगौरवगर्वितः ॥४७॥
नाऽभून्नाशाय तद्वज्रं दधीचस्य महात्मनः । प्रभावात् परमेशस्य धातृपुत्रो विसिस्मिये ॥४८॥

दृष्ट्वाऽप्यवध्यत्वमदीनतां च वज्रस्य चात्यन्तपरप्रभावम् ।
क्षुवो दधीचस्य मुनीश्वरस्य विसिस्मिये चेतसि धातृपुत्रः ॥४९॥
आराधयामास हरिं मुकुन्दमिन्द्रानुजं काननमाशु गत्वा ।
प्रपन्नपालश्च पराजितो हि दधीचमृत्युञ्जयसेवकेन ॥५०॥

पूजया तस्य सन्तुष्टो भगवान् मधुसूदनः । ददौ दर्शनं तस्मै दिव्यं वै गरुडध्वजः ॥५१॥
दिव्येन दर्शनेनैव दृष्ट्वा देवं जनार्दनम् । तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः प्रणम्य गरुडध्वजम् ॥५२॥

प्रगट हो गये ॥३९॥ अपने प्रभु भगवान् सदाशिव को अपने से आगे प्रगट देखकर वे महामुनि अत्यन्त प्रसन्न हो गये एवं विधिपूर्वक प्रणाम कर हाथ जोड़े हुए प्रसन्नता से स्तुति करने लगे ॥ ४० ॥ हे मुने ! तब भगवान् शिव प्रसन्न हो दधीच से बोले—'हे दधीच ! वर माँगो' भक्तवत्सल भगवान् शंकर के इस वचन को सुनकर दधीच मुनि हाथ जोड़ कर बोले-॥ ४१-४२ ॥

दधीच बोले—हे देवाधिदेव ! हे महादेव ! आप मुझे तीन वर दीजिए, प्रथम यह कि मेरे शरीर की हड्डी वज्र के समान हो जावे । दूसरा यह कि, मुझे कोई मार न सके और तीसरा यह कि मैं सर्वथा दैन्यरहित जीवन व्यतीत करूँ ॥ ४३ ॥

ब्रह्माजी बोले—महर्षि दधीच की बात सुनते ही भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये। और 'तथास्तु' कहकर उन्हें तीनों वर प्रदान किये ॥ ४४ ॥ इस प्रकार शिव से तीनों वरों को प्राप्त कर महर्षि अत्यन्त प्रसन्न हुए और वेदमार्ग की मर्यादा में स्थित हो वे क्षुव राजा के पास गये ॥ ४५ ॥ शिव से अवध्यत्व, वज्रास्थित्व एवं अदीनत्व रूप तीनों वरों को प्राप्तकर मुनि ने अपने पैर से राजा के शिर पर प्रहार किया ॥ ४६ ॥ विष्णु के गौरव से गर्वित हुए उस राजा क्षुव ने क्रोध में भर कर अपने वज्रविशेष से दधीच की छाती में प्रहार किया ॥ ४७ ॥ परन्तु शंकर के प्रभाव से वह वज्र दधीच का कुछ विगाड़ न सका । यह देखकर क्षुव के मन में बहुत आश्चर्य हो गया ॥ ४८ ॥

विधाता का पुत्र राजा क्षुव, दधीच मुनि के वज्र द्वारा अवध्यता, अदीनता तथा वज्रयुक्त शरीर को देखकर बड़े विस्मय में पड़ गये ॥ ४९ ॥ अनन्तर मृत्युञ्जय की आराधना करने वाले दधीच मुनि से पराजित, दीनों के रक्षक राजा क्षुव ने शीघ्रता से वन में जाकर इन्द्रानुज श्री भगवान् विष्णु की आराधना की ॥ ५० ॥ भगवान् मधुसूदन उसकी आराधना से सन्तुष्ट हो गये और क्षुव को अपना दिव्य दर्शन दिया ॥५१॥ इस प्रकार भगवान् जनार्दन के दिव्य दर्शन से सन्तुष्ट हुआ राजा क्षुव सुन्दर वाणी से उनकी

सम्पूज्य चैवं त्रिदशेश्वराद्यैः स्तुत्वा स्तुतं देवमजेयमीशम् ।
विज्ञापयामास निरीक्ष्य भक्त्या जनार्दनाय प्रणिपत्य मूर्ध्ना ।।५३।।

राजोवाच

भगवन् ! ब्राह्मणः कश्चिद्दधीच इति विश्रुतः । धर्मवेत्ता विनीतात्मा सखा मम पुराऽभवत् ।।५४।।
अवध्यः सर्वदा सर्वैः शङ्करस्य प्रभावतः । तमाराध्य महादेवं मृत्युञ्जयमनामयम् ।।५५।।
सावज्ञं वामपादेन मम मूर्ध्नि सदस्यपि । ताडयामास वेगेन स दधीचो महातपाः ।।५६।।
उवाच तं च गर्वेण न बिभेमीति सर्वतः । मृत्युञ्जयाप्तसुवरो गर्वितो ह्यतुलं हरे ! ।।५७।।

ब्रह्मोवाच

अथ ज्ञात्वा दधीचस्य ह्यवध्यत्वं महात्मनः । सस्मारास्य महेशस्य प्रभावमतुलं हरिः ।।५८।।
एवं स्मृत्वा हरिः प्राह क्षुवं विधिसुतं द्रुतम् । विप्राणां नास्ति राजेन्द्र ! भयमण्वपि कुत्र चित् ।।५९।।
विशेषाद्रुद्रभक्तानां भयं नास्ति च भूपते ! । दुःखं करोति विप्रस्य शापार्थं स सुरस्य मे ।।६०।।
भविता तस्य शापेन दक्षयज्ञे सुरेश्वरात् । विनाशो मम राजेन्द्र ! पुनरुत्थानमेव च ।।६१।।
तस्मात् समेत्य राजेन्द्र ! सर्वयज्ञो न भूयते । करोमि यत्नं राजेन्द्र ! दधीचविजयाय ते ।।६२।।
श्रुत्वा वाक्यं क्षुवः प्राह तथाऽस्त्विति हरेर्नृपः । तस्थौ तत्रैव तत्प्रीत्या तत्कामोत्सुकमानसः ।।६३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे
क्षुवदधीचवादवर्णनं नामाऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ।। ३८ ।।

स्तुति करने लगा ।। ५२ ।। उसने महा अजेय श्री विष्णु का देवताओं सहित पूजन कर भक्तिपूर्वक उनका दर्शन करता हुआ भूमि में साष्टाङ्ग दण्डवत् कर निवेदन किया ।। ५३ ।।

राजा बोला—हे भगवन् ! प्राचीन काल में धर्मवेत्ता महा विनीत दधीच नाम का एक ब्राह्मण मेरा मित्र था ।। ५४ ।। जिसने निष्पाप महामृत्युञ्जय भगवान् रुद्र की आराधना कर उनके प्रभाव से अवध्यता प्राप्त कर ली है ।। ५५ ।। उस महातपस्वी ने बड़े गर्व के साथ सभा में बैठे हुए मेरे सिर पर अत्यन्त अवज्ञा करते हुए प्रहार किया है ।। ५६ ।। हे हरे ! मृत्युञ्जय से वरदान प्राप्त होने के कारण उसे महान् गर्व हो गया है । इसलिए उसने कहा है कि, मैं किसी से नहीं डरता ।। ५७ ।।

ब्रह्माजी बोले—भगवान् विष्णु ने दधीच की अवध्यता देखकर अपने अप्रमेय प्रभाव का स्मरण किया ।। ५८ ।। उन्होंने शङ्कर के प्रभाव का स्मरण कर बड़ी शीघ्रता से क्षुव से कहा—हे राजन् ! ब्राह्मण किसी से अणुमात्र नहीं डरते ।। ५९ ।। हे भूपते ! उन ब्राह्मणों में भी जो रुद्र के भक्त हैं वे विशेष रूप से किसी का भय नहीं करते । अतः इस प्रकार के ब्राह्मणों को दुःख देना मुझे तथा देवताओं के शाप का कारण बन जाता है ।। ६० ।। हे राजन् ! उसी ब्राह्मण के शाप से मेरा दक्ष के यज्ञ में विनाश अवश्य होगा । तदनन्तर शाप के निवृत्त होने पर पुनरुत्थान होगा ।। ६१ ।। दधीच के शाप के कारण सभी देवताओं तथा मेरे और ब्रह्मा के उपस्थित होने पर भी दक्ष का यज्ञ सफल न होगा । तथापि दधीच पर विजय पाने के लिए मैं तुम्हारी सहायता अवश्य करूँगा ।। ६२ ।। विष्णु की बात सुनकर क्षुव ने कहा—ठीक है, हे प्रभो ! आप ऐसा ही कीजिए । ऐसा कहकर विजय की इच्छा रखता हुआ वह क्षुव राजा बड़ी उत्कण्ठा के साथ प्रेम से वहीं रहने लगा ।। ६३ ।।

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में
क्षुव-दधीच-संवादवर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ।। ३८ ।।

*

नवत्रिंशोऽध्यायः

(राजा क्षव के कार्य निमित्त ब्राह्मण रूप से विष्णु का दधीच के पास गमन और दधीच द्वारा विष्णु को शाप)

ब्रह्मोवाच

क्षुवस्य हितकृत्येन दधीचस्याश्रमं ययौ। विप्ररूपमथास्थाय भगवान् भक्तवत्सलः ॥ १ ॥
दधीचं प्राह विप्रर्षिमभिवन्द्य जगद्गुरुः। क्षुवकार्यार्थमुद्युक्तः शैवेन्द्रं छलमाश्रितः ॥ २ ॥

विष्णुरुवाच

भो भो दधीच विप्रर्षे! भवार्चनरताव्यय!। वरमेकं वृणे त्वत्तस्तद्भवान् दातुमर्हति ॥ ३ ॥

ब्रह्मोवाच

याचितो देवदेवेन दधीचः शैवसत्तमः। क्षुवकार्यार्थिना शीघ्रं जगाद वचनं हरिम् ॥ ४ ॥

दधीच उवाच

ज्ञातं तवेप्सितं विप्र! क्षुवकार्यार्थमागतः। भगवान् विप्ररूपेण मायी त्वमसि वै हरिः ॥ ५ ॥
भूतं भविष्यं देवेश! वर्तमानं जनार्दन!। ज्ञानं प्रसादाद्रुद्रस्य सदा त्रैकालिकं मम ॥ ६ ॥
त्वां जानेऽहं हरिं विष्णुं द्विजत्वं त्यज सुव्रत!। आराधितोऽसि भूपेन क्षुवेण खलबुद्धिना ॥ ७ ॥
जाने तवैव भगवन् भक्तवत्सलतां हरे!। छलं त्यज स्वरूपं हि स्वीकुरु स्मर शङ्करम् ॥ ८ ॥
अस्ति चेत् कस्यचिद्भीतिर्भवार्चनरतस्य मे। वक्तुमर्हसि यत्नेन सत्यधारणपूर्वकम् ॥ ९ ॥
वदामि न मृषा क्वापि शिवस्मरणसक्तधीः। न बिभेमि जगत्यस्मिन् देवदैत्यादिकादपि ॥१०॥

ब्रह्मा जी बोले—भक्तवत्सल भगवान् विष्णु क्षुव का मनोरथ सिद्ध करने के लिए ब्राह्मण का रूप धारण कर दधीच के आश्रम में गये ॥ १ ॥ उन जगदगुरु ने दधीच को प्रणाम किया। फिर क्षुव का मनोरथ सिद्ध करने के लिए उन्होंने शिवभक्तराज दधीच से छलपूर्वक कहा ॥ २ ॥

विष्णु भगवान् बोले—हे शिवपूजन में निरन्तर निरत! अविनाशिन्, ब्रह्मर्षे दधीच! मैं आपसे एक वर माँगता हूँ, वह वर आप मुझे दीजिए ॥ ३ ॥

ब्रह्मा जी बोले—जब क्षुव का कार्य सम्पन्न करने वाले भगवान् विष्णु ने दधीच से इस प्रकार प्रार्थना की तब उन्होंने विष्णु से कहा ॥ ४ ॥

दधीच बोले—हे ब्राह्मण! मैं आपका भाव समझ गया। आप भगवान् विष्णु हो, आप क्षुव का कार्य करने के लिए ब्राह्मण का रूप धारण कर यहाँ आये हो ॥ ५ ॥ हे देवेश जनार्दन! मुझे शिवकृपा से भूत, भविष्य एवं वर्तमान इन तीनों कालों का ज्ञान है ॥ ६ ॥ मैं जान गया कि आप विष्णु हैं। अतः हे सुव्रत! आप इस ब्राह्मण रूपका परित्याग कीजिए। परम दुष्ट राजा क्षुव ने आपको अपनी आराधना से प्रसन्न कर लिया है ॥ ७ ॥ इतना ही नहीं, हे भगवन्! मैं आपकी भक्तवत्सलता भी जानता हूँ। अतः छल से धारण किये हुए इस ब्राह्मण रूप का त्याग कीजिए और भगवान् शङ्कर का स्मरण कीजिए ॥ ८ ॥ आप ही सत्य का शपथ लेकर यत्नपूर्वक सोचकर बताइए कि मुझे शिव-पूजन के प्रभाव से क्या किसी का भय हो सकता है? ॥ ९ ॥ यह बात मैं सत्य कहता हूँ कि मुझे शङ्कर की पूजा के प्रभाव से इस संसार में दैत्य, दानव एवं देवादि गणों से भी भय नहीं है ॥ १० ॥

विष्णुरुवाच

भयं दधीच सर्वत्र नष्टं च तव सुव्रत ! । भवार्चनरतो यस्माद् भवान् सर्वज्ञ एव च ॥११॥
बिभेमीति सकृद्वक्तुमर्हसि त्वं नमस्तव । नियोगान्मम राजेन्द्र ! क्षुवात् प्रतिसहस्य च ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

एवं श्रुत्वाऽपि तद्वाक्यं विष्णोः स तु महामुनिः । विहस्य निर्भयः प्राह दधीचः शैवसत्तमः ॥१३॥

दधीच उवाच

न बिभेमि सदा क्वापि कुतश्चिदपि किञ्चन । प्रभावाद् देवदेवस्य शम्भोः साक्षात् पिनाकिनः ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तस्य मुनेः श्रुत्वा वचनं कुपितो हरिः । चक्रमुद्यम्य सन्तस्थौ दिधक्षुर्मुनिसत्तमम् ॥१५॥
अभवत् कुण्ठितं तत्र विप्रे चक्रं सुदारुणम् । प्रभावाच्च तदीशस्य नृपतेः सन्निधावपि ॥१६॥
दृष्ट्वा तं कुण्ठितास्यं तच्चक्रं विष्णुं जगाद ह । दधीचः सस्मितं साक्षात् सदसद्-व्यक्तिकारणम् ॥१७॥

दधीच उवाच

भगवन् ! भवता लब्धं पुरातीव सुदारुणम् । सुदर्शनमिति ख्यातं चक्रं विष्णोः प्रयत्नतः ॥
भवस्य तच्छुभं चक्रं न जिघांसति मामिह ॥१८॥
भगवानथ क्रुद्धोऽस्मै सर्वास्त्राणि क्रमाद्धरिः । ब्रह्मास्त्राद्यैः शरैश्चाऽस्त्रैः प्रयत्नं कर्तुमर्हसि ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

स तस्य वचनं श्रुत्वा दृष्ट्वा निर्वीर्यमानुपम् । ससर्जाथ क्रुधा तस्मै सर्वास्त्राणि क्रमाद्धरिः ॥२०॥
चक्रुर्देवास्ततस्तस्य विष्णोः साहाय्यमादरात् । द्विजेनैकेन संयोद्धुं प्रसृतस्य विबुद्धयः ॥२१॥

विष्णु बोले—हे सुव्रत महर्षे दधीच ! आप शिव के भक्त हैं, इसलिए आपका भय सर्वथा विनष्ट हो गया है और आप सर्वज्ञ भी हो गये हो ॥ ११ ॥ हे विप्रवर ! मेरा तुम्हें प्रणाम है। अतः मेरे अनुरोध से आप अपने प्रतिपक्षी राजा क्षुव से एक बार जाकर कह दीजिए कि मैं तुमसे डरता हूँ ॥ १२ ॥

ब्रह्मा जी बोले—विष्णु के वचन को सुनकर हँसते हुए निर्भय होकर शिवभक्तों में श्रेष्ठ महामुनि दधीच ने कहा ॥ १३ ॥

दधीच बोले—हे विष्णो ! मैं साक्षात् पिनाकधारी देवाधिदेव भगवान् शंकर के प्रभाव से कहीं भी किसी से नहीं डरता ॥ १४ ॥

ब्रह्मा जी बोले—ऋषि के इन वचनों को सुनकर भगवान् विष्णु क्रोध में भर उठे। और वे मुनिसत्तम दधीच को भस्म करने के लिए चक्र ऊपर उठाकर खड़े हो गये ॥ १५ ॥ किन्तु शिव के प्रभाव से ब्राह्मण पर चलाया जाने वाला उनका वह चक्र वहीं कुण्ठित हो गया। क्षुव उसी जगह खड़ा-खड़ा यह दृश्य देख रहा था ॥ १६ ॥ इस प्रकार उस अस्त्र को कुण्ठित हुआ देखकर दधीचने हँसते हुए सत् एवं असत् की अभिव्यक्ति के कारणभूत भगवान् विष्णु से कहा ॥ १७ ॥

दधीच बोले—हे भगवन् ! आपने पूर्वकाल में अत्यन्त तपस्या के प्रयत्न से शिवजी के द्वारा यह परम दारुण सुदर्शनचक्र प्राप्त किया है ॥ १८ ॥ अतः शिवजी के द्वारा आपको दिया गया यह सुदर्शनचक्र मुझ शिवभक्त पर प्रहार नहीं कर सकता। अब आप क्रुद्ध होकर ब्रह्मास्त्रादि अस्त्रों का तथा अन्य प्रकार के बाणादिकों का प्रयोग कीजिए ॥ १९ ॥

ब्रह्माजी बोले—दधीच के वचन सुनकर भगवान् विष्णु ने उन्हें अपने सामने अत्यन्त तुच्छ मनुष्य समझकर क्रोध में भर उठे और अन्य प्रकार के भी विविध अस्त्रों का प्रयोग उन पर करने लगे ॥ २० ॥ उस समय एकमात्र उस ब्राह्मण से युद्ध करते हुए उन विष्णु की देवगणों ने भी आदरपूर्वक सहायता

चिक्षिपुः स्वानि स्वान्याशु शस्त्राण्यस्त्राणि सर्वतः । दधीचोपरि वेगेन शक्राद्या हरिपाक्षिकाः ॥२२॥
कुशमुष्टिमथादाय दधीचः संस्मरन् शिवम् । ससर्ज सर्वदेवेभ्यो वज्रास्थि सर्वतो वशी ॥२३॥
शङ्करस्य प्रभावात्तु कुशमुष्टिर्मुनेर्हि सा । दिव्यं त्रिशूलमभवत् कालाग्निसदृशं मुने ! ॥२४॥
दग्धुं देवान् मतिं चक्रेऽसायुधं सशिखं च तत् । प्रज्वलत् सर्वतः शैवं युगान्ताग्न्यधिकप्रभम् ॥२५॥
नारायणेन्द्रमुख्यैस्तु देवैः क्षिप्तानि यानि च । आयुधानि समस्तानि प्रणेमुस्त्रिशिखं च तत् ॥२६॥
देवाश्च दुद्रुवुः सर्वे ध्वस्तवीर्या दिवौकसः । तस्थौ तत्र हरिर्भीतः केवलं मायिनां वरः ॥२७॥
ससर्ज भगवान् विष्णुः स्वदेहात् पुरुषोत्तमः । आत्मनः सदृशान् दिव्यान् लक्षलक्षायुतान् गुणान् ॥२८॥
ते चापि युयुधुस्तत्र वीरा विष्णुगणास्ततः । मुनिनैकेन देवर्षे ! दधीचेन शिवात्मना ॥२९॥
ततो विष्णुगणान् तान् वै नियुध्य बहुशो रणे । ददाह सहसा सर्वान् दधीचः शैवसत्तमः ॥३०॥
ततस्तद्विस्मयार्थाय दधीचस्य मुनेर्हरिः । विश्वमूर्तिरभूच्छीघ्रं महामायाविशारदः ॥३१॥
तस्य देहे हरेः साक्षादपश्यद् द्विजसत्तमः । दधीचो देवतादीनां जीवानां च सहस्रकम् ॥३२॥
भूतानां कोटयश्चैव गणानां कोटयस्तथा । अण्डानां कोटयश्चैव विश्वमूर्तेस्तनौ तदा ॥३३॥
दृष्ट्वैतदखिलं तत्र च्यावनिः सततं तदा । विष्णुमाह जगन्नाथं जगत्स्तुवमजं विभुम् ॥३४॥

दधीच उवाच

मायां त्यज महाबाहो ! प्रतिभासो विचारतः । विज्ञातानि सहस्राणि दुर्विज्ञेयानि माधव ॥३५॥
मयि पश्य जगत्सर्वं त्वया युक्तमतन्द्रितः । ब्रह्माणं च तथा रुद्रं दिव्यां दृष्टिं ददामि ते ॥३६॥

की ॥ २१ ॥ विष्णुपक्ष में रहने वाले इन्द्रादि देवगणों ने भी दधीच के ऊपर बड़े वेग से अपने-अपने अस्त्रों का प्रयोग किया ॥ २२ ॥ फिर महाजितेन्द्रिय एवं वज्र की अस्थि वाले दधीच ने शिव का स्मरण कर मुट्ठी भर कुशा को अभिमन्त्रित कर उन सभी देवताओं पर प्रयोग किया ॥ २३ ॥ हे नारद ! शङ्कर के प्रभाव से मुनीश्वर के द्वारा प्रयुक्त वह मुष्टी मात्र कुशा कालाग्नि के समान देदीप्यमान त्रिशूल बन गया ॥ २४ ॥ फिर परम शैव महर्षि दधीच का त्रिशूल अपनी ज्वालाओं से देदीप्यमान होकर आयुधधारी विष्णुपक्षीय समस्त देवताओं को भस्म करने के लिए उद्यत हो गया ॥ २५ ॥ उस समय भगवान् विष्णु एवं इन्द्रादि मुख्य देवताओं के द्वारा छोड़े गये वे सभी अस्त्र-शस्त्र उस त्रिशूल को प्रणाम करने लगे ॥ २६ ॥ इस प्रकार सभी देवगण अपने पराक्रम को नष्ट हुआ देख भयभीत हो इधर-उधर भागने लगे । केवल मायावियों के स्वामी एकमात्र विष्णु ही भयसन्त्रस्त हो उस युद्धस्थल में स्थित रहे ॥ २७ ॥ तब पुरुषोत्तम विष्णु ने अपने शरीर से अपने ही समान लाखों एवं हजारों गणों को उत्पन्न किया ॥ २८ ॥ हे देवर्षि नारद ! ये सभी महावीर विष्णु के गण शिवस्वरूप वाले अकेले उस दधीच महर्षि से युद्ध करने लगे ॥ २९ ॥ तदनन्तर शिवभक्तों में श्रेष्ठ महर्षि दधीच ने उन गणों से कुछ काल पर्यन्त युद्ध कर सहसा उन्हें भस्म कर दिया ॥ ३० ॥ महामाया विशारद भगवान् विष्णु ने महर्षि दधीच को विस्मित करने के लिए शीघ्र ही विश्वमूर्त्ति का रूप धारण कर लिया ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणश्रेष्ठ दधीच ने उस समय विष्णु के शरीर में देवादि सहस्रों जीवों का दर्शन किया ॥ ३२ ॥ उस विश्वमूर्ति के शरीर में करोड़ों भूत, करोड़ों गणों तथा करोड़ों ब्रह्माण्ड दिखाई पड़ने लगे ॥ ३३ ॥ इन सभी को देखकर दधीच मुनि ने जगत्पति जगत्-स्तुत्य, अज, अविनाशी उन भगवान् विष्णु से कहा— ॥ ३४ ॥

दधीच बोले—हे महाबाहो विष्णो ! आप इस माया का त्याग कीजिए । इस माया को देखकर मुझे कोई आश्चर्य नहीं हो रहा है, क्योंकि हे माधव ! मैं अनेक दुर्ज्ञेय सहस्रों वस्तुओं को जानता हूँ ॥ ३५ ॥ मैं आपको दिव्यदृष्टि प्रदान करता हूँ, आप सावधानी से मुझमें सम्पूर्ण विश्व, ब्रह्मा तथा रुद्र आदि का दर्शन कीजिए ॥ ३६ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा दर्शयामास स्वतनौ निखिलं मुनिः । ब्रह्माण्डं च्यावनिः शम्भुतेजसा पूर्णदेहकः ॥३७॥
ददाह विष्णुं देवेशं दधीचः शैवसत्तमः । संस्मरन् शङ्करं चित्ते विहसन् विभयः सुधीः॥३८॥

दधीच उवाच

मायया त्वनया किं वा मन्त्रशक्त्याऽथवा हरे । सत्कामायामिमां तस्माद्योद्धुमर्हसि यत्नतः ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा मुनेस्तस्य वचनं निर्भयस्तदा । शम्भुतेजोमयं विष्णुश्चुकोपातीव तं मुनिम् ॥४०॥
देवाश्च दुद्रुवुर्भूयो देवं नारायणं च तम् । योद्धुकामाश्च मुनिना दधीचेन प्रतापिना ॥४१॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्रागमन्मत्सङ्गतः क्षुवः । अवारयन्तं निश्चेष्टं पद्मयोनिं हरिं सुरान् ॥४२॥
निशम्य वचनं मे हि ब्राह्मणो न विनिर्जितः । जगाम निकटं तस्य प्रणनाम मुनिं हरिः ॥४३॥
क्षुवो दीनतरो भूत्वा गत्वा तत्र मुनीश्वरम् । दधीचमभिवाद्यैव प्रार्थयामास विक्लवः ॥४४॥

क्षुव उवाच

प्रसीद मुनिशार्दूल ! शिवभक्तशिरोमणे ! । प्रसीद परमेशान ! दुर्लक्ष्ये दुर्जनैः सह ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य राज्ञः सुरगणस्य हि । अनुजग्राह तं विप्रो दधीचस्तपसां निधिः ॥४६॥
अथ दृष्ट्वा रमेशादीन् क्रोधविह्वलितो मुनिः । हृदि स्मृत्वा शिवं विष्णुं शशाप च सुरानपि ॥४७॥

दधीच उवाच

रुद्रकोपाग्निना देवाः सदेवेन्द्रा मुनीश्वराः । ध्वस्ता भवन्तु देवेन विष्णुना च समं गणैः ॥४८॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर उन महर्षि ने शिव के तेज से विराट् शरीर धारणकर उसी शरीर में विष्णु को समस्त ब्रह्माण्ड दिखाया ॥ ३७ ॥ फिर शिवभक्तों में श्रेष्ठ महर्षि दधीच हँसते हुए निर्भय चित्त हो शिव का स्मरण कर देवेश भगवान् विष्णु से बोले-॥ ३८ ॥

दधीच बोले—हे हरे ! आपकी इस माया से तथा आपकी इस मन्त्रशक्ति से कुछ नहीं होने वाला है, मैं तो आपसे युद्ध चाहता हूँ, अतः आप युद्ध कीजिए ॥ ३९ ॥

ब्रह्माजी बोले—महर्षि के द्वारा कहे गये शिवतेज से प्रभावित तथा सर्वथा निर्भय युक्त वचनों को सुनकर विष्णु को उन महर्षि पर बड़ा क्रोध उत्पन्न हो गया ॥ ४० ॥ उस समय जो देवता भाग गये थे वे भी विष्णु की ओर से दधीच से युद्ध करने के लिए वहाँ आ गये ॥ ४१ ॥ इसी समय मैं भी राजा क्षुव को साथ लेकर वहाँ आ गया और देवताओं तथा विष्णु को युद्ध करने से मना किया ॥ ४२ ॥ और कहा कि यह ब्राह्मण किसी से जीता नहीं जा सकता। मेरी इस बात को सुनकर भगवान् विष्णु ने उस ब्राह्मण के निकट जाकर उसे प्रणाम किया ॥ ४३ ॥ तदनन्तर वह राजा क्षुव भी अत्यन्त दीन हो मुनि के निकट जाकर व्याकुल हो प्रणाम कर प्रार्थना करने लगा ॥ ४४ ॥

क्षुव बोला—हे शिवभक्त शिरोमणे ! हे मुनिशार्दूल ! हे परमेशान ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाइए। निश्चय ही आप दुर्जनों के द्वारा नहीं समझे जा सकते ॥ ४५ ॥

ब्रह्माजी बोले—राजा क्षुव की इस प्रार्थना को सुनकर तपोनिधि दधीच ने उन्हें अनुगृहीत किया ॥४६॥ किन्तु उस समय विष्णु आदि देवों को देखकर उन्हें बड़ा क्रोध हो रहा था फिर शंकर का स्मरण कर उन मुनि ने विष्णु तथा उनके अनुयायी देवगणों को शाप दिया ॥ ४७ ॥

दधीच बोले—इन विष्णु के साथ समस्त देवेन्द्रादि देवगण तथा मुनीश्वरगण, तुम सभी रुद्र की कोपाग्नि से रुद्रगणों द्वारा भस्म किये जाओगे ॥ ४८ ॥

ब्रह्मोवाच

एवं शप्त्वा सुरान् प्रेक्ष्य क्षुवमाह ततो मुनिः। देवैश्च पूज्यो राजेन्द्र ! नृपैश्चैव द्विजोत्तमः ॥४९॥
ब्राह्मणा एव राजेन्द्र ! बलिनः प्रभविष्णवः। इत्युक्त्वा स स्फुटं विप्रः प्रविवेश निजाश्रमम् ॥५०॥
दधीचमभिवन्द्यैव क्षुवो निजगृहं गतः। विष्णुर्जगाम स्वं लोकं सुरैः सह यथागतम् ॥५१॥
तदेवं तीर्थमभवत् स्थानेश्वर इति स्मृतम्। स्थानेश्वरमनुप्राप्य शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥५२॥
कथितस्तव संक्षेपाद् वादः क्षुवदधीचयोः। नृपाप्तशापयोस्तात ब्रह्मविष्ण्वोः शिवं विना ॥५३॥
य इदं कीर्त्तयेन्नित्यं वादं क्षुवदधीचयोः। जित्वाऽपमृत्युं देहान्ते ब्रह्मलोकं प्रयाति सः ॥५४॥
रणे यः कीर्तयित्वेदं प्रविशेत्तस्य सर्वदा। मृत्युभीतिर्भवेन्नैव विजयी च भविष्यति ॥५५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे
विष्णुदधीचयुद्धवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

(ब्रह्मा का देवताओं के साथ वैकुण्ठगमन तथा दक्षयज्ञ निमित्त
विष्णु का कैलास जाना)

नारद उवाच

विधे विधे महाप्राज्ञ ! शैवतत्त्वप्रदर्शक !। श्राविता रमणीप्राया शिवलीला महाद्भुता ॥ १ ॥
वीरेण वीरभद्रेण दक्षयज्ञं विनाश्य वै। कैलासाद्रौ गते तात ! किमभूत्तद् वदाधुना ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

अथ देवगणाः सर्वे मुनयश्च पराजिताः। रुद्रानीकैर्विभिन्नाङ्गा मम लोकं ययुस्तदा ॥ ३ ॥
स्वयम्भुवे नमस्कृत्य मह्यं संस्तूय भूरिशः। तत्स्वक्लेशं विशेषेण कार्त्स्न्येनैव न्यवेदयन् ॥ ४ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार समस्त देवगणों तथा विष्णु को शाप देकर मुनि ने क्षुव की ओर देखते हुए कहा—हे राजन् ! देखो, सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण केवल राजाओं के ही नहीं अपितु देवगणों से भी पूज्य हैं ॥४९॥ हे राजन् ! राजा की अपेक्षा ब्राह्मण सर्वथा बली तथा समर्थ होते हैं। इतना कहने के पश्चात् वे अपने आश्रम पर चले आये ॥ ५० ॥ उधर राजा क्षुव भी दधीच को प्रणाम कर अपने घर चला आया। विष्णु भी देवताओं को साथ लेकर जिस प्रकार आये थे वैसे ही चले गये ॥ ५१ ॥ वही स्थान स्थानेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वहाँ पर स्थानेश्वर का दर्शन करने से मनुष्य सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है ॥५२॥ हे देवर्षे नारद ! मैंने संक्षेप में क्षुव और दधीच का यह विवाद तुम से कहा, जिसके कारण विष्णु आदि देवगणों को शाप मिला ॥ ५३ ॥ जो मनुष्य क्षुव तथा दधीच के इस संवाद को पढ़ेगा अथवा सुनेगा, उसकी अकाल मृत्यु नहीं होगी। और वह शरीर के अन्त हो जाने पर साक्षात् ब्रह्मलोक को जायेगा ॥५४॥ जो लोग इस संवाद का कीर्त्तन कर युद्धस्थल में जायेंगे, उन्हें मृत्यु का भय कदापि न होगा। और वे युद्ध में सर्वदा विजयी होंगे ॥ ५५ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में
विष्णु-दधीचयुद्ध-वर्णन नामक उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३९ ॥

*

नारदजी बोले—हे महाप्राज्ञ शिवतत्त्वप्रदर्शक ब्रह्मदेव ! आपने महान् अद्भुत एवं अत्यन्त मनोहर शिव की लीला हमें सुनायी ॥ १ ॥ अब हमें आगे का चरित्र सुनाइए, जब महावीर वीरभद्र दक्ष का यज्ञ विध्वंस कर कैलास को चले गये। तदनन्तर क्या हुआ ॥ २ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! उस समय समस्त देवता तथा मुनिगण पराजित हो रुद्र के गणों से घायल होकर मेरे लोक को चले आये ॥ ३ ॥ वे सभी मुझे नमस्कार कर और मेरी बारम्बार स्तुति कर

तदाकर्ण्य ततोऽहं वै पुत्रशोकेन पीडितः । अचिन्त्यमतिसुव्यग्रो दूयमानेन चेतसा ॥ ५ ॥
किं कार्यं कार्यमद्याशु मया देवसुखावहम् । येन जीवतु दक्षोऽसौ मखः पूर्णो भवेत् सुरः ॥ ६ ॥
एवं विचार्य बहुधा नालभं शमहं मुने ! । विष्णुं तदा स्मरन् भक्त्या ज्ञानमाप्तं तदोचितम् ॥ ७ ॥
अथ देवैश्च मुनिभिर्विष्णोर्लोकमहं गतः । नत्वा नुत्वा च विविधैः स्तवैर्दुःखं न्यवेदयम् ॥ ८ ॥
यथाऽध्वरः प्रपूर्णः स्याद्देवयज्ञकरश्च सः । सुखिनः स्युः सुराः सर्वे मुनयश्च तथा कुरु ॥ ९ ॥
देवदेव रमानाथ विष्णो देवसुखावह ! । वयं त्वच्छरणं प्राप्ताः सदेवमुनयो ध्रुवम् ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचो मे हि ब्रह्मणः स रमेश्वरः । प्रत्युवाच शिवं स्मृत्वा शिवात्मा दीनमानसः ॥११॥

विष्णुरुवाच

तेजीयसि न सा भूता कृतागसि बुभूषताम् । तत्र क्षेमाय बहुधा बुभूषा हि कृतागसाम् ॥१२॥
कृतपापाः सुराः सर्वे शिवे हि परमेश्वरे । परादुर्यज्ञभागं तस्य शम्भोर्विधे यतः ॥१३॥
प्रसादयध्वं सर्वे हि यूयं शुद्धेन चेतसा । अथाऽपरप्रसादं तं गृहीताङ्घ्रियुगं शिवम् ॥१४॥
यस्मिन् प्रकुपिते देवे विनश्यत्यखिलं जगत् । सलोकपालयज्ञस्य शासनाज्जीवितं द्रुतम् ॥१५॥
तमाशु देवं प्रियया विहीनं च दुरुक्तिभिः । क्षमापयध्वं हृद्विद्धं दक्षेण सुदुरात्मना ॥१६॥
अयमेव महोपायस्तच्छान्त्यै केवलं विधे । शम्भोः सन्तुष्टये मन्ये सत्यमेवोदितं मया ॥१७॥
नाऽहं न त्वं सुरांश्चाऽन्ये मुनयोऽपि तनूभृतः । यस्य तत्त्वं प्रमाणं च न विदुर्बलवीर्ययोः ॥१८॥
आत्मतन्त्रस्य तस्यापि परस्य परमात्मनः । क उपायं विधित्सेद् वै परं मूढं विरोधिनम् ॥१९॥

अपना सम्पूर्ण क्लेश मुझसे कहने लगे ॥ ४ ॥ उस समय दक्ष की मृत्यु का समाचार सुनकर मुझे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। और दुःखी हो मन में सोचने लगा ॥ ५ ॥ इस समय मैं कौन सा ऐसा कार्य करूँ, जो देवताओं के लिए सुखकारी सिद्ध हो। इतना ही नहीं, दक्ष को जीवनदान भी मिले तथा उसका यज्ञ पूर्ण हो जावे ॥ ६ ॥ हे मुनि नारद ! मुझे बहुत विचार करने पर भी जब पूरी शान्ति नहीं मिली, तब मैंने भगवान् विष्णु की शरण ली, और मुझे पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया ॥ ७ ॥ तदनन्तर उन देवताओं तथा मुनियों को साथ ले मैं विष्णुलोक को चला गया। और अनेक स्तोत्रों से भगवान् विष्णु की स्तुति कर उन्हें अपना दुःख सुनाया ॥८॥ मैंने कहा—हे देव विष्णो ! जिस प्रकार यज्ञ की पूर्ति हो, दक्ष को जीवनदान मिले तथा सभी देवताओं को सुख प्राप्त हो आप वैसा कोई प्रयत्न कीजिए ॥ ९ ॥ हे देवाधिदेव ! हे रमानाथ ! हे देवसुखावह ! मैं इसी कार्य के लिए समस्त देवताओं तथा मुनियों को साथ लेकर आपकी शरण में आया हूँ ॥१०॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! मुझ ब्रह्मा की यह बात सुनकर रमापति विष्णु कुछ खिन्न हो गये और शिवात्मा विष्णु ने शिव का स्मरण करते हुए कहा—॥ ११ ॥

विष्णु ने कहा—हे विधे ! तेजस्वी से यदि कदाचित् अपराध भी हो जाय तो अपना कल्याण चाहने वाले पुरुष को उन तेजस्वियों का अपराध नहीं करना चाहिए ॥ १२ ॥ हे विधे ! इन देवताओं ने शिवजी को यज्ञ-भाग से वञ्चित कर दिया है। अतः ये सभी अपराधी हैं ॥ १३ ॥ हे देवताओ ! तुम सब शुद्धचित्त से उन शिवजी के दोनों चरण-कमलों को पकड़ कर उन्हें प्रसन्न करो ॥ १४ ॥ जिनके कुपित होने मात्र से लोकपालों एवं दक्ष के शासन द्वारा जीवित रहने वाला यह सारा जगत् भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥१५॥ हे देवगणो ! इस दुरात्मा दक्ष ने उन शिव को अपने दुर्वाक्यों से मर्मान्तिक पीड़ा पहुँचायी है एवं उन्हें प्रिया से विहीन कर दिया है, ऐसे देवाधिदेव शिव को तुम लोग शीघ्रता से जाकर प्रसन्न करो ॥१६॥ हे विधे ! शिव जी को शान्त करने के लिए एक मात्र सही उपाय है, मैं सत्य कहता हूँ। वे इसी प्रकार प्रसन्न हो सकते हैं ॥ १७ ॥ हे विधे ! न तो मैं, न तो तुम, न अन्य देवगण किं बहुना शरीरधारी मात्र उनके वास्तविक बल तथा पराक्रम का प्रमाण नहीं जानते ॥ १८ ॥ सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र उन परमात्मा परमेश्वर को,

चलिष्येऽहमपि ब्रह्मन् सर्वैः सार्द्धं शिवालयम् । क्षमापयामि गिरिशं कृतागश्च शिवे ध्रुवम् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

इत्थमादिश्य विष्णुर्मां ब्रह्माणं सामरादिकम् । सार्द्धं देवैर्मतिं चक्रे तद्गिरौ गमनाय सः ॥२१॥
ययौ स्वधिष्ण्यनिलयं शिवस्याद्रिवरं शुभम् । कैलासं सामरमुनिप्रजेशादिमयो हरिः ॥२२॥
अतिप्रियं प्रभोर्नित्यं सुजुष्टं किन्नरादिभिः । नरेतरैरप्सरोभिर्योगसिद्धैर्महोन्नतम् ॥२३॥
नानामणिमयैः शृङ्गैः शोभमानं समन्ततः । नानाधातुविचित्रं वै नानाद्रुमलताकुलम् ॥२४॥
नानामृगगणाकीर्णं नानापक्षिसमन्वितम् । नानाजलप्रस्रवणैरमरैः सिद्धयोपिताम् ॥२५॥
रमणैर्विहरन्तीनां नानाकन्दरसानुभिः । द्रुमजातिभिरन्याभी राजितं राजतप्रभम् ॥२६॥
व्याघ्रादिभिर्महासत्त्वैर्निर्घुष्टं क्रूरतोज्झितम् । सर्वशोभान्वितं दिव्यं महाविस्मयकारकम् ॥२७॥
पर्यस्तं गङ्गया सत्या स्थानपुण्यतरोदया । सर्वपावनसङ्कर्त्र्यो विष्णुपद्या सुनिर्मलम् ॥२८॥
एवंविधं गिरिं दृष्ट्वा कैलासाख्यं शिवप्रियम् । ययुस्ते विस्मयं देवा विष्णवाद्याः समुनीश्वराः ॥२९॥
तत्समीपेऽलकां रम्यां ददृशुर्नाम ते पुरीम् । कुबेरस्य महादिव्यां रुद्रमित्रस्य निर्जराः ॥३०॥
वनं सौगन्धिकं चापि ददृशुस्तत्समीपतः । सर्वद्रुमान्वितं दिव्यं यत्र तन्नादमद्भुतम् ॥३१॥
तद्बाह्यतस्तस्य दिव्ये सरितात्रतिपावने । नन्दा चालकनन्दा च दर्शनात् पापहारिके ॥३२॥
पपुः सुरस्त्रियो नित्यमवगृह्य स्वलोकतः । विगाह्य पुम्भिस्तास्तत्र क्रीडन्ति रतिकर्शिताः॥३३॥
हित्वा यक्षेश्वरपुरीं वनं सौगन्धिकं च यत् । गच्छन्तस्ते सुरा आराद्ददृशुः शाङ्करं वटम् ॥३४॥

जो सबके अन्तर्यामी हैं, उन्हें विरुद्ध कर प्रसन्न करने का प्रणिपात के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं हो सकता ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप लोगों के साथ मैं भी अपना अपराध क्षमा कराने के हेतु कैलास चलता हूँ ॥ २० ॥

ब्रह्माजी बोले—भगवान् विष्णु देवगणों के सहित मुझ ब्रह्मा से ऐसा कहकर देवताओं के साथ कैलास पर चलने के लिए उद्यत हो गये ॥ २१ ॥ तत्पश्चात् देवताओं, मुनियों तथा ब्रह्मा को साथ लेकर भगवान् विष्णु शिवजी के शुभ धाम कैलास पर पहुँचे ॥ २२ ॥ शिवजी का परम प्रिय समुन्नत वह कैलास नामक स्थान किन्नरादिकों, दिव्य अप्सराओं, योगिजनों तथा सिद्धों से सेवित था ॥ २३ ॥ वह चारों ओर अनेक मणिमय शिखरों से, तथा अनेक धातुओं से विचित्र जान पड़ता था । और नाना प्रकार की लताओं से घिरा हुआ था ॥ २४ ॥ अनेक प्रकार के वन्य जीवों, पक्षियों, नानाप्रकार के झरनों से परिपूर्ण था । उसके शिखर पर सिद्धाङ्गनाएँ अपने-अपने पतियों के साथ विहार करती थीं, अनेक प्रकार के कन्दराओं, शिखरों तथा नानाप्रकार के वृक्षों की जातियों से वह व्याप्त था । उसकी कान्ति रजतवर्ण की थी ॥ २५-२६ ॥ उस पहाड़ पर बड़े-बड़े सिंह, व्याघ्रादि जन्तु अपनी क्रूरता को छोड़कर शब्द कर रहे थे । इस प्रकार वह कैलास सम्पूर्ण दिव्य शोभाओं से सम्पन्न होने के कारण महान् विस्मय उत्पन्न कर रहा था ॥ २७ ॥ वह कैलास सभी को पवित्र करने वाली पुण्यसलिला श्री गङ्गाजी से वेष्टित और अत्यन्त निर्मल था ॥ २८ ॥ उस शिव के परम प्रिय कैलास नामक पर्वत को देखकर समस्त देवता तथा मुनिगण विस्मय को प्राप्त हो गये ॥ २९ ॥ उन देवताओं ने उस कैलास के सन्निकट शिव के परम मित्र कुवेर की अति दिव्य अलकापुरी को भी देखा ॥ ३० ॥ उसी के समीप उन लोगों ने सौगन्धिक नामक वन भी देखा, जो अनेक दिव्य वृक्षों से शोभित तथा नानाप्रकार के शब्दों से शब्दायमान था ॥ ३१ ॥ उसके वाहर नन्दा एवं अलकनन्दा नाम की दो नदियाँ बह रही थीं, जो दर्शनमात्र से ही मनुष्यों के पापों को नष्ट कर देती थीं ॥ ३२ ॥ देव-स्त्रियाँ नित्य अपने लोकों से आकर जिसका जल पीतीं और अपने-अपने पतियों के साथ उसमें स्नान करतीं तथा रति से आकृष्ट होकर उनसे विहार करती थीं ॥ ३३ ॥ तदनन्तर वे देवता उस अलकापुरी तथा सौगन्धिक वन को पार कर आगे बढ़े, जहाँ उन्हें भगवान् शङ्कर का एक विशाल वटवृक्ष

पर्यक् कृताचलच्छायं पादोनविटपायतम् । शतयोजनकोत्सेधं निर्नीडं तापवर्जितम् ॥३५॥
महापुण्यवतां दृश्यं सुरम्यं चातिपावनम् । शम्भुयोगस्थलं दिव्यं योगिसेव्यं महोत्तमम् ॥३६॥
मुमुक्षुशरणे तस्मिन् महायोगमये वटे । आसीनं ददृशुः सर्वे शिवं विष्ण्वादयः सुराः ॥३७॥
विधिपुत्रैर्महासिद्धैः शिवभक्तिरतैः सदा । उपास्यमानं सुमुदा शान्तैः संशान्तविग्रहैः ॥३८॥
तथा सख्या कुबेरेण भर्त्रा गुह्यकरक्षसाम् । सेव्यमानं विशेषेण स्वगणैर्ज्ञातिभिः सदा ॥३९॥
तापसाभीष्टसद्रूपं बिभ्रतं परमेश्वरम् । वात्सल्याद्विश्वसुहृदं भस्मादिसुविराजितम् ॥४०॥
मुने ! तुभ्यं प्रवोचन्तं पृच्छते ज्ञानमुत्तमम् । कुशासने सूपविष्टं सर्वेषां शृण्वतां सताम् ॥४१॥
कृत्वोरौ दक्षिणे सव्यं चरणं चैव जानुनि । बाहुप्रकोष्ठाक्षमालं स्थितं सत्तर्कमुद्रया ॥४२॥
एवंविधं शिवं दृष्ट्वा तदा विष्ण्वादयः सुराः । प्रणेमुस्त्वरितं सर्वे करौ बध्वा विनम्रकाः ॥४३॥
उपलभ्यागतं रुद्रो मया विष्णुं सतां गतिः । उत्थाय चक्रे शिरसाऽभिवन्दनमपि प्रभुः ॥४४॥
वन्दिताङ्घ्रिस्तदा सर्वैर्दिव्यैर्विष्ण्वादिभिः शिवः । ननामाथ यथा विष्णुं कश्यपं लोकसद्गतिः ॥४५॥
सुरसिद्धगणाधीश-महर्षिसुनमस्कृतम् । समुवाच सुरैर्विष्णुं कृतसन्नतिमादरात् ॥४६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे शिवदर्शनवर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

दिखाई पड़ा ॥ ३४ ॥ वह विशाल वटवृक्ष उस पर्वत के चारों ओर अपनी छाया फैलाये हुए था । उसकी शाखाएँ तीन ओर फैली हुई थीं । उस वृक्ष का घेरा सौ योजन का था, जिस पर पक्षियों के घोंसले नहीं थे, और वहाँ किसी प्रकार का ताप नहीं था ॥ ३५ ॥ उस शिवजी के वटवृक्ष का दर्शन पुण्यात्माओं को ही होता है, वह अत्यन्त रमणीय तथा परम पावन है, वह वट शिवजी का श्रेष्ठ योगस्थल है तथा योगियों के निवास के योग्य है ॥ ३६ ॥ उन विष्णु आदि देवताओं ने महायोगमय मुमुक्षुओं को शरण देने वाले उस वटवृक्ष के नीचे बैठे हुए भगवान् शंकर को देखा ॥ ३७ ॥ वे शिव शिवभक्तों, महासिद्धों, विधिपुत्र सनकादिकों एवं शान्त विग्रह वाले प्रशान्त महात्माओं से उपासित थे ॥ ३८ ॥ गुह्यक एवं राक्षसों के पति कुबेर जो शिवजी के मित्र हैं, उनके द्वारा तथा अपने ज्ञाति भूतगणों के द्वारा वे सेवित थे ॥ ३९ ॥ तपस्वियों के योग्य मनोहर रूप धारण किये हुए वात्सल्य से संसार के मित्र के समान वे शिव भस्मादि से अत्यन्त शोभित थे ॥ ४० ॥ उस समय वे कुशासन पर बैठकर सभी मुनियों के सामने तुम्हें ज्ञान का उपदेश कर रहे थे । क्योंकि तुमने ही ज्ञान का प्रश्न किया था ॥ ४१ ॥ वे अपने दाहिने पैर के जङ्घे तथा जानु पर बायाँ पैर रखे हुए थे । बाहु के प्रकोष्ठ (पहुँचे) में रुद्राक्ष की माला धारण किये हुए तर्क की मुद्रा में बैठे थे ॥ ४२ ॥

इस प्रकार बैठे हुए भगवान् सदाशिव को देखकर विष्णु आदि सभी देवगण शीघ्रता से नम्रतापूर्वक हाथ जोड़ उन्हें प्रणाम करने लगे ॥ ४३ ॥ सत्पुरुषों का सत्कार करने वाले भगवान् शङ्कर ने विष्णु के साथ आते हुए मुझे देख उठकर शिर से मुझे अभिवादन किया ॥ ४४ ॥ जब विष्णु आदि देवों ने उन्हें प्रणाम किया तो संसार को सद्गति देने वाले भगवान् सदाशिव ने भी विष्णु एवं कश्यपादिकों को प्रणाम किया ॥ ४५ ॥ इस प्रकार देवता, सिद्ध, गणाधीश एवं महर्षियों से अभिपूजित हुए भगवान् शिव से देवताओं के साथ गये हुए भगवान् विष्णु आदरपूर्वक बोले— ॥ ४६ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में शिवदर्शनवर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४० ॥

*

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

(विष्णु द्वारा सती की मृत्यु से दुःखित शिव की स्तुति)

विष्ण्वादय ऊचुः

देवदेव महादेव लौकिकाचारकृत्प्रभो ! । ब्रह्म त्वामीश्वरं शम्भुं जानीमः कृपया तव ॥ १ ॥
किं मोहयसि नस्तात मायया परया तव । दुर्ज्ञेयया सदा पुंसां मोहिन्या परमेश्वर ! ॥ २ ॥
प्रकृतेः पुरुषस्यापि जगतो योनिबीजयोः । परब्रह्म परस्त्वं च मनोवाचामगोचरः ॥ ३ ॥
त्वमेव विश्वं सृजसि पास्यत्सि निजतन्त्रतः । स्वरूपां शिवशक्तिं हि क्रीडन्नूर्णपटो यथा ॥ ४ ॥
त्वमेव क्रतुमीशान ससर्जिथ दयापरः । दक्षेण सूत्रेण विभो सदा त्र्यय्यभिपत्तये ॥ ५ ॥
त्वयैव लोकेऽवसिताः सेतवो यान् धृतव्रताः । शुद्धान् श्रद्दधते विप्रा वेदमार्गविचक्षणाः ॥ ६ ॥
कर्तुस्त्वं मङ्गलानां हि स्वपरं तु मुखे विभो । अमङ्गलानां च हितं मिश्रं वाऽथ विपर्ययम् ॥ ७ ॥
सर्वकर्मफलानां हि सदा दाता त्वमेव हि । सर्वे हि प्रोक्ता हि यशस्तत्पतिस्त्वं श्रुतिश्रुतः ॥ ८ ॥
पृथग्धियः कर्मदृशोऽरुन्तुदाश्च दुराशयाः । वितुदन्ति परान् मूढा दुरुक्तैर्मत्सरान्विताः ॥ ९ ॥
तेषां देववधानां भो भूयात्त्वच्च वधो विभो ! । भगवन् परमेशान ! कृपां कुरु परप्रभो ! ॥१०॥
नमो रुद्राय शान्ताय ब्रह्मणे परमात्मने । कपर्दिने महेशाय ज्योत्स्नाय महते नमः ॥११॥
त्वं हि विश्वसृजां स्रष्टा धाता त्वं प्रपितामहः । त्रिगुणात्मा निर्गुणश्च प्रकृतेः पुरुषात् परः ॥१२॥
नमस्ते नीलकण्ठाय वेधसे परमात्मने । विश्वाय विश्वबीजाय जगदानन्दहेतवे ॥१३॥
ओङ्कारस्त्वं वषट्कारः सर्वारम्भप्रवर्तकः । हन्तकारः स्वधाकारो हव्यकव्यान्नभुक् सदा ॥१४॥

विष्णु आदि देवताओं ने कहा—हे देवदेव महादेव ! यद्यपि आप यहाँ पर लोकाचार का प्रदर्शन करते हैं। किन्तु हे प्रभो ! हम सभी आप परमेश्वर को परब्रह्म जानते हैं ॥ १ ॥ हे परमेश्वर ! हे तात ! आप संसारमात्र को मोहने वाली अपनी उत्कृष्ट तथा दुर्ज्ञेय माया से हमें क्यों मोहित कर रहे हैं ॥२॥ आप सारे संसार के योनि एवं बीजभूत प्रकृति तथा पुरुष तत्त्वों से भी परे हो। आप परब्रह्म हो एवं मन तथा वाणी के विषय से परे हो ॥ ३ ॥ आप ही अपनी इच्छा से इस विश्व को रचते हैं, रक्षा करते हैं तथा संहार भी करते हैं, जैसे मकड़ी अपने मुँह से जाले को बनाती है तथा उसको पुनः समेट भी लेती है, उसी प्रकार आप अपनी शक्ति द्वारा विविध क्रीड़ाएँ करते रहते हैं ॥४॥ हे ईशान ! हे विभो ! आपने वेदत्रयी की रक्षा के लिए दक्ष को सूत्र बनाकर यज्ञ की रचना की है ॥ ५ ॥ आप ने इस संसार में जो शुद्ध वैदिक मर्यादा के सेतु का निर्माण किया है उस पर वेदमार्ग-परायण दृढव्रतधारी ब्राह्मण लोग श्रद्धा करते हैं ॥ ६ ॥

हे मङ्गलस्वरूप शिव ! आप पुण्यकर्म करनेवालों को स्वर्गलोक देते हैं एवं पापकर्म करने वालों को घोर नरक प्रदान करते हैं। कभी-कभी आप पापियों को भी कर्म के प्रतिकूल स्वर्गादि देकर उनका हित करते हैं। अतः आप की माया कौन जान सकता है ? ॥ ७ ॥ हे प्रभो ! आप ही सबके कर्मों का फल देने वाले हैं। जगत् के समस्त प्राणी पशु हैं तथा उनकी रक्षा के कारण आपका नाम पशुपति है ॥ ८ ॥ आप से भिन्न बुद्धि होने के कारण कर्म पर विश्वास कर दुरात्मा दुर्बुद्धि लोग ही ईर्ष्यावश सज्जनों को गालियाँ देकर तथा उन्हें मर्मभेदी कटुवाक्य कहकर कष्ट पहुचाते हैं ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! जो दुर्दैव द्वारा ही मारा जा रहा है, आपके द्वारा उन लोगों का वध नहीं होना चाहिए किन्तु उन पर तो आप की कृपा होनी ही चाहिए ॥ १० ॥ परम शान्त ब्रह्म, परमात्मा, जटाधारी, स्वयंप्रकाश, महान्, महेश एवं रुद्र भगवान् के लिए हमारा नमस्कार है ॥ ११ ॥ आप ही प्रजापतियों के स्रष्टा तथा धाता हैं, आप ही प्रपितामह हैं, आप त्रिगुणस्वरूप, निर्गुण एवं प्रकृति तथा पुरुष से भी परे हैं ॥ १२ ॥ नीलकण्ठ, विधाता, परमात्मा, विश्व एवं विश्व के कारण जगत् के आनन्दभूत आप रुद्र के लिए प्रणाम है ॥ १३ ॥ हे प्रभो !

कृतः कथं यज्ञभङ्गस्त्वया धर्मपरायण ! । ब्रह्मण्यस्त्वं महादेव ! कथं यज्ञहनो विभो ! ॥१५॥
ब्राह्मणानां गवां चैव धर्मस्य प्रतिपालकः । शरण्योऽसि सदाऽनन्त्यः सर्वेषां प्राणिनां प्रभो !॥१६॥
नमस्ते भगवन् रुद्र भास्करामिततेजसे । नमो भवाय देवाय रसायाम्बुमयाय ते ॥१७॥
शर्वाय क्षितिरूपाय सदा सुरभिणे नमः । रुद्रायाऽग्निस्वरूपाय महातेजस्विने नमः ॥१८॥
ईशाय वायवे तुभ्यं संस्पर्शाय नमो नमः । पशूनां पतये तुभ्यं यजमानाय वेधसे ॥१९॥
भीमाय व्योमरूपाय शब्दमात्राय ते नमः । महादेवाय सोमाय प्रवृत्ताय नमोऽस्तु ते ॥२०॥
उग्राय सूर्यरूपाय नमस्ते कर्मयोगिने । नमस्ते कालकालाय नमस्ते रुद्रमन्यवे ॥२१॥
नमः शिवाय भीमाय शङ्कराय शिवाय ते । उग्रोऽसि सर्वभूतानां नियन्ता यच्छिवोऽसि नः॥२२॥
मयस्कराय विश्वाय ब्रह्मणे ह्यार्तिनाशिने । अम्बिकापतये तुभ्यमुमायाः पतये नमः ॥२३॥
शर्वाय सर्वरूपाय पुरुषाय परात्मने । सदसद्-व्यक्तिहीनाय महतः कारणाय ते ॥२४॥
जाताय बहुधा लोके प्रभूताय नमो नमः । नीलाय नीलरुद्राय कद्रुद्राय प्रचेतसे ॥२५॥
मीढुष्टमाय देवाय शिपिविष्टाय ते नमः । महीयसे नमस्तुभ्यं हन्त्रे देवारिणां सदा ॥२६॥
ताराय च सुताराय तरुणाय सुतेजसे । हरिकेशाय देवाय महेशाय नमो नमः ॥२७॥
देवानां शम्भवे तुभ्यं विभवे परमात्मने । परमाय नमस्तुभ्यं कालकण्ठाय ते नमः ॥२८॥

आप ही ॐकार और वषट्कार हो, सारे कार्यों में प्रवृत्त कराने वाले भी आप ही हो, आप ही हन्तकार, स्वधाकार एवं हव्य-कव्य के भोक्ता हो ॥ १४ ॥ हे महादेव ! आप तो धर्मपरायण हो फिर आपने इस यज्ञ का विध्वंस क्यों किया । हे महादेव ! आप तो ब्राह्मणों का हित करने वाले ब्रह्मण्य देव हैं फिर इस यज्ञ के नाशक कैसे बन गये ॥ १५ ॥ हे प्रभो ! आप ब्राह्मण, गौ तथा धर्म की रक्षा करने वाले हैं एवं संसारमात्र को शरण देने वाले हैं और अनन्त हैं ॥ १६ ॥ हे रुद्र भगवन् ! सूर्य के समान अमित तेजस्वी, आपके लिए प्रणाम है । रसमय, जलमय स्वरूप आप भव देवता को प्रणाम है ॥ १७ ॥ सुगन्धवाले पृथ्वीस्वरूप आप शङ्कर को प्रणाम है । अग्निरूप से महातेजस्वी आप रुद्र के लिए नमस्कार है ॥ १८ ॥ वायुरूप से स्पर्शवाले आप ईश्वर को नमस्कार है, पशुओं के पति, यजमान एवं विधाता रूप आपके लिए नमस्कार है ॥ १९ ॥ आकाशरूप शब्दवाले आप भीम को नमस्कार है, सोमस्वरूप से कर्म में प्रवृत्त करने वाले आप महादेव को नमस्कार है ॥ २० ॥

सूर्यरूप से कर्मयोगी आप उग्र के लिए नमस्कार है । हे रुद्र ! कालों के भी काल एवं क्रोधस्वरूप आपके लिए नमस्कार है ॥ २१ ॥ शिव, भीम एवं कल्याणकारी आप शिवशङ्कर को प्रणाम है । हे प्रभो ! आप उग्र हो, प्राणीमात्र के नियन्ता हो एवं सबका कल्याण करने से शिव हो, आपको नमस्कार है ॥ २२ ॥ सबको सुख देने वाले, आर्त्ति का नाश करने वाले, आप विश्वस्वरूप परब्रह्म परमात्मा को नमस्कार है । अम्बिकापति तथा उमापति आप शिव को नमस्कार है ॥ २३ ॥ जगत् के संहर्त्ता, सर्वस्वरूप, पुरुषरूप से सबके अन्तःकरण में रहने वाले, सत् एवं असत् इन दोनों की अभिव्यक्ति से हीन, अनिर्वचनीय स्वरूप, महत्तत्त्व के कारण, आप परमात्मा को नमस्कार है ॥ २४ ॥ संसार में अनेक प्रकार से होने वाले आपके लिए प्रणाम है, नीलस्वरूप, नील, रुद्र एवं ह्रस्व तथा वामन आदि कुत्सितरूप से विद्यमान आप रुद्र को नमस्कार है ॥ २५ ॥

भक्तों पर आनन्द की वर्षा करेने वाले, शिपिविष्ट, देवताओं के शत्रुओं को मारने वाले, दिव्यगुण-सम्पन्न आप सर्वश्रेष्ठ को नमस्कार है ॥ २६ ॥ तारकमन्त्रस्वरूप, सबको तारनेवाले, तरुणतेजस्वी हरिकेश (हरितकेश वाले) आप महेश्वर देवता को नमस्कार है ॥ २७ ॥ देवताओं के कल्याणकारक, सर्वैश्वर्ययुक्त आप परमात्मा को नमस्कार है । विषयुक्त कण्ठवाले, आपको नमस्कार है ॥ २८ ॥ सुवर्ण-

हिरण्याय परेशाय हिरण्यवपुषे नमः। भीमाय भीमरूपाय भीमकर्मरताय च ॥२९॥
भस्मदिग्धशरीराय रुद्राक्षाभरणाय च। नमो ह्रस्वाय दीर्घाय वामनाय नमोऽस्तु ते ॥३०॥
दूरेवधाय ते देवाग्रेवधाय नमो नमः। धन्विने शूलिने तुभ्यं गदिने हलिने नमः ॥३१॥
नानायुधधरायैव दैत्यदानवनाशिने। सद्याय सद्यरूपाय सद्योजाताय वै नमः ॥३२॥
वामाय वामरूपाय वामनेत्राय ते नमः। अघोराय परेशाय विकटाय नमो नमः ॥३३॥
तत्पुरुषाय नाथाय पुराणपुरुषाय च। पुरुषार्थप्रदानाय व्रतिने परमेष्ठिने ॥३४॥
ईशानाय नमस्तुभ्यमीश्वराय नमो नमः। ब्रह्मणे ब्रह्मरूपाय नमः साक्षात् परात्मने ॥३५॥
उग्रोऽसि सर्वदुष्टानां नियन्ताऽसि शिवोऽसि नः। कालकूटाशिने तुभ्यं देवाद्यवनकारिणे ॥३६॥
वीराय वीरभद्राय रक्षद्वीराय शूलिने। महादेवाय महते पशूनां पतये नमः ॥३७॥
वीरात्मने सुविद्याय श्रीकण्ठाय पिनाकिने। नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय नमस्ते मृत्युमन्यवे ॥३८॥
पराय परमेशाय परात्परतराय ते। परात्पराय विभवे नमस्ते विश्वमूर्तये ॥३९॥
नमो विष्णुकलत्राय विष्णुक्षेत्राय भानवे। भैरवाय शरण्याय त्र्यम्बकाय विहारिणे ॥४०॥
मृत्युञ्जयाय शोकाय त्रिगुणाय गुणात्मने। चन्द्र-सूर्या-ऽग्निनेत्राय सर्वकारणसेतवे ॥४१॥
भवता हि जगत्सर्वं व्याप्तं स्वेनैव तेजसा। परब्रह्म निर्विकारी चिदानन्दः प्रकाशवान् ॥४२॥

स्वरूप, सुवर्णमय शरीरवाले, भीम तथा भीमरूप एवं भीमकर्म करनेवाले आपको प्रणाम है ॥ २९ ॥ शरीर में भस्म का लेप करनेवाले, रुद्राक्ष का आभूषण धारण करने वाले, ह्रस्व-दीर्घ तथा वामनस्वरूप वाले, आपके लिए बारम्वार प्रणाम है ॥ ३० ॥ हे देव! दूर के रहनेवालों का तथा आगे के रहनेवालों का वध करने वाले, आपको नमस्कार है। धनुष, शूल, गदा तथा हल धारण करने वाले, आपको नमस्कार है ॥ ३१ ॥ अनेक आयुधों को धारण करने वाले, दैत्य-दानवों का विनाश करने वाले, सद्य एवं तत्क्षण स्वरूप-धारी और सद्योजात, आपके लिए नमस्कार है ॥ ३२ ॥ सुन्दर, सुन्दरस्वरूप, सुन्दर नेत्र, आपको नमस्कार है। अघोर, परेश एवं निष्पाप, आप शिव को नमस्कार है ॥ ३३ ॥ तत्पुरुष, नाथ, पुराणपुरुष, आपको नमस्कार है। पुरुषार्थ प्रदान करने वाले, परमेष्ठी एवं व्रत धारण करने वाले, आपके लिए प्रणाम है ॥ ३४ ॥ ईशान तथा ईश्वरस्वरूप आपको नमस्कार है। ब्रह्म, ब्रह्मस्वरूप एवं साक्षातपरमात्मास्वरूप आपके लिए नमस्कार है ॥ ३५ ॥ आप उग्र हैं, सभी दुष्टों को नियन्त्रित करनेवाले एवं हम देवताओं का कल्याण करने वाले हैं, कालकूट नामक विष का पान करने वाले एवं देवतादिकों की रक्षा करने वाले हैं ॥ ३६ ॥

वीर, वीरभद्र, वीरों की रक्षा करने वाले, त्रिशूलधारण करने वाले, पशुपति, महान् तथा महादेव को हम प्रणाम करते हैं ॥ ३७ ॥ वीरात्मा, सब-कुछ जानने वाले, श्रीकण्ठ, पिनाकधारी, अनन्त, सूक्ष्मरूप वाले, मृत्यु तथा क्रोधस्वरूप वाले, आप परमात्मा को नमस्कार है ॥ ३८ ॥ पर, परमेश्वर, परात्परतर, परात्पर, सर्वैश्वर्य-सम्पन्न तथा विश्वमूर्ति आप के लिए प्रणाम है ॥ ३९ ॥ विष्णु को कलत्र के समान अपना मित्र मानने वाले, विष्णु को अपना कुटुम्ब मानने वाले, प्रकाश करनेवाले, भैरव, सबको शरण देने वाले, त्रिलोचन एवं सर्वत्र विहार करने वाले, आप शिव को प्रणाम है ॥ ४० ॥ मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाले, शोकस्वरूप, त्रिगुणात्मक, गुणरूप, सूर्य, चन्द्र एवं अग्निरूप, तीन नेत्र वाले, सबके कारण तथा संसार की मर्यादा रखने वाले, आपको नमस्कार है ॥ ४१ ॥ आप ही अपने तेज से सारे जगत् में

ब्रह्म-विष्ण्विन्द्र-चन्द्रादि-प्रमुखाः सकलाः सुराः। मुनयश्चापरे त्वत्तः संप्रसूता महेश्वर! ॥४३॥
यतो बिभर्षि सकलं विभज्य तनुमष्टधा। अष्टमूर्तिरितीशश्च त्वमाद्यः करुणामयः ॥४४॥
त्वद्भयाद् वाति वातोऽयं दहत्यग्निर्भयाच्चव। सूर्यस्तपति ते भीत्या मृत्युर्धावति सर्वतः ॥४५॥
दयासिन्धो महेशान प्रसीद परमेश्वर!। रक्ष रक्ष सदैवाऽस्मान् यस्मान्नष्टान् विचेतसः ॥४६॥
रक्षिताः सततं नाथ! त्वयैव करुणानिधे!। नानाऽऽपद्भ्यो वयं शम्भो तथैवाऽद्य प्रपाहि नः॥४७॥
यज्ञस्योद्धरणं नाथ कुरु शीघ्रं प्रसादकृत्। असमाप्तस्य दुर्गेश! दक्षस्य च प्रजापतेः ॥४८॥
भगोऽक्षिणी प्रपद्येत यजमानश्च जीवतु। पूष्णो दन्ताश्च रोहन्तु भृगोः श्मश्रूणि पूर्ववत् ॥४९॥
भवताऽनुग्रहीतानां देवादीनां च सर्वशः। आरोग्यं भग्नगात्राणां शङ्कर त्वायुधाश्मभिः ॥५०॥
पूर्णभागोऽस्तु ते नाथाऽवशिष्टेऽध्वरकर्मणि। रुद्रभागेन यज्ञस्ते कल्पितो नाऽन्यथा क्वचित् ॥५१॥
इत्युक्त्वा सप्रजेशश्च रमेशश्च कृताञ्जलिः। दण्डवत् पतितो भूमौ क्षमापयितुमुद्यतः ॥५२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे देवस्तुतिवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

व्याप्त हैं, आप ही परब्रह्म, विकाररहित, चिदानन्द एवं प्रकाश करने वाले हैं ॥४२॥ हे महेश्वर! ये सभी ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्र आदि समस्त देव तथा मुनिगण आपसे ही प्रगट हुए हैं ॥ ४३ ॥ आप ही आठ प्रकार से अपने शरीर को विभक्त कर इस जगत् की रक्षा करते हैं, इसी से आप अष्टमूर्ति कहे जाते हैं। आप ही ईश्वर जगत् के आदि कारण तथा करुणामय हैं ॥ ४४ ॥ हे प्रभो! आप के ही भय से वायु सर्वदा बहता रहता है, आपके ही भय से अग्नि जलती है, आपके ही भय से सूर्य तपता है तथा आपके ही भय से इस जगत् को खाने के लिये मृत्यु सर्वत्र दौड़ता रहता है ॥ ४५ ॥

हे दयासिन्धो! हे महेशान! हे परमेश्वर! हमलोग नष्ट हो गये हैं और कर्त्तव्यशून्य हैं, अतः आप हम लोगों पर प्रसन्न होकर हमारी रक्षा करें ॥ ४६ ॥ हे करुणानिधान! आपने सदैव ही हमलोगों की आपत्तियों से रक्षा की है। हे शम्भो! उसी प्रकार आज भी आपत्ति से हमलोगों की रक्षा करें ॥ ४७ ॥ हे दुर्गेश, सदाशिव! आप शीघ्र ही प्रसन्न हो जाइए। और प्रजापति दक्ष के इस अपूर्ण यज्ञ का उद्धार कर इसे शीघ्र सफल कीजिए ॥ ४८ ॥ भग देवता को पूर्ववत् नेत्र प्राप्त हो जावे, यह यजमान दक्ष जीवित हो जाय, पूषा को पूर्ववत् दाँतों की प्राप्ति तथा महर्षि भृगु की दाढ़ी पूर्ववत् हो जाय ॥ ४९ ॥ इस यज्ञ में आप के गणों तथा वीरभद्र के आयुधों से जिन देवताओं के अङ्ग-भङ्ग हो गये हैं और वे घायल हो गये हैं, उनका शरीर ठीक हो जाये ॥ ५० ॥ हे रुद्र! यज्ञ का अवशिष्ट भाग ही आपका पूर्ण भाग होवे तथा आपके उसी यज्ञ के शेष भाग से ही यज्ञ की पूर्ति होगी, अन्यथा नहीं ॥ ५१ ॥ यह कहकर ब्रह्मा के सहित विष्णुदेव हाथ जोड़कर क्षमा कराने के लिए उद्यत हो दण्डे के समान पृथ्वी पर लोट गये ॥५२॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में देवस्तुतिवर्णन नामक इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥

*

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

(विष्णु-स्तुति से प्रसन्न शिव द्वारा दक्षयज्ञ पूर्ण करने के उपाय का वर्णन)

ब्रह्मोवाच

श्रीब्रह्मेशप्रजेशेन सदैव मुनिना च वै । अनुनीतः शम्भुरासीत् प्रसन्नः परमेश्वरः ॥ १ ॥
आश्वास्य देवान् विष्ण्वादीन् विहस्य करुणानिधिः । उवाच परमेशानः कुर्वन् परमनुग्रहम् ॥ २ ॥

श्रीमहादेव उवाच

शृणुतं सावधानेन मम वाक्यं सुरोत्तमौ । यथार्थं वच्मि वां तात वां क्रोधं सर्वदाऽसहम् ॥ ३ ॥
नाघं तनौ तु बालानां वर्णमेवाऽनुचिन्तये । मम मायाभिभूतानां दण्डस्तत्र धृतो मया ॥ ४ ॥
दक्षस्य यज्ञभङ्गोऽयं न कृतश्च मया क्वचित् । परं द्वेष्टि परेषां यदात्मनस्तद्भविष्यति ॥ ५ ॥
परेषां क्लेदनं कर्म न कार्यं तत् कदाचन । परं द्वेष्टि परेषां यदात्मनस्तद्भविष्यति ॥ ६ ॥
दक्षस्य यज्ञशीर्ष्णो हि भवत्वजमुखं शिरः । मित्रनेत्रेण संपश्येद्यज्ञभागं भगः सुरः ॥ ७ ॥
पूषाभिधः सुरस्तातौ दद्भिर्यज्ञसुपिष्टभुक् । यजमानैर्भग्नदन्तः सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ८ ॥
बस्तश्मश्रुर्भवेदेव भृगुर्मम विरोधकृत् । देवाः प्रकृतिसर्वाङ्गा ये म उच्छेदनं ददुः ॥ ९ ॥
बाहुभ्यामश्विनौ पूष्णो हस्ताभ्यां कृतबाहकौ । भवन्त्वध्वर्यवश्चाऽन्ये भवत्प्रीत्या मयोदितम् ॥ १० ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा परमेशानो विरराम दयान्वितः । चराचरपतिर्देवः सम्राट् वेदानुसारकृत् ॥ ११ ॥
तदा सर्वे सुराद्यास्ते श्रुत्वा शङ्करभाषितम् । साधु साध्विति सम्प्रोचुः परितुष्टाः सविष्णुजाः ॥ १२ ॥
ततः शम्भुं ससामन्त्र्य मया विष्णुः सुरर्षिभिः । भूयस्तद्देवयजनं ययौ च परया मुदा ॥ १३ ॥

ब्रह्माजी बोले—जब ब्रह्मा, विष्णु तथा समस्त मुनियों ने शङ्कर जी से इस प्रकार प्रार्थना की तब भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥ १ ॥ तदनन्तर करुणानिधि भगवान् शंकर ने देवताओं को सान्त्वना देते हुए कृपापूर्वक हँसकर कहा ॥ २ ॥

महादेवजी बोले – हे देवश्रेष्ठो, ब्रह्मा तथा विष्णु, हमारी बात सावधानी से सुनो, ऐसे तो तुम दोनों का क्रोध मैं सर्वथा सहन करता रहता हूँ किन्तु इस समय जो बात यथार्थ है उसे कहता हूँ ॥ ३ ॥ मेरी माया में पड़े हुए बालक जैसे मूर्ख इन देवताओं के अपराध की चिन्ता मैं नहीं करता किन्तु इन्हें सावधान करने के लिए ही मैंने यह दण्ड दिया है ॥ ४ ॥ मैंने दक्ष के इस यज्ञ को नष्ट नहीं किया है, किन्तु जो दूसरे से द्वेष कर उसका अनिष्ट करना चाहता है पहले उसी का अनिष्ट होता है ॥ ५ ॥ इस-लिए कभी भी दूसरों को दुःख नहीं देना चाहिए ॥ ६ ॥ दक्ष का सिर काटकर अग्नि में डाल दिया गया है, इसलिए उसका बकरे का सिर हो जाये । यह भग देवता सूर्य के नेत्रों से अपना यज्ञ भाग देखें ॥ ७ ॥ ये पूषा देवता जिनका इस यज्ञ में दाँत टूट गया है, यजमान के द्वारा दिये गये सुपिष्ट (सत्तू) का उपयोग करें, यह मैं सत्य कहता हूँ ॥ ८ ॥ मेरा विरोध करने वाले इन महर्षि भृगु की दाढ़ी. बकरे की दाढ़ी जैसी हो जावे । जिन देवताओं ने मुझे यज्ञ का अवशिष्ट भाग प्रदान किया है वे देवता भी पूर्ववत् सुन्दर एवं सर्वाङ्गपूर्ण हो जावें ॥ ९ ॥ यह सारा कार्य दोनों अश्विनी कुमारों के तथा पूषा के हाँथों द्वारा सम्पन्न होना चाहिए । इसी प्रकार यज्ञ के समस्त अध्वर्युगण भी प्रसन्न होकर स्वास्थ्य लाभ करेंगे । आपलोगों के स्नेह के कारण मैंने ऐसा कहा है ॥ १० ॥

ब्रह्माजी बोले—परमेश्वर, दयालु, चराचरपति सम्राट् तथा वेदों का अनुसरण करने वाले सदाशिव इतना कहकर मौन हो गये ॥ ११ ॥ उनके इस भाषण से विष्णु, ब्रह्मा तथा समस्त देवगण सन्तुष्ट हो धन्य-धन्य कहने लगे ॥ १२ ॥ तदनन्तर भगवान् विष्णु समस्त ऋषियों के साथ तथा मेरे साथ शिव

एवं तेषां प्रार्थनया विष्णुप्रभृतिभिः सुरैः । ययौ कनखलं शम्भुर्यज्ञवाटं प्रजापतेः ॥१४॥
रुद्रस्तदा ददर्शाथ वीरभद्रेण यत्कृतम् । प्रध्वंसं तं क्रतोस्तत्र देवर्षीणां विशेषतः ॥१५॥
स्वाहा स्वधा तथा पूषा तुष्टिर्धृतिः सरस्वती । तथाऽन्ये ऋषयः सर्वे पितरश्चाऽग्नयस्तथा ॥१६॥
येऽन्ये च बहवस्तत्र यक्ष-गन्धर्व-राक्षसाः । त्रोटिता लुञ्चिताश्चैव मृताः केचिद्रणाजिरे ॥१७॥
यज्ञं तथाविधं दृष्ट्वा समाहूय गणाधिपम् । वीरभद्रं महावीरमुवाच प्रहसन् प्रभुः ॥१८॥
वीरभद्र महाबाहो किं कृतं कर्म ते त्विदम् । महान् दण्डो धृतस्तात देवर्ष्यादिषु सत्वरम् ॥१९॥
दक्षमानय शीघ्रं त्वं येनेदं कृतमीदृशम् । यज्ञो विलक्षणस्तात यस्येदं फलमीदृशम् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तः शङ्करेण वीरभद्रस्त्वरान्वितः । कबन्धमानयित्वाऽग्रे तस्य शम्भोरथाक्षिपत् ॥२१॥
विशिरस्कं च तं दृष्ट्वा शङ्करो लोकशङ्करः । वीरभद्रमुवाचाग्रे विहसन् मुनिसत्तम ! ॥२२॥
शिरः कुत्रेति तेनोक्तं वीरभद्रोऽब्रवीत् प्रभुः । मया शिरो हुतं चाऽग्नौ तदानीमेव शङ्कर ! ॥२३॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य वीरभद्रस्य शङ्करः । देवान् तथाज्ञपत् प्रीत्या यदुक्तं तत्पुरा प्रभुः ॥२४॥
विधाय कार्त्स्न्येन च तद्यदाह भगवान् भवः । मया विष्ण्वादयः सर्वे भृग्वादीनथ सत्वरम् ॥२५॥
अथ प्रजापतेस्तस्य सवनीयपशोः शिरः । बस्तस्य संदधुः शम्भोः कायेनारं सुशासनात् ॥२६॥
सन्धीयमाने शिरसि शम्भुसंदृष्टिवीक्षितः । सद्यः सुप्त इवोत्तस्थौ लब्धप्राणः प्रजापतिः ॥२७॥
उत्थितश्चाऽग्रतः शम्भुं ददर्श करुणानिधिम् । दक्षः प्रीतमतिः प्रीत्या संस्थितः सुप्रसन्नधीः ॥२८॥
पुरा हर महाद्वेषकलिलात्माऽभवद्धि सः । शिवावलोकनात् सद्यः शरच्चन्द्र इवामलः ॥२९॥

जी को आमन्त्रित कर उस यज्ञ-भूमि में ले गये ॥ १३ ॥ इस प्रकार भगवान् विष्णु आदि देवताओं के साथ सदाशिव कनखल में, जहाँ प्रजापति दक्ष का यज्ञ हो रहा था वहाँ गये ॥ १४ ॥ भगवान् रुद्र ने वहाँ जाकर वीरभद्र के द्वारा किये गये यज्ञ का तथा विशेष रूप से देवर्षियों का जो विध्वंस हुआ था उसे देखा ॥१५॥ उस संग्रामस्थल में स्वाहा, स्वधा, पूषा, तुष्टि, धृति, सरस्वती के अतिरिक्त अन्य सभी ऋषि, पितर एवं अग्नि तथा अनेक गन्धर्व, यक्ष तथा राक्षस मृतक होकर पड़े थे। किसी का शिर तोड़ दिया गया था, किसी के शिर के बाल नोंच लिये गये थे ॥ १६-१७ ॥ यज्ञ की इस प्रकार की दुर्दशा देखकर भगवान् शङ्कर वीरभद्र को बुलाया और हँसते हुए कहा ॥ १८ ॥ हे महाबाहो वीरभद्र ! यह सब तुमने क्या कर दिया। हे तात ! तुमने इन देवताओं तथा ऋषियों को बड़ी शीघ्रता से इतना कठिन दण्ड क्यों दे दिया ॥ १९ ॥ हे तात ! तुम शीघ्र ही उस दक्ष को यहाँ ले आओ, जिसने इस विलक्षण यज्ञ का आरम्भ किया है किन्तु शोक है कि उसका फल उलटा ही हुआ ॥ २० ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार शिवजी का वचन सुनकर वीरभद्र ने शीघ्र ही दक्ष का कबन्ध लाकर शिवजी के आगे रख दिया ॥ २१ ॥ तब हे मुनिश्रेष्ठ ! लोक का कल्याण करने वाले शिव ने उसे सिर विहीन देखकर वीरभद्र से हँसते हुए कहा ॥ २२ ॥ हे वीरभद्र ! बताओ, इस दक्ष का सिर कहाँ है ? तब वीरभद्र बोले—हे भगवन् ! मैंने तो इसके शिर को उसी समय तोड़कर अग्नि में हवन कर दिया ॥ २३ ॥ वीरभद्र की बात सुनकर शिवजी ने जो पहले कहा था उसी वाक्य का देवताओं को स्मरण कराया ॥ २४ ॥ फिर भगवान् शिव ने जैसा कहा था उसे सम्पन्न कर विष्णु आदि समस्त देवगण मुझे साथ लेकर भृगु आदि महर्षियों के पास गये ॥ २५ ॥ भगवान् शङ्कर ने यज्ञोचित पशु (बकरे) का शिर लेकर प्रजापति दक्ष के शिरःस्थान से जोड़ दिया ॥ २६ ॥ और कृपादृष्टि से उसे देखा। फिर तो दक्ष प्रजापति जीवित होकर इस प्रकार उठ बैठे मानो सोकर उठे हों ॥ २७ ॥ उन्होंने उठकर बड़ी प्रसन्नता से अपने सम्मुख खड़े हुए करुणानिधि भगवान् शंकर का दर्शन किया ॥ २८ ॥ पहले शङ्करजी से द्वेष के कारण उनकी आत्मा कलुषित थी, किन्तु शिवजी के दर्शनमात्र से ही उनका वह कालुष्य दूर हो

भवं स्तोतुमनाः सोऽथ नाशक्नोदनुरागतः । उत्कण्ठाविकलत्वाच्च संपरेतां सुतां स्मरन् ॥३०॥
अथ दक्षः प्रसन्नात्मा शिवं लज्जासमन्वितः । तुष्टाव प्रणतो भूत्वा शङ्करं लोकशङ्करम् ॥३१॥

दक्ष उवाच

नमामि देवं वरदं वरेण्यं महेश्वरं ज्ञाननिधिं सनातनम् ।
नमामि देवाधिपतीश्वरं हरं सदासुखाढ्यं जगदेकबान्धवम् ॥३२॥
नमामि विश्वेश्वर ! विश्वरूपं पुरातनं ब्रह्मनिजात्मरूपम् ।
नमामि शर्वं भवभावभावं परात्परं शङ्करमानतोऽस्मि ॥३३॥

देवदेव महादेव कृपां कुरु नमोऽस्तु ते । अपराधं क्षमस्वाद्य मम शम्भो कृपानिधे ! ॥३४॥
अनुग्रहः कृतस्ते हि दण्डव्याजेन शङ्कर ! । खलोऽहं मूढधीर्देव ज्ञातं तत्त्वं मया न ते ॥३५॥
अद्य ज्ञातं मया तत्त्वं सर्वोपरि भवान्मतः । विष्णु-ब्रह्मादिभिः सेव्यो वेदवेद्यो महेश्वरः ॥३६॥
साधूनां कल्पवृक्षस्त्वं दुष्टानां दण्डधृक् सदा । स्वतन्त्रः परमात्मा हि भक्ताभीष्टवरप्रदः ॥३७॥
विद्यातपोव्रतधरानसृजः प्रथमं द्विजान् । आत्मतत्त्वं समावेत्तुं मुखतः परमेश्वरः ॥३८॥
सर्वापद्भ्यः पालयिता गोपतिस्तु पशूनिव । गृहीतदण्डो दुष्टांस्तान् मर्यादापरिपालकः ॥३९॥
मया दुरुक्तविशिखैः प्रविद्धः परमेश्वरः । अमरानतिदीनाशान् मदनुग्रहकारकः ॥४०॥
स भवान् भगवान् शम्भो दीनबन्धो परात्परः । स्वकृतेन महार्हेण सन्तुष्टो भक्तवत्सल ! ॥४१॥

गया और वे शरत्कालीन चन्द्रमा के समान निर्मल हो गये ॥ २९ ॥ वे यद्यपि अनुरागवश हो मन में शिव की स्तुति की इच्छा कर रहे थे किन्तु उन्हें उसी समय सती के मरण का स्मरण हो गया । इसलिए ये उत्कण्ठा से व्याकुल हो गये और स्तुति करने में असमर्थ हो गये ॥ ३० ॥ तदनन्तर लज्जित होकर, धैर्य से दक्ष प्रजापति ने प्रसन्नतापूर्वक लोक का कल्याण करने वाले भगवान् शंकर को प्रणाम किया और उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३१ ॥

दक्ष बोले—वर देने वाले, महाज्ञानी, श्रेष्ठ, सनातन, देवाधिपतियों के भी ईश्वर, सुखस्वरूप तथा संसार के एकमात्र सहायक भगवान् शंकर को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३२ ॥ विश्वेश्वर, विश्वरूप, पुराणपुरुष, ब्रह्म तथा आत्मस्वरूप, भावाभावस्वरूप, संसार के संहारकर्त्ता तथा परात्पर परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३३ ॥ हे देवदेव, हे महादेव ! आपको नमस्कार है, मेरा अपराध क्षमा कीजिए। और हे कृपानिधे ! हे शम्भो ! मुझपर कृपा कीजिए ॥ ३४ ॥ हे शङ्कर ! आपने इस दण्ड के बहाने हमपर कृपा ही की है, मैं महाखल तथा मूर्ख हूँ । क्योंकि, मुझे आपके तत्त्व का ज्ञान नहीं है ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! आज मुझे आपके तात्त्विक स्वरूप का ज्ञान हुआ कि आप सब से श्रेष्ठ हैं, आप विष्णु एवं ब्रह्मादि देवों के भी सेव्य, वेदवेद्य एवं महेश्वर हैं ॥ ३६ ॥ आप सज्जनों के लिए कल्पवृक्ष हैं, और दुष्टों को दण्ड देकर उनका दमन करते हैं । आप सर्वथा स्वतन्त्र परमात्मा हैं एवं भक्तों का अभीष्ट पूर्ण करने वाले हैं ॥ ३७ ॥ आप परमेश्वर ने अपने मुख से विद्या, तप तथा व्रत धारण करने वाले इन ब्राह्मणों को तत्त्व का साक्षात्कार करने के लिए उत्पन्न किया है ॥ ३८ ॥ समस्त गोरूप पशुओं की रक्षा जिस प्रकार गोपति करता है, उसी प्रकार आप इन समस्त जीवों की रक्षा पशुपतिस्वरूप से करते हैं । आप मर्यादा के परिपालक तथा दुष्टों के लिए दण्ड धारण करते हैं ॥ ३९ ॥ हे भगवन् ! मैंने अनेक प्रकार के तीक्ष्ण वाग्-बाणों से आप परमेश्वर को बड़ा कष्ट पहुँचाया है फिर भी अत्यन्त क्षीण आशावाले इन देवताओं पर तथा मुझपर आपने कृपा ही की है ॥ ४० ॥ अतः हे भक्तवत्सल, हे शम्भो ! हे दीनबन्धो ! आप परात्पर योग्य कर्त्तव्य से स्वयं सन्तुष्ट हो जाइए ॥ ४१ ॥

ब्रह्मोवाच

इति स्तुत्वा महेशानं शङ्करं लोकशङ्करम् । प्रजापतिर्विनीतात्मा विरराम महाप्रभुम् ॥४२॥
अथ विष्णुः प्रसन्नात्मा तुष्टाव वृषभध्वजम् । बाष्पगद्गदया वाण्या सुप्रणम्य कृताञ्जलिः ॥४३॥

विष्णुरुवाच

महादेव महेशान लोकानुग्रहकारक ! । परब्रह्म परात्मा त्वं दीनबन्धो दयानिधे ! ॥४४॥
सर्वव्यापी स्वैरवर्ती वेदवेद्ययशाः प्रभोः । अनुग्रहः कृतस्तेन कृताश्चाद्य कृता वयम् ॥४५॥
दक्षोऽयं मम भक्तस्त्वां यन्निनिन्द खलः पुरा । तत् क्षन्तव्यं महेशाद्य निर्विकारो यतो भवान् ॥४६॥
कृतो मयापराधोऽपि तव शङ्कर मूढतः । त्वद्गणेन कृतं युद्धं वीरभद्रेण पक्षतः ॥४७॥
त्वं मे स्वामी परब्रह्म दासोऽहं ते सदाशिव । पोष्यश्चापि सदा ते हि सर्वेषां त्वं पिता यतः ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो । स्वतन्त्रः परमात्मा त्वं परमेशोऽद्वयोऽव्ययः ॥४९॥
मम पुत्रोपरि कृतो देवानुग्रह ईश्वर । स्वापमानमगणयन् दक्षयज्ञं समुद्धर ॥५०॥
प्रसन्नो भव देवेश ! सर्वशापान्निराकुरु । सबोधः प्रेरकस्त्वं मे त्वमेव विनिवारकः ॥५१॥
इति स्तुत्वा महेशानं परमं च महामुने ! । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विनम्रीकृतमस्तकः ॥५२॥
अथ शक्रादयो देवा लोकपालाः सुचेतसः । तुष्टुवुः शङ्करं देवं प्रसन्नमुखपङ्कजम् ॥५३॥
ततः प्रसन्नमनसः सर्वे देवास्तथा परे । सिद्धर्षयः प्रजेशाश्च तुष्टुवुः शङ्करं मुदा ॥५४॥
तथोपदेवनागाश्च सदस्या ब्राह्मणास्तथा । प्रणम्य परया भक्त्या तुष्टुवुश्च पृथक् पृथक् ॥५५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे दक्षदुःखनिराकरण-
वर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार लोक-कल्याणकारी भगवान् शिव की विनम्र भाव से स्तुति कर प्रजापति दक्ष मौन हो गये ॥ ४२ ॥ तदनन्तर भगवान् विष्णु प्रसन्नता से हाथ जोड़कर गद्गद् वाणी से शिव की स्तुति करने लगे ॥ ४३ ॥

विष्णु बोले—हे महादेव, हे महेशान, हे लोकानुग्रहकर्त्ता, हे दीनवन्धो, हे दयानिधे ! आप परब्रह्म तथा परमात्मास्वरूप हो ॥ ४४ ॥ हे प्रभो ! आप सर्वव्यापी स्वतन्त्र हो, आपका यश वेदों से जानने योग्य हैं । आपने हम लोगों पर बहुत बड़ा अनुग्रह किया, जिससे हमलोग कृतकृत्य हो गये ॥ ४५ ॥ हे महेश्वर ! इस मेरे भक्त, दुष्ट दक्ष ने पहले आपकी बहुत निन्दा की, उसे आप क्षमा करें, क्योंकि आप निर्विकार हैं ॥ ४६ ॥ हे शङ्कर ! मैंने भी मूर्खतावश आपका अपराध किया, जो दक्ष के पक्ष में होकर आपके वीरभद्र नामक गण से युद्ध किया ॥ ४७ ॥ हे सदाशिव ! आप मेरे स्वामी हैं, परब्रह्म हैं, मैं आपका दास हूँ, और आप सभी के पिता हैं, इसलिए आपको हम सबका पालन करना चाहिये ॥ ४८ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवदेव ! हे महादेव ! हे करुणासागर, हे प्रभो ! आप स्वतन्त्र एवं परमात्मा हैं, परमेश्वर, अद्वैत तथा अविनाशी हैं ॥४९॥ हे ईश्वर, हे देव ! आपने मेरे इस पुत्र दक्ष पर अनुग्रह किया । अब आप अपना अपमान भूलकर दक्ष के यज्ञ का उद्धार कीजिये ॥५०॥ हे देव ! अब आप इस पर प्रसन्न हो जाइए । और सब प्रकार के अपने शापों से इसका उद्धार कीजिए । क्योंकि आप ही ज्ञानस्वरूप होकर प्राणियों को प्रेरणा प्रदान करते तथा रोकते भी हो ॥५१॥ हे महामुनि नारद ! इस प्रकार नम्रता से सिर झुका हाथ जोड़कर मैंने परमात्मा शङ्कर की स्तुति की ॥५२॥ तदनन्तर इन्द्रादि देवगण एवं समस्त लोकपाल सावधान हो प्रसन्न मुखवाले उन शङ्करदेव की स्तुति करने लगे ॥ ५३ ॥ इसी प्रकार सभी देवता, सिद्ध, ऋषि एवं प्रजापतिगण भी प्रसन्न हो शिव की स्तुति करने लगे ॥ ५४ ॥ तत्पश्चात् उपदेवता, नाग, सदस्य तथा ब्राह्मण लोग भी भक्ति से शिव को प्रणाम कर पृथक्-पृथक् स्तुति करने लगे ॥ ५५ ॥

इस प्रकार 'शिववती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-
सतीखण्ड में दक्षदुःख-निराकरण नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

(वीरभद्र द्वारा मृत दक्ष को बकरे का शिर लगाकर पुनर्जीवित करना एवं सतीखण्ड के पाठश्रवण का फल कथन)

ब्रह्मोवाच

इति स्तुतो रमेशेन मया चैव सुरर्षिभिः । तथाऽन्यैश्च महादेवः प्रसन्नः सम्बभूव ह ॥ १ ॥
अथ शम्भुः कृपादृष्ट्या सर्वान् ऋषिसुरादिकान् । ब्रह्मविष्णू समाधाय दक्षमेतदुवाच ह ॥ २ ॥

महादेव उवाच

शृणु दक्ष ! प्रवक्ष्यामि प्रसन्नोऽस्मि प्रजापते । भक्ताधीनः सदाऽहं वै स्वतन्त्रोऽप्यखिलेश्वरः ॥ ३ ॥
चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनः सदा । उत्तरोत्तरतः श्रेष्ठास्तेषां दक्षप्रजापते ॥ ४ ॥
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी चैव चतुर्थकः । पूर्वे त्रयश्च सामान्याश्चतुर्थो हि विशिष्यते ॥ ५ ॥
तत्र ज्ञानी प्रियतरो मम रूपश्च स स्मृतः । तस्मात् प्रियतरो नाऽन्यः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ६ ॥
ज्ञानगम्योऽहमात्मज्ञो वेदान्तश्रुतिपारगैः । विना ज्ञानेन मां प्राप्तुं मूढाः कर्मवशा नराः ॥ ७ ॥
न वेदैश्च न यज्ञैश्च न दानैस्तपसा क्वचित् । न शक्नुवन्ति मां प्राप्तुं मूढाः कर्मवशा नराः ॥ ८ ॥
केवलं कर्मणा त्वं स्म संसारं तर्तुमिच्छसि । अत एवाभवं रुष्टो यज्ञविध्वंसकारकः ॥ ९ ॥
इतः प्रभृति भो दक्ष ! मत्वा मां परमेश्वरम् । बुद्ध्या ज्ञानपरो भूत्वा कुरु कर्म समाहितः ॥ १० ॥
अन्यच्च शृणु सद्बुद्ध्या वचनं मे प्रजापते । वच्मि गुह्यं धर्महेतोः सगुणत्वेऽप्यहं तव ॥ ११ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार जब मैंने, विष्णु ने तथा अन्यान्य देवगणों एवं ऋषियों ने शिव की स्तुति की, तब वे प्रसन्न हुए ॥ १ ॥ तदनन्तर उन्होंने समस्त ऋषि, मुनि, देवताओं, ब्रह्मा तथा विष्णु की ओर कृपापूर्ण दृष्टि से देखते हुए दक्ष से कहा ॥ २ ॥

शिवजी बोले—हे दक्षप्रजापते ! मैं प्रसन्न होकर जो तुमसे कहता हूँ उसे सुनो। यद्यपि मैं स्वतन्त्र तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का अधिपति हूँ, फिर भी भक्तों के आधीन हूँ ॥ ३ ॥ चार प्रकार के पुण्यशाली मनुष्य मुझे सर्वदा भजते हैं। आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी तथा ज्ञानी ये चार प्रकार के मेरे भक्त हैं। हे दक्षप्रजापते ! जिनमें उत्तरोत्तर क्रम से श्रेष्ठ हैं। इनमें प्रथम तीन भक्त तो सामान्य हैं, किन्तु चौथा ज्ञानी सबसे श्रेष्ठ है ॥ ४–५ ॥ ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है और वह मेरा ही स्वरूप है, मैं सत्य कहता हूँ कि ज्ञानी से बढ़कर मुझे कोई प्रिय नहीं है ॥ ६ ॥ वेदान्त एवं श्रुति के पारदृश्वा विद्वानों के ज्ञान से ही मैं गम्य हूँ। मैं स्वयं आत्मज्ञ हूँ। फिर भी अल्पबुद्धि वाले लोग मुझे बिना ज्ञान के ही प्राप्त करने का यत्न करते हैं ॥ ७ ॥ कर्मपरायण मूर्ख मनुष्य वेद, यज्ञ, दान एवं तप आदि से ज्ञान के बिना ही मुझे यथार्थ रूप से जानने में समर्थ नहीं है ॥ ८ ॥ हे दक्ष ! तुम तो कर्म के द्वारा ही संसार-सागर से पार जाना चाहते हो, इसलिए रुष्ट होकर मैंने तुम्हारे यज्ञ का विनाश किया ॥ ९ ॥ हे दक्ष ! अब तुम मुझे परमेश्वर समझ कर बुद्धि से ज्ञानपरायण होकर निष्कर्म भाव से सावधानीपूर्वक कर्म करो ॥ १० ॥ हे प्रजापते ! तुम सद्बुद्धि से मेरे और भी वचनों को सुनो, इस समय सगुण होकर धर्म के कारण मैं तुमसे इस गुप्त रहस्य को कहता हूँ ॥ ११ ॥

अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च जगतः कारणं परम् । आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः ॥१२॥
आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं मुने ! । सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दधे संज्ञाः क्रियोचिताः॥१३॥
अद्वितीये परे तस्मिन् ब्रह्मण्यात्मनि केवले । अज्ञः पश्यति भेदेन भूतानि ब्रह्म चेश्वरम् ॥१४॥
शिरःकरादिस्वाङ्गेषु कुरुते न यथा पुमान् । पारक्यशेमुषीं क्वापि भूतेष्वेवं हि मत्परः ॥१५॥
सर्वभूतात्मनामेकभावनां यो न पश्यति । त्रिसुराणां भिदां दक्ष स शान्तिमधिगच्छति ॥१६॥
यः करोति त्रिदेवेषु भेदबुद्धिं नराधमः । नरके स वसेन्नूनं यावदाचन्द्रतारकम् ॥१७॥
मत्परः पूजयेद् देवान् सर्वानपि विचक्षणः ! स ज्ञानं लभते येन मुक्तिर्भवति शाश्वती ॥१८॥
विधिभक्तिं विना नैव भक्तिर्भवति वैष्णवी । विष्णुभक्तिं विना मे न भक्तिः क्वापि प्रजायते ॥१९॥
इत्युक्त्वा शङ्करः स्वामी सर्वेषां परमेश्वरः । सर्वेषां शृण्वतां तत्रोवाच वाणीं कृपाकरः ॥२०॥
हरिभक्तो हि मां निन्देत्तथा शैवो भवेद्यदि । तयोः शापा भवेयुस्ते तत्त्वप्राप्तिर्भवेन्न हि ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य महेशस्य वचनं सुखकारकम् । जहर्षुः सकलास्तत्र सुरमुन्यादयो मुने ! ॥२२॥
दक्षोऽभवन् महाप्रीत्या शिवभक्तिरतस्तदा । सकुटुम्बः सुराद्यास्ते शिवं मत्वाऽखिलेश्वरम्॥२३॥
यथा येन कृता शम्भोः संस्तुतिः परमात्मनः । तथा तस्मै वरो दत्तः शम्भुना तुष्टचेतसा ॥२४॥
जप्तः शिवेनाशु दक्षः शिवभक्तः प्रसन्नधीः । यज्ञं चकार सम्पूर्णं शिवानुग्रहतो मुने ! ॥२५॥

मैं, ब्रह्मा तथा विष्णु ये तीन ही इस जगत् के कारण हैं परन्तु विशेष रूप से मैं ही इस जगत् का द्रष्टा हूँ ॥ १२ ॥ हे दक्ष ! मैं अपनी गुणमयी माया में प्रविष्ट होकर जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार करता हूँ। और उस क्रिया के अनुसार ही विभिन्न नामों को धारण करता हूँ ॥ १३ ॥ यद्यपि अद्वितीय परब्रह्म परमात्मा एक ही है, तो भी अज्ञानी लोग संसार, ईश्वर तथा परब्रह्म में भेद समझते हैं ॥ १४ ॥ जैसे, मनुष्य अपने शरीर के अङ्गभूत हाथ, पैर आदि अवयवों में भेदबुद्धि नहीं करता वैसे ही यह संसार भी मुझसे पृथक् नहीं है ॥ १५ ॥ हे दक्ष ! जो जगत् के समस्त पदार्थों में तथा त्रिदेवों में एक भावनात्मक परब्रह्म का दर्शन करता है, उनमें भेद नहीं देखता वही शान्ति को प्राप्त करता है ॥१६॥ जो इन तीनों देवों में भेदबुद्धि रखता है वह नराधम है, वह जब तक सूर्य एवं चन्द्रमा हैं तब तक नरक में वास करता है ॥ १७ ॥ जो मनुष्य सभी देवताओं में मेरी ही सत्ता को व्याप्त हुआ देख उनकी पूजा करता है, उसे आगे इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त हो जाता है, जिससे उसकी शाश्वती मुक्ति हो जाती है ॥१८॥ विधाता की भक्ति के विना विष्णु की भक्ति और विष्णु की भक्ति के बिना मेरी भक्ति किसी प्रकार प्राप्त नहीं होती ॥ १९ ॥ सबके स्वामी भगवान् शङ्कर इस प्रकार सबको सुनाते हुए फिर बोले—॥२०॥ जो विष्णुभक्त होकर मेरी निन्दा करे अथवा मेरा भक्त होकर विष्णु की निन्दा करे, उसे हम दोनों ही ऐसा शाप देते हैं कि जिससे उसे तत्त्व की प्राप्ति नहीं होती ॥ २१ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! इस प्रकार शङ्कर के सुखकारक वचन सुनकर वहाँ पर रहने वाले सभी देवता एवं मुनिगण परम प्रसन्न हो गये ॥ २२ ॥ तभी से दक्ष अत्यन्त प्रेम से शिव की भक्ति करने लगा। और देवगण भी अपने समस्त कुटुम्बियों के साथ शिव को परमेश्वर मानने लगे ॥ २३ ॥ जिन लोगों ने जिस प्रकार से परमात्मा शिव की जैसी स्तुति की थी, भगवान् शङ्कर ने उन लोगों को उसी प्रकार से उसी रूप में वरदान दिये ॥ २४ ॥ हे नारद ! दक्ष तो तत्काल ही शिव के नाम का जप

ददौ भागान् सुरेभ्यो हि पूर्णभागं शिवाय सः । दानं ददौ द्विजेभ्यश्च प्राप्तः शम्भोरनुग्रहः ॥२६॥
अथो देवस्य सुमहत्तत्कर्म विधिपूर्वकम् । दक्षः समाप्य विधिवत् सहर्त्विग्भिः प्रजापतिः ॥२७॥
एवं दक्षमखः पूर्णोऽभवत्तत्र मुनीश्वरः । शङ्करस्य प्रसादेन परब्रह्मस्वरूपिणः ॥२८॥
अथ देवर्षयः सर्वे शंसन्तः शाङ्करं यशः । स्वधामानि ययुस्तुष्टाः परेऽपि सुखतस्तदा ॥२९॥
अहं विष्णुश्च सुप्रीतावपि स्वं स्वं परं मुदा । गायन्तौ सुयशः शम्भोः सर्वमङ्गलदं सदा ॥३०॥
दक्षसम्मानितः प्रीत्या महादेवोऽपि सद्गतिः । कैलासं स ययौ शैलं सुप्रीतः सगणो निजम् ॥३१॥
आगत्य स्वगिरिं शम्भुः सस्मार स्वप्रियां सतीम् । गणेभ्यः कथयामास प्रधानेभ्यश्च तत्कथाम् ॥३२॥
कालं निनाय विज्ञानी बहु तच्चरितं वदन् । लौकिकीं गतिमाश्रित्य दर्शयन् कामितां प्रभुः ॥३३॥
नानीतिकारकः स्वामी परब्रह्म सतां गतिः । तस्य मोहः क्व वा शोकः क्व विकारः परो मुने ॥३४॥
अहं विष्णुश्च जानीवस्तद्भेदं न कदाचन । के परे मुनयो देवा मनुषाद्याश्च योगिनः ॥३५॥
महिमा शाङ्करोऽनन्तो दुर्विज्ञेयो मनीषिभिः । भक्तज्ञातश्च सद्भक्त्या तत्प्रसादाद् विना श्रमम् ॥३६॥
एकोऽपि न विकारो हि शिवस्य परमात्मनः । संदर्शयति लोकेभ्यः कृत्वा तां तादृशीं गतिम् ॥३७॥
यत् पठित्वा च संश्रुत्य सर्वलोकसुधीर्मुने । लभते सद्गतिं दिव्यामिहापि सुखमुत्तमम् ॥३८॥

करने लगे और शिव का अनुग्रह प्राप्त कर अपना यज्ञ पूर्ण कर लिया ॥ २५ ॥ फिर शिव का अनुग्रह प्राप्त कर दक्ष ने सभी देवताओं को यज्ञभाग दिया और शिवजी को पूर्ण भाग दिया । और ब्राह्मणों को वहुत-सा दान दिया ॥२६॥ इस प्रकार शङ्कर की कृपा से उस दक्ष प्रजापति ने विधिपूर्वक ऋत्विजों सहित यज्ञ का महान् कार्य समापन किया ॥ २७ ॥

हे मुनीश्वर नारद ! इस प्रकार परब्रह्म स्वरूप भगवान् शङ्कर की कृपा से दक्ष का यज्ञ सम्पूर्ण हुआ ॥ २८ ॥ तदनन्तर समस्त देवता, ऋषि आदि भगवान् शङ्कर का यश गाते हुए सन्तुष्ट होकर सुख से अपने-अपने आवास को चले गये ॥ २९ ॥ मैं एवं भगवान् विष्णु भी प्रेम से शङ्कर के यश का गान करते हुए एवं उनके मङ्गलदायक नामों का उच्चारण करते हुए अपने-अपने लोक को चले गये ॥ ३० ॥ सज्जनों को सद्गति देने वाले सदाशिव ने इस प्रकार दक्ष का सम्मान किया और अपने गणों के सहित वे कैलास चले गये ॥ ३१ ॥ उस पर्वत पर शिवजी ने अपनी परम प्रेयसी सती का स्मरण किया । और अपने प्रधान गणों को सती की कथा सुनाने लगे ॥ ३२ ॥ विशिष्ट ज्ञानसम्पन्न होते हुए भी भगवान् शङ्कर सांसारिक गति का अवलम्बन कर अपनी कामुकता प्रगट करते हुए सती का चरित्र वर्णन कर अपना समय विताने लगे ॥ ३३ ॥

हे मुने ! सबको सद्गति देने वाले, सबके स्वामी उन परब्रह्म सदाशिव को मोह, शोक अथवा अन्य विकार कहाँ से हो सकता है, इसलिए वे किसी के साथ भी अन्याय नहीं करते ॥ ३४ ॥ जब मैं तथा विष्णु उनके भेद को जानने में असमर्थ हैं तो फिर अन्य मुनि, देवता, मनुष्यादि तथा योगीजन उनकी गति को किस प्रकार जान सकते हैं ॥ ३५ ॥ शङ्कर की महिमा अनन्त है, जिसे बड़े-बड़े बुद्धिमान् भी जानने में असमर्थ हैं, किन्तु भक्त लोग उनकी कृपा प्राप्त कर विना श्रम के ही भक्ति के द्वारा उनकी महिमा जान लेते हैं ॥ ३६ ॥ भगवान् शङ्कर एक हैं, उनमें कोई विकार नहीं । किन्तु लोकपरायण सगुण रूप धारण कर वे अपनी लौकिक गति दिखाते हैं ॥३७॥ हे मुने नारद ! इस चरित्र को पढ़कर एवं सुनकर ज्ञानी पुरुष

इत्थं दाक्षायणी हित्वा निजदेहं सती पुनः । जज्ञे हिमवतः पत्न्यां मेनायामिति विश्रुतम् ॥३९॥
पुनः कृत्वा तपस्तत्र शिवं वव्रे पतिं च सा । गौरी भूत्वाऽर्द्धवामाङ्गी लीलाश्चक्रेऽद्भुताः शिवा॥४०॥
इत्थं सतीचरित्रं ते वर्णितं परमाद्भुतम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं सर्वकामप्रदायकम् ॥४१॥
इदमाख्यानमनघं पवित्रं परपावनम् । स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं पुत्रपौत्रफलप्रदम् ॥४२॥
य इदं शृणुयाद् भक्त्या श्रावयेद् भक्तिमान्नरान् । सर्वकर्मा लभेत्तात ! परत्र परमां गतिम् ॥४३॥
यः पठेत् पाठयेद् वाऽपि समाख्यानमिदं शुभम् ।
सोऽपि भुक्त्वाऽखिलान् भोगानन्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥४४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे दक्षयज्ञानुसन्धानवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

समाप्तोऽयं रुद्रसंहितायाः द्वितीयः सतीखण्डः ।

इस लोक में उत्तम सुख तथा अन्त में दिव्य गति प्राप्त करते हैं ॥ ३८ ॥ इस प्रकार दक्ष-कन्या सती ने अपने देह का त्याग कर दिया । पुनः उन्होंने हिमालय की पत्नी मेना में जन्म लिया, ऐसी प्रसिद्धि है ॥३९॥ उस जन्म में भी उन्होंने तपस्या कर शिव को अपना पति प्राप्त किया और उन गौरी ने शिव की वामाङ्गी बनकर अद्भुत लीलाएँ कीं ॥ ४० ॥

ब्रह्माजी कहते हैं कि, हे नारद ! इस प्रकार से परम अद्भुत, भुक्ति-मुक्तिप्रदायक समस्त कामनाओं को देनेवाले इस सती-चरित्र का वर्णन मैंने तुमसे किया ॥ ४१ ॥ यह आख्यान पापरहित और परम पवित्र है, दूसरों को पवित्र करने वाला है तथा स्वर्ग, यश, आयु, पुत्र-पौत्रादि फलों को प्रदान करने वाला है ॥ ४२ ॥ जो मनुष्य इस आख्यान को भक्तिपूर्वक सुनता है अथवा दूसरों को सुनाता है, हे तात ! वह सभी मनोरथ प्राप्त करता है और अन्त में परम गति को पाता है ॥४३॥ जो मनुष्य इस शुभ आख्यान को पढ़ता है अथवा पढ़ाता है वह समस्त भोगों को भोगकर अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है ॥ ४४ ॥

इस प्रकार आचार्य पण्डित श्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रीकृत 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के द्वितीय-सतीखण्ड में दक्षयज्ञानुसन्धान वर्णन नामक तेंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४३ ॥

इस प्रकार द्वितीय रुद्रसंहिता में द्वितीय सती-खण्ड समाप्त ।

*

* ॐ नमः शिवाय *

श्रीशिवमहापुराणम्

आचार्य-पण्डित-श्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रिकृत-
'शिवदत्ती'भाषाटीकासहितम्

२. रुद्रसंहिता (पार्वतीखण्डः ३)

प्रथमोऽध्यायः

(हिमालय के घर सती का पुनर्जन्म धारण और पार्वती को पुनः शिव-प्राप्ति-कथन एवं मेना-विवाह प्रसंग वर्णन)

नारद उवाच

दाक्षायणी सती देवी त्यक्तदेहा पितुर्मखे। कथं गिरिसुता ब्रह्मन् बभूव जगदम्बिका ॥ १ ॥
कथं कृत्वा तपोऽत्युग्रं पतिमाप शिवं च सा। एतन्मे पृच्छते सम्यक् कथय त्वं विशेषतः ॥ २॥

ब्रह्मोवाच

शृणु त्वं मुनिशार्दूल! शिवाचरितमुत्तमम्। पावनं परमं दिव्यं सर्वपापहरं शुभम् ॥ ३ ॥
यदा दाक्षायणी देवी हरेण सहिता मुदा। हिमाचले सुचिक्रीडे लीलया परमेश्वरी ॥ ४ ॥
मत्सुतेयमिति ज्ञात्वा सिषेवे मातृवर्चसा। हिमाचलप्रिया मेना सर्वर्द्धिभिरनिर्भरा ॥ ५ ॥
यदा दाक्षायणी रुष्टा नादृता स्वतनुं जहौ। पित्रा दक्षेण तद्यज्ञे सञ्जता परमेश्वरी ॥ ६ ॥
तदैव मेनका तां सा हिमाचलप्रिया मुने!। शिवलोकस्थितां देवीमारिराधयिषुस्तदा ॥ ७ ॥
तस्यामहं सुता स्यामित्यवधार्य सती हृदा। त्यक्तदेहा मनो दध्रे भवितुं हिमवत्सुता ॥ ८ ॥
समयं प्राप्य सा देवी सर्वदेवस्तुता पुनः। सती त्यक्ततनुः प्रीत्या मेनकातनयाऽभवत् ॥ ९ ॥
नाम्ना सा पार्वती देवी तपः कृत्वा सुदुःसहम्। नारदस्योपदेशाद् वै पतिं प्राप शिवं पुनः ॥१०॥

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! दक्ष की कन्या सती देवी अपने पिता के घर में शरीर त्यागकर किस प्रकार हिमालय की कन्या बनकर जगदम्बा बनीं ॥१॥ और किस प्रकार उग्र तपकर शिव को अपना पति बनाया। यह मैं आपसे पूछ रहा हूँ, अतः इस वृत्तान्त को आप विशेष रूप से बताने की कृपा करें? ॥ २ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिशार्दूल! तुम सर्वोत्तम परम पावन एवं दिव्य सर्वपापहारी एवं कल्याणकारी पार्वतीजी का चरित्र सुनो ॥ ३ ॥ दक्षकन्या सती देवी जब प्रसन्न होकर शिव के साथ हिमालय पर्वत पर लीलापूर्वक क्रीडा करती थीं, तब वात्सल्यभाव से भरी हुई हिमालयप्रिया मेना अपनी सम्पूर्ण ऋद्धि-सिद्धियों से 'यह मेरी बेटी है' ऐसा समझकर उनकी सेवा करती थीं ॥ ४–५ ॥ जब दाक्षायणी सती देवी ने पिता के अपमान से रुष्ट होकर यज्ञ में अपना शरीर छोड़ दिया ॥ ६ ॥ हे मुने! तब हिमाचलप्रिया मेना ने शिवलोक में स्थित भगवती सती का आराधन किया ॥ ७ ॥ उसी समय सती देवी ने अपने मन में संकल्प कर लिया कि मैं हिमालय की कन्या बनकर जन्म लूँगी ॥८॥ समय आने पर वहाँ सती देवी अपना शरीर छोड़कर मेनका की बेटी के रूप में जन्म ग्रहण किया ॥ ९ ॥ मेनका की कन्या होने पर उनका नाम पार्वती हुआ, जिन्होंने नारद के उपदेश से महा कठिन तपकर पुनः शिव को अपना पति बनाया ॥ १० ॥

नारद उवाच

ब्रह्मन् विधे महाप्राज्ञ ! वद मे वदतां वर ! । मेनकायाः समुत्पत्तिं विवाहं चरितं तथा ॥११॥
धन्या हि मेनका देवी यस्यां जाता सुता सती । अतो मान्या च धन्या च सर्वेषां सा पतिव्रता ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

श्रृणु त्वं नारद मुने ! पार्वतीमातुरुद्भवम् । विवाहं चरितं चैव पावनं भक्तिवर्द्धनम् ॥१३॥
अस्त्युत्तरस्यां दिशि वै गिरीशो हिमवान् महान् । पर्वतो हि मुनिश्रेष्ठ महातेजाः समृद्धिभाक् ॥१४॥
द्वैरूप्यं तस्य विख्यातं जङ्गमस्थिरभेदतः । वर्णयामि समासेन तस्य सूक्ष्मस्वरूपकम् ॥१५॥
पूर्वापरौ तोयनिधी सुविगाह्य स्थितो हि यः । नानारत्नाकरो रम्यो मानदण्ड इव क्षितेः ॥१६॥
नानावृक्षसमाकीर्णो नानाश्रृङ्गसुचित्रितः । सिंह-व्याघ्रादि-पशुभिः सेवितः सुखिभिः सदा ॥१७॥
तुषारनिधिरत्युग्रो नानाश्चर्यविचित्रितः । देवर्षि-सिद्ध-मुनिभिः संश्रितः शिवसंप्रियः ॥१८॥
तपःस्थानोऽतिपूतात्मा पावनश्च महात्मनाम् । तपःसिद्धिप्रदोऽत्यन्तं नानाधात्वाकरः शुभः ॥१९॥
स एव दिव्यरूपो हि रम्यः सर्वाङ्गसुन्दरः । विष्ण्वंशोऽविकृतः शैलराजराजः सतां प्रियः ॥२०॥
कुलस्थित्यै च स गिरिर्धर्मवर्द्धनहेतवे । स्वविवाहं कर्त्तुमैच्छत् पितृदेवहितेच्छया ॥२१॥
तस्मिन्नवसरे देवाः स्वार्थमाचिन्त्य कृत्स्नशः । ऊचुः पितॄन् समागत्य दिव्यान् प्रीत्या मुनीश्वर ! ॥२२॥

देवा ऊचुः

सर्वे श्रृणुत नो वाक्यं पितरः प्रीतमानसाः । कर्त्तव्यं तत्तथैवाशु देवकार्येप्सवो यदि ॥२३॥
मेना नाम सुता या वो ज्येष्ठा मङ्गलरूपिणी । तां विवाह्य च सुप्रीत्या हिमाख्येन महीभृता ॥२४॥

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन् ! हे विधे ! हे वक्ताओं में श्रेष्ठ ! आप प्रथम मुझे मेनका की उत्पत्ति, विवाह तथा चरित्र वर्णन कीजिए ॥ ११ ॥ वे मेनका देवी धन्य हैं, जिनके उदर से उन भगवती सती ने उनकी बेटी बनकर जन्म लिया । इसलिए वह पतिव्रता मेना सभी लोगों की मान्य एवं धन्य हैं ॥ १२ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद मुने ! तुम पार्वती की माता मेना की उत्पत्ति, विवाह तथा भक्ति को बढ़ाने वाले उनके पावन चरित्र को सुनो ॥ १३ ॥ भारतवर्ष के उत्तर में सभी पर्वतों का राजा हिमवान् है । हे मुनिश्रेष्ठ ! वह हिमालय सबसे महान् एवं सभी समृद्धियों से युक्त तथा महातेजस्वी था ॥१४॥ उस हिमालय के जङ्गम एवं स्थिर भेद से दो रूप हैं, उसके सूक्ष्म रूप का वर्णन मैं संक्षेप में करता हूँ ॥ १५ ॥ जो पृथ्वी का मानदण्ड होकर पूर्व तथा पश्चिम समुद्र को व्याप्त कर स्थित है । वह नाना प्रकार के रत्नों का आकर एवं अत्यन्त रमणीय है ॥ १६ ॥ नाना प्रकार के वृक्षों से परिपूर्ण तथा अनेक प्रकार के शिखरों से विचित्र है, वहाँ पर सिंह, व्याघ्र, चीते एवं पशु सुखपूर्वक निवास करते हैं ॥ १७ ॥ उस हिमालय के शिखरों पर सदैव बर्फ जमा रहता है, नाना प्रकार के आश्चर्यों से विचित्र है । वह देवता, सिद्ध-मुनिगणों के निवास की भूमि है तथा शिवजी का अत्यन्त प्रिय है ॥ १८ ॥ वह महात्माओं का तपःस्थान, अत्यन्त पवित्र तथा पावन करने वाला है । वहाँ पर तपस्या से सिद्धि प्राप्त होती है तथा वह सभी प्रकार के धातुओं की खान है ॥ १९ ॥ इस प्रकार के स्थूल उस हिमालय का दिव्य रूप सर्वशोभासम्पन्न तथा परम रमणीय है, वे शैलराजों के भी राजा हैं, विष्णु के अंश तथा विकाररहित (सर्वथा स्थिर) एवं सज्जन पुरुषों के परम प्रिय हैं ॥२०॥ वे गिरिराज हिमालयकुल की स्थिति, धर्म की अभिवृद्धि तथा पितरों एवं देवों-द्वारा अपने हित की इच्छा से विवाह करना चाहते थे ॥ २१ ॥ हे मुनीश्वर नारद ! उसी समय सभी देवगण अपने स्वार्थ का विचार कर दिव्य पितरों के पास जाकर प्रसन्नता से बोले ॥ २२ ॥

देवताओं ने कहा—हे दिव्य पितृगण ! आप लोग प्रसन्नता से मेरी बात सुनें । यदि आप लोग देवताओं का कार्य करना चाहते हैं तो अवश्य उसे करें ॥ २३ ॥ आप लोगों की मङ्गलरूपिणी जो मेना

एवं सर्वमहालाभः सर्वेषां च भविष्यति । युष्माकममराणां च दुःखहानिः पदे पदे ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्यापरवचः पितरस्ते विमृश्य च । स्मृत्वा शापं सुतानां च प्रोचुरोमिति तद्वचः ॥२६॥

ददुर्मेनां सुविधिना हिमागाय निजात्मजाम् । समुत्सवो महानासीत् तद्विवाहे सुमङ्गले ॥२७॥

हर्य्यादयोऽपि ते देवा मुनयश्चापरेऽखिलाः । आजग्मुस्तत्र संस्मृत्य वामदेवं भवं धिया ॥२८॥

उत्सवं कारयामासुर्दत्त्वा दानान्यनेकशः । सुप्रशस्य पितॄन् दिव्यान् प्रशशंसुर्हिमाचलम् ॥२९॥

महामोदान्विता देवास्ते सर्वे समुनीश्वराः । संजग्मुः स्व-स्वधामानि संस्मरन्तः शिवाशिवौ ॥३०॥

कौतुकं बहु सम्प्राप्य सुविवाह्य प्रियां च ताम् । आजगाम स्वभवनं मुदमाप गिरीश्वरः ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

मेनया हि हिमागत्य सुविवाहो मुनीश्वर ! । प्रोक्तो मे सुखदः प्रीत्या किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि॥३२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे हिमालयविवाह-वर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

नाम की ज्येष्ठ कन्या है, उस सुव्रता का विवाह हिमालय नामक पर्वतराज से कर दीजिए ॥ २४ ॥ इससे सभी का लाभ होगा । और प्रतिपद में देवताओं तथा आप का दुःख भी नष्ट हो जायेगा ॥ २५ ॥

ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार देवताओं की बात सुनकर पितरों ने आपस में विचार-विमर्श किया तथा कन्याओं के शाप का स्मरण कर उन लोगों ने देवताओं की बात मान ली ॥ २६ ॥ उन लोगों ने मेना नाम की अपनी कन्या का विवाह विधिपूर्वक हिमालय के साथ कर दिया । उस मङ्गलदायी विवाहकाल में महान् उत्सव हुआ ॥ २७ ॥ उस विवाह में वामदेव भगवान् शिव का स्मरण कर विष्णु आदि देवगण तथा समस्त मुनिगण सम्मिलित हुए ॥ २८ ॥ उन लोगों ने अनेक प्रकार के दान दिये तथा नाना प्रकार के उत्सव करवाये । फिर दिव्य पितरों की प्रशंसा कर हिमालय की प्रशंसा करने लगे ॥ २९ ॥ पार्वती तथा शिव का स्मरण करते हुए वे सभी देवगण मुनीश्वरों के साथ अपने-अपने स्थान को चले गये ॥ ३० ॥ इधर हिमालय भी अनेक प्रकार की दहेज-सामग्री प्राप्त कर तथा अपनी प्रियतमा मेना से विवाह कर अपने घर आये और परम प्रसन्नता को प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर नारद ! हिमालय का मेना के साथ जिस प्रकार यह सुखदायी विवाह सम्पन्न हुआ उसका वर्णन मैंने आप से किया, अब आप को जो सुनने की इच्छा हो उसे बतायें ? ॥ ३२ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में हिमालय-विवाह-वर्णन नामक प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥

*

द्वितीयोऽध्यायः

(मेनकादि तीन कन्याओं को सनकादि मुनियों का शाप तथा उनके प्रसन्न होने पर शाप से निवृत्ति)

नारद उवाच

विधे प्राज्ञ वदेदानीं मेनोत्पत्तिं समादरात् । अपि शापं समाचक्ष्व कुरु सन्देहभञ्जनम् ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु नारद ! सुप्रीत्या मेनोत्पत्तिं विवेकतः । मुनिभिः सह वक्ष्येऽहं सुतवर्य महाबुध ! ॥ २ ॥
दक्षनामा मम सुतो यः पुरा कथितो मुने ! । तस्य जाताः सुताः षष्टिप्रमिताः सृष्टिकारणाः ॥ ३ ॥
तासां विवाहमकरोत् स वरैः कश्यपादिभिः । विदितं ते समस्तं तत्प्रस्तुतं शृणु नारद ! ॥ ४ ॥
तासां मध्ये स्वधानाम्नीं पितृभ्यो दत्तवान् सुताम् । तिस्रोऽभवन् सुतास्तस्याः सुभगा धर्ममूर्तयः ॥ ५ ॥
तासां नामानि शृणु मे पावनानि मुनीश्वर ! । सदा विघ्नहराण्येव महामङ्गलदानि च ॥ ६ ॥
मेनानाम्नी सुता ज्येष्ठा मध्या धन्या कलावती । अन्त्या एताः सुताः सर्वाः पितॄणां मानसोद्भवाः ॥ ७ ॥
अयोनिजाः स्वधायाश्च लोकतस्तत्सुता मताः । आसां प्रोच्य सुनामानि सर्वान् कामाञ्जनो लभेत् ॥ ८ ॥
जगद्वन्द्याः सदा लोकमातरः परमोददाः । योगिन्यः परमा ज्ञाननिधानास्तास्त्रिलोकगाः ॥ ९ ॥
एकस्मिन् समये तिस्रो भगिन्यस्ता मुनीश्वर ! । श्वेतद्वीपं विष्णुलोकं जग्मुर्दर्शनहेतवे ॥ १० ॥
कृत्वा प्रणामं विष्णोश्च संस्तुतिं भक्तिसंयुताः । तस्थुस्तदाज्ञया तत्र सुसमाजो महानभूत् ॥ ११ ॥
तदैव सनकाद्यास्तु सिद्धा ब्रह्मसुता मुने ! । गतास्तत्र हरिं नत्वा स्तुत्वा तस्थुस्तदाज्ञया ॥ १२ ॥

नारद जी बोले—हे महाप्राज्ञ ! हे विधे ! अब आप आदरपूर्वक मेना की उत्पत्ति तथा जिस प्रकार उसे शाप हुआ । उस वृत्तान्त को कह कर मेरे सन्देह का नाश कीजिए ॥ १ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! हे महाबुध, हे सुतवर्य्य ! अब तुम इन मुनियों के साथ विवेकपूर्वक मेना की उत्पत्ति का वृत्तान्त सुनो, मैं कहता हूँ ॥ २ ॥ हे मुने ! मैंने पहले भी कहा है कि दक्ष मेरा पुत्र था, उसको सृष्टि की कारणभूता साठ कन्याएँ हुईं ॥ ३ ॥ उसने उन कन्याओं का विवाह कश्यपादि श्रेष्ठ ऋषियों के साथ किया, यह सब बात तो तुम जानते ही हो, अब प्रस्तुत कथा सुनो ॥ ४ ॥ उसने उन साठ कन्याओं में स्वधा नाम की कन्या पितरों को दी । उसी स्वधा को पितरों से धर्म-मूर्ति, सौभाग्यवती तीन कन्याओं का जन्म हुआ ॥ ५ ॥ हे मुनीश्वर ! उनके पवित्र नामों को सुनो । उन कन्याओं के नाम सदैव विघ्न का हरण करने वाले तथा महामङ्गल प्रदान करने वाले हैं ॥ ६ ॥ जेठी कन्या का नाम मेना, मध्यमा का नाम धन्या तथा सबसे छोटी कन्या का नाम कलावती था । ये सभी पितरों की मानस कन्याएँ हैं ॥७॥ ये स्वधा से उत्पन्न हुई तीनों कन्याएँ अयोनिजा हैं । मनुष्य इनके नामोच्चारण मात्र से ही अपनी समस्त कामनाएँ प्राप्त कर लेता है ॥८॥ यही लोकमाताएँ हैं, जो जगद्वन्द्य तथा परमानन्द को देने वाली हैं । ये योगिनियाँ परम ज्ञान की निधान तथा त्रिलोक में सर्वत्र भ्रमण करने वाली हैं ॥ ९ ॥

हे मुनीश्वर नारद ! एक समय की बात है कि ये तीनों बहनें श्वेतद्वीप में विष्णु का दर्शन करने गयीं ॥१०॥ उन लोगों ने विष्णु को प्रणाम किया, भक्तियुक्त हो उनकी स्तुति की फिर उनकी आज्ञा से वहीं बैठ गयीं, जहाँ देवताओं का समाज एकत्रित था ॥ ११ ॥ हे महामुने ! उसी समय ब्रह्मपुत्र सिद्ध-सनकादि महर्षि वहाँ पर पहुँचे । उन लोगों ने भगवान् विष्णु को प्रणाम किया और उनकी स्तुति की । उस समय उन सनकादि मुनियों को देखते ही सभी देवगण तथा महर्षिगण अपने-अपने आसनों से उठ गये ॥ १२ ॥ और

सनकाद्यान् मुनीन् दृष्ट्वोचस्थुस्तान् सकला द्रुतम् ।
तत्रस्थान् संस्थितान्नत्वा देवाद्याँल्लोकवन्दितान् ॥ १३ ॥
तिस्रो भगिन्यस्तास्तत्र नोचस्थुर्मोहिता मुने ! । मायया दैवविवशाः शङ्करस्य परात्मनः ॥१४॥
मोहिनी सर्वलोकानां शिवमाया गरीयसी । तदधीनं जगत्सर्वं शिवेच्छा सा प्रकीर्त्यते ॥१५॥
प्रारब्धं प्रोच्यते सैव तन्नामानि ह्यनेकशः । शिवेच्छया भवत्येव नाऽत्र कार्या विचारणा ॥१६॥
भूत्वा तद्वशगास्ता वै न चक्रुरपि तन्नतिम् । विस्मिताः सम्प्रदृश्यैव संस्थितास्तत्र केवलम् ॥१७॥
तादृशीं तद्गतिं दृष्ट्वा सनकाद्या मुनीश्वराः । ज्ञानिनोऽपि परं चक्रुः क्रोधं दुर्विषहं च ते ॥१८॥
शिवेच्छामोहितस्तत्र सक्रोधस्ता उवाच ह । सनत्कुमारो योगीशः शापं दण्डकरं ददत् ॥१९॥

सनत्कुमार उवाच

यूयं तिस्रो भगिन्यश्च मूढाः सद्वयुनोज्झिताः । अज्ञातश्रुतितत्त्वा हि पितृकन्या अपि ध्रुवम् ॥२०॥
अभ्युत्थानं कृतं नो यन्नमस्कारोऽपि गर्वतः । मोहिता नरभावत्वात् स्वर्गाद् दूरा भवन्तु हि ॥२१॥
नरस्त्रियः सम्भवन्तु तिस्रोऽपि ज्ञानमोहिताः । स्वकर्मणः प्रभावेण लभध्वं फलमीदृशम् ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य च साध्वस्तास्तिस्रोऽपि चकिता भृशम् । पतित्वा पादयोस्तस्य समूचुर्नतमस्तकाः ॥२३॥

पितृतनया ऊचुः

मुनिवर्य्य ! दयासिन्धो प्रसन्नो भव चाधुना । त्वत्प्रणामं वयं मूढाः कुर्महे स्म न भावतः ॥२४॥
प्राप्तं च तत्फलं विप्र ! न ते दोषो महामुने ! । अनुग्रहं कुरुष्वात्र लभेम स्वर्गतिं पुनः ॥२५॥

सनकादि सिद्धगण भी उन्हें नमस्कार कर उनकी आज्ञा से वहाँ पर बैठ गये ॥ १३ ॥ किन्तु हे नारद ! इन तीनों बहनों ने शिव-माया से मोहित होने के कारण सनकादि सिद्धों को देख प्रत्युत्थान एवं अभिवादन कुछ भी नहीं किया । इसमें उनका अदृष्ट ही कारण था, जो वे शिव की माया से मोहित हो गयीं ॥ १४ ॥ यह शिव की माया अत्यन्त प्रबल है, जो सब लोकों को मोहने वाली है, उसी के आधीन यह सारा संसार है, इसी को शिव की इच्छा भी कहते हैं ॥ १५ ॥ उसके अनेक नाम हैं, उसी को प्रारब्ध भी कहते हैं, यह सब कुछ शिवेच्छा से ही होता है, इसमें अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं ॥ १६ ॥ इसी शिवमाया से वशीभूत होने के कारण उन लोगों ने सनत्कुमार को प्रणाम नहीं किया । वे विस्मययुक्त होकर केवल उन्हें देखती ही रह गयीं ॥ १७ ॥ सनकादि मुनियों ने प्रत्युत्थान एवं अभिवादन रहित उन कन्याओं को देखकर ज्ञानी होते हुए भी उन पर असह्य क्रोध किया ॥ १८ ॥ वे भी शिवेच्छा से मोह में पड़ गये । इसलिए क्रुद्ध होकर उन योगेश्वरों ने दण्डरूप शाप उन्हें प्रदान किया ॥ १९ ॥

सनत्कुमार वोले—तुम तीनों बहनें यद्यपि पितरों की कन्या हो तथापि श्रुतितत्त्व न जानने से तुम लोगों का ज्ञान नष्ट हो गया है ॥२०॥ तुम लोगों ने गर्व से न तो मेरा अभ्युत्थान किया और न तो नमस्कार ही किया । तुम लोग नरभाव से मोहित हो गयी हो, अतः इस स्वर्ग से दूर चली जाओ ॥ २१ ॥ और तीनों ही ज्ञानरहित होने के कारण मनुष्यों की स्त्री बनो । तुम लोग अपने कर्मों के फलस्वरूप इस प्रकार का फल प्राप्त करो ॥ २२ ॥

ब्रह्माजी वोले—सनत्कुमार की वात सुनते ही वे साध्वी कन्याएँ आश्चर्य में पड़ गयीं, फिर सनत्कुमार के चरणों में गिरकर विनम्र हो सिर झुकाकर बोलीं ॥ २३ ॥

पितृकन्याओं ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ, दयासागर ! अव हमलोगों पर आप कृपा कीजिए, हमलोगों ने मूर्खता की, जो आपको श्रद्धा से प्रणाम नहीं किया ॥२४॥ अतः जैसा किया वैसा फल पाया । इसमें आपका कोई दोष नहीं है । अब आप अनुग्रह कीजिए, जिससे हमलोगों को पुनः स्वर्गलोक की प्राप्ति हो ॥ २५ ॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा तद्वचनं तात ! प्रोवाच स मुनिस्तदा । शापोद्धारं प्रसन्नात्मा प्रेरितः शिवमायया ॥२६॥

सनत्कुमार उवाच

पितॄणां तनयास्तिस्रः शृणुत प्रीतमानसाः । वचनं मम शोकघ्नं सुखदं सर्वदैव वः ॥२७॥
विष्णोरंशस्य शैलस्य हिमाधारस्य कामिनी । ज्येष्ठा भवतु तत्कन्या भविष्यत्येव पार्वती ॥२८॥
धन्या प्रिया द्वितीया तु योगिनी जनकस्य च । तस्याः कन्या महालक्ष्मीर्नाम्ना सीता भविष्यति ॥२९॥
वृषभानस्य वैश्यस्य कनिष्ठा च कलावती । भविष्यति प्रिया राधा तत्सुता द्वापरान्ततः ॥३०॥
मेनका योगिनी पत्या पार्वत्याश्च वरेण च । तेन देहेन कैलासं गमिष्यति परं पदम् ॥३१॥
धन्या च सीतया सीरध्वजो जनकवंशजः । जीवन्मुक्तो महायोगी वैकुण्ठं च गमिष्यति ॥३२॥
कलावती वृषभानस्य कौतुकात् कन्यया सह । जीवन्मुक्ता च गोलोकं गमिष्यति न संशयः ॥३३॥
विना विपत्तिं महिमा केषां कुत्र भविष्यति । सुकर्मिणां गते दुःखे प्रभवेद् दुर्लभं सुखम् ॥३४॥
यूयं पितॄणां तनयाः सर्वाः स्वर्गविलासिकाः । कर्मक्षयश्च युष्माकमभवद् विष्णुदर्शनात् ॥३५॥
इत्युक्त्वा पुनरप्याह गतक्रोधो मुनीश्वरः । शिवं संस्मृत्य मनसा ज्ञानदं भुक्तिमुक्तिदम् ॥३६॥
अपरं शृणुत प्रीत्या मद्वचः सुखदं सदा । धन्या यूयं शिवप्रीता मान्याः पूज्या ह्यभीक्ष्णशः ॥३७॥
मेनायास्तनया देवी पार्वती जगदम्बिका । भविष्यति प्रिया शम्भोस्तपः कृत्वा सुदुःसहम् ॥३८॥
धन्या सुता स्मृता सीता रामपत्नी भविष्यति । लौकिकाचारमाश्रित्य रामेण विहरिष्यति ॥३९॥
कलावतीसुता राधा साक्षाद् गोलोकवासिनी । गुप्तस्नेहनिबद्धा सा कृष्णपत्नी भविष्यति ॥४०॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात ! उन कन्याओं की बात सुनकर सनत्कुमार शिव की माया से प्रेरित हो प्रसन्नता से शापोद्धार का उपाय कहने लगे ॥ २६ ॥

सनत्कुमार बोले—तुम सभी पितृकन्याएँ प्रसन्नता से मेरी बात सुनो। हमारा वचन सदैव तुमलोगों के शोक को दूर करने वाला तथा सर्वत्र सुखदायी है ॥ २७ ॥ विष्णु का अंशभूत हिमालय पर्वत, जहाँ वर्फ-ही-वर्फ जमा रहता है, यह जेठी कन्या जिसका नाम मेना है, उसकी धर्मपत्नी होगी, पार्वती इसी की कन्या बनकर जन्म लेगी ॥ २८ ॥ और यह दूसरी कन्या जिसका नाम धन्या है, यह योगिनी राजर्षि जनक की पत्नी होगी, जिसमें महालक्ष्मी भगवती सीता जन्म लेंगी ॥ २९ ॥ यह तीसरी कलावती वैश्यकुलोत्पन्न वृषभान की पत्नी होगी, जिसमें द्वापर के अन्त में श्री राधा प्रगट होगी ॥ ३० ॥ यह मेनका योगिनी पार्वती से वर प्राप्त कर अपने पति के साथ उसी देह से परमपद प्राप्त करेगी ॥ ३१ ॥ और यह दूसरी धन्या जनकवंशोत्पन्न सीरध्वज को पति प्राप्त कर उनसे महालक्ष्मी सीता को जन्म देकर साक्षात् वैकुण्ठ को जायेगी ॥ ३२ ॥ और यह कलावंती वृषभान को पति प्राप्त कर अपनी कन्या राधा के साथ जीवन्मुक्त हो गोलोक में निवास करेगी, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३३ ॥ इस जगत् में विना विपत्ति प्राप्त किये किसको महत्त्व प्राप्त हुआ है। सत्कर्म करने वालों को दुःख के दूर हो जाने पर परमोत्कृष्ट सुख ही प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ तुम लोग पितरों की कन्या हो, स्वर्ग में विलास करने वाली हो, विष्णु का दर्शन प्राप्त कर लेने पर तुम लोगों के कर्म का क्षय हो गया है ॥ ३५ ॥ मुनीश्वर इतना कहने के उपरान्त ज्ञान, भोग तथा मुक्ति देनेवाले शिव का स्मरण कर पुनः बोले— ॥ ३६ ॥ हे पितृ-कन्याओ ! तुम लोग प्रेम से मेरा और भी सुखदायक वचन सुनो। शिव में भक्ति रखनेवाली तुम लोग धन्य, निरन्तर मान्य एवं पूज्य हो ॥ ३७ ॥ मेना की कन्या पार्वती देवी परम दुष्कर तप कर शिव की प्रिया एवं जगदम्बा होगी ॥ ३८ ॥ और धन्या की कन्या सीता रामचन्द्र को पति प्राप्तकर लौकिकाचार का आश्रय ले राम के साथ विहार करेगी ॥ ३९ ॥ एवं कलावती सुता राधा अपने गुप्त स्नेह से बँधी हुई कृष्ण की पत्नी बनकर साक्षात् गोलोक में निवास करेगी ॥ ४० ॥

ब्रह्मोवाच

इत्थमाभाष्य स मुनिर्भ्रातृभिः सह संस्तुतः। सनत्कुमारो भगवांस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् ॥४१॥
तिस्रो भगिन्यस्तास्तात! पितॄणां मानसीः सुताः। गतपापाः सुखं प्राप्य स्वधाम प्रययुर्द्रुतम् ॥४२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
पूर्वगतिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

(हिमालय के गृह में विष्णु आदि देवों का गमन तथा शिव-स्तुति वर्णन)

नारद उवाच

विधे प्राज्ञ महाधीमन्! वद मे वदतां वर। ततः परं किमभवच्चरितं विष्णुसद्गुरो! ॥ १ ॥
अद्भुतेयं कथा प्रोक्ता मेना पूर्वगतिः शुभा। विवाहश्च श्रुतः सम्यक् परमं चरितं वद ॥ २ ॥
मेनां विवाह्य स गिरिः कृतवान् किं ततः परम्। पार्वती कथमुत्पन्ना तस्यां वै जगदम्बिका ॥ ३ ॥
तपः सुदुःसहं कृत्वा कथं प्राप पतिं हरम्। एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तराच्छाङ्करं यशः ॥ ४ ॥

ब्रह्मोवाच

मुने! त्वं शृणु सुप्रीत्या शाङ्करं सुयशः शुभम्। यच्छ्रुत्वा ब्रह्महा शुद्ध्येत् सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥ ५ ॥
यदा मेनाविवाहं तु कृत्वाऽगच्छद् गिरिर्गृहम्। तदा समुत्सवो जातस्त्रिषु लोकेषु नारद! ॥ ६ ॥
हिमाचलोऽपि सुप्रीतश्चकार परमोत्सवम्। भूसुरान् बन्धुवर्गांश्च परानानर्च सद्धिया ॥ ७ ॥
सर्वे द्विजाश्च सन्तुष्टा दत्त्वाऽऽशीर्वचनं वरम्। ययुस्तस्मै स्व-स्वधाम बन्धुवर्गास्तथापरे ॥ ८ ॥
हिमाचलोऽपि सुप्रीतो मेनया सुखदे गृहे। रेमेऽन्यत्र च सुस्थाने नन्दनादिवनेष्वपि ॥ ९ ॥

ब्रह्माजी बोले—सनत्कुमार इस प्रकार उन पितृ-कन्याओं से कहकर अपने भाइयों के साथ वहीं अन्तर्हित हो गये ॥ ४१ ॥ इधर पितरों की वे तीनों मानस कन्याएँ, तीनों बहनें पापरहित हो सुख प्राप्त कर अपने-अपने धामों को चली गयीं ॥ ४२ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में पूर्वगतिवर्णन नामक दूसरा अध्याय समाप्त ॥ २ ॥

*

नारद जी बोले—हे ब्रह्मदेव, हे महाप्राज्ञ, हे वक्ताओं में श्रेष्ठ! इसके अनन्तर क्या चरित्र हुआ, उसे आप हमसे कहिए ॥ १ ॥ आपने मेना के पूर्वजन्म का अद्भुत वर्णन किया और उसके विवाह की कथा भी भली प्रकार सुनायी। अब आगे का उत्तम चरित्र कहिए ॥ २ ॥ हिमालय ने मेना के साथ विवाह कर फिर क्या किया? जगदम्बा पार्वती ने उसके कुक्षि से किस प्रकार जन्म लिया ॥ ३ ॥ जन्म लेने के बाद उस पार्वती ने किस प्रकार का दुःसह तप कर शिव को अपना पति बनाया। हे ब्रह्मदेव! यह सब शङ्कर के यश का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए? ॥ ४ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे महर्षे नारद! तुम परम कल्याणकारी शङ्कर के यश को सुनो, जिसको सुनकर ब्रह्महत्यारा भी अपने पाप से शुद्ध हो जाता है और अपना सभी मनोरथ पूर्ण कर लेता है ॥ ५ ॥ हे नारद! गिरिराज मेना को विवाहित कर जब अपने घर गये, उस समय तीनों लोकों में महान् उत्सव सम्पन्न हुआ ॥ ६ ॥ हिमालय ने भी प्रसन्नता से परमोत्सव किया। उसने श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणों, बन्धुजनों एवं अन्य अभ्यागतों का अर्चन किया ॥ ७ ॥ सभी ब्राह्मणों ने प्रसन्नमन से उन्हें आशीर्वाद दिया। अनन्तर ब्राह्मणवर्ग तथा अन्य बन्धुवर्ग अपने-अपने स्थानों को चले गये ॥ ८ ॥ हिमालय भी प्रसन्न होकर

तस्मिन्नवसरे देवा मुने विष्ण्वादयोऽखिलाः । मुनयश्च महात्मानः प्रजग्मुर्भूधरान्तिके ॥१०॥
दृष्ट्वा तानागतान् देवान् प्रणनाम मुदा गिरिः । सम्मानं कृतवान् भक्त्या प्रशंसन् स्वविधिं महान्॥११॥
साञ्जलिर्नतशीर्षो हि स तुष्टाव सुभक्तितः । रोमोद्गमो महानासीद् गिरेः प्रेमाश्रवोऽपतन् ॥१२॥
ततः प्रणम्य सुप्रीतो हिमशैलः प्रसन्नधीः । उवाच प्रणतो भूत्वा मुने विष्ण्वादिकान् सुरान्॥१३॥

हिमालय उवाच

अद्य मे सफलं जन्म सफलं सुमहत्तपः । अद्य मे सफलं ज्ञानमद्य मे सफलाः क्रियाः ॥१४॥
धन्योऽहमद्य सञ्जातो धन्या मे सकला क्षितिः । धन्यं कुलं तथा दाराः सर्वं धन्यं न संशयः ॥१५॥
यतः समागता यूयं मिलित्वा सर्व एकदा । मां निदेशयत प्रीत्योचितं मत्त्वा स्वसेवकम् ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा महीध्रस्य वचनं ते सुरास्तदा । ऊचुर्हर्यादयः प्रीताः सिद्धिं मत्वा स्वकार्यतः ॥१७॥

देवा ऊचुः

हिमाचल महाप्राज्ञ ! शृण्वस्मद्वचनं हितम् । यदर्थमागताः सर्वे तद् ब्रूमः प्रीतितो वयम् ॥१८॥
या पुरा जगदम्बोमा दक्षकन्याऽभवद् गिरे ! । रुद्रपत्नी हि सा भूत्वा चिक्रीडे सुचिरं भुवि ॥१९॥
पितृतोऽनादरं प्राप्य संस्मृत्य स्वपणं सती । जगाम स्वपदं त्यक्त्वा तच्छरीरं तदाम्बिका॥२०॥
सा कथा विदिता लोके तवापि हिमभूधर ! । एवं सति महालाभो भवेद्देवगणस्य हि ॥२१॥
सर्वस्य भवतश्चापि स्युः सर्वे ते वशाः सुराः ॥२२॥

अपने सुखदायक घर एवं अन्य स्थानों में तथा नन्दनवन में विहार करने लगे ॥ ९ ॥ उस समय सम्पूर्ण विष्णु आदि देव, महात्मा एवं मुनिगण हिमालय के पास गये ॥ १० ॥ गिरिराज ने इन देवताओं को आया देख उन्हें प्रणाम किया। उसने अपने सुकृत की बड़ी प्रशंसा करते हुए सभी देवताओं का भक्तिपूर्वक सत्कार किया ॥ ११ ॥ उसने हाथ जोड़कर शिर झुकाये हुए, उन देवों की भक्तिपूर्वक स्तुति की। प्रेम से गिरिराज के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो चली तथा उनके रोंगटे खड़े हो गये ॥ १२ ॥ हे मुने ! तब प्रसन्न होकर हिमालय ने बड़ी दीनता से विष्णु आदि देवताओं से कहा—॥ १३ ॥

हिमालय बोले—आज मेरा जन्म सफल है, आज मेरी तपस्या सफल हुई, आज मेरा ज्ञान सफल है एवं आज मेरी क्रिया सफल हुई ॥ १४ ॥ आज हम धन्य हो गये, आज मेरी यह पृथ्वी भी सफल हो गयी। आज मेरा कुल धन्य हो गया, आज मेरी स्त्री भी धन्य है, अतः आज मेरा सब कुछ धन्य है, इसमें संशय नहीं ॥ १५ ॥ क्योंकि, आप सभी एक ही समय एकत्रित होकर मेरे घर पर पधारे हैं। आप अपना सेवक जानकर सप्रेम मेरे लिए यथोचित आज्ञा प्रदान करें ॥ १६ ॥

ब्रह्माजी बोले—हिमालय के इस प्रकार वचन सुनकर सभी विष्णु आदि देवता परम प्रसन्न हो गये। और अपने कार्य की सिद्धि मानकर बोले ॥ १७ ॥

देवताओं ने कहा—हे महाबुद्धि सम्पन्न हिमालय, हमारे हितकारी वचनों को सुनो। हमलोग जिस कार्य से तुम्हारे पास आये हैं, उसे प्रीतिपूर्वक निवेदन करते हैं ॥ १८ ॥ हे गिरिराज ! पूर्वकाल में जो जगदम्बा उमा दक्ष की कन्या के रूप में अवतरित हुई थीं, जो रुद्रपत्नी होकर बहुत कालपर्यन्त इस पृथ्वी पर रुद्र के साथ क्रीडा करती थीं ॥ १९ ॥ पश्चात् वही जगदम्बा अपने पिता से अनादृत होने के कारण अपना प्रण स्मरण कर अपना वह शरीर छोड़ परम पद को प्राप्त हुई हैं ॥ २० ॥ हे हिमालय ! यह सारी कथा लोक में प्रसिद्ध है और तुम्हें भी ज्ञात है। इस घटना से देवगणों और सभी को तथा आपको भी बहुत लाभ होगा। अब देवता लोग तुम्हारे वश में हो जायेंगे ॥२१-२२॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां हर्यादीनां गिरीश्वरः । तथाऽस्त्विति प्रसन्नात्मा प्रोवाच न च सादरम् ॥२३॥
अथ ते च समादिश्य तद्विधिं परमादरात् । स्वयं जग्मुश्च शरणमुमायाः शङ्करस्त्रियः ॥२४॥
सुस्थले मनसा स्थित्वा सस्मरुर्जगदम्बिकाम् । प्रणम्य बहुशस्तत्र तुष्टुवुः श्रद्धया सुराः ॥२५॥

देवा ऊचुः

देव्युमे जगतामम्ब ! शिवलोकनिवासिनि ! । सदाशिवप्रिये दुर्गे त्वां नमामो महेश्वरि ! ॥२६॥
श्रीशक्तिं पावनां शान्तां पुष्टिं परमपावनीम् । वयं नमामहे भक्त्या महदव्यक्तरूपिणीम् ॥२७॥
शिवां शिवकरां शुद्धां स्थूलां सूक्ष्मां परायणाम् । अन्तर्विद्या-सुविद्याभ्यां सुप्रीतां त्वां नमामहे॥२८॥
त्वं श्रद्धा त्वं धृतिस्त्वं श्रीस्त्वमेव सर्वगोचरा । त्वं दीधितिः सूर्यगता स्वप्रपञ्चप्रकाशिनी ॥२९॥
या च ब्रह्माण्डसंस्थाने जगज्जीवेषु या जगत् । आप्याययति ब्रह्मादि-तृणान्तं तां नमामहे ॥३०॥
गायत्री त्वं वेदमाता त्वं सावित्री सरस्वती । त्वं वार्ता सर्वजगतां त्वं त्रयी धर्मरूपिणी ॥३१॥
निद्रा त्वं सर्वभूतेषु क्षुधा तृप्तिस्त्वमेव हि । तृष्णा कान्तिः छविस्तुष्टिः सर्वानन्दकरी सदा ॥३२॥
त्वं लक्ष्मीः पुण्यकर्तॄणां त्वं ज्येष्ठा पापिनां सदा । त्वं शान्तिः सर्वजगतां त्वं धात्री प्राणपोषिणी॥३३॥
त्वं तत्त्वरूपा भूतानां पञ्चानामपि सारकृत् । त्वं हि नीतिभृतां नीतिर्व्यवसायस्वरूपिणी ॥३४॥
गीतिस्त्वं सामवेदस्य ग्रन्थिस्त्वं यजुषां हुतिः । ऋग्वेदस्य तथा मात्राऽथर्वणस्य परा गतिः ॥३५॥

समस्तगीर्वाणगणस्य शक्तिस्तमोमयी धातृगुणैकदृश्या ।
रजः प्रपञ्चात्तु भवैकरूपा या न श्रुता भव्यकरी स्तुतेह ॥ ३६ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार विष्णु आदि देवताओं के वचन सुनकर हिमालय ने न केवल आदर से किन्तु बड़ी प्रसन्नता के साथ 'तथास्तु' कहा ॥ २३ ॥ सभी देवतागण उन सारी विधियों को हिमालय से आदरपूर्वक कहकर शङ्कर-प्रिया उमा की शरण में गये ॥ २४ ॥ वे देवतागण उत्तम स्थान पर स्थित हो जगदम्बा को सम्मानपूर्वक प्रणाम कर उनका स्मरण करते हुए श्रद्धा के साथ उनकी स्तुति करने लगे ॥२५॥

देवगणों ने कहा—हे देवि उमे ! जगन्मातः, हे शिवलोकनिवासिनि, हे सदाशिवप्रिये, दुर्गे, हे महेश्वरि, हम सभीलोग तुम्हें प्रणाम करते हैं ॥ २६ ॥ हम पवित्र करने वाली, परम शान्त, पुष्टिस्वरूपा एवं महत्स्वरूपा तथा अव्यक्तरूपिणी श्रीशक्ति को हृदय से प्रणाम करते हैं ॥ २७ ॥ जो शिवा कल्याण-कारिणी, शुद्ध, स्थूल तथा सूक्ष्मरूप वाली हैं, जो अन्तर्विद्या तथा सुविद्या से प्रसन्न होने वाली हैं ऐसी परमेश्वरी को हम प्रणाम करते हैं ॥ २८ ॥ तुम ही श्रद्धा हो, तुम ही धृति हो, तुम ही सर्वगोचरा हो, सूर्य में रहने वाली प्रकाशस्वरूपा तुम्हीं हो तथा इस प्रपञ्चरूप जगत् को प्रकाश करने वाली भी तुम्हीं हो ॥ २९ ॥ जो ब्रह्माण्ड में रहने वाले समस्त जगत् के ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त जीवों का आप्यायन करती है, हम उस देवी को प्रणाम करते हैं ॥ ३० ॥ हे माता, तुम वेदमाता गायत्री हो, तुम सावित्री एवं सरस्वती हो, तुम्हीं इस सारे जगत् की वार्त्ता (जीविका) हो, तुम्हीं वेदत्रयी एवं धर्मस्वरूपा हो ॥ ३१ ॥ हे मातः ! तुम्हीं समस्त प्राणियों में निद्रा, क्षुधा, तृप्ति, तृष्णा, कान्ति, शोभा, तुष्टि तथा आनन्द करने वाली हो ॥ ३२ ॥ पुण्यकर्त्ताओं में तुम लक्ष्मी हो, पापियों में तुम्हीं दरिद्रा हो, तुम इस सारे जगत् की शान्ति, धात्री तथा प्राणपोषणी माता हो ॥ ३३ ॥ हे मातः ! तुम्हीं इन पंचभूतों में सारभूत तत्त्वस्वरूपा तुम्हीं नीतिज्ञों में नीतिस्वरूपा एवं तुम्हीं व्यवसायस्वरूपा हो ॥ ३४ ॥ हे मातः ! तुम्हीं सारे सामवेद में गीतिस्वरूपा हो, तुम ही यजुर्वेद में ग्रन्थि हो, ऋग्वेद की आहुति हो, अथर्व की मात्रा हो तथा तुम मोक्षस्वरूपा हो ॥३५॥ सभी देवगणों में शक्तिस्वरूपा हो, तुम्हीं तमप्रधान, धातृगुणों की एक ही दृश्यरूपा, राजोगुण के प्रपञ्च में एकमात्र भवरूपा हो, जो हमने शास्त्रों में सुना है वैसी आपकी भव्यकरी स्तुति हम

संसारसागर-करालभवाङ्गदुःख-निस्तारकारि-तरणिश्च निवीतहीनाम् ।
अष्टाङ्गयोग-परिपालन-केलिदक्षां विन्ध्यागवासनिरतां प्रणमाम तां वै ॥३७॥
नासाक्षि-वक्त्रभुज-वक्षसि मानसे च धृत्वा सुखानि वितनोषि सदैव जन्तोः ।
निद्रेति यानिसुभगा जगती भवानां सा नः प्रसीदतु भवस्थितिपालनाय ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

इति स्तुत्वा महेशानीं जगदम्बामुमां सतीम् । सुप्रेम मनसः सर्वे तस्थुस्ते दर्शनेप्सवः ॥३९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
देवस्तुतिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

(देवताओं को देवी के स्वरूप का दर्शन और अपनी उत्पत्ति कथन)

ब्रह्मोवाच

इत्थं देवैः स्तुता देवी दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी । आविर्बभूव देवानां पुरतो जगदम्बिका ॥ १ ॥
रथे रत्नमये दिव्ये संस्थिता परमाद्भुते । किङ्किणीजालसंयुक्ते मृदुसंस्तरणे वरे ॥ २ ॥
कोटिसूर्याधिकाभास-रम्यावयव-भासिनी । स्वतेजोराशिमध्यस्था वररूपा समच्छविः ॥ ३ ॥
अनूपमा महामाया सदाशिवविलासिनी । त्रिगुणा निर्गुणा नित्या शिवलोकनिवासिनी ॥ ४ ॥
त्रिदेवजननी चण्डी शिवा सर्वार्तिनाशिनी । सर्वमाता महानिद्रा सर्वस्वजनतारिणी ॥ ५ ॥
तेजोराशेः प्रभावात्तु सा तु दृष्टा सुरैः शिवा । तुष्टुवुस्तां पुनस्ते वै सुरा दर्शनकांक्षिणः ॥ ६ ॥

लोगों ने की है ॥ ३६ ॥ आप कराल संसार-सागर के महान् दुःखों से पार करने वाली, पाल रहित नौका हो। अष्टाङ्गयोग का पालन करने वाली, कामक्रीड़ा में चतुर, विन्ध्य पर निवास करने वाली उस भगवती को हम प्रणाम करते हैं ॥ ३७ ॥ जो प्राणियों के नासिका, नेत्र, मुख, भुजा, वक्षःस्थल एवं मन में धैर्यपूर्वक सुख प्रदान करती है, जो इस जगत् के कल्याण के लिए अत्यन्त सुखकारी निद्रारूप में प्रवृत्त होती है, वह देवी संसार की स्थिति तथा पालन के लिए हमारे ऊपर प्रसन्न हो ॥ ३८ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार जगदम्बा, महेशानी, उमा की स्तुति कर सभी देवगण उनके दर्शन के निमित्त प्रतीक्षा करने लगे ॥ ३९ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में देवस्तुतिवर्णन नामक तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—जब इस प्रकार भगवती दुर्गा, जिन्होंने दुर्ग राक्षस के द्वारा उत्पन्न देवताओं के संकट को नाश किया था, देवताओं के द्वारा स्तुति की गयीं तब वे जगजम्बा देवताओं के सामने साक्षात् प्रकट हो गयीं ॥ १ ॥ उस समय वे परम अद्भुत रत्नों से जड़े हुए रथ में बैठी थीं, जिसमें क्षुद्र घण्टिकाएँ लगी हुई थीं, तथा अत्यन्त मनोहर बिछौने बिछे थे ॥ २ ॥ उनके प्रत्येक श्रीअङ्गों से करोड़ों सूर्य के समान प्रकाश निकल रहा था, वे अपने तेजोराशि के मध्य में विराजमान होकर श्रेष्ठरूप से शोभा प्राप्त कर रही थीं। उपमा से रहित, महामाया, सदाशिव के साथ विलास करने वाली, त्रिगुणात्मिका, निर्गुणा, नित्या एवं शिवलोकनिवासिनी, त्रिदेवजननी, चण्डी, शिवा, सर्वार्तिनाशिनी, सबकी माता, महानिद्रा तथा सभी को मोक्ष देनेवाली, उन भगवती शिवा ने अपने तेजोराशि के प्रभाव से देवताओं के सामने प्रगट होकर उन्हें अपना दर्शन दिया। तदनन्तर देवगण पुनः दर्शन की इच्छा से भगवती की स्तुति करने लगे ॥३-६॥

अथ देवगणाः सर्वे विष्ण्वाद्या दर्शनेप्सवः । ददृशुर्जगदम्बां तां तत्कृपां प्राप्य तत्र हि ॥ ७ ॥
बभूवानन्दसन्दोहः सर्वेषां त्रिदिवौकसाम् । पुनः पुनः प्रणेमुस्तां तुष्टुवुश्च विशेषतः ॥ ८ ॥

देवा ऊचुः

शिवे शर्वाणि कल्याणि जगदम्ब महेश्वरि ! । त्वां नताः सर्वथा देवा वयं सर्वार्तिनाशिनीम् ॥ ९ ॥
न हि जानन्ति देवेशि ! वेदाः शास्त्राणि कृत्स्नशः । अतीतो महिमा ध्यानं तव वाङ्मनसोः शिवे ॥ १० ॥
अतद्व्यावृत्तितस्त्वां वै चकितं चकितं सदा । अभिधत्ते श्रुतिरपि परेषां का कथा मता ॥ ११ ॥
जानन्ति बहवो भक्तास्त्वत्कृपां प्राप्य भक्तितः । शरणागतभक्तानां न कुत्रापि भयादिकम् ॥ १२ ॥
विज्ञप्तिं शृणु सुप्रीता यस्या दासाः सदाम्बिके । तव देवि महादेवि ! हीनतो वर्णयामहे ॥ १३ ॥
पुरा दक्षसुता भूत्वा सञ्जाता हरवल्लभा । ब्रह्मणश्च परेषां वा नाशयस्त्वमकं महत् ॥ १४ ॥
पितृतोऽनादरं प्राप्यात्यजः पणवशात्तनुम् । स्वलोकमगमस्त्वं वाऽलभद् दुःखं हरोऽपि हि ॥ १५ ॥
न हि जातं प्रपूर्णं तद् देवकार्यं महेश्वरि ! । व्याकुला मुनयो देवाः शरणं त्वां गता वयम् ॥ १६ ॥
पूर्णं कुरु महेशानि निर्जराणां मनोरथम् । सनत्कुमारवचनं सफलं स्याद्यथा शिवे ! ॥ १७ ॥
अवतीर्य क्षितौ देवि ! रुद्रपत्नी पुनर्भव । लीलां कुरु यथायोग्यं प्राप्नुयुर्निर्जराः सुखम् ॥ १८ ॥
सुखी स्याद् देवि रुद्रोऽपि कैलासाचलसंस्थितः । सर्वे भवन्तु सुखिनो दुःखं नश्यतु कृत्स्नशः ॥ १९ ॥

ब्रह्मोवाच

इति प्रोच्यामराः सर्वे विष्ण्वाद्याः प्रेमसङ्कुलाः । मौनमास्थाय सन्तस्थुर्भक्तिनम्रात्ममूर्तयः ॥ २० ॥
शिवाऽपि सुप्रसन्नाभूदाकर्ण्यामरसंस्तुतिम् । आकलय्याथ तद्धेतुं संस्मृत्य स्वप्रभुं शिवम् ॥ २१ ॥

विष्णु आदि सभी देवगण, जो भगवती के दर्शन की इच्छा से ही वहाँ गये हुए थे, उनकी कृपा प्राप्त कर ही दर्शन करने में समर्थ हो सके ॥ ७ ॥ देवी के दर्शन से सभी देवगणों को महान् आनन्द हुआ, वे बारम्बार उन्हें प्रणाम कर स्तुति करने लगे ॥ ८ ॥

देवगण बोले—हे शिवे ! हे शर्वाणि, हे कल्याणकारिणि, हे जगदम्बे, हे महेश्वरि ! आप सबके दुःखों को दूर करने वाली हैं, अतः हम सभी देवगण आप को प्रणाम करते हैं ॥ ९ ॥ हे देवि ! समस्त वेद एवं शास्त्र भी तुम्हारी महिमा नहीं जान सकते हैं । हे शिवे ! तुम्हारा ध्यान तथा तुम्हारी महिमा वाणी एवं मन से परे है ॥ १० ॥ वेद भी भली प्रकार से तुम्हारी महिमा नहीं जान पाते इसलिए वे चकित होकर तुम्हारी महिमा का वर्णन करते हैं । जब वेद की यह दशा है, तब औरों की कथा ही क्या है ? ॥ ११ ॥

हे शिवे ! तुम्हारी कृपा प्राप्त कर कोई भक्त ही तुम्हारी महिमा जान पाते हैं । हे मातः, तुम्हारे शरणागतों को कहीं कोई किसी प्रकार का भय नहीं है ॥ १२ ॥ हे अम्बिके ! हम सब तुम्हारे दास हैं, अतः अब आप हमारी प्रार्थना सुनें । हमलोग तुम्हारी महिमा का वर्णन कर ही नहीं सकते, क्योंकि जो महिमा वर्णन भी करेंगे, वह भी तुच्छ होगा ॥ १३ ॥ तुम पहले दक्षकन्या होकर शिव की प्रिया हुई थीं । तुमने उस समय ब्रह्मादि समस्त देवताओं के गर्व का खण्डन किया था ॥ १४ ॥ पुनः तुमने अपने पिता का अनादर प्राप्त कर अपनी प्रतिज्ञा के कारण वहाँ पर प्राण त्याग कर दिया । तदनन्तर तुम अपने लोक को चली गयी, जिससे सदाशिव को महान् कष्ट हो रहा है ॥ १५ ॥ किन्तु हे मातः ! उस समय तक भी देवकार्य पूर्ण नहीं हुआ । इसलिए हम सभी देवता तथा मुनिगण तुम्हारी शरण में आये हैं ॥ १६ ॥ हे महेशानि, आप देवगणों के मनोरथ को पूर्ण कीजिए । जिससे हे शिवे ! सनत्कुमार का कहा हुआ सारा वचन सत्य हो ॥ १७ ॥ हे देवि ! तुम पुनः पृथ्वी में अवतार लेकर शिवजी की पत्नी बनो । और यथायोग्य लीला करो, जिससे देवगण सुखी हों ॥ १८ ॥ हे देवि, ऐसा करने से कैलास पर्वत पर स्थित भगवान् शंकर भी प्रसन्न होंगे । सभी सुखी हो जायेंगे तथा सबके दुःख का नाश हो जायेगा ॥ १९ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! विष्णु आदि समस्त देवगण इतना कहकर प्रेम से विभोर हो उठे । और वे भक्ति से विनम्र हो सिर झुकाकर मौन हो खड़े हो गये ॥ २० ॥ शिवा भी देवताओं की स्तुति सुनकर

उवाचोमा तदा देवी सम्बोध्य विबुधांश्च तान् । विहस्य मापतिमुखान् सदया भक्तवत्सला ॥२२॥

उमोवाच

हे हरे हे विधे देवा मुनयश्च गतव्यथाः । सर्वे शृणुत मद्वाक्यं प्रसन्नाऽहं न संशयः ॥२३॥
चरितं मम सर्वत्र त्रैलोक्यस्य सुखावहम् । कृतं मयैव सकलं दक्षमोहादिकं च तत् ॥२४॥
अवतारं करिष्यामि क्षितौ पूर्णं न संशयः । बहवो हेतवोऽप्यत्र तद्वदामि महादरात् ॥२५॥
पुरा हिमाचलो देवा मेना चातिसुभक्तितः । सेवां मे चक्रतुस्तात ! जननीवत् सतीतनोः ॥२६॥
इदानीं कुरुतः सेवां सुभक्त्या मम नित्यशः । मेना विशेषतस्तत्र सुतात्वेनात्र संशयः ॥२७॥
रुद्रो गच्छतु यूयं चावतारं हिमवद्गृहे । अतश्चावतरिष्यामि दुःखनाशो भविष्यति ॥२८॥
सर्वे गच्छत धाम स्वं स्वं सुखं लभतां चिरम् । अवतीर्य सुता भूत्वा मेनाया दास्य उत्सुखम् ॥२९॥
हरपत्नी भविष्यामि सुगुप्तं मतमात्मनः । अद्भुता शिवलीला हि ज्ञानिनामपि मोहिनी ॥३०॥
यावत्प्रभृति मे त्यक्ता स्वतनुर्दक्षजा सुराः । पितृतोऽनादरं दृष्ट्वा स्वामिनस्तत्क्रतौ गता ॥३१॥
तदाप्रभृति स स्वामी रुद्रः कालाग्निसंज्ञकः । दिगम्बरो बभूवाशु मच्चिन्तनपरायणः ॥३२॥
मम रोषं क्रतौ दृष्ट्वा पितुस्तत्र गता सती । अत्यजत् स्वतनुं प्रीत्या धर्मज्ञेति विचारतः ॥३३॥
योग्यभूत्सदनं त्यक्त्वा कृत्वा वेषमलौकिकम् । न सेहे विरहं सत्या मद्रूपाया महेश्वरः ॥३४॥
मम हेतोर्महादुःखी स बभूव कुवेषभृत् । अत्यजत् स तदारभ्य कामजं सुखमुत्तमम् ॥३५॥
अन्यच्छृणुत हे विष्णो हे विधे मुनयः सुराः ! । महाप्रभोर्महेशस्य लीलां भुवनपालिनीम् ॥३६॥
विधाय मालां सुप्रीत्या ममास्थ्नां विरहाकुलः । न शान्तिं प्राप कुत्रापि प्रबुद्धोऽप्येक एव सः ॥३७॥

प्रसन्न हो गयीं, उन्होंने प्रभु शिव का स्मरण कर समस्त हेतु जान लिया ॥२१॥ फिर वे उमा देवी देवताओं को सम्बोधित करती हुई भक्तवत्सलता से हँसकर विष्णु आदि देवों से बोलीं ॥ २२ ॥

उमा ने कहा—हे हरि, हे ब्रह्मा तथा हे मुनिगण ! अब आप लोग दुःखरहित होकर निवास करो, और मेरी बात सुनो, मैं आपलोगों पर प्रसन्न हूं, इसमें सन्देह नहीं ॥ २३ ॥ मेरा चरित्र त्रिलोकी को सुख देने वाला है, दक्ष को जो मोह हुआ वह सब भी मैंने ही किया है ॥२४॥ मैं अवश्य ही पृथ्वी पर पूर्णावतार धारण करूंगी। इसमें बहुत से हेतु हैं, उन हेतुओं को मैं आदरपूर्वक आपलोगों से कहती हूं ॥ २५ ॥ पहले हिमाचल एवं उनकी पत्नी ने बड़े प्रेम से मेरे सती शरीर में स्नेहसहित माता-पिता के समान सेवा की थीं ॥ २६ ॥ इस समय भी वे भक्ति से मेरी सेवा करते हैं। मेना विशेषकर पुत्रीरूप से मेरी सेवा करती है, इसमें सन्देह नहीं ॥२७॥ अब रुद्र तथा अन्य देवगण अपने-अपने स्थान को जावें, मैं हिमालय के घर अवतार लूंगी, उस समय सभी का दुःख दूर हो जायगा ॥ २८ ॥ आप सभी अपने-अपने घर लौट और सुखपूर्वक बहुत काल तक निवास करें। मैं मेना की कन्या के रूप में जन्म लेकर सभी को सुखी करूंगी ॥२९॥

यह मेरा गुप्त मत है कि, मैं शिवपत्नी बनूंगी। शिव की लीला महान् अद्भुत है, जिससे ज्ञानी भी मोहित हो जाते हैं ॥ ३० ॥ हे देवगणो ! जिस समय से मैंने पिता के द्वारा अनादृत दक्षोत्पन्न अपना सती शरीर स्वामी के निमित्त यज्ञ में छोड़ दिया ॥ ३१ ॥ उसी समय से वे हमारे स्वामी कालाग्नि-संज्ञक रुद्र मेरी चिन्ता करते-करते दिगम्बर हो गये हैं ॥३२॥ वे बारम्बार विचार करते हैं कि, देखो, सती कैसी धर्मज्ञा थी जिसने मेरी प्रीति के कारण अपने पिता के यज्ञ में मेरा अनादर देखकर क्रोध से अपने शरीर का त्याग कर दिया, ऐसा सोचकर वे महान् दुःखी हो रहे हैं ॥३३॥ उन्होंने अलौकिक वेष धारण कर लिया है, और मेरे लिए ही घर का त्याग कर योगी बन भटक रहे हैं। वे महेश्वर मुझ सती का विरह नहीं सहन कर पा रहे हैं ॥ ३४ ॥ मेरे निमित्त ही वे कुवेष धारण कर महादुःखी हो रहे हैं, उन्होंने उसी समय से समस्त कामज सुखों का परित्याग कर दिया है ॥ ३५ ॥ हे विष्णो, हे विधे, हे देवगणो !, एवं मुनिगणो ! उन महाप्रभु महेश्वर की और भी भुवनपालिनी लीला सुनो ॥ ३६ ॥ वे मेरे विरह से इतने

इतस्ततो रुरोदोच्चैरनीश इव स प्रभुः । योग्याऽयोग्यं न बुबुधे भ्रमन् सर्वत्र सर्वदा ॥३८॥
इत्थं लीलां हरोऽकार्षीद् दर्शयन् कामिनां प्रभुः । ऊचे कामुकवद्वाणीं विरहव्याकुलामिव ॥३९॥
वस्तुतोऽविकृतोऽदीनोऽस्त्यजितः परमेश्वरः । परिपूर्णः शिवः स्वामी मायाधीशोऽखिलेश्वरः॥४०॥
अन्यथा मोहतस्तस्य किं कामाच्च प्रयोजनम् । विकारेणापि केनाशु मायालिप्तो न स प्रभुः ॥४१॥
रुद्रोऽतीवेच्छति विभुः स मे कर्तुं करग्रहम् । अवतारं क्षितौ मेनाहिमाचलगृहे सुराः ॥४२॥
अतश्चावतरिष्यामि रुद्रसन्तोषहेतवे । हिमागपत्न्यां मेनायां लौकिकीं गतिमाश्रिता ॥४३॥
भक्त्या रुद्रप्रिया भूत्वा तपः कृत्वा सुदुःसहम् । देवकार्यं करिष्यामि सत्यं सत्यं न संशयः ॥४४॥
गच्छत स्वगृहं सर्वे भवं भजत नित्यशः । तत्कृपातोऽखिलं दुःखं विनश्यति न संशयः ॥४५॥
भविष्यति कृपालोस्तु कृपया मङ्गलं सदा । वन्द्या पूज्या त्रिलोकेऽहं तज्जायेति च हेतुतः ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा जगदम्बा सा देवानां पश्यतां तदा । अन्तर्दधे शिवा तात स्वं लोकं प्राप वै द्रुतम् ॥४७॥
विष्ण्वादयः सुराः सर्वे मुनयश्च मुदान्विताः । कृत्वा तद्दिशि संनामं स्व-स्वधामानि संययुः ॥४८॥
इत्थं दुर्गासुचरितं वर्णितं ते मुनीश्वर ! । सर्वदा सुखदं नृणां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥४९॥
य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद् वा समाहितः । पठेद् वा पाठयेद् वापि सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥५०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
देवसान्त्वनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

व्याकुल हो गये कि मेरी अस्थियों की माला वनाकर उसे धारण करने पर भी उन्हें शान्ति नहीं मिलती, वे रात-दिन जागते ही रहते हैं ॥ ३७ ॥ वे अनाथ के समान बड़े ऊँचे स्वरों से रोते हुए इधर-उधर भटक रहे हैं, उन्हें अपने स्वरूप का यथोचित ज्ञान भी नहीं रहा ॥ ३८ ॥ इस प्रकार सदाशिव कामियों की गति दिखाते हुए लीला करते फिरते हैं। और विरह से व्याकुल होकर कामियों—जैसी वाणी बोलते रहते हैं ॥ ३९ ॥

वस्तुतः वे शिव विकार तथा दीनता से रहित हैं, अजित, परमेश्वर, परिपूर्ण, स्वामी, मायाधीश, सबके अधिपति तथा सबका कल्याण करने वाले हैं ॥४०॥ वे तो लोकानुसरण कर लीला करते हैं, अन्यथा उन्हें मोह कहाँ तथा माया से प्रयोजन ही क्या है ? वे न तो किसी विकार से और न तो माया से ही लिप्त रहने वाले हैं ॥ ४१ ॥ इस प्रकार वे रुद्र मुझसे विवाह करना चाहते हैं, अतः हे देवगणो ! मैं पृथ्वी पर हिमालय के घर मेना में अवतार धारण करूँगी ॥ ४२ ॥ मैं रुद्र की इच्छापूर्ति के लिए ही हिमालय-पत्नी मेना में लौकिक गति का आश्रय ले अवतार लूँगी ॥४३॥ मैं वहाँ जन्म लेकर अपने दुःसह तपस्या के द्वारा रुद्र को अपना पति वनाऊँगी । और देवकार्य करूँगी, इसमें सन्देह नहीं, यह वात सत्य है ॥४४॥ तुम सभी देवता अपने-अपने स्थानों को जाओ और भगवान् रुद्र का भजन करो, उन्हीं की कृपा से सारे दुःख दूर हो जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४५ ॥ उन कृपालु की कृपा प्राप्त होने पर सर्वदा मङ्गल ही होगा । मैं शंकर-प्रिया होने के कारण त्रिलोक में वन्दित तथा पूजित हो जाऊँगी ॥ ४६ ॥

ब्रह्माजी वोले—ऐसा कहकर वह जगदम्बा देवताओं के देखते-देखते शीघ्रता से अन्तर्धान होकर अपने लोक को चली गयीं ॥ ४७ ॥ तदनन्तर विष्णु आदि समस्त देवता अत्यन्त प्रसन्न हो उस दिशा को प्रणाम कर अपने-अपने निवास स्थान को चले गये ॥ ४८ ॥ हे मुनीश्वर ! मैंने दुर्गा का चरित्र, जो मनुष्यों को सुखकारी, भोग तथा मोक्ष को देने वाला है, वर्णन किया ॥४९॥ जो इस चरित्र को सुनते अथवा सुनाते हैं अथवा जो पढ़ते एवं पढ़ाते हैं वे सभी अपनी कामनाओं को प्राप्त करते हैं ॥ ५० ॥

इस प्रकार 'शिवदत्त'भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में देवसान्त्वनाप्रदान वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

(मेना की तपस्या का वर्णन तथा शिवा का जन्म)

नारद उवाच

अन्तर्हितायां देव्यां तु दुर्गायां स्वगृहेषु च । गतेष्वमरवृन्देषु किमभूत्तदनन्तरम् ॥ १ ॥
कथं मेनागिरीशौ च तेपाते परमन्तपः । कथं सुताऽभवत्तस्य मेनायां तात तद्वद ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

विप्रवर्य सुतश्रेष्ठ श्रृणु तच्चरितं महत् । प्रणम्य शङ्करं भक्त्या वच्मि भक्तिविवर्द्धनम् ॥ ३ ॥
उपदिश्य गते तात सुरवृन्दे गिरीश्वरः । हर्यादौ मेनका चापि तेपाते परमं तपः ॥ ४ ॥
अहर्निशं शिवां शम्भुं चिन्तयन्तौ च दम्पती । सम्यगारेधतुर्नित्यं भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ ५ ॥
गिरिप्रियातीव मुदानर्च देवीं शिवेन सा । दानं ददौ द्विजेभ्यश्च सदा तत्तोषहेतवे ॥ ६ ॥
चैत्रमासं समारभ्य सप्तविंशतिवत्सरान् । शिवां सम्पूजयामासापत्यार्थिन्यन्वहं रता ॥ ७ ॥
अष्टम्यामुपवासं तु कृत्वाऽदान्नवमीतिथौ । मोदकैर्बलिपिष्टैश्च पायसैर्गन्धपुष्पकैः ॥ ८ ॥
गङ्गायामौषधिप्रस्थे कृत्वा मूर्तिं महीमयीम् । उमायाः पूजयामास नानावस्तुसमर्पणैः ॥ ९ ॥
कदाचित् सा निराहारा कदाचित् सा धृतव्रता । कदाचित् पवनाहारा कदाचिज्जलभुग् बभूव ॥१०॥
शिवाविन्यस्तचेतस्का सप्तविंशतिवत्सरान् । निनाय मेनका प्रीत्या परं सा मृष्टवर्चसा ॥११॥
सप्तविंशतिवर्षान्ते जगन्माता जगन्मयी । सुप्रीताऽभवदत्यर्थमुमा शङ्करकामिनी ॥१२॥
अनुग्रहाय मेनायाः पुरतः परमेश्वरी । आविर्बभूव सा देवी सन्तुष्टा तत्सुभक्तितः ॥१३॥
दिव्यावयवसंयुक्ता तेजोमण्डलमध्यगा । उवाच विहसन्ती सा मेनां प्रत्यक्षतां गता ॥१४॥

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन् ! जब भगवती दुर्गा अन्तर्धान होकर अपने स्थान को चली गयीं एवं देव-समूह भी अपने-अपने स्थान को चले गये तब क्या हुआ ? ॥ १ ॥ मेना तथा हिमालय ने किस प्रकार तप किया ? और भगवती किस प्रकार उनकी कन्या हुईं, इन सब वृत्तान्तों को आप मुझसे कहिए ? ॥ २ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! हे श्रेष्ठपुत्र ! मैं शिवजी को प्रणाम कर उनके भक्तिवर्धन चरित्र को कहता हूँ, उसे सुनो ॥ ३ ॥ जब देवता एवं विष्णु हिमालय तथा मेना को उपदेश कर अपने-अपने स्थान को चले गये, तब उन दोनों ने विष्णु की आज्ञा से तप करना प्रारम्भ किया ॥४॥ दोनों स्त्री-पुरुष भक्तियुक्त चित्त से शिवा एवं शिव का स्मरण करते हुए आराधना करने लगे ॥ ५ ॥ गिरिप्रिया मेना नित्य भगवती सहित सदाशिव का पूजन कर उन्हें प्रसन्न करने के लिए नित्य ब्राह्मणों को दान देती थीं ॥६॥ अपत्यार्थिनी वह मेना चैत्र मास से आरम्भ कर सत्ताईस वर्ष पर्यन्त निरन्तर शिवा की आराधना करती रहीं ॥ ७ ॥ वे अष्टमी को उपवास कर नवमी के दिन मोदक, पट्टी, खीर तथा सुगन्धित पुष्पों से भगवती की पूजा करतीं ॥ ८ ॥ गङ्गा के तट पर औषधिप्रस्थ नामक स्थान में भगवती की मिट्टी की मूर्ति बनाकर अनेक वस्तुओं को उन्हें समर्पित कर, उनकी पूजा करतीं ॥ ९ ॥ कभी वे निराहार रह जातीं और कभी नियम पूर्वक व्रत धारण करतीं, कभी वायु भक्षण करतीं तो कभी मात्र जल से आहार करती थीं ॥ १० ॥ इस प्रकार शिवाशिव में मन लगाकर मेना ने सत्ताईस वर्ष तक प्रेमपूर्वक आराधना कीं ॥११॥ तदनन्तर सत्ताईस वर्ष बीत जाने के पश्चात् शङ्करकामिनी, जगन्मयी जगदम्बा उमा भगवती मेना पर प्रसन्न हुईं ॥ १२ ॥ वे मेना पर अनुग्रह करने के लिए उनकी भक्ति से सन्तुष्ट हो उनके सम्मुख प्रगट हुईं ॥ १३ ॥ अत्यन्त मनोहर रूप धारण कर तेजोमण्डल के मध्य में स्थित हो हँसती हुई प्रत्यक्ष मेना से बोलीं ॥ १४ ॥

देव्युवाच

वरं ब्रूहि महासाध्वि यत्ते मनसि वर्तते । सुप्रसन्ना च तपसा तवाऽहं गिरिकामिनि ! ॥१५॥
यत्प्रार्थितं त्वया मेने तपोव्रतसमाधिना । दास्ये तेऽहं च तत्सर्वं वाञ्छितं यद्यदा भवेत् ॥१६॥
ततः सा मेनका देवीं प्रत्यक्षां कालिकां तदा । दृष्ट्वा च प्रणनामाथ वचनं चेदमब्रवीत् ॥१७॥

मेनोवाच

देवि ! प्रत्यक्षतो रूपं दृष्टं तव मयाऽधुना । त्वामहं स्तोतुमिच्छामि प्रसन्ना भव कालिके ! ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

अथ सा मेनयेत्युक्ता कालिका सर्वमोहिनी । बाहुभ्यां सुप्रसन्नात्मा मेनकां परिषस्वजे ॥१९॥
ततः प्राप्तमहाज्ञाना मेनका कालिकां शिवाम् । तुष्टाव वाग्भिरीष्टाभिर्भक्त्या प्रत्यक्षतां गताम् ॥२०॥

मेनोवाच

महामायां जगद्धात्रीं चण्डिकां लोकधारिणीम् । प्रणमामि महादेवीं सर्वकामार्थदायिनीम् ॥२१॥
नित्यानन्दकरीं मायां योगनिद्रां जगत्प्रसूम् । प्रणमामि सदा सिद्धां शुभसारसमालिनीम् ॥२२॥
मातामहीं सदानन्दां भक्तशोकविनाशिनीम् । आकल्पं वनितानां च प्राणिनां बुद्धिरूपिणीम् ॥२३॥

सा त्वं बन्धच्छेदहेतुर्यतीनां कस्ते गेयो मादृशीभिः प्रभावः ।
हिंसा या वाऽथर्ववेदस्य सा त्वं नित्यं कामं त्वं ममेष्टं विधेहि ॥२४॥

नित्याऽनित्यैर्भावहीनैः परास्तैस्तत्तन्मात्रैर्योज्यते भूतवर्गः ।
तेषां शक्तिस्त्वं सदा नित्यरूपा काले योषा योगयुक्ता समर्था ॥२५॥

देवी बोलीं—हे हिमालयप्रिये ! मैं तुम्हारी तपस्या से अत्यन्त प्रसन्न हूँ, अतः हे महासाध्वि ! तुम्हारी जो इच्छा हो वह वर मुझसे माँगो ॥ १५ ॥ हे मेने ! तुमने अपनी तपस्या, व्रत तथा समाधि के द्वारा जो-जो प्रार्थना की है, तुम्हारी वे सभी आकांक्षाएँ मैं पूर्ण करूँगी ॥ १६ ॥ मेना ने भगवती को अपने सामने प्रत्यक्ष देखकर उन कालिका को प्रणाम किया और इस प्रकार कहने लगीं-॥ १७ ॥

मेना बोली—हे देवि ! मैंने इस समय तुम्हारा रूप प्रत्यक्ष देखा है, अतः मैं तुम्हारी स्तुति करना चाहती हूँ, हे कालिके ! तुम मुझ पर प्रसन्न हो जाओ ॥ १८ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! जब मेना ने इस प्रकार कहा तब सबको मोहने वाली, उन भगवती ने अपने दोनों भुजाओं से मेना का आलिङ्गन किया ॥ १९ ॥ जिससे मेना को महाज्ञान उत्पन्न हो गया और वे भक्तियुक्त हो अपने मनोहर वचनों से प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने वाली भगवती कालिका की स्तुति करने लगीं ॥ २० ॥

मेना बोली—महामाया, जगद्धात्री, चण्डिका, लोक को धारण करने वाली, सभी कामनाओं तथा अर्थ को प्रदान करने वाली, महादेवी को मैं प्रणाम करती हूँ ॥ २१ ॥ नित्य आनन्द करने वाली, माया, योगनिद्रा, जगत्प्रसूति, सिद्धस्वरूपा एवं दिव्य कमलों की मालावाली आप देवी को मैं प्रणाम करती हूँ ॥२२॥ हे देवि ! आप माताओं की भी माता, सदा आनन्द देने वाली, भक्तों के शोक को नाश करने वाली, वनिता जनों की सर्वस्व एवं प्राणियों में बुद्धिरूप से रहने वाली हो, आपको प्रणाम है ॥२३॥ हे माता ! तुम यतियों के बन्धन को नष्ट करने वाली हो, भला मेरे सदृश कौन ऐसी स्त्री है, जो तुम्हारे प्रभाव को जानने में समर्थ हो । हे माता ! तुम्हीं अथर्ववेद में हिंसा रूप से स्थित हो, मेरी इष्ट कामना पूर्ण करो ॥ २४ ॥ नित्य, अनित्य, भाव-अभाव एवं एक-दूसरे से पृथक्-पृथक् तन्मात्राओं से तुम प्राणियों को युक्त करती हो । तुम प्राणियों की शक्ति हो, नित्यस्वरूपा हो, समय पर तुम प्रकृतिरूप से ब्रह्म में युक्त होकर समर्थ हो

योनिर्धरित्री जगतां त्वमेव त्वमेव नित्या प्रकृतिः परस्तात् ।
यथा वशं क्रियते ब्रह्मरूपं सा त्वं नित्या मे प्रसीदाऽद्य मातः ॥२६॥
त्वं जातवेदोगतशक्तिरुग्रा त्वं दाहिका सूर्यकरस्य शक्तिः ।
आह्लादिका त्वं बहु चन्द्रिका या तां त्वामहं स्तौमि नमामि चण्डीम् ॥२७॥
योषाणां सत्प्रिया च त्वं नित्या त्वं चोर्ध्वरेतसाम् ।
वाञ्छा त्वं सर्वजगतां माया च त्वं यथा हरेः ॥२८॥
या चेष्टरूपाणि विधाय देवी सृष्टिस्थितिनाशमयी च कर्त्री ।
ब्रह्माऽच्युतस्थाणुशरीरहेतुः सा त्वं प्रसीदाऽद्य पुनर्नमस्ते ॥२९॥

ब्रह्मोवाच

तत इत्थं स्तुता दुर्गा कालिका पुनरेव हि । उवाच मेनकां देवीं वाञ्छितं वरयेत्युत ॥३०॥

उमोवाच

प्राणप्रिया मम त्वं हि हिमाचलविलासिनि ! । यदिच्छसि ध्रुवं दास्ये नाऽदेयं विद्यते मम ॥३१॥
इति श्रुत्वा महेशान्याः पीयूषसदृशं वचः । उवाच परितुष्टा सा मेनका गिरिकामिनी ॥३२॥

मेनोवाच

शिवे जय जय प्राज्ञे महेश्वरि भवाम्बिके ! । वरयोग्याऽस्म्यहं चेत्ते वृणे भूयो वरं वरम् ॥३३॥
प्रथमं शतपुत्रा मे भवन्तु जगदम्बिके ! । बह्वायुषो वीर्यवन्त ऋद्धिसिद्धिसमन्विताः ॥३४॥
पश्चात्तथैका तनया स्वरूपगुणशालिनी । कुलद्वयानन्दकरी भुवनत्रयपूजिता ॥३५॥
सुता भव मम शिवे देवकार्यार्थमेव हि । रुद्रपत्नी भव तथा लीलां कुरु भवाम्बिके ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा मेनकोक्तं हि प्राह देवी प्रसन्नधीः । स्मितपूर्वं वचस्तस्याः पूरयन्ती मनोरथम् ॥३७॥

जाती हो ॥ २५ ॥ हे माता ! तुम जगत् की योनि हो, सबको धारण करने वाली हो, तुम्हीं पर से पर नित्य प्रकृति हो, हे माता ! जिस प्रकार तुम ब्रह्मरूप को अपने वश में करती हो वही नित्यस्वरूपा तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाओ ॥२६॥ हे मातः ! तुम्हीं अग्नि में रहने वाली दाहिका एवं उग्रशक्ति हो, तुम्हीं सूर्य में किरण रूप शक्ति हो । तुम्हीं चन्द्रमा में रहने वाली आह्लादिका शक्ति हो । मैं तुम चण्डी को नमस्कार करती हूँ तथा स्तुति करती हूँ ॥ २७ ॥ सभी स्त्रियों की तुम प्रिय हो, तुम ऊर्ध्वरेता लोगों की नित्य शक्ति हो । तुम्हीं सारे जगत् में इच्छारूप से निवास करती हो, तुम विष्णु की माया हो ॥ २८ ॥ हे देवि ! तुम तत्तद्रूपों को धारण कर सृष्टि, पालन तथा नाश करने वाली हो, तुम ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर की जनयित्री हो । अतः हे माता ! तुम्हें प्रणाम है, तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाओ ॥ २९ ॥

ब्रह्माजी बोले—जब भगवती कालिका, दुर्गा की मेना ने इस प्रकार पुनः स्तुति की तब भगवती ने मेना से कहा—तुम वर माँगो ॥ ३० ॥

उमा बोलीं—हे हिमाचल की प्राणप्रिये ! तुम मुझे प्राणों के समान प्यारी हो, तुम जो चाहोगी उसे मैं अवश्य दूँगी । तुम्हारे लिए मुझे कुछ भी अदेय नहीं है ॥ ३१ ॥ भगवती के इस प्रकार अमृत सदृश वचन सुन कर सन्तुष्ट हो मेना बोली—॥ ३२ ॥

मेना बोली—हे शिवे, हे महेश्वरि, हे महाप्राज्ञे, हे भवे, हे अम्बिके ! तुम्हारी जय हो, तुम्हारी जय हो । यदि मैं आपके द्वारा वर देने योग्य हूँ, तो आपसे वर माँगती हूँ ॥ ३३ ॥ सर्वप्रथम मुझे यह वरदान दीजिए कि, मेरे सौ पुत्र हों, जो दीर्घजीवी, महाबलवान् एवं ऋद्धि-सिद्धियों से सम्पन्न हों ॥ ३४ ॥ तदनन्तर गुणवती, रूपवती, मातृकुल तथा पतिकुल को आनन्द देने वाली एक कन्या हो, जिसकी पूजा समस्त त्रिलोकी में हो ॥ ३५ ॥ हे शिवे ! मैं बहुत क्या कहूँ, देवकार्य की सिद्धि हेतु तुम्हीं मेरी कन्या बनो और रुद्र को अपना पति बनाकर जगत् में अपनी लीला का विस्तार करो ॥ ३६ ॥

देव्युवाच

शतपुत्राः संभवन्तु भवत्या वीर्यसंयुताः । तत्रैको बलवान् मुख्यः प्रथमं संभविष्यति ॥३८॥
सुताऽहं संभविष्यामि सन्तुष्टा तव भक्तितः । देवकार्यं करिष्यामि सेविता निखिलैः सुरैः ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा जगद्धात्री कालिका परमेश्वरी । पश्यन्त्या मेनकायास्तु तत्रैवाऽन्तर्दधे शिवा ॥४०॥
मेनकापि वरं लब्ध्वा महेशान्या अभीप्सितम् । मुदं प्रापामितां तात! तपःक्लेशोऽप्यनश्यत ॥४१॥
दिशि तस्यां नमस्कृत्य सुप्रहृष्टमनाः सती । जयशब्दं प्रोच्चरन्ती स्वस्थानं प्रविवेश ह ॥४२॥
अथ तस्मै स्वपतये शशंस सुवरं च तम् । स्वचिह्नवुद्धमिव वै सुवाचा पुनरुक्तया ॥४३॥
श्रुत्वा शैलपतिर्हृष्टोऽभवन्मेनावचो हि तत् । प्रशशंस प्रियां प्रीत्या शिवाभक्तिरतां च ताम् ॥४४॥
कालक्रमेणाऽथ तयोः प्रवृत्ते सुरते मुने । गर्भो बभूव मेनाया ववृधे प्रत्यहं च सः ॥४५॥
असूत सा नागवधूपभोग्यं सुतमुत्तमम् । समुद्रबद्धसत्सख्यं मैनाकाभिधमद्भुतम् ॥४६॥
वृत्रशत्रावपि क्रुद्धे वेद नाशं सपक्षकम् । पविक्षतानां देवर्षे पक्षच्छिदि वराङ्गकम् ॥४७॥
प्रवरं शतपुत्राणां महाबलपराक्रमम् । स्वोद्भवानां महीध्राणां पर्वतेन्द्रैकधिष्ठितम् ॥४८॥
आसीन्महोत्सवस्तत्र हिमाचलपुरेऽद्भुतः । दम्पत्योः प्रमुदाधिक्यं बभूव क्लेशसंक्षयः ॥४९॥
दानं ददौ द्विजातिभ्योऽन्येभ्यश्च प्रददौ धनम् । शिवाशिवपदद्वन्द्वे स्नेहोऽभूदधिकस्तयोः ॥५०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
मेनावरलाभवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ब्रह्माजी बोले—मेना का वचन सुनकर देवी प्रसन्न होकर हँसती हुई मेना के मनोरथ को पूर्ण करती हुई कहने लगीं ॥ ३७ ॥

देवी बोली—हे मेने ! तुम्हारे महाबलवान् सौ पुत्र होंगे। जिनमें एक बहुत बड़ा बलशाली होगा ॥ ३८ ॥ तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हुई मैं तुम्हारी कन्या के रूप में 'जन्म लूँगी। और समस्त देवताओं से सेवित हो देवकार्य सम्पन्न करूँगी ॥ ३९ ॥

ब्रह्मा बोले—जगद्धात्री परमेश्वरी श्री महाकालिका इतना कहने के अनन्तर मेनका के देखते-देखते अन्तर्धान हो गयीं ॥ ४० ॥ इधर मेना भी भगवती से अभिलषित वर प्राप्त कर परमानन्द में निमग्न हो गयी। उसका सारा तपःक्लेश निवृत्त हो गया ॥ ४१॥ प्रसन्न हुई उस महासती मेना ने उस दिशा को नमस्कार कर देवी का जय-जयकार किया। फिर वे अपने स्थान में चली गयीं ॥ ४२ ॥ ऐसे तो मेना के प्रसन्न मुखमण्डल से ही हिमवान् ने सारी बातें जान ली थीं, फिर भी मेना ने अपने मुख से वरदान की सारी बात पुनरुक्त वचनों के समान हिमालय से पुनः कह दिया ॥ ४३ ॥ मेना के वचन को सुनकर शैलराज को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने शिवा में भक्ति रखने वाली अपनी प्रिया की बहुत प्रशंसा की ॥ ४४ ॥

हे नारद ! फिर कालक्रम से उनके सुरत सम्भोग में प्रवृत्त होने पर मेना ने गर्भ धारण किया, जो प्रतिदिन क्रमशः बढ़ने लगा ॥ ४५ ॥ समय आने पर उस मेना ने नागवन्धुओं से सम्भोग के योग्य मैनाक नामक पुत्र उत्पन्न किया, जिसने समुद्र से मित्रता की ॥ ४६ ॥ जिस समय इन्द्र पर्वतों पर क्रुद्ध होकर उनके पङ्ख काटना आरम्भ किये उस समय वज्र के द्वारा कटे हुए पर्वतों के पङ्खों को देखकर उस मैनाक ने पङ्ख सहित उड़कर समुद्र से मैत्री सम्बन्ध स्थापित किया ॥ ४७ ॥ ऐसा वह मैनाक हिमालय के सौ पुत्रों में सर्वाधिक बलवान् था ॥ ४८ ॥ मैनाक के जन्म-समय में हिमालय के नगर में महान् उत्सव हुआ। दोनों स्त्री-पुरुष अत्यधिक प्रसन्नता को प्राप्त हुए और उनका क्लेश नष्ट हो गया ॥ ४९ ॥ उन्होंने ब्राह्मणों को दान तथा अन्यों को भी बहुत साधन-सम्पन्न किया। उस समय शिवाशिव के चरण-कमलों में उनका अनुराग अत्यधिक हो गया ॥ ५० ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में मेनावरलाभवर्णन नामक पञ्चम अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

(मेना द्वारा पार्वती की उत्पत्ति)

ब्रह्मोवाच

अथ सस्मरतुर्भक्त्या दम्पती तौ भवाम्बिकाम् । प्रसूतिहेतवे तत्र देवैकार्यार्थमादरात् ॥ १ ॥

ततः सा चण्डिका योगात्त्यक्तदेहा पुरा पितुः । ईहया भवितुं भूयः समैच्छद्गिरिदारतः ॥ २ ॥

सत्यं विधातुं स्ववचः प्रसन्नाखिलकामदा । पूर्णांशाच्छैलचित्ते सा विवेशाथ महेश्वरी ॥ ३ ॥

विरराज ततः सोऽतिप्रमदोऽपूर्वसुद्युतिः । हुताशन इवाधृष्यस्तेजोराशिर्महामनाः ॥ ४ ॥

ततो गिरिः स्वप्रियायां परिपूर्णं शिवांशकम् । समाधिमत्वात् समये समधत्त सुशङ्करे ॥ ५ ॥

समधत्त गिरः पत्नी गर्भं देव्याः प्रसादतः । चित्ते स्थितायाः करुणाकरायाः सुखदं गिरेः ॥ ६ ॥

गिरिप्रिया सर्वजगन्निवासासंश्रयाधिकम् । विरेजे सुतरां मेना तेजोमण्डलगा सदा ॥ ७ ॥

सुखोदयं स्वभर्तुश्च मेना दौहृदलक्षणम् । दधौ निदानं देवानामानन्दस्येप्सितं शुभम् ॥ ८ ॥

देहसादादसम्पूर्णभूषणा लोध्रसम्मुखा । स्वल्पमेन्दुक्षये कालं विचेष्यर्क्षा विभावरी ॥ ९ ॥

तदाननं मृत्सुरभि नार्यं तृप्तिं गिरीश्वरः । मुने रहस्युपाघ्राय प्रेमाधिक्यं बभूव तत् ॥१०॥

मेना स्पृहावती केषु न मे शंसति वस्तुषु । किञ्चिदिष्टं ह्रियापृच्छदनुवेलं सखीर्गिरिः ॥११॥

उपेत्य दोहदं शैल्यं यद्वव्रेऽपश्यदाशु तत् । आनीतं नेष्टमस्याद्धा नासाध्यं त्रिदिवेऽपि हि ॥१२॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! कुछ काल बीतने पर उन दोनों स्त्री-पुरुषों ने भक्तिपूर्वक भवानी एवं शङ्कर का स्मरण करते हुए प्रार्थना की कि, जगदम्बा देवकार्य के निमित्त हमारे यहाँ प्रगट हों ॥ १ ॥ इधर भगवती चण्डिका ने अपने पिता के यज्ञ में योग द्वारा शरीर त्याग करने के पश्चात् मेना में जन्म लेने का विचार किया ॥ २ ॥ प्रसन्न होने पर सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाली उस महेश्वरी ने अपना वचन सत्य करने हेतु पूर्णांश से हिमालय के चित्त में प्रवेश किया ॥ ३ ॥ उस समय महामनस्वी वह हिमालय प्रसन्नता से अपूर्व कान्ति सम्पन्न होकर अपने तेज से अग्नि के समान दुरधर्ष हो गया ॥ ४ ॥

तब गिरिराज ने शिवा भगवती के उस अंश को कल्याणकारी समय में अपनी प्रिया मेना में समाधि के द्वारा स्थापित किया ॥ ५ ॥ इस प्रकार चित्त में निवास करनेवाली करुणा-वरुणालया भगवती की कृपा से उस मेना ने हिमालय को सुख देनेवाला गर्भ धारण किया ॥ ६ ॥ सम्पूर्ण जगत् को आश्रय देनेवाली उस भगवती के गर्भ में आते ही तेजोमण्डल के मध्य में स्थित हुई वह मेना अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुई ॥ ७ ॥ मेना ने अपने पति को सुख देनेवाली, देवताओं के आनन्द का कारणभूत तथा उनका समस्त ईप्सित पूर्ण करने वाला गर्भ-लक्षण धारण किया ॥८॥ देह के दुर्बल हो जाने से वह अपने सम्पूर्ण आभूषणों को धारण करने में असमर्थ हो गयी। उसका मुखमण्डल लोध के समान स्वच्छ वर्ण हो गया। जिस प्रकार प्रभातकालीन चन्द्रमा के प्रकाश के क्षीण हो जाने से अल्प तारागणों वाली रात्रि की शोभा मन्द पड़ जाती है ॥ ९ ॥ हिमालय मिट्टी के समान सुगन्धित उसके मुखमण्डल को एकान्त में सूँघकर तृप्त नहीं होते थे। गर्भ धारण करने के कारण मेना में उनका प्रेमाधिक्य होने लगा ॥ १० ॥ वे हिमालय मेना की सखियों से प्रतिक्षण पूछते रहते थे कि मेना को किस वस्तु की इच्छा है, वह लज्जा से मुझसे कुछ नहीं बताती, एतदर्थ उसकी जिस वस्तु में इच्छा हो हमें बताओ ॥ ११ ॥ गर्भ-लक्षण के कष्ट को प्राप्त करने पर वह मेना जो चाहती उसे अपने सामने गिरिराज के द्वारा उपस्थित हुआ देखती, क्योंकि गिरिराज के लिए स्वर्ग की भी कोई वस्तु असाध्य नहीं थी ॥ १२ ॥

प्रचीयमानावयवा निस्तीर्य दोहदव्यथाम् । रेजे मेना बाललता नद्धपत्राधिका यथा ॥१३॥
गिरिः सगर्भां महीषीममंस्त धरणीमिव । निधानगर्भान्मभ्यन्तर्लीनवह्निं शमीमिव ॥१४॥
प्रियाप्रीतेश्च मनसः स्वार्जितद्रविणस्य च । समुन्नतेः श्रुतेः प्राज्ञः क्रियाश्चक्रे यथोचिताः ॥१५॥
ददर्श काले मेनां स प्रतीतः प्रसवोन्मुखीम् । अभ्रितां च दिवं गर्भगृहे भिषगधिष्ठिते ॥१६॥
दृष्ट्वा प्रियां शुभाङ्गीं वै मुमोदाऽतिगिरीश्वरः । गर्भस्थजगदम्बां हि महातेजोवतीं तदा ॥१७॥
तस्मिन्नवसरे देवा मुने ! विष्ण्वादयस्तथा । मुनयश्च समागम्य गर्भस्थां तुष्टुवुः शिवाम् ॥१८॥

देवा ऊचुः

दुर्गे जय जय प्राज्ञे जगदम्ब महेश्वरि ! । सत्यव्रते सत्यपरे त्रिसत्ये सत्यरूपिणि ! ॥१९॥
सत्यस्थे सत्यसुप्रीते सत्ययोने च सत्यतः । सत्यसत्ये सत्यनेत्रे प्रपन्नाः शरणं च ते ॥२०॥
शिवप्रिये महेशानि देवदुःखक्षयङ्करि ! । त्रैलोक्यमाता शर्वाणी व्यापिनी भक्तवत्सला ॥२१॥
आविर्भूय त्रिलोकेशि ! देवकार्यं कुरुष्व ह । सनाथाः कृपया ते हि वयं सर्वे महेश्वरि ! ॥२२॥
त्वत्तः सर्वे च सुखिनो लभन्ते सुखमुत्तमम् । त्वां विना न हि किञ्चिद् वै शोभते त्रिभवेष्वपि॥२३॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं कृत्वा महेशान्या गर्भस्थाया बहुस्तुतिम् । प्रसन्नमनसो देवाः स्वं स्वं धाम ययुस्तदा ॥२४॥
व्यतीते नवमे मासे दशमे मासि पूर्णतः । गर्भस्थाया गतिं दध्रे कालिका जगदम्बिका ॥२५॥
तदा सुसमयश्चासीच्छान्तभग्रहतारकः । नभः प्रसन्नतां यातं प्रकाशः सर्वदिक्षु हि ॥२६॥

सुपुष्ट अङ्गोंवाली वह मेना धीरे-धीरे गर्भजन्य व्यथा को पार कर पत्तों से युक्त बाललता के समान शोभित होने लगी ॥ १३ ॥ जिस प्रकार पृथ्वी के भीतर रत्न के खजाने अथवा शमीवृक्ष के भीतर अग्नि रहती है, हिमालय ने भी उसी प्रकार सगर्भा अपनी पत्नी को माना ॥ १४ ॥ महा बुद्धिमान् उन हिमालय ने अपनी प्रिया से प्रीति के योग्य एवं अपने उपार्जित द्रव्यों के अनुसार तथा अपनी राजसी ठाट-बाट एवं अपने शास्त्रज्ञान के अनुसार मेना का गर्भाधानादि संस्कार किया ॥ १५ ॥ उन्होंने प्रसवोन्मुखी अपनी प्रिया को प्रसवकाल के सन्निकट वैद्यों के द्वारा निर्दिष्ट गर्भ-गृह में मेघमण्डल से आच्छादित आकाश के समान देखा ॥ १६ ॥ गिरीश्वर शुभ लक्षणवाली अपनी प्रिया को, जिसके गर्भ में महा तेजस्विनी जगदम्बा थीं, देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ १७ ॥ तदनन्तर जगदम्बा के जन्मकाल का समय उपस्थित जानकर विष्णु आदि देवता तथा समस्त मुनिगण उनकी स्तुति करने लगे ॥ १८ ॥

देवगण बोले—हे दुर्गे ! हे प्राज्ञे ! हे जगदम्बे ! हे महेश्वरि ! आपकी जय हो, आपकी जय हो । हे सत्यव्रते ! हे सत्यपरे ! हे त्रिसत्ये, हे सत्यस्वरूपे ! हे सत्यस्थे ! हे सत्यसुप्रिये ! हे सत्ययोने ! हे सत्यसत्ये ! हे सत्यनेत्रे ! हम सभी तुम्हारी शरण में प्राप्त हुए हैं ॥१९-२०॥ हे शिवप्रिये ! हे महेश्वरि ! हे देवताओं के दुःख को क्षय करने वाली, हे त्रैलोक्यजननी, हे शर्वाणी, हे सर्वव्यापिनी, हे भक्तवत्सले ! तुम प्रगट होकर देवगणों का कार्य पूरा करो । हे महेश्वरि! हम सभी देवगण तुम्हारी कृपा प्राप्त कर सनाथ होंगे ॥२१-२२॥ इस जगत् के सभी सुखी मनुष्य तुम्हारे द्वारा ही उत्तम सुख प्राप्त करते हैं, तुम्हारे बिना तो इस त्रिलोकी में कुछ भी शोभा नहीं देता ॥ २३ ॥

ब्रह्माजी बोले—सभी देवगण इस प्रकार गर्भस्थित महेशानी की प्रसन्नता से स्तुति कर अपने-अपने स्थानों को चले गये ॥ २४ ॥ जब नौ महीना का काल पूर्ण हो गया तब दशम मास में जगदम्बा महाकाली ने गर्भ से बाहर प्रगट होने की इच्छा की ॥ २५ ॥ धीरे-धीरे भगवती के जन्मकाल का शोभन समय उपस्थित हुआ, उस समय नक्षत्र, तारे तथा सभी ग्रह शान्त हो गये । आकाश निर्मल हो गया और सभी

मही मङ्गलभूयिष्ठा सवनग्रामसागरा । सरः स्रवन्तीवापीषु पुफुल्लुः पङ्कजानि वै ॥२७॥
ववुश्च विविधा वाताः सुखस्पर्शा मुनीश्वर ! । मुमुदुः साधवः सर्वेऽसतां दुःखमभूद् द्रुतम् ॥२८॥
दुन्दुभीन् वादयामासुर्नभस्यागत्य निर्जराः । पुष्पवृष्टिरभूत्तत्र जगुर्गन्धर्वसत्तमाः ॥२९॥
विद्याधरस्त्रियो व्योम्नि ननृतुश्चाप्सरास्तथा । तदोत्सवो महानासीद् देवादीनां नभःस्थले ॥३०॥
तस्मिन्नवसरे देवी पूर्वशक्तिः शिवा सती । आविर्बभूव पुरतो मेनाया निजरूपतः ॥३१॥
वसन्ततौं मधौ मासे नवम्यां मृगधिष्ण्यके । अर्द्धरात्रे समुत्पन्ना गङ्गेव शशिमण्डलात् ॥३२॥
समये तत्स्वरूपेण मेनका जठराच्छिवा । समुद्भूय समुत्पन्ना सा लक्ष्मीरिव सागरात् ॥३३॥
ततस्तस्यां तु जातायां प्रसन्नोऽभूत्तदा भवः । अनुकूलो ववौ वायुर्गम्भीरो गन्धयुक्शुभः ॥३४॥
बभूव पुष्पवृष्टिश्च तोयवृष्टिपुरःसरम् । जज्वलुश्चाग्नयः शान्ता जगर्जुश्च तदा घनाः ॥३५॥
तस्यां तु जायमानायां सर्वस्वं समपद्यत । हिमवन्नगरे तत्र सर्वं दुःखं क्षयं गतम् ॥३६॥
तस्मिन्नवसरे तत्र विष्ण्वाद्याः सकलाः सुराः । आजग्मुः सुखिनः प्रीत्या दद्दृशुर्जगदम्बिकाम् ॥३७॥
तुष्टुवुस्तां शिवामम्बां कालिकां शिवकामिनीम् । दिव्यरूपां महामायां शिवलोकनिवासिनीम् ॥३८॥

देवा ऊचुः

जगदम्ब महादेवि ! सर्वसिद्धिविधायिनि ! । देवकार्यकरी त्वं हि सदाऽतस्त्वां नमामहे ॥३९॥
सर्वथा कुरु कल्याणं देवानां भक्तवत्सले । मेनामनोरथः पूर्णः कृतः कुरु हरस्य च ॥४०॥

दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं ॥ २६ ॥ वन, ग्राम तथा सागर के सहित पृथ्वी पर नाना प्रकार के मङ्गल दिखाई पड़ने लगे। तालाब, नदियों एवं बावलियों में नाना प्रकार के कमल खिल उठे ॥ २७ ॥ हे नारद ! उस समय सुख देनेवाला मनोहर वायु बहने लगा। साधुओं के मन में प्रसन्नता छा गयी तथा असज्जन-गण दुःखी हो गये ॥ २८ ॥ आकाश-मण्डल में देवताओं के द्वारा दुन्दुभि के शब्द होने लगे। चारों ओर से पुष्पवृष्टि होने लगी तथा गन्धर्वगण गान करने लगे ॥ २९ ॥ अप्सराएँ तथा विद्याधरों की स्त्रियाँ नाचने लगीं। इस प्रकार आकाश-मण्डल में देवताओं के द्वारा महान् उत्सव होने लगा ॥ ३० ॥ उसी समय आद्याशक्ति, सती शिवा देवी मेना के सामने अपने रूप से प्रगट हुईं ॥ ३१ ॥

वसन्त ऋतु के चैत्र मास में नवमी के दिन मृगशिरा नक्षत्र में आधी रात के समय चन्द्रमण्डल से आनेवाली गङ्गा के समान भगवती मेना के गर्भ से अपने स्वरूप में स्थित हो इस प्रकार प्रगट हुईं जैसे समुद्र से महालक्ष्मी का आविर्भाव हुआ था ॥ ३२-३३ ॥ उस समय भगवती के प्रगट होते ही शङ्कर जी बहुत प्रसन्न हुए, वायु मन्द-मन्द सुगन्ध और गम्भीर रूप से बहने लगा ॥ ३४ ॥ मन्द-मन्द वारिवृष्टि पूर्वक मनोहर पुष्पवृष्टि होने लगी। अग्निहोत्र की शान्त हुई अग्नि सहज ही प्रज्वलित हो उठी, बादल मन्द-मन्द गरजने लगे ॥ ३५ ॥ भगवती के प्रगट होते ही हिमालय के नगर में समस्त सम्पत्ति अपने आप आ गयी। तथा लोगों का सारा दुःख दूर हो गया ॥ ३६ ॥ तब विष्णु आदि समस्त देवगण सुखी हो प्रेम से जगदम्बा के दर्शन हेतु वहाँ उपस्थित हुए ॥ ३७ ॥ वे शिवलोक में निवास करने वाली शिवप्रिया, महाकाली, दिव्य रूपधारिणी जगदम्बा महामाया की स्तुति करने लगे ॥ ३८ ॥

देवताओं ने कहा—हे जगदम्बा ! हे महादेवि ! हे सर्वसिद्धिविधायिनि ! तुम हम सब देवताओं के कार्य को करने वाली हो, इसलिए हम सभी आपको प्रणाम करते हैं ॥३९॥ हे भक्तवत्सले ! तुम देवताओं का कल्याण करो, तुमने जिस प्रकार मेना का मनोरथ पूर्ण किया, उसी प्रकार अब शिव का भी मनोरथ पूर्ण करो ॥ ४० ॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं स्तुत्वा शिवां देवा विष्ण्वाद्याः सुप्रणम्य ताम् । स्वं स्वं धाम ययुः प्रीताः शंसन्तस्तद्गतिं पराम् ॥४१॥
तां तु दृष्ट्वा तथा जातां नीलोत्पलदलप्रभाम् । श्यामा सा मेनका देवीं मुदमापाति नारद ! ॥४२॥
दिव्यरूपं विलोक्यास्तु ज्ञानमाप गिरिप्रिया । विज्ञाय परमेशानीं तुष्टा वाऽतिप्रहर्षिता ॥४३॥

मेनोवाच

जगदम्ब महेशानि कृतातिकरुणा त्वया । आविर्भूता मम पुरो विलसन्ती यदम्बिके ॥४४॥
त्वमाद्या सर्वशक्तीनां त्रिलोकजननी शिवे । शिवप्रिया सदा देवि सर्वदेवस्तुता परा ॥४५॥
कृपां कुरु महेशानि मम ध्यानस्थिता भव । एतद्रूपेण प्रत्यक्षं रूपं धेहि सुतासमम् ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्या मेनाया भूधरस्त्रियाः । प्रत्युवाच शिवा देवी सुप्रसन्ना गिरिप्रियाम् ॥४७॥

देव्युवाच

हे मेने ! त्वं पुरा मां च सुसेवितवती रता । त्वद्भक्त्या सुप्रसन्नाऽहं वरं दातुं गतान्तिकम् ॥४८॥
वरं ब्रूहीति मद्वाणीं श्रुत्वा ते तद्वरो धृतः । सुता भव महादेवि ! सा मे देवहितं कुरु ॥४९॥
तथा दत्त्वा वरं तेऽहं गता स्वम्पदमादरात् । समयं प्राप्य तनयाऽभवन्ते गिरिकामिनि ॥५०॥
दिव्यरूपं धृतं मेऽद्य यत्ते मत्स्मरणं भवेत् । अन्यथा मर्त्यभावेन तवाज्ञानं भवेन्मयि ॥५१॥
युवां मां पुत्रिभावेन दिव्यभावेन वाऽसकृत् । चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ याताःस्थो मद्गतिम्पराम् ॥५२॥
देवकार्यं करिष्यामि लीलां कृत्वाऽद्भुतां क्षितौ । शम्भुपत्नी भविष्यामि तारयिष्यामि सज्जनान् ॥५३॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार से विष्णु आदि समस्त देवगण शिवा पार्वती की स्तुति कर, उन्हीं को अपना शरण्य समझते हुए प्रणाम कर अपने-अपने स्थानों को चले गये ॥ ४१ ॥ हे नारद ! नीलकमल के समान कान्तिमयी उस श्यामा भगवती को देखकर मेना परम प्रसन्न हो गयी ॥ ४२ ॥ भगवती के उस दिव्य रूप को देखते ही मेना को ज्ञान प्राप्त हो गया। वह उन्हें परमेशानी जानकर उनकी स्तुति करने लगी ॥ ४३ ॥

मेना बोली—हे जगदम्बे ! हे महेशानि ! तुमने बड़ी कृपा की, हे अम्बिके ! जो तुम मेरे आगे आविर्भूत होकर प्रत्यक्षरूप से दिखाई पड़ती हो ॥ ४४ ॥ हे शिवे ! तुम सभी शक्तियों की आद्या तथा त्रिलोकजननी हो, हे देवि ! तुम्हीं पराम्बिका, सर्वदेवस्तुता तथा शिवप्रिया हो ॥ ४५ ॥ हे महेशानि ! अब कृपाकर ध्यानगम्य होते हुए भी तुम इसी रूप से मेरी कन्या के रूप में प्रत्यक्ष आविर्भूत होकर दर्शन दो ॥ ४६ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार हिमाचल-प्रिया मेना के वचन सुनकर भगवती प्रसन्न हो गिरिप्रिया से बोलीं ॥ ४७ ॥

देवी बोलीं—हे मेने ! तुमने पूर्वकाल में मेरी बहुत सेवा की है, मैं तुम्हारी भक्ति से अत्यन्त प्रसन्न होकर वर देने के लिए तुम्हारे समीप गयीं ॥ ४८ ॥ और तुमसे कहा कि वर माँगो, तब तुमने कहा कि, हे महादेवि ! तुम मेरी कन्या के रूप में प्रगट होकर देवताओं का हित करो ॥ ४९ ॥ तब मैं आदर से वर देकर अपने स्थान को चली गयी। हे गिरिप्रिये ! अब समय आने पर मैं तुम्हारी कन्या के रूप में प्राप्त हुई हूँ ॥ ५० ॥ मैंने यह दिव्य रूप इसलिए धारण किया है कि तुम्हें पूर्वजन्म की बात स्मरण हो जावे। अन्यथा मनुष्य रूपधारण करने पर तुम मुझे न जान सकती ॥ ५१ ॥ अब तुम दोनों पुत्रीभाव से अथवा दिव्यभाव से स्नेहपूर्वक बारम्बार मेरा स्मरण करो, जिससे मेरी गति प्राप्त हो जाओ ॥ ५२ ॥ मैं तुमसे जन्म लेकर पृथ्वी में नाना प्रकार की अद्भुत लीला करती हुई देवकार्य करूँगी। और शिवपत्नी बनकर सज्जनों को संसार-सागर से पार करूँगी ॥ ५३ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वाऽऽसीच्छिवा तूष्णीमम्बिका स्वात्ममायया ।
पश्यन्त्यां मातरि प्रीत्या सद्योऽभूत्तनया तनुः ॥५४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
पार्वतीजन्मवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

(पार्वती के जन्म निमित्त हिमालय के महोत्सव एवं उसके बालक्रीडा का वर्णन)

ब्रह्मोवाच

ततो मेनापुरः सा वै सुता भूत्वा महाद्युतिः । चकार रोदनं तत्र लौकिकीं गतिमाश्रिता ॥ १ ॥
अरिष्टशय्यां परितः सद्भिसारिसुतेजसा । निशीथदीपा विहतत्विष आसन्वरं मुने ! ॥ २ ॥
श्रुत्वा तद्रोदनं रम्यं गृहस्थाः सर्वयोषितः । जहृषुः सम्भ्रमात्तत्रागता प्रीतिपुरःसराः ॥ ३ ॥
तच्छुद्धान्तचरः शीघ्रं शशंस भूभृते तदा । पार्वतीजन्म सुखदं देवकार्यकरं शुभम् ॥ ४ ॥
तच्छुद्धान्तचरायाशु पुत्रीजन्म सुशंसते । सितातपत्रं नादेयमासीत्तस्य महीभृतः ॥ ५ ॥
गतस्तत्र गिरिः प्रीत्या सपुरोहितसद्विजः । ददर्श तनयां तां तु शोभमानां सुभाससा ॥ ६ ॥
नीलोत्पलदलश्यामां सुद्युतिं सुमनोरमाम् । दृष्ट्वा च तादृशीं कन्यां मुमोदाति गिरीश्वरः ॥ ७ ॥
सर्वे च मुमुदुस्तत्र पौराश्च पुरुषाः स्त्रियः । तदोत्सवो महानासीन्नेदुर्वाद्यानि भूरिशः ॥ ८ ॥
बभूव मङ्गलं गानं ननृतुर्वारयोषितः । दानं ददौ द्विजातिभ्यो जातकर्म विधाय च ॥ ९ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! इतना कहने के अनन्तर शिवा ने मौन धारण कर लिया । फिर अपनी माया से माता के देखते-देखते तत्काल कन्या का रूप धारण कर बालिका बन गयीं ॥ ५४ ॥

इस प्रकार 'शिवरती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में पार्वतीजन्म-वर्णन नामक छठाँ अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! वे भगवती मेना के आगे ही अत्यन्त कान्तिमती मनोहर बालिका बनकर लौकिकी गति का आश्रय ले रुदन करने लगीं ॥१॥ उस समय उस कन्या का तेज प्रसूतीगृह के चारों ओर फैल गया, जिससे अर्धरात्रि का दीपक हतप्रभ हो गया ॥ २ ॥ उस कन्या के मनोहर रोदन के शब्द को सुनते ही घर में रहने वाली सारी स्त्रियाँ वहाँ चली आयीं । और उस कन्या को देखते ही परम प्रसन्न हो गयीं ॥ ३ ॥ जब रनिवास में रहने वाले प्रहरी ने राजा को यह समाचार सुनाया कि आपके घर में देवकार्य करनेवाली, परमकल्याणकारक तथा सुखदायक पार्वती का जन्म हुआ है ॥ ४ ॥ पुत्री का जन्म सुनते ही गिरिराज ने श्वेतच्छत्र के सिवाय और सब-कुछ ही न्योछावर कर देने का विचार किया ॥ ५ ॥ फिर तो पुरोहित एवं ब्राह्मणों के सहित गिरिराज वहाँ गये । और अपूर्वकान्ति से शोभित हुई उस कन्या को देखा ॥६॥ नीलोत्पलदल के समान श्यामवर्ण एवं सुन्दर कान्ति से मनोहर उस कन्या को देखते ही गिरिराज अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥ ७ ॥ इसी प्रकार नगरवासी समस्त स्त्रियों एवं पुरुषों के चित्त में भी महान् आनन्द होने लगा । नगर में अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे और बहुत बड़ा उत्सव होने लगा ॥ ८ ॥ मंगलगान होने लगा, वेश्याएँ नृत्य करने लगीं । गिरिराज ने कन्या का जातकर्म संस्कार कर द्विजातियों को

अथ द्वारं समागत्य चकार सुमहोत्सवम् । हिमाचलः प्रसन्नात्मा भिक्षुभ्यो द्रविणं ददौ ॥१०॥
अथो मुहूर्त्ते सुमते हिमवान् मुनिभिः सह । नामाऽकरोत् सुतायास्तु कालीत्यादि सुखप्रदम्॥११॥
दानं ददौ तदा प्रीत्या द्विजेभ्यो बहु सादरम् । उत्सवं कारयामास विविधं गानपूर्वकम् ॥१२॥
इत्थं कृत्वोत्सवं भूरि कालीं पश्यन्मुहुर्मुहुः । लेभे मुदं सपत्नीको बहुपुत्रोऽपि भूधरः ॥१३॥
तत्र सा ववृधे देवी गिरिराजगृहे शिवा । गङ्गेव वर्षासमये शरदीवाथ चन्द्रिका ॥१४॥
एवं सा कालिका देवी चार्वङ्गी चारुदर्शना । दध्रे चानुदिनं रम्यां चन्द्रबिम्बकलामिव ॥१५॥
कुलोचितेन नाम्ना तां पार्वतीत्याजुहाव ह । बन्धुप्रियां बन्धुजनः सौशील्यगुणसंयुताम् ॥१६॥
उमेति मात्रा तपसे निषिद्धा कालिका च सा । पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम भुवने मुने ! ॥१७॥
दृष्टिः पुत्रवतोऽप्यद्रेस्तस्मिंस्तृप्तिं जगाम न । अपत्ये पार्वतीत्याख्ये सर्वसौभाग्यसंयुते ॥१८॥
मधोरनन्तपुष्पस्य चूते हि भ्रमरावलिः । विशेषसङ्गा भवति सहकारे मुनीश्वर ! ॥१९॥
पूतो विभूषितश्चापि स बभूव तया गिरिः । संस्कारवत्यैव गिरा मनीषीव हिमालयः ॥२०॥
प्रभामहत्या शिखयेव दीपो भुवनस्य च । त्रिमार्गयेव सन्मार्गस्तद्वद् गिरिजया गिरिः ॥२१॥
कन्दुकैः कृत्रिमैः पुत्रैः सखीमध्यगता च सा । गङ्गासैकतवेदीभिर्बाल्ये रेमे मुहुर्मुहुः ॥२२॥
अथ देवी शिवा सा चोपदेशसमये मुने । पपाठ विद्याः सुप्रीत्या यतचित्ता च सद्गुरोः ॥२३॥

बहुत-सा धन प्रदान किया ॥ ९ ॥ फिर स्वयं दरवाजे पर आकर गिरिराज ने महान् उत्सव किया और भिक्षुकों को बहुत सा धन दिया ॥ १० ॥

तदनन्तर हिमालय ने मुनियों को लेकर शुभमुहूर्त में अपनी उस कन्या का काली आदि सुखदायक नामकरण किया। (आदि पद से काली, तारा, महाविद्या, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, विद्या, धूमावती, बगलामुखी, सिद्धविद्या, मातङ्गी एवं कमला भी समझना चाहिए) ॥ ११ ॥ हिमालय ने नामकरण के समय भी ब्राह्मणों को आदरपूर्वक बहुत सा धन प्रदान किया। और गान तथा नृत्यादि पूर्वक उत्सव कराया ॥ १२ ॥ इस प्रकार उत्सव कर बारम्बार क्षण-प्रतिक्षण काली को देखकर सपत्नीक वे गिरिराज बहुत पुत्रों के होने पर भी बड़े सुखी हुए ॥ १३ ॥ जैसे वर्षा ऋतु में गङ्गा तथा शरद् ऋतु में चाँदनी की शोभा अधिकाधिक होती है, उसी प्रकार गिरिराज के घर में परम सुन्दरी, चारुदर्शना वह कालिका देवी भी प्रतिदिन चन्द्रकला के समान शोभायुक्त हो बढ़ने लगीं ॥ १४-१५ ॥ बन्धुगण ने सौशील्य आदि गुणों से युक्त एवं बन्धुओं से प्रेम करनेवाली उस कन्या को कुलपरम्परा के अनुसार पार्वती इस नाम से पुकारना प्रारम्भ किया ॥ १६ ॥ बाद में जब उस काली को मेना ने तप करने से मना किया, तब उसका नाम उमा हुआ। तभी से वह सुमुखी भुवनत्रय में उमा नाम से विख्यात हुई ॥ १७ ॥ पुत्रवान् होते हुए भी पर्वतराज हिमालय सर्वसौभाग्ययुक्त उस पार्वती नामक अपने अपत्य को देखते हुए तृप्त नहीं होते थे ॥१८॥

हे मुनीश्वर ! जिस प्रकार वसन्तऋतु में अनेक प्रकार के पुष्पों में रस होने पर भी भृङ्गावली आम के बौर पर ही विशेष रूप से आसक्त होती है ॥ १९ ॥ वे पर्वतराज हिमालय उस पार्वती रूप अपत्य से इस प्रकार पवित्र तथा विभूषित हुए जिस प्रकार व्याकरणादि संस्कार से संस्कृत हुई वाणी के द्वारा पण्डितजनों की शोभा होती है ॥ २० ॥ अथवा जिस प्रकार महान् प्रभावाली शिखा से दीप की शोभा एवं त्रिमार्गगामिनी गङ्गा के द्वारा जिस प्रकार त्रैलोक्य की शोभा हुई, उसी प्रकार पार्वती के द्वारा पर्वतराज की शोभा हुई ॥ २१ ॥ वह पार्वती अपनी सखियों के साथ कन्दुक, कृत्रिम पुत्र तथा गंगा की बालुका से निर्मित वेदियों द्वारा क्रीडा करती थी ॥२२॥ तत्पश्चात् हे मुने ! पार्वती अपने गुरु के द्वारा पढ़ाई

प्राक्तना जन्मविद्यास्तां शरदीव प्रपेदिरे । हंसालिः स्वर्णदी नक्तमात्मभासो महौषधिम् ॥२४॥
इत्थं सुवर्णितालीला शिवायाः काचिदेव हि । अन्यलीलां प्रवक्ष्येऽहं शृणु त्वं प्रेमतो मुने ॥२५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
पार्वतीबाल्यलीलावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

(शिव के साथ विवाह निमित्त हिमालय-नारद संवाद)

ब्रह्मोवाच

एकदा तु शिवज्ञानी शिवलीलाविदां वरः । हिमाचलगृहं प्रीत्यागमस्त्वं शिवप्रेरितः ॥ १ ॥
दृष्ट्वा मुने गिरिशस्त्वां नत्वाऽऽनर्च स नारद ! । आहूय च स्वतनयां त्वदङ्घ्रयोस्तामपातयत् ॥ २ ॥
पुनर्नत्वा मुनीश ! त्वामुवाच हिमभूधरः । साञ्जलिः स्वविधिं मत्वा बहुसन्नतमस्तकः ॥ ३ ॥

हिमालय उवाच

हे मुने नारद ज्ञानिन् ब्रह्मपुत्रवर प्रभो ! । सर्वज्ञस्त्वं सकरुणः परोपकरणे रतः ॥ ४ ॥
मत्सुताजातकं ब्रूहि गुणदोषसमुद्भवम् । कस्य प्रिया भाग्यवती भविष्यति सुता मम ॥ ५ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तो मुनिवर्य त्वं गिरीशेन हिमाद्रिणा । विलोक्य कालिकाहस्तं सर्वाङ्गं च विशेषतः ॥ ६ ॥
अवोचस्त्वं गिरिं तात कौतुकी वाग्विशारदः । ज्ञानी विदितवृत्तान्तो नारदः प्रीतमानसः ॥ ७ ॥

नारद उवाच

एषा ते तनया मेने सुधांशोरिव वर्द्धिता । आद्या कला शैलराज सर्वलक्षणशालिनी ॥ ८ ॥
स्वपतेः सुखदाऽत्यन्तं पित्रोः कीर्तिविवर्द्धिनी । महासाध्वी च सर्वासु महानन्दकरी सदा ॥ ९ ॥

गयी विद्या को एकाग्र मन से तत्पर हो पढ़ने लगी ॥ २३ ॥ जिस प्रकार शरद्‌ऋतु में हंस, गङ्गा को तथा रात्रि में प्रकाश औषधियों को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार उस पार्वती को पूर्वजन्म की विद्या भी प्राप्त हो गयी ॥ २४ ॥ हे नारद ! इस प्रकार भगवती पार्वती की लीला मैंने तुमसे कही । अब तुम प्रसन्न हो उस भगवती की अन्य लीलाएँ सुनो ॥ २५ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्डमें
पार्वती-बाल्यलीला-वर्णन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—एक समय शिव की लीला को जानने वाले तथा शिव का महत्त्व समझने वाले तुम नारद शिव की प्रेरणा से प्रेमपूर्वक हिमालय के घर गये ॥ १ ॥ हे मुने ! गिरिराज ने तुम्हें देखते ही सादर सत्कार किया और अपनी तनया पार्वती को बुलाकर तुम्हारे चरणों में उसे गिराया ॥ २ ॥ हे मुनीश्वर ! फिर हिमालय ने तुम्हें प्रणाम कर हाथ जोड़ अपने भाग्य की सराहना की और सिर झुकाकर कहा– ॥ ३ ॥

हिमालय बोले—हे देवर्षे मुनि नारद ! हे महाज्ञानी, हे ब्रह्मपुत्र, हे प्रभो, तुम सर्वज्ञ हो, दयालु हो और परोपकार में सर्वदा निरत रहते हो, मेरी इस कन्या के ग्रहजनित गुण-दोष के अनुसार जातक-फल कहो । यह भाग्यशालिनी मेरी कन्या किसकी प्रिया बनेगी ? ॥ ४-५ ॥

ब्रह्माजी बोले—हिमालय ने जब इस प्रकार नारद से कहा, तब परम कौतुकी, बोलने में दक्ष तुम नारद ने कालिका का हाथ एवं विशेष रूप से उसके सर्वाङ्ग को देखकर सारी बातें जान ली फिर तुम प्रसन्न होकर हिमालय से बोले ॥ ६-७ ॥

नारद जी बोले—हे शैलराज ! यह आपकी कन्या चन्द्रमा की आद्यकला के समान निरन्तर बढ़ रही है । यह सभी प्रकार के सुन्दर लक्षणों से परिपूर्ण है ॥ ८ ॥ यह अपने पति को महान् सुख देनेवाली

सुलक्षणानि सर्वाणि त्वत्सुतायाः करे गिरे। एका विलक्षणा रेखा तत्फलं शृणु तत्त्वतः ॥१०॥
योगी नग्नोऽगुणोऽकामी मातृतातविवर्जितः। अमानोऽशिववेषश्च पतिरस्याः किलेदृशः ॥११॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्ते हि सत्यं मत्वा च दम्पती। मेना हिमाचलश्चापि दुःखितौ तौ बभूवतुः ॥१२॥
शिवाकर्ण्यवचस्ते हि तादृशं जगदम्बिका। लक्षणैस्तं शिवं मत्वा जहर्षाति मुने हृदि ॥१३॥
न मृषा नारदवचस्त्विति सञ्चिन्त्य सा शिवा। स्नेहं शिवपदद्वन्द्वे चकारातिहृदा तदा ॥१४॥
उवाच दुःखितः शैलस्त्वां तदा हृदि नारद!। कमुपायं मुने! कुर्यामतिदुःखमभूदिति ॥१५॥
तच्छ्रुत्वा त्वं मुने प्रात्थ महाकौतुककारकः। हिमाचलं शुभैर्वाक्यैर्हर्षयन् वाग्विशारदः ॥१६॥

नारद उवाच

स्नेहाच्छृणु गिरे वाक्यं मम सत्यं मृषा न हि। कररेखा ब्रह्मलिपिर्न मृषा भवति ध्रुवम् ॥१७॥
तादृशोऽस्याः पतिः शैल भविष्यति न संशयः। तत्रोपायं शृणु प्रीत्या यं कृत्वा लप्स्यसे सुखम् ॥१८॥
तादृशोऽस्ति वरः शम्भुर्लीलारूपधरः प्रभुः। कुलक्षणानि सर्वाणि तत्र तुल्यानि सद्गुणैः ॥१९॥
प्रभौ दोषो न दुःखाय दुःखदोऽत्यप्रभौ हि सः। रवि-पावक-गङ्गानां तत्र ज्ञेया निदर्शना ॥२०॥
तस्माच्छिवाय कन्यां स्वां शिवां देहि विवेकतः। शिवः सर्वेश्वरः सेव्योऽविकारी प्रभुरव्ययः ॥२१॥
शीघ्रप्रसादः स शिवस्तां ग्रहीष्यत्यसंशयम्। तपःसाध्यो विशेषेण यदि कुर्याच्छिवा तपः ॥२२॥

तथा माता-पिता की कीर्ति को बढ़ाने वाली होगी। यह सभी नारियों में सर्वश्रेष्ठ पतिव्रता और सबको आनन्द प्रदान करने वाली होगी ॥ ९ ॥ हे पर्वतराज ! तुम्हारी कन्या के हाथ में सभी प्रकार के सुन्दर लक्षण विद्यमान हैं। किन्तु एक रेखा इसके हाथ में विचित्र रूप से पड़ी हुई है, अब उस रेखा का वास्तविक फल सुनो ॥ १० ॥ इसको जो पति प्राप्त होगा वह योगी, नग्न (माया के आवरण से रहित), गुणहीन, अकामी, माता तथा पिता से रहित, अमानी तथा अमङ्गल वेष वाला होगा ॥ ११ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! इस प्रकार तुम्हारे वचन को सुनकर दोनों स्त्री-पुरुष उसे सत्य मानकर बड़े दुःखी हुए ॥ १२ ॥ किन्तु जगदम्बा शिवा इस प्रकार के वचन को सुनकर और सभी लक्षण शिव में विचार कर बड़ी हृदय में प्रसन्न हुई ॥ १३ ॥ उस पार्वती ने मन में विचार किया कि नारद का वचन कभी असत्य नहीं हो सकता। इसलिए उन्होंने शिवजी के दोनों चरण-कमलों में बड़े प्रेम से अपना मन लगाया ॥ १४ ॥ तदनन्तर हे नारद ! पर्वतराज बड़े दुःखी होकर तुम से कहने लगे कि हे मुने ! इस बात से मुझे बड़ा दुःख हो रहा है, अतः आप ही बताइए कि मैं इसका कौन सा उपाय करूँ ॥ १५ ॥ हे मुने ! तब महाकौतुकी तुम हिमालय को अपने शुभ वचनों से प्रसन्न करते हुए बोले ॥ १६ ॥

नारद बोले—हे पर्वतराज ! तुम स्नेह से मेरी बात सुनो। मेरी बात कभी झूठी नहीं होती, क्योंकि कररेखा ब्रह्मलिपी मानी गयी है, वह कदापि झूठी होने वाली नहीं है ॥ १७ ॥ हे शैलराज ! मैंने जैसा कहा है इसको उसी प्रकार का पति प्राप्त होगा, इसमें संशय मत करो। इसके लिए मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूँ तुम प्रेम से सुनो, जिसके करने से तुम्हें सुख मिलेगा ॥ १८ ॥ मैंने जितने लक्षण कहा है, वे सभी लक्षण लीलारूपधारी भगवान् शङ्कर में पाये जाते हैं, और जो कुलक्षण हैं वे भी शिव को प्राप्तकर सुलक्षण हो जाते हैं ॥ १९ ॥ समर्थ पुरुषों में रहने वाले दोष दोष नहीं कहे जाते किन्तु असमर्थों में रहने वाले दोष दोष कहे जाते हैं। इसके उदाहरण सूर्य, अग्नि तथा गङ्गा हैं ॥ २० ॥ शिव ही सर्वेश्वर, सबके सेव्य, अविकारी तथा सर्वसमर्थ हैं इसलिए तुम अपनी कन्या शिवजी को प्रदान करो ॥ २१ ॥ शिवजी आशुतोष हैं, वे अवश्य ही तुम्हारी कन्या ग्रहण करेंगे। किन्तु ऐसा भी तभी हो सकता है जब तुम्हारी कन्या

सर्वथा सुसमर्थो हि स शिवः सकलेश्वरः। कुलिशैरपि विध्वंसी ब्रह्मधीनस्त्वकप्रदः ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा त्वं पुनस्तात कौतुकी ब्रह्मविन्मुने। शैलराजमवोचो हि हर्षयन् वचनैः शुभैः ॥२४॥

भाविनी दयिता शम्भोः सानुकूला सदा हरे। महासाध्वी सुव्रता च पित्रोः सुखविवर्द्धिनी ॥२५॥

शम्भोश्चित्तं वशे चैषा करिष्यति तपस्विनी। स चाप्येनामृते योषां न ह्यन्यामुद्वहिष्यति ॥२६॥

एतयोः सदृशं प्रेम न कस्याप्येव तादृशम्। भूतं वा भविता वाऽपि नाऽधुना च प्रवर्तते ॥२७॥

अनयोः सुरकार्याणि कर्तव्यानि मृतानि च। यानि यानि नगश्रेष्ठ! जीवितानि पुनः पुनः ॥२८॥

अनया कन्यया तेऽद्रे अर्धनारीश्वरो हरः। भविष्यति तथा हर्षदिनयोर्मिलितं पुनः ॥२९॥

शरीरार्द्धं हरस्यैषा हरिष्यति सुता तव। तपःप्रभावात् सन्तोष्य महेशं सकलेश्वरम् ॥३०॥

स्वर्णगौरी सुवर्णाभा तपसा तोष्य तं हरम्। विद्युद्गौरतमा चेयं तव पुत्री भविष्यति ॥३१॥

गौरीति नाम्ना कन्या तु ख्यातिमेषा गमिष्यति। सर्वदेवगणैः पूज्या हरिब्रह्मादिभिस्तथा ॥३२॥

नाऽन्यस्मै स्वमिमां दातुमिहार्हसि नगोत्तम!। इदं चोपांशु देवानां न प्रकाश्यं कदाचन ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा देवर्षे तव नारद!। उवाच हिमवान् वाक्यं मुने त्वां वाग्विशारदः ॥३४॥

तप करे। तप से सब-कुछ साध्य है, कोई भी वस्तु असाध्य नहीं ॥ २२ ॥ सर्वेश्वर होने के कारण शिवजी सर्वदा सब-कुछ करने में समर्थ हैं। वे ब्रह्मा की लिखी दुर्लिपी को भी नष्ट कर सकते हैं, क्योंकि ब्रह्मा भी उन्हीं के आधीन हैं, वे प्रसन्न होने पर अपने को भी दे सकते हैं फिर और की तो बात ही क्या है? ॥२३॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात! ब्रह्मविद्या के साक्षात्कर्त्ता परम कौतुकी तुम अपने कल्याणकारी वचनों से गिरीश्वर को सन्तुष्ट करते हुए पुनः बोले–॥ २४ ॥ हे गिरिराज! यह तुम्हारी कन्या भविष्य में शिव की प्राणप्रिया और शिव के सानुकूल रहने वाली है। यह महापतिव्रता तथा महासाध्वी है और माता तथा पिता के सुख को बढ़ाने वाली है ॥ २५ ॥ यह तपस्विनी शिवजी को सर्वदा अपने वश में रखेगी तथा शिवजी भी इसको छोड़कर अन्य स्त्री से विवाह न करेंगे ॥ २६ ॥ इन शिवा-शिव में जैसा प्रेम होगा वैसा प्रेम और किसी दम्पती में नहीं होगा। इन दम्पतियों–जैसा प्रेम आज तक न तो किसी में हुआ है, न होने वाला है और न इस समय किसी में है ॥२७॥ इन दोनों के द्वारा देवताओं के बड़े-बड़े कार्य सम्पन्न होंगे। हे पर्वतराज! जो देवकार्य नष्ट हो चुके हैं, उन्हें भी ये लोग जीवन दान करेंगे ॥ २८ ॥

हे पर्वतराज! इस कन्या से ही रुद्र अर्धनारीश्वर कहे जायेंगे। ये दोनों रात एवं दिन के समान एक-दूसरे से मिले रहेंगे ॥ २९ ॥ यह तुम्हारी कल्याणकारी पुत्री अपने तपस्या के प्रभाव से शंकर को सन्तुष्ट कर उनके आधे शरीर का हरण करेगी ॥ ३० ॥ यह तुम्हारी कन्या अपनी तपस्या से शिव को सन्तुष्ट कर विद्युत् तथा सुवर्ण के समान गौरवर्ण की होने से आगे चलकर गौरी कही जायेगी ॥ ३१ ॥ जब यह तुम्हारी कन्या गौरी नाम से विख्यात होगी तब ब्रह्मा, विष्णु एवं समस्त देवगण इस कन्या का पूजन करेंगे ॥३२॥ हे नगोत्तम! तुम इस कन्या को किसी दूसरे के लिए कदापि मत देना। और मेरे द्वारा कहे गये इस रहस्य को किसी देवता के सामने प्रकाशित भी नहीं करना ॥ ३३ ॥

ब्रह्मा बोले—हे नारद! इस प्रकार तुम्हारी बात सुनकर वाक्य-विशारद हिमालय पुनः तुम से कहने लगे ॥ ३४ ॥

हिमालय उवाच

हे मुने नारद प्राज्ञ ! विज्ञप्तिं काञ्चिदेव हि । करोमि तां शृणु प्रीत्याऽतस्त्वं प्रमुदमावह ॥३५॥
श्रूयते त्यक्तसङ्गः स महादेवो यतात्मवान् । तपश्चरति सन्नित्यं देवानामप्यगोचरः ॥३६॥
स कथं ध्यानमार्गस्थः परब्रह्मार्पितं मनः । भ्रंशयिष्यति देवर्षे ! तत्र मे संशयो महान् ॥३७॥
अक्षरं परमं ब्रह्म प्रदीपकलिकोपमम् । सदाशिवाख्यं स्वं रूपं निर्विकारमजापरम् ॥३८॥
निर्गुणं सगुणं तच्च निर्विशेषं निरीहकम् । अतः पश्यति सर्वत्र न तु बाह्यं निरीक्षते ॥३९॥
इति स श्रूयते नित्यं किन्नराणां मुखान्मुने । इहागतानां सुप्रीत्या किं तन्मिथ्यावचो ध्रुवम् ॥४०॥
विशेषतः श्रूयते स साक्षान्नाम्ना तथा हरः । समयं कृतवान् पूर्वं तन्मया गदितं शृणु ॥४१॥
न त्वामृतेऽन्यां वरये दाक्षायणि प्रिये सति ! । भार्यार्थं न ग्रहीष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥४२॥
इति सत्या समं तेन पुरैव समयः कृतः । तस्यां मृतायां स कथं स्वयमन्यां ग्रहीष्यति ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा स गिरिस्तूष्णीमास तस्य पुरस्तव । तदाकर्ण्याथ देवर्षे ! त्वं प्रावोचः सुतत्त्वतः ॥४४॥

नारद उवाच

न वै कार्या त्वया चिन्ता गिरिराज महामते ! । एषा तव सुता काली दक्षजा ह्यभवत् पुरा ॥४५॥
सतीनामाभवत्तस्याः सर्वमङ्गलदं सदा । सती सा वै दक्षकन्या भूत्वा रुद्रप्रियाऽभवत् ॥४६॥

हिमालय ने कहा—हे मुने ! हे नारदजी, हे पण्डितप्रवर, मेरी एक विज्ञप्ति है जिसे प्रेमपूर्वक तुमसे कहता हूँ, तुम सुनो ॥ ३५ ॥ ऐसा सुना जाता है कि महादेव असङ्ग होकर अपनी इन्द्रियों को वश में कर के देवताओं से भी अलक्षित किसी स्थान में नित्य तपस्या में निरत हैं ॥ ३६ ॥ वे ध्यानमार्ग में निरत योगीश्वर, जिनका मन ब्रह्म में लीन है, भला अपना मन वहाँ से हटा कर किस प्रकार संसारी कार्य करेंगे, यह तो मुझे महान् संशय है ॥ ३७ ॥ वे वातरहित दीप की शिखा के समान अपने भीतर हो सदाशि नामक ज्योति को, जो अक्षर परब्रह्म, मायारहित, ॥ ३८ ॥ निर्गुण-सगुण, निर्विशेष निरीह है उसका दर्शन करते हैं, वाह्य विषयों की ओर तो वे कदापि देखते भी नहीं ॥ ३९ ॥ हे महामुने ! हम यहाँ पर नित्य आने वाले किन्नरों के मुख से शंकर के विषय में प्रीति से कही जाने वाली यह कथा सुनते हैं कि वह मिथ्या किस प्रकार हो सकती है ॥ ४० ॥ उनके विषय में हम सुनते हैं कि वे साक्षात् तथा नाम से भी हर कहे जाते हैं। उन्होंने जो पहले प्रतिज्ञा की है उसे तुम सुनो ॥ ४१ ॥ शिव ने प्रतिज्ञा की है कि हे दक्षकन्ये सति ! मैं तुम्हें छोड़कर किसी अन्य को स्त्री रूप में वरण नहीं करूँगा। भार्या के लिए मैं तुम्हारा ही वरण करूँगा, यह मेरा वचन सत्य है ॥ ४२ ॥ जब सती के साथ विवाह की प्रतिज्ञा उन्होंने प्रथम की है, तो उसके मरने पर वह अन्य स्त्री का किस प्रकार पाणिग्रहण करेंगे ॥ ४३ ॥

ब्रह्मा ने कहा—नारद से इतना कहने के अनन्तर गिरिराज ने मौन धारण कर लिया। तब हे नारद ! तुम उनसे इस प्रकार कहने लगे ॥ ४४ ॥

नारदजी बोले—हे महाबुद्धिमान् गिरिराज ! तुम्हें इस बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। यह तुम्हारी कन्या जिसका नाम काली है, यही पूर्वकाल में दक्ष कन्या थी ॥ ४५ ॥ उसी दक्षकन्या का सर्वमङ्गलदायक सती ऐसा नाम था। यही सती दक्षकन्या के रूप में प्रगट होकर रुद्रप्रिया थी ॥ ४६ ॥ उसने

पितुर्यज्ञे तथा प्राप्यानादरं शङ्करस्य च । तं दृष्ट्वा कोपमाधायात्याक्षीद्देहं च सा सती ॥४७॥
पुनः सैव समुत्पन्ना तव गेहेऽम्बिका शिवा । पार्वती हरपत्नीयं भविष्यति न संशयः ॥४८॥
एतत्सर्वं विस्तरात्त्वं प्रोक्तवान् भूभृते मुने । पूर्वरूपं चरित्रं च पार्वत्याः प्रीतिवर्धनम् ॥४९॥
तं सर्वं पूर्ववृत्तान्तं काल्या मुनिमुखाद् गिरिः । श्रुत्वा सपुत्रदारः स तदा निःसंशयोऽभवत् ॥५०॥
ततः काली कथां श्रुत्वा नारदस्य मुखात्तदा । लज्जयाऽधोमुखी भूत्वा स्मितविस्तारितानना ॥५१॥
करेण तां तु संस्पृश्य श्रुत्वा तच्चरितं गिरिः । मूर्ध्नि शश्वत्तथाऽऽघ्राय स्वासनान्ते न्यवेशयत् ॥५२॥
ततस्त्वं तां पुनर्दृष्ट्वाऽवोचस्तत्र स्थितां मुने । हर्षयन् गिरिराजं च मेनकां तनयैः सह ॥५३॥
सिंहासनं तु किन्त्वस्याः शैलराज भवेदतः । शम्भोरूरौ सदैतस्या आसनं तु भविष्यति ॥५४॥
हरेरूर्वासनं प्राप्य तनया तत्र सन्ततम् । न यत्र कस्यचिद् दृष्टिर्मानसं वा गमिष्यति ॥५५॥

ब्रह्मोवाच

इति वचनमुदारं नारद ! त्वं गिरीशं त्रिदिवमगम उक्त्वा तत्क्षणादेव प्रीत्या ।
गिरिपतिरपि चित्ते चारुसम्मोदयुक्तः स्वगृहमगमदेवं सर्वसम्पत्समृद्धम् ॥५६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
नारदहिमालयसम्वादवर्णनं नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अपने पिता के यज्ञ में जब अपने पति शिव का अनादर देखा तो क्रोध से अपना शरीर त्याग दिया ॥ ४७ ॥ वही तुम्हारे घर में अम्बिका शिवा एवं सती अब पार्वती के रूप में प्रगट हुई है। यह पार्वती ही रुद्र की पत्नी होगी इसमें सन्देह मत करो ॥ ४८ ॥ ब्रह्मा ने कहा—हे मुने ! पार्वती का पूर्व जन्म तथा उसका चरित्र उस समय तुमने गिरिराज से इस प्रकार कहा था, जिसको सुनकर पार्वती भी प्रसन्न हुई थीं ॥ ४९ ॥ तुम्हारे मुख से काली के सम्पूर्ण वृत्तान्त को सुनकर गिरिराज पुत्र-स्त्री सहित सन्देह से रहित हो गये ॥ ५० ॥ काली ने भी नारदजी के मुख से अपनी सारी कथा सुनकर हँसती हुई लज्जा से मुख नीचा कर लिया ॥५१॥ गिरिराज उसका सारा वृत्तान्त सुनकर अपने हाथ से उसका सिर सूँघ अपने आसन के सन्निकट उसे बैठाया ॥ ५२ ॥ तब हे महर्षे नारद ! तुम वहाँ भगवती को बैठी देखकर पुत्रों सहित गिरिराज एवं मेना को प्रसन्न करते हुए बोले-॥ ५३ ॥ हे शैलराज ! इस पार्वती के बैठने के लिए यह सिंहासन क्या है ? इसके बैठने के लिए तो शिव की जङ्घा ही सर्वोत्तम आसन है ॥ ५४ ॥ यह तुम्हारी तनया शिव के जङ्घे का आसन प्राप्त करेगी, जहाँ किसी की दृष्टि अथवा बहुत क्या कहें मन का जाना भी सम्भव नहीं है ॥ ५५ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! इस प्रकार तुम उदार युक्त वचन कहकर गिरिराज से विदा हो स्वर्ग चले गये। और वे गिरिराज भी अपने चित्त में प्रसन्न होकर सम्पूर्ण समृद्धियों से युक्त अपने घर में चले गये ॥५६॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में
नारद-हिमालय-संवाद वर्णन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥

*

नवमोऽध्यायः

(पार्वती द्वारा शिवाराधन तथा स्वप्न में उन्हें शिव-दर्शन)

नारद उवाच

विधे तात त्वया शैववर प्राज्ञाऽद्भुता कथा । वर्णिता करुणां कृत्वा प्रीतिर्मे वर्द्धिताधिकम् ॥ १ ॥
विधे गते स्वकं धाम मयि वै दिव्यदर्शने । ततः किमभवत्तात कृपया तद्वदाऽधुना ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

गते त्वयि मुने स्वर्गे कियत्काले गते सति । मेना प्राप्यैकदा शैलनिकटं प्रणनाम सा ॥ ३ ॥
स्थित्वा सविनयं प्राह स्वनाथं गिरिकामिनी । तत्र शैलाधिनाथं सा प्राणप्रियसुता सती ॥ ४ ॥

मेनोवाच

मुनिवाक्यं न बुद्धं मे सम्यङ् नारीस्वभावतः । विवाहं कुरु कन्यायाः सुन्दरेण वरेण ह ॥ ५ ॥
सर्वथा हि भवेत्तत्रोद्वाहोऽपूर्वसुखावहः । वरश्च गिरिजायास्तु सुलक्षणकुलोद्भवः ॥ ६ ॥
प्राणप्रिया सुता मे हि सुखिता स्याद्यथा प्रिय ! । सद्वरं प्राप्य सुप्रीता तथा कुरु नमोऽस्तु ते ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वाऽश्रुमुखी मेना पत्यङ्घ्र्योः पतिता तदा । तामुत्थाप्य गिरिः प्राह यथावत् प्राज्ञसत्तमः ॥ ८ ॥

हिमालय उवाच

शृणु त्वं मेनके देवि ! यथार्थं वच्मि तत्त्वतः । भ्रमं त्यज मुनेर्वाक्यं वितथं न कदाचन ॥ ९ ॥
यदि स्नेहः सुतायास्ते सुतां शिक्षय सादरम् । तपः कुर्याच्छङ्करस्य सा भक्त्या स्थिरचेतसा ॥१०॥
चेत् प्रसन्नः शिवः काल्याः पाणिं गृह्णाति मेनके ! । सर्वं भूयाच्छुभं नश्येन्नारदोक्तममङ्गलम् ॥११॥

नारदजी बोले—हे तात ! हे महाशिवभक्त ! हे विधे ! आपने भगवान् शिव की यह महान् अद्भुत कथा सुनायी, आपने कृपापूर्वक जो कथा हमें सुनाई है, उससे मेरे मन में बहुत प्रीति बढ़ी है ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! जब दिव्य दर्शन मैं अपने स्थान को चला गया तो हे तात ! फिर क्या हुआ ? यह सब कृपा करके मुझ से कहिए ॥ २ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने ! तुम्हारे स्वर्ग चले जाने पर जब कुछ काल बीत गया तब कन्या को प्राण के समान समझने वाली वह मेना गिरिराज के निकट जा उन्हें प्रणाम कर विनय के साथ बोली ॥३-४॥

मेना बोली—हे स्वामिन् ! नारी स्वभाव होने के कारण मैं देवर्षि नारद के वचन को भली प्रकार न समझ सकी । मेरा विचार है कि, आप इस कन्या का विवाह किसी अच्छे वर के साथ कीजिए ॥ ५ ॥ हे स्वामी ! यदि गिरिजा के योग्य सर्वलक्षण-सम्पन्न कुलीन वर मिल जाय तो यह विवाह अपूर्व सुखकारी होगा ॥ ६ ॥ हे प्रियतम ! जिस प्रकार प्राणप्रिया मेरी यह कन्या उत्तम वर को प्राप्त कर सुखी हो जावे वैसा उपाय कीजिए । आपको नमस्कार है ॥ ७ ॥

ब्रह्माजी बोले—इतना कहकर वह मेना रोती हुई अपने पति के चरणों में गिर पड़ी । तब महा बुद्धिमान् गिरिराज उसे उठाकर यथोचित वचन कहने लगे ॥ ८ ॥

हिमालय बोले—हे मेना देवि ! मैं यथार्थ बात कहता हूँ तुम उसे ध्यान से सुनो । और अपना भ्रम छोड़ दो । देवर्षि नारद का वचन कभी झूठा होने वाला नहीं है ॥ ९ ॥ यदि तुम्हें पुत्री के ऊपर अनुराग है तो तुम कन्या को जाकर उपदेश करो कि वह भक्तिपूर्वक स्थिरचित्त से शिवाराधन करे ॥ १० ॥ हे प्रिये मेनके ! यदि काली की आराधना से प्रसन्न हो सदाशिव उसका पाणिग्रहण करें तो कन्या का सब प्रकार से मङ्गल होगा । उस समय नारद का कहा हुआ सारा अमङ्गल भी मङ्गल हो जायेगा ॥ ११ ॥

अमङ्गलानि सर्वाणि मङ्गलानि सदाशिवे ! । तस्मात् सुतां शिवप्राप्त्यै तपसे शिक्षय द्रुतम् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य गिरेर्वाक्यं मेना प्रीततराऽभवत् । सुतोपकण्ठमगमदुपदेष्टुं तपोरुचिम् ॥१३॥
सुताङ्गं सुकुमारं हि दृष्ट्वाऽतीवाथ मेनका । विव्यथे नेत्रयुग्मे चाऽश्रुपूर्णेऽभवतां द्रुतम् ॥१४॥
सुतां समुपदेष्टुं तन्न शशाक गिरिप्रिया । बुबुधे पार्वती तद्-वै जननीङ्गितमाशु सा ॥१५॥
अथ सा कालिका देवी सर्वज्ञा परमेश्वरी । उवाच जननीं सद्यः समाश्वास्य पुनः पुनः ॥१६॥

पार्वत्युवाच

मातः ! शृणु महाप्राज्ञेऽद्यतनेऽन्नमुहूर्तके । रात्रौ दृष्टो मया स्वप्नस्तं वदामि कृपां कुरु ॥१७॥
विप्रश्चैव तपस्वी मां सदयः प्रीतिपूर्वकम् । उपादिदेश सुतपः कर्तुं मातः ! शिवस्य वै ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा मेनका शीघ्रं पतिमाहूय तत्र च । तत्स्वप्नं कथयामास सुतादृष्टमशेषतः ॥१९॥
सुतास्वप्नमथाकर्ण्य मेनकातो गिरीश्वरः । उवाच परमप्रीतः प्रियां सम्बोधयन् गिरा ॥२०॥

गिरीश्वर उवाच

हे प्रियेऽपररात्रान्ते स्वप्नो दृष्टो मयाऽपि हि । तं शृणु त्वं महाप्रीत्या वच्म्यहं तं समादरात् ॥२१॥
एकस्तपस्वी परमो नारदोक्तवराङ्गधृक् । पुरोपकण्ठं सुप्रीत्या तपः कर्तुं समागतः ॥२२॥
गृहीत्वा स्वसुतां तत्रागमं प्रीततरोऽप्यहम् । मया ज्ञातः स वै शम्भुर्नारदोक्तवरः प्रभुः ॥२३॥
सेवार्थं तस्य तनयामुपदिश्य तपस्विनः । तं वै प्रार्थितवांस्तस्यां न तदाङ्गीचकार सः ॥२४॥
अभूद् विवादः सुमहान् साङ्ख्यवेदान्तसम्मतः । ततस्तदाज्ञया तत्र संस्थिताऽऽसीत् सुता मम ॥२५॥

क्योंकि सम्पूर्ण अमङ्गल सदाशिव को प्राप्त कर मङ्गल स्वरूप हो जाते हैं। इसलिए तुम शिव को वर प्राप्त करने के लिए अपनी इस कन्या को तप करने का उपदेश करो ॥ १२ ॥

ब्रह्माजी बोले—पर्वतराज के वचन सुनकर मेना बहुत प्रसन्न हुई। फिर वह तपस्या के उपदेश के निमित्त अपनी कन्या के समीप गयी ॥ १३ ॥ किन्तु मेना कन्या का अत्यन्त सुकुमार शरीर देखकर बहुत दुःखी हो गयी। उनके दोनों नेत्रों में तत्क्षण जल भर आये ॥ १४ ॥ इसलिए वह उस कन्या को तपस्या के लिए उपदेश देने में असमर्थ हो गयी। इधर पार्वती भी अपनी माता की सारी चेष्टाएँ जान गयी ॥१५॥ तदनन्तर सर्वज्ञा परमेश्वरी वह कालिका देवी तत्क्षण माता को समझाती हुई बोली ॥ १६ ॥

पार्वती बोली—हे महाबुद्धिमती मातः ! मैंने आज रात्रि के ब्राह्म मुहूर्त में एक स्वप्न देखा है, उस स्वप्न को मैं तुमसे कहती हूँ। तुम कृपापूर्वक सुनो ॥ १७ ॥ हे मातः ! एक तपस्वी ब्राह्मण दया करके मुझे आज स्वप्न में शिव की तपस्या करने का उपदेश दिया है ॥ १८ ॥

ब्रह्माजी बोले—यह सुनते ही मेना ने बड़ी शीघ्रता से पति हिमालय को बुलाकर कन्या के द्वारा देखा हुआ सारा स्वप्न उन्हें सुनाया ॥ १९ ॥ गिरिराज मेना के मुख से पार्वती के द्वारा देखे गये स्वप्न को सुनकर अत्यन्त हर्षित हो उठे। फिर अपनी प्रिया से बोले ॥ २० ॥

गिरीश्वर बोले—हे प्रिये ! मैंने भी रात्रि बीत जाने पर प्रातःकाल एक स्वप्न देखा है, उसको तुम सुनो, मैं आदरपूर्वक तुमसे कहता हूँ ॥२१॥ नारद ने जैसा कहा था उसी प्रकार का रूप धारण कर एक परम तपस्वी ब्राह्मण तपस्या करने के लिए मेरे नगर के सन्निकट आया है ॥ २२ ॥ मैं भी अत्यंन्त प्रसन्न होकर उसे देखने के लिए इस कन्या को लेकर उसके समीप गया। और समझ लिया कि नारद जी ने जैसा कहा था उसके अनुसार यह शिवजी ही हैं ॥ २३ ॥ मैंने उनकी सेवा के लिए जब कन्या को समर्पण करना चाहा तो उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया ॥ २४ ॥ उस समय सांख्य तथा वेदान्तसम्मत अनेक विवाद उपस्थित हो गये। उनकी आज्ञा से यह मेरी कन्या उनकी सेवा के लिए वहीं रह गयी ॥ २५ ॥ और

निधाय हृदि तं कामं सिषेवे भक्तितश्च सा। इति दृष्टं मया स्वप्नं प्रोक्तवांस्ते वरानने ! ॥२६॥
ततो मेने कियत्कालं परीक्ष्यं तत्फलं प्रिये ! । योग्यमस्तीदमेवेह बुध्यस्व त्वं मम ध्रुवम् ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा गिरिराजश्च मेनका वै मुनीश्वर ! । सन्तस्थतुः परीक्षन्तौ तत्फलं शुद्धचेतसौ ॥२८॥
इत्थं व्यतीतेऽल्पदिने परमेशः सतां गतिः । सतीविरहसुव्यग्रो भ्रमन् सर्वत्र सुतिकृत् ॥२९॥
तत्राजगाम सुप्रीत्या कियद्गणयुतः प्रभुः । तपः कर्तुं सतीप्रेम-विरहाकुल-मानसः ॥३०॥
तपश्चकार स्वं तत्र पार्वती सेवने रता । सखीभ्यां सहिता नित्यं प्रसन्नार्थमभूत्तदा ॥३१॥
विद्धोऽपि मार्गणैः शम्भुर्विकृतिं नाप स प्रभुः । प्रेषितेन सुरैः स्वात्ममोहनार्थं स्मरेण वै ॥३२॥
दग्ध्वा स्मरं च तत्रैव स्वत्रह्निनयनेन सः । स्मृत्वा मम वचः क्रुद्धो मद्यमन्तर्दधे ततः ॥३३॥
ततः कालेन कियता विनाश्य गिरिजामदम् । प्रसादितः सुतपसा प्रसन्नोऽभून्महेश्वरः ॥३४॥
लौकिकाचारमाश्रित्य रुद्रो विष्णुप्रसादितः । काली विवाहयामास ततोऽभूद् बहुमङ्गलम् ॥३५॥
इत्येतत् कथितं तात ! समासाच्चरितं विभोः । शङ्करस्य परं दिव्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥३६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
स्वप्नवर्णनपूर्वकं संक्षेपशिवचरितवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अपना मनोरथ हृदय में छिपाकर वहीं उस तपस्वी की भक्तिपूर्वक सेवा करने लगी। हे वरानने ! यही स्वप्न मैंने देखा है, जो तुमको सुना दिया ॥ २६ ॥ इसलिए हे मेने ! यदि तुम उचित समझो तो कुछ काल पर्यन्त इस स्वप्नफल की प्रतीक्षा करो, मेरी तो ऐसी ही सम्मति है, आगे जैसा तुम सोचो ॥ २७ ॥

ब्रह्माजी बोले—जब हिमालय ने ऐसा कहा तब वे तथा मेना शुद्धचित्त हो कुछ काल पर्यन्त स्वप्नफल की प्रतीक्षा करने लगे ॥ २८ ॥ अनन्तर अभी कुछ ही काल बीत पाया था कि सज्जनों को गति देने वाले परमेश्वर शिवजी सती के विरह से व्यग्र हो इधर-उधर घूमते हुए अपने गणों के साथ तप करने के निमित्त वहाँ उस हिमालय पर पहुँच गये ॥ २९-३० ॥ उन्होंने वहीं अपना तप प्रारम्भ किया और पार्वती अपनी सखियों के सहित उन्हें प्रसन्न करने के लिए उनकी सेवा करने लगी ॥ ३१ ॥ उस समय देवताओं ने उन्हें मोहित करने के लिए काम को भेजा किन्तु काम के बाण से विद्ध होकर भी शङ्कर जी तनिक विचलित नहीं हुए ॥ ३२ ॥ उन्होंने अपनी नेत्राग्नि से काम को भस्म कर दिया और मेरे बातों का स्मरण कर वे वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ३३ ॥ इस प्रकार गिरिजा के सौन्दर्यमद को दूर कर बहुत दिन पर्यन्त गिरिजा की आराधना करने पर शिवजी उस पर प्रसन्न हुए ॥३४॥ तदनन्तर विष्णु ने अपना विवाह करने हेतु जब उनसे बहुत प्रार्थना की तब उन्होंने विष्णु पर प्रसन्न हो लोकाचार का आश्रय ले पार्वती के साथ विवाह किया। उस अवसर पर अनेक मङ्गल हुए ॥ ३५ ॥ पुनः ब्रह्माजी ने कहा—हे तात ! इस प्रकार संक्षेप में शिवजी का अत्यन्त उत्कृष्ट चरित्र मैंने तुमसे कहा, अब तुम्हारी क्या सुनने की इच्छा है ? ॥ ३६ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती'भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में
स्वप्नवर्णनपूर्वक संक्षिप्त-शिवचरित्रवर्णन नामक नवम अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥

*

दशमोऽध्यायः

(पार्वती-प्राप्ति हेतु तपस्यारत शिव के भाल स्थल से भौमोत्पत्ति)

नारद उवाच

विष्णुशिष्य महाभाग विधे शैववर प्रभो ! । शिवलीलामिमां व्यासात् प्रीत्या मे वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥
सतीविरहयुक् शम्भुः किं चक्रे चरितं तथा । तपः कर्तुं कदाऽऽयातो हिमवत्प्रस्थमुत्तमम् ॥ २ ॥
शिवाशिवविवाहोऽभूत् कथं कामक्षयश्च मे । तपः कृत्वा कथं प्राप शिवं शम्भुं च पार्वती ॥ ३ ॥
तत्सर्वमपरं चापि शिवसच्चरितं परम् । वक्तुमर्हसि मे ब्रह्मन् ! महानन्दकरं शुभम् ॥ ४ ॥

सूत उवाच

इति श्रुत्वा नारदस्य प्रश्नं लोकाधिपोत्तमः । विधिः प्रोवाच सुप्रीत्या स्मृत्वा शिवपदाम्बुजं ॥ ५ ॥

ब्रह्मोवाच

देवर्षे शैववर्याद्य ! तद्यशः शृणु चादरात् । पावनं मङ्गलकरं भक्तिवर्धनमुत्तमम् ॥ ६ ॥
आगत्य स्वगिरिं शम्भुः प्रियाविरहकातरः । सस्मार स्वप्रियां देवीं सतीं प्राणाधिकां हृदा ॥ ७ ॥
गणानाभाष्य शोचंस्तां तद्गुणान् प्रेमवर्धनान् । वर्णयामास सुप्रीत्या दर्शयँल्लौकिकीं गतिम् ॥ ८ ॥
दिगम्बरो बभूवाथ त्यक्त्वा गार्हस्थ्यसद्गतिम् । पुनर्बभ्राम लोकान् वै सर्वांल्लीलाविशारदः ॥ ९ ॥
दर्शनं प्राप्य कुत्रापि सतीविरहदुःखितः । पुनश्च गिरिमायातं शङ्करो भक्तशङ्करः ॥१०॥
समाधाय मनो यत्नात् समाधिं दुःखनाशिनम् । चकार च ददर्शासौ स्वरूपं निजमव्ययम् ॥११॥
इत्थं चिरतरं स्थाणुस्तस्थौ ध्वस्तगुणत्रयः । निर्विकारी परंब्रह्म मायाधीशः स्वयंप्रभुः ॥१२॥
ततः समाधिं तत्याज व्यतीय ह्यमिताः समाः । यदा तदा बभूवाशु चरितं तद् वदामि वः ॥१३॥

नारदजी बोले—हे विष्णुशिष्य ! हे महाभाग ! हे विधे ! हे प्रभो ! हे शिवभक्तों में सर्वश्रेष्ठ ! आप इस शिवलीला को विस्तारपूर्वक मुझसे कहिए ॥ १ ॥ सती के विरह से दुःखी हुए शिव ने कौन-सा चरित्र किया। और वे हिमालय पर्वत पर किस समय तपस्या के लिए आये ॥ २ ॥ शिवा एवं शिव का विवाह किस प्रकार हुआ ? शिवजी ने काम का नाश किस प्रकार किया ? और पार्वती ने तपस्या कर किस प्रकार शिवशङ्कर को प्राप्त किया ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मन् ! इन सभी चरित्रों को तथा अन्य शिव के सुन्दर चरित्रों को, जो सुनने से महान् आनन्ददायक तथा परम कल्याणकारी है, मुझसे कहिए ॥ ४ ॥

सूतजी बोले—नारद के इस प्रकार के प्रश्न को सुनकर लोकेश्वर ब्रह्माजी शिवजी के चरण-कमलों का ध्यान करते हुए प्रसन्नता से कहने लगे ॥ ५ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवर्षे नारद ! हे शैववर्य ! अब परम पवित्र, मङ्गल करने वाला तथा उत्तम भक्ति को बढ़ाने वाला शिवजी का परम पावन चरित्र सुनो ॥ ६ ॥ शिवजी अपने प्राणों से भी अधिक प्रिया सती देवी को हृदय से स्मरण करते हुए उनके विरह से दुःखी हो कैलास पर्वत पर आये ॥ ७ ॥ और शोक से विह्वल हो लोकचेष्टा का अनुसरण करते हुए सती के प्रेम को बढ़ाने वाले गुणों का वर्णन अपने गणों से करने लगे ॥ ८ ॥ लीलाविशारद वे शिव गृहस्थोचित आचरण को छोड़कर दिगम्बर वेष में सभी लोकों में भ्रमण करने लगे ॥ ९ ॥ इस प्रकार सती के विरह से दुःखी हुए उन शिव को भ्रमण करते हुए जब कहीं सती का दर्शन प्राप्त नहीं हुआ तो वे भक्तों का कल्याण करने वाले शिव पुनः कैलास पर्वत पर आये ॥ १० ॥ तदनन्तर यत्नपूर्वक मन को समाहित कर दुःखनाशक समाधि लगा अपना विकाररहित आत्मस्वरूप का साक्षात्कार करने लगे ॥ ११ ॥ इस प्रकार मायाधीश त्रिगुणातीत निर्विकारी परब्रह्म स्वयंप्रभु सदाशिव स्थाणु होकर समाधि में बहुत दिनों तक लीन रहे ॥ १२ ॥ फिर जब समाधि लगाये हुए उनको बहुत वर्ष व्यतीत हो गये तब

प्रभोर्ललाटदेशात्तु यत्पृषच्छ्रमसम्भवम् । पपात धरणौ तत्र स बभूव शिशुर्द्रुतम् ॥१४॥
चतुर्भुजोऽरुणाकारो रमणीयाकृतिर्मुने । अलौकिकद्युतिः श्रीमाँस्तेजस्वी परदुःसहः ॥१५॥
रुरोद स शिशुस्तस्य पुरो हि परमेशितुः । प्राकृतात्मजवत्तत्र भवाचाररतस्य हि ॥१६॥
तदा विचार्य सुधिया धृत्वा सुस्त्रीतनुं क्षितिः । आविर्बभूव तत्रैव भयमानीय शङ्करात् ॥१७॥
तं बालं द्रुतमुत्थाप्य क्रोडयां निदधे वरम् । स्तन्यं साऽपाययत् प्रीत्या दुग्धं स्वोपरिसम्भवम् ॥१८॥
चुचुम्ब तन्मुखं स्नेहात् स्मित्वा क्रीडयदात्मजम् । सत्यभावात् स्वयं माता परमेशहितावहा ॥१९॥
तद् दृष्ट्वा चरितं शम्भुः कौतुकी सृतिकृत्कृती । अन्तर्यामी विहस्याथोवाच ज्ञात्वा रसां हरः ॥२०॥
धन्या त्वं धरणि प्रीत्या पालयैतं सुतं मम । त्वय्युद्भूतं श्रमजलान् महातेजस्विनो वरम् ॥२१॥
मम श्रमकभूर्बालो यद्यपि प्रियकृक्षिते । त्वन्नाम्ना स्याद् भवेत् ख्यातस्त्रितापरहितः सदा॥२२॥
असौ बालः कुदाता हि भविष्यति गुणी तव । ममापि सुखदाता हि गृहाणैनं यथारुचि ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा विरराभाथ किञ्चिद्विरहमुक्तधीः । लोकाचारकरो रुद्रो निर्विकारी सतांप्रियः ॥२४॥
अपि क्षितिर्जगामाशु शिवाज्ञामधिगम्य सा । स्वस्थानं ससुता प्राप सुखमात्यन्तिकं च वै ॥२५॥
स बालो भौम इत्याख्यां प्राप्य भूत्वा युवा द्रुतम् । तस्यां काश्यां चिरं कालं सिषेवे शङ्करं प्रभुम् ॥२६॥

उन्होंने अपने समाधि का त्याग किया। उस समय उन्होंने जो-जो चरित्र किये हे नारद ! वह सब मैं तुम से कहता हूँ ॥ १३ ॥ तप करते हुए उन प्रभु के ललाटस्थान से जो श्रमविन्दु (पसीने के कण) पृथ्वी पर गिरा उससे एक बालक प्रगट हुआ ॥ १४ ॥ उसकी चार भुजाएँ थीं और उसके शरीर की कान्ति अरुण वर्ण की थी। वह अत्यन्त मनोहर रूप वाला बालक अलौकिक तेज से सम्पन्न था और शत्रुओं के लिए सर्वथा दुःसह था ॥ १५ ॥ उत्पन्न होते ही वह बालक उन लोकाचाररत परमेश्वर सदाशिव के समीप जाकर साधारण पुत्र के समान रोने लगा ॥१६॥ उस समय शंकर से भयभीत हुई पृथ्वी ने स्वयं बुद्धि से विचार कर अत्यन्त मनोहर स्त्री का रूप धारण कर लिया और उस बालक को शीघ्रता से अपने गोद में उठाकर प्रेम से उसे अपना दूध पिलाने लगी ॥१७-१८॥ और प्रेम से हँसते हुए वह बालक का मुख चूमने लगी। इस प्रकार वह परमेश्वर के हित के लिए सत्यभाव से बालक की माता बन गयी ॥ १९ ॥ तब अन्तर्यामी परम कौतुकी शिव इस चरित्र को देखकर पृथ्वी से हँसते हुए बोले ॥ २० ॥ हे पृथ्वी ! तुम धन्य हो। तुम इस बालक का प्रेम से पालन करो। यह बालक मेरे श्रमकण से तुम्हारे में उत्पन्न हुआ है। यह सभी तेजस्वियों में श्रेष्ठ होगा ॥२१॥ यद्यपि यह मेरे श्रमसीकर से उत्पन्न होने के कारण मुझे बड़ा प्रिय है किन्तु इसका नाम तुम्हारे ही नाम से विख्यात होगा। और उसी से यह त्रिताप (अधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक) रहित होगा ॥२२॥ यह बालक भूमि का दान करने वाला तथा प्रशस्त गुणों से सम्पन्न होगा और मेरी रुचि के अनुसार रहकर यह मुझे भी सुख प्रदान करेगा, अतः तुम इसे ग्रहण करो ॥ २३ ॥.

ब्रह्माजी बोले—विरहवेदना से किञ्चिदुन्मुक्त हुए वे भगवान् शिवजी इतना कहकर चुप हो गये। वस्तुतः निर्विकारी वे प्रभु सज्जनों के प्रिय होने के कारण लोकाचार का अनुसरण करते हैं॥ २४ ॥ तब पृथ्वी शिवजी की आज्ञा लेकर पुत्रसहित अपने स्थान को चली गयी। और उस बालक से अत्यन्त सुखी हो निवास करने लगी ॥ २५ ॥ वह बालक भौम नाम से विख्यात होकर बहुत शीघ्र ही युवा हो गया

विश्वेश्वरप्रसादेन ग्रहत्वं प्राप्य भूमिजः । दिव्यं लोकं जगामाशु शुक्रलोकात् परं वरम् ॥२७॥
इत्युक्तं शम्भुचरितं सतीविरहसंयुतम् । तपस्याचरणं शम्भोः शृणु चादरतो मुने ! ॥२८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे भौमोत्पत्ति-शिवलीलावर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

(शिव से हिमालय की वार्ता)

ब्रह्मोवाच

वर्द्धमाना गिरेः पुत्री सा शक्तिर्लोकपूजिता । अष्टवर्षा यदा जाता हिमालयगृहे सती ॥ १ ॥
तज्जन्म गिरिशो ज्ञात्वा सतीविरहकातरः । कृत्वा तामद्भुतामन्तर्मुमोदातीव नारद ! ॥ २ ॥
तस्मिन्नेवान्तरे शम्भुर्लौकिकीं गतिमाश्रितः । समाधातुं मनः सम्यक् तपः कर्त्तुं समैच्छत ॥ ३ ॥
कांश्चिद् गणवराञ्छान्तान्नन्द्यादीनवगृह्य च । गङ्गावतारमगमद्धिमवत्प्रस्थमुत्तमम् ॥ ४ ॥
यत्र गङ्गा निपतिता पुरा ब्रह्मपुरान् सृता । सर्वाघौघविनाशाय पावनी परमा मुने ! ॥ ५ ॥
तपः प्रारम्भमकरोत् स्थित्वा तत्र वशी हरः । एकाग्रं चिन्तयामास स्वमात्मानमतन्द्रितः ॥ ६ ॥
चेतोज्ञानभवं नित्यं ज्योतीरूपं निरामयम् । जगन्मयं चिदानन्दं द्वैतहीनं निराश्रयम् ॥ ७ ॥
हरे ध्यानपरे तस्मिन् प्रमथा ध्यानतत्पराः । अभवन् केचिदपरे नन्दिभृङ्ग्यादयो गणाः ॥ ८ ॥
सेवां चक्रुस्तदा केचिद् गणाः शम्भोः परात्मनः । नैवाकूजंस्तु मौना हि द्वारपाः केचनाभवन् ॥ ९ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र जगाम हिमभूधरः । शङ्करस्यौषधिप्रस्थे श्रुत्वाऽऽगमनमादरात् ॥१०॥

और काशी को प्राप्त कर बहुत दिनों तक शिव की सेवा करता रहा ॥ २६ ॥ इस प्रकार वह भौम शिवजी की कृपा से ग्रहत्व को प्राप्तकर शुक्रलोक से भी आगे दिव्यलोक में निवास करने लगा ॥ २७ ॥ हे नारद ! यह सती के विरह के समय का शिवचरित्र मैंने तुमसे कहा। हे मुने ! अब आगे शिवजी की तपस्या का वर्णन तुम आदरपूर्वक सुनो ॥ २८ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में भौमोत्पत्ति-शिवलीलावर्णन नामक दसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १० ॥

*

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार हिमालय की पुत्री वह शक्तिस्वरूपा पार्वती उनके घर में बढ़ती हुई जब आठ वर्ष की हो गयी ॥ १ ॥ तब उसका जन्म हिमालय के गृह में जानकर सती के विरह से दुःखी हुए शङ्कर जी सती की इस अद्भुत लीला से मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हो उठे ॥ २ ॥ उस समय लौकिक गति का आश्रय कर वे अपने मन को समाहित करने की इच्छा से तपस्या करने का विचार करने लगे ॥ ३ ॥ उन्होंने परम शान्त नन्दी आदि कुछ गणों को साथ ले लिया और हिमालय-शिखर के समीप गङ्गावतरण नामक स्थान पर चले आये ॥ ४ ॥ जहाँ परम पावनी गङ्गा लोक का पाप-ताप मिटाने के लिए ब्रह्मलोक से भू-लोक में आकर निपतित हुई हैं ॥ ५ ॥ वहीं पर संयमी सदाशिव अत्यन्त सावधानी के साथ आत्मस्वरूप का चिन्तन करते हुए आलस्यरहित हो एकाग्रचित्त से तपस्या करने लगे ॥ ६ ॥ उन्होंने अपना चित्त, ज्ञानस्वरूप, नित्यप्रकाश, निरामय, निराश्रय, चिदानन्द एवं अद्वैत परब्रह्म में स्थापित कर लिया ॥ ७ ॥ इस प्रकार भगवान् सदाशिव को ध्यानमग्न देखकर कुछ नन्दी एवं भृङ्गी आदि प्रमथ गण ध्यान में तत्पर हो गये ॥ ८ ॥ और कुछ गण परमात्मा शङ्कर की सेवा करने लगे। कुछ गणों ने मौन धारण कर लिया। और कुछ द्वारपाल बनकर उनकी चौकसी करने लगे ॥ ९ ॥ इसी समय औषधिप्रस्थ

प्रणनाम प्रभुं रुद्रं सगणो भूधरेश्वरः । समानर्च च सुप्रीतस्तुष्टाव स कृताञ्जलिः ॥११॥

हिमालय उवाच

देवदेव महादेव कपर्दिन् शङ्कर प्रभो ! । त्वयैव लोकनाथेन पालितं भुवनत्रयम् ॥१२॥
नमस्ते देवदेवेश ! योगिरूपधराय च । निर्गुणाय नमस्तुभ्यं सगुणाय विहारिणे ॥१३॥
कैलासवासिने शम्भो ! सर्वलोकाटनाय च । नमस्ते परमेशाय लीलाकाराय शूलिने ॥१४॥
परिपूर्ण-गुणाधान-विकार-रहिताय ते । नमोऽनीहाय वीहाय धीराय परमात्मने ॥१५॥
अबहिर्भोगकाराय जनवत्सल ते नमः । त्रिगुणाधीश मायेश ब्रह्मणे परमात्मने ॥१६॥
विष्णुब्रह्मादिसेव्याय विष्णुब्रह्मस्वरूपिणे । विष्णुब्रह्मैकदात्रे ते भक्तप्रिय नमोऽस्तु ते ॥१७॥
तपोरत तपःस्थान सुतपःफलदायिने । तपःप्रियाय शान्ताय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे ॥१८॥
व्यवहारकरायैव लोकाचारकराय ते । सगुणाय परेशाय नमोऽस्तु परमात्मने ॥१९॥
लीला तव महेशानावेद्या साधु सुखप्रदा । भक्ताधीनस्वरूपोऽसि भक्तवश्यो हि कर्मकृत् ॥२०॥
मम भाग्योदयादत्र त्वमागत इह प्रभो । सनाथं कृतवान्मां त्वं वर्णितो दीनवत्सलः ॥२१॥
अद्य मे सफलं जन्म सफलं जीवनं मम । अद्य मे सफलं सर्वं यदत्र त्वं समागतः ॥२२॥
ज्ञात्वा मां दासमव्यग्रमाज्ञां देहि महेश्वर ! । त्वत्सेवां च महाप्रीत्या कुर्यामहमनन्यधीः ॥२३॥

पर शङ्कर का आगमन सुन आदर के साथ पर्वतराज हिमालय अपने सेवकों के सहित उन्हें प्रणाम करने के लिये वहाँ आये । उन्होंने गणों सहित प्रभु रुद्र को प्रणाम कर उनकी पूजा की और फिर हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे ॥ १०-११ ॥

हिमालय बोले—हे देवदेव ! हे महादेव ! हे कपर्दिन् ! हे प्रभो ! हे शङ्कर ! आप लोकनाथ होकर तीनों लोकों का पालन करते हो ॥ १२ ॥ हे देवदेवेश ! योगीरूप धारण करने वाले आप परमेश्वर को नमस्कार है । निर्गुण होकर भी सगुण रूप से विहार करने वाले आप प्रभु को नमस्कार है ॥ १३ ॥ हे शम्भो, कैलासवासी एवं सर्वलोक में विचरने वाले, आपको नमस्कार है । लीला करने वाले, त्रिशूलधारी आप परमेश्वर के लिए हमारा नमस्कार है ॥ १४ ॥ सभी प्रकार से पूर्ण, गुणों के आश्रय होते हुए भी विकार रहित आपको नमस्कार है । सर्वथा इच्छारहित हुए भी विशिष्ट इच्छा वाले, धीर, आप परमात्मा को नमस्कार है ॥ १५ ॥ हे जनवत्सल ! बाहर के भोगों को न ग्रहण करने वाले, आत्मानन्द मे परिपूर्ण आपको नमस्कार है । हे त्रिगुणाधीश ! हे मायेश ! आप ब्रह्मस्वरूप परमात्मा को नमस्कार है ॥ १६ ॥ आप स्वयं ब्रह्मा एवं विष्णु के स्वरूप हो तथा उन्हीं ब्रह्मा तथा विष्णु के द्वारा सेवित भी हो, आपको नमस्कार है । हे भक्तप्रिय, आप विष्णु तथा ब्रह्मा को सुख प्रदान करते हो, अतः आपको नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे तपोरत ! हे तपःस्थान ! आप ही उत्तम तपस्या का फल प्रदान करने वाले हो, आप ही तपस्या से प्रेम करते हो, आप ही शान्त परब्रह्म हो, अतः आपको नमस्कार है ॥ १८ ॥

व्यवहार तथा लोकाचार करने वाले, आप सगुण तथा परमेश्वर हो, अतः आप परमात्मा को नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे महेश्वर ! आपकी साधुओं को सुख देनेवाली लीला को कोई जान नहीं सकता । आप भक्तों की इच्छा के अनुसार स्वरूप धारण कर कर्म करते रहते रहते हो ॥ २० ॥ हे प्रभो ! आज मेरा परम भाग्योदय हुआ है, जो आप इस स्थान पर आये हैं । आप सचमुच दीनवत्सल कहे जाते हैं, जो यहाँ आकर मुझे सनाथ कर रहे हैं ॥ २१ ॥ आपके आ जाने से आज मेरा जन्म सफल हो गया, मेरा जीवन सफल हो गया । आज मेरा सब कुछ सफल हो गया, जो आप यहाँ पधारे हो ॥ २२ ॥ हे महेश्वर ! आप अपना दास जानकर मुझे निःसंकोच अपनी सेवा हेतु आज्ञा दीजिए । हे महादेव ! मैं अनन्यबुद्धि होकर आपकी सेवा करूँगा ॥ २३ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य गिरीशस्य महेश्वरः । किञ्चिदुन्मील्य नेत्रे च ददर्श सगणं गिरिम् ॥२४॥
सगणं तं तथा दृष्ट्वा गिरिराजं वृषध्वजः । उवाच ध्यानयोगस्थः स्मयन्निव जगत्पतिः ॥२५॥

महेश्वर उवाच

तव पृष्ठे तपस्तप्तुं रहस्यमहमागतः । यथा न कोऽपि निकटं समायातु तथा कुरु ॥२६॥
त्वं महात्मा तपोधामा मुनीनां च सदाश्रयः । देवानां राक्षसानां च परेषां च महात्मनाम् ॥२७॥
सदा वासो द्विजादीनां गङ्गापूतश्च नित्यदा । परोपकारी सर्वेषां गिरीणामधिपः प्रभुः ॥२८॥
अहं तपश्चराम्यत्र गङ्गावतरणे स्थले । आश्रितस्तव सुप्रीतो गिरिराज यतात्मवान् ॥२९॥
निर्विघ्नं मे तपश्चात्र हेतुना येन शैलप ! । सर्वथा हि गिरिश्रेष्ठ ! सुयत्नं कुरु साम्प्रतम् ॥३०॥
ममेदमेव परमं सेवनं पर्वतोत्तम ! । स्वगृहं गच्छ सत्प्रीत्या सत्सम्पादय यत्नतः ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा जगतां नाथस्तूष्णीमास स सूतिकृत् । गिरिराजस्तदा शम्भुं प्रणयादिदमब्रवीत् ॥३२॥

हिमालय उवाच

पूजितोऽसि जगन्नाथ ! मया त्वं परमेश्वर ! । स्वागतेनाद्य विषये स्थितं त्वां प्रार्थयामि किम् ॥३३॥
महता तपसा त्वं हि देवैर्यत्नपराश्रितैः । न प्राप्यसे महेशान स त्वं स्वयमुपस्थितः ॥३४॥
मत्तोऽप्यन्यतमो नास्ति न मत्तोऽन्योऽस्ति पुण्यवान् । भवानिति च मत्पृष्ठे तपसे समुपस्थितः ॥३५॥
देवेन्द्रादधिकं मन्ये स्वात्मानं परमेश्वर ! । सगणेन त्वयाऽऽगत्य कृतोऽनुग्रहभागहम् ॥३६॥

ब्रह्माजी बोले—महेश्वर ने पर्वतराज हिमालय के वचन को सुनकर किञ्चिन्मात्र अपनी पलकों को खोलकर सेवकों के सहित गिरीश को अपने सामने देखा ॥ २४ ॥ तब जगत्पति भगवान् शङ्कर कुछ हँसते हुए की तरह ध्यान योग में स्थित हो बोले ॥ २५ ॥

शङ्करजी बोले—हे गिरिराज ! मैं एकान्त में तपस्या करने के लिए तुम्हारे परोक्ष में यहाँ आया हूँ । अतः आप ऐसा कीजिए कि जिससे मेरे सन्निकट यहाँ कोई न आवे ॥२६॥ तुम बड़े महात्मा हो, तपस्या के स्थान हो और देवता, राक्षस, महात्मा तथा मुनियों को सदैव आश्रय देने वाले हो ॥ २७ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य आदि द्विजाति गणों के वासस्थल हो । एवं गङ्गा के द्वारा नित्य पवित्र रहने वाले हो । तुम सदा परोपकारी तथा पर्वतमात्र के स्वामी हो ॥२८॥ हे गिरिराज ! मैं तुम्हारा आश्रय लेकर जितेन्द्रिय हो, इस गङ्गावतरण नामक स्थान पर स-प्रेम तप करूँगा ॥ २९ ॥ अतः हे पर्वतराज ! जिस प्रकार मेरा तप निर्विघ्न चलता रहे वैसा यत्न करो ॥ ३० ॥ हे पर्वतश्रेष्ठ ! यही मेरी सर्वोत्तम सेवा है । अब तुम प्रसन्नता से अपने घर जाओ, और मेरी तपस्या में किसी प्रकार कोई विघ्न न पड़े वैसा यत्न करो ॥ ३१ ॥

ब्रह्माजी बोले—जगत् की सृष्टि करने वाले जगत्पति शङ्कर इस प्रकार हिमालय को आज्ञा देकर मौन हो गये । तब गिरिराज अत्यन्त नम्र हो शिवजी से इस प्रकार कहने लगे ॥ ३२ ॥

हिमालय बोले—हे जगत्पते ! हे नाथ ! हे परमेश्वर ! आप मेरे सन्निकट मेरे इस प्रदेश में स्थित हैं, अतः मैं आपका स्वागत कर आपकी पूजा करता हूँ और आपसे मैं क्या प्रार्थना करूँ ॥ ३३ ॥ हे महेशान ! महान् यत्न एवं तपस्या से भी आप देवताओं को प्राप्त नहीं होते किन्तु मेरा यह अहोभाग्य है कि आप स्वयं मेरे स्थान पर पधारे हैं ॥ ३४ ॥ मेरे समान आज कोई भाग्यवान् एवं पुण्यात्मा नहीं है, जो आप स्वयं मेरे पृष्ठ पर तपस्या करने के लिए स्वयं पधारे हैं । अहो ! यह मेरा बड़ा भाग्य है ॥ ३५ ॥ हे परमेश्वर ! मैं तो अपने को देवराज इन्द्र से भी बढ़कर मानता हूँ, जो गणों सहित आपने यहाँ पधार

निर्विघ्नं कुरु देवेश ! स्वतन्त्रः परमं तपः । करिष्येऽहं तथा सेवां दासोऽहं ते सदा प्रभो ! ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा गिरिराजोऽसौ स्वं वेश्म द्रुतमागतः । वृत्तान्तं तं समाचख्यौ प्रियायै च समादरात् ॥३८॥

नीयमानान् परीवारान् स्वगणानपि नारद ! । समाहूयाऽखिलाञ्छैलपतिः प्रोवाच तत्त्वतः ॥३९॥

हिमालय उवाच

अद्य प्रभृति नो यातु कोऽपि गङ्गावतारणम् । मच्छासनेन मत्प्रस्थं सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम् ॥४०॥

गमिष्यति जनः कश्चित्तत्र चेत्तं महाखलम् । दण्डयिष्ये विशेषेण सत्यमेतन्मयोदितम् ॥४१॥

इति तान् स नियम्याशु स्वगणान् निखिलान् मुने । सुयत्नं कृतवाञ्छैलस्तं शृणु त्वं वदामि ते ॥४२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शिवशैलसमागम-वर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

(हिमालय का कन्या के साथ कैलास आना तथा शिव का विरोध)

ब्रह्मोवाच

अथ शैलपतिर्हृष्टः सत्पुष्पफलसञ्चयम् । समादाय स्वतनयासहितोऽगाद्धरान्तिकम् ॥ १ ॥

स गत्वा त्रिजगन्नाथं प्रणम्य ध्यानतत्परम् । अर्पयामास तनयां कालीं तस्मै हृदाऽद्भुताम् ॥ २ ॥

फलपुष्पादिकं सर्वं तत्तदग्रे निधाय सः । अग्रे कृत्वा सुतां शम्भुमिदमाह च शैलराट् ॥ ३ ॥

हिमगिरिरुवाच

भगवंस्तनया मे त्वां सेवितुं चन्द्रशेखरम् । समुत्सुका समानीता त्वदाराधनकांक्षया ॥ ४ ॥

सखीभ्यां सह नित्यं त्वां सेवतामेव शङ्करम् । अनुजानीहि तां नाथ ! मयि ते यद्यनुग्रहः ॥ ५ ॥

कर मुझे अनुग्रह का भाजन बनाया है ॥ ३६ ॥ हे देव ! आप स्वतन्त्रतापूर्वक निर्विघ्न इस स्थान पर तप कीजिए । मैं सब प्रकार से आपकी सेवा करूँगा । हे प्रभो ! मैं सर्वदा ही आपका दास हूँ ॥ ३७ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! गिरिराज इस प्रकार कहकर बड़ी शीघ्रता से अपने स्थान को चले आये । और उन्होंने बड़े आदर के साथ सारा वृत्तान्त अपनी प्रिया मेना को सुनाया ॥३८॥ और हे नारद ! हिमालय ने अपने सेवकों तथा परिवार के लोगों को भी बुलाकर कहा ॥ ३९ ॥

हिमालय बोले—आपलोगों में से कोई भी आज से गङ्गावतरण की ओर न जाये, यह मेरी आज्ञा है, और इसे सबको माननी होगी, यह मैं सत्य कहता हूँ ॥ ४० ॥ यदि मेरी आज्ञा का उल्लङ्घन कर कोई वहाँ जायेगा तो मैं उसे अवश्य दण्ड दूँगा ॥ ४१ ॥ हे मुने ! इस प्रकार अपने सभी सेवकों तथा परिजनों को समझाकर शैलराज ने जैसा सुन्दर यत्न किया था, उसे सुनो, अब मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ४२ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय–पार्वतीखण्ड में शिवशैलसमागम वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—तदनन्तर हिमालय प्रसन्नचित्त हो, उत्तमोत्तम फल तथा पुष्पों को लेकर अपनी कन्या के साथ शिवजी के समीप गये ॥ १ ॥ उन्होंने त्रिलोकीनाथ शिव को प्रणाम कर अपनी काली नामक उस अद्भुत कन्या को हृदय से शिवजी के लिए अर्पण किया ॥ २ ॥ प्रथम उन्होंने सभी फल-पुष्पादिकों को शङ्कर के सामने प्रस्तुत किया । पुनः अपनी कन्या को आगे रखकर शिवजी से ऐसा कहने लगे ॥ ३ ॥

हिमालय ने कहा—हे भगवन् ! यह मेरी कन्या आप चन्द्रशेखर की सेवा करने के लिए अत्यन्त उत्सुक है, अतः इस कार्य के लिए ही इसे आपके समीप लाया हूँ ॥ ४ ॥ यह आप शङ्कर की अपने सखियों के साथ नित्य सेवा करेगी । यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा है तो आप इसे स्वीकार करने की आज्ञा दीजिए ॥५॥

ब्रह्मोवाच

अथ तां शङ्करोऽपश्यत् प्रथमारूढयौवनाम् । फुल्लेन्दीवरपत्राभां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥ ६ ॥
समस्तलीलासंस्थान-शुभवेष-विजृम्भिताम् । कम्बुग्रीवां विशालाक्षीं चारुकर्णयुगोज्ज्वलाम् ॥ ७ ॥
मृणालायत-पर्य्यन्त-बाहुयुग्म-मनोहराम् । राजीवकुड्मलप्रख्यौ घनपीनौ दृढौ स्तनौ ॥ ८ ॥
बिभ्रतीं क्षीणमध्यां च त्रिवलीमध्यराजिताम् । स्थलपद्म-प्रतीकाश-पादयुग्म-विराजिताम् ॥ ९ ॥
ध्यानपञ्जर-निर्बद्ध-मुनिमानसमप्यलम् । दर्शनाद् भ्रंशने शक्तां योषिद्गणशिरोमणिम् ॥१०॥
दृष्ट्वा तां तादृशीं तात! ध्यानिनां च मनोहराम् । विग्रहे तन्त्रमन्त्राणां वर्द्धिनीं कामरूपिणीम् ॥११॥
न्यमीलयद् दृशौ शीघ्रं दध्यौ स्वं रूपमुत्तमम् । परतत्त्वं महायोगी त्रिगुणात् परमव्ययम् ॥१२॥

दृष्ट्वा तदानीं सकलेश्वरं विभुं तपोजुषाणं विनिमीलितेक्षणम् ।
कपर्दिनं चन्द्रकलाविभूषणं वेदान्तवेद्यं परमासने स्थितम् ॥१३॥

ववन्द शीर्ष्णा च पुनर्हिमाचलः स संशयं प्रापददीनसत्त्वः ।
उवाच वाक्यं जगदेकबन्धुं गिरीश्वरो वाक्यविदां वरिष्ठः ॥१४॥

हिमाचल उवाच

देवदेव महादेव करुणाकर शङ्कर ! । पश्य मां शरणं प्राप्तमुन्मील्य नयने विभो ॥१५॥
शिव शर्व महेशान जगदानन्दकृत्प्रभो ! । त्वां नतोऽहं महादेव सर्वापद्विनिर्वतकम् ॥१६॥
न त्वां जानन्ति देवेश वेदाः शास्त्राणि कृत्स्नशः । अतीतो महिमाध्वानं तव वाङ्मनसोः सदा ॥१७॥
अतद्व्यावृत्तितस्त्वां वै चकितं चकितं सदा । अभिधत्ते श्रुतिः सर्वा परेषां का कथा मता ॥१८॥

ब्रह्माजी बोले—तब भगवान् शङ्कर ने यौवन की प्रथमावस्था में वर्त्तमान उस कन्या को देखा। उसका मुखमण्डल पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मनोहर था, जिससे नीले कमल के पत्र के समान आभा निकल रही थी ॥ ६ ॥ उसके मनोहर अङ्ग सन्निवेश समस्त लीलाओं से युक्त थे तथा सुन्दर वेष से सुसज्जित होने के कारण वह अत्यन्त सुशोभित हो रही थी। उसकी ग्रीवा शङ्खाकार थी, उसके नेत्र विशाल थे एवं दोनों कानों में उज्ज्वल कर्णभूषण शोभित हो रहे थे ॥ ७ ॥ मृणाल के समान चिकनी एवं लम्बायमान भुजा, कमलकली के समान घने तथा दृढ़ दोनों स्तनों को धारण किये हुए वह त्रिवली युक्त मध्यभाग तथा क्षीण कटि-तट से अत्यन्त शोभा पा रही थी। उसके दोनों चरणस्थल पद्म (गुलाब) के समान सुन्दर थे ॥ ८-९ ॥ उस ललनारत्न को देखते ही ध्यानमग्न एवं मन को वशीभूत करनेवाले महामुनियों का भी ध्यान टूट जाता था ॥ १० ॥ शङ्करजी ने ध्यानी मुनियों के भी मन को हरण करने वाली, कामकला को बढ़ाने वाली तथा साक्षात् तन्त्र-मन्त्र की विग्रहस्वरूपा उस कन्या को देखते ही अपने नेत्र बन्द कर लिये। फिर वे महायोगी त्रिगुण से परे अव्यय एवं परतत्त्वरूप अपने आत्मस्वरूप का ध्यान करने लगे ॥११-१२॥ इस प्रकार सर्वेश्वर, व्यापक, वेदान्तवेद्य, चन्द्रकला-विभूषण एवं कपर्दी सदाशिव को नेत्र बन्द कर तपस्या में निरत हुए परमासन में आसीन देखकर हिमालय संशय में पड़ गये ॥१३॥ पुनः उन्हें प्रणाम कर वाक्य-विशारद गिरीश्वर हिमालय, जगत् के एकमात्र बन्धु भगवान् शङ्कर से बोले ॥ १४ ॥

हिमालय बोले—हे देवदेव ! हे महादेव ! हे करुणाकर ! हे शङ्कर ! हे विभो ! आप नेत्र खोलकर इधर देखिए, मैं आपकी शरण में आया हूँ ॥ १५ ॥ हे शिव ! हे सर्वमहेशान ! हे जगतानन्द ! हे महादेव ! सम्पूर्ण आपत्तियों को दूर करने वाले, आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १६ ॥ हे देवेश ! सम्पूर्ण वेद और शास्त्र भी आपको नहीं जान सकते, क्योंकि आपकी महिमा वाणी तथा मन के विषयों से भी सर्वथा परे है ॥ १७ ॥ सभी श्रुतियाँ भी आपकी महिमा का पार न पा सकने के कारण चकित होकर

जानन्ति बहवो भक्तास्त्वत्कृपां प्राप्य भक्तितः । शरणागतभक्तानां न कुत्रापि प्रमादिकम् ॥१९॥
विज्ञप्तिं शृणु मत्प्रीत्या स्वदासस्य ममाऽधुना । तव देवाज्ञया तात दीनत्वाद् वर्णयामि हि ॥२०॥
सभाग्योऽहं महादेव प्रसादात्तव शङ्कर ! । मत्वा स्वदासं मां नाथ ! कृपां कुरु नमोऽस्तु ते॥२१॥
प्रत्यहं चागमिष्यामि॰ दर्शनार्थं तव प्रभो ! । अनया सुतया स्वामिन्निदेशं दातुमर्हसि ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्योन्मील्य नेत्रे महेश्वरः । त्यक्तध्यानः परामृश्य देवदेवोऽब्रवीद् वचः ॥२३॥

महेश्वर उवाच

आगन्तव्यं त्वया नित्यं दर्शनार्थं ममाचल । कुमारीं सदने स्थाप्य नान्यथा मम दर्शनम् ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

महेशवचनं श्रुत्वा शिवातातस्तथाविधम् । अचलः प्रत्युवाचेदं गिरीशं नतकन्धरः ॥२५॥

हिमाचल उवाच

कस्मान्मयाऽनया सार्द्धं नागन्तव्यं तदुच्यताम् । सेवने किमयोग्येयं नाऽहं वेद्मयत्र कारणम् ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

ततोऽब्रवीद् गिरिं शम्भुः प्रहसन् वृषभध्वजः । लोकाचारं विशेषेण दर्शयन् हि कुयोगिनाम् ॥२७॥

शम्भुरुवाच

इयं कुमारी सुश्रोणी तन्वी चन्द्रानना शुभा । नानेतव्या मत्समीपे वारयामि पुनः पुनः ॥२८॥
मायारूपा स्मृता नारी विद्वद्भिर्वेदपारगैः । युवती तु विशेषेण विघ्नकर्त्री तपस्विनाम् ॥२९॥

आपका वर्णन करती हैं, जब श्रुतियों की यह दशा है तब दूसरों की कथा ही क्या ? ॥ १८ ॥ एकमात्र आपके भक्त ही आपमें भक्ति कर आपकी कुछ महिमा जान पाते हैं। क्योंकि आपके शरण में प्राप्त हुए भक्तों को कभी किसी प्रकार के प्रमादि दोष नहीं होते ॥ १९ ॥ हे सदाशिव ! अब आप इस समय मुझ दास का निवेदन सुनें। जिसे मैं आपकी आज्ञा से दीन होकर वर्णन कर रहा हूं ॥ २० ॥ हे शङ्कर ! हे महादेव ! मैं आज आपकी कृपा प्राप्त कर अत्यन्त भाग्यशाली हो रहा हूँ। अतः आप अपना दास जानकर मुझपर कृपा करें। हे नाथ ! आपको प्रणाम है ॥ २१ ॥ हे प्रभो ! मैं आपके दर्शन के निमित्त इस कन्या के साथ प्रतिदिन आया करूंगा। ऐसी आज्ञा मुझे प्रदान करें ॥ २२ ॥

ब्रह्माजी बोले—गिरिराज के इस प्रकार के वचन सुनकर महेश्वर ने अपने दोनों नेत्र खोल कर ध्यान करना छोड़ दिया। फिर विचार कर वे देवदेव भगवान् शङ्कर बोले—॥ २३ ॥

महेश्वर ने कहा—हे हिमालय ! आप मेरे दर्शन के लिए इस कन्या को घर पर ही रखकर आ सकते हैं अन्यथा मेरा दर्शन सम्भव नहीं है ॥ २४ ॥

ब्रह्माजी बोले—पार्वती के पिता हिमालय शिवजी के इस प्रकार वचन को सुनकर विनम्र हो पुनः बोले—॥ २५ ॥

हिमालय ने कहा—हे सदाशिव ! आप यह तो बतावें कि मैं इस कन्या को साथ लेकर क्यों आपके दर्शन के लिए न आऊं ? क्या यह आपकी सेवा करने में अयोग्य है ? मुझे तो इसे घर छोड़ने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता ॥ २६ ॥

ब्रह्माजी बोले—तब हँसते हुए भगवान् शंकर हिमालय से कुयोगियों-जैसा विशेष लोकाचार दिखाते हुए कहने लगे ॥ २७ ॥

शिवजी बोले—क्षीण कटितट वाली, मनोहर नितम्ब वाली, चन्द्रमुखी इस कन्या को तुम मेरे सन्निकट मत लाना, मैं इस विषय में तुमको बारम्बार मना करता हूँ ॥ २८ ॥ इसका कारण यह है कि वेदवेत्ता ब्राह्मणों ने स्त्री को मायारूपा कहा है, उसमें भी विशेष रूप से युवती स्त्री तो तपस्वियों के लिए

अहं तपस्वी योगी च निर्लिप्तो मायया सदा । प्रयोजनं न युक्त्या वै स्त्रिया किं मेऽस्ति भूधर ! ॥३०॥
एवं पुनर्न वक्तव्यं तपस्विवरसंश्रित ! । वेदधर्मप्रवीणस्त्वं यतो ज्ञानिवरो बुधः ॥३१॥
भवत्यचल सत्सङ्गाद् विषयोत्पत्तिराशु वै । विनश्यति च वैराग्यं ततो भ्रश्यति सत्तपः ॥३२॥
अतस्तपस्विना शैल न कार्या स्त्रीषु सङ्गतिः । महाविषयमूलं सा ज्ञानवैराग्यनाशिनी ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

इत्याद्युक्त्वा बहुतरं महायोगी महेश्वरः । विरराम गिरीशं तं महायोगिवरः प्रभुः ॥३४॥
एतच्छ्रुत्वा वचनं तस्य शम्भोर्निरामयं निःस्पृहं निष्ठुरं च ।
कालीतातश्चकितोऽभूत् सुरर्षे ! तद्वत् किञ्चिद् व्याकुलश्चास तूष्णीम् ॥३५॥
तपस्विनोक्तं वचनं निशम्य तथा गिरीशं चकितं विचार्य्य ।
अतः प्रणम्यैव शिवं भवानी जगाद वाक्यं विशदं तदानीम् ॥३६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शिवहिमाचलसम्वाद-वर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

(शिव-पार्वती का सांख्य-वेदान्त शास्त्र में वर्णन और कामदेव-दहन)

भवान्युवाच

किमुक्तं गिरिराजाय त्वया योगिंस्तपस्विना । तदुत्तरं शृणु विभो मत्तो ज्ञानविशारद ! ॥ १ ॥
तपःशक्त्यान्वितः शम्भो करोषि विपुलं तपः । तव बुद्धिरियं जाता तपस्तप्तुं महात्मनः ॥ २ ॥
सा शक्तिः प्रकृतिर्ज्ञेया सर्वेषामपि कर्मणाम् । तया विरच्यते सर्वं पाल्यते च विनाश्यते ॥ ३ ॥

विघ्नस्वरूपा है ॥ २९ ॥ मैं तो तपस्वी, योगी तथा माया से पृथक् रहने वाला हूँ। और हे भूधर ! भला तुम्हीं सोचो कि युवती स्त्री से मेरा यहाँ प्रयोजन ही क्या है ? ॥ ३० ॥ हे तपस्वियों के आश्रयदाता भूधर ! तुम पुनः ऐसी बात मत कहना, क्योंकि तुम वेदधर्म के जानकार तथा ज्ञानियों में श्रेष्ठ कहे जाते हो ॥ ३१ ॥ हे शैलराज ! स्त्रियों को साथ रखने से शीघ्र ही विषयोत्पत्ति होने लगती है, फिर तो विषय-विकार होने से वैराग्य नष्ट हो जाता है, वैराग्य नष्ट होते ही तपस्या नष्ट हो जाती है ॥३२॥ हे शैलराज ! इस कारण से तपस्वियों को स्त्रियों का संग नहीं करना चाहिए। क्योंकि स्त्रियाँ महाविषय का मूल तथा ज्ञान-वैराग्य की नाशिनी कही गयी हैं ॥ ३३ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! महायोगी महेश्वर इस प्रकार की अन्य बहुत सी बातें हिमालय से कह कर मौन हो गये ॥ ३४ ॥ इस प्रकार शिवजी के स्पृहारहित, निरामय तथा निष्ठुर वचन सुनकर काली के पिता हिमालय बड़े विस्मय में पड़ गये। और हे नारद ! फिर वे व्याकुल हो मौन हो गये ॥ ३५ ॥ तब भगवती काली तप में तत्पर शिव के वचन सुनकर और स्वयं गिरिराज को आश्चर्य में पड़ा देखकर, शिव को प्रणाम कर उनसे विशद वाक्यों में कहने लगी ॥ ३६ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती'भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में शिव-हिमालय-संवाद वर्णन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥

*

भवानी बोली—आप तपस्वी एवं योगी होते हुए भी मेरे पिता से ऐसी बात क्यों कह दी। हे ज्ञानियों में विशारद, अब आप इसका उत्तर मुझसे सुनिए ॥ १ ॥ हे शम्भो ! आप तपरूप महाशक्ति की प्रेरणा से ही इस महातपस्या में प्रवृत्त हुए हैं और उसी महाशक्ति की प्रेरणा से आपको तपस्या करने की सद्बुद्धि भी प्राप्त हुई है ॥२॥ सभी कर्मों में रहने वाली वही शक्ति प्रकृति नाम से कही जाती है, वही प्रकृति

कस्त्वं का प्रकृतिः सूक्ष्मा भगवंस्तद्विमृश्यताम् । विना प्रकृत्या च कथं लिङ्गरूपी महेश्वरः ॥ ४ ॥
अर्चनीयोऽसि वन्द्योऽसि ध्येयोऽसि प्राणिनां सदा । प्रकृत्या च विचार्येति हृदा सर्वं तदुच्यताम् ॥ ५ ॥

ब्रह्मोवाच

पार्वत्यास्तद्वचः श्रुत्वा महोतिकरणे रतः । सुविहस्य प्रसन्नात्मा महेशो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥

महेश्वर उवाच

तपसा परमेणैव प्रकृतिं नाशयाम्यहम् । प्रकृत्या रहितः शम्भुरहं तिष्ठामि तत्त्वतः ॥ ७ ॥
तस्माच्च प्रकृतेः सद्भिर्न कार्यः सङ्ग्रहः क्वचित् । स्थातव्यं निर्विकारैश्च लोकाचारविवर्जितैः ॥ ८ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ता शम्भुना तात लौकिकव्यवहारतः । सुविहस्य हृदा काली जगाद मधुरं वचः ॥ ९ ॥

काल्युवाच

यदुक्तं भवता योगिन् वचनं शङ्कर प्रभो ! । सा च किं प्रकृतिर्न स्यादतीतस्तां भवान् कथम् ॥ १० ॥
एतद्विचार्य वक्तव्यं तत्त्वतो हि यथातथम् । प्रकृत्या सर्वमेतच्च बद्धमस्ति निरन्तरम् ॥ ११ ॥
तस्मात्त्वया न वक्तव्यं न कार्यं किञ्चिदेव हि । वचनं रचनं सर्वं प्राकृतं विद्धि चेतसा ॥ १२ ॥
यच्छृणोषि यदश्नासि यत् पश्यसि करोषि तत् । तत्सर्वं प्रकृतेः कार्यं मिथ्यावादो निरर्थकः ॥ १३ ॥
प्रकृतेः परमश्चेत्त्वं किमर्थं तप्यसे तपः । त्वया शम्भोऽधुना ह्यस्मिन् गिरौ हिमवति प्रभो ॥ १४ ॥
प्रकृत्या गिलितोऽसि त्वं न जानासि निजं हर ! । निजं जानासि चेदीश ! किमर्थं तप्यसे तपः ॥ १५ ॥
वाग्वादेन च किं कार्यं मम योगिंस्त्वया सह । प्रत्यक्षे ह्यनुमानस्य न प्रमाणं विदुर्बुधाः ॥ १६ ॥

सबकी उत्पत्ति, पालन तथा संहार करती है ॥ ३ ॥ अतः हे भगवन् ! आप कौन हैं, तथा आपको तप में प्रवृत्त करने वाली यह सूक्ष्म प्रकृति क्या है ? इसका विचार आप को करना चाहिए। भला आप ही सोचें कि प्रकृति के बिना लिङ्गरूपी महेश्वर किस प्रकार रह सकते हैं ॥ ४ ॥ प्राणी आप महेश्वर की अर्चना, वन्दना तथा ध्यान प्रकृति के कारण ही करते हैं, आप स्वयं इस बात को हृदय से विचार कर कहिए ॥ ५ ॥

ब्रह्माजी बोले—पार्वती के वचन सुन उग्र तपस्या में निरत प्रसन्नात्मा शंकर हँसते हुए बोले ॥ ६ ॥

महेश्वर बोले—मैं परम तपस्या से ही प्रकृति का नाश करता हूँ और मैं शम्भु बिना प्रकृति के ही नित्य तत्त्वतः स्थित रहता हूँ ॥ ७ ॥ इस कारण अच्छे सज्जनों को प्रकृति का संग्रह नहीं करना चाहिए। और लोकाचार से रहित हो निर्विकार स्थित रहना चाहिए ॥ ८ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात नारद ! जब शिवजी ने लोकाचार से ऐसा कहा तब काली प्रसन्न हृदय हो भगवान् शंकर से मधुर वचन कहने लगी ॥ ९ ॥

काली बोली—हे प्रभो ! हे शंकर ! हे योगिराज ! आपने जो वचन कहा है क्या वह प्रकृति नहीं है, क्या आप प्रकृति से परे हैं ॥ १० ॥ आप ही इसे विचार कर तत्त्वतः यथायोग्य कहिए। यह सारा दृश्य जगत् प्रकृति से निरन्तर बद्ध है ॥ ११ ॥ इस कारण आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए कि मुझे प्रकृति से कोई काम नहीं है, यह सारी रचना तथा सम्पूर्ण वचन भी प्रकृति से ही है, इसे हृदय से विचार कीजिए ॥ १२ ॥ आप जो भी सुनते-खाते तथा देखते और करते हैं यह सब प्रकृति का ही कार्य है, इस प्रकृति को मिथ्या कहना निरर्थक है ॥ १३ ॥ भला आप ही सोचिए कि यदि आप प्रकृति से परे हैं तो हे प्रभो, हे शम्भो, आपको इस हिमालय पर्वत पर एकान्त में तपस्या करने की कौन सी आवश्यकता आ पड़ी ॥ १४ ॥ हे हर ! प्रकृति ने आपके निज स्वरूप को निगीर्ण कर लिया है, जिससे आप निज स्वरूप को नहीं जान पाते। यदि आप को अपने स्वरूप का ज्ञान है तो हे ईश ! आप तपस्या क्यों करते हो ? ॥ १५ ॥ आप योगी हो, आपके साथ वाद-विवाद का मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। किन्तु मुझे इतना अवश्य कहना है कि बुद्धिमान्

इन्द्रियाणां गोचरत्वं यावद् भवति देहिनाम् । तावत् सर्वं विमन्तव्यं प्राकृतं ज्ञानिभिर्धिया ॥१७॥
किं बहूक्तेन योगीश ! श्रृणु मद्वचनं परम् । सा चाऽहं पुरुषोऽसि त्वं सत्यं सत्यं न संशयः ॥१८॥
मदनुग्रहतस्त्वं हि सगुणो रूपवान् मतः । मां विना त्वं निरीहोऽसि न किञ्चित् कर्तुमर्हसि ॥१९॥
पराधीनः सदा त्वं हि नानाकर्मकरो वशी । निर्विकारी कथं त्वं हि न लिप्तश्च मया कथम् ॥२०॥
प्रकृतेः परमोऽसि त्वं यदि सत्यं वचस्तव । तर्हि त्वया न भेतव्यं समीपे मम शङ्कर ! ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः साङ्ख्यशास्त्रोदितं शिवः । वेदान्तमतसंस्थो हि वाक्यमूचे शिवां प्रति ॥२२॥

श्रीशिव उवाच

इत्येवं त्वं यदि ब्रूषे गिरिजे साङ्ख्यधारिणी । प्रत्यहं कुरु मे सेवामनिषिद्धां सुभाषिणि ! ॥२३॥
यद्यहं ब्रह्म निर्लिप्तो मायया परमेश्वरः । वेदान्तवेद्यो मायेशस्त्वं करिष्यसि किं तदा ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवमुक्त्वा गिरिजां वाक्यमूचे गिरिं प्रभुः । भक्तानुरञ्जनकरो भक्तानुग्रहकारकः ॥२५॥

शिव उवाच

अत्रैव सोऽहं तपसा परेण गिरे ! तव प्रस्थवरेऽतिरम्ये ।
चरामि भूमौ परमार्थभाव-स्वरूपमानन्दमयं सुलोचयन् ॥२६॥

तपस्तप्तुमनुज्ञा मे दातव्या पर्वताधिप ! । अनुज्ञया विना किञ्चित्तपः कर्तुं न शक्यते ॥२७॥

लोग प्रत्यक्ष होने पर अनुमान को प्रमाण नहीं मानते ॥१६॥ हे ईश ! यह जितना जो कुछ भी प्राणियों के इन्द्रिय-गोचर हो रहा है, बुद्धिमान् लोग अपनी बुद्धि से उन सभी को प्रकृति का ही कार्य मानते हैं ॥ १७ ॥ हे योगीश ! बहुत कहने से क्या लाभ ? आप मेरा परमार्थ युक्त एक वचन सुनें। मैं वही प्रकृति हूँ और आप वही पुरुष हैं, बस यही बात सत्य है, यही सत्य है, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ १८ ॥ यह तो मेरा अनुग्रह ही है कि आप मेरे कारण सगुण रूपवान् कहे जाते हैं, मेरे बिना आप सर्वथा निरीह हो, और कुछ भी करने में असमर्थ हो ॥ १९ ॥ आप यद्यपि वशी (जितेन्द्रिय) हो फिर भी मैं आप को पराधीन बनाकर नाना प्रकार के कर्म आप से कराती हूँ। अतः आप ही सोचें कि आप किस प्रकार निर्विकारी नहीं हैं और मुझसे किस प्रकार लिप्त नहीं हैं ? ॥ २० ॥ मैं प्रकृति से परे हूँ, यदि यह आपकी बात सत्य है तो हे शंकर ! मेरे समीप रहने से आपको भयभीत नहीं होना चाहिए ॥ २१ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार सांख्यशास्त्र सम्मत पार्वती के वचन सुन शिवजी पार्वती से वेदान्तशास्त्र की बात कहने लगे ॥ २२ ॥

शिवजी बोले—हे गिरिजे ! तुम सांख्यशास्त्र की विदुषी हो, अतः हे सुभाषिणी, तुम मेरी नित्य ही बेरोक-टोक सेवा करो ॥ २३ ॥ यदि मैं माया से निर्लिप्त परमेश्वर ब्रह्म हूँ, वेदान्तवेद्य एवं मायेश हूँ, तब तुम से मुझे कोई भय नहीं है ॥ २४ ॥

ब्रह्माजी बोले—भक्तों पर अनुग्रह करने वाले तथा उनको प्रसन्न करने वाले भगवान् शङ्कर पार्वती से ऐसा कहकर पुनः गिरिराज से बोले—॥ २५ ॥

शिवजी बोले—हे गिरे ! मैं तुम्हारे इस मनोहर शिखर पर अपने आनन्दमय परमार्थ स्वरूप का ध्यान करता हुआ तपस्या में निरत होकर विचरण करूँगा ॥ २६ ॥ हे पर्वतराज ! अब तुम मुझे तप करने की आज्ञा प्रदान करो। क्योंकि तुम्हारी अनुमति के बिना तुम्हारे इस प्रदेश में कोई तप नहीं कर सकता ॥ २७ ॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य देवदेवस्य शूलिनः। प्रणम्य हिमवाञ्छम्भुमिदं वचनमब्रवीत् ॥२८॥

हिमवानुवाच

त्वदीयं हि जगत्सर्वं सदेवाऽसुरमानुषम्। किमप्यहं महादेव! तुच्छो भूत्वा वदामि ते ॥२९॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तो हिमवता शङ्करो लोकशङ्करः। विहस्य गिरिराजं तं प्राह याहीति सादरम् ॥३०॥

शङ्करेणाभ्यनुज्ञातः स्वगृहं हिमवान् ययौ। सार्द्धं गिरिजया वै स प्रत्यहं दर्शने स्थितः ॥३१॥

पित्रा विनापि सा काली सखीभ्यां सह नित्यशः। जगाम शङ्कराभ्याशं सेवायै भक्तितत्परा ॥३२॥

निषिषेध न तां कोऽपि गणो नन्दीश्वरादिकः। महेशशासनात्तात! तच्छासनकरः शुचिः ॥३३॥

साङ्ख्यवेदान्तमतयोः शिवयोः शिवदः सदा। संवादः सुखकृच्चोक्तोऽभिन्नयोः सुविचारतः ॥३४॥

गिरिराजस्य वचनात्तनयां तस्य शङ्करः। पार्श्वे समीपे जग्राह गौरवादपि गोपरः ॥३५॥

उवाचेदं वचः कालीं सखीभ्यां सह गोपतिः। नित्यं मां सेवतां यातु निर्भीता ह्यत्र तिष्ठतु ॥३६॥

एवमुक्त्वा तु तां देवीं सेवायै जगृहे हरः। निर्विकारो महायोगी नानालीलाकरः प्रभुः ॥३७॥

इदमेव महद्धैर्य्यं धीराणां सुतपस्विनाम्। विघ्नवन्त्यपि सम्प्राप्य यद्विघ्नैर्न विहन्यते ॥३८॥

ततः स्वपुरमायातो गिरिराट् परिचारकैः। मुमोदातीव मनसि सप्रियः स मुनीश्वर! ॥३९॥

हरश्च ध्यानयोगेन परमात्मानमादरात्। निर्विघ्नेन स्वमनसा त्वासीच्चिन्तयितुं स्थितः॥४०॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! देवदेव, त्रिशूलधारी शिव के इस वचन को सुनकर हिमालय शिवजी को प्रणाम कर कहने लगे ॥ २८ ॥

हिमालय ने कहा—हे महादेव! देवता, असुर एवं मनुष्यों के सहित यह सारा जगत् आपका ही है, भला मैं तुच्छ व्यक्ति आपसे क्या कहूँ ॥ २९ ॥

ब्रह्माजी बोले—जब हिमालय ने लोककल्याणकारी शङ्कर से ऐसा कहा तब शिवजी ने हँसते हुए हिमालय से कहा, अब आप घर जाइए ॥ ३० ॥ शिवजी के यह वचन सुन हिमालय पार्वती के सहित आनन्द से अपने घर गये और पार्वती को साथ लेकर नित्यप्रति शङ्कर के दर्शन के लिए आने-जाने लगे ॥ ३१ ॥ इधर काली पिता के बिना भी अपने सखियों को साथ लेकर नित्य भक्ति में तत्पर होकर शिव की सेवा के लिए आने-जाने लगी ॥ ३२ ॥ नन्दीश्वर आदि शिव के गण भी पार्वती के आने-जाने में कोई बाधा नहीं करते थे, क्योंकि शिवजी की आज्ञा ही इस प्रकार की थी, तथा वे भी शिव की आज्ञा में पवित्र भाव से स्थित रहते थे ॥ ३३ ॥ सांख्य एवं वेदान्त मत के अनुसार हमने शिवा-शिव का यह सुखकारी संवाद वर्णन किया, वस्तुतः विचार करने से तो दोनों अभिन्न ही हैं ॥ ३४ ॥ इन्द्रियों से अगोचर होकर भी भगवान् शिव ने गिरिराज की प्रतिष्ठा के लिए तथा उनके वचन का आदर करने के कारण पार्वती को अपनी सेवा में रख लिया ॥ ३५ ॥

भगवान् शङ्कर ने सखियों सहित पार्वती से कहा कि तुम नित्य ही मेरी सेवा के लिए आया-जाया करो तथा निर्भय होकर यहाँ स्थित रहो ॥ ३६ ॥ ऐसा कहकर निर्विकार, महायोगी तथा अनेक लीला करने वाले भगवान् शङ्कर ने अपनी सेवा में पार्वती को ग्रहण कर लिया ॥ ३७ ॥ क्योंकि महाधीर तपस्वियों का यही सबसे बड़ा धैर्य है कि विघ्नकारक वस्तुओं को ग्रहण कर भी वे उनसे निर्विघ्न ही निवास करते हैं ॥ ३८ ॥ इधर गिरिराज अपने परिचारकों के साथ अपने स्थान को चले आये और हे मुनीश्वर नारद! अपनी प्रियतमा के साथ परम आह्लाद को प्राप्त हुए ॥ ३९ ॥ इधर भगवान् शङ्कर भी आदर पूर्वक ध्यानयोग का आश्रय ले परमात्मा का चिन्तन करते हुए निर्विघ्न पूर्वक विचरण करने लगे ॥४०॥

कालो सखीभ्यां सहिता प्रत्यहं चन्द्रशेखरम् । सेवमाना महादेवं गमनागमने स्थिता ॥४१॥
प्रक्षाल्य चरणौ शम्भोः पपौ तच्चरणोदकम् । वह्निशौचेन वस्त्रेण चक्रे तद्गात्रमार्जनम् ॥४२॥
षोडशेनोपचारेण सम्पूज्य विधिवद्धरम् । पुनः पुनः सुप्रणम्य ययौ नित्यं पितुर्गृहम् ॥४३॥
एवं संसेवमानायां शङ्करं ध्यानतत्परम् । व्यतीयाय महान् कालः शिवाया मुनिसत्तम ! ॥४४॥
कदाचित्सहिता काली सखीभ्यां शङ्कराश्रमे । वितेने सुन्दरं गानं सुतालं स्मरवर्द्धनम् ॥४५॥
कदाचित् कुशपुष्पाणि समिधं नयति स्वयम् । सखीभ्यां स्थानसंस्कारं कुर्वती न्यवसत्तदा ॥४६॥
कदाचिन्नियता गेहे स्थिता चन्द्रभृतो भृशम् । वीक्षन्ती विस्मयामास सकामा चन्द्रशेखरम् ॥४७॥
ततस्तत्पंन भूतेशस्तां निःसङ्गां परिस्थिताम् । सोऽचिन्तयत्तदा वीक्ष्य भूतदेहे स्थितेति च ॥४८॥
नाग्रहीद् गिरिशः कालीं भार्यार्थे निकटे स्थिताम् । महालावण्यनिचयां मुनीनामपि मोहिनीम् ॥४९॥
महादेवः पुनर्दृष्ट्वा तथा तां संयतेन्द्रियाम् । स्वसेवने रतां नित्यं सदयः समचिन्तयत् ॥५०॥
यदैवैषा तपश्चर्याव्रतं काली करिष्यति । तदा च तां ग्रहीष्यामि गर्वबीजविवर्जिताम् ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

इति सञ्चिन्त्य भूतेशो द्रुतं ध्यानसमाश्रितः । महायोगीश्वरोऽभूद् वै महालीलाकरः प्रभुः ॥५२॥
ध्यानासक्तस्य तस्याथ शिवस्य परमात्मनः । हृदि नासीन्मुने काचिदन्या चिन्ता व्यवस्थिता ॥५३॥
काली त्वनुदिनं शम्भुं सद्भक्त्या समसेवत । विचिन्तयन्ती सततं तस्य रूपं महात्मनः ॥५४॥
हरो ध्यानपरः कालीं नित्यं प्रैक्षत सुस्थितम् । विस्मृत्य पूर्वचिन्तां तां पश्यन्नपि न पश्यति ॥५५॥

काली भी नित्यप्रति घर से आकर शिवजी की सेवा करने लगीं ॥ ४१ ॥ वे शिवजी का चरण पखार कर नित्य उनका चरणोदक ग्रहण करतीं और परम पवित्र अग्नि के समान तेजस्वी गैरिक वर्ण के वस्त्र से उनके शरीर का मार्जन करतीं ॥ ४२ ॥ वे नित्य षोडशोपचार से शिव का विधिपूर्वक पूजन करतीं तथा उन्हें वारम्वार प्रणाम कर फिर अपने घर चली जाती ॥ ४३ ॥

हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार ध्यान में तल्लीन हुए शिव की सेवा करते हुए पार्वती को बहुत समय व्यतीत होने लगा ॥ ४४ ॥ वे कदाचित् अपनी सखियों के साथ शङ्कर के आश्रम में मधुर स्वर से ताल, रागादि युक्त कन्दर्पोद्दीपक गान करने लगतीं ॥ ४५ ॥ कभी कुश, पुष्प तथा समिधाएँ स्वयं ले आतीं, और कभी सखियों के साथ स्थान का सम्माजन करतीं ॥ ४६ ॥ वे कभी नियतकाल पर्यन्त शङ्कर के समीप रहकर सकाम भाव से शङ्कर की ओर देखकर उन्हें विस्मित कर देती थीं ॥ ४७ ॥ तब शङ्कर ने अपनी तपस्या के बल से निःसङ्ग रहने वाली उस काली को पञ्चतत्त्व के शरीर में निवास करने वाली अपनी पूर्वजन्म की भार्या समझ लिया ॥ ४८ ॥ यद्यपि वह मुनियों को मोहित करने वाली महा सुन्दरी नित्य शङ्कर के सन्निकट में ही निवास करती थीं फिर भी शिव ने उसे भार्यारूप से ग्रहण नहीं किया ॥ ४९ ॥ महादेव जी ने जब भगवती को इस प्रकार इन्द्रियसंयम में संलग्न हो अपनी सेवा में नित्य तत्पर देखा तब वे दयापूर्वक विचार करने लगे कि जब यह महाकाली तपस्या के द्वारा अपने गर्व के बीज को नष्ट कर लेगी तब मैं इसे ग्रहण करूँगा ॥ ५०-५१ ॥

ब्रह्माजी बोले—भूतेश्वर भगवान् सदाशिव ऐसा अपने मन में विचार कर पुनः ध्यान में तल्लीन हो गये । कारण कि महालीला करने वाले होकर भी वे महायोगेश्वर हैं ॥ ५२ ॥ हे महामुने ! जिस समय परमात्मा शङ्कर ध्यान में स्थित हो गये, उस समय भी उनके मन में किसी प्रकार की चिन्ता का उदय नहीं हुआ ॥ ५३ ॥ इधर भगवती काली भगवान् शङ्कर के स्वरूप का ध्यान करती हुई सद्भक्ति से उनकी सेवा करने लगीं ॥ ५४ ॥ शिव भी नित्यप्रति ध्यान में तत्पर हो अन्य चिन्ताओं से मन को हटाकर पार्वती की स्थिति जान लेते थे, उस समय वे पार्वती को देखते हुए भी न देखने जैसा स्वरूप बना लेते थे ॥ ५५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे देवाः शक्राद्या मुनयश्च ते । ब्रह्माज्ञया स्मरं तत्र प्रेषयामासुरादरात् ॥५६॥
तेन कारयितुं योगं काल्या रुद्रेण कामतः । महावीर्येणासुरेण तारकेण प्रपीडिताः ॥५७॥
गत्वा तत्र स्मरः सर्वमुपायमकरोन्निजम् । चुक्षुभे न हरः किञ्चित्तं च भस्मीचकार ह ॥५८॥
पार्वत्यपि विगर्वाऽभून्मुले तस्य निदेशतः । ततस्तपो महत्कृत्वा शिवं प्राप पतिं सती ॥५९॥
बभूवतुस्तौ सुप्रीतौ पार्वतीपरमेश्वरौ । चक्रतुर्देवकार्यं हि परोपकरणे रतौ ॥६०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
पार्वतीपरमेश्वरसंवादवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

(तारकासुर की उत्पत्ति-प्रसङ्ग में वज्राङ्ग का जन्म एवं उसे ब्रह्मा द्वारा वरदान की प्राप्ति)

नारद उवाच

विष्णुशिष्य महाशैव सम्यगुक्तं त्वया विधे ! । चरितं परमं ह्येतच्छिवायाश्च शिवस्य च ॥ १ ॥
कस्तारकासुरो ब्रह्मन् येन देवाः प्रपीडिताः । कस्य पुत्रस्य वै ब्रूहि तत्कथां च शिवाश्रयाम् ॥ २ ॥
भस्मीचकार स कथं शङ्करश्च स्मरं वशी । तदपि ब्रूहि सुप्रीत्याऽद्भुतं तच्चरितं विभोः ॥ ३ ॥
कथं शिवा तपोऽत्युग्रं चकार सुखहेतवे । कथं प्राप पतिं शम्भुमादिशक्तिर्जगत्परा ॥ ४ ॥
एतत्सर्वमशेषेण विशेषेण महाबुध ! । ब्रूहि मे श्रद्दधानाय स्वपुत्राय शिवात्मने ॥ ५ ॥

इसी समय ब्रह्मा की आज्ञा से इन्द्रादिक देवगणों ने तथा मुनियों ने आदरपूर्वक वहाँ काम को भेजा ॥५६॥ उसका कारण यह था कि उस समय सभी देवता महाबली तारकासुर के उपद्रव से अत्यन्त दुःखी हो रहे थे । इसलिए वे रुद्र तथा काली का विवाह कराकर उनके पुत्र कार्त्तिकेय से उसका वध कराना चाहते थे ॥ ५७ ॥ वहाँ जाकर कामदेव ने शिव का ध्यान छुड़ाने के लिए सारा पराक्रम दिखाया किन्तु उससे शिवजी क्षुब्ध नहीं हुए, और उन्होंने अपने तीसरे नेत्र से उसे भस्म कर दिया ॥ ५८॥ हे नारद ! पार्वती भी गर्वरहित हो नारद के उपदेश से शान्तभाव से तपस्या करती रहीं फिर तपस्या के प्रभाव से उन्होंने शिव को अपना पति प्राप्त किया ॥ ५९ ॥ इस प्रकार शिव एवं पार्वती एक-दूसरे को प्राप्त कर परम प्रसन्न हुए और दोनों परोपकार में परायण हो देवकार्य को सम्पन्न करने लगे ॥ ६० ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय पार्वतीखण्ड मे
पार्वती-परमेश्वर संवाद वर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥

*

नारदजी बोले—हे व्यासशिष्य ! हे महाशैव ! हे विधे ! आपने यह शिवजी तथा पार्वतीजी का परम पवित्र चरित्र अच्छी तरह वर्णन किया ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह तारकासुर कौन था जिसने देवताओं को पीड़ित किया था । यह किसका पुत्र था, इसकी शिव से सम्बन्ध रखने वाली सारी कथा आप मुझसे कहिए ॥ २ ॥ और हे सर्वव्यापक ब्रह्मदेव ! संयमशील भगवान् शङ्कर ने किस प्रकार कामदेव को भस्म किया । शङ्कर का यह अद्भुत चरित्र भी प्रसन्नता पूर्वक आप वर्णन कीजिए ॥ ३ ॥ आदि शक्ति जगत् से परे भगवती पार्वती ने किस प्रकार का अत्युग्र तप किया और उन्होंने अपने सुख के लिए जिस प्रकार शिवशङ्कर को अपना पति बनाया ॥ ४ ॥ हे सर्वज्ञ ! यह सम्पूर्ण चरित्र आप मुझसे वर्णन कीजिए । मैं आपका पुत्र हूँ तथा मुझे शिव के ऊपर अत्यन्त श्रद्धा है ॥ ५ ॥

ब्रह्मोवाच

पुत्रवर्य महाप्राज्ञ सुरर्षे ! शंसितव्रतः । वच्म्यहं शङ्करं स्मृत्वा सर्वं तच्चरितं शृणु ॥ ६ ॥
प्रथमं तारकस्यैव भवं संशृणु नारद ! । यद्वधार्थं महायत्नः कृतो देवैः शिवाश्रयैः ॥ ७ ॥
मम पुत्रो मरीचिर्यः कश्यपस्तस्य चात्मजः । त्रयोदशमितास्तस्य स्त्रियो दक्षसुताश्च याः ॥ ८ ॥
दितिर्ज्येष्ठा च तत्स्त्री हि सुषुवे सा सुतद्वयम् । हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्ततः ॥ ९ ॥
तौ हतौ विष्णुना दैत्यौ नृसिंहक्रोडरूपतः । सुदुःखदौ ततो देवाः सुखमापुश्च निर्भयाः ॥१०॥
दितिश्च दुःखिताऽऽसीत् सा कश्यपं शरणं गता । पुनः संसेव्य तं भक्त्या गर्भमाधत्त सुव्रता ॥११॥
तद्विज्ञाय महेन्द्रोऽपि लब्धच्छिद्रो महोद्यमी । तद्गर्भं व्यच्छिनत्तत्र प्रविश्य पविना मुहुः ॥१२॥
तद्व्रतस्य प्रभावेण न तद्गर्भो ममार ह । स्वपन्त्या दैवयोगेन सप्त सप्ताऽभवन्सुताः ॥१३॥
देवा आसन् सुतास्ते च नामतो मरुतोऽखिलाः । स्वर्गं ययुस्तदेन्द्रेण देवराजात्मसात्कृताः ॥१४॥
पुनर्दितिः पतिं भेजेऽनुतप्ता निजकर्मतः । चकार सुप्रसन्नं तं मुनिं परमसेवया ॥१५॥

कश्यप उवाच

तपः कुरु शुचिर्भूत्वा ब्रह्मणश्चायुतं समाः । चेद् भविष्यति तत्पूर्वं भविता ते सुतस्तदा ॥१६॥
तथा दित्या कृतं पूर्णं तत्तपःश्रद्धया मुने । ततः पत्युः प्राप्य गर्भं सुषुवे तादृशं सुतम् ॥१७॥
वज्राङ्गनामा सोऽभूद् वै दितिपुत्रोऽमरोपमः । नामतुल्यतनुर्वीरः सुप्रताप्युद्भवाद् बली ॥१८॥
जननीशासनात् सद्यः स सुतो निर्जराधिपम् । बलाद्धृत्वा ददौ दण्डं विविधं निर्जरानपि ॥१९॥

ब्रह्माजी बोले—हे महाप्राज्ञ ! हे सुरर्षे ! हे पुत्रवर्य ! मैं पूर्ण श्रद्धा के साथ शङ्कर का स्मरण कर उनका चरित्र वर्णन करता हूँ । आप सुनो ॥ ६ ॥ हे नारद ! सर्वप्रथम तुम तारकासुर का चरित्र सुनो, जिसके वध के लिए देवताओं ने शिव का आश्रय लेकर बड़ा यत्न किया ॥ ७ ॥ मेरे पुत्र, जो मरीचि नाम से विख्यात हैं, उनके पुत्र कश्यप हुए । उन्हें दक्ष ने अपनी तेरह कन्याएँ प्रदान कीं ॥ ८ ॥ सबसे जेठी उनकी पत्नी का नाम दिति था, उसने हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष नाम के दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ ९ ॥ भगवान् विष्णु ने नृसिंह एवं वराह रूप धारण कर उन दोनों का वध कर दिया । ये दोनों ही देवताओं को महान् दुःख देते थे, अतः अत्यन्त दुःखदायी इन दोनों के मर जाने से देवगण निर्भय हो सुख से रहने लगे ॥ १० ॥ अनन्तर दिति अत्यन्त दुःखी हो कश्यप की शरण गयी । उसने उनकी सेवा कर पुनः गर्भ धारण किया और नियमपूर्वक रहने लगी ॥ ११ ॥ इधर महान् पुरुषार्थी इन्द्र को जब यह समाचार मिला तब वह छिद्रान्वेषण की प्रतीक्षा करता हुआ दिति की सेवा करने लगा । और दिति को अशुचि देखकर यथावसर उसके गर्भ में प्रविष्ट हो अपने वज्र से उस गर्भ के टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥१२॥ किन्तु दिति के नियमाचरण के प्रभाव से जब वे बच्चे गर्भ में नहीं मरे तब वे दैवयोग से सोती हुई उस दिति के गर्भ से उनचास पुत्र होकर बाहर निकले ॥ १३ ॥ वे ही पुत्र मरुत् नाम के देवता हो गये, जो इन्द्र के साथ उन्हें अपना भ्राता मानकर स्वर्ग चले गये ॥ १४ ॥ दिति अपने कर्म से अनुतप्त हो पुनः उनकी सेवा करने लगी, और उसने उन मुनिराज को अपनी सेवा से प्रसन्न कर लिया ॥ १५ ॥

कश्यपजी बोले—हे भद्रे ! यदि तू पवित्र होकर ब्रह्मा के दश सहस्र वर्ष पर्यन्त तपस्या करो तो तेरे गर्भ से पुनः महा पराक्रमी पुत्र का जन्म हो सकता है ॥ १६ ॥ हे मुने ! दिति ने पूर्ण श्रद्धा के साथ उतने वर्ष तक जब तपस्या को पूर्ण कर लिया तब वह अपने पति से गर्भ धारण कर वैसा ही पुत्र उत्पन्न किया ॥ १७ ॥ वह दिति का पुत्र देवताओं के समान महापराक्रमी वज्राङ्ग नाम से प्रसिद्ध हुआ । उसका शरीर नाम के अनुसार ही वज्र के समान अत्यन्त दुर्भेद्य था, वह जन्म से ही महाप्रतापी तथा बलवान् हुआ ॥ १८ ॥ उस पुत्र ने अपनी माता की आज्ञा से बलपूर्वक इन्द्र को पकड़कर दण्ड दिया । इसी प्रकार

दितिः सुखमतीवाप दृष्ट्वा शक्रादिदुर्दशाम् । अमरा अपि शक्राद्या जग्मुर्दुःखं स्वकर्मतः ॥२०॥
तदाऽहं कश्यपेनाशु तत्रागत्य सुसामगीः । देवानत्याजयंस्तस्मात् सदा देवहिते रतः ॥२१॥
देवान्मुक्त्वा स वज्राङ्गस्ततः प्रोवाच सादरम् । शिवभक्तोऽतिशुद्धात्मा निर्विकारः प्रसन्नधीः ॥२२॥

वज्राङ्ग उवाच

इन्द्रो दुष्टः प्रजाघाती मातुर्मे स्वार्थसाधकः । स फलं प्राप्तवानद्य स्वराज्यं हि करोतु सः ॥२३॥
मातुराज्ञावशाद् ब्रह्मन्! कृतमेतन्मयाऽखिलम् । न मे भोगाभिलाषो वै कस्यचित् भुवनस्य हि ॥२४॥
तत्त्वसारं विधे ! ब्रूहि मह्यं वेदविदाम्वर ! । येन स्यां सुसुखी नित्यं निर्विकारः प्रसन्नधीः ॥२५॥
तच्छ्रुत्वाऽहं मुनेऽवोचं सात्त्विको भाव उच्यते । तत्त्वसार इति प्रीत्या सृजाम्येकां वरां स्त्रियम् ॥२६॥
वराङ्गीं नाम तां दत्त्वा तस्मै दितिसुताय वै । अयां स्वधाम सुप्रीतः कश्यपस्तत्पिताऽपि च ॥२७॥
ततो दैत्यः स वज्राङ्गः सात्त्विकं भावमाश्रितः । आसुरं भावमुत्सृज्य निर्वैरः सुखमाप्तवान् ॥२८॥
न बभूव वराङ्ग्या हि हृदि भावोऽथ सात्त्विकः । सकामा स्वपतिं भेजे श्रद्धया विविधं सती ॥२९॥
अथ तत्सेवनादाशु सन्तुष्टोऽभून्महाप्रभुः । स वज्राङ्गः पतिस्तस्या उवाच वचनं तदा ॥३०॥

वज्राङ्ग उवाच

किमिच्छसि प्रिये ! ब्रूहि किं ते मनसि वर्तते । तच्छ्रुत्वानम्य तं प्राह सा पतिं स्वमनोरथम् ॥३१॥

वराङ्ग्युवाच

चेत् प्रसन्नोऽभवस्त्वं वै सुतं मे देहि सत्पते ! । महाबलं त्रिलोकस्य जेतारं हरिदुःखदम् ॥३२॥

अन्य देवताओं को भी निग्रह कर दण्ड दिया ॥ १९ ॥ इस प्रकार इन्द्रादि देवताओं की दुर्दशा देखकर दिति परम प्रसन्न हुई तथा इन्द्रादि देवता अपने-अपने कर्मफल के अनुसार बड़े दुःखी हुए ॥ २० ॥ देवताओं की भलाई करने वाला मैं कश्यप को साथ लेकर वहाँ गया और शान्ति की बात कहकर उस वज्राङ्ग को छुड़ाया ॥ २१ ॥ तब शुद्धात्मा, निर्विकार वह शिवभक्त वज्राङ्ग देवताओं को छोड़ देने के उपरान्त प्रसन्नता से आदरपूर्वक बोला— ॥ २२ ॥

वज्राङ्ग बोला—यह इन्द्र महान् स्वार्थी एवं दुष्ट है, इसने ही मेरी माता के सन्तानों को नष्ट किया था, इसे अपने कर्म का फल मिला, अब वह अपना राज्य पालन करे ।।२३।। हे ब्रह्मन् ! यह सारा कार्य मैंने अपनी माता की आज्ञा से किया है, मुझे इस राज्य से क्या प्रयोजन ? सारे भुवन के भोग की रंचमात्र भी मुझे अभिलाषा नहीं है ।।२४।। हे वेदज्ञों में श्रेष्ठ ब्रह्मदेव ! आप मुझे तत्त्व का सार बताइए, जिससे मैं निर्विकार, प्रसन्न तथा नित्य आनन्द से निवास करूँ ॥ २५ ॥ हे मुने ! यह सुनकर मैंने कहा—हे वज्राङ्ग ! सात्त्विक भाव का नाम ही तत्त्वसार है। तदनन्तर मैंने उस पर प्रसन्न हो सुन्दर स्त्री का निर्माण किया ॥ २६ ॥ उस वराङ्गी नाम वाली स्त्री को मैंने वज्राङ्ग के लिए प्रदान कर प्रसन्नता से कश्यप के साथ अपने स्थान को चला आया ॥ २७ ॥ तब उस दैत्य के वज्राङ्ग में सात्त्विक भाव का उदय हो गया और उसका आसुर भाव जाता रहा । वह सबसे वैररहित हो सुखपूर्वक रहने लगा ॥ २८ ॥ किन्तु वराङ्गी के हृदय में सात्त्विक भाव का उदय नहीं हुआ, वह सकाम भाव से श्रद्धापूर्वक अपने पति की सेवा करने लगी ॥ २९ ॥ उसकी श्रद्धापूर्वक सेवा से उसके पति वज्राङ्ग सन्तुष्ट हो गये और उससे इस प्रकार बोले ॥ ३० ॥

वज्राङ्ग ने कहा—हे प्रिये ! तू क्या चाहती है ? और तेरे मन में क्या विचार है, तू मेरे से बताओ, तब वराङ्गी बड़े विनय के साथ अपना मनोरथ कहने लगी ॥ ३१ ॥

वराङ्गी बोली—हे सत्पते ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मुझे एक ऐसा महाबली पुत्र दो, जो त्रिलोकी को जीतने वाला तथा इन्द्र को दुःख देने वाला हो ॥ ३२ ॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा प्रियावाक्यं विस्मितोऽभूत् स आकुलः। उवाच हृदि स ज्ञानी सात्त्विको वैरवर्जितः॥३३॥
प्रियेच्छति विरोधं वै सुरैर्मे न हि रोचते। किं कुर्यां हि क गच्छेयं कथं नश्येन्न मे पणः॥३४॥
प्रियामनोरथश्चैव पूर्णः स्यात् त्रिजगद्भवेत्। क्लेशयुङ्नितरां भूयो देवाश्च मुनयस्तथा॥३५॥
न पूर्णः स्यात् प्रियाकामस्तदा मे नरको भवेत्। द्विधापि धर्महानिर्वै भवतीत्यनुशुश्रुवान्॥३६॥
वज्राङ्ग इत्थं बभ्राम स मुने धर्मसङ्कटे। बलाबलं द्वयोस्तत्र विचिचिन्त च बुद्धितः॥३७॥
शिवेच्छया स हि मुने वाक्यं मेने स्त्रियो बुधः। तथाऽस्त्विति वचः प्राह प्रियां प्रति स दैत्यराट्॥३८॥
तदर्थमकरोत्तीव्रं तपोऽन्यद् दुष्करं स तु। मां समुद्दिश्य सुप्रीत्या बहुवर्षं जितेन्द्रियः॥३९॥
वरं दातुमगां तस्मै दृष्ट्वाऽहं तत्तपो महत्। वरं ब्रूहि ह्यवोचं तं सुप्रसन्नेन चेतसा॥४०॥
वज्राङ्गस्तु तदा प्रीतं मां दृष्ट्वा खे स्थितं विभुम्। सुप्रणम्य बहु स्तुत्वा वरं वव्रे प्रियाहितम्॥४१॥

वज्राङ्ग उवाच

सुतं देहि स्वमातुर्मे महाहितकरं प्रभो। महाबलं सुप्रतापं सुसमर्थं तपोनिधिम्॥४२॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य च तद्वाक्यं तथाऽस्त्वित्यब्रवं मुने!। अयां स्वधाम तद्दत्त्वा विमनाः संस्मरञ्छिवम्॥४३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे तारकोत्पत्तौ वज्राङ्गोत्पत्तितपोवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

ब्रह्माजी बोले—अपनी प्रिय पत्नी के इस वचन को सुनकर वह वज्राङ्ग व्याकुल हो विस्मय में पड़ गया। वैररहित, महाज्ञानी एवं परम सात्त्विक वह वज्राङ्ग अपनी प्रिया से कहने लगा॥ ३३॥ हे प्रिये! तुम देवताओं से विरोध करना चाहती हो किन्तु मुझे तो देवताओं के साथ विरोध अच्छा नहीं लगता। हाय! मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और कौन ऐसा उपाय करूँ जिससे मेरी प्रतिज्ञा नष्ट न हो॥ ३४॥ यदि प्रिया का मनोरथ पूर्ण करूँ तो सारा त्रैलोक्य कष्ट में पड़ जायेगा तथा देवता एवं मुनि भी विशेष रूप से दुःखी हो जायेंगे॥ ३५॥ किन्तु यदि प्रिया का वचन पूर्ण न हुआ तो मुझे नरक की प्राप्ति होगी, दोनों प्रकार से ही मेरे धर्म की हानि है॥ ३६॥ इस प्रकार धर्मसङ्कट में पड़ा हुआ वह वज्राङ्ग किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो भ्रम में पड़ गया। वह अपनी बुद्धि से दोनों बातों के बलाबल पर विचार करने लगा॥ ३७॥ हे मुने! उस समय शिव की इच्छा के वशीभूत हो उस बुद्धिमान् वज्राङ्ग ने स्त्री की बात मान लेने का विचार किया और अपनी प्रियतमा से बोला, ठीक है ऐसा ही होगा॥ ३८॥ फिर उसने इस निमित्त जितेन्द्रिय हो, मेरे उद्देश्य से बहुत काल पर्यन्त तप किया॥ ३९॥ तब उसका महातप देखकर मैं उसे वर देने के लिए उसके पास गया। और उससे जाकर कहा—हे वज्राङ्ग! तुम्हारी जो इच्छा हो उस वर को मुझसे प्राप्त करो॥ ४०॥ तब वह वज्राङ्ग प्रसन्न हुए मुझ ब्रह्मा को आकाश में स्थित देखकर प्रणाम किया। और नाना प्रकार की स्तुति कर प्रिया का हितकारी वर माँगा॥ ४१॥

वज्राङ्ग बोला– हे भगवन्! आप मुझे इस प्रकार वर दीजिए, जिससे मेरा परम हितकारी महाबली, महाप्रतापी, सर्वसमर्थ एवं महातपस्वी पुत्र हो॥ ४२॥

ब्रह्माजी बोले--हे मुने! इस प्रकार उसका वचन सुनकर मैंने 'तथास्तु' कहा और शिवजी का स्मरण कर अपने विमान से अपने स्थान को चला आया॥ ४३॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय पार्वतीखण्ड के तारकोत्पत्ति प्रसङ्ग में वज्राङ्गतप वर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त॥ १४॥

*

पञ्चदशोऽध्यायः

(तारक के जन्म में उत्पात का दर्शन और तपस्या द्वारा तारक को ब्रह्मा से वर-प्राप्ति)

ब्रह्मोवाच

अथ सा गर्भमाधत्त वराङ्गी तत्पुरादरात् । स ववर्द्धाभ्यन्तरे हि बहुवर्षैः सुतेजसा ॥ १ ॥
ततः सा समये पूर्णे वराङ्गी सुषुवे सुतम् । महाकायं महावीर्यं प्रज्वलन्तं दिशो दश ॥ २ ॥
तदैव च महोत्पाता बभूवुर्दुःखहेतवः । जायमाने सुते तस्मिन् वराङ्ग्याः सुरदुःखदे ॥ ३ ॥
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च सर्वलोकभयङ्कराः । अनर्थसूचकास्तात त्रिविधास्तान् ब्रवीम्यहम् ॥ ४ ॥
सोल्काश्चाशनयः पेतुर्महाशब्दा भयङ्कराः । उदयं चक्रुरुत्कृष्टाः केतवो दुःखदायकाः ॥ ५ ॥
चचाल वसुधा साद्रिर्जज्वलुः सकला दिशः । चुक्षुभुः सरितः सर्वाः सागराश्च विशेषतः ॥ ६ ॥
हूत्कारानीरयन् घोरान् खरस्पर्शो मरुद्ववौ । उन्मूलयन् महावृक्षान् वात्यानीको रजोध्वजः ॥ ७ ॥
सराहोः सूर्यविधवोस्तु मुहुः परिधयोऽभवन् । महाभयस्य विप्रेन्द्र सूचकाः सुखहारकाः ॥ ८ ॥
महीध्रविवरेभ्यश्च निर्घाता भयसूचकाः । रथनिर्हादतुल्याश्च जज्ञिरेऽवसरे ततः ॥ ९ ॥
शृगालोलूकटङ्कारैर्वमन्त्यो मुखतोऽनलम् । अन्तर्ग्रामेषु विकटं प्रणेदुरशिवाः शिवाः ॥ १० ॥
यतस्ततो ग्रामसिंहा उन्नमय्य शिरोधराम् । सङ्गीतवद्रोदनवद्व्यमुञ्चन् विविधान्रवान् ॥ ११ ॥
खार्काररभसा मत्ताः खुरैर्घ्नन्तो रसां खराः । वरूथशस्तदा तात पर्यधावन्नितस्ततः ॥ १२ ॥
खगा उदपतन्नीडाद्रासभत्रस्तमानसाः । क्रोशन्तो व्यग्रचित्ताश्च स्थितमापुर्न कुत्रचित् ॥ १३ ॥
शकृन्मूत्रमकार्षुश्च गोष्ठेऽरण्ये भयाकुलाः । बभ्रमुः स्थितिमापुर्नो पशवस्ताडिता इव ॥ १४ ॥

ब्रह्माजी बोले—तदनन्तर वराङ्गी ने आदरपूर्वक गर्भ धारण किया। वह गर्भ बहुत वर्षों तक अपने तेज से भीतर ही बढ़ता रहा ॥ १ ॥ फिर समय आने पर वराङ्गी ने महा बलवान् एवं विशालकाय वाला एक पुत्र उत्पन्न किया, जो अपने तेज से दशों दिशाओं को देदीप्यमान करता था ॥ २ ॥ जिस समय देवगणों को दुःख देने वाले वराङ्गी के पुत्र का जन्म हुआ उस समय अनिष्टसूचक महान् उत्पात होने लगे ॥ ३ ॥ हे नारद ! उस समय स्वर्ग, भूमि तथा आकाश में जो अनर्थकारी, महाभयङ्कर त्रिविध उत्पात हुए उसका वर्णन मैं करता हूँ, उसे तुम सुनो ॥ ४ ॥

आकाश से महाभयङ्कर शब्द करते हुए उल्कायुक्त वज्रपात होने लगा। जगत् को दुःख देनेवाले अनेक केतु उदय हो गये ॥ ५ ॥ पर्वत के सहित पृथ्वी अपने स्थान से चलायमान हो उठी, सभी दिशाएँ प्रज्वलित हो गयीं, सभी नदियाँ एवं विशेष कर समुद्र में हिलोरे उठने लगे ॥ ६ ॥ वायु सर्प के समान फुफुकार करते हुए तीक्ष्ण एवं रूक्ष स्पर्शयुक्त होकर बहने लगा। धूल उड़ाती एवं वृक्षों को उड़ाती हुई आँधी बड़े वेग से चलने लगी ॥ ७ ॥ सूर्य और चन्द्रमा के ऊपर राहु का उपराग लग गया तथा वे चारों ओर मण्डल परिवेश से घिर उठे। जिससे अनर्थ एवं महाभय के लक्षण प्रगट होने लगे ॥ ८ ॥ इतना ही नहीं, उस समय पर्वतों के विवर से रथ की नेमि के समान घर्घर एवं भयसूचक महान् शब्द होने लगे ॥ ९ ॥ शृगाल एवं उलूक अपने मुख से भयानक टङ्कारयुक्त शब्द करते हुए अग्नि उगलने लगे। और शृगाली गाँवों के भीतर घुसकर अत्यन्त अमङ्गल तथा महाभयानक शब्द करने लगी ॥ १० ॥ कुत्ते जहाँ कहीं भी थे अपनी गर्दन उठाकर सङ्गीत के समान अनेक प्रकार के रुदन करने लगे ॥ ११ ॥ गदहे मदमत्त होकर भयानक शब्द करते हुए अपने खुरों से पृथ्वी को कुरेदने लगे। और झुण्ड-के-झुण्ड इधर-से-उधर दौड़ मचाने लगे ॥ १२ ॥ पक्षियाँ अपने घोंसलों से इधर-उधर उड़ने लगीं। गदहे भयभीत हो गये और व्याकुल होकर भयानक शब्द करने लगे, उन्हें कहीं भी शान्ति नहीं प्राप्त हो रही थी ॥ १३ ॥ पशु-समूह जहाँ-तहाँ मारे हुए के समान अपने गोष्ठ में और अरण्य में भयभीत होकर बारम्बार मलमूत्र करने लगे और

गावोऽत्रसन्नसृग्दोहा बाष्पनेत्रा भयाकुलाः । तोयदा अभवंस्तत्र भयदाः पूयवर्षिणः ॥१५॥
व्यरुदन् प्रतिमास्तत्र देवानामुत्पतिष्णवः । विनाऽनिलं द्रुमाः पेतुर्ग्रहयुद्धं बभूव खे ॥१६॥
इत्यादिका बहूत्पाता जज्ञिरे मुनिसत्तम ! । अज्ञानिनो जनास्तत्र मेनिरे विश्वसंप्लवम् ॥१७॥
अथ प्रजापतिर्नामाऽकरोत्तस्यासुरस्य वै । तारकेति विचार्यैव कश्यपो हि महौजसः ॥१८॥
महावीरः स सहसा व्यञ्जमानात्मपौरुषः । ववृधेत्यश्मसारेण कायेनाद्रिपतिर्यथा ॥१९॥
अथो स तारको दैत्यो महाबलपराक्रमः । तपः कर्तुं जनन्याश्चाज्ञां ययाचे महामनाः ॥२०॥
प्राप्ताज्ञः स महामायी मायिनामपि मोहकः । सर्वदेवजयं कर्तुं तपोऽर्थं मन आदधे ॥२१॥
मधोर्वनमुपागम्य गुर्वाज्ञाप्रतिपालकः । विधिमुद्दिश्य विधिवत्तपस्तेपे सुदारुणम् ॥२२॥
ऊर्ध्वबाहुश्चैकपादो रविं पश्यन् स चक्षुषा । शतवर्षं तपश्चक्रे दृढचित्तो दृढव्रतः ॥२३॥
अङ्गुष्ठेन भुवं स्पृष्ट्वा शतवर्षं च तादृशः । तेपे तपो दृढात्मा स तारकोऽसुरराट् प्रभुः ॥२४॥
शतवर्षं जलं प्राश्नञ्छतवर्षं च वाग्भुक् । शतवर्षं जले तिष्ठञ्छतं च स्थण्डिलेऽतपत् ॥२५॥
शतवर्षं तथा चाऽग्नौ शतवर्षमधोमुखः । शतवर्षं तु हस्तस्य तलेन च भुवं स्थितः ॥२६॥
शतवर्षं तु वृक्षस्य शाखामालम्ब्य वै मुने । पादाभ्यां शुचि धूमं हि पिबंश्चाधोमुखस्तथा ॥२७॥
एवं कष्टतरं तेपे सुतपः स सु दैत्यराट् । काममुद्दिश्य विधिवच्छृण्वतामपि दुःसहम् ॥२८॥
तत्रैवं तपतस्तस्य महत्तेजो विनिःसृतम् । शिरसः सर्वसंसर्पि महोपद्रवकृन्मुने ॥२९॥

वे इधर से उधर भागने लगे, कहीं एक जगह स्थिर न रह सके ॥ १४ ॥ गायें भयभीत हो उठीं, उनके स्तनों से रुधिर निकलने लगे, उनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी, और वे व्याकुल हो उठीं । मेघ भी भय उत्पन्न करते हुए पीब की वर्षा करने लगे ॥ १५ ॥ देवताओं की प्रतिमाएँ रोने लगीं, अपने स्थान से हटने लगीं । विना वायु के ही वृक्ष धराशायी होने लगे और आकाश-मण्डल में ग्रह-युद्ध होने लगे ॥ १६ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार अनेक उत्पात प्रगट होने लगे, अज्ञानियों को तो ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो प्रलयकाल हो जायेगा ॥ १७ ॥ तदनन्तर प्रजापति ने बहुत विचार कर महातेजस्वी उस वज्राङ्ग के आत्मज का नाम तारक रखा ॥ १८ ॥ वह महावीर सहसा अपने पौरुष को प्रगट करता हुआ वज्र के समान दृढ़तर अङ्गों से पर्वतराज के समान बढ़ने लगा ॥ १९ ॥ फिर बड़ा होने पर उस महाबली, महापराक्रमी एवं महामनस्वी उस तारक नामक दैत्य ने तपस्या करने के लिए अपनी माता से आज्ञा माँगी ॥ २० ॥ बड़े-बड़े मायावियों को भी मोहित करने वाले उस महामायावी दैत्य ने अपनी माता की आज्ञा लेकर सभी देवताओं को जीतने के संकल्प से तपस्या में अपना मन लगाया ॥ २१ ॥ गुरु की आज्ञा पालन करने वाले उस दैत्य ने मधुवन में जाकर ब्रह्मदेव को प्रसन्न करने के लिए विधिवत् घोर तपस्या करने लगा ॥ २२ ॥ वह दृढ़व्रत दैत्य अपने चित्त को स्थिर कर दृढ़ता से अपने नेत्रों के द्वारा सूर्य को देखता हुआ अपनी भुजा ऊपर उठाये हुए एक पैर से सौ वर्ष पर्यन्त तपस्या करता रहा ॥ २३ ॥ फिर एक पैर के एक अँगूठे से खड़ा होकर उसी प्रकार सौ वर्ष पर्यन्त तप किया । इस प्रकार वह असुरराज बड़ी दृढ़ता के साथ तपस्या करने लगा ॥ २४ ॥ सौ वर्ष तक जल पीकर अनन्तर सौ वर्ष तक केवल वायु पीकर, सौ वर्ष तक जल में खड़ा रहकर और सौ वर्ष तक स्थण्डिल पर रहकर तपस्या करने लगा ॥२५॥ सौ वर्ष तक अग्नि के मध्य में, सौ वर्ष तक नीचे मुख किये, सौ वर्ष तक हाथ के तलवे के बल पर पृथ्वी में स्थित होकर तपस्या करने लगा ॥ २६ ॥ और हे मुने नारद ! सौ वर्ष तक वृक्ष की शाखा में दोनों पैरों को ऊपर बाँधकर नीचे की ओर मुख किये, पवित्र धूम का कण पीकर तपस्या करता रहा ॥ २७ ॥ इस प्रकार सुननेवालों को भी सर्वथा असम्भव एवं दुस्सह जान पड़ने वाला महाकठिन तप उस दैत्यराज ने किया ॥ २८ ॥ हे मुने नारद ! तप करते-करते उस दैत्यराज के शिर से चतुर्दिक् फैलनेवाला एक

तेनैव देवलोकास्ते दग्धप्राया बभूविरे । अभितो दुःखमापन्नाः सर्वे देवर्षयो मुने ! ॥३०॥
इन्द्रश्च भयमापेदेऽधिकं देवेश्वरस्तदा । तपस्यत्यद्य कश्चिद् वै मत्पदं धर्षयिष्यति ॥३१॥
अकाण्डे चैव ब्रह्माण्डं संहरिष्यत्ययं प्रभुः । इति संशयमापन्ना निश्चयं नोपलेभिरे ॥३२॥
ततः सर्वे सुसम्मन्त्र्य मिथस्ते निर्जरर्षयः । मल्लोकमगमन्भीता दीना मां समुपस्थिताः ॥३३॥
मां प्रणम्य सुसंस्तूय सर्वे ते क्लिष्टचेतसः । कृतस्वञ्जलयो मह्यं वृत्तं सर्वं न्यवेदयन् ॥३४॥
अहं सर्वं सुनिश्चित्य कारणं तस्य सद्धिया । वरं दातुं गतस्तत्र यत्र तप्यति सोऽसुरः ॥३५॥
अवोचं वचनं तं वै वरं ब्रूहीत्यहं मुने ! । तपस्तप्तं त्वया तीव्रं नादेयं विद्यते तव ॥३६॥
इत्येवं मद्वचः श्रुत्वा तारकः स महासुरः । मां प्रणम्य सुसंस्तूय वरं वव्रेऽतिदारुणम् ॥३७॥

तारक उवाच

त्वयि प्रसन्ने वरदे किमसाध्यं भवेन्मम । अतो याचे वरं त्वत्तः शृणु तन्मे पितामह ! ॥३८॥
यदि प्रसन्नो देवेश ! यदि देयो वरो मम । देयं वरद्वयं मह्यं कृपां कृत्वा ममोपरि ॥३९॥
त्वया च निर्मिते लोके सकलेऽस्मिन् महाप्रभो ! । मत्तुल्यो बलवान् नूनं न भवेत् कोऽपि वै पुमान् ॥४०॥
शिववीर्यसमुत्पन्नः पुत्रः सेनापतिर्यदा । भूत्वा शस्त्रं क्षिपेन्मह्यं तदा मे मरणं भवेत् ॥४१॥
इत्युक्तोऽथ तदा तेन दैत्येनाऽहं मुनीश्वर ! । वरं च तादृशं दत्त्वा स्वलोकमगमं द्रुतम् ॥४२॥
दैत्योऽपि स वरं लब्ध्वा मनसेप्सितमुत्तमम् । सुप्रसन्नतरो भूत्वा शोणिताख्यपुरं गतः ॥४३॥
अभिषिक्तस्तदा राज्ये त्रैलोक्यस्यासुरैः सह । शुक्रेण दैत्यगुरुणाऽऽज्ञया मे स महासुरः ॥४४॥

महातेज निकला, जो महान् उपद्रव का सूचक था ॥ २९ ॥ उस तेज से देवलोक प्रायः दग्ध से होने लगे, जिससे समस्त देवता तथा ऋषिगण बड़े दुःखी हुए ॥ ३० ॥ उस समय देवेन्द्र इन्द्र सबसे दुःखी हुए। उन्होंने विचार किया कि निश्चय ही इस समय कोई ऐसा तपस्वी तप कर रहा है, जो मेरे पद को भी छीन लेगा ॥ ३१ ॥ अथवा ज्ञात होता है कि ईश्वर असमय में ही प्रलय करना चाहते हैं। देवगण इस प्रकार का सन्देह कर कुछ भी निश्चय न कर सके ॥ ३२ ॥

तदनन्तर सभी देव एवं ऋषिगण परस्पर एकत्रित हो विचार-विनयपूर्वक भयभीत एवं दीन होकर मेरे स्थान पर आये ॥ ३३ ॥ उन लोगों ने प्रणाम कर मेरी स्तुति की, पुनः व्यग्रचित्त हो हाथ जोड़कर सारा वृत्तान्त मुझसे निवेदन किया ॥ ३४ ॥ मैंने भी अपनी बुद्धि से उनकी व्यग्रता का सारा कारण जान लिया। और जिस स्थान पर वह असुर तप कर रहा था, उस स्थान पर उसे वर देने के लिए गया ॥ ३५ ॥ वहाँ जाकर मैंने उससे कहा कि, हे दैत्य ! तुमने बहुत बड़ी तपस्या की है, अतः वर माँगो, मुझे कोई भी वस्तु तुम्हारे लिए अदेय नहीं है ॥ ३६ ॥ तब उस महान् तारक असुर ने मेरा वचन सुनकर और मेरी स्तुति कर अत्यन्त कठिन वर माँगा ॥ ३७ ॥

तारक ने कहा—हे पितामह ! जब समस्त वर के देनेवाले आप यहाँ आ गये हैं, तब मेरे लिए कोई भी वस्तु असाध्य नहीं है, अतः मैं जो वर आपसे माँगता हूँ, उसे सुनिए ॥ ३८ ॥ हे देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो मेरे ऊपर कृपा करके जो मैं माँगता हूँ उसे दीजिए ॥ ३९ ॥ हे भगवन् ! प्रथम वर तो यह दीजिए कि आपके बनाये हुए समस्त लोक में मेरे समान कोई बलवान् न हो ॥ ४० ॥ दूसरा वरदान दीजिए कि, शिव के वीर्य से उत्पन्न हुआ पुत्र देवताओं का सेनापति बनकर जब मेरे ऊपर शस्त्र छोड़े तब मेरा मरण होवे ॥ ४१ ॥ हे मुनीश्वर नारद ! जब उस दैत्य ने मुझसे ऐसा कहा तब मैं भी उसे उसी प्रकार का वर देकर अपने स्थान को चला आया ॥ ४२ ॥ हे दैत्येश्वर अपना मनोवाञ्छित वर प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न हो शोणितपुर को चला गया ॥ ४३ ॥ तदनन्तर दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने मेरी आज्ञा से असुरों के साथ जाकर त्रैलोक्याधिपति के पद पर उसका अभिषेक किया ॥४४॥

ततस्तु स महादैत्योऽभवत् त्रैलोक्यनायकः। स्वाज्ञां प्रवर्तयामास पीडयन् सचराऽचरम् ॥४५॥
राज्यं चकार विधिवत् त्रिलोकस्य स तारकः। प्रजाश्च पालयामास पीडयन् निर्जरादिकान् ॥४६॥
ततः स तारको दैत्यस्तेषां रत्नान्युपाददे। इन्द्रादिलोकपालानां स्वतो दत्तानि तद्भयात् ॥४७॥
इन्द्रेणैरावतस्तस्य भयात्तस्मै समर्पितः। कुबेरेण तदा दत्ता निधयस्ते नवसङ्ख्यका ॥४८॥
वरुणेन हयाः शुभ्रा ऋषिभिः कामकृत्तथा। सूर्येणोच्चैःश्रवा दिव्यो भयात्तस्मै समर्पितः ॥४९॥
यत्र यत्र शुभं वस्तु दृष्टं तेनाऽसुरेण हि। तत्तद् गृहीतं तरसा निःसारस्त्रिभवोऽभवत् ॥५०॥
समुद्राश्च तथा रत्नान्यदुस्तस्मै भयान्मुने। अकृष्टपच्याऽऽसीत् पृथ्वी प्रजाः कामदुघाऽखिलाः ॥५१॥
सूर्यश्च तपते तद्वत्तद् दुःखं न यथा भवेत्। चन्द्रस्तु प्रभया दृश्यो वायुः सर्वानुकूल्यवान् ॥५२॥
देवानां चैव यद् द्रव्यं पितॄणां च परस्य च। तत्सर्वं समुपादत्तमसुरेण दुरात्मना ॥५३॥
वशीकृत्य स लोकांस्त्रीन् स्वयमिन्द्रो बभूव ह। अद्वितीयः प्रभुश्चासीद्राज्यं चक्रेऽद्भुतं वशी ॥५४॥
निःसार्य सकलान् देवान् दैत्यानस्थापयत्ततः। स्वयं नियोजयामास देवयोनिः स्वकर्मणि ॥५५॥
अथ तद्बाधिता देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः। मुने! मां शरणं जग्मुरनाथा अतिविह्वलाः ॥५६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
तारकासुरतपोराज्यवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

तब वह महादैत्य त्रिलोकीनायक हो गया, और चराचर को पीड़ित कर अपनी आज्ञा चलाने लगा ॥४५॥ इस प्रकार वह तारकासुर विधिपूर्वक त्रिलोकी का राज्य करने लगा। और समस्त देववर्ग को पीड़ा पहुँचाता हुआ प्रजा का पालन करने लगा ॥ ४६ ॥ उसने इन्द्रादि लोकपालों के पास जितने भी रत्न थे उसे ग्रहण कर लिया, और कुछ रत्न तो भयभीत हो देवताओं ने उसे स्वयं दे दिये ॥४७॥ इन्द्र ने भयभीत होकर उसे अपना ऐरावत तथा कुबेर ने नवनिधि, वरुण ने श्वेतवर्ण के घोड़े, ऋषियों ने कामधेनु और सूर्य ने भयभीत होकर अपना उच्चैःश्रवा घोड़ा उसे समर्पित कर दिया ॥ ४८-४९ ॥ इतना ही नहीं, उस असुर ने जिन लोगों के पास जो-जो उत्तम वस्तु देखी उन-उन वस्तुओं को हठात् उनसे ले लिया। इस प्रकार त्रिलोकी सर्वथा निःसार हो गया ॥ ५० ॥

हे मुने! समुद्र ने भी भयभीत होकर उसे समस्त रत्न प्रदान किया। उसके शासन से भयभीत हुई पृथ्वी बिना जोते ही अन्न प्रदान करने लगी, और प्रजागण अपनी-अपनी कामना के अनुसार समस्त वस्तु प्राप्त करने लगे ॥५१॥ उसके शासन से भयभीत हुए सूर्य उतना ही तपते जिससे किसी को कोई कष्ट न हो। चन्द्रमा सदैव उजाला करता रहा, और वायु निरन्तर सबके अनुकूल ही चलता ॥ ५२ ॥ उस दुरात्मा असुर ने देवता तथा पितरों के उद्देश्य से दिये जानेवाले सारे हव्य एवं कव्य अपने वश में कर लिया ॥५३॥ इस प्रकार वह तीनों लोकों को वश में कर स्वयं इन्द्र बन बैठा। वह संयमशील तारकासुर पृथ्वी में अद्वितीय राजा हुआ और अद्भुत प्रकार से राज्य सञ्चालन करने लगा ॥ ५४ ॥ उसने समस्त देवताओं को उनके अधिकारों से वञ्चित कर दिया और उनके स्थानों पर दैत्यों को नियुक्त किया। और उन देवताओं को असुर कर्म में नियुक्त कर दिया ॥ ५५ ॥ तब हे मुने! तारकासुर से पीड़ित हुए समस्त इन्द्रादि देवगण अत्यन्त व्याकुल होकर मेरी शरण आये ॥ ५६ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में
तारकासुर का तप एवं राज्यवर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥

*

षोडशोऽध्यायः

(तारकासुर से पीड़ित देवताओं का ब्रह्मा से दुःख निवेदन एवं ब्रह्मा का उन्हें उपदेश)

ब्रह्मोवाच

अथ ते निर्जराः सर्वे सुप्रणम्य प्रजेश्वरम् । तुष्टुवुः परया भक्त्या तारकेण प्रपीडिताः ॥ १ ॥
अहं श्रुत्वाऽमरनुतिं यथार्थां हृदयङ्गमाम् । सुप्रसन्नतरो भूत्वा प्रत्यवोचं दिवौकसः ॥ २ ॥
स्वागतं स्वाधिकारा वै निर्विघ्नाः सन्ति वः सुराः । किमर्थमागता यूयमत्र सर्वे वदन्तु मे ॥ ३ ॥
इति श्रुत्वा वचो मे ते नत्वा सर्वे दिवौकसः । मामूचुर्नतका दीनास्तारकेण प्रपीडिताः ॥ ४ ॥

देवा ऊचुः

लोकेश ! तारको दैत्यो वरेण तव दर्पितः । निरस्यास्मान् हठात् स्थानान्यग्रहीन्नो बलात् स्वयम् ॥ ५ ॥
भवतः किमु न ज्ञातं दुःखं यन्न उपस्थितम् । तद् दुःखं नाशय क्षिप्रं वयं ते शरणं गताः ॥ ६ ॥
अहर्निशं बाधतेऽस्मान् यत्र तत्रास्थितान् स वै । पलायमानाः पश्यामो यत्र तत्रापि तारकम् ॥ ७ ॥
तारकान्नश्च यद् दुःखं सम्भूतं सकलेश्वर ! । तेन सर्वे वयं तात पीडिता विकला अति ॥ ८ ॥
अग्निर्यमोऽथ वरुणो निर्ऋतिर्वायुरेव च । अन्ये दिक्पतयश्चापि सर्वे तद्वशगामिनः ॥ ९ ॥
सर्वे मनुष्यधर्माणः सर्वैः परिकरैर्युताः । सेवन्ते तं महादैत्यं न स्वतन्त्राः कदाचन ॥१०॥
एवं तेनार्दिता देवा वशगास्तस्य सर्वदा । तदिच्छाकार्यनिरताः सर्वे तस्यानुजीविनः ॥११॥
यावत्यो वनिताः सर्वा ये चाप्यप्सरसां गणाः । सर्वांस्तानग्रहीद् दैत्यस्तारकोऽसौ महाबली ॥१२॥
न यज्ञाः संप्रवर्तन्ते न तपस्यन्ति तापसाः । दानधर्मादिकं किञ्चिन्न लोकेषु प्रवर्त्तते ॥१३॥
तस्य सेनापतिः क्रौञ्चो महापाप्यस्ति दानवः । स पातालतलं गत्वा बाधते त्वनिशं प्रजाः ॥१४॥

ब्रह्माजी बोले—तारकासुर से पीड़ित हुए देवगण मुझ प्रजापति को प्रणाम कर भक्ति के उद्रेक से स्तुति करने लने ॥ १ ॥ देवताओं की यथार्थ एवं हृदयग्राही सरस स्तुति सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हो मैंने उनसे कहा ॥ २ ॥ हे देवगणो ! तुम्हारा स्वागत है, तुम्हारा अधिकार निर्विघ्न तो है ? तुम सब यहाँ किस निमित्त आये हो सो सब मुझसे कहो ॥ ३ ॥ मेरी बात सुन तारकासुर से पीड़ित हुए देवगण मुझे प्रणाम कर बड़े विनय के साथ विनम्र हो दीनता से मुझसे कहने लगे ॥ ४ ॥

देवगण बोले—हे लोकेश ! आपके वरदान से उद्धत होकर यह तारक नाम का असुर हम लोगों को अपने-अपने अधिकारों से वञ्चित कर उसे स्वयं ग्रहण कर लिया है ॥ ५ ॥ हम लोगों को जैसा दुःख उपस्थित है क्या आप उसे नहीं जानते ? हम लोग आपकी शरण आये हैं कृपाकर उस दुःख का विनाश कीजिए ॥ ६ ॥ हम लोग उससे भयभीत होकर जहाँ-कहीं भी जाते हैं वहीं वह हम लोगों को रात-दिन पीड़ा पहुँचाता रहता है । हम जहाँ कहीं भी भागकर जाते हैं वहीं तारकासुर हमारे पीछे लगा रहता है ॥ ७ ॥ हे सर्वेश्वर ! हम लोगों को तारकासुर से जैसा भय उपस्थित हो गया है वह दुःख हमसे सहा नहीं जाता । हम लोग उस पीड़ा से अत्यन्त व्याकुल हैं ॥ ८ ॥ उसने अग्नि, यम, वरुण, निर्ऋति, वायु एवं अन्य समस्त दिक्पालों को अपने वश में कर लिया है ॥ ९ ॥ हम सब अपने परिकरों सहित मनुष्य के समान पृथ्वी पर निवास करते हैं, और उसकी सेवा करते हैं । तथा सर्वथा उसके पराधीन हैं ॥ १० ॥

इस प्रकार उससे पीड़ित हुए हम सभी देवता उसके वशवर्त्ती हो गये हैं, और उसकी इच्छा के अनुसार कार्य करते हैं तथा उसके अनुजीवी हैं ॥ ११ ॥ उस महाबली तारक ने जितनी सुन्दरी स्त्रियाँ तथा जितनी अप्सराएँ हैं सबको ग्रहण कर लिया है ॥ १२ ॥ उसके राज्य में कहीं भी यज्ञ-यागादिक कार्य सम्पन्न नहीं होते, तपस्वी लोग भय से तपस्या भी नहीं कर पाते । हे लोकेश ! बहुत क्या कहें, लोक में उसके भय से कोई दान-धर्मादिक कार्य भी नहीं हो पाते ॥ १३ ॥ उसका सेनापति क्रौञ्च नामक दानव

तेन नस्तारकेणेदं सकलं भुवनत्रयम् । हृतं हठाज्जगद्धातः पापेनाकरुणात्मना ॥१५॥
वयं च तत्र यास्यामो यत्स्थानं त्वं विनिर्दिशेः । स्वस्थास्तद्वारितास्तेन लोकनाथ ! सुरारिणा॥१६॥
त्वं नो गतिश्च शास्ता च धाता त्राता त्वमेव हि । वयं सर्वे तारकाख्यवह्नौ दग्धाः सुविह्वलाः ॥१७॥
तेन क्रूरा उपाया नः सर्वे हतबलाः कृताः । विकारे सान्निपाते वा वीर्यवन्त्यौषधानि च ॥१८॥
यत्राऽस्माकं जयाशा हि हरिचक्रे सुदर्शने । उत्कुण्ठितमभूत्तस्य कण्ठे पुष्पमिवार्पितम् ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा निर्जराणामहं मुने ! । प्रत्यवोचं सुरान् सर्वांस्तत्कालसदृशं वचः ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

ममैव वचसा दैत्यस्तारकाख्यः समेधितः । न मत्तस्तस्य हननं युज्यते हि दिवौकसः ॥२१॥
ततो नैव वधो योग्यो यतो वृद्धिमुपागतः । विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम् ॥२२॥
युष्माकं चाऽखिलं कार्यं कर्तुं योग्यो हि शङ्करः । किन्तु स्वयं न शक्तो हि प्रतिकर्तुं प्रचोदितः ॥२३॥
तारकाख्यस्तु पापेन स्वयमेष्यति संक्षयम् । यथा यूयं संविदध्वमुपदेशकरस्त्वहम् ॥२४॥
न मया तारको वध्यो हरिणाऽपि हरेण च । नान्येनापि सुरैर्वाऽपि मद्वरात् सत्यमुच्यते ॥२५॥
शिववीर्यसमुत्पन्नो यदि स्यात्तनयः सुराः । स एव तारकाख्यस्य हन्ता दैत्यस्य नापरः ॥२६॥
यमुपायमहं वच्मि तं कुरुध्वं सुरोत्तमाः । महादेवप्रसादेन सिद्धिमेष्यति स ध्रुवम् ॥२७॥
सती दाक्षायिणी पूर्वं त्यक्तदेहा तु याऽभवत् । सोत्पन्ना मेनकागर्भात् सा कथा विदिता हि वः॥२८॥

तो अत्यन्त पापी है, वह पाताल पर्यन्त जा-जाकर प्रजाओं को पीड़ित करता है ॥ १४॥ हे जगद्धाता ! उस निष्करुण पापी ने सारा त्रिकोक को हठात् अपने वश में कर लिया है ॥ १५ ॥ अब आप ही हम लोगों को कोई ऐसा स्थान बताइए जहाँ हम लोग जाकर निरुपद्रव हो निवास करें। हे लोकनाथ ! उस देवशत्रु ने हम लोगों को अपने-अपने स्थानों से हटा दिया है ॥ १६ ॥ अब आप ही हमारे शरण देने वाले, शासक, पोषक तथा रक्षक हैं। इस समय हम लोग तारक नामक उस महान् अग्नि से दग्ध हो व्याकुल हो रहे हैं ॥ १७ ॥ उसने हम लोगों के द्वारा किये गये नाना प्रकार के क्रूर उपायों को भी निष्फल कर दिया है। जिस प्रकार सन्निपात में बलवान् से भी बलवान् औषधियाँ निष्फल हो जाती हैं ॥ १८ ॥ नारायण के जिस सुदर्शन नामक चक्र में हमारी विजय की आशा थी वह भी उसके कण्ठ में पुष्प के समान लगकर कुण्ठित हो गयी है ॥ १९ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिराज ! देवताओं के इस प्रकार के वचन सुनकर तत्कालोचित वचन मैंने उनसे कहा ॥ २० ॥

पुनः ब्रह्माजी ने कहा—हे देवगणो ! मेरे वरदान के कारण ही वह तारक नाम का दैत्य इतना तप रहा है। अतः मेरे द्वारा उसका वध उचित नही है ॥ २१ ॥ क्योंकि जिससे जो बढ़ाया जावे उसी से उसका वध उचित नहीं होता। विषवृक्ष भी स्वयं लगाकर उसको स्वयं काटना अनुचित है ॥ २२ ॥ हे देवगणो ! तुम्हारा समस्त कार्य करने में यद्यपि भगवान् शङ्कर सर्वथा समर्थ हैं, किन्तु वे स्वयं अपनी इच्छा से कुछ न करेंगे, प्रेरणा करने पर वे इसका प्रतीकार अवश्य करेंगे ॥ २३ ॥ वह तारकासुर स्वयं अपने पाप से विनष्ट होगा, किन्तु जिस प्रकार मैं उपदेश करता हूँ वह कार्य तुम लोग उसी प्रकार करो ॥ २४ ॥ मैं विष्णु, इन्द्र अथवा अन्य कोई देवगण उस तारक का वध नहीं कर सकते, क्योंकि उसे मैंने वरदान दिया है, यह बात मैं सत्य कहता हूँ ॥ २५ ॥ हे देवताओ ! यदि शिव के वीर्य से कोई पुत्र उत्पन्न हो, तो वही तारक का वध करने में समर्थ हो सकता है, दूसरा नहीं ॥ २६ ॥ इसलिए हे देवताओ ! मैं जो उपाय आप लोगों को बताता हूँ, उस उपाय को अविलम्ब करो, वह उपाय महादेव के प्रसन्न होने पर ही सिद्ध हो सकता है ॥ २७ ॥ आप लोग इस

तस्या अवश्यं गिरिशः करिष्यति करग्रहम् । तत्कुरुध्वमुपायं च तथापि त्रिदिवौकसः ॥२९॥
तथा विदध्व सुतरां तस्यां तु वरियत्नतः । पार्वत्यां मेनकाजायां रेतःप्रतिनिपातने ॥३०॥
तमूर्द्ध्वरेतसं शम्भुं सैव प्रच्युतरेतसम् । कर्तुं समर्था नान्याऽस्ति तथा काप्यबला बलात् ॥३१॥
सा सुता गिरिराजस्य॰ साम्प्रतं प्रौढयौवना । तपस्यन्तं हिमगिरौ नित्यं संसेवते हरम् ॥३२॥
वाक्याद्धिमवतः कालीं स्वपितुर्हठतः शिवा । सखीभ्यां सेवते सार्द्धं ध्यानस्थं परमेश्वरम् ॥३३॥
तामग्रतोऽर्चमानां वै त्रैलोक्ये वरवर्णिनीम् । ध्यानासक्तो महेशो हि मनसापि न हीयते ॥३४॥
भार्यां समीहेत यथा स कालीं चन्द्रशेखरः । तथा विदध्वं त्रिदशा न चिरादेव यत्नतः ॥३५॥
स्थानं गत्वाऽथ दैत्यस्य तमहं तारकं ततः । निवारयिष्ये कुहठात् स्वस्थानं गच्छतामराः ॥३६॥
इत्युक्त्वाऽहं सुरान् शीघ्रं तारकाख्यासुरस्य वै । उपसङ्गम्य सुप्रीत्या समाभाष्येदमब्रवम् ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

तेजःसारमिदं स्वर्गं राज्यं त्वं परिपासि नः । यदर्थं सुतपस्तप्तं वाञ्छसि त्वं ततोऽधिकम् ॥३८॥
वरश्चाप्यवरो दत्तो न मया स्वर्गराज्यता । तस्मात् स्वर्गं परित्यज्य क्षितौ राज्यं समाचर ॥३९॥
देवयोग्यानि तत्रैव कार्याणि निखिलान्यपि । भविष्यन्त्यसुरश्रेष्ठ! नाऽत्र कार्या विचारणा ॥४०॥
इत्युक्त्वाऽहं च सम्बोध्याऽसुरं तं सकलेश्वरः । स्मृत्वा शिवं च सशिवं तत्रान्तर्धानमागतः ॥४१॥
तारकोऽपि परित्यज्य स्वर्गं क्षितिमथाभ्यगात् । शोणिताख्यपुरे स्थित्वा सर्वराज्यं चकार सः ॥४२॥
देवाः सर्वेऽपि तच्छ्रुत्वा मद्वाक्यं सुप्रणम्य माम् । शक्रस्थानं ययुः प्रीत्या शक्रेण सुसमाहिताः ॥४३॥

बात को जानते हैं कि दक्षपुत्री सती, जिसने पहले अपने शरीर का त्याग किया था वही इस समय मेनका के गर्भ से उत्पन्न हुई है ॥ २८ ॥ हे देवगणो ! यदि तुम लोग उपाय करो, तो शिवजी उससे अवश्य विवाह करेंगे ॥ २९ ॥ हे देवताओ ! अब आपलोग ऐसा प्रयत्न करो कि जिस प्रकार मेनका-पुत्री पार्वती से शिवजी विवाह कर उसमें गर्भाधान करें ॥ ३० ॥

इस जगत् में पार्वती को छोड़कर अन्य कोई दूसरी स्त्री नहीं है, जो ऊर्ध्वरेता भगवान् शङ्कर को अपनी ओर आकृष्ट कर उनका वीर्य स्खलित करा सके ॥ ३१ ॥ वह गिरिराजपुत्री भी इस समय प्रौढ़ हो युवावस्था को प्राप्त हो गयी है, और अपने पिता की आज्ञा से हिमालय पर तपस्या करते हुए समाधिस्थ शङ्कर की सखियों के साथ नित्य हठपूर्वक सेवा करती है ॥ ३२-३३ ॥ यद्यपि वह त्रैलोक्य-सुन्दरी पार्वती शङ्कर के आगे स्थित होकर नित्य उनकी सेवा तथा पूजा करती है, किन्तु ध्यानमग्न शङ्करजी उससे तनिक भी मन से विचलित नहीं होते ॥ ३४ ॥ वे चन्द्रशेखर जिस प्रकार काली को भार्या रूप में स्वीकार करें हे देवताओ ! तुम लोग शीघ्र वैसा प्रयत्न करो ॥ ३५ ॥ हे देवताओ ! मैं भी उस तारक के समीप जाकर उसे इस प्रकार के दुराचार से रोकता हूँ, अब आप लोग अपने-अपने स्थानों को जाइए ॥ ३६ ॥ देवताओं से इस प्रकार कहकर मैं तारकासुर के पास गया और प्रेम से सम्भाषण कर उसे समझाने लगा ॥ ३७ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे दैत्यराज ! तुम हमारे जिस राज्य का पालन करते हो, वह स्वर्ग का राज्य तेजस्वियों का सर्वस्व है, तुमने जिसके लिए तप किया था, अब उससे अधिक की इच्छा रखते हो ॥ ३८ ॥ मैंने जो वर दिया है वह इससे छोटा है, मैंने तुम्हें स्वर्ग का राज्य नहीं दिया है। इसलिए तुम स्वर्ग का राज्य छोड़कर पृथ्वी का राज्य करो ॥ ३९ ॥ हे असुरश्रेष्ठ ! उस भू-लोक में भी बहुत से देवताओं के योग्य कार्य हैं, इसमें तुम किसी प्रकार का विचार मत करो ॥ ४० ॥ इस प्रकार अखिल ब्रह्माण्ड के स्वामी मैं उस असुर को समझाकर शिवा-सहित शिव का स्मरण करते हुए वहीं अन्तर्धान हो गया ॥४१॥ तदनन्तर तारकासुर भी स्वर्ग को त्यागकर भूमि पर आ गया। और अपने शोणितपुर का राज्य करने लगा ॥ ४२ ॥ उधर सभी देवगण मेरा वचन सुनकर मुझे प्रणाम कर समाहित हो इन्द्र के साथ इन्द्रपुरी

तत्र गत्वा मिलित्वा च विचार्य च परस्परम् । ते सर्वे मरुतः प्रीत्या मघवन्तं वचोऽब्रुवन् ॥४४॥

देवा ऊचुः

शम्भोर्यथा शिवायां वै रुचिर्जायेत कामतः । मघवंस्ते प्रकर्तव्यं ब्रह्मोक्तं सर्वमेव तत् ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं सर्ववृत्तान्तं विनिवेद्य सुरेश्वरम् । जग्मुस्ते सर्वतो देवाः स्वं स्वं स्थानं मुदान्विताः ॥४६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
देवसान्त्वनवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

(पार्वती-विवाह निमित्त इन्द्र द्वारा कामदेव को शिव के पास भेजना)

ब्रह्मोवाच

गतेषु तेषु देवेषु शक्रः सस्मार वै स्मरम् । पीडितस्तारकेनाति दैत्येन च दुरात्मना ॥ १ ॥

आगतस्तत्क्षणात् कामः सवसन्तो रतिप्रियः । सावलेपो युतो रत्या त्रैलोक्यविजयी प्रभुः ॥ २ ॥

प्रणामं च ततः कृत्वा स्थित्वा तत्पुरतः स्मरः । महोन्नतमनास्तात साञ्जलिः शक्रमब्रवीत् ॥ ३ ॥

काम उवाच

किं कार्यं ते समुत्पन्नं स्मृतोऽहं केन हेतुना । तत्त्वं कथय देवेश ! तत्कर्तुं समुपागतः ॥ ४ ॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कन्दर्पस्य सुरेश्वरः । उवाच वचनं प्रीत्या युक्तं युक्तमिति स्तुवन् ॥ ५ ॥

को लौट आये ॥ ४३ ॥ वहाँ जाकर परस्पर मिलकर विचार करने के बाद सभी देवगण अत्यन्त प्रेम से इन्द्र से कहने लगे ॥ ४४ ॥

देवगण बोले—हे इन्द्र ! जिस प्रकार शिवजी सकाम होकर शिवा (पार्वती) की भार्या रूप से अभिलाषा करें । ब्रह्माजी के द्वारा बताये गये उस उपाय को तुम शीघ्र ही करो ॥ ४५ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार इन्द्र से सारा वृत्तान्त वर्णन कर प्रसन्न हो देवगण अपने-अपने स्थानों को चले गये ॥ ४६ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में देवसान्त्वनवर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—जब देवगण इन्द्र से अपना अभिप्राय निवेदन कर अपने-अपने स्थानों को चले गये, तो दुरात्मा तारक से पीड़ित हुए इन्द्र ने कामदेव का स्मरण किया ॥ १ ॥ उसी समय वसन्त को साथ लेकर रति का पति त्रैलोक्यविजयी कामदेव रति को साथ लेकर साभिनान वहाँ उपस्थित हुआ ॥ २ ॥ कामदेव ने इन्द्र के आगे जाकर उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर वह महामनस्वी इन्द्र से बोला ॥ ३ ॥

कामदेव बोला—हे देवेश ! आप को कौन ऐसा कार्य आ पड़ा है जिससे मेरा स्मरण किया, आप उसे शीघ्र कहिए, मैं उसे करने के लिए ही यहाँ उपस्थित हुआ हूँ ॥ ४ ॥

ब्रह्माजी बोले—काम के इस वचन को सुन कर इन्द्र परम प्रसन्न हो उसकी बड़ाई करते हुए बोले—हे काम ! तुम ने जो कहा वह सर्वथा उचित है ॥ ५ ॥

शक्र उवाच

तव साधु समारम्भो यन्मे कार्यमुपस्थितम् । तत्कर्तुमुद्यतोऽसि त्वं धन्योऽसि मकरध्वज ! ॥ ६ ॥
प्रस्तुतं शृणु मद्वाक्यं कथयामि तवाग्रतः । मदीयं चैव यत्कार्यं त्वदीयं तन्न चान्यथा ॥ ७ ॥
मित्राणि मम सन्त्येव बहूनि सुमहान्ति च । परं तु स्मर सन्मित्रं त्वत्तुल्यं न हि कुत्रचित् ॥ ८ ॥
जयार्थं मे द्वयं तात निर्मितं वज्रमुत्तमम् । वज्रं च निष्फलं स्याद्वै त्वं तु नैव कदाचन ॥ ९ ॥
यतो हितं प्रजायेत ततः को नु प्रियः परः । तस्मान् मित्रवरस्त्वं हि मत्कार्यं कर्तुमर्हसि ॥१०॥
मम दुःखं समुत्पन्नमसाध्यं चापि कालजम् । केनापि नैव तच्छक्यं दूरीकर्तुं त्वया विना ॥११॥
दातुः परीक्षा दुर्भिक्षे रणे शूरस्य जायते । आपत्काले तु मित्रस्याऽशक्तौ स्त्रीणां कुलस्य हि ॥१२॥
विनये सङ्कटे प्राप्तेऽवितथस्य परोक्षतः । सुस्नेहस्य तथा तात नान्यथा सत्यमीरितम् ॥१३॥
प्राप्तायां वै ममापत्ताववार्यायां परेण हि । परीक्षा च त्वदीयाऽद्य मित्रवर्य ! भविष्यति ॥१४॥
न केवलं मदीयं च कार्यमस्ति सुखावहम् । किं तु सर्वसुरादीनां कार्यमेतन्न संशयः ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

इत्येतन्मघवद्वाक्यं श्रुत्वा तु मकरध्वजः । उवाच प्रेमगम्भीरं वाक्यं सुस्मितपूर्वकम् ॥१६॥

काम उवाच

किमर्थमित्थं वदसि नोत्तरं वच्म्यहं तव । उपकृत्कृत्रिमं लोके दृश्यते कथ्यते न च ॥१७॥
सङ्कटे बहु यो ब्रूते स किं कार्यं करिष्यति । तथापि च महाराज कथयामि शृणु प्रभो ! ॥१८॥
पदं ते कर्षितुं यो वै तपस्तपति दारुणम् । पातयिष्याम्यहं तं च शत्रुं ते मित्र सर्वथा ॥१९॥

इन्द्र बोले—हे काम ! मेरा जिस प्रकार का कार्य उपस्थित है, उसे करने में तुम्हीं समर्थ हो, और हे मकरध्वज ! जब तुम उसे करने के लिए स्वयं उपस्थित हो, तो तुम धन्य हो ॥ ६ ॥ अब मैं जो बात तुम्हारे आगे कहता हूँ उसे सुनो। जो मेरा कार्य है, उसे तुम अपना ही कार्य समझो, अन्यथा नहीं समझना ॥७॥ ऐसे तो मेरे बहुत से मित्र हैं किन्तु हे काम ! तुम्हारे समान कहीं मेरा कोई और मित्र नहीं है ॥८॥ हे तात ! शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए मेरे पास दो ही उपाय हैं, एक वज्र और दूसरे तुम, जिसमें वज्र तो कदाचित् निष्फल भी हो जाता है, किन्तु तुम कभी निष्फल होने वाले नहीं हो ॥ ९ ॥ भला तुम्हीं सोचो, जिससे अपना हित हो, उससे प्यारा और कौन हो सकता है। इसलिए तुम मेरे सर्वश्रेष्ठ मित्र हो, अवश्य ही मेरा कार्य सम्पन्न करो ॥ १० ॥ मुझे इस समय जो कष्ट प्राप्त हुआ है वह चिरकाल तक स्थायी एवं असाध्य है। वह दुःख तुम्हारे सिवा कोई दूसरा दूर करने में समर्थ नहीं है ॥ ११ ॥ दानी की परीक्षा दुर्भिक्ष में, शूर-वीर की परीक्षा युद्धस्थल में, मित्र की परीक्षा आपत्ति में और असमर्थ होने पर स्त्री के कुल की परीक्षा होती है ॥ १२ ॥ सत्य की परीक्षा संकट काल तथा न्यायमार्ग से च्युत होने की स्थिति में होती है और स्नेह की परीक्षा परोक्षकाल में होती है, यह बात अन्यथा नहीं है ॥ १३ ॥ इस समय मुझ पर ऐसी आपत्ति आ पड़ी है, जिसे तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा निवारण नहीं कर सकता। एतदर्थ हे मित्रवर्य ! इस विपत्ति में तुम्हारी परीक्षा अवश्य होगी ॥ १४ ॥ यह कार्य मेरे लिए ही सुखदायी नहीं है, किन्तु इसमें देवमात्र का हित निहित है ॥ १५ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार इन्द्र के वचन सुनकर काम ने हँसते हुए प्रेम से गम्भीर हो उनसे ऐसा कहा ॥ १६ ॥

काम बोला—हे देवराज ! आप इस प्रकार की बातें क्यों करते हैं, मैं आपके वचनों का उत्तर नहीं देना चाहता। उपकार करके दिखाया जाता है, वह कहने की वस्तु नहीं है ॥ १७ ॥ जो सङ्कटकाल उपस्थित होने पर बहुत बातें बनाकर (बकवाद) करता है, वह क्या कार्य कर सकता है ? फिर भी हे प्रभो ! मैं कुछ कहता हूँ, उसे आप सुनें ॥ १८ ॥ हे मित्र, जो आप से शत्रुता कर आपको अपने पद से हटाने के

क्षणेन भ्रंशयिष्यामि कटाक्षेण वरस्त्रियाः । देवर्षिदानवादींश्च नराणां गणना न मे ॥२०॥
वज्रं तिष्ठतु दूरे वै शस्त्राण्यन्यान्यनेकशः । किं ते कार्यं करिष्यन्ति मयि मित्र उपस्थिते ॥२१॥
ब्रह्माणं वा हरिं वापि भ्रष्टं कुर्यां न संशयः । अन्येषां गणना नास्ति पातयेयं हरं त्वयि ॥२२॥
पञ्चैव मृदवो बाणास्ते च पुष्पमया मम । चापस्त्रिधा पुष्पमयः शिञ्जिनी भ्रमराजिता ॥
बलं सुदयिता मे हि वसन्तः सचिवः स्मृतः ॥२३॥
अहं पञ्चबलो देवा मित्रं मम सुधानिधिः ॥२४॥
सेनाधिपश्च शृङ्गारो हावभावाश्च सैनिकाः । सर्वे मे मृदवः शक्र अहं चापि तथाविधः ॥२५॥
यद्येन पूर्यते कार्यं धीमांस्तत्तेन योजयेत् । मम योग्यं तु यत्कार्यं सर्वं तन्मे नियोजय ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं तु वचस्तस्य श्रुत्वा शक्रः सुहर्षितः । उवाच प्रणमन् वाचा कामं कान्तासुखावहम् ॥२७॥

शक्र उवाच

यत्कार्यं मनसोद्दिष्टं मया तात मनोभव ! । कर्तुं तत्त्वं समर्थोऽसि नान्यस्मात्तस्य सम्भवः ॥२८॥
शृणु काम ! प्रवक्ष्यामि यथार्थं मित्रसत्तम ! । यदर्थे च स्पृहा जाता तव चाद्य मनोभव ॥२९॥
तारकाख्यो महादैत्यो ब्रह्मणो वरमद्भुतम् । अभूदजेयः सम्प्राप्य सर्वेषामपि दुःखदः ॥३०॥
तेन सम्पीडयते लोको नष्टा धर्मा ह्यनेकशः । दुःखिता निर्जराः सर्वे ऋषयश्च तथाखिलाः ॥३१॥
देवैश्च सकलैस्तेन कृतं युद्धं यथाबलम् । सर्वेषां चायुधान्यत्र विफलान्यभवन् पुरा ॥३२॥

लिए तपस्या करता है, मैं आप के उस शत्रुको स्त्रियों के कटाक्ष से क्षण मात्र में अवश्य तप से च्युत कर दूंगा । चाहे वह देवता, ऋषि एवं दानव ही क्यों न हों ? फिर मनुष्यों की तो मेरे सामने कोई गणना ही नहीं है ॥ १९-२० ॥ आपके वज्र तथा अन्य शस्त्रास्त्र दूर ही रहें, मुझ जैसे आपके मित्र रहते वे क्या कर सकते हैं ॥ २१ ॥ मैं ब्रह्मा तथा विष्णु को भी क्षुब्ध कर सकता हूँ, बहुत क्या कहें, शंकर के मन को भी समाधि से चलायमान कर सकता हूँ औरों की तो गणना ही क्या है ? ॥ २२ ॥ मेरे पास तो केवल पाँच ही बाण हैं, वे भी पुष्प निर्मित हैं, और धनुष भी तीन प्रकार के पुष्प से निर्मित हैं । उसकी डोरी भी भ्रमर से गुञ्जायमान है ॥ २३ ॥ मेरा बल सुन्दर स्त्री है, छठा वसन्त ही मेरा उत्तम मित्र है, इस प्रकार ये ही मेरे पाँच बल हैं और चन्द्रमा मेरा मित्र है ॥ २४ ॥ मेरा सेनापति शृंगार है, और हाव-भाव ही मेरे सैनिक हैं, ये सभी मेरे उपकरण अत्यन्त मृदु हैं, उसी प्रकार मैं भी अत्यन्त मृदु हूँ ॥ २५ ॥ जिससे जो कार्य पूर्ण हो, बुद्धिमान् व्यक्ति उसको उस कार्य में लगावे । अतः हे इन्द्र ! मेरे योग्य जो कार्य हो, उस कार्य में आप मुझे नियुक्त कीजिए ॥ २६ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! काम के वचन सुन कर इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हो गये और वाणी से सत्कार करते हुए कान्ता-से सुख देने वाले उस काम से बोले ॥ २७ ॥

इन्द्र ने कहा—हे तात, कामदेव ! मैंने जो कार्य अपने मन में सोचा है, उसे करने में केवल तुम्हीं समर्थ हो, औरों से वह कार्य होने वाला नहीं है ॥ २८ ॥ हे काम ! हे सच्चे मित्र ! हे मनोभव ! मैंने जिस कार्य के लिए आज तुम्हारा स्मरण किया है, अब तुम मेरा वह काम सुनो ॥ २९ ॥ इस समय तारक नामक महादैत्य ब्रह्मा का अद्भुत वरदान प्राप्त कर त्रिलोकी में सबसे अजेय हो गया है, और वह सारे जगत् को पीड़ा पहुँचा रहा है ॥३०॥ वह सारे संसार को तो पीड़ा दे ही रहा है, उसके कारण सभी धर्म भी नष्ट हो गये हैं । उससे सभी देवता तथा ऋषिगण महादुःखी हो रहे हैं ॥ ३१ ॥ देवताओं ने अपने-अपने

भग्नः पाशो जलेशस्य हरिचक्रं सुदर्शनम्। तत्कुण्ठितमभूत्तस्य कण्ठे क्षिप्तं च विष्णुना ॥३३॥
एतस्य मरणं प्रोक्तं प्रजेशेन दुरात्मनः। शम्भोर्वीर्योद्भवाद् बालान् महायोगीश्वरस्य हि ॥३४॥
एतत् कार्यं त्वया साधु कर्तव्यं सुप्रयत्नतः। ततः स्यान्मित्रवर्य्याति देवानां नः परं सुखम् ॥३५॥
ममापि विहितं तस्मात् सर्वलोकसुखावहम्। मित्रधर्मं हृदि स्मृत्वा कर्तुमर्हसि साम्प्रतम् ॥३६॥
शम्भुः स गिरिराजे हि तपः परममास्थितः। स प्रभुर्नापि कामेन स्वतन्त्रः परमेश्वरः ॥३७॥
तत्समीपे च देवार्थं पार्वती स्वसखीयुता। सेवमाना तिष्ठतीति पित्राज्ञप्ता मया श्रुतम् ॥३८॥
यथा तस्यां रुचिस्तस्य शिवस्य नियतात्मनः। जायते नितरां मार! तथा कार्यं त्वया ध्रुवम् ॥३९॥
इति कृत्वा कृती स्यास्त्वं सर्वं दुःखं विनंक्ष्यति। लोके स्थायी प्रतापस्ते भविष्यति न चाऽन्यथा ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तः स तु कामो हि प्रफुल्लमुखपङ्कजः। प्रेम्णोवाचेति देवेशं करिष्यामि न संशयः ॥४१॥
इत्युक्त्वा वचनं तस्मै तथेत्योमिति तद्वचः। अग्रहीत्तरसा कामः शिवमायाविमोहितः ॥४२॥
यत्र योगीश्वरः साक्षात्तप्यते परमं तपः। जगाम तत्र सुप्रीतः सदारः सवसन्तकः ॥४३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शक्रकामसंवाद-
वर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

बल के अनुसार उससे युद्ध भी किया, किन्तु सभी के शस्त्र व्यर्थ हो गये ॥ ३२ ॥ वरुण का पाश जब उसे बाँधने के लिए कण्ठ में पहुँचा तो उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये। इसी प्रकार विष्णु ने जब भी अपने चक्रसुदर्शन से उसके कण्ठ पर प्रहार किया, तो वह भी कुण्ठित हो गया ॥ ३३ ॥

प्रजापति ब्रह्मा ने महायोगीश्वर शिव के वीर्य से उत्पन्न हुए पुत्र द्वारा निर्धारित किया है ॥ ३४ ॥ अब तुम्हें प्रयत्नपूर्वक इस कार्य को अच्छी तरह करना चाहिए। तब हे मित्रवर्य ! तुम्हारे इस कार्य से मुझे तथा देवताओं को महान् सुख होगा ॥ ३५ ॥ मैंने सारे लोक का कल्याण करने वाला यह कार्य विचार किया है इसलिए तुम मित्रधर्म का स्मरण कर इस कार्य को करो ॥ ३६ ॥ वे शिवजी महराज इस समय हिमालय पर परम दुष्कर तप कर रहे हैं। यद्यपि सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र होने के कारण उन प्रभु को कोई कामना नहीं है ॥ ३७ ॥ मैंने ऐसा सुना है कि, पार्वती पिता की आज्ञा लेकर अपने सखियों के साथ उन्हें प्रसन्न कर अपना पति बनाने के लिए उनकी सेवा में नित्य उपस्थित रहती है ॥ ३८ ॥ हे काम ! जिस प्रकार समाधिस्थ शंकर को अभिरुचि पार्वती में हो जाय वैसा उपाय अवश्य करना चाहिए ॥ ३९ ॥ ऐसा करने से तुम कृतकृत्य हो जाओगे, संसार का दुःख भी नष्ट हो जायेगा और तुम्हारी कीर्ति भी चिरस्थायी हो जायेगी ॥ ४० ॥

ब्रह्मा जी बोले -- इन्द्र के द्वारा इतना कहते ही कामदेव का मुख-कमल खिल उठा, और वह प्रेम पूर्वक इन्द्र से बोला—देवराज ! मैं आप का यह कार्य अवश्य करूँगा इसमें सन्देह मत कीजिए ॥४१॥ शिव की माया से मोहित हुआ वह काम इन्द्र के वचन को 'ॐ' कह कर हठपूर्वक स्वीकार कर लिया ॥ ४२ ॥ फिर जहाँ योगीश्वर भगवान् शङ्कर तप कर रहे थे वहाँ प्रसन्न मन होकर अपनी स्त्री रति तथा सखा वसन्त को साथ लेकर पहुँच गया ॥ ४३ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-
पार्वतीखण्ड में शक्र-काम-संवाद वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥

*

अष्टादशोऽध्यायः

(कामदेव का शिव को पार्वती पर मोहित करने का प्रयत्न)

ब्रह्मोवाच

तत्र गत्वा स्मरो गर्वी शिवमायाविमोहितः । मोहकः स मधोश्चादौ धर्मं विस्तारयन् स्थितः ॥ १ ॥
वसन्तस्य च यो धर्मः प्रससार स सर्वतः । तपःस्थाने महेशस्यौषधिप्रस्थे मुनीश्वर ! ॥ २ ॥
वनानि च प्रफुल्लानि पादपानां महामुने ! । आसन् विशेषतस्तत्र तत्प्रभावान्मुनीश्वर ! ॥ ३ ॥
पुष्पाणि सहकाराणामशोकवनिकासु वै । विरेजुः सुस्मरोद्दीपकराणि सुरभीण्यपि ॥ ४ ॥
कैरवाणि च पुष्पाणि भ्रमराकलितानि च । बभूवुर्मदनावेशकराणि च विशेषतः ॥ ५ ॥
सुकामोद्दीपनकरं कोकिलाकलकूजितम् । आसीदति सुरम्यं हि मनोहरमतिप्रियम् ॥ ६ ॥
भ्रमराणां तथा शब्दा विविधा अभवन्मुने । मनोहराश्च सर्वेषां कामोद्दीपकरा अपि ॥ ७ ॥
चन्द्रस्य विशदा कान्तिर्विकीर्णा हि समन्ततः । कामिनां कामिनीनां च दूतिका इव साऽभवत् ॥ ८ ॥
मानिनां प्रेरणायासीत् तत्काले कालदीपिका । मारुतश्च सुखः साधो ववौ विरहिणोऽप्रियः ॥ ९ ॥
एवं वसन्तविस्तारो मदनावेशकारकः । वनौकसां तदा तत्र मुनीनां दुःसहोऽप्यभूत् ॥१०॥
अचेतसामपि तदा कामासक्तिरभून्मुने ! । सुचेतसां हि जीवानां सेति किं वर्ण्यते कथा ॥११॥
एवं चकार स मधुः स्वप्रभावं सुदुःसहम् । सर्वेषां चैव जीवानां कामोद्दीपनकारकः ॥१२॥
अकालनिर्मितं तात मधोर्वीक्ष्य हरस्तदा । आश्चर्यं परमं मेने स्वलीलात्ततनुः प्रभुः ॥१३॥
अथ लीलाकरस्तत्र तपः परमदुष्करम् । ततापं स वशीशो हि हरो दुःखहरः प्रभुः ॥१४॥
वसन्ते प्रसृते तत्र कामो रतिसमन्वितः । चूतं बाणं समाकृष्य स्थितस्तद्वामपार्श्वतः ॥१५॥

ब्रह्माजी बोले—शिवजी की माया से विमोहित वह महा अभिमानी मोह उत्पन्न करने वाला काम शिवजी के पास जाकर वसन्त ऋतु को फैलाने लगा ॥ १ ॥ हे मुनीश्वर ! उस ओषधिप्रस्थ नामक स्थान पर, जहाँ शिवजी तप कर रहे थे, उसके चारों ओर सर्वत्र वसन्त की महिमा फैल गयी ॥ २ ॥ हे महामुने ! वसन्त के प्रभाव से उस वन में सभी वृक्ष फूलों से लद गये । और विविध विशेषताएँ उस वन में दिखाई पड़ने लगीं ॥ ३ ॥ उस समय काम को उद्दीपित करने वाले आम्र की मञ्जरियाँ तथा अशोक के वन सुगन्धि से युक्त हो शोभित होने लगे ॥ ४ ॥ कुमुद के पुष्पों पर भौंरे गुञ्जार करने लगे । जो विशेष रूप से काम को उत्तेजित करने वाले थे ॥ ५ ॥ चारों ओर काम को उद्दीपन करने वाला कोकिलाओं का मनोहर शब्द सुनाई पड़ने लगा । सारा-का-सारा वन अत्यन्त मनोहर तथा प्रिय लगने लगा ॥ ६ ॥ इसी प्रकार कामोद्दीपक भौंरों के भी मनोहर नाना प्रकार के शब्द होने लगे ॥ ७ ॥ चन्द्रमा की मनोहर ज्योत्स्ना कामुक एवं कामिनियों तथा कामुकों की दूती के समान चारों ओर फैलने लगी ॥ ८ ॥ वह चन्द्रज्योत्स्ना मानिनी स्त्रियों को काम में प्रेरणा देने के लिए रतिकाल के दीपक के समान मालूम पड़ती थी । उस समय विरहियों को दुःख देनेवाला सुखकारी वायु बहने लगा ॥ ९ ॥

इस प्रकार काम को बढ़ाने वाला वसन्त का वह विस्तार वनवासी मुनियों के लिए भी असह्य हो गया ॥ १० ॥ हे मुने नारद ! उस समय जड़ पदार्थों में भी काम का सञ्चार होने लगा । सचेतन प्राणियों की तो कथा ही किस प्रकार वर्णन की जाय ॥ ११ ॥ वसन्त ने अपना ऐसा असह्य प्रभाव फैलाया, जो सभी प्राणियों के लिए असह्य कामोद्दीपक बन गया ॥१२॥ भगवान् शङ्कर अकाल में ही उस वसन्त का प्रभाव देखकर आश्चर्य-चकित हो गये, क्योंकि लीला करने के लिए ही उन्होंने विग्रह धारण किया है ॥१३॥ वसन्त के प्रभाव को देखकर भी दुःखहरण करने वाले परम संयमी परमात्मा शिव अपनी दुष्कर तपस्या में लग रहे ॥ १४ ॥ तदनन्तर वसन्त का प्रभाव बढ़ जाने पर रतियुक्त वह काम आम्रमञ्जरी का बाण

स्वप्रभावं वितस्तार मोहयन् सकलान् जनान् । रत्यायुक्तं तदा कामं दृष्ट्वा को वा न मोहितः ॥१६॥
एवं प्रवृत्तसुरतौ शृङ्गारोऽपि गणैः सह । हावभावयुतस्तत्र प्रविवेश हरान्तिकम् ॥१७॥
मदनः प्रकटस्तत्र न्यवसच्चित्तगो बहिः । न दृष्टवांस्तदा शम्भोश्छिद्रं येन प्रविश्यते ॥१८॥
यदा चाप्राप्तविवरस्तस्मिन् योगिवरे स्मरः । महादेवस्तदा सोऽभून्महाभयविमोहितः ॥१९॥
ज्वलज्ज्वालाग्नि-संकाश-भालनेत्र-समन्वितम् । ध्यानस्थं शङ्करं को वा समासादयितुं क्षमः ॥२०॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सखीभ्यां संयुता शिवा । जगाम शिवपूजार्थं नीत्वा पुष्पाण्यनेकशः ॥२१॥
पृथिव्यां यादृशं लोकैः सौन्दर्यं वर्ण्यते महत् । तत्सर्वमधिकं तस्यां पार्वत्यामस्ति निश्चितम् ॥२२॥
आर्तवाणि सुपुष्पाणि धृतानि च तया यदा । तत्सौन्दर्यं कथं वर्ण्यमपि वर्षशतैरपि ॥२३॥
यदा शिवसमीपे तु गता सा पर्वतात्मजा । तदैव शंकरो ध्यानं त्यक्त्वा क्षणमवस्थितः ॥२४॥
तच्छिद्रं प्राप्य मदनः प्रथमं हर्षणेन तु । बाणेन हर्षयामास पार्श्वस्थं चन्द्रशेखरम् ॥२५॥
शृङ्गारैश्च तदा भावैः सहिता पार्वती हरम् । जगाम कामसाहाय्ये मुने सुरभिणा सह ॥२६॥
तदैवाकृष्य तच्चापं रुच्यर्थं शूलधारिणः । द्रुतं पुष्पशरं तस्मै स्मरोऽमुञ्चत् सुसंयतः ॥२७॥
यथा निरन्तरं नित्यमागच्छति तथा शिवम् । तं नमस्कृत्य तत्पूजां कृत्वा तत्पुरतः स्थिता ॥२८॥
सा दृष्टा पार्वती तत्र प्रभुणा गिरिशेन हि । विवृण्वती तदङ्गानि स्त्रीस्वभावात् सुलज्जया ॥२९॥
सुसंस्मृत्य वरं तस्या विधिदत्तं पुरा प्रभुः । शिवोऽपि वर्णयामास तदङ्गानि मुदा मुने ॥३०॥

चढ़ाकर उनके वामपार्श्व में स्थित हो गया ॥ १५ ॥ उसने सभी प्राणियों को मोहित करते हुए अपने प्रभाव का विस्तार किया, भला त्रिलोकी में ऐसा कौन प्राणी होगा, जो रतिसहित काम को देखकर मोहित न हो गया हो ॥ १६ ॥ इस प्रकार जब काम एवं रति काम-क्रीडा में प्रवृत्त हुए तब शृङ्गार भी हावभाव से युक्त होकर अपने गणों के साथ शिव के सन्निकट पहुँचा ॥ १७ ॥ यद्यपि काम चित्त में रहने वाला है किन्तु उस समय वह स्वयं प्रगट होकर बाहर स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगा। इस प्रकार प्रगट होने पर भी उस कामदेव को भगवान् शङ्कर में कोई ऐसा छिद्र दिखाई नहीं पड़ा जिससे वह उनके हृदय में प्रविष्ट होकर उन्हें विचलित कर सके ॥ १८ ॥

उस कामदेव ने उन योगिराज के हृदय में विकार उत्पन्न करने के लिए जब कहीं भी कोई अवकाश नहीं देखा, तब वह भय से सन्त्रस्त होकर स्वयं महादेव बन गया ॥ १९ ॥ जिनके भाल प्रदेश में तीसरे नेत्र से जलती हुई अग्नि की ज्वाला निकल रही हो उस ध्यानस्थ शङ्कर के पास जाने की सामर्थ्य किसमें है ? ॥ २० ॥ इसी समय पार्वती भी अपनी सखियों के साथ अनेक प्रकार के पुष्प लेकर शिव की पूजा करने के लिए पहुँच गयी ॥ २१ ॥ इस पृथ्वी में जिन-जिन सौन्दर्यों का वर्णन कविजन करते आये हैं उससे भी कहीं अधिक सुन्दरता पार्वतीजी में थी ॥ २२ ॥ जिस समय ऋतुकालोद्भव पुष्पों को धारण कर वह शिवपूजा के निमित्त चल रही थी, उस समय उसके सौन्दर्य का वर्णन सैकड़ों वर्षों में भी नहीं किया जा सकता ॥ २३ ॥ जब पार्वती शिव का पूजन करने के लिए उनके समीप पहुँचीं उस समय शिवजी भी किञ्चित् काल के लिए समाधि से जग गये थे ॥ २४ ॥ बस इतना ही छिद्र प्राप्त कर काम ने अपने हर्षण नामक बाण से समीपस्थ शङ्कर को कामातुर करने के लिए वेधना प्रारम्भ किया ॥ २५ ॥ हे मुने ! उस समय मानो टङ्कार एवं भावों से युक्त पार्वती भी मलयानिल के साथ काम की सहायता करने के लिए शिव के सन्निकट गयी हो ॥२६॥ उस समय कामदेव ने अपना धनुष चढ़ाकर बड़ी सावधानी से शिव को पार्वती में आकृष्ट करने हेतु फूल का बाण छोड़ा ॥ २७ ॥ जिस प्रकार पार्वती निरन्तर आकर शिव को नमस्कार करने के उपरान्त उनकी पूजा कर उनके सामने खड़ी हो जाती थी ॥ २८ ॥ उसी प्रकार उस दिन भी वह शिव को नमस्कार एवं पूजन कर शिव के सामने स्थित हो गयी। भगवान् शङ्कर ने देखा कि पार्वती लज्जा के कारण स्त्री स्वभाववश अपने अङ्गों को कुछ समेट-सी रही है ॥२९॥ तब उन्हें पूर्वकाल में

शिव उवाच

किं मुखं किं शशाङ्कश्च किं नेत्रे चोत्पले च किम् । भ्रुकुट्यौ धनुषी चैते कन्दर्पस्य महात्मनः ॥३१॥
अधरः किं च बिम्बं किं किं नासा शुकचञ्चुका । किं स्वरः कोकिलालापः किं मध्यं चाथ वेदिका ॥३२॥
किं गतिर्वर्ण्यते ह्यस्याः किं रूपं वर्ण्यते मुहुः । पुष्पाणि किं च वर्ण्यन्ते वस्त्राणि च तथा पुनः ॥३३॥
लालित्यं चारु यत्सृष्टौ तदेकत्र विनिर्मितम् । सर्वथा रमणीयानि सर्वाङ्गाणि न संशयः ॥३४॥
अहो ! धन्यतरा चेयं पार्वत्यद्भुतरूपिणी । एतत्समा न त्रैलोक्ये नारी काऽपि सुरूपिणी ॥३५॥
सुलावण्यनिधिश्चेयमद्भुताङ्गानि बिभ्रती । विमोहिनी मुनीनां च महासुखविवर्द्धिनी ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वर्णयित्वा तु तदङ्गानि मुहुर्मुहुः । विधिदत्तवराध्यासाद्धरस्तु विरराम ह ॥३७॥
हस्तं वस्त्रान्तरे यावदचालयत शङ्करः । स्त्रीस्वभावाच्च सा तत्र लज्जिता दूरतो गता ॥३८॥
विघृण्वती निजाङ्गानि पश्यन्ती च मुहुर्मुहुः । सुवीक्षणैर्महामोदात् सुस्मिताऽभूच्छिवा मुने ! ॥३९॥
एवं चेष्टां तदा दृष्ट्वा शम्भुर्मोहमुपागतः । उवाच वचनं चैवं महालीलो महेश्वरः ॥४०॥
अस्या दर्शनमात्रेण महानन्दो भवत्यलम् । यदालिङ्गनमेतस्याः कुर्य्यां किन्तु ततः सुखम् ॥४१॥
क्षणमात्रं विचार्येत्थं सम्पूज्य गिरिजां ततः । प्रबुद्धः स महायोगी सुविरक्तो जगाविति ॥४२॥
किं जातं चरितं चित्रं किमहं मोहमागतः । कामेन विकृतश्चाद्य भूत्वाऽपि प्रभुरीश्वरः ॥४३॥

पार्वती को ब्रह्मा के द्वारा दिया गया वरदान स्मरण हो आया। और वे स्वयं पार्वती के अङ्गों का सौन्दर्य वर्णन करने लगे ॥ ३० ॥

शिवजी बोले—यह मुख है अथवा साक्षात् चन्द्रमा है, यह नेत्र है अथवा साक्षात् कमल है, यह दोनों भृकुटी हैं अथवा महात्मा कामदेव के धनुष हैं ॥ ३१ ॥ यह अधर है अथवा बिम्बफल है, यह नासिका है अथवा शुकचञ्चु है, यह स्वर है अथवा कोकिल की मनोहर कूक है, यह मध्यभाग है अथवा वेदी है ॥ ३२ ॥ अहा ! इसकी मनोहर गति अथवा इसके मनोहर रूप का क्या वर्णन किया जाय ! इसके पुष्पाभरण एवं वस्त्र का भी किस प्रकार वर्णन किया जाय ॥ ३३ ॥ ज्ञात होता है कि, सृष्टि में जितना सौन्दर्य है, उसे एकत्र कर विधाता ने इसके अङ्गों की रचना की है। अहा ! इसके प्रत्येक अङ्ग इतने लावण्ययुक्त हैं जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ३४ ॥ अहो ! अद्भुत रूपवाली यह पार्वती धन्य है, इसके समान त्रैलोक्य में कोई भी स्त्री सुन्दरता से युक्त नहीं है ॥ ३५ ॥ यह अद्भुत अङ्गों का धारण करने के कारण अपूर्व लावण्य की निधान है, यह तो मुनियों को भी मोहनेवाली और महासुख को बढ़ाने वाली है ॥ ३६ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार शिवजी बारम्बार पार्वती के अङ्गों का वर्णन करते हुए ब्रह्मा के वरदान का स्मरण कर मौन हो गये ॥३७॥ उस समय ज्योंही शङ्करजी ने उसका वस्त्र पकड़ने के लिए अपना हाथ बढ़ाया था कि पार्वती स्त्रीस्वभाव से लज्जित हो कुछ दूर जाकर स्थित हो गयीं ॥ ३८ ॥ फिर अपने तीक्ष्ण कटाक्षों से बारम्बार शिव की ओर देखती एवं अपने अङ्गों को प्रकाशित करती हुई प्रसन्न हो हंसने लगी ॥ ३९ ॥ उसकी इस चेष्टा को देखते एवं शङ्करजी को मोह हो गया, तब महान् लीला करनेवाले महेश्वर कहने लगे ॥ ४० ॥ जब इसके दर्शन मात्र से इतना बड़ा आनन्द प्राप्त हो रहा है, तो इसका आलिङ्गन करने से कितना सुख होगा ॥ ४१ ॥ इस प्रकार क्षणमात्र विचार कर गिरिजा की प्रशंसा करते हुए जब वे चैतन्य हो पुनः योगी जैसे विरक्त हो बोले- ॥ ४२ ॥ अरे यह कैसा विचित्र चरित्र हो गया ? क्या मैं मोह को प्राप्त हो गया। निश्चय ही मुझ परमेश्वर को काम के कारण यह विकृति (विकार)

ईश्वरोऽहं यदीच्छेयं पराङ्गस्पर्शनं खलु। तर्हि कोऽन्योऽक्षमः क्षुद्रः किं किं नैव करिष्यति ॥४४॥
एवं वैराग्यमासाद्य पर्यङ्कासादनं च तत्। वारयामास सर्वात्मा परेशः किं पतेदिह ॥४५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे कामकृतविकार-
वर्णनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

(शिव क द्वारा मदन-दहन एवं रति तथा देवगणों की प्रार्थना से
उसे पुनः उज्जीवित करना)

नारद उवाच

ब्रह्मन् विधे महाभाग ! किं जातं तदनन्तरम्। कथय त्वं प्रसादेन तां कथां पापनाशिनीम् ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

श्रूयतां सा कथा तात ! यज्जातं तदनन्तरम्। तव स्नेहात् प्रवक्ष्यामि शिवलीलां मुदावहाम् ॥ २ ॥
धैर्यस्य व्यसनं दृष्ट्वा महायोगी महेश्वरः। विचिन्तितं मनस्येवं विस्मितोऽति ततः परम् ॥ ३ ॥

शिव उवाच

किमु विघ्नाः समुत्पन्नाः कुर्वतस्तप उत्तमम्। केन मे विकृतं चित्तं कृतमत्र कुकर्मिणा ॥ ४ ॥
कुवर्णनं मया प्रीत्या परस्त्र्युपरि वै कृतम्। जातो धर्मविरोधोऽत्र श्रुतिसीमा विलङ्घिता ॥ ५ ॥

ब्रह्मोवाच

विचिन्त्येत्थं महायोगी परमेशः सतां गतिः। दिशो विलोकयामास परितः शङ्कितस्तदा ॥ ६ ॥
वामभागे स्थितं कामं ददर्शाकृष्टबाणकम्। स्वशरं क्षेप्तुकामं हि गर्वितं मूढचेतसम् ॥ ७ ॥

उत्पन्न हुई ॥ ४३ ॥ ओह ! यदि मैं ईश्वर होकर काम के पराधीन हो दूसरे के अङ्गस्पर्श की इच्छा कर सकता हूँ, तो अन्य साधारण क्षुद्र पुरुष काम के वश में हो क्या-क्या अनर्थ नहीं कर सकता ॥ ४४ ॥ इस प्रकार वैराग्यभाव प्राप्त कर उन्होंने पर्यङ्क एवं बैठने की वेदी नष्ट कर दी। क्या सर्वात्मा परमेश्वर कहीं से पतित हो सकता है ? ॥ ४५ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-
पार्वतीखण्ड में कामकृतविकार वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥

*

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्, हे महाभाग ! इसके अनन्तर फिर क्या हुआ ? आप मुझ पर कृपाकर इस पापनाशिनी कथा का पुनः वर्णन कीजिए ॥ १ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात ! इसके अनन्तर जो हुआ उसे सुनो, मैं तुम्हारे स्नेह से शिवलीला का वर्णन करता हूँ ॥ २ ॥ हे नारद ! महायोगी महेश्वर अपना धैर्य टूटता देख अत्यन्त विस्मित हो इस प्रकार विचार करने लगे ॥ ३ ॥

शिवजी ने कहा—मेरे इस उत्तम तपस्या-काल में यह विघ्न किस प्रकार आ पड़ा। किस कुकर्मी ने मेरे चित्त में ऐसा विचार उत्पन्न किया है ॥ ४ ॥ मैंने दूसरे की स्त्री का स्वरूप देखकर प्रेम-विवश हो उसके स्वरूप का वर्णन किया, यह तो महान् अधर्म हो गया और शास्त्र की मर्यादा का भी उल्लङ्घन हुआ ॥ ५ ॥

ब्रह्मा ने कहा—सज्जनों के एकमात्र रक्षक महायोगी परमेश्वर शिव इस प्रकार विचार कर शङ्कित हो सभी दिशाओं की ओर देखने लगे ॥ ६ ॥ तब उन्होंने अपनी बायीं ओर धनुष पर बाण चढ़ाये कामदेव को देखा। जो मूर्खतावश अहङ्कार में भरकर शिव के ऊपर बाण छोड़ने की इच्छा कर रहा था ॥ ७ ॥

तं दृष्ट्वा तादृशं कामं गिरीशस्य परात्मनः । सञ्जातः क्रोधसम्मर्दस्तत्क्षणादपि नारद ! ॥ ८ ॥
कामः स्थितोऽन्तरिक्षे स धृत्वा तत्सशरं धनुः । चिक्षेपास्त्रं दुर्निवारममोघं शङ्करे मुने ॥ ९ ॥
बभूवामोघमस्त्रं तु मोघं तत्परमात्मनि । समशाम्यंच्चतस्तस्मिन् सङ्क्रुद्धे परमेश्वरे ॥१०॥
मोघीभूते शिवे स्वेऽस्त्रे भयमापाशु मन्मथः । चकम्पे च पुरः स्थित्वा दृष्ट्वा मृत्युञ्जयं प्रभुम् ॥११॥
सस्मार त्रिदशान् सर्वान् शक्रादीन् भयविह्वलः । स स्मरो मुनिशार्दूल ! स्वप्रयासे निरर्थके ॥ १२॥
कामेन सुस्मृता देवाः शक्राद्यास्ते मुनीश्वर ! । आययुः सकलास्ते हि शम्भुं नत्वा च तुष्टुवुः ॥१३॥
स्तुतिं कुर्वत्सु देवेषु क्रुद्धस्याति हरस्य हि । तृतीयात्तस्य नेत्राद्धै निःससार ततो महान् ॥१४॥
ललाटमध्यगात्तस्मात् स वह्निर्द्रुतसम्भवः । जज्वालोर्ध्वशिखो दीप्तः प्रलयाग्निसमप्रभः ॥१५॥
उत्पत्य गगने तूर्णं निष्पत्य धरणीतले । भ्रामं भ्रामं स्वपरितः पपात मेदिनीं परि ॥१६॥
भस्मसात् कृतवान् साधो मदनं तावदेव हि । यावच्च मरुतां वाचः क्षम्यतां क्षम्यतामिति ॥१७॥
हते तस्मिन् स्मरे वीरे देवा दुःखमुपागताः । रुरुदुर्विह्वलाश्चातिक्रोशन्तः किमभूदिति ॥१८॥
श्वेताङ्गा विकृतात्मा च गिरिराजसुता तदा । जगाम मन्दिरं स्वं च समादाय सखीजनम् ॥१९॥
क्षणमात्रं रतिस्तत्र विसंज्ञा साऽभवत्तदा । भर्तृमृत्युजदुःखेन पतिता सा मृता इव ॥२०॥
जातायां चैव संज्ञायां रतिरत्यन्तविह्वला । विललाप तदा तत्रोच्चरन्ती विविधं वचः ॥२१॥

इस प्रकार से स्थित हुए कामदेव को देखकर परमात्मा सदाशिव को तत्क्षण महाक्रोध उत्पन्न हो गया ॥ ८ ॥ उस समय शंकर की दृष्टि से भयभीत हुआ वह काम अपना धनुष एवं बाण लेकर अन्तरिक्ष में स्थित हो शिव के ऊपर अपना दुर्निवार अमोघ अस्त्र चलाया ॥ ९ ॥ किन्तु परमात्मा शिव में उसका वह अमोघ अस्त्र व्यर्थ हो गया और परमेश्वर सदाशिव के क्रुद्ध होते ही वह अस्त्र शान्त हो गया ॥ १० ॥ जब काम ने अपना अस्त्र व्यर्थ होते हुए देखा, तो वह भयभीत हो उठा और अपने आगे मृत्युञ्जय प्रभु को देखकर काँप उठा ॥ ११ ॥ इस प्रकार अपने प्रयास के निष्फल होने पर काम ने भयभीत होकर इन्द्रादि देवताओं का स्मरण किया ॥ १२ ॥ कामदेव के द्वारा स्मरण करते ही इन्द्रादि सभी देवगण वहाँ आ गये और शिव को प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगे ॥ १३ ॥ अभी सभी देवगण शिव की स्तुति कर ही रहे थे कि इतने में क्रुद्ध हुए शिव के ललाट के मध्य में रहने वाले तृतीय नेत्र से बड़ी शीघ्रता से महान् अग्नि निकलने लगी, जो ऊर्ध्व शिखायुक्त अत्यन्त प्रदीप्त हो प्रलयाग्नि के समान जल रही थी ॥१४-१५॥ वह अग्नि प्रथम आकाशमण्डल में जाकर फिर पृथ्वी पर आ पहुँची और अपने चारों ओर घूमती हुई कामदेव पर जा गिरी ॥ १६ ॥

जब तक देवगण आकाश में 'हे प्रभो ! क्षमा करो, हे प्रभो ! क्षमा करो' ऐसी प्रार्थना कर ही रहे थे कि उसी समय शिव के तृतीय नेत्र से उत्पन्न हुई अग्नि ने काम को भस्मसात् कर दिया ॥ १७ ॥ उस वीर कामदेव के नष्ट होते ही देवगण बहुत दुःखी हो गये, और 'यह क्या हुआ ?' ऐसा कहकर अधीर होकर रोने लगे ॥ १८ ॥ उस समय भय से जिसके अङ्ग श्वेत वर्ण के हो गये थे ऐसी वह गिरिराज कुमारी भी खिन्न हो अपनी सखियों के साथ घर चली गयी ॥ १९ ॥ कामदेव को जला हुआ देखकर रति क्षणमात्र में अचेत हो गयी। वह अपने पति की मृत्यु से दुःखी हो मृतक के समान मालूम पड़ने लगी ॥ २० ॥ जब रति को कुछ होश आया तो वह व्याकुल हो नाना प्रकार के वचन बोलती हुई विलाप करने लगी ॥ २१ ॥

रतिरुवाच

किं करोमि क्व गच्छामि किं कृतं दैवतैरिह । मत्स्वामिनं समाहूय नाशयामासुरुद्धतम् ॥२२॥
हा हा नाथ! स्मर स्वामिन् प्राणप्रिय सुखप्रद!। इदं तु किमभूदत्र हा हा प्रिय प्रियेति च ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं विलपती सा तु वदन्ती बहुधा वचः । हस्तौ पादौ तदास्फाल्य केशानत्रोटयत्तदा ॥२४॥
तद्विलापं तदा श्रुत्वा तत्र सर्वे वनेचराः । अभवन् दुःखिताः सर्वे स्थावरा अपि नारद ! ॥२५॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र देवाः शक्रादयोऽखिलाः । रतिमूचुः समाश्वास्य संस्मरन्तो महेश्वरम् ॥२६॥

देवा ऊचुः

किञ्चिद्भस्म गृहीत्वा तु रक्ष यत्नाद् भयं त्यज । जीवयिष्यति स स्वामी लप्स्यसे त्वं पुनः प्रियम् ॥२७॥
सुखदाता न कोऽप्यस्ति दुःखदाता न कश्चन । सर्वोऽपि स्वकृतं भुङ्क्ते देवाञ्शोचसि वै वृथा ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

इत्याश्वास्य रतिं देवाः सर्वे शिवमुपागताः । सुप्रसाद्य शिवं भक्त्या वचनं चेदमब्रुवन् ॥२९॥

देवा ऊचुः

भगवञ्छ्रूयतामेतद्वचनं नः शुभं प्रभो । कृपां कृत्वा महेशान शरणागत वत्सल ! ॥३०॥
सुविचारय सुप्रीत्या कृतिं कामस्य शङ्कर ! । कामेनैतत्कृतं यत्र न स्वार्थं तन्महेश्वर ! ॥३१॥
दुष्टेन पीडितैर्देवैस्तारकेणाऽखिलैर्विभो ! । कर्म तत्कारितं नाथ नान्यथा विद्धि शङ्कर! ॥३२॥
रतिरेकाकिनी देव विलापं दुःखिता सती । करोति गिरिश ! त्वं च तामाश्वासय सर्वदा ॥३३॥

रति बोली—हाय ! मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? इन देवताओं ने यह क्या किया, जो मेरे पति को यहाँ भेजकर उसको मरवा डाला ॥ २२ ॥ हाय नाथ ! हे स्मर ! हे स्वामिन् ! हे मेरे प्राणप्रिय ! हे मुझे सुख देने वाले प्रिय ! हाय ! यह क्या हुआ ? ॥ २३ ॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार विलाप करती, नाना प्रकार के वचन कहती हुई वह रति हाथ-पैर पटकने लगी तथा अपने केशों को नोंचने लगी ॥ २४ ॥ उस समय रति का विलाप सुन जगत् के चर-अचर सभी दुःखी हो गये ॥ २५ ॥ हे नारद ! उस समय इन्द्रादि सभी देवता महेश्वर का स्मरण करते हुए रति को धीरज बँधाते हुए उससे कहने लगे—॥ २६ ॥

देवगणों ने कहा—हे रति ! तू भय छोड़ दे और काम के किञ्चिन्मात्र इस भस्म को लेकर तू यतन से उसकी रक्षा कर, तेरा स्वामी पुनः जीवित होगा और तू उसे पुनः प्राप्त करेगी ॥ २७ ॥ इस जगत् में कोई किसी को सुख-दुःख देने वाला नहीं है। सब अपना किया हुआ कर्म-फल भोगते हैं, तू व्यर्थ ही देवताओं का दोष देती है ॥ २८ ॥

ब्रह्माजी बोले—रति से ऐसा कहकर सभी देवता शिवजी के पास गये और भक्ति से शिवजी को प्रसन्न कर यह वचन कहने लगे ॥ २९ ॥

देवगण बोले—हे शरणागतवत्सल ! हे महेशान ! हे प्रभो ! हे भगवन् ! आप हम लोगों पर कृपाकर हमारे वचन सुनिए ॥ ३० ॥ हे शङ्कर ! प्रीति से आप कामदेव के कर्त्तव्य पर विचार कीजिए । हे महेश्वर ! कामदेव ने यह जो कुछ किया है, उसमें उसका किञ्चिन्मात्र भी स्वार्थ नहीं है ॥ ३१ ॥ हे विभो ! तारकासुर से पीड़ित हुए हम सभी देवताओं ने कामदेव को अपनी ओर से प्रेरित कर उससे यह कार्य करवाया है, हे शङ्कर ! इसमें आप और कुछ मत सोचिए ॥ ३२ ॥ हे देव ! यह रति अकेली ही महादुःखी होकर विलाप कर रही है, अतः हे गिरीश ! आप ही इसे आश्वस्त करें ॥ ३३ ॥

संहारं कर्तुकामोऽसि क्रोधेनानेन शङ्कर ! । दैवतैः सह सर्वेषां हतवांस्तं यदि स्मरम् ॥३४॥
दुःखं तस्या रतेर्दृष्ट्वा नष्टप्रायाश्च देवताः । तस्मात्त्वया च कर्तव्यं रत्याः शोकापनोदनम् ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां प्रसन्नो भगवाञ्छिवः । देवानां सकलानां च वचनं चेदमब्रवीत् ॥३६॥

शिव उवाच

देवाश्च ऋषयः सर्वे मद्वचः श्रृणुतादरात् । मत्कोपेन च यज्जातं तत्तथा नान्यथा भवेत् ॥३७॥
अनङ्गस्तावदेव स्यात् कामो रतिपतिः प्रभुः । यावच्चावतरेत् कृष्णो धरण्यां रुक्मिणीपतिः ॥३८॥
द्वारकायां यदा स्थित्वा पुत्रानुत्पादयिष्यति । तदा कृष्णस्तु रुक्मिण्यां काममुत्पादयिष्यति ॥३९॥
प्रद्युम्ननाम तस्यैव भविष्यति न संशयः । जातमात्रं तु तं पुत्रं शम्बरः संहरिष्यति ॥४०॥
हृत्वा प्रास्य समुद्रे तं शम्बरो दानवोत्तमः । मृतं ज्ञात्वा वृथा मूढो नगरं स्वं गमिष्यति ॥४१॥
तावच्च नगरं तस्य रते स्थेयं यथासुखम् । तत्रैव स्वपतेः प्राप्तिः प्रद्युम्नस्य भविष्यति ॥४२॥
तत्र कामो मिलित्वा तं हत्वा शम्बरमाहवे । भविष्यति सुखी देवाः प्रद्युम्नाख्यः स्वकामिनीम् ॥४३॥
तदीयं चैव यद् द्रव्यं नीत्वा स नगरं पुनः । गमिष्यति तया सार्द्धं देवाः सत्यं वचो मम ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचः शम्भोर्देवा ऊचुः प्रणम्य तम् । किञ्चिदुच्छ्वसिताश्चित्ते करौ बद्ध्वा नताङ्गकाः॥४५॥

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो ! । शीघ्रं जीवय कामं त्वं रक्ष प्राणान् रतेर्हर ! ॥४६॥

हे शङ्कर ! यदि आपने क्रोध में भरकर काम को नष्ट कर दिया, तो निश्चय ही आप हम सभी देवताओं का वध करना चाहते हैं ॥ ३४ ॥ इस समय रति का दुःख देखकर सभी देवता मृतप्राय हो रहे हैं । अतः आपको रति का यह शोक अवश्य दूर करना चाहिए ॥ ३५ ॥

ब्रह्माजी बोले—देवताओं की बात सुनकर भगवान् सदाशिव प्रसन्न हो गये । और इस प्रकार बोले ॥ ३६ ॥

शिवजी बोले—हे देवताओ ! एवं ऋषियो ! मेरी बात आदर से आपलोग सुनें, मेरे क्रोध से जो कुछ हो गया है, वह ठीक ही हुआ है, वह कभी मिथ्या होने वाला नहीं है ॥ ३७ ॥ यह रति का पति जब तक रुक्मिणीपति कृष्ण का पृथ्वी पर अवतार नहीं होता, तब तक यह अनङ्गरूप से रहे ॥ ३८ ॥ जब द्वारका में स्थित हो कृष्ण पुत्रों को उत्पन्न करेंगे, तब यह काम भी उनका पुत्र बनकर रुक्मिणी के गर्भ से जन्म लेगा ॥ ३९ ॥ उस समय उसका नाम प्रद्युम्न होगा, इसमें सन्देह नहीं । श्रीकृष्ण के पुत्ररूप में जन्म लेते ही शम्बर नामक असुर उसका अपहरण कर लेगा ॥ ४० ॥ वह शम्बरासुर इस बालक का अपहरण कर इसे समुद्र में फेंक देगा, वह मूर्ख इसे मृत समझकर अपने घर चला जायेगा ॥ ४१ ॥ तब तक इस रति को भी उसके नगर में सुखपूर्वक निवास करना चाहिए । वहीं उसे प्रद्युम्न के रूप में पति की प्राप्ति होगी ॥४२॥ हे देवगणो ! उस समय प्रद्युम्नरूप में अवतरित हुआ, यह काम अपनी स्त्री से मिलकर युद्ध में शम्बर का वधकर सुखी हो जायेगा ॥ ४३ ॥ और उसका सारा द्रव्य लेकर यह अपनी स्त्री के साथ द्वारका जायेगा । हे देवगणो ! यह मेरा वचन सत्य है ॥ ४४ ॥

ब्रह्माजी बोले—शिवजी के वचन सुन देवताओं ने उन्हें प्रणाम किया और चित्त में उच्छ्वसित हो, हाथ जोड़कर वे पुनः कहने लगे ॥ ४५ ॥

देवताओं ने कहा—हे देवदेव ! महादेव ! हे करुणासागर ! हे प्रभो ! हे हर ! आप काम को जीवनदान दे शीघ्र ही उसके प्राणों की रक्षा करें ॥ ४६ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्याऽमरवचः प्रसन्नः परमेश्वरः । पुनर्बभाषे करुणासागरः सकलेश्वरः ॥४७॥

शिव उवाच

हे देवाः सुप्रसन्नोऽस्मि जीवयिष्यामि चान्तरे । कामः स मद्गणो भूत्वा विहरिष्यति नित्यशः ॥४८॥

नाख्येयमिदमाख्यानं कस्यचित् पुरतः सुराः । गच्छत स्वस्थलं दुःखं नाशयिष्यामि सर्वतः॥४९॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे रुद्रो देवानां स्तुवतां तदा । सर्वे देवाः सुप्रसन्ना बभूवुर्गतविस्मयाः ॥५०॥

ततस्तां च समाश्वास्य रुद्रस्य वचने स्थिताः । उक्त्वा वचस्तदीयं च स्वं स्वं धाम ययुर्मुने!॥५१॥

कामपत्नी समादिष्टं नगरं सा गता तदा । प्रतीक्षमाणा तं कालं रुद्रादिष्टं मुनीश्वर ! ॥५२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे कामनाशवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः

(शिव के तृतीय नेत्र जन्य अग्नि का ब्रह्मा द्वारा समुद्र को समर्पण)

नारद उवाच

विधे नेत्रसमुद्भूत वह्निज्वाला हरस्य सा । गता कुत्र वद त्वं तच्चरित्रं शशिमौलिनः ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

यदा भस्म चकाराशु तृतीयनयनानलः । शम्भोः कामं प्रजज्वाल सर्वतो विफलस्तदा ॥ २ ॥

हाहाकारो महानासीत् त्रैलोक्ये सचराचरे । सर्वे देवर्षयस्तात शरणं मां ययुर्द्रुतम् ॥ ३ ॥

सर्वे निवेदयामासुस्तद् दुःखं ह्यमाकुलाः । सुप्रणम्य सुसंस्तूय करौ बद्ध्वा नताननाः ॥ ४ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार देवताओं के वचन सुनकर परमेश्वर सदाशिव प्रसन्न हो गये। फिर करुणासागर उन सकलेश्वर ने कहा ॥ ४७ ॥

शिवजी बोले—हे देवताओ ! मैं प्रसन्न हूँ, मैं इस अवधि के भीतर ही काम को जीवित करूँगा। जिससे यह मेरा गण बनकर नित्य विहार करेगा ॥ ४८ ॥ हे देवगणो ! तुम लोग इस आख्यान को किसी से मत कहना। आपलोगों का दुःख मैं अवश्य नष्ट करूँगा। अब आप सब लोग अपने-अपने स्थान को जाइए ॥ ४९ ॥

ब्रह्माजी बोले—भगवान् शिव के वचन सुन स्तुति करते हुए देवताओं के सामने ही शिवजी अन्तर्धान हो गये ॥ ५० ॥ रुद्र की बात का विश्वास करते हुए उन लोगों ने रति को शङ्कर द्वारा कही गयी सारी बातें सुना दीं। हे मुने ! तदनन्तर रति भी शम्बर के नगर को चली गयी। और वहाँ जाकर शिवजी के द्वारा बताये गये काल की प्रतीक्षा करने लगी ॥ ५१-५२ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में कामनाशवर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥

*

नारद जी बोले—हे ब्रह्मन् ! शिव के तृतीय नेत्र से उत्पन्न हुई अग्नि की ज्वाला फिर कहाँ गयी ? शिवजी के इस चरित्र का वर्णन कीजिए ॥ १ ॥

ब्रह्मा जी बोले—जब शिव के तृतीय नेत्र की अग्नि ने कामदेव को भस्म कर दिया। तब वह अग्नि व्यर्थ ही चारों ओर त्रैलोक्य को जलाने लगी ॥ २ ॥ जिससे सारे चराचर त्रिलोक में हाहाकार मच गया, सभी देव एवं ऋषिगण मेरी शरण में आये ॥ ३ ॥ और व्याकुल हो सबने हाथ जोड़ कर

तच्छ्रुत्वाऽहं शिवं स्मृत्वा तद्धेतुं सुविमृश्य च । गतस्तत्र विनीतात्मा त्रिलोकावनहेतवे ॥ ५ ॥
संदग्धुकामः स शुचिर्ज्वालामालातिदीपितः । स्तम्भितोऽरं मया शम्भुप्रसादात्सासुतेजसा ॥ ६ ॥
अथ क्रोधमयं वह्निं दग्धुकामं जगत्त्रयम् । वाडवान्तमकार्षं च सौम्यज्वालामुखं मुने ! ॥ ७ ॥
तं वाडवतनुमहं समादाय शिवेच्छया । सागरं समगां लोकहिताय जगतां पतिः ॥ ८ ॥
आगतं मां समालोक्य सागरः साञ्जलिर्मुने । धृत्वा च पौरुषं रूपमागतः सन्निधिं मम ॥ ९ ॥
सुप्रणम्याथ मां सिन्धुः संस्तूय च यथाविधि । स मामुवाच सुप्रीत्या सर्वलोकपितामहम् ॥१०॥

सागर उवाच

किमर्थमागतोऽसि त्वं ब्रह्मन्नत्राखिलाधिप ! । तन्निदेशय सुप्रीत्या मत्वा मां च स्वसेवकम् ॥११॥
अथाऽहं सागरवचः श्रुत्वा प्रीतिपुरःसरम् । प्रावोचं शङ्करं स्मृत्वा लौकिकं हितमावहन् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

शृणु तात महाधीमन् सर्वलोकहितावह ! । वच्म्यहं प्रीतितः सिन्धो शिवेच्छाप्रेरितो हृदा ॥१३॥
अयं क्रोधो महेशस्य वाडवात्मा महाप्रभुः । दग्ध्वा कामं द्रुतं सर्वं दग्धुकामोऽभवत्ततः ॥१४॥
प्रार्थितोऽहं सुरैः शीघ्रं पीडितैः शङ्करेच्छया । तत्रागत्य द्रुतं तं वै तात स्तम्भितवानशुचिम् ॥१५॥
वाडवं रूपमाधत्त तमादायागतोऽत्र ह । निर्दिशामि जलाधार त्वामहं करुणाकरः ॥१६॥
अयं क्रोधी महेशस्य वाडवं रूपमाश्रितः । ज्वालामुखस्त्वया धार्यो यावदाभूतसम्प्लवम् ॥१७॥
यदात्राऽहं समागम्य वत्स्यामि सरितां पते । तदा त्वया परित्याज्यः क्रोधोऽयं शाङ्करोऽद्भुतः॥१८॥
भोजनं तोयमेतस्य तव नित्यं भविष्यति । यत्नादेवावधार्योऽयं यथा नोपैति चान्तरम् ॥१९॥

प्रणाम कर मुझसे अपना दुःख निवेदन किया ॥ ४ ॥ उनकी बात सुन कर मैंने शिव जी को प्रणाम किया और उसका कारण जानकर त्रिलोकी की रक्षा के लिए वहाँ गया, जहाँ वह अग्नि थी ॥ ५ ॥ मैंने जाते ही काम को जलानेवाली प्रचण्ड ज्वाला युक्त उस प्रदीप्त अग्नि को शिव की कृपा से स्तम्भित कर दिया ॥ ६ ॥ हे मुने ! मैंने त्रिलोक को जलाने की इच्छा करने वाली उस शिव के क्रोधमय बड़वा अग्नि को सौम्य ज्वाला से युक्त कर दिया ॥ ७ ॥ फिर उस बड़वाग्नि को लेकर शिव की इच्छा से प्रेरित हो, मैं लोककल्याण की भावना से समुद्र के पास गया ॥ ८ ॥ हे मुने ! मुझे आता देख कर समुद्र हाथ जोड़ कर पुरुषरूप धारण किये हुए मेरे समीप आया ॥ ९ ॥ उस समुद्र ने यथाविधि मुझे प्रणाम कर मेरी स्तुति की, पुनः प्रेमपूर्वक कहने लगा ॥ १० ॥

समुद्र ने कहा—हे सर्वजगत्पति ब्रह्मन् ! आप यहाँ किस उद्देश्य से आये हैं, मुझे अपना सेवक समझ कर प्रीतिपूर्वक आज्ञा दीजिए ॥ ११ ॥ सागर की प्रेमपूर्वक बात सुन कर मैं शिवजी का स्मरण करता हुआ लोक की हितकामना से उससे कहा ॥ १२ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात ! हे महाधीमन् ! हे सर्वलोकोपकारक ! हे सिन्धो ! मैं हृदय में शिवेच्छा से प्रेरित होकर तुमसे कहता हूँ ॥ १३ ॥ यह शिवजी का महान् क्रोध है, जो बड़वानल का रूप धारण किये हुए है। यह काम को जलाकर अब त्रिलोकी को जलाना चाहता है ॥ १४ ॥ शिव की इच्छा से प्रेरित होकर इस वडवाग्नि से पीड़ित हुए देवगणों ने जब मुझसे प्रार्थना की, तब मैंने जाकर उसे शान्त किया ॥ १५ ॥ तदनन्तर इसने वडवाग्नि का रूप धारण कर लिया, इसको लेकर मैं तुम्हारे पास आया हूँ। हे जलाधार ! तुम सब पर करुणा करने वाले हो, इसलिए मैं तुम्हें निर्देश करता हूँ ॥ १६ ॥ यह महेश का क्रोध जो इस समय बड़वा रूप में स्थित है, और जिसका मुख ज्वालाकार है, उसे तुम प्रलय पर्यन्त धारण करो ॥ १७ ॥ हे सरित्पते ! जब मैं प्रलय होने पर यहाँ निवास करने लगूँ तब तुम शंकर के इस अद्भुत क्रोध का परित्याग कर देना ॥ १८ ॥ तुम्हारा जल ही इसके नित्य का भोजन होगा। इसको तुम यत्नपूर्वक धारण किये रहना, जिससे किसी प्रकार का अन्तर न पड़े ॥ १९ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तो हि मया सिन्धुरङ्गीचक्रे तदा ध्रुवम् । ग्रहीतुं वाडवं वह्निं रौद्रं चाशक्यमन्यतः ॥२०॥
ततः प्रविष्टो जलधौ स वाडवतनुः शुचिः । वार्यौघान् सुदहंस्तस्य ज्वालामालाभिदीपितः ॥२१॥
ततः सन्तुष्टचेतस्कः स्वं धामाहं गतो मुने ! । अन्तर्धानमगात् सिन्धुर्दिव्यरूपः प्रणम्य माम् ॥२२॥
स्वास्थ्यं प्राप जगत्सर्वं निर्मुक्तं तद्भवाद् भयात् । देवा बभूवुः सुखिनो मुनयश्च महामुने ! ॥२३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
वडवानलचरितवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

(शिव का अन्तर्धान होना और पार्वती को नारद का पञ्चाक्षर मन्त्रोपदेश)

नारद उवाच

विधे तात महाप्राज्ञ विष्णुशिष्य त्रिलोककृत् । अद्भुतेयं कथा प्रोक्ता शङ्करस्य महात्मनः ॥ १ ॥
भस्मीभूते स्मरे शम्भुतृतीयनयनाग्निना । तस्मिन् प्रविष्टे जलधौ वद त्वं किमभूत्ततः ॥ २ ॥
किं चकार ततो देवी पार्वती क्षुधरात्मजा । गता कुत्र सखीभ्यां सा तद्वदाद्य दयानिधे ! ॥ ३ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु तात महाप्राज्ञ ! चरितं शशिमौलिनः । महोतिकारकस्यैव स्वामिनो मम चादरात् ॥ ४ ॥
यदाऽदहच्छम्भुनेत्रोद्भवो हि मदनं शुचिः । महाशब्दोऽद्भुतोऽभूद् वै येनाकाशः प्रपूरितः ॥ ५ ॥
तेन शब्देन महता कामं दग्धं समीक्ष्य च । सखीभ्यां सह भीता सा ययौ स्वगृहमाकुला ॥ ६ ॥
तेन शब्देन हिमवान् परिवारसमन्वितः । विस्मितोऽभूदतिक्लिष्टः सुतां स्मृत्वा गतां ततः ॥ ७ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! जब मैंने समुद्र से ऐसा कहा तब उसने मेरी बात स्वीकार कर ली। क्योंकि रुद्र के क्रोध से उत्पन्न हुए उस वडवाग्नि को कोई अन्य धारण नहीं कर सकता था ॥ २० ॥ तब वह अग्नि वडवा का स्वरूप धारण कर समुद्र में प्रविष्ट हो गया और ज्वालासमूह से प्रदीप्त होकर समुद्र के जल को भस्मीभूत करने लगा ॥ २१ ॥ अनन्तर हे मुने ! सन्तुष्ट हो, मैं अपने स्थान को चला आया। फिर दिव्य रूप सागर भी मुझे प्रणाम कर अन्तर्धान हो गया ॥ २२ ॥ शिव के क्रोध से उत्पन्न उस वडवाग्नि के भय से मुक्त हुआ सारा जगत् स्वस्थ हो गया। और हे महामुने ! देवता तथा ऋषिगण महा सुखी हो गये ॥ २३ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-
पार्वतीखण्ड में बड़वानलचरितवर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २० ॥

*

नारदजी बोले—हे विधे ! हे तात ! हे महाप्राज्ञ ! हे विष्णुशिष्य ! हे त्रिलोकाधिपते ! आपने महात्मा शंकर की यह अद्भुत कथा सुनायी ॥ १ ॥ जब शिव के तृतीय नेत्र से उत्पन्न अग्नि ने काम को जला दिया और वह समुद्र में प्रवेश कर गया तब क्या हुआ ॥ २ ॥ तदनन्तर हिमालयपुत्री पार्वती देवी ने क्या किया। वह अपनी सखियों के साथ फिर कहाँ गयी। हे दयानिधे ! इस वृत्तान्त को आप मुझसे कहिए ॥ ३ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात ! हे महाप्राज्ञ ! अब तुम आदर के साथ मेरे स्वामी भगवान् शिव के चरित्र को सुनो ॥ ४ ॥ जिस समय शङ्कर की तृतीय नेत्राग्नि से काम भस्म हो गया, उस समय एक ऐसा भयानक शब्द हुआ, जिससे सारा आकाश मण्डल व्याप्त हो गया ॥ ५ ॥ उस महाशब्द के होते ही पार्वती ने जान लिया कि कामदेव भस्म हो गया है, तब वह व्याकुल एवं भयभीत हो अपनी सखियों के साथ अपने घर चली गयी ॥ ६ ॥ उस शब्द को परिवार युक्त जब हिमालय ने सुना तो वहाँ पर पार्वती के

जगाम शोकं शैलेशः सुतां दृष्ट्वाऽतिविह्वलाम् ॥ ८ ॥
रुदन्तीं शम्भुविरहादाससादाचलेश्वरः ॥ ९ ॥
आसाद्य पाणिना तस्या मार्जयन्नयनद्वयम् । मा बिभीहि शिवेऽरोदीरित्युक्त्वा तां तदाग्रहीत् ॥१०॥
क्रोडे कृत्वा सुतां शीघ्रं हिमवानचलेश्वरः । स्वमालयमथानिन्ये सान्त्वयन्नतिविह्वलाम् ॥११॥
अन्तर्हिते स्मरं दग्ध्वा हरे तद्विरहाच्छिवा । विकलाभूद् भृशं सा वै लेभे शर्म न कुत्रचित् ॥१२॥
पितुर्गृहं तदा गत्वा मिलित्वा मातरं शिवा । पुनर्जातं तदा मेने स्वात्मानं सा धरात्मजा ॥१३॥
निनिन्द च स्वरूपं सा हा हतास्मीत्यथाऽब्रवीत् । सखीभिर्बोधिता चापि न बुबोध गिरीन्द्रजा ॥१४॥
स्वपन्ती च पिबन्ती च सा स्नाती गच्छती शिवा । तिष्ठन्ती च सखीमध्ये न किञ्चित् सुखमाप ह ॥१५॥
धिक्स्वरूपं मदीयं च तथा जन्म च कर्म च । इति ब्रुवन्ती सततं स्मरन्ती हरचेष्टितम् ॥१६॥
एवं सा पार्वती शम्भुविरहोत्क्लिष्टमानसा । सुखं न लेभे किञ्चिद्वाऽब्रवीच्छिवशिवेति च ॥१७॥
निवसन्ती पितुर्गेहे पिनाकिगतचेतना । शुशोचाथ शिवा तात मुमोह च मुहुर्मुहुः ॥१८॥
शैलाधिराजोऽप्यथ मेनकाऽपि मैनाकमुख्यास्तनयाश्च सर्वे ।
तां सान्त्वयामासुरदीनसत्त्वा हरं विसस्मार तथापि नो सा ॥१९॥
अथ देवमुने धीमन् हिमवत्प्रस्तरे तदा । नियोजितो बलभिदाऽगमस्त्वं कामचारतः ॥२०॥
ततस्त्वं पूजितस्तेन भूधरेण महात्मना । कुशलं पृष्टवांस्तं वै तदाविष्टो वरासने ॥२१॥
ततः प्रोवाच शैलेशः कन्याचरितमादितः । हरसेवान्वितं कामदहनं च हरेण ह ॥२२॥

जाने का स्मरण कर वे आश्चर्यचकित हो दुःख में पड़ गये। उस समय शिव के विरह से रोती हुई और अत्यन्त व्याकुल हुई अपनी कन्या को देख कर वे भी चिन्ता में पड़ गये ॥ ७-९ ॥ उन्होंने पार्वती के पास जाकर स्वयं अपने हाथों से उसके नेत्रों के आँसू पोंछे। और बोले—'हे पार्वती, तुम मत डरो और मत रोओ' ऐसा कहकर उसे गोद में बैठा लिया। फिर अचलेश्वर हिमालय घबड़ायी हुई उस पार्वती को समझाते हुए अपने स्थान पर ले आये ॥ १०-११ ॥ कामदेव को भस्म कर शिव के अन्तर्द्धान हो जाने के पश्चात् पार्वती उनके विरह से व्याकुल हो उठी, उसे कहीं भी शान्ति न प्राप्त हुई ॥ १२ ॥ इस प्रकार पार्वती अपने पिता के घर जाकर जब अपनी माता से मिलीं तब उन्होंने अपना पुनर्जन्म समझा ॥ १३ ॥ गिरीन्द्र-कन्या पार्वती अपने रूप की निन्दा करने लगी और बारम्बार कहती कि हाय ! मैं मार डाली गयी। सखियों के बारम्बार समझाने पर भी उन्हें कुछ समझ में नहीं आता था ॥ १४ ॥ उन पार्वती को सोते, खाते-पीते, स्नान करते, कहीं आते-जाते एवं सखियों के मध्य में कहीं कुछ भी सुख न मिलता ॥ १५ ॥ वे अपने स्वरूप, जन्म और कर्म को धिक्कारती हुई शिव की चेष्टा का प्रतिक्षण स्मरण करतीं ॥ १६ ॥

इस प्रकार पार्वती शिव के विरह से व्याकुल हो कहीं भी सुख को न प्राप्त कर बारम्बार शिव नाम का उच्चारण करती रहती थीं ॥ १७ ॥ वे पिता के घर में निवास करते हुए भी शिव में अपना मन लगाये रहतीं और शोक से विह्वल हो बारम्बार मूच्छित हो जाती थीं ॥ १८ ॥ यद्यपि उनके पिता गिरिराज हिमालय, माता मेनका एवं महाबलवान् मेनाक आदि सभी भाइयों ने उन्हें बारम्बार समझाया किन्तु तब भी उन्होंने अपना मन शिवजी से नहीं हटाया ॥ १९ ॥ तदनन्तर हे मुने ! हे धीमन् नारद ! इन्द्र ने तुम्हें स्वयं हिमालय के पास भेजा। उस समय तुम भी अपनी इच्छा से विचरण करते हुए वहाँ पहुँचे ॥ २० ॥ उन हिमालय ने तुम्हारी पूजा की, तुमने भी आसन पर बैठकर हिमवान् का कुशल-समाचार पूछा ॥ २१ ॥ तब हिमालय ने पार्वती की सेवा का सारा चरित्र एवं शङ्कर द्वारा काम-दहन

श्रुत्वावोचो मुने ! त्वं तु तं शैलेशं शिवं भज । तमामन्त्र्योदतिष्ठस्त्वं संस्मृत्य मनसा शिवम् ॥२३॥
तं समुत्सृज्य रहसि कालीं तामगमस्त्वरा । लोकोपकारको ज्ञानी त्वं मुने शिववल्लभः ॥२४॥
आसाद्य कालीं सम्बोध्य तद्धिते स्थित आदरात् । अवोचस्त्वं वचस्तथ्यं सर्वेषां ज्ञानिनां वरः ॥२५॥

नारद उवाच

शृणु कालि ! वचो मे हि सत्यं वच्मि दयारतः । सर्वथा ते हितकरं निर्विकारं सुकामदम् ॥२६॥
सेवितश्च महादेवस्त्वयेह तपसा विना । गर्ववत्या यदध्वंसीद्दीनानुग्रहकारकः ॥२७॥
विरक्तश्च स ते स्वामी महायोगी महेश्वरः । विसृष्टवान् स्मरं दग्ध्वा त्वां शिवे भक्तवत्सलः ॥२८॥
तस्मात्त्वं सुतपोयुक्ता चिरमाराधयेश्वरम् । तपसा संस्कृतां रुद्रः स द्वितीयां करिष्यति ॥२९॥
त्वं चापि शङ्करं शम्भुं न त्यक्ष्यसि कदाचन । नाऽन्यं पतिं हठाद् देवि ग्रहीष्यसि शिवादृते ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्ते हि मुने सा भूधरात्मजा । किञ्चिदुच्छ्वसिता काली प्राह त्वां साञ्जलिर्मुदा ॥३१॥

शिवोवाच

त्वं तु सर्वज्ञ जगतामुपकारकर प्रभो । रुद्रस्याराधनार्थाय मन्त्रं देहि मुने हि मे ॥३२॥
न सिद्ध्यति क्रिया काऽपि सर्वेषां सद्गुरुं विना । मया श्रुता पुरा सत्यं श्रुतिरेषा सनातनी ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्याः पार्वत्या मुनिसत्तमः । पञ्चाक्षरं शम्भुमन्त्रं विधिपूर्वमुपादिशः ॥३४॥
अवोचश्च वचस्तां त्वं श्रद्धामुत्पादयन्मुने । प्रभावं मन्त्रराजस्य तस्य सर्वाधिकं मुने ! ॥३५॥

का सारा वृत्तान्त वर्णन किया ॥ २२ ॥ यह सुन कर तुम मुनिराज ने शैलेश से कहा कि तुम शिव का स्मरण करो, इस प्रकार उन्हें उपदेश कर तुम मन से शिव का स्मरण कर वहाँ से चलने के लिए उठ खड़े हुए ॥ २३ ॥ शिववल्लभ, परोपकारी एवं महाज्ञानी तुम उन हिमालय के पास से बड़ी शीघ्रता से काली के पास आये ॥ २४ ॥ तब तुम काली के सन्निकट आकर उसे सम्बोधित करते हुए आदर से उसके हित की उत्तम बात बोले ॥ २५ ॥

नारद जी बोले—हे काली ! मैं तुम्हारे ऊपर दया कर तुम्हारे लिए हितकारी, निर्विकार तथा सुख देने वाला वचन कहता हूँ, उसे तुम ध्यान से सुनो ॥ २६ ॥ तुमने बिना तपस्या के ही महादेव की सेवा की, और वह सेवा भी गर्व के साथ की इसलिए उन दीनदयालु ने तुम्हारा सारा गर्व नष्ट कर दिया ॥ २७ ॥ तुम्हारे स्वामी वे महेश्वर महायोगी एवं विरक्त हैं, उन भक्तवत्सल ने कामदेव को नष्ट कर तुम्हें भी छोड़ दिया ॥ २८ ॥ इस कारण तुम चिरकाल पर्यन्त तपस्या करते हुए शिवाराधन करो। इस प्रकार जब तुम तपस्या से शुद्ध हो जाओगी तो वे तुम्हें स्वीकार कर अपनी अर्द्धाङ्गिना बना लेंगे ॥ २९ ॥ ऐसा करने से तुम भी शंकर का त्याग नहीं करोगी। और न तो हठ से शङ्कर के अतिरिक्त किसी अन्य पति को ग्रहण करोगी ॥ ३० ॥

ब्रह्मा जी बोले—हे मुने ! तदनन्तर भूधरात्मजा पार्वती देवी कुछ उच्छ्वास लेती हुई हाथ जोड़ कर तुमसे बोली ॥ ३१ ॥

पार्वती बोली—हे मुने ! आप तो सारे जगत् का उपकार करने वाले हो, सर्वज्ञ एवं समर्थ हो, अतः मुझे रुद्र की आराधना के निमित्त मुझे मन्त्रोपदेश कीजिए ॥ ३२ ॥ क्योंकि, सद्गुरु के बिना किसी का कोई भी क्रिया सिद्ध नहीं होती, ऐसा मैंने सुन रखा है और यही सनातनी श्रुति भी है ॥ ३३ ॥

ब्रह्मा जी बोले—इस प्रकार पार्वती के वचन सुन तुम मुनिराज ने पार्वती को शिवजी के पञ्चाक्षर मन्त्र का उपदेश दिया ॥ ३४ ॥ और हे मुने ! उस मन्त्रराज में पार्वती की श्रद्धा बढ़ाते हुए, तुमने उस के सर्वाधिक प्रभाव तथा माहात्म्य का वर्णन करते हुए उससे कहा ॥ ३५ ॥

नारद उवाच

शृणु देवि ! मनोरस्य प्रभावं परमाद्भुतम् । यस्य श्रवणमात्रेण शङ्करः सुप्रसीदति ॥३६॥
मन्त्रोऽयं सर्वमन्त्राणामधिराजश्च कामदः । भुक्तिमुक्तिप्रदोऽत्यन्तं शङ्करस्य महाप्रियः ॥३७॥
सुभगे येन जप्तेन विधिना सोऽचिराद् द्रुतम् । आराधितस्ते प्रत्यक्षो भविष्यति शिवो ध्रुवम् ॥३८॥
चिन्तयन्ती च तद्रूपं नियमस्था क्षराक्षरम् । जप मन्त्रं शिवे त्वं हि सन्तुष्यति शिवो द्रुतम् ॥३९॥
एवं कुरु तपः साध्वि ! तपःसाध्यो महेश्वरः । तपस्येव फलं सर्वैः प्राप्यते नाऽन्यथा क्वचित् ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदा कालीं नारद ! त्वं शिवप्रियः । यादृच्छिकोऽगमस्त्वं तु स्वर्गं देवहिते रतः ॥४१॥
पार्वती च तदा श्रुत्वा वचनं तव नारद ! । सुप्रसन्ना तदा प्राप पञ्चाक्षरमनुत्तमम् ॥४२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे

नारदोपदेशवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

(शिव-प्राप्ति निमित्त पार्वती की तपस्या)

ब्रह्मोवाच

त्वयि देवमुने ! याते पार्वती हृष्टमानसा । तपः साध्यं हरं मेने तपोऽर्थं मन आदधे ॥ १ ॥
ततः सख्यौ समादाय जयां च विजयां तथा । मातरं पितरं चैव सखीभ्यां पर्यपृच्छत ॥ २ ॥
प्रथमं पितरं गत्वा हिमवन्तं नगेश्वरम् । पर्यपृच्छत् सुप्रणम्य विनयेन समन्विता ॥ ३ ॥

नारद जी बोले—हे देवि ! तुम इस मन्त्रराज के परम अद्भुत प्रभाव को सुनो, जिसके श्रवण मात्र से भगवान् शङ्कर प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ३६ ॥ यह मन्त्र सभी मन्त्रों का महाराज है, और कामना, भोग तथा मोक्ष को देने वाला भगवान् शङ्कर का परम प्रिय है ॥ ३७ ॥ हे सुभगे ! जब तुम विधिपूर्वक इस मन्त्र का जप करोगी तो इसकी आराधना से प्रसन्न हुए शङ्कर जी शीघ्र प्रत्यक्ष हो जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३८ ॥ हे शिवे ! शङ्कर के क्षर अथवा अक्षर रूप का० स्मरण करती हुई नियम में स्थित हो इस पञ्चाक्षर मन्त्र का जप करो । हे शिवे ! इस मन्त्र के जपने से शिवजी तुम्हारे ऊपर शीघ्र प्रसन्न हो जायेंगे ॥३९॥ हे साध्वि ! तुम इसी मन्त्र का जप करते हुए तप करो, क्योंकि महेश्वर तप से ही साध्य हैं । सभी फल तपस्या से ही प्राप्त होते हैं, बिना तप के कुछ नहीं प्राप्त होता ॥ ४० ॥

ब्रह्माजी बोले—हे शिवप्रिय नारद जी ! तुम इस प्रकार काली से कह कर देवताओं के हित में प्रीति रखते हुए अपनी इच्छा से स्वर्ग को चले गये ॥ ४१ ॥ हे नारद ! पार्वती भी तुम्हारा वचन सुनकर और तुमसे पञ्चाक्षर मन्त्र प्राप्त कर परम प्रसन्न हो गयी ॥ ४२ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-
पार्वतीखण्ड में नारदोपदेशवर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिराज ! ऐसा कहकर तुम्हारे चले जाने के बाद पार्वती परम प्रसन्न हुईं । उन्होंने शिवजी को तपःसाध्य मानकर तपस्या में ही मन लगाया ॥ १ ॥ उन्होंने अपनी जया एवं विजया नामक सखी को ले जाकर उन्हीं के द्वारा अपनी माता तथा पिता से तप की आज्ञा माँगी ॥ २ ॥ उन दोनों सखियों ने सर्वप्रथम पर्वतराज हिमालय से नम्रतापूर्वक भक्तियुक्त हो प्रणाम कर पूछा ॥ ३ ॥

सख्यावूचतुः

हिमवञ्छ्रूयतां पुत्रीवचनं कथ्यतेऽधुना। सा स्वयं चैव देहस्य रूपस्यापि तथा पुनः ॥ ४ ॥
भवतो हि कुलस्यास्य साफल्यं कर्तुमिच्छति। तपसा साधनीयोऽसौ नाऽन्यथा दृश्यतां व्रजेत्॥ ५ ॥
तस्माच्च पर्वतश्रेष्ठ! देयाऽऽज्ञा भवताऽधुना। तपः करोतु गिरिजा वनं गत्वेति सादरम् ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं च तदा पृष्टः सखीभ्यां मुनिसत्तम!। पार्वत्या सुविचार्याथ गिरिराजोऽब्रवीदिदम् ॥ ७ ॥

हिमालय उवाच

मह्यं च रोचतेऽत्यर्थं मेनायै रुच्यतां पुनः। यद्येवं भवितव्यं च किमतः परमुत्तमम् ॥ ८ ॥
साफल्यं तु मदीयस्य कुलस्य च न संशयः। मात्रे तु रुच्यते चेद्वै ततः शुभतरं नु किम् ॥ ९ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वचनं पित्रा प्रोक्तं श्रुत्वा तु ते तदा। जग्मतुर्मातरं सख्यौ तदाज्ञप्तै तया सह ॥१०॥
गत्वा तु मातरं तस्याः पार्वत्यास्ते च नारद!। सुप्रणम्य करौ बध्वोचतुर्वचनमादरात् ॥११॥

सख्यावूचतुः

मातस्त्वं वचनं पुत्र्याः शृणु देवि! नमोऽस्तु ते। सुप्रसन्नतया तद्वै श्रुत्वा कर्तुमिहार्हसि ॥१२॥
तप्तुकामा तु ते पुत्री शिवार्थं परमं तपः। प्राप्तानुज्ञा पितुश्चैव तुभ्यं च परिपृच्छति ॥१३॥
इयं स्वरूपसाफल्यं कर्तुकामा पतिव्रते!। त्वदाज्ञया यदि जायेत तप्यते च तथा तपः ॥१४॥

दोनों सखियाँ बोलीं—हे राजन्! आप की पुत्री पार्वती, जो आप से कुछ कहना चाहती है, उसे सुनिए। यह आपकी पुत्री अपने देह, रूप तथा अपने कुल को शंकर की आराधना से सफल बनाना चाहती है, वे शङ्कर तपस्या से ही साध्य हैं अन्य उपाय से उनका दर्शन असम्भव है ॥४-५॥ इस कारण हे गिरिराज! आपको इसी समय यह आज्ञा देनी चाहिए कि गिरिजा वन में जाकर आदरपूर्वक तपस्या करे ॥ ६ ॥

ब्रह्माजी बोले पार्वती के सखियों ने जब इस प्रकार पूछा, तब गिरिराज ने विचार कर ऐसा कहा ॥ ७ ॥

हिमालय ने कहा—मुझे तो यह बात अच्छी लगती है, पर यदि पार्वती की माता को यह बात अच्छी लगे तो ऐसा होना चाहिए, यदि ऐसा हो तो इससे बढ़कर और क्या बात हो सकती है ॥ ८ ॥ यदि पार्वती की माता को यह कार्य रुचिकर लगे तो इसमें हमारा तथा हमारे कुल दोनों ही धन्य हो जायेंगे। इससे बढ़कर और कौन शुभकारक उत्तम बात होगी ॥ ९ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार वे दोनों सखियाँ पार्वती के पिता के वचन सुन पार्वती की माता से आज्ञा लेने के लिए वहाँ गयीं ॥ १० ॥ हे नारद! वे पार्वती की माता के पास जाकर प्रणाम कर हाथ जोड़ आदर पूर्वक उनसे बोलीं ॥ ११ ॥

सखियों ने कहा—हे देवि! तुम्हें नमस्कार है, हे मातः! तुम पार्वती के वचन को सुनो। और सुन कर उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करो ॥ १२ ॥ तुम्हारी यह पुत्री शिवजी की प्राप्ति हेतु तपस्या करना चाहती है, इसे तप करने की आज्ञा पिता द्वारा प्राप्त हो चुकी है, अब यह तुमसे आज्ञा लेने के लिए तुम्हारे पास आयी है ॥ १३ ॥ यह उत्तम पति प्राप्त करने के लिए अपने स्वरूप को सफल बनाना चाहती है, अतः यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो यह तपस्या करने जाये ॥ १४ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा च ततः सख्यौ तूष्णीमास्तां मुनीश्वर ! । नाङ्गीचकार मेना सा तद्वाक्यं खिन्नमानसा ॥१५॥
ततः सा पार्वती प्राह स्वयमेवाथ मातरम् । करौ बद्ध्वा विनीतात्मा स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम्॥१६॥

पार्वत्युवाच

मातस्तप्तुं गमिष्यामि प्रातः प्राप्तुं महेश्वरम् । अनुजानीहि मां गन्तुं तपसेऽद्य तपोवनम् ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचः पुत्र्या मेना दुःखमुपागता । सोपाहूय तदा पुत्रीमुवाच विकला सती ॥१८॥

मेनोवाच

दुःखिताऽसि शिवे पुत्रि ! तपस्तप्तुं पुरा यदि । तपश्चर गृहेऽद्य त्वं न बहिर्गच्छ पार्वति ! ॥१९॥
कुत्र यासि तपः कर्तुं देवाः सन्ति गृहे मम । तीर्थानि च समस्तानि क्षेत्राणि विविधानि च ॥२०॥
कर्तव्यो न हठः पुत्रि ! गन्तव्यं न बहिः क्वचित् । साधितं किं त्वया पूर्वं पुनः किं साधयिष्यसि ॥२१॥
शरीरं कोमलं वत्से ! तपस्तु कठिनं महत् । एतस्मात्तु त्वया कार्यं तपोऽत्र न बहिर्व्रज ॥२२॥
स्त्रीणां तपोवनगतिर्न श्रुता कामनार्थिनी । तस्मात्त्वं पुत्रि ! मा कार्षीस्तपोऽर्थं गमनं प्रति ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं बहुधा पुत्री तन्मात्रा विनिवारिता । संवेदे न सुखं किञ्चिद्विनाराध्य महेश्वरम् ॥२४॥
तपोनिषिद्धा तपसे वनं गन्तुं च मेनया । हेतुना तेन सोमेति नाम प्राप शिवा तदा ॥२५॥
अथ तां दुःखितां ज्ञात्वा मेना शैलप्रिया शिवाम् । निदेशं सा ददौ तस्याः पार्वत्यास्तपसे मुने ! ॥२६॥
मातुराज्ञां च सम्प्राप्य सुव्रता मुनिसत्तम ! । ततः स्वान्ते सुखं लेभे पार्वती स्मृतशङ्करा ॥२७॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर ! ऐसा कहकर वे सखियाँ मौन हो गयीं। मेना यह बात सुनते ही खिन्न हो गयी और उसने इस बात को स्वीकार नहीं किया ॥ १५ ॥ तब पार्वती शिव के चरण-कमलों को स्मरण करती हुई हाथ जोड़ कर अपनी माता से स्वयं बोली ॥ १६ ॥

पार्वती बोलीं—हे मातः ! मैं महेश्वर को प्राप्त करने के लिए प्रातःकाल में तपस्या हेतु तपोवन जाना चाहती हूँ, अतः आप मुझे तपोवन में जाने के लिए आज ही आज्ञा प्रदान कीजिए ॥ १७ ॥

ब्रह्माजी बोले—पुत्री की बात सुनते ही मेना दुःखी हो गयी। फिर विकल होकर पुत्री को अपने निकट बैठाती हुई बोली ॥ १८ ॥

मेना बोली—हे शिवे, हे पुत्री ! यदि तू दुःखी है और तपस्या करना ही चाहती है तो तू घर में ही तपस्या करो। कहीं अन्यत्र बाहर मत जा ॥ १९ ॥ जब मेरे घर में ही समस्त देवता, तीर्थ तथा समस्त क्षेत्र विद्यमान हैं तो तप करने के लिए तुम अन्यत्र कहाँ जाओगी ? ॥२०॥ हे पुत्रि ! इस विषय में तुम हठ मत करो और न तो तपस्या करने के लिए कहीं बाहर जाने का विचार ही करो। हे पुत्रि ! तुमने तो पूर्व में ही सब कुछ सिद्ध कर लिया है, अब क्या सिद्ध करना चाहती हो ॥ २१ ॥ हे वत्से ! तुम्हारा शरीर अत्यन्त कोमल है और तपस्या तो बड़ा दुष्कर कार्य है, इसलिए तुम यहीं घर पर रहकर तपस्या करो, कहीं अन्यत्र बाहर मत जाओ ॥ २२ ॥ अपने मनोरथ को पूर्ण करने हेतु स्त्रियों के वन जाने की बात तो मैंने कहीं नहीं सुनी है। इसलिए हे पुत्रि ! तपस्या के लिए वन जाने का विचार छोड़ दो ॥ २३ ॥

ब्रह्मा जी बोले—इस प्रकार मेना ने अनेक प्रकार से अपनी पुत्री को वन जाने के लिए मना किया। किन्तु शंकर की आराधना के बिना कहीं भी उस पार्वती को चैन न मिला ॥ २४ ॥ मेना ने बारम्बार तपस्या के निमित्त वन जाने से उसे रोका इसलिए वह 'उमा' नाम से विख्यात हुई ॥ २५ ॥ हे मुने ! मेना ने जब देखा कि पार्वती तपस्या से रोकने के कारण दुःखी हो रही है तो उसने पार्वती को तप करने की आज्ञा दे दी ॥ २६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! माता की आज्ञा प्राप्त कर शंकर का स्मरण करते हुए पार्वती ने

मातरं पितरं साऽथ प्रणिपत्य मुदा शिवा । सखीभ्यां च शिवं स्मृत्वा तपस्तप्तुं समुद्गता ॥२८॥
हित्वा मतान्यनेकानि वस्त्राणि विविधानि च । वल्कलानि धृतान्याशु मौञ्जीं बद्ध्वा तु शोभनाम् ॥२९॥
हित्वा हारं तथा चर्म मृगस्य परमं धृतम् । जगाम तपसे तत्र गङ्गावतरणं प्रति ॥३०॥
शम्भुना कुर्वता ध्यानं यत्र दग्धो मनोभवः । गङ्गावतरणो नाम प्रस्थो हिमवतः स च ॥३१॥
हरशून्योऽथ ददृशे स प्रस्थो हिमभूभृतः । काल्या तत्रेत्य भोस्तात! पार्वत्या जगदम्बया ॥३२॥
यत्र स्थित्वा पुरा शम्भुस्तप्तवान् दुस्तरं तपः । तत्र क्षणं तु सा स्थित्वा बभूव विरहार्दिता ॥३३॥
हा हरेति शिवा तत्र रुदन्ती सा गिरेः सुता । विललापातिदुःखार्ता चिन्ताशोकसमन्विता ॥३४॥
ततश्चिरेण सा मोहं धैर्यात् संस्तभ्य पार्वती । नियमायाऽभवत्तत्र दीक्षिता हिमवत्सुता ॥३५॥
तपश्चकार सा तत्र शृङ्गितीर्थे महोत्तमे । गौरीशिखरनामासीत्तत्तपः करणाद्धि तत् ॥३६॥
सुन्दराश्च द्रुमास्तत्र पवित्राः शिवया मुने ! । आरोपिताः परीक्षार्थं तपसः फलभागिनः ॥३७॥
भूमिशुद्धिं ततः कृत्वा वेदीं निर्माय सुन्दरी । तथा तपः समारब्धं मुनीनामपि दुष्करम् ॥३८॥
विगृह्य मनसा सर्वाणीन्द्रियाणि सहाशु सा । समुपस्थानिके तत्र चकार परमं तपः ॥३९॥
ग्रीष्मे च परितो वह्निं प्रज्वलन्तं दिवानिशम् । कृत्वा तस्थौ च तन्मध्ये सततं जपती मनुम् ॥४०॥
सततं चैव वर्षासु स्थण्डिले सुस्थिरासना । शिलापृष्ठे च संसिक्ता बभूव जलधारया ॥४१॥
शीते जलान्तरे शश्वत्तस्थौ सा भक्तितत्परा । अनाहाराऽतपत्तत्र नीहारेषु निशासु च ॥४२॥
एवं तपः प्रकुर्वाणा पञ्चाक्षरजपे रता । दध्यौ शिवं शिवा तत्र सर्वकामफलप्रदम् ॥४३॥

अपने मन में बड़ा सुख माना ॥ २७ ॥ तदनन्तर उसने माता-पिता को प्रणाम कर अपनी दो सखियों को साथ ले शिव का स्मरण करती हुई तपस्या करने हेतु वन की ओर प्रसन्नता से प्रस्थान किया ॥ २८ ॥ उसने अपने समस्त अभीष्ट वस्तुओं का और नाना प्रकार के बहुमूल्य वस्त्रों का परित्याग कर दिया। अपने कटि प्रदेश में मौञ्जी तथा शरीर पर वृक्ष के वल्कल धारण कर लिये ॥ २९ ॥ बहुमूल्य हार उतार दिये और उसके स्थान पर मृगचर्म धारण कर लिया। और तपस्या करने के लिए गङ्गावतरण नामक स्थान पर चली गयी ॥ ३० ॥ जहाँ पर समाधिस्थ शंकर ने काम को भस्म कर दिया था, जो हिमालय के चोटी पर स्थित है ॥ ३१ ॥

वह काली सर्वप्रथम हिमवत्प्रदेश के शिखर पर स्थित हुए उसी गङ्गावतरण नामक स्थान पर गयी और उसे शिव से रहित देखा ॥ ३२ ॥ जहाँ पर निवास करते हुए शिवजी ने अत्यन्त दुष्कर तप किया था। उस स्थान पर जाकर वह क्षण भर के लिए शिव के विरह से व्याकुल हो गयी ॥ ३३ ॥ उस समय वह 'हा शंकर' इस प्रकार कह कर रोती हुई चिन्ता-शोक से युक्त होकर विलाप करने लगी ॥ ३४ ॥ अनन्तर बहुत समय के बाद उसने धैर्य धारण कर मोह का त्याग कर दिया, और दीक्षित होकर तपस्या के लिए नियम धारण कर लिया ॥ ३५ ॥ वह उस महान् उत्तम शृङ्गी तीर्थ में तपस्या करने लगी। उस स्थान में गौरी के तपस्या करने के कारण उसका गौरी शङ्कर ऐसा नाम पड़ा ॥ ३६ ॥

हे मुने ! वहाँ पार्वती ने अपनी तपस्या की परीक्षा के लिए अनेक प्रकार के पवित्र, सुन्दर तथा फलवान् वृक्ष लगाये ॥ ३७ ॥ उस सुन्दरी ने भूमि की शुद्धि कर वेदी का निर्माण किया। उसने मन के साथ समस्त इन्द्रियों को रोककर सूर्य का उपस्थान करती हुई मुनियों के लिए भी दुष्कर तपस्या आरम्भ कर दी ॥३८-३९॥ ग्रीष्मकाल में दिन-रात अग्नि प्रज्वलित कर, उसके मध्य में बैठ कर पञ्चाग्नि तापती हुई पञ्चाक्षर मन्त्र का जप करती ॥ ४० ॥ वर्षा के समय शिला-पृष्ठ के स्थण्डिल पर स्थिर आसन से बैठी हुई खुले आकाश के नीचे जल की धारा सहन करती ॥ ४१ ॥ और शीतऋतु में पूस की रात्रियों में निराहार रह कर वह जल के मध्य में निवास करती ॥ ४२ ॥ इस प्रकार निरन्तर पञ्चाक्षर मन्त्र का जप करती हुई पार्वती तपस्या

स्वारोपिताञ्छुभान् वृक्षान् सखीभिः सिञ्चती मुदा । प्रत्यहं सावकाशे सा तत्रातिथ्यमकल्पयत् ॥४४॥
वातश्चैव तथा शीतवृष्टिश्च विविधा तथा । दुःसहोऽपि तथा घर्मस्तया सेहे सुचित्तया ॥४५॥
दुःखं च विविधं तत्र गणितं न तयागतम् । केवलं मन आधाय शिवे साऽऽसीत् स्थिता मुने ! ॥४६॥
प्रथमं फलभोगेन द्वितीयं पर्णभोजनैः । तपः प्रकुर्वती देवी क्रमान्निन्येऽमिताः समाः ॥४७॥
ततः पर्णान्यपि शिवा निरस्य हिमवत्सुता । निराहाराऽभवद् देवी तपश्चरणसंस्थिता ॥४८॥
आहारे त्यक्तपर्णाऽभूद्यस्माद्धिमवतः सुता । तेन देवैरपर्णेति कथिता नामतः शिवा ॥४९॥
एकपादस्थिता साऽऽसीच्छिवं संस्मृत्य पार्वती । पञ्चाक्षरं जपन्ती च मन्त्रं तेपे तपो महत् ॥५०॥
चीरवल्कलसंवीता जटासङ्घातधारिणी । शिवचिन्तनसंसक्ता जिगाय तपसा मुनीन् ॥५१॥
एवं तस्यास्तपस्यन्त्याश्चिन्तयन्त्या महेश्वरम् । त्रीणि वर्षसहस्राणि जग्मुः काल्यास्तपोवने ॥५२॥
षष्टिवर्षसहस्राणि यत्र तेपे तपोहरः । तत्र क्षणमथोषित्वा चिन्तयामास सा शिवा ॥५३॥
नियमस्थां महादेव किं मां जानासि नाधुना । येनाऽहं सुचिरं तेन नानुयाता तपोरता ॥५४॥
लोके वेदे च गिरिशो मुनिभिर्गीयते सदा । शङ्करः स हि सर्वज्ञः सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥५५॥
सर्वभूतिप्रदो देवः सर्वभावानुभावनः । भक्ताभीष्टप्रदो नित्यं सर्वक्लेशनिवारणः ॥५६॥
सर्वकामान् परित्यज्य यदि चाऽहं वृषध्वजे । अनुरक्ता तदा सोऽत्र संप्रसीदतु शङ्करः ॥५७॥
यदि नारद ! तन्त्रोक्तमन्त्रो जप्तः शराक्षरः । सुभक्त्या विधिना नित्यं संप्रसीदतु शङ्करः ॥५८॥
यदि भक्त्या शिवस्याऽहं निर्विकारा यथोदितम् । सर्वेश्वरस्य चात्यन्तं संप्रसीदतु शङ्करः ॥५९॥

में निरत हो सर्वकामफलप्रद भगवान् शंकर का ध्यान करने लगी ॥ ४३ ॥ वह समय शेष होने पर अपने लगाये हुए वृक्षों को सखियों के साथ सींचती अथवा अतिथि-सत्कार करती ॥ ४४ ॥ स्वस्थ चित्त हो नाना प्रकार के वात, शीत एवं वृष्टि तथा असह्य घाम भी सहन कर लेती ॥ ४५ ॥ इसी प्रकार उस पर और भी नाना प्रकार के असह्य दुःख आये किन्तु उसने किसी की परवाह नहीं की। वह केवल शिव में मन लगा कर स्थिर चित्त हो गयी ॥ ४६ ॥ पहले तो उसने फल खाकर तपस्या की फिर पत्ते खाकर तपस्या में निरत हुई, उस पार्वती ने अनेक वर्ष विता दिये ॥ ४७ ॥ तदनन्तर उसने पत्ते भी खाना छोड़ दिया। और निराहार रह कर तपस्या में लीन रहने लगी ॥ ४८ ॥

जव उस हिमालय की पुत्री ने पत्ते का खाना भी छोड़ दिया तो देवताओं ने उसका नाम 'अपर्णा' रखा ॥ ४९ ॥ वह एक पैर पर स्थित हो शिव का ध्यान करती पञ्चाक्षर मन्त्र का जप करती हुई उग्र तपस्या करने लगी ॥५०॥ शरीर पर वल्कल वस्त्र धारण किये एवं शिर पर जटाजूट धारण किये हुए शिव का ध्यान करती हुई उस पार्वती ने अपनी तपस्या से मुनियों को भी जीत लिया ॥५१॥ इस प्रकार तपस्या मे निरत होकर शिव का चिन्तन करते हुए उस पार्वती ने उसी तपोवन में तीन सहस्र वर्ष विता दिये ॥ ५२ ॥ जहाँ पर शंकर ने साठ सहस्र वर्ष तक तपस्या की थी। वहाँ इतने वर्षों तक तपस्या करने के अनन्तर वह अपने मन में विचारने लगी ॥ ५३ ॥ हे महादेव ! क्या आप तपस्या में निरत हुए मुझे नहीं जानते, जो मुझे तपस्या करते हुए इतने वर्ष बीत जाने पर भी अभी तक आपने मेरी सुधि न ली ॥ ५४ ॥ लोक एवं वेद में तथा मुनिगणों के द्वारा भी ऐसा सुना जाता है कि भगवान् शंकर सर्वज्ञ, सर्वात्मा, आशुतोष एवं समदर्शी हैं ॥ ५५ ॥ वे देव समस्त ऐश्वर्य को प्रदान करने वाले तथा सब प्रकार के भावो से प्राप्त होते हैं। वे ही भक्तों का मनोरथ पूर्ण करने वाले तथा सभी प्रकार के क्लेशों को दूर करने वाले हैं ॥ ५६ ॥ अतः यदि मैंने अपनी सारी कामनाएँ त्याग कर मात्र शंकर में अनुरक्त हूँ तो वह शंकर मुझ पर प्रसन्न हों ॥ ५७ ॥ यदि मैंने नारदतन्त्रोक्त पञ्चाक्षर मन्त्र का भक्ति तथा विधिपूर्वक जप किया है तो वे शिवजी मेरे ऊपर अवश्य प्रसन्न हों ॥ ५८ ॥ यदि मैंने निर्विकार भाव से सदाशिव की यथायोग्य आराधना की है तो वे सर्वेश्वर मुझ पर प्रसन्न हों ॥ ५९ ॥

एवं चिन्तयती नित्यं तेपे सा सुचिरं तपः । अधोमुखी निर्विकारा जटावल्कलधारिणी ॥६०॥
तथा तया तपस्तप्तं मुनीनामपि दुष्करम् । स्मृत्वा च पुरुषास्तत्र परमं विस्मयं गताः ॥६१॥
तत्तपोदर्शनार्थं हि समाजग्मुश्च तेऽखिलाः । धन्यान्निजान् मन्यमाना जगदुश्चेति सम्मताः ॥६२॥
महतां धर्मवृद्धेषु गमनं श्रेय उच्यते । प्रमाणं तपसो नास्ति मान्यो धर्मः सदा बुधैः ॥६३॥
श्रुत्वा दृष्ट्वा तपोऽस्यास्तु किमन्यैः क्रियते तपः । अस्मात्तपोऽधिकं लोके न भूतं न भविष्यति ॥६४॥
जल्पन्त इति ते सर्वे सुप्रशस्य शिवातपः । जग्मुः स्वं धाम मुदिताः कठिनाङ्गाश्च ये ह्यपि ॥६५॥
अन्यच्छृणु महर्षे ! त्वं प्रभावं तपसोऽधुना । पार्वत्या जगदम्बायाः पराश्चर्यकरं महत् ॥६६॥
तदाश्रमगता ये च स्वभावेन विरोधिनः । तेऽप्यासँस्तत्प्रभावेण विरोधरहितास्तदा ॥६७॥
सिंहा गावश्च सततं रागादिदोषसंयुताः । तन्महिम्ना च ते तत्र नाबाधन्त परस्परम् ॥६८॥
अथाऽन्ये च मुनिश्रेष्ठ ! मार्जारा मूषकादयः । निसर्गाद् वैरिणो यत्र विक्रियन्ते स्म न क्वचित् ॥६९॥
वृक्षाश्च सफलास्तत्र तृणानि विविधानि च । पुष्पाणि च विचित्राणि तत्रासन्मुनिसत्तम ! ॥७०॥
तद्वनं च तदा सर्वं कैलासेनोपमान्वितम् । जातं च तपसस्तस्याः सिद्धिरूपमभूत्तदा ॥७१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे पार्वतीतपोवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इस प्रकार अपने मन में सोचती हुई वह पार्वती नीचे की ओर मुख किये और जटा एवं वृक्ष का वल्कल धारण कर निर्विकार भाव से तपस्या करने लगी ॥ ६० ॥ इस तरह मुनियों के लिए भी अत्यन्त दुष्कर तप में लीन हुई उस पार्वती का स्मरण कर, सभी पुरुष अत्यन्त विस्मृत हो गये ॥ ६१ ॥ उसकी तपस्या देखने के लिए सभी लोग वहाँ पर उपस्थित हो गये, और अपने को धन्य मान कर एक स्वर से कहने लगे ॥ ६२ ॥ बुद्धिमानों को धर्म का आदर करना चाहिए। धर्मवृद्धों के पास जाने से बड़े लोगों का कल्याण ही होता है । यह पार्वती कितनी महान् है, इसके तपस्या का तो वारापार नहीं है ॥ ६३ ॥ इसकी तपस्या को देख तथा स्मरण कर ऐसा ज्ञात होता है कि और लोग क्या तप कर सकते हैं । इस संसार में इस पार्वती के तप से अधिक तप न तो किसी ने किया है और न करने वाला है और न तो कोई करेगा ही ॥ ६४ ॥ ऐसा कहते हुए पार्वती की प्रशंसा कर अत्यन्त तितिक्षु तपस्वी तथा सामान्य जन प्रसन्न हो अपने-अपने स्थानों को चले गये ॥ ६५ ॥

ब्रह्मा जी ने कहा—हे नारद ! उस पार्वती की तपस्या का अब प्रभाव सुनो, जो जगदम्बा पार्वती का आश्चर्यकारक चरित्र है ॥ ६६ ॥ पार्वती के तपोवन में रहने वाले समस्त जन्तु, जो स्वभाव से ही आपस में शत्रुता रखने वाले हैं, उन लोगों ने उसकी तपस्या के प्रभाव से आपसी बैर का त्याग कर दिया ॥ ६७ ॥ यद्यपि सिंह तथा गायें परस्पर रागादि दोष से दूषित हैं, किन्तु वे भी उसकी तपस्या के प्रभाव से परस्पर किसी को बाधा नहीं पहुँचाते थे ॥ ६८ ॥ उस आश्रम में रहने वाले मार्जार, मूषकादि जो स्वभाव से परस्पर बैर करने वाले हैं, वे भी अपना-अपना बैर छोड़ कर विविकार भाव से वहाँ निवास करने लगे ॥ ६९ ॥ उस पार्वती के तपोवन में सारे वृक्ष, फल एवं विचित्र पुष्पों से समन्वित हो गये । नाना प्रकार के तृण उत्पन्न हो गये ॥ ७० ॥ सारा-का-सारा वन उसकी तपस्या की सिद्धि के रूप में दिखाई पड़ने लगा और कैलास के समान मालूम होने लगा ॥ ७१ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में पार्वतीतपोवर्णन नामक बाइसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥

*

त्रयोविंशोऽध्यायः

(पार्वती के तप से उद्विग्न हुए देवताओं का ब्रह्मलोक आगमन)

ब्रह्मोवाच

एवं तपन्त्यां पार्वत्यां शिवप्राप्तौ मुनीश्वर ! । चिरकालो व्यतीयाय प्रादुर्भूतो हरो न हि ॥ १ ॥
हिमालयस्तदागत्य पार्वतीं कृतनिश्चयाम् । सभार्यःससुतामात्य उवाच परमेश्वरीम् ॥ २ ॥

हिमालय उवाच

मा खिद्यतां महाभागे ! तपसाऽनेन पार्वती । रुद्रो न दृश्यते बाले ! विरक्तो नाऽत्र संशयः ॥ ३ ॥
त्वं तन्वी सुकुमाराङ्गी तपसा च विमोहिता । भविष्यसि न सन्देहः सत्यं सत्यं वदामि ते ॥ ४ ॥
तस्मादुत्तिष्ठ चैहि त्वं स्वगृहं वरवर्णिनि ! । किं तेन तव रुद्रेण येन दग्धः पुरा स्मरः ॥ ५ ॥
अतो हि निर्विकारत्वात्त्वामादातुं वरां हरः । नागमिष्यति देवेशि ! तं कथं प्रार्थयिष्यसि ॥ ६ ॥
गगनस्थो यथा चन्द्रो ग्रहीतुं न हि शक्यते । तथैव दुर्गमं शम्भुं जानीहि त्वमिहानघे ! ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच

तथैव मेनया चोक्ता तथा सह्याद्रिणा सती । मेरुणा मन्दरेणैव मैनाकेन तथैव सा ॥ ८ ॥
एवमन्यैः क्षितिध्रैश्च क्रौञ्चादिभिरनातुरा । तथैव गिरिजा प्रोक्ता नानावादविधायिभिः ॥ ९ ॥
एवं प्रोक्ता यदा तन्वी सा सर्वैस्तपसि स्थिता । उवाच प्रहसन्त्येव हिमवन्तं शुचिस्मिता ॥१०॥

पार्वत्युवाच

पुरा प्रोक्तं मया तात ! मातः ! किं विस्मृतं त्वया । अधुनाऽपि प्रतिज्ञां च शृणुध्वं मम बान्धवाः ॥११॥
विरक्तोऽसौ महादेवो येन दग्धो रुषा स्मरः । तं तोषयामि तपसा शङ्करं भक्तवत्सलम् ॥१२॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! इस प्रकार शिव-दर्शन की लालसा से पार्वती को तप करते हुए जब बहुत वर्ष बीत गये और उसे शिव-दर्शन नहीं प्राप्त हुआ ॥ १ ॥ तब भी अपने संकल्प में दृढ़निश्चय वाली उस पार्वती के समीप गिरिराज हिमालय अपनी स्त्री, लड़के तथा मन्त्रियों को लेकर वहीं पहुँचे और बोले—॥ २ ॥

हिमालय बोले—हे महाभागे, हे पार्वति ! तुम इस तप से दुःखी मत होना, हे बाले ! रुद्र विरक्त हैं इसलिए तुम्हें दर्शन नहीं देते, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३ ॥ तुम अत्यन्त सुकुमार तथा दुर्बल शरीरवाली हो और अब तपस्या से अत्यन्त कृश हो जायेगी, यह बात सत्य है, यह बात सत्य है ॥ ४ ॥ इसलिए हे वरवर्णिनि ! तुम उठो और अपने घर चलो । उस रुद्र से तुम्हारा कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होगा, जिन्होंने प्रथम कामदेव को ही जला दिया है ॥ ५ ॥ जब विर्विकार होने के कारण वे तुम्हें ग्रहण करने के लिए नहीं आवेंगे तो हे देवेशि ! तुम उनसे प्रार्थना भी क्यों करोगी ? ॥ ६ ॥ जिस प्रकार आकाश में रहने वाले चन्द्रमा को पकड़ना असम्भव है उसी प्रकार हे देवेशि ! तुम शिवजी को भी अत्यन्त दुर्गम जानो ॥ ७ ॥

ब्रह्माजी बोले—इसी प्रकार मेना ह्याद्रि, मेरु, मन्दर एवं मैनाक ने भी उसे बहुत समझाया ॥ ८ ॥ और अन्य क्रौञ्चादि पर्वतों ने भी अनेक हेतु देकर आतुरता से रहित उस पार्वती को समझाया ॥ ९ ॥ सब लोगों के समझा लेने के बाद भी तपस्या में स्थित हुई अत्यन्त प्रसन्न पार्वती हँसते हुए अपने पिता हिमवान् से बोली—॥ १० ॥

पार्वती बोली—हे मातः ! हे पितः ! मैंने जो बात पहले कही थी क्या आप लोग उन बातों को भूल गये । इस समय ये सभी बन्धुजन मेरी प्रतिज्ञा सुनें ॥ ११ ॥ अपने क्रोध से कामदेव को जला देनेवाले सदाशिव निश्चय ही विरक्त हैं, किन्तु उन भक्तवत्सल को मैं अपनी तपस्या से सन्तुष्ट करूँगी ॥ १२ ॥

सर्वे भवन्तो गच्छन्तु स्वं स्वं धाम प्रहर्षिताः । भविष्यत्येव तुष्टोऽसौ नाऽत्र कार्या विचारणा ॥१३॥
दग्धो हि मदनो येन येन दग्धं गिरेर्वनम् । तमानयिष्ये चात्रैव तपसा केवलेन हि ॥१४॥
तपोबलेन महता सुसेव्यो हि सदाशिवः । जानीध्वं हि महाभागाः सत्यं सत्यं वदामि वः ॥१५॥

आभाष्य चैवं गिरिजा च मेनकां मैनाकबन्धुं पितरं हिमालयम् ।
तूष्णीं बभूवाशु सुभाषिणी शिवा समन्दरं पर्वतराजबालिका ॥१६॥
जग्मुस्तथोक्ताः शिवया हि पर्वता यथागतेनापि विचक्षणास्ते ।
प्रशंसमाना गिरिजा मुहुर्मुहुः सुविस्मिता हेमनगेश्वराद्याः ॥१७॥

गतेषु तेषु सर्वेषु सखीभिः परिवारिता । तपस्तेपे तदधिकं परमार्थसुनिश्चया ॥१८॥
तपसा महता तेन तप्तमासीच्चराचरम् । त्रैलोक्यं हि मुनिश्रेष्ठ ! सदेवासुरमानुषम् ॥१९॥
तदा सुराऽसुराः सर्वे यक्ष-किन्नर-चारणाः । सिद्धाः साध्याश्च मुनयो विद्याधरमहोरगाः ॥२०॥
सप्रजापतयश्चैव गुह्यकाश्च तथाऽपरे । कष्टात् कष्टतरं प्राप्ताः कारणं न विदुः स्म तत् ॥२१॥
सर्वे मिलित्वा शक्राद्या गुरुमामन्त्र्य विह्वलाः । सुमेरौ तप्तसर्वाङ्गा विधिं मां शरणं ययुः ॥२२॥
तत्र गत्वा प्रणम्याशु विह्वला नष्टसुत्विषः । ऊचुः सर्वे च संस्तूय ह्येकपद्येन मां हि ते ॥२३॥

देवा ऊचुः

त्वया सृष्टमिदं सर्वं जगदेतच्चराचरम् । सन्तप्तमति कस्माद्वै न ज्ञातं कारणं विभो ! ॥२४॥
तद् ब्रूहि कारणं ब्रह्मन् ! ज्ञातुमर्हसि न प्रभो । दग्धभूततनून् देवान् त्वत्तो नान्योऽस्ति रक्षकः॥२५॥

आप सभी प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने घरों की ओर लौटें, मेरे ऊपर भगवान् शंकर प्रसन्न होंगे, इसमें सन्देह नहीं ॥१३॥ जिन्होंने कामदेव को भस्म कर दिया तथा हिमालय के उस वन को भी जला दिया, उन सदाशिव को मैं अपनी तपस्या के बल से यहाँ अवश्य बुलाऊँगी ॥ १४ ॥ हे महाभागे ! वे तपस्या से अवश्य प्राप्त होंगे, यह निश्चित ही जानिए, मैं सत्य कहती हूँ ॥ १५ ॥ ब्रह्माजी ने कहा— पर्वतराज की पुत्री सुभाषिणी पार्वती अपनी माता मेनका, भाई मैनाक तथा मन्दर सहित पिता हिमालय से इतना कहकर चुप हो गयी ॥ १६ ॥ इस प्रकार पार्वती के कहने के अनन्तर वे सभी विचक्षण पर्वत, उसकी प्रशंसा करते हुए, जहाँ से आये थे वहाँ विस्मित हो चले गये ॥ १७ ॥ सबके चले जाने के बाद सखियों सहित वह पार्वती परमार्थ के निश्चय से युक्त हो महान् तपस्या करने लगी ॥ १८ ॥ उसकी इस महान् तपस्या से चराचर, देवता, असुर एवं मनुष्य सहित सारा त्रैलोक्य सन्तप्त हो गया ॥१९॥ उस समय सुर, असुर, यक्ष, किन्नर, चारण, सिद्ध, साध्य, मुनि, विद्याधर, महोरग, प्रजापति एवं गुह्यक तथा अन्य प्राणी बड़े कष्ट को प्राप्त हुए, किन्तु किसी को भी इसका कारण ज्ञात न हुआ ॥२०-२१॥ पार्वती की तपस्या से इन्द्रादि सभी देवगणों के शरीर जलने लगे, वे व्याकुल होकर बृहस्पति की सम्मति से सुमेरु पर्वत पर मुझ विधाता के शरण आये ॥ २२ ॥ उन लोगों ने आकर मुझे प्रणाम किया। उस समय सभी की कान्ति नष्ट हो चुकी थी, फिर मेरी स्तुति कर एक स्वर से मुझसे कहने लगे ॥ २३ ॥

देवताओं ने कहा—हे देव ! इस चराचर जगत् का आपने ही निर्माण किया है, किन्तु इस समय यह सारी सृष्टि क्यों जल रही है ? इसका कारण ज्ञात नहीं होता ॥ २४ ॥ हे प्रभो ! हे ब्रह्मन् ! इसका कारण आप ही बताइए । हम देवगणों का सारा शरीर जल रहा है, आपके अतिरिक्त कोई अन्य हम लोगों का रक्षक नहीं है ॥ २५ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषामहं स्मृत्वा शिवं हृदा। विचार्य मनसा सर्वं गिरिजायास्तपःफलम् ॥२६॥
दग्धं विश्वमिति ज्ञात्वा तैः सर्वैरिह सादरात्। हरये तत्कथयितुं क्षीराब्धिमगमं द्रुतम् ॥२७॥
तत्र गत्वा हरिं दृष्ट्वा विलसन्तं सुखासने। सुप्रणम्य सुसंस्तूय प्रावोचं साञ्जलिः सुरैः ॥२८॥
त्राहि त्राहि महाविष्णो! तप्तान्नः शरणागतान्। तपसोग्रेण पार्वत्यास्तपन्त्याः परमेण हि ॥२९॥
इत्याकर्ण्य वचस्तेषामस्मदादि-दिवौकसाम्। शेषासने समाविष्टोऽस्मानुवाच रमेश्वरः ॥३०॥

विष्णुरुवाच

ज्ञातं सर्वं निदानं मे पार्वतीतपसोऽद्य वै। युष्माभिः सहितस्त्वद्य व्रजामि परमेश्वरम् ॥३१॥
महादेवं प्रार्थयामो गिरिजाऽऽपणाय तप्। पाणिग्रहार्थमधुना लोकानां स्वस्तयेऽमराः ॥३२॥
वरं दातुं शिवायै हि देवदेवः पिनाकधृक्। यथा चेष्यति तत्रैव करिष्यामोऽधुना हि तत् ॥३३॥
तस्माद् वयं गमिष्यामो यत्र रुद्रो महाप्रभुः। तपसोग्रेण संयुक्तोऽध्यास्ते परमङ्गलः ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्व ऊचुः सुरादयः। महाभीता हठात् क्रुद्धाद् दग्धुकामात् लयङ्करात् ॥३५॥

देवा ऊचुः

महाभयङ्करं क्रुद्धं कालानलसमप्रभम्। न यास्यामो वयं सर्वे विरूपाक्षं महाप्रभुम् ॥३६॥
यथा दग्धः पुरा तेन मदनो दुरतिक्रमः। तथैव क्रोधयुक्तो नः स धक्ष्यति न संशयः ॥३७॥

ब्रह्माजी बोले—देवगणों की बात सुनकर मैं (ब्रह्मा) ने शिवजी का स्मरण किया और हृदय में विचार किया कि यह सब पार्वती की तपस्या का फल है ॥ २६ ॥ जिससे यह सारा विश्व जल रहा है, तब मैंने क्षीरसागर में जाकर नारायण से निवेदन करने का विचार किया ॥ २७ ॥ वहाँ देवगणों के सहित जाकर मैंने देखा कि नारायण सुखपूर्वक आसन पर बैठे हुए हैं। तब देवगण नारायण को प्रणाम कर स्तुति करते हुए कहने लगे ॥ २८ ॥ हे नारायण! हे महाविष्णो! हम लोगों के सारे शरीर दग्ध हो रहे हैं, जिससे व्याकुल हो हम सब आपकी शरण में आये हैं, अतः हम शरणागतों की आप रक्षा करें। तपस्या करती हुई पार्वती के उग्र तप से हम सन्तप्त हो रहे हैं ॥ २९ ॥ इस प्रकार देवताओं के वचन सुनकर शेषासन पर विराजमान रमेश्वर ने उन देवताओं से कहा—॥ ३० ॥

विष्णु बोले—हे देवगणो! हमने जान लिया है कि आप सभी पार्वती की उग्र तपस्या से सन्तप्त हो रहे हैं, अतः मैं आप लोगों के साथ सदाशिव के स्थान पर चल रहा हूँ ॥ ३१ ॥ हे देवगणो! हम लोग चलकर महादेव से प्रार्थना करें कि वे पार्वती का पाणिग्रहण करें, क्योंकि शिवजी द्वारा पार्वती के पाणिग्रहण करने पर ही लोक का कल्याण होगा ॥ ३२ ॥ देवाधिदेव पिनाकधारी सदाशिव पार्वती को वर देने के लिए जिस प्रकार पार्वती के पास जाने को उद्यत हों वैसा उपाय हम लोग करें ॥ ३३ ॥ इसलिए अब हम लोगों को वहाँ पर चलना चाहिए, जहाँ परम मङ्गल महाप्रभु रुद्र उग्र तपस्या कर रहे हैं ॥ ३४ ॥

ब्रह्माजी बोले—विष्णु की बात सुनकर प्रलय करने वाले और हठ से कामदेव को नष्ट करने वाले शङ्कर से भयभीत सभी देवता कहने लगे ॥ ३५ ॥

देवताओं ने कहा—हे विष्णो! महाभयङ्कर, क्रोधी, कालानल के समान जलते हुए विरूपाक्ष (विषम नेत्र धारण करने वाले) तेज से अत्यन्त दुराधर्ष शङ्कर के समीप हम लोग नहीं जायेंगे ॥ ३६ ॥ क्योंकि उन्होंने जिस प्रकार दुराधर्ष कामदेव को नष्ट कर दिया, उसी प्रकार क्रोध में भरकर कहीं हम लोगों को भी नष्ट न कर दें ॥ ३७ ॥

ब्रह्मोवाच

तदाकर्ण्य वचस्तेषां शक्रादीनां रमेश्वरः । सान्त्वयंस्तान् सुरान् सर्वान् प्रोवाच स हरिर्मुने ! ॥३८॥

हरिरुवाच

हे सुरा मद्वचः प्रीत्या शृणुतादरतोऽखिलाः । न वो धक्ष्यति स स्वामी देवानां भयनाशनः॥३९॥

तस्माद्भवद्भिर्गन्तव्यं मया सार्द्धं विचक्षणैः । शम्भुं शुभकरं मत्वा शरणं तस्य सुप्रभोः ॥४०॥

शिवं पुराणं पुरुषमधीशं वरेण्यरूपं हि परं पुराणम् ।
तपोजुषाणं परमात्मरूपं परात्परं तं शरणं व्रजामः ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तास्तदा देवा विष्णुना प्रभविष्णुना । जग्मुः सर्वे तेन सह द्रष्टुकामाः पिनाकिनम् ॥४२॥

प्रथमं शैलपुत्र्यास्तत्तपो द्रष्टुं तदाश्रमम् । जग्मुर्मार्गवशात् सर्वे विष्ण्वाद्याः सकुतूहलाः॥४३॥

पार्वत्याः सुतपो दृष्ट्वा तेजसा व्यापृतास्तदा । प्रणेमुस्तां जगद्धात्रीं तेजोरूपां तपःस्थिताम् ॥४४॥

प्रशंसन्तस्तपस्तस्याः साक्षात् सिद्धितनोः सुराः । जग्मुस्तत्र तदा ते च यत्रास्ते वृषभध्वजः ॥४५॥

तत्र गत्वा च ते देवास्त्वां मुने ! प्रैषयंस्तदा । पश्यन्तो दूरतस्तस्थुः कामभस्मकृतो हरात् ॥४६॥

नारद ! त्वं शिवस्थानं तदा गत्वाऽभयः सदा । शिवभक्तो विशेषेण प्रसन्नं दृष्टवान् प्रभुम् ॥४७॥

पुनरागत्य यत्नेन देवानाहूय तांस्ततः । निनाय शङ्करस्थानं तदा विष्ण्वादिकान् मुने॥४८॥

अथ विष्ण्वादयः सर्वे तत्र गत्वा शिवं प्रभुम् । ददृशुः सुखमासीनं प्रसन्नं भक्तवत्सलम् ॥४९॥

ब्रह्माजी बोले--इन्द्रादि देवताओं की बात सुनकर विष्णु ने उन देवगणों को धीरज बँधाते हुए कहा—॥ ३८ ॥

विष्णु बोले—हे देवगणो ! तुम लोग आदरपूर्वक मेरी बात सुनो। सदाशिव तुम लोगों को दग्ध नहीं करेंगे, क्योंकि वे तुमलोगों का भय नष्ट करने वाले हैं ॥ ३९ ॥ इसलिए आप सभी बुद्धिमान् मेरे साथ उन परम मङ्गलकारी शिव के पास चलें क्योंकि एकमात्र उन्हीं प्रभु के शरण में जाने से हमलोगों की रक्षा हो सकती है ॥ ४० ॥ वे शिव ही पुराणपुरुष हैं, सब के अधीश्वर हैं, सबसे श्रेष्ठ, तपस्या करने वाले, परमात्मास्वरूप और परात्पर हैं, हम लोगों को उन्हीं की शरण का आश्रय करना चाहिए ॥ ४१ ॥

ब्रह्माजी बोले--जब सर्व-समर्थ विष्णु ने देवगणों से ऐसा कहा तब वे सभी पिनाकी भगवान् सदाशिव के दर्शन की इच्छा से चले ॥ ४२ ॥ विष्णु आदि देवगणों ने मार्ग में पड़ने के कारण कुतूहल में भरकर सर्वप्रथम पार्वती की तपस्या देखने के लिए उसके आश्रम में गये ॥ ४३ ॥ फिर सभी देवताओं ने उसका तप देखकर उसके तेज से व्याहृत हो तेजोरूप से अधिष्ठित उन जगद्धात्री तपस्विनी पार्वती को प्रणाम किया ॥ ४४ ॥ और साक्षात् सिद्धि का शरीर धारण करने वाली उस पार्वती की प्रशंसा करने लगे, तदनन्तर वे देवगण शङ्कर के समीप चले ॥ ४५ ॥ हे मुने नारद ! वहाँ पहुँचने पर उन देवताओं ने सर्वप्रथम तुमको शिव के समीप भेजा और वे स्वयं काम को नष्ट करने वाले सदाशिव को देखकर दूर ही स्थित रहे ॥ ४६ ॥ तब हे नारद ! तुम निर्भय होकर शिव के समीप गये। क्योंकि तुम विशेष रूप से शिव के भक्त हो, वहाँ जाकर तुमने शिव को प्रसन्नमुद्रा में देखा ॥ ४७ ॥ फिर तुम लौटकर यत्न से विष्णु आदि देवताओं को बुलाकर शङ्कर के पास ले गये ॥ ४८ ॥ तदनन्तर विष्णु आदि सभी देवता शिव के स्थान में जाकर प्रसन्न मन उन भक्तवत्सल सदाशिव को सुखपूर्वक बैठे हुए देखा ॥ ४९ ॥

योगपट्टस्थितं शम्भुं गणैश्च परिवारितम् । तपोरूपं दधानं च परमेश्वररूपिणम् ॥५०॥
ततो विष्णुर्मयाऽन्ये च सुर-सिद्ध-मुनीश्वराः । प्रणम्य तुष्टुवुः सूक्तैर्वेदोपनिषदन्वितैः ॥५१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे पार्वतीसान्त्वन-शिवदेवदर्शनवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

(ब्रह्मा तथा विष्णु के आग्रह से शिव का पार्वती के साथ विवाह स्वीकृति)

देवा ऊचुः

नमो रुद्राय देवाय मदनान्तकराय च । स्तुत्याय भूरिभासाय त्रिनेत्राय नमो नमः ॥ १ ॥
शिपिविष्टाय भीमाय भीमाक्षाय नमो नमः । महादेवाय प्रभवे त्रिविष्टपतये नमः ॥ २ ॥
त्वं नाथः सर्वलोकानां पिता माता त्वमीश्वरः । शम्भुरीशः शङ्करोऽसि दयालुस्त्वं विशेषतः ॥ ३ ॥
त्वं धाता सर्वजगतां त्रातुमर्हसि नः प्रभो ! । त्वां विना कः समर्थोऽस्ति दुःखनाशे महेश्वर ! ॥ ४ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां सुराणां नन्दिकेश्वरः । कृपया परया युक्तो विज्ञप्तुं शम्भुमारभत् ॥ ५ ॥

नन्दिकेश्वर उवाच

विष्ण्वादयः सुरगणा मुनिसिद्धसङ्घास्त्वां द्रष्टुमेव सुरवर्य्य विशेषयन्ति ।
कार्यार्थिनोऽसुरवरैः परिभर्त्स्यमानाः सम्यक् पराभवपदं परमं प्रपन्नाः ॥ ६ ॥
तस्मात्त्वया हि सर्वेश ! त्रातव्या मुनयः सुराः । दीनबन्धुर्विशेषेण त्वमुक्तो भक्तवत्सलः ॥ ७ ॥

वे योगासन लगाये हुए अपने गणों से घिरे हुए थे तथा परमेश्वर रूप वे सदाशिव साक्षात् तपस्या के विग्रहवान् रूप थे ॥ ५० ॥ तब विष्णु एवं मेरे साथ रहने वाले अन्य देव, मुनि तथा सिद्धगण उन परमेश्वर को प्रणाम कर वेद एवं उपनिषदों के सूक्त से उनकी स्तुति करने लगे ॥ ५१ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड-में पार्वती-सान्त्वना तथा शिवदेवदर्शन वर्णन नामक तेइसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥

*

देवगणों ने कहा—काम को नष्ट करने वाले रुद्र देवता को हमारा नमस्कार है, स्तुति के योग्य, अत्यन्त तेजस्वी तथा त्रिनेत्र सदाशिव को हमारा नमस्कार है ॥ १ ॥ शिपिविष्ट, भीम एवं भीमाक्ष को हमारा नमस्कार है। महादेव, जगत् के उत्पत्तिस्थान तथा स्वर्गपति आप शिव को नमस्कार है ॥ २ ॥ हे शिव ! आप ही सब लोकों के ईश्वर, माता तथा पिता हो, आप ही कल्याण करने वाले ईश्वर एवं दयालु हो ॥ ३ ॥ आप ही सब जगत् को धारण करते हो, अतएव हे प्रभो ! आप हमारी रक्षा कीजिए। हे परमेश्वर ! आपके अतिरिक्त और कोई मेरे दुःख को नाश करने में समर्थ नहीं है ॥ ४ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! देवताओं की स्तुति सुनकर परम दयालु नन्दिकेश्वर ने शिवजी के पास जाकर इस प्रकार निवेदन किया ॥ ५ ॥

नन्दिकेश्वर बोले हे सुरवर्य शङ्कर ! सिद्ध, मुनि एवं देवगणों के सहित विष्णु, ब्रह्मा आदि देवगण दैत्यों से पराभूत एवं तिरस्कृत हो आपकी शरण में आये हैं और हे देव ! वे आपके दर्शन की इच्छा करते हैं॥ ६ ॥ हे सर्वेश ! इस कारण आप शरणागत हुए इन देवताओं की रक्षा करें। क्योंकि आप विशेष रूप सेदीनवन्धु एवं भक्तवत्सल कहे जाते हैं ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच

एवं दयावता शम्भुर्विज्ञप्तो नन्दिना भृशम् । शनैः शनैरुपरमद्ध्यानादुन्मील्य चाक्षिणी ॥ ८ ॥
ईशोऽथोपरतः शम्भुस्तदा परमकोविदः । समाधेः परमात्मासौ सुरान् सर्वानुवाच ह ॥ ९ ॥

शम्भुरुवाच

कस्माद्यूयं समायाता मत्समीपं सुरेश्वराः । हरिब्रह्मादयः सर्वे ब्रूत कारणमाशु तत् ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचः शम्भोः सर्वे देवा मुदाऽन्विताः । विष्णोर्विलोकयामासुर्मुखं विज्ञप्तिहेतवे ॥११॥
अथ विष्णुर्महाभक्तो देवानां हितकारकः । मदीरितमुवाचेदं सुरकार्यं महत्तरम् ॥१२॥

विष्णुरुवाच

तारकेण कृतं शम्भो देवानां परमाद्भुतम् । कष्टात्कष्टतरं देवा विज्ञप्तुं सर्व आगताः ॥१३॥
हे शम्भो ! तव पुत्रेणौरसेन हि भविष्यति । निहतस्तारको दैत्यो नान्यथा मम भाषितम् ॥१४॥
विचार्य्येत्थं महादेव ! कृपां कुरु नमोऽस्तु ते । देवान् समुद्धर स्वामिन् ! कष्टात्तारकनिर्मितात् ॥१५॥

तस्मात्त्वया गिरिजा देव शम्भो ग्रहीतव्या पाणिना दक्षिणेन ।
पाणिग्रहेणैव महानुभावां दत्तां गिरीन्द्रेण च तां कुरुष्व ॥१६॥

विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रसन्नो ह्यब्रवीच्छिवः । दर्शयन् सद्गतिं तेषां सर्वेषां योगतत्परः ॥१७॥

शिव उवाच

यदा मे स्वीकृता देवी गिरिजा सर्वसुन्दरी । तदा सर्वे सुरेन्द्राश्च मुनयो ऋषयस्तदा ॥१८॥
सकामाश्च भविष्यन्ति न क्षमाश्च परे पथि । जीवयिष्यति दुर्गा सा पाणिग्रहणतः स्मरम् ॥१९॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार दयालु नन्दिकेश्वर ने जब वारम्बार शिव से निवेदन किया तब उन्होंने धीरे-धीरे अपना नेत्र खोलते हुए समाधि का त्याग किया ॥ ८ ॥ तदनन्तर समाधि से उपरत हुए सर्वज्ञ परमात्मा शम्भु देवताओं से कहने लगे ॥ ९ ॥

शिवजी बोले—हे देवताओ ! तुम सभी ब्रह्मा, विष्णु आदि देवगण हमारे पास क्यों आये हो ? आपलोग अपने आने का कारण हमसे कहें ॥ १० ॥

ब्रह्माजी बोले—शिवजी की बात सुनकर सभी देवता प्रसन्न हो उठे और विज्ञप्ति के लिए विष्णु के मुख की ओर देखने लगे ॥ ११ ॥ तब देवताओं के हितकारक शिव के परम भक्त विष्णु मेरे द्वारा कहे गये देवताओं के महत्तर कार्य का निवेदन करने लगे ॥ १२ ॥

विष्णु बोले—हे शम्भो ! तारक नाम के असुर से इन देवताओं को अत्यन्त अवर्णनीय कष्ट प्राप्त हो रहा है, इसी कारण सभी देवता आप से निवेदन करने के लिए यहाँ आये हुए हैं ॥१३॥ हे भगवन् ! आपके द्वारा जो औरस पुत्र उत्पन्न होगा, उसी के द्वारा तारकासुर का वध होगा. यह मेरा कथन अन्यथा नहीं हो सकता ॥ १४ ॥ हे महादेव ! आपको नमस्कार है । आप इस प्रस्ताव पर विचार कर देवताओं पर कृपा करें । हे स्वामिन् ! तारकासुर से उत्पन्न इस महाकष्ट से आप देवताओं का उद्धार कीजिए ॥ १५ ॥ हे शम्भो ! एतदर्थ आपको स्वयं गिरिजा का दाहिने हाथ से पाणिग्रहण करना चाहिए क्योंकि गिरिराज आपको पाणिग्रहण के द्वारा ही गिरिजा को प्रदान करना चाहते हैं, आप उसे स्वीकार करें ॥ १६ ॥ विष्णु के वचन सुनकर योग में तत्पर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उनकी सद्गति के लिए उत्तम उपदेश करते हुए बोले—॥ १७ ॥

शिवजी बोले—हे देवगणो ! जब मैं सभी स्त्रियों से सुन्दर गिरिजा देवी को स्वीकार करूँगा तब ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि देवगण, मुनिगण तथा ऋषिगण सकाम हो जायेंगे किन्तु, ऐसा करने से परमार्थ मार्ग में अशक्त हो जायेंगे । मेरे पाणिग्रहण से यह दुर्गा मृत कामदेव को पुनः जीवित करेगी ॥ १८-१९ ॥

मदनो हि मया दग्धः सर्वेषां कार्यसिद्धये । ब्रह्मणो वचनाद्विष्णो नाऽत्र कार्या विचारणा ॥२०॥
एवं विमृश्य मनसा कार्याऽकार्यव्यवस्थितौ । सुधीः सर्वैश्च देवेन्द्र ! हठं नो कर्तुमर्हसि ॥२१॥
दग्धे कामे मया विष्णो! सुरकार्यं महत् कृतम् । सर्वे तिष्ठन्तु निष्कामा मया सह सुनिश्चितम् ॥२२॥
यथाऽहं च सुराः सर्वे तथा यूयमयत्नतः । तपः परमसंयुक्ताः करिष्यध्वं सुदुष्करम् ॥२३॥
यूयं समाधिना तेन मदनेन विना सुराः । परमानन्दसंयुक्ता निर्विकारा भवन्तु वै ॥२४॥
पुरावृत्तं स्मरकृतं विस्मृतं यद् विधे हरे ! । महेन्द्र मुनयो देवा यत्तत्सर्वं विमृश्यताम् ॥२५॥
महाधनुर्धरेणैव मदनेन हठात् सुराः । सर्वेषां ध्यानविध्वंसः कृतस्तेन पुराऽमराः ॥२६॥
कामो हि नरकायैव तस्मात् क्रोधोऽभिजायते । क्रोधाद् भवति सम्मोहो मोहाच्च भ्रंशते तपः ॥२७॥
कामक्रोधौ परित्याज्यौ भवद्भिः सुरसत्तमैः । सर्वैरेव च मन्तव्यं मद्वाक्यं नाऽन्यथा क्वचित् ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

एवं विश्राव्य भगवान् महादेवो वृषध्वजः । सुरान् प्रवाचयामास विधिविष्णू तथा मुनीन् ॥२९॥
तूष्णीम्भूतोऽभवच्छम्भुर्ध्यानमाश्रित्य वै पुनः । आस्ते पुरा यथा स्थाणुर्गणैश्च परिवारितः ॥३०॥
स्वात्मानमात्मना शम्भुरात्मन्येव व्यचिन्तयत् । निरञ्जनं निराभासं निर्विकारं निरामयम् ॥३१॥
परात्परतरं नित्यं निर्ममं निरवग्रहम् । शब्दातीतं निर्गुणं च ज्ञानगम्यं परात्परम् ॥३२॥
एवं स्वरूपं परमं चिन्तयन् ध्यानमास्थितः । परमानन्दसम्मग्नो बभूव बहुसूतिकृत् ॥३३॥
ध्यानस्थितं च सर्वेशं दृष्ट्वा सर्वे दिवौकसः । हरिशक्रादयः सर्वे नन्दिनं प्रोचुरानताः ॥३४॥

मैंने सबकी कार्यसिद्धि के लिए ही काम को दग्ध किया । हे विष्णो ! ब्रह्मा के वचनानुसार ही मैंने यह कामदहन किया है, इसमें सन्देह नहीं ॥२०॥ हे देवेन्द्र ! आप इस कार्याकार्य की परिस्थितिं में मन से तत्त्व का विचार करें और मेरे विवाह का हठ छोड़ देवें ॥ २१ ॥ हे विष्णो ! काम का दहन कर मैंने देवताओं का बहुत बड़ा कार्य किया है, अब अच्छा यही होगा कि मेरे साथ सारे देवगण कामनारहित हो निवास करें ॥ २२ ॥ हे देवगणो ! जिस प्रकार मैं तपस्या करता हूँ उसी प्रकार आप लोग भी दुष्कर तपस्या करें ॥ २३ ॥ अब कामदेव नहीं रहा, इसलिए हे देवगणो ! आप लोग निर्विघ्न समाधि लगाकर आनन्द से युक्त हो निर्विकार निवास करें ॥ २४ ॥

हे विधे ! हे विष्णो ! एवं हे महेन्द्रादि देवगण ! आप लोगों ने पूर्वकाल में कामदेव के द्वारा किये गये सारे कृत्य भुला दिये हैं, उन पुरातन बात पर विचार करें ॥ २५ ॥ इस महाधनुर्धर कामदेव ने हठ से सभी देवताओं का ध्यान नष्ट कर दिया था ॥ २६ ॥ काम ही नरक का द्वार है, क्योंकि काम से ही क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से मोह और मोह से स्मृतिभ्रम तथा स्मृतिभ्रम से तप नष्ट हो जाता है ॥ २७ ॥ अतः हे देवगणो ! आप काम एवं क्रोध का परित्याग करें । आप सभी को मेरी यह बातें स्वीकार करनी चाहिए, क्योंकि मेरी बात कभी असत्य नहीं सिद्ध होती ॥ २८ ॥

ब्रह्मा जी बोले—हे नारद ! वृषभध्वज भगवान् महादेव इतना कहने के अनन्तर विधाता, विष्णु, मुनिगण तथा देवताओं से उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे ॥ २९ ॥ फिर अपने गणों से घिरे हुए वे शम्भु चुपचाप होकर समाधि में तल्लीन हो स्थाणु के समान अचल हो गये ॥ ३० ॥ वे अपने अन्तःकरण में अपने निरञ्जन, निराभास, निर्विकार एवं आत्मज्योति का ध्यान करने लगे ॥ ३१ ॥ जो आत्मज्योति परात्परतर, नित्य, निर्मम, निरवग्रह, शब्दातीत, निर्गुण, ज्ञानगम्य तथा परात्पर है ॥ ३२ ॥ अनेक जगत् की सृष्टि करने वाले महादेव इस प्रकार आत्मचिन्तन करते हुए जब परमानन्द में निमग्न हो गये ॥ ३३ ॥ तब सभी देवगण, इन्द्र एवं भगवान् विष्णु शंकर को ध्यान में स्थित देख नन्दिकेश्वर से बोले ॥ ३४ ॥

देवा ऊचुः

किं वयं करवामाद्य विरक्तो ध्यानमास्थितः । शम्भुस्त्वं शङ्करसखः सर्वज्ञः शुचिसेवकः ॥३५॥
केनोपायेन गिरिशः प्रसन्नः स्याद् गणाधिप ! । तदुपायं समाचक्ष्व वयं त्वच्छरणं गताः ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

इति विज्ञापितो देवैर्मुने हर्षादिभिस्तदा । प्रत्युवाच सुरांस्तान् स नन्दी शम्भुप्रियो गणः ॥३७॥

नन्दीश्वर उवाच

हे हरे ! हे विधे ! शक्रनिर्जरा मुनयस्तथा । शृणुध्वं वचनं मे हि शिवसन्तोषकारकम् ॥३८॥
यदि वो हठ एवाद्य शिवदारपरिग्रहे । अतिदीनतया सर्वे सुनुतिं कुरुतादरात् ॥३९॥
भक्तेर्वश्यो महादेवो न साधारणतः सुराः । अकार्यमपि सद्भक्त्या करोति परमेश्वरः ॥४०॥
एवं कुरुत सर्वे हि विधिविष्णुमुखाः सुराः । यथागतेन मार्गेणाऽन्यथा गच्छत मा चिरम् ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मुने विष्ण्वादयः सुराः । तथेति मत्वा सुप्रीत्या शङ्करं तुष्टुवुर्हि ते ॥४२॥
देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो ! । समुद्धर महाक्लेशात् त्राहि नः शरणागतान् ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं बहुदीनोक्त्या तुष्टुवुः शङ्करं सुराः । रुरुदुः सुस्वरं सर्वे प्रेमव्याकुलमानसः ॥४४॥
हरिर्मया सुदीनोक्त्या सुविज्ञप्तं चकार ह । संस्मरन् मनसा शम्भुं भक्त्या परमयाऽन्वितः॥४५॥
सुरैरेवं स्तुतः शम्भुर्हरिणा च मया भृशम् । भक्तवात्सल्यतो ध्यानाद् विरतोऽभून् महेश्वरः॥४६॥
उवाच सुप्रसन्नात्मा हर्यादीन् हर्षयन् हरः । विलोक्य करुणादृष्ट्या शङ्करो भक्तवत्सलः ॥४७॥

देवगणों ने कहा—हे नन्दिकेश्वर ! शिवजी विरक्त होकर ध्यान में मग्न हो रहे हैं, अब हमलोग क्या करें ? तुम शंकर के सखा, सर्वज्ञ एवं शिव के भक्त हो और सबका कल्याण करते हो ॥ ३५ ॥ हे गणाधिप ! गिरीश ! जिस उपाय से हम लोगों पर प्रसन्न हों अब वह उपाय आप शीघ्र बताइए, हम लोग आपकी शरण में आये हैं ॥ ३६ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने नारद ! जब इन्द्रादि देवताओं ने इस प्रकार नन्दी से निवेदन किया तब शिव के परमप्रिय गण नन्दी ने उन देवताओं से कहा ॥ ३७ ॥

नन्दीश्वर ने कहा—हे हरे, हे विधे, हे इन्द्र, हे देवताओ तथा मुनियो ! शिव को सन्तोष उत्पन्न करने वाला मेरा वचन सुनो ॥ ३८ ॥ यदि आप लोगों का ऐसा हठ ही है कि शिव जी दारपरिग्रह करें, तो अत्यन्त दीन होकर आप लोग आदर से शिव की स्तुति करें ॥ ३९ ॥ हे देवगणो ! महादेव भक्ति द्वारा ही वश में होते हैं, और साधारण उपायों से वे वशीभूत नहीं होते। वे परमेश्वर भक्ति के वशीभूत हो अकार्य भी कर सकते हैं ॥ ४० ॥ हे ब्रह्मा, विष्णु आदि प्रमुख देवगणो ! आप लोग इसी मार्ग का अवलम्बन करें अन्यथा आप लोग जहाँ से आये हैं वहाँ शीघ्र पधारें विलम्ब न करें ॥ ४१ ॥

ब्रह्मा जी बोले—नन्दीश्वर की बात सुनकर विष्णु आदि देवगणों ने 'तथास्तु' कहा और भगवान् शंकर की स्तुति करने लगे ॥ ४२ ॥ हे देवदेव, हे महादेव, हे करुणासागर, हे प्रभो ! इस महाक्लेश से हमारा उद्धार करो, हम आप के शरणागत हैं, अतः आप हम लोगों की रक्षा करें ॥ ४३ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार अत्यन्त दीन हो देवताओं ने शिव की स्तुति की और प्रेम से व्याकुल मन हो रोने लगे ॥४४॥ मैंने तथा विष्णु ने बड़ी दीनता से शिव का स्मरण करते हुए भक्तिपूर्वक इस प्रकार निवेदन किया। तब भक्तवत्सल भगवान् सदाशिव ध्यान से उपरत हुए ॥४५-४६॥ और प्रसन्न होकर विष्णु आदि देवताओं को हर्षित करते एवं करुणाभरी दृष्टि से देखते हुए भक्तवत्सल शंकर बोले ॥ ४७ ॥

शङ्कर उवाच

हे हरे ! हे विधे देवाः ! शक्राद्या युगपत्समे । किमर्थमागता यूयं सत्यं ब्रूत ममाऽग्रतः ॥४८॥

हरिरुवाच

सर्वज्ञस्त्वं महेशान त्वन्तर्याम्यखिलेश्वरः । किं न जानासि चित्तस्थं तथा वच्म्यपि शासनात् ॥४९॥
तारकासुरतो दुःखं सम्भूतं विविधं मृड ! । सर्वेषां नस्तदर्थं हि प्रसन्नोऽकारि वै सुरैः ॥५०॥
शिवा सा जनिता शैलात्त्वदर्थं हि हिमालयात् । तस्यां त्वदुद्भवात् पुत्रात्तस्य मृत्युर्न चान्यथा ॥५१॥
इति दत्तो ब्रह्मणा हि तस्मै दैत्याय यद्वरः । तदन्यस्मादमृत्युः स बाधते निखिलं जगत् ॥५२॥
नारदस्य निदेशात् सा करोति कठिनं तपः । तत्तेजसाऽखिलं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥५३॥
वरं दातुं शिवायै हि गच्छ त्वं परमेश्वर ! । देवदुःखं जहि स्वामिन्नस्माकं सुखमावह ॥५४॥
देवानां मे महोत्साहो हृदये चास्ति शङ्कर ! । विवाहं तव संद्रष्टुं तत्त्वं कुरु यथोचितम् ॥५५॥
रत्यै यद्भवता दत्तो वरस्तस्य परात्पर । प्राप्तोऽवसर एवाशु सफलं स्वपणं कुरु ॥५६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा तं प्रणम्यैव विष्णुर्देवा महर्षयः । संस्तूय विविधैस्तोत्रैः संतस्थुस्तत्पुरोऽखिलाः ॥५७॥
भक्ताधीनः शङ्करोऽपि श्रुत्वा देववचस्तदा । विहस्य प्रत्युवाचाशु वेदमर्यादरक्षकः ॥५८॥

शङ्कर उवाच

हे हरे हे विधे देवाः शृणुतादरतोऽखिलाः । यथोचितमहं वच्मि सविशेषं विवेकतः ॥५९॥
नोचितं हि विधानं वै विवाहकरणं नृणाम् । महानिगडसंज्ञो हि विवाहो दृढबन्धनः ॥६०॥

शिव जी बोले—हे हरे, हे विधाता, हे इन्द्रादि देवगणो ! आप सब एकत्रित होकर मेरे पास क्यों आये हो, मुझसे सच-सच कहो ॥ ४८ ॥

विष्णु बोले—हे महेश्वर ! आप सबके अन्तर्यामी तथा अखिलेश्वर हैं, क्या आप हमारे मन की बात नहीं जानते ? फिर भी मैं आपके आज्ञानुसार निवेदन करता हूँ ॥ ४९ ॥ हे मृड ! हम सभी को तारकासुर के द्वारा महान् दुःख प्राप्त हो रहा है, इसीलिए हम सब आपको प्रसन्न करने के निमित्त यहाँ आये हैं ॥ ५० ॥ यह पार्वती आपके लिए ही हिमालय की कन्या रूप में उत्पन्न हुई है । क्योंकि आपके द्वारा पार्वती में उत्पन्न हुए पुत्र से तारकासुर की मृत्यु होने वाली है, यह बात अन्यथा नहीं है ॥ ५१ ॥ ब्रह्मा ने उस तारकासुर को इसी प्रकार का वरदान दिया है, वह औरों के द्वारा मारा जाने वाला नहीं है, इस कारण वह सबको पीड़ा दे रहा है ॥ ५२ ॥ इस समय देवर्षि नारद के उपदेश से वह पार्वती तपस्या कर रही है । उसके तेज से चराचर सारा त्रैलोक्य व्याप्त हो रहा है ॥ ५३ ॥ इसलिए हे परमेश्वर ! आप पार्वती को वर देने के लिए वहाँ जायें । हे स्वामिन् ! ऐसा करने से हम देवताओं का दुःख दूर होगा तथा हमलोग सुखी हो जायेंगे ॥ ५४ ॥ हे शंकर ! देवताओं के और हमारे मन में यह बड़ा उत्साह हो रहा है । कि हम लोग आपका विवाह देखें, अतः यदि आप उचित समझें तो इसे अवश्य स्वीकार करें ॥ ५५ ॥ हे परात्पर ! आपने जो रति को वर दिया है उसका भी अवसर उपस्थित हो गया है, उसे आप सफल करें ॥ ५६ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार से विष्णु देवता तथा महर्षिगण शिव से निवेदन कर उन्हें प्रणाम और अनेक स्तोत्रों से स्तुति करते हुए शंकर के आगे स्थित हो गये ॥ ५७ ॥ वेद की मर्यादा को सुरक्षित करने वाले भक्ताधीन शिवजी भी देवताओं के वचन सुन हँसते हुए तत्काल बोले ॥ ५८ ॥

शिवजी बोले—हे हरे, हे ब्रह्मन्, हे देवगणो ! मैं ज्ञान से युक्त और यथोचित जो बात कहता हूँ, उसे आदर से सुनो ॥ ५९ ॥ जहाँ तक हो सके मनुष्यों को विवाह के बन्धन में पड़ना उचित नहीं प्रतीत

कुसङ्गा बहवो लोके स्त्रीसङ्गस्तत्र चाधिकः । उद्धरेत् सकलबन्धैर्न स्त्रीसङ्गात् प्रमुच्यते ॥६१॥
लोहदारुमयैः पाशैर्दृढं बद्धोऽपि मुच्यते । स्त्र्यादिपाशसुसंबद्धो मुच्यते न कदाचन ॥६२॥
वर्द्धन्ते विषयाः शश्वन्महाबन्धनकारिणः । विषयाक्रान्तमनसः स्वप्ने मोक्षोऽपि दुर्लभः ॥६३॥
सुखमिच्छतु चेत्प्राज्ञो विधिवद्विषयां त्यजेत् । विषवद्विषयानाहुर्विषयैर्यैर्निहन्यते ॥६४॥
जनो विषयिणा साकं वार्तातः पतति क्षणात् । विषयं प्राहुराचार्याः सितालिप्तेन्द्रवारुणीम् ॥६५॥
यद्यप्येवं हि जानामि सर्वं ज्ञानं विशेषतः । तथाऽप्यहं करिष्यामि प्रार्थनां सफलां च वः ॥६६॥
भक्ताधीनोऽहमेवास्मि तद्वशात् सर्वकार्यकृत् । अयथोचितकर्ता हि प्रसिद्धो भुवनत्रये ॥६७॥
कामरूपाधिपस्यैव पणश्च सफलः कृतः । सुदक्षिणस्य भूपस्य भैमबन्धगतस्य हि ॥६८॥
गौतमक्लेशकर्ताऽहं त्र्यम्बकात्मा सुखावहः । तत्कष्टप्रदुष्टानां शापदायी विशेषतः ॥६९॥
विषं पीतं सुरार्थं हि भक्तवत्सलभावधृक् । देवकष्टं हृतं यत्नात् सर्वदैव मया सुराः ॥७०॥
भक्तार्थमसहं कष्टं बहुशो बहुयत्नतः । विश्वानरमुनेर्दुःखं हृतं गृहपतिर्भवन् ॥७१॥
किं बहूक्तेन च हरे विधे ! सत्यं ब्रवीम्यहम् । मत्पणोऽस्तीति यूयं वै सर्वे जानीथ तत्त्वतः ॥७२॥
यदा यदा विपत्तिर्हि भक्तानां भवति क्वचित् । तदा तदा हराम्याशु तत्क्षणात् सर्वशः सदा ॥७३॥
जानेऽहं तारकाद् दुःखं सर्वेषां वः समुत्थितम् । असुरात्तद्धरिष्यामि सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥७४॥
नास्ति यद्यपि मे कश्चिद्विहारकरणे रुचिः । विवाहयिष्ये गिरिजां पुत्रोत्पादनहेतवे ॥७५॥

होता, यह विवाह लोहे की बेड़ी के समान अत्यन्त कठिन दृढ़ बन्धन है ॥ ६० ॥ ऐसे तो संसार में बहुत से कुसङ्ग हैं किन्तु उन कुसङ्गों में स्त्रीसङ्ग विशेष दुःखदायी है। क्योंकि मनुष्य और सब बन्धनों से छूट सकता है किन्तु स्त्रीसङ्ग रूपी बन्धन से उसका कभी छुटकारा नहीं होता ॥ ६१ ॥ लोहे तथा दारु (लकड़ी) के पाशों में दृढ़तापूर्वक बँधा हुआ पुरुष उससे छुटकारा पा सकता है। किन्तु स्त्रीबन्धन से पुरुष का छुटकारा पाना असम्भव है ॥६२॥ इस स्त्रीसङ्ग रूपी महाबन्धन से विषय निरन्तर बढ़ते रहते हैं, जब मन विषयों से आक्रान्त हो जाता है, तो उसके लिए मोक्ष पाना स्वप्न में भी दुर्लभ हो जाता है ॥६३॥

यदि बुद्धिमान् पुरुष सुख चाहे तो विषयों को भली प्रकार से छोड़ दे। जिन विषयों के प्रभाव से प्राणी मारा जाता है, वे विषय विष के समान हैं ॥ ६४ ॥ मुमुक्षु पुरुष विषयी पुरुषों के साथ वार्त्ता करने मात्र से ही क्षणभर में पतित हो जाता है। हे देवगणो ! आचार्यों ने विषयवासना को मिश्री मिली हुई वारुणी के समान कहा है ॥ ६५ ॥ यद्यपि मैं इन सब बातों को अच्छी तरह जानता हूँ तो भी आप लोगों की प्रार्थना सफल करूँगा ॥ ६६ ॥ तीनों लोकों में मेरी प्रसिद्धि है कि मैं भक्तों के वश में होने से सभी प्रकार के उचित-अनुचित कार्य करता हूँ ॥ ६७ ॥ कामरूप देश के राजा की प्रतिज्ञा मैंने सफल की। भैम के बन्धन में पड़े हुए सुदक्षिण राजा का प्रण मैंने पूरा किया ॥ ६८ ॥ गौतम को मैंने क्लेश दिया, मैं त्र्यम्बकात्मा सबको सुख देने वाला हूँ और जो भक्तों को दुःख देते हैं, उन दुष्टों को विशेष रूप से कष्ट तथा शाप प्रदान करता हूँ ॥ ६९ ॥ मैंने अपनी भक्तवत्सलता का भाव प्रगट करने के लिए ही विषपान किया था। हे देवताओ ! मैं बहुत क्या कहूँ, मैंने यत्न से सदैव ही तुम लोगों के कष्टों को दूर किया है ॥ ७० ॥ मैंने भक्तों के लिए बहुत वार अनेक कष्ट उठाया है। मैंने विश्वानर मुनि के घर गृहपति के रूप में जन्म लेकर उनके दुःख को दूर किया है ॥ ७१ ॥

हे हरे, हे ब्रह्मन् ! बहुत कहने से क्या ? मैं सत्य कहता हूँ और मेरी जो प्रतिज्ञा है, उसे भी आप लोग अच्छी तरह जानते हो ॥ ७२ ॥ जब कभी मेरे भक्त पर किसी प्रकार की विपत्ति आती है, तो मैं उसी समय अपने भक्तों की उन विपत्तियों को तत्क्षण दूर करता हूँ ॥ ७३ ॥ इस समय तारकासुर के द्वारा जो विपत्ति आप लोगों पर आई हुई है उसे भी मैं जानता हूँ, उस दुःख को भी मैं दूर करूँगा, यह सत्य-सत्य कहता हूँ ॥ ७४ ॥ यद्यपि मेरी विहार करने की रञ्चमात्र भी इच्छा नहीं है, तो भी आप लोगों

गच्छत स्वगृहाण्येवं निर्भयाः सकलाः सुराः । कार्यं वः साधयिष्यामि नाऽत्र कार्या विचारणा ॥७६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा मौनमास्थाय समाधिस्थोऽभवद्धरः । सर्वे विष्ण्वादयो देवाः स्वधामानि ययुर्मुने ! ॥७७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे पार्वतीविवाहस्वीकारवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्याय

(पार्वती की परीक्षा हेतु सप्तर्षियों का हिमालय गमन)

नारद उवाच

गतेषु तेषु देवेषु विधिविष्ण्वादिकेषु च । सर्वेषु मुनिषु प्रीत्या किं बभूव ततः परम् ॥ १ ॥

किं कृतं शम्भुना तात वरं दातुं समागतः । कियत्कालेन च कथं तद्वद प्रीतिमावहन् ? ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

गतेषु तेषु देवेषु ब्रह्मादिषु निजाश्रमम् । तत्तपः सुपरीक्षार्थं समाधिस्थोऽभवद्भवः ॥ ३ ॥

स्वात्मानमात्मना कृत्वा स्वात्मन्येव व्यचिन्तयत् । परात्परतरं स्वस्थं निर्माय निरवग्रहम् ॥ ४ ॥

तद्वस्तुभूतो भगवानीश्वरो वृषभध्वजः । अविज्ञातगतिः स्रष्टा स हरः परमेश्वरः ॥ ५ ॥

ब्रह्मोवाच

गिरिजा हि तदा तात ! ततापं परमं तपः । तपसा तेन रुद्रोऽपि परं विस्मयमागतः ॥ ६ ॥

समाधेश्चलितः सोऽभूद् भक्ताधीनोऽपि नान्यथा । वसिष्ठादीन् मुनीन् सप्त सस्मार स्रष्टिकृद्धरः ॥ ७ ॥

के लिए पुत्र उत्पन्न करने हेतु गिरिजा से विवाह करूँगा ॥ ७५ ॥ हे देवगणो ! अब आप लोग इस समय निर्भय होकर अपने-अपने घरों को जाइए । मैं आप लोगों का सब कार्य सिद्ध करूँगा, इसमें विशेष विचार की आवश्यकता नहीं है ॥ ७६ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! देवताओं से ऐसा कहकर भगवान् शङ्कर पुनः मौन होकर समाधिस्थ हो गये और विष्णु आदि समस्त देवगण अपने-अपने स्थानों को चले गये ॥ ७७ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में पार्वती-विवाह-स्वीकार वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥

*

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन् ! जब विधाता एवं विष्णु आदि सब देवता अपने-अपने स्थान को चले गये तब क्या हुआ ? ॥ १ ॥ शिवजी ने क्या किया ? और फिर कितने दिन के बाद पार्वती को वर देने के लिए आये, और उन्होंने क्या वर दिया, उसे आप सप्रेम कहिए ? ॥ २ ॥

ब्रह्माजी बोले—जब ब्रह्मादि सब देवता अपने-अपने आश्रमों को चले गये तब पार्वती की तपस्या हेतु शिवजी पुनः समाधिस्थ हो गये ॥ ३ ॥ उन्होंने अपनी आत्मा से ही आत्मा में परात्परतर, निरवग्रह आत्म स्थित ज्योति को धारण कर विचार किया ॥ ४ ॥ वस्तुतः वे शिव ही भगवान् ईश्वर, वृषभध्वज, अविज्ञातगति, जगत्स्रष्टा, हर एवं परमेश्वर हैं ॥ ५ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात ! उसी समय पार्वती ने भी महाघोर तपस्या प्रारम्भ की, जिससे शंकर भी अत्यन्त विस्मित हो उठे ॥ ६ ॥ यद्यपि वे भक्तपरतन्त्र परमात्मा कभी भी समाधि से विचलित नहीं हुए, किन्तु उस समय वे भी पार्वती की तपस्या द्वारा समाधि से विचलित हो उठे । उन जगत्स्रष्टा ने

सप्तापि मुनयः शीघ्रमाययुः स्मृतिमात्रतः । प्रसन्नवदनाः सर्वे वर्णयन्तो विधिं बहु ॥ ८ ॥
प्रणम्य तं महेशानं तुष्टुवुर्हर्षनिर्भराः । वाण्या गद्गदया बद्धकरा विनतकन्धराः ॥ ९ ॥

सप्तर्षय ऊचुः

देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो ! । जाता वयं सुधन्या हि त्वया यदधुना स्मृताः ॥१०॥
किमर्थं संस्मृता वाऽथ शासनं देहि तद्धि नः । स्वदाससदृशीं स्वामिन् ! कृपां कुरु नमोऽस्तु ते ॥११॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य मुनीनां तु विज्ञप्तिं करुणानिधिः । प्रोवाच विहसन् प्रीत्या प्रोत्फुल्लनयनाम्बुजः ॥१२॥

महेश्वर उवाच

हे सप्तमुनयस्ताताः शृणुतारं वचो मम । अस्मद्धितकरा यूयं सर्वज्ञानविचक्षणाः ॥१३॥
तपश्चरति देवेशी पार्वती गिरिजाऽधुना । गौरीशिखरसंज्ञे हि पर्वते दृढमानसा ॥१४॥
मां पतिं प्राप्तुकामा हि सा सखीसेविता द्विजाः । सर्वान् कामान् विहायान्यान् परं निश्चयमागता ॥१५॥
तत्र गच्छत यूयं मच्छासनान् मुनिसत्तमाः । परीक्षां दृढतायास्तत्कुरुत प्रेमचेतसः ॥१६॥
सर्वथा छलसंयुक्तं वचनीयं वचश्च वः । न संशयः प्रकर्तव्यः शासनान्मम सुव्रताः ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

इत्याज्ञप्ताश्च मुनयो जग्मुस्तत्र द्रुतं हि ते । यत्र राजति सा दीप्ता जगन्माता नगात्मजा ॥१८॥
तत्र दृष्टा शिवा साक्षात्तपःसिद्धिरिवापरा । मूर्ता परमतेजस्का विलसन्ती सुतेजसा ॥१९॥
हृदा प्रणम्य तां ते तु ऋषयः सप्त सुव्रताः । सन्नता वचनं प्रोचुः पूजिताश्च विशेषतः ॥२०॥

वसिष्ठादिक सप्तर्षियों का स्मरण किया ॥ ७ ॥ वे सप्तर्षिगण शिव के स्मरण करते ही नाना प्रकार के विधियों का वर्णन करते हुए प्रसन्नता से वहाँ जाकर उपस्थित हो गये ॥ ८ ॥ उन्होंने महेश्वर को प्रणाम कर हर्षपूर्वक गद्गदवाणी से सिर झुकाते हुए महेश्वर की स्तुति करने लगे ॥ ९ ॥

सप्तर्षिगण बोले—हे देवदेव ! हे महादेव ! हे करुणासागर, हे प्रभो ! आज हम लोग धन्य हो गये, जो आपने स्मरण किया ॥ १० ॥ हे नाथ ! आपने किसलिए हम लोगों का स्मरण किया, आज्ञा दीजिए, और हे स्वामिन् ! अपने दास के समान ही हम लोगों पर कृपा कीजिए, आपको प्रणाम है ॥ ११ ॥

ब्रह्माजी बोले—करुणानिधि सदाशिव मुनियों की इस विज्ञप्ति को सुनकर विकसित कमल के समान विशाल नेत्रों से प्रीति प्रगट करते हुए हँसकर कहने लगे ॥ १२ ॥

महेश्वर बोले—हे सप्तर्षिगण, तुम लोग सर्वज्ञान में विचक्षण तथा हमारे हित करने वाले हो, हे तात ! मेरी बात सुनो ॥ १३ ॥ गौरीशिखर नामक पर्वत पर देवेशी पार्वती गिरिजा अत्यन्त दृढ़मन से तपस्या कर रही हैं ॥ १४ ॥ हे ऋषियो ! सखियों से सेवित वह अपनी सारी कामनाएँ त्यागकर बड़ा दृढ़ता के साथ मुझे अपना पति बनाने के उद्देश्य से घोर तपस्या में संलग्न है ॥ १५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! तुम लोग मेरी आज्ञा से वहाँ जाओ और उसके प्रेम एवं दृढ़ता की परीक्षा करो ॥१६॥ हे सुव्रत मुनिगण ! यह मेरी आज्ञा है कि आपलोग छलयुक्त वचन कहकर उसकी हर प्रकार से वञ्चना करो, मेरी इस आज्ञा में संशय न करना ॥ १७ ॥

ब्रह्माजी बोले—शिव की आज्ञा पाते ही मुनिगण तत्क्षण उस स्थान को गये, जहाँ जगन्माता पर्वतराजपुत्री तपस्या कर रही थीं ॥ १८ ॥ उन लोगों ने वहाँ जाकर साक्षात् दूसरी तपःसिद्धि के समान तेज से देदीप्यमान, परम तेज की मूर्ति स्वरूपा पार्वती को देखा ॥ १९ ॥ फिर उन महर्षियों ने हृदय से पार्वती को प्रणाम किया । अनन्तर पार्वती के द्वारा नमस्कृत एवं पूजित हो इस प्रकार कहने लगे ॥ २० ॥

ऋषय ऊचुः

श्रृणु शैलसुते देवि ! किमर्थं तप्यते तपः । इच्छसि त्वं सुरं कं च किं फलं तद्वदाधुना ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ता सा शिवा देवी गिरीन्द्रतनया द्विजैः । प्रत्युवाचं वचः सत्यं सुगूढमपि तत्पुरः ॥२२॥

पार्वत्युवाच

मुनीश्वराः संश्रृणुत मद्वाक्यं प्रीतितो हृदा । ब्रवीमि स्वविचारं वै चिन्तितो यो धिया स्वया॥२३॥

करिष्यथ प्रहासं मे श्रुत्वा वाचो ह्यसम्भवाः । सङ्कोचो वर्णनाद् विप्रा भवत्येव करोमि किम् ॥२४॥

इदं मनो हि सुदृढमवशं परकर्मकृत् । जलोपरि महाभित्तिं चिकीर्षति महोन्नताम् ॥२५॥

सुरर्षेः शासनं प्राप्य करोमि सुदृढं तपः । रुद्रः पतिर्भवेन्मे हि विधायेति मनोरथम् ॥२६॥

अपक्षो मन्मनःपक्षी व्योम्नि उड्डीयते हठात् । तदाशां शङ्करः स्वामी पिपर्तु करुणानिधिः ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्या विहस्य मुनयश्च ते । सम्मान्य गिरिजां प्रीत्या प्रोचुश्छलवचो मृषा ॥२८॥

ऋषय ऊचुः

न ज्ञातं तस्य चरितं वृथापण्डितमानिनः । देवर्षेः क्रूरमनसः सुज्ञा भूत्वाऽप्यगात्मजे ॥२९॥

नारदः कूटवादी च परचित्तप्रमन्थकः । तस्य वार्ताश्रवणतो हानिर्भवति सर्वथा ॥३०॥

तत्र त्वं श्रृणु सद्बुद्ध्या चेतिहासं सुशोभितम् । क्रमात्त्वां बोधयन्तो हि प्रीत्या तमुपधारय ॥३१॥

ब्रह्मपुत्रो हि यो दक्षः सुषुवे पितुराज्ञया । स्वपत्न्यामयुतं पुत्रानयुङ्क्त तपसि प्रियान् ॥३२॥

ते सुताः पश्चिमदिशि नारायणसरो गताः । तपोऽर्थे ते प्रतिज्ञाय नारदस्तत्र वै ययौ ॥३३॥

ऋषिगण बोले—हे शैलसुते देवि ! हमारे वचन सुनो, तुम किस उद्देश्य से तप कर रही हो ? तुम अपनी आराधना से किस देवता को प्रसन्न करना चाहती हो एवं और क्या चाहती हो वह भी कहो ॥२१॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! जब उन सप्तर्षियों ने इस प्रकार पार्वती से कहा तब पार्वती अत्यन्त गोपनीय और सत्य वचन उनके आगे कहने लगी ॥ २२ ॥

पार्वती बोली—हे मुनिगण ! मैंने अपने बुद्धि से जो विचार किया है उन विचारों को आपके सामने प्रगट करती हूँ, आपलोग प्रेम से मेरी बात सुनें ॥ २३ ॥ यद्यपि आपलोग मेरी असम्भव बात सुनकर परिहास करेंगे इसलिए उसे कहने में भी मुझे संकोच हो रहा है, पर मैं क्या करूँ ? आपलोगों के पूछने पर कह रही हूँ ॥ २४ ॥ मेरा यह मन बड़ी दृढ़ता से हठपूर्वक दूसरे के वश में हो गया है और जल के ऊपर बहुत ऊँची भीत उठाना चाहता है ॥ २५ 'सदाशिव ही मेरे पति हों यह मेरा दृढ़ मनोरथ है' इसी उद्देश्य से देवर्षि नारद की आज्ञानुसार यह कठिन तप कर रही हूँ ॥ २६ ॥ इस मेरे मन रूपी पक्षी को यद्यपि पंख नहीं है फिर भी यह हठपूर्वक आकाश में उड़ना चाहता है । शंकरजी करुणासागर हैं, वे मेरी इस आशा को पूर्ण करेंगे ॥ २७ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार पार्वती के वचन सुन वे मुनि हँसकर प्रीतिपूर्वक गिरिजा का आदर करते हुए झूठा एवं छलयुक्त वचन कहने लगे ॥ २८ ॥

ऋषिगण बोले—व्यर्थ ही अपने को पण्डित मानने वाले उस नीच नारद का चरित्र तो हमलोग जानते हैं । हे पर्वतराजपुत्रि ! तुम बुद्धिमती होकर भी उसके बहकावे में कैसे आ गयी ॥२९॥ वह नारद तो महाझूठा है और दूसरे के चित्त को भुलावे में डाल देता है । उसकी बात सुनने से भी मनुष्यों की हानि होती है ॥ ३० ॥ उस नारद के विषय में एक बड़ा सुन्दर इतिहास हम कहते हैं, उसे तुम सुनो और सप्रेम हृदय में धारण करो ॥ ३१ ॥ ब्रह्मा के पुत्र दक्ष ने अपनी पिता की आज्ञा से दश सहस्र पुत्र उत्पन्न किया और उनको तप के कार्य में नियुक्त किया ॥ ३२ ॥ पिता की आज्ञा से वे दक्षपुत्र पश्चिम दिशा में

कूटोपदेशमाश्राव्य तत्र तन्नारदो मुनिः । तदाज्ञया च ते सर्वे पितुर्न गृहमाययुः ॥३४॥
तच्छ्रुत्वा कुपितो दक्षः पित्राश्वासितमानसः । उत्पाद्य पुत्रान् प्रायुङ्क्त सहस्रप्रमितांस्ततः ॥३५॥
तेऽपि तत्र गताः पुत्रास्तपोऽर्थं पितुराज्ञया । नारदोऽपि ययौ तत्र पुनस्तत्स्वोपदेशकृन् ॥३६॥
ददौ तदुपदेशं ते तेभ्यो भ्रातृपथं ययुः । आययुर्न पितुर्गेहं भिक्षुवृत्तिरताश्च ते ॥३७॥
इत्थं नारदसद्वृत्तिर्विश्रुतो शैलकन्यके ! । अन्यां शृणु हि तद्वृत्तिं वैराग्यकरणीं नृणाम् ॥३८॥
विद्याधरश्चित्रकेतुर्यो बभूव पुराऽकरोत् । स्वोपदेशमयं दत्त्वा तस्मै शून्यं च तद्गृहम् ॥३९॥
प्रह्लादाय स्वोपदेशान् हिरण्यकशिपोः परम् । दत्त्वा दुःखं ददौ चाऽयं परबुद्धिप्रभेदकः ॥४०॥
मुनिना निजविद्या यच्छ्राविता कर्णरोचना । स स्वगेहं विहायाशु भिक्षां चरति प्रायशः ॥४१॥
नारदो मलिनात्मा हि सर्वदोज्ज्वलदेहवान् । जानीमस्तं विशेषेण वयं तत्सहवासिनः ॥४२॥
वकं साधुं वर्णयन्ति न मत्स्यानत्ति सर्वथा । सहवासी विजानीयाच्चरित्रं सहवासिनाम् ॥४३॥
लब्ध्वा तदुपदेशं हि त्वमपि प्राज्ञसम्मता । वृथैव मूर्खीभूता तु तपश्चरसि दुष्करम् ॥४४॥
यदर्थमीदृशं वाले ! करोषि विपुलं तपः । सदोदासी निर्विकारो मदनारिर्न संशयः ॥४५॥
अमङ्गलवपुर्धारी निर्लज्जोऽसदनोऽकुली । कुवेषी प्रेतभूतादिसङ्गी नग्नो हि शूलभृत् ॥४६॥
स धूर्तस्तव विज्ञानं विनाश्य निजमायया । मोहयामास सद्युक्त्या कारयामास वै तपः ॥४७॥
ईदृशं हि वरं लब्ध्वा किं सुखं सम्भविष्यति । विचारं कुरु देवेशि ! त्वमेव गिरिजात्मजे ! ॥४८॥

नारायण सरोवर पर तप करने हेतु गये, दैवयोग से नारद वहाँ पहुँच गये ॥ ३३ ॥ उन नारद ने उन्हें झूठा उपदेश देकर विरक्त कर दिया, जिससे लौटकर वे पुनः अपने पिता के पास नहीं गये ॥३४॥ इस समाचार से दक्ष अत्यन्त खिन्न हो गये । ब्रह्मदेव ने उन्हें धैर्य प्रदान किया । तदनन्तर उन्होंने पुनः एक हजार पुत्र उत्पन्न किये और उन्हें भी तपकार्य में नियुक्त कर दिया ॥३५॥ वे भी पिता की आज्ञा लेकर वहीं तप के लिए गये । पुनः नारद जी ने वहाँ जाकर उन्हें भी वैराग्य का उपदेश किया ॥३६॥ उनका उपदेश मानकर वे भी अपने भाई के रास्ते का अनुसरण कर भिक्षावृत्ति से निर्वाह कर दिन बिताने लगे और पिता के पास नहीं गये ॥३७॥

हे पार्वती ! नारद का ऐसा चरित्र है, जो जगत् में विख्यात है । हे शैलपुत्रि ! और भी मनुष्यों को विरक्त करने वाला उनका चरित्र सुनो ॥ ३८ ॥ पूर्वकाल में चित्रकेतु नामका विद्याधर, जो चित्रकेतु नाम का राजा हुआ था, उसको इन्हीं नारद ने उपदेश देकर उसका घर सूना कर दिया ॥ ३९ ॥ प्रह्लाद को उपदेश देकर हिरण्यकशिपु से उसको नाना प्रकार का दुःख दिलाया । इस प्रकार वह उल्टा उपदेश देकर मनुष्यों की बुद्धि फेर देता है ॥ ४० ॥ हे देवि ! हम बहुत क्या कहें ? इन नारद ने कानों को अत्यन्त सुन्दर लगने वाली अपनी विद्या जिस-किसी को भी दी वही घर छोड़कर परम विरक्त हो गया । और भिक्षा माँगने लगा ॥ ४१ ॥ वे नारद यद्यपि देखने में बड़े सज्जन हैं, परमात्मा से महामलीन हैं, हमलोग उनके साथ में रहने के कारण उनका चरित्र विशेष रूप से जानते हैं ॥ ४२ ॥ वक के शरीर वर्ण को देखकर सवलोग उसे साधु कहते हैं, फिर भी क्या वह मछली नहीं खाता ? हे देवि ! सहवासी ही सहवास के चरित्र को जानता है ॥ ४३ ॥ तुम तो परम बुद्धिमान् हो, फिर कैसे उनके उपदेश में फंसकर मूर्खों की तरह दुश्चर तपस्या में लग गयीं ॥ ४४ ॥

हे वाले ! यह परम दुःख की बात है कि तुम जिसे अपना पति बनाने के लिए इतना कठिन तप कर रही हो वह कामदेव का शत्रु है, और कामादि विकारों से रहित है ॥ ४५ ॥ वह अमङ्गल वेष धारण करने वाला शिव महा निर्लज्ज है, उसके कुल का आज तक किसी को पता नहीं, कुवेषी, भूत एवं प्रेतादिकों का साथ करने वाला, त्रिशूल धारण करने वाला और नङ्गा निवास करता है ॥ ४६ ॥ वह नारद तो बड़ा धूर्त है, देखो, उसने अपनी माया से तुम्हें भुलावे में डाल दिया, और सद्युक्ति से तुम्हें मोहित कर तुमसे इतनी कठिन तपस्या करवायी ॥ ४७ ॥ ऐसे वर को प्राप्त कर तुम्हें क्या सुख मिलेगा । हे पार्वति ! तुम्हीं

प्रथमं दक्षजां साध्वीं विवाह्य सुधिया सतीम् । निर्वाहं कृतवान्नैव मूढः किञ्चिद्दिनानि हि ॥४९॥
तां तथैव स वै दोषं दत्त्वात्याक्षीत् स्वयं प्रभुः । ध्यायन् स्वरूपमकलमशोकमरमत् सुखी ॥५०॥
एकलः परनिर्वाणो ह्यसङ्गोऽद्वय एव च । तेन नार्याः कथं देवि ! निर्वाहः सम्भविष्यति ॥५१॥
अद्यापि शासनं प्राप्य गृहमायाहि दुर्मतिम् । त्यजाऽस्माकं महाभागे भविष्यति च शं तव ॥५२॥
त्वद्योग्यो हि वरो विष्णुः सर्वसद्गुणवान् प्रभुः । वैकुण्ठवासी लक्ष्मीशो नानाक्रीडाविशारदः ॥५३॥
तेन ते कारयिष्यामो विवाहं सर्वसौख्यदम् । इतीदृशं त्यज हठं सुखिता भव पार्वति ! ॥५४॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा पार्वती जगदम्बिका । विहस्य च पुनः प्राह मुनीन् ज्ञानविशारदान् ॥५५॥

पार्वत्युवाच

सत्यं भवद्भिः कथितं स्वज्ञानेन मुनीश्वराः । परं तु मे हठो नैव मुक्तो भवति हे द्विजाः ! ॥५६॥
स्वतनोः शैलजातत्वात् काठिन्यं सहजं स्थितम् । इत्थं विचार्य सुधिया मां निषेद्धुं न चार्हथ ॥५७॥
सुरर्षेर्वचनं पथ्यं त्यक्ष्ये नैव कदाचन । गुरूणां वचनं सत्यमिति वेदविदो विदुः ॥५८॥
गुरूणां वचनं सत्यमिति येषां दृढा मतिः । तेषामिहाऽमुत्र सुखं परमं नासुखं क्वचित् ॥५९॥
गुरूणां वचनं सत्यमिति यद्धृदये न धीः । इहामुत्रापि तेषां हि दुःखं न च सुखं क्वचित् ॥६०॥
सर्वथा न परित्याज्यं गुरूणां वचनं द्विजाः । गृहं वसेद्वा शून्यं स्यान्मे हठः सुखदः सदा ॥६१॥
यद्भवद्भिः सुभणितं वचनं मुनिसत्तमाः । तदन्यथा तद्विवेकं वर्णयामि समासतः ॥६२॥

इस बात का विचार करो ॥ ४८ ॥ जिन शिव ने ही अत्यन्त सीधी दक्षकन्या से स्वयं अपनी मूर्खता से विवाह किया । किन्तु थोड़े समय तक भी उसका निर्वाह न कर सके ॥ ४९ ॥ और सती को ही दोष लगाकर उसका स्वयं त्याग कर दिया । वे तो अकल, अशोक आत्मस्वरूप में ही सुख से रमण करते हैं ॥ ५० ॥ और अकेले, परनिर्वाण, असङ्ग तथा अद्वैत हैं, भला उनके घर में स्त्री का निर्वाह किस प्रकार सम्भव है ॥ ५१ ॥ हे देवि ! अच्छा तो यही होगा कि अब भी तुम हमारी बात मानकर अपनी दुर्बुद्धि का त्याग कर अपने घर चली जाओ । हे महाभागे ! ऐसा करने से तुम्हारा परम कल्याण होगा ॥ ५२ ॥ हम लोगों ने तुम्हारे लिए विष्णु-जैसा वर निश्चित किया है, वे सद्‌गुणों से सम्पन्न हैं, उनका निवास वैकुण्ठ में है, लक्ष्मी के साथ निवास करते हैं और नाना प्रकार की क्रीडाओं में कुशल हैं ॥५३॥ हम लोग तुम्हारा विवाह उन विष्णु से करायेंगे, जिनसे तुम्हें सब प्रकार के सुखों की प्राप्ति होगी । हे पार्वती ! तुम अपना हठ छोड़ो और सुखी होकर निवास करो ॥ ५४ ॥

ब्रह्माजी बोले—सप्तर्षियों के वचन सुनकर जगदम्बा पार्वती हँसती हुई ज्ञानविशारद मुनियों से बोलीं ॥ ५५ ॥

पार्वती बोलीं—हे मुनिगण ! आप लोग यद्यपि अपने विचार से सत्य कहते हैं, किन्तु मैं अपना हठ नहीं छोड़ूँगी ॥५६॥ पर्वत से उत्पन्न होने के कारण मेरे इस शरीर में काठिन्य एवं हठ का होना स्वाभाविक है, ऐसा अपनी बुद्धि से विचार कर हे ब्राह्मणो ! मुझे तपस्या से मना मत करो ॥ ५७ ॥ मेरे लिए नारदजी के वचन सर्वथा हितकर हैं, मैं उनका परित्याग कदापि न करूँगी । वेदवेत्ता विद्वान् कहते हैं कि गुरु का वचन सर्वदा कल्याणकारी होता है ॥ ५८ ॥ जिन लोगों ने बुद्धि से यह निश्चित कर लिया है कि गुरु के वचन सर्वदा सत्य हैं, उनको इस लोक तथा परलोक में सदैव सुख प्राप्त होता है, उन्हें कभी दुःख होता ही नहीं ॥ ५९ ॥ जिन लोगों के हृदय में गुरु-वचन के प्रति प्रतीति नहीं, उन्हें इस लोक एवं परलोक में सर्वदा दुःख-ही-दुःख है उन्हें सुख कहाँ ॥ ६० ॥

हे ब्राह्मणो ! गुरुओं के वचन किसी प्रकार त्याग के योग्य नहीं होते, चाहे घर उजड़े या नष्ट हो जाय, पर मैं अपना हठ नहीं छोड़ूंगी, क्योंकि उसीसे मुझे सुख मिलेगा ॥६१॥ हे मुनिसत्तम ! आप लोगों ने

गुणालयो विहारी च विष्णुः सत्यं प्रकीर्तितः । सदाशिवोऽगुणः प्रोक्तस्तत्र कारणमुच्यते ॥६३॥
शिवो ब्रह्मा विकारः स भक्तहेतोर्धृताकृतिः । प्रभुतां लौकिकीं नैव संदर्शयितुमिच्छति ॥६४॥
अतः परमहंसानां धार्यते सुप्रिया गतिः । अवधूतस्वरूपेण परानन्देन शम्भुना ॥६५॥
भूषणादिरुचिर्मायालिप्तानां ब्रह्मणो न च । स प्रभुर्निर्गुणोऽजो निर्मायोऽलक्ष्यगतिर्विराट् ॥६६॥
धर्मजात्यादिभिः शम्भुर्नानुगृह्णाति वै द्विजाः । गुरोरनुग्रहेणैव शिवं जानामि तत्त्वतः ॥६७॥
चेच्छिवः स हि मे विप्रा विवाहं न करिष्यति । अविवाहा सदाऽहं स्यां सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥६८॥
उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति वह्निः ।
विकसति यदि पद्मं पर्वताग्रे शिलायां न हि चलति हठो मे सत्यमेतद् ब्रवीमि ॥६९॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा तान् प्रणम्याशु मुनीन् सा पर्वतात्मजा । विरराम शिवं स्मृत्वा निर्विकारेण चेतसा ॥७०॥
ऋषयोऽपीत्थमाज्ञाय गिरिजायाः सुनिश्चयम् । प्रोचुर्जयगिरं तत्र ददुश्चाशिषमुत्तमाम् ॥७१॥
अथ प्रणम्य तां देवीं मुनयो हृष्टमानसाः । शिवस्थानं द्रुतं जग्मुस्तत्परीक्षाकरा मुने ॥७२॥
तत्र गत्वा शिवं नत्वा वृत्तान्तं विनिवेद्य तम् । तदाज्ञां समनुप्राप्य स्वर्लोकं जग्मुरादरात् ॥७३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
सप्तर्षिकृतपरीक्षावर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

मुझे जो सुन्दर उपदेश दिये हैं वे सब झूठे हैं, उस विषय में मैं संक्षेप से अपना विचार प्रगट करती हूँ ॥६२॥ आप लोगों ने जो विष्णु को सर्वगुणालय, वैकुण्ठ में विहार करने वाला तथा सदाशिव को निर्गुण एवं निर्विकार कहा है, वह सत्य ही है, इसका कारण मैं आप लोगों को बताती हूँ ॥ ६३ ॥ शिव परब्रह्म एवं अविकारी हैं, वे भक्तों के लिए ही शरीर धारण करते हैं, वे प्रभु कभी भी सांसारिक प्रभुता दिखाने की इच्छा नहीं करते ॥ ६४ ॥ वे सदाशिव परमहंसों को उत्तम गति देने के लिए ही अवधूत स्वरूप धारण करते हैं ॥ ६५ ॥ माया में लिप्त रहने वालों को ही भूषणादि में अभिरुचि होती है, ब्रह्म को किसी प्रकार की कोई अभिरुचि नहीं होती । वे सदाशिव प्रभु, निर्गुण, अज, मायारहित, अलक्ष्यगति एवं विराट् हैं ॥ ६६ ॥ हे ब्राह्मणो ! वे शम्भु मात्र धर्म एवं जाति से किसी पर अनुग्रह नहीं करते । गुरु का अनुग्रह होने के कारण यथार्थ रूप से मैं शिव को जानती हूँ ॥ ६७ ॥ हे ब्राह्मणो ! यदि शंकर मेरे साथ विवाह नहीं करेंगे तो मैं जीवन भर अविवाहिता रहूँगी, यह मैं सत्य कहती हूँ, सत्य कहती हूँ ॥ ६८ ॥ चाहे सूर्य पश्चिम की ओर उदय हो, चाहे सुमेरु अपने स्थान से चलायमान हो जावे, चाहे अग्नि शीतल हो जाय और चाहे कमल पर्वत पर खिलने लगे तो भी मैं अपने हठ से विचलित नहीं होऊँगी, यह मैं सत्य कहती हूँ ॥ ६९ ॥

ब्रह्मा जी बोले—इतना कहने के पश्चात् वह पार्वती शिव का स्मरण कर और उन मुनियों को प्रणाम कर निर्विकार चित्त हो मौन हो गयी ॥ ७० ॥ तदनन्तर ऋषियों ने इस प्रकार पार्वती का निश्चय जान उनकी जय-जयकार करते हुए उत्तम आशीर्वाद प्रदान किया ॥ ७१ ॥ शिवा की परीक्षा के लिए आये हुए उन मुनियों ने प्रसन्न होकर पार्वती को प्रणाम किया और शीघ्रता से शिवस्थान को चले गये ॥ ७२ ॥ उन लोगों ने वहाँ जाकर शिव को प्रणाम किया और उनसे सारा वृत्तान्त निवेदन कर उनकी आज्ञा ले सादर अपने लोक को चले गये ॥ ७३ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में सप्तर्षिकृत परीक्षावर्णन नामक पचीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥

*

षड्विंशोऽध्यायः

(शिव का ब्रह्मचारी रूप धारण कर पार्वती के पास जाना)

ब्रह्मोवाच

गतेषु तेषु मुनिषु स्वं लोकं शङ्करः स्वयम् । परीक्षितुं तपो देव्या ऐच्छत् सूतिकरः प्रभुः ॥ १ ॥
परीक्षाछद्मना शम्भुर्द्रष्टुं तां हृष्टमानसः । जटिलं रूपमास्थाय स ययौ पार्वतीवनम् ॥ २ ॥
अतीव स्थविरो विप्रदेहधारी स्वतेजसा । प्रज्वलन् मनसा हृष्टो दण्डी छत्री बभूव सः ॥ ३ ॥
तत्राऽपश्यत् स्थितां देवीं सखीभिः परिवारिताम् । वेदिकोपरि शुद्धां तां शिवामिव विधोः कलाम् ॥ ४ ॥
शम्भुर्निरीक्ष्य तां देवीं ब्रह्मचारिस्वरूपवान् । उपकण्ठं ययौ प्रीत्या तदाऽसौ भक्तवत्सलः ॥ ५ ॥
आगतं तं तदा दृष्ट्वा ब्राह्मणं तेजसाऽद्भुतम् । अपूजयच्छिवा देवी सर्वपूजोपहारकैः ॥ ६ ॥
सुसत्कृतं संविधाभिः पूजितं परया मुदा । पार्वती कुशलं प्रीत्या पप्रच्छ द्विजमादरात् ॥ ७ ॥

पार्वत्युवाच

ब्रह्मचारिस्वरूपेण कस्त्वं हि कुत आगतः । इदं वनं भासयसे वद वेदविदां वर ॥ ८ ॥

विप्र उवाच

अहमिच्छाभिगामी च वृद्धो विप्रतनुः सुधीः । तपस्वी सुखदोऽन्येषामुपकारी न संशयः ॥ ९ ॥
का त्वं कस्यासि तनया किमर्थं विजने वने । तपश्चरसि दुर्धर्षं मुनिभिः प्रयतैरपि ॥१०॥
न बाला न च वृद्धासि तरुणी भासि शोभना । कथं पतिं विना तीक्ष्णं तपश्चरसि वै वने ॥११॥
किं त्वं तपस्विनी भद्रे कस्यचित्सहचारिणी । तपस्वी स न पुष्णाति देवि ! त्वां च गतोऽन्यतः ॥१२॥
वद कस्य कुले जाता कः पिता तव का विधा । महासौभाग्यरूपा त्वं वृथा तव तपोरतिः ॥१३॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! उन मुनियों के चले जाने के अनन्तर जगत्स्रष्टा शिव ने स्वयं पार्वती के तप की परीक्षा लेने हेतु विचार किया ॥ १ ॥ वे शिवजी परीक्षा के बहाने उसे देखने के लिए जटाधारी ब्रह्मचारी का वेष बनाकर उस तपोवन में गये ॥ २ ॥ उन्होंने प्रसन्न मन से बूढ़े ब्राह्मण का वेष धारण किया और दण्ड तथा छत्र धारण किये हुए तेज से देदीप्यमान हो पार्वती के पास पहुँचे ॥३॥ उन्होंने सखियों से घिरी हुई उस सर्वथा विशुद्ध पार्वती को वेदी पर बैठे हुए साक्षात् चन्द्रकला के समान देखा ॥४॥ ब्रह्मचारी का वेष धारण किये हुए, भक्तवत्सल शिव इस प्रकार स्थित हुई पार्वती को देखकर उसके समीप गये ॥ ५ ॥ उस अपूर्व तेजस्वी ब्राह्मण को आये हुए देखकर देवी ने सभी प्रकार की पूजा-सामग्री से उनका पूजन किया ॥ ६ ॥ इस प्रकार भली-भाँति पूजा-सत्कार करने के अनन्तर पार्वती ने प्रसन्नता के साथ उस ब्राह्मण से आदरपूर्वक कुशलसमाचार पूछा ॥ ७ ॥

पार्वती बोलीं—हे ब्राह्मण ! ब्रह्मचारी का स्वरूप धारण किये हुए आप कौन हो ? और कहाँ से आये हो ? हे वेदवेत्ता ब्राह्मण ! तुम्हारे तेज से यह वन प्रकाशित हो रहा है, यह सब कारण मुझसे कहो ॥ ८ ॥

ब्राह्मण ने कहा—मैं वृद्ध ब्राह्मण का शरीर धारण किये हुए एक बुद्धिमान् व्यक्ति हूँ, तपस्वी हूँ, दूसरों को सुख देना तथा उनका उपकार करना ही मेरा काम है, इसमें संशय नहीं ॥ ९ ॥ अच्छा, अब तुम बताओ कि तुम किसकी कन्या हो, कौन हो ? इस निर्जन वन में अकेली रहकर इतनी कठिन तपस्या, जो मुनियों के लिए भी दुष्कर है, क्यों कर रही हो ? ॥ १० ॥ तुम बाला तथा वृद्ध भी नहीं हो, सर्वथा तरुणी जान पड़ती हो, पति के विना इस वन में इतनी तीक्ष्ण तपस्या क्यों करती हो ? ॥ ११ ॥ हे भद्रे ! क्या तुम किसी तपस्वी की सहचारिणी हो, जो इतनी घोर तपस्या में निरत हो, क्या वह तपस्वी तुम्हारा पोषण नहीं करता ? अथवा तुम्हें छोड़कर अन्यत्र चला गया है ॥ १२ ॥ बताओ, तुम किस कुल में उत्पन्न

किं त्वं वेदप्रसूर्लक्ष्मीः किं सुरूपा सरस्वती । एतासु मध्ये का वा त्वं नाऽहं तर्कितुमुत्सहे॥१४॥

पार्वत्युवाच

नाऽहं वेदप्रसूर्विप्र न लक्ष्मीश्च सरस्वती । अहं हिमाचलसुता साम्प्रतं नाम पार्वती ॥१५॥
पुरा दक्षसुता जाता सती नामान्यजन्मनि । योगेन त्यक्तदेहाऽहं यत्पित्रा निन्दितः पतिः॥१६॥
अत्र जन्मनि सम्प्राप्तः शिवोऽपि विधिवैभवात् । मां त्यक्त्वा भस्मसात् कृत्य मन्मथं स जगाम ह॥१७॥
प्रयाते शङ्करे तापोद्विजिताऽहं पितुर्गृहात् । आगता तपसे विप्र सुदृढा स्वर्णदीतटे ॥१८॥
कृत्वा तपः कठोरं च सुचिरं प्राणवल्लभम् । न प्राप्याग्नौ विविक्षन्ती त्वं दृष्ट्वा संस्थिता क्षणम्॥१९॥
गच्छ त्वं प्रविशाम्यग्नौ शिवेनाङ्गीकृता न हि । यत्र यत्र जनुर्लप्स्ये वरिष्यामि शिवं वरम् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा पार्वती वह्नौ तत्पुरः प्रविवेश सा । निषिध्यमाना पुरतो ब्राह्मणेन पुनः पुनः ॥२१॥
वह्निप्रवेशं कुर्वत्याः पार्वत्यास्तत्प्रभावतः । बभूव तत्क्षणं सद्यो वह्निश्चन्दनपङ्कवत् ॥२२॥
क्षणं तदन्तरे स्थित्वा द्युत्पतन्तीं दिवं द्विजः । पुनः पप्रच्छ सहसा विहसन् सुतनुं शिवः ॥२३॥

द्विज उवाच

अहो तपस्ते किं भद्रे ! न बुद्धं किञ्चिदेव हि । न दग्धो वह्निना देहो न च प्राप्तं मनीषितम्॥२४॥
अतः सत्यं निकामं वै वद देवि ! मनोरथम् । ममाग्रे विप्रवर्यस्य सर्वानन्दप्रदस्य हि ॥२५॥

हो ? तुम्हारे पिता का क्या नाम है और तुम्हारा भी क्या नाम है ? तुम तो सभी प्रकार से सौभाग्यशालिनी जान पड़ती हो, फिर भी यह व्यर्थ तपस्या क्यों करती हो ? ॥ १३ ॥ क्या तुम वेदों की जन्मदात्री सावित्री हो या महालक्ष्मी ? अथवा सुन्दर रूप धारण किये हुए सरस्वती हो ? इनके मध्य में तुम कौन हो ? मैं तुम्हारे विषय में इससे अधिक तर्क नहीं कर सकता ॥ १४ ॥

पार्वती बोली—हे विप्र ! मैं न तो सावित्री हूँ, न लक्ष्मी हूँ और न तो सरस्वती ही हूँ । मैं हिमालय की कन्या हूँ और मेरा नाम पार्वती है ॥१५॥ पूर्वकाल में जब मैं दक्ष की कन्या थी, उस समय मेरा नाम सती था । मेरे पिता ने मेरे पति की निन्दा की थी, जिससे मैंने योगमार्ग द्वारा अपना शरीर त्याग दिया॥१६॥ मैंने उस जन्म में भी शिव को पति के रूप में प्राप्त किया था और इस जन्म में भी भाग्यवश शिव को प्राप्त किया, किन्तु मेरे दुर्भाग्य से वे शिव कामदेव को भस्म कर मुझे छोड़ अन्तर्धान हो गये ॥१७॥ इस प्रकार शंकर के अन्तर्धान हो जाने से मुझे बड़ा उद्वेग हो गया । और मैं पिता का घर छोड़कर इस गङ्गा के तट पर दृढ़ तपस्या का निश्चय कर चली आयी ॥ १८ ॥ बहुत काल तक कठोर तपस्या करने के बाद भी मेरे प्राणवल्लभ सदाशिव मुझे प्राप्त नहीं हुए, इस कारण मैं अग्नि में प्रवेश करना चाहती थी किन्तु तुम्हें देखकर क्षणमात्र के लिए रुक गयी ॥१९॥ अच्छा, अब आप पधारें क्योंकि, शिवजी ने मुझे अङ्गीकार नहीं किया, इस हेतु मैं अब अग्नि में प्रवेश करूँगी, इसके अनन्तर भी मैं जहाँ जन्म लूंगी वहाँ भी शिव को ही वर रूप में प्राप्त करूँगी ॥ २० ॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर पार्वती ब्रह्मचारी द्वारा बारम्बार निषेध करने पर भी अग्नि में प्रवेश कर गयी ॥ २१ ॥ पार्वती के अग्नि में प्रवेश करते ही उसकी तपस्या के प्रभाव से वह अग्नि तत्क्षण चन्दन के समान शीतल हो गयी ॥ २२ ॥ क्षणभर में अग्नि के मध्य में स्थित हो उसे शीतल जान जब वह द्युलोक में जाने को उद्यत हुई तब उस ब्राह्मण ने हँसते हुए उससे पूछा ॥ २३ ॥

ब्राह्मण ने कहा—हे भद्रे ! तुमने यह कैसी तपस्या की, मुझे तो तुम्हारी इस तपस्या का फल कुछ भी नहीं जान पड़ता । देखो, इस अग्नि ने तुम्हारा शरीर भी भस्म नहीं किया, मनोरथ प्राप्ति की बात तो बहुत दूर है ॥ २४ ॥ इसलिए हे देवि ! तुम अपना मनोरथ ठीक से कहो, मैं सबको सुख देने वाला

यथाविधि त्वया देवि ! कीर्त्यतां सर्वथात्मना । तस्मान्मैत्री च सञ्जाता कार्यं गोप्यं त्वया न हि ॥२६॥
किमिच्छसि वरं देवि ! प्रष्टुमिच्छाम्यतः परम् । त्वय्येव तदसौ देवि ! फलं सर्वं प्रदृश्यते ॥२७॥
परार्थे च तपश्चेद् वै तिष्ठेत्तु तप एव तत् । रत्नं हस्ते समादाय हित्वा काचस्तु सञ्चितः ॥२८॥
ईदृशं तव सौन्दर्यं कथं व्यर्थीकृतं त्वया । हित्वा वस्त्राण्यनेकानि चर्मादि च धृतं त्वया ॥२९॥
तत्सर्वं कारणं ब्रूहि तपसस्त्वस्य सत्यतः । तच्छ्रुत्वा विप्रवर्योऽहं यथा हर्षमवाप्नुयाम् ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

इति पृष्टा तदा तेन सखीं प्रैरयताम्बिका । तन्मुखेनैव तत्सर्वं कथयामास सुव्रता ॥३१॥
तया च प्रेरिता तत्र पार्वत्या विजयाभिधा । प्राणप्रिया सुव्रतज्ञा सखी जटिलमब्रवीत् ॥३२॥

सख्युवाच

शृणु साधो ! प्रवक्ष्यामि पार्वतीचरितं परम् । हेतुं च तपसः सर्वं यदि त्वं श्रोतुमिच्छसि ॥३३॥
सखी मे गिरिराजस्य सुतेयं हिमभूभृतः । ख्याता वै पार्वती नाम्ना सा कालीति च मेनका ॥३४॥
ऊढेयं न च केनापि न वाञ्छति शिवात्परम् । त्रीणि वर्षसहस्राणि तपश्चरणसाधिनी ॥३५॥
तदर्थं मेऽनया सख्या प्रारब्धं तप ईदृशम् । यदत्र कारणं वक्ष्ये शृणु साधो द्विजोत्तम ! ॥३६॥
हित्वेन्द्रप्रमुखान् देवान् हरिं ब्रह्माणमेव च । पतिं पिनाकपाणिं वै प्राप्तुमिच्छति पार्वती ॥३७॥
इयं सखी मदीया वै वृक्षानारोपयत् पुरा । तेषु सर्वेषु सञ्जातं फलपुष्पादिकं द्विज ॥३८॥
रूपसार्थाय जनककुलालङ्करणाय च । समुद्दिश्य महेशानं कामस्यानुग्रहाय च ॥३९॥

श्रेष्ठ ब्राह्मण हूँ ॥ २५ ॥ इस कारण हमारी-तुम्हारी मित्रता हो गयी, तुम अपना मनोरथ सत्य-सत्य कहो, अपने मनोरथ को गोपनीय मत रखो ॥ २६ ॥ हे देवि ! इसके पश्चात् भी तुम बताओ कि तुम कौन-सा वरदान चाहती हो, मुझे तो सारे वरदान का फल तुम्हीं में दिखाई पड़ता है ॥ २७ ॥ इतनी बड़ी तपस्या यदि तुमने दूसरे के लिए की है, तो वह सारा-का-सारा तुम्हारा तप व्यर्थ हो गया, और तुमने रत्न को छोड़कर काँच ही धारण किया ॥ २८ ॥ इस प्रकार की अपनी सुन्दरता तुमने व्यर्थ क्यों कर दी । अनेक प्रकार के बहुमूल्य वस्त्र त्यागकर तुमने यह मृगचर्म क्यों धारण किया ? ॥ २९ ॥ इसलिए तुम अपनी तपस्या का सत्य-सत्य कारण बताओ, जिसे सुनकर मैं भी प्रसन्नता प्राप्त करूँ ॥ ३० ॥

ब्रह्माजी ने कहा—जब इस प्रकार उस ब्राह्मण ने पार्वती से पूछा तब सुव्रता पार्वती ने अपने सखियों के मुख से सारा वृत्तान्त कहलाया ॥ ३१ ॥ तदनन्तर पार्वती की प्रेरणा प्राप्त कर उसके अभिप्राय को जानने वाली प्राणप्रिया विजया नाम की सखी ने उस ब्रह्मचारी से कहा ॥ ३२ ॥

सखी विजया ने कहा—हे ब्रह्मचारिन् ! यदि तुम इस पार्वती का सारा चरित्र एवं इसकी तपस्या का सारा कारण जानना चाहते हो, तो मैं कहती हूँ, तुम सुनो ॥ ३३ ॥ यह मेरी सखी पर्वतराज हिमालय की पुत्री है, जो अभिजन के अनुसार पार्वती नाम से एवं माता मेनका के द्वारा काली नाम से विख्यात है ॥ ३४ ॥ अभी तक इसका विवाह किसी के साथ नहीं हुआ है, कारण कि यह शिवजी को छोड़कर दूसरे को अपना पति नहीं बनाना चाहती । शिव को पति रूप में प्राप्त करने के लिए मेरी इस सखी ने इतना कठिन तप आरम्भ किया है, इसे इस प्रकार कठिन तप करते हुए तीन हजार वर्ष बीत गये । हे साधो, हे द्विजोत्तम ! इस तप का भी कारण मैं तुमसे कहती हूँ ॥ ३५–३६ ॥ यह मेरी सखी इन्द्रादि प्रमुख देवताओं एवं ब्रह्मा, विष्णु आदिकों को छोड़कर केवल पिनाकपाणि भगवान् शङ्कर को ही पति रूप से प्राप्त करने की इच्छा करती है ॥ ३७ ॥ मेरी सखी ने तपस्या की परीक्षा के लिए जिन वृक्षों को लगाया था, हे द्विज ! उन वृक्षों में अनेक बार फूल एवं फल लग चुके हैं ॥ ३८ ॥ यह मेरी सखी नारद के उपदेश से अपने रूप को सार्थक और अपने पिता के कुल को अलङ्कृत करने एवं काम पर अनुग्रह

मत्सखी नारदोपदेशात्तपस्तपति दारुणम् । मनोरथः कुतस्तस्या न फलिष्यति तापस ! ॥४०॥
यत्ते पृष्टं द्विजश्रेष्ठ मत्सख्या मनसीप्सितम् । मयाख्यातं च तत्प्रीत्या किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा विजयाया यथार्थतः । मुने स जटिलो रुद्रो विहसन् वाक्यमब्रवीत् ॥४२॥

जटिल उवाच

सख्येदं कथितं तत्र परिहासोऽनुमीयते । यथार्थं चेत्तदा देवी स्वमुखेनाभिभाषताम् ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ते च तदा तेन जटिलेन द्विजन्मना । उवाच पार्वती देवी स्वमुखेनैव तं द्विजम् ॥४४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शिवाजटिलसम्वादवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

(ब्रह्मचारी द्वारा शिव के स्वरूप की निन्दा)

पार्वत्युवाच

शृणु द्विजेन्द्र जटिल मद्वृत्तं निखिलं खलु । सख्युक्तं मेऽद्य यत्सत्यं तत्तथैव न चान्यथा ॥ १ ॥
मनसा वचसा साक्षात् कर्मणा पतिभावतः । सत्यं ब्रवीमि नोऽसत्यं वृतो वै शङ्करो मया ॥ २ ॥
जानामि दुर्लभं वस्तु कथं प्राप्यं मया भवेत् । तथापि मन औत्सुक्यात्तप्यतेऽद्य तपो मया ॥ ३ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा वचनं तस्मै स्थिता सा गिरिजा तदा । उवाच ब्राह्मणस्तत्र तच्छ्रुत्वा पार्वतीवचः ॥ ४ ॥

करने के लिए महेश्वर के उद्देश्य से इतना दारुण तप कर रही है, पर इतने पर भी हे तपस्विन् ! इसका मनोरथ सफल होता हुआ दिखाई नहीं पड़ता ॥ ३९-४० ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! तुमने मेरे सखी का जो मनोरथ पूछा, मैंने प्रेम से उसका वर्णन किया, अब इसके विषय में तुम्हें क्या सुनने की इच्छा है ? ॥ ४१ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने ! इस प्रकार यथार्थ रूप से विजया के वचन सुनकर हँसते हुए उस जटाधारी ब्रह्मचारी ने कहना प्रारम्भ किया ॥ ४२ ॥

ब्रह्मचारी ने कहा—इस सखी ने जो कुछ भी कहा है वह परिहास जैसा प्रतीत होता है । यदि यह बात यथार्थ हो, तो देवी स्वयं अपने मुख से इस बात का प्रतिपादन करे ॥ ४३ ॥

ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार जब ब्रह्मचारी ने कहा तब पार्वती देवी अपने मुख से सखी द्वारा कहे गये सारे वृत्तान्त को कहने के लिए उस ब्राह्मण से बोली ॥ ४४ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में शिवाजटिल संवाद-वर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२६॥

*

पार्वती बोलीं—हे ब्राह्मण ब्रह्मचारिन् ! मेरा सारा वृत्तान्त सुनो, इस मेरी सखी ने जो कुछ भी कहा है, वह सत्य है, झूठा नहीं है ॥ १ ॥ मैंने मन, वचन एवं कर्म से शंकर को ही पतिभाव से वरण किया है, यह बात मैं सत्य कहती हूँ, इसमें किञ्चिन्मात्र भी असत्य नहीं है ॥ २ ॥ मैं यह भी जानती हूँ कि शिवजी अत्यन्त दुर्लभ हैं, वे मुझे किस प्रकार प्राप्त होंगे, पर क्या करूँ मन नहीं मानता, इसलिए शिव को प्राप्त करने की उत्कण्ठा से यह तप कर रही हूँ ॥ ३ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार उस ब्रह्मचारी से कहकर गिरिजा चुप हो गयी तब वह ब्रह्मचारी ब्राह्मण पार्वती की बात सुनकर बोला ॥ ४ ॥

ब्राह्मण उवाच

एतावत्कालपर्यन्तं ममेच्छा महती ह्यभूत् । किं वस्तु कांक्षती देवी कुरुते सुमहत्तपः ॥ ५ ॥
तज्ज्ञात्वा निखिलं देवि! श्रुत्वा त्वन्मुखपङ्कजात् । इतो गच्छाम्यहं स्थानाद्यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६ ॥
न कथ्यते त्वया मह्यं मित्रत्वं निष्फलं भवेत् । यथा कार्यं तथा भावि कथनीयं सुखेन च ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा वचनं तस्य यावद् गन्तुमियेष सः । तावच्च पार्वती देवी प्रणम्योवाच तं द्विजम् ॥ ८ ॥

पार्वत्युवाच

किं गमिष्यसि विप्रेन्द्र! स्थितो भव हितं वद । इत्युक्ते च तया तत्र स्थित्वोवाच स दण्डधृक् ॥ ९ ॥

द्विज उवाच

यदि श्रोतुमना देवि! मां स्थापयसि भक्तितः । वदामि तत्त्वं तत्सर्वं येन ते वयुनं भवेत् ॥१०॥
जानाम्यहं महादेवं सर्वथा गुरुधर्मतः । प्रवदामि यथार्थं हि सावधानतया श्रृणु ॥११॥
वृषध्वजो महादेवो भस्मदिग्धो जटाधरः । व्याघ्रचर्माम्बरधरः संवीतो गजकृत्तिना ॥१२॥
कपालधारी सर्पौघैः सर्वगात्रेषु वेष्टितः । विषदिग्धोऽभक्ष्यभक्षो विरूपाक्षो विभीषणः ॥१३॥
अव्यक्तजन्मा सततं गृहभोगविवर्जितः । दिगम्बरो दशभुजो भूतप्रेतान्वितः सदा ॥१४॥
केन वा कारणेन त्वं तं भर्तारं समीहसे । क्व ज्ञानं ते गतं देवि! तद् वदाद्य विचारतः ॥१५॥
पूर्वं श्रुतं मया चैव व्रतं तस्य भयङ्करम् । श्रृणु ते निगदाम्यद्य यदि ते श्रवणे रुचिः ॥१६॥
दक्षस्य दुहिता साध्वी सती वृषभवाहनम् । वव्रे पतिं पुरा दैवात्तत्सम्भोगः परिश्रुतः ॥१७॥
कपालिजायेति सती दक्षेण परिवर्जिता । यज्ञे भागप्रदानाय शम्भुश्चापि विवर्जितः ॥१८॥

ब्राह्मण ने कहा—अभी तक मुझे यह बड़ी इच्छा थी कि यह देवी किस वस्तु को प्राप्त करने के लिए इतना कठिन तप करती है ॥ ५ ॥ हे देवि ! तुम्हारे मुख-कमल से सारी बातें जानकर अब मैं यहाँ से जाना चाहता हूँ, तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा करो ॥ ६ ॥ यदि तुम मुझसे इन बातों को न कहती तो मित्रता व्यर्थ हो जाती, कार्य तो होनहार के अनुसार ही होता है इसलिए सुखपूर्वक उसे कहना चाहिए ॥ ७ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! ऐसा कह कर ज्यों ही वह ब्राह्मण जाने की इच्छा करने लगा, तभी पार्वती देवी उसे प्रणाम कर बोलीं ॥ ८ ॥

पार्वती ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! तुम क्यों जाते हो, ठहरो और मेरे हित की बात कहो। जब पार्वती ने उससे ऐसा कहा तब वह दण्डधारी ब्राह्मण रुककर कहने लगा ॥ ९ ॥

ब्राह्मण बोला—हे देवि ! यदि तुम भक्तिपूर्वक मुझे बैठाकर सुनने की इच्छा करती हो, तो मैं सारा वृत्तान्त कहता हूँ जिससे तुम्हारा कल्याण हो ॥ १० ॥ मैं गुरुप्रसाद से महादेव को अच्छी तरह जानता हूँ। जो बात यथार्थ है, उसे कहता हूँ तुम सावधान होकर सुनो ॥ ११ ॥ महादेव बैल की सवारी करते हैं, भस्म, जटा तथा व्याघ्रचर्म धारण करते हैं और हाथी का चर्म ओढ़ते हैं ॥१२॥ वे कपाल धारण करते हैं तथा सम्पूर्ण शरीर में सर्प लपेटे रहते हैं। विष पीने वाले और अभक्ष्य भक्षण करने वाले हैं, ललाट में तृतीय नेत्र धारण करने से विरूपाक्ष तथा महाभयङ्कर हैं ॥ १३ ॥ उनके जन्म का किसी को पता नहीं, और गृहस्थोचित भोग से सर्वथा रहित हैं। वे दिगम्बर, दशभुजा वाले तथा भूत-प्रेतादिकों के साथ निवास करते हैं ॥ १४ ॥ हे देवि ! तुम किस कारण से ऐसे पुरुष को पति बनाना चाहती हो ? तुम्हारा ज्ञान कहाँ चला गया, तुम्हीं विचार कर मुझसे कहो ॥ १५ ॥

मैंने इन शिव का पूर्वकाल में भी महाभयङ्कर चरित्र सुना है, यदि तुम्हें उसे सुनने की इच्छा हो तो मैं कहता हूँ तुम उसे सुनो ॥ १६ ॥ पहले दक्षकन्या सती ने शिव का वरण किया था, उसके साथ उन्होंने जैसा व्यवहार किया वह बात भी तुमने सुनी होगी ॥ १७ ॥ दक्ष ने स्वयं अपनी कन्या को इसी

सा तथैवापमानेन भृशं कोपाकुला सती । तत्याजासून् प्रियांस्तत्र तया त्यक्तश्च शङ्करः ॥१९॥
त्वं स्त्रीरत्नं तव पिता राजा निखिलभूभृताम् । तथाविधं पतिं कस्मादुग्रेण तपसेहसे ॥२०॥
दत्त्वा सुवर्णमुद्रां च ग्रहीतुं काचमिच्छसि । हित्वा च चन्दनं शुभ्रं कर्दमं लेप्तुमिच्छसि ॥२१॥
सूर्यतेजः परित्यज्य खद्योतद्युतिमिच्छसि । चीनांशुकं विहायैव चर्माम्बरमिहेच्छसि ॥२२॥
गृहवासं परित्यज्य वनवासं समीहसे । लोहमिच्छसि देवेशि ! त्यक्त्वा शेवधिमुत्तमम् ॥२३॥
इन्द्रादिलोकपालांश्च हित्वा शिवमनुव्रता । नैतत्सूक्तं हि लोकेषु विरुद्धं दृश्यतेऽधुना ॥२४॥
क्व त्वं कमलपत्राक्षी क्वाऽसौ वै त्रिविलोचनः । शशाङ्कवदना त्वं च पञ्चवक्त्रः शिवः स्मृतः ॥२५॥
वेणी शिरसि ते दिव्या सर्पिणीव विभासिता । जटाजूटं शिवस्यैव प्रसिद्धं परिचक्षते ॥२६॥
चन्दनं च त्वदीयाङ्गे चिताभस्म शिवस्य च । क्व दुकूलं त्वदीयं वै शाङ्करं क्व गजाजिनम् ॥२७॥
क्व भूषणानि दिव्यानि क्व सर्पाः शङ्करस्य च । क्व चरा देवताः सर्वाः क्व च भूतबलिप्रियः ॥२८॥
क्व वा मृदङ्गवादश्च क्व च तड्डमरुस्तथा । क्व च भेरीकलापश्च क्व च शृङ्गरवोऽशुभः ॥२९॥
क्व च ढक्कामयः शब्दो गलनादः क्व चाऽशुभः । भवत्याश्च शिवस्यैव न युक्तं रूपमुत्तमम् ॥३०॥
यदि द्रव्यं भवेत्तस्य कथं स्यात् स दिगम्बरः । वाहनं च बलीवर्दः सामग्री कापि तस्य न ॥३१॥
वरेषु ये गुणाः प्रोक्ता नारीणां सुखदायकाः । तन्मध्ये हि विरूपाक्षे एकोऽपि न गुणः स्मृतः ॥३२॥

लिए नहीं बुलाया कि वह कपाली की स्त्री है और यज्ञ में शिवजी को भाग भी नहीं दिया ॥ १८ ॥ इस अपमान से अत्यन्त क्रुद्ध हुई सती ने अपना प्राणत्याग कर दिया। इस प्रकार खिन्न होकर उसने शंकर को छोड़ दिया ॥ १९ ॥ तुम सभी स्त्रियों में रत्न हो और तुम्हारे पिता भी पर्वतों के राजा हैं, फिर इस प्रकार के पति को उग्र तपस्या कर तुम क्यों प्राप्त करना चाहती हो ? ॥२०॥ तुम सुवर्ण की मुद्रा देकर उसके बदले में काँच क्यों ग्रहण करना चाहती हो, अथवा सुन्दर चन्दन को छोड़कर कर्दम (कीचड़) लगाने की इच्छा क्यों करती हो ? ॥ २१ ॥ सूर्य का तेज छोड़कर जुगनू का प्रकाश क्यों चाहती हो ? रेशमी वस्त्र को छोड़कर चरम क्यों पहनना चाहती हो ? ॥ २२ ॥ घर का रहना छोड़कर वन में क्यों निवास करना चाहती हो। हे देवेशि ! अपनी रत्ननिधि छोड़कर लोहे की इच्छा क्यों करती हो ? ॥ २३ ॥ जो तुम इन्द्रादि लोकपालों को छोड़कर शिव में अनुरक्त हुई हो, यह तो उचित नहीं है और यह लोक के सर्वथा विरुद्ध दिखाई पड़ता है ॥ २४ ॥ भला तुम्हीं सोचो, कहाँ तो तुम्हारे कमल के समान विशाल नेत्र और कहाँ वे तीन नेत्रों से भयङ्कर वे विरूपाक्ष शिव ?। कहाँ तो चन्द्रमा के समान तुम्हारा अत्यन्त सुन्दर मुख तथा पाँच मुख वाले वे शिव ? ॥ २५ ॥ तुम्हारे शिर पर सर्पिणी के समान दिव्य वेणी कहाँ और मस्तक पर जटाजूट धारण किये वे शिव कहाँ ? ॥ २६ ॥ तुम्हारे शरीर में लिप्त चन्दन का लेप कहाँ और भस्म धारण किये हुए शिव कहाँ ? तुम्हारे सुन्दर अङ्ग में शोभित होने वाला कहाँ दुकूल और शङ्कर के द्वारा धारण किया जाने वाला गजचर्म कहाँ ? ॥ २७ ॥ कहाँ तुम्हारे दिव्य आभूषण और कहाँ शङ्कर के अङ्ग में लिपटे रहने वाले सर्प ? । कहाँ तुम्हारे अनुचर देवगण तथा शिव के सहचर वाले प्रिय भूतगण कहाँ ? ॥ २८ ॥ तुम्हें सुख देने वाला मृदङ्ग-वाद्य कहाँ और शिव को सुख देने वाला डमरू कहाँ ? तुम्हारे भेरी का शब्द कहाँ और उनका अशुभदायक शृङ्गी का शब्द कहाँ ? ॥ २९ ॥ तुम्हारा कहाँ ढक्का नामक बाजे का शब्द और उनका कहाँ महा अशुभ गले का शब्द ? इसलिए हे देवि ! तुम्हारे और शिव में कोई समता नहीं है ॥ ३० ॥

भला तुम्हीं सोचो, यदि उनके पास द्रव्य होता तो वे दिगम्बर कैसे कहे जाते, उनका वाहन भी बैल है, इसके अतिरिक्त उनके पास और कोई सामग्री ही नहीं है ॥ ३१ ॥ स्त्रियों को सुख देने वाले जो गुण वर में होने चाहिए, उन सभी गुणों की बात तो दूर छोड़ दो, शिव में वैसे एक भी गुण नहीं

तवापि कामो दयितो दग्धस्तेन हरेण च । अनादरस्तदा दृष्टो हित्वा त्वामन्यतो गतः ॥३३॥
जातिर्न दृश्यते तस्य विद्या ज्ञानं तथैव च । सहायाश्च पिशाचा हि विषं कण्ठे हि दृश्यते॥३४॥
एकाकी च सदा नित्यं विरागी च विशेषतः । तस्मात्त्वं हि हरेणैव मनो योक्तुं न चार्हसि ॥३५॥
क च हारस्त्वदीयो वै क च तन्मुण्डमालिका । अङ्गरागः क ते दिव्यः चिताभस्म क तत्तनौ ॥३६॥
सर्वं विरुद्धं रूपादि तव देवि ! हरस्य च । मह्यं न रोचते ह्येतद् यदिच्छसि तथा कुरु ॥३७॥
असद्वस्तु च यत्किञ्चित् तत्सर्वं स्वयमीहसे । निवर्तय मनस्तस्मान्नो चेदिच्छसि तत्कुरु ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा तस्य विप्रस्य पार्वती । उवाच क्रुद्धमनसा शिवनिन्दापरं द्विजम् ॥३९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे ब्रह्मचारिप्रतारण-वाक्यवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

(शङ्कर का पार्वती के समक्ष प्रगट होना एवं पार्वती को वरण करना)

पार्वत्युवाच

एतावद्धि मया ज्ञातं कश्चिदन्योऽयमागतः । इदानीं सकलं ज्ञातमवध्यस्त्वं विशेषतः ॥ १ ॥
त्वयोक्तं विदितं देव तदलीकं न चान्यथा । यदि त्वयोदितं स्याद्वै विरुद्धं नोच्यते त्वया ॥ २ ॥
कदाचिद् दृश्यते तादृग् वेषधारी महेश्वरः । स्वलीलया परब्रह्म स्वरागोपात्तविग्रहः ॥ ३ ॥
ब्रह्मचारिस्वरूपेण प्रतारयितुमुद्यतः । आगतश्छलसंयुक्तं वचोऽवादीः कुयुक्तितः ॥ ४ ॥

हैं ॥ ३२ ॥ तुम्हारा अत्यन्त प्यारा काम को भी उन्होंने भस्म कर दिया । और इतना बड़ा अनादर किया कि वे तुम्हें छोड़कर अन्यत्र चले गये ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार उनके जन्म-कर्म का पता नहीं, उसी प्रकार उनके ज्ञान का भी पता नहीं, केवल उनके गले में विष तथा सहायक रूप में पिशाच ही दिखाई पड़ते हैं ॥ ३४ ॥ वे तो अकेले रहते हैं और विशेष रूप से विरक्त हैं, अतः मेरी इच्छा है कि तुम उस शंकर से अपना मन हटा लो ॥ ३५ ॥ कहाँ तुम्हारे हृदय में रत्नों का हार और कहाँ उनकी मुण्डमाला ? तुम्हारे शरीर का अङ्गराग कहाँ ? और उनके शरीर का चिताभस्म कहाँ ॥ ३६ ॥ इस प्रकार हे देवि ! तुम्हारे और शङ्कर का कोई मेल नहीं, क्योंकि रूपादि सभी विरुद्ध हैं, यह बात तो मुझे अच्छी नहीं लगती, आगे तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा करो ॥ ३७ ॥ जो संसार में सबसे खराब है ऐसी वस्तु की इच्छा तुम क्यों करती हो, इसलिए शंकर से अपना मन हटा लो अन्यथा मन में जो आवे वैसा करो ॥ ३८ ॥

ब्रह्माजी बोले—उस ब्राह्मण के वचन को सुनकर पार्वती को महान् क्रोध उत्पन्न हो गया । अनन्तर वे शिवनिन्दक ब्राह्मण से कहने लगी ॥ ३९ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में ब्रह्मचारि-प्रतारण-वाक्य वर्णन नामक सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥

*

पार्वती बोली—मैंने तो समझा था कि यह कोई अतिथि के रूप में ब्राह्मण ब्रह्मचारी आया है, पर अब मैंने तुम्हें जान लिया कि तुम शिवनिन्दक हो । क्या करूँ क्रोध तो बहुत है पर ब्रह्मचारी होने से तुम अवध्य हो ॥ १ ॥ तुमने जो कहा कि मैं शिव को जानता हूँ यह मिथ्या है । यदि तुम शिव को जानते होते तो ऐसी विरुद्ध बातें कभी न कहते ॥ २ ॥ महेश्वर, जो इस प्रकार का वेष धारण करते हुए देखे जाते हैं, उसका कारण यह है कि वे अपनी लीला से वैसा रूप धारण करते हैं ॥ ३ ॥ तुम ब्रह्मचारी का रूप धारण कर मुझे छलना चाहते हो, इसलिए कुतर्क से भरी हुई छलपूर्ण बातें मुझसे कहते

शङ्करस्य स्वरूपं तु जानामि सुविशेषतः । शिवतत्त्वमतो वच्मि सुविचार्य्य यथार्हतः ॥ ५ ॥
वस्तुतो निर्गुणो ब्रह्म सगुणः कारणेन सः । कुतो जातिर्भवेत्तस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ ६ ॥
स सर्वासां हि विद्यानामधिष्ठानं सदाशिवः । किं तस्य विद्यया कार्यं पूर्णस्य परमात्मन ॥ ७ ॥
वेदा उच्छ्वासरूपेण पुरा दत्ताश्च विष्णवे । शम्भुना तेन कल्पादौ तत्समः कोऽस्ति सुप्रभुः ॥ ८ ॥
सर्वेषामादिभूतस्य वयोमानं कुतस्ततः । प्रकृतिस्तु ततो जाता किं शक्तेस्तस्य कारणम् ॥ ९ ॥
ये भजन्ति च तं प्रीत्या शक्तीशं शङ्करं सदा । तस्मै शक्तित्रयं शम्भुः स ददाति सदाव्ययम् ॥१०॥
तस्यैव भजनाज्जीवो मृत्युं जयति निर्भयः । तस्मान्मृत्युञ्जयं नाम प्रसिद्धं भुवनत्रये ॥११॥
तस्यैव पक्षपातेन विष्णुर्विष्णुत्वमाप्नुयात् । ब्रह्मत्वं च यथा ब्रह्मा देवा देवत्वमेव च ॥१२॥
दर्शनार्थं शिवस्यादौ यथा गच्छति देवराट् । भूतादयस्तत्परस्य द्वारपालाः शिवस्य तु ॥१३॥
दण्डैश्च मुकुटं विद्धं भ्रष्टं भवति सर्वतः । किं तस्य बहुपक्षेण स्वयमेव महाप्रभुः ॥१४॥
कल्याणरूपिणस्तस्य सेवयेह न किं भवेत् । किं न्यूनं तस्य देवस्य मामिच्छति सदाशिवः ॥१५॥
सप्तजन्म दरिद्रः स्यात् सेवेन्नो यदि शङ्करम् । तस्यैतत् सेवनाल्लोके लक्ष्मीः स्यादनपायिनी ॥१६॥
यदग्रे सिद्धयोऽष्टौ च नित्यं नृत्यन्ति तोषितुम् । अवाङ्मुखाः सदा तत्र तद्धितं दुर्लभं कुतः ॥१७॥
यद्यस्य मङ्गलानीह सेवते शङ्करस्य न । तथापि मङ्गलं तस्य स्मरणादेव जायते ॥१८॥
यस्य पूजाप्रभावेण कामाः सिद्ध्यन्ति सर्वशः । कुतो विकारस्तस्यास्ति निर्विकारस्य सर्वदा ॥१९॥

हो ॥ ४ ॥ शंकर के स्वरूप को मैं विशेष रूप से जानती हूँ, इसलिए विचार कर यथार्थ रूप से शिवतत्त्व कहती हूँ ॥ ५ ॥

वस्तुत: वे निर्गुण ब्रह्म हैं, कारणवश सगुण हो जाते हैं। भला जो निर्गुण होकर माया से सगुण रूप धारण करता है उसका जन्म किस प्रकार से सम्भव है ॥ ६ ॥ वे सदाशिव तो सभी विद्याओं के अधिष्ठान हैं, उन पूर्ण परमात्मा को साधारण विद्या की आवश्यकता ही क्या है ? ॥ ७ ॥ कल्प के आदि में उन्हीं सदाशिव ने सर्वप्रथम विष्णु को उच्छ्वास रूप से वेद प्रदान किया था, उनके समान अन्य कौन प्रभु है ? ॥ ८ ॥ जो सबका आदि कारण है उसकी अवस्था का प्रमाण कौन कर सकता है। यह प्रकृति तो उन्हीं से उत्पन्न हुई है, क्या वह शक्ति उन शिव जी के प्रति कारण हो सकती है ? ॥ ९ ॥ जो लोग प्रेम पूर्वक शक्ति के पति उन सदाशिव का भजन करते हैं, उनको शिवजी सदैव अक्षयरूपा तीनों शक्तियाँ प्रदान करते हैं ॥ १० ॥ यह जीव उन्हीं के भजन से मृत्यु को जीतकर निर्भय हो जाता है, इसीलिए वे त्रिलोकी में मृत्युञ्जय नाम से प्रसिद्ध हैं ॥ ११ ॥ उन्हीं के पक्ष में रहने से विष्णु में विष्णुत्व है, ब्रह्मा में ब्रह्मत्व तथा देवताओं में देवत्व है ॥ १२ ॥ शिव समदर्शी हैं इसलिए जैसे उनके दर्शन के लिए देवराज जाते हैं, उसी प्रकार शिव से अनन्य उनके द्वारपाल तथा भूतादिगण जाते हैं ॥ १३ ॥ जिस प्रकार रत्न के जड़े जाने से मुकुट अत्यन्त चमकीला मालूम होता है, उसी प्रकार शिवतत्त्व से ही जीव उत्कृष्ट हो जाता है। उनके पक्ष में बहुत बात करने से क्या ? वे तो स्वयं प्रभु हैं ॥१४॥ उस कल्याणस्वरूप शिव की सेवा करने से मनुष्य क्या-क्या नहीं प्राप्त कर लेता, भला उस सदाशिव के पास किस बात की कमी है, जो वे मेरी इच्छा करें ॥ १५ ॥

जो शंकर की सेवा नहीं करता वह सात जन्म तक दरिद्री होता है, उन्हीं की सेवा से लोक में कभी भी नष्ट न होने वाली लक्ष्मी प्राप्त होती हैं ॥१६॥ भला जिन्हें सन्तुष्ट करने के लिए आठों सिद्धियाँ सदा नीचे की ओर मुख किये नृत्य करती हैं, उन सदाशिव को कौन सी वस्तु दुर्लभ है ॥ १७ ॥ यद्यपि समस्त मङ्गल उन शिव की सेवा नहीं करते अर्थात् वे मङ्गलवेश धारण नहीं करते तो भी उनके स्मरण से पुरुष का मङ्गल होता है ॥ १८ ॥ जिनकी पूजा करने के प्रभाव से निरन्तर समस्त कामनाएँ पूर्णहो जाती हैं,

शिवेति मङ्गलं नाम मुखे यस्य निरन्तरम् । तस्यैव दर्शनादन्ये पवित्राः सन्ति सर्वदा ॥२०॥
यद्यपूतं भवेद्भस्म चितायाश्च त्वयोदितम् । नित्यमस्याङ्गगं देवैः शिरोभिर्द्धार्यते कथम् ॥२१॥
यो देवो जगतां कर्ता भर्ता हर्ता गुणान्वितः । निर्गुणः शिवसंज्ञश्च स विज्ञेयः कथं भवेत् ॥२२॥
अगुणं ब्रह्मणो रूपं शिवस्य परमात्मनः । तत्कथं हि विजानन्ति त्वादृशास्तद्बहिर्मुखाः ॥२३॥
दुराचाराश्च पापाश्च देवेभ्यस्ते विनिर्गताः । तत्त्वं ते नैव जानन्ति शिवस्यागुणरूपिणः ॥२४॥
शिवनिन्दां करोतीह तत्त्वमज्ञाय यः पुमान् । आजन्मसञ्चितं पुण्यं भस्मीभवति तस्य तत् ॥२५॥
त्वया निन्दा कृता याऽत्र हरस्यामिततेजसः । त्वत्पूजा च कृता यन्मे तस्मात् पापं भजाम्यहम् ॥२६॥
शिवविद्वेषिणं दृष्ट्वा सचैलं स्नानमाचरेत् । शिवविद्वेषिणं दृष्ट्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥२७॥
रे रे दुष्ट ! त्वया चोक्तमहं जानामि शङ्करम् । निश्चयेन न विज्ञातः शिव एव सनातनः ॥२८॥
यथा तथा भवेद्रुद्रो यथा वा बहुरूपवान् । ममाभीष्टतमो नित्यं निर्विकारी सतां प्रियः ॥२९॥
विष्णुर्ब्रह्माऽपि न समस्तस्य क्वापि महात्मनः । कुतोऽन्ये निर्जराद्याश्च कालाधीनाः सदैव तम् ॥३०॥
इति बुद्ध्या समालोक्य स्वया सत्या सुतत्त्वतः । शिवार्थं वनमागत्य करोमि विपुलं तपः ॥३१॥
स एव परमेशानः सर्वेशो भक्तवत्सलः । सम्प्राप्तुं मेऽभिलाषो हि दीनानुग्रहकारकम् ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा गिरिजा सा हि गिरीश्वरसुता मुने! । विरराम शिवं दध्यौ निर्विकारेण चेतसा ॥३३॥
तदाकर्ण्य वचो देव्या ब्रह्मचारी स वै द्विजः । पुनर्वचनमाख्यातुं यावदेव प्रचक्रमे ॥३४॥

उन निर्विकार शङ्कर में विकार कहाँ से आ सकता है ॥ १९ ॥ जिसके मुख से 'शिव' इस प्रकार का मङ्गल नाम निरन्तर निकलता हैं, उस पुरुष के दर्शन मात्र से ही दूसरे प्राणी सदा पवित्र हो जाते हैं ॥ २० ॥ हे ब्रह्मचारिन् ! जैसा कि तुमने कहा है कि चिता की भस्म अपवित्र होती है तो देवगण उनके अङ्ग का भस्म शिर पर क्यों धारण करते हैं ॥ २१ ॥ जो जगत् का कर्त्ता, भर्त्ता तथा हर्त्ता है, गुणों से संयुक्त है, निर्गुण तथा शिव है उसे कोई किस प्रकार जान सकता है ॥ २२ ॥ परमात्मा शिव का रूप सदा निर्गुण है अतः तुम्हारे सदृश शिवद्रोही उन्हें किस प्रकार जान सकता है ॥ २३ ॥

जो दुराचारी एवं महापापी हैं, वेद एवं देवता से सर्वदा विमुख हैं, वे निर्गुण शिवतत्त्व को नहीं जान सकते ॥ २४ ॥ जो पुरुष शिवतत्त्व को विना जाने ही उनकी निन्दा करता है, उसका जन्म पर्यन्त संचित किया गया पुण्य नष्ट हो जाता है ॥ २५ ॥ तुमने जो महातेजस्वी शिव की निन्दा की है, और मैंने जो तुम्हारे जैसे शिवनिन्दक की पूजा की है इसका पाप मुझे भी लग गया ॥ २६ ॥ शिव-निन्दक को देखकर वस्त्रों सहित स्नान करना चाहिए और शिवद्रोही को देखते ही प्रायश्चित्त भी करना चाहिए ॥ २७ ॥ अरे दुष्ट ! तुमने जो कहा कि मैं शङ्कर को जानता हूँ, सो तुम्हें सनातन शिव का कुछ भी ज्ञान नहीं है ॥ २८ ॥ और बहुत क्या कहें, वे रुद्र चाहे जिस-किसी भी स्वरूप वाले जैसे-कैसे भी हों, रूपवान् हों अथवा अरूपी हों वे सज्जनों के प्रिय निर्विकारी प्रभु मेरे तो सर्वस्व हैं और मुझे अत्यन्त प्रिय हैं ॥ २९ ॥ उन महात्मा सदाशिव की ब्रह्मा तथा विष्णु भी किसी प्रकार समता नहीं कर सकते। फिर दूसरे देवता जो काल के अधीन हैं किस प्रकार उनकी समता कर सकते हैं ॥ ३० ॥ ऐसा अपने बुद्धि से तत्त्व का विचार कर मैं उन शिव की प्राप्ति हेतु वन में आकर अपनी सखी के साथ इतनी बड़ी तपस्या करती हूँ ॥ ३१ ॥ वही सर्वेश, परमेशान एवं भक्तवत्सल हैं और दीनों पर अनुग्रह करने वाले हैं, उन्हीं को प्राप्त करने की मेरी अभिलाषा है ॥ ३२ ॥

ब्रह्मा जी बोले—हे नारद ! इतना कहने के अनन्तर वह गिरिराज-पुत्री मौन धारण कर निर्विकार चित्त से पुनः शिव का ध्यान करने लगी ॥ ३३ ॥ तदनन्तर वह ब्राह्मण पार्वती के वचन को सुनकर पुनः

उवाच गिरिजा तावत् स्वसखीं विजयां द्रुतम् । शिवसक्तमनोवृत्तिः शिवनिन्दापराङ्मुखी ॥३५॥

गिरिजोवाच

वारणीयः प्रयत्नेन सख्ययं हि द्विजाधमः । पुनर्वक्तुमनाश्चैव शिवनिन्दां करिष्यति ॥३६॥
न केवलं भवेत् पापं निन्दां कर्तुः शिवस्य हि । यो वै शृणोति तन्निन्दां पापभाक् स भवेदिह ॥३७॥
शिवनिन्दाकरो वध्यः सर्वथा शिवकिङ्करैः । ब्राह्मणश्चेत् स वै त्याज्यो गन्तव्यं तत्स्थलाद् द्रुतम् ॥३८॥
अयं दुष्टः पुनर्निन्दां करिष्यति शिवस्य हि । ब्राह्मणत्वादवध्यश्चेत् त्याज्योऽदृश्यश्च सर्वथा ॥३९॥
हित्वैतत्स्थलमद्यैव यास्यामोऽन्यत्र मा चिरम् । यथा सम्भाषणं न स्यादनेनाऽविदुषा पुनः ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा चोमया यावत् पादमुत्क्षिप्यते मुने ! । असौ तावच्छिवः साक्षादालम्बे प्रियया स्वयम् ॥४१॥
कृत्वा स्वरूपं सुभगं शिवाध्यानं यथा तथा । दर्शयित्वा शिवायै तामुवाचावाङ्मुखीं शिवः ॥४२॥

शिव उवाच

कुत्र यास्यसि मां हित्वा न त्वं त्याज्या मया पुनः । प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहि नाऽदेयं विद्यते तव ॥४३॥
अद्यप्रभृति ते दासस्तपोभिः क्रीत एव ते । क्रीतोऽस्मि तव सौन्दर्यात् क्षणमेकं युगाय ते ॥४४॥
त्यज्यतां च त्वया लज्जा मम पत्नी सनातनी । गिरिजे ! त्वं हि सद्‌बुद्धया विचारय महेश्वरि ! ॥४५॥
मया परीक्षिताऽसि त्वं बहुधा दृढमानसे । तत्क्षमस्वापराधं मे लोकलीलानुसारिणः ॥४६॥
न त्वादृशीं प्रणयिनीं पश्यामि च त्रिलोकके । सर्वथाऽहं तवाधीनः स्वकामः पूर्यतां शिवे ! ॥४७॥

ज्योंही कुछ कहने को उद्यत हुआ ॥ ३४ ॥ उसी समय शिव में मन लगाये हुए और शिव की निन्दा से पराङ्मुख रहने वाली उस पार्वती ने अपनी विजया नाम की सखी से शीघ्रतापूर्वक कहा ॥ ३५ ॥

पार्वती बोली—हे सखि ! देखो, यह द्विजाधम पुनः शिव की निन्दा करना चाहता है, अतः इसे प्रयत्न पूर्वक बाहर करो ॥ ३६ ॥ क्योंकि केवल शिव की निन्दा करने वाले को ही पाप नहीं लगता, बल्कि जो उस निन्दा को सुनता है उसे भी पाप का भागी होना पड़ता है ॥ ३७ ॥ शिवभक्त को उचित है कि वह शिवनिन्दक का वध कर दे, यदि शिवनिन्दक ब्राह्मण हो तो उसका त्याग कर देवे और उस स्थान से अन्यत्र चला जाय ॥ ३८ ॥ देखो, यह दुष्ट पुनः शिव की निन्दा करेगा, ब्राह्मण होने के कारण अवध्य है, अतः इसका त्याग कर अन्यत्र चलना चाहिए, जहाँ जाने पर यह पुनः दिखाई न पड़े ॥ ३९ ॥ अब इस स्थान को छोड़कर हम लोग दूसरे स्थान को चलें, जिससे इस मूर्ख ब्राह्मण से पुनः सम्भाषण न करना पड़े ॥ ४० ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! इतना कहने के अनन्तर ज्योंही पार्वती ने अन्यत्र जाने के निमित्त अपना पैर उठाया ही था कि इतने में ब्रह्मचारी स्वरूप साक्षात् शिव ने पार्वती को पकड़ लिया ॥ ४१ ॥ उन शिव ने उस समय जैसा पार्वती ध्यान कर रही थीं उसी प्रकार का अत्यन्त सुन्दर रूप धारण कर उसे दर्शन दिया । पुनः नीचे मुख किये हुए पार्वती से बोले ॥ ४२ ॥

शिवजी बोले—देवि ! तुम मुझे छोड़ कर कहाँ जा रही हो, मैं तुम्हें नहीं छोड़ूंगा, मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ, मुझे तेरे लिए कुछ भी अदेय नहीं है ॥ ४३ ॥ आज तुमने अपने तप से मुझे मोल ले लिया है, मैं तुम्हारा दास हूँ, तुमने अपने सौन्दर्य से मुझे मोल ले लिया, तुम्हारे बिना एक क्षण भी युग के समान बीतता है ॥ ४४ ॥ देवि ! तुम लज्जा का त्याग करो । तुम तो मेरी सनातन पत्नी हो, हे महेश्वरि ! इसे तुम अपनी सद्‌बुद्धि से स्वयं विचार करो ॥ ४५ ॥ अपने संकल्प में दृढ़ रहने वाली हे देवि ! लोक-लीला का अनुसरण करने वाले मैंने तुम्हारी अनेक प्रकार से परीक्षा की, तुम मेरे इस अपराध को क्षमा करो ४६ ॥ मैंने तुम्हारी जैसी पतिव्रता स्त्री त्रिलोक में कहीं नहीं देखी । हे देवि ! मैं सर्वथा तुम्हारे

एहि प्रिये ! मत्सकाशं पत्नी त्वं मे वरस्तव । त्वया साकं द्रुतं यास्ये स्वगृहं पर्वतोत्तमम् ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ते देवदेवेन पार्वती मुदमाप सा । तपोजातं तु यत्कष्टं तज्जहौ च पुरातनम् ॥४९॥

सर्वः श्रमो विनष्टोऽभूत् सत्यास्तु मुनिसत्तम ! । फले जाते श्रमः पूर्वो जन्तोर्नाशमवाप्नुयात्॥५०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे पार्वत्याः शिवरूपदर्शनं नामाऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

(पार्वती द्वारा ग्रहशान्तिपूर्वक विवाह करने हेतु शिव से प्रार्थना)

नारद उवाच

ब्रह्मन् विधे महाभाग ! किं जातं तदनन्तरम् । तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथय त्वं शिवायशः ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

देवर्षे श्रूयतां सम्यक् कथयामि कथां मुदा । तां महापापसंहर्त्रीं शिवभक्तिविवर्द्धिनीम् ॥ २ ॥

पार्वती वचनं श्रुत्वा हरस्य परमात्मनः । दृष्ट्वाऽऽनन्दकरं रूपं जहर्षातीव च द्विज ! ॥ ३ ॥

प्रत्युवाच महासाध्वी स्वोपकण्ठस्थितं विभुम् । अतीव सुखिता देवी प्रीत्युत्फुल्लानना शिवा ॥ ४ ॥

पार्वत्युवाच

त्वं नाथो मम देवेश ! त्वया किं विस्मृतं पुरा । दक्षयज्ञविनाशं हि यदर्थं कृतवान् हठात् ॥ ५ ॥

स त्वं साऽहं समुत्पन्ना मेनायां कार्यसिद्धये । देवानां देवदेवेश तारकाप्ताऽसुखात्मनाम् ॥ ६ ॥

आधीन हूँ, तुम अपनी कामना पूर्ण करो ॥ ४७ ॥ हे प्रिये ! तुम मेरे पास आओ, तुम मेरी पत्नी तथा मैं तुम्हारा वर हूँ । अब मैं तुम्हें अपने साथ लेकर पर्वतोत्तम कैलास को चलूँगा ॥ ४८ ॥

ब्रह्मा जी बोले—देवदेव शङ्कर के द्वारा इतना कहते ही पार्वती को बड़ा आनन्द हुआ, उनको पूर्वकाल में तपस्या के कारण जो कष्ट हुआ था वह तत्क्षण दूर हो गया ॥४९॥ हे मुनिसत्तम ! पार्वती का सारा श्रम दूर हो गया । क्योंकि फल प्राप्त हो जाने पर प्राणी का पूर्व में किया हुआ सारा श्रम नष्ट हो जाता है ॥ ५० ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में पार्वती को शिवरूप-दर्शन नामक अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥

*

नारद जी बोले—हे ब्रह्मन् ! हे विधे ! हे महाभाग ! इसके उपरान्त फिर क्या हुआ ? उसे मुझे सुनने की इच्छा है, अतः शिवा का चरित्र मुझसे कहिए ? ॥ १ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवर्षे ! सुनिए, मैं इस कथा को प्रसन्नता से कहता हूँ, यह कथा पाप को नाश करने वाली तथा शिव में भक्ति को बढ़ाने वाली है ॥ २ ॥ परमात्मा सदाशिव के इस प्रकार वचन सुनकर और उनके परमानन्दकारी रूप को देखकर पार्वती परम प्रसन्न हो गयी ॥३॥ प्रीति से उसके नेत्र-कमल खिल उठे । तदनन्तर वह महासाध्वी सुखी हो प्रसन्नता से अपने समीप में स्थित भगवान् शंकर से बोली ॥ ४ ॥

पार्वती बोली—हे देवेश ! आप तो मेरे प्राणपति हैं, क्या आप इस बात को भूल गये कि मेरे ही निमित्त आपने दक्ष के यज्ञ का विनाश किया था ॥ ५ ॥ यद्यपि आप तो वही हैं किन्तु मैं देवताओं की कार्य-सिद्धि के लिए मेना में पुनः उत्पन्न हुई हूँ । हे देवेश ! देवतागण तारक असुर से इस समय अत्यन्त पीड़ित

यदि प्रसन्नो देवेश ! करोषि च कृपां यदि । पतिर्भव ममेशान ! मम वाक्यं कुरु प्रभो ॥ ७ ॥
पितुर्गेहे मया सम्यग् गम्यते त्वदनुज्ञया । प्रसिद्धं क्रियतां तद्वै विशुद्धं परमं यशः ॥ ८ ॥
गन्तव्यं भवता नाथ ! हिमवत्पार्श्वतः प्रभो । याचस्व मां ततो भिक्षुर्भूत्वा लीलाविशारदः ॥ ९ ॥
तथा त्वया प्रकर्तव्यं लोके ख्यापयता यशः । पितुर्मे सफलं सर्वं कुरुष्वैवं गृहाश्रमम् ॥१०॥
ऋषिभिर्बोधितः प्रीत्या स्वबन्धुपरिवारितः । करिष्यति न सन्देहस्तव वाक्यं पिता मम ॥११॥
दक्षकन्या पुराऽहं वै पित्रा दत्ता यदा तव । यथोक्तविधिना तत्र विवाहो न कृतस्त्वया ॥१२॥
न ग्रहाः पूजितास्तेन दक्षेण जनकेन मे । ग्रहाणां विषयस्तेन सच्छिद्रोऽयं महानभूत् ॥१३॥
तस्माद्यथोक्तविधिना कर्तुमर्हसि मे० प्रभो । विवाहं त्वं महादेव देवानां कार्यसिद्धये ॥१४॥
विवाहस्य यथा रीतिः कर्तव्या सा तथा ध्रुवम् । जानातु हिमवान् सम्यक् कृतं पुत्र्या शुभं तपः ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा सुप्रसन्नः सदाशिवः । प्रोवाच वचनं प्रीत्या गिरिजां प्रहसन्निव ॥१६॥

शिव उवाच

शृणु देवि ! महेशानि ! परमं वचनं मम । यथोचितं सुमाङ्गल्यमविकारि तथा कुरु ॥१७॥
ब्रह्मादिकानि भूतानि त्वनित्यानि वरानने ! । दृष्टं यत्सर्वमेतच्च नश्वरं विद्धि भामिनि ! ॥१८॥
एकोऽनेकत्वमापन्नो निर्गुणो हि गुणान्वितः । स्वज्योत्स्नया यो विभाति परज्योत्स्नान्वितोऽभवत् ॥१९॥
स्वतन्त्रः परतन्त्रश्च त्वया देवि ! कृतो ह्यहम् । सर्वकर्त्री च प्रकृतिर्महामाया त्वमेव हि ॥२०॥

हो रहे हैं ॥ ६ ॥ हे देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं और यदि मुझ पर कृपा करना चाहते हैं तो हे महेशान ! आप मेरा वचन मानकर मेरे पति हों ॥ ७ ॥ इस समय आप मुझे पिता के घर जाने की आज्ञा दें, अब आप अपना विशुद्ध एवं उत्कृष्ट यश जगत् में प्रसिद्ध करें ॥ ८ ॥ अनेक लीलाविशारद आपको भिक्षु बनकर मेरे पिता के पास जाना चाहिए और उनसे मुझे माँगना चाहिए ॥ ९ ॥ हे भगवन् ! आपको अपने यश का लोक में विस्तार करते हुए वैसा उपाय करना चाहिए, जिससे मेरे पिता का गृहस्थाश्रम सफल हो ॥१०॥ ऋषियों ने मेरे पिता को प्रथम ही समझा दिया है, इसलिये वन्धुजनों एवं परिवार से युक्त मेरे पिता आपकी बात निःसन्देह मान लेंगे ॥ ११ ॥ पूर्वकाल में जब मैं दक्ष की कन्या थी, उस समय भी मेरे पिता ने मुझे आपको ही दिया था, किन्तु उस समय आपने शास्त्रीय विधि से मुझसे विवाह नहीं किया था ॥ १२ ॥ उस समय मेरे पिता दक्ष ने विधिपूर्वक ग्रहों का पूजन नहीं किया था, उन ग्रहोंके कारण से ही विवाह में विघ्न हुआ ॥ १३ ॥ इस कारण हे महादेव ! हे महाप्रभो ! देवताओं की कार्य-सिद्धि के लिए आप यथोक्त रीति से मेरे साथ विवाह कीजिए ॥ १४ ॥ विवाह की जो विधि है, उसे अवश्य करना चाहिए, जिससे मेरे पिता हिमालय को यह ज्ञात हो जाय कि मेरी पुत्री ने उत्तम तपस्या की है ॥ १५ ॥

ब्रह्माजी बोले—पार्वती के इस प्रकार का वचन सुन सदाशिव अत्यन्त प्रसन्न हो गये और हँसते हुए प्रेमपूर्वक पार्वती से बोले— ॥ १६ ॥

शिवजी बोले—हे देवि ! हे महेशानि ! मेरी उत्तम बात सुनो, जिससे विवाह में किसी प्रकार का विघ्न न हो वैसा उचित मङ्गलकार्य शीघ्र करो ॥ १७ ॥ हे भामिनि ! इस जगत् में ब्रह्मा आदि से लेकर जितने स्थावर तथा जङ्गम पदार्थ दिखाई पड़ते हैं, उन्हें अनित्य तथा नश्वर समझो ॥ १८ ॥ यह एक निर्गुण ब्रह्म ही सगुण रूप धारण कर अनेक रूप में परिवर्तित हो गया है, यही स्वयं अपनी सत्ता से प्रकाशित होते हुए भी पर प्रकाश से युक्त जान पड़ता है ॥ १९ ॥ हे देवि ! मैं सदा स्वतन्त्र हूँ पर तुमने

मायामयं कृतमिदं च जगत्समग्रं सर्वात्मना हि विधृतं परया स्वबुद्धया।
सर्वात्मभिः सुकृतिभिः परमात्मभावैः संसिक्तमात्मनि गणः परिवेष्टितं च ॥२१॥
के ग्रहाः के ऋतुगणाः के वान्येऽपि त्वया ग्रहाः। किमुक्तं चाधुना देवि! शिवार्थं वरवर्णिनि! ॥२२॥
गुणकार्यप्रभेदेनावाभ्यां प्रादुर्भवः कृतः। भक्तहेतोर्जगत्यस्मिन् भक्तवत्सलभावतः ॥२३॥
त्वं हि वै प्रकृतिः सूक्ष्मा रजःसत्त्वतमोमयी। व्यापारदक्षा सततं सगुणा निर्गुणाऽपि च ॥२४॥
सर्वेषामिह भूतानामहमात्मा सुमध्यमे!। निर्विकारी निरीहश्च भक्तेच्छोपात्तविग्रहः ॥२५॥
हिमालयं न गच्छेयं जनकं तव शैलजे!। ततस्त्वां भिक्षुको भूत्वा न याचेयं कथञ्चन ॥२६॥
महागुणैर्गरिष्ठोऽपि महात्माऽपि गिरीन्द्रजे। देहीति वचनात् सद्यः पुरुषो याति लाघवम् ॥२७॥
इत्थं ज्ञात्वा तु कल्याणि किमस्माकं वदस्यथ। कार्यं त्वदाज्ञया भद्रे! यथेच्छसि तथा कुरु ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

तेनोक्ताऽपि महादेवी सा साध्वी कमलेक्षणा। जगाद शङ्करं भक्त्या सुप्रणम्य पुनः पुनः ॥२९॥

पार्वत्युवाच

त्वमात्मा प्रकृतिश्चाऽहं नाऽत्र कार्या विचारणा। स्वतन्त्रौ भक्तवशगौ निर्गुणौ सगुणावपि ॥३०॥
प्रयत्नेन त्वया शम्भो! कार्यं वाक्यं मम प्रभो!। याचस्व मां हिमगिरेः सौभाग्यं देहि शङ्कर! ॥३१॥
कृपां कुरु महेशान! तव भक्ताऽस्मि नित्यशः। तव पत्नी सदा नाथ ह्यहं जन्मनि जन्मनि ॥३२॥
त्वं ब्रह्म परमात्मा हि निर्गुणः प्रकृतेः परः। निर्विकारी निरीहश्च स्वतन्त्रः परमेश्वरः ॥३३॥
तथाऽपि सगुणोऽपीह भक्तोद्धारपरायणः। विहारी स्वात्मनि रतो नानालीलाविशारदः॥३४॥

मुझे परतन्त्र बना दिया है, क्योंकि सब कुछ करने वाली महामाया प्रकृति तुम्हीं हो ॥ २० ॥ महामाया ने ही अपनी बुद्धि से इस सारे मायामय जगत् का निर्माण कर इसे धारण किया है, तुमने अपने परमात्मभाव तथा सर्वात्मक प्रकृति से इसे रचकर आत्मा में गुणों का स्थापन किया है ॥ २१ ॥ हे देवि ! इस जगत् में तुम्हें छोड़कर न कोई ग्रह है न तो कोई ऋतु है। हे वरवर्णिनि ! तुम शिव के लिए ग्रहों की बात क्या करती हो ? ॥ २२ ॥ हम दोनों भक्तों के लिए भक्तवत्सलतावश गुण कार्य के भेद से प्रगट हुए हैं ॥ २३ ॥ रजः, सत्त्व तथा तमोमयी तुम सूक्ष्म प्रकृति हो, निरन्तर जगत् के कार्य में दक्ष हो और सगुण तथा निर्गुण रूप वाली हो ॥ २४ ॥ हे सुमध्यमे ! सभी प्राणियों की आत्मा मैं ही हूँ। मैं सर्वथा निर्विकार तथा निरीह होकर भी भक्तों के निमित्त शरीर भी धारण करता हूँ ॥ २५ ॥ किन्तु हे शैलपुत्रि ! मैं तुम्हारे पिता हिमालय के पास नहीं जाऊँगा, और न तो भिक्षुक का रूप धारण कर उनसे तुम्हें मागूँगा ॥ २६ ॥ हे गिरीन्द्रजे ! गुणों में गरिष्ठ कोई कितना भी बड़ा क्यों न हो वह 'देहि' इस शब्द का उच्चारण करते ही लघुता को प्राप्त हो जाता है ॥ २७ ॥ हे कल्याणि ! इस बात को जानते हुए भी तुम मुझसे इस प्रकार की बात क्यों करती हो, हे भद्रे ! यह कार्य तो तुम्हारी आज्ञानुसार ही मुझे करना है, अतः जैसा सोचो वैसा करो ॥ २८ ॥

ब्रह्माजी बोले—महादेवजी के द्वारा इस प्रकार कही जाने पर कमलेक्षणा साध्वी महादेवी ने भक्तिपूर्वक शङ्कर को बारम्बार प्रणाम कर उनसे पुनः कहा ॥ २९ ॥

पार्वती ने कहा—हे महेश्वर ! आप आत्मा हैं और मैं प्रकृति हूँ, यह बात सत्य है, हम दोनों स्वतन्त्र एवं निर्गुण होकर भी भक्त के परतन्त्र तथा सगुण रूप धारण करते हैं ॥ ३० ॥ हे प्रभो, आपको तो मेरी बात प्रयत्नपूर्वक मान लेनी चाहिए, अतः आप हिमालय से याचना कर, मुझे सौभाग्य प्रदान कीजिए ॥३१॥ हे महेश्वर ! आप मुझ पर कृपा करो, मैं तुम्हारी नित्य भक्त हूँ और जन्म-जन्मान्तर की पत्नी हूँ ॥३२॥ हे प्रभो ! तुम ब्रह्म, परमात्मा, निर्गुण, प्रकृति से परे हो और विकाररहित, इच्छारहित स्वतन्त्र परमेश्वर हो ॥ ३३ ॥ तथापि भक्तों के उद्धार के लिए आप सगुण रूप धारण करते हो, आप आत्मपरायण होकर

सर्वथा त्वामहं जाने महादेव महेश्वर ! । किमुक्तेन च सर्वज्ञ बहुना हि दयां कुरु ॥३५॥
विस्तारय यशो लोके कृत्वा लीलां महाद्भुताम् । यत्सुगीय जना नाथाञ्जसोत्तीर्णा भवाम्बुधेः ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवमुक्त्वा गिरिजा सुप्रणम्य पुनः पुनः । विरराम महेशानं नतस्कन्धा कृताञ्जलिः ॥३७॥
इत्येवमुक्तः स तया महात्मा महेश्वरो लोकविडम्बनाय ।
तथेति मत्वा प्रहसन् बभूव मुदान्वितः कर्तुमनास्तदेव ॥३८॥
ततो ह्यन्तर्हितः शम्भुर्बभूव सुप्रहर्षितः । कैलासं प्रययौ काल्या विरहाकृष्टमानसः ॥३९॥
तत्र गत्वा महेशानो नन्द्यादिभ्यः स ऊचिवान् । वृत्तान्तं सकलं तं वै परमानन्दनिर्भरः ॥४०॥
तेऽपि श्रुत्वा गणाः सर्वे भैरवाद्याश्च सर्वशः । बभूवुः सुखिनोऽत्यन्तं विदधुः परमोत्सवम् ॥४१॥
सुमङ्गलं तत्र द्विज ! बभूवातीव नारद ! । सर्वेषां दुःखनाशोऽभूद्रुद्रः प्रापाप्ति सम्मुदम् ॥४२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
शिवाशिवसंवादवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

भी विहार करने वाले तथा नाना प्रकार की लीला में विशारद हो ॥ ३४ ॥ हे महादेव, हे महेश्वर, मैं आपको जानती हूँ। बहुत क्या कहूँ, आप मुझ पर दया करें ॥ ३५ ॥ आप अद्भुत लीला कर संसार में अपने यश का विस्तार करें। हे नाथ ! जिसे आपके भक्त गा-गाकर इस संसाररूपी समुद्र से अनायास पार हो जायें ॥ ३६ ॥

ब्रह्मा ने कहा—इतनी प्रार्थना कर गिरिजा शङ्कर को बारम्बार प्रणामकर हाथ जोड़ विनय से सिर झुकाकर मौन हो गयी ॥ ३७ ॥ जब पार्वती ने ऐसा कहा, तब लोक-विडम्बना के निमित्त शङ्कर ने हँसते हुए प्रसन्न हो, उस कार्य को करने की इच्छा से 'तथास्तु' कहा ॥ ३८ ॥ पश्चात् प्रसन्न हो अन्तर्धान हो गये। और काली के विरह से आकृष्टचित्त हो कैलास चले गये ॥ ३९ ॥ वहाँ जाकर उन्होंने परमानन्द में निमग्न हो यह सारा वृत्तान्त नन्दीश्वरादि गणों को सुनाया ॥ ४० ॥ इस वृत्तान्त को सुनकर उनके सम्पूर्ण भैरवादि गण सुखी हो उत्सव मनाने लगे ॥ ४१ ॥ हे नारद ! उस समय महा मङ्गल होने लगा, सबका दुःख नाश हो गया और रुद्र को भी परम प्रसन्नता हुई ॥ ४२ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में शिवाशिव-संवाद वर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २९ ॥

*

त्रिंशोऽध्यायः

(पार्वती का स्वगृहगमन एवं शिव का नाना कौतुक वर्णन)

नारद उवाच

विधे तात महाभाग ! धन्यस्त्वं परमार्थदृक् । अद्भुतेयं कथाऽश्रावि त्वदनुग्रहतो मया ॥ १ ॥
गते हरे स्वशैले हि पार्वती सर्वमङ्गला । किं चकार गता कुत्र तन्मे वद महामते ! ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु सुप्रीतितस्तात ! यज्जातं तदनन्तरम् । हरे गते निजस्थाने तद्वदामि शिवं स्मरन् ॥ ३ ॥
पार्वत्यपि सखीयुक्ता रूपं कृत्वा तु सार्थकम् । जगाम स्वपितुर्गेहं महादेवेति वादिनी ॥ ४ ॥
पार्वत्यागमनं श्रुत्वा मेना च स हिमाचलः । दिव्यं यानं समारुह्य प्रययौ हर्षविह्वलः ॥ ५ ॥
पुरोहितश्च पौराश्च सख्यश्चैवाप्यनेकशः । सम्बन्धिनस्तथाऽन्ये च सर्वे ते च समा ययुः॥ ६ ॥
भ्रातरः सकला जग्मुर्मैनाकप्रमुखास्तदा । जयशब्दं प्रब्रुवन्तो महाहर्षसमन्विताः ॥ ७ ॥
संस्थाप्य मङ्गलघटं राजवर्त्मनि राजिते । चन्दनागरु-कस्तूरी-फलशाखासमन्विते ॥ ८ ॥
सपुरोधो ब्राह्मणैश्च मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः । नारीभिर्नर्तकीभिश्च गजेन्द्रादि सुशोभितैः ॥ ९ ॥
परितः परितो रम्भास्तम्भवृन्दसमन्विते । पतिपुत्रवतीयोषित्समूहैर्दीपहस्तकैः ॥१०॥
द्विजवृन्दैश्च संयुक्ते कुर्वद्भिर्मङ्गलध्वनिम् । नानाप्रकारवाद्यैश्च शङ्खध्वनिभिरन्विते ॥११॥
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गा जगाम स्वपुरान्तिकम् । विशन्ती नगरं देवी ददर्श पितरौ पुनः ॥१२॥
सुप्रसन्नौ प्रधावन्तौ हर्षविह्वलमानसौ । दृष्ट्वा काली सुप्रहृष्टा स्वालिभिः प्रणनाम तौ ॥१३॥
तौ सम्पूर्णाशिषं दत्त्वा चक्रतुस्तौ स्ववक्षसि । हे वत्से ! त्वेवमुच्चार्य रुदन्तौ प्रेमविह्वलौ ॥१४॥

नारद जी बोले—हे विधे, हे तात, हे महाभाग ! परमार्थ के ज्ञाता आप धन्य हैं, आपने अनुग्रह कर मुझे यह अद्भुत कथा सुनायी ॥ १ ॥ जब शिवजी कैलास चले गये तब सर्वमङ्गला ने क्या किया ? और वह पुनः कहाँ गयीं ? हे महामते ! यह सब कथा विस्तार पूर्वक मुझसे कहिए ? ॥ २ ॥

ब्रह्माजी बोले - हे तात ! इसके अनन्तर जो कुछ हुआ, उसे प्रेमपूर्वक सुनो, मैं शिव को कैलास जाने के अनन्तर का चरित्र शिव का स्मरण कर तुमसे कहता हूँ ॥ ३ ॥ पार्वती अपना रूप सार्थक कर 'महादेव' शब्द का उच्चारण करती हुई पिता के घर अपनी सखियों के साथ गयी ॥ ४ ॥ पार्वती के आगमन का समाचार सुनते ही मेना तथा हिमालय दिव्य विमान पर चढ़कर हर्ष से विह्वल हो उसकी अगवानी के लिए चले ॥ ५ ॥ उस समय पुरोहित, पुरवासी, अनेक सखियाँ, अन्य दूसरे सम्बन्धी तथा मैनाक आदि सभी भाई महाप्रसन्न हो जय-जयकार शब्द का उच्चारण करते हुए पर्वतराज के पीछे-पीछे चले ॥ ६-७ ॥

राजमार्ग को अपूर्व सजावट से सम्पन्न कर स्थान-स्थान पर मङ्गलघट, जो चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, फल तथा वृक्ष की शाखाओं से युक्त था, स्थापित कराया गया ॥ ८ ॥ सारा राजमार्ग, पुरोहित, ब्राह्मण, ब्रह्मवेत्ता मुनियों, वेश्याओं एवं बड़े-बड़े गजेन्द्रों से खचाखच भर गया ॥ ९ ॥ स्थान-स्थान पर कदली के खम्भे लगाये गये । और चारों ओर पति-पुत्रवती स्त्रियाँ हाथ में दीपक लिये हुई खड़ी हो गयीं ॥ १० ॥ ब्राह्मणों का समूह मङ्गलपाठ पूर्वक वेदों का उद्घोष कर रहा था । अनेक प्रकार के बाजे तथा शङ्ख की ध्वनि हो रही थी ॥ ११ ॥ इसी बीच दुर्गा अपने नगर के समीप आयी, और प्रवेश करते ही उसने सर्वप्रथम अपने माता-पिता का दर्शन किया ॥ १२ ॥ उस काली को देखते ही माता-पिता हर्ष से विह्वल हो प्रसन्नता से दौड़ पड़े । पुनः पार्वती ने भी उनको देखकर सखियों के सहित उन्हें प्रणाम किया ॥ १३ ॥ माता-पिता ने आशीर्वाद देकर काली को अपने गोद में ले लिया, और हे वत्से ! ऐसा उच्चारण कर प्रेम

ततः स्वकीया अप्यस्या अन्या नार्योऽपि सम्मुदा। भ्रातृस्त्रियोऽपि सुप्रीत्या दृढालिङ्गनमादधुः ॥१५॥
साधितं हि त्वया सम्यक् सुकार्यं कुलतारणम्। त्वत्सदाचरणेनापि पाविताः स्माखिला वयम्॥१६॥
इति सर्वे सुप्रशंस्य प्रणेमुस्तां प्रहर्षिताः। चन्दनैः सुप्रसूनैश्च समानर्चुः शिवां मुदा ॥१७॥
तस्मिन्नवसरे देवा विमानस्था मुदाम्बरे। पुष्पवृष्टिं शुभां चक्रुर्नत्वा तां तुष्टुवुः स्तवैः ॥१८॥
तदा तां च रथे स्थाप्य सर्वशोभान्विते वरे। पुरं प्रवेशयामासुः सर्वे विप्रादयो मुदा ॥१९॥
अथ विप्राः पुरोधाश्च सख्योऽन्याश्च स्त्रियः शिवाम्। गृहं प्रवेशयामासुर्बहुमानपुरःसरम् ॥२०॥
स्त्रियो निर्मञ्छनं चक्रुर्विप्रा युयुजुराशिषः। हिमवान्मेनका माता मुमोदाति मुनीश्वर ! ॥२१॥
स्वाश्रमं सफलं मेने कुपुत्रात् पुत्रिका वरा। हिमवान् नारदं त्वां च संस्तुवन् साधु साध्विति॥२२॥
ब्राह्मणेभ्यश्च वन्दिभ्यः पर्वतेन्द्रो धनं ददौ। मङ्गलं पाठयामास स द्विजेभ्यो महोत्सवम् ॥२३॥
एवं स्वकन्यया हृष्टौ पितरौ भ्रातरस्तथा। जामयश्च महाप्रीत्या समूषुः प्राङ्गणे मुने ! ॥२४॥
ततः स हिमवान् तात सुप्रहृष्टः प्रसन्नधीः। सम्मान्य सकलान् प्रीत्या स्नातुं गङ्गां जगाम ह ॥२५॥
एतस्मिन्नन्तरे शम्भुः सुलीलो भक्तवत्सलः। सुनर्तकनटो भूत्वा मेनकासन्निधिं ययौ ॥२६॥
शृङ्गं वामे करे धृत्वा दक्षिणे डमरुं तथा। पृष्ठे कन्थां रक्तवासा नृत्यगानविशारदः ॥२७॥
ततः सुनटरूपोऽसौ मेनका प्राङ्गणे मुदा। चक्रे सुनृत्यं विविधं गानं चातिमनोहरम् ॥२८॥
शृङ्गं च डमरुं तत्र वादयामास सुध्वनिम्। महतीं विविधां तत्र स चकार मनोहराम् ॥२९॥
तां द्रष्टुं नागराः सर्वे पुरुषाश्च स्त्रियस्तथा। आजग्मुः सहसा तत्र बाला वृद्धा अपि ध्रुवम्॥३०॥

में विह्वल हो रोने लगे ॥ १४ ॥ तदनन्तर इनके अपने सगे-सम्बन्ध की स्त्रियों ने तथा अन्य भ्राता आदि की स्त्रियों ने भी प्रीतिपूर्वं पार्वती का दृढ़ आलिङ्गन किया ॥ १५ ॥ और कहने लगीं–हे देवि ! तुमने कुल को तारने का कार्य भली-भाँति सम्पन्न किया। तुम्हारे इस सदाचरण से हम सभी पवित्र हो गयीं ॥ १६ ॥

इस प्रकार गिरिजा की बड़ाई कर सभी लोगों ने गिरिजा को प्रणाम किया और चन्दन तथा उत्तमोत्तम पुष्पों द्वारा प्रसन्नता से पूजा करने लगे ॥ १७ ॥ उसी समय देवगण भी आकाश से विमानों में बैठे हुए फूलों की वर्षा कर पार्वती को नमस्कार कर श्रेष्ठ स्तोत्रों से उनकी स्तुति करने लगे ॥ १८ ॥ तदनन्तर ब्राह्मणगण प्रसन्नता के साथ नाना प्रकार की शोभा से सुसज्जित रथ में पार्वती को बिठाकर नगर में ले गये ॥ १९ ॥ और ब्राह्मण, पुरोहित, स्त्रियों एवं सखियों ने बड़े प्रेम के साथ आदरपूर्वक उनको घर में प्रवेश कराया ॥ २० ॥ स्त्रियाँ मङ्गलाचार करने लगीं, ब्राह्मण आशीर्वाद देने लगे। हे नारद ! उस समय पार्वती की माता तथा पिता को अत्यन्त प्रसन्नता हुई ॥ २१ ॥ उन्होंने गृहस्थाश्रम को सफल माना और कहने लगे कि कुपुत्र की अपेक्षा पुत्री ही अच्छी होती है, फिर वे हिमालय, तुम नारद को भी साधुवाद देते हुए प्रशंसा करने लगे ॥ २२ ॥

पर्वतराज ने पार्वती के आगमन के उपलक्ष्य में ब्राह्मणों एवं बन्दीजनों को बहुत-सा धन दिया और ब्राह्मणों द्वारा मङ्गलपाठ कराकर बहुत बड़ा महोत्सव किया ॥ २३ ॥ हे मुने ! इस प्रकार प्रहृष्टमन हुए माता, पिता, भाई तथा सभी सम्बन्धीगण पार्वती के साथ आँगन में बैठे ॥ २४ ॥ हे नारद ! उसी समय हिमालय परम प्रसन्न हो सभी सम्बन्धियों को प्रेमपूर्वक सम्मान कर गङ्गास्नान के लिये गये ॥ २५ ॥ तभी लीला करने में तत्पर भक्तवत्सल भगवान् शंकर सुन्दर नाचने वाले नट का रूप धारण कर मेनका के समीप पहुँचे ॥ २६ ॥ वे बाँयें हाथ में शृङ्गी, दाहिने हाथ में डमरू, पीठ पर गुदड़ी धारण किये हुए थे। रक्तवस्त्र पहने, नृत्यगान-विशारद वे शिव मेनका के आँगन में बड़ी प्रसन्नता के साथ अनेक प्रकार का मनोहर नृत्य एवं गान करने लगे ॥ २७-२८ ॥ उस समय शृङ्गी तथा डमरू बाजे बजाने के कारण उससे मनोहर गम्भीर और नाना प्रकार की ध्वनि निकलने लगी ॥ २९ ॥ उस ध्वनि से आकृष्ट हुए सभी निवासी, स्त्री एवं पुरुष, बालक तथा वृद्ध एकत्रित हो गये ॥ ३० ॥

श्रुत्वा सुगीतं तद् दृष्ट्वा सुनृत्यं च मनोहरम् । सहसा मुमुहुः सर्वे मेनापि च तदा मुने ! ॥३१॥
मूर्च्छां संप्राप्य सा दुर्गा सुदृष्ट्वा हृदि शङ्करम् । त्रिशूलादिकचिह्नानि बिभ्रतं चातिसुन्दरम् ॥३२॥
विभूतिभूषितं रम्यमस्थिमालासमन्वितम् । त्रिलोचनोज्ज्वलद्वक्त्रं नागयज्ञोपवीतकम् ॥३३॥
वरं वृणिवत्युक्तवन्तं गौरवर्णं महेश्वरम् । दीनबन्धुं दयासिन्धुं सर्वथा सुमनोहरम् ॥३४॥
हृदयस्थं हरं दृष्ट्वेदृशं सा प्रणनाम तम् । वरं वव्रे मानसं हि पतिर्मे त्वं भवेति च ॥३५॥
वरं दत्वा शिवं चाथ तादृशं प्रीतितो हृदा । अन्तर्धाय पुनस्तत्र सुननर्त्त स भिक्षुकः ॥३६॥
ततो मेना सुरत्नानि स्वर्णपात्रस्थितानि च । तस्मै दातुं ययौ प्रीत्या तद्भूतिप्रीतिमानसः ॥३७॥
तानि नं स्वीचकारासौ भिक्षां याचे शिवां च ताम् । पुनः सुनृत्यं गानं च कौतुकात् कर्तुमुद्यतः॥३८॥
मेना तद्वचनं श्रुत्वा चुकोपाति सुविस्मिता । भिक्षुकं भर्त्सयामास बहिष्कर्तुमियेष सा ॥३९॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र गङ्गातो गिरिशाययौ । ददर्श पुरतो भिक्षुं प्राङ्गणस्थं नराकृतिम् ॥४०॥
श्रुत्वा मेनामुखाद् वृत्तं तत्सर्वं सुचुकोप सः । आज्ञां चकारानुचरान् बहिष्कर्तुं च तं नटम्॥४१॥
महाग्निमिव दुःस्पर्शं प्रज्वलन्तं सुतेजसम् । न शशाक बहिष्कर्तुं कोऽपि तं मुनिसत्तम ! ॥४२॥
ततः स भिक्षुकस्तात नानालीलाविशारदः । दर्शयामास शैलाय स्वप्रभावमनन्तकम् ॥४३॥
शैलो ददर्श तं तत्र विष्णुरूपधरं द्रुतम् । किरीटिनं कुण्डलिनं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् ॥४४॥
यद्यत्पुष्पादिकं दत्तं पूजाकाले गदाभृते । गात्रे शिरसि तत्सर्वं भिक्षुकस्य ददर्श ह ॥४५॥
ततो ददर्श जगतां स्रष्टारं स चतुर्मुखम् । रक्तवर्णं पठन्तं च श्रुतिसूक्तं गिरीश्वरः ॥४६॥

हे मुने ! उस मनोहर नृत्य एवं गीत को सुनकर सभी लोग तथा मेना भी अत्यन्त मोहित हो गयी ॥ ३१ ॥ त्रिशूलादि चिह्न से युक्त एवं अत्यन्त मनोहर रूप धारण किये उस नट को देखकर पार्वती भी उन्हें हृदय से शंकर जानकर मूर्च्छित हो गयी ॥ ३२ ॥ अत्यन्त विभूति से विभूषित होने के कारण अत्यन्त मनोहर अस्थिमाला से युक्त, त्रिलोचन, देदीप्यमान मुखमण्डल, नाग का यज्ञोपवीत धारण किये ॥ ३३ ॥ गौरवर्ण, दीनबन्धु, दयासागर, सर्वथा मनोहर और 'वर माँगो' ऐसा कहते हुए महेश्वर को अपने हृदय में स्थित हुए देख पार्वती ने उन्हें प्रणाम किया, और मन में वर माँगा कि आप ही हमारे पति हों ॥ ३४-३५ ॥ इस प्रकार हृदय में ही पार्वती को वर देकर शिवजी अन्तर्धान हो गये । तदनन्तर वे पुनः भिक्षुक का रूप धारण कर नृत्य करने लगे ॥ ३६ ॥ इस नृत्य से प्रसन्न हो मेना सुवर्णपात्र में बहुत सा रत्न रखकर बड़े प्रेम से भिक्षुक को देने लगी ॥ ३७ ॥ किन्तु भिक्षुक ने उसे स्वीकार नहीं किया, उसने भिक्षा में शिवा को माँगा और पुनः कौतुक से नाच-गान करने लगे ॥ ३८ ॥ मेना भिक्षुक के वचन सुन विस्मित हो क्रोध में भर गयी। फिर भिक्षुक को घुड़क कर उसे बाहर करना चाहा ॥ ३९ ॥ इसी समय हिमालय भी गङ्गास्नान कर वहाँ आ गये और आँगन में मनुष्यरूपधारी भिक्षुक को देखा ॥ ४० ॥ मेना के मुख से सारा वृत्तान्त सुनकर हिमालय को बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने उस भिक्षुक को घर से बाहर निकालने के लिए अपने सेवकों को आज्ञा दी ॥ ४१ ॥

हे नारद ! किन्तु प्रलयाग्नि के समान जलते हुए तेज से अत्यन्त दुःसह उस भिक्षुक को बाहर निकालने को किसी की भी सामर्थ्य न हुई ॥ ४२ ॥ हे तात ! उस समय नाना लीला में विशारद उस भिक्षुक ने पर्वतराज हिमालय को अपना अनन्त प्रभाव दिखाया ॥ ४३ ॥ शैलराज ने देखा कि वह भिक्षुक तत्क्षण किरीट, कुण्डल, पीताम्बर तथा चतुर्भुज रूप धारण कर विष्णु के स्वरूप में हो गया है ॥ ४४ ॥ विष्णुपूजा के लिए उन्होंने जो-जो पुष्पादि अर्पण किये थे वह सभी पूजोपहार की सामग्री विष्णुरूपधारी उस भिक्षुक के शिर एवं गले में पड़ी हुई है ॥ ४५ ॥ फिर उन्होंने एक क्षण के अनन्तर देखा कि वह भिक्षुक रक्तवर्ण, वेदों का सूक्त उच्चारण करते हुए चतुर्भुज जगत्स्रष्टा ब्रह्मा का रूप धारण कर लिया

ततः सूर्यस्वरूपं च जगच्चक्षुः स्वरूपकम् । ददर्श गिरिराजः स क्षणं कौतुककारिणम् ॥४७॥
ततो ददर्श तं तात रुद्ररूपं महाद्भुतम् । पार्वतीसहितं रम्यं विहसन्तं तेजसम् ॥४८॥
ततस्तेजःस्वरूपं च निराकारं निरञ्जनम् । निरुपाधिं निरीहं च महाद्भुतमरूपकम् ॥४९॥
एवं बहूनि रूपाणि तस्य तत्र ददर्श सः । सुविस्मितो बभूवाशु परमानन्दसंयुतः ॥५०॥
अथासौ भिक्षुवर्य्यो हि तस्मात्तस्याश्च सूतिकृत् । भिक्षां ययाचे दुर्गां तां नान्यज्जग्राह किञ्चन ॥५१॥
न स्वीचकार शैलेन्द्रो मोहितः शिवमायया । भिक्षुः किञ्चिन्न जग्राह तत्रैवाऽन्तर्दधे ततः ॥५२॥
तदा बभूव सुज्ञानं मेनाशैलेशयोरिति । आवां शिवो वञ्चयित्वा स्वस्थानं गतवान् प्रभुः॥५३॥
तयोर्विचिन्त्य तत्रैवं शिवे भक्तिरभूत् परा । महामोक्षकरी दिव्या सर्वानन्दप्रदायिनी ॥५४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
पार्वतीप्रत्यागमनमहोत्सववर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

(शंकर को पार्वती प्रदान करने में हिमालय को मोक्ष होगा—इस विषय में
देवताओं द्वारा विघ्नोपस्थित करना)

ब्रह्मोवाच

तयोर्भक्तिं शिवे ज्ञात्वा परामव्यभिचारिणीम् । सर्वे शक्रादयो देवाश्चिचिन्तुरिति नारद ! ॥ १ ॥

देवा ऊचुः

एकान्तभक्त्या शैलश्चेत् कन्यां तस्मै प्रदास्यति । ध्रुवं निर्वाणतां सद्यः स प्राप्स्यति च भारते ॥ २ ॥
अनन्तरत्नाधारश्चेत् पृथ्वीं त्यक्त्वा प्रयास्यति । रत्नगर्भाभिधा भूमिर्मिथ्यैव भविता ध्रुवम् ॥ ३ ॥

है ॥ ४६ ॥ फिर गिरीश्वर ने एक क्षण के बाद देखा कि वह जगच्चक्षु सूर्य के रूप में परिवर्तित हो गया। इस प्रकार उन्होंने क्षण-क्षण में रूप बदल कर कौतुक करते हुए उस भिक्षुक को देखा ॥ ४७ ॥

हे तात ! फिर हिमालय ने उस भिक्षुक को महान् अद्भुत रूप धारण किये रुद्र के रूप में देखा, जो पार्वती सहित परम मनोहर अपने तेज से प्रकाशित हो रहे थे ॥ ४८ ॥ फिर उन्होंने निराकार, निरञ्जन, निरुपाधि, निरीह महाद्भुत तेजस्वरूप में परिवर्तित हुए उस भिक्षु को देखा। इस प्रकार जब हिमालय ने उस भिक्षुक का अनेक आश्चर्यकारक रूप देखा तब वह आनन्द युक्त होकर आश्चर्य में पड़ गये ॥ ४९-५० ॥ तदनन्तर पुनः सृष्टिकर्त्ता भिक्षुरूपधारी उन शिव ने हिमालय से दुर्गा की याचना की और कुछ नहीं माँगा ॥ ५१ ॥ किन्तु शिवमाया से मोहित होने के कारण हिमालय ने उसे स्वीकार नहीं किया, भिक्षु ने भी और कुछ ग्रहण नहीं किया और वह वहीं अन्तर्धान हो गया ॥ ५२ ॥ तब मेना और शैलराज को ज्ञान हुआ कि प्रभु शङ्कर हम दोनों को वञ्चित कर अपने स्थान को चले गये ॥ ५३ ॥ इस बात का विचार करते ही उन दोनों की दिव्य, सर्वानन्द-प्रदायिनी तथा मोक्ष देनेवाली भक्ति शिव में उत्पन्न हुई ॥ ५४ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में
पार्वतीप्रत्यागमन-महोत्सव वर्णन नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥

*

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! इस प्रकार उन दोनों की शिव में अनन्य भक्ति देखकर इन्द्रादि देवताओं ने विचार किया ॥ १ ॥

देवगणों ने कहा—यदि हिमालय शिव में अनन्य भक्ति करेंगे तो वे शङ्कर को अपनी कन्या अवश्य देंगे। और भारत में अवश्य ही निर्वाण पद प्राप्त कर लेंगे ॥ २ ॥ यदि वे इस अनन्त रत्नपूर्ण वसुन्धरा को त्यागकर चले जायेंगे तो निश्चय ही इस पृथ्वी का रत्नगर्भा यह नाम व्यर्थ हो जायेगा ॥ ३ ॥

स्थावरत्वं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय सः । कन्यां शूलभृते दत्त्वा शिवलोकं गमिष्यति ॥ ४ ॥
महादेवस्य सारूप्यं लप्स्यते नात्र संशयः । तत्र भुक्त्वा वरान् भोगांस्ततो मोक्षमवाप्स्यति ॥ ५ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्यालोच्य सुराः सर्वे कृत्वा चामन्त्रणं मिथः । प्रस्थापयितुमैच्छंस्ते गुरुं तत्र सुविस्मिताः ॥ ६ ॥
ततः शक्रादयो देवाः सर्वे गुरुनिकेतनम् । जग्मुः प्रीत्या सविनया नारद ! स्वार्थसाधकाः ॥ ७ ॥
गत्वा तत्र गुरुं नत्वा सर्वे देवाः सवासवाः । चक्रुर्निवेदनं तस्मै गुरवे वृत्तमादरात् ॥ ८ ॥

देवा ऊचुः

गुरो हिमालयगृहं गच्छाऽस्मत्कार्यसिद्धये । तत्र गत्वा प्रयत्नेन कुरु निन्दां च शूलिनः ॥ ९ ॥
पिनाकिना विना दुर्गा वरं नाऽन्यं वरिष्यति । अनिच्छया सुतां दत्त्वा फलं तूर्णं लभिष्यति ॥ १० ॥
कालेनैवाधुना शैल इदानीं भुवि तिष्ठतु । अनेकरत्नाधारं तं स्थापय त्वं क्षितौ गुरो ! ॥ ११ ॥

ब्रह्मोवाच

इति देववचः श्रुत्वा प्रददौ कर्णयोः करम् । न स्वीचकार स गुरुः स्मरन्नाम शिवेति च ॥ १२ ॥
अथ स्मृत्वा महादेवं बृहस्पतिरुदारधीः । उवाच देववर्यांश्च धिक् कृत्वा च पुनः पुनः ॥ १३ ॥

बृहस्पतिरुवाच

सर्वे देवाः स्वार्थपराः परार्थध्वंसकारकाः । कृत्वा शङ्करनिन्दां हि यास्यामि नरकं ध्रुवम् ॥ १४ ॥
कश्चिन्मध्ये च युष्माकं गच्छेच्छैलान्तिकं सुराः । सम्पादयेत् स्वाभिमतं शैलेन्द्रं प्रतिबोध्य च ॥ १५ ॥
अनिच्छया सुतां दत्त्वा सुखं तिष्ठतु भारते । तस्मै भक्त्या सुतां दत्त्वा मोक्षं प्राप्स्यति निश्चितम् ॥ १६ ॥

वे इस स्थावर रूप को छोड़कर दिव्यरूप धारण कर और अपनी कन्या शङ्कर को देकर अवश्य ही शिवलोक चले जायेंगे ॥ ४ ॥ उन्हें शिवलोक में सारूप्य की प्राप्ति होगी, इसमें संशय नहीं। फिर वहाँ भी नाना प्रकार का भोगकर वे मुक्त हो जायेंगे ॥ ५ ॥

ब्रह्माजी बोले—देवता लोग इस बात का विचार कर विस्मित हो आपस में सम्मति कर बृहस्पति को हिमालय के पास भेजने की इच्छा करने लगे ॥ ६ ॥ हे नारद ! तब इन्द्रादि सभी देवता स्वार्थसाधन की इच्छा से विनय एवं प्रीति से युक्त हो बृहस्पति के स्थान पर गये ॥ ७ ॥ उन देवताओं ने गुरु बृहस्पति को प्रणाम कर आदर से अपना सारा वृत्तान्त उनसे निवेदन किया ॥ ८ ॥

देवताओं ने कहा—हे गुरो ! आप हम लोगों की कार्य-सिद्धि के लिए हिमालय के पास जाइए और वहाँ जाकर प्रयत्नपूर्वक शिव की निन्दा कीजिए ॥ ९ ॥ पार्वती शिव के बिना किसी अन्य का वरण न करेगी। आपकी निन्दा के कारण वे हिमालय शिव में भक्ति न रख बिना इच्छा के ही अपनी कन्या पार्वती का विवाह शिव के साथ करेंगे। इस प्रकार विना इच्छा के ही पार्वती का विवाह करने से फल यह होगा कि हिमालय की मुक्ति शीघ्र न होगी और वे कुछ काल तक पृथ्वी पर निवास करेंगे। हे गुरो ! हम लोगों की इच्छा है कि अनेक रत्नों के आधार वे हिमालय अभी पृथ्वी पर निवास करें जिसके लिए आपका यह प्रयत्न आवश्यक है ॥ १०–११ ॥

ब्रह्माजी बोले—देवताओं की बात सुनकर बृहस्पति ने आश्चर्ययुक्त हो अपने कानों पर हाथ रखा, और शिव का नाम-स्मरण करते हुए उन्होंने इस बात को स्वीकार नहीं किया ॥ १२ ॥ उदार बुद्धि वाले बृहस्पति महादेव का स्मरण कर देवताओं को धिक्कारते हुए कहने लगे ॥ १३ ॥

बृहस्पति ने कहा—हे देवताओ ! तुम लोग स्वार्थसाधक एवं पराये के कार्य को नष्ट करने वाले कुटिल हो। शङ्कर की निन्दा करने से मुझे अवश्य नरक की प्राप्ति होगी ॥ १४ ॥ इसलिए तुम्हीं लोगों में-से कोई हिमालय के पास जाकर हिमालय को समझा अपना कार्य सिद्ध करे ॥ १५ ॥ जिससे वह अनिच्छापूर्वक अपनी कन्या शिव को दें और भारत में चिरकाल तक निवास करें। क्योंकि भक्तिपूर्वक

पश्चात् सप्तर्षयः सर्वे बोधयिष्यन्ति पर्वतम् । पिनाकिना विना दुर्गा वरं नाऽयं वरिष्यति॥१७॥
अथवा गच्छत सुरा ब्रह्मलोकं सवासवाः । वृत्तं कथयत सर्वं तत्स वः कार्यं करिष्यति ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा ते समालोच्याजग्मुर्मम सभां सुराः । सर्वे निवेदयाञ्चक्रुर्नत्वा तद्गतमादरात् ॥१९॥
देवानां तद्वचः श्रुत्वा शिवनिन्दाकरं तदा । वेदवक्ता विलप्याहं तानवोचं सुरान् मुने ! ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

नाऽहं कर्तुं क्षमो वत्साः शिवनिन्दां सुदुःसहाम् । सम्पद्विनाशरूपां च विपदां बीजरूपिणीम् ॥२१॥
सुरा गच्छत कैलासं सन्तोषयत शङ्करम् । प्रस्थापयत तं शीघ्रं हिमालयगृहं प्रति॥२२॥
स गच्छेदुपशैलेशमात्मनिन्दां करोतु वै । परनिन्दाविनाशाय स्वनिन्दा यशसे मता ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वेति मद्वचो देवा मां प्रणम्य मुदा च ते । कैलासं प्रययुः शीघ्रं शैलानामधिपं गिरिम् ॥२४॥
तत्र गत्वा शिवं दृष्ट्वा प्रणम्य नतमस्तकाः । सुकृताञ्जलयः सर्वे तुष्टुवुस्तं सुरा हरम् ॥२५॥

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव करुणाकर शङ्कर ! । वयं त्वां शरणापन्नाः कृपां कुरु नमोऽस्तु ते ॥२६॥
त्वं भक्तवत्सलः स्वामिन् भक्तकार्यकरः सदा । दीनोद्धरः कृपासिन्धुर्भक्तापद्विनिमोचकः ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

इति स्तुत्वा महेशानं सर्वे देवाः सवासवाः । सर्वं निवेदयाञ्चक्रुस्तद्वृत्तं तत आदरात् ॥२८॥
तच्छ्रुत्वा देववचनं स्वीचकार महेश्वरः । देवान् सुयापयामास तानाश्वास्य विहस्य सः॥२९॥

कन्या देने से वे निश्चय ही मोक्ष को प्राप्त हो जायेंगे ॥ १६ ॥ ऐसे तो बाद में सप्तर्षि पर्वतराज को समझायेंगे कि यह पार्वती शिव को छोड़ अन्य का वरण नहीं करेगी ॥ १७ ॥ अथवा हे देवगणो ! तुम लोग इन्द्र के सहित ब्रह्मलोक को जाओ और अपना सब वृत्तान्त उन्हें सुनाओ वे ही तुम्हारा सारा कार्य सम्पन्न करेंगे ॥ १८ ॥

ब्रह्माजी बोले—बृहस्पति की बात सुनकर और विचार कर वे सभी देवता मेरी सभा में आये और प्रणाम कर आदर से अपना सारा वृत्तान्त मुझसे निवेदन किया ॥ १९ ॥ देवताओं के शिवनिन्दा-विषयक बात को सुनकर वेदवक्ता मैं बड़ा दुःखी हुआ और उन देवताओं से कहा ॥ २० ॥

ब्रह्माजी बोले—हे वत्सो ! शिवनिन्दा तो मेरे लिए अत्यन्त दुःसह है भला मैं उसे किस प्रकार कर सकता हूँ, क्योंकि शिवनिन्दा सम्पत्ति का विनाश करने वाली एवं विपत्तियों का कारण है ॥ २१ ॥ इसलिए हे देवगणो ! तुम लोग कैलास में जाकर स्वयं शिव को सन्तुष्ट करो। और सन्तुष्ट होने पर उन्हीं को हिमालय के घर भेजो ॥ २२ ॥ वही स्वयं हिमालय के घर जाकर अपनी निन्दा करें, क्योंकि परनिन्दा से विनाश और आत्मनिन्दा से यश की प्राप्ति होती है ॥ २३ ॥

ब्रह्माजी बोले—वे देवता मेरी बात सुनकर प्रेम से मुझे प्रणाम कर शीघ्र ही कैलासपति शङ्कर के समीप गये ॥ २४ ॥ उन देवताओं ने वहाँ जाकर बड़े विनय के साथ शिव को प्रणाम किया। और हाथ जोड़े हुए उनकी स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥

देवगणों ने कहा—हे देवदेव ! हे महादेव ! हे करुणाकर ! हे शङ्कर ! हम सब आपके शरण में हैं, आपको प्रणाम है, आप हम लोगों पर कृपा कीजिए ॥ २६ ॥ हे स्वामिन् ! आप भक्तवत्सल हो और सदा देवताओं का कार्य करते हो, आप दीनों का उद्धार करने वाले कृपासिन्धु हैं और भक्तों की आपत्ति दूर करते हैं ॥ २७ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार इन्द्रादि सब देवताओं ने शिवजी की स्तुति कर बड़े आदर के साथ अपना सारा वृत्तान्त उनसे निवेदन किया ॥ २८ ॥ देवताओं की बात सुनकर शिवजी ने उसे स्वीकार कर

देवा मुमुदिरे सर्वे शीघ्रं गत्वा स्वमन्दिरम् । सिद्धं मत्वा स्वकार्यं हि प्रशंसन्तः सदाशिवम् ॥३०॥
ततः स भगवाञ्छम्भुर्महेशो भक्तवत्सलः । प्रययौ शैलभूपं च मायेशो निर्विकारवान् ॥३१॥
यदा शैलः सभामध्ये समुवास मुदान्वितः । बन्धुवर्गैः परिवृतः पार्वतीसहितः स्वयम् ॥३२॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र ह्याजगाम सदाशिवः । दण्डी छत्री दिव्यवासा बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम् ॥३३॥
करे स्फटिकमालां च शालग्रामं गले दधत् । जपन्नाम हरेर्भक्त्या साधुवेषधरो द्विजः ॥३४॥
तं च दृष्ट्वा समुत्तस्थौ सगणोऽपि हिमालयः । ननाम दण्डवद् भूमौ भक्त्याऽतिथिमपूर्वकम् ॥३५॥
ननाम पार्वती भक्त्या प्राणेशं विप्ररूपिणम् । ज्ञात्वा तं मनसा देवी तुष्टाव परया मुदा ॥३६॥
आशिषं युयुजे विप्रः सर्वेषां प्रीतितः शिवः । शिवाया अधिकं तात मनोऽभिलषितं हृदा ॥३७॥
मधुपर्कादिकं सर्वं जग्राह ब्राह्मणो मुदा । दत्तं शैलाधिराजेन हिमागेन महादरात् ॥३८॥
पप्रच्छ कुशलं चास्य हिमाद्रिः पर्वतोत्तमः । तं द्विजेन्द्रं महाप्रीत्या सम्पूज्य विधिवन्मुने ॥३९॥
पुनः पप्रच्छ शैलेशस्तं ततः को भवानिति । उवाच शीघ्रं विप्रेन्द्रो गिरीन्द्रं सादरं वचः ॥४०॥

विप्रेन्द्र उवाच

ब्राह्मणोऽहं गिरिश्रेष्ठ वैष्णवो बुधसत्तमः । घटिकीं वृत्तिमाश्रित्य भ्रमामि धरणीतले ॥४१॥
मनोयायी सर्वगामी सर्वज्ञोऽहं गुरोर्बलात् । परोपकारी शुद्धात्मा दयासिन्धुर्विकारहा ॥४२॥
मया ज्ञातं हराय त्वं स्वसुतां दातुमिच्छसि । इमां पद्मसमां दिव्यां वररूपां सुलक्षणाम् ॥४३॥
निराश्रयायासङ्गाय कुरूपायागुणाय च । श्मशानवासिने व्यालग्राहिरूपाय योगिने ॥४४॥

लिया, उन्होंने हँसते हुए देवताओं को आश्वासन दिया तथा उन्हें विदा कर दिया ॥ २९ ॥ तब देवगण प्रसन्न हो अपने-अपने स्थानों को चले गये और अपना कार्य-सिद्ध जानकर सदाशिव की प्रशंसा करने लगे ॥ ३० ॥ तब भक्तवत्सल, मायेश, निर्विकार महेश्वर भगवान् शम्भु शैलराज के पास गये ॥ ३१ ॥ उस समय गिरिराज अपने बन्धुवर्गों के साथ पार्वती सहित सभा में विराजमान थे ॥ ३२ ॥ उसी समय दण्ड, छत्र एवं दिव्य वस्त्र धारण किये तिलक लगाये हुए भगवान् शिव उनकी सभा में गये ॥ ३३ ॥ हाथ में स्फटिक की माला तथा गले में शालग्राम शिला लटक रही थी, वे भली प्रकार ब्राह्मण का वेष धारण कर नारायण नाम का जप कर रहे थे ॥ ३४ ॥ हिमालय उन्हें देखते ही सभासदों के साथ उठ खड़े हुए। उन्होंने उस अपूर्व अतिथि को आया देख भक्ति से युक्त हो पृथ्वी में गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया ॥ ३५ ॥

ब्राह्मण का वेष धारण करने वाले उन सदाशिव को अपना प्राणेश्वर समझकर पार्वती ने प्रणाम किया और मन से उनकी स्तुति की ॥ ३६ ॥ उन ब्राह्मण वेषधारी शङ्कर ने बड़े प्रेम के साथ सबको आशीर्वाद दिया, विशेष कर पार्वती को उनकी मनोरथसिद्धि के लिए आशीर्वाद प्रदान किया ॥ ३७ ॥ उस ब्राह्मण ने शैलाधिराज हिमालय के द्वारा आदर से दिया गया मधुपर्क आदि प्रेम से ग्रहण किया ॥३८॥ हे मुने ! इस प्रकार उस ब्राह्मण की विधिवत् पूजा करने के उपरान्त हिमालय ने उनका कुशल-मङ्गल इस प्रकार पूछा ॥ ३९ ॥ पर्वतराज ने उस ब्राह्मण से पूछा कि आप कौन हैं ? तब वह ब्राह्मण उन गिरिराज से आदरपूर्वक बोला ॥ ४० ॥

ब्राह्मण ने कहा—हे गिरिराज ! मैं बुद्धिमानों में श्रेष्ठ वैष्णव ब्राह्मण हूँ और घटिकी (ज्योतिष) वृत्ति का सहारा लेकर पृथ्वीतल में विचरण करता हूँ ॥ ४१ ॥ मैं अपने गुरु के आशीर्वाद से मन के वेग के समान सर्वत्र जाने वाला हूँ और सर्वज्ञ हूँ, मैं परोपकार करता हूँ, निष्कपट हूँ, दयालु हूँ। तथा विकार का हरने वाला हूँ ॥ ४२ ॥ मुझे ज्ञात हुआ है कि तुम कमल के समान, दिव्य सौन्दर्य वाली इस सर्वलक्षण सम्पन्न कन्या को शिवजी के लिए देने की इच्छा करते हो ॥ ४३ ॥ भला तुम्हीं सोचो, जो शिव निराश्रय, असङ्ग, कुरूप, गुणहीन, श्मशान में रहने वाले, सर्पधारी, योगी, नग्न, मलीन शरीर वाले, सर्प

दिग्वाससे कुगात्राय व्यालभूषणधारिणे । अज्ञातकुलनाम्ने च कुशीलायाविहारिणे ॥४५॥
विभूतिदिग्धदेहाय सङ्क्रुद्धायाविवेकिने । अज्ञातवयसेऽतीव कुजटाधारिणे सदा ॥४६॥
सर्वाश्रयाय भ्रमिणे नागहाराय भिक्षवे । कुमार्गनिरतायाथ वेदाऽध्वत्यागिने हठात् ॥४७॥
इयं ते बुद्धिरचला न हि मङ्गलदा खलु । विबोध ज्ञानिनां श्रेष्ठ नारायणकुलोद्भव ! ॥४८॥
न ते पात्रानुरूपश्च पार्वतीदानकर्मणि । महाजनः स्मेरमुखः श्रुतमात्राद् भविष्यति ॥४९॥
पश्य शैलाधिप त्वं च न तस्यैकोऽस्ति बान्धवः । महारत्नाकरस्त्वं च तस्य किञ्चिद्धनं न हि ॥५०॥
बान्धवान् मेनकां कुध्रपते शीघ्रं सुतांस्तथा । सर्वान् पृच्छ प्रयत्नेन पण्डितान् पार्वतीं विना ॥५१॥
रोगिणो नौषधं शश्वद्रोचते गिरिसत्तम ! । कुपथ्यं रोचतेऽभीक्ष्णं महादोषकरं सदा ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा ब्राह्मणः शीघ्रं स वै भुक्त्वा मुदान्वितः । जगाम स्वालयं शान्तो नानालीलाकरः शिवः॥५३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शिवमायावर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

का भूषण धारण किये हुए, जिनके कुल के नाम का पता भी नहीं, जिनका अमङ्गल वेष है, जो विषयाभिनिवेश से सर्वथा तटस्थ, शरीर में विभूति लगाने वाले, क्रोधी, अज्ञानी, अज्ञात आयु वाले और विकृत जटाधारी, सबको आश्रय देने वाले, सदा भ्रमणशील, नागों का हार पहनने वाले, भिक्षुक, कुमार्ग में निरत तथा हठ से वेदमार्ग का त्याग करने वाले हैं, उन शिव को तुम अपनी कन्या क्यों देना चाहते हो ? ॥ ४४-४७ ॥

हे हिमालय ! तुम्हारी इस प्रकार की बुद्धि निश्चय ही कल्याणकारिणी नहीं है । हे ज्ञानियो में श्रेष्ठ एवं नारायणकुल में उत्पन्न गिरिराज, तुम इस बात पर विचार करो ॥ ४८ ॥ निश्चय ही पार्वती के दान के लिए जिस शङ्कर को तुम उपयुक्त पात्र समझते हो, वह तुम्हारे इस दान के अनुरूप पात्र नहीं हैं । बड़े लोग इस बात को सुनते ही तुम्हारी हँसी करेंगे ॥ ४९ ॥ हे शैलराज ! भला तुम्हीं विचार करो कि उनका कोई बन्धु-बान्धव नहीं है और तुम पर्वतराज हो, उनके पास किञ्चिन्मात्र भी धन नहीं और तुम रत्नाकर हो ॥ ५० ॥ हे शैलाधिराज ! तुम इस विषय में बान्धवों से, मेनका से, पुत्रों से और दूसरे पण्डितों से, बहुत क्या पार्वती को छोड़कर अन्य समस्त साधारण जनों से प्रयत्नपूर्वक शीघ्रता से पूछो ॥५१॥ हे गिरिसत्तम ! मुझे तो ऐसा ज्ञात होता है कि तुम्हारी बुद्धि उलटी हो गयी है, क्योंकि रोगी को औषध तथा पथ्य अच्छा नहीं लगता, उसे तो हानि करने वाला कुपथ्य ही निश्चित रूप से अच्छा लगता है ॥५२॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार नाना लीला करने में विचक्षण, विप्ररूपधारी वे ब्राह्मण पर्वतराज हिमालय से कहकर प्रसन्नता से भोजन कर शान्तचित्त हो अपने घर को चले गये ॥ ५३ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में शिवमायावर्णन नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३१ ॥

*

द्वात्रिंशोऽध्यायः

(मना की कन्यादान में शिव की अनिच्छा और सप्तर्षियों का आगमन)

ब्रह्मोवाच

ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा मेनोवाच हिमालयम् । शोकेन साश्रुनयना हृदयेन विदूयता ॥ १ ॥

मेनोवाच

शृणु शैलेन्द्र ! मद्वाक्यं परिणामे सुखावहम् । पृच्छ शैववरान् सर्वान् किमुक्तं ब्राह्मणेन ह ॥ २ ॥
निन्दाऽनेन कृता शम्भोर्वैष्णवेन द्विजन्मना । श्रुत्वा तां मे मनोऽतीव निर्विण्णं हि नगेश्वर ! ॥ ३ ॥
तस्मै रुद्राय शैलेश ! न दास्यामि सुतामहम् । कुरूपशीलनाम्ने हि सुलक्षणयुतां निजाम् ॥ ४ ॥
न मन्यसे वचश्चेन्मे मरिष्यामि न संशयः । त्यक्ष्यामि च गृहं सद्यो भक्षयिष्यामि वा विषम् ॥ ५ ॥
गले बद्ध्वाम्बिकां रज्ज्वा यास्यामि गहनं वनम् । महाम्बुधौ मज्जयिष्ये तस्मै दास्यामि नो सुताम् ॥६॥
इत्युक्त्वाऽऽशु तथा गत्वा मेना कोपालयं शुचा । त्यक्त्वा हारं रुदन्ती सा चकार शयनं भुवि ॥ ७ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तात शम्भुना सप्त एव ते । संस्मृता ऋषयः सद्यो विरहव्याकुलात्मना ॥ ८ ॥
ऋषयश्चैव ते सर्वे शम्भुना संस्मृता यदा । तदाऽऽजग्मुः स्वयं सद्यः कल्पवृक्षा इवापरे ॥ ९ ॥
अरुन्धती तथाऽऽयाता साक्षात् सिद्धिरिवापरा । तान् दृष्ट्वा सूर्यसङ्काशान् विजहौ स्वजपं हरः ॥१०॥
स्थित्वाऽग्रे ऋषयः श्रेष्ठं नत्वा स्तुत्वा शिवं मुने ! । मेनिरे च तदात्मानं कृतार्थं ते तपस्विनः ॥११॥
ततो विस्मयमापन्ना नमस्कृत्य स्थिताः पुनः । प्रोचुः प्राञ्जलयस्ते वै शिवं लोकनमस्कृतम् ॥१२॥

ऋषय ऊचुः

सर्वोत्कृष्टं महाराज सार्वभौम दिवौकसाम् । स्वभाग्यं वर्ण्यतेऽस्माभिः किं पुनः सकलोत्तमम् ॥१३॥
तपस्तप्तं त्रिधा पूर्वं वेदाध्ययनमुत्तमम् । अग्नयश्च हुताः पूर्वं तीर्थानि विविधानि च ॥१४॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! उस ब्राह्मण का वचन सुनकर मेना के हृदय में महान् दुःख हुआ, नकेउ नेत्रों से शोक के कारण अश्रुपात होने लगा, तब वे दुःखी हो हिमालय से बोलीं ॥ १ ॥

मेना बोली—हे शैलेन्द्र ! परिणाम में सुख देने वाले मेरे वचन को आप सुनिए। इस ब्राह्मण ने क्या कहा है, इस बात को सभी श्रेष्ठ शैवों से निश्चित कीजिए ॥ २ ॥ इस वैष्णव द्विजन्मा ने शिवजी की जिस प्रकार निन्दा की है, हे नगेश्वर ! उसे सुनकर मेरा मन व्याकुल हो उठा है ॥ ३ ॥ हे शैलेश्वर ! यदि रुद्र ऐसे ही हैं तो मैं उन्हें निश्चित रूप से अपनी कन्या नहीं दूँगी, जिसका रूप एवं शील उत्तम नहीं है, उसे मैं इस प्रकार की सुलक्षणा कन्या भला किस प्रकार दे सकती हूँ ॥ ४ ॥ यदि आप मेरा वचन नहीं मानेंगे तो यह निश्चित समझ लें कि मैं अपना जान दे दूँगी घर छोड़ दूँगी, अथवा विष खालूँगी ॥ ५ ॥ अथवा अम्बिका के गले में रस्सी बाँधकर घोरवन में चली जाऊँगी। महासागर में डूब जाऊँगी किन्तु शंकर को अपनी कन्या न दूँगी ॥ ६ ॥ ऐसा कहकर शोक से सन्तप्त हुई वह मेना कोप-भवन में चली गयी, उसने अपने हार उतार दिये और पृथ्वी पर लोटकर रोने लगी ॥ ७ ॥ हे तात ! उसी समय, काली के विरह से व्याकुल हुए शंकर ने सप्तर्षियों का स्मरण किया ॥ ८ ॥ ज्योंही शिव ने उन सातों ऋषियों का स्मरण किया कि वे दूसरे कल्पवृक्षों के समान तत्काल वहाँ उपस्थित हो गये ॥ ९ ॥ और अरुन्धती तथा अन्य उनकी स्त्रियाँ साक्षात् सिद्धि के समान आकर प्राप्त हो गयीं। सूर्य के समान अत्यन्त तेजस्वी उन ऋषियों को उपस्थित देख शिव ने अपना जपकार्य छोड़ दिया ॥१०॥ हे मुने ! वे तपस्वी ऋषि शिवजी के आगे स्थित हो उन्हें प्रणाम कर स्तुति करते हुए अपने को कृतार्थ मानने लगे ॥ ११ ॥ फिर विस्मय में पड़कर उन लोगों ने पुनः लोक-नमस्कृत उन शिव को प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहने लगे ॥ १२ ॥

ऋषिगण बोले—हे देवताओं के सम्राट्, हे महाराज ! आज हमलोग अपने सर्वोत्कृष्ट भाग्य की किस प्रकार सुराहना करें ॥ १३ ॥ हमने जो पूर्वकाल में कायिक, वाचिक तथा मानसिक तीनों प्रकार की

वाङ्मनःकायजं किञ्चित् पुण्यं स्मरणसम्भवम् । तत्सर्वं सञ्जतं चाद्य स्मरणानुग्रहात्तव ॥१५॥
यो वै भजति नित्यं त्वां कृतकृत्यो भवेन्नरः । किं पुण्यं वर्ण्यते तेषां येषां च स्मरणं तव ॥१६॥
सर्वोत्कृष्टा वयं जाताः स्मरणात्ते सदाशिव ! । मनोरथपथं नैव गच्छसि त्वं कथञ्चन ॥१७॥
वामनस्य फलं यद्वज्जन्मान्धस्य दृशौ यथा । वाचालत्वं च मूकस्य रङ्कस्य निधिदर्शनम् ॥१८॥
पङ्गोर्गिरिवराक्रान्तिर्वन्ध्यायाः प्रसवस्तथा । दर्शनं भवतस्तद्वज्जातं नो दुर्लभं प्रभो ॥१९॥
अद्यप्रभृति लोकेषु मान्याः पूज्या मुनीश्वराः । जातास्ते दर्शनादेव स्वमुच्चैः पदमाश्रिताः ॥२०॥
अत्र किं बहुनोक्तेन सर्वथा मान्यतां गताः । दर्शनात्तव देवेश ! सर्वदेवेश्वरस्य हि ॥२१॥
पूर्णानां किञ्च कर्तव्यमस्ति चेत् परमा कृपा । सदृशं सेवकानां तु देयं कार्यं त्वया शुभम् ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा तेषां शम्भुर्महेश्वरः । लौकिकाचारमाश्रित्य रम्यं वाक्यमुपाददे ॥२३॥

शिव उवाच

ऋषयश्च सदा पूज्या भवन्तश्च विशेषतः । युष्माकं कारणाद् विप्राः स्मरणं च मया कृतम् ॥२४॥
ममावस्था भवद्भिश्च ज्ञायते ह्युपकारिका । साधनीया विशेषेण लोकानां सिद्धिहेतवे ॥२५॥
देवानां दुःखमुत्पन्नं तारकाद् सुदुरात्मनः । ब्रह्मणा च वरो दत्तः किं करोमि दुरासदः ॥२६॥
मूर्तयोऽष्टौ च याः प्रोक्ता मदीयाः परमर्षयः । ताः सर्वा उपकारार्थं न तु स्वार्थाय तत्स्फुटम् ॥२७॥
तथा च कर्तुकामोऽहं विवाहं शिवया सह । तया वै सुतपस्तप्तं दुष्करं परमर्षिभिः ॥२८॥

तपस्या की है, उत्तम वेदाध्ययन किया है, अग्निहोत्र किया है तथा नाना प्रकार के तीर्थ किये हैं ॥१४॥ और ज्ञानपूर्वक वाङ्, मन तथा शरीर से जो कुछ भी पुण्य किया है, आज आपके स्मरण रूप अनुग्रह के प्रभाव से वह सफल हो गया ॥१५॥ हे नाथ ! जो लोग आपका नित्य स्मरण करते हैं अथवा आप जिनका स्मरण करते हैं उनके पुण्य का तो कहना ही क्या है ? ॥ १६ ॥ हे सदाशिव ! जो आप किसी के मनोरथपथ में नहीं आते उस आपके स्मरण से हमलोग सर्वोत्कृष्ट हो गये ॥ १७ ॥

जिस प्रकार वामन पुरुष को फल प्राप्त हो जाता है, जन्मान्ध को नेत्र की प्राप्ति हो जाती है, गूँगे को वाणी, कङ्गाल को निधि दर्शन, पंगु को ऊँचे पहाड़ पर चढ़ने की शक्ति तथा वन्ध्या को पुत्रप्राप्ति से हर्ष होता है, उसी प्रकार हे प्रभो ! आपके इस दुर्लभ दर्शन से हमलोग प्रसन्न हो गये हैं ॥ १८-१९ ॥ अब हम हे मुनीश्वर, आपके दर्शन के प्रभाव से लोक में मान्य एवं पूज्य होकर ऊँची पदवी को प्राप्त हुए ॥ २० ॥ हे देवदेवेश ! आप सर्वेश्वर के दर्शन से ही हम सर्वथा मान्यता को प्राप्त हो गये, बहुत कहने से क्या ? ॥ २१ ॥ आप जैसे पूर्ण परमात्मा को किसी से प्रयोजन ही क्या है ? पर यदि हम सेवकों पर कृपा करनी ही है तो हमलोगों के सदृश ही आज्ञा प्रदान करें ॥ २२ ॥

ब्रह्माजी ने कहा—तब महेश्वर ने उन सप्तर्षियों की बात सुन कर लौकिकाचार का आश्रय लेते हुए मनोहर वचन कहा ॥ २३ ॥

शिवजी बोले—हे महर्षियो ! ऋषि सर्वदा पूज्य हैं, उन ऋषियों में भी आपलोग विशेष रूप से पूज्य हैं, मैंने कारणवश ही आपका स्मरण किया है ॥ २४ ॥ आप सब जानते हैं कि मेरी अवस्था सदैव परोपकार करने वाली है, और विशेष कर लोकोपकार के लिए तो मुझे यह सब करना ही पड़ता है ॥ २५ ॥ आपको यह मालूम ही है कि इस समय दुरात्मा तारक के द्वारा सभी देवता अत्यन्त दुःखी हैं । क्या करूँ, ब्रह्मा ने उसे बड़ा विकट वरदान दे रखा है ॥ २६ ॥ हे महर्षियो ! मेरी जो आठ प्रकार की मूर्त्तियाँ हैं वे भी परोपकार के निमित्त ही हैं, उनका अपने लिये कोई स्वार्थ नहीं है यह बात तो स्पष्ट है ॥ २७ ॥ इस परोपकार के लिए ही मैं पार्वती के साथ विवाह करना चाहता हूँ । क्योंकि जो तप बड़े-बड़े महर्षियों के लिए भी दुष्कर है, वैसा कठिन तप उस पार्वती ने मेरे निमित्त किया है ॥ २८ ॥

तस्यै परं फलं देयमभीष्टं तद्धितावहम् । एतादृशः पणो मे हि भक्तानन्दप्रदः स्फुटम् ॥२९॥
पार्वतीवचनाद्भिक्षुरूपो यातो गिरेर्गृहम् । अहं याचितवान् कालीं यतो लीलाविशारदः॥३०॥
मां ज्ञात्वा तौ परं ब्रह्म दम्पती परभक्तितः । दातुकामावभूतां च स्वसुतां वेदरीतितः ॥३१॥
देवप्रेरणयाऽहं वै कृतवानस्मि निन्दनम् । तदा स्वस्य च तद्भक्तिं विहन्तुं वैष्णवात्मना ॥३२॥
तच्छ्रुत्वा तौ सुनिर्विण्णौ तद्धीनौ संबभूवतुः । स्वकन्यां नेच्छतो दातुं मह्यं हि मुनयोऽधुना॥३३॥
तस्माद् भवन्तो गच्छन्तु हिमाचलगृहं ध्रुवम् । तत्र गत्वा गिरिवरं तत्पत्नीं च प्रबोधय ॥३४॥
कथनीयं प्रयत्नेन वचनं वेदसम्मितम् । सर्वथा करणीयं तद्यथा स्यात् कार्यमुत्तमम् ॥३५॥
उद्वाहं कर्तुमिच्छामि तत्पुत्र्या सह सत्तमाः । स्वीकृतस्तद्विवाहो मे वरो दत्तश्च तादृशः ॥३६॥
अत्र किं बहुनोक्तेन बोधनीयो हिमालयः । तथा मेना च बोद्धव्या देवानां स्याद्धितं यथा ॥३७॥
भवद्भिः कल्पितो यो वै विधिः स्यादधिकस्ततः । भवतां चैव कार्यं तु भवन्तः कार्यभागिनः ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा मुनयस्तेऽमलाशयाः । आनन्दं लेभिरे सर्वे प्रभुणाऽनुग्रहीकृताः ॥३९॥
वयं धन्या अभूवँश्च कृतकृत्याश्च सर्वथा । वन्द्या याताश्च सर्वेषां पूजनीया विशेषतः ॥४०॥
ब्रह्मणा विष्णुना यो वै वन्द्यः सर्वार्थसाधकः । सोऽस्मान् प्रेषयते प्रेष्यान् कार्ये लोकसुखावहे॥४१॥
अयं वै जगतां स्वामी पिता सा जननी मता । अयं युक्तश्च सम्बन्धो वर्द्धतां चन्द्रवत् सदा ॥४२॥

उसके मनोरथ के अनुसार उसका हितकारक फल मुझे अवश्य उसे देना चाहिए, क्योंकि मेरी यह प्रतिज्ञा है कि मैं सब प्रकार से अपने भक्तों को सुख प्रदान करता हूँ। यह बात सभी लोग जानते हैं ॥ २९ ॥ मैं पार्वती के वचनानुसार भिक्षु का रूप धारण कर हिमालय के घर गया। और लीला करते-करते पार्वती को माँगा ॥ ३० ॥ उन दोनों स्त्री-पुरुषों ने मुझे परब्रह्म जानकर वेद-रीति से अपनी कन्या देना स्वीकार कर लिया ॥ ३१ ॥

तदनन्तर देवताओं की प्रेरणा से भिक्षु वैष्णव का रूप धारण कर मैं उन दोनों को अपनी निन्दा सुनाने लगा। उससे मेरे प्रति उनकी भक्ति नष्ट हो गयी॥ ३२ ॥ उस निन्दा को सुनते ही वे बड़े दुःखी हो गये और मेरी भक्ति का त्याग कर दिया। हे मुनिगणो! अब वे अपनी कन्या मुझे नहीं देना चाहते ॥ ३३ ॥ इसलिए हे महर्षिगण ! आप लोग निश्चित रूप से हिमालय के घर जावें और वहाँ जाकर हिमालय तथा उनकी मेना को समझावें ॥ ३४ ॥ आप लोग वहाँ जाकर प्रयत्नपूर्वक वेदसम्मत वचन उनसे कहें और ऐसा उपाय करें जिससे उत्तम प्रकार से कार्य सिद्ध हो जाये ॥ ३५ ॥ हे मुनिसत्तमो ! मैं उस हिमालयपुत्री के साथ विवाह करना चाहता हूँ, मैंने देवताओं एवं विष्णु के कहने से विवाह करना स्वीकार कर लिया है और पार्वती को वैसा वर भी दे दिया है॥ ३६ ॥ अब मैं बहुत क्या कहूँ, आप लोग जाकर प्रयत्न से हिमालय तथा मेना को समझाइए, जिससे देवताओं का हित हो ॥ ३७ ॥ आप लोगों ने जैसी विधि की कल्पना की है, उससे भी अधिक विधि होनी चाहिए। यह कार्य आप सबका ही है और इस कार्य का सारा श्रेय आप लोगों को ही मिलने वाला है ॥ ३८ ॥

ब्रह्माजी बोले—शिवजी के इस प्रकार के वचन सुनकर स्वच्छ अन्तःकरण वाले वे महर्षि शिव के अनुग्रह से अनुगृहीत हो परमानन्द को प्राप्त हुए ॥ ३९ ॥ और परस्पर कहने लगे—आज हमलोग धन्य हो गये, सर्वथा कृतकृत्य हो गये। और विशेष रूप से सबके वन्दनीय एवं पूजनीय हुए ॥ ४० ॥ जिसे ब्रह्मा तथा विष्णु नमस्कार करते हैं, जो सम्पूर्ण मनोरथों को देने वाले हैं, वे हम लोगों को अपना दूत बनाकर लोककल्याणकारी कार्य के लिए भेज रहे हैं ॥ ४१ ॥ ये शिव जगत् के स्वामी तथा पिता हैं और यह पार्वती जगत् की स्वामिनी तथा माता हैं। इन दोनों का सम्बन्ध जगत् के लिए कल्याणकारी है, जो सर्वदा चन्द्रमा के समान बढ़ता रहे ॥ ४२ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा ऋषयो दिव्या नमस्कृत्य शिवं तदा । गता आकाशमार्गेण यत्राऽस्ति हिमवत्पुरम् ॥४३॥

दृष्ट्वा तां च पुरं दिव्यामृषयस्तेऽतिविस्मिताः। वर्णयन्तश्च स्वं पुण्यमब्रुवन् वै परस्परम् ॥४४॥

ऋषय ऊचुः

पुण्यवन्तो वयं धन्या दृष्ट्वैतद्धिमवत्पुरम् । यस्मादेवंविधे कार्ये शिवेनैव नियोजिताः ॥४५॥

अलकायाश्च स्वर्गाच्च भोगवत्यास्तथा पुनः । विशेषेणामरावत्या दृश्यते पुरमुत्तमम् ॥४६॥

सुगृहाणि सुरम्याणि स्फटिकैर्विविधैर्वरैः । मणिभिर्वा विचित्राणि रचितान्यङ्गणानि च ॥४७॥

सूर्यकान्ताश्च मणयश्चन्द्रकान्तास्तथैव च । गृहे गृहे विचित्राश्च वृक्षाः स्वर्गसमुद्भवाः ॥४८॥

तोरणानां तथा लक्ष्मीर्दृश्यते च गृहे गृहे । विविधानि विचित्राणि शुकहंसैर्विमानकैः ॥४९॥

वितानानि विचित्राणि चैलवत्तोरणैः सह । जलाशयान्यनेकानि दीर्घिका विविधाः स्थिताः ॥५०॥

उद्यानानि विचित्राणि प्रसन्नैः पूजितान्यथ । नराश्च देवताः सर्वे स्त्रियश्चाऽप्सरसस्तथा ॥५१॥

कर्मभूमौ याज्ञिकाश्च पौराणाः स्वर्गकाम्यया । कुर्वन्ति ते वृथा सर्वे विहाय हिमवत्पुरम् ॥५२॥

यावन्न दृष्टमेतच्च तावत्स्वर्गपरा नराः । दृष्टमेतद्यदा विप्राः किं स्वर्गेण प्रयोजनम् ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवमृषिवर्यास्ते वर्णयन्तः पुरं च तत् । गता हैमालयं सर्वे गृहं सर्वसमृद्धिमत् ॥५४॥

तान् दृष्ट्वा सूर्यसङ्काशान् हिमवान् विस्मितोऽब्रवीत् । दूरादाकाशमार्गस्थान् मुनीन् सप्त सुतेजसः॥५५॥

ब्रह्माजी बोले—शिव से इस प्रकार कहे जाने पर वे दिव्य महर्षि शिव को प्रणाम कर आकाश मार्ग से हिमालय के नगर में गये ॥ ४३ ॥ उस दिव्यपुरी को देखते ही ऋषिगण आश्चर्य से चकित हो गये और अपना पुण्य वर्णन करते हुए परस्पर कहने लगे ॥ ४४ ॥

ऋषियों ने कहा—आज इस हिमालय के नगर को देखकर हम सभी महापुण्यवान् एवं धन्य हो गये । इसी पुर को देखने के लिए ही शिव ने इस प्रकार के कार्य में हमें नियुक्त किया है ॥ ४५ ॥ यह हिमालय की पुरी तो अलकापुरी, स्वर्गपुरी, भोगवती तथा अमरावतीपुरी से भी उत्तम दिखाई पड़ती है ॥ ४६ ॥ इस पुरी के मनोहर एवं विचित्र घर तथा आँगन दोनों ही नाना प्रकार के उत्तम स्फटिक मणियों से बनाये गये हैं ॥ ४७ ॥ इस पुरी के प्रत्येक घर में सूर्यकान्त तथा चन्द्रकान्त मणियाँ विद्यमान हैं तथा प्रत्येक घर में स्वर्ग के चित्र-विचित्र वृक्ष लगे हुए हैं ॥ ४८ ॥ तोरण तथा वन्दनवार की शोभा घर-घर में देखने के योग्य ही है । इस पुर के विमानों में तोते तथा हंस बोल रहे हैं ॥ ४९ ॥ विचित्र प्रकार के वितान (पटमण्डप), चित्र-विचित्र कपड़ों के बने हैं, जिनमें मनोहर वन्दनवार बँधे हैं । अनेक जलाशय तथा अनेक बावलियाँ हैं ॥ ५० ॥ अनेक प्रकार के विचित्र एवं मनोहर उद्यान हैं, जो उत्तम ढंग से सजाये गये हैं । इस नगर के सभी मनुष्य देवता के सदृश तथा स्त्रियाँ अप्सराओं के सदृश हैं ॥ ५१ ॥ इस हिमालय की पुरी के सामने तो स्वर्ग की कामना से याज्ञिकों एवं पुरातन लोगों के द्वारा किये गये समस्त अनुष्ठान व्यर्थ ही हैं ॥ ५२ ॥ मनुष्य को स्वर्ग की तभी तक कामना रहती है जब तक उसने हिमालय की इस पुरी को नहीं देखा। जब इस पुरी को देख लिया, तो उसे स्वर्ग की क्या आवश्यकता ॥ ५३ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे ऋषिश्रेष्ठ नारद ! इस प्रकार हिमालयपुरी का वर्णन करते हुए वे सभी ऋषि सर्वसमृद्धि से युक्त हिमालय के घर पहुँचे ॥ ५४ ॥ सूर्य के समान अत्यन्त तेजस्वी उन सात ऋषियों को आकाश मार्ग से आते हुए हिमवान् ने दूर से ही देखा ॥ ५५ ॥

हिमवानुवाच

सप्तैते सूर्यसङ्काशाः समायान्ति मदन्तिके। पूजा कार्या प्रयत्नेन मुनीनां च मयाऽधुना ॥५६॥
वयं धन्या गृहस्थाश्च सर्वेषां सुखदायिनः। येषां गृहे समायान्ति महात्मानो यदीदृशाः॥५७॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे चैवाकाशादेत्य भुवि स्थितान्। सम्मुखे हिमवान् दृष्ट्वा ययौ मानपुरःसरम् ॥५८॥
कृताञ्जलिर्नतस्कन्धः सप्तर्षीन् सुप्रणम्य सः। पूजां चकार तेषां वै बहुमानपुरःसरम् ॥५९॥
हिताः सप्तर्षयस्ते च हिमवन्तं नगेश्वरम्। गृहीत्वोचुः प्रसन्नास्या वचनं मङ्गलालयम् ॥६०॥
यथाग्रतश्च तान् कृत्वा धन्यो मम गृहाश्रमः। इत्युक्त्वाऽऽसनमानीय ददौ भक्तिपुरःसरम् ॥६१॥
आसनेषूपविष्टेषु तदाज्ञसः स्वयं स्थितः। उवाच हिमवाँस्तत्र मुनीञ्ज्योतिर्मयांस्तदा ॥६२॥

हिमालय उवाच

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवितं मम। लोकेषु दर्शनीयोऽहं बहुतीर्थसमो मतः ॥६३॥
यस्माद् भवन्तो मद्गेहमागता विष्णुरूपिणः। पूर्णानां भवतां कार्यं कृपणानां गृहेषु किम् ॥६४॥
तथापि किञ्चित् कार्यं च सदृशं सेवकस्य मे। कथनीयं सुदयया सफलं स्याज्जनुर्मम ॥६५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे सप्तर्ष्यागमनवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

हिमवान् बोले—ये सूर्य के समान अत्यन्त तेजस्वी सप्तर्षिगण मेरे पास आ रहे हैं, इन मुनियों की मुझे विशेष रूप से पूजा करनी चाहिए ॥ ५६ ॥ हम गृहस्थ लोग धन्य हैं, जिनके घर सुख देनेवाले इस प्रकार के महात्मा महर्षि स्वयं पधारते हैं ॥ ५७ ॥

ब्रह्माजी बोले—इसी अवसर में आकाश से पृथ्वी पर स्थित हुए उन महात्माओं को अपने सम्मुख आता देख हिमालय सम्मान पूर्वक उनकी अगवानी के लिए चले ॥ ५८ ॥ उन्होंने हाथ जोड़कर सिर झुका उन सप्तर्षियों को प्रणाम किया। पुनः बड़े सम्मान के साथ उनकी पूजा की ॥ ५९ ॥ उन सप्तर्षियों ने नगाधिराज हिमालय की हितकारिणी पूजा को ग्रहण कर प्रसन्नमुख हो उनका कुशल-मङ्गल पूछा ॥६०॥ तब हिमालय ने सर्वप्रथम उनका सत्कार किया। आज मेरा गृहस्थाश्रम धन्य हो गया, ऐसा कहकर उन्हें बैठने के लिए भक्ति से उत्तम आसन दिया ॥ ६१ ॥ जब ऋषि आसनों पर बैठ चुके तब हिमालय स्वयं उनकी आज्ञा ले अपने आसन पर बैठे और उन तेजस्वी ऋषि से कहने लगे ॥ ६२ ॥

हिमालय बोले—आज मैं धन्य हो गया, कृतकृत्य हो गया और हमारा जीवन सफल हो गया। आज मैं लोक में दर्शनीय तथा तीर्थस्वरूप हो गया हूँ ॥ ६३ ॥ जो आप-जैसे विष्णुस्वरूप महात्मा मेरे घर पर पधारे। आप सब महात्मा तो पूर्णकाम हैं, मुझ-जैसे कृपण के घर आने का प्रयोजन ही क्या हो सकता है? ॥६४॥ तो भी मुझ सेवक के योग्य जो कार्य हो, उसे दयापूर्वक कहिए, जिससे मेरा जन्म सफल हो ॥६५॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में सप्तर्षि-आगमनवर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥

*

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

(अरुन्धती सहित सप्तर्षियों का मेना को समझाना)

ऋषय ऊचुः

जगत्पिता शिवः प्रोक्तो जगन्माता शिवा मता । तस्माद्देया त्वया कन्या शङ्कराय महात्मने ॥ १ ॥
एवं कृत्वा हिमगिरे सार्थकं ते भवेज्जनुः । जगद्गुरोर्गुरुस्त्वं हि भविष्यसि न संशयः ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

एवं वचनमाकर्ण्य सप्तर्षीणां मुनीश्वर ! । प्रणम्य तान् करौ बद्ध्वा गिरिराजोऽब्रवीदिदम् ॥ ३ ॥

हिमाचल उवाच

सप्तर्षयो महाभागा भवद्भिर्यदुदीरितम् । तत्प्रमाणीकृतं मे हि पुरैव गिरिशेच्छया ॥ ४ ॥
इदानीमेक आगत्य विप्रो वैष्णवधर्मवान् । शिवमुद्दिश्य सुप्रीत्या विपरीतं वचोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥
तदारभ्य शिवामाता ज्ञानभ्रष्टा बभूव ह । सुताविवाहं रुद्रेण योगिना तेन नेच्छति ॥ ६ ॥
कोपागारमगात् सा हि सुतप्ता मलिनाम्बरा । कृत्वा महाहठं विप्रा बोध्यमानाऽपि नाबुधत् ॥ ७ ॥
अहं च ज्ञानविभ्रष्टो जातोऽहं सत्यमीर्य्यते । दातुं सुतां महेशाय नेच्छामि भिक्षुरूपिणे ॥ ८ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा शैलराजस्तु शिवमायाविमोहितः । तूष्णीं बभूव तत्रस्थो मुनीनां मध्यतो मुने ॥ ९ ॥
सर्वे सप्तर्षयस्ते हि शिवमायां प्रशस्य वै । प्रेषयामासुरथ तां मेनकां प्रत्यरुन्धतीम् ॥ १० ॥
अथ पत्युः समादाय निदेशं ज्ञानदा हि सा । जगामारुन्धती तूर्णं यत्र मेना च पार्वती ॥ ११ ॥
गत्वा ददर्श मेना तां शयानां शोकमूर्च्छिताम् । उवाच मधुरं साध्वी सावधाना हितं वचः ॥ १२ ॥

ऋषियों ने कहा—हे हिमालय ! शिवजी जगत्पिता तथा पार्वती जगत् की माता कही जाती हैं, इस कारण तुम अपनी कन्या महात्मा शंकर को प्रदान करो ॥ १ ॥ ऐसा करने से ही तुम्हारा जन्म सफल होगा । इसमें सन्देह नहीं कि ऐसा करने से तुम जगद्गुरु शंकर के गुरु हो जाओगे और हे हिमालय ! ऐसा करने से तुम्हारा जन्म सफल हो जायेगा ॥ २ ॥

ब्रह्मा बोले—हे मुनीश्वर नारद ! ऋषियों के इस प्रकार वचन सुन उन्हें प्रणाम कर हाथ जोड़ गिरिराज बोले ॥ ३ ॥

हिमाचल बोले—हे महाभाग्यवान् सप्तर्षिगण ! आपलोगों ने जैसा कहा है, हमने उसे शिव की प्रेरणा से पहले ही स्वीकार कर लिया है ॥४॥ किन्तु अभी थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ कि एक वैष्णवधर्म वाला ब्राह्मण शिव को लक्ष्य कर हमलोगों पर प्रेम प्रदर्शित करता हुआ शंकर की निन्दा करने लगा ॥ ५ ॥ उसी समय से शिवा की माता मेना का ज्ञान भ्रष्ट हो गया । अब वह उन योगी रुद्र से अपनी कन्या का विवाह नहीं करना चाहती ॥ ६ ॥ वह बहुत क्रोध कर मलीन वस्त्र धारण किये हुए कोप-भवन में चली गयी है, उसने इतना बड़ा हठ ठान लिया है कि किसी के समझाने पर भी अपना हठ नहीं छोड़ती ॥ ७ ॥ मैं भी तभी से ज्ञानभ्रष्ट हो गया हूँ, यह आप लोगों से सत्य कहता हूँ । अब मेरी भी इच्छा भिक्षुरूपधारी उस महेश्वर को कन्या देने की नहीं है ॥ ८ ॥

ब्रह्मा ने कहा—हे मुने नारद ! शिव की माया से मोहित शैलराज इस प्रकार से कहकर मुनियों के मध्य में मौन धारण कर स्थित हो गये ॥ ९ ॥ तदनन्तर उन ऋषियों ने शिवमाया की प्रशंसा करते हुए मेनका के समीप अरुन्धती को भेजा ॥ १० ॥ वह ज्ञानदात्री अरुन्धती अपने पति की आज्ञा लेकर शीघ्रता से मेना और पार्वती के पास गयी ॥ ११ ॥ अरुन्धती ने जाकर देखा कि मेना शोक से मूर्च्छित हो पृथ्वी पर पड़ी है । तब उस पतिव्रता ने सावधानी पूर्वक उससे अत्यन्त मनोहर तथा मधुर वचन कहा ॥१२॥

अरुन्धत्युवाच

उत्तिष्ठ मेनके साध्वि त्वद्गृहेऽहमरुन्धती । आगता मुनयश्चापि समायाताः कृपालवः ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

अरुन्धतीस्वरं श्रुत्वा शीघ्रमुत्थाय मेनका । उवाच शिरसा नत्वा तां पद्मामिव तेजसा ॥१४॥

मेनोवाच

अहोऽद्य किमिदं पुण्यमस्माकं पुण्यजन्मनाम् । वधूर्जगद्विधेः पत्नी वसिष्ठस्यागतेह वै ॥१५॥
किमर्थमागता देवि ! तन्मे ब्रूहि विशेषतः । अहं दासीसमा ते हि स-सुता करुणां कुरु ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा मेनकां साध्वी बोधयित्वा च तां बहु । तथागता च सुप्रीत्या सास्ते यत्र र्षयोऽपि ते ॥१७॥
अथ शैलेश्वरं ते च बोधयामासुरादरात् । स्मृत्वा शिवपदद्वन्द्वं सर्वे वाक्यविशारदाः ॥१८॥

ऋषय ऊचुः

शैलेन्द्र ! श्रूयतां वाक्यमस्माकं शुभकारणम् । शिवाय पार्वतीं देहि संहर्त्तुः श्वशुरो भव ॥१९॥
अयाचितारं सर्वेशं प्रार्थयामास यत्नतः । तारकस्य विनाशाय ब्रह्मासम्बन्धकर्मणि ॥२०॥
नोत्सुको दारसंयोगे शङ्करो योगिनां वरः । विधेः प्रार्थनया देवस्तव कन्यां ग्रहीष्यति ॥२१॥
दुहितुस्ते तपस्तप्तं प्रतिज्ञानं चकार सः । हेतुद्वयेन योगीन्द्रो विवाहं च करिष्यति ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

ऋषीणां वचनं श्रुत्वा प्रहस्य स हिमालयः । उवाच किञ्चिद् भीतस्तु परं विनयपूर्वकम् ॥२३॥

अरुन्धती बोली—हे मेना, उठो देखो, मैं अरुन्धती, तुम्हारे घर आई हूँ तथा ये सप्तर्षि भी कृपा करने के लिए तुम्हारे घर पधारे हैं ॥ १३ ॥

ब्रह्माजी बोले—अरुन्धती का स्वर पहचान कर मेना शीघ्र ही उठी और बड़ी तेजी से महालक्ष्मी के समान उस अरुन्धती को प्रणाम कर बोली ॥ १४ ॥

मेना बोली—अहा, हम पुण्यवानों का कितना बड़ा पुण्य है, जो साक्षात् पितामह की पुत्रवधू एवं महर्षि वसिष्ठ की पत्नी मेरे घर स्वयं आई हैं ॥१५॥ हे देवि ! तुम किस उद्देश्य से यहाँ पधारी हो, वह मुझसे विशेष रूप से कहो, तुम पुत्री पार्वती के सहित मुझे अपनी दासी समझो, हमलोगों पर कृपा करो ॥ १६ ॥

ब्रह्माजी बोले—जब मेना ने ऐसा कहा तब अरुन्धती ने उस मेना को बहुत समझाया, और प्रसन्न हो वहाँ गयी जहाँ सप्तर्षिगण विराजमान थे ॥ १७ ॥ इधर वाक्यविशारद महर्षिगण भी शिव के चरण-कमलों का ध्यान करते हुए बड़े आदर के साथ गिरिराज को समझाने लगे ॥ १८ ॥

ऋषिगण बोले—हे शैलराज ! तुम हमलोगों की कल्याणकारिणी बात सुनो । सदाशिव को पार्वती देकर संहारकर्त्ता शिव के श्वसुर बनो ॥ १९ ॥ तारकासुर के वध के निमित्त ब्रह्मा ने इस विवाह के सम्बन्ध को करने के लिए उन शिव से जो कभी किसी से कुछ नहीं माँगते, उनसे बहुत प्रार्थना की है ॥ २० ॥ यद्यपि योगिश्रेष्ठ होने के कारण सदाशिव इस दारसंग्रह कार्य के लिए उत्सुक नहीं हैं किन्तु ब्रह्मा के द्वारा बहुत प्रार्थना करने पर वह इस कन्या को ग्रहण करने के लिए उद्यत हुए हैं ॥ २१ ॥ तुम्हारी कन्या ने भी शिव को वर रूप में प्राप्त करने के हेतु बड़ा तप किया है, इन्हीं दो कारणों से वे विवाह के लिए उद्यत हुए हैं ॥ २२ ॥

ब्रह्माजी बोले—ऋषियों की बात सुनकर हिमालय हँसने लगे । फिर कुछ भयभीत होकर विनयपूर्वक उन ऋषियों से कहने लगे ॥ २३ ॥

हिमालय उवाच

शिवस्य राजसामग्रीं न हि पश्यामि काञ्चन । कञ्चिदाश्रयमैश्वर्यं कं वा स्वजनबान्धवम् ॥२४॥
नेच्छाम्यतिविनिर्लिप्तयोगिने स्वां सुतामहम् । यूयं वेदविधातुश्च पुत्रा वदत निश्चितम् ॥२५॥
वरायाननुरूपाय पिता कन्यां ददाति चेत् । कामान् मोहाद् भयाल्लोभात् स नष्टो नरकं व्रजेत् ॥२६॥
न हि दास्याम्यहं कन्यामिच्छया शूलपाणये । यद्विधानं भवेद्योग्यमृषयस्तद् विधीयताम् ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य हिमागस्य मुनीश्वर ! । प्रत्युवाच वसिष्ठस्तं तेषां वाक्यविशारद ! ॥२८॥

वसिष्ठ उवाच

शृणु शैलेश ! मद्वाक्यं सर्वथा ते हितावहम् । धर्माविरुद्धं सत्यं च परत्रेह मुदावहम् ॥२९॥
वचनं त्रिविधं शैल ! लौकिके वैदिकेऽपि च । सर्वं जानाति शास्त्रज्ञो निर्मलज्ञानचक्षुषा ॥३०॥
असत्यमहितं पश्चात् साम्प्रतं श्रुतिसुन्दरम् । सुबुद्धिर्वक्ति शत्रुर्हि हितं नैव कदाचन ॥३१॥
आदावप्रीतिजनकं परिणामे सुखावहम् । दयालुर्धर्मशीलो हि बोधयत्येव बान्धवः ॥३२॥
श्रुतिमात्रात् सुधातुल्यं सर्वकालसुखावहम् । सत्यसारं हितकरं वचनं श्रेष्ठमीप्सितम् ॥३३॥
एवं च त्रिविधं शैल ! नीतिशास्त्रोदितं वचः । कथ्यतां त्रिषु मध्ये किं ब्रुवे वाक्यं त्वदीप्सितम् ॥३४॥
ब्राह्मसम्पद्विहीनश्च शङ्करस्त्रिदशेश्वरः । तत्त्वज्ञानसमुद्रेषु सन्निमग्नैकमानसः ॥३५॥
ज्ञानानन्दस्येश्वरस्य ब्राह्मवस्तुषु का स्पृहा । गृही ददाति स्वसुतां राज्यसम्पत्तिशालिने ॥३६॥

हिमालय बोले—मैं शिव के पास न तो कोई राजसामग्री देखता हूँ न तो ऐश्वर्य देखता हूँ, न उनका कोई आश्रय दिखाई पड़ता है और न तो कोई उनका अपना सगा-सम्बन्धी ही दिखाई पड़ता है ॥२४॥ ऐसे कहीं लिप्त न रहने वाले योगी को मैं अपनी कन्या नहीं देना चाहता। आपलोग तो ब्रह्मदेव के पुत्र हैं, भला बताइए ऐसे को कोई किस प्रकार अपनी कन्या देना चाहेगा ॥ २५ ॥ जो पिता अपनी कन्या प्रतिकूल वर को काम, मोह, भय तथा लोभवश प्रदान करता है वह नष्ट होकर अन्त में नरक जाता है ॥ २६ ॥ मैं स्वेच्छा से इस अपनी कन्या को शंकर के लिए नहीं देना चाहता, अब इस विषय में आप लोग जैसा उचित समझें वैसा करें ॥ २७ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद, हिमालय के इस प्रकार के वचन सुन वाक्यविशारद वसिष्ठ जी हिमालय से इस प्रकार कहने लगे ॥ २८ ॥

वसिष्ठ जी बोले—हे शैलेन्द्र ! तुम्हारे हित की जो बात है मैं उसे कहता हूँ तुम सुनो, मेरा यह वचन धर्मानुकूल एवं इहामुत्र के लिए सुखदायी है ॥ २९ ॥ हे शैलराज ! लोक एवं वेद में तीन प्रकार के वचन कहे गये हैं, उन वचनों को शुद्ध अन्तःकरण वाला पुरुष शास्त्रदृष्टि से जानता है ॥ ३० ॥ जो वचन सुनने में सुन्दर लगे, पर असत्य एवं अहितकारी हो ऐसा वचन बुद्धिमान् शत्रु बोलते हैं। ऐसा वचन किसी प्रकार हितकारी नहीं होता ॥ ३१ ॥ जो वचन सुनने में कठोर हो पर परिणाम में सुखकारी हो, ऐसा वचन दयालु, धर्मशील अथवा बन्धुजन बोलते हैं ॥ ३२ ॥ किन्तु जो सुनने में अमृत के समान हो, सर्वदा सभी काल में सुखदायक हो, सत्य का सार तथा हितकारक हो, ऐसा वचन श्रेष्ठ लोग कहते हैं ॥ ३३ ॥ हे शैल ! इस प्रकार तीन तरह के वचन नीतिशास्त्र में कहे गये हैं। अब तुम्हीं बताओ कि इन तीन प्रकार के वचनों में हम लोग किस प्रकार का वचन कहें जो तुम्हारे अनुकूल हो ॥ ३४ ॥ देवताओं के स्वामी शंकर जी ब्रह्मज्ञान से सम्पन्न हैं, इसलिए वे रजोगुणी सम्पत्ति नहीं चाहते, उनका मन तत्त्वज्ञान के समुद्र में सर्वदा निमग्न रहता है ॥३५॥ ऐसे ज्ञान तथा आनन्द के ईश्वर सदाशिव को बाहरी वस्तुओं की इच्छा ही किस प्रकार हो सकती है! इसीलिए गृहस्थ अपनी कन्या राजसम्पत्ति वालों को

कन्यकां दुःखिने दत्त्वा कन्याघाती भवेत् पिता । को वेद शङ्करो दुःखी कुबेरो यस्य किङ्करः ॥३७॥
भ्रूभङ्गलीलया सृष्टिं स्रष्टुं हर्त्तुं क्षमो हि सः । निर्गुणः परमात्मा च परेशः प्रकृतेः परः ॥३८॥
यस्य च त्रिविधा मूर्त्तिर्विधातुः सृष्टिकर्मणि । सृष्टिस्थित्यन्तजननी ब्रह्मविष्णुहराभिधा ॥३९॥
ब्रह्मा च ब्रह्मलोकस्थो विष्णुः क्षीरोदवासकृत् । हरः कैलासनिलयः सर्वाः शिवविभूतयः ॥४०॥
धत्ते च त्रिविधा मूर्त्तीः प्रकृतिः शिवसम्भवा । अंशेन लीलया सृष्टौ कलया बहुधा अपि ॥४१॥
मुखोद्भवा स्वयं वाणी वागधिष्ठातृदेवता । वक्षःस्थलोद्भवा लक्ष्मीः सर्वसम्पत्स्वरूपिणी ॥४२॥
शिवातेजःसु देवानामाविर्भावं चकार सा । निहत्य दानवान् सर्वान् देवेभ्यश्च श्रियं ददौ ॥४३॥
प्राप कल्पान्तरे जन्म जठरे दक्षयोषितः । नाम्ना सती हरं प्राप दक्षस्तस्मै ददौ च ताम् ॥४४॥
देहं तत्याज योगेन श्रुत्वा सा भर्तृनिन्दनम् । साऽद्य त्वत्तस्तु मेनायां जज्ञे जठरतः शिवा ॥४५॥
शिवा शिवस्य पत्नीयं शैल ! जन्मनि जन्मनि । कल्पे कल्पे बुद्धिरूपा ज्ञानिनां जननी परा ॥४६॥
जायते स्म सदा सिद्धा सिद्धिदा सिद्धिरूपिणी । सत्या अस्थि चिताभस्म भक्त्या धत्ते हरः स्वयम् ॥४७॥
अतस्त्वं स्वेच्छया कन्यां देहि भद्रां हराय च । अथवा सा स्वयं कान्तस्थाने यास्यत्यदास्यसि ॥४८॥
कृत्वा प्रतिज्ञां देवेशो दृष्ट्वा क्लेशमसङ्ख्यकम् । दुहितुस्ते तपःस्थानमाजगाम द्विजात्मकः ॥४९॥
तामाश्वास्य वरं दत्त्वा जगाम निजमन्दिरम् । तत्प्रार्थनावशाच्छम्भुर्ययाचे त्वां शिवां गिरे ॥५०॥

देते हैं ॥ ३६ ॥ पिता यदि अपनी कन्या दरिद्र को देता है तो वह कन्याघाती का पाप प्राप्त करता है। हे हिमालय ! भला जगत् में कौन ऐसा पुरुष है जो शंकर को दुःखी एवं दरिद्र कहे, कुबेर जिसके दास हैं ॥ ३७ ॥ वे सदाशिव तो अपनी भौंह के विलास मात्र से सृष्टि, पालन एवं संहार करने में समर्थ हैं, वे सर्वथा निर्गुण, परमात्मा, परमेश्वर सदाशिव प्रकृति से सर्वथा परे हैं ॥ ३८ ॥

जिसकी सृष्टिकार्य करने के लिए तीन मूर्त्तियाँ ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर रूप से जगत् की उत्पत्ति, पालन तथा संहार करती हैं ॥ ३९ ॥ उसको ब्रह्मा नामक मूर्त्ति ब्रह्मलोक में, विष्णु नामक मूर्त्ति क्षीरसागर में और रुद्र नामक मूर्त्ति कैलास में निवास करती है, यह सभी शिव की विभूतियाँ ही तो हैं ॥ ४० ॥ यह सारी प्रकृति भी शिव से ही उत्पन्न है, जो तीन प्रकार का होकर इस जगत् को धारण करती है, वह प्रकृति इस सृष्टि में अंश से, लीला से तथा कला से अनेक प्रकार की है ॥ ४१ ॥ उसकी वाणी रूप प्रकृति मुख से उत्पन्न हुई है, जो वाणी की अधिष्ठात्री देवी कही जाती है, उसकी लक्ष्मी रूप प्रकृति वक्षःस्थल से उत्पन्न हुई है, जो सम्पूर्ण सम्पत्ति की अधिष्ठात्री देवी कही जाती है ॥ ४२ ॥ और उसकी शिवा नाम की प्रकृति देवताओं के तेज से प्रादुर्भूत हुई है, जो सभी दानवों का वध कर देवताओं के निमित्त महालक्ष्मी प्रदान करती हैं ॥ ४३ ॥ यही शिवा इसके पहले कल्प में दक्ष की स्त्री के उदर से जन्म लेकर सती नाम से विख्यात हुई थी। दक्ष ने उस जन्म में उसे शंकर को ही दिया ॥ ४४ ॥ किन्तु उस जन्म में पिता के द्वारा शिव की निन्दा सुनकर उसने अपना शरीर योगमार्ग से त्याग दिया। वही अब इस समय तुम्हारे द्वारा मेनका के गर्भ में उत्पन्न हुई है ॥४५॥ हे शैल, इस प्रकार वह शिवा प्रतिजन्म शिव की पत्नी रही है, वह प्रतिकल्प में बुद्धिस्वरूपा तथा ज्ञानियों की माता है ॥ ४६ ॥ वही सर्वदा सिद्धा, सिद्धिदात्री एवं सिद्धिरूपिणी रूप से जगत् में प्रादुर्भूत होती है, सती की अस्थि तथा उसकी चिता का भस्म शिवजी अब भी उससे प्रेम के कारण अपने शरीर में धारण करते हैं ॥ ४७ ॥ इस कारण तुम्हें उचित है कि तुम अपनी इस कल्याणी कन्या को शङ्कर के निमित्त प्रदान करो अन्यथा वह तुम्हारे न देने पर भी अपने पति के पास चली जायेगी ॥ ४८ ॥

देवेश ने प्रतिज्ञा करके भी जब देखा कि तुम्हारी कन्या ने तप कर असंख्य क्लेश प्राप्त किये तब वह ब्राह्मण रूप धारण कर पार्वती के पास गये ॥ ४९ ॥ और उसे आश्वासन पूर्वक वर देकर अपने स्थान पर लौट आये। हे गिरिराज ! पार्वती के द्वारा प्रार्थना करने पर ही वे शिवजी तुमसे शिवा को

अङ्गीकृतं युवाभ्यां तच्छिवभक्तिरतात्मना । विपरीतमतिर्जाता वद कस्माद् गिरीश्वरः ॥५१॥
तद् गत्वा प्रभुणा देव प्रार्थितेन त्वदन्तिकम् । प्रस्थापिता वयं शीघ्रं ऋषयः साप्यरुन्धती ॥५२॥
शिक्षयामो वयं त्वां हि दत्त्वा रुद्राय पार्वतीम् । एवंकृते महानन्दो भविष्यति गिरे तव ॥५३॥
शिवां शिवाय शैलेन्द्र स्वेच्छया चेन्न दास्यसि । भविता तद्विवाहोऽत्र भवितव्यबलेन हि ॥५४॥
वरं ददौ शिवायै स तपन्त्यै तात शङ्करः । न हीश्वरप्रतिज्ञातं विपरीताय कल्पते ॥५५॥
अहो प्रतिज्ञा दुर्लङ्घ्या साधूनामीशवर्तिनाम् । सर्वेषां जगतां मध्ये किमीशस्य पुनर्गिरे ॥५६॥
एको महेन्द्रः शैलानां पक्षांश्चिच्छेद लीलया । पार्वती लीलया मेरोः शृङ्गभङ्गं चकार च ॥५७॥
एकार्थेन हि शैलेश ! नाश्याः सर्वा हि सम्पदः । एकं त्यजेत् कुलस्यार्थे श्रुतिरेषा सनातनी ॥५८॥
दत्त्वा विप्राय स्वसुतामनरण्यो नृपेश्वरः । ब्राह्मणाद् भयमापन्नो ररक्ष निजसम्पदम् ॥५९॥
तमाशु बोधयामासुर्नीतिशास्त्रविदो जनाः । ब्रह्मशापाद् विभीताश्च गुरवो ज्ञातिसत्तमाः ॥६०॥
शैलराज त्वमप्येव सुतां दत्त्वा शिवाय च । रक्ष सर्वान् बन्धुवर्गान् वशं कुरु सुरानपि ॥६१॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वसिष्ठस्य वचनं स प्रहस्य च । पप्रच्छ नृपवार्तां च हृदयेन विदूयता ॥६२॥

माँगते हैं ॥ ५० ॥ उस समय तुम दोनों ने शिवभक्ति में निरत रहने के कारण उन्हें पार्वती को देना स्वीकार भी कर लिया था । किन्तु हे गिरीश्वर ! इस समय तुम दोनों की ऐसी विपरीत बुद्धि क्यों हो गयी ? ॥ ५१ ॥ जब सदाशिव पार्वती की प्रार्थना हेतु तुम्हारे पास आये थे और तुमने उसे अस्वीकार कर दिया तब यहाँ से लौट कर उन्होंने हम लोगों को अरुन्धती के साथ तुम्हारे पास भेजा है ॥ ५२ ॥ इसलिए हमलोग तुम्हें उपदेश देते हैं कि तुम इस पार्वती को शीघ्रता से रुद्र के निमित्त प्रदान करो । हे शैलराज ! ऐसा करने से तुम्हें महान् आनन्द की प्राप्ति होगी ॥ ५३ ॥ हे शैलेन्द्र ! यदि तुम इस शिव को अपनी इच्छा से नहीं दोगे, तो भवितव्यता के बल से यह विवाह अवश्य ही शंकर से होगा ॥ ५४ ॥

हे तात ! शंकर ने तप करती हुई इस शिवा को जो वरदान दिया है तो तुम्हीं सोचो महेश्वर का दिया गया वरदान क्या कभी झूठा हो सकता है, ईश्वर की प्रतिज्ञा कभी निष्फल नहीं होती ॥ ५५ ॥ जब ईश्वर के उपासक महात्माओं की प्रतिज्ञा कभी विफल नहीं होती तो सारे जगत् के अधिपति इस ईश्वर की प्रतिज्ञा को कौन तोड़ सकता है ॥ ५६ ॥ जब अकेले महेन्द्र ने प्रतिज्ञा कर लीला से ही सारे पर्वतों के पंख काट डाले । और पार्वती ने अकेले ही मेरु का शिखर ढहा दिया तो उन सर्वेश्वर की प्रतिज्ञा निष्फल कैसे होगी ॥ ५७ ॥ हे शैलेश ! हमारा विचार है कि तुम एक पार्वती के कारण अपनी सारी सम्पत्ति नष्ट मत कराओ । यह सनातनी श्रुति प्रसिद्ध है कि कुल की रक्षा के लिए एक का त्याग किया जा सकता है ॥ ५८ ॥ हे शैलेश्वर, देखो पूर्वकाल में अनरण्य नामक राजराजेश्वर ने अपनी कन्या ब्राह्मण को देकर उसके शाप के भय से अपनी सारी सम्पत्ति की रक्षा की ॥ ५९ ॥ क्योंकि ब्राह्मण के शाप से भयभीत हुए उस राजा को नीतिशास्त्र के ज्ञाता गुरुओं एवं ज्ञातियों ने इसी प्रकार की शिक्षा दी थी ॥ ६० ॥ हे शैलराज, इसी प्रकार तुम भी अपनी इस कन्या को शिव के निमित्त देकर बन्धुवर्गों की रक्षा करो तथा देवताओं को अपने वश में करो ॥ ६१ ॥

ब्रह्माजी बोले—वसिष्ठ के इस वचन को सुनकर हिमालय हृदय में कुछ दुःखी हुए किन्तु ऊपर से हँसते हुए उन्होंने वसिष्ठ से अनरण्य का वृत्तान्त पूछा ॥ ६२ ॥

हिमालय उवाच

कस्य वंशोद्भवो ब्रह्मन्ननरण्यो नृपश्च सः । सुतां दत्त्वा स च कथं ररक्षाऽखिलसम्पदः ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वसिष्ठस्तु शैलवाक्यं प्रसन्नधीः । प्रोवाच गिरये तस्मै नृपवार्त्तां सुखावहाम् ॥६४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे गिरिसान्त्वन-वर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

(वसिष्ठ द्वारा अनरण्य-इतिहास वर्णन)

वसिष्ठ उवाच

मनोर्वंशोद्भवो राजा सोऽनरण्यो नृपेश्वरः । इन्द्रसावर्णिसंज्ञस्य चतुर्दशमितस्य हि ॥ १ ॥
अनरण्यो नृपश्रेष्ठः सप्तद्वीपमहीपतिः । शम्भुभक्तो विशेषेण मङ्गलारण्यजो बली ॥ २ ॥
भृगुं पुरोधसं कृत्वा शतं यज्ञांश्चकार सः । न स्वीचकार शक्रत्वं दीयमानं सुरैरपि ॥ ३ ॥
बभूवुः शतपुत्राश्च राज्ञस्तस्य हिमालय ! । कन्यैका सुन्दरी नाम्ना पद्मा पद्मालया समा ॥ ४ ॥
यः स्नेहः पुत्रशतके कन्यायां च ततोऽधिकः । नृपस्य तस्य तस्यां हि बभूव नगसत्तम ! ॥ ५ ॥
प्राणाधिकाः प्रियतमा महिष्यः सर्वयोषितः । नृपस्य पत्न्यः पञ्चासन् सर्वाः सौभाग्यसंयुताः ॥ ६ ॥
सा कन्या यौवनस्था च बभूव स्वपितुर्गृहे । पत्रं प्रस्थापयामास सुवरानयनाय सः ॥ ७ ॥
एकदा पिप्पलादर्षिर्गन्तुं स्वाश्रममुत्सुकः । तपःस्थाने निर्जने च गन्धर्वं स ददर्श ह ॥ ८ ॥
स्त्रीयुतं मग्नचित्तं च शृङ्गारे रससागरे । विहरन्तं महाप्रेम्णा कामशास्त्रविशारदम् ॥ ९ ॥

हिमालय बोले—हे ब्रह्मन् ! यह अनरण्य राजा किसके वंश में उत्पन्न हुआ था ? उसने अपनी कन्या ब्राह्मण को देकर किस प्रकार अपनी सम्पत्ति की रक्षा की थी ॥ ६३ ॥

ब्रह्माजी बोले—हिमालय के इस प्रकार के वचन सुनकर वसिष्ठजी प्रसन्न हो सुखदायक अनरण्य राजा का वृत्तान्त कहने लगे ॥ ६४ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में गिरिसान्त्वन-वर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३३ ॥

*

वसिष्ठजी बोले—इन्द्रसावर्णि नामक चौदहवें मनु के वंश में यह अनरण्य नामक राजा उत्पन्न हुआ था ॥ १ ॥ यह राजराजेश्वर तथा सातों द्वीपों का सम्राट् था। वह मङ्गलारण्य का पुत्र अनरण्य महाबलवान् एवं शिव का भक्त था ॥ २ ॥ उसने महर्षि भृगु को अपना पुरोहित बनाकर सौ यज्ञ किया तब देवताओं ने उसे इन्द्रपद देना चाहा किन्तु उसने उसे स्वीकार नहीं किया ॥ ३ ॥ हे हिमालय ! उस राजा के सौ पुत्र थे और एक ही पद्मा नाम की कन्या थी, जो लक्ष्मी के समान अत्यन्त रूपवती थी ॥ ४ ॥ हे गिरिराज ! उस राजा का प्रेम सौ पुत्रों की अपेक्षा कन्या पर विशेष रूप से रहा करता था ॥ ५ ॥ उस अनरण्य राजा की सर्वसौभाग्यशालिनी पाँच रानियाँ थीं, जो सभी राजा को प्राणों से भी अधिक प्यारी थीं ॥ ६ ॥ जब वह कन्या अपने पिता के घर युवावस्था को प्राप्त हो गयी तो राजा ने उत्तम वर प्राप्ति के लिए सर्वत्र दूतों द्वारा पत्र भेजा ॥ ७ ॥

एक समय जब पिप्पलाद (पीपल के खाने से इनका नाम पिप्पलाद हुआ) महर्षि जब अपने आश्रम को जा रहे थे तभी तपस्या के योग्य एक निर्जन स्थान में उन्होंने एक गन्धर्व देखा ॥ ८ ॥ काम-कला में निपुण वह गन्धर्व स्त्रियों के साथ शृंगार रस के सागर में निमग्न हो प्रेम से उनके साथ विहार

दृष्ट्वा तं मुनिशार्दूलः सकामः संबभूव सः । तपःस्वदत्तचित्तश्चाऽचिन्तयद्दारसंग्रहम् ॥१०॥
एवंभूतस्य तस्यैव पिप्पलादस्य सन्मुनेः । कियत्कालो गतस्तत्र कामोन्मथितचेतसः ॥११॥
एकदा पुष्पभद्रायां स्नातुं गच्छन् मुनीश्वरः । ददर्श पद्मां युवतीं पद्मामिव मनोरमाम् ॥१२॥
केयं कन्येति पप्रच्छ समीपस्थान् जनान् मुनिः । जना निवेदयाञ्चक्रुर्नत्वा शापनियन्त्रिताः ॥१३॥

जना ऊचुः

अनरण्यसुतेयं वै पद्मा नाम रमापरा । वरारोहा प्रार्थ्यमाना नृपश्रेष्ठैर्गुणालया ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा स मुनिर्वाक्यं जनानां तथ्यवादिनाम् । चुक्षोभातीव मनसि तल्लिप्सुरभवच्च सः ॥१५॥
मुनिः स्नात्वाऽभीष्टदेवं सम्पूज्य विधिवच्छिवम् । जगाम कामी भिक्षार्थमनरण्यसभां गिरे ! ॥१६॥
राजा शीघ्रं मुनिं दृष्ट्वा प्रणनाम भयाकुलः । मधुपर्कादिकं दत्त्वा पूजयामास भक्तितः ॥१७॥
कामात् सर्वं गृहीत्वा च ययाचे कन्यकां मुनिः । मौनी बभूव नृपतिः किञ्चिन्निर्वक्तुमक्षमः ॥१८॥
मुनिर्ययाचे कन्यां स तां देहीति नृपेश्वर ! । अन्यथा भस्मसात् सर्वं करिष्यामि क्षणेन च ॥१९॥
सर्वे बभूवुराच्छन्ना गणास्तत्तेजसा मुने ! । रुरोद राजा सगणो दृष्ट्वा विप्रं जरातुरम् ॥२०॥
महिष्यो रुरुदुः सर्वा इतिकर्त्तव्यताक्षमाः । मूर्च्छामाप महाराज्ञी कन्यामाता शुचाकुला ॥२१॥
बभूवुस्तनयाः सर्वे शोकाकुलितमानसाः । सर्वं शोकाकुलं जातं नृपसम्बन्धि शैलप ! ॥२२॥
एतस्मिन्नन्तरे प्राज्ञो द्विजो गुरुरनुत्तमः । पुरोहितश्च मतिमानागतो नृपसन्निधिम् ॥२३॥

कर रहा था ॥ ९ ॥ वे मुनिश्रेष्ठ उसे देखते ही काम के वशीभूत हो गये और तप से चित्त हटा कर दारसंग्रह की चिन्ता में पड़ गये ॥ १० ॥ इस प्रकार काम से व्याकुल चित्त हुए उन श्रेष्ठ महर्षि के अनेक वर्ष बीत गये ॥ ११ ॥ एक समय जब वे महर्षि पुष्पभद्रा नदी में स्नान करने के लिए जा रहे थे कि उन्होंने मनोहर लक्ष्मी के समान परम सुन्दरी पद्मा को देखा ॥ १२ ॥ तदनन्तर उन महर्षि ने आस-पास के मनुष्यों से पूछा कि यह किसकी कन्या है, तब शाप के भय से व्याकुल हो उन मनुष्यों ने पद्मा का परिचय दिया ॥ १३ ॥

मनुष्यों ने कहा—यह महालक्ष्मी के समान परम सुन्दरी अनरण्य की कन्या पद्मा है, जो गुणवती तथा सुन्दरी होने के कारण बड़े-बड़े अनेक राजा इसको पाने की इच्छा से प्रार्थना करते हैं ॥ १४ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार वे महर्षि उन सत्यवादी मनुष्यों की बात सुनकर अत्यन्त क्षुब्ध हो उठे और उसे प्राप्त करने की इच्छा करने लगे ॥ १५ ॥ हे गिरिराज ! तदनन्तर मुनि ने स्नान कर विधिपूर्वक अपने इष्टदेव शङ्कर का पूजन किया । फिर काम के वशीभूत हो उस कन्या को माँगने के लिए अनरण्य की सभा में गये ॥ १६ ॥ राजा ने मुनि को देखते ही भयभीत हो प्रणाम किया और मधुपर्कादि देकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की ॥ १७ ॥ पूजा-ग्रहण के अनन्तर उन महर्षि ने उस कन्या की याचना की, राजा सुनते ही अवाक् हो गया और कुछ भी कहने में असमर्थ हो गया ॥ १८ ॥ मुनि ने कहा—हे राजन् ! तुम अपनी कन्या हमें दो अन्यथा मैं तुम्हें क्षणमात्र में भस्म कर दूँगा ॥ १९ ॥ उस समय हे मुने ! मुनि के तेज से राजा के सब सेवक हक्का-बक्का हो गये और राजा अपने परिचरों के साथ वृद्धावस्था से जर्जर उस मुनि को देख रोने लगे ॥ २० ॥ रानियों को भी कुछ सुझाई न पड़ा, वे किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ हो रोने लगीं । कन्या की माता तो शोक से व्याकुल हो रोने लगी ॥ २१ ॥ इस प्रकार राजा के सभी पुत्र एवं सभी सगे-सम्बन्धी शोक से व्याकुल हो गये ॥ २२ ॥ इसी समय महापण्डित, नीतिशास्त्र का कुशल विद्वान् राजा का गुरु एवं पुरोहित ब्राह्मण दोनों ही राजा के समीप

राजा प्रणम्य सम्पूज्य रुरोद च तयोः पुरः। सर्वं निवेदयाञ्चक्रे पप्रच्छोचितमाशु तत् ॥२४॥
अथ राज्ञो गुरुर्विप्रः पण्डितश्च पुरोहितः। अपि द्वौ शास्त्रनीतिज्ञौ बोधयामासतुर्नृपम् ॥२५॥
शोकाकुलाश्च महिषीर्नृपबालांश्च कन्यकाम्। उत्तमां नीतिमादृत्य सर्वेषां हितकारिणीम् ॥२६॥

गुरुपुरोधसावूचतुः

शृणु राजन्! महाप्राज्ञ! वचो नौ सद्धितावहम्। मा शुचः सपरीवारः शास्त्रे कुरु मतिं सतीम् ॥२७॥
अद्य वाब्ददिनान्ते वा दातव्या कन्यका नृप!। पात्राय विप्रायान्यस्मै कस्मैचिद् वा विशेषतः ॥२८॥
सत्पात्रं ब्राह्मणादन्यं न पश्यावो जगत्त्रये। सुतां दत्त्वा च मुनये रक्ष स्वां सर्वसम्पदम् ॥२९॥
राजन्नेकन्निमित्तेन सर्वसम्पद्विनश्यति। सर्वं रक्षति तं त्यक्त्वा विना तं शरणागतम् ॥३०॥

वसिष्ठ उवाच

राजा प्राज्ञवचः श्रुत्वा विलप्य च मुहुर्मुहुः। कन्यां सालङ्कृतां कृत्वा मुनीन्द्राय ददौ किल ॥३१॥
कान्तां गृहीत्वा स मुनिर्विवाह्य विधिवद् गिरे। पद्मां पद्मोपमां तां वै मुदितः स्वालयं ययौ ॥३२॥
राजा सर्वान् परित्यज्य दत्त्वा वृद्धाय चात्मजाम्। ग्लानिं चित्ते समाधाय जगाम तपसे वनम् ॥३३॥
तद्भार्याऽपि वनं याते प्राणनाथे तदा गिरे। भर्तुश्च दुहितुः शोकात् प्राणांस्तत्याज सुन्दरी ॥३४॥
पूज्याः पुत्राश्च भृत्याश्च मूर्च्छामापुर्नृपं विना। शुशुचुः श्वाससंयुक्तं ज्ञात्वा सर्वेऽपरे जनाः ॥३५॥
अनरण्यो वनं गत्वा तपस्तप्त्वाऽतिशङ्करम्। समाराध्य ययौ भक्त्या शिवलोकमनामयम् ॥३६॥
नृपस्य कीर्तिमान् नाम्ना ज्येष्ठपुत्रोऽथ धार्मिकः। पुत्रवत् पालयामास प्रजा राज्यं चकार ह ॥३७॥

आये ॥ २३ ॥ राजा ने प्रणाम कर उनका पूजन किया और उनके आगे रो-रोकर अपना सारा वृत्तान्त निवेदन किया। और पूछने लगे कि इसमें जो उचित कर्त्तव्य हो उसको शीघ्रता से बताइए ? ॥ २४ ॥ तब राजा की बात सुनकर नीतिशास्त्र के जानने वाले महापण्डित उसके गुरु तथा पुरोहित दोनों ने राजा को, शोक से मूर्च्छित हुई रानियों, राजपुत्रों तथा उस कन्या को भी हितकारक तथा नीतियुक्त वाक्यों से समझाया ॥ २५-२६ ॥

गुरु तथा पुरोहित बोले—हे राजन्! हे महाप्राज्ञ! तुम परिवार के सहित शोक मत करो, हमारे हितकारी वचन सुनो और शास्त्र में अपनी बुद्धि लगाओ ॥ २७ ॥ हे राजन्! आज अथवा एक वर्ष के बाद तुम्हें अपनी कन्या किसी-न-किसी पात्र को देना ही है, वह पात्र चाहे ब्राह्मण हो अथवा अन्य कोई हो ॥२८॥ किन्तु मेरे विचार से तो ब्राह्मण से बढ़कर कोई भी इस त्रिलोकी में सुन्दर पात्र नहीं है, अतः तुम उस ब्राह्मण सत्पात्र को अपनी कन्या देकर सारे सम्पत्ति की रक्षा करो ॥ २९ ॥ हे राजन्! यदि ऐसा न करोगे तो एक के कारण तुम्हारी सारी सम्पत्ति नष्ट हो जायेगी। उस एक का त्याग करो और सबकी रक्षा करो। केवल शरणागत का त्याग नहीं करना चाहिए चाहे उसके लिए सब कुछ नष्ट हो जावे ॥ ३० ॥

वसिष्ठ जी बोले—तब राजा ने उन दोनों बुद्धिमानों की बात सुन बारम्बार विलाप करते हुए उस कन्या को वस्त्र तथा आभूषण से अलंकृत कर मुनीन्द्र महर्षि पिप्पलाद को दे दिया ॥ ३१ ॥ हे गिरे! इस प्रकार शास्त्ररीति से उस कन्या से विवाह कर महर्षि पिप्पलाद उस महालक्ष्मी के समान महा सुन्दरी पद्मा को लेकर प्रसन्नता से अपने घर चले आये ॥ ३२ ॥ इधर राजा उस वृद्ध को कन्या देने की ग्लानि से दुःखी हो अपना सारा परिवार तथा राज्य छोड़कर तपस्या के लिए वन में चले गये ॥ ३३ ॥ हे गिरे! अपने प्राणनाथ के वन चले जाने पर रानियों ने भी अपने पति तथा कन्या के शोक से अपने प्राणत्याग कर दिये ॥ ३४ ॥ राजा के पूज्य पुरोहितादि, पुत्र एवं सभी सेवक राजा के विना मूर्च्छित हो गये तथा अन्य पुरवासी एवं दूसरे पुरुष उच्छ्वास लेकर शोक करने लगे ॥ ३५ ॥ अनरण्य वन में जाकर शङ्कर की आराधना क[illegible]श्वत शिवलोक को चला गया ॥ ३६ ॥ और उस राजा के स्थान पर उसका ज्येष्ठ कीर्त्तिमान नामक पुत्र सिंहासन पर बैठकर, पुत्र के समान प्रजा का पालन करने लगा ॥ ३७ ॥

इति ते कथितं शैलानरण्यचरितं शुभम् । कन्यां दत्त्वा यथारक्षद्वंशं चाप्यखिलं धनम् ॥३८॥
शैलराज त्वमप्येवं सुतां दत्त्वा शिवाय च । रक्ष सर्वकुलं सर्वान् वशान् कुरु सुरानपि ॥३९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डेऽनरण्यचरित-वर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

(पद्मा-पिप्पलाद चरित्र वर्णन)

नारद उवाच

अनरण्यस्य चरितं सुतादानसमन्वितम् । श्रुत्वा गिरिवरस्तात किं चकार च तद्वद ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

अनरण्यस्य चरितं कन्यादानसमन्वितम् । श्रुत्वा पप्रच्छ शैलेशो वसिष्ठं साऽञ्जलिः पुनः ॥ २ ॥

शैलेश उवाच

वसिष्ठ मुनिशार्दूल ब्रह्मपुत्र कृपानिधे ! । अनरण्यचरित्रं ते कथितं परमाद्भुतम् ॥ ३ ॥
अनरण्यसुता यस्मात् पिप्पलादं मुनिं पतिम् । सम्प्राप्य किमकार्षीत् सा तच्चरित्रं मुदावहम् ॥ ४ ॥

वसिष्ठ उवाच

पिप्पलादो मुनिवरो वयसा जर्जरोऽधिकः । गत्वा निजाश्रमं नार्याऽनरण्यसुतया तया ॥ ५ ॥
उवास तत्र सुप्रीत्या तपस्वी नातिलम्पटः । तत्राऽरण्ये गिरिवरे स नित्यं निजधर्मकृत् ॥६॥
अथानरण्यकन्या सा सिषेवे भक्तितो मुनिम् । कर्मणा मनसा वाचा लक्ष्मीर्नारायणं यथा ॥ ७ ॥
एकदा स्वर्णदीं स्नातुं गच्छन्तीं सुस्मितां च ताम् । ददर्श पथि धर्मश्च मायया नृपरूपधृक् ॥ ८ ॥

हे शैलराज ! इस प्रकार मैंने परम श्रेष्ठ अनरण्य का चरित्र तुमसे कहा, जिसने अपनी कन्या देकर अपने सारे वंश की रक्षा की ॥ ३८ ॥ इसी प्रकार हे शैलराज ! तुम भी अपनी कन्या शङ्कर को देकर अपने समस्त कुल की रक्षा करो और देवताओं को अपने वश में करो ॥ ३९ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती'भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में अनरण्य-चरित्र वर्णन नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३४ ॥

*

नारद जी बोले—हे तात ! अनरण्य के कन्यादान सम्बन्धी चरित्र को सुनकर गिरिराज ने क्या किया, उस कथा को कहिए ? ॥ १ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात ! अनरण्य के कन्यादान की कथा सुनकर गिरिराज ने हाथ जोड़कर वसिष्ठ जी से पूछा ॥ २ ॥

हिमालय बोले—हे मुनिशार्दूल ! हे वसिष्ठ ! हे कृपानिधे ! हे ब्रह्मपुत्र ! आपने अनरण्य की विचित्र कथा सुनायी ॥ ३ ॥ तदनन्तर अनरण्य की कन्या ने पिप्पलाद मुनि को पति प्राप्त करने के अनन्तर क्या किया । वह सुखदायक चरित्र आप कहिए ? ॥ ४ ॥

वसिष्ठ जी बोले—जरा से जर्जर पिप्पलाद मुनि उस अनरण्य राजा की कन्या के साथ अपने आश्रम में जाकर बड़े प्रेम से निवास करने लगे । हे गिरिराज ! वे अपने आश्रम में निवास करते हुए अपने इन्द्रियों को वश में कर तपस्या-परायण हो अपने धर्म में लगे रहे ॥५-६॥ इधर अनरण्य-कन्या भी पिप्पलाद मुनि की सेवा मनसा वाचा कर्मणा और भक्ति से युक्त हो करने लगी, जिस प्रकार लक्ष्मीनारायण की सेवा करती हैं ॥ ७ ॥ एक समय जब वह सुस्मितभाषिणी गङ्गा स्नान करने जा रही थी तब माया से

चारुरत्नरथस्थश्च नानालङ्कारभूषितः । नवीनयौवनः श्रीमान् कामदेवसमप्रभः ॥ ९ ॥
दृष्ट्वा तां सुन्दरीं पद्मामुवाच स वृषो विभुः । विज्ञातुं भावमन्तःस्थं तस्याश्च मुनियोषितः ॥१०॥

धर्म उवाच

अयि सुन्दरि लक्ष्मीर्वै राजयोग्ये मनोहरे । अतीव यौवनस्थे च कामिनि स्थिरयौवने ॥११॥
जरातुरस्य वृद्धस्य पिप्पलादस्य वै मुनेः । सत्यं वदामि तन्वङ्गि समीपे नैव राजसे ॥१२॥
विप्रं तपःसु निरतं निर्घृणं मरणोन्मुखम् । त्यक्त्वा मां पश्य राजेन्द्रं रतिशूरं स्मारातुरम् ॥१३॥
प्राप्नोति सुन्दरी पुण्यात् सौन्दर्यं पूर्वजन्मनः । सफलं तद्भवेत् सर्वं रसिकालिङ्गनेन च ॥१४॥
सहस्रसुन्दरीकान्तं कामशास्त्रविशारदम् । किङ्करं कुरु मां कान्ते ! सम्परित्यज्य तं पतिम् ॥१५॥
निर्जने कानने रम्ये शैले शैले नदीतटे । विहरस्व मया सार्द्धं जन्मेदं सफलं कुरु ॥१६॥

वसिष्ठ उवाच

इत्येवमुक्तवन्तं सा स्वरथादवरुह्य च । ग्रहीतुमुत्सुकं हस्ते तमुवाच पतिव्रता ॥१७॥

पद्मोवाच

गच्छ दूरं गच्छ दूरं पापिष्ठस्त्वं नराधिप ! । मां चेत् पश्यसि कामेन सद्यो नष्टो भविष्यसि ॥१८॥
पिप्पलादं मुनिश्रेष्ठं तपसा पूतविग्रहम् । त्यक्त्वा कथं भजेयं त्वां स्त्रीजितं रतिलम्पटम् ॥१९॥
स्त्रीजितस्पर्शमात्रेण सर्वं पुण्यं प्रणश्यति । स्त्रीजितः परपापी च तद्दर्शनमघावहम् ॥२०॥
सत्क्रियो ह्यशुचिर्नित्यं स पुमान् यः स्त्रिया जितः । निन्दन्ति पितरो देवा मानवाः सकलाश्च तम् ॥२१॥

मनुष्य रूप धारण किये धर्मराज ने उसे रास्ते में देखा ॥ ८ ॥ वे अनेक प्रकार के अलङ्कारों से विभूषित हो अत्यन्त मनोहर रत्नों से जटित रथ पर बैठे हुए थे, उनका रूप नवयौवन से सम्पन्न एवं कामदेव के समान अत्यन्त कमनीय था ॥ ९ ॥ धर्म ने उस सुन्दरी मुनिपत्नी पद्मा को देखकर उसके अन्तःकरण का भाव जानने की इच्छा से कहा– ॥ १० ॥

धर्मराज बोले—हे सुन्दरि ! हे राजयोग्ये ! हे मनोहरे ! हे नवीन यौवन वाली, हे नित्य युवावस्था में रहने वाली ! हे कामिनि ! तुम तो साक्षात् लक्ष्मी हो ॥ ११ ॥ हे तन्वङ्गि ! मैं सत्य कहता हूँ, तुम जराग्रस्त इस जर्जर मुनि के समीप शोभित नहीं हो रही हो ॥ १२ ॥ तुम तपस्या में लगे हुए इस क्रोधी तथा मरणोन्मुख ब्राह्मण को त्यागकर मेरे पास आओ । मैं कामकला में निपुण एवं तुम्हारे लिए व्याकुल हो रहा हूँ ॥ १३ ॥ सुन्दरी स्त्री पूर्वजन्म के पुण्य के प्रभाव से सौन्दर्यातिशय को प्राप्त करती है किन्तु उस सौन्दर्य की सफलता तभी है जब कोई रसिक उसका आलिङ्गन करे ॥ १४ ॥ हे सुन्दरि ! ऐसे तो कामशास्त्र में निपुण मेरे सहस्रों स्त्रियाँ हैं, किन्तु हे कान्ते ! तुम इस जरा-जर्जर मुनि को छोड़कर मुझे अपना किङ्कर बनाओ ॥ १५ ॥ और निर्जन मनोहर वन में, पर्वत पर तथा नदी के तट पर जहाँ चाहो वहाँ मेरे साथ विहार कर अपना जन्म सफल करो ॥ १६ ॥

वसिष्ठ जी बोले—ऐसा कहकर वह धर्मराज ज्योंही रथ से उतर कर उस मुनि-पत्नी का हाथ पकड़ना ही चाहते थे कि उस पतिव्रता ने कहा– ॥ १७ ॥

पद्मा बोली—हे राजन् ! तुम तो बड़े पापी हो, शीघ्रता से दूर हटो, दूर हटो, यदि तुमने मेरी ओर सकाम दृष्टि से देखा तो शीघ्र ही नष्ट हो जाओगे ॥ १८ ॥ भला मैं तपस्या से पवित्र शरीर वाले उन महर्षि पिप्पलाद को छोड़कर परस्त्रीगामी एवं स्त्री के वश में रहने वाले तुम्हारे जैसे पुरुष को कैसे स्वीकार कर सकती हूँ ॥ १९ ॥ जो पुरुष स्त्री के वश में रहने वाला है उसके स्पर्शमात्र से सारा पुण्य नष्ट हो जाता है । स्त्रीजित् तथा दूसरे की हत्या करने वाले पापी का दर्शन भी पापकारी होता है ॥ २० ॥ जो पुरुष स्त्री के वश में रहने वाला है वह सत्कर्म में लगे रहने पर भी नित्य अपवित्र है, उस पुरुष की पितर,

तस्य किं ज्ञानसुतपोजपहोमप्रपूजनैः । विद्यया दानतः किं वा स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥२२॥
मातरं मां स्त्रियो भावं कृत्वा येन ब्रवीषि ह । भविष्यति क्षयस्तेन कालेन मम शापतः ॥२३॥

वसिष्ठ उवाच

श्रुत्वा धर्मः सतीशापं नृपमूर्तिं विहाय च । धृत्वा स्वमूर्तिं देवेशः कम्पमान उवाच सः ॥२४॥

धर्म उवाच

मातर्जानीहि मां धर्मं ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुम् । परस्त्रीमातृबुद्धिं च कुर्वन्तं सततं सति ॥२५॥
अहं तवान्तरं ज्ञातुमागतस्तव सन्निधिम् । तवाहं च मनो जाने तथापि विधिनोदितः ॥२६॥
कृतं मे दमनं साध्वि ! न विरुद्धं यथोचितम् । शास्तिः संमुत्पथस्थानामीश्वरेण विनिर्मिता ॥२७॥
स्वयं प्रदाता सर्वस्यः सुखदुःखवराग् क्षमः । सम्पदं विपदं यो हि नमस्तस्मै शिवाय हि ॥२८॥
शत्रुं मित्रं सम्विधातुं प्रीतिं च कलहं क्षमः । स्रष्टुं नष्टुं च यः सृष्टिं नमस्तस्मै शिवाय हि ॥२९॥
येन शुक्लीकृतं क्षीरं जले शैत्यं कृतं पुरा । दाहीकृतो हुताशश्च नमस्तस्मै शिवाय हि ॥३०॥
प्रकृतिर्निर्मिता येन तप्त्वातिमहदादितः । ब्रह्म-विष्णु-महेशाद्या नमस्तस्मै शिवाय हि ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा पुरतस्तस्यास्तस्थौ धर्मो जगद्गुरुः । किञ्चिन्नोवाच चकितस्तत्पातिव्रत्यतोषितः ॥३२॥
पद्माऽपि नृपकन्या सा पिप्पलादप्रिया तदा । साध्वी तं धर्ममाज्ञाय विस्मितोवाच पर्वत ॥३३॥

देवता तथा सभी मनुष्य निन्दा करते हैं ॥ २१ ॥ जिसका मन स्त्री में आसक्त है ऐसे स्त्रीजित् पुरुष के द्वारा किये गये ज्ञान, तप, जप, होम, पूजन, विद्या तथा दान सभी व्यर्थ हैं ॥ २२ ॥ तुमने माता के समान मुझ ऋषिपत्नी में स्त्री की भावना से जो इस प्रकार की बात कही है, इसलिए समय आने पर मेरे शाप से तू विनष्ट हो जायेगा ॥ २३ ॥

वसिष्ठ जी बोले—धर्मराज ने इस प्रकार सती पद्मा का शाप सुनते ही अपने राजा का वेष त्याग दिया और देवता का स्वरूप धारण कर वे देवेश काँपते हुए बोले ॥ २४ ॥

धर्मराज बोले—हे मातः ! मैं ज्ञानियों के गुरुओं का भी गुरु धर्म हूँ और पराई स्त्री में सर्वदा मातृ-बुद्धि रखने वाला हूँ ॥ २५ ॥ मैं तो तुम्हारे मनोभाव की परीक्षा लेने के लिए तुम्हारे पास आया था, और तुम्हारा सारा अभिप्राय जान लिया किन्तु हे साध्वि ! विधि का ऐसा विधान ही है, जो तुमने शाप देकर हमारा गर्व नष्ट किया, यह तो तुमने उचित ही किया, इसमें मुझे कोई विरोध नहीं है। इस प्रकार का शासन उन्मार्गगामियों के लिए ईश्वर द्वारा ही निर्मित है ॥ २६–२७ ॥ जो ईश्वर सबको सुख-दुःख देने में तथा उसे दूर करने में भी समर्थ हैं, और जो सबको कर्म के अनुसार सम्पत्ति तथा विपत्ति देते हैं उन शिव के निमित्त नमस्कार है ॥ २८ ॥ जो प्रभु शत्रु, मित्र, प्रीति, कलह का विधान करने में समर्थ हैं तथा जो इस सृष्टि का सृजन एवं संहार करने में समर्थ हैं उन प्रभु शिव को नमस्कार है ॥ २९ ॥ जिन्होंने दूध को शुक्ल वर्ण बनाया, जल में शैत्य गुण प्रदान किया और अग्नि में दाहकता-शक्ति प्रदान की उन शिव को नमस्कार है ॥ ३० ॥ जिन्होंने महदादि प्रकृति का निर्माण अत्यन्त दुष्कर तपस्या से किया एवं जिन्होंने ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश का निर्माण किया है, उस शिव को नमस्कार है ॥ ३१ ॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर जगद्गुरु धर्म उस पतिव्रता के आगे खड़े हो गये। वे उसके पातिव्रत्य धर्म से सन्तुष्ट हो आश्चर्य से चकित रह गये और कुछ भी न बोले ॥ ३२ ॥ [illegible] वह अनरण्य की कन्या जो महर्षि पिप्पलाद की साध्वी पत्नी थी, जिसका नाम पद्मा था, वह धर्म को जानकर विस्मित हो बोली ॥ ३३ ॥

पद्मोवाच

त्वमेव धर्म ! सर्वेषां साक्षी निखिलकर्मणाम् । कथं मनो मे विज्ञातुं विडम्बयसि मां विभो ! ॥३४॥
यत्तत्सर्वं कृतं ब्रह्मन् ! नापराधो बभूव मे । त्वं च शप्तो मयाऽज्ञानात् स्त्रीस्वभावाद् वृथा वृष ॥३५॥
का व्यवस्था भवेत्तस्य चिन्तयामीति साम्प्रतम् । चित्ते स्फुरतु सा बुद्धिर्यथा शं संलभामि वै ॥३६॥
आकाशोऽसौ दिशः सर्वा यदि नश्यन्तु वायवः । तथापि साध्वीशापस्तु न नश्यति कदाचन ॥३७॥
सत्ये पूर्णश्चतुष्पादः पौर्णमास्यां यथा शशी । विराजसे देवराज ! सर्वकालं दिवानिशम् ॥३८॥
त्वं च नष्टो भवसि चेत् सृष्टिनाशो भवेत्तदा । इतिकर्तव्यतामूढा वृथापि च वदाम्यहम् ॥३९॥
पादक्षयश्च भविता त्रेतायां च सुरोत्तम ! । पादोऽपरे द्वापरे च तृतीयोऽपि कलौ विभो ॥४०॥
कलिशेषेऽखिलाश्छिन्ना भविष्यन्ति तवाङ्घ्रयः । पुनः सत्ये समायाते परिपूर्णो भविष्यसि ॥४१॥
सत्ये सर्वव्यापकस्त्वं तदन्येषु च कुत्रचित् । युगव्यवस्थया स त्वं भविष्यसि यथा तथा ॥४२॥
इत्येवं वचनं सत्यं ममाऽस्तु सुखदं तव । याम्यहं पतिसेवायै गच्छ त्वं स्वगृहं विभो ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः सन्तुष्टोऽभूद् वृषः स वै । तदेवंवादिनीं साध्वीमुवाच विधिनन्दन ! ॥४४॥

धर्म उवाच

धन्याऽसि पतिभक्ताऽसि स्वस्ति तेऽस्तु पतिव्रते ! । वरं गृहाण त्वत्स्वामी त्वत्परित्राणकारणात् ॥४५॥
युवा भवतु ते भर्ता रतिशूरश्च धार्मिकः । रूपवान् गुणवान् वाग्मी सन्ततस्थिरयौवनः ॥४६॥

पद्मा बोली—हे धर्म, तुम ही सबके कर्मों के साक्षी हो, फिर तुमने मेरे मन का भाव जानने के लिए ऐसा कपट रूप क्यों धारण किया ॥ ३४ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह सब जो कुछ हुआ, उसमें मेरा अपराध ही क्या है, मैंने तुम्हें यह शाप अज्ञान से अथवा स्त्रीस्वभाव से व्यर्थ ही दिया है ॥ ३५ ॥ मैं इस समय इसी चिन्ता में हूँ कि इस शाप की क्या व्यवस्था होनी चाहिए, मेरे चित्त में अब इस प्रकार की बुद्धि स्फुरित हो, जिससे मुझे शान्ति प्राप्त हो ॥ ३६ ॥ आकाश, दिशाएँ तथा वायु भले ही नष्ट हो जायें किन्तु पतिव्रता का शाप कभी नष्ट नहीं होता ॥ ३७ ॥ हे देवराज ! आप सतयुग में अपने चारों पैरों से दिनरात चन्द्रमा के समान शोभित रहते हैं ॥ ३८ ॥ यदि उस काल में तुम नष्ट हो जाओगे तब तो सृष्टि का ही नाश हो जायेगा । कर्त्तव्यता में मूढ़ होकर क्या मैंने यह झूठा शाप दिया ॥३९॥ हे सुरोत्तम ! अब तुम मेरे शाप की व्यवस्था सुनो । त्रेतायुग में तुम्हारा एक पाद, द्वापर में दो पाद और कलि में तीन पाद नष्ट होगा ॥४०॥ और कलि के अन्त में तुम्हारे चारों पाद नष्ट हो जायेंगे । तदनन्तर तुम सतयुग आने पर पुनः पूर्ण हो जाओगे, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४१ ॥ सत्य में तुम सर्वव्यापक और अन्य युगों में कहीं-कहीं ही रहोगे, और कलि के अन्त में व्यवस्थानुसार तुम जैसे-तैसे घटते-बढ़ते रहोगे ॥ ४२ ॥ इस प्रकार की व्यवस्था से मेरी बात भी सत्य हो जायेगी और तुम भी जैसे-तैसे बने रहोगे । हे प्रभो ! अब मैं अपने पति की सेवा के लिए जा रही हूँ और तुम भी अपने घर जाओ ॥ ४३ ॥

ब्रह्माजी बोले—पद्मा के वचन सुन धर्मराज अत्यन्त प्रसन्न हो गये । तदनन्तर इस प्रकार कहने वाली उस साध्वी पद्मा से बोले ॥ ४४ ॥

धर्म ने कहा—हे पतिव्रते ! तुम पतिभक्ता होने से धन्य हो, तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारा स्वामी तुम्हारी रक्षा करने के कारण मुझसे वर ग्रहण करे ॥ ४५ ॥ तुम्हारा स्वामी युवावस्था को प्राप्त कर रति में शूर, धार्मिक, रूपवान्, गुणवान् एवं वक्ता हो और उसकी जवानी नित्य बनी रहे ॥ ४६ ॥

चिरञ्जीवी स भवतु मार्कण्डेयात् परः शुभे ! । कुबेराद्धनवाँश्चैव शक्रादैश्वर्यवानपि ॥४७॥
शिवभक्तो हरिसमः सिद्धस्तु कपिलात्परः । बुद्ध्या बृहस्पतिसमः समत्वेन विधेः समः ॥४८॥
स्वामिसौभाग्यसंयुक्ता भव त्वं जीवनावधि । तथा च सुभगे देवि! त्वं भव स्थिरयौवना ॥४९॥
माता त्वं दशपुत्राणां गुणिनां चिरजीविनाम् । स्वभर्त्तुरधिकानां च भविष्यसि न संशयः ॥५०॥
गृहा भवन्तु ते साध्वि! सर्वसम्पत्समन्विताः । प्रकाशवन्तः सततं कुबेरभवनाधिकाः ॥५१॥

वसिष्ठ उवाच

इत्येवमुक्त्वा सन्तस्थौ धर्मः स गिरिसत्तम ! । सा तं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य स्वगृहं ययौ ॥५२॥
धर्मस्तथाऽऽशिषो दत्वा जगाम निजमन्दिरम् । प्रशशंस च तां प्रीत्या पद्मां संसदि संसदि ॥५३॥
सा रेमे स्वामिना सार्द्धं यूना रहसि सन्ततम् । पश्चाद् बभूवुः सत्पुत्रास्तद्भर्तुरधिका गुणैः ॥५४॥
बभूव सकला सम्पद् दम्पत्योः सुखवर्द्धिनी । सर्वानन्दवृद्धिकरी परत्रेह च शर्मणे ॥५५॥
शैलेन्द्र कथितं सर्वमितिहासं पुरातनम् । दम्पत्योश्च तयोः प्रीत्या श्रुतं ते परमादरात् ॥५६॥
बुद्ध्वा तत्त्वं सुतां देहि पार्वतीमीश्वराय च । कुरुषं त्यज शैलेन्द्र मेनया स्वप्रिया सह ॥५७॥
सप्ताहे समतीते तु दुर्लभेऽतिशुभे क्षणे । लग्नाधिपे च लग्नस्थे चन्द्रे स्वतनयान्विते ॥५८॥
मुदिते रोहिणीयुक्ते विशुद्धे चन्द्रतारके । मार्गमासे चन्द्रवारे सर्वदोषविवर्जिते ॥५९॥
सर्वसद्ग्रहसंसृष्टेऽसद्ग्रहदृष्टिवर्जिते । सदपत्यप्रदे जीवे पतिसौभाग्यदायिनि ॥६०॥

हे शुभे ! यह मार्कण्डेय से भी बढ़कर चिरञ्जीवी हो, कुबेर से भी अधिक धनवान् तथा इन्द्र से भी अधिक ऐश्वर्यशाली रहे ॥ ४७ ॥ यह विष्णु के समान शिवभक्त, कपिल के समान सिद्ध, बुद्धि में बृहस्पति के समान बुद्धिमान् तथा समदर्शिता में ब्रह्मदेव के समान हो ॥ ४८ ॥ तुम जीवन पर्यन्त स्वामी के सौभाग्य से संयुक्त रहो। और हे सौभाग्यवती देवि ! तुम्हारा भी यौवन स्थिर रहे ॥ ४९ ॥ तुम्हारे पति से भी अधिक चिरञ्जीवि एवं गुणवान् तुमको दश पुत्र हों इसमें सन्देह नहीं ॥५०॥ हे साध्वि ! तुम्हारे घर नाना प्रकार की सम्पत्ति से पूर्ण रहेंगे, तुम्हारे घर में निरन्तर प्रकाश रहेगा तथा वे कुबेर के भवन से भी श्रेष्ठ होंगे ॥ ५१ ॥

वसिष्ठ जी बोले—हे गिरिराज ! ऐसा कहकर धर्मराज चुप होकर खड़े हो गये। और पद्मा भी धर्म की प्रदक्षिणा कर अपने घर चली आयी ॥ ५२ ॥ धर्म भी पद्मा को आशीर्वाद देकर अपने घर गये, और वे अपने प्रत्येक सभाओं में पद्मा की प्रशंसा करने लगे ॥ ५३ ॥ इधर वह पद्मा भी अपने युवा स्वामी से नित्य रमण करने लगी। तदनन्तर उसके पति की अपेक्षा अत्यन्त गुणवान् दश पुत्र हुए ॥ ५४ ॥ स्त्री एवं पुरुषों को सुख देने वाली सारी सम्पत्ति उनके पास हो गयी, जो उनको समस्त आनन्द देनेवाली तथा इस लोक एवं परलोक में कल्याणकारिणी हुई ॥ ५५ ॥ हे शैलेन्द्र ! यह सारा पुरातन इतिहास हमने तुमसे वर्णन किया। और इन दोनों स्त्री-पुरुषों का चरित्र तुमने आदर पूर्वक सुना ॥ ५६ ॥ अतः तुम भी इस चरित्र को जानकर अपनी कन्या शिव को प्रदान करो। और अपनी स्त्री मेना के सहित अपना हठ छोड़ दो ॥५७॥ एक सप्ताह बीतने पर एक उत्तम शुभयोग आ रहा है जो सर्वथा दुर्लभ है। उस शुभ लग्न में लग्न का मालिक स्वयं अपने घर में स्थित है और चन्द्रमा भी बुध के साथ स्थित रहेगा ॥ ५८ ॥ चन्द्रमा रोहिणी से युक्त होगा इसलिए चन्द्र तथा तारागणों का योग भी उत्तम है। एक तो मार्गशीर्ष का महीना, उसमें भी सर्वदोष विवर्जित चन्द्रवार का दिन अत्यन्त उत्तम है ॥ ५९ ॥ वह लग्न सभी उत्तम ग्रहों से दृष्ट तथा नीच ग्रहों की दृष्टि से रहित है। उस शुभ लग्न में बृहस्पति उत्तम सन्तान

जगदम्बां जगत्पित्रे मूलप्रकृतिमीश्वरीम् । कन्यां प्रदाय गिरिजां कृती त्वं भव पर्वत ! ॥६१॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलो वसिष्ठो ज्ञानिसत्तमः । विरराम शिवं स्मृत्वा नानालीलाकरं प्रभुम् ॥६२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे पद्मापिप्पलाद-चरितवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

(हिमालय को विवाह स्वीकृत कर सप्तर्षियों का अपने घर जाना)

ब्रह्मोवाच

वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा सगणोऽपि हिमालयः । विस्मितो भार्यया शैलानुवाच स गिरीश्वरः॥ १ ॥

हिमालय उवाच

हे मेरो गिरिराट् सह्य गन्धमादन मन्दर ! । मैनाक विन्ध्य शैलेन्द्राः सर्वे श्रृणुत मद्वचः॥ २ ॥
वसिष्ठो हि वदत्येवं किं मे कार्यं विचार्यते । यथा तथा च शंसध्वं निर्णीय मनसाऽखिलम् ॥ ३ ॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सुमेरुप्रमुखाश्च ते । प्रोचुर्हिमालयं प्रीत्या सुनिर्णीय महीधराः ॥ ४ ॥

शैला ऊचुः

अधुना किं विमर्शेन कृतं कार्यं तथैव हि । उत्पन्नेयं महाभाग देवकार्यार्थमेव हि ॥ ५ ॥
प्रदातव्या शिवायेति शिवस्यार्थेऽवतारिणी । अनयाऽऽराधितो रुद्रो रुद्रेण यदि भाषिता ॥ ६ ॥

तथा पति का सौभाग्य प्रदान करने वाले हैं ॥ ६० ॥ इसलिए ऐसे शुभ लग्न में तुम अपनी कन्या मूल प्रकृतिरूपा ईश्वरी जगदम्बा को शिव के निमित्त प्रदान करो, ऐसा करने से हे गिरिराज, आप कृतकार्य हो जायेंगे ॥ ६१ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! इतना कहकर ज्ञानियों में श्रेष्ठ मुनिशार्दूल वसिष्ठ जी, नाना लीला-विशारद प्रभु शिव का स्मरण कर मौन हो गये ॥ ६२ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में पद्मा-पिप्पलाद-चरितवर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३५ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—वसिष्ठ जी की बात सुनकर अपने गणों एवं भार्या सहित विस्मित हो पर्वतों से कहने लगे ॥ १ ॥

हिमालय बोले—हे गिरिराज सुमेरु, हे सह्य, हे गन्धमादन, हे मैनाक ! हे मन्दर एवं शैलेन्द्रो तथा विन्ध्य पर्वत, आप सभी मेरी बात सुनो ॥ २ ॥ वसिष्ठ जी तो शिव से विवाह करने की बात कहते हैं, अब मुझे कैसा विचार करना चाहिए, इस विषय में आप लोग विचार कर मन से निर्णय कीजिए ॥ ३ ॥

ब्रह्माजी बोले—हिमालय की बात सुनकर सुमेरु प्रभृति सभी महीधरों ने निर्णय कर प्रेम से कहने लगे ॥ ४ ॥

पर्वतों ने कहा—हे महाभाग ! अब बहुत विचार करने की आवश्यकता नहीं है, जब यह देवकार्य के निमित्त उत्पन्न हुई है तब वैसा करने से ही कल्याण होगा ॥ ५ ॥ इसका अवतार ही जब शिव के लिए हुआ है तब इसे शिव को देना ही चाहिए। इसने स्वयं रुद्र की आराधना की है तथा इसकी बातचीत भी रुद्र से हो चुकी है ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां मेर्वादीनां हिमाचलः। सुप्रसन्नतरोऽभूद् वै जहास गिरिजा हृदि ॥ ७॥
अरुन्धती च तां मेनां बोधयामास कारणात्। नानावाक्यसमूहैनेतिहासैर्विविधैरपि ॥ ८॥
अथ सा मेनका शैलपत्नी बुद्ध्वा प्रसन्नधीः। मुनीनरुन्धतीं शैलं भोजयित्वा बुभोज च ॥ ९॥
अथ शैलवरो ज्ञानी सुसंसेव्य मुनींश्च ताम्। उवाच साञ्जलिः प्रीत्या प्रसन्नात्मागतभ्रमः॥१०॥

हिमालय उवाच

सप्तर्षयो महाभागा वचः शृणुत मामकम्। विस्मयो मे गतः सर्वः शिवयोश्चरितं श्रुतम् ॥११॥
मदीयं च शरीरं वै पत्नी मेना सुता सुताः। ऋद्धि-सिद्धिश्च चाऽन्यद्वै शिवस्यैव न चान्यथा ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा स तदा पुत्रीं दृष्ट्वा तत्सादरं च ताम्। भूषयित्वा तदङ्गानि ऋष्युत्सङ्गे न्यवेशयेत् ॥१३॥
उवाच च पुनः प्रीत्या शैलराज ऋषींस्तदा। अयं भागो मया तस्मै दातव्य इति निश्चितम् ॥१४॥

ऋषय ऊचुः

शङ्करो भिक्षुकस्तेऽथ स्वयं दाता भवान् गिरे। भक्ष्यं च पार्वती देवी किमतः परमुत्तमम् ॥१५॥
हिमवन् शिखराणां ते यद्धेतोः सदृशी गतिः। धन्यस्त्वं सर्वशैलानामधिपः सर्वतो वरः ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु कन्यायै मुनयो विमलाशयाः। आशिषं दत्तवन्तस्ते शिवाय सुखदा भव ॥१७॥
स्पृष्ट्वा करेण तां तत्र कल्याणं ते भविष्यति। शुक्लपक्षे तथा चन्द्रो वर्द्धन्तां त्वद्गुणास्तथा ॥१८॥

ब्रह्माजी बोले—मेरु आदि पर्वतों के वचन सुनकर हिमालय को बड़ी प्रसन्नता हुई। और गिरिजा मन में हँसने लगीं ॥ ७ ॥ अरुन्धती ने भी शिव-पार्वती के विवाह के लिए अनेक प्रकार की युक्तियाँ तथा नाना प्रकार के अनेक इतिहासों से मेना को समझाया ॥ ८ ॥ तब शैलपत्नी मेनका सारा रहस्य समझकर प्रसन्न हो गयी, उसने सप्तर्षियों, अरुन्धती तथा शैलराज हिमालय को भोजन कराकर स्वयं भोजन किया ॥ ९ ॥ फिर ज्ञान को प्राप्त हुए शैलराज ने सभी सप्तर्षियों की सेवा की। फिर भ्रमरहित हो हाथ जोड़कर प्रेम से बोले ॥ १० ॥

हिमालय ने कहा—हे महाभाग्यवान् सप्तर्षिगण, आप सब मेरी बात सुनें, मैंने शिव का सारा चरित्र सुना, जिससे मेरा मन सन्देह रहित हो गया ॥ ११ ॥ मेरा यह शरीर, पत्नी मेना, सभी पुत्र, सब राजपाट तथा अन्य जो कुछ भी मेरे पास है वह शिव का ही है और दूसरे का नहीं ॥ १२ ॥

ब्रह्माजी बोले—हिमालय ने उन ऋषियों से ऐसा कह पार्वती की ओर आदर से देख, उसे वस्त्रादि से सुसज्जित कर ऋषि की गोद में बैठा दिया ॥ १३ ॥ और प्रेम से उन ऋषियों से बोले--मुझे शङ्कर का यह भाग उन्हें अवश्य देना है ऐसा मेरा निश्चय है ॥ १४ ॥

ऋषिगण बोले--हे गिरे! शङ्कर ग्रहीता होने से भिक्षुक हैं और तुम कन्यादान देने के कारण दाता हो, और यह पार्वती भिक्षा है, अब इससे बढ़कर श्रेष्ठ बात क्या होगी ॥ १५ ॥ हे हिमवन्! जिस प्रकार सभी शिखरों से ऊँचे होने के कारण तुम्हारे शिखरों की श्रेष्ठता है, उसी प्रकार तुम भी सम्पूर्ण शैलों के अधिपति होने के कारण सबसे श्रेष्ठ हो ॥ १६ ॥

ब्रह्माजी बोले—विशुद्ध अन्तःकरण वाले मुनियों ने हिमालय से ऐसा कहकर पार्वती को आशीर्वाद दिया कि शिव को सुख देनेवाली बनो ॥ १७ ॥ और हाथ से स्पर्श करते हुए कहा कि तुम्हारा कल्याण हो, और जिस प्रकार शुक्लपक्ष का चन्द्रमा बढ़ता है, उसी प्रकार तुममें नित्य गुणों की वृद्धि हो ॥ १८ ॥

इत्युक्त्वा मुनयः सर्वे दत्त्वा ते गिरये मुदा । पुष्पाणि फलयुक्तानि प्रत्ययं चक्रिरे तदा ॥१९॥
अरुन्धती तदा तत्र मेनां सा सुमुखी मुदा । गुणैश्च लोभयामास शिवस्य परमा सती ॥२०॥
हरिद्राकुङ्कुमैः शैलश्मश्रूणि प्रत्यमार्जयत् । लौकिकाचारमाधाय मङ्गलायनमुत्तमम् ॥२१॥
ततश्च ते चतुर्थेऽह्नि सन्धार्य्य लग्नमुत्तमम् । परस्परं च सन्तुष्य सञ्जग्मुः शैवसन्निधिम् ॥२२॥
तत्र गत्वा शिवं नत्वा स्तुत्वा विविधसूक्तिभिः । ऊचुः सर्वे वसिष्ठाद्या मुनयः परमेश्वरम् ॥२३॥

ऋषय ऊचुः

देवदेव महादेव परमेश महाप्रभो ! । शृण्वस्मद्वचनं प्रीत्या यत्कृतं सेवकैस्तव ॥२४॥
बोधितो गिरिराजश्च मेना विविधसूक्तिभिः । सेतिहासं महेशान प्रबुद्धोऽसौ न संशयः ॥२५॥
वाक्यदत्ता गिरीन्द्रेण पार्वती ते हि नान्यथा । उद्वाहाय प्रगच्छ त्वं गणैर्देवैश्च संयुतः ॥२६॥
गच्छ शीघ्रं महादेव ! हिमाचलगृहं प्रभो । विवाहय यथारीतिः पार्वतीमात्मजन्मने ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां लौकिकाचारतत्परः । प्रहृष्टात्मा महेशानः प्रहस्येदमुवाच सः ॥२८॥

महेश उवाच

विवाहो हि महाभागा न दृष्टो न श्रुतो मया । यथा पुरा भवद्भिस्तद्विधिः प्रोच्यो विशेषतः ॥२९॥

ब्रह्मोवाच

तदाकर्ण्य महेशस्य लौकिकं वचनं शुभम् । प्रत्यूचुः प्रहसन्तस्ते देवदेवं सदाशिवम् ॥३०॥

इतना आशीर्वाद देने के बाद उन मुनियों ने हिमालय को आशीर्वाद रूप में पुष्प तथा फल अर्पित किया और विश्वास उत्पन्न कराया ॥ १९ ॥ इधर सुमुखी परम पतिव्रता अरुन्धती ने शिव के गुणों का बखान कर मेना को लुभाया ॥ २० ॥ और शैलराज की दाढ़ी में हरिद्रा तथा कुंकुम लगाकर लौकिकाचार पूर्वक सारा मङ्गल किया ॥ २१ ॥ उस दिन से चौथे दिन लग्न का निश्चय कर परस्पर सन्तुष्ट हो शिव के समीप गये ॥ २२ ॥ तदनन्तर शिवजी को प्रणाम कर अनेक सूक्तों से उनकी स्तुति कर वे परमेश्वर शिव से कहने लगे ॥ २३ ॥

ऋषिगणों ने कहा—हे देवदेव ! हे महादेव ! हे परमेश्वर ! हे महाप्रभो ! हम सेवकों ने जो किया है वह सारा वृत्तान्त प्रेम से सुनो ॥ २४ ॥ हे महेशान ! हम लोगोंने अनेक प्रकार के नीति वचनों से तथा नाना प्रकार के इतिहास कहकर पर्वतराज हिमालय तथा मेना को बहुत समझाया जिससे सारी बात वे समझ गये, अब उन्हें किसी प्रकार का सन्देह नहीं रहा ॥२५॥ गिरीन्द्र ने वाग्दान देकर प्रतिज्ञा की है कि यह पार्वती आपकी है। अब आप अपने गणों तथा देवताओं को लेकर विवाह के लिए चलें ॥ २६ ॥ हे महादेव ! हे प्रभो ! आप शीघ्रता से विवाह के लिए हिमालय के घर चलिए तथा सन्तान-उत्पादन के लिए पार्वती से विवाह कीजिए ॥ २७ ॥

ब्रह्माजी बोले—सप्तर्षियों की बात सुनकर शिवजी प्रसन्न हो गये और लौकिकाचार में तत्पर होकर हँसते हुए इस प्रकार कहने लगे ॥ २८ ॥

शिवजी बोले—हे महाभाग ! हमने तो न किसी का विवाह देखा और न सुना, आप लोग ही जैसी विधि देखे तथा सुने हैं वैसा करें ॥ २९ ॥

ब्रह्माजी बोले—शिव के इस प्रकार वचन सुनकर सप्तर्षिगण देवाधिदेव महादेव से कहने लगे ॥३०॥

ऋषय ऊचुः

विष्णुमाहूय वै शीघ्रं ससमाजं विशेषतः । ब्रह्माणं ससुतं प्रीत्या तथा देवं शतक्रतुम् ॥३१॥
तथा ऋषिगणान् सर्वान् यक्ष-गन्धर्व-किन्नरान् । सिद्धान् विद्याधरांश्चैव तथा चैवाऽप्सरोगणान् ॥३२॥
एतांश्चान्यान् प्रभो सर्वानानयस्वेह सादरम् । सर्वे संसाधयिष्यन्ति त्वत्कार्यं ते न संशयः ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा सप्त ऋषयस्तदाज्ञां प्राप्य ते मुदा । स्वधाम प्रययुः सर्वे शंसन्तः शाङ्करीं गतिम् ॥३४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
सप्तऋषिवचनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

(शिव के समीप लग्नपत्रिका भेजना और पर्वतों का आगमन)

नारद उवाच

तात प्राज्ञ वदेदानीं सप्तर्षिषु गतेषु च । किमकार्षीद्धिमगिरिस्तन्मे कृत्वा कृपां प्रभो ! ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

गतेषु तेषु मुनिषु सप्तस्वपि मुनीश्वर ! । सारुन्धतीषु हिमवान् यदाकार्षीद् ब्रवीमि ते ॥ २ ॥
तत आमन्त्र्य स्वभ्रातॄन् मेर्वादीन् ससुतप्रियः । महामनाः स मुमुदे हिमवान् पर्वतेश्वरः ॥ ३ ॥
तदाज्ञप्तस्ततः प्रीत्या हिमवान् लग्नपत्रिकाम् । लेखयामास सुप्रीत्या गर्गेण स्वपुरोधसा ॥ ४ ॥
अथ प्रस्थापयामास तां शिवाय स पत्रिकाम् । नानाविधास्तु सामग्र्यः स्वजनैर्मुदितात्मभिः ॥ ५ ॥
ते जनास्तत्र गत्वा च कैलासे शिवसन्निधिम् । ददुः शिवाय तत्पत्रं तिलकं सम्विधाय च ॥ ६ ॥

ऋषिगण बोले—आप समाज सहित विष्णु को विशेष रूप से एवं पुत्र सहित ब्रह्मदेव को तथा शतक्रतु इन्द्र को शीघ्रता से बुलाइए ॥ ३१ ॥ इसी प्रकार सभी ऋषियों को, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, विद्याधर, अप्सरा तथा अन्य लोगों को आदर पूर्वक बुलाइए, वे सब आकर आपका कार्य सिद्ध करेंगे इसमें संशय नहीं ॥ ३२-३३ ॥

ब्रह्माजी बोले—सप्तर्षि गण महादेव से इस प्रकार का वचन कह प्रसन्नता से उनकी आज्ञा ले शिव-महिमा का वर्णन करते हुए अपने-अपने स्थानों को चले गये ॥ ३४ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के
तृतीय-पार्वतीखण्ड में सप्तर्षिवचन नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३६ ॥

*

नारद जी बोले—हे तात, हे महाप्राज्ञ ! अब आप हमें कृपाकर बताइए कि सप्तर्षिगणों के चले जाने पर हिमवान् ने क्या किया ? ॥ १ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर ! अरुन्धती सहित उन सातों ऋषियों के चले जाने के बाद हिमालय ने जो किया उसे मैं कहता हूँ ॥ २ ॥ सप्तर्षियों के चले जाने के बाद गिरिराज, महामनस्वी हिमालय अपने मेरु आदि भाइयों की सम्मति प्राप्त कर बड़े प्रसन्न हुए, क्योंकि पार्वती उन्हें बहुत प्यारी थीं ॥ ३ ॥ अपने भाइयों तथा पुत्रों की आज्ञा लेने के अनन्तर हिमवान् ने बड़े प्रेम के साथ पुरोहित गर्गाचार्य से लग्नपत्रिका लिखवायी ॥ ४ ॥ और उस लग्नपत्रिका को अनेक प्रकार की सामग्री से युक्त कर अपने हर्षित हुए जनों के साथ शिव के पास भेज दिया ॥ ५ ॥ उन लोगों ने कैलास पर शिवजी के समीप जाकर

सम्मानिता विशेषेण प्रभुणा च यथोचितम् । सर्वे ते प्रीतिमनस आजग्मुः शैलसन्निधिम् ॥ ७ ॥
सम्मानितान् विशेषेण महेशेनागतान् जनान् । दृष्ट्वा सुहर्षितांच्छैलो मुमोदातीव चेतसि ॥ ८ ॥
ततो निमन्त्रणं चक्रे स्वबन्धूनां प्रमोदितः । नानादेशस्थितानां च निखिलानां सुखास्पदम् ॥ ९ ॥
ततः स कारयामास स्वर्णसंग्रहमादरात् । नानाविधाश्च सामग्रीर्विवाहकरणोचिताः ॥ १० ॥
तण्डुलानां बहूञ्छैलान् पृथुकानां तथैव च । गुडानां शर्कराणां च लवणानां तथैव च ॥ ११ ॥
क्षीराणां च घृतानां च दध्नां वापीश्चकार सः । यवादिधान्यपिष्टानां लड्डुकानां तथैव च ॥ १२ ॥
शष्कुलीनां स्वस्तिकानां शर्कराणां तथैव च । अमृतेक्षुरसानां च तत्र वापीश्चकार सः ॥ १३ ॥
वह्वीर्हैयङ्गवानां च ह्यासवानां तथैव च । नानापक्वान्नसङ्घांश्च महास्वादुरसाँस्तथा ॥ १४ ॥
नानाव्यञ्जनवस्तूनि गणदेवहितानि च । अमूल्यनानावस्त्राणि वह्निशौचानि यानि च ॥ १५ ॥
मणिरत्नप्रकाराणि सुवर्णरजतानि च । द्रव्याण्येतानि चान्यानि संगृह्य विधिपूर्वकम् ॥ १६ ॥
मङ्गलं कर्तुमारेभे गिरिमङ्गलकृद्दिने । संस्कारं कारयामासुः पार्वत्याः पर्वतस्त्रियः ॥ १७ ॥
ता मङ्गलं मुदा चक्रुर्भूषिता भूषणैः स्वयम् । पुरद्विजस्त्रियो हृष्टा लोकाचारं प्रचक्रिरे ॥ १८ ॥
सोत्सवं विविधं तत्र सुमङ्गलपुरःसरम् । हिमालयोऽपि हृष्टात्मा कृत्वाचारं सुमङ्गलम् ॥ १९ ॥
सर्वभावेन सुप्रीतो बन्धुवर्गागमोत्सुकः । एतस्मिन्नन्तरे तस्य बान्धवाश्च निमन्त्रिताः ॥ २० ॥
आजग्मुः सस्त्रियो हृष्टाः ससुताः सपरिच्छदाः । तदैव शृणु देवर्षे ! गिर्य्यागमनमादृतः ॥ २१ ॥
वर्णयामि समासेन शिवप्रीतिविवृद्धये । देवालयगिरिर्यो हि दिव्यरूपधरो महान् ॥ २२ ॥
नानारत्नपरिभ्राजत् समाजः सपरिच्छदः । नानामणिमहारत्नसारमादाय यत्नतः ॥ २३ ॥

उनका तिलक किया । तदनन्तर लग्नपत्रिका दी ॥ ६ ॥ भगवान् सदाशिव ने उन लोगों का विशेष सम्मान किया । उस सम्मान से अत्यन्त प्रसन्न हुए, वे सभी लोग हिमालय के समीप लौट आये ॥ ७ ॥ हिमालय भी महेश्वर के द्वारा सम्मानित हुए जनों को देखकर चित्त में अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥ फिर उन्होंने नाना देशों में स्थित हुए अपने सगे-सम्बन्धियों को बड़े प्रेम के साथ सुखदायक निमन्त्रण पत्र भेजा ॥ ९ ॥ और आदर से स्वर्णसंग्रह तथा नाना प्रकार की विवाह-सामग्री, जो विवाह के लिए उपयोगी थी, एकत्रित की ॥ १० ॥ उन्होंने चावल, चिउड़ा, गुड़, शर्करा तथा नमक का पहाड़ लगवा दिया ॥ ११ ॥ दूध, घी, दही की वापी बनवाकर उसमें अत्यधिक मात्रा में भरवा दिया । जव आदि का आटा, लड्डू, पूड़ी, स्वस्तिका (जलेवी), शर्करा, अमृत के समान स्वादिष्ट इक्षुरस की वापी बनवा दी ॥१२–१३॥ मक्खन, आसवों का समूह एवं महास्वादिष्ट पक्वान्नों एवं रसों का ढेर लगवा दिया ॥ १४ ॥

शिवजी के गणों तथा देवताओं के लिए हितकारक अनेक प्रकार की व्यंजन वस्तुएँ तथा अग्नि से पवित्र नाना प्रकार के बहुमूल्य वस्त्र, नाना प्रकार की मणियाँ, रत्न, सुवर्ण तथा रजत आदि को अनेक यत्न से एकत्रित किया ॥ १५-१६ ॥ फिर गिरिराज ने मङ्गलदायक दिन में मङ्गलाचार प्रारम्भ किया । इधर पर्वतराज की स्त्रियाँ पार्वती का संस्कार करने लगीं ॥ १७ ॥ स्वयं नाना प्रकार के आभूषणों से भूषित हुई नगर की रहने वाली ब्राह्मणी स्त्रियों ने पार्वती को मङ्गल द्रव्यों से सजाकर लोकाचार किया ॥ १८ ॥ हिमालय के घर में मङ्गलपूर्वक नाना प्रकार के उत्सव होने लगे । हिमालय भी प्रसन्न होकर श्रद्धा-प्रेम के साथ समस्त मङ्गलाचार कर बन्धुवर्गों के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे । इसी बीच निमन्त्रित हुए सभी वन्धुवर्ग भूषण तथा वस्त्रों से सुसज्जित हो अपने स्त्रियों, पुत्रों तथा सेवकों के सहित वहाँ आ गये । हे देवर्षे ! अव उन पर्वतों का आगमन आदरपूर्वक सुनो ॥ १९-२१ ॥ मैं शिव की प्रीति बढ़ाने के निमित्त इनका आगमन संक्षेप में वर्णन करता हूँ । सर्वप्रथम वहाँ पर सर्वश्रेष्ठ देवालय नामक पर्वत दिव्यरूप धारण कर नाना प्रकार के रत्नों से देदीप्यमान अपने समाज तथा कुटुम्ब के साथ आये,

सुवेषालङ्कृतः श्रीमान् जगाम स हिमालयम् । मन्दरः सर्वशोभाढ्यः सनारीतनयो गिरिः ॥२४॥
सूपायनानि सङ्गृह्य जगाम विविधानि च । अस्ताचलोऽपि दिव्यात्मा सोपायन उदारधीः॥२५॥
बहुशोभासमायुक्त आजगाम मुदान्वितः । उदयाचल आदाय सद्रत्नानि मणीनपि ॥२६॥
अत्युत्कृष्टपरीवार आजगाम महासुखी । मलयो गिरिराजो हि सपरीवार आदृतः ॥२७॥
सुदिव्यरचनायुक्त आययौ बहुसद्बलः । सह्यो दर्दुरनामा च मुदितः सकलत्रकः ॥२८॥
बहुशोभान्वितस्तात ययौ हिमगिरेर्गृहम् । निषधोऽपि प्रहृष्टात्मा सपरिच्छद आययौ ॥२९॥
ससुतस्त्रीगणः प्रीत्या ययौ हिमगिरेर्गृहम् । आजगाम महाभाग्यो भूधरो गन्धमादनः ॥३०॥
करवीरस्तथैवापि महाविभवसंयुतः । महेन्द्रः पर्वतश्रेष्ठ आजगाम हिमालयम् ॥३१॥
सगणः ससुतस्त्रीको बहुशोभासमन्वितः । पारियात्रो हि हृष्टात्मा मणिरत्नाकरैर्युतः ॥३२॥
सगणः सपरीवार आययौ हिमभूधरम् । क्रौञ्चः पर्वतराजो हि महाबलपरिच्छदः ।
आजगाम गिरिश्रेष्ठः समुपायन आदृतः ॥३३॥
पुरुषोत्तमशैलोऽपि सपरिच्छद आदृतः । महोपायनमादायाजगाम हिमभूधरम् ॥३४॥
नीलः सलीलः ससुतः सस्त्रीको द्रव्यसंयुतः । आजगाम हिमागस्य गृहमानन्दसंयुतः ॥३५॥
त्रिकूटश्चित्रकूटोऽपि वेङ्कटः श्रीगिरिस्तथा । गोकामुखी नारदश्च हिमगेहमुपागमत् ॥३६॥
विन्ध्यश्च पर्वतश्रेष्ठो नानासम्पत्समन्वितः । आजगाम प्रहृष्टात्मा सदारतनयः शुभः ॥३७॥
कालञ्जरो महाशैलो बहुहर्षसमन्वितः । बहुभः सगणः प्रीत्याऽऽजगाम हिमभूधरम् ॥३८॥

उनके पास अनेक मणियों तथा रत्नों के सार थे ॥ २२-२३ ॥ सम्पूर्ण शोभा से संयुक्त मन्दर सुवेष से अलंकृत हो अपनी स्त्री तथा पुत्रों के सहित हिमालय के पास गये ॥ २४ ॥ और अस्ताचल पर्वत भी विविध प्रकार की भेंट-सामग्री लेकर उदार बुद्धि से हिमालय के निकट आये ॥ २५ ॥ अनेक प्रकार की शोभा एवं हर्षोल्लास से युक्त उदयाचल भी सर्वोत्तम रत्न तथा मणियों को लेकर आये ॥ २६ ॥ उत्तम परिवार तथा सुखी मलयाचल भी आदर से हिमालय के यहाँ गये ॥२७॥ सह्य तथा दर्दुर नामक पर्वत भी प्रसन्न हो अपनी स्त्री के साथ भरपूर सेना लेकर आ गये ॥ २८ ॥ नाना प्रकार की शोभा सहित प्रसन्न हुए निषद पर्वत भी अपने परिवारों के साथ हिमालय के घर पहुँचे ॥ २९ ॥ इसी प्रकार गन्धमादन पर्वत भी पुत्र तथा स्त्रियों के साथ प्रसन्नता से हिमालय के घर आये ॥ ३० ॥ महा ऐश्वर्य-सम्पन्न करवीर तथा पर्वतश्रेष्ठ महेन्द्र भी हिमालय के घर पहुँचे ॥ ३१ ॥

नाना प्रकार के शोभासम्पन्न परम हर्षित पारियात्र भी अपने गणों, पुत्रों एवं स्त्रियों को साथ ले मणि तथा रत्नों की खान ले हिमालय के पास गये ॥ ३२ ॥ पर्वतराज क्रौञ्च, अपनी सेना के साथ, अपने पुत्र, स्त्री तथा परिवार सहित प्रसन्न हो भेंट-सामग्री से युक्त हिमालय के घर गये ॥ ३३ ॥ पुरुषोत्तम पर्वत भी अपने समाज सहित बड़े आदर के साथ बहुत-सी सामग्री लेकर हिमालय के पास आये ॥ ३४ ॥ नील पर्वत भी, अपनी स्त्री, पुत्र के साथ बहुत-सा द्रव्य लेकर हिमालय के पास आया ॥ ३५ ॥ त्रिकूट, वेंकट, श्रीगिरि, गोकामुखी तथा नारद पर्वत भी हिमालय के घर आये ॥ ३६ ॥ पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्य पर्वत भी अपने स्त्री-पुत्रों के सहित नाना प्रकार की सम्पत्ति लेकर हिमालय के घर आये ॥ ३७ ॥ महाशैल कालिञ्जर अत्यन्त प्रसन्न हो अपने गण तथा सम्पत्ति के साथ हिमालय के घर आये ॥ ३८ ॥

कैलासस्तु महाशैलो महाहर्षसमन्वितः । आजगाम कृपां कृत्वा सर्वोपरि लसत्प्रभुः ॥३९॥
अन्येऽपि भूभृतो ये हि द्वीपेष्वन्येष्वपि द्विज ! । इहापि येऽचलाः सर्वे आययुस्ते हिमालयम् ॥४०॥
निमन्त्रिता नगास्तत्र तेन पूर्वं मुदा मुने । आययुर्निखिलाः प्रीत्या विवाहः शिवयोरिति॥४१॥
तदा सर्वे समायाताः शोणभद्रादयः खलु । बहुशोभा महाप्रीत्या विवाहः शिवयोरिति ॥४२॥
नद्यः सर्वाः समायाता नानालङ्कारसंयुताः । दिव्यरूपधराः प्रीत्या विवाहः शिवयोरिति ॥४३॥
गोदावरी च यमुना ब्रह्मस्त्रीर्वेणिका तथा । आययौ हिमशैलं वै विवाहः शिवयोरिति ॥४४॥
गङ्गा तु सुमहाप्रीत्या नानालङ्कारसंयुता । दिव्यरूपा ययौ प्रीत्या विवाहः शिवयोरिति॥४५॥
नर्मदा तु महामोदा रुद्रकन्या सरिद्वरा । महाप्रीत्याऽऽजगामाशु विवाहः शिवयोरिति॥४६॥
आगतैस्तैस्ततः सर्वैः सर्वतो हिमभूधरम् । सङ्कुलाऽऽसीत् पुरी दिव्या सर्वशोभासमन्विता॥४७॥
महोत्सवा लसत् केतुध्वजातोरणकाधिका । वितानविनिवृत्तार्का तथा नानालसत्प्रभा ॥४८॥
हिमालयोऽपि सुप्रीत्याऽऽदरेण विविधेन च । तेषां चकार सम्मानं तासां चैव यथायथम् ॥४९॥
सर्वान्निवासयामास सुस्थानेषु पृथक् पृथक् । सामग्रीभिरनेकाभिस्तोषयामास कृत्स्नशः ॥५०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे लग्नपत्र-सम्प्रेषण-सामग्रीसङ्ग्रह-शैलागमनवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

कैलास नामक महाशैल भी बड़ी प्रसन्नता के साथ कृपाकर हिमालय के घर आये। वह सभी पर्वतों की अपेक्षा अधिक शोभा सम्पन्न थे ॥३९॥ हे नारद ! इसी प्रकार अन्य द्वीपों में रहने वाले तथा भारतवर्ष में रहने वाले सभी पर्वत हिमालय के घर आये ॥ ४० ॥

हे मुने ! हिमालय ने जिन पर्वतों को प्रेम से आमन्त्रित किया था वे सभी शिवाशिव का विवाह देखने के लिए हिमालय के पास पहुँचे ॥ ४१ ॥ उस समय 'शिवाशिव का विवाह हो रहा है' यह जानकर शोणभद्रादि सभी नद बड़ी प्रसन्नता के साथ हिमालय के घर गये ॥ ४२ ॥ सभी नदियाँ दिव्य रूप धारण किये नाना अलङ्कारों से युक्त हो प्रेम से शिव का विवाह देखने के लिए वहाँ आयीं ॥ ४३ ॥ गोदावरी, यमुना, ब्रह्मपुत्र तथा त्रिवेणिका, शिवाशिव का विवाह देखने के लिए वहाँ गयीं ॥ ४४ ॥ गङ्गा नदी भी महाप्रसन्न हो दिव्य रूप धारण किये, अनेक प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित हो हिमालय के घर गयीं ॥ ४५ ॥ नर्मदा, महामोदा, सरिद्वरा, रुद्रकन्या ये सब भी महाप्रेम से शिवाशिव का विवाह देखने को गयीं ॥ ४६ ॥ उस समय समागत हुए लोगों की भीड़ से हिमालय की वह दिव्यपुरी सर्वशोभा से समन्वित हो कोलाहल से भर गयी ॥ ४७ ॥ उस समय हिमालय की पुरी, महोत्सव से युक्त हो गयी, उसमें नाना प्रकार के केतुध्वज एवं तोरण सुशोभित होने लगे। नाना प्रकार के वितानों से सूर्य का प्रकाश रुक गया। और वह पुरी रङ्ग-विरंगे रत्नों की छटा से पूर्ण हो गयी ॥ ४८ ॥ हिमालय ने भी प्रेम तथा आदर के साथ उन स्त्रियों तथा पुरुषों का यथोचित सम्मान किया ॥४९॥ उन लोगों के रहने के लिए पृथक्-पृथक् सर्वश्रेष्ठ निवास स्थानों का प्रबन्ध किया और अनेक प्रकार की सामग्रियों से उन्हें सन्तुष्ट किया ॥५०॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय—पार्वतीखण्ड में लग्नपत्र-सम्प्रेषण-सामग्री-संग्रह-शैलागमन-वर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३७ ॥

*

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

(विवाह-सामग्री वर्णन)

ब्रह्मोवाच

अथ शैलेश्वरः प्रीतो हिमवान् मुनिसत्तम ! । स्वपुरं रचयामास विचित्रं परमोत्सवम् ॥ १ ॥

सिक्तमार्गं संस्कृतं च शोभितं परमर्द्धिभिः । द्वारि द्वारि च रम्भादि मङ्गलं द्रव्यसंयुतम् ॥ २ ॥

प्राङ्गणं रचयामास रम्भास्तम्भसमन्वितम् । पट्टसूत्रैः सन्निबद्ध-रसाल-पल्लवान्वितम् ॥ ३ ॥

मालतीमाल्यसंयुक्तं लसत्तोरणसुप्रभम् । शोभितं मङ्गलद्रव्यैश्चतुर्दिक्षु स्थितैः शुभैः ॥ ४ ॥

तथैव सर्वं परया मुदान्वितश्चक्रे गिरीन्द्रः स्वसुतार्थमेव ।
गर्गं पुरस्कृत्य महाप्रभावं प्रस्तावयोग्यं च सुमङ्गलं हि ॥ ५ ॥

आहूय विश्वकर्माणं कारयामास सादरम् । मण्डपं च सुविस्तीर्णं वेदिकादिमनोहरम् ॥ ६ ॥

अयुतेन सुरर्षे तद्योजनानां च विस्तृतम् । अनेकलक्षणोपेतं नानाश्चर्य्यसमन्वितम् ॥ ७ ॥

स्थावरं जङ्गमं सर्वं सदृशं तैर्मनोहरम् । सर्वतोऽद्भुतसर्वस्वं नानावस्तुचमत्कृतम् ॥ ८ ॥

जङ्गमं विजितं तत्र स्थावरेण विशेषतः । जङ्गमेन च तत्रासीज्जितं स्थावरमेव हि ॥ ९ ॥

पयसा च जिता तत्र स्थलभूमिर्न चान्यथा । जलं किं हि स्थलं किं हि न विदुः केऽपि कोविदाः॥१०॥

क्वचित्सिंहाः कृत्रिमाश्च क्वचित्सारसपङ्क्तयः । क्वचिच्छिखण्डिनस्तत्र कृत्रिमाश्च मनोहराः ॥११॥

क्वचित्स्त्रियः कृत्रिमाश्च नृत्यन्त्यः पुरुषैः सह । मोहयन्त्यो जनान् सर्वान् पश्यन्त्यः कृत्रिमास्तथा॥१२॥

तथा तेनैव विधिना द्वारपाला मनोहराः । हस्तैर्धनूंषि चोद्धृत्य स्थावरा जङ्गमोपमाः ॥१३॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! इसके अनन्तर हिमालय ने प्रसन्न हो विचित्र प्रकार के उत्सव से अपने नगर को सजाया ॥ १ ॥ उन्होंने सभी राजमार्ग को स्वच्छ कराकर जल छिड़कवाया, सभी प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि से नगर को अलङ्कृत किया तथा अनेक फाटक बनवाकर केले के खम्भे तथा मङ्गल द्रव्यों से उसे सुसज्जित किया ॥ २ ॥ आँगन में केले के खम्भे लगवाये गये। रेशमी सूत्रों से आम का पल्लव बाँधकर वन्दनवार, जिसमें मालती की माला बँधी हुई थी, लटकाये गये ॥ ३ ॥ और उस आँगन के चारों दिशाओं में कल्याणकारी मङ्गल द्रव्य सजाये गये ॥ ४ ॥ हिमालय ने महाप्रभावशाली गर्गाचार्य की आज्ञानुसार अपनी कन्या के विवाह निमित्त प्रसन्नता से सारी सामग्री तथा समस्त मङ्गल द्रव्य एकत्रित किये ॥ ५ ॥ उन्होंने विश्वकर्मा को बुलाकर मण्डप तथा अत्यन्त विस्तीर्ण वेदिका का निर्माण कराया ॥ ६ ॥ हे नारद जी ! वह मण्डप दस हजार योजन लम्बा था, जो अनेक लक्षणों से युक्त तथा अनेक आश्चर्यों से परिपूर्ण था ॥ ७ ॥ स्थावर चित्र की रचना जङ्गम के सदृश ही होने से वह मण्डप चारों ओर अद्भुत पदार्थों से परिपूर्ण हो गया ॥ ८ ॥ विश्वकर्मा की स्थावर रचना से विशेषरूप से जङ्गम को तथा जङ्गम-रचना ने स्थावर-रचना को पराजित कर दिया था ॥ ९ ॥ जल की रचना से स्थलभूमि जीत ली गयी, बड़े-बड़े विशेषज्ञों को भी पता नहीं लगता था कि कौन जल है, कौन स्थल है ? ॥ १० ॥ कहीं पर कृत्रिम सिंह तथा सारसों की पङ्क्ति बनी हुई थी, कहीं अत्यन्त मनोहर कृत्रिम मोर बने हुए थे ॥ ११ ॥ कहीं पुरुषों के साथ नाचती हुई स्त्रियों के चित्र बनाये गये, वे कृत्रिम स्त्रियाँ अपनी दृष्टि से देखते हुए मानों पुरुषों को मोह रही थीं ॥ १२ ॥ इसी प्रकार हाथ में धनुष धारण किये मनोहर द्वारपाल स्थावर होकर भी प्राणधारियों जैसे प्रतीत होते थे ॥ १३ ॥

द्वारि स्थिता महालक्ष्मीः कृत्रिमा रुचिताद्भुता । सर्वलक्षणसंयुक्ता गताः साक्षात् पयोर्णवात् ॥१४॥
गजाश्चालङ्कृता ह्यासन् कृत्रिमा अकृतोपमाः । तथाश्वाः सादिभिश्चैव गजाश्च गजसादिभिः ॥१५॥
रथा रथिभिराकृष्टा महाश्चर्यसमन्विताः । वाहनानि तथान्यानि पत्तयः कृत्रिमास्तथा ॥१६॥
एवं विमोहनार्थं तु कृतं वै विश्वकर्मणा । देवानां च मुनीनां च तेन प्रीतात्मना मुने ! ॥१७॥
महाद्वारि स्थितो नन्दी कृत्रिमश्च कृतो मुने । शुद्धस्फटिकसङ्काशो यथा नन्दी तथैव सः ॥१८॥
तस्योपरि महादिव्यं पुष्पकं रत्नभूषितम् । राजितं पल्लवैः शुभ्रैश्चामरैश्च सुशोभितम् ॥१९॥
वामपार्श्वे गजौ द्वौ च शुद्धकाश्मीरसन्निभौ । चतुर्दन्तौ षष्टिवर्षौ भेदमानौ महाप्रभौ ॥२०॥
तथैवार्कनिभौ तेन कृतौ चाश्वौ महाप्रभौ । चामरालङ्कृतौ दिव्यौ दिव्यालङ्कारभूषितौ ॥२१॥
दंशिता वररत्नाढ्या लोकपालास्तथैव च । सर्वे देवा यथार्थं वै कृता वै विश्वकर्मणा ॥२२॥
तथा हि ऋषयः सर्वे भृग्वाद्याश्च तपोधनाः । अन्ये ह्युपसुरास्तद्वत् सिद्धाश्चान्येऽपि वै कृताः॥२३॥
विष्णुश्च पार्षदैः सर्वैर्गरुडाद्यैः समन्वितः । कृत्रिमो निर्मितस्तद्वत्परमाश्चर्यरूपवान् ॥२४॥
तथैवाऽहं सुतैर्वेदैः सिद्धैश्च परिवारितः । कृत्रिमो निर्मितस्तद्वत् पठन् सूक्तानि नारद ! ॥२५॥
ऐरावतगजारूढः शक्रः स्वदलसंयुतः । कृत्रिमो निर्मितस्तद्वत्परिपूर्णेन्दुसन्निभः ॥२६॥
किं बहूक्तेन देवर्षे ! सर्वो वै विश्वकर्मणा । हिमागप्रेरितेनाशु कल्पः सुरसमाजकः ॥२७॥
एवंभूतः कृतस्तेन मण्डपो दिव्यरूपवान् । अनेकाश्चर्यसम्भूतो महान् देवविमोहनः ॥२८॥

द्वार पर क्षीरसागर से उत्पन्न हुई सर्वलक्षण युक्त साक्षात् लक्ष्मी के समान महालक्ष्मी की अद्भुत मूर्त्ति बनायी गयी थीं ॥ १४ ॥ द्वार पर हाथी के बने हुए चित्र असली हाथी के समान दिखाई पड़ते थे। इसी प्रकार घुड़सवारों से युक्त अश्व तथा गजारोहियों से युक्त गज, आश्चर्यपूर्ण रथी से युक्त रथ भी समता में किसी प्रकार जीवधारी से कम न थे। अनेक प्रकार के वाहन तथा पैदल कृत्रिम होते हुए भी अकृत्रिम-जैसे प्रतीत हो रहे थे ॥१५-१६॥ इतना ही नहीं, विश्वकर्मा ने सबको मोहित करने के लिए बड़े कौशल के साथ देवताओं तथा मुनियों के चित्र बनाये ॥ १७ ॥ महाद्वार पर शुद्धस्फटिक के समान अत्यन्त उज्ज्वल नन्दी का चित्र बनाकर सजाया गया, जो कान्ति में साक्षात् नन्दी से किसी भी प्रकार कम न था ॥ १८ ॥ उसके ऊपर महादिव्य रत्नखचित, मनोहर पल्लवों तथा चामरों से शोभायमान पुष्पक विमान रखा हुआ था ॥ १९ ॥

द्वार के वाम-भाग में शुद्ध कास्मीरी रङ्ग के चार दाँत वाले दो-दो हाथी बनाये गये थे, जो महा-कान्तिमान् युवा तथा साठ वर्ष के थे और एक दूसरे से भिड़े हुए थे ॥ २० ॥ उसी प्रकार सूर्य के समान कान्तिमान् रक्त वर्ण के दो घोड़े भी बनाये गये, जो चँवरों तथा दिव्य अलङ्कारों से भूपित थे ॥ २१ ॥ इसी प्रकार श्रेष्ठ रत्नों से भूषित लोकपालों का निर्माण कराया गया। विश्वकर्मा ने सभी देवताओं का चित्र इतना सुन्दर बनाया, जो किसी भी प्रकार यथार्थ रूप से कम न थे ॥ २२ ॥ इसी प्रकार भृगु आदि ऋषियों, मार्कण्डेयादि तपस्वियों, गन्धर्व-किन्नरादिकों तथा कपिल आदि सिद्धों के भी चित्र का निर्माण कराया गया ॥ २३ ॥ विष्णु अपने पार्षद गरुड़ आदि के साथ इस प्रकार के चित्र रूप से बनाये गये कि उनके देखने से आश्चर्य प्रतीत हो रहा था ॥ २४ ॥ हे नारद ! इसी प्रकार अपने पुत्रों तथा वेदों एवं परिवार के साथ सूक्त का पाठ करते हुए मुझ ब्रह्मा के चित्र का भी निर्माण कराया गया ॥ २५ ॥ हे नारद ! विश्वकर्मा ने ऐरावत पर चढ़े हुए गणों सहित इन्द्र की मूर्त्ति का निर्माण किया, जो पूर्णचन्द्र के समान प्रतीत हो रही थी ॥ २६ ॥ हे देवर्षे ! बहुत हम क्या कहें, विश्वकर्मा ने हिमालय के कथनानुसार सारी रचना की ॥ २७ ॥ इस प्रकार दिव्यरूप से युक्त, देवताओं को मोहित करने वाले अनेक आश्चर्य से परिपूर्ण उस मण्डप का निर्माण विश्वकर्मा ने किया ॥ २८ ॥

अथाज्ञप्तो गिरीशेन विश्वकर्मा महामतिः । निवासार्थं सुरादीनां तत्तल्लोकान् हि यत्नतः ॥२९॥
तत्रैव च महामञ्चाः सुप्रभाः परमाद्भुताः । रचिताः सुखदा दिव्यास्तेषां वै विश्वकर्मणा ॥३०॥
तथाप्तसप्तलोकं वै विरेचे क्षणतोऽद्भुतम् । दीप्त्या परमया युक्तं निवासार्थं स्वयम्भुवः ॥३१॥
तथैव विष्णोस्त्वपरं वैकुण्ठाख्यं महोज्ज्वलम् । विरेचे क्षणतो दिव्यं नानाश्चर्यसमन्वितम् ॥३२॥
अमरेशगृहं दिव्यं तथैवाऽद्भुतमुत्तमम् । विरेचे विश्वकर्माऽसौ सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ॥३३॥
गृहाणि लोकपालानां विरेचे सुन्दराणि च । तद्वत्स प्रीतितो दिव्यान्यद्भुतानि महान्ति च ॥३४॥
अन्येषाममराणां च सर्वेषां क्रमशस्तथा । सदनानि विचित्राणि रचितानि च तेन वै ॥३५॥
विश्वकर्मा महाबुद्धिः प्राप्तशम्भुमहावरः । विरेचे क्षणतः सर्वं शिवतुष्टयर्थमेव च ॥३६॥

तथैव चित्रं परमं महोज्ज्वलं महाप्रभं देववरैः सुपूजितम् ।
गिरीशचिह्नं शिवलोकसंस्थितं सुशोभितं शम्भुगृहं चकार ॥३७॥

एवम्भूता कृता तेन रचना विश्वकर्मणा । विचित्रा शिवतुष्टयर्थं पराश्चर्या महोज्ज्वला ॥३८॥
एवं कृत्वाऽखिलं चेदं व्यवहारं च लौकिकम् । पर्य्यैक्षिष्ट मुदा शम्भ्वागमनं स हिमाचलः ॥३९॥
इति प्रोक्तमशेषेण वृत्तान्तं प्रमुदावहम् । हिमालयस्य देवर्षे ! किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
मण्डपादिरचनावर्णनं नामाऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

तदनन्तर महाबुद्धिमान् विश्वकर्मा ने हिमालय की आज्ञा पाकर देवताओं के निवास के लिए तत्तल्लोकों की यत्नपूर्वक रचना की ॥ २९ ॥ देवताओं को सुख देने वाले अत्यन्त स्वच्छ तथा आश्चर्य-कारक दिव्य मञ्चों (खटिया) का भी विश्वकर्मा ने निर्माण किया ॥ ३० ॥ उन्होंने यथार्थ सप्तलोकों के समान सप्तलोकों की भी अद्भुत रचना की । तदनन्तर स्वयंभू (ब्रह्मदेव) के निवास के लिए परम सुन्दर देदीप्यमान सत्यलोक नामक स्थान की रचना की ॥ ३१ ॥ विष्णु के लिए वैकुण्ठ नामक स्थान क्षणमात्र में बनाया, जो महोज्ज्वल, दिव्य तथा नाना प्रकार के आश्चर्य से युक्त था ॥३२॥ सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त अत्यन्त अद्भुत दिव्य इन्द्र के गृह का निर्माण किया ॥ ३३ ॥ उसी प्रकार उन्होंने लोकपालों के लिए प्रीतिपूर्वक सुन्दर, दिव्य एवं अद्भुत तथा महान् गृहों की रचना की ॥ ३४ ॥ पुनः अन्य देवताओं के निवास के लिए क्रमशः विचित्र गृहों की रचना की ॥ ३५ ॥

शिवजी से वर प्राप्त करने के कारण महाबुद्धिमान् विश्वकर्मा ने क्षणभर में शिव के सन्तोष के निमित्त देवताओं के सारे स्थान का निर्माण किया ॥ ३६ ॥ उन्होंने शिवलोक में रहने वाले परमोज्ज्वल, महाविचित्र अत्यन्त प्रभावशाली देवताओं से पूजित गिरीश के चिह्नों से युक्त शिवगृह का निर्माण किया ॥ ३७ ॥ विश्वकर्मा की यह रचना सबको आश्चर्य में डालने वाली, परमोज्ज्वल तथा शिव के सन्तोषार्थ थी ॥ ३८ ॥ इस प्रकार सारा लौकिक व्यवहार पूर्ण कर हिमालय अत्यन्त प्रेम से शिवागमन की प्रतीक्षा करने लगे ॥ ३९ ॥ हे नारद ! हिमालय के यहाँ का महान् आनन्ददायी वृत्तान्त हमने तुमसे कहा, अब तुम क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ४० ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में मण्डपादि-रचना वर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३८ ॥

*

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

(विवाह-मण्डप रचना)

नारद उवाच

विधे तात महाप्राज्ञ विष्णुशिष्य नमोऽस्तु ते। अद्भुतेयं कथाश्रावि त्वन्नोऽस्माभिः कृपानिधे ! ॥ १ ॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि चरितं शशिमौलिनः। वैवाहिकं सुमाङ्गल्यं सर्वाघौघविनाशनम् ॥ २ ॥
किं चकार महादेवः प्राप्य मङ्गलपत्रिकाम्। तां श्रावय कथां दिव्यां शङ्करस्य परात्मनः ॥ ३ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स महाप्राज्ञ ! शाङ्करं परमं यशः। यच्चकार महादेवः प्राप्य मङ्गलपत्रिकाम् ॥ ४ ॥
अथ शम्भुर्गृहीत्वा तां मुदा मङ्गलपत्रिकाम्। विजहास प्रहृष्टात्मा मानं तेषां व्यधाद्विभुः ॥ ५ ॥
वाचयित्वा च तां सम्यग् स्वीचकार विधानतः। तज्जनान् ज्ञापयामास बहुसम्मान्य चादृतः ॥ ६ ॥
उवाच मुनिवर्गांस्तान् कार्यं सम्यक् कृतं शुभम्। आगन्तव्यं विवाहे मे विवाहः स्वीकृतो मया ॥ ७ ॥
इत्याकर्ण्य वचः शम्भोः प्रहृष्टास्ते प्रणम्य तम्। परिक्रम्य ययुर्धाम शंसन्तः स्वं विधिं परम् ॥ ८ ॥
अथ देवेश्वरः शम्भुः सामरस्त्वां मुने द्रुतम्। लौकिकाचारमाश्रित्य महालीलाकरः प्रभुः ॥ ९ ॥
त्वमागतः परप्रीत्या प्रशंसंस्त्वं विधिं परम्। प्रणमंश्च नतस्कन्धो विनीतात्मा कृताञ्जलिः ॥१०॥
अस्तौः सुजयशब्दान् हि समुच्चार्य मुहुर्मुहुः। निदेशं प्रार्थयंस्तस्य प्रशंसंस्त्वं विधिं मुने ॥११॥
ततः शम्भुः प्रहृष्टात्मा दर्शयंल्लौकिकीं गतिम्। उवाच मुनिवर्य त्वां प्रीणयञ्छुभया गिरा ॥१२॥

नारदजी बोले—हे विधे ! हे तात ! हे महाभाग ! हे विष्णुशिष्य ! आपको प्रणाम है। हे कृपानिधे ! आपने यह अद्भुत कथा हमें सुनायी ॥ १ ॥ अब मैं शिवजी का वैवाहिक चरित्र सुनना चाहता हूँ, जो सब प्रकार से मङ्गल देने वाला तथा सब प्रकार के पापों का नाश करने वाला है ॥ २ ॥ हे विधे ! मङ्गल-पत्रिका प्राप्त करने के अनन्तर महादेवजी ने क्या किया ? परमात्मा शिव की यह सारी कथा हमें सुनाइए ? ॥ ३ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे महाभाग ! हे वत्स ! महादेव जी ने मंङ्गल-पत्रिका प्राप्त कर जो किया, उस शङ्कर के यश का श्रवण करो ॥ ४ ॥ शिवजी ने परम प्रसन्न हो मङ्गल-पत्रिका ग्रहण कर हँसते हुए उन मङ्गल-पत्रिका लाने वालों का बड़ा स्वागत-सम्मान किया ॥५॥ उन्होंने उस लग्नपत्रिका को विधि-विधान से स्वीकार किया तथा उन पुरुषों को आदर से सम्मानित कर विदा कर दिया ॥ ६ ॥ और सप्तर्षियों से कहने लगे कि आपने यह परम कल्याणकारी कार्य ठीक तरह से सम्पन्न किया। 'अब मैंने विवाह स्वीकार कर लिया है, अतः मेरे विवाह में आपलोग अवश्य आइएगा ॥ ७ ॥

शिवजी के वचन सुन सप्तर्षिगण परम प्रसन्न हो गये और उनको प्रणाम कर अपने भाग्य की सराहना करते हुए अपने-अपने घर गये ॥ ८ ॥ तब महान् लीला करने वाले देवताओं के सहित शिव ने लौकिकाचार दिखाते हुए हे नारद ! तुम्हारा स्मरण किया ॥ ९ ॥ हे मुने ! उस समय अपने भाग्य की प्रशंसा करते हुए तुम परम प्रसन्न हो शिवजी के पास आये और हाथ जोड़कर नम्रता से उन्हें प्रणाम किया ॥ १० ॥ और बारम्बार जय-जयकार कर उनकी स्तुति की। तदनन्तर शिवजी से आज्ञा प्रदान करने के लिएँ निवेदन किया ॥ ११ ॥ तब परम प्रसन्न हो, लौकिकी गति को दिखाते हुए और शुभ वचनों से प्रसन्न करते हुए शिवजी ने तुमसे कहा—॥ १२ ॥

शिव उवाच

प्रीत्या शृणु मुनिश्रेष्ठ ! ह्यस्मत्तोऽद्य वदामि ते । ब्रुवे तत्त्वां प्रियो मे यद्भक्तराजशिरोमणिः ॥१३॥

कृतं महत्तपो देव्या पार्वत्या तव शासनात् । तस्यै वरो मया दत्तः पतित्वे तोषितेन वै ॥१४॥

करिष्येऽहं विवाहं च तस्या वश्यो हि भक्तितः । सप्तर्षिभिः साधितं च तल्लग्नं शोधितं च तैः ॥१५॥

अद्यतः सप्तमे चाह्नि तद्भविष्यति नारद ! । महोत्सवं करिष्यामि लौकिकीं गतिमाश्रितः ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य शङ्करस्य परात्मनः । प्रसन्नधीः प्रभुं नत्वा तात त्वं वाक्यमब्रवीः ॥१७॥

नारद उवाच

भवतस्तु व्रतमिदं भक्तवश्यो भवान्मतः । सम्यक् कृतं च भवता पार्वतीमानसेप्सितम् ॥१८॥

कार्यं मत्सदृशं किञ्चित् कथनीयं त्वया विभो । मत्वा स्वसेवकं मां हि कृपां कुरु नमोऽस्तु ते ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तस्तु त्वया शम्भुः शङ्करो भक्तवत्सलः । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा सादरं त्वां मुनीश्वर ! ॥२०॥

शिव उवाच

विष्णुप्रभृतिदेवांश्च मुनीन् सिद्धानपि ध्रुवम् । त्वं निमन्त्रय मद्वाण्या मुनेऽन्यानपि सर्वतः ॥२१॥

सर्वे आयान्तु सोत्साहाः सर्वशोभासमन्विताः । सस्त्रीसुतगणाः प्रीत्या मम शासनगौरवात् ॥२२॥

नागमिष्यन्ति ये त्वत्र मद्विवाहोत्सवे मुने ! । ते स्वकीया न मन्तव्या मया देवादयः खलु ॥२३॥

शिवजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं जो कहता हूँ उसे प्रेम से सुनो। तुम मेरे परम प्रिय तथा भक्तराज शिरोमणि हो, इसलिए तुमसे कहता हूँ ॥ १३ ॥ हे देवर्षे ! तुम्हारी आज्ञा से पार्वती ने जिस प्रकार की महातपस्या की थी उससे सन्तुष्ट होकर मैंने उन्हें पति बनने के लिए वरदान दे दिया है ॥ १४ ॥ मैं पार्वती की भक्ति के वशीभूत हो अब उनसे विवाह करना चाहता हूँ। सप्तर्षियों ने सारा कार्य निष्पन्न कर दिया है, इतना ही नहीं, उन लोगों ने विवाह लग्न का शोधन भी कर दिया है ॥ १५ ॥ हे नारद ! वह विवाह का लग्न आज के सातवें दिन आने वाला है। अब मैं लोकरीति का आश्रय लेकर वैवाहिक महोत्सव करना चाहता हूँ ॥ १६ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात ! इस प्रकार परमात्मा शङ्कर के वचन सुनकर तुम परम प्रसन्न हो उन प्रभु को प्रणाम कर इस प्रकार के वचन बोले ॥ १७ ॥

नारद जी बोले—आपका यह व्रत है कि आप भक्तों के आधीन रहते हैं, और ऐसा सभी लोगों का मत भी है, इसलिए आपने यह उचित ही किया, क्योंकि पार्वती यही चाहती भी थीं ॥ १८ ॥ हे विभो ! अब जो मेरे योग्य कार्य हो, आप मुझे आज्ञा दें, आपको प्रणाम है। आप मुझे अपना सेवक जानकर कृपा करें ॥ १९ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! जब तुमने शिवजी से इस प्रकार कहा तब भक्तवत्सल शिव प्रसन्न हो आदरपूर्वक तुमसे बोले ॥ २० ॥

शिवजी बोले—हे मुने ! तुम मेरी ओर से विष्णु प्रभृति देवों, मुनियों, सिद्धों तथा अन्य महात्माओं को निमन्त्रण दे आओ ॥ २१ ॥ मेरी आज्ञा को मानते हुए उपर्युक्त सभी लोग उत्साह तथा शोभा से युक्त हो अपनी स्त्री, पुत्र तथा गणों के सहित इस विवाह में आवें ॥ २२ ॥ हे मुने ! जो इस विवाहोत्सव में सम्मिलित नहीं होंगे उन्हें मैं अपना नहीं मानंगा चाहे वे देवता ही क्यों न हों ॥ २३ ॥

ब्रह्मोवाच

इतीशाज्ञां ततो धृत्वा भवाञ्छङ्करवल्लभः । सर्वान्निमन्त्रयामास तं तं गत्वा द्रुतं मुने ! ॥२४॥
शम्भूपकण्ठमागत्य द्रुतं मुनिवरो भवान् । शद्दूत्यात्तत्र सन्तस्थौ तदाज्ञां प्राप्य नारद ! ॥२५॥
शिवोऽपि तस्थौ सोत्कण्ठस्तदागमनलालसः । स्वगणैः सोत्सवैः सर्वैर्नृत्यद्भिः सर्वतो दिशम् ॥२६॥
एतस्मिन्नेव काले तु रचयित्वा स्ववेषकम् । आजगामाच्युतः शीघ्रं कैलासं सपरिच्छदः ॥२७॥
शिवं प्रणम्य सद्भक्त्या सदारः सदलो मुदा । तदाज्ञां प्राप्य सन्तस्थौ सुस्थाने प्रीतमानसः ॥२८॥
तथाऽहं स्वगणैराशु कैलासमगमं मुदा । प्रभुं प्रणम्यातिष्ठं वै सानन्दः स्वगणान्वितः ॥२९॥
इन्द्रादयो लोकपाला आययुः सपरिच्छदाः । तथैवालङ्कृताः सर्वे सोत्सवाः सकलत्रकाः ॥३०॥
तथैव मुनयो नागाः सिद्धा उपसुरास्तथा । आययुश्चापरेऽपीह सोत्सवाः सुनिमन्त्रिताः ॥३१॥
महेश्वरस्तदा तत्रागतानां च पृथक् पृथक् । सर्वेषाममराद्यानां सत्कारं व्यदधान् मुदा ॥३२॥
अथोत्सवो महानासीत् कैलासे परमोऽद्भुतः । नृत्यादिकं तदा चक्रुर्यथायोग्यं सुरस्त्रियः ॥३३॥
एतस्मिन् समये देवा विष्ण्वाद्या ये समागताः । यात्रां कारयितुं शम्भोस्तत्रोषुस्तेऽखिला मुने! ॥३४॥
शिवाज्ञप्तास्तदा सर्वे मदीयमिति यन्त्रिताः । शिवकार्यमिदं सर्वं चक्रिरे शिवसेवनम् ॥३५॥
मातरः सप्त तास्तत्र शिवभूषाविधिं परम् । चक्रिरे च मुदायुक्ता यथायोग्यं तथा पुनः ॥३६॥
तस्य स्वाभाविको वेषो भूषाविधिरभूत्तदा । तस्येच्छया मुनिश्रेष्ठ ! परमेशस्य सुप्रभोः ॥३७॥
चन्द्रश्च मुकुटस्थाने सान्निध्यमकरोत्तदा । लोचनं सुन्दरं ह्यासीत्तृतीयं तिलकं शुभम् ॥३८॥
कर्णाभरणरूपौ च यौ हि सर्पौ प्रकीर्तितौ । कुण्डलेऽभवतां तस्य नानारत्नान्विते मुने ॥३९॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने ! जब इस प्रकार से शङ्कर जी ने कहा तब शिवप्रिय तुम 'जो आज्ञा' कहकर उस आज्ञा को शिरोधार्य कर शीघ्रता से सबको निमन्त्रण दे आये ॥ २४ ॥ इस प्रकार शिव के दूत का कार्य शीघ्रता से सम्पन्न कर हे महामुने ! जब तुम शिव के पास लौटे तब उनकी आज्ञा से वहीं स्थित हो गये ॥ २५ ॥ शिवजी भी आमन्त्रित जनों के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे । सर्वत्र उनके गण नृत्यगान पूर्वक उत्सव करने लगे ॥ २६ ॥ इसी समय अत्यन्त सुन्दर वेश-भूषा से सुसज्जित हो भगवान् विष्णु अपने परिकरों के साथ कैलास आये ॥ २७ ॥ उन्होंने लक्ष्मी तथा पार्षदों के साथ भक्तिपूर्वक प्रणाम कर उनकी आज्ञा से उत्तम स्थान पर निवास करने लगे ॥ २८ ॥ तदनन्तर मैं भी गणों के साथ कैलास पर्वत पर आनन्दित हो वहीं निवास करने लगा ॥ २९ ॥ उसी समय इन्द्रादि लोकपाल भी अपने कुटुम्ब तथा सेवकों के सहित नाना प्रकार के अलङ्कारों से अलंकृत हो उत्सव मनाते हुए कैलास में उपस्थित हुए ॥ ३० ॥ इसी प्रकार मुनि, नाग, सिद्ध तथा उपदेव, गन्धर्वादि एवं अन्य दूसरे लोग भी निमन्त्रित होकर वहाँ गये ॥ ३१ ॥ महेश्वर ने निमन्त्रण में आये हुए उन सभी देवादि लोगों का प्रसन्नता से पृथक्-पृथक् सत्कार किया ॥ ३२ ॥ उस समय कैलास में देवस्त्रियों ने यथायोग्य नृत्य आदि करना प्रारम्भ कर दिया तथा कैलास में अद्भुत एवं महान् उत्सव होने लगा ॥ ३३ ॥

हे मुने ! इसी समय विष्णु आदि देवगण शिव के वर-यात्रा की तैयारी कराने के लिए प्रसन्नता से निवास करने लगे ॥ ३४ ॥ उस समय शिव की आज्ञा से आये हुए सभी लोग शिव के कार्य को यह मेरा ही कार्य है ऐसा समझ शिव की सेवा करने लगे ॥ ३५ ॥ सप्त मातरों ने शिव के विवाह का दूलह वेष बड़े प्रेम से शिवजी के अनुरूप सजाया ॥ ३६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! शिवजी की इच्छानुसार ही उनके स्वाभाविक वेष को भूषणों से सजाया गया ॥ ३७ ॥ सप्तमातृकाओं ने मुकुट के स्थान पर चन्द्रमा को बाँध दिया । उनके ललाट में रहनेवाला तीसरा नेत्र तिलक रूप से शोभित किया गया ॥ ३८ ॥ नाना रत्नों से देदीप्यमान

अन्याङ्गसंस्थिताः सर्पास्तदङ्गाभरणानि च । बभूवुरतिरम्याणि नानारत्नमयानि च ॥४०॥
विभूतिरङ्गरागोऽभूच्चन्दनादिसमुद्भवः । तद्दुकूलमभूद्दिव्यं गजचर्मादि सुन्दरम् ॥४१॥
ईदृशं सुन्दरं रूपं जातं वर्णातिदुष्करम् । ईश्वरोऽपि स्वयं साक्षादैश्वर्यं लब्धवान् स्वतः ॥४२॥
ततश्च सर्वे सुर-यक्ष-दानवा नागाः पतङ्गाप्सरसो महर्षयः ।
समेत्य सर्वे शिवसन्निधिं तदा महोत्सवाः प्रोचुरहो मुदान्विताः ॥४३॥

सर्व ऊचुः

गच्छ गच्छ महादेव ! विवाहार्थं महेश्वर ! । गिरिजाया महादेव्याः सहास्माभिः कृपां कुरु ॥४४॥
ततो विष्णुरुवाचेदं प्रस्तावसदृशं वचः । प्रणम्य शङ्करं भक्त्या विज्ञानप्रीतमानसः ॥४५॥

विष्णुरुवाच

देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ! । कार्यकर्त्ता स्वभक्तानां विज्ञप्तिं शृणु मे प्रभो ॥४६॥
गृह्योक्तविधिना शम्भो स्वविवाहस्य शङ्कर । गिरीशसुतया देव्या कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥४७॥
त्वया च क्रियमाणे तु विवाहस्य विधौ हर ! । स एव हि तथा लोके सर्वः सुख्यातिमाप्नुयात् ॥४८॥
मण्डपस्थापनं नान्दीमुखं तत्कुलधर्मतः । कारय प्रीतितो नाथ लोके स्वं ख्यापयन् यशः ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तस्तदा शम्भुर्विष्णुना परमेश्वरः । लौकिकाचारनिरतो विधिना तच्चकार सः ॥५०॥
अहं ह्यधिकृतस्तेन सर्वमभ्युदयोचितम् । अकुर्वं मुनिभिः प्रीत्या तत्र तत्कर्म चादरात् ॥५१॥
कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च गौतमो भागुरिर्गुरुः । कण्वो बृहस्पतिः शक्तिर्जमदग्निः पराशरः ॥५२॥
मार्कण्डेयः शिलापाकोऽरुणपालोऽकृतश्रमः । अगस्त्यश्च्यवनो गर्गः शिलादोऽथ महामुने ! ॥५३॥

कम्बलाश्वतर नाग दोनों कानों को अलंकृत करने वाले कुण्डल के रूप में शोभित हुए ॥ ३९ ॥ उनके अङ्ग में निवास करने वाले अन्य सर्प अनेक रत्नों से युक्त आभूषण के समान सुशोभित हुए ॥४०॥ उनके शरीर में लगी हुई विभूति, चन्दनादि पदार्थों से उत्पन्न उत्तम अङ्गराग (इत्र आदि) हो गया। उनका परम सुन्दर गजचर्म, दिव्य दुकूल का काम करने लगा ॥ ४१ ॥ उस समय शिवजी का जैसा सुन्दर रूप हो गया वह अवर्णनीय है। वे साक्षात् ईश्वर हैं अतः उन्होंने सभी ऐश्वर्य धारण कर लिया ॥४२॥ उस समय सभी देवताओं, यक्षों, दानवों, नागों, पन्नगों, अप्सराओं तथा महर्षियों ने शिवजी के समीप जाकर प्रसन्न हो महोत्सव का वर्णन करने लगे ॥ ४३ ॥

सभी लोगों ने कहा—हे महादेव ! हे महेश्वर ! अब आप विवाह के लिए हम लोगों के साथ प्रस्थान करें और महादेवी गिरिजा पर अपनी कृपा करें ॥ ४४ ॥ तब सारी बातें जानकर विष्णु ने शङ्कर को प्रणाम कर तत्कालोचित वचन कहा ॥ ४५ ॥

विष्णु बोले—हे देवदेव ! हे महादेव ! हे शरणागतवत्सल ! आप अपने भक्तों का मनोरथ पूर्ण करने वाले हैं, अतः हे प्रभो ! अपने भक्तों का निवेदन सुनें ॥ ४६ ॥ हे शम्भो ! गिरीशसुता पार्वती के साथ विवाह कर्म करने के लिए आप गृह्यसूत्र के विधि का अनुसरण करें ॥ ४७ ॥ हे हर ! यदि आप गृह्यसूत्र की विधि से विवाह कर्म करेंगे तो सारे लोक में इसी प्रकार से विवाह की विधि प्रसिद्ध हो जायेगी ॥ ४८ ॥ हे नाथ ! इस लोक में आप अपने यश की घोषणा करते हुए कुलधर्म के अनुसार मण्डपस्थापन, नान्दीमुख श्राद्ध आदि कृत्य करें ॥ ४९ ॥

ब्रह्माजी बोले—विष्णु के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर शङ्कर ने समस्त लौकिकाचार मुझ ब्रह्मा के द्वारा सम्पन्न करवाया ॥ ५० ॥ हे नारद ! उन्होंने सारे अभ्युदय का कार्यभार मेरे ऊपर सौंप दिया। और मैंने भी मुनियों के साथ सप्रेम सारा कार्य पूरा किया ॥ ५१ ॥ कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, गौतम, भागुरि,

दधीचिरुपमन्युश्च भरद्वाजोऽकृतव्रणः । पिप्पलादोऽथ कुशिकः कौत्सो व्यासः सशिष्यकः ॥५४॥
एते चान्ये च बहव आगताः शिवसन्निधिम् । मया सुनोदितास्तत्र चक्रुस्ते विधिवत्क्रियाम् ॥५५॥
वेदोक्तविधिना सर्वे वेदवेदाङ्गपारगाः । रक्षां चक्रुर्महेशस्य कृत्वा कौतुकमङ्गलम् ॥५६॥
ऋग्यजुःसामसूक्तैस्तु तथा नानाविधैः परैः । मङ्गलानि च भूरीणि चक्रुः प्रीत्यर्षयोऽखिलाः ॥५७॥
ग्रहाणां पूजनं प्रीत्या चक्रुस्ते शम्भुना मया । मण्डलस्थसुराणां च सर्वेषां विघ्नशान्तये ॥५८॥
ततः शिवः सुसन्तुष्टः कृत्वा सर्वं यथोचितम् । लौकिकं वैदिकं कर्म ननाम च मुदा द्विजान् ॥५९॥
अथ सर्वेश्वरो विप्रान् देवान् कृत्वा पुरःसरान् । निःससार मुदा तस्मात् कैलासात् पर्वतोत्तमात् ॥६०॥
बहिः कैलासकुधराच्छम्भुस्तस्थौ मुदान्वितः । देवैः सह द्विजैश्चैव नानास्वीकारकः प्रभुः ॥६१॥
तदोत्सवो महानासीत्तत्र देवादिभिः कृतः । सन्तुष्ट्यर्थं महेशस्य गानवाद्यसुनृत्यकः ॥६२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये पार्वतीखण्डे देवनिमन्त्रण-देवागमन-शिवयात्रावर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

बृहस्पति, कण्व, जमदग्नि, पराशर, मार्कण्डेय, शिलापाक, अरुणपाल, अकृतश्रम, अगस्त्य, च्यवन, गर्ग, शिलाद, दधीचि, उपमन्यु, भरद्वाज, अकृतव्रण, पिप्पलाद, कुशिक, कौत्स, शिष्यों के सहित व्यास आदि और भी ऋषिगण शिव के समीप आये, और मेरी प्रेरणा से इस सत्कार्य में प्रवृत्त हो गये ॥ ५२–५५ ॥ वेदवेदाङ्ग के पारगामी उन ऋषियों ने शिवजी का कङ्कण-बन्धनादि समस्त कौतुक मङ्गल कर वेदरीति के अनुसार उनके रक्षा का विधान किया ॥ ५६ ॥ उन सम्पूर्ण ऋषियों ने ऋक्, यजुः, सामवेद एवं अन्य नाना प्रकार के रक्षोघ्नसूक्तों से अनेक प्रकार के मङ्गल पाठ किये ॥ ५७ ॥ और विवाहविघ्न-शान्ति के लिए मुझसे तथा श्री शिवजी से मण्डपस्थ देवताओं तथा समस्त ग्रहों का पूजन करवाया ॥ ५८ ॥

इस प्रकार समस्त कुलाचार लौकिक तथा वैदिक विधि का सम्पादन कर ब्राह्मणों को प्रणाम कर शिवजी परम प्रसन्न हुए ॥ ५९ ॥ तदनन्तर देवताओं और ब्राह्मणों को आगे कर सर्वेश्वर शिव अपने पर्वतोत्तम कैलास से प्रसन्नता पूर्वक चले ॥ ६० ॥ और लीला करने में विशारद वे शिव उन देवताओं तथा ब्राह्मणों के साथ कैलास के बहिर्भाग में आकर प्रेम से स्थित हो गये ॥ ६१ ॥ देवताओं ने उस समय महेश के सन्तोषार्थ अनेक प्रकार के गाने-बजाने तथा नृत्य-सम्बन्धी अनेक उत्सव किये ॥ ६२ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में देवनिमन्त्रण देवागमन-शिववरयात्रा-वर्णन नामक उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३९ ॥

*

चत्वारिंशोऽध्यायः

(मोहित मेना का भ्रम निवारण)

ब्रह्मोवाच

अथ शम्भुः समाहूय नन्द्यादीन् सकलान् गणान् । आज्ञापयामास मुदा गन्तुं स्वेन च तत्र वै ॥ १ ॥

शिव उवाच

अपि यूयं सह मया सङ्गच्छध्वं गिरेः पुरम् । कियद्गणानिहास्थाप्य महोत्सवपुरःसरम् ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

अथ ते समनुज्ञप्ता गणेशा निर्ययुर्मुदा । स्वं स्वं बलमुपादाय तान् कथञ्चिद् वदाम्यहम् ॥ ३ ॥
अभ्यगाच्छङ्खकर्णश्च गणकोट्या गणेश्वरः । शिवेन सार्द्धं संगन्तुं हिमाचलपुरं प्रति ॥ ४ ॥
दशकोट्या केकराक्षो गणानां समहोत्सवः । अष्टकोट्यां च विकृतो गणानां गणनायकः ॥ ५ ॥
चतुष्कोट्या विशाखश्च गणानां गणनायकः । पारिजातश्च नवभिः कोटिभिर्गणपुङ्गवः ॥ ६ ॥
षष्टिः सर्वान्तकः श्रीमान् तथैव विकृताननः । गणानां दुन्दुभोऽष्टाभिः कोटिभिर्गणनायकः ॥७॥
पञ्चभिश्च कपालाख्यो गणेशः कोटिभिस्तथा । षड्भिः सन्दारको वीरो गणानां कोटिभिर्मुने ॥८॥
कोटिकोटिभिरेवेह कन्दुकः कुण्डकस्तथा । विष्टम्भो गणपोऽष्टाभिर्गणानां कोटिभिस्तथा ॥ ९ ॥
सहस्रकोट्या गणपः पिप्पलो मुदितो ययौ । तथा सनादको वीरो गणेशो मुनिसत्तम ! ॥१०॥
आवेशनस्तथाऽष्टाभिः कोटिभिर्गणनायकः । महाकेशः सहस्रेण कोटीनां गणपो ययौ ॥११॥
कुण्डो द्वादशकोट्या हि तथा पर्वतको मुने । अष्टाभिः कोटिभिर्वीरः समगाचन्द्रतापनः ॥१२॥
कालश्च कालकश्चैव महाकालः शतेन वै । कोटीनां गणनाथो हि तथैवाग्निकनामकः ॥१३॥
कोट्यग्निमुख एवागाद् गणानां गणनायकः । आदित्यमूर्द्धा कोट्या च तथा चैव घनावहः॥१४॥

ब्रह्माजी बोले—तदनन्तर शिवजी ने नन्दीश्वरादि गणों को बुलाकर अपने साथ उन्हें चलने की आज्ञा दी ॥ १ ॥

शिवजी बोले—हे नन्दीश्वरादिगणो ! तुम लोग महोत्सव करते हुए मेरे साथ हिमालय की पुरी को चलो । तथा कुछ गणों को यहीं रक्षा के लिए रहने दो ॥ २ ॥

ब्रह्माजी बोले—शिव की आज्ञा पाकर सभी गणेश्वर अपनी-अपनी टोली लेकर अलग-अलग हो चलने लगे, मैं कुछ अंश में उनका वर्णन करता हूँ ॥ ३ ॥ शङ्खकर्ण नामक गणेश्वर अपने एक करोड़ गणों के साथ हिमालयपुरी को चला ॥ ४ ॥ केकराक्ष नामक गणराज दश करोड़ गणों के साथ महा उत्साह से चला । इसी प्रकार विकृत नामक गणराज भी आठ करोड़ गणों के साथ चला ॥५॥ गणनायक विशाख चार करोड़ गणों के साथ तथा पारिजात नौ करोड़ गणों के साथ चला ॥ ६ ॥ श्रीमान् सर्वान्तक तथा विकृतानन साठ-साठ करोड़ गण लेकर चले । दुन्दुभ नाम के गणनायक आठ करोड़ गणों के साथ चले ॥ ७ ॥ कपाल नामक गणेश्वर पाँच करोड़ गणों के साथ और सन्दारकवीर छह करोड़ गणों को साथ लेकर चले ॥ ८ ॥ कन्दुक तथा कुण्डक एक-एक करोड़ गणों के साथ और विष्टम्भ आठ करोड़ गणों को साथ लेकर चला ॥ ९ ॥ पिप्पल नामक गणेश्वर एक सहस्र कोटि गणों के साथ इतने ही गणों के साथ सनन्दक गण भी चले ॥ १० ॥ आवेशन नामक गणेश्वर आठ करोड़ गणों के साथ तथा महाकेश नामक गणाधीश सहस्र कोटि गणों से युक्त हो चले ॥ ११ ॥

हे मुने ! इसी प्रकार कुण्ड और पर्वतक बारह करोड़ गणों को तथा चन्द्रतापन आठ करोड़ गणों को साथ लेकर चले ॥ १२ ॥ काल, कालक, महाकाल तथा अग्निक नामक गणनायक सौ करोड़ गणों को साथ लेकर चले ॥ १३ ॥ इसी प्रकार अग्निमुख, आदित्यमूर्धा तथा घनावह भी एक-एक करोड़ गणों

सन्नाहः शतकोट्या हि कुमुदो गणपस्तथा । अमोघः कोकिलश्चैव शतकोट्या गणाधिपः ॥१५॥
सुमन्त्रः कोटिकोट्या च गणानां गणनायकः । काकपादोदरः कोटिषष्ट्या सन्तानकस्तथा ॥१६॥
महाबलश्च नवभिर्मधुपिङ्गश्च कोकिलः । नीलो नवत्या कोटीनां पूर्णभद्रस्तथैव च ॥१७॥
सप्तकोट्या चतुर्वक्त्रः करणो विंशकोटिभिः । ययौ नवतिकोट्या तु गणेशानोऽहिरोमकः ॥१८॥
यज्वाक्षः शतमन्युश्च मेघमन्युश्च नारद ! । तावत्कोट्या ययुः सर्वे गणेशा हि पृथक् पृथक् ॥१९॥
काष्ठाङ्गुष्ठश्चतुःषष्ट्या कोटीनां गणनायकः । विरूपाक्षः सुकेशश्च वृषभश्च सनातनः ॥२०॥
तालकेतुः षडास्यश्च चञ्च्वास्यश्च सनातनः । संवर्तकस्तथा चैत्रो लकुलीशः स्वयं प्रभुः ॥२१॥
लोकान्तकश्च दीप्तात्मा तथा दैत्यान्तको मुने ! । देवो भृङ्गिरिटिः श्रीमान् देवदेवप्रियस्तथा ॥२२॥
अशनिर्भानुकश्चैव चतुःषष्ट्या सहस्रशः । ययुः शिवविवाहार्थं शिवेन सह सोत्सवाः ॥२३॥
भूतकोटिसहस्रेण प्रमथाः कोटिभिस्त्रिभिः । वीरभद्रश्चतुःषष्ट्या रोमजानां त्रिकोटिभिः ॥२४॥
कोटिकोटिसहस्राणां शतैर्विंशतिभिर्वृताः । तत्र जग्मुश्च नन्द्याद्या गणपाः शङ्करोत्सवे ॥२५॥
क्षेत्रपालो भैरवश्च कोटिकोटिगणैर्युतः । उद्वाहः शङ्करस्येत्याययौ प्रीत्या महोत्सवः ॥२६॥
एते चान्ये च गणपा असङ्ख्याता महाबलाः । तत्र जग्मुर्महाप्रीत्या सोत्साहाः शङ्करोत्सवे ॥२७॥
सर्वे सहस्रहस्ताश्च जटामुकुटधारिणः । चन्द्ररेखावतंसाश्च नीलकण्ठास्त्रिलोचनाः ॥२८॥
रुद्राक्षाभरणाः सर्वे तथा सद्भस्मधारिणः । हार-कुण्डल-केयूर-मुकुटाद्यैरलङ्कृताः ॥२९॥
ब्रह्मविष्ण्विन्द्रसङ्काशा अणिमादिगुणैर्युताः । सूर्यकोटिप्रतीकाशास्तत्र रेजुर्गणेश्वराः ॥३०॥
पृथिवीचारिणः केचित् केचित् पातालचारिणः । केचिद् व्योमचराः केचित् सप्तस्वर्गचरा मुने ! ॥३१॥

को साथ लेकर चले ॥ १४ ॥ सन्नाह, कुमुद, अमोघ और कोकिल नामक गणराज सौ-सौ करोड़ गण लेकर चले ॥ १५ ॥ गणाध्यक्ष, सुमन्त्र करोड़ों गणों को लेकर तथा काकपादोदर एवं सन्तानक साठ करोड़ गणों को साथ लेकर चले ॥ १६ ॥ महाबल नवकरोड़, मधुपिङ्ग, कोकिल, नील तथा पूर्णभद्र नौ करोड़ गणों के साथ आये ॥ १७ ॥ चतुर्वक्त्र सात करोड़, करण बीस करोड़ तथा रोमक नामक गणेश्वर नवकरोड़ गणों के साथ आये ॥ १८ ॥

इसी प्रकार हे नारद ! यज्वाक्ष, शतमन्यु एवं मेघमन्यु भी नब्बे-नब्बे करोड़ गणों के साथ वहाँ पहुँचे ॥ १९ ॥ काष्ठाङ्गुष्ठ नामक गणनायक चौंसठ करोड़ गणों के साथ चले। विरूपाक्ष, सुकेश, सनातन, वृषभ भी उनके साथ चले ॥ २० ॥ तालकेतु, षण्मुख, चञ्चुमुख, सनातन, संवर्त्तक, चैत्र, लकुलीश, स्वयंप्रभु, लोकान्तक, दीप्तात्मा, दैत्यान्तक, भृङ्गिरिटि, श्रीमान्, देवदेवप्रिय, अशनि, भानुक आदि चौंसठ हजार गणेश्वर बड़े उत्साह से शिवजी के विवाहोत्सव में सम्मिलित हुए ॥ २१-२३ ॥ सहस्रों भूतगणों के साथ प्रमथगण तीन करोड़ अपने गणों के साथ चले। वीरभद्र चौंसठ करोड़ गणों के साथ तथा तीन करोड़ रोमज (प्रेतगणों) को साथ लेकर चले ॥ २४ ॥ इसी प्रकार नन्दी आदि गणेश्वर भी एक सौ बीस करोड़, एक सौ बीस हजार गणों से युक्त होकर चले ॥ २५ ॥ क्षेत्रपाल भैरव करोड़-करोड़ गणों के साथ शिवजी के विवाह-महोत्सव देखने के लिए प्रीतिपूर्वक चले ॥ २६ ॥ इतने ये गण तथा शिव के असंख्यात गण, जो अत्यन्त बलवान् थे, वे उत्साह तथा प्रीति से युक्त हो शिव-विवाहोत्सव देखने के लिए चले ॥ २७ ॥ इन सभी गणेश्वरों के सहस्रों हाथ थे तथा वे सिर पर जटामुकुट धारण किये हुए थे। सबके मस्तक में चन्द्रकलाएँ थीं, वे सभी नीलकण्ठ एवं त्रिनेत्र थे। रुद्राक्ष की माला एवं उत्तम भस्मधारण किये हुए थे। हार, कुण्डल, केयूर तथा मुकुट से अलंकृत थे। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र के समान [illegible]मादि गुणों से अलंकृत कोटि सूर्य के समान देदीप्यमान वे सभी गणेश्वर शोभा से सम्पन्न थे ॥ २८-३० ॥ इनमें कुछ तो पृथ्वी पर, कुछ पाताल में, कोई आकाशचारी तथा सप्तस्वर्गों में विचरण

किं बहूक्तेन देवर्षे ! सर्वलोकनिवासिनः । आययुः स्वगणाः शम्भोः प्रीत्या वै शङ्करोत्सवे ॥३२॥
इत्थं देवैर्गणैश्चाऽन्यैः सहितः शङ्करः प्रभुः । ययौ हिमगिरिपुरं विवाहार्थं निजस्य वै ॥३३॥
यदा जगाम सर्वेशो विवाहार्थं सुरादिभिः । तदा तत्र ह्यभूद्वृत्तं तच्छृणु त्वं मुनीश्वर ! ॥३४॥
रुद्रस्य भगिनी भूत्वा चण्डी सूत्सवसंयुता । तत्राजगाम सुप्रीत्या परेषां सुभयावहा ॥३५॥
प्रेतासनसमारूढा सर्पाभरणभूषिता । पूर्णं कलशमादाय हैमं मूर्ध्नि महाप्रभम् ॥३६॥
स्वपरीवारसंयुक्ता दीप्तास्या दीप्तलोचना । कुतूहलं प्रकुर्वन्ती जातहर्षा महाबला ॥३७॥
तत्र भूतगणा दिव्या विरूपाः कोटिशो मुने ! । विराजन्ते स्म बहुशस्तथा नानाविधास्तदा ॥३८॥
तैः समेताऽग्रतश्चण्डी जगाम विकृतानना । कुतूहलान्विता प्रीता प्रीत्युपद्रवकारिणी ॥३९॥
चण्ड्यां सर्वे रुद्रगणाः पृष्ठतश्च कृतास्तदा । कोटयेकादशसंख्याका रौद्रं रुद्रप्रियाश्च ते ॥४०॥
तदा डमरुनिर्घोषैर्व्याप्तमासीज्जगत्त्रयम् । भेरीझङ्कारशब्देन शङ्खानां निनदेन च ॥४१॥
तथा दुन्दुभिनिर्घोषैः शब्दः कोलाहलोऽभवत् । कुर्वन् जगन्मङ्गलं च नाशयेन्मङ्गलेतरत् ॥४२॥
गणानां पृष्ठतो भूत्वा सर्वे देवाः समुत्सुकाः । अन्वयुः सर्वसिद्धाश्च लोकपालादिका मुने ! ॥४३॥
मध्ये व्रजन् रमेशोऽथ गरुडासनमाश्रितः । शुशुभे ध्रियमाणेन क्षत्रेण महता मुने ! ॥४४॥
चामरैर्वीज्यमानोऽसौ स्वगणैः परिवारितः । पार्षदैर्विलसद्भिश्च स्वभूषाविधिभूषितः ॥४५॥
तथाऽहमप्यशोभं वै व्रजन्मार्गे विराजितः । वेदैर्मूर्तिधरैः शास्त्रैः पुराणैरागमैस्तथा ॥४६॥
सनकादिमहासिद्धैः सप्रजापतिभिः सुतैः । परिवारैः संयुतो हि शिवसेवनतत्परः ॥४७॥
स्वसैन्यमध्यगः शक्र ऐरावतगजस्थितः । नानाविभूषितोऽत्यन्तं व्रजन् रेजे सुरेश्वरः ॥४८॥

करने वाले थे ॥ ३१ ॥ हे देवर्षे ! बहुत वर्णन हम क्या करें, सभी लोकों में रहने वाले वे सभी गणेश्वर शिव के व्याह का महोत्सव देखने के लिए बड़े प्रेम से आये ॥ ३२ ॥

इस प्रकार इन देवताओं तथा गणों से युक्त भगवान् सदाशिव अपने विवाह करने के लिए हिमालय के नगर को प्रस्थान किये ॥ ३३ ॥ हे नारद ! जिस समय सर्वेश्वर शिवजी देवता एवं गणों के साथ विवाह के लिए चले, उस समय का वृत्तान्त सुनो ॥ ३४ ॥ शत्रुओं को भय देने वाली चण्डी रुद्र की भगिनी बन कर उत्सव मनाती हुई बड़े प्रेम के साथ उस बारात में सम्मिलित हुई ॥ ३५ ॥ वह चण्डी प्रेत के आसन पर सवार थी, सर्पों के आभूषण पहने हुई थी। और सिर पर महादेदीप्यमान जलपूर्ण कलश धारण किये हुई थी। उसके मुख तथा नेत्र से अग्नि की ज्वाला निकल रही थी। वह बलशालिनी नाना प्रकार के कुतूहल कर रही थी ॥ ३६ ॥ वह अपने परिवार से संयुक्त थी, उसके साथ विकृत वेष धारण किये हुए अनेक प्रकार के दिव्य भूतगण भी शोभित हो रहे थे ॥ ३७-३८ ॥ इन भूतगणों को साथ लिये भयानक मुखवाली कलहकारिणी वह चण्डी कुतूहल करती हुई शिवजी की वरयात्रा में सम्मिलित हुई ॥३९॥ उस चण्डी ने रुद्र में अनन्य प्रीति करने वाले ग्यारह करोड़ रुद्र गणों को अपने पीछे कर लिया ॥ ४० ॥ उस समय डमरू के शब्द, भेरियों के झङ्कार तथा शङ्खों की ध्वनि से सारी त्रिलोकी गूँज उठी ॥ ४१ ॥ इसी प्रकार दुन्दुभी के निर्घोष से बहुत बड़ा कोलाहल हुआ, जो जगत् में मङ्गल करने वाला तथा अमङ्गल का नाशक था ॥ ४२ ॥

बारात में गणों के पीछे सभी देवता, सिद्धगण तथा लोकपाल अत्यन्त उत्कण्ठा के सहित चलने लगे ॥ ४३ ॥ बारात के मध्यभाग में बहुत बड़े छत्र से शोभित, गरुडासन पर बैठे हुए भगवान् वैकुण्ठनाथ विष्णु चल रहे थे। वे सर्वाभरण से विभूषित थे, उनके अगल-बगल पार्षद घेरे हुए थे तथा उनके दोनों ओर चँवर, वीज्यमान हो रहा था। सनकादि महासिद्धों एवं सप्तर्षि रूप प्रजापतियों तथा अपने परिवारों से युक्त मैं भी विद्यमान था ॥ ४४-४५ ॥ विग्रहधारी वेदों तथा पुराणों के साथ शिव की सेवा में तत्पर हो मार्ग में शोभा सम्पन्न हो चल रहा था ॥ ४६-४७ ॥ ऐरावत हाथी पर सवारी किये हुए

तदा तु व्रजमानास्ते ऋषयो बहवश्च ते । विरेजुरति सोत्कण्ठाः शिवस्योद्वाहनं प्रति ॥४९॥
शाकिन्यो यातुधानाश्च वेताला ब्रह्मराक्षसाः । भूत-प्रेत-पिशाचाश्च तथाऽन्ये प्रमथादयः ॥५०॥
तुम्बुरुर्नारदो हाहा हूहूश्चेत्यादयो वराः । गन्धर्वाः किन्नरा जग्मुर्वाद्यानाध्माय हर्षिताः ॥५१॥
जगतो मातरः सर्वा देवकन्याश्च सर्वशः । गायत्री चैव सावित्री लक्ष्मीरन्याः सुरस्त्रियः ॥५२॥
एताश्चाऽन्याश्च देवानां पत्नयो भवमातरः । उद्वाहः शङ्करस्येति जग्मुः सर्वा मुदान्विताः ॥५३॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशो वृषभः सर्वसुन्दरः । यो धर्म उच्यते वेदैः शास्त्रैः सिद्धमहर्षिभिः ॥५४॥
तमारूढो महादेवो वृषभं धर्मवत्सलः । शुशुभेऽतीव देवर्षिसेवितः सकलैर्व्रजन् ॥५५॥

एभिः समेतैः सकलैर्महर्षिभिर्बभौ महेशो बहुशोऽत्यलङ्कृतः ।
हिमालयाह्वस्य धरस्य संव्रजन् पाणिग्रहार्थं सदनं शिवायाः ॥५६॥

इत्युक्तं शम्भुचरितं गमनं परमोत्सवम् । हिमालयपुरोद्भूतं सद्वृत्तं शृणु नारद ! ॥५७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
यात्रावर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

देवराज इन्द्र अनेक प्रकार के आभूषणों से विभूषित हो सेना के मध्य में चलते हुए शोभा पा रहे थे ॥४८॥ उस समय विवाह देखने की उत्कण्ठा से बहुत से ऋषिगण भी मार्ग में जाते हुए शोभा पा रहे थे ॥ ४९ ॥

इसी प्रकार शाकिनी, यातुधान, वेताल, ब्रह्मराक्षस, भूत-प्रेत, पिशाच, प्रमथ, तुम्बुरु, नारद, हाहा, हूहू आदि श्रेष्ठ गन्धर्व एवं किन्नरगण बड़ी प्रसन्नता से बाजा बजाते हुए चले ॥ ५०-५१ ॥ सम्पूर्ण जगत् की माताएँ, देवकन्याएँ, गायत्री, सावित्री, लक्ष्मी तथा अन्य देवस्त्रियाँ तथा अन्य जगत् की माताएँ 'शंकर का विवाह हो रहा है' ऐसा जानकर महाप्रसन्नतापूर्वक शिवजी के बारात में सम्मिलित हुईं ॥ ५२-५३ ॥ शुद्धस्फटिक के समान सर्वसुन्दर वृषभ जिन्हें वेदों, शास्त्रों तथा महर्षियों ने धर्म कहा है, उस वृषभ रूप धर्म पर सवार हुए धर्मवत्सल भगवान् सदाशिव सम्पूर्ण देवताओं से सेवित हो मार्ग में चलते हुए अत्यन्त शोभा प्राप्त कर रहे थे ॥ ५४-५५ ॥ इन सभी देवताओं, महर्षियों तथा गणों के साथ अलंकृत हुए शिवजी पार्वती से विवाह करने के लिए हिमालय के घर जाते हुए मार्ग में अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥ ५६ ॥ हे नारद ! इस प्रकार हमने शिवजी के वरयात्रा-प्रस्थान का अत्यन्त सुन्दर चरित्र तुमसे कहा । अब हिमालय के नगर का श्रेष्ठ वृत्तान्त सुनो ॥ ५७ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में शिवविवाह-यात्रा वर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४० ॥

*

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

(विवाह-मण्डप देखकर देवताओं का मोहित होना)

ब्रह्मोवाच

ततः सम्मन्त्र्य च मिथः प्राप्याज्ञां शाङ्करीं हरिः । मुने ! त्वां प्रेषयामास प्रथमं कुधरालयम् ॥ १ ॥
अथ प्रणम्य सर्वेशं गतस्त्वं नारदाग्रतः । हरिणा नोदितः प्रीत्या हिमाचलगृहं प्रति ॥ २ ॥
त्वं मुनेऽपश्य आत्मानं गत्वा तद्व्रीडयान्वितम् । कृत्रिमं रचितं तत्र विस्मितो विश्वकर्मणा ॥ ३ ॥
श्रान्तस्त्वमात्मना तेन कृत्रिमेण महामुने ! । अवलोकपरः सोऽभूचरितं विश्वकर्मणः ॥ ४ ॥
प्रविष्टो मण्डपस्तस्य हिमाद्रे रत्नचित्रितम् । सुवर्णकलशैर्जुष्ट रम्भादिबहुशोभितम् ॥ ५ ॥
सहस्रस्तम्भसंयुक्तं विचित्रं परमाद्भुतम् । वेदिकां च तथा दृष्ट्वा विस्मयं त्वं मुने ह्ययाः ॥ ६ ॥
तदावोचश्च स मुने नारद ! त्वं नगेश्वरम् । विस्मितोऽतीव मनसि नष्टज्ञानो विमूढधीः ॥ ७ ॥
आगतास्ते किमधुना देवा विष्णुपुरोगमाः । तथा महर्षयः सर्वे सिद्धा उपसुरास्तथा ॥ ८ ॥
महादेवो वृषारूढो गणैश्च परिवारितः । आगतः किं विवाहार्थं वद तथ्यं नगेश्वर ! ॥ ९ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा तव विस्मितचेतसः । उवाच त्वां मुने ! तथ्यं वाक्यं स हिमवान् गिरिः ॥१०॥

हिमवानुवाच

हे नारद महाप्राज्ञागतो नैवाधुना शिवः । विवाहार्थं च पार्वत्याः सगणः सवरातकः ॥११॥
विश्वकर्मकृतं चित्रं विद्धि नारद ! सद्धिया । विस्मयं त्यज देवर्षे स्वस्थो भव शिवं स्मर ॥१२॥
भुक्त्वा विश्रम्य सुप्रीतः कृपां कृत्वा ममोपरि । मैनाकादिधरैः सार्द्धं गच्छ त्वं शङ्करान्तिकम् ॥१३॥

ब्रह्मा जी बोले—हे नारद ! तब परस्पर विचार-विमर्श कर और शङ्कर की आज्ञा लेकर भगवान् विष्णु ने तुमको हिमालय के यहाँ भेजा ॥ १ ॥ हे नारद ! तदनन्तर तुम भगवान् श्रीहरि की प्रेमपूर्ण प्रेरणा से सर्वेश्वर शिव को प्रणाम कर बारात से आगे हिमालय के नगर को चले ॥ २ ॥ वहाँ जाकर तुमने विश्वकर्मा द्वारा रचित लज्जा की मुद्रा से युक्त अपनी कृत्रिम मूर्ति देखी, उसे देखते ही तुम्हें महान् आश्चर्य हुआ ॥ ३ ॥ हे महामुने ! विश्वकर्मा द्वारा रचित उस अपनी मूर्ति को देखकर तथा विश्वकर्मा का सारा चरित्र जानकर तुम श्रान्त-से हो गये ॥ ४ ॥ फिर तुमने स्वर्ण कलशों से एवं केले के सहस्त्रों खम्भों से मण्डित हुए रत्नचित्रित हिमालयरचित मण्डप में प्रवेश किया ॥ ५ ॥ वह मण्डप नाना प्रकार के विशिष्ट चित्रों से अलंकृत तथा हजारों खम्भों से युक्त था। उसमें बनी हुई वेदी देखकर तो तुम और आश्चर्य में पड़ गये ॥ ६ ॥ हे मुने नारद ! उस विस्मय के कारण तुम्हारा सारा ज्ञान एवं सारी बुद्धि नष्ट हो गयी। पुनः किं-कर्तव्य-विमूढ़ हो तुमने हिमालय से पूछा ॥ ७ ॥ हे हिमालय ! क्या विष्णु को आगे कर सभी देवता, महर्षि, सिद्ध एवं गन्धर्व यहाँ पहले ही पहुँच गये ? ॥ ८ ॥ हे पर्वतराज ! क्या विवाह हेतु श्वेत बैल पर सवार गणेश्वरों से युक्त यह सदाशिव यहाँ पहले ही पधार चुके हैं। मैं तो उन्हें अभी पीछे छोड़कर आ रहा हूँ, मुझे भ्रम हो गया है, यह बात आप सत्य-सत्य कहिए ॥ ९ ॥

ब्रह्माजी बोले--विस्मित चित्त हुए तुम्हारे वचन सुनकर हिमालय तुमसे श्रेष्ठ तथा तथ्य वचन कहने लगे ॥ १० ॥

हिमालय बोले—हे महाप्राज्ञ नारद ! अभी विवाह के लिए अपने गणों तथा बरातियों को लेकर शिवजी नहीं आये ॥ ११ ॥ इसे तुम अच्छी तरह विचार कर देखो, यह तो विश्वकर्मा के द्वारा रचित चित्र है। हे देवर्षे ! तुम आश्चर्य का त्याग करो और स्वस्थ चित्त हो जाओ ॥ १२ ॥ आप मुझ पर कृपाकर भोजन तथा विश्राम करो। अनन्तर मैनाक आदि मेरे पुत्रों के साथ तुम शङ्कर के समीप

एभिः समेतो गिरिभिर्महामते सम्प्रार्थ्य शीघ्रं शिवमत्र चानय ।
देवैः समेतं च महर्षिसङ्घैः सुराऽसुरैरर्चितपादपल्लवम् ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तथेति चोक्त्वागम आशु हि त्वं सदैव तैः शैलसुतादिभिश्च ।
तत्रत्यकृत्यं सुविधाय भुक्त्वा महामनास्त्वं शिवसंन्निधानम् ॥१५॥
तत्र दृष्टो महादेवो देवादिपरिवारितः । नमस्कृतस्त्वया दीप्तः शैलैस्तैर्भक्तितश्च वै ॥१६॥
तदा मया विष्णुना च सर्वे देवाः सवासवाः । पप्रच्छुस्त्वां मुने सर्वे रुद्रस्यानुचरास्तथा ॥१७॥
विस्मिताः पर्वतान् दृष्ट्वा सन्देहाकुलमानसाः । मैनाकसह्यमेर्वाद्यान् नानालङ्कारसंयुतान् ॥१८॥

देवा ऊचुः

हे नारद महाप्राज्ञ ! विस्मितस्त्वं हि दृश्यसे । सत्कृतोऽसि हिमागेन किं न वा वद विस्तरात् ॥१९॥
एते कस्मात् समायाताः पर्वता इह सत्तमाः । मैनाकसह्यमेर्वाद्याः सुप्रतापाः स्वलङ्कृताः ॥२०॥
कन्यां दास्यति शैलोऽसौ स भवे वा न नारद ! । हिमालयगृहे तात ! किं भवत्यद्य तद्वद ॥२१॥
इति सन्दिग्धमनसामस्माकं च दिवौकसाम् । वद त्वं पृच्छमानानां सन्देहं हर सुव्रत ! ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां विष्ण्वादीनां दिवौकसाम् । अवोचस्तान्मुने त्वं हि विस्मितस्त्वाष्ट्रमायया ॥२३॥
एकान्तमाश्रित्य च मां हि विष्णुमभाषथा वाक्यमिदं मुने त्वम् ।
शचीपतिं सर्वसुरेश्वरं वै पक्षच्छिदं पूर्वरिपुन्धराणाम् ॥२४॥

जाना ॥ १३ ॥ हे महामते ! तुम इन पर्वतों को साथ लेकर देवता तथा महर्षियों सहित शिवजी की प्रार्थना कर यहाँ ले आओ, जिन शिवजी के चरणों की अर्चना देवता तथा असुर भी किया करते हैं ॥ १४ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! तुमने 'तथास्तु' कहकर वहाँ का सारा कृत्य अच्छी तरह सम्पन्न कर, भोजनादि क्रिया से निवृत्त हो, हिमालय के पुत्रों के सहित बड़ी प्रसन्नता से शिव के समीप आये ॥ १५ ॥ वहाँ तुमने देवताओं से घिरे हुए महादेव जी को देखा। अनन्तर तुमने तथा पर्वतराज के पुत्रों ने बड़े प्रेम तथा भक्ति से उन्हें प्रणाम किया ॥ १६ ॥ फिर तुम्हें गिरिराज के यहाँ से आये हुए देखकर मैंने, विष्णु ने तथा इन्द्रादि से युक्त देवताओं एवं रुद्रानुचरों ने तुमसे पूछा ॥ १७ ॥ क्योंकि नारद के साथ मैनाक, सह्य, मेरु आदि पर्वतों को नानालङ्कार धारण किये देख हम सभी का मन आश्चर्य से चकित हो रहा था और सभी सन्देह से व्याकुल हो रहे थे ॥ १८ ॥

देवगणों ने कहा—हे महापण्डित नारद जी ! तुम आश्चर्य से चकित-जैसे दिखाई पड़ते हो, सर्वप्रथम यह बतलाओ कि हिमालय ने तुम्हारा सत्कार किया या नहीं ? हम लोगों को यह विस्तार से बताओ ॥१९॥ और ये महाबली मैनाक, सह्य तथा मेरु आदि पर्वत अनेक अलङ्कार धारण कर यहाँ किस उद्देश्य से आये हैं ॥ २० ॥ हे नारद ! तुम यह भी बतलाओ कि पर्वतराज हिमालय का विचार शिव को कन्या देने का है या नहीं ? । हे तात ! इस समय हिमालय के यहाँ क्या हो रहा है, यह सब विस्तार से कहिए ॥ २१ ॥ हे सुव्रत ! हम देवताओं का मन अनेक प्रकार के सन्देह से ग्रस्त हो रहा है, अतः हम लोग तुमसे पूछ रहे हैं, तुम सन्देह को दूर करो ॥ २२ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार विष्णु आदि देवों के वचन सुनकर विश्वकर्मा की माया से मोहित हुए तुम उनसे कहने लगे ॥ २३ ॥ तुम मुझे, विष्णु को तथा पर्वतों का पङ्ख काटने वाले इन्द्र को एकान्त में ले जाकर बोले ॥ २४ ॥

नारद उवाच

त्वष्ट्रा कृतं तद्विकृतं विचित्रं विमोहनं सर्वदिवौकसां हि ।
येनैव सर्वान् स विमोहितुं सुरान् समिच्छति प्रेमत एव युक्त्या ॥२५॥
पुरा कृतं तस्य विमोहनं त्वया सुविस्मृतं तत् सकलं शचीपते ।
तस्मादसौ त्वां विजिगीषुरेव गृहे ध्रुवं तस्य गिरेर्महात्मनः ॥२६॥

अहं विमोहितस्तेन प्रतिरूपेण भास्वता । तथा विष्णुः कृतस्तेन ब्रह्मा शक्रोऽपि तादृशः ॥२७॥
किं बहूक्तेन देवेश सर्वदेवगणाः कृताः । कृतिमाश्चित्ररूपेण न किञ्चिदवशेषितम् ॥२८॥
विमोहनार्थं सर्वेषां देवानां च विशेषतः । कृता माया चित्रमयी परिहासविकारिणी ॥२९॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य देवेन्द्रो वाक्यमब्रवीत् । विष्णुं प्रति तदा शीघ्रं भयाकुलतनुर्हरिम् ॥३०॥

देवेन्द्र उवाच

देवदेव रमानाथ त्वष्टा मां निहनिष्यति । पुत्रशोकेन तप्तोऽसौ व्याजेनानेन नान्यथा ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा देवदेवो जनार्दनः । उवाच प्रहसन् वाक्यं शक्रमाश्वासयंस्तदा ॥३२॥

विष्णुरुवाच

निवातकवचैः पूर्वं मोहितोऽसि शचीपते । महाविद्याबलेनैव दानवैः पूर्ववैरिभिः ॥३३॥
पर्वतो हिमवानेष तथान्येऽखिलपर्वताः । विपक्षाहिकृताः सर्वे मम वाक्याच्च वासव ! ॥३४॥
तेऽनुस्मृत्या तु वै दृष्ट्वा मायया गिरयो ह्यमी । जेतुमिच्छन्तु ये मूढा न भेतव्यमरावपि ॥३५॥

नारदजी बोले—विश्वकर्मा ने हिमालय के घर जैसी कारीगरी की है, उसे देखते ही सभी देवगण मोहित हो जायेंगे । वे हिमालय तो उस कारीगरी के कौशल से ही सारे देवताओं को प्रेम तथा युक्ति से मोहित करना चाहते हैं ॥ २५ ॥ हे शचीपते ! तुमने पूर्वकाल में विश्वकर्मा को जैसे भुलावे में डाल दिया था, क्या उसे भूल गये हो । इसलिए वह आज तुम्हें जीतने की इच्छा से हिमालय के घर में वर्त्तमान है ॥ २६ ॥ उसने मेरा ऐसा चित्र बना रखा है कि उसे देखकर मैं तो मोहित हो गया हूँ । इसी प्रकार उसने विष्णु, ब्रह्मा तथा इन्द्रादि देवताओं के चित्र का निर्माण भी किया है ॥२७॥ हे देवेश ! बहुत कहने से क्या ? उस विश्वकर्मा ने सभी देवगणों का चित्र इतनी कुशलता से निर्माण किया है कि वह यथार्थ देवताओं के रूप से किञ्चिन्मात्र भिन्न नहीं जान पड़ता ॥ २८ ॥उन्होंने परिहास करने के लिए सभी देवताओं की यह मायामयी चित्रमयी रचना की है जिससे देवताओं को मोह उत्पन्न हो जाये ॥ २९ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार नारद के वचन सुन भय से व्याकुल शरीर वाले देवेन्द्र विष्णु की ओर देखकर शीघ्रता से बोले ॥ ३० ॥

देवेन्द्र इन्द्र बोले—हे देवदेव ! हे रमानाथ ! त्वष्ट्रापुत्र शोक से व्याकुल हो मुझसे द्रोह करता है, कहीं ऐसा न हो कि वह इसी बहाने मेरा वध करे ॥ ३१ ॥

ब्रह्मा बोले—इन्द्र के इस प्रकार के वचन सुन देवाधिदेव जनार्दन उन्हें समझाते हुए कहने लगे ॥३२॥

विष्णु बोले—हे शचीपते ! निवात, कवचादि दानव गणों ने महाविद्या के बल से पूर्वकाल में भी तुम्हें मोहित किया था, क्योंकि तुम्हारी उनसे शत्रुता थी ॥ ३३ ॥ हे वासव ! इसी प्रकार तुमने मेरी आज्ञा से पर्वतराज हिमालय के तथा अन्य दूसरे पर्वतों के पंख का छेदन कर दिया है ॥ ३४ ॥ [illegible] कारण ये पर्वत भी उसी माया को देखकर तथा सुनकर तुम्हें जीतने की इच्छा करते हैं, ये सभी मूर्ख हैं, तुम्हारा

ईश्वरो नो हि सर्वेषां शङ्करो भक्तवत्सलः । सर्वथा कुशलं शक्र ! करिष्यति न संशयः ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

एवं संवदमानं तं शक्रं विकृतमानसम् । हरिणोक्तश्च गिरिशो लौकिकीं गतिमाश्रितः ॥३७॥

ईश्वर उवाच

हे हरे हे सुरेशान किं ब्रूथोऽद्य परस्परम् । इत्युक्त्वा तौ महेशानो मुने त्वां प्रत्युवाच सः ॥३८॥

किं नु वक्ति महाशैलो यथार्थं वद नारद ! । वृत्तान्तं सकलं ब्रूहि न गोप्यं कर्तुमर्हसि ॥३९॥

ददाति वा नैव ददाति शैलः सुतां स्वकीयां वद तच्च शीघ्रम् ।

किं ते दृष्टं किं कृतं तत्र गत्वा प्रीत्या सर्वं तद्वदाशु वद तात ! ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तः शम्भुना तत्र मुने त्वं देवदर्शनः । सर्वं रहस्यवोचो वै यद् दृष्टं तत मण्डपे ॥४१॥

नारद उवाच

देवदेव महादेव ! शृणु मद्वचनं शुभम् । नास्ति विघ्नभयं नाथ ! विवाहे किञ्चिदेव हि ॥४२॥

अवश्यमेव शैलेशस्तुभ्यं दास्यति कन्यकाम् । त्वामानयितुमायाता इमे शैला न संशयः ॥४३॥

किं तु ह्यमरमोहार्थं माया विरचिताऽद्भुता । कुतूहलार्थं सर्वज्ञ न कश्चिद्विघ्नसम्भवः ॥४४॥

विचित्रं मण्डपं गेहेऽकार्षीत्तस्य तदाज्ञया । विश्वकर्मा महामायी नानाश्चर्यमयं विभो ॥४५॥

सर्वदेवसमाजश्च कृतस्तत्र विमोहनः । तं दृष्ट्वा विस्मयं प्राप्तोऽहं तन्मायाविमोहितः ॥४६॥

पराक्रम नहीं जानते, अतः तुम इनसे भयभीत मत हो ॥ ३५ ॥ हे देवेन्द्र ! इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि भक्तवत्सल भगवान् सदाशिव हम सभी का इस विवाह में मंङ्गल करेंगे ॥ ३६ ॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार व्याकुल हुए इन्द्र को देखकर विष्णु ने उन्हें समझाया, तब लौकिक गति का आश्रय लेकर भगवान् बोले ॥ ३७ ॥

ईश्वर बोले—हे हरे ! हे सुरपते ! आप लोग परस्पर क्या विचार कर रहे हो, उन दोनों से ऐसा कहने के पश्चात् हे नारद ! उन्होंने पुनः तुमसे कहा—॥ ३८ ॥ हे नारद ! महाशैल ने क्या कहा है, तुम यथार्थ रूप से सारा वृत्तान्त कहो, गुप्त रखने की कोई आवश्यकता नहीं ॥ ३९ ॥ तुम शीघ्रता से बताओ कि शैलराज की कन्या देने की इच्छा है अथवा नहीं । हे तात ! तुमने वहाँ जाकर क्या देखा ? और क्या किया, यह सारा वृत्तान्त प्रेमपूर्वक कहो ? ॥ ४० ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने ! जब शिव ने तुमसे ऐसा कहा तब तुमने मण्डप में जो रहस्य देखा था वह सब रहस्य इस प्रकार कहा– ॥ ४१ ॥

नारद जी बोले—हे देवदेव ! आप मेरे शुभ वचन सुनें । इस विवाह में तो किसी प्रकार के विघ्न की सम्भावना नहीं दिखाई पड़ती और न तो किसी प्रकार का भय ही है ॥ ४२ ॥ शैलराज निश्चित रूप से आपको ही अपना कन्या देना चाहते हैं, और ये पर्वत इसी निमित्त आपको लेने की इच्छा से यहाँ आये हैं ॥ ४३ ॥ हे सर्वज्ञ ! परन्तु एक बात अवश्य है कि कुतूहलवश वहाँ सभी देवताओं को मोहित करने के लिए एक अद्भुत माया रची गयी है । इसके अतिरिक्त वहाँ और किसी प्रकार के विघ्न की सम्भावना नहीं है ॥ ४४ ॥ हे विभो ! महामाया करने वाले विश्वकर्मा ने हिमालय की आज्ञा से वहाँ महान् आश्चर्ययुक्त मण्डप की रचना की है ॥ ४५ ॥ उस मण्डप में विश्वकर्मा ने सारे देवसमाज का चित्र निर्माण किया है, उसे देखकर मैं मोहित हो आश्चर्य में पड़ गया हूँ ॥ ४६ ॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा तद्वचस्तात लोकाचारकरः प्रभुः । हर्षादीन् प्रहसन् शम्भुरुवाच सकलान् सुरान् ॥४७॥

ईश्वर उवाच

कन्यां दास्यति चेन्मह्यं पर्वतो हि हिमाचलः । मायया मम किं कार्यं वद विष्णो ! यथातथम् ॥४८॥

हे ब्रह्मन् ! शक्र मुनयः सुरा ब्रूत यथार्थतः । मायया मम किं कार्यं कन्यां दास्यति चेद् गिरिः ॥४९॥

केनाप्युपायेन फलं हि साध्यमित्युच्यते पण्डितैर्न्यायविद्भिः ।

तस्मात् सर्वैर्गम्यतां शीघ्रमेव कार्यार्थिभिर्विष्णुपुरोगमैश्च ॥५०॥

ब्रह्मोवाच

एवं संवदमानोऽसौ देवैः शम्भुरभूत्तदा । कृतः स्मरेणैव वशी वशं वा प्राकृतो नरः ॥५१॥

अथ शम्भ्वाज्ञया सर्वे विष्ण्वाद्या निर्जरास्तदा । ऋषयश्च महात्मानो ययुर्मोहभ्रमापहम् ॥५२॥

पुरस्कृत्य मुने ! त्वां च पर्वतांस्तान् सविस्मयाः । हिमाद्रेश्च तदा जग्मुर्मन्दिरं परमाद्भुतम् ॥५३॥

अथ विष्ण्वादिसंयुक्तो मुदितैः स्वबलैर्युतः । आजगामोपहैमागपुरं प्रमुदितो हरः ॥५४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
मण्डपरचनावर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

ब्रह्माजी बोले—नारद का वचन सुनकर लोकाचार करने वाले शिवजी विष्णु आदि देवताओं का हास्य करते हुए बोले ॥ ४७ ॥

शिवजी बोले—हे विष्णो ! यदि हिमालय मुझे अपनी कन्या देंगे तो आप ही बताइए कि मुझे माया से क्या प्रयोजन है ? ॥ ४८ ॥ हे ब्रह्मन् ! हे शक्र, हे मुनिगण तथा हे देवगण ! आप लोग यथार्थ रूप से कहिए कि हिमालय मुझे अपनी कन्या दे रहे हैं तो माया से मेरा क्या प्रयोजन है ? ॥ ४९ ॥ न्यायशास्त्र के जानकार पण्डितों ने कहा है कि, जिस-किसी उपाय से बन पड़े अपना साध्यफल प्राप्त करना चाहिए। अतः आप सभी विष्णु आदि देवगण इस कार्यसिद्धि की इच्छा से शीघ्र ही चलें ॥ ५० ॥

ब्रह्माजी बोले—देवताओं से इस प्रकार कहने के उपरान्त जितेन्द्रिय भगवान् सदाशिव को कामदेव ने साधारण मनुष्य के समान अपने वश में कर लिया ॥ ५१ ॥ तदनन्तर शिवजी की आज्ञा से विष्णु आदि देवता एवं ऋषिगण मोह तथा भ्रम को दूर करने वाले हिमालय के नगर की ओर चले ॥ ५२ ॥ उन देवताओं ने तुम नारद को तथा उन पर्वतों को आगे कर विस्मययुक्त हो हिमालय के अपूर्व एवं महाद्भुत मन्दिर की ओर प्रस्थान किया ॥ ५३ ॥ इस प्रकार विष्णु आदि देवताओं को आगे किये हुए तथा प्रसन्न हुए अपने गणों के साथ शिवजी हिमालय के नगर में आ पहुँचे ॥ ५४ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-
पार्वतीखण्ड में मण्डपरचना वर्णन नामक इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥

*

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

(शिव-आगमन के उत्सव का वर्णन)

ब्रह्मोवाच

अथाकर्ण्य गिरीशश्च निजपुर्युपकण्ठतः । प्राप्तमीशं सर्वगं तै मुमुदेति हिमालयः ॥ १ ॥
अथ सम्भृतसम्भारः सम्भाषां कर्तुमीश्वरम् । शैलान् प्रस्थापयामास ब्राह्मणानपि सर्वशः ॥ २ ॥
स्वयं जगाम सद्भक्त्या प्राणेप्सुं द्रष्टुमीश्वरम् । भक्त्युद्भुतमनाः शैलः प्रशंसन् स्वविधिं मुदा ॥ ३ ॥
देवसेनां तदा दृष्ट्वा हिमवान् विस्मयं गतः । जगाम सम्मुखस्तत्र धन्योऽहमिति चिन्तयन् ॥ ४ ॥
देवा हि तद्बलं दृष्ट्वा विस्मयं परमं गताः । आनन्दं परमं प्रापुर्देवाश्च गिरयस्तथा ॥ ५ ॥
पर्वतानां महासेना देवानां च तथा मुने । मिलित्वा विरराजेव पूर्वपश्चिमसागरौ ॥ ६ ॥
परस्परं मिलित्वा ते देवाश्च पर्वतास्तथा । कृतकृत्यं तथात्मानं मेनिरे परया मुदा ॥ ७ ॥
अथेश्वरं पुरो दृष्ट्वा प्रणनाम हिमालयः । सर्वे प्रणेमुर्गिरयो ब्राह्मणाश्च सदाशिवम् ॥ ८ ॥
वृषभस्थं प्रसन्नास्यं नानाभरणभूषितम् । दिव्यावयव-लावण्य-प्रकाशित-दिगन्तरम् ॥ ९ ॥
सुसूक्ष्माहत-सत्पट्ट-वस्त्रशोभित-विग्रहम् । सद्रत्नविलसन् मौलिं विहसन्तं शुचिप्रभम् ॥१०॥
भूषाभूताहियुक्ताङ्गमद्भुतावयवप्रभम् । दिव्यद्युतिं सुरेशैश्च सेवितं करचामरैः ॥११॥
वामस्थिताच्युतं दक्षभागस्थितविधुं प्रभुम् । पृष्ठस्थितहरिं पृष्ठपार्श्वस्थितसुरादिकम् ॥१२॥
नानाविधिसुराद्यैश्च संस्तुतं लोकशङ्करम् । स्वहेत्वात्ततनुं ब्रह्म सर्वेशं वरदायकम् ॥१३॥
सगुणं निर्गुणं चापि भक्ताधीनं कृपाकरम् । प्रकृतेः पुरुषस्यापि परं सच्चित्सुखात्मकम् ॥१४॥

ब्रह्माजी बोले—इधर हिमालय को जब मालूम हो गया कि बारात शिवजी के सहित नगर के निकट आ गयी है तो बड़े प्रसन्न हुए ॥१॥ उन्होंने सदाशिव की अगवानी का सारा सम्भार सजाकर बहुत से ब्राह्मणों तथा पर्वतों को भेजा ॥ २ ॥ और स्वयं प्राणों से प्रिय ईश्वर का दर्शन करने के लिए सद्भक्ति से युक्त हो गमन किया । हिमालय के मन में शिव के प्रति अपार भक्ति बढ़ गयी और वे अपने भाग्य की प्रशंसा करने लगे ॥ ३ ॥ सर्वप्रथम उन्होंने देवसेना को ही देखा, जिससे वे विस्मित हो गये । और अपने को धन्य मानते हुए उनकी अगवानी करने लगे ॥ ४ ॥ देवगण भी हिमालय की विशाल सेना देखकर आश्चर्य से चकित हो गये । इस प्रकार दोनों ओर देवताओं तथा पर्वतों को परमानन्द प्राप्त हुआ ॥ ५ ॥ हे मुने ! उस समय देवताओं तथा पर्वतों की विशाल महासेना मिलकर पूर्व तथा पश्चिम-सागर के समान शोभित हुई ॥ ६ ॥ देवता तथा पर्वत परस्पर मिलकर अपने को कृतकृत्य मानने लगे ॥ ७ ॥

तदनन्तर हिमालय तथा ब्राह्मणों ने वृषभ पर सवार, प्रसन्न मुख, नानालङ्कारों से शोभित, अपने दिव्य शरीर की शोभा से दिगन्तरों को प्रकाशित करने वाले अत्यन्त सूक्ष्म तथा नवीन रेशमी वस्त्र को धारण किये, शिर पर रत्नों से जटित मुकुट, मन्दस्मित, शुभ्रकान्ति, सर्पों के अलङ्कारों से सुशोभित अङ्गवाले, दिव्य प्रकाशयुक्त, देवताओं के द्वारा चमर डुलाये जाते हुए, शिव को सामने देखकर प्रणाम किया । उस समय उनके बायीं ओर ब्रह्मा, दाहिनी ओर अच्युत, पृष्ठभाग में इन्द्र तथा पीछे तथा पार्श्वभाग में देवता विराजमान थे ॥ ८–१२ ॥ लोककर्त्ता उन शङ्कर की देवतागण अनेक प्रकार की स्तुति कर रहे थे, जो ब्रह्म होकर भी अपनी इच्छा से शरीर धारण करते हैं, सर्वेश्वर हैं और सबको अभीष्ट प्रदान करते हैं ॥ १३ ॥ जो निर्गुण तथा सगुण रूप वाले हैं, भक्तों के अधीन होकर उन पर कृपा रखते हैं । जो प्रकृति

प्रभोर्दक्षिणभागे तु ददर्श हरिमच्युतम् । विनतातनयारूढं नानाभूषणभूषितम् ॥१५॥
प्रभोश्च वामभागे तु मुने ! मां सन्ददर्श ह । चतुर्मुखं महाशोभं स्वपरीवारसंयुतम् ॥१६॥
एतौ सुरेश्वरौ दृष्ट्वा शिवस्यातिप्रियौ सदा । प्रणनाम गिरीशश्च सपरीवार आदरात् ॥१७॥
तथा शिवस्य पृष्ठे च पार्श्वयोः सुविराजितान् । देवादीन् प्रणनामासौ दृष्ट्वा गिरिवरेश्वरः ॥१८॥
शिवाज्ञया पुरो भूत्वा जगाम स्वपुरं गिरिः । शेषहर्यात्मभूः शीघ्रं मुनिभिर्निर्जरादिभिः ॥१९॥
सर्वे मुनिसुराद्याश्च गच्छन्तः प्रभुणा सह । गिरेः पुरं समुदिताः शशंसुर्बहु नारद ! ॥२०॥
रचिते शिखरे रम्ये संस्थाप्य देवतादिकम् । जगाम हिमवाँस्तत्र यत्रास्ति विधिवेदिका ॥२१॥
कारयित्वा विशेषेण चतुष्कं तोरणैर्युतम् । स्नानदानादिकं कृत्वा परीक्षामकरोत्तदा ॥२२॥
स्वपुत्रान् प्रेषयामास शिवस्य निकटे तदा । हिमो विष्ण्वादिसम्पूर्ण-वर्गयुक्तस्य शैलराट् ॥२३॥
कर्तुमैच्छद्वराचारं महोत्सवपुरःसरम् । महाहर्षयुतः सर्वबन्धुयुग्घिमशैलराट् ॥२४॥
अथ ते गिरिपुत्राश्च तत्र गत्वा प्रणम्य तम् । सस्ववर्गं प्रार्थनां तामूचुः शैलेश्वरस्य वै ॥२५॥
ततस्ते स्वालयं जग्मुः शैलपुत्रास्तदाज्ञया । शैलराजाय संचख्युस्ते चायान्तीति हर्षिताः ॥२६॥
अथ देवाः प्रार्थनां तां गिरेः श्रुत्वातिहर्षिताः । मुने विष्ण्वादयः सर्वे सेश्वरा मुमुदुर्भृशम् ॥२७॥
कृत्वा सुवेषं सर्वेऽपि निर्जरा मुनयो गणाः । गमनं चक्रुरन्येऽपि प्रभुणा गिरिराड्गृहम् ॥२८॥
तस्मिन्नवसरे मेना द्रष्टुकामाऽभवच्छिवम् । प्रभोराह्वाययामास मुने ! त्वां मुनिसत्तमम् ॥२९॥

तथा पुरुष से भी परे हैं और सच्चिदानन्दस्वरूप हैं ॥ १४ ॥ हिमालय ने देखा कि प्रभु के दक्षिण भाग में विष्णु विराज रहे थे, जो गरुड़ पर चढ़े नाना प्रकार के आभूषणों से विभूषित थे ॥ १५ ॥ हे मुने ! उन्होंने प्रभु के वामभाग में स्थित हुए, चार मुखवाले, शोभा से समन्वित एवं परिवार से संयुक्त मुझे देखा ॥ १६ ॥ इस प्रकार हम दोनों सुरेश्वरों को स्थित देख गिरीश ने परिवार सहित आदर से प्रणाम किया ॥ १७ ॥ फिर गिरीश्वर ने देवाधिदेव सदाशिव के पीछे स्थित हुए सभी देवताओं को प्रणाम किया ॥ १८ ॥

इस प्रकार शिव की आज्ञा लेकर गिरिराज हिमालय शिव की अगवानी कर अपने नगर में प्रविष्ट हुए, अनन्तर देवताओं के साथ शेष, विष्णु तथा ब्रह्मदेव भी नगर में गये ॥ १९ ॥ शिव के साथ जाते हुए सभी मुनि एवं देवगण परम प्रसन्न हो हिमालय के नगर की प्रशंसा करने लगे ॥ २० ॥ तदनन्तर सुरम्य तथा निवास के योग्य बनाये गये अपने शिखर पर हिमालय ने देवादिकों को स्थापित किया और स्वयं वहाँ चले गये, जहाँ विधिपूर्वक वेदी बनायी गई थी ॥ २१ ॥ वह स्थान तोरणों से विशेष रूप से सजाया गया और चौकोर था, वहाँ जाकर विधिपूर्वक स्नान-दानादि क्रिया कर विधिपूर्वक शिवागमन की प्रतीक्षा करने लगे ॥ २२ ॥ हिमालय ने विष्ण्वादि सम्पूर्ण वर्ग से युक्त शिव के समीप अपने पुत्रों को भेजा ॥२३॥ वे प्रसन्न हो अपने बन्धुगणों के साथ उत्सवपूर्वक वर का यथोचित आचार करना चाहते थे ॥ २४ ॥ तब उन पर्वतपुत्रों ने अपने वर्गों के सहित विष्णु आदि के पास जाकर प्रणाम करते हुए शैलेश्वर की प्रार्थना सुनायी ॥ २५ ॥ फिर वे उनकी आज्ञा लेकर अपने घर चले आये और प्रसन्न होकर शैलराज से कहा कि अब बारात के लोग आ रहे हैं ॥ २६ ॥ इधर शिवजी समेत समस्त विष्णु आदि देवगण गिरिराज की प्रार्थना सुन परम प्रसन्न हो गये ॥ २७ ॥

तदनन्तर सभी देवता तथा मुनिगण अपने-अपने उत्तम वेश-भूषा से सुसज्जित हो परम प्रसन्नता के साथ हिमालय के घर चले ॥ २८ ॥ हे मुने ! उसी समय मेना की प्रबल इच्छा प्रभु सदाशिव को देखने की

अगमस्त्वं मुने तत्र प्रभुणा प्रेरितस्तदा । मनसा शिवहृद्धेतुं पूर्णं कर्तुं तमिच्छता ॥३०॥
त्वां प्रणम्य मुने मेना प्राह विस्मितमानसा । द्रष्टुकामा प्रभो रूपं शङ्करस्य मदापहम् ॥३१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
देवगिरिमेलवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

(शिवदर्शन निमित्त आयी मेना को मोहित करने हेतु शिव का विकटरूप प्रदर्शन)

मेनोवाच

निरीक्षिष्यामि प्रथमं मुने तं गिरिजापतिम् । कीदृशं शिवरूपं हि यदर्थे तप उत्तमम् ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्यज्ञानपरा सा च दर्शनार्थं शिवस्य च । त्वया मुने ! समं सद्यश्चन्द्रशालां समागता ॥ २ ॥
शिवोऽपि च तदा तस्यां ज्ञात्वाऽहङ्कारमात्मनः । प्राह विष्णुं च मां तात ! लीलां कृत्वाऽद्भुतां प्रभुः ॥ ३ ॥

शिव उवाच

मदाज्ञया युवां तातौ सदेवौ च पृथक् पृथक् । गच्छतं हि गिरिद्वारं वयं पश्चाद् व्रजेमहि ॥ ४ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य हरिः सर्वानाहूयोवाच तन्मयाः । सुराः सर्वे तथैवाशु गमनं चक्रुरुत्सुकाः ॥ ५ ॥
स्थितां शिरोगृहे मेनां मुने विश्वेश्वरस्त्वया । तथैव दर्शयामास हृद्विभ्रंशो यथा भवेत् ॥ ६ ॥
एतस्मिन् समये मेना सेनां च परमां शुभाम् । निरीक्षन्ती मुने दृष्ट्वा सामान्यं हर्षिताऽभवत् ॥ ७ ॥

हुई, इसलिए हे नारद ! उन्होंने तुमको बुलवाया ॥ २९ ॥ फिर तुम शिव की प्रेरणा से शिव के हृदय की अभिलाषा पूर्ण करने की इच्छा से मेना के पास गये ॥ ३० ॥ हे मुने ! तब मेना ने तुम्हें प्रणाम किया और आश्चर्य से चकितहो शिवशङ्कर का वह रूप देखने की इच्छा से तुमसे कहने लगी, जिससे वे सभी का मद अपहरण करते हैं ॥ ३१ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में
देवगिरि-सम्मिलन वर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४२ ॥

*

मेना ने कहा—हे मुने नारद ! मैं सर्वप्रथम गिरिजा के पति को देखना चाहती हूँ, जिसके लिए पार्वती ने इतनी घोर तपस्या की, उन शिव का स्वरूप कैसा है ? ॥ १ ॥

ब्रह्माजी बोले—शिव के माहात्म्य को न जानने वाली वह मेना इस प्रकार अज्ञान से मोहित हो शिव के रूप को देखने की इच्छा से तुम्हारे (नारद) के साथ चन्द्रशाला में आयी ॥ २ ॥ हे तात ! मेना के मनोगत अहङ्कार को जानकर सदाशिव प्रभु अद्भुत लीला करने की इच्छा से मुझ ब्रह्मा तथा विष्णु से इस प्रकार कहने लगे ॥ ३ ॥

शिवजी बोले—हे तात ! हमारी आज्ञा से आप दोनों, देवताओं को साथ लेकर पृथक्-पृथक् अपने गणों के आगे-आगे गिरिराज के द्वार पर चलें, मैं पीछे-पीछे चलूँगा ॥ ४ ॥

ब्रह्माजी बोले—शिवजी की यह बात सुन विष्णु ने सभी देवताओं को बुलाकर उनकी आज्ञा सुनायी। तदनन्तर सभी देवता उसी प्रकार चलने लगे ॥ ५ ॥ हे मुने ! उसी समय शिवदर्शन की इच्छा से मेना भी तुम्हें साथ लेकर महल की अटारी पर चढ़ी, तब तुम उसे इस प्रकार दिखाने लगे जिससे उसका हृदय विदीर्ण हो ॥ ६ ॥ हे मुने ! उस समय देवताओं की शोभा-सम्पन्न सेना को देखकर मेना सामान्य रूप से

प्रथमं चैव गन्धर्वाः सुन्दराः सुभगास्तदा । आयाताः शुभवस्त्राढ्या नानालङ्कारभूषिताः ॥ ८ ॥
नानावाहनसंयुक्ता नानावाद्यपरायणाः । पताकाभिर्विचित्राभिरप्सरोगणसंयुताः ॥ ९ ॥
अथ दृष्ट्वा वसुं तत्र तत्पतिं परमप्रभुम् । मेना प्रहर्षिता ह्यासीच्छिवोऽयमिति चाऽब्रवीत् ॥१०॥
शिवस्य गणका एते न शिवोऽयं शिवापतिः । इत्येवं त्वं ततस्तां वै अवोच ऋषिसत्तम ! ॥११॥
एवं श्रुत्वा तदा मेना विचारे तत्पराऽभवत् । इतश्चाप्यधिको यो वै स च कीदृग् भविष्यति ॥१२॥
एतस्मिन्नन्तरे यक्षा मणिग्रीवादयश्च ये । तेषां सेना तया दृष्टा शोभापि द्विगुणीकृता ॥१३॥
तत्पतिं च मणिग्रीवं दृष्ट्वा शोभान्वितं हि सा । अयं रुद्रः शिवास्वामी मेना प्राहेति हर्षिता ॥१४॥
नायं रुद्रः शिवास्वामी सेवकोऽयं शिवस्य वै । इत्यवोचोऽग्निपत्न्यै त्वंतावद्वह्निः स आगतः ॥१५॥
ततोऽपि द्विगुणां शोभां दृष्ट्वा तस्य च साऽब्रवीत् । रुद्रोऽयं गिरिजास्वामी तदा नेति त्वमब्रवीः ॥१६॥
तावद्यमः समायातस्ततोऽपि द्विगुणप्रभः । तं दृष्ट्वा प्राह सा मेना रुद्रोऽयमिति हर्षिता ॥१७॥
नेति त्वमब्रवीस्तां वै तावन्निर्ऋतिरागतः । बिभ्राणो द्विगुणां शोभां शुभः पुण्यजनप्रभुः॥१८॥
तं दृष्ट्वा प्राह सा मेना रुद्रोऽयमिति हर्षिता । नेति त्वमब्रवीस्तां वै तावद्वरुण आगतः ॥१९॥
ततोऽपि द्विगुणां शोभां दृष्ट्वा तस्य च साऽब्रवीत् । रुद्रोऽयं गिरिजास्वामी तदा नेति त्वमब्रवीः॥२०॥
तावद्वायुः समायातस्ततोऽपि द्विगुणप्रभः । तं दृष्ट्वा प्राह सा मेना रुद्रोऽयमिति हर्षिता ॥२१॥
नेति त्वमब्रवीस्तां वै तावद्धनद आगतः । ततोऽपि द्विगुणां शोभां बिभ्राणो गुह्यकाधिपः॥२२॥
तं दृष्ट्वा प्राह सा मेना रुद्रोऽयमिति हर्षिता । नेति त्वमब्रवीस्तां वै तावदीशान आगतः ॥२३॥
ततोऽपि द्विगुणां शोभां दृष्ट्वा तस्य च साऽब्रवीत् । रुद्रोऽयं गिरिजास्वामी तदा नेति त्वमब्रवीः॥२४॥

हर्षित हो उठी ॥ ७ ॥ सर्वप्रथम अत्यन्त उत्तम वस्त्र धारण किये नाना अलङ्कारों से भूषित, अत्यन्त मनोहर रूप धारण किये ऐश्वर्यसम्पन्न गन्धर्वगण आये। वे विविध वाहनों पर चढ़े हुए अनेक प्रकार के बाजे बजा रहे थे और विचित्र पताका और अप्सराओं को अपने साथ लिये हुए थे ॥ ८--९ ॥ तब मेना गन्धर्वपति वसु को देखकर परम प्रसन्न हुई और उसने नारद से पूछा कि क्या यह शिव हैं ? ॥ १० ॥ हे ऋषिश्रेष्ठ ! तब तुमने मेना से कहा—ये शिवजी के गण हैं, शिवा के पति शङ्कर नहीं हैं ॥ ११ ॥ तब मेना विचार करने लगी, जो इनसे भी अधिक है वह कैसा होगा ॥ १२ ॥ उसी समय मेना ने मणिग्रीव आदि यक्षों की सेना देखी, जो गन्धर्वों की शोभा से दुगुनी थी ॥ १३ ॥ वह यक्षाधिपति मणिग्रीव को अत्यन्त शोभासम्पन्न देखकर उन्हें शिवा के स्वामी रुद्र यही हैं ऐसा जानकर मन में प्रसन्न हुई ॥ १४ ॥

हे नारद ! तब तुमने कहा—यह शिवजी नहीं हैं, यह तो शिव के सेवक यक्ष हैं। उसी समय अग्निदेव अपनी सेना लेकर मेना के सामने आये ॥१५॥ मणिग्रीव की शोभा की अपेक्षा अग्नि की दुगुनी शोभा देखकर मेना ने पूछा, क्या यही गिरिजा के स्वामी रुद्र हैं, तब तुमने कहा कि नहीं, ये रुद्र नहीं हैं ॥ १६ ॥ फिर अग्नि की शोभा से द्विगुणित शोभायुक्त यमराज आये, तब प्रसन्न होकर मेना ने कहा, क्या यह रुद्र हैं ? ॥ १७ ॥ तुमने कहा नहीं, उसी समय निर्ऋति आये, वे पुण्यजन उनसे भी द्विगुणित शोभा धारण किये थे ॥ १८ ॥ उन्हें देखकर मेना ने प्रसन्न हो कहा, क्या यह रुद्र हैं ? तुमने कहा नहीं, इसी समय वरुण आये ॥ १९ ॥ जो निर्ऋति की अपेक्षा दुगुने शोभासम्पन्न थे। तब मेना ने कहा, क्या यही गिरिजापति रुद्र हैं, तुमने कहा नहीं ॥ २० ॥ तव उनसे भी अधिक शोभा धारण किये वायुदेव वहाँ आये, उनको देखकर मेवा ने कहा, क्या ये ही रुद्र हैं ? ॥ २१ ॥ तुमने कहा नहीं, इसी समय गुह्यकपति कुबेर उनसे दूनी शोभा धारण किये वहाँ आये ॥ २२ ॥ उनको देख प्रसन्न हो मेना ने कहा, क्या यही रुद्र हैं, तब तुमने कहा नहीं। इतने में ही ईशानदेव वहाँ आये ॥२३॥ उनकी शोभा कुबेर से भी दोगुनी थी, तब मेना ने कहा, क्या

तावदिन्द्रः समायातस्ततोऽपि द्विगुणप्रभः । सर्वामरवरो नानादिव्यभास्त्रिदिवेश्वरः ॥२५॥
तं दृष्ट्वा शङ्करः सोऽयमिति सा प्राह मेनका । शक्रः सुरपतिश्चायं स नेति त्वं तदाऽब्रवीः ॥२६॥
तावच्चन्द्रः समायातः शोभां तद् द्विगुणां दधत् । दृष्ट्वा तं प्राह रुद्रोऽयं तां तु नेति त्वमब्रवीः ॥२७॥
तावत्सूर्यः समायातः शोभां तद् द्विगुणां दधत् । दृष्ट्वा तं प्राह सा सोऽयं तां तु नेति त्वमब्रवीः ॥२८॥
तावत्समागतास्तत्र भृग्वाद्याश्च मुनीश्वराः । तेजसो राशयः सर्वे स्वशिष्यगणसंयुताः ॥२९॥
तन्मध्ये चैव वागीशं दृष्ट्वा सा प्राह मेनका । रुद्रोऽयं गिरिजास्वामी तदा नेति त्वमब्रवीः ॥३०॥
तावद् ब्रह्मा समायातस्तेजसां राशिरुत्तमः । सर्षिवर्य्यसुतः साक्षाद्धर्मपुञ्ज इव स्तुतः ॥३१॥
दृष्ट्वा मा तं तदा मेना महाहर्षवती मुने । सोऽयं शिवापतिः प्राह तां तु नेति त्वमब्रवीः ॥३२॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र विष्णुर्देवः समागतः । सर्वशोभान्वितः श्रीमान् मेघश्यामश्चतुर्भुजः ॥३३॥
कोटिकन्दर्पलावण्यः पीताम्बरधरः स्वराट् । राजीवलोचनः शान्तः पक्षीन्द्रवरवाहनः ॥३४॥
शङ्खादिलक्षणैर्युक्तो मुकुटादिविभूषितः । श्रीवत्सवक्षा लक्ष्मीशो ह्यप्रमेयप्रभान्वितः ॥३५॥
तं दृष्ट्वा चकिताक्ष्यासीन् महाहर्षेण साऽब्रवीत् । सोऽयं शिवापतिः साक्षाच्छिवो वै नाऽत्र संशयः॥३६॥
अथ त्वं मेनकावाक्यमाकर्ण्योवाच ऊतिकृत् । नाऽयं शिवापतिरयं किन्त्वयं केशवो हरिः ॥३७॥
शङ्कराखिलकार्यस्य ह्यधिकारी च तत्प्रियः । अतोऽधिको वरो ज्ञेयः स शिवः पार्वतीपतिः॥३८॥
तच्छोभां वर्णितुं मेने मया नैव हि शक्यते । स एवाऽखिलब्रह्माण्डपतिः सर्वेश्वरः स्वराट् ॥३९॥

यही गिरिजापति रुद्र हैं, तुमने कहा नहीं ॥ २४ ॥ तब उनसे भी दोगुनी शोभा धारण किये, सर्वालङ्कार युक्त देवराज इन्द्र आये ॥ २५ ॥ उनको देखकर मेना ने कहा, क्या यही शङ्कर हैं, तब तुमने कहा, नहीं यह तो देवराज इन्द्र हैं ॥ २६ ॥ तब इन्द्र से भी दुगुनी शोभा धारण किये चन्द्रमा आये, उन्हें देखकर मेना ने कहा यही रुद्र हैं, तुमने कहा नहीं ॥ २७ ॥ तब चन्द्रमा की अपेक्षा दूनी शोभा धारण किये सूर्यदेव आये, उनको देखकर मेना ने कहा, यही रुद्र हैं ? तुमने कहा नहीं ॥ २८ ॥ इतने में भृगु आदि मुनीश्वर अपने शिष्यों सहित अनन्त तेजोराशि धारण किये वहाँ पहुँच गये ॥ २९ ॥ उनके मध्यभाग में अवस्थित वागीश बृहस्पति को देखकर मेना ने कहा, यही गिरिजास्वामी रुद्र हैं ? तुमने कहा नहीं ॥ ३० ॥

तदनन्तर तेजोराशि, साक्षात् पुञ्जीभूत धर्म के समान ऋषियों तथा पुत्रों के सहित में (ब्रह्मदेव) आकर उपस्थित हुआ ॥ ३१ ॥ हे मुने ! मुझे देखकर मेना बहुत प्रसन्न हुई और कहा, क्या यही शिव हैं तुमने कहा नहीं ॥ ३२ ॥ इसी समय मेघ के समान श्यामवर्ण वाले चार भुजाओं से युक्त सर्वशोभा-सम्पन्न विष्णु आये ॥ ३३ ॥ वे करोड़ों कामदेव के समान कमनीय, पीताम्बर धारण किये हुए अपने तेज से प्रकाशित हो रहे थे। कमलनेत्र वे विष्णु गरुड़ पर सवार हुए अत्यन्त शान्तचित्त थे ॥ ३४ ॥ वे शङ्खादि से युक्त, मुकुट से विराजमान, अप्रमेय पराक्रम वाले लक्ष्मीपति भगवान् अपने वक्षःस्थल में श्रीवत्स का चिह्न धारण किये हुए थे ॥ ३५ ॥ उन विष्णु को देखकर आश्चर्य से चकित हो महान् हर्ष से भरकर मेना बोलीं, निःसन्देह यही गिरिजापति शिव हैं ॥ ३६ ॥ तब परम कौतुकी तुमने कहा—देवि ! यह भी शिव नहीं किन्तु केशव विष्णु हैं ॥ ३७ ॥ ये शङ्कर के परमप्रिय तथा उनके समस्त कार्यों के अधिकारी हैं। पार्वतीपति शिव तो इनकी अपेक्षा में अत्यन्त अधिक शोभासम्पन्न हैं ॥ ३८ ॥ हे मेने ! उनकी शोभा का वर्णन मेरे सामर्थ्य के बाहर है। वही समस्त ब्रह्माण्डों के अधिपति सर्वेश्वर तथा स्वराट् हैं ॥ ३९ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मेना मेने च तां शुभाम् । महाधनां भाग्यवतीं कुलत्रयसुखावहाम् ॥४०॥
उवाच च प्रसन्नास्या प्रीतियुक्तेन चेतसा । स्वभाग्यमधिकं चापि वर्णयन्ती मुहुर्मुहुः ॥४१॥

मेनोवाच

धन्याऽहं सर्वथा जाता पार्वत्या जन्मनाधुना । धन्यो गिरीश्वरोऽप्यद्य सर्वं धन्यतमं मम ॥४२॥
ये ये दृष्टा मया देवा नायकाः सुप्रभान्विताः । एतेषां यः पतिः सोऽत्र पतिरस्या भविष्यति ॥४३॥
अस्याः किं वर्ण्यते भाग्यमपि वर्षशतैरपि । वर्णितुं शक्यते नैव तत्प्रभुप्राप्तिदर्शनात् ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

इत्यवादीच्च सा मेना प्रेमनिर्भरमानसा । तावत्समागतो रुद्रोऽद्भुतोऽतीकारकः प्रभुः ॥४५॥
अद्भुतात्मगणास्तात मेनागर्वापहारकाः । आत्मानं दर्शयन् मायानिर्लिप्तं निर्विकारकम् ॥४६॥
तमागतमभिप्रेत्य नारद ! त्वं मुने तदा । मेनामवोचः सुप्रीत्या दर्शयंस्तं शिवापतिम् ॥४७॥

नारद उवाच

अयं स शङ्करः साक्षाद् दृश्यतां सुन्दरि त्वया । यदर्थे शिवया तप्तं तपोऽति विपिने महत् ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा हर्षिता मेना तं ददर्श मुदा प्रभुम् । अद्भुताकृतिमीशानमद्भुतानुगमद्भुतम् ॥४९॥
तावदेव समायाता रुद्रसेना महाऽद्भुता । भूतप्रेतादिसंयुक्ता नानागणसमन्विता ॥५०॥
वात्यारूपधराः केचित् पताकामर्मरस्वनाः । वक्रतुण्डास्तत्र केचिद्विरूपाश्चापरे तथा ॥५१॥
करालाः श्मश्रुलाः केचित्केचित् खञ्जा ह्यलोचनाः । दण्डपाशधराः केचित् केचिन्मुद्गरपाणयः ॥५२॥

ब्रह्माजी बोले—नारद के वचन सुनकर मेना ने अपनी कन्या पार्वती को महाधना, भाग्यवती तथा तीनों कुल (मातृकुल, पितृकुल, पतिकुल) की कल्याणकारिणी समझा ॥ ४० ॥ तदनन्तर प्रीतियुक्त चित्त से प्रसन्न हो अपने भाग्य की बड़ाई करती हुई बोली ॥ ४१ ॥

मेना बोली—पार्वती के जन्म से आज मैं धन्य हो गयी, गिरिश्वर धन्य हो गये। वहुत क्या कहें, मेरा सब कुछ धन्य हो गया ॥ ४२ ॥ जिन-जिन देवताओं एवं देवाधिपतियों को मैंने देखा है जब वही इतने मनोहर और कान्तिमान् हैं तो जो इनके स्वामी होंगे वे तो इनसे भी अत्यधिक कान्तिमान् एवं सुन्दर होंगे और वही मेरी पुत्री के पति होंगे, मैं धन्य हूँ, मेरा अहोभाग्य है ॥ ४३ ॥ मेरी पुत्री का भाग्य तो अवर्णनीय है, उसका वर्णन सैकड़ों वर्षों तक भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि सर्वेश्वर प्रभु सदाशिव उसी को पतिरूप से प्राप्त होंगे ॥ ४४ ॥

ब्रह्माजी बोले—मेना जब इस प्रकार प्रेमनिर्भर चित्त से कह रही थी उसी समय सब कुछ करने में सर्वथा समर्थ रुद्र अद्भुत वेष धारण कर मेना के समीप आ गये ॥ ४५ ॥ उन रुद्र के साथ अनेक गण थे जिन्हें देखते ही मेना का सारा गर्व नष्ट हो गया। उस समय प्रभु रुद्र ने माया से सर्वथा पृथक् अपना निर्विकार रूप प्रगट किया ॥ ४६ ॥ हे मुने नारद ! उस समय शिव को आया देख परम प्रेम से तुमने शिवा के पति शङ्कर को दिखाते हुए मेना से कहा—॥ ४७ ॥

नारद जी बोले—हे सुन्दरी ! देखो, यही साक्षात् भगवान् शङ्कर हैं, जिनके निमित्त वन में जाकर पार्वती ने घोर तप किया था ॥ ४८ ॥

ब्रह्माजी बोले—नारद के वचन सुनकर मेना प्रसन्न हो अद्भुत गणों से युक्त रूप वाले शिव को देखने लगी ॥ ४९ ॥ उसी समय नाना प्रकार के भूत-प्रेतादिगणों से युक्त महादद्भुत रुद्रसेना आ पहुँची ॥ ५० ॥ कोई धूल संयुक्त आँधी के वेग के समान चल रहे थे, कोई पताका के समान ऊँचे डील-डौल वाले मर्मर शब्द करते हुए चल रहे थे, कोई वक्रतुण्ड तथा कोई विकृत रूप धारण किये हुए थे ॥ ५१ ॥ कोई विकराल थे, किसी की बड़ी-बड़ी दाढ़ी तथा मँछें थीं, कोई लँगड़े, कोई अन्धे तथा कोई हाथ में दण्ड-

विरुद्धवाहनाः केचिच्छृङ्गनादविवादिनः । डमरोर्वादिनः केचित् केचिद् गोमुखवादिनः ॥५३॥
अमुखा विमुखाः केचित् केचिद् बहुमुखा गणाः । अकरा विकराः केचित् केचिद् बहुकरा गणाः॥५४॥
अनेत्रा बहुनेत्राश्च विशिराः कुशिरास्तथा । अकर्णा. बहुकर्णाश्च नानावेषधरा गणाः ॥५५॥
इत्यादि विकृताकारा अनेके प्रबला गणाः । असङ्ख्यातास्तथा तात महावीरा भयङ्कराः ॥५६॥
अङ्गुल्या दर्शयंस्त्वं तां मुने रुद्रगणांस्ततः । हरस्य सेवकान् पश्य हरं चापि वरानने ! ॥५७॥
असङ्ख्यातान् गणान् दृष्ट्वा भूतप्रेतादिकान् मुने । तत्क्षणादभवत् सा वै मेनका त्राससङ्कुला ॥५८॥
तन्मध्ये शङ्करं चैव निर्गुणं गुणवत्तरम् । वृषभस्थं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं भूतिभूषितम् ॥५९॥
कपर्दिनं चन्द्रमौलिं दशहस्तं कपालिनम् । व्याघ्रचर्मोत्तरीयं च पिनाकवरपाणिनम् ॥६०॥
शूलयुक्तं विरूपाक्षं विकृताकारमाकुलम् । गजचर्म वसानं हि वीक्ष्य त्रेसे शिवाप्रसूः ॥६१॥
चकितां कम्पसंयुक्तां विह्वलां विभ्रमद्धियम् । शिवोऽयमिति चाङ्गुल्या दर्शयंस्तां त्वमब्रवीः॥६२॥
त्वदीयं तद्वचः श्रुत्वा वाताहतलता इव । सा पपात द्रुतं भूमौ मेना दुःखभरा सती ॥६३॥
किमिदं विकृतं दृष्ट्वा वञ्चिताऽहं दुराग्रहे । इत्युक्त्वा मूर्च्छिता तत्र मेनका साऽभवत् क्षणात् ॥६४॥
अथ प्रयत्नैर्विविधैः सखीभिरुपसेविता । लेभे संज्ञां शनैर्मेना गिरीश्वरप्रिया तदा ॥६५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शिवाद्भुतलीलावर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

पाश धारण किये हुए और कोई मुद्गर धारण किये हुए थे ॥ ५२ ॥ कोई विरुद्ध वाहन पर असवार थे, कोई शृङ्गी नाद कर रहे थे, कोई डमरू बजा रहे थे तथा कोई गोमुख नामक बाजा बजा रहे थे ॥ ५३ ॥ कोई मुखरहित तो कोई विकट मुख वाले और किन्हीं को बहुत मुख थे। किसी को हाथ नहीं थे तो किसी को अनेक हाथ थे और कोई विकट हाथ धारण किये थे ॥ ५४ ॥ कोई नेत्रहीन, कोई बहुत नेत्र वाले, कोई बिना सिर के, कोई विकृत शिर वाले, कोई कर्णहीन, कोई बहुत कान वाले आदि नाना प्रकार के वेष वाले गण थे ॥ ५५ ॥ इसी प्रकार और भी विकृत वेष धारण किये अनेक प्रबल अन्य गण थे। हे तात ! वे असंख्यात नामक गण बड़े वीर तथा भयङ्कर थे ॥ ५६ ॥

तदनन्तर हे नारद ! तुमने मेना को सम्बोधित करते हुए कहा—हे वरानने ! अब तुम इन शङ्कर के गणों को देखो, ऐसा कहकर अंगुली के द्वारा तुम उन रुद्रगणों को दिखाने लगे ॥ ५७ ॥ हे मुने ! उस समय उन असंख्यात नामक रुद्रगणों को तथा भूतप्रेत-पिशाचादिकों को देखते ही मेना तत्क्षण भयभीत हो उठी ॥ ५८ ॥ तदनन्तर उसने निर्गुण सदाशिव शङ्कर को सगुण रूप में देखा। वे वृषभ पर सवार, पाँच मुख तथा तीन नेत्रवाले शिव विभूति से विभूषित थे ॥ ५९ ॥ जटाजूट से विराजमान, मस्तक में चन्द्रकला से शोभित, दश भुजाओं से युक्त कपाल धारण किये हुए थे। उनके हाथ में पिनाक नामक धनुष था, तथा व्याघ्रचर्म का उत्तरीय धारण किये हुए थे ॥ ६० ॥ शूल से युक्त विरूपाक्ष, गजचर्म का परिधान धारण किये अत्यन्त विकृत एवं भयङ्कर रूप धारण किये उस शिव को देखते ही पार्वती की माता अत्यन्त भयभीत हो उठीं ॥ ६१ ॥ तदनन्तर आश्चर्य में पड़ी, भय से थर-थर काँपती हुई अत्यन्त व्याकुल तथा चक्कर खाती हुई मेना को अपने अंगुली के सङ्केत से शिव की ओर दिखाते हुए तुमने कहा—॥ ६२ ॥ 'यही तुम्हारे जामाता हैं' ऐसा वचन सुनते ही सती मेना दुःख से व्याकुल हो वायु के झकोरे से गिरी हुई लता के समान व्याकुल हो पृथ्वी पर गिर पड़ी ॥ ६३ ॥ शिव के विकृत रूप को देखकर मैं दुराग्रह में फँसकर बे-मौत ठगी गयी, मैना ऐसा कहकर क्षणमात्र में मूर्च्छित हो गयी ॥ ६४ ॥ तदनन्तर सखियों के द्वारा नाना प्रकार के उपचार करने पर मेना को होश आया ॥ ६५ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती'भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में शिवाद्भुतलीलावर्णन नामक तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४३ ॥

*

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

(मोहित मेना का भ्रम निवारण)

ब्रह्मोवाच

संज्ञां लब्ध्वा ततः सा च मेना शैलप्रिया सती । विललापातिसंक्षुब्धा तिरस्कारमथाकरोत् ॥ १ ॥
तत्र तावत् स्वपुत्रांश्च निनिन्द स्खलिता मुहुः । प्रथमं सा ततः पुत्रीं कथयामास दुर्वचः ॥ २ ॥

मेनोवाच

मुने पुरा त्वया प्रोक्तं वरिष्यति शिवा शिवम् । पश्चाद्धिमवतः कृत्यं पूजार्थं विनिवेशितम् ॥ ३ ॥
ततो दृष्टं फलं सत्यं विपरीतमनर्थकम् । मुनेऽधमाहं दुर्बुद्धे सर्वथा वञ्चिता त्वया ॥ ४ ॥
पुनस्तया तपस्तप्तं दुष्करं मुनिभिश्च यत् । तस्य लब्धं फलं ह्येतत् पश्यतां दुःखदायकम् ॥ ५ ॥
किं करोमि क्व गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहताम् । कुलादिकं विनष्टं मे विहितं जीवितं मम ॥ ६ ॥
क्व गता ऋषयो दिव्याः श्मश्रूणि त्रोटयाम्यहम् । तपस्विनी च या पत्नी सा धूर्ता स्वयमागता ॥ ७ ॥
केषां चैवापराधेन सर्वं नष्टं ममाधुना । इत्युक्त्वा वीक्ष्य च सुतामुवाच वचनं कटु ॥ ८ ॥
किं कृतं ते सुते दुष्टे कर्म दुःखकरं मम । हेम दत्त्वा त्वयानीतः काचो वै दुष्टया स्वयम् ॥ ९ ॥
हित्वा तु चन्दनं भूयो लेपितः कर्दमस्त्वया । हंसमुड्डीय काको वै गृहीतो हस्तपञ्जरे ॥१०॥
हित्वा ब्रह्मजलं दूरे पीतं कूपोदकं त्वया । सूर्यं हित्वा तु खद्योतो गृहीतो यत्नतस्त्वया॥११॥
तण्डुलांश्च तथा हित्वा कृतं वै तुषभक्षणम् । प्रक्षिप्याज्यं तथा तैलं कारण्डं भुक्तमादरात् ॥१२॥
सिंहसेवां तथा मुक्त्वा शृगालः सेवितस्त्वया । ब्रह्मविद्यां तथा मुक्त्वा कुगाथा च श्रुता त्वया॥१३॥
गृहे यज्ञविभूतिं हि दूरीकृत्य सुमङ्गलाम् । गृहीतं च चिताभस्म त्वया पुत्रि ! ह्यमङ्गलम् ॥१४॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! जब शैलप्रिया सती मेना की मूर्च्छा दूर हुई और उसे चेतना प्राप्त हुई, तब बड़े क्षोभ से विलाप करती हुई सबका तिरस्कार करने लगी ॥ १ ॥ वह क्रोध में भरकर सर्वप्रथम अपने पुत्रों की निन्दा करने लगी फिर पार्वती को अनेक दुर्वचन कहने लगी ॥ २ ॥

मेना बोली—हे मुने ! पहले तुमने ही कहा था कि यह पार्वती शिव को वरण करेगी । पश्चात् हिमवान् से कहकर तुमने उसे तपस्या के कार्य में लगाया ॥ ३ ॥ जिसका सत्य सर्वथा प्रतिकूल एवं अनर्थकारी परिणाम निकला । हे दुष्ट बुद्धि वाले नारद ! तुमने मुझ अधम को सर्वथा धोखा दिया ॥ ४ ॥ हे मुने ! मेरी इस पुत्री ने मुनियों के द्वारा असाध्य परम दुष्कर जो तप किया, उसका कितना भयानक तथा दुःखदायक परिणाम निकला, उसे देखो ॥ ५ ॥ हाय ! अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कौन मेरे दुःख को दूर करेगा, मेरा सब कुछ तो नष्ट हो ही गया, जीवन भी नष्ट हो गया ॥ ६ ॥ वे दिव्य ऋषि कहाँ गये ? यदि वे इस समय मुझे मिल जाते तो मैं उनकी दाढ़ी-मूँछ उखाड़ लेती । जिस वसिष्ठपत्नी को लोग तपस्विनी कहते हैं, और जो विवाह के लिए स्वयं आयी थी वह तो बड़ी धूर्त्त निकली ॥ ७ ॥ यह मेरे किस अपराध का फल है, जो मेरा सारा कुल नष्ट हो गया । इतना कहने के अनन्तर वह पार्वती की ओर देखकर कटुवचन कहने लगी ॥ ८ ॥ हे दुष्टे ! तूने यह कौन सा दुःखदायी कर्म किया, जिससे मेरा कर्म फूट गया । हे दुष्टे ! तुमने सुवर्ण देकर यह काँच कैसे मोल ले लिया ॥ ९ ॥ चन्दन का लेप छोड़कर अपने शरीर में कर्दम का लेप कैसे किया । अपने हाथ का हंस गँवाकर कौआ कैसे ग्रहण किया ॥ १० ॥ गङ्गाजल छोड़कर यह कूपोदक किस प्रकार पान किया । सूर्य को छोड़ कर जुगनू कैसे ग्रहण किया ॥ ११ ॥ चावल छोड़ कर किस प्रकार उसकी भूसी खा ली ? घी तथा तेल छोड़कर रुक्ष खली का भक्षण क्यों किया ॥१२॥ तूने शेर की सेवा छोड़कर किस प्रकार शृगाल की सेवा की, ब्रह्मविद्या का त्याग कर कुत्सित गाथा क्यों सुनी ॥ १३ ॥ हे पुत्री ! तुमने घर की माङ्गलिक यज्ञविभूति छोड़कर

सर्वान् देववरांस्त्यक्त्वा विष्ण्वादीन् परमेश्वरान् । कृतं त्वया कुबुद्ध्या वै शिवार्थं तप ईदृशम् ॥१५॥
धिक्त्वां च तव बुद्धिं च धिग्रूपं चरितं तव । धिक् चोपदेशकर्त्तारं धिक्सख्यावपि ते तथा॥१६॥
आवां च धिक् तथा पुत्री यौ ते जन्मप्रवर्तकौ । धिक्ते नारद ! बुद्धिं च सप्तर्षींश्च सुबुद्धिदान् ॥१७॥
धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं सर्वं धिग् यत् कृतं त्वया । गृहं तु धुक्षितं त्वेतन्मरणं तु ममैव हि ॥१८॥
पार्वतानामयं राजा नायातु निकटे मम ।'सप्तर्षयः स्वयं नैव दर्शयन्तु मुखं मम ॥१९॥
साधितं किं च सर्वैस्तु मिलित्वा घातितं कुलम् । वन्ध्याऽहं न कथं जाता गर्भो न गलितः कथम्॥२०॥
अथो न वा मृता चाऽहं पुत्रिका न मृता कथम् । राक्षसाद्यैः कथं नो वा भक्षिता गगने पुनः॥२१॥
छेदयामि शिरस्तेऽद्य किं करोमि कलेवरैः । त्यक्त्वा त्वां च कुतो यायां हाहा मे जीवितं हतम्॥२२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा पतिता सा च मेना भूमौ विमूर्च्छिता । व्याकुलां शोकरोषाद्यैर्न गता भर्तृसन्निधौ ॥२३॥
हाहाकारो महानासीत्तस्मिन्काले मुनीश्वर ! । सर्वे समागतास्तत्र क्रमात्तत्सन्निधौ सुराः ॥२४॥
पुरा देवमुने चाहमागतस्तु स्वयं तदा । मां दृष्ट्वा त्वं वचस्तां वै प्रावोच ऋषिसत्तम ! ॥२५॥

नारद उवाच

यथार्थं सुन्दरं रूपं न ज्ञातं ते शिवस्य वै । लीलयेदं धृतं रूपं न यथार्थं शिवेन च ॥२६॥
तस्मात् क्रोधं परित्यज्य स्वस्था भव पतिव्रते । कार्यं कुरु हठं त्यक्त्वा शिवां देहि शिवाय च ॥२७॥

अमङ्गल चिताभस्म कैसे धारण किया ॥ १४ ॥ विष्णु आदि परमेश्वर तथा इन्द्रादि श्रेष्ठ देवताओं को छोड़कर तुमने कुबुद्धि से शिव के निमित्त इतना घोर तप क्यों किया ॥ १५ ॥ तुम्हें धिक्कार है ? तुम्हारी बुद्धि को धिक्कार है, तुम्हारे रूप एवं आचरण को धिक्कार है, तुम्हें उपदेश करने वाले नारद को धिक्कार है और तुम्हारी उन सखियों को धिक्कार है ॥ १६ ॥ तुम्हें जन्म देनेवाले तुम्हारे माता-पिता हम दोनों को धिक्कार है । हे नारद ! तुम्हारी तथा उन सप्तर्षियों की बुद्धि को धिक्कार है, जो ऐसा उपदेश दिये ॥१७॥ मेरे कुल को धिक्कार है, हे पुत्रि ! तुम्हारे उत्कृष्ट तपरूप इस क्रिया को धिक्कार है जिससे मेरा सब कुछ धिक्कार के योग्य हो गया । घर तो नष्ट हो ही गया, किन्तु अब मैं भी मर जाऊँगी ॥ १८ ॥ अब पर्वतराज मुझे अपना मुँह न दिखावें । और सप्तर्षिगण भी मुझे अपना मुख न दिखावें ॥ १९ ॥ सब लोगों ने मिलकर ऐसा कार्य किया जिससे मेरा कुल ही नष्ट हो गया, हाय ! मैं बन्ध्या क्यों न हुई, मेरा गर्भ क्यों न गिर गया ॥ २० ॥ अच्छा यही होता कि मैं ही मर गई होती अथवा मेरी यह पुत्री ही मर जाती । हम दोनों को आकाश में ले जाकर राक्षसों ने क्यों नहीं खा लिया ॥ २१ ॥ अब मुझे इस शरीर से क्या करना है । मैं जीकर ही क्या करूँगी अथवा तुम्हारा ही शिरच्छेदन कर दूँ । किन्तु क्या करूँ, तुम्हें त्यागकर भी कहाँ जाऊँ ? हाय ! मेरा जीवन ही नष्ट हो गया ॥ २२ ॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर वह मेना मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ी । वह शोक तथा रोष से इतना व्याकुल हो गई कि अपने पति के पास भी न जा सकी ॥ २३ ॥ हे मुनीश्वर नारद ! उस समय सारे घर में हाहाकार मच गया । फिर सब देवता बारी-बारी से उसके समीप गये ॥ २४ ॥ हे देवमुने ! पहले मैं (ब्रह्मा) स्वयं ही उसके समीप गया । हे ऋषिश्रेष्ठ ! तुम मुझे देखकर उस मेना से ऐसा कहने लगे ॥ २५ ॥

नारद बोले—हे मेने ! तुमने शिव का यथार्थ सुन्दर रूप नहीं देखा, उनके जिस रूप को तुम देख रही हो वह उनका यथार्थ रूप नहीं है, यह रूप तो उन्होंने लीला करने के लिए धारण किया है ॥ २६ ॥ इस कारण हे पतिव्रते ! क्रोध छोड़ प्रसन्न हो उठो, और हठ छोड़कर स्वस्थ मन से कार्य करो तथा इस पार्वती को शङ्कर के निमित्त प्रदान करो ॥ २७ ॥

ब्रह्मोवाच

तदाकर्ण्य वचस्ते सा मेना त्वां वाक्यमब्रवीत् । उत्तिष्ठेतो गच्छ दूरं दुष्टाधमवरो भवान् ॥२८॥
इत्युक्ते तु तया देव इन्द्राद्याः सकलाः क्रमात् । समागत्य च दिक्पाला वचनं चेदमब्रुवन् ॥२९॥

देवा ऊचुः

हे मेने पितृकन्ये हि शृण्वस्मद्वचनं मुदा । अयं वै परमः साक्षाच्छिवः परसुखावहः ॥३०॥
कृपया च भवत्पुत्र्यास्तपो दृष्ट्वाऽतिदुःसहम् । दर्शनं दत्तवाञ्छम्भुर्वरं सद्भक्तवत्सलः ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

अथोवाच सुरान्मेना विलप्याति मुहुर्मुहुः । न देया तु मया कन्या गिरीशायोग्ररूपिणे ॥३२॥
किमर्थं तु भवन्तश्च सर्वे देवाः प्रपञ्चिताः । रूपमस्याः परन्नाम व्यर्थीकर्तुं समुद्यताः ॥३३॥
इत्युक्ते च तया तत्र ऋषयः सप्त एव हि । ऊचुस्ते वच आगत्य वसिष्ठाद्या मुनीश्वर ! ॥३४॥

सप्तर्षय ऊचुः

कार्यं साधयितुं प्राप्ताः पितृकन्ये गिरिप्रिये । विरुद्धं चात्र उक्तार्थे कथं मन्यामहे वयम् ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

अयं वै परमो लाभो दर्शनं शङ्करस्य यत् । दानपात्रं स ते भूत्वाऽऽगतस्तव च मन्दिरम् ॥३६॥
इत्युक्त्वा तैस्ततो मेना मुनिवाक्यं मृषाऽकरोत् । प्रत्युवाच च रुष्टा सा तानृषीन् ज्ञानदुर्बला ॥३७॥

मेनोवाच

शस्त्राद्यैर्घातयिष्येऽहं न दास्ये शङ्कराय ताम् । दूरं गच्छत सर्वे हि नागन्तव्यं मदन्तिके ॥३८॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! यह वचन सुनकर मेना क्रोध में भरकर तुमसे कहने लगी—नारद ! तुम बड़े दुष्ट एवं अधम हो, यहाँ से उठकर शीघ्रता से मेरे आँखों से दूर चले जाओ ॥ २८ ॥ जब मेना ने नारद को ऐसा कहा तब समस्त इन्द्रादि देवता तथा समस्त दिक्पालगण आकर मेना से बोले ॥ २९ ॥

देवताओं ने कहा—हे पितृकन्ये, हे मेने ! प्रसन्न होकर तुम हमारी बात सुनो । यह सबको सुख देनेवाले साक्षात् शिव हैं ॥ ३० ॥ भक्तवत्सल ये भगवान् शिव तुम्हारी पुत्री का अत्यन्त दुष्कर तप देखकर उसके ऊपर अपनी कृपा प्रकट करते हुए उसे अपना दर्शन दिया ॥ ३१ ॥

ब्रह्माजी बोले—तब वह मेना बारम्बार विलाप करती हुई देवताओं से बोली—ऐसे भयानक रूप धारण करने वाले शिव को मैं अपनी कन्या नहीं दूँगी ॥ ३२ ॥ आप सभी देवगण मिलकर इस मेरी पुत्री का रूप व्यर्थ करने के लिए इतना प्रपञ्च क्यों रचते हो ॥ ३३ ॥ उसके ऐसा कहने पर वे सभी वसिष्ठादि सप्तर्षि वहाँ आकर उससे कहने लगे ॥ ३४ ॥

सप्तर्षिगण बोले—हे पितृकन्ये ! हे गिरिराजप्रिये ! हम तुम्हारा कार्य बनाने के लिए आये हैं, यदि इस विषय में तुम विरुद्ध बात भी कहो तो हम उस पर ध्यान नहीं देंगे ॥ ३५ ॥

ब्रह्माजी बोले—मेने ! तुम्हारे लिए यह सबसे बड़ा उत्तम लाभ है, जो शङ्कर ने तुम्हें दर्शन दिया । फिर इससे भी बढ़कर तुम्हारा अहोभाग्य है जो वे स्वयं दान लेने के लिए तुम्हारे घर पधारे हैं ॥ ३६ ॥ इतना सुनकर भी मेना ने उन मुनियों के वचन को झूठा समझ लिया । और मूर्खतावश क्रोध के वशीभूत हो उन ऋषियों से कहने लगी ॥ ३७ ॥

मेना बोली—मैं अपनी कन्या का वध शस्त्र से कर डालूंगी किन्तु शङ्कर के निमित्त अपनी कन्या कदापि न दूँगी । आप सभी यहाँ से शीघ्र चले जाइए और इस निमित्त पुनः मेरे पास मत आइयेगा ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा विररामाशु सा विलप्यातिविह्वला । हाहाकारो महानासीत्तत्र तद्वृत्ततो मुने ॥३९॥
ततो हिमालयस्तत्राजगामातिसमाकुलः । तां च बोधयितुं प्रीत्या प्राह तत्त्वं च दर्शयन् ॥४०॥

हिमालय उवाच

शृणु मेने वचो मेऽद्य विकलाऽसि कथं प्रिये ! । के के समागता गेहं कथं चैतान् विनिन्दसि ॥४१॥
शङ्करं त्वं च जानासि रूपं दृष्ट्वाऽसि विह्वला । विकटं तस्य शम्भोस्तु नानारूपाभिधस्य हि ॥४२॥
स शङ्करो मया ज्ञातः सर्वेषां प्रतिपालकः । पूज्यानां पूज्य एवासौ कर्तानुग्रहनिग्रहान् ॥४३॥
हठं न कुरु मुञ्च त्वं दुःखं प्राणप्रियेऽनघे । उत्तिष्ठारं तथा कार्यं कर्तुमर्हसि सुव्रते ! ॥४४॥
यद्वै द्वारगतः शम्भुः पुरा विकटरूपधृक् । नानालीलां स कृतवान् चेतयामि च तामिमाम् ॥४५॥
तन्माहात्म्यं परं दृष्ट्वा कन्यां दातुं त्वया मया । अङ्गीकृतं तदा देवि ! तत्प्रमाणं कुरु प्रिये ! ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा सोऽद्रिनाथो हि विरराम ततो मुने । तदाकर्ण्य शिवामाता मेनोवाच हिमालयम् ॥४७॥

मेनोवाच

मद्वचः श्रूयतां नाथ तथा कर्तुं त्वमर्हसि । गृहीत्वा तनुजां चैनां बद्ध्वा कण्ठे तु पार्वतीम् ॥४८॥
अधः पातय निःशङ्कं दास्ये तां न हराय हि । तथैनामथवा नाथ गत्वा वै सागरे सुताम् ॥४९॥
निमज्जय दयां त्यक्त्वा ततोऽद्रीश सुखी भव । यदि दास्यसि पुत्रीं त्वं रुद्राय विकटात्मने ।
तर्हि त्यक्ष्याम्यहं स्वामिन् निश्चयेन कलेवरम् ॥५०॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर मेना व्याकुल हो मौन रह गयी। हे मुने ! उस समय उसकी ऐसी दशा देखकर देवगणों में हाहाकार मच गया ॥ ३९ ॥ इस वृत्तान्त को सुनकर हिमालय स्वयं मेना को समझाने के लिए आये और प्रेम से तत्त्व की बात कहने लगे ॥ ४० ॥

हिमालय बोले—हे मेने ! हे प्रिये ! तुम इतनी विकल क्यों हो गयी, मेरी बात सुनो, ये तुम्हारे घर पर कौन-कौन आये हैं, इनको देखो, इनकी निन्दा क्यों करती हो ? ॥४१॥ तुम निश्चय ही शङ्कर को अच्छी तरह नहीं जानती, जो उनके इस विकट रूप को देखकर इतनी विकल हो गयी हो, वे तो नाना प्रकार का रूप धारण करने वाले हैं ॥४२॥ उन शङ्कर को तो मैं जानता हूँ, जो सबका पालन करने वाले, पूज्यों के भी पूज्य हैं, वही निग्रह तथा अनुग्रह करने में समर्थ हैं ॥ ४३ ॥ हे प्राणप्रिये ! हे पुण्यशीले ! हठ छोड़ो, दुःखी मत हो और हे पतिव्रते ! शीघ्रता से उठकर कार्य में लग जाओ ॥ ४४ ॥ हे प्रिये, तुम मेरी बात मानो, यह शङ्कर ऐसा विकट रूप धारण कर द्वार पर जो आये हैं, वे अपनी लीला ही दिखा रहे हैं ॥४५॥ हे देवि ! पहले हम दोनों ने उनका माहात्म्य देखकर ही कन्या देना स्वीकार किया था। हे प्रिये ! अब उस बात को सत्यरूप से प्रमाणित करो ॥ ४६ ॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर हिमालय ने मौन धारण कर लिया। तब पार्वती की माता मेना हिमालय से बोली ॥ ४७ ॥

मेना बोली—हे नाथ ! तुम मेरी बात सुनो और वैसा ही करो, इस अपनी कन्या पार्वती को पकड़ कर कण्ठ में रस्सी बाँधकर निःशङ्क हो किसी गड्ढे में गिरा दो, किन्तु मैं ऐसे शङ्कर को अपनी कन्या पार्वती को नहीं दूँगी, अथवा हे नाथ ! इस कन्या को ले जाकर दयारहित हो समुद्र में डुबा दो, ऐसा करने से ही सुख मिलेगा। यदि ऐसे भयङ्कर मुखवाले रुद्र को तुमने कन्यादान किया तो हे स्वामिन् ! तुम निश्चयरूप से जान लो, मैं अपना जान दे दूँगी ॥ ४८-५० ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ते च तदा तत्र वचने मेनया हठात् । उवाच वचनं रम्यं पार्वती स्वयमागता ॥५१॥

पार्वत्युवाच

मातस्ते विपरीता हि बुद्धिर्जाताऽशुभावहा । धर्मावलम्बनात्त्वं हि कथं धर्मं जहासि वै ॥५२॥
अयं रुद्रोऽपरः साक्षात् सर्वप्रभव ईश्वरः । शम्भुः सुरूपः सुखदः सर्वश्रुतिषु वर्णितः ॥५३॥
महेशः शङ्करश्चायं सर्वदेवप्रभुः स्वराट् । नानारूपाभिधो मातर्हरिब्रह्मादिसेवितः ॥५४॥
अधिष्ठानं च सर्वेषां कर्ता हर्ता च स प्रभुः । निर्विकारी त्रिदेवेशो ह्यविनाशी सनातनः ॥५५॥
यदर्थं देवताः सर्वा आयाताः किङ्करीकृताः । द्वारि ते सोत्सवाश्चाद्य किमतोऽन्यत्परं सुखम् ॥५६॥
उत्तिष्ठातः प्रयत्नेन जीवितं सफलं कुरु । देहि मां त्वं शिवायास्मै स्वश्रमं कुरु सार्थकम् ॥५७॥
देहि मां परमेशाय शङ्कराय जनन्यहो । स्वीकुरु त्वमिमं मातर्विनयं मे ब्रवीमि ते ॥५८॥
चेन्न दास्यसि तस्मै मां न वृणेऽन्यमहं वरम् । भागं लभेत् कथं सैंहं शृगालः परवञ्चकः ॥५९॥
मनसा वचसा मातः कर्मणा च हरः स्वयम् । मया वृतो वृतश्चैव यदिच्छसि तथा कुरु ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य शिवावाक्यं मेना शैलेश्वरप्रिया । सुविलप्य महाक्रुद्धा गृहीत्वा तत्कलेवरम् ॥६१॥
मुष्टिभिः कूर्परैश्चैव दन्तैर्घर्षयती च सा । ताडयामास तां पुत्रीं विह्वलातिरुषान्विता ॥६२॥
ये तत्र ऋषयस्तात त्वदाद्याश्चापरे मुने । तद्धस्तात्तां परिच्छिद्य निन्युर्दूरतरं ततः ॥६३॥
तान् वै तथाविधान् दृष्ट्वा भर्त्सयित्वा पुनः पुनः । उवाच श्रावयन्ती सा दुर्वचो निखिलान् पुनः ॥६४॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! जब मेना ऐसा हठकर हिमालय से कह रही थी, उसी समय पार्वती स्वयं आकर मनोहर वचन कहने लगी ॥ ५१ ॥

पार्वती बोली—हे मातः ! तुम्हारी इस प्रकार की विपरीत तथा अमङ्गलकारिणी बुद्धि कैसे हो गयी ? तुम तो धर्म का अवलम्बन करने वाली हो, फिर इस समय धर्म का त्याग क्यों करती हो ? ॥५२॥ ये परमात्मा रुद्र साक्षात् ईश्वर हैं तथा सबको उत्पन्न करने वाले, सुख देनेवाले शम्भु हैं, इनके स्वरूप का वर्णन श्रुतियों में उपलब्ध होता है ॥ ५३ ॥ यही महेश, शङ्कर, सर्वदेवों के प्रभु तथा स्वराट् हैं, हे मातः ! यही नाना प्रकार के रूप धारण करने वाले तथा ब्रह्मा एवं विष्णु से सेवित हैं ॥५४॥ यही सबके कर्त्ता, हर्त्ता तथा अधिष्ठान हैं, यही निर्विकारी, त्रिदेवेश, अविनाशी तथा सनातन हैं ॥५५॥ इन्हीं की सेवा करने के लिए ये देवगण दास के समान तुम्हारे द्वार पर उत्सव करते हुए आये हैं। अब इससे बढ़कर और क्या सुख होगा ? ॥ ५६ ॥ इसलिए हे मातः ! प्रयत्नपूर्वक उठो और जीवन सफल करो। तथा शङ्कर के निमित्त मुझे देकर अपना गृहस्थाश्रम सफल करो ॥ ५७ ॥ हे जननि ! मैं तुमसे विनय पूर्वक कहती हूँ कि तुम मुझे शङ्कर के निमित्त प्रदान करो ॥ ५८ ॥ यदि तुम मुझे शङ्कर को न दोगी तो मैं किसी दूसरे अन्य पति का वरण न करूँगी। हे मातः ! भला तुम्हीं सोचो कि सिंह के भाग को परवञ्चक शृगाल किस प्रकार प्राप्त कर सकता है ॥५९॥ मैंने मन, वचन तथा कर्म से शिव को वरण कर लिया है, मैं अब इतना ही कहती हूँ, आगे जो तुम्हारी इच्छा हो उसे करो ॥ ६० ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! पार्वती के ऐसा कहते ही मेना क्रोध से विलाप कर दाँतों को कटकटाती हुई उसे पकड़कर मुक्के तथा केहुनों से मारने लगी ॥ ६१-६२ ॥ फिर वहाँ पर उपस्थित हुए तुम्हारे सहित सभी ऋषियों ने मेना के हाथ से छुड़ाकर पार्वती को दूर हटाया ॥ ६३ ॥ पार्वती को छुड़ाते हुए ऋषियों को देखकर उन्हें फटकारती हुई मेना नाना प्रकार के दुर्वचन कहने लगी ॥ ६४ ॥

मेनोवाच

किं मेनां हि करिष्येऽहं दुष्टाग्रहवर्तिनीं शिवाम् । दास्याम्यस्यै गरं तीव्रं कूपे क्षेप्स्यामि वा ध्रुवम् ॥६५॥

छेत्स्यामि कालीमथवा शस्त्रास्त्रैर्भूरिखण्डशः । निमज्जयिष्ये वा सिन्धौ स्वसुतां पार्वतीं खलु ॥६६॥

अथवा स्वशरीरं हि त्यक्ष्याम्याश्वन्यथा ध्रुवम् । न दास्ये शम्भवे कन्यां दुर्गां विकटरूपिणे ॥६७॥

वरोऽयं कीदृशो भीमोऽनया लब्धश्च दुष्टया । कारितश्चोपहासो मे गिरेश्चापि कुलस्य हि ॥६८॥

न माता न पिता भ्राता बन्धुर्गोत्रजोऽपि हि । नो सुरूपं न चातुर्यं न गृहं चास्य किञ्चन ॥६९॥

न वस्त्रं नाप्यलङ्काराः सहायाः केऽपि तस्य न । वाहनं न शुभं ह्यस्य न वयो न धनं तथा ॥७०॥

न पावित्र्यं न विद्या च कीदृशः काय आर्तिदः । किं विलोक्य मया पुत्री देयास्मै स्यात् सुमङ्गला ॥७१॥

ब्रह्मोवाच

इत्यादि सुविलप्याथ बहुशो मेनका तदा । रुरोदोच्चैर्मुने सा हि दुःखशोकपरिप्लुता ॥७२॥

अथाऽहं द्रुतमागत्याकथयं मेनकां च ताम् । शिवतत्त्वं च परमं कुज्ञानहरमुत्तमम् ॥७३॥

ब्रह्मोवाच

श्रोतव्यं प्रीतितो मेने मदीयं वचनं शुभम् । यस्य श्रवणतः प्रीत्या कुबुद्धिस्ते विनश्यति ॥७४॥

शङ्करो जगतः कर्ता भर्ता हर्ता तथैव च । न त्वं जानासि तद्रूपं कथं दुःखं समीहसे ॥७५॥

अनेकरूपनामा च नानालीलाकरः प्रभुः । सर्वस्वामी स्वतन्त्रश्च मायाधीशोऽविकल्पकः ॥७६॥

इति विज्ञाय मेने त्वं शिवां देहि शिवाय वै । कुहठं त्यज कुज्ञानं सर्वकार्यविनाशनम् ॥७७॥

मेना बोली—हाय ! इस आग्रहशील दुष्ट पार्वती को मैं अब क्या करूँ ? अब या तो इसे कूप में डाल दूँगी अथवा विष दे दूँगी ॥ ६५ ॥ अथवा शस्त्रास्त्रों से इसे टुकड़े-टुकड़े काट डालूँगी, अथवा इसे समुद्र में डुबो दूँगी ॥ ६६ ॥ अथवा मैं स्वयं अपना शरीर त्याग दूँगी किन्तु ऐसे विकट रूपधारी शिव को अपनी कन्या कदापि न दूँगी ॥ ६७ ॥ भला इस दुष्टा ने ऐसे भयङ्कर वर का वरण किस प्रकार किया, इसके ऐसा करने से मेरा, गिरिराज का तथा इस कुल का उपहास ही हुआ ॥ ६८ ॥ इन शङ्कर के माता, पिता, भाई-बन्धु तथा गोत्रजों का तो पता ही नहीं है, न तो इनका रूप ही सुन्दर है, न तो इनमें कोई चतुराई है, न इनके पास घर है, न वस्त्र है, न कोई अलङ्कार है, इनका सहायक भी कोई दिखाई नहीं देता। इनका वाहन भी अच्छा नहीं है, इनका वय भी विवाह योग्य नहीं, धन का भी अभाव है ॥६९-७०॥ न इनमें कोई पवित्रता है, न विद्या है, इनके शरीर को देखते ही मन सन्त्रस्त हो जाता है फिर इनमें कौन से ऐसे गुण हैं, जिन्हें देखकर मैं इन्हें अपनी सुमङ्गली पुत्री प्रदान करूँ ॥ ७१ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने ! इस प्रकार से कहकर वह मेना बड़े उच्च स्वर से विलाप करती हुई रोने लगी ॥ ७२ ॥ तदनन्तर मैंने स्वयं शीघ्रता से मेना के पास जाकर अज्ञान हरण करने वाला शिव-तत्त्व वर्णन किया ॥ ७३ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मेना ! तुम मेरे सुन्दर वचन प्रेम से सुनो, जिनके श्रवण मात्र से तुम्हारी यह कुबुद्धि नष्ट हो जायेगी ॥ ७४ ॥ यह शङ्कर जगत् के कर्त्ता, हर्त्ता तथा भरणकर्त्ता हैं, तुम इनको न जानकर ही इस प्रकार विलाप करती हो ॥ ७५ ॥ इन प्रभु के अनेक रूप तथा अनेक नाम हैं, ये ही लीला करने वाले प्रभु सर्वस्वामी, स्वतन्त्र, मायाधीश तथा विकल्प से रहित हैं ॥ ७६ ॥ हे मेने ! ऐसा जानकर तुम इस शिवा को शिव के निमित्त प्रदान करो। और अपने कार्य का नाश करनेवाले इस दुराग्रह तथा दुर्बुद्धि का त्याग करो ॥ ७७ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ता सा मया मेना विलपन्ती मुहुर्मुहुः । लज्जां किञ्चिच्छनैस्त्यक्त्वा मुने मां वाक्यमब्रवीत् ॥७८॥

मेनोवाच

किमर्थं तु भवान् ब्रह्मन् ! रूपमस्य महावरम् । व्यर्थीकरोति किमियं हन्यतां न स्वयं शिवा ॥७९॥
न वक्तव्यं च भवता शिवाय प्रतिदीयताम् । न दास्येऽहं शिवायैनां स्वसुतां प्राणवल्लभाम् ॥८०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ते तु तदा सिद्धाः सनकाद्या महामुने ! । समागत्य महाप्रीत्या वचनं हीदमब्रुवन् ॥८१॥

सिद्धा ऊचुः

अयं वै परमः साक्षाच्छिवः परसुखप्रदः । कृपया च भवत्पुत्र्यै दर्शनं दत्तवान् प्रभुः ॥८२॥

ब्रह्मोवाच

अथोवाच तु तां मेना विलप्य च मुहुर्मुहुः । न देया तु मया सम्यग् गिरिशायोग्ररूपिणे ॥८३॥
किमर्थं तु भवन्तश्च सर्वे सिद्धाः प्रपञ्चिनः । रूपमस्याः परं नाम व्यर्थीकर्त्तुं समुद्यताः ॥८४॥
इत्युक्ते च तया तत्र मुनेऽहं चकितोऽभवम् । सर्वे विस्मयमापन्ना देवसिद्धर्षिमानवाः ॥८५॥
एतस्मिन् समये तस्या हठं श्रुत्वा दृढं महत् । द्रुतं शिवप्रियो विष्णुः समागत्याब्रवीदिदम् ॥८६॥

विष्णुरुवाच

पितॄणां च प्रिया पुत्री मानसी गुणसंयुता । पत्नी हिमवतः साक्षाद् ब्रह्मणः कुलमुत्तमम् ॥८७॥
सहायास्तादृशा लोके धन्या ह्यसि वदामि किम् । धर्मस्याधारभूतासि कथं धर्मं जहासि हि ॥८८॥
देवैश्च ऋषिभिश्चैव ब्रह्मणा वा मया तथा । विरुद्धं कथ्यते किं नु त्वयैव सुविचार्यताम् ॥८९॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने ! जब मैंने ऐसा कहा तो मेना विलाप करती हुई शनैः-शनैः लज्जा त्यागकर मुझसे कहने लगी ॥ ७८ ॥

मेना ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आप तो इस बात को कदापि मत कहिए कि यह पार्वती शिव के निमित्त दो, क्या ऐसा कहकर आप इसके अत्यन्त कमनीय रूप को व्यर्थ करना चाहते हैं। यदि ऐसा ही है तो आप इसको मार क्यों नहीं डालते, निश्चित समझिए कि मैं अपनी इस प्राणप्रिया को शिव के निमित्त नहीं दूंगी ॥ ७९-८० ॥

ब्रह्माजी पुनः बोले—हे महामुने ! ऐसा कहने पर सनकादि सिद्धजन आकर मेना से कहने लगे ॥८१॥

सिद्धगणों ने कहा—देवि ! यह परम सुख देनेवाले परमात्मा सदाशिव स्वयं भगवान् हैं, जो तुम्हारी पुत्री पर कृपाकर दर्शन दे रहे हैं ॥ ८२ ॥

ब्रह्माजी बोले—तब मेना बारम्बार विलाप करती हुई उनसे भी यही बात बोली कि मैं ऐसे भयङ्कर रूप धारण करने वाले शङ्कर को अपनी कन्या नहीं दूंगी ॥ ८३ ॥ तुम सभी सिद्ध मिलकर प्रपञ्च बनाकर मेरी इस कन्या का रूप क्यों व्यर्थ करने पर उद्यत हुए हो ? ॥ ८४ ॥ हे मुने ! जब उसने ऐसा कहा तब मैं (ब्रह्मा) अत्यन्त चकित हो गया और देव, सिद्ध, ऋषि तथा मनुष्य भी आश्चर्य से चकित रह गये ॥ ८५ ॥ इसी समय मेना का दृढ़ तथा महान् हठ सुनकर शिव के प्रिय विष्णुजी वहाँ आकर इस प्रकार कहने लगे ॥ ८६ ॥

विष्णु बोले—देवि ! तुम पितरों की मानसी कन्या हो, तुम अनेक गुणों से युक्त हो और साक्षात् हिमालय की पत्नी हो, तुम्हारा अत्यन्त पवित्र ब्रह्मकुल है। वैसे ही तुम्हारे सहायक भी हैं, इसलिए तुम इस लोक में धन्य हो, अतः तुमसे विशेष क्या कहूँ, तुम धर्म का आधार होकर किस प्रकार धर्म का त्याग करती हो ॥ ८७-८८ ॥ भला तुम्हीं अपने मन में विचार करो कि देवता, ऋषि, ब्रह्माजी तथा मैं यह सभी

शिवं त्वं न च जानासि निर्गुणः सगुणः स हि । विरूपः स सुरूपो हि सर्वसेव्यः सतां गतिः ॥९०॥
तेनैव निर्मिता देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी । तत्पार्श्वे च तदा तेन निर्मितः पुरुषोत्तमः ॥९१॥
ताभ्यां चाऽहं तथा ब्रह्मा ततश्च गुणरूपतः । अवतीर्य स्वयं रुद्रो लोकानां हितकारकः ॥९२॥
ततो वेदास्तथा देवा यत् किञ्चिद् दृश्यते जगत् । स्थावरं जङ्गमं चैव तत्सर्वं शङ्करादभूत् ॥९३॥
तद्रूपं वर्णितं केन ज्ञायते केन वा पुनः । मया च ब्रह्मणा यस्य ह्यतो लब्धश्च नैव हि ॥९४॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं यत्किञ्चिद् दृश्यते जगत् । तत्सर्वं च शिवं विद्धि नात्र कार्या विचारणा ॥९५॥
स एवेदृक् सुरूपेणावतीर्णो निजलीलया । शिवातपःप्रभावाद्धि तव द्वारि समागतः ॥९६॥
तस्मात्त्वं हिमवत्पत्नि दुःखं मुञ्च शिवं भज । भविष्यति महानन्दः क्लेशो यास्यति संक्षयम् ॥९७॥

ब्रह्मोवाच

एवं प्रबोधितायास्तु मेनकाया अभून्मुने । तस्यास्तु कोमलं किञ्चिन्मनो विष्णुप्रबोधितम् ॥९८॥
परं हठं न तत्याज कन्यां दातुं हराय न । स्वीचकार तदा मेना शिवमायाविमोहिता ॥९९॥
उवाच च हरिं मेना किञ्चिद् बुद्धा गिरिप्रिया । श्रुत्वा विष्णुवचो रम्यं गिरिजाजननी हि सा ॥१००॥
यदि रम्यतनुः स स्यात्तदा देया मया सुता । नान्यथा कोटिशो यत्नैर्वच्मि सत्यं दृढं वचः ॥१०१॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा वचनं मेना तूष्णीमास दृढव्रता । शिवेच्छाप्रेरिता धन्या तथा याऽखिलमोहिनी ॥१०२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
मेनाप्रबोधवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

झूठ क्यों बोलेंगे ॥ ८९ ॥ अवश्य ही तुम शिव को नहीं जानती, वे जिस प्रकार निर्गुण तथा सगुण रूप धारण करते हैं, उसी प्रकार वे विरूप तथा सुरूप भी हैं, वही सज्जनों को शरण देनेवाले तथा सर्वसेव्य हैं ॥ ९० ॥ उन्होंने ही मूल प्रकृतिस्वरूपा ईश्वरी देवी का निर्माण किया है ॥ ९१ ॥ फिर उन्हीं प्रकृति तथा पुरुषोत्तम से हम तथा ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं, वे स्वयं लोक के हित की इच्छा से रुद्ररूप में प्रगट हुए हैं ॥ ९२ ॥ इसके अनन्तर वेद तत्पश्चात् देवगण तथा और जो भी जगत् में स्थावर, जङ्गम रूप से दिखाई पड़ता है वह सब इन्हीं शिव से उत्पन्न हैं ॥ ९३ ॥ उनके स्वरूप का वर्णन करने की शक्ति किसमें है और उनका रूप भी कौन जान सकता है ? मैंने तथा ब्रह्मा ने भी उनका अन्त नहीं पाया है ॥९४॥ ब्रह्म से लेकर स्तम्ब पर्यन्त जो कुछ भी दिखाई पड़ता है उसे शिवरूप ही जानो, इसमें विशेष विचार करने की आवश्यकता नहीं ॥ ९५ ॥ वही इस समय अपनी लीला से ऐसा रूप धारण कर उत्पन्न हुए हैं । और पार्वती के तप के प्रभाव से तुम्हारे द्वार पर आये हैं ॥ ९६ ॥ इसलिए हे हिमवत्पत्नि ! तुम इस दुःख का परित्याग कर शिव का भजन करो, ऐसा करने से तुम्हें महान् आनन्द होगा और तुम्हारे क्लेश का नाश भी होगा ॥९७॥

ब्रह्माजी बोले—विष्णु के इतना समझाने के पश्चात् मेना का चित्त कुछ आर्द्र (कोमल) द्रवित हो गया ॥ ९८ ॥ किन्तु इतने पर भी उसने शिव को कन्या न देने का हठ त्याग नहीं किया, कारण कि उस समय वह शिव की माया से मोहित हो रही थी ॥ ९९ ॥ पार्वती की माता गिरिप्रिया मेना विष्णु के मनोहर वचन सुनकर कुछ उद्‌बुद्ध होकर विष्णु से बोलीं ॥ १०० ॥ मेना ने कहा—यदि शङ्कर सुन्दर शरीर धारण कर लें तो मैं उन्हें अपनी कन्या दे सकती हूँ अन्यथा आपलोग करोड़ों यत्न करें तो भी मैं अपनी कन्या ऐसे शङ्कर को नहीं दूँगी, यह मेरा सत्य तथा दृढ़ वचन है ॥ १०१ ॥

पुनः ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! सारे जगत् को मोहनेवाली शिवेच्छा से प्रेरित हुई धन्य तथा दृढ़व्रत वाली वह मेना इतना कहकर मौन हो गयी ॥ १०२ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती'भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के
तृतीय-पार्वतीखण्ड में मेनाप्रबोध वर्णन नामक चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४४ ॥

*

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

(दिव्यरूप से शिव की स्थिति का वर्णन)

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे त्वं हि विष्णुना प्रेरितो द्रुतम् । अनुकूलयितुं शम्भुमयास्तन्निकटे मुने ! ॥ १ ॥
तत्र गत्वा स वै रुद्रो भवता सुप्रबोधितः । स्तोत्रैर्नानाविधैः स्तुत्वा देवकार्यचिकीर्षया ॥ २ ॥
श्रुत्वा त्वद्वचनं प्रीत्या शम्भुना धृतमद्भुतम् । स्वरूपमुत्तमं दिव्यं कृपालुत्वं च दर्शितम् ॥ ३ ॥
तद् दृष्ट्वा सुन्दरं शम्भुं स्वरूपं मन्मथाधिकम् । अत्यहृष्यो मुने त्वं हि लावण्यपरमायनम् ॥ ४ ॥
स्तोत्रैर्नानाविधैः स्तुत्वा परमानन्दसंयुतः । आगच्छस्त्वं मुने तत्र यत्र मेना स्थिताऽखिलैः ॥ ५ ॥
तत्रागत्य सुप्रसन्नो मुनेऽतिप्रेमसङ्कुलः । हर्षयंस्तां शैलपत्नीं मेनां त्वं वाक्यमब्रवीः ॥ ६ ॥

नारद उवाच

मेने ! पश्य विशालाक्षि शिवरूपमनुत्तमम् । कृता शिवेन तेनैव सुकृपा करुणात्मना ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा सा तद्वचो मेना विस्मिता शैलकामिनी । ददर्श शिवरूपं तत्परमानन्ददायकम् ॥ ८ ॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशं सर्वावयवसुन्दरम् । विचित्रवसनं चाऽत्र नानाभूषणभूषितम् ॥ ९ ॥
सुप्रसन्नं सुहासं च सुलावण्यं मनोहरम् । गौराभं द्युतिसंयुक्तं चन्द्ररेखाविभूषितम् ॥१०॥
सर्वैर्देवगणैः प्रीत्या विष्ण्वाद्यैः सेवितं तथा । सूर्येण छत्रितं मूर्ध्नि चन्द्रेण च विशोभितम् ॥११॥
सर्वथा रमणीयं च भूषितस्य विभूषणैः । वाहनस्य महाशोभा वर्णितुं नैव शक्यते ॥१२॥
गङ्गा च यमुना चैव विधत्तः स्म सुचामरे । सिद्धयोऽष्टौ पुरस्तस्य कुर्वन्ति स्म सुनर्त्तनम् ॥१३॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! इसी समय तुम विष्णु की आज्ञा लेकर बड़ी शीघ्रता से शिव को प्रसन्न करने के लिए उनके समीप गये ॥ १ ॥ वहाँ जाकर तुमने अनेक प्रकार के स्तोत्रों से शिव को प्रसन्न कर देवकार्य करने की इच्छा से उन्हें समझाया ॥ २ ॥ तब सदाशिव शम्भु ने तुम्हारी बात सुनकर अपनी कृपालुता दिखाई और प्रीति से अत्यन्त अद्भुत दिव्य तथा उत्तम स्वरूप धारण कर लिया ॥ ३ ॥ कामदेव से भी अधिक कमनीय, लावण्य के समुंद्र उस रूप को देखकर हे मुने ! तुम अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥ ४ ॥ और परमानन्द से संयुक्त हो अनेक प्रकार की स्तुति कर तुम पुनः वहाँ आये, जहाँ मेना सभी लोगों के साथ थी ॥ ५ ॥ फिर हे मुने ! अत्यन्त हर्षित हुए तुम हिमवत्पत्नी मेना को हर्षित करते हुए इस प्रकार बोले ॥ ६ ॥

नारदजी बोले—हे विशाल नेत्रे मेने ! इस समय तुम शिव के इस अद्भुत रूप को देखो, जिसे उस करुणामय शंकर ने तुम पर बड़ी कृपा कर धारण किया है ॥ ७ ॥

ब्रह्माजी बोले—नारद की बात सुनते ही शैलकामिनी मेना अत्यन्त विस्मित हो परमानन्द प्रदान करने वाले शिव के रूप को देखने लगी ॥ ८ ॥ उनका वह रूप करोड़ों सूर्य के समान कान्तिमान् था। शरीर के प्रत्येक अङ्गों पर लावण्य छलक रहा था। वे अनेक प्रकार के विचित्र वस्त्र तथा आभूषण धारण किये हुए थे ॥ ९ ॥ उनके शरीर का सौन्दर्य मन को मोह लेने वाला था। वे मन्द-मन्द प्रसन्नता से हास कर रहे थे। मस्तक में चन्द्रलेखा विराज रही थी ॥ १० ॥ विष्णु आदि सभी देव उनकी सेवा कर रहे थे, शिर पर सुन्दर सूर्यछत्र तथा चन्द्रमुकुट शोभा पा रहा था ॥११॥ सभी प्रकार के गहनों से बिभूषित होने से वे अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रहे थे। उनके वाहन की जैसी शोभा थी उसका तो कोई वर्णन ही नहीं कर सकता ॥१२॥ स्वयं गङ्गा और यमुना चामर (चँवर) डुला रही थीं, उनके आगे आठों सिद्धियाँ नृत्य

मया चैव तदा विष्णुरिन्द्राद्या ह्यमरास्तथा । स्वं स्वं वेषं सुसम्भूष्य गिरिशेनाचरन् युताः ॥१४॥
तथा जयेति भाषन्तो नानारूपा गणास्तदा । स्वलङ्कृतमहामोदा गिरीशपुरतोऽचरन् ॥१५॥
सिद्धाश्चोपसुराः सर्वे मुनयश्च महासुखाः । ययुः शिवेन सुप्रीताः सकलाश्चापरे तथा ॥१६॥
एवं देवादयः सर्वे कुतूहलसमन्विताः । परं ब्रह्म गृणन्तस्ते स्वपत्नीभिरलङ्कृताः ॥१७॥
विश्वावसुमुखास्तत्र ह्यप्सरोगणसंयुताः । गायन्तोऽप्यग्रतस्तस्य परमं शङ्करं यशः ॥१८॥
इत्थं महोत्सवस्तत्र बभूव मुनिसत्तम ! । नानाविधो महेशे हि शैलद्वारि च गच्छति ॥१९॥
तस्मिंश्च समये तत्र सुषमा या परात्मनः । वर्णितुं तां विशेषेण कः शक्नोति मुनीश्वर ! ॥२०॥
तथाविधं च तं दृष्ट्वा मेनाचित्रगता इव । क्षणमासीत्ततः प्रीत्या प्रोवाच वचनं मुने ! ॥२१॥

मेनोवाच

धन्या पुत्री मदीया च यया तप्तं महत्तपः । यत्प्रभावात् महेशान ! त्वं प्राप्त इह मद्गृहे ॥२२॥
मया कृता पुरा या वै शिवनिन्दा दुरत्यया । तां क्षमस्व शिवास्वामिन् सुप्रसन्नो भवाऽधुना ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं सम्भाष्य सा मेना संस्तूयेन्दुललाटकम् । साञ्जलिः प्रणता शैलप्रिया लज्जापराऽभवत् ॥२४॥
तावत् स्त्रियः समाजग्मुर्हित्वा कामाननेकशः । बह्वयस्ताः पुरवासिन्यः शिवदर्शनलालसाः ॥२५॥
मज्जनं कुर्वती काचित्तच्चूर्णसंहिता ययौ । द्रष्टुं कुतूहलाढ्या च शङ्करं गिरिजावरम् ॥२६॥
काचित्तु स्वामिनः सेवां सखीयुक्ता विहाय च । सुचामरकरा प्रीत्याऽगाच्छम्भोर्दर्शनाय वै ॥२७॥
काचित्तु बालकं हित्वा पिबन्तं स्तन्यमादरात् । अतृप्तं शङ्करं द्रष्टुं ययौ दर्शनलालसा ॥२८॥
रशनां बध्नती काचित्तयैव सहिता ययौ । वसनं विपरीतं वै धृत्वा काचिद्ययौ ततः ॥२९॥

कर रही थीं ॥ १३ ॥ मैं एवं विष्णु आदि देवेश्वर अत्यन्त मनोहर वेष धारण कर गिरीश शंकर के साथ चल रहे थे ॥ १४ ॥ महान् मोद में भरे हुए अनेक वेषों से अलंकृत शिवगण शिवजी की जयकार करते हुए आगे-आगे चल रहे थे ॥ १५ ॥ इसी प्रकार सिद्धादि गन्धर्वगण, महामङ्गलकारी मुनिगण तथा अन्यलोग भी प्रसन्न होकर शिव के साथ चल रहे थे ॥ १६ ॥ इसी प्रकार अपनी स्त्रियों को साथ लिये महाकौतूहल से युक्त हो परब्रह्म शंकर की स्तुति कर रहे थे ॥ १७ ॥ समस्त अप्सराओं को साथ लिये विश्वावसु आदि समस्त गन्धर्व शिवजी का यश गाते हुए आगे-आगे चल रहे थे ॥ १८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जिस समय भगवान् शंकर शैलराज के द्वार की ओर चल रहे थे, उस समय इस प्रकार के नानाविध महोत्सव होने लगे ॥१९॥ हे मुनीश्वर ! उस समय परमात्मा शङ्कर की जैसी शोभा थी उसकी विशेषताओं का कौन वर्णन कर सकता है ॥ २० ॥ इस प्रकार सौन्दर्यपूर्ण शिव को देखकर मेना चित्रलिखित के समान हो गयी । फिर क्षणमात्र स्थित होकर कहने लगी—॥ २१ ॥

मेना बोली—यह मेरी पुत्री धन्य है, जिसने इस प्रकार की घोर तपस्या की । हे महेशान ! जिसके प्रताप से तुम मेरे घर पधारे ॥ २२ ॥ हे शिवा के स्वामी सदाशिव ! मैंने जो आप की महान्निन्दा की है, उसे आप क्षमा कर मुझपर प्रसन्न हो जाइए ॥ २३ ॥

ब्रह्माजी बोले—शैलप्रिया मेना इस प्रकार कह कर चन्द्रमौलि की स्तुति कर अत्यन्त लज्जित हो हाथ जोड़े शिव के चरणों पर गिर पड़ी ॥ २४ ॥ उसी समय नगर की स्त्रियाँ अपना-अपना काम छोड़ कर शिवदर्शन की इच्छा से वहाँ पहुँच गयीं ॥ २५ ॥ वे कुतूहल में भरकर गिरिजापति शङ्कर को देखने के निमित्त बिना मज्जन के चूर्ण हाथ में लिये वहाँ आ पहुँचीं ॥ २६ ॥ कोई स्वामी की सेवा छोड़कर अपने हाथ में चमर लिये अपनी सखी के साथ शङ्कर को देखने के लिए आयी ॥ २७ ॥ कोई आदर से स्तन पीते हुए अपने बालक को अतृप्त ही छोड़ शिव-दर्शन की लालसा से चल पड़ी ॥ २८ ॥ कोई कटितट में करधनी बाँध रही थी, उसे वैसे ही लिये वहाँ पहुँच गयी और कोई विपरीत वस्त्र धारण किये ही

भोजनार्थं स्थितं कान्तं हित्वा काचिद्ययौ प्रिया । द्रष्टुं शिवावरं प्रीत्या सतृष्णा सकुतूहला ॥३०॥
काचिद्धस्ते शलाकां च धृत्वाऽञ्जनकरा प्रिया । अञ्जित्वैकाक्षि संद्रष्टुं ययौ शैलसुतावरम् ॥३१॥
काचित्तु कामिनी पादौ रञ्जयन्ती ह्यलक्तकैः । श्रुत्वा घोषं च तद्धित्वा दर्शनार्थमुपागता ॥३२॥
इत्यादि विविधं कार्यं हित्वा वासं स्त्रियो ययुः । दृष्ट्वा तु शाङ्करं रूपं मोहं प्राप्तास्तदाऽभवन् ॥३३॥
ततस्ताः प्रेमसंविग्नाः शिवदर्शनहर्षिताः । निधाय हृदि तन्मूर्तिं वचनं चेदमब्रुवन् ॥३४॥

पुरवासिन्य ऊचुः

नेत्राणि सफलान्यासन् हिमवत्पुरवासिनाम् । यो योऽपश्यददो रूपं तस्य वै सार्थकं जनुः ॥३५॥
तस्यैव सफलं जन्म तस्यैव सफलाः क्रियाः । येन दृष्टः शिवः साक्षात् सर्वपापप्रणाशकः ॥३६॥
पार्वत्या साधितं सर्वं शिवार्थे यत्तपः कृतम् । धन्येयं कृतकृत्येयं शिवा प्राप्य शिवः पतिम् ॥३७॥
यदीदं युगलं ब्रह्मा न युञ्ज्याच्छिवयोर्मुदा । तदा च सकलोऽप्यस्य श्रमो निष्फलतामियात् ॥३८॥
सम्यक् कृतं तथा चात्र योजितं युग्ममुत्तमम् । सर्वेषां सार्थता जाता सर्वकार्यसमुद्भवा ॥३९॥
विना तु तपसा शम्भोर्दर्शनं दुर्लभं नृणाम् । दर्शनाच्छङ्करस्यैव सर्वे याताः कृतार्थताम् ॥४०॥
लक्ष्मीर्नारायणं लेभे यथा वै स्वामिनं पुरा । तथाऽसौ पार्वती देवी हरं प्राप्य सुभूषिता ॥४१॥
ब्रह्माणं च यथा लेभे स्वामिनं वै सरस्वती । तथाऽसौ पार्वती देवी हरं प्राप्य सुभूषिता ॥४२॥
वयं धन्याः स्त्रियः सर्वाः पुरुषाः सकला वराः । ये ये पश्यन्ति सर्वेशं शङ्करं गिरिजापतिम् ॥४३॥

चल पड़ी ॥ २९ ॥ कोई प्रेम से पार्वतीपति को देखने के लिए तृष्णा तथा कुतूहल में भरकर स्वामी को भोजन करता हुआ छोड़ कर चली गयी ॥ ३० ॥ कोई स्त्री एक हाथ में अञ्जन शलाका तथा दूसरे हाथ में अञ्जन लिये हुए एक ही आँख में अञ्जन लगा पाई थी कि इतने में ही वह शङ्कर को देखने के लिए चल पड़ी ॥ ३१ ॥ कोई स्त्री अपने पैर में महावर लगा ही रही थी कि इतने में बाजे का शब्द सुन उसे वहीं छोड़ शिव-दर्शन के लिए दौड़ पड़ी ॥ ३२ ॥ इस प्रकार वे स्त्रियाँ अपने-अपने घर के कार्यों को छोड़ शिवदर्शन के लिए शीघ्रता से चलीं। उस समय वे सभी शिव का रूप देखकर मोहित हो गयीं ॥ ३३ ॥ तब शिवदर्शन से हर्षित हुईं वे प्रेम से विभोर हो उनकी मूर्त्ति हृदय में धारण कर परस्पर कहने लगीं ॥ ३४ ॥

पुरवासिनी स्त्रियाँ कहने लगीं—हिमालयपुरी में रहने वालों के नेत्र आज सफल हो गये, जो ऐसा शिव का स्वरूप देखा और इसलिए आज उनका जन्म सफल हो गया ॥ ३५ ॥ अहा ! आज उसी का जन्म एवं उसी की क्रिया सफल है, जिसने सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाले इन सदाशिव का दर्शन किया ॥ ३६ ॥ जिस पार्वती ने शिव के निमित्त इतना घोर तप किया उसने अपना सब कुछ सिद्ध कर लिया। यह पार्वती शिव को अपना पति प्राप्त कर धन्य तथा कृतकृत्य हो गयी ॥ ३७ ॥ यदि ब्रह्मा इस शिवाशिव की जोड़ी को न मिलाता तो उसका इन दोनों के रूप-निर्माण का यत्न व्यर्थ हो जाता ॥ ३८ ॥ उस ब्रह्मा ने इन दोनों की जोड़ी मिला कर बहुत अच्छा किया ऐसा करने से उसके सृष्टि-निर्माण के सारे कार्य सफल हो गये ॥ ३९ ॥ विना तपस्या के मनुष्यों को शिवदर्शन दुर्लभ है, आज शिव का दर्शन कर हम सभी कृतार्थ हो गये ॥४०॥ जिस प्रकार पूर्वकाल में लक्ष्मी ने नारायण को पति रूप में प्राप्त की थीं, उसी प्रकार यह देवी पार्वती भी शिव को प्राप्त कर सुशोभित हो गयीं ॥ ४१ ॥ पूर्व में जिस प्रकार सरस्वती ने अपने स्वामी ब्रह्मा को पाया था वैसे ही पार्वती ने भगवान् शंकर को प्राप्त कर अत्यधिक सुशोभित हुईं ॥ ४२ ॥ इस नगर के रहने वाले हम सभी स्त्रियाँ तथा पुरुष धन्य हैं, जो इन सर्वेश गिरिजापति का दर्शन कर रहे हैं ॥ ४३ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्थमुक्त्वा तु वचनं चन्दनैश्चाऽक्षतैरपि । शिवं समर्चयामासुर्लाजान् वव्रुपुरादरात् ॥४४॥
तस्थुस्तत्र स्त्रियः सर्वा मेनया सह सोत्सुकाः । वर्णयन्त्योऽधिकं भाग्यं मेनायाश्च गिरेरपि ॥४५॥
कथास्तथाविधाः शृण्वंस्तद्वामावर्णिताः शुभाः । प्रहृष्टोऽभूत् प्रभुः सर्वैर्मुने विष्ण्वादिभिस्तदा ॥४६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शिवसुन्दर-स्वरूपपुरवास्युत्सववर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

(स्त्रियों सहित मैना का शिव की आरती करना)

ब्रह्मोवाच

अथ शम्भुः प्रसन्नात्मा सदूतं स्वगणैः सुरैः । सर्वैरन्यैर्गिरेर्धाम जगाम सकुतूहलम् ॥ १ ॥
मेनाऽपि स्त्रीगणैस्तैश्च हिमाचलवरप्रिया । तत उत्थाय स्वगृहाभ्यन्तरं सा जगाम ह ॥ २ ॥
नीराजनार्थं शम्भोश्च दीपपात्रकरा सती । सर्वर्षिस्त्रीगणैः साकमगच्छद् द्वारमादरात् ॥ ३ ॥
तत्रागतं महेशानं शङ्करं गिरिजावरम् । ददर्श प्रीतितो मेना सेवितं सकलैः सुरैः ॥ ४ ॥
चारुचम्पकवर्णाभं ह्येकवक्त्रं त्रिलोचनम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं रत्नस्वर्णादिभूषितम् ॥ ५ ॥
मालतीमालया युक्तं सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् । सत्कण्ठाभरणं चारुवलयाङ्गदभूषितम् ॥ ६ ॥
वह्निशौचेनातुलेन त्वतिसूक्ष्मेण चारुणा । अमूल्यवस्त्रयुग्मेन विचित्रेणातिराजितम् ॥ ७ ॥
चन्दना-ऽगरु-कस्तूरी-चारुकुङ्कुमभूषितम् । रत्न-दर्पणहस्तं च कज्जलोज्ज्वललोचनम् ॥ ८ ॥
सर्वस्वप्रभयाच्छन्नमतीव सुमनोहरम् । अतीव तरुणं रम्यं भूषिताङ्गैश्च भूषितम् ॥ ९ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! ऐसा कह उन स्त्रियों ने 'चन्दन एवं अक्षत से शिव का पूजन किया और उनके ऊपर लावा की वर्षा की ॥ ४४ ॥ तदनन्तर सभी स्त्रियाँ उत्कण्ठायुक्त हो मेना के पास खड़ी हो गयीं । और हिमालय तथा मेना के भाग्य का वर्णन करने लगीं ॥४५॥ इस प्रकार हे मुने ! स्त्रियों के अनेक प्रकार के संवाद को सुन भगवान् शङ्कर, विष्णु आदि देवों के सहित परम प्रसन्न हो गये ॥४६॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती'भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में शिवसुन्दर स्वरूप-पुरवास्युत्सव वर्णन नामक पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४५ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—तब शिवजी महाराज प्रसन्न हो अपने गणों, देवताओं, दूतों तथा अन्य सभी लोगों के साथ कुतूहल से हिमालय के गृह चले ॥ १ ॥ इधर हिमालय की प्राणप्रिया मेना भी सभी स्त्रियों के साथ उठकर घर के भीतर गयी ॥ २ ॥ फिर वह सती शिवजी के नीराजन के निमित्त हाथ में दीपक लिये सभी स्त्रियों को साथ ले आदरपूर्वक द्वार पर आयी ॥ ३ ॥ वहाँ जाकर मेना ने सभी देवताओं से सेवित गिरिजापति महेश्वर को बड़े प्रेम से देखा ॥ ४ ॥ उनके शरीर की कान्ति चम्पक पुष्प के समान मनोहर थी, वे पाँच मुख तथा तीन नेत्र धारण किये विविध सर्प एवं रत्न के आभूषण से शोभित हो मन्द-मन्द हँस रहे थे ॥ ५ ॥ उनके गले में मालती की माला तथा शिरस्थ मुकुट उत्तम-उत्तम रत्नों से उज्ज्वल प्रकाशित हो रहा था । उनके गले में उत्तम कण्ठमाला और हाथ में कंगन तथा बाजूबन्द शोभा पा रहे थे ॥६॥ वे अग्नि के समान देदीप्यमान, अत्यन्त सूक्ष्म और मनोहर तथा विचित्र युग्म वस्त्र धारण किये हुए थे ॥ ७ ॥ उनके शरीर चन्दन, अगरु, कस्तूरी तथा कुंकुम के लेप से शोभित हो रहा था । वे हाथ में रत्न का दर्पण तथा नेत्रों में काजल लगाये हुए थे ॥ ८ ॥ उनके शरीर की प्रभा चारों ओर छिटक

कामिनीकान्तमव्यग्रं कोटिचन्द्राननाम्बुजम् । कोटिस्मराधिकतनुच्छविं सर्वाङ्गसुन्दरम् ॥१०॥
ईदृग्विधं सुदेवं तं स्थितं स्वपुरतः प्रभुम् । दृष्ट्वा जामातरं मेना जहौ शोकं मुदाऽन्विता ॥११॥
प्रशशंस स्वभाग्यं सा गिरिजां भूधरं कुलम् । मेने कृतार्थमात्मानं जहर्ष च पुनः पुनः ॥१२॥
नीराजनं चकारासौ प्रफुल्लवदना सती । अवलोकपरा तत्र मेना जामातरं मुदा ॥१३॥
गिरिजोक्तमनुस्मृत्य मेना विस्मयमागता । मनसैव ह्युवाचेदं हर्षफुल्लाननाम्बुजा ॥१४॥
यद्वै पुरोक्तं च तया पार्वत्या मम तत्र च । ततोऽधिकं प्रपश्यामि सौन्दर्यं परमेशितुः ॥१५॥
महेशस्य सुलावण्यमनिर्वाच्यं च सम्प्रति । एवं विस्मयमापन्ना मेना स्वगृहमाययौ ॥१६॥
प्रशशंसुर्युवतयो धन्या धन्या गिरेः सुता । दुर्गा भगवतीत्येवमूचुः काश्चन कन्यकाः ॥१७॥
न दृष्टो वर इत्येवमस्माभिर्दानगोचरः । धन्या हि गिरिजा देवीमूचुः काश्चन कन्यकाः ॥१८॥
जगुर्गन्धर्वप्रवरा ननृतुश्चाप्सरोगणाः । दृष्ट्वा शङ्कररूपं च प्रहृष्टाः सर्वदेवताः ॥१९॥
नानाप्रकारवाद्यानि वादका मधुराक्षरम् । नानाप्रकारशिल्पेन वादयामासुरादरात् ॥२०॥
हिमाचलोऽपि मुदितो द्वाराचारमथाकरोत् । मेनाऽपि सर्वनारीभिर्महोत्सवपुरःसरम् ॥२१॥
परपृच्छां चकारासौ मुदिता स्वगृहं ययौ । शिवो निवेदितं स्थानं जगाम गणनिर्जरैः ॥२२॥
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गां शैलान्तःपुरचारिकाः । वहिर्जग्मुः समादाय पूजितुं कुलदेवताम् ॥२३॥
तत्र तां ददृशुर्देवा निमेषरहिता मुदा । सुनीलाञ्जनवर्णाभां स्वाङ्गैश्च प्रतिभूषिताम् ॥२४॥

रही थी, वे अत्यन्त मनोहर तथा तरुण थे तथा आभूषण से विभूषित थे ॥ ९ ॥ अपने सौन्दर्य से स्त्रियों को मोहित करने वाले, व्यग्रता से रहित उन शिव का मुख-कमल करोड़ों चन्द्रमा के समान सुन्दर था और उनकी शरीर की शोभा तो करोड़ों कामदेव की शोभा से भी अधिक थी ॥ १० ॥

इस प्रकार दिव्यरूप धारण किये अपने जामाता शिव को अपने आगे स्थित देख मेना ने अपना सारा शोक त्याग दिया ॥ ११ ॥ वह अपने भाग्य, गिरिजा तथा पर्वतराज के कुल की प्रशंसा करने लगी और अपने को कृतार्थ मान बारम्बार प्रसन्न होने लगी ॥ १२ ॥ उस समय वह मेना अपने जामाता को देख उनकी आरती उतार परम प्रसन्न होकर घर के भीतर गयी ॥ १३ ॥ और गिरिजा की कही हुई बात का स्मरण कर विस्मित हो गयी । उसके नेत्र-कमल तथा मुखमण्डल विकसित हो उठे और अपने मन में कहने लगी ॥ १४ ॥ पार्वती ने मुझसे जैसा पहले कहा था मैं तो उससे भी कहीं अधिक सौन्दर्य सदाशिव में देखती हूँ ॥ १५ ॥ इन महेश्वर का सौन्दर्य तो अनिर्वाच्य है, जो वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता । इस प्रकार विस्मित हुई मेना अपने मन्दिर के भीतर गयी ॥ १६ ॥ उधर युवतियों ने प्रशंसा करना प्रारम्भ किया कि गिरिजा धन्य है, धन्य है और कुछ कन्याओं ने तो यहाँ तक कहा कि यह साक्षात् भगवती दुर्गा है ॥ १७ ॥ कुछ कन्याएँ तो इस प्रकार कहने लगीं कि यह गिरिजा धन्य है, जो इसको ऐसा मनोहर पति प्राप्त हुआ । हम लोगों ने तो आज तक ऐसा मनोहर वर देखा ही नहीं ॥ १८ ॥ गन्धर्वगण गाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं और शङ्कर का अत्यन्त सुन्दर रूप देख देवगण प्रसन्न हुए ॥ १९ ॥ बाजा बजाने वाले अनेक प्रकार की कारीगरी प्रदर्शित करते हुए मधुर ध्वनि में आदरपूर्वक बाजा बजाने लगे ॥ २० ॥

हिमालय ने बड़ी प्रसन्नता के साथ द्वारोचित आचारपूर्वक शिव का पूजन किया । मेना ने भी सभी स्त्रियों के साथ महोत्सव पूर्वक उनका परिछन किया । फिर वह अपने घर चली गयी । इधर शिवजी भी अपने गणों के साथ निर्दिष्ट स्थान पर चले गये ॥ २१-२२ ॥ तदनन्तर शैलराज के अन्तःपुर की स्त्रियाँ दुर्गा भगवती को कुल-देवता के पूजन के निमित्त ले गयीं ॥ २३ ॥ वहाँ पर देवताओं ने अपलक दृष्टि से

त्रिनेत्राहत-नेत्रान्तामन्यवारित-लोचनाम् । इषद्धास्यप्रसन्नास्यां सकटाक्षां मनोहराम् ॥२५॥
सुचारुकबरीभारां चारुपत्रकशोभिताम् । कस्तूरीबिन्दुभिः सार्द्धं सिन्दूरबिन्दुशोभिताम् ॥२६॥
रत्नेन्द्रसारहारेण वक्षसा सुविराजिताम् । रत्नकेयूरवलयां रत्नकङ्कणमण्डिताम् ॥२७॥
सद्रत्नकुण्डलाभ्यां च चारुगण्डस्थलोज्ज्वलाम् । मणिरत्न-प्रभामुष्टि-दन्तराजि-विराजिताम् ॥२८॥
मधुबिम्बाधरोष्ठां च रत्नयावकसंयुताम् । रत्नदर्पणहस्तां च क्रीडापद्मविभूषिताम् ॥२९॥
चन्दनागुरु-कस्तूरी-कुङ्कुमेनातिचर्चिताम् । क्वणन्मञ्जीरपादां च रक्ताङ्घ्रितलराजिताम् ॥३०॥
प्रणेमुः शिरसा देवीं भक्तियुक्ताः समेनकाम् । सर्वे सुरादयो दृष्ट्वा जगदाद्यां जगत्प्रसूम् ॥३१॥
त्रिनेत्रो नेत्रकोणेन तां ददर्श मुदान्वितः । शिवः सत्याकृतिं दृष्ट्वा विजहौ विरहज्वरम् ॥३२॥
शिवः सर्वं विसस्मार शिवासंन्यस्तलोचनः । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो हर्षाद् गौरीविलोचनः ॥३३॥
अथ कालीबहिः पुर्य्यां गत्वा पूज्य कुलाम्बिकाम् । विवेश भवनं रम्यं स्वपितुः सद्विजाङ्गना ॥३४॥
शङ्करोऽपि सुरैः सार्द्धं हरिणा ब्रह्मणा तथा । हिमाचलसमुद्दिष्टं स्वस्थानमगमन्मुदा ॥३५॥
तत्र सर्वे सुखं तस्थुः सेवन्तः शङ्करं यथा । सम्मानिता गिरीशेन नानाविधसुसम्पदा ॥३६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे वरागमादि-
वर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

नील पर्वत के समान कृष्णवर्ण वाली प्रत्येक अङ्गों से विभूषित भगवती पार्वती को देखा ॥ २४ ॥ यद्यपि उस समय पार्वती शिव के अतिरिक्त और किसी को भी नहीं देखती थीं। मनोहर कटाक्ष और मन्द-मन्द हासयुक्त उनके प्रसन्न मुखमण्डल पर मनोहर केशपाश लटक रहे थे। कस्तूरी बिन्दु सहित सिन्दूर बिन्दु एवं मनोहर पत्र रचना से उनका मुखमण्डल अत्यन्त शोभित हो रहा था। वक्षःस्थल पर मनोहर रत्नों की माला विराज रही थी। इसी प्रकार वे रत्ननिर्मित बाजूबन्द तथा रत्न के कङ्कणों से शोभा प्राप्त कर रही थीं ॥ २५-२७ ॥ उत्तम रत्नों के द्वारा निर्मित रत्न-कुण्डलो की प्रभा से उनके मनोहर गण्डस्थल प्रकाशित हो रहे थे। और उनके दाँतों की पक्तियों की आभा स तो मणि एवं रत्नों की कान्ति भी फीकी हो जाती थी ॥ २८ ॥ उनके अत्यन्त मनोहर बिम्बफल के समान अधरोष्ठ पर लाल रत्नों के यावक (महावर) शोभित हो रहे थे। वे अपने हाथो में रत्न के दर्पण तथा क्रीडा निमित्त कमल धारण किये हुए थीं ॥ २९ ॥ चन्दन, अगरु, कस्तूरी तथा कुकुम के लेप उनके श्री-अङ्गों में लगे हुए थे। पैरों में मञ्जीर मधुर शब्द कर रहे थे, उनके पैर के तलवे अत्यन्त रक्तवर्ण के थे ॥ ३० ॥ उस समय सभी देवताओं ने मेनका सहित उस जगदम्बा भगवती को प्रणाम किया ॥ ३१ ॥ भगवान् शङ्कर ने भी भगवती पार्वती को अपने नेत्र के कोण से जब देखा तो सती के विरह का दुःख दूर हो गया ॥ ३२ ॥

शिवा-पार्वती को देखते ही शिव को सब कुछ विस्मृत हो गया। उनके रोम-रोम पुलकित हो उठे ॥ ३३ ॥ इस प्रकार काली नगर से बाहर जाकर कुल देवी का पूजन कर द्विजपत्नियों के साथ पुनः अपने पिता के घर में प्रवेश की ॥ ३४ ॥ शङ्कर भी देवताओं, ब्रह्मा तथा विष्णु के साथ हिमालय के द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर प्रसन्न होकर आये ॥ ३५ ॥ वहाँ पर सभी बारातीगण गिरीश के द्वारा नाना प्रकार की सम्पत्ति से सम्मानित हो शङ्कर की सेवा करते हुए सुख से निवास करने लगे ॥ ३६ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-
पार्वतीखण्ड में वरागमनादिवर्णन नामक छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४६ ॥

*

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

(देवताओं के साथ शिव का मण्डप में आना)

ब्रह्मोवाच

ततः शैलवरः सोऽपि प्रीत्या दुर्गोपवीतकम् । कारयामास सोत्साहं वेदमन्त्रैः शिवस्य च ॥ १ ॥
अथ विष्ण्वादयो देवा मुनयः सकुतूहलम् । हिमाचलप्रार्थनया विवेशान्तर्गृहं गिरेः ॥ २ ॥
श्रुत्याचारं भवाचारं विधाय च यथार्थतः । शिवामलङ्कृतां चक्रुः शिवदत्तविभूषणैः ॥ ३ ॥
प्रथमं स्नापयित्वा तां भूषयित्वाऽथ सर्वशः । नीराजिता सखीभिश्च विप्रपत्नीभिरेव च ॥ ४ ॥
अहताम्बरयुग्मेन शोभिता वरवर्णिनी । विरराज महाशैलदुहिता शङ्करप्रिया ॥ ५ ॥
कञ्चुकी परमा दिव्या नानारत्नान्विताद्भुता । विधृता च तया देव्या विलसन्त्यधिकं मुने ! ॥ ६ ॥
सा बभार तथा हारं दिव्यरत्नसमन्वितम् । वलयानि महार्हाणि शुद्धचामीकराणि च ॥ ७ ॥
स्थिता तत्रैव सुभगा ध्यायन्ती मनसा शिवम् । शुशुभेति महाशैलकन्यका त्रिजगत्प्रसूः ॥ ८ ॥
तदोत्सवो महानासीदुभयत्र मुदावहः । दानं बभूव विविधं ब्राह्मणेभ्यो विवर्णितम् ॥ ९ ॥
अन्येषां द्रव्यदानं च बभूव विविधं महत् । गीतवाद्यविनोदश्च तत्रोत्सवपुरःसरम् ॥१०॥
अथ विष्णुरहं धाता शक्राद्या अमरास्तथा । मुनयश्च महाप्रीत्या निखिलाः सोत्सवा मुदा ॥११॥
सुप्रणम्य शिवां भक्त्या स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् । सम्प्राप्य हिमगिर्याज्ञां स्वं स्वं स्थानं समाश्रिताः॥१२॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र ज्योतिःशास्त्रविशारदः । हिमवन्तं गिरीन्द्रं तं गर्गो वाक्यमभाषत ॥१३॥

गर्ग उवाच

हिमाचल धराधीश स्वामिन् कालीपतिः प्रभो ! । पाणिग्रहार्थं शम्भुं चानय त्वं निजमन्दिरम् ॥१४॥

ब्रह्मा जी बोले—तदनन्तर शैलराज ने प्रसन्नतापूर्वक बड़े उत्साह के साथ वेदमन्त्रों से शिवा एवं शिव का उपनयन-संस्कार सम्पन्न कराया ॥ १ ॥ तब विष्णु आदि देवताओं एवं समस्त मुनियों ने हिमालय के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर उनके घर के भीतर प्रवेश किया ॥ २ ॥ उन लोगों ने लोक तथा वेद की रीति को यथार्थ रूप से सम्पन्न कर शिव के द्वारा दिये गये आभूषणों से पार्वती को अलंकृत किया ॥ ३ ॥ सर्वप्रथम सखियों तथा ब्राह्मणों की स्त्रियों ने पार्वती को स्नान कराया, फिर आभूषणों से सुसज्जित कर उनकी आरती उतारी ॥ ४ ॥ शङ्करप्रिया गिरिराज सुता पार्वती उस समय नवीन वस्त्र धारण किये हुए अत्यन्त शोभित हो रही थीं ॥ ५ ॥ पुनः देवी ने रत्नजटिल परम अद्भुत दिव्य कञ्चुकी धारण की, जिससे उनकी शोभा और भी निखर उठी ॥ ६ ॥ उन्होंने दिव्य रत्नो का हार तथा शुद्ध सुवर्ण के बन वलय (कङ्कण) को भी धारण किया ॥ ७ ॥

वह सुभगा पार्वती मन से शिव जी का ध्यान करती हुई वहीं स्थित हो गयीं। इस प्रकार तीनों जगत् को उत्पन्न करने वाली महाशैल की कन्या पार्वती अत्यन्त शोभित होने लगीं ॥ ८ ॥ उस समय वर एवं कन्यापक्ष के लोगों ने आनन्ददायक महामहोत्सव किया और उभय पक्ष से नाना प्रकार के दान ब्राह्मणों को दिये गये ॥ ९ ॥ इसी प्रकार अन्य लोगो को भी अनेक प्रकार के दान दिये गये और गीत, वाद्य एवं विनोद के द्वारा महान् उत्सव मनाया जाने लगा ॥१०॥ तब विष्णु, मै (ब्रह्मा), इन्द्र एवं अन्य सभी देवगण तथा मुनियों ने भी बड़ी प्रसन्नता के साथ अपनी ओर से उत्सव मनाया ॥११॥ सभी लोग भक्तिपूर्वक पार्वती को प्रणाम कर शिव के चरण-कमलों का ध्यान कर गिरिराज की आज्ञा से अपने-अपने स्थान पर बैठ गये ॥१२॥ इसी समय ज्योतिःशास्त्र के पारङ्गत विद्वान् गर्गाचार्य ने गिरिराज हिमालय से कहा ॥ १३ ॥

गर्ग बोले—हे धराधीश हिमालय, हे प्रभो ! अब पाणिग्रहण के निमित्त कालीपति शिव को शीघ्रता से घर पर बुलाओ ॥ १४ ॥

ब्रह्मोवाच

अथ तं समयं ज्ञात्वा कन्यादानोचितं गिरिः । निवेदितं च गर्गेण मुमुदेऽतीव चेतसि ॥१५॥
महीधरान् द्विजांश्चैव परानपि तदा गिरिः । प्रेषयामास सुप्रीत्या शिवानयनकाम्यया ॥१६॥
ते पर्वता द्विजाश्चैव सर्वमङ्गलपाणयः । संजग्मुः सोत्सवाः प्रीत्या यत्र देवो महेश्वरः॥१७॥
तदा वादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा । महोत्साहोऽभवत्तत्र गीतनृत्यान्वितेन हि ॥१८॥
श्रुत्वा वादित्रनिर्घोषं सर्वे शङ्करसेवकाः । उत्थितास्त्वेकपद्येन सदेवर्षिगणा मुदा ॥१९॥
परस्परं समूचुस्ते हर्षनिर्भरमानसाः । अत्रागच्छन्ति गिरयः शिवानयनकाम्यया ॥२०॥
पाणिग्रहणकालो हि नूनं सद्यः समागतः । महद्भाग्यं हि सर्वेषां सम्प्राप्तमिह मन्महे ॥२१॥
धन्या वयं विशेषेण विवाहं शिवयोर्ध्रुवम् । द्रक्ष्यामः परमप्रीत्या जगतां मङ्गलालयम् ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

एवं यावदभूत्तेषां संवादस्तत्र चादरात् । तावत् सर्वे समायाताः पर्वतेन्द्रस्य मन्त्रिणः ॥२३॥
ते गत्वा प्रार्थयाञ्चक्रुः शिवं विष्ण्वादिकानपि । कन्यादानोचितः कालो वर्तते गम्यतामिति ॥२४॥
ते तच्छ्रुत्वा सुराः सर्वे मुने विष्ण्वादयोऽखिलाः । मुमुदुश्चेतसातीव जयेत्यूचुर्गिरिं द्रुतम् ॥२५॥
शिवोऽपि मुमुदेऽतीव कालीप्रापणलालसः । गुप्तं चकार तच्चिह्नं मनस्येवाऽद्भुताकृतिः ॥२६॥
अथ स्नानं कृतं तेन मङ्गलद्रव्यसंयुतम् । शूलिना सुप्रसन्नेन लोकानुग्रहकारिणा ॥२७॥
स्नातः सुवाससा युक्तः सर्वैस्तैः परिवारितः । आरोपितो वृषस्कन्धे लोकपालैः सुसेवितः ॥२८॥
पुरस्कृत्य प्रभुं सर्वे जग्मुर्हिमगिरेर्गृहम् । वाद्यानि वादयन्तश्च कृतवन्तः कुतूहलम् ॥२९॥
हिमागप्रेपिता विप्रास्तथा ते पर्वतोत्तमाः । शम्भोरग्रचरा ह्यासन् कुतूहलसमन्विताः ॥३०॥

ब्रह्मा जी बोले—कन्यादान के लिए उचित वेला जानकर तथा गर्ग का निवेदन सुनकर हिमालय अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ १५ ॥ उन्होंने तत्क्षण पर्वतों, ब्राह्मणों तथा अन्य सगे-सम्बन्धियों को शिव जी को बुलाने के हेतु भेजा ॥ १६ ॥ वे सभी पर्वत तथा ब्राह्मणगण अपने-अपने हाथों में माङ्गलिक वस्तु लेकर महान् उत्सव करते हुए शिवजी के सन्निकट गये ॥ १७ ॥ उस समय बाजे बजने लगे, ब्राह्मणों के द्वारा वेद का घोष होने लगा और गीत तथा नृत्य आदि से महान् महोत्सव मनाया जाने लगा ॥ १८ ॥ उन बाजों के शब्द को सुनकर शङ्कर के सभी सेवक एवं देवर्षि गण एक साथ ही उठ खड़े हुए ॥ १९ ॥ और हर्षित होकर परस्पर कहने लगे—शिवजी को बुलाने के लिए गिरिराज के द्वारा भेजे गय पर्वत आदि आ रहे हैं ॥ २० ॥ निश्चय ही यह पाणिग्रहण का काल उपस्थित हो गया है, अतः हम लोगों के लिए महाभाग्य का काल उपस्थित हो गया है, ऐसा हम लोग विश्वास करते हैं ॥ २१ ॥ अहा ! हम लोग धन्य हैं, जो परम कल्याणदायक शिवाशिव के विवाह का दर्शन करेंगे ॥ २२ ॥

ब्रह्मा जी बोले—अभी देवता लोग आपस में इस प्रकार का विचार कर ही रहे थे कि अकस्मात् उसी समय गिरिराज के मन्त्रिगण वहाँ पहुँच गये ॥ २३ ॥ उन लोगों ने जाते ही विष्णु आदि देवों तथा भगवान् शङ्कर से प्रार्थना की कि, प्रभो ! कन्यादान का काल उपस्थित हो गया है, अतः चलने की कृपा कीजिए ॥ २४ ॥ फिर विष्णु आदि देवगण मन में प्रसन्न होकर गिरिराज हिमालय की जय-जयकार करने लगे ॥ २५ ॥ इधर शिव जी भी काली को प्राप्त करने की लालसा से प्रसन्न हो उठे, किन्तु अद्‌भुत रूप वाले उन शिव ने उस लालसा को मन में ही गुप्त रखा ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त लोक पर अनुग्रह करने वाले शूलधारी शिव ने आनन्द से माङ्गलिक द्रव्यों से युक्त जल से स्नान किया ॥ २७ ॥ स्नानोपरान्त वस्त्र धारण करने के पश्चात् उनके सेवकों ने तथा लोकपालों ने उन्हें बैल पर बैठाया और स्वयं उनकी सेवा करते हुए उनको आगे कर बाजे बजाते तथा नाना प्रकार के कुतूहल करते हुए हिमालय के घर की ओर चल पड़े ॥ २८-२९ ॥ उस समय हिमालय के द्वारा भेजे गये ब्राह्मण तथा दिव्य देहधारी पर्वत गण कुतूहल

बभौ छत्रेण महता ध्रियमाणो हि मूर्द्धनि। चामरैर्वीज्यमानोऽसौ सवितानो महेश्वरः ॥३१॥
अहं विष्णुस्तथा चेन्द्रो लोकपालास्तथैव च। अग्रगाः स्मातिशोभन्ते श्रिया परमया श्रिताः ॥३२॥
ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पटहानकगोमुखाः। पुनः पुनरवाद्यन्त वादित्राणि महोत्सवे ॥३३॥
तथैव गायकाः सर्वे जगुः परममङ्गलम्। नर्तक्यो ननृतुः सर्वा नानातालसमन्विताः ॥३४॥
एभिः समेतो जगदेकबन्धुर्ययौ तदानीं परमेशवर्चसा।
सुसेव्यमानः सकलैः सुरेश्वरैर्विकीर्यमाणः कुसुमैश्च हर्षितैः ॥३५॥
सम्पूजितस्तदा शम्भुः प्रविष्टो यज्ञमण्डपम्। संस्तूयमानो बह्वीभिः स्तुतिभिः परमेश्वरः ॥३६॥
वृषादुत्तारयामासुर्महेशं पर्वतोत्तमाः। निन्युर्गृहान्तरं प्रीत्या महोत्सवपुरःसरम् ॥३७॥
हिमालयोऽपि सम्प्राप्तं सदेवगणमीश्वरम्। प्रणम्य विधिवद् भक्त्या नीराजनमथाकरोत् ॥३८॥
सर्वान् सुरान् मुनीनन्यान् प्रणम्य समहोत्सवः। सम्मानमकरोत्तेषां प्रशंसन् स्वविधिं मुदा ॥३९॥
सोऽगः साच्युतमीशानं सुपाद्यार्घ्यपुरःसरम्। सदेवमुख्यवर्गं च निनाय स्वालयान्तरम् ॥४०॥
प्राङ्गणे स्थापयामास रत्नसिंहासनेषु तान्। सर्वान् विष्णुं च मामीशं विशिष्टांश्च विशेषतः ॥४१॥
सखीभिर्मेनया प्रीत्या ब्राह्मणस्त्रीभिरेव च। अन्याभिश्च पुरन्ध्रीभिश्चक्रे नीराजनं मुदा ॥४२॥
पुरोधसा कृत्यविदा शङ्कराय महात्मने। मधुपर्कादिकं यद्यत् कृत्यं तच्चरकृतं मुदा ॥४३॥
मया स नोदितस्तत्र पुरोधाः कृतवांस्तदा। सुमङ्गलं च यत्कर्म प्रस्तावसदृशं मुने ॥४४॥
अन्तर्वेद्यां महाप्रीत्या सम्प्रविश्य हिमाद्रिणा। यत्र सा पार्वती कन्या सर्वाभरणभूषिता ॥४५॥

करते हुए शिवजी के आगे-आगे चल रहे थे ॥३०॥ उस समय मस्तक पर छत्र तथा पार्श्वभाग में चामरों से बीज्यमान एवं वितान (चँदवा) से युक्त भगवान् महेश्वर अत्यन्त शोभित हो रहे थे ॥ ३१ ॥ उस समय शिवजी के आगे चलते हुए मुझ ब्रह्मा, विष्णु तथा समस्त लोकपालों की छवि देखते ही बनती थी ॥ ३२ ॥ उस वरयात्रा महोत्सव में शङ्ख, भेरी, पटह, आनक तथा गोमुख आदि बाजे बारम्बार बज रहे थे ॥ ३३ ॥ गायकगण भी मङ्गल गीत गा रहे थे तथा नर्तकियाँ अनेक प्रकार के तालों पर नाच रही थीं ॥ ३४ ॥ इस प्रकार इन सभी मङ्गलों से युक्त समस्त जगत् के एक मात्र रक्षक सदाशिव अपने ऐश्वर्य तथा तेज से शोभा प्राप्त करते हुए हिमालय के घर गये। उस समय देवेश्वर गण उनकी सेवा में लगे हुए थे और हर्षित हुए पुरजन उन पर पुष्प की वृष्टि कर रहे थे ॥ ३५ ॥

इस प्रकार सभी लोगों से समादृत सदाशिव ने यज्ञमण्डप में प्रवेश किया। उस समय उन परमेश्वर की सभी लोग नाना प्रकार की स्तुति कर रहे थे ॥ ३६ ॥ गिरिराज के सगे-सम्बन्धिगणों ने शिवजी को बैल पर से उतारा और बड़े प्रेम के साथ महोत्सव करते हुए उन्हें घर के भीतर ले गये ॥ ३७ ॥ देवताओं के सहित सदाशिव को आया देख हिमालय ने भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम किया और उनकी आरती उतारी ॥३८॥ इसी प्रकार उत्साहयुक्त हिमालय न सभी देवताओ और मुनियों को प्रणाम कर अपने भाग्य की प्रशंसा करते हुए सब का यथोचित सम्मान किया ॥ ३९ ॥ और विष्णु आदि प्रमुख देवगणों को अर्घ्यदान कर उन्हें अपने घर में लिवा ले गय ॥ ४० ॥ उन्होंने आँगन में रत्न के सिंहासनों पर विशेष देवगणों को तथा मुझ एवं विष्णु को आदर पूर्वक बैठाया ॥ ४१ ॥ इधर मेना ने भी बड़े प्रेम से अपनी सखियों तथा ब्राह्मण स्त्रियों के साथ शिवजी की आरती उतारी ॥ ४२ ॥ फिर कर्मकाण्ड के ज्ञाता हिमालय के पुरोहित ने बड़ी प्रसन्नता के साथ विवाह में किये जाने वाले मधुपर्कादि सार कृत्यो का सम्पादन किया ॥ ४३ ॥ हे मुने नारद ! पुरोहित ने मेरी प्रेरणा से मेरे प्रस्ताव के अनुकूल समस्त माङ्गलिक कर्म किया ॥ ४४ ॥ तदनन्तर हिमालय वेदी के ऊपर विराजमान तथा समस्त आभूषणों से विभूषित पार्वती देवी, जहाँ विराज

वेदिकोपरि तन्वङ्गी संस्थिता सुविराजिता । तत्र नीतो महादेवो विष्णुना च मया सह ॥४६॥
लग्नन् निरीक्षमाणास्ते वाचस्पतिपुरोगमाः । कन्यादानोचितं तत्र बभूवुः परमोत्सवाः ॥४७॥
तत्रोपविष्टो गर्गश्च यत्राऽस्ति घटिकालयम् । यावच्छेषा घटी तावत् कृतं प्रणवभाषणम् ॥४८॥
पुण्याहं प्रवदन् गर्गः समादध्रेऽञ्जलिं मुदा । पार्वत्याक्षतपूर्णं च ववृपे च शिवोपरि ॥४९॥
तया सम्पूजितो रुद्रो दध्यक्षत-कुशाम्बुभिः । परमोदाढ्यया तत्र पार्वत्या रुचिरास्यया ॥५०॥
विलोकयन्ती तं शम्भुं यस्यार्थे परमन्तपः । कृतं पुरा महाप्रीत्या विरराज शिवाति सा ॥५१॥
मया मुने ! तदोक्तस्तु गर्गादिमुनिभिश्च सः । समानर्च शिवां शम्भुर्लौकिकाचारसंरतः ॥५२॥
एवं परस्परं तौ वै पार्वतीपरमेश्वरौ । अर्चयन्तौ तदानीं च शुशुभाते जगन्मयौ ॥५३॥
त्रैलोक्यलक्ष्म्या संवीतौ निरीक्षन्तौ परस्परम् । तदा नीराजितौ लक्ष्म्यादिभिः स्त्रीभिर्विशेषतः॥५४॥

तथा परा वै द्विजयोपितश्च नीराजयानासुरथो पुरस्त्रियः ।
शिवां च शम्भुं च विलोकयन्त्योऽवापुर्मुदं ताः सकलाः महोत्सवम् ॥५५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शिवहिमगिरिगृहा-
भ्यन्तरगमनोत्सववर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

रही थीं ॥४५॥ वहाँ शङ्कर, विष्णु तथा मुझे भी स-प्रेम साथ लेकर गये । उस समय बृहस्पति आदि देवता बड़ी उत्सुकता से कन्यादानोचित लग्न की प्रतीक्षा कर रहे थे और वहाँ महा महोत्सव हो रहा था ॥४६-४७॥ वहीं पर जहाँ घटिका यन्त्र (घड़ी देखने का तत्कालीन विशेष यन्त्र) स्थापित था, गर्गाचार्य बैठे हुए लग्न की प्रतीक्षा में वेद-पाठ कर रहे थे ॥ ४८ ॥

गर्गाचार्य ने सर्वप्रथम पुण्याहवाचन किया, फिर चावलों को पार्वती की अञ्जलि में दिया । पार्वती ने शिव के ऊपर अक्षतों की वर्षा की ॥ ४९ ॥ और दही, अक्षत तथा कुशा के जल से बड़ी रुचि के साथ शिव की पूजा की ॥ ५० ॥ जिन सदाशिव के लिए पार्वती ने अत्यन्त दुष्कर तपस्या की थी, उन सदाशिव को प्राप्त कर बड़े प्रेम से उनका मुखावलोकन करते हुए पार्वती अत्यन्त शोभित हो रही थीं ॥ ५१ ॥

हे मुने नारद ! मेरं एवं गर्गाचार्य के कहने से सदाशिव ने लौकिक विधि का आश्रय कर (वस्त्रादि दान द्वारा) पार्वती का पूजन किया ॥ ५२ ॥ इस प्रकार जगन्मय पार्वती तथा परमेश्वर परस्पर एक दूसरे का सत्कार करत हुए परम शोभा को प्राप्त हो रहे थे ॥ ५३ ॥ त्रैलोक्य की लक्ष्मी (शोभा) से युक्त हुए वे दोनों एक-दूसरे का ओर सप्रेम देख रहे थे । उसी समय लक्ष्मी आदि विशेष स्त्रियों ने उनकी आरती उतारी ॥ ५४ ॥ फिर ब्राह्मणो की स्त्रियो तथा नगर की स्त्रियों ने उनकी आरती की । उस समय शिवा तथा शिव परस्पर एक दूसरे को देखते हुए अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे ॥ ५५ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में शिवहिमगिरिगृहाभ्यन्तर-गमनोत्सव वर्णन नामक सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४७ ॥

*

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

(कन्यादान तथा विवाह-विधि का वर्णन)

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र गर्गाचार्यप्रणोदितः। हिमवान् मेनया सार्द्धं कन्या दातुं प्रचक्रमे ॥ १ ॥
हैमं कलशमादाय मेना चार्द्धाङ्गमाश्रिता। हिमाद्रेश्च महाभागा वस्त्राभरणभूषिता ॥ २ ॥
पाद्यादिभिस्ततः शैलः प्रहृष्टः स्वपुरोहितः। तं वरं वरयामास वस्त्रचन्दनभूषणैः ॥ ३ ॥
ततो हिमाद्रिणा प्रोक्ता द्विजास्तिथ्यादिकीर्तनैः। प्रयोगो भण्यतां तावदस्मिन् समय आगते ॥ ४ ॥
तथेति चोक्त्वा ते सर्वे कालज्ञा द्विजसत्तमाः। तिथ्यादिकीर्तनं चक्रुः प्रीत्या परमनिर्वृताः॥ ५ ॥
ततो हिमाचलः प्रीत्या शम्भुना प्रेरितो हृदा। स्तीकृतः परेशेन विहसन् शम्भुमब्रवीत् ॥ ६ ॥
स्वगोत्रं कथ्यतां शम्भो प्रवरश्च कुलं तथा। नाम वेदं तथा शाखां माकार्षीः समयात्ययम् ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य हिमाद्रेः शङ्करस्तदा। सुमुखो विमुखः सद्योऽप्यशोच्यः शोच्यतां गतः॥ ८ ॥
एवंविधः सुरवरैर्मुनिभिस्तदानीं गन्धर्व-यक्षगण-सिद्धगणैस्तथैव।
दृष्टो निरुत्तरमुखो भगवान् महेशोऽकार्षीः सुहास्यमथ तत्र स नारद! त्वम् ॥ ९ ॥
वीणामवादयस्त्वं हि ब्रह्मविज्ञोऽथ नारद!। शिवेन प्रेरितस्तत्र मनसा शम्भुमानसः ॥१०॥
तदा निवारितो धीमान् पर्वतेन्द्रेण वै हठात्। विष्णुना च मया देवैर्मुनिभिश्चाऽखिलैस्तथा ॥११॥
न निवृत्तोऽभवस्त्वं हि स यदा शङ्करेच्छया। इति प्रोक्तोऽद्रिणा तर्हि वीणां मा वादयाऽधुना ॥१२॥
सुनिषिद्धो हठात्तेन देवर्षे त्वं यदा बुध!। प्रत्यवोचो गिरीशं तं सुसंस्मृत्य महेश्वरम् ॥१३॥

ब्रह्मा जी बोले—उसी समय गर्गाचार्य की आज्ञा से प्रेरित हुए हिमालय मेना के साथ कन्यादान देने को उद्यत हुए ॥ १ ॥ सुवर्ण का कलश लिये हुए, वस्त्राभरण से सुशोभित, महाभाग्यशालिनी मेना हिमालय के वामाङ्ग में आकर बैठ गयी ॥ २ ॥ सर्वप्रथम पुरोहित के सहित हिमालय ने अर्घ्य, पाद्यादि से पूजा कर वस्त्र, चन्दन तथा आभूषण द्वारा वर का वरण किया ॥ ३ ॥ तब हिमालय ने ब्राह्मणों से कहा—अब कन्यादान का काल उपस्थित हो गया है, अतः आप लोग संकल्प के लिए तिथि, दिन आदि का उच्चारण करें ॥४॥ यह बात सुनते ही ज्योतिःशास्त्र के पारङ्गत, कालज्ञ श्रेष्ठ ब्राह्मण परम शान्ति से आनन्द पूर्ण हो तिथि आदि का उच्चारण करने लगे ॥ ५ ॥ तब शिव की इच्छा से प्रेरित हुए परमेश्वर के पुत्र हिमालय हँसते हुए परम प्रसन्नता के साथ शिव जी से बोले– ॥६॥ हे शम्भो! अब आप अपना गोत्र, प्रवर, कुल, नाम, वेद तथा शाखा का निर्देश कीजिए, कन्यादान का समय बीत रहा है, विलम्ब मत कीजिए ॥७॥

ब्रह्मा ने कहा—हिमालय की बात सुनते ही भगवान् शङ्कर प्रसन्न होते हुए भी कुछ उदास हो गये, और शोकरहित होते हुए भी शोकयुक्त हो गये ॥ ८ ॥ इस प्रकार देव, मुनि, गन्धर्व, यक्षगण तथा सिद्धों ने जब शङ्कर को निरुत्तर देखा तब हे नारद! तुमने हास्य रस उपस्थित कर दिया ॥ ९ ॥ हे नारद! उस समय शिव जी की प्रेरणा से ब्रह्मवेत्ता तुमने वीणा बजाना प्रारम्भ किया ॥ १० ॥ यद्यपि हिमालय, विष्णु, मैं (ब्रह्मा) तथा समस्त मुनिगण एवं देवगण ऐसा करने से रोक रहे थे ॥११॥ किन्तु शङ्कर की इच्छा ही ऐसी थी कि तुम इन लोगों के मना करने पर भी नहीं माने, तब पुनः हिमालय ने तुमसे कहा कि नारद जी, तुम वीणा मत बजाओ ॥१२॥ हे बुध! हे देवर्षे! जब उन्होंने तुम्हें बलात् रोकना चाहा तब तुमने महेश्वर का स्मरण करते हुए हिमालय से कहा– ॥ १३ ॥

नारद उवाच

त्वं हि मूढत्वमापन्नो न जानासि च किञ्चन । वाच्ये महेशविषयेऽतीवासि त्वं बहिर्मुखः ॥१४॥
त्वया पृष्टो हरः साक्षात् स्वगोत्रकथनं प्रति । समयेऽस्मिंस्तदत्यन्तमुपहासकरं वचः ॥१५॥
अस्य गोत्रं कुलं नाम नैव जानन्ति पर्वत ! । विष्णुब्रह्मादयोऽपीह परेषां का कथा स्मृता ॥१६॥
यस्यैकदिवसे शैल ! ब्रह्मकोटिर्लयं गता । स एव शङ्करस्तेऽद्य दृष्टः कालीतपोबलात् ॥१७॥
अरूपोऽयं परब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः । निराकारो निर्विकारो मायाधीशः परात्परः ॥१८॥
अगोत्रकुलनामा हि स्वतन्त्रो भक्तवत्सलः । तदिच्छया हि सगुणः सुतनुर्बहुनामभृत् ॥१९॥
सुगोत्री गोत्रहीनश्च कुलहीनः कुलीनकः । पार्वतीतपसा सोऽद्य जामाता ते न संशयः ॥२०॥
लीलाविहारिणा तेन मोहितं च चराऽचरम् । नो जानाति शिवं कोऽपि प्राज्ञोऽपि गिरिसत्तम ! ॥२१॥
लिङ्गाकृतेर्महेशस्य केन दृष्टं न मस्तकम् । विष्णुर्गत्वा हि पातालं तदेनं नाप विस्मितः ॥२२॥
किं बहूक्त्या नगश्रेष्ठ ! शिवमाया दुरत्यया । तदधीनास्त्रयो लोका हरिब्रह्मादयोऽपि च ॥२३॥
तस्मात्त्वया शिवातात ! सुविचार्य प्रयत्नतः । न कर्तव्यो विमर्शोऽत्र त्वेवंविधवरे मनाक् ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा त्वं मुने ! ज्ञानी शिवेच्छाकार्यकारकः । प्रत्यवोचः पुनस्तं वै शैलेन्द्रं हर्षयन् गिरा ॥२५॥

नारद उवाच

शृणु तात महाशैल शिवाजनक मद्वचः । तच्छ्रुत्वा तनयां देवीं देहि त्वं शङ्कराय हि ॥२६॥
सगुणस्य महेशस्य लीलया रूपधारिणः । गोत्रं कुलं विजानीहि नादमेव हि केवलम् ॥२७॥

नारद जी बोले—हिमालय, तुम बड़े ही मूढ़ हो, तुम इन महेश्वर के विषय में बहिर्मुख हो और कुछ नहीं जानते ॥ १४ ॥ तुमने जो इन महेश्वर के गोत्र के विषय में प्रश्न किया है, तुम्हारा यह वचन अत्यन्त उपहासास्पद है ॥ १५ ॥ हे शैल ! इन भगवान् सदाशिव का गोत्र तथा कुल, ब्रह्मा तथा विष्णु भी नहीं जानते, फिर औरों की बात ही क्या है ? ॥ १६ ॥ हे शैल ! जिनके एक दिन में करोड़ों ब्रह्मा लय को प्राप्त हो जाते है, उन शङ्कर का दर्शन तुमने इस काली के तप के प्रभाव से किया है ॥ १७ ॥ ये परब्रह्म, अरूप, निर्गुण तथा प्रकृति से परे हैं । ये निराकार, निर्विकार, मायाधीश तथा परात्पर हैं ॥ १८ ॥ ये भक्त-वत्सल भगवान् सदाशिव गोत्र, कुल तथा नाम से सर्वथा रहित हैं । वे अपनी इच्छा से ही सगुण, साकार तथा अनेक नाम वाले हो जाते हैं ॥ १९ ॥ वे गोत्रहीन होते हुए भी श्रेष्ठ गोत्र वाले हैं, कुलहीन होते हुए भी उत्तम कुल वाले हैं, वही सदाशिव इस समय पार्वती के तप के प्रभाव से तुम्हारे जामाता हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ २० ॥ उन लीलाविहारी ने ही सारे चराचर जगत् को मोहित कर लिया है, अतः हे गिरि-सत्तम ! कोई महान् पण्डित होकर भी आज तक इन्हें नहीं जान सका ॥ २१ ॥

हे गिरिराज ! लिङ्गरूप से वर्त्तमान इन सदाशिव का कोई भी मस्तक नहीं देख सका, विष्णु भी पाताल लोक तक लिङ्ग के अन्त का पता लगाने के लिए गये किन्तु जब उन्हें पता न लगा तो वे विस्मित हो गये ॥ २२ ॥ हे गिरिराज ! बहुत कहने से क्या ? शिवजी की माया बड़ी दुस्तर है, उनकी माया के अधीन सारा त्रैलोक्य तथा विष्णु एवं ब्रह्मा आदि देवगण भी हैं ॥ २३ ॥ इस कारण हे पार्वती के पिता गिरिराज ! वृद्धि से ऐसा विचार कर इस प्रकार के वर में गोत्र एवं कुल, नामादि का सन्देह मत उपस्थित करो ॥ २४ ॥

ब्रह्मा जी बोले—हे मुने ! इतना कहने के अनन्तर शिवेच्छा से कार्य करने वाले परम ज्ञानी तुम हिमालय को अपनी वाणी से हर्षित करते हुए पुनः बोले— ॥ २५ ॥

नारद बोले—हे शिवाजनक ! हे महाशैल ! आप मेरी बात सुनिए तथा सुनने के उपरान्त शङ्कर के निमित्त अपनी कन्या प्रदान कीजिए ॥ २६ ॥ ये सगुण महेश्वर जो अपनी लीला से नानारूप धारण करते

शिवो नादमयः सत्यं नादः शिवमयस्तथा। उभयोरन्तरं नास्ति नादस्य च शिवस्य च ॥२८॥
सृष्टौ प्रथमजत्वाद्धि लीलासगुणरूपिणः। शिवान्नादस्य शैलेन्द्र! सर्वोत्कृष्टस्ततः स हि ॥२९॥
अतो हि वादिता वीणा प्रेरितेन ममाऽद्य वै। सर्वेश्वरेण मनसा शङ्करेण हिमालय! ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तव मुने! वचस्तत्तु गिरीश्वरः। हिमाद्रिस्तोषमापन्नो गतविस्मयमानसः ॥३१॥
अथ विष्णुप्रभृतयः सुराश्च मुनयस्तथा। साधु साध्विति ते सर्वे प्रोचुर्विगतविस्मयाः ॥३२॥
महेश्वरस्य गाम्भीर्यं ज्ञात्वा सर्वे विचक्षणाः। सविस्मया महामोदान्विताः प्रोचुः परस्परम् ॥३३॥

यस्याज्ञया जगदिदं च विशालमेव जातं परात्परतरो निजबोधरूपः।
शर्वः स्वतन्त्रगतिकृत्परभावगम्यः सोऽसौ त्रिलोकपतिरद्य च नः सुदृष्टः ॥३४॥

अथ ते पर्वतश्रेष्ठा मेर्वाद्या जातसम्भ्रमाः। ऊचुस्ते चैकपद्येन हिमवन्तं नगेश्वरम् ॥३५॥

पर्वता ऊचुः

कन्यादाने स्थीयतां चाऽद्य शैलनाथोक्त्या किं कार्यनाशस्तवैव।
सत्यं ब्रूमो नाऽत्र कार्यो विमर्शस्तस्मात् कन्या दीयतामीश्वराय ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां सुहृदां स हिमालयः। स्वकन्यादानमकरोच्छिवाय विधिनोदितः ॥३७॥
इमां कन्यां तुभ्यमहं ददामि परमेश्वर!। भार्यार्थे परिगृह्णीष्व प्रसीद सकलेश्वर! ॥३८॥
तस्मै रुद्राय महते मन्त्रेणाऽनेन दत्तवान्। हिमाचलो निजां कन्यां पार्वतीं त्रिजगत्प्रसूम् ॥३९॥
इत्थं शिवाकरं शैलं शिवहस्ते निधाय च। मुमोदातीव मनसि तीर्णकाममहार्णवः ॥४०॥
वेदमन्त्रेण गिरिशो गिरिजाकरपङ्कजम्। जग्राह स्वकरेणाशु प्रसन्नः परमेश्वरः ॥४१॥

हैं, इनका गोत्र तथा कुल केवल नाद ही है ॥ २७ ॥ शिव नादमय हैं, यही सत्य है। इसी प्रकार नाद भी शिवमय है, शिव तथा नाद में किञ्चिन्मात्र भेद नहीं है ॥ २८ ॥ सृष्टि के आरम्भ काल में लीला से सगुणरूप धारण करने वाले शिव के द्वारा सर्वप्रथम नाद ही उत्पन्न हुआ, अतः यह सर्वश्रेष्ठ कहा गया है ॥२९॥ इसीलिए हे हिमालय! अपने मन में सर्वेश्वर शिव की प्रेरणा प्राप्त कर मैंने यह वीणा बजायी ॥३०॥

ब्रह्मा जी बोले—हे नारद! गिरीश्वर हिमालय ने इस प्रकार जब तुम्हारे वचन सुने तो उन्हें सन्तोष हो गया और उनका सारा विस्मय जाता रहा ॥ ३१ ॥ तब सब देवता एवं मुनि विस्मय रहित हो धन्य-धन्य कहने लगे ॥ ३२ ॥ सभी विचक्षण लोग महेश्वर के गाम्भीर्य को जानकर आनन्द से निमग्न हो परस्पर में कहने लगे ॥ ३३ ॥ अहा! हम लोगों का यह परम सौभाग्य है कि जिनकी आज्ञा से यह विशाल जगत् उत्पन्न हुआ है और जो पर से भी परे ज्ञानस्वरूप हैं, जो संहारकर्त्ता, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र एवं भावगम्य उन त्रिलोकपति शिव के दर्शन हमें हुए ॥ ३४ ॥ इसी समय सुमेरु आदि सभी श्रेष्ठ पर्वत सन्देह रहित होकर हिमालय से कहने लगे ॥ ३५ ॥

पर्वतों ने कहा—हे शैलराज! अब कन्यादान करने के लिए निःसन्देह समुद्यत हो जाइए, शङ्कर से कुछ कहना उचित नहीं, ऐसा करने से निश्चय ही तुम्हारे कार्य में बाधा होगी। हम लोग सत्य कहते हैं, अब बिना विचार किये ही आप शिव को कन्या प्रदान करें ॥ ३६ ॥

ब्रह्मा जी बोले—अपने ज्ञाति एवं सुहृदों की बात सुनकर हिमालय ने विधिपूर्वक अपनी कन्या का दान किया ॥ ३७ ॥ हिमालय ने कहा—हे परमेश्वर! मैं अपनी कन्या का दान तुम्हें कर रहा हूँ, आप भार्या के लिए इसे ग्रहण कीजिए ॥ ३८ ॥ तब त्रिजगत् को उत्पन्न करने वाली अपनी कन्या को हिमालय ने मन्त्र से शङ्कर को दान किया ॥ ३९ ॥ वे पार्वती के हाथ को शिव के हाथ में रख कर इतने प्रसन्न हुए जैसे कोई समुद्र पार कर प्रसन्न होता है ॥ ४० ॥ जब हिमालय ने वेदमन्त्रों के द्वारा कन्या दान किया, उस समय

क्षितिं संस्पृश्य कामस्य कोऽदादिति मन्तुं मुने ! । पपाठ शङ्करः प्रीत्या दर्शयंल्लौकिकीं गतिम् ॥४२॥
महोत्सवो महानासीत् सर्वत्र प्रमुदावहः । बभूव जयसंरावो दिवि भूम्यन्तरिक्षके ॥४३॥
साधुशब्दं नमःशब्दं चक्रुः सर्वेऽतिहर्षिताः । गन्धर्वाः सुजगुः प्रीत्या ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥४४॥
हिमाचलस्य पौरा हि मुमुदुश्चाति चेतसि । मङ्गलं महदासीद् वै महोत्सवपुरःसरम् ॥४५॥
अहं विष्णुश्च शक्रश्च निर्जरा मुनयोऽखिलाः । हर्षिता ह्यभवंश्चाति-प्रफुल्लवदनाम्बुजाः ॥४६॥
अथ शैलवरः सोऽदात् सुप्रसन्नो हिमाचलः । शिवाय कन्यादानस्य साङ्गतां सुयथोचिताम् ॥४७॥
ततो बन्धुजनास्तस्य शिवां सम्पूज्य भक्तितः । ददुः शिवाय सद्द्रव्यं नानाविधिविधानतः ॥४८॥
हिमालयस्तुष्टमनाः पार्वतीशिवप्रीतये । नानाविधानि द्रव्याणि ददौ तत्र मुनीश्वर ! ॥४९॥
कौतुकानि ददौ तस्मै रत्नानि विविधानि च । चारुरत्नविकाराणि पात्राणि विविधानि च ॥५०॥
गवां लक्षं हयानां च सज्जितानां शतं तथा । दासीनामनुरक्तानां लक्षं सद्द्रव्यभूषितम् ॥५१॥
नागानां शतलक्षं हि रथानां च तथा मुने ! । सुवर्णजटितानां च रत्नसारविनिर्मितम् ॥५२॥
इत्थं हिमालयो दत्त्वा स्वसुतां गिरिजां शिवाम् । शिवाय परमेशाय विधिनाऽऽप कृतार्थताम् ॥५३॥
अथ शैलवरो माध्यन्दिनोक्तस्तोत्रतो मुदा । तुष्टाव परमेशानं सद्गिरा सुकृताञ्जलिः ॥५४॥
ततो वेदविदा तेनाज्ञप्ता मुनिगणास्तदा । शिरोऽभिषेकं चक्रुस्ते शिवायाः परमोत्सवाः ॥५५॥
देवाभिधानमुच्चार्य्य पर्यक्षणविधिं व्यधुः । महोत्सवस्तदा चासीन्महानन्दकरो मुने ! ॥५६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
कन्यादानवर्णनं नामाऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

प्रसन्न हुए परमेश्वर ने पार्वती का कर-कमल ग्रहण किया ॥ ४१ ॥ हे मुने ! फिर पृथ्वी को स्पर्श कर महादेव ने भी 'कोऽदात् कस्माऽदात् ।' आदि काम के मन्त्रों का लौकिक गति का अनुसरण करते हुए पाठ किया ॥ ४२ ॥ उस समय आनन्द की वर्षा करने वाला सर्वत्र महोत्सव होने लगा और जय-जयकार के शब्दों से भूमि, पाताल तथा अन्तरिक्ष लोक व्याप्त हो गया ॥ ४३ ॥ सभी लोग प्रसन्न होकर साधु शब्द तथा नमः शब्द का उच्चारण किये । गन्धर्वगण गाने लगे तथा अप्सराएँ नृत्य करने लगीं ॥ ४४ ॥

हिमालय के नगरनिवासी मन में बहुत प्रसन्न हो उठे और सर्वत्र उत्सवपूर्वक महामङ्गल होने लगा ॥ ४५ ॥ मैं विष्णु, इन्द्र, समस्त देव एवं मुनिगणों के मन में प्रसन्नता छा गयी तथा हर्ष से सभी के मुख-कमल विकसित हो गये ॥ ४६ ॥ तदनन्तर शैलराज हिमालय ने प्रसन्न होकर यथोचित कन्यादान की साङ्गता सम्पन्न की ॥ ४७ ॥ उनके बन्धुजनों ने भक्तिपूर्वक पार्वती का पूजन कर अनेक प्रकार के विधि-विधान से उत्तम द्रव्यों का दान किया ॥ ४८ ॥ हे मुनीश्वर ! हिमालय ने भी पार्वती तथा शिव की सन्तुष्टि के लिए अनेक प्रकार के द्रव्य दिये ॥ ४९ ॥ उन्होंने दहेज में नाना प्रकार के रत्न एवं उत्तमोत्तम रत्नों से बनाये गये विविध पात्रों को भी दिया ॥ ५० ॥ एक लाख गायें, सजे-सजाये सौ घोड़े, पार्वती में अनुराग करने वाली नाना रत्नों से विभूषित एक लाख दासियाँ, एक करोड़ हाथी और सुवर्ण-जड़ित रत्नसार निर्मित इतने ही रथ प्रदान किये ॥ ५१-५२ ॥ इस प्रकार हिमालय अपनी पुत्री शिवा एवं परमेश्वर सदाशिव के निमित्त विधिपूर्वक दान देकर अपने को कृतार्थ मानने लगे ॥५३॥ फिर हिमालय ने माध्यन्दिनी शाखा के स्तोत्र से परमेशान शङ्कर की हाथ जोड़ मधुर वाणी में स्तुति कर उन्हें प्रसन्न किया ॥ ५४ ॥ फिर वेदज्ञ हिमालय की आज्ञा पाकर मुनिगणों ने शिवाशिव का अभिषेक किया और अपनी प्रसन्नता व्यक्त की ॥ ५५ ॥ अभिषेक में नाना देवताओं का नाम लेकर पर्यक्षण विधि का विधान किया । उस समय सर्वत्र आनन्द तथा उत्सव का वातावरण व्याप्त हो गया ॥ ५६ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में कन्यादानवर्णन नामक अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४८ ॥

*

नवचत्वारिंशोऽध्यायः

(होमादिसंस्कार का वर्णन)

ब्रह्मोवाच

अथो ममाज्ञया विप्रैः संस्थाप्यानलमीश्वरः । होमं चकार तत्रैवमङ्के संस्थाप्य पार्वतीम् ॥ १ ॥
ऋग्-यजुः-साममन्त्रैश्चाहुतिं वह्नौ ददौ शिवः । लाजाञ्जलिं ददौ कालीभ्राता मैनाकसंज्ञकः ॥ २ ॥
अथ काली शिवश्चोभौ चक्रतुर्विधिवन्मुदा । वह्निप्रदक्षिणां तात लोकाचारं विधाय च ॥ ३ ॥
तत्राऽद्भुतमलश्चक्रे चरितं गिरिजापतिः । तदेव शृणु देवर्षे ! तव स्नेहाद् ब्रवीम्यहम् ॥ ४ ॥
तस्मिन्नवसरे चाऽहं शिवमायाविमोहितः । अपश्यं चरणौ देव्या नखेन्दुं च मनोहरम् ॥ ५ ॥
दर्शनात्तस्य च तदाऽभूवं देवमुने ! ह्यहम् । मदनेन समाविष्टोऽतीव क्षुभितमानसः ॥ ६ ॥
मुहुर्मुहुरपश्यं वै तदङ्गं स्मरमोहितः । ततस्तद्दर्शनात् सद्यो वीर्यं मे प्राच्युतद्भुवि ॥ ७ ॥
रेतसा क्षरता तेन लज्जितोऽहं पितामहः । मुने ! व्यमर्दं तच्छिश्नं चरणाभ्यां हि गोपयन् ॥ ८ ॥
तज्ज्ञात्वा च महादेवश्चुकोपातीव नारद ! । हन्तुमैच्छत्तदा शीघ्रं मां विधिं काममोहितम् ॥ ९ ॥
हाहाकारो महानासीत्तत्र सर्वत्र नारद ! । जनाश्चकम्पिरे सर्वे भयमायाति विश्वभृत् ॥१०॥
ततस्तं तुष्टुवुः शम्भुं विष्ण्वाद्या निर्जरा मुने ! । सकोपं प्रज्वलन्तं तं तेजसा हन्तुमुद्यतम् ॥११॥

देवा उचुः

देवदेव जगद्व्यापिन् परमेश सदाशिव ! । जगदीश जगन्नाथ सम्प्रसीद जगन्मय ! ॥१२॥
सर्वेषामपि भावानां त्वमात्मा हेतुरीश्वरः । निर्विकारोऽव्ययो नित्यो निर्विकल्पोऽक्षरः परः ॥१३॥
आद्यन्तावस्य यन्मध्यमिदमन्यदहं बहिः । यतोऽव्ययः स नैतानि सत्सत्यं ब्रह्म चिद्भवान् ॥१४॥

ब्रह्मा जी बोले—हे नारद ! तदनन्तर मेरी आज्ञा से ब्राह्मणों द्वारा अग्नि स्थापन के पश्चात् पार्वती को अङ्क (गोद) में लेकर सदाशिव ने होम किया ॥१॥ शिव ने उस समय ऋक्, साम तथा यजुर्वेद के मन्त्रों से आहुति दी और काली के भाई मैनाक ने लावा की अञ्जुलि दी ॥२॥ हे तात ! तब लोकाचार का विधान कर शिवा और शिव ने अग्नि की प्रदक्षिणा की ॥ ३ ॥ हे मुने ! उस समय गिरिजापति शङ्कर ने एक अद्भुत चरित्र किया, मैं तुम्हारे स्नेह के कारण उसका वर्णन करता हूँ, तुम सुनो ॥ ४ ॥ उस समय शिव की माया से मोहित होकर मैं पार्वती के मनोहर चरण और नखचन्द्र को देखने लगा ॥ ५ ॥ हे देवमुने ! उसके दर्शन मात्र से मैं कामातुर हो क्षुब्ध हो उठा ॥ ६ ॥ और वारम्वार मोहित होकर मैं देवी का नखचन्द्र देखने लगा, जिससे मेरा वीर्य पतित हो गया ॥ ७ ॥ उस रेतस्खलन से मैं पितामह अत्यन्त लज्जित हो गया और वीर्य को पैरों के नीचे छिपाते हुए अपने उस शिश्न का मर्दन करने लगा ॥ ८ ॥ हे नारद ! उस समय ऐसा करते हुए मुझे देखकर महादेव जी को बड़ा क्रोध हुआ । पुनः उन्होंने तो कामातुर हुए मुझ ब्रह्मा को शीघ्र ही मारने की इच्छा की ॥ ९ ॥ हे नारद ! तभी सर्वत्र हाहाकार होने लगा, सभी लोग काँपने लगे तथा विश्व को धारण करने वाले विष्णु को महाभय होने लगा ॥ १० ॥ हे मुने, तब विष्णु आदि देवगण क्रोध से जलते हुए मुझ ब्रह्मा को मारने के लिए उद्यत हुए शिव जी की स्तुति करने लगे ॥ ११ ॥

देवगण बोले—हे देवदेव ! हे जगत् में व्यापक, हे परमेश, हे सदाशिव, हे जगत्पते, हे जगन्नाथ ! एवं हे जगन्मय ! आप प्रसन्न हों ॥ १२ ॥ आप सभी पदार्थों के आत्मा हैं, सबके हेतु हैं, ईश्वर, निर्विकार, अव्यय, नित्य, निर्विकल्प, अक्षर तथा सबसे परे हैं ॥ १३ ॥ आप इस जगत् के आदि, मध्य तथा अन्त्य एवं आभ्यन्तर तथा बाहर विराजमान हैं, आप अव्यय, सनातन एवं तत्पदवाच्य सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं ॥ १४ ॥

तवैव चरणाम्भोजं मुक्तिकामा दृढव्रताः । विसृज्योभयतः सङ्गं मुनयः समुपासते ॥१५॥
त्वं ब्रह्म पूर्णममृतं विशोकं निर्गुणं परम् । आनन्दमात्रमव्यग्रमविकारमनात्मकम् ॥१६॥
विश्वस्य हेतुरुदय-स्थिति-संयमनस्य हि । तदपेक्षतयाऽऽत्मेशोऽनपेक्षः सर्वदा विभुः ॥१७॥
एकस्त्वमेव सदसद्द्वयमद्वयमेव च, स्वर्णं कृताऽकृतमिव वस्तुभेदो न चैव हि ॥१८॥
अज्ञानतस्त्वयि जनैर्विकल्पो विदितो यतः । तस्माद् भ्रमप्रतीकारो निरुपाधेर्न हि स्वतः ॥१९॥
धन्या वयं महेशान तव दर्शनमात्रतः । दृढभक्तजनानन्दप्रदः शम्भो दयां कुरु ॥२०॥
त्वमादिस्त्वमनादिश्च प्रकृतेस्त्वं परः पुमान् । विश्वेश्वरो जगन्नाथो निर्विकारः परात्परः ॥२१॥
योऽयं ब्रह्माऽस्ति रजसा विश्वमूर्तिः पितामहः । त्वत्प्रसादात् प्रभो विष्णुः सत्त्वेन पुरुषोत्तमः ॥२२॥
कालाग्निरुद्रस्तमसा परमात्मा गुणैः परः । सदाशिवो महेशानः सर्वव्यापी महेश्वरः ॥२३॥
व्यक्तं महच्च भूतादिस्तन्मात्राणीन्द्रियाणि च । त्वयैवाधिष्ठितान्येव विश्वमूर्ते महेश्वर ! ॥२४॥
महादेव परेशान करुणाकर शङ्कर ! । प्रसीद देवदेवेश प्रसीद पुरुषोत्तम ! ॥२५॥
वासांसि सागराः सप्त दिशश्चैव महाभुजाः । द्यौर्मूर्द्धा ते विभोर्नाभिः खं वायुर्नासिका ततः ॥२६॥
चक्षूंष्यग्नी रविः सोमः केशा मेघास्तव प्रभो ! । नक्षत्र-तारकाद्याश्च ग्रहाश्चैव विभूषणम् ॥२७॥
कथं स्तोष्यामि देवेश ! त्वां विभो ! परमेश्वर ! । वाचामगोचरोऽसि त्वं मनसा चापि शङ्कर ! ॥२८॥
पञ्चास्याय च रुद्राय पञ्चाशत्कोटिमूर्तये । त्र्यधिपाय वरिष्ठाय विद्यातत्त्वाय ते नमः ॥२९॥
अनिर्देश्याय नित्याय विद्युज्ज्वालाय रूपिणे । अग्निवर्णाय देवाय शङ्कराय नमो नमः ॥३०॥

मुक्ति की कामना वाले दृढ़व्रत मुनिजन सब प्रकार से संग का परित्याग कर आपके चरणों की उपासना करते हैं ॥ १५ ॥ आप पूर्णब्रह्म, अमृतस्वरूप, शोकरहित, निर्गुण, पर, आनन्दमात्र, व्यग्रता एवं विकार से रहित, माया से परे हो ॥ १६ ॥ संसार की उत्पत्ति, पालन तथा प्रलय के हेतु हो । इस संसार को आप जैसे प्रभु की अपेक्षा है, किन्तु सर्वत्र व्यापक आप परमात्मा को किसी की अपेक्षा नहीं है ॥ १७ ॥ आप एक होते हुए भी सत् एवं असत् हो, द्वैत एवं अद्वैत हो, किन्तु जिस प्रकार सुवर्ण निर्मित आभूषण स्वर्ण से अतिरिक्त और कुछ नहीं, उसी प्रकार इस जगत् में आप से अतिरिक्त और कुछ सत्ता नहीं है ॥ १८ ॥ पुरुषों ने अज्ञानवश आप में विकल्प का आरोप किया है, इसलिए सोपाधि में भ्रम का प्रतीकार किया जाता है किन्तु निरुपाधि में भ्रम के लिए कोई स्थान ही नहीं है ॥ १९ ॥ हे महेशान ! हम सब आपके दर्शन मात्र से धन्य हो गये, क्योंकि आप अपने में दृढ़ भक्तों को आनन्द प्रदान करते हैं, अतः हे भक्तवत्सल ! हम लोगों पर दया कीजिए ॥ २० ॥ हे प्रभो ! आप ही आदि एवं अनादि हो, प्रकृति से परे, पुरुष हो, विश्वेश्वर, जगन्नाथ, निर्विकार एवं पर से भी परे हो ॥ २१ ॥ यह पितामह ब्रह्मा आपके रजोगुण की विश्वमूर्त्ति हैं तथा आपके प्रसाद से यह विष्णु सत्त्वगुण की मूर्त्ति पुरुषोत्तम हैं ॥ २२ ॥ ये कालाग्नि रुद्र, आपके तमोगुण की रुद्रमूर्त्ति हैं, और आप सदाशिव परमात्मा गुणों से परे, सदाशिव, सर्वव्यापी महेश्वर हैं ॥ २३ ॥

हे विश्वमूर्त्ते ! हे महेश्वर ! व्यक्त, महत्तत्त्व, पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्राएँ एवं एकादशेन्द्रियाँ आप में ही अधिष्ठित हैं ॥ २४ ॥ हे महादेव ! हे परेशान, हे करुणाकर, शङ्कर, हे देवदेवेश, पुरुषोत्तम ! अब आप प्रसन्न हो जाइए ॥ २५ ॥ हे प्रभो ! सातों समुद्र आपके वस्त्र, दशों दिशाएँ आपकी दश भुजा, द्युलोक आपका शिर, आकाश नाभि और वायु आपकी नासिका है ॥ २६ ॥ रवि, सोम तथा अग्नि तुम्हारे नेत्र, मेघ तुम्हारे केश और नक्षत्र, तारे तथा ग्रह तुम्हारे आभूषण हैं ॥ २७ ॥ हे शङ्कर ! आप वाणी तथा मन से सर्वथा अगोचर हैं, अतः हम लोग आपकी स्तुति में किस प्रकार समर्थ हो सकते हैं ॥ २८ ॥ आप पञ्चमुख, रुद्र एवं पचास करोड़ मूर्त्ति वाले हो, आप त्रिलोकेश, वरिष्ठ एवं विद्यातत्त्व के अधिपति हो, अतः आपको प्रणाम है ॥ २९ ॥ आप अगम्य, नित्य, विद्युज्ज्वाला के समान तेजस्वी, अग्निवर्ण एवं

विद्युत्कोटिप्रतीकाशमष्टकोणं सुशोभनम् । रूपमास्थाय लोकेऽस्मिन् संस्थिताय नमो नमः ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां प्रसन्नः परमेश्वरः । ब्रह्मणो मे ददौ शीघ्रमभयं भक्तवत्सलः ॥३२॥
अथ सर्वे सुरास्तत्र विष्ण्वाद्या मुनयस्तथा । अभवन् सुस्मितास्तात ! चक्रुश्च परमोत्सवम् ॥३३॥
मम तद्रेतसा तात ! मर्दितेन मुहुर्मुहुः । अभवन् कणकास्तत्र भूरिशः परमोज्ज्वलाः ॥३४॥
ऋषयो बहवो जाता बालखिल्याः सहस्रशः । कणकैस्तैश्च वीर्यस्य प्रज्वलद्भिः स्वतेजसा ॥३५॥
अथ ते ह्यृषयः सर्वे उपतस्थुस्तदा मुने ! । ममाऽन्तिकं परप्रीत्या तात तातेति चाब्रुवन् ॥३६॥
ईश्वरेच्छाप्रयुक्तेन प्रोक्तास्ते नारदेन हि । बालखिल्यास्तु ते तत्र कोपयुक्तेन चेतसा ॥३७॥

नारद उवाच

गच्छध्वं सङ्गता यूयं पर्वतं गन्धमादनम् । न स्थातव्यं भवद्भिश्च न हि वोऽत्र प्रयोजनम् ॥३८॥
तत्र तप्त्वा तपश्चाति भवितारो मुनीश्वराः । सूर्यशिष्याः शिवस्यैवाज्ञया मे कथितं त्विदम् ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तास्ते तदा सर्वे बालखिल्याश्च पर्वतम् । सत्वरं प्रययुर्नत्वा शङ्करं गन्धमादनम् ॥४०॥
विष्ण्वादिभिस्तदाभूवं श्वासितोऽहं मुनीश्वर ! । निर्भयः परमेशानप्रेरितैस्तैर्महात्मभिः ॥४१॥
अस्तवं चापि सर्वेशं शङ्करं भक्तवत्सलम् । सर्वकार्यकरं ज्ञात्वा दुष्टगर्वापहारकम् ॥४२॥
देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो ! । त्वमेव कर्ता सर्वस्य भर्ता हर्ता च सर्वथा ॥४३॥
त्वदिच्छया हि सकलं स्थितं हि सचराचरम् । तन्त्यां यथा बलीवर्दो मया ज्ञातं विशेषतः ॥४४॥
इत्येवमुक्त्वा सोऽहं वै प्रणामं च कृताञ्जलिः । अन्येऽपि तुष्टुवुः सर्वे विष्ण्वाद्यास्तं महेश्वरम् ॥४५॥

देवाधिदेव हैं अतः आपको नमस्कार है ॥ ३० ॥ आप करोड़ों विद्युत् के समान प्रकाशित रूप से आठों दिशाओं में ऊपर से नीचे तक मनोहर रूप से विराजमान हैं अतः आपको नमस्कार है ॥ ३१ ॥

ब्रह्माजी बोले—उन देवताओं की बात सुनकर परमेश्वर प्रसन्न हो गये। और उन भक्तवत्सल ने मुझे शीघ्र ही अभयदान दे दिया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर विष्णु आदि देव तथा समस्त मुनिगण मन्द-मन्द हँसते हुए आनन्दित हो गये ॥ ३३ ॥ मेरे चरणों से वारम्वार मर्दित होने के कारण मेरे रेत के वे कण अत्यन्त प्रकाशित हो उठे ॥ ३४ ॥ और उन्हीं रेत के कणों से अपने तेज द्वारा देदीप्यमान सहस्रों बालखिल्य ऋषि प्रगट हो गये ॥३५॥ हे मुने ! तब वे ऋषि मेरे समीप स्थित होकर मुझे पिता-पिता कहने लगे ॥३६॥ तब ईश्वरेच्छा से प्रेरित हुए नारदजी ने अपने चित्त में क्रोध करते हुए उन बालखिल्य ऋषियों से कहा—॥३७॥

नारद जी बोले—अब आप लोग एक साथ ही गन्धमादन पर्वत पर चले जाइए, अब यहाँ मत रुकिए क्योंकि आप लोगों को यहाँ रहने का कोई प्रयोजन नहीं है ॥ ३८ ॥ वहीं तपस्या के उपरान्त सूर्य के शिष्य होकर मुनीश्वर हो जाओगे, हे ऋषियो ! मैंने यह बात शिवजी की आज्ञा से कही है ॥ ३९ ॥

पुनः ब्रह्माजी बोले—नारद जी की बात सुनकर वे सम्पूर्ण बालखिल्य ऋषि शङ्कर जी को प्रणाम कर गन्धमादन पर्वत पर चले गये ॥ ४० ॥ हे मुनीश्वर ! जब शिव की आज्ञा से प्रेरित हो विष्णु आदि देवताओं ने मुझे बहुत समझाया तब मैं निर्भय हो गया ॥ ४१ ॥ फिर मैं सम्पूर्ण कार्यों को करने वाले दुष्टों के गर्व को अपहरण करने वाले भक्तवत्सल शङ्कर की स्तुति करने लगा ॥ ४२ ॥ मैंने कहा—हे देवदेव ! महादेव ! हे करुणासागर ! हे प्रभो ! तुम्हीं सबके कर्त्ता, भर्त्ता तथा हर्त्ता हो ॥ ४३ ॥ हे प्रभो ! मैंने यह अच्छी तरह से जान लिया है कि जिस प्रकार बलवान् बैल नाथ ने से वश में रहता है, उसी प्रकार यह सारा जगत् आपके वश में स्थित है ॥ ४४ ॥ ऐसा कहकर हाथ जोड़ मैंने शिव को प्रणाम किया और

अथाकर्ण्य नुतिं शुद्धां मम दीनतया तदा । विष्ण्वादीनां च सर्वेषां प्रसन्नोऽभून्महेश्वरः ॥४६॥
ददौ सोऽतिवरं मह्यमभयं प्रीतमानसः । सर्वं सुखमतीवापुरत्यमोदमहं मुने ! ॥४७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
विधिमोहवर्णनं नाम नवचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(विवाह में स्त्रियों का विनोद करना)

ब्रह्मोवाच

ततश्चाऽहं मुनिगणैः शेषकृत्यं शिवाज्ञया । अकार्षं नारदप्रीत्या शिवाशिवविवाहतः ॥ १ ॥
तयोः शिरोऽभिषेकश्च बभूवादरतस्ततः । ध्रुवस्य दर्शनं विप्राः कारयामासुरादरात् ॥ २ ॥
हृदयालम्भनं कर्म बभूव तदनन्तरम् । स्वस्तिपाठश्च विप्रेन्द्र महोत्सवपुरःसरः ॥ ३ ॥
शिवाशिरसि सिन्दूरं ददौ शम्भुर्द्विजाज्ञया । तदानीं गिरिजाभिख्याद्भुतावर्ण्या बभूव ह ॥ ४ ॥
ततो विप्राज्ञया तौ द्वावेकासनसमास्थितौ । लेभाते परमां शोभां भक्तचित्तमुदावहाम् ॥ ५ ॥
ततः स्वस्थानमागत्य संस्रवप्राशनं मुदा । चक्रतुस्तौ निदेशान्मेऽद्भुतलीलाकरौ मुने ! ॥ ६ ॥
इत्थं निवृत्ते विधिवद्यज्ञे वैवाहिके शिवः । ब्रह्मणे पूर्णपात्रं मे ददौ लोककृते प्रभुः ॥ ७ ॥
गोदानं विधिवच्छम्भुराचार्याय ददौ ततः । महादानानि च प्रीत्या यानि मङ्गलदानि वै ॥ ८ ॥
ततः शतसुवर्णं च विप्रेभ्यः स ददौ पृथक् । बहुभ्यो रत्नकोटीश्च नानाद्रव्याण्यनेकशः ॥ ९ ॥
तदानीममराः सर्वे परे जीवाश्चराऽचराः । मुमुदुश्चेतसातीव बभूवाति जयध्वनिः ॥१०॥

विष्णु आदि देवताओं ने भी इसी प्रकार से शिव की स्तुति की ॥ ४५ ॥ फिर विष्णु आदि देवताओं की शुद्ध स्तुति सुनकर तथा मेरी दीनता देखकर महेश्वर प्रसन्न हो गये ॥ ४६ ॥ उन्होंने प्रसन्न होकर मुझे सर्वथा अभयदान दिया, जिससे मुझे अत्यन्त सुख तथा प्रसन्नता हुई ॥ ४७ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-
पार्वतीखण्ड में विधिमोह वर्णन नामक उनचासवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४९ ॥

*

ब्रह्मा जी बोले—हे मुने ! तब मैंने शिवजी की आज्ञा से मुनिगणों के साथ परम प्रीति से शिवाशिव के विवाह के बाद शेष कृत्यों का सम्पादन किया ॥ १ ॥ उन दोनों के शिर पर माङ्गलिक अभिषेक किया गया । ब्राह्मणों ने बड़े आदर के साथ शिव एवं शिवा को ध्रुव का दर्शन कराया ॥ २ ॥ तदनन्तर हृदय का आलम्भन तथा बड़े महोत्सव के साथ स्वस्तिवाचन का कार्य हुआ ॥ ३ ॥ फिर ब्राह्मणों की आज्ञा से सदाशिव ने शिवा की माँग में सिन्दूर लगाया, जिसके लगाते ही गिरिजा अत्यन्त अद्भुत तथा अवर्णनीय रूपवती हो गयीं ॥ ४ ॥ ब्राह्मणों की आज्ञा से दोनों एकासन पर विराजे और भक्तों के चित्त में आनन्द देने वाले अपूर्व शोभा से सम्पन्न हो गये ॥ ५ ॥

अद्भुत लीला करने वाले उन दोनों ने अपने स्थान पर आकर मेरी आज्ञा से संस्रव (हुतशेष घृत मिश्रित जल) का प्राशन किया ॥ ६ ॥ इस प्रकार जब विवाह यज्ञ का सारा कार्य सविधि सम्पन्न हो गया तो उन सदाशिव ने मुझ लोककर्त्ता ब्रह्मा को पूर्णपात्र का दान किया ॥ ७ ॥ फिर शिवजी ने आचार्य को विधिपूर्वक गोदान दिया और भी अनेक प्रकार के मङ्गल देने वाले महादान भी बड़े प्रेम से शिवजी ने किये ॥ ८ ॥ फिर उन्होंने एक-एक ब्राह्मणों को पृथक्-पृथक् शत-शत सुवर्ण मुद्राएँ दीं, कितनों को करोड़ों रत्न दिये तथा अनेक प्रकार के द्रव्यों का दान किया ॥ ९ ॥ उस समय सभी देवगण एवं सारा चराचर

मङ्गलध्वनिगानं च बभूव बहु सर्वतः। वाद्यध्वनिरभूद्रम्यो सर्वानन्दप्रवर्द्धनः ॥११॥
हरिर्मयाऽथ देवाश्च मुनयश्चापरेऽखिलाः। गिरिमामन्त्र्य सुप्रीत्या स्वस्थानं प्रययुर्द्रुतम् ॥१२॥
तदानीं शैलनगरे स्त्रियश्च मुदिता वरम्। शिवाशिवौ समानीय ययुः कुहवशालयम् ॥१३॥
लौकिकाचारमाजह्रुस्ताः स्त्रियस्तत्र चादृताः। महोत्साहो बभूवाऽथ सर्वतः प्रमुदावहः ॥१४॥
अथ तास्तौ समानीय दम्पती जनशङ्करौ। वासालयं महादिव्यं भवाचारं व्यधुर्मुदा ॥१५॥
अथो समीपमागत्य शैलेन्द्रनगरस्त्रियः। निर्वृत्य मङ्गलं कर्म प्रापयन् दम्पती गृहम् ॥१६॥
कृत्वा जयध्वनिं चक्रुर्ग्रन्थिनिर्मोचनादिकम्। सस्मिताः सकटाक्षाश्च पुलकाञ्चितविग्रहाः ॥१७॥
वासगेहं सम्प्रविश्य मुमुहुः कामिनीवराः। प्रशंसन्त्यः स्वभाग्यानि पश्यन्तः परमेश्वरम् ॥१८॥
महासुरूपवेषं च सर्वलावण्यसंयुतम्। नवीनयौवनस्थं च कामिनीचित्तमोहनम् ॥१९॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं सकटाक्षं सुसुन्दरम्। सुसूक्ष्मवासो बिभ्राणं नानारत्नविभूषितम् ॥२०॥
तदानीं दिव्यनार्यश्च षोडशारं समाययुः। तौ दम्पती च संद्रष्टुं महादरपुरःसरम् ॥२१॥
सरस्वती च लक्ष्मीश्च सावित्री जाह्नवी तथा। अदितिश्च शची चैव लोपामुद्राप्यरुन्धती ॥२२॥
अहल्या तुलसी स्वाहा रोहिणी च वसुन्धरा। शतरूपा च संज्ञा च रतिरेताः सुरस्त्रियः ॥२३॥
देवकन्या नागकन्या मुनिकन्या मनोहराः। तत्र या याः स्थितास्तासां सङ्ख्यां कर्तुं च कः क्षमः॥२४॥
ताभी रत्नासने दत्ते तत्रोवास शिवो मुदा। तमूचुः क्रमतो देव्यः सुहासं मधुरं वचः ॥२५॥

सरस्वत्युवाच

प्राप्ता सती महादेवाधुना प्राणाधिका मुदा। दृष्ट्वा प्रियास्यं चन्द्राभं सन्तापं त्यज कामुक! ॥२६॥

जगत् प्रसन्न होकर शिव का जय-जयकार करने लगा ॥ १० ॥ और चारों ओर से मङ्गल गान एवं उत्साह-बर्द्धक बाजों की ध्वनि होने ॥ ११ ॥ फिर मैं, विष्णु तथा अन्य देवगण हिमालय की आज्ञा से प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने निवास स्थानों को चले गये ॥ १२ ॥ तदनन्तर नगर की स्त्रियाँ प्रसन्न होकर शिवा एवं शिव को आदर से कोहबर के घर में ले गयीं ॥ १३ ॥ और वहाँ परम आदर के साथ लौकिकाचार करने लगीं। चारों ओर आनन्द और उत्साह का वातावरण होने लगा ॥ १४ ॥ फिर अत्यन्त महादिव्य निवास स्थान में ले जाकर दम्पति का लौकिकाचार करने लगीं ॥ १५ ॥

इस प्रकार हिमालय के नगर की स्त्रियाँ शिवाशिव के समीप जाकर लौकिकाचार से निवृत्त हो दम्पति को घर में ले गयीं ॥ १६ ॥ वहाँ जय-जयकार कर ग्रन्थि खोलने लगीं। उस समय वे कटाक्ष करती हुई मन्द-मन्द मुसुकरा रही थीं ॥ १७ ॥ और हर्षोद्रेक से उनके रोम पुलकित हो रहे थे। वे वासगृह में प्रवेश करते ही परमेश्वर सदाशिव को देखकर मोहित हो गयीं और अपने-अपने भाग्यों की प्रशंसा करने लगीं ॥ १८ ॥ उस समय शिवजी का वेष तथा स्वरूप अत्यन्त लावण्य से युक्त था, वे नवीन यौवन के उमङ्गों से परिपूर्ण थे, उनको देखते ही कामिनियों का चित्त मोहित हो जाता था ॥ १९ ॥ वे कटाक्ष पूर्वक मन्द-मन्द हँस रहे थे, उनका मुखमण्डल अत्यन्त प्रसन्न था। वे अत्यन्त सूक्ष्म वस्त्र धारण किये हुए थे, और अनेक रत्नों से विभूषित थे ॥ २० ॥ उस समय षोडश वर्षीया दिव्य नारियाँ सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री, जाह्नवी, अदिति, शची, लोपा, मुद्रा, अरुन्धती, अहल्या, तुलसी, स्वाहा, रोहिणी, वसुन्धरा, शतरूपा, संज्ञा और रति ये देवस्त्रियाँ तथा देवकन्या, नागकन्या एवं मुनिकन्याएँ जिनकी गणना करना सामर्थ्य से बाहर है, वे सभी बड़े आदर के साथ उन दम्पति का दर्शन करने के लिए पहुँच गयीं ॥२१-२४॥ उन लोगों ने रत्न का आसन दिया, जिस पर शिवजी बड़ी प्रसन्नता के साथ बैठे, सब देवियाँ मन्द-मन्द हँसती हुई शंकर जी से मधुर वचन कहने लगीं ॥ २५ ॥

सरस्वती बोलीं—हे महादेव ! अब प्राणों से भी अधिक प्यारी यह सती देवी तुम्हें प्राप्त हो गयीं, हे कामुक ! अब इनका मुखचन्द्र देखकर विरहजन्य सन्ताप छोड़ो और प्रसन्नता को प्राप्त करो ॥ २६ ॥

कालं गमय कालेश ! सतीसंश्लेषपूर्वकम् । विश्लेषस्ते न भविता सर्वकालं ममाश्रिता ॥२७॥

लक्ष्मीरुवाच

लज्जां विहाय देवेश ! सतीं कृत्वा स्ववक्षसि । तिष्ठ तां प्रति का लज्जा प्राणा यान्ति यथा विना ॥२८॥

सावित्र्युवाच

भोजयित्वा सतीं शम्भो ! शीघ्रं त्वं भुङ्क्ष्व मा खिदः । तदाचम्य सकर्पूरं ताम्बूलं देहि सादरम् ॥२९॥

जाह्नव्युवाच

स्वर्णकान्तिकरां धृत्वा केशान्मार्जय योषितः । कामिन्याः स्वामिसौभाग्यसुखं नाऽतः परं भवेत् ॥३०॥

अदितिरुवाच

भोजनान्ते शिवां शम्भुं मुखं शुद्धचर्थमादरात् । जलं देहि महाप्रीत्या दम्पतिप्रेम दुर्लभम् ॥३१॥

शच्युवाच

कृत्वा विलापं यद्धेतोः शिवां कृत्वा च वक्षसि । यो बभ्रामानिशं मोहात् का लज्जा ते प्रियां प्रति ॥३२॥

लोपामुद्रोवाच

व्यवहारोऽस्ति च स्त्रीणां भुक्त्वा वासगृहे शिव ! । दत्त्वा शिवायै ताम्बूलं शयनं कर्तुमर्हसि ॥३३॥

अरुन्धत्युवाच

मया दत्तां सतीमेनां तुभ्यं दातुमनीप्सिताम् । विविधं बोधयित्वैमां सुरतिं कर्तुमर्हसि ॥३४॥

अहल्योवाच

वृद्धावस्थां परित्यज्य ह्यतीव तरुणो भव । येन मेनानुमन्येत त्वां सुतार्पितमानसा ॥३५॥

तुलस्युवाच

सती त्वया परित्यक्ता कामो दग्धः पुरा कृतः । कथं तदा वसिष्ठश्च प्रभो प्रस्थापितोऽधुना ॥३६॥

हे मृत्युञ्जय ! आप इस सती का आलिङ्गन करते हुए अपना समय बिताइए, अब मेरे आश्रित रहने वाली इस सखी से तुम्हारा वियोग नहीं होगा ॥ २७ ॥

लक्ष्मी बोलीं—हे देवेश ! अब लज्जा का त्यागकर इस सती को गोद में बैठाइए, जिसके बिना तुम्हारे प्राण चले जाते थे, उसके प्रति किस बात की लज्जा है ॥ २८ ॥

सावित्री बोली—हे शम्भो ! अब सती को भोजन कराकर तुम भी शीघ्र भोजन करो, अब किसी बात का खेद मत करो, और आचमन के उपरान्त सती को आदर से कपूर मिश्रित ताम्बूल दो ॥ २९ ॥

जाह्नवी बोली—हे महादेव ! अब इस सुवर्ण कान्ति वाली सखी का हाथ पकड़कर केशों का मार्जन करो। कामिनियों के सौभाग्य से बढ़कर और कोई सुख नहीं हो सकता ॥ ३० ॥

अदिति बोली—हे शम्भो ! भोजन के पश्चात् मुख शुद्ध करने के लिए तुम आदर से जल प्रदान करो, क्योंकि दम्पति का ऐसा प्रेम सर्वथा दुर्लभ है ॥ ३१ ॥

इन्द्राणी बोली—जिस प्रिया को अपने वक्षःस्थल पर रखकर मोहवश विलाप करते-करते दर-दर भटक रहे थे, उसे गोदी में लेने से क्या लज्जा है ? ॥ ३२ ॥

लोपामुद्रा बोली—हे शंकर ! यह व्यवहार है कि भोजन करने के उपरान्त वासगृह में जाकर शिवा को ताम्बूल देकर शयन करो ॥ ३३ ॥

अरुन्धती बोली—हे शिव ! मेना तुम्हें पार्वती को नहीं देना चाहती थीं किन्तु मेरे बहुत समझाने पर इन्होंने पार्वती को देने के लिए राजी हुईं, अब आपका कर्त्तव्य है कि इनसे अधिक प्रेम करें ॥ ३४ ॥

अहल्या बोली—अब आप वृद्धावस्था को छोड़कर पूर्ण स्वस्थ एवं युवा हो जाइए, जिससे कन्या देनेवाली इस मेना को पुत्री दान से सन्तोष हो जावे ॥ ३५ ॥

तुलसी बोली—महादेव ! तुमने पूर्वकाल में सती का त्याग किया, अनन्तर कामदेव को जलाया, फिर पार्वती को प्राप्त करने के लिए वसिष्ठ को कैसे भेजा ? ॥ ३६ ॥

स्वाहोवाच

स्थिरो भव महादेव स्त्रीणां वचसि साम्प्रतम् । विवाहे व्यवहारोऽस्ति पुरन्ध्रीणां प्रगल्भता ॥३७॥

रोहिण्युवाच

कामं पूरय पार्वत्याः कामशास्त्रविशारद ! । कुरु पारं स्वयं कामी कामिनीकामसागरम् ॥३८॥

वसुन्धरोवाच

जानासि भावं भावज्ञ कामार्तानां च योषिताम् । न च स्वं स्वामिनं शम्भो ईश्वरं पाति सन्ततम् ॥३९॥

शतरूपोवाच

भोगं दिव्यं विना भुक्त्वा न हि तुष्येत् क्षुधातुरः । येन तुष्टिर्भवेच्छम्भो ! तत्कर्तुमुचितं स्त्रियाः ॥४०॥

संज्ञोवाच

तूर्णं प्रस्थापय प्रीत्या पार्वत्या सह शङ्करम् । रत्नप्रदीपं ताम्बूलं तल्पं निर्माय निर्जने ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

स्त्रीणां तद्वचनं श्रुत्वा ता उवाच शिवः स्वयम् । निर्विकारश्च भगवान् योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः॥४२॥

शङ्कर उवाच

देव्यो न ब्रूत वचनमेवंभूतं ममान्तिकम् । जगतां मातरः साध्व्यः पुत्रे चपलता कथम् ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

शङ्करस्य वचः श्रुत्वा लज्जिताः सुरयोषितः । बभूवुः सम्भ्रमात्तूष्णीं चित्रपुत्तलिका यथा ॥४४॥

भुक्त्वा मिष्टान्नमाचम्य महेशो हृष्टमानसः । सकर्पूरं च ताम्बूलं बुभुजे भार्यया सह ॥४५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे परिहासवर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

स्वाहा बोली—हे महादेव ! अब शान्त होकर स्त्रियों के वचन सुनो, विवाह में ऐसा व्यवहार होता है कि स्त्रियाँ प्रगल्भ हो जाती हैं ॥ ३७ ॥

रोहिणी बोली—हे कामशास्त्र विशारद ! अब तुम इस पार्वती की सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करो, तुम स्वयं कामी हो अतः कामिनियों के कामसागर को पार करो ॥ ३८ ॥

वसुन्धरा बोली—हे भावज्ञ ! आप कामार्त्त स्त्रियों के भाव को जानते हो ? हे शम्भो ! कौन ऐसी कामिनी है, जो अपने स्वामी तथा ईश्वर की रक्षा न करे ॥ ३९ ॥

शतरूपा बोली—भूख से तड़पता हुआ पुरुष बिना दिव्य भोग के सन्तुष्ट नहीं होता, अतः हे शम्भो ! स्त्रियाँ जिससे सन्तुष्ट हों वही करना उचित है ॥ ४० ॥

संज्ञा बोली—हे सखियो ! रत्न का दीपक जलाकर परम प्रीति से एकान्त में पलङ्ग बिछा कर और उसपर ताम्बूल रखकर उसपर परम प्रीति से शीघ्रतापूर्वक इन पार्वती तथा शङ्कर को स्थापित करो ॥ ४१ ॥

ब्रह्मा जी बोले—स्त्रियों के इस प्रकार के वचन सुनकर निर्विकार एवं योगीन्द्रों के गुरुओं के भी गुरु शङ्कर जी स्वयं कहने लगे ॥ ४२ ॥

शङ्कर बोले—हे देवियो ! मेरे समीप इस प्रकार का वचन मत बोलो। आप सभी पतिव्रताएँ एवं जगत् की माताएँ हैं, फिर पुत्र में इस प्रकार की चपलता क्यों ? ॥ ४३ ॥

ब्रह्मा जी बोले—शङ्कर की बात सुनते ही सभी देवस्त्रियाँ लज्जित हो गयीं और आश्चर्यचकित हो मौन धारण कर चित्र-लिखित पुतली के समान किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ हो गयीं ॥ ४४ ॥ फिर मिष्ठान्न भोजन तथा आचमन कर शिवजी परम प्रसन्न हुए और भार्या सहित कर्पूरयुक्त ताम्बूल का सेवन किया ॥ ४५ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वती-खण्ड में परिहासवर्णन नामक पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५० ॥

*

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(काम को जीवित करने के निमित्त रति की प्रार्थना एवं शिव द्वारा काम को जीवन प्रदान)

ब्रह्मोवाच

तस्मिन्नवसरे ज्ञात्वाऽनुकूलं समयं रतिः। सुप्रसन्ना च तं प्राह शङ्करं दीनवत्सलम् ॥ १ ॥

रतिरुवाच

गृहीत्वा पार्वतीं प्राप्तं सौभाग्यमतिदुर्लभम्। किमर्थं प्राणनाथो मे निःस्वार्थं भस्मसात्कृतः॥ २ ॥
जीवयात्र पतिं मे हि कामव्यापारमात्मनि। कुरु दूरं च सन्तापं समविश्लेषहेतुकम् ॥ ३ ॥
विवाहोत्सव एतस्मिन् सुखिनो निखिला जनाः। अहमेका महेशान! दुःखिनी स्वपतिं विना ॥ ४ ॥
सनाथां कुरु मां देव! प्रसन्नो भव शङ्कर!। स्वोक्तं मह्यं विधेहि त्वं दीनबन्धो पर प्रभो ॥ ५ ॥
त्वां विना कः समर्थोऽत्र त्रैलोक्ये सचराचरे। नाशने मम दुःखस्य ज्ञात्वेति करुणां कुरु ॥ ६ ॥
सोत्सवे स्वविवाहेऽस्मिन् सर्वानन्दप्रदायिनी। सोत्सवामपि मां नाथ! कुरु दीनकृपाकर!॥ ७ ॥
जीविते मम नाथे हि पार्वत्या प्रियया सह। सुविहारः प्रपूर्णश्च भविष्यति न संशयः ॥ ८ ॥
सर्वं कर्तुं समर्थोऽसि यतस्त्वं परमेश्वरः। किं बहूक्त्याऽत्र सर्वेश! जीवयाशु पतिं मम ॥ ९ ॥

ब्रह्मोवाच

तदित्युक्त्वा कामभस्म ददौ सग्रन्थिबन्धनम्। रुरोद पुरतः शम्भोर्नाथं नाथेत्युदीर्य्य च ॥१०॥
रतिरोदनमाकर्ण्य सरस्वत्यादयः स्त्रियः। रुरुदुः सकला देव्यः प्रोचुर्दीनतरं वचः ॥११॥

देव्य ऊचुः

भक्तवत्सलनामा त्वं दीनबन्धुर्दयानिधिः। कामं जीवय सोत्साहां रतिं कुरु नमोऽस्तु ते ॥१२॥

ब्रह्मा जी बोले—उस समय अपने अनुकूल समय जानकर प्रसन्नता से पूर्ण रति भक्तवत्सल दीनानाथ शङ्कर से बोली ॥ १ ॥

रति बोली—हे सदाशिव ! पार्वती ने आपको पति रूप से प्राप्त कर अत्यन्त दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त किया। किन्तु आपने मेरे प्राणनाथ को व्यर्थ में भस्म क्यों कर दिया ? ॥ २ ॥ मेरे पति ही मेरे जीवन के सहायक थे, आप परमात्मा में काम का व्यापार करना चाहते थे, अतः आप समान रूप से वियोग के हेतुभूत इस सन्ताप को दूर कीजिए ॥ ३ ॥ हे महेश्वर ! आपके इस विवाहोत्सव में सभी लोग प्रसन्न हैं, केवल अकेली मैं ही पति के बिना दुःखी हूँ ॥ ४ ॥ हे शङ्कर ! अब आप मुझे प्रसन्न होकर पति प्रदान कर सनाथ कीजिए। हे परमात्मा, हे प्रभो ! आपने जो वचन दिया था, उसे सत्य कीजिए ॥५॥ इस चराचर त्रिलोकी में आपके बिना कौन मेरा दुःख नाश करने में समर्थ है, ऐसा जानकर आप मेरे ऊपर करुणा कीजिए ॥६॥ सभी को आनन्दित करनेवाले आपके इस विवाहोत्सव में सभी प्रसन्न हैं, अतः हे कृपासागर ! हे नाथ ! मेरा पति प्रदान कर मुझे भी आनन्द प्रदान कीजिए ॥ ७ ॥ मेरे पति के जीवन प्राप्त होने पर ही प्राणप्रिया पार्वती के साथ आपका विहार पूर्ण होगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ ८ ॥ आप परमेश्वर हैं, अतः सब-कुछ करने में समर्थ हैं। हे सर्वेश ! बहुत क्या कहें, मेरे पति को जीवित कीजिए ॥ ९ ॥

ब्रह्मा जी बोले—यह कह कर उसने अपने गाँठ में बँधी हुई काम का भस्म सदाशिव के आगे रख कर 'हा नाथ ! हा नाथ !' कह कर रोने लगी ॥ १० ॥ रति के रोदन को सुनकर वहाँ उपस्थित सरस्वती आदि सभी देवस्त्रियाँ रोने लगीं और दीन होकर कहने लगीं ॥ ११ ॥

देवस्त्रियाँ कहने लगीं—हे प्रभो ! आप भक्तवत्सल, दीनबन्धु एवं दया के निधान हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है, काम को जीवन-दान देकर रति को प्रसन्न कीजिए ॥ १२ ॥

ब्रह्मोवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रसन्नोऽभून्महेश्वरः । कृपादृष्टिं चकाराशु करुणासागरः प्रभुः ॥१३॥
सुधादृष्ट्या शूलभृतो भस्मतो निर्गतः स्मरः । तद्रूपवेषचिह्नात्मा सुन्दरोऽद्भुतमूर्तिमान् ॥१४॥
तद्रूपं च तदाकारं सस्मितं सधनुःशरम् । दृष्ट्वा पतिं रतिस्तं च प्रणनाम महेश्वरम् ॥१५॥
कृतार्थाऽभूच्छिवं देवं तुष्टाव च कृताञ्जलिः । प्राणनाथप्रदं पत्या जीवितेन पुनः पुनः ॥१६॥
कामस्य स्तुतिमाकर्ण्य सनारीकस्य शङ्करः । प्रसन्नोऽभवदत्यन्तमुवाच करुणार्द्रधीः ॥१७॥

शङ्कर उवाच

प्रसन्नोऽहं तव स्तुत्या सनारीकस्य चित्तज । स्वयम्भव वरं ब्रूहि वाञ्छितं तद् ददामि ते ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

इति शम्भुवचः श्रुत्वा महानन्दः स्मरस्ततः । उवाच साञ्जलिर्नम्रो गद्गदाक्षरया गिरा ॥१९॥

काम उवाच

देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो ! । यदि प्रसन्नः सर्वेशः ममानन्दकरो भव ॥२०॥
क्षमस्व मेऽपराधं हि यत्कृतश्च पुरा प्रभो । स्वजनेषु परां प्रीतिं भक्तिं देहि स्वपादयोः ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य स्मरवचः प्रसन्नः परमेश्वरः । ॐमित्युक्त्वाऽब्रवीत्तं वै विहसन् करुणानिधिः ॥२२॥

ईश्वर उवाच

हे कामाहं प्रसन्नोऽस्मि भयन्त्यज महामते ! । गच्छ विष्णुसमीपं च बहिःस्थाने स्थितो भव॥२३॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा शिरसा नत्वा परिक्रम्य स्तुवन् विभुम् । बहिर्गत्वा हरिं देवान् प्रणम्य समुपास्त सः॥२४॥

ब्रह्मा जी बोले—देवस्त्रियों के वचन सुनकर महेश्वर प्रसन्न हो गये। पुनः करुणासागर प्रभु ने शीघ्र ही कृपा की दृष्टि की ॥ १३ ॥ शिव की अमृतमयी दृष्टि के पड़ते ही उस भस्म से वैसे ही रूप, वेष, चिह्न धारण किये हुए अद्भुत एवं महासुन्दर मूर्त्तिमान कामदेव निकलकर खड़ा हो गया ॥१४॥ उसी रूप, उसी आकार, उसी प्रकार के हास्ययुक्त एवं धनुषबाण हाथ में लिये कामदेव को देखकर रति ने अपने पति तथा महेश्वर को प्रणाम किया ॥ १५ ॥ अपने प्राणनाथ पति को देखकर वह कृतार्थ हो गयी और हाथ जोड़े कामदेव के साथ वह भगवान् शङ्कर की स्तुति करने लगी ॥ १६ ॥ स्त्री सहित काम की स्तुति सुनकर भगवान् शङ्कर अत्यन्त प्रसन्न हो उठे, करुणा से आर्द्र होकर उन दोनों से कहने लगे ॥ १७ ॥

शङ्कर बोले—हे काम ! स्त्री सहित तुम्हारी स्तुति से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ । हे स्वयंभव ! अब तुम अभीष्ट वर माँगों, मैं शीघ्र ही तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करना चाहता हूँ ॥ १८ ॥

ब्रह्मा जी बोले—शिव जी का ऐसा वचन सुन कामदेव अत्यन्त प्रसन्न हो गया और नम्रता से हाथ जोड़ गद्गद वाणी से कहने लगा ॥ १९ ॥

काम बोला—हे देवदेव ! हे महादेव ! हे करुणासागर ! हे प्रभो ! हे सर्वेश ! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे आनन्द प्रदान कीजिए ॥ २० ॥ हे प्रभो ! मैंने पूर्वकाल में जो अपराध किया है, उसे क्षमा करो, मेरी अपने स्वजनों में प्रीति तथा आपके चरणों में भक्ति हो ऐसा वरदान दीजिए ॥ २१ ॥

ब्रह्माजी बोले—कामदेव की बात सुनकर करुणासागर परमेश्वर ने प्रसन्न हो उससे हँसते हुए कहा–'ऐसा ही हो' ॥ २२ ॥

ईश्वर ने कहा—हे काम ! हे महामते ! मैं तुम पर सर्वथा प्रसन्न हूँ, तुम भय का त्याग करो और बाहर जाकर विष्णु के समीप स्थित हो जाओ ॥ २३ ॥

ब्रह्माजी बोले—शिवजी की बात सुनकर कामदेव ने शिर से उन्हें प्रणाम किया, फिर परिक्रमा कर शिव की स्तुति करते हुए बाहर जाकर विष्णु एवं अन्य देवताओं को प्रणाम कर उनकी सेवा करने

कामं सम्भाष्य देवाश्च ददुस्तस्मै शुभाशिषम् । विष्णवादयः प्रसन्नास्ते प्रोचुः स्मृत्वा शिवं हृदि ॥२५॥

देव्या ऊचुः

धन्यस्त्वं स्मर ! सन्दग्धः शिवेनानुग्रहीकृतः । जीवयामास सत्त्वांशकृपादृष्ट्याऽखिलेश्वरः ॥२६॥
सुखदुःखदो न चान्योऽस्ति यतः स्वकृतभुक् पुमान् । काले रक्षा विवाहश्च निषेकः केन वार्यते ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा ते च सम्मान्य तं सुखेनामरास्तदा । सन्तस्थुस्तत्र विष्ण्वाद्याः सर्वे लब्धमनोरथाः ॥२८॥
सोऽपि प्रमुदितस्तत्र समुवास शिवाज्ञया । जयशब्दो नमःशब्दः साधुशब्दो बभूव ह ॥२९॥
ततः शम्भुर्वासगेहे वामे संस्थाप्य पार्वतीम् । मिष्टान्नं भोजयामास तं च सा च मुदान्विता ॥३०॥
अथ शम्भुर्भवाचारी तत्र कृत्यं विधाय तत् । मेनामामन्त्र्य शैलं च जनवासं जगाम सः ॥३१॥
महोत्सवस्तदा चासीद् वेदध्वनिरभून्मुने ! । वाद्यानि वादयामासुर्जनाश्चतुर्विधानि च ॥३२॥
शम्भुरागत्य स्वस्थानं ववन्दे च मुनींस्तदा । हरिं च मां भवाचाराद् वन्दितोऽभूत् सुरादिभिः ॥३३॥
जयशब्दो बभूवाथ नमःशब्दस्तथैव च । वेदध्वनिश्च शुभदः सर्वविघ्नविदारणः ॥३४॥
अथ विष्णुरहं शक्रः सर्वे देवाश्च सर्षयः । सिद्धा उपसुरा नागास्तुष्टुवुस्ते पृथक् पृथक् ॥३५॥

देवा ऊचुः

जय शम्भोऽखिलाधार ! जय नाम महेश्वर ! । जय रुद्र महादेव जय विश्वम्भर प्रभो ! ॥३६॥
जय कालीपते स्वामिञ्जयानन्दप्रवर्धक ! । जय त्र्यम्बक सर्वेश जय मायापते विभो ! ॥३७॥

लगा ॥ २४ ॥ देवताओं ने कामदेव से सम्भाषण कर उसे कल्याणकारी आशीष प्रदान किया, फिर प्रसन्न हुए विष्णु आदि देवगण शिवजी को हृदय में स्मरण करते हुए बोले ॥ २५ ॥

देवगण बोले—हे काम ! तुम धन्य हो, जो शिव के द्वारा दग्ध किये जाने पर भी तुम उनके अनुग्रह के पात्र बने, और उनके सात्त्विक कृपादृष्टि से तुमको जीवनदान मिला ॥ २६ ॥ इस जगत् में कोई किसी को सुख-दुःख देने वाला नहीं है, पुरुष स्वयं अपने सुख तथा दुःख को भोगता है, समय के आने पर पुरुष की अपने आप रक्षा, विवाह तथा जन्म होता है, उसका कौन निवारण कर सकता है ? ॥ २७ ॥

ब्रह्माजी बोले—देवताओं ने ऐसा कह प्रसन्नता से काम का सत्कार किया और विष्णु आदि देवगण अपना पूर्ण मनोरथ देखकर वहीं स्थित हो गये ॥ २८ ॥ कामदेव ने भी शिव की आज्ञा से वहीं निवास किया । उस समय जयशब्द, नमःशब्द एवं साधुशब्द सर्वत्र व्याप्त हो गया ॥ २९ ॥ शिवजी ने भी अपने निवासगृह में पार्वती को बायीं ओर बैठाकर उन्हें मिष्ठान्न भोजन कराया और पार्वती ने भी परम प्रसन्नता से शिव को मिष्ठान्न भोजन कराया ॥ ३० ॥ इस प्रकार शिव ने समस्त लोकाचार का आचरण किया ओर मेना की आज्ञा से जनवासे चले गये ॥ ३१ ॥ हे मुने ! उस समय महामहोत्सव तथा वेद की ध्वनि होने लगी । तथा वहाँ के लोगों ने चारों प्रकार के बाजे बजाये ॥ ३२ ॥ शिवजी ने भी अपने स्थान पर आकर मुनियों को, मुझ ब्रह्मा को तथा विष्णु को प्रणाम किया । यद्यपि सभी देवता लोग उनको प्रणाम करते हैं तथापि शिवजी ने लोकाचार प्रदर्शन हेतु ऐसा किया ॥ ३३ ॥ उस समय जयशब्द और नमःशब्द का उच्चारण होने लगा । और सभी प्रकार के विघ्नों को दूर करने वाली सुन्दर वेद-ध्वनि होने लगी ॥ ३४ ॥ विष्णु, मैं, इन्द्र, सभी देवगण, ऋषि, सिद्ध तथा गन्धर्वादि उपदेवगण एवं नागगण पृथक्-पृथक् शिवजी की स्तुति करने लगे ॥ ३५ ॥

देवगण बोले—हे शङ्कर ! हे सर्वाधार ! हे महेश्वर ! आपकी जय हो । हे महादेव ! हे विश्वपालन-कर्त्ता ! प्रभो ! आपकी जय हो ॥ ३६ ॥ हे कालीपते, हे स्वामिन्, हे आनन्दप्रवर्धक ! आपकी जय हो । हे

जय निर्गुण निष्काम कारणातीत सर्वग ! । जय लीलाखिलाधार धृतरूप नमोऽस्तु ते ॥३८॥
जय स्वभक्तसत्कामप्रदेश करुणाकर ! । जय सानन्दसद्रूप जय मायागुणाकृते ॥३९॥
जयोग्र मृड सर्वात्मन् दीनबन्धो दयानिधे ! । जयाविकार मायेश वाङ्मनोऽतीतविग्रह ! ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

इति स्तुत्वा महेशानं गिरिजानायकं प्रभुम् । सिषेविरे परप्रीत्या विष्ण्वाद्यास्ते यथोचितम् ॥४१॥
अथ शम्भुर्महेशानो लीलात्ततनुरीश्वरः । ददौ मानवरं तेषां सर्वेषां तत्र नारद ! ॥४२॥
विष्ण्वाद्यास्तेऽखिलास्तात प्राप्याज्ञां परमेशितुः । अतिहृष्टाः प्रसन्नास्याः स्वस्थानं जग्मुरादृताः ॥४३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे ब्रह्मनारदसम्वादे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे कामसञ्जीवनवर्णनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(विवाह के भोजन (ज्योनार) का वर्णन)

ब्रह्मोवाच

अथ शैलवरस्तात ! हिमवान् भाग्यसत्तमः । प्राङ्गणं रचयामास भोजनार्थं विचक्षणः ॥ १ ॥
मार्जनं लेपनं सम्यक् कारयामास तस्य सः । स सुगन्धैरलञ्चक्रे नानावस्तुभिरादरात् ॥ २ ॥
अथ शैलः सुरान् सर्वानन्यानपि च सेश्वरान् । भोजनायाह्वयामास पुत्रैः शैलैः परैरपि ॥ ३ ॥
शैलाह्वानमथाकर्ण्य स प्रभुः साच्युतो मुने । सर्वैः सुरादिभिस्तत्र भोजनाय ययौ मुदा ॥ ४ ॥

त्र्यम्बक, आपकी जय हो । हे सर्वेश ! हे मायापते ! हे विभो ! हे रुद्र ! आपकी जय हो ॥ ३७ ॥ हे निर्गुण ! हे निष्काम ! हे कारणातीत ! हे सर्वग ! आपकी जय हो ! । हे लीलाविहारी ! हे अखिलाधार ! हे सगुण परमेश्वर ! आपको नमस्कार है ॥ ३८ ॥ अपने भक्तों की कामना को प्रदान करने वाले ! हे ईश ! हे करुणाकर ! आपकी जय हो । आनन्द सत्स्वरूप आपकी जय हो, माया से सगुणरूप धारण करनेवाले आपकी जय हो ॥ ३९ ॥ हे उग्र, हे मृड ! हे सर्वात्मन् ! हे दीनबन्धो ! हे दयानिधे ! आपकी जय हो ! हे अविकार, हे मायेश, हे वाङ्मनोतीत विग्रह, आपकी जय हो ॥ ४० ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! इस प्रकार गिरिजापति महेश्वर प्रभु की स्तुति कर विष्णु आदि देवगण परम प्रीति से शिवजी की सेवा करने लगे ॥ ४१ ॥ हे नारदजी ! तब लीला से शरीर धारण करनेवाले भगवान् सदाशिव ने उन देवताओं का अधिकाधिक सम्मान किया और उन्हें वरदान भी दिया ॥ ४२ ॥ हे तात ! फिर विष्णु आदि समस्त देवगण महेश्वर की आज्ञा से सुखी एवं प्रसन्न होकर सादर अपने-अपने निवास स्थान को चले गये ॥ ४३ ॥

इस प्रकार 'शिवशक्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में कामसंजीवन वर्णन नामक इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५१ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—हे तात ! तब भाग्यवान् एवं विचक्षण हिमालय ने सबको भोजन करने के लिए स्थान का निर्माण कराया ॥ १ ॥ उन्होंने भोजन स्थान को अच्छी प्रकार से मार्जन कराकर भली प्रकार लिपवाया और अनेक प्रकार के सुगन्धित वस्तुओं से उसे अलंकृत कराया ॥ २ ॥ फिर अपने पुत्रों तथा अन्य ज्ञाति पर्वतों के द्वारा शङ्कर सहित सभी देवताओं तथा अभ्यागतों को बुलवाया ॥३॥ हे मुने ! हिमालय के द्वारा आमन्त्रण को सुनकर विष्णु आदि सभी देवताओं को साथ ले भगवान् शङ्कर बड़ी प्रसन्नता के साथ

गिरिः प्रभुं च सर्वांस्तान् सुसत्कृत्य यथाविधि । मुदोपवेशयामास सत्पीठेषु गृहान्तरे ॥ ५ ॥
नानासुभोज्यवस्तूनि परिविष्य च तत्पुनः । साञ्जलिर्भोजनायाज्ञां चक्रे विज्ञप्तिमानतः ॥ ६ ॥
अथ सम्मानितास्तत्र देवा विष्णुपुरोगमाः । सदाशिवं पुरस्कृत्य बुभुजुः सकलाश्च ते ॥ ७ ॥
तदा सर्वे हि मिलिता ऐकपद्येन सर्वशः । पंक्तिभूताश्च बुभुजुर्विहसन्तः पृथक् पृथक् ॥ ८ ॥
नन्दि-भृङ्गि-वीरभद्र-वीरभद्रगणाः पृथक् । बुभुजुस्ते महाभागाः कुतूहलसमन्विताः ॥ ९ ॥
देवाः सेन्द्रा लोकपाला नानाशोभासमन्विताः । बुभुजुस्ते महाभागा नानाहास्यरसैः सह ॥ १० ॥
सर्वे च मुनयो विप्रा भृग्वाद्या ऋषयस्तथा । बुभुजुः प्रीतितः सर्वे पृथक् पङ्क्तिगतास्तदा ॥ ११ ॥
तथा चण्डीगणाः सर्वे बुभुजुः कृतभोजनाः । कुतूहलं प्रकुर्वन्तो नानाहास्यकरा मुदा ॥ १२ ॥
एवं ते भुक्तवन्तश्चाचम्य सर्वे मुदान्विताः । विश्रामार्थं गताः प्रीत्या विष्ण्वाद्याः स्वस्वमाश्रमम् ॥ १३ ॥
मेनाज्ञया स्त्रियः साध्व्यः शिवं सम्प्रार्थ्य भक्तितः । गेहे निर्वासयामासुर्वासाख्ये परमोत्सवे ॥ १४ ॥
रत्नसिंहासने शम्भुर्मेनादत्ते मनोहरे । सन्निधाय मुदा युक्तो ददर्श वासमन्दिरम् ॥ १५ ॥
रत्नप्रदीपशतकैर्ज्वलद्भिर्ज्वलितं श्रिया । रत्नपात्रघटाकीर्णं मुक्तामणिविराजितम् ॥ १६ ॥
रत्नदर्पणशोभाढ्यं मण्डितं श्वेतचामरैः । मुक्तामणिसुमालाभिर्वेष्टितं परमर्द्धिमत् ॥ १७ ॥
अनूपमं महादिव्यं विचित्रं सुमनोहरम् । चित्ताह्लादकरं नानारचनारचितस्थलम् ॥ १८ ॥
शिवदत्तवरस्यैव प्रभावमतुलं परम् । दर्शयन्तं समुल्लासि शिवलोकाभिधानकम् ॥ १९ ॥
नानासुगन्धसद्द्रव्यैर्वासितं सुप्रकाशकम् । चन्दनागुरुसंयुक्तं पुष्पशय्यासमन्वितम् ॥ २० ॥

भोजन के लिए चले ॥ ४ ॥ हिमालय ने शङ्कर के सहित सभी देवताओं का यथोचित सत्कार किया और घर के भीतर ले जाकर उत्तम आसन पर प्रसन्नता के साथ उन्हें बिठाया ॥ ५ ॥ उन्हें उत्तम प्रकार की वस्तुओं को परोस कर हाथ जोड़े सभी से भोजन की प्रार्थना करने लगे ॥ ६ ॥

तदनन्तर विष्णु आदि देवगण हिमालय से इस प्रकार सत्कृत होकर सदाशिव को आगे कर भोजन करने लगे ॥ ७ ॥ इसी प्रकार सभी देवगण मिलकर एक साथ पंक्ति में बैठकर परस्पर हास्य करते हुए पृथक्-पृथक् भोजन करने लगे ॥ ८ ॥ किन्तु नन्दी, भृङ्गी, वीरभद्र तथा अन्य शिवगण पृथक् होकर कुतूहल करते हुए भोजन करने लगे ॥ ९ ॥ इन्द्रादि समस्त लोकपाल तथा देवगण, जो नाना प्रकार की शोभा से सम्पन्न थे, अनेक प्रकार के हास्यरसों से भोजन करने लगे ॥ १० ॥ सभी मुनि, ब्राह्मण तथा भृग्वादि ऋषिगण बड़े आनन्द के साथ पृथक् पंक्ति में बैठकर भोजन करने लगे ॥ ११ ॥ इसी प्रकार चण्डी के गण भी नाना प्रकार के कुतूहल तथा हास्य करते हुए अपने-अपने पात्रों में भोजन करने लगे ॥ १२ ॥

इस तरह विष्णु आदि देवताओं ने आनन्द के साथ भोजन कर आचमन किया और विश्राम के लिए आनन्द से अपने-अपने निवास स्थान को चले गये ॥ १३ ॥ इधर मेना की आज्ञा से सभी स्त्रियाँ शिव का भक्तिपूर्वक प्रार्थना कर परमानन्ददायक घर के भीतर उत्तम निवासगृह में ले गयीं ॥ १४ ॥ वहाँ पर मेना के द्वारा दिये गये परम मनोहर रत्न के सिंहासन पर बैठकर शिवजी उस घर की छटा देखने लगे ॥ १५ ॥ उस गृह में सैकड़ों जलते हुए रत्न के दीपक अपनी निराली छटा उत्पन्न कर रहे थे और अनेक प्रकार के रत्नों के पात्र विराज रहे थे। उसमें स्थान-स्थान पर मोती तथा मणियाँ लगी हुई थीं ॥ १६ ॥ रत्नों के दर्पण तथा श्वेतवर्ण के चमर शोभा पा रहे थे। चारों ओर मोतियों और मणियों की मालाएँ लगी हुई थीं ॥ १७ ॥ वह शिव का निवासगृह अनुपम, महादिव्य, परम विचित्र, मनोहर तथा चित्त को प्रसन्न करने वाला था, उसके प्रत्येक स्थल में नाना प्रकार की कारीगरी की गयी थी ॥ १८ ॥ वह गृह शिव के वरदान का अतुलनीय प्रभाव प्रकट कर रहा था और शोभा से सम्पन्न होने के कारण ही उस गृह का शिवलोक नामकरण किया गया था ॥ १९ ॥ अनेक प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों से वह गृह सुवासित था, उत्तम प्रकाश से युक्त था। चन्दन से युक्त अगरबत्ती जल रही थी और पुष्प की शय्या लगी हुई थी ॥ २० ॥

नानाचित्रविचित्राढ्यं निर्मितं विश्वकर्मणा । रत्नेन्द्रसाररचितैः रचितं हारकैर्वरैः ॥२१॥
कुत्रचित्सुरनिर्माणं वैकुण्ठं सुमनोहरम् । कुत्रचिच्च ब्रह्मलोकं लोकपालपुरं क्वचित् ॥२२॥
कैलासं कुत्रचिद्रम्यं कुत्रचिच्छक्रमन्दिरम् । कुत्रचिच्छिवलोकं च सर्वोपरि विराजितम् ॥२३॥
एतादृशगृहं सर्वदृष्टाश्चर्य्यं महेश्वरः । प्रशंसन् हिमशैलेशं परितुष्टो बभूव ह ॥२४॥
तत्रातिरमणीये च रत्नपर्य्यङ्क उत्तमे । अशयिष्ट मुदा युक्तो लीलया परमेश्वरः ॥२५॥
हिमाचलश्च स्वभ्रातॄन् भोजयामास कृत्स्नशः । सर्वानन्यांश्च सुप्रीत्या शेषकृत्यं चकार ह ॥२६॥
एवं कुर्वति शैलेशे स्वपतिप्रेष्ठ ईश्वरे । व्यतीता रजनी सर्वा प्रातःकालो बभूव ह ॥२७॥
अथ प्रभातकाले च धृत्युत्साहपरायणाः । नानाप्रकारवाद्यानि वादयाञ्चक्रिरे जनाः ॥२८॥
सर्वे सुराः समुत्तस्थुर्विष्ण्वाद्याः सुमुदान्विताः । स्वेष्टं संस्मृत्य देवेशं सज्जिभूताः ससंभ्रमाः ॥२९॥
स्ववाहनानि सज्जानि कैलासं गन्तुमुत्सुकाः । कृत्वा सम्प्रेषयामासुर्धर्मं शिवसमीपतः ॥३०॥
वासगेहमथागत्य धर्मो नारायणाज्ञया । उवाच शङ्करं योगी योगीशं समयोचितम् ॥३१॥

धर्म उवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते भव नः प्रमथाधिप ! । जनावासं समागच्छ कृतार्थं कुरु तत्र तान् ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

इति धर्मवचः श्रुत्वा विजहास महेश्वरः । ददर्श कृपया दृष्टया तल्पमुज्झाश्चकार ह ॥३३॥
उवाच विहसन् धर्मं त्वमग्रे गच्छ तत्र ह । अहमप्यागमिष्यामि द्रुतमेव न संशयः ॥३४॥

वह गृह विश्वकर्मा के द्वारा रचित नाना प्रकार के चित्रों की विचित्रता से युक्त था, उसमें सभी उत्तम रत्नों के सारों से रचित श्रेष्ठ हारों के ढेर लगे हुए थे ॥ २१ ॥ कहीं देवताओं के चित्र थे, तो कहीं मनोहर वैकुण्ठ बना हुआ था, कहीं ब्रह्मलोक बना हुआ था, तो कहीं लोकपालों की अमरावती आदि पुरियाँ बनी हुई थीं ॥ २२ ॥ कहीं मनोहर कैलास था, तो कहीं इन्द्र का मन्दिर बना हुआ था और वहीं सबके ऊपर शिवलोक का चित्र बनाया गया था ॥ २३ ॥ आश्चर्यपूर्ण इस प्रकार के घर को देखकर शिवजी परम प्रसन्न हो गये और गिरिराज हिमालय की प्रशंसा करने लगे ॥ २४ ॥ तदनन्तर परम रमणीय रत्न के पर्यङ्क पर प्रसन्न हो शिवजी ने लीलापूर्वक शयन किया ॥ २५ ॥

इधर हिमालय ने अपने सभी भाइयों को तथा अन्य लोगों को बड़े प्रेम से सत्कार कर भोजन कराया तथा शेष कृत्य पूर्ण किया ॥ २६ ॥ इस प्रकार हिमालय को सब कार्य पूर्ण करते हुए एवं शिव के शयन करते हुए सारी रात बीत गयी। और प्रभातकाल उपस्थित हो गया ॥ २७ ॥ प्रभातकाल होने पर धैर्य एवं उत्साह से भरे हुए बजनियाँ लोगों ने अनेक प्रकार के बाजे बजाना प्रारम्भ किया ॥ २८ ॥ बाजे के बजते ही विष्णु आदि सभी देवगण अपने इष्टदेव शङ्कर का स्मरण कर शीघ्रता से अपने-अपने साज-सजाकर जनवासे में उपस्थित हो गये ॥ २९ ॥ और अपने-अपने वाहनों को सजा-सजाकर कैलास जाने की तैयारी करने लगे। उन लोगों ने शिवजी के समीप धर्म को भेजा ॥ ३० ॥ नारायण की आज्ञा से शिवजी के निवासगृह में जाकर धर्म योगयोगीश्वर से समयोचित वचन कहने लगे ॥ ३१ ॥

धर्म ने कहा—हे शङ्कर ! हे भव ! आपका कल्याण हो, हे प्रमथाधिपते ! आप उठिए और जनवासे में चलकर अपने भक्तों को कृतार्थ कीजिए ॥ ३२ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! तब धर्मराज के वचन सुनकर शिवजी हँसने लगे और कृपादृष्टि से धर्म की ओर देखा फिर शय्या का परित्याग किया ॥ ३३ ॥ पुनः हँसते हुए धर्म से कहने लगे, तुम आगे चलो, मैं निःसन्देह तुम्हारे पश्चात् आ रहा हूँ ॥ ३४ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तः शङ्करेणाथ जनावासं जगाम सः । स्वयं गन्तुमना आसीत्तत्र शम्भुरपि प्रभुः ॥३५॥
तज्ज्ञात्वा स्त्रीगणः सोऽसौ तत्रागच्छन्महोत्सवः । चक्रे मङ्गलगानं हि पश्यन् शम्भुपदद्वयम् ॥३६॥
अथ शम्भुर्भवाचारी प्रातःकृत्यं विधाय च । मेनामामन्त्र्य कुध्रं च जनावासं जगाम सः॥३७॥
महोत्सवस्तदा चासीद् वेदध्वनिरभून्मुने । वाद्यानि वादयामासुर्जनाश्चातुर्विधानि च ॥३८॥
शम्भुरागत्य स्वस्थानं ववन्दे च मुनींस्तदा । हरिं च मां भवाचारात् वन्दितोऽभूत् सुरादिभिः ॥३९॥
जयशब्दो बभूवाथ नमःशब्दस्तथैव च । वेदध्वनिश्च शुभदो महाकोलाहलोऽभवत् ॥४०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे वरवर्गभोजनशिवशयनवर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(विवाह के महोत्सव का वर्णन)

ब्रह्मोवाच

अथ विष्ण्वादयो देवा मुनयश्च तपोधनाः । कृत्वाऽऽवश्यककर्माणि यात्रां सन्तेनिरे गिरेः ॥ १ ॥
ततो गिरिवरः स्नात्वा स्वेष्टं सम्पूज्य यत्नतः । पौरबन्धून् समाहूय जनावासं ययौ मुदा ॥ २ ॥
तत्र प्रभुं प्रपूज्याथ चक्रे सम्प्रार्थनां मुदा । कियद्दिनानि सन्तिष्ठ मद्गेहे सकलैः सह ॥ ३ ॥
विलोकनेन ते शम्भो कृतार्थोऽहं न संशयः । धन्यश्च यस्य मद्गेहे आयातोऽसि सुरैः सह ॥ ४ ॥

ब्रह्माजी बोले—शङ्कर के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर धर्मराज जनवासे गये । और पीछे स्वयं शङ्कर जी वहाँ जाने का बिचार करने लगे ॥३५॥ इस बात को जानकर स्त्रियों का समूह आनन्द में भरकर वहाँ पहुँच गया और शिव के पदकमलों का दर्शन करते हुए मङ्गलगान तथा महोत्सव किया ॥ ३६ ॥ तब शिवजी ने लोकाचार प्रदर्शित करते हुए नित्यक्रिया का सम्पादन किया, फिर मेना एवं पर्वतराज से आज्ञा ले जनवासे में गये ॥ ३७ ॥ हे मुने ! उस समय महामहोत्सव एवं वेदध्वनि होने लगी और मनुष्यों ने चारों प्रकार के वाजे बजाये ॥ ३८ ॥ शिवजी ने जनवासे में अपने स्थान पर जाकर मुनियों को मुझे तथा विष्णु को प्रणाम किया तथा अन्य देवताओं ने उनकी वन्दना की ॥ ३९ ॥ उस समय चारों ओर जय-जयकार तथा नमः शब्द होने लगा और सुखदायक वेदध्वनि से महा कोलाहल होने लगा ॥ ४० ॥

इस प्रकार 'शिवदत्त'भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में वरवर्गभोजन-शिवशयनवर्णन नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५२ ॥

*

ब्रह्मा जी बोले—हे नारद ! तब विष्णु आदि सभी देवगण एवं तपोधन मुनिगण अपना आवश्यक नित्य कर्म निर्वाह कर हिमालय से प्रस्थान करने का उपक्रम करने लगे ॥१॥ इधर हिमालय भी स्नान कर अपने इष्टदेव के पूजनोपरान्त नगरवासियों एवं बन्धुवर्गों को साथ लेकर जनवासे गये ॥२॥ उन्होंने सर्वप्रथम शङ्कर का पूजन किया । पुनः हाथ जोड़कर विनय से प्रार्थना करते हुए कहने लगे— आप इन सभी के साथ कुछ दिन और मेरे घर पर निवास करें ॥ ३ ॥ हे शम्भो ! मैं आपके दर्शन से ही कृतार्थ हो रहा हूँ, इसमें संशय नहीं, अहा ! आज मैं धन्य हूँ जो आप इन देवताओं को साथ लेकर मेरे घर पर पधारे हैं ॥ ४ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा बहु शैलेशः करौ बद्ध्वा प्रणम्य च । प्रभुं निमन्त्रयामास सह विष्णुसुरादिभिः ॥ ५ ॥
अथ ते मनसा गत्वा शिवं संयुतमादरात् । इत्यूचुर्मुनयो देवा हृष्टा विष्णुसुरादिभिः ॥ ६ ॥

देवा ऊचुः

धन्यस्त्वं गिरिशार्दूल तव कीर्तिर्महीयसी । त्वत्समो न त्रिलोकेषु कोऽपि पुण्यतमो जनः ॥ ७ ॥
यस्य द्वारि महेशानः परब्रह्म सतां गतिः । समागतः सदासैश्च कृपया भक्तवत्सलः ॥ ८ ॥
जनावासोऽतिरम्यश्च सम्मानो विविधः कृतः । भोजनानि त्वपूर्वाणि न वर्ण्यानि गिरीश्वर ! ॥ ९ ॥
चित्रं न खलु तत्रास्ति यत्र देवी शिवाम्बिका । परिपूर्णमशेषं च वयं धन्या यदागताः ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं परस्परं तत्र प्रशंसाऽभवदुत्तमा । उत्सवो विविधो जातो वेदसाधुजयध्वनिः ॥११॥
अभून्मङ्गलगानं च ननर्ताप्सरसां गणः । नुतिश्चक्रुर्मागधाद्या द्रव्यदानमभूद् बहु ॥१२॥
तत आमन्त्र्य देवेशं स्वगेहमगमद् गिरिः । भोजनोत्सवमारेभे नानाविधिविधानतः ॥१३॥
भोजनार्थं प्रभुं प्रीत्याऽऽनयामास यथोचितम् । परिवारसमेतं च सकुतूहलमीश्वरम् ॥१४॥
प्रक्षाल्य चरणौ शम्भोर्विष्णोर्मम वरादरात् । सर्वेषाममराणां च मुनीनां च यथार्थतः ॥१५॥
परेषां च गतानां च गिरीशो मण्डपान्तरे । आसयामास सुप्रीत्या तांस्तान् बन्धुभिरन्वितः ॥१६॥
सुरसैर्विविधान्नैश्च तर्पयामास तान् गिरिः । बुभुजुर्निखिलास्ते वै शम्भुना विष्णुना मया ॥१७॥
तदानीं पुरनार्यश्च गालीदानं व्यधुर्मुदा । मृदुवाण्या हसन्त्यश्च पश्यन्त्यो यत्नतश्च तान् ॥१८॥

ब्रह्मा जी बोले—शैलराज ने इस प्रकार बहुत सा अनुनय-विनय कर दोनों हाथ जोड़े हुए शिव को प्रणाम किया और विष्णु आदि देवताओं के साथ प्रभु को आमन्त्रित किया ॥ ५ ॥ पुनः आदर के सहित शिव का ध्यान कर विष्णु के सहित उन दैवताओं तथा मुनियों ने प्रसन्नतापूर्वक हिमालय से कहा ॥ ६ ॥

देवगण बोले—हे गिरिराज ! आप धन्य हैं, आपकी कीर्त्ति अत्यन्त विशद है। निश्चय ही इस त्रिलोकी में आपसे बढ़कर कोई पुण्यात्मा नहीं है ॥ ७ ॥ जिसके दरवाजे पर सज्जनों को गति देनेवाले भक्तवत्सल एवं परब्रह्म सदाशिव अपने सेवकों के साथ कृपा कर पधारे ॥ ८ ॥ आपने हमें ठहरने के लिए अत्यन्त मनोहर जनवासा दिया एवं बहुत सम्मान किया। आपने जैसा अपूर्व भोजन दिया वह तो अवर्णनीय है ॥ ९ ॥ इस विषय में कोई आश्चर्य की बात नहीं। जहाँ साक्षात् जगदम्वा शिवा देवी निवास करती हैं, अब हमलोग सर्वथा परिपूर्ण हैं, कुछ भी शेष नहीं रहा, यह हमलोगों का बहुत बड़ा भाग्य रहा, जो यहाँ पर आ गये ॥ १० ॥

ब्रह्मा जी बोले—हे नारद ! इस प्रकार से वे परस्पर एक-दूसरे की प्रशंसा करने लगे। उस समय वेदों का उद्घोष, साधु शब्द तथा जय शब्द के उच्चारण से आकाश व्याप्त हो गया और नाना प्रकार के उत्सव होने लगे ॥११॥ मङ्गलगान होने लगा, अप्सराएँ नाचने लगीं, मागधगण स्तुति पाठ करने लगे और असंख्य द्रव्यों का दान किया जाने लगा ॥ १२ ॥ इस प्रकार देवेश का आमन्त्रण कर गिरिराज अपने घर आये और अनेक विधि-विधानों से भोजनोत्सव की तैयारी करने लगे ॥ १३ ॥ फिर वे सत्कारपूर्वक कुतूहल युक्त हो बरातियों समेत शङ्कर को भोजन कराने के लिए अपने घर ले आये ॥ १४ ॥ उन हिमालय ने सर्वप्रथम शिव का, विष्णु का तथा मेरा पादप्रक्षालन किया। अनन्तर देवताओं, मुनियों तथा अन्यों के भी चरण धोये ॥ १५ ॥ पुनः बन्धु-बान्धवों सहित गिरिराज ने बड़े प्रेम के साथ सबको मण्डप के भीतर आसन देकर बिठाया ॥ १६ ॥ विष्णु, सदाशिव एवं मुझ ब्रह्मा सहित समस्त देवतागण बड़े प्रेम के साथ भोजन करने लगे। इस प्रकार गिरिराज ने रसीले विविध अन्नों से भोजन द्वारा सबको तृप्त किया ॥ १७ ॥ उस समय नगर की नारियाँ हँसती हुई एवं देवताओं की ओर यत्न से देखती हुई गाली मधुर वाणी में

ते भुक्त्वाऽऽचम्य विधिवद्गिरिमामन्त्र्य नारद ! । स्वस्थानं प्रययुः सर्वे मुदितास्तृप्तिमागताः ॥१९॥
इत्थं तृतीये घस्नेऽपि मानितास्तेऽभवन्मुने ! । गिरीश्वरेण विधिवद् दानमानादरादिभिः ॥२०॥
चतुर्थे दिवसे प्राप्ते चतुर्थीकर्म शुद्धितः । बभूव विधिवद्येन विना खण्डित एव सः ॥२१॥
उत्सवो विविधश्चासीत् साधुवादजयध्वनिः । बहुदानं सुगानं च नर्त्तनं विविधं तथा ॥२२॥
पञ्चमे दिवसे प्राप्ते सर्वे देवा मुदान्विताः । विज्ञप्तिं चक्रिरे शैलं यात्रार्थमतिप्रेमतः ॥२३॥
तदाकर्ण्य गिरीशश्चोवाच देवान् कृताञ्जलिः । कियद्दिनानि तिष्ठन्तु कृपां कुर्वन्तु मां सुराः ॥२४॥
इत्युक्त्वा स्नेहतस्तांश्च प्रभुं विष्णुं च मां परान् । वासयामास दिवसान् बहूनित्यं समादरात् ॥२५॥
इत्थं व्यतीयुर्दिवसा बहवो वसतां च तत् । सप्तर्षीन् प्रेषयामासुर्गिरीशान्ते ततः सुराः ॥२६॥
ते तं सम्बोधयामासुर्मेनां च समयोचितम् । शिवतत्त्वं परं प्रोचुः प्रशंसन् विधिवन्मुदा ॥२७॥
अङ्गीकृतं परेशेन तत्तद्बोधनतो मुने ! । यात्रार्थमगमच्छम्भुः शैलेशं सामरादिकः ॥२८॥
यात्रां कुर्वति देवेशे स्वशैलं सामरे शिवे । उच्चै रुरोद सा मेना तमुवाच कृपानिधिम् ॥२९॥

मेनोवाच

कृपानिधे कृपां कृत्वा शिवां सम्पालयिष्यसि । सहस्रदोषं पार्वत्या आशुतोषः क्षमिष्यसि ॥३०॥
त्वत्पादाम्बुजभक्ता च मद्वत्सा जन्मजन्मनि । स्वप्ने ज्ञाने स्मृतिर्नास्ति महादेवं प्रभुं विना ॥३१॥
त्वद्भक्तिश्रुतिमात्रेण हर्षाश्रुपुलकान्विता । त्वन्निन्दया भवेन्मौना मृत्युञ्जय मृता इव ॥३२॥

गान करने लगीं ॥ १८ ॥ इस प्रकार सबलोग विधिवत् भोजन के पश्चात् आचमन कर गिरिराज से आज्ञा ले प्रसन्नता एवं तृप्ति से युक्त हो अपने-अपने स्थान को चले आये ॥ १९ ॥ इसी प्रकार तीसरे दिन भी गिरिराज ने विधिवत् दान एवं सम्मान से उन लोगों का आदर-सत्कार किया ॥ २० ॥ चौथा दिन प्राप्त होने पर बड़ी शुद्धता के साथ अखण्डित चतुर्थी कर्म विधिवत् सम्पन्न कराया गया ॥ २१ ॥ उस समय नाना प्रकार के उत्सव, जय-जयकार तथा साधु शब्दों का उच्चारण, नाना प्रकार के दान, गाने एवं नृत्य होने लगे ॥ २२ ॥

पाचवाँ दिन प्राप्त होने पर प्रसन्न हुए देवताओं ने बड़े प्रेम के साथ गिरिराज से विदाई के निमित्त आज्ञा माँगी ॥ २३ ॥ देवताओं की बात सुनकर हिमालय हाथ जोड़कर कहने लगे—अभी आपलोग कुछ दिन और रहें तथा मेरे ऊपर कृपा करें ॥ २४ ॥ ऐसी प्रार्थना कर उन्होंने बड़े स्नेह से शङ्कर, विष्णु, मुझ ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं को और बहुत दिनों तक आदर के साथ टिकाया ॥ २५ ॥ इस प्रकार निवास करते हुए जब देवताओं को बहुत दिन बीत गये तो उन्होंने हिमालय के समीप सप्तर्षियों को भेजा ॥ २६ ॥ उन्होंने गिरिराज तथा मेना को समयोचित बातें कहकर समझाया और प्रशंसा करते हुए शिवतत्त्व ही सबसे श्रेष्ठ है ऐसा सविधि प्रतिपादन किया ॥ २७ ॥ हे मुने ! उनके समझाने से हिमालय ने किसी प्रकार विदाई स्वीकार की। तब शिव जी देवताओं के सहित विदा होने के लिए हिमालय के घर गये ॥ २८ ॥ इस प्रकार जब देवेश को कैलास गमन के लिए उत्सुक देख मेना ऊँचे स्वर से रोती हुई कृपासागर शङ्कर से बोली ॥ २९ ॥

मेना बोली—हे कृपासागर ! आप कृपा कर मेरी पुत्री का पालन कीजिएगा। आप आशुतोष हैं, अतः पार्वती के सहस्रों दोषों को क्षमा कीजिएगा ॥ ३० ॥ हे प्रभो ! यह मेरी कन्या जन्म-जन्मान्तर से आपकी भक्त है, यह आप महादेव प्रभु को छोड़कर स्वप्नावस्था में अथवा जागते समय भी किसी अन्य का स्मरण नहीं करती ॥ ३१ ॥ आपकी भक्ति के सुनने मात्र से ही इसके नेत्रों में हर्ष के आँसू आ जाते हैं और शरीर पुलकित हो जाता है, किन्तु आपकी निन्दा सुनते ही यह मौन हो मृतक के समान हो जाती है ॥ ३२ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा मेनका तस्मै समर्प्य स्वसुतां तदा । अत्युच्चै रोदनं कृत्वा मूर्च्छामाप तयोः पुरः ॥३३॥
अथ मेनां बोधयित्वा तामामन्त्र्य गिरिस्तथा । चकार यात्रां देवैश्च महोत्सवपुरःसरम् ॥३४॥
अथ ते निर्जराः सर्वे प्रभुणा स्वगणैः सह । यात्रां प्रचक्रिरे तूर्ष्णीं गिरिं प्रति शिवं दधुः॥३५॥
हिमाचलपुरीबाह्योपवने हर्षिताः सुराः । सेश्वराः सोत्सवास्तस्थुः पर्यैषन्त शिवागमम्॥३६॥
इत्युक्ता शिवसद्यात्रा देवैः सह मुनीश्वर ! । आकर्णय शिवायात्रां विरहोत्सवसंयुताम् ॥३७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
शिवयात्रावर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(मेना द्वारा पार्वती को पातिव्रत्य धर्म का उपदेश)

ब्रह्मोवाच

अथ सप्तर्षयस्ते च प्रोचुर्हिमगिरीश्वरम् । कारयस्वात्मजादेव्या यात्रामद्योचितां गिरे ॥ १ ॥
इति श्रुत्वा गिरीशो हि बुद्ध्वा तद्विरहं परम् । विषण्णोऽभून्महाप्रेम्णा कियत्कालं मुनीश्वर ! ॥ २ ॥
कियत्कालेन सम्प्राप्य चेतनां शैलराट् ततः । तथाऽस्त्विति गिरामुक्त्वा मेनां सन्देशमब्रवीत् ॥ ३ ॥
शैलसन्देशमाकर्ण्य हर्षशोकवशा मुने ! । मेना संयापयामास कर्त्तुमासीत समुद्यता ॥ ४ ॥
श्रुतिस्वकुलजाचारं चचार विधिवन्मुने । उत्सवं विविधं तत्र सा मेना क्षितिभृत्प्रिया ॥ ५ ॥
गिरिजां भूषयामास नानारत्नांशुकैर्वरैः । द्वादशाभरणैश्चैव भृङ्गारैर्नृपसम्मितैः ॥ ६ ॥
मेना मनोगतिं बुद्ध्वा साध्व्येका द्विजकामिनी । गिरिजां शिक्षयामास पातिव्रत्यव्रतं परम् ॥ ७ ॥

ब्रह्मा जी बोले—ऐसा कहते हुए मेना ने अपनी पुत्री को सदाशिव के लिए समर्पण कर दिया और ऊँचे स्वर से रोती हुई उन दोनों के आगे गिर पड़ी ॥ ३३ ॥ तब शङ्कर ने मेना को समझाया और हिमालय से आज्ञा ले देवताओं के सहित कैलास की ओर यात्रा की ॥ ३४ ॥ देवताओं ने हिमालय के कल्याण की कामना करते हुए शङ्कर के गणों के सहित मौन हो कैलास की ओर प्रस्थान किया ॥ ३५ ॥ कुछ दूर जाकर वे हिमालय के एक उपवन में विष्णु सहित शिव के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए ठहर गये ॥ ३६ ॥ हे मुनीश्वर ! इस प्रकार से देवताओं के सहित शिव के विदा होने तक का सारा वृत्तान्त मैंने तुमसे कहा । अब विवाहोत्सव तथा विदाई के अनन्तर होनेवाले विरह के बीच शिव जी की यात्रा का वर्णन सुनो ॥ ३७ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भापाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-
पार्वतीखण्ड में शिवयात्रा वर्णन नामक तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५३ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—तदनन्तर सप्तर्षियों ने जाकर हिमालय से कहा—आज गिरिजा के विदाई के लिए उत्तम मुहूर्त्त है, अतः पुत्री की विदाई कर दीजिए ॥ १ ॥ सप्तर्षियों की बात सुनकर हिमालय पार्वती के वियोगजन्य दुःख को स्मरण कर कुछ देर के लिए व्याकुल हो गये ॥ २ ॥ फिर कुछ काल के अनन्तर चेतना प्राप्त होने पर 'ऐसा ही होगा' यह कह उन्होंने मेना को सन्देश भेजा ॥ ३ ॥ हे मुने ! पति का सन्देश सुन मेना ने हर्ष तथा शोक से संयुक्त हो पुत्री के विदाई के लिए समस्त सामग्री एकत्रित की ॥ ४ ॥ हे मुने ! उन्होंने प्रथम वेद तथा कुल की रीति सम्पन्न की, फिर पार्वती की यात्रा के निमित्त नान्दीमङ्गल विधान करने लगी ॥ ५ ॥ पार्वती को अनेक रत्नों तथा श्रेष्ठ वस्त्रों से अलंकृत किया । राजकुलोचित शृङ्गार कर उत्तमोत्तम द्वादश आभरणों से उन्हें अलंकृत किया ॥ ६ ॥ फिर मेना के मन की बात जानकर एक पतिव्रता ब्राह्मणपत्नी गिरिजा को पातिव्रत्य धर्म का उपदेश देने लगी ॥ ७ ॥

द्विजपत्न्युवाच

गिरिजे ! शृणु सुप्रीत्या मद्वचो धर्मवर्द्धनम् । इहामुत्रानन्दकरं शृण्वतां च सुखप्रदम् ॥८॥
धन्या पतिव्रता नारी नान्या पूज्या विशेषतः । पावनी सर्वलोकानां सर्वपापौघनाशिनी ॥९॥
सेवते या पतिं प्रेम्णा परमेश्वरवच्छिवे । इह भुक्त्वाऽखिलान् भोगानन्ते पत्या शिवां गतिम् ॥१०॥
पतिव्रता च सावित्री लोपामुद्रा ह्यरुन्धती । शाण्डिल्या शतरूपानुसूया लक्ष्मीः स्वधा सती ॥११॥
संज्ञा च सुमतिः श्रद्धा मेना स्वाहा तथैव च ।
अन्या बह्व्योऽपि साध्व्यो हि नोक्ता विस्तरजाद्भयात् ॥१२॥
पातिव्रत्यवृषेणैव ता गताः सर्वपूज्यताम् । ब्रह्म-विष्णु-हरैश्चापि मान्या जाता मुनीश्वरैः ॥१३॥
सेव्यस्त्वया पतिस्तस्मात् सर्वदा शङ्करः प्रभुः । दीनानुग्रहकर्ता च सर्वसेव्यः सतां गतिः ॥१४॥
महान् पतिव्रताधर्मः श्रुतिस्मृतिषु नोदितः । यथैष वर्ण्यते श्रेष्ठो न तथान्योऽस्ति निश्चितम् ॥१५॥
भुञ्ज्याद्भुक्ते प्रिये पत्यौ पातिव्रत्यपरायणा । तिष्ठेत्तस्मिञ्छिवे नारी सर्वथा सति तिष्ठति ॥१६॥
स्वप्यात् स्वपिति सा नित्यं बुध्येत्तु प्रथमं सुधीः । सर्वदा तद्धितं कुर्यादकैतवगतिः प्रिया ॥१७॥
अनलङ्कृतमात्मानं दर्शयेन्न क्वचिच्छिवे । कार्यार्थं प्रोषिते तस्मिन् भवेन्मण्डनवर्जिता ॥१८॥
पत्युर्नाम न गृह्णीयात् कदाचन पतिव्रता । आक्रुष्टापि न चाक्रोशेत् प्रसीदेत्ताडितापि च ।
हन्यतामिति च ब्रूयात् स्वामिन्निति कृपां कुरु ॥१९॥
आहूता गृहकार्याणि त्यक्त्वा गच्छेत्तदन्तिकम् । सत्वरं साऽञ्जलिः प्रीत्या सुप्रणम्य वदेदिति ॥२०॥

द्विजपत्नी बोली—हे गिरिजे ! स्त्रियों के कल्याण करनेवाले मेरे वचन को श्रद्धा से सुनो ! मेरे ये वचन स्त्रियों को इस लोक तथा परलोक में सुख देनेवाले हैं तथा इसके सुनने से भी स्त्रियों का कल्याण हो जाता है ॥८॥ इस जगत् में एक पतिव्रता नारी ही धन्य है, उसके अतिरिक्त और कोई पूजा के योग्य नहीं है। वही सब लोगों को पवित्र करने वाली तथा समस्त पापों को दूर करने वाली है ॥९॥ हे शिवे ! जो स्त्री अपने स्वामी की परमेश्वर के समान सेवा करती है वह यहाँ अनेक भोगों को भोगकर अन्त में पति के साथ उत्तम गति प्राप्त करती है ॥ १० ॥ सावित्री, लोपामुद्रा, अरुन्धती, शाण्डिल्या, शतरूपा, अनसूया, लक्ष्मी, स्वधा एवं सती, ॥ ११ ॥ संज्ञा, सुमति, श्रद्धा, मेना और स्वाहा आदि बहुत-सी पतिव्रताएँ हैं, जिन्हें विस्तार के भय से मैं यहाँ नहीं कहती ॥ १२ ॥ ये सभी पतिव्रता धर्म के प्रभाव से ही जगत् में मान्य तथा पूज्य हुईं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर एवं अन्य मुनीश्वरों ने भी इनका सम्मान किया है ॥ १३ ॥ इसलिए तुम्हें इन अपने पति प्रभु शङ्कर की विशेष रूप से सेवा करनी चाहिए, क्योंकि ये दीनों पर अनुग्रह करने वाले एवं पूज्य होने के कारण सबके सेव्य हैं और सज्जनों के गतिदाता हैं ॥ १४ ॥ पतिव्रताओं का धर्म महान् है, जिसका वर्णन श्रुतियों तथा स्मृतियों में भरा हुआ है। निश्चय ही पातिव्रत्य धर्म जितना श्रेष्ठ है उतना अन्य धर्म श्रेष्ठ नहीं है ॥ १५ ॥ स्त्री को चाहिए कि जब अपना प्रियपति भोजन कर चुके, तब स्वयं पतिभक्ति में परायण होकर भोजन करें, जब पति आनन्दयुक्त रहता है, तभी स्त्रियों का भी कल्याण होता है ॥ १६ ॥ पति के सो जाने पर स्वयं शयन करे और उसके उठने से पहले स्वयं जाग जावे, पति का सर्वदा छलरहित हो हित करे ॥ १७ ॥ और कभी अलङ्कार से रहित हो अपने स्वामी के सम्मुख न जावे। जब स्वामी कार्यवश परदेश चला जाय, तो कभी शरीर का संस्कार एवं शृङ्गार न करे ॥१८॥

पतिव्रता स्त्री को चाहिए कि वह पति का नाम कभी नाम न ले, पति के द्वारा क्रुद्ध होकर परुष वचन कहने पर भी कभी उसे बुरा वचन न कहे और पति के ताड़न करने पर भी प्रसन्न रहे। पति के ताड़न करते समय भी यही कहे कि स्वामिन् ! और भी मार लीजिए अथवा अब मेरे ऊपर कृपा कीजिए ॥ १९ ॥ पति के बुलाने पर घर का सारा कामकाज छोड़ उनके समीप जावे और शीघ्रता से

किमर्थं व्याहृता नाथ स प्रसादो विधीयताम् । तदादिष्टा चरेत् कर्म सुप्रसन्नेन चेतसा ॥२१॥
चिरं तिष्ठेन्न च द्वारे गच्छेन्नैव परालये । आदाय तत्त्वं यत्किञ्चित् कस्मैचिन्नार्पयेत् क्वचित् ॥२२॥
पूजोपकरणं सर्वमनुक्ता साधयेत् स्वयम् । प्रतीक्षमाणाऽवसरं यथाकालोचितं हितम् ॥२३॥
न गच्छेत्तीर्थयात्रां वै पत्याज्ञां न विना क्वचित् । दूरतो वर्जयेत् सा हि समाजोत्सवदर्शनम् ॥२४॥
तीर्थार्थिनी तु या नारी पतिपादोदकं पिबेत् । तस्मिन् सर्वाणि तीर्थानि क्षेत्राणि च न संशयः ॥२५॥
भुञ्ज्यात् सा भर्तुरुच्छिष्टमिष्टमन्नादिकं च यत् । महाप्रसाद इत्युक्त्वा पतिदत्तं पतिव्रता ॥२६॥
अविभज्य न चाश्नीयाद्देवपित्रतिथिष्वपि । परिचारकवर्गेषु गोषु भिक्षुकुलेषु च ॥२७॥
संयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ्मुखी । भवेत् सा सर्वदा देवी पतिव्रतपरायणा ॥२८॥
कुर्यात् पत्यननुज्ञाता नोपवासव्रतादिकम् । अन्यथा तत्फलं नास्ति परत्र नरकं व्रजेत् ॥२९॥
सुखपूर्वं सुखासीनं रममाणं यदृच्छया । आन्तरेष्वपि कार्येषु पतिं नोत्थापयेत् क्वचित् ॥३०॥
क्लीबं वा दुरवस्थं वा व्याधितं वृद्धमेव च । सुखितं दुःखितं वाऽपि पतिमेकं न लङ्घयेत् ॥३१॥
स्त्रीधर्मिणी त्रिरात्रं च स्वमुखं नैव दर्शयेत् । स्ववाक्यं श्रावयेन्नापि यावत् स्नानान्न शुध्यति ॥३२॥
सुस्नाता भर्तृवदनमीक्षेतान्यस्य न क्वचित् । अथवा मनसि ध्यात्वा पतिं भानुं विलोकयेत् ॥३३॥
हरिद्राकुङ्कुमं चैव सिन्दूरं कज्जलादिकम् । कूर्पासकं च ताम्बूलं माङ्गल्याभरणादिकम् ॥३४॥
केशसंस्कारकबरीकरकर्णादिभूषणम् । भर्तुरायुष्यमिच्छन्ती दूषयेन्न पतिव्रता ॥३५॥
न रजक्या न बन्धक्या तथा श्रवणया न च । न च दुर्भगया क्वापि सखित्वं कारयेत् क्वचित् ॥३६॥

प्रणाम कर हाथ जोड़ उनसे कहे ॥ २० ॥ हे स्वामिन् ! किस निमित्त आपने बुलाया है, कृपाकर आज्ञा दीजिए और उस आज्ञा को प्रसन्नता से सम्पन्न करे ॥ २१ ॥ दरवाजे पर खड़ी होकर बहुत काल इधर-उधर न देखे और न तो दूसरे के घर पर जावे । किसी का भेद लेकर किसी अन्य के सामने उसको प्रकाशित न करे ॥ २२ ॥ बिना कहे ही पति के पूजन की सामग्री प्रस्तुत करे और पति के हित के लिए निरन्तर अवसर की प्रतीक्षा करती रहे ॥ २३ ॥ पति की आज्ञा के बिना कभी भी तीर्थयात्रा के लिए न जाय, इतना ही नहीं, पति की आज्ञा के विना किसी समाज तथा उत्सव देखने के लिए भी न जावे ॥ २४ ॥

जिस स्त्री को तीर्थयात्रा की इच्छा हो वह अपने स्वामी का चरणामृत ले सन्तुष्ट हो जाये। क्योंकि पति के चरणोदक में सभी तीर्थ एवं क्षेत्र निवास करते हैं ॥ २५ ॥ पति के भोजन करने के पश्चात् उसका उच्छिष्ट जो भी इष्ट अन्नादि हो उसे पति-प्रदत्त महा प्रसाद समझकर पतिव्रता स्त्री भोजन करे ॥ २६ ॥ देवता, पितर, अतिथि, सेवक, गौ एवं भिक्षुक को बिना दिये अन्न का भोजन न करे ॥ २७ ॥ घर की समस्त सामग्री ठीक तरह से रखे। नित्य उत्साहयुक्त तथा सावधान रहे और अधिक व्यय करने से बचे। इस प्रकार सर्वदा पातिव्रत्य धर्म का पालन करे ॥ २८ ॥ पति की आज्ञा के विना कोई उपवास तथा व्रत न करे। अन्यथा उसका फल तो दूर रहा उसे नरक की प्राप्ति होती है ॥ २९ ॥ सुखपूर्वक आनन्द से बैठे हुए तथा अपनी इच्छा से रमण करते हुए पति को आवश्यक कार्य आ पड़ने पर भी न उठावे ॥ ३० ॥

क्लीव, दुःखी, व्याधिग्रस्त, वृद्ध, सुखी अथवा दुःखी चाहे जैसा-कैसा भी पति क्यों न हो उसका अपमान न करे ॥ ३१ ॥ मासिक धर्म प्राप्त हो जाने पर आरम्भ से तीन रात्रि पर्यन्त अपना मुख पति को न दिखावे, और जब तक चतुर्थ दिन स्नान से शुद्ध न हो तब तक अपना शब्द भी न सुनावे ॥ ३२ ॥ चतुर्थ दिन स्नान करने के पश्चात् अपने पति का ही प्रथम मुख देखे, कभी भी अन्य का मुख न देखे अथवा पति के न होने पर पति का ध्यान कर सूर्य का दर्शन करे ॥ ३३ ॥ पति के आयुष्य की इच्छा करनेवाली पतिव्रता स्त्री हरिद्रा, कुंकुम, सिन्दूर, कज्जल, कूर्पासक (चोली), ताम्बूल, माङ्गलिक आभूषण, केशों का संस्कार और केशपाश, हाथ में कंगन एवं कानों में कर्णफूल नित्य धारण करे, इनका परित्याग कभी किसी भी अवस्था में न करे ॥ ३४-३५ ॥ धोबिन, बन्ध्या, व्यभिचारिणी, संन्यासिनी अथवा दुर्भाग्ययुक्ता विधवा

पतिविद्वेषिणीं नारीं न सा संभाषयेत् क्वचित्। नैकाकिनी क्वचित्तिष्ठेन्नग्ना स्नायान्न च क्वचित्॥३७॥
नोलूखले न मुसले न वर्द्धन्यां दृषद्यपि। न यन्त्रके न देहल्यां सती च प्रवसेत् क्वचित् ॥३८॥
विना व्यवायसमयं प्रागल्भ्यं नाचरेत् क्वचित्। यत्र यत्र रुचिर्भर्तुस्तत्र प्रेमवती भवेत् ॥३९॥
हृष्टा हृष्टे विषण्णा स्याद् विषण्णास्ये प्रिये प्रिया। पतिव्रता भवेद् देवी सदा पतिहितैषिणी ॥४०॥
एकरूपा भवेत् पुण्या सम्पत्सु च विपत्सु च। विकृतिं स्वात्मनः क्वापि न कुर्याद्धैर्यधारिणी ॥४१॥
सर्पिर्लवण-तैलादिक्षयेऽपि च पतिव्रता। पतिं नास्तीति न ब्रूयादायासेषु न योजयेत् ॥४२॥
विधेर्विष्णोर्हराद्वापि पतिरेकोऽधिको मतः। पतिव्रताया देवेशि! स्वपतिः शिव एव च ॥४३॥
व्रतोपवासनियमं पतिमुल्लङ्घ्य याऽऽचरेत्। आयुष्यं हरते भर्तुर्मृता निरयमृच्छति ॥४४॥
उक्ता प्रत्युत्तरं दद्याद्या नारी क्रोधतत्परा। सरमा जायते ग्रामे शृगाली निर्जने वने ॥४५॥
उच्चासनं न सेवेत न व्रजेद् दुष्टसन्निधौ। न च कातरवाक्यानि वदेन्नारीपतिं क्वचित् ॥४६॥
अपवादं न च ब्रूयात् कलहं दूरतस्त्यजेत्। गुरूणां सन्निधौ क्वापि नोच्चैर्ब्रूयान्न वै हसेत् ॥४७॥
बाह्यादायान्तमालोक्य त्वरितान्नजलाशनैः। ताम्बूलैर्वसनैश्चापि पादसंवाहनादिभिः ॥४८॥
तथैव चाटुवचनैः स्वेदसन्नोदनैः परैः। या प्रियं प्रीणयेत् प्रीता त्रिलोकी प्रीणिता तया ॥४९॥
मितं ददाति जनको मितं भ्राता मितं सुतः। अमितस्य हि दातारं भर्तारं पूजयेत् सदा ॥५०॥
भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च। तस्मात् सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत् ॥५१॥

स्त्री से कभी मित्रता न करे॥ ३६॥ जो स्त्री अपने पति से द्वेष करती हो उससे सम्भाषण न करे, कभी अकेली न रहे और न नङ्गी होकर कभी स्नान ही करे॥ ३७॥ ओखली, मूसल, बुहारी, सील, लोढ़ा तथा देहली पर सती स्त्री कभी न बैठे॥ ३८॥ काम (मैथुन) के अतिरिक्त और किसी समय पति से धृष्टता न करे, अपना पति जिससे प्रेम करे, उसी से प्रेम करे॥ ३९॥ पति के प्रसन्न होने पर प्रसन्न तथा पति के दुःखी होने पर दुःखी तथा पति के प्रिय में ही अपना प्रिय समझे। इस प्रकार पतिव्रता स्त्री सदैव पति के हित की इच्छा करे॥ ४०॥

पतिव्रता स्त्री सदैव सम्पत् एवं विपत् दोनों अवस्थाओं में एकरूप से रहे। विकार उपस्थित होने पर कभी विकृत न होवे और सर्वदा धैर्य धारण करे॥ ४१॥ घी, नमक, तेल आदि के न होने पर भी पति से उसके लिए शिकायत न करे और पति को किसी आयास साध्य कार्य में नियुक्त न करे॥ ४२॥ ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव से भी अधिक पति का महत्त्व है। अतः हे देवेश! पतिव्रता स्त्री अपने पति को साक्षात् शिव स्वरूप ही समझे॥ ४३॥ पति की आज्ञा के विना जो स्त्री व्रत, उपवास तथा नियमादि का आचरण करती है तो मर जाने पर उसे नरक प्राप्त होता है॥ ४४॥ जो स्त्री क्रुद्ध होकर अपने पति का उत्तर-प्रत्युत्तर करती है वह ग्राम की कुतिया अथवा निर्जन वन में शृगाली (सियारिन) होती है॥ ४५॥ स्त्री को चाहिए कि वह पति से ऊँचे स्थान पर न बैठे, दुष्टों के समीप न जाय और कभी भी पति से कातर (उद्वेग जनक) वाक्य न कहे॥ ४६॥ किसी की निन्दा या आक्षेपयुक्त बात न कहे, दूर से ही कलह का परित्याग करे। गुरुजनों के समीप कभी जोर से न बोले और न जोर से हँसे॥ ४७॥ पति को बाहर से आये हुए देख शीघ्रता से अन्न, जल, भोजन, ताम्बूल, वस्त्र, पादप्रक्षालन, मीठे वचन तथा पंखा के द्वारा स्वेदापनयन कर उसकी सेवा करे। जो स्त्री अपने इन आचरणों से स्वामी को प्रसन्न रखती है मानो उसने त्रैलोक्य जीत लिया॥ ४८-४९॥ माता, पिता, पुत्र, भाई तो स्त्री को बहुत थोड़ा ही सुख देते हैं परन्तु पति तो अपरिमित सुख देता है, इसलिए स्त्री को चाहिए कि वह पति का सदैव पूजन करे॥ ५०॥ स्त्रियों का पति ही देवता, गुरु, धर्म, तीर्थ एवं व्रतादि सब कुछ है। इस कारण सब कुछ छोड़कर एकमात्र पति का ही पूजन करे॥ ५१॥

या भर्तारं परित्यज्य रहश्चरति दुर्मतिः । उलूकी जायते क्रूरा वृक्षकोटरशायिनी ॥५२॥
ताडिता ताडितुं चेच्छेत् सा व्याघ्री वृषदंशिका । कटाक्षयति याऽन्यं वै केकराक्षी तु सा भवेत् ॥५३॥
या भर्तारं परित्यज्य मिष्टमश्नाति केवलम् । ग्रामे वा सूकरी भूयाद् वल्गुर्वापि स्वविड्भुजा ॥५४॥
या तुंकृत्य प्रियं ब्रूयान्मूका सा जायते खलु । या सपत्नीं सदेर्ष्येत दुर्भगा सा पुनः पुनः ॥५५॥
दृष्टिं विलुप्य भर्तुर्या कञ्चिदन्यं समीक्षते । काणा च विमुखी चापि कुरूपाऽपि च जायते ॥५६॥
जीवहीनो यथा देहः क्षणादशुचितां व्रजेत् । भर्तृहीना तथा योषित्सुस्नाताप्यशुचिः सदा ॥५७॥
सा धन्या जननी लोके स धन्यो जनकः पिता । धन्यः स च पतिर्यस्य गृहे देवी पतिव्रता ॥५८॥
पितृवंश्या मातृवंश्याः पतिवंश्यास्त्रयस्त्रयः । पतिव्रतायाः पुण्येन स्वर्गे सौख्यानि भुञ्जते ॥५९॥
शीलभङ्गेन दुर्वृत्ताः पातयन्ति कुलत्रयम् । पितुर्मातुस्तथा पत्युरिहामुत्रापि दुःखिताः ॥६०॥
पतिव्रतायाश्चरणो यत्र यत्र स्पृशेद् भुवम् । तत्र तत्र भवेत् सा हि पापहन्त्री सुपावनी ॥६१॥
विभुः पतिव्रता स्पर्शं कुरुते भानुमानपि । सोमो गन्धवहश्चापि स्वपावित्र्याय नान्यथा ॥६२॥
आपः पतिव्रतास्पर्शमभिलष्यन्ति सर्वदा । अद्य जाड्यविनाशो नो जातस्त्वद्यान्यपावनाः ॥६३॥
भार्या मूलं गृहस्थस्य भार्या मूलं सुखस्य च । भार्या धर्मफलावाप्त्यै भार्या सन्तानवृद्धये ॥६४॥
गृहे गृहे न किं नार्य्यो रूपलावण्यगर्विताः । परं विश्वेशभक्त्यैव लभ्यते स्त्री पतिव्रता ॥६५॥

जो दुष्ट स्त्री अपने पति को छोड़कर, एकान्त में दूसरे के पास जाती है वह वृक्ष के कोटर में रहने वाली क्रूर उलूकी होती है ॥ ५२ ॥ जो स्वामी के ताड़न करने पर स्वयं ताड़न करना चाहती है वह व्याघ्री अथवा वृषदंशिका (बिडाल) होती है। जो अपने पति को छोड़कर अन्य से कटाक्ष करती है वह केकराक्षी (बैंतही) होती है ॥ ५३ ॥ जो अपने पति को बिना दिये अकेले मिष्ठान्न खा लेती है वह ग्रामशूकरी अथवा अपना विष्ठा खानेवाली वल्गु (छाग) होती है ॥ ५४ ॥ जो अपने पति को 'तूं' कहकर रेरी मारती है वह जन्मान्तर में गूंगी होती है। और जो अपनी सवत से डाह करती है वह वारम्वार विधवा होती है ॥ ५५ ॥ जो अपने स्वामी की दृष्टि बचाकर किसी अन्य पुरुष को देखती है, वह काणी, कुमुखी तथा कुरूपा होती है ॥ ५६ ॥ जैसे जीव के बिना देह क्षणमात्र में अशुचि हो जाता है, उसी प्रकार अपने स्वामी के बिना स्त्री अच्छी तरह स्नान करने पर भी अपवित्र ही रहती है ॥ ५७ ॥ इस लोक में उसकी माता धन्य है और उसके पिता भी धन्य हैं, तथा उसका वह पति भी धन्य है, जिसके घर में पतिव्रता स्त्री का निवास होता है ॥ ५८ ॥

पतिव्रता स्त्री के पुण्य से उसके मातृवंश, पितृवंश तथा पति के वंश के तीन-तीन पूर्वज स्वर्ग में सुख भोगते हैं ॥ ५९ ॥ किन्तु अपना शीलभङ्ग (व्यभिचार) कराकर दुराचारिणी स्त्रियाँ अपने माता, पिता तथा पति के तीन-तीन पुरुषों को नरक में गिराती हैं। ओर वे इस लोक में तथा परलोक में सदैव दुःखी रहते हैं ॥ ६० ॥ पतिव्रता के चरण जहाँ-जहाँ पड़ते हैं वहाँ-वहाँ की पृथ्वी सदा पाप का हरण करनेवाली तथा पवित्र होती है ॥ ६१ ॥ सर्वव्यापक सूर्य अपनी किरणों से सवको पवित्र करते हुए भी अपनी पवित्रता के लिए पतिव्रता का स्पर्श करते हैं, इसी प्रकार सोम तथा वायु भी सबको पवित्र करने पर अपनी पवित्रता के लिए पतिव्रता का स्पर्श करते हैं ॥ ६२ ॥ जल तो सदैव पतिव्रता का स्पर्श चाहते हैं, वे कहते हैं कि आज इस पतिव्रता के स्पर्श से हमारी जड़ता नष्ट हो गयी और हममें दूसरे को पवित्र करने की योग्यता प्राप्त हुई ॥ ६३ ॥ भार्या ही गृहस्थ का मूल है, भार्या ही सुख का मूल है, धर्मफल की प्राप्ति एवं सन्तानवृद्धि के लिए भार्या की अत्यन्त आवश्यकता है ॥ ६४ ॥ क्या अपने रूप-लावण्य का गर्व करने वाली स्त्रियाँ प्रत्येक घरों में नहीं हैं अपितु हैं किन्तु विश्वेश्वर में भक्ति करने से ही पतिव्रता स्त्री प्राप्त होती है ॥ ६५ ॥

परलोकस्त्वयं लोको जीयते भार्यया द्वयम् । देवपित्रतिथीज्यादि नाभार्यः कर्म चार्हति ॥६६॥
गृहस्थः स हि विज्ञेयो यस्य गेहे पतिव्रता । ग्रस्यतेऽन्यान् प्रतिदिनं राक्षस्या जरया यथा ॥६७॥
यथा गङ्गावगाहेन शरीरं पावनं भवेत् । तथा पतिव्रतां दृष्ट्वा सकलं पावनं भवेत् ॥६८॥
न गङ्गाया तया भेदो या नारी पतिदेवता । उमाशिवसमौ साक्षात्तस्मात्तौ पूजयेद् बुधः ॥६९॥
तारः पतिः श्रुतिर्नारी क्षमा सा स स्वयं तपः । फलं पतिः सत्क्रिया सा धन्यौ तौ दम्पती शिवे ॥७०॥
एवं पतिव्रताधर्मो वर्णितस्ते गिरीन्द्रजे ! । तद्भेदान् शृणु सुप्रीत्या सावधानतयाऽद्य मे ॥७१॥
चतुर्विधास्ताः कथिता नार्यो देवि ! पतिव्रताः । उत्तमादिविभेदेन स्मरतां पापहारिकाः ॥७२॥
उत्तमा मध्यमा चैव निकृष्टातिनिकृष्टिका । ब्रुवे तासां लक्षणानि सावधानतया शृणु ॥७३॥
स्वप्नेऽपि यन्मनो नित्यं स्वपतिं पश्यति ध्रुवम् । नाऽन्यं परपतिं भद्रे ! उत्तमा सा प्रकीर्तिता ॥७४॥
या पितृभ्रातृसुतवत् परं पश्यति सद्धिया । मध्यमा सा हि कथिता शैलजे वै पतिव्रता ॥७५॥
बुद्ध्वा स्वधर्मं मनसा व्यभिचारं करोति न । निकृष्टा कथिता सा हि सुचरित्रा च पार्वति ! ॥७६॥
पत्युः कुलस्य च भयाद्व्यभिचारं करोति न । पतिव्रताऽधमा सा हि कथिता पूर्वसूरिभिः ॥७७॥
चतुर्विधा अपि शिवे पापहन्त्र्यः पतिव्रताः । पावनाः सर्वलोकानामिहामुत्रापि हर्षिताः ॥७८॥
पातिव्रत्यप्रभावेणाऽत्रिस्त्रिया त्रिसुरार्थनात् । जीवितो विप्र एको हि मृतो वाराहशापतः ॥७९॥
एवं ज्ञात्वा शिवे नित्यं कर्तव्यं पतिसेवनम् । त्वया शैलात्मजे प्रीत्या सर्वकामप्रदं सदा ॥८०॥

भार्या के द्वारा ही इस लोक तथा परलोक इन दोनों लोकों पर विजय प्राप्त किया जा सकता है। देवकर्म, पितृकर्म, अतिथिकर्म तथा यज्ञकर्म बिना भार्या के फलवान् नहीं होता ॥ ६६ ॥ गृहस्थ उसी को कहते हैं जिसके घर में पतिव्रता स्त्री का निवास है, और स्त्रियाँ तो प्रतिदिन जरा राक्षसी के समान पुरुष को ग्रसती रहती हैं ॥ ६७ ॥ जिस प्रकार गङ्गास्नान से शरीर पवित्र हो जाता है, उसी प्रकार पतिव्रता स्त्री के दर्शनमात्र से सब कुछ पवित्र हो जाता है ॥ ६८ ॥ गङ्गा तथा पतिव्रता स्त्री में कोई भेद नहीं है, वे दोनों स्त्री-पुरुष, शिव तथा पार्वती के तुल्य हैं, अतः बुद्धिमान् पुरुष को उनका पूजन करना चाहिए ॥ ६९ ॥ पति ॐकार है, तो स्त्री वेदश्रुति है, पति तप है तो स्त्री क्षमा है, स्त्री सत्क्रिया है तो पति उसका फल है। हे पार्वती ! इस प्रकार के दम्पति धन्य हैं ॥ ७० ॥ हे पार्वति ! इस प्रकार से मैंने तुमसे पातिव्रत्य धर्म का निरूपण किया। अब उन पतिव्रताओं का भेद बड़े प्रेम तथा सावधानी के साथ श्रवण करो ॥ ७१ ॥

पतिव्रता के उत्तमादि चार भेद होते हैं, जिनके स्मरण मात्र से ही पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ७२ ॥ उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तथा अतिनिकृष्ट ये चार भेद पतिव्रताओं के होते हैं, अब मैं उनका लक्षण कहती हूँ, तुम सावधान होकर सुनो ॥ ७३ ॥ जिसका मन स्वप्न में भी अपने पति को देखता है, स्वप्न अथवा जाग्रत् अवस्था में भी कभी परपति में नहीं जाता। हे पार्वती ! उत्तम पतिव्रता के लक्षण हैं ॥ ७४ ॥ जो दूसरों के पतियों को पिता, भ्राता तथा पुत्र के समान सद्बुद्धि से देखती है, हे पार्वती ! यह मध्यम कोटि की पतिव्रता हैं ॥ ७५ ॥ जो स्त्री मन में अपना धर्म समझकर व्यभिचार नहीं करती, वह सुन्दर चरित्रवाली स्त्री निकृष्ट पतिव्रता कही गयी है ॥७६॥ जो मन में इच्छा रहते हुए भी पति एवं कुल के भय से व्यभिचार नहीं करती, उनको पुराने लोगों ने अतिनिकृष्ट पतिव्रता कहा है ॥ ७७ ॥ हे शिवे ! ये चारों प्रकार की पतिव्रताएँ पापहरण करने वाली हैं, सम्पूर्ण लोकों को पवित्र करने वाली हैं तथा इस लोक एवं परलोक में आनन्द प्रदान करती हैं ॥ ७८ ॥ पातिव्रत्य के प्रभाव से ही अत्रिप्रिया अनसूया ने तीनों देवताओं के प्रार्थना करने पर वाराह के शाप से मरे हुए ब्राह्मण को जीवनदान दिया ॥ ७९ ॥ हे शिवे ! ऐसा जानकर

जगदम्बा महेशी त्वं शिवः साक्षात् पतिस्तव । तव स्मरणतो नार्यो भवन्ति हि पतिव्रता ॥८१॥
त्वदग्रे कथनेनाऽनेन किं देवि ! प्रयोजनम् । तथापि कथितं मेऽद्य जगदाचारतः शिवे ! ॥८२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा विररामासौ द्विजस्त्री सुप्रणम्य ताम् । शिवां मुदमतिं प्राप पार्वती शङ्करप्रिया ॥८३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
पतिव्रताधर्मवर्णनं नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(विवाह कृत्य समाप्त कर शिव का कैलास गमन)

ब्रह्मोवाच

अथ सा ब्राह्मणी देव्यै शिक्षयित्वा व्रतं च तत् । प्रोवाच मेनामामन्त्र्य यात्रामस्याश्च कारय ॥ १ ॥
तथाऽस्त्विति च सम्प्रोच्य प्रेमवश्या बभूव सा । धृतिं धृत्वाऽऽहूय कालीं विश्लेषविरहाकुला ॥ २ ॥
अत्युच्चै रोदनं चक्रे संश्लिष्य च पुनः पुनः । पार्वत्यपि रुरोदोच्चैरुच्चरन्ती कृपावचः ॥ ३ ॥
शैलप्रिया शिवा चापि मूर्च्छामाप शुचार्दिता । मूर्च्छां प्रापुर्देवपत्न्यः पार्वत्या रोदनेन च ॥ ४ ॥
सर्वाश्च रुरुदुर्नार्यः सर्वमासीदचेतनम् । स्वयं रुरोद योगीशो गच्छन् कोऽन्यः परः प्रभुः ॥ ५ ॥
एतस्मिन्नन्तरे शीघ्रमाजगाम हिमालयः । स सर्वतनयस्तत्र सचिवैश्च द्विजैः परैः ॥ ६ ॥
स्वयं रुरोद मोहेन वत्सां कृत्वा स्ववक्षसि । क्व यासीत्येवमुच्चार्य शून्यं कृत्वा मुहुर्मुहुः ॥ ७ ॥

तुमको अपने पति की सेवा करनी चाहिए क्योंकि, हे शैलात्मजे ! ऐसा करने से तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होंगे ॥ ८० ॥ तुम तो साक्षात् जगत् की माता तथा माहेश्वरी हो और जगत्पिता महेश्वर तुम्हारे साक्षात् पति हैं, तुम्हारे नाम के स्मरणमात्र से स्त्रियाँ पतिव्रता होंगी ॥ ८१ ॥ हे देवि ! तुम्हारे आगे विशेष कहने का प्रयोजन नहीं है फिर भी हे कल्याणि ! संसार के आचरण के अनुसार मैंने तुम्हें यह सीख दी है ॥ ८२ ॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर वह द्विजपत्नी भगवती को प्रणाम कर मौन हो गयी और उस उपदेश के श्रवण से शङ्करप्रिया शिवा अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं ॥ ८३ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में पतिव्रताधर्मवर्णन नामक चौवनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५४ ॥

*

ब्रह्मा जी बोले—इस प्रकार उस ब्राह्मणी देवी ने भगवती को पातिव्रत्य धर्म की शिक्षा देकर मेना से कहा—अब इनकी यात्रा की तैयारी कीजिए ॥ १ ॥ मेना भी 'तथास्तु' कहकर प्रेम से विभोर हो गयी, फिर धैर्य धारण कर उसने काली को बुलाया और उसके विरह से व्याकुल हो उठी, उस समय वह मेना पार्वती को बारम्बार गले लगाकर ऊँचे स्वर में रोने लगी, इधर पार्वती भी दीन वचन कह-कहकर ऊँचे स्वर से रोने लगी ॥ २-३ ॥ फिर शोक से व्याकुल हुई मेना तथा पार्वती मूर्च्छित हो गयी । पार्वती के रोने के शब्द से सभी समागत देवपत्नियाँ भी मूर्च्छित हो गयीं ॥ ४ ॥ उस समय सभी स्त्रियाँ रोने लगीं तथा अचेत होकर गिर पड़ीं, योगीश्वर विदा होते हुए स्वयं भी रो पड़े । जब परमात्मा सदाशिव की ऐसी अवस्था हो गयी तो दूसरों का क्या कहें ॥ ५ ॥ इसी समय बड़ी शीघ्रता के साथ हिमालय वहाँ आ पहुँचे, उनके साथ उनके पुत्र, मन्त्री तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण भी थे ॥ ६ ॥ उस समय हिमालय भी पार्वती को गोद में

ततः पुरोहितो विप्रैरध्यात्मविद्यया सुखम् । सर्वान् प्रबोधयामास कृपया ज्ञानवत्तरः ॥ ८ ॥
ननाम पार्वती भक्त्या मातरं पितरं गुरुम् । महामाया भवाचारात् रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः ॥ ९ ॥
पार्वत्या रोदनेनैव रुरुदुः सर्वयोषितः । नितरां जननी मेना यामयो भ्रातरस्तथा ॥ १० ॥
पुनः पुनः शिवामाता यामयोऽन्याश्च योषितः । भ्रातरो जनकः प्रेम्णा रुरुदुर्बद्धसौहृदाः ॥ ११ ॥
तदा विप्राः समागत्य बोधयामासुरादरात् । लग्नं निवेदयामासुर्यात्रायाः सुखदं परम् ॥ १२ ॥
ततो हिमालयो मेनां धृत्वा धैर्यं विवेकतः । शिबिकामानयामास शिवारोहणहेतवे ॥ १३ ॥
शिवामारोहयामासुस्तत्र विप्राङ्गनाश्च ताम् । आशिषं प्रददुः सर्वाः पिता माता द्विजास्तथा ॥ १४ ॥
महाराज्ञ्युपचारांश्च ददौ मेना गिरिस्तथा । नानाद्रव्यसमूहं च परेषां दुर्लभं शुभम् ॥ १५ ॥
शिवा नत्वा गुरून् सर्वान् जनकं जननीं तथा । द्विजान् पुरोहितं यामीस्त्रीस्तथान्या ययौ मुने ! ॥ १६ ॥
हिमाचलोऽपि ससुतोऽगच्छत् स्नेहवशी बुधः । प्राप्तस्तत्र प्रभुर्यत्र सामरः प्रीतिमावहन् ॥ १७ ॥
प्रीत्याऽभिरेमिरे सर्वे महोत्सवपुरःसरम् । प्रभुं प्रणेमुस्ते भक्त्या प्रशंसन्तोऽविशन् पुरीम् ॥ १८ ॥
जातिस्मरां स्मारयामि नित्यं स्मरसि चेद्वद । लीलया त्वां च देवेशि ! सदा प्राणप्रिया मम ॥ १९ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य महेशस्य स्वनाथस्याथ पार्वती । शङ्करस्य प्रिया नित्यं सस्मितोवाच सा सती ॥ २० ॥

लेकर मोहवश रोने लगे । हे वत्से ! इस घर को शून्य कर तुम कहाँ जा रही हो ? ऐसा कह वे बारम्वार रोने लगे ॥ ७ ॥ तब ब्राह्मणों के साथ उनके ज्ञानी श्रेष्ठ पुरोहित ने उन पर कृपा कर अध्यात्म विद्या क उपदेश कर उन्हें समझाया ॥ ८ ॥

पार्वती ने विदाई के समय माता, पिता तथा गुरुजनों की प्रणाम किया और महामाया भी लोकाचार वश रोने लगीं ॥ ९ ॥ पार्वती के रोने से वहाँ की सारी स्त्रियाँ रोने लगीं और माता, सगे-सम्बन्धी तथा भाई तो अत्यन्त रोने लगे ॥ १० ॥ इस प्रकार पार्वती की माता, सगे-सम्बन्धी तथा अन्य स्त्रियाँ, भाई, पिता तथा सखियाँ अत्यन्त प्रेमवश बारम्वार राने लगीं ॥ ११ ॥ तब ब्राह्मणों ने आकर अत्यन्त आदर के साथ सबको समझाया और कहने लगे की यात्रा के लिए आवश्यक सुखदाई लग्न की बेला बीत रही है, बिलम्ब मत करो ॥ १२ ॥ तब हिमालय ने मेना को धीरज बँधाया और स्वयं विवेक युक्त होकर पार्वता को चढ़ने के निमित्त शिविका मँगवायी ॥ १३ ॥ फिर ब्राह्मण-स्त्रियों ने पार्वती को पालकी पर चढ़ाया, माता, पिता, ब्राह्मण आदि गुरुजनों ने आशीर्वाद प्रदान किया ॥ १४ ॥ मेना और हिमालय ने पार्वती का महाराज्ञी युक्त उपचार से पूजन किया और अन्यों के लिए सर्वथा दुर्लभ द्रव्य-समूह दिये ॥ १५ ॥ पार्वती ने भी अपन माता, पिता, गुरुजन, ब्राह्मण, पुरोहित, सम्बन्धी एवं अन्य स्त्रियो को प्रणाम किया, फिर शिविका चल दी ॥ १६ ॥ परम बुद्धिमान् हिमालय भी अपने पुत्रों के साथ प्रेम से विभोर हो पालकी के साथ चले और वहाँ पहुँचे जहाँ सभी देवता ठहरे हुए थे ॥ १७ ॥ फिर सब लोग भक्ति से सदाशिव को प्रणाम कर अपने नगर को चले आये । इधर पार्वती के कैलास पहुँचते ही सभी लोगों ने बहुत बड़ा उत्सव किया ॥ १८ ॥ शिव जी पार्वती के सहित अपने स्थान पर पहुँच कर उनसे कहने लगे, हे देवशि ! मैं तुम्हें जन्मान्तर का स्मरण करा रहा हूँ और यदि तुम अपनी लीला से उसे स्मरण करती हो तो बताओ, तुम तो आज से नहीं जन्म-जन्मान्तर से हमारी प्राणप्रिया हो ॥ १९ ॥

ब्रह्मा जी बोले—इस प्रकार अपने स्वामी महेश के वचन सुनकर हँसती हुई शिवप्रिया पार्वती बोलीं ॥ २० ॥

पार्वत्युवाच

सर्वं स्मरामि प्राणेश ! मौनीभूतो भवेति च । प्रस्तावोचितमद्याशु कार्यं कुरु नमोऽस्तु ते ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य प्रियावाक्यं सुधाधाराशतोपमम् । मुमुदेऽतीव विश्वेशो लौकिकाचारतत्परः ॥२२॥

शिवः सम्भृतसम्भारो नानावस्तुमनोहरम् । भोजयामास देवश्च नारायणपुरोगमान् ॥२३॥

तथान्यान् निखिलान् प्रीत्या स्वविवाहसमागतान् । भोजयामास सुरसमन्नं बहुविधं प्रभुः ॥२४॥

ततो भुक्त्वा च ते देवा नानारत्नविभूषिताः । सस्त्रीकाः सगणाः सर्वे प्रणेमुश्चन्द्रशेखरम् ॥२५॥

संस्तुत्य वाग्भिरिष्टाभिः परिक्रम्य मुदान्विताः । प्रशंसन्तो विवाहं च स्वधामानि ययुस्ततः ॥२६॥

नारायणं मुने मां च प्रणनाम शिवः स्वयम् । लौकिकाचारमाश्रित्य यथा विष्णुश्च कश्यपम् ॥२७॥

मयाश्लिष्याशिषं दत्त्वा शिवस्य पुनरग्रतः । मत्वा स तं परं ब्रह्म चक्रे च स्तुतिरुत्तमा ॥२८॥

तमामन्त्र्य मया विष्णुः साञ्जलिः शिवयोर्मुदा । प्रशंसंस्तद्विवाहं च जगाम स्वालयं परम् ॥२९॥

शिवोऽपि स्वगिरौ तस्थौ पार्वत्या विहरन् मुदा । सर्वे गणाः सुखं प्रापुरतीव स्वभजञ्छिवौ ॥३०॥

इत्येवं कथितस्तात शिवोद्वाहः सुमङ्गलः । शोकघ्नो हर्षजनक आयुष्यो धनवर्द्धनः ॥३१॥

य इमं शृणुयान्नित्यं शुचिस्तद्गतमानसः । श्रावयेद्वाथ नियमाच्छिवलोकमवाप्नुयात् ॥३२॥

इदमाख्यानमाख्यातमद्भुतं मङ्गलायनम् । सर्वविघ्नप्रशमनं सर्वव्याधिविनाशनम् ॥३३॥

पार्वती बोलीं--हे प्राणेश ! मुझे सब स्मरण है, हे भव ! इस विषय में आप मौन धारण करें, आज जो उपस्थित कार्य है, उसी का सम्पादन करें ॥ २१ ॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार अमृत के सैकड़ों धारा के समान पार्वती के वचन सुन विश्वेश्वर प्रसन्न हो गये और लौकिकाचार में संलग्न हो गये ॥ २२ ॥ शिव जी ने अनेक भोजन-सामग्री एकत्रित कर नारायण आदि सभी देवताओं को नाना मनोहर वस्तुओं का भोजन कराया ॥ २३ ॥ इसी प्रकार विवाह में आये हुए सभी लोगों को यथायोग्य विधिवत् भोजन कराया ॥ २४ ॥ इस प्रकार सभी देवगणों ने अपनी स्त्रियों के सहित नाना रत्नों से विभूषित हो भवानीपति चन्द्रशेखर को प्रणाम किया ॥ २५ ॥ और सुन्दर वाणी से शिव की स्तुति करते हुए उनकी परिक्रमा की, फिर विवाह की बड़ाई करते हुए वे अपने-अपने स्थानों को चले गये ॥ २६ ॥ हे नारद ! शिव जी ने मुझे तथा विष्णु को स्वयं उस प्रकार प्रणाम किया, जैसे लोकाचार से विष्णु कश्यप को प्रणाम करते हैं ॥ २७ ॥ मैंने उन्हें गले लगाकर उनको आशीर्वाद दिया, पुनः शङ्कर को परब्रह्म जानकर उनके आगे खड़े होकर मैंने उनकी स्तुति की ॥ २८ ॥ पश्चात् मैं तथा विष्णु, शिव एवं शिव को हाथ जोड़ प्रणाम कर विवाह की प्रशंसा करते हुए अपने-अपने स्थानों को चले आये ॥ २९ ॥ इधर शिव जी भी कैलास पर स्थित हो पार्वती के साथ विहार करने लगे और उनके सभी गण आनन्दपूर्वक प्रेम से शिवाशिव का भजन करने लगे ॥ ३० ॥

हे तात ! इस प्रकार शिवा एवं शिव का मङ्गलदायक विवाह मैंने तुमसे वर्णन किया, यह शिवाशिव के विवाह का चरित्र शोक को दूर करनेवाला, आनन्द बढ़ानेवाला एवं आयु तथा धन को प्रदान करनेवाला है ॥ ३१ ॥ जो पवित्र होकर शिव जी में मन लगाकर नित्य इस कथा को नियमपूर्वक सुनते हैं अथवा दूसरों को सुनाते हैं, वे अवश्य शिवलोक प्राप्त करते हैं ॥ ३२ ॥ यह अद्भुत आख्यान सुननेवालों तथा सुनानेवाले को मङ्गल प्रदान करता है । सभी प्रकार के विघ्नों को नाश करनेवाला तथा समस्त व्याधियों

यशस्यं स्वर्ग्यमायुष्यं पुत्रपौत्रकरं परम् । सर्वकामप्रदं चेह भुक्तिदं मुक्तिदं सदा ॥३४॥
अपमृत्युप्रशमनं महाशान्तिकरं शुभम् । सर्वदुःस्वप्नशमनं बुद्धिप्रज्ञादिसाधनम् ॥३५॥
शिवोत्सवेषु सर्वेषु पठितव्यं प्रयत्नतः । शुभेप्सुभिर्जनैः प्रीत्या शिवसन्तोषकारणम् ॥३६॥
पठेत् प्रतिष्ठाकाले तु देवादीनां विशेषतः । शिवस्य सर्वकार्यस्य प्रारम्भे च सुप्रीतितः ॥३७॥
शृणुयाद् वा शुचिर्भूत्वा चरितं शिवयोः शिवम् । सिध्यन्ति सर्वकार्याणि सत्यं सत्यं न संशयः ॥३८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे ब्रह्मनारदसंवादे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शिवकैलास-गमनवर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

समाप्तोऽयं रुद्रसंहितायास्तृतीयः पार्वतीखण्डः ।

को दूर करनेवाला है ॥ ३३ ॥ यह आख्यान यश देनेवाला, स्वर्ग एवं आयु प्रदान करनेवाला, पुत्र तथा पौत्रादि सन्तति परम्परा को बढ़ानेवाला, सभी कामनाओं को सिद्ध करनेवाला तथा योग और मोक्ष देनेवाला है । ३४ ॥ अपमृत्यु को दूर करनेवाला, महा शान्तिकारक तथा परम कल्याणकारक है, सारे दुःस्वप्न को शान्त करनेवाला तथा बुद्धि एवं ज्ञान प्रदान करनेवाला है ॥ ३५ ॥ अपना कल्याण चाहने वाले लोगों को सभी कल्याण कारक उत्सव के समय प्रयत्नपूर्वक इसका पाठ करना चाहिए । इस आख्यान के पढ़ने से आशुतोष भगवान् शिव सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥३६॥ देवताओं की प्रतिष्ठा के समय इस आख्यान का पाठ अवश्य करना चाहिए । कल्याणकारी विवाहादि उत्सव के प्रारम्भ में प्रेम से इस आख्यान का पाठ करना चाहिए ॥ ३७ ॥ जो पवित्र होकर शिवाशिव के इस चरित्र को सुनते हैं, उनके सभी कार्य अवश्य सिद्ध हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं ॥ ३८ ॥

इस प्रकार आचार्य पण्डितशिवदत्तमिश्रशास्त्रीकृत 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के तृतीय-पार्वतीखण्ड में शिवकैलासगमन वर्णन नामक पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५५ ॥

इस प्रकार द्वितीय रुद्रसंहिता में तृतीय पार्वतीखण्ड समाप्त ॥ ३ ॥

*

* ॐ नमः शिवाय *

श्रीशिवमहापुराणम्

आचार्य-पण्डित-श्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रिकृत-
'शिवदत्ती'भाषांटीकासहितम्

२. रुद्रसंहिता (कुमारखण्डः ४)

प्रथमोऽध्यायः

(दिव्य सहस्रवर्ष पर्यन्त शिव का पार्वती के साथ से विहार करना)

वन्दे नन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं
पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम् ।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं
विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम् ॥ १ ॥

नारद उवाच

विवाहयित्वा गिरिजां शङ्करो लोकशङ्करः । गत्वा स्वपर्वतं ब्रह्मन् ! किमकार्षीद्धि तद्वद ! ॥ २ ॥
कथं हि तनयो जज्ञे शिवस्य परमात्मनः । यदर्थमात्मारामोऽपि समुवाह शिवां प्रभुः ॥ ३ ॥
तारकस्य कथं ब्रह्मन् ! वधोऽभूद् देवशङ्करः । एतत्सर्वमशेषेण वद कृत्वा दयां मयि ॥ ४ ॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य नारदस्य प्रजापतिः । सुप्रसन्नमनाः स्मृत्वा शङ्करं प्रत्युवाच ह ॥ ५ ॥

कवि इस कुमार खण्ड के प्रारम्भ में कुमार कार्त्तिकेय का नामोच्चारण कर वस्तु-निर्देशात्मक मङ्गल प्रारम्भ करते हैं—कार्त्तिकेय के उत्पन्न होने से जिनका मन अत्यन्त सन्तुष्ट है, जिन्हें प्रेमातिशय (अनन्यभक्ति) अत्यन्त प्रिय है, जो सबको प्रेम प्रदान करने वाले हैं, जो स्वयं पूर्ण हैं, और दूसरों को भी पूर्ण करते हैं, सम्पूर्ण ऐश्वर्य के एकमात्र स्थान होने से जिन्हें किसी प्रकार की कामना नहीं है । जो स्वयं सत्यस्वरूप हैं, सत्यमय हैं, जिनका सत्तात्मक ऐश्वर्य तीनों कालों में सत्य है, जो सत्यप्रिय एवं सबको सत्य प्रदान करने वाले हैं, ब्रह्मा, विष्णु जिनकी वन्दना करते हैं और जो अपनी इच्छा से ही विग्रह धारण करते हैं ऐसे नित्य शिव की हम वन्दना करते हैं ॥ १ ॥

नारद जी बोले—हे ब्रह्मन् ! लोककल्याणकारी शङ्कर ने विवाह करने के पश्चात् कैलास जाकर क्या किया ? उस वृत्तान्त को हमें सुनाइए ॥ २ ॥ परमात्मा शिव को किस प्रकार पुत्र उत्पन्न हुआ, जिस पुत्र के निमित्त आत्माराम होते हुए भी उन्होंने पार्वती से विवाह किया ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मन् ! तारकासुर का देवकल्याणकारी वध किस प्रकार हुआ ? मेरे ऊपर कृपाकर यह सारी बात विस्तार से कहिए ॥ ४ ॥

सूतजी बोले—नारद के इस प्रकार वचन सुन प्रजापति ब्रह्मा शिवजी को स्मरण कर प्रसन्नता से कहने लगे ॥ ५ ॥

ब्रह्मोवाच

चरितं शृणु वक्ष्यामि शशिमौलेस्तु नारद ! । गुहजन्मकथां दिव्यां तारकासुरसद्वधम् ॥ ६ ॥
श्रूयतां कथयाम्यद्य कथां पापप्रणाशिनीम् । यां श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवो ध्रुवम् ॥ ७ ॥
इदमाख्यानमनघं रहस्यं परमाद्भुतम् । पापसन्तापहरणं सर्वविघ्नविनाशनम् ॥ ८ ॥
सर्वमङ्गलदं सारं सर्वश्रुतिमनोहरम् । सुखदं मोक्षबीजं च कर्ममूलनिकृन्तनम् ॥ ९ ॥

कैलासमागत्य शिवां विवाह्य शोभां प्रपेदे नितरां शिवोऽपि ।
विचारयामास च देवकृत्यं पीडां जनस्यापि च देवकृत्ये ॥१०॥

शिवः स भगवान् साक्षात् कैलासमगमद्यदा । सौख्यं च विविधं चक्रुर्गणाः सर्वे सुहर्षिताः ॥११॥
महोत्सवो महानासीच्छिवे कैलासमागते । देवाः स्वविषयं प्राप्ता हर्षनिर्भरमानसाः ॥१२॥
अथ शम्भुर्महादेवो गृहीत्वा गिरिजां शिवाम् । जगाम निर्जनं स्थानं महादिव्यं मनोहरम् ॥१३॥
शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिताम् । अद्भुतां तत्र परमां भोगवस्त्वन्वितां शुभाम् ॥१४॥
स रेमे तत्र भगवाञ्शम्भुर्गिरिजया सह । सहस्रवर्षपर्यन्तं देवमानेन मानदः ॥१५॥
दुर्गाङ्गस्पर्शमात्रेण लीलया मूर्च्छितः शिवः । मूर्च्छिता सा शिवस्पर्शाद् बुबुधे न दिवानिशम् ॥१६॥
हरे भोगप्रवृत्ते तु लोकधर्मप्रवर्तिनि । महान् कालो व्यतीताय तयोः क्षण इवानघ ॥१७॥
अथ सर्वे सुरास्तात एकत्रीभूय चैकदा । मन्त्रयाञ्चक्रुरागत्य मेरौ शक्रपुरोगमाः ॥१८॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! तुम शिवजी का चरित्र सुनो, मैं कार्त्तिकेय-उत्पत्ति की दिव्य कथा तथा उनके द्वारा किये गये तारकासुर के वध का वृत्तान्त कहता हूँ ॥ ६ ॥ मैं जिस कथा को कहता हूँ, वह कथा समस्त पापों को नष्ट करनेवाली है, इसके सुनने से निश्चय ही मनुष्य सभी प्रकार के पापों से छुटकारा पा जाता है ॥ ७ ॥ यह आख्यान पापरहित, गोपनीय तथा अत्यन्त अद्भुत है। पाप-सन्ताप को दूर करने वाला है तथा सभी विघ्नों को नाश करनेवाला है ॥ ८ ॥ यह सम्पूर्ण मङ्गलों को देनेवाला, पुराणों का सारभूत अंश तथा सबके कानों को सुख देनेवाला है, आनन्ददायक, मोक्ष का बीज तथा कर्ममूल का विनाशक है ॥ ९ ॥

शिवजी शिवा से विवाह कर कैलास पर आकर अत्यन्त शोभित हुए और देवताओं के कार्य-साधन का विचार करने लगे। उन्होंने तारकासुर के द्वारा दिये गये अपने भक्तजनों की पीड़ा के विषय में भी विचार किया ॥ १० ॥ इधर शिवजी जब कैलास पर पहुँचे तब उनके गण प्रसन्न होकर उनको नाना प्रकार का सुख प्रदान करने लगे ॥ ११ ॥ शिवजी के कैलास पहुँचते ही महान् महोत्सव होने लगा। सब देवगण प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थान को चले आये ॥ १२ ॥ हे नारद ! अनन्तर महादेव सदाशिव गिरिकन्या शिवा को लेकर महादिव्य मनोहर एवं निर्जन स्थान में चले गये ॥ १३ ॥ वहाँ उन्होंने रति को बढ़ानेवाली शय्या का निर्माण कर उस पुष्प तथा चन्दन से सुशोभित किया। उस अद्भुत मनोहर शय्या के समीप ही नाना प्रकार की भोग-सामग्री भी स्थापित कर दी ॥ १४ ॥ उसी शय्या पर भगवान् मान देनेवाले शम्भु पार्वती के साथ देवताओं के वर्ष प्रमाण के अनुसार सहस्र वर्ष तक विहार करते रहे ॥१५॥ लीला से दुर्गा के अङ्ग स्पर्शमात्र से सदाशिव कभी मूर्च्छित हो जाते थे, कभी पार्वती शिव के अङ्गस्पर्श से मूर्च्छित हो जाती थीं। इस प्रकार रमण करते हुए उन्हें दिन-रात का ज्ञान नहीं होता था ॥ १६ ॥ लोकधर्म के प्रवर्त्तन करने वाले शिव को रमण करते हुए बड़ा समय भी क्षणमात्र के समान बीत गया ॥ १७ ॥ तब एक समय इन्द्रादि सब देवता मेरु पर्वत पर एकत्र होकर विचार करने लगे ॥ १८ ॥

सुरा ऊचुः

विवाहं कृतवाञ्छम्भुरस्मत्कार्यार्थमीश्वरः । योगीश्वरो निर्विकारो स्वात्मारामो निरञ्जनः ॥१९॥
नोत्पन्नस्तनयस्तस्य न जानीमोऽत्र कारणम् । विलम्बः क्रियते तेन कथं देवेश्वरेण ह ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे देवा नारदाद् देवदर्शनात् । बुबुधुस्तन्निमितं भोगं तयोश्च रममाणयोः ॥२१॥
चिरं ज्ञात्वा तयोर्भोगं चिन्तामापुः सुराश्च ते । ब्रह्माणं मां पुरस्कृत्य ययुर्नारायणान्तिकम् ॥२२॥
तं नत्वा कथितं सर्वं मया वृत्तान्तमीप्सितम् । सन्तस्थिरे सर्वदेवाश्चित्रे पुत्तलिका यथा ॥२३॥
सहस्रवर्षपर्यन्तं देवमानेन शङ्करः । रतौ रतश्च निश्चेष्टो योगी विरमते न हि ॥२४॥

भगवानुवाच

चिन्ता नास्ति जगद्धातः सर्वं भद्रं भविष्यति । शरणं व्रज देवेश ! शङ्करस्य महाप्रभोः ॥२५॥
महेशशरणापन्ना ये जना मनसा मुदा । तेषां प्रजेशभक्तानां न कुतश्चिद् भयं क्वचित् ॥२६॥
शृङ्गारभङ्गसमये भविता नाधुना विधे ! । कालप्रयुक्तं कार्यं च सिद्धिं प्राप्नोति नान्यथा ॥२७॥
शम्भोः सम्भोगमिष्टं को भेदं कर्तुमिहेश्वरः । पूर्णे वर्षसहस्रे च स्वेच्छया हि विरंस्यति ॥२८॥
स्त्रीपुंसोरतिविच्छेदमुपायेन करोति यः । तस्य स्त्रीपुत्रयोर्भेदो भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥२९॥
भ्रष्टज्ञानो नष्टकीर्तिरलक्ष्मीको भवेदिह । प्रयात्यन्ते कालसूत्रं वर्षलक्षं स पातकी ॥३०॥
रम्भायुक्तं शक्रमिमं चकार विरतं रतौ । महामुनीन्द्रो दुर्वासास्तत्स्त्रीभेदो बभूव ह ॥३१॥
पुनरन्यां स सम्प्राप्य निषेव्य शुभपाणिकाम् । दिव्यं वर्षसहस्रं च विजहौ विरहज्वरम् ॥३२॥

देवता बोले—यद्यपि शिव योगीश्वर, निर्विकार, आत्माराम तथा मायारहित हैं, हम लोगों के कल्याण के लिए विवाह किये हैं ॥ १९ ॥ किन्तु अब तक इनको कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ, इसका कारण ज्ञात नहीं होता । अतः पुत्रोत्पन्न होने में विलम्ब का कारण क्या हो सकता है ॥ २० ॥

ब्रह्मा ने कहा—इसी समय देवदर्शन नारद ने देवताओं से कहा कि शिवाशिव के रमण करते हुए जो काल बीता है वह तो बहत थोडा है ॥ २१ ॥ तब देवता लोग उनके रति का अपरिमित समय जानकर बड़े चिन्तित हुए फिर मुझ ब्रह्मा को साथ लेकर विष्णु के समीप गये ॥ २२ ॥ वहाँ जाने पर देवता लोग तो चित्रलिखित पुतले के समान खड़े रह गये किन्तु मैंने नारायण को प्रणाम कर सारा अभीष्ट वृत्तान्त उनसे निवेदन किया ॥२३॥ पुनः ब्रह्माजी नारायण से कहने लगे–हे नारायण ! योगीश्वर ! शङ्कर देवताओं के वर्ष के मान के अनुसार सहस्र वर्ष पर्यन्त मैथुन कार्य में निरत हैं और मैथुन से विरत नहीं होते ॥२४॥

भगवान् विष्णु ने कहा—हे जगत् के विधाता, चिन्ता करने की कोई बात नहीं है सब कल्याण होगा । हे देवेश ! तुम महाप्रभु शङ्कर की शरण में जाओ ॥ २५ ॥ जो मनुष्य शङ्कर की शरण में जाते हैं, हे प्रजापते ! शङ्कर के उन अनन्य भक्तों को कहीं से कोई भय नहीं होता ॥२६॥ हे विधे ! उनके शृङ्गार के रसभङ्ग का समय आगे आनेवाला है, अभी वह काल उपस्थित नहीं हुआ है । जो कार्य ठीक समय में किये जाते हैं वही सफल होते हैं ॥ २७ ॥ यदि इस समय शङ्कर को सम्भोग इष्ट है तो उस सम्भोग में विघ्न करने का साहस कौन कर सकता है ? सहस्र वर्ष पूर्ण होने पर वे स्वयं भोग से निवृत्त हो जायेंगे ॥ २८ ॥ जो मैथुन में निरत स्त्री-पुरुष में भेद उत्पन्न करता है, उसके जन्म-जन्मान्तर में स्त्री तथा पुत्र से भेद प्राप्त होता रहता है ॥ २९ ॥ उस भेदकर्त्ता पुरुष का ज्ञान नष्ट हो जाता है, उसकी कीर्त्ति नष्ट हो जाती है और वह श्रीहत हो जाता है । अन्त में वह पातकी लाख वर्ष तक कालसूत्र नामक नरक में जाता है ॥ ३० ॥ महामुनीन्द्र दुर्वासा ने रम्भा में मैथुनासक्त इन्द्र को रति से विरंत किया, जिससे उनको स्त्री से भेद हुआ ॥ ३१ ॥ फिर उन्होंने दूसरी स्त्री का पाणिग्रहण कर उससे देवताओं के दिव्य

घृताच्या सह संश्लिष्टं कामं वारितवान् गुरुः । षण्मासाभ्यन्तरे चन्द्रस्तस्य पत्नीं जहार ह ॥३३॥
पुनः शिवं समाराध्य कृत्वा तारामयं रणम् । तारां सगर्भां सम्प्राप्य विजहौ विरहज्वरम् ॥३४॥
मोहिनीसहितं चन्द्रं चकार विरतं रतौ । महर्षिर्गौतमस्तस्य स्त्रीविच्छेदो बभूव ह ॥३५॥
हरिश्चन्द्रो हालिकं च वृषल्या सह संयुतम् । चारयामास निश्चेष्टं निर्जने तत्फलं शृणु ॥३६॥
भ्रष्टः स्त्रीपुत्रराज्येभ्यो विश्वामित्रेण ताडितः । ततः शिवं समाराध्य मुक्तो भूतो हि कश्मलात् ॥३७॥
अजामिलं द्विजश्रेष्ठं वृषल्या सह संयुतम् । न भिया वारयामासुः सुरास्तां चापि केचन ॥३८॥
सर्वं निषेकसाध्यं च निषेको बलवान् विधे । निषेकफलदो वै स निषेकः केन वार्य्यते ॥३९॥
दिव्यं वर्षसहस्रं च शम्भोः शम्भोगकर्म तत् । पूर्णे वर्षसहस्रे च गत्वा तत्र सुरेश्वराः ॥४०॥
येन वीर्यं पतेद् भूमौ तत् करिष्यथ निश्चितम् । तत्र वीर्ये च भविता स्कन्दनामा प्रभोः सुतः ॥४१॥
अधुना स्वगृहं गच्छ विधे सुरगणैः सह । करोतु शम्भुः सम्भोगं पार्वत्यां सह निर्जने ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा कमलाकान्तः शीघ्रं स्वान्तःपुरं ययौ । स्वालयं प्रययुर्देवा मया सह मुनीश्वर ! ॥४३॥
शक्तिशक्तिमतोश्चाऽथ विहारेणाऽति च क्षितिः । भाराक्रान्ता चकम्पे सा सशेषाऽपि सकच्छपा ॥४४॥
कच्छपस्य हि भारेण सर्वाधारः समीरणः । स्तम्भितोऽथ त्रिलोकाश्च बभूवुर्भयविह्वलाः ॥४५॥
अथ सर्वे मया देवा हरेश्च शरणं ययुः । सर्वे निवेदयाञ्चक्रुस्तद्वृत्तं दीनमानसाः ॥४६॥

वर्ष सहस्र पर्यन्त रमण कर वियोगजन्य दुःख को दूर किया ॥ ३२ ॥ बृहस्पति ने घृताची के साथ मैथुनासक्त काम को मना किया, जिसके परिणाम स्वरूप छह महीने के भीतर ही चन्द्रमा ने उनकी पत्नी का हरण कर उन्हें स्त्री से वियुक्त कर दिया ॥ ३३ ॥ पुनः उन्होंने शिवाराधन कर तारा के निमित्त संग्राम कर सगर्भा तारा को प्राप्त किया, जिससे उनकी विरह-व्यथा दूर हुई ॥ ३४ ॥ महर्षि गौतम ने मोहिनी के साथ रमण करते हुए चन्द्रमा को वियुक्त किया, इस कारण उनका स्त्री से वियोग हुआ ॥ ३५ ॥

हरिश्चन्द्र ने हालिका को वृषली (शूद्रा) में मैथुनासक्त देख उसे निर्जन वन में निश्चेष्ट कर छोड़वा दिया, उसका फल सुनो ॥ ३६ ॥ विश्वामित्र से उन्हें अत्यन्त दुःख दिया, जिससे वे स्त्री-पुत्र तथा राज्य से भ्रष्ट हुए, फिर उन्होंने शिवाराधन कर पाप से छुटकारा पाया ॥ ३७ ॥ वृषली में आसक्त हुए अजामिल को तो भय से किसी देवता ने भी मना नहीं किया ॥ ३८ ॥ निषेक से सब कुछ साध्य है। हे विधे ! निषेक बलवान् है, निषेक ही फल देनेवाला है, उस निषेक को कौन निवारण कर सकता है ? ॥३९॥ अभी शङ्कर के सम्भोग का काल देवताओं के दिव्य सहस्र वर्ष पर्यन्त शेष है। जब हे देवगण ! उतने वर्ष पूर्ण हो जायें तब तुम लोग शङ्कर के समीप जाना ॥ ४० ॥ और ऐसा उपाय करना, जिससे उनका वीर्य पृथ्वी में गिरे, उनके उसी वीर्य से स्कन्द नामक पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ४१ ॥ अतः हे ब्रह्मन् ! इस समय तुम इन देवताओं को साथ लेकर अपने स्थान को लौट जाओ और शिवजी को पार्वती के साथ निर्जन में सम्भोग का आनन्द लेने दो ॥ ४२ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! ऐसा कहकर लक्ष्मीपति शीघ्र ही अन्तःपुर में चले गये और सभी देवताओं के साथ मैं अपने स्थान पर चला आया ॥ ४३ ॥ इस प्रकार बहुत दिन तक शक्ति एवं शक्तिमान् के विहार से यह पृथ्वी भाराक्रान्त हो शेष एवं कच्छप के द्वारा धारण करने पर भी काँप उठी ॥ ४४ ॥ तब कच्छप के भार से आक्रान्त, सबका आधारभूत पवन स्तम्भित हो गया जिससे समस्त त्रिलोकी भय से व्याकुल हो उठीं ॥ ४५ ॥ फिर सभी देवता मुझे साथ लेकर विष्णु की शरण गये और दुःखी होकर सारा वृत्तान्त विष्णु से निवेदन किया ॥ ४६ ॥

देवा ऊचुः

देवदेव रमानाथ सर्वाऽवनकर प्रभो ! । रक्ष नः शरणापन्नान् भयव्याकुलमानसान् ॥४७॥

स्तम्भितस्त्रिजगत्प्राणो न जाने केन हेतुना । व्याकुलं मुनिभिर्लेखैस्त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा सकला देवा मया सह मुनीश्वर ! । दीनास्तस्थुः पुरो विष्णोर्मौनीभूताः सुदुःखिताः ॥४९॥

तदाकर्ण्य समादाय सुरान्नः सकलान् हरिः । जगाम पर्वतं शीघ्रं कैलासं शिववल्लभम् ॥५०॥

तत्र गत्वा हरिर्देवैर्मया च सुरवल्लभः । ययौ शिववरस्थानं शङ्करं द्रष्टुकाम्यया ॥५१॥

तत्र दृष्ट्वा शिवं विष्णुर्न सुरैर्विस्मितोऽभवत् । तत्र स्थितान् शिवगणान् पप्रच्छ विनयान्वितः ॥५२॥

विष्णुरुवाच

हे शङ्कराः शिवः कुत्र गतः सर्वप्रभुर्गणाः । निवेदयत नः प्रीत्या दुःखितान् वै कृपालवः ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सामरस्य हरेर्गुणाः । प्रोचुः प्रीत्या गणास्ते हि शङ्करस्य रमापतिम् ॥५४॥

शिवगणा ऊचुः

हरे शृणु शिवप्रीत्या यथार्थं ब्रूमहे वयम् । ब्रह्मणा निर्जरैः सार्द्धं वृत्तान्तमखिलं च यत् ॥५५॥

सर्वेश्वरो महादेवो जगाम गिरिजालयम् । संस्थाप्य नोऽत्र सुप्रीत्या नानालीलाविशारदः ॥५६॥

तद्गृहाभ्यन्तरे शम्भुः किं करोति महेश्वरः । न जानीमो रमानाथ व्यतीयुर्बहवः समाः ॥५७॥

देवगण बोले—हे देवदेव ! हे रमानाथ ! हे सर्वरक्षक प्रभो ! हम लोग भय से व्याकुल हो आपकी शरण में आये हुए हैं अतः आप हमारी रक्षा करें ॥ ४७ ॥ पता नहीं किस कारण से जगत् के प्राणभूत पवनदेव स्तम्भित हो गये हैं, जिससे मुनि एवं देवताओं के सहित सारा चराचर त्रैलोक्य व्याकुल हो गया है ॥ ४८ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर ! मेरे साथ गये हुए समस्त देवगण ऐसा कहकर दीन तथा मौन हो दुःख से विष्णु के आगे खड़े हो गये ॥ ४९ ॥ इस बात को सुनकर विष्णु सभी देवताओं को अपने साथ ले बड़ी शीघ्रता से शिव के प्रिय कैलास पर्वत पर गये ॥ ५० ॥ सुरवल्लभ विष्णु कैलास पहुँचकर मुझ ब्रह्मा तथा उन देवगणों के साथ शिव के मनोहर स्थान को देखने की इच्छा से शिव के आश्रम पर गये ॥ ५१ ॥ किन्तु वहाँ शिव को न देख वे आश्चर्य में पड़ गये फिर उन्होंने वहाँ पर स्थित निवास करते हुए महेश्वर के गणों से विनयपूर्वक पूछा ॥ ५२ ॥

विष्णु बोले—हे शङ्कर के गणो ! आप सब बड़े कृपालु हैं, आप लोग बताइए कि सर्वप्रभु शङ्कर इस समय कहाँ पर हैं, हम लोग दुःखी होकर आये हैं, अतः उनके पास जाकर हम लोगों के आने की सूचना दीजिए ॥ ५३ ॥

ब्रह्मा जी बोले—देवताओं के सहित विष्णु की बात सुनकर उन गणों ने प्रीतिपूर्वक रमापति विष्णु से कहा ॥ ५४ ॥

शिवगणों ने कहा—हे नारायण ! प्रेम से सुनो, हमलोग यथार्थ कहते हैं, ब्रह्मा एवं अन्य सभी देवता भी सुनें, हम शङ्कर का सारा वृत्तान्त निवेदन करते हैं ॥ ५५ ॥ अनेक लीला करने में सर्वथा कुशल भगवान् शङ्कर हम सबको प्रेम से यहाँ नियुक्त कर पार्वती के घर में गये हैं ॥५६॥ हे रमानाथ ! वे शङ्कर घर के भीतर क्या कर रहे हैं, यह हमलोग नहीं जानते, ऐसे वहाँ गये उनको बहुत वर्ष बीत गये ॥ ५७ ॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वेति वचनं तेषां सविष्णुः सामरो मया । विस्मितोऽति मुनिश्रेष्ठ ! शिवद्वारं जगाम ह ॥५८॥
तत्र गत्वा मया देवैः स हरिर्देववल्लभः । आर्तवाण्या तदा प्रोचे तारस्वरतया मुदा ॥५९॥
शम्भुमस्तौन्महाप्रीत्या सामरो हि मया हरिः । तत्र स्थितो मुनिश्रेष्ठ सर्वलोकप्रभुं हरम् ॥६०॥

विष्णुरुवाच

किं करोषि महादेवाऽभ्यन्तरे परमेश्वर ! । तारकार्तान् सुरान् सर्वान् पाहि नः शरणागतान् ॥६१॥
इत्यादि संस्तुवन् शम्भुं बहुधा सोऽमरैर्मया । रुरोदाति हरिस्तत्र तारकार्तैर्मुनीश्वर ! ॥६२॥
दुःखकोलाहलस्तत्र बभूव त्रिदिवौकसाम् । मिश्रितः शिवसंस्तुत्याऽसुरार्त्तानां मुनीश्वर ! ॥६३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे शिवविहारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्याय

(सरकण्डे के वन में कार्तिकेय का जन्म)

ब्रह्मोवाच

तदाकर्ण्य महादेवो योगज्ञानविशारदः । त्यक्तकामो न तत्याज सम्भोगं पार्वतीभयात् ॥ १ ॥
आजगाम गृहद्वारि सुराणां निकटं शिवः । दैत्येन पीडितानां च शङ्करो भक्तवत्सलः ॥ २ ॥
देवाः सर्वे प्रभुं दृष्ट्वा हरिणा च मया शिवम् । बभूवुः सुखिनश्चाति तदा वै भक्तवत्सलम् ॥ ३ ॥
इत्याकर्ण्य वचस्तेषां सुराणां भगवान् भवः । प्रत्युवाच विषण्णात्मा दूयमानेन चेतसा ॥ ४ ॥
प्रणम्य सुमहाप्रीत्या नतस्कन्धाश्च निर्जराः । तुष्टुवुः शङ्करं सर्वे मया च हरिणा मुने ! ॥ ५ ॥

ब्रह्मा जी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! इस बात को सुनते ही देवगणों के सहित विष्णु आश्चर्य-चकित हो गये, फिर सबके साथ शिव के द्वार पर गये ॥ ५८ ॥ वहाँ देवताओं एवं मुझ ब्रह्मा के साथ जाकर ऊँचे स्वर में आर्त्तवाणी से प्रेमपूर्वक सर्वलोकेश्वर शिव की स्तुति करने लगे ॥ ५९–६० ॥

विष्णु बोले—हे महादेव ! हे परमेश्वर ! आप मन्दिर के भीतर क्या कर रहे हैं ? तारकासुर से भयभीत हुए हम सभी देवगण आपकी शरण में आये हैं, आप हमलोगों की रक्षा करें ॥ ६१ ॥ इस प्रकार मुझ ब्रह्मा तथा देवताओं के सहित विष्णु ने शिव की अनेक प्रकार से स्तुति की । हे मुनीश्वर ! उस समय तारकासुर की पीड़ा से उत्पन्न हुए दुःख से नारायण रोने लगे ॥ ६२ ॥ तारकासुर से पीड़ित हुए देवताओं के आर्त्तभरे शब्द एवं शिव की स्तुति के मिश्रित हो जाने से उस समय महान् कोलाहल हुआ ॥ ६३ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के चतुर्थ-कुमारखण्ड में शिवविहारवर्णन नामक प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥

*

ब्रह्मा जी बोले—देवताओं एवं विष्णु की स्तुति सुनकर योगज्ञान विशारद शङ्कर ने पार्वती के भय से वीर्य त्याग तो नहीं किया किन्तु संभोग का त्याग किया ॥ १ ॥ फिर वे भक्तवत्सल शंकर घर के दरवाजे पर दैत्य से पीड़ित हुए देवताओं के सन्निकट आये ॥ २ ॥ मुझ ब्रह्मा तथा विष्णु के साथ देवगण भक्तवत्सल शिव का दर्शन कर अत्यन्त सुखी हुए ॥ ३ ॥ उन्होंने शिर झुकाकर शंकर को प्रणाम किया और हे मुने ! मुझ ब्रह्मा तथा विष्णु के साथ शंकर की स्तुति करने लगे ॥ ४-५ ॥

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो ! । अन्तर्यामी हि सर्वेषां सर्वं जानासि शङ्कर ! ॥ ६ ॥
देवकार्यं कुरु विभो रक्ष देवान् महेश्वर ! । जहि दैत्यान् कृपां कृत्वा तारकादीन् महाप्रभून् ॥ ७ ॥

शिव उवाच

हे विष्णो हे विधे देवाः सर्वेषां वो मनोगतिः । यद्भावि तद्भवत्येव कोऽपि नो तन्निवारकः ॥ ८ ॥
यज्जातं तज्जातमेव प्रस्तुतं श्रृणुताऽमराः । शिवरेतस्खलितं वीर्यं को ग्रहीष्यति मेऽधुना ॥ ९ ॥
स गृह्णीयादिति प्रोच्य पातयामास तद्भुवि । अग्निर्भूत्वा कपोतो हि प्रेरितः सुर्वनिर्जरैः ॥१०॥
अभक्षच्छाम्भवं वीर्यं चञ्च्वा तु निखिलं तदा । एतस्मिन्नन्तरे तत्राऽऽजगाम गिरिजा मुने ॥११॥
शिवागमविलम्बे च ददर्श सुरपुङ्गवान् । ज्ञात्वा तद्वृत्तमखिलं महाक्रोधयुता शिवा ॥१२॥
उवाच त्रिदशान् सर्वान् हरिप्रभृतिकांस्तदा ॥१३॥

देव्युवाच

रे रे सुरगणाः सर्वे यूयं दुष्टा विशेषतः । स्वार्थसंसाधका नित्यं तदर्थं परदुःखदाः ॥१४॥
स्वार्थहेतोर्महेशानमाराध्य परमं प्रभुम् । नष्टं चक्रुर्मद्विहारं वन्ध्याऽभवमहं सुराः ॥१५॥
मां विरोध्य सुखं नैव केषाञ्चिदपि निर्जराः । तस्माद् दुःखं भवेद्वो हि दुष्टानां त्रिदिवौकसाम् ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा विष्णुप्रमुखान् सुरान् सर्वान् शशाप सा । प्रज्वलन्ती प्रकोपेन शैलराजसुता शिवा ॥१७॥

देवताओं ने कहा—हे देवदेव ! हे महादेव ! हे करुणासागर प्रभो ! आप सबके अन्तर्यामी हैं, अतः सबके हृदय की बात जानते हैं ॥ ६ ॥ हे विभो ! हम देवताओं का कार्य कीजिए और हे महेश्वर ! हमारी रक्षा कीजिए तथा कृपा कर तारकादि असुरों का विनाश कीजिए । इस प्रकार देवताओं की स्तुति सुनकर भगवान् शङ्कर कुछ दुःखी होकर देवताओं से बोले ॥ ७ ॥

शङ्कर जी बोले—हे विष्णो ! हे विधाता ! हम आप सबके मन का अभिप्राय जान रहे हैं, किन्तु भावी कभी नहीं मिटती, जो होनहार है वह तो होकर ही रहता है । भावी का निवारण करनेवाला कोई नहीं ॥ ८ ॥ अच्छा, जो होना था वह तो हो गया, अब जो उपस्थित है उसके विषय में सुनो । मेरी नाड़ियों से गिरे हुए मेरे वीर्य को इस समय कौन धारण करेगा ॥ ९ ॥ जिसे धारण करना हो वह मेरे वीर्य को धारण करे ऐसा कहकर शङ्कर जी ने अपना वीर्य पृथ्वी पर गिरा दिया । तब देवताओं ने अग्नि को उस वीर्य धारण करने के लिए प्रेरित किया ॥ १० ॥ तब अग्नि कबूतर का रूप धारण कर अपनी चोंच से शंकर के सारे वीर्य को खा गये । इसी समय हे नारद ! शिव के आगमन में विलम्ब देखकर वहाँ पर भगवती गिरिजा आकर उपस्थित हो गयीं ॥ ११ ॥ तब उन्होंने घर के द्वार पर देवताओं को उपस्थित देखकर समझ लिया कि शिव के विलम्ब में कारण ये देवता लोग ही हैं, इस प्रकार सारा वृत्तान्त जानकर पार्वती महा क्रोधित हो गयीं ॥ १२ ॥ तब वे विष्णु प्रभृति सभी देवताओं से क्रोध में भरकर बोलीं ॥ १३ ॥

देवी बोलीं—अरे देवताओ ! तुमलोग बड़े दुष्ट हो, तुम लोग सदैव अपना स्वार्थ साधन करनेवाले हो तथा अपने स्वार्थ-साधन हेतु दूसरों को कष्ट देते हो ॥ १४ ॥ तुमलोगों ने अपने स्वार्थ के निमित्त परम प्रभु शिव की आराधना कर मेरा विहार भङ्ग किया, इसी कारण मैं वन्ध्या हो गयी ॥ १५ ॥ अस्तु मेरा विरोध करने से तुम देवताओं को कभी सुख प्राप्त नहीं होगा और तुम दुष्ट देवताओं को इसी प्रकार महादुःख प्राप्त होता रहेगा ॥ १६ ॥

ब्रह्मा जी बोले—ऐसा कहकर क्रोध से जलती हुई शैलपुत्री पार्वती ने विष्णु प्रभृति सभी देवताओं को शाप देना प्रारम्भ किया ॥ १७ ॥

पार्वत्युवाच

अद्यप्रभृति देवानां वन्ध्या भार्या भवन्त्विति । देवाश्च दुःखिताः सन्तु निखिला मद्विरोधिनः ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

इति शप्त्वाऽखिलान् देवान् विष्ण्वाद्यान् सकलेश्वरी । उवाच पावकं क्रुद्धा भक्षकं शिवरेतसः ॥१९॥

पार्वत्युवाच

सर्वभक्षी भव शुचे पीडितात्मेति नित्यशः । शिवतत्त्वं न जानासि मूर्खोऽसि सुरकार्यकृत् ॥२०॥

रे रे शठ महादुष्ट दुष्टानां दुष्टबोधवान् । अभक्षः शिववीर्यं यन्नाकार्षीदुचितं हि तत् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

इति शप्त्वा शिवा वह्निं महेशेन नगात्मजा । जगाम स्वालयं शीघ्रमसन्तुष्टा ततो मुने ॥२२॥

गत्वा शिवां शिवः सम्यक् बोधयामास यत्नतः । अजीजनत् परं पुत्रं गणेशाख्यं मुनीश्वर ! ॥२३॥

तद्वृत्तान्तमशेषं च वर्णयिष्ये मुनेऽग्रतः । इदानीं श्रृणु सुप्रीत्या गुहोत्पत्तिं वदाम्यहम् ॥२४॥

पावकार्दितमन्नादि भुञ्जते निर्जराः खलु । वेदवाण्येति सर्वे ते सगर्भा अभवन् सुराः ॥२५॥

ततोऽसहन्तस्तद्वीर्यं पीडिता ह्यभवन् सुराः । विष्ण्वाद्या निखिलाश्चाति शिवाऽऽज्ञानष्टबुद्धयः ॥२६॥

अथ विष्णुप्रभृतिकाः सर्वे देवा विमोहिताः । दह्यमाना ययुः शीघ्रं शरणं पार्वतीपतेः ॥२७॥

शिवालयस्य ते द्वारि गत्वा सर्वे विनम्रकाः । तुष्टुवुः स शिवं शम्भुं प्रीत्या साञ्जलयः सुराः ॥२८॥

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव गिरिजेश महाप्रभो ! । किं जातमधुना नाथ तव माया दुरत्यया ॥२९॥

सगर्भाश्च वयं जाता दह्यमानाश्च रेतसा । तव शम्भो कुरु कृपां निवारय दशामिमाम् ॥३०॥

पार्वती बोलीं—आज से सब देवताओं की स्त्रियाँ वन्ध्या हो जायेंगी और मेरा विरोध करनेवाले वे देवगण सर्वदा दुःख प्राप्त करते रहेंगे ॥ १८ ॥

ब्रह्मा जी ने कहा—इस प्रकार सर्वेश्वरी ने विष्णु प्रभृति देवताओं को शाप देकर क्रोधपूर्ण हो शिव के वीर्य को भक्षण करनेवाले अग्नि से कहा ॥ १९ ॥

पार्वती बोलीं—हे अग्ने ! आज से तुम सर्वभक्षी होकर सदैव दुःख प्राप्त करोगे । तुम्हें शिवतत्त्व का ज्ञान न होगा, तुम देवताओं का कार्य करने पर भी मूर्ख ही रहोगे ॥ २० ॥ हे शठ ! दुष्टों में महादुष्ट तुम बड़े दुर्बुद्धि हो, तुमने जो शिववीर्य का भक्षण किया है वह अच्छा नहीं किया ॥ २१ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! इस प्रकार अग्नि को शाप देकर पार्वती महेश्वर के साथ शीघ्रता से अपने घर चली गयी और इस कार्य से बहुत नाराज हुईं ॥ २२ ॥ शिवजी ने बड़े यत्न से भली प्रकार पार्वती को समझाया, फिर उन्होंने सर्वश्रेष्ठ गणेश नामक पुत्र पैदा किया ॥ २३ ॥ हे मुने ! इन गणेश का वृत्तान्त हम आगे कहेंगे । अब तुम प्रेम से कार्त्तिकेय की उत्पत्ति का वृत्तान्त सुनो, मैं कह रहा हूँ ॥ २४ ॥ देवता लोग अग्नि के मुख से ही भोजन करते हैं, ऐसा वेद का वचन है, अतः अग्नि के गर्भ धारण करने से सभी देवता गर्भयुक्त हो गये ॥२५॥ उस समय शिव के वीर्य के असह्य होने से उन्हें बहुत पीड़ा होने लगी । यही दशा विष्णु आदि देवताओं की हो गयी, क्योंकि शिव की आज्ञा से उनकी बुद्धि नष्ट हो गयी थी ॥२६॥ उस गर्भजन्य पीड़ा से विष्णु प्रभृति सभी देवगण मोहित हो गये और शिव के वीर्यरूप अग्नि से जलते हुए पार्वतीपति के शरण में गये ॥ २७ ॥ वे लोग शिव के गृहद्वार पर जाकर नम्रता से हाथ जोड़ अत्यन्त प्रीति से भगवान् शंकर की स्तुति करने लगे ॥ २८ ॥

देवता बोले—हे देवदेव ! हे महादेव ! हे गिरिजेश ! हे महाप्रभो ! हम लोगों को यह क्या हो गया ? निश्चय ही आपकी माया दुरत्यय है ॥ २९ ॥ जो हम लोग गर्भयुक्त होकर आपकी असह्य वीर्य ज्वाला से जल रहे हैं, हे शम्भो ! कृपा कीजिए और हमलोगों की दुरवस्था का निवारण कीजिए ॥ ३० ॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्याऽमरनुतिं परमेशः शिवापतिः । आजगाम द्रुतं द्वारि यत्र देवाः स्थिता मुने ॥३१॥
आगतं शङ्करं द्वारि सर्वे देवाश्च साच्युताः । प्रणम्य तुष्टुवुः प्रीत्या नतका भक्तवत्सलम् ॥३२॥

देवा ऊचुः

शम्भो शिव महेशान त्वां नताः स्म विशेषतः । रक्ष नः शरणापन्नान् दह्यमानांश्च रेतसा ॥३३॥
इदं दुःखं हर हर भवामो हि मृता ध्रुवम् । त्वां विना कः समर्थोऽद्य देवदुःखनिवारणे ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

इति दीनतरं वाक्यमाकर्ण्य सुरराट् प्रभुः । प्रत्युवाच विहस्याऽथ स सुरान् भक्तवत्सलः ॥३५॥

शिव उवाच

हे हरे हे विधे देवाः सर्वे शृणुत मद्वचः । भविष्यति सुखं वोऽद्य सावधाना भवन्तु हि ॥३६॥
एतद्वमत मद्वीर्यं द्रुतमेवाऽखिलाः सुराः । सुखिनस्तद्विशेषेण शासनान् मम सुप्रभो ! ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

इत्याज्ञां शिरसाऽऽधाय विष्ण्वाद्याः सकलाः सुराः । अकार्षुर्वमनं शीघ्रं स्मरन्तः शिवमव्ययम् ॥३८॥
तच्छम्भुरेतः स्वर्णाभं पर्वताकारमद्भुतम् । अभवत् पतितं भूमौ स्पृशद् द्यामेव सुप्रभम् ॥३९॥
अभवन्सुखिनः सर्वे सुराः सर्वेऽच्युतादयः । अस्तुवन् परमेशानं शङ्करं भक्तवत्सलम् ॥४०॥
पावकस्त्वभवन्नैव सुखी तत्र मुनीश्वर ! । तस्याज्ञां परमोऽदाद्धै शङ्करः परमेश्वरः ॥४१॥
ततः स वह्निर्विकलः साञ्जलिर्नतको मुने । अस्तौच्छिवं सुखी नात्मा वचनं चेदमब्रवीत् ॥४२॥

ब्रह्माजी बोले—परमेश शिवापति देवताओं की इस प्रकार की स्तुति सुनकर गृहद्वार पर जहाँ देवता थे, शीघ्र आये ॥ ३१ ॥ द्वार पर आये हुए सदाशिव को देखते ही विष्णु समेत समस्त देवगण प्रणाम कर नाचते हुए उन भक्तवत्सल की स्तुति करने लगे ॥ ३२ ॥

देवगण बोले—हे शम्भो, हे शिव ! हे महेश्वर ! हम लोग विशेष रूप से आपकी स्तुति करते हैं, हम लोग आपके वीर्य के असह्य तेज से जल रहे हैं और आपकी शरण आये हैं। हे प्रभो ! हमारी रक्षा कीजिए ॥ ३३ ॥ आप हर हैं, इसलिए हे प्रभो ! हमारे इस दुःख का हरण कीजिए, अन्यथा हम लोग निश्चय ही मर जायेंगे, इस समय आपके विना हम देवताओं के इस दुःख को हरनेवाला कौन है ? ॥ ३४ ॥

ब्रह्माजी बोले—देवताओं के इस प्रकार के दीन वचन सुनकर देवाधिदेव भक्तवत्सल भगवान् शङ्कर हँसते हुए बोले—॥ ३५ ॥

शिवजी बोले—हे विष्णो ! हे ब्रह्मन् ! हे देवताओ ! तुम लोग मेरी बात सुनो, तुम लोग अवश्य सुखी होगे, किन्तु सावधान हो जाओ ॥ ३६ ॥ देवगणो ! तुम लोग शीघ्र ही मेरे इस रेत को वमन कर दो, ऐसी मेरी आज्ञा करने से तुम लोग सुखी हो जाओगे ॥ ३७ ॥

ब्रह्माजी बोले—तव विष्णु आदि देवों ने शिव की इस आज्ञा को शिर पर धारण कर अविनाशी शङ्कर का स्मरण करते हुए शीघ्रता से उस वीर्य को वमन कर दिया ॥ ३८ ॥ शङ्कर का वह वीर्य सुवर्ण के समान चमकता हुआ अद्भुत पर्वताकार होकर द्युलोक का स्पर्श करते हुए पृथ्वी पर गिरा ॥ ३९ ॥ तब विष्णु आदि सभी देवगण सुखी हो गये और भक्तवत्सल सदाशिव की स्तुति करने लगे ॥ ४० ॥ किन्तु हे मुनीश्वर ! केवल एक अग्नि ही सुखी नहीं हुए, क्योंकि शङ्कर ने उन्हें वीर्य धारण की आज्ञा दे रखी थी ॥ ४१ ॥ तव वह अग्नि विकल होकर दुःख से छटपटाता हुआ हाथ जोड़कर शिव की स्तुति करता हुआ कहने लगा ॥ ४२ ॥

अग्निरुवाच

देवदेव महेशान मूढोऽहं तव सेवकः । क्षमस्व मेऽपराधं हि मम दाहं निवारय ॥४३॥
त्वं दीनवत्सलः स्वामिञ्शङ्करः परमेश्वरः । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा पावको दीनवत्सलम् ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य शुचेर्वाणीं स शम्भुः परमेश्वरः । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा पावकं दीनवत्सलः ॥४५॥

शिव उवाच

कृतं त्वनुचितं कर्म मद्रेतो भक्षितं हि यत् । अतोऽनिवृत्तस्ते दाहः पापाधिक्यान् मदाज्ञया ॥४६॥
इदानीं त्वं सुखी नाम शुचे मच्छरणागतः । अतः प्रसन्नो जातोऽहं सर्वं दुःखं विनश्यति ॥४७॥
कस्याश्चित्सुस्त्रियो योनौ मद्रेतस्त्यज यत्नतः । भविष्यसि सुखी त्वं हि निर्दाहात्मा विशेषतः ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

शम्भुवाक्यं निशम्येति प्रत्युवाच शनैः शुचिः । साञ्जलिर्नतकः प्रीत्या शङ्करं भक्तशङ्करम् ॥४९॥
दुरासदमिदं तेजस्तव नाथ महेश्वर ! । काचिन्नास्ति विना शक्त्या धर्तुं योनौ जगत्त्रये ॥५०॥
इत्थं यदाऽब्रवीद् वह्निस्तदा त्वं मुनिसत्तम ! । शङ्करप्रेरितः प्रात्थ हृदाग्निमुपकारकः ॥५१॥

नारद उवाच

शृणु मद्वचनं वह्ने ! तव दाहहरं शुभम् । परमानन्ददं रम्यं सर्वकष्टनिवारकम् ॥५२॥
कृत्वोपायमिमं वह्ने सुखी भव विदाहकः । शिवेच्छया मया सम्यगुक्तं तातेदमादरात् ॥५३॥
तपोमासस्नानकर्त्र्यः स्त्रियो याः स्युः प्रगे शुचे । तद्देहेषु स्थापय त्वं शिवरेतस्त्विदं महत् ॥५४॥

अग्नि बोले—हे देवदेव ! हे महेशान ! मैं आपका मूर्ख सेवक हूँ, आप मेरा अपराध क्षमा करें और इस ज्वाला से मेरी रक्षा करें ॥ ४३ ॥ हे स्वामी, आप दीनतत्सल तथा परमेश्वर हैं, सबका कल्याण करने से आप शङ्कर हैं, इस प्रकार अग्नि ने भक्तवत्सल भगवान् शिव की स्तुति की ॥ ४४ ॥

ब्रह्माजी बोले—अग्नि की इस प्रकार की वाणी सुनकर भक्तवत्सल भगवान् शङ्कर प्रसन्न हो अग्नि से कहने लगे ॥ ४५ ॥

शिवजी बोले—हे अग्ने ! तुमने मेरा वीर्य भक्षण कर बड़ा अनुचित कार्य किया, यह तुमने बड़ा पाप किया, इसीलिए तुम मेरी आज्ञा से वीर्य की ज्वाला से जल रहे हो ॥ ४६ ॥ हे अग्ने ! क्योंकि तुम मेरे शरणागत हुए हो, इसलिए अवश्य सुखी होगे । तुम्हारे शरणागत होने से मैं प्रसन्न हूँ, तुम्हारा सारा दुःख नष्ट हो जायेगा ॥ ४७ ॥ तुम यत्न से मेरे इस वीर्य को किसी स्त्री की योनि में त्याग दो, ऐसा करने से तुम्हारा दाह मिट जायेगा और तुम सुखी हो जाओगे ॥ ४८ ॥

ब्रह्माजी बोले—शिवजी की बात सुनकर सिर झुकाये हुए अग्नि हाथ जोड़ भक्तवत्सल शिव से बोले ॥ ४९ ॥ हे महेश्वर ! हे नाथ ! आपका यह वीर्य असह्य तेज से युक्त है, इसे तीनों लोकों में शक्ति के अतिरिक्त और किसी स्त्री की अपनी योनि में धारण करने की सामर्थ्य नहीं है ॥ ५०॥ हे मुनिसत्तम नारद ! जब अग्नि शिवजी से इस प्रकार निवेदन कर रहे थे, तब शिव की प्रेरणा से हृदय से अग्नि का उपकार करने के निमित्त वहाँ प्राप्त होकर इस प्रकार बोले—॥ ५१ ॥

नारद जी बोले—हे अग्ने ! तुम मेरी बात सुनो, मेरा यह वचन तुम्हारे दाह को दूर करने वाला तथा शुभ एवं आनन्ददायी है, यह सर्वथा रमणीय एवं तुम्हारे कष्टों को दूर करने वाला है ॥ ५२ ॥ सबको तुम जला देते हो पर स्वयं जल रहे हो इसलिए मेरे बताये गये इस उपाय को कर सुखी हो जाओ । हे तात ! मैं शिव की इच्छा से ही तुम्हें यह आदरपूर्वक उपदेश दे रहा हूँ ॥ ५३ ॥ हे अग्ने ! माघ मास में जो स्त्री प्रातः नियम पूर्वक स्नान के निमित्त गमन करे, उनके देह में तुम इस शिव के महावीर्य को स्थापित कर दो ॥ ५४ ॥

ब्रह्मोवाच

तस्मिन्नवसरे तत्राऽगताः सप्तमुनिस्त्रियः । तपोमासि स्नानकामाः प्रातः सन्नियमा मुने ॥५५॥
स्नानं कृत्वा स्त्रियस्ता हि महाशीतार्दिताश्च षट् । गन्तुकामा मुने याता वह्निज्वालासमीपतः ॥५६॥
विमोहिताश्च ता दृष्ट्वाऽरुन्धती गिरिशाज्ञया । निषिषेध विशेषेण सुचरित्रा सुबोधिनी ॥५७॥
ताः षड् मुनिस्त्रियो मोहाद्धठात्तत्र गता मुने । स्वशीतविनिवृत्त्यर्थं मोहिताः शिवमायया ॥५८॥
तद्रेतः कणिकाः सद्यस्तद्देहान् विविशुर्मुने । रोमद्वाराऽखिला वह्निरभूद्दाहविवर्जितः ॥५९॥
अन्तर्धाय द्रुतं वह्निर्ज्वालारूपो जगाम ह । सुखी स्वलोकं मनसा स्मरंस्त्वां शङ्करं च तम् ॥६०॥
सगर्भास्ताः स्त्रियः साधोऽभवन् दाहप्रपीडिताः । जग्मुः स्वभवनं ताताऽरुन्धती दुःखिताऽग्निना ॥६१॥
दृष्ट्वा स्वस्त्रीगतिं तात नाथाः क्रोधाकुला द्रुतम् । तत्यजुस्ताः स्त्रियस्तात सुसम्मन्त्र्य परस्परम् ॥६२॥
अथ ताः षट् स्त्रियः सर्वा दृष्ट्वा स्वव्यभिचारकम् । महादुःखान्विितास्ताताऽभवन्नाकुलमानसाः ॥६३॥
तत्यजुः शिवरेतस्तद्गर्भरूपं मुनिस्त्रियः । ता हिमाचलपृष्ठेऽथाभवन् दाहविवर्जिताः ॥६४॥
असहञ्शिवरेतस्तद्धिमाद्रिः कम्पमुद्वहन् । गङ्गायां प्राक्षिपत्तूर्णमसह्यं दाहपीडितः ॥६५॥
गङ्गयाऽपि च तद्वीर्यं दुःसहं परमात्मनः । निःक्षिप्तं हि शरस्तम्बे तरङ्गैः स्वैर्मुनीश्वर ! ॥६६॥
पतितं तत्र तद्रेतो द्रुतं बालो बभूव ह । सुन्दरः सुभगः श्रीमांस्तेजस्वी प्रीतिवर्द्धनः ॥६७॥
मार्गमासे सिते पक्षे तिथौ षष्ठ्यां मुनीश्वर ! । प्रादुर्भावोऽभवत्तस्य शिवपुत्रस्य भूतले ॥६८॥
तस्मिन्नवसरे ब्रह्मन्नकस्माद्धिमशैलजा । अभूतां सुखिनौ तत्र स्वगिरौ गिरिशोऽपि च ॥६९॥
शिवाकुचाभ्यां सुस्राव पय आनन्दसम्भवम् । तत्र गत्वा च सर्वेषां सुखमासीन्मुनेऽधिकम् ॥७०॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने ! उसी समय यहाँ स्नानार्थ सप्तर्षियों की पत्नियाँ माघ मास में नियम का पालन करती हुई प्रातःकाल स्नान करने के लिए वहाँ उपस्थित हो गयीं ॥ ५५ ॥ उन सप्तर्षि की पत्नियों में छह स्नान करने के पश्चात् शीत से थर-थर काँपती हुई व्याकुल हो बड़ी शीघ्रता से अग्नि की ज्वाला के समीप आयीं ॥ ५६ ॥ उनको इस प्रकार मोह में पड़े देखकर अरुन्धती ने शिव की आज्ञा से उन्हें ऐसा करने से मना किया ॥ ५७ ॥ हे मुने ! किन्तु वे छहों स्त्रियाँ अरुन्धती के मना करने पर भी शिव की माया से मोहित हो अपना शीत दूर करने के लिए मोह तथा हठवश अग्नि के समीप चली ही गयीं ॥ ५८ ॥ तब हे मुने ! उस अग्नि के तापते ही शिव-वीर्य के कण उनके शरीर के रोयें के द्वारा उनमें प्रवेश कर गये, जिससे अग्नि का दाह शान्त हो गया ॥ ५९ ॥ फिर तो अग्नि तत्क्षण वहाँ से अन्तर्धान होकर ज्वाला रूप हो शिव का स्मरण करते हुए अपने लोक को चले गये ॥ ६० ॥ हे साधो ! वे छहों स्त्रियाँ सगर्भा होकर दाह से पीड़ित हो गयीं । तब अरुन्धती ने उन्हें अग्नि से इस प्रकार पीड़ित देखा ॥ ६१ ॥ इधर उनके पतियों ने उन स्त्रियों को शर्मयुक्त देखकर आपस में मन्त्रणा कर क्रोध से व्याकुल हो उनका त्याग कर दिया ॥ ६२ ॥ वे छहों स्त्रियाँ अपना व्यभिचार देखकर महादुःख से व्याकुल हो उठीं ॥ ६३ ॥ उन्होंने स्वगर्भ स्वरूप शिव के उन वीर्यकणों को हिमालय के पृष्ठ भाग में त्याग दिया, जिससे उनकी ज्वाला शान्त हो गयी ॥ ६४ ॥ उस असह्य वीर्य को न सह सकने के कारण हिमालय कम्पायमान हो गया और दाह न रुकने के कारण उसने उस वीर्य को गंगा में डाल दिया ॥ ६५ ॥

श्री गङ्गाजी भी शङ्कर के उस वीर्य को सहन न कर सकीं और पीड़ित होकर उस परमात्मा के वीर्य को तरङ्गों के द्वारा सरपत के समूह वाले वन में त्याग दिया ॥ ६६ ॥ उस शर स्तम्ब पर पड़ते ही वह वीर्य सुन्दर, भाग्यवान्, श्रीमान्, तेजस्वी एवं सबको हर्षित करने वाले बालक के रूप में परिणत हो गया ॥ ६७ ॥ हे मुनीश्वर ! मार्गशीर्ष मास की शुक्ला षष्ठी के दिन भूतल पर शिवपुत्र का प्रादुर्भाव हुआ ॥ ६८ ॥ हे नारद जी, उस समय अकस्मात् शिवा एवं शिव प्रसन्न हो उठे ॥ ६९ ॥ पार्वती के स्तन-

मङ्गलं चाऽभवत्तात त्रिलोक्यां सुखदं सताम् । खलानामभवद्विघ्नो दैत्यानां च विशेषतः ॥७१॥
अकस्मादभवद्व्योम्नि परमो दुन्दुभिध्वनिः । पुष्पवृष्टिः पपाताऽऽशु बालकोपरि नारद ! ॥७२॥
विष्ण्वादीनां समस्तानां देवानां मुनिसत्तम ! । अभूदकस्मात् परम आनन्दः परमोत्सवः ॥७३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे
शिवपुत्रजननवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

(कुमार को कृत्तिकाओं द्वारा दुग्धपान और देवलोक में कुमार का बाललीला वर्णन)

नारद उवाच

देवदेव प्रजानाथ ब्रह्मन् सृष्टिकर प्रभो ! । ततः किमभवत्तत्र तद्वदाद्य कृपां कुरु ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

तस्मिन्नवसरे तात विश्वामित्रः प्रतापवान् । प्रेरितो विधिना तत्रागच्छत् प्रीतो यदृच्छया ॥ २ ॥
स दृष्ट्वाऽलौकिकं धाम तत्सुतस्य सुतेजसः । अभवत् पूर्णकामस्तु सुप्रसन्नो ननाम च ॥ ३ ॥
अकरोत् सुस्तुतिं तस्य सुप्रसन्नेन चेतसा । विधिप्रेरितवाग्भिश्च विश्वामित्रः प्रभाववित् ॥ ४ ॥
ततः सोऽभूत् सुतस्तत्र सुप्रसन्नो महोतिकृत् । सुप्रहस्याद्भुतमहो विश्वामित्रमुवाच च ॥ ५ ॥

शिवसुत उवाच

शिवेच्छया महाज्ञानिन्नकस्मात्त्वमिहागतः । संस्कारं कुरु मे तात यथावद्वेदसम्मितम् ॥ ६ ॥
अद्यारभ्य पुरोधास्त्वं भव मे प्रीतिमावहन् । भविष्यसि सदा पूज्यः सर्वेषां नात्र संशयः ॥ ७ ॥

मण्डल से आनन्दोद्रेक से दूध स्रवित होने लगा। हे मुने ! उस समय वहाँ जाकर सभी को सुखानुभूति हुई ॥ ७० ॥ हे तात ! उस समय त्रिलोकी में सज्जनों को सुख देनेवाला महान् मङ्गल होने लगा। दुष्टों को विशेष कर दैत्यों के लिए बहुत बड़ा विघ्न दिखाई पड़ने लगा ॥ ७१ ॥ अकस्मात् आकाश में नगाड़े बजने लगे और हे नारद ! उस बालक पर आकाशमण्डल से पुष्पवृष्टि होने लगी ॥ ७२ ॥ हे मुनिसत्तम ! उस समय समस्त देवगणों तथा विष्णु के मन में आनन्द तथा उत्साह का सञ्चार होने लगा ॥ ७३ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के चतुर्थ कुमारखण्ड में
शिवपुत्र-जन्म वर्णन नामक द्वितीय अध्याय समाप्त ॥ २ ॥

*

नारद जी कहने लगे—हे देवदेव ! हे प्राणनाथ ! हे ब्रह्मन् ! सृष्टि करने वाले प्रभो ! इसके बाद क्या हुआ, उसे कृपाकर कहिए ॥ १ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात ! इसी समय महाप्रतापी विश्वामित्र भाग्यवशात् यहाँ ईश्वरेच्छा से घूमते हुए जा पहुँचे ॥ २ ॥ इस तेजस्वी बालक के अलौकिक तेज को देखकर वे कृतार्थ हो गये, उन्होंने प्रसन्न होकर उस बालक को नमस्कार किया ॥ ३ ॥ उस बालक के प्रभाव को जानने वाले उन महर्षि विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर विधि-प्रेरित वाणी से प्रसन्नचित्त हो बालक की स्तुति की ॥ ४ ॥ वह बालक बहुत ही प्रसन्न हो गया और अद्भुत हास्य करता हुआ उन महर्षि से प्रसन्नतापूर्वक बोला ॥ ५ ॥

शिवपुत्र ने कहा—हे महाज्ञानिन् ! आप अकस्मात् शिवेच्छा से घूमते हुए यहाँ आ पहुँचे हैं, अतः हे तात ! मेरा वेदोक्त रीति से संस्कार सम्पन्न करो ॥६॥ आज से तुम मेरे परमप्रिय पुरोहित हुए, इसलिए तुम सबके पूज्य होगे, इसमें संशय नहीं ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सुप्रसन्नो हि गाधिजः । तमुवाचानुदात्तेन स्वरेण च सुविस्मितः ॥८॥

विश्वामित्र उवाच

शृणु तात न विप्रोऽहं गाधिक्षत्रियबालकः । विश्वामित्रेति विख्यातः क्षत्रियो विप्रसेवकः ॥९॥

इति स्वचरितं ख्यातं मया ते वरबालक ! । कस्त्वं स्वचरितं ब्रूहि विस्मितायाखिलं हि मे ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य तत्स्ववृत्तं जगाद ह । ततश्चोवाच सुप्रीत्या गाधिजं तं महोतिकृत् ॥११॥

शिवसुत उवाच

विश्वामित्र वरान्मे त्वं ब्रह्मर्षिर्नात्र संशयः । वसिष्ठाद्याश्च नित्यं त्वां प्रशंसिष्यन्ति चादरात् ॥१२॥

अतस्त्वमाज्ञया मे हि संस्कारं कर्तुमर्हसि । इदं सर्वं सुगोप्यं ते कथनीयं न कुत्रचित् ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

ततोऽकार्षीत् स संस्कारं तस्य प्रीत्याऽखिलं यथा । शिवबालस्य देवर्षे वेदोक्तविधिना परम् ॥१४॥

शिवबालोऽपि सुप्रीतो दिव्यज्ञानमदात् परम् । विश्वामित्राय मुनये महोतिकारकः प्रभुः ॥१५॥

पुरोहितं चकारासौ विश्वामित्रं शुचेः सुतः । तदारभ्य द्विजवरो नानालीलाविशारदः ॥१६॥

इत्थं लीला कृता तेन कथिता सा मया मुने । तल्लीलामपरां तात शृणु प्रीत्या वदाम्यहम् ॥१७॥

तस्मिन्नवसरे तातं श्वेतनामा च सम्प्रति । तत्राऽपश्यत् सुतं दिव्यं निजं परमपावनम् ॥१८॥

ततस्तं पावको गत्वा दृष्ट्वाऽऽलिङ्ग्य चुचुम्ब च । पुत्रेति चोक्त्वा तस्मै स शस्त्रं शक्तिं ददौ च सः ॥१९॥

गुहस्तां शक्तिमादाय तच्छृङ्गं चारुरोह ह । तं जघान तया शक्त्या शृङ्गो भुवि पपात सः ॥२०॥

ब्रह्माजी बोले—बालक की बात सुनते ही विश्वामित्र अत्यन्त प्रसन्न हो गये और विस्मित हो मन्द-मन्द स्वर से उस बालक से कहने लगे ॥ ८ ॥

विश्वामित्र बोले—हे तात ! सुनो, मैं ब्राह्मण नहीं हूँ। किन्तु गाधिपुत्र क्षत्रिय कुमार हूँ, मेरा नाम विश्वामित्र है, मैं तो ब्राह्मणसेवक क्षत्रिय हूँ फिर पौरोहित्य कार्य किस प्रकार सम्पादन करूँ ॥ ९ ॥ हे श्रेष्ठ बालक ! मैंने तुमसे अपना सारा चरित्र निवेदन किया, पर तुम कौन हो ? अपना सम्पूर्ण चरित्र मुझसे कहो, मैं तुम्हें देखकर आश्चर्यान्वित हो रहा हूँ ॥ १० ॥

ब्रह्माजी बोले—इस वचन को सुनकर बालक ने प्रसन्न हो विश्वामित्र जी से अपना सारा चरित्र कहा ॥ ११ ॥

शिवसुत बोले—हे विश्वामित्र ! तुम मेरे वरदान से ब्रह्मर्षि हो, इसमें संशय की बात नहीं, वसिष्ठादि ऋषि भी तुम्हारी आदर के साथ प्रशंसा करेंगे ॥ १२ ॥ इस कारण तुम मेरी आज्ञा से मेरा संस्कार करो। किन्तु यह सब रहस्य गुप्त ही रखना चाहिए, किसी से कुछ नहीं कहना चाहिए ॥ १३ ॥

ब्रह्माजी बोले—तब उस बालक के कहने से विश्वामित्र ने बड़े प्रेम से वेदोक्त रीति द्वारा उसका सारा संस्कार सम्पन्न किया ॥ १४ ॥ तदनन्तर शिवपुत्र ने बड़े प्रेम से विश्वामित्र महर्षि को दिव्य ज्ञान प्रदान किया ॥ १५ ॥ अग्नि के उस बालक ने तभी विश्वामित्र को अपना पुरोहित मान लिया। और उसी समय से वे द्विजत्व सम्पादन कर अनेकानेक चरित्र करने लगे ॥ १६ ॥ उस बालक ने इस प्रकार जो लीला की, हे मुने नारद ! वह मैंने तुमसे कहा–अब उस बालक की और लीला सुनो, मैं तुमसे कहता हूँ ॥ १७ ॥ हे तात ! उसी समय श्वेत नामक महर्षि ने उस दिव्य तेजसम्पन्न परम पावन बालक को अपना पुत्र मान लिया। अग्निदेव ने भी उस स्थान पर जाकर बालक को गले लगाकर उसका चुम्बन किया, उन्होंने उस बालक को पुत्र शब्द से पुकारते हुए अपनी शक्ति तथा समस्त अस्त्र प्रदान किये ॥ १८-१९ ॥ गुह उस शक्ति को लेकर क्रौञ्च पर्वत के शिखर पर चढ़ गये, और उस शक्ति से शिखर पर ऐसा प्रहार

दशपद्ममिता वीरा राक्षसाः पूर्वमागताः । तद्वधार्थं द्रुतं नष्टा बभूवुस्तत्प्रहारतः ॥२१॥
हाहाकारो महानासीच्चकम्पे साचला मही । त्रैलोक्यं च सुरेशानः स देवस्तत्र चागमत् ॥२२॥
दक्षिणे तस्य पार्श्वे च वज्रेण स जघान च । शाखनामा ततो जातः पुमांश्चैको महाबलः ॥२३॥
पुनः शक्रो जघानाऽऽशु वामपार्श्वे हि तं तदा । वज्रेणाऽन्यः पुमाञ्जातो विशाखाख्योऽपरो बली ॥२४॥
ततस्तद्धृदयं शक्रो जघान पविना तदा । परोऽभून्नैगमोपाख्यः पुमांस्तद्वन्महाबलः ॥२५॥
तदा स्कन्दादिचत्वारो महावीरा महाबलाः । इन्द्रं हन्तुं द्रुतं जग्मुः सोऽयं तच्छरणं ययौ ॥२६॥
शक्रः ससामरगणो भयं प्राप्य गृहात्ततः । ययौ स्वलोकं चकितो न भेदं ज्ञातवान् मुने ॥२७॥
स बालकस्तु तत्रैव तस्थाऽऽवानन्दसंयुतः । पूर्ववन्निर्भयस्तात नानालीलाकरः प्रभुः ॥२८॥
तस्मिन्नवसरे तत्र कृत्तिकाख्याश्च षट् स्त्रियः । स्नातुं समागता बालं ददृशुस्तं महाप्रभुम् ॥२९॥
ग्रहीतुं तं मनश्चक्रुः सर्वास्ता कृत्तिकाः स्त्रियः । वादो बभूव तासां तद्ग्रहणेच्छापरो मुने ! ॥३०॥
तद्वादशमनार्थं स षण्मुखानि चकार ह । पपौ दुग्धं च सर्वासां तुष्टास्ता अभवन्मुने ॥३१॥
तन्मनोगतिमाज्ञाय सर्वास्ताः कृत्तिकास्तदा । तमादाय ययुर्लोकं स्वकीयं मुदिता मुने ॥३२॥
तं बालकं कुमाराख्यं स्तनं दत्त्वा स्तनार्थिने । वर्द्धयामासुरीशस्य सुतं सूर्याधिकप्रभम् ॥३३॥
न चक्रुर्बालकं याश्च लोचनानामगोचरम् । प्राणेभ्योऽपि प्रेमपात्रं यः पोष्टा तस्य पुत्रकः ॥३४॥
यानि यानि च वस्त्राणि त्रैलोक्ये दुर्लभानि च । ददुस्तस्मै च ताः प्रेम्णा भूषणानि वराणि वै ॥३५॥

किया कि वह शिखर पृथ्वी पर गिर गया ॥ २० ॥ इसके पहले भी उस बालक का वध करने के लिए दश पद्म वीर राक्षस वहाँ गये थे, किन्तु कुमार के प्रहार से सभी नष्ट हो गये ॥ २१ ॥ उस समय सर्वत्र हाहाकार मच गया, पर्वतों के सहित सारी पृथ्वी एवं त्रिलोकी काँपने लगी। उसी समय देवताओं के सहित इन्द्र वहाँ पहुँच गये ॥ २२ ॥

इन्द्र ने अपने वज्र से कार्त्तिकेय के दक्षिण पार्श्व में प्रहार किया। वज्र के लगते ही उससे विशाख नामक एक महान् बलवान् पुरुष प्रगट हो गया ॥ २३ ॥ तब इन्द्र ने उस विशाख के वाम पार्श्व में वज्र से प्रहार किया, उस वज्र के लगते ही उससे विशाख नामक एक और पुरुष प्रगट हो गया ॥ २४ ॥ फिर इन्द्र ने अपने वज्र से उस विशाख के हृदय में वज्र से प्रहार किया, उससे भी निगम नामक एक महा बलवान् पुरुष पैदा हो गया ॥ २५ ॥ तब स्कन्द, शाख, विशाख तथा निगम ये चारों महाबली इन्द्र को मारने के लिए बड़ी शीघ्रता से दौड़े, यह देख इन्द्र उनकी शरण में गये ॥ २६ ॥ और देवताओं के सहित इन्द्र उनसे भयभीत हो उठे, वे आश्चर्यचकित हो अपने लोक चले गये, किन्तु उन्हें भी इस भेद का ज्ञान नहीं हुआ ॥ २७ ॥

वह बालक प्रसन्न हो वहीं पर पूर्ववत् निवास करते हुए अनेक लीलाएँ करने लगा ॥ २८ ॥ उसी समय छह कृत्तिकाएँ स्नान के लिए वहाँ गयीं और उस महाप्रभु बालक को देखा ॥ २९ ॥ उन कृत्तिकाओं ने उस बालक को ग्रहण करना चाहा, उसी समय परस्पर ग्रहण करने की इच्छा से उनमें विवाद होने लगा ॥ ३० ॥ उनका विवाद देखकर उस बालक ने छह मुख धारण कर उन प्रत्येक कृत्तिकाओं का स्तन पान किया, जिससे वे परम सन्तुष्ट हो गयीं ॥ ३१ ॥ फिर उस बालक के मन की गति जानकर वे कृत्तिकाएँ प्रसन्नता से उसे लेकर अपने लोक चली गयीं ॥ ३२ ॥ उन्होंने सूर्य के समान अत्यन्त कान्तिमान् तथा स्तनपान की इच्छा करनेवाले उस शिवपुत्र को अपना दूध पिलाकर बड़ा बनाया ॥ ३३ ॥ वे प्राणों से भी अधिक प्रिय उस बालक को कभी आँखों की ओट न करतीं और अपने प्रेमैकपात्र उस बालक को सदा नेत्रों के सामने रखतीं और उसका पालन करतीं ॥ ३४ ॥ जो-जो वस्त्र एवं आभूषण इस त्रिलोकी में दुर्लभ है, उन सभी वस्त्रों एवं आभूषणों को वे प्रेम से उस बालक को प्रदान करतीं ॥ ३५ ॥

दिने दिने ताः पुपुषुर्बालकं तं महाप्रभुम् । प्रशंसितानि स्वादूनि भोजयित्वा विशेषतः ॥३६॥
तथैकस्मिन् दिने तात स बालः कृत्तिकात्मजः । गत्वा देवसभां दिव्यां सुचरित्रं चकार ह ॥३७॥
स्वमहो दर्शयामास देवेभ्यो हि महाद्भुतम् । सविष्णुभ्योऽखिलेभ्यश्च महोतिकरबालकः ॥३८॥
तं दृष्ट्वा सकलास्ते वै साच्युताः सर्षयः सुराः । विस्मयं प्रापुरत्यन्तं पप्रच्छुस्तं च बालकम् ॥३९॥
को भवानिति तच्छ्रुत्वा न किञ्चित् स जगाद ह । स्वालयं स जगामाऽऽशु गुप्तस्तस्थौ हि पूर्ववत् ॥४०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे कार्तिकेयलीलावर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

(कुमार का शिव के पास आना)

नारद उवाच

देवदेव प्रजानाथ ततः किमभवद्विधे ! । वदेदानीं कृपातस्तु शिवलीलासमन्वितम् ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

कृत्तिकाभिर्गृहीते वै तस्मिञ्शम्भुसुते मुने ! । कश्चित्कालो व्यतीयाय बुबुधे न हिमाद्रिजा ॥ २ ॥
तस्मिन्नवसरे दुर्गा स्मेराननसरोरुहा । उवाच स्वामिनं शम्भुं देवदेवेश्वरं प्रभुम् ॥ ३ ॥

पार्वत्युवाच

देवदेव महादेव शृणु मे वचनं शुभम् । पूर्वपुण्यातिभारेण त्वं मया प्राप्त ईश्वर ! ॥ ४ ॥
कृपया योगिषु श्रेष्ठो विहारैस्तत्परोऽभवः । रतिभङ्गः कृतो देवैस्तत्र मे भवता भव ॥ ५ ॥
भूमौ निपतितं वीर्यं नोदरे मम ते विभो । कुत्र यातं च तद् देव केन देवेन निह्नुतम् ॥ ६ ॥

इसी प्रकार वे अत्यन्त प्रशंसा के योग्य दुर्लभ एवं स्वादिष्ट अन्नों को खिला-खिलाकर प्रतिदिन उस बालक को पुष्ट करने लगीं ॥ ३६ ॥ हे तात ! एक समय कृत्तिकाओं का वह पुत्र देवसभा में जाकर बड़ा सुन्दर चरित्र किया ॥ ३७ ॥ और वह अत्यन्त बलवान् बालक शीघ्रता से देवताओं तथा विष्णु को अपनी महिमा दिखाने लगा ॥ ३८ ॥ उसकी इस महिमा को देखकर विष्णु तथा अन्य देवगण आश्चर्यचकित हो उस बालक से पूछने लगे कि, हे बालक ! तुम कौन हो ? उनकी बात सुनकर उस बालक ने कुछ भी नहीं कहा और अपने घर आकर पूर्ववत् गुप्त रूप से रहने लगा ॥ ३९-४० ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के चतुर्थ-कुमारखण्ड में कार्त्तिकेयलीला-वर्णन नामक तृतीय अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

*

नारद जी बोले—हे देवदेव ! हे प्रजानाथ ! हे विधे ! इसके अनन्तर फिर क्या हुआ, आप मुझसे शिव लीलायुक्त इस आख्यान को कहिए ? ॥ १ ॥

ब्रह्मा जी बोले—इस प्रकार शिवपुत्र को ग्रहण कर उन्हें अपना पुत्र मानते हुए कृत्तिकाओं को कुछ काल व्यतीत हो गये, पर पार्वती को यह समाचार ज्ञात न हुआ ॥ २ ॥ एक समय पार्वती हँसते मुख-कमल से देवदेवेश्वर अपने स्वामी श्री सदाशिव से कहने लगीं ॥ ३ ॥

पार्वती बोलीं—हे देवदेव ! हे महादेव ! आप मेरे शुभ वचन सुनें । हे ईश्वर ! मेरे पूर्वजन्म के अत्यन्त पुण्य-प्रभाव से आप मुझे पति रूप से प्राप्त हुए हैं ॥ ४ ॥ किन्तु जब योगियों में श्रेष्ठ होते हुए भी आप मेरे साथ विहार में प्रवृत्त हुए थे उस समय देवताओं ने आपके साथ होनेवाली मेरी रति को भङ्ग कर दिया ॥ ५ ॥ हे विभो ! जिससे आपका वह वीर्य मेरे उदर में न जाकर पृथ्वी में गिरा । हे देव ! फिर वह

कथं मत्स्वामिनो वीर्यममोघं ते महेश्वर ! । मोघं यातं च किं किं वा शिशुर्जातश्च कुत्रचित् ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच

पार्वतीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः । उवाच देवानाहूय मुनींश्चापि मुनीश्वर ! ॥ ८ ॥

महेश्वर उवाच

देवाः शृणुत मद्वाक्यं पार्वतीवचनं श्रुतम् । अमोघं कुत्र मे वीर्यं यातं केन च निह्नुतम् ॥ ९ ॥

स भयं नापतत् क्षिप्रं स चेद् दण्डं न चार्हति । शक्तौ राजा न शास्ता यः प्रजाबाध्यश्च भक्षकः ॥१०॥

शम्भोस्तद्वचनं श्रुत्वा समालोच्य परस्परम् । ऊचुः सर्वे क्रमेणैव त्रस्तास्तु पुरतः प्रभोः ॥११॥

विष्णुरुवाच

ते मिथ्यावादिनः सन्तु भारते गुरुदारिकाः । गुरुनिन्दारताः शश्वत्त्वद्वीर्यं यैश्च निह्नुतम् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

त्वद्वीर्यं निह्नुतं येन पुण्यक्षेत्रे च भारते । स नाऽन्वितो भवेत्तत्र सेवने . पूजने तव ॥१३॥

लोकपाला ऊचुः

त्वद्वीर्यं निह्नुतं येन पापिना पतितभ्रमात् । भाजनं तस्य सोऽत्यन्तं तत्पापं कर्म सन्ततम् ॥१४॥

देवा ऊचुः

कृत्वा प्रतिज्ञां यो मूढो नापादयति पूर्णताम् । भाजनं तस्य पापस्य त्वद्वीर्यं येन निह्नुतम् ॥१५॥

देवपत्न्य ऊचुः

या निन्दति स्वभर्तारं परं गच्छति पूरुषम् । मातृबन्धुविहीना च त्वद्वीर्यं निह्नुतं यया । ॥१६॥

वीर्य कहाँ गया ? उसे किस देवता ने छिपा रखा ॥ ६ ॥ हे महेश्वर ! आप-जैसे मेरे स्वामी का वीर्य तो अमोघ है, वह निष्फल तो नहीं हो सकता, आप वताइए कि क्या वह व्यर्थ हो गया ? अथवा उससे कोई बालक कहीं प्रगट हुआ ॥ ७ ॥

ब्रह्मा जी बोले—हे मुनीश्वर ! पार्वती की बात सुनकर महेश्वर हँसे पुनः उन्होंने देवताओं एवं मुनियों को बुलाकर पूछा ॥ ८ ॥

महेश्वर बोले—हे देवताओ ! पार्वती के द्वारा कहे हुए मेरे वचन सुनो, मेरा वीर्य तो अमोघ (कभी निष्फल न होनेवाला) है फिर वह कहाँ गया ? और उसे किसने छिपा लिया है ॥९॥ जो शीघ्रता से बता देगा उसे कोई भय नहीं है और वह दण्डनीय भी नहीं होगा। शक्ति होने पर जो राजा अच्छी प्रकार से शासन नहीं करता वह प्रजा का बाधक है, रक्षक न होकर भक्षक ही कहाता है ॥१०॥ शिव जी की बात सुनते ही देवगण भयभीत हो गये और आपस में विचार कर शिव जी के आगे क्रमशः शपथ करते हुए बोले ॥ ११ ॥

विष्णु बोले—हे सदाशिव ! जिसने आपके वीर्य की चोरी की है, वह मिथ्यावादी हो और भारत में जन्म लेकर गुरु-पत्नी गमन तथा गुरु-निन्दा के पाप का निरन्तर भागी बने ॥ १२ ॥

ब्रह्मदेव बोले—हे सदाशिव ! जिसने आपके वीर्य को छिपाया है, वह इस पुण्य-क्षेत्र भारत में आपकी सेवा तथा पूजा का अधिकारी न हो ॥ १३ ॥

लोकपाल बोले—जिस पापी ने पतित होने के भ्रम से आपके वीर्य को चुराया है, वह वीर्य चोरी के पाप का भाजन बने और अपने कर्म से सदैव दुःख को प्राप्त करता रहे ॥ १४ ॥

देवताओं ने कहा—जिसने आपके वीर्य को चुराया है, वह प्रतिज्ञा कर, उसे पूर्ण न करनेवाले पुरुष के पाप का भागी होता है ॥ १५ ॥

देवपत्नियों ने कहा—जो स्त्री अपने स्वामी की निन्दा करे अथपा पर-पुरुष के साथ मैथुन करे वह अपने पिता तथा बन्धुओं से विहीन होकर उस पाप को प्राप्त करे, जिसने आपके वीर्य को छिपाया हो ॥ १६ ॥

ब्रह्मोवाच

देवानां वचनं श्रुत्वा देवदेवेश्वरो हरः । कर्मणां साक्षिणश्चाह धर्मादीन् सभयं वचः ॥१७॥

श्रीशिव उवाच

देवैर्न निह्नुतं केन त्वद्वीर्यं निह्नुतं ध्रुवम् । तदमोघं भगवतो महेशस्य मम प्रभोः ॥१८॥

यूयं च साक्षिणो विश्वे सततं सर्वकर्मणाम् । युष्माकं निह्नुतं किं वा किं ज्ञातुं वक्तुमर्हथ ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

ईश्वरस्य वचः श्रुत्वा सभायां कम्पिताश्च ते । परस्परं समालोक्य क्रमेणोचुः पुरः प्रभोः ॥२०॥

रते तु तिष्ठतो वीर्यं पपात वसुधातले । मया ज्ञातममोघं तच्छङ्करस्य प्रकोपतः ॥२१॥

क्षितिरुवाच

वीर्यं सोढुमशक्तोऽहं तद्वह्नौ न्यक्षिपं पुरा । अतोऽत्र दुर्वहं ब्रह्मन्नबलां क्षन्तुमर्हसि ॥२२॥

वह्निरुवाच

वीर्यं सोढुमशक्तोऽहं तव शङ्कर पर्वते । कैलासे न्यक्षिपं सद्यः कपोतात्मा सुदुःसहम् ॥२३॥

गिरिरुवाच

वीर्यं सोढुमशक्तोऽहं तव शङ्कर लोकप ! । गङ्गायां प्राक्षिपं सद्यो दुःसहं परमेश्वर ! ॥२४॥

गङ्गोवाच

वीर्यं सोढुमशक्ताऽहं तव शङ्कर लोकप ! । व्याकुलाऽति प्रभो नाथ ! न्यक्षिपं शरकानने ॥२५॥

वायुरुवाच

शरेषु पतितं वीर्यं सद्यो बालो बभूव ह । अतीव सुन्दरः शम्भो स्वर्नद्याः पावने तटे ॥२६॥

ब्रह्मा जी बोले—हे देवाधिदेव महेश्वर ! देवताओं के वचन सुनकर कर्म के साक्षीभूत धर्मादि देवताओं को भयभीत करते हुए बोले ॥ १७ ॥

शिव जी बोले—हे धर्मादि देवगणो ! यदि मेरे वीर्य को देवगणों ने नहीं छिपाया है, तब निश्चय कर बताओ कि मेरे वीर्य को किसने छिपाया है ? मुझ महेश्वर का वीर्य तो अमोघ है ॥ १८ ॥ हे विश्व-देवगण ! आप लोग तो सभी के कर्म के सतत साक्षी हैं, आप लोगों से कोई भी बात छिपी नहीं रह सकती, अतः वीर्य का पता लगाकर हमें बताओ ॥ १९ ॥

ब्रह्माजी बोले—उस देवसभा में सदाशिव की बात सुनते ही विश्वेदेव काँप उठे और परस्पर एक-दूसरे की ओर देखते हुए शङ्कर के आगे कहने लगे– ॥ २० ॥ शङ्कर का रतिकाल में भी स्थित रहने वाला वीर्य कोप के कारण पृथ्वी पर गिरा, वह अमोघ है, इसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ ॥ २१ ॥

पृथ्वी बोली—मैंने उस वीर्य को धारण करने में असमर्थ होने के कारण उसे अग्नि को सौंप दिया। आप इसके लिए मुझ अबला को क्षमा करें ॥ २२ ॥

अग्नि बोले—हे शङ्कर ! मैं कपोतरूप से तुम्हारा वीर्य धारण करने में असमर्थ था इसलिए उसे कैलास पर्वत पर त्याग दिया ॥ २३ ॥

कैलास बोले—हे लोकरक्षक सदाशिव ! मैं भी आपके इस असह्य वीर्य को धारण करने में असमर्थ होने के कारण उसे गङ्गा में फेंक दिया ॥ २४ ॥

गङ्गा बोलीं—हे लोकपालक शङ्कर ! मैं भी आपका वीर्य सहन करने में असमर्थ हो गयी, तब व्याकुल होकर उसे सरपत के वन में छोड़ दिया ॥ २५ ॥

वायु बोले—हे शङ्कर ! सरपत के वन में गिरा हुआ वह वीर्य तत्काल बालक के रूप में परिणत हो गया है । हे शम्भो ! गङ्गा के पवित्र तट पर सरपत के वन में वह सुन्दर बालक जन्मा है ॥ २६ ॥

सूर्य उवाच

रुदन्तं बालकं दृष्ट्वाऽगममस्ताचलं प्रभो। प्रेरितः कालचक्रेण निशायां स्थातुमक्षमः ॥२७॥

चन्द्र उवाच

रुदन्तं बालकं प्राप्य गृहीत्वा कृत्तिकागणः। जगाम स्वालयं शम्भो गच्छन् बदरिकाश्रमम् ॥२८॥

जलमुवाच

अमुं रुदन्तमानीय स्तन्यपानेन ताः प्रभो!। वर्द्धयामासुरीशस्य सुतं तव रविप्रभम् ॥२९॥

सन्ध्योवाच

अधुना कृत्तिकानां च वनं तं पोष्य पुत्रकम्। तन्नाम चक्रुस्ताः प्रेम्णा कार्त्तिकश्चेति कौतुकात् ॥३०॥

रात्रिरुवाच

न चक्रुर्बालकं ताश्च लोचनानामगोचरम्। प्राणेभ्योऽपि प्रीतिपात्रं यः पोष्टा तस्य पुत्रकः ॥३१॥

दिनमुवाच

यानि यानि च वस्त्राणि भूषणानि वराणि च। प्रशंसितानि स्वादूनि भोजयामासुरेव तम् ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सन्तुष्टः परसूदनः। मुदं प्राप्य ददौ प्रीत्या विप्रेभ्यो बहुदक्षिणाम् ॥३३॥
पुत्रस्य वार्त्तां सम्प्राप्य पार्वती हृष्टमानसा। कोटिरत्नानि विप्रेभ्यो ददौ बहुधनानि च ॥३४॥
लक्ष्मी सरस्वती मेना सावित्री सर्वयोषितः। विष्णुः सर्वे च देवाश्च ब्राह्मणेभ्यो ददुर्धनम् ॥३५॥
प्रेरितः स प्रभुर्देवैर्मुनिभिः पर्वतैरथ। दूतान् प्रस्थापयामास स्वपुत्रो यत्र तान् गणान् ॥३६॥
वीरभद्रं विशालाक्षं शङ्कुकर्णं पराक्रमम्। नन्दीश्वरं महाकालं वज्रदंष्ट्रं महोन्मदम् ॥३७॥

सूर्य बोले—रोते हुए उस बालक को देखकर कालचक्र से प्रेरित हुआ मैं वहाँ ठहरने में असमर्थ होने के कारण अस्ताचल को चला गया फिर क्या हुआ? यह मैं नहीं जानता ॥ २७ ॥

चन्द्रमा बोले—हे शङ्कर! रोते हुए बालक को देखकर बदरिकाश्रम की ओर जाती हुई कृत्तिकाएँ उसे अपने घर ले गयीं ॥ २८ ॥

जल ने कहा—हे प्रभो! रोते हुए सूर्य के समीप अत्यन्त तेजस्वी उस बालक को कृत्तिकाओं ने अपना स्तन पान कराकर बड़ा बनाया है ॥ २९ ॥

सन्ध्या बोली—इस समय उन कृत्तिका-समूहों ने आपके उस पुत्र को बड़ा बनाकर कौतुक के साथ बड़े प्रेम से उसका कार्त्तिकेय ऐसा नामकरण किया है ॥ ३० ॥

रात्रि बोली—वे कृत्तिकाएँ उस बालक को अपने नेत्रों से कभी ओझल नहीं करतीं, वे प्राणों से भी प्रिय उस बालक का पालन-पोषण करती हैं, इसलिए संरक्षण करने के कारण वह उनका पुत्र है ॥ ३१ ॥

दिन बोले—पृथिवी में प्रशंसा के योग्य जितने श्रेष्ठ वस्त्र एवं आभूषण हैं वे उन्हें पहनाती हैं और स्वादिष्ट भोजन प्रदान करती हैं ॥ ३२ ॥

ब्रह्माजी बोले—उनकी बात सुनकर शिवजी परम प्रसन्न हो गये और ब्राह्मणों को बुलाकर बहुत-सी दक्षिणा दी ॥ ३३ ॥ इधर पुत्र का समाचार सुन पार्वती बहुत प्रसन्न हुईं, उन्होंने भी एक-एक ब्राह्मण को करोड़-करोड़ रत्न तथा बहुत-सी दक्षिणा दी ॥ ३४ ॥ लक्ष्मी, सरस्वती, मेना, सावित्री आदि स्त्रियों ने तथा विष्णु आदि सभी देवगणों ने यह समाचार सुनकर ब्राह्मणों को बहुत धन प्रदान किये ॥ ३५ ॥ तब शिव ने देवता, मुनि एवं पर्वतगणों से प्रेरित होकर अपने गणों को वहाँ भेजा, जहाँ उनका पुत्र था ॥ ३६ ॥ उन्होंने वीरभद्र, विशालाक्ष, शंकुकर्ण, पराक्रम, नन्दीश्वर, महाकाल, बज्रदंष्ट्र,

गोकर्णास्यं दधिमुखं ज्वलदग्निशिखोपमम् । लक्षं च क्षेत्रपालानां भूतानां च त्रिलक्षकम् ॥३८॥
रुद्रांश्च भैरवांश्चैव शिवतुल्यपराक्रमान् । अन्यांश्च विकृताकारानसङ्ख्यानपि नारद ! ॥३९॥
ते सर्वे शिवदूताश्च नानाशस्त्रास्त्रपाणयः । कृत्तिकानां च भवनं वेष्टयामासुरुद्धताः ॥४०॥
दृष्ट्वा तान् कृत्तिकाः सर्वा भयविह्वलमानसाः । कार्त्तिकं कथयामासुर्ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥४१॥

कृत्तिका ऊचुः

वत्स ! सैन्यान्यसङ्ख्यानि वेष्टयामासुरालयम् । किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यं महाभयमुपस्थितम् ॥४२॥

कार्तिकेय उवाच

भयं त्यजत कल्याण्यो भयं किं वा मयि स्थिते । दुर्निवार्योऽस्मि बालश्च मातरः केन वार्यते ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र सैन्येन्द्रो नन्दिकेश्वरः । पुरतः कार्तिकेयस्योपविष्टः समुवाच ह ॥४४॥

नन्दीश्वर उवाच

भ्रातः प्रवृत्तिं शृणु मे मातरश्च शुभावहाम् । प्रेरितोऽहं महेशेन संहर्त्रा शङ्करेण च ॥४५॥
कैलासे सर्वदेवाश्च ब्रह्म-विष्णु-शिवादयः । सभायां संस्थितास्तात महत्युत्सवमङ्गले ॥४६॥
तदा शिवा सभायां वै शङ्करं सर्वशङ्करम् । सम्बोध्य कथयामास तवान्वेषणहेतुकम् ॥४७॥
पप्रच्छ ताञ्शिवो देवान् क्रमात्त्वत्प्राप्तिहेतवे । प्रत्युत्तरं ददुस्ते तु प्रत्येकं च यथोचितम् ॥४८॥
त्वामत्र कृत्तिकास्थाने कथयामासुरीश्वरम् । सर्वे धर्मादयो धर्माऽधर्मस्य कर्मसाक्षिणः ॥४९॥
प्रबभूव रहःक्रीडा पार्वतीशिवयोः पुरा । दृष्टस्य च सुरैः शम्भोर्वीर्यं भूमौ पपात ह ॥५०॥
भूमिस्तदक्षिपद्वह्नौ वह्निश्चाद्रौ स भूधरः । गङ्गायां सोऽक्षिपद्वेगात् तरङ्गैः शरकानने ॥५१॥

महोन्मद, गोकर्णास्य, दधिमुख, अग्नि के समान प्रज्वलित मुखवाले अनेकों गणों को, लक्षसंख्यक क्षेत्रपालों को, तीन लाख भूतों को, शिव के समान पराक्रम वाले अनेक असंख्य रुद्रों को, भैरवों को तथा विकृताकार वाले अन्य असंख्य गणों को वहाँ भेजा ॥३७-३९॥ शिव के उन असंख्य उच्छृंखल दूतों ने नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हो उन कृत्तिकाओं के भवन को चारों ओर से घेर लिया ॥ ४० ॥ उन गणों को देखते ही कृत्तिकाएँ भय से व्याकुल हो गयीं। तब उन्होंने ब्रह्मतेज से देदीप्यमान उस कार्त्तिकेय बालक से यह समाचार कहा ॥ ४१ ॥

कृत्तिकाओं ने कहा—हे वत्स ! देखो, असंख्य सेनाओं ने हमारे घर को घेर लिया है, अब क्या करें ? कहाँ जायें, महाभय उपस्थित हो गया है ॥ ४२ ॥

कार्त्तिकेय बोले—हे कल्याणियो ! तुम लोग भयभीत मत होओ। मेरे रहते भय करने का कोई कारण नहीं है। हे मातः ! मैं यद्यपि अभी बालक हूँ पर अजेय हूँ, इस जगत् में मुझे जीतनेवाला कौन है ॥ ४३ ॥

ब्रह्मा ने कहा—उसी समय सेनापति नन्दिकेश्वर कार्त्तिकेय के आगे जाकर इस प्रकार कहने लगा ॥ ४४ ॥

नन्दीश्वर ने कहा—हे भाई एवं माताओ ! हम जिस कारण से यहाँ आये हैं, वह शुभ समाचार मुझसे सुनो, जगत् के संहार करने वाले शिव ने हमें तुम्हारे पास भेजा है ॥ ४५ ॥ हे तात ! महान् उत्सव एवं मङ्गलदायी कैलास पर्वत की सभा में सभी ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा सभी देवता उपस्थित थे ॥ ४६ ॥ तब उस सभा में भगवती पार्वती ने लोक-कल्याणकारी भगवान् शङ्कर को सम्बोधित करते हुए उनसे तुम्हारा खोज करने को कहा ॥ ४७ ॥ शङ्कर ने सभी देवताओं से क्रमशः तुम्हारे प्राप्ति का उपाय पूछा। उनमें प्रत्येक ने यथोचित उत्तर दिया ॥ ४८ ॥ तदनन्तर सभी के धर्म एवं अधर्म के साक्षीभूत धर्मादि देवताओं ने इन्हीं कृत्तिकाओं के घर में तुम्हारा ठिकाना बताया ॥ ४९ ॥ प्रथम शिव एवं पार्वती में बहुत काल पर्यन्त एकान्त स्थान में विहार होता था, फिर देवताओं के द्वारा अवलोकनमात्र से उन शिव का वीर्य पृथ्वी पर गिर गया ॥ ५० ॥ भूमि ने उसे अग्नि में, अग्नि ने गिरिराज हिमालय में और हिमालय ने उसे गङ्गा

तत्र बालोऽभवस्त्वं हि देवकार्यकृतिः प्रभुः । तत्र लब्धः कृत्तिकाभिस्त्वं भूमिं गच्छ साम्प्रतम् ॥५२॥
तवाभिषेकं शम्भुस्तु करिष्यति सुरैः सह । लप्स्यसे सर्वशस्त्राणि तारकाख्यं हनिष्यसि ॥५३॥
पुत्रस्त्वं विश्वसंहर्तुस्त्वां प्राप्तुं चाऽक्षमा इमाः । नाग्निं गोप्तुं यथा शक्तः शुष्कवृक्षः स्वकोटरे ॥५४॥
दीप्तवांस्त्वं च विश्वेषु नासां गेहेषु शोभसे । यथा पतन् महाकूपे द्विजराजो न राजते ॥५५॥
करोषि च यथाऽलोकं नाऽऽच्छन्नोऽस्मासु तेजसा । यथा सूर्यः कलाच्छन्नो न भवेन्मानवस्य च ॥५६॥

विष्णुस्त्वं जगतां व्यापी नाऽन्यो जातोऽसि शाम्भव ! ।
यथा न केषां व्याप्यं च तत्सर्वं व्यापकं नभः ॥ ५७ ॥

योगीन्द्रो नाऽनुलिप्तश्च भागी चेत् परिपोषणे । नैव लिप्तो यथाऽऽत्मा च कर्मयोगेषु जीविनाम् ॥५८॥
विश्वारम्भस्त्वमीशश्च नासु ते सम्भवेत् स्थितिः । गुणानां तेजसां राशिर्यथात्मानं च योगिनः ॥५९॥
भ्रातर्ये त्वां न जानन्ति ते नरा हतबुद्धयः । नाद्रियन्ते यथा भेकास्त्वेकवासाश्च पङ्कजान् ॥६०॥

कार्त्तिकेय उवाच

भ्रातः सर्वं विजानासि ज्ञानं त्रैकालिकं च यत् । ज्ञानी त्वं का प्रशंसा ते यतो मृत्युञ्जयाश्रितः ॥ ६१ ॥
कर्मणां जन्म येषां वा यासु यासु च योनिषु । तासु ते निर्वृतिं भ्रातः प्राप्नुवन्तीह साम्प्रतम् ॥६२॥
कृत्तिका ज्ञानवत्यश्च योगिन्यः प्रकृतेः कलाः । स्तन्येनासां वर्द्धितोऽहमुपकारेण सन्ततम् ॥६३॥
आसामहं पोष्यपुत्रो मदंशा योषितस्त्विमाः । तस्याश्च प्रकृतेरंशास्ततस्तत्स्वामिवीर्यजः ॥६४॥

में फेंक दिया । तदनन्तर गङ्गा ने अपने तरङ्गों से उसे सरपत के वन में फेंक दिया ॥ ५१ ॥ उसी वीर्य से तुम देवताओं का कार्य करने के लिए उत्पन्न हुए हो । इन कृत्तिकाओं ने तुम्हें वहीं प्राप्त किया और अपने घर ले आयीं । अतः इस समय तुम मृत्युलोक में चलो ॥ ५२ ॥ वहाँ पर शङ्कर देवताओं के सहित तुम्हारा अभिषेक करेंगे, और वहीं सम्पूर्ण शस्त्रास्त्र प्राप्त होंगे, जिससे तुम तारक नामक असुर का वध करोगे ॥ ५३ ॥ तुम विश्व के संहारकर्त्ता शिव के पुत्र हो, इन कृत्तिकाओं को तुम्हें रखने का अधिकार नहीं है । भला शुष्क वृक्ष अपने कोटर में किस प्रकार अग्नि को छिपा सकता है ? ॥ ५४ ॥ तुम सारे संसार में प्रकाशित हो, इन कृत्तिकाओं के घर में रहने से तुम्हारी शोभा नहीं है । जैसे, सर्वलोक प्रकाशक, द्विजराज चन्द्रमा कूप के अन्दर रहकर प्रकाशित नहीं होता ॥ ५५ ॥ तुम इस समय भी इस स्थान में अपने तेज से हमें प्रकाशित कर रहे हो, जिस प्रकार निष्फल सूर्य मानवमात्र को प्रकाश देते हैं ॥५६॥ हे तात ! तुम जगत् में व्याप्त होने से विष्णु ही हो, क्योंकि शिव का पुत्र विष्णु को छोड़कर दूसरा हो नहीं सकता । जैसे, आकाश किसी का व्याप्य नहीं है, किन्तु वह सर्वत्र व्यापक है, ऐसे तुम हो ॥ ५७ ॥ आप योगीन्द्र हो । भोगी होकर भी कर्म में लिप्त नहीं होते, सबका परिपोषण करते हो, जिस प्रकार प्राणियों के कर्मयोग में आत्मा लिप्त नहीं होता ॥ ५८ ॥ आप इस विश्वसृष्टि के कर्त्ता तथा ईश्वर हैं, परन्तु सृष्टि में आप लिप्त नहीं रहते । हे भाई ! आप गुण एवं तेज के राशि हो, अतः योगियों के आत्माभूत आपको जो नहीं जानते वे हतबुद्धि हैं । जिस प्रकार एक जगह रहनेवाला मेढ़क कमल को नहीं पहचानता है ॥ ५९-६० ॥

कार्त्तिकेय बोले—हे भाई ! आप तो सब जानते हैं, क्योंकि ज्ञानी होने से त्रिकालदर्शी हैं और मृत्युञ्जय भगवान् सदाशिव के सेवक हैं इसलिए आपकी प्रशंसा जितनी भी की जाय थोड़ी है ॥ ६१ ॥ जिन लोगों का कर्मवश जिस-जिस योनि में जन्म होता है, उसी-उसी योनि में उनको सुख प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥ ये सभी कृत्तिकाएँ ज्ञानयुक्त हैं, योगिनी हैं और प्रकृति की कलाएँ हैं, इन्होंने अपना दूध पिलाकर हमें इतना बड़ा बनाया है, इसलिए मेरे ऊपर इनका महान् उपकार है ॥ ६३ ॥ मैं इनका पोष्य पुत्र हूँ, मेरे अंश (भाग्य में) से यही मुझे दूध पिलाने के लिए प्राप्त हुईं, यही प्रकृति की अंशभूत हैं,

न मेऽङ्गज्ञो हे शैलेन्द्रकन्यया नन्दिकेश्वर ! । सा च मे धर्मतो माता यथेमाः सर्वसम्मताः ॥६५॥
शम्भुना प्रेपितस्त्वं च शम्भोः पुत्रसमो महान् । आगच्छामि त्वया सार्द्धं द्रक्ष्यामि देवताकुलम् ॥६६॥
इत्येवमुक्त्वा तं शीघ्रं सम्बोध्य कृत्तिकागणम् । कार्त्तिकेयः प्रतस्थे हि सार्द्धं शङ्करपार्षदैः ॥६७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे कार्त्तिकेयान्वेषण-नन्दिसंवादवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

(ब्रह्मादि देवों का कुमार का शस्त्रदान पूर्वक अभिषेक करना)

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र ददर्श रथमुत्तमम् । अद्भुतं शोभितं शश्वद्विश्वकर्मविनिर्मितम् ॥ १ ॥
शतचक्रं सुविस्तीर्णं मनोयायि मनोहरम् । प्रस्थापितं च पार्वत्या वेष्टितं पार्षदैर्वरैः ॥ २ ॥
समारोहत्ततोऽनन्तो हृदयेन विदूयता । कार्त्तिकः परमज्ञानी परमेशानवीर्यजः ॥ ३ ॥
तदैव कृत्तिकाः प्राप्य मुक्तकेश्यः शुचाऽऽतुराः । उन्मत्ता इव तत्रैव वक्तुमारेभिरे वचः ॥ ४ ॥

कृत्तिका ऊचुः

विहायाऽस्मान् कृपासिन्धो गच्छसि त्वं हि निर्दयः ।
नाऽयं धर्मो मातृवर्गान् पालितो यत् सुतस्त्यजेत् ॥ ५ ॥

स्नेहेन वर्द्धितोऽस्माभिः पुत्रोऽस्माकं च धर्मतः । किं कुर्मः क्व च यास्यामो वयं किं करवाम ह ॥ ६ ॥
इत्युक्त्वा कृत्तिकाः सर्वाः कृत्वा वक्षसि कार्त्तिकम् । द्रुतं मूर्च्छामवापुस्ताः सुतविच्छेदकारणात् ॥ ७ ॥

अतः मैं पहले इनका लड़का हूँ इसके बाद ही मैं शङ्कर का लड़का हूँ ॥ ६४ ॥ ऐसे हे नन्दिकेश्वर ! पार्वती से मेरा कोई विरोध नहीं है, वे भी हमारी धर्मतः माता हैं, किन्तु ये कृत्तिकाएँ तो सर्वसम्मत मेरी माता हैं ॥ ६५ ॥ आप महान् हैं और शिवजी के पुत्र समान हैं, और मुझे लिवाने के लिए उन्होंने आपको भेजा है, इसलिए मैं भी आपके साथ चलूँगा और देव-समूहों का दर्शन करूँगा ॥ ६६ ॥ ऐसा कहकर उन्होंने कृत्तिकाओं से जाने की आज्ञा माँगी फिर वे शङ्कर के उन गणों के साथ चल पड़े ॥ ६७ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती'भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के चतुर्थ कुमार-खण्ड में कार्त्तिकेयान्वेषण-नन्दिकेश्वर संवाद वर्णन नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—उसी समय विश्वकर्मा द्वारा रचित, अत्यन्त अद्भुत तथा शोभा-सम्पन्न एक रथ दिखाई पड़ा ॥१॥ उस रथ में सौ पहिए थे, वह बड़ा विस्तीर्ण और मनोहर था, उसकी गति मन के समान वेगवान् थी, वह श्रेष्ठ रथ शिव के पार्षदों से आवेष्टित था । पार्वती ने उसे कुमार के लिए भेजा था ॥ २ ॥ फिर परम ज्ञानी अनन्त तथा शिव के वीर्य से उत्पन्न हुए कार्त्तिकेय ग्लानि से युक्त हो उस रथ पर चढ़े ॥ ३ ॥ उसी समय कृत्तिकाओं ने शोक से व्याकुल हो विखरे हुए वालों से कार्त्तिकेय के पास जाकर उन्मत्त के समान कहा—॥ ४ ॥

कृत्तिकाएँ बोलीं—हे कृपासिन्धो ! आप हम सबको छोड़कर इस प्रकार निर्दय होकर किस प्रकार जा रहे हो ? पुत्र का यह धर्म नहीं है कि जिस माता ने पालन-पोषण किया उसका परित्याग कर चला जाये ॥ ५ ॥ हम लोगों ने वड़े स्नेह से तुम्हें वड़ा वनाया है, तुम हमारे धर्मपुत्र हो । अब तुम्हीं वताओ कि अव हम क्या करें, कहाँ जायें और कैसे रहें ? ॥ ६ ॥ ऐसा कहकर वे कार्त्तिकेय को अपने छाती से लगाकर

ताः कुमारो बोधयित्वा अध्यात्मवचनेन वै । ताभिश्च पार्षदैः सार्द्धमारुरोह रथं मुने ॥ ८ ॥
दृष्ट्वा श्रुत्वा मङ्गलानि बहूनि सुखदानि वै । कुमारः पार्षदैः सार्द्धं जगाम पितृमन्दिरम् ॥ ९ ॥
दक्षेण नन्दियुक्तश्च मनोयायिरथेन च । कुमारः प्राप कैलासं न्यग्रोधाऽक्षयमूलके ॥१०॥
तत्र तस्थौ कृत्तिकाभिः पार्षदप्रवरैः सह । कुमारः शाङ्करिः प्रीत्या नानालीलाविशारदः ॥११॥
तदा सर्वे सुरगणा ऋषयः सिद्धचारणाः । विष्णुना ब्रह्मणा सार्द्धं समाचख्युस्तदागमम् ॥१२॥
तदा दृष्ट्वा च गाङ्गेयं ययौ प्रमुदितः शिवः । अन्यैः समेतो हरिणा ब्रह्मणा च सुरर्षिभिः ॥१३॥
शङ्खाश्च बहवो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः । उत्सवः सुमहानासीद् देवानां तुष्टचेतसाम् ॥१४॥
तदानीमेव तं सर्वे वीरभद्रादयो गणाः । कुर्वन्तः स्वन्वयुः केलिं नानातालधरस्वराः ॥१५॥
स्तावकाः स्तूयमानाश्च चक्रुस्ते गुणकीर्त्तनम् । जयशब्दं नमःशब्दं कुर्वाणाः प्रीतमानसाः ॥१६॥
द्रष्टुं ययुस्तं शरजं शिवात्मजमनुत्तमम् ॥ १७ ॥
पार्वती मङ्गलं चक्रे राजमार्गं मनोहरम् । पद्मरागादिमणिभिः संस्कृतं परितः पुरम् ॥१८॥
पतिपुत्रवतीभिश्च साध्वीभिः स्त्रीभिरन्विता । लक्ष्म्यादित्रिंशद् देवीश्च पुरः कृत्वा समाययौ ॥१९॥
रम्भाद्यप्सरसो दिव्याः सस्मिता वेषसंयुताः । सङ्गीतनर्तनपरा बभूवुश्च शिवाज्ञया ॥२०॥
ये तं समीक्षयामासुर्गाङ्गेयं शङ्करोपमम् । ददृशुस्ते महत्तेजो व्याप्तमासीज्जगत्त्रये ॥२१॥
तत्तेजसावृतं बालं तप्तचामीकरप्रभम् । ववन्दिरे द्रुतं सर्वे कुमारं सूर्यवर्चसम् ॥२२॥
जहर्षुर्विनतस्कन्धा नमःशब्दरतास्तदा । परिवार्योपतस्थुस्ते वामदक्षिणमागताः ॥२३॥

वियोग से व्याकुल हो मूर्च्छित हो गयीं ॥ ७ ॥ तब कुमार ने आध्यात्मिक वचनों से उन्हें समझाया। हे मुने ! फिर वे रथ पर सवार हो पार्षदों के साथ चल पड़े ॥ ८ ॥

कुमार को अपने प्रस्थान के समय नाना प्रकार के मङ्गल दिखाई तथा सुनाई पड़ने लगे, इस प्रकार वे पार्षदों के साथ अपने पिता के घर चले ॥ ९ ॥ अपनी दाहिनी ओर नन्दिकेश्वर से युक्त कुमार मन के समान वेग वाले उस रथ से कैलास पर्वत पर प्रलयकाल में भी नष्ट न होने वाले उस अक्षयवट के समीप पहुँचे ॥ १० ॥ वहाँ पर लीलाविशारद शङ्करपुत्र कुमार कार्त्तिकेय ने उन कृत्तिकाओं तथा पार्षदों के साथ प्रसन्नता से रथ को खड़ा कर दिया ॥ ११ ॥ तदनन्तर सभी देवगण, ऋषिगण, सिद्धचारण, ब्रह्मा तथा विष्णु ने शिवजी से कार्त्तिकेय के आने का समाचार कहा ॥ १२ ॥ उस समय शिवजी गणेश का दर्शन कर विष्णु, ब्रह्मा तथा अन्य सुरर्षियों के साथ प्रसन्न हो कार्त्तिकेय के पास चले ॥ १३ ॥ उस समय शङ्ख, भेरी आदि बाजे बजने लगे और प्रमुदित हुए देवताओं के घर महान् उत्सव होने लगे ॥ १४ ॥ उस समय वीरभद्रादि शिवगण अनेक ताल पर गाना गाते केलि करते हुए शिवजी के पीछे-पीछे चले ॥ १५ ॥ स्तुति-पाठक स्तुतिपूर्वक गुण-कीर्त्तन करने लगे और प्रसन्न हो जय-जयकार तथा नमःशब्द का उच्चारण करने लगे ॥ १६ ॥ और शिवजी के शरपत वन में उत्पन्न हुए उस पुत्र को देखने के लिए चले ॥ १७ ॥ पार्वती ने राजमार्ग को अनेक मङ्गल द्रव्यों (नाना प्रकार के पूर्ण कलश एवं कदली स्तम्भादि) से अत्यन्त मनोहर बना दिया था। उन्होंने पद्मराग आदि मणियों से पुर को चारों तरफ से अलंकृत करवायी ॥१८॥ वे पति पुत्रवाली सुहागिन स्त्रियों को तथा लक्ष्मी आदि तीस देवियों को आगे कर कार्त्तिकेय को लेने के लिए चल पड़ीं ॥ १९ ॥ शिव की आज्ञा से रम्भादि दिव्य अप्सराएँ उत्तम वेष से सजकर मन्द-मन्द हासपूर्वक गाती एवं नाचती हुई चलीं ॥ २० ॥ जिन लोगों ने गङ्गापुत्र गाङ्गेय का दर्शन किया था, उन्होंने देखा कि सारे जगत् में एक बहुत बड़ा तेज व्याप्त हो रहा है ॥ २१ ॥ उस तेज से सुवर्ण के समान देदीप्यमान बालक घिरा हुआ है। तब उन सभी लोगों ने सूर्य के समान अत्यन्त तेजस्वी उस बालक की वन्दना की ॥ २२ ॥ उस बालक के सामने सभी लोगों ने नमःशब्द का उच्चारण करते हुए अपना सिर

अहं विष्णुश्च शक्रश्च तथा देवादयोऽखिलाः । दण्डवत् पतिता भूमौ परिवार्य्य कुमारकम् ॥२४॥
एतस्मिन्नन्तरे शम्भुर्गिरिजा च मुदान्विता । महोत्सवं समागम्य ददर्श तनयं मुदा ॥२५॥
पुत्रं निरीक्ष्य च तदा जगदेकबन्धुः प्रीत्यान्वितः परमया परया भवान्या ।
स्नेहान्वितो भुजगभोगयुतो हि साक्षात् सर्वेश्वरः परिवृतः प्रमथैः परेशः ॥ २६ ॥
अथ शक्तिधरः स्कन्दो दृष्ट्वा तौ पार्वतीशिवौ । अवरुह्य रथाच्चूर्णं शिरसा प्रणनाम ह ॥२७॥
उपगुह्य शिवः प्रीत्या कुमारं मूर्ध्नि शङ्करः । जघ्रौ प्रेम्णा परेशानः प्रसन्नः स्नेहकर्तृकः ॥२८॥
उपगुह्य गुहं तत्र पार्वती जातसम्भ्रमा । प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥२९॥
तदा नीराजितो देवैः सकलत्रैर्मुदान्वितैः । जयशब्देन महता व्याप्तमासीन्नभस्तलम् ॥३०॥
ऋषयो ब्रह्मघोषेण गीतेनैव च गायकाः । वाद्यैश्च बहवस्तत्रोपतस्थुश्च कुमारकम् ॥३१॥
स्वमङ्कमारोप्य तदा महेशः कुमारकं तं प्रभया समुज्ज्वलम् ।
बभौ भवानीपतिरेव साक्षाच्छ्रियाऽन्वितः पुत्रवतां वरिष्ठः ॥ ३२ ॥
कुमारः स्वगणैः सार्द्धमाजगाम शिवालयम् । शिवाज्ञया महोत्साहैः सह देवैर्महासुखी ॥३३॥
दम्पती तौ तदा तत्रैकपद्येन विरेजतुः । विवन्द्यमानावृषिभिरावृतौ सुरसत्तमैः ॥३४॥
कुमारः क्रीडयामास शिवोत्सङ्गे मुदान्वितः । वासुकिं शिवकण्ठस्थं पाणिभ्यां समपीडयत् ॥३५॥
प्रहस्य भगवाञ्शम्भुः शशंस गिरिजां तदा । निरीक्ष्य कृपया दृष्ट्या कृपालुर्लीलयाकृतिम् ॥३६॥
मन्दस्मितेन च तदा भगवान् महेशः प्रापो मुदं च परमां गिरिजासमेतः ।
प्रेम्णा स गद्गदगिरो जगदेकबन्धुर्नोवाच किञ्चन विभुर्भुवनैकभर्त्ता ॥ ३७ ॥
अथ शम्भुर्जगन्नाथो हृष्टो लौकिकवृत्तवान् । रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास कार्त्तिकम् ॥३८॥

झुका लिया । और उसे बायें-दाहिने घेरकर खड़े हो गये ॥ २३ ॥ हे नारद ! मैं विष्णु एवं इन्द्रादि समस्त देवगण कुमार को चारों ओर से घेरकर दण्डवत् प्रणाम करने लगे ॥ २४ ॥ हे मुने ! उसी समय सखियों के सहित गिरिजा ने उस महोत्सव में आकर अपने पुत्र को देखा ॥ २५ ॥ जगत् के एकमात्र रक्षक, साक्षात् सर्वेश्वर सदाशिव सर्पराज का भूषण धारण किये हुए अपने प्रमथगणों से युक्त हो पराम्बा भवानी के साथ बड़े स्नेह से उस पुत्र को देखकर गद्गद हो प्रसन्नता को प्राप्त हुए ॥ २६ ॥

तब शक्ति को धारण किये हुए कुमार ने पार्वती एवं शिव को देखकर शीघ्रता से रथ से उतर उन्हें शिर से प्रणाम किया ॥ २७ ॥ परमेश्वर शिवजी ने कुमार को गले से लगाकर बड़े प्रेम से उनका सिर सूंघा और बहुत प्रसन्न हुए ॥ २८ ॥ पार्वती जी ने भी आश्चर्य में पड़कर उस पुत्र को गले लगाया तथा स्नेह से प्रस्तुत स्तन का दूध उसे पिलाने लगीं ॥ २९ ॥ देवताओं ने अपनी स्त्रियों के साथ कुमार की आरती उतारी, उस समय जय-जयकार के शब्द से सारा आकाशमण्डल व्याप्त हो गया ॥ ३० ॥ ऋषियों नें वेदों के उद्घोष से, गायकों ने गानों से तथा नाना प्रकार के बाजा बजाने वालों ने बाजे से उन कुमार का स्वागत कियाँ ॥ ३१ ॥ कान्ति से देदीप्यमान अपने उस पुत्र को गोद में धारण कर भवानीपति शङ्कर शोभा से सम्पन्न हो पुत्रवानों में श्रेष्ठ हो गये ॥ ३२ ॥ इस प्रकार कुमार गणों के साथ शिव के घर पहुँचे । शिवजी की आज्ञा से देवगणों ने महोत्सव किया ॥ ३३ ॥ उस समय देव एवं मुनियों से वन्दमान होकर तथा उनसे घिरे हुए दम्पती शिवाशिव एक साथ में परम शोभित हुए ॥ ३४ ॥ इधर कुमार भी प्रेम से शिवजी की गोदी में बैठकर उनके कण्ठ में लिपटे हुए वासुकी नाग को चिढ़ाते हुए प्रसन्नतापूर्वक खेलने लगे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार की लीला करते हुए कुमार कार्त्तिकेय को देखकर कृपालु शङ्कर ने कृपादृष्टि से उन्हें देखा, फिर हँसते हुए पार्वती से उनकी लीला की बात कही ॥ ३६ ॥

सर्वव्यापक जगत् के एकमात्र पोषक तथा रक्षक गिरिजा के सहित भगवान् शङ्कर गद्गद होकर मन्द-मन्द हँसते-हँसते हुए आनन्द से विभोर हो कुछ न बोले ॥ ३७ ॥ तदनन्तर जगत्पति भगवान् शङ्कर

वेदमन्त्राभिपूतैश्च सर्वतीर्थोदपूर्णकैः । सद्रत्नकुम्भशतकैः स्नापयामास तं मुदा ॥३९॥
सद्रत्नसाररचित - किरीट - मुकुटाङ्गदम् । वैजयन्तीं स्वमालां च तस्मै चक्रं ददौ हरिः ॥४०॥
शूलं पिनाकं परशुं शक्तिं पाशुपतं शरम् । संहारास्त्रं च परमां विद्यां तस्मै ददौ शिवः ॥४१॥
अदामहं यज्ञसूत्रं वेदांश्च वेदमातरम् । कमण्डलुं च ब्रह्मास्त्रं विद्यां चैवाऽरिमर्दिनीम् ॥४२॥
गजेन्द्रं चैव वज्रं च ददौ तस्मै सुरेश्वरः । श्वेतच्छत्रं रत्नमालां ददौ वस्तुं जलेश्वरः ॥४३॥
मनोयायिरथं सूर्यः सन्नाहं च महाचयम् । यमदण्डं यमश्चैव सुधाकुम्भं सुधानिधिः ॥४४॥
हुताशनो ददौ प्रीत्या महाशक्तिं स्वसूनवे । ददौ स्वशस्त्रं निर्ऋतिर्वायव्यास्त्रं समीरणः ॥४५॥
गदां ददौ कुबेरश्च शूलमीशो ददौ मुदा । नानाशस्त्राण्युपायांश्च सर्वे देवा ददुर्मुदा ॥४६॥
कामास्त्रं कामदेवोऽथ ददौ तस्मै मुदान्वितः । गदां ददौ स्वविद्याश्च तस्मै च परया मुदा ॥४७॥
क्षीरोदोऽमूल्यरत्नानि विशिष्टं रत्ननूपुरम् । हिमालयो हि दिव्यानि भूषणान्यंशुकानि च ॥४८॥
चित्रबर्हणनामानं स्वपुत्रं गरुडो ददौ । अरुणस्ताम्रचूडाख्यं बलिनं चरणायुधम् ॥४९॥
पार्वती सस्मिता हृष्टा परमैश्वर्यमुत्तमम् । ददौ तस्मै महाप्रीत्या चिरञ्जीवित्वमेव च ॥५०॥
लक्ष्मीश्च सम्पदं दिव्यां महाहारं मनोहरम् । सावित्री सिद्धविद्यां च समस्तां प्रददौ मुदा ॥५१॥
अन्याश्चापि मुने देव्यो या यास्तत्र समागताः । स्वात्मवस्तु ददुस्तस्मै तथैव शिशुपालिकाः ॥५२॥
महामहोत्सवस्तत्र बभूव मुनिसत्तम ! । सर्वे प्रसन्नतां याता विशेषाच्च शिवाशिवौ ॥५३॥
एतस्मिन्नन्तरे काले प्रोवाच प्रहसन् मुदा । मुने ब्रह्मादिकान् देवान् रुद्रो भर्गः प्रतापवान् ॥५४॥

ने लौकिक लीला का अनुसरण करते हुए मनोहर रत्नों से जटित सिंहासन पर कुमार कार्त्तिकेय को बैठाया ॥ ३८ ॥ फिर वेदमन्त्रों के द्वारा पवित्र किये गये समस्त तीर्थों के जल से पूर्ण सौ रत्नजटित कलशों से उनको प्रसन्नता से स्नान कराया ॥ ३९ ॥ भगवान् विष्णु ने उत्तम प्रकार के रत्नों से बनाये गये किरीट, मुकुट, बाजूबन्द, वैजयन्ती माला एवं अपना चक्रसुदर्शन उन्हें दिया ॥ ४० ॥ सदाशिव ने अपना त्रिशूल, पिनाक, परशु, शक्ति, पाशुपतास्त्र, बाण, संहारास्त्र एवं परम विद्या कुमार को दी ॥ ४१ ॥ मैंने यज्ञोपवीत, वेद, वेदमाता गायत्री, कमल, ब्रह्मास्त्र तथा शत्रुनाशिनी विद्या उन्हें प्रदान की ॥ ४२ ॥

इन्द्र ने अपना ऐरावत नामक गजेन्द्र तथा वज्र प्रदान किया। वरुण ने श्वेतच्छत्र, रत्नमाला तथा वस्त्र प्रदान किये ॥ ४३ सूर्य ने मन के समान वेग से चलनेवाला उत्तम रथ और महातेजस्वी कवच दिया। यमराज ने यमदण्ड तथा चन्द्रमा ने अमृत पूर्ण घट प्रदान किया ॥ ४४ ॥ अग्नि ने प्रसन्न होकर अपने पुत्र को महाशक्ति प्रदान किया। निर्ऋति ने अपना शस्त्र तथा वायु ने वायव्यास्त्र प्रदान किया ॥४५॥ कुबेर ने गदा तथा ईश्वर ने प्रसन्नता से अपना त्रिशूल दिया। इसी प्रकार सभी देवगणों ने अनेक शस्त्र तथा नाना प्रकार के भेंट अर्पित किये ॥ ४६ ॥ कामदेव ने प्रसन्न हो, अपना कामास्त्र गदा तथा अपनी आकर्षण एवं वशीकरणादि विद्याएँ प्रदान कीं ॥ ४७ ॥ क्षीरसागर ने अमूल्य रत्न तथा विशिष्ट प्रकार से बने हुए रत्न के आभूषण प्रदान किये। हिमालय ने दिव्यभूषण एवं वस्त्र प्रदान किये ॥ ४८ ॥ गरुड़ ने चित्रबर्हण नाम का अपना पुत्र तथा उनके जेठे भाई अरुण ने महा बलवान् चरण से युद्ध करने वाले ताम्रचूड नामक मुर्गा दिया ॥ ४९ ॥ मन्द मुसकानवाली पार्वती ने प्रसन्नता के साथ अपने पुत्र को परमैश्वर्य एवं चिरजीवित्व प्रदान किया ॥ ५० ॥

लक्ष्मी ने दिव्य सम्पत्ति तथा मनोहर हार प्रदान किया। और सावित्री ने बड़े प्रेम से समस्त सिद्धि विद्या प्रदान की ॥ ५१ ॥ हे मुने ! इसी प्रकार अन्य जो भी देवियाँ वहाँ प्रसन्नता से आयी थीं उन्होंने अपनी-अपनी प्रिय वस्तुएँ तथा पालना प्रदान कीं ॥५२॥ हे मुनिसत्तम ! उस समय बहुत बड़ा महोत्सव हुआ और सब प्रसन्न हो गये। विशेषकर शिव-पार्वती तो अत्यन्त प्रसन्न हुईं ॥ ५३ ॥ हे मुने ! उसी समय महाप्रतापी ऐश्वर्य सम्पन्न भगवान् रुद्र हँसते हुए ब्रह्मादि देवगणों से कहने लगे ॥ ५४ ॥

शिव उवाच

हे हरे हे विधे ! देवाः सर्वे शृणुत मद्वचः। सर्वथाऽहं प्रसन्नोऽस्मि वरान् वृणुत ऐच्छिकान् ॥५५॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं शम्भोर्मुने विष्ण्वादयः सुराः । सर्वे प्रोचुः प्रसन्नास्या देवं पशुपतिं प्रभुम् ॥५६॥
कुमारेण हतो ह्येष तारको भविता प्रभो । तदर्थमेव सञ्जातमिदं चरितमुत्तमम् ॥५७॥
तस्मादद्यैव यास्यामस्तारकं हन्तुमुद्यताः । आज्ञां देहि कुमाराय स तं हन्तुं सुखाय नः ॥५८॥
तथेति मत्वा स विभुर्दत्तवांस्तनयं तदा । देवेभ्यस्तारकं हन्तुं कृपया परिभावितः ॥५९॥
शिवाज्ञया सुराः सर्वे ब्रह्मविष्णुमुखास्तदा । पुरस्कृत्य गुहं सद्यो निर्जग्मुर्मिलिता गिरेः ॥६०॥
तत्र रम्यं गृहं दिव्यमद्भुतं परमोज्ज्वलम् । गुहार्थं निर्ममे त्वष्टा तत्र सिंहासनं वरम् ॥६१॥
बहिर्निःसृत्य कैलासात्त्वष्टा शासनतो हरेः । विरेचे नगरं रम्यमद्भुतं निकटे गिरेः ॥६२॥
तदा हरिः सुधीर्भक्त्या कारयामास मङ्गलम् । कार्त्तिकस्याभिषेकं हि सर्वतीर्थजलैः सुरैः ॥६३॥
सर्वथा समलङ्कृत्य वासयामास सङ्ग्रहम् । कार्त्तिकस्य विधिं प्रीत्या कारयामास चोत्सवम् ॥६४॥
ब्रह्माण्डाधिपतित्वं हि ददौ तस्मै मुदा हरिः । चकार तिलकं तस्य समानर्च सुरैः सह ॥६५॥
प्रणम्य कार्त्तिकं प्रीत्या सर्वदेवर्षिभिः सह । तुष्टाव विविधैः स्तोत्रैः शिवरूपं सनातनम् ॥६६॥
वरसिंहासनस्थो हि शुशुभेऽतीव कार्त्तिकः । स्वामिभावं समापन्नो ब्रह्माण्डस्य च पालकः ॥६७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे कुमाराभिषेकवर्णनं
नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

शिवजी बोले—हे हरे, हे विधाता एवं देवगणो ! मैं आप लोगों पर प्रसन्न हूँ, आप लोग अपना अभीष्ट वर मुझसे माँगिए ॥ ५५ ॥

ब्रह्माजी बोले—शिव के वचन सुन विष्णु आदि समस्त देवगण प्रसन्न होकर पशुपति से बोले—॥५६॥ हे प्रभो ! यह कुमार तारकासुर का वध करे जिसके लिए यह सारा चरित्र हुआ है ॥ ५७ ॥ हम लोग उसके मारने के लिए आज ही प्रस्थान करेंगे, इसलिए आप हम लोगों के सुख के लिए इन कुमार को तारकासुर के वध की आज्ञा प्रदान करें ॥ ५८ ॥

पुनः देवताओं के वचन सुनकर सर्वव्यापी शङ्कर ने कृपा से अभिभूत हो देवताओं के कल्याण के निमित्त 'तथास्तु' कहकर अपना पुत्र समर्पित कर दिया ॥ ५९ ॥ शिव की आज्ञा से ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवगण मिलकर कार्त्तिकेय को आगे कर तारकासुर का वध करने के लिए तत्क्षण उस पहाड़ से चल पड़े ॥ ६० ॥ कैलास से बाहर होते ही विष्णु की आज्ञा से विश्वकर्मा ने पर्वत के निकट ही अत्यन्त मनोहर नगर की रचना की ॥ ६१ ॥ उस नगर में उन्होंने अत्यन्त मनोहर परम अद्भुत तथा अत्यन्त निर्मल गृह कुमार के लिए निर्मित किया तथा उस गृह में उत्तम सिंहासन का भी निर्माण किया ॥ ६२ ॥ तब परम बुद्धिमान् विष्णु ने उस गृह में नाना प्रकार के मङ्गल करवाये और देवताओं के साथ सभी तीर्थों के जल से उस सिंहासन पर कार्त्तिकेय का अभिषेक किया ॥ ६३ ॥ फिर कार्त्तिक को अलंकृत कर उनको प्रसन्न रखने की समस्त सामग्री वहाँ एकत्रित कर दी । तथा उस उपलक्ष्य में अनेक उत्सव किये गये ॥ ६४ ॥ हरि ने प्रेम से उनको ब्रह्माण्ड का अधिपतित्व प्रदान किया । फिर स्वयं तिलक लगाकर देवताओं के सहित उनकी पूजा की ॥ ६५ ॥ उन्होंने प्रीति से कार्त्तिकेय को प्रणाम किया, और सनातन शिवस्वरूप उस कुमार की अनेक स्तोत्रों से स्तुति की ॥ ६६ ॥ ब्रह्माण्ड के पालक कार्त्तिकेय इस प्रकार उत्तम सिंहासन पर बैठकर स्वामित्व को प्राप्त कर अत्यन्त शोभित हो गये ॥ ६७ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के चतुर्थ-कुमारखण्ड में कुमाराभिषेक वर्णन नामक पञ्चम अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥

*

षष्ठोऽध्यायः

(खोये हुए यज्ञीक अजको कुमार द्वारा ब्राह्मण को प्रदान)

ब्रह्मोवाच

अथ तत्र स गाङ्गेयो दर्शयामास सूतिकाम् । तामेव शृणु सुप्रीत्या नारद ! त्वं स्वभक्तिदाम् ॥ १ ॥
द्विज एको नारदाख्य आजगाम तदैव हि । तत्राध्वरकरः श्रीमाञ्शरणार्थं गुहस्य वै ॥ २ ॥
स विप्रः प्राप्य निकटं कार्तिकस्य प्रसन्नधीः । स्वाभिप्रायं समाचख्यौ सुप्रणम्य शुभैः स्तवैः ॥ ३ ॥

विप्र उवाच

शृणु स्वामिन् वचो मेऽद्य कष्टं मे विनिवारय । सर्वब्रह्माण्डनाथस्त्वमतस्ते शरणं गतः ॥ ४ ॥
अजमेधाध्वरं कर्तुमारम्भं कृतवानहम् । सोऽजो गतो गृहान्मे हि त्रोटयित्वा स्वबन्धनम् ॥ ५ ॥
न जाने स गतः कुत्राऽन्वेषणं तत्कृतं बहु । न प्राप्तोऽतः स बलवान् भङ्गो भवति मे क्रतोः ॥ ६ ॥
त्वयि नाथे सति विभो ! यज्ञभङ्गः कथं भवेत् । विचार्य्यैवाऽखिलेशान कामं पूर्णं कुरुष्व मे ॥ ७ ॥
त्वां विहाय शरण्यं कं यायां शिवसुत प्रभो ! । सर्वब्रह्माण्डनाथं हि सर्वामरसुसेवितम् ॥ ८ ॥
दीनबन्धुर्दयासिन्धुः सुसेव्यो भक्तवत्सलः । हरिब्रह्मादिदेवैश्च सुस्तुतः परमेश्वरः ॥ ९ ॥
पार्वतीनन्दनः स्कन्दः परमेकः परन्तपः । परमात्माऽऽत्मदः स्वामी सतां च शरणार्थिनाम् ॥ १० ॥

दीनानाथ महेश शङ्करसुत त्रैलोक्यनाथ प्रभो !
मायाधीश समागतोऽस्मि शरणं मां पाहि विप्रप्रिय ।
त्वं सर्वप्रभुरानताखिलविद्-ब्रह्मादिदेवैस्स्तुत-
स्त्वं मायाकृतिरात्मभक्तसुखदो रक्षापरो मायिकः ॥ ११ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! वहाँ पर रहकर कार्त्तिकेय ने अपनी भक्ति देने वाली, जो बाललीला की उस लीला को तुम प्रेम से सुनो ॥ १ ॥ वहाँ पर रहते हुए कार्त्तिकेय के समीप नारद नामक एक ब्राह्मण जो यज्ञ कर रहा था, कार्त्तिकेय की शरण में आया ॥ २ ॥ वह प्रसन्न ब्राह्मण कार्त्तिकेय के पास आकर उन्हें प्रणाम कर और सुन्दर स्तोत्रों से उनकी स्तुति कर अपना अभिप्राय निवेदन करने लगा ॥ ३ ॥

ब्राह्मण बोला—हे स्वामिन् ! आप समस्त ब्रह्माण्ड के अधिपति हैं, मैं आपकी शरण में आया हूँ, अतः मेरा निवेदन सुनकर मेरा कष्ट निवारण कीजिए ॥ ४ ॥ मैंने अजमेध यज्ञ का आरम्भ किया, किन्तु जिस अज से अजमेध यज्ञ करना चाहता था, वह अज बन्धन तोड़कर मेरे घर से भाग गया ॥ ५ ॥ मैंने उसे बहुत खोजा, किन्तु अभी तक उसका पता नहीं लगा, वह बड़ा बलवान् है। हे प्रभो ! उसके बिना मेरा यज्ञ भङ्ग होना चाहता है ॥ ६ ॥ हे विभो ! आप जैसे स्वामी के रहते मेरे यज्ञ का विनाश किस प्रकार हो सकता है, इसलिए हे अखिलेश्वर ! ऐसा विचार कर उसका खोजकर मेरी कामना पूर्ण कीजिए ॥ ७ ॥ हे प्रभो ! हे शिवपुत्र ! अब आपको छोड़कर मैं किसकी शरण जाऊँ, आप सब ब्रह्माण्ड के स्वामी हो और समस्त देवता आपकी सेवा करते हैं ॥ ८ ॥ हे दीनबन्धो ! हे दयासिन्धो ! हे भक्तवत्सल ! आप तो सब प्रकार से सेवा के योग्य हैं। हे परमेश्वर ! ब्रह्मा, विष्णु तथा समस्त देवगण आपकी स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥ आप पार्वती को आनन्द देनेवाले स्कन्द नाम से अभिहित हैं। आप ही परमात्मा तथा शत्रुओं को परिताप प्रदान करने वाले हैं, आप परमात्मा तथा आत्मज्ञान देनेवाले तथा शरण की इच्छा रखने वाले, सज्जनों के स्वामी हैं ॥ १० ॥

हे दीनानाथ, हे महेश, हे शङ्करसुत, त्रैलोक्यनाथ, प्रभो, मायाधीश एवं ब्राह्मणप्रिय ! मैं आपकी शरण में आया हूँ, मेरी रक्षा कीजिए। आप सबके स्वामी हैं, सभी ब्रह्मादि देवता आपको प्रणाम कर आपकी स्तुति करते हैं, आप माया से स्वरूप धारणकर अपने भक्तों को सुख देते हो, सबकी रक्षा करने

भक्तप्राणगुणाकरस्त्रिगुणतो भिन्नोऽसि शम्भुप्रियः
शम्भुः शम्भुसुतः प्रसन्नसुखदः सच्चित्स्वरूपो महान् ।
सर्वज्ञस्त्रिपुरघ्नशङ्करसुतः सत्प्रेमवश्यः सदा
षड्वक्त्रः प्रियसाधुरानतप्रियः सर्वेश्वरः शङ्करः ॥
साधुद्रोहकरघ्न शङ्करगुरो ब्रह्माण्डनाथः प्रभुः
सर्वेषाममरादिसेवितपदो मां पाहि सेवाप्रिय ! ॥१२॥

वैरिभयङ्कर शङ्कर जनशरणस्य वन्दे तव पदपद्मं सुखकरणस्य ।
विज्ञप्तिं मम कर्णे स्कन्द निधेहि निजभक्तिं जनचेतसि सदा विधेहि ॥१३॥

करोति किं तस्य बली विपक्षो दक्षोऽपि पक्षोभयपार्श्वगुप्तः ।
किं तक्षकोऽप्यामिषभक्षको वा त्वं रक्षको यस्य सदक्षमानः ॥१४॥

विबुधगुरुरपि त्वां स्तोतुमीशो न हि स्यात् कथय कथमहं स्यां मन्दबुद्धिर्वराच्यः ।
शुचिरशुचिरनार्यो यादृशस्तादृशो वा पदकमल-परागं स्कन्द ! ते प्रार्थयामि ॥१५॥

हे सर्वेश्वर भक्तवत्सल कृपासिन्धो ! त्वदीयोऽस्म्यहं
भृत्यः स्वस्य न सेवकस्य गणपस्याऽऽगः शतं सत्प्रभो ।
भक्तिं कापि कृतां मनागपि विभो जानासि भृत्यार्तिहा
त्वत्तो नास्त्यपरोऽविता न भगवन् मत्तो नरः पामरः ॥१६॥

कल्याणकर्ता कलिकल्मषघ्नः कुबेरबन्धुः करुणार्द्रचित्तः ।
त्रिषट्कनेत्रो रसवक्त्रशोभी यज्ञं प्रपूर्णं कुरु मे गुह ! त्वम् ॥१७॥

वाले तथा माया को वश में रखने वाले हो ॥ ११ ॥ आप भक्तों के प्राण, गुणों के आगार, तीनों गुणों से भिन्न शिवजी के प्यारे, शिव से अभिन्न, शिव के पुत्र, प्रसन्न सुखदायक तथा सच्चित्स्वरूप हो । आप सर्वज्ञ तथा त्रिपुर-विनाश करने वाले श्री शिव के पुत्र हैं, आप प्रेम के वश हो, छह मुखवाले, साधुओं के प्रिय, प्रणतजनपालक, सर्वेश्वर, सबके कल्याणकारी हैं, आप साधुओं से द्रोह करने वालों का विनाश करते हैं, शङ्कर आपके पिता हैं, आप इस ब्रह्माण्ड के अधिपति प्रभु हैं और सभी देवगण आपके चरणों की सेवा करते हैं, क्योंकि आपको सेवा बहुत प्रिय है । अतः आप मेरी रक्षा करें ॥ १२ ॥ आप वैरियों के लिए भयङ्कर हैं, भक्तों के कल्याण करने वाले, शरण, सुखद, सुखकारी, आपके चरणों में मैं प्रणाम करता हूँ । हे स्कन्द ! मेरी प्रार्थना पर आप ध्यान दें और सभी मनुष्यों के चित्त में अपनी भक्ति प्रदान करें ॥ १३ ॥ जिसके पक्ष में होकर आप उभय पार्श्व में रक्षा करते हैं, उसका अत्यन्त बलवान् तथा दक्ष शत्रु क्या कर सकता है । दक्ष लोगों से माननीय आप जिसके रक्षक हैं, उसका तक्षक अथवा आमिष-भक्षक क्या कर सकता है ? ॥ १४ ॥

हे देव ! देवगुरु बृहस्पति भी आपकी स्तुति करने में असमर्थ हैं, फिर अत्यन्त मन्दबुद्धि मैं आपकी किस प्रकार स्तुति, प्रशंसा एवं पूजा करूँ । किन्तु हे स्कन्द ! मैं पवित्र, अपवित्र, अनार्य चाहे जैसा कुछ भी हूँ, आपके चरण-कमलों के पराग का प्रार्थी हूँ ॥ १५ ॥ हे सर्वेश्वर ! हे भक्तवत्सल ! हे कृपासिन्धो ! मैं आपका सेवक हूँ, आप गणों के पति हो, अतः अपने सेवक के अपराध पर ध्यान मत दो। हे विभो ! मैंने कभी भी आपकी भक्ति नहीं की है, यह आप जानते हैं और आपसे बढ़कर कोई अपने भक्तों की रक्षा करने वाला नहीं है और इस जगत् में मुझसे बढ़कर कोई पामर नहीं है, ऐसा जानकर मेरी रक्षा कीजिए ॥१६॥ आप कल्याण करने वाले, कलि के पाप को नष्ट करने वाले, कुबेर के बन्धु, दयामय, करुणार्द्र चित्तवाले

रक्षकस्त्वं त्रिलोकस्य शरणागतवत्सलः । यज्ञकर्त्ता यज्ञभर्त्ता हरसे विघ्नकारिणाम् ॥१८॥
विघ्नवारण साधूनां सर्गकारण सर्वतः । पूर्णं कुरु ममेशानसुत ! यज्ञं नमोऽस्तु ते ॥१९॥
सर्वत्राता स्कन्द हि त्वं सर्वज्ञाता त्वमेव हि । सर्वेश्वरस्त्वमीशानो निवेशसकलाऽवनः ॥२०॥
सङ्गीतज्ञस्त्वमेवासि वेदविज्ञः परः प्रभुः । सर्वस्थाता विधाता त्वं देवदेवः सतां गतिः ॥२१॥
भवानीनन्दनः शम्भुतनयो वयुनः स्वराट् । ध्याता ध्येयः पितॄणां हि पिता योनिः सदात्मनाम् ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य देवसम्राट् शिवात्मजः । स्वगणं वीरबाह्वाख्यं प्रेषयामास तत्कृते ॥२३॥
तदाज्ञया वीरबाहुस्तदन्वेषणहेतवे । प्रणम्य स्वामिनं भक्त्या महावीरो द्रुतं ययौ ॥२४॥
अन्वेषणं चकाराऽसौ सर्वब्रह्माण्डगोलके । न प्राप तमजं कुत्र शुश्राव तदुपद्रवम् ॥२५॥
जगामाऽथ स वैकुण्ठं तत्राऽजं प्रददर्श तम् । उपद्रवं प्रकुर्वन्तं गलयूपं महाबलम् ॥२६॥
धृत्वा तं शृङ्गयोर्वीरो धर्षयित्वाऽतिवेगतः । आनिनाय स्वामिपुरो विकुर्वन्तं रवं बहु ॥२७॥
दृष्ट्वा तं कार्तिकः सोऽरमारुरोह स तं प्रभुः । धृतब्रह्माण्डगरिमा महाद्युतिकरो गुहः ॥२८॥
मुहूर्तमात्रतः सोऽजो ब्रह्माण्डं सकलं मुने ! । बभ्राम श्रम एवाशु पुनस्तत्स्थानमागतः ॥२९॥
तत उत्तीर्य स स्वामी समुवास स्वमासनम् । सोऽजः स्थितस्तु तत्रैव स नारद उवाच तम् ॥३०॥

नारद उवाच

नमस्ते देवदेवेश ! देहि मेऽजं कृपानिधे ! । कुर्यामध्वरमानन्दात् सखायं कुरु मामहो ॥३१॥

हो, आपके अठारह नेत्र तथा छह मुख हैं, अतः हे देव ! आप मेरे यज्ञ को पूर्ण कीजिए ॥ १७ ॥ हे शरणागत-वत्सल ! आप त्रिलोकी के रक्षक हो, आप ही यज्ञ के कर्त्ता, यज्ञ के भर्त्ता तथा यज्ञ में विघ्न करने वालों का वध करते हो ॥१८॥ आप ही साधुजनों के विघ्न को दूर करने वाले और सबकी सृष्टि करने वाले हैं, अतः हे महेश्वरपुत्र ! मेरे यज्ञ को पूर्ण करो, आपको नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे स्कन्द ! तुम्हीं सब कुछ जानने वाले हो, आप सर्वेश्वर, ईशान तथा सबके एकमात्र स्थान तथा रक्षक हो ॥ २० ॥ आप संगीतज्ञ, वेदवेत्ता और परमेश्वर हो, सबको स्थित करने वाले, विधाता, देवदेव तथा सत्पुरुषों के एकमात्र गति हो ॥ २१ ॥ भवानीनन्दन, शम्भुतनय, ज्ञान के स्वरूप, स्वराट्, ध्याता, ध्येय, पितरों के पिता तथा सज्जनों के कारण हो ॥ २२ ॥

ब्रह्माजी बोले—शिवात्मज एवं देवसम्राट् कार्त्तिकेय उस ब्राह्मण के इस प्रकार का वचन सुनकर वीरबाहु नामक अपने गण को यज्ञ के बकरे को खोजने के लिए भेजा ॥ २३ ॥ कार्त्तिकेय की आज्ञा पाते ही महावीर वीरबाहु भक्ति से अपने स्वामी को प्रणाम कर उसे खोजने के लिए तत्क्षण चल पड़े ॥ २४ ॥ उसने सारे ब्रह्माण्ड में उस बकरे की खोज की, परन्तु उसका कहीं पता न चला, केवल लोगों से उसके उपद्रव का समाचार सुना ॥ २५ ॥ तब उसने वैकुण्ठ में जाकर उस महाबलवान् अज को देखा, जो अपने गले में यज्ञ के यूप को बाँधे हुए वहाँ उपद्रव कर रहा था ॥ २६ ॥ वीरबाहु ने बड़े वेग के साथ उस अज को पकड़कर पृथ्वी में पटक दिया, पुनः उसका सींग पकड़कर कार्त्तिकेय के पास ले आये । उस समय वह ऊँचे स्वर से बारम्बार शब्द कर रहा था ॥ २७ ॥ उसे देखते ही जगत्-सृष्टिकर्त्ता कार्त्तिकेय ब्रह्माण्ड की गरिमा को धारण कर उस पर सवार हो गये ॥ २८ ॥ वह अज विना विश्राम किये ही सारा ब्रह्माण्ड क्षणमात्र में घूमकर फिर वहीं आ गया ॥ २९ ॥ तब कार्त्तिकेय उससे उतरकर अपने आसन पर जा बैठे और वह अज वहीं खड़ा रह गया । तब वह नारद नामक ब्राह्मण कार्त्तिकेय से बोला—॥ ३० ॥

नारद नामक ब्राह्मण ने कहा—हे देवदेवेश ! आपको प्रणाम है, हे कृपानिधे ! अब आप कृपाकर मेरे इस अज को मुझे प्रदान कीजिए ॥ ३१ ॥

कार्तिक उवाच

वधयोग्यो न विप्राऽजः स्वगृहं गच्छ नारद ! । पूर्णोऽस्तु तेऽध्वरः सर्वः प्रसादादेव मे कृतः ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य द्विजः स्वामी वचनं प्रीतमानसः । जगाम स्वालयं दत्त्वा तस्मा आशिषमुत्तमाम् ॥३३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे
कुमाराऽद्भुतचरितवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

(तारकासुर के साथ देवताओं का युद्ध)

ब्रह्मोवाच

हर्य्यादयः सुरास्ते च दृष्ट्वा तच्चरितं विभोः । सुप्रसन्ना बभूवुर्हि विश्वासासक्तमानसाः ॥ १ ॥
वल्गन्तः कुर्वतो नादं भाविताः शिवतेजसा । कुमारं ते पुरस्कृत्य तारकं हन्तुमाययुः ॥ २ ॥
देवानामुद्यमं श्रुत्वा तारकोऽपि महाबलः । सैन्येन महता सद्यो ययौ योद्धुं सुरान् प्रति ॥ ३ ॥
देवा दृष्ट्वा समायान्तं तारकस्य महाबलम् । बलेन बहुकुर्वन्तः सिंहनादं विसिस्मियुः ॥ ४ ॥
तदा नभोऽङ्गना वाणीं जगादोपरि सत्वरम् । शङ्करप्रेरिता सद्यो हर्यादीनखिलान् सुरान् ॥ ५ ॥

व्योमवाण्युवाच

कुमारं च पुरस्कृत्य सुरा यूयं समुद्यताः । दैत्यान् विजित्य सङ्ग्रामे जयिनोऽथ भविष्यथ ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच

वाचं तु खेचरीं श्रुत्वा देवाः सर्वे समुत्सुकाः । वीरशब्दान् प्रकुर्वन्तो निर्भया ह्यभवंस्तदा ॥ ७ ॥
कुमारं च पुरस्कृत्य सर्वे ते जातसाध्वसाः । योद्धुकामाः सुरा जग्मुर्महीसागरसङ्गमम् ॥ ८ ॥

कार्त्तिकेय बोले—हे ब्राह्मण ! यह अज अब बध के योग्य नहीं रहा, अब आप अपने घर जाइए, आपका यज्ञ पूर्ण हो गया, मैं आपको यह वरदान देता हूँ ॥ ३२ ॥

ब्रह्माजी बोले—कार्त्तिकेय के वचन सुनकर उस ब्राह्मण ने स्वामी कार्त्तिकेय को बहुत आशीर्वाद दिया और अपने स्थान को चला गया ॥ ३३ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के चतुर्थ कुमारखण्ड में कुमाराद्भुतचरित वर्णन नामक षष्ठ अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—उन विभु कार्त्तिकेय के इस चरित्र को देखकर विष्णु आदि देवगणों को विश्वास हो गया और वे परम प्रसन्न हो गये ॥ १ ॥ शिवजी के उस तेज से प्रभावित हो, देवगण सिंहनाद करते हुए कुमार को आगे कर तारकासुर का वध करने हेतु चल पड़े ॥ २ ॥ इधर महाबली तारकासुर ने देवताओं के उद्योग को सुनकर बड़ी सेना लेकर युद्ध करने के निमित्त प्रस्थान किया ॥ ३ ॥ जब देवताओं ने तारकासुर की महाबलवान् अपार सेना देखा तो उन्होने बारम्बार सिंहनाद से दैत्यों को आश्चर्यचकित कर दिया ॥ ४ ॥ उसी समय ऊपर से बड़ी शीघ्रता के साथ शिवजी की प्रेरणा से आकाशवाणी ने समस्त विष्णु आदि देवताओं से कहा—॥ ५ ॥

आकाशवाणी बोली—हे देवगणो ! तुम लोग इस कुमार को आगे कर युद्ध का उद्योग करो । तुम लोग अवश्य ही इन दैत्यों को जीतकर संग्राम में विजय प्राप्त करोगे ॥ ६ ॥

ब्रह्माजी बोले—आकाशवाणी को सुनते ही देवगणों में अत्यन्त उत्साह भर गया और वे वीरता से गर्जना करते हुए निर्भय हो गये ॥ ७ ॥ इस प्रकार जब सर्वथा उनका भय दूर हो गया तो वे कुमार को

आजगाम द्रुतं तत्र यत्र देवाः सतारकः। सैन्येन महता सार्द्धं सुरैर्बहुभिरावृतः ॥ ९ ॥
रणदुन्दुभयो नेदुः प्रलयाम्बुदनिःस्वनाः। कर्कशानि च वाद्यानि पराणि च तदागमे ॥१०॥
गर्जमानास्तदा दैत्यास्तारकेणासुरेण ह। कम्पयन्तो भुवं पादक्रमैर्वल्गुनकारकाः ॥११॥
तच्छ्रुत्वा रवमत्युग्रं सर्वे देवा विनिर्भयाः। ऐकपद्येन चोत्तस्थुर्योद्धुकामाश्च तारकम् ॥१२॥
गजमारोप्य देवेन्द्रः कुमारं ह्यग्रतोऽभवत्। सुरसैन्येन महता लोकपालैः समावृतः ॥१३॥
तदा दुन्दुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः। वीणावेणुमृदङ्गानि तथा गन्धर्वनिःस्वनाः ॥१४॥
गजं दत्त्वा महेन्द्राय कुमारो यानमारुहत्। अनेकाश्चर्यसम्भूतं नानारत्नसमन्वितम् ॥१५॥

विमानमारुह्य तदा महायशाः स शाङ्करिः सर्वगुणैरुपेतः।
श्रिया समेतः परया बभौ महान् संवीज्यमानश्चमरैर्महाप्रभैः ॥१६॥
प्राचेतसं छत्रमतीव सुप्रभं रत्नैरुपेतं विविधैर्विराजितम्।
धृतं तदा तच्च कुमारमूर्ध्नि वै ह्यनन्तचान्द्रैः किरणैर्महाप्रभैः ॥१७॥

मिलितास्ते तदा सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः। स्वैः स्वैर्बलैः परिवृता युद्धकामा महाबलाः ॥१८॥
एवं देवाश्च दैत्याश्च योद्धुकामाः स्थिता भुवि। सैन्येन महता तेन व्यूहं कृत्वा पृथक् पृथक् ॥१९॥
ते सेने सुरदैत्यानां शुशुभाते परस्परम्। हन्तुकामे तदाऽन्योन्यं स्तूयमाने च वन्दिभिः ॥२०॥
उभे सेने तदा तेषामगर्जेतां वनोपमे। भयङ्करेऽत्यवीराणामितरेषां सुखावहे ॥२१॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र बलोन्मत्ताः परस्परम्। दैत्या देवा महावीरा युयुधुः क्रोधविह्वलाः ॥२२॥

आगे कर युद्ध की इच्छा से महीनदी, जहाँ समुद्र में मिलती है, उस महीसागर संगम पर गये ॥ ८ ॥ इधर तारक भी जहाँ देवता थे, वहाँ पर अपनी बहुत बड़ी सेना लेकर पहुँच गया ॥ ९ ॥ प्रलयकालीन बादल के समान रण-दुन्दुभी भी बजने लगी। तारकासुर की सेना के आते ही कर्कश बाजे तथा अन्य बाजे बजने लगे ॥१०॥ उस समय तारकासुर के साथ रहने वाले समस्त असुर पैंतरा करते हुए पृथ्वी को कँपाने लगे। और सिंह गर्जना करने लगे ॥ ११ ॥ इन शब्दों को सुनकर देवगण अत्यन्त निर्भय हो एक साथ ही तारकासुर से युद्ध करने के लिए रणभूमि में आ डटे ॥ १२ ॥ स्वयं इन्द्रदेव कुमार को हाथी पर चढ़ाकर देवताओं की सेना के साथ लोकपालों से युक्त हो आगे-आगे चलने लगे ॥ १३ ॥ उस समय अनेक प्रकार की दुन्दुभी बाजे, रणभेरी, वीणा और मृदङ्ग बजने लगे तथा गन्धर्वगण गान करने लगे ॥ १४ ॥ तब कुमार ने हाथी इन्द्र को दे दिया और स्वयं अनेक आश्चर्यपूर्ण नाना रत्नजटित दूसरे यान पर सवार हो गये ॥१५॥ जब सर्वगुण-सम्पन्न महायशस्वी कुमार कार्त्तिकेय विमान के ऊपर चढ़ गये और महाकान्तिमान् चामरों से वीज्यमान हुए तो वे अत्यन्त शोभित होने लगे ॥ १६ ॥ उस समय प्रचेता के द्वारा दिया गया छत्र, जो अनेक रत्नों से जटित होने के कारण महाकान्तिमान् था तथा जिससे चन्द्रकिरणों के समान आभा निकल रही थी वह छत्र कुमार के मस्तक पर धारण किया गया ॥ १७ ॥ तब महा बलवान् इन्द्रादि देवता मिलकर अपनी-अपनी सेना के साथ युद्ध करने की कामना करने लगे ॥ १८ ॥

इस प्रकार देवता एवं दानव दोनों ही व्यूह रचना कर अपनी-अपनी सेनाओं के साथ युद्ध की इच्छा से रणभूमि में आमने-सामने आ डटे ॥ १९ ॥ उस समय देव एवं दानवों की सेना परस्पर युद्ध की इच्छा से आमने-सामने शोभित होने लगी तथा बन्दीजन परस्पर स्तुति करने लगे ॥ २० ॥ समुद्र के समान दोनों सेनाएँ गर्जने लगीं, उन शब्दों से कायरों के मन में भय तथा बीरों के मन में उत्साह का सञ्चार होने लगा ॥ २१ ॥ फिर तो दैत्य एवं देवता दोनों ही एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे। और बल से उन्मत्त

आसीत् सुतुमुलं युद्धं देवदैत्यसमाकुलम्। रुण्डमुण्डाङ्कितं सर्वं क्षणेन समपद्यत ॥२३॥
भूमौ निपतितास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः। निकृत्ताङ्गा महाशस्त्रैर्निहता वीरसम्मताः ॥२४॥
केषाञ्चिद् बाहवश्छिन्ना खड्गपातैः सुदारुणैः। केषाञ्चिदूरवश्छिन्ना वीराणां मानिनां मृधे ॥२५॥
केचिन्मथितसर्वाङ्गा गदाभिर्मुद्गरैस्तथा। केचिन्निर्भिन्नहृदयाः पाशैर्भल्लैश्च पातिताः ॥२६॥
केचिद्विदारिताः पृष्ठे कुन्तैर्ऋष्टिभिरङ्कुशैः। छिन्नान्यपि शिरांस्येव पतितानि च भूतले ॥२७॥
बहूनि च कबन्धानि नृत्यमानानि तत्र वै। वल्गमानानि शतशो उद्यतास्त्रकराणि च ॥२८॥
नद्यः प्रवर्तितास्तत्र शतशोऽसृग्वहास्तदा। भूतप्रेतादयस्तत्र शतशश्च समागताः ॥२९॥
गोमायवः शिवास्तत्र भक्षयन्तः पलं बहु। तथा गृध्रवटाः श्येना वायसा मांसभक्षकाः ॥
बुभुजुः पतितानां च पलानि सुबहूनि वै ॥३०॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र तारकाख्यो महाबलः। सैन्येन महता सद्यो ययौ योद्धुं सुरान् प्रति ॥३१॥
देवा दृष्ट्वा समायान्तं तारकं युद्धदुर्मदम्। योद्धुकामं तदा सद्यो ययुः शक्रादयस्तदा ॥
बभूवाऽथ महोन्नादः सेनयोरुभयोरपि ॥३२॥
अथाऽभूद् द्वन्द्वयुद्धं हि सुराऽसुरविमर्दनम्। यं दृष्ट्वा हर्षिता वीराः क्लीबाश्च भयमागताः॥३३॥
तारको युयुधे युद्धे शक्रेण दितिजो बली। अग्निना सह संह्लादो जम्भेनैव यमः स्वयम्॥३४॥
महाप्रभुर्नैर्ऋतेन पाशी सह बलेन च। सुवीरो वायुना सार्धं पवमानेन गुह्यराट्॥३५॥
ईशानेन समं शम्भुर्युयुधे रणवित्तमः। शुम्भः शेषेण युयुधे कुम्भश्चन्द्रेण दानवः ॥३६॥

होकर क्रोध से अधीर हो युद्ध करने लगे ॥ २२ ॥ उस समय देव एवं दानवों में महाभयङ्कर युद्ध आरम्भ हो गया। क्षणमात्र में पृथ्वी रुण्ड-मुण्डों से व्याप्त हो गयी ॥ २३ ॥ बड़े-बड़े वीरसम्मत मानी योद्धा क्षणमात्र में सैकड़ों एवं हजारों की संख्या में महाशस्त्रों के प्रहार से छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वी में गिरने लगे ॥ २४ ॥ दारुण खड्ग के प्रहार से किसी की भुजा छिन्न-भिन्न हो गयी और किन्हीं मानी वीरों के ऊरु छिन्न-भिन्न हो गये ॥ २५ ॥ मुग्दर तथा गदा के प्रहार से किन्हीं का सर्वाङ्ग छिन्न-भिन्न हो गया। कुछ पाश तथा भालों के द्वारा हृदय के विदीर्ण हो जाने से पृथ्वी पर गिर गये ॥ २६ ॥ कोई पीठ पर भाले, चाकू एवं अंकुश के प्रहार से घायल हो गये। किन्हीं के शिर कटकर पृथ्वी में गिर गये ॥ २७ ॥ उस रणभूमि में सैकड़ों कवन्ध नाच रहे थे तथा कुछ लोग अपने हाथों में शस्त्र लिये हुए एक-दूसरे को ललकार रहे थे ॥ २८ ॥ रणभूमि में खून की सैकड़ों नदियाँ बह चलीं। और सैकड़ों की संख्या में भूत-प्रेत तथा पिशाच वहाँ आकर उपस्थित हो गये ॥ २९ ॥ गीदड़-गीदड़ी, गृध्र, वटु, श्येन तथा कौवे एवं अनेक मांसभक्षी जानवर आकर युद्ध में गिरे हुए योद्धाओं के शरीर का मांस भक्षण करने लगे ॥ ३० ॥

इसी समय महाबली तारकासुर बहुत बड़ी सेना लेकर देवताओं से युद्ध करने के लिए रणभूमि में आ पहुँचा ॥ ३१ ॥ इन्द्रादि देवताओं ने जब युद्ध में दुर्मद तारकासुर को युद्ध करने के लिए उपस्थित देखा तो वे उससे युद्ध करने के लिए चल पड़े। उस समय दोनों सेनाओं में उल्लासपूर्वक गर्जना होने लगी ॥ ३२ ॥ उस समय देव तथा दैत्यों का आपस में विनाशकारी द्वन्द्व युद्ध होने लगा, जिसे देखकर वीर हर्षित होते थे तथा कायर भयभीत हो जाते थे ॥ ३३ ॥ दितिपुत्र तारक इन्द्र से युद्ध करने लगा, संह्लाद अग्नि से, और जम्भ यमराज से द्वन्द्वयुद्ध में भिड़ गये ॥ ३४ ॥ महाप्रभु का नैर्ऋत के साथ, वरुण का बल के साथ, सुवीर का वायु के साथ और पवमान का कुबेर के साथ द्वन्द्वयुद्ध आरम्भ हो गया ॥ ३५ ॥ ईशान के साथ रणकुशल शम्भु का, शम्भु से शेष का और कुम्भदानव के साथ चन्द्रमा का युद्ध होने लगा ॥३६॥

कुञ्जरो मिहिरेणाजौ महाबलपराक्रमः । युयुधे परमास्त्रैश्च नानायुद्धविशारदः ॥३७॥
एवं द्वन्द्वेन युद्धेन महता च सुराऽसुराः । सङ्गरे युयुधुः सर्वे बलेन कृतनिश्चयाः ॥३८॥
अन्योऽन्यं स्पर्द्धमानास्तेऽमरा दैत्या महाबलाः । तस्मिन् देवासुरे युद्धे दुर्जया अभवन्मुने ॥३९॥
तदा च तेषां सुरदानवानां बभूव युद्धं तुमुलं जयैषिणाम् ।
सुखावहं वीरमनस्विनां वै भयावहं चैव तथेतरेषाम् ॥ ४० ॥
मही महारौद्रतरा विनष्टकैः सुराऽसुरैर्वै पतितैरनेकशः ।
तस्मिन्नगम्यातिभयानका तदा जाता महासौख्यवहा मनस्विनाम् ॥ ४१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे
युद्धप्रारम्भवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

(देवासुर-युद्ध)

ब्रह्मोवाच

इति ते वर्णितस्तात देवदानवसेनयोः । सङ्ग्रामस्तुमुलोऽतीव तत्प्रभवो शृणु नारद ! ॥ १ ॥
एवं युद्धेऽतितुमुले देवदानवसंक्षये । तारकेणैव देवेन्द्रः शक्त्या परमया सह ॥ २ ॥
सद्यः पपात नागाच्च धरण्यां मूर्च्छितोऽभवत् । परं कश्मलमापेदे वज्रधारी सुरेश्वरः ॥ ३ ॥
तथैव लोकपाः सर्वेऽसुरैश्च बलवत्तरैः । पराजिता रणे तात ! महारणविशारदैः ॥ ४ ॥
अन्येऽपि निर्जरा दैत्यैर्युद्ध्यमानाः पराजिताः । असहन्तो हि तत्तेजः पलायनपरायणाः ॥ ५ ॥
जगर्जुरसुरास्तत्र जयिनः सुकृतोद्यमाः । सिंहनादं प्रकुर्वन्तः कोलाहलपरायणाः ॥ ६ ॥

उस युद्ध में महाबली एवं पराक्रमी कुन्जर मिहिर के साथ अनेक युद्ध करने लगे ॥ ३७ ॥ इस प्रकार देवता तथा राक्षस अपनी-अपनी सेनाओं के साथ युद्ध में विजय की आशा से परस्पर द्वन्द्वयुद्ध करने लगे ॥३८॥ वे दैत्य तथा देवता उस देवासुर संग्राम में परस्पर एक-दूसरे को ललकारते हुए युद्ध करने लगे, किन्तु दोनों ही एक-दूसरे के लिए दुर्जय हो गये ॥ ३९ ॥ उस समय परस्पर विजय की इच्छा रखने वाले उन देवताओं तथा दानवों का घनघोर युद्ध छिड़ गया, जो मनस्वी वीरों के लिए सुखदायक तथा कायरों के लिए भयदायक हुआ ॥४०॥ युद्ध में घायल हुए अनेक देवता तथा दानवों के गिरने से वह रणभूमि अत्यन्त भयङ्कर हो उठी। कायरों के लिए तो वह अगम्य एवं भयङ्कर हो गयी, पर मनस्वी वीरजनों को प्रसन्न करनेवाली हुई ॥४१॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के चतुर्थ-
कुमारखण्ड में युद्ध प्रारम्भ वर्णन नामक सप्तम अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—हे तात ! इस प्रकार देव-दानव की सेनाओं का घोर युद्ध मैंने तुमसे वर्णन किया, अब उन दोनों सेनाओं के युद्ध तथा कार्त्तिकेय तारकासुर के युद्ध का वर्णन सुनो ॥ १ ॥ देव-दानव के विनाशकारी उस घोर संग्राम में तारकासुर ने शक्ति द्वारा इन्द्र पर प्रहार किया ॥ २ ॥ जिससे घायल होकर इन्द्र तत्क्षण हाथी से मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े, वज्रधारी इन्द्र उस समय निश्चेष्ट हो गये ॥ ३ ॥ उसी प्रकार बलवान् असुरों ने अपने युद्ध के कौशल से लोकपालों को पराजित कर दिया ॥४॥ दूसरे देवगण भी युद्ध में दैत्यों के तेज को न सह सकने के कारण पराजित हो इधर-उधर भागने लगे ॥५॥ इस प्रकार रण में अपना पराक्रम प्रदर्शित कर असुर गर्जना करने लगे, तथा सिंहनाद करते हुए कोलाहल करने लगे ॥ ६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र वीरभद्रो रुषान्वितः । आससाद गणैर्वीरैस्तारकं वीरमानिनम् ॥ ७ ॥
निर्जरान् पृष्ठतः कृत्वा शिवकोपोद्भवो बली । तत्सम्मुखो बभूवाथ योद्धुकामो गणाग्रणीः ॥ ८ ॥
तदा ते प्रमथाः सर्वे दैत्याश्च परमोत्सवाः । युयुधुः संयुगेऽन्योऽन्यं प्रसक्ताश्च महारणे ॥ ९ ॥
त्रिशूलैर्ऋष्टिभिः पाशैः खड्गैः परशुपट्टिशैः । निजघ्नुः समरेऽन्योन्यं रणे रणविशारदाः ॥१०॥
तारको वीरभद्रेण स त्रिशूलाहतो भृशम् । पपात सहसा भूमौ क्षणं मूर्च्छापरिप्लुतः ॥११॥
उत्थाय स द्रुतं वीरस्तारको दैत्यसत्तमः । लब्धसंज्ञो बलाच्छक्त्या वीरभद्रं जघान ह ॥१२॥
वीरभद्रस्तथा वीरो महातेजा हि तारकम् । जघान त्रिशिखेनाशु घोरेण निशितेन तम् ॥१३॥
सोऽपि शक्त्या वीरभद्रं जघान समरे ततः । तारको दितिजाधीशः प्रबलो वीरसम्मतः ॥१४॥
एवं संयुद्ध्यमानौ तौ जघ्नतुश्चेतरेतरम् । नानास्त्रशस्त्रैः समरे रणविद्याविशारदौ ॥१५॥
तयोर्महात्मनोस्तत्र द्वन्द्वयुद्धमभूत्तदा । सर्वेषां पश्यतामेव तुमुलं रोमहर्षणम् ॥१६॥
ततो भेरीमृदङ्गाश्च पटहानकगोमुखाः । विनेदुर्विहता वीरैः शृण्वतां सुभयानकाः ॥१७॥
युयुधातेऽतिसन्नद्धौ प्रहारैर्जर्जरीकृतौ । अन्योऽन्यमतिसंरब्धौ तौ बुधाङ्गारकाविव ॥१८॥
एवं दृष्ट्वा तदा युद्धं वीरभद्रस्य तेन च । तत्र गत्वा वीरभद्रमवोचस्त्वं शिवप्रियः ॥१९॥

नारद उवाच

वीरभद्र ! महावीर ! गणानामग्रणीर्भवान् । निवर्तस्व रणादस्माद्रोचते न वधस्त्वया ॥२०॥
एवं निशम्य त्वद्वाक्यं वीरभद्रो गणाग्रणीः । अवदत् स रुषाविष्टस्त्वां तदा तु कृताञ्जलिः ॥२१॥

इसी समय क्रोध में भरे हुए वीरभद्र ने अपने गणों के साथ रणस्थल में वीरमानी तारकासुर को प्राप्त किया ॥ ७ ॥ परम बलवान् गणों के मुखिया शिव के कोप से उत्पन्न हुए उन वीरभद्र ने सभी देवताओं को अपने-अपने पीछे कर दिया और स्वयं सबके आगे होकर युद्ध करने की इच्छा से तारकासुर के सामने आ गये ॥ ८ ॥ तब वे सभी प्रमथगण तथा दैत्यगण उत्साह में भरकर उस रणस्थल में एक-दूसरे पर प्रहार कर युद्ध करने लगे ॥ ९ ॥ रण में कुशल वे परस्पर एक-दूसरे पर त्रिशूल, चाकू, पाश, खड्ग, परशु एवं पट्टिश से प्रहार करने लगे ॥ १० ॥ वीरभद्र के त्रिशूल से आहत हुआ तारक दैत्य मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर क्षणभर के लिए गिर पड़ा ॥ ११ ॥ फिर वह दैत्यसत्तम तारक मूर्च्छा त्यागकर बड़ी शीघ्रता से उठकर वीरभद्र पर बलपूर्वक शक्ति से प्रहार किया ॥ १२ ॥ इधर महा बलवान् वीरभद्र ने भी अपने घोर तीक्ष्ण बाणों से तारकासुर पर प्रहार किया ॥ १३ ॥ दैत्यों के अधीश्वर महा बलवान् तारक ने भी रणभूमि में वीरभद्र पर शक्ति से प्रहार किया ॥ १४ ॥ इस प्रकार युद्धविद्या में कुशल वे दोनों ही नाना प्रकार के शस्त्रों से एक-दूसरे पर प्रहार करते हुए युद्ध करने लगे ॥ १५ ॥ फिर उन दोनों वीरों में सबके देखते-देखते अत्यन्त रोमाञ्चकारी घनघोर द्वन्द्वयुद्ध होने लगा ॥ १६ ॥ उस समय भेरी, मृदङ्ग, पणव, आनक तथा गोमुख बाजे बजने लगे, जिसे सुनकर वीर प्रसन्न तथा कायर व्याकुल होने लगे ॥१७॥ इस प्रकार बड़ी सावधानी के साथ वे दोनों बुध तथा मङ्गल के साथ बड़े वेग से युद्ध करने लगे। क्रोध में भरकर एक-दूसरे पर प्रहार करते हुए वे एक-दूसरे को जर्जर करने लगे ॥ १८ ॥ इस प्रकार वीरभद्र को तारकासुर के साथ युद्ध करते देख हे मुने नारद ! तुम स्वयं वीरभद्र के पास जाकर कहने लगे ॥ १९ ॥

नारद बोले—हे वीरभद्र ! हे महावीर ! आप सभी गणों में श्रेष्ठ हो, तुम इससे युद्ध करना छोड़ दो, क्योंकि तुम्हारे द्वारा इस तारक का वध शोभा नहीं देता ॥ २० ॥ नारद की इस प्रकार की बातें सुन गणाग्रणी वीरभद्र रोष में भर गये और हाथ जोड़कर तुमसे कहने लगे ॥ २१ ॥

वीरभद्र उवाच

मुनिवर्य महाप्राज्ञ ! शृणु मे परमं वचः । तारकं च वधिष्यामि पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥२२॥
आनयन्ति च ये वीराः स्वामिनं रणसंसदि । ते पापिनो महाक्लीवा विनश्यन्ति रणं गताः ॥२३॥
असद्गतिं प्राप्नुवन्ति तेषां च निरयो ध्रुवम् । वीरभद्रो हि विज्ञेयो न वाच्यस्ते कदाचन ॥२४॥
शस्त्रास्त्रैर्भिन्नगात्रा ये रणं कुर्वन्ति निर्भयाः । इहाऽमुत्र प्रशंस्यास्ते लभन्ते सुखमद्भुतम् ॥२५॥
शृण्वन्तु मम वाक्यानि देवा हरिपुरोगमाः । अतारकां महीमद्य करिष्ये स्वामिवर्जिताम् ॥२६॥
इत्युक्त्वा प्रमथैः सार्द्धं वीरभद्रो हि शूलधृक् । विचिन्त्य मनसा शम्भुं युयुधे तारकेण हि ॥२७॥
वृषारूढैरनेकैश्च त्रिशूलवरधारिभिः । महावीरैस्त्रिनेत्रैश्च स रेजे रणसङ्गतः ॥२८॥
कोलाहलं प्रकुर्वन्तो निर्भयाः शतशो गणाः । वीरभद्रं पुरस्कृत्य युयुधुर्दानवैः सह ॥२९॥
असुरास्तेऽपि युयुधुस्तारकासुरजीविनः । बलोत्कटा महावीरा मर्दयन्तो गणान् रुषा ॥३०॥

पुनः पुनश्चैव बभूव सङ्गरो महोत्कटो दैत्यवरैर्गणानाम् ।
प्रहर्षमाणाः परमास्त्रकोविदास्तदा गणास्ते जयिनो बभूवुः ॥३१॥

गणैर्जितास्ते प्रबलैरसुरा विमुखा रणे । पलायनपरा जाता व्यथिता व्यग्रमानसाः ॥३२॥
एवं भ्रष्टं स्वसैन्यं तद् दृष्ट्वा तत्पालकोऽसुरः । तारको हि रुषाविष्टो हन्तुं देवगणान् ययौ ॥३३॥
भुजानामयुतं कृत्वा सिंहमारुह्य वेगतः । पातयामास तान् देवान् गणांश्च रणमूर्द्धनि ॥३४॥
स दृष्ट्वा तस्य तत्कर्म वीरभद्रो गणाग्रणीः । चकार सुमहत्कोपं तद्वधाय महाबली ॥३५॥

वीरभद्र बोले—हे महाप्राज्ञ ! हे मुनिवर्य ! तुम मेरे श्रेष्ठ वचन सुनो । मैं इस तारक दैत्य का वध अवश्य करूँगा, तुम मेरा पराक्रम देखो ॥ २२ ॥ जो वीर अपने स्वामी को युद्धभूमि में ले आते हैं वे नपुंसक तथा घोर पापी हैं और रणक्षेत्र में नष्ट हो जाते हैं ॥ २३ ॥ वे असद्गति प्राप्त करते हैं, उनको नरक अवश्य प्राप्त होता है । मुझे आप वीरभद्र (वीरों में श्रेष्ठ) समझो, फिर ऐसा कभी मत कहना ॥ २४ ॥ जो वीर शस्त्रास्त्रों से छिन्न-भिन्न होकर निर्भय हो युद्ध करते हैं, वे इस लोक में तथा परलोक में प्रशंसा के पात्र होते हैं तथा सर्वत्र उन्हें अद्भुत सुख प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ विष्णु आदि सभी देवगण मेरा वचन सुनें, आज मैं इस तारक को पृथ्वी के स्वामित्व से रहित कर इसका वध करूँगा । आज यह पृथ्वी निश्चय ही तारक से रहित हो जायेगी ॥ २६ ॥

इस प्रकार त्रिशूल धारण किये हुए वह वीरभद्र प्रमथ गणों के साथ मन में शिव का स्मरण कर तारकासुर के साथ युद्ध करने लगे ॥ २७ ॥ इस युद्धस्थल में त्रिशूल धारण किये वृषभ पर चढ़े हुए त्रिनेत्र एवं महावीर गणों के साथ वह वीरभद्र शोभित होने लगा ॥ २८ ॥ सैकड़ों गण कोलाहल करते हुए वीरभद्र को आगे कर निर्भय हो दानवों के साथ युद्ध करने लगे ॥ २९ ॥ इसी प्रकार तारकासुर के अधीन रहने वाले मदोत्कट महावीर राक्षस भी क्रोध में भरकर गणों का मर्दन करते हुए युद्ध करने लगे ॥ ३० ॥ इस प्रकार गणों का उन दैत्यों के साथ बहुत बड़ा विकट संग्राम बारम्बार होने लगा, फिर अस्त्र चलाने में महाकुशल गण एक-दूसरे को प्रहर्षित करते हुए विजयी हो गये ॥ ३१ ॥ तब गणों से पराजित हुए वे दैत्य, रणभूमि से विमुख हो दुःखी एवं व्याकुल होकर भागने लगे ॥ ३२ ॥ इस प्रकार अपनी सेना को व्यथित तथा पराङ्मुख देखकर तारकासुर क्रोध में भरकर स्वयं देवताओं के साथ युद्ध करने के लिए चला ॥ ३३ ॥ वह दश सहस्र भुजा धारण कर बड़े वेग से सिंह पर सवार हो देवताओं तथा गणों को युद्ध में गिराने लगा ॥ ३४ ॥ तब गणों के मुखिया महाबली वीरभद्र ने उसके इस कर्म को

स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं जग्राह त्रिशिखं परम् । जज्वलुस्तेजसा तस्य दिशः सर्वा नभस्तथा॥३६॥
एतस्मिन्नन्तरे स्वामी वारयामास तं रणम् । वीरबाहुमुखान् सद्यो महाकौतुकदर्शकः ॥३७॥
तदाज्ञया वीभद्रो निवृत्तोऽभूद्रणात्तदा । कोपं चक्रे महावीरस्तारकोऽसुरनायकः ॥३८॥
चकार बाणवृष्टिं च सुरोपरि तदाऽसुरः । तप्तोऽह्वासीत् सुरान् सद्यो नानास्त्ररणकोविदः ॥३९॥
एवं कृत्वा महत्कर्म तारकोऽसुरपालकः । सर्वेषामपि देवानामशक्यो वलिनां वरः ॥४०॥
एवं निहन्यमानांस्तान् दृष्ट्वा देवान् भयाकुलान् । कोपं कृत्वा रणायाशु सन्नद्धोऽभवदच्युतः ॥४१॥
चक्रं सुदर्शनं शार्ङ्गं धनुरादाय सायुधः । अभ्युद्ययौ महादैत्यं रणाय भगवान् हरिः ॥४२॥
ततः समभवद्युद्धं हरितारकयोर्महत् । लोमहर्षणमत्युग्रं सर्वेषां पश्यतां मुने ! ॥४३॥
गदामुद्यम्य स हरिर्जघानासुरमोजसा । द्विधा चकार तां दैत्यस्त्रिशिखेन महावली ॥४४॥
ततः स क्रुद्धो भगवान् देवानामभयङ्करः । शार्ङ्गच्युतैः शरव्यूहैर्जघानासुरनायकम् ॥४५॥
सोऽपि दैत्यो महावीरस्तारकः परवीरहा । चिच्छेद सकलान् वाणान् स्वशरैर्निशितैर्द्रुतम् ॥४६॥
अथ शक्त्या जघानाशु मुरारिं तारकासुरः । भूमौ पपात स हरिस्तत्प्रहारेण मूर्च्छितः ॥४७॥
जग्राह स रुषा चक्रमुत्थितः क्षणतोऽच्युतः । सिंहनादं महत्कृत्वा ज्वलज्ज्वालासमाकुलम् ॥४८॥
तेन तं च जघानासौ दैत्यानामधिपं हरिः । तत्प्रहारेण महता व्यथितो न्यपतद् भुवि ॥४९॥
पुनश्चोत्थाय दैत्येन्द्रस्तारकोऽसुरनायकः । चिच्छेद त्वरितं चक्रं स्वशक्त्यातिवलान्वितः॥५०॥

देखकर क्रोधयुक्त हो उसके वध का विचार किया ॥ ३५ ॥ उन्होंने शिवजी के चरण-कमलों का ध्यानकर तरकस से एक ऐसा बाण निकाला जिसके तेज से दिशाएँ जलने लगीं ॥ ३६ ॥

इसी अवसर में स्वामी कार्त्तिकेय ने कौतुक दिखाने की इच्छा से वीरबाहु प्रभृति गणों को युद्ध करने से रोक दिया ॥ ३७ ॥ वीरभद्र उनकी आज्ञा से रण से निवृत्त हो गये । तब असुरनायक तारकासुर ने महाक्रोध किया ॥ ३८ ॥ उस समय रणविशारद वह तारकासुर निरन्तर बाणवृष्टि करता हुआ देवताओं को सन्तप्त करने लगा ॥ ३९ ॥ इस प्रकार दैत्यसेना का अधिपति वह तारकासुर अपना पराक्रम दिखाते हुए देवताओं से अजेय हो गया ॥ ४० ॥ असुरों के द्वारा मारे जाते हुए भयभीत देवताओं को देखकर विष्णु बड़े क्रोध से युद्ध करने को उद्यत हो गये ॥ ४१ ॥ वे सुदर्शन चक्र तथा शार्ङ्ग धनुष धारण कर उस दैत्य से युद्ध करने के लिए रणभूमि में आये ॥ ४२ ॥

पुनः हे मुने ! सबके देखते-देखते तारकासुर तथा विष्णु का महा घनघोर युद्ध होने लगा ॥ ४३ ॥ विष्णु ने बड़े वेग के साथ गदा उठाकर तारकासुर पर प्रहार किया, तारकासुर ने भी अपने बाणों से उस गदा के दो टुकड़े कर दिये ॥ ४४ ॥ तब देवताओं को अभय देनेवाले भगवान् अच्युत अत्यन्त क्रुद्ध हो गये, उन्होंने शार्ङ्ग धनुष से छोड़े गये बाणों से उस असुर पर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया ॥ ४५ ॥ किन्तु वह अद्भुत वीर तारकासुर भी अपने तीक्ष्ण बाणों से विष्णु के समस्त बाण शीघ्रता से काट दिया ॥४६॥ और अपनी शक्ति से बड़े वेग के साथ विष्णु पर प्रहार किया । उसके प्रहार से मूर्च्छित होकर विष्णु पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ४७ ॥ फिर क्षणभर मूर्च्छित होने के बाद चेतना प्राप्त कर सिंहनाद करते हुए जलती हुई अग्नि के समान तेजस्वी चक्रसुदर्शन से उस असुर पर प्रहार किया ॥ ४८ ॥ उस चक्रसुदर्शन के प्रहार से आहत होकर वह असुर मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ ४९ ॥ फिर वह असुरनायक तारक उठकर

पुनस्तया महाशक्त्या जघानामरवल्लभम् । अच्युतोऽपि महावीरो नन्दकेन जघान तम् ॥५१॥
एवमन्योऽन्यमसुरो विष्णुश्च वलवानुभौ । युयुधाते रणे भूरि तत्राक्षतवलौ मुने ! ॥५२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे
देवदैत्यसामान्ययुद्धवर्णनं नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

(तारकासुर के साथ वीरभद्र का युद्ध)

ब्रह्मोवाच

देवदेव ! गुह स्वामिञ्शाङ्करे पार्वतीसुत ! । न शोभते रणो विष्णु-तारकासुरयोर्वृथा ॥ १ ॥
विष्णुना न हि वध्योऽसौ तारको वलवानति । मया दत्तवरस्तस्मात् सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ २ ॥
नाऽन्यो हन्तास्य पापस्य त्वां विना पार्वतीसुत ! तस्मात्त्वया हि कर्तव्यं वचनं मे महाप्रभो ! ॥ ३ ॥
सन्नद्धो भव दैत्यस्य वधायाशु परन्तप । तद्वधार्थं समुत्पन्नः शङ्करात्त्वं शिवासुत ! ॥ ४ ॥
रक्ष रक्ष महावीर ! त्रिदशान् व्यथितान्रणे । न वालस्त्वं युवा नैव किं तु सर्वेश्वरः प्रभुः ॥ ५ ॥
शक्रं पश्य तथा विष्णुं व्याकुलं च सुरान् गणान् । एवं जहि महादैत्यं त्रैलोक्यं सुखिनं कुरु ॥ ६ ॥
अनेन विजितश्चेन्द्रो लोकपालैः पुरा सह । विष्णुश्चापि महावीरो तर्जितस्तपसो वलात् ॥ ७ ॥
त्रैलोक्यं निर्जितं सर्वमसुरेण दुरात्मना । इदानीं तव सान्निध्यात् पुनर्युद्धं कृतं च तैः ॥ ८ ॥
तस्मात्त्वया निहन्तव्यस्तारकः पापपूरुषः । अन्यवध्यो न चैवायं मद्वराच्छङ्करात्मज ! ॥ ९ ॥

वड़े वेग के साथ अपनी शक्ति से चक्रसुदर्शन को काट डाला ॥ ५० ॥ और उसी महाशक्ति से अच्युत पर प्रहार किया । तव महा वलवान् विष्णु ने नन्दन नामक तलवार से उस पर प्रहार किया ॥ ५१ ॥ हे मुने ! महा वलवान् विष्णु तथा तारकासुर एक-दूसरे से संग्राम करने लगे, किन्तु किसी का भी वल क्षीण नहीं हुआ ॥ ५२ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के चतुर्थ-कुमारखण्ड में देव-दैत्य-सामान्य युद्ध वर्णन नामक अष्टम अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥

*

ब्रह्माजी बोले – हे देवेश ! हे गुह, हे स्वामिन् ! हे शङ्करपुत्र ! हे पार्वतीसुत ! यह विष्णु तथा तारकासुर का संग्राम व्यर्थ में शोभा नहीं देता ॥ १ ॥ यह तारक वड़ा वलवान् है, विष्णु से नहीं मरेगा, मैंने उसको इसी प्रकार का वरदान दिया है, यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ ॥ २ ॥ हे पार्वतीसुत ! तुम्हारे विना इसको कोई मारने वाला नहीं है, इसलिए हे प्रभो ! आप मेरा वचन मानकर इसके साथ संग्राम कीजिए ॥ ३ ॥ हे परन्तप ! अब आप इस दैत्य को मारने के लिए सन्नद्ध हो जाइए । हे शिवपुत्र ! इसको मारने के लिए ही आप उत्पन्न हुए हैं ॥ ४ ॥ हे महावीर ! आप इन दैत्यों से पीड़ित हुए इन देवगणों की इस रण में रक्षा कीजिए, आप न तो वालक हैं, न युवा हैं, किन्तु सर्वेश्वर प्रभु हैं ॥ ५ ॥ आप इस समय तारकासुर के द्वारा उद्विग्न हुए इन्द्र, विष्णु, देव तथा इन गणों को देखिए और इस महादैत्य को मारकर सबको सुखी वनाइए ॥ ६ ॥ इसने पूर्वकाल में लोकपालों सहित इन्द्र पर विजय प्राप्त किया है, और अपनी तपस्या के वल से इसने विष्णु को भी वड़ा डराया-धमकाया है ॥ ७ ॥ इस दुरात्मा असुर ने सारी त्रिलोकी जीत ली है और इस समय वह आपके सन्निकट भी देवताओं से युद्ध कर रहा है ॥ ८ ॥ इस कारण आप इस दुरात्मा पापी तारकासुर का अवश्य वध करें । हे शङ्करात्मज ! यह मेरे वरदान से आपके सिवा किसी अन्य से नहीं मरेगा ॥ ९ ॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा मम वचः कुमारः शङ्करात्मजः । विजहास प्रसन्नात्मा तथाऽस्त्विति वचोऽब्रवीत् ॥१०॥
विनिश्चित्यासुरवधं शाङ्करिः स महाप्रभुः । विमानादवतीर्याथ पदातिरभवत्तदा ॥११॥

पद्भ्यां तदाऽसौ परिधावमानो रेजेऽतिवीरः शिवजः कुमारः ।
करे समादाय महाप्रभां तां शक्तिं महोल्कामिव दीप्तिदीप्ताम् ॥१२॥

दृष्ट्वा तमायान्तमतिप्रचण्डमव्याकुलं षण्मुखमप्रमेयम् ।
दैत्यो बभाषे सुरसत्तमान् स कुमार एष द्विपतां प्रहन्ता ॥१३॥

अनेन साकं ह्यहमेकवीरो योत्स्ये च सर्वान्ह्यमेव वीरान् ।
गणांश्च सर्वानपि घातयामि सलोकपालान् हरिनायकांश्च ॥१४॥

इत्येवमुक्त्वा स तदा महाबलः कुमारमुद्दिश्य ययौ च योद्धुम् ।
जग्राह शक्तिं परमाद्भुतां च स तारको देववरान् बभाषे ॥१५॥

तारक उवाच

कुमारो मेऽग्रतश्चाद्य भवद्भिश्च कथं कृतः । यूयं गतत्रपा देवा विशेषाच्छक्रमेश्वरौ ॥१६॥
पुरैताभ्यां कृतं कर्म विरुद्धं वेदमार्गतः । तच्छृणुध्वं मया प्रोक्तं वर्णयामि विशेषतः ॥१७॥
तत्र विष्णुश्छली दोषी ह्यविवेकी विशेषतः । बलिर्येन पुरा बद्धश्छलमाश्रित्य पापतः ॥१८॥
तेनैव यत्नतः पूर्वमसुरौ मधुकैटभौ । शिरोहीनौ कृतौ धौर्त्याद्वेदमार्गो विवर्जितः ॥१९॥
मोहिनीरूपतोऽनेन पङ्क्तिभेदः कृतो हि वै । देवासुरसुधापाने वेदमार्गो विगर्हितः ॥२०॥
रामौ भूत्वा हता नारी बाली विध्वंसितो हि सः । पुनर्वैश्रवणो विप्रो हतो नीतिर्हता श्रुतेः ॥२१॥

ब्रह्माजी बोले—मेरी बात सुनकर कार्त्तिकेय प्रसन्न होकर हँसने लगे और ऐसा ही होगा ? यह कहा ॥ १० ॥ तब वे महाप्रभु शङ्कर के पुत्र असुर के वध का निश्चय कर विमान से उतरे और पैदल हो गये ॥ ११ ॥ उस युद्धभूमि में कार्त्तिकेय अपने हाथ में महोल्का के समान दीप्तिमान् शक्ति धारण किये हुए पैदल चलते समय अत्यन्त शोभित हो रहे थे ॥ १२ ॥ पराक्रम में अत्यन्त प्रचण्ड, महा धैर्यशाली और अप्रमेय कार्त्तिकेय को अपने सम्मुख आता देख तारकासुर देवताओं से बोला—क्या शत्रुओं का वध करने वाले कुमार यही हैं ॥ १३ ॥ मैं अकेले ही इन कुमार के साथ एवं अन्य वीरों के साथ युद्ध करूँगा। और लोकपाल सहित समस्त गणों एवं विष्णु आदि देवनायकों का वध करूँगा ॥१४॥ ऐसा कहकर वह महाबली कुमार से युद्ध करने के उद्देश्य से चला और हाथ में अत्यन्त अद्भुत शक्ति लिये उन श्रेष्ठ देवताओं से कहने लगा ॥ १५ ॥

तारक ने कहा—हे देवगणो ! तुम लोगों ने इस कुमार को मेरे आगे कैसे कर दिया। तुम सब बड़े निर्लज्ज हो, विशेषकर इन्द्र और विष्णु तो और लज्जाहीन हैं ॥ १६ ॥ पूर्वकाल में भी इन लोगों ने अनेक वेद-विरुद्ध कर्म किये हैं। उनमें इनके विशेष-विशेष कर्मों का वर्णन मैं करता हूँ, हे देवताओ ! तुम लोग सुनो ॥ १७ ॥ इन दोनों में विष्णु तो छली, निर्दोषी विशेषकर अविवेकी हैं, इन्होंने पापपूर्वक छलकर राजा बलि को बाँधा था ॥ १८ ॥ इन्होंने वेदमार्ग का त्यागकर धूर्त्तता से मधु-कैटभ नामक राक्षसों का शिर काटा था ॥ १९ ॥ तदनन्तर जब देवता एवं दैत्य अमृत पीने के लिए एक पंक्ति में बैठे तब मोहिनी रूप धारण कर पंक्ति-भेद कर केवल देवताओं को अमृतपान कराया, इस प्रकार वेदमार्ग को दूषित किया ॥ २० ॥ इन्होंने रामावतार में ताडका स्त्री का वध किया, वाली को छिपकर मारा तथा विश्रवा के पुत्र रावण एवं कुम्भकर्ण, जो ब्राह्मण थे, उनका वध किया, जिससे वेदमार्ग का विनाश किया ॥ २१ ॥

पापं विना स्वकीया स्त्री त्यक्ता पापरतेन यत् । तत्रापि श्रुतिमार्गश्च ध्वंसितः स्वार्थहेतवे ॥२२॥
स्वजनन्याः शिरश्छिन्नमवतारे रसाख्यके । गुरुपुत्रापमानश्च कृतोऽनेन दुरात्मना ॥२३॥
कृष्णो भूत्वाऽन्यनार्यश्च दूषिताः कुलधर्मतः । श्रुतिमार्गं परित्यज्य स्वविवाहाः कृतास्तथा॥२४॥
पुनश्च वेदमार्गो हि निन्दितो नवमे भवे । स्थापितं नास्तिकमतं वेदमार्गविरोधकृत् ॥२५॥
एवं येन कृतं पापं वेदमार्गं विसृज्य वै । स कथं विजयेद्युद्धे भवेद्धर्मवतां वरः ॥२६॥
भ्राता ज्येष्ठश्च यस्तस्य शक्रः पापी महान्मतः । तेन पापान्यनेकानि कृतानि निजहेतुतः ॥२७॥
निकृत्तो हि दितेर्गर्भः स्वार्थहेतोर्विशेषतः । धर्षिता गौतमस्त्री वै हतो वृत्रश्च विप्रजः ॥२८॥
विश्वरूपद्विजातेर्वै भागिनेयस्य यद् गुरोः । निकृत्तानि च शीर्षाणि तदध्वा ध्वंसितः श्रुतेः ॥२९॥
कृत्वा बहूनि पापानि हरिः शक्रः पुनः पुनः । तेजोभिर्विहितावेव नष्टवीर्यौ विशेषतः ॥३०॥
तयोर्बलेन नो यूयं सङ्ग्रामे जयमाप्स्यथ । किमर्थं मूढतां प्राप्य प्राणांस्त्यक्तुमिहागताः॥३१॥
जानन्तौ धर्ममेतौ न स्वार्थलम्पटमानसौ । धर्मं विनाऽमराः कृत्यं निष्फलं सकलं भवेत्॥३२॥
महाधृष्टाविमौ मेऽद्य कृतवन्तौ पुरः शिशुम् । अहं बालं वधिष्यामि तयोः सोऽपि भविष्यति॥३३॥
किं तु बाल इतो यायाद् दूरं प्राणपरीप्सया । इत्युक्त्वोद्दिश्य च हरी वीरभद्रमुवाच सः ॥३४॥
पुरा हतास्त्वया विप्रा दक्षयज्ञे ह्यनेकशः । तत्कर्मणः फलं चाऽद्य दर्शयिष्यामि तेऽनघ! ॥३५॥

इन्होंने उसी रामावतार में बिना अपराध के ही अपनी स्त्री का त्यागकर पापरत हुए। इस प्रकार अपने स्वार्थ के लिए इन्होंने वेदमार्ग को विध्वस्त किया ॥ २२ ॥ फिर छठवें परशुरामावतार में अपनी माता का शिरच्छेदन कर मातृवध का पाप किया और उसी अवतार में इस दुरात्मा ने गणेश को युद्ध में हराकर गुरुपुत्र का अपमान किया ॥ २३ ॥ कृष्णावतार में इन्होंने कुलधर्म के विरुद्ध वेदमार्ग को छोड़कर बहुत-सा विवाह कर अनेक नारियों को दूषित किया ॥ २४ ॥ पुनः नवम बुद्धावतार में वेद का विरोध करते हुए वेद की निन्दा की और नास्तिकमत का स्थापन किया ॥ २५ ॥

इस प्रकार जिन्होंने वेदमार्ग को त्यागकर अनेक पाप किये हैं, वे युद्ध में किस प्रकार विजयी हो सकते हैं, और वे धर्मज्ञ शिरोमणि किस प्रकार हो सकते हैं ॥ २६ ॥ इसी प्रकार इनके जेठे भाई इन्द्र भी महापापी हैं, जिन्होंने अपने स्वार्थ के लिए नाना प्रकार के पाप किये हैं ॥ २७ ॥ इन्हीं इन्द्र ने अपने स्वार्थ के निमित्त दिति के गर्भ में प्रविष्ट होकर उसके गर्भस्थ बालक के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। गौतम की स्त्री से व्यभिचार किया और ब्राह्मणकुमार वृत्र का वध किया ॥ २८ ॥ विश्वरूप ब्राह्मण का जो देवताओं का भगिना तथा इनका पूज्य भी था, उसका शिर काटकर वेदमार्ग को नष्ट किया ॥ २९ ॥ अतः इन विष्णु तथा इन्द्र ने अनेक प्रकार के पाप किये हैं जिससे इनका तेज नष्ट हो गया है और ये वीर्यहीन हो गये हैं ॥ ३० ॥ हे देवगण ! इन दोनों के बल से तो तुमलोग संग्राम में कदापि जय नहीं प्राप्त कर सकते। फिर मूर्खता से अपना प्राण त्याग करने के लिए इस युद्ध-भूमि में कैसे आ गये हो ॥ ३१ ॥ यह दोनों तो बड़े स्वार्थी एवं लम्पट हैं, इन्हें धर्म का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं। हे देवताओ ! धर्म-ज्ञान के बिना किया गया सारा कृत्य व्यर्थ होता है ॥ ३२ ॥ इस समय भी इनकी ढिठाई तो देखो, इन दोनों ने इस बालक को लड़ने के लिए मेरे सामने खड़ा कर दिया है। यदि मैं बालक का वध करूँगा तो वह पाप भी इन्हीं दोनों को लगेगा ॥ ३३ ॥ क्या यह बालक अपना प्राण बचाने की इच्छा से मेरे सामने से कहीं अन्यत्र भाग सकता है। विष्णु तथा इन्द्र के विषय में इतना कहकर वह तारकासुर वीरभद्र से बोला—॥३४॥ हे वीरभद्र ! तुमने दक्षयज्ञ में अनेक ब्राह्मणों का वध किया है, उस कर्म का फल मैं आज तुम्हें दिखाऊँगा ॥ ३५ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवमुक्त्वा तु विधूय पुण्यं निजं स तन्निन्दनकर्मणा वै ।
जग्राह शक्तिं परमाद्भुतां च स तारको युद्धवतां वरिष्ठः ॥३६॥

तं बालान्तिकमायान्तं तारकासुरमोजसा । आजघान च वज्रेण शक्रो गुहपुरःसरः ॥३७॥
तेन वज्रप्रहारेण तारको जर्जरीकृतः । भूमौ पपात सहसा निन्दाहतबलः क्षणम् ॥३८॥
पतितोऽपि समुत्थाय शक्त्या तं प्राहरद्रुषा । पुरन्दरं गजस्थं हि पातयामास भूतले ॥३९॥
हाहाकारो महानासीत् पतिते च पुरन्दरे । सेनायां निर्जराणां हि तद् दृष्ट्वा क्लेश आविशत् ॥४०॥
तारकेणाऽपि तत्रैव यत्कृतं कर्म दुःखदम् । स्वनाशकारणं धर्मविरुद्धं तन्निबोध मे ॥४१॥
पतितं च पदाक्रम्य हस्ताद् वज्रं प्रगृह्य वै । पुनरुद्धज्रघातेन शक्रमाताडयद् भृशम् ॥४२॥
एवं तिरस्कृतं दृष्ट्वा शक्रं विष्णुः प्रतापवान् । चक्रमुद्यम्य भगवांस्तारकं स जघान ह ॥४३॥
चक्रप्रहाराभितो निपपात क्षितौ हि सः । पुनरुत्थाय दैत्येन्द्रः शक्त्या विष्णुं जघान तम् ॥४४॥
तेन शक्तिप्रहारेण पतितो भुवि चाऽच्युतः । हाहाकारो महानासीच्चुक्रुशुश्चाऽतिनिर्जराः ॥४५॥
निमेषेण पुनर्विष्णुर्यावदुत्तिष्ठते स्वयम् । तावत् सवीरभद्रो हि तत्क्षणादागतोऽसुरम् ॥४६॥
त्रिशूलं च समुद्यम्य वीरभद्रः प्रतापवान् । तारकं दितिजाधीशं जघान प्रसभं बली ॥४७॥
तत्त्रिशूलप्रहारेण स पपात क्षितौ तदा । पतितोऽपि महातेजास्तारकः पुनरुत्थितः ॥४८॥
कृत्वा क्रोधं महावीरः सकलासुरनायकः । जघान परया शक्त्या वीरभद्रं तदोरसि ॥४९॥
वीरभद्रोऽपि पतितो भूतले मूर्च्छितः क्षणम् । तच्छक्त्या परया क्रोधान्निहतो वक्षसि ध्रुवम् ॥५०॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार युद्ध करने वालों में श्रेष्ठ उस तारकासुर ने विष्णु तथा इन्द्र की निन्दा से अपना समस्त पुण्य नष्ट कर दिया और फिर युद्ध करने के लिए अपनी अद्भुत शक्ति ग्रहण की ॥३६॥ तब बड़े वेग से बालक के समीप आते हुए उस तारकासुर को देखकर इन्द्र ने कुमार के आगे होकर अपने वज्र से उस पर प्रहार किया ॥ ३७ ॥ उस वज्र के प्रहार से तारकासुर जर्जर होकर और विष्णुनिन्दा से क्षीण बल होकर क्षणमात्र में पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ ३८ ॥ फिर गिरते हुए भी व उठकर बड़े वेग से इन्द्र पर अपनी शक्ति से प्रहार किया और हाथी पर चढ़े हुए इन्द्र को पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ ३९ ॥ इस प्रकार इन्द्र के गिरते ही देवताओं की सेना में हाहाकार होने लगा, और समस्त देवताओं की सेना में शोक छा गया ॥ ४० ॥ हे नारद जी ! उस समय तारक ने भी धर्मविरुद्ध एवं दुःखदायक जो कर्म अपने नाश के लिए किया सो आप मुझसे सुनें ॥४१॥ उसने गिरे हुए इन्द्र को अपने पैरों से रौंदकर उनके हाथ से वज्र छीनकर फिर उसी से उन पर प्रहार किया ॥ ४२ ॥

इस प्रकार इन्द्र को तिरस्कृत हुए देख प्रतापशाली विष्णु ने अपना चक्र उठाकर उसी से तारकासुर पर प्रहार किया ॥ ४३ ॥ उस चक्र के लगते ही तारकासुर व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, फिर थोड़ी ही देर में उठकर उसने अपनी शक्ति से विष्णु पर प्रहार किया ॥४४॥ उस शक्ति के लगते ही भगवान् विष्णु पृथ्वी पर गिर पड़े, जिससे देवता लोग हाहाकार कर चिल्लाने लगे ॥ ४५ ॥ एक निमेषमात्र में अभी जब विष्णु उठ रहे थे कि उसी समय क्षणमात्र में वीरभद्र उस असुर के समीप पहुँच गये ॥ ४६ ॥ प्रतापी एवं महा बलवान् वीरभद्र ने अपना त्रिशूल लेकर बड़े वेग से उस दैत्यपति तारकासुर पर प्रहार किया ॥ ४७ ॥ उस त्रिशूल के लगते ही महाबली तारक पृथ्वी पर गिर पड़ा फिर वह महातेजस्वी क्षणमात्र में उठ बैठा ॥ ४८ ॥

असुरों के सेनापति उस वीर ने महाक्रोध से अपनी शक्ति द्वारा वीरभद्र पर प्रहार किया ॥४९॥ क्रोध से चलाये गये उस प्रचण्ड शक्ति के छाती में लगते ही वीरभद्र भी क्षणमात्र में मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर

सगणाश्चैव देवास्ते गन्धर्वोरगराक्षसाः । हाहाकारेण महता चुक्रुशुश्च मुहुर्मुहुः ॥५१॥
निमेषमात्रात् सहसा महौजाः सवीरभद्रो द्विषतां निहन्ता ।
त्रिशूलमुद्यम्य तडित्प्रकाशं जाज्वल्यमानं प्रभया विरेजे ॥५२॥
स्वरोचिषा भासितदिग्वितानं सूर्येन्दुबिम्बाग्निसमानमण्डलम् ।
महाप्रभं वीरभयावहं परं कालाख्यमत्यन्तकरं महोज्ज्वलम् ॥५३॥
यावत् त्रिशूलेन तदा हन्तुकामो महाबलः । वीरभद्रोऽसुरं यावत् कुमारेण निवारितः ॥५४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे तारकवाक्य-शक्र-विष्णु-वीरभद्रयुद्धवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

(कुमार द्वारा तारकासुर का वध)

ब्रह्मोवाच

निवार्य वीरभद्रं तं कुमारः परवीरहा । समैच्छत्तारकवधं स्मृत्वा शिवपदाम्बुजौ ॥ १ ॥
जगर्जाथ महातेजाः कार्तिकेयो महाबलः । सन्नद्धः सोऽभवत् क्रुद्धः सैन्येन महतावृतः ॥ २ ॥
तदा जयजयेत्युक्तं सर्वैर्देवगणैस्तथा । संस्तुतो वाग्भिरिष्टाभिस्तदैव च सुरर्षिभिः ॥ ३ ॥
तारकस्य कुमारस्य सङ्ग्रामोऽतीव दुःसहः । जातस्तदा महाघोरः सर्वभूतभयङ्करः ॥ ४ ॥
शक्तिहस्तौ च तौ वीरौ युयुधाते परस्परम् । सर्वेषां पश्यतां तत्र महाश्चर्यवतां मुने ! ॥ ५ ॥
शक्तिनिर्भिन्नदेहौ तौ महासाधनसंयुतौ । परस्परं वञ्चयन्तौ सिंहाविव महाबलौ ॥ ६ ॥

पड़े ॥ ५० ॥ तब देवता, गन्धर्व, उरग, राक्षस एवं गण हाहाकार करते हुए चिल्लाने लगे ॥ ५१ ॥ फिर निमेषमात्र मूर्च्छित होने के पश्चात् शत्रुनाशक महातेजस्वी वीरभद्र जलती हुई अग्नि के समान प्रभावाले एवं बिजली के समान देदीप्यमान त्रिशूल लेकर युद्धस्थल में विराजने लगे ॥ ५२ ॥ उनका वह त्रिशूल अपनी कान्ति से दिशाओं को प्रकाशित कर रहा था। वह सूर्य तथा चन्द्रमण्डल के बिम्ब के समान तथा अग्नि के मण्डल के समान प्रकाश कर रहा था। वीरों को भय उत्पन्न करने एवं काल के समान सबका अन्त करने वाला तथा महोज्ज्वल था ॥ ५३ ॥ इस प्रकार महाबली वीरभद्र जब उस त्रिशूल को लेकर असुर को मारने चले तब कुमार ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया ॥ ५४ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के चतुर्थ-कुमार-खण्ड में तारक-वाक्य-शक्र-विष्णु-वीरभद्र युद्ध वर्णन नामक नवम अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—शत्रुपक्ष के वीरों का नाश करनेवाले कुमार कार्त्तिकेय ने इस प्रकार वीरभद्र को तारकासुर के वध से रोककर शिव के चरण-कमलों का ध्यानकर स्वयं तारकासुर के वध की इच्छा की ॥ १ ॥ उस समय महातेजस्वी एवं महा बलवान् कार्त्तिकेय गरजने लगे और क्रुद्ध होकर बड़ी सेना ले तारकासुर के वध के लिए उद्यत हो गये ॥ २ ॥ तब सभी देवताओं, गणों एवं ऋषियों ने कार्त्तिकेय का जय-जयकार किया और श्रेष्ठ वाणी से उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३ ॥ तदनन्तर तारकासुर तथा कुमार का अत्यन्त दुःसह, समस्त प्राणियों को भय उपजाने वाला एवं महाघोर संग्राम होने लगा ॥ ४ ॥ दोनों वीर शक्ति हाथ में लेकर परस्पर युद्ध करने लगे, उस समय सभी देखने वालों को आश्चर्य हो रहा था ॥५॥ उस महासंग्राम में दोनों के शरीर शक्ति के आघात से छिन्न-भिन्न हो गये थे, दोनों ही युद्ध की कुशलता में निपुण थे। वे दोनों महाबली दो सिंह के समान एक-दूसरे की वंचना करते हुए एक-दूसरे पर प्रहार कर

वैतालिकं समाश्रित्य तथा खेचरकं मतम् । पापं तं च समाश्रित्य शक्त्या शक्तिं विजघ्नतुः ॥ ७ ॥
एभिर्मन्त्रैर्महावीरौ चक्रतुर्युद्धमद्भुतम् । अन्योऽन्यं साधकौ भूत्वा महाबलपराक्रमौ ॥ ८ ॥
महाबलं प्रकुर्वन्तौ परस्परवधैषिणौ । जघ्नतुः शक्तिधाराभी रणे रणविशारदौ ॥ ९ ॥
मूर्ध्नि कण्ठे तथा चोर्वोर्जान्वोश्चैव कटीतटे । वक्षस्युरसि पृष्ठे च चिच्छिदुश्च परस्परम् ॥१०॥
तदा तौ युध्यमानौ च हन्तुकामौ महाबलौ । वल्गन्तौ वीरशब्दैश्च नानायुद्धविशारदौ ॥११॥
अभवन् प्रेक्षकाः सर्वे देवा गन्धर्वकिन्नराः । ऊचुः परस्परं तत्र कोऽस्मिन् युद्धे विजेष्यते ॥१२॥
तदा नभोगता वाणी जगौ देवांश्च सान्त्वयन् । असुरं तारकं चात्र कुमारोऽयं हनिष्यति ॥१३॥
मा शोच्यतां सुरैः सर्वैः सुखेन स्थीयतामिति । युष्मदर्थं शङ्करो हि पुत्ररूपेण संस्थितः ॥१४॥

श्रुत्वा तदा तां गगने समीरितां वाचं शुभां सप्रमथैः समावृतः ।
निहन्तुकामः सुखितः कुमारको दैत्याधिपं तारकमाश्वभूत्तदा ॥१५॥

शक्त्या तया महाबाहुराजघान स्तनान्तरे । कुमारः स्म रुषाऽऽविष्टस्तारकासरमोजसा ॥१६॥
तं प्रहारमनादृत्य तारको दैत्यपुङ्गवः । कुमारं चापि सङ्क्रुद्धः स्वशक्त्या सञ्जघान सः ॥१७॥
तेन शक्तिप्रहारेण शाङ्करिर्मूर्च्छितोऽभवत् । मुहूर्ताच्चेतनां प्राप स्तूयमानो महर्षिभिः ॥१८॥
यथा सिंहो मदोन्मत्तो हन्तुकामस्तथाऽसुरम् । कुमारस्तारकं शक्त्या स जघान प्रतापवान् ॥१९॥
एवं परस्परं तौ हि कुमारश्चापि तारकः । युयुधातेऽतिसंरब्धौ शक्तियुद्धविशारदौ ॥२०॥
अभ्यासपरमावास्तामन्योऽन्यं विजिगीषया । पदातिनौ युध्यमानौ चित्ररूपौ तरस्विनौ ॥२१॥

रहे थे ॥६॥ दोनों वैतालिक तथा खेचर मत के युद्ध का आश्रय लेकर तथा पाप का आश्रय कर शक्ति से शक्ति पर प्रहार करने लगे ॥ ७ ॥ दोनों ही महाबली एवं पराक्रमी थे, दोनों ही एक-दूसरे को जीतने की इच्छा से यत्नपूर्वक अद्भुत युद्ध करने लगे ॥ ८ ॥ दोनों ही रणशास्त्र के विशारद एक-दूसरे के वध की इच्छा से अपना पराक्रम प्रदर्शित करते हुए शक्ति की धारा से युद्ध करने लगे ॥ ९ ॥ दोनों परस्पर एक-दूसरे के शिर, कण्ठ, ऊरु, जानु, कटितट तथा पृष्ठ पर प्रहार कर एक-दूसरे का शस्त्र काटने लगे ॥ १० ॥ उस समय नाना युद्धविशारद एवं महा बलवान् दोनों ही एक-दूसरे को मारने की इच्छा से वीरतापूर्वक एक-दूसरे को ललकारने लगे ॥ ११ ॥

देवता, गन्धर्व एवं किन्नर उस युद्ध के प्रेक्षक होकर परस्पर कहने लगे कि देखें, इस युद्ध में किसकी विजय होती है ॥ १२ ॥ तब आकाशवाणी ने देवताओं को सान्त्वना देते हुए कहा कि यह कुमार अवश्य ही तारकासुर का वध करेगा ॥ १३ ॥ हे देवताओ ! तुम लोग सोच मत करो, सुख से रहो, तुम्हीं लोगों के लिए तो यह शिवजी पुत्ररूप से स्थित हुए हैं ॥ १४ ॥ उस समय आकाश मार्ग से आयी हुई उस वाणी को सुनकर कुमार अपने गणों के सहित अत्यन्त प्रसन्न हुए और आनन्द से परिपूर्ण हो तारकासुर के मारने का विचार किया ॥ १५ ॥ फिर उन महाबाहु ने क्रोध में भरकर बड़े वेग से तारकासुर की छाती में शक्ति से प्रहार किया ॥ १६ ॥ तब दैत्यपुङ्गव वह तारकासुर भी उस शक्ति का तिरस्कार कर बड़े क्रोध से कुमार पर अपनी शक्ति चलायी ॥ १७ ॥ उस शक्ति के प्रहार से कार्त्तिकेय मूर्च्छित हो गये, फिर क्षणभर के बाद चेतना को प्राप्त कर उठ बैठे और महर्षिगण उनकी स्तुति करने लगे ॥ १८ ॥ जिस प्रकार मदोन्मत्त सिंह मारने को दौड़ता है, उसी प्रकार कुमार भी असुर का वध करने के लिए शक्ति से उस पर प्रहार किया ॥ १९ ॥

इस प्रकार शक्तियुद्ध में निपुण कुमार तथा तारकासुर भी क्रोध में भरकर युद्ध करने लगे ॥ २० ॥ दोनों ही एक-दूसरे पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से अपनी-अपनी कला का प्रदर्शन करने लगे। दोनों

विविधैर्घातएञ्जैस्तावन्योऽन्यं विनिजघ्नतुः । नानामार्गान् प्रकुर्वन्तौ गर्जन्तौ सुपराक्रमौ ॥२२॥
अवलोकपराः सर्वे देव-गन्धर्व-किन्नराः । विस्मयं परमं जग्मुर्नोचुः किञ्चन तत्र ते ॥२३॥
न ववौ पवमानश्च निष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः । चचाल वसुधा सर्वा सशैलवनकानना ॥२४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र हिमालयमुखा धराः । स्नेहार्दितास्तदा जग्मुः कुमारं च परीप्सवः ॥२५॥
ततः स दृष्ट्वा तान् सर्वान् भयभीतांश्च शाङ्करिः । पर्वतान् गिरिजापुत्रो बभाषे परिबोधयन् ॥२६॥

कुमार उवाच

मा खिद्यतां महाभागा मा चिन्तां कुर्वतां नगाः । घातयाम्यद्य पापिष्ठं सर्वेषां वः प्रपश्यताम् ॥२७॥
एवं समाश्वास्य तदा पर्वतान् निर्जरान् गणान् । प्रणम्य गिरिजां शम्भुमाददे शक्तिमुत्प्रभाम् ॥२८॥
तं तारकं हन्तुमनाः करशक्तिर्महाप्रभुः । विरराज महावीरः कुमारः शम्भुबालकः ॥२९॥
शक्त्या तया जघानाथ कुमारस्तारकासुरम् । तेजसाऽऽढ्यः शङ्करस्य लोकक्लेशकरं च तम् ॥३०॥
पपात सद्यः सहसा विशीर्णाङ्गोऽसुरः क्षितौ । तारकाख्यो महावीरः सर्वासुरगणाधिपः ॥३१॥
कुमारेण हतः सोऽतिवीरः स खलु तारकः । लयं ययौ च तत्रैव सर्वेषां पश्यतां मुने ॥३२॥
तथा तं पतितं दृष्ट्वा तारकं बलवत्तरम् । न जघान पुनर्वीरः स गत्वा व्यसुमाहवे ॥३३॥
हते तस्मिन् महादैत्ये तारकाख्ये महाबले । क्षयं प्रणीता बहवोऽसुरा देवगणैस्तदा ॥३४॥
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो बभूवुस्तत्र चाहवे । छिन्नभिन्नाङ्गकाः केचिन्मृता दैत्याः सहस्रशः ॥३५॥
केचिज्जाताः कुमारस्य शरणं शरणार्थिनः । वदन्तः पाहि पाहीति दैत्याः साञ्जलयस्तदा ॥३६॥
कियन्तश्च हतास्तत्र कियन्तश्च पलायिताः । पलायमाना व्यथितास्ताडिता निर्जरैर्गणैः ॥३७॥

पैदल ही युद्ध कर रहे थे, दोनों ही पैंतरा देकर बड़े वेग से युद्ध कर रहे थे ॥ २१ ॥ दोनों ही अनेक प्रकार के घात से एक-दूसरे पर प्रहार करते थे। दोनों ही युद्ध में एक-दूसरे का छिद्र देख रहे थे, दोनों ही पराक्रम करते हुए गर्जना कर रहे थे ॥ २२ ॥ देवता, गन्धर्व तथा किन्नर खड़े होकर सारा युद्ध देख रहे थे, सभी आश्चर्ययुक्त हो रहे थे, और कोई किसी से कुछ भी न कहता था ॥ २३ ॥ उस समय पवन का चलना बन्द हो गया, सूर्य कान्तिहीन हो गये एवं पर्वत तथा बनों के सहित पृथ्वी काँपने लगी ॥ २४ ॥ इसी समय हिमालय प्रमुख सभी पर्वत स्नेह से कुमार की रक्षा के लिए वहाँ आ पहुँचे ॥ २५ ॥ तब शङ्कर एवं गिरिजा के पुत्र कार्त्तिकेय ने उन्हें भय से व्याकुल देख उन्हें समझाते हुए कहा ॥ २६ ॥

कुमार बोले—हे महाभागो ! खेद मत करो, हे पर्वतो ! चित्त में किसी प्रकार की चिन्ता मत करो, मैं आप लोगों के सामने ही इस पापी का वध करूँगा ॥ २७ ॥ इस प्रकार उन्होंने पर्वतों, देवताओं तथा गणों को धीरज देकर अपने माता-पिता, गिरिजा एवं शम्भु को प्रणाम कर अत्यन्त देदीप्यमान शक्ति ग्रहण की ॥ २८ ॥ तब तारक को मारने की इच्छा से हाथ में शक्ति लिये हुए महाप्रभु, महावीर शम्भु बालक कार्त्तिकेय युद्धस्थल में शोभित होने लगे ॥ २९ ॥ इस प्रकार शङ्कर के तेज से सम्पन्न कुमार कार्त्तिकेय ने लोककण्टक तारकासुर पर उस शक्ति से प्रहार किया ॥ ३० ॥ जिससे असुरों का सेनापति महावीर तारक नामक असुर सहसा छिन्न-भिन्न होकर तत्क्षण पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ ३१ ॥

हे मुने ! कार्त्तिकेय ने इस प्रकार उस असुर का वध कर दिया, वह भी सबके देखते-देखते कुमार में लय को प्राप्त हो गया ॥ ३२ ॥ बलवान् तारक को रणभूमि में मरा हुआ देखकर महावीर कार्त्तिकेय ने फिर उस पर प्रहार नहीं किया ॥ ३३ ॥ फिर तो महाबली तारकासुर के मारे जाने पर देवताओं ने शेष सभी असुरों को नष्ट कर दिया ॥ ३४ ॥ कोई तो युद्ध में भयभीत होकर हाथ जोड़ने लगे, और सहस्रों की संख्या में छिन्न-भिन्न हुए कितने दैत्य मृत्यु को प्राप्त हो गये ॥ ३५ ॥ कोई व्याकुल होकर कुमार की शरण में गये और हाथ जोड़कर रक्षा करो, रक्षा करो, ऐसा दीन वचन कहने लगे ॥ ३६ ॥ कितने मारे गये और कितने ही भाग गये, कुछ भागते समय देवताओं के द्वारा मारे जाने से पीड़ित हो गये ॥ ३७ ॥

सहस्रशः प्रविष्टास्ते पाताले च जिजीषवः । पलायमानास्ते सर्वे भग्नाशा दैन्यमागताः ॥३८॥
एवं सर्वं दैत्यसैन्यं भ्रष्टं जातं मुनीश्वर ! । न केचित्तत्र सन्तस्थुर्गणदेवभयात्तदा ॥३९॥
आसीन्निष्कण्टकं सर्वं हस्ते तस्मिन् दुरात्मनि । ते देवाः सुखमापन्नाः सर्वे शक्रादयस्तदा ॥४०॥
एवं विजयमापन्नं कुमारं निखिलाः सुराः । बभूवुर्युगपद्धृष्टास्त्रिलोकाश्च महासुखाः ॥४१॥
तदा शिवोऽपि तं ज्ञात्वा विजयं कार्तिकस्य च । तत्राजगाम स मुदा सगणः प्रियया सह ॥४२॥
स्वात्मजं स्वाङ्कमारोप्य कुमारं सूर्यवर्चसम् । लालयामास सुप्रीत्या शिवा च स्नेहसङ्कुला ॥४३॥
हिमालयस्तदागत्य स्वपुत्रैः परिवारितः । सबन्धुः सानुगः शम्भुं तुष्टाव च शिवां गुहम् ॥४४॥
ततो देवगणाः सर्वे मुनयः सिद्धचारणाः । तुष्टुवुः शाङ्करिं शम्भुं गिरिजां तुपितां भृशम् ॥४५॥
पुष्पवृष्टिं सुमहतीं चक्रुश्चोपसुरास्तदा । जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥४६॥
वादित्राणि तथा नेदुस्तदानीं च विशेषतः । जयशब्दो नमःशब्दो बभूवोच्चैर्मुहुर्मुहुः ॥४७॥
ततो मयाऽच्युतश्चापि सन्तुष्टोऽभूद् विशेषतः । शिवं शिवां कुमारं च सन्तुष्टाव समादरात् ॥४८॥
कुमारमग्रतः कृत्वा हरिकेन्द्रमुखाः सुराः । चक्रुर्नीराजनं प्रीत्या मुनयश्चापरे तथा ॥४९॥
गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा । तदोत्सवो महानासीत् कीर्तनं च विशेषतः ॥५०॥
गीतवाद्यैः सुप्रसन्नैस्तथा साञ्जलिभिर्मुने । स्तूयमानो जगन्नाथः सर्वैर्देवगणैरभूत् ॥५१॥
ततः स भगवान्रुद्रो भवान्या जगदम्बया । सर्वैः स्तुतो जगामाथ स्वगिरिं स्वगणैर्वृतः ॥५२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे तारकासुरवध-देवोत्सववर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

सैकड़ों जीने की इच्छा से पाताल में प्रवेश कर गये, कितने दीन होकर निराशापूर्वक भाग गये ॥ ३८ ॥ हे मुनीश्वर ! इस प्रकार तारकासुर की सारी सेना नष्ट हो गयी। देवताओं तथा गणों के भय से कोई भी राक्षस वहाँ टिक न सका ॥ ३९ ॥ उस दुरात्मा के मरने से सारा जगत् निष्कण्टक हो गया और इन्द्रादि देवता बड़े सुख को प्राप्त हुए ॥ ४० ॥ इस प्रकार विजय को प्राप्त करने वाले कुमार को देखकर सभी देवता एक साथ हर्षित हो उठे। एवं सारा त्रैलोक्य सुखी हो गया ॥ ४१ ॥ उस समय शिवजी भी अपने कुमार के विजय का समाचार सुन अपनी प्रिया गिरिजा एवं गणों के साथ प्रसन्न हो वहाँ पहुँच गये ॥४२॥

पार्वती जी सूर्य के समान अत्यन्त तेजस्वी उस बालक को अपनी गोदी में लेकर स्नेह से उसका दुलार करने लगीं ॥ ४३ ॥ उसी समय अपने पुत्र एवं बन्धुओं के सहित हिमालय भी शङ्कर-पार्वती तथा कुमार की प्रशंसा करने लगे ॥ ४४ ॥ सभी देवता, मुनि, सिद्ध एवं चारण, शिव, शिवा एवं कुमार की स्तुति करने लगे ॥ ४५ ॥ देवादिकों ने आकाशमण्डल से पुष्प-वृष्टि की, गन्धर्वगण गाने लगे तथा अप्सराएँ नाचने लगीं ॥ ४६ ॥ उस समय विशेषरूप से बाजे बजने लगे। ऊँचे स्वर से जयशब्द तथा नमःशब्द का उच्चारण बारम्बार होने लगा ॥ ४७ ॥ तब मेरे साथ भगवान् विष्णु विशेष रूप से प्रसन्न हो गये, उन्होंने आदरपूर्वक शिव-शिवा एवं कुमार की स्तुति की ॥ ४८ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र तथा अन्य देवता एवं मुनि कुमार को आगे कर उनकी आरती उतारने लगे ॥ ४९ ॥ गीत, बाजे के शब्द से तथा वेदध्वनि के उद्घोष से वह उत्सव महान् हो गया और विशेष रूप से स्थान-स्थान पर कीर्त्तन होने लगे ॥ ५० ॥ हे मुने ! उस समय गाने-बजाने से तथा प्रसन्न होकर हाथ जोड़े हुए देवताओं के द्वारा भगवान् शङ्कर की स्तुति होने लगी ॥ ५१ ॥ तब भगवान् रुद्र जगदम्बा भवानी एवं अपने गणों के सहित सबसे स्तुत होकर अपने कैलास पर्वत को चले गये ॥ ५२ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के चतुर्थ-कुमारखण्ड में तारकासुर वध एवं देवोत्सववर्णन नामक दशम अध्याय समाप्त ॥ १० ॥

*

एकादशोऽध्यायः

(कुमार द्वारा बाण और प्रलम्ब का वध एवं शिव के प्रसन्नतार्थ प्रतिज्ञेश्वर, कपालेश्वर तथा कुमारेश्वर लिंग का स्थापन)

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र क्रौञ्चनामाचलो मुने। आजगाम कुमारस्यं शरणं बाणपीडितः ॥ १ ॥
पलायमानो यो युद्धादसोढा तेज ऐश्वरम्। तुतोदातीव स क्रौञ्चं कोटयायुतबलान्वितः ॥ २ ॥
प्रणिपत्य कुमारस्य स भक्त्या चरणाम्बुजम्। प्रेमनिर्भरया वाचा तुष्टाव गुहमादरात् ॥ ३ ॥

क्रौञ्च उवाच

कुमार स्कन्द देवेश तारकासुरनाशक! पाहि मां शरणापन्नं बाणासुरनिपीडितम् ॥ ४ ॥
सङ्गरात्ते महासेन समुच्छिन्नः पलायितः। न्यपीडयच्च माऽऽगत्य हा नाथ करुणाकर! ॥ ५ ॥
तत्पीडितस्ते शरणमागतोऽहं सुदुःखितः। पलायमानो देवेश शरजन्मन् दयां कुरु ॥ ६ ॥
दैत्यं तं नाशय विभो बाणाह्वं मां सुखीकुरु। दैत्यघ्नस्त्वं विशेषेण देवावनकरः स्वराट् ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच

इति क्रौञ्चस्तुतः स्कन्दः प्रसन्नो भक्तपालकः। गृहीत्वा शक्तिमतुलां स्वां सस्मार शिवो धिया॥ ८ ॥
चिक्षेप तां समुद्दिश्य स बाणं शङ्करात्मजः। महाशब्दो बभूवाथ जज्वलुश्च दिशो नभः ॥ ९ ॥
सबलं भस्मसात् कृत्वाऽसुरं तं क्षणमात्रतः। गुहोपकण्ठं शक्तिः सा जगाम परमा मुने! ॥१०॥
ततः कुमारः प्रोवाच क्रौञ्चं गिरिवरं प्रभुः। निर्भयः स्वगृहं गच्छ नष्टः स सबलोऽसुरः ॥११॥
तच्छ्रुत्वा स्वामिवचनं मुदितो गिरिराट् तदा। स्तुत्वा गुहं तदाराति स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥१२॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इसी समय क्रौञ्च नामक पर्वत बाण नाम के राक्षस से पीड़ित होकर कुमार की शरण में आया ॥ १ ॥ वह बाण नामक राक्षस तारक-संग्राम में कुमार के तेज को सहने में असमर्थ होने के कारण दश सहस्र अपनी सेना लेकर युद्ध से भाग गया था, वही क्रौञ्च को अत्यन्त दुःख देने लगा ॥ २ ॥ तब वह क्रौञ्च भक्तिपूर्वक कुमार के चरणों में प्रणाम कर प्रेम-भरी वाणी से आदरपूर्वक कार्त्तिकेय की स्तुति करने लगा ॥ ३ ॥

क्रौञ्च बोला—हे कुमार! हे स्कन्द! हे देवेश! हे तारकासुर के नाशक! मैं बाण नामक दैत्य से पीड़ित हो रहा हूँ। मेरी रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे महासेन! वह बाण तारकासुर के युद्ध में आपसे भयभीत होकर भाग गया है और हे नाथ! हे करुणाकर! अब वह मुझे पीड़ा पहुँचा रहा है ॥ ५ ॥ उसी बाण से पीड़ित होकर मैं भागता हुआ आपकी शरण में आया हूँ। हे शरजन्मा, हे देवेश! मेरी रक्षा करो ॥ ६ ॥ हे विभो! उस बाण नामक दैत्य को मारकर मुझे सुखी करो, क्योंकि आप विशेष रूप से दैत्यों को मारने वाले, देवरक्षक तथा स्वराट् हो ॥ ७ ॥

ब्रह्माजी बोले—जब क्रौञ्च ने इस प्रकार से कुमार की स्तुति की तब भक्तवत्सल कुमार बहुत प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने अपने हाथ में शक्ति लेकर शिवजी का स्मरण किया ॥ ८ ॥ और बाण को मारने के उद्देश्य से अपनी शक्ति छोड़ दी, शक्ति के छूटते ही महान् शब्द होने लगा और दशों दिशाएँ प्रज्वलित हो उठीं ॥ ९ ॥ फिर हे मुने! क्षणमात्र में ही अनुगामियों के साथ बाण को भस्मकर वह श्रेष्ठ शक्ति पुनः कुमार के पास लौट आयी ॥ १० ॥ तब प्रभु कार्त्तिकेय उस क्रौञ्च पर्वत से कहने लगे—अब तुम निर्भय होकर अपने घर जाओ, वह असुर नष्ट हो गया। उसके अनुचर भी मारे गये ॥ ११ ॥ स्वामि कार्त्तिकेय के वचन सुन क्रौञ्च बड़ा प्रसन्न हो गया और कुमार की स्तुति कर अपने स्थान को चला गया ॥ १२ ॥

ततः स्कन्दो महेशस्य मुदा स्थापितवान्मुने । त्रीणि लिङ्गानि तत्रैव पापघ्नानि विधानतः ॥१३॥
प्रतिज्ञेश्वरनामादौ कपालेश्वरमादरात् । कुमारेश्वरमेवाथ सर्वसिद्धिप्रदं त्रयम् ॥१४॥
पुनः सर्वेश्वरस्तत्र जयस्तम्भसमीपतः । स्तम्भेश्वराभिधं लिङ्गं गुहः स्थापितवान् मुदा ॥१५॥
ततः सर्वे सुरास्तत्र विष्णुप्रभृतयो मुदा । लिङ्गं स्थापितवन्तस्ते देवदेवस्य शूलिनः ॥१६॥
सर्वेषां शिवलिङ्गानां महिम्नाऽभूत्तदाऽद्भुतः । सर्वकामप्रदश्चापि मुक्तिदो भक्तिकारिणाम् ॥१७॥
ततः सर्वे सुरा विष्णुप्रमुखाः प्रीतमानसाः । ऐच्छन् गिरिवरं गन्तुं पुरस्कृत्य गुहं मुदा ॥१८॥
तस्मिन्नवसरे शेषपुत्रः कुमुदनामकः । आजगाम कुमारस्य शरणं दैत्यपीडितः ॥१९॥
प्रलम्बाख्योऽसुरो यो हि रणादस्मात् पलायितः । स तत्रोपद्रवं चक्रे प्रबलस्तारकानुगः ॥२०॥
सोऽथ शेषस्य तनयः कुमुदोऽहिपतेर्महान् । कुमारशरणं प्राप्तस्तुष्टाव गिरिजात्मजम् ॥२१॥

कुमुद उवाच

देवदेव महादेववर तात महाप्रभो । पीडितोऽहं प्रलम्बेन त्वाऽहं शरणमागतः ॥२२॥
पाहि मां शरणापन्नं प्रलम्बासुरपीडितम् । कुमार स्कन्द देवेश तारकारे महाप्रभो ॥२३॥
त्वं दीनबन्धुः करुणासिन्धुरानतवत्सलः । खलनिग्रहकर्ता हि शरण्यश्च सतां गतिः ॥२४॥
कुमुदेन स्तुतश्चेत्थं विज्ञप्तस्तद्वधाय हि । स्वां च शक्तिं स जग्राह स्मृत्वा शिवपदाम्बुजौ॥२५॥
चिक्षेप तां समुद्दिश्य प्रलम्बं गिरिजासुतः । महाशब्दो बभूवाथ जज्वलुश्च दिशो नभः ॥२६॥
तं सायुतबलं शक्तिर्द्रुतं कृत्वा च भस्मसात् । गुहोपकण्ठं सहसाजगामाक्लिष्टकारिणी ॥२७॥

अनन्तर स्वामि कार्त्तिकेय ने प्रसन्न होकर उस स्थान पर महेश्वर के तीन लिङ्ग विधानपूर्वक स्थापित किये, जो विशेषरूप से पापों को नष्ट करने वाले हैं ॥ १३ ॥ तीनों लिङ्गों में प्रथम का नाम प्रतिज्ञेश्वर, दूसरे का नाम कपालेश्वर और तीसरे का नाम कुमारेश्वर है, ये तीनों ही सम्पूर्ण सिद्धि प्रदान करने वाले हैं ॥ १४ ॥ फिर उन्होंने जयस्तम्भ के समीप सर्वेश्वर लिङ्ग का स्थापन किया और वहीं पर उन्होंने स्तम्भेश्वर नामक शिवलिङ्ग को स्थापित किया ॥ १५ ॥ वहाँ पर विष्णु आदि देवगणो ने भी देवाधिदेव शिव के लिङ्ग की स्थापना की ॥ १६ ॥ वहाँ पर स्थापित हुए उन सभी लिङ्गों की अद्भुत महिमा है। वे सभी लिङ्ग सम्पूर्ण कामनाओं को प्रदान करने वाले तथा भक्ति से पूजा करने वालो को मुक्ति प्रदान करने वाले हैं ॥ १७ ॥ तब विष्णु प्रभृति समस्त देवगण कार्त्तिकेय को आगे कर प्रसन्न मन से कैलास जाने का विचार करने लगे ॥ १८ ॥ उसी समय शेष का पुत्र, जिसका नाम कुमुद था, दैत्यों से पीड़ित होकर कुमार की शरण में आया ॥ १९ ॥ तारकासुर युद्ध में प्रलम्ब नाम का जो असुर भयभीत होकर भाग गया था, वही तारकासुर का अनुगामी वहाँ जाकर प्रवल हो उपद्रव करने लगा ॥ २० ॥ अहिपति शेष का वह कुमुद नामक पुत्र अत्यन्त महान् था, वह कुमार की शरण में प्राप्त होकर उन गिरिजापुत्र की स्तुति करन लगा ॥ २१ ॥

कुमुद बोला—हे देवदेव ! हे महादेवपुत्र ! हे महाप्रभो ! मैं प्रलम्बासुर से पीड़ित होकर आपकी शरण में आया हूँ ॥ २२ ॥ हे कुमार ! हे स्कन्द ! हे देवेश ! हे तारक के शातन करने वाले ! आप प्रलम्बासुर से पीड़ित हुए मेरी रक्षा करो ॥ २३ ॥ आप दीनबन्धु, करुणासागर तथा भक्तवत्सल हैं, आप दुष्टों के निग्रहकर्त्ता तथा शरणागत सत्पुरुषों के एकमात्र गति है ॥ २४ ॥ जब कुमुद ने ऐसी स्तुति कर दैत्य के वध के लिए निवेदन किया, तब महाप्रभु ने शङ्कर के चरण-कमलों का ध्यान कर अपनी शक्ति हाथ में ली ॥ २५ ॥ गिरिजापुत्र ने प्रलम्ब के वध के उद्देश्य से वह शक्ति छोड़ी, उस समय महाशब्द हुआ और दिशाओं के सहित आकाश प्रज्वलित हो उठा ॥ २६ ॥ फिर दस हजार महाबली उन असुरों के सहित प्रलम्ब को भस्म कर वह शक्ति पुनः कार्त्तिकेय के पास आ गयी। यह उसका बड़ा विचित्र कर्म

ततः कुमारः प्रोवाच कुमुदं नागबालकम् । निर्भयः स्वगृहं गच्छ नष्टः स सबलोऽसुरः ॥२८॥
तच्छ्रुत्वा गुहवाक्यं स कुमुदोऽहिपतेः सुतः । स्तुत्वा कुमारं नत्वा च पातालं मुदितो ययौ ॥२९॥
एवं कुमारविजयं वर्णितं ते मुनीश्वर ! । चरितं तारकवधं परमाश्चर्यकारकम् ॥३०॥
सर्वपापहरं दिव्यं सर्वकामप्रदं नृणाम् । धन्यं यशस्यमायुष्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम् ॥३१॥
ये कीर्तयन्ति सुयशोऽमितभाग्ययुता नराः । कुमारचरितं दिव्यं शिवलोकं प्रयान्ति ते ॥३२॥
श्रोष्यन्ति ये च तत्कीर्तिं भक्त्या श्रद्धान्विता जनाः ।
मुक्तिं प्राप्स्यन्ति ते दिव्यामिह भुक्त्वा परं सुखम् ॥३३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे बाणप्रलम्ववध-कुमारविजयवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

(तारक वध से प्रसन्न देवों का शिव-पार्वती तथा कुमार की स्तुति)

ब्रह्मोवाच

निहतं तारकं दृष्ट्वा देवा विष्णुपुरोगमाः । तुष्टुवुः शाङ्करिं भक्त्या सर्वेऽन्ये मुदिताननाः ॥ १ ॥

देवा ऊचुः

नमः कल्याणरूपाय नमस्ते विश्वमङ्गल । विश्वबन्धो नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वभावन ॥ २ ॥
नमोऽस्तु ते दानववर्यहन्त्रे बाणासुरप्राणहराय देव ।
प्रलम्बनाशाय पवित्ररूपिणे नमो नमः शङ्करतात ! तुभ्यम् ॥ ३ ॥
त्वमेव कर्त्ता जगतां च भर्त्ता त्वमेव हर्त्ता शुचिज प्रसीद ।
प्रपञ्चभूतस्तव लोकबिम्बः प्रसीद शम्भ्वात्मज दीनबन्धो ! ॥ ४ ॥

हुआ ॥ २७ ॥ तब कुमार ने शेषजी के पुत्र कुमुद से कहा—वह असुर अपने अनुचरों के सहित मारा गया अब तुम निर्भय हो, अपने घर चले जाओ ॥ २८ ॥ तब शेषपुत्र कुमुद कुमार के इस वचन को सुन निर्भय हो कुमार की स्तुति कर प्रणाम कर पाताललोक चला गया ॥ २९ ॥

हे मुनीश्वर ! इस प्रकार मैंने तुमसे कुमार के विजय का वर्णन किया। यह तारकवध का चरित्र परमाश्चर्यकारक है ॥ ३० ॥ यह सम्पूर्ण पापों को दूर करने वाला दिव्य तथा मनुष्यों की समस्त कामना को पूर्ण करने वाला है। यह परम धन्य, यश, आयु, भोग तथा मुक्ति को प्रदान करने वाला है ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य इस दिव्य कुमारचरित्र का कीर्त्तन करेंगे वे अत्यन्त यशस्वी तथा महाभाग्य से युक्त होंगे और अन्त में शिवलोक को जायेंगे ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य श्रद्धा-भक्ति से कुमार की इस कीर्त्ति को सुनेंगे वह यहाँ परम दिव्य सुख भोगकर अन्त में दिव्य मुक्ति भी प्राप्त करेंगे ॥ ३३ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के चतुर्थ-कुमारखण्ड में बाण-प्रलम्बवध-कुमारविजय-वर्णन नामक एकादश अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—तारक दैत्य को मरा हुआ देखकर विष्णु आदि देवता प्रसन्न होकर कुमार की स्तुति करने लगे ॥ १ ॥

देवता बोले—कल्याणरूप आपके लिए नमस्कार है। हे विश्वमङ्गल ! आपको नमस्कार है, हे विश्वबन्धो, हे विश्वभावन ! आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ २ ॥ बड़े-बड़े दानवों का वध करने वाले, बाण तथा प्रलम्बासुर का वध करने वाले आपको नमस्कार है। पवित्ररूप शङ्कर-सुवन आपको नमस्कार है ॥ ३ ॥ हे अग्निदेव के पुत्र ! आप ही इस जगत् के कर्त्ता, धर्त्ता तथा हर्त्ता हैं। आप हमलोगों पर प्रसन्न

देवरक्षाकर स्वामिन् रक्ष नः सर्वदा प्रभो । देवप्राणावनकर प्रसीद करुणाकर ॥ ५ ॥
हत्वा ते तारकं दैत्यं परिवारयुतं विभो । मोचिताः सकला देवा विपद्भ्यः परमेश्वर ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच

एवं स्तुतः कुमारोऽसौ देवैर्विष्णुमुखैः प्रभुः । वरान् ददावभिनवान् सर्वेभ्यः क्रमशो मुने ॥ ७ ॥
शैलान् निरीक्ष्य स्तुवतस्ततः स गिरिशात्मजः । सुप्रसन्नतरो भूत्वा प्रोवाच प्रददद् वरान् ॥ ८ ॥

स्कन्द उवाच

यूयं सर्वे पर्वता हि पूजनीयास्तपस्विभिः । कर्मिभिर्ज्ञानिभिश्चैव सेव्यमाना भविष्यथ ॥ ९ ॥
शम्भोर्विशिष्टरूपाणि लिङ्गरूपाणि चैव हि । भविष्यथ न सन्देहः पर्वता वचनान्मम ॥१०॥
योऽयं मातामहो मेऽद्य हिमवान् पर्वतोत्तमः । तपस्विनां महाभागः फलदो हि भविष्यति ॥११॥

देवा ऊचुः

एवं दत्त्वा वरान् हत्वा तारकं चाऽसुराधिपम् । त्वया कृताश्च सुखिनो वयं सर्वे चराऽचराः ॥१२॥
इदानीं खलु सुप्रीत्या कैलासं गिरिशालयम् । जननी-जनकौ द्रष्टुं शिवाशम्भू त्वमर्हसि ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा निखिला देवा विष्ण्वाद्याः प्राप्तशासनाः । कृत्वा महोत्सवं भूरि सकुमारा ययुर्गिरिम् ॥१४॥
कुमारे गच्छति विभौ कैलासं शङ्करालयम् । महामङ्गलमुत्तस्थौ जयशब्दो बभूव ह ॥१५॥
आरुरोह कुमारोऽसौ विमानं परमर्द्धिमत् । सर्वतोऽलङ्कृतं रम्यं सर्वोपरि विराजितम् ॥१६॥
अहं विष्णुश्च समुदौ तदा चामरधारिणौ । गुहमूर्ध्नि महाप्रीत्या मुनेऽभूवं ह्यतन्द्रितौ ॥१७॥

हों । यह लोकबिम्ब आपका ही प्रपञ्च है, अतः हे शम्भुपुत्र ! हे दीनबन्धो ! आप हमलोगों पर प्रसन्न हों ॥ ४ ॥ हे देवरक्षा करने वाले स्वामिन् ! हे प्रभो ! हमलोगों की सर्वदा रक्षा करो । हे रक्षा करनेवाले ! हे करुणाकर ! आप हमलोगों पर प्रसन्न रहें ॥ ५ ॥ हे प्रभो ! आपने परिवारयुक्त तारकासुर का वध कर हमारी रक्षा की है । हे परमेश्वर ! आपने तारकासुर का वध कर हम देवताओं को विपत्ति से छुड़ाकर रक्षा की है ॥ ६ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार विष्णु आदि प्रमुख देवताओं ने उस कुमार की स्तुति की । तब हे मुने ! कुमार ने सभी देवताओं को क्रमशः नवीन-नवीन वरदान दिये ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर उन्होंने स्तुति करते हुए पर्वतों को देखकर प्रसन्न हो उन्हें वर देते हुए कहा ॥ ८ ॥

स्कन्द बोले—हे पर्वतगण ! तुम सब तपस्वियों के द्वारा पूजित रहोगे और कर्म करने वालों तथा ज्ञानियों से सदा सेवित रहोगे ॥ ९ ॥ मेरे बचन से तुमलोग शिव के एक विशिष्ट रूप तथा उनके लिङ्गरूप से प्रतिष्ठित रहोगे । हे पर्वतो ! इसमें सन्देह नहीं ॥ १० ॥ यह पर्वतोत्तम हिमालय, जो मेरे नाना हैं वे तपस्वियों को फल देने वाले होंगे ॥ ११ ॥

देवगण बोले—आपने असुराधिपति तारक का वध कर तथा नवीन-नवीन वर देकर हमें तथा चराचर जगत् के प्राणियों को सुखी किया है ॥ १२ ॥ अब हे स्वामिन् ! आप प्रेमपूर्वक शिवजी के घर कैलास चलकर माता-पिता का दर्शन कीजिए ॥ १३ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार विष्णु आदि देवता कहकर कार्त्तिक की आज्ञा से महोत्सव कर कुमार को लेकर कैलास पर चले ॥ १४ ॥ जब सर्वव्यापक कार्त्तिकेय कैलास को चलने लगे उस समय महामंगल दिखाई पड़ने लगा और जय-जयकार शब्द होने लगा ॥ १५ ॥ फिर कुमार सम्पूर्ण ऋद्धियों से युक्त अत्यन्त अलंकृत परम मनोहर तथा सर्वोपरि विराजमान विमान पर चढ़े ॥ १६ ॥ मैं और विष्णु बड़े

इन्द्राद्या अमराः सर्वे कुर्वन्तो गुहसेवनम् । यथोचितं चतुर्दिक्षु जग्मुश्च प्रमुदास्तदा ॥१८॥
शम्भोर्जयं प्रभाषन्तः प्रापुस्ते शम्भुपर्वतम् । सानन्दा विविशुस्तत्रोच्चरितो मङ्गलध्वनिः ॥१९॥
दृष्ट्वा शिवं शिवां चैव सर्वे विष्ण्वादयो द्रुतम् । प्रणम्य शङ्करं भक्त्या करौ बद्ध्वा विनम्रकाः ॥२०॥
कुमारोऽपि विनीतात्मा विमानादवतीर्य च । प्रणनाम मुदा शम्भुं शिवां सिंहासनस्थिताम् ॥२१॥
अथ दृष्ट्वा कुमारं तं तनयं प्राणवल्लभम् । तौ दम्पती शिवौ देवौ मुमुदातेऽतिनारद ॥२२॥
महाप्रभुः समुत्थाप्य तमुत्सङ्गे न्यवेशयत् । मूर्ध्नि जघ्रौ मुदा स्नेहात्तं पस्पर्श करेण ह ॥२३॥
महानन्दभरः शम्भुश्चकार मुखचुम्बनम् । कुमारस्य महास्नेहात् तारकारेर्महाप्रभोः ॥२४॥
शिवापि तं समुत्थाप्य स्वोत्सङ्गे संन्यवेशयत् । कृत्वा मूर्ध्नि महास्नेहात् तन्मुखाब्जं चुचुम्ब हि॥२५॥
तयोस्तदा महामोदा ववृधेऽतीव नारद । दम्पत्योः शिवयोस्तात भवाचारं प्रकुर्वतोः ॥२६॥
तदोत्सवो महानासीन्नानाविधिः शिवालये । जयशब्दो नमःशब्दो बभूवातीव सर्वतः ॥२७॥
ततः सुरगणाः सर्वे विष्ण्वाद्या मुनयस्तथा । सुप्रणम्य मुदा शम्भुं तुष्टुवुः सशिवं मुने ॥२८॥

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव भक्तानामभयप्रद । नमो नमस्ते बहुशः कृपाकर महेश्वर ! ॥२९॥
अद्भुता ते महादेव महालीला सुखप्रदा । सर्वेषां शङ्कर सतां दीनबन्धो महाप्रभो ॥३०॥
वयं मूढधियश्चाज्ञाः पूजायां ते सनातनम् । आवाहनं न जानीमो गतिं नैव प्रभोऽद्भुताम् ॥३१॥
गङ्गासलिलधाराय ह्याधाराय गुणात्मने । नमस्ते त्रिदशेशाय शङ्कराय नमो नमः ॥३२॥
वृषाङ्काय महेशाय गणानां पतये नमः । सर्वेश्वराय देवाय त्रिलोकपतये नमः ॥३३॥

सावधानी से प्रेमपूर्वक उनके ऊपर चामर डुलाने लगे ॥ १७ ॥ और इन्द्रादि देवता चारों ओर कुमार की प्रीतिपूर्वक सेवा करते हुए चलने लगे ॥ १८ ॥ इस प्रकार वे सभी शिव क जय-जयकार शब्द का उच्चारण करते हुए मंगलध्वनि पूर्वक बड़े आनन्द के साथ व कैलास पर्वत पर पहुँचे ॥ १९ ॥ तदनन्तर विष्णु आदि शिवाशिव का दर्शन कर शीघ्रता से उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम कर हाथ जोड़ उनके सम्मुख खड़ हो गये ॥ २० ॥ कुमार ने भी बड़े विनय के साथ विमान से उतर कर सिंहासन पर विराजमान पार्वती तथा शिव को प्रणाम किया ॥ २१ ॥

हे नारद ! अपने प्राणप्रिय उस पुत्र को देखकर वे दोनों दम्पती अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥ महाप्रभु सदाशिव ने पुत्र को गोदी में बैठाया, उनका सिर सूँघा और अपने हाथ से उनका स्पर्श किया ॥ २३ ॥ और महान् आनन्द में भरकर तारकासुर के विनाशक उन महाप्रभु का मुख चूमा ॥ २४ ॥ इसी प्रकार पार्वती न भी उनको उठाकर गोदी मे ल लिया और उनके मुख पर हाथ फेरते हुए चुम्बन किया ॥ २५ ॥ हे नारद ! इस प्रकार लौकिक क्रीड़ा में आसक्त हुए उन दोना स्त्री-पुरुषों को महान् आनन्द हुआ ॥ २६ ॥ उस समय शिवजी के घर अनेक प्रकार के महान् उत्सव होने लगे आर चारों ओर जय-जयकार का नारा एवं 'नमः' शब्द होने लगा ॥ २७ ॥ तदनन्तर हे मुने ! विष्णु आदि सभी देवता एवं महामुनि गण शिव को प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगे ॥ २८ ॥

देवगण बोले—हे देवदेव ! महादेव ! हे भक्तों को अभय प्रदान करने वाले प्रभो ! आपको अनेक नमस्कार है, हे महेश्वर ! आप हमलोगों पर कृपा कीजिए ॥ २९ ॥ हे दीनबन्धो ! ह महाप्रभो ! आपकी लीला अद्भुत है तथा सभी सज्जनों को सुख देनेवाली है ॥३०॥ हे प्रभो ! हमलोग आपकी पूजा नहीं जानते क्योंकि मूढ़ बुद्धि होने के कारण अज्ञ हैं और आप सनातन हैं, हमलोग न तो आपका आवाहन जानते हैं और न तो अद्भुत गति ही जानते हैं ॥ ३१ ॥ आप गङ्गाजल को धारण करने वाले हैं, सबके आधार हैं, गुणस्वरूप हैं, आप देवेश्वर को नमस्कार है, आप शङ्कर को बारम्बार नमस्कार है ॥३२॥ हे वृषभध्वज,

संहर्त्रे जगतां नाथ सर्वेषां ते नमो नमः । भर्त्रे कर्त्रे च देवेश त्रिगुणेशाय शाश्वते ॥३४॥
विसङ्गाय परेशाय शिवाय परमात्मने । निष्प्रपञ्चाय शुद्धाय परमायाऽव्ययाय च ॥३५॥
दण्डहस्ताय कालाय पाशहस्ताय ते नमः । वेदमन्त्रप्रधानाय शतजिह्वाय ते नमः ॥३६॥
भूतं भव्यं भविष्यं च स्थावरं जङ्गमं च यत् । तव देहात् समुत्पन्नं सर्वथा परमेश्वर ! ॥३७॥
पाहि नः सर्वदा स्वामिन् प्रसीद भगवन् प्रभो । वयं ते शरणापन्नाः सर्वथा परमेश्वर ! ॥३८॥
शितिकण्ठाय रुद्राय स्वाहाकाराय ते नमः । अरूपाय सरूपाय विश्वरूपाय ते नमः ॥३९॥
शिवाय नीलकण्ठाय चिताभस्माङ्गधारिणे । नित्यं नीलशिखण्डाय श्रीकण्ठाय नमो नमः ॥४०॥
सर्वप्रणतदेहाय संयमप्रणताय च । महादेवाय शर्वाय सर्वार्चितपदाय च ॥४१॥
त्वं ब्रह्मा सर्वदेवानां रुद्राणां नीललोहितः । आत्मा च सर्वभूतानां साङ्ख्यैः पुरुष उच्यसे ॥४२॥
पर्वतानां सुमेरुस्त्वं नक्षत्राणां च चन्द्रमा । ऋषीणां च वसिष्ठस्त्वं देवानां वासवस्तथा ॥४३॥
ॐकारः सर्ववेदानां त्राता भव महेश्वर ! । त्वं च लोकहितार्थाय भूतानि परिषिञ्चसि ॥४४॥
महेश्वर महाभाग शुभाऽशुभनिरीक्षक ! । आप्यायास्मान् हि देवेश कर्तॄन् वै वचनं तव ॥४५॥
रूपकोटिसहस्रेषु रूपकोटिशतेषु ते । अन्तं गन्तुं न शक्ताः स्म देवदेव नमोऽस्तु ते ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

इति स्तुत्वाऽखिला देवा विष्ण्वाद्याः प्रमुखस्थिताः । मुहुर्मुहुः सुप्रणम्य स्कन्दं कृत्वा पुरःसरम् ॥४७॥
देवस्तुतिं समाकर्ण्य शिवः सर्वेश्वरः स्वराट् । सुप्रसन्नो बभूवाथ विजहास दयापरः ॥४८॥

महेश्वर, गणाधिपति, सर्वेश्वर एवं त्रिलोकपति ! आप देव को हमारा नमस्कार है ॥ ३३ ॥ सबका संहार करने वाले जगत्पति, आपको नमस्कार है। हे देवेश ! हे सनातन ! आप इस जगत् के सृष्टिकर्त्ता, एवं पोषण करनेवाले हैं, अतः हे त्रिगुणेश, आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥ आप निःसंग हो, परमेश्वर हो, शिव एवं परमात्मा हो, निष्प्रपञ्च, मायारहित, परम, अव्यय हो, आपको प्रणाम है ॥ ३५ ॥ आप दण्ड देनेवाले कालस्वरूप हो, हाथ में पाश धारण करने वाले हो, आपको नमस्कार है। वेदमन्त्रों में प्रधान तथा सैकड़ों जीभ वाले आपको प्रणाम है ॥ ३६ ॥

हे परमेश्वर ! भूत, भविष्य, वर्त्तमान तीनों काल तथा स्थावर, जङ्गमात्मक यह सारा जगत् सर्वथा आपसे उत्पन्न है, अतः आपको नमस्कार है ॥ ३७ ॥ हे भगवन् ! हे स्वामिन् ! हे प्रभो ! हमलोगों पर प्रसन्न होकर हमलोगों की रक्षा कीजिए। हे परमेश्वर ! हमलोग सभी प्रकार से आपके शरणागत हैं ॥ ३८ ॥ शीतिकण्ठ, रुद्र एवं स्वाहारूप से वर्त्तमान आपको नमस्कार है। रूपरहित, सगुण एवं विश्वरूप वाले, आपको नमस्कार है ॥ ३९ ॥ आप शिव हैं, नीलकण्ठ हैं एवं अङ्ग में चिता का भस्म धारण करने वाले हैं, नील, शिखण्ड एवं श्रीकण्ठ आपको नमस्कार है ॥ ४० ॥ आपके चरण-कमलों में सभी प्रणाम करते हैं, संयम धारण करने वालों पर आप कृपा करते हैं, आप महादेव हैं, सबके संहारकारक हैं तथा सभी आपके चरणों की पूजा करते हैं, आपको नमस्कार है ॥ ४१ ॥ आप सभी देवताओं में ब्रह्मा हैं, रुद्रों में नीललोहित हैं, सभी प्राणियों में आत्मा हैं, सांख्यमत वाले आपको पुरुष कहते हैं ॥ ४२ ॥ आप पर्वतों में सुमेरु, नक्षत्रों में चन्द्रमा, ऋषियों में वसिष्ठ तथा देवताओं में इन्द्र हैं ॥ ४३ ॥ सम्पूर्ण वेदों में ॐकार आपही हो, हे महेश्वर ! हमलोगों की रक्षा करो, आप लोकहित के लिए प्राणियों का पालन करते हो, हे महेश्वर, हे महाभाग, हे शुभाशुभ देखनेवाले प्रभो ! आप अपनी आज्ञा पालन करनेवाले इन देवताओं की रक्षा करें ॥ ४४-४५ ॥ हे प्रभो ! आप सहस्रकोटि तथा शतकोटि स्वरूप हैं, अतः हमलोग आपके रूप का पार नहीं पा सकते। हे देवदेव ! आपको नमस्कार है ॥ ४६ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार विष्णु आदि प्रमुख देवगणों ने स्कन्द को आगे कर बारम्बार शिव को प्रणाम कर उनकी स्तुति की ॥ ४७ ॥ देवताओं की स्तुति सुनकर सर्वेश्वर स्वराट् दयालु प्रभु प्रसन्न

उवाच सुप्रसन्नात्मा विष्ण्वादीन् सुरसत्तमान् । शङ्करः परमेशानो दीनबन्धुः सतां गतिः ॥४९॥

शिव उवाच

हे हरे हे विधे देवा वाक्यं मे श्रृणुतादरात् । सर्वथाऽहं सतां त्राता देवानां वः कृपानिधिः ॥५०॥

दुष्टहन्ता त्रिलोकेशः शङ्करो भक्तवत्सलः । कर्ता भर्ता च हर्ता च सर्वेषां निर्विकारवान् ॥५१॥

यदा कदा भवेद् दुःखं युष्माकं देवसत्तमाः । तदा तदा मां यूयं वै भजन्तु सुखहेतवे ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

इत्याज्ञप्तास्तदा देवा विष्ण्वाद्याः समुनीश्वराः । शिवं प्रणम्य सशिवं कुमारं च मुदान्विताः ॥५३॥

कथयन्तो यशो रम्यं शिवयोः शाङ्करेश्च तत् । आनन्दं परमं प्राप्य स्वधामानि ययुर्मुने ॥५४॥

शिवोऽपि शिवया सार्द्धं सगणः परमेश्वरः । कुमारेण युतः प्रीत्योवास तस्मिन् गिरौ मुदा ॥५५॥

इत्येवं कथितं सर्वं कौमारं चरितं मुने । शैवं च सुखदं दिव्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥५६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे स्वामिकार्तिक-चरितगर्भित-शिवाशिवचरितवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

होकर हँसने लगे ॥ ४८ ॥ फिर प्रसन्न होकर वे दीनबन्धु, परमेश्वर, सत्पुरुषों को गति देनेवाले भगवान् शङ्कर विष्णु आदि देवताओं से कहने लगे ॥ ४९ ॥

शिवजी बोले—हे हरे ! हे विधे ! हे देवगणो ! आदर से मेरे वचन सुनो । मैं सब प्रकार से सत्पुरुषों का रक्षक, देवताओं का रक्षक तथा कृपा का सागर हूँ ॥ ५० ॥ मैं दुष्टों को मारने वाला, त्रिलोकेश, सबका कल्याण करने वाला भक्तवत्सल हूँ । मैं सबका कर्त्ता, भर्त्ता, हर्त्ता एवं विकाररहित हूँ ॥ ५१ ॥ देवसत्तमो ! जब-जब भी तुम लोगों पर विपत्ति आवे, तब-तब सुखप्राप्ति के निमित्त तुम लोग मेरा भजन किया करो ॥ ५२ ॥

ब्रह्माजी बोले—तदनन्तर सभी देवता तथा मुनीश्वर शिवजी की आज्ञा लेकर पार्वती सहित परमेश्वर को एवं कुमार को प्रणाम कर अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥ ५३ ॥ वे सब पार्वती-शिव तथा कुमार का यशोगान करते हुए प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने स्थानों को चले गये ॥ ५४ ॥ हे मुने ! अपने गणों, कुमार कार्त्तिकेय तथा पार्वती के सहित शिवजी भी प्रीति के साथ कैलास पर्वत पर निवास करने लगे ॥ ५५ ॥ हे मुने ! मैंने कुमार कार्त्तिकेय का सारा चरित्र, जो सुख देनेवाला तथा दिव्य है, तुमसे कहा अब और क्या सुनना चाहते हो ॥ ५६ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के चतुर्थ—कुमारखण्ड में स्वामिकार्त्तिकचरितगर्भित-शिवाशिवचरित-वर्णन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥

*

त्रयोदशोऽध्यायः

(गणेश का निर्माण कर उसे द्वार पर बैठा पार्वती का स्नान करना)

सूत उवाच

तारकारेरिति श्रुत्वा वृत्तमद्भुतमुत्तमम् । नारदः सुप्रसन्नोऽथ पप्रच्छ प्रीतितो विधिम् ॥ १ ॥

नारद उवाच

देवदेव प्रजानाथ शिवज्ञाननिधे मया । श्रुतं कार्तिकसद्वृत्तममृतादपि चोत्तमम् ॥ २ ॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि गाणेशं वृत्तमुत्तमम् । तज्जन्म चरितं दिव्यं सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥ ३ ॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य नारदस्य महामुने । प्रसन्नमानसो ब्रह्मा प्रत्युवाच शिवं स्मरन् ॥ ४ ॥

ब्रह्मोवाच

कल्पभेदाद् गणेशस्य जनिः प्रोक्ता विधेः परात् । शनिदृष्टं शिरश्छिन्नं सञ्चितं गजमाननम् ॥ ५ ॥
इदानीं श्वेतकल्पोक्ता गणेशोत्पत्तिरुच्यते । यत्र छिन्नं शिरस्तस्य शिवेन च कृपालुना ॥ ६ ॥
सन्देहो नात्र कर्तव्यः शङ्करः सृतिकृन्मुने । स हि सर्वाधिपः शम्भुर्निर्गुणः सगुणोऽपि हि ॥ ७ ॥
तल्लीलयाऽखिलं विश्वं सृज्यते पाल्यते तथा । विनाश्यते मुनिश्रेष्ठ प्रस्तुतं शृणु चादरात् ॥ ८ ॥
उद्वाहिते शिवे चात्र कैलासं च गते सति । कियता चैव कालेन जातो गणपतेर्भवः ॥ ९ ॥
एकस्मिन्नेव काले च जया च विजया सखी । पार्वत्या च मिलित्वा वै विचारे तत्पराऽभवत् ॥ १० ॥
रुद्रस्य च गणाः सर्वे शिवस्याज्ञापरायणाः । ते सर्वेऽप्यस्मदीयाश्च नन्दिभृङ्गिपुरःसराः ॥ ११ ॥
प्रमथास्ते ह्यसङ्ख्याता अस्मदीयो न कश्चन । द्वारि तिष्ठन्ति ते सर्वे शङ्कराज्ञापरायणाः ॥ १२ ॥
ते सर्वेऽप्यस्मदीयाश्च तथापि न मिलेन्मनः । एकश्चैवास्मदीयो हि रचनीयस्त्वयाऽनघे ! ॥ १३ ॥

सूतजी बोले—कुमार के अद्भुत तथा उत्तम चरित्र सुनकर नारद जी प्रसन्न होकर परम प्रीति से पूछने लगे ॥ १ ॥

नारद जी बोले—हे देवदेव ! हे प्रजानाथ ! हे शिवचरित्र के सम्यग् ज्ञाता ! मैंने आपसे अमृत की अपेक्षा भी अत्यन्त श्रेष्ठ कार्त्तिकेय का चरित्र सुना ॥ २ ॥ अब मैं गणेश जी का उत्तम चरित्र सुनना चाहता हूँ। उनका जन्म एवं चरित्र अत्यन्त दिव्य तथा मङ्गलों का मङ्गल करने वाला है ॥ ३ ॥

सूतजी बोले—महामुनि नारद के इस प्रकार के वचन सुन ब्रह्मा प्रसन्न होकर शिव का स्मरण करते हुए बोले ॥ ४ ॥

ब्रह्माजी बोले—कल्पभेद से गणेश जी का जन्म ब्रह्माजी से भी पहले कहा गया है, किसी कल्प में शनि की दृष्टि पड़ने से उनका शिर कटकर पृथ्वी पर गिर पड़ा था, जिसे वाद में हाथी का शिर जोड़ दिया गया ॥ ५ ॥ अब मैं श्वेतकल्प में जिस प्रकार गणेश का जन्म हुआ था, उसे कहता हूँ, जिसमें कृपालु शङ्कर जी के द्वारा उनका शिरच्छेदन किया गया था ॥ ६ ॥ हे मुने ! शङ्कर सृष्टिकर्त्ता हैं, उनके विषय में सन्देह नहीं करना चाहिए, वे सबके अधिपति शङ्कर सगुण एवं निर्गुण दोनों हैं ॥७॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! शङ्कर की लीला से ही इस विश्व की सृष्टि, पालन तथा संहार होता है। अब आदरपूर्वक प्रस्तुत गणेश का चरित्र सुनो ॥ ८ ॥ शिवजी के विवाहोपरान्त कैलास चले जाने के अनन्तर कितने काल के बाद गणेश जी का जन्म हुआ ॥ ९ ॥ एक समय पार्वती की सखी जया, विजया तथा स्वयं पार्वती मिलकर विचार करने लगीं ॥ १० ॥ शिवजी की आज्ञा में रहने वाले नन्दि, भृङ्गि आदि अनेक और असंख्य प्रमथगण हैं, यद्यपि वे गण हमारे भी कहे जा सकते हैं, किन्तु वे सब शङ्कर की आज्ञा का पालन करने के लिए स्थित रहते हैं, किन्तु स्वतन्त्र रूप से हमारे पास एक भी गण नहीं हैं ॥ ११-१२ ॥ यद्यपि वे हमारे कहे जा सकते हैं,

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा पार्वती देवी सखीभ्यां सुन्दरं वचः । हितं मेने तदा तच्च कर्तुं स्माप्यध्यवस्यति ॥१४॥
ततः कदाचिन्मज्जत्यां पार्वत्यां वै सदाशिवः । नन्दिनं परिभर्त्स्याथ ह्याजगाम गृहान्तरम् ॥१५॥
आयान्तं शङ्करं दृष्ट्वाऽसमये जगदम्बिका । उत्तस्थौ मज्जती सा वै लज्जिता सुन्दरी तदा ॥१६॥
तस्मिन्नवसरे देवी कौतुकेनातिसंयुता । तदीयं तद्वचश्चैव हितं मेने सुखावहम् ॥१७॥
एवं जाते सदा काले कदाचित् पार्वती शिवा । विचिन्त्य मनसा चेति परमाया परेश्वरी ॥१८॥
मदीयः सेवकः कश्चिद् भवेच्छुभतरः कृती । मदाज्ञया परं नाऽन्यद्रेखामात्रं चलेदिह ॥१९॥
विचार्येति च सा देवी वपुषो मलसम्भवम् । पुरुषं निर्ममौ सा तु सर्वलक्षणसंयुतम् ॥२०॥
सर्वावयवनिर्दोषं सर्वावयवसुन्दरम् । विशालं सर्वशोभाढयं महाबलपराक्रमम् ॥२१॥
वस्त्राणि च तदा तस्मै दत्त्वा सा विविधानि हि । नानालङ्करणं चैव बह्वाशिषमनुत्तमाम् ॥२२॥
मत्पुत्रस्त्वं मदीयोऽसि नाऽन्यः कश्चिदिहास्ति मे। एवमुक्तः स पुरुषो नमस्कृत्य शिवां जगौ ॥२३॥

गणेश उवाच

किं कार्यं विद्यते तेऽद्य करवाणि शवोदितम् । इत्युक्ता सा तदा तेन प्रत्युवाच सुतं शिवा ॥२४॥

शिवोवाच

हे तात ! शृणु मद्वाक्यं द्वारपालो भवाद्य मे । मत्पुत्रस्त्वं मदीयोऽसि नाऽन्यथा कश्चिदस्ति मे ॥२५॥
विना मदाज्ञां मत्पुत्र ! नैवायान्मद्गृहान्तरम् । कोऽपि क्वापि हठात्तात सत्यमेतन्मयोदितम् ॥२६॥

पर हमारा मन उनसे नहीं मिलता है, इसलिए हे निष्पाप भगवति, कोई व्यक्तिगत रूप से हमारा भी स्वतन्त्र गण होना चाहिए, अतः आप भी किसी एक ऐसे गण की रचना करें ॥ १३ ॥

ब्रह्माजी बोले—सखियों के द्वारा इस प्रकार के सुन्दर वचन सुनकर पार्वती ने उसे हितकारक मान लिया और स्वतन्त्र गण बनाने का विचार करने लगीं ॥ १४ ॥ इसके बाद किसी समय जब पार्वती देवी स्नान कर रही थीं, उसी समय द्वार पर बैठे हुए नन्दि को डाँटकर शङ्कर जी भीतर चले आये ॥ १५ ॥ शिवजी को असमय में आया हुआ देखकर स्नान करती हुई वह सुन्दरी जगदम्बा लज्जित हो गयीं और स्नानक्रिया छोड़कर तत्क्षण उठ गयीं ॥ १६ ॥ उसी समय आश्चर्य-चकित पार्वती को सखियों के द्वारा मन्त्रणा में कहा गया वचन अत्यन्त हितकारी तथा सुखदायक जान पड़ा ॥ १७ ॥

इसके बाद कुछ समय बीतने के पश्चात् परमाया परमेश्वरी ने मन में विचार किया कि ॥ १८ ॥ मेरा भी कोई एक ऐसा सेवक होना चाहिए, जो श्रेष्ठ हो तथा मेरी आज्ञा के बिना रेखामात्र भी इधर से उधर विचलित न हो ॥ १९ ॥ ऐसा विचार कर उन्होंने अपने शरीर के मल से सर्वलक्षण सम्पन्न एक पुरुष का निर्माण किया। वह शरीर के सभी अवयवों से सर्वथा निर्दोष, सर्वावयव सुन्दर, विशाल, सर्वशोभा सम्पन्न एवं महाबली तथा पराक्रमी था ॥ २०-२१ ॥ पार्वती ने उसे नाना प्रकार के वस्त्र, अनेक प्रकार के अलङ्कार तथा अपना आशीर्वाद देकर कहा—तुम मेरे पुत्र हो और कोई दूसरा मेरा अपना पुत्र नहीं है। इस प्रकार कहे जाने पर उस पुरुष ने पार्वती को नमस्कार कर कहा ॥ २२-२३ ॥

गणेश बोले—तुम्हारा क्या कार्य है, उसे कहो, मैं उसे शीघ्र पूरा करूँ। तब उस पुत्र के ऐसा कहने पर पार्वती बोलीं ॥ २४ ॥

पार्वती बोलीं—हे तात ! मेरे वचन सुनो, तुम मेरे द्वारपाल बनो, तुम पुत्र होने के कारण मेरे सर्वस्व हो और मेरे पास कोई दूसरा पुत्र नहीं है ॥ २५ ॥ हे पुत्र ! मेरी आज्ञा के बिना कोई मेरे घर के भीतर न आने पावे, चाहे वह कितना भी हठ करे, यह मैं तुमसे सत्य-सत्य कहती हूँ ॥ २६ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा च ददौ तस्मै यष्टिं चातिदृढां मुने । तदीयं रूपमालोक्य सुन्दरं हर्षमागता ॥२७॥
मुखमाचुम्ब्य सुप्रीत्यालिङ्ग्य तं कृपया सुतम् । स्वद्वारि स्थापयामास यष्टिपाणिं गणाधिपम् ॥२८॥
अथ देवीसुतस्तात गृहद्वारि स्थितो गणः । यष्टिपाणिर्महावीरः पार्वतीहितकाम्यया ॥२९॥
स्वद्वारि स्थापयित्वा तं गणेशं स्वसुतं शिवा । स्वयं च मज्जती सा वै संस्थिताऽऽसीत् सखीयुता ॥३०॥
एतस्मिन्नेव काले तु शिवो द्वारि समागतः । कौतुकी मुनिशार्दूल नानालीलाविशारदः ॥३१॥
उवाच च शिवेशं तमविज्ञाय गणाधिपः । मातुराज्ञां विना देव गम्यतां न त्वयाऽधुना ॥३२॥
मज्जनार्थं स्थिता माता क्व यासीतो व्रजाधुना । इत्युक्त्वा यष्टिकां तस्य रोधनाय तदाग्रहीत् ॥३३॥
तं दृष्ट्वा तु शिवः प्राह कं निषेधसि मूढधीः । मां न जानास्यसद्बुद्धे शिवोऽहमिति नान्यथा ॥३४॥
ताडितस्तेन यष्ट्या हि गणेशेन महेश्वरः । प्रत्युवाच स तं पुत्रं बहुलीलश्च कोपितः ॥३५॥

शिव उवाच

मूर्खोऽसि त्वं न जानासि शिवोऽहं गिरिजापतिः । स्वगृहं यामि रे बाल! निषेधसि कथं हि माम् ?॥३६॥
इत्युक्त्वा प्रविशन्तं तं महेशं गणनायकः । क्रोधं कृत्वा ततो विप्र दण्डेनाऽताडयत् पुनः ॥३७॥
ततः शिवश्च संक्रुद्धो गणानाज्ञापयन्निजान् । को वाऽयं वर्तते किञ्च क्रियते पश्यतां गणाः ॥३८॥
इत्युक्त्वा तु शिवस्तत्र स्थितः क्रुद्धो गृहाद् बहिः । भवाचाररतः स्वामी बह्वद्भुतसुलीलकः ॥३९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे
गणेशोत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

ब्रह्माजी बोले – हे मुने ! पार्वती ने ऐसा कहकर एक अत्यन्त दृढ़ लाठी उसे दी और उस बालक के अत्यन्त सुन्दर रूप को देखकर हर्षित हो गयीं ॥ २७ ॥ उन्होंने प्रेम से पुत्र के मुख का चुम्बन कर उसका आलिङ्गन किया फिर उसे लाठी देकर द्वारपाल नियुक्त किया ॥ २८ ॥ हे तात ! इस प्रकार वह महावीर पार्वतीपुत्र माता की रक्षा के लिए हाथ में लाठी लेकर द्वार पर पहरा देने लगा ॥ २९ ॥ एक समय अपने पुत्र को द्वार की रक्षा के लिए नियुक्त कर पार्वती सखियों सहित स्नान करने लगीं ॥३०॥ इसी समय हे मुनिश्रेष्ठ ! परम कौतुकी नाना लीलाविशारद शिवजी भी द्वार पर आ गये ॥ ३१ ॥ तब वह गणेश उन्हें न जानकर इस प्रकार बोला—हे देव ! इस समय भीतर जाने देने के लिए माता की आज्ञा नहीं है, अतः आप भीतर नहीं जा सकते ॥३२॥ माताजी इस समय स्नान कर रही हैं, कहाँ चले जा रहे हो, शीघ्र पीछे लौटो, ऐसा कहकर गणेश जी ने उन्हें रोकने के लिए अपनी लाठी उठा ली ॥ ३३ ॥ यह देखकर शिवजी बोले—हे मूर्ख ! तुम किसको मना करते हो, हे विवेकरहित, क्या तुम मुझे नहीं जानते, मैं ही शिव हूँ, और कोई दूसरा नहीं ॥ ३४ ॥ तब गणेश ने लाठी से शिव पर प्रहार किया, तब बहुत लीला करनेवाले शिवजी क्रुद्ध होकर पुत्र से बोले ॥ ३५ ॥

शिवजी बोले—हे बालक ! तुम बहुत मूर्ख हो, क्या तुम मुझ गिरिजापति शङ्कर को नहीं जानते । हे बालक ! मैं तो अपने ही घर जा रहा हूँ, फिर तू मुझे मना क्यों करते हो ॥ ३६ ॥ इतना कहने के बाद भी उन गणेश ने क्रोधपूर्वक घर में प्रवेश करने वाले शङ्कर को पुनः डण्डे से प्रहार किया ॥ ३७ ॥ तब शिवजी ने क्रोधकर अपने गणों को आज्ञा दी, हे गणो ! देखो, यह कौन है और यहाँ क्या करता है ॥३८॥ ऐसा कहकर शिवजी महाक्रोध में भरकर घर के बाहर ही स्थित रहे । इस प्रकार अनेक लीला करनेवाले स्वामी शङ्कर लोकलीला दिखाने लगे ॥ ३९ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के चतुर्थ-कुमारखण्ड में गणेशोत्पत्तिवर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥

*

चतुर्दशोऽध्यायः

(गणेश द्वारा स्नान-गृह में शिवप्रवेश रोकने पर शिवगणों को युद्ध के लिए भेजना)

ब्रह्मोवाच

गणास्ते क्रोधसम्पन्नास्तत्र गत्वा शिवाज्ञया। पप्रच्छुर्गिरिजापुत्रं तं तदा द्वारपालकम् ॥ १ ॥

शिवगणा ऊचुः

कोऽसि त्वं कुत आयातः किं वा त्वं च चिकीर्षसि। इतोऽद्य गच्छ दूरं वै यदि जीवितुमिच्छसि ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

तदीयं तद्वचः श्रुत्वा गिरिजातनयः स वै। निर्भयो दण्डपाणिश्च द्वारपानब्रवीदिदम् ॥ ३ ॥

गणेश उवाच

यूयं के कुत आयाता भवन्तः सुन्दरा इमे। यात दूरं किमर्थं वै स्थिता अत्र विरोधिनः ॥ ४ ॥

ब्रह्मोवाच

एवं श्रुत्वा वचस्तस्य हास्यं कृत्वा परस्परम्। ऊचुः सर्वे शिवगणा महावीरा गतस्मयाः ॥ ५ ॥
परस्परमिति प्रोच्य सर्वे ते शिवपार्षदाः। द्वारपालं गणेशं तं प्रत्यूचुः क्रुद्धमानसाः ॥ ६ ॥

शिवगणा ऊचुः

श्रूयतां द्वारपाला हि वयं शिवगणा वराः। त्वां निवारयितुं प्राप्ताः शङ्करस्याज्ञया विभोः ॥ ७ ॥
त्वामपीह गणं मत्वा न हन्यामोऽन्यथा हतः। तिष्ठ दूरे स्वतस्त्वं च किमर्थं मृत्युमीहसे ॥ ८ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तोऽपि गणेशश्च गिरिजातनयोऽभयः। निर्भर्त्स्य शङ्करगणान्न द्वारं मुक्तवांस्तदा ॥ ९ ॥
ते सर्वेऽपि गणाः शैवास्तत्रत्या वचनं तदा। श्रुत्वा तत्र शिवं गत्वा तद्वृत्तान्तमथाब्रुवन् ॥१०॥
ततश्च तद्वचः श्रुत्वाऽद्भुतलीलो महेश्वरः। विनिर्भर्त्स्य गणानूचे निजाँल्लोकगतिर्मुने ॥११॥

ब्रह्माजी बोले—तब वे गण क्रुद्ध हो शिवजी की आज्ञा से उस द्वारपाल गिरिजापुत्र से पूछने लगे ॥१॥

शिव के गण बोले—तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? और यहाँ क्या करना चाहते हो ? यदि जीना चाहो तो शीघ्र यहाँ से दूर चले जाओ ॥ २ ॥

ब्रह्माजी बोले—शिवगणों के वचन सुनकर गिरिजापुत्र गणेश हाथ में लाठी लिये हुए निर्भय होकर उन गणों से बोले ॥ ३ ॥

गणेश जी बोले—आप लोग कौन हो ? कहाँ से आये हो ? आप लोग तो बहुत सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं, शीघ्र यहाँ से दूर हो जाइए, क्यों विरोध करने के निमित्त आये हैं ॥ ४ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार गणेश जी के वचन सुन शिव के गण आश्चर्यचकित हो परस्पर हास्य करते हुए बोले ॥ ५ ॥ पहले तो उन शिवपार्षदों ने परस्पर विचार किया फिर क्रुद्ध होकर गणेश जी से बोले ॥ ६ ॥

शिव के गणों ने कहा—सुनिए, हम सब शिव के गण हैं और उनके द्वारपाल का काम करते हैं, हम उन विभु शङ्कर की आज्ञा से तुम्हें यहाँ से हटाने के लिए आये हैं ॥ ७ ॥ तुमको भी एक गण समझकर हम तुम्हारा वध नहीं करते, अन्यथा अब तक तुम कभी मार दिये गये होते, अच्छा यही होगा कि तुम यहाँ से हट जाओ, क्यों व्यर्थ में मरना चाहते हो ॥ ८ ॥

ब्रह्माजी बोले—इतना कहे जाने के बाद भी गिरिजापुत्र गणेश निर्भय हो वहीं डटे रहे। उन्होंने शङ्करगणों को बहुत फटकारा और द्वार से नहीं हटे ॥ ९ ॥ उन सम्पूर्ण शिव के गणों ने भी गणेश जी का वचन सुनकर सारा वृत्तान्त जानकर शिवजी से निवेदन किया ॥ १० ॥ तब अद्भुत लीला करने वाले महेश्वर अपने गणों के वचन सुनकर लौकिक लीला करते उनको डाँटते हुए बोले ॥ ११ ॥

महेश्वर उवाच

कश्चाऽयं वर्तते किं च ब्रवीत्यरिवदुच्छ्रितः । किं करिष्यत्यसद्बुद्धिः स्वमृत्युं वाञ्छति ध्रुवम् ॥१२॥
दूरतः क्रियतां ह्येष द्वारपालो नवीनकः । क्लीबा इव स्थितास्तस्य वृत्तं वदथ मे कथम् ॥१३॥
स्वामिनोक्ता गणास्ते चाऽद्भुतलीलेन शम्भुना । पुनरागत्य तत्रैव तमूचुर्द्वारपालकम् ॥१४॥

शिवगणा ऊचुः

रे रे द्वारप! कस्त्वं हि स्थितश्च स्थापितः कुतः । नैवास्मान् गणयस्येवं कथं जीवितुमिच्छसि ॥१५॥
द्वारपाला वयं सर्वे स्थितः किं परिभाषसे । सिंहासनगृहीतश्च श्रृगालः शिवमीहते ॥१६॥
तावद् गर्जसि मूर्ख! त्वं यावद् गणपराक्रमः । नानुभूतस्त्वयाऽत्रैव ह्यनुभूतः पतिष्यसि ॥१७॥
इत्युक्तस्तैः सुसङ्क्रुद्धो हस्ताभ्यां यष्टिकां तदा । गृहीत्वा ताडयामास गणांस्तान् परिभाषिणः ॥१८॥
उवाचाथ शिवापुत्रः परिभर्त्स्य गणेश्वरान् । शङ्करस्य महावीरान्निर्भयस्तान् गणेश्वरः ॥१९॥

शिवापुत्र उवाच

यात यात इतो दूरे नो चेद्वै दर्शयामि ह । स्वपराक्रममत्युग्रं यास्यथात्युपहास्यताम् ॥२०॥
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य गिरिजातनयस्य हि । परस्परमथोचुस्ते शङ्करस्य गणास्तदा ॥२१॥

शिवगणा ऊचुः

किं कर्तव्यं क गन्तव्यं क्रियते स न किं पुनः । मर्यादा रक्ष्यतेऽस्माभिरन्यथा किं ब्रवीति च ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

ततः शम्भुगणाः सर्वे शिवं दूरे व्यवस्थितम् । क्रोशमात्रं तु कैलासाद् गत्वा ते च तथाऽब्रुवन् ॥२३॥
शिवो विहस्य तान् सर्वांस्त्रिशूलकर उग्रधीः । उवाच परमेशो हि स्वगणान् वीरसम्मतान् ॥२४॥

महेश्वर बोले—हे गणो ! यह कौन है ? जो शत्रु के समान इतना उच्छृङ्खल होकर बातें करता है। यह असद्बुद्धि क्या करेगा, निश्चय ही यह अपना मृत्यु चाहता है ॥ १२ ॥ यह कोई नया द्वारपाल मालूम पड़ता है, इसको शीघ्रता से यहाँ से दूर करो, तुम लोग कायरों की तरह खड़े होकर उसका समाचार मुझसे क्यों कहते हो ? ॥ १३ ॥ अद्भुत लीला करने वाले, भगवान् शङ्कर के वचन सुनकर उन गणों ने पुनः द्वारपाल गणेश से कहा—॥ १४ ॥

शिव के गण बोले—रे द्वारपाल, तू कौन है ? तुम किसके द्वारा नियुक्त होकर यहाँ स्थित हो, ऐसा मालूम पड़ता है कि तुमको हम लोगों की कोई परवाह नहीं है, फिर तुम्हीं बताओ कि यहाँ रहकर कैसे जीना चाहते हो ? ॥ १५ ॥ द्वारपाल तो हम लोग हैं, तुम किस प्रकार अपने को द्वारपाल कहते हो, सियार शेर के आसन पर बैठकर किस प्रकार अपना कल्याण कर सकता है ॥ १६ ॥ हे मूर्ख ! तुम तभी तक गर्जना करो, जब तक शिवगण अपना पराक्रम नहीं दिखाते। तुमने अभी गणों का पराक्रम नहीं देखा, जब देख लोगे तब तुम्हारे होश ठिकाने हो जायेंगे। और तुम धराशाई हो जाओगे ॥१७॥ उनके इस प्रकार के वचन सुनते ही गणेश जी दोनों हाथ में लाठी लेकर उन वाचाल गणों को मारने लगे ॥१८॥ और वे शिवा-पुत्र गणेश शङ्कर के महावीर गणों को घुड़कते हुए निर्भय होकर बोले ॥१९॥

गणेश जी बोले—जाओ जाओ, यहाँ से दूर चले जाओ, नहीं तो तुम लोगों पर अपना प्रचण्ड पराक्रम प्रगट करूँगा, जिससे तुम लोग पराभूत होकर उपहासास्पद हो जाओगे ॥ २० ॥ गिरिजापुत्र गणेश की बात सुनकर शङ्कर के गण आपस में कहने लगे ॥ २१ ॥

शिव के गण बोले—अब हम क्या करें, कहाँ जायें, कहने पर भी यह हमारी बात नहीं मानता, हम लोग तो मर्यादा की रक्षा करते हैं अन्यथा यह ऐसी बात किस प्रकार कहता ॥ २२ ॥

ब्रह्माजी बोले—तब शिव के गण कैलास से एक कोश की दूरी पर रहने वाले शङ्कर जी से जाकर यह सारा वृत्तान्त कहने लगे ॥ २३ ॥ फिर त्रिशूल हाथ में लिये हुए उग्रबुद्धि परमेश्वर शिवजी वीर मानी अपने उन गणों से कहने लगे ॥ २४ ॥

शिव उवाच

रे रे गणाः क्लीवमता न वीरा वीरमानिनः । मदग्रे नोदितुं योग्या भर्त्सितः किं पुनर्वदेत् ॥२५॥
गम्यतां ताड्यतां चैष यः कश्चित् प्रभवेदिह । बहुनोक्तेन किं चात्र दूरीकर्तव्य एव सः ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

इति सर्वे महेशेन जग्मुस्तत्र मुनीश्वर ! । भर्त्सितास्तेन देवेन प्रोचुश्च गणसत्तमाः ॥२७॥

शिवगणा ऊचुः

रे रे त्वं शृणु वै बाल ! बलात् किं परिभाषसे । इतस्त्वं दूरतो याहि नो चेन्मृत्युर्भविष्यति ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तेषां शिवाज्ञाकारिणां ध्रुवम् । शिवासुतस्तदाभूत् स किं करोमीति दुःखितः ॥२९॥
एतस्मिन्नन्तरे देवी तेषां तस्य च वै पुनः । श्रुत्वा तु कलहं द्वारि सखीं पश्येति साऽब्रवीत् ॥३०॥
समागत्य सखी तत्र वृत्तान्तं समबुध्यत । क्षणमात्रं तदा दृष्ट्वा गता हृष्टा शिवान्तिकम् ॥३१॥
तत्र गत्वा तु तत्सर्वं वृत्तं तद्यदभून्मुने । अशेषेण तया सख्या कथितं गिरिजाग्रतः ॥३२॥

सख्युवाच

अस्मदीयो गणो यो हि स्थितो द्वारि महेश्वरि ! । निर्भर्त्सयन्ति तं वीराः शङ्करस्य गणा ध्रुवम् ॥३३॥
शिवश्चैव गणाः सर्वे विना तेऽवसरं कथम् । प्रविशन्ति हठाद् गेहे नैतच्छुभतरं तव ॥३४॥
सम्यक् कृतं ह्यनेनैव न हि कोऽपि प्रवेशितः । दुःखं चैवानुभूयात्र तिरस्कारादिकं तथा ॥३५॥
अतः परं तु वाग्वादः क्रियते च परस्परम् । वाग्वादे च कृते नैव तर्ह्यायान्तु सुखेन वै ॥३६॥
कृतश्चैवात्र वाग्वादस्तं जित्वा विजयेन च । प्रविशन्तु तथा सर्वे नान्यथा कर्हिचित् प्रिये ! ॥३७॥

शिवजी बोले—हे गणो ! तुम लोग कायर हो, मानी वीर नहीं हो, मेरे सामने तुम लोग कैसी बातें करते हो, एक घुड़की मात्र से उसकी बोली वन्द हो सकती है, वह क्या कह सकता है ॥ २५ ॥ अच्छा, अब तुम लोग जाओ, उस पर प्रहार करो, चाहे वह कोई क्यों न हो, हम तुम लोगों से बहुत क्या कहें, चाहे जो हो उसे वहाँ से हटाओ ॥ २६ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर ! जब महेश्वर ने अपने गणों से इस प्रकार फटकार कर कहा तब वे पुनः वहाँ जाकर बोले ॥ २७ ॥

शिव के गण बोले—अरे बालक ! सुनो, तुम अपने बल का घमण्ड कर व्यर्थ बकवाद करते हो, अब यहाँ से दूर चले जाओ, अन्यथा तुम्हारी निश्चित रूप से मृत्यु हो जायेगी ॥ २८ ॥

ब्रह्माजी बोले—शिवाज्ञा-पालक गणों का निश्चयपूर्वक वचन सुन गणेश बहुत दुःखी हुए और विचार करने लगे ॥ २९ ॥ इसी समय द्वार पर गणों के कलह का कलकल शब्द सुन पार्वती ने अपनी सखी से कहा—देखो, द्वार पर कैसा कलह हो रहा है ॥ ३० ॥ सखी ने वहाँ जाकर सारा वृत्तान्त जान लिया, फिर क्षणमात्र में सब-कुछ देखकर प्रसन्न हो पार्वती के पास आकर बोली ॥ ३१ ॥ हे मुने ! वहाँ जाकर उस सखी ने जैसा वृत्तान्त देखा था, वह सब यथार्थ रूप से पार्वती के आगे वर्णन किया ॥ ३२ ॥

सखी बोली—हे महेश्वरि ! हमारा गण जो द्वार पर स्थित है, उसको शिवजी के गण धमका रहे हैं ॥ ३३ ॥ शिव अथवा शिवजी के गण बिना अवसर के घर में कैसे प्रवेश कर सकते हैं, यह तो शोभा की बात नहीं है ॥ ३४ ॥ इस बालक ने बहुत अच्छा किया, जो घर में किसी को आने नहीं दिया, यद्यपि इस कार्य के लिए इसे अनेक दुःख तथा तिरस्कार भी सहन करना पड़ा ॥ ३५ ॥ इसके बाद इन लोगों में परस्पर विवाद चल रहा है, ऐसा करने से वे सुखपूर्वक घर में प्रवेश नहीं कर पावेंगे ॥३६॥ यदि वाद-विवाद से यह समस्या सिद्ध नहीं हुई तो मेरे गण को जीतकर विजय प्राप्त करने के बाद ही वे घर में प्रवेश कर

अस्मिन्नेवास्मदीये वै सर्वे सम्भर्त्सिता वयम् । तस्माद्देवि ! त्वया भद्रे न त्याज्यो मान उत्तमः ॥३८॥
शिवो मर्कटवत्तेऽद्य वर्तते सर्वदा सति । किं करिष्यत्यहङ्कारमानुकूल्यं भविष्यति ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

अहो क्षणं स्थिता तत्र शिवेच्छावशतः सती ॥४०॥
मनस्युवाच सा भूत्वा मानिनी पार्वती तदा ॥४१॥

शिवोवाच

अहो क्षणं स्थितो नैव हठात्कारः कथं कृतः । कथं चैवात्र कर्त्तव्यं विनयेनाथवा पुनः ॥४२॥
भविष्यति भवत्येव कृतं नैवान्यथा पुनः । इत्युक्त्वा तु सखी तत्र प्रेषिता प्रियया तदा ॥४३॥
समागत्याऽब्रवीत् सा च प्रियया कथितं हि यत् । तमाचष्ट गणेशं तं गिरिजातनयं तदा ॥४४॥

सख्युवाच

सम्यक् कृतं त्वया भद्र ! बलात्ते प्रविशन्तु न । भवदग्रे गणा ह्येते किं जयन्तु भवादृशम् ॥४५॥
कृतं चेद्वा वाऽकृतं चैव कर्त्तव्यं क्रियतां त्वया । जितो यस्तु पुनर्वाऽपि न वैरमथवा ध्रुवम् ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्या मातुश्चैव गणेश्वरः । आनन्दं परमं प्राप बलं भूरि महोन्नतिम् ॥४७॥
बद्धकक्षस्तथोष्णीषं बद्ध्वा जङ्घोरुसंस्पृशन् । उवाच तान् गणान् सर्वान् निर्भयं वचनं मुदा ॥४८॥

सकते हैं, हे प्रिये ! मेरी बात अन्यथा न हो ॥ ३७ ॥ हमारे इस गण के धमकी देने से इन गणों ने हमी लोगों को धमकी दी है, इसलिए हे देवि ! हे भद्रे ! तुम्हें अपने श्रेष्ठ मान के लिए डटे रहना चाहिए ॥३८॥ हे सति ! शिव तो बानर के समान सर्वदा तुम्हारे आधीन हैं, वे अहङ्कार क्या कर सकते हैं । अवश्य ही वे तुम्हारे अनुकूल हो जायेंगे ॥ ३९ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! फिर क्या था, वह सती पार्वती शिवेच्छा के वश में हो गयीं ॥ ४० ॥ और वह मानिनी अपने मन में विचार करने लगीं ॥ ४१ ॥

शिवा बोलीं—अहो ! यह बड़े आश्चर्य की बात है कि शिव के गण क्षणमात्र भी रुक नहीं सके । इस प्रकार प्रवेश का हठ उन लोगों ने कैसे ठान लिया, अब इस निमित्त उनसे विनय अथवा अन्य उपाय उचित नहीं प्रतीत होता ॥ ४२ ॥ जो होना हो वही हो, मैंने जो कर दिया है वह अन्यथा किस प्रकार करूँ । ऐसा कहकर उन्होंने पुनः अपनी उस सखी को भेजा ॥ ४३ ॥ वह सखी लौटकर पार्वतीपुत्र गणेश से जैसा पार्वती ने कहा था वैसा ही कहा—॥ ४४ ॥

सखी बोली—हे भद्र ! तुमने बहुत अच्छा किया, ये लोग अब किसी भी प्रकार हठ से घर में प्रवेश न करने पावें । तुम्हारे जैसे गण के रहते ये लोग देखें किस प्रकार विजय प्राप्त करते हैं ॥ ४५ ॥ चाहे करने योग्य अथवा न करने योग्य, जो भी कर्त्तव्य हो तुम उसे अवश्य पालन करो । युद्ध में जो एक बार जीत लिया जायेगा वह फिर वैर नहीं करेगा ॥ ४६ ॥

ब्रह्माजी बोले—उस सखी के द्वारा कहे गये माता के वचन सुनकर गणेश्वर को परम आनन्द प्राप्त हुआ । उन्हें माता के वचन से बल तथा उत्साह की भी वृद्धि हुई ॥ ४७ ॥ उन्होंने अच्छी तरह से कमर कस लिया, माथे पर पगड़ी बाँध ली और ऊरु तथा जङ्घा पर ताल ठोंकते हुए उन गणों से निर्भय होकर बोले—॥ ४८ ॥

गणेश उवाच

अहं च गिरिजासूनुर्यूयं शिवगणास्तथा । उभये समतां प्राप्ताः कर्तव्यं क्रियतां पुनः ॥४९॥
भवन्तो द्वारपालाश्च द्वारपोऽहं कथं न हि । भवन्तश्च स्थितास्तत्राऽहं स्थितोऽत्रेति निश्चितम् ॥५०॥
भवद्भिश्च स्थितं ह्यत्र यदा भवति निश्चितम् । तदा भवद्भिः कर्त्तव्यं शिवाज्ञापरिपालनम् ॥५१॥
इदानीं तु मया चाऽत्र शिवाज्ञापरिपालनम् । सत्यं च क्रियते वीरा निर्णीतं मे यथोचितम् ॥५२॥
तस्माच्छिवगणाः सर्वे वचनं शृणुतादरात् । हठाद् वा विनयाद् वा न गन्तव्यं मन्दिरे पुनः ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तास्ते गणेनैव सर्वे ते लज्जिता गणाः । ययुः शिवान्तिकं तं वै नमस्कृत्य पुरः स्थिताः ॥५४॥
स्थित्वा न्यवेदयन् सर्वे वृत्तान्तं च तदद्भुतम् ।
करौ बद्ध्वा नतस्कन्धाः शिवं स्तुत्वा पुरः स्थिताः ॥५५॥
तत्सर्वं तु तदा श्रुत्वा वृत्तं तत्स्वगणोदितम् । लौकिकीं वृत्तिमाश्रित्य शङ्करो वाक्यमब्रवीत् ॥५६॥

शङ्कर उवाच

श्रूयतां च गणाः सर्वे युद्धं योग्यं भवेन्न हि । यूयं चाऽत्रास्मदीया वै स च गौरीगणस्तथा ॥५७॥
विनयः क्रियते चेद् वै वश्यः शम्भुः स्त्रिया सदा । इति ख्यातिर्भवेल्लोके गर्हिता मे गणा ध्रुवम् ॥५८॥
कृते चैवात्र कर्तव्यमिति नीतिर्गरीयसी । एकाकी स गणो बालः किं करिष्यति विक्रमम् ॥५९॥
भवन्तश्च गणा लोके युद्धे चातिविशारदाः । मदीयाश्च कथं युद्धं हित्वा यास्यथ लाघवम् ॥६०॥
स्त्रिया ग्रहः कथं कार्यो पत्युरग्रे विशेषतः । कृत्वा सा गिरिजा तस्य नूनं फलमवाप्स्यति ॥६१॥

गणेश जी बोले—हम पार्वती के पुत्र हैं, तुम लोग शिवजी के गण हो, दोनों ही समान हैं, आओ अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करें ॥ ४९ ॥ क्या आप लोग ही द्वारपाल रह सकते हैं, मैं क्यों नहीं ? यदि आप लोग शिव के द्वार पर रह सकते हैं तो मैं भी निश्चित रूप से यहाँ रह सकता हूँ ॥ ५० ॥ यदि आप लोग यहाँ स्थित होते तब आप लोगों को शिव की आज्ञा का पालन करना चाहिए था ॥ ५१ ॥ इस समय तो यहाँ मैं हूँ इसलिए मैं पार्वती की आज्ञा का पालन अवश्य करूँगा । हे वीरो ! यही सत्य और उचित निर्णय है, जिसे मैं कर रहा हूँ ॥ ५२ ॥ इसलिए हे शिवगण ! मेरी बात सावधान होकर सुनो, बल से अथवा विनय से मैं तुम लोगों को घर के भीतर प्रवेश नहीं करने दूँगा ॥ ५३ ॥

ब्रह्माजी बोले—गणेश्वर के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर सभी शिव के गण लज्जित हो गये और शिव को नमस्कार कर उनके आगे खड़े हो गये ॥ ५४ ॥ उन लोगों ने वह अद्भुत सारा वृत्तान्त शिवजी से निवेदन किया । फिर हाथ जोड़कर सिर झुकाते हुए शिव की स्तुति कर उनके आगे खड़े हो गये ॥५५॥ अपने गणों के द्वारा इस प्रकार निवेदन करने पर शिवजी लौकिक गति का अनुसरण करते हुए उनसे बोले—॥ ५६ ॥

शिवजी बोले—हे गणो ! सुनो, तुम लोग हमारे गण हो और वह बालक पार्वती का गण है, इसलिए आपस में युद्ध करना अनुचित होगा ॥५७॥ यदि नम्रता प्रदर्शित की जाये तो संसार यही समझेगा कि शिवजी स्त्री के वश में रहते हैं और शिव के गण निर्बल हैं ॥ ५८ ॥ जो जैसा करे, उसके साथ वैसा वर्त्ताव करना चाहिए यही नीति सर्वश्रेष्ठ है । वह गणेश तो अकेला है, विशेष कर अभी बालक है, वह तुम लोगों के सामने क्या पुरुषार्थ दिखायेगा ॥ ५९ ॥ तुम सब हमारे गण हो, जो संसार में युद्ध के लिए

तस्मात् सर्वे च मद्वीराः शृणुतादरतो वचः । कर्त्तव्यं सर्वथा युद्धं भावि यत्तद्भवत्विति ॥६२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा शङ्करो ब्रह्मन् ! नानालीलाविशारदः । विरराम मुनिश्रेष्ठ ! दर्शयन् लौकिकीं गतिम् ॥६३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे गणविवाद-वर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

(गणेश के साथ शिवगणों का युद्ध)

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ता विष्णुना तेन निश्चयं परमं गताः । सन्नद्धास्तु तदा तत्र जग्मुश्च शिवमन्दिरम् ॥ १ ॥

गणेशोऽपि तथा दृष्ट्वा ह्यायातान् गणसत्तमान् । युद्धाऽऽटोपं विधायैव स्थितांश्चैवाऽब्रवीदिदम् ॥ २ ॥

गणेश उवाच

आयान्तु गणपाः सर्वे शिवाज्ञापरिपालकाः । अहमेकश्च बालश्च शिवाज्ञापरिपालकः ॥ ३ ॥

तथापि पश्यतां देवी पार्वती स्वसुतं बलम् । शिवश्च स्वगणानां तु बलं पश्यतु वै पुनः ॥ ४ ॥

बलवद् बालयुद्धं च भवानीशिवपक्षयोः । भवद्भिश्च कृतं युद्धं पूर्वं युद्धविशारदैः ॥ ५ ॥

मया पूर्वं कृतं नैव बालोऽस्मि क्रियतेऽधुना । तथापि भवतां लज्जा गिरिजाशिवयोरिह ॥ ६ ॥

ममैवं तु भवेन्नैव वैपरीत्यं भविष्यति । ममैव भवतां लज्जा गिरिजाशिवयोरिह ॥ ७ ॥

एवं ज्ञात्वा च कर्त्तव्यः समरश्च गणेश्वराः । भवद्भिः स्वामिनं दृष्ट्वा मया च मातरं तदा ॥ ८ ॥

अत्यन्त प्रसिद्ध हो फिर मेरे गण होकर युद्ध से भागो ये तो बड़ी निन्दा होगी ॥६०-६१॥ इसलिए हे वीरो ! मेरी बात आदरपूर्वक सुनो, तुम लोग अवश्य युद्ध करो, जो होनहार है वह होकर ही रहेगी ॥ ६२ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे ब्रह्मन् ! नाना लीला-विशारद शङ्कर लौकिक गति प्रदर्शित करते हुए इतना कहने के पश्चात् मौन हो गये ॥ ६३ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के चतुर्थ-कुमारखण्ड में गण-विवादवर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—जब सर्वव्यापक शिवजी ने अपने गणों से इस प्रकार कहा तब वे युद्ध का निश्चय कर कवचादि धारण कर शिवजी के मन्दिर के समीप गये ॥ १ ॥ इधर गणेश जी भी युद्ध की तैयारी से आटोप पूर्वक आते हुए उन गणों को देखकर उनसे कहा ॥ २ ॥

गणेश जी बोले—शिव की आज्ञा का पालन करने के लिए सब गण आ रहे हैं तो आवें, मैं अकेला बालक होते हुए भी अपनी माता पार्वती की आज्ञा का पालन करूँगा ॥ ३ ॥ तथापि आज पार्वती अपने पुत्र का बल देखें और शङ्कर अपने गणों का बल देखें ॥ ४ ॥ भवानी पक्ष से इस बालक का तथा शिव के पक्ष से इस बलवान् गणों के बीच आज युद्ध होगा। आप सभी गण युद्ध में विशारद हैं और अनेक युद्ध कर चुके हैं, मैं तो अभी बालक हूँ, कभी युद्ध भी नहीं किया हूँ किन्तु आज युद्ध करूँगा। इस युद्ध में हार या जीत की लज्जा आप सभी गणों के तथा गिरिजा एवं पार्वती को होगी। मैं तो यदि हार भी गया तो भी बालक होने के कारण मुझे हार या जीत की लाज नहीं है, मेरे तथा आपके बीच में इस युद्ध से होने वाली हार या जीत की लाज भवानी तथा शङ्कर की लाज है ॥ ५-७ ॥ हे गणेश्वरो ! ऐसा समझकर युद्ध करो। आप लोग अपने स्वामी की ओर देखकर तथा मैं अपनी माता की ओर देखकर यह युद्ध

क्रियते कीदृशं युद्धं भवितव्यं भवत्विति । तस्य वै वारणे कोऽपि न समर्थस्त्रिलोकके ॥ ९ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं भर्त्सितास्ते तु दण्डभूषितबाहवः । विविधान्यायुधान्येवं धृत्वा ते च समाययुः ॥१०॥
घर्षयन्तस्तथा दन्तान् हुङ्कृत्य च पुनः पुनः । पश्य पश्य ब्रुवन्तश्च गणास्ते समुपागताः ॥११॥
नन्दी प्रथममागत्य धृत्वा पादं व्यकर्षयत् । धावन्भृङ्गी द्वितीयं च पादं धृत्वा गणस्य च ॥१२॥
यावत्पादे विकर्षन्तौ तावद्धस्तेन वै गणः । आहत्य हस्तयोस्ताभ्यामुत्क्षिप्तौ पादकौ स्वयम् ॥१३॥
अथ देवीसुतो वीरः सङ्गृह्य परिघं बृहत् । द्वारस्थितो गणपतिः सर्वानापोथयंस्तदा ॥१४॥
केषाञ्चित् पाणयो भिन्नाः केषाञ्चित् पृष्ठकानि च । केषाञ्चिच्च शिरांस्येव केषाञ्चिन्मस्तकानि च ॥१५॥
केषाञ्चिज्जानुनी तत्र केषाञ्चित् स्कन्धकास्तथा । सम्मुखे चागता ये वै ते सर्वे हृदये हताः ॥१६॥
केचिच्च पतिता भूमौ केचिच्च विदिशो गताः । केषाञ्चिच्चरणौ छिन्नौ केचिच्छर्वान्तिकं गताः ॥१७॥
तेषां मध्ये तु कश्चिद्वै सङ्ग्रामे सम्मुखो न हि । सिंहं दृष्ट्वा यथा यान्ति मृगाश्चैव दिशो दश ॥१८॥
तथा ते च गणाः सर्वे गताश्चैव सहस्रशः । परावृत्य तथा सोऽपि सुद्वारि समुपस्थितः ॥१९॥
कल्पान्तकरणे कालो दृश्यते च भयङ्करः । यथा तथैव दृष्टः स सर्वेषां प्रलयङ्करः ॥२०॥
एतस्मिन् समये चैव सरमेशसुरेश्वराः । प्रेरिता नारदेनेह देवाः सर्वे समागमन् ॥२१॥
समब्रुवंस्तदा सर्वे शिवस्य हितकाम्यया । पुरः स्थित्वा शिवं नत्वा ह्याज्ञां देहि प्रभो इति ॥२२॥
त्वं परब्रह्म सर्वेशः सर्वे च तव सेवकाः । सृष्टेः कर्ता सदा भर्ता संहर्ता परमेश्वरः ॥२३॥
रजःसत्त्वतमोरूपो लीलया निर्गुणः स्वतः । का लीला रचिता चाऽद्य तामिदानीं वद प्रभो ! ॥२४॥

करूँगा ॥ ८ ॥ यह युद्ध कैसा होगा, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती, जिसे रोकने के लिए इस त्रिलोकी में कोई भी समर्थ न होगा, अस्तु जो होनहार है वह होकर रहेगी ॥ ९ ॥

ब्रह्माजी बोले—जब गणेश ने शिव के गणों को इस प्रकार फटकारा तो वे शिव के गण भी दण्डा एवं अन्य आयुध लेकर दाँत कटकटाते हुए हुँकार करते और देखो, ऐसा बारम्बार ललकारते हुए युद्ध करने के लिए डट गये ॥ १०–११ ॥ सर्वप्रथम नन्दी आकर उस बालक का एक पैर अनन्तर भृङ्गी आकर उसका दूसरा पैर पकड़कर युद्ध में घसीटने लगे, तब उसने अपने हाथों से प्रहार कर अपने पैर छुड़ा लिये ॥१२-१३॥ देवीपुत्र गणेश्वर ने एक बड़ा परिघा लेकर द्वार पर स्थित हो सभी गणों को मारना प्रारम्भ किया ॥ १४ ॥ जिससे किन्हीं के हाथ टूट गये, किसी की पीठ फट गयी, किसी का शिर तथा किसी का मस्तक धड़ से अलग हो गया ॥ १५ ॥ किसी की जानु तथा किसी के कन्धे टूटकर अलग हो गये। जो लोग सामने आये उस बालक के प्रहार से उनके हृदय विदीर्ण हो गये ॥ १६ ॥ कोई पृथ्वी में गिरा, तो कोई इधर-उधर दिशाओं में जा गिरा। किसी के पैर टूट गये तो कोई शिव के समीप जा गिरा ॥ १७ ॥ उन गणों में कोई भी ऐसा गण नहीं था, जो संग्राम में गणेश के सामने दिखाई पड़े। जैसे, सिंह को देखकर क्षुद्र मृग भाग जाते हैं, उसी प्रकार गणेश को देखकर सभी शिवजी के गण भाग गये ॥ १८ ॥

जब इस प्रकार शिवजी के सहस्रों गण भाग गये तो वह गणेश फिर लौटकर द्वार पर स्थित हो गये ॥ १९ ॥ जिस प्रकार कल्पान्त करने वाला काल भयङ्कर दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार उन गणों ने गणेश को काल के समान देखा ॥ २० ॥ इसी समय नारद की प्रेरणा से विष्णु, इन्द्र आदि देवता युद्ध के लिए पहुँच गये ॥ २१ ॥ शिव की हितकामना से उन लोगों ने शिव को नमस्कार कर उनके आगे खड़े होकर कहा—हे प्रभो ! हमें आज्ञा दीजिए ॥ २२ ॥ आप परब्रह्म सर्वेश हैं और हम सब आपके सेवक हैं, आप इस सृष्टि के कर्त्ता, हर्त्ता तथा संहर्त्ता परमेश्वर हैं ॥ २३ ॥ आप निर्गुण होते हुए भी अपनी लीला से सत्त्व, रज तथा तम रूप हैं। हे प्रभो ! आपने इस समय यह कौन-सी लीला प्रारम्भ की है, हमें बताइए ॥ २४ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां मुनिश्रेष्ठ महेश्वरः । गणान् भिन्नाँस्तदा दृष्ट्वा तेभ्यः सर्वं न्यवेदयत् ॥२५॥
अथ सर्वेश्वरस्तत्र शङ्करो मुनिसत्तम ! । विहस्य गिरिजानाथो ब्रह्माणं मामुवाच ह ॥२६॥

शिव उवाच

ब्रह्मञ्छृणु मम द्वारि बाल एकः समास्थितः । महाबलो यष्टिपाणिर्गेहावेशनिवारकः ॥२७॥
महाप्रहारकर्ताऽसौ मत्पार्षदविघातकः । पराजयः कृतस्तेन मद्गणानां बलादिह ॥२८॥
ब्रह्मन् ! त्वयैव गन्तव्यं प्रसाद्योऽयं महाबलः । यथा ब्रह्मञ्जयः स्याद् वै तथा कार्यं त्वया विधे ॥२९॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य प्रभोर्वाक्यमज्ञात्वाऽज्ञानमोहितः । तदीयनिकटं तात ! सर्वैर्ऋषिवरैरयाम् ॥३०॥
समायान्तं च मां दृष्ट्वा स गणेशो महाबली । क्रोधं कृत्वा समभ्येत्य मम श्मश्रूण्यवाकिरत् ॥३१॥
क्षम्यतां क्षम्यतां देव ! न युद्धार्थं समागतः । ब्राह्मणोऽहमनुग्राह्यः शान्तिकर्ताऽनुपद्रवः ॥३२॥
इत्येवं ब्रुवति ब्रह्मंस्तावत् परिघमाददे । स गणेशो महावीरो बालोऽबालपराक्रमः ॥३३॥
गृहीतपरिघं दृष्ट्वा तं गणेशं महाबलम् । पलायनपरो यातस्त्वहं द्रुततरं तदा ॥३४॥
यात यात ब्रुवन्तस्ते परिघेन हतास्तदा । स्वयं च पतिताः केचित् केचित्तेन निपातिताः ॥३५॥
केचिच्च शिवसामीप्यं गत्वा तत्क्षणमात्रतः । शिवं विज्ञापयाञ्चक्रुस्तद्वृत्तान्तमशेषतः ॥३६॥
तथाविधांश्च तान् दृष्ट्वा तद्वृत्तान्तं निशम्य सः । अपारमादधे कोपं हरो लीलाविशारदः ॥३७॥
इन्द्रादिकान् देवगणान् षण्मुखप्रवरान् गणान् । भूत-प्रेत-पिशाचांश्च सर्वानादेशयत्तदा ॥३८॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! उन देवताओं की बात सुनकर महेश्वर ने नष्ट-भ्रष्ट हुए गणेश्वरों की ओर संकेत करते हुए उनसे सारी बात कही ॥ २५ ॥ हे मुनिराज नारद ! तब सर्वेश्वर गिरिजापति शङ्कर हँसकर मुझ ब्रह्मा से बोले—॥ २६ ॥

शिवजी बोले—हे ब्रह्मन् ! मेरी बात सुनो, मेरे घर के द्वार पर एक महाबली बालक हाथ में लाठी लिये हुए खड़ा है, वह सबको घर में जाने से रोकता है ॥ २७ ॥ वह युद्ध करने में बड़ा कुशल है, उसने मेरे सारे पार्षदों को युद्धभूमि में मार गिराया है, और मेरे सारे गणों को पराजित कर दिया है ॥ २८ ॥ अतः हे ब्रह्मन् ! तुम्हीं वहाँ जाकर उस बालक को प्रसन्न करो और जैसी नीति हो वैसा उसके साथ व्यवहार करो ॥ २९ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! इस प्रकार से शिवजी के वचन सुनकर विशेष बात को न जानकर अज्ञान से मोहित हुआ मैं सभी ऋषियों को साथ लेकर उस बालक के निकट गया ॥ ३० ॥ वह महाबली गणेश मुझे आते हुए देखकर क्रोध से मेरे सन्निकट आकर मेरी दाढ़ी उखाड़ने लगा ॥ ३१ ॥ मैंने कहा—हे देव ! क्षमा करो, क्षमा करो, मैं यहाँ युद्ध के लिए नहीं आया हूँ, मैं तो ब्राह्मण हूँ, कोई उपद्रव करने के लिए नहीं आया हूँ, किन्तु शान्ति चाहता हूँ, अतः मेरे ऊपर अनुग्रह करो ॥ ३२ ॥ हे नारद ! अभी मैं ऐसा कह ही रहा था कि युवा के समान पराक्रमी महाबली उस बालक ने बड़ी शीघ्रता से हाथ में परिघ ले लिया ॥ ३३ ॥ जब मैंने उस महाबली गणेश को परिघ धारण किये हुए देखा तो बड़ी शीघ्रता से वहाँ से भाग खड़ा हुआ ॥ ३४ ॥ उस समय मेरे साथ जो लोग गये थे वे मुझे कहने लगे कि, शीघ्र यहाँ से भागो भागो, इतने में ही उसने मेरे उन साथियों को परिघ से मारना प्रारम्भ किया, जिससे कुछ तो स्वयं गिर गये और कुछ को उसने मार गिराया ॥ ३५ ॥ कोई उसी समय भागकर शिवजी के समीप जाकर वहाँ का सारा वृत्तान्त सुनाने लगा ॥ ३६ ॥

इस प्रकार कुछ को अधमरा देखकर और कुछ के द्वारा यह अप्रिय घटना सुनकर लीलाविशारद शिवजी को अपार क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ ३७ ॥ तब उन्होंने इन्द्रादि देवगणों एवं षण्मुख आदि प्रमुख गणों

ते सर्वे च यथायोग्यं गतास्ते सर्वतो दिशम् । तं गणं हन्तुकामा हि शिवाज्ञाता उदायुधाः ॥३९॥
यस्य यस्यायुधं यच्च तत्तत्सर्वं विशेषतः । तद्गणेशोपरि बलात् समागत्य विमोचितम् ॥४०॥
हाहाकारो महानासीत् त्रैलोक्ये सचराचरे । त्रिलोकस्था जनाः सर्वे संशयं परमं गताः ॥४१॥
न यातं ब्रह्मणोऽप्यायुर्ब्रह्माण्डं क्षयमेति हि । अकाले च तथा नूनं शिवेच्छावशतः स्वयम् ॥४२॥
ते सर्वे चागतास्तत्र षण्मुखाद्याश्च ये पुनः । देवा व्यर्थायुधा जाता आश्चर्यं परमं गताः ॥४३॥
एतस्मिन्नन्तरे देवी जगदम्बा विबोधना । ज्ञात्वा तच्चरितं सर्वमपारं क्रोधमादधे ॥४४॥
शक्तिद्वयं तदा तत्र तया देव्या मुनीश्वर ! । निर्मितं स्वगणस्यैव सर्वसाहाय्यहेतवे ॥४५॥
एका प्रचण्डरूपं च धृत्वाऽतिष्ठन् महामुने ! । श्यामपर्वतसङ्काशं विस्तीर्य मुखगह्वरम् ॥४६॥
एका विद्युत्स्वरूपा च बहुहस्तसमन्विता । भयङ्करा महादेवी दुष्टदण्डविधायिनी ॥४७॥
आयुधानि च सर्वाणि मोचितानि सुरैर्गणैः । गृहीत्वा स्वमुखे तानि ताभ्यां शीघ्रं च चिक्षिपे ॥४८॥
देवायुधं न दृश्येत परिघः परितः पुनः । एवं ताभ्यां कृतं तत्र चरितं परमाद्भुतम् ॥४९॥
एको बालोऽखिलं सैन्यं लोडयामास दुस्तरम् । यथा गिरिवरेणैव लोडितः सागरः पुरा ॥५०॥
एकेन निहताः सर्वे शक्राद्या निर्जरास्तथा । शङ्करस्य गणाश्चैव व्याकुलाः अभवंस्तदा ॥५१॥
अथ सर्वे मिलित्वा ते निःश्वस्य च मुहुर्मुहुः । परस्परं समूचुस्ते तत्प्रहारसमाकुलाः ॥५२॥

देवगणा ऊचुः

किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यं न ज्ञायन्ते दिशो दश । परिघं भ्रामयत्येष सव्याऽपसव्यमेव च ॥५३॥

को तथा सभी भूत-प्रेत एवं पिशाचों को आज्ञा दी ॥ ३८ ॥ वे लोग यथायोग्य उस बालक को चारों दिशाओं से घेरकर उसे मारने के लिए अपना शस्त्र उठाकर दौड़े ॥ ३९ ॥ और जिस-जिसका जैसा विशेष अस्त्र था उन-उन शस्त्रों से अपने बलपूर्वक गणेश पर प्रहार करने लगे ॥ ४० ॥ उस समय सारे त्रिलोकी में हाहाकार मच गया और सभी मनुष्य संशय में पड़ गये ॥ ४१ ॥ वे आश्चर्यचकित हो कहने लगे कि, अभी ब्रह्मा की आयु समाप्त नहीं हुई फिर भी इस त्रिलोकी का सर्वनाश कैसे हो गया, निश्चय ही यँह शिव की इच्छा है, जो अकाल में ही त्रिलोकी का सर्वनाश होना चाहता है ॥ ४२ ॥ उस समय कार्त्तिकेय आदि जितने गण युद्ध के लिए शिवजी के द्वारा भेजे गये थे, उन सभी के शस्त्र व्यर्थ हो गये, जिससे वे बड़े विस्मित हो उठे ॥ ४३ ॥

इसी समय जब जगदम्बा भगवती को भी सारा समाचार मालूम हुआ, तब वे प्रबुद्ध होकर अपार क्रोध में भर गयीं ॥ ४४ ॥ हे मुनीश्वर ! उस समय उन्होंनें अपने गण की सहायता के लिए दो शक्तियों का निर्माण किया ॥ ४५ ॥ हे महामुने ! जिसमें एक प्रचण्डरूप धारण कर काले पहाड़ के समान अपने मुखरूपी विशाल गुफा को फैलाकर युद्धभूमि में खड़ी हो गयी ॥ ४६ ॥ दूसरी बिजली के समान रूप धारण कर बहुत हाथवाली थी, दुष्टों को दण्ड देनेवाली वह देवी महाभयङ्कर प्रतीत हो रही थी ॥ ४७ ॥ उन दोनों देवियों ने देवों के समस्त आयुध छीनकर बड़ी शीघ्रता से अपने मुख में डाल लिया ॥ ४८ ॥ उस समय किसी देवता के पास एक भी शस्त्र न बचा, केवल चारों ओर गणेश का परिघ ही घूमता दिखाई पड़ा । इस प्रकार उन देवियों ने युद्धस्थल में अद्भुत चरित दिखाया ॥ ४९ ॥ जिस प्रकार पूर्व समय में मन्दराचल ने क्षीरसागर का मन्थन किया था, उसी प्रकार अकेले उस बालक ने भी समस्त देवसेनाओं में खलबली मचा दी ॥ ५० ॥ अकेले गणेश से मार खाये हुए इन्द्रादि देवगण तथा शिवगणं अत्यन्त व्याकुल हो गये ॥ ५१ ॥ पुनः गणेश के प्रहार से व्याकुल हुए सभी लोग एक जगह एकत्रित होकर बारम्बार गरम-गरम स्वास छोड़ते हुए आपस में कहने लगे ॥ ५२ ॥

देवगण बोले—अब क्या करना चाहिए और कहाँ जाना चाहिए, जब कि दिशाओं का ज्ञान ही नहीं हो रहा है, यह बालक तो दायें-बायें जहाँ देखो वहीं परिघा घुमा रहा है ॥ ५३ ॥

ब्रह्मोवाच

एतत्कालेऽप्सरःश्रेष्ठाः पुष्पचन्दनपाणयः । ऋषयश्च त्वदाद्या हि येऽतियुद्धेऽतिलालसाः ॥५४॥
ते सर्वे च समाजग्मुर्युद्धसंदर्शनाय वै । पूरितो व्योमसन्मार्गस्तैस्तदा मुनिसत्तम ! ॥५५॥
तास्ते दृष्ट्वा रणं तं वै महाविस्मयमागताः । ईदृशं परमं युद्धं न दृष्टं चैकदाऽपि हि ॥५६॥
पृथिवी कम्पिता तत्र समुद्रसहिता तदा । पर्वताः पतिताश्चैव चक्रुः सङ्ग्रामसम्भवम् ॥५७॥
द्यौर्ग्रहर्क्षगणैर्घूर्णा सर्वे व्याकुलतां गताः । देवाः पलायिताः सर्वे गणाश्च सकलास्तदा ॥५८॥
केवलं षण्मुखस्तत्र नापलायत विक्रमी । महावीरस्तदा सर्वानावार्य पुरतः स्थितः ॥५९॥
शक्तिद्वयेन तद्युद्धे सर्वे च निष्फलीकृताः । सर्वास्त्राणि निकृत्तानि संक्षिप्तान्यमरैर्गणैः ॥६०॥
येऽवस्थिताश्च ते सर्वे शिवस्यान्तिकमागताः । देवाः पलायिताः सर्वे गणाश्च सकलास्तदा ॥६१॥
ते सर्वे मिलिताश्चैव मुहुर्नत्वा शिवं तदा । अब्रुवन् वचनं क्षिप्रं कोऽयं गणवरः प्रभो ! ॥६२॥
पुरा चैव श्रुतं युद्धमिदानीं बहुधा पुनः । दृश्यते न श्रुतं दृष्टमीदृशं तु कदाचन ॥६३॥
किञ्चिद् विचार्यतां देव ! त्वन्यथा न जयो भवेत् । त्वमेव रक्षकः स्वामिन् ! ब्रह्माण्डस्य न संशयः ॥६४॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं तद्वचः श्रुत्वा रुद्रः परमकोपनः । कोपं कृत्वा च तत्रैव जगाम स्वगणैः सह ॥६५॥
देवसैन्यं च तत्सर्वं विष्णुना चक्रिणा सह । समुत्सवं महत्कृत्वा शिवस्यानुजगाम ह ॥६६॥
एतस्मिन्नन्तरे भक्त्या नमस्कृत्य महेश्वरम् । अब्रवीन्नारद ! त्वं वै देवदेवं कृताञ्जलिः ॥६७॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! उसी समय पुष्प, चन्दन हाथ में लिये हुए अप्सराएँ तथा युद्ध देखने की लालसा वाले तुम नारदादि ऋषि, वे सभी युद्ध देखने के लिए वहाँ आये । उस समय युद्ध देखने वालों से सारा आकाशमण्डल ठसाठस भर गया ॥ ५४-५५ ॥ वे अप्सराएँ तथा दर्शक ऋषिगण उस युद्ध को देखते ही आश्चर्यचकित हो गये और कहने लगे—ऐसा युद्ध तो कभी नहीं देखा गया ॥ ५६ ॥ उस समय समुद्र सहित सारी पृथ्वी काँपने लगी, पृथ्वी पर चूर्ण-चूर्ण होकर गिरनेवाले संग्राम की सूचना देने लगे ॥५७॥ ग्रह एवं नक्षत्र-मण्डल सहित सारा द्युलोक घूमते हुए व्याकुल हो उठे । सभी देवता तथा गण युद्धभूमि से भाग खड़े हुए ॥ ५८ ॥ एक केवल महाबलवान् कार्त्तिकेय ही युद्धभूमि में डटे रहे । वही महावीर सबको रोककर गणेश के सामने डटे रहे ॥ ५९ ॥ उन दोनों शक्तियों ने युद्धस्थल में सभी देवताओं के चलाये गये शस्त्रों को काटकर सबको व्यर्थ कर दिया ॥ ६० ॥ जो शेष बचे वे सब भागकर शिवजी के समीप गये, सभी देवता तथा शिवगण तो भाग ही चुके थे ॥६१॥ वे सब एकत्रित होकर शिव को बारम्बार नमस्कार कर बड़ी शीघ्रता से कहने लगे—हे प्रभो ! यह कौन-सा श्रेष्ठ गण है ॥ ६२ ॥ हम लोगों ने पहले भी बहुत युद्ध का वर्णन सुना था, इस समय भी बहुत-सा युद्ध देखा तथा सुना है, पर ऐसा युद्ध तो न कभी देखा और न सुना ही था ॥ ६३ ॥ हे देव ! अब विचार कर कोई उपाय कीजिए अन्यथा जय की आशा नहीं है । हे स्वामिन् ! आप ही इस ब्रह्माण्ड के रक्षक हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ ६४ ॥

ब्रह्माजी बोले—यह वचन सुनकर रुद्र तो स्वयं क्रोधी थे ही और क्रोध से भर गये और अपने गणों के सहित वहाँ गये ॥ ६५ ॥ तब समस्त देवताओं की सेना भी चक्र धारण किये हुए विष्णु के साथ शिव के पीछे-पीछे गयी ॥ ६६ ॥ इसी समय हे नारद जी ! तुम देवदेव महेश्वर को हाथ जोड़ नमस्कार कर कहने लगे ॥ ६७ ॥

नारद उवाच

देवदेव महादेव शृणु मद्वचनं विभो ! । त्वमेव सर्वगः स्वामी नानालीलाविशारदः ॥६८॥
त्वया कृत्वा महालीलां गणगर्वोऽपहारितः । अस्मै दत्त्वा बलं भूरि देवगर्वश्च शङ्कर ! ॥६९॥
दर्शितं भुवने नाथ स्वमेव बलमद्भुतम् । स्वतन्त्रेण त्वया शम्भो सर्वगर्वप्रहारिणा ॥७०॥
इदानीं न कुरुष्वेश तां लीलां भक्तवत्सल ! । स्वगणानमरांश्चापि सुसम्मान्याभिवर्द्धय ॥७१॥
इमं न खेलयेदानीं जहि ब्रह्मपदप्रद । इत्युक्त्वा नारद ! त्वं वै ह्यन्तर्द्धानं गतस्तदा ॥७२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे गणेशयुद्धवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

(शिव द्वारा त्रिशूल से गणेश का शिरच्छेदन)

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा महेशानो भक्तानुग्रहकारकः । त्वद्वाचा युद्धकामोऽभूत्तेन बालेन नारद ! ॥ १ ॥
विष्णुमाहूय सम्मन्त्र्य बलेन महता युतः । सामरः सम्मुखस्तस्याप्यभूद्देवस्त्रिलोचनः ॥ २ ॥
देवाश्च युयुधुस्तेन स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् । महाबला महोत्साहाः शिवसद्दृष्टिलोकिताः ॥ ३ ॥
युयुधेऽथ हरिस्तेन महाबलपराक्रमः । महादेव्यायुधो वीरः प्रवणः शिवरूपकः ॥ ४ ॥
यष्ट्या गणाधिपः सोऽथ जघानामरपुङ्गवान् । हरिं च सहसा वीरः शक्तिदत्तमहाबलः ॥ ५ ॥
सर्वेऽमरगणास्तत्र विकुण्ठितबला मुने ! । अभूवन् विष्णुना तेन हता यष्ट्या पराङ्मुखाः ॥ ६ ॥

नारद बोले—हे देवदेव ! हे महादेव ! हे विभो, मेरे वचन सुनो, आप सर्वत्र व्याप्त हैं, सबके स्वामी हैं तथा नाना लीला में विशारद हैं ॥ ६८ ॥ आपने इस प्रकार की महालीला कर गणों के गर्व को दूर कर दिया, हे शङ्कर ! आपने इन गणेश्वर को बल देकर देवताओं के गर्व को भी नष्ट कर दिये ॥ ६९ ॥ हे नाथ, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र आपने सभी के गर्वों को नष्ट कर कर इस भुवन में अपना अद्भुत बल दिखाया ॥ ७० ॥ किन्तु हे भक्तवत्सल, अब आप इस लीला को बन्द कीजिए। आप इन अपने गणों तथा देवताओं की प्रतिष्ठा रखते हुए इनकी रक्षा कीजिए ॥ ७१ ॥ हे स्वामिन् ! अब इन गणेश से खिलवाड़ बन्द कीजिए और इन गणेश का वध कीजिए। हे नारद, ऐसा कहकर तुम वहाँ से अन्तर्धान हो गये ॥ ७२ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के चतुर्थ-कुमारखण्ड में गणेशयुद्धवर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥

*

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! जब भक्तों के ऊपर कृपा करने वाले महेश्वर ने तुम्हारी बातें सुनकर उस बालक के साथ युद्ध करने की इच्छा की ॥ १ ॥ तब उन्होंने विष्णु को बुलाकर उनसे मन्त्रणा कर एक बहुत बड़ी सेना के साथ देवताओं के सहित गणेश के सम्मुख प्रस्थान किया ॥ २ ॥ उस समय सर्वप्रथम शिव की दृष्टि के संकेत से महा बलवान् देवता उत्साहपूर्ण हो शिव के चरण-कमलों का ध्यान करते हुए युद्ध में प्रवृत्त हुए ॥ ३ ॥ महा बलवान् एवं अत्यन्त पराक्रमशील भगवान् विष्णु उस बालक से युद्ध करने लगे। तब महादेवी के द्वारा दिये गये लाठी से अत्यन्त वीर शिवस्वरूप वह गणेश बालक भी देवताओं से एवं विष्णु से अकेला ही युद्ध करता हुआ उन पर प्रहार करने लगा ॥४-५॥ हे मुने ! उसके लाठी के प्रहार से विष्णु सहित समस्त देवगणों का बल कुण्ठित हो गया और वे युद्ध से पराङ्मुख हो गये ॥ ६ ॥

शिवोऽपि सह सैन्येन युद्धं कृत्वा चिरं मुने ! । विकरालं च तं दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः ॥ ७ ॥
छलेनैव च हन्तव्यो नाऽन्यथा हन्यते पुनः । इति बुद्धिं समास्थाय सैन्यमध्ये व्यवस्थितः ॥ ८ ॥
शिवे दृष्टे तदा देवे निर्गुणे गुणरूपिणि । विष्णौ चैवाथ सङ्ग्रामे आयाते सर्वदेवताः ॥ ९ ॥
गणाश्चैव महेशस्य महाहर्षं तदा ययुः । सर्वे परस्परं प्रीत्या मिलित्वा चक्रुरुत्सवम् ॥१०॥
अथ शक्तिसुतो वीरो वीरगत्या स्वयष्टितः । प्रथमं पूजयामास विष्णुं सर्वसुखावहम् ॥११॥
अहं च मोहयिष्यामि हन्यतां च त्वया विभो । छलं विना न वध्योऽयं तामसोऽयं दुरासदः ॥१२॥
इति कृत्वा मतिं तत्र सुसम्मन्त्र्य च शम्भुना । आज्ञां प्राप्याऽभवच्छैवीं विष्णुर्मोहपरायणः ॥१३॥
शक्तिद्वयं तथा लीनं हरिं दृष्ट्वा तथाविधम् । दत्त्वा शक्तिवलं तस्मै गणेशायाऽभवन्मुने ! ॥१४॥
शक्तिद्वयेऽथ संलीने यत्र विष्णुः स्थितः स्वयम् । परिघं क्षिप्तवांस्तत्र गणेशो बलवत्तरः ॥१५॥
कृत्वा यत्नं किमप्यत्र वञ्चयामास तद्गतिम् । शिवं स्मृत्वा महेशानं स्वप्रभुं भक्तवत्सलम् ॥१६॥
एकतस्तन्मुखं दृष्ट्वा शङ्करोऽप्याजगाम ह । स्वत्रिशूलं समादाय सुक्रुद्धो युद्धकाम्यया ॥१७॥
स ददर्शागतं शम्भुं शूलहस्तं महेश्वरम् । हन्तुकामं निजं वीरः शिवापुत्रो महाबलः ॥१८॥
शक्त्या जघान तं हस्ते स्मृत्वा मातृपदाम्बुजम् । स गणेशो महावीरः शिवाशक्तिप्रवर्द्धितः ॥१९॥
त्रिशूलं पतितं हस्ताच्छिवस्य परमात्मनः । दृष्ट्वा सदूतिकस्तं वै पिनाकं धनुराददे ॥२०॥
तमप्यपातयद् भूमौ परिघेण गणेश्वरः । हताः पञ्च तथा हस्ताः पञ्चभिः शूलमाददे ॥२१॥
अहो ! दुःखतरं नूनं सञ्जातमधुना मम । भवेत् पुनर्गणानां किं भवाचारो जगाविति ॥२२॥

हे मुने ! शिवजी भी अपनी सेना के सहित बहुत काल तक युद्ध कर उस बालक को महाभयङ्कर देख विस्मित हो गये ॥ ७ ॥ यह बालक छल से ही मारा जा सकता है अन्यथा नहीं । यदि छल से नहीं मारा गया तो यह हम सभी का वध कर देगा। ऐसा विचार करते हुए शिवजी सेनाओं के मध्य में स्थित हो गये ॥ ८ ॥ उस समय सभी देवता तथा शिव के सभी गण निर्गुण एवं सगुण रूप वाले शङ्कर को तथा विष्णु को संग्रामभूमि में उपस्थित देख परम प्रसन्न हो गये ॥ ९–१० ॥ तब महाशक्ति के पुत्र गणेश ने बड़ी बहादुरी के साथ सर्वप्रथम अपनी लाठी से विष्णु की पूजा (प्रहार) की ॥ ११ ॥ लाठी के चोट खाकर विष्णु ने शिव से कहा—यह बालक बड़ा तामसी है, और युद्ध में दुराधर्ष है, बिना छल के नहीं मारा जा सकता । अतः हे विभो ! मैं इसे मोहित करता हूँ और आप इसका वध कीजिए ॥ १२ ॥ शिव की इच्छा से विष्णु इस प्रकार की बुद्धि कर शिव की आज्ञा ले विष्णु उसे मोहित करने लगे ॥१३॥ विष्णु को मोहपरायण देख वे दोनों शक्तियाँ गणेश को अपनी-अपनी शक्ति समर्पित कर वहीं अन्तर्धान हो गयीं ॥१४॥ इस प्रकार उन दोनों शक्तियों के लीन हो जाने पर महा बलवान् गणेश ने, जहाँ विष्णु स्थित थे वहीं अपने परिघ से प्रहार किया ॥ १५ ॥ विष्णु ने बड़े यत्न के साथ भक्तवत्सल स्वप्रभु महेश्वर का स्मरण करते हुए उस परिघ के प्रहार से अपने को बचाया ॥ १६ ॥ फिर अकेले ही उस महावीर को युद्ध के लिए अपने सम्मुख आता देखकर शङ्कर जी ने बड़े क्रोध से अपना त्रिशूल लेकर युद्ध में उसका सामना किया ॥ १७ ॥ तब शिवापुत्र महा बलवान् गणेश ने त्रिशूल हाथ में लिये महेश्वर को अपने को मारने के लिए उद्यत देखा ॥ १८ ॥

पुनः अपनी माता के चरण-कमलों का ध्यान कर उस महावीर गणेश्वर ने शिवा की शक्ति से प्रवर्द्धित होकर अपनी शक्ति से शङ्कर जी पर प्रहार किया ॥ १९ ॥ उस शक्ति के लगते ही उन परमात्मा शिव के हाथ से त्रिशूल गिर पड़ा । तदनन्तर आश्चर्य से गिरे हुए उस त्रिशूल को देख उन्होंने अपना पिनाक नामक धनुष हाथ में लिया ॥ २० ॥ गणेश्वर ने अपने परिघ के प्रहार से उस धनुष को तथा उनके पाँच हाथों को काट दिया । तब शङ्कर ने शेष अपने पाँच हाथों से त्रिशूल ग्रहण किया ॥ २१ ॥ और लौकिक गति प्रदर्शित करते हुए वे अपने मन में कहने लगे, अहो ! बड़े खेद की बात है कि युद्ध में मुझे

एतस्मिन्नन्तरे वीरः परिघेण गणेश्वरः । जघान सगणान् देवान् शक्तिदत्तबलान्वितः ॥२३॥
गता दशदिशो देवाः सगणाः परिघार्दिताः । न तस्थुः समरे केऽपि तेनाऽद्भुतप्रहारिणा ॥२४॥
विष्णुस्तं च गणं दृष्ट्वा धन्योऽयमिति चाऽब्रवीत् । महाबलो महावीरो महाशूरो रणप्रियः ॥२५॥
बहवो देवताश्चैव मया दृष्टास्तथा पुनः । दानवा बहवो दैत्या यक्ष-गन्धर्व-राक्षसाः ॥२६॥
नैतेन गणनाथेन समतां यान्ति केऽपि च । त्रैलोक्येऽप्यखिले तेजोरूपशौर्यगुणादिभिः ॥२७॥
एवं संब्रुवतेऽमुष्मै परिघं भ्रामयन् स च । चिक्षेप विष्णवे तत्र शक्तिपुत्रो गणेश्वरः ॥२८॥
चक्रं गृहीत्वा हरिणा स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् । तेन चक्रेण परिघो द्रुतं खण्डीकृतस्तदा ॥२९॥
खण्डं तु परिघस्यापि हरये प्राक्षिपद् गणः । गृहीत्वा गरुडेनापि पक्षिणा विफलीकृतः ॥३०॥
एवं विचरितं कालं महावीरावुभावपि । विष्णुश्चापि गणश्चैव युयुधाते परस्परम् ॥३१॥
पुनर्वीरवरः शक्तिसुतः स्मृतशिवो बली । गृहीत्वा यष्टिमतुलां तया विष्णुं जघान ह ॥३२॥
अविषह्य प्रहारं तं स भूमौ निपपात ह । द्रुतमुत्थाय युयुधे शिवापुत्रेण तेन वै ॥३३॥
एतदन्तरमासाद्य शूलपाणिस्तथोत्तरे । आगत्य च त्रिशूलेन तच्छिरो निरकृन्तत ॥३४॥
छिन्ने शिरसि तस्यैव गणनाथस्य नारद ! । गणसैन्यं देवसैन्यमभवच्च सुनिश्चलम् ॥३५॥
नारदेन त्वयाऽऽगत्य देव्यै सर्वं निवेदितम् । मानिनि ! श्रूयतां मानस्त्याज्यो नैव त्वयाऽधुना॥३६॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्हितस्तत्र नारद ! त्वं कलिप्रियः । अविकारी सदा शम्भोर्मनोगतिकरो मुनिः ॥३७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे गणेशयुद्ध-गणेश-शिरश्छेदनवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इतना क्लेश प्राप्त हो रहा है फिर गणों की क्या दशा हुई होगी ॥ २२ ॥ कितने आश्चर्य की बात है कि इस अद्भुत प्रहार करने वाले बालक के परिघ-प्रहार से सभी देवगण दशों दिशाओं में भाग गये, कोई भी योद्धा इसके सामने टिक न सका ॥ २३–२४ ॥ विष्णु भी उस गण के पराक्रम को देख धन्य-धन्य कहने लगे, निश्चय ही यह महा बलवान्, महावीर, महाशूर तथा रणप्रिय योद्धा है ॥ २५ ॥ ऐसे तो मैंने त्रैलोक्य में बहुत से देवता, दानव, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व एवं राक्षसों को युद्ध करते देखा है किन्तु रूप, तेज, गुण एवं शौर्यादि में इसके समान कोई भी दिखाई न पड़ा ॥ २६–२७ ॥ अभी विष्णु ऐसा कह ही रहे थे कि शक्ति-पुत्र गणेश ने अपना परिघ घुमाकर उन पर प्रहार किया ॥ २८ ॥ तब विष्णु ने भी चक्र लेकर शिव के चरण-कमल का ध्यान करते हुए उससे परिघ के टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ २९ ॥ गणेश्वर ने उस परिघ के टुकड़े को ही लेकर विष्णु पर प्रहार किया, तब गरुड़पक्षी ने उसे पकड़कर विफल बना दिया ॥ ३० ॥

इस प्रकार विष्णु एवं गणेश्वर को युद्ध करते-करते बहुत समय बीत गया ॥ ३१ ॥ फिर महाबली एवं वीर शक्ति-पुत्र ने शिवा का स्मरण कर उस अनुपम अपनी लाठी से विष्णु पर प्रहार किया ॥ ३२ ॥ विष्णु उस प्रहार को सहन करने में असमर्थ हो पृथ्वी पर गिर पड़े । फिर शीघ्रता से उठकर गणेश से संग्राम करने लगे ॥ ३३ ॥ मारने के लिए यही उचित अवसर जानकर शिव ने अपने हाथ में त्रिशूल लेकर पीछे से आकर उस त्रिशूल से गणेश का शिर काट लिया ॥३४॥ हे नारद ! इस प्रकार शिर के काट लिये जाने पर गणों की सेना तथा देवताओं की सेना निश्चिन्त हो गयी ॥ ३५ ॥ तदनन्तर नारद ने जाकर सारा वृत्तान्त देवी से निवेदन किया और कहा—हे मानिनि ! सुनो, तुम इस समय कदापि अपना मान मत छोड़ना, मान पर डटे रहना ॥३६॥ देवी से ऐसा कहकर हे नारद ! कलह चाहने वाले तुम अन्तर्धान हो गये। क्योंकि तुम्हारे मन में कोई विकार नहीं रहता और तुम शिव की इच्छा के अनुसार चलने वाले हो ॥ ३७ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के चतुर्थ कुमारखण्ड में गणेश-युद्ध एवं गणेशशिरश्छेदन वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥

*

सप्तदशोऽध्यायः

(पार्वती का भयंकर क्रुद्ध होना, गणेश का पुनर्जीवित होना और युद्ध विराम)

नारद उवाच

ब्रह्मन् ! वद महाप्राज्ञ तद्वृत्तान्तेऽखिले श्रुते । किमकार्षीन् महादेवी श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

श्रूयतां मुनिशार्दूल कथयाम्यद्य तद्ध्रुवम् । चरितं जगदम्बाया यज्जातं तदनन्तरम् ॥ २ ॥
मृदङ्गान् पटहांश्चैव गणाश्चावादयंस्तथा । महोत्सवं तदा चक्रुर्हते तस्मिन् गणाधिपे ॥ ३ ॥
शिवोऽपि तच्छिरश्छित्वा यावद् दुःखमुपाददे । तावच्च गिरिजा देवी चुक्रोधाति मुनीश्वर ! ॥ ४ ॥
किं करोमि क्व गच्छामि हा हा दुःखमुपागतम् । कथं दुःखं विनश्येतास्याऽतिदुःखं ममाधुना ॥ ५ ॥
मत्सुतो नाशितश्चाद्य देवैः सर्वैर्गणैस्तथा । सर्वांस्तान्नाशयिष्यामि प्रलयं वा करोम्यहम् ॥ ६ ॥
इत्येवं दुःखिता सा च शक्तीः शतसहस्रशः । निर्ममे तत्क्षणं क्रुद्धा सर्वलोकमहेश्वरी ॥ ७ ॥
निर्मितास्ता नमस्कृत्य जगदम्बां शिवां तदा । जाज्वल्यमाना ह्यवदन्मातरादिश्यतामिति ॥ ८ ॥
तच्छ्रुत्वा शम्भुशक्तिः सा प्रकृतिः क्रोधतत्परा । प्रत्युवाच तु ताः सर्वा महामाया मुनीश्वर ! ॥ ९ ॥

देव्युवाच

हे शक्तयोऽधुना देव्यो युष्माभिर्मन्निदेशतः । प्रलयश्चात्र कर्त्तव्यो नाऽत्र कार्या विचारणा ॥१०॥
देवांश्चैव ऋषींश्चैव यक्षराक्षसकांस्तथा । अस्मदीयान् परांश्चैव सख्यो भक्षत वै हठात् ॥११॥

ब्रह्मोवाच

तदाज्ञप्ताश्च ताः सर्वाः शक्तयः क्रोधतत्पराः । देवादीनां च सर्वेषां संहारं कर्तुमुद्यताः ॥१२॥
यथा च तृणसंहारमनलः कुरुते तथा । एवं ताः शक्तयः सर्वाः संहारं कर्तुमुद्यताः ॥१३॥

नारद जी बोले—हे ब्रह्मन् ! हे महाप्राज्ञ ! अब आप मुझे यह बताइए कि नारद से सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनने के बाद देवी ने क्या किया ? मैं उस वृत्तान्त को सुनना चाहता हूँ। कृपाकर बताइए ? ॥ १ ॥

ब्रह्मा जी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! तदनन्तर जगदम्बा ने जो चरित्र किया उसे मैं सम्पूर्ण रूप से कहता हूँ तुम सुनो ॥ २ ॥ गणेश के मार दिये जाने पर शिव के गणों ने मृदङ्ग एवं पटह बाजे बजाये तथा अनेक उत्सव किया ॥३॥ शिव भी गणेश जी का शिरश्छेदन कर ज्योंही कुछ दुःखी से दिखाई पड़ रहे थे कि उसी समय गिरिजा देवी अत्यन्त क्रुद्ध हो गयीं ॥ ४ ॥ वे कहने लगीं—हाय, मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? मुझे बहुत बड़ा दुःख उपस्थित हो गया है। इस पुत्र के मरने से तो मुझे बड़ा क्लेश हुआ। यह दुःख किस प्रकार से दूर हो सकता है ॥ ५ ॥ इन देवताओं ने तथा गणों ने मिलकर मेरे पुत्र को मार डाला, अतः क्या मैं इनका नाश कर दूँ अथवा प्रलय ही कर दूँ ॥ ६ ॥ इस प्रकार दुःखी हुई सर्वलोक-महेश्वरी पार्वती ने तत्क्षण क्रोधकर करोड़ों शक्तियों का निर्माण किया ॥७॥ तब तेज से जलती हुई उन शक्तियों ने जगदम्बा पार्वती को नमस्कार कर कहा—हे मातः ! हम लोगों के लिए आज्ञा दीजिए ॥ ८ ॥ तब हे मुनीश्वर ! महामाया शम्भु की शक्ति जिसे प्रकृति कहते हैं, उसने क्रोध में भरकर उन सभी शक्तियों से कहा ॥ ९ ॥

देवी बोलीं—हे शक्तियो ! हे देवियो ! तुम सब अभी मेरी आज्ञा से देवताओं की सेना में जाकर प्रलय कर डालो, इसमें विशेष विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥१०॥ हे सखियो ! तुम लोग देवता, ऋषि, यक्ष, राक्षस चाहे अपने हों अथवा पराये, जो भी हों सबको हठपूर्वक भक्षण कर जाओ ॥११॥

ब्रह्मा जी बोले—पार्वती की आज्ञा पाते ही उन सभी शक्तियों ने क्रोध में भरकर देवादिकों का संहार करना प्रारम्भ कर दिया ॥ १२ ॥ जिस प्रकार अग्नि तृणों का संहार कर देती है, उसी प्रकार वे

गणपो वाऽथ विष्णुर्वा ब्रह्मा वा शङ्करस्तथा । इन्द्रो वा यक्षराजो वा स्कन्दो वा सूर्य एव वा ॥१४॥
सर्वेषां चैव संहारं कुर्वन्ति स्म निरन्तरम् । यत्र यत्र तु दृश्येत तत्र तत्रापि शक्तयः ॥१५॥
कराली कुब्जका खञ्जा लम्बशीर्षा ह्यनेकशः । हस्ते धृत्वा तु देवांश्च मुखे चैवाक्षिपंस्तदा ॥१६॥
तं संहारं तदा दृष्ट्वा हरो ब्रह्मा तथा हरिः । इन्द्रादयोऽखिलाः देवा गणाश्च ऋषयस्तथा ॥१७॥
किं करिष्यति सा देवी संहारं वाऽप्यकालतः । इति संशयमापन्ना जीवनाशा हताऽभवत् ॥१८॥
सर्वे च मिलिताश्चेमे किं कर्त्तव्यं विचिन्त्यताम् । एवं विचारयन्तस्ते तूर्णमूचुः परस्परम् ॥१९॥
यदा च गिरिजा देवी प्रसन्ना हि भवेदिह । तदा चैव भवेत् स्वास्थ्यं नान्यथा कोटियत्नतः ॥२०॥
शिवोऽपि दुःखमापन्नो लौकिकीं गतिमाश्रितः । मोहयन् सकलांस्तत्र नानालीलाविशारदः ॥२१॥
सर्वेषां चैव देवानां कटिर्भग्ना यदा तदा । शिवा क्रोधमयी साक्षाद् गन्तुं न पुर उत्सहेत् ॥२२॥
स्वीयो वा परकीयो वा देवो वा दानवोऽपि वा । गणो वाऽपि च दिक्पालो यक्षो वा किन्नरो मुनिः ॥२३॥
विष्णुर्वापि तथा ब्रह्मा शङ्करश्च तथा प्रभुः । न कश्चिद् गिरिजाग्रे च स्थातुं शक्तोऽभवन्मुने ॥२४॥
जाज्वल्यमानं तत्तेजः सर्वतो दाहि तेऽखिलाः । दृष्ट्वा भीततरा आसन् सर्वे दूरतरं स्थिताः ॥२५॥
एतस्मिन् समये तत्र नारदो दिव्यदर्शनः । आगतस्त्वं मुने देवगणानां सुखहेतवे ॥२६॥
ब्रह्माणं मां भवं विष्णुं शङ्करं च प्रणम्य सः । समागत्य मिलित्वोचे विचार्य कार्यमेव वा ॥२७॥
सर्वे सम्मन्त्रयाञ्चक्रुस्त्वया देवा महात्मना । दुःखशान्तिः कथं स्याद् वै समूचुस्तत एव ते ॥२८॥
यावच्च गिरिजा देवी कृपां नैव करिष्यति । तावन्नैवं सुखं स्याद् वै नाऽत्र कार्या विचारणा ॥२९॥
ऋषयो हि त्वदाद्याश्च गतास्ते वै शिवान्तिकम् । सर्वे प्रसादयामासुः क्रोधशान्त्यै तदा शिवाम् ॥३०॥

शक्तियाँ भी संहार करने लगीं ॥ १३ ॥ गणाधिप, विष्णु, ब्रह्मा, शङ्कर, इन्द्र, यक्षराज, स्कन्द अथवा सूर्य आदि का वे निरन्तर संहार करने लगीं । जहाँ दृष्टि जाती वहाँ केवल शक्तियाँ ही दिखाई पड़ने लगीं ॥ १४-१५ ॥ कराली, कुब्जा, खञ्जा, लम्बशीर्षा आदि अनेक शक्तियाँ देवताओं को हाथ से पकड़ कर मुख में डालने लगीं ॥ १६ ॥ उस संहार को देखकर हर, ब्रह्मा, हरि, इन्द्रादि सभी देवगण एवं ऋषि जीवन से हताश होकर कहने लगे कि क्या देवी अकाल में ही प्रलय कर देंगी ? इस प्रकार का संशय करने लगे ॥ १७-१८ ॥

सब मिलकर विचार करने लगे कि अब क्या करना चाहिए, सब कोई इस पर विचार करो । इस प्रकार परस्पर शीघ्रता से विचार कर वे बोले—॥ १९ ॥ यदि गिरिजा देवी प्रसन्न हो जायें तो तभी शान्ति हो सकती है अन्यथा करोड़ों उपायों से भी शान्ति सम्भव नहीं ॥ २० ॥ नाना लीला-विशारद शिवजी भी सबको मोहित कर लौकिक गति प्रगट करते हुए दुःखी हो गये ॥ २१ ॥ किन्तु सभी देवताओं की कमर उस समय टूट गयी, जब पार्वती के पास जाने का प्रश्न हुआ । उन्होंने सोचा कि पार्वती साक्षात् क्रोध की मूर्त्ति हैं, उनके इस विकराल रूप के सामने जाना खिलवाड़ नहीं ॥ २२ ॥ हे नारद ! उस समय देवता, दानवगण, दिक्पाल, यक्ष, किन्नर तथा मुनि, विष्णु, ब्रह्मा एवं महाप्रभु, शङ्कर आदि किसी में भी गिरिजा के सामने खड़े होने का साहस न हुआ ॥ २३-२४ ॥ पार्वती के जलते हुए तेज से सभी लोग भस्म हो रहे थे, वे पार्वती को देखते ही दूर खड़े हो गये ॥ २५ ॥ उसी समय दिव्य-दर्शन तुम नारद देवताओं को सुख देने के लिए वहाँ पहुँच गये, फिर तुम ब्रह्मा, विष्णु तथा शङ्कर को प्रणाम कर सबके साथ मिलकर कहने लगे कि, सोच-विचार कर काम करना चाहिए ॥ २६-२७ ॥

तदनन्तर सभी लोग तुम महात्मा के साथ विचार करने लगे और तुमसे कहने लगे कि इस दुःख की शान्ति किस प्रकार होगी ? ॥ २८ ॥ जब तक गिरिजा देवी कृपा नहीं करेंगी तब तक दुःख की शान्ति सर्वथा असम्भव है ॥ २९ ॥ अनन्तर सभी ऋषि तुम्हें साथ लेकर पार्वती के पास गये और शिवा से

पुनः पुनः प्रणेमुश्च स्तुत्वा स्तोत्रैरनेकशः । सर्वे प्रसादयन् प्रीत्या प्रोचुर्देवगणाज्ञया ॥३१॥

सुरर्षय ऊचुः

जगदम्ब नमस्तुभ्यं शिवायै च नमोऽस्तु ते । चण्डिकायै नमस्तुभ्यं कल्याण्यै च नमोऽस्तु ते॥३२॥
आदिशक्तिस्त्वमेवाऽम्ब ! सर्वसृष्टिकरी सदा । त्वमेव पालिनी शक्तिस्त्वमेव प्रलयङ्करी ॥३३॥
प्रसन्ना भव देवेशि ! शान्तिं कुरु नमोऽस्तु ते । सर्वं हि विकलं देवि ! त्रिजगत्तव कोपतः ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

एवं स्तुता परा देवी ऋषिभिश्च त्वदादिभिः । क्रुद्धदृष्ट्या तदा तांश्च किञ्चिन्नोवाच सा शिवा ॥३५॥
तदा च ऋषयः सर्वे नत्वा तच्चरणाम्बुजम् । पुनरूचुः शिवां भक्त्या कृताञ्जलिपुटाः शनैः॥३६॥

ऋषय ऊचुः

क्षम्यतां क्षम्यतां देवि ! संहारो जायतेऽधुना । तव स्वामी स्थितश्चात्र पश्य पश्य तमम्बिके॥३७॥
वयं के च इमे देवा विष्णुब्रह्मादयस्तथा । प्रजाश्च भवदीयाश्च कृताञ्जलिपुटाः स्थिताः ॥३८॥
क्षन्तव्यश्चापराधो वै सर्वेषां परमेश्वरि ! । सर्वे हि विकलाश्चाद्य शान्तिं तेषां शिवे कुरु ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा ऋषयः सर्वे सुदीनतरमाकुलाः । संतस्थिरे चण्डिकाग्रे कृताञ्जलिपुटास्तदा ॥४०॥
एवं श्रुत्वा वचस्तेषां प्रसन्ना चण्डिकाऽभवत् । प्रत्युवाच ऋषींस्तान् वै करुणाविष्टमानसा ॥४१॥

देव्युवाच

मत्पुत्रो यदि जीवेत तदा संहरणं न हि । यथा हि भवतां मध्ये पूज्योऽयं च भविष्यति ॥४२॥
सर्वाध्यक्षो भवेदद्य यूयं कुरुत तद्यदि । तदा शान्तिर्भवेल्लोके नान्यथा सुखमाप्स्यथ ॥४३॥

क्रोध शान्त करने के लिए प्रार्थना करने लगे ॥ ३० ॥ वारम्बार प्रणाम कर अनेक स्तोत्रों से शिवा को प्रसन्न करते हुए आज्ञा पाकर देवगण बोले—॥ ३१ ॥

देवर्षि गण बोले—हे जगदम्ब ! तुम्हें नमस्कार है, हे शिवे ! तुम्हें नमस्कार है, हे चण्डिके ! तुम्हें नमस्कार है, हे कल्याणि ! तुम्हें नमस्कार है ॥ ३२ ॥ हे अम्ब ! तुम्हीं आदि शक्ति हो, सर्वदा सृष्टि करने वाली तुम्हीं हो, पालन तथा लय करने वाली शक्ति भी तुम्हीं हो ॥ ३३ ॥ हे देवेशि ! प्रसन्न होकर अब क्रोध को शान्त करो, तुम्हें नमस्कार है, हे देवि ! तुम्हारे कोप से सारा त्रैलोक्य विकल हो रहा है ॥३४॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार तुम सभी ऋषियों ने मिलकर पराम्बा की स्तुति की, तब भी क्रोध से पूर्ण दृष्टि से ऋषियों की ओर देखती हुई जगदम्बा ने कुछ नहीं कहा ॥ ३५ ॥ पुनः उन ऋषियों ने भगवती के चरण-कमलों को नमस्कार कर परम भक्ति से हाथ जोड़ उनकी स्तुति की ॥ ३६ ॥

ऋषिगण बोले—हे देवि ! क्षमा करो, क्षमा करो, हे देवि ! इसी समय प्रलय होना चाहता है। हे अम्बिके ! तुम्हारे स्वामी यहीं पर स्थित हैं, उनको देखो ॥ ३७ ॥ हम सभी लोग, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता तथा तुम्हारी ये सारी प्रजाएँ हाथ जोड़कर तुम्हारे आगे खड़ी हैं ॥ ३८ ॥ हे परमेश्वरि ! हम सभी का अपराध क्षमा करो। हे शिवे ! तुम्हारे क्रोध से सभी विकल हैं, अतः इनकी शान्ति करो ॥ ३९ ॥

ब्रह्माजी बोले - ऐसा कह वे सभी ऋषिगण अत्यन्त दीनता से व्याकुल हो चण्डिका के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये ॥ ४० ॥ उनकी स्तुति सुनकर तथा उनकी दीनता देखकर चण्डिका प्रसन्न हो गयीं और करुणार्द्र चित्त हो उन ऋषियों से बोलीं ॥ ४१ ॥

देवी बोलीं—मेरा पुत्र यदि जीवित हो जाय और तुम लोगों के बीच में प्रथम पूज्य हो जाय तो यह संहार नहीं होगा ॥ ४२ ॥ यदि तुम लोग आज से इसको सबका अध्यक्ष बना दो तो लोक में शान्ति हो सकती है, अन्यथा तम लोगों को सुख की प्राप्ति नहीं होगी ॥ ४३ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तास्ते तदा सर्वे ऋषयो गुष्मदादयः। तेभ्यो देवेभ्य आगत्य सर्वं वृत्तं न्यवेदयन् ॥४४॥

ते च सर्वे तथा श्रुत्वा शङ्कराय न्यवेदयन्। नत्वा प्राञ्जलयो दीनाः शक्रप्रभृतयः सुराः ॥४५॥

प्रोवाचेति सुराञ्छ्रुत्वा शिवश्चापि तथा पुनः। कर्त्तव्यं च तथा सर्वलोकस्वास्थ्यं भवेदिह ॥४६॥

उत्तरस्यां पुनर्यात प्रथमं यो मिलेदिह। तच्छिरश्च समाहृत्य योजनीयं कलेवरे ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तैस्तत्कृतं सर्वं शिवाज्ञाप्रतिपालकैः। कलेवरं समानीय प्रक्षाल्य विधिवच्च तत् ॥४८॥

पूजयित्वा पुनस्ते वै गताश्चोदङ्मुखास्तदा। प्रथमं मिलितस्तत्र हस्ती चाप्येकदन्तकः ॥४९॥

तच्छिरश्च तदा नीत्वा तत्र तेऽयोजयन् ध्रुवम्। संयोज्य देवताः सर्वाः शिवं विष्णुं विधिं तदा॥५०॥

प्रणम्य वचनं प्रोचुर्भवदुक्तं कृतं च नः। अनन्तरं च तत्कार्यं भवताद्भवशेषितम् ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

ततस्ते तु विरेजुश्च पार्षदाश्च सुराः सुखम्। अथ तद्वचनं श्रुत्वा शिवोक्तं पर्य्यपालयन् ॥५२॥

ऊचुस्ते च तदा तत्र ब्रह्म-विष्णु-सुरास्तथा। प्रणम्येशं शिवं देवं स्वप्रभुं गुणवर्जितम् ॥५३॥

यस्मात्त्वत्तेजसः सर्वे वयं जाता महात्मनः। त्वत्तेजस्तत्समायातु वेदमन्त्राभियोगतः ॥५४॥

इत्येवमभिमन्त्रेण मन्त्रितं जलमुत्तमम्। स्मृत्वा शिवं समेतास्ते चिक्षिपुस्तत्कलेवरे ॥५५॥

तज्जलस्पर्शमात्रेण चिद्युतो जीवितो द्रुतम्। तदोत्तस्थौ सुप्त इव स बालश्च शिवेच्छया ॥५६॥

ब्रह्मा जी बोले—भगवती के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर तुम सभी ऋषियों ने देवताओं के पास आकर सारा वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ४४ ॥ तब उन इन्द्रादि देवताओं ने भगवान् शङ्कर को प्रणाम कर हाथ जोड़े हुए अत्यन्त दीन होकर यह वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ४५ ॥ देवताओं से इस बात को सुनकर शिवजी ने कहा—हम लोगों को भी वही बात करनी चाहिए, जिससे सारे संसार का कल्याण हो ॥ ४६ ॥ अतः हे देवगणो ! तुम लोग उत्तर दिशा की ओर जाओ, सर्व-प्रथम तुम्हें जो मिले उसका शिर लाकर इन गणेश के शरीर में जोड़ दो ॥ ४७ ॥

ब्रह्मा जी बोले—शिवजी की आज्ञा मानने वाले देवताओं ने ऐसा ही किया। उन्होंने गणेश जी का कलेवर लाकर विधिपूर्वक प्रक्षालन किया ॥ ४८ ॥ फिर उसकी पूजा कर वे उत्तर दिशा की ओर गये, वहीं पर सर्व-प्रथम उन्हें एक दाँत वाला हाथी मिला ॥ ४९ ॥ देवताओं ने उसी का सिर लेकर गणेश के शरीर में जोड़ दिया। तत्पश्चात् वे ब्रह्मा, विष्णु तथा शङ्कर के पास जाकर उन्हें प्रणाम कर बोले—हे देव ! आपने जैसा कहा था वैसा हमने किया, अब इसके अनन्तर उसे जिलाने के लिए जो कार्य शेष हो वह करना चाहिए ॥ ५०-५१ ॥

ब्रह्मा जी बोले—अनन्तर शिव के गण तथा देवता सभी सुखी हो गये। पुनः शिवजी ने जैसा कहा वैसा ही उन लोगों ने पालन किया ॥ ५२ ॥ तब ब्रह्मा, विष्णु आदि देवगण, प्रभु, निर्गुण, ब्रह्म शिव को प्रणाम कर कहने लगे ॥ ५३ ॥ जिस प्रकार हम लोग आप महात्मा के तेज से प्रगट हुए हैं, वही तेज वेदमन्त्रों के प्रभाव से इस शरीर में भी समासक्त हो जावे ॥ ५४ ॥ ऐसा मन्त्र पढ़कर उन लोगों ने जल को अभिमन्त्रित किया, फिर शिव का स्मरण कर उस अभिमन्त्रित जल को गणेश के शरीर पर छिड़का ॥ ५५ ॥ उस जल के स्पर्श-मात्र से ही वह बालक शिवजी की इच्छा से चेतनायुक्त हो जीवित हो

सुभगः सुन्दरतरो गजवक्त्रः सुरक्तकः । प्रसन्नवदनश्चातिसुप्रभो ललिताकृतिः ॥५७॥
तं दृष्ट्वा जीवितं बालं शिवापुत्रं मुनीश्वर ! । सर्वे मुमुदिरे तत्र सर्वं दुःखं क्षयं गतम् ॥५८॥
देव्यै संदर्शयामासुः सर्वे हर्षसमन्विताः । जीवितं तनयं दृष्ट्वा देवी हृष्टतराऽभवत् ॥५९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे
गणेशँजीवनवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः
(गणेश के शरीर पर हाथी का शिर स्थापित करना)

नारद उवाच

जीविते गिरिजापुत्रे देव्या दृष्टे प्रजेश्वर ! । ततः किमभवत्तत्र कृपया तद् वदाऽधुना ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

जीविते गिरिजापुत्रे देव्या दृष्टे मुनीश्वर ! । यज्जातं तच्छृणुष्वाद्य वच्मि ते महदुत्सवम् ॥ २ ॥
जीवितः स शिवापुत्रो निर्व्यग्रो विकृतो मुने ! । अभिषिक्तस्तदा देवैर्गणाध्यक्षैर्गजाननः ॥ ३ ॥
दृष्ट्वा स्वतनयं देवी शिवा हर्षसमन्विता । गृहीत्वा बालकं दोर्भ्यां प्रमुदा परिषस्वजे ॥ ४ ॥
वस्त्राणि विविधानीह नानालङ्करणानि च । ददौ प्रीत्या गणेशाय स्वपुत्राय मुदाम्बिका ॥ ५ ॥
पूजयित्वा तया देव्या सिद्धिभिश्चाप्यनेकशः । करेण स्पर्शितः सोऽथ सर्वदुःखहरेण वै ॥ ६ ॥
पूजयित्वा सुतं देवी मुखमाचुम्ब्य शाङ्करी । वरान् ददौ तदा प्रीत्या जातस्त्वं दुःखितोऽधुना ॥ ७ ॥

गया और सोते हुए से जागने के समान उठ बैठा ॥ ५६ ॥ वह बालक अत्यन्त सुन्दर था, हाथी के मुख के समान उसका मुख था, शरीर का वर्ण लाल था। उसका मुखमण्डल अत्यन्त प्रसन्न, अत्यन्त तेजस्वी एवं उसकी आकृति अत्यन्त मनोहर थी ॥ ५७ ॥ हे मुनीश्वर ! उस समय पार्वती-पुत्र को जीवित देख सभी लोग अत्यन्त प्रसन्न हो गये और सबका दुःख जाता रहा ॥ ५८ ॥ फिर अत्यन्त प्रसन्नता के साथ उन लोगों ने देवी को उनके पुत्र का दर्शन कराया। पार्वती भी अपने पुत्र को जीवित देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं ॥ ५९ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के चतुर्थ कुमारखण्ड में गणेश-जीवन वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥

*

नारदजी बोले—हे प्रजेश्वर ! जब गिरिजा ने अपने पुत्र को जीवित देख लिया, तब क्या हुआ ? उसे आप कहिए ॥ १ ॥

ब्रह्मा जी बोले—हे मुनीश्वर ! जब देवी ने देख लिया कि मेरा पुत्र जीवित हो गया तदनन्तर जो हुआ वह आनन्ददायक समाचार मैं तुमसे कहता हूँ, तुम सुनो ॥ २ ॥ जब पार्वती-पुत्र होशहवाश के साथ बिना विकार के ही जीवित हो गये, तब देवताओं ने गणाध्यक्ष के पद पर उन्हें अभिषिक्त किया ॥ ३ ॥ भगवती पार्वती अपने पुत्र को गणाध्यक्ष पद पर अभिषिक्त देख अत्यन्त हर्षित हो गयीं और अपनी दोनों भुजाओं से बालक को गोदी में लेकर उसका आलिङ्गन करने लगीं ॥ ४ ॥ जगदम्बा ने उस अपने पुत्र को बड़े प्रेम से नाना प्रकार के वस्त्र तथा अलङ्कार प्रदान किये ॥ ५ ॥

देवी ने अनेक प्रकार की सिद्धियों से उस बालक का पूजन किया और अपने कल्याणकारी हाथ से उसका आलिङ्गन किया ॥ ६ ॥ पूजन करने के उपरान्त देवी ने उसका मुख चूमा और प्रेम से उसे

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि पूर्वपूज्यो भवाधुना । सर्वेषाममराणां वै सर्वदा दुःखवर्जितः ॥ ८ ॥
आनने तव सिन्दूरं दृश्यते साम्प्रतं यदि । तस्मात्त्वं पूजनीयोऽसि सिन्दूरेण सदा नरैः ॥ ९ ॥
पुष्पैर्वा चन्दनैर्वाऽपि गन्धेनैव शुभेन च । नैवेद्येन सुरम्येण नीराजेन विधानतः ॥१०॥
ताम्बूलैरथ दानैश्च तथा प्रक्रमणैरपि । नमस्कार-विधानेन पूजां यस्ते विधास्यति ॥११॥
तस्य वै सकला सिद्धिर्भविष्यति न संशयः । विघ्नान्यनेकरूपाणि क्षयं यास्यन्त्यसंशयम् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा च तदा देवी स्वपुत्रं तं महेश्वरी । नानावस्तुभिरुत्कृष्टं पुनरप्यर्चयत्तथा ॥१३॥
ततः स्वास्थ्यं च देवानां गणानां च विशेषतः । गिरिजाकृपया विप्र ! जातं तत्क्षणमात्रतः ॥१४॥
एतस्मिश्च क्षणे देवा वासवाद्याः शिवं मुदा । स्तुत्वा प्रसाद्य तं देवं भक्त्या निन्युः शिवान्तिकम् ॥१५॥
संसाद्य गिरिशं पश्चादुत्सङ्गे सन्न्यवेशयन् । बालकं तं महेशान्यास्त्रिजगत्सुखहेतवे ॥१६॥
शिवोऽपि तस्य शिरसि दत्त्वा स्वकरपङ्कजम् । उवाच वचनं देवान् पुत्रोऽयमिति मेऽपरः ॥१७॥
गणेशोऽपि तदोत्थाय नमस्कृत्य शिवाय वै । पार्वत्यै च नमस्कृत्य मह्यं वै विष्णवे तथा ॥१८॥
नारदाद्यानृषीन् सर्वान् स त्वास्थाय पुरोऽब्रवीत् । क्षन्तव्यश्चापराधो मे मानश्चैवेदृशो नृणाम् ॥१९॥
अहं च शङ्करश्चैव विष्णुश्चैते त्रयः सुराः । प्रत्यूचुर्युगपत्प्रीत्या ददतो वरमुत्तमम् ॥२०॥
त्रयो वयं सुरवरा यथा पूज्या जगत्त्रये । तथाऽयं गणनाथश्च सकलैः प्रतिपूज्यताम् ॥२१॥
वयं च प्राकृताश्चायं प्राकृतः पूज्य एव च । गणेशो विघ्नहर्त्ता हि सर्वकामफलप्रदः ॥२२॥
एतत्पूजां पुरा कृत्वा पश्चात् पूज्या वयं नरैः । वयं च पूजिताः सर्वे नाऽयं चापूजितो यदा ॥२३॥

अनेक वरदान दिये, और कहा—बेटा ! तुमने बड़ा कष्ट सहन किया ॥ ७ ॥ हे पुत्र ! तुम धन्य हो और कृतकृत्य हो, तुम इस कल्प में सबके तथा इन देवताओं के भी पूज्य होगे । तुम्हारे पास कभी भी दुःख नहीं आयेगा ॥ ८ ॥ इस समय तुम्हारे मुखमण्डल पर यह सिन्दूर दिखाई देता है, इसलिए जो मनुष्य सिन्दूर, चन्दन, पुष्प, सुगन्धित द्रव्य, उत्तम नैवेद्य, विधानपूर्वक नीराजन (आरती), ताम्बूल, दान, परिक्रमा तथा नमस्कार से तुम्हारी पूजा करेंगे ॥ ९-११ ॥ उनको सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होंगी इसमें सन्देह नहीं । इतना ही नहीं, तुम्हारे पूजन से समस्त विघ्न भी निःसन्देह नष्ट हो जायेंगे ॥ १२ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! ऐसा कह कर उस महेश्वरी देवी ने अपने उस पुत्र को नाना प्रकार के उत्कृष्ट वस्तुओं से अलंकृत कर पुनः उसका पूजन किया ॥ १३ ॥ फिर गिरिजा की क्षणमात्र कृपा से देवताओं को विशेष कर शिवगणों को शान्ति प्राप्त हुई ॥ १४ ॥ उसी समय इन्द्रादि देव प्रसन्नता से शिव को प्रसन्न कर भक्ति के साथ उन्हें पार्वती के पास ले गये । फिर शिव को ले जाने के अनन्तर उन देवताओं ने तीनों लोक के सुख के लिए उस बालक को भगवती पार्वती के गोदी में बैठा दिया ॥ १५-१६ ॥ शिवजी ने भी उस बालक के शिर पर अपना हाथ फेरते हुए देवताओं से कहा कि, यह मेरा दूसरा पुत्र है ॥ १७ ॥ फिर तो गणेशजी ने भी गोदी से उतर कर शिव को, पार्वती को मुझे तथा विष्णु को प्रणाम किया ॥ १८ ॥ सब के सामने खड़े होकर नारदादि ऋषियों से बोला—आप लोग मेरे अपराध को क्षमा करें और मैंने जो मनुष्यों के समान मान किया है, उसे भी क्षमा करें ॥ १९ ॥

तब मैं, विष्णु तथा शंकर इन तीनों देवताओं ने एक साथ ही उस बालक को वर प्रदान करते हुए कहा—॥ २० ॥ हे देवताओ ! जिस प्रकार हम तीनों देवता आप लोगों से पूजे जाते हैं, उसी प्रकार आप लोग भी इन गणेश की पूजा करें ॥ २१ ॥ जिस प्रकार हम लोग प्राकृत (असाधारण) होने के कारण पूज्य हैं, उसी प्रकार ये गणेश भी प्राकृत होने से आप लोगों के पूज्य हैं । पूजा करने से ये गणेश विघ्न का हरण करने वाले तथा सम्पूर्ण फलों को प्रदान करेंगे ॥ २२ ॥ मनुष्य पहले इनकी पूजा करेंगे तत्पश्चात् हम लोगों की पूजा करेंगे । यदि इनकी पूजा किये बिना ही कोई हम लोगों की पूजा करेगा तो

अस्मिन्नपूजिते देवाः परपूजा कृता यदि । तदा तत्फलहानिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा स गणेशानो नानावस्तुभिरादरात् । शिवेन पूजितः पूर्वं विष्णुनाऽनुप्रपूजितः ॥२५॥
ब्रह्मणा च मया तत्र पार्वत्या च प्रपूजितः । सर्वैर्देवैर्गणैश्चैव पूजितः परया मुदा ॥२६॥
सर्वैर्मिलित्वा तत्रैव ब्रह्म-विष्णु-हरादिभिः । स गणेशः शिवातुष्ट्यै सर्वाध्यक्षो निवेदितः ॥२७॥
पुनश्चैव शिवेनास्मै सुप्रसन्नेन चेतसा । सर्वदा सुखदा लोके वरा दत्ता ह्यनेकशः ॥२८॥

शिव उवाच

हे गिरीन्द्रसुतापुत्र ! सन्तुष्टोऽहं न संशयः । मयि तुष्टे जगत्तुष्टं विरुद्धः कोऽपि नो भवेत् ॥२९॥
बालरूपोऽपि यस्मात्त्वं महाविक्रमकारकः । शक्तिपुत्रः सुतेजस्वी तस्माद्भव सदा सुखी ॥३०॥
त्वन्नाम विघ्नहन्तृत्वे श्रेष्ठं चैव भवत्विति । मम सर्वगणाध्यक्षः सम्पूज्यस्त्वं भवाधुना ॥३१॥
एवमुक्त्वा शङ्करेण पूजाविधिरनेकशः । आशिषश्चाप्यनेका हि कृतस्तस्मिंस्तु तत्क्षणात् ॥३२॥
ततो देवगणाश्चैव गीतं वाद्यं च नृत्यकम् । मुदा ते कारयामासुस्तथैवाऽप्सरसां गणाः ॥३३॥
पुनश्चैव वरो दत्तः सुप्रसन्नेन शम्भुना । तस्मै च गणनाथाय शिवेनैव महात्मना ॥३४॥
चतुर्थ्यां त्वं समुत्पन्नो भाद्रे मासि गणेश्वर ! । असिते च तथा पक्षे चन्द्रस्योदयने शुभे ॥३५॥
प्रथमे च तथा यामे गिरिजायाः सुचेतसः । आविर्बभूव ते रूपं यस्मात्ते व्रतमुत्तमम् ॥३६॥
तस्मात्तद्दिनमारभ्य तस्यामेव तिथौ मुदा । व्रतं कार्यं विशेषेण सर्वसिद्ध्यै सुशोभनम् ॥३७॥
यावत् पुनः समायाति वर्षान्ते च चतुर्थिका । तावद् व्रतं च कर्तव्यं तव चैव ममाज्ञया ॥३८॥

हम लोग पूजित होते हुए भी अपूजित रहेंगे ॥ २३ ॥ इतना ही नहीं, हे देवताओ ! यदि कोई इनकी पूजा किये बिना अन्य देवताओं की पूजा करेगा तो उसे पूजा का फल प्राप्त न होगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ २४ ॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कह कर शिव जी ने अनेक प्रकार की वस्तुओं से गणेश की पूजा की। तत्पश्चात् विष्णु के द्वारा भी वे पूजित हुए ॥ २५ ॥ तदनन्तर मैंने एवं पार्वती ने उनकी पूजा की। अनन्तर देवताओं ने भी बड़े आदर के साथ उनका पूजन किया ॥ २६ ॥ उसी स्थान पर ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव ने भी एक साथ मिल कर पार्वती की प्रसन्नता हेतु उन्हें गणाध्यक्ष पद से सम्बोधित किया ॥ २७ ॥ अनन्तर शिव ने बड़ी प्रसन्नता के साथ उन गणेश को लोक में सुख देने वाले अनेक वर दिये ॥ २८ ॥

शिवजी बोले—हे पार्वतीपुत्र ! इसमें सन्देह नहीं कि मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ फिर मेरे सन्तुष्ट होने पर कोई विरुद्ध नहीं हो सकता ॥ २९ ॥ जिस कारण तुम इस बालक रूप से ही शक्ति के महा-पराक्रमी एवं तेजस्वी पुत्र हो इसलिए सर्वदा सुखी रहो ॥३०॥ हे बालक ! विघ्नों के नष्ट करने में तुम्हारा नाम सर्वश्रेष्ठ होगा। आज से तुम मेरे सम्पूर्ण गणों के अध्यक्ष एवं सबसे पूजनीय होगे ॥ ३१ ॥ ऐसा कहकर शंकर ने गणेश की अनेक पूजा-विधि बताकर तत्क्षण उन्हें अनेक आशीर्वाद प्रदान किये ॥ ३२ ॥ तदनन्तर देवताओं एवं अप्सरा गणों ने प्रसन्न होकर अनेक प्रकार के गाने, बाजे तथा नृत्य करवाये ॥ ३३ ॥ इतना होने के पश्चात् भी लोक-कल्याणकारी महात्मा शंकर ने प्रसन्न होकर उस बालक को अनेक आशीर्वाद दिये ॥ ३४ ॥ हे गणेश्वर ! तुम भादों के महीने में कृष्ण पक्ष की चौथ को चन्द्रोदय काल में प्रगट हुए हो ॥ ३५ ॥ रात्रि के प्रथम प्रहर में गिरिजा के चित्त से तुम्हारा आविर्भाव हुआ है इसलिए तुम्हारा उसी दिन उत्तम व्रत होगा ॥ ३६ ॥ उसी दिन से आरम्भ कर सर्वदा इसी तिथि को अपनी सिद्धि के लिए प्राणियों को तुम्हारे सुन्दर व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए ॥ ३७ ॥ एक वर्ष में जब भाद्र मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्थी तिथि आवे तब तक वर्ष पर्यन्त इस व्रत को मेरी आज्ञा से करना चाहिए ॥३८॥

संसारे सुखमिच्छन्ति येऽतुलं चाप्यनेकशः । त्वां पूजयन्तु ते भक्त्या चतुर्थ्यां विधिपूर्वकम् ॥३९॥
मार्गशीर्षे तथा मासे रमा या वै चतुर्थिका । प्रातःस्नानं तदा कृत्वा व्रतं विप्रान्निवेदयेत् ॥४०॥
दूर्वाभिः पूजनं कार्यमुपवासस्तथाविधः । रात्रेश्च प्रहरे जाते स्नात्वा सम्पूजयेन्नरः ॥४१॥
मूर्तिं धातुमयीं कृत्वा प्रवालसम्भवां तथा । श्वेतार्कसम्भवां चापि मार्दिकां निर्मितां तथा ॥४२॥
प्रतिष्ठाप्य तदा तत्र पूजयेत् प्रयतः पुमान् । गन्धैर्नानाविधैर्दिव्यैश्चन्दनैः पुष्पकैरिह ॥४३॥
वितस्तिमात्रा दूर्वा च त्र्यङ्गा वै मूलवर्जिता । ईदृशानां तद्दलानां शतेनैकोत्तरेण ह ॥४४॥
एकविंशतिकेनैव पूजयेत् प्रतिमां स्थिताम् । धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्विविधैर्गणनायकम् ॥४५॥
ताम्बूलाद्यर्घसद्द्रव्यैः प्रणिपत्य स्तवैस्तथा । त्वां तत्र पूजयित्वेत्थं बालचन्द्रं च पूजयेत् ॥४६॥
पश्चाद्विप्रांश्च सम्पूज्य भोजयेन्मधुरैर्मुदा । स्वयं चैवान्न ततो भुञ्ज्यान्मधुरं लवणं विना ॥४७॥
विसर्जयेत्ततः पश्चान्नियमं सर्वमात्मनः । गणेशस्मरणं कुर्यात् सम्पूर्णं स्याद् व्रतं शुभम् ॥४८॥
एवं व्रतेन सम्पूर्णे वर्षे जाते नरस्तदा । उद्यापनविधिं कुर्याद् व्रतसम्पूर्तिहेतवे ॥४९॥
द्वादश ब्राह्मणास्तत्र भोजनीया मदाज्ञया । कुम्भमेकं च संस्थाप्य पूज्या मूर्तिस्त्वदीयका ॥५०॥
स्थण्डिलेऽष्टदलं कृत्वा तदा वेदविधानतः । होमश्चैवात्र कर्तव्यो वित्तशाठ्यविवर्जितैः ॥५१॥
स्त्रीद्वयं च तथा चाऽत्र बटुकद्वयमादरात् । भोजयेत् पूजयित्वा वै मूर्त्यग्रे विधिपूर्वकम् ॥५२॥
निशि जागरणं कार्यं पुनः प्रातः प्रपूजयेत् । विसर्जनं ततश्चैव पुनरागमनाय च ॥५३॥
बालकाच्चाशिषो ग्राह्याः स्वस्तिवाचनमेव च । पुष्पाञ्जलिं प्रदद्याच्च व्रतसम्पूर्णहेतवे ॥५४॥

जो लोग इस संसार में अतुल सुख प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं वे प्रत्येक चतुर्थी के दिन तुम्हारी विधि पूर्वक पूजा करें ॥ ३९ ॥ मार्गशीर्ष के महीने में रमा नामक चतुर्थी के दिन प्रातःकाल स्नान कर यह व्रत ब्राह्मण को समर्पित करे ॥ ४० ॥ चतुर्थी के दिन उपवास कर रात्रि के प्रथम प्रहर उपस्थित होने पर स्नान करने के उपरान्त दूर्वा से गणेश का पूजन करना चाहिए ॥ ४१ ॥ धातु से, मूँगे से, श्वेत अर्क से अथवा मृत्तिका से गणेश जी की मूर्ति का निर्माण करे ॥ ४२ ॥ फिर उनकी प्रतिष्ठा कर संयम पूर्वक नाना प्रकार के दिव्य गन्ध, चन्दन तथा पुष्पों से उनकी पूजा करे ॥ ४३ ॥

गणेश-पूजन के लिए जो दूब हो वह एक वित्ते की हो, तीन गाँठ से युक्त हो और मूल रहित हो। इन लक्षणों से युक्त एक सौ एक दूर्वा से गणेश जी का पूजन करे अथवा इक्कीस दूर्वा से धूप, दीप तथा नाना प्रकार के नैवेद्य देकर गणेश जी का पूजन करे ॥ ४४-४५ ॥ ताम्बूल आदि उत्तम पूजा-सामग्री से पूजा के पश्चात् स्तुति पूर्वक प्रणाम करे। इस प्रकार तुम्हारा पूजन कर बालचन्द्रमा की पूजा कर, उन्हें अर्घ्यदान देना चाहिए ॥ ४६ ॥ तदनन्तर ब्राह्मणों को मिष्ठान्न, मोदकादि भोजन करा कर स्वयं भी मधुर भोजन करना चाहिए। नमक का त्याग करे ॥ ४७ ॥ तब अपना सारा नियम त्याग दे और गणेश का स्मरण करना चाहिए। इस प्रकार व्रत का अनुष्ठान करने से व्रत का फल प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥ इस प्रकार व्रत करते हुए जब एक वर्ष बीत जाय तब उस व्रत की सम्पूर्णता के लिए उद्यापन (समाप्ति) करना चाहिए ॥ ४९ ॥ उद्यापन में बारह ब्राह्मणों को भोजन करावे तथा एक घड़े पर गणेश की मूर्ति स्थापित कर उसकी पूजा करनी चाहिए ॥५०॥ वेदी पर अष्टदल कमल बना कर वेद-विधि से होम करे, किन्तु वित्त की शठता (कंजूसी) न करे ॥ ५१ ॥ फिर मूर्त्ति के आगे दो स्त्रियों एवं दो बटुकों की विधि-पूर्वक पूजा कर आदर से उन्हें भोजन करावे ॥ ५२ ॥ रात्रि में जागरण करे, प्रातःकाल पुनः पूजन कर फिर गणेश जी से पुनः आने की प्रार्थना कर उनका विसर्जन करे ॥ ५३ ॥ बालक से आशीर्वाद ग्रहण करे तथा उसी से स्वस्तिवाचन भी करावे। और व्रत की सम्पूर्णता के लिए पुष्पाञ्जलि समर्पित करे ॥५४॥

नमस्कारांस्ततः कृत्वा नानाकार्यं प्रकल्पयेत् । एवं व्रतं कृतं येन तस्येप्सितफलं भवेत् ॥५५॥
यो नित्यं श्रद्धया सार्द्धं पूजां चैव स्वशक्तितः । कुर्याच्चव गणेशान ! सर्वकामफलाप्तये ॥५६॥
सिन्दूरैश्चन्दनैश्चैव तण्डुलैः केतकैस्तथा । उपचारैरनेकैश्च पूजयेत्त्वां गणेश्वरम् ॥५७॥
एवं त्वां पूजयेयुर्ये भक्त्या नानोपचारतः । तेषां सिद्धिर्भवेन्नित्यं विघ्ननाशो भवेदिह ॥५८॥
सर्वैर्वर्णैः प्रकर्त्तव्या स्त्रीभिश्चैव विशेषतः । उदयाभिमुखैश्चैव राजभिश्च विशेषतः ॥५९॥
यं यं कामयते यो वै तं तमाप्नोति निश्चितम् । अतः कामयमानेन तेन सेव्यः सदा भवान् ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

शिवेनैवं तदा प्रोक्तं गणेशाय महात्मने । तदानीं दैवतैश्चैव सर्वैश्च ऋषिसत्तमैः ॥६१॥
तथेत्युक्त्वा तु तैः सर्वैर्गणैः शम्भुप्रियैर्मुने ! । पूजितो हि गणाधीशो विधिना परमेण सः ॥६२॥
ततश्चैव गणाः सर्वे प्रणेमुस्ते गणेश्वरम् । समानर्चुर्विशेषेण नानावस्तुभिरादरात् ॥६३॥
गिरिजायाः समुत्पन्नो यश्च हर्षो मुनीश्वर ! । चतुर्भिर्वदनैर्वै तमवर्ण्यं च कथं ब्रुवे ॥६४॥
देवदुन्दुभयो नेदुर्ननृतुश्चाऽप्सरोगणाः । जगुर्गन्धर्वमुख्याश्च पुष्पवर्षं पपात ह ॥६५॥
जगत्स्वास्थ्यं तदा प्राप गणाधीशे प्रतिष्ठिते । महोत्सवो महानासीत् सर्वं दुःखं क्षयं गतम् ॥६६॥
शिवाशिवौ च मोदेतां विशेषेणाति नारद ! । आसीत् सुमङ्गलं भूरि सर्वत्र सुखदायकम् ॥६७॥
ततो देवगणाः सर्वे ऋषीणां च गणास्तथा । समागताश्च ये तत्र जग्मुस्ते तु शिवाज्ञया ॥६८॥

तदनन्तर नमस्कार कर अन्य कार्य सम्पन्न करे। जो लोग इस प्रकार से व्रत का अनुष्ठान करते हैं, उन्हें अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है ॥ ५५ ॥

हे गणेश्वर ! जो श्रद्धा के साथ अपनी शक्ति के अनुसार मनोकामना की सिद्धि के लिए सिन्दूर, चन्दन, चावल एवं केतकी के पुष्प तथा अनेक उपचारों से गणेश की पूजा करेंगे, उनको अवश्य ही सिद्धि प्राप्त होगी तथा उनके विघ्नों का नाश अवश्य हो जायेगा ॥ ५६-५८ ॥ सभी वर्णों को विशेषकर स्त्रीजनों को गणेश का पूजन अवश्य करना चाहिए। इसी प्रकार अपने अभ्युदय की कामना करने वाले राजाओं को विशेष रूप से गणपति का पूजन करना चाहिए ॥५९॥ हे गणेश ! तुम्हारी पूजा से मनुष्य जो-जो कामनाएँ करता है उन्हें निश्चित रूप से प्राप्त करता है, इसलिए अपनी कामना सिद्धि करने वालों को सदैव गणपति का पूजन करना चाहिए ॥ ६० ॥

ब्रह्मा जी बोले—हे नारद ! जब महात्मा शिवजी ने इस प्रकार गणेश से उनकी पूजा-विधि का प्रतिपादन किया, तभी सभी देवताओं एव समस्त ऋषिसत्तमों ने 'तथास्तु' कहकर गणपति का विधिपूर्वक पूजन किया ॥ ६१-६२ ॥ अनन्तर उन गणों ने भी गणेश को प्रणाम किया और आदरपूर्वक अनेक प्रकार की विशेष वस्तुओं से उनका पूजन किया ॥६३॥ हे मुनीश्वर ! उस समय भगवती गिरिजा को, जो अपार हर्ष उत्पन्न हुआ वह तो अवर्णनीय है, मैं उसे अपने चार मुखों से भी वर्णन करने में सर्वथा असमर्थ हूं ॥ ६४ ॥ देवताओं ने दुन्दुभी बजायीं, अप्सराएँ नाचने लगीं, बड़े-बड़े गन्धर्व गान करने लगे और आकाश-मण्डल से पुष्प-वृष्टि होने लगी ॥ ६५ ॥ इस प्रकार गणपति के जी जाने से सारा जगत् सुखी हो गया। संसार में सर्वत्र महा महोत्सव होने लगे एवं सभी के दुःख नष्ट हो गये ॥ ६६ ॥

हे नारद ! उस समय पार्वती तथा शिव को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। चारों ओर अनेक प्रकार के सुखदायक मङ्गल होने लगे ॥ ६७ ॥ फिर तो समस्त देवगण एवं ऋषिगण जो वहाँ पर आये थे, शिव की

प्रशंसन्तः शिवां तत्र गणेशं च पुनः पुनः । शिवं चैव तथा स्तुत्वा कीदृशं युद्धमेव च ॥६९॥
यदा सा गिरिजा देवी कोपहीना बभूव ह । शिवोऽपि गिरिजां तत्र पूर्ववत्सम्प्रपद्यताम् ॥७०॥
चकार विविधं सौख्यं लोकानां हितकाम्यया । स्वात्मारामोऽपि परमो भक्तकार्योद्यतः सदा ॥७१॥
विष्णुश्च शिवमापृच्छ्य ब्रह्माऽहं तं तथैव हि । आगच्छाव स्वधामं च शिवौ संसेव्य भक्तितः ॥७२॥
नारद ! त्वं च भगवन् सङ्गीय शिवयोर्यशः । आगमो भवनं स्वं च शिवौ पृष्ट्वा मुनीश्वर ! ॥७३॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं मया वै शिवयोर्यशः । भवत्पृष्टेन विघ्नेशयशःसम्मिश्रमादरात् ॥७४॥
इदं सुमङ्गलाख्यानं यः शृणोति सुसंयतः । सर्वमङ्गलसंयुक्तः स भवेन्मङ्गलालयः ॥७५॥
अपुत्रो लभते पुत्रं निर्धनो लभते धनम् । भार्यार्थी लभते भार्यां प्रजार्थी लभते प्रजाम् ॥७६॥
आरोग्यं लभते रोगी सौभाग्यं दुर्भगो लभेत् । नष्टपुत्रं नष्टधनं प्रोषिता च पतिं लभेत् ॥७७॥
शोकाविष्टः शोकहीनः स भवेन्नात्र संशयः । इदं गाणेशमाख्यानं यस्य गेहे च तिष्ठति ॥७८॥
सदा मङ्गलसंयुक्तः स भवेन्नात्र संशयः । यात्राकाले च पुण्याहे यः शृणोति समाहितः ॥
सर्वाभीष्टं स लभते श्रीगणेशप्रसादतः ॥७९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे
गणेशगणाधिपपदवीवर्णनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

आज्ञा लेकर भगवती पार्वती तथा गणेश की बारम्बार प्रशंसा शिव की स्तुति तथा वह युद्ध कैसा था, उसका वर्णन करते हुए अपने-अपने स्थान को गये ॥ ६८-६९ ॥ भगवती पार्वती के क्रोध शान्त हो जाने पर शिवजी ने उन्हें पूर्ववत् प्राप्त किया ॥ ७० ॥ इस प्रकार लोकहित की कामना से वे नाना प्रकार का सुख करते हैं । यद्यपि वें स्वात्माराम हैं फिर भी भक्तों के कार्य के लिए सदैव उद्यत रहते हैं ॥ ७१ ॥ अनन्तर विष्णु तथा मैं ब्रह्मा, शङ्कर की भक्तिपूर्वक सेवा कर उनकी आज्ञा ले अपने-अपने स्थानों को गये ॥ ७२ ॥ हे नारद ! तुम भी शिवा-शिव का यश वर्णन कर उनकी आज्ञा ले अपने स्थान को चले आये ॥ ७३ ॥ हे नारद, तुमने जो विघ्नेश्वर का चरित्र मुझसे पूछा था, वह सब चरित्र शिवा-शिव के यश के वर्णन के सहित मैंने तुमसे कहा ॥ ७४ ॥

इस मङ्गलदायक आख्यान को जो लोग संयम पूर्वक प्रेम से सुनते हैं, वे सभी मङ्गलों से युक्त होकर मङ्गलों के स्थान हो जाते हैं ॥ ७५ ॥ इस आख्यान के सुनने से पुत्रहीन को पुत्र, निर्धन को धन, स्त्री की इच्छा वालों को स्त्री एवं प्रजार्थी को प्रजा की प्राप्ति होती है ॥ ७६ ॥ रोगी को आरोग्य, भाग्यहीन को सौभाग्य, नष्ट पुत्र वाले को पुत्र, नष्ट धन वालों को धन की प्राप्ति एवं जिस स्त्री का पति विदेश गया हो उसको पति की सद्यः प्राप्ति होती है ॥ ७७ ॥ शोकयुक्त पुरुष शोक से रहित हो जाता है, इसमें संशय नहीं । यह गणेश का आख्यान जिसके घर में नित्य होता रहता है ॥ ७८ ॥ वह सर्वदा मङ्गल से युक्त होता है, इसमें संशय नहीं । यात्राकाल में, पवित्र पर्व पर जो कोई सावधान होकर इस कथा को सुनते हैं, वे गणेश की प्रसन्नता से अपना सम्पूर्ण मनोरथ प्राप्त कर लेते हैं ॥ ७९ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के चतुर्थ-कुमारखण्ड में गणेश-गणाधिपपदवी वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥

*

एकोनविंशोऽध्यायः

(सभी कार्यों में गणेश को प्रथम पूज्यपद प्रदान)

नारद उवाच

गणेशस्य श्रुता तात! सम्यग्जनिरनुत्तमा। चरित्रमपि दिव्यं वै सुपराक्रमभूपितम् ॥ १ ॥
ततः किमभवत्तात! तत्त्वं वद सुरेश्वर!। शिवाशिवयशःस्फीतं महानन्दप्रदायकम् ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

साधु पृष्टं मुनिश्रेष्ठ! भवता करुणात्मना। श्रूयतां दत्तकर्णं हि वक्ष्येऽहमृषिसत्तम! ॥ ३ ॥
शिवा शिवश्च विप्रेन्द्र! द्वयोश्च सुतयोः परम्। दर्शं दर्शं च तल्लीलां महत्प्रेम समावहत् ॥ ४ ॥
पित्रोर्लालयतोस्तत्र सुखं चाति व्यवर्द्धत। सदा प्रीत्या मुदा चातिखेलनं चक्रतुः सुतौ ॥ ५ ॥
तावेव तनयौ तत्र मातापित्रोर्मुनीश्वर!। महाभक्त्या यदा युक्तौ परिचर्यां प्रचक्रतुः ॥ ६ ॥
षण्मुखे च गणेशे च पित्रोस्तदधिकं सदा। स्नेहो व्यवर्द्धत महाञ्छुक्लपक्षे यथा शशी ॥ ७ ॥
कदाचित्तौ स्थितौ तत्र रहसि प्रेमसंयुतौ। शिवा शिवश्च देवर्षे! सुविचारपरायणौ ॥ ८ ॥

शिवाशिवावूचतुः

विवाहयोग्यौ सञ्जातौ सुताविति च तावुभौ। विवाहश्च कथं कार्यः पुत्रयोरुभयोः शुभम् ॥ ९ ॥
षण्मुखश्च प्रियतमो गणेशश्च तथैव च। इति चिन्तासमुद्विग्नौ लीलानन्दौ बभूवतुः ॥१०॥
स्वपित्रोर्मतमाज्ञाय तौ सुतावपि संस्पृहौ। तदिच्छया विवाहार्थं बभूवतुरथो मुने! ॥११॥
अहं च परिणेष्यामि ह्यहं चैव पुनः पुनः। परस्परं च नित्यं वै विवादे तत्परावुभौ ॥१२॥
श्रुत्वा तद्वचनं तौ च दम्पती जगतां प्रभू। लौकिकाचारमाश्रित्य विस्मयं परमं गतौ ॥१३॥
किं कर्तव्यं कथं कार्यो विवाहविधिरेतयोः। इति निश्चित्य ताभ्यां वै युक्तिश्च रचिताद्भुता ॥१४॥

नारद जी बोले—हे तात! मैंने गणेश जी के श्रेष्ठ जन्म का आख्यान सुना एवं अत्यन्त पराक्रम युक्त उनका दिव्य चरित्र भी सुना ॥१॥ हे सुरेश्वर! उसके बाद क्या हुआ? उसे भली प्रकार कहो, यह आख्यान शिवाशिव के यश से पूर्ण तथा महान् आनन्द को देने वाला है ॥ २ ॥

ब्रह्मा जी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! तुमने संसारी जनों पर दया प्रदर्शित करते हुए ठीक ही पूछा। हे ऋषिसत्तम! अब मैं आगे की कथा कहता हूँ उसे सावधान होकर सुनो ॥ ३ ॥ हे विप्रेन्द्र! शिवा एवं शिव अपने उन दोनों पुत्रों की उत्तम लीला बारम्बार देखते हुए परम प्रसन्न होने लगे ॥ ४ ॥ माता-पिता के दुलार से उनका सुख दिन-रात बढ़ने लगा और वे दोनों बड़ी प्रसन्नता से खेल-कूद करने लगे ॥ ५ ॥ हे महामुनीश्वर! वे दानों पुत्र अत्यन्त भक्ति के साथ माता-पिता की सेवा करते थे ॥ ६ ॥ षण्मुख कार्त्तिकेय तथा गणेश में माता-पिता का प्रतिदिन स्नेह शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगा ॥ ७ ॥ हे देवर्षे! एक समय शिवा एवं शिव एकान्त में बैठे हुए कुछ विचार कर रहे थे ॥ ८ ॥

शिवाशिव बोले—अब हमारे ये दोनों पुत्र विवाह के योग्य हो गये हैं, अतः इन दोनों पुत्रों का किस प्रकार उत्तम रीति से विवाह किया जाये? ॥ ९ ॥ जिस प्रकार षण्मुख अत्यन्त प्रिय हैं, उसी प्रकार गणेश भी जत्यन्त प्रिय हैं। इस प्रकार की चिन्ता करते-करते वे उनकी लीला का आनन्द लेने लगे ॥१०॥ अपने माता-पिता की यह इच्छा देखकर वे दोनों विवाह के लिए सहमत हो गये ॥ ११ ॥ और 'मैं विवाह करूँगा, मैं विवाह करूँगा?' इस प्रकार बारम्बार कहते हुए दोनों आपस में विवाद करने लगे ॥ १२ ॥ जगत् के अधिपति वे दोनों शिवाशिव इस विवाद को सुन लोकाचार की रीति का आश्रय ले परम विस्मित हो गये ॥ १३ ॥ अब क्या करना चाहिए और किस प्रकार इनके विवाह की विधि सम्पन्न की जाये? ऐसा

कदाचित् समये स्थित्वा समाहूय स्वपुत्रकौ । कथयामासतुस्तत्र पुत्रयोः पितरौ तदा ॥१५॥

शिवाशिवावूचतुः

अस्माकं नियमः पूर्वं कृतश्च सुखदो हि वाम् । श्रूयतां सुसुतौ प्रीत्या कथयावो यथार्थकम् ॥१६॥
समौ द्वावपि सत्पुत्रौ विशेषो नात्र लभ्यते । तस्मात् पणः कृतः शन्दः पुत्रयोरुभयोरपि ॥१७॥
यश्चैव पृथिवीं सर्वां क्रान्त्वा पूर्वमुपाव्रजेत् । तस्यैव प्रथमं कार्यों विवाहः शुभलक्षणः ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

तयोरेवं वचः श्रुत्वा शरजन्मा महाबलः । जगाम मन्दिरात्तूर्णं पृथिवीक्रमणाय वै ॥१९॥
गणनाथश्च तत्रैव संस्थितो बुद्धिसत्तमः । सुबुद्धया संविचार्येति चित्त एव पुनः पुनः ॥२०॥
किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यं लङ्घितुं नैव शक्यते । क्रोशमात्रं गतः स्याद् वै गम्यते न मया पुनः ॥२१॥
किं पुनः पृथिवीमेतां क्रान्त्वा चोपार्जितं सुखम् । विचार्येति गणेशस्तु यच्चकार श्रृणुष्व तत् ॥२२॥
स्नानं कृत्वा यथान्यायं समागत्य स्वयं गृहम् । उवाच पितरं तत्र मातरं पुनरेव सः ॥२३॥

गणेश उवाच

आसने स्थापिते ह्यत्र पूजार्थं भवतोरिह । भवन्तौ संस्थितौ तातौ पूर्य्यतां मे मनोरथः ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य पार्वतीपरमेश्वरौ । अस्थातामासने तत्र तत्पूजाग्रहणाय वै ॥२५॥
तेनाथ पूजितौ तौ च प्रक्रान्तौ च पुनः पुनः । एवं च कृतवान् सप्त प्रणामांस्तु तथैव सः ॥२६॥
बद्धाञ्जलिरथोवाच गणेशो बुद्धिसागरः । स्तुत्वा बहुविधैस्तात पितरौ प्रेमविह्वलौ ॥२७॥

विचार करते हुए पार्वती तथा शिव ने एक अद्भुत युक्ति रची ॥ १४ ॥ एक समय पार्वती और शिव ने अपने दोनों पुत्रों को बुलाया और कहा—॥ १५ ॥

शिवाशिव बोले—हमने एक नियम बनाया है, जो तुम दोनों के लिए सुखदायी है। हे मेरे उत्तम पुत्रो ! उसे प्रीति से सुनो, हम लोग सत्य-सत्य कहते हैं ॥ १६ ॥ तुम दोनों ही पुत्र, समान भाव से हमें प्यारे हो, इसमें हमें कुछ विशेष नहीं कहना है, किन्तु हम लोगों ने तुम लोगों के लिए एक प्रतिज्ञा की है, जिससे तुम दोनों का कल्याण होगा ॥ १७ ॥ तुम दोनों में जो कोई भी पृथ्वी की परिक्रमा कर पहले चला आयेगा उसी को विवाह का प्रथम शुभ लक्षण प्राप्त होगा ॥ १८ ॥

ब्रह्मा जी बोले—उन दोनों ने माता-पिता के वचन सुनकर महाबली कार्त्तिकेय बड़ी शीघ्रता से पृथ्वी की परिक्रमा करने के लिए घर से चल पड़े ॥ १९ ॥ किन्तु बुद्धिमान् गणेश जी वहीं स्थित रहे। वे अपनी सद्बुद्धि से अपने चित्त में बारम्बार विचारने लगे ॥ २० ॥ मुझे अब क्या करना चाहिए और कहाँ जाना चाहिए, मेरे लिए तो पृथ्वी की परिक्रमा करना सम्भव नहीं है, क्योंकि एक कोश चलने के बाद मैं पुनः चल नहीं सकता ॥ २१ ॥ फिर पृथ्वी की परिक्रमा तो बड़ी बात है, ऐसा विचार कर हे नारद ! गणेश जी ने जो किया उसे सुनो ॥ २२ ॥ उन्होंने शास्त्रीय रीति से स्नान किया फिर घर आकर माता-पिता से बोले- ॥ २३ ॥

गणेश जी बोले—मैंने आप दोनों माता-पिता की पूजा के लिए आसन लगा दिया है। आप दोनों उस आसन पर बैठ जाइए और मेरी पूजा ग्रहण कर मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिए ॥ २४ ॥

ब्रह्मा जी बोले—गणेश जी की बात सुनकर पार्वती और परमेश्वर पूजा ग्रहण करने के लिए एक आसन पर बैठ गये ॥ २५ ॥ गणेश जी ने उन दोनों का पूजन किया फिर बारम्बार उनकी परिक्रमा की, इस प्रकार सात परिक्रमा तथा सात बार प्रणाम किया ॥ २६ ॥ हे तात ! बुद्धिसागर गणेश जी ने उनकी बारम्बार स्तुति कर हाथ जोड़कर प्रेम-विह्वल हुए अपने माता-पिता से कहा—॥ २७ ॥

गणेश उवाच

भो मातर्भो पितरस्त्वं च श्रृणु मे परमं वचः । शीघ्रं चैवात्र कर्तव्यो विवाहः शोभनो मम ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा गणेशस्य महात्मनः । महाबुद्धिनिधिं तं तौ पितरावूचतुस्तदा ॥२९॥

शिवाशिवावूचतुः

प्रक्रामेत भवान् सम्यक् पृथिवीं च सकाननाम् । कुमारो गतवांस्तत्र त्वं गच्छ पुर आव्रज ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा पित्रोर्गणपतिर्द्रुतम् । उवाच नियतस्तत्र वचनं क्रोधसंयुतः ॥३१॥

गणेश उवाच

भो मातर्भो पितर्धर्मरूपौ प्राज्ञौ युवां मतौ । धर्मतः श्रूयतां सम्यग् वचनं मम सत्तमौ ॥३२॥
मया तु पृथिवी क्रान्ता सप्तवारं पुनः पुनः । एवं कथं ब्रुवाते वै पुनश्च पितराविह ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

तद्वचस्तु तदा श्रुत्वा लौकिकीं गतिमाश्रितौ । महालीलाकरौ तत्र पितरावूचतुश्च तम् ॥३४॥

पितरावूचतुः

कदा क्रान्ता त्वया पुत्र ! पृथिवी सुमहत्तरा । सप्तद्वीपा समुद्रान्ता महद्भिर्गहनैर्युता ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

तयोरेवं वचः श्रुत्वा शिवाशङ्करयोर्मुने । महाबुद्धिनिधिः पुत्रो गणेशो वाक्यमब्रवीत् ॥३६॥

गणेश उवाच

भवतोः पूजनं कृत्वा शिवाशङ्करयोरहम् । स्वबुद्ध्या हि समुद्रान्तपृथ्वीकृतपरिक्रमः ॥३७॥
इत्येवं वचनं वेदे शास्त्रे वा धर्मसञ्चये । वर्त्तते किं च तत्तथ्यं न हि किं तथ्यमेव वा ॥३८॥

गणेश जी बोले—हे माता एवं हे पिता ! आप दोनों मेरी बात सुनें, अब आप दोनों मेरा सुन्दर विवाह कर देवें ॥ २८ ॥

ब्रह्मा जी बोले—इस प्रकार महा बुद्धिमान् गणेश जी के वचन सुनकर वे दोनों महात्मा गणेश से बोले ॥ २९ ॥

शिवाशिव बोले—तुम भी वन पर्वत समेत पृथ्वी की परिक्रमा कर शीघ्र चले आओ, अभी-अभी कुमार गये हैं, तुम शीघ्रता से जाओ और पहले चले आओ ॥ ३० ॥

ब्रह्मा जी बोले—माता-पिता के इस प्रकार के वचन सुन गणेश संयम से किन्तु क्रोधपूर्वक बोले ॥३१॥

गणेश जी बोले—हे माता एवं हे पिता ! तुम दोनों ही धर्मरूप हो और अत्यन्त विद्वान् भी हो, अतः हे श्रेष्ठ माता-पिता ! मेरी धर्मसम्मत बात सुनो ॥ ३२ ॥ मैंने तो एक बार ही नहीं, अपितु सात बार पृथ्वी की परिक्रमा की है फिर आप कैसे कहते हैं कि पृथ्वी की परिक्रमा कर आओ ॥ ३३ ॥

ब्रह्मा जी बोले—तदनन्तर गणेश जी के वचन सुन महालीला करने वाले वे दोनों लौकिक रीति का आश्रय करते हुए बोले– ॥ ३४ ॥

शिवाशिव बोले–हे पुत्र ! तुमने इस महती पृथ्वी की परिक्रमा कब की ? यह सात द्वीपवाली पृथ्वी समुद्र पर्यन्त फैली हुई है और अनेक घोर जगलों से व्याप्त है फिर इतनी विशाल पृथ्वी की परिक्रमा तुमने इतनी जल्दी कैसे कर ली ? ॥ ३५ ॥

ब्रह्मा जी बोले—शिवाशिव के ऐसे वचन सुनकर उनके पुत्र महाबुद्धिमान् गणेश जी बोले– ॥ ३६ ॥

गणेश जी बोले—मैंने आप दोनों जैसे माता तथा पिता का पूजन किया है, इसलिए बुद्धि से मैंने समुद्रान्त पृथ्वी की परिक्रमा कर ली ॥ ३७ ॥ इस प्रकार के वचन वेदों, शास्त्रों तथा धर्मसंग्रह ग्रन्थों में

पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रान्तिं च करोति यः । तस्य वै पृथिवीजन्यफलं भवति निश्चितम् ॥३९॥
अपहाय गृहे यो वै पितरौ तीर्थमाव्रजेत् । तस्य पापं तथा प्रोक्तं हनने च तयोर्यथा ॥४०॥
पुत्रस्य च महत्तीर्थं पित्रोश्चरणपङ्कजम् । अन्यतीर्थं तु दूरे वै गत्वा सम्प्राप्यते पुनः ॥४१॥
इदं सन्निहितं तीर्थं सुलभं धर्मसाधनम् । पुत्रस्य च स्त्रियाश्चैव तीर्थं गेहे सुशोभनम् ॥४२॥
इति शास्त्राणि वेदाश्च भाषन्ते यन्निरन्तरम् । भवद्भ्यां तत्प्रकर्त्तव्यमसत्यं पुनरेव च ॥४३॥
भवदीयं त्विदं रूपमसत्यं च भवेदिह । तदा वेदोऽप्यसत्यो वै भवेदिति न संशयः ॥४४॥
शीघ्रं च भवितव्यो मे विवाहः क्रियतां शुभः । अथवा वेदशास्त्रं च व्यलीकं कथ्यतामिति ॥४५॥
द्वयोः श्रेष्ठतमं मध्ये यत्स्यात् सम्यग् विचार्य तत् । कर्तव्यं च प्रयत्नेन पितरौ धर्मरूपिणौ ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा पार्वतीपुत्रः स गणेशः प्रकृष्टधीः । विरराम महाज्ञानी तदा बुद्धिमतां वरः ॥४७॥
तौ दम्पती च विश्वेशौ पार्वतीशङ्करौ तदा । इति श्रुत्वा वचस्तस्य विस्मयं परमं गतौ ॥४८॥
ततः शिवा शिवश्चैव पुत्रं बुद्धिविचक्षणम् । संप्रशस्योचतुः प्रीत्या तौ यथार्थप्रभाषिणम् ॥४९॥

शिवाशिवावूचतुः

पुत्र ! ते विमला बुद्धिः समुत्पन्ना महात्मनः । त्वयोक्तं यद्वचश्चैव तत्तथैव च नाऽन्यथा ॥५०॥
समुत्पन्ने च दुःखे च यस्य बुद्धिर्विशिष्यते । तस्य दुःखं विनश्येत सूर्ये दृष्टे यथा तमः ॥५१॥
बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् । कूपे सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः ॥५२॥

लिखा गया है, अतः आप ही बतावें कि क्या यह वचन सत्य है अथवा असत्य ? ॥ ३८ ॥ जो माता-पिता का पूजन कर उनकी परिक्रमा कर लेता है उसे पृथ्वी परिक्रमा का निश्चित फल प्राप्त हो जाता है ॥३९॥ जो पुत्र माता-पिता को छोड़कर तीर्थ करने के लिए जाता है, उसको मातृ-हत्या एवं पितृ-हत्या जैसा पाप लगता है ॥ ४० ॥

माता-पिता का चरण ही पुत्र के लिए सबसे बड़ा तीर्थ है इसलिए उनकी सेवा करे, अन्य तीर्थ तो दूर जाने पर क्लेश से प्राप्त होते हैं ॥ ४१ ॥ यह मातृ-पितृ सेवारूप तीर्थ तो सदा सन्निकट और सभी प्रकार से सुलभ है, यही सब धर्मों का साधन भी है। पुत्र के लिए माता-पिता तथा स्त्री के लिए पति सर्वोत्तम तीर्थ है ॥ ४२ ॥ इस प्रकार की बात वेद और धर्मशास्त्र निरन्तर कहते हैं, यदि ऐसा नहीं है तो आप लोग उसे असत्य सिद्ध कर दीजिए ॥ ४३ ॥ वेद एवं धर्मशास्त्र तो आप लोगों के स्वरूप हैं, फिर तो आपका स्वरूप ही असत्य हो जायेगा। वेद के असत्य होने में किसी को संशय भी न होगा ॥ ४४ ॥ अतः अब मेरा शुभ विवाह शीघ्रता से कीजिए अथवा वेद-शास्त्र की मर्यादा को निरर्थक कर दीजिए ॥४५॥ आप दोनों ही हमारे माता-पिता हैं, धर्मस्वरूप हैं, इन दोनों में जो श्रेष्ठ हो उसी को विचार पूर्वक प्रयत्न से कीजिए ॥ ४६ ॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर महा बुद्धिमान्, महाज्ञानी तथा ज्ञानियों में सर्व-श्रेष्ठ पार्वतीपुत्र गणेश जी मौन हो गये ॥ ४७ ॥ तब विश्व के माता-पिता पार्वती-परमेश्वर गणेश जी के वचन सुन अत्यन्त विस्मित हो गये ॥ ४८ ॥ अनन्तर शिवाशिव अपने पुत्र की विलक्षण बुद्धि देखकर उनकी प्रशंसा करते हुए यथार्थ भाषण करने वाले गणेश से प्रेमपूर्वक बोले– ॥ ४९ ॥

शिवाशिव बोले—हे पुत्र ! तुम्हें महात्माओं जैसी निर्मल बुद्धि प्राप्त हुई है, तुमने जो बात कही है, सो वैसी ही है, वह अन्यथा होने वाली नहीं ॥ ५० ॥ संकट काल उपस्थित होने पर भी जिसकी बुद्धि में विशेषता बनी रहती है, उसका दुःख उसी प्रकार दूर हो जाता है जैसे सूर्योदय होने से अन्धकार नष्ट हो जाता है ॥ ५१ ॥ जिसके पास बुद्धि है, उसी के पास बल भी है, जो बुद्धिहीन है उसे बल कहाँ से प्राप्त होगा। देखो, बुद्धि के बल से किसी खरगोश ने मदोन्मत्त सिंह को कुएँ में डाल कर नष्ट कर दिया ॥ ५२ ॥

वेद-शास्त्र-पुराणेषु बालकस्य यथोदितम् । त्वया कृतं तु तत्सर्वं धर्मस्य परिपालनम् ।।५३।।
सम्यक् कृतं त्वया यच्च तत्केनापि भवेदिह । आवाभ्यां मानितं तच्च नान्यथा क्रियतेऽधुना ।।५४।।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा तौ समाश्वास्य गणेशं बुद्धिसागरम् । विवाहकरणे चास्य मतिं चक्रतुरुत्तमाम् ।।५५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे गणेशविवाहोपक्रमो नामैकोनविंशोऽध्यायः ।। १९ ।।

विंशोऽध्यायः

(गणेश का विवाह और कुमार का रूठ कर क्रौञ्च पर्वत पर गमन)

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र विश्वरूपः प्रजापतिः । तदुद्योगं संविचार्य सुखमाप प्रसन्नधीः ।। १ ।।
विश्वरूपप्रजेशस्य दिव्यरूपे सुते उभे । सिद्धिबुद्धिरिति ख्याते शुभे सर्वाङ्गशोभने ।। २ ।।
ताभ्यां चैव गणेशस्य गिरिजा शङ्करः प्रभू । महोत्सवं विवाहं च कारयामासतुर्मुदा ।। ३ ।।
सन्तुष्टा देवताः सर्वास्तद्विवाहे समागमन् । यथा चैव शिवस्यैव गिरिजाया मनोरथः ।। ४ ।।
तथा च विश्वकर्माऽसौ विवाहं कृतवांस्तथा । तथा च ऋषयो देवा लेभिरे परमां मुदम् ।। ५ ।।
गणेशोऽपि तदा ताभ्यां सुखं चैवाप्तिचिन्तकम् । प्राप्तवांश्च मुने ! तत्तु वर्णितुं नैव शक्यते ।। ६ ।।
कियता चैव कालेन गणेशस्य महात्मनः । द्वयोः पत्न्योश्च द्वौ दिव्यौ तस्य पुत्रौ बभूवतुः ।। ७ ।।
सिद्धेर्गणेशपत्न्यास्तु क्षेमनामा सुतोऽभवत् । बुद्धेर्लाभाभिधः पुत्रो ह्यासीत् परमशोभनः ।। ८ ।।
एवं सुखमचिन्त्यं वै भुञ्जाने हि गणेश्वरे । आजगाम द्वितीयश्च क्रान्त्वा पृथ्वीं सुतस्तदा ।। ९ ।।

वेद शास्त्रों में जैसे बालक के कर्त्तव्य कहे गये हैं हे तात ! तुमने उसी प्रकार से धर्म का पालन किया ।। ५३ ।। तुमने जैसा उत्तम कार्य किया वैसा कार्य कोई नहीं कर सकता । हम दोनों ने तुम्हारी बात मान ली, अब उसे कोई अन्यथा नहीं कर सकता ।। ५४ ।।

ब्रह्मा जी बोले—ऐसा कहकर पार्वती एवं परमेश्वर ने बुद्धिसागर गणेश को आश्वस्त कर प्रथम उनके विवाह करने का विचार करने लगे ।। ५५ ।।

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के चतुर्थ-कुमारखण्ड में गणेशविवाहोपक्रम नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।। १९ ।।

*

ब्रह्माजी बोले—विश्वरूप नामक प्रजापति, पुत्रों के विवाह के लिए शिवाशिव का विचार जानकर बड़े प्रसन्न तथा सुखी हुए ।। १ ।। उन विश्वरूप प्रजापति की सिद्धि-बुद्धि नामक दो कन्याएँ थीं, जो सर्वाङ्ग सुन्दर एवं दिव्य रूप वाली थीं ।। २ ।। गिरिजा एवं महेश्वर ने उन सिद्धि-बुद्धि नामक कन्याओं के साथ गणेश जी का महोत्सव पूर्वक विवाह सम्पन्न कराया ।। ३ ।। सभी देवता परम सन्तुष्ट हो उस विवाह में आये, जैसा कि पार्वती एवं शंकर का मनोरथ था ।। ४ ।। विश्वकर्मा ने बड़ी प्रसन्नता के साथ गणेश का अपनी कन्याओं के साथ विवाह किया । इस विवाह से देवता तथा ऋषिगण अत्यन्त प्रसन्न हो गये ।। ५ ।। गणेश को भी उन दोनों भार्याओं से अचिन्त्य सुख की प्राप्ति हुई । हे मुने ! उस सुख को कौन वर्णन कर सकता है ।। ६ ।। कुछ समय बीतने के उपरान्त गणेश को उन दोनों भार्याओं से दो सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुए ।। ७ ।। सिद्धि नामक गणेश की पत्नी से क्षेमनामक पुत्र तथा बुद्धि नामक भार्या से परमसुन्दर लाभ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ।।८।। इस प्रकार जब गणेश जी अचिन्त्य सुखोपभोग करने लगे तब शिव के द्वितीय पुत्र कार्त्तिकेय पृथ्वी की परिक्रमा कर वहाँ आये ।। ९ ।।

तावच्च नारदेनैव प्राप्तो गेहे महात्मना । यथार्थं वच्मि नोऽसत्यं न छलेन न मत्सरात् ॥१०॥
पितृभ्यां तु कृतं यच्च शिवया शङ्करेण ते । तन्न कुर्यात् परो लोके सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम्॥११॥
निष्कास्य त्वां कुक्रमणं मिषमुत्पाद्य यत्नतः । गणेशस्य वरोऽकारि विवाहः परशोभनः ॥१२॥
गणेशस्य कृतोद्वाहो लब्धवान् स्त्रीद्वयं मुदा । विश्वरूपप्रजेशस्य कन्यारत्नं महोत्तमम् ॥१३॥
पुत्रद्वयं ललाभाऽसौ द्वयोः पत्न्योः शुभाङ्गयोः । सिद्धेः क्षेमं तथा बुद्धेर्लाभं सर्वसुखप्रदम् ॥१४॥
पत्न्योर्द्वयोर्गणेशोऽसौ लब्ध्वा पुत्रद्वयं शुभम् । मातापित्रोर्मतेनैव सुखं भुङ्क्ते निरन्तरम् ॥१५॥
भवता पृथिवी क्रान्ता ससमुद्रा सकानना । तच्छलाज्ञावशात्तात तस्य जातं फलं त्विदम्॥१६॥
पितृभ्यां क्रियतामस्मै छलं तात ! विचार्यताम् । स्वस्वामिभ्यां विशेषेण ह्यन्यः किन्न करोति वै ॥१७॥
असम्यक् च कृतं ताभ्यां त्वत्पितृभ्यां हि कर्म ह । विचार्यतां त्वयाऽपीह मच्चित्ते न शुभं मतम् ॥१८॥
दद्याद्यदि गरं माता विक्रीणीयात् पिता यदि । राजा हरति सर्वस्वं कस्मै किं च ब्रवीतु वै ॥१९॥
येनैवेदं कृतं स्याद्वै कर्मानर्थकरं परम् । शान्तिकामः सुधीस्तात तन्मुखं न विलोकयेत्॥२०॥
इति नीतिः श्रुतौ प्रोक्ता स्मृतौ शास्त्रेषु सर्वतः । निवेदिता च सा तेऽद्य यथेच्छसि तथा कुरु ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा नारद ! त्वं तु महेश्वरमनोगतिः । तस्मै तथा कुमाराय वाक्यं मौनमुपागतः ॥२२॥
स्कन्दोऽपि पितरं नत्वा कोपाग्निज्वलितस्तदा । जगाम पर्वतं क्रौञ्चं पितृभ्यां वारितोऽपि सन् ॥२३॥

उसी समय कार्त्तिकेय के घर पहुँचते ही महात्मा नारद उनके घर गये। और पहुँचते ही बोले—हे कुमार कार्त्तिकेय ! मैं यथार्थ कहता हूँ; किसी छल या मत्सर से नहीं कहता ॥ १० ॥ तुम्हारे माता-पिता शिवाशिव ने जो कार्य किया है इस लोक में वैसा कोई और नहीं कर सकता, यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ ॥ ११ ॥ उन लोगों ने पृथ्वी की परिक्रमा का बहाना ढूँढ़ कर तुम्हें तो घर के बाहर निकाल दिया और इधर गणेश जी का विवाह कर दिया ॥ १२ ॥ इस समय गणेश जी का विवाह हो गया है, उन्हें विश्वरूप प्रजापति की अत्यन्त मनोहर दो कन्यारत्न, स्त्री के रूप में प्राप्त हुई हैं इतना ही नहीं, उनको सुलक्षण दोनों पत्नियों में सिद्धि से क्षेम तथा बुद्धि से लाभ नामक परम सुखकारी दो पुत्र भी उत्पन्न हो गये हैं ॥ १३-१४ ॥ हे तात ! इस प्रकार गणेश जी अपनी पत्नियों में दो पुत्र प्राप्त कर माता-पिता के मत में रहकर निरन्तर सुखोपभोग करते हैं ॥ १५ ॥ इधर तुमने वन पर्वत सहित सारी पृथ्वी छान डाली। अतः छलपूर्वक दी गयी माता-पिता की आज्ञा का यह दुःखद फल तुम्हें प्राप्त हुआ ॥१६॥ हे तात ! तुम्हारे माता-पिता ने इन गणेश के लिए कैसा छल किया है, इस पर विचार करो। जब तुम्हारे माता-पिता ने ही ऐसा छल किया है, तो दूसरा क्यों नहीं करेगा ॥ १७ ॥ तुम्हारे माता-पिता ने यह बड़ा अनुचित कार्य किया है, तुम भी इस पर विचार करो, मेरे विचार से तो यह मत ठीक नहीं ज्ञात होता ॥ १८ ॥ यदि माता ही विष देने के लिए तैयार हो और यदि पिता ही पुत्र का विक्रय करना चाहे अथवा राजा ही सर्वस्व हरण पर तुल जाये तो फिर यह उपालम्भ किससे दिया जा सकता है ॥ १९ ॥ हे तात ! चाहे जिस-किसी ने भी ऐसा अनर्थकारी काम किया है, शान्ति की इच्छा रखने वाले बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि ऐसे लोगों का कभी मुख न देखे ॥ २० ॥ यह नीति श्रुतियों एवं स्मृतियों में तथा धर्मशास्त्रों में सर्वत्र ही कही गयी है। मैंने सारी बात कह दी, अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसी करो ॥ २१ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! महेश्वर के मन की गति जानने वाले तुमने इतना वाक्य कह कर मौन धारण कर लिया ॥ २२ ॥ इधर कुमार भी माता-पिता को प्रणाम कर क्रोधाग्नि से जलते हुए शिवाशिव

वारणे च कृते त्वद्य गम्यते च कथं त्वया । इत्येवं च निषिद्धोऽपि प्रोच्य नेति जगाम सः ॥२४॥
न स्थातव्यं मया तातौ क्षणमप्यत्र किञ्चन । यद्येवं कपटं प्रीतिमपहाय कृतं मयि ॥२५॥
एवमुक्त्वा गतस्तत्र मुने ! सोऽद्यापि वर्तते । दर्शनेनैव सर्वेषां लोकानां पापहारकः ॥२६॥
तद्दिनं हि समारभ्य कार्तिकेयस्य तस्य वै । शिवपुत्रस्य देवर्षे कुमारत्वं प्रतिष्ठितम् ॥२७॥
तन्नाम शुभदं लोके प्रसिद्धं भुवनत्रये । सर्वपापहरं पुण्यं ब्रह्मचर्यप्रदं परम् ॥२८॥
कार्तिक्यां च सदा देवा ऋषयश्च सतीर्थकाः । दर्शनार्थं कुमारस्य गच्छन्ति च मुनीश्वराः ॥२९॥
कार्तिक्यां कृत्तिकासङ्गे कुर्याद्यः स्वामिदर्शनम् । तस्य पापं दहेत् सर्वं चित्तेप्सितफलं लभेत् ॥३०॥
उमाऽपि दुःखमापन्ना स्कन्दस्य विरहे सति । उवाच स्वामिनं दीना तत्र गच्छ मया प्रभो ! ॥३१॥
तत्सुखार्थं स्वयं शम्भुर्गतः स्वांशेन पर्वते । मल्लिकार्जुननामाऽऽसीज्ज्योतिर्लिङ्गं सुखावहम् ॥३२॥
अद्यापि दृश्यते तत्र शिवया सहितः शिवः । सर्वेषां निजभक्तानां कामपूरः सतां गतिः ॥३३॥
तमागतं स विज्ञाय कुमारः सशिवं शिवम् । स विरज्य ततोऽन्यत्र गन्तुमासीत् समुत्सुकः ॥३४॥
देवैश्च मुनिभिश्चैव प्रार्थितः सोऽपि दूरतः । योजनत्रयमुत्सृज्य स्थितः स्थाने च कार्तिकः ॥३५॥
पुत्रस्नेहातुरौ तौ वै शिवौ पर्वणि पर्वणि । दर्शनार्थं कुमारस्य तस्य नारद ! गच्छतः ॥३६॥
अमावास्यादिने शम्भुः स्वयं गच्छति तत्र ह । पूर्णमासीदिने तत्र पार्वती गच्छति ध्रुवम् ॥३७॥

के बारम्बार मना करने पर भी क्रौञ्च पर्वत पर चले गये ॥ २३ ॥ माता-पिता ने कहा—कार्त्तिकेय ! हम लोगों के मना करने पर भी तुम क्यों नहीं मानते ? किन्तु इस प्रकार बारम्बार मना करने पर भी कुमार चलने को उद्यत हो गये और कहा—॥ २४ ॥ हे तातो ! मैं अब यहाँ क्षण मात्र भी नहीं रह सकता क्योंकि, आपने मुझ पर प्रीति न कर कपट का व्यवहार किया है ॥ २५ ॥

हे नारद ! दर्शन मात्र से ही सबका पाप हरण करने वाले कुमार कार्त्तिकेय ऐसा कह कर उस स्थान को छोड़ क्रौञ्च पर्वत पर चले गये, तभी से आज तक उनका निवास वहीं पर है ॥ २६ ॥ उसी दिन से हे नारद ! शिवपुत्र कार्त्तिकेय कुमार ही रह गये ॥ २७ ॥ उनका यह कुमार नाम लोक में बड़ा सुखदायक तथा प्रसिद्ध है। यह नाम सब पापों को नष्ट करने वाला, पुण्यस्वरूप तथा ब्रह्मचर्य प्रदान करने वाला है ॥ २८ ॥ हे मुनीश्वर ! कार्त्तिक मास में सभी देवता, ऋषि तथा मुनिगण इस तीर्थ में कुमार के दर्शन के निमित्त जाते हैं ॥ २९ ॥ को कार्त्तिक मास में कृत्तिका नक्षत्र आने पर उनका दर्शन करते हैं, कुमार उनके सभी पापों को नष्ट कर देते हैं, और उन्हें इच्छित फल की प्राप्ति होती है ॥ ३० ॥ तब स्कन्द के विरह से पार्वती को बड़ा हार्दिक कष्ट हुआ और वे दीन होकर शिवजी से कहने लगीं—हे प्रभो ! मेरे साथ आप वहाँ चलिए ॥ ३१ ॥ उनको सुखी करने के लिए शङ्कर जी स्वयं अपने अंश से क्रौञ्च पर्वत पर गये, जो आज भी मल्लिकार्जुन नामक ज्योतिर्लिङ्ग से कार्त्तिकेय को सुख देने के लिए वहाँ प्रतिष्ठित हैं ॥ ३२ ॥ अब भी वहाँ शिवा के सहित अपने भक्तों की अभिलाषा पूर्ण करने वाले तथा सज्जनों को मुक्ति देने वाले शिवजी दिखाई पड़ते हैं ॥ ३३ ॥ तब कुमार उन दोनों को वहाँ आया देख विरक्त हो वहाँ से अन्यत्र जाने को उद्यत हो गये ॥ ३४ ॥ फिर देवताओं तथा मुनियों के द्वारा बहुत प्रार्थना करने पर उस स्थान से तीन योजन दूर जाकर निवास करने लगे ॥ ३५ ॥ तथापि हे नारद ! पुत्र के स्नेह से आतुर हुए वे दोनों शिवाशिव पर्व-पर्व पर वहाँ जाते रहते हैं ॥ ३६ ॥ हर अमावस्या को वहाँ शिव जी जाते हैं एवं प्रति पूर्णमासी के दिन निश्चित रूप से पार्वती उनके दर्शन के लिए जाती हैं ॥ ३७ ॥

यद्यत्तस्य च वृत्तान्तं भवत्पृष्टं मुनीश्वर ! । कार्तिकस्य गणेशस्य परमं कथितं मया ॥३८॥
एतच्छ्रुत्वा नरो धीमान् सर्वपापैः प्रमुच्यते । शोभनाँल्लभते कामानीप्सितान् सकलान् सदा ॥३९॥
यः पठेत् पाठयेद्वाऽपि शृणुयाच्छ्रावयेत्तथा । सर्वान् कामानवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥४०॥
ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी क्षत्रियो विजयी भवेत् । वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः सत्समतामियात् ॥४१॥
रोगी रोगात् प्रमुच्येत भयान्मुच्येत भीतियुक् ।
भूतप्रेतादिबाधाभ्यः पीडितो न भवेन्नरः ॥४२॥
एतदाख्यानमनघं यशस्यं सुखवर्द्धनम् । आयुष्यं स्वर्ग्यमतुलं पुत्रपौत्रादिकारकम् ॥४३॥
अपवर्गप्रदं चापि शिवज्ञानप्रदं परम् । शिवाशिवप्रीतिकरं शिवभक्तिविवर्द्धनम् ॥४४॥
श्रवणीयं सदा भक्तैर्निष्कामैश्च मुमुक्षुभिः । शिवाद्वैतप्रदं चैतत् सदाशिवमयं शिवम् ॥४५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे
गणेशविवाहवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

समाप्तोऽयं रुद्रसंहितान्तर्गतश्चतुर्थः कुमारखण्डः ।

हे मुनीश्वर ! तुमने जो कार्त्तिकेय तथा गणेश्वर का वृत्तान्त पूछा मैंने तुमसे वह सारा वृत्तान्त वर्णन किया ॥ ३८ ॥ इस कथा को सुनकर सभी लोग अपने पापों से छूट जाते हैं और अपने ईप्सित सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त करते हैं ॥ ३९ ॥ जो इस कथा को पढ़ते-पढ़ाते, सुनते-सुनाते हैं, निःसन्देह वे अपना मनोरथ प्राप्त कर लेते हैं, इसमें विचार की आवश्यकता नहीं ॥ ४० ॥ ब्राह्मण ब्रह्मवर्चस्वी, क्षत्रिय विजयी, वैश्य धन-धान्य से पूर्ण तथा शूद्र सत्समता को प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥ रोगी रोग से एवं भयभीत पुरुष भय से छुटकारा पा जाता है । इस वृत्तान्त को सुनने-सुनाने वाला पुरुष कभी भी भूत, प्रेत तथा पिशाचजन्य पीड़ा से पीड़ित नहीं होता ॥ ४२ ॥

यह पापरहित आख्यान मनुष्यों के यश तथा सुख को बढ़ाने वाला है । आयु, स्वर्ग तथा अनन्त पुत्र-पौत्रादि प्रदान करने वाला है ॥ ४३ ॥ यह मोक्ष एवं शिवविषयक ज्ञान को देने वाला शिवाशिव का प्रीतिकारक तथा शिव की भक्ति को बढ़ाने वाला है ॥ ४४ ॥ भक्तों को तथा निष्काम मुमुक्षुओं को सदा इस आख्यान का श्रवण करना चाहिए । यह शिवजी का अद्वैत ज्ञान देने वाला, सदा कल्याण कारक तथा शिवमय है ॥ ४५ ॥

इस प्रकार आचार्य पण्डित शिवदत्तमिश्र शास्त्रीकृत 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के चतुर्थ-कुमारखण्ड में गणेश-विवाह वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २० ॥

इस प्रकार द्वितीय रुद्रसंहिता में चतुर्थ कुमारखण्ड समाप्त ॥ ४ ॥

*

* ॐ नमः शिवाय *

श्रीशिवमहापुराणम्

आचार्य-पण्डित-श्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रिकृत-
'शिवदत्ती' भाषाटीकासहितम्

२. रुद्रसंहिता (युद्धखण्डः ५)

प्रथमोऽध्यायः

(त्रिपुरासुर के पुत्र तारकासुर द्वारा विद्युन्माली का तप करना और
ब्रह्मा से तीन पुर की वर-प्राप्ति)

नारद उवाच

श्रुतमस्माभिरानन्दप्रदं चरितमुत्तमम् । गृहस्थस्यैव शम्भोश्च गणस्कन्दादिसत्कथम् ॥ १ ॥
इदानीं ब्रूहि सुप्रीत्या चरितं वरमुत्तमम् । शङ्करो हि यथा रुद्रो जघान विहरन् खलान् ॥ २ ॥
कथं ददाह भगवान् नगराणि सुरद्विषाम् । त्रीण्येकेन च बाणेन युगपत्केन वीर्यवान् ॥ ३ ॥
एतत्सर्वं समाचक्ष्व चरितं शशिमौलिनः । देवर्षिसुखदं शश्वन्मायाविहरतः प्रभोः ॥ ४ ॥

ब्रह्मोवाच

एवमेतत् पुरा पृष्टो व्यासेन ऋषिसत्तमः । सनत्कुमारं प्रोवाच तदेव कथयाम्यहम् ॥ ५ ॥

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास महाप्राज्ञ ! चरितं शशिमौलिनः । यथा ददाह त्रिपुरं बाणेनैकेन विश्वहृत् ॥ ६ ॥
शिवात्मजेन स्कन्देन निहते तारकासुरे । तत्पुत्रास्तु त्रयो दैत्याः पर्यतप्यन् मुनीश्वर ! ॥ ७ ॥
तारकाख्यस्तु तज्ज्येष्ठो विद्युन्माली च मध्यमः । कमलाक्षः कनीयांश्च सर्वे तुल्यबलाः सदा ॥ ८ ॥
जितेन्द्रियाः सुसन्नद्धाः संयताः सत्यवादिनः । दृढचित्ता महावीरा देवद्रोहिण एव च ॥ ९ ॥

नारद जी बोले—हे ब्रह्मन् ! हमने गणेश तथा स्कन्द की कथा से युक्त गृहस्थ शिवजी का आनन्ददायक उत्तम चरित्र श्रवण किया ॥ १ ॥ अब आप पार्वती के साथ विहार करते हुए शिवजी ने जिस प्रकार दुष्टों का विनाश किया, उस श्रेष्ठ एवं उत्तम चरित्र का प्रेमपूर्वक वर्णन कीजिए ॥ २ ॥ महाबली भगवान् शङ्कर ने एक ही बाण से किस प्रकार एक ही साथ दैत्यों के तीनों पुरों को जलाया ॥ ३ ॥ आप माया से निरन्तर विहार करने वाले भगवान् शङ्कर के उस चरित्र का वर्णन कीजिए, जिससे देवताओं तथा ऋषियों को अत्यन्त सुख प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! पूर्वकाल में वेदव्यास जी ने सनत्कुमार महर्षि से यही बात पूछी थी, अतः सनत्कुमार ने उनसे जैसा कहा था, वहीं बात मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ५ ॥

सनत्कुमार बोले—हे महाविद्वान् व्यास जी, तुम शङ्कर के चरित्र को सुनो । उन्होंने जिस प्रकार एक ही बाण से त्रिपुर को भस्म किया था ॥ ६ ॥ जब शिव-पुत्र कार्त्तिकेय ने तारकासुर को मार डाला तब हे मुनीश्वर ! उसके पुत्र तीनों दैत्य महा घोर तप करने लगे ॥ ७ ॥ उनमें ज्येष्ठ का नाम तारकाक्ष, मध्यम का नाम विद्युन्माली तथा सबसे छोटे का नाम कमलाक्ष था । ये तीनों समान पराक्रमवाले, जितेन्द्रिय,

ते तु मेरुगुहां गत्वा तपश्चक्रुर्महाद्भुतम् । त्रयः सर्वान् सुभोगांश्च विहाय सुमनोहरान् ॥१०॥
वसन्ते सर्वकामांश्च गीतवादित्रनिःस्वनम् । विहाय सोत्सवं तेपुस्त्रयस्ते तारकात्मजाः ॥११॥
ग्रीष्मे सूर्यप्रभां जित्वा दिक्षु प्रज्वाल्य पावकम् । तन्मध्यसंस्थाः सिद्धयर्थं जुहुवुर्हव्यमादरात् ॥१२॥
महाप्रतापपतिताः सर्वेऽप्यासन् सुमूर्च्छिताः । वर्षासु गतसंत्रासा वृष्टिं मूर्द्धन्यधारयन् ॥१३॥
शरत्काले प्रवृत्तं तु भोजनं च बुभुक्षिताः । रम्यं स्निग्धं स्थिरं हृद्यं फलं मूलमनुत्तमम् ॥१४॥
संयमात् क्षुत्तृषो जित्वा पानान्युच्चावचान्यपि । बुभुक्षितेभ्यो दत्त्वा तु बभूवुरुपला इव ॥१५॥
संस्थितास्ते महात्मानो निराधाराश्चतुर्दिशम् । हेमन्ते गिरिमाश्रित्य धैर्येण परमेण तु ॥१६॥
तुषारदेहसञ्छन्ना जलक्लिन्नेन वाससा । आसाद्य देहं क्षौमेण शिशिरे तोयमध्यगाः ॥१७॥
अनिर्विण्णास्ततः सर्वे क्रमशोऽवर्द्धयंस्तपः । तेपुस्त्रयस्ते तत्पुत्रा विधिमुद्दिश्य सत्तमाः ॥१८॥
तप उग्रं समास्थाय नियमे परमे स्थिताः । तपसा कर्षयामासुर्देहान् स्वान् दानवोत्तमाः ॥१९॥
वर्षाणां शतकं चैव पदमेकं निधाय च । भूमौ स्थित्वा परं तत्र तेपुस्ते बलवत्तराः ॥२०॥
ते सहस्रं तु वर्षाणां वातभक्षाः सुदारुणाः । तपस्तेपुर्दुरात्मानः परं तापमुपागताः ॥२१॥
वर्षाणां तु सहस्रं वै मस्तकेनास्थितास्तथा । वर्षाणां तु शतेनैव ऊर्ध्वबाहव आस्थिताः ॥२२॥
एवं दुःखं परं प्राप्ता दुराग्रहपरा इमे । ईदृक् ते संस्थिता दैत्या दिवारात्रमतन्द्रिताः ॥२३॥
एवं तेषां गतः कालो महान् सुतप्यतां मुने ! । ब्रह्मात्मनां तारकाणां धर्मेणेति मतिर्मम ॥२४॥

महा बलवान्, संयमी, सत्यवादी, दृढ़चित्त एवं महावीर होते हुए भी देवताओं के प्रबल द्रोही थे ॥ ८-९ ॥ ये तीनों दैत्य सम्पूर्ण मनोहर भोगों को त्यागकर मेरु की गुफा में जाकर घोर तप करने लगे ॥ १० ॥

तारकासुर के पुत्र, उन तीनों दैत्यों ने वसन्तकाल में होने वाले नाच-गाने, उत्सवादि तथा अपनी समस्त कामनाएँ त्याग दीं ॥ ११ ॥ ग्रीष्म में दुःसह सूर्य के मध्याह्न कालिक किरणों को जीतकर वे अपने चारों ओर अग्नि जलाकर उन अग्नियों के बीच बैठकर श्रद्धा से आहुति देने लगे ॥ १२ ॥ उस समय वे सूर्य की धू-धू करने वाली किरणों एवं अग्नि की ज्वाला से सन्तप्त होकर बारम्बार मूर्च्छित हो जाते थे। इसी प्रकार वर्षाकाल में निर्भीक होकर वे खुले आकाश में शिर पर वृष्टि का आघात सहकर घोर तप करने लगे ॥१३॥ शरत्काल में उत्पन्न हुए मनोहर, स्निग्ध, स्थिर, हृद्य, उत्तम फल-मूलादि पदार्थों को तथा उत्तम प्रकार के पेय पदार्थों का भूखों के लिए दान कर स्वयं संयम से भूखे तथा प्यासे रहकर उन्होंने भूख-प्यास जीत ली और पत्थर के समान निश्चल हो गये ॥ १४-१५ ॥

वे महात्मा हेमन्त ऋतु में पहाड़ों का आश्रय लेकर बड़ी धीरता के साथ स्थित हो निराधार नंगे शरीर से निवास करने लगे ॥ १६ ॥ उस हेमन्त काल में उनका शरीर बर्फ से आच्छादित हो जाने के कारण तथा निरन्तर जल से भींगे हुए वस्त्रों के धारण करने से अत्यन्त क्षीण हो गया। फिर भी वे शिशिर ऋतु में जल के मध्य में खड़े होकर घोर तप करने लगे ॥ १७ ॥ इस प्रकार ब्रह्मदेव को प्रसन्न करने के निमित्त उन्होंने धीरे-धीरे निरुद्विग्न मन से अपना तप बढ़ाना प्रारम्भ किया ॥ १८ ॥ उस समय वे घोर तप करते हुए कठिन नियमों का पालन करने लगे और तपस्या के द्वारा अपने शरीर को सुखाने लगे ॥१९॥ सौ वर्ष तक एक पाँव के सहारे पृथ्वी पर खड़े रहकर उन बलवान् दैत्यों ने तप किया ॥२०॥ तथा सहस्र वर्ष पर्यन्त वे वायु का भक्षण कर तप करते रहे। वे दुरात्मा इस प्रकार घोर तप करते हुए कठिन दुःख सहने लगे ॥ २१ ॥ एक सहस्र वर्ष तक पृथ्वी में शिर के बल खड़े रहे। सौ वर्ष तक आकाश में ऊपर दोनों भुजा उठाकर खड़े रहे ॥ २२ ॥ इस प्रकार वे दुराग्रह में तत्पर होकर बड़े-बड़े क्लेशों को सहन करते हुए रात-दिन आलस्य रहित हो तप करने लगे ॥ २३ ॥ हे महामुने, इस प्रकार तप करते हुए उन दैत्यों को जब बहुत समय बीत गया। तब मैंने समझ लिया कि अब इन तारक-पुत्रों को

प्रादुरासीत्ततो ब्रह्मा सुराऽसुरगुरुर्महान् । सन्तुष्टस्तपसा तेषां वरं दातुं महायशाः ॥२५॥
मुनिदेवासुरैः सार्द्धं सान्त्वपूर्वमिदं वचः । ततस्तानब्रवीत् सर्वान् सर्वभूतपितामहः ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

प्रसन्नोऽस्मि महादैत्या युष्माकं तपसा मुने । सर्वं दास्यामि युष्मभ्यं वरं ब्रूत यदीप्सितम् ॥२७॥
किमर्थं सुतपस्तप्तं कथयध्वं सुरद्विषः । सर्वेषां तपसो दाता सर्वकर्ताऽस्मि सर्वदा ॥२८॥

सनत्कुमार उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शनैस्ते स्वात्मनो गतम् । ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे प्रणिपत्य पितामहम् ॥२९॥

दैत्या ऊचुः

यदि प्रसन्नो देवेश ! यदि देयो वरस्त्वया । अवध्यत्वं च सर्वेषां सर्वभूतेषु देहिनः ॥३०॥
स्थिरान् कुरु जगन्नाथ पान्तु नः परिपन्थिनः । जरारोगादयः सर्वे नास्मान्मृत्युरगात् कचित् ॥३१॥
अजराश्चामराः सर्वे भवाम इति नो मतम् । सम्भृत्यचः करिष्यामः सर्वानन्यांस्त्रिलोकके ॥३२॥
लक्ष्म्या किं तद्विपुलया किं कार्यं हि पुरोत्तमैः । अन्यैश्च विपुलैर्भोगैः स्थानैश्वर्येण वा पुनः ॥३३॥
यत्रैव मृत्युना ग्रस्तो नियतं पञ्चभिर्दिनैः । व्यर्थं तस्याऽखिलं ब्रह्मन् ! निश्चितं न इतीव हि ॥३४॥

सनत्कुमार उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तेषां दैत्यानां च तपस्विनाम् । प्रत्युवाच शिवं स्मृत्वा स्वप्रभुं गिरिशं विधिः ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

नास्ति सर्वामरत्वं च निवर्तध्वमतोऽसुराः । अन्यं वरं वृणीध्वं वै यादृशो वो हि रोचते ॥३६॥

धर्म के कारण ब्रह्म-प्राप्ति की योग्यता हो गयी है ॥ २४ ॥ अनन्तर सुरासुर के गुरु, महा यशस्वी ब्रह्माजी सन्तुष्ट हो, उन्हें वर देने के लिए वहाँ उपस्थित हुए ॥ २५ ॥ उस समय मुनियों, देवताओं तथा असुरों के साथ सर्वभूत पितामह ब्रह्मा वहाँ जाकर उन्हें सान्त्वना देते हुए बोले ॥ २६ ॥

ब्रह्मा जी बोले—हे महादैत्यो ! मैं तुम लोगों से प्रसन्न हूँ । और तुम्हें सभी प्रकार का वर देने के लिए यहाँ आया हूँ, अतः तुम्हारी जो अभिलाषा हो वह वर माँगो ॥ २७ ॥ हे दैत्यो ! तुम लोगों ने इतना घोर तप किस उद्देश्य से किया है ? वह मुझसे कहो । मैं सबके तपस्या का फल देने वाला तथा सब कुछ करने वाला ब्रह्मा हूँ ॥ २८ ॥

सनत्कुमार बोले—ब्रह्मा की बातें सुनकर उन दैत्यों ने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया, तदनन्तर विचार कर अपने-अपने मन की बात धीरे-धीरे कहने लगे ॥ २९ ॥

दैत्य बोले—हे देवेश ! यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हैं एवं हम लोगों को वर देना चाहते हैं, तो हमें सभी प्राणियों से अवध्यत्व का वरदान दीजिए ॥ ३० ॥ हमें इस जगत् में अमर बनाइए और समस्त विघ्नों से हमारी रक्षा कीजिए । हमारे सन्निकट जरा, रोग एवं मृत्यु आदि कभी भी न प्राप्त हों ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्मन् ! हम लोग यही चाहते हैं कि हम अजर एवं अमर रहें । और हममें ऐसी सामर्थ्य हो कि इस त्रिलोकी के अन्य सभी लोगों का वध कर सकें ॥ ३२ ॥ हमें विपुल लक्ष्मी, बड़े-बड़े नगर, अनेक भोग, नाना प्रकार के स्थान तथा ऐश्वर्यादि की कोई कामना नहीं है ॥ ३३ ॥ क्योंकि यदि प्राणी मृत्यु से ग्रस्त है, तो उसके लिए स्वल्प दिनों के लिए प्राप्त होने वाले ये सभी भोगादि पदार्थ भी व्यर्थ ही हैं, ऐसा हमने निश्चय कर लिया है ॥ ३४ ॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार उन तपस्वी दैत्यों के वचन सुनकर ब्रह्माजी अपने इष्टदेव महादेव जी का स्मरण करते हुए बोले ॥ ३५ ॥

ब्रह्मा जी बोले—हे असुरो ! इस जगत् में सभी से अवध्यता किसी को भी प्राप्त नहीं है, इसलिए इस प्रकार के वर का आग्रह मत करो और दूसरे प्रकार का जो वर तुम्हें रुचिकर हो उसे माँगो ॥ ३६ ॥

जातो जनिष्यते नूनं जन्तुः कोऽप्यसुराः क्वचित् । अजरश्चामरो लोके न भविष्यति भूतले ॥३७॥
ऋते तु खण्डपरशोः कालकालाद्धरेस्तथा । तौ धर्माऽधर्मपरमावव्यक्तौ व्यक्तरूपिणौ ॥३८॥
सम्पीडनाय जगतो यदि स क्रियते तपः । सफलं तद्‌गतं वैद्यं तस्मात् सुविहितं तपः ॥३९॥
तद्विचार्य स्वयं बुद्धया न शक्यं यत्सुराऽसुरैः । दुर्लभं वा सुदुःसाध्यं मृत्युं वञ्चयतानघाः ॥४०॥
तत्किञ्चिन्मरणे हेतुं वृणीध्वं सत्त्वमाश्रिताः । येन मृत्युर्नैव वृतो रक्षतरतत् पृथक् पृथक् ॥४१॥

सनत्कुमार उवाच

एतद्विधिवचः श्रुत्वा मुहूर्त्तं ध्यानमास्थिताः । प्रोचुस्ते चिन्तयित्वाऽथ सर्वलोकपितामहम् ॥४२॥

दैत्या ऊचुः

भगवन्नास्ति नो वेश्म पराक्रमवतामपि । अधृष्याः शात्रवानां तु यत्र वत्स्यामहे सुखम् ॥४३॥
पुराणि त्रीणि नो देहि निर्मायात्यद्भुतानि हि । सर्वसम्पत्समृद्धान्यप्रधृष्याणि दिवौकसाम् ॥४४॥
वयं पुराणि त्रीण्येवं समास्थाय महीमिमाम् । चरिष्यामो हि लोकेश ! त्वत्प्रसादाज्जगद्गुरो ॥४५॥
पुरारकाक्षस्ततः प्राह यदभेद्यं सुरैरपि । करोति विश्वकर्मा तन्मम हेममयं पुरम् ॥४६॥
ययाचे कमलाक्षस्तु राजतं सुमहत्पुरम् । विद्युन्माली च संहृष्टो वज्रायसमयं महत् ॥४७॥
तरेष्वेतेषु भो ब्रह्मन्नेकस्थानस्थितेषु च । मध्याह्नाभिजिते काले शीतांशौ पुष्यसंस्थिते ॥४८॥
उपर्युपर्यदृष्टेषु व्योम्नि लीलाभ्रसंस्थिते । वर्षत्सु कालमेघेषु पुष्करावर्तनामसु ॥४९॥
तथा वर्षसहस्रान्ते समेष्यामः परस्परम् । एकीभावं गमिष्यन्ति पुराण्येतानि नान्यथा ॥५०॥

हे असुरो ! इस मृत्युलोक में आज तक कोई ऐसा प्राणी नहीं हुआ जो सर्वथा अजर एवं अमर बना रहे। जन्म एवं मरण इस मृत्युलोक का स्वभाव है, जिसने जन्म लिया, उसे मर कर पुनः जन्म लेना ही होगा ॥३७॥ काल को कवलित करने वाले भगवान् शङ्कर तथा महाविष्णु के अतिरिक्त और कोई भी प्राणी अमर नहीं हो सकता, क्योंकि ये दोनों ही धर्म-अधर्म से परे हैं तथा व्यक्त एवं अव्यक्त हैं ॥ ३८ ॥

यदि जगत् को पीड़ा पहुँचाने के लिए ही तप किया जाय तो उस तपस्या का फल नष्ट हो जाती है, अतः उत्तम उद्देश्य के लिए तपस्या का अनुष्ठान करना चाहिए ॥ ३९ ॥ हे दैत्यो ! तुम लोग स्वयं विचार करो, जब बड़े-बड़े देवता एवं राक्षस भी इस दुःखद एवं दुःसाध्य मृत्यु का अतिक्रमण नहीं कर सके, इसलिए तुम लोग भी मृत्यु की वञ्चना मत करो, अन्य वर माँगो ॥४०॥ तुम लोग सत्त्वगुण का आश्रय लेकर अपने मरने का हेतुभूत कोई वर माँगो तथा उस हेतु से अपनी-अपनी रक्षा का उपाय पृथक्-पृथक् रूप से करो, जिससे तुम्हारी मृत्यु न हो ॥ ४१ ॥ ब्रह्मा के वचन सुनकर वे दैत्य एक मुहूर्त्त तक ध्यान में स्थित रहे फिर थोड़ी देर विचार कर लोक पितामह ब्रह्मा से बोले ॥ ४२ ॥

दैत्य बोले—हे भगवन् ! हम लोग यद्यपि पराक्रमशील हैं किन्तु हमारे पास कोई एक ऐसा स्थान नहीं है जिसमें शत्रु प्रवेश न कर सकें और वहाँ हम सुख से निवास कर सकें ॥ ४३ ॥ अतः आप हमारे लिए ऐसे अद्भुत तीन नगर का निर्माण कराकर हमें प्रदान कीजिए जो सम्पत्ति तथा धन-धान्यादि भोग-सामग्री से परिपूर्ण हो और देवताओं के लिए भी वह सर्वथा अगम्य हो ॥ ४४ ॥ हे लोकेश ! हम लोग आपकी कृपा से इन तीनों पुरों में स्थित होकर समस्त पृथ्वी में विचरण करेंगे ॥ ४५ ॥ तब उनमें से जेठा तारकाक्ष बोला—हे ब्रह्मन् ! मेरी इच्छा है कि जो देवताओं से अभेद्य हो ऐसे सुवर्ण का पुर निर्माण कर विश्वकर्मा हमें दें ॥ ४६ ॥ फिर कमलाक्ष बोला—मुझे इसी प्रकार का विश्वकर्मा रचित चाँदी का पुर दीजिए। पुनः विद्युन्माली प्रसन्न होकर कहा—मुझे वज्र के समान लोहे का पुर निर्माण करा दीजिए ॥ ४७ ॥ (फिर दैत्यों ने कहा—) हे ब्रह्मन् ! जब मध्याह्न काल में अभिजित् मुहूर्त्त हो, चन्द्रमा पुष्य नक्षत्र का हो और नीले-नीले आकाश में पुष्करावर्त्त नामक कालमेघ वर्षा कर रहे हों, उस समय एक-एक हजार वर्ष के उपरान्त हम लोग परस्पर में मिलें और ये तीनों पुर भी उस समय एक स्थान

सर्वदेवमयो देवः सर्वेषां मे कुहेलया। असम्भवे रथे तिष्ठन् सर्वोपस्करणान्विते ॥५१॥
असम्भाव्यैककाण्डेन भिनत्तु नगराणि नः। निर्वैरः कृत्तिवासास्तु योऽस्माकमिति नित्यशः ॥५२॥
वन्द्यः पूज्योऽभिवाद्यश्च सोऽस्माकं निर्दहेत् कथम्। इति चेतसि सन्धाय तादृशो भुवि दुर्लभः ॥५३॥

सनत्कुमार उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां ब्रह्मा लोकपितामहः। एवमस्तीति तान् प्राह सृष्टिकर्त्ता स्मरन् शिवम् ॥५४॥
आज्ञां ददौ मयस्यापि कुरु त्वं नगरत्रयम्। काञ्चनं राजतं चैव आयसं चेति भो मय ॥५५॥
इत्यादिश्य मयं ब्रह्मा प्रत्यक्षं प्राविशद्दिवम्। तेषां तारकपुत्राणां पश्यतां निजधाम हि ॥५६॥
ततो मयश्च तपसा चक्रे धीरः पुराण्यथ। काञ्चनं तारकाक्षस्य कमलाक्षस्य राजतम् ॥५७॥
विद्युन्माल्यायसं चैव त्रिविधं दुर्गमुत्तमम्। स्वर्गे व्योम्नि च भूमौ च क्रमाज्ज्ञेयानि तानि वै ॥५८॥
दत्वा तेभ्योऽसुरेभ्यश्च पुराणि त्रीणि वै मयः। प्रविवेश स्वयं तत्र हितकामपरायणः ॥५९॥
एवं पुरत्रयं प्राप्य प्रविष्टास्तारकात्मजाः। बुभुजुः सकलान् भोगान् महाबलपराक्रमाः ॥६०॥
कल्पद्रुमैश्च सङ्कीर्णं गजवाजिसमाकुलम्। नानाप्रासादसङ्कीर्णं मणिजालसमावृतम् ॥६१॥
सूर्यमण्डलसङ्काशैर्विमानैः सर्वतोमुखैः। पद्मरागमयैश्चैव शोभितं चन्द्रसन्निभैः ॥६२॥
प्रासादैर्गोपुरैर्दिव्यैः कैलासशिखरोपमैः। दिव्यस्त्रीजनसङ्कीर्णैर्गन्धर्वैः सिद्धचारणैः ॥६३॥
रुद्रालयैः प्रतिगृहमग्निहोत्रैः प्रतिष्ठितैः। द्विजोत्तमैः शास्त्रविज्ञैः शिवभक्तिरतैः सदा ॥६४॥
वापी-कूप-तडागैश्च दीर्घिकाभिः सुशोभितम्। उद्यान-वन-वृक्षैश्च स्वर्गच्युतगुणोत्तमैः ॥६५॥
नदी-नद-सरिन्मुख्यपुष्करैः शोभितं सदा। सर्वकामफलाढ्यैश्चाऽनेकैर्वृक्षैर्मनोहरम् ॥६६॥

पर स्थित हो जायें, तब हम लोगों के द्वारा धर्म का अतिक्रमण हो जाने पर कोई ऐसा देवता, जिसमें सभी देवों का निवास हो, वह सम्पूर्ण युद्ध सामग्री से युक्त असम्भव रथ में बैठकर, जो कभी सम्भव न हो ऐसे एक ही बाण को चलाकर हमारे तीनों नगरों को भेदन करे तभी वह नगर नष्ट हो, अन्यथा नहीं। उन दैत्यों ने विचार किया कि शिवजी के अतिरिक्त और कोई ऐसा पुरुष तो दुर्लभ है, और शिवजी तो किसी से द्वेष नहीं करते, फिर हम लोगों के वे पूज्य हैं, अभिवादन के योग्य हैं, भला वे हम लोगों के पुरों का विनाश किस प्रकार कर सकते हैं। यही उन दैत्यों ने अपने मन में विचार कर वर माँगा ॥ ४८-५३ ॥

सनत्कुमार बोले—लोक-पितामह ब्रह्मा जी उन दैत्यों के वचन सुनकर शिवजी का स्मरण करते हुए बोले—'अच्छा ऐसा ही होगा' ॥ ५४ ॥ तत्पश्चात् उन्होंने मय को बुलाकर आज्ञा दी कि तुम सोने, चाँदी तथा लोहे के तीन पुरों का निर्माण करो ॥ ५५ ॥ इस प्रकार मय को आज्ञा देकर ब्रह्मदेव उन तारकपुत्रों के देखते-देखते अपने धाम को चले गये ॥ ५६ ॥ मय ने बड़े प्रयत्न के साथ तारकाक्ष के लिए सुवर्ण का, कमलाक्ष के लिए चाँदी का तथा विद्युन्माली के लिए लोहे का दुर्ग निर्माण कर उन्हें प्रदान किया। उनमें एक स्वर्ग में, दूसरा आकाश में तथा तीसरा भूलोक में विचरण करता था। मय ने स्वयं भी उनके हित की इच्छा से उस पुरी में निवास किया ॥ ५७-५९ ॥

इस प्रकार महा बलवान्, तारक के वे तीनों पुत्र उन तीन पुरों को प्राप्त कर सभी प्रकार के भोगों को भोगने लगे ॥ ६० ॥ उन पुरों में अनेक कल्पवृक्ष लगे हुए थे, हाथी, घोड़े, नाना प्रकार के अट्टालिकाओं तथा मणियों से वह पुर परिपूर्ण था ॥ ६१ ॥ सूर्यमण्डल के समान देदीप्यमान अनेक विमान एवं चन्द्रमा के समान विविध पद्मराग मणियों से वह पुर शोभित हो रहा था ॥६२॥ उन पुरों में कैलास पर्वत के शिखर के समान ऊँचे-ऊँचे मनोहर महल तथा गोपुर (प्रधान द्वार) बने हुए थे। दिव्य देवाङ्गनाओं, गन्धर्वों, सिद्धों तथा चारणों से वह पुर ठसाठस भरा हुआ था ॥ ६३ ॥ प्रत्येक घर में शिवालय, अग्निहोत्र बने हुए थे। शास्त्रवेत्ता एवं शिवभक्त ब्राह्मण उस पुर में निवास करते थे ॥ ६४ ॥ बावली, कूएँ, तालाब, अल्पसरोवर, उद्यान एवं स्वर्ग से लाये गये नाना प्रकार के वन्य वृक्षों, कमलयुक्त नदियों, नदों और बड़ी-बड़ी सरिताओं से वह बड़ा मनोरम प्रतीत हो रहा था। उसमें सभी ऋतुओं में फल-फूल देते वाले मनोहर वृक्ष लगे

मत्तमातङ्गयूथैश्च तुरङ्गैश्च सुशोभनैः । रथैश्च विविधाकारैः शिबिकाभिरलङ्कृतम् ॥६७॥
समयादिशिकैश्चैव क्रीडास्थानैः पृथक् पृथक् । वेदाध्ययनशालाभिर्विविधाभिः पृथक् पृथक् ॥६८॥
अदृष्टं मनसा वाचा पापान्वितनरैः सदा । महात्मभिः शुभाचारैः पुण्यवद्भिः प्रवीक्ष्यते ॥६९॥
पतिव्रताभिः सर्वत्र पावितं स्थलमुत्तमम् । पतिसेवनशीलाभिर्विमुखाभिः कुधर्मतः ॥७०॥
दैत्यशूरैर्महाभागैः सदारैः ससुतैर्द्विजैः । श्रौतस्मार्तार्थतत्त्वज्ञैः स्वधर्मनिरतैर्युतम् ॥७१॥
व्यूढोरस्कैर्वृषस्कन्धैः सामयुद्धधरैः सदा । प्रशान्तैः कुपितैश्चैव कुब्जैर्वामनकैस्तथा ॥७२॥
नीलोत्पलदलप्रख्यैर्नीलकुञ्चितमूर्द्धजैः । मयेन रक्षितैः सर्वैः शिक्षितैर्युद्धलालसैः ॥७३॥

वरसमररतैर्युतं समन्तादजशिवपूजनया विशुद्धवीर्यैः ।
रवि-मरुत-महेन्द्रसन्निकाशैः सुरमथनैः सुदृढैः सुसेवितं यत् ॥७४॥

शास्त्र-वेद-पुराणेषु ये ये धर्माः प्रकीर्तिताः । शिवप्रियाः सदा देवास्ते धर्मास्तत्र सर्वतः ॥७५॥
एवं लब्धवरास्ते तु दैतेयास्तारकात्मजाः । शैवं मयमुपाश्रित्य निवसन्ति स्म तत्र ह ॥७६॥
सर्वं त्रैलोक्यमुत्सार्य प्रविश्य नगराणि ते । कुर्वन्ति स्म महद्राज्यं शिवमार्गरताः सदा ॥७७॥
ततो महान् गतः कालो वसतां पुण्यकर्मणाम् । यथासुखं यथाजोषं सद्राज्यं कुर्वतां मुने ! ॥७८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे त्रिपुरवधोपाख्याने त्रिपुरवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

हुए थे ॥६५-६६॥ वहाँ मतवाले हाथी, चञ्चल घोड़ों के समूह, अनेक प्रकार के रथ तथा सजी हुई अनेक प्रकार की पालकियाँ विद्यमान थीं ॥ ६७ ॥ समय-समय के अनुसार खेलने के लिए पृथक्-पृथक् प्रत्येक दिशाओं में क्रीड़ा-स्थल बने हुए थे । इसी प्रकार वेदों के अध्ययन के लिए पृथक्-पृथक् पाठशालाएँ बनी हुई थीं ॥ ६८ ॥ उन नगरों की ओर पापीजन तो मन एवं वाणी के द्वारा देख भी नहीं सकते थे । केवल शुभ आचरण करने वाले पुण्यात्मा महात्मा ही उसे देख सकते थे ॥ ६९ ॥ वहाँ का प्रत्येक स्थल पाप से रहित, पतिसेवा परायण पतिव्रताओं के द्वारा पवित्र था ॥ ७० ॥ उस पुरी में महाभाग्यवान्, बलवान् दैत्य अपनी स्त्रियों, पुत्रों तथा ब्राह्मणों के साथ निवास करते थे । ये सभी दैत्य श्रौत तथा स्मार्त्त कर्मों के जानकार तथा अपने-अपने धर्मों का आचरण करने वाले थे ॥ ७१ ॥

चौड़ी एवं पुष्ट छाती वाले, साम एवं विग्रह के जानकार, समय-समय पर शान्ति तथा कोप करने वाले, नीले कमल के समान काले-काले घुँघराले बाल वाले, मय के द्वारा शिक्षित किये गये तथा निरन्तर युद्ध की अभिलाषा रखने वाले कुब्ज एवं वामन योद्धाओं से वे पुर परिपूर्ण थे ॥७२-७३॥ ब्रह्मा तथा सदाशिव के पूजन के प्रभाव से विशुद्ध पराक्रम वाले, सूर्य, वायु तथा इन्द्र के समान पराक्रम वाले, देवताओं को मर्दन करने वाले, अत्यन्त पराक्रमी दैत्य, जो निरन्तर युद्ध के लिए उत्सुक रहते थे, उन पुरों में निवास करते थे ॥ ७४ ॥ शास्त्रों, वेदों तथा पुराणों में जो-जो धर्म कहे गये हैं, और जो धर्म सदाशिव को प्रिय हैं, वे सभी धर्म त्रिपुर में रहने वाले दैत्यों में विद्यमान थे ॥ ७५ ॥ इस प्रकार तारक के सभी पुत्र ब्रह्मा के द्वारा वरदान प्राप्त कर महाशैव मय के आश्रित हो वहाँ निवास करने लगे ॥ ७६ ॥ शिव-धर्मपरायण वे सभी तारकपुत्र त्रैलोक्य के सभी बड़े-बड़े नगरों में प्रविष्ट हो, उनका विनाश कर सुख से राज्य करने लगे ॥ ७७ ॥ हे मुने ! इस प्रकार अपनी इच्छानुसार राज्य का सुख भोगते हुए उन पुण्यकर्मा राक्षसों का बहुत समय बीत गया । ७८ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्ध-खण्ड के त्रिपुरवधोपाख्यान में त्रिपुरवर्णन नामक प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

(तारकासुर से भयभीत देवताओं का शिव को स्तुति)

व्यास उवाच

ब्रह्मपुत्र महाप्राज्ञ ! वद मे वदतां वर । ततः किमभवद् देवाः कथं च सुखिनोऽभवन् ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य व्यासस्यामितधीमतः । सनत्कुमारः प्रोवाच स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ २ ॥

सनत्कुमार उवाच

अथ तत्प्रभया दग्धा देवा हीन्द्रादयस्तथा । सम्मन्त्र्य दुःखिताः सर्वे ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ३ ॥
नत्वा पितामहं प्रीत्या परिक्षिताखिलाः सुराः । दुःखं विज्ञापयामासुर्विलोक्यावसरं ततः ॥ ४ ॥

देवा ऊचुः

धातस्त्रिपुरनाथेन . सतारकसुतेन हि । सर्वे प्रतापिता नूनं मयेन त्रिदिवौकसः ॥ ५ ॥
अतस्ते शरणं याता दुःखिता हि विधे ! वयम् । कुरु त्वं तद्वधोपायं सुखिनः स्याम तद्यथा ॥ ६ ॥

सनत्कुमार उवाच

इति विज्ञापितो देवैर्विहस्य भवकृद्विधिः । प्रत्युवाचाथ तान् सर्वान् मयतो भीतमानसान् ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच

न भेतव्यं सुरास्तेभ्यो दानवेभ्यो विशेषतः । आचक्षे तद्वधोपायं शिवं शर्वः करिष्यति ॥ ८ ॥
मत्तो विवर्धितो दैत्यो वधं मत्तो न चार्हति । तथापि पुण्यं वर्द्धेत नगरे त्रिपुरे पुनः ॥ ९ ॥
शिवं च प्रार्थयध्वं वै सर्वे देवाः सवासवाः । सर्वाधीशः प्रसन्नश्चेत् स वः कार्यं करिष्यति ॥१०॥

व्यास जी बोले—हे ब्रह्मपुत्र ! हे महाप्राज्ञ ! हे वक्ताओं में श्रेष्ठ सनत्कुमार जी ! अब मुझे बताइए कि फिर क्या हुआ ? और किस प्रकार देवगण सुखी हुए ? ॥ १ ॥

ब्रह्मा जी बोले—इसे प्रकार महाबुद्धिमान् व्यास जी के वचन सुनकर शिवजी के चरण-कमलों का स्मरण करते हुए सनत्कुमार बोले—॥ २ ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास जी ! तब दैत्यों के तेज से कान्तिहीन हुए इन्द्रादि देवगण दुःखी हो आपस में मन्त्रणा कर ब्रह्मा की शरण में गये ॥ ३ ॥ वे सभी निस्तेज देवगण अवसर पाकर स-प्रेम ब्रह्मदेव को प्रणाम कर उनसे अपना दुःख निवेदन करने लगे ॥ ४ ॥

देवगण बोले—हे विधातः ! त्रिपुराधिपति तारकपुत्रों एवं मय के द्वारा हम सभी देवता अत्यधिक क्लेश पा रहे हैं ॥५॥ इसलिए हे ब्रह्मन् ! हम लोग दुःखी होकर आपकी शरण में आये हैं, आप उन तारकपुत्रों के वध का कोई शीघ्र उपाय कीजिए, जिससे हम लोग सुखी हों ॥ ६ ॥

सनत्कुमार बोले—उन देवताओं के वचन सुनकर हँसते हुए ब्रह्मा जी मय दानव से डरे हुए उन देवताओं से बोले—॥ ७ ॥

ब्रह्मा जी बोले—हे देवगण ! तुम लोग उन दैत्यों से भयभीत मत होओ। मैं उनके वध का उपाय तुमसे बता रहा हूँ, यह सारा कार्य शिवजी ही सम्पन्न करेंगे ॥ ८ ॥ मेरे ही द्वारा वे दैत्य वृद्धि को प्राप्त हुए हैं, अतः मैं उनका वध करने में असमर्थ हूँ। इस समय भी त्रिपुर के नगर में पुण्य प्रतिदिन बढ़ ही रहा है ॥ ९ ॥ सम्प्रति इन्द्रादि सहित तुम सभी देवगण शिवजी की प्रार्थना करो, यदि वे सर्वाधीश प्रसन्न हो जायेंगे तो वे अवश्य ही तुम्हारा कार्य पूर्ण करेंगे ॥ १० ॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य विधेर्वाणीं सर्वे देवाः सवासवाः । दुःखितास्ते ययुस्तत्र यत्रास्ते वृषभध्वजः ॥११॥

प्रणम्य भक्त्या देवेशं सर्वे प्राञ्जलयस्तदा । तुष्टुवुर्विनतस्कन्धाः शङ्करं लोकशङ्करम् ॥१२॥

देवा ऊचुः

नमो हिरण्यगर्भाय सर्वसृष्टिविधायिने । नमः स्थितिकृते तुभ्यं विष्णवे प्रभविष्णवे ॥१३॥

नमो हरस्वरूपाय भूतसंहारकारिणे । निर्गुणाय नमस्तुभ्यं शिवायामिततेजसे ॥१४॥

अवस्थारहितायाथ निर्विकाराय वर्चसे । महाभूतात्मभूताय निर्लिप्ताय महात्मने ॥१५॥

नमस्ते भूतपतये महाभारसहिष्णवे । तृष्णाहराय निर्वैराकृतये भूरितेजसे ॥१६॥

महादैत्यमहारण्यनाशिने दाववह्नये । दैत्यद्रुमकुठाराय नमस्ते शूलपाणये ॥१७॥

महादनुजनाशाय नमस्ते परमेश्वर ! । अम्बिकापतये तुभ्यं नमः सर्वास्त्रधारक ! ॥१८॥

नमस्ते पार्वतीनाथ ! परमात्मन् महेश्वर ! । नीलकण्ठाय रुद्राय नमस्ते रुद्ररूपिणे ॥१९॥

नमो वेदान्तवेद्याय मार्गातीताय ते नमः । नमो गुणस्वरूपाय गुणिने गुणवर्जिते ॥२०॥

महादेव ! नमस्तुभ्यं त्रिलोकीनन्दनाय च । प्रद्युम्नायाऽनिरुद्धाय वासुदेवाय ते नमः ॥२१॥

सङ्कर्षणाय देवाय नमस्ते कंसनाशिने । चाणूरमर्दिने तुभ्यं दामोदर ! विषादिने ॥२२॥

हृषीकेशाच्युत विभो मृड शङ्कर ! ते नमः । अधोक्षज गजाराते कामारे विषभक्षण ! ॥२३॥

सनत्कुमार बोले—इन्द्रादि सभी देवता ब्रह्मा की बात सुनकर दुःखी हो शिव के सन्निकट गये ॥११॥ उन लोगों ने बड़ी भक्ति से हाथ जोड़ देवेश को प्रणाम किया। पुनः सिर झुकाकर लोक-कल्याणकारी भगवान् शङ्कर की प्रार्थना करने लगे ॥ १२ ॥

देवगण बोले—सम्पूर्ण सृष्टि का विधान करने वाले हिरण्यगर्भ ब्रह्मदेव स्वरूप आपको नमस्कार है। सृष्टि के स्थिति करने में समर्थ विष्णु स्वरूप आपको नमस्कार है ॥ १३ ॥ सम्पूर्ण प्राणियों का संहार करने वाले हरस्वरूप आपको नमस्कार है। निर्गुण तथा अमित तेजस्वी आप शिव को नमस्कार है ॥१४॥ जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति रूप, अवस्था से हीन, निर्विकार तेजःस्वरूप, महाभूतों में आत्मस्वरूप से वर्त्तमान एवं पञ्चभूतों से निर्लिप्त आप महात्मा को नमस्कार है ॥ १५ ॥ सम्पूर्ण प्राणियों के अधिपति, शेषरूप से पृथ्वी का भार उठाने वाले, तृष्णा को नष्ट करने वाले, शान्त आकृति वाले, अमित तेजस्वी, आप शिव को प्रणाम है ॥ १६ ॥ महादैत्यों के वन को नाश करने के लिए दावाग्नि के समान, दैत्य वृक्षों के कुठार शूलपाणि आपको नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे परमेश्वर ! आप दनुपुत्र दानवों को नाश करने वाले हैं, आपको नमस्कार है। हे सभी अस्त्रों के धारणकर्त्ता, अम्बिकापति आपको नमस्कार है ॥ १८ ॥ हे पार्वतीनाथ, हे परमात्मन्, हे महेश्वर ! आपको प्रणाम है। नीलकण्ठ, रुद्रस्वरूप से वर्त्तमान आप रुद्र को नमस्कार है ॥१९॥ केवल वेदान्त से जानने योग्य, सभी मार्गों से अगम्य आपको नमस्कार है। गुणस्वरूप, समस्त गुणों को धारण करने वाले एवं गुण से सर्वथा वर्जित आपको नमस्कार है ॥ २० ॥ त्रिलोकी को आनन्द देने वाले, आप महादेव को नमस्कार है। प्रद्युम्न, अनिरुद्ध एवं वासुदेव स्वरूप आपको नमस्कार है ॥ २१ ॥ संकर्षण देव एवं कंसनाशक आपको नमस्कार है। चाणूर का मर्दन करने वाले, विष का भक्षण करने वाले आप दामोदर को नमस्कार है ॥२२॥ इन्द्रियों के अधिपति, सर्वव्यापक, अच्युत तथा सबको सुख देने वाले, आप शङ्कर को नमस्कार है। अधोक्षज, गजासुर के शत्रु, कामारे, विषभक्षक ! आपको नमस्कार है ॥२३॥

नारायणाय देवाय नारायणपराय च । नारायणस्वरूपाय नारायणतनूद्भव ! ॥२४॥
नमस्ते सर्वरूपाय महानरकहारिणे । पापापहारिणे तुभ्यं नमो वृषभवाहन ! ॥२५॥
क्षणादिकालरूपाय स्वभक्तबलदायिने । नानारूपाय रूपाय दैत्यचक्रविमर्दिने ॥२६॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । सहस्रमूर्त्तये तुभ्यं सहस्रावयवाय च ॥२७॥
धर्मरूपाय सत्त्वाय नमः सत्त्वात्मने हर ! । वेदवेद्यस्वरूपाय नमो वेदप्रियाय च ॥२८॥
नमो वेदस्वरूपाय वेदवक्त्रे नमो नमः । सदाचाराध्वगम्याय सदाचाराध्वगामिने ॥२९॥
विष्टरश्रवसे तुभ्यं नमः सत्यमयाय च । सत्यप्रियाय सत्याय सत्यगम्याय ते नमः ॥३०॥
नमस्ते मायिने तुभ्यं मायाधीशाय वै नमः । ब्रह्मगाय नमस्तुभ्यं ब्रह्मणे ब्रह्मजाय च ॥३१॥
तपसे ते नमस्त्वीश तपसा फलदायिने । स्तुत्याय स्तुतये नित्यं स्तुतिसम्प्रीतचेतसे ॥३२॥
श्रुत्याचारप्रसन्नाय स्तुत्याचारप्रियाय च । चतुर्विधस्वरूपाय जलस्थलजरूपिणे ॥३३॥
सर्वं देवादयो नाथ ! श्रेष्ठत्वेन विभूतयः । देवानामिन्द्ररूपोऽसि ग्रहाणां त्वं रविर्मतः ॥३४॥
सत्यलोकोऽसि लोकानां सरितां द्युसरिद्भवान् । श्वेतवर्णोऽसि वर्णानां सरसां मानसं सरः ॥३५॥
शैलानां गिरिजाताततः कामधुक् त्वं च गोषु ह । क्षीरोदधिस्तु सिन्धूनां धातूनां हाटको भवान् ॥३६॥
वर्णानां ब्राह्मणोऽसि त्वं नृणां राजाऽसि शङ्कर ! । मुक्तिक्षेत्रेषु काशी त्वं तीर्थानां तीर्थराड् भवान् ॥३७॥
उपलेषु समस्तेषु स्फटिकस्त्वं महेश्वर ! । कमलस्त्वं प्रसूनेषु शैलेषु हिमवांस्तथा ॥३८॥
भवान् वाग्व्यवहारेषु भार्गवस्त्वं कविष्वपि । पक्षिष्वेवाऽसि शरभः सिंहो हिंस्रेषु सम्मतः ॥३९॥

नारायणदेव, नारायणपरायण, नारायणस्वरूप, नारायण को उत्पन्न करने वाले आपको नमस्कार हैं ॥२४॥ सर्वस्वरूप, महानरक का वध करने वाले, पापों को दूर करने वाले तथा धर्म पर सवार रहने वाले, आप शिव को नमस्कार है ॥ २५ ॥ क्षणादि सूक्ष्मकाल रूप से वर्त्तमान, अपने भक्तों पर अनुग्रह करने वाले, नाना रूप तथा एक रूप से रहने वाले, दैत्यों के समूह का नाश करने वाले आप सदाशिव को नमस्कार है ॥ २६ ॥ ब्राह्मणों का हित करने के लिए देवता के समान, गो-ब्राह्मण के हितकारी, सहस्रमूर्त्ति, सहस्र अवयवों वाले, आपको नमस्कार है ॥ २७ ॥ धर्म एवं सत्त्वस्वरूप, सत्त्व के आत्मा तथा दुःख को हरण करने वाले, आपको नमस्कार है । जिनका स्वरूप वेदों से जाना जाता है तथा जिनको वेद अत्यन्त प्रिय है, उन आप शिव को नमस्कार है ॥ २८ ॥ वेदस्वरूप एवं वेद के वक्ता आपको नमस्कार है, सदाचार के मार्ग से जानने योग्य एवं स्वयं सदाचार का पालन करने वाले, आप शिव को नमस्कार है ॥ २९ ॥ विष्टर-श्रवा (विष्णु), सत्यमय, सत्यप्रिय एवं सत्य से प्राप्त होने वाले, आप शिव को नमस्कार है ॥ ३० ॥ माया को अपने अधीन रखने वाले, आपको नमस्कार है, मायाधीश आपको नमस्कार है । सामवेद स्वरूप आपको नमस्कार है । ब्रह्मस्वरूप तथा ब्रह्मा से उत्पन्न होने वाले आप भगवान् सदाशिव को नमस्कार है ॥ ३१ ॥

हे ईश ! आप तपःस्वरूप हो, आपको नमस्कार है, तपस्या का शीघ्र फल देने वाले आपको नमस्कार है । स्तुति के योग्य, स्तुतिरूप तथा स्तुति से प्रसन्न होने वाले आपको नमस्कार है ॥ ३२ ॥ हे प्रभो, आप श्रुति के आचार से प्रसन्न रहने वाले तथा स्तुति रूप आचार के प्रिय हो । स्थावर, जङ्गमादि चार स्वरूपों वाले एवं जल-स्थल में प्रगट होने वाले हो, अतः आपको नमस्कार है ॥ ३३ ॥ हे नाथ ! इस जगत् में श्री से युक्त जितने भी देदीप्यमान पदार्थ हैं वे सभी आप की विभूति हैं । सभी देवताओं में आप इन्द्र स्वरूप हैं, ग्रहों में सूर्य रूप हैं ॥ ३४ ॥ लोकों में सत्यलोक, सरिताओं में गङ्गा, वर्णों में श्वेत वर्ण और सरोवरों में आप मानसरोवर हैं ॥ ३५ ॥ पर्वतों में हिमालय, गायों में कामधेनु, समुद्रों में क्षीरसागर एवं धातुओं में आप सुवर्ण हैं ॥ ३६ ॥ हे शङ्कर ! आप वर्णों में ब्राह्मण तथा मनुष्यों में राजा हैं, मुक्ति-क्षेत्रों में काशी तथा समस्त तीर्थों में प्रयाग हैं ॥ ३७ ॥ पाषाणों में आप स्फटिक मणि हैं, हे महेश्वर,

शालग्रामशिला च त्वं शिलासु वृषभध्वज ! । पूज्यरूपेषु सर्वेषु नर्मदालिङ्गमेव हि ॥४०॥
नन्दीश्वरोऽसि पशुषु वृषभः परमेश्वर ! । वेदेषूपनिषद्रूपो यज्वनां शीतभानुमान् ॥४१॥
प्रतापिनां पावकस्त्वं शैवानामच्युतो भवान् । भारतं त्वं पुराणानां मकारोऽस्यक्षरेषु च ॥४२॥
प्रणवो बीजमन्त्राणां दारुणानां विषं भवान् । व्योमव्याप्तिमतां त्वं वै परमात्माऽसि चात्मनाम् ॥४३॥
इन्द्रियाणां मनश्च त्वं दानानामभयं भवान् । पावनानां जलं चासि जीवनानां तथाऽमृतम् ॥४४॥
लाभानां पुत्रलाभोऽसि वायुर्वेगवतामसि । नित्यकर्मसु सर्वेषु सन्ध्योपास्तिर्भवान् मतः ॥४५॥
क्रतूनामश्वमेधोऽसि युगानां प्रथमो युगः । पुष्यस्त्वं सर्वधिष्ण्यानाममावास्या तिथिष्वसि ॥४६॥
सर्वर्तुषु वसन्तस्त्वं सर्वपर्वसु सङ्क्रमः । कुशोऽसि तृणजातीनां स्थूलवृक्षेषु वै वटः ॥४७॥
योगेषु च व्यतीपातः सोमवल्ली लतासु च । बुद्धीनां धर्मबुद्धिस्त्वं कलत्रं सुहृदां भवान् ॥४८॥
साधकानां शुचीनां त्वं प्राणायामो महेश्वर ! । ज्योतिर्लिङ्गेषु सर्वेषु भवान् विश्वेश्वरो मतः ॥४९॥
धर्मस्त्वं सर्वबन्धूनामाश्रमाणां परो भवान् । मोक्षस्त्वं सर्ववर्गेषु रुद्राणां नीललोहितः ॥५०॥
आदित्यानां वासुदेवो हनूमान् वानरेषु च । यज्ञानां जपयज्ञोऽसि रामः शस्त्रभृतां भवान् ॥५१॥
गन्धर्वाणां चित्ररथो वसूनां पावको ध्रुवम् । मासानामधिमासस्त्वं व्रतानां त्वं चतुर्दशी ॥५२॥
ऐरावतो गजेन्द्राणां सिद्धानां कपिलो मतः । अनन्तस्त्वं हि नागानां पितॄणामर्यमा भवान् ॥५३॥
कालः कलयतां च त्वं दैत्यानां बलिरेव च । किं बहूक्तेन देवेश ! सर्वं विष्टभ्य वै जगत् ॥५४॥
एकांशेन स्थितस्त्वं हि बहिस्थोऽन्वित एव च ॥५५॥

सभी पुष्पों में आप कमल तथा पर्वतों में आप हिमालय हैं ॥ ३८ ॥ आप व्यवहार में वाणी स्वरूप हो, कवियों में भार्गव, पक्षियों में शरभ और हिंसकों में सिंह हो ॥ ३९ ॥

हे शङ्कर ! शिलाओं में आप शालग्राम शिला और सभी पूज्यों में आप नार्मद लिङ्ग हो ॥ ४० ॥ हे परमेश्वर ! आप पशुओं में नन्दीश्वर वृषभ हो, वेदों में आप उपनिषद् रूप हो और यज्ञ करने वालों में आप चन्द्रमा हो ॥ ४१ ॥ तेजस्वियों में आप पावक, शैवों में विष्णु, पुराणों में भारत तथा सभी अक्षरों में आप मकार हो ॥ ४२ ॥ बीज मन्त्रों में आप प्रणव, दारुणों में आप विष, व्यापक वस्तुओं में आप आकाश तथा आत्माओं में आप परमात्मा हो ॥ ४३ ॥ सम्पूर्ण इन्द्रियों में आप मन तथा सभी प्रकार के दानों में आप अभयदान हो । पवित्र करने वालों में आप जल तथा जीवनदान करने वालों में आप अमृत हो ॥ ४४ ॥ लाभों में पुत्र लाभ, वेगवानों में वायु तथा सभी प्रकार के नित्य कर्मों में आप सन्ध्योपासन कर्म हो ॥ ४५ ॥

सम्पूर्ण यज्ञों में आप अश्वमेध यज्ञ, युगों में सत्ययुग, नक्षत्रों में पुष्य तथा तिथियों में आप अमावास्या हैं ॥ ४६ ॥ सब ऋतुओं में वसन्त, पर्वों में संक्रान्ति, तृणों में कुश और स्थूल वृक्षों में आप वटवृक्ष हैं ॥ ४७ ॥ योगों में व्यतीपात, लताओं में सोम लता, बुद्धियों में धर्मबुद्धि तथा सुहृदों में आप कलत्र हैं ॥ ४८ ॥ हे महेश्वर ! ईश्वर-प्राप्ति के सम्पूर्ण पवित्र साधनों में आप प्राणायाम हैं तथा सभी प्रकार के ज्योतिर्लिङ्गों में आप विश्वेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग हैं ॥ ४९ ॥ सभी बन्धुओं में आप धर्मबन्धु तथा आश्रमों में आप संन्यास आश्रम हो । चतुर्वर्गों में आप मोक्ष तथा रुद्रों में आप नील लोहित नामक रुद्र हो ॥ ५० ॥ सभी आदित्यों में आप वासुदेव, वानरों में हनूमान्, यज्ञों में जपयज्ञ तथा शस्त्रधारियों में आप राम हो ॥ ५१ ॥ गन्धर्वों में चित्ररथ, वसुओं में पावक, महीनों में अधिमास और व्रतों में चतुर्दशी व्रत आप हैं ॥ ५२ ॥ गजेन्द्रों में ऐरावत, सिद्धों में कपिल, नागों में अनन्त और पितरों में अर्यमा नामक पितर आप हैं ॥ ५३ ॥ कलना करने वालों में काल तथा दैत्यों में बलि आप हैं । इस प्रकार हे देवेश, हम आप की विभूतियों की कितनी गणना करें । आप इस सारे जगत् को आक्रान्त कर बाहर तथा भीतर सर्वत्र एकांश रूप से स्थित हो ॥ ५४-५५ ॥

सनत्कुमार उवाच

इति स्तुत्वा सुराः सर्वे महादेवं वृषध्वजम् । स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैः शूलिनं परमेश्वरम् ॥५६॥

प्रत्यूचुः प्रस्तुतं दीनाः स्वार्थं स्वार्थविचक्षणाः । वासवाद्या नतस्कन्धाः कृताञ्जलिपुटा मुने ! ॥५७॥

देवा ऊचुः

पराजिता महादेव भ्रातृभ्यां सहितेन तु । भगवंस्तारकोत्पन्नैः सर्वे देवाः सवासवाः ॥५८॥

त्रैलोक्यं स्ववशं नीतं तथा च मुनिसत्तमाः । विध्वस्ताः सर्वसंसिद्धाः सर्वमुत्सादितं जगत् ॥५९॥

यज्ञभागान् समग्राँस्तु स्वयं गृह्णाति दारुणः । प्रवर्तितो ह्यधर्मस्तैर्ऋषीणां च निवारितः ॥६०॥

अवध्याः सर्वभूतानां नियतं तारकात्मजाः । तदिच्छया प्रकुर्वन्ति सर्वे कर्माणि शङ्कर ! ॥६१॥

यावन्न क्षीयते दैत्यैर्घोरैस्त्रिपुरवासिभिः । तावद् विधीयतां नीतिर्यया संरक्ष्यते जगत् ॥६२॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषामिन्द्रादीनां दिवौकसाम् । शिवः सम्भाषमाणानां प्रतिवाक्यमुवाच सः ॥६३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे
देवस्तुतिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास जी, इस प्रकार इन्द्रादि देवता सिर झुका कर हाथ जोड़े हुए विनम्र भाव से त्रिशूलधारी, परमेश्वर, वृषभध्वज महादेव की स्तुति कर अत्यन्त दीन हो, प्रस्तुत स्वार्थ की बात शङ्कर जी से कहने लगे, क्योंकि वे स्वार्थ साधन में बड़े बुद्धिमान् हैं ॥ ५६-५७ ॥

देवताओं ने कहा—हे भगवन्, इन्द्रादि सहित हम लोगों को तारकासुर के तीनों पुत्रों ने पराजित कर समस्त त्रैलोक्य एवं समस्त मुनिगणों को अपने वश में कर लिया है। उन लोगों ने सभी सिद्धों को विध्वस्त कर दिया है और सारे जगत् को तहस-नहस कर दिया है ॥ ५८-५९ ॥ वह पिशाच यज्ञ के समस्त भागों को स्वयं ग्रहण करता है, इतना ही नहीं, उसने वेद-विरुद्ध अधर्म को बढ़ावा दे रखा है ॥ ६० ॥ हे सदाशिव ! वे तारक के तीनों पुत्र सभी प्राणियों से अवध्य हैं। सभी लोग उसकी इच्छानुसार ही कर्म-धर्म का आचरण करते हैं। सम्प्रति वेद प्रतिपादित धर्म सर्वथा नष्ट हो गया है ॥ ६१ ॥ जब तक त्रिपुरासुरों के द्वारा इस जगत् का विध्वस नहीं होता है तब तक आप किसी ऐसी नीति का निर्धारण करें, जिससे इस जगत् की रक्षा हो सके ॥ ६२ ॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार इन्द्रादि देवताओं के वचन सुनकर शिवजी उन भाषण करने वाले लोगों से कहने लगे ॥ ६३ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती'भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के
पंचम-युद्धखण्ड में देव-स्तुति वर्णन नामक द्वितीय अध्याय समाप्त ॥ २ ॥

*

तृतीयोऽध्यायः

(देवताओं द्वारा तारकासुर को शिव-भक्ति में अविश्वास उत्पन्न करना)

शिव उवाच

अयं वै त्रिपुराध्यक्षः पुण्यवान् वर्ततेऽधुना। यत्र पुण्यं प्रवर्तेत न हन्तव्यो बुधैः क्वचित् ॥ १ ॥
जानामि देवकष्टं च त्रिबुधाः सकलं महत्। दैत्यास्ते प्रबला हन्तुमशक्यास्तु सुराऽसुरैः ॥ २ ॥
पुण्यवन्तस्तु ते सर्वे समयास्तारकात्मजाः। दुःसाध्यस्तु वधस्तेषां सर्वेषां पुरवासिनाम् ॥ ३ ॥
मित्रद्रोहं कथं जानन् करोमि रणकर्कशः। सुहृद् द्रोहे महत्पापं पूर्वमुक्तं स्वयम्भुवा ॥ ४ ॥
ब्रह्मघ्ने च सुरापे च स्तेये भग्नव्रते तथा। निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्नैर्नास्ति निष्कृतिः ॥ ५ ॥
मम भक्तास्तु ते दैत्या मया वध्याः कथं सुराः। विचार्यतां भवद्भिश्च धर्मज्ञैरेव धर्मतः ॥ ६ ॥
तावत्ते नैव हन्तव्या यावद्भक्तिकृतश्च मे। तथापि विष्णवे देवा निवेद्यं कारणं त्विदम् ॥ ७ ॥

सनत्कुमार उवाच

इत्येवं तद्वचः श्रुत्वा देवाः शक्रपुरोगमाः। न्यवेदयन् द्रुतं सर्वे ब्रह्मणे प्रथमं मुने ! ॥ ८ ॥
ततो विधिं पुरस्कृत्य सर्वे देवाः सवासवाः। वैकुण्ठं प्रययुः शीघ्रं सर्वे शोभासमन्वितम् ॥ ९ ॥
तत्र गत्वा हरिं दृष्ट्वा प्रणेमुर्जातसम्भ्रमाः। तुष्टुवुश्च महाभक्त्या कृताञ्जलिपुटाः सुराः ॥ १० ॥
स्वदुःखकारणं सर्वं पूर्ववत्तदनन्तरम्। न्यवेदयन् द्रुतं तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे ॥ ११ ॥
देवदुःखं ततः श्रुत्वा दत्तं च त्रिपुरालये। ज्ञात्वा व्रतं च तेषां तद्विष्णुर्वचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥

विष्णुरुवाच

इदं सत्यं वचश्चैव यत्र धर्मः सनातनः। तत्र दुःखं न जायेत सूर्ये दृष्टे यथा तमः ॥ १३ ॥

शिवजी बोले—हे देवगण ! इस समय ये त्रिपुराध्यक्ष पुण्यवान् हैं, जिनमें पुण्य हो, बुद्धिमान् व्यक्ति को उसका वध नहीं करना चाहिए ॥ १ ॥ हे देवगणो ! मैं जानता हूँ कि आप लोगों को बहुत बड़ा कष्ट है तथा यह भी जानता हूँ कि वे दैत्य इतने प्रबल हैं कि उन्हें देवता तथा असुर कोई भी मारने में समर्थ नहीं है ॥ २ ॥ मय से युक्त सभी तारकपुत्र बहुत बड़े पुण्यवान् हैं, अतः त्रिपुर में रहने वाले उन राक्षसों का वध दुःसाध्य है ॥ ३ ॥ मैं जान-बूझ कर युद्ध में अजेय होते हुए भी किस प्रकार मित्रद्रोह का आचरण करूँ। क्योंकि स्वयम्भु मनु ने मित्रद्रोह को महापातक बताया है ॥ ४ ॥ स्वयम्भु मनु का कहना है कि, ब्रह्महत्यारा, सुरापी तथा भग्नव्रत (प्रतिज्ञा कर उसका पालन न करने वाले) इन सभी की शास्त्र में निष्कृति बताया गयी है, पर कृतघ्न के लिए कोई निष्कृति नहीं है ॥ ५ ॥ हे देवताओ ! तुम्हीं लोग सोचो कि जब ये दैत्यगण मेरे भक्त हैं तब मैं उनका वध किस प्रकार कर सकता हूँ, तुम सभी धर्मज्ञ हो, इस बात का स्वयं विचार करो ॥ ६ ॥ अतः जब तक वे मुझमें भक्ति करते हैं तब तक मैं उन्हें नहीं मार सकता। तुम लोग स्वयं जाकर विष्णु से इस बात का निवेदन करो ॥ ७ ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यासदेव, शङ्कर की बात सुनकर इन्द्रादि सहित समस्त देवताओं ने सर्व-प्रथम यह बात ब्रह्मा से जाकर कही ॥८॥ तदनन्तर ब्रह्मा जी को आगे कर वे सम्पूर्ण शोभा-सम्पन्न वैकुण्ठ पुरी को गये ॥ ९ ॥ वहाँ जाकर उन्होंने आश्चर्यपूर्वक नारायण को देख कर प्रणाम किया, फिर हाथ जोड़कर बड़ी भक्ति के साथ विष्णु की स्तुति की ॥ १० ॥ अनन्तर सर्वसमर्थ विष्णु से अपने दुःख का कारण निवेदन किया ॥ ११ ॥ त्रिपुरासुर के द्वारा दिये गये देवताओं के दुःख को सुनकर तथा उनके पुण्य व्रत को जानकर विष्णु बोले ॥ १२ ॥

विष्णु बोले—यह बात सत्य है कि जहाँ सर्वदा धर्म का आचरण होता रहता है वहाँ किसी प्रकार का दुःख नहीं होता, जिस प्रकार सूर्योदय होने पर अन्धकार नहीं रहता ॥ १३ ॥

सनत्कुमार उवाच

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा देवा दुःखमुपागताः । पुनरूचुस्तथा विष्णुं परिम्लानमुखाम्बुजाः ॥१४॥

देवा ऊचुः

कथं चैव प्रकर्त्तव्यं कथं दुःखं निरस्यते । कथं भवेम सुखिनः कथं स्थास्यामहे वयम् ॥१५॥
कथं धर्मा भविष्यन्ति त्रिपुरे जीविते सति । देवदुःखप्रदा नूनं सर्वे त्रिपुरवासिनः ॥१६॥
किं वा ते त्रिपुरस्येह वधश्चैव विधीयताम् । नो चेदकालिकी देवसंहतिः क्रियतां ध्रुवम् ॥१७॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा ते तदा देवा दुःखं कृत्वा पुनः पुनः । स्थितिं नैव गतिं ते वै चक्रुर्देववरादिह ॥१८॥
तान् वै तथाविधान् दृष्ट्वा हीनान् विनयसंयुतान् । सोऽपि नारायणः श्रीमांश्चिन्तयेच्चेतसा तथा ॥१९॥
किं कार्यं देवकार्येषु मया देवसहायिना । शिवभक्तास्तु ते दैत्यास्तारकस्य सुता इति ॥२०॥
इति सञ्चिन्त्य तत्काले विष्णुना प्रभविष्णुना । ततो यज्ञाः स्मृतास्तेन देवकार्यार्थमक्षयाः ॥२१॥
तद्विष्णुस्मृतिमात्रेण यज्ञास्ते तत्क्षणं द्रुतम् । आगतास्तत्र यत्रास्ते श्रीपतिः पुरुषोत्तमः ॥२२॥
ततो विष्णुं यज्ञपतिं पुराणं पुरुषं हरिम् । प्रणम्य तुष्टुवुस्ते वै कृताञ्जलिपुटास्तदा ॥२३॥
भगवानपि तान् दृष्ट्वा यज्ञान् प्राह सनातनम् । सनातनस्तदा सेन्द्रान् देवानालोक्य चाऽच्युतः ॥२४॥

विष्णुरुवाच

अनेनैव सदा देवा यजध्वं परमेश्वरम् । पुरत्रयविनाशाय जगत्त्रयविभूतये ॥२५॥

सनत्कुमार उवाच

अच्युतस्य वचः श्रुत्वा देवदेवस्य धीमतः । प्रेम्णा ते प्रणतिं कृत्वा यज्ञेशं तेऽस्तुवन् सुराः ॥२६॥
एवं स्तुत्वा ततो देवा अजयन् यज्ञपूरुषम् । यज्ञोक्तेन विधानेन सम्पूर्णविधयो मुने ! ॥२७॥

सनत्कुमार बोले—विष्णु की बात सुनकर देवताओं को बड़ा दुःख हुआ और वे अत्यन्त मलिन मुख हो गये, फिर उन्होंने विष्णु से कहा—॥ १४ ॥

देवगण बोले—अब क्या करना चाहिए, यह दुःख किस प्रकार से दूर हो, हम लोग कैसे सुखी रहें तथा किस प्रकार से निवास करें ? ॥ १५ ॥ इस त्रिपुर के जीवित रहते किस प्रकार धर्म की रक्षा होगी । ये त्रिपुरवासी तो निश्चय ही देवताओं को महान् दुःख देने वाले हैं ॥ १६ ॥ हे विष्णो ! आप इन त्रिपुरों का वध कीजिए अन्यथा ये देवता असमय में ही नष्ट हो जायेंगे ॥ १७ ॥

सनत्कुमार बोले—वे देवता ऐसी कहकर बारम्बार बड़े दुःखी हुए, न तो विष्णु के पास से उन्हें जाते ही बना, न तो वहाँ वे ठहर ही सके ॥ १८ ॥ तब विष्णु उन देवताओं को इस प्रकार से हीन तथा विनययुक्त देखकर अपने मन में विचार करने लगे कि देवताओं की सहायता के लिए मुझे कौन-सा उपाय करना चाहिए, जब कि वे तारकासुर के तीनों पुत्र शिवभक्त होने से अवध्य हैं ॥ १९-२० ॥ उस समय सर्वसमर्थ विष्णु ने अपने मन में ऐसा विचार कर देवताओं के कार्यसिद्धि के निमित्त अक्षय यज्ञों का स्मरण किया ॥ २१ ॥ विष्णु के स्मरण करते ही वे यज्ञ तत्काल जहाँ श्रीपति पुरुषोत्तम विष्णु थे वहाँ पहुँचे ॥ २२ ॥ तत्पश्चात् उन यज्ञपुरुषों ने पुराणपुरुष श्रीहरि को हाथ जोड़ सिर झुकाकर बड़ी नम्रता से स्तुति की ॥ २३ ॥ भगवान् विष्णु ने भी उन सनातन यज्ञपुरुषों को आया देख उन्हें देवताओं की ओर दिखाते हुए कहा ॥ २४ ॥

विष्णु बोले—हे देवगण ! तुम लोग इन यज्ञों के द्वारा त्रिपुरों के विनाश एवं जगत् के कल्याण के निमित्त परमेश्वर का यजन करो ॥ २५ ॥

सनत्कुमार बोले—देवादिदेव भगवान् विष्णु के इस प्रकार के वचन सुनकर वे देवगण उन यज्ञेश की स्तुति करने लगे ॥ २६ ॥ स्तुति के पश्चात् वे यज्ञपुरुष को प्रसन्न करने के निमित्त यजन करने लगे ।

ततस्तस्माद्यज्ञकुण्डात् समुत्पेतुः सहस्रशः। भूतसङ्घा महाकायाः शूलशक्तिगदायुधाः ॥२८॥
ददृशुस्ते सुरास्तान् वै भूतसङ्घान् सहस्रशः। शूल-शक्ति-गदाहस्तान् दण्ड-चाप-शिलायुधान्॥२९॥
नानाप्रहरणोपेतान् नानावेषधराँस्तथा। कालाऽग्निरुद्रसदृशान् कालसूर्योपमाँस्तदा ॥३०॥
दृष्ट्वा तानब्रवीद् विष्णुः प्रणिपत्य पुरःस्थितान्। भूतान् यज्ञपतिः श्रीमान्रुद्राज्ञाप्रतिपालकः ॥३१॥

विष्णुरुवाच

भूताः शृणुत मद्वाक्यं देवकार्यार्थमुद्यताः। गच्छन्तु त्रिपुरं सद्यः सर्वे हि बलवत्तराः ॥३२॥
गत्वा दग्ध्वा च भित्त्वा च भङ्क्त्वा दैत्यपुरत्रयम्। पुनर्यथागता भूता गन्तुमर्हथ भूतये ॥३३॥

सनत्कुमार उवाच

तच्छ्रुत्वा भगवद्वाक्यं ततो भूतगणाश्च ते। प्रणम्य देवदेवं तं ययुर्दैत्यपुरत्रयम् ॥३४॥
गत्वा तत्प्रविशन्तश्च त्रिपुराधिपतेजसि। भस्मसाद्भवन् सद्यः शलभा इव पावके ॥३५॥
अवशिष्टाश्च ये केचित् पलायनपरायणाः। निःसृत्यारं समायाता हरेर्निकटमाकुलाः ॥३६॥
तान् दृष्ट्वा स हरिः श्रुत्वा तत्र वृत्तमशेषतः। चिन्तयामास भगवान् मनसा पुरुषोत्तमः ॥३७॥
किं कृत्यमधुना कार्यमिति सन्तप्तमानसः। सन्तप्तानमरान् सर्वानाज्ञाय च सवासवान् ॥३८॥
कथं तेषां च दैत्यानां बलाद्धत्वा पुरत्रयम्। देवकार्यं करिष्यामीत्यासीच्चिन्तासमाकुलः ॥३९॥
नाशोऽभिचारतो नास्ति धर्मिष्ठानां न संशयः। इति प्राह स्वयं चेशः श्रुत्याचारप्रमाणकृत् ॥४०॥
दैत्याश्च ते हि धर्मिष्ठाः सर्वे त्रिपुरवासिनः। तस्मादवध्यतां प्राप्ता नाऽन्यथा सुरपुङ्गवाः ॥४१॥
कृत्वा तु सुमहत्पापं रुद्रमभ्यर्चयन्ति ते। मुच्यन्ते पातकैः सर्वैः पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥४२॥

उन्होंने यज्ञोक्त सभी विधानों का सम्पादन किया ॥ २७ ॥ तब उस यज्ञकुण्ड से शूल शक्ति और गदा हाथ में धारण किये महाकाय सहस्रों भूत प्रगट हुए ॥ २८ ॥ वे सहस्रों भूत समुदाय हाथ में शूल, शक्ति, गदा, दण्ड, धनुष तथा शिला का आयुध धारण किये हुए थे ॥ २९ ॥ इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार के अस्त्र धारण किये हुए वे भूतगण नाना प्रकार के वेष धारण किये साक्षात् कालाग्नि रुद्र के समान तथा कालसूर्य के समान प्रतीत हो रहे थे ॥ ३० ॥ प्रणाम कर अपने आगे खड़े उन भूत समुदायों को देखकर यज्ञपति रुद्राज्ञापालक भगवान् विष्णु उनसे कहने लगे—॥ ३१ ॥

विष्णु बोले—देवताओं के कार्य के लिए उत्पन्न हुए हे भूतगणो! तुम मेरी बात सुनो, तुम लोग महा बलवान् हो, इस समय त्रिपुर के स्थान पर जाओ ॥३२॥ वहाँ जाकर लोकपाल के निमित्त उन दैत्यों के तीनों पुरों को जला दो, तोड़ दो, तहस-नहस कर विदीर्ण कर दो, फिर जहाँ इच्छा हो वहाँ चले जाना ॥ ३३ ॥

सनत्कुमार बोले—भगवान् विष्णु की बात सुनकर वे समस्त भूतगण देवाधिदेव श्री विष्णु को प्रणाम कर जहाँ त्रिपुर थे वहाँ गये ॥ ३४ ॥ किन्तु त्रिपुर के पुर में प्रवेश करते ही वे उनके तेज से इस प्रकार भस्म हो गये जैसे अग्नि में शलभ (फतिंगे) भस्म हो जाते हैं ॥३५॥ जो शेष बचे वे वहाँ से निकलकर अत्यन्त उद्विग्न हो विष्णु के समीप चले आये ॥ ३६ ॥ तब पुरुषोत्तम भगवान् श्री हरि उनको घबड़ाया देखकर तथा सारा वृत्तान्त जानकर 'अब क्या करना चाहिए' ऐसा विचार करते हुए वे बड़े दुःखी हुए ॥ ३७ ॥ इन्द्रादि सहित समस्त देवताओं को दुःखी देखकर पुनः विचार करने लगे कि किस प्रकार इन दैत्यों के तीनों पुरों का नाश कर देवताओं का कार्य करूँ। अभी इस चिन्ता से वे व्याकुल हो ही रहे थे कि मन में विचार आया ॥ ३८-३९ ॥ धर्मात्माओं का अभिचार से भी नाश नहीं होता ऐसा श्रुति के आचार को प्रमाणित करने वाले शङ्कर ने स्वयं कहा है ॥ ४० ॥ त्रिपुर में रहने वाले ये सभी दैत्य बड़े धर्मिष्ठ हैं, इसलिए सर्वथा अवध्य हैं, यह बात झूठी नहीं है ॥ ४१ ॥ वे महान् पाप करके भी रुद्र की अर्चना करते हैं इसलिए सभी प्रकार के पापों से मुक्त हैं। जैसे, जल में रहने पर भी पद्मपत्र उससे पृथक् रहता है ॥ ४२ ॥

रुद्राभ्यर्चनतो देवाः सर्वे कामा भवन्ति हि । नानोपभोगसम्पत्तिर्वश्यतां याति वै भुवि ॥४३॥
तस्मात्तद्भोगिनो दैत्या लिङ्गार्चनपरायणाः । अनेकविधसम्पत्तेर्मोक्षस्यापि परत्र च ॥४४॥
ततः कृत्वा धर्मविघ्नं तेषामेवात्ममायया । दैत्यानां देवकार्यार्थं हरिष्ये त्रिपुरं क्षणात् ॥४५॥
विचार्येत्थं ततस्तेषां भगवान् पुरुषोत्तमः । कर्तुं व्यवस्थितः पश्चाद्धर्मविघ्नं सुरारिणाम् ॥४६॥
यावच्च वेदधर्मोऽस्तु यावद्वै शङ्करार्चनम् । यावच्च शुचिकृत्यादि तावन्नाशो भवेन्न हि ॥४७॥
तस्मादेवं प्रकर्तव्यं वेदधर्मस्ततो व्रजेत् । त्यक्तलिङ्गार्चना दैत्या भविष्यन्ति न संशयः ॥४८॥
इति निश्चित्य वै विष्णुर्विघ्नार्थमकरोत्तदा । तेषां धर्मस्य दैत्यानामुपायं श्रुतिखण्डनम् ॥४९॥
तदैवोवाच देवान् स विष्णुर्देवसहायकृत् । शिवाज्ञया शिवेनैवाज्ञप्तस्त्रैलोक्यरक्षणे ॥५०॥

विष्णुरुवाच

हे देवाः सकला यूयं गच्छत स्वगृहान् ध्रुवम् । देवकार्यं करिष्यामि यथामति न संशयः ॥५१॥
तान् रुद्राद् विमुखान् नूनं करिष्यामि सुयत्नतः ।
स्वभक्तिरहितान् ज्ञात्वा तान् करिष्यति भस्मसात् ॥५२॥

सनत्कुमार उवाच

तदाज्ञां शिरसाधायाश्वासितास्तेऽमरा मुने! । स्व-स्वधामानि विश्वस्ता ययुर्ब्रह्मापि मोदिताः ॥५३॥
ततश्चैवाऽकरोद् विष्णुर्देवार्थं हितमुत्तमम् । तदेव श्रूयतां सम्यक् सर्वपापप्रणाशनम् ॥५४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे त्रिपुरवधोपाख्याने भूतत्रिपुरधर्मवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

हे देवगणो ! भगवान् रुद्र के पूजा-अर्चन से सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं और पृथ्वी के अनेक प्रकार के भोग एवं सम्पत्तियाँ वशीभूत हो जाती हैं ॥४३॥ यही कारण है कि लिङ्गार्चन परायण होने से ये दैत्य सभी प्रकार के आनन्द का उपभोग करते हैं। इस लोक में तो उन्हें अनेक प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त ही है परलोक में भी उन्हें मोक्ष प्राप्त होगा ॥ ४४ ॥ फिर भी मैं उन्हें अपनी माया से मोहित कर देवताओं के कार्यसिद्धि के निमित्त इस त्रिपुर का संहार करूँगा ॥ ४५ ॥ ऐसा विचार कर वे भगवान् पुरुषोत्तम उन दैत्यों के धर्म में विघ्न करने का विचार करने लगे ॥ ४६ ॥ क्योंकि जब तक उनमें वेद के धर्म हैं, तब तक वे शङ्कर की अर्चना करते हैं और जब तक उनमें पवित्रता के कृत्य हैं तब तक उनका नाश नहीं हो सकता ॥४७॥ इसलिए अब ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे उनमें रहने वाला वेद धर्म नष्ट हो जाय। जब वेदधर्म से वे बहिर्मुख हो जायेंगे तब स्वयं लिङ्गार्चन त्याग देंगे। इसमें सन्देह नहीं ॥ ४८ ॥ ऐसा विचार कर उन विष्णु ने उन दैत्यों के धर्म में विघ्न करने के लिए उनको श्रुति से बहिर्मुख करने का विचार सोचा ॥४९॥ भगवान् सदाशिव ने विष्णु को त्रैलोक्य रक्षण की आज्ञा दे दी है, इसलिए देवताओं की सहायता करने के लिए विष्णु ने उन देवताओं से कहा—॥ ५० ॥

विष्णु बोले—हे देवताओ ! इस समय तुम सब लोग निश्चित रूप से अपने घर को चले जाओ। मैं अपनी बुद्धि के अनुसार तुम देवताओं का कार्य करूँगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ ५१ ॥ मैं बड़े यत्न से उन्हें जब रुद्रार्चन से विमुख करूँगा, तब शिवजी उन्हें अपनी भक्ति से रहित जानकर अवश्य भस्म कर देंगे ॥५२॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने ! देवगण विष्णु की इस आज्ञा को शिर पर धारण कर कुछ निश्चिन्त हुए। फिर ब्रह्मा के द्वारा उसका अनुमोदन करने पर प्रसन्न हो अपने-अपने स्थानों को चले गये ॥ ५३ ॥ आप लोग जिस प्रकार भगवान् विष्णु ने देवताओं का हित विचारा, पापों को दूर करने वाली उस कथा को विश्वास के साथ सुनें ॥ ५४ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता स्थित पञ्चम युद्धखण्ड के त्रिपुरवधोपाख्यान में भूत-त्रिपुर-धर्म वर्णन नामक तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

(त्रिपुरासुर को मोहित करने हेतु विष्णु का जिन नामक पुरुष को उत्पन्न करना)

सनत्कुमार उवाच

असृजच्च महातेजाः पुरुषं स्वात्मसम्भवम् । एकं मायामयं तेषां धर्मविघ्नार्थमच्युतः ॥ १ ॥
मुण्डिनं म्लानवस्त्रं च गुम्फिपात्रसमन्वितम् । दधानं पुञ्जिकां हस्ते चालयन्तं पदे पदे ॥ २ ॥
वस्त्रयुक्तं तथा हस्तं क्षीयमाणं मुखे सदा । धर्मेति व्याहरन्तं हि वाचा विक्लवया मुनिम् ॥ ३ ॥
स नमस्कृत्य विष्णु तं तत्पुरः संस्थितोऽथ वै । उवाच वचनं तत्र हरिं स प्राञ्जलिस्तदा ॥ ४ ॥
अरिहन्नच्युतं पूज्यं किं करोमि तदादिश । कानि नामानि मे देव! स्थानं वाऽपि वद प्रभो! ॥ ५ ॥
इत्येवं भगवान् विष्णुः श्रुत्वा तस्य शुभं वचः । प्रसन्नमानसो भूत्वा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ६ ॥

विष्णुरुवाच

यदर्थं निर्मितोऽसि त्वं निबोध कथयामि ते । मदङ्गज महाप्राज्ञ मद्रूपस्त्वं न संशयः ॥ ७ ॥
ममाङ्गाच्च समुत्पन्नो मत्कार्यं कर्तुमर्हसि । मदीयस्त्वं सदा पूज्यो भविष्यति न संशयः ॥ ८ ॥
अरिहन्नाम ते स्यात्तु ह्यन्यानि न शुभानि च । स्थानं वक्ष्यामि ते पश्चाच्छृणु प्रस्तुतमादरात् ॥ ९ ॥
मायिन् मायामयं शास्त्रं तत्षोडशसहस्रकम् । श्रौतस्मार्तविरुद्धं च वर्णाश्रमविवर्जितम् ॥१०॥
अपभ्रंशमयं शास्त्रं कर्मवादमयं तथा । रचयेति प्रयत्नेन तद्विस्तारो भविष्यति ॥११॥
ददामि तव निर्माणे सामर्थ्यं तद्भविष्यति । माया च विविधा शीघ्रं त्वदधीना भविष्यति ॥१२॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य हरेश्च परमात्मनः । नमस्कृत्य प्रत्युवाच स मायी तं जनार्दनम् ॥१३॥

सनत्कुमार बोले—उन महातेजस्वी विष्णु ने दैत्यों के धर्म में विघ्न उत्पन्न करने के लिए अपनी माया से अपने ही शरीर द्वारा एक पुरुष उत्पन्न किया ॥ १ ॥ वह पुरुष अपना शिर मुड़ाये हुए, मलिन वस्त्र धारण कर हाथ में एक गुम्फि (काठ) का पात्र लिया था और दूसरे हाथ में झाड़ू लिये उससे पग-पग पर बुहारी करता चल रहा था ॥ २ ॥ वह हस्त परिमाण का वस्त्र अपने मुख पर लपेटे हुए विकल वाणी से 'धर्म, धर्म' ऐसा पुकार रहा था ॥ ३ ॥ तब वह मुनि भगवान् विष्णु को प्रणाम कर उनके आगे स्थित हो गया। और हाथ जोड़कर उनसे कहने लगा ॥ ४ ॥ वह अरिहन् भगवान् अच्युत से बोला कि मैं क्या करूँ ? हे देव ! आप मुझे आज्ञा दीजिए। आप मेरे नाम तथा स्थान का भी निर्देश कीजिए ॥ ५ ॥ तब भगवान् विष्णु उसके कल्याणकारी वचन सुनकर प्रसन्न मन हो कहने लगे ॥ ६ ॥

विष्णु बोले—हे महाप्राज्ञ ! मैंने जिस कारण तुम्हारा निर्माण किया है, उसे सुनो। तुम मेरे शरीर से उत्पन्न होने के कारण साक्षात् मेरे ही रूप हो, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७ ॥ मेरे शरीर से उत्पन्न होने के कारण तुम मेरा कार्य करने में समर्थ हो। तुम मुझसे अभिन्न हो इसलिए लोक में सदा पूज्य होगे इसमें संशय नहीं ॥ ८ ॥ तुम्हारा मुख्य नाम अरिहन् होगा और नाम तो तुम्हारे लिए अशुभ ही है, तुम्हारा स्थान तो बाद में बताऊँगा। इस समय मेरा प्रस्तुत कार्य आदर से सुनो ॥ ९ ॥ हे मायावी ! तुम सोलह हजार श्लोकों का एक पाषण्ड युक्त शास्त्र निर्माण करो, जो श्रुति-स्मृति से विरुद्ध तथा वर्णाश्रम धर्म से रहित हो ॥ १० ॥ वह शास्त्र अपभ्रंश शब्दों (धम्मं लाभोदु) से युक्त हो और केवल कर्मवाद पर आधारित हो, तुम्हारे इस शास्त्र का आगे बहुत विस्तार होगा ॥ ११ ॥ तुम्हें उस शास्त्र के निर्माण का सामर्थ्य मैं देता हूँ, मेरी कृपा से अनेक प्रकार की माया भी तुम्हारे अधीन हो जायेगी ॥ १२ ॥ वह मायावी परमात्मा श्री विष्णु के वचन सुनकर उन्हें प्रणाम कर उन जनार्दन से बोला ॥ १३ ॥

मुण्डयुवाच

यत्कर्तव्यं मया देव द्रुतमादिश तत्प्रभो ! । त्वदाज्ञयाऽखिलं कर्म सफलं च भविष्यति ॥१४॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा पाठयामास शास्त्रं मायामयं तथा । इहैव स्वर्गनरकप्रत्ययो नान्यथा पुनः ॥१५॥
तमुवाच पुनर्विष्णुः स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् । मोहनीया इमे दैत्याः सर्वे त्रिपुरवासिनः ॥१६॥
कार्यास्ते दीक्षिता नूनं पाठनीयाः प्रयत्नतः । मदाज्ञया न दोषस्ते भविष्यति महामते ! ॥१७॥
धर्मास्तत्र प्रकाशन्ते श्रौतस्मार्त्ता न संशयः । अनया विद्यया सर्वे स्फोटनीया ध्रुवं यते! ॥१८॥
गन्तुमर्हसि नाशार्थं मुण्डिस्त्रिपुरवासिनाम् । तमोधर्मं संप्रकाश्य नाशयस्व पुरत्रयम् ॥१९॥
ततश्चैव पुनर्गत्वा मरुस्थल्यां त्वया विभो । स्थातव्यं च स्वधर्मेण कलिर्यावत् समाव्रजेत् ॥२०॥
प्रवृत्ते तु युगे तस्मिन् स्वीयो धर्मः प्रकाश्यताम् । शिष्यैश्च प्रतिशिष्यैश्च वर्तनीयस्त्वया पुनः ॥२१॥
मदाज्ञया भवद्धर्मो विस्तारं यास्यति ध्रुवम् । मदनुज्ञापरो नित्यं गतिं प्राप्स्यसि मामकीम् ॥२२॥
एवमाज्ञा तदा दत्ता विष्णुना प्रभविष्णुना । शासनाद्देवदेवस्य हृदा त्वन्तर्दधे हरिः ॥२३॥
ततः स मुण्डी परिपालयन् हरेराज्ञां तथा निर्मितवांश्च शिष्यान् ।
यथास्वरूपं चतुरस्तदानीं मायामयं शास्त्रमपाठयत् स्वयम् ॥२४॥
यथा स्वयं तथा ते च चत्वारो मुण्डिनः शुभाः । नमस्कृत्य स्थितास्तत्र हरये परमात्मने ॥२५॥
हरिश्चापि मुनेस्तत्र चतुरस्तांस्तदा स्वयम् । उवाच परमप्रीतः शिवाज्ञापरिपालकः ॥२६॥
यथा गुरुस्तथा यूयं भविष्यथ मदाज्ञया । धन्याः स्थ सद्गतिमिह सम्प्राप्स्यथ न संशयः ॥२७॥

मुण्डी बोला—हे देव ! मेरा जो कर्त्तव्य हो, उसे शीघ्र कहिए। आपकी आज्ञा से सारा कार्य शीघ्र ही सिद्ध होगा ॥ १४ ॥

सनत्कुमार बोले—उसके वचन सुनकर भगवान् ने उसे स्वयं मायामय शास्त्र पढ़ाया, फिर उसे यह भी बताया कि स्वर्ग-नरक सब कुछ यहीं पर है और सब बातें झूठी हैं ॥१५॥ तदनन्तर विष्णु ने शिव के चरण-युगल का ध्यान कर, उससे कहा कि तुम इसी शास्त्र को पढ़ाकर, त्रिपुर में रहने वाले दैत्यों को मोहित करो ॥ १६ ॥ तुम उन्हें अपने धर्म की दीक्षा दो तथा प्रयत्न पूर्वक इस शास्त्र को पढ़ाओ। हे महामते ! मेरी आज्ञा के कारण तुम्हें ऐसा करने से दोष न होगा ॥ १७ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि इस समय उन दैत्यों में श्रौत तथा स्मार्त्त धर्मों का प्रकाश हो रहा है किन्तु हे यतिराज ! तुम उन्हें इस विद्या को पढ़ाकर धर्म से च्युत करो ॥ १८ ॥ अच्छा अब तुम उन त्रिपुरवासियों के विनाश के लिए शीघ्र ही चले जाओ। और उनमें इस तमोगुणी धर्म को प्रकाशित कर त्रिपुरों का नाश करो ॥ १९ ॥ हे महामते ! फिर वहाँ से मरुस्थल में जाकर कलियुग के आने तक वहीं अपने धर्म के साथ निवास करना ॥ २० ॥ और कलियुग के आ जाने पर तुम अपने धर्म का प्रकाश करना। तदनन्तर शिष्य-प्रशिष्य की परम्परा के साथ सदैव पृथ्वी पर निवास करना ॥ २१ ॥ मेरी आज्ञा से तुम्हारे इस धर्म का निश्चित रूप से विस्तार होगा तथा मेरी आज्ञा में तत्पर होने के कारण तुम अवश्य मेरी गति प्राप्त करोगे ॥ २२ ॥ इस प्रकार देवाधिदेव श्री शङ्कर की आज्ञा से हृदय में प्रेरित हुए भगवान् विष्णु उस मुण्डी को निर्देश कर अन्तर्धान हो गये ॥ २३ ॥ तदनन्तर उन चतुर मुनि ने विष्णु की आज्ञा पालन करने के लिए स्वरूप के अनुसार अपने शिष्यों का निर्माण किया और उन्हें यथायोग्य मायामय शास्त्र पढ़ाया ॥ २४ ॥ जैसा वह पुरुष था उसी प्रकार के उसके चार मुण्डी शिष्य उत्पन्न हुए। वे परमात्मा श्री विष्णु को नमस्कार कर वहीं पर स्थित हो गये ॥ २५ ॥ पुनः शिवाज्ञा पालक श्री विष्णु ने मुनि के उन चारों शिष्यों से कहा ॥ २६ ॥ मेरा आदेश है कि तुम लोगों के गुरु जैसे हैं वैसे ही तुम लोग बनो। तुम लोग धन्य हो,

चत्वारो मुण्डिनस्तेऽथ धर्मं पाषण्डमाश्रिताः । हस्ते पात्रं दधानाश्च तुण्डवस्त्रस्य धारकाः ॥२८॥
मलिनान्येव वासांसि धारयन्तो ह्यभाषिणः । धर्मो लाभः परं तत्त्वं वदन्तस्त्वतिहर्षतः ॥२९॥
मार्जनीं ध्रियमाणाश्च वस्त्रखण्डविनिर्मिताम् । शनैः शनैश्चलन्तो हि जीवहिंसाभयाद् ध्रुवम् ॥३०॥
ते सर्वे च तदा देवं भगवन्तं मुदान्विताः । नमस्कृत्य पुनस्तत्र मुने तस्थुस्तदग्रतः ॥३१॥
हरिणा च तदा हस्ते धृत्वा च गुरवेऽर्पिताः । अभ्यधायि च सुप्रीत्या तन्नामापि विशेषतः ॥३२॥
यथा त्वं च तथैवेते मदीया वै न संशयः । आदिरूपं च तन्नाम पूज्यत्वात् पूज्य उच्यते ॥३३॥
ऋषिर्यतिस्तथा कीर्य उपाध्याय इति स्वयम् । इमान्यपि तु नामानि प्रसिद्धानि भवन्तु वः ॥३४॥
ममापि च भवद्भिश्च नाम ग्राह्यं शुभं पुनः । अरिहन्निति तन्नाम ध्येयं पापप्रणाशनम् ॥३५॥
भवद्भिश्चैव कर्तव्यं कार्यं लोकसुखावहम् । लोकानुकूलं चरतां भविष्यत्युत्तमा गतिः ॥३६॥

सनत्कुमार उवाच

ततः प्रणम्य तं मायी शिष्ययुक्तः स्वयं तदा । जगाम त्रिपुरं सद्यः शिवेच्छाकारिणं मुदा ॥३७॥
प्रविश्य तत्पुरं तूर्णं विष्णुना नोदितो वशी । महामायाविना तेन ऋषिर्मायां तदाऽकरोत् ॥३८॥
नगरोपवने कृत्वा शिष्यैर्युक्तः स्थितिं तदा । मायां प्रवर्तयामास मायिनामपि मोहिनीम् ॥३९॥
शिवार्चनप्रभावेण तन्माया सहसा मुने । त्रिपुरे न चचालाशु निर्विण्णोऽभूत्तदा यतिः ॥४०॥
अथ विष्णुं स सस्मार तुष्टाव च हृदा बहु । नष्टोत्साहो विचेतस्को हृदयेन विदूयता ॥४१॥
तत्स्मृतस्त्वरितं विष्णुः सस्मार शङ्करं हृदि । प्राप्याज्ञां मनसा तस्य स्मृतवान् नारदं द्रुतम् ॥४२॥
स्मृतमात्रेण विष्णोश्च नारदः समुपस्थितः । नत्वा स्तुत्वा पुरस्तस्य स्थितोऽभूत् साञ्जलिस्तदा ॥४३॥

इसमें सन्देह नहीं कि तुम लोग सद्गति प्राप्त करोगे ॥ २७ ॥ फिर तो वे चारों शिष्य हाथ में पात्र लिये नासिका पर वस्त्र बाँधे हुए पाषण्ड धर्म में दीक्षित हो गये ॥ २८ ॥ मलिन वस्त्र धारण किये वे 'धर्म का लाभ ही परम तत्त्व है' इस प्रकार का स्वल्प भाषण प्रसन्नता के साथ करने लगे ॥ २९ ॥ और जीव-हिंसा के भय से वस्त्र के छोटे-छोटे टुकड़ों से बनी हुई मार्जनी द्वारा मार्ग को साफ करते हुए धीरे-धीरे रास्ते में पैर रखने लगे ॥ ३० ॥ वे सभी प्रसन्नता के साथ देवाधिदेव श्री विष्णु को नमस्कार कर उनके आगे स्थित हो गये ॥ ३१ ॥ तदनन्तर श्री भगवान् ने उनका हाथ पकड़ कर उन्हें श्री गुरुजी को अर्पित कर दिया। फिर बड़े प्रेम के साथ उनकी विशेषताएं बताते हुए उनका नाम भी बताया ॥३२॥ और कहा—जैसे तुम मेरे हो उसी प्रकार ये भी मेरे हैं इसमें संशय नहीं। तुम्हारा नाम आदिरूप है और पूज्य होने से तुम पूज्य भी कहे जाओगे ॥ ३३ ॥ ऋषि, यति, कीर्य एवं उपाध्याय ये नाम भी तुम लोगों के जगत् में प्रसिद्ध होंगे ॥ ३४ ॥ आप लोग मेरे भी शुभ नाम को ग्रहण कर सकोगे। मेरे 'अरिहन्' इस नाम के ग्रहण से तुम लोगों के सभी पाप नष्ट हो जायेंगे ॥ ३५ ॥ अब आप लोगों को लोककल्याणकारी कार्य करते रहना चाहिए। लोकानुकूल आचरण करने से ही उत्तम गति की प्राप्ति होगी ॥ ३६ ॥

सनत्कुमार ने कहा—इस प्रकार महामायावी विष्णु की प्रेरणा प्राप्त कर उस जितेन्द्रिय ऋषि ने त्रिपुर में प्रविष्ट होकर नगर के बाहर ही शिष्यों के सहित निवास कर बड़े-बड़े मायावियों को भी मोहित करने वाली अपनी माया फैलायी ॥ ३७-३९ ॥ हे मुने ! जब शिवजी के अर्चन के प्रभाव से उनकी वह माया त्रिपुर में न चल सकी तो यति व्याकुल हो गये ॥ ४० ॥ उस समय उनका उत्साह नष्ट हो गया, चेतना लुप्त हो गयी फिर वे दुःखी हृदय से विष्णु का स्मरण करते हुए उनकी स्तुति करने लगे ॥ ४१ ॥ विष्णु ने उनके स्मरण करते ही तत्क्षण शङ्कर का ध्यान किया। अनन्तर मन में उनकी आज्ञा प्राप्त कर उन्होंने देवर्षि नारद का स्मरण किया ॥ ४२ ॥ विष्णु के स्मरण करते ही तत्क्षण नारद वहाँ उपस्थित

अथ तं नारदं प्राह विष्णुर्मतिमतां वरः। लोकोपकारनिरतो देवकार्यकरः सदा ॥४४॥
शिवाज्ञयोच्यते तात! गच्छ त्वं त्रिपुरं द्रुतम्। ऋषिस्तत्र गतः शिष्यैर्मोहार्थं तत्पुवासिनाम् ॥४५॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य नारदो मुनिसत्तमः। गतस्तत्र द्रुतं यत्र स ऋषिर्मायिनां वरः ॥४६॥
नारदोऽपि तथा मायी नियोगान्मायिनः प्रभोः। प्रविश्य तत्पुरं तेन मायिना सह दीक्षितः ॥४७॥
ततश्च नारदो गत्वा त्रिपुराधीशसन्निधौ। क्षेमप्रश्नादिकं कृत्वा राज्ञे सर्वं न्यवेदयत् ॥४८॥

नारद उवाच

कश्चित् समागतश्चात्र यतिर्धर्मपरायणः। सर्वविद्याप्रकृष्टो हि वेदविद्यापरान्वितः ॥४९॥
दृष्टा च बहवो धर्मा नैतेन सदृशाः पुनः। वयं सुदीक्षिताश्चात्र दृष्ट्वा धर्मं सनातनम् ॥५०॥
तवेच्छा यदि वर्तेत तद्धर्मे दैत्यसत्तम! तद्धर्मस्य महाराज ग्राह्या दीक्षा त्वया पुनः ॥५१॥

सनत्कुमार उवाच

तदीयं स वचः श्रुत्वा महदर्थसुगर्भितम्। विस्मितो हृदि दैत्येशो जगौ तत्र विमोहितः ॥५२॥
नारदो दीक्षितो यस्माद् वयं दीक्षामवाप्नुमः। इत्येवं च विदित्वा वै जगाम स्वयमेव ह ॥५३॥
तद्रूपं च तदा दृष्ट्वा मोहितो मायया तथा। उवाच वचनं तस्मै नमस्कृत्य महात्मने ॥५४॥

त्रिपुराधिप उवाच

दीक्षा देया त्वया मह्यं निर्मलाशय भो ऋषे! अहं शिष्यो भविष्यामि सत्यं सत्यं न संशयः ॥५५॥
इत्येवं तु वचः श्रुत्वा दैत्यराजस्य निर्मलम्। प्रत्युवाच सुयत्नेन ऋषिः स च सनातनः ॥५६॥
मदीया करणीया स्याद्यद्याज्ञा दैत्यसत्तम! तदा देया मया दीक्षा नान्यथा कोटियत्नतः ॥५७॥

हुए और उन्हें प्रणाम कर हाथ जोड़े हुए विष्णु के आगे खड़े हो गये ॥ ४३ ॥ तब बुद्धिमानों में श्रेष्ठ विष्णु ने नारद से कहा—हे नारद! तुम सदैव लोकोपकार में निरत तथा देवताओं का कार्य करने वाले हो ॥ ४४ ॥ हे तात! मैं शिवजी की आज्ञा से तुमसे कहता हूँ कि तुम शीघ्र ही त्रिपुर में जाओ, वहाँ उस पुर के निवासियों को मोहित करने के लिए एक ऋषि शिष्यों के साथ गये हुए हैं ॥ ४५ ॥

सनत्कुमार बोले—विष्णु के वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारदजी बड़ी शीघ्रता से वहाँ गये, जहाँ वह मायावी ऋषि निवास करते थे ॥ ४६ ॥ नारद भी बड़े मायावी थे, उन्होंने मायापति श्री भगवान् की आज्ञा से उस पुर में प्रवेश कर उस मायी के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली ॥ ४७ ॥ तदनन्तर नारद ने त्रिपुराधिपति के पास जाकर उसका कुशल-मंगल आदि पूछकर राजा से सारा वृत्तान्त निवेदन किया ॥४८॥

नारद बोले—हे राजन्! धर्म में परायण कोई यति आपके नगर में आया है। वह सभी विद्याओं में पारंगत है और वेद-विद्या में विशेष रूप से निष्णात है ॥ ४९ ॥ ऐसे तो हमने बहुत धर्म देखे हैं परन्तु इसके समान किसी का धर्म नहीं देखा। इसके सनातन धर्म को देखकर हमने इससे दीक्षा ले ली है ॥ ५० ॥ अतः हे दैत्यसत्तम! हे महाराज! यदि आप की भी इच्छा उस धर्म में हो तो आप भी उस धर्म में दीक्षित हो जाइए ॥ ५१ ॥

सनत्कुमार बोले—वह दैत्यपति नारद जी के विशद अर्थ गर्भित वचन सुन कर बड़ा विस्मित हो उठा और मोहित होकर आश्चर्य से स्वयं वहाँ गया ॥ ५२ ॥ उसने विचार किया कि जब नारद जी स्वयं भी इससे दीक्षित हुए हैं तो हम भी क्यों न उससे दीक्षित हो जायें ॥ ५३ ॥ तब उस दैत्य ने उस महात्मा के स्वरूप को देखकर उसकी माया से मोहित हो नमस्कार करते हुए कहा ॥ ५४ ॥

त्रिपुराधिपति ने कहा—हे पवित्र अन्तःकरण वाले ऋषे! मुझे भी दीक्षा दीजिए, मैं आपका शिष्य बनूँगा, यह बात सत्य है, इसमें संशय नहीं ॥ ५५ ॥ दैत्यराज के इस निर्मल वचन को सुनते ही उस सनातन ऋषि ने प्रयत्न के साथ कहा—॥ ५६ ॥ हे दैत्यसत्तम! यदि तुम मेरी आज्ञा का सर्वथा पालन

इत्येवं तु वचः श्रुत्वा राजा मायामयोऽभवत् । उवाच वचनं शीघ्रं यतिं तं हि कृताञ्जलिः ॥५८॥

दैत्य उवाच

यथाज्ञां दास्यसि त्वं च तत्तथैव न चान्यथा । त्वदाज्ञां नोल्लङ्घयिष्ये सत्यं सत्यं न संशयः ॥५९॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य त्रिपुराधीशितुस्तदा । दूरीकृत्य मुखाद्वस्त्रमुवाच ऋषिसत्तमः ॥६०॥

दीक्षां गृह्णीष्व दैत्येन्द्र ! सर्वधर्मोत्तमोत्तमाम् । येन दीक्षाविधानेन प्राप्स्यसि त्वं कृतार्थताम् ॥६१॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा स तु मायावी दैत्यराजाय सत्वरम् । ददौ दीक्षां स्वधर्मोक्तां तस्मै विधिविधानतः ॥६२॥

दैत्यराजे दीक्षिते च तस्मिन् ससहजे मुने ! । सर्वे च दीक्षिता जातास्तत्र त्रिपुरवासिनः ॥६३॥

मुनेः शिष्यैः प्रशिष्यैश्च व्याप्तमासीद् द्रुतं तदा । महामायाविनस्तत्तु त्रिपुरं सकलं मुने ! ॥६४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे सनत्कुमार-पाराशर्यसंवादे त्रिपुरदीक्षाविधानं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

(देवताओं के ग्राम्य धर्म नियम का वर्णन)

व्यास उवाच

दैत्यराजे दीक्षिते च मायिना तेन मोहिते । किमुवाच तदा मायी किं चकार स दैत्यपः ॥ १ ॥

सनत्कुमार उवाच

दीक्षां दत्त्वा यतिस्तस्मा अरिहन्नारदादिभिः । शिष्यैः सेवितपादाब्जो दैत्यराजानमब्रवीत् ॥ २ ॥

करोगे तभी मैं तुम्हें दीक्षा दे सकता हूँ, अन्यथा करोड़ों यत्न करने पर भी तुम्हारी दीक्षा नहीं हो सकती ॥ ५७ ॥ यति की बात सुनते ही राजा तत्क्षण मायामय हो गया और बड़ी शीघ्रता से यतिराज से बोला ॥ ५८ ॥

दैत्यराज बोले—हे भगवन्, आप जैसी आज्ञा देंगे मैं उसका अवश्य पालन करूँगा । मैं यह बात सत्य-सत्य कहता हूँ कि आपकी आज्ञा का उल्लंघन कभी नहीं करूँगा, इसमें संशय नहीं ॥ ५९ ॥

सनत्कुमार बोले—उस त्रिपुराधीश्वर के इस प्रकार के वचन सुनकर उन ऋषि ने अपने मुख का वस्त्र दूर कर दिया और दैत्यराज से बोले ॥ ६० ॥ हे दैत्येन्द्र ! आप सभी धर्मों में परम उत्तम इस दीक्षा को ग्रहण कीजिए, जिस दीक्षा के विधान से अवश्य कृतार्थ हो जायेंगे ॥ ६१ ॥

सनत्कुमार बोले—तब उस मायावी ने ऐसा कहकर विधि-विधान के साथ अपने धर्म के अनुसार उस राजा को दीक्षित किया ॥ ६२ ॥ हे मुने, फिर तो सहोदर के सहित उस दैत्यराज के दीक्षित होते ही त्रिपुर नगर के रहने वाले सभी दैत्य उसी धर्म में दीक्षित हो गये ॥ ६३ ॥ उस समय महामायावी उस ऋषि के शिष्य-प्रशिष्य परम्पराओं से सारा त्रिपुर नगर क्षण मात्र में व्याप्त हो गया ॥ ६४ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती'भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पंचम युद्धखण्ड में सनत्कुमार-व्यास संवाद के त्रिपुरवधाख्यान में त्रिपुरदीक्षा विधान नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

*

व्यास जी बोले—हे सनत्कुमार जी, जब उस मायावी पुरुष ने दैत्यराज को मोहित कर दीक्षित कर लिया, तब उसने दैत्यराज से क्या कहा ? और दैत्यराज ने क्या किया ? ॥ १ ॥

सनत्कुमार बोले—जब उस अरिहन् यति ने दैत्यराज को दीक्षा दे दी एवं नारदादि शिष्यगण मुनिराज के चरण-कमलों की सेवा करने लगे तब अरिहन् ने दैत्यराज से कहा—॥ २ ॥

अरिहन्नुवाच

शृणु दैत्यपते ! वाक्यं मम सज्ज्ञानगर्भितम् । वेदान्तसारसर्वस्वं रहस्यं परमोत्तमम् ॥ ३ ॥
अनादिसिद्धः संसारः कर्तृकर्मविवर्जितः । स्वयं प्रादुर्भवत्येव स्वयमेव विलीयते ॥ ४ ॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं यावद्देहनिबन्धनम् । आत्मैवैकेश्वरस्तत्र न द्वितीयस्तदीशिता ॥ ५ ॥
यद्ब्रह्म-विष्णु-रुद्राख्यास्तदाख्या देहिनामिमाः । आख्या यथास्मदादीनामरिहन्नादिरुच्यते ॥ ६ ॥
देहो यथाऽस्मदादीनां स्वकालेन विलीयते । ब्रह्मादि-मशकान्तानां स्वकालाल्लीयते तथा ॥ ७ ॥
विचार्यमाणे देहेऽस्मिन्न किञ्चिदधिकं क्वचित् । आहारो मैथुनं निद्रा भयं सर्वत्र यत्समम् ॥ ८ ॥
निराहारपरीमाणं प्राप्य सर्वो हि देहभृत् । सदृशीमेव संतृप्तिं प्राप्नुयान्नाधिकेतराम् ॥ ९ ॥
यथा वित्रषिताः स्याम पीत्वा पेयं मुदा वयम् । तृषितास्तु तथान्येऽपि न विशेषोऽल्पकोऽधिकः॥ १० ॥
सन्तु नार्यः सहस्राणि रूपलावण्यभूमयः । परं निधुवने काले ह्येकैवेहोपयुज्यते ॥ ११ ॥
अश्वाः परः शताः सन्तु सन्त्वनेकेऽप्यनेकधा । अधिरोहे तथाऽप्येको न द्वितीयस्तथाऽऽत्मनः॥ १२ ॥
पर्यङ्कशायिनां स्वापे सुखं यदुपजायते । तदेव सौख्यं निद्राभिर्भूतभूशायिनामपि ॥ १३ ॥
यथैव मरणाद्भीतिरस्मदादिवपुष्मताम् । ब्रह्मादिकीटकान्तानां तथा मरणतो भयम् ॥ १४ ॥
सर्वे तनुभृतस्तुल्या यदि बुद्ध्या विचार्यते । इदं निश्चित्य केनापि नो हिंस्यः कोऽपि कुत्रचित् ॥ १५ ॥
धर्मो जीवदयातुल्यो न क्वापि जगतीतले । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कार्या जीवदया नृभिः ॥ १६ ॥
एतस्मिन्नक्षिते जीवे त्रैलोक्यं रक्षितं भवेत् । घातिते घातितं तद्वत्तस्माद्रक्षेन्न घातयेत् ॥ १७ ॥

अरिहन् बोले—हे दैत्यराज ! हमारे ज्ञानगर्भित वचन को सुनो ! जो वेदान्तसार का सर्वस्व परमोत्तम रहस्य रूप है ॥ ३ ॥ यह संसार किसी कर्त्ता के द्वारा नहीं बनाया गया है, किन्तु अनादिकाल से स्वयंसिद्ध है । यह स्वयं उत्पन्न होता है तथा स्वयं विनष्ट भी हो जाता है ॥४॥ ब्रह्मादि से लेकर स्तम्ब पर्यन्त जितने भी शरीरधारी हैं, उनका एक आत्मा ही ईश्वर है और वही उनका शासक है एवं कोई दूसरा शासक नहीं है ॥ ५ ॥ जिस प्रकार हम शरीरधारियों के नाम हैं, उसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश आदि नाम शरीरधारियों के हैं, अनादि तो एक 'अरिहन्' ही हैं ॥ ६ ॥ जिस प्रकार हम लोगों का शरीर समय आने पर नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार ब्रह्मा से लेकर मशक पर्यन्त सभी जीवधारियों का शरीर समय-समय पर नष्ट हो जाया करता है ॥ ७ ॥

विचार करने पर ज्ञात होता है कि, सभी के शरीर एक समान ही हैं, किसी में कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि सभी जीवधारियों में आहार, मैथुन, निद्रा तथा भय समान रूप से देखे जाते हैं ॥ ८ ॥ शरीरधारी निराहार रहने के उपरान्त भोजन प्राप्त करने पर समान रूप से तृप्त होते हैं, किसी में तृप्ति की मात्रा का न्यूनाधिक्य नहीं ॥ ९ ॥ जैसे, प्यास लगने पर जल पीने से हम लोग प्रसन्न एवं तृप्त होते हैं, उसी प्रकार सभी प्राणी तृप्त होते हैं, किसी में न्यूनाधिक्य नहीं ॥ १० ॥ रूप-लावण्य से युक्त चाहे सहस्रों स्त्रियाँ क्यों न हों, किन्तु रतिकाल में एक ही स्त्री का संभोग संभव है ॥ ११ ॥ जिस प्रकार अनेक प्रकार के घोड़ चाहे सौ हों, चाहे सहस्र हों, पर अधिरोहण के लिए एक ही का उपयोग सम्भव है, दूसरे का नहीं। उसी प्रकार इस एक आत्मा के ही भोगार्थ भिन्न-भिन्न शरीर होते हैं ॥ १२ ॥ पलङ्ग पर सोने वाले को, जो सुख प्राप्त होता है वही सुख पृथ्वी पर भी सोने वाले को प्राप्त होता है ॥१३॥ जैसे, हम शरीरधारियों को मरने का भय है, उसी प्रकार ब्रह्मा से लेकर कीट पर्यन्त समस्त शरीरधारियों को मरणजन्य भय उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥ इस प्रकार यदि विचार किया जाय, तो सभी शरीरधारी समान हैं, अतः कभी किसी जीव की हिंसा नहीं करनी चाहिए ॥ १५ ॥

इस जगत् में जीवों पर दया करने के समान और कोई दूसरा धर्म नहीं है । ऐसा जानकर सभी प्रकार के प्रयत्नों द्वारा मनुष्यों को जीवों पर दया करनी चाहिए ॥ १६ ॥ एक जीव की भी रक्षा करने

अहिंसा परमो धर्मः पापमात्मप्रपीडनम् । अपराधीनता मुक्तिः स्वर्गोऽभिलषिताशनम् ॥१८॥
पूर्वसूरिभिरित्युक्तं सत्प्रमाणतया ध्रुवम् । तस्मान्न हिंसा कर्त्तव्या नरैर्नरकभीरुभिः ॥१९॥
न हिंसासदृशं पापं त्रैलोक्ये सचराचरे । हिंसको नरकं गच्छेत् स्वर्गं गच्छेदहिंसकः ॥२०॥
सन्ति दानान्यनेकानि किं तैस्तुच्छफलप्रदैः । अभीतिसदृशं दानं परमेकमपीह न ॥२१॥
इह चत्वारि दानानि प्रोक्तानि परमर्षिभिः । विचार्य नानाशास्त्राणि शर्मणेऽत्र परत्र च ॥२२॥
भीतेभ्यश्चाऽभयं देयं व्याधितेभ्यस्तथौषधम् । देया विद्यार्थिनां विद्या देयमन्नं क्षुधातुरे ॥२३॥
यानि यानीह दानानि बहु मुन्युदितानि च । जीवाभयप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२४॥
अचिन्त्य प्रभावं हि मणिमन्त्रौषधं चलम् । तदभ्यस्तं प्रयत्नेन नानार्थोपार्जनाय वै ॥२५॥
अर्थानुपार्ज्य बहुशो द्वादशायतनानि वै । परितः परिपूज्यानि किमन्यैरिह पूजितैः ॥२६॥
पञ्चकर्मेन्द्रियग्रामाः पञ्चबुद्धीन्द्रियाणि च । मनो बुद्धिरिह प्रोक्तं द्वादशायतनं शुभम् ॥२७॥
इहैव स्वर्गनरकौ प्राणिनां नान्यतः क्वचित् । सुखं स्वर्गः समाख्यातो दुःखं नरकमेव हि ॥२८॥
सुखेषु भुज्यमानेषु यत् स्याद्देहविसर्जनम् । अयमेव परो मोक्षो विज्ञेयस्तत्त्वचिन्तकैः ॥२९॥
वासनासहिते क्लेशसमुच्छेदे सति ध्रुवम् । अज्ञानोपरमो मोक्षो विज्ञेयस्तत्त्वचिन्तकैः ॥३०॥
प्रामाणिकी श्रुतिरियं प्रोच्यते वेदवादिभिः । न हिंस्यात् सर्वभूतानि नान्या हिंसा प्रवर्तिका ॥३१॥
अग्निष्टोमीयमिति या भ्रामिका साऽसतामिह । न सा प्रमाणं ज्ञातॄणां पश्वालम्भनकारिका ॥३२॥

से सारे त्रैलोक्य की रक्षा की जा सकती है। इसी प्रकार एक जीव के मारने से त्रैलोक्य वध का पाप लगता है, इसलिए जीवों पर दया करनी चाहिए, हिंसा नहीं ॥१७॥ अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है तथा आत्मा को पीड़ा पहुँचाना सबसे बड़ा पाप है। पराये के अधीन न रहना ही मुक्ति है और अभिलषित भोजन की प्राप्ति ही स्वर्ग है ॥ १८ ॥ प्राचीन विद्वानों ने इस प्रकार का प्रमाण देकर यही बात सिद्ध की है, इसलिए नरक से डरने वालों को कभी जीव वध नहीं करना चाहिए ॥ १९ ॥ इस चराचर जगत् में हिंसा के समान कोई दूसरा पाप नहीं है। हिंसक नरक में जाता है तथा अहिंसक स्वर्ग का भोग करता है ॥ २० ॥ ऐसे तो संसार में अनेक प्रकार के दान हैं परन्तु तुच्छ फल देने वाले उन दानों से क्या हो सकता है ? अभयदान के सदृश और कोई दूसरा दान नहीं है ॥ २१ ॥

मनीषियों ने नाना शास्त्रों का विचार कर इस लोक में तथा परलोक में कल्याणकारी चार प्रकार के दान बताये हैं ॥ २२ ॥ भय से सन्त्रस्त लोगों को अभयदान, रोगियों को औषधिदान, विद्यार्थी को विद्या तथा भूखों को अन्न देना ॥ २३ ॥ मुनियों ने जो अनेक प्रकार के दान कहे हैं, वे सभी दान अभयदान की सोलहवीं कला की भी बराबरी नहीं कर सकते ॥ २४ ॥ मणि, मन्त्र एवं औषधि का प्रभाव अनन्त है, इसलिए अर्थोपार्जन के लिए बिना विचारे ही उसका उपयोग प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए ॥ २५ ॥ बहुत धन उपार्जित कर इस द्वादशायतन का ही पूजन करना चाहिए औरों के पूजन से क्या लाभ ? ॥ २६ ॥ पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, मन एवं बुद्धि यही द्वादशायतन हैं ॥ २७ ॥ प्राणियों के लिए यहीं पर स्वर्ग तथा नरक है अन्यत्र कहीं भी नहीं। सुख का ही नाम स्वर्ग तथा दुःख का ही नाम नरक है ॥ २८ ॥ सुख भोगते-भोगते इस देह का त्याग ही तत्त्व चिन्तकों ने परमोक्ष बताया है ॥ २९ ॥ जब वासना के सहित समस्त क्लेशों का एवं अज्ञान का नाश हो जाय, तो तत्त्वचिन्तकों ने इसी को मोक्ष संज्ञा दी है ॥३०॥

किसी भी प्राणी की हिंसा नही करनी चाहिए, यही श्रुति प्रमाण है और जो अग्निष्टोमादि यज्ञों में अन्य प्रकार से हिंसा की जाती है वह तो भ्रम उत्पन्न करने के लिए असज्जन लोग कहते हैं। 'अग्निष्टोमीयं पशुमालभेत्' (अग्निष्टोमीय पशु का आलम्भन करना) यह श्रुति तो ज्ञानियों के लिए प्रणाम नहीं

वृक्षांश्छित्त्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम् । दग्ध्वा वह्नौ तिलाज्यादि चित्रं स्वर्गोऽभिलष्यते ॥३३॥
इत्येवं स्वमतं प्रोच्य यतिस्त्रिपुरनायकम् । श्रावयित्वाऽखिलान् पौरानुवाच पुनरादरात् ॥३४॥
दृष्टार्थप्रत्ययकरान् देहसौख्यैकसाधकान् । बौद्धागम-विनिर्दिष्टान् धर्मान् वेदपरांस्ततः ॥३५॥
आनन्दं ब्रह्मणो रूपं श्रुत्यैवं यन्निगद्यते । तत्तथैवेह मन्तव्यं मिथ्या नानात्वकल्पना ॥३६॥
यावत् स्वस्थमिदं वर्ष्म यावन्नेन्द्रियविक्लवः । यावज्जरा च दूरेऽस्ति तावत् सौख्यं प्रसाधयेत् ॥३७॥
अस्वास्थ्येन्द्रियवैकल्ये वार्द्धक्ये तु कुतः सुखम् । शरीरमपि दातव्यमर्थिभ्योऽतः सुखेप्सुभिः ॥३८॥
याचमानमनोवृत्तिप्रीणने यस्य नो जनिः । तेन भूर्भारवत्येषा समुद्रागद्रुमैर्न हि ॥३९॥
सत्वरं गत्वरो देहः सञ्चयाः सपरिक्षयाः । इति विज्ञाय विज्ञाता देहसौख्यं प्रसाधयेत् ॥४०॥
श्व-वायस-कृमीणां च प्रातर्भोज्यमिदं वपुः । भस्मान्तं तच्छरीरं च वेदे सत्यं प्रपठ्यते ॥४१॥
मुधा जाति विकल्पोऽयं लोकेषु परिकल्प्यते । मानुष्ये सति सामान्ये कोऽधमः कोऽथ चोत्तमः ॥४२॥
ब्रह्मादिसृष्टिरेषेति प्रोच्यते वृद्धपूरुषैः । तस्य जातौ सुतौ दक्षमरीची चेति विश्रुतौ ॥४३॥
मारीचेन कश्यपेन दक्षकन्याः सुलोचनाः । धर्मेण किल मार्गेण परिणीतास्त्रयोदश ॥४४॥
अपीदानीन्तनैर्मर्त्यैरल्पबुद्धिपराक्रमैः । अपि गम्यस्त्वगम्योऽयं विचारः क्रियते मुधा ॥४५॥
मुखबाहूरुसञ्जातं चातुर्वर्ण्यं सहोदितम् । कल्पनेयं कृता पूर्वैर्न घटेत विचारतः ॥४६॥

है ॥ ३१-३२ ॥ यह तो बड़े आश्चर्य की बात है कि वृक्षों का उच्छेद कर पशुओं का वध कर उनकी रुधिर का कीच बनाकर लोग आग में तिलमिश्रित घी को जलाकर स्वर्ग की अभिलाषा करते हैं ॥ ३३ ॥ इस प्रकार यतिराज ने उस त्रिपुराधिपति से अपना सिद्धान्त कहकर समस्त त्रिपुरवासियों को सुनाते हुए आदर से बौद्धागमों में निर्दिष्ट देहमात्र को सुख देनेवाले और प्रत्यक्ष पर ही विश्वास करने वाले धर्मों का निरूपण करते हुए कहा ॥ ३४-३५ ॥ श्रुति में आनन्द को ही ब्रह्म का रूप बताया गया है। इसके अतिरिक्त और सभी नाना धर्मों की कल्पना मिथ्या है ॥ ३६ ॥ जब तक यह शरीर स्वस्थ है, जब तक इन्द्रियाँ निर्बल नहीं होतीं और जब तक वृद्धावस्था दूर है तब तक पुरुष को चाहिए कि अपने सुख का साधन प्राप्त कर ले ॥ ३७ ॥ पुनः वृद्ध हो जाने पर जब इन्द्रियाँ निर्बल एवं अस्वस्थ हो जायेंगी तब सुख की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है। इसलिए सुख चाहने वालों को चाहिए कि अर्थी के निमित्त अपने शरीर का भी दान कर दे ॥ ३८ ॥ जिनका जन्म माँगने वालों की मनोवृत्ति को प्रसन्न करने के लिए नहीं हुआ वही इस पृथ्वी के भारभूत हैं, समुद्र, पर्वत एवं वृक्ष नहीं ॥ ३९ ॥

यह शरीर शीघ्र ही नष्ट होने वाला है, सञ्चित वस्तुओं का नाश भी निश्चित है, ऐसा जानकर ज्ञानियों को अपने शरीर की सुखप्राप्ति निमित्त उपाय करते रहना चाहिए ॥ ४० ॥ यह शरीर कुत्ते, कौवे तथा कृमियों का भोजन है, अतः वेद में ठीक ही कहा गया है कि शरीर अन्त में भस्म होने वाला है ॥ ४१ ॥ लोक में जाति-कल्पना व्यर्थ ही की गई है, सभी मनुष्य समान हैं तो ऊँच और नीच का विचार कैसा ? ॥ ४२ ॥ वृद्ध लोग कहते हैं कि इस सृष्टि की आदि में ब्रह्मा उत्पन्न हुए, उनके विख्यात दक्ष तथा मरीचि दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४३ ॥ तदनन्तर मरीचि-पुत्र कश्यप ने दक्ष की सुन्दर नेत्रवाली परम मनोहर तेरह कन्याओं से धर्मपूर्वक विवाह किया ॥ ४४ ॥ जब उस समय उन्होंने अपने गोत्र में विवाह का विचार नहीं किया, तब इस समय लोग गम्या तथा अगम्या का व्यर्थ ही विचार करते हैं ॥४५॥ प्रजापति ब्रह्मदेव के मुख, बाहु, जङ्घा एवं चरण से चार वर्ण उत्पन्न हुए हैं, यह तो पूर्व पुरुषों की कल्पना

एकस्यां च तनौ जाता एकस्माद्यदि वा क्वचित् । चत्वारस्तनयास्तत्किं भिन्नवर्णत्वमाप्नुयुः ॥४७॥
वर्णावर्णविभागोऽयं तस्मान्न प्रतिभासते । अतो भेदो न मन्तव्यो मानुष्ये केनचित् क्वचित् ॥४८॥

सनत्कुमार उवाच

इत्थमाभाष्य दैत्येशं पौरांश्च स यतिर्मुने । सशिष्यो वेदधर्मांश्च नाशयामास चादरात् ॥४९॥
स्त्रीधर्मं खण्डयामास पातिव्रत्यपरं महत् । जितेन्द्रियत्वं सर्वेषां पुरुषाणां तथैव सः ॥५०॥
देवधर्मान् विशेषेण श्राद्धधर्मांस्तथैव च । मखधर्मान् व्रतादींश्च तीर्थश्राद्धं विशेषतः ॥५१॥
शिवपूजां विशेषेण लिङ्गाराधनपूर्विकाम् । विष्णु-सूर्य-गणेशादिपूजनं विधिपूर्वकम् ॥५२॥
स्नानदानादिकं सर्वं पर्वकालं विशेषतः । खण्डयामास स यतिर्मायी मायाविनां वरः ॥५३॥
किं बहूक्तेन विप्रेन्द्र ! त्रिपुरे तेन मायिना । वेदधर्माश्च ये केचित्ते सर्वे दूरतः कृताः ॥५४॥
पतिधर्माश्रयाः सर्वा मोहितास्त्रिपुराङ्गनाः । भर्तृशुश्रूषणवतीं विजह्रुर्मतिमुत्तमाम् ॥५५॥
अभ्यस्याकर्षणीं विद्यां वशीकृत्यमयीमपि । पुरुषाः सफलीचक्रुः परदारेषु मोहिताः ॥५६॥
अन्तःपुरचरा नार्यस्तथा राजकुमारकाः । पौराः पुराङ्गनाश्चापि सर्वे तैश्च विमोहिताः ॥५७॥
एवं पौरेषु सर्वेषु निजधर्मेषु सर्वथा । पराङ्मुखेषु जातेषु प्रोल्ललास वृषेतरः ॥५८॥
माया च देवदेवस्य विष्णोस्तस्याज्ञया प्रभो ! । अलक्ष्मीश्च स्वयं तस्य नियोगात् त्रिपुरं गता ॥५९॥
या लक्ष्मीस्तपसा तेषां लब्धा देवेश्वरादरात् । बहिर्गता परित्यज्य नियोगाद् ब्रह्मणः प्रभोः ॥६०॥
बुद्धिमोहं तथाभूतं विष्णोर्मायाविनिर्मितम् । तेषां दत्त्वा क्षणादेव कृतार्थोऽभूत् स नारदः ॥६१॥

ही है विचार करने पर बात नहीं बैठती ॥ ४६ ॥ एक ही पुरुष के एक ही शरीर से यदि चार लड़के उत्पन्न होते हैं, तो उसके चारों पुत्रों में भिन्न-भिन्न वर्णता किस प्रकार हो सकती है ॥ ४७ ॥ इस कारण वर्ण एवं अवर्ण का विभाग उचित नहीं प्रतीत होता। इसलिए किसी को भी मनुष्य में कोई भेद नहीं मानना चाहिए ॥ ४८ ॥

सनत्कुमार बोले—हे वेदव्यास ! इस प्रकार शिष्य सहित वह मायावी यति उन पुरवासियों तथा राजा से कहते हुए वेदधर्म, स्त्री धर्म, पातिव्रत्य धर्म तथा समस्त पुरुषों में रहने वाले जितेन्द्रियत्व धर्म का विशेष रूप से देवधर्म, श्राद्धधर्म, यज्ञधर्म, व्रत, तीर्थश्राद्ध, शिवपूजा, लिङ्गाराधन, विष्णु, सूर्य एवं गणेश इन पञ्चदेवों की उपासना, विधिपूर्वक सभी प्रकार के पर्वकालों पर किये गये स्नान तथा दान का युक्ति सङ्गत अच्छी प्रकार खण्डन किया ॥ ४९-५३ ॥ हे वेदव्यास ! बहुत कहने से क्या ? उस मायावी ने त्रिपुर में होने वाले सभी वेदधर्मों को दूर कर दिया ॥ ५४ ॥ जिससे वहाँ की रहने वाली प्रतिव्रता स्त्रियाँ मोह में पड़ गयीं और अपने पतिसेवा की उत्तम बुद्धि का त्याग कर दिया ॥ ५५ ॥ पुरुषों ने आकर्षण एवं वशीकरण विद्या का अभ्यास कर परदार में आसक्त हो अपना जीवन सफल माना ॥ ५६ ॥

इस प्रकार उस यतिराज के उपदेश से अन्तःपुर की स्त्रियाँ, राजकुमार, पुरवासी, पुर की स्त्रियाँ आदि सभी मोहित हो गये ॥ ५७ ॥ जिससे सभी लोग धर्म-विहीन हो गये और वहाँ अधर्म की वृद्धि होने लगी ॥ ५८ ॥ देवाधिदेव विष्णु की माया से मोहित हुए उन त्रिपुरों के पुर में स्वयं दरिद्रता का निवास हो गया ॥ ५९ ॥ उन लोगों ने जिस महालक्ष्मी को अपनी महती तपस्या से देवेश्वर द्वारा प्राप्त की थी वह ब्रह्मदेव की आज्ञा से उस पुर से बाहर चली गयी ॥ ६० ॥ इस प्रकार देवर्षि नारद विष्णु की माया

नारदोऽपि तथारूपो यथा मायी तथैव सः । तथापि विकृतो नाऽभूत् परमेशादनुग्रहात् ॥६२॥
आसीत् कुण्ठितसामर्थ्यो दैत्यराजोऽपि भो मुने ! । भ्रातृभ्यां सहितस्तत्र मयेन च शिवेच्छया ॥६३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे
त्रिपुरमोहनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

(शिव धर्म त्यागने पर तारकवध होगा—इस विषय में देवताओं द्वारा शिव-स्तुति)

व्यास उवाच

तस्मिन् दैत्याधिपे पौरे सभ्रातरि विमोहिते । सनत्कुमार ! किं चासीत्तदाचक्ष्वाखिलं विभो ॥ १ ॥

सनत्कुमार उवाच

त्रिपुरे च तथाभूते दैत्ये त्यक्तशिवार्चने । स्त्रीधर्मे निखिले नष्टे दुराचारे व्यवस्थिते ॥ २ ॥
कृतार्थ इव लक्ष्मीशो देवैः सार्द्धमुमापतिम् । निवेदितुं तच्चरित्रं कैलासमगमद्धरिः ॥ ३ ॥
तस्योपकण्ठं स्थित्वाऽसौ देवैः सह रमापतिः । ततो भूरि स च ब्रह्मा परमेण समाधिना ॥ ४ ॥
मनसा प्राप्य सर्वज्ञं ब्रह्मणा स हरिस्तदा । तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः शङ्करं पुरुषोत्तमः ॥ ५ ॥

विष्णुरुवाच

महेश्वराय देवाय नमस्ते परमात्मने । नारायणाय रुद्राय ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणे ॥ ६ ॥
एवं कृत्वा महादेवं दण्डवत् प्रणिपत्य ह । जजाप रुद्रमन्त्रं च दक्षिणामूर्तिसम्भवम् ॥ ७ ॥
जले स्थित्वा सार्द्धकोटिप्रमितं तन्मनाः प्रभुः । संस्मरन् मनसा शम्भुं स्वप्रभुं परमेश्वरम् ॥ ८ ॥
तावद्देवास्तदा सर्वे तन्मनस्का महेश्वरम् ॥ ९ ॥

से होने वाले उन राक्षसों के बुद्धि-मोह को देखकर अपना मनोरथ सफल समझा ॥ ६१ ॥ उन्होंने भी उस मायावी जैसा रूप धारण कर लिया, किन्तु परमेश्वर के अनुग्रह से वे अपने धर्म से किञ्चित् भी विचलित नहीं हुए ॥ ६२ ॥ हे मुनि ! फिर तो भाई सहित उस दैत्यराज का सारा पराक्रम कुण्ठित हो गया, यही शिव की इच्छा जो थी ॥ ६३ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड में त्रिपुरमोहन नामक पञ्चम अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥

*

व्यासजी बोले—हे सनत्कुमारजी ! जब पुरवासियों सहित वह दैत्यराज मोहित हो गया तब क्या हुआ ? वह सारा आख्यान कहिए ? ॥ १ ॥

सनत्कुमार बोले—मायावी के इस प्रकार के उपदेश से जब दैत्यराज ने शिवार्चन का त्याग कर दिया और वहाँ का सारा स्त्रीधर्म नष्ट हो गया तथा दुराचार की वृद्धि हो गयी ॥ २ ॥ तब भगवान् विष्णु अपने को कृतार्थ मानकर देवताओं को साथ लेकर दैत्यराज का सारा चरित्र निवेदन करने के लिए कैलास पहुँचे ॥ ३ ॥ फिर ब्रह्मा सहित उन विष्णु ने समाधि से तथा मन से प्राप्त होने वाले उन सर्वज्ञ परमेश्वर सदाशिव की इष्ट वाणी से इस प्रकार स्तुति की ॥ ४-५ ॥

विष्णु बोले—जो महेश्वर देव परमात्मास्वरूप, नारायण, रुद्र, ब्रह्म तथा परब्रह्मस्वरूप कहे जाते हैं, उन्हें नमस्कार है । इस प्रकार महादेव की स्तुति कर उन्होंने दण्डवत् प्रणाम किया, फिर शिव में अपना मन उन्हीं का स्मरण करते हुए एकाग्र कर उन प्रभु ने जल में स्थित हो दक्षिणामूर्ति से उत्पन्न हुए रुद्र मन्त्र का डेढ़ करोड़ जप करने लगे । उस समय सभी देवगण भी महेश्वर में अपना मन एकाग्र कर उनकी स्तुति करने लगे ॥ ६-९ ॥

देवा ऊचुः

नमः सर्वात्मने तुभ्यं शङ्करायार्तिहारिणे । रुद्राय नीलकण्ठाय चिद्रूपाय प्रचेतसे ॥१०॥
गतिर्नः सर्वदा त्वं हि सर्वापद्विनिवारकः । त्वमेव सर्वदाऽस्माभिर्वन्द्यो देवारिसूदन ! ॥११॥
त्वमादिस्त्वमनादिश्च स्वानन्दश्चाक्षयः प्रभुः । प्रकृतेः पुरुषस्यापि साक्षात् स्रष्टा जगत्प्रभुः ॥१२॥
त्वमेव जगतां कर्ता भर्ता हर्ता त्वमेव हि । ब्रह्मा विष्णुर्हरो भूत्वा रजःसत्त्वतमोगुणैः ॥१३॥
तारकोऽसि जगत्यस्मिन् सर्वेषामधिपोऽव्ययः । वरदो वाङ्मयो वाच्यो वाच्यवाचकवर्जितः ॥१४॥
याच्यो मुक्त्यर्थमीशानो योगिभिर्योगवित्तमैः । हृत्पुण्डरीकविवरे योगिनां त्वं हि संस्थितः ॥१५॥
वदन्ति वेदास्त्वां सन्तः परब्रह्मस्वरूपिणम् । भवन्तं तत्त्वमित्यद्य तेजोराशिं परात्परम् ॥१६॥
परमात्मानमित्याहुरस्मिन् जगति यद्विभो ! । त्वमेव शर्व सर्वात्मन् त्रिलोकाधिपते भव ॥१७॥
दृष्टं श्रुतं स्तुतं सर्वं ज्ञायमानं जगद्गुरो ! । अणोरल्पतरं प्राहुर्महतोऽपि महत्तरम् ॥१८॥
सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् । सर्वतः श्रवणघ्राणं त्वां नमामि च सर्वतः ॥१९॥
सर्वज्ञं सर्वतो व्यापिन् ! सर्वेश्वरमनावृतम् । विश्वरूपं विरूपाक्षं त्वां नमामि च सर्वतः ॥२०॥
सर्वेश्वरं भवाध्यक्षं सत्यं शिवमनुत्तमम् । कोटिभास्करसङ्काशं त्वां नमामि च सर्वतः ॥२१॥
विश्वदेवमनाद्यन्तं षट्त्रिंशत्कमनीश्वरम् । प्रवर्तकं च सर्वेषां त्वां नमामि च सर्वतः ॥२२॥
प्रवर्तकं च प्रकृतेः सर्वस्य प्रपितामहम् । सर्वविग्रहमीशं हि त्वां नमामि च सर्वतः ॥२३॥
एवं वदन्ति वरदं सर्वावासं स्वयम्भुवम् । श्रुतयः श्रुतिसारज्ञं श्रुतिसारविदश्च ये ॥२४॥

देवगण बोले—सब में आत्मरूप से विराजमान, सब के दुःखों को दूर करने वाले, रुद्र, नीलकण्ठ, चिद्रूप एवं प्रचेता रूप आप शङ्कर को हम देवताओं का प्रणाम है ॥ १० ॥ हे प्रभो ! आप हम सब की आपत्तियों को दूर करने वाले तथा हम सबकी गति हो और हे अरिसूदन ! आप सर्वदा ही हमलोगों से वन्दनीय हो ॥ ११ ॥ आप ही आदि, अनादि, स्वात्मानन्द, अक्षयरूप तथा प्रभु हो । आप ही जगत्प्रभु तथा साक्षात् प्रकृति एवं पुरुष के स्रष्टा हो ॥ १२ ॥ हे प्रभो ! आप ही इस जगत् के कर्त्ता, भर्त्ता तथा हर्ता हो और आप ही रज, सत्त्व तथा तमोगुण से ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र स्वरूप हो ॥ १३ ॥ आप सबके तारने वाले तथा इस जगत् के अधिपति एवं अव्यय हो। आप ही वर देने वाले, शब्द एवं अर्थस्वरूप हो और स्वयं वाच्य-वाचक रूप अर्थ तथा शब्द से परे हो ॥ १४ ॥ उत्तम योगों के जानकार योगी जन आप ईशान से ही मुक्ति की याचना करते हैं । आप ही योगिजनों के हृत्कमल पर वास करने वाले हो ॥ १५ ॥ सभी वेद एवं सन्तगण आपको ही तेजोराशि, परात्परः स्वरूप 'तत्त्वमसि' इत्यादि वाक्य से जानने योग्य ब्रह्मस्वरूप कहते हैं ॥ १६ ॥

हे विभो ! इस जगत् में जिसे परमात्मा कहा जाता है, वह शर्व, सर्वात्मा, त्रिलोकाधिपति तथा भव शब्द से कहे जाने वाले तुम्हीं हो ॥ १७ ॥ हे जगद्गुरो ! आपको ही विज्ञजन, दृष्ट, श्रुत एवं स्तुति रूप से जानने योग्य अणु से भी अणु एवं महान् से भी महान् कहते हैं ॥ १८ ॥ आपके हाथ, चरण, नेत्र, शिर, मुख, कान, नासिका सर्वत्र एवं सभी दिशाओं में रहने वाले हैं, अतः आप को प्रणाम है ॥ १९ ॥ आप सर्वज्ञ, सर्वत्र व्याप्त, सर्वेश्वर, मायारहित, विश्वरूप एवं विरूपाक्ष हैं, अतः हमलोग आपको सब ओर से प्रणाम करते हैं ॥ २० ॥ आप सर्वेश्वर, संसार के अधिष्ठाता, सत्य, उत्तम कल्याणकारी सदाशिव तथा करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशमान् हैं, अतः हम लोग सब ओर से आपको प्रणाम करते हैं ॥२१॥ आप ही विश्वदेव, आदि एवं अन्त से रहित, छत्तीस तत्त्व वाले एवं सबसे महान् हैं और सबको प्रवृत्ति मार्ग में स्थापित करने वाले हैं, अतः आपको सब ओर से हम लोगों का नमस्कार है ॥ २२ ॥

आप प्रकृति को प्रेरणा देने वाले, सबके प्रपितामह, सर्वविग्रह तथा ईश्वर हैं, अतः सब प्रकार से हमलोग आपको प्रणाम करते हैं ॥ २३ ॥ श्रुतियाँ तथा श्रुति सिद्धान्तवेत्ता लोग आपको ही वरद, सर्वावास,

अदृश्यमस्माभिरनेकभूतं त्वया कृतं यद्भवताऽथ लोके।
त्वामेव देवा-ऽसुर-भूसुराश्च अन्ये च वै स्थावर-जङ्गमाश्च ॥२५॥

पाह्यनन्यगतीञ्शम्भो सुराणां देववल्लभ!। नष्टप्रायांस्त्रिपुरतो विनिहत्यासुरान् क्षणात् ॥२६॥
मायया मोहितास्तेऽद्य भवतः परमेश्वर!। विष्णुना प्रोक्तयुक्त्या त उज्झिता धर्मतः प्रभो! ॥२७॥
सन्त्यक्तसर्वधर्माश्च बौद्धागमसमाश्रिताः। अस्मद्भाग्यवशाज्जाता दैत्यास्ते भक्तवत्सल! ॥२८॥
सदा त्वं कार्यकर्त्ता हि देवानां शरणप्रद!। वयं ते शरणापन्ना यथेच्छसि तथा कुरु ॥२९॥

सनत्कुमार उवाच

इति स्तुत्वा महेशानं देवास्तु पुरतः स्थिताः। कृताञ्जलिपुटा दीना आसन् संनतमूर्तयः ॥३०॥
स्तुतश्चैवं सुरेन्द्राद्यैर्विष्णोर्जाप्येन चेश्वरः। अगच्छत्तत्र सर्वेशो वृषमारुह्य हर्षितः ॥३१॥
विष्णुमालिङ्ग्य नन्दीशादवरुह्य प्रसन्नधीः। ददर्श सुदृशा तत्र नन्दीदत्तकरोऽखिलान् ॥३२॥
अथ देवान् समालोक्य कृपादृष्ट्या हरिं हरः। प्राह गम्भीरया वाचा प्रसन्नः पार्वतीपतिः ॥३३॥

शिव उवाच

ज्ञातं मयेदमधुना देवकार्यं सुरेश्वर!। विष्णोर्मायाबलं चैव नारदस्य च धीमतः ॥३४॥
तेषामधर्मनिष्ठानां दैत्यानां देवसत्तम!। पुरत्रयविनाशं च करिष्येऽहं न संशयः ॥३५॥
परन्तु ते महादैत्या भद्भक्ता दृढमानसाः। अथ वध्या मयैव स्युर्व्याजत्यक्तवृषोत्तमाः ॥३६॥
विष्णुर्हन्यात् परो वाऽथ यत्त्याजितवृषाः कृताः। दैत्या मद्भक्तिरहिताः सर्वे त्रिपुरवासिनः ॥३७॥

स्वयंभू तथा श्रुतिसार सर्वज्ञ कहते हैं ॥ २४ ॥ आपने इस लोक में जो अनेक प्रकार की सृष्टि की है वह हमलोगों के दृष्टिपथ में नहीं आ सकती। देवता, असुर, ब्राह्मण, स्थावर तथा जङ्गम सब आप ही हैं ॥ २५ ॥ हे देववल्लभ! हे शम्भो! हमलोग इस त्रिपुर के द्वारा अहर्निश नष्ट किये जा रहे हैं, अतः इसका विनाश कर हम अनन्य गतिक शरणार्थियों की रक्षा कीजिए ॥ २६ ॥ हे परमेश्वर! इस समय वे असुर विष्णु की युक्ति से आपकी माया द्वारा मोहित हो रहे हैं और धर्म से बहिर्मुख हो रहे हैं ॥ २७ ॥ और उन लोगों ने सारे वैदिक धर्मों को त्याग दिया है और बौद्ध शास्त्रों के अनुयायी हो रहे हैं। हे भक्तवत्सल! उनकी ऐसी दशा हमलोगों के सौभाग्य से ही हुई है ॥ २८ ॥ हे शरण देने वाले प्रभो! आप तो सदा से ही देवताओं का कार्य करने वाले हैं और इस समय हम आपकी शरण में आये हुए हैं, अतः आपकी जैसी इच्छा हो वैसा करो ॥ २९ ॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार महेश्वर की स्तुति कर, दीन हो, हाथ जोड़ हुए देवगण सिर झुका कर महेश्वर के आगे खड़े हो गये ॥ ३० ॥ तदनन्तर इन्द्रादि देवताओं के द्वारा स्तुति किये जाने पर तथा विष्णु के द्वारा किये जाने वाले जप के प्रभाव से प्रसन्न हुए भगवान् सदाशिव वृषभ पर आरूढ़ हो वहाँ गये ॥ ३१ ॥ फिर नन्दीश्वर से उतर कर उन्होंने बड़ी प्रसन्नता के साथ विष्णु का आलिगन किया और नन्दीश्वर पर हाथ रखकर सभी देवताओं की ओर मनोहर दृष्टि से देखने लगे ॥ ३२ ॥ तब पार्वतीपति भगवान् शङ्कर इस प्रकार कृपाभरी दृष्टि से देवताओं एवं विष्णु की ओर देखते हुए गम्भीर वाणी में बोले—॥ ३३ ॥

शिवजी बोले—हे सुरेश्वर, हे विष्णो! मैंने देवताओं का कार्य भली प्रकार जान लिया है तथा महाबुद्धिमान् विष्णु एवं नारद की मायाबल को भी अच्छी तरह जानता हूँ ॥ ३४ ॥ इतना ही नहीं, उन दैत्यों की अधर्म-निष्ठता भी जानता हूँ। हे देवसत्तम! मैं त्रिपुर का विनाश शीघ्र ही कर देता, इसमें संशय नहीं ॥ ३५ ॥ पर वे महादैत्य मन से मेरे दृढ़ भक्त हैं, यद्यपि उन्होंने माया से मोहित होकर धर्म का त्याग कर दिया है इसलिए मैं किस प्रकार उनका वध कर सकता हूँ ॥ ३६ ॥ जब त्रिपुर में रहने वाले सभी दैत्य मेरी भक्ति से रहित हो गये हैं तो उनका वध भगवान् विष्णु करेंगे, जिन्होंने बहाने से

इति शम्भोस्तु वचनं श्रुत्वा सर्वे दिवौकसः । विमनस्का बभूवुस्ते हरिश्चापि मुनीश्वर ! ॥३८॥
देवान् विष्णुमुदासीनान् दृष्ट्वा च भवकृद्विधिः । कृताञ्जलिपुटः शम्भुं ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

न किञ्चित् विद्यते पापं यस्मात्त्वं योगवित्तमः । परमेशः परब्रह्म सदा देवर्षिरक्षकः ॥४०॥
तवैव शासनात्ते वै मोहिताः प्रेरको भवान् । त्यक्तस्वधर्मात्त्वत्पूजाः परवध्यास्तथाऽपि न ॥४१॥
अतस्त्वया महादेव ! सुरर्षिप्राणरक्षक ! । साधूनां रक्षणार्थाय हन्तव्या म्लेच्छजातयः ॥४२॥
राज्ञस्तस्य न तत्पापं विद्यते धर्मतस्तव । तस्माद्रक्षेद् द्विजान् साधून् कण्टकाद् वै विशोधयेत् ॥४३॥
एवमिच्छेदिहान्यत्र राजा चेद्राज्यमात्मनः । प्रभुस्त्वं सर्वलोकानां तस्माद्रक्षस्व माचिरम् ॥४४॥
मुनीन्द्रेशास्तथैव यज्ञा वेदाः शास्त्रादयोऽखिलाः । प्रजास्ते देवदेवेश ह्ययं विष्णुरपि ध्रुवम् ॥४५॥
देवतासार्वभौमस्त्वं सम्राट् सर्वेश्वरः प्रभो ! । परिवारस्तवैवैष हर्यादि सकलं जगत् ॥४६॥
युवराजो हरिस्तेऽज ब्रह्माऽहं ते पुरोहितः । राजकार्यकरः शक्रस्त्वदाज्ञापरिपालकः ॥४७॥
देवा अन्येऽपि सर्वेश ! तव शासनयन्त्रिताः । स्वस्वकार्यकरा नित्यं सत्यं सत्यं न संशयः ॥४८॥

सनत्कुमार उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणः परमेश्वरः । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा शङ्करः सुरपो विधिम् ॥४९॥

शिव उवाच

हे ब्रह्मन् ! यद्यहं देवराजः सम्राट् प्रकीर्त्तितः । तत्प्रकारो न मे कश्चिद् गृह्णीयां यमिह प्रभुः ॥५०॥
रथो नास्ति महादिव्यस्तादृक् सारथिना सह । धनुर्बाणादिकं चापि सङ्ग्रामे जयकारकम् ॥५१॥

उन दैत्यों को धर्म से च्युत किया है ॥ ३७ ॥ हे मुनि ! इस प्रकार शिव के वचन सुन सभी देवता तथा विष्णु अनमने हो गये ॥ ३८ ॥ अनन्तर देवताओं एवं विष्णु को उदासीन देख सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा हाथ जोड़कर शिवजी से बोले ॥ ३९ ॥

ब्रह्मा बोले—हे प्रभो ! उन दैत्यों के वध से आप को कोई पाप नहीं लगेगा, क्योंकि आप योगीश्वर हो, आप परमेश्वर, परब्रह्म तथा सदैव देवताओं के रक्षक हो ॥ ४० ॥ इस समय यद्यपि वे आपके शासन तथा प्रेरणा से मोहित हुए हैं और अब उन्होंने अपना धर्म तथा आपका पूजन त्याग दिया है फिर भी वे दूसरों के द्वारा अभी अवध्य हैं ॥ ४१ ॥ हे महादेव ! हे देवर्षिप्राणरक्षक ! आप साधुओं की रक्षा के लिए स्वयं इन म्लेच्छ-जातियों का वध कीजिए ॥ ४२ ॥ राजा का कर्त्तव्य होता है कि धर्म की रक्षा करे तथा पापियों का वध करे । आप राजा हैं, इसलिए ब्राह्मण तथा साधुओं की रक्षा के निमित्त स्वयं आपको इस कण्टक का शोधन करना चाहिए, ऐसा करने से आपको पाप नहीं लगेगा ॥ ४३ ॥ यदि राजा इस प्रकार अपने राज्य की रक्षा करे तो उसे इस लोक में सर्वलोकाधिपत्य तथा परत्र कल्याण प्राप्त होता है । इस कारण हे शम्भो, आप स्वयं त्रिपुर का वध कर इन देवताओं की रक्षा करें ॥ ४४ ॥ हे देवदेवेश ! मुनि, इन्द्र, ईश्वर, यज्ञ, वेद, समस्त शास्त्र तथा ये विष्णु सभी आप की प्रजा हैं ॥ ४५ ॥ हे प्रभो ! आप देवताओं के सार्वभौम, सम्राट्, सर्वेश्वर हैं और विष्णु से लेकर सारा जगत् आपका परिवार है ॥ ४६ ॥ हे अज ! विष्णु आपके युवराज हैं और मैं ब्रह्मा आपका पुरोहित हूँ एवं आपके राज्य का देखभाल करने वाले ये इन्द्र आपकी आज्ञा के परिपालक हैं ॥ ४७ ॥ हे सर्वेश ! इसी प्रकार अन्य लोग तथा देवगण आपके शासन में रहने वाले हैं । ये सभी नित्य आपके राज्य में रहकर अपने-अपने पदों का भार सँभालते हैं, यह सत्य है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४८ ॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार ब्रह्मा के वचन सुनकर देवरक्षक भगवान् शङ्कर प्रसन्न मन हो ब्रह्मा से कहने लगे ॥ ४९ ॥

शिवजी बोले—हे ब्रह्मन् ! यदि मैं वस्तुतः देवराज तथा सबका सम्राट् हूँ फिर भी मेरे पास कोई ऐसा साधन नहीं है, जिससे मैं इस प्रकार के पद को ग्रहण करूँ ॥ ५० ॥ मेरे पास कोई महादिव्य रथ नहीं

यमास्थाय धनुर्बाणान् गृहीत्वा योज्य वै मनः । निहनिष्याम्यहं दैत्यान् प्रबलानपि सङ्गरे ॥५२॥

सनत्कुमार उवाच

अथ सब्रह्मका देवाः सेन्द्रोपेन्द्राः प्रहर्षिताः । श्रुत्वा प्रभोस्तदा वाक्यं नत्वा प्रोचुर्महेश्वरम् ॥५३॥

देवा ऊचुः

वयं भवाम देवेश ! तत्प्रकारा महेश्वर ! । रथादिकास्तव स्वामिन् सन्नद्धाः सङ्गराय हि ॥५४॥

इत्युक्त्वा संहताः सर्वे शिवेच्छामधिगम्य ह । पृथगूचुः प्रसन्नास्ते कृताञ्जलिपुटाः सुराः ॥५५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शिवस्तुतिवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

(विश्वकर्मा को रथ-निर्माण निमित्त शिव की आज्ञा प्रदान)

सनत्कुमार उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु सर्वेषां देवादीनां वचो हरः । अङ्गीचकार सुप्रीत्या शरण्यो भक्तवत्सलः ॥ १ ॥

एतस्मिन्नन्तरे देवी पुत्राभ्यां संयुता शिवा । आजगाम मुने तत्र यत्र देवान्वितो हरः ॥ २ ॥

अथागतां शिवां दृष्ट्वा सर्वे विष्ण्वादयो द्रुतम् । प्रणेमुरतिनम्रास्ते विस्मिता गतसम्भ्रमाः ॥ ३ ॥

प्रोचुर्जयेति सद्वाक्यं मुने ! सर्वे सुलक्षणम् । तूष्णीमासन्नजानन्तस्तदाऽऽगमनकारणम् ॥ ४ ॥

अथ सर्वैः स्तुता देवैर्द्व्यद्भुतकुतूहला । उवाच स्वामिनं प्रीत्या नानालीलाविशारदम् ॥ ५ ॥

है और उस रथ के योग्य सारथी भी नहीं, इतना ही नहीं संग्राम में विजय करने वाला धनुष-बाण भी मेरे पास नहीं है कि जिस रथ पर बैठकर धनुष बाण लेकर अपना मन लगाकर उन प्रबल दैत्यों का संग्राम में वध कर सकूँ ॥ ५१-५२ ॥

सनत्कुमार बोले—तब ब्रह्मा के सहित सभी देव, इन्द्र एवं विष्णु शिव के इस वचन को सुन परम प्रसन्न हो उठे और महेश्वर को प्रणाम कर उनसे कहने लगे ॥ ५३ ॥

देवता बोले—हे देवेश ! हमलोग आपके योग्य युद्ध करने के समस्त रथादि उपकरण बनने के लिए स्वयं तैयार हैं ॥ ५४ ॥ ऐसा कह कर सभी लोग एकत्रित हो शिव की इच्छा जान प्रसन्नता से उनके सामने खड़े हो गये ॥ ५५ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पंचम-युद्धखण्ड में शिव-स्तुति वर्णन नामक छठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

*

सनत्कुमार बोले—देवादिकों के इस प्रकार के वचन सुन शरणागतों की रक्षा करने वाले भक्तवत्सल सदाशिव ने त्रिपुर का वध स्वीकार कर लिया ॥ १ ॥ हे मुने ! उसी समय भगवती पार्वती अपने दोनों पुत्रों को लेकर वहाँ आ पहुँचीं, जहाँ सदाशिव देवताओं के साथ विराज रहे थे ॥ २ ॥ तब इस प्रकार देवी को सहसा वहाँ उपस्थित देख विष्णु आदि सभी देवगण आश्चर्य युक्त हो नम्रता से उन्हें प्रणाम करने लगे ॥ ३ ॥ हे मुने ! उसी समय सभी ने उत्तम लक्षण प्रगट करते हुए उन महाशक्ति का जय-जयकार किया, फिर तो पार्वती के वहाँ आने का कारण न जान सकने के कारण वे लोग मौन हो गये ॥ ४ ॥ और अद्भुत कुतूहल करने वाली उस देवी की स्तुति करने लगे। भगवती पार्वती ने नाना लीला-विशारद शङ्कर से कहा—॥ ५ ॥

देव्युवाच

क्रीडमानं विभो पश्य षण्मुखं रविसन्निभम् । पुत्रं पुत्रवतां श्रेष्ठं भूषितं भूषणैर्वरैः ॥ ६ ॥
इत्येवं लोकमात्रा च वाग्भिः सम्बोधितः शिवः । न ययौ तृप्तिमीशानः पिबन् स्कन्दाननामृतम् ॥ ७ ॥
न सस्मारागतान् दैत्यान् निजतेजोनिपीडितान् । स्कन्दमालिङ्ग्य चाघ्राय मुमोदाति महेश्वरः ॥ ८ ॥
जगदम्बाऽथ तत्रैव सम्मन्त्र्य प्रभुणा च सा । स्थित्वा किञ्चित् समुत्तस्थौ नानालीलाविशारदा ॥ ९ ॥

ततः सनन्दी सह षण्मुखेन तया च सार्द्धं गिरिराजपुत्र्या ।
विवेश शम्भुर्भवनं सुलीलः सुरैः समस्तैरभिवन्द्यमानः ॥१०॥

द्वारस्य पार्श्वतस्तस्थुर्देवदेवस्य धीमतः । तेऽथ देवा महाव्यग्रा विमनस्का मुनेऽखिलाः ॥ ११ ॥
किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यं कः स्यादस्मत्सुखप्रदः । किं तु किं त्विति सञ्जातं हा हताः स्मेति वादिनम् ॥१२॥
अन्योऽन्यं प्रेक्ष्य शक्राद्या बभूवुश्चार्तिविह्वलाः । प्रोचुर्विकलवाक्यं ते धिक् कुर्वन्तो निजं विधिम् ॥१३॥
पापा वयमिहेत्यन्ये ह्यभाग्याश्चेति चापरे । ते भाग्यवन्तो दैत्येन्द्रा इति चान्येऽब्रुवन् दुःखाः ॥१४॥
तस्मिन्नेवान्तरे तेषां श्रुत्वा शब्दाननेकशः । कुम्भोदरो महातेजा दण्डेनताडयत् सुरान् ॥१५॥
दुद्रुवुस्ते भयाविष्टा देवा हाहेति वादिनः । अपतन् मुनयश्चाऽन्ये विह्वलत्वं बभूव ह ॥१६॥
इन्द्रस्तु विकलोऽतीव जानुभ्यामवनीं गतः । अन्ये देवर्षयोऽतीव विकलाः पतिता भुवि ॥१७॥
सर्वे मिलित्वा मुनयः सुराश्च समभ्याकुलाः । सङ्गता विधिहर्योस्तु समीपं मित्रचेतसोः ॥१८॥
अहो विधिबलं चैतन्मुनयः कश्यपादयः । वदन्ति स्म तदा सर्वे हरिं लोकभयापदम् ॥१९॥

देवी बोलीं—हे पुत्रवानों में श्रेष्ठ सदाशिव ! अनेक आभूषणों से भूषित तथा सूर्य के समान देदीप्यमान अपने इस षण्मुख पुत्र को खेलते हुए देखिए ॥ ६ ॥ जब लोकमाता ने अपनी वाणी से इस प्रकार शिव को सम्बोधित करते हुए कहा, तब स्कन्द के मुखामृत का पान करते हुए शिव को तृप्ति नहीं हुई ॥ ७ ॥ और उन्हें उस समय अपने तेज से पीड़ित हुए दैत्यों का स्मरण ही नहीं हुआ। पुनः उन्होंने स्कन्द का आलिङ्गन किया तथा उनका सिर सूंघकर बड़े प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥ अनेक लीला-विशारदा श्री जगदम्बा भी महेश्वर से एकान्त में मन्त्रणा कर कुछ काल तक वहीं स्थित रहीं ॥ ९ ॥ तब देवताओं से अभिनन्दित भगवान् सदाशिव ने कार्त्तिकेय, नन्दी तथा गिरिराजपुत्री के साथ अपने घर में प्रवेश किया ॥ १० ॥

हे मुने ! शङ्कर को घर में गया देख सम्पूर्ण देवता महाव्याकुल एवं क्षुब्ध मन हो उन देवाधिदेव के द्वार के चारों ओर खड़े रहे ॥११॥ 'अब हम क्या करें ? कहाँ जायें ? कौन हम लोगों को सुख देनेवाला है ? अरे यह क्या हो गया ? हाय हम लोग मारे गये ?' इस प्रकार परस्पर कहते हुए शोकाकुल इन्द्रादि देवगण अत्यन्त व्याकुल हो गये और अपने भाग्य को धिक्कारते हुए विकलता से कहने लगे ॥ १२-१३ ॥ कोई बोले—हाय हम लोग बड़े पापी हैं, कोई बोले—हाय हम अभागे हैं, कोई बोले—अहा ! वे असुर बड़े भाग्यवान् हैं ॥ १४ ॥

इस प्रकार कहते हुए देवताओं के कलकल शब्द सुनकर महा तेजस्वी कुम्भोदर नाम का गण देवताओं को डण्डे से मारने लगा ॥ १५ ॥ फिर तो देवता लोग हाहाकार करते हुए वहाँ से भाग निकले । कितने मुनि गिर गये, उस समय चारों ओर हाहाकार होने लगा ॥ १६ ॥ इन्द्र तो अपने घुटनों के बल पृथ्वी पर गिर जाने से अत्यन्त व्याकुल हो गये, इसी प्रकार अन्य ऋषिगण भी व्याकुल हो उठे ॥ १७ ॥ सभी देवता एवं मुनि परस्पर मिलकर व्याकुल हो शिव के मित्रभूत ब्रह्मा एवं विष्णु के समीप गये ॥ १८ ॥ उस समय कश्यपादि महर्षि विष्णु से कहने लगे—अहो ! लोक को भय देने वाला तथा सबके

अभाग्यान्न समाप्तं तु कार्यमित्यपरे द्विजाः । कस्माद्विघ्नमिदं जातमित्यन्ये ह्यतिविस्मिताः ॥२०॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा कश्यपाद्युदितं मुने ! । आश्वासयन् मुनीन् देवान् हरिर्वाक्यमुपाददे ॥२१॥

विष्णुरुवाच

हे देवा मुनयः सर्वे मद्वचः शृणुतादरात् । किमर्थं दुःखमापन्ना दुःखं तु त्यजताखिलम् ॥२२॥
महदाराधनं देवा न सुसाध्यं विचार्यताम् । महदाराधने पूर्वं भवेद् दुःखमिति श्रुतम् ॥
विज्ञाय दृढतां देवाः प्रसन्नो भवति ध्रुवम् ॥२३॥
शिवः सर्वगणाध्यक्षः सहसा परमेश्वरः । विचार्यतां हृदा सर्वैः कथं वश्यो भवेदिति ॥२४॥
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य नमः पश्चादुदाहरेत् । शिवायेति ततः पश्चाच्छुभद्वयमतः परम् ॥२५॥
कुरुद्वयं ततः प्रोक्तं शिवाय च ततः पुनः । नमश्च प्रणवश्चैवं मन्त्रमेवं सदा बुधाः ॥२६॥
आवर्तध्वं पुनर्यूयं यदि शम्भुकृते तदा । कोटिमेकं तथा जप्त्वा शिवः कार्यं करिष्यति ॥२७॥
इत्युक्ते च तदा तेन हरिणा प्रभविष्णुना । तथा देवाः पुनश्चक्रुर्हरस्याराधनं मुने ! ॥२८॥
सञ्जजाप हरिश्चापि सविधिः शिवमानसः । देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं मुनीनां च विशेषतः ॥२९॥
मुहुः शिवेति भाषन्तो देवा धैर्यसमन्विताः । कोटिसङ्ख्यं तदा कृत्वा स्थितास्ते मुनिसत्तम ! ॥३०॥
एतस्मिन्नन्तरे साक्षाच्छिवः प्रादुरभूत् स्वयम् । यथोक्तेन स्वरूपेण वचनं चेदमब्रवीत् ॥३१॥

शिव उवाच

हे हरे हे विधे देवा मुनयश्च शुभव्रताः । प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूत जयेनानेन चेप्सितम् ॥३२॥

आपत्ति का स्थानभूत यह प्रारब्ध बल बड़ा विचित्र है ॥ १९ ॥ और कहने लगे कि, हमारे इस अभाग्य को देखो कि हमारा काम पूरा भी नहीं हुआ और विघ्न उपस्थित हो गया तथा सब लोग विचार करने लगे कि यह विघ्न कहाँ से आ खड़ा हुआ ॥ २० ॥ तब कश्यपादि मुनियों के द्वारा कहे गये वचनों को सुनकर भगवान् विष्णु मुनियों तथा देवताओं को सान्त्वना देते हुए बोले ॥ २१ ॥

भगवान् विष्णु बोले—हे देवताओ, हे मुनियो ! तुम सभी हमारा वचन आदर से सुनो, तुम लोग इस प्रकार क्यों दुःखी हो रहे हो, अपना दुःख त्याग करो ॥ २२ ॥ हे देवताओ ! महापुरुषों का आराधन सहज नहीं है, आप लोग स्वयं अपने मन में विचार कर देखो, पहले बड़े लोगों की आराधना में दुःख ही होता है ऐसा हमने सुना है । शिव जी हम लोगों की परीक्षा ले रहे हैं, जब हम लोगों को इस कार्य के लिए दृढ़ जान लेंगे तब निश्चित ही प्रसन्न हो जायेंगे ॥ २३ ॥ सदाशिव तो सभी गणों के अध्यक्ष एवं परमेश्वर हैं । अपने मन में विचार कर देखो कि वे इतने महान् होकर सहसा कैसे हम लोगों के वश में हो सकते हैं ? ॥ २४ ॥ सर्वप्रथम 'ॐ' अनन्तर 'नमः' पश्चात् 'शिवाय' फिर दो बार 'शुभं शुभं' पश्चात् दो बार 'कुरु कुरु' फिर 'शिवाय नमः' तदनन्तर प्रणव (ॐ नमः शिवाय शुभं शुभं कुरु कुरु शिवाय नमः ॐ) । हे देवताओ, इस मन्त्र का यदि तुम लोग एक करोड़ सदा जप करो तो शिव जी प्रसन्न होकर तुम्हारा कार्य अवश्य करेंगे ॥ २५-२७ ॥

हे मुने ! जब सर्वसमर्थ विष्णु ने देवताओं से ऐसा कहा तब देवता लोग शिव की आराधना में तत्पर हो गये ॥ २८ ॥ उस समय विष्णु भी शिव में अपना मन एकाग्र कर देवताओं एवं मुनियों के विशेष कार्य-सिद्धि के निमित्त निरन्तर शिव मन्त्र का जप करने लगे ॥ २९ ॥ धैर्य धारण किये हुए देवगण बारम्बार 'शिव शिव' ऐसा उच्चारण करने लगे । हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार एक करोड़ मन्त्र का जप कर वे वहीं स्थित हो गये ॥ ३० ॥ तब तो स्वयं सदाशिव उनके सामने साक्षात् यथोक्त रूप से प्रकट हो गये और इस प्रकार के वचन कहने लगे ॥ ३१ ॥

शिव जी बोले—हे हरे, हे विधे, हे देवगण ! एवं शुभव्रत वाले हे मुनियो ! तुम्हारे जप से मैं बड़ा ही प्रसन्न हूँ, तुम्हारी जो अभिलाषा हो वह वर माँगो ॥ ३२ ॥

देवा ऊचुः

यदि प्रसन्नो देवेश जगदीश्वर शङ्कर ! । सुरान् विज्ञाय विकलान् हन्यन्तां त्रिपुराणि च ॥३३॥
रक्षाऽस्मान् परमेशान दीनबन्धो कृपाकर ! । त्वय्यैव रक्षिता देवाः सदाऽऽपद्भ्यो मुहुर्मुहुः ॥३४॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्तं वचनं तेषां श्रुत्वा सहरिवेधसाम् । विहस्यान्तस्तदा ब्रह्मन् ! महेशः पुनरब्रवीत् ॥३५॥

महेश उवाच

हे हरे हे विधे देवा मुनयश्चाऽखिला वचः । मदीयं शृणुतादृत्य नष्टं मत्वा पुरत्रयम् ॥३६॥
रथं च सारथिं दिव्यं कार्मुकं शरमुत्तमम् । पूर्वमङ्गीकृतं सर्वमुपपादयताचिरम् ॥३७॥
हे विष्णो हे विधे ! त्वं हि त्रिलोकाधिपतिर्ध्रुवम् । सर्वसम्राट्प्रकारं मे कर्तुमर्हसि यत्नतः ॥३८॥
नष्टं पुरत्रयं मत्वा देवसाहय्यमित्युत । करिष्यथः प्रयत्नेनाधिकृतौ सर्गपालने ॥३९॥
अयं मन्त्रो महापुण्यो मत्प्रीतिजनकः शुभः । भुक्तिमुक्तिप्रदः सर्वकामदः शैवकावहः ॥४०॥
धन्यो यशस्य आयुष्यः स्वर्गकामार्थिनां नृणाम् । अपवर्गो ह्यकामानां मुक्तानां भुक्तिमुक्तिदः॥४१॥
य इमं कीर्तयेन्मन्त्रं शुचिर्भूत्वा सदा नरः । शृणुयाच्छ्रावयेद्वाऽपि सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥४२॥

सनत्कुमार उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य शिवस्य परमात्मनः । सर्वे देवा मुदं प्रापुर्हरिर्ब्रह्माधिकं तथा ॥४३॥
सर्वदेवमयं दिव्यं रथं परमशोभनम् । रचयामास विश्वार्थे विश्वकर्मा तदाज्ञया ॥४४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे
देवस्तुतिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

देवगण बोले—हे जगदीश, हे शङ्कर ! यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो हम देवताओं को त्रिपुर के उत्पात से व्याकुल जानकर शीघ्र ही इन त्रिपुर का वध कीजिए ॥ ३३ ॥ हे दीनबन्धो ! हे परमेशान ! हे कृपाकर ! आप हम सबकी रक्षा करो, क्योंकि आपने सभी आपत्तियों से हम देवताओं की बारम्बार रक्षा की है ॥ ३४ ॥

सनत्कुमार बोले—ब्रह्मा, विष्णु एवं देवताओं के इस प्रकार वचन सुन हँसकर शिव जी बोले ॥३५॥

महेश्वर बोले—हे विधाता, हे विष्णो, हे देवगणो एवं मुनियो ! आप सब मेरे वचन को आदरपूर्वक सुनो तथा इस त्रिपुर को नष्ट हुआ समझो ॥ ३६ ॥ तुम लोगों ने पूर्वकाल में जैसा कहा है वैसा रथ, सारथी, दिव्य धनुष तथा बाण शीघ्र उपस्थित करो ॥ ३७ ॥ हे विष्णो, हे विधातः ! तुम लोग त्रिलोकाधिपति हो, इसलिए शीघ्र हमारे सम्राट् पद के योग्य यत्न से सामग्री उपस्थित करो ॥ ३८ ॥ जब मैं इन देवताओं का सहायक हूँ तो त्रिपुर को नष्ट हुआ ही समझो फिर तुम दोनों सृष्टि तथा पालन के कार्य में मेरे द्वारा नियुक्त किये जाने पर प्रयत्न से अपना-अपना कार्य करना ॥ ३९ ॥ आप लोगों ने जिस पुण्यदायक महामन्त्र का जप किया है वह मन्त्र मुझे प्रसन्न करने वाला है । यह महाशुभ मन्त्र भोग, मोक्ष तथा सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला एवं शिवभक्तों को सुख देने वाला है ॥ ४० ॥ यह महामन्त्र धन, यश तथा आयु को देने वाला है । स्वर्ग की इच्छा करने वालों को स्वर्ग तथा कामनारहित पुरुषों को मुक्ति देने वाला है, मुमुक्षुओं को भोग तथा मोक्ष दोनों देता है ॥ ४१ ॥ जो मनुष्य पवित्र होकर इस मन्त्र का जप करता है, अथवा इस मन्त्र को सुनता तथा सुनाता है, उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ॥४२॥

सनत्कुमार बोले—शिव जी के इस प्रकार वचन सुनकर सभी देवता प्रसन्न हुए, पर विष्णु एवं ब्रह्मा को अधिक प्रसन्नता हुई ॥ ४३ ॥ फिर तो विश्वकर्मा ने संसार के कल्याण के निमित्त विष्णु की आज्ञा से परम सुन्दर सर्वदेवमय दिव्य रथ का निर्माण किया ॥ ४४ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड में देवस्तुति वर्णन नामक सप्तम अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥

*

अष्टमोऽध्यायः

(विश्वकर्मा द्वारा वेदमय रथ का निर्माण)

व्यास उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ शैवप्रवर सन्मते ! । अद्भुतेयं कथा तात ! श्राविता परमेशितुः ॥ १ ॥
इदानीं रथनिर्माणं ब्रूहि देवमयं परम् । शिवार्थं यत्कृतं दिव्यं धीमता विश्वकर्मणा ॥ २ ॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य व्यासस्य स मुनीश्वरः । सनत्कुमारः प्रोवाच स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ ३ ॥

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास महाप्राज्ञ रथादेर्निर्मितिं मुने ! । यथामति प्रवक्ष्येऽहं स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ ४ ॥
अथ देवस्य रुद्रस्य निर्मितो विश्वकर्मणा । सर्वलोकमयो दिव्यो रथो यत्नेन सादरम् ॥ ५ ॥
सर्वभूतमयश्चैव सौवर्णः सर्वसम्मतः । रथाङ्गं दक्षिणं सूर्यस्तद्वामं सोम एव च ॥ ६ ॥
दक्षिणं द्वादशारं हि षोडशारं तथोत्तरम् । अरेषु तेषु विप्रेन्द्र ! आदित्या द्वादशैव तु ॥ ७ ॥
शशिनः षोडशारास्तु कला वामस्य सुव्रत ! । ऋक्षाणि तु तथा तस्य वामस्यैव विभूषणम् ॥ ८ ॥
ऋतवो नेमयः षट् च तयोर्वै विप्रपुङ्गव ! । पुष्करं चान्तरिक्षं वै रथनीडश्च मन्दरः ॥ ९ ॥
अस्ताद्रिरुदयाद्रिस्तु तावुभौ कूबरौ स्मृतौ । अधिष्ठानं महामेरुराश्रयाः केशराचलाः ॥१०॥
वेगः संवत्सरास्तस्य अयने चक्रसङ्गमौ । मुहूर्ता बन्धुरास्तस्य शम्याश्चैव कलाः स्मृताः॥११॥
तस्य काष्ठाः स्मृता घोणाश्चाक्षदण्डाः क्षणाश्च वै । निमेषाश्चानुकर्षश्च ईषाश्चानुलवाः स्मृताः ॥१२॥
द्यौर्वरूथं रथस्यास्य स्वर्गमोक्षावुभौ ध्वजौ । युगान्तकोटितौ तस्य भ्रमकामदुघौ स्मृतौ ॥१३॥

व्यास जी बोले—हे सनत्कुमार, हे सर्वज्ञ, हे शैवप्रवर, हे महाबुद्धिमन्, हे तात ! आपने शिव जी का यह अद्भुत चरित्र वर्णन किया ॥ १ ॥ अब आप विश्वकर्मा ने जिस प्रकार सर्वदेवमय रथ का निर्माण शिव जी के लिए किया, उसका वर्णन कीजिए ॥ २ ॥

सूत जी बोले—उन व्यास के यह वचन सुन मुनीश्वर सनत्कुमार ने शिव के चरण-कमलों का ध्यान कर कहना प्रारम्भ किया ॥ ३ ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास जी, हे महाप्राज्ञ ! अब शिव जी के चरण-कमलों का ध्यान कर अपनी बुद्धि के अनुसार रथ निर्माण की विधि कहता हूँ, तुम श्रवण करो ॥ ४ ॥ विश्वकर्मा ने रुद्रदेव के जिस रथ का निर्माण यत्नपूर्वक किया था वह रथ सर्वलोकमय एवं सर्वथा दिव्य था ॥ ५ ॥ वह सुवर्ण का रथ सर्वभूतमय एवं सर्वसम्मति से उस रथ के दाहिने पहिये सूर्य तथा वामभाग के पहिये चन्द्रमा थे ॥ ६ ॥ दक्षिण के सूर्य रूप पहिये में बारह तथा बायें के चन्द्ररूप पहिये में सोलह अरें लगे हुए थे । दक्षिण के बारह अरों में द्वादशादित्य तथा वाम के सोलह अरें चन्द्र की सोलह कलाएँ थीं । अट्ठाइस नक्षत्र उस वामभाग के पहिये की शोभा बढ़ा रहे थे ॥ ७-८ ॥ उस रथ के दोनों पहियों में छह ऋतुओं की नेमि लगी हुई थीं । अन्तरिक्ष उस रथ का पुट्ठा तथा मीड (बैठने का स्थान) उस रथ का मन्दराचल बना हुआ था ॥ ९ ॥

अस्ताचल तथा उदयाचल उसके जूए थे, मेरु ही उस रथ का अधिष्ठान तथा अन्य पर्वत उसके केशर थे ॥ १० ॥ संवत्सर उस रथ का वेग तथा उत्तरायण एवं दक्षिणायन दोनों चक्रों के संगम थे । मुहूर्त्त उसके बन्धुर (बाँधने वाला) तथा कला उसकी शम्या (कीली) बनीं ॥ ११ ॥ काष्ठा (कला का तीसवाँ भाग) उसका घोण (जूये का अग्रभाग) और क्षण उसके अक्षदण्ड हुए । निमेष उस रथ का अनकर्ष (नीचे का काष्ठ) और लव उसका ईषादण्ड (जूये के बीच का काष्ठदण्ड) बना ॥ १२ ॥ उस रथ का वरूथ (लोहे का पर्दा) द्युलोक बना, स्वर्ग तथा मोक्ष इसकी ध्वजाएँ बनीं । जूये के दोनों

ईषादण्डस्तथा व्यक्तं बुद्धिस्तस्यैव नड्वलः । कोणास्तस्याप्यहङ्कारो भूतानि च बलं स्मृतम् ॥१४॥
इन्द्रियाणि च तस्यैव भूषणानि समन्ततः । श्रद्धा च गतिरस्यैव रथस्य मुनिसत्तम ! ॥१५॥
तदानीं भूषणान्येव षडङ्गान्युपभूषणम् । पुराण-न्याय-मीमांसा-धर्मशास्त्राणि सुव्रताः ॥१६॥
बलाशया वराश्चैव सर्वलक्षणसंयुताः । मन्त्रा घण्टाः स्मृतास्तेषां वर्णपादास्तदाश्रमाः ॥१७॥
अथो बन्धो ह्यनन्तस्तु सहस्रफणभूषितः । दिशः पादा रथस्यास्य तथा चोपदिशश्च ह ॥१८॥
पुष्कराद्याः पताकाश्च सौवर्णा रत्नभूषिताः । समुद्रास्तस्य चत्वारो रथकम्बलिनः स्मृताः ॥१९॥
गङ्गाद्याः सरितः श्रेष्ठाः सर्वाभरणभूषिताः । चामरासक्तहस्ताग्राः सर्वाः स्त्रीरूपशोभिताः ॥२०॥
तत्र तत्र कृतस्थानाः शोभयाञ्चक्रिरे रथम् । आवहाद्यास्तथा सप्त सोपानं हैममुत्तमम् ॥२१॥
लोकालोकाचलस्तस्योपसोपानाः समन्ततः । विषमश्च तथा बाह्यो मानसादिस्तु शोभनः ॥२२॥
पाशाः समन्ततस्तस्य सर्वे वर्षाचलाः स्मृताः । तलास्तस्य रथस्याऽथ सर्वे तलनिवासिनः ॥२३॥
सारथिर्भगवान् ब्रह्मा देवा रश्मिधराः स्मृताः । प्रतोदो ब्रह्मणस्तस्य प्रणवो ब्रह्मदैवतम् ॥२४॥
अकारश्च महच्छत्रं मन्दरः पार्श्वदण्डभाक् । शैलेन्द्रः कार्मुकं तस्य ज्या भुजङ्गाधिपः स्वयम् ॥२५॥
घण्टा सरस्वती देवी धनुषः श्रुतिरूपिणी । इषुर्विष्णुर्महातेजास्त्वग्निः शल्यं प्रकीर्तितम् ॥२६॥
हयास्तस्य तथा प्रोक्ताश्चत्वारो निगमा मुने ! । ज्योतींषि भूषणं तेषामवशिष्टान्यतः परम् ॥२७॥
अनीकं विषसम्भूतं वायवो वाजकाः स्मृताः । ऋषयो व्यासमुख्याश्च वाहवाहास्तथाऽभवन् ॥२८॥

किनारे भ्रम तथा कामदुग्ध बने ॥ १३ ॥ व्यक्त उसका ईषादण्ड और बुद्धि का नड्वल बना, अहङ्कार उसका कोना तथा पञ्चमहाभूत उस रथ के बल बने ॥ १४ ॥ समस्त इन्द्रियाँ ही उस रथ के चारों ओर के आभूषण तथा हे मुनिसत्तम ! श्रद्धा ही उस रथ की गति हुई ॥ १५ ॥

इसी प्रकार वेदों के छह अङ्ग पुराण, न्याय, मीमांसा तथा धर्मशास्त्र उस रथ के उपभूषण बने ॥ १६ ॥ सब लक्षणों से युक्त वर उसके बल के स्थान बने, उन बलाशयों के वर्णाश्रम धर्म तथा मन्त्र घण्टा बने । सहस्रों फणों से विभूषित अनन्त नामक सर्प उसके बन्धन हुए, दिशाएँ एवं उपदिशाएँ उस रथ के पाद हुए ॥ १७-१८ ॥ पुष्करादि तीर्थ उस रथ की रत्नजटित सुवर्णमय पताका हुए और चारों समुद्र उस रथ को ढँकने वाले कम्बल बने ॥ १९ ॥ सभी प्रकार के आभूषणों से युक्त गंगादि सरिताएँ सर्वोत्तम स्त्री रूप से शोभित होकर चामर हाथों में लिये उस रथ के तत्तत्स्थानों पर स्थित हो शोभा बढ़ाने लगीं ॥ २० ॥

आवह आदि सप्त वायु उस रथ के उत्तम हेम निर्मित सप्त सोपान हुए ॥ २१ ॥ एवं लोकालोक पर्वत उस रथ के इधर-उधर के उपसोपान बने । शोभा देने वाले मानसादि उस रथ के विषम बाह्य स्थान बने ॥ २२ ॥ और सभी वर्षाचल उसके पाश बने । तललोक के निवास करने वाले सभी प्राणी उस रथ के तल के भाग बने ॥ २३ ॥ भगवान् ब्रह्मा सारथि और सब देवता घोड़े की रस्सी (लगाम) पकड़ने वाले बने । ब्रह्म दैवत ॐकार उनका कोड़ा बना ॥ २४ ॥ अकार महाछत्र तथा मन्दराचल उस छत्र को धारण करने वाला पार्श्ववर्ती दण्ड बना । शैलेन्द्र सुमेरु, धनुष तथा भुजङ्गराज शेष उस धनुष के रौंदा बने ॥ २५ ॥ श्रुतिस्वरूपा भगवती सरस्वती उस धनुष का घण्टा, विष्णु बाण तथा महातेजस्वी अग्नि उस बाण के शल्य बने ॥ २६ ॥ हे मुने ! चारों वेद रथ को ढोने वाले घोड़े बने । सभी प्रकार की ज्योतियाँ (विद्युदादि) उन घोड़ों के आभूषण हुए । [समस्त हलाहलादि विषसम्भूत पदार्थ अनीक (सेना) बने, तथा वायु युद्धस्थल में बाजा बजाने वाले बने । व्यासादि मुख्य ऋषिगण घुड़सवार हुए ॥ २७-२८ ॥

स्वल्पाक्षरैः संब्रवीमि किं बहूक्तया मुनीश्वर ! । ब्रह्माण्डे चैव यत्किञ्चिद्वस्तु तद्वै रथे स्मृतम् ॥२९॥
एवं सम्यक् कृतस्तेन धीमता विश्वकर्मणा । स रथादिप्रकारो हि ब्रह्मविष्ण्वाज्ञया शुभः ॥३०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे रथादियुद्ध-प्रकारवर्णनं नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

(शिव की युद्ध-यात्रा)

सनत्कुमार उवाच

ईदृग्विधं महादिव्यं नानाश्चर्यमयं रथम् । सन्नह्य निगमानश्वांस्तं ब्रह्मा प्रार्पयच्छिवम् ॥ १ ॥
शम्भवेऽसौ निवेद्याधिरोपयामास शूलिनम् । बहुशः प्रार्थ्य देवेशं विष्ण्वादिसुरसम्मतम् ॥ २ ॥
ततस्तस्मिन्रथे दिव्ये रथप्राकारसंयुते । सर्वदेवमयः शम्भुरारुरोह महाप्रभुः ॥ ३ ॥
ऋषिभिः स्तूयमानश्च देव-गन्धर्व-पन्नगैः । विष्णुना ब्रह्मणा चापि लोकपालैर्बभूव ह ॥ ४ ॥
उपावृतश्चाऽप्सरसां गणैर्गीतविशारदैः । शुशुभे वरदः शम्भुः स तं प्रेक्ष्य च सारथिम् ॥ ५ ॥
तस्मिन्नारोहति रथं कल्पितं लोकसम्भृतम् । शिरोभिः पतिता भूमौ तुरङ्गा वेदसम्भवाः ॥ ६ ॥
चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः । चकम्पे सहसा शेषोऽसोढा तद्भारमातुरः ॥ ७ ॥
अथाऽधः स रथस्यास्य भगवान् धरणीधरः । वृषेन्द्ररूपी चोत्थाय स्थापयामास वै क्षणम् ॥ ८ ॥
क्षणान्तरे वृषेन्द्रोऽपि जानुभ्यामगमद्धराम् । रथारूढमहेशस्य सुतेजः सोढुमक्षमः ॥ ९ ॥
अभीशुहस्तो भगवानुद्यम्य च हयांस्तदा । स्थापयामास देवस्य वचनाद्वै रथं वरम् ॥१०॥

सनत्कुमार बोले—हे मुनीश्वर ! अब बहुत कहने से क्या ? केवल थरेड़े से शब्दों में कहता हूँ कि ब्रह्मांण्ड की सारी वस्तुएँ उस रथ में विद्यमान थीं ॥ २९ ॥ परम बुद्धिमान् विश्वकर्मा ने ब्रह्मा तथा विष्णु की आज्ञा से इस प्रकार के रथ का निर्माण कर उसमें ब्रह्माण्ड की सारी वस्तुएँ प्रस्तुत कर दीं ॥ ३० ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पंचम युद्धखण्ड में रथादियुद्ध प्रकार वर्णन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥

*

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! जब इस प्रकार से महादिव्य अनेक आश्चर्य युक्त रथ का निर्माण हो गया तब ब्रह्माजी ने उसमें वेद रूपी घोड़े जोत कर शिव जी को उसे अर्पित किया ॥ १ ॥ रथ अर्पण करने के पश्चात् ब्रह्मा ने शिव की प्रार्थना कर विष्णु आदि देवताओं के अनुमोदन पूर्वक उन्हें रथ पर बैठाया ॥ २ ॥ तब समस्त सामग्रियों से सम्पन्न उस दिव्य रथ पर सर्वदेवमय महा प्रभु सदाशिव आरूढ़ हुए ॥ ३ ॥ उस समय ऋषि, देव, गन्धर्व, पन्नग, ब्रह्मा, विष्णु तथा समस्त लोकपाल उनकी स्तुति करने लगे ॥ ४ ॥ गान में प्रवीण अप्सरागणों से घिरे हुए शिवजी अपने सारथी की ओर देखते हुए शोभित होने लगे ॥५॥ सर्वलोकमय उस रथ पर सदाशिव के चढ़ते ही वेदरूपी घोड़े शिर के बल पृथ्वी पर गिर गये। जिससे पृथ्वी तथा पर्वत चलायमान हो गये, और शेष भी उस भारको सहने में असमर्थ होने के कारण कम्पित हो उठे ॥ ६-७ ॥ पृथ्वी को धारण करने वाले भगवान् शेष ने वृषेन्द्र का रूप धारण कर क्षण मात्र के लिए उस रथ को पृथ्वी पर से उठाया ॥८॥ किन्तु क्षण मात्र रथ को धारण करने के उपरान्त वृषेन्द्र भी शिव के असह्य तेज को सहन करने में असमर्थ हो घुटनों के बल पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ९ ॥ तब शङ्कर की आज्ञा से ब्रह्मदेव ने उन घोड़ों की लगाम पकड़ कर उन्हें उठाया तथा युद्ध के लिए रणभूमि

ततोऽसौ नोदयामास मनोमारुतरंहसः । ब्रह्मा हयान् वेदमयान् नद्धान् रथवरे स्थितः ॥११॥
पुराण्युद्दिश्य वै त्रीणि तेषां खस्थानि तानि हि । अधिष्ठिते महेशे तु दानवानां तरस्विनाम् ॥१२॥
अथाह भगवान्रुद्रो देवानालोक्य शङ्करः । पशूनामाधिपत्यं मे धद्ध्वं हन्मि ततोऽसुरान् ॥१३॥
पृथक् पशुत्वं देवानां तथाऽन्येषां सुरोत्तमाः । कल्पयित्वैव वध्यास्ते नाऽन्यथा दैत्यसत्तमाः॥१४॥

सनत्कुमार उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवदेवस्य धीमतः । विषादमगमन् सर्वे पशुत्वं प्रतिशङ्किताः ॥१५॥
तेषां भावमथ ज्ञात्वा देवदेवोऽम्बिकापतिः । विहस्य कृपया देवाञ्छम्भुस्तानिदमब्रवीत् ॥१६॥

शम्भुरुवाच

मा वोऽस्तु पशुभावेऽपि पातो विबुधसत्तमाः । श्रूयतां पशुभावस्य विमोक्षः क्रियतां च सः ॥१७॥
यो वै पाशुपतं दिव्यं चरिष्यति स मोक्ष्यति । पशुत्वादिति सत्यं वः प्रतिज्ञातं समाहिताः ॥१८॥
ये चाऽप्यन्ये करिष्यन्ति व्रतं पाशुपतं मम । मोक्ष्यन्ति ते न सन्देहः पशुत्वात् सुरसत्तमाः ॥१९॥
नैष्ठिकं द्वादशाब्दं वा तदर्द्धं वर्षकत्रयम् । शुश्रूषां कारयेद्यस्तु स पशुत्वाद् विमुच्यते ॥२०॥
तस्मात् परमिदं दिव्यं चरिष्यथ सुरोत्तमाः । पशुत्वान्मोक्ष्यथ तदा यूयमत्र न संशयः ॥२१॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य महेशस्य परात्मनः । तथेति चाऽब्रुवन् देवा हरिब्रह्मादयस्तथा ॥२२॥
तस्माद्वै पशवः सर्वे देवासुरवराः प्रभोः । रुद्रः पशुपतिश्चैव पशुपाशविमोचकः ॥२३॥
तदा पशुपतीत्येतत्तस्य नाम महेशितुः । प्रसिद्धमभवद् वध्वा सर्वलोकेषु शर्मदम् ॥२४॥

में उन्हें खड़ा किया ॥ १० ॥ तदनन्तर ब्रह्मा स्वयं उस रथ पर सवार हो मन तथा पवन के समान वेग वाले उन वेदरूपी घोड़ों को स्वयं हाँकने लगे ॥ ११ ॥

इस प्रकार जब आकाश में स्थित त्रिपुर में रहने वाले बलवान् दैत्यों के वध के उद्देश्य से महेश्वर से अधिष्ठित वह रथ जब चलने लगा तब देवताओं की ओर देखते हुए भगवान् शंकर ने कहा—हे देवगण ! यदि तुम लोग मुझे पशुओं का अधिपति बना दो मैं इन असुरों का वध करूँ ॥ १२-१३ ॥ हे देवसत्तमो ! देवताओं तथा अन्य लोगों से पृथक्-पृथक् इन दैत्यों को पशुत्व की कल्पना करने पर ही ये वध के योग्य हो सकते हैं, इनके वध का अन्य कोई उपाय नहीं ॥ १४ ॥

सनत्कुमार बोले—परम बुद्धिमान् देवाधिदेव के वचन सुनते ही देवता लोग पशुत्व के प्रति शङ्कित हो अत्यन्त दुःखी हो गये ॥ १५ ॥ तब देवाधिदेव अम्बिकापति उन देवताओं का अभिप्राय जान कर हँसते हुए उन देवताओं से कृपा पूर्वक बोले ॥ १६ ॥

शिवजी बोले—हे देवताओ ! पशुभाव को प्राप्त होने पर भी तुम लोगों का पात नहीं होगा, मेरी बात सुनो और पशुभाव से अपने को मुक्त करो ॥ १७ ॥ जो इस दिव्य पाशुपत व्रत का आचरण करेगा वह पशुत्व से मुक्त हो जायेगा, यह बात मैं सत्य-सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ ॥ १८ ॥ हे देवताओ ! तुम लोगों से अतिरिक्त अन्य जन भी यदि इस पाशुपत व्रत का आचरण करेंगे तो वे भी पशुत्व से मुक्त हो जायेंगे, इसमें संशय नहीं ॥ १९ ॥ जो निष्ठा पूर्वक बारह वर्ष, उसका आधा छह वर्ष तथा उसका भी आधा तीन वर्ष मेरी शुश्रूषा करेगा वह अवश्य ही पशुभाव से छूट जायेगा ॥ २० ॥ इसलिए हे देवगणो ! तुम लोग इस व्रत का आचरण करो जिससे पशुत्व से छुटकारा हो जाय ॥ २१ ॥

सनत्कुमार बोले—महेश्वर के इस प्रकार के वचन सुन ब्रह्मा, विष्णु तथा अन्य देवताओं ने कहा—'तथास्तु–ऐसा ही होगा' ॥ २२ ॥ इसलिए हे वेदव्यास ! देवता एवं असुर सभी उन प्रभु के पशु हैं और उन पशुओं को पाश से मुक्त करने वाले भगवान् शङ्कर पशुपति हैं ॥ २३ ॥ तभी से लोक में महेश्वर

मुदा जयेति भाषन्तः सर्वे देवर्षयस्तदा। अमुदंश्चाति देवेशो ब्रह्मा विष्णुः परेऽपि च ॥२५॥
तस्मिंश्च समये यच्च रूपं तस्य महात्मनः। जातं तद्वर्णितुं शक्यं न हि वर्षशतैरपि ॥२६॥
एवंविधो महेशानो महेशान्यखिलेश्वरः। जगाम त्रिपुरं हन्तुं सर्वेषां सुखदायकः ॥२७॥

तं देवदेवं त्रिपुरं निहन्तुं तदा नु सर्वे तु रविप्रकाशाः।
गजैर्हयैः सिंहवरै रथैश्च वृषैर्ययुस्तेऽमरराजमुख्याः ॥२८॥
हलैश्च शालैर्मुशलैर्भुशुण्डैर्गिरीन्द्रकल्पैर्गिरिसन्निभाश्च।
नानायुधैः संयुतबाहवस्ते ततो नु हृष्टाः प्रययुः सुरेशाः ॥२९॥
नानायुधाढ्याः परमप्रकाशा महोत्सवाः शम्भुजयं वदन्तः।
ययुः पुरस्तस्य महेश्वरस्य तदेन्द्रपद्मोद्भवविष्णुमुख्याः ॥३०॥

जहृषुर्मुनयः सर्वे दण्डहस्ता जटाधराः। ववृषुः पुष्पवर्षाणि खेचराः सिद्धचारणाः ॥३१॥
पुरत्रयं च विप्रेन्द्रा व्रजन् सर्वे गणेश्वराः। तेषां सङ्ख्यां च कः कर्तुं समर्थो वच्मि कांश्चन ॥३२॥

गणेश्वरैर्देवगणैश्च भृङ्गी समावृतः सर्वगणेन्द्रवर्यः।
जगाम योगांस्त्रिपुरं निहन्तुं विमानमारुह्य यथा महेन्द्रः ॥३३॥

केशो विगतवासश्च महाकेशो महाज्वरः। सोमवल्लीसवर्णश्च सोमपः सनकस्तथा ॥३४॥
सोमधृक् सूर्यवर्चाश्च सूर्यप्रेषणकस्तथा। सूर्याक्षः सूरिनामा च सुरः सुन्दर एव च ॥३५॥
प्रस्कन्दः कुन्दरश्चण्डः कम्पनश्चाऽतिकम्पनः। इन्द्रश्चेन्द्रजवश्चैव यन्ता हिमकरस्तथा ॥३६॥
शताक्षश्चैव पञ्चाक्षः सहस्राक्षो महोदरः। सतीजहुः शतास्यश्च रङ्कुः कर्पूरपूतनः ॥३७॥

का एक नाम पशुपति प्रसिद्ध हुआ। यह नाम सभी बँधे हुए का कल्याण करने वाला है ॥ २४ ॥ तब सभी देवता तथा ऋषि जय-जयकार करने लगे। स्वयं देवेश भगवान् ब्रह्मा तथा विष्णु एवं अन्य लोग भी बहुत प्रसन्न हुए ॥ २५ ॥ उस समय उन देवेश्वर सदाशिव परमात्मा का जैसा अद्भुत रूप दिखाई पड़ रहा था, उसका वर्णन सैकड़ों वर्ष में नहीं किया जा सकता ॥ २६ ॥ इस प्रकार भगवती महेशानी एवं सबको सुख देने वाले अखिलेश्वर महेश्वर त्रिपुर के मारने के लिए चले ॥ २७ ॥

जिस समय देवाधिदेव त्रिपुर का वध करने के लिए चले, उस समय सूर्य के समान तेजस्वी सभी देवगण हाथी, घोड़े, श्रेष्ठ रथ तथा वृषभ पर चढ़कर उनके पीछे-पीछे चले ॥ २८ ॥ वे हाथ में हल, शाल-वृक्ष, मुशल तथा पहाड़ के समान भुशुण्ड धारण किये हुए थे। उनके अनेक आयुधों से युक्त विशाल भुजदण्ड पहाड़ के समान अत्यन्त दृढ़ थे। इस प्रकार प्रसन्न मन हो इन्द्रादि देवगण भी त्रिपुर का वध करने के लिए चले ॥ २९ ॥ अनेक प्रकार के आयुध हाथ में लिये परम प्रकाशमान महोत्सव से युक्त इन्द्र, ब्रह्मा तथा विष्णु शिवजी की जय-जयकार करते हुए आगे चल रहे थे। उस समय हाथ में डण्डा लिये हुए जटाधारी मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए। आकाश में रहने वाले सिद्ध तथा चारण गण आकाश से पुष्प-वृष्टि करने लगे ॥ ३०-३१ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! शिवजी के साथ त्रिपुर का वध करने के लिए जाते हुए गणेश्वरों की संख्या कौन कह सकता है तथापि कुछ का नाम मैं कह रहा हूँ ॥ ३२ ॥ गणेश्वर और देवगणों के साथ भृङ्गी, जो सभी गणों से श्रेष्ठ था वह विमान में चढ़कर महेन्द्र के समान शोभित हो त्रिपुर का वध करने के लिए चला ॥ ३३ ॥

केश, विगतवास, महाकेश, महाज्वर, सोमवल्ली, सवर्ण, सोमप, सनक, सोमधृक्, सूर्यवर्चा, सूर्यप्रेषणक, सूर्याक्ष, सूर्य, सुरसुन्दर, प्रस्कन्द, कुन्दर, चण्डकम्पन, अतिकम्पन, इन्द्र, इन्द्रजव, यन्ता, हिमकर, शताक्ष, पञ्चाक्ष, सहस्राक्ष, महोदर (शतजित्) या सतीजुह, शतास्य, रङ्कु, कर्पूरपूतन, ॥ ३४-३७ ॥

द्विशिखस्त्रिशिखश्चैव तथा हुङ्कारकारकः । अजवक्त्रोऽष्टवक्त्रश्च हयवक्त्रोऽर्द्धवक्त्रकः ॥३८॥
इत्याद्या गणपा वीरा बहवोऽपरिमेयकाः । प्रययुः परिवार्येशं लक्ष्यलक्षणवर्जिताः ॥३९॥
समावृत्य महादेवं तदापुस्ते पिनाकिनम् । दग्धुं समर्था मनसा क्षणेन सचराचरम् ॥४०॥

दग्धुं जगत्सर्वमिदं समर्थाः किन्त्वत्र दग्धुं त्रिपुरं पिनाकी ।
रथेन किं चाऽत्र शरेण तस्य गणैश्च किं देवगणैश्च शम्भोः ॥४१॥
स एव दग्धुं त्रिपुराणि तानि देवद्विषां व्यास पिनाकपाणिः ।
स्वयं गतस्तत्र गणैश्च सार्द्धं निजैः सुराणामपि सोऽद्भुतोतिः ॥४२॥

किं तत्र कारणं चाऽन्यद् वच्मि ते ऋषिसत्तम ! । लोकेषु ख्यापनार्थं वै यशः परमलापहम् ॥४३॥
अन्यच्च कारणं ह्येतद् दुष्टानां प्रत्ययाय वै । सर्वेष्वपि च देवेषु यस्मान्नान्यो विशिष्यते ॥४४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे
शिवयात्रावर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

(त्रिपुरासुर के दाह का वर्णन)

सनत्कुमार उवाच

अथ शम्भुर्महादेवो रथस्थः सर्वसंयुतः । त्रिपुरं सकलं दग्धुमुद्यतोऽभूत् सुरद्विषाम् ॥ १ ॥
शीर्षे स्थानकमास्थाय सन्धाय च शरोत्तमम् । सज्जं तत्कार्मुकं कृत्वा प्रत्यालीढं महाद्भुतम् ॥ २ ॥
निवेश्य दृढमुष्टौ च दृष्टिं दृष्टौ निवेश्य च । अतिष्ठन्निश्चलस्तत्र शतं वर्षसहस्रकम् ॥ ३ ॥
ततोऽङ्गुष्ठे गणाध्यक्षः स तु दैत्यनिशं स्थितः । न लक्ष्यं विविशुस्तानि पुराण्यस्य त्रिशूलिनः ॥ ४ ॥

द्विशिख, त्रिशिख, हुङ्कार कारक, अजवक्त्र, अष्टवक्त्र, हयवक्त्र तथा अर्द्धवक्त्र ॥ ३८ ॥ इस प्रकार बहुत से असङ्ख्य गण, जो लक्ष्य के लक्षण से रहित अर्थात् सर्वथा अदृश्य रहने वाले हैं, वे शिवजी को घेरकर चले।

जो गण महेश्वर को घेर कर उनके पास से चल रहे थे वे एक-एक अपनी इच्छा से चराचर जगत् को भस्म करने में समर्थ थे ॥३९-४०॥ किन्तु यहाँ तो पिनाकधारी स्वयं भगवान् शङ्कर ही त्रिपुर को जलाने के लिए चल रहे थे। यद्यपि उन्हें रथ, बाण, गण तथा देवगणों की आवश्यकता ही नहीं थी। किन्तु हे व्यास ! यहाँ तो वे हाथ में पिनाक धारण किये गणों के साथ असुरों के त्रिपुर को जलाने के लिए जा रहे थे। यह देखकर देवता लोग आश्चर्य-चकित हो रहे थे ॥ ४१-४२ ॥ इसका कारण मैं तुमसे कहता हूँ, पापों को नाश करने वाला अपना यश त्रिलोकी में विस्तार करने के निमित्त उन्होंने ऐसा किया ॥ ४३ ॥ और दूसरा यह भी कारण है कि दुष्टों के मन में यह विश्वास भी हो जाय कि देवताओं में शिव जी से बढ़कर अन्य कोई प्रधान नहीं है ॥ ४४ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के
पञ्चम युद्धखण्ड में शिवयात्रा वर्णन नामक नवम अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥

*

सनत्कुमार बोले—महादेव शिव जी सम्पूर्ण सामग्री से युक्त उस रथ पर सवार हो दैत्यों के त्रिपुर को दग्ध करने के लिए उद्यत हुए ॥ १ ॥ उस रथ के शीर्षस्थान पर स्थित हो वे धनुष को चढ़ाकर उस पर बाण सन्धान कर वीरासन से स्थित हुए ॥ २ ॥ उन्होंने अपनी दृढ़मुष्टि में अपनी दृष्टि जमाई तथा दृष्टि के सामने अपनी दृढ़मुष्टि रखा फिर निश्चल हो सौ हजार वर्ष पर्यन्त प्रतीक्षा करने लगे ॥ ३ ॥ उस समय गणेश जी उनके अँगूठे में पीड़ा पहुँचा कर विघ्न करने लगे, जिससे उनके लक्ष्य में त्रिपुर

ततोऽन्तरिक्षाद्दमृणोद्धनुर्बाणधरो हरः। मुञ्जकेशो विरूपाक्षो वाचं परमशोभनाम् ॥ ५ ॥
भो भो न यावद् भगवन्नर्चितोऽसौ विनायकः। पुराणि जगदीशेश साम्प्रतं न हनिष्यति ॥ ६ ॥
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं गजवक्त्रमपूजयत्। भद्रकालीं समाहूय ततोऽन्धकनिषूदनः ॥ ७ ॥
तस्मिन् सम्पूजिते हर्षात् परितुष्टे पुरःसरे। विनायके ततो व्योम्नि ददर्श भगवान् हरः ॥ ८ ॥
पुराणि त्रीणि दैत्यानां तारकाणां महात्मनाम्। यथातथं हि युक्तानि केचिदित्थं वदन्ति ह ॥ ९ ॥
परब्रह्मणि देवेश ! सर्वोपास्ये महेश्वरे। अन्यप्रसादतः कार्यसिद्धिर्घटति नेति हि ॥१०॥
स स्वतन्त्रः परं ब्रह्म सगुणो निर्गुणोऽपि ह। अलक्ष्यः सकलैः स्वामी परमात्मा निरञ्जनः ॥११॥
पञ्चदेवात्मकः पञ्चदेवोपास्यः परः प्रभुः। तस्योपास्यो न कोऽप्यस्ति स एवोपास्य आलयम् ॥१२॥
अथ वा लीलया तस्य सर्वं सङ्घटते मुने !। चरितं देवदेवस्य वरदातुर्महेशितुः ॥१३॥
तस्मिन् स्थिते महादेवे पूजयित्वा गणाधिपम्। पुराणि तत्र कालेन जग्मुरेकत्वमाशु वै ॥१४॥
एकीभावं मुने ! तत्र त्रिपुरे समुपागते। बभूव तुमुलो हर्षो देवादीनां महात्मनाम् ॥१५॥
ततो देवगणाः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः। जयेति वाचो मुमुचुः स्तुवन्तश्चाऽष्टमूर्तिनम् ॥१६॥
अथाहेति तदा ब्रह्मा विष्णुश्च जगतां पतिः। समयोऽपि समायातो दैत्यानां वधकर्मणः ॥१७॥
तेषां तारकपुत्राणां त्रिपुराणां महेश्वर !। देवकार्यं कुरु विभो ! एकत्वमपि चागतम् ॥१८॥
यावन्न यान्ति देवेश ! विप्रयोगं पुराणि वै। तावद् बाणं विमुञ्चाश्च त्रिपुरं भस्मसात् कुरु ॥१९॥
अथ सज्यं धनुः कृत्वा शर्वः सन्धाय तं शरम्। पूज्यं पाशुपतास्त्रं स त्रिपुरं समचिन्तयत् ॥२०॥
अथ देवो महादेवो वरलीलाविशारदः। केनापि कारणेनात्र सावज्ञं तदवैक्षत ॥२१॥

नहीं दिखाई पड़े ॥ ४ ॥ तब मुञ्जकेश, विरूपाक्ष, धनुषबाणधारी शङ्कर ने अत्यन्त मनोहर आकाशवाणी सुनी ॥ ५ ॥ 'हे भगवन् ! जब तक आप इन गणेश जी का पूजन नहीं करेंगे तब तक हे जगदीश ! हे ईश ! आप इस त्रिपुर का नाश न कर सकेंगे' ॥ ६ ॥ यह वचन सुनते ही अन्धकासुर का वध करने वाले सदाशिव ने भद्रकाली को बुलाकर गणेश का पूजन किया ॥ ७ ॥ शङ्कर की पूजा से गणेश के प्रसन्न हो जाने पर भगवान् शिव ने आकाश में स्वयं अपने आगे ही उन महात्मा तारकपुत्रों के तीनों पुरों को देखा, जो यथायोग्य एक दूसरे से युक्त थे। इस विषय में कोई ऐसा कहते हैं ॥ ८-९ ॥ परब्रह्म परमेश्वर तो सबके पूजनीय हैं, फिर उनके कार्य की सिद्धि दूसरों के प्रसन्नता से हो यह तो उनके लिए उचित नहीं प्रतीत होता ॥ १० ॥ वह परब्रह्म सर्वथा स्वतन्त्र, सगुण, निर्गुण परमात्मा तथा माया से रहित एवं सभी से अलक्षित हैं ॥ ११ ॥ वह परम प्रभु, पञ्चदेवात्मक तथा पञ्चदेवों से उपास्य हैं। उनको किसी की उपासना की आवश्यकता नहीं, वे स्वयं सबके उपास्य हैं, उनका उपास्य कोई नहीं ॥ १२ ॥ किन्तु लीला की दृष्टि से गणेश-पूजन उनमें घटता है, सबको वर देने वाले देवाधिदेव महेश्वर यह सब चरित्र कर रहे हैं ॥१३॥ जब महादेव जी गणेश का पूजन कर स्थित हो गये उसी समय वे तीनों पुर एकत्र हो गये ॥ १४ ॥

हे मुने ! इस प्रकार त्रिपुर के एकत्र एकीभाव प्राप्त होते ही देवताओं को बड़ी प्रसन्नता हुई और वे परस्पर कोलाहल करने लगे ॥ १५ ॥ फिर समस्त देवगण, ऋषिगण एवं सिद्धगण महादेव जी की जय का उच्चारण करते हुए उनकी स्तुति करने लगे ॥१६॥ तब जगत्पति ब्रह्मा तथा विष्णु कहने लगे—हे महेश्वर ! अब इन तारकपुत्रों के वध का समय उपस्थित हो गया है ॥ १७ ॥ अतः शीघ्रता से इनका वध कर देवकार्य कीजिए, क्योंकि इनके तीनों पुर एक स्थान में आ गये हैं ॥ १८ ॥ हे देवेश, जब तक ये एक दूसरे से अलग नहीं होते, तब तक बाण छोड़कर इनको भस्म कीजिए ॥ १९ ॥ तब शङ्कर ने धनुष का रौंदा चढ़ाकर उस पर बाण सन्धान कर अपने पूज्य पाशुपतास्त्र से त्रिपुर संहार करने की इच्छा की, फिर उस त्रिपुर की ओर देखकर विचार करने लगे ॥ २० ॥ तदनन्तर श्रेष्ठ लीला-विशारद शिव किसी कारण से उन पुरों को निरादर की दृष्टि से देखने लगे ॥ २१ ॥

पुरत्रयं विरूपाक्षः कर्तुं तद्भस्मसात् क्षणात् । समर्थः परमेशानो मीनातु च सतां गतिः ॥२२॥
दग्धुं समर्थो देवेशो वीक्षणेन जगत्त्रयम् । अस्मद्यशो विवृद्धयर्थं शरं मोक्तुमिहार्हसि ॥२३॥
इति स्तुतोऽमरैः सर्वैर्विष्ण्वादिविधिभिस्तदा । दग्धुं पुरत्रयं तद्वै बाणेनैच्छन्महेश्वरः ॥२४॥
अभिलाख्यमुहूर्ते तु विकृष्य धनुरद्भुतम् । कृत्वा ज्यातलनिर्घोषं नादमत्यन्तदुःसहम् ॥२५॥
आत्मनो नाम विश्राव्य समाभाष्य महासुरान् । मार्तण्डकोटिवपुषं काण्डमुग्रो मुमोच ह ॥२६॥
ददाह त्रिपुरस्थांस्तान् दैत्यांस्त्रीन् त्रिमलापहः । स आशुगो विष्णुमयो वह्निशल्यो महाज्वलन् ॥२७॥
ततः पुराणि दग्धानि चतुर्जलधिमेखलाम् । गतानि युगपद्भूमिं त्रीणि दग्धानि भस्मशः ॥२८॥
दैत्यास्तु शतशो दग्धास्तस्य बाणस्थवह्निना । हाहाकारं प्रकुर्वन्तः शिवपूजाव्यतिक्रमात् ॥२९॥
तारकाक्षस्तु निर्दग्धो भ्रातृभ्यां सहितोऽभवत् । सस्मार स्वप्रभुं देवं शङ्करं भक्तवत्सलम् ॥३०॥
भक्त्या परमया युक्तः प्रलपन् विविधा गिरः । महादेवं समुद्वीक्ष्य मनसा तमुवाच सः ॥३१॥

तारकाक्ष उवाच

भव ज्ञातोऽसि तुष्टोऽसि यद्यस्मान् सह बन्धुभिः । तेन सत्येन भूयोऽपि कदा त्वं प्रदहिष्यसि ॥३२॥
दुर्लभं लब्धमस्माभिर्यदप्राप्यं सुराऽसुरैः । त्वद्भावभाविता बुद्धिर्जाते जाते भवत्विति ॥३३॥
इत्येवं विब्रुवन्तस्ते दानवास्तेन वह्निना । शिवाज्ञयाऽद्भुतं दग्धा भस्मसादभवन्मुने ! ॥३४॥
अन्येऽपि बाला वृद्धाश्च दानवास्तेन वह्निना । शिवाज्ञया द्रुतं व्यास ! निर्दग्धा भस्मसात् कृताः॥३५॥
स्त्रियो वा पुरुषा वापि वाहनानि च तत्र ये । सर्वे तेनाऽग्निना दग्धाः कल्पान्ते तु जगद्यथा॥३६॥
भर्तॄन् कण्ठगतान् हित्वा काश्चिद् दग्धा वरस्त्रियः । काश्चित् सुप्ताः प्रमत्ताश्च रतिश्रान्ताश्च योषितः॥३७॥

तब देवताओं ने कहा—हे देव ! आप विरूपाक्ष हैं और इन तीनों पुरों को क्षणमात्र में भस्म करने में समर्थ हैं तथा सज्जनों के एकमात्र गति हैं ॥ २२ ॥ हे देवेश ! यद्यपि आप अपनी दृष्टिमात्र से तीनों लोकों को भस्म करने में समर्थ हैं किन्तु हम लोगों के यश की बढ़ाने के लिए आप इस पर अपना बाण छोड़ें ॥ २३ ॥ इस प्रकार जब विष्णु आदि देवों ने तथा ब्रह्मा ने उनकी स्तुति की तब उन्होंने उसी बाण से पुरत्रय को भस्म करने की इच्छा की ॥ २४ ॥ उन्होंने अभिलषित मुहूर्त्त में उस अद्भुत धनुष को खींचकर उसकी प्रत्यञ्चा से अत्यन्त दुःसह शब्द किया ॥ २५ ॥ और उन असुरों को अपना नाम सुनाते हुए करोड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान बाण असुरों पर छोड़ा ॥ २६ ॥ विष्णुमय वह बाण, जिसमें अग्नि के फाल लगे हुए थे, त्रिपुर में रहने वाले दैत्य स्त्री-पुरुष को जलाकर राख कर दिया ॥ २७ ॥ इस प्रकार भस्म हुए वे पुर चार समुद्रों की मेखला वाली पृथ्वी पर एक साथ ही गिर पड़े । उस बाणाग्नि से शिव जी की पूजा करने से हाहाकार करते हुए सैकड़ों दैत्य भस्म हो गये ॥ २८-२९ ॥ जब भाइयों के सहित तारकाक्ष भस्म होने लगा तब उसने अपने प्रभु देवाधिदेव भक्तवत्सल भगवान् सदाशिव का स्मरण किया ॥ ३० ॥ वह महादेव को देखकर परम भक्ति से युक्त हो नाना प्रकार से विलाप करता हुआ मन से इस प्रकार कहने लगा ॥ ३१ ॥

तारकाक्ष बोला—हे भव ! मैंने जान लिया कि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हैं, जो बन्धुओं के सहित हमें भस्म किया । इस सत्य के प्रभाव से अब आप पुनः हमें कब जलावेंगे ॥ ३२ ॥ जो मरण देवताओं तथा असुरों को दुर्लभ है वह हमें प्राप्त हुआ, अब हम यही चाहते हैं कि जन्म-जन्मान्तर में भी हमारी बुद्धि आप में लगी रहे ॥ ३३ ॥ हे मुने ! इस प्रकार कहते हुए वे दानव शिव की आज्ञा से उस अग्नि द्वारा अद्भुत रूप से क्षणमात्र में भस्म हो गये ॥ ३४ ॥ हे व्यास जी ! और भी जितने वृद्ध बालक उस पुर में निवास करते थे सभी शिवाज्ञा से भस्म हो गये ॥ ३५ ॥ जिस प्रकार कल्पान्त में जगत् भस्म हो जाता है, उसी प्रकार त्रिपुर के समस्त स्त्री, पुरुष एवं वाहनादि भस्म हो गए ॥ ३६ ॥ उस अग्नि से पति के कण्ठ में लगी हुई कोई स्त्री उसे छोड़कर जल मरी, कोई सोती हुई, कोई प्रलाप करती हुई और कोई रति से

अर्द्धदग्धा त्रिबुद्धाश्च . बभ्रमुर्मोहमूर्च्छिताः । तेन नासीत् सुसूक्ष्मोऽपि घोरत्रिपुरवह्निना ॥३८॥
अविदग्धो विनिर्मुक्तः स्थावरो जङ्गमोऽपि वा । वर्जयित्वा मयं दैत्यं विश्वकर्माणमव्ययम् ॥३९॥
अविरुद्धं तु देवानां रक्षितं शम्भुतेजसा । विपत्कालेऽपि सद्भक्तं महेशशरणागतम् ॥४०॥
सन्निपातो हि येषां नो विद्यते नाशकारकः । दैत्यानामन्यसत्त्वानां भावाऽभावे कृताऽकृते ॥४१॥
तस्माद्यत्नः सुसम्भाव्यः सद्भिः कर्तव्य एव हि । गर्हणात् क्षीयते लोको न तत्कर्म समाचरेत् ॥४२॥
न संयोगो यथा तेषां भूयात् त्रिपुरवासिनाम् । मतमेतद्धि सर्वेषां दैवाद्यदि यतो भवेत् ॥४३॥
ये पूजयन्तस्तत्रापि दैत्या रुद्रं सबान्धवाः । गाणपत्यं ययुः सर्वे शिवपूजाविधेर्बलात् ॥४४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे
त्रिपुरदाहवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

(त्रिपुरासुर-दाह निमित्त शिव की भयङ्कर मूर्ति देख देवताओं का भयभीत होना और शिव-स्तुति)

व्यास उवाच

ब्रह्मपुत्र महाप्राज्ञ धन्यस्त्वं शैवसत्तम ! । किमकार्षुस्ततो देवा दग्धे च त्रिपुरेऽखिलाः ॥ १ ॥
मयः कुत्र गतो दग्धो पतयः कुत्र ते गताः । तत्सर्वं मे समाचक्ष्व यदि शम्भुकथाश्रयम् ॥ २ ॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य व्यासवाक्यं भगवान् भवकृत्सुतः । सनत्कुमारः प्रोवाच शिवपादयुगं स्मरन् ॥ ३ ॥

थकी हुई जल मरी ॥ ३७ ॥ कोई आधी जलकर होश में आ-आकर बारम्बार मोह से मूर्च्छित हो जाती थी । हे व्यास ! हम बहुत क्या कहें, कोई अणुमात्र भी ऐसी वस्तु शेष न बची जो त्रिपुर की अग्नि से भस्म न हुई हो ॥ ३८ ॥

स्थावर तथा जङ्गम में कोई भी बिना जले न बचा । केवल एक अविनाशी विश्वकर्त्ता मय दैत्य ही जलने से शेष बचा ॥ ३९ ॥ केवल वही एक ऐसा था, जो देवताओं का विरोधी नहीं था, वह विपत्तिकाल में भी महेश का शरणागत भक्त था, इसलिए वही शिव के तेज से रक्षित होकर बच गया ॥ ४० ॥ चाहे दैत्य हों, चाहे अन्य प्राणी ही क्यों न हों, भावाभाव की अवस्था में तथाकृत एवं अकृतकाल में महेश के शरणागत होने पर उनका विनाशकारी सन्निपात नहीं होता ॥ ४१ ॥ इसलिए सज्जनों को ध्यानपूर्वक ऐसा यत्न करना चाहिए जिससे महेश्वर में उनकी भक्ति बढ़े । जिससे लोक का क्षय हो और अपनी निन्दा हो उस कर्म को कभी न करे ॥ ४२ ॥ पुरुष कभी ऐसा कोई काम न करे जिससे त्रिपुरवासियों जैसा संयोग उपस्थित हो, क्या ही उत्तम बात होती कि प्रारब्ध से सभी का मन शिव जी में लगता ॥ ४३ ॥ जिन त्रिपुरवासियों के यहाँ नित्य शिवपूजन होता रहा वे उस शिवपूजा के प्रभाव से शिव जी के गण हुए । इस कथा का आध्यात्मिक रहस्य है कि स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर त्रिपुर है और इसे बनाने वाला मन ही मय है । जब जीव के ये तीनों पुर शिव की कृपा से नष्ट हो जाते हैं तो जीव मुक्त हो जाता है ॥ ४४ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड में. त्रिपुरदाह वर्णन नामक दशम अध्याय समाप्त ॥ १० ॥

*

व्यास जी बोले—हे ब्रह्मपुत्र ! हे महाप्राज्ञ ! हे शैवश्रेष्ठ ! आप धन्य हैं । अब आप हमें बताइए कि त्रिपुर के सर्वथा नष्ट हो जाने पर उन देवताओं ने फिर क्या किया ? ॥ १ ॥ वह मय कहाँ गया ? त्रिपुराधिपति कहाँ गये ? यदि ये सभी बातें शिव जी के चरित्र से सम्बन्धित हों, तो आप मुझे बताइए ॥२॥ ब्रह्मदेव के पुत्र प्रभावशाली सनत्कुमार व्यास के वचस सुन शिव के चरण-युगलों का ध्यान करते हुए कहने लगे ॥ ३ ॥

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास महाबुद्धे पाराशर्य्य ! महेशितुः । चरितं सर्वपापघ्नं लोकलीलानुसारिणः ॥ ४ ॥
महेश्वरेण सर्वस्मिंस्त्रिपुरे दैत्यसङ्कुले । दग्धे विशेषतस्तत्र विस्मितास्तेऽभवन् सुराः ॥ ५ ॥
न किञ्चिदब्रुवन् देवाः सेन्द्रोपेन्द्रादयस्तदा । महातेजस्विनं रुद्रं सर्वे वीक्ष्य ससम्भ्रमाः ॥ ६ ॥
महाभयङ्करं रौद्रं प्रज्वलन्तं दिशो दश । कोटिसूर्यप्रतीकाशं प्रलयानलसन्निभम् ॥ ७ ॥
भयाद्देवं निरीक्ष्यैव देवीं च हिमवत्सुताम् । विभ्यिरे निखिला देवप्रमुखास्तस्थुरानताः ॥ ८ ॥
दृष्ट्वाऽनीकं तदा भीतं देवानामृषिपुङ्गवाः । न किञ्चिदूचुः सन्तस्थुः प्रणेमुस्ते समन्ततः ॥ ९ ॥
अथ ब्रह्माऽपि सम्भीतो दृष्ट्वा रूपं च शाङ्करम् । तुष्टाव तुष्टहृदयो देवैः सह समाहितः ॥१०॥
विष्णुना च सभीतेन देवदेवं भवं हरम् । त्रिपुरारिं सगिरिजं भक्ताधीनं महेश्वरम् ॥११॥

ब्रह्मोवाच

देवदेव महादेव भक्तानुग्रहकारक ! । प्रसीद परमेशान सर्वदेवहितप्रद ! ॥१२॥
प्रसीद जगतां नाथ प्रसीदानन्ददायक ! । प्रसीद शङ्कर स्वामिन् प्रसीद परमेश्वर ! ॥१३॥
ॐकाराय नमस्तुभ्यमाकारपरतारक ! । प्रसीद सर्वदेवेश त्रिपुरघ्न महेश्वर ! ॥१४॥
नानावाच्याय देवाय प्रणतप्रिय शङ्कर ! । अगुणाय नमस्तुभ्यं प्रकृतेः पुरुषात्पर ॥१५॥
निर्विकाराय नित्याय नित्यतृप्ताय भास्वते । निरञ्जनाय दिव्याय त्रिगुणाय नमोऽस्तु ते ॥१६॥
सगुणाय नमस्तुभ्यं स्वर्गेशाय नमोऽस्तु ते । सदाशिवाय शान्ताय महेशाय पिनाकिने ॥१७॥
सर्वज्ञाय शरण्याय सद्योजाताय ते नमः । वामदेवाय रुद्राय तदाप्यपुरुषाय च ॥१८॥

सनत्कुमार बोले—हे महाबुद्धे, हे पराशरपुत्र व्यास ! अब तुम आगे लोकलीला का अनुकरण करने वाले महेश्वर के चरित्र को सुनो, जिसके सुनने मात्र से मनुष्यों का पाप दूर हो जाता है ॥४॥ जब भगवान् शङ्कर ने दैत्यों से परिपूर्ण त्रिपुर को जला दिया, तब देवता लोगों को विशेष रूप से आश्चर्य हुआ ॥५॥ इन्द्र एवं विष्णु सहित देवगण महातेजस्वी रुद्र को देखकर आश्चर्य में डूबते हुए कुछ भी बोलने में असमर्थ-से हो गये ॥ ६ ॥ उस समय दशों दिशाओं में देदीप्यमान, प्रलयाग्नि के समान भयङ्कर एवं करोड़ों सूर्य के समान तेजस्वी उन रुद्र को तथा भगवती पार्वती को देखकर सभी देवता भयभीत हो सिर नीचे झुकाकर उनके आगे खड़े हो गये ॥ ७-८ ॥ ऋषिगण देव-सेना को इस प्रकार भयभीत देखकर कुछ बोलने में असमर्थ हो शिव को प्रणाम कर स्थित रह गये ॥ ९ ॥ तब ब्रह्मा शङ्कर के इस रुद्र को देखकर डरते हुए सन्तुष्ट मन से देवताओं के सहित उनकी स्तुति करने लगे ॥ १० ॥ विष्णु भी भयसन्त्रस्त हो भक्ताधीन, गिरिजासमेत त्रिपुरारि सदाशिव की स्तुति करने लगे ॥ ११ ॥

ब्रह्मा बोले—हे देवाधिदेव महादेव ! हे भक्तानुग्रहकारक ! हे सब देवहितकारी परमेश्वर ! आप हम पर प्रसन्न हों ॥ १२ ॥ हे जगत्पते ! प्रसन्न हों, हे आनन्ददायक ! आप प्रसन्न हों, हे शङ्करस्वामिन् ! परमेश्वर ! आप प्रसन्न हों ॥ १३ ॥ ॐकार रूप, अकार शब्द से वाच्य एवं तारक, सर्वदेवेश, त्रिपुरघ्न, महेश्वर, आप हम लोगों पर प्रसन्न हों ॥ १४ ॥ अनेकानेक नामों से वाच्य, हे देव ! आपको नमस्कार है। सेवा से प्रसन्न होने वाले हे शङ्कर ! प्रकृति एवं पुरुष से भिन्न, गुणरहित आपको नमस्कार है ॥१५॥ निर्विकार, नित्य, नित्यतृप्त, प्रकाशमान, निरञ्जन, दिव्य, त्रिगुणरूप, आपको प्रणाम है ॥ १६ ॥ सगुणरूपधारी आपको प्रणाम है, स्वर्गेश आपको प्रणाम है। सदाशिव, परमशान्त, पिनाकधारी, आप महेश्वर को प्रणाम है ॥ १७ ॥ सर्वज्ञ, शरण देनेवाले, सद्योजात, वामदेव, रुद्र एवं आप्तपुरुष, आपको

अघोराय सुसेव्याय भक्ताधीनाय ते नमः । ईशानाय वरेण्याय भक्तानन्दप्रदायिने ॥१९॥
रक्ष रक्ष महादेव भीतान्नः सकलामरान् । दग्ध्वा च त्रिपुरं सर्वे कृतार्था अमराः कृताः ॥२०॥
स्तुत्वैवं देवताः सर्वा नमस्कारं पृथक् पृथक् । चक्रुस्ते परमप्रीता ब्रह्माद्यास्तु सदाशिवम् ॥२१॥
अथ ब्रह्मा स्वयं देवं त्रिपुरारिं महेश्वरम् । तुष्टाव प्रणतो भूत्वा नतस्कन्धः कृताञ्जलिः ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

भगवन् देवदेवेश त्रिपुरान्तक शङ्कर ! । त्वयि भक्तिः परा मेऽस्तु महादेवानपायिनी ॥२३॥
सर्वदा मेऽस्तु सारथ्यं तव देवेश शङ्कर । अनुकूलो भव विभो सदा त्वं परमेश्वर ! ॥२४॥

सनत्कुमार उवाच

इति स्तुत्वा विधिः शम्भुं भक्तवत्सलमानतः । विरराम नतस्कन्धः कृताञ्जलिरुदारधीः ॥२५॥
जनार्दनोऽपि भगवान् नमस्कृत्य महेश्वरम् । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तुष्टाव च महेश्वरम् ॥२६॥

विष्णुरुवाच

देवाधीश महेशान दीनबन्धो कृपाकर ! । प्रसीद परमेशान कृपां कुरु नतप्रिय ॥२७॥
निर्गुणाय नमस्तुभ्यं पुनश्च सगुणाय च । पुनः प्रकृतिरूपाय पुनश्च पुरुषाय च ॥२८॥
पश्चाद् गुणस्वरूपाय नतो विश्वात्मने नमः । भक्तिप्रियाय शान्ताय शिवाय परमात्मने ॥२९॥
सदाशिवाय रुद्राय जगतां पतये नमः । त्वयि भक्तिर्दृढा मेऽद्य वर्द्धमाना भवत्विति ॥३०॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा विररामासौ शैवप्रवरसत्तमः । सर्वे देवाः प्रणम्योचुस्ततस्तं परमेश्वरम् ॥३१॥

नमस्कार है ॥ १८ ॥ अघोर (निष्पाप), सेवा के लिए सर्वथा योग्य, भक्ताधीन, ईशान, वरेण्य (श्रेष्ठ) एवं भक्तों को आनन्द देने वाले आप सदाशिव को नमस्कार है ॥ १९ ॥ आपने इस त्रिपुर को जलाकर देवताओं को कृतार्थ कर दिया । किन्तु तब भी इस रुद्ररूप को देखकर भय प्राप्त करने वाले इन देवताओं की आप रक्षा करो ॥ २० ॥ इस प्रकार ब्रह्मादि सभी देवता प्रसन्नता से भगवान् सदाशिव की स्तुति कर पृथक्-पृथक् उन्हें प्रणाम करने लगे ॥ २१ ॥ इस प्रकार ब्रह्मा स्वयं सिर झुकाकर हाथ जोड़े हुए त्रिपुरारि महेश्वर की स्तुति कर पुनः कहने लगे—॥ २२ ॥

ब्रह्मा बोले—हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! हे त्रिपुरान्तक ! हे शङ्कर ! हे महादेव ! मेरी भक्ति आप में सदैव बनी रहे और उसका विनाश कभी न हो ॥ २३ ॥ हे देवेश ! हे शङ्कर, मैं सदा आपका सारथी बना रहूँ । हे विभो ! हे परमेश्वर ! आप सदा मेरे अनुकूल रहें ॥ २४ ॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार उदारबुद्धि वाले ब्रह्मा भक्तवत्सल भगवान् शिव की स्तुति कर विनम्र हो मौन हो गये ॥ २५ ॥ तब भगवान् विष्णु महेश्वर को नमस्कार कर हाथ जोड़ उनकी स्तुति करने लगे ॥ २६ ॥

विष्णु बोले—हे देवाधीश ! हे महेश्वर ! हे दीनबन्धो ! हे दयालो, हे परमेश्वर ! हे प्रणतप्रिय सदाशिव ! आप कृपा करो, आपको प्रणाम है ॥ २७ ॥ निर्गुण तथा पुनः सगुण, प्रकृतिरूप तथा पुनः पुरुषरूप आपको प्रणाम है ॥ २८ ॥ तदनन्तर गुणरूप धारण करने वाले, विश्वात्मा आपको नमस्कार है । भक्तप्रिय ! परम शान्तस्वरूप, परमात्मा शिव, आपके लिए नमस्कार है ॥२९॥ सदाशिव रुद्र एवं जगत्पते ! आपके लिए नमस्कार है । आप में आज से मेरी भक्ति दृढ़ होकर निरन्तर बढ़ती रहे ॥ ३० ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! महा शिवभक्त विष्णु इस प्रकार शिव की स्तुति कर मौन हो गये । पुनः सभी देवता प्रणाम कर शङ्कर से बोले—॥ ३१ ॥

देवा ऊचुः

देवनाथ महादेव करुणाकर शङ्कर ! । प्रसीद जगतां नाथ प्रसीद परमेश्वर ! ॥३२॥
प्रसीद सर्वकर्ता त्वं नमामस्त्वां वयं मुदा । त्वयि भक्तिर्दृढास्माकं नित्यं स्यादनपायिनी ॥३३॥

सनत्कुमार उवाच

इति स्तुतश्च देवेशो ब्रह्मणा हरिणाऽमरैः । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा शङ्करो लोकशङ्करः ॥३४॥

शङ्कर उवाच

हे विधे हे हरे देवाः प्रसन्नोऽस्मि विशेषतः । मनोऽभिलषितं ब्रूत वरं सर्वे विचारतः ॥३५॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्तं वचनं श्रुत्वा हरेण मुनिसत्तम ! । प्रत्यूचुः सर्वदेवाश्च प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥३६॥

सर्वे देवा ऊचुः

यदि प्रसन्नो भगवन् ! यदि देयो वरस्त्वया । देवदेवेश चाऽस्मभ्यं ज्ञात्वा दासान् हि नः सुरान् ॥३७॥
यदा दुःखं तु देवानां सम्भवेद् देवसत्तम ! । तदा त्वं प्रकटो भूत्वा दुःखं नाशय सर्वदा ॥३८॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्तो भगवान्रुद्रो ब्रह्मणा हरिणाऽमरैः । युगपत्प्राह तुष्टात्मा तथेत्यस्तु निरन्तरम् ॥३९॥
स्तवैरेतैश्च तुष्टोऽस्मि दास्यामि सर्वदा ध्रुवम् । यदभीष्टतमं लोके पठतां शृण्वतां सुराः ॥४०॥
इत्युक्त्वा शङ्करः प्रीतो देवदुःखहरः सदा । सर्वदेवप्रियं यद्वै तत्सर्वं च प्रदत्तवान् ॥४१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे
देवस्तुतिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

देवगणों ने कहा—हे देवताओं के स्वामी, हे महादेव, हे करुणामय, हे शङ्कर, हे जगत्पते, हे परमेश्वर ! आप हम लोगों पर प्रसन्न रहें ॥ ३२ ॥ हे सर्वकर्त्ता ! हम सब प्रसन्नता के साथ आपको नमस्कार करते हैं। आपमें हमारी दृढ़ भक्ति सदा बनी रहे, उसका कभी नाश न हो ॥ ३३ ॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा देवताओं के द्वारा स्तुति किये जाने पर लोक-कल्याणकर्त्ता भगवान् शङ्कर प्रसन्न होकर कहने लगे ॥ ३४ ॥

शिव जी बोले—हे ब्रह्मदेव ! हे विष्णो एवं हे देवताओ ! मैं विशेषरूप से प्रसन्न हूँ, आप सब अच्छी तरह विचार कर मुझसे अपना अभिलषित वर माँगो ॥ ३५ ॥

सनत्कुमार बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! शिव जी के द्वारा इस प्रकार के वचन सुन सभी देवता प्रसन्न होकर बोले—॥ ३६ ॥

देवता बोले—हे भगवन् ! यदि आप प्रसन्न हैं और वर देना ही चाहते हैं तो हम देवताओं को अपना दास समझ कर जब-जब हम लोगों पर किसी प्रकार की भी विपत्ति प्राप्त हो तब-तब आप उसका निवारण करें ॥ ३७-३८ ॥

सनत्कुमार बोले—जब ब्रह्मा, विष्णु एवं देवताओं ने भगवान् शङ्कर से इस प्रकार कहा, तब उन्होंने एक ही बार सभी देवताओं से कहा—'ऐसा ही होगा' ॥ ३९ ॥ हे देवगणो ! मैं इस स्तोत्र से प्रसन्न हूँ, इस स्तोत्र का पाठ करने वाले तथा सुनने वालों को सर्वदा अभीष्ट वर देता रहूँगा ॥ ४० ॥ देवताओं के दुःख को दूर करने वाले भगवान् शङ्कर इतना कहकर बहुत प्रसन्न हुए फिर उन्होंने देवताओं को मनोऽभिलषित वरदान दिया ॥ ४१ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड में देवस्तुति वर्णन नामक इग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥

*

द्वादशोऽध्यायः

(शिव की शरण में मय का आना, उसे वितल लोक प्रदान, कलियुग में जैनधर्म प्रचलित होगा यह कहकर जैनाचार्य का विसर्जन)

सनत्कुमार उवाच

एतस्मिन्नन्तरे शम्भुं प्रसन्नं वीक्ष्य दानवः । तत्राजगाम सुप्रीतो मयोऽदग्धः कृपाबलात् ॥ १ ॥
प्रणनाम हरं प्रीत्या सुरानन्यानपि ध्रुवम् । कृताञ्जलिर्नतस्कन्धः प्रणनाम पुनः शिवम् ॥ २ ॥
अथोत्थाय शिवं दृष्ट्वा प्रेम्णा गद्गदसुस्वरः । तुष्टाव भक्तिपूर्णात्मा स दानववरो मयः ॥ ३ ॥

मय उवाच

देवदेव महादेव भक्तवत्सल शङ्कर ! । कल्पवृक्षस्वरूपोऽसि सर्वपक्षविवर्जितः ॥ ४ ॥
ज्योतीरूप नमस्तेऽस्तु विश्वरूप नमोऽस्तु ते । नमः पूतात्मने तुभ्यं पावनाय नमो नमः ॥ ५ ॥
चित्ररूपाय नित्याय रूपातीताय ते नमः । दिव्यरूपाय दिव्याय सुदिव्याकृतये नमः ॥ ६ ॥
नमः प्रणतसर्वार्तिनाशकाय शिवात्मने । कर्त्रे भर्त्रे च संहर्त्रे त्रिलोकानां नमो नमः ॥ ७ ॥
भक्तिगम्याय भक्तानां नमस्तुभ्यं कृपालवे । तपःसत्फलदात्रे ते शिवाकान्त शिवेश्वर ! ॥ ८ ॥
न जानामि स्तुतिं कर्तुं स्तुतिप्रिय परेश्वर ! । प्रसन्नो भव सर्वेश पाहि मां शरणागतम् ॥ ९ ॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य मयोक्तां हि संस्तुतिं परमेश्वरः । प्रसन्नोऽभूद् द्विजश्रेष्ठ मयं प्रोवाच चादरात् ॥१०॥

शिव उवाच

वरं ब्रूहि प्रसन्नोऽहं मय दानवसत्तम । मनोऽभिलषितं यत्ते तद्दास्यामि न संशयः ॥११॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! तदनन्तर शिवजी को प्रसन्न देखकर उनकी कृपा से त्रिपुराग्नि में भस्म होने से बचा हुआ मयदानव वहाँ आया ॥ १ ॥ फिर उसने सदाशिव एवं अन्य दूसरे देवताओं को विनय से बारम्बार सिर नवाकर प्रणाम किया ॥ २ ॥ तदनन्तर शिव जी के दर्शन से प्रसन्न हुआ मयदानव भक्ति में लीन हो गद्गद वाणी में उनकी स्तुति करने लगा—॥ ३ ॥

मय बोला—हे देवदेव ! महादेव ! हे भक्तवत्सल ! हे शङ्कर ! आप किसी का पक्षपात नहीं करते, अतः आप कल्पवृक्ष स्वरूप हो ॥ ४ ॥ प्रकाशरूप से विद्यमान आपको नमस्कार है, विश्वरूप आपको नमस्कार है । पूतात्मा आपको नमस्कार है, पावनरूप आपको नमस्कार है ॥ ५ ॥ विचित्र रूप वाले, नित्य निर्गुण आपको नमस्कार है, दिव्यरूप, दिव्य एवं दिव्य आकृतिवाले आपको प्रणाम है ॥ ६ ॥ प्रणतजनों के सभी प्रकार की विपत्तियों को दूर करने वाले, सबके कल्याणकारी आपको नमस्कार है । इस त्रिलोकी के कर्त्ता, भर्त्ता तथा हर्त्ता आपको प्रणाम है ॥ ७ ॥ आप अपने भक्तों की भक्ति से गम्य हो, आप कृपालु को नमस्कार हैं, हे शिवाकान्त ! हे शिवेश्वर, आप ही तपस्या के फल को देने वाले हैं, आपको प्रणाम है ॥ ८ ॥ हे परमेश्वर ! आप स्तुतिप्रिय हैं, पर मैं आपकी स्तुति करना नहीं जानता, फिर भी हे सर्वेश ! आप मुझ पर प्रसन्न हो जाइए और मुझ शरणागत की रक्षा कीजिए ॥ ९ ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास जी, मयदानव द्वारा की गयी इस स्तुति को सुनकर भगवान् शङ्कर बहुत प्रसन्न हो गये और आदर से कहने लगे ॥ १० ॥

शिव जी बोले—हे मयदानव ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, तुम अपना अभिलषित वर माँगो ! मैं अवश्य दूंगा, इसमें संशय मत करो ॥ ११ ॥

सनत्कुमार उवाच

श्रुत्वा शिवं वचः शम्भोः स मयो दानवर्षभः। प्रत्युवाच प्रभुं नत्वा नतस्कन्धः कृताञ्जलिः ॥१२॥

मय उवाच

देवदेव महादेव प्रसन्नो यदि मे भवान्। वरयोग्योऽस्म्यहं चेद्धि स्वभक्तिं देहि शाश्वतीम् ॥१३॥
स्वभक्तेषु सदा सख्यं दीनेषु च दयां सदा। उपेक्षामन्यजीवेषु खलेषु परमेश्वर ! ॥१४॥
कदापि नासुरो भावो भवेन्मम महेश्वर। निर्भयः स्यां सदा नाथ मग्नस्त्वद्भजने शुभे ॥१५॥

सनत्कुमार उवाच

इति सम्प्रार्थ्यमानस्तु शङ्करः परमेश्वरः। प्रत्युवाच मयेनाथ प्रसन्नो भक्तवत्सलः ॥१६॥

महेश्वर उवाच

दानवर्षभ धन्यस्त्वं मद्भक्तो निर्विकारवान्। प्रदत्तास्ते वराः सर्वेऽभीप्सिता ये तवाधुना ॥१७॥
गच्छ त्वं वितलं लोकं रमणीयं दिवोऽपि हि। समेतः परिवारेण निजेन मम शासनात् ॥१८॥
निर्भयस्तत्र सन्तिष्ठ संहृष्टो भक्तिमान् सदा। कदापि नासुरो भावो भविष्यति मदाज्ञया ॥१९॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याज्ञां शिरसाऽऽधाय शङ्करस्य महात्मनः। तं प्रणम्य सुरांश्चाऽपि वितलं प्रजगाम सः ॥२०॥
एतस्मिन्नन्तरे ते वै मुण्डिनश्च समागताः। प्रणम्योचुश्च तान् सर्वान् विष्णुब्रह्मादिकान् सुरान् ॥२१॥
कुत्र याम वयं देवाः कर्म किं करवामहे। आज्ञापयत नः शीघ्रं भवदादेशकारकान् ॥२२॥
कृतं दुष्कर्म चास्माभिर्हे हरे हे विधे सुराः। दैत्यानां शिवभक्तानां शिवभक्तिर्विनाशिता ॥२३॥
कोटिकल्पानि नरके नो वासस्तु भविष्यति। नोद्धारो भविता नूनं शिवभक्तविरोधिनाम् ॥२४॥

सनत्कुमार बोले—सदाशिव की कल्याणकारी बात सुनकर मय दानव हाथ जोड़कर विनम्र हो शिवजी से बोला—॥ १२ ॥

मय बोला—हे देवदेव ! हे महादेव ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और यदि मुझे आप वर देने के योग्य समझते हैं, तो मुझे अपनी शाश्वती भक्ति प्रदान कीजिए ॥ १३ ॥ हे परमेश्वर ! आप अपने भक्तों को सर्वदा सुख, दीनों पर दया तथा अन्य खल जीवों की उपेक्षा करें। हे महेश्वर ! मुझमें असुर भाव न रहे, हे नाथ ! मैं सदा निर्भय एवं आपके भजन में निरन्तर मग्न रहूँ ॥ १४-१५ ॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार मय दानव से प्रार्थना किये जाने पर भक्तवत्सल, परमेश्वर शङ्कर प्रसन्न हो मय-दानव से बोले—॥ १६ ॥

महेश्वर ने कहा—हे दानवश्रेष्ठ ! तुम धन्य हो, आज से तुम मेरे विशुद्ध भक्त हुए, तुम्हारे जो भी अभीष्ट वरदान हैं वे सभी मैंने तुम्हें दिये ॥ १७ ॥ तुम द्युलोक से भी मनोहर वितल लोक को जाओ, और मेरी आज्ञा से अपने परिवार सहित वहीं पर निर्भय हो निवास करो ॥ १८ ॥ मेरी भक्ति में सदा लगे रहो, ऐसा करने से तुममें आसुरभाव उत्पन्न नहीं होगा ॥ १९ ॥

सनत्कुमार बोले -हे व्यास ! तदनन्तर वह मयदान शिव जी की आज्ञा शिरोधार्य कर उनको तथा अन्य देवगणों को प्रणाम कर वितल लोक को चला गया ॥२०॥ इतनी ही देर में वे मुण्डी भी वहाँ आकर प्राप्त हो गये फिर शिवजी तथा अन्य ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं को प्रणाम कर बोले-॥२१॥ हे देवताओ ! अब हमलोग कहाँ जायें तथा क्या करें ? हम लोग आपकी आज्ञा मानने के लिए सतत तैयार हैं, अतः शीघ्रता से आज्ञा दीजिए ॥ २२ ॥ हे विष्णो ! हे देवगणो ! हम लोगों ने शिव में भक्ति रखने वाले इन दानवों को शिवभक्ति से विरत कर बहुत बड़ा पाप किया है ॥ २३ ॥ अवश्य ही इस पाप के फल-स्वरूप करोड़ों कल्पों तक हम लोगों का नरक में वास होगा। शिवभक्तों के विरोध से हमारा उद्धार

परन्तु भवदिच्छात इदं दुष्कर्म नः कृतम् । तच्छान्तिं कृपया ब्रूत वयं वः शरणागताः ॥२५॥

सनत्कुमार उवाच

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुब्रह्मादयः सुराः । अब्रुवन् मुण्डिनस्तांस्ते स्थितानग्रे कृताञ्जलीन् ॥२६॥

विष्णवादय ऊचुः

न भेतव्यं भवद्भिस्तु मुण्डिनो वै कदाचन । शिवाज्ञयेदं सकलं जातं चरितमुत्तमम् ॥२७॥
युष्माकं भविता नैव कुगतिर्दुःखदायिनी । शिवदासा यतो यूयं देवर्षिहितकारकाः ॥२८॥
सुरर्षिहितकृच्छम्भुः सुरर्षिहितकृत्प्रियः । सुरर्षिहितकृन्नृणां कदापि कुगतिर्न हि ॥२९॥
अद्यतो मतमेतं हि प्रविष्टानां नृणां कलौ । कुगतिर्भविता ब्रूमः सत्यं नैवाऽत्र संशयः ॥३०॥
भवद्भिर्मुण्डिनो धीरा गुप्तभावान् ममाज्ञया । तावन्मरुस्थली सेव्या कलिर्यावत् समाव्रजेत् ॥३१॥
आगते च कलौ यूयं स्वमतं स्थापयिष्यथ । कलौ तु मोहिता मूढाः सङ्ग्रहीष्यन्ति वो मतम् ॥३२॥
इत्याज्ञप्ताः सुरेशैश्च मुण्डिनस्ते मुनीश्वर ! । नमस्कृत्य गतास्तत्र यथोद्दिष्टं स्वमाश्रमम् ॥३३॥
ततः स भगवान्रुद्रो दग्ध्वा त्रिपुरवासिनः । कृतकृत्यो महायोगी ब्रह्माद्यैरभिपूजितः ॥३४॥
स्वगणैर्निखिलैर्देव्या शिवया सहितः प्रभुः । कृत्वाऽमरमहत्कार्यं ससुतोऽन्तरधादथ ॥३५॥
ततश्चान्तर्हिते देवे परिवारान्विते शिवे । धनुः-शर-रथाद्यैश्च प्राकारोऽन्तर्द्धिमागमत् ॥३६॥
ततो ब्रह्मा हरिर्देवा मुनि-गन्धर्व-किन्नराः । नागाः सर्पाश्चाऽप्सरसः संहृष्टाश्चाथ मानुषाः ॥३७॥

सम्भव न होगा ॥ २४ ॥ किन्तु इसमें हमलोगों का दोष ही क्या है, हमने यह दुष्ट कर्म भगवान् की इच्छा से ही किया है । अतः हमें इस पाप की शान्ति का मार्ग बतावें, हम आपके शरणागत हैं ॥ २५ ॥

सनत्कुमार बोले—अपने आगे हाथ जोड़कर खड़े हुए उन मुण्डियों के वचन सुन ब्रह्मादि देवगण उनसे कहने लगे ॥ २६ ॥

विष्णु आदि देवगणों ने कहा—हे मुण्डियो ! तुमलोग किसी प्रकार का भय मत करो, यह सारा चरित्र शिवजी की इच्छा से हुआ है ॥ २७ ॥ तुम लोगों को दुःख देने वाली कुगति कदापि न होगी, क्योंकि तुम लोग शिव के दास हो और देवताओं एवं ऋषियों के हितकारी हो ॥ २८ ॥ शङ्कर जी स्वयं देवताओं एवं ऋषियों के हितकर्त्ता हैं तथा जो लोग देवताओं तथा ऋषियों का हित चाहते हैं वे भी इन्हें अत्यन्त प्रिय हैं । जो देवताओं तथा ऋषियों का हित करते हैं उनकी कदापि कुगति नहीं होती ॥ २९ ॥ किन्तु आज से जो लोग इस मत को स्वीकार करेंगे उनकी कुगति होगी, यह सत्य है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३० ॥ तुम सभी मुण्डी मेरी आज्ञा से धैर्य पूर्वक गुप्त रूप से कलियुग आने तक मरुस्थल में निवास करो ॥ ३१ ॥ कलियुग के आने पर तुम लोग अपना मत स्थापित करना, क्योंकि लोग मोह में पड़कर उसी समय तुम्हारा मत स्वीकार करेंगे ॥ ३२ ॥

हे मुनीश्वर ! उन सुरेश्वरों के द्वारा इस प्रकार की आज्ञा प्राप्त कर वे मुण्डी देवताओं को प्रणाम कर यथा निर्दिष्ट अपने आश्रम को चले गये ॥ ३३ ॥ तदनन्तर हे व्यास ! इस प्रकार त्रिपुर वासियों को भस्म करने के उपरान्त योगीश्वर महादेव ब्रह्मादि देवगणों से पूजित हो अपने गणों, पुत्रों तथा पार्वती के सहित देवताओं का कार्य सम्पन्न कर अन्तर्धान हो गये ॥ ३४-३५ ॥ परिवार सहित शङ्कर के अन्तर्धान होते ही धनुष-बाण एवं रथ सभी सामग्री विलुप्त हो गयी ॥ ३६ ॥ त्रिपुरासुर के भस्म हो जाने पर ब्रह्मा, विष्णु, देवता, मुनि, गन्धर्व, किन्नर, नाग, सर्प, अप्सराएँ तथा मनुष्य सभी प्रसन्न हो गये ॥ ३७ ॥

स्वं स्वं स्थानं मुदा जग्मुः शंसन्तः शाङ्करं यशः । स्वं स्वं स्थानमनुप्राप्य निर्वृतिं परमां ययुः ॥३८॥
एतत्ते कथितं सर्वं चरितं शशिमौलिनः । त्रिपुरक्षयसंयुक्तं परलीलान्वितं महत् ॥३९॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं धनधान्यप्रवर्द्धकम् । स्वर्गदं मोक्षदं चापि किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४०॥
इदं हि परमाख्यानं यः पठेच्छृणुयात् सदा । इह भुक्त्वाऽखिलान् कामानन्ते मुक्तिमवाप्नुयात् ॥४१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे सनत्कुमार-पाराशर्य्यसंवादे त्रिपुर-वधानन्तर-देवस्तुति-मयस्तुति-मुण्डिनिवेशन-देवस्वस्थानगमनवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

(तपस्वी रूप से शिव का इन्द्र को भस्म करना और बृहस्पति की प्रार्थना से इन्द्र को पुनः जीवन प्रदान)

व्यास उवाच

भो ब्रह्मन् भगवन् पूर्वं श्रुतं मे ब्रह्मपुत्रक ! । जलन्धरं महादैत्यमवधीच्छङ्करः प्रभुः ॥ १ ॥
तत्त्वं वद महाप्राज्ञ चरितं शशिमौलिनः । विस्तारपूर्वकं शृण्वन् कस्तृप्येत्तद्यशोऽमलम् ॥ २ ॥

सूत उवाच

इत्येवं व्याससंपृष्टो ब्रह्मपुत्रो महामुनिः । उवाचार्थवदव्यग्रं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ ३ ॥

सनत्कुमार उवाच

एकदा जीवशक्रौ च भक्त्या परमया मुने ! । दर्शनं कर्तुमीशस्य कैलासं जग्मतुर्भृशम् ॥ ४ ॥
अथ गुर्विन्द्रयोर्ज्ञात्वाऽऽगमनं शङ्करः प्रभुः । परीक्षितुं तयोर्ज्ञानं स्वदर्शनरतात्मनोः ॥ ५ ॥
दिगम्बरोऽथ तन्मार्गमारुद्ध्य सद्गतिः सताम् । जटावद्धेन शिरसाऽतिष्ठत् संशोभिताननः ॥ ६ ॥

फिर सभी शिवजी का यशोगान करते हुए अपने-अपने स्थानों को चले गये। वहाँ उन्हें परम शान्ति प्राप्त हुई ॥ ३८ ॥ हे वेदव्यास ! इस प्रकार त्रिपुर के वध से युक्त महालीला से परिपूर्ण शिव के चरित्र का हमने वर्णन किया ॥ ३९ ॥ यह चरित्र धन, यश, आयुष्य को देने वाला, धन-धान्य को बढ़ाने वाला, स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदायक है। अब आगे तुम क्या सुनना चाहते हो ॥ ४० ॥ इस मनोहर वृत्तान्त को जो लोग सदा पढ़ते हैं तथा सुनते हैं वे इस लोक में सम्पूर्ण भोगों को भोगते हैं तथा अन्त में मुक्ति प्राप्त करते हैं ॥ ४१ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पंचम युद्धखण्ड में सनत्कुमार-व्याससंवाद में त्रिपुरवध के अनन्तर देवस्तुति-मयस्तुति-मुण्डिनिवेशन तथा देवगणों का स्व-स्वस्थान-गमन वर्णन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥

*

व्यास जी बोले—हे सनत्कुमार जी, पूर्वकाल में मैंने सुना है कि शङ्कर जी ने जलन्धर दैत्य का वध किया ॥ १ ॥ आप शङ्कर का यह चरित्र विस्तारपूर्वक कहिए। उनके पवित्र चरित्र को सुनते हुए किसकी तृप्ति हो सकती है ॥ २ ॥

सूतजी बोले—महामुनि व्यासजी ने जब इस प्रकार पूछा तब वक्ताओं में श्रेष्ठ सनत्कुमार जी इस प्रकार बोले—॥ ३ ॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने ! एक समय बृहस्पति एवं इन्द्र शङ्कर का दर्शन करने के लिए जा रहे थे ॥ ४ ॥ प्रभु शङ्कर ने उनका आगमन जानकर उनके ज्ञान की परीक्षा लेने के लिए सिर पर जटा-जूट बाँध कर प्रसन्न मुख हो उनके मार्ग को रोक लिया ॥ ५-६ ॥ तदनन्तर इन्द्र एवं बृहस्पति ने आनन्दपूर्वक

अथ तौ गुरुशक्रौ च कुर्वन्तौ गमनं मुदा। आलोक्य पुरुषं भीमं मार्गमध्येऽद्भुताकृतिम् ॥ ७॥
महातेजस्विनं शान्तं जटासम्बद्धमस्तकम्। महाबाहुं महोरस्कं गौरं नयनभीषणम् ॥ ८॥
अथो पुरन्दरोऽपृच्छत् स्वाधिकारेण दुर्मदः। पुरुषं तं स्वमार्गान्तःस्थितमज्ञाय शङ्करम् ॥ ९॥

पुरन्दर उवाच

कस्त्वं भोः कुत आयातः किं नाम वद तत्त्वतः।
स्वस्थाने संस्थितः शम्भुः किं वाऽन्यत्र गतः प्रभुः ॥१०॥

सनत्कुमार उवाच

शक्रेणेत्थं स पृष्टस्तु किञ्चिन्नोवाच तापसः। शक्रः पुनरपृच्छद्वै नोवाच स दिगम्बरः ॥११॥
पुनः पुरन्दरोऽपृच्छल्लोकानामधिपेश्वरः। तूष्णीमास महायोगी लीलारूपधरः प्रभुः ॥१२॥
इत्थं पुनः पुनः पृष्टः शक्रेण स दिगम्बरः। नोवाच किञ्चिद् भगवाञ्छक्रज्ञानपरीक्षया ॥१३॥
अथ चुक्रोध देवेशस्त्रैलोक्यैश्वर्यगर्वितः। उवाच वचनं चैव तं निर्भर्त्स्य जटाधरम् ॥१४॥

इन्द्र उवाच

रे मया पृच्छ्यमानोऽपि नोत्तरं दत्तवानसि। अतस्त्वां हन्मि वज्रेण कस्ते त्रातास्ति दुर्मते ! ॥१५॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युदीर्य ततो वज्री सन्निरीक्ष्य क्रुधा हि तम्। हन्तुं दिगम्बरं वज्रमुद्यतं स चकार ह ॥१६॥
पुरन्दरं वज्रहस्तं दृष्ट्वा देवः सदाशिवः। चकार स्तम्भनं तस्य वज्रपातस्य शङ्करः ॥१७॥
ततो रुद्रः क्रुधाऽऽविष्टः करालाक्षो भयङ्करः। द्रुतमेव प्रजज्वाल तेजसा प्रदहन्निव ॥१८॥
बाहुप्रतिष्टम्भभुवा मन्युनान्तः शचीपतिः। समदह्यत भोगीव मन्त्ररुद्धपराक्रमः ॥१९॥

जाते हुए मार्ग में स्थित अद्भुत आकार वाले भीम पुरुष को देखा ॥ ७ ॥ वह महातेजस्वी पुरुष शिर पर जटा-जूट बाँधे हुए अत्यन्त शान्त था, उसकी भुजाएँ तथा वक्षःस्थल अत्यन्त विशाल थे। गौर वर्ण वाले उस पुरुष के नेत्र अत्यन्त भीषण थे ॥ ८ ॥ तब अहङ्कार में चूर्ण हुए इन्द्र ने मार्ग में स्थित उस पुरुष से पूछा, उसे क्या पता था कि यह मार्ग-स्थित पुरुष शङ्कर ही हैं ॥ ९ ॥

इन्द्र ने कहा—हे पुरुष ! तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? और तुम्हारा क्या नाम है, तुम बताओ कि शिवजी अपने स्थान पर ही स्थित हैं अथवा अन्यत्र कहीं गये हैं ॥ १० ॥

सनत्कुमार बोले—इन्द्र के द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर उस तपस्वी ने कुछ न कहा, तब इन्द्र ने पुनः पूछा किन्तु उस दिगम्बर ने कुछ न कहा ॥ ११ ॥ तब लोकाधीश्वर इन्द्र ने पुनः पूछा, किन्तु अनेक लीलाविशारद, महायोगीश्वर भगवान् शङ्कर मौन ही रहे ॥ १२ ॥ इस प्रकार बारम्बार पूछने पर जब वह दिगम्बर इन्द्र के ज्ञान की परीक्षा लेने के लिए कुछ न बोले तब ऐश्वर्य मद से मोहित हुए इन्द्र को महान् क्रोध उत्पन्न हुआ। तब उस जटाधारी दिगम्बर को घुड़की देते हुए इन्द्र बोले—॥ १३-१४ ॥

इन्द्र बोले – अरे ! मैं बारम्बार तुमसे पूछ रहा हूँ किन्तु तुम उसका उत्तर नहीं देते। हे दुर्मते ! मैं अभी इस वज्र से तेरा वध करता हूँ, देखता हूँ कि कौन तेरा रक्षा करता है ? ॥ १५ ॥

सनत्कुमार बोले—इन्द्र ने ऐसा कह कर क्रोध से उस दिगम्बर को मारने के लिए वज्र हाथ में लिया ॥ १६ ॥ अनन्तर सदाशिव ने वज्र हाथ में लिये इन्द्र को देखकर उसका वज्र सहित हाथ वहीं पर स्तम्भित कर दिया ॥ १७ ॥ फिर अत्यन्त भयङ्कर विकराल नेत्र वाले रुद्र अत्यन्त क्रुद्ध हो अपने तेज से शीघ्र ही अग्नि के समान प्रज्वलित हो उठे ॥ १८ ॥ इन्द्र भी भुजा के स्तम्भित हो जाने से मन-ही-मन इस प्रकार प्रज्वलित हो गये, जैसे मन्त्र एवं औषधि से अपने पराक्रम को रुद्ध देखकर सर्प प्रज्वलित होता

दृष्ट्वा बृहस्पतिस्तूर्णं प्रज्वलन्तं स्वतेजसा । पुरुषं तं धिया ज्ञात्वा प्रणनाम हरं प्रभुम् ॥२०॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ततो गुरुरुदारधीः । नत्वा च दण्डवद्भूमौ प्रभुं स्तोतुं प्रचक्रमे ॥२१॥

गुरुरुवाच

नमो देवाधिदेवाय महादेवाय चात्मने । महेश्वराय प्रभवे त्र्यम्बकाय कपर्दिने ॥२२॥
दीनानाथाय विभवे नमोऽन्धकनिषूदिने । त्रिपुरघ्नाय शर्वाय ब्रह्मणे परमेष्ठिने ॥२३॥
विरूपाक्षाय रुद्राय बहुरूपाय शम्भवे । विरूपायाऽतिरूपाय रूपातीताय ते नमः ॥२४॥
यज्ञविध्वंसकर्त्रे च यज्ञानां फलदायिने । नमस्ते मखरूपाय परकर्मप्रवर्तिने ॥२५॥
कालान्तकाय कालाय कालभोगिधराय च । नमस्ते परमेशाय सर्वत्र व्यापिने नमः ॥२६॥
नमो ब्रह्मशिरोहन्त्रे ब्रह्मचन्द्रस्तुताय च । ब्रह्मण्याय नमस्तेऽस्तु नमस्ते परमात्मने ॥२७॥
त्वमग्निरनिलो व्योम त्वमेवापो वसुन्धरा । त्वं सूर्यश्चन्द्रमा भानि ज्योतिश्चक्रं त्वमेव हि ॥२८॥
त्वमेव विष्णुस्त्वं ब्रह्मा तत्स्तुतस्त्वं परेश्वरः । मुनयः सनकाद्यास्त्वं नारदस्त्वं तपोधनः ॥२९॥
त्वमेव सर्वलोकेशस्त्वमेव जगदात्मकः । सर्वान्वयः सर्वभिन्नस्त्वमेव प्रकृतेः परः ॥३०॥
त्वं वै सृजसि लोकांश्च रजसा विधिनामभाक् । सत्त्वेन हरिरूपस्त्वं सकलं यासि वै जगत् ॥३१॥
त्वमेवासि महादेव तमसा हररूपधृक् । लीलया भुवनं सर्वं निखिलं पाञ्चभौतिकम् ॥३२॥
त्वद्ध्यानबलतः सूर्यस्तपते विश्वभावन ! । अमृतं च्यवते लोके शशी वाति समीरणः ॥३३॥
त्वद्ध्यानबलतो मेघाश्चाम्बु वर्षन्ति शङ्कर ! । त्वद्ध्यानबलतः शक्रस्त्रिलोकीं पाति पुत्रवत् ॥३४॥
त्वद्ध्यानबलतो मेघाः सर्वे देवा मुनीश्वराः । स्वाधिकारं च कुर्वन्ति चकिता भवतो भयात् ॥३५॥

है ॥ १९ ॥ जब बृहस्पति ने तेज से प्रज्वलित हुए उस महापुरुष को देखा तो उन्हें शङ्कर जानकर प्रणाम किया ॥ २० ॥ और उदार बुद्धि वाले बृहस्पति हाथ जोड़कर पृथ्वी में दण्डवत् करते हुए उनकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥

बृहस्पति बोले—देवाधिदेव, महादेव, परमात्मस्वरूप, सर्वसमर्थ, तीन नेत्र वाले, जटा-जूटधारी महेश्वर, आप को प्रणाम है ॥ २२ ॥ दीनों के नाथ, सर्वव्यापक, विभु तथा अन्धकासुर के वधकर्त्ता आप को नमस्कार है । त्रिपुर का वध करने वाले, शर्व परमेष्ठी ब्रह्मा आपको नमस्कार है ॥ २३ ॥ विरूपाक्ष, रुद्र, बहुरूप, शम्भु, विरूप, अतिरूप तथा रूप से अतीत आपको प्रणाम है ॥ २४ ॥ दक्ष यज्ञ को विध्वंस करने वाले, यज्ञों का फल देने वाले, स्वयं यज्ञस्वरूप, परलोक के कर्म में प्रवृत्त करने वाले, आपको प्रणाम है ॥ २५ ॥ कालान्तक, कालस्वरूप, सर्प को धारण करने वाले, परमेश्वर, सर्वत्र व्यापक, आपको नमस्कार है ॥ २६ ॥ ब्रह्मा के शिर को काटने वाले, ब्रह्मस्वरूप, चन्द्रमा से स्तुत, ब्रह्मण्य आप परमात्मा को नमस्कार है, नमस्कार है ॥ २७ ॥

हे प्रभो ! आप ही अग्नि, वायु, आकाश, जल, भूमि, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र तथा समस्त तारागण हैं ॥ २८ ॥ आप ही ब्रह्मा, विष्णु तथा उनसे स्तुत परमेश्वर हो । आप ही सनकादि मुनि एवं तपोधन नारद हो ॥ २९ ॥ आप ही सारे जगत् के ईश्वर तथा जगत्स्वरूप हो । आप ही सब में अनुस्यूत, सबसे भिन्न एवं प्रकृति से परे हो ॥ ३० ॥ आप ही विधाता हो, जो रजोगुण से इस जगत् की सृष्टि करते हो । आप ही विष्णु हो, जो सत्त्वगुण से इस जगत् का पालन करते हो ॥ ३१ ॥ आप ही महादेव हो, जो तमोगुण से इस पाञ्चभौतिक सारे जगत् का संहार करते हो ॥ ३२ ॥ हे विश्वभावन ! आपके ध्यान के बल से ही सूर्य तपता है, चन्द्रमा अमृत टपकाता और वायु बहता है ॥ ३३ ॥ हे शम्भो ! आपके ध्यान के बल से ही मेघ जल की वृष्टि करते हैं और इन्द्र तुम्हारे ध्यान के बल से ही इस त्रिलोकी को पुत्र के समान रक्षा करते हैं ॥ ३४ ॥ तुम्हारे ही ध्यान के बल से मेघ, सभी देवता एवं मुनीश्वर गण अपने-अपने

त्वत्पादकमलस्यैव सेवनाद्भुवि मानवाः । नाद्रियन्ते सुराञ्रुद्र ! लोकैश्वर्यं च भुञ्जते ॥३६॥
त्वत्पादकमलस्यैव सेवनादगमन्पराम् । गतिं योगधनानामप्यगम्यां सर्वदुर्लभाम् ॥३७॥

सनत्कुमार उवाच

बृहस्पतिरिति स्तुत्वा शङ्करं लोकशङ्करम् । पादयोः पातयामास तस्येशस्य पुरन्दरम् ॥३८॥
पातयित्वा च देवेशमिन्द्रं नतशिरोधरम् । बृहस्पतिरुवाचेदं प्रश्रयावनतः शिवम् ॥३९॥

बृहस्पतिरुवाच

दीनानाथ महादेव ! प्रणतं तव पादयोः । समुद्धर च शान्तं स्वं क्रोधं नयनजं कुरु ॥४०॥
तुष्टो भव महादेव ! पाहीन्द्रं शरणागतम् । अग्निरेष शमं यातु भालनेत्रसमुद्भवः ॥४१॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य गुरोर्वाक्यं देवदेवो महेश्वरः । उवाच करुणासिन्धुर्मेघनिर्ह्रादया गिरा ॥४२॥

महेश्वर उवाच

क्रोधं च निःसृतं नेत्राद्धारयामि बृहस्पतेः । कथं हि कञ्चुकीं सर्पः सन्धत्ते नोज्झितां पुनः ॥४३॥

सनत्कुमार उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य शङ्करस्य बृहस्पतिः । उवाच क्लिष्टरूपश्च भयव्याकुलमानसः ॥४४॥

बृहस्पतिरुवाच

हे देव भगवन् भक्ता अनुकम्प्याः सदैव हि । भक्तवत्सलनामेति त्वं सत्यं कुरु शङ्कर ! ॥४५॥
क्षेप्तुमन्यत्र देवेश ! स्वतेजोऽत्युग्रमर्हसि । उद्धर्तः सर्वभक्तानां समुद्धर पुरन्दरम् ॥४६॥

अधिकारों की नियमतः सुरक्षा करते हैं, और आपके भय से चकित हो काँपते रहते हैं ॥ ३५ ॥ हे रुद्र ! तुम्हारे चरण-कमल के सेवन के प्रभाव से मनुष्य इस पृथ्वी में अन्य देवताओं को कुछ नहीं समझते और इस त्रिलोकी के ऐश्वर्य का भोग करते हैं ॥ ३६ ॥ इतना ही नहीं, हे प्रभो ! तुम्हारे चरण-कमलों की सेवा करने वाले पुरुष, योगिजनों के लिए भी अगम्य दुर्लभ गति प्राप्त करते हैं ॥ ३७ ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास जी, बृहस्पति ने लोककल्याणकारी शिव की इस प्रकार स्तुति की, फिर उन्होंने इन्द्र को उनके पैरों पर गिराया ॥ ३८ ॥ शिर नीचा किये हुए इन्द्र को शिव के चरणों में गिराकर बृहस्पति बड़ी नम्रता से शिव जी से बोले– ॥ ३९ ॥

बृहस्पति बोले—हे दीनानाथ ! हे महादेव ! अपने चरणों पर गिरे हुए इस इन्द्र के ऊपर से आप अपने नेत्रजन्य क्रोधाग्नि को शान्त कीजिए और इसका उद्धार कीजिए ॥ ४० ॥ हे महादेव ! आप शरणागत महेन्द्र की रक्षा करो एवं उस पर प्रसन्न हो जाओ। आपके नेत्रों से उत्पन्न हुई यह क्रोधाग्नि शान्त हो ॥ ४१ ॥

सनत्कुमार बोले—बृहस्पति की इस बात को सुनकर करुणासिन्धु देवदेव महेश्वर मेघ गम्भीर वाणी से बोले – ॥ ४२ ॥

महेश्वर बोले—बृहस्पति ! मैं अपने नेत्रों से उत्पन्न हुए इस क्रोध को किस प्रकार धारण करूँ तुम्हीं कहो, सर्प जिस केंचुली का त्याग कर देता है, पुनः उसे कैसे धारण कर सकता है ? ॥ ४३ ॥

सनत्कुमार बोले—भक्तवत्सल भगवान् शिव के इस वचन को सुनकर बृहस्पति भय से उद्विग्न हो बड़े क्लेश से बोले ॥ ४४ ॥

बृहस्पति बोले—हे देव ! भक्तों पर सदैव दया ही करनी चाहिए। आप इस इन्द्र पर दयाकर अपना भक्तवत्सल नाम सार्थक कीजिए ॥ ४५ ॥ हे देवेश ! आप अपने इस तेज को कहीं अन्यत्र त्यागिए, क्योंकि आप भक्तों का उद्धार करने वाले हैं, अतः इस इन्द्र का भी उद्धार कीजिए ॥ ४६ ॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्तो गुरुणा रुद्रो भक्तवत्सलनामभाक् । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा सुरेज्यं प्रणतार्त्तिहा ॥४७॥

शिव उवाच

प्रीतः स्तुत्याऽनया तात ! ददामि वरमुत्तमम् । इन्द्रस्य जीवदानेन जीवेति त्वं प्रथां व्रज ॥४८॥

समुद्भूतोऽनलो योऽयं भालनेत्रात् सुरेशहा । एनं त्यक्ष्याम्यहं दूरं यथेन्द्रं नैव पीडयेत् ॥४९॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा तं करे धृत्वा स्वतेजोऽनलमद्भुतम् । भालनेत्रात् समुद्भूतं प्राक्षिपल्लवणाम्भसि ॥५०॥

ततश्चाऽन्तर्दधे रुद्रो महालीलाकरः प्रभुः । गुरुशक्रौ भयान्मुक्तौ जग्मतुः सुखमुत्तमम् ॥५१॥

यदर्थं गमनोद्युक्तौ दर्शनं प्राप्य तस्य वै । कृतार्थौ गुरुशक्रौ हि स्वस्थानं जग्मतुर्मुदा ॥५२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलन्धरवधोपाख्याने शक्रजीवनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

(शिव की नेत्राग्नि समुद्र में पड़ने से जलन्धर की उत्पत्ति और उसका वृन्दा से विवाह)

व्यास उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ ब्रह्मपुत्र ! नमोऽस्तु ते । श्रुतेयमद्भुता मेऽद्य कथा शम्भोर्महात्मनः ॥ १ ॥

क्षिप्ते स्वतेजसि ब्रह्मन् भालनेत्रसमुद्भवे । लवणाम्भसि किं ताताऽभवत्तत्र वदाशु तत् ॥ २ ॥

सनत्कुमार उवाच

शृणु तात महाप्राज्ञ ! शिवलीलां महाद्भुताम् । यच्छ्रुत्वा श्रद्धया भक्तो योगिनां गतिमाप्नुयात् ॥ ३ ॥

अथो शिवस्य तत्तेजो भालनेत्रसमुद्भवम् । क्षिप्तं च लवणाम्भोधौ सद्यो बालत्वमाप ह ॥ ४ ॥

सनत्कुमार बोले—भक्तवत्सल नाम वाले प्रणतपाल भगवान् शङ्कर ने बृहस्पति के वचन सुनकर उनसे कहा—॥ ४७ ॥

शिव जी बोले—हे तात ! मैं तुम्हारी इस स्तुति से प्रसन्न होकर तुम्हें वर देता हूँ । तुमने इस इन्द्र को जीवन दान दिया है, अतः तुम जीव नाम से जगत् में विख्यात होगे ॥ ४८ ॥ मैं इन्द्र को मारने वाली इस नेत्राग्नि को दूर फेंकता हूँ, जिससे यह इन्द्र को पीड़ा न पहुँचावे ॥ ४९ ॥

सनत्कुमार बोले—भगवान् शङ्कर ने ऐसा कहकर अपने तृतीय नेत्र से उत्पन्न हुई उस अद्भुत अग्नि को हाथ में लेकर क्षार समुद्र में फेंक दिया ॥ ५० ॥ फिर लीला करने वाले वे भगवान् शङ्कर अन्तर्धान हो गये । तदनन्तर इन्द्र एवं बृहस्पति भय से मुक्त हो परम सुखी हुए ॥ ५१ ॥ इस प्रकार जिनके दर्शन के लिए जा रहे थे, उनका दर्शन पाकर इन्द्र एवं बृहस्पति अपने स्थान को लौट आये ॥ ५२ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड में जलन्धर-वधोपाख्यान में इन्द्र जीवनदान वर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥

*

व्यास बोले—हे सनत्कुमार, हे सर्वज्ञ, हे ब्रह्मपुत्र ! आपको नमस्कार है । मैंने महात्मा शङ्कर की यह अद्भुत कथा सुनी ॥ १ ॥ हे तात ! जब शिव जी ने अपने तृतीय नेत्र से उत्पन्न हुए उस तेज को खारे समुद्र में डाल दिया, तब क्या हुआ ? उसे आप शीघ्र कहिए ॥ २ ॥

सनत्कुमार बोले—हे तात ! हे महाभाग ! हे व्यास ! अब तुम शिव की इस अद्भुत लीला को सुनो, जिसे श्रद्धा से सुनकर भक्त गण योगियों की दुर्लभ गति को प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥ शिव जी के द्वारा

तत्र वै सिन्धुगङ्गायाः सागरस्य च सङ्गमे । रुरोदोच्चैः स वै बालः सर्वलोकभयङ्करः ॥ ५ ॥
रुदतस्तस्य शब्देन प्राकम्पद्धरणी मुहुः । स्वर्गश्च सत्यलोकश्च तत्स्वनाद् बधिरीकृतः ॥ ६ ॥
बालस्य रोदनेनैव सर्वे लोकाश्च तत्रसुः । सर्वतो लोकपालाश्च विह्वलीकृतमानसाः ॥ ७ ॥
किं बहूक्तेन विप्रेन्द्र ! चचाल सचराचरम् । भुवनं निखिलं तात रोदनात्तच्छिशोर्विभो ! ॥ ८ ॥
अथ ते व्याकुलाः सर्वे देवाः समुनयो द्रुतम् । पितामहं लोकगुरुं ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ९ ॥
तत्र गत्वा च ते देवा मुनयश्च सवासवाः । प्रणम्य च सुसंस्तुत्य प्रोचुस्तं परमेष्ठिनम् ॥१०॥

देवा ऊचुः

लोकाधीश सुराधीश भयं नः समुपस्थितम् । तं नाशय महायोगिन् जातोऽयं ह्यद्भुतो रवः ॥११॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां ब्रह्मा लोकपितामहः । गन्तुमैच्छत्ततस्तत्र किमेतदिति विस्मितः ॥१२॥
ततो ब्रह्मा सुरैस्तात ऽवतरत् सत्यलोकतः । रसां तज्ज्ञातुमिच्छन् स समुद्रमगमत्तदा ॥१३॥
यावत्तत्रागतो ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः । तावत्समुद्रस्योत्सङ्गे तं बालं स ददर्श ह ॥१४॥
आगतं विधिमालोक्य देवरूप्यथ सागरः । प्रणम्य शिरसा बालं तस्योत्सङ्गे न्यवेशयत् ॥१५॥
ततो ब्रह्माऽब्रवीद् वाक्यं सागरं विस्मयान्वितः । जलराशे द्रुतं ब्रूहि कस्याऽयं शिशुरद्भुतः ॥१६॥

सनत्कुमार उवाच

ब्रह्मणो वाक्यमाकर्ण्य मुदितः सागरस्तदा । प्रत्युवाच प्रजेशं स नत्वा स्तुत्वा कृताञ्जलिः ॥१७॥

खारे समुद्र में फेंका हुआ उनका वह तेज शीघ्र ही बालकरूप हो गया ॥ ४ ॥ लोकों को भय देने वाला वह बालक गङ्गासागर के संगम पर स्थित हो बड़े ऊँचे स्वर में रोने लगा ॥ ५ ॥ उस बालक के रोने के शब्द से पृथ्वी बारम्बार कम्पित हो उठी और स्वर्ग से लेकर सत्यलोक पर्यन्त सारे लोक बहरे हो गये ॥ ६ ॥ उसके रोने के शब्द से सभी लोक भयभीत हो उठे और समस्त लोकपाल उद्विग्न हो गये ॥ ७ ॥ हे व्यास ! बहुत क्या कहें, उस शङ्कर-पुत्र के रोने के शब्द से सारा चराचर जगत् चलायमान हो उठा और ब्रह्माण्ड काँपने लगा ॥ ८ ॥ तदनन्तर मुनियों के सहित समस्त देवगण व्याकुल हो लोकगुरु पितामह ब्रह्मा की शरण में गये ॥ ९ ॥ वहाँ इन्द्र सहित सभी देवता तथा मुनिगणों ने ब्रह्मा को प्रणाम कर उनकी स्तुति की फिर बोले ॥ १० ॥

देवता बोले—हे लोकाधीश ! हे सुराधीश ! हम लोगों पर बहुत भयङ्कर भय उपस्थित हुआ है। हे महायोगिन् ! उसका विनाश कीजिए। यह अद्भुत महा भयङ्कर जो शब्द सुनाई पड़ रहा है, उसी से हम लोग भयभीत हैं ॥ ११ ॥

सनत्कुमार बोले—उन देवताओं की बात सुनकर लोकपितामह ब्रह्मा विस्मित हो वहाँ जाने का विचार करने लगे, जहाँ से वह शब्द आ रहा था ॥ १२ ॥ हे तात ! तब ब्रह्मा जी ऐसा विचार कर सत्यलोक से उतरे और पृथ्वी में उस शब्द का पता लगाने के लिए समुद्र के किनारे गये ॥ १३ ॥ ज्यों ही वे उस समुद्र के किनारे पहुँचे कि उन्होंने उसके गोद में रोते हुए उस अद्भुत बालक को देखा ॥ १४ ॥ सागर ने ब्रह्मा को आया देख देवरूप धारण कर उन्हें प्रणाम कर, उस बालक को ब्रह्मा की गोद में डाल दिया ॥१५॥ ब्रह्मा जी बालक को देखकर विस्मित हो समुद्र से पूछने लगे—हे जलराशे ! शीघ्र बताओ कि यह बालक किसका पुत्र है ? ॥ १६ ॥

सनत्कुमार बोले—ब्रह्मा की बात सुनकर समुद्र बड़ा प्रसन्न हुआ और हाथ जोड़ नमस्कार कर स्तुति करने के उपरान्त उनसे कहा—॥ १७ ॥

समुद्र उवाच

भो भो ब्रह्मन् मया प्राप्तो बालकोऽयमजानता । प्रभवं सिन्धुगङ्गायामकस्मात् सर्वलोकप ! ॥१८॥
जातकर्मादिसंस्कारान् कुरुष्वास्य जगद्गुरो ! । जातकोक्तफलं सर्वं विधातर्वक्तुमर्हसि ॥१९॥

सनत्कुमार उवाच

एवं वदति पाथोधौ स बालः सागरात्मजः । ब्रह्माणमग्रहीत् कण्ठे विधुन्वन्तं मुहुर्मुहुः ॥२०॥
विधूननं च तस्यैवं सर्वलोककृतो विधेः । पीडितस्य च कालेन नेत्राभ्यामगज्जलम् ॥२१॥
कराभ्यामब्धिजातस्य तत्सुतस्य महौजसः । कथञ्चिन्मुक्तकण्ठस्तु ब्रह्मा प्रोवाच सादरम् ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

शृणु सागर ! वक्ष्यामि तवास्य तनयस्य हि । जातकोक्तफलं सर्वं समाधानरतः खलु ॥२३॥
नेत्राभ्यां विधृतं यस्मादनेनैव जलं मम । तस्माज्जलन्धरेतीह ख्यातो नाम्ना भवत्वसौ ॥२४॥
अधुनैवैष तरुणः सर्वशास्त्रार्थपारगः । महापराक्रमो धीरो योद्धा च रणदुर्मदः ॥२५॥
भविष्यति च गम्भीरस्त्वं यथा समरे गुहः । सर्वजेता च सङ्ग्रामे सर्वसम्पद्विराजितः ॥२६॥
दैत्यानामधिपो बालः सर्वेषां च भविष्यति । विष्णोरपि भवेज्जेता न कुतश्चित् पराभवः ॥२७॥
अवध्यः सर्वभूतानां विना रुद्रं भविष्यति । यत एष समुद्भूतस्तत्रेदानीं गमिष्यति ॥२८॥
पतिव्रतास्य भविता पत्नी सौभाग्यवर्द्धिनी । सर्वाङ्गसुन्दरी रम्या प्रियवाक्शीलसागरा ॥२९॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा शुक्रमाहूय राज्ये तं चाभ्यषेचयत् । आमन्त्र्य सरितां नाथं ब्रह्मान्तर्द्धानमन्वगात् ॥३०॥
अथ तद्दर्शनोत्फुल्लनयनः सागरस्तदा । तमात्मजं समादाय स्वगेहमगमन्मुदा ॥३१॥

समुद्र ने कहा—हे सर्वलोकप ! पितामह ! मुझे गङ्गासागर के संगम पर यह बालक अकस्मात् प्राप्त हुआ है । मैं नहीं जानता कि यह किसका बालक है ॥ १८ ॥ हे जगद्गुरो ! आप इस बालक का जातकर्मादि संस्कार कीजिए तथा हे विधाता ! इस जातक का फल वर्णन कीजिए ॥ १९ ॥

सनत्कुमार बोले—जब समुद्र ब्रह्मा से यह बात कह रहा था तभी उस बालक ने ब्रह्मा का कण्ठ पकड़ लिया । यद्यपि वे अपना गला बारम्बार उससे छुड़ा रहे थे ॥ २० ॥ हे व्यास जी ! यद्यपि वे गला छुड़ाने का बहुत प्रयत्न कर रहे थे किन्तु उस बालक ने ब्रह्मा का कण्ठ इतने जोर से दबाया कि पीड़ा से उनके नेत्रों से जल टपकने लगा ॥ २१ ॥ फिर उन्होंने किसी प्रकार अपने दोनों हाथों का बल लगाकर उस बालक से अपना कण्ठ छुड़ाया और आदरपूर्वक बोले—॥ २२ ॥

ब्रह्मा बोले—हे सागर ! मैं तुम्हारे इस पुत्र का जातकोक्त फल विचार कर कहता हूँ, तुम सुनो ॥२३॥ जिस कारण इसने मेरे नेत्रों के जल को धारण किया है इसलिए इसका नाम जलन्धर होगा ॥ २४ ॥ यह उत्पन्न होते ही तरुण, सर्वशास्त्रार्थवेत्ता, महापराक्रमी, धैर्यवान् तथा अजेय योद्धा होगा ॥ २५ ॥ यह तुम्हारे जैसा गम्भीर और युद्ध में कार्त्तिकेय जैसा अजेय योद्धा तथा समस्त ऐश्वर्यों से परिपूर्ण होगा ॥२६॥ यह बालक समस्त दैत्यों का अधिपति तथा विष्णु को भी जीतने वाला होगा । इसको पराजित करने वाला कोई भी योद्धा जगत् में न होगा ॥ २७ ॥ रुद्र को छोड़कर यह अन्य प्राणियों से अवध्य होगा । जहाँ से यह उत्पन्न हुआ है, अन्त में उसी में लीन भी होगा ॥ २८ ॥ इसकी पत्नी महा पतिव्रता तथा सौभाग्य को बढ़ाने वाली होगी । वह सर्वाङ्ग सुन्दरी, परम मनोहर वाणी बोलनेवाली तथा शील का सागर होगी ॥२९॥

सनत्कुमार बोले—ब्रह्मा ने ऐसा कह शुक्र को बुलाकर तथा समुद्र को आमन्त्रित कर दैत्यों के राज्य पर उस बालक को अभिषिक्त करवाया और स्वयं अन्तर्ध्यान हो गये ॥ ३० ॥ उस बालक को देखकर

अपोपयन्महोपायैः स्वबालं मुदितात्मकः । सर्वाङ्गसुन्दरं रम्यं महाद्भुतसुतेजसम् ॥३२॥
अथाम्बुधिः समाहूय कालनेमिं महासुरम् । वृन्दाभिधां सुतां तस्य तद्भार्यार्थमयाचत ॥३३॥
कालनेम्यसुरो वीरोऽसुराणां प्रवरः सुधीः । साधु मेनेऽम्बुधेर्याच्ञां स्वकर्मनिपुणो मुने ! ॥३४॥
जलन्धराय वीराय सागरप्रभवाय च । ददौ ब्रह्मविधानेन स्वसुतां प्राणवल्लभाम् ॥३५॥
तदोत्सवो महानासीद् विवाहे च तयोस्तदा । सुखं प्रापुर्नदा नद्योऽसुराश्चैवाखिला मुने ! ॥३६॥
समुद्रोऽति सुखं प्राप सुतं दृष्ट्वा हि सस्त्रियम् । दानं ददौ द्विजातिभ्योऽप्यन्येभ्यश्च यथाविधि ॥३७॥
ये देवैर्निर्जिताः पूर्वं दैत्याः पातालसंस्थिताः । ते हि भूमण्डलं याता निर्भयास्तमुपाश्रिताः ॥३८॥

ते कालनेमि-प्रमुखास्ततोऽसुरास्तस्मै सुतां सिन्धुसुताय दत्त्वा ।
बभूवुरत्यन्तमुदान्विता हि तमाश्रिता देवविनिर्जयाय ॥३९॥
स चापि वीरोऽम्बुधिबालकोऽसौ जलन्धराख्योऽसुरवीरवीरः ।
सम्प्राप्य भार्यामतिसुन्दरीं वशी चकार राज्यं हि कविप्रभावात् ॥४०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलन्धरवधोपाख्याने जलन्धरोत्पत्तिविवाहवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

समुद्र का नेत्र प्रफुल्लित हो उठा और उसे लेकर प्रसन्नता से अपने घर चला गया ॥ ३१ ॥ फिर समुद्र उस सर्वाङ्गसुन्दर, मनोहर एवं परम तेजस्वी बालक का बड़ी प्रसन्नता से अनेक उपायों द्वारा पालन-पोषण करने लगा ॥ ३२ ॥ तदनन्तर सागर ने कालनेमि नामक असुर को बुलाकर उसकी वृन्दा नाम की कन्या जलन्धर के भार्या के निमित्त माँगा ॥ ३३ ॥ यह कालनेमि समस्त असुरों में विख्यात महावीर एवं बुद्धिमान् था और अपने कार्य-साधन में बहुत कुशल था। उसने समुद्र की प्रार्थना स्वीकार कर ली ॥३४॥ और समुद्रपुत्र उस जलन्धर महावीर को अपनी प्राणों से भी प्यारी कन्या व्याह दी ॥ ३५ ॥ उन दोनों के विवाह में उस समय महान् उत्सव हुआ तथा हे मुने ! समस्त नद, नदी एवं असुरों को महान् सुख प्राप्त हुआ ॥ ३६ ॥ स्त्री सहित पुत्र को देखकर समुद्र फूले न समाया। उसने ब्राह्मणों को तथा अन्य लोगों को यथाविधि बहुत धन प्रदान किया ॥ ३७ ॥ तब पाताल के रहने वाले दैत्य, जो पहले देवताओं के द्वारा जीत लिये गये थे, वे भूमण्डल पर निर्भय हो विचरने लगे ॥ ३८ ॥ उस समय कालनेमि प्रभृति समस्त असुर जलन्धर को अपनी कन्या दे परम प्रसन्नता का अनुभव करने लगे और उसका आश्रय ले देवगणों को जीतने की तैयारी करने लगे ॥ ३९ ॥ वह असुर वीरों में मुख्य वीर, समुद्र का पुत्र जितेन्द्रिय जलन्धर मनोहर भार्या को प्राप्त कर शुक्र के प्रभाव से राज्य करने लगा ॥ ४० ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड के जलन्धरवधोपाख्यान में जलन्धरोत्पत्ति-विवाहवर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥

*

पञ्चदशोऽध्यायः

(राहु का शिर कटा देखकर इन्द्र से जलन्धर का युद्ध एवं इन्द्र की पराजय)

सनत्कुमार उवाच

एकदा वारिधिसुतो वृन्दापतिरुदारधीः। सभार्य्यः संस्थितो वीरोऽसुरैः सर्वैः समन्वितः॥ १॥
तत्राजगाम सुप्रीतः सुवर्चास्त्वथ भार्गवः। तेजःपुञ्जो मूर्त इव भासयन् सकला दिशः॥ २॥
तं दृष्ट्वा गुरुमायान्तमसुरास्तेऽखिला द्रुतम्। प्रणेमुः प्रीतमनसः सिन्धुपुत्रोऽपि सादरम्॥ ३॥
दत्त्वाऽऽशीर्वचनं तेभ्यो भार्गवस्तेजसां निधिः। निषसादासने रम्ये सन्तस्थुस्तेऽपि पूर्ववत्॥ ४॥
अथ सिन्ध्वात्मजो वीरो दृष्ट्वा प्रीत्या निजां सभाम्। जलन्धरः प्रसन्नोऽभूदनष्टवरशासनः॥ ५॥
तत्स्थितं छिन्नशिरसं दृष्ट्वा राहुं स दैत्यराट्। पप्रच्छ भार्गवं शीघ्रमिदं साब्धिनन्दनः॥ ६॥

जलन्धर उवाच

केनेदं विहितं राहोः शिरश्छेदनकं प्रभो!। तद् ब्रूहि निखिलं वृत्तं यथावत्तत्त्वतो गुरो!॥ ७॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सिन्धुपुत्रस्य भार्गवः। स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं प्रत्युवाच यथार्थवत्॥ ८॥

शुक्र उवाच

जलन्धर महावीर सर्वासुरसहायक!। शृणु वृत्तान्तमखिलं यथावत् कथयामि ते॥ ९॥
पुराऽभवद् बलिर्वीरो विरोचनसुतो बली। हिरण्यकशिपोश्चैव प्रपौत्रो धर्मवित्तमः॥१०॥
पराजिताः सुरास्तेन रमेशं शरणं ययुः। सवासवाः स्ववृत्तान्तमाचख्युः स्वार्थसाधकाः॥११॥
तदाज्ञयाऽसुरैः सार्द्धं चक्रुः सन्धिमथो सुराः। स्वकार्यसिद्धये तात! छलकर्मविचक्षणाः॥१२॥
अथाऽमृतार्थं सिन्धोश्च मन्थनं चक्रुरादरात्। विष्णोः सहायिनस्ते हि सुराः सर्वेऽसुरैः सह॥१३॥

सनत्कुमार बोले—एक समय समुद्रपुत्र जलन्धर अपनी पत्नी वृन्दा एवं समस्त असुरों के सहित सभा में बैठा था॥ १॥ इसी समय महातेजस्वी मूर्त्तिमान् तेज के समान दिशाओं को प्रकाशित करते हुए परम प्रसन्न भृगुपुत्र शुक्राचार्य वहाँ गये॥ २॥ उस गुरु को आया देख समस्त असुरों ने तथा जलन्धर ने बड़ी प्रसन्नता के साथ आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया॥ ३॥ अनन्तर परम तेजस्वी भार्गव ने उन समस्त असुरों को आशीर्वाद दिया और उत्तम आसन पर बैठ गये। असुर गण भी अपने-अपने आसन पर पूर्ववत् आसीन हो गये॥ ४॥ तदनन्तर सिन्धु-पुत्र जलन्धर नें सप्रेम सभा को देखा, फिर अपनी आज्ञा को अप्रतिहत देख बड़ा प्रसन्न हुआ॥ ५॥ उसने राहु के कटे हुए मस्तक को देखकर शीघ्रता से गुरुजी से पूछा॥ ६॥

जलन्धर बोला—हे प्रभो! हे गुरो! राहु के शिर को किसने काटा है? हे गुरो! यह सारा वृत्तान्त हमें ठीक-ठीक बताइए?॥ ७॥

सनत्कुमार बोले—समुद्रपुत्र जलन्धर के वचन सुन भृगु-पुत्र शुक्राचार्य ने शिव के चरण-कमलों का ध्यान कर यथार्थ वाणी में कहा—॥ ८॥

शुक्र बोले—हे महावीर जलन्धर, हे असुरों के सहायक! तुम सारा वृत्तान्त सुनो, मैं तुमसे यथार्थ रूप से कहता हूँ॥ ९॥ पूर्वकाल में विरोचन का पुत्र एवं हिरण्यकशिपु का प्रपौत्र महाबली और धर्मात्मा बलि नाम का राजा हुआ था॥ १०॥ जब उसने समस्त देवताओं पर विजय प्राप्त कर लिया तो पराजित हुए इन्द्रादि सभी देवता, जो स्वार्थसाधन में अत्यन्त निपुण थे, विष्णु की शरण गये॥ ११॥ विष्णु की आज्ञा से छल में निपुण तथा स्वार्थ-साधक उन देवताओं ने असुरों के साथ अपना काम बनाने के लिए सन्धि कर ली॥ १२॥ इसके अनन्तर विष्णु की सहायता ले उन देवताओं ने असुरों को साथ ले समुद्र-मन्थन

ततो रत्नोपहरणमकार्षुर्दैत्यशत्रवः । जगृहुर्यत्नतो देवाः पपुरप्यमृतं छलात् ॥१४॥
ततः पराभवं चक्रुरसुराणां सहायतः । विष्णोः सुराः सचक्रास्तेऽमृतपानाद् बलान्विताः ॥१५॥
शिरश्छेदं चकारासौ पिबतश्चाऽमृतं हरिः । राहोर्देवसभायां हि पक्षपाती हरेः सदा ॥१६॥

सनत्कुमार उवाच

एवं कविस्तस्य शिरश्छेदं राहोः शशंस च । अमृतार्थे समुद्रस्य मन्थनं देवकारितम् ॥१७॥
रत्नोपहरणं चैव दैत्यानां च पराभवम् । देवैरमृतपानं च कृतं सर्वं च विस्तरात् ॥१८॥
तदाकर्ण्य महावीरोऽम्बुधिबालः प्रतापवान् । चुक्रोध क्रोधरक्ताक्षः स्वपितुर्मन्थनं तदा ॥१९॥
अथ दूतं समाहूय घस्मराभिधमुत्तमम् । सर्वं शशंस चरितं यदाह गुरुरात्मवान् ॥२०॥
अथ तं प्रेषयामास स्वदूतं शक्रसन्निधौ । सम्मान्य बहुशः प्रीत्याऽभयं दत्त्वा विशारदम् ॥२१॥
दूतस्त्रिविष्टपं तस्य जगामारमलं सुधीः । घस्मरोऽम्बुधिबालस्य सर्वदेवसमन्वितम् ॥२२॥
तत्र गत्वा स दूतस्तु सुधर्मां प्राप्य सत्वरम् । गर्वादखर्वमौलिर्हि देवेन्द्रं वाक्यमब्रवीत् ॥२३॥

घस्मर उवाच

जलन्धरोऽब्धितनयः सर्वदैत्यजनेश्वरः । सुप्रतापी महावीरः स्वयं कविसहायवान् ॥२४॥
दूतोऽहं तस्य वीरस्य घस्मराख्यो न घस्मरः । प्रेषितस्तेन वीरेण त्वत्सकाशमिहागतः ॥२५॥
अव्याहताज्ञः सर्वत्र जलन्धर उदग्रधीः । निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्व तत् ॥२६॥

जलन्धर उवाच

कस्मात्त्वया मम पिता मथितः सागरोऽद्रिणा । नीतानि सर्वरत्नानि पितुर्मे देवताधम ! ॥२७॥
उचितं नु कृतं तेऽद्य तानि शीघ्रं प्रयच्छ मे । ममायाहि विचार्येत्थं शरणं दैवतैः सह ॥२८॥

किया ॥ १३ ॥ देवताओं ने समुद्र-मन्थन से उत्पन्न हुए रत्नों का स्वयं हरण कर लिया, इतना ही नहीं, छलकर उन लोगों ने अमृत का हरण कर स्वयं अमृतपान भी कर लिया ॥ १४ ॥ उस समय विष्णु की सहायता प्राप्त कर तथा अमृतपान से बली होकर देवताओं ने दैत्यों को परास्त कर दिया ॥ १५ ॥ जिस समय देवताओं की सभा में जाकर यह राहु अमृतपान कर रहा था, उसी समय इन्द्र के पक्षपाती विष्णु ने इस राहु का शिरश्छेदन कर दिया ॥ १६ ॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार शुक्राचार्य ने अमृत के लिए देवताओं द्वारा समुद्र-मन्थन, राहु के शिरश्छेदन, रत्नों का अपहरण तथा उनके द्वारा अकेले किये गये स्वयं अमृतपान का सारा वृत्तान्त विस्तार के साथ वर्णन किया ॥ १७-१८ ॥ अपने पिता का मन्थन सुनकर महाप्रतापी जलन्धर की आँखें लाल हो गयीं और उसे बड़ा क्रोध हुआ ॥ १९ ॥ उसने शीघ्र ही घस्मर नामक दूत को बुलाकर उससे गुरु का कहा हुआ सारा वृत्तान्त सुनाया ॥ २० ॥ फिर प्रीति से सम्मान कर अभयदान दे नीति-विशारद उस दूत को इन्द्र के समीप भेजा ॥ २१ ॥ जलन्धर का वह दूत बड़ी शीघ्रता से देवताओं से युक्त त्रिविष्टप् पुरी को गया ॥ २२ ॥ वहाँ पर सुधर्मा सभा में जाकर शीघ्रता से बड़े अहङ्कार के साथ इन्द्र से बोला ॥ २३ ॥

घस्मर बोला—समुद्र का पुत्र जलन्धर सभी दैत्यों का अधिपति है, वह महाप्रतापी एवं महाबली है तथा शुक्राचार्य उसके सहायक हैं ॥ २४ ॥ मैं उसी वीर का घस्मर नामक दूत हूँ, वस्तुतः घस्मर (भक्षक) नहीं हूँ, उसी वीर ने मुझे दूत बनाकर आपके पास भेजा है ॥ २५ ॥ जलन्धर की आज्ञा सर्वत्र अप्रतिहत है और वे बड़े बुद्धिमान् हैं, सम्पूर्ण देवताओं को जीतने वाले उन जलन्धर ने जो कहा है उसे आप सुनिए ॥२६॥

जलन्धर ने कहा—तुमने किस कारण पर्वत के द्वारा मेरे पिता का मन्थन किया है? और हे देवाधम ! तुमने किस कारण सारे रत्नों का अपहरण किया है ? ॥२७॥ यह सब तुमने अच्छा काम नहीं

अन्यथा ते भयं भूरि भविष्यति सुराधम ! । राज्यविध्वंसनं चैव सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम् ॥२९॥

सनत्कुमार उवाच

इति दूतवचः श्रुत्वा विस्मितस्त्रिदशाधिपः । उवाच तं स्मरन्निन्द्रो भयरोषसमन्वितः ॥३०॥
अद्रयो मद्भयात् त्रस्ताः स्वकुक्षिस्था यतः कृताः । अन्येऽपि मद् द्विषस्तेन रक्षिता दितिजाः पुरा ॥३१॥
तस्मात्तद्रत्नजातं तु मया सर्वं हृतं किल । न तिष्ठति मम द्रोही सुखं सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥३२॥
शङ्खोऽप्येवं पुरा दैत्यो मां द्विषन् सागरात्मजः । अभवन् मूढचित्तस्तु साधुसङ्गात् समुज्झितः ॥३३॥
ममानुजेन हरिणा निहतः स हि पापधीः । हिंसकः साधुसङ्घस्य पापिष्ठः सागरोदरे ॥३४॥
तद् गच्छ दूत ! शीघ्रं त्वं कथयस्वास्य तत्त्वतः । अब्धिपुत्रस्य सर्वं हि सिन्धोर्मन्थनकारणम् ॥३५॥

सनत्कुमार उवाच

इत्थं विसर्जितो दूतो घस्मराख्यः सुबुद्धिमान् । तदेन्द्रेणागमत्तूर्णं यत्र वीरो जलन्धरः ॥३६॥
तदिदं वचनं दैत्यराजो हि तेन धीमता । कथितो निखिलं शक्रप्रोक्तं दूतेन वै तदा ॥३७॥
तन्निशम्य ततो दैत्यो रोषात् प्रस्फुरिताधरः । उद्योगमकरोत्तूर्णं सर्वदेवजिगीषया ॥३८॥
तदोद्योगेऽसुरेन्द्रस्य दिग्भ्यः पातालतस्तथा । दितिजाः प्रत्यपद्यन्त कोटिशः कोटिशस्तथा ॥३९॥
अथ शुम्भनिशुम्भाद्यैर्बलाधिपतिकोटिभिः । निर्जगाम महावीरः सिन्धुपुत्रः प्रतापवान् ॥४०॥
प्राप त्रिविष्टपं सद्यः सर्वसैन्यसमावृतः । दध्मौ शङ्खं जलधिजो नेदुर्वीराश्च सर्वतः ॥४१॥
गत्वा त्रिविष्टपं दैत्यो नन्दनाधिष्ठितोऽभवत् । सर्वसैन्यं समावृत्य कुर्वाणः सिंहवद्रवम् ॥४२॥

किया, उन रत्नों को शीघ्र लौटा दो तथा देवगणों के साथ मेरी शरण में आ जाओ ॥ २८ ॥ हे सुराधम ! यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो तुम्हारे लिए बहुत बड़ा खतरा है, तुम्हारा सारा राज्य तहस-नहस कर मिट्टी में मिला दूंगा, यह बात मैं सत्य कहता हूँ ॥ २९ ॥

सनत्कुमार बोले—दूत के इस प्रकार वचन सुनकर इन्द्र बड़े विस्मित हो गये, फिर भय तथा रोष से युक्त हो उसके वचन का स्मरण करते हुए बोले– ॥ ३० ॥ हे दूत ! मेरे भय से भागे हुए पर्वतों को तथा अन्य मेरे दानव-शत्रुओं को उस समुद्र ने शरण दी है, इस कारण मैंने उसके समस्त रत्नों का अपहरण कर लिया है । मैं यह बात तुमसे सत्य कहता हूँ कि मेरा द्रोही सुख की नींद नहीं सो सकता ॥ ३१-३२ ॥ पहले भी इसी सागर के शङ्ख नामक पुत्र ने मुझसे विरोध किया था, वह मूर्ख था, इसलिए साधुओं ने अपने साथ उसे नहीं रखा, क्योंकि वह साधुओं का हिंसक था और बड़ा पापी था । तब मेरे छोटे भाई विष्णु ने उसका संहार किया ॥ ३३-३४ ॥ इसलिए हे दूत ! तुम शीघ्र ही यहाँ से जाओ और उस जलन्धर से समुद्र-मन्थन का सारा कारण सुना दो ॥ ३५ ॥

सनत्कुमार बोले—ऐसा कहकर इन्द्र ने महा बुद्धिमान् उस घस्मर नामक दूत को शीघ्र ही वहाँ से विदा कर दिया । और वह भी बड़ी शीघ्रता से जलन्धर के पास आया ॥ ३६ ॥ उस बुद्धिमान् दूत ने इन्द्र का कहा हुआ सारा वृत्तान्त जलन्धर से निवेदन किया ॥ ३७ ॥ इन्द्र के वचन सुनते ही दैत्य के होठ क्रोध से फड़कने लगे फिर तो उसने समस्त देवताओं को जीतने का उद्योग प्रारम्भ कर दिया ॥३८॥ उस जलन्धर के उद्योग करते ही अनेक दिशाओं से तथा पाताल से करोड़ों-करोड़ों दैत्य आकर उपस्थित हो गये ॥३९॥ तब वह महावीर दैत्यराज शुम्भ-निशुम्भ जैसे करोड़ों सेनापतियों के साथ देवताओं पर विजय करने के लिए चल पड़ा ॥ ४० ॥ इस प्रकार अपनी सम्पूर्ण सेनाओं साथ को लेकर वह स्वर्ग में जाकर इन्द्र के नन्दन वन में डेरा डाल दिया, और युद्ध के लिए अपना शङ्ख बजाया । उस समय उसके वीर भी सिंहनाद करने लगे ॥ ४१-४२ ॥

पुरमावृत्य तिष्ठत्तद् दृष्ट्वा सैन्यबलं महत् । निर्ययुस्त्वमरावत्या देवा युद्धाय दंशिताः ॥४३॥
ततः सम्भवद्युद्धं देवदानवसेनयोः । मुसलैः परिघै-र्बाणै-र्गदा-परशु-शक्तिभिः ॥४४॥
तेऽन्योन्यं समधावेतां जघ्नतुश्च परस्परम् । क्षणेनाभवतां सेने रुधिरौघपरिप्लुते ॥४५॥
पतितैः पात्यमानैश्च गजा-ऽश्व-रथ-पत्तिभिः । व्यराजत रणे भूमिः सन्ध्याभ्रपटलैरिव ॥४६॥
तत्र युद्धे मृतान् दैत्यान् भार्गवस्तानजीवयत् । विद्ययाऽमृतजीविन्या मन्त्रितैस्तोयबिन्दुभिः ॥४७॥
देवानपि तथा युद्धे तत्राजीवयदङ्गिराः । दिव्यौषधैः समानीय द्रोणाद्रेः स पुनः पुनः ॥४८॥
दृष्टवान् स तथा युद्धे पुनरेव समुत्थितान् । जलन्धरः क्रोधवशो भार्गवं वाक्यमब्रवीत् ॥४९॥

जलन्धर उवाच

मया देवा हता युद्धे उत्तिष्ठन्ति कथं पुनः । ततः सञ्जीविनी विद्या नैवान्यत्रेति वै श्रुता ॥५०॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सिन्धुपुत्रस्य भार्गवः । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा गुरुः शुक्रो जलन्धरम् ॥५१॥

शुक्र उवाच

दिव्यौषधीः समानीय द्रोणाद्रेरङ्गिराः सुरान् । जीवयत्येष वै तात! सत्यं जानीहि मे वचः ॥५२॥
जयमिच्छसि चेत्तात ! शृणु मे वचनं शुभम् । ततः सोऽरं भुजाभ्यां त्वं द्रोणमब्धावुपाहर ॥५३॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्तः स तु दैत्येन्द्रो गुरुणा भार्गवेण ह । द्रुतं जगाम यत्रासावास्ते चैवाद्रिराट् च सः ॥५४॥
भुजाभ्यां तरसा दैत्यो नीत्वा द्रोणं च तं तदा । प्राक्षिपत् सागरे तूर्णं चित्रं न हरतेजसि ॥५५॥

जब जलन्धर ने स्वर्ग को चारों ओर से घेर लिया, तब उसकी बहुत बड़ी सेना को देख देवगण भी युद्ध के लिए अमर्ष वश अमरावतीपुरी से बाहर हुए ॥ ४३ ॥ फिर तो देवों तथा दैत्यों में घमासान लड़ाई होने लगी । मुशल, परिघ, बाण, गदा, परशु एवं शक्तियों से देवताओं और दैत्यों में भयानक युद्ध होने लगा ॥ ४४ ॥ परस्पर आक्रमण करते हुए वे एक-दूसरे पर शस्त्र-प्रहार करने लगे, जिससे क्षण मात्र में दोनों ओर की सेनाएँ खून से लथपथ हो गयीं ॥ ४५ ॥ हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सेनाओं के गिरने तथा गिराने से सारी रणभूमि सन्ध्याकालीन बादलों के समान मालूम पड़ने लगी ॥ ४६ ॥ उस युद्ध में शुक्राचार्य अमृत संजीवनी विद्या के द्वारा अभिषिक्त जल छिड़क कर मरे हुए दैत्यों को जिलाने लगे ॥ ४७-४८ ॥ तथा द्रोण पर्वत से बारम्बार दिव्य औषधियों को लाकर उसके द्वारा बृहस्पति मरे हुए देवताओं को जिलाने लगे । जब जलन्धर ने उने मरे हुए देवताओं को पुनर्जीवित होते देखा तो क्रोध में भरकर शुक्राचार्य से कहने लगा ॥ ४९ ॥

जलन्धर बोला—हे गुरो ! मैं इन देवताओं का वध करता जा रहा हूँ, पर ये बारम्बार जीवित होते जा रहे हैं, मैंने तो सुन रखा है कि संजीवनी विद्या आपके अतिरिक्त और किसी के पास है ही नहीं ॥ ५० ॥

सनत्कुमार बोले—बुद्धिमान् जलन्धर की इस प्रकार की बात सुन शुक्राचार्य प्रसन्न हो उससे बोले ॥ ५१ ॥

शुक्राचार्य बोले—हे तात ! अङ्गिरा ऋषि द्रोणपर्वत से औषधियों को लाकर इन मरे हुए देवताओं को पुनः जीवित कर देते हैं, यह मेरी बात सत्य मानो ॥ ५२ ॥ हे तात ! यदि तुम विजय चाहते हो, तो मेरी हितकारी बात सुनो । तुम शीघ्रता से उस द्रोणपर्वत को अपनी भुजाओं से उखाड़ कर समुद्र में डाल दो ॥ ५३ ॥

सनत्कुमार बोले—अपने गुरु शुक्राचार्य से इस प्रकार के वचन सुनकर वह जलन्धर शीघ्र ही द्रोणपर्वत पर चला गया ॥ ५४ ॥ उसने अपनी भुजाओं के बल से उस पर्वत को उखाड़ लिया और खारे समुद्र में डाल दिया । शिव के तेज से उत्पन्न हुए उस दैत्य के लिए यह कोई अनहोनी बात नहीं थी ॥५५॥

पुनरायान् महावीरः सिन्धुपुत्रो महाहवम् । जघानास्त्रैश्च विविधैः सुरान् कृत्वा बलं महत् ॥५६॥
अथ देवान् हतान् दृष्ट्वा द्रोणाद्रिमगमद् गुरुः । तावत्तत्र गिरीन्द्रं तं न ददर्श सुरार्चितः ॥५७॥
ज्ञात्वा दैत्यहृतं द्रोणं धिषणो भयविह्वलः । आगत्य देवान् प्रोवाच जीवो व्याकुलमानसः ॥५८॥

गुरुरुवाच

पलायध्वं सुराः सर्वे द्रोणो नास्ति गिरिर्महान् । ध्रुवं ध्वस्तश्च दैत्येन पाथोधितनयेन हि ॥५९॥
जलन्धरो महादैत्यो नाऽयं जेतुं क्षमो यतः । रुद्रांशसम्भवो ह्येष सर्वामरविमर्दनः ॥६०॥
मया ज्ञातः प्रभावोऽस्य यथोत्पन्नः स्वयं सुराः । शिवापमानकृच्छक्रचेष्टितं स्मरताऽखिलम् ॥६१॥

सनत्कुमार उवाच

श्रुत्वा तद्वचनं देवाः सुराचार्य प्रकीर्तितम् । जयाशां त्यक्तवन्तस्ते भयविह्वलितास्तथा ॥६२॥
दैत्यराजेन तेनातिहन्यमानाः समन्ततः । धैर्यं त्यक्त्वा पलायन्त दिशो दश सवासवाः ॥६३॥
देवान् विद्रावितान् दृष्ट्वा दैत्यः स गरनन्दनः । शङ्ख-भेरी-जयरवैः प्रविवेशामरावतीम् ॥६४॥
प्रविष्टे नगरीं दैत्ये देवाः शक्रपुरोगमाः । सुवर्णाद्रिगुहां प्राप्ता न्यवसन् दैत्यतापिताः ॥६५॥

तदैव सर्वेष्वसुरोऽधिकारेष्विन्द्रादिकानां विनिवेश्य सम्यक् ।
शुम्भादिकान् दैत्यवरान् पृथक् पृथक् स्वयं सुवर्णाद्रिगुहां व्यगान् मुने ! ॥६६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलन्धरवधोपाख्याने देवजलन्धरयुद्धवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

इतना कार्य कर लेने के उपरान्त वह महाबली दैत्य पुनः युद्धस्थल में लौट आया और अपना सारा बल लगाकर अनेक अस्त्रों से देवताओं का संहार करने लगा ॥ ५६ ॥ तब देवताओं को मरा देख देवगुरु अङ्गिरा औषधि लेने के लिए द्रोणाचल पर गये किन्तु वहाँ उस पर्वत को न पाया ॥ ५७ ॥ दैत्य के द्वारा पर्वत को उखाड़ा जान देवगुरु भय से व्याकुल हो उठे, फिर उन्होंने व्यग्र हो देवताओं से कहा—॥ ५८ ॥

गुरु बोले—हे देवताओ ! तुम लोग शीघ्र ही युद्ध छोड़कर भाग जाओ ।-द्रोणाचल दिखाई नहीं देता है, जान पड़ता है कि जलन्धर ने उसे उखाड़कर समुद्र में फेंक दिया है ॥ ५९ ॥ इस समय यह महादैत्य जलन्धर युद्ध में अजेय है, रुद्रांश से उत्पन्न होने के कारण यह सम्पूर्ण देवताओं का मर्दन कर रहा है ॥६०॥ यह जिस प्रकार से उत्पन्न हुआ है तथा जैसा इसका प्रभाव है उसे भैं जानता हूं । हे देवगणो ! इन्द्र ने जिस प्रकार शिव का अपमान किया है, उसी का यह फल है, तुम लोग स्मरण करा ॥ ६१ ॥

सनत्कुमार बोले—अङ्गिरा के द्वारा कहे गये वचन को सुनकर सभी देवताओं ने विजय की आशा त्याग दी और अत्यन्त व्याकुल हो गये ॥ ६२ ॥ फिर तो दैत्यराज के द्वारा चारों ओर से मार खाकर धैर्य त्याग इन्द्रादि सभी देवता दशों दिशाओं में भाग गये ॥ ६३ ॥ देवताओं को भागता देख जलन्धर ने शङ्ख, भेरी आदि बजाते हुए तथा जय-जयकार करते हुए अमरावती में प्रवेश किया ॥ ६४ ॥ उस दैत्य के अमरावती में प्रवेश करते ही देवगण दुःखी हो मेरु पर्वत की गुफाओं में निवास करने लगे ॥ ६५ ॥ किन्तु इतने पर भी वह जलन्धर इन्द्रादिकों के अधिकार पर श्रेष्ठ शुम्भादि दैत्यों को पृथक्-पृथक् नियुक्त कर स्वयं देवताओं को खोजते हुए मेरुपर्वत की गुफा में जा पहुंचा ॥ ६६ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड में जलन्धरवधोपाख्यान में देव-जलन्धर-युद्धवर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥

*

षोडशोऽध्यायः

(देवताओं का स्वर्ग से पलायन और विष्णु का जलन्धर से युद्ध)

सनत्कुमार उवाच

पुनर्दैत्यं समायान्तं दृष्ट्वा देवाः सवासवाः । भयात् प्रकम्पिताः सर्वे सहैवादुद्रुवुर्द्रुतम् ॥ १ ॥
वैकुण्ठं प्रययुः सर्वे पुरस्कृत्य प्रजापतिम् । तुष्टुवुस्ते सुरा नत्वा सप्रजापतयोऽखिलाः ॥ २ ॥

देवा ऊचुः

हृषीकेश महाबाहो भगवन् मधुसूदन ! । नमस्ते देवदेवेश सर्वदैत्यविनाशक ! ॥ ३ ॥
मत्स्यरूपाय ते विष्णो वेदान्नीतवते नमः । सत्यव्रतेन सद्राज्ञा प्रलयाब्धिविहारिणे ॥ ४ ॥
कुर्वाणानां सुराणां च मन्थनायोद्यमं भृशम् । बिभ्रते मन्दरगिरिं कूर्मरूपाय ते नमः ॥ ५ ॥
नमस्ते भगवन्नाथ क्रतवे सूकरात्मने । वसुन्धरां जनाधारां मूर्द्धतो बिभ्रते नमः ॥ ६ ॥
वामनाय नमस्तुभ्यमुपेन्द्राख्याय विष्णवे । विप्ररूपेण दैत्येन्द्रं बलिं छलयते विभो ! ॥ ७ ॥
नमः परशुरामाय क्षत्रनिःक्षत्रकारिणे । मातुर्हितकृते तुभ्यं कुपितायासतां द्रुहे ॥ ८ ॥
रामाय लोकरामाय मर्यादापुरुषाय ते । रावणान्तकरायाशु सीतायाः पतये नमः ॥ ९ ॥
नमस्ते ज्ञानगूढाय कृष्णाय परमात्मने । राधाविहारशीलाय नानालीलाकराय च ॥१०॥
नमस्ते गूढदेहाय वेदनिन्दाकराय च । योगाचार्याय जैनाय बौद्धरूपाय मापते ! ॥११॥
नमस्ते कल्किरूपाय म्लेच्छानामन्तकारिणे । अनन्तशक्तिरूपाय सद्धर्मस्थापनाय च ॥१२॥
नमस्ते कपिलरूपाय देवहूत्यै महात्मने । वदते साङ्ख्ययोगं च साङ्ख्याचार्याय वै प्रभो ! ॥१३॥
नमः परमहंसाय ज्ञानं संवदते परम् । विधात्रे ज्ञानरूपाय येनात्मा संप्रसीदति ॥१४॥

सनत्कुमार बोले—जब इन्द्रादि देवताओं ने वहाँ पर भी उस दैत्य को आता हुआ देखा तो भयभीत हो काँपते हुए वहाँ से भी एक ही साथ भाग खड़े हुए ॥ १ ॥ वे प्रजापति को आगे कर वैकुण्ठ लोक को गये फिर प्रजापति सहित सभी देवता प्रणाम कर स्तुति करने लगे ॥ २ ॥

देवगण बोले—हे हृषीकेश ! हे महाबाहो भगवन् मधुसूदन ! हे देवदेवेश ! हे सर्वदैत्य विनाशक ! आपको प्रणाम है ॥ ३ ॥ हे विष्णो ! आपने मत्स्यरूप धारण कर सत्यव्रत राजा के साथ प्रलयाब्धि में विहार करते हुए वेदों की रक्षा की है, आपको प्रणाम है ॥ ४ ॥ समुद्र-मन्थन काल में देवताओं को समुद्र-मन्थन का उद्योग करते देख आपने कूर्मरूप धारण कर मन्दराचल पर्वत को धारण किया, अतः आपको नमस्कार है ॥ ५ ॥ मनुष्यों को आश्रय देनेवाली इस वसुन्धरा को दाढ़ पर धारण करने वाले, यज्ञ वाराह स्वरूप आपको नमस्कार है ॥ ६ ॥ हे विभो ! बलि को छलने के लिए ब्राह्मण ब्रह्मचारी वामन का रूप धारण करने वाले, इन्द्र के अनुज आपको नमस्कार है ॥ ७ ॥ क्षत्रियों के क्षत्र का अन्त कर माता का हित करने वाले और क्रोध से असज्जनों का नाश करने वाले, परशुराम के रूप से अवतार धारण करने वाले आपको नमस्कार है ॥ ८ ॥ लोक को प्रसन्न करने वाले, मर्यादा पुरुष, रावण का वध करने वाले तथा सीता के पति राम के रूप से अवतार लेने वाले आपको नमस्कार है ॥ ९ ॥ गूढ़ ज्ञान का उपदेश करने वाले, राधा से विहार करने वाले तथा नाना लीला करने वाले कृष्णरूप धारी भगवान् विष्णु को नमस्कार है ॥ १० ॥

गुप्त शरीर धारण कर वेद की निन्दा करने वाले, योगाचार्य, जैन एवं बुद्ध रूप धारण करने वाले आप लक्ष्मीपति को नमस्कार है ॥ ११ ॥ सद्धर्म संस्थापन हेतु म्लेच्छों का विनाश करने वाले, अनन्तशक्ति सम्पन्न कल्किरूप धारण करने वाले, आपको नमस्कार है ॥ १२ ॥ देवहूति के लिए कपिलरूप धारण कर सांख्ययोग का उपदेश करने वाले, सांख्याचार्य आप महात्मा को नमस्कार है ॥ १३ ॥ परमहंसरूप से

वेदव्यासाय वेदानां विभागं कुर्वते नमः । हिताय सर्वलोकानां पुराणरचनाय च ॥१५॥
एवं मत्स्यादितनुभिर्भक्तकार्योद्यताय ते । सर्ग-स्थिति-ध्वंसकर्त्रे नमस्ते ब्रह्मणे प्रभो ! ॥१६॥
आर्तिहन्त्रे स्वदासानां सुखदाय शुभाय च । पीताम्बराय हरये तार्क्ष्ययानाय ते नमः ॥
सर्वक्रियायैककर्त्रे शरण्याय नमो नमः ॥१७॥
दैत्य-सन्तापितामर्त्य-दुःखादि-ध्वंसवज्रक ! । शेषतल्पशयायार्कचन्द्रनेत्राय ते नमः ॥१८॥
कृपासिन्धो रमानाथ ! पाहि नः शरणागतान् । जलन्धरेण देवाश्च स्वर्गात् सर्वे निराकृताः ॥१९॥
सूर्यो निःसारितः स्थानाच्चन्द्रो वह्निस्तथैव च । पातालान्नागराजश्च धर्मराजो निराकृतः ॥२०॥
विचरन्ति यथा मर्त्याः शोभन्ते नैव ते सुराः । शरणं ते वयं प्राप्ता वधस्तस्य विचिन्त्यताम् ॥२१॥

सनत्कुमार उवाच

इति दीनवचः श्रुत्वा देवानां मधुसूदनः । जगाद करुणासिन्धुर्मेघनिर्ह्रादया गिरा ॥२२॥

विष्णुरुवाच

भयं त्यजत हे देवा गमिष्याम्यहमाहवम् । जलन्धरेण दैत्येन करिष्यामि पराक्रमम् ॥२३॥
इत्युक्त्वा सहसोत्थाय दैत्यारिः खिन्नमानसः । आरोहद् गरुडं वेगात् कृपया भक्तवत्सलः ॥२४॥
गच्छन्तं वल्लभं दृष्ट्वा देवैः सार्द्धं समुद्रजा । साञ्जलिर्बाष्पनयना लक्ष्मीर्वचनमब्रवीत् ॥२५॥

लक्ष्म्युवाच

अहं ते वल्लभा नाथ ! भक्ता यदि च सर्वदा । तत्कथं ते मम भ्राता युद्धे वध्यः कृपानिधे ! ॥२६॥

वेदान्त का उपदेश करने वाले, जिससे आत्ममुक्ति हो, इस प्रकार के ज्ञान के विधाता आपको नमस्कार है ॥ १४ ॥ समस्त लोकों के हित के लिए पुराणों की रचना करने वाले तथा वेदों का विभाग करने वाले, वेदव्यास रूपधारी आपको नमस्कार है ॥ १५ ॥

इस प्रकार मत्स्यादिरूप धारण कर भक्तों के कार्य के लिए उद्यत तथा सृष्टि, पालन एवं प्रलय करने वाले आप विष्णु को नमस्कार है ॥१६॥ अपने भक्तों के दुःखों को दूर करने वाले, सुखद, शुभस्वरूप, गरुड़ पर सवारी करने वाले, पीताम्बरधारी आप विष्णु को नमस्कार है । सभी क्रियाओं के एकमात्र कर्त्ता, शरणागत रक्षक आपको नमस्कार है ॥ १७ ॥ दैत्यों के द्वारा सन्तप्त हुए, देवताओं के दुःख का नाश करने के लिए वज्र के समान, शेषतल्पशायी तथा सूर्य-चन्द्र नेत्रवाले आप विष्णु को नमस्कार है ॥ १८ ॥ हे कृपासागर ! हे रमानाथ ! इस जलन्धर दैत्य ने हम सभी देवताओं को स्वर्ग से बाहर निकाल दिया है, अतः हम लोग आपकी शरण में आये हैं, हमारी रक्षा करें ॥ १९ ॥ इतना ही नहीं, उस दैत्य ने सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि को भी उनके अधिकार छीनकर बाहर कर दिया है । पाताल से नागराज तथा धर्मराज को भी निकाल दिया है ॥ २० ॥ हम देवता उससे अत्यधिक सन्त्रस्त हो पृथ्वी पर मनुष्यों के समान भटक रहे हैं, जो हम लोगों के लिए शोभा की बात नहीं है, इसलिए आपकी शरण में आये हैं, आप उस दैत्य के वध का विचार कीजिए ॥ २१ ॥

सनत्कुमार बोले—भगवान् मधुसूदन ने देवताओं के इस प्रकार के दीन वचन सुनकर करुणा से आर्द्र हो मेघ के समान गम्भीर वाणी में इस प्रकार कहा—॥ २२ ॥

विष्णु बोले—हे देवगणो ! भय त्याग करो, मैं स्वयं युद्ध में जाऊँगा और उस दैत्य से युद्ध करूँगा ॥२३॥ ऐसा कहकर दैत्यारि विष्णु सहसा खिन्न हो गये । तथा भक्तवत्सलता वश कृपा करते हुए शीघ्रता से उठ गरुड़ पर वेग के साथ सवार हो गये ॥ २४ ॥ देवताओं के साथ जाने के लिए श्री विष्णु को देख नेत्रों में जलभर कर महालक्ष्मी ने अपने प्राणपति श्री विष्णु से कहा— ॥ २५ ॥

लक्ष्मी बोलीं—हे नाथ ! यदि मैं आपकी प्राणवल्लभा हूँ और आप में भक्ति रखती हूँ तो हे कृपानाथ ! मेरे भाई का वध आप क्यों करते हैं ॥ २६ ॥

विष्णुरुवाच

जलन्धरेणं दैत्येन करिष्यामि पराक्रमम् । तैः संस्तुतो गमिष्यामि युद्धाय त्वरितान्वितः ॥२७॥
रुद्रांशसम्भवत्वाच्च ब्रह्मणो वचनादपि । प्रीत्या च तव नैवायं मम वध्यो जलन्धरः ॥२८॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा गरुडारूढः शङ्ख-चक्र-गदासिभृत् । विष्णुर्वेगाद्ययौ योद्धुं देवैः शक्रादिभिः सह ॥२९॥
द्रुतं स प्राप तत्रैव यत्र दैत्यो जलन्धरः । कुर्वन् सिंहरवं देवैर्ज्वलद्भिर्विष्णुतेजसा ॥३०॥
अथाऽरुणानुजजव-पक्षवात-प्रपीडिताः । वात्याविवर्तिता दैत्या बभ्रमुः खे यथा घनाः ॥३१॥
ततो जलन्धरो दृष्ट्वा दैत्यान् वात्याप्रपीडितान् । उद्धृत्य वचनं क्रोधाद् द्रुतं विष्णुं समभ्यगात् ॥३२॥
एतस्मिन्नन्तरे देवाश्चक्रुर्युद्धं प्रहर्षिताः । तेजसा च हरेः पुष्टा महाबलसमन्विताः ॥३३॥
युद्धोद्यतं समालोक्य देवसैन्यमुपस्थितम् । दैत्यानाज्ञापयामास समरे चातिदुर्मदान् ॥३४॥

जलन्धर उवाच

भो भो दैत्यवरा यूयं युद्धं कुरुत दुस्तरम् । शक्राद्यैरमरैरद्य प्रबलैः कातरैः सदा ॥३५॥
मौर्यास्तु लक्षसङ्ख्याता धौम्रा हि शतसङ्ख्यकाः ।
असुराः कोटिसङ्ख्याताः कालकेयास्तथैव च ॥३६॥
कालकानां दौर्हृदानां कङ्कानां लक्षसङ्ख्यया । अन्येऽपि स्वबलैर्युक्ता विनिर्यान्तु ममाज्ञया ॥३७॥
सर्वे सज्जा विनिर्यात बहुसेनाभिसंयुताः । नानाशस्त्रास्त्रसंयुक्ता निर्भयाः गतसंशयाः ॥३८॥
भो भो शुम्भ-निशुम्भौ च देवान् समरकातरान् । क्षणेन सुमहावीर्यौ तुच्छान्नाशयतं युवाम् ॥३९॥

विष्णु बोले—मैं उस जलन्धर दैत्य के साथ अपना पराक्रम अवश्य प्रकट करूँगा । इन देवताओं ने मेरी स्तुति की है, अतः मैं शीघ्र ही युद्ध में जाऊँगा ॥ २७ ॥ किन्तु रुद्रांश से उत्पन्न होने के कारण ब्रह्मा के वरदान से तथा तुम्हारी उसके ऊपर प्रीति होने से मैं अपने हाथ से जलन्धर का वध नहीं करूँगा ॥२८॥

सनत्कुमार बोले—यह कहकर भगवान् विष्णु शङ्ख, चक्र, गदा तथा तलवार हाथ में लेकर गरुड़ पर सवार हो गये और बड़े वेग के साथ इन्द्रादि देवताओं को साथ ले रणभूमि की ओर चल दिये ॥२९॥ फिर शीघ्र ही जलन्धर के समीप पहुँचे । उस समय विष्णु के तेज से दर्पित हुए देवगण सिंहनाद करने लगे ॥३०॥ गरुड़ के पङ्खों के वायु-वेग से पीड़ित हुए दैत्य आकाशमण्डल में इस प्रकार चक्कर काटने लगे, जैसे वायु के झोंके लगने से बादल घूमने लगते हैं ॥ ३१ ॥ तब वायु के वेग से चक्कर काटते हुए दैत्यों को देखकर अमर्षयुक्त वचन कहता हुआ विष्णु पर झपटा ॥ ३२ ॥ इसी बीच विष्णु के तेज से महाबल सम्पन्न देवगण भी हर्षित हो युद्ध करने लगे ॥ ३३ ॥ देवताओं की सेना को युद्ध के लिए उपस्थित देख जलन्धर ने युद्ध में दुर्मद दैत्यों को आज्ञा दी ॥ ३४ ॥

जलन्धर बोला—हे श्रेष्ठ दैत्यो ! तुम लोग इस दुस्तर युद्ध को करो, ये इन्द्रादि देवता, जो पहले डरपोक थे, अब प्रबल दिखाई पड़ रहे हैं ॥३५॥ ये मौर्य लाख संख्या में, धौम्र सौ संख्या में एवं करोड़ों की संख्या वाले कालिकेय नामक असुर, कालक, दौर्हृद तथा कङ्कनामक असुर लाखों की संख्या में और भी जितने असुर हैं वे सभी देवताओं से युद्ध करने के लिए सभी प्रकार की रण-सामग्री से युक्त हो, अनेक सेनाओं को ले नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रों से लैस, निर्भय एवं संशय रहित हो मेरी आज्ञा से युद्धभूमि में जाकर युद्ध करें ॥ ३६-३८ ॥ हे शुम्भ एवं निशुम्भ नाम के दोनों दैत्यो ! तुम लोग महा बलवान् हो, अतः शीघ्रता से रणभूमि में जाकर इन तुच्छ एवं समर-कातर देवताओं का विनाश कर दो ॥ ३९ ॥

सनत्कुमार उवाच

दैत्या जलन्धराज्ञप्ता इत्थं युद्धविशारदाः। युयुधुस्ते सुराः सर्वे चतुरङ्गबलान्विताः ॥४०॥
गदाभिस्तीक्ष्णबाणैश्च शूल-पट्टिश-तोमरैः। केचित् परशुशूलैश्च निजघ्नुस्ते परस्परम् ॥४१॥
नानायुधैः परैस्तत्र निजघ्नुस्ते बलान्विताः। देवास्तथा महावीरा हृषीकेशबलान्विताः॥
युयुधुस्तीक्ष्णबाणाश्च क्षिपन्तः सिंहवद्रवाः ॥४२॥
केचिद् बाणैः सुतीक्ष्णैश्च केचिन्मुसलतोमरैः। केचित् परशुशूलैश्च निजघ्नुस्ते परस्परम् ॥४३॥
इत्थं सुराणां दैत्यानां सङ्ग्रामः समभून्महान्। अत्युल्बणो मुनीनां हि सिद्धानां भयकारकः ॥४४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे
देवयुद्धवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

(जलन्धर की वर-प्रार्थना से लक्ष्मी सहित विष्णु का उसके घर में निवास)

सनत्कुमार उवाच

अथ दैत्या महावीर्याः शूलैः परशुपट्टिशैः। निजघ्नुः सर्वदेवांश्च भयव्याकुलमानसान् ॥ १ ॥
दैत्यायुधैः समाविद्धदेहा देवाः सवासवाः। रणाद् विदुद्रुवुः सर्वे भयव्याकुलमानसाः ॥ २ ॥
पलायनपरान् दृष्ट्वा हृषीकेशः सुरानथ। विष्णुर्वै गरुडारूढो योद्धुमभ्याययौ द्रुतम् ॥ ३ ॥
सुदर्शनेन चक्रेण सर्वतः प्रस्फुरद्रुचा। सुशोभितकराब्जश्च रेजे भक्ताभयङ्करः ॥ ४ ॥
शङ्ख-खड्ग-गदा-शार्ङ्गधारी क्रोधसमन्वितः। कठोरास्त्रो महावीरः सर्वयुद्धविशारदः ॥ ५ ॥
धनुषं शार्ङ्गनामानं विस्फूर्य्य विननाद ह। तस्य नादेन त्रैलोक्यं पूरितं महता मुने ! ॥ ६ ॥

सनत्कुमार बोले—जब जलन्धर ने इस प्रकार आज्ञा दी तब युद्ध-विशारद समस्त असुर अपनी चतुरङ्गिणी सेना ले युद्ध करने लगे ॥ ४० ॥ वे गदा, तीक्ष्णबाण, शूल, पट्टिश, तोमर, फरसा और शूलादि अस्त्रों से एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे। इसी प्रकार वे अपने बल के अनुसार अनेक प्रकार के अस्त्रों से शत्रुओं पर प्रहार करने लगे ॥ ४१ ॥ महा बलवान् देवता लोग, जो विष्णु का बल प्राप्त कर अहङ्कार में भरे हुए थे, वे तीक्ष्ण बाजों से युद्ध करते हुए सिंहनाद करने लगे ॥४२॥ कोई तीक्ष्ण बाणों से, कोई मुसल से, कोई तोमर से, कोई फरसे एवं त्रिशूल से एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ॥४३॥ इस प्रकार देव-दानवों में महाभयङ्कर संग्राम छिड़ गया, जिसे देखकर मुनि एवं सिद्धगण भयभीत हो गये ॥ ४४ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड में जलन्धरवधोपाख्यान में देव-दैत्ययुद्ध-वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६॥

*

सनत्कुमार बोले—महाबली दैत्य शूल, फरसे और पट्टिश लेकर भयभीत हुए देवताओं पर प्रहार करने लगे ॥ १ ॥ तब दैत्यों के आयुध से मार खाकर छिन्न-भिन्न अङ्गवाले इन्द्रादि देवता युद्ध से भागने लगे ॥ २ ॥ इस प्रकार देवताओं को भागते देखकर विष्णु गरुड़ पर सवार हो शीघ्रता से रणभूमि की ओर चले ॥ ३ ॥ भक्तों को अभय देने वाले भगवान् विष्णु उस समय हाथ में चमचमाते हुए देदीप्यमान चक्र-सुदर्शन को हाथ में धारण किये हुए अत्यन्त शोभित हो रहे थे ॥४॥ महावीर, युद्धविशारद विष्णु शङ्ख, खड्ग, गदा एवं शार्ङ्ग धनुष धारण कर अनेक कठोर अस्त्रों से युक्त हो, क्रोध से आग बबूला हो रहे थे ॥ ५ ॥ उन्होंने रणभूमि में पहुँचते ही शार्ङ्ग धनुष चढ़ाकर ऐसा शब्द किया, जिससे सारी त्रिलोकी पूर्ण हो

शार्ङ्गनिःसृतबाणैश्च दितिजानां शिरांसि वै। चकर्त्त भगवान् विष्णुः कोटिशो रुट्समाकुलः ॥ ७ ॥
अथाऽरुणानुजपक्ष-पक्षवात-प्रपीडिताः। वात्याविवर्त्तिता दैत्या बभ्रमुः खे यथा घनाः ॥ ८ ॥
ततो जलन्धरो दृष्ट्वा दैत्यान् वात्याप्रपीडितान्। चुक्रोधाति महादैत्यो देववृन्दभयङ्करः ॥ ९ ॥
मर्दयन्तं च तं दृष्ट्वा दैत्यान् प्रस्फुरिताधरः। योद्धुमभ्याययौ वीरो वेगेन हरिणा सह ॥१०॥
स चकार महानादं देवासुरभयङ्करम्। दैत्यानामधिपः कर्णा विदीर्णाः श्रवणात्ततः ॥११॥
भयङ्करेण दैत्यस्य नादेन पूरितं तदा। जलन्धरस्य महता चकम्पे सकलं जगत् ॥१२॥
ततः समभवद्युद्धं विष्णुदैत्येन्द्रयोर्महत्। आकाशं कुर्वतोर्बाणैस्तदा निरवकाशवत् ॥१३॥
तयोश्च तेन युद्धेन परस्परमभून्मुने!। देवासुरर्षिसिद्धानां भीकरेणातिविस्मयः ॥१४॥
विष्णुर्दैत्यस्य बाणौघैर्ध्वजं छत्रं धनुःशरान्। चिच्छेद तं च हृदये बाणेनैकेन ताडयन् ॥१५॥
ततो दैत्यः समुत्पत्य गदापाणिस्त्वरान्वितः। आहत्य गरुडं मूर्ध्नि पातयामास भूतले ॥१६॥
विष्णुं जघान शूलेन तीक्ष्णेन प्रस्फुरद्रुचा। हृदये क्रोधसंयुक्तो दैत्यः प्रस्फुरिताधरः ॥१७॥
विष्णुर्गदां च खड्गेन चिच्छेद प्रहसन्निव। तं विव्याध शरैस्तीक्ष्णैः शार्ङ्गं विस्फूर्य दैत्यहा ॥१८॥
विष्णुर्जलन्धरं दैत्यं भयदेन शरेण ह। क्रोधाविष्टोऽतितीक्ष्णेन जघानाशु सुरारिहा ॥१९॥
आगतं तस्य तं बाणं दृष्ट्वा दैत्यो महाबलः। छित्त्वा बाणेन विष्णुं च जघान हृदये द्रुतम् ॥२०॥
केशवोऽपि महाबाहुः विक्षिप्तमसुरेण तम्। शरं तिलप्रमाणेन छित्त्वा वीरो ननाद ह ॥२१॥
पुनर्बाणं समाधत्त धनुषि क्रोधवेपितः। महाबलोऽथ बाणेन चिच्छेद स शिलीमुखम् ॥२२॥

गयी ॥ ६ ॥ क्रोध में भरे हुए विष्णु ने अपने शार्ङ्ग धनुष से ऐसे बाण छोड़े जिससे करोड़ों दैत्यों के सिर कटकर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ७ ॥

इसी प्रकार गरुड़ के पङ्खों के वेग से पीड़ित हुए दैत्यगण आकाश में पवन प्रेरित बादलों के समान चक्कर काटने लगे ॥ ८ ॥ तब जलन्धर दैत्यों को गरुड़ के पङ्खों की आँधी में चक्कर काटते देखकर देवताओं को भय उत्पन्न कराते हुए महाक्रोध किया ॥ ९ ॥ दैत्यों को विष्णु के द्वारा मर्दित होते देख उसके होठ फड़कने लगे फिर वह बड़े वेग के साथ विष्णु से युद्ध करने के लिए चल पड़ा ॥ १० ॥ उस दैत्य ने युद्धस्थल में देवताओं तथा असुरों को भय उपजाने वाला ऐसा भयङ्कर शब्द किया, जिससे सुनने वालों के कान विदीर्ण होकर बहरे हो गये ॥ ११ ॥ दैत्यों के उस भयङ्कर शब्द से सारा जगत व्याप्त हो गया और त्रिलोकी कम्पित हो उठी ॥ १२ ॥ फिर तो बाणों से आकाश को पूर्ण करते हुए विष्णु तथा जलन्धर में घमासान युद्ध होने लगा ॥ १३ ॥ देवों, असुरों, ऋषियों तथा सिद्धों को भी भय देने वाले विष्णु एवं जलन्धर के उस युद्ध से सबको बड़ा आश्चर्य उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥ विष्णु ने अपने बाण-समूहों की परम्परा से दैत्य की छाती में एक बाण से प्रहार करते हुए उस दैत्य की ध्वजा, छत्र तथा धनुष काट डाला ॥ १५ ॥ इसी बीच उस दैत्य ने भी बड़ी शीघ्रता से गदा हाथ में ले कूदकर उस गदा से गरुड़ के शिर पर प्रहार किया और गरुड़ को पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ १६ ॥ होठों को क्रोध से फड़फड़ाते हुए उस दैत्य ने अपनी चमचमाते हुए तीक्ष्ण धारवाले शूल से भगवान् विष्णु की छाती पर भी प्रहार किया ॥१७॥ तदनन्तर विष्णु ने हँसते हुए अपने खड्ग से उसकी गदा काट दी और शार्ङ्ग धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर उसके द्वारा छोड़े गये बाणों से राक्षस पर प्रहार किया ॥ १८ ॥

इस प्रकार देवताओं के दुःख को दूर करने वाले विष्णु क्रोध में भरकर अत्यन्त तीक्ष्ण एवं भयदायक बाण से जलन्धर दैत्य पर शीघ्रता से प्रहार करने लगे ॥ १९ ॥ महाबली दैत्य ने विष्णु के बाणों को आता देख अपने बाणों से उसे काट डाला और बड़ी शीघ्रता से विष्णु की छाती पर प्रहार किया ॥ २० ॥ महाबाहु विष्णु ने भी असुर के द्वारा छोड़े गये उन सभी बाणों को तिल के समान काट दिया और सिंहनाद करने लगे ॥ २१ ॥ फिर क्रोध से काँपते हुए विष्णु ने जब दूसरा बाण सन्धान किया तभी महाबली उस

वासुदेवः पुनर्बाणं नाशाय विबुधद्विषः । क्रोधेनाधत्त धनुषि सिंहवद्विननाद ह ॥२३॥
जलन्धरोऽथ दैत्येन्द्रः कोपाच्छिन्नाधरो बली । शरेण स्वेन शार्ङ्गाख्यं धनुश्चिच्छेद वैष्णवम् ॥२४॥
पुनर्बाणैः सुतीक्ष्णैश्च जघान मधुसूदनम् । उग्रवीर्यो महावीरो देवानां भयकारकः ॥२५॥
स छिन्नधन्वा भगवान् केशवो लोकरक्षकः । जलन्धरस्य नाशाय चिक्षेप स्वगदां पराम् ॥२६॥
सा गदा हरिणा क्षिप्ता ज्वलज्ज्वलनसन्निभा । अमोघगतिका शीघ्रं तस्य देहे ललाग ह ॥२७॥
तया हतो महादैत्यो न चचालापि किञ्चन । जलन्धरो मदोन्मत्तः पुष्पमालाहतो यथा ॥२८॥
ततो जलन्धरः क्रोधी देवत्रासकरोऽक्षिपत् । त्रिशूलमनलाकारं हरये रणदुर्मदः ॥२९॥
अथ विष्णुस्तत्त्रिशूलं चिच्छेद तरसा द्रुतम् । नन्दकाख्येन खड्गेन स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥३०॥
छिन्ने त्रिशूले दैत्येन्द्र ! उत्प्लुत्य सहसा द्रुतम् । आगत्य हृदये विष्णुं जघान दृढमुष्टिना ॥३१॥
सोऽपि विष्णुर्महावीरोऽविगणय्य च तद्व्यथाम् । जलन्धरं च हृदये जघान दृढमुष्टिना ॥३२॥
ततस्तौ बाहुयुद्धेन युयुधाते महाबलौ । बाहुभिर्मुष्टिभिश्चैव जानुभिर्नादयन् महीम् ॥३३॥
एवं हि सुचिरं युद्धं कृत्वा तेनाऽसुरेण वै । विस्मितोऽभून्मुनिश्रेष्ठ ! हृदि ग्लानिमवाप ह ॥३४॥
अथ प्रसन्नो भगवान् मायी मायाविदां वरः । उवाच दैत्यराजानं मेघगम्भीरया गिरा ॥३५॥

विष्णुरुवाच

भो भो दैत्यवरश्रेष्ठ ! धन्यस्त्वं रणदुर्मदः । महायुधवरैर्यस्त्वं न भीतो हि महाप्रभुः ॥३६॥
एभिरेवायुधैरुग्रैर्दैत्या हि बहवो हताः । महौजो दुर्मदा वीराश्छिन्नदेहा मृतिं गताः ॥३७॥
युद्धेन ते महादैत्य ! प्रसन्नोऽस्मि महान् भवान् । न दृष्टस्त्वत्समो वीरस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥३८॥

दैत्य ने विष्णु के बाण काट डाले ॥ २२ ॥ तब वासुदेव विष्णु ने क्रोध में भरकर उस राक्षस के विनाश के लिए पुनः धनुष पर बाण चढ़ाकर सिंहनाद किया ॥ २३ ॥ इधर महाबली दैत्येन्द्र जलन्धर भी क्रोध में भर होठों को चबाता हुआ अपने बाणों से विष्णु के उस शार्ङ्ग धनुष को काट डाला ॥ २४ ॥ फिर देवताओं को भय देने वाला, उग्रवीर्य महावीर वह दैत्य अपने तीक्ष्ण बाणों से मधुसूदन पर प्रहार करने लगा ॥२५॥ लोक-रक्षक भगवान् विष्णु का धनुष जब राक्षस ने काट दिया, तब उन्होंने दैत्यराज के विनाश के लिए अपनी गदा चलायी ॥ २६ ॥ जलती हुई अग्नि के समान लपलपाती हुई विष्णु के द्वारा चलायी गयी अमोघ वह गदा बड़ी शीघ्रता से उस राक्षस के शरीर में लगी ॥ २७ ॥ किन्तु उसके प्रहार से पुष्पमाला से आहत हुए मदोन्मत्त हाथी के समान वह दैत्य किञ्चिन्मात्र भी विचलित नहीं हुआ ॥ २८ ॥

तब देवताओं को भय उत्पन्न करने वाले रणदुर्मद उस जलन्धर ने क्रोध में भरकर अग्नि के समान जलता हुआ अपना त्रिशूल विष्णु पर चलाया ॥ २९ ॥ विष्णु ने शिव के चरण-कमलों का ध्यान करते हुए अपने नन्दक नामक खड्ग से उस त्रिशूल को काट दिया ॥ ३० ॥ त्रिशूल के कट जाने से वह दैत्य बड़ा क्रुद्ध हो गया और झपटकर अपने दृढ़ मुष्टि से विष्णु पर प्रहार किया ॥ ३१ ॥ महावीर विष्णु ने भी उसके मुष्टि-प्रहार की कुछ परवाह न कर जलन्धर के हृदय में अपनी दृढ़ मुष्टि से प्रहार किया ॥ ३२ ॥ इस प्रकार जानुओं, बाहुओं एवं मुष्टियों के शब्दों से पृथ्वी को शब्दायमान करते हुए उन दोनों महावीरों का बाहुयुद्ध होने लगा ॥ ३३ ॥ इस प्रकार उस महाअसुर से बहुत देर तक युद्ध करते हुए विष्णु विस्मित हो गये और हे मुनिश्रेष्ठ ! कुछ खिन्न हो गये ॥ ३४ ॥ फिर मायाविदों में श्रेष्ठ माया करने वाले विष्णु उस दैत्य पर प्रसन्न हो मेघ के समान गम्भीर वाणी में उस दैत्यराज से बोले ॥ ३५ ॥

विष्णु बोले—हे रणदुर्मद दैत्यश्रेष्ठ ! तुम धन्य हो, जो तुम इन श्रेष्ठ महा आयुधों से तनिक भी भयभीत नहीं हुए ॥ ३६ ॥ हमने अपने इन्हीं आयुधों से बड़े-बड़े तेजस्वी रणदुर्मद वीर से वीर दैत्यों का वध कर मृत्यु के मुख में पहुँचा दिया है ॥३७॥ मैं तुमसे युद्ध कर प्रसन्न हो गया हूँ, मैंने समझ लिया कि तुम महान्

वरं वरय दैत्येन्द्र ! प्रीतोऽस्मि तव विक्रमात् । अदेयमपि ते दद्मि यत्ते मनसि वर्तते ॥३९॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य विष्णोर्मायाविनो हरेः । प्रत्युवाच महाबुद्धिर्दैत्यराजो जलन्धरः ॥४०॥

जलन्धर उवाच

यदि भावुक तुष्टोऽसि वरमेतं ददस्व मे । मद्भगिन्या मया सार्द्धं मद्गेहे सगणो वस ॥४१॥

सनत्कुमार उवाच

तदाकर्ण्य वचस्तस्य महादैत्यस्य खिन्नधीः । तथाऽस्त्विति च देवेशो जगाद भगवान् हरिः ॥४२॥

उवास स ततो विष्णुः सर्वदेवगणैः सह । जलन्धरं नाम पुरमागत्य रमया सह ॥४३॥

अथो जलन्धरो दैत्यः स्वभगिन्या च विष्णुना । उवास स्वालयं प्राप्तो हर्षाकुलितमानसः ॥४४॥

जलन्धरोऽथ देवानामधिकारेषु दानवान् । स्थापयित्वा सहर्षः सन् पुनरागान् महीतलम् ॥४५॥

देवगन्धर्वसिद्धेषु यत्किञ्चिद्रत्नसञ्चितम् । तदात्मवशगं कृत्वाऽतिष्ठत् सागरनन्दनः ॥४६॥

पातालभवने दैत्यं निशुम्भं सुमहाबलम् । स्थापयित्वा स शेषादीनानयद्भूतलं बली ॥४७॥

देव-गन्धर्व-सिद्धौघान् सर्प-राक्षस-मानुषान् । स्वपुरे नागरान् कृत्वा शशास भुवनत्रयम् ॥४८॥

एवं जलन्धरः कृत्वा देवान् स्ववशवर्तिनः । धर्मेण पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥४९॥

न कश्चिद् व्याधितो नैव दुःखितो न कृशस्तथा । न दीनो दृश्यते तस्मिन् धर्माद्राज्यं प्रशासति ॥५०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलन्धरोपाख्याने
विष्णुजलन्धरयुद्धवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

हो, तुम्हारे जैसा बहादुर योद्धा इस त्रिलोकी में मुझे आज तक दिखाई नहीं पड़ा ॥ ३८ ॥ हे दैत्येन्द्र ! तुम्हारे इस पराक्रम से मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम मन से जो वरदान चाहते हो उसे माँगो चाहे वह अदेय ही क्यों न हो, मैं तुम्हें अवश्य दूँगी ॥ ३९ ॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार महामायावी विष्णु के वचन सुनकर महाबुद्धिमान् जलन्धर बोला—॥४०॥

जलन्धर बोला—हे भाव के ज्ञाता ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे एक ही वरदान दीजिए, वह यह कि आप मेरी बहिन (महालक्ष्मी) तथा अपने गणों के सहित मेरे घर में निवास कीजिए ॥४१॥

सनत्कुमार बोले—उस महादैत्य के इस प्रकार के वचन सुन कुछ खिन्न से हो भगवान् विष्णु कहने लगे—'अच्छा ऐसा ही होगा' ॥ ४२ ॥ फिर विष्णु सभी देवताओं एवं महालक्ष्मी के साथ स्वर्ग से जलन्धर के नगर में जाकर निवास करने लगे ॥ ४३ ॥ फिर तो वह जलन्धर भी अपनी बहिन लक्ष्मी और देवताओं के सहित प्रसन्न हो अपने घर में आकर निवास करने लगा ॥ ४४ ॥ वह जलन्धर देवताओं के अधिकार पर दानवों को नियुक्त कर बड़ी प्रसन्नता से पुनः पृथ्वी पर लौट आया ॥ ४५ ॥ उस सागरपुत्र जलन्धर ने देव, गन्धर्व एवं सिद्धों के पास जो सञ्चित रत्न था, उसे छीन लिया ॥४६॥ इतना ही नहीं, उस महाबली दैत्य ने पाताल में जाकर महाबलवान् निशुम्भ दैत्य को वहाँ स्थापित कर शेषादि को पृथ्वी पर लाकर स्थापित किया ॥ ४७ ॥ देव, गन्धर्व, सिद्धसमूह, सर्प, राक्षस तथा मनुष्यों को अपने पुर में लाकर अपनी नागरिक प्रजा बनाया । इस प्रकार उसने तीनों लोकों पर अपना शासन चलाया ॥ ४८ ॥ इस तरह उस जलन्धर ने देवताओं को वश में कर धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करने लगा, जिस प्रकार पिता अपने औरस पुत्र की रक्षा करता है ॥ ४९ ॥ उसके धर्मपूर्वक राज्य का शासन करते रहने पर न तो कोई रोगी था, न दुःखी, न दुर्बल और न दीन था ॥ ५० ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता में पञ्चम युद्धखण्ड के जलन्धरवधोपाख्यान में विष्णु-जलन्धरयुद्ध वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥

*

अष्टादशोऽध्यायः

(नारद का पार्वती के रूप की जलन्धर से प्रशंसा करना)

सनत्कुमार उवाच

एवं शासति धर्मेण महीं तस्मिन् महासुरे । बभूवुर्दुःखिनो देवा भ्रातृभावान् मुनीश्वर ! ॥ १ ॥
दुःखितास्ते सुराः सर्वे शिवं शरणमाययुः । मनसा शङ्करं देवदेवं सर्वप्रभुं प्रभुम् ॥ २ ॥
तुष्टुवुर्वाग्भिरिष्टाभिर्भगवन्तं महेश्वरम् । निवृत्तये स्वदुःखस्य सर्वदं भक्तवत्सलम् ॥ ३ ॥
आहूय स महादेवो भक्तानां सर्वकामदः । नारदं प्रेरयामास देवकार्यचिकीर्षया ॥ ४ ॥
अथ देवमुनिर्ज्ञानी शम्भुभक्तः सतां गतिः । शिवाज्ञया ययौ दैत्यपुरे देवान् स नारदः ॥ ५ ॥
व्याकुलास्ते सुराः सर्वे वासवाद्या द्रुतं मुनिम् । आगच्छन्तं समालोक्य समुत्तस्थुर्हि नारदम् ॥ ६ ॥
ददुस्त आसनं नत्वा मुनये प्रीतिपूर्वकम् । नारदाय सुरा शक्रमुखा उत्कण्ठितानना: ॥ ७ ॥
सुखासीनं मुनिवरमासने सुप्रणम्य तम् । पुनः प्रोचुः सुरा दीना वासवाद्या मुनीश्वरम् ॥ ८ ॥

देवा ऊचुः

भो भो मुनिवरश्रेष्ठ ! दुःखं शृणु कृपाकर ! । श्रुत्वा तन्नाशय क्षिप्रं प्रभुस्त्वं शङ्करप्रियः ॥ ९ ॥
जलन्धरेण दैत्येन सुरा विद्राविता भृशम् । स्वस्थानाद् भर्तृभावाच्च दुःखिता वयमाकुलाः ॥१०॥
स्वस्थानादुष्णरश्मिश्च चन्द्रो निःसारितस्तथा । वह्निश्च धर्मराजश्च लोकपालास्तथेतरे ॥११॥
सुबलिष्ठेन वै तेन सर्वे देवाः प्रपीडिताः । दुःखं प्राप्ता वयं चातिशरणं त्वां समागताः ॥१२॥
सङ्ग्रामे स हृषीकेशं स्ववशं कृतवान् बली । जलन्धरो महादैत्यः सर्वामरविमर्दकः ॥१३॥
तस्य वश्यो वराधीनोऽवात्सीत् तत्सदने हरिः । स लक्ष्म्या सहितो विष्णुर्यो नः सर्वार्थसाधकः॥१४॥

सनत्कुमार बोले—हे मुनीश्वर ! इस प्रकार उस महा असुर के धर्मपूर्वक पृथ्वी का शासन करते रहने पर भाई होने के कारण देवता बहुत दुःखी हुए ॥ १ ॥ तदनन्तर दुःखी देवता शिवजी की शरण में पहुँचे और उन देवाधिदेव सर्वप्रभु सदाशिव का मन-ही-मन ध्यान करने लगे ॥ २ ॥ उन्होंने अपने दुःख को दूर करने हेतु सब कुछ देनेवाले, भक्तवत्सल भगवान् महेश्वर की इष्ट मनोहर वाणी से स्तुति की ॥ ३ ॥ भक्तों के मनोरथ को पूर्ण करने वाले महादेव ने स्तुति से प्रसन्न होने के अनन्तर देवकार्य करने की इच्छा से नारद को बुलाकर जलन्धर के पास भेजा ॥ ४ ॥ तब देवमुनि ज्ञानी शिवजी के परमभक्त एवं सत्पुरुषों का उद्धार करने वाले देवर्षि नारद देवताओं के कार्य-साधन के निमित्त उस दैत्य की पुरी में गये ॥५॥ उस समय दैत्य नगर में रहने वाले इन्द्रादि देवता व्याकुल हो रहे थे। उन्होंने नारद मुनि को आते देख शीघ्रता से उनका प्रत्युत्थान पूर्वक स्वागत किया ॥ ६ ॥ और प्रणाम करने के पश्चात् प्रीति से उन मुनि को आसन दिया तथा उत्कण्ठापूर्वक उनकी ओर देखने लगे ॥ ७ ॥ सुख से आसन पर बैठे हुए मुनि को देखकर वासवादि देवताओं ने दीन होकर उन मुनीश्वर से कहा ॥ ८ ॥

देवगण बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! हे कृपाकर ! हम लोगों के दुःख को सुनिए और उसे सुनकर उसके नाश का उपाय कीजिए, क्योंकि शङ्करप्रिय होने के कारण आप हमलोगों का दुःखनाश करने में सर्वथा समर्थ हैं ॥ ९ ॥ इस जलन्धर दैत्य ने हम देवताओं को पराजित कर हमें अपने स्थान से निर्वासित कर दिया है। इस समय वह हमें अपने अधिकारों से वञ्चित कर हमारा स्वामी बना है, इसलिए हमलोग बहुत दुःखी हैं ॥ १० ॥ उसने सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, धर्मराज, लोकपाल तथा अन्य देवताओं को भी उनके स्थानों से हटा दिया है ॥ ११ ॥ उस महा बलवान् दैत्य ने हमलोगों पर बहुत जुल्म किया है, अतः हम सभी दुःखी होकर आपकी शरण आये हैं ॥१२॥ अधिक क्या कहें, उस महा बली महादैत्य ने संग्राम में देवताओं को जीतकर विष्णु को भी अपने वश में कर लिया है ॥ १३ ॥ वर देने के कारण भगवान् विष्णु लक्ष्मी के सहित उसके वशीभूत हो उसके नगर में निवास करते हैं। जो सर्वात्मा हमलोगों की कार्य-सिद्धि में सहायक

जलन्धरविनाशाय यत्नं कुरु महामते ! । त्वं नो दैववशात् प्राप्तः सदा सर्वार्थसाधकः ॥१५॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषाममराणां स नारदः । आश्वास्य मुनिशार्दूलस्तानुवाच कृपाकरः ॥१६॥

नारद उवाच

जानेऽहं वै सुरा यूयं दैत्यराजपराजिताः । दुःखं प्राप्ताः पीडिताश्च स्थानान्निःसारिताः खलु ॥१७॥
स्वशक्त्या भवतां स्वार्थं करिष्ये नाऽत्र संशयः । अनुकूलोऽहमिव वो दुःखं प्राप्ता यतोऽमराः ॥१८॥

सनत्कुमार उवाच

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठ ! द्रष्टुं दानववल्लभम् । आश्वास्य सकलान् देवान् जलन्धरसभां ययौ ॥१९॥
अथागतं मुनिश्रेष्ठं दृष्ट्वा देवो जलन्धरः । उत्थाय परया भक्त्या ददौ श्रेष्ठासनं वरम् ॥२०॥
स तं सम्पूज्य विधिवद्दानवेन्द्रोऽतिविस्मितः । सुप्रहस्य तदा वाक्यं जगाद मुनिसत्तमम् ॥२१॥

जलन्धर उवाच

कुत आगम्यते ब्रह्मन् ! किं च दृष्टं त्वया क्वचित् । यदर्थमिह आयातस्तदाज्ञापय मां मुने ! ॥२२॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य दैत्येन्द्रस्य महामुनिः । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा नारदो हि जलन्धरम् ॥२३॥

नारद उवाच

सर्वदानवदैत्येन्द्र जलन्धर महामते ! । धन्यस्त्वं सर्वलोकेश ! रत्नभोक्ता त्वमेव हि ॥२४॥
मदागमनहेतुं वै शृणु दैत्येन्द्रसत्तम ! । यदर्थमिह चायातस्त्वहं वक्ष्येऽखिलं हि तत् ॥२५॥
गतः कैलासशिखरं दैत्येन्द्राहं यदृच्छया । योजनायुतविस्तीर्णं कल्पद्रुममहावनम् ॥२६॥

थे ॥ १४ ॥ हे महामते ! आप सर्वार्थसाधक हो, हमलोगों के भाग्य से यहाँ आये हो, अतः जलन्धर दैत्य के विनाश के लिए कोई उपाय करें ॥ १५ ॥

सनत्कुमार बोले—उन देवताओं की बात सुनकर करुणाकर नारद ने देवताओं को सान्त्वना देते हुए कहा—॥ १६ ॥

नारद बोले—हे देवताओ ! मैं जानता हूँ कि तुम लोग दैत्यराज जलन्धर से पराजित होने से दुःखी एवं पीड़ित हो और अपने-अपने अधिकारों से वञ्चित होकर अपने-अपने स्थानों से हटा दिये गये हो ॥१७॥ इसलिए मैं अपनी सारी शक्ति लगाकर आप लोगों का कार्यसिद्ध करूँगा इसमें संशय नहीं। आप लोगों ने बड़ा दुःख उठाया है, किन्तु यदि हमारी ही तरह शङ्कर भी तुम लोगों पर अनुकूल हों तभी यह कार्य सम्भव है ॥ १८ ॥

सनत्कुमार बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! ऐसा कहकर नारद ने देवताओं को धीरज दिया, फिर जलन्धर को देखने के लिए उसकी सभा में गये ॥१९॥ तदनन्तर जलन्धर देवर्षि नारद को आया देख बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ प्रत्युत्थान कर उन्हें श्रेष्ठ आसन दिया ॥ २० ॥ फिर उनकी विधिपूर्वक पूजा कर आश्चर्य में पड़ गया। और हँसते हुए नारद जी से इस प्रकार कहा—॥ २१ ॥

जलन्धर बोला—हे ब्रह्मन् ! आपका आगमन कहाँ से हो रहा है कहिए ? आपने इस जगत् में क्या देखा ? हे मुनिराज ! आप यहाँ जिस निमित्त आये हैं उसे आज्ञा दीजिए ॥ २२ ॥

सनत्कुमार बोले—जलन्धर के इस प्रकार के वचन सुनकर महामुनि नारद प्रसन्न हो बोले ॥२३॥

नारद बोले—हे सम्पूर्ण दानवों के अधिपति, हे महामते जलन्धर, हे सर्वलोकेश ! तुम धन्य हो, जो अकेले ही इस जगत् के सारे रत्नों का उपभोग करते हो ॥ २४ ॥ हे दैत्येन्द्रसत्तम ! मैं जिस निमित्त तुम्हारे पास आया हूँ उसे सुनो, मैं वह सब कहता हूँ ॥ २५ ॥ हे दैत्येन्द्र ! मैं अपनी इच्छा से घूमते हुए

कामधेनुशताकीर्णं चिन्तामणिसुदीपितम् । सर्वरुक्ममयं दिव्यं सर्वत्राऽद्भुतशोभितम् ॥२७॥
तत्रोमया सहासीनं दृष्टवानस्मि शङ्करम् । सर्वाङ्गसुन्दरं गौरं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ॥२८॥
तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं वितर्को मेऽभवत्तदा । कापीदृशी भवेद् वृद्धिस्त्रैलोक्ये वा न वेति च ॥२९॥
तावत्तवापि दैत्येन्द्र समृद्धिः संस्मृता मया । तद्विलोकनकामोऽहं त्वत्सान्निध्यमिहागतः ॥३०॥

सनत्कुमार उवाच

इति नारदतः श्रुत्वा स दैत्येन्द्रो जलन्धरः । स्वसमृद्धिं समग्रां वै दर्शयामास सादरम् ॥३१॥
दृष्ट्वा स नारदो ज्ञानी देवकार्यसुसाधकः । प्रभुप्रेरणया प्राह दैत्येन्द्रं तं जलन्धरम् ॥३२॥

नारद उवाच

तवाऽस्ति सुसमृद्धिर्हि वरवीर ! खिलाऽधुना । त्रैलोक्यस्य पतिस्त्वं हि चित्रं किं चात्र सम्भवम् ॥३३॥
मणयो रत्नपुञ्जाश्च गजाद्याश्च समृद्धयः । ते गृहेऽद्य विभान्तीह यानि रत्नानि तान्यपि ॥३४॥
गजरत्नं त्वयाऽऽनीतं शक्रस्यैरावतस्तथा । अश्वरत्नं महावीर ! सूर्यस्योच्चैःश्रवा हयः ॥३५॥
कल्पवृक्षस्त्वयानीतो निधयो धनदस्य च । हंसयुक्तविमानं च त्वयाऽऽनीतं हि वेधसः ॥३६॥
इत्येवं वररत्नानि दिवि पृथ्व्यां रसातले । यानि दैत्येन्द्र ते भान्ति गृहे तानि समस्ततः ॥३७॥
त्वत्समृद्धिमिमां पश्यन् सम्पूर्णां विविधामहम् । प्रसन्नोऽस्मि महावीर गजाश्वादि सुशोभिताम् ॥३८॥
जायारत्नं महाश्रेष्ठं जलन्धर ! न ते गृहे । तदानेतुं विशेषेण स्त्रीरत्नं वै त्वमर्हसि ॥३९॥
यस्य गेहे सुरत्नानि सर्वाणि हि जलन्धर ! । जायारत्नं न चेत्तानि न शोभन्ते वृथा ध्रुवम् ॥४०॥

कैलास पर्वत पर गया था, वहाँ पर दश सहस्र योजन में कल्पवृक्ष का वन एवं सैकड़ों कामधेनु हैं, वह सारा पर्वत चिन्तामणि से प्रकाशित हो रहा है, जिससे सुवर्णमय दिखाई पड़ता है तथा सभी प्रकार की अद्भुत वस्तुओं से वह सुशोभित हो रहा है। वहाँ पर मैंने पार्वती के साथ बैठे हुए गौरवर्ण, सर्वाङ्ग सुन्दर, त्रिनेत्र एवं चन्द्रमा को मस्तक पर धारण किये हुए भगवान् शङ्कर को देखा ॥२६-२८॥ महान् आश्चर्य से परिपूर्ण इस कैलास को देखकर मैंने अपने मन में विचार किया कि त्रिलोकी में कहीं कोई ऐसी समृद्धि है या नहीं ? ॥२९॥ हे दैत्येन्द्र ! उसी समय मुझे तुम्हारी समृद्धि का ध्यान आया, उसी को देखने की इच्छा से मैं तुम्हारे पास आया हूँ ॥ ३० ॥

सनत्कुमार बोले—नारद से इस प्रकार की बात सुनकर दैत्यपति जलन्धर ने बड़े आदर के साथ नारद को अपनी सारी समृद्धि दिखाई ॥ ३१ ॥ देवताओं का कार्यसिद्धि करने वाले ज्ञानी नारद ने उसकी सारी सम्पत्ति देखकर शङ्कर की प्रेरणा से उससे कहा ॥ ३२ ॥

नारद बोले—हे श्रेष्ठ वीर ! इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारे पास इस समय त्रैलोक्य की सारी सम्पत्ति है, तुम त्रिलोकी के पति भी हो, अतः इतनी समृद्धि का होना आश्चर्य की बात नहीं ॥ ३३ ॥ मणि, रत्नों की राशियाँ, घोड़े, हाथी आदि समृद्धियाँ, उत्तमोत्तम रत्न तुम्हारे घर में सुशोभित हो रहे हैं ॥३४॥ तुमने हाथियों में रत्नभूत ऐरावत को इन्द्र से छीन लिया है, सूर्य का अश्वरत्न उच्चैःश्रवा घोड़ा भी तुम्हारे पास है ॥ ३५ ॥ कल्पवृक्ष तथा कुबेर की सारी निधियाँ भी तुम्हारे पास हैं। ब्रह्मा जी के यहाँ से हंसयुक्त विमान भी तुम ले आये हो ॥ ३६ ॥ पृथ्वी, पाताल तथा स्वर्गलोक के सभी सर्वोत्तम रत्न तुम्हारे पास हैं ॥ ३७ ॥ हे महावीर ! गज, अश्वादि से सुशोभित और नाना प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण तुम्हारी इस समृद्धि को देखकर मैं परम प्रसन्न हूँ ॥ ३८ ॥ किन्तु हे वीर जलन्धर ! तुम्हारे यहाँ कोई स्त्रीरत्न दिखाई नहीं पड़ता, इसलिए तुम्हें स्त्री-रत्न को विशेष रूप से ग्रहण करना चाहिए ॥ ३९ ॥ हे जलन्धर ! जिसके घर में सभी सुन्दर रत्न हों किन्तु उत्तम स्त्री-रत्न न हो, तो उसकी शोभा नहीं होती, क्योंकि स्त्री-रत्न के विना सभी रत्न व्यर्थ हैं ॥ ४० ॥

सनत्कुमार उवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा नारदस्य महात्मनः। उवाच दैत्यराजो हि मदनाकुलमानसः ॥४१॥

जलन्धर उवाच

भो भो नारद! देवर्षे नमस्तेऽस्तु महाप्रभो!। जायारत्नवरं कुत्र वर्तते तद्वदाऽधुना ॥४२॥
ब्रह्माण्डे यत्र कुत्रापि तद्रत्नं यदि वर्त्तते। तदानेष्ये ततो ब्रह्मन्! सत्यं सत्यं न संशयः ॥४३॥

नारद उवाच

कैलासे ह्यतिरम्ये च सर्वर्द्धि सुसमाकुले। योगिरूपधरः शम्भुरस्ति तत्र दिगम्बरः ॥४४॥
तस्य भार्या सुरम्या हि सर्वलक्षणलक्षिता। सर्वाङ्गसुन्दरी नाम्ना पार्वतीति मनोहरा ॥४५॥
तदीदृशं रूपमनन्यसङ्गतं दृष्टं न कुत्रापि कुतूहलाढ्यम्।
अत्यद्भुतं मोहनकृत्सुयोगिनां सुदर्शनीयं परमर्द्धिकारि ॥४६॥
स्वचित्ते कल्पयाम्यद्य शिवादन्यः समृद्धिमान्। जायारत्नान्विताद्वीर त्रिलोक्यां न जलन्धर! ॥४७॥
यस्या लावण्यजलधौ निमग्नश्चतुराननः। स्वधैर्यं मुमुचे पूर्वं तया काऽन्योपमीयते ॥४८॥
गतरागोऽपि हि यया मदनारिः स्वलीलया। निजतन्त्रोऽपि हि यतः स स्वात्मवशगः कृतः ॥४९॥
यथा स्त्रीरत्नसम्भोक्तुः समृद्धिस्तस्य साऽभवत्। तथा न तव त्येदैन्द्र सर्वरत्नाधिपस्य च ॥५०॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा स तु देवर्षिर्नारदो लोकविश्रुतः। ययौ विहायसा देवोपकारकरणोद्यतः ॥५१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलन्धरवधोपाख्याने देवर्षिजलन्धरसंवादो नामाऽष्टदशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

सनत्कुमार बोले—महात्मा नारद के इस बात को सुन दैत्यराज काम से व्याकुल होकर बोला ॥४१॥

जलन्धर बोला—हे महाप्रभो! हे देवर्षे! हे नारद! आपको नमस्कार है। कृपाकर आप हमें बताइए कि इस समय वह स्त्री-रत्न कहाँ पर है? ॥४२॥ हे ब्रह्मन्! इस ब्रह्माण्ड में जहाँ कहीं भी स्त्री-रत्न विद्यमान है, तो मैं उसे अवश्य लाऊँगा, मैं सत्य कहता हूँ, इसमें संशय नहीं ॥ ४३ ॥

नारद बोले—अत्यन्त मनोहर सर्वसमृद्धि सम्पन्न कैलास पर्वत पर योगिराज शम्भु दिगम्बर वेष में रहते हैं ॥ ४४ ॥ उनकी भार्या बड़ी सुन्दरी है, उसमें स्त्री के सम्पूर्ण उत्तम लक्षण विद्यमान हैं। उस सर्वाङ्ग सुन्दरी शम्भुपत्नी का नाम पार्वती है ॥ ४५ ॥ विलास (हाव-भाव) से परिपूर्ण ऐसा मनोहर रूप अन्यत्र कहीं भी देखने को नहीं मिलता। उसका वह अद्भुत रूप योगियों को भी मोहित करने वाला है, दर्शन के योग्य है और सम्पूर्ण ऋद्धियों को प्रदान करने वाला है ॥ ४६ ॥ उसे देखकर मेरे मन में ऐसा विचार आता है कि शिव जी से बढ़कर और कोई समृद्धिशाली नहीं है, क्योंकि त्रिलोकी में सर्वोत्तम जायारत्न उन्हीं के पास है ॥ ४७ ॥ पूर्वकाल में जिसके लावण्य समुद्र में ब्रह्मा डूब गये थे और अपना धैर्य छोड़ दिया था, भला ऐसी स्त्री की उपमा अन्य स्त्री से कैसे की जा सकती है ॥ ४८ ॥ जिसने लीला से ही काम के शत्रु परम विरक्त आत्माराम शङ्कर को भी अपने वश में कर लिया है ॥ ४९ ॥ उस स्त्रीरत्न का सम्भोग करने वाले शिव की जैसी समृद्धि है वैसी समृद्धि सम्पूर्ण रत्नों के अधिपति होने पर भी तुम्हारे पास नहीं है ॥ ५० ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास! इस प्रकार देवताओं का उपकार करने में उद्यत हुए लोक-विख्यात देवर्षि नारद दैत्येन्द्र जलन्धर से कहकर आकाशमार्ग से चले गये ॥ ५१ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता में पञ्चम युद्धखण्ड के जलन्धर-वधोपाख्यान में देवर्षि-जलन्धर संवाद वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥

* • •

एकोनविंशोऽध्यायः

(शिव के समीप पार्वती मुझे प्रदान कर दो, कहकर जलन्धर को दूत भेजना)

व्यास उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ नारदे हि गते दिवि । दैत्यराट् किमकार्षीत् स तन्मे वद सुविस्तरात् ॥ १ ॥

सनत्कुमार उवाच

तमामन्त्र्य गते दैत्यं नारदे दिवि दैत्यराट् । तद्रूपश्रवणादासीदनङ्गज्वरपीडितः ॥ २ ॥
अथो जलन्धरो दैत्यः कालाधीनः प्रनष्टधीः । द्रुतमाह्वाययामास सैंहिकेयं विमोहितः ॥ ३ ॥
आगतं तं समालोक्य कामाक्रान्तमनाः स हि । सुसम्बोध्य समाचष्ट सिन्धुपुत्रो जलन्धरः ॥ ४ ॥

जलन्धर उवाच

भो भो दूतवरश्रेष्ठ ! सर्वकार्यप्रसाधक ! । सैंहिकेय महाप्राज्ञ ! कैलासं गच्छ पर्वतम् ॥ ५ ॥
तत्राऽस्ति योगी शम्भ्वाख्यस्तपस्वी च जटाधरः । भस्मभूषितसर्वाङ्गो विरक्तो विजितेन्द्रियः ॥ ६ ॥
तत्र गत्वेति वक्तव्यं योगिनं दूत ! शङ्करम् । जटाधरं विरक्तं तं निर्भयेन हृदा त्वया ॥ ७ ॥
हे योगिंस्ते दयासिन्धो ! जायारत्नेन किं भवेत् । भूत-प्रेत-पिशाचादिसेवितेन वनौकसा ॥ ८ ॥
मन्नाथे भुवने योगिन्नोचिता गतिरीदृशी । जायारत्नमतस्त्वं मे देहि रत्नभुजे निजम् ॥ ९ ॥
यानि यानि सुरत्नानि त्रैलोक्ये तानि सन्ति मे । मदधीनं जगत्सर्वं विद्धि त्वं सचराचरम् ॥१०॥
इन्द्रस्य गजरत्नं चोच्चैःश्रवोरत्नमुत्तमम् । बलाद् गृहीतं सहसा पारिजातस्तरुस्तथा ॥११॥
विमानं हंससंयुक्तमङ्गणे मम तिष्ठति । रत्नभूतं महादिव्यमुत्तमं वेधसोऽद्भुतम् ॥१२॥
महापद्मादिकं दिव्यं निधिरत्नं स्वदस्य च । छत्रं मे वारुणं गेहे काञ्चनस्रावि तिष्ठति ॥१३॥

व्यासजी बोले—हे सर्वज्ञ सनत्कुमार ! जब देवर्षि नारद स्वर्गलोक को चले गये तब उस दैत्यराज ने क्या किया ? उसे विस्तारपूर्वक मुझसे कहिए ? ॥ १ ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! जब देवर्षि नारद, दैत्यराज से कहकर स्वर्गलोक चले गये, तब वह जलन्धर भगवती पार्वती के लावण्यमय रूप को स्मरण कर कामज्वर से पीड़ित हो गया ॥ २ ॥ फिर तो काल के अधीन होने से उसकी बुद्धि नष्ट हो गयी। उसने काम से मोहित हो सैंहिकेय नामक दूत को बुलाया ॥ ३ ॥ उस दूत को आया देख काम से व्याकुल सागरपुत्र जलन्धर उसे सम्बोधित करते हुए कहने लगा—॥ ४ ॥

जलन्धर बोला—हे दूतों में श्रेष्ठ ! हे कार्यसिद्ध करने वाले, हे महापण्डित सिंहिकापुत्र ! तुम इस समय कैलास पर्वत पर जाओ ॥ ५ ॥ वहाँ पर जटा धारण किये हुए सर्वाङ्ग में भस्म रमाये, परम विरक्त, तपस्वी एवं जितेन्द्रिय शिव नाम का योगी रहता है ॥६॥ हे दूत ! उस जटाधारी परम विरक्त योगी शङ्कर के पास जाकर निर्भीक हो तुम मेरा सन्देश इस प्रकार कहना ॥ ७ ॥ हे योगिन् ! हे दयासिन्धो ! जब तुम वन में निवास करते हो और भूत-प्रेतादि तुम्हारी सेवा करते हैं, तो तुम्हें स्त्री-रत्न की क्या आवश्यकता है ॥ ८ ॥ जब समस्त भुवनाधिपति मेरे जैसा स्वामी विद्यमान हैं तब तुम्हें ऐसा करना उचित नहीं प्रतीत होता, इस कारण तुम अपना स्त्री-रत्न मुझे दे दो, क्योंकि सारे रत्नों का उपभोग करने वाला तो मैं ही हूँ ॥९॥ हे योगिराज ! तुम इस बात को जान लो कि सारा चराचर ,जगत् मेरे आधीन है। त्रिलोक के जितने भी उत्तम रत्न हैं, वे सब मेरे आधीन हैं ॥ १० ॥ मैंने इन्द्र का ऐरावत हाथी, उच्चैःश्रवा नाम का घोड़ा एवं पारिजात वृक्ष आदि सभी रत्नों को इन्द्र से छीन लिया है ॥ ११ ॥ मेरे आँगन में ब्रह्मदेव का हंसयुक्त विमान विद्यमान है, जो महादिव्य एवं परम अद्भुत है ॥ १२ ॥ मैंने कुबेर से महापद्म आदि समस्त निधियाँ ले ली है। सुवर्ण की वर्षा करने वाला वरुण का छत्र भी मेरे ही पास है। कभी मलीन न होनेवाली

किङ्कल्किनी महामाला सर्वदाऽम्लानपङ्कजा । मत्पितुः सा ममैवास्ति पाशश्च कपतेस्तथा ॥१४॥
मृत्योरुत्क्रान्तिदा शक्तिर्मयाऽऽनीता बलाद्वरा । ददौ मह्यं शुचिर्दिव्ये शुचिशौचे च वाससी ॥१५॥
एवं योगीन्द्र ! रत्नानि सर्वाणि विलसन्ति मे । अतस्त्वमपि मे देहि स्वस्त्रीरत्नं जटाधर ! ॥१६॥

सनत्कुमार उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य नन्दिना स प्रवेशितः । जगामोग्रसभां राहुर्विस्मयोऽद्भुतलोचनः ॥१७॥
तत्र गत्वा शिवं साक्षात् देवदेवं महाप्रभुम् । स्वतेजोध्वस्ततमसं भस्मलेपविराजितम् ॥१८॥
महाराजोपचारेण विलसन्तं महाद्भुतम् । सर्वाङ्गसुन्दरं दिव्यभूषणैर्भूषितं हरम् ॥१९॥
प्रणनाम च तं गर्वात्तत्तेजः क्रान्तविग्रहः । निकटं गतवाञ्छम्भोः दूतो राहुसंज्ञकः ॥२०॥
अथो तदग्र आसीनो वक्तुकामो हि सैंहिकः । त्र्यम्बकं स तदा संज्ञाप्रेरितो वाक्यमब्रवीत् ॥२१॥

राहुरुवाच

दैत्य पन्नगसेव्यस्य त्रैलोक्याधिपतेः सदा । दूतोऽहं प्रेपितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ॥२२॥
जलन्धरोऽब्धितनयः सर्वदैत्यजनेश्वरः । त्रैलोक्यस्येश्वरः सोऽथाऽभवत् सर्वाधिनायकः ॥२३॥
स दैत्यराजो बलवान् देवानामन्तकोपमः । योगिनं त्वां समुद्दिश्य स यदाह शृणुष्व तत् ॥२४॥
महादिव्यप्रभावस्य तस्य दैत्यपतेः प्रभोः । सर्वरत्नेश्वरस्य त्वमाज्ञां शृणु वृषध्वज ! ॥२५॥
श्मशानवासिनो नित्यमस्थिमालाधरस्य च । दिगम्बरस्य ते भार्या कथं हैमवती शुभा ॥२६॥
अहं रत्नाधिनाथोऽस्मि सा च स्त्रीरत्नसंज्ञिता । तस्मान्ममैव सा योग्या नैव भिक्षाशिनस्तव ॥२७॥

कमलें निर्मित किञ्जल्किनी नाम की मेरे पिता की माला तो मेरी है ही, इसी प्रकार उनका पाश भी मेरे ही यहाँ है ॥ १३-१४ ॥ मृत्यु की सर्वश्रेष्ठ शक्ति जिसका नाम उत्क्रान्तिदा है, उसे भी मैंने मृत्यु से छीन लिया है। अग्निदेव ने मुझे अग्निवर्ण वाले परम पवित्र तथा कभी मलीन न होने वाले उत्तरीय युक्त दो वस्त्र दिये हैं ॥ १५ ॥ इस प्रकार हे योगीन्द्र ! सभी प्रकार के रत्न मेरे घर पर शोभा पा रहे हैं। हे जटाधारी ! तुम भी मुझे अपना स्त्री-रत्न प्रदान करो ॥ १६ ॥

सनत्कुमार बोले—राक्षसराज के द्वारा कहे गये इस सन्देश को सुनकर वह राहु विस्मित होकर शिव की सभा की ओर चला। नन्दी ने भी उसे जाने की आज्ञा दे दी ॥ १७ ॥ उसने, उस सभा में जाकर तेज से समस्त अन्धकार को दूर करने वाले, शरीर में भस्म का लेप किये, साक्षात् देवाधिदेव शिव को देखा ॥१८॥ उस समय गणों के द्वारा महा राजोपचार से पूजित हो वे अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे। उनका स्वरूप अत्यन्त अद्भुत था, वे दिव्य भूषणों से भूषित तथा सर्वाङ्ग सुन्दर थे, ऐसे शिव को देखकर उनके तेज से पराभूत हुए उस दूत ने जाकर उन्हें गर्व से युक्त हो प्रणाम किया और उनके समीप चला गया ॥१९-२०॥ वह सिंहिकापुत्र शिव के आगे बैठकर उनसे कुछ कहना ही चाहता था कि उनका संकेत पा कहने लगा ॥२१॥

राहु बोला—दैत्य एवं सर्पों से सेवित त्रैलोक्याधिपति के द्वारा भेजा गया मैं दूत हूँ, उन्होंने मुझे अपना दूत बनाकर आपके पास भेजा है ॥ २२ ॥ वे जलन्धर समुद्र के पुत्र, सभी दैत्यों के राजा हैं और समस्त त्रिलोकी के अधिपति हैं ॥ २३ ॥ वे दैत्यराज महाबलवान् एवं देवताओं के लिए महाकाल के समान हैं, आप जैसे योगी को सम्बोधित कर उन्होंने जो सन्देश भेजा है उसे श्रवण कीजिए ॥ २४ ॥ हे वृषभध्वज ! उस दैत्य का प्रभाव महादिव्य है, वही सब रत्नों का ईश्वर है, उसकी आज्ञा सुनो ॥२५॥ तुम श्मशान में निवास करते हो, और अस्थियों की माला धारण करते हो तथा दिगम्बर हो फिर हैमवती जैसी सुन्दर भार्या तुम अपने पास क्यों रखे हुए हो ॥ २६ ॥ वह हैमवती स्त्रीरत्नभूत है और मैं समस्त रत्नों का अधिपति हूँ अतः वह मेरे योग्य है। भिक्षावृत्ति से जीनेवाले तुम्हारे जैसे भिक्षुक के वह योग्य नहीं ॥२७॥

मम वश्यास्त्रयो लोका भुञ्जेऽहं मखभागकान् । यानि सन्ति त्रिलोकेऽस्मिन्रत्नानि मम सद्मनि ॥२८॥
वयं रत्नभुजस्त्वं तु योगी खलु दिगम्बरः । स्वस्त्रीरत्नं देहि मह्यं राज्ञः सुखकराः प्रजाः ॥२९॥

सनत्कुमार उवाच

वदत्येवं तथा राहौ भ्रूमध्याच्छूलपाणिनः । अभवत् पुरुषो रौद्रस्तीव्राशनिसमस्वनः ॥३०॥
सिंहास्यप्रचलज्जिह्वः सज्ज्वालनयनो महान् । ऊर्द्ध्वकेशः शुष्कतनुर्नृसिंह इव चापरः ॥३१॥
महातनुर्महाबाहुस्तालजङ्घो भयङ्करः । अभिदुद्राव वेगेन राहुं स पुरुषो द्रुतम् ॥३२॥
स तं खादितुमायान्तं दृष्ट्वा राहुर्भयातुरः । अधावदार्तवेगेन बहिः स च दधार तम् ॥३३॥

राहुरुवाच

देवदेव महेशान ! पाहि मां शरणागतम् । सुराऽसुरैः सदा वन्द्यः परमैश्वर्यवान् प्रभुः ॥३४॥
ब्राह्मणं मां महादेव ! खादितुं समुपागतः । पुरुषोऽयं तवेशान सेवकोऽतिभयङ्करः ॥३५॥
एतस्माद्रक्ष देवेश शरणागतवत्सल ! । न खादेत यथाऽयं मां नमस्तेऽस्तु मुहुर्मुहुः ॥३६॥

सनत्कुमार उवाच

महादेवो वचः श्रुत्वा ब्राह्मणस्य तदा मुने ! । अब्रवीत् स्वगणं तं वै दीनानाथप्रियः प्रभुः ॥३७॥

महादेव उवाच

प्रभुं च ब्राह्मणं दूतं राह्वाख्यं शरणागतम् । शरण्या रक्षणीया हि न दण्ड्या गणसत्तम ! ॥३८॥

तीनों लोक मेरे वश में है, मैं ही समस्त यज्ञों के भाग का भोक्ता हूँ, त्रिलोकी में जितने भी रत्न हैं वे सभी मेरे घर पर हैं ॥ २८ ॥ रत्नों का उपभोग करने वाला तो मैं हूँ, तुम तो भिक्षा माँगने वाले दिगम्बर योगी हो, अतः अपना स्त्री-रत्न मुझे प्रदान करो । प्रजा को चाहिए कि वह राजा को सुख प्रदान करे ॥ २९ ॥

सनत्कुमार बोले—अभी राहु अपनी बात कह ही रहा था कि शङ्कर के भ्रूमध्य से वज्र के समान शब्द करता हुआ एक महाभयङ्कर पुरुष प्रगट हो गया ॥३०॥ उसका सिंह के समान मुख था, उसकी जीभ लपलपा रही थी, नेत्रों से अग्नि निकल रही थी, ऊर्ध्व केश, सूखे शरीर वाला वह पुरुष दूसरे सिंह के समान जान पड़ता था ॥ ३१ ॥ उसका शरीर तथा भुजाएँ विशाल थीं, ताड़ के समान विशाल उसकी जँघा थी, ऐसा भयङ्कर वह पुरुष प्रकट होते ही बड़े वेग से शीघ्रता के साथ राहु पर झपट पड़ा ॥ ३२ ॥ उसे खाने के लिए आता देख भयभीत हुआ राहु आर्त्त शब्द से चिल्लाता हुआ भागा, किन्तु सभा के बाहर ही उस पुरुष ने राहु को पकड़ लिया ॥ ३३ ॥

राहु बोला—हे देवदेव ! हे महादेव ! मुझ शरणागत की रक्षा कीजिए, आप देवता तथा राक्षस दोनों के द्वारा वन्दनीय हैं, और आपका ऐश्वर्य अनन्त है ॥ ३४ ॥ हे महादेव ! यह तो मुझ ब्राह्मण को खाने के लिए आ रहा है । हे ईशान ! यह तुम्हारा सेवक पुरुष तो अत्यन्त भयङ्कर है ॥ ३५ ॥ हे देवेश ! आप शरणागतवत्सल हैं, इस भयङ्कर पुरुष से मेरी रक्षा कीजिए । शीघ्र ही कोई उपाय कीजिए, जिससे यह मुझे न खाये ॥ ३६ ॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने ! तव उस ब्राह्मण की बात सुनकर दीनों पर कृपा करने वाले सर्वेश्वर महादेव ने उस पुरुष से कहा ॥ ३७ ॥

महादेव जी बोले—हे गणसत्तम ! इस राहु को दण्ड मत दो, क्योंकि यह ब्राह्मण होने के कारण श्रेष्ठ है, दूसरे का भेजा हुआ दूत है और उसमें भी शरणागत है, शरणागत की रक्षा करनी चाहिए । दण्ड देना उचित नहीं ॥ ३८ ॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्तो गिरिजेशेन स गणः करुणात्मना । राहुं तत्याज सहसा ब्राह्मणेति श्रुताक्षरः ॥३९॥
राहुं त्यक्त्वाऽम्बरे सोऽथ पुरुषो दीनया गिरा । शिवोपकण्ठमागत्य महादेवं व्यजिज्ञपत् ॥४०॥

पुरुष उवाच

देवदेव महादेव करुणाकर शङ्कर ! । त्याजितं मम भक्ष्यं ते शरणागतवत्सल ! ॥४१॥
क्षुधा मां बाधते स्वामिन् ! क्षुत्क्षामश्चाऽस्मि सर्वथा । किं भक्ष्यं मम देवेश तदाज्ञापय मां प्रभो ॥४२॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य पुरुषस्य महाप्रभुः । प्रत्युवाचाऽद्भुतोतिः स कौतुकी स्वहितङ्करः ॥४३॥

महेश्वर उवाच

बुभुक्षा यदि तेऽतीव क्षुधा त्वां बाधते यदि । संभक्षयात्मनः शीघ्रं मांसं त्वं हस्तपादयोः ॥४४॥

सनत्कुमार उवाच

शिवेनैवमाज्ञप्तश्चखाद पुरुषः स्वकम् । हस्तपादोद्भवं मांसं शिरःशेषोऽभवद्यथा ॥४५॥
दृष्ट्वा शिरोऽवशेषं तु सुप्रसन्नः सदाशिवः । पुरुषं भीमकर्माणं तमुवाच सविस्मयः ॥४६॥

शिव उवाच

हे महागण ! धन्यस्त्वं मदाज्ञाप्रतिपालकः । सन्तुष्टश्चाऽस्मि तेऽतीव कर्मणाऽनेन सत्तम ! ॥४७॥
त्वं कीर्तिमुखसंज्ञो हि भव मद् द्वारकः सदा । महागणो महावीरः सर्वदुष्टभयङ्करः ॥४८॥
मत्प्रियस्त्वं मदर्चायां सदा पूज्यो हि मज्जनैः । त्वदर्चां ये न कुर्वन्ति नैव ते मत्प्रियङ्कराः ॥४९॥

सनत्कुमार बोले--महादेव जी के वचन सुनकर उस गण को करुणा आ गयी, उसने ब्राह्मण नाम सुनते ही राहु को छोड़ दिया ॥ ३९ ॥ इस प्रकार आकाश में भागते हुए राहु को छोड़कर वह पुरुष महादेव जी के पास लौट आया और दीन वाणी में कहने लगा-- ॥ ४० ॥

पुरुष बोला--हे देवदेव महादेव ! करुणाकर शङ्कर ! हे शरणागतवत्सल ! आपने मेरे भक्ष्य को छुड़वा दिया ॥ ४१ ॥ हे स्वामी, इस समय मैं भूख से अत्यन्त पीड़ित हूँ, जिसके कारण अत्यन्त दुर्बल हो गया हूँ । अब हे देवेश ! आप ही बताइए कि मैं क्या भक्षण करूँ ? हे प्रभो ! आप आज्ञा दीजिए ॥ ४२ ॥

सनत्कुमार बोले--उस पुरुष के वचन सुनकर भक्तों का कल्याण करने वाले, महाकौतुकी प्रभु शङ्कर अत्यन्त अद्भुत वाणी बोले ॥ ४३ ॥

महेश्वर बोले--यदि तुम्हें बहुत भूख लगी है और तुम भूख से व्याकुल हो रहे हो तो तुम अपने हाथ एवं पैरों का मांस भक्षण करो ॥ ४४ ॥

सनत्कुमार बोले--शिव जी की आज्ञा पाते ही उस पुरुष ने अपने हाथ तथा पैरों का मांस भक्षण कर लिया, केवल शिरमात्र ही शेष रह गया ॥ ४५ ॥ शिरमात्र शेष देखकर शिव जी उस पर बहुत प्रसन्न हो गये, फिर आश्चर्य प्रकट करते हुए उस भीम-कर्मा पुरुष से बोले-- ॥ ४६ ॥

शिव जी बोले--हे महागण ! मेरी आज्ञा का पालन करने वाले तुम धन्य हो, हे सत्तम ! मैं तुम्हारे इस कर्म से बड़ा प्रसन्न हूँ ॥ ४७ ॥ तुम्हारा नाम आज से कीर्तिमुख होगा, तुम महावीर एवं दुष्टों के लिए महाभयङ्कर मेरे गण बनकर मेरे द्वारपाल बनो ॥ ४८ ॥ तुम आज से मेरे अत्यन्त प्रिय हुए, मेरे भक्तजन मेरी अर्चना के समय तुम्हारी भी पूजा करेंगे । जो लोग मेरी पूजा के समय तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे वे मुझे प्रिय नहीं होंगे ॥ ४९ ॥

सनत्कुमार उवाच

इति शम्भोर्वरं प्राप्य पुरुषः प्रजहर्ष सः । तदाप्रभृति देवेशद्वारे कीर्तिमुखः स्थितः ॥५०॥
पूजनीयो विशेषेण स गणः शिवपूजने । नाऽर्चयन्तीह ये पूर्वं तेषामर्चा वृथा भवेत् ॥५१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलन्धरवधोपाख्याने दूतसंवादो नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः

(शिवगण के साथ जलन्धर की सेना का युद्ध)

व्यास उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ कथा ते श्राविताऽद्भुता । महाप्रभोः शङ्करस्य यत्र लीला च पावनी ॥ १ ॥
इदानीं ब्रूहि सुप्रीत्या कृपां कृत्वा ममोपरि । राहुर्मुक्तः कुत्र गतः पुरुषेण महामुने ! ॥ २ ॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य व्यासस्यामितमेधसः । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा ब्रह्मपुत्रो महामुनिः ॥ ३ ॥

सनत्कुमार उवाच

राहुर्विमुक्तो यस्तेन सोऽपि तद्वर्वरस्थले । अतः स वर्वरो भूत इति भूमौ प्रथां गतः ॥ ४ ॥
ततः स मन्यमानः स्वं पुनर्जनिमथानतः । गतगर्वो जगामाथ जलन्धरपुरं शनैः ॥ ५ ॥
जलन्धराय सोऽभ्येत्य सर्वमीशविचेष्टितम् । कथयामास तद्व्यासाद् व्यास ! दैत्यश्च... वै ॥ ६ ॥

सनत्कुमार बोले—तदनन्तर शिव जी से इस प्रकार का वर पाकर वह पुरुष अत्यन्त प्रसन्न हो गया और कीर्त्तिमुख नाम प्राप्त कर उसी दिन से शिव जी के द्वार का द्वारपाल बना ॥ ५० ॥ इसलिए भक्तों को चाहिए कि शिवपूजा करते समय कीर्त्तिमुख की पूजा अवश्य करें, जो ऐसा नहीं करते उनकी पूजा व्यर्थ हो जाती है ॥ ५१ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड में जलन्धरवधोपाख्यान में दूत-संवाद वर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥

*

व्यास बोले—हे सर्वज्ञ ! हे सनत्कुमार ! तुम्हारे द्वारा मैंने यह अद्भुत कथा सुनी, जिसमें भगवान् शङ्कर का परम पवित्र चरित्र है ॥ १ ॥ हे मुने ! अतः मेरे ऊपर कृपा कर बताइए कि राहु उस पुरुष से छोड़ दिये जाने के उपरान्त कहाँ गया ? ॥ २ ॥

सूत बोले—अमित तेजस्वी व्यासजी के वचन सुनकर ब्रह्मदेव के पुत्र महामुनि सनत्कुमार प्रसन्न हो बोले ॥ ३ ॥

सनत्कुमार बोले—वह राहु उस पुरुष के द्वारा वर्वर स्थान पर मुक्त किया गया, इसलिए वर्वर नाम से पृथ्वी पर विख्यात हुआ ॥ ४ ॥ उस पुरुष के द्वारा इस प्रकार छुटकारा पा जाने पर वह अपना नया जन्म मानने लगा फिर गर्वरहित हो शनैः-शनैः जलन्धर के समीप पहुँचा ॥ ५ ॥ हे व्यास ! उसने वहाँ जाकर शङ्कर की सारी चेष्टा का वर्णन किया ॥ ६ ॥

सनत्कुमार उवाच

जलन्धरस्तु तच्छ्रुत्वा कोपाकुलितविग्रहः । बभूव बलवान् सिन्धुपुत्रो दैत्येन्द्रसत्तमः ॥ ७ ॥
ततः कोपपराधीनमानसो दैत्यसत्तमः । उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ॥ ८ ॥

जलन्धर उवाच

निर्गच्छन्त्वखिला दैत्याः कालनेमिमुखाः खलु । तथा शुम्भ-निशुम्भाद्या वीराः स्वबलसंयुताः ॥ ९ ॥
कोटिर्वीरकुलोत्पन्नाः कम्बुवंश्याश्च दौर्हृदाः । कालकाः कालकेयाश्च मौर्या धौम्रास्तथैव च ॥१०॥
इत्याज्ञाप्यासुरपतिः सिन्धुपुत्रः प्रतापवान् । निर्जगामाशु दैत्यानां कोटिभिः परिवारितः ॥११॥
ततस्तस्याऽग्रतः शुक्रो राहुश्छिन्नशिरोऽभवत् । मुकुटश्चाऽपतद्भूमौ वेगात् प्रस्खलितस्तदा ॥१२॥
व्यराजत नभः पूर्णं प्रावृषीव यथा घनैः । जाता अशकुना भूरि महानिद्राविसूचकाः ॥१३॥
तस्योद्योगं तथा दृष्ट्वा गीर्वाणास्ते सवासवाः । अलक्षितास्तदा जग्मुः कैलासं शङ्करालयम् ॥१४॥
तत्र गत्वा शिवं दृष्ट्वा सुप्रणम्य सवासवाः । देवाः सर्वे नतस्कन्धाः करौ बद्ध्वा च तुष्टुवुः ॥१५॥

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव करुणाकर शङ्कर ! । नमस्तेऽस्तु महेशान पाहि नः शरणागतान् ॥१६॥
विह्वला वयमत्युग्रं जलन्धरकृतात् प्रभो ! । उपद्रवात् सदेवेन्द्राः स्थानभ्रष्टाः क्षितिस्थिताः ॥१७॥
न जानासि कथं स्वामिन् देवापत्तिमिमां प्रभो ! । तस्मान्नो रक्षणार्थाय जहि सागरनन्दनम् ॥१८॥
अस्माकं रक्षणार्थाय यत्पूर्वं गरुडध्वजः । नियोजितस्त्वया नाथ ! न क्षमः सोऽद्य रक्षितुम् ॥१९॥
तदधीनो गृहे तस्य तिष्ठत्यद्य मया सह । वयं च तत्र तिष्ठामस्तदाज्ञावशगाः सुराः ॥२०॥

पुनः सनत्कुमार बोले—उसकी बात सुनते ही बलवान् समुद्रपुत्र जलन्धर महाक्रोधित हो उठा ॥ ७ ॥ उसने क्रोध के वशीभूत हो समस्त दैत्यों को युद्ध के लिए उद्यत होने का आदेश दिया ॥ ८ ॥

जलन्धर बोला—कालनेमि आदि सभी दैत्यो ! एवं शुम्भ-निशुम्भ आदि वीरो ! तुम लोग अपनी-अपनी सेना के साथ युद्ध के लिए शीघ्र प्रस्थान करो ॥ ९ ॥ वीरकुल में उत्पन्न एक करोड़ दुर्हृद् नामक दैत्यगण कम्बुवंश में उत्पन्न होने वाले दौर्हृद दैत्यगण, इसी प्रकार कालक, कालकेय, मौर्य तथा धौम्रगण भी युद्ध के लिए शीघ्र चलें ॥ १० ॥ हे व्यास ! महाप्रतापी सिन्धुपुत्र वह जलन्धर इस प्रकार आज्ञा देकर स्वयं भी करोड़ों दैत्यों को साथ लेकर युद्ध के लिए चल पड़ा ॥ ११ ॥ एकाक्ष शुक्र एवं छिन्न शिरवाला राहु सेना के आगे-आगे चलने लगे । उसी समय जलन्धर का मुकुट खसक कर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ १२ ॥ और समस्त आकाश-मण्डल वर्षा-काल के समान मेघों से आच्छन्न हो गया । मृत्यु-सूचक बहुत से भयानक अपशकुन होने लगे ॥१३॥ उसके इस प्रकार की युद्ध की तैयारी देख इन्द्रादि देवगण अलक्षित रूप से शिव जी के स्थान कैलास पर्वत पर गये ॥ १४ ॥ और वहाँ जाकर उनलोगों ने शिवजी को प्रणाम कर बड़ी नम्रता से हाथ जोड़ स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥ १५ ॥

देवगण बोले—हे देवदेव ! हे महादेव ! हे करुणाकर ! हे शङ्कर ! हे महेशान ! आपको प्रणाम है, हम शरणागतों की आप रक्षा करें ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! हमलोग जलन्धर के उपद्रव से अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं और अपना-अपना स्थान छोड़ कर पृथ्वी पर घूम रहे हैं ॥ १७ ॥ हे प्रभो ! हे स्वामिन् ! आप हम देवताओं की इस आपत्ति को कैसे नहीं जानते ? आप शीघ्र ही हमलोगों की रक्षा के लिए इस जलन्धर का वध कीजिए ॥ १८ ॥ आपने पूर्वकाल में हमलोगों की रक्षा के लिए जिस विष्णु को नियुक्त किया था । वे अब हमलोगों की रक्षा करने में सर्वथा असमर्थ हैं ॥ १९ ॥ अब वे भी उसके आधीन होकर लक्ष्मी के साथ वहीं निवास करने लगे हैं, इसलिए हम देवगण भी उसके वशवर्त्ती होकर उसके घर में

अलक्षिता वयं चात्रागताः शम्भो त्वदन्तिकम् । स आयाति त्वया कर्त्तुं रणं सिन्धुसुतो बली ॥२१॥
अतः स्वामिन् रणे त्वं तमविलम्बं जलन्धरम् । हन्तुमर्हसि सर्वज्ञ ! पाहि नः शरणागतान् ॥२२॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा ते सुराः सर्वे प्रभुं नत्वा सवासवाः । पादौ निरीक्ष्य सन्तस्थुर्महेशस्य विनम्रकाः ॥२३॥
इति देववचः श्रुत्वा प्रहस्य वृषभध्वजः । द्रुतं विष्णुं समाहूय वचनं चेदमब्रवीत् ॥२४॥

ईश्वर उवाच

हृषीकेश महाविष्णो देवाश्चात्र समागताः । जलन्धरकृतापीडाः शरणं मेऽतिविह्वलाः ॥२५॥
जलन्धरः कथं विष्णो ! सङ्गरे न हतस्त्वया । तद्गृहं चापि यातोऽसि त्यक्त्वा वैकुण्ठमात्मनः ॥२६॥
मया नियोजितस्त्वं हि साधुसंरक्षणाय च । निग्रहस्य खलानां च स्वतन्त्रेण विहारिणा ॥२७॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य महेशस्य वचनं गरुडध्वजः । प्रत्युवाच विनीतात्मा नतकः साञ्जलिर्हरिः ॥२८॥

विष्णुरुवाच

तवांशसम्भवत्वाच्च भ्रातृत्वाच्च तथा श्रियः । मया न निहतः सङ्ख्ये त्वमेनं जहि दानवम् ॥२९॥
महाबलो महावीरोऽजेयः सर्वदिवौकसाम् । अन्येषां चापि देवेश ! सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम् ॥३०॥
मया कृतो रणस्तेन चिरं देवान्वितेन वै । मदुपायो न प्रवृत्तस्तस्मिन् दानवपुङ्गवे ॥३१॥
तत्पराक्रमतस्तुष्टो वरं ब्रूहीत्यहं खलु । इति मद्वचनं श्रुत्वा स वव्रे वरमुत्तमम् ॥३२॥

निवास कर उसकी आज्ञा का पालन करते हैं ॥ २० ॥ हे शम्भो ! हमलोग गुप्त रूप से अलक्षित होकर आपकी शरण में आये हैं। इस समय वह महा बलवान् जलन्धर आप से युद्ध करने के लिए यहाँ आ रहा है ॥ २१ ॥ इस कारण हे स्वामिन् ! बहुत शीघ्र ही युद्ध में जलन्धर को मारकर हम शरणागतों की रक्षा कीजिए ॥ २२ ॥ हे व्यास ! इतना कहने के अनन्तर इन्द्रादि देवगण भगवान् शङ्कर को प्रणाम कर उनका चरण देखते हुए विनम्र हो स्थित हो गये ॥ २३ ॥ तब देवताओं की बात सुनकर शिवजी ने हँसते हुए विष्णु को शीघ्रता से बुलाया और उनसे इस प्रकार कहने लगे– ॥ २४ ॥

शिवजी बोले—हे हृषीकेश ! हे महाविष्णो ! जलन्धर की पीड़ा से सन्त्रस्त हुए ये देवगण अत्यन्त व्याकुल हो हमारी शरण में आये हुए हैं ॥ २५ ॥ हे विष्णो ! आपने अभी तक जलन्धर का वध क्यों नहीं किया ? आप स्वयं भी अपना वैकुण्ठ छोड़कर जलन्धर के घर में लक्ष्मी के सहित निवास करते हैं, इसका क्या कारण है ? ॥ २६ ॥ हे विष्णो ! मैंने तो स्वय स्वतन्त्र होकर विहार करने की इच्छा से दुष्टों का निग्रह करने के लिए तथा महात्मा एवं सज्जनों की रक्षा हेतु आपको नियुक्त किया है ॥ २७ ॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार भगवान् शङ्कर के वचन सुनकर गरुड़ध्वज विष्णु विनम्र हो शिर झुकाये हुए हाथ जोड़कर बोले—॥ २८ ॥

विष्णु बोले—हे प्रभो ! आपके अंश से प्रगट होने तथा लक्ष्मी का भाई होने के कारण मैंने उसका वध नहीं किया, अब आप ही उस दानव का वध कीजिए ॥ २९ ॥ हे देवेश ! वह दानव महाबली, महावीर एवं सभी देवगणों से अजेय है, उसे अन्य कोई जीत नहीं सकता। हे देवेश ! मैं यह सत्य कहता हूँ ॥ ३० ॥ मैंने देवताओं के साथ बहुत समय तक उस दानव से युद्ध किया, पर मेरा भी कोई वश न चला ॥ ३१ ॥ तदनन्तर उसके पराक्रम से सन्तुष्ट होकर मैंने उससे वर माँगने को कहा। उसने

मद्भगिन्या मया सार्द्धं मद्गेहे स सुरो वस । मदधीनो महाविष्णो इत्यहं तद्गृहं गतः ॥३३॥

सनत्कुमार उवाच

इति विष्णोर्वचः श्रुत्वा शङ्करः स महेश्वरः । विहस्योवाच सुप्रीतः सदयो भक्तवत्सलः ॥३४॥

महेश्वर उवाच

हे विष्णो ! सुरवर्य ! त्वं शृणु मद्वाक्यमादरात् । जलन्धरं महादैत्यं हनिष्यामि न संशयः ॥३५॥
स्वस्थानं गच्छ निर्भीतो देवा गच्छन्त्वपि ध्रुवम् । निर्भया वीतसन्देहा हतं मत्वाऽसुराधिपम् ॥३६॥

सनत्कुमार उवाच

इति श्रुत्वा महेशस्य वचनं स रमापतिः । सनिर्जरो जगामाशु स्वस्थानं गतसंशयः ॥३७॥
एतस्मिन्नन्तरे व्यास स दैत्येन्द्रोऽतिविक्रमः । सन्नद्धैरसुरैः सार्द्धं शैलप्रान्तं ययौ बली ॥३८॥
कैलासमवरुध्याथ महत्या सेनया युतः । सन्तस्थौ कालसङ्काशः कुर्वन् सिंहरवं महान् ॥३९॥
अथ कोलाहलं श्रुत्वा दैत्यनादसमुद्भवम् । चुक्रोधातिमहेशानो महालीलः खलान्तकः ॥४०॥
समादिदेश सङ्ख्याय स्वगणान् स महाबलान् । नन्द्यादिकान् महादेवो महोतिः कौतुकी हरः ॥४१॥
नन्दीभमुखसेनानीमुखाः सर्वे शिवाज्ञया । गणाश्च समनह्यन्त युद्धायातित्वरान्विताः ॥४२॥
अवतेरुर्गणाः सर्वे कैलासात् क्रोधदुर्मदाः । वल्गन्तो रणशब्दांश्च महावीरा रणाय हि ॥४३॥
ततः समभवद्युद्धं कैलासोपत्यकासु वै । प्रमथाधिपदैत्यानां घोरं शस्त्रास्त्रसङ्कुलम् ॥४४॥
भेरी-मृदङ्ग-शङ्खौघैर्निःस्वानैर्वीरहर्षणैः । गजाश्वरथशब्दैश्च नादिता भूर्व्यकम्पत ॥४५॥
शक्ति-तोमर-बाणौघैर्मुसलैः पाशपट्टिशैः । व्यराजत नभः पूर्णं मुक्ताभिरिव संवृतम् ॥४६॥

मेरा वचन सुनकर यह उत्तम वरदान माँगा कि ॥ ३२ ॥ हे महाविष्णो ! आप देवताओं एवं मेरी भगिनी लक्ष्मीके साथ मेरे घर पर निवास करें और सदैव मेरे आधीन रहें। उसे ऐसा वरदान देने के कारण मैं उसके घर पर निवास करता हूँ ॥ ३३ ॥

सनत्कुमार बोले—विष्णु के वचन सुनकर हँसते हुए दयासागर भगवान् शङ्कर परम प्रसन्न हो बोले ॥ ३४ ॥

महेश्वर बोले—हे सुरश्रेष्ठ ! हे विष्णो ! मेरी बात आदर पूर्वक सुनो। मैं निश्चय ही उस महादैत्य जलन्धर का वध करूँगा ॥ ३५ ॥ तुम एवं देवता सभी लोग निर्भय होकर अपने-अपने स्थान को जाओ तथा उस दैत्य को निःसन्देह मरा हुआ जानो ॥ ३६ ॥

सनत्कुमार बोले—महेश्वर के द्वारा कहे गये इस प्रकार के वचन सुन रमापति विष्णु देवगणों के सहित निश्चिन्त हो अपने स्थान को चले गये ॥ ३७ ॥ हे व्यास ! इसी समय वह महापराक्रमशाली दैत्यपति अपनी सेना लिये हुए कैलास के समीप पहुँचा ॥ ३८ ॥ और कैलास को घेरकर सिंहनाद करता हुआ काल के समान वहीं डेरा डाल दिया ॥३९॥ अनन्तर दैत्यों के सिंहनाद से उत्पन्न महाकोलाहल सुनकर दुष्टों का संहार करने वाले महालीलानिपुण भगवान् महेश्वर अत्यन्त क्रोधित हो उठे ॥ ४० ॥ पुनः उन्होंने महाबलवान् नन्दी आदि गणों को बुलाकर युद्ध करने की आज्ञा दी ॥ ४१ ॥ शिव जी की आज्ञा प्राप्त कर नन्दी आदि प्रमुख सेनापति अपने गणों के साथ बड़ी शीघ्रता से युद्ध की तैयारी करने लगे ॥ ४२ ॥ वे महावीर युद्ध के लिए दुर्मद हो अपने मुखों से नाना प्रकार का शब्द करते हुए बड़ी शीघ्रता से कैलास पर्वत से उतरे ॥ ४३ ॥ फिर तो कैलास की उपत्यकाओं में ही प्रमथ गणों और महादैत्यों में अस्त्र-शस्त्रों से युक्त महा घनघोर युद्ध प्रारम्भ हुआ ॥ ४४ ॥ उस समय बीरों को हर्ष उत्पन्न करने वाले, भेरी, मृदङ्ग तथा शंखों के शब्द होने लगे। हाथी, घोड़े तथा रथों के कोलाहल से सारी पृथ्वी कम्पित हो उठी ॥ ४५ ॥ शक्ति, तोमर, बाण, मुशल, प्रास एवं पाट्टिश के प्रहारों से आकाश-मण्डल

निहतैरिव नागाश्वैः पत्तिभिर्भूर्व्यराजत । वज्राहतैः पर्वतेन्द्रैः पूर्वमासीत् सुसंवृता ॥४७॥
प्रमथाहत-दैत्यौघै-दैत्याहत-गणैस्तथा । वसा-सृङ्-मांस-पङ्काढ्या भूरगम्याऽभवत्तदा ॥४८॥
प्रमथाहतदैत्यौघान् भार्गवः समजीवयत् । युद्धे पुनः पुनश्चैव मृतसंजीवनी-बलात् ॥४९॥
दृष्ट्वा व्याकुलितांस्तांस्तु गणाः सर्वे भयार्दिताः । शशंसुर्देवदेवाय सर्वे शुक्रविचेष्टितम् ॥५०॥
तच्छ्रुत्वा भगवान्रुद्रश्चकार क्रोधमुल्बणम् । भयङ्करोऽतिरौद्रश्च बभूव प्रज्वलन् दिशः ॥५१॥
अथ रुद्रमुखात् कृत्या बभूवातीव भीषणा । तालजङ्घा दरीवक्त्रा स्तनापीडितभूरुहा ॥५२॥
सा युद्धभूमिं तरसा ससाद मुनिसत्तम ! । विचचार महाभीमा भक्षयन्ती महासुरान् ॥५३॥
अथ सा रणमध्ये हि जगाम गतभीर्द्रुतम् । यत्रास्ते संवृतो दैत्यवरेन्द्रैः स हि भार्गवः ॥५४॥
स्वतेजसा नभो व्याप्य भूमिं कृत्वा च सा मुने ! । भार्गवं स्वभगे धृत्वा जगामान्तर्हिता नभः ॥५५॥
विद्रुतं भार्गवं दृष्ट्वा दैत्यसैन्यगणास्तथा । प्रम्लानवदना युद्धान्निर्जग्मुर्युद्धदुर्मदाः ॥५६॥
अथोऽभज्यत दैत्यानां सेना गणभयार्दिता । वायुवेगहता यद्वत्प्रकीर्णा तृणसंहतिः ॥५७॥
भग्नां गणभयाद्दैत्यसेनां दृष्ट्वाऽतिमर्षिताः । निशुम्भशुम्भौ सेनान्यौ कालनेमिश्च चुक्रुधुः ॥५८॥
त्रयस्ते वरयामासुर्गणसेनां महाबलाः । मुञ्चन्तः शरवर्षाणि प्रावृषीव बलाहकाः ॥५९॥
ततो दैत्यशरौघास्ते शलभानामिव व्रजाः । रुरुधुः खं दिशः सर्वा गणसेनामकम्पयन् ॥६०॥

मोतियो की माला के समान व्याप्त हो गया ॥४६॥ मरे हुए हाथी, घोड़े एवं पैदल सेनाओं के द्वारा पृथ्वी इस प्रकार पट गयी जैसे पूर्वकाल में इन्द्र के बज्र से आहत हुए पर्वतों से पटी हुई थी ॥ ४७ ॥

प्रमथों के द्वारा मारे गये दैत्यों एवं दैत्यों के द्वारा मारे गये प्रमथ गणों के मज्जा, रक्त एवं मांस के कीचड़ से पृथ्वी व्याप्त हो गयी, जिससे उसपर चलना असम्भव हो गया ॥ ४८ ॥ इधर प्रमथों के द्वारा मारे गये दैत्यों को शुक्राचार्य अपनी मृतसञ्जीवनी विद्या के बल से बारम्बार जिलाने लगे ॥ ४९ ॥ इन्हें इस प्रकार जीवित होते देख गणों ने शिवजी से शुक्राचार्य की सारी घटना निवेदन की ॥ ५० ॥ गणों की बात सुन कर शिवजी क्रोध से आग-बबूले हो गये। उस समय वे इतने भयङ्कर एवं रौद्र हो गये कि उनके प्रचण्ड कोप से दिशायें जलने लगीं ॥ ५१ ॥ उस समय उनके मुख से महाभयङ्कर कृत्या प्रकट हो गयी जिसकी ताड़ के समान जाँघें थीं, मुख गुफा के समान था और उसके स्तन से बड़े-बड़े वृक्ष टूट जाते थे ॥ ५२ ॥ हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार की महाभयङ्कर वह कृत्या युद्धभूमि में आकर असुरों का भक्षण करती हुई विचरण करने लगी ॥ ५३ ॥ तदनन्तर रणभूमि में निर्भय विचरण करती हुई वह कृत्या शीघ्र ही वहाँ जा पहुँची, जहाँ दैत्यों से घिरे हुए शुक्राचार्य निवास करते थे ॥ ५४ ॥ हे मुने ! वह अपने तेज से आकाश एवं पृथ्वी को व्याप्त कर शुक्र को अपनी योनि में छिपाकर आकाश में अन्तर्धान हो गयी ॥ ५५ ॥ युद्ध-दुर्मद दैत्यगण शुक्राचार्य को इस प्रकार तिरोहित होते देख महामलिन हो रण-भूमि से भयभीत हो भागने लगे ॥ ५६ ॥ शिवगणों से भयभीत हुई दैत्यों की सेना इस प्रकार भागने लगी जिस प्रकार प्रचण्ड वायु के वेग से तृण-समूह उड़कर भागने लगता है ॥ ५७ ॥

इस प्रकार गणों के भय से दैत्यों की सेना को छिन्न-भिन्न होते देखकर निशुम्भ, शुम्भ एवं कालनेमि सेनापतियों को महान् कष्ट उत्पन्न हुआ ॥५८॥ उन महाबली तीनों सेनापतियों ने वर्षाकाल में मेघ के समान अपने बाणों से गणों की सेना का निवारण करना प्रारम्भ किया ॥ ५९ ॥ उन दैत्यों के बाणों से समस्त प्रमथ गण इस प्रकार घेर लिये गये जिस प्रकार शलभ समूहों (फतिंगों) से आकाश व्याप्त हो जाता है, फिर

गणाः शरशतैर्भिन्ना रुधिरासारवर्षिणः । वसन्तकिंशुकाभासा न प्राजानन् हि किञ्चन ॥६१॥
ततः प्रभग्नं स्वबलं विलोक्य नन्द्यादिलम्बोदरकार्त्तिकेयाः ।
त्वरान्विता दैत्यवरान् प्रसह्य निवारयामासुरमर्षणास्ते ॥६२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलन्धरवधोपाख्याने सामान्यगणासुरयुद्धवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

(विशेष युद्ध वर्णन)

सनत्कुमार उवाच

ते गणाधिपतीन् दृष्ट्वा नन्दीभमुखषण्मुखान् । अमर्षादभ्यधावन्त द्वन्द्वयुद्धाय दानवाः ॥ १ ॥
नन्दिनं कालनेमिश्च शुम्भो लम्बोदरं तथा । निशुम्भः षण्मुखं देवमभ्यधावत शङ्कितः ॥ २ ॥
निशुम्भः कार्तिकेयस्य मयूरं पञ्चभिः शरैः । हृदि विव्याध वेगेन मूर्च्छितः स पपात ह ॥ ३ ॥
ततः शक्तिधरः क्रुद्धो बाणैः पञ्चभिरेव च । विव्याध स्यन्दने तस्य हयान्यन्तारमेव च ॥ ४ ॥
शरेणान्येन तीक्ष्णेन निशुम्भं देववैरिणम् । जघान तरसा वीरो जगर्ज रणदुर्मदः ॥ ५ ॥
असुरोऽपि निशुम्भाख्यो महावीरोऽतिवीर्यवान् । जघान कार्तिकेयं तं गर्जन्तं स्वेषुणा रणे ॥ ६ ॥
ततः शक्तिं कार्तिकेयो यावज्जग्राह रोषतः । तावन्निशुम्भो वेगेन स्वशक्त्या तमपातयत् ॥ ७ ॥
एवं बभूव तत्रैव कार्तिकेयनिशुम्भयोः । आहवो हि महान् व्यास वीरशब्दं प्रगर्जतोः ॥ ८ ॥
ततो नन्दीश्वरो बाणैः कालनेमिमविध्यत । सप्तभिश्च हयान् केतुं रथं सारथिमाच्छिनत् ॥ ९ ॥

तो वे गण कम्पित हो उठे ॥ ६० ॥ दैत्यों के बाणों से छिन्न-भिन्न गणों के शरीर से रुधिर की धारा इस प्रकार शोभित होने लगी जिस प्रकार वसन्त काल में टेसू के फूल सुशोभित होते हैं। फिर तो उन गणों को कुछ भी ज्ञात न हो सका ॥ ६१ ॥ इस प्रकार अपनी सेना को छिन्न-भिन्न होते देख नन्दी आदि गण गणेश एवं कार्तिकेय महाक्रोध कर बड़ी शीघ्रता से उन दैत्य-सेनाओं को रोकने लगे ॥ ६२ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के युद्धखण्ड में जलन्धर वध के उपाख्यान में सामान्यगण एवं सामान्य असुर का युद्धवर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २० ॥

*

सनत्कुमार बोले—जब उन दानवों ने नन्दी, गणेश, कार्तिकेय आदि गणाधिपतियों को अपनी सेना निवारण करते देखा तब वे अमर्ष में भरकर द्वन्द्वयुद्ध करने के लिए बड़े वेग से आगे बढ़े ॥ १ ॥ नन्दी से कालनेमि, गणेश से शुम्भ और कार्तिकेय से निशुम्भ का घनघोर युद्ध आरम्भ हुआ। अपने-अपने प्रतिद्वन्द्वियों से विजय के विषय में सभी शङ्कित हो रहे थे ॥ २ ॥ निशुम्भ ने कार्तिकेय के मयूर के हृदय में पाँच बाणों से प्रहार किया, जिससे वह मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ ३ ॥ तब कुमार ने भी क्रोध कर पाँच बाणों से उस पर प्रहार किया। जिससे उसके रथ, घोड़े और सारथी घायल हो गये ॥४॥ फिर तो रणदुर्मद उन महावीर कार्त्तिकेय ने अपने तीक्ष्ण बाणों से देवशत्रु निशुम्भ पर बड़े वेग से प्रहार किया और घोर गर्जना करने लगे ॥ ५ ॥

महाबली उस असुर निशुम्भ ने भी अपने बाणों से गर्जना करते हुए कार्तिकेय पर प्रहार किया ॥६॥ फिर तो क्रोध में भरे कार्तिकेय अपना शक्ति ग्रहण ही करना चाहते थे कि इतने में निशुम्भ ने अपनी शक्ति के प्रहार से उन्हें पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ ७ ॥ हे व्यास ! इस प्रकार वीरता से महान् गर्जना करते हुए शुम्भ एवं निशुम्भ का परस्पर घनघोर युद्ध होने लगा ॥ ८ ॥ इधर नन्दीश्वर ने भी अपने

कालनेमिश्च सङ्क्रुद्धो धनुश्चिच्छेद नन्दिनः । स्वशरासननिर्मुक्तैर्महातीक्ष्णैः शिलीमुखैः ॥१०॥
अथ नन्दीश्वरो वीरः कालनेमिं महासुरम् । तमपास्य च शूलेन वक्षस्यभ्यहनद् दृढम् ॥११॥
स शूलभिन्नहृदयो हताश्वो हतसारथिः । अद्रेः शिखरमुत्पाटय नन्दिनं समताडयत् ॥१२॥
अथ शुम्भो गणेशश्च रथमूषकवाहनौ । युध्यमानौ शरव्रातैः परस्परमविध्यताम् ॥१३॥
गणेशस्तु तदा शुम्भं हृदि विव्याध पत्रिणा । सारथिं च त्रिभिर्बाणैः पातयामास भूतले ॥१४॥
ततोऽतिक्रुद्धः शुम्भोऽपि बाणवृष्टया गणाधिपम् । मूषकं च त्रिभिर्विद्ध्वा ननाद जलदस्वनः ॥१५॥
मूषकः शरभिन्नाङ्गश्चचाल दृढवेदनः । लम्बोदरश्च पतितः पदातिरभवत् स हि ॥१६॥
ततो लम्बोदरः शुम्भं हत्वा परशुना हृदि । अपातयत्तदा भूमौ मूषकं चारुरोह स ॥१७॥
समरायोद्यतश्चाभूत् पुनर्गजमुखो विभुः । प्रहस्य जघ्नतुः क्रोधात्तोत्रेणैव महाद्विपम् ॥१८॥
कालनेमिर्निशुम्भश्च उभौ लम्बोदरं शरैः । युगपज्जघ्नतुः क्रोधादाशीविषसमैर्द्रुतम् ॥१९॥
तं पीड्यमानमालोक्य वीरभद्रो महाबलः । अभ्यधावत वेगेन कोटिभूतयुतस्तथा ॥२०॥
कूष्माण्डा भैरवाश्चापि वेताला योगिनीगणाः । पिशाचा डाकिनी सङ्घा गणाश्चापि समं ययुः ॥२१॥
ततः किलकिलाशब्दैः सिंहनादैः सघर्घरैः । विनादिता डमरुकैः पृथिवी समकम्पत ॥२२॥
ततो भूताः प्रधावन्तो भक्षयन्ति स्म दानवान् । उत्पत्य पातयन्ति स्म ननृतुश्च रणाङ्गणे ॥२३॥

बाणों से कालनेमि पर प्रहार किया। उन्होंने अपने सात बाणों से कालनेमि के घोड़े, सारथी, रथ तथा ध्वजा का छेदन कर दिया ॥ ९ ॥ तब कालनेमि ने क्रुद्ध होकर नन्दी का धनुष काट दिया और अपने धनुष पर महातीक्ष्ण बाण चढ़ाकर नन्दीश्वर पर प्रहार करना आरम्भ किया ॥ १० ॥

नन्दीश्वर ने अपने टूटे हुए धनुष को त्यागकर शूल से कालनेमि के हृदयस्थल पर बड़े वेग से प्रहार किया ॥ ११ ॥ इस प्रकार घोड़े और सारथी के नष्ट हो जाने पर एवं त्रिशूल से आहत हो जाने पर उस कालनेमि ने पहाड़ का शिखर उखाड़कर बड़े वेग से उस नन्दीश्वर पर प्रहार किया ॥१२॥ रथ पर सवार शुम्भ एवं मूषक पर सवार श्री गणेशजी भी द्वन्द-युद्ध करने लगे और एक दूसरे को अपने-अपने बाण-समूहों से विद्ध करने लगे ॥ १३ ॥ तदनन्तर गणेश ने शुम्भ के हृदय में बाण का प्रहार कर तीन बाणों से उसके सारथी को नीचे गिरा दिया ॥१४॥ अत्यन्त क्रुद्ध हुआ शुम्भ भी अपने बाणों की वृष्टि से गणेशजी पर प्रहार करना प्रारम्भ किया। उसने तीन बाण चला कर मूषक पर प्रहार किया और बड़े वेग से मेघ के समान गर्जना करने लगा ॥ १५ ॥ उसके बाणों से छिन्न-भिन्न हुआ मूषक भी पीड़ा से कराहता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा, जिससे गणेशजी गिरते हुए सँभल गये और पैदल ही युद्ध करने लगे ॥ १६ ॥ फिर तो उन लम्बोदर ने फरसे से शुम्भ के वक्षःस्थल पर प्रहार किया, जिससे वह पृथ्वी पर गिर पड़ा, अनन्तर गणेशजी पुनः मूषक पर सवार हो गये ॥ १७ ॥ और समर के लिए सन्नद्ध हो हँसकर शुम्भ पर इस प्रकार प्रहार किया जैसे कोड़े अथवा अङ्कुश से कोई हाथी पर प्रहार करता हो ॥ १८ ॥

इधर कालनेमि एवं निशुम्भ दोनों ही बड़े क्रोध के साथ सर्प के समान तीक्ष्ण बाणों से गणेशजी पर प्रहार करने लगे ॥ १९ ॥ महाबली वीरभद्र गणेशजी को इस प्रकार पीड़ित देखकर बड़े वेग से असंख्य भूतों को साथ ले वहाँ दौड़े ॥ २० ॥ उनके साथ कूष्माण्ड, भैरव, वेताल, योगिनी, पिशाच, डाकि-नियाँ एवं बहुत से भूतगण भी उनके साथ चले ॥ २१ ॥ उस समय उन लोगों के किलकिला शब्द, सिंह-नाद, घर्घर एवं डमरू के शब्द से पृथ्वी कम्पायमान हो उठी ॥ २२ ॥ फिर तो भूतगण दौड़-दौड़कर दानवों का भक्षण करने लगे। वे उनके ऊपर चढ़कर उन दानवों को गिराने लगे और नाचने लगे ॥ २३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे व्यासाभूतां नन्दी गुहश्च तौ । उत्थितावाप्तसंज्ञौ हि जगर्जतुरलं रणे ॥२४॥
स नन्दी कार्तिकेयश्च समायातौ त्वरान्वितौ । जघ्नतुश्च रणे दैत्यान्निरन्तरशरव्रजैः ॥२५॥
छिन्नैर्भिन्नैर्हतैर्दैत्यैः पतितैर्भक्षितैस्तथा । व्याकुला साऽभवत् सेना विषण्णवदना तदा ॥२६॥
एवं नन्दी कार्तिकेयो विकटश्च प्रतापवान् । वीरभद्रो गणाश्चान्ये जगर्जुः समरेऽधिकम् ॥२७॥
निशुम्भ-शुम्भौ सेनान्यौ सिन्धुपुत्रस्य तौ तथा । कालनेमिर्महादैत्योऽसुराश्चाऽन्ये पराजिताः ॥२८॥
प्रविध्वस्तां ततः सेनां दृष्ट्वा सागरनन्दनः । रथेनातिपताकेन गणानभिययौ बली ॥२९॥
ततः पराजिता दैत्या अप्यभूवन् महोत्सवाः । जगर्जुरधिकं व्यास समरायोद्यतास्तदा ॥३०॥
सर्वे रुद्रगणाश्चापि जगर्जुर्जयशालिनः । नन्दिकार्तिकदन्त्यास्य वीरभद्रादिका मुने ! ॥३१॥
हस्त्यश्व-रथ-संह्रादः शङ्खभेरीरवस्तथा । अभवत् सिंहनादश्च सेनयोरुभयोस्तथा ॥३२॥
जलन्धरशरव्रातैर्नीहारपटलैरिव । द्यावापृथिव्योराच्छन्नमन्तरं समपद्यत ॥३३॥
शैलादिं पञ्चभिर्विद्ध्वा गणेशं पञ्चभिः शरैः । वीरभद्रं च विंशत्या ननाद जलदस्वनः ॥३४॥
कार्तिकेयस्ततो दैत्यं शक्त्या विव्याध सत्वरम् । जलन्धरं महावीरो रुद्रपुत्रो ननाद च ॥३५॥
स घूर्णनयनो दैत्यः शक्तिनिर्भिन्नदेहकः । पपात भूमौ त्वरितमुदतिष्ठन् महाबलः ॥३६॥
ततः क्रोधपरीतात्मा कार्तिकेयं जलन्धरः । गदया ताडयामास हृदये दैत्यपुङ्गवः ॥३७॥
गदाप्रभावं सफलं दर्शयन् शङ्करात्मजः । विधिदत्तवराद् व्यास स तूर्णं भूतलेऽपतत् ॥३८॥
तथैव नन्दी ह्यपतद् भूतले गदया हतः । महावीरोऽपि रिपुहा किञ्चिद्व्याकुलमानसः ॥३९॥

हे व्यास ! इसी समय नन्दी और कार्त्तिकेय को चेतना उत्पन्न हो गयी और वे गरजते हुए रणभूमि में आ पहुँचे ॥२४॥ इस प्रकार नन्दीश्वर एवं कार्त्तिकेय रणभूमि में उपस्थित हो बड़ी शीघ्रता से अपने बाणों द्वारा दैत्यों पर प्रहार करने लगे ॥ २५ ॥ जिससे छिन्न-भिन्न हुए दैत्यगण पृथ्वी पर गिरने लगे और उन गिरे हुए दैत्यों को भूतगण खाने लगे, इससे दैत्यों की सेना व्याकुल हो विषाद से भर गयी ॥ २६ ॥ इस प्रकार दैत्यों का विनाश करते हुए महाबलवान् नन्दी, कार्त्तिकेय एवं गणेशजी तथा वीरभद्र युद्धभूमि में गरजने लगे ॥ २७ ॥ जलन्धर के सेनापति शुम्भ, निशुम्भ, कालनेमि एवं अन्य महा असुर पराजित हो गये ॥ २८ ॥ अपनी सेना को इस प्रकार विध्वस्त होते देख जलन्धर ऊँचे पताका वाले रथ पर सवार हो गणों से युद्ध करने के लिए रणभूमि में आया ॥ २९ ॥ पराजित हुए दैत्य भी उत्साह से भर गये और युद्ध के लिए तैयार हो गरजने लगे ॥ ३० ॥

तदनन्तर हे मुने ! विजयशील शिव के गण नन्दी, कार्त्तिकेय, गजानन, वीरभद्रादि भी गर्जना करने लगे ॥ ३१ ॥ उस समय हाथियों के चिग्घाड़, घोड़ों के हिनहिनाट, रथों के घर्घर शब्द, शङ्ख एवं भेरियों के शब्द होने लगे और दोनों ओर की सेनाओं में महान् सिंहनाद होने लगा ॥ ३२ ॥ जलन्धर ने बाण-समूहों की ऐसी वृष्टि की, जिससे द्युलोक तथा भूलोक में कोई अन्तर नहीं जान पड़ता था। जिस प्रकार कुहरों से आकाश एवं पृथ्वी का अन्तर नहीं ज्ञात होता ॥ ३३ ॥ उसने नन्दी को पाँच, गणेश को पाँच और कार्त्तिकेय पर बीस बाणों से प्रहार किया और मेघ के समान गर्जने लगा ॥ ३४ ॥ कार्त्तिकेय ने बड़ी शीघ्रता से अपनी शक्ति द्वारा उस दैत्य पर प्रहार किया, और सिंहनाद करने लगे ॥३५॥ शक्ति के लगते ही वह दैत्य चक्कर खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। किन्तु बड़ी शीघ्रता से उठ बैठा ॥ ३६ ॥ फिर उस दैत्यश्रेष्ठ जलन्धर ने बड़े क्रोध से कार्त्तिकेय के हृदय में गदा से प्रहार किया ॥ ३७ ॥

तदनन्तर हे व्यास जी ! शङ्करपुत्र कार्त्तिकेय ब्रह्मा के वरदान के कारण उस गदा के प्रहार को सफल बनाते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ३८ ॥ इसी प्रकार नन्दी भी गदा के प्रहार से घायल हो पृथ्वी पर गिर पड़े। वे यद्यपि शत्रुहन्ता एवं महावीर थे फिर भी गदा के लगने से कुछ व्यग्र-से हो गये ॥ ३९ ॥

ततो गणेश्वरः क्रुद्धः स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् । सम्प्राप्यातिबलो दैत्यगदां परशुनाच्छिनत् ॥४०॥
वीरभद्रस्त्रिभिर्बाणैर्हृदि विव्याध दानवम् । सप्तभिश्च हयान् केतुं धनुश्छत्रं च चिच्छिदे ॥४१॥
ततोऽतिक्रुद्धो दैत्येन्द्रः शक्तिमुद्यम्य दारुणम् । गणेशं पातयामास रथमन्यं समारुहत् ॥४२॥
अभ्यगादथ वेगेन स दैत्येन्द्रो महाबलः । विगणय्य हृदा तं वै वीरभद्रं रुषान्वितः ॥४३॥
वीरभद्रं जघानाशु तीक्ष्णेनाशीविषेण तम् । ननाद च महावीरो दैत्यराजो जलन्धरः ॥४४॥
वीरभद्रोऽपि सङ्क्रुद्धः सितधारेण चेषुणा । चिच्छेद तच्छरं चैव तं विव्याध महेषुणा ॥४५॥
ततस्तौ सूर्यसङ्काशौ युयुधाते परस्परम् । नानाशस्त्रैस्तथास्त्रैश्च चिरं वीरवरोत्तमौ ॥४६॥
वीरभद्रस्ततस्तस्य हयान् बाणैरपातयत् । धनुश्चिच्छेद रथिनः पताकां चापि वेगतः ॥४७॥
अथो स दैत्यराजो हि पुप्लुवे परिघायुधः । वीरभद्रोपकण्ठं स द्रुतमाप महाबलः ॥४८॥
परिघेनातिमहता वीरभद्रं जघान ह । महाबलोऽब्धितनयो मूर्ध्नि वीरो जगर्ज च ॥४९॥
परिघेनातिमहता भिन्नमूर्द्धा गणाधिपः । वीरभद्रः पपातोर्व्यां मुमोच रुधिरं बहु ॥५०॥
पतितं वीरभद्रं तु दृष्ट्वा रुद्रगणा भयात् । अपागच्छत्रणं हित्वा क्रोशमाना महेश्वरम् ॥५१॥
अथ कोलाहलं श्रुत्वा गणानां चन्द्रशेखरः । निजपार्श्वस्थितान् वीरानपृच्छद् गणसत्तमान् ॥५२॥

शङ्कर उवाच

किमर्थं मद्गणानां हि महाकोलाहलोऽभवत् । विचार्यतां महावीराः शान्तिः कार्या मया ध्रुवम् ॥५३॥
इति यावत् स देवेशो गणान् पप्रच्छ सादरम् । तावद् गणवरास्ते हि समायाताः प्रभुं प्रति ॥५४॥

गणेशजी ने अत्यन्त क्रुद्ध हो शिवजी के चरण-कमलों का स्मरण करते हुए बड़े वेग से दौड़कर अपने फरसे से उस गदा को चूर-चूर कर दिया ॥ ४० ॥ इधर वीरभद्र ने तीन बाण से उसके वक्षःस्थल पर प्रहार किया तथा सात बाण से उसके घोड़े, ध्वजा, धनुष एवं छत्र को काट दिया ॥ ४१ ॥ तब दैत्येन्द्र ने क्रोध में भरकर अपनी दारुण शक्ति के प्रहार से गणेश को पृथ्वी पर गिरा दिया और स्वयं दूसरे रथ पर सवार हो गया ॥ ४२ ॥ महाबली वह दैत्येन्द्र बड़े वेग से दौड़ता हुआ अपने हृदय में वीरभद्र को कुछ न समझ कर क्रोध से उन पर झपट पड़ा ॥ ४३ ॥ उसने तीक्ष्ण बाणों से वीरभद्र पर प्रहार किया और सिंहनाद करने लगा ॥ ४४ ॥

वीरभद्र ने भी क्रुद्ध हो अपने तीक्ष्ण बाणों से उसके बाणों को काट दिया। और उस पर अपने बाणों से प्रहार करने लगे ॥ ४५ ॥ फिर तो सूर्य के समान अत्यन्त तेजस्वी वे दोनों ही परस्पर युद्ध करने में तत्पर हुए। इस प्रकार अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से चिरकाल तक उन दोनों का युद्ध होता रहा ॥ ४६ ॥ वीरभद्र ने अपने बाणों से उसके रथ के घोड़ों को मार डाला, रथ की पताका तथा धनुष को भी काट दिया ॥ ४७ ॥ पुनः अपने हाथ में परिघ लेकर दौड़ते हुए वह महाबली दैत्यराज वीरभद्र के पास जा पहुँचा ॥ ४८ ॥ उस समुद्रपुत्र महाबलवान् जलन्धर ने बड़े वेग से परिघ के द्वारा वीरभद्र के शिर पर प्रहार किया और गरजना करने लगा ॥ ४९ ॥ उस महान् परिघ के लगते ही वीरभद्र का सिर फट गया, जिससे रक्त की धारा बहने लगी, और वे पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ५० ॥ रुद्रगण वीरभद्र को पृथ्वी पर गिरा देख बड़े वेग से शङ्कर को पुकारते हुए भयभीत हो रणभूमि से भागने लगे ॥ ५१ ॥ शिवजी ने गणों का कोलाहल सुनकर अपने समीपस्थ महाबली गणों से इस कोलाहल का कारण पूछा ॥ ५२ ॥

शिवजी बोले—हे महावीरो ! तुम लोग पता लगाओ कि इन हमारे गणों का यह कोलाहल क्यों हो रहा है, मैं इसे शीघ्र ही शान्त करूँगा ॥५३॥ देवेश भगवान् शङ्कर अभी अपने गणों से पूछ ही रहे थे कि

तान् दृष्ट्वा विकलान्रुद्रः पप्रच्छ कुशलं प्रभुः । यथावृत्ते गणा वृत्तं समाचख्युश्च विस्तरात् ॥५५॥
तच्छ्रुत्वा भगवान्रुद्रो महालीलाकरः प्रभुः । अभयं दत्तवांस्तेभ्यो महोत्साहं प्रवर्द्धयन् ॥५६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलन्धरोपाख्याने विशेषयुद्धवर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

(शिव रूप धारण कर जलन्धर का पार्वती के समक्ष गमन, पार्वती का यह जानकर उसकी स्त्री को छलने में विष्णु को नियुक्त करना)

सनत्कुमार उवाच

अथ वीरगणै रुद्रो रौद्ररूपो महाप्रभुः । अभ्यगाद् वृषभारूढः सङ्ग्रामं प्रहसन्निव ॥ १ ॥
रुद्रमायान्तमालोक्य सिंहनादैर्गणाः पुनः । निवृत्ताः सङ्गरे रौद्रा ये हि पूर्वं पराजिताः ॥ २ ॥
वीरशब्दं च कुर्वन्तस्तेऽप्यन्ये शाङ्करा गणाः । सोत्सवाः सायुधा दैत्यान् निजघ्नुः शरवृष्टिभिः ॥ ३ ॥
दैत्या हि भीषणं रुद्रं सर्वे दृष्ट्वा विदुद्रुवुः । शाङ्करं पुरुषं दृष्ट्वा पातकानीव तद्भयात् ॥ ४ ॥
अथो जलन्धरो दैत्यान्निवृत्तान् प्रेक्ष्य सङ्गरे । अभ्यधावत् स चण्डीशं मुञ्चन् बाणान् सहस्रशः ॥ ५ ॥
निशुम्भशुम्भप्रमुखा दैत्येन्द्राश्च सहस्रशः । अभिजग्मुः शिवं वेगाद्रोषात् संदष्टदच्छदाः ॥ ६ ॥
कालनेमिस्तथा वीरः खड्गरोमा बलाहकः । घस्मरश्च प्रचण्डश्चापरे चापि शिवं ययुः ॥ ७ ॥
बाणैः सञ्छादयामासुर्द्रुतं रुद्रगणांश्च ते । अङ्गानि चिच्छिदुर्वीराः शुम्भाद्या निखिला मुने ! ॥ ८ ॥
बाणान्धकारसञ्छन्नं दृष्ट्वा गणबलं हरः । तद्बाणजालमाच्छिद्य बाणैरावृते नभः ॥ ९ ॥
दैत्यांश्च बाणवात्याभिः पीडितानकरोत्तदा । प्रचण्डबाणजालौघैरपातयत भूतले ॥१०॥

उसी समय गणों में श्रेष्ठ वे महावीर वहाँ पहुँच गये ॥ ५४ ॥ उन्हें विकल देख शङ्करजी उनका कुशल-समाचार पूछने लगे । उन लोगों ने विस्तार पूर्वक सारा समाचार उन्हें सुना दिया ॥ ५५ ॥ अनेक लीला करने वाले भगवान् शङ्कर ने उनका उत्साह बढ़ाते हुए उन्हें अभयदान दिया ॥ ५६ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड में जलन्धरवधोपाख्यान में विशेषयुद्ध वर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥

*

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! रौद्ररूप महाप्रभु शङ्कर अपने वीर गणों के साथ वृषभ पर आरूढ़ होकर हँसते हुए संग्राम-भूमि में आये ॥ १ ॥ शिवजी को संग्राम-भूमि में आया देखकर संग्राम से भागे हुए गण भी पुनः लौट कर आ गये ॥ २ ॥ वे और अन्य शङ्कर के गण वीर शब्द करते हुए अपने-अपने आयुधों को लेकर बड़े उत्साह के साथ दैत्यों को मारने लगे ॥ ३ ॥ उस समय सभी दैत्य रौद्र रूपधारी शङ्कर को देखकर इस प्रकार भागने लगे जिस प्रकार शिवभक्त को देखकर पाप-समूह भय से भागने लगते हैं ॥ ४ ॥ युद्ध में दैत्यों को पराङ्मुख देखकर जलन्धर हजारों बाणों को छोड़ता हुआ शङ्कर की ओर आ पहुँचा ॥ ५ ॥ शुम्भ-निशुम्भ आदि सहस्रों दैत्येन्द्र भी क्रोध से होठों को चबाते हुए बड़े वेग से शङ्कर पर धावा किये ॥ ६ ॥ महावीर कालनेमि, खड्गरोमा, बलाहक, घस्मर एवं प्रचण्ड नाम के दैत्य भी शिवजी पर आक्रमण करने लगे ॥ ७ ॥

हे मुने ! फिर तो शुम्भ-निशुम्भ आदि समस्त दैत्यगण बाणों की वर्षा कर रुद्रगणों के अङ्गों को छिन्न-भिन्न करने लगे ॥ ८ ॥ इधर जब शङ्कर ने अपने गणों को बाणों के अन्धकार से आवृत देखा । तब उन्होंने शीघ्र ही असुरों के बाण-समूहों को काटकर गिरा दिया और अपने बाणों से आकाश को भर दिया ॥ ९ ॥ उन्होंने बाणों की आँधी से दैत्यों को पीड़ित कर नाना प्रकार के बाण-समूहों से दैत्यों को

खड्गरोमशिरःकायाच्चथा परशुनाच्छिनत् । बलाहकस्य च शिरः खट्वाङ्गेनाकरोद् द्विधा ॥११॥
स बद्ध्वा घस्मरं दैत्यं पाशेनाभ्यहनद्भुवि । महावीर प्रचण्डं च चकर्त त्रिशिखेन ह ॥१२॥
वृषभेण हताः केचित् केचिद् बाणैर्निपातिताः । न शेकुरसुराः स्थातुं गजाः सिंहार्दिता इव ॥१३॥
ततः क्रोधपरीतात्मा दैत्यान् धिक् कृतवान्रणे । शुम्भादिकान् महादैत्यः प्रहसन् प्राह धैर्यवान् ॥१४॥

जलन्धर उवाच

किं व उच्चरितैर्मातुर्धावद्भिः पृष्ठतो हतैः । न हि भीतवधः श्लाघ्यः स्वर्गदः शूरमानिनाम् ॥१५॥
यदि वः प्रधने श्रद्धा सारो वा क्षुल्लका हृदि । अग्रे तिष्ठत मात्रं मे न चेद् ग्राम्यसुखे स्पृहा ॥१६॥
रणे मृत्युर्वरश्चास्ति सर्वकामफलप्रदः । यशःप्रदो विशेषेण मोक्षदोऽपि प्रकीर्त्तितः ॥१७॥
सूर्यस्य मण्डलं भित्त्वा यायाद्वै परमं पदम् । परिव्राट् परमज्ञानी रणे यः सम्मुखे हतः ॥१८॥
मृत्योर्भयं न कर्तव्यं कदाचित् कुत्रचिद् बुधैः । अनिवार्यो यतो ह्येष उपायैर्निखिलैरपि ॥१९॥
मृत्युर्जन्मवतां वीरा देहेन सह जायते । अद्य वाऽब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥२०॥
तन्मृत्युभयमुत्सार्य युध्यध्वं समरे मुदा । सर्वथा परमानन्द इहामुत्राप्यसंशयः ॥२१॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा बोधयामास स्ववीरान् बहुशः स हि । धैर्यं दधुर्न ते भीता पलायन्त रणाद् द्रुतम् ॥२२॥
अथ दृष्ट्वा स्वसैन्यं तत्पलायनपरायणम् । चुक्रोधाति महावीरः सिन्धुपुत्रो जलन्धरः ॥२३॥
ततः क्रोधपरीतात्मा क्रोधाद्रुद्रं जलन्धरः । आह्वापयामास रणे तीव्राशनिसमस्वनः ॥२४॥

पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ १० ॥ अपने फरसे से खड्गरोमा का शिर धड़ से अलग कर दिया, और खट्वाङ्ग से बलाहक के शिर के दो टुकड़े कर दिये ॥ ११ ॥ इतना ही नहीं, उन्होंने घस्मर नामक दैत्य को पाश में बाँध लिया और उस पर प्रहार करने लगे। उन्होंने प्रचण्ड नामक महावीर के अपने बाणों से सैकड़ों टुकड़े कर दिये ॥ १२ ॥ इस प्रकार शिवजी ने किसी को बैल द्वारा मारा, किसी को बाणों से मारा, कितने दैत्य, सिंह के भय से घवड़ाये हुए हाथी की भाँति युद्ध में खड़े रहने से असमर्थ हो गये ॥१३॥ यह देख वह महादैत्य क्रोध में भरकर शुम्भादि दैत्यों को धिक्कारने लगा और बड़ी धीरतापूर्वक हँसकर बोला ॥ १४ ॥

जलन्धर बोला—हे महादेव ! भागकर पीठ दिखाते हुए माताओं के मूत्र के समान इन दैत्यों को मारने से क्या लाभ ? क्योंकि वीरों को भयभीत लोगों को मारना उचित नहीं। ऐसा करने से स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती ॥ १५ ॥ यदि आपकी श्रद्धा युद्ध करने की है और आप में थोड़ा भी साहस है तथा आप की ग्राम्य-सुख में रञ्च मात्र भी स्पृहा नहीं है तो मेरे सामने खड़े होकर युद्ध करो ॥ १६ ॥ युद्ध करते हुए मर जाना भी सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि ऐसा करने से सभी मनोरथों की पूर्ति एवं विशेष रूप से यश की प्राप्ति होती है। इतना ही नहीं, रणभूमि में मरने से मोक्ष भी प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ जो रणभूमि में युद्ध करते हुए मारा जाता है वह एवं परमज्ञानी परिव्राट् दोनों ही सूर्यमण्डल को भेद कर परम पद को प्राप्त करते हैं ॥ १८ ॥ यह मृत्यु अनेक प्रकार के उपायों द्वारा भी दूर नहीं की जा सकती इसलिए बुद्धिमान् को मृत्यु से भयभीत नहीं होना चाहिए ॥ १९ ॥ हे वीर ! यह मृत्यु तो प्राणी के शरीर धारण करने के साथ ही पैदा होती है, आज अथवा सौ वर्ष बाद मृत्यु का होना निश्चित है ॥ २० ॥ इसलिए हे वीरो ! मृत्यु का भय त्याग युद्ध करो ऐसा करने से उभयलोक में परमानन्द की प्राप्ति होती है ॥ २० ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! इस प्रकार वह जलन्धर अपने वीरों को समझाने लगा किन्तु वे इतने भयभीत हो गये थे कि युद्धस्थल में धैर्य धारण न कर सके, और रण से पलायित होने लगे ॥ २२ ॥ जब जलन्धर ने अपनी सेना को इस प्रकार भागते देखा तो उस महाबली सिन्धुपुत्र को बड़ा क्रोध उत्पन्न हो गया ॥ २३ ॥ वह आग बबूला होकर शङ्कर को युद्ध में ललकारा ॥ २४ ॥

जलन्धर उवाच

युद्ध्यस्वाद्य मया सार्द्धं किमेभिर्निहतैस्तव । यच्च किञ्चिद् बलं तेऽस्ति तद्दर्शय जटाधर ! ॥२५॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा बाणसप्तत्या जघान वृषभध्वजम् । जलन्धरो महादैत्यः शम्भुमक्लिष्टकारिणम् ॥२६॥

तानप्राप्तान् महादेवो जलन्धरशरान् द्रुतम् । निजैर्हि निशितैर्बाणैश्चिच्छेद प्रहसन्निव ॥२७॥

ततो हयान् ध्वजं छत्रं धनुश्चिच्छेद सप्तभिः । जलन्धरस्य दैत्यस्य न तच्चित्रं हरे मुने ! ॥२८॥

स च्छिन्नधन्वा विरथः पाथोधितनयोऽसुरः । अभ्यधावच्छिवं क्रुद्धो गदामुद्यम्य वेगवान् ॥२९॥

प्रभुर्गदां च तत्क्षिप्तां सहसैव महेश्वरः । पाराशर्य्य महालीलो द्रुतं बाणैर्द्विधाऽकरोत् ॥३०॥

तथापि मुष्टिमुद्यम्य महाक्रुद्धो महासुरः । अभ्युद्ययौ महावेगाद् रुद्रं तं तज्जिघांसया ॥३१॥

तावदेवेश्वरेणाशु बाणौघैः स जलन्धरः । अक्लिष्टकर्मकारेण क्रोशमात्रमपाकृतः ॥३२॥

ततो जलन्धरो दैत्यो रुद्रं मत्वा बलाधिकम् । ससर्ज मायां गान्धर्वीमद्भुतां रुद्रमोहिनीम् ॥३३॥

तस्य मायाप्रभावात्तु गन्धर्वाप्सरसां गणाः । आविर्भूता अनेके च रुद्रमोहनहेतवे ॥३४॥

ततो जगुश्च ननृतुर्गन्धर्वाप्सरसां गणाः । तालवेणुमृदङ्गांश्च वादयन्ति स्म चापरे ॥३५॥

तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं गणै रुद्रो विमोहितः । पतितान्यपि शस्त्राणि करेभ्यो न विवेद सः ॥३६॥

एकाग्रीभूतमालोक्य रुद्रं दैत्यो जलन्धरः । कामतः स जगामाशु यत्र गौरी स्थिताऽभवत् ॥३७॥

युद्धे शुम्भ-निशुम्भाख्यौ स्थापयित्वा महाबलौ । दशदोर्दण्डपञ्चास्यस्त्रिनेत्रश्च जटाधरः ॥३८॥

जलन्धर बोला—हे जटाधर ! तुम मेरे साथ युद्ध करो, इन क्षुद्रों को मारने से क्या लाभ है ? यदि तुममें कुछ बल है तो मुझे दिखाओ ॥ २५ ॥

सनत्कुमार बोले—इतना कहकर उस दैत्य ने सत्तर बाणों से अक्लिष्टकर्मा शिव जी पर प्रहार किया ॥ २६ ॥ महादेव जी ने जलन्धर के उन बाणों को अपने तीक्ष्ण बाणों से रास्ते में ही काट दिया ॥ २७ ॥ और सात बाणों से उस दैत्य के घोड़े, पताका, छत्र और धनुष को भी काट दिये । हे मुने ! शङ्कर के लिए यह कोई अद्भुत बात नहीं थी ॥२८॥ जब सिन्धुपुत्र जलन्धर का धनुष छिन्न-भिन्न हो गया तब वह गदा लेकर बड़े क्रोध के साथ शिव जी पर दौड़ा ॥ २९ ॥ हे पराशरपुत्र व्यास ! तब प्रभु ने उसके द्वारा चलायी गयी उस गदा को भी शीघ्र ही दो टुकड़े कर दिये ॥ ३० ॥ अनन्तर वह महा असुर क्रोध में भरकर अपना घूँसा तानकर महादेव को मारने की इच्छा से बड़े वेग से उन पर झपटा ॥ ३१ ॥ इतने में अक्लिष्टकर्मा भगवान् शङ्कर ने अपने बाण-समूहों से उसे एक कोस पीछे ढकेल दिया ॥३२॥ इस प्रकार जब जलन्धर ने जान लिया कि रुद्र अधिक बलवान् हैं तब उसने उनको मोहित करने वाली गान्धर्वी माया का निर्माण किया ॥ ३३ ॥ उस समय माया के प्रभाव से शङ्कर को मोहित करने के लिए अनेक अप्सराओं एवं गन्धर्वों के गण पैदा हो गये ॥ ३४ ॥ और वे गन्धर्व तथा अप्सराओं के गण नाचने-गाने लगे । कुछ ताल, वेणु और मृदङ्ग बजाने लगे ॥ ३५ ॥ इतना बड़ा आश्चर्य देखकर रुद्र अपने गणों के साथ उस रणभूमि में ही मोहित हो गये । उन्हें अपने हाथ से अस्त्रों के गिरने का भी ध्यान न रहा ॥ ३६ ॥ इस प्रकार काम के वश में एकाग्रचित्त रुद्र को देखकर वह दैत्य जलन्धर बड़ी शीघ्रता से गौरी के पास गया ॥३७॥ उसने युद्धभूमि में शुम्भ तथा निशुम्भ को नियुक्त कर दिया और स्वयं दसभुजा,

महावृषभमारूढः सर्वथा रुद्रसन्निभः । आसुर्य्या मायया व्यास सम्बभूव जलन्धरः ॥३९॥
अथ रुद्रं समायान्तमालोक्य भववल्लभा । अभ्याययौ सखीमध्यात्तद्दर्शनपथेऽभवत् ॥४०॥
यावद्ददर्श चार्वङ्गीं पार्वतीं दनुजेश्वरः । तावत् स वीर्यं मुमुचे जडाङ्गश्चाऽभवत्तदा ॥४१॥
अथ ज्ञात्वा तदा गौरी दानवं भयविह्वला । जगामान्तर्हितावेगात् सा तदोत्तरमानसम् ॥४२॥
तामदृश्य ततो दैत्यः क्षणाद् विद्युल्लतामिव । जवेनागात् पुनर्योद्धुं यत्र देवो महेश्वरः ॥४३॥
पार्वत्यपि महाविष्णुं सस्मार मनसा तदा । तावद्ददर्श तं देवं सोपविष्टं समीपगम् ॥४४॥
तं दृष्ट्वा पार्वती विष्णुं जगन्माता शिवप्रिया । प्रसन्नमनसोवाच प्रणमन्तं कृताञ्जलिम् ॥४५॥

पार्वत्युवाच

विष्णो जलन्धरो दैत्यः कृतवान् परमाद्भुतम् । तत्किं न विदितं तेऽस्ति चेष्टितं तस्य दुर्मतेः ॥४६॥
तच्छ्रुत्वा जगदम्बाया वचनं गरुडध्वजः । प्रत्युवाच शिवां नत्वा साञ्जलिर्नम्रकन्धरः ॥४७॥

श्रीभगवानुवाच

भवत्याः कृपया देवि ! तद्वृत्तं विदितं मया । यदाज्ञापय मां मातस्तत्कुर्य्यां त्वदनुज्ञया ॥४८॥

सनत्कुमार उवाच

तच्छ्रुत्वा विष्णुवचनं पुनरप्याह पार्वती । हृषीकेशं जगन्माता धर्मनीतिं सुशिक्षयन् ॥४९॥

पार्वत्युवाच

तेनैव दर्शितः पन्था बुध्यस्व त्वं तथैव हि । तत्स्त्रीपातिव्रतं धर्मं भ्रष्टं कुरु मदाज्ञया ॥५०॥

पाँच मुख, तीन नेत्र तथा मस्तक पर जटा धारण कर लिया । ३८ ॥ वृषभ पर चढ़कर वह अपनी आसुरी माया के प्रभाव से सर्वथा शङ्कर के तुल्य हो गया ॥ ३९ ॥

पार्वती ने जब अपने प्रियतम को आते देखा तो वे शीघ्र ही सखियों के मध्य से उनके सामने आकर उपस्थित हो गयीं ॥ ४० ॥ उस दनुजेश्वर ने ज्योंही पार्वती को अपने सामने देखा, उसी समय उसका वीर्य स्खलित हो गया और वह जड़ हो गया ॥ ४१ ॥ गौरी ने उस दानव को पहचान लिया और बड़े वेग स अन्तर्धान हो कर उत्तर मानस की ओर चली गयीं ॥ ४२ ॥ उस दैत्य ने क्षणमात्र में ही बिजली के समान पार्वती को अन्तर्धान होते देख बड़े वेग से युद्ध करने के लिए शिवजी के पास पुनः आ गया ॥ ४३ ॥ इधर पार्वती ने मन से विष्णु का स्मरण किया । तब तत्क्षण अपने समीप विष्णु को उपस्थित देखा ॥ ४४ ॥ तदनन्तर शिवप्रिया पार्वती हाथ जोड़कर प्रणाम करते विष्णु को देख प्रसन्न हो उनसे कहने लगीं ॥ ४५ ॥

पार्वती बोलीं—हे विष्णो ! जलन्धर दैत्य ने जो परम आश्चर्य का काम किया है क्या आपको उसका पता नहीं है ? ॥ ४६ ॥ तब भगवान् गरुड़ध्वज ने जगदम्बा का वचन सुन हाथ जोड़कर सिर झुका लिया और प्रणाम कर पार्वती से बोले ॥ ४७ ॥

भगवान् बोले—हे देवि ! आप की कृपा से मुझे सारा वृत्तान्त मालूम है । हे माता ! आप मुझे जो आज्ञा दें वह मैं करने को तैयार हूँ ॥ ४८ ॥

सनत्कुमार बोले—तब विष्णु के इस प्रकार के वचन सुन जगन्माता पार्वती उन्हें धर्मनीति सिखाती हुई बोलीं ॥ ४९ ॥

पार्वती बोलीं—उस दैत्य ने जो मार्ग खोल दिया है, अब उसी का अनुसरण करना उचित है । मैं तुम्हें आज्ञा देती हूँ, तुम शीघ्र ही जाकर उसकी स्त्री का पातिव्रत्य भङ्ग करो ॥ ५० ॥

नान्यथा स महादैत्यो भवेद् वध्यो रमेश्वर ! । पातिव्रतसमो नाऽन्यो धर्मोऽस्ति पृथिवीतले ॥५१॥

सनत्कुमार उवाच

इत्यनुज्ञां समाकर्ण्य शिरसाऽऽधाय तां हरिः । छलकर्त्तुं जगामाशु पुनर्जालन्धरं पुरम् ॥५२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलन्धरवधोपाख्याने जलन्धरयुद्धवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

(विष्णु का वृन्दा को छलना और वृन्दा का विष्णु को शाप प्रदान)

व्यास उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ वद त्वं वदतां वर । किमकार्षीद्धरिस्तत्र धर्मं तत्याज सा कथम् ॥ १ ॥

सनत्कुमार उवाच

विष्णुर्जालन्धरं गत्वा दैत्यस्य पुटभेदनम् । पातिव्रत्यस्य भङ्गाय वृन्दायाश्चाकरोन्मतिम् ॥ २ ॥
वृन्दां स दर्शयामास स्वप्नं मायाविनां वरः । स्वयं तन्नगरोद्यानमास्थितोऽद्भुतविग्रहः ॥ ३ ॥
अथ वृन्दा तदा देवी तत्पत्नी निशि सुव्रता । हरेर्मायाप्रभावात्तु दुःस्वप्नं सा ददर्श ह ॥ ४ ॥
स्वप्नमध्ये हि सा विष्णुमायया प्रददर्श ह । भर्त्तारं महिषारूढं तैलाभ्यक्तं दिगम्बरम् ॥ ५ ॥
कृष्णप्रसूनभूषाढ्यं क्रव्यादगणसेवितम् । दक्षिणाशां गतं मुण्डं तमसा च वृतं तदा ॥ ६ ॥
स्वपुरं सागरे मग्नं सहसैवात्मना सह । इत्यादि बहुदुःस्वप्नान्निशान्ते सा ददर्श ह ॥ ७ ॥
ततः प्रबुध्य सा बाला तं स्वप्नं स्वं विचिन्वती । ददर्शोदितमादित्यं सच्छिद्रं निःप्रभं मुहुः ॥ ८ ॥

हे लक्ष्मीपते ! वह दैत्य और किसी प्रकार से नहीं मारा जा सकता, क्योंकि पातिव्रत्य के समान अन्य कोई भी धर्म इस पृथ्वी तल पर नहीं है ॥ ५१ ॥

सनत्कुमार बोले—पार्वती की आज्ञा सुन कर विष्णु ने उसे शिरोधार्य कर लिया और छल करने के लिए वे जलन्धर की नगरी की ओर चले ॥ ५२ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड में जलन्धरवधोपाख्यान में जलन्धरयुद्ध वर्णन नामक बाइसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥

*

व्यास बोले—हे सनत्कुमार ! हे सर्वज्ञ ! आप वक्ताओं में सर्वश्रेष्ठ हो, अब आप बताइए कि भगवान् ने जलन्धर के नगर में जाकर क्या किया ? और उसकी पत्नी का पातिव्रत्य किस प्रकार नष्ट किया ? ॥ १ ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास जी ! विष्णु जलन्धर के पुर में गुप्त रूप से जाकर वृन्दा का पातिव्रत्य भङ्ग का विचार करने लगे ॥ २ ॥ तदनन्तर माया करने वालों में श्रेष्ठ श्री विष्णु ने वृन्दा को स्वप्न दिया और स्वयं नगर के उद्यान में अद्भुत रूप धारण कर निवास करने लगे ॥ ३ ॥ साध्वी जलन्धर-पत्नी वृन्दा ने विष्णु की माया के प्रभाव से उसी समय दुःस्वप्न देखा कि उसका पति तेल लगाये हुए नङ्ग शरीर महिष पर चढ़ा हुआ है ॥ ४-५ ॥ उसके गले में काले पुष्प की माला शोभित हो रही है, तथा चारों ओर मांसाहारी जन्तु उसे घेरे हुए हैं। उसका शिर मुण्डित है तथा घोर अन्धकार मे वह दक्षिण दिशा की ओर जा रहा है ॥ ६ ॥ फिर वृन्दा ने देखा कि उसका सारा पुर उसी के साथ सहसा समुद्र में डूबता जा रहा है। इसी प्रकार के और भी दुःस्वप्न उसने रात के अन्त में देखा ॥ ७ ॥ जब वह प्रातःकाल उठी तो अपने उस दुःस्वप्न पर विचार करने लगी। अनन्तर उसने उदय होते हुए सूर्य को

तदनिष्टमिदं ज्ञात्वा रुदन्ती भयविह्वला । कुत्रचिन्नाप सा शर्म गोपुराट्टालभूमिषु ॥ ९ ॥
ततः सखीद्वययुता नगरोद्यानमागमत् । तत्रापि सा गता बाला न प्राप कुत्रचित् सुखम् ॥१०॥
ततो जलन्धरस्त्री सा निर्विण्णोद्विग्नमानसा । वनाद्वनान्तरं याता नैव वेदात्मना तदा ॥११॥
भ्रमती सा ततो बाला ददर्शातीव भीषणौ । राक्षसौ सिंहवदनौ दृष्ट्वा दशनभासुरौ ॥१२॥
तौ दृष्ट्वा विह्वलातीव पलायनपरा तदा । ददर्श तापसं शान्तं सशिष्यं मौनमास्थितम् ॥१३॥
ततस्तत्कण्ठमासाद्य निजां बाहुलतां भयात् । मुने ! मां रक्ष शरणमागतास्मीत्यभाषत ॥१४॥
मुनिस्तां विह्वलां दृष्ट्वा राक्षसानुगतां तदा । हुङ्कारेणैव तौ घोरौ चकार विमुखौ द्रुतम् ॥१५॥
तद्धुङ्कारभयत्रस्तौ दृष्ट्वा तौ विमुखौ गतौ । विस्मितातीव दैत्येन्द्रपत्नी साऽभून्मुने ! हृदि ॥१६॥
ततः सा मुनिनाथं तं भयान्मुक्ता कृताञ्जलिः । प्रणम्य दण्डवद् भूमौ वृन्दा वचनमब्रवीत् ॥१७॥

वृन्दोवाच

मुनिनाथ दयासिन्धो परपीडानिवारक ! । रक्षिताऽहं त्वया घोराद् भयादस्मात् खलोद्भवात् ॥१८॥
समर्थः सर्वथा त्वं हि सर्वज्ञोऽपि कृपानिधे ! । किञ्चिद् विज्ञप्तुमिच्छामि कृपया तन्निशामय ॥१९॥
जलन्धरो हि मद्भर्त्ता रुद्रं योद्धुं गतः प्रभो ! । स तत्रास्ते कथं युद्धे तन्मे कथय सुव्रत ! ॥२०॥

सनत्कुमार उवाच

मुनिस्तद्वाक्यमाकर्ण्य मौनं कपटमास्थितः । कर्त्तुं स्वार्थं विधानज्ञः कृपयोदूर्ध्वमवैक्षत ॥२१॥
तावत् कपीशावायातौ तं प्रणम्याग्रतः स्थितौ । ततस्तद्भ्रूलतासंज्ञानियुक्तौ गगनं गतौ ॥२२॥
नीत्वा क्षणार्द्धमागत्य पुनस्तस्याग्रतः स्थितौ । तस्यैव कं कबन्धं च हस्तावास्तां मुनीश्वर ! ॥२३॥

देखा, जो सर्वथा कान्तिहीन एवं छिद्रयुक्त था ॥ ८ ॥ इन सब चिह्नों से अनिष्ट की आशङ्का करती हुई वह वृन्दा भयभीत हो रोने लगी । उसे गोपुर, अटारी एवं भूमि पर कहीं भी शान्ति न प्राप्त हुई ॥ ९ ॥ वह अपने दो सखियों को साथ लेकर नगर के उद्यान में मन बहलाने के लिए आयी किन्तु उसे वहाँ भी शान्ति न प्राप्त हुई ॥ १० ॥ वह जलन्धर-पत्नी वृन्दा व्याकुल होकर वन-वन भटकने लगी, उसे कुछ भी ज्ञान न रहा ॥ ११ ॥ उसने उस वन में दो राक्षसों को देखा, जिनका मुख सिंह के समान अत्यन्त भयानक था और दाँत अत्यन्त विकट थे ॥ १२ ॥ उन्हें देखकर वह भागना ही चाहती थी कि इतने में उसे एक शान्त मौनी तपस्वी दिखाई पड़ा, जिसके साथ दो शिष्य थे ॥ १३ ॥ भयभीत हुई उस वृन्दा ने अपनी बाहुलता उस तपस्वी के गले में डाल दी और हृदय में लग गयी तथा हे मुने ! मेरी रक्षा करो, मैं आपके शरण में हूँ, ऐसा कहकर ऊँचे स्वर में रोने लगी ॥ १४ ॥ तब मुनि ने उसे उन राक्षसों के भय से व्याकुल देख हुङ्कार किया, जिससे वे राक्षस भाग गये ॥ १५ ॥ उस तपस्वी के हुङ्कार से राक्षसों को भागते देखकर वह दैत्येन्द्रपत्नी अपने मन में विस्मित हो गयी ॥ १६ ॥ फिर तो भय से मुक्त हुई उस वृन्दा ने उन मुनिनाथ को हाथ जोड़कर दण्डवत् प्रणाम किया और बोली ॥ १७ ॥

वृन्दा बोली—हे दयासिन्धो ! हे परपीड़ा निवारक ! हे मुनिनाथ ! आपने इन दुष्ट राक्षसों के घोर भय से मेरी रक्षा की ॥ १८ ॥ हे कृपानिधे ! आप सर्वज्ञ तथा सर्वथा समर्थ हो, अतः मैं आप से कुछ पूछना चाहती हूँ, आप कृपा कर सुनिए ॥ १९ ॥ हे सुव्रत ! मेरे पति जलन्धर रुद्र से युद्ध करने के लिए गये हुए हैं । हे प्रभो ! वहाँ वे किस प्रकार हैं ? यह सब बात मुझसे कहिए ॥ २० ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास जी ! मुनि ने वृन्दा के वचन सुनकर कपटपूर्वक मौन धारण कर लिया, और स्वार्थ-साधन करने की इच्छा से ऊपर की ओर देखने लगे ॥ २१ ॥ उसी समय वहाँ दो वानर आये और उन मुनीश्वर को प्रणाम कर उनके आगे स्थित हो गये । उनकी भृकुटी का इशारा पाकर वे दोनों आकाश में चले गये ॥ २२ ॥ और एक ही क्षण के बाद जलन्धर का शिर विहीन कबन्ध और हाथ लाकर

शिरः कबन्धं हस्तौ तौ दृष्ट्वाऽब्धितनयस्य सा । पपात मूर्च्छिता भूमौ भर्तृव्यसनदुःखिता ॥२४॥

वृन्दोवाच

यः पुरा सुखसंवादैर्विनोदयसि मां प्रभो ! । स कथं न वदस्यद्य वल्लभां मामनागसम् ॥२५॥

येन देवाः सगन्धर्वा निर्जिता विष्णुना सह । कथं स तापसेनाद्य त्रैलोक्यविजयी हतः ॥२६॥

नाङ्गीकृतं हि मे वाक्यं रुद्रतत्त्वमजानता । परं ब्रह्म शिवश्चेति वदन्त्या दैत्यसत्तम ! ॥२७॥

ततस्त्वं हि मया ज्ञातस्तव सेवाप्रभावतः । गर्वितेन त्वया नैव कुसङ्गवशगेन हि ॥२८॥

इत्थं प्रभाष्य बहुधा स्वधर्मस्था च तत्प्रिया । विललाप विचित्रं सा हृदयेन विदूयता ॥२९॥

ततः सा धैर्यमालम्ब्य दुःखोच्छ्वासान् विमुञ्चती । उवाच मुनिवर्यं तं सुप्रणम्य कृताञ्जलिः ॥३०॥

वृन्दोवाच

कृपानिधे मुनिश्रेष्ठ परोपकरणादर ! । मयि कृत्वा कृपां साधो जीवयैनं मम प्रभुम् ॥३१॥

यत्त्वमस्य पुनः शक्तो जीवनाय मतो मम । अतः सञ्जीवयैनं मे प्राणनाथं मुनीश्वर ! ॥३२॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा दैत्यपत्नी सा पातिव्रत्यपरायणा । पादयोः पतिता तस्य दुःखश्वासान् विमुञ्चती ॥३३॥

मुनिरुवाच

नाऽयं जीवयितुं शक्तो रुद्रेण निहतो युधि । रुद्रेण निहता युद्धे न जीवन्ति कदाचन ॥३४॥

तथापि कृपयाविष्ट एनं सञ्जीवयाम्यहम् । रक्ष्याः शरणाश्चेति जानन् धर्मं सनातनम् ॥३५॥

तपस्वी के आगे खड़े हो गये ॥ २३ ॥ वृन्दा अपने पति जलन्धर के शिर, कबन्ध एवं हाथों को पहचान कर पति की मृत्यु से व्याकुल हो मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी और विलाप करने लगी ॥२४॥

वृन्दा बोली—हे प्रभो ! जो आप सुख देने वाले मधुर वचनों से मेरा विनोद करते थे वही आप आज निरपराध मुझ अपनी वल्लभा से क्यों नहीं बोलते ? ॥ २५ ॥ जिसने विष्णु तथा गन्धर्वों के सहित समस्त देवताओं को जीत लिया था, अब उसी त्रैलोक्य-विजयी वीर को एक सामान्य तपस्वी ने किस प्रकार मार डाला ॥ २६ ॥ हे दैत्यसत्तम ! रुद्र-तत्त्व को न जानने के कारण ही तुमने मेरी बात नहीं मानी । मैंने कहा था कि शिव कोई अन्य नहीं, वे ब्रह्म के अवतार हैं ॥ २७ ॥ मैंने तो तुम्हारी सेवा के प्रभाव से उस तत्त्व को जान लिया था किन्तु अहङ्कार के वशीभूत होने के कारण तथा कुसङ्ग के दोष से तुम उन्हें नहीं जान सके ॥ २८ ॥ इस प्रकार अपने पातिव्रत्य धर्म में स्थिर रहने वाली जलन्धरपत्नी वृन्दा अत्यन्त दुःखी होकर नाना प्रकार का विलाप करने लगी ॥ २९ ॥ फिर वह धैर्य धारण कर दुःख से उच्छ्वास लेती हुई हाथ जोड़ कर मुनिवर से बोली ॥ ३० ॥

वृन्दा बोली—हे कृपानिधे ! हे परोपकारपरायण ! हे मुनिश्रेष्ठ ! आप मेरे ऊपर कृपा कर मेरे पति को जीवन दान दीजिए ॥३१॥ मैं जानती हूँ कि आप इन्हें जीवित करने में सर्वथा समर्थ हैं । अतः हे मुनीश्वर ! मेरे इन प्राणनाथ को जीवित करें ॥ ३२ ॥

सनत्कुमार बोले—पातिव्रत्यपरायण दैत्यपत्नी वृन्दा इतना कहकर दुःख के उच्छ्वास छोड़ती हुई मुनीश्वर के चरणों पर गिर पड़ी ॥ ३३ ॥

मुनीश्वर बोले—तुम्हारा पति शिवजी के द्वारा युद्ध में मारा गया है । भगवान् शङ्कर के द्वारा मारा गया व्यक्ति जीवित नहीं किया जा सकता ॥३४॥ तो भी मैं कृपापूर्वक इसे जिलाये देता हूँ, क्योंकि शरणागत की रक्षा करना सनातन धर्म है, जिसे मैं जानता हूँ ॥ ३५ ॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा स मुनिस्तस्या जीवयित्वा पतिं मुने ! । अन्तर्दधे ततो विष्णुः सर्वमायाविनां वरः ॥३६॥
द्रुतं स जीवितस्तेनोत्थितः सागरनन्दनः । वृन्दामालिङ्ग्य तद्वक्त्रं चुचुम्ब प्रीतमानसः ॥३७॥
अथ वृन्दाऽपि भर्तारं दृष्ट्वा हर्षितमानसा । जहौ शोकं च निखिलं स्वप्नवद्धृद्यमन्यत ॥३८॥
अथ प्रसन्नहृदया सा हि सञ्जातहृच्छया । रेमे तद्वनमध्यस्था तद्युक्ता बहुवासरान् ॥३९॥
कदाचित् सुरतस्यान्ते दृष्ट्वा विष्णुं तमेव हि । निर्भर्त्स्यं क्रोधसंयुक्ता वृन्दा वचनमब्रवीत् ॥४०॥

वृन्दोवाच

धिक् तदेवं हरे शीलं परदाराभिगामिनः । ज्ञातोऽसि त्वं मया सम्यङ्मायी प्रत्यक्षतापसः ॥४१॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा क्रोधमापन्ना दर्शयन्ती स्वतेजसम् । शशाप केशवं व्यास ! पातिव्रत्यरता च सा ॥४२॥
रे महाधम दैत्यारे परधर्मविदूषक ! । गृह्णीष्व शठ ! मद्दत्तं शापं सर्वविषोल्बणम् ॥४३॥
यौ त्वया मायया ख्यातौ स्वकीयौ दर्शितौ मम । तावेव राक्षसौ भूत्वा भार्यां तव हरिष्यतः ॥४४॥
त्वं चापि भार्यादुःखार्तो वने कपिसहायवान् । भ्रम सर्पेश्वरेणायं यस्ते शिष्यत्वमागतः ॥४५॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा सा तदा वृन्दा प्रविशद्धव्यवाहनम् । विष्णुना वार्यमाणाऽपि तस्मिंस्तासक्तचेतसा ॥४६॥
तस्मिन्नवसरे देवा ब्रह्माद्या निखिला मुने ! । आगताः खे समं दारैः सद्गतिं वै दिदृक्षवः ॥४७॥
अथ दैत्येन्द्रपत्न्यास्तु तज्ज्योतिः परमं महत् । पश्यतां सर्वदेवानामलोकमगमद् द्रुतम् ॥४८॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने ! इतना कहने के अनन्तर मायावियों में श्रेष्ठ विष्णु उसके पति को जीवित कर अन्तर्धान हो गये ॥ ३६ ॥ इस प्रकार जीवित होकर सागरपुत्र जलन्धर उठ बैठा। और प्रसन्न हो वृन्दा का आलिङ्गन कर उसका मुख चुम्बन करने लगा ॥ ३७ ॥ इधर अपने पति को जीवित देख वृन्दा भी अत्यन्त हर्षित हो उठी। उसका सब शोक जाता रहा। उसे अपने पति के मरने की बात स्वप्न के समान झूठ जान पड़ते लगी ॥ ३८ ॥ फिर तो प्रसन्न मन होकर वह भी काम के वशीभूत हो गयी और उसी वन में बहुत काल तक रमण करने लगी ॥ ३९ ॥ एक दिन उसने सुरत-सम्भोग के अन्त में विष्णु को देख लिया और क्रोधित होकर उन्हें फटकारती हुई बोली— ॥ ४० ॥

वृन्दा बोली—हे विष्णो ! तुम्हारे परदाराभिगमन वाले स्वभाव को धिक्कार है। अब मैंने जान लिया कि माया से तपस्वी रूप धारण कर मुझे ठगने वाले तुम्हीं थे ॥ ४१ ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! पातिव्रत्य धर्म में निरत रहने वाली उस वृन्दा ने इस प्रकार क्रुद्ध होकर अपना तेज प्रकट करते हुए विष्णु को शाप दिया ॥ ४२ ॥ हे दूसरों के धर्म को दूषित करने वाले ! हे अधम ! हे दैत्यशत्रो ! हे शठ ! सर्प के समान अत्यन्त तीक्ष्ण मेरे शाप को तुम ग्रहण करो ॥ ४३ ॥ तुमने जो दो राक्षस माया से मुझे दिखाये थे वे ही दोनों राक्षस तुम्हारी भार्या का अपहरण करेंगे ॥४४॥ तुम भी भार्या के वियोग से दुःखी होकर वन-वन भटकोगे। यह सर्पेश्वर शेष जिन्हें तुमने अपना शिष्य बनाया है ये भी तुम्हारे साथ रहेंगे। तथा वानरगण तुम्हारी सहायता करेंगे ॥ ४५ ॥

सनत्कुमार बोले—इतना कहने के उपरान्त वह पतिव्रता वृन्दा अग्नि में प्रवेश कर गयी। यद्यपि विष्णु उसे ऐसा करने से रोक रहे थे ॥४६॥ हे मुने ! उसी समय ब्रह्मा आदि समस्त देवगण अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ उसकी सद्गति देखने के लिए आकाश में उपस्थित हो गये ॥ ४७ ॥ फिर तो उस दैत्य-

शिवातनौ विलीनं तद्धि वृन्दातेजो बभूव ह । आसीज्जयजयारावः खस्थितामरपङ्क्तिषु ॥४९॥
एवं वृन्दा महाराज्ञी कालनेमिसुतोत्तमा । पातिव्रत्यप्रभावाच्च मुक्तिं प्राप परां मुने ! ॥५०॥
ततो हरिस्तामनुसंस्मरन् मुहुर्वृन्दाचिताभस्मरजोऽवगुण्ठितः ।
तत्रैव तस्थौ सुरसिद्धसङ्घकैः प्रबोध्यमानोऽपि ययौ न शान्तिम् ॥५१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलन्धरवधोपाख्याने वृन्दापतिव्रतभङ्गदेहत्यागवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

(शिव के द्वारा जलन्धर का वध)

व्यास उवाच

विधेः श्रेष्ठसुत प्राज्ञ ! कथेयं श्राविताऽद्भुता । ततश्च किमभूदाजौ कथं दैत्यो हतो वद ! ॥ १ ॥

सनत्कुमार उवाच

अदृश्य गिरिजां तत्र दैत्येन्द्रे रणमागते । गान्धर्वे च विलीने हि चैतन्योऽभूद् वृषध्वजः॥ २ ॥
अन्तर्धानगतां मायां दृष्ट्वा बुद्धो हि शङ्करः । चुक्रोधातीव संहारी लौकिकीं गतिमाश्रितः ॥ ३ ॥
ततः शिवो विस्मितमानसः पुनर्जगाम युद्धाय जलन्धरं रुषा ।
स चापि दैत्यः पुनरागतं शिवं दृष्ट्वा शरौघैः समवाकिरद्रणे ॥ ४ ॥
क्षिप्तं प्रभुस्तं शरजालमुग्रं जलन्धरेणातिबलीयसा हरः ।
द्रुतं प्रचिच्छेद शरैर्वरैर्निजैर्न चित्रमत्र त्रिभवप्रहन्तुः ॥ ५ ॥

पत्नी की महान् ज्योति सब देवताओं के देखते-देखते अदृश्य हो गयी ॥ ४८ ॥ वृन्दा का वह तेज पार्वती के शरीर में लीन हो गया । आकाशस्थ समस्त देवगण जय-जयकार का शब्द करने लगे ॥४९॥ इस प्रकार कालनेमि की कन्या महारानी वृन्दा ने अपने पातिव्रत्य धर्म के प्रभाव से मुक्ति को प्राप्त कर लिया ॥५०॥ विष्णु ने वृन्दा का स्मरण करते हुए उसकी चिता का भस्म अपने शरीर में लपेट लिया और वहीं स्थित हो गये । यद्यपि देवगण उन्हें समझा रहे थे किन्तु तब भी उन्हें शान्ति न प्राप्त हुई ॥ ५१ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड में जलन्धर-वधोपाख्यान में वृन्दापातिव्रत्यभङ्ग नामक तेइसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥

*

व्यास जी ने कहा—हे महाप्राज्ञ ! हे विधे ! श्रेष्ठ सुत ! आपने यह अद्भुत कथा हमें सुनायी । अब यह कहिए कि इसके अनन्तर युद्ध में क्या हुआ ? और वह राक्षस किस प्रकार मारा गया ? ॥ १ ॥

सनत्कुमार बोले—गिरिजा के अदृश्य हो जाने पर दैत्येन्द्र स्वयं रण में आकर पुनः उपस्थित हो गया । इधर गान्धर्वी माया के विलीन होने पर शिवजी भी चेतना को प्राप्त हुए ॥ २ ॥ इस प्रकार माया के तिरोहित हो जाने से जब भगवान् शङ्कर प्रबुद्ध हो गये तब लौकिकी गति का आश्रय लेकर वे क्रोध से भर उठे ॥ ३ ॥ फिर आश्चर्य युक्त हो युद्ध करन के लिए जलन्धर के पास गये । जलन्धर भी शङ्कर को युद्ध के मैदान में उपस्थित देखकर बाणो की वर्षा करने लगा ॥ ४ ॥ शङ्कर ने अत्यन्त बलशाली उस जलन्धर के द्वारा छोड़े गये बाणों को बड़ी शीघ्रता से काट कर गिरा दिया । त्रिभुवन संहारकर्त्ता शिव के लिए यह कोई अद्भुत बात नहीं हुई ॥ ५ ॥

ततो जलन्धरो दृष्ट्वा रुद्रमद्भुतविक्रमम् । चकार मायया गौरीं त्र्यम्बकं मोहयन्निव ॥ ६ ॥
रथोपरि गतां बद्धां रुदन्तीं पार्वतीं शिवः । निशुम्भ-शुम्भदैत्यैश्च वध्यमानां ददर्श सः ॥ ७ ॥
गौरीं तथाविधां दृष्ट्वा लौकिकीं दर्शयन् गतिम् । बभूव प्राकृत इव शिवोऽप्युद्विग्नमानसः ॥ ८ ॥
अवाङ्मुखस्थितस्तूष्णीं नानालीलाविशारदः । शिथिलाङ्गो विषण्णात्मा विस्मृत्य स्वपराक्रमम् ॥ ९ ॥
ततो जलन्धरो वेगात् त्रिभिर्विव्याध सायकैः । आपुङ्खमग्नैस्तं रुद्रं शिरस्युरसि चोदरे ॥ १० ॥
ततो रुद्रो महालीलो ज्ञानतत्त्वः क्षणात् प्रभुः । रौद्ररूपधरो जातो ज्वालामालातिभीषणः ॥ ११ ॥
तस्यातीव महारौद्ररूपं दृष्ट्वा महासुराः । न शेकुः प्रमुखे स्थातुं भेजिरे ते दिशो दश ॥ १२ ॥
निशुम्भ-शुम्भावपि यौ विख्यातौ वीरसत्तमौ । अपि तौ शेकतुर्नैव रणे स्थातुं मुनीश्वर ! ॥ १३ ॥
जलन्धरकृता मायान्तर्हिताऽभूच्च तत्क्षणम् । हाहाकारो महानासीत् सङ्ग्रामे सर्वतोमुखे ॥ १४ ॥
ततः शापं ददौ रुद्रस्तयोः शुम्भ-निशुम्भयोः । पलायमानौ तौ दृष्ट्वा धिक्कृत्य क्रोधसंयुतः ॥ १५ ॥

रुद्र उवाच

युवां दुष्टावतिखलावपराधकरौ मम । पार्वतीदण्डदातारौ रणादस्मात् पराङ्मुखौ ॥ १६ ॥
पराङ्मुखो न हन्तव्य इति वध्यौ न मे युवाम् । मम युद्धादतिक्रान्तौ गौर्य्या वध्यौ भविष्यतः ॥ १७ ॥
एवं वदति गौरीशे सिन्धुपुत्रो जलन्धरः । चुक्रोधातीव रुद्राय ज्वलज्ज्वलनसन्निभः ॥ १८ ॥
रुद्रे रणे महावेगाद्ववर्ष निशिताञ्छरान् । बाणान्धकारसञ्छन्नं तथा भूमितलं ह्यभूत् ॥ १९ ॥
यावद्रुद्रः प्रचिच्छेद तस्य बाणगणान् द्रुतम् । तावत् सपरिघेणाशु जघान वृषभे बली ॥ २० ॥

इस प्रकार शङ्कर के अद्भुत पराक्रम को देखकर जलन्धर ने उन्हें मोहित करने के लिए माया की पार्वती बनायी ॥ ६ ॥ शिवजी ने रथ में बँधी विलाप करती हुई तथा शुम्भ एवं निशुम्भ के द्वारा मारी जाती हुई अपनी परम प्रेयसी पार्वती को जब देखा तो लौकिक गति प्रदर्शित करते हुए सामान्य जनों की तरह वे अत्यन्त व्याकुल हो उठे ॥७-८॥ उस समय अनेक प्रकार की लीलाओं में विशारद शङ्कर जी के अङ्ग शिथिल हो गये, उनका पराक्रम जाता रहा। उन्होंने दुःखी होकर अपना मुख नीचे कर लिया तथा मौन हो गये ॥ ९ ॥ तदनन्तर जलन्धर ने तीन बाण चलाकर शिव जी पर प्रहार किया। वे बाण शिवजी के शिर, हृदय तथा उदर प्रदेश में जाकर धँस गये ॥ १० ॥

तब महालीला करने वाले भगवान् रुद्र ने ज्ञानतत्त्व से अग्नि-ज्वाला के समूह से युक्त अत्यन्त भयङ्कर रौद्र रूप धारण कर लिया ॥ ११ ॥ उनके इस महारौद्र रूप को देखकर दैत्यगण सम्मुख खड़े रहने में असमर्थ हो गये और दशों दिशाओं में भागने लगे ॥ १२ ॥ हे मुनीश्वर ! उस समय वीरों में विख्यात महावीर शुम्भ एवं निशुम्भ भी उनके सामने न टिक सके और वीरों की तो बात ही क्या? ॥१३॥ उस समय जलन्धर की माया भी शिव के तेज के सामने क्षणमात्र में नष्ट हो गयी। उस भयङ्कर महासंग्राम में चारों ओर से हाहाकार होने लगा ॥ १४ ॥ युद्ध में भागते हुए शुम्भ-निशुम्भ को देखकर क्रुद्ध हुए रुद्र ने उन्हें धिक्कारते हुए इस प्रकार शाप दिया ॥ १५ ॥

रुद्र बोले—तुम दोनों ही दैत्य महान् दुष्ट हो, तुम लोगों ने पार्वती को दण्ड देकर मेरा महान् अपकार किया है, और अब भी युद्ध देखकर भाग रहे हो ॥ १६ ॥ युद्ध से पलायित होने के कारण मैं तुम लोगों का वध तो नहीं करता, पर गौरी तुम लोगों को कदापि न छोड़ेगी। वह तुम लोगों का वध अवश्य करेगी ॥ १७ ॥ अभी शङ्कर जी यह बात कह ही रहे थे कि समुद्रपुत्र जलन्धर क्रोध से अग्नि के समान प्रज्वलित हो उठा ॥ १८ ॥ फिर तो बड़े वेग से उसने शिवजी पर बाणों की वर्षा करना प्रारम्भ कर दिया, जिससे पृथ्वीमण्डल अन्धकार से पूर्ण हो गया ॥ १९ ॥ अभी रुद्र उसके बाणों के काटने में

वृषस्तेन प्रहारेण पराधृत्तो रणाङ्गणात् । रुद्रेण कृष्यमाणोऽपि न तस्थौ रणभूमिषु ॥२१॥
अथ लोके महारुद्रः स्वीयं तेजोऽतिदुःसहम् । दर्शयामास सर्वस्मै सत्यमेतन्मुनीश्वर ! ॥२२॥
ततः परमसङ्क्रुद्धो रुद्रो रौद्रवपुर्धरः । प्रलयानलवद्घोरो बभूव सहसा प्रभुः ॥२३॥
दृष्ट्वा पुरःस्थितं दैत्यं मेघकूटमिव स्थितम् । अवध्यत्वमपि श्रुत्वाऽप्यन्यैरभ्युद्यतोऽभवत् ॥२४॥
ब्रह्मणो वचनं रक्षन्रक्षको भगतां प्रभुः । हृदाऽनुग्रहमातन्वंस्तद्वधाय मनोदधत् ॥२५॥
कोपं कृत्वा परं शूली पादाङ्गुष्ठेन लीलया । महाम्भसि चकाराशु रथाङ्गं रौद्रमद्भुतम् ॥२६॥

कृत्वाऽर्णवाम्भसि शितं भगवान्रथाङ्गं स्मृत्वा जगत्त्रयमनेन हतं पुरारिः ।
दक्षान्धकान्तकपुरत्रययज्ञहन्ता लोकत्रयान्तककरः प्रहसन्नुवाच ॥ २७ ॥

महारुद्र उवाच

पादेन निर्मितं चक्रं जलन्धर ! महाम्भसि । बलवान् यदि चोद्धर्तुं तिष्ठ योद्धुं न चान्यथा ॥२८॥

सनत्कुमार उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधेनादीप्तलोचनः । प्रदहन्निव चक्षुर्भ्यां प्राहालोक्य स शङ्करम् ॥२९॥

जलन्धर उवाच

रेखामुद्धृत्य हत्वा च सगणं त्वां हि शङ्कर ! । हत्वा लोकान् सुरैः सार्द्धं स्वभागं गरुडो यथा ॥३०॥
हन्तुं चराचरं सर्वं समर्थोऽहं सवासवम् । को महेश्वर मद्बाणैरभेद्यो भुवनत्रये ॥३१॥
बालभावेन भगवांस्तपसैव विनिर्जितः । ब्रह्मा बलिष्ठः स्थाने मे मुनिभिः सुरपुङ्गवैः ॥३२॥

लगे ही हुए थे कि इतने में ही उसने परिघ से वृषभ पर प्रहार किया ॥ २० ॥ उस प्रहार से आहत हुआ वृषभ रणभूमि से पीछे की ओर हटने लगा। शङ्कर जी के द्वारा खींचने पर भी वह युद्धभूमि में स्थित न रह सका ॥ २१ ॥ हे मुनीश्वर ! उस समय महारुद्र ने अपना दुःसह पराक्रम लोगों को दिखाया, यह सत्य है ॥२२॥ वे दैत्य के ऊपर क्रोध कर प्रलय काल की अग्नि के समान अत्यन्त भयङ्कर हो गये ॥२३॥ अपने आगे मेरु-शृङ्ग के समान अचल हुए उस दैत्य को देखकर तथा उसे दूसरे के द्वारा अवध्य जान कर वे स्वयं उस दैत्य को मारने के लिए उद्यत हो गये ॥ २४ ॥

जगत् की रक्षा करने वाले उन महाप्रभु ने ब्रह्मा के वचन की मर्यादा रखते हुए हृदय में दया का भाव रख कर भी उस दैत्येन्द्र का वध उचित समझा ॥ २५ ॥ उस समय त्रिशूलधारी भगवान् शङ्कर ने समुद्र में अपने पैर के अँगूठे से महा भयानक चक्र का निर्माण किया ॥ २६ ॥ उन्होंने उस महा समुद्र में अत्यन्त जाज्वल्यमान चक्र का जब निर्माण किया तब सोचने लगे, निश्चय ही इससे तीनों लोकों का वध किया जा सकता है। जलन्धर की बात ही क्या ? ऐसा विचार कर दक्ष-यज्ञ, अन्धक एवं त्रिपुरासुर का विनाश करने वाले हँसते हुए शङ्कर जी बोले ॥ २७ ॥

महारुद्र बोले—हे जलन्धर ! मैंने समुद्र में अपने पैर के अँगूठे से इस चक्र का निर्माण किया है। यदि तुम बलवान् हो तो इस चक्र को पानी के बाहर कर दो तब तो मुझसे युद्ध करो अन्यथा रणभूमि से भाग जाओ ॥ २८ ॥

सनत्कुमार बोले—शङ्कर जी के वचन सुनते ही जलन्धर की आँखें क्रोध से जलने लगीं और वह अपने क्रोध-भरे नेत्रों से शङ्कर को जलाता हुआ बोला ॥ २९ ॥

जलन्धर बोला—हे शङ्कर ! मैं रेखा के समान इस चक्र सुदर्शन को उठाकर गणों के सहित तुम्हारा एवं देवगणों के सहित समस्त लोकों का वध कर गरुड़ के समान अपना भाग ग्रहण करूँगा ॥ ३० ॥ हे महेश्वर ! मैं इन्द्र सहित सारे लोकों का नाश करने में समर्थ हूँ, भला इस त्रिलोकी में ऐसा कौन है जिसे मैं अपने बाणों के द्वारा भेदन नहीं कर सकता ॥ ३१ ॥ मैंने अपने बाल्यावस्था में ही तपस्या के प्रभाव

दग्धं क्षणेन सकलं त्रैलोक्यं सचराचरम् । तपसा किं त्वया रुद्र ! निर्जितो भगवानपि ॥३३॥
इन्द्रा-ऽग्नि-यम-वित्तेश-वायु-वारीश्वरादयः । न सेहिरे यथा नागा गन्धं पक्षिपतेरिव ॥३४॥
न लब्धं दिवि भूमौ च वाहनं मम शङ्कर ! । समस्तान्-पर्वतान् प्राप्य धर्षिताश्च गणेश्वराः ॥३५॥
गिरीन्द्रो मन्दरः श्रीमान्नीलो मेरुः सुशोभनः । धर्षितो बाहुदण्डेन कण्ड्वा उत्सर्पणाय मे ॥३६॥
गङ्गा निरुद्धा बाहुभ्यां लीलार्थं हिमवद्‌गिरौ । अरीणां मम भृत्यैश्च जयो लब्धो दिवौकसाम् ॥३७॥
वडवाया मुखं बद्धं गृहीत्वा तां करेण तु । तत्क्षणादेव सकलमेकार्णवमभूत्तदा ॥३८॥
ऐरावतादयो नागाः क्षिप्ताः सिन्धुजलोपरि । सरथो भगवानिन्द्रः क्षिप्तश्च शतयोजनम् ॥३९॥
गरुडोऽपि मया बद्धो नागपाशेन विष्णुना । उर्वश्याद्या मयानीता नार्यः कारागृहान्तरम् ॥४०॥
मां न जानासि रुद्र त्वं त्रैलोक्यजयकारिणम् । जलन्धरं महादैत्यं सिन्धुपुत्रं महाबलम् ॥४१॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वाऽथ महादेवं तदा वारिधिनन्दनः । न चचाल न सस्मार निहतान् दानवान् युधि ॥४२॥
दुर्मदेनाविनीतेन दोर्भ्यामास्फोटय दोर्बलात् । तिरस्कृतो महादेवो वचनैः कटुकाक्षरैः ॥४३॥
तच्छ्रुत्वा दैत्यवचनममङ्गलमतीरितम् । जहास महादेवः परमं क्रोधमादधे ॥४४॥
सुदर्शनाख्यं यच्चक्रं पादाङ्गुष्ठविनिर्मितम् । जग्राह तत्करे रुद्रस्तेन हन्तुं समुद्यतः ॥४५॥

से अत्यन्त बलशाली ब्रह्मा को भी जीत लिया है और वे मुनियों एवं देवगणों के साथ मेरे स्थान पर निवास करते हैं ॥ ३२ ॥ मैंने चराचरात्मक त्रिलोकी को क्षण मात्र में जला दिया, बहुत क्या मैंने अपनी तपस्या के बल से भगवान् विष्णु को भी जीत लिया है फिर मैं तुम्हें क्या समझता हूँ ॥ ३३ ॥ इन्द्र, अग्नि, यम, कुबेर, वायु, वरुण आदि दिक्पाल भी मेरा पराक्रम सहन करने में असमर्थ हैं। जिस प्रकार गरुड़ के गन्ध को भी सर्प सहन नहीं कर सकते ॥ ३४ ॥

हे शङ्कर ! इस स्वर्ग तथा भूलोक में मेरे सामने कोई भी टिक नहीं सका। मैंने समस्त पर्वतों पर जा कर सभी गणेश्वरों को भी धर्षित किया है ॥ ३५ ॥ मैंने अपने बाहुओं की खुजली मिटाने के लिए हिमालय, मन्दर, नील पर्वत तथा मेरु पर्वतों को कई बार उठाकर धमकाया है ॥ ३६ ॥ इतना ही नहीं, मैंने हिमालय पर्वत पर लीला करने हेतु अपनी भुजाओं से गङ्गा जी को रोक लिया है। स्वयं मेरे भृत्यों ने कितनी बार शत्रुभूत इन देवताओं पर विजय प्राप्त की है ॥ ३७ ॥ मैंने बड़वानल का मुख अपने हाथों से पकड़कर जब बन्द कर दिया था तो क्षणभर में सारे समुद्र मिलकर एक हो गये थे ॥ ३८ ॥ मैंने ऐरावत आदि हाथियों को समुद्र के जल पर पटक दिया तथा रथसहित भगवान् इन्द्र को सैकड़ों योजन दूर फेंक दिया ॥ ३९ ॥ इतना ही नहीं, मैंने विष्णु के सहित गरुड़ को भी अपने नाग-पाश में बाँध लिया तथा उर्वशी आदि समस्त अप्सराओं को अपने कारागार में बन्दी बना लिया ॥४०॥ हे रुद्र ! त्रिलोकी पर विजय प्राप्त करने वाले सिन्धुपुत्र मुझ महाबलवान् जलन्धर नामक महादैत्य को तुम नहीं जानते ॥ ४१ ॥

सनत्कुमार बोले—महादेव से ऐसा कहकर वह समुद्रपुत्र जलन्धर युद्ध में अचलभाव से स्थिर हो गया। उसने युद्ध में मरे हुए उन दैत्यों का स्मरण तक नहीं किया ॥ ४२ ॥ युद्धस्थल में स्थित हुए उस दुर्विनति एवं मदान्ध दैत्य ने दोनों बाहुओं पर ताल देकर रुद्र को ललकारा। इस प्रकार उसने बाहुबल तथा कटु अक्षरों का प्रयोग कर रुद्र का अपमान किया ॥ ४३ ॥ उस दुष्ट के द्वारा कहे गये अमङ्गल वचनों को सुनकर रुद्र हँसे तथा उसपर अपार क्रोध किया ॥ ४४ ॥ फिर तो उन्होंने अपने पैर के अँगूठे से जिस चक्रसुदर्शन का निर्माण किया था, उसी को अपने हाथ में लेकर उस दैत्य को मारने के लिए उद्यत

सुदर्शनाख्यं तच्चक्रं चिक्षेप भगवान् हरः। कोटिसूर्यप्रतीकाशं प्रलयानलसन्निभम् ॥४६॥
प्रदहद्रोदसी वेगात्तदासाद्य जलन्धरम्। जहार तच्छिरो वेगान् महदायतलोचनम् ॥४७॥
रथात् कायः पपातोर्व्यां नादयन् वसुधातलम्। शिरश्चाप्यब्धिपुत्रस्य हाहाकारो महानभूत् ॥४८॥
द्विधा पपात तद्देहो ह्यञ्जनाद्रिरिवाचलः। कुलिशेन यथा वारांनिधौ गिरिवरो द्विधा ॥४९॥
तस्य रौद्रेण रक्तेन सम्पूर्णमभवज्जगत्। ततः सम्प्रस्ता पृथिवी विकृताऽभून् मुनीश्वर! ॥५०॥
तद्रक्तमखिलं रुद्रनियोगान् मांसमेव च। महारौरवमासाद्य रक्तकुण्डमभूदिह ॥५१॥
तत्तेजो निर्गतं देहाद्रुद्रे च लयमागमत्। वृन्दादेहोद्भवं यवद् गौर्यां हि विलयं गतम् ॥५२॥
जलन्धरं हतं दृष्ट्वा देव-गन्धर्व-पन्नगाः। अभवन् सुप्रसन्नाश्च साधु देवेति चाब्रुवन् ॥५३॥
सर्वे प्रसन्नतां याता देवसिद्धमुनीश्वराः। पुष्पवृष्टिं प्रकुर्वाणास्तद्यशो जगुरुच्चकैः ॥५४॥
देवाङ्गना महामोदान्ननृतुः प्रेमविह्वलाः। कलस्वराः कलपदं किन्नरैः सह सञ्जगुः ॥५५॥
दिशः प्रसेदुः सर्वाश्च हते वृन्दापतौ मुने! ववुः पुण्याः सुखस्पर्शा वायवस्त्रिविधा अपि ॥५६॥
चन्द्रमाः शीततां यातो रविस्तेपे सुतेजसा। अग्नयो जज्वलुः शान्ता बभूव विकृतं नभः ॥५७॥
एवं त्रैलोक्यमखिलं स्वास्थ्यमापाधिकं मुने। हतेऽब्धितनये तस्मिन् हरेणाऽनन्तमूर्तिना ॥५८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे
जलन्धरवधवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

हो उठे ॥ ४५ ॥ प्रलय काल की अग्नि के समान जलते हुए एवं करोड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान उस सुदर्शन चक्र से उन्होंने दैत्य पर प्रहार किया ॥ ४६ ॥ उसके वेग से आकाश तथा भूमि प्रज्वलित हो उठे फिर तो उस चक्र ने दैत्य के बड़े-बड़े नेत्रों वाले उसके शिर को काट दिया ॥ ४७ ॥ उस दैत्य का शरीर एवं शिर दोनों ही शब्दायमान होता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा। सागरपुत्र उस जलन्धर के पृथ्वी पर गिरते ही चारों ओर से महान् हाहाकार होने लगा ॥ ४८ ॥ सुदर्शन चक्र के द्वारा काले पहाड़ के समान उसका शरीर दो टुकड़े होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। जिस प्रकार बज्र के प्रहार से पहाड़ के दो टुकड़े होकर समुद्र में गिर जाते हैं ॥ ४९ ॥

हे मुनीश्वर! उस दैत्य के रुधिर से सारा जगत् व्याप्त हो गया और पृथ्वी लाल हो जाने से विकृत दिखाई पड़ने लगी ॥ ५० ॥ शिवजी की आज्ञा से उसका रक्त एवं मांस महारौरव में जाकर रक्त का कुण्ड बन गया ॥ ५१ ॥ उसके शरीर का तेज निकल कर शङ्कर के मुख में समा गया। जिस प्रकार वृन्दा का तेज गौरी के शरीर में प्रवेश कर गया था ॥ ५२ ॥ उस समय देव, गन्धर्व तथा नाग गण अत्यन्त प्रसन्न हो उठे और शङ्कर को साधुवाद देने लगे ॥ ५३ ॥ देव, सिद्ध एवं मुनीश्वर भी प्रसन्न होकर शिवजी के ऊपर पुष्पवृष्टि कर यशोगान करने लगे ॥ ५४ ॥ देवाङ्गनाएँ प्रेम से विह्वल होकर नृत्य करने लगीं और मनोहर रागयुक्त शब्दों से किन्नरों के साथ मिलकर गाने लगीं ॥ ५५ ॥ हे मुने, उस समय वृन्दापति जलन्धर के मरते ही दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं तथा शीतल, मन्द, सुगन्ध तीनों प्रकार की वायु चलने लगी ॥ ५६ ॥ चन्द्रमा प्राकृतिक शीतलता से युक्त हो गया तथा सूर्य अपने तेज से तपने लगा। अग्निदेव शान्त होकर जलने लगे और आकाशमण्डल निर्मल हो गया ॥ ५७ ॥ इस प्रकार हे मुने! अनन्तमूर्ति भगवान् शिव के द्वारा जलन्धर के मारे जाने पर सारा जगत् स्वस्थ हो गया ॥ ५८ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड में
जलन्धरवध नामक चौवीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥

*

पञ्चविंशोऽध्याय

(वृन्दा का शिव-स्तुति करना)

सनत्कुमार उवाच

अथ ब्रह्मादयो देवा मुनयश्चाऽखिलास्तथा । तुष्टुवुर्देवदेवेशं वाग्भिरिष्टाभिरानताः ॥ १ ॥

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ! । साधुसौख्यप्रदस्त्वं हि सर्वदा भक्तदुःखहा ॥ २ ॥
त्वं महाद्भुतसल्लीलो भक्तिगम्यो दुरासदः । दुराराध्योऽसतां नाथ प्रसन्नः सर्वदा भव ॥ ३ ॥
वेदोऽपि महिमानं ते न जानाति हि तत्त्वतः । यथामति महात्मानः सर्वे गायन्ति सद्यशः ॥ ४ ॥
माहात्म्यमतिगूढं ते सहस्रवदनादयः । सदा गायन्ति सुप्रीत्या पुनन्ति स्वगिरं हि ते ॥ ५ ॥
कृपया तव देवेश ! ब्रह्मज्ञानी भवेज्जडः । भक्तिगम्यः सदा त्वं वा इति वेदा ब्रुवन्ति हि ॥ ६ ॥
त्वं वै दीनदयालुश्च सर्वत्र व्यापकः सदा । आविर्भवसि सद्भक्त्या निर्विकारः सतां गतिः ॥ ७ ॥
भक्त्यैव ते महेशान ! बहवः सिद्धिमागताः । इह सर्वसुखं भुक्त्वा दुःखिता निर्विकारतः ॥ ८ ॥
पुरा यदुपतिर्भक्तो दाशार्हः सिद्धिमागतः । कलावती च तत्पत्नी भक्त्यैव परमां प्रभो ! ॥ ९ ॥
तथा मित्रसहो राजा मदयन्ती च तत्प्रिया । भक्त्यैव तव देवेश ! कैवल्यं परमं ययौ ॥१०॥
सौमिनी नाम तनया कैकयाग्रभुवस्तथा । तव भक्त्या सुखं प्राप परं सद्योगिदुर्लभम् ॥११॥
विमर्षणो नृपवरः सप्तजन्मावधि प्रभो ! । भुक्त्वा भोगांश्च विविधांस्त्वद्भक्त्या प्राप सद्गतिम् ॥१२॥
चन्द्रसेनो नृपवरस्त्वद्भक्त्या सर्वभोगभुक् । दुःखमुक्तः सुखं प्राप परमत्र परत्र च ॥१३॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! जलन्धर का वध हो जाने के उपरान्त सभी देवता एवं मुनिगण सिर झुकाकर विनम्र हो भगवान् शङ्कर की स्तुति करने लगे ॥ १ ॥

देवगण बोले—हे देवदेव ! हे महादेव ! हे शरणागतवत्सल ! आप साधु मण्डल को सुख देने वाले तथा अपने भक्तों का दुःख दूर करने वाले हैं ॥ २ ॥ महान् लीला करने वाले आप एक मात्र भक्ति से प्राप्त होते हैं । आप असज्जनों के द्वारा सर्वथा दुराराध्य हैं, आप हम लोगों पर सर्वदा प्रसन्न रहें ॥ ३ ॥ हे प्रभो ! वेद भी आप की यथार्थ महिमा को नहीं जानते, किन्तु तब भी महात्मा लोग आप के यश का यथामति गान करते हैं ॥ ४ ॥ शेष आदि अपने सहस्रमुखों से आप की गूढ़ महिमा का गान करते हैं एवं अपनी वाणी पवित्र करते हैं ॥ ५ ॥ हे देवेश ! आप की कृपा से जड़ भी ब्रह्मज्ञानी हो जाते हैं और वेद आप को एक भक्ति मात्र से गम्य बताते हैं ॥ ६ ॥

हे प्रभो ! आप दीनदयाल तथा सर्वत्र व्यापक हैं । आप यद्यपि निर्विकार हैं किन्तु सज्जनों की रक्षा के लिए सद्भक्ति से आविर्भूत होते हैं ॥ ७ ॥ हे महेशान ! आप की निर्विकार भक्ति से बहुत दुःखी लोग भी सिद्धि को प्राप्त हुए हैं, और यहाँ पर सभी प्रकार के सुख का उपभोग करते रहे हैं ॥ ८ ॥ हे प्रभो ! पूर्वकाल में यदुवंशी दाशार्ह तथा उनकी पत्नी कलावती ने आप की भक्ति कर सिद्धि प्राप्त की है ॥ ९ ॥ हे देवेश ! इसी प्रकार राजा मित्रसह तथा उनकी पत्नी मदयन्ती ने भी आप की भक्ति से कैवल्य पद प्राप्त किया ॥ १० ॥ केकय नरेश की बड़ी बहन सौमिनी ने भी आप की भक्ति से योगियों के लिए भी दुर्लभ गति को प्राप्त किया ॥ ११ ॥ हे प्रभो ! विमर्षण नामक राजा ने आप की सेवा कर सात जन्म पर्यन्त अनेक प्रकार का उत्तम भोग प्राप्त किया, फिर आप की कृपा से उत्तम सद्गति प्राप्त की ॥ १२ ॥ राजा चन्द्रसेन ने आप की भक्ति द्वारा दुःख से छुटकारा पाया तथा इस लोक में एवं परलोक में नाना

गोपीपुत्रः श्रीकरस्ते भक्त्या भुक्त्वेह सद्गतिम् । परं सुखं महावीरशिष्यः प्राप परत्र वै ॥१४॥
त्वं सत्यरथभूजानेर्दुःखहर्ता गतिप्रदः । धर्मगुप्तं राजपुत्रमतार्षीः सुखिनं त्विह ॥१५॥
तथा शुचिव्रतं विप्रमदरिद्रं महाप्रभो ! । त्वद्भक्तिवर्तिनं मात्रा ज्ञानिनं कृपयाऽकरोः ॥१६॥
चित्रवर्मा नृपवरस्त्वद्भक्त्या प्राप सद्गतिम् । इह लोके सदा भुक्त्वा भोगानमरदुर्लभान् ॥१७॥
चन्द्राङ्गदो राजपुत्रः सीमन्तिन्या स्त्रिया सह । विहाय सकलं दुःखं सुखी प्राप महागतिम् ॥१८॥
द्विजो मन्दरनामापि वेश्यागामी खलोऽधमः । त्वद्भक्तः शिवं सम्पूज्य तया सह गतिं गतः ॥१९॥
भद्रायुस्ते नृपसुतः सुखमापगतव्यथः । त्वद्भक्तकृपया मात्रा गतिं च परमां प्रभो ! ॥२०॥
सर्वस्त्रीभोगनिरतो दुर्जनस्तव सेवया । विमुक्तोऽभूदपि सदाऽभक्ष्यभोजी महेश्वर ! ॥२१॥
शम्बरः शङ्करे भक्तश्चिताभस्मधरः सदा । नियमाद्भस्मनः शम्भो स्वस्त्रिया ते पुरं गतः ॥२२॥
भद्रसेनस्य तनयस्तथा मन्त्रिसुतः प्रभो ! । सुधर्मशुभकर्माणौ सदा रुद्राक्षधारिणौ ॥२३॥
त्वत्कृपातश्च तौ मुक्तावास्तां भुक्तेह सत्सुखम् । पूर्वजन्मनि यौ कीशकुक्कुटौ रुद्रभूषणौ ॥२४॥
पिङ्गला च महानन्दा वेश्ये द्वे तव भक्तितः । सद्गतिं प्रापतुर्नाथ भक्तोद्धारपरायण ! ॥२५॥
शारदा विप्रतनया बालवैधव्यमागता । तव भक्तेः प्रभावात्तु पुत्रसौभाग्यवत्यभूत् ॥२६॥
बिन्दुगो द्विजमात्रो हि वेश्याभोगी च तत्प्रिया । चञ्चुका त्वद्यशः श्रुत्वा परमां गतिमापयौ ॥२७॥

प्रकार के भोग प्राप्त करते हुए वे आनन्द करते रहे ॥ १३ ॥ महावीर का शिष्य गोपीपुत्र श्रीकर ने भी आप की भक्ति से इस लोक तथा परलोक में सुख प्राप्त किया ॥ १४ ॥ आ[प]ने प्रसन्न होकर सत्यरथ नामक भूपति का दुःख हरण किया तथा उसे सद्गति प्रदान कर धर्मगुप्त नामक राजपुत्र को भी सुखी बनाया तथा उसको तार दिया ॥ १५ ॥ हे महाप्रभो ! आपने माता के उपदेश से आप की भक्ति करने वाले शुचिव्रत नामक ब्राह्मण की दरिद्रता दूर कर उसे ऐश्वर्य सम्पन्न कर दिया, और उसे [म]हाज्ञानी बना दिया ॥ १६ ॥ चित्रवर्मा नामक राजा आप की भक्ति से सद्गति को प्राप्त किया और इस लोक में देव-दुर्लभ भोगों को प्राप्त कर सुख भोगे ॥ १७ ॥

चित्राङ्गद नामक राजपुत्र अपनी सीमन्तिनी नामक स्त्री के सहित आप की भक्ति प्राप्तकर सारे दुःखों को त्याग सुखसम्पन्न हो महागति को प्राप्त किया ॥ १८ ॥ हे शिव ! मन्दर नाम वाला ब्राह्मण, जो वेश्यागामी, अधम तथा महा खल था वह भी आप की भक्तिपूर्वक पूजन [कर] उसी के साथ सद्गति को प्राप्त हुआ ॥ १९ ॥ इसी प्रकार भद्रायु नामक राजपुत्र भी आपकी भक्ति द्वारा कृपा प्राप्त कर दुःखों से मुक्त हो सुख प्राप्त किया और माता के साथ परमगति को प्राप्त किया ॥ २० ॥ हे महेश्वर ! अभक्ष्य भक्षण करने वाला तथा सभी स्त्रियों में सम्भोगरत दुर्जन भी आप की सेवा से मुक्त हो गया ॥ २१ ॥ शंबर (भिल्ल), जो शिव का महाभक्त था, नियमतः चिता का भस्म धारण करने एवं उसके माहात्म्य से अपनी स्त्री के साथ शिवलोक को प्राप्त किया ॥ २२ ॥

हे प्रभो ! इसी प्रकार भद्रसेन का पुत्र तथा मन्त्रिपुत्र जिनका नाम सुधर्मा तथा शुभकर्मा था, वे भी रुद्राक्षधारण के प्रभाव से आप की कृपा प्राप्त कर इस लोक में सुख भोग कर मुक्त हो गये । ये दोनों ही पूर्वजन्म में कपि तथा कुक्कुट थे और रुद्राक्ष धारण करते थे ॥ २३-२४ ॥ हे भक्तोद्धारपरायण नाथ ! पिङ्गला तथा महानन्दा नाम की दो वेश्याएँ भी आपकी कृपा से सद्गति को प्राप्त हुई ॥ २५ ॥ किसी ब्राह्मण की शारदा नामक बालविधवा कन्या आपकी भक्ति के प्रभाव से पुत्रवती तथा सौभाग्यवती हुई ॥ २६ ॥ विन्दुग जो नाम मात्र का ब्राह्मण था और वेश्या से सम्भोग करता था वह एवं उसकी पत्नी चञ्चुला, जो महा व्यभिचारिणी थी, वे दोनों ही आप का यशःश्रवण कर परम गति को प्राप्त हुए ॥२७॥

इत्यादि बहवः सिद्धिं गता जीवास्तव प्रभो। भक्तिभावान् महेशान दीनबन्धो कृपालय ॥२८॥
त्वं परः प्रकृतेर्ब्रह्म पुरुषात् परमेश्वर!। निर्गुणस्त्रिगुणाधारो ब्रह्म-विष्णु-हरात्मकः ॥२९॥
नानाकर्मकरो नित्यं निर्विकारोऽखिलेश्वरः। वयं ब्रह्मादयः सर्वे तव दासा महेश्वर!॥३०॥
प्रसन्नो भव देवेश! रक्षाऽस्मान् सर्वदा शिवं!। त्वत्प्रजाश्च वयं नाथ! सदा त्वच्छरणं गताः ॥३१॥

सनत्कुमार उवाच

इति स्तुत्वा च ते देवा ब्रह्माद्याः समुनीश्वराः। तूष्णीं बभूवुर्हि तदा शिवाङ्घ्रिद्वन्द्वचेतसः ॥३२॥
अथ शम्भुर्महेशानः श्रुत्वा देवस्तुतिं शुभाम्। दत्त्वा वरान् वरान् सद्यस्तत्रैवान्तर्दधे प्रभुः ॥३३॥
देवाः सर्वेऽपि मुदिता ब्रह्माद्या हतशत्रवः। स्वं स्वं धाम ययुः प्रीता गायन्तः शिवसद्यशः॥३४॥
इदं परममाख्यानं जलन्धरविमर्दनम्। महेशचरितं पुण्यं महाघौघविनाशनम् ॥३५॥
देवस्तुतिरियं पुण्या सर्वपापप्रणाशिनी। सर्वसौख्यप्रदा नित्यं महेशानन्ददायिनी ॥३६॥
यः पठेत् पाठयेद्वाऽपि समाख्यानमिदं द्वयम्। भुक्त्वेह परं सौख्यं गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥३७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलन्धरवधोपाख्याने देवस्तुतिवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

हे प्रभो! हे महेशान! हे दीनबन्धो! हे कृपालो! इस प्रकार आप की भक्ति से अनेक जीवों को सिद्धि प्राप्त हुई ॥ २८ ॥ हे प्रभो! आप प्रकृति से तथा पुरुष से परे परब्रह्म हैं। हे परमेश्वर! आप निर्गुण तथा त्रिगुण के आधार हो और ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवात्मक भी आप ही हो ॥ २९ ॥ हे प्रभो! आप निर्विकार तथा अखिलेश्वर होकर भी नाना प्रकार के कर्म करते हो। हे शङ्कर! हम ब्रह्मादि सभी देवता आपके दास हैं ॥ ३० ॥ हे नाथ! हे देवेश! हम सभी आप की प्रजा हैं और आपके शरणागत हैं, अतः आप प्रसन्न हो कर हम लोगों की रक्षा कीजिए ॥ ३१ ॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार ब्रह्मादि देवता तथा सभी मुनीश्वर शिवजी के चरण-कमलों का ध्यान करते हुए मौन हो गये ॥ ३२ ॥ तब महेशान शङ्कर जी देवताओं की इस प्रकार की स्तुति सुनकर उन्हें अनेक सुन्दर वर देकर अन्तर्धान हो गये ॥ ३३ ॥ शत्रुओं के मारे जाने से ब्रह्मादि देवता प्रसन्नचित्त हो शिवजी का यशगान करते हुए अपने-अपने स्थानों को चले गये ॥ ३४ ॥ जलन्धरवध के इस महेश-चरित्र का श्रेष्ठ आख्यान पुण्य को देने वाला तथा पापों को नष्ट करने वाला है ॥ ३५ ॥ अथवा देवताओं के द्वारा दी गयी यह स्तुति भी पुण्य देने वाली तथा पापों को नष्ट करने वाली है। यह सब प्रकार की सुख देने वाली तथा महेश को आनन्द प्रदान करने वाली है ॥ ३६ ॥ जो जलन्धरवध तथा देव-स्तुति के इन तीनों आख्यान को पढ़ता-पढ़ाता है वह इस लोक में सम्पूर्ण सुख भोग कर अन्त में गणपतित्व को प्राप्त करता है ॥ ३७ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम-युद्धखण्ड में देवस्तुति वर्णन नामक पचीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

(विष्णु द्वारा वृन्दा को भस्म रूप में परिणत करना और पार्वती का बीज प्रदान करना, उससे धात्री, मालती और तुलसी की उत्पत्ति)

व्यास उवाच

ब्रह्मपुत्र नमस्तेऽस्तु धन्यस्त्वं शैवसत्तम ! । यच्छ्राविता महादिव्या कथेयं शाङ्करी शुभा ॥ १ ॥
इदानीं ब्रूहि सुप्रीत्या चरितं वैष्णवं मुने ! । स वृन्दां मोहयित्वा तु किमकार्षीत् कुतो गतः ॥ २ ॥

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास महाप्राज्ञ शैवप्रवर सत्तम ! । वैष्णवं चरितं शम्भुचरिताढयं सुनिर्मलम् ॥ ३ ॥
मौनीभूतेषु देवेषु ब्रह्मादिषु महेश्वरः । सुप्रसन्नोऽवदच्छम्भुः शरणागतवत्सलः ॥ ४ ॥

शम्भुरुवाच

ब्रह्मन् देववराः सर्वे भवदर्थे मया हतः । जलन्धरो मदंशोऽपि सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ५ ॥
सुखमापुर्न वा ताताः सत्यं ब्रूतामराः खलु । भवत्कृते हि मे लीला निर्विकारस्य सर्वदा ॥ ६ ॥

सनत्कुमार उवाच

अथ ब्रह्मादयो देवा हर्षादुत्फुल्ललोचनाः । प्रणम्य शिरसा रुद्रं शशंसुर्विष्णुचेष्टितम् ॥ ७ ॥

देवा ऊचुः

महादेवा त्वया देव ! रक्षिताः शत्रुजाद्भयात् । किञ्चिदन्यत् समुद्भूतं तत्र किङ्करवामहै ॥ ८ ॥
वृन्दां विमोहिता नाथ ! विष्णुना हि प्रयत्नतः । भस्मीभूता द्रुतं वह्नौ परमां गतिमागता ॥ ९ ॥
वृन्दालावण्यसम्भ्रान्तो विष्णुस्तिष्ठति मोहितः । तच्चिताभस्मसन्धारी त्वन्मायाविमोहितः ॥१०॥
स सिद्धमुनिसङ्घैश्च बोधितोऽस्माभिरादरात् । न बुध्यते हरिः सोऽथ तव मायाविमोहितः ॥११॥

व्यास जी बोले—हे ब्रह्मपुत्र ! आप को नमस्कार है, हे महाशिवभक्त ! आप धन्य हैं, जो शङ्कर की यह महादिव्य कथा आपने हमें सुनायी ॥ १ ॥ अब हे मुने ! इसके अनन्तर विष्णु का चरित्र सुनाइए ? उन्होंने वृन्दा को मोहित कर क्या किया ? और वे कहाँ गये ? ॥ २ ॥

सनत्कुमार बोले— हे महापण्डित ! हे शिवभक्तों में श्रेष्ठ व्यास जी ! अब शिवचरित्र से सम्बन्ध रखने वाले इस विष्णु के चरित्र को सुनो ॥ ३ ॥ जब ब्रह्मादिक देवगण स्तुति कर मौन हो गये तब शरणागतवत्सल भगवान् शंकर प्रसन्न हो देवताओं से कहने लगे ॥ ४ ॥

शिवजी बोले—हे ब्रह्मन्, हे श्रेष्ठ देवगण ! मैं यह सत्य-सत्य कहता हूँ कि यद्यपि जलन्धर मेरा ही अंश था, तथापि मैंने तुम लोगों के लिए उसका वध किया ॥ ५ ॥ हे तात ! अब तुम लोग सत्य बताओ कि तुम लोगों को सुख प्राप्त हुआ या नहीं । मैं यद्यपि निर्विकार हूँ तो भी मेरी यह लीला आप लोगों के निमित्त हुआ करती है ॥ ६ ॥

सनत्कुमार बोले—शिवजी की बात सुनते ही देवताओं के नेत्र हर्ष से खिल उठे और शङ्कर जी को प्रणाम कर विष्णु का वृत्तान्त निवेदन करने लगे ॥ ७ ॥

देवगण बोले—हे देवदेव ! हे महादेव ! आप ने यद्यपि शत्रुओं के भय से हमारी रक्षा की, किन्तु एक बात और हुई है, उसमें हम क्या करें ॥ ८ ॥ हे नाथ ! विष्णु ने बड़े प्रयत्न के साथ वृन्दा को मोहित किया और वह अग्नि में भस्म होकर परमगति को प्राप्त हुई ॥ ९ ॥ किन्तु इस समय भी वे वृन्दा के लावण्य पर आसक्त हो उसकी चिता का भस्म धारण करते हैं ॥ १० ॥ यद्यपि इस विषय में सिद्धों, मुनियों तथा हमलोगों ने उन्हें बड़े आदर के साथ बहुत समझाया किन्तु वे आपकी माया से मोहित होने

कृपां कुरु महेशान विष्णुं बोधय बोधय । त्वदधीनमिदं सर्वं प्राकृतं सचराचरम् ॥१२॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य महेशो हि वचनं त्रिदिवौकसाम् । प्रत्युवाच महालीलः स्वच्छन्दस्तान् कृताञ्जलीन् ॥१३॥

महेश उवाच

हे ब्रह्मन् हे सुराः सर्वे मद्वाक्यं श्रृणुतादरात् । मोहिनी सर्वलोकानां मम माया दुरत्यया ॥१४॥
तदधीनं जगत्सर्वं यद्देवासुरमानुषम् । तथैव मोहितो विष्णुः कामाधीनोऽभवद्धरिः ॥१५॥
उमाख्या सा महादेवी त्रिदेवजननी परा । मूलप्रकृतिराख्याता सुरामा गिरिजात्मिका ॥१६॥
गच्छध्वं शरणा देवा विष्णुमोहापनुत्तये । शरण्यां मोहिनीं मायां शिवाख्यां सर्वकामदाम् ॥१७॥
स्तुतिं कुरुत तस्याश्च मच्छक्तेस्तोषकारिणीम् । सुप्रसन्ना यदि च सा सर्वं कार्यं करिष्यति ॥१८॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा तान् सुराञ्शम्भुः पञ्चास्यो भगवान् हरः । अन्तर्दधे द्रुतं व्यास सर्वैश्च स्वगणैः सह ॥१९॥
देवाश्च शासनाच्छम्भोर्ब्रह्माद्या हि सवासवाः । मनसा तुष्टुवुर्मूलप्रकृतिं भक्तवत्सलाम् ॥२०॥

देवा ऊचुः

यदुद्भवाः सत्त्वरजस्तमोगुणाः सर्ग-स्थिति-ध्वंसविधानकारकाः ।
यदिच्छया विश्वमिदं भवाभवौ तनोति मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥२१॥
पाहि त्रयो [illegible]शगुणान् सुशब्दिताञ्जगत्यशेषे समधिष्ठिता परा ।
यद्रूपकर्माणि जगत्त्रयोऽपि ते विदुर्न मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥२२॥

के कारण कुछ भी समझ [illegible]ने में असमर्थ हैं ॥ ११ ॥ अतः हे महेशान ! आप कृपा कर विष्णु को समझाइए, क्योंकि यह प्राकृतिक सारा चराचर जगत् आपके ही अधीन है ॥ १२ ॥

सनत्कुमार बोले—देवताओं के वचन सुनकर भगवान् शङ्कर जी ने हाथ जोड़े हुए उन देवगणों से कहा— ॥ १३ ॥

महेश्वर बोले—हे ब्रह्मन् ! हे देवताओ ! आप लोग श्रद्धापूर्वक मेरे वचन सुनो। सम्पूर्ण लोकों को मोहित करने वाली यह मेरी माया बड़ी ही दुस्तर है ॥ १४ ॥ देवता, असुर एवं मनुष्यों के सहित सारा जगत् उसी के अधीन है। उसी माया से मोहित होने के कारण भगवान् विष्णु भी काम के अधीन हो गये हैं। वह माया ही उमा नाम से विख्यात है, जो इन तीनों देवताओं की जननी है। वही त्रिपुरसुन्दरी मूलप्रकृति तथा गिरिजा के नाम से विख्यात है ॥ १५-१६ ॥ हे देवगणो ! तुम लोग विष्णु का मोह दूर करने के लिए शीघ्र ही शिवा, शरण्या, मोहिनी तथा सर्वकामप्रदा भगवती की शरण में जाओ ॥ १७ ॥ उस मेरी शक्ति को, उसे सन्तुष्ट करनेवाली स्तुति से प्रसन्न करो। यदि वह प्रसन्न हो जायेगी तो आपलोगों का सारा कार्य पूर्ण करेगी ॥ १८ ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! पञ्चमुख भगवान् शङ्कर देवताओं से इतना कहकर अपने सभी गणों के साथ अन्तर्ध्यान हो गये ॥ १९ ॥ फिर भगवान् शङ्कर की आज्ञा से ब्रह्मादिक देवता उन मूलप्रकृति महाभक्तवत्सला भगवती को प्रसन्न करने के लिए उनकी स्तुति करने लगे ॥ २० ॥

देवगण बोले—जिस मूलप्रकृति से उत्पन्न हुए सत्त्व, रज तथा तम ये तीनों गुण इस सृष्टि की उत्पत्ति, पालन तथा संहार करते हैं और जो अपनी इच्छा से इस विश्व को आविर्भाव तथा तिरोभाव करती है उस मूलप्रकृति को हम प्रणाम करते हैं ॥ २१ ॥ जो रूप, रस, गन्ध आदि चौबीस गुणों से युक्त हो इस जगत् में व्याप्त है। इन तीनों लोकों में कोई भी जिसके रूप और कर्म को नहीं जानता, उस

यद्भक्तियुक्ताः पुरुषास्तु नित्यं दारिद्र्यमोहात्ययसम्भवादीन् ।
न प्राप्नुवन्त्येव हि भक्तवत्सलां सदैव मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥२३॥

कुरु कार्यं महादेवि ! देवानां नः परेश्वरि ! । विष्णुमोहं हर शिवे दुर्गे देवि ! नमोऽस्तु ते ॥२४॥
जलन्धरस्य शम्भोश्च रणे कैलासवासिनः । प्रवृत्ते तद्वधार्थाय गौरीशासनतः शिवे ॥२५॥
वृन्दा विमोहिता देवि! विष्णुना हि प्रयत्नतः । स्वव्रतात्त्याजिता वह्नौ भस्मीभूता गतिं गता ॥२६॥
जलन्धरो हतो युद्धे तद्भयान्मोचिता वयम् । गिरिशेन कृपां कृत्वा भक्तानुग्रहकारिणा ॥२७॥
तदज्ञया वयं सर्वे शरणं ते समागताः । त्वं हि शम्भुर्युवां देवि ! भक्तोद्धारपरायणौ ॥२८॥
वृन्दालावण्यसम्भ्रान्तो विष्णुस्तिष्ठति तत्र वै । तच्चिताभस्मसन्धारी ज्ञानभ्रष्टो विमोहितः ॥२९॥
संसिद्धसुरसङ्घैश्च बोधितोऽपि महेश्वरि ! । न बुध्यते हरिः सोऽथ तव मायाविमोहितः ॥३०॥
कृपां कुरु महादेवि ! हरिं बोधय बोधय । यथा स्वलोकं पायात् स सुचित्तः सुरकार्यकृत् ॥३१॥
इति स्तुवन्तस्ते देवास्तेजोमण्डलमास्थितम् । ददृशुर्गगने तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥३२॥
तन्मध्याद्भारतीं सर्वे ब्रह्माद्याश्च सवासवाः । अमराः शुश्रुवुर्व्यास व्यक्तमदां व्योमचारिणीम् ॥३३॥

आकाशवाण्युवाच

अहमेव त्रिधा भिन्ना तिष्ठामि त्रिविधैर्गुणैः । गौरी लक्ष्मीः सुरा ज्योती रजः-सत्त्व-तमोगुणैः ॥३४॥
तत्र गच्छत यूयं वै तासामन्तिक आदरात् । मदाज्ञया प्रसन्नास्ता विधास्यन्ते तदीप्सितम् ॥३५॥

मूलप्रकृति ईश्वरी को हम नमस्कार करते हैं ॥२२॥ पुरुष जिसकी भक्ति करके दारिद्र्य, मोह, उत्पत्ति तथा विनाश को नहीं प्राप्त करता ऐसी भक्तवत्सला मूलप्रकृति को हम नमस्कार करते हैं ॥ २३ ॥

हे महादेवि ! हम देवताओं का कार्य सिद्ध करो, हे शिवे ! विष्णु के मोह को दूर करो । हे दुर्गे ! हम लोग तुम्हें नमस्कार करते हैं ॥ २४ ॥ हे देवि ! जब कैलासवासी भगवान् शङ्कर एवं जलन्धर में युद्ध हो रहा था तब जलन्धर का वध करने के लिए तुमने ही वृन्दा का पातिव्रतभङ्ग करने हेतु विष्णु को आज्ञा दी थी ॥ २५ ॥ भगवान् विष्णु ने बड़े प्रयत्न के साथ वृन्दा को मोहित किया और उसका सतीत्व नष्ट किया । अपना सतीत्व नष्ट हो जाने से वह तो अग्नि में भस्म हो गयी और उत्तम गति को प्राप्त हुई ॥ २६ ॥ वृन्दा के पातिव्रत्य भङ्ग हो जाने से भक्तवत्सल भगवान् शङ्कर ने जलन्धर का वध कर दिया और हम सभी को भय से मुक्त भी किया ॥ २७ ॥ हे देवि ! हम सभी उन शङ्कर की आज्ञा से तुम्हारी शरण में आये हैं, क्योंकि तुम और शङ्कर दोनों ही अपने भक्तों के उद्धारकर्ता हो ॥ २८ ॥ हे भगवति ! वृन्दा के लावण्य से मोहित विष्णु इस समय अपने ज्ञान से भ्रष्ट हो रहे हैं तथा उसकी चिता का भस्म धारण कर उसी स्थान पर स्थित हैं ॥ २९ ॥ हे महेश्वरि ! तुम्हारी माया से मोहित होने के कारण विष्णु हम सिद्ध-मुनियों के समझाने पर भी मोह नहीं छोड़ते हैं ॥ ३० ॥ हे महादेवि ! अब आप कृपा करो और उन्हें समझाओ जिससे देवताओं का कार्य करने वाले विष्णु अपने लोकों की रक्षा का कार्य सँभालें ॥३१॥ इस प्रकार की स्तुति करते हुए देवताओं ने आकाश में एक तेजोमण्डल देखा जिसकी कान्ति से समस्त दिशाएँ व्याप्त हो रही थीं ॥३२॥ उस तेजोमण्डल से कामनाओं को पूर्ण करने वाली आकाशवाणी हुई, जिसे ब्रह्मा तथा इन्द्रादि देवताओं ने स्पष्ट रूप से सुना ॥ ३३ ॥

आकाशवाणी बोली—हे देवगणो ! मैं ही तीनों गुणों को पृथक्-पृथक् रूप में धारण कर इस विश्व में स्थित हूँ । रजोगुण से गौरी, सत्त्वगुण से लक्ष्मी तथा तमोगुण से सुरा ज्योति के रूप में स्थित हूँ ॥३४॥ अतः आप लोग मेरी आज्ञा से उन देवियों के समीप आदरपूर्वक जाओ, वे अवश्य ही तुम लोगों के मनोरथ को पूर्ण करेंगी ॥ ३५ ॥

सनत्कुमार उवाच

शृण्वतामिति तां वाचमन्तर्धानमगान्महः । देवानां विस्मयोत्फुल्लनेत्राणां तत्तदा मुने ! ॥३६॥
ततः सर्वेऽपि ते देवाः श्रुत्वा तद्वाक्यमादरात् । गौरीं लक्ष्मीं सुरां चैव नेमुस्तद्वाक्यचोदिताः ॥३७॥
तुष्टुवुश्च महाभक्त्या देवीस्ताः सकलाः सुराः । नानाविधाभिर्वाग्भिस्ते ब्रह्माद्या नतमस्तकाः ॥३८॥
ततोऽरं व्यास ! देव्यस्ता आविर्भूताश्च तत्पुरः । महाद्भुतैः स्वतेजोभिर्भासयन्त्यो दिगन्तरम् ॥३९॥
अथ ता अमरा दृष्ट्वा सुप्रसन्नेन चेतसा । प्रणम्य तुष्टुवुर्भक्त्या स्वकार्यं च न्यवेदयन् ॥४०॥
ततश्चैताः सुरान् दृष्ट्वा प्रणतान् भक्तवत्सलाः । बीजानि प्रददुस्तेभ्यो वाक्यमूचुश्च सादरम् ॥४१॥

देव्य ऊचुः

इमानि तत्र बीजानि विष्णुर्यत्राऽवतिष्ठति । निर्वपध्वं ततः कार्यं भवतां सिद्धिमेष्यति ॥४२॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा तास्ततो देव्योऽन्तर्हिता अभवन्मुने ! । रुद्र-विष्णु-विधीनां हि शक्तयस्त्रिगुणात्मिकाः ॥४३॥
ततस्तुष्टाः सुराः सर्वे ब्रह्माद्याश्च सवासवाः । तानि बीजानि सङ्गृह्य ययुर्यत्र हरिः स्थितः ॥४४॥
वृन्दाचिताभूमितले चिक्षिपुस्तानि ते सुराः । स्मृत्वा ताः संस्थितास्तत्र शिवशक्त्यंशका मुने ! ॥४५॥
निक्षिप्तेभ्यश्च बीजेभ्यो वनस्पत्यस्त्रयोऽभवन् । धात्री च मालती चैव तुलसी च मुनीश्वर ! ॥४६॥
धात्र्युद्भवा स्मृता धात्री माभवा मालती स्मृता । गौरीभवा च तुलसी तमः-सत्त्व-रजोगुणैः ॥४७॥
विष्णुर्वनस्पतीर्दृष्ट्वा तदा स्त्रीरूपिणीर्मुने ! । उदतिष्ठत्तदा तासु रागातिशयविभ्रमात् ॥४८॥
दृष्ट्वा स याचते मोहात् कामासक्तेन चेतसा । तं चापि तुलसी धात्री रागेणैवाऽवलोकताम् ॥४९॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने ! उस वाणी को सुनकर प्रसन्न हुए देवताओं के सामने ही वह तेज अन्तर्धान हो गया ॥ ३६ ॥ फिर तो देवगण भी उस आकाशवाणी के सुनने के अनन्तर भगवती के वाक्य पर विश्वास करते हुए गौरी, लक्ष्मी तथा सरस्वती को प्रणाम करने लगे ॥ ३७ ॥ ब्रह्मादि-देवगण महाभक्ति से विनम्र हो उन देवियों की स्तुति करते लगे ॥ ३८ ॥ हे व्यास जी ! तब तो उस स्तुति से प्रसन्न हुई सभी देवियां प्रगट होकर अपने तेज से दिशाओं को व्याप्त करने लगीं ॥३९॥ देवगणों ने उन देवियों को देखते ही प्रणाम किया और परम भक्ति से उनकी स्तुति करते हुए अपना कार्य निवेदन करने लगे ॥ ४० ॥ फिर तो प्रणत जनों पर शीघ्र प्रसन्न होने वाली उन देवियों ने प्रणाम करते हुए देवताओं को देखकर अपना-अपना बीज उन्हें दिया और आदर पूर्वक उनसे बोलीं ॥ ४१ ॥

देवियाँ बोलीं—हे देवताओं ! जहाँ भगवान् विष्णु स्थित हैं, वहाँ इस बीज को बो दो, तुम्हारे समस्त मनोरथ पूर्ण हो जायेंगे ॥ ४२ ॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने ! इतना कहकर वे देवियाँ अन्तर्धान हो गयीं । वे ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र की त्रिगुणात्मक शक्तियाँ थीं ॥ ४३ ॥ बीज पाकर ब्रह्मा तथा इन्द्रादि सभी देवता प्रसन्न हो गये और उन बीजों को एकत्रित कर जहाँ विष्णु स्थित थे, वहाँ पर ले गये ॥ ४४ ॥ हे मुने ! उन देवताओं ने वृन्दा की चिता के नीचे उन बीजों को डाल दिया और शिवशक्तियों को स्मरण करते हुए वे वहीं पर स्थित हो गये ॥४५॥ चिता-भस्म पर उन बीजों को डालने से तीन वनस्पतियाँ उत्पन्न हुईं । हे मुनीश्वर ! उन वनस्पतियों के नाम धात्री, मालती तथा तुलसी हुए ॥४६॥ धात्री के अंश से धात्री, महालक्ष्मी के अंश से मालती तथा गौरी के अंश से तुलसी प्रगट हुई । जो तम, सत्त्व तथा रजोगुण से युक्त थीं ॥ ४७ ॥ हे मुने ! विष्णु ने ज्यों ही वनस्पति रूप धारिणी उन स्त्रियों को देखा तब वे उनमें विशेष राग-विलास का विभ्रम देखकर उठ बैठे ॥ ४८ ॥ फिर मोह के कारण कामासक्त चित्त से उनसे प्रेम की याचना

यच्च बीजं पुरा लक्ष्म्या मायथैव समर्पितम् । तस्माच्चदुद्भवा नारी स्मिन्नीर्ष्यापराऽभवत् ॥५०॥
अतः सा बर्बरीत्याख्यामवापातीव गर्हिताम् । धात्रीतुलस्यौ तद्रागस्य प्रीतिप्रदे सदा ॥५१॥
ततो विस्मृतदुःखोऽसौ विष्णुस्ताभ्यां सहैव तु । वैकुण्ठमगमत्तुष्टः सर्वदेवैर्नमस्कृतः ॥५२॥
कार्तिके मासि विप्रेन्द्र ! धात्री च तुलसी सदा । सर्वदेवप्रिया ज्ञेया विष्णोश्चैव विशेषतः ॥५३॥
तत्राऽपि तुलसी धन्याऽतीव श्रेष्ठा महामुने ! । त्यक्त्वा गणेशं सर्वेषां प्रीतिदा सर्वकामदा ॥५४॥
वैकुण्ठस्थं हरिं दृष्ट्वा ब्रह्मेन्द्राद्याश्च तेऽमराः । नत्वा स्तुत्वा महाविष्णुं स्वस्वधामानि वै ययुः ॥५५॥
वैकुण्ठोऽपि स्वलोकस्थो भ्रष्टमोहः सुबोधवान् । सुखी चाऽभून्मुनिश्रेष्ठ पूर्ववत्संस्मरन् शिवम् ॥५६॥
इत्याख्यानमघौघघ्नं सर्वकामप्रदं नृणाम् । सर्वकामविकारघ्नं सर्वविज्ञानवर्द्धनम् ॥५७॥
य इदं हि पठेन्नित्यं पाठयेद्वाऽपि भक्तिमान् । श्रृणुयाच्छ्रावयेद्वाऽपि ... याति परमां गतिम् ॥५८॥
पठित्वा य इदं धीमानाख्यानं परमोत्तमम् । सङ्ग्रामं प्रविशेद् वीरो विजयी स्यान्न संशयः ॥५९॥
विप्राणां ब्रह्मविद्यादं क्षत्रियाणां जयप्रदम् । वैश्यानां सर्वधनदं शूद्राणां सुखदं त्विदम् ॥६०॥
शम्भुभक्तिप्रदं व्यास ! सर्वेषां पापनाशनम् । इह लोके परत्रापि ...दा सद्गतिदायकम् ॥६१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलन्धरवधानन्तर-
देवीस्तुति-विष्णु-मोहविध्वंसवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

करने लगे। तुलसी एवं धात्री ने भी रागपूर्वक उनका अवलोकन किया ॥ ४९ ॥ प्रथम लक्ष्मी ने जिस बीज को माया से देवताओं को दिया था उस बीज से उत्पन्न मालती उनसे ईर्ष्या करने लगी ॥ ५० ॥ इसलिए वह बर्बरी इस गर्हित नाम से पृथ्वी पर विख्यात हुई, शेष धात्री तथा तुलसी विष्णु के प्रीति का कारण बनीं ॥ ५१ ॥ तब विष्णु का दुःख दूर हो गया और वे उन दोनों के साथ देवगणों से नमस्कृत हो वैकुण्ठ लोक को चले गये ॥ ५२ ॥ हे व्यास जी, कार्तिक के महीने में यद्यपि धात्री तथा तुलसी सभी देवताओं को प्रिय हैं किन्तु विष्णु को तो अत्यन्त प्रिय हैं ॥ ५३ ॥ हे महामुने ! उन दोनों मे भी तुलसी अत्यन्त श्रेष्ठ तथा धन्य हैं। यह गणेश को छोड़कर सभी देवताओं को प्रिय हैं तथा सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करती हैं ॥ ५४ ॥ इस प्रकार ब्रह्मा तथा इन्द्रादि देवगण विष्णु को वैकुण्ठ मे स्थित देख उन्हें नमस्कार कर तथा उनकी स्तुति कर अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥ ५५ ॥ मोह टूट जाने से विष्णु ज्ञान प्राप्त कर शिव का स्मरण करते हुए वैकुण्ठ लोक में सुखपूर्वक निवास करने लगे ॥ ५६ ॥

यह आख्यान मनुष्यों के सभी पापों को दूर करने वाला तथा सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। काम के विकारों को नष्ट करने वाला तथा सभी प्रकार के ज्ञान को बढ़ाने वाला है ॥ ५७ ॥ जो भक्ति से युक्त हो इस आख्यान को पढ़ते अथवा पढ़ाते हैं, सुनते अथवा सुनाते हैं वे परमगति को प्राप्त होते हैं ॥ ५८ ॥ जो बुद्धिमान् इस आख्यान को पढ़कर संग्रामस्थल मे जाता है वह विजय प्राप्त कर लौटता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ५९ ॥ यह वृत्तान्त ब्राह्मणों को ब्रह्मविद्या तथा क्षत्रियों को जय प्रदान करने वाला है। वैश्यों को अनेक प्रकार का धन तथा शूद्रों को सुख देने वाला है ॥ ६० ॥ हे व्यास जी ! यह आख्यान शिवजी में भक्ति प्रदान करने एवं सभी पापों को नाश करने वाला तथा लोक-परलोक में सद्गति देने वाला है ॥ ६१ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड में
विष्णुमोह-विध्वंस वर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

(दम्भासुर पुत्र निमित्त तपस्या और शंखचूड की उत्पत्ति)

सनत्कुमार उवाच

अथाऽन्यच्छम्भुचरितं प्रेमतश्शृणु वै मुने ! । यस्य श्रवणमात्रेण शिवभक्तिर्दृढा भवेत् ॥ १ ॥
शङ्खचूडाभिधो वीरो दान देवकण्टकः । यथा शिवेन निहतो रणमूर्ध्नि त्रिशूलतः ॥ २ ॥
तच्छम्भुचरितं दिव्यं पवि पापनाशनम् । शृणु व्यास ! सुसम्प्रीत्या वच्मि सुस्नेहतस्तव ॥ ३ ॥
मरीचेस्तनयो धातुः पुत्रो कश्यपो मुनिः । स धर्मिष्ठः सृष्टिकर्त्ता विध्याज्ञप्तः प्रजापतिः ॥ ४ ॥
दक्षः प्रीत्या ददौ तस्मै कन्यास्त्रयोदश । तासां प्रसूतिः प्रसभं न कथ्या बहुविस्तृता ॥ ५ ॥
यत्र देवादिनिखिलं चराऽचभूज्जगत् । विस्तरात् तत्प्रवक्तुं च कः क्षमोऽस्ति त्रिलोकके ॥ ६ ॥
प्रस्तुतं शृणु वृत्तान्तं शम्भुलीलान्वितं च यत् । तदेव कथयाम्यद्य शृणु भक्तिप्रवर्द्धनम् ॥ ७ ॥
तासु कश्यपपत्नीषु दनुरेका वराङ्गना । महारूपवती साध्वी पतिसौभाग्यवर्द्धिता ॥ ८ ॥
आसंस्तस्या दनोः पुत्रा बहवो बलवत्तराः । तेषां नामानि नोच्यन्ते विस्तारभयतो मुने ! ॥ ९ ॥
तेष्वेको विप्रचित्तिस्तु महाबलपराक्रमः । तत्पुत्रो धार्मिको दम्भो विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ॥ १० ॥
नासीत्तत्तनयो वीरस्तता तापरोऽभवत् । शुक्राचार्यं गुरुं कृत्वा कृष्णमन्त्रमवाप्य च ॥ ११ ॥
तपश्चकार परमं पुष्करे लक्षवर्षकम् । कृष्णमन्त्रं जजापैव दृढं बद्ध्वाऽऽसनं चिरम् ॥ १२ ॥
तपः प्रकुर्वतस्तस्य मूर्ध्नो सृत्य प्रज्वलत् । विससार च सर्वत्र तत्तेजो हि सुदुःसहम् ॥ १३ ॥
तेन तप्ताः सुराः सर्वे मुन मनवस्तथा । सुनासीरं पुरस्कृत्य ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ १४ ॥

सनत्कुमार बोले—हे मु ! अब प्रेम से शङ्कर का एक और आख्यान सुनो, जिसके सुनने मात्र से शङ्कर में दृढ़ भक्ति उत्पन्न हो है ॥ १ ॥ शङ्खचूड नामका एक वीर दानव था, जो देवताओं का कण्टक था। उसे शिवजी ने ने त्रिशूल से जिस प्रकार युद्धभूमि में वध किया ॥ २ ॥ यह शिवजी का परम पवित्र तथा पापनाश दिव्य चरित्र है। हे व्यास ! अब तुम उस चरित्र को प्रेम से सुनो, मैं तुम्हारे स्नेह से उस चरित्र को कहता हूँ ॥ ३ ॥ पूर्वकाल में ब्रह्मा के मरीचि नामक पुत्र हुए, उन मरीचि के कश्यप नामक पुत्र हुए बड़े धर्मशील थे और ब्रह्मा की आज्ञा पाकर सृष्टि करने से प्रजापति पद को प्राप्त हुए ॥ ४ ॥ दक्षप्र ने उन्हें अपनी तेरह कन्याएँ प्रदान की, उन्हीं कन्याओं से बहुत सी सन्तानें हुईं, जिन्हें विस्तार य से यहाँ कहना उचित नहीं ॥५॥ उन कन्याओं से ही सम्पूर्ण देवता तथा चराचरात्मक जगत् उत्पन्न हु । इस भूतल पर उनको विस्तार से कहने में कौन समर्थ है ? ॥ ६ ॥ अब शिवलीला से युक्त प्रस्तुत वृत्तान्त सुनिए, मैं उसे कहता हूँ ॥ ७ ॥

कश्यप की उन स्त्रियों में एक का नाम दनु था, वह महारूपवती तथा साध्वी थी एवं पति के सौभाग्य से गर्व करने वाली थी ॥ ॥ उस दनु के बहुत से बलवान् पुत्र हुए। हे मुने ! विस्तार के भय से मैं उनके नामों की गणना यहाँ हीं करता ॥ ९ ॥ उन सभी पुत्रों में विप्रचित्त नामका एक दानव बड़ा बली और पराक्रमी था, उसके पुत्र नाम दम्भ था, जो बड़ा धार्मिक, विष्णुभक्त तथा जितेन्द्रिय था ॥ १० ॥ उस वीर को कोई भी पुत्र नहीं था इसलिए वह चिन्ता से युक्त था। तदनन्तर उसने शुक्राचार्य को गुरु बना कर उनसे कृष्णमन्त्र प्राप्त किया ॥ ११ ॥ उसने पुष्कर क्षेत्र में जाकर दृढ़ आसन से लाख वर्ष पर्यन्त कृष्ण के मन्त्र को जपते ए बड़ी घोर तपस्या की ॥ १२ ॥ तपस्या करते हुए उस दैत्य के शिर से एक दुःसह तेज प्रगट हुआ जो जलते हुए चारों ओर देदीप्यमान होकर फैलने लगा ॥ १३ ॥ उसके उस तेज से सभी देवता, मु एवं मनुगण सन्तप्त हो उठे, फिर तो इन्द्र को आगे कर वे सभी ब्रह्मा के

प्रणम्य च विधातारं दातारं सर्वसम्पदाम् । तुष्टुवुर्विकलाः प्रोचुः स्ववृत्तान्तं विशेषतः ॥१५॥
तदाकर्ण्य विधाताऽपि वैकुण्ठं तैर्ययौ सह । तदेव विज्ञापयितुं खिलेन हि विष्णवे ॥१६॥
तत्र गत्वा त्रिलोकेशं विष्णुं रक्षाकरं परम् । प्रणम्य तुष्टुवुः सर्वे बद्ध्वा विनम्रकाः ॥१७॥

देवा ऊचुः

देवदेव ! न जानीमो जातं किं कारणं त्विह । सन्तप्ताः सकला जातास्तेजसा केन तद्वद ? ॥१८॥
तप्तात्मनां त्वमविता दीनबन्धोऽनुजीविनाम् । रक्ष रक्ष रमानाथ ! रण्यः शरणागतान् ॥१९॥

सनत्कुमार उवाच

इति श्रुत्वा वचो विष्णुर्ब्रह्मादीनां दिवौकसाम् । उवाच विहसन् प्रेम्णा शरणागतवत्सलः ॥२०॥

विष्णुरुवाच

सुस्वस्था भवताव्यग्रा न भयं कुरुतामराः । नोपप्लवा भविष्यन्ति लयकालो न विद्यते ॥२१॥
दानवो दम्भनामा हि मद्भक्तः कुरुते तपः । पुत्रार्थी शमयिष्यामि तमहं वरदानतः ॥२२॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्तास्ते सुराः सर्वे धैर्यमालम्ब्य वै मुने ! । ययुर्ब्रह्मादयः सुस्थाः स्व-स्वधामानि सर्वशः ॥२३॥
अच्युतोऽपि वरं दातुं पुष्करं संजगाम ह । तपश्चरति यत्राऽसौ दम्भनामा हि दानवः ॥२४॥
तत्र गत्वा वरं ब्रूहीत्युवाच परिसान्त्वयन् । गिरा सूनृतया भक्तं जपन्तं स्वमनुं हरिः ॥२५॥
तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णोर्दृष्ट्वा तं च पुरःस्थितम् । प्रणनाम महाभक्त्या तुष्टाव च पुनः पुनः ॥२६॥

पास गये ॥ १४ ॥ उन लोगों ने सम्पूर्ण सम्पत्तियों के दाता विधाता को प्रणाम किया, फिर स्तुति करने के पश्चात् बड़ी व्याकुलता से अपना वृत्तान्त निवेदन करने लगे ॥ १५ ॥ उनकी प्रार्थना सुनकर ब्रह्मदेव भी उन देवताओं को साथ ले सारा वृत्तान्त कहने के लिए विष्णु के पास गये ॥ १६ ॥ वे लोग फिर त्रिलोकी की रक्षा करने वाले भगवान् विष्णु के समीप जा प्रणाम कर हाथ जोड़ विनम्र हो उनकी स्तुति करने लगे ॥ १७ ॥

देवगण बोले—हे देवदेव ! हम नहीं जानते कि किस कारण से तथा किसके तेज से हम सभी अत्यधिक सन्तप्त हो रहे हैं, वह कारण आप बताइए ? ॥ १८ ॥ हे दीनबन्धो ! हम सभी आपके द्वारा जीवित रहने वाले हैं, अतः सन्तप्त हुए हमलोगों की आप रक्षा करें। हे रमानाथ ! आप सबको शरण देने वाले हैं, अतः हम शरणागतों की रक्षा कीजिए ॥ १९ ॥

सनत्कुमार बोले—ब्रह्मादि देवताओं की बात सुनकर शरणागतवत्सल भगवान् विष्णु हँसकर उनसे बोले—॥ २० ॥

विष्णु बोले—हे देवताओ ! घबड़ाओ मत, और भयभीत भी न होवो, शान्तचित्त हो निवास करो, प्रलय काल अभी उपस्थित नहीं हुआ है, न तो कोई उपद्रव ही होने वाला है ॥ २१ ॥ मेरा भक्त दम्भ नाम का दानव तप कर रहा है, वह पुत्र चाहता है, इसलिए उसे पुत्र का वरदान देकर अभी शान्त किये देता हूँ ॥ २२ ॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने ! ऐसा सुनकर देवताओं को धीरज हुआ। ब्रह्मादिक देवता स्वस्थ होकर अपने-अपने निवास स्थान को चले गये ॥ २३ ॥ इधर भगवान् विष्णु भी पुष्कर क्षेत्र में, जहाँ वह दम्भ नामक दानव तप कर रहा था, वरदान देने की इच्छा से गये ॥२४॥ वहाँ जाकर अपने मन्त्र का जाप करते हुए उस असुर को सान्त्वना देकर गम्भीर एवं मधुर वाणी में बोले—हे असुर ! वर माँगो ॥ २५ ॥ तब भगवान् के वचन सुनकर तथा उनको अपने सामने खड़ा देखकर उन्हें महाभक्ति से प्रणाम करता हुआ वह दम्भ बोला—॥ २६ ॥

दम्भ उवाच

देवदेव ! नमस्तेऽस्तु पुण्डर ... कविलोचन ! । रमानाथ त्रिलोकेश ! कृपां कुरु ममोपरि ॥२७॥

स्वभक्तं तनयं देहि म ... बलपराक्रमम् । त्रिलोकजयिनं वीरमजेयं च दिवौकसाम् ॥२८॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्तो दानवेन्द्रेण तं वर ... प्रददौ हरिः । निवर्त्य चोग्रतपसस्ततः सोऽन्तरधान्मुने ॥२९॥

गते हरौ दानवेन्द्रः कृत्वा ... स्यै दिशे नमः । जगाम स्वगृहं सिद्धतपाः पूर्णमनोरथः ॥३०॥

कालेनाल्पेन तत्पत्नी सगर्भ ... भाग्यवत्यभूत् । रराज तेजसाऽत्यन्तं रोचयन्ती गृहान्तरम् ॥३१॥

सुदामा नाम गोपो यः कृष्ण ... य पार्षदाग्रणीः । तस्या गर्भे विवेशाऽसौ राधाशप्तश्च यन्मुने ! ॥३२॥

असूत समये साध्वी सु ... तनयं तशः । जातकं सुचकारासौ पिताऽऽहूय मुनीन् बहून् ॥३३॥

उत्सवः सुमहानासीत्तस्मिञ्जा ... द्विजोत्तम ! । नाम चक्रे पिता तस्य शङ्खचूडेति सद्दिने ॥३४॥

पितुर्गेहे स ववृधे शुक्लप ... यथा शशी । शैशवेऽभ्यस्तविद्यस्तु स बभूव सुदीप्तिमान् ॥३५॥

स बालक्रीडया नित्यं पित्रो ... तान ह । प्रियो बभूव सर्वेषां कुलानां च विशेषतः ॥३६॥

इति श्रीशि ... महापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे
शङ्खचूडोत्पत्तिवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

दम्भ बोला—हे देवदेव ! हे कमललोचन ! हे रमानाथ ! हे त्रिलोकेश ! आप को प्रणाम है। मेरे ऊपर आप कृपा कीजिए ॥२७॥ हे देव ! आप हमें महाबली एवं पराक्रमी एक पुत्र दीजिए, जो आपका भक्त और त्रैलोक्य का विजय करनेवाला हो तथा देवता लोग भी जिसे संग्राम मे न जीत सके ॥ २८ ॥

सनत्कुमार बोले—दा ... न्द्र के द्वारा इस प्रकार वरदान माँगने पर नारायण ने उसे वैसा ही वरदान दिया, और ह मुने ! उसे तपस्या से विरत कर स्वयं अन्तर्धान हो गये ॥ २९ ॥ भगवान् के अन्तर्धान हो जाने पर दानव ने उस दिशा ... नमस्कार किया और अपनी तपस्या के द्वारा सिद्धि प्राप्त कर पूर्ण-मनोरथ हो घर लौटा ॥ ३० ॥ फिर तो थोड़े ही समय में उसकी भाग्यवती पत्नी ने गर्भ धारण किया और अपने तेज से घर को प्र ... शित करती हुई शोभा प्राप्त करने लगी ॥ ३१ ॥ सुदामा नाम का गोप, जो कृष्ण का मित्र था तथा ... से राधा ने शाप दिया था वही उसके गर्भ में आया ॥ ३२ ॥ समय आने पर उस साध्वी पत्नी ने श्रेष्ठ त ... स्वी पुत्र को जन्म दिया । अनन्तर उसके पिता ने बहुत से मुनियों को बुलाकर उसका जातकर्म क ... ॥ ३३ ॥ हे व्यास जी, उसके उत्पन्न होने पर महान् उत्सव हुआ और पिता ने उसका शङ्खचूड ... करण किया ॥ ३४ ॥ वह शङ्खचूड अपने पिता के घर में शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगा, ... र बाल्यावस्था में ही विद्या का अभ्यास कर महाबुद्धिमान् हुआ ॥३५॥ वह बालक अपनी बाल्यलीला से ... ता-पिता को आनन्दित करने लगा और सभी का प्रिय होते हुए भी अपने कुटुम्बियों को विशेष प्रिय हु ... आ ॥ ३६ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका ... हित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड में
शङ्खचूड-उत्प ... त्ति वर्णन नामक सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥

*

अष्टाविंशोऽध्यायः

(शंखचूड का तप करना और तुलसी के साथ उ[illegible]का विवाह)

सनत्कुमार उवाच

ततश्च शङ्खचूडोऽसौ जैगीषव्योपदेशतः । तपश्चकार सुप्रीत्या ब्रह्मणः पुष्करे चिरम् ॥ १ ॥
गुरुदत्तां ब्रह्मविद्यां जजाप नियतेन्द्रियः । स एकाग्रमना भूत्वा करणानि निगृह्य च ॥ २ ॥
तपन्तं पुष्करे तं वै शङ्खचूडं च दानवम् । वरं दातुं जगामाशु ब्रह्मा लोकगुरुर्विभुः ॥ ३ ॥
वरं ब्रूहीति प्रोवाच दानवेन्द्रं विधिस्तदा । स दृष्ट्वा तं ननामा[illegible]स्तुष्टाव सद्गिरा ॥ ४ ॥
वरं ययाचे ब्रह्माणमजेयत्वं दिवौकसाम् । तथेत्याह विधिस्तं वै सुप्रसन्नेन चेतसा ॥ ५ ॥
श्रीकृष्णकवचं दिव्यं जगन्मङ्गलमङ्गलम् । दत्तवान् शङ्खचूडा[illegible] सर्वत्र विजयप्रदम् ॥ ६ ॥
बदरीं संप्रयाहि त्वं तुलस्या सह तत्र वै । विवाहं कुरु तत्रैव [illegible]ा तपस्यति कामतः ॥ ७ ॥
धर्मध्वजसुता सेति संदिदेश च तं विधिः । अन्तर्धानं जगामाशु पश्यतस्तस्य तत्क्षणात् ॥ ८ ॥
ततः स शङ्खचूडो हि तपःसिद्धोऽतिपुष्करे । गले बबन्ध कव[illegible] जगन्मङ्गलमङ्गलम् ॥ ९ ॥
आज्ञया ब्रह्मणः सोऽपि तपःसिद्धमनोरथः । समाययौ प्रहृष्टास्[illegible]तूर्णं बदरिकाश्रमम् ॥१०॥
यदृच्छयाऽऽगतस्तत्र शङ्खचूडश्च दानवः । तपश्चरन्ती तुलसी [illegible]यत्र धर्मध्वजात्मजा ॥११॥
सुरूपा सुस्मिता तन्वी शुभभूषणभूषिता । सकटाक्षं ददर्शाऽसौ तमेव पुरुषं परम् ॥१२॥
दृष्ट्वा तां ललितां रम्यां सुशीलां सुन्दरीं सतीम् । उवास तत्समीपे तु [illegible]मधुरं तामुवाच सः ॥१३॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने व्यास ! उस शङ्खचूड ने जैगीषव्य महर्[illegible] उपदेश से ब्रह्मा के पुष्कर क्षेत्र में जाकर प्रीति के साथ बहुत काल पर्यन्त तप किया ॥ १ ॥ उ[illegible] एकाग्रमन से इन्द्रियों तथा उनके विषयों को जीत कर गुरु के द्वारा दी गयी ब्रह्मविद्या का जप करना [illegible]रम्भ किया ॥ २ ॥ इस प्रकार शङ्खचूड नामक दानव को पुष्कर में तप करते देखकर लोकगुरु सर्वसम[illegible] ब्रह्मा उसे वरदान देने के लिए पुष्कर में आये ॥३॥ ब्रह्मा ने जब उस दानवेन्द्र से वर माँगने का कहा [illegible] वह बड़ा विनम्र हो श्रेष्ठ वाणी से ब्रह्मा की स्तुति करने लगा ॥ ४ ॥ तदनन्तर उसने वर माँगा कि [illegible]देव ! देवगण मुझे न जीत सकें। ब्रह्मा जी ने प्रसन्न होकर कहा कि ऐसा ही होगा ॥ ५ ॥ उन्होंने प्रसन्न होकर उस शङ्खचूड को जगत् के मङ्गल को भी मङ्गल बनाने और सर्वत्र विजय प्रदान करने वाले परम दिव्य श्रीकृष्ण कवच का उपदेश किया ॥ ६ ॥

ब्रह्मा ने शंखचूड से कहा कि तुम इसी समय बदरिकाश्रम में चले जाओ, वहाँ पति की कामना से तुलसी तप कर रही है, उससे विवाह सम्पन्न करो ॥ ७ ॥ 'वह धर्म[illegible]ज की कन्या है', इतना कहने के पश्चात् ब्रह्मा उसके देखते-देखते क्षणमात्र में अन्तर्धान हो गये ॥ ८ ॥ फिर तो तपस्या से सिद्धि प्राप्त कर उस शंखचूड ने जगन्मङ्गल मङ्गल उस श्रीकृष्ण कवच को गले में बाँध लिया ॥ ९ ॥ और ब्रह्मदेव की आज्ञा से पूर्णमनोरथ हो प्रसन्नता के साथ बदरिकाश्रम में आया ॥ १० ॥ वह शंखचूड अपनी इच्छा से घूमते हुए वहाँ पहुँचा, जहाँ धर्मध्वज की कन्या तुलसी तप कर र[illegible] थी ॥ ११ ॥ वह तुलसी बड़ी ही सुन्दरी थी, मन्द-मन्द स्मित कर रही थी, बड़ी ही सूक्ष्म कटि वाली [illegible] शुभ भूषणों से भूषित थी। उसने आये हुए उस शंखचूड को कटाक्षपूर्वक देखा ॥ १२ ॥ तब शंखचूड [illegible] उसे मनोहर, लावण्य युक्त सुशील तथा सुन्दरी एवं सती देखकर उसके समीप गया और मधुर वचन बो[illegible] ॥ १३ ॥

शङ्खचूड उवाच

का त्वं कस्य सुता त्वं हि किं करोषि स्थिताऽत्र किम् ? ।
मौनीभूता किङ्करं मां सम्भावितुमिहार्हसि ॥१४॥

सनत्कुमार उवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा सकामं तमुवाच सा ॥१५॥

तुलस्युवाच

धर्मध्वजसुताऽहं च तपस्यामि तपस्विनी । तपोवने च तिष्ठामि कस्त्वं गच्छ यथासुखम् ॥१६॥
नारीजातिर्मोहिनी च ब्रह्मादीनां विषोपमा । निन्द्या दोषकरी माया शृङ्खला ह्यनुशायिनाम् ॥१७॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा तुलसी तं च सरसं विरराम ह । दृष्ट्वा तां सस्मितां सोऽपि प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥१८॥

शङ्खचूड उवाच

त्वया यत्कथितं देवि ! न च सर्वमलीककम् । किञ्चित् सत्यमलीकं च किञ्चिन्मत्तो निशामय ॥१९॥
पतिव्रताः स्त्रियो याश्च तासां मध्ये त्वमग्रणीः । न चाऽहं पापदृक् कामी तथा त्वं नेति धीर्मम ॥२०॥
आगच्छामि त्वत्समीपमाज्ञया ब्रह्मणोऽधुना । गान्धर्वेण विवाहेन त्वां ग्रहीष्यामि शोभने ॥२१॥
शङ्खचूडोऽहमेवास्मि देवविद्रावकारकः । मां न जानासि किं भद्रे ! न श्रुतोऽहं कदाचन ॥२२॥
दनुवंश्यो विशेषेण मन्दपुत्रश्च दानवः । सुदामा नाम गोपोऽहं पार्षदश्च हरेः पुरा ॥२३॥
अधुना दानवेन्द्रोऽहं राधिकायाश्च शापतः । जातिस्मरोऽहं जानामि सर्वं कृष्णप्रभावतः ॥२४॥

शंखचूड बोला—हे देवि! तुम कौन हो ? किसकी कन्या हो ? तुम यहाँ किस लिए निवास कर रही हो ? यद्यपि तुमने मौन धारण किया है, किन्तु तब भी मुझे अपना दास समझकर संभाषण करो ॥ १४ ॥

सनत्कुमार बोले—इस वचन सुन कर वह तुलसी सकामभाव से शंखचूड से बोली ॥ १५ ॥

तुलसी बोली—मैं धर्मध्वज की तपस्विनी कन्या हूँ । इस तपोवन में रहकर तपस्या करती हूँ । तुम कौन हो ? तुम जहाँ जाना चाहो वहाँ सुखपूर्वक जाओ ॥१६॥ नारी जाति ब्रह्मादिकों को भी मोह लेने वाली है, विष के समान यह निन्दनीय तथा पुरुषों को दूषित करने वाली है । यह मायारूपी नारी ज्ञानियों के लिए शृखला के समान है ॥ १७ ॥

सनत्कुमार बोले—इतना सरस वचन कहकर तुलसी चुप हो गयी । पुनः उसे मन्दस्मित करते देख वह शंखचूड बोला ॥ १८ ॥

शङ्खचूड बोला—हे देवि ! तुमने जो कहा है वह बात सर्वथा झूठी नहीं है, उसमें कुछ सत्य और कुछ झूठ भी है । अब कुछ मुझसे सुनो ॥ १९ ॥ संसार में जितनी भी पतिव्रता स्त्रियाँ हैं, उनमें तुम सर्वश्रेष्ठ पतिव्रता हो । जिस प्रकार मैं पापी और कामी नहीं हूँ उसी प्रकार तुम भी पापी एवं कामिनी नहीं हो, मेरी तो ऐसी ही बुद्धि है ॥ २० ॥ हे शोभने ! मैं ब्रह्मा की आज्ञा से तुम्हारे पास आया हूँ और गन्धर्व विवाह कर तुम्हें ग्रहण करना चाहता हूं ॥ २१ ॥ हे देवि ! देवताओं को विद्रावण करनेवाला मैं शङ्खचूड नामका दैत्य हूँ । हे भद्रे ! क्या तुम मुझे नहीं जानती ? क्या तुमने मेरा नाम कभी नहीं सुना है ? ॥ २२ ॥ मैं दनु के वंश में उत्पन्न हुआ दम्भ का पुत्र शङ्खचूड हूँ । मैं पूर्वकाल में श्रीकृष्ण का पार्षद सुदामा नामका गोप था ॥ २३ ॥ मुझे राधिका ने कारण वश उस समय शाप दिया, जिससे इस समय दानवकुल में उत्पन्न हुआ हूँ । मुझे श्रीकृष्ण की कृपा से अपने पूर्वजन्म का स्मरण है इसलिए मैं सबकुछ जानता हूँ ॥ २४ ॥

सनत्कुमार उवाच

एवमुक्त्वा शङ्खचूडो विरराम च तत्पुरः। दानवेन्द्रेण सेत्युक्तं वचनं सत्यमादरात्॥
सस्मितं तुलसी तुष्टा प्रवक्तुमुपचक्रमे॥ २५॥

तुलस्युवाच

त्वयाऽहमधुना सत्त्वविचारेण पराजिता। स धन्यः पुरुषो लोके न स्त्रिया यः पराजितः॥२६॥
सत्क्रियोऽप्यशुचिर्नित्यं स पुमान् यः स्त्रिया जितः।
निन्दन्ति पितरो देवा मानवाः सकलाश्च तम्॥२७॥
शुध्येद् विप्रो दशाहेन जातके मृतसूतके। क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहतः॥२८॥
शूद्रो मासेन शुध्येत्तु हीति वेदानुशासनम्। न शुचिः स्त्रीजितः क्वापि चितादाहं विना पुमान्॥२९॥
न गृह्णन्तीच्छया तस्मात् पितरः पिण्डतर्पणम्। न गृह्णन्ति सुरास्तेन दत्तं पुष्पफलादिकम्॥३०॥
तस्य किं ज्ञान-सुतपो-जपहोम-प्रपूजनैः। विद्यया दानतः किं वा स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम्॥३१॥
विद्याप्रभावज्ञानार्थं मया त्वं च परीक्षितः। कृत्वा कान्तपरीक्षां वै वृणुयात् कामिनी वरम्॥३२॥

सनत्कुमार उवाच

इत्येवं प्रवदन्त्यां तु तुलस्यां तत्क्षणे विधिः। तत्राजगाम संस्रष्टा प्रोवाच वचनं ततः॥३३॥

ब्रह्मोवाच

किं करोषि शङ्खचूड संवादमनया सह। गान्धर्वेण विवाहेन त्वमस्या ग्रहणं कुरु॥३४॥
त्वं वै पुरुषरत्नं च स्त्रीरत्नं च त्वियं सती। विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमे गुणवान् भवेत्॥३५॥
निर्विरोधं सुखं राजन्! को वा त्यजति दुर्लभम्। योऽविरोधसुखत्यागी स पशुर्नाऽत्र संशयः॥३६॥

सनत्कुमार बोले—शङ्खचूड इतना कहकर तुलसी के आगे चुपचाप खड़ा हो गया। दानवेन्द्र के द्वारा कहे गये इस सत्य वचन को आदर से सुनकर तुलसी सन्तुष्ट हो गयी और मन्द-मन्द मुसकुराती हुई शङ्खचूड से बोली॥ २५॥

तुलसी बोली—तुमने अपने सात्त्विक विचार से मुझे पराजित कर दिया। वही पुरुष धन्य है, जो स्त्रियों से कभी पराजित नहीं होता॥ २६॥ जिस पुरुष को स्त्री ने जीत लिया, वह सत्कर्म में निरत होने पर भी नित्य अपवित्र है। देवता, पितर तथा मनुष्य उसकी निन्दा करते हैं॥ २७॥ जनन एवं मरणकाल उपस्थित होने पर ब्राह्मण दश दिन में, क्षत्रिय बारह दिन में, वैश्य पन्द्रह दिन में तथा शूद्र एक महीने पर शुद्ध हो जाता है, ऐसी वेद की आज्ञा है, परन्तु स्त्री के द्वारा विजित पुरुष कभी भी शुद्ध नहीं होता, उसकी शुद्धि तो चिता पर जल जाने के बाद ही होती है॥ २८-२९॥ स्त्री के द्वारा विजित पुरुष के तर्पण का जल एवं पिण्ड भी पितर लोग ग्रहण नहीं करते। देवता लोग उसके द्वारा दिये गये पुष्प, फलादि की पूजा भी ग्रहण नहीं करते॥ ३०॥ इसलिए स्त्रियों ने जिसका मन जीत लिया है उसके सुन्दर ज्ञान, तप, जप, होम एवं पूजन से क्या लाभ है? उसकी विद्या तथा दान से भी कुछ लाभ नहीं॥ ३१॥ मैंने तुम्हारी विद्या का प्रभाव जानने के लिए ही तुम्हारी परीक्षा ली है, क्योंकि स्वामी की परीक्षा करके ही स्त्री को अपना पति वरण करना चाहिए॥ ३२॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास! अभी तुलसी इतना कह ही रही थी कि जगत्-स्रष्टा ब्रह्मदेव उसी समय प्रगट होकर बोले॥ ३३॥

ब्रह्मा बोले—हे शङ्खचूड! तुम इसके साथ संवाद क्यों करते हो, गान्धर्व विवाह कर शीघ्रता से इसको ग्रहण करो॥ ३४॥ यदि तुम पुरुषों में रत्न हो तो यह भी स्त्रियों में रत्न है। विदग्ध (चतुर) का विदग्धों के साथ संगम गुणकारी होता है॥ ३५॥ हे राजन्! यदि स्त्री के विरोध के बिना ही अनायास दुर्लभ सुख प्राप्त होता हो तो जगत् में ऐसा कौन बुद्धिमान् है, जो उसका त्याग करे। इसमें

किं त्वं परीक्षसे कान्तमीदृशं गुणिनं सति । देवानामसुराणां च दानवानां विमर्दकम् ॥३७॥
अनेन सार्द्धं सुचिरं विहारं कुरु सर्वदा । स्थाने स्थाने यथेच्छं च सर्वलोकेषु सुन्दरि ! ॥३८॥
अन्ते प्राप्स्यति गोलोके श्रीकृष्णं पुनरेव सः । चतुर्भुजं च वैकुण्ठे मृते तस्मिन् त्वमाप्स्यसि ॥३९॥

सनत्कुमार उवाच

इत्येवमाशिषं दत्त्वा स्वालयं स ययौ विधिः । गान्धर्वेण विवाहेन जगृहे तां च दानवः ॥४०॥
एवं विवाह्य तुलसीं पितुः स्थानं जगाम ह । स रेमे रमया सार्द्धं वासगेहे मनोरमे ॥४१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शङ्खचूडतपः-
पूर्वकतुलसीविवाहवर्णनं नामाऽष्टविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

(शंखचूड के राज्य का वर्णन)

सनत्कुमार उवाच

स्वगेहमागते तस्मिन् शङ्खचूडे विवाहिते । तपःकृत्वा वरं प्राप्य मुमुदुर्दानवादयः ॥ १ ॥
स्वलोकादाशु निर्गत्य गुरुणा स्वेन संयुताः । सर्वे सुराः सम्मिलिताः समाजग्मुस्तदन्तिकम् ॥ २ ॥
प्रणम्य तं सविनयं संस्तुत्य विविधादरात् । स्थितास्तत्रैव सुप्रीत्या मत्वा तेजस्विनं विभुम् ॥ ३ ॥
सोऽपि दम्भात्मजो दृष्ट्वाऽऽगतं कुलगुरुं च तम् । प्रणनाम महाभक्त्या साष्टाङ्गं परमादरात् ॥ ४ ॥
अथ शुक्रः कुलाचार्यो दत्त्वाशिषमनुत्तमम् । वृत्तान्तं कथयामास देवदानवयोस्तदा ॥ ५ ॥
स्वाभाविकं च तद्वैरमसुराणां पराभवम् । विजयं निर्जराणां च जीवसाहाय्यमेव च ॥ ६ ॥

सन्देह नहीं कि निर्विरोध सुख का त्याग करने वाला पशु है ॥ ३६ ॥ हे सति ! इस प्रकार के गुणवान् पति को प्राप्त कर तुम व्यर्थ में परीक्षा करती हो । इस जगत् में देवता, दानव तथा मानवों का मर्दन करने वाला इसके समान और कौन प्रतापी है ॥ ३७ ॥ हे सुन्दरि ! तुम इसके साथ सभी लोकों में स्थान-स्थान पर चिरकाल तक सर्वदा विहार करो ॥ ३८ ॥ अन्त में यह श्रीकृष्ण के साथ पुनः गोलोक प्राप्त करेगा और इसके मर जाने पर तुम भी गोलोक में श्रीकृष्ण को प्राप्त करोगी ॥ ३९ ॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार आशीर्वाद देकर ब्रह्मा अपने लोक को चले गये और दानव शङ्खचूड ने गान्धर्व विवाह के द्वारा तुलसी का पाणिग्रहण किया ॥ ४० ॥ इस प्रकार तुलसी से विवाह कर शङ्खचूड अपने पिता के पास चला गया और अपने सुन्दर भवन में उसके साथ रमण करने लगा ॥ ४१ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड में शङ्खचूड की तपस्या तथा विवाहवर्णन नामक अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥

*

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! इस प्रकार विवाह कर शङ्खचूड जब अपने घर आया, तब तपस्या के द्वारा उसके वरदान प्राप्त करने का समाचार सुनकर सभी दानव अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥ १ ॥ और अपने लोक (पाताल) से आकर सभी असुर एकत्रित हो शुक्राचार्य को साथ ले शङ्खचूड के पास आये ॥ २ ॥ उन लोगों ने विनयपूर्वक शङ्खचूड को प्रणाम किया, फिर आदरपूर्वक उसकी स्तुति करते हुए उसको समर्थ एवं तेजस्वी जानकर प्रसन्न हो वहीं पर स्थित हो गये ॥ ३ ॥ दम्भ के पुत्र शङ्खचूड ने अपने घर पर आये हुए गुरु शुक्राचार्य को देखकर आदर से महाभक्ति युक्त हो साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥ ४ ॥ दैत्यों के कुलाचार्य शुक्र ने उसे तेजस्वी देखकर उत्तम आशीर्वाद प्रदान किया । अनन्तर देवताओं तथा दानवों का सारा वृत्तान्त उससे वर्णन किया ॥ ५ ॥ उन्होंने देव-दानव के स्वाभाविक वैर

ततः स सम्मतं कृत्वा सुरैः सर्वैः समुत्सवम् । दानवाद्यसुराणां अधिपं विदधे गुरुः ॥ ७ ॥
तदा समुत्सवो जातोऽसुराणां मुदितात्मनाम् । उपायनानि सुप्रीत्या ददुस्तस्मै च तेऽखिलाः ॥ ८ ॥
अथ दम्भात्मजो वीरः शङ्खचूडः प्रतापवान् । राज्याभिषेकमासाद्य स रेजे सुरराट् तदा ॥ ९ ॥
स सेनां महतीं कर्षन् दैत्यदानवरक्षसाम् । रथमास्थाय तरसा जेतुं शक्रपुरीं ययौ ॥ १० ॥
गच्छन् स दानवेन्द्रस्तु तेषां सेवनकुर्वताम् । विरेजे शशिवद्भानां ग्रहाणां ग्रहराडिव ॥ ११ ॥
आगच्छन्तं शङ्खचूडमाकर्ण्याखुण्डलः स्वराट् । निखिलैरमरैः सार्द्धं तेन योद्धुं समुद्यतः ॥ १२ ॥
तदाऽसुरैः सुराणां च सङ्ग्रामस्तुमुलो ह्यभूत् । वीराऽऽनन्दकरः क्लीबभयदो रोमहर्षणः ॥ १३ ॥
महान् कोलाहलो जातो वीराणां गर्जतां रणे । वाद्यध्वनिस्तथा चासीत्तत्र वीरत्ववर्द्धिनी ॥ १४ ॥
देवाः प्रकुप्य युयुधुरसुरैर्बलवत्तराः । पराजयं च सम्प्रापुरसुरा दुद्रुवुर्भयात् ॥ १५ ॥
पलायमानांस्तान् दृष्ट्वा शङ्खचूड स्वयं प्रभुः । युयुधे निर्जरैः सार्द्धं सिंहनादं प्रगर्ज्य च ॥ १६ ॥
तरसा सहसा चक्रे कदनं त्रिदिवौकसाम् । प्रदुद्रुवुः सुराः सर्वे तत्सुतेजो न सेहिरे ॥ १७ ॥
यत्र तत्र स्थिता दीना गिरीणां कन्दरासु च । तदधीना न स्वतन्त्रा निष्प्रभाः सागरा यथा ॥ १८ ॥
सोऽपि दम्भात्मजः शूरो दानवेन्द्रः प्रतापवान् । सुराधिकारान् संजह्रे सर्वांल्लोकान् विजित्य च ॥ १९ ॥
त्रैलोक्यं स्ववशं चक्रे यज्ञभागांश्च कृत्स्नशः । स्वयमिन्द्रो बभूवाऽपि शासितं निखिलं जगत् ॥ २० ॥
कौबेरमैन्द्वं सौर्यमाग्नेयं याम्यमेव च । कारयामास वायव्यमधिकारं स्वशक्तितः ॥ २१ ॥
देवानामसुराणां च दानवानां च रक्षसाम् । गन्धर्वाणां च नागानां किन्नराणां रसौकसाम् ॥ २२ ॥

एवं देवताओं के द्वारा दानवों पर विजय का तथा बृहस्पति के द्वारा देवताओं की सहायता का वृत्तान्त सविस्तार वर्णन किया ॥ ६ ॥ शुक्राचार्य ने सभी दैत्यों की सम्मति लेकर उसे दानवों एवं असुरों का अधिपति बनाकर उसे राज्यपद पर अभिषिक्त किया ॥ ७ ॥ फिर तो वह असुर प्रसन्न हो महान् उत्सव सम्पन्न किया । उन सभी ने शङ्खचूड़ को नाना प्रकार के भेंट अर्पण किया ॥ ८ ॥ वह महाप्रतापी दम्भपुत्र असुरराज शंखचूड राज्यपद पर अभिषिक्त हो अत्यन्त शोभित हुआ ॥ ९ ॥ उसने दैत्यों, दानवों एवं असुरों की एक बहुत बड़ी सेना एकत्रित कर और स्वयं रथ पर सवार होकर बड़े वेग से इन्द्र को जीतने के लिए स्वर्ग पर चढ़ाई कर दी ॥ १० ॥

उस समय विजय-यात्रा के लिए जाती हुई अपनी सेनाओं के बीच वह तारों के मध्य में चन्द्रमा के समान तथा ग्रहों के मध्य में सूर्य के समान शोभित होने लगा ॥ ११ ॥ इधर देवराज इन्द्र शंखचूड को आते देख सम्पूर्ण देवताओं के साथ युद्ध के लिए उद्यत हो गये ॥ १२ ॥ उस समय देवताओं एवं असुरों में महा घनघोर युद्ध छिड़ गया । वीरों को आनन्द देने तथा कायरों को भय देने वाला वह युद्ध अत्यन्त लोमहर्षक था ॥ १३ ॥ उस युद्ध में वीरों के गर्जने से महान् कोलाहल उत्पन्न हुआ । वीरता को बढ़ाने वाले बाजे बजने लगे ॥ १४ ॥ बलवान् देवगण क्रुद्ध हो कर असुरों के साथ युद्ध करने लगे, जिससे असुर पराजित होकर युद्ध का मैदान छोड़कर भागने लगे ॥ १५ ॥ दैत्यों को भागते देख स्वयं दैत्यराज शंखचूड युद्ध करने लगा, और सिंहनाद करता हुआ गर्जने लगा ॥ १६ ॥ वह उस युद्ध में बड़े वेग के साथ देवताओं की सेना को नष्ट करने लगा, फिर तो उसके तेज को न सह सकने के कारण देवता लोग युद्ध से भागने लगे ॥ १७ ॥ वे दीन होकर पर्वत की कन्दराओं में जाकर जहाँ-तहाँ छिप गये और कुछ ने हतप्रभ होकर उसकी अधीनता स्वीकार कर ली ॥ १८ ॥ इस प्रकार दम्भपुत्र दानवेन्द्र शंखचूड ने सारे लोकों को जीतकर समस्त देवताओं का अधिकार हरण कर लिया ॥ १९ ॥ वह त्रिलोकी को अपने वश में कर स्वयं इन्द्र बन कर यज्ञ-भाग ग्रहण करने लगा और सारे जगत पर अधिकार कर शासन करने लगा ॥ २० ॥ उसने कुबेर, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु तथा यम आदि देवताओं के अधिकार को अपनी शक्ति से छीन लिया ॥ २१ ॥ और देव, असुर, दानव, राक्षस, गन्धर्व, नाग, किन्नर तथा मनुष्यों के ऊपर स्वयं शासन

शङ्खचूड उवाच

किं त्वं परीक्षसे कान्तमीदृश ता त्वं हि किं करोषि स्थिताऽत्र किम् ? ।
अनेन सार्द्धं सुचिरं विह किङ्करं मां सम्भावितुमिहार्हसि ॥१४॥
अन्ते प्राप्स्यति गोलोके श्री

सनत्कुमार उवाच

इत्येवमाशिषं दत्त्वा स्वालयं वचनं श्रुत्वा सकामं तमुवाच सा ॥१५॥
एवं विवाह्य तुलसीं पितुः

तुलस्युवाच

इति श्रीशिवम मि तपस्विनी । तपोवने च तिष्ठामि कस्त्वं गच्छ यथासुखम् ॥१६॥
नां विषोपमा । निन्द्या दोषकरी माया शृङ्खला ह्यनुशायिनाम् ॥१७॥

सनत्कुमार उवाच

विरराम ह । दृष्ट्वा तांस्सस्मितां सोऽपि प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥१८॥

शङ्खचूड उवाच

सर्वमलीककम् । किञ्चित् सत्यमलीकं च किञ्चिन्मत्तो निशामय ॥१९॥
स्वगेहमागते तस्मिन् शङ्ख ये त्वमग्रणीः । न चाऽहं पापदृक् कामी तथा त्वं नेति धीर्मम ॥२०॥
स्वलोकादाशु निर्गत्य गुरुणा ब्रह्मणोऽधुना । गान्धर्वेण विवाहेन त्वां ग्रहीष्यामि शोभने ॥२१॥
प्रणम्य तं सविनयं संस्तुत विद्रावकारकः । मां न जानासि किं भद्रे ! न श्रुतोऽहं कदाचन ॥२२॥
सोऽपि दम्भात्मजो दृष्ट्वाऽऽग श्च दानवः । सुदामा नाम गोपोऽहं पार्षदश्च हरेः पुरा ॥२३॥
अथ शुक्रः कुलाचार्यो याश्च शापतः । जातिस्मरोऽहं जानामि सर्वं कृष्णप्रभावतः ॥२४॥
स्वाभाविकं च तद्वैरमु

! तुम कौन हो ? किसकी कन्या हो ? तुम यहाँ किस लिए निवास कर रही
सन्देह नहीं कि निर्विरोध सुख क्या है, किन्तु तब भी मुझे अपना दास समझकर संभाषण करो ॥ १४ ॥
पति को प्राप्त कर तुम व्यर्थ
करने वाला इसके समान वचन सुन कर वह तुलसी सकामभाव से शंखचूड से बोली ॥ १५ ॥
स्थान-स्थान पर चिरकाल तक ज की तपस्विनी कन्या हूँ। इस तपोवन में रहकर तपस्या करती हूँ। तुम
प्राप्त करेगा और इसके मर जहाँ हो वहाँ सुखपूर्वक जाओ ॥१६॥ नारी जाति ब्रह्मादिकों को भी मोह
सनत्कुमार बोले—इस दनीय तथा पुरुषों को दूषित करने वाली है। यह मायारूपी नारी
ने गान्धर्व विवाह के द्वारा तुलसी ॥ १७ ॥
अपने पिता के पास चला गया अ र वचन कहकर तुलसी चुप हो गयी। पुनः उसे मन्दस्मित करते
इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका
में शङ्खचूड की तपस्य मने जो कहा है वह बात सर्वथा झूठी नहीं है, उसमें कुछ सत्य और
पुो ॥ १९ ॥ संसार में जितनी भी पतिव्रता स्त्रियाँ हैं, उनमें तुम सर्व-
सनत्कुमार बोले—हे व्या पापी और कामी नहीं हूँ उसी प्रकार तुम भी पापी एवं कामिनी नहीं
के द्वारा उसके वरदान प्राप्त कर ० ॥ हे शोभने ! मैं ब्रह्मा की आज्ञा से तुम्हारे पास आया हूँ और
अपने लोक (पाताल) से आ ना चाहता हूँ ॥ २१ ॥ हे देवि ! देवताओं को विद्रावण करनेवाला
आये ॥ २ ॥ उन लोगों ने वि द्रे ! क्या तुम मुझे नहीं जानती ? क्या तुमने मेरा नाम कभी नहीं
हुए उसको समर्थ एवं तेजस्वी श में उत्पन्न हुआ दम्भ का पुत्र शङ्खचूड हूँ। मैं पूर्वकाल में श्रीकृष्ण
ने अपने घर पर आये हुए न था ॥ २३ ॥ मुझे राधिका ने कारण वश उस समय शाप दिया,
किया ॥ ४ ॥ दैत्यों के कु उत्पन्न हुआ हूँ। मुझे श्रीकृष्ण की कृपा से अपने पूर्वजन्म का स्मरण है
देवताओं तथा दानवों का ॥ २४ ॥

सनत्कुमार उवाच

एवमुक्त्वा शङ्खचूडो विरराम च तत्पुरः । दानवेन्द्रेण सेत्युक्त मधिपं विदधे गुरुः ॥ ७ ॥
सस्मितं तुलसी तुष्टा प्रवक्तुमुपचक्रमे । दुस्तस्मै च तेऽखिलाः ॥ ८ ॥

तुलस्युवाच

रेजे सुरराट् तदा ॥ ९ ॥
त्वयाऽहमधुना सत्त्वविचारेण पराजिता । स धन्यः पुरुषो लो जितुं शक्रपुरीं ययौ ॥१०॥
सत्क्रियोऽप्यशुचिर्नित्यं स पुमान् यः स्त्रिया ग्रहाणां ग्रहराडिव ॥११॥
निन्दन्ति पितरो देवा मानवाः सकलाश्च न योद्धुं समुद्यतः ॥१२॥
शुध्येद् विप्रो दशाहेन जातके मृतसूतके । क्षत्रियो द्वादशाहेन भयदो रोमहर्षणः ॥१३॥
शूद्रो मासेन शुध्येत्तु हीति वेदानुशासनम् । न शुचिः स्त्रीजितः क्वा त्र वीरत्ववर्द्धिनी ॥१४॥
न गृह्णन्तीच्छया तस्मात् पितरः पिण्डतर्पणम् । न गृह्णन्ति सुरास्त रसुरा दुद्रुवुर्भयात् ॥१५॥
तस्य किं ज्ञान-सुतपो-जपहोम-प्रपूजनैः । विद्यया दानतः किं सिंहनादं प्रगर्ज्य च ॥१६॥
विद्याप्रभावज्ञानार्थं मया त्वं च परीक्षितः । कृत्वा कान्तपरीक्षां तत्सुतेजो न सेहिरे ॥१७॥

सनत्कुमार उवाच

निष्प्रभाः सागरा यथा ॥१८॥
इत्येवं प्रवदन्त्यां तु तुलस्यां तत्क्षणे विधिः । तत्राजगाम संस्रष्टा र्वांल्लोकान् विजित्य च ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

शासितं निखिलं जगत् ॥२०॥
किं करोषि शङ्खचूड संवादमनया सह । गान्धर्वेण विवाहेन धिकारं स्वशक्तितः ॥२१॥
त्वं वै पुरुषरत्नं च स्त्रीरत्नं च स्त्रियं सती । विदग्धाया विदग्धेन किन्नराणां रसौकसाम् ॥२२॥
निर्विरोधं सुखं राजन्! को वा त्यजति दुर्लभम् । योऽविरोधसुखस्याग ओं की सहायता का वृत्तान्त

उसे दानवों एवं असुरों का
सनत्कुमार बोले—शङ्खचूड इतना कहकर तुलसी के आगे चुपचा वह असुर प्रसन्न हो महान्
द्वारा कहे गये इस सत्य वचन को आदर से सुनकर तुलसी सन्तुष्ट हो गयी किया ॥ ८ ॥ वह महाप्रतापी
शङ्खचूड से बोली ॥ २५ ॥ सुशोभित ॥ ९ ॥ उसने दैत्यों,

तुलसी बोली—तुमने अपने सात्त्विक विचार से मुझे पराजित कर सवार होकर बड़े वेग से इन्द्र
स्त्रियों से कभी पराजित नहीं होता ॥ २६ ॥ जिस पुरुष को स्त्री ने जीत
पर भी नित्य अपवित्र है । देवता, पितर तथा मनुष्य उसकी निन्दा वह तारों के मध्य में चन्द्रमा
उपस्थित होने पर ब्राह्मण दश दिन में, क्षत्रिय बारह दिन में, वैश्य प गो॥ इधर देवराज इन्द्र शंखचूड
शुद्ध हो जाता है, ऐसी वेद की आज्ञा है, परन्तु स्त्री के द्वारा विजित पु उस समय देवताओं एवं असुरों
शुद्धि तो चिता पर जल जाने के बाद ही होती है ॥ २८-२९ ॥ स्त्री भय देने वाला वह युद्ध अत्यन्त
जल एवं पिण्ड भी पितर लोग ग्रहण नहीं करते । देवता लोग उसके द्व उत्पन्न हुआ । वीरता को बढ़ाने
भी ग्रहण नहीं करते ॥ ३० ॥ इसलिए स्त्रियों ने जिसका मन जीत थ युद्ध करने लगे, जिससे असुर
होम एवं पूजन से क्या लाभ है ? उसकी विद्या तथा दान से भी कुछ भागते देख स्वयं दैत्यराज शंखचूड
विद्या का प्रभाव जानने के लिए ही तुम्हारी परीक्षा ली है, क्योंकि युद्ध में बड़े वेग के साथ देवताओं
अपना पति वरण करना चाहिए ॥ ३२ ॥ कारण देवता लोग युद्ध से भागने

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! अभी तुलसी इतना कह ही रहीं छिप गये और कुछ ने हतप्रभ
समय प्रगट होकर बोले ॥ ३३ ॥ दानवेन्द्र शंखचूड ने सारे लोकों

ब्रह्मा बोले—हे शङ्खचूड ! तुम इसके साथ संवाद क्यों करते हो त्रिलोकी को अपने वश में कर
इसको ग्रहण करो ॥ ३४ ॥ यदि तुम पुरुषों में रत्न हो तो यह भी स्त्रि र शासन करने लगा ॥२०॥
का विदग्धों के साथ संगम गुणकारी होता है ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! यदि र को अपनी शक्ति से छीन
अनायास दुर्लभ सुख प्राप्त होता हो तो जगत् में ऐसा कौन बुद्धिमान् है, ष्यों के ऊपर स्वयं शासन

त्रिलोकस्य परेषां च स गुणिनं सति । देवानामसुराणां च दानवानां विमर्दकम् ॥३७॥
एवं स बुभुजे राज्यं रा कुरु सर्वदा । स्थाने स्थाने यथेच्छं च सर्वलोकेषु सुन्दरि ! ॥३८॥
तस्य राज्ये न दुर्भिक्षं न म ष्णं पुनरेव सः । चतुर्भुजं च वैकुण्ठे मृते तस्मिन् त्वमाप्स्यसि ॥३९॥
अकृष्टपच्या पृथिवी ददौ सनत्कुमार उवाच
मण्याकराश्च नितरां रत्न ययौ विधिः । गान्धर्वेण विवाहेन जगृहे तां च दानवः ॥४०॥
देवान् विनाखिला जीवाः सु नं जगाम हं । स रेमे रमया सार्द्धं वासगेहे मनोरमे ॥४१॥
तस्मिञ्छासति त्रैलोक्ये न क पुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शङ्खचूडतपः-
स शङ्खचूडः प्रबलः णविवाहवर्णनं नामाऽष्टविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥
पूर्वशापप्रभावेण दानवीं

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

ततः सुरगणाः सर्वे हतरा (शंखचूड के राज्य का वर्णन)
तत्र दृष्ट्वा विधातारं नत्वा सनत्कुमार उवाच
ब्रह्मा तदा समाश्वास्य सुरान् डे विवाहिते । तपःकृत्वा वरं प्राप्य मुमुदुर्दानवादयः ॥ १ ॥
ददर्श तत्र लक्ष्मीशं ब्रह्म स्वेन संयुताः । सर्वे सुराः सम्मिलिताः समाजग्मुस्तदन्तिकम् ॥ २ ॥
शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधरं विविधादरात् । स्थितास्तत्रैव सुप्रीत्या मत्वा तेजस्विनं विभुम् ॥ ३ ॥
दृष्ट्वा विष्णुं सुराः सर्वे ब्रह्म कुलगुरुं च तम् । प्रणनाम महाभक्त्या साष्टाङ्गं परमादरात् ॥ ४ ॥
शिषमनुत्तमम् । वृत्तान्तं कथयामास देवदानवयोस्तदा ॥ ५ ॥
णां पराभवम् । विजयं निर्जराणां च जीवसाहाय्यमेव च ॥ ६ ॥

करने लगा ॥ २२ ॥ इस प्र
और स्वयं राज-राजेश्वर बन

का त्याग करने वाला पशु है ॥ ३६ ॥ हे सति ! इस प्रकार के गुणवान्
उसके राज्य-काल में परीक्षा करती हो । इस जगत् में देवता, दानव तथा मानवों का मर्दन
सुखी थीं ॥२५॥ पृथ्वी बिन कौन प्रतापी है ॥ ३७ ॥ हे सुन्दरि ! तुम इसके साथ सभी लोकों में
सरस उत्पन्न होने लगीं, सर्वदा विहार करो ॥ ३८ ॥ अन्त में यह श्रीकृष्ण के साथ पुनः गोलोक
निरन्तर रत्न निकलते थे । पर तुम भी गोलोक में श्रीकृष्ण को प्राप्त करोगी ॥ ३९ ॥
बहाती थीं ॥ २७ ॥ देवता आशीर्वाद देकर ब्रह्मा अपने लोक को चले गये और दानव शङ्खचूड
विकार उत्पन्न नहीं होता था पाणिग्रहण किया ॥ ४० ॥ इस प्रकार तुलसी से विवाह कर शङ्खचूड
शंखचूड़ के शासन काल में को अपने सुन्दर भवन में उसके साथ रमण करने लगा ॥ ४१ ॥
के कारण दुःखी थे ॥ २९ ॥
भक्ति में सदा निरत एवं साधु स सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड
दानव योनि को प्राप्त किया था तथा विवाहवर्णन नामक अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥
नहीं थी ॥ ३१ ॥

*

हे तात ! सभी देवता ! इस प्रकार विवाह कर शङ्खचूड जब अपने घर आया, तब तपस्या
ब्रह्मदेव की सभा में गये ॥३२॥ का समाचार सुनकर सभी दानव अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥ १ ॥ और
की ओर व्याकुल होकर उनसे स सभी असुर एकत्रित हो शुक्राचार्य को साथ ले शङ्खचूड के पास
एवं मुनियों को सान्त्वना दी । यपूर्वक शङ्खचूड को प्रणाम किया, फिर आदरपूर्वक उसकी स्तुति करते
ब्रह्मा देवगणों के साथ उस स नकर प्रसन्न हो वहीं पर स्थित हो गये ॥ ३ ॥ दम्भ के पुत्र शङ्खचूड
शंख, चक्र, गदा एवं पद्म धार शुक्राचार्य को देखकर आदर से महाभक्ति युक्त हो साष्टाङ्ग प्रणाम
सिद्धों से सेवित हो रहे थे र्य शुक्र ने उसे तेजस्वी देखकर उत्तम आशीर्वाद प्रदान किया । अनन्तर
करते हुए हाथ जोड़ भक्ति रा वृत्तान्त उससे वर्णन किया ॥ ५ ॥ उन्होंने देव-दानव के स्वाभाविक वैर

ततः स सम्मतं कृत्वा सुरैः सर्वैः समुत्सवम् । दानवाद्यसुराणां
तदा समुत्सवो जातोऽसुराणां मुदितात्मनाम् । उपायनानि सुप्रीत्या श्रीहरे त्रिजगद्गुरो ! ॥३८॥
अथ दम्भात्मजो धीरः शङ्खचूडः प्रतापवान् । राज्याभिषेकमासाद्य क्तप्राण ! नमोऽस्तु ते ॥३९॥
स सेनां महतीं कर्षन् दैत्यदानवरक्षसाम् । रथमास्थाय तरसा र्गुर्ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ॥४०॥
गच्छन् स दानवेन्द्रस्तु तेषां सेवनकुर्वताम् । विरेजे शशिवद्भाना
आगच्छन्तं शङ्खचूडमाकर्ण्याखण्डलः स्वराट् । निखिलैरमरैः सार्द्धं तत्त्वं वद ममाग्रतः ॥४१॥
तदाऽसुरैः सुराणां च सङ्ग्रामस्तुमुलो ह्यभूत् । वीराऽऽनन्दकरः
विनयानतकन्धरः ॥४२॥
महान् कोलाहलो जातो वीराणां गर्जतां रणे । वाद्यध्वनिस्तथा चा ष्णोः परात्मनः ॥४३॥
देवाः प्रकुप्य युयुधुरसुरैर्बलवत्तराः । पराजयं च सम्प्र द्रहस्यं विधिं प्रति ॥४४॥
पलायमानांस्तान् दृष्ट्वा शङ्खचूड स्वयं प्रभुः । युयुधे निर्जरैः स
तरसा सहसा चक्रे कदनं त्रिदिवौकसाम् । प्रदुद्रुवुः सुराः सर्वे महातेजस्विनः पुरा ॥४५॥
यत्र तत्र स्थिता दीना गिरीणां कन्दरासु च । तदधीना न स्वतन्त्रा शङ्करिष्यति शङ्करः ॥४६॥
सोऽपि दम्भात्मजः शूरो दानवेन्द्रः प्रतापवान् । सुराधिकाराञ्संजह्रे परब्रह्म परेश्वरः ॥४७॥
त्रैलोक्यं स्ववशं चक्रे यज्ञभागांश्च कृत्स्नशः । स्वयमिन्द्रो बभूवाऽपि रंज्योतिःस्वरूपवान् ॥४८॥
कौबेरमैन्दवं सौर्यमाग्नेयं याम्यमेव च । कारयामास वायव्य ष्णु-ब्रह्म-हराभिधाः ॥४९॥
देवानामसुराणां च दानवानां च रक्षसाम् । गन्धर्वाणां च नागान् याऽनित्यप्रकल्पकः ॥५०॥

एवं देवताओं के द्वारा दानवों पर विजय का तथा बृहस्पति के द्वारा देवतसर ष्णो वसति तत्र ह ॥५१॥
सविस्तार वर्णन किया ॥ ६ ॥ शुक्राचार्य ने सभी दैत्यों की सम्मति लेक
अधिपति बनाकर उसे राज्यपद पर अभिषिक्त किया ॥ ७ ॥ फिर तं जगद्गुरो ! हे हरे ! हम
उत्सव सम्पन्न किया । उन सभी ने शङ्खचूड़ को नाना प्रकार के भेंट अर्पण क्ष्मीनिवास ! हे गोविन्द !
दम्भपुत्र असुरराज शंखचूड राज्यपद पर अभिषिक्त हो अत्यन्त शोभित ॥ ३९ ॥ हे व्यास !
दानवों एवं असुरों की एक बहुत बड़ी सेना एकत्रित कर और स्वयं रथ प । तब उसे सुनकर भगवान्
को जीतने के लिए स्वर्ग पर चढ़ाई कर दी ॥ १० ॥

उस समय विजय-यात्रा के लिए जाती हुई अपनी सेनाओं के म किस उद्देश्य से आये हो ?
के समान तथा ग्रहों के मध्य में सूर्य के समान शोभित होने लगा ॥ ॥
को आते देख सम्पूर्ण देवताओं के साथ युद्ध के लिए उद्यत हो गये ॥ १ बार उन्हें प्रणाम किया फिर
में महा घनघोर युद्ध छिड़ गया । वीरों को आनन्द देने तथा कायरों के दिया था, वह सारा वृत्तान्त
लोमहर्षक था ॥ १३ ॥ उस युद्ध में वीरों के गर्जने से महान् कोलाह को जानने वाले भगवान् विष्णु
वाले बाजे बजने लगे ॥ १४ ॥ बलवान् देवगण क्रुद्ध हो कर असुरों के
पराजित होकर युद्ध का मैदान छोड़कर भागने लगे ॥ १५ ॥ दैत्यों को स शङ्खचूड का सारा वृत्तान्त
युद्ध करने लगा, और सिंहनाद करता हुआ गर्जने लगा ॥ १६ ॥ वह उर सुनो, इसमें सन्देह मत करो ।
की सेना को नष्ट करने लगा, फिर तो उसके तेज को न सह सकने के परे सभी लोकों के ऊपर स्थित
लगे ॥ १७ ॥ वे दीन होकर पर्वत की कन्दराओं में जाकर जहाँ-तह जो तीनों शक्तियों को धारण
होकर उसकी अधीनता स्वीकार कर ली ॥ १८ ॥ इस प्रकार दम्भपुत्र था ज्योतिःस्वरूप हैं ॥ ४८ ॥
को जीतकर समस्त देवताओं का अधिकार हरण कर लिया ॥ १९ ॥ वह रूप ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर
स्वयं इन्द्र बन कर यज्ञ-भाग ग्रहण करने लगा और सारे जगत् पर अधिकार हार करते हैं । वे माया से
उसने कुबेर, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु तथा यम आदि देवताओं के अधि प शिवजी की गोशाला है,
लिया ॥ २१ ॥ और देव, असुर, दानव, राक्षस, गन्धर्व, नाग, किन्नर तथा का निवास है ॥ ५१ ॥

तद्गवां रक्षणार्थाय तेनाज्ञ लानामधीश्वरः । स बभूव महावीरः शङ्खचूडो महाबली ॥२३॥
तस्य नारी समाख्याता रा जेश्वरो महान् । सर्वेषां भुवनानां च शङ्खचूडश्चिरं समाः ॥२४॥
बहुगोपाश्च गोप्यश्च तत्र नाऽशुभग्रहाः । आधयो व्याधयो नैव सुखिन्यश्च प्रजाः सदा ॥२५॥
स एव लीलया शम्भोरिदानीं स्यान्यनेकशः । ओषध्यो विविधाश्चासन् सफलाः सरसाः सदा ॥२६॥
रुद्रशूलेन तन्मृत्युः कृष्णेन न्यश्च सागराः । सदा पुष्पफला वृक्षा नद्यः सुसलिलावहाः ॥२७॥
इति विज्ञाय देवेश ! न वनो निर्विकारकाः । स्व-स्वधर्मास्थिताः सर्वे चतुर्वर्णाश्रमाः परे ॥२८॥
अहं त्वद् दुःखितोऽभवत् । भ्रातृवैरत्वमाश्रित्य केवलं दुःखिनोऽमराः ॥२९॥
स्य परमः सखा । कृष्णभक्तिरतः साधुः सदा गोलोकवासिनः ॥३०॥
इत्युक्त्वा सविधिर्विष्णुः योनिमाश्रितः । न दानवमतिः सोऽभूद् दानवत्वेऽपि वै मुने ! ॥३१॥
इति श्रीशिवमहापुराणे द्विती ाः पराजिताः । सम्मन्त्र्य सर्वेस्तात प्रययुर्ब्रह्मणः सभाम् ॥३२॥
करणवर्णनपूर्वक त्वा विशेषतः । ब्रह्मणे कथयामासुः सर्वं वृत्तान्तमाकुलाः ॥३३॥
सर्वान् मुनीनपि । तैश्च सार्द्धं ययौ लोके वैकुण्ठं सुखदं सताम् ॥३४॥
देवगणैः सह । किरीटिनं कुण्डलिनं वनमालाविभूषितम् ॥३५॥
(शंखचूड वं चतुर्भुजम् । सनन्दनाद्यैः सिद्धैश्च सेवितं पीतवाससम् ॥३६॥
ाः समुनीश्वराः । प्रणम्य तुष्टुवुर्भक्त्या बद्धाञ्जलिकरा विभुम् ॥३७॥
गत्वा तदैव सविधिस्तदा क्र
साह्लादोऽभ्यन्तरं विष्णुर्ज
सम्प्राप्य प्रथमं द्वारं वि र महाबली वह शंखचूड़ सारे त्रिलोकी का मालिक बन बैठा ॥ २३ ॥
र बहुत वर्ष पर्यन्त सारे भूमण्ड का राज्य किया ॥ २४ ॥

उन्होंने अपनी गौओं की रक्षा र्भिक्ष, महामारी, अशुभ ग्रह, आधि-व्याधि नहीं थी । सभी प्रजाएँ बड़ी
होकर वहीं सर्वदा विहार क ोते ही नाना प्रकार के धान्य उत्पन्न करती थी । नाना प्रकार की औषधियाँ
प्रकृति की पाँचवां वसर्वदा प्रयोग में सफल थीं ॥ २६ ॥ खानों से मणियाँ तथा समुद्र से
हैं ॥ ५३ ॥ वहीं पर उनके वृक्ष सदैव फल-फूल से हरे-भरे रहते थे और नदियाँ मीठे जल की धारा
राधाकृष्ण के अनुवर्ती रहकर को छोड़कर सारे जीव सुखी थे । उनमें किसी प्रकार भी राग-द्वेष का
लीला से मोहित होकर राधा के रों वर्ण एवं आश्रम अपने-अपने धर्म में स्थित थे ॥ २८ ॥ इस प्रकार
श्रीकृष्ण ने रुद्र के त्रिशूल से उस प्राणी दुःखी नहीं था । केवल एक देवता ही ऐसे थे, जो भाई के वैर
त्याग कर पुनः श्रीकृष्ण का पार्षद शंखचूड़ गोलोकवासी श्रीकृष्ण का परम सखा था, इसलिए कृष्ण की
का भय मत करो, चलो हम स्वभाव का था ॥ ३० ॥ वह तो अपने पूर्व जन्म के शाप के प्रभाव से
करेंगे ॥ ५७ ॥ जिससे हम-तुम किन्तु दानवकुल में जन्म होने पर भी उसकी बुद्धि दानवों की तरह
सनत्कुमार बोले—इतना
का मन से स्मरण करते हुए शिव ऋषि अपने अधिकारों के नष्ट हो जाने पर आपस में मन्त्रणा कर
इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाष न्होंने वहाँ जाकर जब ब्रह्मदेव को देखा तो उन्हें प्रणामकर उनकी स्तुति
युद्धखण्ड में शङ्खसारा वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा ने उन सभी देवताओं
न्हें साथ लेकर सज्जनों के सुखदायक भगवान् विष्णु के लोक गये ॥ ३४ ॥
सनत्कुमार बोले—हे व्यशान पर गये, जहाँ लक्ष्मीपति, किरीट कुण्डलधारी, वनमाला-विभूषित,
अभीतक शिवलोक को गये ॥ करने वाले चतुर्भुज विष्णु को देखा । वे पीतवस्त्रधारी भगवान् सनकादिक
शिवलोक को देखकर विष्णु ३५-३६ ॥ अनन्तर सभी देवताओं एवं ब्रह्मा ने विष्णु को देखकर प्रणाम
शिव जी के भवन के प्रथम उनकी स्तुति करना आरम्भ किया ॥ ३७ ॥

देवा ऊचुः

देवदेव जगन्नाथ वैकुण्ठाधिपते प्रभो । रक्षाऽस्मान् शरणापन्न
त्वमेव जगतां पाता त्रिलोकेशाच्युत प्रभो । लक्ष्मीनिवास गोविन्दा
इति स्तुत्वा सुराः सर्वे रुरुदुः पुरतो हरेः । तच्छ्रुत्वा भगवान्

विष्णुरुवाच

किमर्थमागतोऽसि त्वं वैकुण्ठं योगिदुर्लभम् । किं कष्टं ते समुद्भूतं

सनत्कुमार उवाच

इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं प्रणम्य च मुहुर्मुहुः । बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा
वृत्तान्तं कथयामास शङ्खचूडकृतं तदा । देवकष्टसमाख्यानं पुरो
हरिस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वतः सर्वभाववित् । प्रहस्योवाच भगवान्

श्रीभगवानुवाच

शङ्खचूडस्य वृत्तान्तं सर्वं जानामि पद्मज । मद्भक्तस्य च गोपस्य
शृणु तत्सर्ववृत्तान्तमितिहासं पुरातनम् । सन्देहो नैव कर्तव्य
सर्वोपरि च यस्यास्ति शिवलोकः परात्परः । यत्र संराजते शम्भु
प्रकृतेः पुरुषस्यापि योऽधिष्ठाता त्रिशक्तिधृक् । निर्गुणः सगुणः सोऽपि
यस्याङ्गजास्तु वै ब्रह्मंस्त्रयः सृष्ट्यादिकारकाः । सत्त्वादिगुणसम्पन्ना
स एव परमात्मा हि विहरत्युमया सह । यत्र मायाविनिर्मुक्तो
तत्समीपे च गोलोको गोशाला शङ्करस्य वै । तस्येच्छया च मद्रूपः स

देवगण बोले—हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे वैकुण्ठाधिपते ! हे
शरणागतों की रक्षा करो ॥ ३८ ॥ हे त्रिलोकेश ! हे अच्युत ! हे प्रभो ! हे प
हे भक्तप्राण—आप इस जगत् की रक्षा करने वाले हैं, अतः आपको नम
इस प्रकार विष्णु की स्तुति कर सभी देवता नारायण के आगे रुदन करने ल
विष्णु ब्रह्मा से इस प्रकार कहने लगे ॥ ४० ॥

विष्णु बोले—हे ब्रह्मन् ! योगियों के लिए भी दुर्लभ इस वैकुण्ठ में
तुम्हें कौन सा कष्ट आ पड़ा है, उसे तुम मेरे सामने सच-सच कहो ? ॥

सनत्कुमार बोले—नारायण के वचन को सुनकर ब्रह्माजी ने
हाथ जोड़कर बड़े विनय के साथ शङ्खचूड ने जिस प्रकार देवताओं को
उन परमात्मा विष्णु को सुनाया ॥ ४२–४३ ॥ सब प्रकार से सबके भाव
ने इस वृत्तान्त को सुन हँसकर ब्रह्मा से सारा रहस्य कहने लगे ॥ ४४ ॥

भगवान् बोले—हे ब्रह्मदेव ! मैं अपने परम भक्त महातेजस्वी
पहले से ही जानता हूँ ॥ ४५ ॥ उसका पुराना इतिहास युक्त वृत्ता
शङ्करजी सर्वत्र मङ्गल करेंगे ॥ ४६ ॥ उन शङ्कर का शिवलोक पर से
है, जहाँ स्वयं शिवजी परब्रह्म परमेश्वर रूप से विराजमान हैं ॥ ४७ ॥
करने वाले प्रकृति एवं पुरुष के भी अधिष्ठाता हैं, निर्गुण एवं सगुण
हे ब्रह्मन् ! जिनके अङ्ग से सृष्टि के करने वाले सत्त्व, रज एवं तमोगुणों के
उत्पन्न हुए हैं ॥ ४९ ॥ वही परमात्मा शिव उमा के साथ उस लोक में
सर्वथा मुक्त एवं नित्यानित्य के व्यवस्थापक हैं ॥ ५० ॥ उसी शिवलोक के स
जिसे गोलोक कहते हैं । उन्हीं की इच्छा से वहाँ पर मेरे स्वरूप में श्रीकृष्ण

रत्नभूषणभूषितान् ॥ ४ ॥
भस्मरुद्राक्षशोभितान् ॥ ५ ॥
प्रभुसंदर्शनार्थकम् ॥ ६ ॥
विचित्रं परमप्रभम् ॥ ७ ॥
नाऽन्यं प्रविवेश ह ॥ ८ ॥
नन्दिनं प्रददर्श ह ॥ ९ ॥
शाभ्यन्तरं मुदा ॥१०॥
हैः सुभूषिताम् ॥११॥
तिकण्ठैर्महोज्ज्वलैः ॥१२॥
तुरस्रां मनोहराम् ॥१३॥
पत्रैश्च शोभिताम् ॥१४॥
शङ्करेच्छया ॥१५॥
चन्दनपल्लवैः ॥१६॥
सितां गन्धवायुना ॥१७॥
विष्णुः सुरेश्वरः ॥१८॥

और रत्न के सिंहासनों
त्र थे, वे सभी गौरवर्ण के
धारण से अत्यन्त शोभित
णाम किया और प्रभु दर्शन
फिर तो उन द्वारपालों ने
महा विचित्र प्रभाव वाले
पास जाने का वृत्तान्त वर्णन
प्रकार ब्रह्मा तथा विष्णु ने
॥ उन लोगों ने नन्दी को
वभवन में प्रविष्ट हुए ॥१०॥
की वह सभा अत्यन्त शोभित
न ही रूप और कान्ति से युक्त
ठ एवं महोज्ज्वल थे ॥ १२ ॥
जी की वह सभा भी नवीन
सार से शोभित हो रही थी ।
हों की माला स्थान-स्थान पर
तीत हो रही थी । शङ्कर की
सभा में स्वर्ण के सूत्रों में
स्तक मणि निर्मित सैकड़ों
ह अत्यन्त सुसंस्कृत तथा
सहस्रों योजन थी और

वसन्तं मध्यदेशे च
किरीटिनं कुण्डलिनं र
पुरतो
शान्तं प्रसन्नमनसमुमाक
गणैश्च परया भक्त्या
गुणातीतं परेशानं त्रिदे
अमायमजमाद्यं च म
एवं विशिष्टं तं दृष्ट्वा प

देवदेव महादेव
वयं ते शरणापन्ना रक्षाऽस्मान्
अयं योऽधिष्ठितो लोको गोल
पार्षदप्रवरस्तस्य सुदामा
तेन निःसारिताः शम्भो पी
त्वां विना न स वध्यश्च स

अनेक सेवकों से परिपूर्ण
देखा ॥ १८ ॥ उस सभा
प्रकार शोभित हो रहे थे
किरीट, कुण्डल एवं रत्नों
किये हुए थे ॥ २० ॥ वे अप
शान्त प्रसन्न मन एवं
चर्वण कर रहे थे ॥ २२ ॥ ग
उनकी स्तुति कर रहे थे ॥ २३
विभु, निराकार, निर्विकल्प त
मायाधीश, प्रकृति एवं पुरुष से
प्रणाम करते हुए उनकी स्तुति
विष्णु एवं ब्रह्मा बोले—
हे निर्व्यग्र, हे त्रिदेवजनक ! हे
कीजिए । हे परमेश्वर ! आप
हैं ॥ २७-२८ ॥ यह गोलोक
को नियुक्त किया है। उन
शङ्खचूड नामक दानव के
प्रकार की यातनाएँ दी हैं ।
जिससे हमलोग इस पृथ्वी
देवताओं से नहीं मारा जा

ह सदा सुखी । तत्सम्प्राप्तसुखः सोऽपि संक्रीडति विहारवित् ॥५२॥
ते जगदम्बिका । प्रकृतेः परमा मूर्तिः पञ्चमी सुविहारिणी ॥५३॥
न्ति तदङ्गजाः । सुविहारपरा नित्यं राधाकृष्णानुवर्तिनः ॥५४॥
हितोऽनया । सम्प्राप्तो दानवीं योनिं मुधा शापात् स्वदुःखदाम् ॥५५॥
विहितः पुरा । ततः स्वदेहमुत्सृज्य पार्षदः स भविष्यति ॥५६॥
यं कर्तुमर्हसि । शङ्करं शरणं यावः स सद्यः शं विधास्यति ॥५७॥
चामराः सर्वे तिष्ठन्तीह विसाध्वसाः ॥५८॥

सनत्कुमार उवाच

ोकं जगाम ह । संस्मरन् मनसा शम्भुं सर्वेशं भक्तवत्सलम् ॥५९॥

यां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शङ्खचूडवधोपाख्याने शङ्खचूडराज्य-
त्पूर्वभववृत्तचरित्रवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

वध निमित्त शिव से देवताओं की प्रार्थना)

सनत्कुमार उवाच

व्यास रमेश्वरः । शिवलोकं महादिव्यं निराधारमभौतिकम् ॥ १ ॥
म मुदिताननः । नानारत्नपरिक्षिप्तं विलसन्तं महोज्ज्वलम् ॥ २ ॥
त्रं गणसेवितम् । शोभितं परया लक्ष्म्या महोच्चमतिसुन्दरम् ॥ ३ ॥

के निमित्त उन श्रीकृष्ण को नियुक्त किया है। वे भी गौओं की रक्षा से सुखी
हुए नानाप्रकार की क्रीड़ा करते रहते हैं ॥ ५२ ॥
जगदम्बा राधा भी श्रीकृष्ण की स्त्री की मूर्ति में वहाँ निवास करती
अङ्ग से उत्पन्न हुए अनेक प्रकार के गोप एवं गोपियाँ हैं। वे भी उन
दा विहार करते हैं ॥ ५४ ॥ उन्हीं गोपों में से यह एक गोप शङ्कर की
से इस दुःखदायी दानवी योनि में प्राप्त हो गया है ॥ ५५ ॥ भगवान्
मृत्यु निश्चित की है। इस प्रकार मरने के उपरान्त वह दानवी देह का
होगा ॥ ५६ ॥ हे देवेश, हे ब्रह्मन् ! ऐसा विचार कर तुम किसी प्रकार
दोनों ही शङ्कर की शरण में चलें। भगवान् शङ्कर सभी का कल्याण
तो सभी देवता भय रहित होकर निवास करें ॥ ५८ ॥
हकर भगवान् विष्णु विधाता के साथ भक्तवत्सल, सर्वेश भगवान् शङ्कर
लोक को गये ॥ ५९ ॥

टीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम
चूडराज्य वर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २९ ॥

*

स जी, उस समय विधाता एवं भगवान् विष्णु, सर्वथा निराधार एवं
॥ नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित, महोज्ज्वल और शोभा से युक्त उस
त्यन्त प्रसन्न हो उसके भीतर प्रविष्ट हुए ॥ २ ॥ उन्होंने नाना गणों से सेवित
र को प्राप्त किया, जो अत्यन्त ऊँचा, सुन्दर और अत्यधिक शोभा सम्पन्न

ददर्श द्वारपालांश्च रत्नसिंहासनस्थितान् । शोभितान् श्वेतवस्त्रैश्च
पञ्चवक्त्रत्रिनयनान् गौरसुन्दरविग्रहान् । त्रिशूलादिधरान् वीरान्
सब्रह्मापि रमेशश्च तान् प्रणम्य विनम्रकः । कथयामास वृत्तान्तं
तदाज्ञां च ददुस्तस्मै प्रविवेश तदाज्ञया । परं द्वारं महारम्यं
प्रभूपकण्ठगत्यर्थं वृत्तान्तं संन्यवेदयत् । तद् द्वारपाय चाज्ञप्तस
एवं पञ्चदशद्वारान् प्रविश्य कमलोद्भवः । महाद्वारं गतस्तत्र
सम्यङ् नत्वा च तं स्तुत्वा पूर्ववत्तेन नन्दिना । आज्ञप्तश्च शनैर्विष्णु
ददर्श गत्वा तत्रोच्चैः सभां शम्भोः समुत्प्रभाम् । तां पार्षदैः परिवृतां
महेश्वरस्य रूपैश्च दिग्भुजैः शुभकान्तिभिः । पञ्चवक्त्रैस्त्रिनयनैः
सद्रत्नयुक्त-रुद्राक्ष-भस्माभरण-भूषितैः । नवेन्दुमण्डलाकारां
मणीन्द्रहार-निर्माण-हीरसार-सुशोभिताम् । अमूल्यरत्नरचितां
माणिक्य-जालमालाभिर्नानाचित्र-विचित्रिताम् । पद्मरागेन्द्ररचितामद्भुत
सोपानशतकैर्युक्तां स्यमन्तकविनिर्मितैः । स्वर्णसूत्र-ग्रन्थियुक्तैश्चा
इन्द्रनीलमणिस्तम्भैर्वेष्टितां सुमनोहराम् । सुसंस्कृतां च सर्वत्र व
सहस्रयोजनायामां सुपूर्णां बहुकिङ्करैः । ददर्श शङ्करं साम्बं

था ॥ ३ ॥ वहाँ पर उन्होंने श्वेत वस्त्र से सुशोभित, रत्न भूषणों से भू
पर स्थित द्वारपालों को देखा ॥ ४ ॥ उन द्वारपालों के पाँच मुख तथा ती
तथा अत्यन्त सुन्दर थे, जो त्रिशूल आदि आयुधों से सुसज्जित, भस्म तथा रुद्रा
महावीर थे ॥ ५ ॥ तब ब्रह्मा के सहित विष्णु ने बड़ी नम्रता के साथ उन्हें
के निमित्त सारा वृत्तान्त कहकर अपने आगमन का प्रयोजन भी बताया ॥ ६
वहाँ पर ब्रह्मा एवं विष्णु को प्रवेश की आज्ञा दे दी। वे परम मनोहर ए
दूसरे द्वार पर पहुँचे ॥७॥ वहाँ पहुँच कर पुनः उन लोगों ने भगवान् शङ्कर के
किया, तब उनकी आज्ञा से उन लोगों ने अन्य द्वार पर प्रवेश दिया ॥ ८ ॥
पन्द्रह द्वार प्रवेश करने के पश्चात् महाद्वार पर जाकर नन्दी को देख
नमस्कार कर उनकी स्तुति की, फिर पूर्ववत् नन्दी की आज्ञा लेकर हर्षित ह
वहाँ जाकर उन लोगों ने शिव जी की प्रभायुक्त महासभा देखी। शिव
हो रहे पार्षदों से घिरी हुई थी ॥ ११ ॥ वे सभी पार्षद महेश्वर के स
थे। उन सभी को दश भुजाएँ, पाँच मुख, तीन नेत्र थे तथा सभी नील
वे पार्षद रत्नों से जटित रुद्राक्ष तथा भस्माभरण से विभूषित थे। शि
उदीयमान चन्द्रमण्डल के समान समतल एवं गोलाकार थी ॥ १३ ॥

शिव जी की वह सभा श्रेष्ठ मणियों के हार से युक्त, हीरों के
स्थान-स्थान पर कमलपत्र शोभित हो रहे थे ॥ १४ ॥ और मणियों के स
उस सभा में लटक रही थी तथा अनेक प्रकार के चित्रों से वह विचित्र सी
इच्छानुसार वह पद्मराग के श्रेष्ठ मणियों द्वारा विरचित थी ॥ १५ ॥ उ
पिरोये अत्यन्त मनोहर चन्दन वृक्ष के पत्तों के वन्दनवार थे तथा उसमें स
सोपान बने हुए थे ॥ १६ ॥ उस सभा में इन्द्रनीलमणि के खम्भे लगे हुए थे
इत्रादि गन्ध से सुगन्धित वायु से सुवासित थी ॥ १७ ॥ उस सभा की चौड़

कृतेः पुरुषात् परः ॥३३॥
गुस्त्रिभुवनावनकारकः ॥३४॥
र्ज्योतिःस्वरूपकः ॥३५॥
ष्णः क्रीडत्यहर्निशम् ॥३६॥
परमात्मा परेश्वरः ॥३७॥
शरणागतवत्सलः ॥३८॥
दिच्छसि तथा कुरु ॥३९॥
करौ बद्ध्वा विनीतकौ ॥४०॥
युद्धखण्डे
॥
मेघनादगभीरया ॥ १ ॥
सम्भविष्यत्यसंशयम् ॥ २ ॥
दाम्नश्च पुरा प्रभो ॥ ३ ॥

पराक्रमवाले हैं। आप सगुण
सृष्टिकाल में सृष्टि करने के
से युक्त हो, विष्णु के रूप
लिए तमोगुण से रुद्र के रूप में
भी आप ही हो ॥ ३५ ॥ आप
गोशाला में अहर्निश क्रीड़ा करते
ताता, विष्णु, ईश्वर, निर्विकारी,
के सहायक हो, आप ही दीनबन्धु,
मलोगों पर आप प्रसन्न हो जाइए
पकी इच्छा हो वैसा करें ॥३९॥
ने हाथ जोड़कर विनम्र हो मौन

ीय रुद्रसंहिता के पञ्चम
॥ ३० ॥

गवान् शङ्कर हँसते हुए मेघ

। शंखचूड के द्वारा उत्पन्न
ानता हूँ। वह पूर्व जन्म

वसन्तं मध्यदेशे च [illegible]न्दुतारकावृतम् । अमूल्यरत्न-निर्माण-चित्रसिंहासन-स्थितम् ॥१९॥
किरीटिनं कुण्डलिनं र[illegible]मालाविभूषितम् । भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं बिभ्रतं केलिपङ्कजम् ॥२०॥
पुरतो [illegible]गीतनृत्यं च पश्यन्तं सस्मितं मुदा ॥२१॥
शान्तं प्रसन्नमनसमुमाक[illegible]तं महोल्लसम् । देव्या प्रदत्तताम्बूलं भुक्तवन्तं सुवासितम् ॥२२॥
गणैश्च परया भक्त्या [illegible]वितं श्वेतचामरैः । स्तूयमानं च सिद्धैश्च भक्तिनम्रात्मकन्धरैः ॥२३॥
गुणातीतं परेशानं त्रिदे[illegible]जनकं विभुम् । निर्विकल्पं निराकारं साकारं स्वेच्छया शिवम् ॥२४॥
अमायमजमाद्यं च म[illegible]धीशं परात्परम् । प्रकृतेः पुरुषस्यापि परमं स्वप्रभुं सदा ॥२५॥
एवं विशिष्टं तं दृष्ट्वा प[illegible]पूर्णतमं समम् । विष्णुर्ब्रह्मा तुष्टुवतुः प्रणम्य सुकृताञ्जली ॥२६॥

विष्णुविधी ऊचतुः

देवदेव महादेव [illegible]ब्रह्माखिलेश्वर ! । त्रिगुणातीत निर्व्यग्र त्रिदेवजनक प्रभो ! ॥२७॥
वयं ते शरणापन्ना रक्षाऽस्मान् दुःखितान् विभो । शङ्खचूडार्दितान् क्लिष्टान् सन्नाथान् परमेश्वर ! ॥२८॥
अयं योऽधिष्ठितो लोको गोल[illegible]कि इति स स्मृतः । अधिष्ठाता तस्य विभुः कृष्णोऽयं त्वदधिष्ठितः ॥२९॥
पार्षदप्रवरस्तस्य सुदामा [illegible] दैवयन्त्रितः । राधाशप्तो बभूवाथ शङ्खचूडश्च दानवः ॥३०॥
तेन निःसारिताः शम्भो पी[illegible]यमानाः समन्ततः । हृताधिकारास्त्रिदशा विचरन्ति महीतले ॥३१॥
त्वां विना न स वध्यश्च स[illegible]णां त्रिदिवौकसाम् । तं घातय महेशान लोकानां सुखमावह ॥३२॥

अनेक सेवकों से परिपूर्ण [illegible] । उस सभा में अम्बा पार्वती के साथ बैठे हुए शङ्कर को विष्णु ने देखा ॥ १८ ॥ उस सभा के बीच में अमूल्य रत्न निर्मित विचित्र सिंहासन पर बैठे हुए शिव जी इस प्रकार शोभित हो रहे थे [illegible]स प्रकार ताराओं के बीच चन्द्रमा सुशोभित हो रहा हो ॥ १९ ॥ वे शिव किरीट, कुण्डल एवं रत्नों [illegible] माला तथा सर्वाङ्ग में भस्म लगाये हुए तथा हाथों में लीला कमल धारण किये हुए थे ॥ २० ॥ वे अप[illegible] आगे होने वाले गीत एवं नृत्य को बड़ी प्रसन्नता के साथ देख रहे थे ॥२१॥

शान्त प्रसन्न मन एवं [illegible]कान्तिमान् शिव जी उल्लासपूर्वक भगवती के द्वारा दिये गये ताम्बूल का चर्वण कर रहे थे ॥ २२ ॥ ग[illegible]ण श्वेत चमर डुला रहे थे और भक्ति से सिर झुकाये हुए चारों ओर से उनकी स्तुति कर रहे थे ॥ २३ ॥ तदनन्तर गुणातीत, परमेश्वर, तीनों देवताओं को उत्पन्न करनेवाले, विभु, निराकार, निर्विकल्प त[illegible] अपनी इच्छा से सगुण रूप धारण करनेवाले, अज, मायारहित आदि, मायाधीश, प्रकृति एवं पुरुष से [illegible], परिपूर्णतम उन अपने प्रभु को देखकर ब्रह्मा एवं विष्णु हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उनकी स्तुति [illegible]ने लगे ॥ २४-२६ ॥

विष्णु एवं ब्रह्मा बोले— देवदेव ! हे महादेव ! हे परब्रह्म ! हे अखिलेश्वर ! हे त्रिगुणातीत ! हे निर्व्यग्र, हे त्रिदेवजनक ! हे [illegible]भो ! हम आपकी शरण हैं। हे विभो ! हम दुःखितों की आप रक्षा कीजिए। हे परमेश्वर ! आप[illegible]से नाथ के रहते हुए शङ्खचूड के उपद्रव से हमलोग घबड़ाये हुए हैं ॥ २७-२८ ॥ यह गोलोक [illegible]की स्थिति आपके ही द्वारा है, उस गोलोक का अधिष्ठाता आपने श्रीकृष्ण को नियुक्त किया है। उन[illegible]कृष्ण के पार्षद सुदामा नाम के गोप प्रारब्धवश राधिका के शाप से शङ्खचूड नामक दानव के रूप में उत्पन्न हुए हैं ॥ २९-३० ॥ हे प्रभो ! उस दानव ने हमलोगों को नाना प्रकार की यातनाएँ दी हैं। [illegible]सने हमलोगों का अधिकार ग्रहण कर हमको स्वर्गलोक से निकाल दिया है, जिससे हमलोग इस पृथ्वी[illegible]ल पर मारे-मारे फिरते हैं ॥ ३१ ॥ हे महेशान ! आपके विना वह अन्य देवताओं से नहीं मारा जा[illegible]कता, अतः आप उसका वध कर हमलोगों को सुखी बनाइए ॥ ३२ ॥

त्वमेव निर्गुणः सत्योऽनन्तोऽनन्तपराक्रमः । सगुणश्च सन्निवेशः प्रकृतेः पुरुषात् परः ॥३३॥
रजसा सृष्टिसमये त्वं ब्रह्मा सृष्टिकृत्प्रभो । सत्त्वेन पालने विष्णुस्त्रिभुवावनकारकः ॥३४॥
तमसा प्रलये रुद्रो जगत्संहारकारकः । निस्त्रैगुण्ये शिवाख्यातस्तुर्यो ज्योतिःस्वरूपकः ॥३५॥
त्वं दीक्षया च गोलोके त्वं गवां परिपालकः । त्वद्गोशालामध्यगश्च कृष्णः क्रीडत्यहर्निशम् ॥३६॥
त्वं सर्वकारणं स्वामी विधिर्विष्णुरीश्वरः परम् । निर्विकारी सदा साक्षी परमात्मा परेश्वरः ॥३७॥
दीनानाथसहायी च दीनानां प्रतिपालकः । दीनबन्धुस्त्रिलोकेशः शरणागतवत्सलः ॥३८॥
अस्मानुद्धर गौरीश ! प्रसीद परमेश्वर ! । त्वदधीना वयं नाथ ! यदिच्छसि तथा कुरु ॥३९॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा तौ सुरैः व्यास हरिर्ब्रह्मा च वै तदा । विरेमतुः शिवं नत्वा करौ बद्ध्वा विनीतकौ॥४०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे
शङ्खचूडवधे देवदेवस्तुतिर्नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

(शिव का देवताओं को उपदेश)

सनत्कुमार उवाच

अथाकर्ण्य वचः शम्भुर्हरिविध्योः सुदीनयोः । उवाच विहसन् वाण्या मेघनादगभीरया ॥ १ ॥

शिव उवाच

हे हरे वत्स हे ब्रह्मंस्त्यजन्तं सर्वशो भयम् । शङ्खचूडोद्भवं भद्रं सम्भविष्यत्यसंशयम् ॥ २ ॥
शङ्खचूडस्य वृत्तान्तं सर्वं जानामि तत्त्वतः । कृष्णभक्तस्य गोपस्य सुदाम्नश्च पुरा प्रभो ॥ ३ ॥

हे प्रभो ! आप ही निर्गुण हो तथा सत्य हो, आप अनन्त एवं अनन्त पराक्रमवाले हैं। आप सगुण हो तथा प्रकृति एवं पुरुष से परे सर्वत्र व्यापक हो ॥ ३३ ॥ हे प्रभो ! आप सृष्टिकाल में सृष्टि करने के लिए रजोगुण से ब्रह्मा के रूप में सृष्टि करते हो तथा पालन काल में सत्त्वगुण से युक्त हो, विष्णु के रूप में जगत् का पालन करते हो ॥ ३४ ॥ प्रलयकाल में सृष्टि संहार करने के लिए तमोगुण से रुद्र के रूप में इस जगत् का संहार करते हो और त्रिगुण से परे ज्योतिर्मय शङ्कर स्वरूप भी आप ही हो ॥ ३५ ॥ आप ही गोलोक में गायों का पालन करते हो तथा आपकी इच्छा से श्रीकृष्ण गोशाला में अहर्निश क्रीड़ा करते रहते हैं ॥ ३६ ॥ आप सबके कारण तथा स्वामी हो और आप ही विधाता, विष्णु, ईश्वर, निर्विकारी, सदा साक्षी, परमात्मा एवं परमेश्वर हो ॥ ३७ ॥ आप दीन एवं अनाथों के सहायक हो, आप ही दीनबन्धु, त्रिलोकेश एवं शरणागत-वत्सल हो ॥ ३८ ॥ हे गौरीश ! हे परमेश्वर ! हमलोगों पर आप प्रसन्न हो जाइए और उद्धार कीजिए। हे नाथ ! हमलोग आपके आधीन हैं, अतः जैसी आपकी इच्छा हो वैसा करें ॥३९॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास जी ! इतना कह वह ब्रह्मा एवं विष्णु ने हाथ जोड़कर विनम्र हो मौन धारण कर लिया॥ ४० ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड में देवस्तुतिवर्णन नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥

*

सनतकुमार बोले—ब्रह्मा तथा विष्णु की अत्यन्त दीन वाणी सुन कर भगवान् शङ्कर हँसते हुए मेघ के समान गम्भीर वाणी में बोले ॥ १ ॥

शिव जी बोले—हे हरे ! हे विष्णो ! तुम लोग सब प्रकार से भय त्याग करो। शंखचूड के द्वारा उत्पन्न उपद्रव अवश्य ही शान्त होगा ॥ २ ॥ वस्तुतः मैं शंखचूड का सारा वृत्तान्त जानता हूँ। वह पूर्व जन्म

मदाज्ञया हृषीकेशो कृष्ण[illegible]पं विधाय च । गोशालायां स्थितो रम्ये गोलोके मदधिष्ठिते ॥ ४ ॥
स्वतन्त्रोऽहमिति स्वं स मो[illegible]मत्वा गतः पुरा । क्रीडाः समकरोद्बह्वीः स्वैरवर्तीव मोहितः ॥ ५ ॥
तं दृष्ट्वा मोहमत्युग्रं तस्या[illegible] मायया स्वया । तेषां संहृत्य सद्बुद्धिं शापं दापितवान् किल ॥ ६ ॥
इत्थं कृत्वा स्वलीलां तां म[illegible]यां संहृतवानहम् । ज्ञानयुक्तास्तदा ते तु मुक्तमोहाः सुबुद्धयः ॥ ७ ॥
समीपमागतास्ते मे दीनी[illegible]य प्रणम्य माम् । अकुर्वन् सुस्तुतिं भक्त्या करौ बद्ध्वा विनम्रकाः ॥ ८ ॥
वृत्तान्तमवदन् सर्वं [illegible]ज्ञाकुलितमानसाः । ऊचुर्मत्पुरतो दीना रक्ष रक्षेति वै गिरः ॥ ९ ॥
तदा त्वहं भवस्तेषां स[illegible] प्रोक्तवान् वचः । भयं त्यजत हे कृष्ण ! यूयं सर्वे मदाज्ञया ॥१०॥
रक्षकोऽहं सदा प्रीत्या सु[illegible]ं वो भविष्यति । मदिच्छयाऽखिलं जातमिदं सर्वं न संशयः ॥११॥
स्वस्थानं गच्छ त्वं सार्द्धं र[illegible]या पार्षदैर्न च । दानवस्तु भवेत् सोऽयं भारतेऽत्र न संशयः ॥१२॥
शापोद्धारं करिष्येऽहं युव[illegible]ः समये खलु । मदुक्तमिति सन्धार्य शिरसा राधया सह ॥१३॥
श्रीकृष्णोऽमोददत्यन्तं स्वस्[illegible]नमगमत् सुधीः । न्यवसातां सभयं तत्र मदाराधनतत्परौ ॥१४॥
मत्वाऽखिलं मदधीनमस्वत[illegible] निजं च वै । स सुदामाऽभवद्राधाशापतो दानवेश्वरः ॥१५॥
शङ्खचूडाभिधो देवद्रोही [illegible]र्मविचक्षणः । क्लिश्नाति सुबलात् कृत्स्नं सदा देवगणं कुधीः ॥१६॥
मन्मायामोहितः सोऽतिदुष्टमन्त्रिसहायवान् । तद्भयं त्यजताश्वेव मयि शास्तरि वै सति ॥१७॥

में श्रीकृष्ण का परम भक्त सुदामा नाम का गोप है ॥ ३ ॥ मेरी आज्ञा से ही हृषीकेश श्रीकृष्ण के रूप में अधिष्ठित होकर उस परम रम्य गोलोक में निवास करते हैं ॥ ४ ॥ जब वह सुदामा मोहवश अपने को स्वतन्त्र समझ कर स्वच्छन्द हो गोलोक में नाना प्रकार की क्रीडा करने लगा ॥ ५ ॥ तब मैंने उसे अपनी माया से मोहित करा दिया, जिससे उसकी सद्बुद्धि नष्ट हो गयी और उसे इस प्रकार का शाप प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥ इस प्रकार की लीला करने के उपरान्त मैंने अपनी माया हटा ली। तब मोह से मुक्त हो जाने के कारण उन्हें ज्ञान प्राप्त हो गया। जिससे सद्बुद्धि उत्पन्न हुई ॥ ७ ॥ तब वे मेरे समीप आकर अत्यन्त दीनता से प्रणाम कर हाथ जोड़ मेरी स्तुति करने लगे ॥ ८ ॥ फिर तो उन सभी ने लज्जित होकर मुझसे सारा वृत्तान्त कहा और भयभीत हो 'रक्षा करो, रक्षा करो' ऐसा वचन दीनता पूर्वक कहने लगे ॥ ९ ॥

मैंने सन्तुष्ट होकर उनसे कहा—हे कृष्ण ! तुम सभी मेरी आज्ञा से भय का त्याग करो ॥ १० ॥ मैं तुम लोगों का रक्षक हूँ, अवश्य ही मेरे प्रसन्न रहने से तुम लोगों का कल्याण होगा। यह सब मेरी इच्छा से हुआ है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ११ ॥ अतः हे कृष्ण ! तुम इन राधा एवं पार्षदों को साथ ले कर अपने स्थान को जाओ। यह सुदामा इस भारतवर्ष में निःसन्देह दानवकुल में जन्म लेगा। तब तुम लोगों के कहने से मैं इसका शापोद्धार करूँगा ॥ १२ ॥ श्रीकृष्ण राधिका के साथ मेरे वचन को शिर पर धारण कर बड़ी प्रसन्नता से अपने स्थान को चले गये और भयभीत हो दोनों ही मेरी आराधना करते हुए वहाँ निवास करने लगे ॥ १३-१४ ॥ तब उन्हें ज्ञान हुआ कि सारा जगत् मेरे अधीन है और मैं श्रीकृष्ण सर्वथा पराधीन हूँ। वही सुदामा गोप राधा के शाप से शंखचूड नाम का दानवेन्द्र हुआ है ॥ १५ ॥ जो धर्म में निपुण होकर भी दानवकुल में जन्म होने के कारण देवद्रोही स्वभाव का है और अपनी दुर्बुद्धि से सारे देवगणों को पीड़ा पहुँचा रहा है ॥ १६ ॥ मेरी माया से मोहित होने के कारण उसे दुष्ट मन्त्रियों की सहायता भी प्राप्त हो रही है। अतः जगत् का शासन मेरे हाथ होने से हे देवगणो ! तुम लोग भय का त्याग करो ॥ १७ ॥

सनत्कुमार उवाच

इत्यूचिवान् शिवो यावद्धरिब्रह्मपुरः कथाम् । अभवत्तावदन्यच चरितं तन्मुने ! शृणु ॥१८॥
तस्मिन्नेवान्तरे कृष्णो राधया पार्षदैः सह । सद्गोपैराययौ शम्भुमनुकूलयितुं प्रभुम् ॥१९॥
प्रभुं प्रणम्य सद्भक्त्या मिलित्वा हरिमादरात् । सम्मतो विधिना प्रीत्या सन्तस्थौ शिवशासनात् ॥२०॥
ततः शम्भुं पुनर्नत्वा तुष्टाव विहिताञ्जलिः । श्रीकृष्णो मोहनिर्मुक्तो ज्ञात्वा तत्त्वं शिवस्य हि ॥२१॥

श्रीकृष्ण उवाच

देवदेव महादेव परब्रह्म सतांगते ! । क्षमस्व चापराधं मे प्रसीद परमेश्वर ! ॥२२॥
त्वत्तः शर्व च सर्वं च त्वयि सर्वं महेश्वर ! । सर्वं त्वं निखिलाधीश प्रसीद परमेश्वर ! ॥२३॥
त्वं ज्योतिः परमं साक्षात् सर्वव्यापी सनातनः । त्वया नाथेन गौरीश सनाथाः संकला वयम् ॥२४॥
सर्वोपरि निजं मत्वा विहरन्मोहमाश्रितः । तत्फलं प्राप्तवानस्मि शापं प्राप्तः सचामकः ॥२५॥
पार्षदप्रवरो यो मे सुदामा नाम गोपकः । स राधाशापतः स्वामिन् दानवीं योनिमाश्रितः ॥२६॥
अस्मानुद्धर दुर्गेश प्रसीद परमेश्वर ! । शापोद्धारं कुरुष्वाद्य पाहि नः शरणागतान् ॥२७॥
इत्युक्त्वा विररामैव श्रीकृष्णो राधया सह । प्रसन्नोऽभूच्छिवस्तत्र शरणागतवत्सलः ॥२८॥

शिव उवाच

हे कृष्ण गोपिकानाथ ! भयं त्यज सुखी भव । मयाऽनुगृह्णता तात ! सर्वमाचरितं त्विदम् ॥२९॥
सम्भविष्यति ते भद्रं गच्छ स्वस्थानमुत्तमम् । स्थातव्यं स्वाधिकारे च सावधानतया सदा ॥३०॥
विहरस्व यथाकामं मां विज्ञाय परात्परम् । स्वकार्यं कुरु निर्व्यग्रं राधया पार्षदैः खलु ॥३१॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने ! अभी जब शिव जी ब्रह्मा एवं विष्णु के सामने इस प्रकार की कथा कह ही रहे थे, कि इतने में जो अन्य घटना घटी उसे तुम सुनो ॥ १८ ॥ उसी समय श्री कृष्ण राधिका एवं अन्य पार्षदों एवं गोपों के साथ प्रभु शङ्कर को अनुकूल करने के लिए वहाँ आ गये ॥ १९ ॥ उन्होंने शङ्कर जी को प्रेम से प्रणाम किया फिर विष्णु से आदरपूर्वक मिलकर ब्रह्मदेव के सम्मति से शिव की आज्ञा पाकर उनके समीप बैठे ॥ २० ॥ पुनः शिव जी को प्रणाम कर मोह निर्मुक्त श्रीकृष्ण जी शिवतत्त्व को जानते हुए हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥

श्रीकृष्ण बोले—हे देवदेव ! हे महादेव ! हे परब्रह्म ! हे सत्पुरुषों के गति, हे परमेश्वर ! मेरा अपराध क्षमा करें, मेरे ऊपर आप प्रसन्न हों ॥ २२ ॥ हे शर्व ! यह सारा जगत् आपसे ही उत्पन्न होता है, हे महेश्वर ! आप में ही स्थित होता है और हे सर्वजगत्पते ! यह सब कुछ आप ही हैं, अतः हे परमेश्वर ! आप प्रसन्न होइए ॥ २३ ॥ आप ही साक्षात् परम ज्योति, सर्वव्यापी एवं सनातन हैं और हे गौरीश ! आपके नाथ होने से हम सभी सनाथ हैं ॥ २४ ॥ मैंने मोहवश अपने को सर्वोपरि मानकर स्वतन्त्रता से विहार करना प्रारम्भ किया, जिसका फल मुझे यह मिला कि मैं शापग्रस्त हो गया ॥ २५ ॥ यह मेरा सुदामा नाम का श्रेष्ठ पार्षद राधा के शाप से दानवी योनि को प्राप्त हुआ ॥ २६ ॥ अतः हे दुर्गेश ! हे परमेश्वर ! आप हमलोगों पर प्रसन्न हो जाइए और हम शरणागतों की रक्षा कर हमलोगो क शाप का उद्धार कीजिए ॥ २७ ॥ इतना कहने के उपरान्त श्रीकृष्ण राधा के सहित मौन हो गये । तब शरणागत-वत्सल भगवान् शिव उन पर प्रसन्न हो गये ॥ २८ ॥

शिव जी बोले—हे गोपिकानाथ श्रीकृष्ण ! तुम भय का त्याग करो और सुखी होकर निवास करो । हे तात ! यह सब कुछ तुमने मेरे अनुग्रह से ही किया है ॥ २९ ॥ तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम अपने स्थान को जाओ और सावधानी से अपने अधिकार का पालन करो ॥ ३० ॥ मुझको परात्पर जानकर इच्छानुसार विहार करो और राधा तथा अपने पार्षदों के साथ निर्भय होकर अपना कार्य करो ॥ ३१ ॥

वाराहप्रवरे कल्पे तरुण्या राधया सह । शापप्रभावं भुक्त्वा वै पुनरायास्यति स्वकम् ॥३२॥
सुदामा पार्षदो यो हि तव कृष्ण ! प्रियप्रियः । दानवीं योनिमाश्रित्येदानीं क्लिश्नाति वै जगत् ॥३३॥
शापप्रभावाद्राधाया देवद्वेष्टा च दानवः । शङ्खचूडाभिधः सोऽति दैत्यपक्षी सुरद्रुहः ॥३४॥
तेन निःसारिता देवाः सेन्द्रा नित्यं प्रपीडिताः । हृताधिकारा विकृताः सर्वे याता दिशो दश ॥३५॥
ब्रह्माऽच्युतौ तदर्थे हीहागतौ शरणं मम । तेषां क्लेशविनिर्मोक्षं करिष्ये नाऽत्र संशयः ॥३६॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा शङ्करः कृष्णं पुनः प्रोवाच सादरम् । हरिं विधिं समाभाष्य वचनं क्लेशनाशनम् ॥३७॥

शिव उवाच

हे हरे ! हे विधे ! प्रीत्या मेदं वचनं शृणु । गच्छतं त्वरितं तातौ देवानन्दाय निर्भयम् ॥३८॥
कैलासवासिनं रुद्रं मद्रूपं पूर्णमुत्तमम् । देवकार्यार्थमुद्भूतं पृथगाकृतिधारिणम् ॥३९॥
एतदर्थे हि मद्रूपः परिपूर्णतमः प्रभुः । कैलासे भक्तवशतः सन्तिष्ठति गिरौ हरे ! ॥४०॥
मत्तस्त्वत्तो न भेदोऽस्ति युवयोः सेव्य एव सः । चराऽचराणां सर्वेषां सुरादीनां च सर्वदा ॥४१॥
आवयोर्भेदकर्ता यः स नरो नरकं व्रजेत् । इहाऽपि प्राप्नुयात् कष्टं पुत्र-पौत्र-विवर्जितः ॥४२॥
इत्युक्तवन्तं दुर्गेशं प्रणम्य च मुहुर्मुहुः । राधया सहितः कृष्णः स्वस्थानं सगणो ययौ ॥४३॥
हरिर्ब्रह्मा च तौ व्यास ! सानन्दौ गतसाध्वसौ । मुहुर्मुहुः प्रणम्येशं वैकुण्ठं ययतुर्द्रुतम् ॥४४॥
तत्राऽऽगत्याऽखिलं वृत्तं देवेभ्यो विनिवेद्य तौ । तानादाय ब्रह्म-विष्णू कैलासं ययतुर्गिरिम् ॥४५॥
तत्र दृष्ट्वा महेशानं पार्वतीवल्लभं प्रभुम् । दीनरक्षात्तदेहं च सगुणं देवनायकम् ॥४६॥

वाराह कल्प में यह युवती राधा के साथ शाप का फल भोगकर फिर अपने लोक को प्राप्त करेगा ॥ ३२ ॥ हे कृष्ण ! यह वही तुम्हारा अत्यन्त प्रिय पार्षदप्रवर सुदामा नाम का गोप इस समय दानवी योनि में जन्म ग्रहण किया है और सारे जगत् को क्लेश दे रहा है ॥ ३३ ॥ यह दानव राधा के शाप से ही देवताओं से शत्रुता का भाव रखता है और शङ्खचूड नाम से दैत्यों का पक्षपाती बन रहा है ॥ ३४ ॥ उसने इन्द्रादि देवगणों को पीड़ा देकर अपने स्थान से निकाल दिया है, जिससे वे देवता अधिकारविहीन एवं व्याकुल होकर दशों दिशाओं में भटक रहे हैं ॥ ३५ ॥ उसी के वध के निमित्त ये ब्रह्मा एवं विष्णु मेरी शरण में आये हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं कि मैं इनका दुःख दूर अवश्य करूँगा ॥ ३६ ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! श्रीकृष्ण से इतना कहने के उपरान्त भगवान् शंकर ब्रह्मा तथा विष्णु से उनके क्लेश-नाशक वचन बोले ॥ ३७ ॥

शिव जी बोले—हे विष्णो ! हे ब्रह्मन् ! तुम दोनों ही मेरी बात सुनो। देवताओं को भयरहित करने के लिए शीघ्र ही तुम दोनों कैलास पर्वत पर जाओ, जहाँ मेरे पूर्णरूप रुद्र का निवास है। मैंने ही देवताओं का कार्य करने के लिए उस पृथक् रूप को धारण किया है ॥ ३८-३९ ॥ हे हरे ! परिपूर्णतम एवं भक्त-पराधीन मुझ प्रभु का ही वह रुद्ररूप देवताओं के कार्य के लिए कैलास पर्वत पर विराजमान है ॥ ४० ॥ मुझमें एवं उस रुद्ररूप में कोई भेद नहीं है, अतः मेरा वह रुद्ररूप भी तुम दोनों और चराचर जगत् का तथा सभी देवताओं एवं मुनियों का सेव्य है ॥ ४१ ॥ हम दोनों में भेद रखनेवाला नरकगामी होगा। इतना ही नहीं, वह इस लोक में भी पुत्र-पौत्र से रहित होकर नाना प्रकार के क्लेश प्राप्त करेगा ॥ ४२ ॥

जब शङ्कर ने ऐसा कहा तब श्रीकृष्ण ने राधा के सहित उन्हें बारम्बार प्रणाम कर अपने पार्षदों के साथ स्वस्थान को प्रस्थान किया ॥ ४३ ॥ हे व्यास जी ! इसी प्रकार ब्रह्मा तथा विष्णु भी सन्देह रहित हो शिव जी को वारम्वार प्रणाम कर आनन्द के साथ वैकुण्ठ चले गये ॥ ४४ ॥ उन लोगों ने वहाँ जाकर सारा वृत्तान्त देवताओं से कहा फिर उन्हें साथ लेकर कैलास पर्वत पर गये ॥ ४५ ॥ और वहाँ दीनों की रक्षा करने के लिए सगुण रूप से शरीर धारण किये हुए देवाधिपति पार्वतीवल्लभ महेश्वर प्रभु को

तुष्टुवुः पूर्ववत् सर्वे भक्त्या गद्गदया गिरा । करौ बद्ध्वा नतस्कन्धा विनयेन समन्विताः ॥४७॥

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव गिरिजानाथ शङ्कर ! । वयं त्वां शरणापन्ना रक्ष देवान् भयाकुलान् ॥४८॥
शङ्खचूडं दानवेन्द्रं जहि देवनिषूदनम् । तेन विक्लाविता देवाः सङ्ग्रामे च पराजिताः ॥४९॥
हृताधिकाराः कुतले विचरन्ति यथा नराः । देवलोको हि दुर्दृश्यस्तेषामासीच्च तद्भयात् ॥५०॥
दीनोद्धर ! कृपासिन्धो ! देवानुद्धर सङ्कटात् । शक्रं भयान् महेशान हत्वा तं दानवाधिपम् ॥५१॥
इति श्रुत्वा वचः शम्भुर्देवानां भक्तवत्सलः । उवाच विहसन् वाण्या मेघनादगभीरया ॥५२॥

श्रीशङ्कर उवाच

हे हरे हे विधे देवाः ! स्वस्थानं गच्छत ध्रुवम् । शङ्खचूडं वधिष्यामि सगणं नाऽत्र संशयः ॥५३॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य महेशस्य वचः पीयूषसन्निभम् । ते सर्वे प्रमुदा ह्यासन्नष्टं मत्वा च दानवम् ॥५४॥
हरिर्जगाम वैकुण्ठं सत्यलोके विधिस्तदा । प्रणिपत्य महेशं च सुराद्याः स्वपदं ययुः ॥५५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे
शङ्खचूडवधे शिवोपदेशो नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

देखा ॥ ४६ ॥ तब सभी देवताओं ने हाथ जोड़कर भक्ति से विनम्र हो सिर झुकाकर गद्गद वाणी से श्री शङ्कर की स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥ ४७ ॥

देवगण बोले—हे देवदेव ! हे महादेव ! हे गिरिजानाथ ! हे शङ्कर ! हम सभी देवता भयभीत होकर व्याकुल हो आपकी शरण में आये हैं, आप हमारी रक्षा करें ॥ ४८ ॥ शङ्खचूड नामक दानव ने हम देवताओं को संग्राम में पराजित किया है । उसी के भय से हमलोग अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं, अतः देवकण्टक उस दानवेन्द्र का वध कीजिए ॥ ४९ ॥ उसने देवगणों के समस्त अधिकार छीन लिये हैं जिससे वे लोग पृथ्वी पर भटक रहे हैं और उसके भय से देवलोक अगम्य हो गया है ॥ ५० ॥ अतः हे दीनों का उद्धार करनेवाले, हे कृपासिन्धो ! इस संकट से हम देवताओं का उद्धार कीजिए और उस दानवेन्द्र का वध कर इन्द्र का भय दूर कीजिए ॥ ५१ ॥ तदनन्तर भक्तवत्सल भगवान् शङ्कर देवताओं के इस वचन को सुनकर हँसते हुए मेघ के समान गम्भीर वाणी में बोले ॥ ५२ ॥

श्री शङ्कर बोले—हे विष्णो ! हे शिव ! हे ब्रह्मन् ! मैं निःसन्देह सेनासहित उस शङ्खचूड का वध करूँगा, आपलोग अपने-अपने स्थान को पधारें ॥ ५३ ॥

सनत्कुमार बोले—शङ्कर के इस प्रकार अमृत तुल्य वाणी को सुनकर सभी देवता दैत्यों को मरा जानकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥ ५४ ॥ फिर विष्णु वैकुण्ठ लोक एवं ब्रह्मा सत्यलोक चले गये तथा देवगण शङ्कर को प्रणाम कर अपने-अपने स्थानों को चले गये ॥ ५५ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पंचम युद्धखण्ड स्थित शङ्खचूडवध में शिवोपदेश नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३१॥

*

वाराहप्रवरे कल्पे तरुण्या राधया सह । शापप्रभावं भुक्त्वा वै पुनरायास्यति स्वकम् ॥३२॥
सुदामा पार्षदो यो हि तव कृष्ण ! प्रियप्रियः । दानवीं योनिमाश्रित्येदानीं क्लिश्नाति वै जगत् ॥३३॥
शापप्रभावाद्राधाया देवद्रोही च दानवः । शङ्खचूडाभिधः सोऽति दैत्यपक्षी सुरद्रुहः ॥३४॥
तेन निःसारिता देवाः सेन्द्रा अत्यं प्रपीडिताः । हृताधिकारा विकृताः सर्वे याता दिशो दश ॥३५॥
ब्रह्माऽच्युतौ तदर्थे हीहागतौ शरणं मम । तेषां क्लेशविनिर्मोक्षं करिष्ये नाऽत्र संशयः ॥३६॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा शङ्करः कृष्णं पुनः प्रोवाच सादरम् । हरिं विधिं समाभाष्य वचनं क्लेशनाशनम् ॥३७॥

शिव उवाच

हे हरे ! हे विधे ! प्रीत्या मेदं वचनं शृणु । गच्छतं त्वरितं तातौ देवानन्दाय निर्भयम् ॥३८॥
कैलासवासिनं रुद्रं मद्रूपं पूर्णमुत्तमम् । देवकार्यार्थमुद्भूतं पृथगाकृतिधारिणम् ॥३९॥
एतदर्थे हि मद्रूपः परिपूर्णतमः प्रभुः । कैलासे भक्तवशतः सन्तिष्ठति गिरौ हरे ! ॥४०॥
मत्तस्त्वत्तो न भेदोऽस्ति युवयोः सेव्य एव सः । चराऽचराणां सर्वेषां सुरादीनां च सर्वदा ॥४१॥
आवयोर्भेदकर्ता यः स नरो नरकं व्रजेत् । इहाऽपि प्राप्नुयात् कष्टं पुत्र-पौत्र-विवर्जितः ॥४२॥
इत्युक्तवन्तं दुर्गेशं प्रणम्य च मुहुर्मुहुः । राधया सहितः कृष्णः स्वस्थानं सगणो ययौ ॥४३॥
हरिर्ब्रह्मा च तौ व्यास ! सानन्दौ गतसाध्वसौ । मुहुर्मुहुः प्रणम्येशं वैकुण्ठं ययतुर्द्रुतम् ॥४४॥
तत्राऽऽगत्याऽखिलं वृत्तं देवेभ्यो विनिवेद्य तौ । तानादाय ब्रह्म-विष्णू कैलासं ययतुर्गिरिम् ॥४५॥
तत्र दृष्ट्वा महेशानं पार्वतीवल्लभं प्रभुम् । दीनरक्षात्तदेहं च सगुणं देवनायकम् ॥४६॥

वाराह कल्प में यह युवती राधा के साथ शाप का फल भोगकर फिर अपने लोक को प्राप्त करेगा ॥ ३२ ॥ हे कृष्ण ! यह वही तुम्हारा अत्यन्त प्रिय पार्षदप्रवर सुदामा नाम का गोप इस समय दानवी योनि में जन्म ग्रहण किया है और सारे जगत् को क्लेश दे रहा है ॥ ३३ ॥ यह दानव राधा के शाप से ही देवताओं से शत्रुता का भाव रखता है और शङ्खचूड नाम से दैत्यों का पक्षपाती बन रहा है ॥ ३४ ॥ उसने इन्द्रादि देवगणों को पीड़ा देकर अपने स्थान से निकाल दिया है, जिससे वे देवता अधिकारविहीन एवं व्याकुल होकर दशों दिशाओं में भटक रहे हैं ॥ ३५ ॥ उसी के वध के निमित्त ये ब्रह्मा एवं विष्णु मेरी शरण में आये हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं कि मैं इनका दुःख दूर अवश्य करूँगा ॥ ३६ ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! श्रीकृष्ण से इतना कहने के उपरान्त भगवान् शंकर ब्रह्मा तथा विष्णु से उनके क्लेश-नाशक वचन बोले ॥ ३७ ॥

शिव जी बोले—हे विष्णो ! हे ब्रह्मन् ! तुम दोनों ही मेरी बात सुनो। देवताओं को भयरहित करने के लिए शीघ्र ही तुम दोनों कैलास पर्वत पर जाओ, जहाँ मेरे पूर्णरूप रुद्र का निवास है। मैंने ही देवताओं का कार्य करने के लिए उस पृथक् रूप को धारण किया है ॥ ३८-३९ ॥ हे हरे ! परिपूर्णतम एवं भक्त-पराधीन मुझ प्रभु का ही वह रुद्ररूप देवताओं के कार्य के लिए कैलास पर्वत पर विराजमान है ॥ ४० ॥ मुझमें एवं उस रुद्ररूप में कोई भेद नहीं है, अतः मेरा वह रुद्ररूप भी तुम दोनों और चराचर जगत् का तथा सभी देवताओं एवं मुनियों का सेव्य है ॥ ४१ ॥ हम दोनों में भेद रखनेवाला नरकगामी होगा। इतना ही नहीं, वह इस लोक में भी पुत्र-पौत्र से रहित होकर नाना प्रकार के क्लेश प्राप्त करेगा ॥ ४२ ॥

जब शङ्कर ने ऐसा कहा तब श्रीकृष्ण ने राधा के सहित उन्हें बारम्बार प्रणाम कर अपने पार्षदों के साथ स्वस्थान को प्रस्थान किया ॥ ४३ ॥ हे व्यास जी ! इसी प्रकार ब्रह्मा तथा विष्णु भी सन्देह रहित हो शिव जी को बारम्बार प्रणाम कर आनन्द के साथ वैकुण्ठ चले गये ॥ ४४ ॥ उन लोगों ने वहाँ जाकर सारा वृत्तान्त देवताओं से कहा फिर उन्हें साथ लेकर कैलास पर्वत पर गये ॥ ४५ ॥ और वहाँ दीनों की रक्षा करने के लिए सगुण रूप से शरीर धारण किये हुए देवाधिपति पार्वतीवल्लभ महेश्वर प्रभु को

तुष्टुवुः पूर्ववत् सर्वे भक्त्या गद्गदया गिरा। करौ बद्ध्वा नतस्कन्धा विनयेन समन्विताः ॥४७॥

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव गिरिजानाथ शङ्कर!। वयं त्वां शरणापन्ना रक्ष देवान् भयाकुलान् ॥४८॥
शङ्खचूडं दानवेन्द्रं जहि देवनिषूदनम्। तेन विक्लाविता देवाः सङ्ग्रामे च पराजिताः ॥४९॥
हृताधिकाराः कुतले विचरन्ति यथा नराः। देवलोको हि दुर्दृश्यस्तेषामासीच्च तद्भयात् ॥५०॥
दीनोद्धर! कृपासिन्धो! देवानुद्धर सङ्कटात्। शक्रं भयान् महेशान हत्वा तं दानवाधिपम् ॥५१॥
इति श्रुत्वा वचः शम्भुर्देवानां भक्तवत्सलः। उवाच विहसन् वाण्या मेघनादगभीरया ॥५२॥

श्रीशङ्कर उवाच

हे हरे हे विधे देवाः! स्वस्थानं गच्छत ध्रुवम्। शङ्खचूडं वधिष्यामि सगणं नाऽत्र संशयः ॥५३॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य महेशस्य वचः पीयूषसन्निभम्। ते सर्वे प्रमुदा ह्यासन्नष्टं मत्वा च दानवम् ॥५४॥
हरिर्जगाम वैकुण्ठं सत्यलोके विधिस्तदा। प्रणिपत्य महेशं च सुराद्याः स्वपदं ययुः ॥५५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे
शङ्खचूडवधे शिवोपदेशो नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

देखा ॥ ४६ ॥ तब सभी देवताओं ने हाथ जोड़कर भक्ति से विनम्र हो सिर झुकाकर गद्गद वाणी से श्री शङ्कर की स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥ ४७ ॥

देवगण बोले—हे देवदेव ! हे महादेव ! हे गिरिजानाथ ! हे शङ्कर ! हम सभी देवता भयभीत होकर व्याकुल हो आपकी शरण में आये हैं, आप हमारी रक्षा करें ॥ ४८ ॥ शङ्खचूड नामक दानव ने हम देवताओं को संग्राम में पराजित किया है। उसी के भय से हमलोग अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं, अतः देवकण्टक उस दानवेन्द्र का वध कीजिए ॥ ४९ ॥ उसने देवगणों के समस्त अधिकार छीन लिये हैं जिससे वे लोग पृथ्वी पर भटक रहे हैं और उसके भय से देवलोक अगम्य हो गया है ॥ ५० ॥ अतः हे दीनों का उद्धार करनेवाले, हे कृपासिन्धो ! इस संकट से हम देवताओं का उद्धार कीजिए और उस दानवेन्द्र का वध कर इन्द्र का भय दूर कीजिए ॥ ५१ ॥ तदनन्तर भक्तवत्सल भगवान् शङ्कर देवताओं के इस वचन को सुनकर हँसते हुए मेघ के समान गम्भीर वाणी में बोले ॥ ५२ ॥

श्री शङ्कर बोले—हे विष्णो ! हे शिव ! हे ब्रह्मन् ! मैं निःसन्देह सेनासहित उस शङ्खचूड का वध करूँगा, आपलोग अपने-अपने स्थान को पधारें ॥ ५३ ॥

सनत्कुमार बोले—शङ्कर के इस प्रकार अमृत तुल्य वाणी को सुनकर सभी देवता दैत्यों को मरा जानकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥ ५४ ॥ फिर विष्णु वैकुण्ठ लोक एवं ब्रह्मा सत्यलोक चले गये तथा देवगण शङ्कर को प्रणाम कर अपने-अपने स्थानों को चले गये ॥ ५५ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पंचम युद्धखण्ड स्थित शङ्खचूडवध में शिवोपदेश नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३१॥

*

द्वात्रिंशोऽध्यायः

(शिव का शंखचूड के समक्ष देवताओं को राज्य प्रदान करने के लिए पुष्पदन्त दूत को भेजना)

सनत्कुमार उवाच

अथेशानो महारुद्रो दुष्टकालः सतां गतिः। शङ्खचूडवधं चित्ते निश्चिकाय सुरेच्छया ॥ १ ॥
दूतं कृत्वा चित्ररथं गन्धर्वेश्वरमीप्सितम्। शीघ्रं प्रस्थापयामास शङ्खचूडान्तिके मुदा ॥ २ ॥
सर्वेश्वराज्ञया दूतो ययौ [illegible]नगरं च सः। महेन्द्रनगरोत्कृष्टं कुबेरभवनाधिकम् ॥ ३ ॥
गत्वा ददर्श तन्मध्ये [illegible]चूडालयं वरम्। राजितं द्वादशैर्द्वारैर्द्वारपालसमन्वितम् ॥ ४ ॥
स दृष्ट्वा पुष्पदन्तस्तु वरं द्वारं ददर्श सः। कथयामास वृत्तान्तं द्वारपालाय निर्भयः ॥ ५ ॥
अतिक्रम्य च तद् द्वारं जगामाभ्यन्तरे मुदा। अतीव सुन्दरं रम्यं विस्तीर्णं समलङ्कृतम् ॥ ६ ॥
स गत्वा शङ्खचूडं तं ददर्श दनुजाधिपम्। वीरमण्डलमध्यस्थं रत्नसिंहासनस्थितम् ॥ ७ ॥
दानवेन्द्रैः परिवृतं सेवितं च त्रिकोटिभिः। शतकोटिभिरन्यैश्च भ्रमद्भिः शस्त्रपाणिभिः ॥ ८ ॥
एवम्भूतं च तं दृष्ट्वा पुष्पदन्तः सविस्मयः। उवाच रणवृत्तान्तं यदुक्तं शङ्करेण च ॥ ९ ॥

पुष्पदन्त उवाच

राजेन्द्र ! शिवदूतोऽहं पुष्पदन्ताभिधः प्रभो ! । यदुक्तं शङ्करेणैव तच्छृणु त्वं ब्रवीमि ते ॥१०॥

शिव उवाच

राज्यं देहि च देवानामधिकारं हि साम्प्रतम्। नो चेत् कुरु रणं सार्द्धं परेण च मया सताम् ॥११॥
देवा मां शरणापन्ना देवेशं शङ्करं सताम्। अहं क्रुद्धो महारुद्रस्त्वां वधिष्याम्यसंशयम् ॥१२॥

सनत्कुमार बोले—तब दुष्टों के लिए कालस्वरूप, सज्जनों के संरक्षक महारुद्र, ईश्वर ने देवताओं की इच्छा से अपने मन में शंखचूड के वध का निश्चय किया ॥ १ ॥ और गन्धर्वराज चित्ररथ को अपना अभीष्ट दूत बनाकर शीघ्र ही उसके समीप भेजा ॥ २ ॥ फिर तो सर्वेश्वर सदाशिव की आज्ञा पाकर वह दूत इन्द्र की अमरावती पुरी से भी अधिक ऐश्वर्य सम्पन्न तथा कुबेर के भवनों से भी उत्कृष्ट भवनों वाले उस दैत्येन्द्र के नगर में गया ॥३॥ उसने उस नगर में जाकर बारह दरवाजों से युक्त, शंखचूड का भवन देखा, जहाँ प्रत्येक दरवाजे पर द्वारपाल नियुक्त थे ॥ ४ ॥

तदनन्तर उस पुष्पदन्त ने प्रधानद्वार पर पहुँच कर निर्भय हो वहाँ के द्वारपाल से सारा वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ५ ॥ फिर उसकी आज्ञा से वह अत्यन्त सुशोभित मनोहर तथा विस्तीर्ण द्वार को पार कर भीतर गया ॥६॥ वहाँ जाकर उसने वीरों के मध्य में रत्नसिंहासन पर बैठे हुए दानवाधिपति शंखचूड को देखा ॥ ७ ॥ उस समय वह दानवेन्द्र तीन करोड़ राक्षसों से घिरा हुआ था तथा अन्य सौ करोड़ दानव हाथों में शस्त्र लेकर उसके चारों ओर पहरा दे रहे थे ॥ ८ ॥ इस प्रकार दानवों से घिरे हुए उस शंखचूड को बड़ा आश्चर्य हुआ, फिर उसने शङ्कर के द्वारा कहे गये युद्ध का सन्देश इस प्रकार कहा—॥ ९ ॥

पुष्पदन्त बोला—हे राजेन्द्र ! मैं शिव का दूत हूँ, मेरा नाम पुष्पदन्त है। हे प्रभो ! शङ्कर ने मुझसे जो सन्देश भेजा है, उसे आप श्रवण कीजिए ॥ १० ॥ शिवजी ने कहा है कि, तुम देवताओं का राज्य तथा उनका अधिकार शीघ्र ही लौटा दो, नहीं तो सज्जनों की रक्षा करने वाले मुझ शिव के साथ चिरकाल पर्यन्त युद्ध के लिए तैयार हो जाओ ॥ ११ ॥ मैं सज्जनों का रक्षक हूँ और देवता लोग मेरे शरणागत हैं, अतः मैं महारुद्र क्रुद्ध होने पर तुम्हारा वध करूँगा। इसमें संशय नहीं ॥ १२ ॥

हरोऽस्मि सर्वदेवेभ्यो ह्यभयं दत्तवानहम् । खलदण्डधरोऽहं वै शरणागतवत्सलः ॥१३॥
राज्यं दास्यसि किं वा त्वं करिष्यसि रणं च किम् । तत्त्वं ब्रूहि द्वयोरेकं दानवेन्द्र विचार्य्य वै ॥१४॥

पुष्पदन्त उवाच

इत्युक्तं यन्महेशेन तुभ्यं तन्मे निवेदितम् । वितथं शम्भुवाक्यं न कदापि दनुजाधिप ! ॥१५॥
अहं स्वस्वामिनं गन्तुमिच्छामि त्वरितं हरम् । गत्वा वक्ष्यामि किं शम्भोस्तथ्यं त्वं वद मामिह॥१६॥

सनत्कुमार उवाच

इत्थं च पुष्पदन्तस्य शिवदूतस्य सत्पतेः । आकर्ण्य वचनं राजा हसित्वा तमुवाच सः ॥१७॥

शङ्खचूड उवाच

राज्यं दास्ये न देवेभ्यो वीरभोग्या वसुन्धरा । रणं दास्यामि ते रुद्र ! देवानां पक्षपातिने ॥१८॥
यस्योपरि प्रयायी स्यात् स वीरो भुवनेऽधमः । अतः पूर्वमहं रुद्र त्वां गमिष्याम्यसंशयम् ॥१९॥
प्रभाते आगमिष्यामि वीरयात्राविचारतः । त्वं गच्छाचक्ष्व रुद्राय हीदृशं वचनं मम ॥२०॥
इति श्रुत्वा शङ्खचूडवचनं सुप्रहस्य सः । उवाच दानवेन्द्रं स शम्भुदूतस्तु गर्वितम् ॥२१॥

पुष्पदन्त उवाच

अन्येषामपि राजेन्द्र ! गणानां शङ्करस्य च । न स्थातुं सम्मुखे योग्यः किं पुनस्तस्य सम्मुखम्॥२२॥
स त्वं देहि च देवानामधिकाराणि सर्वशः । त्वमरे गच्छ पातालं यदि जीवितुमिच्छसि ॥२३॥
सामान्यममरं तं नो विद्धि दानवसत्तम ! । शङ्करः परमात्मा हि सर्वेषामीश्वरेश्वरः ॥२४॥
इन्द्राद्याः सकला देवा यस्याज्ञावर्तिनः सदा । सप्रजापतयः सिद्धा मुनयश्चाप्यहीश्वराः ॥२५॥

मैं सर्वस्व हरण करने कारण हर हूँ, मैंने सभी देवताओं को अभयदान दिया है। मैं शरणागतवत्सल हूँ और दुष्टों को दण्ड देने वाला हूँ ॥ १३ ॥ अब हे दानवेन्द्र ! तुम्हीं निश्चय कर बताओ कि तुम राज्य देना चाहते हो ? अथवा युद्ध करना चाहते हो ? ॥ १४ ॥

पुनः पुष्पदन्त बोला—हे राजन् ! शङ्कर ने मुझसे जो कुछ कहा है सो मैंने तत्त्वतः आपसे निवेदन किया। हे दनुजाधिप ! शङ्कर जी का वचन कभी झूठ होने वाला नहीं है ॥ १५ ॥ अब मैं शीघ्र ही अपने स्वामी सदाशिव के पास जाना चाहता हूँ। अब आप निर्णय कर बताओ कि उनके पास जाकर में क्या कहूँ ? ॥ १६ ॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार शिवदूत पुष्पदन्त की बात सुनकर दानवेन्द्र ने उनसे हँसते हुए कहा ॥ १७ ॥

शंखचूड बोला—हे दूत ! मैं देवताओं को राज्य देने वाला नहीं हूँ। तुम जानते हो कि यह पृथ्वी वीरभोग्या है। अवश्य ही देवताओं के पक्ष में रहने वाले उन रुद्र से युद्ध करूँगा। जिस राजा के ऊपर शत्रु की चढ़ाई हो आती हैं वह इस भुवन में अधम वीर कहा जाता है, अतः मैं निश्चय रूप से रुद्र के ऊपर चढ़ाई करूँगा ॥ १८-१९ ॥ हे दूत ! तुम जाकर रुद्र से कह दो कि मैं वीर यात्रा के विचार से प्रातःकाल ही उधर आ रहा हूँ ॥ २० ॥ इस प्रकार गर्वयुक्त शंखचूड के वचन सुनकर उस दूत ने हँसते हुए दानवराज से कहा—॥ २१ ॥ हे राजेन्द्र ! तुम शिवजी के किसी गण के सामने भी युद्ध में नहीं ठहर सकते फिर शिवजी के सम्मुख खड़े होना तो असम्भव ही प्रतीत होता है ॥ २२ ॥ अतः आप को उचित यही है कि देवताओं का समस्त अधिकार उन्हें प्रदान करो और जीने की इच्छा हो तो पाताल में जाकर निवास करो ॥ २३ ॥

हे दानवसत्तम ! तुम शङ्कर को सामान्य देवता जैसा मत समझो। शङ्कर सभी राजाओं के राजेश्वर तथा परमात्मा हैं ॥ २४ ॥ हे दैत्येन्द्र ! प्रजापतियों के सहित इन्द्रादि समस्त देवता, सिद्ध, मुनिगण तथा

हरेर्विधेश्च स स्वामी निर्गुणः सगुणः स हि । यस्य भ्रूभङ्गमात्रेण सर्वेषां प्रलयो भवेत् ॥२६॥
शिवस्य पूर्णरूपश्च लोकसंहारकारकः । सतां गतिर्दुष्टहन्ता निर्विकारः परात्परः ॥२७॥
ब्रह्मणोऽधिपतिः सोऽपि हरेरपि महेश्वरः । अवमान्या न वै तस्य शासना दानवर्षभ ! ॥२८॥
किं बहूक्तेन राजेन्द्र ! मनसा संविचार्य च । रुद्रं विद्धि महेशानं परं ब्रह्म चिदात्मकम् ॥२९॥
देहि राज्यं हि देवानामधिकारांश्च सर्वशः । एवं ते कुशलं तात ! भविष्यत्यन्यथा भयम् ॥३०॥

सनत्कुमार उवाच

इति श्रुत्वा दानवेन्द्रः शङ्खचूडः प्रतापवान् । उवाच शिवदूतं तं भवितव्यविमोहितः ॥३१॥

शङ्खचूड उवाच

स्वतो राज्यं न दास्यामि नाधिकारान् विनिश्चयात् । विना युद्धं महेशेन सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम् ॥३२॥
कालाधीनं जगत्सर्वं विज्ञेयं सचराऽचरम् । कालाद्भवति सर्वं हि विनश्यति च कालतः॥३३॥
त्वं गच्छ शङ्करं रुद्रं मयोक्तं वद तत्त्वतः । स च युक्तं करोत्वेवं बहुवार्तां कुरुष्व नो ॥३४॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा शिवदूतोऽसौ जगाम स्वामिनं निजम् । यथार्थं कथयामास पुष्पदन्तश्च सन्मुने ! ॥३५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे
शङ्खचूडवधे दूतगमनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

शेषादिक भी जिनके वशवर्त्ती हैं ॥ २५ ॥ वे विष्णु तथा ब्रह्मा के स्वामी हैं, उनके सगुण तथा निर्गुण दो स्वरूप हैं। उनकी भृकुटी के फेरने से ही सभी लोकों का प्रलय हो जाता है ॥ २६ ॥ शिव का यह पूर्ण रूप लोकसंहार कारक है, सज्जनों का रक्षक तथा दुष्टों का काल हैं और निर्विकार रूप तो पर से भी परे हैं ॥ २७ ॥ वे शिव महेश्वर हैं, ब्रह्मा तथा विष्णु के अधिपति हैं। हे दानवश्रेष्ठ ! कोई भी उनकी आज्ञा की अवहेलना नहीं कर सकता ॥ २८ ॥ हे राजेन्द्र ! बहुत कहने से क्या लाभ ? तुम मन से विचार करो, ये रुद्र, महेशान, परब्रह्म तथा चिदात्मा हैं ॥ २९ ॥ अतः तुम देवताओं का राज्य तथा अधिकार शीघ्र उन्हें प्रदान करो। ऐसा करने से ही तुम्हारा कल्याण सम्भव है, अन्यथा तुम भय उपस्थित हुआ समझो ॥ ३० ॥

सनत्कुमार बोले—दूत की इस प्रकार की बात सुनकर महाप्रतापी दानवेन्द्र शङ्खचूड भवितव्य से मोहित हो उस दूत से बोला—॥ ३१ ॥

शङ्खचूड बोला—हे दूत ! मैं यह सत्य कहता हूँ कि बिना युद्ध के न तो देवताओं का राज्य दूँगा और न तो अधिकार ही दूँगा ॥ ३२ ॥ यह सारा चराचर जगत् काल के आधीन है, काल से ही सब कुछ उत्पन्न होता है तथा काल आने पर विनष्ट भी हो जाता है ॥ ३३ ॥ इसलिए तुम शङ्कर के पास जाकर यथार्थ रूप से मेरी बात कह दो, उनकी जो इच्छा हो वे करें, बहुत कहने से क्या लाभ ? ॥ ३४ ॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने ! शङ्खचूड की यह बात सुनकर वह पुष्पदन्त नाम का दूत अपने स्वामी शिव के पास गया और सारा वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ३५ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पंचम युद्धखण्ड में
शङ्खचूडवध में दूतगमन नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

(शिवगणों को सेनासहित युद्ध के लिए गमन)

सनत्कुमार उवाच

तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य सुरराट् ततः। सक्रोधः प्राह गिरिशो वीरभद्रादिकान् गणान् ॥ १ ॥

रुद्र उवाच

हे वीरभद्र हे नन्दिन् क्षेत्रपालाष्टभैरवाः। सर्वे गणाश्च सन्नद्धाः सायुधा बलशालिनः ॥ २ ॥
कुमाराभ्यां सहैवाद्य निर्गच्छन्तु ममाज्ञया। स्वसेनया भद्रकाली निर्गच्छतु रणाय च ॥
शङ्खचूडवधार्थाय निर्गच्छाम्यद्य सत्वरम् ॥ ३ ॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याज्ञाप्य महेशानो निर्ययौ सैन्यसंयुतः। सर्वे वीरगणास्तस्याऽनुययुः संप्रहर्षिताः ॥ ४ ॥
एतस्मिन्नन्तरे स्कन्दगणेशौ सर्वसैन्यपौ। यततुर्मुदितौ नद्धौ सायुधौ च शिवान्तिके ॥ ५ ॥
वीरभद्रश्च नन्दी च महाकालः सुभद्रकः। विशालाक्षश्च बाणश्च पिङ्गलाक्षो विकम्पनः ॥ ६ ॥
विरूपो विकृतिश्चैव मणिभद्रश्च बाष्कलः। कपिलाख्यो दीर्घदंष्ट्रो विकरस्ताम्रलोचनः ॥ ७ ॥
कालङ्करो बलीभद्रः कालजिह्वः कुटीचरः। बलोन्मत्तो रणश्लाघ्यो दुर्जयो दुर्गमस्तथा ॥ ८ ॥
इत्यादयो गणेशानाः सैन्यानां पतयो वराः। तेषां च गणनां वच्मि सावधानतया शृणु ॥ ९ ॥
शङ्खकर्णः कोटिगणैर्युतः परविमर्दकः। दशभिः केकराक्षश्च विकृतोऽष्टाभिरेव च ॥१०॥
चतुःषष्ट्या विशाखश्च नवभिः पारियात्रिकः। षड्भिः सर्वान्तकः श्रीमांस्तथैव विकृताननः॥११॥
जालको हि द्वादशभिः कोटिभिर्गणपुङ्गवः। सप्तभिः समदः श्रीमान् दुन्दुभोऽष्टाभिरेव च॥१२॥
पञ्चभिश्च करालाक्षः षड्भिः सन्दारको वरः। कोटिकोटिभिरेवेह कन्दुकः कुण्डकस्तथा ॥१३॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास! दूत के द्वारा यह वचन सुनकर देवाधिपति भगवान् शङ्कर को बड़ा क्रोध हुआ, उन्होंने वीरभद्रादि गणों को बुलाकर कहा ॥ १ ॥

रुद्र बोले—हे वीरभद्र! हे नन्दिन्! हे क्षेत्रपालो! हे अष्टभैरव तथा समस्त बलशाली गणो! तुम लोग मेरी आज्ञा से अपना-अपनी शस्त्र लेकर युद्ध के लिए तैयार हो जाओ ॥ २ ॥ और मेरी आज्ञा से दोनों कुमारों के साथ युद्ध के लिए रणभूमि की ओर चल पड़ो और यह भद्रकाली भी अपनी सेना के साथ युद्ध के लिए चले, मैं शङ्खचूड का वध करने के लिए शीघ्र ही आ रहा हूँ ॥ ३ ॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार की आज्ञा देकर शिव जी ने अपनी सेना के साथ रणभूमि की ओर प्रस्थान किया। सभी वीरगण भी हर्षित होकर उनके साथ चले ॥ ४ ॥ इसी समय कुमार कार्त्तिकेय तथा गणेश जी भी, जो सभी सेना के सेनापति थे वे भी प्रसन्नता के साथ आयुधों से सन्नद्ध हो शिव के समीप गये ॥ ५ ॥ वीरभद्र, नन्दी, महाकाल, सुभद्रक, विशालाक्ष, बाण, पिङ्गलाक्ष, विकम्पन, विरूप, विकृति, मणिभद्र, वाष्फल, कपिल, दीर्घदंष्ट्र, विकर, ताम्रलोचन, कालङ्कर, वलीभद्र, कालजिह्व, कुटीचर, बलोन्मत्त, रणश्लाघी, दुर्जय एवं दुर्गम इत्यादि गणेश्वर भी शिव जी के साथ रणभूमि में चले। हे व्यास! अब मैं सेनापतियों के नाम की गणना करता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो ॥ ६-९ ॥ परविमर्दक, शङ्खकर्ण एक करोड़ सेना के साथ, केकराक्ष दश करोड़, विकृत आठ करोड़, विशाख चौंसठ करोड़, पारियात्रिक नव करोड़, सर्वान्तक छह करोड़, उसी प्रकार श्रीमान् एवं विकृतानन छह करोड़, गणपुङ्गव जालक बारह करोड़, समद सात करोड़, श्रीमान् दुन्दुभ आठ करोड़, करालाक्ष पाँच करोड़,

विष्टम्भोऽष्टाभिरेवेह गणपः सर्वसत्तमः। पिप्पलश्च सहस्रेण सन्नादश्च तथाविधः ॥१४॥
आवेशनस्तथाऽष्टाभिस्त्वष्टाभिश्चन्द्रतापनः। महाकेशः सहस्रेण कोटीनां गणपो वृतः ॥१५॥
कुण्डी द्वादशभिर्वीरस्तथा पर्वतकः शुभः। कालश्च कालकश्चैव महाकालः शतेन वै ॥१६॥
अग्निकः शतकोट्या च कोट्याग्निमुख एव च। आदित्यो ह्यर्द्धकोट्या च तथा चैव घनावहः ॥१७॥
सन्नाहश्च शतेनैव कुमुदः कोटिभिस्तथा। अमोघः कोकिलश्चैव शतकोट्या सुमन्त्रकः ॥१८॥
काकपादः कोटिषष्ट्या षष्ट्या सन्तानकस्तथा। महाबलश्च नवभिः पञ्चभिर्मधुपिङ्गलः ॥१९॥
नीलो नवत्या देवेशः पूर्णभद्रस्तथैव च। कोटीनां चैव सप्तानां चतुर्वक्त्रो महाबलः ॥२०॥
कोटिकोटिसहस्राणां शतैर्विंशतिभिस्तथा। तत्राजग्मुस्तथा वीरास्ते सर्वे सङ्गरोत्सवे ॥२१॥
भूतकोटिसहस्रेण प्रमथैः कोटिभिस्त्रिभिः। वीरभद्रश्चतुःषष्ट्या लोमजानां त्रिकोटिभिः ॥२२॥
काष्ठारूढश्चतुःषष्ट्या सुकेशो वृषभस्तथा। विरूपाक्षश्च भगवांश्चतुःषष्ट्या सनातनः ॥२३॥
तालकेतुः षडास्यश्च पञ्चास्यश्च प्रतापवान्। संवर्तकस्तथा चैत्रो लकुलीशः स्वयं प्रभुः ॥२४॥
लोकान्तकश्च दीप्तात्मा तथा दैत्यान्तकः प्रभुः। देवो भृङ्गी रिटिः श्रीमान् देवदेवप्रियस्तथा ॥२५॥
अशनिर्भानुकश्चैव चतुःषष्ट्या सहस्रशः। कङ्कालः कालकः कालो नन्दी सर्वान्तकस्तथा ॥२६॥
एते चान्ये च गणपा असङ्ख्याता महाबलाः। युद्धार्थं निर्ययुः प्रीत्या शङ्खचूडेन निर्भयाः ॥२७॥
सर्वे सहस्रहस्ताश्च जटामुकुटधारिणः। चन्द्ररेखावतंसाश्च नीलकण्ठास्त्रिलोचनाः ॥२८॥
रुद्राक्षाभरणाः सर्वे तथा सद्भस्मधारिणः। हार-कुण्डल-केयूर-मुकुटाद्यैरलङ्कृताः ॥२९॥
ब्रह्मेन्द्र-विष्णु-सङ्काशा अणिमादिगुणैर्वृताः। सूर्यकोटिप्रतीकाशाः प्रवीणा युद्धकर्मणि ॥३०॥
पृथिवीचारिणः केचित् केचित् पातालचारिणः। केचिद् व्योमचराः केचित् सप्तस्वर्गचरा मुने ! ॥३१॥

सन्दारक छह करोड़, कन्दुक तथा कुण्डक एक-एक करोड़, सर्वोत्तम विष्टम्भ नाम का गणेश्वर आठ करोड़, पिप्पल एवं सन्नाद सहस्र करोड़, आवेशन और चन्द्रतापन आठ-आठ करोड़, महाकेश गणेश्वर सहस्र करोड़ गणों के साथ, कुण्डी एवं पर्वतक बारह करोड़, काल, कालक एवं महाकाल सौ करोड़ गण, आग्निक सौ करोड़, अग्निमुख एक करोड़, आदित्य एवं घनावह आधी करोड़, सन्नाह सौ कोटि, कुमुद एक कोटि। इसी प्रकार अमोघ कोकिल एवं सुमन्त्रक सौ-सौ करोड़, काकपाद और सन्तानक साठ-साठ करोड़, महाबल नौ करोड़, मधुपिङ्गल पाँच करोड़, नील नब्बे करोड़, देवेश एवं पूर्णभद्र नब्बे-नब्बे करोड़, महाबलवान् चतुर्वक्त्र सात करोड़। इसी प्रकार अन्य भी महावीर गण सहस्रों, सैकड़ों तथा बीसों करोड़ गणों को साथ ले युद्ध के लिए उपस्थित हो गये ॥ १०-२१ ॥

वीरभद्र सहस्र करोड़ भूतगणों, चौंसठ करोड़ प्रमथों एवं तीन करोड़ लोमजों के सहित। इसी प्रकार काष्ठारूढ, सुकेश, वृषभ, विरूपाक्ष एवं भगवान् सनातन भी चौंसठ करोड़ गणों के साथ तथा प्रतापवान् तालकेतु, षण्मुख, पञ्चमुख, संवर्तक, चैत्र, लकुलीश, स्वयंप्रभु, लोकान्तक, दीप्तात्मा, दैत्यान्तक, प्रभु, देवभृङ्गी, श्रीमान् देवाधिदेव महादेव के अत्यन्त प्रिय रिटि, अशनि, भानुक चौंसठ सहस्र गणों के साथ, कङ्काल, कालकङ्काल, नन्दी एवं सर्वान्तक तथा अन्य असंख्यात गणेश्वर शङ्खचूड के साथ युद्ध करने के लिए निर्भय हो चल पड़े ॥ २२-२७ ॥ ये सभी गण सहस्रों हाथों से युक्त थे तथा जटा का मुकुट धारण किये हुए थे। सभी के मस्तक पर चन्द्रकला विराजमान थी, सभी नीलकण्ठ एवं त्रिलोचन थे ॥२८॥ सभी रुद्राक्ष एवं भस्म धारण किये हुए थे और हार, कुण्डल, केयूर तथा मुकुट आदि से अलङ्कृत थे ॥ २९ ॥ सभी ब्रह्मा, इन्द्र एवं विष्णु के सदृश थे तथा अणिमादि गुणों से युक्त थे। सभी करोड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान एवं युद्धक्रिया में अत्यन्त प्रवीण थे ॥ ३० ॥ हे मुने ! कोई पृथ्वी में, कोई पाताल में, कोई आकाश में तथा कोई सातों स्वर्गों में विचरण करने वाले थे ॥ ३१ ॥

किं बहुक्तेन देवर्षे ! सर्वलोकनिवासिनः । ययुः शिवगणाः सर्वे युद्धार्थं दानवैः सह ॥३२॥
अष्टौ च भैरवा रौद्रा रुद्राश्चैकादशाश्च ये । वसवोऽष्टौ वासवश्चादित्या द्वादश ते द्रुतम् ॥३३॥
हुताशनश्च चन्द्रश्च विश्वकर्माश्विनौ च तौ । कुबेरश्च यमश्चैव निर्ऋतिर्नलकूबरः ॥३४॥
वायुश्च वरुणश्चैव बुधश्च मङ्गलश्च वै । ग्रहाश्चाऽन्ये महेशेन कामदेवश्च वीर्यवान् ॥३५॥
उग्रदंष्ट्रश्चोग्रदण्डः कोरटः कोटभस्तथा । स्वयं शतभुजा देवी भद्रकाली महेश्वरी ॥३६॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानोपरि संस्थिता । रक्तवस्त्रपरीधाना रक्तमाल्यानुलेपना ॥३७॥
नृत्यन्ती च हसन्ती च गायन्ती सुस्वरं मुदा । अभयं ददती स्वेभ्यो भयं चारिभ्य एव सा ॥३८॥
बिभ्रती विकटां जिह्वां सुलोलां योजनायताम् । शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-खड्ग-चर्म-धनुः-शरान् ॥३९॥
खर्परं वर्तुलाकारं गम्भीरं योजनायतम् । त्रिशूलं गगनस्पर्शि शक्तिं च योजनायताम् ॥४०॥
मुद्गरं मुसलं वज्रं खड्गं फलकमुल्बणम् । वैष्णवास्त्रं वारुणास्त्रं वायव्यं नागपाशकम् ॥४१॥
नारायणास्त्रं गान्धर्वं ब्रह्मास्त्रं गारुडं तथा । पार्जन्यं च पाशुपतं जृम्भणास्त्रं च पार्वतम् ॥४२॥
महावीरं च सौरं च कालकालं महानलम् । महेश्वरास्त्रं याम्यं च दण्डं सम्मोहनं तथा ॥४३॥
समर्थमस्त्रकं दिव्यं दिव्यास्त्रं शतकं परम् । बिभ्रती च करैः सर्वैरन्यान्यपि च सा तदा ॥४४॥
आगत्य तस्थौ सा तत्र योगिनीनां त्रिकोटिभिः । सार्द्धं च डाकिनीनां वै विकटानां त्रिकोटिभिः ॥४५॥
भूत-प्रेत-पिशाचाश्च कूष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः । वैताला राक्षसाश्चैव यक्षाश्चैव सकिन्नराः ॥४६॥
तैश्चैवाभिवृतः स्कन्दः प्रणम्य चन्द्रशेखरम् । पितुः पार्श्वे सहायो यः समुवास तदाज्ञया ॥४७॥

हे देवर्षे ! बहुत कहाँ तक गिनावें, उस समय सम्पूर्ण लोकों में रहनेवाले शिव जी के गण दानवों से युद्ध करने के लिए आ पहुँचे ॥ ३२ ॥ आठों भैरव, महा भयानक एकादश रुद्र, आठों वसु, द्वादशादित्य, हुताशन, चन्द्रमा, विश्वकर्मा, दोनों अश्विनी कुमार, कुबेर, यम, निर्ऋति, नलकूबर, वायु, वरुण, बुध एवं मङ्गलादि ग्रह, कामदेव, उग्रदंष्ट्र, उग्रदण्ड, कोरट, कोटभ आदि महागण तथा स्वयं सौ भुजा धारण किये हुए भगवती भद्रकाली महादेवी स्वयं उस युद्ध में उपस्थित हुईं ॥ ३३-३६ ॥ वह भगवती उत्तम रत्नों से निर्मित विमान पर बैठी हुई थीं । वह रक्त वस्त्र, रक्त अनुलेपन एवं रक्त माल्य धारण किये हुए थीं और प्रसन्नता से हँसती हुई, सुस्वर से गाती हुई नृत्य करती अपने भक्तों को अभय प्रदान कर रही थीं तथा शत्रुओं को भय उत्पन्न कर रही थीं ॥ ३७-३८ ॥ वे एक योजन पर्यन्त लम्बी विकट जिह्वा धारण किये हुए उसे लपलपा रही थीं और शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, खड्ग, चर्म तथा धनुष धारण किये हुए थीं ॥ ३९ ॥ उनका एक योजन का गोल खप्पर अत्यन्त गहरा था । उनका त्रिशूल आकाश को स्पर्श कर रहा था और शक्ति एक योजन लम्बी थी ॥ ४० ॥ वे मुद्गल, मुसल, वज्र, अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाले खड्ग, वैष्णवास्त्र, वारुणास्त्र, वायव्यास्त्र, नागपाश, नारायणास्त्र, गन्धर्वास्त्र, ब्रह्मास्त्र, गारुडास्त्र, पार्जन्यास्त्र, पाशुपतास्त्र, जृम्भणास्त्र, पार्वतास्त्र, महावीरास्त्र, सौरास्त्र, कालकालास्त्र, महानलास्त्र, महेश्वरास्त्र, याम्य दण्ड एवं सम्मोहनास्त्र, दिव्य समर्थास्त्र एवं सैकड़ों-सैकड़ों दिव्यास्त्र एवं अन्य भी अस्त्र अपने हाथों में धारण किये हुए तीन करोड़ योगिनियों एवं तीन करोड़ डाकिनियों के साथ उस युद्धस्थल में सहसा उपस्थित हो गईं ॥ ४१-४५ ॥

इसी प्रकार भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, बेताल, राक्षस, यक्ष, किन्नरों से घिरे हुए स्कन्द ने आकर शिव जी को प्रणाम किया और पिता की आज्ञा से उनके समीप में स्थित हो गये ॥४६-४७॥

अथ शम्भुः समानीय स्वसैन्यं सकलं तदा। युद्धार्थमगमद्रुद्रः शङ्खचूडेन निर्भयः ॥४८॥
चन्द्रभागानदीतीरे वटमूले मनोहरे। तत्र तस्थौ महादेवो देवनिस्तारहेतवे ॥४९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शङ्खचूडवधे महादेवयुद्धयात्रावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

(शङ्खचूड का पुत्र को अपनी भार्या तुलसी का समर्पण और युद्ध में गमन)

व्यास उवाच

विधितात महाबुद्धे मुने! जीव चिरं समाः। कथितं सुमहच्चित्रं चरितं चन्द्रमौलिनः ॥ १ ॥
शिवदूते गते तत्र शङ्खचूडश्च दानवः। किं चकार प्रतापी स तत्त्वं वद सुविस्तरम् ॥ २ ॥

सनत्कुमार उवाच

अथ दूते गते तत्र शङ्खचूडः प्रतापवान्। उवाच तुलसीं वार्तां गत्वाभ्यन्तरमेव ताम् ॥ ३ ॥

शङ्खचूड उवाच

शम्भुदूतमुखाद् देवि! युद्धायाऽहं समुद्यतः। तेन गच्छाम्यहं योद्धुं शासनं कुरु मे ध्रुवम् ॥ ४ ॥
इत्येवमुक्त्वा स ज्ञानी नानाबोधनतः प्रियाम्। क्रीडां चकार हर्षेण तमनादृत्य शङ्करम् ॥ ५ ॥
तौ दम्पती चिक्रीडाते निमग्नौ सुखसागरे। नानाकामकलाभिश्च निशि चाटुशतैरपि ॥ ६ ॥
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय प्रातःकृत्यं विधाय च। नित्यकार्यं च कृत्वाऽऽदौ ददौ दानमनन्तकम् ॥ ७ ॥
पुत्रं कृत्वा च राजेन्द्रं सर्वेषु दानवेषु च। पुत्रे समर्प्य भार्यां च स राज्यं सर्वसम्पदम् ॥ ८ ॥

इस प्रकार शिव जी ने अपनी सारी सेना लेकर शङ्खचूड के साथ निर्भय युद्ध करने के लिए चन्द्रभागा नदी के तट पर एक मनोहर वटवृक्ष के नीचे देवताओं का कल्याण करने हेतु अपना डेरा डाल दिया ॥४८-४९॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती'भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पंचम-युद्धखण्ड में शङ्खचूडवध में महादेवयुद्ध यात्रा वर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३३ ॥

*

व्यासजी बोले—हे ब्रह्मपुत्र महाबुद्धिमान् सनत्कुमार! आप चिरकाल तक जीवित रहें। आपने यह शिवजी का बड़ा विचित्र चरित्र वर्णन किया ॥ १ ॥ अब आप विस्तारपूर्वक बताइए कि महाप्रतापी शंखचूड ने शिवजी के दूत के चले जाने पर क्या किया? ॥ २ ॥

सनत्कुमार बोले—शिवदूत के चले जाने पर प्रतापी शंखचूड ने अपने मन्दिर के भीतर जाकर तुलसी से यह सारा समाचार कहा—॥ ३ ॥

शंखचूड बोला—हे देवि! शिव-दूत के द्वारा युद्ध का सन्देश प्राप्त होने के कारण मैं युद्ध के लिए तैयार होकर जा रहा हूँ। अब तुम मेरे शासन का कार्य संभालना ॥ ४ ॥ इतना कहने के पश्चात् उस ज्ञानी के नाना प्रकार के वाक्यों से अपनी प्रियतमा को समझाया और शङ्कर का अनादर कर उनके साथ हर्षित हो क्रीड़ा भी किया ॥ ५ ॥ अनेक प्रकार की कामकलाओं तथा मधुर वचनों से परस्पर संलाप करते हुए उन दम्पतियों ने सुखसागर में निमग्न हो सारी रात बीता दी ॥ ६ ॥ शंखचूड ने ब्राह्ममुहूर्त में उठकर अपना प्रातःकृत्य समाप्त कर नित्य कर्म किया और ब्राह्मणों को अत्यधिक दान दिये ॥ ७ ॥ और अपने पुत्र को बुलाकर उसे सभी दानवों का राजा बनाया। तथा सारी राजसम्पत्ति एवं भार्या को

प्रियामाश्वासयामास स राजा रुदतीं पुनः । निषेधतीं च गमनं नानावार्ता प्रकथ्य च ॥ ९ ॥
निजसेनापतिं वीरं समाहूय समादृतः । आदिदेश स सन्नद्धः सङ्ग्रामं कर्तुमुद्यतः ॥१०॥

शङ्खचूड उवाच

अद्य सेनापते ! वीराः सर्वे समरशालिनः । सन्नद्धाखिलकर्माणो निर्गच्छन्तु रणाय च ॥११॥
दैत्याश्च दानवाः शूराः षडशीतिरुदायुधाः । कङ्कानां बलिनां शीघ्रं सेना निर्यान्तु निर्भयाः ॥१२॥
पञ्चाशदसुराणां हि निर्गच्छन्तु कुलानि वै । कोटिवीर्याणि युद्धार्थं शम्भुना देवपक्षिणा ॥१३॥
सन्नद्धानि च धौम्राणां कुलानि च शतं द्रुतम् । निर्गच्छन्तु रणार्थं हि श[illegible]ना मम शासनात् ॥१४॥
कालकेयाश्च मौर्याश्च दौर्हृदाः कालकास्तथा । सज्जा निर्यान्तु युद्धाय रुद्रेण मम शासनात् ॥१५॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याज्ञाप्यासुरपतिर्दानवेन्द्रो महाबलः । निर्जगाम महासैन्यः सहस्रैर्बहुभिर्वृतः ॥१६॥
तस्य सेनापतिश्चैव युद्धशास्त्रविशारदः । महारथो महावीरो रथिनां प्रवरो रणे ॥१७॥
त्रिलक्षाऽक्षौहिणीयुक्तो माण्डल्यं च चकार ह । बहिर्बभूव शिबिराद्रणे वीरभयङ्करः ॥१८॥
रत्नेन्द्रं सारनिर्माणं विमानमभिरुह्य सः । गुरुवर्गं पुरस्कृत्य रणार्थं प्रययौ किल ॥१९॥
पुष्पभद्रानदीतीरे यत्राक्षयवटः शुभः । सिद्धाश्रमे च सिद्धानां सिद्धिक्षेत्रं सुसिद्धिदम् ॥२०॥
कपिलस्य ततः स्थानं पुण्यक्षेत्रे च भारते । पश्चिमोदधिपूर्वे च मलयस्य हि पश्चिमे ॥२१॥
श्रीशैलोत्तरभागे च गन्धमादनदक्षिणे । पञ्चयोजनविस्तीर्णे दैर्घ्ये शतगुणस्तथा ॥२२॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशा भारते च सुपुण्यदा । पुष्पभद्रा नदी रम्या जलपूर्णा सरस्वती ॥२३॥

भी उसे समर्पित कर बारम्बार रोती हुई तथा युद्ध में जाने से मना करती हुई अपनी भार्या को अनेक प्रकार की कथाओं से आश्वस्त किया। तदनन्तर उसने अपने वीर सेनापति को बुलाकर सेना को युद्ध के लिए सन्नद्ध होने की आज्ञा दी ॥ ८-१० ॥

शंखचूड बोला—हे सेनापते ! हमारी सेना के सभी वीर युद्ध करने में कुशल हैं, अतः वे सभी प्रकार से सुसज्जित हो युद्ध के लिए तैयार होकर चलें ॥ ११ ॥ बलशाली कङ्कों की सेना जिसमें छियासी महाबलवान् दैत्य एवं दानव हैं। मेरी आज्ञा से निर्भय होकर युद्ध के लिए चलें ॥ १२ ॥ असुरों के पचास कुल, जिसमें करोड़ों महावीर हैं, वे भी तैयार होकर देवपक्षपाती शङ्कर से युद्ध करने के लिए चलें ॥१३॥ इसी प्रकार धूम्र नामक दैत्यों के सौ कुल शिव से युद्ध करने के लिए मेरी आज्ञा से चलें ॥ १४ ॥ कालकेय, दौर्हृद, मौर्य, कालक आदि भी तैयार होकर शिव के साथ युद्ध करने के लिए चलें ॥ १५ ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! तदनन्तर महाबली असुरराज दानवेन्द्र शङ्खचूड इस प्रकार आज्ञा देकर सहस्रों असुरों की सेना लेकर युद्ध के लिए स्वयं भी उतावला हो चल पड़ा ॥ १६ ॥ युद्धशास्त्र में विशारद, महारथी एवं रथियों में श्रेष्ठ शङ्खचूड का महाभयङ्कर सेनापति भी तीन लाख अक्षौहिणी सेना लेकर युद्ध करने के लिए अपने शिविर से बाहर हुआ ॥ १७-१८ ॥ इधर शङ्खचूड भी उत्तम रत्नों से बने हुए विमान पर चढ़ कर गुरुजनों को आगे कर पुष्पभद्रा नदी के किनारे सिद्धक्षेत्र में, जहाँ सिद्धों का सिद्धाश्रम एवं श्रेष्ठ अक्षयवट है वहाँ पर पहुँचा। इस स्थान के पश्चात् ही पुण्यक्षेत्र भारत में कपिल की तपोभूमि है। यह स्थान पश्चिम सागर के पूर्व तथा मलय पर्वत के पश्चिम श्रीपर्वत के उत्तर तथा गन्धमादन के दक्षिण पाँच योजन चौड़ा एवं पाँच सौ योजन लम्बा है ॥ १९-२२ ॥ यहीं पर भारत की परम पवित्र

लवणोदधिप्रिया भार्या शश्वत्सौभाग्यसंयुता । सरस्वतीसंश्रिता च निर्गता सा हिमालयात् ॥२४॥
गोमन्तं वामतः कृत्वा प्रविष्टा पश्चिमोदधौ । तत्र गत्वा शङ्खचूडः शिवसेनां ददर्श ह ॥२५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शङ्खचूडयात्रा-
वर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

(परस्पर दूतों का गमनागमन)

सनत्कुमार उवाच

तत्र स्थित्वा दानवेन्द्रो महान्तं दानवेश्वरम् । दूतं कृत्वा महाविज्ञं प्रेषयामास शङ्करम् ॥ १ ॥
स तत्र गत्वा दूतश्च चन्द्रभालं ददर्श ह । वटमूले समासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ २ ॥
कृत्वा योगासनं दृष्ट्या मुद्रायुक्तं च सस्मितम् । शुद्धस्फटिकसङ्काशं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥ ३ ॥
त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरावृतम् । भक्तमृत्युहरं शान्तं गौरीकान्तं त्रिलोचनम् ॥ ४ ॥
तपसां फलदातारं कर्तारं सर्वसम्पदाम् । आशुतोषं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् ॥ ५ ॥
विश्वनाथं विश्वबीजं विश्वरूपं च विश्वजम् । विश्वम्भरं विश्वकरं विश्वसंहारकारणम् ॥ ६ ॥
कारणं कारणानां च नरकार्णवतारणम् । ज्ञानप्रदं ज्ञानबीजं ज्ञानानन्दं सनातनम् ॥७॥
अवरुह्य रथाद् दूतस्तं दृष्ट्वा दानवेश्वरः । शङ्करं सकुमारं च शिरसा प्रणनाम सः ॥ ८ ॥
वामतो भद्रकालीं च स्कन्दं तत्पुरतः स्थितम् । लोकाशिषं ददौ तस्मै काली स्कन्दश्च शङ्करः ॥ ९ ॥
अथाऽसौ शङ्खचूडस्य दूतः परमशास्त्रवित् । उवाच शङ्करं नत्वा करौ बद्ध्वा शुभं वचः ॥१०॥

शुद्ध स्फटिक के समान जलवाली, जलपूर्ण समुद्र की प्रियपत्नी पुष्पभद्रा नदी निरन्तर सौभाग्य युक्त होकर हिमालय से निकल कर बहती है। और गोमन्तक पर्वत को बायें कर पश्चिम सागर में गिरती है। वहाँ जाकर शङ्खचूड ने शिव की सेना को देखा ॥ २३-२५ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड में शङ्खचूडयात्रावर्णन नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३४ ॥

*

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! उस दानवेन्द्र ने अत्यन्त बुद्धिमान् एक महादानव को अपना दूत बनाकर शङ्कर के पास भेजा ॥ १ ॥ उस दूत ने वहाँ जाकर करोड़ों सूर्यों के समान महातेजस्वी चन्द्रमा को मस्तक में धारण किये योगासन लगाये हुए मुद्रायुक्त, मन्द-मन्द हँसते हुए, शुद्ध स्फटिक के समान परमोज्ज्वल, ब्रह्मतेज से देदीप्यमान, त्रिशूल, पट्टिश धारण किये हुए, व्याघ्र चर्म ओढ़े हुए, भक्तों की मृत्यु-बाधा दूर करने वाले, त्रिनेत्र, गौरीकान्त, तपस्या का फल एवं सम्पूर्ण सम्पत्ति प्रदान करने वाले, प्रसन्न मुख, भक्तों पर अनुग्रह करने वाले, आशुतोष, विश्वबीज, विश्वरूप, विश्व को उत्पन्न करने वाले, विश्वम्भर, विश्वकर्त्ता, विश्वसंहारकर्त्ता, कारणों के भी कारण, नरक-समुद्र से पार उतारने वाले, ज्ञानदाता, ज्ञानबीज, ज्ञान में ही आनन्दित रहने वाले, सनातन सदाशिव को वटवृक्ष के नीचे बैठा हुआ देखा ॥ २-७ ॥ फिर उस दूत ने रथ से उतर कर कुमार सहित शङ्कर को देख कर शिर से प्रणाम किया ॥ ८ ॥ उस समय उनके बायीं ओर भगवती भद्रकाली तथा आगे स्कन्द स्थित थे। तदनन्तर काली, शङ्कर एवं स्कन्द ने लोकरीति से उसे आशीर्वाद दिया ॥ ९ ॥ पुनः सकल शास्त्रवेत्ता शङ्खचूड का वह दूत हाथ जोड़कर इस प्रकार श्रेष्ठ वचन बोला ॥ १० ॥

दूत उवाच

शङ्खचूडस्य दूतोऽहं त्वत्सकाशमिहागतः। वर्तते ते किमिच्छाद्य तत्त्वं ब्रूहि महेश्वर ! ॥११॥

सनत्कुमार उवाच

इति श्रुत्वा च वचनं शङ्खचूडस्य शङ्करः। प्रसन्नात्मा महादेवो भगवांस्तमुवाच ह ॥१२॥

महादेव उवाच

शृणु दूत ! महाप्राज्ञ ! वचो मम सुखावहम्। कथनीयमिदं तस्मै निर्विवादं विचार्य च ॥१३॥

विधाता जगतां ब्रह्मा पिता धर्मस्य धर्मवित्। मरीचिस्तस्य पुत्रश्च कश्यपस्तत्सुतः स्मृतः ॥१४॥

दक्षः प्रीत्या ददौ तस्मै निजकन्यास्त्रयोदश। तास्वेका च दनुः साध्वी तत्सौभाग्यविवर्द्धिनी ॥१५॥

चत्वारस्ते दनोः पुत्रा दानवास्तेजसोल्वणाः। तेष्वेको विप्रचित्तिस्तु महाबलपराक्रमः ॥१६॥

तत्पुत्रो धार्मिको दम्भो दानवेन्द्रो महामतिः। तस्य त्वं तनयः श्रेष्ठो धर्मात्मा दानवेश्वरः ॥१७॥

पुरा त्वं पार्षदो गोपो गोपेष्वेव च धार्मिकः। अधुना राधिकाशापाज्जातस्त्वं दानवेश्वरः ॥१८॥

दानवीं योनिमायातस्तत्त्वतो न हि दानवः। निजवृत्तं पुरा ज्ञात्वा देववैरं त्यजाऽधुना ॥१९॥

द्रोहं न कुरु तैः सार्द्धं स्वपदं भुङ्क्ष्व सादरम्। नाधिकं सविकारं च कुरु राज्यं विचार्य च ॥२०॥

देहि राज्यं च देवानां मत्प्रीतिं रक्ष दानव !। निजराज्ये सुखं तिष्ठ तिष्ठन्तु स्वपदे सुराः ॥२१॥

अलं भूतविरोधेन देवद्रोहेण किं पुनः। कुलीनाः शुद्धकर्माणः सर्वे कश्यपवंशजाः ॥२२॥

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। ज्ञातिद्रोहजपापस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२३॥

दूत बोला—हे महेश्वर। मैं शङ्खचूड का दूत आप के पास आया हूँ, आपकी इच्छा क्या है ? उसे तत्त्वतः कहिए ? ॥ ११ ॥

सनत्कुमार बोले—शङ्खचूड की बात सुनकर प्रसन्न हुए भगवान् महादेव कहने लगे ॥ १२ ॥

महादेव बोले—हे महाबुद्धिमान् दूत ! तुम मेरे सुखदायक वचन सुनो। और अपने स्वामी से जाकर विचार करते हुए मेरे वचन को निर्विवाद रूप से कहो ॥ १३ ॥ जगत् के निर्माता ब्रह्मदेव धर्म के भी पिता हैं, जो समस्त धर्मों के ज्ञाता हैं, उनके पुत्र मरीचि तथा मरीचि के पुत्र कश्यप हुए ॥ १४ ॥ उन कश्यप को दक्ष ने अपनी तेरह कन्याएँ बड़ी प्रसन्नता के साथ प्रदान कीं। उनमें एक का नाम दनु था, जो बड़ी ही पतिव्रता, साधु स्वभाव वाली एवं परम सौभाग्यवती थी ॥ १५ ॥ उस दनु के परम तेजस्वी चार पुत्र हुए। उनमें एक का नाम विप्रचित्ति है, जो महाबलवान् एवं पराक्रमी था ॥ १६ ॥ उसी विप्रचित्ति का परम धार्मिक महाबुद्धिमान् दानवराज दम्भ नामक पुत्र हुआ। उसी दम्भ के परम धर्मात्मा तथा दानवराज तुम पुत्र हो ॥ १७ ॥ तुम पूर्वजन्म में श्रीकृष्ण के पार्षद, परम धार्मिक एवं सभी गोपों में मुख्य गोप थे, किन्तु राधिका के शाप से तुमने इस समय दानवकुल में जन्म लिया है ॥ १८ ॥ वस्तुतः तुम दानव नहीं हो किन्तु राधिका के शाप से दानवकुल में तुम्हारा जन्म हुआ है। इस प्रकार अपने पुराने जन्म का वृत्तान्त जानकर देवताओं के साथ वैर त्याग दो ॥१९॥ यदि तुम देवताओं के साथ वैर त्याग दो, तो अपने पद पर स्थित रहकर राज्य का आदरपूर्वक सुखोपभोग करो। देवताओं से अधिक द्वेष मत करो एवं विचार पूर्वक राज्य करो ॥ २० ॥ हे दानव ! देवताओं का राज्य लौटा दो और मेरी प्रीति का निर्वाह करो। तुम अपने राज्य पर स्थित रहो और देवगण अपने पद पर स्थित रहें ॥ २१ ॥ सामान्य प्राणियों के साथ भी विद्वेष करना बुरा होता है फिर देवताओं से विरोध का तो कहना ही क्या ? वे भी तुम्हारी तरह कुलीन और शुद्ध कर्म करने वाले कश्यप की सन्तान हैं ॥ २२ ॥ इस जगत् में जितने भी ब्रह्महत्यादि महापाप हैं वे ज्ञातिद्रोह के पाप की सोलहवीं कला की बराबरी नहीं कर सकते ॥ २३ ॥

सनत्कुमार उवाच

इत्यादिबहुवार्त्तां च श्रुति-स्मृतिपरां शुभाम् । प्रोवाच शङ्करस्तस्मै बोधयन् ज्ञानमुत्तमम् ॥२४॥
शिक्षितः शङ्खचूडेन स दूतस्तर्कवित्तमः । उवाच वचनं नम्रो भवितव्यविमोहितः ॥२५॥

दूत उवाच

त्वया यत्कथितं देव ! नान्यथा तत्तथा वचः । तथ्यं किञ्चिद्यथार्थं च श्रूयतां मे निवेदनम् ॥२६॥
ज्ञातिद्रोहे महत्पापं त्वयोक्तमधुना च यत् । तत्किमीशाऽसुराणां च न सुराणां वद प्रभो ! ॥२७॥
सर्वेषामिति चेत्तद्वै तदा वच्मि विचार्य च । निर्णयं ब्रूहि तत्राद्य कुरु सन्देहभञ्जनम् ॥२८॥
मधुकैटभयोर्दैत्यवरयोः [illegible] प्रलयार्णवे । शिरश्छेदं चकाराऽसौ कस्माच्चक्री महेश्वर ! ॥२९॥
त्रिपुरैः सह संयुद्धं भस्मत्वकरणं कुतः । भवांश्चकार गिरिश ! सुरपक्षीति विश्रुतम् ॥३०॥
गृहीत्वा तस्य सर्वस्वं कुतः प्रस्थापितो बलिः । सुतलादि समुद्धर्तुं तद्द्वारे च गदाधरः ॥३१॥
सभ्रातृको हिरण्याक्षः कथं देवैश्च हिंसितः । शुम्भादयोऽसुराश्चैव कथं देवैर्निपातिताः ॥३२॥
पुरा समुद्रमथने पीयूषं भक्षितं सुरैः । क्लेशभाजो वयं तत्र ते सर्वे फलभोगिनः ॥३३॥
क्रीडाभाण्डमिदं विश्वं कालस्य परमात्मनः । स ददाति यदा यस्मै तस्यैश्वर्यं भवेत्तदा ॥३४॥
देवदानवयोर्वैरं शश्वन्नैमित्तिकं सदा । पराजयो जयस्तेषां कालाधीनः क्रमेण च ॥३५॥
तवाऽनयोर्विरोधे च गमनं निष्फलं भवेत् । समसम्बन्धिनां तद्वै रोचते नेश्वरस्य ते ॥३६॥
सुराऽसुराणां सर्वेषामीश्वरस्य महात्मनः । इयं ते रहिता लज्जा स्पर्द्धाऽस्माभिः सहाऽधुना ॥३७॥
यतोऽधिका चैव कीर्तिर्हानिश्चैव पराजये । तवैतद् विपरीतं च मनसा संविचार्यताम् ॥३८॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! शंकर ने इसी प्रकार श्रुति एवं स्मृति के सिद्धान्त की बहुत सी बातें कहने के उपरान्त उसे समझाते हुए बहुत प्रकार के ज्ञान का उपदेश दिया ॥ २४ ॥ तब शङ्खचूड के द्वारा शिक्षित परम तार्किक वह दूत भवितव्य से मोहित हो कर विनम्र हो इस प्रकार कहने लगा ॥ २५ ॥

दूत बोला—हे देव ! आपने जो कुछ कहा है वह बात सर्वथा सत्य है, झूठी नहीं, किन्तु कुछ तथ्य एवं अर्थानुकूल मेरा निवेदन सुनें ॥ २६ ॥ आपने अभी कहा है कि ज्ञातिद्रोह महान् पाप है । हे ईश ! क्या यह बात असुरों के लिए ही है, देवताओं के लिए नहीं ॥ २७ ॥ यदि यह सबके लिए है तो मैं विचार कर आपसे कुछ कहता हूँ, आपही उसका निर्णय करें और मेरा सन्देह दूर कीजिए ॥ २८ ॥ हे महेश्वर ! यदि बात ऐसी ही है तो चक्रधारी विष्णु ने प्रलयार्णव के समय दैत्यश्रेष्ठ मधु एवं कैटभ का शिरश्छेदन क्यों किया ॥ २९ ॥ हे गिरिश ! मैंने सुना है कि आपने एक मात्र देवताओं के पक्ष से युद्ध में त्रिपुर को भस्म किया सो ऐसा क्यों किया ? ॥ ३० ॥ विष्णु ने बलि का सर्वस्व लेकर केवल देवताओं के कल्याण के निमित्त उसे सुतल में क्यों भेज दिया ? जो आज तक उसके द्वार पर गदा धारण कर पहरा देते हैं ॥ ३१ ॥ आप ही बतावें कि इन देवताओं ने भाई सहित हिरण्याक्ष को तथा शुम्भादि श्रेष्ठ असुरों को युद्धभूमि में किस प्रकार मरवाया ॥ ३२ ॥ पूर्वकाल में समुद्र-मन्थन किये जाने पर अमृतपान केवल देवताओं ने ही किया । हम सभी को क्लेश मात्र फल प्राप्त हुआ किन्तु उसका अमृतपान रूप फल देवताओं को मिला ॥ ३३ ॥ मेरे विचार से यह सारा जगत् भगवान् काल का खिलौना है, वह जिस समय जिसे ऐश्वर्य देना चाहता है वह ऐश्वर्यवान् निश्चित रूप से हो जाता है ॥ ३४ ॥ देव एवं दानवों का वैर सदा किसी न किसी निमित्त होता आया है । उनकी क्रमशः जीत और हार का निर्णय तो काल ही करता आया है ॥ ३५ ॥ फिर इन देव और दानवों के विरोध में आपका आगमन निष्फल प्रतीत होता है । यह विरोध तो समान सम्बन्धियों का है किन्तु आप दोनों के ईश्वर हैं अतः एक पक्ष से आप का यह आगमन उचित नहीं प्रतीत होता ॥ ३६ ॥ आप तो जिस प्रकार देवताओं के स्वामी हैं उसी प्रकार असुरों के भी, अतः आप-जैसे महात्मा का मात्र हम असुरों से स्पर्द्धा रखना निर्लज्जता की बात है ॥ ३७ ॥ आपही मन से

सनत्कुमार उवाच

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा संप्रहस्य त्रिलोचनः । यथोचितं च मधुरमुवाच दानवेश्वरम् ॥३९॥

महेश उवाच

वयं भक्तपराधीना न स्वतन्त्राः कदापि हि । तदिच्छया तत्कर्माणो न कस्यापि च पक्षिणः ॥४०॥
पुरा विधिप्रार्थनया युद्धमादौ हरेरपि । मधुकैटभयोर्दैत्यवरयोः प्रलयार्णवे ॥४१॥
देवप्रार्थनया तेन हिरण्यकशिपोः पुरा । प्रह्लादार्थं वधोऽकारि भक्तानां हितकारिणा ॥४२॥
त्रिपुरैः सह संयुद्धं भस्मत्वकरणं ततः । देवप्रार्थनयाऽकारि मयाऽपि च पुरा श्रुतम् ॥४३॥
सर्वैश्वर्याः सर्वमातुर्देवप्रार्थनया पुरा । आसीच्छुम्भादिभिर्युद्धं वधस्तेषां तया कृतः ॥४४॥
अद्यापि त्रिदशाः सर्वे ब्रह्माणं शरणं ययुः । स सदेवो हरिर्मां च देवः शरणमागतः ॥४५॥
हरिब्रह्मादिकानां च प्रार्थनावशतोऽप्यहम् । सुराणामीश्वरो दूत ! युद्धार्थमगमं खलु ॥४६॥
पार्षदप्रवरस्त्वं हि कृष्णस्य च महात्मनः । ये ये हताश्च दैतेया न हि केऽपि त्वया समाः ॥४७॥
का लज्जा महती राजन् ! मम युद्धे त्वया सह । देवकार्यार्थमीशोऽहं विनयेन च प्रेषितः ॥४८॥
गच्छ त्वं शङ्खचूडे वै कथनीयं च मे वचः । स च युक्तं करोत्वत्र सुरकार्यं करोम्यहम् ॥४९॥
इत्युक्त्वा शङ्करस्तत्र विरराम महेश्वरः । उत्तस्थौ शङ्खचूडस्य दूतोऽगच्छत्तदन्तिकम् ॥५०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शङ्खचूडवधे
शिवदूतसंवादवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

विचार कीजिए कि जिस विजय से अधिक कीर्त्ति लाभ तथा पराजय से हानि की बात आप सोचते हैं वह आप ईश्वर के सर्वथा विपरीत है ॥ ३८ ॥

सनत्कुमार बोले—उसके इस प्रकार के वचन सुनकर शिवजी हँसते हुए यथोचित एवं मधुर वचन उस दानवराज से कहने लगे ॥ ३९ ॥

महेश्वर बोले—मैं अपने भक्तों के परवश हूँ, स्वतन्त्र नहीं हूँ, हम उनकी इच्छा से ही कर्म करते हैं, किसी के पक्षपाती नहीं हैं ॥ ४० ॥ पूर्वकाल में ब्रह्मा की प्रार्थना से ही विष्णु ने प्रलयार्णव में मधु-कैटभ के साथ युद्ध किया था ॥ ४१ ॥ भक्तों का कल्याण करने वाले उन्हीं विष्णु ने देवताओं की प्रार्थना से प्रह्लाद की रक्षा के निमित्त हिरण्यकशिपु का वध किया था ॥ ४२ ॥ देवताओं की प्रार्थना से मैंने त्रिपुरों के साथ युद्ध कर उनका विनाश किया यह बात सब लोग जानते हैं ॥ ४३ ॥ सर्व ऐश्वर्य से पूर्ण, सर्वमाता भगवती की जब देवताओं ने प्रार्थना की तब उन्होंने शुम्भादि असुरों के साथ युद्ध कर उनका वध किया ॥ ४४ ॥ आज इस समय भी जब देवगण ब्रह्मा की शरण गये ब्रह्मा एवं विष्णु मेरी शरण आये ॥ ४५ ॥ हे दूत ! मैं भी ब्रह्मा तथा विष्णु की प्रार्थना के कारण देवताओं की ओर से युद्ध करने के लिए आया हूँ ॥ ४६ ॥ इसलिए मैं भी तुम्हें सम्बोधित करता हूँ कि तुम दैत्य नहीं हो, तुम महात्मा श्रीकृष्ण के श्रेष्ठ पार्षद हो। पहले जो दैत्य मारे गये उनमें कोई भी तुम्हारे समान नहीं थे ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! देवताओं का कार्य करने के लिए तुम्हारे साथ युद्ध करने में मुझे बहुत बड़ी लज्जा क्यों लगे ? मैं ईश्वर हूँ फिर भी उन्होंने इस कार्य के लिए मुझसे बहुत प्रार्थना की है ॥ ४८ ॥ अतः हे दूत ! तुम जाकर शङ्खचूड से कहो कि मैं देवकार्य अवश्य करूँगा, उनके जी में जो आवे सो करें ॥ ४९ ॥ इतना कह कर महेश्वर मौन हो गये, और वह शङ्खचूड का दूत वहाँ से उठकर अपने स्वामी के सन्निकट चला आया ॥ ५० ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पंचम-युद्धखण्ड में शङ्खचूड के दूत का संवाद वर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

(देव-दैत्यों का युद्ध)

सनत्कुमार उवाच

स दूतस्तत्र गत्वा च शिववाक्यं जगाद ह । सविस्तरं यथार्थं च निश्चयं तस्य तत्त्वतः ॥ १ ॥
तच्छ्रुत्वा शङ्खचूडोऽसौ दानवेन्द्रः प्रतापवान् । अङ्गीचकार सुप्रीत्या रणमेव स दानवः ॥ २ ॥
समारुरोह यानं च सहामात्यैश्च सत्वरः । आदिदेश स्वसैन्यं च युद्धार्थं शङ्करेण च ॥ ३ ॥
शिवः स्वसैन्यं देवांश्च प्रेरयामास सत्वरः । स्वयमप्यखिलेशोऽपि सन्नद्धोऽभूच्च लीलया ॥ ४ ॥
युद्धारम्भो बभूवाशु नेदुर्वाद्यानि भूरिशः । कोलाहलश्च सञ्जातो वीरशब्दस्तथैव च ॥ ५ ॥
देवदानवयोर्युद्धं परस्परमभून्मुने ! । धर्मतो युयुधे तत्र देवदानवयोर्गणः ॥ ६ ॥
स्वयं महेन्द्रो युयुधे सार्द्धं च वृषपर्वणा । भास्करो युयुधे विप्रचित्तिना सह धर्मतः ॥ ७ ॥
दम्भेन सह विष्णुश्च चकार परमं रणम् । कालासुरेण कालश्च गोकर्णेन हुताशनः ॥ ८ ॥
कुवेरः कालकेयेन विश्वकर्मा मयेन च । भयङ्करेण मृत्युश्च संहारेण यमस्तथा ॥ ९ ॥
कालम्बिकेन वरुणश्चञ्चलेन समीरणः । बुधश्च घटपृष्ठेन रक्ताक्षेण शनैश्चरः ॥ १० ॥
जयन्तो रत्नसारेण वसवो वर्चसाङ्गणैः । अश्विनौ दीप्तिमद्भ्यां च धूम्रेण नलकूवरः ॥ ११ ॥
धुरन्धरेण धर्मश्च गणकाक्षेण मङ्गलः । शोभाकरेण वैश्वानः पिपिटेन च मन्मथः ॥ १२ ॥
गोकामुखेन चूर्णेन खड्गनाम्नाऽसुरेण च । धूम्रेण संहलेनापि विश्वेन च प्रतापिना ॥ १३ ॥
पलाशेन द्वादशार्का युयुधुर्धर्मतः परे । असुरैरमराः सार्द्धं शिवसाहाय्यशालिनः ॥ १४ ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! उस दूत ने वहाँ से लौटकर अपने स्वामी से शिव जी की सारी बात तथा युद्ध के लिए उनका निश्चय, विस्तारपूर्वक तत्त्वतः कह सुनाया ॥ १ ॥ उसकी बात सुनकर महाप्रतापी दानवेन्द्र शङ्खचूड ने बड़े प्रेम के साथ शिव के युद्ध की चुनौती स्वीकार कर ली ॥ २ ॥ फिर बड़ी शीघ्रता के साथ अमात्यों के सहित अपने विमान पर सवार हुआ और अपनी सेना को शङ्कर के साथ युद्ध करने की आज्ञा दे दी ॥ ३ ॥ इधर शिव जी ने भी शीघ्रता से अपने गणों एवं देवताओं को युद्ध के लिए प्रेरित किया और स्वयं सर्वेश्वर होकर भी लीलापूर्वक युद्ध के लिए तैयार हो गये ॥ ४ ॥ तत्काल युद्ध प्रारम्भ हो गया। उस समय अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे और वीरों का कोलाहल युक्त शब्द होने लगा ॥ ५ ॥ हे मुने ! देव-दानवों का परस्पर महान् युद्ध होने लगा। एक पक्ष से देवता दूसरे पक्ष से दानव परस्पर धर्मपूर्वक युद्ध करने लगे ॥ ६ ॥ स्वयं महेन्द्र वृषपर्वा के साथ एवं भास्कर विप्रचित्ति के साथ युद्ध करने लगे ॥ ७ ॥ दम्भ के साथ विष्णु का महा भयङ्कर युद्ध होने लगा। काल का कालासुर के साथ एवं अग्नि का गोकर्ण के साथ युद्ध होने लगा ॥ ८ ॥ कुबेर का कालिकेय के साथ, विश्वकर्मा का मय के साथ, मृत्यु का भयङ्कर के साथ तथा यमराज का संहार के साथ द्वन्द्व-युद्ध होने लगा ॥ ९ ॥

वरुण का कालम्बिक के साथ, समीरण का चञ्चल के साथ, बुध का घटपृष्ठ के साथ तथा शनैश्चर का रक्ताक्ष के साथ युद्ध होने लगा ॥ १० ॥ जयन्त रत्नसार के साथ, वसु वर्चस्गणों के साथ, अश्विनीकुमार दोनों दीप्तिमानों के साथ युद्ध करने लगे। नलकूबर का धूम्र के साथ युद्ध होने लगा ॥ ११ ॥ धर्म का धुरन्धर के साथ, मङ्गल का गणकाक्ष के साथ, विश्वेदेवों का शोभाकर के साथ, मन्मथ का पिपिट के साथ घनघोर युद्ध प्रारम्भ हुआ ॥ १२ ॥ इसी प्रकार गोकामुख, चूर्ण, खड्ग, असुर, धूम्र, संहल, विश्व, प्रतापी एवं पलाश के साथ द्वादशादित्यों का धर्मयुद्ध छिड़ गया। शिव की सहायता प्राप्त कर देवगण

एकादश महारुद्राश्चैकादश भयङ्करैः । असुरैर्युयुधुर्वीरैर्महाबलपराक्रमैः ॥१५॥
महामणिश्च युयुधे चोग्रचण्डादिभिः सह । राहुणा सह चन्द्रश्च जीवः शुक्रेण धर्मतः ॥१६॥
नन्दीश्वरादयः सर्वे दानवप्रवरैः सह । युयुधुश्च महायुद्धे नोक्ता विस्तरतः पृथक् ॥१७॥
वटमूले तदा शम्भुस्तस्थौ काल्याः सुतेन च । सर्वे च युयुधुः सैन्यसमूहाः सततं मुने ! ॥१८॥
रत्नसिंहासने रम्ये कोटिदानवसंयुतः । उवास शङ्खचूडश्च रत्नभूषणभूषितः ॥१९॥
महायुद्धो बभूवाथ देवासुरविमर्दनः । नानायुधानि दिव्यानि चलन्ति स्म महामृधे ॥२०॥
गदर्ष्टि-पट्टिशाश्चक्र-भुशुण्डि-प्रास-मुद्गराः । निस्त्रिंश-भल्ल-परिघाः शक्त्युन्मुखपरश्वधाः ॥२१॥
शर-तोमर-खड्गाश्च शतघ्न्यश्च सहस्रशः । भिन्दिपालादयश्चाऽन्ये वीरहस्तेषु शोभिताः ॥२२॥
शिरांसि चिच्छिदुस्त्वैभिर्वीरास्तत्र महोत्सवाः । वीराणामुभयोश्चैव सैन्ययोर्गर्जतो रणे ॥२३॥
गजास्तुरङ्गा बहवः स्यन्दनाश्च पदातयः । सारोहवाहा विविधास्तत्रासन् सुविखण्डिताः ॥२४॥
निकृत्तबाहूरुकर-कटि-कर्ण-युगाङ्घ्रयः । सञ्छिन्न-ध्वज-बाणासि-तनुत्राम्बरभूषणाः ॥२५॥
समुद्धतकिरीटैश्च शिरोभिः सह कुण्डलैः । संरम्भनष्टैरास्तीर्णा बभौ भूः करभोरुभिः ॥२६॥
महाभुजैः साभरणैः सञ्छिन्नैः सायुधैस्तथा । अङ्गैरन्यैश्च सहसा पटलैर्वा ससारघैः ॥२७॥
मृधे भटाः प्रधावन्तः कबन्धान् स्वशिरोऽक्षिभिः । पश्यन्तस्तत्र चोत्पेतुरुद्यतायुधसद्भुजैः ॥२८॥
वल्गन्तोऽतितरां वीरा युयुधुश्च परस्परम् । शस्त्राऽस्त्रैर्विविधैस्तत्र महाबलपराक्रमाः ॥२९॥
केचित् स्वर्णमुखैर्बाणैर्विनिहत्य भटान् मृधे । व्यनदन् वीरसन्नादं सतोया इव तोयदाः ॥३०॥

असुरों के साथ युद्ध करने लगे ॥ १३-१४ ॥ एकादश महारुद्र, इग्यारह महाभयङ्कर एवं महापराक्रमी असुरों से युद्ध करने लगे ॥ १५ ॥ महामणि उग्रचण्ड के साथ, राहु चन्द्रमा के साथ, बृहस्पति शुक्र के साथ, धर्म युद्ध में प्रवृत्त हुए ॥ १६ ॥

इसी प्रकार नन्दीश्वर आदि शिवगण भी दानवों के साथ युद्ध करने लगे। उनका पृथक् वर्णन हम विस्तार के भय से नहीं करते ॥ १७ ॥ भगवान् सदाशिव काली एवं अपने दोनों पुत्रों के साथ वटमूल में स्थित रहे और सारी सेना निरन्तर युद्ध करने लगी ॥ १८ ॥ उधर शङ्खचूड भी करोड़ों दानवों से घिरा हुआ रत्न के भूषणों से भूषित हुआ रत्नजटित मनोहर सिंहासन पर विराज रहा था ॥ १९ ॥ तदनन्तर देवता एवं असुर दोनों पक्षों का विनाश करनेवाला महाभयङ्कर युद्ध छिड़ गया। उस युद्ध में दिव्या, नाना प्रकार के शस्त्रास्त्र चलने लगे ॥ २० ॥ उस युद्ध में गदा, ऋष्टि, पट्टिश, चक्र, भुशुण्डी, प्रास, मुद्गर, निस्त्रिंश, भल्ल, परिघ, शक्ति, उन्मुख, फरसे, शर, तोमर, खड्ग, सहस्त्रों शतघ्नियाँ तथा भिन्दिपाल एवं अन्य कई प्रकार के शस्त्र वीरों के हाथ में शोभित हो रहे थे ॥ २१-२२ ॥ युद्ध में गरजते हुए दोनों पक्ष के सैनिक वीरों के परस्पर शिर कटने लगे और वीरगण महोत्सव मनाने लगे ॥ २३ ॥ हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, घुड़सवार तथा अनेक प्रकार के वाहन, ॥ २४ ॥ भुजा, ऊरु, हाथ, कटि, दोनों कान और पैर, ध्वज, बाण, तलवार, कवच एवं आभूषण कट कर पृथ्वी पर गिरने लगे ॥ २५ ॥ उस समय योद्धाओं के क्रोध से कटे हुए किरीट कुण्डल मण्डित शिरों से, हाथियों के झङ्कार से, आभूषण भूषित भुजाओं तथा कटे हुए आयुधों एवं वीरों के बाण से कटे हुए अङ्गों से सारी पृथ्वी मधुमक्खी के छत्तों के समान पट गयी ॥ २६-२७ ॥

युद्ध में कटे हुए शिरों के आँखों से अपने कबन्ध की ओर देखते हुए योद्धा शस्त्र धारण किये हुए भुजाओं को ऊपर की ओर उठाकर जहाँ-तहाँ दौड़ रहे थे ॥ २८ ॥ महा बलवान् एवं महा पराक्रमी वीर परस्पर सिंहनाद करते हुए अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों से युद्ध कर रहे थे ॥ २९ ॥ कोई युद्ध में सुवर्ण

सर्वतः शरकूटेन वीरः सरथसारथिम् । वीरं सञ्छादयामास प्रावृट्सूर्यमिवाम्बुदः ॥३१॥
अन्योन्यमभिसंसृत्य युयुधुर्द्वन्द्वयोधिनः । आह्वयन्तो विशन्तोऽग्रे क्षिपन्तो मर्मभिर्मिथः ॥३२॥
सर्वतो वीरसङ्घाश्च नानाबाहुध्वजायुधाः । व्यदृश्यन्त महासङ्ख्ये कुर्वन्तः सिंहसंरवम् ॥३३॥
महारवान् स्वशङ्खांश्च विदध्मुर्वै पृथक् पृथक् । वल्गनं चक्रिरे तत्र महावीराः प्रहर्षिताः ॥३४॥
एवं चिरतरं कालं देवदानवयोर्महत् । बभूव युद्धं विकटं करालं वीरहर्षदम् ॥३५॥
महाप्रभोश्च लीलेयं शङ्करस्य परात्मनः । यया सम्मोहितं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥३६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शङ्खचूडवधे परस्परयुद्धवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

(कार्तिकेय आदि वीरों से शंखचूड का युद्ध)

सनत्कुमार उवाच

तदा देवगणाः सर्वे दानवैश्च पराजिताः । दुद्रुवुर्भयभीताश्च शस्त्रास्त्रक्षतविग्रहाः ॥ १ ॥
ते परावृत्य विश्वेशं शङ्करं शरणं ययुः । त्राहि त्राहीति सर्वेशेत्यूचुर्विह्वलया गिरा ॥ २ ॥
दृष्ट्वा पराजयं तेषां देवादीनां स शङ्करः । सभयं वचनं श्रुत्वा कोपमुच्चैश्चकार ह ॥ ३ ॥
निरीक्ष्य स कृपादृष्टया देवेभ्यश्चाभयं ददौ । बलं च स्वगणानां वै वर्द्धयामास तेजसा ॥ ४ ॥
शिवाज्ञप्तस्तदा स्कन्दो दानवानां गणैः सह । युयुधे निर्भयः सङ्ख्ये महावीरो हरात्मजः ॥ ५ ॥
कृत्वा क्रोधं वीरशब्दं देवो यस्तारकान्तकः । अक्षौहिणीनां शतकं समरे स जघान ह ॥ ६ ॥

पुंखवाले बाणों से किसी योद्धा का वध कर, मेघ के समान गम्भीर गर्जना कर रहे थे ॥ ३० ॥ वीर लोग बाणों का जाल बिछाकर रथ सहित सारथी को इस प्रकार ढँकने लगे, जिस प्रकार बादल सूर्य को ढँक लेता है ॥ ३१ ॥ द्वन्द्व युद्ध करनेवाले वीर एक-दूसरे से गुत्थमगुत्था लड़ते हुए एक दूसरे को ललकार रहे थे और एक दूसरे के आगे जाते हुए परस्पर मर्मस्थल पर प्रहार कर रहे थे ॥ ३२ ॥

वीर समूह चारों ओर से अपने बाहु में नाना प्रकार के ध्वज तथा आयुध लेकर सिंहनाद करते दिखाई पड़ रहे थे ॥ ३३ ॥ और महान् शब्द करनेवाले अपने शंखों को पृथक्-पृथक् बजा रहे थे, कोई प्रसन्न होकर सिंहनाद कर रहे थे ॥ ३४ ॥ इस प्रकार देवता एवं दानवों में महाभीषण, विकट तथा वीरों को रोमाञ्चित करनेवाला युद्ध चिरकाल तक होता रहा ॥ ३५ ॥ यह उस परमात्मा महाप्रभु शङ्कर की लीला ही है, जिसने समस्त देवता, मनुष्य एवं असुरों को मोहित कर रखा है ॥ ३६ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड में शङ्खचूडवधोपाख्यान में देवासुर परस्पर युद्धवर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३६ ॥

*

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! तदनन्तर सभी देवता दानवों के शस्त्रास्त्रों से क्षत-विक्षत भयभीत एवं पराजित हो यत्र-तत्र भागने लगे ॥ १ ॥ वे रण से विमुख हो 'हे सर्वेश ! रक्षा करो, रक्षा करो' ऐसा विह्वल वाणी से पुकारते हुए शिवजी की शरण में गये ॥ २ ॥ तब देवताओं की इस प्रकार पराजय देख तथा उनके आर्त्त वचन को सुनकर शिवजी ने महान् क्रोध किया ॥ ३ ॥ उन्होंने अपनी कृपा-दृष्टि से देखकर देवताओं को अभयदान दिया तथा अपने तेज से गणों के बल को बढ़ाया ॥ ४ ॥ महावीर कार्त्तिकेय शिवजी की आज्ञा लेकर दानवगणों के साथ निर्भय हो युद्ध करने लगे ॥ ५ ॥ तारकासुर का वध करने वाले उन कार्त्तिकेय ने महान् गर्जना करते हुए दानवों की सैकड़ों अक्षौहिणी सेना का विनाश

रुधिरं पातयामास काली कमललोचना । तेषां शिरांसि सञ्छिद्य बभक्ष सहसा च सा ॥ ७॥
पपौ रक्तानि तेषां च दानवानां समं ततः । युद्धं चकार विविधं सुरदानवभीषणम् ॥ ८॥
शतलक्षं गजेन्द्राणां शतलक्षं नृणां तथा । समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप लीलया ॥ ९॥
कबन्धानां सहस्रं च सन्ननर्त रणे बहु । महान् कोलाहलो जातः क्लीवानां च भयङ्करः ॥१०॥
पुनः स्कन्दः प्रकुप्योच्चैः शरवर्षञ्चकार ह । पातयामास क्षयतः कोटिशोऽसुरनायकान् ॥११॥
दानवाः शरजालेन स्कन्दस्य क्षतविग्रहाः । भीताः प्रदुद्रुवुः सर्वे शेषा मरणतस्तदा ॥१२॥
वृषपर्वा विप्रचित्तिर्दण्डश्चापि विकम्पनः । स्कन्देन युयुधुः सार्द्धं तेन सर्वे क्रमेण च ॥१३॥
महामारी च युयुधे न बभूव पराङ्मुखी । बभूवुस्ते क्षताङ्गाश्च स्कन्दशक्तिप्रपीडिताः ॥१४॥
महामारीस्कन्दयोश्च विजयोऽभूत्तदा मुने । नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे पुष्पवृष्टिः पपात ह ॥१५॥
स्कन्दस्य समरं दृष्ट्वा महारौद्रं तमद्भुतम् । दानवानां क्षयकरं यथा प्रकृतिकल्पकम् ॥१६॥
महामारीकृतं तच्चोपद्रवं क्षयहेतुकम् । चुकोपातीव सहसा सन्नद्धोऽभूत् स्वयं तदा ॥१७॥
वरं विमानमारुह्य नानाशस्त्रास्त्रसंयुतम् । अभयं सर्ववीराणां नानारत्नपरिच्छदम् ॥१८॥
महावीरैः शङ्खचूडो जगाम रथमग्यतः । धनुर्विकृष्य कर्णान्तं चकार शरवर्षणम् ॥१९॥
तस्य सा शरवृष्टिश्च दुर्निवार्य्या भयङ्करी । महाघोरान्धकारश्च वधस्थाने बभूव ह ॥२०॥
देवाः प्रदुद्रुवुः सर्वे येऽन्ये नन्दीश्वरादयः । एक एव कार्त्तिकेयस्तस्थौ समरमूर्द्धनि ॥२१॥
पर्वतानां च सर्पाणां नागानां शाखिनां तथा । राजा चकार वृष्टिं च दुर्निवार्यां भयङ्करीम् ॥२२॥
तद्वृष्टया प्रहतः स्कन्दो बभूव शिवनन्दनः । नीहारेण च सान्द्रेण संवृतौ भास्करौ यथा ॥२३॥

करना प्रारम्भ किया ॥ ६ ॥ कमल के समान विशाल नेत्र वाली काली ने दैत्यों का शिर काटकर भक्षण करना प्रारम्भ किया ॥ ७ ॥ वह उनके रुधिर का चारों ओर से पान करने लगी और महाभयानक विविध प्रकार का युद्ध करने लगी, जिसे देखकर देवता तथा दानव थर्रा उठे ॥ ८ ॥ उसने लीलापूर्वक सौ लाख हाथी एवं सौ लाख दानवों को एक ही साथ हाथ से उठाकर मुख में डाल लिया ॥ ९ ॥ हजारों एवं बहुत से कबन्ध युद्धभूमि में नृत्य करने लगे। भीरुजन उसे देखकर महाभयंकर कोलाहल करने लगे ॥१०॥ स्कन्द कुपित हो बाणों की वर्षा करने लगे, जिससे करोड़ों असुर सेनापति विनष्ट हो पृथ्वी पर लुण्ठित होने लगे ॥ ११ ॥ जो शेष दानव मरने से बच गये वे स्कन्द के बाणों से क्षत-विक्षत होकर भयभीत हो इधर-उधर भागने लगे ॥ १२ ॥ तब वृषपर्वा, विप्रचित्ति, दण्ड, विकम्पन आदि दानव बारी-बारी से स्कन्द के साथ युद्ध करने लगे ॥ १३ ॥ महामारी भी युद्धभूमि से तनिक भी विचलित न हो युद्ध करने लगी और उधर स्कन्द की शक्ति से असुर गण क्षत-विक्षत होने लगे ॥ १४ ॥

हे मुने ! उस समय स्कन्द एवं भगवती की विजय हुई, स्वर्ग में उनके विजय की दुन्दुभी बजने लगी और फूलों की वृष्टि भी होने लगी ॥ १५ ॥ तब शंखचूड़ कार्त्तिकेय के एवं महामारी के दानवों का क्षय करने वाले एवं कल्पान्त के समान भयंकर अद्भुत संग्राम को देखकर स्वयं युद्ध करने के लिए तैयार हो गया ॥ १६-१७ ॥ वह अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों सहित, नाना रत्नों से जटित तथा सभी वीरों द्वारा सुरक्षित विमान पर चढ़कर महावीरों के साथ रणभूमि में उपस्थित हो गया और कर्ण पर्यन्त धनुष चढ़ाकर बाणों की वर्षा करने लगा ॥ १८-१९ ॥ जिससे सारे युद्धस्थल में चारों ओर अन्धकार छा गया। वह शरवृष्टि इतनी भयानक थी कि कोई भी उसका प्रतिकार न कर सका ॥ २० ॥ सभी देवता, नन्दीश्वर आदि गणपति तथा अन्य महागण भी भयभीत हो भागने लगे। उस युद्ध में एक मात्र कार्त्तिकेय ही डटे रहे ॥ २१ ॥ उस समय दानवराज ने पर्वतों, सर्पों, नागों एवं वृक्षों की महाभयङ्कर एवं दुर्निवार्य वर्षा की ॥ २२ ॥ बाणवृष्टि से शिवपुत्र स्कन्द आहत हो गये, दोनों ही वीर घनघोर नीहार से सूर्य के समान आच्छादित हो गये ॥ २३ ॥

नानाविधां स्वमायां च चकार मयदर्शिताम् । तां नाविदन् सुराः केऽपि गणाश्च मुनिसत्तम ! ॥२४॥
तदैव शङ्खचूडश्च महामायी महाबलः । शरेणैकेन दिव्येन धनुश्चिच्छेद तस्य वै ॥२५॥
बभञ्ज तद्रथं दिव्यं चिच्छेद रथपीडकान् । मयूरं जर्जरीभूतं दिव्यास्त्रेण चकार सः ॥२६॥
शक्तिं चिक्षेप सूर्याभां तस्य वक्षसि घातिनीम् । मूर्च्छामवाप सहसा तत्प्रहारेण स क्षणम् ॥२७॥
पुनश्च चेतनां प्राप्य कार्तिकः परवीरहा । रत्नेन्द्रसारनिर्माणमारुरोह स्ववाहनम् ॥२८॥
स्मृत्वा पादौ महेशस्य साम्बिकस्य च षण्मुखः । शस्त्रास्त्राणि गृहीत्वैव चकार रणमुल्बणम् ॥२९॥
सर्पांश्च पर्वतांश्चैव वृक्षांश्च प्रस्तरांस्तथा । सर्वांश्चिच्छेद कोपेन दिव्यास्त्रेण शिवात्मजः ॥३०॥
वह्निं निवारयामास पार्जन्येन शरेण ह । रथं धनुश्च चिच्छेद शङ्खचूडस्य लीलया ॥३१॥
सन्नाहं सर्ववाहांश्च किरीटं मुकुटोज्ज्वलम् । वीरशब्दं चकाराऽसौ जगर्ज च पुनः पुनः ॥३२॥
चिक्षेप शक्तिं सूर्याभां दानवेन्द्रस्य वक्षसि । तत्प्रहारेण सम्प्राप मूर्च्छां दीर्घतमेन च ॥३३॥
मुहूर्तमात्रं तत्क्लेशं विनीय स महाबलः । चेतनां प्राप्य चोत्तस्थौ जगर्ज हरिवर्चसः ॥३४॥
शक्त्या जघान तं चापि कार्तिकेयं महाबलम् । स पपात महीपृष्ठेऽमोघां कुर्वन् विधिप्रदाम् ॥३५॥
काली गृहीत्वा तं क्रोडे निनाय शिवसन्निधौ । ज्ञानेन तं शिवश्चापि जीवयामास लीलया ॥३६॥
ददौ बलमनन्तं च समुत्तस्थौ प्रतापवान् । गमनाय मतिं चक्रे पुनस्तत्र शिवात्मजः ॥३७॥
एतस्मिन्नन्तरे वीरो वीरभद्रो महाबलः । शङ्खचूडेन युयुधे समरे बलशालिना ॥३८॥
ववर्ष समरेऽस्त्राणि यानि यानि च दानवः । चिच्छेद लीलया वीरस्तानि तानि निजैः शरैः ॥३९॥
दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे दानवेश्वरः । तानि चिच्छेद तं बाणैर्वीरभद्रः प्रतापवान् ॥४०॥

तदनन्तर उस दानवराज ने मय दानव के द्वारा प्रशिक्षित अनेक प्रकार की माया का विस्तार किया, जिसको शिव के गण और अन्य देवता भी जानने में असमर्थ हो गये ॥ २४ ॥ महामायावी एवं महाबली उस दानवराज शंखाचूड़ ने अपने एक ही बाण से स्कन्द के धनुष को काट दिया ॥ २५ ॥ इतना ही नहीं, उसने उनके दिव्य रथ एवं सारथी को नष्ट कर अपने दिव्यास्त्र से उनके मयूर को भी जर्जर कर दिया ॥ २६ ॥ उस दानवराज ने सूर्य के समान देदीप्यमान एवं वीरघातिनी अपनी शक्ति चला कर स्कन्द की छाती पर ऐसा प्रहार किया, जिससे कार्त्तिकेय सहसा मूर्च्छित हो उठे ॥ २७ ॥ पुनः क्षणमात्र में चेतना प्राप्त कर महारत्न जटित अपने वाहन पर सवार हो गये ॥ २८ ॥ और अपनी माता पार्वती सहित पिता महेश्वर के चरण-कमलों का स्मरण कर अपना अस्त्र-शस्त्र ले महाघोर संग्राम करने लगे ॥ २९ ॥ उन्होंने अपने दिव्यास्त्रों से उसके सर्प, पर्वत, वृक्ष एवं प्रस्तर-समूहों को काट कर नष्ट कर दिया ॥ ३० ॥ मेघास्त्र चला कर लीला से ही उसके आग्नेयास्त्र को शान्त कर दिया और शंखचूड का रथ और धनुष भी नष्ट कर दिया ॥ ३१ ॥ उसका कवच, वाहन, उज्ज्वल किरीट एवं मुकुट नष्ट कर बारम्बार सिंहनाद करने लगे ॥ ३२ ॥ तदनन्तर दानवेन्द्र के छाती पर सूर्य के समान देदीप्यमान अपनी शक्ति से प्रहार किया। उस घोर प्रहार से वह दानव मूर्च्छित हो गया ॥ ३३ ॥ वह महाबली मुहूर्त्तमात्र में शक्ति की पीड़ा दूर कर प्रबुद्ध हो उठ बैठा तथा सिंह के समान गर्जना करने लगा ॥ ३४ ॥ उस महाबली ने कार्त्तिकेय पर अपनी शक्ति से प्रहार किया। पुनः वे विधाता के वचन को सत्य करने के लिए उस शक्ति के प्रहार से पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ३५ ॥ काली ने उन्हें अपनी गोद में उठा कर शिव के पास ले आयी। तदनन्तर शिव जी ने अपने लीला से ज्ञान देकर उन्हें जीवित कर दिया ॥ ३६ ॥ और उन्हें अपना अनन्त बल प्रदान किया, जिससे वे महाप्रतापी उठ बैठे तथा पुनः युद्ध में जाने का विचार करने लगे ॥ ३७ ॥ इस बीच महाबली वीरभद्र शंखचूड के साथ युद्ध करने लगे ॥३८॥ शंखचूड ने समर में जितने अस्त्रों का प्रयोग किया, उन सभी अस्त्रों को महावीर वीरभद्र ने लीला पूर्वक नष्ट कर दिया ॥ ३९ ॥ तब उसने नाना प्रकार के दिव्यास्त्रों का प्रयोग करना प्रारम्भ किया,

अथातीव चुकोपोच्चैः शङ्खचूडः प्रतापवान् । शक्त्या जघानोरसि तं स चकम्पे पपात कौ ॥४१॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ गणेश्वरः । जग्राह च धनुर्भूयो वीरभद्रो गणाग्रणीः ॥४२॥
एतस्मिन्नन्तरे काली जगाम समरं पुनः । भक्षितुं दानवान् स्वांश्च रक्षितुं कार्तिकेच्छया ॥४३॥
वीरास्तामनुजग्मुश्च ते च नन्दीश्वरादयः । सर्वे देवाश्च गन्धर्वा यक्षा रक्षांसि पन्नगाः ॥४४॥
वाद्यभाण्डाश्च बहुशः शतशो मधुवाहकाः । पुनः समुद्यताश्चासन् वीरा उभयतोऽखिलाः ॥४५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शङ्खचूडवधे ससैन्यशङ्खचूडयुद्धवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

(काली और शंखचूड का शस्त्रयुद्ध)

सनत्कुमार उवाच

सा च गत्वा हि सङ्ग्रामं सिंहनादं चकार ह । देव्याश्च तेन नादेन मूर्च्छामापुश्च दानवाः ॥ १ ॥
अट्टाट्टहासमशिवं चकार च पुनः पुनः । तदा पपौ च माध्वीकं ननर्त रणमूर्द्धनि ॥ २ ॥
उग्रदंष्ट्रा चोग्रदण्डा कोटवी च पपौ मधु । अन्याश्च देव्यस्तत्राजौ ननृतुर्मधु संपपुः ॥ ३ ॥
महान् कोलाहलो जातो गणदेवदले तदा । जहृषुर्बहुगर्जन्तः सर्वे सुरगणादयः ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा कालीं शङ्खचूडः शीघ्रमाजौ समाययौ । दानवाश्च भयं प्राप्ता राजा तेभ्योऽभयं ददौ ॥ ५ ॥
काली चिक्षेप वह्निं च प्रलयाग्निशिखोपमम् । राजा जघान तं शीघ्रं वैष्णवास्त्रेण लीलया ॥ ६ ॥
नारायणास्त्रं सा देवी चिक्षेप तदुपर्यरम् । वृद्धिं जगाम तच्छस्त्रं दृष्ट्वा वामं च दानवम् ॥ ७ ॥

किन्तु प्रतापी वीरभद्र ने सारे अस्त्रों का छेदन कर दिया ॥ ४० ॥ महाप्रतापी शंखचूड ने क्रोध में भर कर अपनी शक्ति से वीरभद्र पर प्रहार किया, जिससे लड़खड़ा कर वे पृथ्वी पर गिर गये ॥ ४१ ॥ वे गणेश्वर क्षणमात्र में चेतना प्राप्त कर उठ बैठे और अपना धनुष ले लिया ॥ ४२ ॥ इसी बीच काली कार्त्तिकेय की इच्छा से पुनः समरभूमि में दानवों को भक्षण करने के लिए तथा अपने पक्ष के लोगों की रक्षा करने हेतु पुनः उपस्थित हो गयी ॥ ४३ ॥ नन्दीश्वरादि वीरगण, देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नंग उसके पीछे-पीछे चलने लगे ॥ ४४ ॥ बाजे बजने लगे, सैकड़ों मधु (मद्य) पात्र के वाहक एवं दोनों पक्ष के वीर संग्राम-स्थल में आ डटे ॥ ४५ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के द्वितीय रुद्रसंहिता में पञ्चम युद्धखण्ड के शंखचूडवध में शंखचूडयुद्ध वर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३७ ॥

*

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! उस महादेवी ने संग्राम-स्थल में पहुँचते ही सिंहनाद किया, जिससे दानव मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिरने लगे ॥ १ ॥ फिर भगवती ने प्रचण्ड अट्टहास किया और मद्यपान कर युद्धभूमि में नृत्य करने लगी ॥ २ ॥ इसी प्रकार उग्रदंष्ट्रा, उग्रदण्डा, कोटवी आदि अन्य देवियों ने भी मद्यपान कर नृत्य करने लगीं ॥ ३ ॥ उस समय गणों एवं देवताओं में महान् कोलाहल उत्पन्न हुआ तथा वे बड़े हर्ष के साथ गर्जना करने लगे ॥ ४ ॥ इस प्रकार जब शंखचूड ने देखा कि काली संग्राम-भूमि में उपस्थित हो गयी है और दानव भयभीत हो रहे हैं तब उसने उन दानवों को अभयदान दिया ॥ ५ ॥ काली ने प्रलयाग्नि के समान आग्नेयास्त्र से दानव पर प्रहार किया । शंखचूड ने उसे अपने वैष्णवास्त्र से शान्त कर दिया ॥ ६ ॥ उस देवी ने दानव के ऊपर नारायणास्त्र का प्रयोग किया । वह नारायणास्त्र दानव को

तं दृष्ट्वा शङ्खचूडश्च प्रलयाग्निशिखोपमम् । पपात दण्डवद्भूमौ प्रणनाम पुनः पुनः ॥८॥
निवृत्तिं प्राप तच्छस्त्रं दृष्ट्वा नम्रं च दानवम् । ब्रह्मास्त्रमथ सा देवी चिक्षेप मन्त्रपूर्वकम् ॥९॥
तं दृष्ट्वा प्रज्वलन्तं च प्रणम्य भुवि संस्थितः । ब्रह्मास्त्रेण दानवेन्द्रो विनिवारं चकार ह ॥१०॥
अथ क्रुद्धो दानवेन्द्रो धनुराकृष्य रंहसा । चिक्षेप दिव्यान्यस्त्राणि देव्यै वै मन्त्रपूर्वकम् ॥११॥
आहारं समरे चक्रे प्रसार्य मुखमायतम् । जगर्ज साट्टहासं च दानवा भयमाययुः ॥१२॥
काल्यै चिक्षेप शक्तिं स शतयोजनमायताम् । देवी दिव्यास्त्रजालेन शतखण्डं चकार सा ॥१३॥
स च वैष्णवमस्त्रं च चिक्षेप चण्डिकोपरि । माहेश्वरेण काली च विनिवारं चकार सा ॥१४॥
एवं चिरतरं युद्धमन्योन्यं सम्बभूव ह । प्रेक्षका अभवन् सर्वे देवाश्च दानवा अपि ॥१५॥
अथ क्रुद्धा महादेवी काली कालसमा रणे । जग्राह मन्त्रपूतं च शरं पाशुपतं रुषा ॥१६॥
क्षेपात् पूर्वं तन्निषेद्धुं वाग्बभूवाशरीरिणी । न क्षिपास्त्रमिदं देवि ! शङ्खचूडाय वै रुषा ॥१७॥
मृत्युः पाशुपतान्नास्त्यमोघादपि च चण्डिके । शङ्खचूडस्य वीरस्योपायमन्यं विचारय ॥१८॥
इत्याकर्ण्य भद्रकाली न चिक्षेप तदस्त्रकम् । शतलक्षं दानवानां जघास लीलया क्षुधा ॥१९॥
अत्तुं जगाम वेगेन शङ्खचूडं भयङ्करी । दिव्यास्त्रेण च रौद्रेण वारयामास दानवः ॥२०॥
अथ क्रुद्धो दानवेन्द्रः खड्गं चिक्षेप सत्वरम् । ग्रीष्मसूर्योपमं तीक्ष्णधारमत्यन्तभीकरम् ॥२१॥
सा काली तं समालोक्यायान्तं प्रज्वलितं रुषा । प्रसार्य मुखमाहारं चक्रे तस्य च पश्यतः ॥२२॥

अपने प्रतिकूल पक्ष में स्थित देखकर जब बढ़ने लगा ॥ ७ ॥ तब तो प्रलयाग्नि के समान उस भयङ्कर अस्त्र को अपनी ओर आता देख शंखचूड पृथ्वी पर गिर कर बारम्बार उसे प्रणाम करने लगा ॥ ८ ॥

दानव को इस प्रकार विनम्र देखकर वह नारायणास्त्र लौट गया। देवी ने मन्त्रपूर्वक ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया ॥ ९ ॥ उस प्रज्वलित ब्रह्मास्त्र को अपनी ओर आता देख दानवराज प्रणाम कर रथ से उतर पृथ्वी पर खड़ा हो गया। दानवेन्द्र ने इस प्रकार ब्रह्मास्त्र से भी अपनी रक्षा कर ली ॥ १० ॥ दानवेन्द्र क्रोध कर बड़े वेग से अपना धनुष चढ़ा मन्त्रपूर्वक देवी पर दिव्यास्त्रों की वर्षा करने लगा ॥ ११ ॥ देवी भी मुख फैलाकर उस राक्षस के सारे अस्त्रों को खा गयी और अट्टहास कर ऐसी गर्जना की, कि सभी दानव भयभीत हो उठे ॥ १२ ॥ अपने अस्त्रों को विफल देखकर दानव ने शतयोजन विस्तार वाली अपनी शक्ति से महाकाली पर प्रहार किया, किन्तु देवी ने दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर उस शक्ति के सौ-सौ टुकड़े कर दिये ॥ १३ ॥ उसने चण्डिका पर वैष्णव अस्त्र का प्रयोग किया किन्तु काली ने माहेश्वर अस्त्र से उसे निष्फल कर दिया ॥ १४ ॥

इस प्रकार उन दोनों का बहुत काल पर्यन्त युद्ध होता रहा तथा देवता एवं दानव दर्शक बन कर उस युद्ध को देखते रहे ॥ १५ ॥ तदनन्तर युद्ध में काल के समान क्रुद्ध हुई महादेवी ने मन्त्र से पवित्र पाशुपत अस्त्र ग्रहण किया ॥ १६ ॥ किन्तु उसके चलाने के पूर्व ही आकाशवाणी ने उसके प्रयोग को मना करते हुए कहा—'हे देवि ! तुम क्रोध पूर्वक इस अस्त्र का प्रयोग शंखचूड पर मत करो ॥१७॥ हे चण्डिके ! यद्यपि यह पाशुपतास्त्र अमोघ है, किन्तु इस पाशुपतास्त्र से इसकी मृत्यु नहीं होगी, अतः इसके वध के लिए कोई अन्य उपाय सोचो' ॥१८॥ इस प्रकार की आकाशवाणी को सुनकर भद्रकाली ने दानव पर पाशुपतास्त्र का प्रयोग नहीं किया और लीला से क्षुधार्त्त हो सौ लाख दानवों का भक्षण कर गयी ॥ १९ ॥ इतना ही नहीं, वह भयङ्कर वेग से शंखचूड को भी खाने के लिए दौड़ी। दानवराज ने दिव्य रौद्रास्त्र चला कर उसे रोक दिया ॥ २० ॥ और स्वयं क्रोध पूर्वक देवी पर खड्ग से प्रहार किया। उस खड्ग की धार ग्रीष्म कालीन सूर्य के समान भयङ्कर एवं तीक्ष्ण थी ॥ २१ ॥ काली ने क्रोध से चलाये गये प्रज्वलित उस खड्ग को अपनी ओर आता देख अपना मुख फैलाकर दानवराज के देखते-देखते उसे भक्षण कर लिया ॥२२॥

दिव्यान्यस्त्राणि चान्यानि चिच्छेद दानवेश्वरः । प्राप्तानि पूर्वतश्चक्रे शतखण्डानि तानि च ॥२३॥
पुनरत्तुं महादेवी वेगतस्तं जगाम ह । सर्वसिद्धेश्वरः श्रीमानन्तर्धानं चकार सः ॥२४॥
वेगेन मुष्टिना काली तमदृष्ट्वा च दानवम् । बभञ्ज च रथं तस्य जघान किल सारथिम् ॥२५॥
अथागत्य द्रुतं मायी चक्रं चिक्षेप वेगतः । भद्रकाल्यै शङ्खचूडः प्रलयाग्निशिखोपमम् ॥२६॥
सा देवी तं तदा चक्रं वामहस्तेन लीलया । जग्राह स्वमुखेनैवाहारं चक्रे रुषा द्रुतम् ॥२७॥
मुष्ट्या जघान तं देवी महाकोपेन वेगतः । बभ्राम दानवेन्द्रोऽपि क्षणं मूर्च्छामवाप सः ॥२८॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य स चोत्तस्थौ प्रतापवान् । न चक्रे बाहुयुद्धं च मातृबुद्ध्या तया सह ॥२९॥
गृहीत्वा दानवं देवी भ्रामयित्वा पुनः पुनः । ऊर्ध्वं च प्रापयामास महाकोपेन वेगतः ॥३०॥
उत्पपात च वेगेन शङ्खचूडः प्रतापवान् । निपत्य च समुत्तस्थौ प्रणम्य भद्रकालिकाम् ॥३१॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानं सुमनोहरम् । आरुरोह स हृष्टात्मा न भ्रान्तोऽपि महारणे ॥३२॥
दानवानां हि क्षतजं सा पपौ कालिका क्षुधा । एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी ॥३३॥
लक्षं च दानवेन्द्राणामवशिष्टं रणेऽधुना । उद्धतं गुञ्जतां सार्द्धं ततस्त्वं भुङ्क्ष्व चेश्वरि ! ॥३४॥
सङ्ग्रामे दानवेन्द्रं च हन्तुं न कुरु मानसम् । अवध्योऽयं शङ्खचूडस्तव देवीति निश्चयम् ॥३५॥
तच्छ्रुत्वा वचनं देवी निःसृतं व्योममण्डलात् । दानवानां बहूनां च मांसं च रुधिरं तथा ॥३६॥
भुक्त्वा पीत्वा भद्रकाली शङ्करान्तिकमाययौ । उवाच रणवृत्तान्तं पौर्वापर्येण सक्रमम् ॥३७॥

इति श्रीशिवपुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शङ्खचूडवधे
कालीयुद्धवर्णनं नामाऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

इसी प्रकार उसने और भी बहुत से दिव्यास्त्रों का प्रयोग किया, पर भगवती ने उसके सभी अस्त्र पूर्ववत् खण्ड-खण्ड कर दिये ॥ २३ ॥ पुनः महादेवी उसे खाने के लिए बड़े वेग से दौड़ी, यह देख सर्वसिद्धेश्वर वह दानवराज अन्तर्धान हो गया ॥ २४ ॥

काली ने उस दानवराज को न देखकर बड़े वेग से अपनी मुष्टिका के द्वारा उसका रथ एवं सारथी को नष्ट कर दिया ॥ २५ ॥ फिर तो वह मायावी दैत्य बड़ी शीघ्रता से युद्धस्थल में प्रकट होकर प्रलयाग्नि के के समान जलते हुए चक्र से भद्रकाली पर प्रहार किया ॥ २६ ॥ देवी ने उस चक्र को अपने बायें हाथ से लीलापूर्वक ग्रहण कर बड़े क्रोध के साथ उसका भक्षण कर लिया ॥ २७ ॥ और बड़े वेग से अपनी मुष्टिका द्वारा उस पर प्रहार किया, जिससे वह दानवराज चक्कर काटता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया ॥ २८ ॥ किन्तु वह महाप्रतापी क्षणभर मूर्च्छित रहने के अनन्तर पुनः उठ बैठा । उसने भगवती भद्रकाली को माता समझ उनके साथ बाहुयुद्ध नहीं किया ॥ २९ ॥ देवी ने क्रुद्ध हो उसे पकड़ लिया और बारम्बार उसे घुमाकर ऊपर को फेंक दिया ॥ ३० ॥ किन्तु वह प्रतापी शंखचूड ऊपर से बड़े वेग से कूद कर नीचे आकर भद्रकाली को प्रणाम कर पुनः स्थित हो गया ॥ ३१ ॥ और सर्वश्रेष्ठ रत्न-निर्मित विमान पर सवार हो सावधान होकर प्रसन्नता से युद्ध के लिए उद्यत हो गया ॥३२॥ इधर काली भी क्षुधातुर हो दानवों का रक्तपान करने लगी, इसी बीच आकाशवाणी सुनाई दी कि- ॥ ३३ ॥

'हे देवि ! अभी तक महान् उद्धत एवं गर्जना करते हुए एक लाख दानव शेष हैं, तुम इनके रुधिर का पान करो ॥ ३४ ॥ किन्तु हे ईश्वरि ! संग्रामस्थल में दानवराज शंखचूड के वध का विचार मत करना, यह तुमसे अवध्य है, ऐसा निश्चय जानो' ॥ ३५ ॥ आकाशमण्डल से निकली हुई इस वाणी को सुनकर देवी बहुत से दानवों का मांस एवं रुधिर खा-पीकर शिव जी के पास लौट आयी और आद्योपान्त युद्ध का सारा वृत्तान्त उसने शिव जी से वर्णन किया ॥ ३६-३७ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के द्वितीय रुद्रसंहिता में पञ्चम युद्धखण्ड के शंखचूडवध में कालीयुद्धवर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

(शिव के साथ शंखचूड का युद्ध)

व्यास उवाच

श्रुत्वा काल्युक्तमीशानो किं चकार किमुक्तवान् । तत्त्वं वद महाप्राज्ञ परं कौतूहलं मम ॥ १ ॥

सनत्कुमार उवाच

काल्युक्तं वचनं श्रुत्वा शङ्करः परमेश्वरः । महालीलाकरः शम्भुर्जहासाश्वासयश्च ताम् ॥ २ ॥
व्योमवाणीं समाकर्ण्य तत्त्वज्ञानविशारदः । ययौ स्वयं च समरे स्वगणैः सह शङ्करः ॥ ३ ॥
महावृषभमारूढो वीरभद्रादिसंयुतः । भैरवैः क्षेत्रपालैश्च स्वसमानैः समन्वितः ॥ ४ ॥
रणं प्राप्तो महेशश्च वीररूपं विधाय च । विरराजाधिकं तत्र रुद्रो मूर्त इवान्तकः ॥ ५ ॥
शङ्खचूडः शिवं दृष्ट्वा विमानादवरुह्य सः । ननाम परया भक्त्या शिरसा दण्डवद् भुवि ॥ ६ ॥
तं प्रणम्य तु योगेन विमानमारुरोह सः । तूर्णं चकार सन्नाहं धनुर्जग्राह सेषुकम् ॥ ७ ॥
शिवदानवयोर्युद्धं शतमब्दं बभूव ह । बाणवर्षमिवोग्रं तद्वर्षतोर्मेघयोस्तदा ॥ ८ ॥
शङ्खचूडो महावीरः शरांश्चिक्षेप दारुणान् । चिच्छेद शङ्करस्तान् वै लीलया स्वशरोत्करैः ॥ ९ ॥
तदङ्गेषु च शस्त्रौघैस्ताडयामास कोपतः । महारुद्रो विरूपाक्षो दुष्टदण्डः सतां गतिः ॥१०॥
दानवो निशितं खड्गं चर्म चादाय वेगवान् । वृषं जघान शिरसि शिवस्य वरवाहनम् ॥११॥
ताडिते वाहने रुद्रस्तं क्षुरप्रेण लीलया । खड्गं चिच्छेद तस्याशु चर्म चापि महोज्ज्वलम् ॥१२॥
छिन्नेऽसौ चर्मणि तदा शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः । द्विधा चक्रे स्वबाणेन हरस्तां सम्मुखागताम् ॥१३॥
कोपाध्मातः शङ्खचूडश्चक्रं चिक्षेप दानवः । मुष्टिपातेन तच्चाप्यचूर्णयत् सहसा हरः ॥१४॥

व्यास बोले—हे महाप्राज्ञ ! सनत्कुमार ! भद्रकाली के वचन सुनकर शिवजी ने क्या कहा ? और क्या किया ? उसे कहिए, मुझे सुनने की बड़ी उत्सुकता हो रही है ॥ १ ॥

सनत्कुमार बोले—परमेश्वर सदाशिव काली के वचन सुनकर हँसने लगे और काली को समझाया ॥ २ ॥ फिर तत्त्वज्ञान विशारद शिवजी आकाशवाणी को सुनकर गणों के साथ स्वयं युद्धस्थल में उपस्थित हो गये ॥ ३ ॥ उस समय वृषभ पर आरूढ़ हो वीरभद्रादि गणों एवं अपने समान भैरवों तथा क्षेत्रपालों को साथ लिये हुए थे ॥ ४ ॥ जिस समय महेश्वर वीर वेष धारण कर युद्धभूमि में आये उस समय वे साक्षात् काल की मूर्त्ति के समान प्रतीत हो रहे थे ॥ ५ ॥ शंखचूड ने शिवजी को देख विमान से उतर कर परमभक्ति पूर्वक भूमि में गिर कर शिर से उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया ॥ ६ ॥ प्रणाम करने के उपरान्त वह योगमार्ग से पुनः विमान पर जा चढ़ा और कवच तथा धनुषबाण धारण किया ॥ ७ ॥ तदनन्तर शिव एवं उस दानव का सौ वर्ष पर्यन्त घनघोर युद्ध होता रहा, जिसमें निरन्तर वर्षा करते हुए मेघों के समान बाणों की वर्षा हो रही थी ॥ ८ ॥ उस युद्ध में महावीर शंखचूड शिवजी पर दारुण बाणों की वर्षा कर रहा था, किन्तु शङ्कर उन बाणों को अपने बाणों से छिन्न-भिन्न कर देते थे ॥ ९ ॥ फिर दुष्टों को दण्ड देने वाले, सज्जनों के रक्षक, त्रिनेत्र महारुद्र ने अत्यन्त क्रुद्ध हो उसके शरीर पर अपने शस्त्र-समूहों से उस पर प्रहार किया ॥ १० ॥ इधर दानव ने भी बड़े वेग से अपने तीक्ष्णधार वाले तलवार एवं ढाल लेकर शिवजी के श्रेष्ठ वाहन वृषभ पर प्रहार किया ॥ ११ ॥ जैसे ही उसने वृषभ पर प्रहार किया कि शङ्कर ने तीक्ष्णधार वाले अपने छुरे से लीलापूर्वक उस दानव के खड्ग एवं ढाल को काट दिया ॥१२॥

इस प्रकार खड्ग के छेदन हो जाने पर उस दानव ने शक्ति से प्रहार किया। शिवजी ने अपने बाणों से उसके भी दो टुकड़े कर दिये ॥१३॥ तब क्रुद्ध होकर दानवराज ने चक्र से प्रहार किया, किन्तु शिवजी ने

गदामाविध्य तरसा संचिक्षेप हरं प्रति । शम्भुना साऽपि सहसा भिन्ना भस्मत्वमागता ॥१५॥
ततः परशुमादाय हस्तेन दानवेश्वरः । धावति स्म हरं वेगाच्छङ्खचूडः क्रुधाकुलः ॥१६॥
समाहृत्य स्वबाणौघैरपातयत शङ्करः । द्रुतं परशुहस्तं तं भूतले लीलयाऽसुरम् ॥१७॥
ततः क्षणेन सम्प्राप्य संज्ञामारुह्य सद्रथम् । धृतिदिव्यायुधशरो बभौ व्याप्याखिलं नभः ॥१८॥
आयान्तं तं निरीक्ष्यैव डमरुध्वनिमादरात् । चकार ज्यारवं चापि धनुषो दुःसहं हरः ॥१९॥
पूरयामास ककुभः शृंङ्गनादेन च प्रभुः । स्वयं जगर्ज गिरिशस्त्रासयन्नसुरांस्तदा ॥२०॥
त्याजितेभ-महागर्वै-र्महानादै-र्वृषेश्वरः । पूरयामास सहसा खं गां वसुदिशस्तथा ॥२१॥
महाकालः समुत्पत्त्या ताडयद् गां तथा नभः । कराभ्यां तन्निनादेन [illegible] आसन् पुरा रवाः ॥२२॥
अट्टाट्टहासमशिवं क्षेत्रपालश्चकार ह । भैरवोऽपि महानादं स चकार महाहवे ॥२३॥
महाकोलाहलो जातो रणमध्ये भयङ्करः । वीरशब्दो बभूवाथ गणमध्ये समन्ततः ॥२४॥
सन्त्रेसुर्दानवाः सर्वे तैः शब्दैर्भयदैः खरैः । चुकोपातीव तच्छ्रुत्वा दानवेन्द्रो महाबलः ॥२५॥
तिष्ठ तिष्ठेति दुष्टात्मन् ! व्यांजहार यदा हरः । देवैर्गणैश्च तैः शीघ्रमुक्तं जय जयेति च ॥२६॥
अथागत्य स दम्भस्य तनयः सुप्रतापवान् । शक्तिं चिक्षेप रुद्राय ज्वालामालातिभीषणाम् ॥२७॥
वह्निकूटप्रभाऽऽयान्ती क्षेत्रपालेन सत्वरम् । निरस्तागत्य साजौ वै मुखोत्पन्नमहोल्कया ॥२८॥
पुनः प्रववृते युद्धं शिवदानवयोर्महत् । चकम्पे धरणी द्यौश्च सनगाब्धिजलाशया ॥२९॥
दम्भिमुक्ताञ्छराञ्शम्भुः शरांस्तत्प्रहितान् स च । सहस्रशः शरैरुग्रैश्चिच्छेद शतशस्तदा ॥३०॥

अपनी मुष्टि के प्रहार से उसे भी चकनाचूर कर दिया ॥१४॥ क्रोध से व्याकुल हुए शंखचूड ने उन पर गदा से प्रहार किया। शिवजी ने उसे भी छिन्न-भिन्न कर भस्म कर दिया ॥ १५ ॥ दानवेश्वर ने अपने हाथ से फ़रसा उठाया और क्रुद्ध हो शिवजी की ओर दौड़ा ॥ १६ ॥ शङ्कर ने बड़ी शीघ्रता से अपने बाण-समूहों से फरसे के सहित उसको पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ १७ ॥ किन्तु थोड़ी ही देर में वह सचेत हो रथ पर चढ़ कर दिव्य आयुध एवं बाण धारण कर समस्त आकाश-मण्डल को घेर कर शोभित होने लगा ॥ १८ ॥ फिर उसे अपनी ओर आता देखकर शिवजी ने बड़े आदर के साथ डमरू बजाया एवं धनुष की प्रत्यञ्चा से घनघोर शब्द किया ॥ १९ ॥ और अपने शृङ्गनाद के शब्द से सारी दिशाएँ व्याप्त कर दिया और स्वयं असुरों को भयभीत करते हुए गर्जना करने लगे ॥ २० ॥

नन्दीश्वर ने महागर्व से हाथी के समान घनघोर शब्द से सहस्र पृथ्वी, आकाश तथा आठों दिशाओं को पूर्ण कर दिया ॥ २१ ॥ फिर महाकाल ने बड़े वेग से दौड़कर अपने दोनों हाथों को पृथ्वी एवं आकाश पर पटक दिया, जिससे पहले के सभी शब्द तिरोहित हो गये ॥ २२ ॥ इसी प्रकार क्षेत्रपाल के महान् अट्टहास तथा भैरव के महाघनघोर शब्द भी हुए ॥ २३ ॥ जिससे युद्धस्थल में महान् कोलाहल होने लगा और गणों के मध्य में चारों ओर सिंह-गर्जना होने लगी ॥ २४ ॥ उस भयदायक एवं कर्कश शब्द से सभी दानव व्याकुल हो उठे। महाबलवान् दानवेन्द्र उन शब्दों को सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा ॥ २५ ॥ जब शिवजी ने कहा कि अरे दुष्ट ! खड़ा रह, खड़ा रह, उस समय देवताओं एवं गणों ने शिवजी का जय-जयकार उच्चारण किया ॥ २६ ॥ इतने में ही महाप्रतापी दम्भपुत्र ने आकर ज्वाला माला के समान अत्यन्त भीषण शक्ति से शिवजी पर प्रहार किया ॥ २७ ॥ अग्निज्वाला के समान आती हुई उस शक्ति को देखकर क्षेत्रपाल ने बड़ी शीघ्रता से युद्ध में आगे बढ़कर अपने मुख की उल्का से उसे नष्ट कर दिया ॥ २८ ॥

तदनन्तर पुनः शिव एवं उस दानव का घनघोर संग्राम होने लगा, जिससे पर्वत, समुद्र एवं जलाशयों के सहित पृथ्वी एवं द्युलोक कम्पित हो उठे ॥ २९ ॥ दम्भपुत्र शंखचूड के द्वारा छोड़े गये सैकड़ों एवं हजारों बाणों को शिवजी ने अपने तीक्ष्ण बाणों से तथा शिवजी के द्वारा छोड़े गये सैकड़ों एवं हजारों बाणों को

ततः शम्भुस्त्रिशूलेन सङ्क्रुद्धस्तं जघान ह । तत्प्रहारमसह्याशु कौ पपात स मूर्च्छितः ॥३१॥
ततः क्षणेन सम्प्राप संज्ञां स च तदाऽसुरः । आजघान शरै रुद्रं तान् सर्वानात्तकार्मुकः ॥३२॥
बाहूनामयुतं कृत्वा छादयामास शङ्करम् । चक्रायुतेन सहसा शङ्खचूडः प्रतापवान् ॥३३॥
ततो दुर्गापतिः क्रुद्धो रुद्रो दुर्गतिनाशनः । तानि चक्राणि चिच्छेद स्वशरैरुत्तमैर्द्रुतम् ॥३४॥
ततो वेगेन सहसा गदामादाय दानवः । अभ्यधावत वै हन्तुं बहुसेनावृतो हरम् ॥३५॥
गदां चिच्छेद तस्याश्वापततः सोऽसिना हरः । शितधारेण सङ्क्रुद्धो दुष्टगर्वापहारकः ॥३६॥
छिन्नायां स्वगदायां च चुकोपातीव दानवः । शूलं जग्राह तेजस्वी परेषां दुःसहं ज्वलत् ॥३७॥
सुदर्शनं शूलहस्तमायान्तं दानवेश्वरम् । स्वत्रिशूलेन विव्याध हृदि तं वेगतो हरः ॥३८॥
त्रिशूलभिन्नहृदयान् निष्क्रान्तः पुरुषः परः । तिष्ठ तिष्ठेति चोवाच शङ्खचूडस्य वीर्यवान् ॥३९॥
निष्क्रामतो हि तस्याशु प्रहस्य स्वनवत्ततः । चिच्छेद च शिरो भीममसिनासोऽपतद् भुवि ॥४०॥
ततः काली चखादोग्रं दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् । असुरांस्तान् बहून् क्रोधात् प्रसार्य स्वमुखं तदा ॥४१॥
क्षेत्रपालश्चखादान्यान् बहून् दैत्यान् क्षुधाकुलः । केचिन्नेशुर्भैरवास्त्रच्छिन्ना भिन्नास्तथाऽपरे ॥४२॥
वीरभद्रोऽपरान् धीमान् बहून् क्रोधादनाशयत् । नन्दीश्वरो जघानान्यान् बहूनमरमर्दकान् ॥४३॥
एवं बहुगणा वीरास्तदा सन्नह्य कोपतः । व्यनाशयन् बहून् दैत्यानसुरान् देवमर्दकान् ॥४४॥
इत्थं बहुतरं तत्र तस्य सैन्यं ननाश तत् । विद्रुताश्चापरे वीरा बहवो भयकातराः ॥४५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे
शङ्खचूडसैन्यवधवर्णनं नाम नवत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

शंखचूड ने अपने तीक्ष्ण बाणों से नष्ट-भ्रष्ट करना प्रारम्भ कर दिया ॥ ३० ॥ तब शिवजी ने परमक्रुद्ध हो अपने त्रिशूल से दानव पर प्रहार किया, जिसको सहने में असमर्थ होकर वह दानव मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ ३१ ॥ किन्तु क्षणमात्र में ही चेतना को प्राप्त कर वह असुर अपने धनुष पर बड़े वेग से बाण चढ़ा कर शिवजी पर प्रहार करने लगा ॥ ३२ ॥ उस प्रतापी दानवराज ने स्वयं दशसहस्र भुजा का निर्माण कर उनसे एक बार ही दश हजार चक्र चला कर शङ्कर को ढक दिया ॥ ३३ ॥ कठिन दुर्गति के नाशकर्त्ता दुर्गापति शङ्कर ने अपने श्रेष्ठ तथा तीक्ष्ण बाणों से उन सारे चक्र-समूहों को छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ ३४ ॥ तब वह दानव अपनी सेना के साथ बड़े वेग से अपनी गदा उठा कर शङ्कर को मारने के लिए दौड़ा ॥ ३५ ॥ किन्तु शिवजी ने अपनी तीक्ष्ण तलवार से उसकी गदा भी काटकर गिरा दी, जिससे उस दुष्ट का गर्व नष्ट हो गया। क्योंकि शिवजी दुष्ट गर्वापहारक हैं ॥ ३६ ॥

अपनी गदा के छिन्न-भिन्न हो जाने से दानव को बड़ा क्रोध उत्पन्न हो गया, अतः उस तेजस्वी ने शत्रुओं के लिए असह्य अपना प्रज्वलित त्रिशूल धारण किया ॥ ३७ ॥ त्रिशूल हाथ में लेकर आते हुए उस सुदर्शन दानवेश्वर को देख शिवजी ने बड़े वेग से अपना त्रिशूल उसकी छाती में घुसेड़ दिया ॥ ३८ ॥ जिससे उसका हृदय विदीर्ण हो गया, उसमें से पुनः एक पुरुष पैदा होकर 'खड़े रहो, खड़े रहो' ऐसा कहने लगा ॥ ३९ ॥ इतना कहते हुए वह हृदय से निकलना ही चाहता था कि शिव ने खड्ग से उसके शिर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये, जिससे वह पृथ्वी पर गिर गया ॥ ४० ॥ इधर काली ने अपना मुख फैलाकर बड़े क्रोध से अपने दाँतों से उन असुरों के शिर एवं अधर को पीस-पीसकर चबाना प्रारम्भ किया ॥ ४१ ॥ इसी प्रकार क्षेत्रपाल भी क्रोध में भरकर अनेक असुरों को खाने लगे, जो शेष बचे वे भैरव के अस्त्र से छिन्न-भिन्न हो नष्ट हो गये ॥ ४२ ॥ वीरभद्र एवं नन्दीश्वर ने बहुत से देवशत्रु असुरों को नष्ट कर दिया ॥ ४३ ॥ इस प्रकार शिवजी के गणों के द्वारा बहुत से देवशत्रु असुर नष्ट-भ्रष्ट हो गये ॥ ४४ ॥ जब दैत्यों की बहुत सी सेना नष्ट हो गयी, तब भय से कातर हुए अनेक दानव युद्ध छोड़कर भाग गये ॥ ४५ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता में पञ्चम युद्ध-खण्ड के शंखचूडवध में शंखचूडसैन्यवध वर्णन नामक उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

(ब्रह्म स्वरूप धारण कर शंखचूड से नारायण का वाक्य प्राप्त करना और शंखचूड वध)

सनत्कुमार उवाच

स्वबलं निहतं दृष्ट्वा मुख्यं बहुतरं ततः । तथा वीरान् प्राणसमान् चुकोपातीव दानवः ॥ १ ॥
उवाच वचनं शम्भुं तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव । किमेतैर्निहतैर्मेऽद्य सम्मुखे समरं कुरु ॥ २ ॥
इत्युक्त्वा दानवेन्द्रोऽसौ सन्नद्धः समरे मुने ! । आगच्छन्निश्चयं कृत्वाऽभिमुखं शङ्करस्य च ॥ ३ ॥
दिव्यान्यस्त्राणि चिक्षेप महारुद्राय दानवः । चकार शरवृष्टिं च तोयवृष्टिं यथा घनः ॥ ४ ॥
मायाश्चकार विविधा अदृश्या भयदर्शिताः । अप्रतर्क्याः सुरगणैर्निखिलैरपि सत्तमैः ॥ ५ ॥
तां दृष्ट्वा शङ्करस्तत्र चिक्षेपास्त्रं च लीलया । माहेश्वरं महादिव्यं सर्वमायाविनाशनम् ॥ ६ ॥
तेजसा तस्य तन्मायाः नष्टाश्चासन् द्रुतं तदा । दिव्यान्यस्त्राणि तान्येव निस्तेजांस्यभवन्नपि ॥ ७ ॥
अथ युद्धे महेशानस्तद्वधाय महाबलः । शूलं जग्राह सहसा दुर्निवार्यं सुतेजसाम् ॥ ८ ॥
तदैव तन्निषेद्धुं च वाग्बभूवाशरीरिणी । क्षिप शूलं न चेदानीं प्रार्थनां शृणु शङ्कर ! ॥ ९ ॥
सर्वथा त्वं समर्थो हि क्षणाद् ब्रह्माण्डनाशने । किमेकदानवस्येश शङ्खचूडस्य साम्प्रतम् ॥१०॥
तथापि वेदमर्यादा न नाश्या स्वामिना त्वया । तां शृणुष्व महादेव ! सफलं कुरु सत्यतः ॥११॥
यावदस्य करेऽस्त्युग्रं कवचं परमं हरेः । यावत्सतीत्वमस्त्येव सत्या अस्य हि योषितः ॥१२॥
तावदस्य जरामृत्युः शङ्खचूडस्य शङ्कर ! । नास्तीत्यवितथं नाथ ! विधेहि ब्रह्मणो वचः ॥१३॥
इत्याकर्ण्य नभोवाणीं तथेत्युक्त्वे हरे तदा । हरेच्छयागतो विष्णुस्तं दिदेश सतां गतिः ॥१४॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! इस प्रकार अपनी मुख्य-मुख्य बहुत सी सेनाओं को तथा प्राण के समान वीरों को नष्ट होते देख दानव शंखचूड क्रोध से आगबबूला हो गया ॥ १ ॥ वह शङ्कर से बोला—मैं युद्ध के लिए सावधान हूँ, आप भी सावधानी से युद्ध के लिए तैयार हो जाइए । इन सैनिकों के मारने से क्या लाभ ? मेरे सामने खड़े होकर युद्ध कीजिए ॥ २॥ हे मुने ! इतना कहने के अनन्तर वह दानव युद्ध करने का निश्चय कर सन्नद्ध हो शिवजी के सामने आकर खड़ा हो गया ॥ ३ ॥ और अनेक प्रकार के दिव्य अस्त्रों से शिवजी पर प्रहार करने लगा । जैसे मेघ जल बरसाते हैं, उसी प्रकार वह भी निरन्तर बाणों की वृष्टि करने लगा ॥ ४ ॥ उसने अनेक प्रकार की भय उत्पन्न करने वाली माया भी प्रकट की । उसकी उस अप्रतर्क्य माया को समस्त देवता भी न जान सके ॥ ५ ॥ उसकी माया को देखकर शिव जी ने सभी माया को नष्ट करने वाले महादिव्य माहेश्वर अस्त्र का प्रयोग किया ॥ ६ ॥ उस अस्त्र के प्रयोग करते ही असुर की सारी माया तत्काल नष्ट हो गयी और सारे दिव्यास्त्र भी निस्तेज हो गये ॥ ७ ॥

तदनन्तर महाबली महेश्वर ने उस असुर का वध करने के लिए तेजस्वियों के लिए भी दुर्निवार्य त्रिशूल धारण किया ॥ ८ ॥ उसी समय उन्हें रोकने के लिए आकाशवाणी हुई—'हे शङ्कर ! अभी अपना त्रिशूल मत चलाओ, प्रार्थना सुनो ॥ ९ ॥ आप क्षणमात्र में सारे ब्रह्माण्ड को नाश करने में समर्थ हैं, फिर एक दानव शंखचूड का वध आपके लिए कौन सी बड़ी बात है ? ॥ १० ॥ किन्तु आप-जैसे स्वामी को वेद-मर्यादा नष्ट नहीं करनी चाहिए, अतः शंखचूड के वध करने में जो मर्यादा है, उसे सुनकर सफल कीजिए ॥ ११ ॥ जब तक इसके हाथ में उत्तम विष्णुकवच है और जब तक इसकी स्त्री पतिव्रता है ॥१२॥ तब तक हे शङ्कर ! इस दानव को जरा एवं मृत्यु कुछ नहीं कर सकती । हे नाथ ! ब्रह्मा के द्वारा दिये गये इस वचन को आप सत्य कीजिए' ॥ १३ ॥ आकाशवाणी को सुनकर शिव जी ने वैसा ही किया । उसी समय शिवजी की इच्छा से सज्जनों के रक्षक विष्णु वहाँ आये और शङ्कर ने उन्हें आज्ञा प्रदान की ॥१४॥

वृद्धब्राह्मणवेषेण विष्णुर्मायाविनां वरः। शङ्खचूडोपकण्ठं च गत्वोवाच स तं तदा ॥१५॥

वृद्धब्राह्मण उवाच

देहि भिक्षां दानवेन्द्र! मह्यं प्राप्ताय साम्प्रतम् ॥१६॥

नेदानीं कथयिष्यामि प्रकटं दीनवत्सलम्। पश्चात्त्वां कथयिष्यामि पुनः सत्यं करिष्यसि ॥१७॥

ओमित्युवाच राजेन्द्रः प्रसन्नवदनेक्षणः। कवचार्थी जनश्चाऽहमित्युवाचेति सच्छलात् ॥१८॥

तच्छ्रुत्वा दानवेन्द्रोऽसौ ब्रह्मण्यः सत्यवाग् विभुः। तद्ददौ कवचं दिव्यं विप्राय प्राणसम्मतम् ॥१९॥

माययेत्थं तु कवचं तस्माज्जग्राह वै हरिः। शङ्खचूडस्य रूपेण जगाम तुलसीं प्रति ॥२०॥

गत्वा तत्र हरिस्तस्या योनौ मायाविशारदः। वीर्याधानं चकाराशु देवकार्यार्थमीश्वरः ॥२१॥

एतस्मिन्नन्तरे शम्भुमीरयन् स्ववचः प्रभुः। शङ्खचूडवधार्थाय शूलं जग्राह प्रज्वलत् ॥२२॥

तच्छूलं विजयं नाम शङ्करस्य परमात्मनः। सं चकाशे दिशः सर्वा रोदसीं संप्रकाशयन् ॥२३॥

कोटि-मध्याह्नमार्तण्ड-प्रलयाग्नि-शिखोपमम् । दुर्निवार्यं च दुर्द्धर्षमव्यर्थं वैरिघातकम् ॥२४॥

तेजसां चक्रमत्युग्रं सर्वशस्त्राऽस्त्रनायकम्। सुराऽसुराणां सर्वेषां दुःसहं च भयङ्करम् ॥२५॥

संहर्तुं सर्वब्रह्माण्डमवलम्ब्य च लीलया। संस्थितं परमं तत्र एकत्रीभूय विज्वलत् ॥२६॥

धनुःसहस्रं दीर्घेण प्रस्थेन शतहस्तकम्। जीवब्रह्मस्वरूपं च नित्यरूपमनिर्मितम् ॥२७॥

विभ्रमद् व्योम्नि तच्छूलं शङ्खचूडोपरि क्षणात्। चकार भस्म तच्छीघ्रं निपत्य शिवशासनात् ॥२८॥

अथ शूलं महेशस्य द्रुतमावृत्य शङ्करम्। ययौ विहायसा विप्र मनोयायि स्वकार्यकृत् ॥२९॥

नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे जगुर्गन्धर्वकिन्नराः। तुष्टुवुर्मुनयो देवा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥३०॥

उनकी आज्ञा से माया जानने वालों में सर्वश्रेष्ठ विष्णु, वृद्धब्राह्मण का रूप बनाकर शंखचूड के पास जाकर बोले– ॥ १५ ॥

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा—हे दानवेन्द्र! मैं भिक्षा के लिए तुम्हारे पास आया हूँ, तुम मुझे भिक्षा प्रदान करो ॥ १६ ॥ यद्यपि तुम दीनदयालु हो, किन्तु मैं इस समय उसे स्पष्ट नहीं कहूँगा, प्रतिज्ञा करने के बाद मैं तुमसे कहूँगा तब उसे देकर तुम अपनी प्रतिज्ञा सत्य करना ॥१७॥ राजा ने बड़ी प्रसन्नता से देने की प्रतिज्ञा की। तब वृद्ध ब्राह्मण ने छल से कहा कि, मैं आप का कवच चाहता हूँ ॥ १८ ॥ दानवेन्द्र ब्राह्मण-भक्त तथा सत्यभाषी तो था ही, उसने प्राणों के समान अपना प्यारा कवच ब्राह्मण को दे दिया ॥ १९ ॥ इस प्रकार विष्णु माया से कवच ले लेने के अनन्तर शंखचूड का रूप धारण कर तुलसी के पास गये ॥२०॥ और वहाँ जाकर माया-विशारद विष्णु ने देव-कार्य की सिद्धि के निमित्त उसकी योनि में वीर्याधान किया ॥ २१ ॥ इसी बीच शिव जी ने अपने वचन के पालन के निमित्त शङ्खचूड का वध करने के लिए अपना प्रज्वलित शूल धारण किया ॥ २२ ॥ परमात्मा शङ्कर का विजय नामक वह शूल द्यावापृथ्वी को प्रकाशित करता हुआ सभी दिशाओं को प्रज्वलित करने लगा ॥ २३ ॥ शिव का वह त्रिशूल करोड़ों मध्याह्नकालीन सूर्य तथा प्रलयाग्नि की शिखा के समान, दुर्द्धर्ष, दुर्निवार्य, अव्यर्थ तथा शत्रुसमूह को नष्ट करनेवाला तेजों का समूह, अत्यन्त उग्र, सभी शस्त्रास्त्रों एवं बाणों को अपने में समाविष्ट करनेवाला, देवता, राक्षसों के लिए दुःसह तथा महा भयङ्कर था ॥ २४-२५ ॥ जिसमें लीलापूर्वक सारे ब्रह्माण्ड को नष्ट करनेवाला तेज एकत्र होकर प्रज्वलित हो रहा था ॥२६॥ शिव जी का वह त्रिशूल एक हजार धनुष लम्बा एवं सौ हाथ चौड़ा था और जीव एवं ब्रह्म के समान सर्वदा नित्य तथा किसी के द्वारा अनिर्मित था ॥२७॥ शिव जी के द्वारा फेंका हुआ वह त्रिशूल आकाश-मण्डल में चक्कर काटता हुआ शङ्खचूड के शिर पर जा गिरा और शिव जी की आज्ञा से उसे क्षणमात्र में भस्म कर दिया ॥ २८ ॥ हे मुने! इस प्रकार उस दैत्य को मारकर वह त्रिशूल पुनः अपना कार्य समाप्त कर मन के वेग के समान ही आकाश से होता हुआ शिव जी के पास चला आया ॥२९॥ उस समय स्वर्ग में दुन्दुभि बजने लगी, गन्धर्व, किन्नर

बभूव पुष्पवृष्टिश्च शिवस्योपरि सन्ततम् । प्रशशंस हरिर्ब्रह्मा शक्राद्या मुनयस्तथा ॥३१॥
शङ्खचूडो दानवेन्द्रः शिवस्य कृपया तदा । शापमुक्तो बभूवाथ पूर्वरूपमवाप ह ॥३२॥
अस्थिभिः शङ्खचूडस्य शङ्खजातिर्बभूव ह । प्रशस्तं शङ्खतोयं च सर्वेषां शङ्करं विना ॥३३॥
विशेषेण हरेर्लक्ष्म्याः शङ्खतोयं महाप्रियम् । सम्बन्धिनां च तस्यापि न हरस्य महामुने ! ॥३४॥
तमित्थं शङ्करो हत्वा शिवलोकं जगाम सः । सुप्रहृष्टो वृषारूढः सोमस्कन्दगणैर्वृतः ॥३५॥
हरिर्जगाम वैकुण्ठं कृष्णः स्वस्थो बभूव ह । सुराः स्वविषयं प्रापुः परमानन्दसंयुताः ॥३६॥
जगत्स्वास्थ्यमतीवाप सर्वनिर्विघ्नमापकम् । निर्मलं चाऽभवद्व्योम क्षितिः सर्वा सुमङ्गला ॥३७॥
इति प्रोक्तं महेशस्य चरितं प्रमुदावहम् । सर्वदुःखहरं श्रीदं सर्वकामप्रपूरकम् ॥३८॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वविघ्ननिवारणम् । भुक्तिदं मुक्तिदं चैव सर्वकामफलप्रदम् ॥३९॥
य इदं शृणुयान्नित्यं चरितं शशिमौलिनः । श्रावयेद्वा पठेद्वापि पाठयेद्वा सुधीर्नरः ॥४०॥
धनं धान्यं सुतं सौख्यं लभेताऽत्र न संशयः । सर्वान् कामानवाप्नोति शिवभक्तिं विशेषतः ॥४१॥
इदमाख्यानमतुलं सर्वोपद्रवनाशनम् । परमज्ञानजननं शिवभक्तिविवर्द्धनम् ॥४२॥
ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी क्षत्रियो विजयी भवेत् । धनाढ्यो वैश्यजः शूद्रः शृण्वन् सत्तमतामियात् ॥४३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे
शङ्खचूडवधोपाख्यानं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

गाने लगे । मुनि, देवता प्रसन्न हो उठे तथा अप्सराएँ नाचने लगीं ॥३०॥ शिव जी के ऊपर फूलों की वर्षा होने लगी तथा ब्रह्मा एवं इन्द्रादि देवगण शिव जी की प्रशंसा करने लगे ॥३१॥

दानवेन्द्र शङ्खचूड शिव जी की कृपा से शाप-विमुक्त हो अपने पूर्वरूप को प्राप्त हो गया ॥ ३२ ॥ शङ्खचूड की अस्थियों से एक प्रकार की शङ्ख जाति प्रगट हुई। शङ्ख का जल सभी देवताओं के लिए परम पवित्र माना गया है, किन्तु शङ्कर के लिए उसका जल निषिद्ध है ॥३३॥ विशेषकर विष्णु एवं लक्ष्मी के लिए तथा उनके सम्बन्धियों के लिए तो उसका जल महाप्रिय है । किन्तु हे महामुने ! वह शङ्कर को प्रिय नहीं है ॥३४॥ इस प्रकार शिव जी शङ्खचूड का वध कर प्रसन्नता से वृषभ पर आरूढ हो उमा, स्कन्द एवं अपने गणों के साथ शिवलोक को चले गये ॥३५॥ विष्णु वैकुण्ठ को गये, श्री कृष्ण भी स्वस्थ हो गये । इस प्रकार सभी देवगण भी प्रसन्न हो अपने-अपने स्थानों को गये ॥३६॥ सारा संसार स्वस्थ हो गया तथा पृथ्वी उपद्रव से रहित हो गयी । आकाशमण्डल स्वच्छ हो गया तथा पृथ्वीतल में सुमङ्गल होने लगा ॥३७॥

हे व्यास ! इस प्रकार हमने सारे दुःखों को दूर करने, कल्याण करने एवं कामनाओं को पूर्ण करनेवाला, धन, यश तथा आयु को बढ़ानेवाला, विघ्नों को नष्ट करनेवाला, भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेवाला, सम्पूर्ण कामनाओं का फल देनेवाला तथा हर्ष उत्पन्न करनेवाला शङ्कर का चरित्र तुमसे कहा ॥ ३८-३९ ॥ जो कोई बुद्धिमान् नित्य इस शङ्कर के चरित्र को सुनता-सुनाता, पढ़ता-पढ़ाता है, वह धन-धान्य, सुत तथा सुख प्राप्त करता है और सभी कामनाओं को विशेषकर शिवभक्ति को प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं ॥४०-४१॥ इस आख्यान की कोई समता नहीं कर सकता । इसके सुनने से सारे उपद्रव नष्ट हो जाते हैं, ज्ञान की उत्पत्ति होती है तथा शिव में भक्ति उत्पन्न होती है ॥४२॥ इस आख्यान के सुनने से ब्राह्मण ब्रह्मवर्चस्वी, क्षत्रिय विजयी, वैश्य धनाढ्य एवं शूद्र सज्जनता को प्राप्त करता है ॥४३॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पंचम युद्धखण्ड में
शङ्खचूडवधोपाख्यान नामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

(तुलसी द्वारा विष्णु को शिला होने का शाप और स्वयं गण्डको बनना)

व्यास उवाच

नारायणश्च भगवान् वीर्याधानं चकार ह । तुलस्याः केन यत्नेन योनौ तद्वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥

सनत्कुमार उवाच

नारायणो हि देवानां कार्यकर्ता सतां गतिः । शङ्खचूडस्य रूपेण रेमे तद्रमया सह ॥ २ ॥
तदेव शृणु विष्णोश्च चरितं प्रमुदावहम् । शिवशासनकर्तुश्च मातुश्च जगतां हरेः ॥ ३ ॥
रणमध्ये व्योमवचः श्रुत्वा देवेन शम्भुना । प्रेरितः शङ्खचूडस्य गृहीत्वा कवचं परम् ॥ ४ ॥
विप्ररूपेण त्वरितं मायया निजया हरिः । जगाम शङ्खचूडस्य रूपेण तुलसीगृहम् ॥ ५ ॥
दुन्दुभिं वादयामास तुलसीद्वारसन्निधौ । जयशब्दं च तत्रैव बोधयामास सुन्दरीम् ॥ ६ ॥
तच्छ्रुत्वा चैव सा साध्वी परमानन्दसंयुता । राजमार्गं गवाक्षेण ददर्श परमादरात् ॥ ७ ॥
ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा कारयामास मङ्गलम् । द्रुतं चकार शृङ्गारं ज्ञात्वाऽऽयातं निजं पतिम् ॥ ८ ॥
अवरुह्य रथाद्विष्णुस्तद्देव्या भवनं ययौ । शङ्खचूडस्वरूपः स मायावी देवकार्यकृत् ॥ ९ ॥
दृष्ट्वा तं च पुरः प्राप्तं स्वकान्तं सा मुदान्विता । तत्पादौ क्षालयामास ननाम च रुरोद च ॥१०॥
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास मङ्गलम् । ताम्बूलं च ददौ तस्मै कर्पूरादिसुवासितम् ॥११॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवनं सबभूव ह । रणे गतं च प्राणेशं पश्यन्त्याश्च पुनर्गृहे ॥१२॥
इत्युक्त्वा स कटाक्षं सा निरीक्ष्य सस्मितं मुदा । पप्रच्छ रणवृत्तान्तं कान्तं मधुरया गिरा ॥१३॥

व्यास बोले—हे मुने ! भगवान् नारायण ने किस उपाय से तुलसी से सम्भोग किया ? वह आप मुझसे कहिए ? ॥ १ ॥

सनत्कुमार बोले—सज्जनों के रक्षक भगवान् विष्णु ने देवताओं के कार्य के लिए शङ्खचूड का रूप धारण कर तुलसी के साथ रमण किया ॥ २ ॥ हे व्यास ! जगन्माता पार्वती एवं भगवान् सदाशिव की आज्ञा का पालन करनेवाले विष्णु के आनन्ददायी चरित्र को सुनठे ॥ ३ ॥ युद्ध में आकाशवाणी को सुनकर शिव जी की आज्ञा से विष्णु ने ब्राह्मण का रूप धारणकर शङ्खचूड से कवच ग्रहण कर लिया ॥४॥ फिर अपनी माया से शङ्खचूड का रूप धारण करके तुलसी के घर गये ॥ ५ ॥ उन्होंने तुलसी के द्वार पर जाते ही दुन्दुभी बजायी और जय शब्द का उच्चारण कर तुलसी को विजय की सूचना दी ॥ ६ ॥ यह सुनकर तुलसी बहुत प्रसन्न हुई और झरोखों से राजमार्ग की ओर देखने लगी ॥ ७ ॥ उसने ब्राह्मणों को बहुत सा धन दिया और नाना प्रकार के (कदली, पूर्णघट) मङ्गलाचार कराया । तदनन्तर पति को आया हुआ जानकर अपना शृङ्गार भी किया ॥ ८ ॥

देवता का कार्य सम्पादन करनेवाले विष्णु ने माया से शङ्खचूड का रूप धारण कर तुलसी के मन्दिर में प्रवेश किया ॥ ९ ॥ अपने स्वामी को आया देखकर तुलसी बहुत प्रसन्न हुई फिर उसने उनका चरण प्रक्षालन कर प्रणाम किया, पश्चात् रोने लगी ॥१०॥ उसने रत्न के सिंहासन पर बैठाकर मङ्गलाचार कराया और कपूर सुवासित ताम्बूल प्रदान किया ॥११॥ और कहने लगी—आज मेरा जन्म एवं जीवन दोनों सफल हो गया, जो युद्ध से लौटे हुए अपने स्वामी के दर्शन को प्राप्त कर रही हूँ ॥१२॥ इतना कहकर वह कटाक्ष सहित अपने स्वामी की ओर हँसकर देखती हुई युद्ध का वृत्तान्त पूछने लगी ॥१३॥

तुलस्योवाच

असङ्ख्यविश्वसंहर्ता स देवप्रवरः प्रभुः । यस्याज्ञावर्त्तिनो देवा विष्णुब्रह्मादयः सदा ॥१४॥
त्रिदेवजनकः सोऽन्न त्रिगुणात्मा च निर्गुणः । भक्तेच्छया च सगुणो हरिब्रह्मप्रवर्तकः ॥१५॥
कुबेरस्य प्रार्थनया गुणरूपधरो हरः । कैलासवासी गणपः परब्रह्म सतां गतिः ॥१६॥
यस्यैकपलमात्रेण कोट्रिब्रह्माण्डसंक्षयः । विष्णुब्रह्मादयोऽतीता बहवः क्षणमात्रतः ॥१७॥
कर्तुं सार्द्धं च तेनैव समरं त्वं गतः प्रभो ! । कथं बभूव सङ्ग्रामस्तेन देवसहायिना ॥१८॥
कुशली त्वमिहायातस्तं जित्वा परमेश्वरम् । कथं बभूव विजयस्तव ब्रूहि तदेव मे ॥१९॥
श्रुत्वेत्थं तुलसीवाक्यं स विहस्य रमापतिः । शङ्खचूडरूपधरस्तामुवाचाऽमृतं वचः ॥२०॥

भगवानुवाच

यदाहं रणभूमौ च जगाम समरप्रियः । कोलाहलो महान् जातः प्रवृत्तोऽभून्महारणः ॥२१॥
देवदानवयोर्युद्धं सम्बभूव जयैषिणोः । दैत्याः पराजितास्तत्र निर्जरैर्बलगर्वितैः ॥२२॥
तदाऽहं समरं तत्राकार्षं देवैर्बलोत्कटैः । पराजिताश्च ते देवाः शङ्करं शरणं ययुः ॥२३॥
रुद्रोऽपि तत्सहायार्थमाजगाम रणं प्रति । तेनाऽहं वै चिरं कालमयौत्संबलदर्पितः ॥२४॥
आवयोः समरः कान्ते पूर्णमब्दं बभूव ह । नाशो बभूव सर्वेषामसुराणां च कामिनि ॥२५॥
प्रीतिं च कारयामास ब्रह्मा च स्वयमावयोः । देवानामधिकाराश्च प्रदत्ता ब्रह्मशासनात् ॥२६॥
मयाऽऽगतं स्वभवनं शिवलोकं शिवो गतः । सर्वस्वास्थ्यमतीवाप दूरीभूतो ह्युपद्रवः ॥२७॥

तुलसी बोली—हे प्रभो ! अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड के संहार करने वाले, देवाधिदेव शङ्कर, जिनकी आज्ञा में ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि सभी देव निवास करते हैं ॥ १४ ॥ जो तीनों देवताओं को उत्पन्न करने वाले, त्रिगुणात्मा, निर्गुण तथा भक्तों की इच्छा से सगुणरूप धारण करने वाले, ब्रह्मा एवं विष्णु के भी प्रेरक हैं ॥ १५ ॥ जो परब्रह्म हो कर भी कुबेर की प्रार्थना से सगुणरूप धारण कर कैलास पर गणों के साथ निवास करते हैं ॥ १६ ॥ तथा जिनके एक पल मात्र में करोड़ों ब्रह्माण्डों का एवं असंख्य विष्णु एवं ब्रह्मा का संहार हो जाता है ॥ १७ ॥ आप उन्हीं के साथ युद्ध करने गये थे, आपने उन देवसहायक सदाशिव के साथ किस प्रकार संग्राम किया ॥ १८ ॥ मुझे आश्चर्य है कि, आप उन परमेश्वर को जीतकर सकुशल लौट आये, अतः हे प्रभो ! आप हमें बताइए कि आपकी विजय किस प्रकार हुई ? ॥१९॥ तुलसी के इस प्रकार वचन सुनकर, रमापति भगवान् शंखचूड का रूप धारण कर उससे इस प्रकार के अमृतमय वचन बोले—॥ २० ॥

शंखचूड रूपधारी श्रीभगवान् बोले—प्रिये ! जब मैं समरभूमि में युद्ध के लिए गया, उस समय महान् कोलाहल होने लगा, फिर महा भयङ्कर युद्ध प्रारम्भ हुआ ॥ २१ ॥ देवता तथा दानव दोनों ही विजय की इच्छा से लड़ने लगे, जिसमें बल से दर्पित देवताओं ने दैत्यों पर विजय प्राप्त की ॥२२॥ तदनन्तर मैंने स्वयं उन बलवान् देवताओं के साथ युद्ध करना प्रारम्भ किया और वे लोग हार कर शङ्कर की शरण गये ॥२३॥ रुद्र उनकी सहायता के लिए युद्धभूमि में उतर पड़े। मैंने भी अपने बल के घमण्ड से उनके साथ बहुत काल तक युद्ध किया ॥ २४ ॥ हे प्रिये ! इस प्रकार हम दोनों का युद्ध वर्ष पर्यन्त होता रहा, जिसमें हे कामिनि ! सभी असुर विनष्ट हो गये ॥ २५ ॥ तब ब्रह्मा ने स्वयं आकर हम दोनों में प्रीति करा दी और मैंने उनके कहने से देवताओं का सारा अधिकार उन्हें सौंप दिया ॥ २६ ॥ इस प्रकार मैं अपने घर लौट आया और शिवजी शिवलोक को चले गये। इस प्रकार सारा उपद्रव शान्त हो गया और सब लोग शान्ति से रहने लगे ॥ २७ ॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा जगतां नाथः शयनं च चकार ह । रेमे रमापतिस्तत्र रमया स तया मुदा ॥२८॥
सा साध्वी सुखसम्भावाकर्षणस्य व्यतिक्रमात् । सर्वं वितर्कयामास कस्त्वमेवेत्युवाच सा ॥२९॥

तुलस्युवाच

को वा त्वं वद मामाशु भुक्ताऽहं मायया त्वया । दूरीकृतं यत्सतीत्वमथ त्वां वै शपाम्यहम् ॥३०॥

सनत्कुमार उवाच

तुलसीवचनं श्रुत्वा हरिः शापभयेन च । दधार लीलया ब्रह्मन्! स्वमूर्तिं सुमनोहराम् ॥३१॥
तद् दृष्ट्वा तुलसीरूपं ज्ञात्वा विष्णुं तु चिह्नतः । पातिव्रत्यपरित्यागात् क्रुद्धा सा तमुवाच ह ॥३२॥

तुलस्युवाच

हे विष्णो! ते दया नास्ति पाषाणसदृशं मनः । पतिधर्मस्य भङ्गेन मम स्वामी हतः खलु ॥३३॥
पाषाणसदृशस्त्वं च दयाहीनो यतः खलः । तस्मात् पाषाणरूपस्त्वं मच्छापेन भवाऽधुना ॥३४॥
ये वदन्ति दयासिन्धुं त्वां भ्रान्तास्ते न संशयः । भक्तो विनापराधेन परार्थे च कथं हतः ॥३५॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा तुलसी सा वै शङ्खचूडप्रिया सती । भृशं रुरोद शोकार्ता विललाप भृशं मुहुः ॥३६॥
ततस्तां रुदतीं दृष्ट्वा स विष्णुः परमेश्वरः । सस्मार शङ्करं देवं येन सम्मोहितं जगत् ॥३७॥
ततः प्रादुर्बभूवाथ शङ्करो भक्तवत्सलः । हरिणा प्रणतश्चासीत् संनुतो विनयेन सः ॥३८॥
शोकाकुलं हरिं दृष्ट्वा विलपन्तीं च तत्प्रियाम् । नयेन बोधयामास तं तां कृपणवत्सलाम् ॥३९॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार जगतपति रमानाथ ने तुलसी के साथ शयन किया और परम प्रसन्नता से उसके साथ विहार भी किया ।।२८।। किन्तु उस साध्वी ने रतिकाल में आकर्षण का व्यतिक्रम देख तर्क द्वारा सारी बातें जान ली और बोली, तू कौन है ? ।। २९ ।।

तुलसी बोली—तुम शीघ्र बोलो कौन हो ? तुमने कपट से मेरे साथ संभोग किया और मेरे सतीत्व को नष्ट किया, अतः मैं अभी तुमको शाप देती हूँ ।। ३० ।।

सनत्कुमार जी बोले—हे व्यास ! तुलसी के वचन सुनकर शाप के भय से विष्णु ने अत्यन्त मनोहर मूर्ति धारण कर ली ।। ३१ ।। जब तुलसी ने उस मनोहर रूप को देखा तब श्रीवत्स आदि चिह्नों को देखकर समझ गई कि ये विष्णु हैं, उनसे इस प्रकार का अपना पातिव्रत्य भङ्ग होते देख उसने क्रोध से कहा ।। ३२ ।।

तुलसी बोली—हे विष्णो ! तुममें रञ्चमात्र भी दया नहीं है। जो मेरा पातिव्रत्य भङ्गकर मेरे स्वामी का वध कराया ।। ३३ ।। अतः तुम पाषाण के समान अत्यन्त निर्दयी एवं खल हो, इसलिए मेरे शाप से तुम पाषाण हो जाओ ।। ३४ ।। जो तुम्हें दयासागर के नाम से पुकारते हैं वे निश्चय ही धोखे में पड़े हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं। भला आपने अपराध रहित मेरे पति का, जो तुम्हारा भक्त था उसे तुमने दूसरे के निमित्त इस प्रकार से वध क्यों करवाया ? ।। ३५ ।।

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! इतना कहकर शंखचूड की प्रियपत्नी तुलसी शोक से विह्वल हो रोने लगी और अनेक प्रकार का विलाप करने लगी ।। ३६ ।। उसे इस प्रकार रोती-कलपती देखकर परमेश्वर विष्णु ने सदाशिव का स्मरण किया, जिन्होंने अपनी माया से सारे जगत् को मोहित कर रखा है ।। ३७ ।। विष्णु के स्मरण करते ही भक्तवत्सल शङ्कर वहाँ प्रगट हो गये। तब श्री विष्णु ने बड़े विनय के साथ उन्हें प्रणाम किया ।। ३८ ।। विष्णु को शोकाकुल तथा तुलसी को रोती देख शङ्कर ने नीति से उस दुखिया को समझाया ।। ३९ ।।

शङ्कर उवाच

मा रोदीस्तुलसि ! त्वं हि भुङ्क्ते कर्मफलं जनः । सुखदुःखदो न कोऽप्यस्ति संसारे कर्मसागरे ॥४०॥
प्रस्तुतं श्रृणु निर्दुःखं श्रृणोति सुमना हरिः । द्वयोः सुखकरं यत्तद् ब्रवीमि सुखहेतवे ॥४१॥
तपस्त्वया कृतं भद्रे ! तस्यैव तपसः फलम् । तदन्यथा कथं स्याद्वै जातं त्वयि तथा च तत् ॥४२॥
इदं शरीरं त्यक्त्वा च दिव्यदेहं विधाय च । रमस्व हरिणा नित्यं रमया सदृशी भव ॥४३॥
तवेयं तनुरुत्सृष्टा नदीरूपा भवेदिह । भारते पुण्यरूपा सा गण्डकीति च विश्रुता ॥४४॥
कियत्कालं महादेवि ! देवपूजनसाधने । प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरेण मे ॥४५॥
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले तिष्ठ त्वं हरिसन्निधौ । भव त्वं तुलसीवृक्षो वरा पुष्पेषु सुन्दरी ॥४६॥
वृक्षाधिष्ठातृदेवी त्वं वैकुण्ठे दिव्यरूपिणी । सार्द्धं रहसि हरिणा नित्यं क्रीडां करिष्यसि ॥४७॥
नद्यधिष्ठातृदेवी या भारते बहुपुण्यदा । लवणोदस्य पत्नी सा हर्यंशस्य भविष्यसि ॥४८॥
हरिर्वै शैलरूपी च गण्डकीतीरसन्निधौ । सङ्करिष्यंत्यधिष्ठानं भारते तव शापतः ॥४९॥
तत्र कोटयश्च कीटाश्च तीक्ष्णदंष्ट्रा भयङ्कराः । तच्छित्त्वा कुहरे चक्रं करिष्यन्ति तदीयकम् ॥५०॥
शालग्रामशिला सा हि तद्भेदादतिपुण्यदा । लक्ष्मीनारायणाख्यादिश्चक्रभेदाद् भविष्यति ॥५१॥
शालग्रामशिला विष्णो तुलस्यास्तव सङ्गमः । सदा सादृश्यरूपा या बहुपुण्यविवर्द्धिनी ॥५२॥
तुलसीपत्रविच्छेदं शालग्रामे करोति यः । तस्य जन्मान्तरे भद्रे ! स्त्रीविच्छेदो भविष्यति ॥५३॥
तुलसीपत्रविच्छेदं शङ्खं हित्वा करोति यः । भार्याहीनो भवेत् सोऽपि रोगी स्यात् सप्तजन्मसु ॥५४॥

शिवजी बोले—हे तुलसी ! तू मत रोओ । इस जगत् में सारे प्राणियों को अपने किये का फल भोगना पड़ता है । इस कर्म-सागर संसार में कोई किसी को सुख अथवा दुःख देने वाला नहीं है ॥ ४० ॥ अब तुम उपस्थित हुए इस दुःख को दूर करने का उपाय सुनो एवं विष्णु भी सुनें । मैं तुम दोनों के ही सुख का उपाय बताता हूँ ॥ ४१ ॥

हे भद्रे ! तुमने पूर्वकाल में जो तपस्या की थी, उसी तपस्या का यह फल प्राप्त हुआ है, जो तुम्हें विष्णु प्राप्त हुए हैं । भला वह अन्यथा कैसे हो सकता है ॥ ४२ ॥ अब तुम इस शरीर को त्यागकर दिव्य शरीर धारण करो और महालक्ष्मी के समान रूपवती हो इन विष्णु के साथ विहार करो ॥ ४३ ॥ तुम्हारे इस छोड़े हुए शरीर से एक नदी उत्पन्न होगी, जो भारत में गण्डकी नाम से विख्यात होगी ॥ ४४ ॥ इतना ही नहीं, हे महादेवि ! तुम मेरे वरदान से देवपूजन के साधन के लिए प्रधानभूत तुलसी वृक्ष रूप में उत्पन्न होगी ॥ ४५ ॥ तुम स्वर्ग, मर्त्य एवं पाताल तीनों लोकों में विष्णु के साथ निवास करो और सभी पुष्प वृक्षों में प्रधान बनकर श्रेष्ठ तुलसी वृक्ष के रूप में निवास करो ॥ ४६ ॥ तुम वैकुण्ठ में सभी वृक्षों की अधिष्ठात्री दिव्य रूपधारिणी देवी का रूप धारण कर विष्णु के साथ निवास कर नित्य क्रीड़ा करो ॥ ४७ ॥ और भारत में जो तुम गण्डकी के रूप में रहोगी वहाँ पर भी सभी नदियों की अधिष्ठातृ देवी होकर सभी को अत्यन्त पुण्य प्रदान करोगी तथा विष्णु के अंशभूत क्षार समुद्र की वहाँ पर भी पत्नी बनोगी ॥ ४८ ॥ उसी गण्डकी नदी के किनारे ये विष्णु भी तुम्हारे शाप से पाषाण रूप में स्थित रहेंगे ॥ ४९ ॥ वहाँ पर तीक्ष्ण दाँतवाले कोटि (पत्थर के किनारे) और कीट उस शिला को फोड़कर उसके छिद्र में विष्णु का चिह्न-चक्र का निर्माण करेंगे ॥ ५० ॥ उन कीटों के द्वारा छिद्र की गयी शालग्राम-शिला अत्यन्त पुण्य प्रदान करनेवाली होगी । उस चक्र के चिह्नों से उन शिलाओं के लक्ष्मी नारायण आदि नाम होंगे ॥ ५१ ॥ हे तुलसी ! उस शालग्राम शिला से जो लोग तुलसी वृक्ष का संयोग करायेंगे उन्हें अत्यन्त पुण्य प्राप्त होगा ॥ ५२ ॥ और हे भद्रे ! जो उस शालग्राम-शिला से तुलसी वृक्ष को अलग करेगा उसे जन्मान्तर में स्त्री-वियोग का कष्ट सहन करना पड़ेगा ॥ ५३ ॥ जो बिना शङ्ख के शालग्राम शिला

शालग्रामश्च तुलसी शङ्खं चैकत्र एव हि । यो रक्षति महाज्ञानी स भवेच्छ्रीहरिप्रियः ॥५५॥
त्वं प्रियः शङ्खचूडस्य चैकमन्वन्तरावधि । शङ्खेन सार्द्धं त्वद्भेदः केवलं दुःखदस्तव ॥५६॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा शङ्करस्तत्र माहात्म्यमूचिवांस्तदा । शालग्रामशिलायाश्च तुलस्या बहुपुण्यदम् ॥५७॥
ततश्चाऽन्तर्हितो भूत्वा मोदयित्वा हरिं च ताम् । जगाम स्वालयं शम्भुः शर्मदो हि सदा सताम् ॥५८॥
इति श्रुत्वा वचः शम्भोः प्रसन्ना तु तुलस्यभूत् । तद्देहं च परित्यज्य दिव्यरूपा बभूव ह ॥५९॥
प्रजगाम तया सार्द्धं वैकुण्ठं कमलापतिः । सद्यस्तद्देहजाता च बभूव गण्डकी नदी ॥६०॥
शैलोऽभूदच्युतः सोऽपि तत्तीरे पुण्यदो नृणाम् । कुर्वन्ति तत्र कीटाश्च छिद्रं बहुविधं मुने ! ॥६१॥
जले पतन्ति यास्तत्र शिलास्तास्त्वतिपुण्यदाः । स्थलस्था पिङ्गला ज्ञेयाश्चोपतापाय चैव हि ॥६२॥
इत्येवं कथितं सर्वं तव प्रश्नानुसारतः । चरितं पुण्यदं शम्भोः सर्वकामप्रदं नृणाम् ॥६३॥
आख्यानमिदमाख्यातं विष्णुमाहात्म्यमिश्रितम् । भुक्ति-मुक्तिप्रदं पुण्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥६४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शङ्खचूडवधोपाख्याने तुलसीशापवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

से तुलसी का वियोग करेगा वह सात जन्म पर्यन्त भार्याहीन होकर रोगी रहेगा ॥ ५४ ॥ इस प्रकार हे भद्रे ! जो महाज्ञानी शालग्राम शिला, तुलसी तथा शङ्ख को एक स्थान पर सुरक्षित रखेगा वह भगवान् का अत्यन्त प्यारा होगा ॥ ५५ ॥ और हे विष्णो ! तुम जो शंखचूड के अत्यन्त प्रिय हो, तुम्हारा एक मन्वन्तर पर्यन्त शंखचूड के साथ यह वियोग केवल तुम्हें दुःख देने के लिए ही होगा ॥ ५६ ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! इस प्रकार से श्री शंकर ने शालग्राम शिला तथा तुलसी का बहुत पुण्यदायी माहात्म्य वर्णन किया ॥ ५७ ॥ तुलसी तथा श्री विष्णु को समझाकर सज्जनों के रक्षक श्री शङ्कर जी अन्तर्धान हो गये ॥ ५८ ॥ तदनन्तर शिव जी के वचन सुनकर तुलसी प्रसन्न हो गयी और तत्क्षण अपने उस शरीर को छोड़कर दिव्य देह को प्राप्त हो गयी ॥ ५९ ॥ कमलापति विष्णु भी उसी के साथ वैकुण्ठ चले गये । तुलसी के द्वारा उस परित्यक्त शरीर से गण्डकी नदी की उत्पत्ति हुई ॥ ६० ॥ मनुष्यों के कल्याण करनेवाले भगवान् विष्णु उसी गण्डकी के तट पर पुण्यप्रद शालग्राम शिला हो गये । हे मुने ! उस शालग्राम शिला में कीट अनेक प्रकार के छिद्र करते हैं ॥ ६१ ॥ जो शिला जल में गिर जाती है वह महान् पुण्यदायक है एवं जो स्थल में रहती है उसका नाम पिङ्गला है । जो केवल मनुष्यों को सन्ताप ही प्रदान करती है ॥ ६२ ॥ हे मुने ! मैंने तुम्हारे प्रश्न के अनुसार मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करनेवाला महान् पुण्यदायक यह शिव जी का चरित्र वर्णन किया ॥ ६३ ॥ यह विष्णु-माहात्म्य मिश्रित आख्यान, जो मैंने कहा है वह भुक्ति-मुक्ति तथा पुण्य को देनेवाला है । अब आगे हे व्यास ! बताओ कि तुम्हारी क्या सुनने की इच्छा है ॥ ६४ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड में शङ्खचूडवधोपाख्यान में तुलसीशाप वर्णन नामक इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥

*

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

(पार्वती के पसीने से अन्धक का जन्म, हिरण्याक्ष को शिव द्वारा उसकी प्राप्ति एवं विष्णु द्वारा हिरण्याक्ष का वध)

नारद उवाच

शङ्खचूडवधं श्रुत्वा चरितं शशिमौलिनः । अयं तृप्तोऽस्मि नो त्वत्तोऽमृतं पीत्वा यथा जनः ॥ १ ॥
ब्रह्मन् यच्चरितं तस्य महेशस्य महात्मनः । मायामाश्रित्य सल्लीलां कुर्वतो भक्तमोददाम् ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

जलन्धरवधं श्रुत्वा व्यासः सत्यवतीसुतः । अप्राक्षीदिममेवार्थं ब्रह्मपुत्रं मुनीश्वरम् ॥ ३ ॥
सनत्कुमारः प्रोवाच व्यासं सत्यवतीसुतम् । सुप्रशंस्य महेशस्य चरितं मङ्गलायनम् ॥ ४ ॥

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास ! महेशस्य चरितं मङ्गलायनम् । यथाऽन्धको गाणपत्यं प्राप शम्भोः परात्मनः ॥ ५ ॥
कृत्वा परमसङ्ग्रामं तेन पूर्वं मुनीश्वर ! । प्रसाद्य तं महेशानं सत्त्वभावात् पुनः पुनः ॥ ६ ॥
माहात्म्यमद्भुतं शम्भोः शरणागतरक्षिणः । सुभक्तवत्सलस्यैव नानालीलाविहारिणः ॥ ७ ॥

माहात्म्यमेतद्वृषभध्वजस्य श्रुत्वा मुनिर्गन्धवतीसुतो हि ।
वचो महार्थं प्रणिपत्य भक्त्या ह्युवाच तं ब्रह्मसुतं मुनीन्द्रम् ॥ ८ ॥

व्यास उवाच

को ह्यन्धको वै भगवन् मुनीश ! कस्यान्वये वीर्यवतः पृथिव्याम् ।
जातो महात्मा बलवान् प्रधानः किमात्मकः कस्य सुतोऽन्धकश्च ॥ ९ ॥
एतत्समस्तं सरहस्यमद्य ब्रवीमि मे ब्रह्मसुतप्रसादात् ।
स्कन्दान्मया वै विदितं हि सम्यक् महेशपुत्रादमितावबोधात् ॥१०॥

नारद जी बोले—हे ब्रह्मन् ! मैं शंखचूड के वध से युक्त श्री महादेव के चरित्र को सुनकर उसी प्रकार तृप्त नहीं हो रहा हूँ, जिस प्रकार कोई अमृत पीकर तृप्त नहीं होता ॥ १ ॥ इसलिए माया का आश्रय कर भक्तों को मोद उत्पन्न करनेवाली जिस लीला को भगवान् शङ्कर ने किया, उसे पुनः मुझसे कहिए ॥ २ ॥

ब्रह्मा जी बोले—हे नारद ! जलन्धर का वध सुनने के पश्चात् सत्यवतीपुत्र व्यास ने ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार से भी यही बात पूछी थी। व्यास की प्रशंसा करते हुए सनत्कुमार ने जिस मङ्गलदायक महेश चरित्र को कहा था, उसे सुनो ॥ ३-४ ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! तुम शङ्कर के मङ्गलदायक उस चरित्र को सुनो, जिसमें अन्धक ने भगवान् शङ्कर के गाणपत्य पद को प्राप्त किया ॥ ५ ॥ हे मुनीश्वर ! पहले तो उसने शङ्कर जी से घोर संग्राम किया। तत्पश्चात् सात्त्विक भाव के उत्पन्न होने पर बारम्बार उनकी प्रार्थना कर उन्हें प्रसन्न किया ॥ ६ ॥ शरणागतों की रक्षा करनेवाले, परम भक्तवत्सल तथा नाना प्रकार की लीला करनेवाले उन शङ्कर का माहात्म्य अद्भुत है ॥ ७ ॥ शङ्कर के इस प्रकार के माहात्म्य को सुन सत्यवतीपुत्र व्यास ने उन मुनीश्वर सनत्कुमार को प्रणाम किया, फिर भक्ति-विनम्र हो ब्रह्मपुत्र मुनीश्वर से महान् अर्थपूर्ण वचन बोले ॥ ८ ॥

व्यास जी बोले—हे भगवन् ! हे मुनीश्वर ! यह अन्धक कौन था ? इस पृथ्वी में उसने किसके वंश में जन्म लिया ? वह किस कारण से इतना बलवान् तथा महात्मा हुआ तथा वह किसका पुत्र था ? ॥ ९ ॥ हे भगवन् ब्रह्मपुत्र ! अब आप इन सारे रहस्यों का वर्णन कीजिए। वैसे तो अनन्त ज्ञानसम्पन्न महेशपुत्र

गाणपत्यं कथं प्राप शम्भोः परमतेजसः । सोऽन्धको धन्य एवाति यो बभूव गणेश्वरः ॥११॥

ब्रह्मोवाच

व्यासस्य चैतद्वचनं निशम्य प्रोवाच स ब्रह्मसुतस्तदानीम् ।
महेश्वरोतीः परमाप्तलक्ष्मीः संश्रोतुकामं जनकं शुकस्य ॥१२॥

सनत्कुमार उवाच

पुराऽऽगतो भक्तकृपाकरोऽसौ कैलासतः शैलसुता गणाढ्यः ।
विहर्तुकामः किल काशिकां वै स्वशैलतो निर्जरचक्रवर्ती ॥१३॥

स राजधानीं तु विधाय तस्यां चक्रं परोतीः सुखदां जनानाम् ।
तद्रक्षकं भैरवनामधीरं कृत्वा समं शैलजया हि वह्वीः ॥१४॥

स एकदा मन्दरनामधेयं गतो नगे तद्वरसुप्रभावात् ।
तत्रापि नानागणवीरमुख्यैः शिवासमेतो विजहार भूरि ॥१५॥

पूर्वे दिशो मन्दरशैलसंस्था कपर्दिनश्चण्डपराक्रमस्य ।
चक्रे ततो नेत्रनिमीलनं तु सा पार्वती नर्मयुतं सलीलम् ॥१६॥

प्रवालहेमाब्जधृतप्रभाभ्यां कराम्बुजाभ्यां निमिमील नेत्रे ।
हरस्य नेत्रेषु निमीलितेषु क्षणेन जातः सुमहान्धकारः ॥१७॥

तत्स्पर्शयोगाच्च महेश्वरस्य करौ च तस्याः स्खलितं मदाम्भः ।
शम्भोर्ललाटे क्षणवह्नितप्तो विनिर्गतो भूरिजलस्य बिन्दुः ॥१८॥

गर्भो बभूवाऽथ करालवक्त्रो भयङ्करः क्रोधपरः कृतघ्नः ।
अन्धो विरूपी जटिलश्च कृष्णो नरेतरो वैकृतिकः सुरोमा ॥१९॥

स्कन्द के द्वारा मैं इन बातों को जानता हूँ ॥ १० ॥ महातेजस्वी शङ्कर की कृपा से उसने गाणपत्य पद को किस प्रकार प्राप्त किया । वस्तुतः यह अन्धक महा धन्य है, जो उसे गाणपत्य पद की प्राप्ति हुई ॥ ११ ॥

ब्रह्मा बोले—हे नारद ! व्यास के इस प्रकार के वचन सुनकर ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार महामङ्गलदायक शिव-चरित्र को शुकतात व्यास से कहने लगे ॥ १२ ॥

सनत्कुमार बोले—किसी समय देवसम्राट् भक्तवत्सल भगवान् शङ्कर अपने गणों तथा पार्वती को साथ लेकर कैलास से विहार करने हेतु काशी पधारे ॥ १३ ॥ उन्होंने काशी को अपनी राजधानी बनायी, भैरव को उसका रक्षक नियुक्त किया । पुनः मनुष्यों को आनन्द देनेवाली नाना प्रकार की लीला पार्वती के साथ करने लगे ॥ १४ ॥ किसी समय वरदान देने के कारण वे एक बार अपने गणों के साथ मन्दराचल पर गये और वहाँ पर पार्वती के साथ विहार करने में प्रवृत्त हो गये ॥ १५ ॥ अनन्तर मन्दरस्थ पार्वती ने पूर्व दिशा से नर्मक्रीडा (काम-परिहास) करते हुए लीलापूर्वक चण्डपराक्रम वाले सदाशिव के नेत्र बन्द कर दिये ॥ १६ ॥ मूंगे तथा रक्तोत्पल के समान कान्तिवाले कमल के समान अपनी दोनों भुजाओं से जब पार्वती ने शिव के नेत्र बन्द कर दिये तब संसार में घोर अन्धकार छा गया ॥ १७ ॥ तब सदाशिव के ललाट का स्पर्श करते ही वहाँ पर स्थित अग्नि की उष्णता से पार्वती के हाथों से स्वेद-विन्दु टपकने लगे ॥ १८ ॥

हे व्यास ! वह स्वेद बिन्दु कुछ क्षण के अनन्तर महाभयङ्कर विकराल मुखवाला एक राक्षस के रूप में परिणत हो गया, जो महाक्रोधी, अन्धा, जटाधारी, कृष्ण वर्ण, महाकुरूप, विकृत तथा बहुत रोमयुक्त

गायन् हसन् प्ररुदन्नृत्यमानो विलेलिहानो घनघोरघोषः ।
जातेन तेनाऽद्भुतदर्शनेन गौरीं भवोऽसौ स्मितपूर्वमाह ॥२०॥

महेश उवाच

निमील्य नेत्राणि कृतं च कर्म बिभेषि साऽस्माद् दयिते कथं त्वम् ।
गौरी हरात्तद्वचनं निशम्य विहस्यमाना प्रमुमोच नेत्रे ॥२१॥
जाते प्रकाशे सति घोररूपो जातोऽन्धकाशदपि नेत्रहीनः ।
तादृग्विधं तं च निरीक्ष्य भूतं पप्रच्छ गौरी पुरुषं महेशम् ॥२२॥

गौर्य्युवाच

कोऽयं विरूपो भगवन् हि जातो नावग्रतो घोरभयङ्करश्च ।
वदस्व सत्यं मम किं निमित्तं सृष्टोऽथ वा केन च कस्य पुत्रः ॥२३॥

सनत्कुमार उवाच

श्रुत्वा हरस्तद्वचनं प्रियाया लीलाकरः सृष्टिकृतोऽन्धरूपाम् ।
लीलाकरायास्त्रिजगज्जनन्या विहस्य किञ्चिद्भगवानुवाच ॥२४॥

महेश उवाच

शृण्वम्बिके ह्यद्भुतवृत्तकारे उत्पन्न एषोऽद्भुतचण्डवीर्यः ।
निमीलिते चक्षुषि मे भवत्या स स्वेदजो मेऽन्धकनामधेयः ॥२५॥
त्वं चास्य कर्तास्ययथानुरूपं त्वया ससख्या दयया गणेस्यः ।
स रक्षितव्यस्त्वयि तं हि वैकं विचार्य बुद्धया करणीयमार्ये ॥२६॥

था ॥ १९ ॥ उत्पन्न होते ही वह गाना, हँसना, नाचना, रोना तथा जीभ चाटना प्रारम्भ किया तथा महाघोर शब्द करने लगा । उस विचित्र दर्शन पुरुष को उत्पन्न हुए देख गौरी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा । उन्हें इस प्रकार आश्चर्य युक्त देख शङ्कर जी हँसते हुए कहने लगे ॥ २० ॥

शिव जी बोले—हे प्रिये ! तुमने हमारे नेत्रों को बन्द कर जो कर्म किया है, अब उससे क्यों भयभीत होती हो ? महादेव के वचन सुनकर गौरी ने हँसते हुए अपने हाथों को शिव के नेत्रों से हटा लिया ॥२१॥ तब प्रकाश हो जाने पर वह अंधा राक्षस अन्धकार से भी अधिक घोर रूप हो गया । उसे इस प्रकार के रूप में देखकर गौरी ने महेश्वर से पूछा ॥ २२ ॥

पार्वती बोलीं—हे भगवन् ! हम दोनों के देखते-देखते यह महाघोर, अत्यन्त विकृताकार वह कौन उत्पन्न हो गया है ? आप मुझसे सत्य कहिए । आपने किस कारण से इसकी सृष्टि की है, यह किसका पुत्र है ॥ २३ ॥

सनत्कुमार बोले—लीला करनेवाले अन्धक सृष्टिकर्त्ता भगवान् शङ्कर ने त्रिजगज्जननी प्रिया की बात सुनकर हँसते हुए उनसे कहा ॥ २४ ॥

शिव जी बोले—हे अद्भुत चरित्र करनेवाली, हे चण्डिके ! तुमने जो मेरे नेत्रों का निमीलन किया है, उससे उत्पन्न तुम्हारे स्वेदकण के द्वारा यह अद्भुत महापराक्रमी अन्धक नामवाला राक्षस उत्पन्न हुआ है ॥ २५ ॥ यद्यपि यह राक्षस रूप है, किन्तु तुम्हीं इसकी जन्मदात्री हो, अतः हे आर्ये ! तुम्हीं अपनी सखियों के साथ दयापूर्वक गणों से इसकी रक्षा करो और बुद्धि से विचारकर इसके विषय में जो करना चाहती हो, उसे करो ॥ २६ ॥

सनत्कुमार उवाच

गौरी ततो भृत्यवचो निशम्य कारुण्यभावात् सहिता सखीभिः ।
नानाप्रकारैर्बहुभिर्ह्युपायैश्चकार रक्षां स्वसुतस्य यद्वत् ॥२७॥

कालेऽथ तस्मिञ्शिशिरे प्रयातो हिरण्यनेत्रस्त्वथ पुत्रकामः ।
स्वज्येष्ठबन्धोस्तनयप्रतानं संवीक्ष्य चासीत् प्रियया नियुक्तः ॥२८॥

अरण्यमाश्रित्य तपश्चकाराऽसुरस्तदा कश्यपजः सुतार्थम् ।
काष्ठोपमोऽसौ जितरोषदोषः संदर्शनार्थं तु महेश्वरस्य ॥२९॥

तुष्टः पिनाकी तपसाऽस्य सम्यग् वरप्रदानाय ययौ द्विजेन्द्र ! ।
तत्स्थानमासाद्य वृषध्वजोऽसौ जगाद दैत्यप्रवरं महेशः ॥३०॥

महेश उवाच

हे दैत्यनाथ ! कुरु नेन्द्रियसङ्क्षपातं किमर्थमेतद्व्रतमाश्रितं ते ।
प्रब्रूहि कामं वरदो भवोऽहं यदिच्छसि त्वं सकलं ददामि ॥३१॥

सनत्कुमार उवाच

सरस्यमाकर्ण्य महेशवाक्यं ह्यतिप्रसन्नः कनकाक्षदैत्यः ।
कृताञ्जलिर्नम्रशिरा उवाच स्तुत्या च नत्वा विविधं गिरीशम् ॥३२॥

हिरणयाक्ष उवाच

पुत्रस्तु मे चन्द्रललाट नास्ति सुवीर्यवान् दैत्यकुलानुरूपी ।
तदर्थमेतद् व्रतमास्थितोऽहं तं देहि देवेश ! सुवीर्यवन्तम् ॥३३॥

यस्माच्च मद्भ्रातुरनन्तवीर्याः प्रह्लादपूर्वा अपि पञ्च पुत्राः ।
ममेह नास्तीति गतान्वयोऽहं को मामकं राज्यमिदं बुभूषेत् ॥३४॥

सनत्कुमार बोले—महेश्वर के वचन सुनकर गौरी सखियों के साथ करुणार्द्रचित्त हो अनेक उपायों से हर प्रकार उस बालक की रक्षा करने लगी ॥ २७ ॥ तदनन्तर शिशिरकाल प्राप्त होने पर हिरण्याक्ष अपने बड़े भाई की सन्तति वृद्धि को देख अपनी स्त्री की इच्छा से तपस्या करने के लिए वहाँ पहुँचा ॥ २८ ॥ वह कश्यपपुत्र असुर बन का आश्रय ले काम-क्रोधादि दोषों को जीत कर पुत्रप्राप्ति के निमित्त काष्ठवत् अचल हो शङ्कर के दर्शन की इच्छा करता हुआ तप करने लगा ॥ २९ ॥ हे द्विजेन्द्र ! तब उसकी तपस्या से प्रसन्न हुए शङ्कर वर देने के लिए उस स्थान पर जाकर दैत्यराज से बोले ॥ ३० ॥

शङ्कर बोले—हे दैत्यराज ! तुम अपनी इन्द्रियों को इस प्रकार क्यों सन्तप्त करते हो और किस निमित्त इतनी कठिन तपस्या कर रहे हो । तुम अपना मनोरथ कहो, मैं शङ्कर तुम्हें वर देने के लिए आया हूँ । तुम जो चाहते हो, वह सब तुम्हें दूंगा ॥ ३१ ॥

सनत्कुमार बोले—शिव जी के इस प्रकार सरस वचन सुनकर दैत्येन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हो गया । फिर हाथ जोड़ सिर झुकाकर स्तुति एवं नमस्कार करता हुआ शङ्कर जी से बोला ॥ ३२ ॥

हिरण्याक्ष बोला—हे देवेश ! हे चन्द्रमौले ! मुझे दैत्यवंश के योग्य एवं बलवान् कोई पुत्र नहीं है, इसीलिए मैं इस तपस्या में प्रवृत्त हुआ हूँ । अतः आप मुझे कोई महाबलवान् पुत्र प्रदान कीजिए ॥ ३३ ॥ क्योंकि मेरे भाई के प्रह्लाद आदि पाँच महाबलवान् पुत्र हैं, किन्तु मुझे एक भी पुत्र नहीं है, मैं वंशरहित

राज्यं परस्य स्वबलेन हृत्वा भुङ्क्तेऽथवा स्वं पितुरेव दृष्टम् ।
स प्रोच्यते पुत्र इह त्वमुत्र पुत्री स तेनापि भवेत् पिताऽसौ ॥३५॥
ऊर्ध्वं गतिः पुत्रवतां निरुक्ता मनीषिभिर्धर्मभृतां वरिष्ठैः ।
सर्वाणि भूतानि तदर्थमेवमतः प्रवर्तंते पशून् स्वतेजसः ॥३६॥
निरन्वयस्याथ न सन्ति लोकास्तदर्थमिच्छन्ति जनाः सुरेभ्यः ।
सदा समाराध्य सुराङ्घ्रिपङ्कजं याचन्त इत्थं सुतमेकमेव ॥३७॥

सनत्कुमार उवाच

एतद्भवस्तद्वचनं निशम्य कृपाकरो दैत्यनृपस्य [illegible]ः ।
तवाह दैत्याधिप नास्ति पुत्रस्त्वद्वीर्यजः किन्तु ददामि पुत्रम् ॥३८॥
ममात्मजे त्वन्धकनामधेयं त्वत्तुल्यवीर्यं त्वपराजितं च ।
वृणीष्व पुत्रं सकलं विहाय दुःखं प्रतीच्छस्व सुतं त्वमेव ॥३९॥

सनत्कुमार उवाच

इत्येवमुक्त्वा प्रददौ स तस्मै हिरण्यनेत्राय सुतं प्रसन्नः ।
हरस्तु गौर्या सहितो महात्मा भूतादिनाथस्त्रिपुरारिरुग्रः ॥४०॥
ततो हरात् प्राप्य सुतं स दैत्यः प्रदक्षिणीकृत्य यथाक्रमेण ।
स्तोत्रैरनेकैरभिपूज्य रुद्रं तुष्टः स्वराज्यं गतवान् महात्मा ॥४१॥
ततस्तु पुत्रं गिरिशादवाप्य रसातलं चण्डपराक्रमस्तु ।
इमां धरित्रीमनयत्स्वदेशं दैत्यो विजित्वा त्रिदशानशेषान् ॥४२॥
ततस्तु देवैर्मुनिभिश्च सिद्धैः सर्वात्मकं यज्ञमयं करालम् ।
वाराहमाश्रित्य वपुः प्रधानमाराधितो विष्णुरनन्तवीर्यः ॥४३॥

हूँ, अतः मेरे इस विशाल राज्य का भोग कौन करेगा ? ॥ ३४ ॥ जो पुत्र अपने बाहुबल से दूसरों को जीतकर राज्य का भोग करता है अथवा अपने पिता के द्वारा अर्जित राज्य का उपभोग करता है, वही इस लोक में तथा परलोक में पुत्र कहा जाता है और उसी पुत्र से पिता भी पुत्रवान् होता है ॥ ३५ ॥ वरिष्ठ धर्मज्ञ ऋषियों ने पुत्रवानों की ऊर्ध्वगति कही है, इसीलिए सभी प्राणी ऋतुकाल के उपस्थित होने पर पुत्रोत्पत्ति की कामना करते हैं किं बहुना पशुओं में भी अपने तेज के द्वारा पुत्रकार्य में प्रवृत्ति देखी जाती है ॥ ३६ ॥ पुत्रहीनों को उत्तम लोक नहीं प्राप्त होता इसीलिए लोग देवताओं की आराधना कर उनके चरण-कमलों में एक पुत्र की भी कामना करते हैं ॥ ३७ ॥

सनत्कुमार बोले—कृपालु शङ्कर उस दैत्य के वचन सुन प्रसन्न हो, उससे कहने लगे—हे दैत्याधिप ! यद्यपि तुम्हारे वीर्य से पुत्र उत्पन्न होना नहीं लिखा है, किन्तु मैं तुम्हें पुत्र प्रदान करता हूँ ॥ ३८ ॥ यह अन्धक नामका मेरा पुत्र तुम्हारे ही समान बलवान् है और अजेय है, अतः तुम सब दुःखों को त्याग कर उसी को अपना पुत्र मान लो ॥ ३९ ॥

सनत्कुमार बोले—इतना कहकर भूतनाथ, त्रिपुरारि, उग्र एवं महात्मा शङ्कर ने पार्वती सहित प्रसन्न हो हिरण्याक्ष के लिए अपने पुत्र को प्रदान कर दिया ॥ ४० ॥ इस प्रकार वह दैत्यराज शङ्कर से पुत्र प्राप्त कर प्रदक्षिणा कर तथा अनेक स्तोत्रों से उनकी स्तुति कर अपने राज्य में चला गया ॥ ४१ ॥ प्रचण्ड पराक्रमी वह दैत्यराज, सदाशिव से पुत्र प्राप्त कर सम्पूर्ण देवताओं को जीतकर इस पृथ्वी को अपने देश पाताल में ले जाकर स्थापित किया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर देवताओं, मुनियों एवं सिद्धों ने सर्वात्मक, यज्ञमय,

घोणाप्रहारैर्विविधैर्धरित्रीं विदार्य पातालतलं प्रविश्य ।
तुण्डेन दैत्याञ्शतशो विचूर्ण्य दंष्ट्राभिरग्र्याभिरखण्डिताभिः ॥४४॥
पादप्रहारैरशनिप्रकाशैरुन्मथ्य सैन्यानि निशाचराणाम् ।
मार्तण्डकोटिप्रतिमेन पश्चात् सुदर्शनेनाद्भुतचण्डतेजाः ॥४५॥
हिरण्यनेत्रस्य शिरो ज्वलन्तं चिच्छेद दैत्यांश्च ददाह दुष्टान् ।
ततः प्रहृष्टो दितिजेन्द्रराजस्त्वमन्धकं तत्र स चाभ्यषिञ्चत् ॥४६॥
स्वस्थानमागत्य ततो धरित्रीं दंष्ट्राङ्कुरेणोद्धरतः प्रहृष्टः ।
भूमिं च पातालतलान् महात्मा पुपोष भागं त्वथ पूर्वकं तु ॥४७॥
देवैः समस्तैर्मुनिभिः प्रहृष्टैरभिष्टुतः पद्मभुवा च तेन ।
ययौ स्वलोकं परिरुग्रकायो वाराहरूपस्तु सुकार्यकर्ता ॥४८॥
हिरण्यनेत्रेऽथ हतेऽसुरेशे वराहरूपेण सुरेण देवाः ।
देवाः समस्ता मुनयश्च सर्वे परे च जीवाः सुखिनो बभूवुः ॥४९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे
हिरण्याक्षवधवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

(नृसिंहरूप से हिरण्यकशिपु का वध)

व्यास उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ ! हते तस्मिन् सुरद्रुहि । किमकार्षीत्ततस्तस्य ज्येष्ठभ्राता महासुरः ॥ १ ॥
कुतूहलमिति श्रोतुं ममाऽस्तीह मुनीश्वर ! । तच्छ्रावय कृपां कृत्वा ब्रह्मपुत्र ! नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥

महाविकराल वाराह रूप धारण करने वाले अनन्त वीर्य भगवान् विष्णु का आराधन किया ॥ ४३ ॥ उस आराधना से सन्तुष्ट विष्णु ने अपने घोर तुण्ड प्रहार से पृथ्वी को विदीर्ण कर पाताल में प्रविष्ट हो तुण्ड के आघात से सैकड़ों दैत्यों को विनष्ट करते हुएँ अखण्डित दाढ़ों के अग्रभाग से वज्रकल्प पादि प्रहार से समस्त दैत्यों को नष्ट कर दिया । तत्पश्चात् करोड़ों सूर्यं के समान जाज्वल्यमान अपने चक्रसुदर्शन से महा तेजस्वी उस दैत्यराज का शिर काट दिया और उसी चक्र से दैत्यों को जला भी दिया । हिरण्याक्ष के मर जाने पर दैत्यों ने अन्धक को राज्य पद पर अभिषिक्त किया ॥ ४४-४६ ॥

इस प्रकार विष्णु पातालतल से पृथ्वी का उद्धार कर अपने दंष्ट्राग्र भाग से पृथ्वी को पुनः अपने स्थान पर प्रतिष्ठित कर परम प्रसन्न हो गये, जिससे सभी देवताओं को यज्ञ का भाग प्राप्त होने लगा ॥४७॥ समस्त देवताओं, मुनियों तथा स्वयं ब्रह्मदेव ने उनकी स्तुति की । तदनन्तर उग्रकाय भगवान् वाराह देवताओं का कार्य कर अपने लोक को चले गये ॥ ४८ ॥ वाराह के द्वारा राक्षसराज हिरण्याक्ष के मारे जाने से सभी, देवता, मुनि तथा अन्य सभी जीव बहुत सुखी हो गये ॥ ४९ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड में
हिरण्याक्षवध वर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४२ ॥

*

व्यास जी बोले—हे सर्वज्ञ ! हे सनत्कुमार ! जब देवताओं से द्रोह करने वाला हिरण्याक्ष मार डाला गया, तब उसके जेठे भाई ने क्या किया ? ॥ १ ॥ हे मुनीश्वर ! मुझे इस वृत्तान्त को सुनने के लिए महान् कुतूहल हो रहा है । हे ब्रह्मपुत्र ! मुझे इस चरित्र को सुनाइए, आप को नमस्कार है ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य व्यासस्य स मुनीश्वरः । सनत्कुमार प्रोवाच स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ ३ ॥

सनत्कुमार उवाच

भ्रातर्येवं विनिहते हरिणा क्रोडमूर्तिना । हिरण्यकशिपुर्व्यास पर्यतप्यद्रुषा शुचा ॥ ४ ॥
ततः प्रजानां कदनं विधातुं कदनप्रियान् । निर्दिदेशाऽसुरान् वीरान् हरिवैरप्रियो हि सः ॥ ५ ॥
अथ ते भर्तृसन्देशमादाय शिरसाऽसुराः । देवप्रजानां कदनं विदधुः कदनप्रियाः ॥ ६ ॥
ततो विप्रकृते लोकेऽसुरैस्तैर्दुष्टमानसैः । दिवं देवाः परित्यज्य भुवि चेरुरलक्षिताः ॥ ७ ॥
हिरण्यकशिपुर्भ्रातुः संपरेतस्य दुःखितः । कृत्वा करोदकादीनि तत्कलत्राद्यसान्त्वयत् ॥ ८ ॥
ततः स दैत्यराजेन्द्रो ह्यजेयमजरामरम् । आत्मानमप्रतिद्वन्द्वमेकराज्यं व्यधित्सत ॥ ९ ॥
स तेपे मन्दरद्रोण्यां तपः परमदारुणम् । ऊर्ध्वबाहुर्नभोदृष्टिः पादाङ्गुष्ठाश्रितावनिः ॥१०॥
तस्मिंस्तपस्तप्यमाने देवाः सर्वे बलान्विताः । दैत्यान् सर्वान् विनिर्जित्य स्वानि स्थानानि भेजिरे ॥११॥
तस्य मूर्ध्नः समुद्भूतः सधूमोऽग्निस्तपोमयः । तिर्यगूर्ध्वमधोलोकानतपद्विष्वगीरितः ॥१२॥
तेन तप्ता दिवं त्यक्त्वा ब्रह्मलोकं ययुः सुराः । धात्रे विज्ञापयामासुस्तत्तपोविकृताननाः ॥१३॥
अथ विज्ञापितो देवैर्व्यास ! तैरात्मभूर्विधिः । परीतो भृगुदक्षाद्यैर्ययौ दैत्येश्वराश्रमम् ॥१४॥

प्रताप्यलोकानखिलांस्ततोऽसौ समागतं पद्मभवं ददर्श ।
वरं हि दातुं तमुवाच धाता वरं वृणीष्वेति पितामहोऽपि ॥
निशम्य वाचं मधुरां विधातुर्वचोऽब्रवीदेवमसद्बुद्धिः ॥१५॥

ब्रह्मा जी बोले—व्यास के वचन सुनकर सनत्कुमार शिव के चरण-कमलों का ध्यान करते हुए कहने लगे ॥ ३ ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! वाराह रूपधारी विष्णु ने जब हिरण्याक्ष का वध कर दिया तो उसका भाई हिरण्यकशिपु क्रोध एवं शोक से सन्तप्त हो उठा ॥ ४ ॥ उसने विष्णु से वैर करने के निमित्त प्रजाओं को कष्ट देने के लिए निर्दयी असुरों को आज्ञा दी ॥ ५ ॥ फिर तो वे असुर अपने स्वामी की आज्ञा शिरोधार्य कर प्रजाओं को नाना प्रकार के कष्ट देने लगे ॥ ६ ॥ इस प्रकार जब दुष्ट बुद्धि वाले असुरों ने लोक का उत्पीड़न प्रारम्भ किया तब देवता लोग स्वर्ग छोड़कर अलक्षित रूप से पृथ्वी पर विचरण करने लगे ॥ ७ ॥ इधर हिरण्यकशिपु भी भाई के मर जाने से उसको तिलाञ्जलि प्रदान कर उसके दुःखी कलत्रादि परिवार को सान्त्वना दिया ॥ ८ ॥ और स्वयं अपने को अजर, अमर, अजेय और अप्रतिद्वन्द्वी जानकर एकछत्र अकण्टक राज्य करने लगा ॥ ९ ॥ फिर उसने मन्दराचल की गुफा में पैर के अँगूठे मात्र से पृथ्वी का स्पर्श कर दोनों भुजाओं को ऊपर उठा कर आकाश की ओर एकटक ऊपर की ओर देखते हुए तप करना प्रारम्भ किया ॥ १० ॥

इस प्रकार जब वह असुर तप कर रहा था, तब सभी देवता बलवान् हो दैत्यों को जीत कर अपने-अपने अधिकार दैत्यों से छीन लिये ॥ ११ ॥ इधर तपस्या करते हुए उस हिरण्यकशिपु के शिर से तपोमय धूमसहित ऐसी अग्नि निकलने लगी, जिससे तिरछे, ऊपर-नीचे तथा चारों ओर के लोक जलने लगे ॥ १२ ॥ उसकी तपस्या से घबड़ाये हुए देवगण स्वर्गलोक छोड़कर ब्रह्मलोक में चले गये। और वहाँ जाकर ब्रह्मा जी से सारा वृत्तान्त निवेदन किया ॥ १३ ॥ हे व्यास ! उन सब देवताओं के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर ब्रह्मदेव भृगु, दक्ष आदि महर्षियों को अपने साथ लेकर हिरण्यकशिपु के आश्रम पर गये ॥ १४ ॥ तदनन्तर अपनी तपस्या से सारे लोकों को सन्तप्त कर उस दैत्यराज ने वर देने के लिए आये हुए ब्रह्मदेव को देखा। ब्रह्मदेव ने उससे कहा कि, जो तेरी इच्छा हो वह वर माँग ले। विधाता के इस प्रकार मधुर वचन सुनकर महा बुद्धिमान् हिरण्यकशिपु कहने लगा ॥ १५ ॥

घोणाप्रहारैर्विविधैर्धरित्रीं विदार्य पातालतलं प्रविश्य।
तुण्डेन दैत्यान्शतशो विचूर्ण्य दंष्ट्राभिरग्र्याभिरखण्डिताभिः ॥४४॥
पादप्रहारैरशनिप्रकाशैरुन्मथ्य सैन्यानि निशाचराणाम्।
मार्तण्डकोटिप्रतिमेन पश्चात् सुदर्शनेनाद्भुतचण्डतेजाः ॥४५॥
हिरण्यनेत्रस्य शिरो ज्वलन्तं चिच्छेद दैत्यांश्च ददाह दुष्टान्।
ततः प्रहृष्टो दितिजेन्द्रराजस्त्वमन्धकं तत्र स चाभ्यषिञ्चत् ॥४६॥
स्वस्थानमागत्य ततो धरित्रीं दंष्ट्राङ्कुरेणोद्धरतः प्रहृष्टः।
भूमिं च पातालतलान् महात्मा पुपोष भागं त्वथ पूर्वकं तु ॥४७॥
देवैः समस्तैर्मुनिभिः प्रहृष्टैरभिष्टुतः पद्मभुवा च तेन।
ययौ स्वलोकं परिरुग्रकायो वाराहरूपस्तु सुकार्यकर्ता ॥४८॥
हिरण्यनेत्रेऽथ हतेऽसुरेशे वराहरूपेण सुरेण देवाः।
देवाः समस्ता मुनयश्च सर्वे परे च जीवाः सुखिनो बभूवुः ॥४९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे
हिरण्याक्षवधवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

(नृसिंहरूप से हिरण्यकशिपु का वध)

व्यास उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ ! हते तस्मिन् सुरद्रुहि। किमकार्षीत्ततस्तस्य ज्येष्ठभ्राता महासुरः ॥ १ ॥
कुतूहलमिति श्रोतुं ममाऽस्तीह मुनीश्वर ! । तच्छ्रावय कृपां कृत्वा ब्रह्मपुत्र ! नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥

महाविकराल वाराह रूप धारण करने वाले अनन्त वीर्य भगवान् विष्णु का आराधन किया ॥ ४३ ॥ उस आराधना से सन्तुष्ट विष्णु ने अपने घोर तुण्ड प्रहार से पृथ्वी को विदीर्ण कर पाताल में प्रविष्ट हो तुण्ड के आघात से सैकड़ों दैत्यों को विनष्ट करते हुए अखण्डित दाढ़ों के अग्रभाग से वज्रकल्प पादि प्रहार से समस्त दैत्यों को नष्ट कर दिया। तत्पश्चात् करोड़ों सूर्यों के समान जाज्वल्यमान अपने चक्रसुदर्शन से महा तेजस्वी उस दैत्यराज का शिर काट दिया और उसी चक्र से दैत्यों को जला भी दिया। हिरण्याक्ष के मर जाने पर दैत्यों ने अन्धक को राज्य पद पर अभिषिक्त किया ॥ ४४-४६ ॥

इस प्रकार विष्णु पातालतल से पृथ्वी का उद्धार कर अपने दंष्ट्राग्र भाग से पृथ्वी को पुनः अपने स्थान पर प्रतिष्ठित कर परम प्रसन्न हो गये, जिससे सभी देवताओं को यज्ञ का भाग प्राप्त होने लगा ॥४७॥ समस्त देवताओं, मुनियों तथा स्वयं ब्रह्मदेव ने उनकी स्तुति की। तदनन्तर उग्रकाय भगवान् वाराह देवताओं का कार्य कर अपने लोक को चले गये ॥ ४८ ॥ वाराह के द्वारा राक्षसराज हिरण्याक्ष के मारे जाने से सभी, देवता, मुनि तथा अन्य सभी जीव बहुत सुखी हो गये ॥ ४९ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड में
हिरण्याक्षवध वर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४२ ॥

*

व्यास जी बोले—हे सर्वज्ञ ! हे सनत्कुमार ! जब देवताओं से द्रोह करने वाला हिरण्याक्ष मार डाला गया, तब उसके जेठे भाई ने क्या किया ? ॥ १ ॥ हे मुनीश्वर ! मुझे इस वृत्तान्त को सुनने के लिए महान् कुतूहल हो रहा है। हे ब्रह्मपुत्र ! मुझे इस चरित्र को सुनाइए, आप को नमस्कार है ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य व्यासस्य स मुनीश्वरः । सनत्कुमार प्रोवाच स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ ३ ॥

सनत्कुमार उवाच

भ्रातर्येवं विनिहते हरिणा क्रोडमूर्तिना । हिरण्यकशिपुर्व्यास पर्यतप्यद्रुषा शुचा ॥ ४ ॥
ततः प्रजानां कदनं विधातुं कदनप्रियान् । निर्दिदेशाऽसुरान् वीरान् हरिवैरप्रियो हि सः ॥ ५ ॥
अथ ते भर्तृसन्देशमादाय शिरसाऽसुराः । देवप्रजानां कदनं विदधुः कदनप्रियाः ॥ ६ ॥
ततो विप्रकृते लोकेऽसुरैस्तैर्दुष्टमानसैः । दिवं देवाः परित्यज्य भुवि चेरुरलक्षिताः ॥ ७ ॥
हिरण्यकशिपुर्भ्रातुः संपरेतस्य दुःखितः । कृत्वा करोदकादीनि तत्कलत्राद्यसान्त्वयत् ॥ ८ ॥
ततः स दैत्यराजेन्द्रो ह्यजेयमजरामरम् । आत्मानमप्रतिद्वन्द्वमेकराज्यं व्यधित्सत ॥ ९ ॥
स तेपे मन्दरद्रोण्यां तपः परमदारुणम् । ऊर्ध्वबाहुर्नभोदृष्टिः पादाङ्गुष्ठाश्रितावनिः ॥१०॥
तस्मिंस्तपस्तप्यमाने देवाः सर्वे बलान्विताः । दैत्यान् सर्वान् विनिर्जित्य स्वानि स्थानानि भेजिरे ॥११॥
तस्य मूर्ध्नः समुद्भूतः सधूमोऽग्निस्तपोमयः । तिर्यगूर्ध्वमधोलोकानतपद्विष्वगीरितः ॥१२॥
तेन तप्ता दिवं त्यक्त्वा ब्रह्मलोकं ययुः सुराः । धात्रे विज्ञापयामासुस्तत्तपोविकृताननाः ॥१३॥
अथ विज्ञापितो देवैर्व्यास ! तैरात्मभूर्विधिः । परीतो भृगुदक्षाद्यैर्ययौ दैत्येश्वराश्रमम् ॥१४॥

प्रताप्यलोकानखिलांस्ततोऽसौ समागतं पद्मभवं ददर्श ।
वरं हि दातुं तमुवाच धाता वरं वृणीष्वेति पितामहोऽपि ॥
निशम्य वाचं मधुरां विधातुर्वचोऽब्रवीदेवमरूढबुद्धिः ॥१५॥

ब्रह्मा जी बोले—व्यास के वचन सुनकर सनत्कुमार शिव के चरण-कमलों का ध्यान करते हुए कहने लगे ॥ ३ ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! वाराह रूपधारी विष्णु ने जब हिरण्याक्ष का वध कर दिया तो उसका भाई हिरण्यकशिपु क्रोध एवं शोक से सन्तप्त हो उठा ॥ ४ ॥ उसने विष्णु से वैर करने के निमित्त प्रजाओं को कष्ट देने के लिए निर्दयी असुरों को आज्ञा दी ॥ ५ ॥ फिर तो वे असुर अपने स्वामी की आज्ञा शिरोधार्य कर प्रजाओं को नाना प्रकार के कष्ट देने लगे ॥ ६ ॥ इस प्रकार जब दुष्ट बुद्धि वाले असुरों ने लोक का उत्पीड़न प्रारम्भ किया तब देवता लोग स्वर्ग छोड़कर अलक्षित रूप से पृथ्वी पर विचरण करने लगे ॥ ७ ॥ इधर हिरण्यकशिपु भी भाई के मर जाने से उसको तिलाञ्जलि प्रदान कर उसके दुःखी कलत्रादि परिवार को सान्त्वना दिया ॥ ८ ॥ और स्वयं अपने को अजर, अमर, अजेय और अप्रतिद्वन्द्वी जानकर एकछत्र अकण्टक राज्य करने लगा ॥ ९ ॥ फिर उसने मन्दराचल की गुफा में पैर के अँगूठे मात्र से पृथ्वी का स्पर्श कर दोनों भुजाओं को ऊपर उठा कर आकाश की ओर एकटक ऊपर की ओर देखते हुए तप करना प्रारम्भ किया ॥ १० ॥

इस प्रकार जब वह असुर तप कर रहा था, तब सभी देवता बलवान् हो दैत्यों को जीत कर अपने-अपने अधिकार दैत्यों से छीन लिये ॥ ११ ॥ इधर तपस्या करते हुए उस हिरण्यकशिपु के शिर से तपोमय धूमसहित ऐसी अग्नि निकलने लगी, जिससे तिरछे, ऊपर-नीचे तथा चारों ओर के लोक जलने लगे ॥ १२ ॥ उसकी तपस्या से घबड़ाये हुए देवगण स्वर्गलोक छोड़कर ब्रह्मलोक में चले गये। और वहाँ जाकर ब्रह्मा जी से सारा वृत्तान्त निवेदन किया ॥ १३ ॥ हे व्यास ! उन सब देवताओं के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर ब्रह्मदेव भृगु, दक्ष आदि महर्षियों को अपने साथ लेकर हिरण्यकशिपु के आश्रम पर गये ॥ १४ ॥ तदनन्तर अपनी तपस्या से सारे लोकों को सन्तप्त कर उस दैत्यराज ने वर देने के लिए आये हुए ब्रह्मदेव को देखा। ब्रह्मदेव ने उससे कहा कि, जो तेरी इच्छा हो वह वर माँग ले। विधाता के इस प्रकार मधुर वचन सुनकर महा बुद्धिमान् हिरण्यकशिपु कहने लगा ॥ १५ ॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

मृत्योर्भयं मे भगवन् प्रजेश पितामहाभून्न कदापि देव !।
शस्त्राऽस्त्रपाशाशनि - शुष्कवृक्ष - गिरीन्द्रतोयाग्नि - रिपुप्रहारैः ॥१६॥
देवैश्च दैत्यैर्मुनिभिश्च सिद्धैस्त्वत्सृष्टजीवैर्बहुवाक्यतः किम् ।
स्वर्गे धरण्यां दिवसे निशायां नैवोर्ध्वतो नाप्यधतः प्रजेश ॥१७॥

सनत्कुमार उवाच

तस्यैतदीदृग्वचनं निशम्य दैत्येन्द्र ! तुष्टोऽस्मि लभस्व सर्वम् ।
प्रणम्य विष्णुं मनसा तमाह दयान्वितोऽसाविति पद्मयोनिः ॥१८॥
अलं तपस्ते परिपूर्णकामः समाः सहस्राणि च षण्णवत्यः ।
उत्तिष्ठ राज्यं कुरु दानवानां श्रुत्वा गिरं तत्सुमुखो बभूव ॥१९॥
राज्याभिषिक्तः प्रपितामहेन त्रैलोक्यनाशाय मतिं चकार ।
उत्साद्य धर्मान् सकलान् प्रमत्तो जित्वाहवे सोऽपि सुरान् समस्तान्॥२०॥
ततो भयादिन्द्रमुखाश्च देवाः पितामहाज्ञां समवाप्य सर्वे ।
उपद्रुता दैत्यवरेण जाताः क्षीरोदधिं यत्र हरिस्तु शेते ॥२१॥
आराधयामासुरतीव विष्णुं स्तुत्वा वचोभिः सुखदं हि मत्वा ।
निवेदयामासुरथो प्रसन्नं दुःखं स्वकीयं सकलं हि ते ते ॥२२॥
श्रुत्वा तदीयं सकलं हि दुःखं तुष्टो रमेशः प्रददौ वरांस्तु ।
उत्थाय तस्माच्छयनादुपेन्द्रो निजानुरूपैर्विविधैर्वचोभिः ॥२३॥
आश्वास्य देवानखिलान् मुनीन् वा उवाच वैश्वानरतुल्यतेजाः ।
दैत्यं हनिष्ये प्रसभं सुरेशाः प्रयात धामानि निजानि तुष्टाः ॥२४॥

हिरण्यकशिपु बोला—हे पितामह ! हे विधाता ! शस्त्र, अस्त्र, पाश, वज्र, सूखे वृक्ष, पहाड़, जल, अग्नि आदि के द्वारा शत्रुओं के प्रहार से, देव, दैत्य, मुनि, सिद्ध तथा आप के द्वारा रचित सृष्टि के किसी भी जीव से मेरी मृत्यु न हो, अधिक क्या कहूँ, स्वर्ग में, पृथ्वी में, ऊपर-नीचे आदि स्थानों में तथा रात एवं दिन आदि कालों में भी मेरी मृत्यु न हो ॥ १६-१७ ॥

सनत्कुमार बोले—उस दैत्य के ऐसे वचन सुन ब्रह्मा ने कहा—हे दैत्येन्द्र ! मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ, मैंने तुम्हें सारे वरदान दे दिये । फिर ब्रह्मा उस पर दयार्द्र हो विष्णु का स्मरण करते हुए बोले—॥ १८ ॥ हे दैत्येन्द्र ! अब तपस्या करना छोड़ो, क्योंकि तुम्हारा मनोरथ परिपूर्ण हो गया । उठो, छानबे हजार वर्ष तक दानवों का राज्य करो, इतना सुनते ही वह दैत्यराज प्रसन्न हो उठा ॥ १९ ॥ तदनन्तर स्वयं ब्रह्मदेव ने त्रिलोकी के राज्य पर उसका अभिषेक कर दिया । राज्य पाकर वह त्रिलोकी को नष्ट करने का विचार करने लगा । उसने सारे जगत् के यागादि धर्मों को नष्ट कर दिया और प्रमत्त हो देवताओं को भी जीत कर उन्हें अपने वश में कर लिया ॥ २० ॥ इन्द्रादि सभी देवता भय से व्याकुल हो, पितामह की आज्ञा से क्षीरसागर में, जहाँ विष्णु शयन करते हैं वहाँ गये ॥ २१ ॥ उन्होंने विष्णु को ही अपना रक्षक जान कर अनेक प्रकार के वचनों से विष्णु की स्तुति की और उन्हें प्रसन्न जानकर अपना सारा दुःख निवेदन किया ॥ २२ ॥ स्तुति से प्रसन्न विष्णु ने देवताओं के दुःख का कारण जान उन्हें नाना प्रकार का वरदान दिया और शय्या से स्वयं उठकर अग्नि के समान तेजस्वी उन विष्णु ने अपने अनुरूप नाना प्रकार की वाणियों से उन देवताओं एवं मुनियों को आश्वासन देते हुए बोले—हे देवगणो ! तुमलोग प्रसन्न मन

श्रुत्वा रमेशस्य वचः सुरेशाः शक्रादिकास्ते निखिलाः सुतुष्टाः ।
ययुः स्वधामानि हिरण्यनेत्रानुजं च मत्वा निहतं मुनीश ! ॥२५॥
आश्रित्य रूपं जटिलं करालं दंष्ट्रायुधं तीक्ष्णनखं सुनासम् ।
सैंहं च नारं सुविदारितास्यं मार्तण्डकोटिप्रतिमं सु[illegible] ॥२६॥
युगान्तकालाग्निसमप्रभावं जगन्मयं किं बहुभिर्व[illegible]
अस्ते रवौ सोऽपि हि गच्छतीशो गतोऽसुराणां नगरीं म[illegible] ॥
कृत्वा च युद्धं प्रबलैः स दैत्यैर्हत्वाऽथ तान् दैत्यगणान् गृही[illegible]
बभ्राम तत्राद्भुतविक्रमश्च बभञ्ज तांस्तानसुरान् नृसिं[illegible] ॥२८॥
दृष्टः स दैत्यैरतुलप्रभावस्ते रेमिरे ते हि तथैव सर्वे ।
सिंहं च तं सर्वमयं निरीक्ष्य प्रह्लादनामा दितिजेन्द्रपुत्रः ॥
उवाच राजानमयं मृगेन्द्रो जगन्मयः किं समुपागतश्च ॥२९॥

प्रह्लाद उवाच

एष प्रविष्टो भगवाननन्तो नृसिंहमात्रो नगरं त्वदन्तः ।
निवृत्य युद्धाच्छरणं प्रयाहि पश्यामि सिंहस्य करालमूर्त्तिम् ॥३०॥
यस्मान्न योद्धा भुवनत्रयेऽपि कुरुष्व राज्यं विनमन्मृगेन्द्रम् ।
श्रुत्वा स्वपुत्रस्य वचो दुरात्मा तमाह भीतोऽसि किमत्र पुत्र ! ॥३१॥
उक्त्वेति पुत्रं दितिजाधिनाथो दैत्यर्षभान् वीरवरान् स राजा ।
गृह्णन्तु वै सिंहममुं भवन्तो वीरा विरूपभ्रुकुटीक्षणं तु ॥३२॥
तस्याज्ञया दैत्यवरास्ततस्ते ग्रहीतुकामा विविशुर्मृगेन्द्रम् ।
क्षणेन दग्धाः शलभा इवाग्निं [illegible]पाभिलाषात् प्रविविक्षवो वै ॥३३॥

होकर अपने-अपने धाम को जाओ । मैं उस दैत्येश्वर का अवश्य वध करूँगा ॥ २३-२४ ॥ विष्णु के वचन सुन इन्द्रादि देवता प्रसन्न हो अपने-अपने धाम को चले गये और उस दैत्य को मरा हुआ जाना ॥ २५ ॥

विष्णु ने दैत्य को मारने के लिए महाजटायुक्त, विकराल, तीखे दाँत एवं नखों वाले, सुन्दर नासिका तथा महाविकराल मुखयुक्त नरसिंह का रूप धारण किया, जो करोड़ों सूर्य के समान जाज्वल्यमान था ॥२६॥ अधिक क्या कहें, उन भगवान् नरसिंह का रूप प्रलयकालीन अग्नि के समान उद्दीप्त समस्त जगन्मय था। वे महात्मा सूर्यास्त होने के पश्चात् दैत्येन्द्र की नगरी में गये ॥ २७ ॥ भगवान् नृसिंह ने वहाँ जाकर प्रबल दैत्यों के साथ युद्ध कर उन्हें मार भगाया। इस प्रकार इधर-उधर पैंतरा कर अपने अद्भुत पराक्रम से उन्होंने बहुत से राक्षसों का वध कर दिया ॥ २८ ॥ दैत्यों ने उन अतुल प्रभाववाले नरसिंह को देखकर पुनः युद्ध करना प्रारम्भ किया। हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद ने नृसिंह को देखकर मन में विचार किया, यह सर्वजगन्नियन्ता विष्णु तो नहीं हैं ? ऐसा विचार कर वह बोला— ॥ २९ ॥

प्रह्लाद बोले—हे दैत्येन्द्र ! यह भगवान् अनन्त नृसिंह का रूप धारण कर तुम्हारे नगर में प्रविष्ट हुए हैं, अतः आप उनसे युद्ध का विचार छोड़ उनकी शरण में जाओ। मैं इन्हें विकराल मूर्त्ति नृसिंह के रूप में देख रहा हूँ ॥ ३० ॥ हे दैत्येन्द्र ! इनसे बढ़कर इस जगत् में अन्य योद्धा कोई नहीं है, अतः इनकी प्रार्थना कर तुम राज्य करो। प्रह्लाद की बात सुनकर दुरात्मा हिरण्यकशिपु बोला—हे पुत्र ! क्या तुम डर गये हो ? ॥ ३१ ॥ पुत्र से इतना कहकर उसनें दैत्यों को आज्ञा दी कि हे वीरो ! इस तीक्ष्ण भ्रुकुटीवाले विरूप नृसिंह को पकड़ लो ॥ ३२ ॥ उसकी आज्ञा पाते ही सभी दत्येन्द्र उन नृसिंह को पकड़ने की इच्छा करने

दैत्येषु दग्धेष्वपि दैत्यराजश्चकार युद्धं स मृगाधिपेन ।
शस्त्रैः समग्रैरखिलैस्तथाऽस्त्रैः शक्त्यृष्टिपाशाङ्कुशपावकाद्यैः ॥३४॥

संयुध्यतोरेव तयोर्जगाम ब्राह्मं दिनं व्यास हि शस्त्रपाण्योः ।
प्रवीरयोर्[illegible] गर्जतोः परस्परं क्रोधसुयुक्तचेतसोः ॥३५॥

ततः [illegible] सहसा बहूंश्च कृत्वा भुजाञ्छस्त्रयुतान् निरीक्ष्य ।
नृ[illegible]यौ मृगेन्द्रं संयुध्यमानं सहसा समन्तात् ॥३६॥

ततः [illegible] त्वतिदुःसहं तु शस्त्रैः समस्तैश्च तथाऽखिलास्त्रैः ।
कृत्वा [illegible]दैत्यवरो नृसिंहं क्षयं गतैः शूलधरोऽभ्युपायात् ॥३७॥

ततो गृहीतः स मृगाधिपेन भुजैरनेकैर्गिरिसारवद्भिः ।
निधाय जानौ स भुजान्तरेषु नखाङ्कुरैर्दानवमर्मभिद्भिः ॥३८॥

नखाग्रहृत्पद्ममसृग्विमिश्रमुत्पाद्य जीवाद्विगतः क्षणेन ।
त्यक्तस्तदानीं स तु काष्ठभूतः पुनः पुनश्चूर्णितसर्वगात्रः ॥३९॥

तस्मिन् हते देवरिपौ प्रसन्नः प्रह्लादमामन्त्र्य कृतप्रणामम् ।
राज्येऽभिषिच्याऽद्भुतवीर्यविष्णुस्ततः प्रयातो गतिमप्रतर्क्याम् ॥४०॥

ततोऽतिहृष्टाः सकलाः सुरेशाः प्रणम्य विष्णुं दिशि विप्र तस्याम् ।
ययुः स्वधामानि पितामहाद्याः कृतस्वकार्यं भगवन्तमीड्यम् ॥४१॥

प्रवर्णितं त्वन्धकजन्म रुद्राद्धिरण्यनेत्रस्य मृतिर्वराहात् ।
नृसिंहतस्तत्सहजस्य नाशः प्रह्लादराज्याप्तिरिति प्रसङ्गात् ॥४२॥

लगे, किन्तु उनके समीप जाते ही वे इस प्रकार दग्ध हो गये, जिस प्रकार अग्नि के समीप जाते ही पतङ्ग नष्ट हो जाते हैं ॥ ३३ ॥ उन दैत्यों के नष्ट हो जाने पर स्वयं राक्षसराज हिरण्यकशिपु अस्त्र, शस्त्र, शक्ति, ऋष्टि, पाश, अङ्कुश तथा पावकादिकों से स्वयं संग्राम करने लगा ॥ ३४ ॥

हे व्यास ! इस प्रकार शस्त्र धारण कर गर्जना कर क्रोधपूर्वक युद्ध करते हुए उन दोनों महावीरों को एक ब्राह्म दिन (एक कल्प) समाप्त हो गया। तदनन्तर अनेक भुजाओं को धारण कर युद्ध करते हुए उन नृसिंह को देख वह दैत्य पुनः उनसे सहसा भिड़ गया ॥ ३५-३६ ॥ फिर तो उन दोनों में नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रों से अत्यन्त दुःसह युद्ध होने लगा। इस प्रकार युद्ध करते-करते जब उस दैत्य के समस्त शस्त्रास्त्र क्षीण हो गये तब वह शूल लेकर नृसिंह पर झपट पड़ा ॥ ३७ ॥ नृसिंह ने अपनी पर्वत के समान बलशाली भुजाओं से उसे पकड़ लिया और भुजाओं के मध्य जानु पर उसे रखकर मर्मभेद्री नखाङ्कुरों से उसे विदीर्ण करने लगे ॥ ३८ ॥ जिससे रक्त विमिश्रित उसका हृत्कमल फट गया और वह क्षण मात्र में जीव रहित हो काष्ठ के समान निश्चल हो गया ॥ ३९ ॥

इस प्रकार देवकण्टक उस हिरण्यकशिपु के मर जाने पर अद्भुत वीर्यवाले उन विष्णु ने अत्यन्त विनयी प्रह्लाद को बुलाकर उसे राज्य पर अभिषिक्त किया और स्वयं अलक्षित हो गये ॥ ४० ॥ समस्त पितामहादि देवगण अपना कार्य पूरा देख कृतज्ञतापूर्वक जिधर विष्णु थे, उस दिशा को प्रणाम कर एवं उनकी स्तुति कर अपने-अपने स्थानों को चले गये ॥ ४१ ॥ हे व्यास ! मैंने प्रसङ्गवश तुमसे अन्धक का जन्म, वाराह से हिरण्याक्ष की मृत्यु, नृसिंह से हिरण्यकशिपु का विनाश एवं प्रह्लाद की राज्यप्राप्ति का

शृणु त्विदानीं द्विजवर्य ! मत्तोऽन्धकप्रभावं भवकृत्यलब्धम् ।
हरेण युद्धं खलु तस्य पश्चाद् गणाधिपत्यं गिरिशस्य तस्य ॥४३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे गणाधिपत्य-प्राप्त्यन्धकजन्म-हिरण्यकशिपुवधवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४[illegible]

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

(अन्धक को पितृराज्य-प्राप्ति और पार्वती के निमित्त शिव के [illegible]जना)

सनत्कुमार उवाच

ततो हिरण्याक्षसुतः कदाचित् संश्रावितो नर्मयुतैर्मदान्धैः ।
तैर्भ्रातृभिः सम्प्रयुतो विहारे किमन्धः! राज्येन तवाद्य कार्यम् ॥ १ ॥
हिरण्यनेत्रस्तु बभूव मूढः कलिप्रियं नेत्रविहीनमेव ।
यो लब्धवांस्त्वां विकृतं विरूपं घोरैस्तपोभिर्गिरिशं प्रसाद्य ॥ २ ॥
स त्वं न भागी खलु राज्यकस्य किमन्यजातोऽपि लभेत राज्यम् ।
विचार्यतां तद्भवतैव नूनं वयं तु तद्भागिन एव सत्यम् ॥ ३ ॥

सनत्कुमार उवाच

तेषां तु वाक्यानि निशम्य तानि विचार्य बुद्ध्या स्वयमेव दीनः ।
तान्छान्तयित्वा विविधैर्वचोभिर्गतस्त्वरण्यं निशि निर्जनं तु ॥ ४ ॥
वर्षायुतं तत्र तपश्चचार जजाप जाप्यं विधृतैकपादः ।
आहारहीनो नियमोर्द्ध्वबाहुः कर्त्तुं न शक्यं हि सुराऽसुरैर्यत् ॥ ५ ॥

वर्णन किया ॥ ४२ ॥ अब हे द्विजवर्य ! तुम मुझसे अन्धक का पराक्रम, शिव से युद्ध तथा गिरीश की कृपा से उसके गणाधिपत्य की प्राप्ति का वर्णन करता हूँ, उसे सुनो ॥ ४३ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड में अन्धकजन्म, गणाधिपत्यत्व की प्राप्ति, हिरण्याक्ष वध एवं हिरण्यकशिपुवध वर्णनामक तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४३ ॥

*

सनत्कुमार बोले—किसी समय जब हिरण्याक्षपुत्र अन्धक भाइयों के साथ खेल रहा था, तब क्रीड़ा में मदान्ध हुए उसके भाइयों ने उपहास करते हुए नर्मयुक्त वाणी में उससे कहा—हे अन्धक ! तुम राज्य लेकर क्या करोगे ? ॥ १ ॥ तुम्हारा पिता हिरण्याक्ष निश्चय ही बड़ा मूर्ख था, जो इतनी घोर तपस्या के उपरान्त शिवजी को प्रसन्न कर तुम्हारे जैसा कलहप्रिय, अन्धा, विकृत एवं कुरूप पुत्र प्राप्त किया ॥२॥ अन्धे होने के कारण तुम निश्चय ही राज्य के भागी नहीं हो ? भला कहीं दूसरे से उत्पन्न पुत्र भी राज्य का अधिकारी बन सकता है ? इस बात को तुम्हीं विचारो। तथ्य तो यह है कि राज्याधिकार हमें ही प्राप्त होना चाहिए ॥ ३ ॥

सनत्कुमार बोले—अपने भाइयों की बात सुनकर अन्धक मन में विचार करता हुआ अत्यन्त दीन हो गया। उसने अपने भाइयों को नाना प्रकार के वचनों से सान्त्वना दी और स्वयं रात होते ही अकेले निर्जन वन को चला गया ॥ ४ ॥ वहाँ निराहार रहकर एक पैर से खड़ा हो दोनों भुजा उठाकर देवता एवं राक्षसों से भी सर्वथा अशक्य दस हजार वर्ष पर्यन्त घोर तप एवं मन्त्र का जप करने लगा ॥ ५ ॥

प्रज्वाल्य वह्निं स्म जुहोति गात्रमांसं सरक्तं खलु वर्षमात्रम् ।
तीक्ष्णेन शस्त्रेण निकृत्य देहात् समन्त्रकं प्रत्यहमेव हुत्वा ॥ ६ ॥

स्नाय्वस्थिशेषं कुणपं तदाऽसौ क्षयं गतं शोणितमेव सर्वम् ।
यदा[illegible] दिव[illegible]ांसानि न सन्ति देहं प्रक्षेप्तुकामस्तु हुताशनाय ॥ ७ ॥

[illegible]ष्टस्त्रिदशालयैर्जनैः सुविस्मितैर्भीतियुतैः समस्तैः ।
दीहग्वचनं शीघ्रतरं प्रसादितो बभूव धाता नुतिभिर्नुतो हि ॥ ८ ॥

[illegible]त्वाऽथ पितामहस्तं ह्युवाच तं चाऽद्य वरं वृणीष्व ।
यस्या[illegible]कामस्तव सर्वलोके सुदुर्लभं दानव तं गृहाण ॥ ९ ॥

स पद्मयोनेस्तु वचो निशम्य प्रोवाच दीनः प्रणतस्तु दैत्यः ।
यैर्निष्ठुरैर्मे प्रहृतं तु राज्यं प्रह्लादमुख्या मम सन्तु भृत्याः ॥१०॥

अन्धस्य दिव्यं हि तथाऽस्तु चक्षुरिन्द्रादयो मे करदा भवन्तु ।
मृत्युस्तु माऽभून्मम देव-दैत्य-गन्धर्व-यक्षोरग-मानुषेभ्यः ॥११॥

नारायणाद्वा दितिजेन्द्रशत्रोः सर्वाज्जनात् सर्वमयाच्च शर्वात् ।
श्रुत्वा वचस्तस्य सुदारुणं तत्सुशङ्कितः पद्मभवस्तमाह ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

दैत्येन्द्र सर्वं भविता तदेतद्विनाशहेतुं च गृहाण किञ्चित् ।
यस्मान्न जातो न जनिष्यते वा यो न प्रविष्टो मुखमन्तकस्य ॥१३॥

अत्यन्तदीर्घं खलु जीवितं तु भवादृशाः सत्पुरुषास्त्यजन्तु ।
एतद्वचः सानुनयं निशम्य पितामहात् प्राह पुनः स दैत्यः ॥१४॥

वह अग्नि जलाकर शस्त्र से अपने शरीर का मांस काटकर वर्ष पर्यन्त प्रतिदिन मन्त्र के सहित उस मांस का होम करने लगा ॥ ६ ॥ जब उसके शरीर का सारा रक्त नष्ट हो गया और केवल स्नायु एवं अस्थि मात्र शेष रह गया, तब उसने मांस रहित अपने शरीर को अग्नि में डाल देने का विचार किया ॥ ७ ॥

तदनन्तर देवताओं ने विस्मित एवं भयभीत हो उसकी ओर देखा, फिर उन्होंने ब्रह्मदेव को नमस्कार कर नाना प्रकार के स्तुतियुक्त वचनों से उन्हें प्रसन्न किया ॥ ८ ॥ ब्रह्मा ने उसे तपस्या से विरत करते हुए कहा—हे दानव ! इस लोक में जो सबके लिए अप्राप्य वर है एवं जिसकी प्राप्ति के लिए तुम इतना घोर तप कर रहे हो, उस दुर्लभ वर को मुझसे प्राप्त करो ॥ ९ ॥ ब्रह्मा के वचन सुनकर परम दीन एवं नम्र हुआ वह दैत्य बोला—हे ब्रह्मन् ! जिन निष्ठुर मेरे प्रह्लादादि भाइयों ने मेरा राज्य छीन लिया है, वे हमारे भृत्य होवें ॥१०॥ मुझ अन्धे को नेत्र की प्राप्ति हो जाय एवं इन्द्रादि देवता मेरे वशवर्ती हो मुझे कर प्रदान करें। मेरी मृत्यु देव, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, सर्प, राक्षस, मनुष्य, दैत्यों के शत्रु श्रीनारायण, सभी प्राणी तथा सर्वमय शङ्कर आदि से भी न हो। उसके इस प्रकार के कठिन वचन सुन ब्रह्मदेव शंकित हो उससे बोले ॥ ११-१२ ॥ हे दैत्येन्द्र ! तुम्हारा सारा मनोरथ पूर्ण होगा, किन्तु अपने मृत्यु का कोई-न-कोई कारण अवश्य वरण करो, क्योंकि इस जगत् में कोई न तो ऐसा है, न हुआ है और न होगा, जो काल के मुख में प्रविष्ट न हुआ हो ॥ १३ ॥ अतः आप जैसे सज्जन अमर होने की बात त्याग दें। ब्रह्मा के अनुनय पूर्ण वाक्य को सुन वह दैत्य फिर बोला ॥ १४ ॥

अन्धक उवाच

कालत्रये याश्च भवन्ति नार्यः श्रेष्ठाश्च मध्याश्च तथा कनिष्ठाः ।
तासां च मध्ये खलु रत्नभूता ममापि नित्यं जननीव काचित् ॥१५॥

कायेन वाचा मनसाऽप्यगम्या नारी नृलोकस्य च दुर्लभाय ।
तां कामयानस्य ममास्तु नाशो दैत्येन्द्रभावाद् भगवान् स्वयम् ॥

वाक्यं तदाकर्ण्य स पद्मयोनिः सुविस्मितः शङ्करपादपद्म
सस्मार सम्प्राप्य निदेशमाशु शम्भोस्तु तं प्राह ततोऽन्धकं

ब्रह्मोवाच

यत्कांक्षसे दैत्यवरास्तु ते वै सर्वं भवत्येव वचः सकामम्
उत्तिष्ठ दैत्येन्द्र लभस्व कामं सदैव वीरैस्तु कुरुष्व युद्धम् ॥१८॥

श्रुत्वा तदेतद्वचनं मुनीश ! विधातुराशु प्रणिपत्य भक्त्या ।
लोकेश्वरं हाटकनेत्रपुत्रः स्नाय्वस्थिशेषस्तु तमाह देवम् ॥१९॥

अन्धक उवाच

कथं विभो वैरिबलं प्रविश्य ह्यनेन देहेन करोमि युद्धम् ।
स्नाय्वस्थिशेषं कुरु मांसपुष्टं करेण पुण्येन च मां स्पृशाद्य ॥२०॥

सनत्कुमार उवाच

श्रुत्वा वचस्तस्य स पद्मयोनिः करेण संस्पृश्य च तच्छरीरम् ।
गतः सुरेन्द्रैः सहितः स्वधाम सम्पूज्यमानो मुनिसिद्धसङ्घैः ॥२१॥

संस्पृष्टमात्रः स च दैत्यराजः सम्पूर्णदेहो बलवान् बभूव ।
सञ्जातनेत्रः सुभगो बभूव हृष्टः स्वमेवं नगरं विवेश ॥२२॥

अन्धक बोला—हे ब्रह्मदेव ! तीनों कालों में हुई, होने वाली तथा वर्तमान जितनी भी श्रेष्ठ सुन्दरी तथा युवती स्त्रियाँ हैं, उन सभी में जो सर्वश्रेष्ठ तथा उत्पन्न करने के कारण मेरी माता के समान हो, इतना ही नहीं, "जो तीनों लोकों के लिए मन, वाणी तथा शरीर से सर्वथा अप्राप्य हो, जब मैं दैत्येन्द्रभाव से इस प्रकार की स्त्री की कामना करूँ", तब मुझे मृत्यु प्राप्त हो। पद्मयोनि भगवान् स्वयंभू उसके वचन सुन आश्चर्यचकित हो, शिव के चरण-कमलों का स्मरण कर उनकी आज्ञा से उस अन्धक से बोले- ॥ १५-१७ ॥

ब्रह्मा बोले—हे दैत्यश्रेष्ठ ! तू जो भी अभिलाषा करता है, तुम्हारी वे सभी कामनाएँ पूर्ण होंगी। तू शीघ्र उठ और जाकर वीरों के साथ युद्ध कर ॥ १८ ॥ हे मुनीश्वरो ! ब्रह्माजी के ऐसे वचन सुन स्नायु तथा अस्थिमात्र शेष वह हिरण्याक्षपुत्र अन्धक ब्रह्मदेव को प्रणाम कर पुनः बोला—॥ १९ ॥

अन्धक बोला—हे विभो ! मैं इस निर्बल शरीर से शत्रुओं की सेना में प्रविष्ट हो किस प्रकार युद्ध कर सकता हूँ ? अतः स्नायु तथा अस्थिशेष इस शरीर को स्पर्शकर मुझे शीघ्र ही मांसादि से पुष्ट कर दें ॥ २० ॥

सनत्कुमार बोले—दैत्य के वचन सुन ब्रह्मा ने उसके शरीर का स्पर्श किया। फिर मुनि, सिद्धों से पूजित हो वे इन्द्र के साथ ब्रह्मलोक को चले गये ॥ २१ ॥ ब्रह्मा के स्पर्श मात्र से ही वह दैत्य परिपुष्ट गात्र एवं बलसम्पन्न हो गया। नेत्र प्राप्त होने से महाभाग्यशाली अन्धक प्रसन्नता के साथ अपने नगर में

उत्सृज्य राज्यं सकलं च तस्मै प्रह्लादमुख्यास्त्वथ दानवेन्द्राः ।
तमागतं लब्धवरं च मत्वा भृत्या बभूवुर्वशगास्तु तस्य ॥२३॥
ततोऽन्धकः स्वर्गमगाद् विजेतुं सेनाभियुक्तः सहभृत्यवर्गः ।
विजित्य देवान् प्रधने समस्तान् करप्रदं वज्रधरं चकार ॥२४॥
नाग[illegible]र्णान् वरराक्षसांश्च गन्धर्वयक्षानपि मानुषांस्तु ।
[illegible]ान् समरेषु सर्वांश्चतुष्पदः सिंहमुखान् विजिग्ये ॥२५॥
[illegible]द्धि चराचरं वै वशं चकारात्मनि सन्नियोज्य ।
[illegible]लानि सुदर्शनानि नारीसहस्राणि बहूनि गत्वा ॥२६॥
रस[illegible] चैव तथा धरायां त्रिविष्टपे याः प्रमदाः सुरूपाः ।
ताभिर्युतोऽन्येषु स पर्वतेषु रराम रम्येषु नदीतटेषु ॥२७॥
क्रीडायमानः स तु मध्यवर्ती तासां प्रहर्षादथ दानवेन्द्रः ।
तत्पीतशिष्टानि पिबन् प्रवृत्त्यै दिव्यानि पेयानि सुमानुषाणि ॥२८॥
अन्यानि दिव्यानि तु यद्रसानि फलानि मूलानि सुगन्धवन्ति ।
सम्प्राप्य यानानि सुवाहनानि मयेन सृष्टानि गृहोत्तमानि ॥२९॥
पुष्पा-ऽर्घ-धूपान्न-विलेपनैश्च सुशोभितान्यद्भुतदर्शनैश्च ।
सङ्क्रीडमानस्य गतानि तस्य वर्षायुतानीह तथान्धकस्य ॥३०॥
जानाति किञ्चिन्न शुभं परत्र यदात्मनः सौख्यकरं भवेद्धि ।
सदाऽन्धको दैत्यवरः स मूढो मदान्धबुद्धिः कृतदुष्टसङ्गः ॥३१॥
ततः प्रमत्तस्तु सुतान् प्रधानान् कुतर्कवादैरभिभूय सर्वान् ।
चचार दैत्यैः सहितो महात्मा विनाशयन् वैदिकसर्वधर्मान् ॥३२॥

प्रवेश किया ॥ २२ ॥ तदनन्तर प्रह्लाद आदि सभी दैत्यों ने अन्धक के वरप्राप्ति का समाचार सुन एवं उसे नगर में आया देखकर राज्य छोड़ दिया तथा उसके वशीभूत हो भृत्यवत् रहने लगे ॥ २३ ॥ अन्धक ने अपने भृत्यों एवं सेनाओं के सहित विजय की इच्छा से स्वर्गपर आक्रमण किया । फिर देवताओं को जीतकर इन्द्रादिकों से कर ग्रहण किया ॥ २४ ॥ इतना ही नहीं, उस दैत्य ने नागों, गरुड़ आदि पक्षियों, राक्षसों, गन्धर्वों, यक्षों, मनुष्यों, पर्वतों, वृक्षों एवं सिंहादि समस्त पशुओं को युद्ध में जीतकर सबको अपने वशवर्ती बना लिया ॥ २५ ॥

इस प्रकार उसने सारे चराचर त्रैलोक्य को अपने वश में कर लिया । और पाताल, मृत्युलोक तथा स्वर्ग में जितनी सुन्दरी, सहस्रों ललनाएँ थीं उन्हें प्राप्त कर पर्वतों पर तथा मनोहर नदी-तटों पर उनसे रमण करने लगा ॥ २६-२७ ॥ उनके मध्य में क्रीड़ा करता हुआ वह दैत्येन्द्र स्त्रियों के पीने से बचे हुए दिव्य एवं मानुष पेयों को प्रसन्नता के साथ पीकर, कामरस में प्रवृत्त होता था ॥ २८ ॥ मय ने उसके सम्भोग के लिए नाना प्रकार के दिव्य रस, फल, मूल, सुगन्धित द्रव्य, उत्तम यान (वाहनादि) एवं सर्वोत्तम गृह स्वयं निर्माण कर उसे प्रदान किया ॥ २९ ॥ नाना प्रकार के अद्भुत मनोहर पुष्प, अर्घ्य, धूप, मिष्ठान्न, अङ्गराज आदि से क्रीड़ा करते हुए उस दैत्य की दश हजार वर्ष बीत गये ॥ ३० ॥ इस प्रकार भोग करते-करते उसे परलोक में अपने कल्याण करने वाले पुण्य का ज्ञान न रहा । और वह मूर्ख अहङ्कार से मदान्ध एवं शून्य बुद्धि हो दुष्टों के साथ निवास करने लगा ॥ ३१ ॥ वह इतना प्रसन्न हो गया कि अपने कुतर्कों से समस्त मुख्य पुत्रों को तिरस्कृत कर वैदिक धर्मों का विनाश कर दैत्यगणों के साथ

वेदान् द्विजान् वित्तमदाभिभूतो न मन्यते स्माप्यमरान् गुरूंश्च ।
रेमे तथा दैवगतो हतायुः स्वस्थैरहोभिर्गमयन् वयश्च ॥३३॥
ततः कदाचिद् गतवान् स-सैन्यो वहुप्रयाता पृथिवीतलेऽस्मिन् ।
अनेकसङ्ख्या अपि वर्षकोटचः भ्रहम्मितो मन्दर[illegible] ॥३४॥
स्वर्णोपमां तत्र निरीक्ष्य शोभां बभ्राम सैन्यैः सह मो[illegible] ।
क्रीडार्थमासाद्य च तं गिरीन्द्रं मतिं स वासाय चकार [illegible]॥
शुभं दृढं तत्र पुरं स कृत्वा मुदा स्थितो दैत्यपतिः प्रभ[illegible]
निवेशयामास पुनः क्रमेण अत्यद्भुतं मन्दरशैलस[illegible]३६॥
दुर्योधनो वैघसहस्तिसंज्ञौ तन्मन्त्रिणौ दानवसत्तमस्य ।
ते वै कदाचिद् गिरिसुस्थले हि नारीं सुरूपां ददृशुस्त्रयोऽपि ॥३७॥
ते शीघ्रगा दैत्यवरास्तु हर्षाद् द्रुतं महादैत्यपतिं समेत्य ।
ऊचुर्यथादृष्टमतीव प्रीत्या तथाऽन्धकं वीरवरं हि सर्वे ॥३८॥

मन्त्रिण ऊचुः

गुहान्तरे ध्याननिमीलिताक्षो दैत्येन्द्र कश्चिन्मुनिरत्र दृष्टः ।
रूपान्वितश्चन्द्रकलार्द्धचूडः कटिस्थले बद्धगजेन्द्रकृत्तिः ॥३९॥
नागेन्द्रभोगावृतसर्वगात्रः कपालमालाभरणो जटालः ।
स शूलहस्तः शरतूणधारी महाधनुष्मान् विधृताक्षसूत्रः ॥४०॥
खड्गी त्रिशूली लकुटी कपर्दी चतुर्भुजो गौरतराकृतिर्हि ।
भस्मानुलिप्तो विलसत्सुतेजास्तपस्विवर्योऽद्भुतसर्ववेशः ॥४१॥

विचरने लगा ॥ ३२ ॥ वह धन-प्राप्ति के अहङ्कार से इतना मदान्ध हो गया कि वेदों, ब्राह्मणों, देवताओं
तथा गुरुओं का अपमान करने लगा और दैववश हतायु हो, अपने आयु को क्षीण करने लगा ॥ ३३ ॥ इस
प्रकार इस पृथ्वीतल पर करोड़ों वर्ष निवास करते हुए वह अन्धक एक समय अपनी सेना लेकर मन्दराचल
पर गया ॥ ३४ ॥ और भ्रमण करते हुए स्वर्णोपम वहाँ की भूमि देखकर क्रीड़ा करते हुए मोहवश वहीं
निवास करने का विचार किया ॥ ३५ ॥ उसने अपने पराक्रम से प्रसन्नतापूर्वक मनोहर एवं दृढ़ नगर का
निर्माण कर स्वयं उसके शिखर पर अपने रहने के लिए महा सुन्दर घर बनवाया ॥ ३६ ॥ इस प्रकार
वहीं निवास करते हुए उस दैत्येन्द्र के दुर्योधन एवं वैधस हस्तिसंज्ञक मन्त्रियों ने उस पर्वत शिखर पर एक
परम मनोहर नारी तथा उसके साथ अनेक स्त्रियों को देखा ॥ ३७ ॥ फिर तो शीघ्रगामी उन दैत्यों ने
हर्ष में भरकर उस शूर-वीर दैत्यराज अन्धक के समीप जाकर जैसा देखा था, उसी प्रकार उसके सौन्दर्य
का वर्णन किया ॥ ३८ ॥

मन्त्रियों ने कहा—हे दैत्येन्द्र ! मन्दराचल की इस गुफा में ध्यान लगाये अर्धचन्द्रकला मस्तक पर
धारण किये तथा कटितट में व्याघ्र चर्म लपेटे परम सुन्दर एक मुनि स्थित हैं ॥ ३९ ॥ उनके सारे शरीर
में सर्प लिपटे हुए हैं, वे शिर पर जटा और गले में कपालमाला धारण किये हुए हैं, हाथ में त्रिशूल
और बाण तथा पीठ पर तरकस बाँधें हुए हैं। देखने में वे बहुत बड़े धनुर्धर जैसे प्रतीत हो रहे हैं, वे नगे
तथा अक्षसूत्र पहने हुए हैं। उनके शरीर का वर्ण गौर है, चार भुजाएं हैं तथा कपर्द, लकुट, त्रिशूल एवं
खड्ग धारण किये हैं। उनके शरीर में भस्म का लेप है, वे महा तेजस्वी प्रतीत हो रहे हैं। इस प्रकार उन
श्रेष्ठ तपस्वी का सारा वेष अद्भुत दिखाई पड़ रहा है ॥ ४०-४१ ॥

तस्याविदूरे पुरुषश्च दृष्टः स वानरो घोरमुखः करालः ।
सर्वायुधो रूक्षकरश्च रक्षन् स्थितो जरद्गोवृषभश्च शुक्लः ॥४२॥
तस्योपविष्टस्य तपस्विनोऽपि सुचारुरूपा तरुणी मनोज्ञा ।
नारी शुभा पार्श्वगता हि तस्य दृष्टा कदाचिद्भुवि रत्नभूता ॥४३॥
प्रवाल-मु[illegible]-हेम-रत्न-वस्त्रावृता माल्यशुभोपगूढा ।
सा[illegible] दिव[illegible]त्र दृष्टिमान् स्याद् दृष्टेन चान्येन किमत्र कार्यम् ॥४४॥
मा[illegible]च दिव्यनारी भार्या मुनेः पुण्यवतः प्रिया सा ।
योग्[illegible] भवतश्च सम्यगानाय्य दैत्येन्द्र सुरत्नभोक्तः ॥४५॥

सनत्कुमार उवाच

श्रुत्वेति तेषां वचनानि तानि कामातुरो घूर्णितसर्वगात्रः ।
विसर्जयामास मुनेः सकाशं दुर्योधनादीन् सहसा स दैत्यः ॥४६॥
आसाद्य ते तं मुनिमप्रमेयं बृहद्व्रतं मन्त्रिवरा हि तस्य ।
सुराजनीतिप्रवणा मुनीश ! प्रणम्य तं दैत्यनिदेशमाहुः ॥४७॥

मन्त्रिण ऊचुः

हिरण्यनेत्रस्य सुतो महात्मा दैत्याधिराजोऽन्धकनामधेयः ।
त्रैलोक्यनाथो भवदाज्ञया हि प्रविश्य चेहोपविष्टोऽद्य विहारशाली ॥४८॥
तन्मन्त्रिणो वै वयमङ्गवीरास्तवोपकण्ठं च समागताः स्मः ।
तत्प्रेषितास्त्वां यदुवाच तद्वै शृणुष्व संदत्तमनास्तपस्विन् ! ॥४९॥
त्वं कस्य पुत्रोऽसि किमर्थमत्र सुखोपविष्टो मुनिवर्य धीमन् ! ।
कस्येयमीदृक् तरुणी सुरूपा देया शुभा दैत्यपतेर्मुनीन्द्र ! ॥५०॥

उनसे थोड़ी ही दूर पर वानर के समान महाभयङ्कर मुखवाला एक विकराल पुरुष स्थित है, जो अपने कर्कश हाथों में सम्पूर्ण शस्त्रों को लिये हुए उनकी रक्षा कर रहा है। उसके समीप ही शुक्ल वर्ण का एक वृद्ध बैल बँधा हुआ है ॥ ४२ ॥ हम लोगों ने बैठे हुए उस तपस्वी के सन्निकट स्त्रीरत्नभूता युवती एवं महा कमनीयरूपा एक स्त्री देखी है ॥४३॥ उस स्त्री के शरीर प्रवाल, मुक्ता, मणि, सुवर्ण तथा रत्नों के निर्मित आभूषणों से तथा वस्त्रों से ढंके हुए हैं। वह मनोहर माला से विराजमान है, जिसने उस महा सुन्दरी को देखा है, उसकी दृष्टि सफल है। हे दैत्येन्द्र ! जिसने उसे देख लिया उसे फिर कुछ देखना शेष नहीं रह जाता ॥४४॥ वह दिव्य नारी उन महा पुण्यवान् महर्षि महेश्वर की माननीया एवं प्रिया भार्या है ! आप सुन्दर रत्नों के भोक्ता हैं, अतः उसे अपने घर लाकर भली-भाँति देखने में समर्थ हैं ॥ ४५ ॥

सनत्कुमार बोले—उन मन्त्रियों की इस बात को सुनकर वह दैत्य कामातुर हो उठा। उसके शरीर कामावेश से काँपने लगे। उसने उन दुर्योधनादि मन्त्रियों को उन मुनि के समीप शीघ्र ही भेजा ॥ ४६ ॥ राजनीति में परम प्रवीण उन दुर्योधनादि मन्त्रियों ने महाव्रती एवं तेजस्वी महा मुनि के पास जाकर प्रणाम कर उनसे अपनी स्वामी की आज्ञा इस प्रकार कहने लगे ॥ ४७ ॥

मन्त्रिगणों ने कहा—हिरण्याक्ष के पुत्र, दैत्याधिराज, त्रैलोक्यनाथ महात्मा जिनका नाम अन्धक है और जो शिव जी की आज्ञा से विहार करते हुए इस मन्दर पर बैठे हुए हैं ॥ ४८ ॥ हे तपस्विन् ! हम उनके अङ्गरक्षक तथा मन्त्री हैं, उन्होंने हमें आपके पास भेजा है और जो सन्देश दिया है, उसे ध्यान देकर आप सुनिए ॥ ४९ ॥ हे महा बुद्धिमान्, हे मुनिवर्य ! तुम किसके पुत्र हो ? और किस कारण यहाँ सुखपूर्वक

क्वेदं शरीरं तव भस्मदिग्धं कपालमालाभरणं विरूपम् ।
तूणीर-सत्कार्मुक-बाण-खड्ग-भुशुण्डि-शूलाशनि-तोमराणि ॥५१॥
क्व जाह्नवी पुण्यतमा जटाग्रे क्वायं शशी वा क्कुणपास्थिखण्डम् ।
विषानलो दीर्घमुखः क्व सर्पः क्व सङ्गमः पीनपयोधरायाः ॥५२॥
जरद्गवारोहणमप्रशस्तं क्षमावतस्तस्य न द[...]च ।
सन्ध्याप्रणामः क्वचिदेप धर्मः क्व भोजनं लोकवि[...]३॥
प्रयच्छ नारीं मम सान्त्वपूर्वं स्त्रियाः तपः किं कुरुषे[...]
अयुक्तमेतत्त्वयि नाऽनुरूपं यस्मादहं रत्नपति[...]५४॥
विसृज्य शस्त्राणि मयाऽद्य चोक्तः कुरुष्व पश्चात्तप एव [...] ।
उल्लङ्घ्य मच्छासनमप्रधृष्यं विमोक्ष्यसे सर्वमिदं शरीरम् ॥५५॥
मत्वान्धकं दुष्टमतिं प्रधानो महेश्वरो लौकिकभावशीलः ।
प्रोवाच दैत्यं स्मितपूर्वमेवमाकर्ण्य सर्वं त्वथ दूतवाक्यम् ॥५६॥

शिव उवाच

यद्यस्मि रुद्रस्तव किं मया स्यात् किमर्थमेवं वदसीति मिथ्या ।
श्रृणु प्रभावं मम दैत्यनाथ ! न्याय्यं न वक्तुं वचनं त्वयैवम् ॥५७॥
नाऽहं क्वचित् स्वं पितरं स्मरामि गुहान्तरे घोरमनन्यचीर्णम् ।
एतद्व्रतं पाशुपतं चरामि न मातरं त्वज्ञतमो विरूपः ॥५८॥
अमूलमेतन्मयि तु प्रसिद्धं सुदुस्त्यजं सर्वमिदं ममास्ति ।
भार्या ममेयं तरुणी सुरूपा सर्वंसहा सर्वगतस्य सिद्धिः ॥५९॥

निवास करते हो ? यह महा सुन्दरी तरु[...]सकी भार्या है ? हे मुनीन्द्र ! तुम इसे शीघ्र ही दैत्यराज को समर्पित करो ॥ ५० ॥ भस्म लपेटे हुए, कपालमाला से अलङ्कृत, महा कुरूप, तरकस, धनुष, बाण, खड्ग, भुशुण्डि, त्रिशूल, वज्र, तोमर से युक्त कहाँ तुम्हारा यह शरीर ? कहाँ जटाओं पर यह गङ्गा तथा शिर पर परम मनोहर शशी, कहाँ मृतकास्थि खण्ड और विष वमन करनेवाले दीर्घमुख सर्प और सुपुष्ट स्तनवाली इस मनोहर स्त्री के साथ संगम कहाँ ॥ ५१-५२ ॥ अमङ्गल बूढ़े बैल की सवारी कहाँ, क्षमावान् तपस्वियों के लिए तो स्त्री का दर्शन भी निषिद्ध है, तपस्वियों का तो सन्ध्या एवं प्रणाम धर्म है, स्त्री का संसर्ग तो उनके लिए सर्वथा लोक-विरुद्ध है ॥ ५३ ॥ अतः हे मूर्ख तपस्वी ! तुम इस स्त्री को शान्तिपूर्वक मुझे शीघ्र ही समर्पित करो, भला कहीं स्त्री के साथ भी तपस्या सम्भव है ? तुममें यह सारी बातें अयोग्य एवं विरुद्ध हैं, मैं तो तीनों लोकों का राजा हूँ ॥ ५४ ॥ अतः तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि पहले शस्त्रों का त्याग करो, पीछे शुद्ध तप करो। यदि तुमने मेरी इस आज्ञा का उल्लङ्घन किया तो याद रखो, तुम्हें अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा ॥ ५५ ॥ तब लौकिक भाव का आश्रय कर जगत्-प्रधान शिव जी ने उस दूत के वचन सुन अन्धक को महादुष्ट जान हँसते हुए उससे कहा—॥ ५६ ॥

शिव जी बोले—हे दूत ! जब मैं रुद्र (सबको रुलानेवाला) हूँ, तब वह दैत्य मेरा क्या कर सकता है। तुम इस प्रकार की मिथ्या वाणी क्यों बोलते हो ? तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं, तू मेरे प्रभाव को सुन ॥ ५७ ॥ मुझे अपने माता, पिता का स्मरण नहीं आता, मैं इस गुफा में बैठकर अन्यों के लिए दुर्लभ इस घोर पाशुपत व्रत का आचरण करता हूँ और महामूढ़ की तरह निवास करता हूँ ॥ ५८ ॥ मेरे विषय में ऐसी प्रसिद्धि है कि मेरे माता-पिता कोई नहीं हैं, यह सारा दुस्त्यज जगत् मुझसे ही उत्पन्न हुआ है और

एतर्हि यद्यद्युचितं तवाऽस्ति गृहाण तद्धै खलु राक्षस ! त्वम् ।
एतावदुक्त्वा विरराम शम्भुस्तपस्विवेषः पुरतस्तु तेषाम् ॥६०॥

सनत्कुमार उवाच

गम्भीरमेत[illegible]शम्य ते दानवास्तं प्रणिपत्य मूर्ध्ना ।
जग्मुस्त[illegible] दिव[illegible]स्य सुतुं त्रैलोक्यनाशाय कृतप्रतिज्ञम् ॥६१॥
बभाषि[illegible]तं प्रमत्तं प्रणम्य राजानमदीनसत्त्वाः ।
ते त[illegible]द्वचनं जयशब्दपूर्वं रुद्रेण यत्तत्स्मितपूर्वमुक्तम् ॥६२॥

मन्त्रिण ऊचुः

निशाचरश्चञ्चलशौर्यधैर्यः क दानवः कृपणः सत्त्वहीनः ।
क्रूरः कृतघ्नश्च सदैव पापी क दानवः सूर्यसुताद् बिभेति ॥६३॥
राजन्नयुक्तोऽखिलदैत्यनाथस्तपस्विना तन्मुनिना विहस्य ।
मत्वा स्वबुद्ध्या तृणवत् त्रिलोकं महौजसा वीरवरेण नूनम् ॥६४॥
काऽहं च शस्त्राणि च दारुणानि मृत्योश्च सन्त्रासकरं क युद्धम् ।
क वीरको वानरवक्त्रतुल्यो निशाचरो जरसा जर्जराङ्गः ॥६५॥
कायं स्वरूपः क च मन्दभाग्यो बलं त्वदीयं क च वीरुधो वा ।
शक्तोऽपि चेत्त्वं प्रयतस्व युद्धं कर्तुं तदा ह्येहि कुरुष्व किञ्चित् ॥६६॥
वज्राशनेस्तुल्यमिहाऽस्ति शस्त्रं भवादृशां नाशकरं च घोरम् ।
क ते शरीरं मृदुपद्मतुल्यं विचार्य चैवं कुरु रोचते यत् ॥६७॥

स[illegible] व्यापक मेरी यह लावण्ययुक्ता तरुणी भार्या है, जो सब कुछ सहनेवाली है ॥ ५९ ॥ हे राक्षस ! इस समय यदि तुम इस कार्य को उचित समझते हो तो इसे ग्रहण कर लो। उस राक्षस से इतना कहने के उपरान्त तपस्वी वेषधारी सदाशिव ने मौन धारण कर लिया ॥ ६० ॥

सनत्कुमार बोले—शिव जी के इस प्रकार गम्भीर वचन सुन दानवों ने उन्हें शिर से प्रणाम किया। तदनन्तर त्रैलोक्य विनाश के लिए प्रतिज्ञा करनेवाले हिरण्याक्ष के पुत्र अन्धक दैत्य के समीप गये ॥ ६१ ॥ और दैन्य रहित हो जय-जयकार करते हुए उस मदोन्मत्त अन्धक को प्रणाम कर शिव जी ने हँसकर जो बात कही थी वह सब कहने लगे ॥ ६२ ॥

मन्त्रियों ने कहा—चञ्चल, पराक्रमी, धैर्यवान्, निशाचर कहाँ, कृपण, सत्त्वहीन, क्रूर, कृतघ्न तथा सदा पाप में निरत दानव कहाँ ? उसे काल का भय किस प्रकार हो सकता है ? हे राजन् ! मैंने तुम्हारी कही हुई सारी बात उस तपस्वी से जब कही तब त्रिलोक को तृणवत् समझते हुए उस मुनि ने दैत्यों के स्वामी आपसे कहा—कहाँ तो मैं और कहाँ शस्त्र, मृत्यु को त्रास उत्पन्न करनेवाला युद्ध कहाँ ? वानर के समान मुखवाला यह मेरा वीरक गणेश्वर कहाँ और ये निशाचर कहाँ, जरा से जीर्ण यह मेरा शरीर कहाँ, तुम्हारी महा बलवान् सेना कहाँ और तृण के समान मन्दभाग्य मैं कहाँ ? हे दैत्येन्द्र ! इस प्रकार तुम सभी प्रकार से युद्ध करने में समर्थ हो अतः शीघ्र आकर कुछ कर दिखाओ ॥ ६३-६६ ॥ यद्यपि आपके पास वज्र के समान महा भयङ्कर अस्त्र है, जिससे सारे जगत् का विनाश हो सकता है किन्तु तुम्हारा शरीर कमल के समान अत्यन्त कोमल है, अतः जैसी आपकी रुचि हो वैसा करो ॥ ६७ ॥

मन्त्रिण ऊचुः

इत्येवमादीनि वचांसि भद्रं तपस्विनोक्तानि च दानवेश ! ।
युक्तं न ते तेन सहात्र युद्धं त्वामाह राजन् ! स्मयमान एव ॥६८॥
विवस्तुशून्यैर्बहुभिः प्रलापैरस्माभिरुक्तैर्यदि [illegible] त्वम् ।
तपोऽभियुक्तेन तपस्विना वै स्मर्तासि पश्चान्[illegible]यमेतत् ॥६९॥

सनत्कुमार उवाच

ततः स तेषां वचनं निशम्य जज्वाल रोषेण [illegible]ः ।
आज्यावसिक्तस्त्विव कृष्णवर्त्मा सत्यं हितं तत्कुटि[illegible]म् ॥७०॥
गृहीतखड्गो वरदानमत्तः प्रचण्डवातानुकृतिं [illegible] कुर्वन् ।
गन्तुं च तत्र स्मरबाणविद्धः समुद्यतोऽभूद् विपरीतदैवः ॥७१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे अन्धकगाणपत्यलाभोपाख्याने दूतसंवादो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

(शिव-सेना के साथ अन्धक का भयङ्कर युद्ध)

सनत्कुमार उवाच

गतस्ततो मत्तगजेन्द्रगामी पीत्वा सुरां घूर्णितलोचनश्च ।
महानुभावो बहुसैन्ययुक्तः प्रचण्डवीरो वरवीरयायी ॥ १ ॥
ददर्श दैत्यः स्मरबाणविद्धो गुहां ततो वीरकरुद्धमार्गाम् ।
स्निग्धं यथा वीक्ष्य पतङ्गसंज्ञः दशाप्रदीपं च क्रमिबुपेत्य ॥ २ ॥

पुनः मन्त्रियों ने कहा—हे दैत्यपते ! इस प्रकार के वचन उस तपस्वी ने हँसकर कहा है । हे राजन् ! मेरा विचार है कि आप उस तपस्वी से युद्ध न करें ॥ ६८ ॥ यदि आप हमलोगों के द्वारा कहे गये तथा उस तपस्वी के द्वारा कहे गये वचनों को निरर्थक एवं प्रलाप समझते हैं तो जो इच्छा हो करें । किन्तु मुनि के द्वारा कहे गये वचनों को आप बाद में याद करेंगे ॥ ६९ ॥

सनत्कुमार बोले—वह मूर्ख अन्धक अपने मन्त्रियों की बात सुनकर क्रोध से आग बबूला हो गया, उन मन्त्रियों के सत्य एवं हितकारी वचन भी उसे कुटिल तथा तीक्ष्ण लगे, जिस प्रकार आग में घी देने पर वह प्रचण्ड हो जाता है ॥ ७० ॥ तदनन्तर भाग्य के प्रतिकूल होने एवं वरदान से प्रमत्त वह दैत्य कामातुर हो खड्ग लेकर पवन के समान वेग से वहाँ जाने को उद्यत हो गया ॥ ७१ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता में पञ्चम युद्धखण्ड का अन्धक-गाणपत्यलाभोपाख्यान में दूत-संवाद नामक चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४४ ॥

*

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! तदनन्तर मदिरा पान कर नेत्रों को घुमाता हुआ मदमत्त गज के समान गतिवाला वह श्रेष्ठ दैत्यों से घिरा हुआ प्रतापी दैत्य अपनी सेना लेकर उस स्थान से चल पड़ा ॥ १ ॥ काम के बाण से बिंधे हुए उस दैत्य ने उस गुफा को देखा जिसे रोककर वीरक खड़ा था, फिर तो जिस प्रकार तैलपूर्ण जलते हुए दीपक को प्राप्त कर पतङ्ग विनष्ट हो जाता है, उसी प्रकार अपने विनाश के

तथा प्रदर्श्याशु पुनः पुनश्च सम्पीड्यमानोऽपि स वीरकेण ।
बभूव कामाग्निसुदग्धदेहोऽन्धको महादैत्यपतिः स मूढः ॥ ३ ॥
पाषाण-वृक्षाशनि-तोयवह्नि-भुजङ्ग-शस्त्रास्त्र-विभीषिकाभिः ।
सम्पीडितोऽसौ न पुनः प्रपीड्यः पृष्टश्च कस्त्वं समुपागतोऽसि ॥ ४ ॥
निशम्य तद्गां ... दिव... स तस्मै चकार युद्धं स तु वीरकेण ।
मुहूर्तमाश्चर्य... सङ्ख्ये जितो वीरतरेण दैत्यः ॥ ५ ॥
ततस्तु स... विहाय क्षुत्क्षामकण्ठस्तृषितो गतोऽभूत् ।
चूर्णीकृते ... च खिन्ने पलायमानो गतविस्मयः सः ॥ ६ ॥
चक्रुस्तदाजि ... वीरकेण प्रह्लादमुख्या दितिजप्रधानाः ।
लज्जाङ्कुशाकृष्टधियो बभूवुः सुदारुणाः शस्त्रशतैरनेकैः ॥ ७ ॥
विरोचनस्तत्र चकार युद्धं बलिश्च बाणश्च सहस्रबाहुः ।
भजिः कुजम्भस्त्वथ शम्बरश्च वृत्रादयश्चाप्यथ वीर्यवन्तः ॥ ८ ॥
ते युद्धयमाना विजिताः समन्ताद् द्विधाकृता वै गणवीरकेण ।
शेषे हतानां बहुदानवानामुक्तं जयत्येव हि सिद्धसङ्घैः ॥ ९ ॥
मेरुण्डजानाभिनयप्रवृत्ते मेदोवसामांससुपूयमध्ये ।
क्रव्यादसङ्घातसमाकुले तु भयङ्करे शोणितकर्दमे तु ॥ १० ॥
भग्नैस्तु दैत्यैर्भगवान् पिनाकी व्रतं महापाशुपतं सुघोरम् ।
प्रिये ! मया यत्कृतपूर्वमासीद् दाक्षायणीं प्राह सुसान्त्वयित्वा ॥ ११ ॥

लिए उस गुफा में प्रवेश करने का विचार किया ॥ २ ॥ गुफा में प्रवेश करते ही वीरक ने पाषाण, वृक्ष, वज्र, जल, अग्नि, सर्प एवं अस्त्र-शस्त्रों से उसे ऐसी पीड़ा पहुँचायी जैसा वह जीवन में कभी पीड़ित न हुआ था, उसका सारा शरीर कामाग्नि से तो प्रथम ही जल चुका था, वीरक के प्रहार से वह और भी जर्जर हो गया। इस प्रकार जब वह किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ हो गया तो वीरक ने पूछा कि तू कौन है और कहाँ से आया है ? ॥ ३-४ ॥ वीरक के वचन को सुनकर उसने अपना अभिप्राय प्रकट किया, फिर उस महावीर के साथ युद्ध करने लगा। महावीर वीरक ने अन्धक को एक मुहूर्त्त में युद्ध कर जीत लिया। यह बड़े आश्चर्य की बात हुई, इस प्रकार जीत लिये जाने पर अन्धक संग्राम छोड़कर भूखा-प्यासा भाग खड़ा हुआ। उसका खड्ग टूट गया, सारा अभिमान नष्ट हो गया और वह अत्यन्त खिन्न हो उठा ॥५-६॥ उस समय प्रह्लाद आदि प्रधान दैत्य वीरक के साथ युद्ध करने लगे। किन्तु अत्यन्त रण-कर्कश भी वे दैत्य अनेक शस्त्रास्त्रों से लड़ते हुए पराजित होने के कारण लज्जित हो गये ॥ ७ ॥ तब विरोचन, बलि, सहस्र बाहु वाला बाण, भजि, कुजम्भ, शम्बर एवं वृत्र आदि दैत्य उस वीरक से युद्ध करने लगे ॥८॥

यद्यपि वे चारों ओर से घेरकर वीरक के साथ युद्ध कर रहे थे, किन्तु वीरक ने उन्हें पराजित कर दिया और युद्ध से शेष कितने दैत्यों को मारकर खण्ड-खण्ड कर दिया। वीरक के इस पराक्रम को देखकर सिद्ध-संघों ने जय-जयकार किया ॥ ९ ॥ मेदा, मांस, पीब से महा भयङ्कर उस युद्ध के बीच गीदड़ आनन्द से नृत्य करने लगे एवं रुधिर, मांस आदि के कीचड़ में तथा मांसाहारी जन्तुओं से सारी रणभूमि भयङ्कर दिखाई पड़ने लगी ॥ १० ॥ उस समय वीरक द्वारा दैत्यों के विनष्ट हो जाने पर भगवान् सदाशिव ने अपना पाशुपत व्रत पूर्ण करने का विचार किया और अपनी प्रिया दाक्षायणी को सान्त्वना देते हुए बोले— हे प्रिये ! मैंने पूर्व में जैसी प्रतिज्ञा की थी उसी प्रकार अब इस पाशुपत व्रत को पूर्ण करने के लिए जा रहा हूँ ॥ ११ ॥

शिव उवाच

तस्माद् बलं यन्मम तत्प्रणष्टं मर्त्यैरमर्त्यस्य यतः प्रपातः ।
पुण्यक्षयाद्धी ग्रह एव जातो दिवानिशं देवि ! तव प्रसङ्गात् ॥१२॥
उत्पाद्य दिव्यं परमाद्भुतं तु पुनर्वरं घोरत[illegible] गत्वा ।
तस्माद् व्रतं घोरतरं चरामि सुनिर्भयः सुन्दरि[illegible]का ॥१३॥

सनत्कुमार उवाच

एतावदुक्त्वा वचनं महात्मा उत्पाद्य घोषं [illegible]र ।
स तत्र गत्वा व्रतदृढप्रदीप्तो गतो वनं पुण्यत[illegible]म् ॥१४॥
चर्तुं हि शक्यं तु सुराऽसुरैर्यन्न तादृशं वर्षसहस्रमात्रम् ।
सा पार्वती मन्दरपर्वतस्था प्रतीक्ष्यमाणाऽऽगमनं भवस्य ॥१५॥
पतिव्रता शीलगुणोपपन्ना एकाकिनी नित्यमथो विभीता ।
गुहान्तरे दुःखपरा बभूव संरक्षिता सा सुतवीरकेण ॥१६॥
ततः स दैत्यो वरदानमत्तस्तैर्योधमुख्यैः सहितो गुहां ताम् ।
विभिन्नधैर्यः पुनराजगाम शिलीमुखैर्मारसमुद्भवैश्च ॥१७॥
अत्यद्भुतं तत्र चकार युद्धं हित्वा तदा भोजनपाननिद्राः ।
रात्रिन्दिवं पञ्चशतानि पञ्च क्रुद्धः ससैन्यैः सह वीरकेण ॥१८॥
खड्गैः सकुन्तैः सह भिन्दिपालैर्गदाभुशुण्डीभिरथो प्रकाण्डैः ।
शिलीमुखैरर्द्धशशीस्त्रिरूपैर्वितस्तिभिः कूर्ममुखैर्ज्वलद्भिः ॥१९॥
नाराचमुख्यैर्निशितैश्च शूलैः परश्वधैस्तोमरमुद्गरैश्च ।
खड्गैर्गुडैः पर्वतपादपैश्च दिव्यैरथास्त्रैरपि दैत्यसङ्घैः ॥२०॥

शिवजी बोले—हे देवि ! रात-दिन तुम्हारे साथ प्रसङ्ग करते रहने से अब मेरे बल का क्षय हो गया, जिस प्रकार दुर्ग्रह से मनुष्य का पुण्य नष्ट हो जाता है। देवता लोग भी पुण्य नष्ट हो जाने पर मृत्युलोक में पतित हो जाते हैं ॥१२॥ अब हे सुन्दरि ! मैं वन में गमन कर दिव्य, परम एवं अद्‌भुत वर प्राप्त कर सर्वथा विशोक एवं भय रहित हो जाना चाहता हूँ। इस कारण पाशुपत व्रत का अनुष्ठान करने जा रहा हूँ ॥१३॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार कह कर अत्यन्त तेजस्वी महात्मा शङ्कर अपने शृङ्गी का शनैः शब्द किया और अत्यन्त घोर पुण्यतम वन में जाकर पाशुपत व्रत का अनुष्ठान करने लगे ॥१४॥ जिस पाशुपत व्रत को देवता एवं दानव भी करने में समर्थ नहीं हैं, उसे वे सहस्रों वर्ष पर्यन्त करने लगे। जिस समय पतिव्रता, महाशीलवती पार्वती मन्दर पर्वत की गुहा में स्थित हो सदाशिव के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई अकेले भयभीत होकर दुःखपूर्वक शिवागमन की प्रतीक्षा करती थीं, उस समय वीरक ही उन भगवती की रक्षा करता था ॥ १५-१६ ॥ तभी वरदान से उन्मत्त कामदेव के बाणों से पीड़ित वह दैत्य पवन-प्रेरित भ्रमर के समान बड़े वेग से प्रह्लाद आदि दैत्यों के साथ उस गुफा में प्रवेश किया ॥ १७ ॥ उसने अपने भोजन, पान एवं निद्रा का परित्याग कर दिया तथा अपनी सेना के साथ पाँच सौ पाँच रात-दिन निरन्तर वीरक के साथ खड्ग, बरछे, भिन्दिपाल, गदा, भुशुण्डि, चन्द्रमा के समान, वितस्ति मात्र, हस्तमात्र, कछुए के मुख के समान मुख वाले प्रकाशमान बाणों से, तीक्ष्ण त्रिशूलों से परशु, तोमर, मुद्गर, पर्वत वृक्ष गुड (हस्तिसन्नाह) तथा दिव्यास्त्रों से उन दैत्यों ने घमासान युद्ध किया ॥ १८-२० ॥

न दीधितिर्भिन्नतनुः पपात द्वारं गुहाया पिहितं समस्तम् ।
तैरायुधैर्दैत्यभुजप्रयुक्तैर्गुहामुखे मूर्च्छित एव पश्चात् ॥२१॥
आच्छादितं वीरकमस्त्रजालैर्दैत्यैश्च सर्वैस्तु मुहूर्तमात्रम् ।
अपावृतं कर्तुम[illegible]सीन्निरीक्ष्य देवी दितिजान् सुघोरान् ॥२२॥
भयेन सस्म[illegible]तु देवी सखीभिः सहिता च विष्णुम् ।
सैन्यं च [illegible] सर्वं स स्मारयामास गुहान्तरस्था ॥२३॥
ब्रह्मा तथा [illegible]मात्र एव स्त्रीरूपधारी भगवांश्च विष्णुः ।
इन्द्रश्च सर्वैः [illegible] सैन्यकैश्च स्त्रीरूपमास्थाय समागतास्ते ॥२४॥
भूत्वा स्त्रियस्ते विविशुस्तदानीं मुनीन्द्रसङ्घाश्च महानुभावाः ।
सिद्धाश्च नागास्त्वथ गुह्यकाश्च गुहान्तरं पर्वतराजपुत्र्याः ॥२५॥
यस्मात् सुराज्यासनसंस्थितानामन्तःपुरे सङ्गमनं विरुद्धम् ।
ततः सहस्राणि नितम्बिनीनामनन्तसङ्ख्यान्यपि दर्शयन्त्यः ॥२६॥
रूपाणि दिव्यानि महाद्भुतानि गौर्यै गुहायां तु सवीरकार्यैः ।
स्त्रियः प्रहृष्टा गिरिराजकन्या गुहान्तरं पर्वतराजपुत्र्या ॥२७॥
स्त्रीभिः सहस्रैश्च शतैरनेकैर्नदुश्च कल्पान्तरमेघघोषाः ।
भेर्य्यश्च सङ्ग्रामजयप्रदास्तु ध्माताः सुशङ्खाः सुनितम्बिनीभिः ॥२८॥
मूर्च्छां विहायाऽद्भुतचण्डवीर्यः स वीरको वै पुरतः स्थितस्तु ।
प्रगृह्य शस्त्राणि महारथानां तैरेव शस्त्रैर्दितिजं जघान ॥२९॥
ब्राह्मी ततो दण्डकरा विरुद्धा गौरी तदा क्रोधपरीतचेताः ।
नारायणी शङ्ख-गदा-सुचक्र-धनुर्द्धरा पूरितबाहुदण्डा ॥३०॥

दैत्यों के द्वारा चलाये गये उन शस्त्रों से सारे गुफा का द्वार बन्द हो गया, प्रकाश कहीं लेशमात्र भी न रहा, वीरक भी शस्त्रों के चोट से आहत होकर मूर्च्छित हो गिर पड़ा ॥ २१ ॥ दैत्यों के अस्त्रों से मुहूर्तमात्र के लिए मूर्च्छित हुए वीरक को देखकर एवं भयङ्कर दैत्यों से घिरी गुफा को देखकर गुफा में स्थित देवों ने भयभीत हो सखियों के साथ ब्रह्मा, विष्णु तथा समस्त गणों की सेना का स्मरण किया ॥२२-२३॥ इस प्रकार उस पार्वती के स्मरण करते ही ब्रह्मदेव, भगवान् विष्णु एवं इन्द्रादि प्रतापी मुनिगण, सिद्ध, नाग तथा गुह्यक आदि सभी देवगण स्त्रियों का रूप धारणकर गुफा में प्रविष्ट हो पार्वती के पास पहुँच गये ॥ २४-२५ ॥ उनके स्त्री रूप धारण करने का कारण यह था कि उत्तम राजा के आसनस्थ होने पर उनके अन्तःपुर में पुरुषवेश से जाना निषिद्ध है, इसलिए वे स्त्रीसमूह के रूप में वहाँ एकत्रित हो गये ॥ २६ ॥

वीर कार्य करने वाली वे अद्भुत रूपवाली स्त्रियाँ जब पार्वती की गुफा में प्रविष्ट हुईं तो उन स्त्रियों को देखकर पार्वती अत्यन्त प्रसन्न हो गईं ॥ २७ ॥ उस समय उन सहस्रों स्त्रियों के द्वारा कल्पान्तकालीन प्रचण्ड मेघ के समान विजय देने वाले सहस्रों भेरियाँ और शंख बजाये गये ॥ २८ ॥ इधर महापराक्रमी वीरक भी मूर्च्छा त्यागकर शस्त्र ले देवी के आगे खड़ा हो गया और अपने शस्त्रों से उन दैत्यों का वध करने लगा ॥ २९ ॥ उस समय ब्राह्मी हाथ में दण्ड लेकर युद्ध करने लगी, गौरी क्रोध में पागल होकर,

विनिर्ययौ लाङ्गलदण्डहस्ता व्योमालका काञ्चनतुल्यवर्णा ।
धारासहस्राकुलमुग्रवेगं चैन्द्रौजसी वज्रकरा तदानीम् ॥३१॥
सहस्रनेत्रा युधि सुस्थिरा च सदुर्जया दैत्यशतैरधृष्या ।
वैश्वानरी शक्तिरसौम्यवक्त्रा याम्या च दण्डोद्य[illegible]प्रा ॥३२॥
सुतीक्ष्णखड्गोद्यतपाणिरूपा समाययौ नैर्ऋति[illegible]
तोयालिका वारणपाशहस्ता विनिर्गता युद्धमभी[illegible]३॥
प्रचण्डवातप्रभवा च देवी क्षुधावपुस्त्वङ्कुशपा[illegible]
कल्पान्तवह्निप्रतिमां गदां च पाणौ गृहीत्वा धनदोद्ध[illegible] ॥३४॥
यक्षेश्वरी तीक्ष्णमुखा विरूपा नखायुधा नागभयङ्करी च ।
एतास्तथान्याः शतशो हि देव्यः सुनिर्गताः सङ्कुलयुद्धभूमिषु ॥३५॥
दृष्ट्वा च तत्सैन्यमनन्तपारं विवर्णवर्णाश्च सुविस्मिताश्च ।
समाकुलाः सम्भ्रकिता भयाढ्या देव्यो बभूवुर्हृद-दीनसत्त्वाः ॥३६॥
चक्रुः समाधाय मनःसमस्तास्ता देवशक्ते विधिशक्तिमुख्याः ।
सुसम्मतत्वेन गिरीशपुत्र्याः सेनापतिर्वीरकघोरवीर्यः ॥३७॥
चक्रुर्महायुद्धमभूतपूर्वं निधाय बुद्धौ दितिजाः प्रधानाः ।
निवर्तनं मृत्युमथात्मनश्च नारीभिरन्ये वरदानसत्त्वाः ॥३८॥
अत्यद्भुतं तत्र चकार युद्धं गौरी तदानीं सहिता सखीभिः ।
कृत्वा रणे चाऽद्भुतबुद्धिशौण्डं सेनापतिं वीरकघोरवीर्यम् ॥३९॥

नारायणी अपने हाथों में शंख, गदा, चक्र तथा धनुष धारण कर युद्ध करने लगी ॥ ३० ॥ उस समय कञ्चन के समान वर्णवाली व्योमालिका हाथ में, लाङ्गल दण्ड लेकर तथा ऐन्द्री हाथ में सहस्रों धारावाले प्रचण्ड वेग से युक्त उग्रवेग वाले वज्र लेकर लड़ने लगी ॥ ३१ ॥ युद्ध में निश्चल रहने वाली अत्यन्त दुर्जय एवं सैकड़ों दैत्यों से कभी पराजित न होने वाली सौम्यवक्त्रा वैश्वानरी तथा उग्र दण्ड हाथ में लिये हुए याम्या शक्ति भी युद्ध में प्रवृत्त हो गयी ॥ ३२ ॥ हाथ में अत्यन्त तीक्ष्ण तलवार तथा घोर धनुष लेकर निर्ऋति की शक्ति, वरुण का पाश हाथ में धारण कर तोयालिका, प्रचण्ड पवन की महाशक्ति भूख से व्याकुल हो कुशा हाथ में लेकर एवं कुबेर की शक्ति हाथ में प्रलय काल की अग्नि के समान गदा लेकर युद्धभूमि में आ पहुँची ॥३३-३४॥ तीक्ष्ण मुखवाली यक्षेश्वरी तथा कुरूपा एवं नखास्त्रधारिणी नागभयङ्करी आदि देवियाँ तथा इसी प्रकार की अन्य सैकड़ों देवियाँ संग्रामभूमि में उपस्थित हुईं ॥ ३५ ॥ जब उन देवियों ने दैत्यों की अपार सेना देखीं तो वे विस्मित, भय से व्याकुल एवं मलीन मुख हो अत्यन्त कातर हो गयीं ॥ ३६ ॥

तदनन्तर ब्रह्माणी आदि देवशक्तियों ने पार्वती की सम्मति से अपने मन को समाहित कर वीरक को अपना सेनापति बनाया ॥ ३७ ॥ फिर तो वरदान से अहङ्कार को प्राप्त करने वाले, प्रधान दैत्य 'आज इन नारियों से मृत्यु को प्राप्त होऊँगा अथवा इन पर विजय प्राप्त करूँगा' ऐसा विचारकर बुद्धि को स्थिरकर अभूतपूर्व युद्ध करने लगे ॥ ३८ ॥ उस संग्रामभूमि में अद्भुत बुद्धि सम्पन्न वीरक को अपना सेनापति बनाकर पार्वती ने सखियों के साथ युद्ध में अभूतपूर्व युद्धकौशल दिखाया ॥ ३९ ॥

हिरण्यनेत्रात्मज एव भूपश्चक्रे महाव्यूहमरं सुकर्मा ।
सम्भाव्य विष्णुं च निरीक्ष्य याम्यां सुदारुणं तद्गिलनामधेयम् ॥४०॥
मुखं करालं विधिसेवयाऽस्य तस्मिन् कृते भगवानाजगाम ।
कल्पान्त-घ[illegible]सकान्तिकीर्णं च वै कुपितः कृत्तिवासाः ॥४१॥
गते [illegible] दिव सहस्रमात्रे तमागतं प्रेक्ष्य महेश्वरं च ।
चक्रुर्म[illegible]त्रं नार्यः प्रहृष्टाः सह वीरकेण ॥४२॥
प्रणम्य[illegible]वचनं [illegible]रिशं च मूर्ध्ना संदर्शयन् भर्तुरतीव शौर्य्यम् ।
गौरी प्र[illegible] च चकार हृष्टा हरस्तत[illegible] पर्वतराजपुत्रीम् ॥४३॥
कण्ठे गृहीत्वा तु गुहां प्रविष्टो रमासहस्राणि विसर्जितानि ।
गौरी च सम्मानशतैः प्रपूज्य गुहामुखे वीरकमेव स्थापयन् ॥४४॥
ततो न गौरीं गिरिशं च दृष्ट्वाऽसुरेश्वरो नीतिविचक्षणो हि ।
द्रुतं स्वदूतं विघसाख्यमेव स प्रेषयामास शिवोपकण्ठम् ॥४५॥
तैस्तैः प्रहारैरपि जर्जराङ्गस्तस्मिन् रणे देवगणैरितैर्यः ।
जगाद वाक्यं तु सगर्वमुग्रं प्रविश्य शम्भुं प्रणिपत्य मूर्ध्ना ॥४६॥

दूत उवाच

सम्प्रेषितोऽहं विविशे गुहां तु ह्येषोऽन्धकस्त्वां समुवाच वाक्यम् ।
नार्या न कार्यं तव किञ्चिदस्ति विमुञ्च नारीं तरुणीं सुरूपाम् ॥४७॥
प्रायो भवांस्तापसस्तज्जुषस्व क्षान्तं मया यत्कमनीयमन्तः ।
मुनिर्विरोधव्य इति प्रचिन्त्य न त्वं मुनिस्तापस किं तु शत्रुः ॥४८॥

[illegible] महापराक्रमी हिरण्याक्षपुत्र अन्धक ने भी महाव्यूह की रचना कर दक्षिण दिशा में विष्णु को अवस्थित देख उनसे लड़ने के लिए महापराक्रमी गिल नामक राक्षस को नियुक्त किया ॥ ४० ॥

ब्रह्मदेव की सेवा करने से इस राक्षस का मुख अत्यन्त विकराल हो गया था। इसीलिए इसे मारने के लिए भगवान् विष्णु आये। उसी समय सहस्र वर्ष बीत जाने पर प्रलयकालीन सहस्रों सूर्यों के समान कान्तिवाले, व्याघ्रचर्मधारी भगवान् शिव भी क्रुद्ध होकर युद्धभूमि में आये। महेश्वर को युद्धभूमि में आया देख प्रसन्न हुई उन स्त्रियों ने वीरक को साथ लेकर भयंकर युद्ध करना प्रारम्भ किया ॥४१-४२॥ उस समय सदाशिव को अपना पराक्रम प्रदर्शित करती हुई गौरी ने प्रसन्नतापूर्वक घनघोर युद्ध किया और अपने पति को प्रणाम करने के लिए वहाँ आ पहुँची। शङ्कर भी पार्वती को हृदय से लगाकर गुफा के भीतर प्रविष्ट हो गये। पार्वती ने उन स्त्रियों को अनेक प्रकार से सम्मानित कर विसर्जित किया। केवल वीरक को ही अपने पास रहने दिया ॥ ४३-४४ ॥ तदनन्तर नीति में विलक्षण उस असुर ने गौरी एवं गिरीश को युद्धस्थल में न देख शिव के समीप विघस नामक अपना दूत भेजा ॥ ४५ ॥ संग्राम में देवताओं के प्रहार से क्षत-विक्षत शरीर वाले उस दैत्य ने शिव के पास जाकर उन्हें शिर से प्रणाम कर साभिमान कठोर वचन कहा ॥ ४६ ॥

दूत बोला—हे शम्भो ! अन्धक द्वारा भेजे जाने के कारण मैं इस गुफा में प्रविष्ट हुआ हूँ। उसने आपको सन्देश भेजा है कि तुम तपस्वी को स्त्री की कोई आवश्यकता नहीं है, अतः इस रूपवती युवती नारी को तुम शीघ्र ही त्याग दो ॥ ४७ ॥ प्रायः आप तपस्वी जनों को अन्तःकरण को भूषित करनेवाले क्षमा आदि गुणों का सेवन करना चाहिए, मुनियों से विरोध नहीं करना चाहिए ऐसा विचार कर मैं तुमसे

अतीव दैत्येषु महाविरोधी युध्यस्व वेगेन मया प्रमथ्य।
नयामि पातालतलानुरूपं यमक्षयं तापसधूर्त्त! हि त्वाम् ॥४९॥

सनत्कुमार उवाच

एतद्वचो दूतमुखान्निशम्य कपालमाली तमुवाच [illegible] ।
ज्वलन् विषादेन महांस्त्रिनेत्रः सतां गतिर्दुष्टम[illegible] ॥५०॥

शिव उवाच

व्यक्तं वचस्ते तदतीव चोग्रं प्रोक्तं हि तत्त्वं त्वरितं [illegible] ।
कुरुष्व युद्धं [illegible] प्रसह्य यदि प्रशक्तोऽसि बलेन हि [illegible] ॥५१॥
यः स्यादशक्तो भुवि तस्य कोऽर्थो दारैर्धनैर्वा सुमनोहरैश्च।
आयान्तु दैत्याश्च बलेन मत्ता विचार्यमेवं तु कृतं मयैतत् ॥५२॥
शरीर[illegible]त्राऽपि कुतस्त्वशक्तः कुर्वन्तु यद्यद्विहितं तु तेषाम्।
ममापि [illegible] करणीयमस्ति तत्तत् करिष्यामि न संशयोऽत्र ॥५३॥

सनत्कुमार उवाच

एतद्वचस्तद्विघसोऽपि तस्माच्छ्रुत्वा हरान्निर्गत एव हृष्टः।
प्रागमत्ततो गर्जितहुङ्कृतानि कुर्वंस्ततो दैत्यपतेः सकाशम् ॥५४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे युद्धप्रारम्भ-दूतसम्वाद-वर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

विरोध नहीं करना चाहता, तुम तपस्वी नहीं हो किन्तु मेरे प्रच्छन्न शत्रु हो ॥ ४[illegible] ॥ हे धूर्त्त तापस ! तुम हम दैत्यों के महा विरोधी शत्रु हो, अतः शीघ्रता से मेरे साथ युद्ध करो, मैं आज ही तुम्हारा वध कर तुम्हें रसातल को भेज दूँगा ॥ ४९ ॥

सनत्कुमार बोले—दूत के मुख से निकले हुए इस प्रकार के वचन सुनकर सज्जनों के रक्षक, दुष्ट-जनों के मद को नष्ट करनेवाले, कपालमाली भगवान् शम्भु शोकाग्नि से जलते हुए बड़े क्रोध से उस दूत से बोले ॥ ५० ॥

शिव जी बोले—हे दूत ! तुमने बड़ी कठोर बातें कहीं, मैंने तुम्हारा सारा अभिप्राय जान लिया, अब तुम अपने स्वामी के पास शीघ्र चले जाओ और कहो, यदि तुम बलवान् हो तो शीघ्र आकर मेरे साथ युद्ध करो ॥ ५१ ॥ इस पृथ्वी में जो अशक्त है उसे मनोहर स्त्री तथा धन से क्या प्रयोजन ? दैत्य यदि बली है तो शीघ्र आकर युद्ध करे। मैंने यह सब विचारपूर्वक किया है ॥ ५२ ॥ अशक्त पुरुष तो अपनी शरीररक्षा में भी असमर्थ है, अतः दैत्य लोग जो विहित हो उसे करें, मुझे भी जो [illegible] है सो करूँगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ ५३ ॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार शिव जी के द्वारा कहे गये वचनों को सुनकर विघस दैत्य अत्यन्त प्रसन्न होकर वहाँ से चला आया और गर्जनापूर्वक हुङ्कार करता हुआ दैत्यपति के पास गया ॥ ५४ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका सहित शिवमहापुराण के अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिता के पञ्चम युद्धखण्ड में युद्धप्रारम्भ-दूतसंवाद वर्णन नामक पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

(वीरभद्रादिकों का युद्ध में पराजय तथा अन्धक का अधिक बल प्राप्ति निमित्त शिव की तपस्या)

सनत्कुमार उवाच

तस्ये[illegible] दिवतं दैत्यराजो गदां गृहीत्वा त्वरितः ससैन्यः ।
कृत्व[illegible] गिलनामधेयं सुदारुणं देववरैरभेद्यम् ॥ १ ॥
गुहा[illegible]वचनं[illegible]य महेश्वरस्य विभेद शस्त्रैरशनिप्रकाशैः ।
अन्ये [illegible] वीरकमेव शस्त्रैरवाकिरञ्छैलसुतां तथाऽन्ये ॥ २ ॥
द्वारं हि केचिद्रुचिरं बभञ्जुः पुष्पाणि पत्राणि व्यनाशयेयुः ।
फलानि मूलानि जलं च हृद्यमुद्यानमार्गानपि खण्डयेयुः ॥ ३ ॥
विलोडयेयुर्मुदिताश्च केचिच्छृङ्गाणि शैलस्य च भानुमन्ति ।
ततो हरः संस्मृतवान् स्वसैन्यं समाह्वयन् कुपितः शूलपाणिः ॥ ४ ॥
भूतानि चान्यानि सुदारुणानि देवान् ससैन्यान् सह विष्णुमुख्यान् ।
आहूतमात्रास्तुगणाः ससैन्या रथैर्गजैर्वाजिवृषैश्च गोभिः ॥ ५ ॥
उष्ट्रैः खरैः पक्षिवरैश्च सिंहैस्ते सर्वदेवाः सहभूतसङ्घैः ।
व्याघ्रैर्मृगैः सूकरसारसैश्च समीनमत्स्यैः शिशुमारमुख्यैः ॥ ६ ॥
अन्यैश्च नानाविधजीवसङ्घैर्विशीर्णदंशाः स्फुटितैः स्मशानैः ।
भुजङ्गमैः प्रेतशतैः पिशाचैर्दिव्यैर्विमानैः कमलाकरैश्च ॥ ७ ॥
नदीनदैः पर्वतवाहनैश्च समागताः प्राञ्जलयः प्रणम्य ।
कपर्दिनं तस्थुरदीनसत्त्वाः सेनापतिं वीरकमेव कृत्वा ॥ ८ ॥
विसर्जयामास रणाय देवान् विश्रान्तवाहानथ तत्पिनाकी ।
युद्धे स्थिरं लब्धजयं प्रधानं सम्प्रेषितास्ते तु महेश्वरेण ॥ ९ ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! दूत के मुख से शिव जी का अभिप्राय जानकर वह दैत्यराज गदा ले सेना के सहित शीघ्र युद्ध करने के लिए चल पड़ा । उसने देवगणों से सर्वथा अभेद्य गिल नामक दैत्य को आगे [illegible] किया ॥ १ ॥ गुफा के दरवाजे पर पहुँचते ही उसने वज्र के समान तीखे शस्त्रों से प्रहार करना प्रारम्भ किया । कुछ ने वीरक को शस्त्रों से ढँक दिया और कुछ दैत्यों ने पार्वती के ऊपर बाणों की वर्षा प्रारम्भ की । २ ॥ किसी ने गुफा के मनोहर द्वार को तोड़ दिया, कुछ ने द्वार पर लगे पुष्प, पत्र, फल, मूल तथा मनोहर उद्यान मार्ग को नष्ट कर दिया ॥ ३ ॥ कुछ ने पर्वत के दीप्तिमान शिखरों को तोड़ दिया । इस प्रकार दैत्यों के उपद्रव को देखकर त्रिशूलधारी शिव जी ने अपनी सेना के दारुण भूतगणों को तथा सैन्य सहित विष्णु प्रभृति देवगणों को स्मरण किया ॥ ४-५ ॥ शिव जी के स्मरण करते ही रथ, गज, घोड़े, बैल, गाय, ऊँट, गधे, पक्षिगण, भूतगण, व्याघ्र, मृग, सूकर, सारस, मत्स्य, शिशुमार (नक्र), सर्प, सैकड़ों प्रेत, पिशाच, दिव्य विमान, तालाब, नदी, नद, पर्वतादि वाहनों एवं अन्य विविध जीवों के साथ समस्त देवगण उपस्थित हो गये और शिव जी को प्रणाम कर निर्भय होकर स्थित हो गये । तदनन्तर शिव जी ने वीरक को सेनापति बनाकर थके वाहनवाले उन देवताओं को एवं युद्ध में निश्चित रूप से